

HARMAKOSĀ

VYAVAHĀRAKĀṆḌA

VIVĀDAPĀḌĀNI

[*Titles of Law*]

1941

EDITED BY

Laxmanshastri Joshi, *Tarkateerth.*

President, Prajna Pathashala Mandala.

EDITORIAL STAFF



Editor-in-chief :—

Laxmanshastri Joshi, Tarkateerth,
President, Prājñapāthas'ālā Mandala, Wai.

Sub-editors :—

1. Ranganathshastri Joshi, Sāhityas'āstri, Wai.
2. K. L. Daptari, Esqr., B.A., LL.B., Nagpur.
3. Prof. Dr. V. G. Paranjape, M.A., LL.B., D.Litt.,
Fergusson College, Poona.
4. Prof. N. R. Phatak, B.A., Bombay,
Prof. P. R. Damle M.A., LL. B., Wadā College,
Poona.
6. P. B. Gajendragadkar, Esqr., M. A., LL. B.,
Secretary, Hindu Law Research and
Réforms Association, Bombay.
7. B. N. Khare, Esqr., Wai.

Secretary :—

Pt. Vasudeoshastri Konkar, Pravachanpatu, Wai.

*Appendix 1

| स्तम्भः | पंक्तिः | धर्मकोशः | §आदर्शपुस्तकम् | म. म. गंगानाथ झा |
|---------|---------|---------------------------|---------------------------|--|
| २ | ६ | नाशात्म | नाशात्म | नाशनात्म |
| ॥ | ९-१० | मिव इच्छ | मिव गच्छ | मिच्छ |
| ॥ | १२ | द्वैधविशेष्य | द्वैधविशेष्य | द्वे विशेषे द्वे (as in S.) |
| ॥ | २२ | कार्यकालकारिते | शवकालकारिते | कार्यकारिते |
| १ | २ | यदुप | यदुप | यद्युप |
| ॥ | ॥ | प्रवृत्ते | प्रवृत्ते | प्रवृत्तो (as in S.) |
| ॥ | ३ | षाणामभ्यवपत्तिः | षाणामभ्यवपत्ति | षाणां स्त्रीविप्राणामभ्यवपत्तिः |
| ॥ | ६ | असति | असति | न पुनरत्र पशुहननं असति (as in N.) |
| ॥ | २७ | इत्यनेनोक्तः | इति नोक्तम् | इत्यनेनोक्तम् |
| २ | ११ | मामेव | मामेव | ममैव |
| १ | १२ | प्रदीर्घ | प्राग्दीर्घ | आदि |
| ॥ | १३ | वसन्, तौ | वसन् तौ | वसन्नुच्यते । यतश्च श्रोत्रियाणा- मपि प्रतिवेश्यन्यपदेशोऽस्त्येव सर्वथा । अथवा आधानेन गृहान्तिके निवसन्तावाभ्यां शब्दाभ्यामुच्येते । तौ (as in I. O.) |
| ॥ | १० | उभयं | उभयं | दातव्यं |
| ॥ | १९ | ताप्रत्यापत्ति | ताप्रत्यापत्ति | तप्रत्यापत्ति (as in Mad.) |
| ॥ | ७ | अत्र वेधतिर्भेदने विद्यते | अत्र वेधतिर्भेदने विद्यते | अवेधितप्रदेशेन विध्यते |
| १ | ७ | वेधते | विधते | विध्यते |
| ॥ | ९ | भूतविद्यादिषु | भूताद्याधराः | भूतविद्याः (as in F. N., as in Mad.) |
| ॥ | १७ | संबन्धिशा | संबाधशा | संबन्धेन शा |
| ॥ | ४ | वस्तूपा | वस्तूपा | बल्लोत्पा (as in S.) |
| ॥ | ११ | संधिच्छेदे सत्य | मन्विच्छेदसत्य | संधिच्छेदेऽसत्य |

* मेधातिथिसाम्ये येऽस्मत्कममिमताः म. म. गंगानाथ झा महोदयैः कृताः शोधनविशेषास्तेऽस्माभिः ग्रन्थे संगृहीताः ।
पुस्तकं ... अथवा येषामथे विवादः स्यात् तेऽत्र ससुच्छताः ।

§ जे. आर्. धारण (सुबई) महोदयैः संपादितं (इतिस्ताब्दः १९२०) पुस्तकं सर्वत्र आदर्शत्वेन स्वीकृतम् ।

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् | म. म. गंगानाथ झा |
|--------|---------|---------|--------------------|--------------------|---|
| १८०४ | २ | ८-१० | तथा...दुष्प्रापता | तथा...दुष्प्रापता | omit (not in I. O.) |
| १८०५ | १ | १० | महद्ग्रहणं | महद्ग्रहणा | महद्ग्रहणा (as in S.) |
| " | " | १२ | दे तु | दस्तु | दतस्तु |
| " | २ | ३ | णसंधि | णसंबन्धि | णं संधि |
| " | " | ५-६ | एवं...अथवा | एवं ... अथवा | (omitted in I. O.) |
| १८०६ | " | ४ | हिंसता | हिंसता | हिंसनात् |
| १८०८ | १ | ६ | यानं गच्छेत् | यानं गच्छेत् | यानगच्छत् (as in S.) |
| " | " | ८ | मानस्य | मानस्य | मानं (as in S.) |
| " | " | ९ | रक्षितुं | रक्षितुं | रक्षतु (as in S.) |
| " | " | १४ | वध्निः | वध्नि | वध्न |
| " | २ | १३ | सहसा अपवर्तते | सहसा अपवर्तते | यानमपवर्तते (as in N. and S.) |
| १८११ | १ | १२ | च्छेदो न | च्छेदो न | च्छेदनं |
| १८१२ | " | ८ | नीतिभ्रंशः | नीतिभ्रंशः | (omitted in I. O.) |
| " | " | ११ | यस्य | यस्य | या यस्य (as in S.) |
| " | २ | १० | ताडन | ताडन | ताडनदेश (as in S.) |
| १८५१ | " | १५ | वनं वृक्षसंततिः | वनवृक्षसंततो | वनवृक्षसंततानां |
| १८५२ | " | १३ | तत्र खलु | खलं | (not in I. O.) |
| १८५३ | १ | ६ | तस्त्रिया आलापं | तमालपितुं | तमालापं योजयन् |
| १८५४ | २ | ५ | उत्कृष्टमाकारं | उत्कृष्टमाकारं | उपपत्तिक्षमकाः (as in S.) |
| " | " | ६ | चारणपुरुषेण | चारणपुरुषेण | चारणाः परपुरुषेण (as in S.) |
| " | " | " | प्रतिष्ठन्ते | प्रतिष्ठन्ते | न तिष्ठन्ति (as in S.) |
| " | " | ८ | ता मै | ता मै | ते मै (as in S.) |
| " | " | १० | अन्याश्च स्त्रीभिः | अन्याश्च स्त्रीभिः | योजयन्ति अन्याश्च स्त्रीभिः (as in S.) |
| " | " | ११ | स्त्रदारणां | सुधारणां | स्वनारीणां (as in S.) |
| १८५५ | १ | २६ | प्रणयन्ते | प्रणयन्ते | पत्न्यायन्ते (as in S.) |
| १८५६ | " | ५ | अयमर्थः | यमर्थं | तेनायमर्थं नासि (as in S.) |
| " | २ | ८ | मूलं | मूलं | मूलं रोधनां |
| १८५७ | " | १० | ज्ञातं | ज्ञातं | ज्ञातं विच्छेत् |
| " | " | १२ | न सर्वत्र | न सर्वत्र | सर्वत्र किं गम् (as in S.) |
| १८५८ | १ | १६ | ने चाधिके | नेनाधिके | नेऽधिके |
| १८६१ | २ | ६ | बहु | बहु | त्राय |
| " | " | १२ | त्रात | त्रात | त्रत (as in Mad.) |
| १८६३ | १ | ६ | धानन्तरमे | धानन्तरमे | धितमे |
| १८६४ | २ | १८ | विप्रशूद्र | विप्रशूद्र | शूद्र |
| १८६५ | १ | ३५ | दर्पेण | दर्पेण | ज्ञातिदर्पेण |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् | म. म. गंगानाथ झा |
|--------|---------|---------|------------------|------------------|-------------------------------------|
| १८६६ | २ | २० | अकामायाः | अकामायाः | अकामायाः कन्यायाः (as in Mad.) |
| १९०७ | २ | ७ | प्रत्ययो | प्रत्ययः | प्रत्ययसिद्धानि |
| १९२८ | १ | २१ | स्थानानि वाहनानि | स्थानादपवाहनम् । | स्थानादयः वाहनं |
| १९३१ | २ | १८ | न केवलं | न केवलं | अयं च केवलं (as in S.) |
| १९४५ | १ | २६ | परि | परि | तद्वत्त्वा (as in S.) |
| १९५१ | २ | १६ | तासां च तदु | तासां च तदु | अपरि |
| १९५२ | २ | १० | अचौर्याश्च | अचौराश्च | तासामेतदु (as in S.) |
| १९५३ | १ | १६ | द्विशेषण | द्विशेषण | अचौरश्च (as in S.) |
| १९५४ | १ | ६ | स्वां | स्वां | द्विशेषतो |
| १९५५ | २ | २२ | अर्वाचीनां | अर्थार्थीदीनां | omit |
| १९५७ | २ | २०-२१ | चौरैः समा | चौरैः समा | अस्यार्थादीनां (as in N.) |
| १९८६ | २ | २४ | तस्मादागतं | दायागतं | चौरैर्यस्त्वां आ तदा तस्मादागतं |

* Appendix II

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् |
|--------|---------|---------|--------------|----------------|--------|---------|---------|------------------|---------------------|
| १६३२ | २ | ६ | त्वाद्धिसैवे | त्वात्सिद्धैवे | १६३१ | २ | ८-९ | कुलद्वेषविचित्री | कुलाद्धि विचित्री |
| १६२३ | १ | १४ | नोपे | नापे | १६३२ | १ | २५ | मानेन नो | मानेनो |
| १६२५ | २ | १५ | मत्र | मात्रं | १६३२ | १ | ६ | धनलाभोद्दे | हल्लेशोद्दे |
| १६२६ | २ | १९ | भिहिते | भिहते | १६३२ | १ | १३ | दर्शनादि | दर्शितादि |
| १६२७ | २ | १६ | अन्यस्त्वा | तस्त्वा | १६३२ | १ | १६ | सभ्याना | सत्याना |
| १६२८ | १ | २४ | दुष्टौ चेति | सृष्टश्चेदिति | १६३२ | १ | १ | वाङ्मन्याद् | वङ्गस्याद् |
| १६२९ | २ | ८-९ | योः, अयं | योरर्थ | १६३२ | १ | १० | निर्णयो | (०) |
| १६३० | २ | २७ | करणे | कारणे | १६३२ | १ | १० | व्यत्वेन | व्येन |
| १६३१ | १ | १ | निषेधश्च | निषेधः | १६३२ | २ | ४ | कर्म | अपहृत्य यत्तन |
| १६३२ | १ | १२ | गृहा | पृष्ठगृहा | १६३२ | २ | ८ | लक्षणं | मया कृतमित्याह कर्म |
| १६३३ | १ | ११ | माषकं वा | माषको वा | १६३२ | २ | ७ | च | लक्षणं ५ स्तेयं |
| १६३४ | १ | ४ | दक्रहरणेऽप्य | दकेऽप्य | १६३२ | १ | ७ | च | (०) |
| १६३५ | १ | ११ | दण्डश्च | दण्डः स | १६३२ | १ | २१ | नोदितं | नोदितं |
| १६३६ | १ | ७ | पितृ | पौत्र | १६३२ | १ | ११ | षेधौ त | षेधस्त |

* पं. जे. आर्. धारपुरे महोदयमुद्रितमेधातिथिभाष्यपादटिप्पणीपाठान्कलोच्य स्वकल्पनया च स्वीकृत्य ये शेषनविशेषा

आदर्शपुस्तकापेक्षया इष्टतरा मतास्तेऽत्र अस्माभिः संगृहीताः ।

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् |
|--------|---------|---------|--|--|--------|---------|---------|-------------------|---------------|
| १६९२ | १ | २५ | रक्षणे तु | रक्षानु | १७०० | १ | २० | सका | प्रका |
| " | " | २८ | अन्ये तु | अन्येषां तु | " | " | २१ | द्धर्म | द्धर्मात् |
| " | " | " | त्वदर्शनादर्थ | त्वादर्थमर्थ | " | " | २४ | चौरभा | चौर्यभा |
| " | " | ३० | यास्ते राज्ञः | यस्य तद्राज्ञः | " | " | २६ | रक्षणे | रक्षैव तत्र |
| " | २ | १६ | निग्रहो रक्षा च | निग्रहरक्षा | " | २ | २ | पालने च न | पालने कानु |
| " | " | २७ | वधविधिशेष | धर्माविशेष | " | " | | काप्यनु | |
| १६९३ | १ | ६ | युक्ताऽप्र | योरप्र | " | " | १७-८ | न च | (०) |
| " | " | १३ | न | (०) | " | " | १८ | नात् क | नं क |
| " | " | २० | शतस्क | शतस्क | " | " | " | शाः | शात् |
| " | " | २१ | नास्ति | नाति | १७०१ | १ | १२-३ | देषु यानि | दे सूप्ते |
| " | " | २२ | मास्ति तैः | मास्ततैः | " | " | १५ | फला | फल |
| " | २ | ४ | नाक्षेपं | नापेक्षार्थ | " | २ | ८ | मलं | बलं |
| " | " | १६ | त्कार्ये क | त्कार्येण क | १७०२ | १ | १२ | मात्रं | मगमनस्यात्र |
| " | " | १७ | प्रवृत्तौ अर्थ- | प्रवृत्तौ | " | " | " | व्यमिति | व्यम् |
| " | " | | ग्रहणेन | ग्रहणाति | " | २ | १६ | तपसि | तप |
| " | " | " | वर्तन्ते | वर्तते | " | " | १९ | क्षणात् | क्षण |
| १६९४ | १ | ३ | पदं व | पादव | १७०३ | १ | २१ | तत एव | तत्र |
| " | " | ४ | कुर्वन्ति | कुर्वत | " | " | २७ | श्रेयनाम्नी | स्यान्नाम्नी |
| " | " | ६ | उपजीवन्ति | जीवन्ति | " | " | " | न विशे | विशे |
| " | " | ९ | तवास्ति | तथाऽस्ति | " | " | २८ | चैषां | चैष |
| " | " | १०-११ | अभद्रा भद्राः । प्रेक्षणीकाः सर्वस्य करदर्शनेन प्रशंसन्ति पुरुष- लक्षणानि । | सर्वस्य करवर्धने अभद्रा भद्राप्रेक्ष- णीकाः प्रशंसि- पुरुषलक्षणाः | " | २ | २३ | रस्यति | न्यस्यति |
| " | " | | | | " | " | २६ | ब्रह्मज्ञो नश्यति | ब्रह्मज्ञो |
| " | " | | | | १७०४ | १ | २५ | पातितो | पातिते |
| " | " | | | | " | " | २७-८ | रोहकं | रोहिकं |
| " | " | | | | " | २ | १८ | कर | कार |
| " | " | | | | " | " | २४ | च | (०) |
| " | २ | १८ | हारिणां | हारिणां | १७०५ | १ | २० | मोक्त्या | मोक्तौ |
| " | " | १९ | ह्यासक्तं | ह्यासक्त्यं | १७०६ | " | २ | प्रोक्षि | प्रोक्षि |
| " | " | २० | धारय | धारय | " | २ | २३ | दण्डं | दण्डौ |
| " | " | " | तथाऽभृत्यो | तथा भृत्यो | " | " | २६ | कयी इ | कृय इ |
| १६९५ | १ | ५ | तत्कर्मकारिभिः | (०) | १७०७ | " | १७ | सिद्धा, मा | सिद्धमा |
| " | " | ८ | न्यैरपि चारैर | चैरपि चारैस्तत्क- र्मकारिभिर | " | " | १८ | सर्व | सर्वतोभागे |
| १६९७ | " | १२ | मोषस्य संनिधा- तारः | मोषस्य संनिधा- तारः कर्तारः | १७०८ | १ | ७ | ग्भिश्च | ग्भिः स्व |
| १६९९ | " | ३-४ | मजाविकाश्वा | माजानेयाश्वा | " | " | १० | रे नाथ | रानीय |
| १७०१ | " | २ | दण्डोऽनु | शब्दोऽनु | १७०९ | २ | ९ | शाटका | शाकटका |
| " | " | १९ | भिरति | भिरिति | " | " | ११ | वयञ्चै | यं नै |
| " | " | २६ | न्ते दे | न्ते दे | १७११ | " | १० | विशि | वाशि |
| " | " | | | | " | " | " | हरणे | विशेषे |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् |
|--------|---------|---------|--------------------|--------------------|--------|---------|---------|--------------|-----------------|
| १७१२ | १ | ११-१२ | यत् एव तत्रैव | यद्येवं तत्रैव कु- | १७२४ | १ | १ | विहित | विहित |
| | | | कुलीनानामित्युक्तं | लीनमुक्तं | १७२५ | २ | २५ | किमर्थम् | कर्मार्थम् |
| | | १३ | तच्च बला | तत्र प्रबला | १७२७ | | १२ | त्वात् | त्वाच्च |
| | २ | २८ | राजा | राज्या | | | २० | नानन्त | नान्त |
| १७१३ | १ | २३ | तेन स्तेनार्थ | तेनार्थ | १७२८ | १ | २४ | किञ्चन | किञ्चन |
| १७१४ | | १४ | त्स्वकृतः | त्स्वकृते | १७७३ | | २९ | त्युक्तौ | त्युक्त्वा |
| | | | निदाघे | निदानं | | २ | १८-९ | अकारणं 'हन्त | अकरणहन्ता |
| | | १९ | क्षेत्रिक | क्षेत्रक | | | | वृषलो भूयाः | वृषलभूवाः |
| | २ | २८ | प्रस्थान् | प्रस्थाः | | | २० | णाक्रो | णक्रो |
| १७१५ | १ | २ | तत्तस्य | तस्य | | | २१ | त्रिया | त्रिय |
| १७१८ | | १७ | सा मरु | स मरु | १७७६ | १ | ४ | गर्हा | गर्मः |
| | २ | १२ | कृतेर्वि | कृतिर्वि | | | १९ | ज्ञत | ज्ञानत |
| | | १३ | प्रकृति | (०) | | | २२ | मय | मयति |
| | | १६ | चेति अय | चेत्त्वय | | २ | १० | बाह्य | बाह्य |
| १७१९ | १ | १५ | हरितं | हरन्ति | | | १३ | रमव्य | रेऽव्य |
| | | १९ | पलाश | पलाशे | १७७९ | १ | ७ | तीयं प्र | तीयप्र |
| | | | न परि | परि | | | ८ | हणं | हण |
| | २ | १५ | मूलं इष्टुः, | मूलमिष्टुद्रा | १८०१ | | ११ | परुष | पुरुष |
| | | | फलं द्वा | | | | १३ | हारापरो | हारो |
| १७२० | १ | २० | त्यादेः | त्यादि | | २ | ५ | विज्ञायीति | विज्ञायि |
| | | २२ | अभि गृ | अभिगृ | | | ६ | देशः, म | देशोप |
| | | | त्याद्यर्थ | त्यादिकं | | | ७ | त्यर्थम् | त्यर्थः |
| | | २४ | काले शी | कालः शी | १८०२ | १ | २ | तोऽप्यस्य | तोऽस्य |
| | | | काले । | कालः | १८०३ | २ | ३ | करणे | कर |
| | | २६ | न | (०) | १८०४ | | ७ | नाशे दमः | नाशमाह |
| १७२१ | | ६ | ज्ञोऽहमिति | ज्ञोऽहं | १८०५ | | ५ | दसौ पि | दपी |
| | २ | २ | खलु | खल | | | ६ | नाया | नाना |
| | | ३ | गुणं अ | गुणाम | | | १० | द्युत्पत्तौ | द्युत्पत्तौ |
| | | ८ | श्रितस्त | श्रितत | १८०६ | | २७ | चार्मिक | चार्मिक |
| | | १०-११ | ष्टिः शतमष्ट- | ष्टिशतमष्ट- | १८०८ | १ | ८ | शक्तौ | (०) |
| | | | विशाधिकश | विशं वा श | | | १८ | मन्तं यदि | मन्यदि |
| | | १४ | हन्तं ज | हन्त ज | १८०९ | २ | १६ | पथि स्थि | पथितो न स्थि |
| | | १७ | मात्र | मात्रा | | | | विधियमाणः | न विधियमाणोऽथवा |
| | | २६ | अष्टा | नष्टा | | | १७ | इतिवत् | इति चेत |
| १७२२ | | १७ | स्पतिरेव | स्पत एव | १८१० | १ | २२ | र्मनु | र्मनु |
| १७२३ | | २ | न प्र | नाप्र | | | २३ | वधस | वधः स |
| | | १६ | ग्रहणा | हरणा | | २ | १३ | कचि | कदाचि |
| | | १९ | ण वा | णैवा | | | १४ | पद्येत | पद्यते |
| | | २६ | न | कः | १८११ | १ | ६ | लकश्च | लकश्च |

| पृष्ठं स्तम्भः | पंक्तिः धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् | पृष्ठं स्तम्भः | पंक्तिः धर्मकोशः | आदर्शपुस्तकम् | |
|----------------|------------------|--------------------------|----------------|----------------------------|--------------------|-------------|
| १८११ | १ | ८ यानविधि | १८६५ | १ | १४ षे गम | षागम |
| १८५१ | २ | १२ यतीति | " " | १७ ल्येवं | ल्येव | ल्येव |
| " " | २१ | प्रकाशे | १८६६ | २ | २२ जात्यादि | जात्या |
| १८५२ | " | ६ स्पर्शस्तु | १८६७ | " | १७ वधार्थ | वध्यर्थ |
| " " | १०-११ | कश्चित्सहते, 'भवति मा | " " | १८ द्व्यर्थः, तत्र समां | द्व्यर्थस्तत्रेमां | |
| " " | १४ | तः । शुष्के | १८६८ | १ | २१ पूर्वद | पूर्व द |
| १८५३ | १ | ६ संभाषा | १८७० | " | २ निग्रह | संग्रह |
| " " | ८ | अन्यत्र | " " | २१ वित्तस्वा | यित्तास्वा | |
| १८५४ | २ | ९ ज्ञाताः । | " " | २२ समानेषु मूर्धनि | समानस्यर्धिनो | |
| " " | " | चारणं | " " | २४ ख्यातिमुत्पादयति | इत्युत्पादयन्ति | |
| १८५५ | १ | २४ णाद्यत्य | " " | २५ इति न | इति | |
| " " | २४-५ | गादिकं | १९०६ | २ | १९ अन्यः | (०) |
| १८५६ | " | २ नादार | १९०७ | " | १३ विप्रति | प्रति |
| " " | ४ | त्रिर्ध्व | १९३१ | १ | ३० परे अस्या | परे स्व |
| " " | ३ | मूलमस्य | " " | १ | राष्ट्रीयाः | राष्ट्रे या |
| १८५७ | १ | ११ विशेषज | " " | " | शोच्यमा | षेण्यमा |
| " " | २० | दारोपचारादौ | " " | ७ द्विष्ट | द्विष्ट | |
| " " | १६ | दुच्येत | १९४५ | १ | ४ तरे पणं | तरेण पादं |
| " " | " | तच्छब्देनाभि | " " | ११ तरणे | तरेण | |
| " " | २ | दिभिः व्या | " " | २४ सारेण | चारेण | |
| १८५८ | १ | १७ नोच्येत | " " | २९ स्तरो | स्तरे | |
| " " | १८ | न मुच्येत | १९४६ | " | १२ बन्धनेन | बन्धन |
| १८५९ | " | १० यां ब्राह्मण्यां | १९४७ | १ | २ द्विष्टया | द्विष्टया |
| १८६० | " | १ अस्यास्ति | १९५१ | २ | २६ कुलटां | कुटिलां |
| " " | " | दण्डोऽस्ति | " " | ३० तत्र रक्ष्यधनाः । | सा रक्ष्यधनाः | |
| " " | " | दण्डोऽत्र | १९५२ | " | ९ पधाभि | पधाभि |
| " " | १६ | गच्छतः | १९५७ | १ | २५ भागा | भाग |
| " " | १० | अगुप्ता | १९८७ | " | २ न | (०) |
| १८६१ | १ | २० चरति | " " | २२ यावृत्त | यावृत्त | |
| " " | २१ | अथ | " " | २४ यत्र | यतो | |
| " " | २७ | विवाहस्य | " " | २५ असत्य | त्वसत्य | |
| " " | १५-६ | ज्ञात एव | " " | २८ नृत्पत्या | नृत्पत्ति | |
| " " | १६ | इति | " " | " | गः कृतः | गकृतां |

विवादपदानां विषयानुक्रमणिका

साहसम्

(पृ. १५९१-१६५५)

वेदाः— (१५९१-१६०३) अपराधविशेषाः अपराधकारणानि च; सप्तमर्यादाभङ्गापराधाः; कतिपय-दोषाणां दोषत्वतारतम्यम् (१५९१); कतिपयदोषाः; पञ्च महापातकानि (१५९२); अभिशंसनम्-अभि-शस्तिः (१५९३); अभिशस्तत्यागः; अभिशस्तस्य आत्विज्यान्धिकारः; स्तेयानृत्याभिशंसनयोरपराधत्वम्; अभिशस्तनिष्कृतिः अभिशस्तत्यागश्च १५९४; वीरहत्या— वीरहत्या, तद्दण्डश्च [मनुष्यहत्या तद्दण्डश्च] १५९५; ब्रह्महत्या—ब्रह्महत्या, तदपनोदश्च १५९७; भ्रूणहत्या, अन्ये च महादोषाः १६०१. निरुक्तम्— (१६०३)सप्तमर्यादाव्याख्यानम्. गौतमः—(१६०४-५) निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; साहसिका महान्तोऽपि नानु-सरणीयाः १६०४; स्वधर्मातिक्रमसाहसदण्डः १६०५. आपस्तम्बः— (१६०५-६) ब्राह्मणस्य शस्त्रग्रहण-निषेधप्रतिप्रसवौ; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; साहसिका महान्तोऽपि नानुसरणीयाः १६०५; महासाहसिक-शूद्रादिदण्डः; ब्राह्मणे विशेषश्च १६०६. बौधायनः— (१६०६-८) वधसाहसं तद्दण्डश्च १६०६; निमित्त-विशेषे साहसानुज्ञा १६०७. वसिष्ठः— (१६०८) निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; आततायिनः. विष्णुः— (१६०८-१२) साहसप्रकाराः १६०८; महापातक-साहसदण्डविधिः; कूटशासन-विषाग्निदान-प्रसह्यतास्कर्य-स्त्रीबालपुरुषघात - धान्यापहार - कन्यानृत - साहसदण्ड-विधिः; पशुपक्षिकीटनृगवणस्पतिघात - विमांसविक्रय-साहसेषु दण्डविधिः; अधिकृतानामपथदान-आसनाप्र-दान-अपूजासु भोजननिमन्त्रणसंबन्धव्यतिक्रमेषु च

दण्डविधिः १६०९; चतुर्वर्णानां अभक्ष्यापेयादिना-दूषणे उद्यानभूम्यादिदूषणे च दण्डविधिः; गृहभूकुड्या-दिभेदन - गृहपीडाकरद्रव्यक्षेप-साधारण्यापलाप - प्रेषिता-प्रदान-पितृपुत्रादित्यागादिदोषेषु दण्डविधिः १६१०; पितापुत्रविरोधे साक्ष्यादीनां दण्डविधिः; तुलामानकूटत्व-विक्रयदोष-शुल्कग्रहणदोषेषु दण्डविधिः; जातिभ्रंशकर-भक्षणे दण्डविधिः; अभक्ष्याविक्रयविक्रय-देवमूर्तिभेदनयो-र्दण्डविधिः; कूटसाक्षि-उत्कोचजीविसभ्य-दण्ड्यमोचयितृ-अदण्ड्यदण्डयितृणां दण्डविधिः १६११; राज्याङ्गदूषण-साहसदण्डविधिः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; आतता-यिनः १६१२. शङ्खः शङ्खलिखितौ च—(१६१२-३) साहसप्रकाराः; मातापितापुत्राद्यन्योन्यत्यागादौ माता-पितागुर्वतिक्रमे च दण्डविधिः १६१२; प्रतिमाराम-कूपप्रदेभङ्गे कूटशासनतुलामानप्रतिमानकरणे वापी-कूपादिदूषणेऽदासीदासदानादौ च दण्डविधिः; पितापुत्र-विरोधसाक्ष्यादिदण्डविधिः १६१३. कौटिलीयसर्थ-शास्त्रम्— (१६१३-२२) साहसम् १६१३; आशुमृतकपरीक्षा १६१५; एकाङ्गवधनिष्कयः १६१७; शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः १६१८; अतिचारदण्डः १६२०. मनुः— (१६२२-३२) स्तेय-साहसयोर्निरुक्तिः; साहसिकः पापकृत्तमः, तस्योपेक्षा राज्ञा नैव कर्तव्या १६२२; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६२३; महापातकिसाहसिकदण्डविधिः; मातापितास्त्री-पुत्राणामन्योन्यत्यागे दण्डः १६२७; निमित्तविशेषेषु प्रातिवेश्यब्राह्मणाद्यभोजने दण्डविधिः; पितापुत्र-विरोधसाक्ष्यादिदण्डविधिः; अभक्ष्यापेयादिप्राशयितृ-ग्रसितृदण्डविधिः १६२८; धर्मोपजीविनो धर्नच्युतस्य दण्डविधिः; उत्कृष्टकर्मभिर्जावन् अधमजातीयो दण्ड्यः; तडाग-कोष्ठागार-देवतागार-जलमार्गादिभेदनाद्यपराधेषु

दण्डविधिः १६२९; विविधद्रव्यनाशापराधेषु दण्डविधिः; संक्रमस्वजप्रतिमादिद्रव्यभेदनदूषणादौ दण्डविधिः १६३०; राजमार्गदूषणे दण्डविधिः; अभिचारमूलक्रिया-कृत्यासु दण्डविधिः; राजपुरुषाणां धनलोभादिदोषेषु दण्डविधिः १६३१. याज्ञवल्क्यः— (१६३३-४१) साहसनिरुक्तिस्तदण्डश्च; साहसकारयितुदण्डः १६३३; पूज्यातिक्रम-भ्रातृभार्याप्रहार-प्रतिश्रुताप्रदान-मुद्रासहित-ग्रहमङ्गल-सामन्तादि-डीडाकरणापराधेषु दण्डविधिः; विधवागमन-परभयानिवारण-वृथाक्रोश-चाण्डालकृत-स्युश्यस्पर्श-शूद्रप्रव्रजितादिभोजन-अयुक्तशपथ-अयोग्य-कर्मकरण-पशुपुंस्त्वोपघात-साधारणापलाप-दासीगर्भपात-पितृपुत्राद्यन्योन्यत्यागेषु दण्डविधिः १६३४; तारिकेण स्थलजशुल्कग्रहणे प्रातिवेश्यब्राह्मणानिमन्त्रणे च दण्डः; पितापुत्रविरोधसाक्ष्यादिदण्डविधिः १६३५; अभक्ष्या-पेयादिना चातुर्वर्ण्यदूषणे दण्डविधिः; जारप्रच्छादन-शववस्तुविक्रय-गुरुताडन-राजयानाद्यारोहण-द्विनेत्रभेदन-राजद्विडुपजीवन-शूद्रकृतविप्रत्वोपजीवनेषु अपराधेषु दण्डविधिः १६३६; शस्त्राघात-गर्भपात-स्त्रीपुंवध-दुष्ट-स्त्रीकृतपुंवधादिदोषेषु दण्डविधिः १६३७; क्षेत्रवेश्मादि-दाहराजपत्नीगमनापराधेषु दण्डविधिः; राजपुरुषकृता-पराधेषु दण्डविधिः १६३९; अविज्ञातहन्तुरन्वेषणविधिः १६४०. नारदः— (१६४१-४५) साहसनिरुक्तिः; त्रयश्चत्वारश्च साहसप्रकाराः. तत्र दण्डविधिश्च १६४१; अपराधविषयकपश्चात्तापे सति असति च कर्तव्यता १६४४; अविक्रयविक्रये ब्राह्मणदण्डः; राजधृतवस्तुनि आक्रममाणो वधदण्डार्हः. १६४५. बृहस्पतिः— (१६४५-८) साहसनिरुक्तिः; पञ्च त्रयश्च साहस-प्रकाराः, तत्र दण्डविधिश्च; साहसस्तेयं तत्र दण्डश्च १६४५; साहसिकवधदण्डविचारः; साहसिका राज्ञो नोपेक्षणीयाः; साहसिकघातकतत्सहायाः तदण्डश्च १६४६; अविज्ञातघातकाद्यन्वेषणविधिः १६४७; आत्म-हत्यादोषः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; साहसकल्पदोषाः १६४८. कात्यायनः— (१६४८-५१) साहस-निरुक्तिः १६४८; द्रव्यनाशादिप्रथममध्यमोत्तमसाह-सानि तदण्डविधिश्च १६४९; साहसकृतदन्वेषणविधिः; आततायिनः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६५०.

व्यासः— (१६५१) वधसाहसकर्तुर्दण्डः; मिथ्या-भैषज्यापराधः. देवलः— (१६५१) आत्महत्यादोषः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा. उशाना— (१६५२) गर्भपातनसाहसे दण्डः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा. यमः— (१६५२) विषामिद-चौर-वधकारि-तडाग-भेदकादिसाहसिकेषु दण्डविधिः; साहसिकस्तेयादिकृद्-ब्राह्मणदण्डविधिः; आत्महत्यायत्नकरणे दण्डः. संवर्तः— (१६५३) निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा. वृद्धहारीतः— (१६५३) निमित्तविशेषे साहसा-नुज्ञा; साहसिकानां दण्डविधिः, तत्र ब्राह्मणे विशेषश्च. सुमन्तुः— (१६५३) निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा. पैठीनसिः— (१६५३) घातकसहायादिसाहसिक-दण्डविधिः. गालवः— (१६५४) निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा. अग्निपुराणम्— (१६५४) मर्यादा-भेदकादिषु दण्डविधिः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; राजपुरुषाणां धनलोभादिदोषेषु दण्डविधिः; प्रतिमादि-भेदने अभक्ष्यमक्षणे च दण्डः. ब्रह्मपुराणम्— (१६५४) आततायिविशेषः. मत्स्यपुराणम्— (१६५५) राजप्रतिकूलसाहसिकदण्डविधिः; ब्राह्मणमन्त्रणसंबन्धिदोषे दण्डः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; आततायिनः. भविष्यपुराणम्— (१६५५) निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा. संग्रहकारः (स्मृतिसंग्रहः)— (१६५५) साहसनिरुक्तिः; निमित्त-विशेषे साहसानुज्ञा.

स्तेयम्

(पृ. १६५६-१७६७)

वेदाः— (१६५६) राजा स्तेनं बध्नाति; स्तेन-त्वापवादः; स्तेयस्य दुष्टत्वं शपथविभाव्यत्वं च; स्तेनो हन्तव्यः. गौतमः— (१६५६-६३) वर्णभेदेन स्तेय-दण्डः १६५६; दण्डानर्हस्तेयम् १६५७; स्तेयमहापा-तकदण्डविधिः; दण्डयोत्सर्गे राज्ञो दोषः; ब्राह्मणे विशेषः १६५८; चौरसाहाय्ये अधर्मसंयुक्तप्रतिग्रहे च दण्डः; स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १६५९; प्रकाशचौर्यप्रसङ्गात् कर-शुल्कस्थापनाविधिः १६६१; चौरहृतं राज्ञा स्वामिने प्रदेयमलब्धेऽपि चौरैः १६६३. हारीतः— (१६६३)

राज्ये चौरदोषः. आपस्तम्बः— (१६६४-७) तस्कर-
भयरहितराज्यकरणं मुख्यो राजधर्मः; शूद्रादीनां स्तेया-
दिमहापातकदण्डविधिः; ब्राह्मणे विशेषश्च १६६४;
दण्डार्हानर्हस्तेयविचारः; दण्ड्योत्सर्गो राज्ञो दोषः; स्तेय-
दोषे आपदनापत्कालद्रव्यविशेषादिविचारः १६६५;
दण्ड्यादण्डने दोषः; शुल्कस्थापना १६६६. बौधायनः
(१६६७) स्तेयमहापातकदण्डविधिः; दण्ड्योत्सर्गो
राज्ञो दोषः; शुल्कस्थापना. वसिष्ठः—(१६६७-८)
स्तेयदुष्टलक्षणानि १६६७; स्तेयमहापातकदण्डविधिः;
दण्ड्योत्सर्गो राज्ञो दोषः; अर्धस्थापना शुल्कस्थापना
च १६६८. विष्णुः— (१६६८-७१) प्रकाश-
वञ्चकानां शुल्कपरिहर्तृकृततुलामानकर्त्रादीनां दण्डः
१६६८; अप्रकाशतस्कराणां पशुधान्यवस्त्रभक्ष्यपेयरत्ना-
दिद्रव्यहारिणां दण्डविधिः १६६९; करशुल्कस्थापना;
चौरदण्डं चौरैऽलब्धेऽपि स्वामिने प्रत्यर्पणीयम् १६७१.
शङ्खः शङ्खलिखितौ च— (१६७१-२) मानार्थ-
स्थापनाविधिः; प्रकाशवञ्चक-कृततुलामानव्यवहर्त्रादि-
दण्डविधिः; अप्रकाशतस्कराणां पशुपुरुषभाण्डाद्यप-
हारिणां दण्डविधिः १६७१; वर्णविशेषकृतचौर्यदण्ड-
विधिः; चौर्यशङ्कितशोधनदण्डौ; दण्ड्यादण्डने राजदोषः
१६७२. कौटिलीयमर्थशास्त्रम्— (१६७३-९०)
कारुकरक्षणम् १६७३; वैदेहकरक्षणम् १६७७;
गुढाजीविनां रक्षा १६७९; सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम्
१६८१; शङ्करूपकर्नामिप्रहः १६८२; वाक्यकर्मानु-
योगः १६८५; सर्वाधिकरणरक्षणम् १६८८. मनुः—
(१६९०-१७२८) स्तेयविवादपदप्रतिज्ञा १६९०;
स्तेयसाहसयोर्निरुक्तिः १६९१; राज्यकण्टकाः प्रकाशा-
प्रकाशतस्कराः; कण्टकशुद्धिः, तदर्थं चाराशन्वेषकविधिः
१६९२; तस्करादिकण्टकान्वेषणविधिः १६९५; स्तेना-
तिदेशः १६९७; चौरादिकण्टकनिग्रहो राज्ञो धर्मः
१६९९; स्तेयमहापातकदण्डविधिः; दण्ड्यस्य मोक्षे राजा
दोषभाक् १७०२; चौरस्य पापस्य च दण्डेन प्रायश्चित्त-
ब्रह्मच्छुद्धिः १७०४; प्रकाशतस्करदण्डाः १७०५; प्रकाश-
तस्करप्रकरणे प्रसङ्गात् अर्धमानादिव्यवस्थाविधिः
१७०७; प्रकाशतस्करदण्डाः (पूर्वतोऽनुवृत्ताः) १७०८;
अप्रकाशतस्करदण्डाः १७११; अप्रकाशचौर्याभ्यासे

शारीरो दण्डः. १७२०; वर्णतः स्तेयदोषतारतम्यम्
१७२१; स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १७२२; स्तेनप्रकरणोप-
संहारः; करग्रहणविचारः १७२७. याज्ञवल्क्यः—
(१७२८-४४) स्तेयलक्षणम्; प्रकाशतस्करदण्डाः
१७२८; प्रकाशस्तेयप्रकरणे प्रसङ्गतः अर्धस्थापनाविधिः
१७३१; प्रकाशस्तेयदण्डप्रकरणानुवृत्तिः १७३२; अप्र-
काशतस्करदण्डाः १७३६; स्तेये दण्डविवेकसाधनो
न्यायः; स्तेयप्रकाराश्च १७३८; चौरान्वेषणम् १७४०;
स्तेनातिदेशः १७४२; स्तेनालामे हृतदानम् १७४३;
स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १७४४. नारदः— (१७४४-५७)
स्तेयलक्षणं स्तेयप्रकाराश्च; तस्करप्रकाराः १७४५; प्रकाश-
तस्करदण्डाः १७४६; अप्रकाशतस्करदण्डाः; अप्रका-
शस्तेये दण्डविवेकसाधनो न्यायः १७४८; अप्रकाश-
तस्करदण्डप्रकरणानुवृत्तिः १७४९; पश्चात्तस्तेनदण्डः
१७५१; विदुषः स्तेनस्य वर्णभेदेन दण्डतारतम्यम्;
स्तेयदोषप्रतिप्रसवः; चौरान्वेषणम् १७५२; स्तेनातिदेशः
१७५५; स्तेनालामे हृतदानम् १७५६. बृहस्पतिः—
(१७५७-६१) स्तेनप्रकाराः १७५७; प्रकाशतस्कर-
दण्डाः १७५८; अप्रकाशतस्करदण्डाः; चौरान्वेषणम्
१७६०; स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १७६१. कात्यायनः—
(१७६१-६३) स्तेयसाहसयोर्लक्षणम्; प्रकाशतस्कर-
दण्डाः; अप्रकाशतस्करदण्डाः १७६१; चौरान्वेषणम्;
स्तेनातिदेशः; स्तेनालामे हृतदानम् १७६२; स्तेयदोष-
प्रतिप्रसवः १७६३. व्यासः— (१७६३-५) स्तेन-
प्रकाराः १७६३; प्रकाशतस्करदण्डाः १७६४; अप्रकाश-
तस्करदण्डाः; चौरान्वेषणम्; स्तेनालामे हृतदानम्;
स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १७६५. उशाना— (१७६६)
अप्रकाशतस्करदण्डः. यमः— (१७६६) अप्रकाश-
तस्करदण्डः; स्तेयदोषप्रतिप्रसवः. लोकाक्षिः—
(लौगाक्षिः ?) — (१७६६) अप्रकाशतस्कर-
दण्डः. कण्वः— (१७६६) अप्रकाशतस्करदण्डः.
वृद्धमनुः— (१७६६) अप्रकाशतस्करदण्डः;
स्तेनालामे हृतदानम्. अग्निपुराणम्— (१७६६)
प्रकाशतस्करदण्डः; स्तेयदोषप्रतिप्रसवः. मत्स्यपुराणम्—
(१७६७) प्रकाशतस्करदण्डः; स्तेयदोषप्रतिप्रसवः.
शुक्रनीतिः— (१७६७) कूटपण्यविक्रेतुदण्डः; स्तेय-

प्रसङ्गेन शिल्पिनां विविधभृतिविचारश्च.

वाक्पारुष्यम्

(पृ. १७६८-१७९२)

वेदाः—(१७६८) ब्राह्मणं प्रति अकुशलोक्ति-
निषेधः. गौतमः—(१७६८-९) शूद्रकृतवाग्दण्ड-
पारुष्यदण्डसामान्यविधिः; वेदाध्यायिशूद्रदण्डः १७६८;
त्रैवर्णिककृतवाक्पारुष्ये दण्डः १७६९. हारीतः—
(१७६९) असमवर्णकृतवाक्पारुष्यदण्डसामान्यविधिः;
वेदाध्यायिशूद्रदण्डः; मिथ्यावाक्पारुष्ये दण्ड-
सामान्यविधिः. आपस्तम्बः—(१७६९) शूद्रकृत-
वाक्पारुष्ये दण्डः. वसिष्ठः—(१७७०) पातकाभि-
शंसने दण्डः. विष्णुः—(१७७०-७१) हीनवर्ण-
कृतवाक्पारुष्ये दण्डः; वाक्पारुष्यविशेषाः, तत्र
दण्डाश्च १७७०; समासमवर्णाक्रोशक्षेपादिषु दण्डाः
१७७१. शंखः शंखलिखितौ च—(१७७१)
समासमवर्णाक्षेपातिक्रमादिषु दण्डाः; वर्णभेदेन आक्रोश-
दण्डाः; अधिकृतविप्रगुरुभर्त्सने दण्डाः. कौटिलीयमर्थ-
शास्त्रम्—(१७७१-३) वाक्पारुष्यम् १७७१.
मनुः—(१७७३-९) समासमवर्णानां परस्परक्रोशे
दण्डाः १७७३; समवर्णाक्रोशे तदत्यन्तनिन्दार्यां च
दण्डः १७७४; शूद्रकृते उच्चवर्णक्षेपे धर्मोपदेशे च
दण्डाः १७७५; मिथ्याक्षेपे अङ्गवैकल्योक्तौ गुर्वाद्या-
श्चारणे च दण्डः १७७६; ब्राह्मणक्षत्रिययोः परस्परक्रोशे
विट्शूद्रयोः स्वजात्याक्रोशे च दण्डाः १७७८.
याज्ञवल्क्यः—(१७७९-८४) वाक्पारुष्यलक्षण-
विभागौ; समगुणेषु सवर्णेषु निष्ठुराक्षेपे दण्डः
१७७९; समगुणेषु सवर्णेषु अश्लीलाक्षेपे दण्डः;
विप्रमगुणेषु सवर्णेषु निष्ठुराश्लीलाक्षेपेषु दण्डः १७८०;
इन्द्रियनाशप्रतिज्ञयाक्षेपे पापाक्षेपे त्रैविद्यनृपदेवजातिपूग-
आमदेशाक्षेपे च दण्डाः १७८१; असमवर्णेषु क्षेपे दण्डाः
१७८३. नारदः—(१७८४-८) वाक्पारुष्यनिरुक्तिः;
तत्प्रकाराश्च १७८४; पातकाभिशंसने दण्डः १७८६;
सवर्णक्षेपादौ दण्डाः १७८७; असवर्णक्षेपाभिशंसनादौ
दण्डाः; शूद्रकृते ब्राह्मणराजन्यावाक्षेपादौ दण्डाः; राज्ञः
क्षेपे दण्डः १७८८. बृहस्पतिः—(१७८८-९०)
पारुष्यभेदाः; वाक्पारुष्यप्रकाराः १७८८; समासम-

जातिगुणकृतवाक्पारुष्येषु दण्डाः १७८९; असमवर्णकृत-
वाक्पारुष्ये दण्डाः; शूद्रकृतद्विजक्षेपधर्मोपदेशादौ दण्डाः;
वाक्पारुष्यप्रकरणोपसंहारः १७९०. कात्यायनः—
(१७९१-२) वाक्पारुष्यप्रकाराः; वाक्पारुष्यदोषा-
ल्पत्वे अर्धो दण्डः; वाक्पारुष्यदोषतदपवादौ, तत्साधनं
च १७९१. व्यासः—(१७९२) पातकाभिशंसने
दण्डाः. उशना—(१७९२) असवर्णकृतवाक्पारुष्ये
दण्डाः; वाक्पारुष्यदोषाल्पत्वे अर्धो दण्डः; अनाम्नाते
दण्डे विधिः. यमः—(१७९२) वेदाध्यायिशूद्रदण्डः.
जमदग्निः—(१७९२) असवर्णेषु वाक्पारुष्ये दण्डाः.
अग्निपुराणम्—(१७९२) वैश्यशूद्रकृते उच्चवर्णक्षेपे
धर्मोपदेशे च दण्डाः.

दण्डपारुष्यम्

(पृ. १७९३-१८३५)

वेदाः—(१७९३) ब्राह्मणविषयकदण्डपारुष्ये
दण्डविधिः. गौतमः—(१७९४) शूद्रकृते द्विजाति-
विषयके वाग्दण्डपारुष्ये दण्डविधिः; आर्यसाम्यप्रेप्सु-
शूद्रस्य दण्डः; शिष्यशासनरूपे दण्डपारुष्ये दण्डः.
हारीतः—(१७९४-५) हीनवर्णकृतेषु उत्तमवर्णकृतेषु
च वाग्दण्डपारुष्येषु दण्डविधिः १७९४. आप-
स्तम्बः—(१७९५) दण्डपारुष्यानन्तर्भाविशिष्य-
शासनम्; आर्यसाम्यप्रेप्सुशूद्रस्य दण्डः. वसिष्ठः—
(१७९५) वाग्दण्डपारुष्येषु दण्डसामान्यविधिः;
वृक्षच्छेदनिषेधः. विष्णुः—(१७९६-८) हीनवर्ण-
कृतेषु उत्तमवर्णकृतेषु च दण्डपारुष्येषु दण्डविधिः;
आर्यसाम्यप्रेप्सुशूद्रस्य दण्डः; प्रहारोद्यमन-पादादिलुण्ठन-
करादिभङ्ग-चेष्टादिरोधप्रहारादिषु दण्डविधिः १७९६;
एकं बहूनां प्रहरतां दण्डः; पुरुषपीडायां पशुपीडायां
पशुपक्षिकीटघातादिषु च दण्डः १७९७; वृक्षवल्लीतृष्णा-
दिच्छेदे दण्डविधिः १७९८. शंखलिखितौ—(१७९८)
प्रहारोद्यमने निपातने च दण्डः. कौटिलीयमर्थ-
शास्त्रम्—(१७९८-१८०१) दण्डपारुष्यम् १७९८.
मनुः—(१८०१-१२) शूद्रकृतेषु त्रैवर्णिकविषयक-
दण्डपारुष्येषु दण्डविधिः; आर्यसाम्यप्रेप्सुशूद्रस्य
दण्डः १८०१; सवर्णविषयकदण्डपारुष्ये दण्डविधिः
१८०३; वनस्पतिच्छेदने दण्डविधिः १८०४; प्राणि-

पीडने दण्डविधिः १८०५; गृहोपकरणादिद्रव्यभाण्ड-
पुष्पमूलफलादिनाशने दण्डविधिः १८०६; यानसंबन्धि-
निमित्तेषु प्राणिहिंसाद्रव्यनाशेषु स्वाम्यादीनां दण्ड-
विचारः १८०७; प्राणिविशेषहिंसाभेदेन दण्डभेदाः
१८१०; भार्यापुत्रदासशिष्यादीनां ताडने कृते दण्ड-
विचारः १८१२. चाञ्जलवल्क्यः—(१८१२-२४) दण्ड-
पारुष्यलक्षणम् १८१२; दण्डपारुष्यनिर्णयहेतुः १८१३;
स्मृत्यनुक्तपारुष्ये दण्डविधिः; साधनभेदेन जातितो
गुणतो वा समहीनोत्तमभेदेन च दण्डभेदाः १८१४;
अज्ञाह्वणकृते ब्राह्मणविषये दण्डपारुष्ये दण्डविधिः;
उच्चजातिकृते सजातीयकृते वा परगात्रविषये दण्ड-
पारुष्ये दण्डः १८१५; यानयुग्यगोगजाश्वादिनिमित्तेषु
प्राणिहिंसाद्रव्यनाशेषु स्वाम्यादीनां दण्डविचारः १८१९;
द्रव्यविनाशे दण्डविधिः १८२१; पशुविषयदण्डपारुष्ये
दण्डविधिः; वनस्पतिवृक्षलतागुल्मादीनां छेदनादौ
दण्डविधिः १८२२. नारदः—(१८२४-३०) दण्ड-
पारुष्यलक्षणं तत्प्रकाराश्च १८२४; दण्डपारुष्ये दोष-
राहित्यदण्डभाक्त्वविचारः; पञ्चप्रकारैस्तत्रापकृतविचा-
रश्च १८२५; हीनवर्णकृते ब्राह्मणविषये दण्डपारुष्ये
दण्डविधिः १८२८; राजनि दण्डपारुष्ये दण्डः; अज्ञ-
स्वकीयकृतापराधे तत्प्रभेददण्डविचारः; अप्रकाशदण्ड-
पारुष्ये परीक्षाविधिः १८२९. बृहस्पतिः—(१८३०-
३२) दण्डपारुष्यलक्षणम्; वाक्पारुष्यापेक्षया दण्ड-
पारुष्यस्य दण्डविधौ विशेषः; विविधदण्डपारुष्येषु
समाधिकविषयेषु दण्डविधिः १८३०; दण्डपारुष्येण
पीडकः पीडापरिहारव्ययं भ्रपहृतं च दान्यः; पीडि-
ताय दण्डदानं रात्रे च; पशुग्रीवायां दण्डविधिः; शूद्र-
कृते द्विजातिविषयके दण्डपारुष्ये दण्डविधिः; परस्परं
दण्डपारुष्ये कृते नीचकृते च विशेषतः दोषराहित्य-
दण्डभाक्त्वदण्डदापयितृविचारः १८३१; अप्रकाश-
दण्डपारुष्ये परीक्षाविधिः १८३२. कात्यायनः—
(१८३२-४) सजातीयेषु दण्डपारुष्ये दण्डविधिः १८३२;
दण्डपारुष्ये प्रतिलोमानुलोमनीचेषु दण्डविधिः; पीडि-
त्वाय पीडापरिहारव्ययहृतभग्नादिदानविधिः १८३३;
पशुपक्षिवनस्पतिषु दण्डपारुष्ये दण्डविधिः; अप्रकाश-
दण्डपारुष्ये परीक्षाविधिः १८३४. व्यासः—(१८३४)

दण्डपारुष्यलक्षणम्. यमः—(१८३५) भार्यापुत्र-
दासदासीशिष्यानां दण्डपारुष्यविचारः; वधकृद्द्विज-
दण्डः. वृद्धहारीतः—(१८३५) देवताब्राह्मण-
गुरूणां पादादिना प्रहारे दण्डविधिः. सुमन्तुः—
(१८३५) परस्परं पारुष्ये दण्डविधिः. वृद्धकाल्या-
यनः—(१८३५) दण्डपारुष्ये स्वयं प्राणत्यागे न
दण्डः. परिशिष्टकारः—(१८३५) दण्डपारुष्य-
लक्षणम्. अग्निपुराणम्—(१८३५) शूद्रकृते
द्विजातिविषयके दण्डपारुष्ये दण्डविधिः; पशुवृक्षविषये
दण्डपारुष्ये दण्डविधिः.

स्त्रीसंग्रहणम्

(पृ. १८३६-१८५२)

वेदाः—(१८३६-४१) भ्रातृभगिनीविवाहः
तन्निषेधश्च; पितापुत्रीविवाहः १८३६; भ्रातृभगिनी-
विवाहः; शूद्रकृतार्यस्त्रीसंग्रहणम्; स्त्रियाः व्यभिचारदोषः
१८३७; शूद्रकृतार्यस्त्रीसंग्रहणं आर्यकृतशूद्रस्त्रीसंग्रहणं
च; ब्राह्मणीसंग्रहदोषः १८३८; परदारसंग्रहो दोषः;
पितापुत्री-भ्रातृभगिनीसङ्गः; पितापुत्रीविवाहनिषेधः;
स्त्रियाः व्यभिचारदोषः; पितापुत्रीविवाहनिषेधः
१८४०; स्त्रियाः व्यभिचारदोषः; श्रोत्रियदारसंग्रहदोषः;
पितापुत्रीविवाहः १८४१. गौतमः—(१८४१-३)
परदाराभिर्मर्शे दण्डसामान्यविधिः; आर्यस्वयमिगामिशूद्र-
दण्डः १८४१; हीनपुरुषस्य उच्चस्त्रियाश्च व्यभिचारे
दण्डः १८४२; कन्याकृतकन्यादूषणदण्डः १८४३.
हारीतः—(१८४३) हीनपुरुषस्य उच्चस्त्रियाश्च
व्यभिचारे दण्डः. आपस्तम्बः—(१८४३-४)
कन्यापरदारसंनिकर्षकरणे दण्डः; परदारमैथुने दण्डः
१८४३; कन्यादूषणे दण्डः; कन्यादूषणे परदारदूषणे च
रात्रः कर्तव्यम्; प्रायश्चित्तोत्तरं कन्या परदाराश्च धर्मोद्-
संबन्धाः; आर्यस्य शूद्रागमने दण्डः; आर्यस्वयमिगामि-
शूद्रदण्डः; परसुकस्त्रियाः प्रायश्चित्तम् १८४४.
बौधायनः—(१८४४-५) शूद्रादीनां उच्चवर्णस्त्री-
गमने दण्डः १८४४; चारणदाररक्षावतारस्त्रीषु गमने
दण्डाभावः; स्त्रीणां परपुरुषदूषितानां अदुष्टत्वम् १८४५.
वसिष्ठः—(१८४५-६) शूद्रादीनां उच्चवर्णस्त्रीगमने

दण्डः १८४५; आर्यस्त्रीणां शूद्रदूषितानां शुद्धिविधिः १८४६. विष्णुः— (१८४६-७) स्त्रीसंग्रहणलक्षणानि; वर्णानुसारेण परस्त्रीगमने दण्डविधिः १८४६; गुरु-तल्पगमने दण्डः; सकामहीनस्त्रीगमने न उच्चपुरुषो दुष्यति; कन्यादूषणे दण्डः; पशुगमने दण्डः १८४७. शङ्खः शङ्खलिखितौ च— (१८४७-८) स्वदार-नियमाद्यतिक्रमे दण्डविधिः; वर्णानुसारेण परस्त्रीगमने दण्डविधिः १८४७; कन्यादूषणे वर्णानुसारेण दण्डविधिः; स्त्रीकृतकन्यादूषणे दण्डः १८४८. कौटिलीय-मर्थशास्त्रम्— (१८४८-५१) कन्याप्रकर्म १८४८; अतिचारदण्डः १८५०. मनुः— (१८५१-७०) संग्रहणलक्षणानि १८५१; परस्त्रीसंभाषायां दोषविचारः १८५३; चारणदारादस्त्रीभिः सह संभाषणे उपकारादौ च दोषविचारः १८५४; परदारामिमर्शदोषेषु दण्डः तत्प्रयो-जनं च १८५५; वर्णभेदेन परदारामिमर्शेषु दण्डविधिः; तत्र अब्राह्मणस्यैव शारीरदण्डः; ब्राह्मणस्य तु मौण्ड्य-प्रवसनादिः १८५६; भर्तारं विलङ्घ्य अन्यपुरुष-गामिन्याः स्त्रियाः तल्लग्नपुरुषस्य च दण्डः १८६५; सव-र्णसवर्णादिकृते कन्यादूषणे दण्डविधिः १८६६; साह-सादीनां परस्त्रीसंग्रहणान्तानां दण्डनिबन्धनानां पदानां उपसंहारः १८६९. याज्ञवल्क्यः— (१८७०-८०) स्त्रीसंग्रहणस्वरूपम्; संग्रहणलक्षणानि, परस्त्रीपुरुषसंभाषायां दण्डविधिः; वर्णभेदेन संग्रहणे दण्डविधिश्च १८७०; कन्यादूषणे कन्यादूषणे च वर्णभेदेन दण्डविधिः १८७५; कन्यादोषख्यापनपशुगमनहीनस्त्रीगमनादौ दण्डविधिः १८७६; दास्यादिसाधारणस्त्रीगमने दण्डविधिः; प्रसङ्ग-विशेषेषु वेश्यावेतनविचारश्च १८७७; अयोनिपुरुषप्र-ञ्जितान्यतमगमने दण्डविधिः १८७९. नारदः— (१८८०-८४) संग्रहणलक्षणानि १८८०; संग्रहणदोष-प्रतिप्रसवः १८८१; वर्णभेदेन संग्रहणे दण्डविधिः १८८२; कन्यादूषणे वर्णभेदेन दण्डविधिः; दास्यादि-साधारणस्त्रीगमने दोषविचारः १८८३; अन्त्यजपशु-वेश्यागमने दण्डविधिः; अगम्यागमने प्रायश्चित्तं राज-दण्डो वा १८८४. बृहस्पतिः— (१८८४-७) संग्रहण-प्रकारः; तल्लक्षणानि च १८८४; वर्णभेदेन संग्रहणे दण्ड-विधिः १८८५; स्त्रीसंग्रहणे स्त्रीणां दण्डविधिः १८८६.

कात्यायनः— (१८८७-८) संग्रहणलक्षणानि १८८७; संग्रहणदोषप्रतिप्रसवः; स्त्रीपुरुषयोः संग्रहणे दण्डविधिः; स्वैरिणीगमनविचारः १८८८. व्यासः— (१८८९-९०) संग्रहणलक्षणानि; स्त्रीसंग्रहणे दण्डविधिः; साधारणस्त्री-गमने दण्डविधिः १८८९. यमः— (१८९०) मातृ-श्वसादिगमने पातित्यम्; वर्णभेदेन स्त्रीसंग्रहणे दण्डविधिः; बन्धकीगमने दण्डविधिः; साहसिकादिदुष्टराहितराज्य-स्तुतिः. संवर्तः— (१८९०-९१) स्त्रीसंग्रहणलक्षणानि. स्त्रीसंग्रहणनिर्णयश्च १८९०. वृद्धहारीतः— (१८९१) परस्त्रीगमने दण्डविधिः. स्मृत्यन्तरम्— (१८९१) वर्णभेदेन परस्त्रीगमने दण्डविधिः. अग्निपुराणम्— (१८९१) संग्रहणोपक्रमनिषेधः; स्वयंवरानुज्ञा; वर्ण-भेदेन स्त्रियाः व्यभिचारदण्डः; वर्णानुलोभ्येन व्यभिचारे दण्डः. मत्स्यपुराणम्— (१८९२) प्रतिषिद्धानां परस्त्रियाः अगारप्रवेशे दण्डः; परस्त्रीसंग्रहणे दण्ड-विधिः; कन्यादूषणे दण्डविधिः; पशुगमनदण्डः. विष्णु-पुराणम्— (१८९२) पशुगमनायोनिगमननिषेधः.

द्यूतसमाह्वयम्

(पृ. १८९३-१९१५)

वेदाः— (१८९३-१९०३) द्यूतानुमतिः; अक्षक्रीडा दोषः; अक्षक्रीडायाममृतकरणे दोषः; अक्ष-क्रीडा निषेधः १८९३; द्यूतविधिः १८९६; द्यूतनिन्दा; द्यूतपरिमाषा १८९७; द्यूते जयार्थं देवताह्वानं जयकर्म च १८९८; द्यूतकृतर्णदोषः १९०२. आपस्तम्बः— (१९०३) राजाधिकृतसभैवाधिदेवनाहार्हा. विष्णुः— (१९०३) द्यूतसमाह्वययोर्मध्ये सभिक-जयि-राजभि-र्ग्राह्याः पणांशाः; राजसभिकजयिजितानां कृत्यं च; द्यूतसमाह्वययोः मिथ्याचारिणां दण्डविधिः. कौटिली-यमर्थशास्त्रम्— (१९०४-५) द्यूतसमाह्वयम् १९०४. मनुः— (१९०५-७) द्यूतसमाह्वयप्रतिज्ञा; द्यूतसमाह्व-ययोर्लक्षणम्; द्यूतोपकरणानि; द्यूतसमाह्वयनिषेधः; द्यूत-समाह्वयकारिणां दण्डः; इतरकण्टकदण्डश्च १९०५; अष्टादशपदोपसंहारः १९०७. याज्ञवल्क्यः— (१९०७-१०) द्यूतसमाह्वयस्वरूपम् १९०७; सभिकेन द्यूते वृत्त्यर्थं ग्राह्याः पणांशाः; सभिककृत्यं राज्ञे जेजे च

पणांशदापनम् १९०८; राजकृत्यं द्यूते जितद्रव्यदापनम्; द्यूते जयपराजयनिर्णयोपायः; द्यूते मिथ्याचारिणां दण्ड-विधिः १९०९; राजाधिकृतं द्यूतं कार्यम्; समाह्वये द्यूतधर्मातिदेशः १९१०. नारदः—(१९१०-१३) द्यूतसमाह्वययोर्लक्षणम् १९१०; सभिकेन द्यूते वृत्त्यर्थं ग्राह्याः पणांशाः; राज्ञे पणांशदानं च; सभिकरहितं द्यूतं, तत्रापि राज्ञा पणांशो ग्राह्यः; अक्षद्यूते जयपराजयलक्षणम्; द्यूते जयपराजयनिर्णयोपायः; कितवसभिकयोः परस्परं इतिकर्तव्यता १९११; राजानधिकृतद्यूते दण्डः अलाभश्च; पणपरिकल्पनं क्वचित् कृताकृतम् १९१२; कितवात् सभिको पणांशातिरिक्तं विशेषेण न गृह्णीयात्; द्यूते मिथ्याचारिणां दण्डविधिः १९१३. बृहस्पतिः—(१९१३-४) समाह्वयलक्षणम्; द्यूतस्य निषेधोऽभ्यनुज्ञानं च; द्यूते सभिकराजजयिभिः ग्राह्याः पणांशाः १९१३; द्यूतसमाह्वययोः मिथ्याचारिणां दण्डविधिः; द्यूते जयपराजयनिर्णयोपायः; अष्टादशपदोपसंहारः १९१४. कात्यायनः—(१९१४-५) द्यूतस्य निषेधोऽभ्यनुज्ञानं च; द्यूते सभिकराजजयिभिः ग्राह्याः पणांशाः १९१४; अक्षद्यूते जयपराजयलक्षणम्; द्यूते जयपराजयनिर्णयोपायः १९१५.

प्रकीर्णकम्

(पृ. १९१६-१९६२)

प्रकीर्णकम्

(पृ. १९१६-४३)

गौतमः—(१९१६-८) नृपाश्रितो व्यवहारः— राजब्राह्मणाभ्यां दण्डोपदेशाभ्यां चतुर्वर्णाश्रमो लोकः पालनीयः प्रतिषिद्धाद्वारणीयः संकराच्च रक्षणीयः १९१६; देशादिधर्माः १९१८. आपस्तम्बः—(१९१८) नृपाश्रितो व्यवहारः— शास्त्रराजपुरोहितैः चतुर्वर्णाश्रमो लोकः स्वकर्मणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धाद्वारणीयश्च; देशादिधर्माः. बौधायनः—(१९१८-२०) नृपाश्रितो व्यवहारः—राज्ञा चतुर्वर्णाश्रमो लोकः स्वधर्मे स्थापयित्वा रक्षणीयः १९१८; देशादिधर्मपालनम् १९१९. वसिष्ठः—(१९२०-२१) नृपाश्रितो व्यवहारः—ब्राह्मणेन राज्ञा च उपदेशदण्डाभ्यां चतुर्वर्णाश्रमो लोकः पालनीयः

स्वकर्मणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धाद्वारणीयश्च १९२०; राज्ञा विवाहव्यवस्था कार्या; देशादिधर्मपालनम् १९२१. विष्णुः—(१९२१-२) नृपाश्रितो व्यवहारः—राज्ञा चतुर्वर्णाश्रमो लोकः स्वकर्मणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धाद्वारणीयश्च; नृपाश्रिताः केचिद्व्यवहाराः १९२१; देशादिधर्मपालनम् १९२२. शंखलिखितौ—(१९२२) नृपाश्रितो व्यवहारः—पितृमातृविवादे पुत्रः प्रष्टव्यः; नृपाश्रितव्यवहारेषु कानिचिदपवादस्थानानि. महाभारतम्—(१९२२) देशधर्मपालनम्. कौटिलीयमर्थशास्त्रम्—(१९२२-६) प्रकीर्णकानि १९२२; आचार्यशिष्यधर्मभ्रातृसमानतीर्थ्यानां वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिविषये अन्यथा वा व्यतिक्रमे दण्डविधिः १९२३; उपनिपातप्रतीकारः १९२४. मनुः—(१९२६-३१) ऋत्विग्याज्ययोरन्यतरेणान्यतरस्य त्यागे दण्डः; माता-पितास्त्रीपुत्राणामन्योन्यत्यागे दण्डः; आश्रमिद्विजानां कार्याणि तच्छिष्टैर्निर्णयानि, तत्संमतौ राज्ञा १९२६; निमित्तविशेषेषु प्रातिवेश्यानुवेश्यद्विजानिमन्त्रणे दण्डः; श्रोत्रियाभोजने दण्डः; करदानानर्हाः; नेजककृत्यम्; तन्तुवायकृत्यम्; अर्घ्यस्थापना; क्रयविक्रयादौ राजनियमातिक्रमे दण्डविधिः; तुल्यमानप्रतीमानादिस्थापना; नौयायिव्यवहारः; राज्ञा वैश्यशूद्रौ स्वकर्मणि प्रवर्तनीयौ; आपदि क्षत्रियवैश्यौ ब्राह्मणेन स्वस्वकर्मणा भर्तव्यौ; ब्राह्मणेन संस्कृतद्विजा दास्ये न नियोज्याः १९२७; शूद्रो दास्यमेवार्हति; सप्तविधा दासाः; भार्यापुत्रदासा न धनस्वाम्यमर्हन्ति; ब्राह्मणेन शूद्रद्रव्यं हरणीयम्; राज्ञा प्रत्यहं व्यवहारोऽवेक्षणीयः; व्यवहारप्रकरणोपसंहारः; नृपाश्रितो व्यवहारः—कण्टकोद्धारः १९२८; सप्ताङ्गराज्यव्यसननिवारणचिन्तनम्; युगकृत् राजा; देवकार्यकरणात् देवतामयो राजा; ब्राह्मणरक्षणं राजधर्मः १९३०; लोकहितेषु भृत्यनियोजनम्; देशधर्मपालनम्; परस्वानादान-स्वार्थसंग्रहादयो राजधर्माः १९३१. याज्ञवल्क्यः—(१९३१-३) प्रकीर्णकस्वरूपम् १९३१; नृपाश्रितो व्यवहारः—राजशासनविपर्यासे पारदार्यचौर्यकर्तृसंचने च दण्डः; नृपाश्रितो व्यवहारः—राजपुरुषाणां कर्मकारिणां कार्येष्वपराधविचारः; श्रोत्रियसत्कारः; नृपाश्रितो व्यवहारः—प्रीडाकुद्भयः प्रज्वा रक्षणीयाः; नृपा-

भित्तो व्यवहारः—कुलजातिभेदिराजगणजानपदात्मको लोकः स्त्रकर्मणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धाच्च वारणीयः; प्रकीर्णकत्वेन संघृहीताः केचिद्व्यवहाराः १९३२. चारदः— (१९३३-४०) प्रकीर्णकपदस्य लक्षणं, तद्भेदाश्च १९३३; राज्ञा चतुर्वर्णाश्रमो लोकः स्वकर्मणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धाच्च निवारणीयः; श्रुतिस्मृतिन्यायाविरोधिराजशासनं प्रवर्तननिवर्तनात्मकम्; कारुशिल्पिप्रभृतीनां वृत्तिसाधनानि न हरणीयानि १९३५; राजशासनं लोकैर्नातिक्रमणीयम्; राजदण्डप्रयोजनम्; राजशासनप्रामाण्यम्; देवकार्यकरणात् देवतामयो राजा, तस्य कर्तव्यानि; ब्राह्मणसेवा राजधर्मः; ब्राह्मणस्य विशेषाधिकाराः १९३६; आपदि ब्राह्मणवृत्तिः १९३७; ब्राह्मणस्य वृत्तिः राजप्रतिग्रहेण प्रशस्ता; राजधनप्रशंसा १९३९; अष्टौ मङ्गलानि १९४०. बृहस्पतिः— (१९४०-४१) प्रकीर्णकपदस्य लक्षणं तद्भेदाश्च १९४०; देशादिधर्मपालनम् १९४१. कात्यायनः— (१९४१-२) प्रकीर्णकपदस्य लक्षणं तद्भेदाश्च १९४१; नृपाश्रितो व्यवहारः—राजोपजीविनां राजक्रीडासक्तानां राज अप्रियवक्तुश्च दण्डः; देशादिधर्मपालनम् १९४२. पितामहः— (१९४२) देशधर्मपालनम्. व्यासः— (१९४२) नृपाश्रितो व्यवहारः—उत्कोचजीविराजपुरुषाणां दण्डः. देवलः— (१९४२) नृपाश्रितो व्यवहारः—प्रायश्चित्तनिर्देशो राज्ञा कार्यः; देशादिधर्मपालनम्. उशना— (१९४२) नृपाश्रितो व्यवहारः—राज्ञा करः कल्पनीयः; राजप्रशंसा. यमः— (१९४३) नृपाश्रितो व्यवहारः—पौराणिकधर्मप्रवर्तनम्; प्रकीर्णकप्रकरणोपसंहारः; पतितधनव्यवस्था. संवर्तः— (१९४३) नृपाश्रितो व्यवहारः—आमात्मपैशुन्ये पुरमानप्रभेदेने च दण्डः. वृद्धहारीतः— (१९४३) नृपाश्रितो व्यवहारः—राज्ञा करः कल्पनीयः. अनिर्दिष्टकर्तृकवचनानि— (१९४३) देशधर्मपालनम्. अग्निपुराणम्— (१९४३) संकीर्णदण्डाः. देवीपुराणम्— (१९४३) नृपाश्रितो व्यवहारः—चतुर्वर्णाश्रमधर्मरक्षणार्थं चारनियोजनम्. नैयायिव्यवहारः विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः (पृ. १९४४-४७). वसिष्ठः, विष्णुः, मनुः, याज्ञवल्क्यः— (१९४४-७)

नैयायिव्यवहारः; विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः.

बालानाथधननिधिनष्टापहृतव्यवस्था (पृ. १९४७-६२)

गौतमः— (१९४७-९) प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था १९४७; निधिव्यवस्था; बालधनव्यवस्था १९४८; धने चौरहृते व्यवस्था १९४९. बौधायनः— (१९४९) प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था; बालधनव्यवस्था. वसिष्ठः— (१९४९) बालधनव्यवस्था; प्रनष्टास्वामिकधनं राजगामि; निधिव्यवस्था. विष्णुः— (१९४९-५०) निधिव्यवस्था १९४९; बालानाथस्त्रीधनव्यवस्था; धने चौरहृते व्यवस्था १९५०. शंखः शंखलिखितौ च— (१९५०) बालानाथस्त्रीधनव्यवस्था. कौटिलीयमर्थशास्त्रम्— (१९५०) बालादिधनव्यवस्था. मनुः— (१९५१-८) बालानाथधनव्यवस्था १९५१; प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था १९५३; निधिव्यवस्था १९५५; धने चौरहृते व्यवस्था १९५७. याज्ञवल्क्यः— (१९५८-६१) प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था १९५८; निधिव्यवस्था; धने चौरहृते व्यवस्था १९६०. नारदः— (१९६१) निधिव्यवस्था; प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था; धने चौरहृते व्यवस्था. बृहस्पतिः— (१९६१-२) प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था १९६१. व्यासः— (१९६२) धने चौरहृते व्यवस्था. उशना— (१९६२) निधिव्यवस्था. अग्निपुराणम्— (१९६२) निधिव्यवस्था; प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था; बालानाथधनव्यवस्था; धने चौरहृते व्यवस्था.

परिशिष्टम्

(पृ. १९६३-१९८९)

व्यवहारस्वरूपम्

(पृ. १९६३)

गौतमः— (१९६३) व्यवहारविभागाः.

सभा

(पृ. १९६३)

महाभारतम्— (१९६३) सम्यैः सत्यमेव वक्तव्यम्.

साक्षी

(पृ. १९६४)

महाभारतम्— (१९६४) मृषासाक्ष्यनिन्दा;

साक्षिणां सत्यवचनापवादविषयः; साक्षिलक्षणम्; कुलीन-
स्त्रियः समायां न नेयाः. अग्निपुराणम्—(१९६४)
कौटुम्बसाक्ष्यदण्डः.

दिव्यम्

(पृ. १९६४-६७)

महाभारतम्—(१९६४) अग्निविधिः. स्कन्द-
पुराणम्—(१९६५-७) शपथकोशघटविषामितसमाप्त-
फालतन्दुलजलानि दिव्यानि १९६५.

मानसंज्ञाः

(पृ. १९६७-६८)

अनिर्दिष्टकर्तृकवचनानि—(१९६७-८) मान-
संज्ञाः १९६७; पाञ्चरात्रवैखानसानुसारी निष्कप्रमाणम्
१९६८. विष्णुगुप्तः—(१९६८) मानसंज्ञाः.

निर्णयकृत्यम्

(पृ. १९६८)

नारदः, अग्निपुराणम्—(१९६८) पराजित-
दण्डविचारः.

पुनर्न्यायः

(पृ. १९६९)

अग्निपुराणम्—(१९६९) निवर्तनीयं कार्यम्;
पुनर्न्यायवादिनो दण्डः.

दण्डमातृका

(पृ. १९६९-७०)

महाभारतम्—(१९६९) ब्राह्मणाः स्त्रियश्चा-
वध्याः. मनुः—(१९६९) शूद्रदण्डधनविनियोगः. अनि-
र्दिष्टकर्तृकवचनानि—(१९६९) दण्डप्रयोजनम्; दण्डा-
ङ्गचिन्ता. अग्निपुराणम्—(१९६९-७०) दण्डेन प्रजा-
रक्षणं राजधर्मः १९६९; महापातकेषु अङ्कनानि. मान-
सोल्लासः—(१९७०) अपराधकृत्सर्वो दण्ड्यः; क्लेश-
दण्डप्रकाराः; अर्थदण्डप्रकाराः; दण्डप्रयोजनम्; सप्त-
विंशतिः राज्यस्थैर्यनिमित्तानि.

ऋणादानम्

(पृ. १९७१)

वेदाः—(१९७१) ऋणलिङ्गानि, निरुक्तम्—
(१९७१) कुसीदिनः.

उपनिधिः

(पृ. १९७१)

महाभारतम्—(१९७१) न्यासलिङ्गम्. अग्नि-
पुराणम्—(१९७१) निक्षेपभोगनाशादौ दण्डः.

अस्वामिविक्रयः

(पृ. १९७२)

अग्निपुराणम्—(१९७२) अस्वामिविक्रेतुर्दण्डः.

संभूयसमुत्थानम्

(पृ. १९७२)

गौतमः—(१९७२) ऋत्विगाचार्यत्यागनियमः.
अग्निपुराणम्—(१९७२) मूल्यं गृहीत्वा शिल्पादाने
दण्ड्यः.

दत्ताप्रदानिकम्

(पृ. १९७२-७३)

गौतमः—(१९७२) दानाङ्गनियमः. आपस्तम्बः—
(१९७३) दानाङ्गनियमः. भारद्वाजः—(१९७३)
भयदानलक्षणम्. स्मृत्यन्तरम्—(१९७३) दानाङ्ग-
नियमः. अग्निपुराणम्—(१९७३) प्रतिश्रुत्याप्रदाने
दण्डः.

अभ्युपेत्याशुश्रूषा

(पृ. १९७३-७४)

आपस्तम्बः—(१९७३-४) अन्तेवासिगुरुवृत्तिः
१९७३. बौधायनः—(१९७४) अध्याप्यः शिष्यः.
वसिष्ठः—(१९७४) अध्याप्यः शिष्यः. मनुः—(१९७४)
अध्याप्याः शिष्याः. अग्निपुराणम्—(१९७४) भार्या-
पुत्रदासशिष्यादिताडनविशेषे दोषः.

वेतनानपाकर्म

(पृ. १९७५)

कात्यायनः—(१९७५) माण्डवाहकधर्मः. लघु-
हारीतः—(१९७५) भाटकम्. अग्निपुराणम्—(१९७५)
स्वामिमृत्ययोः दोषे दण्डः; वेत्याधर्मः.

क्रयविक्रयानुशयः

(पृ. १९७५)

निरुक्तम्—(१९७५) स्त्रीपुरुषविक्रयविचारः.
विष्णुः—(१९७५) कन्याविषयानुशयादौ दण्डविधिः.

भारद्वाजः—(१९७५) परिवृत्तेः परिवर्तनावधिः. अग्नि-
पुराणम्— (१९७५) क्रयविक्रयः—कन्याविषयानुशये
दण्डविधिः. मत्स्यपुराणम्— (१९७५) कन्या-
विषयानुशये दण्डविधिः.

स्वामिपालविवादः

(पृ. १९७६)

महाभारतम्— (१९७६) पशुपालनभृतिः.
नारदः—(१९७६) पशुनाशे व्यवस्था. व्यासः—
(१९७६) द्विजबान्धवगोकृतसस्यभक्षणं क्षम्यम्.
स्मृत्यन्तरम्—(१९७६) सस्यनाशे दण्डः. अनिर्दिष्ट-
कर्तृकवचनम्—(१९७६) सस्यनाशे दण्डः. अग्नि-
पुराणम्— (१९७६) पालघर्माः सस्यरक्षा च.

सीमाविवादः

(पृ. १९७६)

नारदः—(१९७६) बलाद्भूमिर्न हर्तव्या.
अग्निपुराणम्—(१९७६) गृहाद्याहरणे दण्डः.

स्त्रीपुंघर्माः

(पृ. १९७७-७९)

वेदाः— (१९७७) एका द्वयोः पत्नी; वेद्या.
चसिष्ठः— (१९७७) स्त्रीरक्षा, रजस्वलाधर्माश्च.
महाभारतम्— (१९७८) स्त्रीणां भर्तृशुश्रूषा
धर्मः; भार्यामहिमा; स्त्री अवध्या; बहुपत्नीकता नाधर्मः;
स्त्री त्याज्या. याज्ञवल्क्यः— (१९७८) व्यवहार-
प्रकरणे स्त्रीपुंघर्मपदव्यवस्था. नारदः— (१९७८)
कन्यादानकालः; चतुःस्वैरिणीदोषतारतम्यम्; प्रोषितभर्तृ-
कशूद्रावृत्तम्. उशना— (१९७८) ज्येष्ठपूर्वे यवीयसः
विवाहः. स्मृत्यन्तरम्— (१९७९) पतिप्रीणनं
धर्मः; कन्याविक्रयनिन्दा. अग्निपुराणम्—(१९७९)
विविधाः स्त्रीपुंघर्माः.

दायभागः

(पृ. १९७९-८८)

वेदाः— (१९७९-८२) पितुः कन्यायां संततिः;
मावज्जीवं भर्तृरहिताः कन्याः, तासां तत्पुत्राणां च भागः

१९७९; पुत्रप्रतिग्रहः (दत्तकलिङ्गम्); कानीनः
१९८०; स्वयंदत्तः; ज्येष्ठत्वं पुत्रत्वं दायादत्वं च पितुः
संकेताधीनम्; पितुः दायादिसर्वस्वरः. पुत्रः; पुत्रस्य
ग्रहं पितुर्वासः; विद्यापणलब्धं द्रव्यम् १९८१; द्विमा-
तृकः—मातृद्वारा व्यासुष्यायणः; पुत्रप्रकाराः; ज्येष्ठपुत्रांशे
पितुः अस्वाम्यम्; मिश्रद्रौ अदेयौ १९८२. गौतमः—
(१९८२) स्त्रीधनमविभाज्यम्. हारीतः— (१९८२)
एकेनोद्धृतापि भूर्विभाज्या; अविभाज्यम्. वसिष्ठः—
(१९८२) पुत्रप्रशंसा. विष्णुः—(१९८२-३)
धनागमविचारः तत्प्रकाराश्च १९८२; पित्रा कृतः पुत्रो
भागहरः; अकृतः स्वस्थानानुसारेण; विभाज्याविभाज्य-
विवेकः १९८३. महाभारतम्—(१९८३-६) विभाग-
निन्दा; पितृपुत्रोरविभागप्रशंसा; ज्येष्ठकनिष्ठवृत्तिः;
भ्रातृणां सहवासविधिः; भागानर्हः; भ्रातृणां भागः;
विभाज्याविभाज्ये; मातरि तत्समासु च वृत्तिः १९८३;
ज्येष्ठमहिमा; व्यङ्गो ज्येष्ठः राज्यानर्हः; गुणश्रेष्ठ एव
राज्यार्हः तत्पुत्रादयश्च; पुत्रमहिमा १९८४; पुत्रमहिमा;
पुत्रप्रकाराः; पुत्रिका १९८५; दौहित्रमहिमा; नियोगेन
त्रिम्योऽधिका नोत्पाद्याः; पुत्रपुत्रीपरिग्रहः; पुत्रेषु मातृ-
पितृस्वाम्यं समम्; दत्तककन्या; राज्याधिकारः १९८६.
कौटिलीयमर्थशास्त्रम्—(१९८६) वानप्रस्थाद्या-
श्रमिरिक्यविभागः. मनुः—(१९८६-७) धनागमाः
१९८६; ज्येष्ठमहिमा; अविभाज्यद्रव्यविशेषाः; स्त्रियोऽ-
विभाज्याः १९८७. बृहस्पतिः— (१९८७)
पुत्रमहिमा; गुणाधिक्ये भागाधिक्यम्. कात्यायनः—
(१९८७) विषमविभागहेतुः कर्मानुष्ठानतारतम्यम्.
वृद्धहारीतः—(१९८८) स्त्रीधनविभागः; अनेक-
पितृकाणां द्वैमातृकाणां च भागविधिः. लघु-
हारीतः— (१९८८) अविभाज्यम्; पितृप्रसाद-
लब्धमपि स्थावरं न भोक्तव्यम्; सर्वानुमत्या एव स्थावर-
द्विपदानां व्यवहारः. अग्निपुराणम्—(१९८८) गुण-
ज्येष्ठ एव ज्येष्ठांशभाक्; पतितस्त्रीणां वृत्तिः. शुक्रनीतिः—
(१९८८) गुणज्येष्ठ एव ज्येष्ठांशभाक्; पतितस्त्रीणां
वृत्तिः. शुक्रनीतिः—(१९८८) स्थावरे न पितुः पिता-
महस्य वा प्रभुत्वम्; स्वत्वार्थागमयोर्विचारः; पितृकृतो
विभागः; अपुत्रमृतविक्रयहराः क्रमेण; अविभाज्यम्.

साहसम्

(पृ. १९८९)

स्मृत्यन्तरम्—(१९८९) शूद्रस्य विप्रवद्वेषधारणे
दण्डः; गर्भघातिनी तद्दन्तारश्च दण्ड्याः.

दण्डपारुष्यम्

(पृ. १९८९)

वेदाः—(१९८९) याननिमित्तकहिंसा.



ऋषिक्रमेण विषयानुक्रमणिका

[विवादपदेषु क्रमेण ये ऋषयः संगृहीताः तेषु निर्दिष्टानां विषयानां प्रकरणानुपूर्व्यां संग्रहः]

वेदाः

साहसम्—

अपराधविशेषाः अपराधकारणानि च; सप्तमर्यादा-
भङ्गापराधाः; कतिपयदोषाणां दोषत्वतारतम्यम्
१५९१-२. कतिपयदोषाः; पञ्च महापातकानि १५९२-३.
अभिशंसनम्—अभिशस्तिः १५९३. अभिशस्तत्यागः;
अभिशस्तस्य आर्त्विज्यानधिकारः; स्तेयानृत्याभिशंसनयो-
रपराधत्वम्; अभिशस्तनिष्कृतिः अभिशस्तत्यागश्च
१५९४-५. वीरहत्या—वीरहत्या, तद्दण्डश्च [मनुष्य-
हत्या, तद्दण्डश्च] १५९५-७. ब्रह्महत्या—ब्रह्महत्या
तदपनोदश्च १५९७-१६०१. भ्रूणहत्या, अन्ये च
महादोषाः १६०१-३.

स्तेयम्—

राजा स्तेनं बध्नाति; स्तेनत्वापवादः; स्तेयस्य दुष्टत्वं
शपथविभाव्यत्वं च; स्तेनो हन्तव्यः १६५६.

ब्राह्मणारुष्यम्—

ब्राह्मणं प्रति अकुशलोकिनिषेधः १६७८.

दण्डपारुष्यम्—

ब्राह्मणविषयकदण्डपारुष्ये दण्डविविधः १७९३.

स्त्रीसंग्रहणम्—

भ्रातृभगिनीविवाहः तन्निषेधश्च; पितापुत्रीविवाहः
१८३६-७. भ्रातृभगिनीविवाहः; शूद्रकृतार्यस्त्रीसंग्रह-
णम्; स्त्रियाः व्यभिचारदोषः १८३७. शूद्रकृतार्य-
स्त्रीसंग्रहणं आर्यकृतशूद्रस्त्रीसंग्रहणं च; ब्राह्मणीसंग्रह-
दोषः १८३८-४०. परदारसंग्रहो दोषः; पितापुत्री-
भ्रातृभगिनीसङ्गः; पितापुत्रीविवाहनिषेधः; स्त्रियाः
व्यभिचारदोषः १८४०-४१. स्त्रियाः व्यभिचारदोषः;
श्रोत्रियदारसंग्रहदोषः; पितापुत्रीविवाहः १८४१.

द्यूतसमाह्वयम्—

द्यूतानुमतिः; अक्षक्रीडा दोषः; अक्षक्रीडायामनृत-
करणे दोषः; अक्षक्रीडानिषेधः १८९३-६. द्यूतविधिः
१८९६-७. द्यूतनिन्दा; द्यूतपरिभाषा १८९७-८. द्यूत-
जयार्थं देवताह्वानं जयकर्म च १८९८-१९०२; द्यूत-
कृतर्णदोषः १९०२-३.

परिशिष्टम्

ऋणदानम्—

ऋणलिङ्गानि १९७१.

स्त्रीपुंभर्ताः—

एका द्वयोः पत्नी; वेद्या १९७७.

दायभागः—

पितुः कन्यायां संततिः; यावज्जीवं भर्तुरहिता. कन्याः, तासां तत्पुत्राणां च भागः १९७९-८०. पुत्रप्रतिग्रहः (दत्तकलिङ्गम्); कानीनः १९८०. स्वयंदत्तः; ज्येष्ठत्वं, पुत्रत्वं, दायादत्वं च पितुः संकेताधीनम्; पितुः दायादिसर्वस्वहरः पुत्रः; पुत्रस्य गृहे पितु-र्वासः; विद्यापणलब्धं द्रव्यम् १९८१-२. द्विमातृकः— पुत्रद्वारा द्वायामुष्यायणः; पुत्रप्रकाराः; ज्येष्ठपुत्रांशे पितुः अस्वाम्यम्; भूमिशूद्रौ अदेयौ १९८२.

दण्डपारुष्यम्—

याननिमित्तकहिंसा १९८९.

निरुक्तम्

साहसम्—

सप्तमर्यादाव्याख्यानम् १६०३.

परिशिष्टम्

ऋणादानम्—

कुसीदीनः १९७१.

ऋयविक्रयानुशयः—

स्त्रीपुरुषविक्रयविचारः १९७५.

गौतमः

साहसम्—

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; साहसिका महान्तोऽपि नानुसरणीयाः १६०४. स्वधर्मातिक्रमसाहसदण्डः १६०५. स्तेयम्—

वर्णभेदेन स्तेयदण्डः १६५६-७. दण्डानर्हस्तेयम् १६५७. स्तेयमहापातकदण्डविधिः; दण्डोत्सर्गो राज्ञो दोषः; ब्राह्मणे विशेषः १६५८-९. चोरसाहाय्ये अधर्म-संयुक्तप्रतिग्रहे च दण्डः; स्तेयदोषप्रतिग्रहः १६५९-६१. प्रकाशचौर्यप्रसङ्गात् करशुल्कस्थापनाविधिः १६६१-३. चोरद्वयं राज्ञा स्वामिने प्रदेयमलब्धेऽपि चोरे १६६३.

वाक्पारुष्यम्—

शूद्रकृतवाग्दण्डपारुष्यदण्डसामान्यविधिः; वेदाध्या-यिशूद्रदण्डः १७६८. त्रैवर्णिककृतवाक्पारुष्ये दण्डः १७६९.

दण्डपारुष्यम्—

शूद्रकृते द्विजातिविषयके वाग्दण्डपारुष्ये दण्डविधिः; आर्यसाम्यप्रेप्सुशूद्रस्य दण्डः; शिष्यशासनरूपे दण्ड-पारुष्ये दण्डः १७९४.

स्त्रीसंग्रहणम्—

प्रदाराभिमर्शे दण्डसामान्यविधिः; आर्यस्वभिमिगामि-शूद्रदण्डः १८४१-२. हीनपुरुषस्य उच्चस्त्रियाश्च व्यभि-चारे दण्डः १८४२-३. कन्याकृतकन्यादूषणदण्डः १८४३. प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः - राजब्राह्मणाभ्यां दण्डोपदे-शाभ्यां चतुर्वर्णाश्रमो लोकः पालनीयः प्रतिषिद्धाद्वार-णीयः संकराच्च रक्षणायः १९१६-८. देशादिधर्माः १९१८.

वालानायधननिधिनष्टापहतव्यवस्था

- प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था १९४७-८. निधिव्य-वस्था; बालधनव्यवस्था १९४८. धने चोरद्वये व्यवस्था १९४९.

परिशिष्टम्

व्यवहारस्वरूपम्—

व्यवहारविभागाः १९६३.

दत्ताप्रदानिकम्—

दानाङ्गनियमः १९७२-३.

दायभागः—

स्त्रीधनमविभाज्यम् १९८२.

हारीतः

स्तेयम्—

राज्ये चौरदोषः १६६३.

वाक्पारुष्यम्—

असमवर्णकृतवाक्पारुष्यदण्डसामान्यविधिः; वेदा-ध्यायिशूद्रदण्डः; मिथ्यावाक्पारुष्ये दण्डसामान्यविधिः १७६९.

दण्डपारुष्यम्—

हीनवर्णकृतेषु उत्तमवर्णकृतेषु च वाग्दण्डपारुष्येषु दण्डविधिः १७९४.

स्त्रीसंग्रहणम्—

हीनपुरुषस्य उच्चस्त्रियाश्च व्यभिचारे दण्डः १८४३.

परिशिष्टम्

चायभागः—

एकेनोद्धृतापि भूर्विभाज्या; अविभाज्यम् १९८२.

आपस्तम्बः

साहसम्—

ब्राह्मणस्य शस्त्रग्रहणनिषेधप्रतिप्रसवौ; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; साहसिका महान्तोऽपि नानुसरणीयाः १६०५-६. महासाहसिकशूद्रादिदण्डः, ब्राह्मणे विशेषश्च १६०६.

स्तेयम्—

तत्करभयरहितराज्यरक्षणं मुख्यो राजधर्मः; शूद्रादीनां स्तेयादिमहापातकदण्डविधिः, ब्राह्मणे विशेषश्च १६६४-५. दण्डार्हानर्हस्तेयविचारः; दण्ड्योत्सर्गे राज्ञो दोषः; स्तेयदोषे आपदनापत्कालद्रव्यविशेषादिविचारः १६६५-६. दण्ड्यादण्डने दोषः; शुल्कस्थापना १६६६-७.

वाक्पारुष्यम्—

शूद्रकृतवाक्पारुष्ये दण्डः १७६९-७०.

दण्डपारुष्यम्—

दण्डपारुष्यानन्तर्भाविशिष्यशासनम्; आर्यसाम्यप्रेप्सु-शूद्रस्य दण्डः १७९५.

स्त्रीसंग्रहणम्—

कन्यापरदारसंनिकर्षकरणे दण्डः; परदारमैथुने दण्डः १८४३. कन्यादूषणे दण्डः; कन्यादूषणे परदारदूषणे च राज्ञः कर्तव्यम्; प्रायश्चित्तोत्तरं कन्या परदाराश्च धर्मान्-संबन्धाः; आर्यस्य शूद्रागमने दण्डः; आर्यस्यभिगामि-शूद्रदण्डः; परभुक्तस्त्रियाः प्रायश्चित्तम् १८४४.

धृतसमाह्वयम्—

राजाधिकृतसभैवाधिदेवनार्हा १९०३.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः— शास्त्रराजपुरोहितैः चतुर्वर्णा-श्रमो लोकः स्वकर्मणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धाद्वारणीयश्च; देशादिधर्माः १९१८.

परिशिष्टम्

दत्ताप्रदानिकम्—

दानाङ्गनियमः १९७३.

अभ्युपेत्याशुश्रूषा—

अन्तेवाप्तिशुश्रूषा १९७३-४.

बौधायनः

साहसम्—

वधसाहसं तदण्डश्च १६०६. निमित्तविशेषे साह-सानुज्ञाः १६०७-८.

स्तेयम्—

स्तेयमहापातकदण्डविधिः; दण्ड्योत्सर्गे राज्ञो दोषः; शुल्कस्थापना १६६७.

स्त्रीसंग्रहणम्—

शूद्रादीनां उच्चवर्णस्त्रीगमने दण्डः १८४४-५. चारणदाररङ्गावतारस्त्रीषु गमने दण्डाभावः; स्त्रीणां पर-पुरुषदूषितानां अदुष्टत्वम् १८४५.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः— राज्ञा चतुर्वर्णाश्रमो लोकः स्वधर्मे स्थापयित्वा रक्षणीयः १९१८. देशादिधर्म-पालनम् १९१९-२०.

वालानाथधननिधिनष्टापहृतव्यवस्था

प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था; बालधनव्यवस्था १९४९.

परिशिष्टम्

अभ्युपेत्याशुश्रूषा—

अध्याप्यः शिष्यः १९७४.

वसिष्ठः

साहसम्—

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; आततायिनः १६०८. स्तेयम्—

स्तेयदुष्टलक्षणानि १६६७. स्तेयमहापातकदण्ड-विधिः; दण्ड्योत्सर्गे राज्ञो दोषः; अर्षस्थापना शुल्क-स्थापना च १६६८.

वाक्पारुष्यम्—

पातकाभिज्ञंसने दण्डः १७७०.

दण्डपारुष्यम्—

वाग्दण्डपारुष्येषु दण्डसामान्यविधिः; वृक्षच्छेद-निषेधः १७९५.

स्त्रीसंग्रहणम्—

शूद्रादीनां उच्चवर्णस्त्रीगमने दण्डः १८४५. आर्य-स्त्रीणां शूद्रदूषितानां शुद्धिविधिः १८४६.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः— ब्राह्मणेन राज्ञा च उपदेश-

दण्डाभ्यां चतुर्वर्णाश्रमो लोकः पालनीयः स्वकर्मणि
स्थाप्यः प्रतिषिद्धाद्वारणीयश्च १९२०-२१. राज्ञा विवाह-
व्यवस्था कार्या; देशादिधर्मपालनम् १९२१.

नौयायिव्यवहारः । विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः ।

नौयायिव्यवहारः । विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः
१९४४.

बालानाथधननिधिनष्टपहृतव्यवस्था

बालधनव्यवस्था; प्रनष्टस्वामिकधनं राजगामि;
निधिव्यवस्था १९४९.

परिशिष्टम्

अभ्युपेत्याशुश्रूषा—

अध्याप्यः शिष्यः १९७४.

स्त्रीपुंघर्माः—

स्त्रीरक्षा, रत्नस्वलाघर्माश्च १९७७-८.

दायभागः—

पुत्रप्रशंसा १९८२.

विष्णुः

साहसम्—

साहसप्रकाराः १६०८. महापातकसाहसदण्डविधिः; कूट-
शासनविषाग्निदान-प्रसह्यतास्कर्य-स्त्रीबालपुरुषघात-धान्या-
पहार-कन्यानृत-साहसदण्डविधिः; पशुपक्षिकीटतृणवनस्प-
तिघात-विमांसविक्रयसाहसेषु दण्डविधिः; अधिकृताना-
मपथदान-आसनाप्रदान-अपूजासु भोजननिमन्त्रणसंबन्ध्य-
तिक्रमेषु च दण्डविधिः १६०९. चतुर्वर्णानां अभक्ष्या-
पेयादिना दूषणे उद्यानभूम्यादिदूषणे च दण्डविधिः;
गृहभूकुड्यादिभेदन-गृहपीडाकरद्रव्यक्षेप साधारण्यापलाप-
प्रेषिताप्रदान - पितृपुत्रादित्यागादिदोषेषु दण्डविधिः
१६१०. पितापुत्रविरोधे साक्ष्यादीनां दण्डविधिः;
तुल्यमानकूटत्व - विक्रयदोष-शुल्कग्रहणदोषेषु दण्डविधिः;
जातिभ्रंशकरभक्षणे दण्डविधिः; अभक्ष्याविक्रयविक्रय-
द्वैतमूर्तिभेदनसोर्दण्डविधिः; कूटसाक्षि-उत्कोचजीवि-
सम्य-दण्ड्यमोचयितु-अदण्ड्यदण्डयितृणां दण्डविधिः
१६११. राज्याङ्गदूषणसाहसदण्डविधिः; निमित्तविशेषे
साहसानुज्ञा; आत्तापिनः १६१२.

स्तेयम्—

प्रकाशवञ्चकानां शुल्कपरिहर्तृकूटतुल्यमानकर्त्रादीनां
दण्डः १६६८-९. अप्रकाशवञ्चकानां पशुधान्यवस्त्रभक्ष्य-

पेयरत्नादिद्रव्यहारिणां दण्डविधिः १६६९-७१. कर-
शुल्कस्थापना; चौरहृतं चौरैऽलब्धेऽपि स्वामिने प्रत्य-
र्पणीयम् १६७१.

वाक्पारुष्यम्—

हीनवर्णकृतवाक्पारुष्ये दण्डः; वाक्पारुष्यविशेषाः;
तत्र दण्डाश्च १७७०-७१. समासमवर्णाक्रोशक्षेपादिषु
दण्डाः १७७१.

दण्डपारुष्यम्—

हीनवर्णकृतेषु उत्तमवर्णकृतेषु च दण्डपारुष्येषु दण्ड-
विधिः; आर्यसाम्यप्रेप्सुशूद्रस्य दण्डः; प्रहारोद्यमनपादादि-
लुण्ठनकरादिभङ्गचेष्टादिरोधप्रहारादिषु दण्डविधिः
१७९६. एकं बहूनां प्रहरतां दण्डः; पुरुषपीडायां पशु-
पक्षिकीटघातादिषु च दण्डः १७९७. वृक्षवल्लीतृणादि-
च्छेदे दण्डविधिः १७९८.

स्त्रीसंग्रहणम्—

स्त्रीसंग्रहणलक्षणानि; वर्णानुसारेण परस्त्रीगमने दण्ड-
विधिः १८४६-७. गुरुतल्पगमने दण्डः; सकामहीनस्त्री-
गमने न उच्चपुरुषो दुष्यति; कन्यादूषणे दण्डः; पशु-
गमने दण्डः १८४७.

यूतसमाह्वयम्—

यूतसमाह्वययोर्मध्ये सभिक-जयि-राजभिर्ग्राह्यः
पणांशाः; राजसभिकजयितानां कृत्यं च; यूतसमाह्व-
ययोः मिथ्याचारिणां दण्डविधिः १९०३-४.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः - राज्ञा चतुर्वर्णाश्रमो लोकः
स्वकर्मणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धान्निवारणीयश्च; नृपाश्रिताः
केचिद्व्यवहाराः १९२१. देशादिधर्मपालनम् १९२२.
नौयायिव्यवहारः । विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः ।

नौयायिव्यवहारः । विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः
१९४४.

बालानाथधननिधिनष्टपहृतव्यवस्था

निधिव्यवस्था १९४९-५०. बालानाथस्त्रीधन-
व्यवस्था; धने चौरहृते व्यवस्था १९५०.

परिशिष्टम्

क्रयविक्रयानुज्ञा—

कन्याविषयानुज्ञादौ दण्डविधिः १९७५.

ऋषयभागः—

धनागमविचारः तत्प्रकाराश्च १९८२-३. पित्रा-
कृतः पुत्रो भागहरः, अकृतः स्वस्थानानुसारेण; विभाज्या-
विभाज्यविवेकः १९८३.

शंसवः शंसलिखितौ च

साहसम्—

साहसप्रकाराः; मातापितापुत्राद्यन्योन्यत्यागादौ
मातापितागुर्वतिक्रमे च दण्डविधिः १६१२. प्रतिमा-
रामकृपादिभङ्गे कूटशासनतुल्यमानप्रतिमानकरणे वापी-
कृपादिदूषणेऽदासीदासदानादौ च दण्डविधिः; पितापुत्र-
विरोधसाक्ष्यादिदण्डविधिः १६१३.

स्तेयम्—

मानार्थस्थापनाविधिः; प्रकाशवञ्चक-कूटतुल्यमान-
व्यवहर्त्रादिदण्डविधिः; अप्रकाशतस्कराणां पशुपुरुष-
भाण्डाद्यपहारिणां दण्डविधिः १६७१-२. वर्णविशेषकृत-
चौर्यदण्डविधिः; चौर्यशङ्कितशोधनदण्डौ; दण्ड्यादण्डने
राजदोषः १६७२.

वाक्यारूपम्—

खमासमवर्णाक्षेपातिक्रमादिषु दण्डाः; वर्णभेदेन
आक्रोशदण्डाः; अधिकृतविप्रगुरुमर्त्यने दण्डाः १७७१.
दण्डपारुष्यम्—

प्रहारोद्यमने निपातने च दण्डः १७९८.

स्त्रीसंग्रहणम्—

स्वदारनियमाद्यतिक्रमे दण्डविधिः; वर्णानुसारेण
परस्त्रीगमने दण्डविधिः १८४७-८. कन्यादूषणे वर्णानु-
सारेण दण्डविधिः; स्त्रीकृतकन्यादूषणे दण्डः १८४८.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः—पितृमातृविवादे पुत्रः प्रष्टव्यः;
नृपाश्रितव्यवहारेषु कानिचिदपवादस्थानानि १९२२.

बालानाथधननिधिनष्टापहतव्यवस्था

बालानाथस्त्रीधनव्यवस्था १९५०.

महाभारतम्

प्रकीर्णकम्—

देशधर्मपालनम् १९२२.

परिशिष्टम्

समा—

सभ्यैः सत्यमेव वक्तव्यम् १९६२.

साक्षी—

मृषासाक्ष्यनिन्दा; साक्षिणां सत्यवचनापवादविषयः;
साक्षिलक्षणम्; कुलीनस्त्रियः सभायां न नेयाः १९६४.
दिव्यम्—

अग्निविधिः १९६४.

दण्डमातृका—

ब्राह्मणाः स्त्रियश्चावध्याः १९६९.

उपनिधिः—

न्यासलिङ्गम् १९७१.

स्वामिपालविवादः—

पशुपालनभृतिः १९७६.

स्त्रीपुंभर्माः—

स्त्रीणां भर्तृशुश्रूषा धर्मः; भार्यामहिमा; स्त्री अवध्याः;
बहुपत्नीकता नाधर्मः; स्त्री त्याज्या १९७८.

दायभागः—

विभागनिन्दा; पितृपुत्रोरविभागप्रशंसा; ज्येष्ठकनिष्ठ-
वृत्तिः; भ्रातृणां सहवासविधिः; भागानर्हः; भ्रातृणां
भागः; विभाज्याविभाज्ये; मातरि तत्समासु च वृत्तिः
१९८३-४. ज्येष्ठमहिमा; व्यङ्गो ज्येष्ठः राज्यानर्हः;
गुणश्रेष्ठ एव राज्यानर्हः तत्पुत्रादयश्च; पुत्रमहिमा
१९८४-५. पुत्रमहिमा; पुत्रप्रकाराः; पुत्रिका १९८५-
६. दौहित्रमहिमा; निशेगेन त्रिम्योऽधिका नोत्पाद्याः;
पुत्र-पुत्रीपरिग्रहः; पुत्रेषु मातृपितृस्वाम्यं समम्;
दत्तककन्या; राज्याधिकारः १९८६.

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

साहसम्—

साहसम् १६१३-५. आशुमृतकपरीक्षा १६१५-७.
एकाङ्गवधनिष्क्रयः १६१७-८. शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः
१६१८-२०. अतिचारदण्डः १६२०-२२.

स्तेयम्—

कारकरक्षणम् १६७३-७. वैदेहकरक्षणम् १६७७-
९. गूढाजीविनां रक्षा १६७९-८१. सिद्धव्यञ्जनैर्माणक-
प्रकाशनम् १६८१-२. शङ्कारूपकर्माभिग्रहः १६८२-
५. वाक्यकर्मानुयोगः १६८५-८. सर्वाधिकरणरक्षणम्
१६८८-९०.

वाक्यारूपम्—

वाक्यारूपम् १७७१-३.

दण्डपारुष्यम्—

दण्डपारुष्यम् १७९८-१८०१.

स्त्रीसंग्रहणम्—

कन्याप्रकर्म १८४९-५०, अतिचारदण्डः १८५०-५१.

घृतसमाह्वयम्—

घृतसमाह्वयम् १९०४-५.

प्रकीर्णकम्—

प्रकीर्णकानि १९२२-३. आचार्यशिष्यधर्मभ्रातृ-समानतीर्थ्यानां वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिविषये अन्यथा वा व्यतिक्रमे दण्डविधिः १९२३. उपनिपातप्रतीकारः १९२४-६.

बालानाथधननिधिनष्टादहतव्यवस्था

बालादिधनव्यवस्था १९५०.

परिशिष्टम्

दायभागः—

वानप्रस्थाद्याश्रमिरिकथविभागः १९८६.

मनुः

साहसम्—

स्तेयसाहसयोर्निरुक्तिः; साहसिकः पापकृत्तमः, तस्यो-
पेक्षा राज्ञा नैव कर्तव्या १६२२-३, निमित्तविशेषे
साहसानुज्ञा १६२३-७. महापातकिसाहसिकदण्डविधिः;
मातापितास्त्रीपुत्राणामन्योन्यत्यागे दण्डः १६२७. निमित्त-
विशेषेषु प्रातिवेश्यब्राह्मणाद्यभोजने दण्डविधिः; पिता-
पुत्रविरोधसाक्ष्यादिदण्डविधिः; अभक्ष्यापेयादिप्राशयितृ-
ग्रसितृदण्डविधिः १६२८. धर्मोपजीविनो धर्मच्युतस्य
दण्डविधिः; उत्कृष्टकर्मभिर्जीवन् अधमजातीयो दण्डयः;
सडाग-कोष्ठगार-देवतागार-जलमार्गादिभेदेनाद्यपराधेषु
दण्डविधिः १६२९-३०. विविधद्रव्यनाशापराधेषु
दण्डविधिः; संक्रमन्वजप्रतिमादिद्रव्यभेदेनदूषणादौ दण्ड-
विधिः १६३०. राजमार्गदूषणे दण्डविधिः; अभिचार-
मूलक्रियाकृत्यासु दण्डविधिः; राजपुरुषाणां धनलोभादि-
दोषेषु दण्डविधिः १६३१-२.

स्तेयम्—

स्तेयविवादपदप्रतिज्ञा १६९०. स्तेयसहसयोर्निरुक्तिः
१६९१. राज्यकण्टकाः प्रकाशाप्रकाशतस्कराः; कण्टक-
शुद्धिः, तदर्थं चाराद्यन्वेषकविधिः १६९२-५. तस्क-

रादिकण्टकान्वेषणविधिः १६९५-६. स्तेनातिदेशः
१६९७-९. चौरादिकण्टकनिग्रहो राज्ञो धर्मः १६९९-
१७०२. स्तेयमहापातकदण्डविधिः; दण्डयस्य मोक्षे
राजा दोषभाक् १७०२-४. चौरस्य पापस्य च
दण्डेन प्रायश्चित्तवच्छुद्धिः १७०४. प्रकाशतस्करदण्डाः
१७०५-६. प्रकाशतस्करप्रकरणे प्रसङ्गात् अर्घमानादि-
व्यवस्थाविधिः १७०७-८. प्रकाशतस्करदण्डाः (पूर्वतोऽ-
नुवृत्ताः) १७०८-१०. अप्रकाशतस्करदण्डाः १७११-
२०. अप्रकाशचौर्याभ्यासे शारीरो दण्डः १७२०.
वर्णतः स्तेयदोषतारतम्यम् १७२१-२२, स्तेयदोषप्रति-
प्रसवः १७२२-७. स्तेनप्रकरणोपसंहारः; करग्रहण-
विचारः १७२७-८.

वाक्पारुष्यम्—

समासमवर्णानां परस्पराक्रोशे दण्डाः १७७३-४.
समवर्णाक्रोशे तदत्यन्तनिन्दायां च दण्डः १७७४-५.
शूद्रकृते उच्चवर्णक्षेपे धर्मोपदेशे च दण्डाः १७७५-६.
मिथ्याक्षेपे अङ्गवैकल्योक्तौ गुर्वाद्याक्षारणे च दण्डः
१७७६-८. ब्राह्मणक्षत्रिययोः परस्पराक्रोशे विट्शूद्रयोः
स्वजात्याक्रोशे च दण्डाः १७७८-९.

दण्डपारुष्यम्—

शूद्रकृतेषु त्रैवर्णिकविषयकदण्डपारुष्येषु दण्डविधिः;
आर्यसाम्यप्रेप्सुशूद्रस्य दण्डः १८०१-३. सर्वविष-
यकदण्डपारुष्ये दण्डविधिः १८०३. वनस्पतिच्छेदने
दण्डविधिः १८०४. प्राणिपीडने दण्डविधिः १८०५.
गृहोपकरणादिद्रव्यभाण्डपुष्पमूलफलादिनाशने दण्ड-
विधिः १८०६. यानसंबन्धिनिमित्तेषु प्राणिहिंसा-
द्रव्यनाशेषु स्वाम्यादीनां दण्डविचारः १८०७-१०.
प्राणिविशेषहिंसाभेदेन दण्डभेदाः १८१०-११.
भार्यापुत्रदासशिष्यादीनां ताडने कृते दण्डविचारः
१८१२.

स्त्रीसंग्रहणम्—

संग्रहणलक्षणानि १८५१-३. परस्त्रीसंभाषायां दोष-
विचारः १८५३-४. चारणदारादिस्त्रीभिः सह संभाषणे
उपकारादौ च दोषविचारः १८५४-५. परदाराभिमर्शेषु
दण्डः तत्प्रयोजनं च १८५५-६. वर्णभेदेन परदारा-
भिमर्शेषु दण्डविधिः, तत्र अब्राह्मणस्यैव शारीरदण्डः,
ब्राह्मणस्य तु मौण्ड्यप्रवसनादिः १८५६-६५. मर्तारं

विलङ्घ्य अन्यपुरुषगामिन्याः स्त्रियाः तल्लग्नपुरुषस्य च दण्डः १८६५-६. सवर्णासवर्णादिकृते कन्यादूषणे दण्डविधिः १८६६-९. साहसादीनां परस्त्रीसंग्रहणान्तानां दण्डनिबन्धनानां पदानां उपसंहारः १८६९-७०.

द्यूतसमाह्वयम्—

द्यूतसमाह्वयप्रतिज्ञा; द्यूतसमाह्वययोर्लक्षणम्; द्यूतोपकरणानि; द्यूतसमाह्वयनिषेधः; द्यूतसमाह्वयकारिणां दण्डः; इतरकण्टकदण्डश्च १९०५-७. अष्टादशपदोपसंहारः १९०७.

प्रकीर्णकम्—

ऋत्विग्याज्ययोरन्यतरेणान्यतरस्य त्यागे दण्डः; मातापितास्त्रीपुत्राणामन्योन्यत्यागे दण्डः; आश्रमिद्विजानां कार्याणि तच्छिष्टैर्निर्णयानि, तत्संमतौ राज्ञा १९२६-७. निमित्तविशेषेषु प्रातिवेश्यानुवेश्यद्विजानिमन्त्रणे दण्डः; श्रोत्रियाभोजने दण्डः; करदानानर्हाः; नेजककृत्यम्; तन्तुवायकृत्यम्; अर्घ्यस्थापना; क्रयधिक्रयादौ राजनियमातिक्रमे दण्डविधिः; तुल्यमानप्रतीमानादिस्थापना; नौयायिव्यवहारः; राज्ञा वैश्यशूद्रौ स्वकर्मणि प्रवर्तनीयौ; आपदि क्षत्रियवैश्यौ ब्राह्मणेन स्वस्वकर्मणा भर्तव्यौ; ब्राह्मणेन संस्कृतद्विजा दास्ये न नियोज्याः १९२७. शूद्रो दास्यमेवार्हति; सप्तविधा दासाः; भार्यापुत्रदासा न धनस्वाम्यमर्हन्ति; ब्राह्मणेन शूद्रद्रव्यं हरणीयम्; राज्ञा प्रत्यहं व्यवहारोऽवेक्षणीयः; व्यवहारप्रकरणोपसंहारः; नृपाश्रितो व्यवहारः— कण्टकोद्धारः १९२८-३०. सप्ताङ्गराज्यव्यसननिवारणचिन्तनम्; युगकृत् राजा; देवकार्यकरणात् देवतामयो राजा; ब्राह्मणरक्षणं राजधर्मः १९३०-३१. लोकहितेषु भृत्यनियोजनम्; देशधर्मपालनम्; परस्वानादान-स्वार्थसंग्रहादयो राजधर्माः १९३१.

नौयायिव्यवहारः । विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः ।

नौयायिव्यवहारः । विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः १९४५-७.

बालानाथधननिधिनष्टापहृतव्यवस्था

बालानाथधनव्यवस्था १९५१-२. प्रनष्टास्वामिक-धनव्यवस्था १९५३-५. निधिव्यवस्था १९५५-७. धने चोरहृते व्यवस्था १९५७-८.

परिशिष्टम्

दण्डमातृका—

शूद्रदण्डधनविनियोगः १९६९.

अभ्युपेत्याशुश्रूषा—

अध्याप्याः शिष्याः १९७४.

दायभागः—

धनागमाः १९८६-७. ज्येष्ठमहिमा; अविभाज्य-द्रव्यविशेषाः; स्त्रियोऽविभाज्याः १९८७.

याज्ञवल्क्यः

साहसम्—

साहसनिश्चितस्तदण्डश्च; साहसकारयितृदण्डः १६३३. पूज्यातिक्रम-भ्रातृभार्याप्रहार-प्रतिश्रुताप्रदान-मुद्रासहित-ग्रहभङ्ग-सामन्तादिपीडाकरणापराधेषु दण्डविधिः; विधवा-गमन-परभयानिवारण-वृथाक्रोश-चाण्डालकृतस्पृश्यस्पर्श-शूद्रप्रमजितादिभोजन-अयुक्तशपथ-अयोग्यकर्मकरण-पशुपुंस्त्वोपवात-साधारणापलाप-दासीगर्भपात-पितृपुत्रा-द्यन्योन्यत्यागेषु दण्डविधिः १६३४-५. तरिकेण स्थलज-शुल्कग्रहणे प्रातिवेश्यब्राह्मणानिमन्त्रणे च दण्डः; पिता-पुत्रविरोधसाक्ष्यादिदण्डविधिः १६३५. अभक्ष्यापेयादिना चातुर्वर्ण्यदूषणे दण्डविधिः; जारप्रच्छादन-शववस्तुविक्रय-गुरुतीडन-राजयानाद्यारोहण-द्विनेत्रभेदन-राजद्विडुप-जीवन-शूद्रकृतविप्रत्वोपजीवनेषु अपराधेषु दण्डविधिः १६३६-७. शस्त्राघात-गर्भपात-स्त्रीपुंवध-दुष्टस्त्रीकृतपुंव-घादिदोषेषु दण्डविधिः १६३७-८. क्षेत्रवेस्मादिदाह-राजपत्नीगमनापराधेषु दण्डविधिः; राजपुरुषकृतापराधेषु दण्डविधिः १६३९-४०. अविज्ञातहन्तुरन्वेषणविधिः १६४०.

स्तेयम्—

स्तेयलक्षणम्; प्रकाशतस्करदण्डाः १७२८-३१. प्रकाशस्तेयप्रकरणे प्रसङ्गतः अर्घ्यस्थापनाविधिः १७३१-२. प्रकाशस्तेयदण्डप्रकरणानुवृत्तिः १७३२-६. अप्रकाश-तस्करदण्डाः १७३६-७. स्तेये दण्डविवेकसाधनो न्यायः; स्तेयप्रकाराश्च १७३८-४०. चौरान्वेषणम् १७४०-४१. स्तेनातिदेशः १७४२. स्तेनालाभे हृतदानम् १७४३. स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १७४४.

वक्त्रावस्थम्—

वाक्पाठव्यलक्षणविभागौ; समगुणेषु संवर्णेषु निष्ठारा-

क्षेपे दण्डः १७७९. समगुणेषु सर्वेषु अश्लीलक्षेपे दण्डः; विषमगुणेषु सर्वेषु निष्ठुराश्लीलक्षेपेषु दण्डः १७८०. इन्द्रियनाशप्रतिज्ञयाक्षेपे पापाक्षेपे त्रैविद्य-नृपदेवजातिपूगग्रामदेशाक्षेपे च दण्डाः १७८१-३. असमवर्णेषु क्षेपे दण्डाः १७८३-४. दण्डपारुष्यम्—

दण्डपारुष्यलक्षणम् १८१२-३. दण्डपारुष्यनिर्णय-हेतुः १८१३. स्मृत्यनुक्तपारुष्ये दण्डविधिः; साधनभेदेन जातितो गुणतो वा समहीनोत्तमभेदेन च दण्डभेदाः १८१४. अब्राह्मणकृते ब्राह्मणविषये दण्डपारुष्ये दण्ड-विधिः; उच्चजातिकृते सजातीयकृते वा परगात्रविषये दण्डपारुष्ये दण्डाः १८१५-९. यानयुग्यगोगजाश्वादि-निमित्तेषु प्राणिहिंसाद्रव्यनाशेषु स्वाम्यादीनां दण्ड-विचारः १८१९-२१. द्रव्यविनाशे दण्डविधिः १८२१. पशुविषयदण्डपारुष्ये दण्डविधिः; वनस्पतिवृक्षलता-गुल्मादीनां छेदनादौ दण्डविधिः १८२२-४.

स्त्रीसंग्रहणम्—

स्त्रीसंग्रहणस्वरूपम्; संग्रहणलक्षणानि, परस्त्रीपुरुष-संभाषायां दण्डविधिः; वर्णभेदेन संग्रहणे दण्डविधिश्च १८७०-७५. कन्याहरणे कन्यादूषणे च वर्णभेदेन दण्ड-विधिः १८७५-६. कन्यादोषख्यापनपशुरामनहीनस्त्री-गमनादौ दण्डविधिः १८७६. दास्यादिसाधारणस्त्री-गमने दण्डविधिः; प्रसङ्गविशेषेषु वेद्यावेतनविचारश्च १८७७-९. अयोनिपुरुषप्रव्रजितान्यतमगमने दण्डविधिः १८७९-८०.

द्यूतसमाह्वयम्—

द्यूतसमाह्वयस्वरूपम् १९०७. सभिकेन द्यूते वृत्त्यर्थं ग्राह्याः पणांशाः; सभिककृत्यं राज्ञे जेजे च पणांशदापनम् १९०८. राजकृत्यं द्यूते जितद्रव्यदापनम्; द्यूते जयपरा-जयनिर्णयोपपायः; द्यूते मिथ्याचारिणां दण्डविधिः १९०९. राजाधिकृतं द्यूतं कार्यम्; समाह्वये द्यूतधर्मा-तिदेशः १९१०.

प्रकीर्णकम्—

प्रकीर्णकस्वरूपम् १९३१. नृपाश्रितो व्यवहारः-राज-शासनविपर्यासे पारदार्यचौर्यकर्मोचने च दण्डः; नृपा-श्रितो व्यवहारः-राजपुरुषाणां कर्मकारिणां कार्येष्वपराध-विचारः; श्रोत्रियसत्कारः; नृपाश्रितो व्यवहारः-पीडा-

कृद्ध्यः प्रजा रक्षणीया; नृपाश्रितो व्यवहारः-कुलजातिश्रेणिगणजानपदात्मको लोकः स्वकर्मणि. स्थाप्यः प्रतिषिद्धाच्च वारणीयः; प्रकीर्णकत्वेन संगृहीताः कैचि-द्व्यवहाराः १९३२-३.

नौयायिव्यवहारः। विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः।

नौयायिव्यवहारः। विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः १९४७.

वालानाथधननिधिनष्टाव्यवस्था

प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था १९५८-६०. निधि-व्यवस्था; धने चौरहृते व्यवस्था १९६०-६१.

परिशिष्टम्

स्त्रीपुंघर्माः—

व्यवहारप्रकरणे स्त्रीपुंघर्मपदव्यवस्था १९७८.

नारदः

साहसम्—

साहसनिरुक्तिः; त्रयश्चत्वारश्च साहसप्रकाराः; तत्र दण्डविधिश्च १६४१-४. अपराधविषयकपश्चात्तापे सति असति च कर्तव्यता १६४४. अविक्रयविक्रये ब्राह्मण-दण्डः; राजघृतवस्तुनि आक्रममाणो वधदण्डार्हः १६४५. स्तेयम्—

स्तेयलक्षणं स्तेयप्रकाराश्च १७४४-५. तस्करप्रकाराः १७४५-६. प्रकाशतस्करदण्डाः १७४६-८. अप्रकाश-तस्करदण्डाः; अप्रकाशस्तेये दण्डविवेकसाधनो न्यायः १७४८-९. अप्रकाशतस्करदण्डप्रकरणानुवृत्तिः १७४९-५१. पश्चात्तस्तेनदण्डः १७५१. विदुषः स्तेनस्य वर्णभेदेन दण्डतारतम्यम्; स्तेयदोषप्रतिप्रसवः; चौरा-न्वेषणम् १७५२-५. स्तेनातिदेशः १७५५-६. स्तेना-ख्यामे हृतदानम् १७५६-७.

वाक्पारुष्यम्—

वाक्पारुष्यनिरुक्तिः; तत्प्रकाराश्च १७८४-६. पात-काभिशांसने दण्डः १७८६-७. सर्वणक्षेपादौ दण्डाः १७८७. असर्वणक्षेपाभिशांसनादौ दण्डाः; शूद्रकृते ब्राह्मणराजन्याद्याक्षेपादौ दण्डाः; राज्ञः क्षेपे दण्डः १७८८.

दण्डपारुष्यम्—

दण्डपारुष्यलक्षणं तत्प्रकाराश्च १८२४. दण्ड-

पारुष्ये दोषराहित्यदण्डसाक्तत्वविचारः; पञ्चप्रकारै-
स्तत्रापकृतविचारश्च १८२५-८. हीनवर्णकृते ब्राह्मण-
विषये; दण्डपारुष्ये; दण्डविधिः; १८२६-९. राजनि-
दण्डपारुष्ये; दण्डः; अन्नस्वकीयकृताप्रराधे तत्प्रभोर्दण्ड-
विचारः; अप्रकाशदण्डपारुष्ये परीक्षाविधिः १८२९-३०;
स्त्रीसंग्रहणम्—

संग्रहणलक्षणानि १८८०-८१. संग्रहणदोषप्रतिप्रसवः
१८८१. वर्णभेदेन संग्रहणे दण्डविधिः १८८२. कन्या-
दूषणे वर्णभेदेन दण्डविधिः; दास्यादिसाधारणस्त्रीगमने
दोषविचारः १८८३. अन्त्यजपशुवेत्यागमने दण्डविधिः;
अगम्यागमने प्रायश्चित्तं राजदण्डो वा १८८४.

द्यूतसमाह्वयम्—

द्यूतसमाह्वययोर्लक्षणम् १९१०. सभिकेन द्यूते वृत्त्यर्थे
ग्राह्याः पणांशाः, राशे यणांशदानं च; सभिकरहितं द्यूतं,
तत्रापि राज्ञा पणांशो ग्राह्यः; अक्षद्यूते जयपराजयलक्षणम्;
द्यूते जयपराजयनिर्णयोपायः; कितवसभिकयोः परस्परं
इतिकर्तव्यता १९११. राजानधिकृतद्यूते दण्डः अला-
भश्च; पणपरिकल्पनं क्वचित् कृताकृतम् १९१२. कित-
वात् सभिको पणांशातिरिक्तं विशेषेण न गृह्णीयात्; द्यूते
मिथ्याचारिणां दण्डविधिः १९१३.

प्रकीर्णकम्—

प्रकीर्णकपदस्य लक्षणं, तद्भेदाश्च १९३३-५. राजा
चतुर्वर्णीश्रमो लोकः स्वकर्मणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धाच्च
निवारणीयः; श्रुतिस्मृतिन्यायाविरोधिराजशासनं प्रवर्तन-
निवर्तनात्मकम्; कारुशित्पिप्रभृतीनां वृत्तिसाधनानि न
हंरणीयानि १९३५. राजशासनं लोकैर्नातिक्रमणीयम्;
राजदण्डप्रयोजनम्; राजशासनप्रामाण्यम्; देवकार्यकर-
णात् देवतामयो राजा, तस्य कर्तव्यानि; ब्राह्मणसेवा
राजधर्मः; ब्राह्मणस्य विशेषाधिकाराः १९३६. आपदि
ब्राह्मणवृत्तिः १९३७-९. ब्राह्मणस्य वृत्तिः राजप्रति-
ग्रहेण प्रशस्ता; राजधनप्रशंसा १९३९-४०. अष्टौ
मङ्गलानि १९४०.

बालानाथधननिधिनष्टपहतव्यवस्था

निधिव्यवस्था; प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था; धने
ज्वोरद्वये व्यवस्था १९६१

परिशिष्टम्

निर्णयकृत्यम्—

पराजितदण्डविचारः १९६८.

स्वामिपालविवादः—

पशुनाशे व्यवस्था १९७६.

सीमाविवादः—

बलाद्भूमिर्न हर्तव्या १९७६.

स्त्रीपुंभर्ताः—

कन्यादानकालः; चतुःस्वैरिणीदोषतारतम्यम्; प्रोषित-
भर्तृकशूद्रावृत्तम् १९७८.

बृहस्पतिः

साहसम्—

साहसनिरुक्तिः; पञ्च त्रयश्च साहसप्रकाराः, तत्र
दण्डविधिश्च; साहसस्तेयं तत्र दण्डश्च १६४५-६. साह-
सिकवधदण्डविचारः; साहसिका राज्ञा नोपेक्षणीयाः;
साहसिकघातकतत्सहायाः तद्दण्डश्च १६४६-७. अवि-
ज्ञातघातकाद्यन्वेषणविधिः १६४७. आत्महत्यादोषः;
निमित्तविशेषे साहसानुशा; साहसकल्पदोषाः १६४८.
स्तेयम्—

स्तेनप्रकाराः १७५७-८. प्रकाशतस्करदण्डाः
१७५८-६०. अप्रकाशतस्करदण्डाः; चौरान्वेषणम्
१७६०. स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १७६१.

वाक्पारुष्यम्—

पारुष्यभेदाः; वाक्पारुष्यप्रकाराः १७८८-९. समा-
समजातिगुणकृतवाक्पारुष्येषु दण्डाः १७८९-९०.
असमवर्णकृतवाक्पारुष्ये दण्डाः; शूद्रकृतद्विजक्षेपधर्मो-
पदेशादौ दण्डाः; वाक्पारुष्यप्रकरणोपसंहारः १७९०.
दण्डपारुष्यम्—

दण्डपारुष्यलक्षणम्; वाक्पारुष्यापेक्षया दण्डपारु-
ष्यस्य दण्डविधौ विशेषः; विविधदण्डपारुष्येषु समाधिक-
विषयेषु दण्डविधिः १८३०-३१. दण्डपारुष्येण
पीडकः पीडापरिहारव्ययं अपहृतं च दाप्यः; पीडि-
ताय दण्डदानं राशे च; पशुपीडायां दण्डविधिः;
शूद्रकृते द्विजातिविषयके दण्डपारुष्ये दण्डविधिः; पर-
स्परदण्डपारुष्ये कृते नीचकृते च विशेषतः दोषराहि-
त्यदण्डसाक्तत्वदण्डप्रापयितृविचारः १८३१-२. अण्ड-

काशदण्डपारुष्ये परीक्षाविधिः १८३२.

स्त्रीसंग्रहणम्—

संग्रहणप्रकाराः, तल्लक्षणानि च १८८४-५. वर्णभेदेन संग्रहणे दण्डविधिः १८८५-६. स्त्रीसंग्रहणे स्त्रीणां दण्डविधिः १८८६-७.

द्यूतसमाह्वयम्—

समाह्वयलक्षणम्; द्यूतस्य निषेधोऽभ्यनुज्ञानं च; द्यूते सभिकराजजयिभिः ग्राह्याः पणांशाः १९१३. द्यूतसमाह्वययोः मिथ्याचारिणां दण्डविधिः; द्यूते जयपराजयनिर्णयोपायः; अष्टादशपदोपसंहारः.

प्रकीर्णकम्—

प्रकीर्णकपदस्य लक्षणं तद्भेदाश्च १९४०-४१. देशादिधर्मपालनम् १९४१.

बालानाथधननिधिनष्टापहृतव्यवस्था

प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था १९६१-२.

परिशिष्टम्

दायभागः—

पुत्रमहिमा; गुणाधिक्ये भागाधिक्यम् १९८७.

कात्यायनः

साहसम्—

साहसनिरुक्तिः १६४८. द्रव्यनाशादिप्रथममध्यमोत्तमसाहसानि तद्दण्डविधिश्च १६४९-५०. साहसकृदन्वेषणविधिः; आततायिनः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६५०-५१.

स्तेयम्—

स्तेयसाहसयोर्लक्षणम्; प्रकाशतस्करदण्डाः; अप्रकाशतस्करदण्डाः १७६१-२. चौरान्वेषणम्; स्तेनातिदेशः; स्तेनालाभे हृतदानम् १७६२-३. स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १७६३.

वाक्पारुष्यम्—

वाक्पारुष्यप्रकाराः; वाक्पारुष्यदोषाल्पत्वे अर्धो दण्डः; वाक्पारुष्यदोषतदपवादौ, सत्साधनं च १७९१-२.

दण्डपारुष्यम्—

सजातीयेषु दण्डपारुष्ये दण्डविधिः १८३२-३. दण्डपारुष्ये प्रतिलोमानुलोमनीचेषु दण्डविधिः; पीडिताय श्रीडापरिहास्यकृतप्रजादिदाजयिभिः १८३३-४. पशुपक्षिवनस्पतिषु दण्डपारुष्ये दण्डविधिः; अप्रकाश-

दण्डपारुष्ये परीक्षाविधिः १८३४.

स्त्रीसंग्रहणम्—

संग्रहणलक्षणानि १८८७-८. संग्रहणदोषप्रतिप्रसवः; स्त्रीपुरुषयोः संग्रहणे दण्डविधिः; स्वैरिणीगमनविचारः १८८८.

द्यूतसमाह्वयम्—

द्यूतस्य निषेधोऽभ्यनुज्ञानं च; द्यूते सभिकराजजयिभिः ग्राह्याः पणांशाः १९१४. अश्वद्यूते जयपराजयलक्षणम्; द्यूते जयपराजयनिर्णयोपायः १९१५.

प्रकीर्णकम्—

प्रकीर्णकपदस्य लक्षणं तद्भेदाश्च १९४१. नृपाश्रितो व्यवहारः—राजोपजीविनां राजक्रीडासक्तानां राज्ञ अप्रियवक्तुश्च दण्डः; देशादिधर्मपालनम् १९४२.

परिशिष्टम्

वेतनानपाकर्म—

भाण्डवाहकधर्मः १९७५.

दायभागः—

विषमविभागहेतुः कर्मानुष्ठानतारतम्यम् १९८७.

पितामहः

प्रकीर्णकम्—

देशधर्मपालनम् १९४२.

व्यासः

साहसम्—

चधसाहसकर्तुर्दण्डः; मिथ्यामैषज्यापराधः १६५१.

स्तेयम्—

स्तेनप्रकाराः १७६३-४. प्रकाशतस्करदण्डाः १७६४.

अप्रकाशतस्करदण्डाः; चौरान्वेषणम्; स्तेनालाभे हृतदानम्; स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १७६५.

वाक्पारुष्यम्—

पातकाभिज्ञंसने दण्डाः १७९२.

दण्डपारुष्यम्—

दण्डपारुष्यलक्षणम् १८३४.

स्त्रीसंग्रहणम्—

संग्रहणलक्षणानि; स्त्रीसंग्रहणे दण्डविधिः; साधारणस्त्रीगमने दण्डविधिः १८८९-९०.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः— उक्तोचचीविराजपुरुषाणां

दण्डः १९४२.

बालानाथधननिधिनष्टापहतव्यवस्था

धने चोरहृते व्यवस्था १९६२.

परिशिष्टम्

स्वामिपालविवादः—

द्विजब्रान्धवगोकृतसस्यभक्षणं क्षम्यम् १९७६.

देवलः

साहसम्—

आत्महत्यादोषः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६५१.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः— प्रायश्चित्तनिर्देशो राज्ञा कार्यः;

देशादिधर्मपालनम् १९४२.

उशाना

साहसम्—

गर्भमातनसाहसे दण्डः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६५२.

स्तेयम्—

अप्रकाशतस्करदण्डः १७६६.

वाक्पौरुष्यम्—

अस्वर्णकृतवाक्पौरुष्ये दण्डः; वाक्पौरुष्यदोषाल्पत्वे अर्धो दण्डः; अनाम्नाते दण्डे विधिः १७९२.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः— राज्ञा करः कल्पनीयः; राज-प्रशंसा १९४२.

बालानाथधननिधिनष्टापहतव्यवस्था

निधिव्यवस्था १९६२.

परिशिष्टम्

स्त्रीपुंधर्माः—

ज्येष्ठपूर्वे श्रवीयसः विवाहः १९७८.

यमः

साहसम्—

विर्षाग्निद-चौर-वधकारि-तडागभेदकदि-साह-सिकेषु दण्डविधिः; साहसिकस्तेयादिकृद्ब्राह्मणदण्डविधिः; आत्महत्यायत्नकरणे दण्डः १६५२.

स्तेयम्—

अप्रकाशतस्करदण्डः; स्तेयदोषप्रतिश्रवः १७६६.

वाक्पौरुष्यम्—

वेदाध्यायिशूद्रदण्डः १७९२.

दण्डपौरुष्यम्—

भार्यापुत्रदासदासीशिष्यानां दण्डपौरुष्यविचारः;

वधकृद्द्विजदण्डः १८३५.

स्त्रीसंग्रहणम्—

मातृश्वस्त्रादिगमने पातित्यम्; वर्णभेदेन स्त्रीसंग्रहणे दण्डविधिः; बन्धकीगमने दण्डविधिः; साहसिकादिदुष्ट-रहितराज्यस्तु तिः १८९०.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः—पौराणिकधर्मप्रवर्तनम्; प्रकी-र्णकप्रकरणोपसंहारः; पतितधनव्यवस्था १९४३.

भारद्वाजः

परिशिष्टम्

दत्ताप्रदानिकम्—

भयदानलक्षणम् १९७३.

क्रयविक्रयानुशयः—

परिवृत्तेः परिवर्तनावधिः १९७५.

संवर्तः

साहसम्—

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६५३.

स्त्रीसंग्रहणम्—

स्त्रीसंग्रहणलक्षणानि, स्त्रीसंग्रहणनिर्णयश्च १८९०-९१.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः—अमात्यपैशुन्ये पुरमानप्रभेदने च दण्डः १९४३.

लोकाधिः (लौगाधिः ?)

स्तेयम्—

अप्रकाशतस्करदण्डः १७६६.

वृद्धहारीतः

साहसम्—

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; साहसिकानां दण्डविधिः तत्र ब्राह्मणे विशेषश्च १६५३.

दण्डपौरुष्यम्—

देवताब्राह्मणगुरुणां पादादिना प्रहारे दण्डविधिः १८३५.

स्त्रीसंग्रहणम्—

परस्त्रीसंग्रहणे दण्डविधिः १८९१.

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः—राज्ञां करः कल्पनीयः १९४३.

परिशिष्टम्

दायभागः—

स्त्रीधनविभागः; अनेकपितृकाणां द्वैमातृकाणां च भागविधिः १९८८.

लघुहारीतः

परिशिष्टम्

वेतनानपाकर्म—

भाटकम् १९७५.

दायभागः—

अविभाज्यम्; पितृप्रसादलब्धमपि स्थावरं न भोक्तव्यम्; सर्वानुमत्या एव स्थावरद्विपदानां व्यवहारः १९८८.

सुमन्तुः

साहसम्—

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६५३.

दण्डपारुष्यम्—

परस्परं पारुष्ये दण्डविधिः १८३५.

कण्वः

स्तेयम्—

अप्रकाशतस्करदण्डः १७६६.

पैठीनसिः

साहसम्—

घातकसहायादिसाहसिकदण्डविधिः १६५३.

वृद्धमनुः

स्तेयम्—

अप्रकाशतस्करदण्डः; स्तेनालाभे हतदानम्

१७६६.

वृद्धकात्यायनः

दण्डपारुष्यम्—

; दण्डपारुष्ये स्वयं प्राणत्यागे न दण्डः १८३५.

मालवः

साहसम्—

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६५४.

जमदग्निः

वाक्पारुष्यम्—

असवर्णेषु वाक्पारुष्ये दण्डः १७९२.

त्रिष्णुगुप्तः

परिशिष्टम्

मानसंज्ञाः—

मानसंज्ञाः १९६८.

परिशिष्टकारः

दण्डपारुष्यम्—

; दण्डपारुष्यलक्षणम् १८३५.

स्मृत्यन्तरम्

स्त्रीसंग्रहणम्—

वर्णभेदेन परस्त्रीगमने दण्डविधिः १८९१.

परिशिष्टम्

दत्ताप्रदानिकम्—

दानाङ्गनियमः १९७३.

स्वामिपालविवादः—

सस्यनाशे दण्डः १९७६.

स्त्रीपुंभर्ताः—

पतिप्रीणनं धर्मः; कन्याविक्रयनिन्दा १९७९.

साहसम्—

शूद्रस्य विप्रवद्वेषधारणे दण्डः; गर्भघातिनी तद्वन्ता-

रश्च दण्ड्याः १९८९.

अनिर्दिष्टकर्तृकवचनानि

प्रकीर्णकम्—

देशधर्मपालनम् १९४३.

परिशिष्टम्

मानसंज्ञाः—

मानसंज्ञाः १९६७-८. पाञ्चरात्रवैखानसानुसारि

निष्कप्रमाणम् १९६८.

दण्डमातृकाः—

दण्डप्रयोजनम्; दण्डाङ्गचिन्ता १९६९.

स्वामिपालविवादः—

; सस्यनाशे दण्डः १९७६.

अग्निपुराणम्

साहसम्—

मर्यादाभेदकादिषु दण्डविधिः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; राजपुरुषाणां धनलोभादिदोषेषु दण्डविधिः; प्रतिमादिभेदेने अमक्ष्यमक्षणे च दण्डः १६५४.

स्तेयम्—

प्रकाशतस्करदण्डः; स्तेयदोषप्रतिप्रसवः १७६६.

चाक्रपारुष्यम्—

वैश्यशूद्रकृते उच्चवर्णक्षेपे धर्मोपदेशे च दण्डाः १७९२.

दण्डपारुष्यम्—

शूद्रकृते द्विजातिविषयके दण्डपारुष्ये दण्डविधिः; पशुवृक्षविषये दण्डपारुष्ये दण्डविधिः १८३५.

स्त्रीसंग्रहणम्—

संग्रहणोपक्रमनिषेधः; स्वयंवरानुज्ञा; वर्णभेदेन स्त्रियाः व्यभिचारदण्डः; वर्णानुलोम्येन व्यभिचारे दण्डः १८९१.

प्रकीर्णकम्—

संकीर्णदण्डाः १९४३.

बालानाथधननिधिनष्टापहतव्यवस्था

निधिव्यवस्था; प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था; बालानाथधनव्यवस्था; धने चोरद्वृते व्यवस्था १९६२.

परिशिष्टम्

साक्षी—

कौटसाक्ष्यदण्डः १९६४.

निर्णयकृत्यम्—

पराजितदण्डविचारः १९६८.

पुनर्न्यायः—

निवर्तनीयं कार्यम्; पुनर्न्यायवादिनो दण्डः १९६९.

दण्डमातृका—

दण्डेन प्रजारक्षणं राजधर्मः १९६९-७०. महापातकेषु अङ्कनानि १९७०.

उपनिधिः—

निक्षेपभोगनाशादौ दण्डः १९७१.

अस्वामिविक्रयः—

अस्वामिविक्रेतुर्दण्डः १९७२.

संभूयस्सुत्थानम्—

मूल्यं गृहीत्वा शिल्पादाने दण्ड्यः १९७२.

दत्ताप्रदानिकम्—

प्रतिश्रुत्याप्रदाने दण्डः १९७३.

अभ्युपेत्याशुश्रूषा—

भार्यापुत्रदासशिष्यादिताडनविशेषे दोषः १९७४.

वेतनानपाकर्म—

स्वामिभृत्ययोः दोषे दण्डः; वेत्याधर्मः १९७५.

क्रयविक्रयानुशयः—

क्रयविक्रयः—कन्याविषयानुशये दण्डविधिः १९७५.

स्वामिपालविवादः—

पालधर्माः सस्यरक्षा च १९७६.

सीमाविवादः—

गृहाद्याहरणे दण्डः १९७६.

स्त्रीपुंघर्माः—

विविधाः स्त्रीपुंघर्माः १९७९.

दायभागः—

गुणज्येष्ठ एव ज्येष्ठांशभाक्; पतितस्त्रीणां वृत्तिः १९८८.

ब्रह्मपुराणम्

साहसम्—

आततायिविशेषः १६५४.

स्कन्दपुराणम्

परिशिष्टम्

दिव्यम्—

ज्ञापथकोशघटविषामितसमाषफालतन्दुलजलानि दिव्यानि १९६५-७.

मत्स्यपुराणम्

साहसम्—

राजप्रतिकूलसाहसिकदण्डविधिः; ब्राह्मणामन्त्रणसंबन्धदोषे दण्डः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा; आततायिनः १६५५.

स्तेयम्—

प्रकाशतस्करदण्डः १७६७.

स्त्रीसंग्रहणम्—

प्रतिषिद्धानां परस्त्रियाः अगारप्रवेशे दण्डः; परस्त्री-

संग्रहणे दण्डविधिः; कन्यादूषणे दण्डविधिः; पशुगमन-
दण्डः १८९२.

परिशिष्टम्

क्रयविक्रयानुशयः—

कन्याविषयानुशये दण्डविधिः १९७५.

विष्णुपुराणम्

स्त्रीसंग्रहणम्—

पशुगमनायोनिगमननिषेधः १८९२.

देवीपुराणम्

प्रकीर्णकम्—

नृपाश्रितो व्यवहारः—चतुर्वर्णाश्रमधर्मरक्षणार्थं चार-
नियोजनम् १९४३.

भविष्यपुराणम्

साहसम्—

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६५५.

शुक्रनीतिः

स्तेयम्—

कूटपण्यविक्रेतृदण्डः, स्तेयप्रसङ्गेन शिल्पिनां विविध-

भृतिविचारश्च १७६७.

परिशिष्टम्

दायभागः—

स्थावरे न पितुः पितामहस्य वा प्रभुत्वम्; स्वत्वा-
र्थागमयोर्विचारः; पितृकृतो विभागः; अपुत्रमृतारिक्थ-
हराः क्रमेण; अविभाज्यम् १९८८.

संग्रहकारः (स्मृतिसंग्रहः)

साहसम्—

साहसनिश्चिः; निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा १६५५.

मानसोच्छ्वासः

परिशिष्टम्

दण्डमातृका—

अपराधकृत्सर्वो दण्ड्यः; क्लेशदण्डप्रकाराः; अर्थदण्ड-
प्रकाराः; दण्डप्रयोजनम्; सप्तविंशतिः राज्यस्थैर्य-
निमित्तानि १९७०.

धर्मकोशः

व्यवहारकाण्डम्

साहसम्

वेदाः

अपराधविशेषाः अपराधकारणानि च

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा
मन्युर्विभीदको अचित्तिः । अस्ति ज्यायान्
कनीयस उपारे स्वप्रश्ननेदनृतस्य प्रयोता ॥

हे वरुण स स्वो दक्षः पुरुषस्य स्वभूतं तद्वलं पाप-
प्रवृत्तौ कारणं न भवति । किं तर्हि ध्रुतिः स्थिरोत्पत्ति-
समय एव निर्मिता दैवगतिः कारणम् । ध्रु गतिस्थैर्ययो-
रिति धातुः । सा च ध्रुतिर्वक्ष्यमाणरूपः । सुरा प्रमाद-
कारिणी मन्युः क्रोधश्च गुर्वादिविषयः सन्ननर्थहेतुः ।
विभीदको ब्रूतसाधनोऽक्षः । स च वृतेषु पुरुषं प्रेरयन्-
नर्थहेतुर्भवति । अचित्तिः अज्ञानं अविवेककारणम् । अत
ईदृशी दैवकलतिरेव पुरुषस्य पापप्रवृत्तौ कारणम् ।
अरि च कनीयसोऽल्पस्य हीनस्य पुरुषस्य पापप्रवृत्तौ
उपाय उपागते समीपे नियन्तृत्वेन स्थितो ज्यायानधिक
ईश्वरोऽस्ति । स एव तं पापे प्रवर्तयति । तथा चाम्ना-
तम् — 'एष ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो
निनोपते' (कौड. ३।८) इति । एवं च सति स्वप्न-
श्चन स्वप्नोऽप्यनृतस्य पापस्य प्रयोता प्रकर्षेण मिश्रयिता
भवति । इदिति पूरकः । स्वप्ने कृतैरपि कर्मभिर्वहूनि
पापानि जायन्ते किमु वक्तव्यं जाग्रति कृतैः कर्मभिः

* गौतमापस्तम्बादिभिः चतुर्वर्णहत्यासु विविधो दण्डः प्राय-
श्चित्तप्रकारणे उक्तः, स प्रायश्चित्तरूपत्वात् नात्र संगृहीतः ।

(१) ऋसं. ७।८६।६; बृदे. १।५६.

पापान्युत्पद्यन्त इति । अतो ममापराधो देवागत इति हे
वरुण त्वया क्षन्तव्य इति भावः । ऋसा.

सप्तमर्यादाभङ्गापराधाः

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यं-
हुरो गान् । आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीत्रे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥

कवयो मेधाविन ऋषयः सप्त मर्यादाः । कामजेभ्यः
क्रोधजेभ्यश्चोद्धृताः पानमथाः स्त्रियो मृगया दण्डः पारु-
ष्यमन्यदूषणमिति सप्त मर्यादाः । यद्वा — 'स्तेयं गुरुत्वा-
रोहणं ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां सुरापानं दुष्कृतकर्मणः पुनः पुनः
सेवां पातकेऽनृतोद्यम्' इति (नि. ६।२७) निरुक्ते निर्दिष्टाः
सप्त मर्यादाः । अवस्थितास्ततक्षुः । तक्षतिः करोतिकर्मा ।
सुष्ठु लङ्घनीयाश्चक्रुः त्यक्तवन्त इत्यर्थः । तासां मर्यादा-
नामेकामिदेकामेवांहुरः पापवान् पुरुषोऽभिगात् अभि-
गच्छति । यस्त्वेवं करोति स पापवान् भवतीत्यर्थः । कि-
ञ्चायोस्तस्य मनुष्यस्य स्कम्भः स्कम्भयिता निरोधकोऽ-
भिरुपमस्य समीपभूतस्यायोर्नोळे स्थाने पथामादित्यरूपस्य
स्वस्य रश्मीनां विसर्गे विसर्जनस्थानेऽन्तरिक्षमध्ये वर्त-
मानेषु धरुणेषु तस्थौ विद्युदात्मना तिष्ठति । अनेन
लोकत्रयवर्तित्वमिति । ऋसा.

कतिपयदोषाणां दोषत्वनातरतम्यम्

तेऽतिमृजाना आयन् सूर्याभ्युदिते तेऽमृजत
सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिश्रुक्ते सूर्याभिनिश्रुक्तः
कुनखिनि कुनखी श्यावइति श्यावदन् परि-

(१) ऋसं. १०।५।६; अंसं. ५।१।६; नि. ६।२७;
कौ.सू. ७।१२१, ७।११.

(२) कासं. ३।१।७; कसं. ४।७।७.

वित्ते परिवित्तः परिविविदाने परिविविदानो-
ऽग्नेदिधिपौ अग्नेदिधिपुर्दिधिपूपतौ दिधिपूपति-
वीरहणि वीरहा ब्रह्महणि ब्रह्महा भ्रूणहनि
भ्रूणहनमेनो नात्येति ।

ते देवा अतिमृजाना आयन् सूर्याभ्युदिते
तेऽमृजत यं सुप्रं सूर्योऽभ्युदेति सूर्याभ्युदितः
सूर्याभिनिमुक्ते सूर्याभिनिमुक्तः श्यावदति श्या-
वदन् कुनखिनि कुनख्यग्नेदधुष्यग्नेदधुः परिवित्ते
परिवित्तः परिविविदाने परिविविदानो वीरहणि
वीरहा भ्रूणहनि भ्रूणहनमेनो नात्येति ।

ते देवा आप्येष्वमृजत । आप्या अमृजत
सूर्याभ्युदिते । सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिमुक्ते ।
सूर्याभिनिमुक्तः कुनखिनि । कुनखी श्यावदति ।
श्यावदन्नग्नेदिधिपौ । अग्नेदिधिपुः परिवित्ते । परि-
वित्तो वीरहणि । वीरहा ब्रह्महणि । तद्ब्रह्महणं
नात्यच्यवत ।

आप्या एकतादयः । उदयास्तमयकालयोः सुप्तौ पुरु-
षावभ्युदिताभिनिमुक्तौ । तथा चोक्तम्—‘सुप्ते यस्मिन्न-
स्तमेति सुप्ते यस्मिन्नुदेति च । अंशुमानभिनिमुक्ताभ्युदितौ
तौ यथाक्रमम् ॥’ इति । नखवक्रत्वं दन्तमालिन्यं चात्र
रोगविशेषकृतम् । ज्येष्ठायामनूढाया कनिष्ठामूढा अव-
स्थितोऽग्नेदिधिपुः । ऊढवति कनिष्ठे सति विवाहरहितो
ज्येष्ठः परिवित्तः । वीरस्य क्षत्रियस्य हन्ता वीरहा । ब्राह्म-
णस्य हन्ता ब्रह्महा । एतेष्वाप्यानामेकतादीनां देवानां
पापलेपमार्जनायैव सृष्टत्वात्तेषु तन्मार्जनमुचितम् । सूर्या-
भ्युदितादीनां ब्रह्महान्तानां पापप्रवणत्वाच्चिन्नगामिनो जल-
स्येव लेपस्यापि तेषु प्रवाहो युक्तः । ब्रह्महत्यायाः पापा-
धिक्यतारतम्यविश्रान्तिभूमित्वात्तेषां ब्रह्महणं नातिक्रामति ।

तैब्रासा. [तैसा. १।१।८।१ (पृ. ११३-४)]

कतिपयदोषाः

३ चोरस्यान्नं नवश्राद्धं ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।

(१) मैसं. ४।१।७. (२) तैब्रा. ३।२।८।११, १२.

(३) तैब्रा. १।०।६४; मड. १९।१; बौध. ३।६।५;

विस्म. ४।८।२१.

गोस्तेयं सुरापानं भ्रूणहत्या तिला शान्तिं
शमयन्तु स्वाहा ॥

चोरस्येति । हे परमात्मन् त्वदाज्ञया तिला एतन्म-
न्त्रोक्तानां पापानां शान्तिं विनाशं शमयन्तु कुर्वन्तु ।
तदर्थमिदं हविस्तुभ्यं स्वाहा । नवश्राद्धमेकोदिष्टाद्यन्न-
भोजनम् । भ्रूणो गर्भः शिशुर्वीरो वा । स्वप्नमन्यत् ।
तैआसा.

पञ्च महापातकानि

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते
रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिय-
योनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा
अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्व-
योनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ।

अथैतयोः पथोर्न कतरेणचन तानीजानि
क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व
भ्रियस्वत्येतत्तृतीयं स्थानं तेनासौ लोको न
संपूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः ॥ :

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुप्तेस्तल्प-
मावसन् ब्रह्महा च एते पतन्ति चत्वारः पञ्च-
मश्चाचरं स्तैरिति ॥

तत् तत्र तेष्वनुदायिना ये इह लोके रमणीयं शोभनं
चरणं शीलं येषां ते रमणीयचरणेनोपलक्षिताः शोभनोऽनु-
दायः पुण्यं कर्म येषां ते रमणीयचरणा उच्यन्ते । क्रौर्यादृत-
मायावर्जितानां हि शक्य उपलक्षयितुं शुभानुदायसद्भावः ।
तेनानुदायेन पुण्येन कर्मणा चन्द्रमण्डले भुक्तशेषेण अं-
भ्याशो ह क्षिप्रमेव, यदिति क्रियाविशेषणं, ते रमणीयां
क्रौर्यादिवर्जिता योनिमापद्येरन् प्राप्नुयुः ब्राह्मणयोनिं
वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा स्वकर्मानुरूपेण । अथ
पुनर्ये तद्विपरीताः कपूयचरणोपलक्षितकर्माणः अशुभानु-
दाया अभ्याशो ह यत्ते कपूया यथाकर्म योनिमापद्येरन्
कपूयामेव धर्मसंबन्धवर्जितां जुगुप्सितां योनिमापद्येरन्
श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा स्वकर्मा-
नुरूपेणैव ।

(१) छाड. ५।१०.

ये तु रमणीयचरणा द्विजातयः, ते स्वकर्मस्थाश्चेदि-
ष्टादिकारिणः, ते धूमादिगत्या गच्छन्त्यागच्छन्ति च पुनः
पुनः, घटीयन्ववत् । विद्यां चेत्प्राप्त्युः, तदा अर्चिरादिना
गच्छन्ति; यदा तु न विद्यासेविनो नापि इष्टादिकर्म
सेवन्ते, तदा अथैतयोः पथोः यथोक्तयोरर्चिर्धूमादि-
लक्षणयोः न कतरेण अन्यतरेण चनापि यन्ति । तानीं
मानि भूतानि क्षुद्राणि दंशमशककीटादीन्यसकृदावर्तीनि
भवन्ति । अतः उभयमार्गपरिभ्रष्टा हि असकृज्जायन्ते
म्रियन्ते च इत्यर्थः । तेषां जननमरणसंततेरनुकरणमिद-
मुच्यते । जायस्व म्रियस्व इति ईश्वरनिमित्तचेष्टा उच्यते ।
जननमरणलक्षणेनैव कालयापना भवति, न तु क्रियासु
शोभनेषु भोगेषु वा कालोऽस्तीत्यर्थः । एतत् क्षुद्रजन्तु-
लक्षणं तृतीयं पूर्वोक्तौ पन्थानावपेक्ष्य स्थानं संसरतां,
येनैवं दक्षिणमार्गा अपि पुनरागच्छन्ति, अनधिकृतानां
ज्ञानकर्मणोरगमनमेव दक्षिणेन पथेति, तेनासौ लोको न
संपूर्यते । पञ्चमस्तु प्रश्नः पञ्चाम्रिविद्यया व्याख्यातः ।
प्रथमो दक्षिणोत्तरमार्गाभ्यामपाकृतः । दक्षिणोत्तरयोः
पथोर्व्यावर्तनापि — मृतानामममौ प्रक्षेपः समानः, ततो
व्यावर्त्य अन्येऽर्चिरादिना यन्ति, अन्ये धूमादिना, पुन-
रुत्तरदक्षिणायने षण्मासान्प्राप्नुवन्तः संयुज्य पुनर्व्याव-
र्तन्ते, अन्ये संवत्सरमन्ये मासेभ्यः पितृलोकं — इति
व्याख्याता । पुनरावृत्तिरपि क्षीणानुशयानां चन्द्रमण्डला-
दाकाशादिक्रमेण उक्ता । अमुष्य लोकस्यापूरणं स्वशब्देनै-
वोक्तं — तेनासौ लोको न संपूर्यते इति । यस्मादेवं कष्टा
संसारगतिः, तस्माज्जुगुप्सेत । यस्माच्च जन्ममरणजनित-
वेदनानुभवकृतक्षणाः क्षुद्रजन्तवो ध्वान्ते च घोरे दुस्तरे
प्रवेशिताः — सागर इव अगाधेऽप्लवे निराशाश्चोत्तरणं प्रति,
तस्माच्चैवंविधां संसारगतिं जुगुप्सेत वीभत्सेत घृणी भवेत्
— मा भूदेवंविधे संसारमहोदधौ घोरे पात इति ।
तदेतस्मिन्नर्थे एष श्लोकः पञ्चाम्रिविद्यास्तुतये ।

स्तेनो हिरण्यस्य ब्राह्मणसुवर्णस्य हर्ता, सुरां पिबन्
ब्राह्मणः सन्, गुरोश्च तल्पं दारानावसन्, ब्रह्महा ब्राह्म-
णस्य हन्ता चेत्येते पतन्ति चत्वारः । पञ्चमश्च तैः सह
आचरन्ति ।

छाशाम्भा.

स ह प्रातः संजिहान उवाच —
न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो
नानाहिताभिर्नाविद्वात्र स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥

स ह अन्येद्युः राजा प्रातः संजिहान उवाच विन-
येन उपगम्य — एतद्धनं मत्त उपादध्वमिति । तैः
प्रत्याख्यातो मयि दोषं पश्यन्ति नूनं, यतो न प्रतिगृ-
ह्णन्ति मत्तो धनं इति मन्वानः आत्मनः सद्वृत्ततां प्रति-
पिपादयिषन्नाह — न मे मम जनपदे स्तेनः परस्वहर्ता
विद्यते; न कदर्यः अदाता सति विभवे; न मद्यपः द्विजो-
त्तमः सन्; न अनाहिताभिः शतगुः; न आविद्वाच्
अधिकारानुरूपं; न स्वैरी परदारेषु गन्ता; अत एव
स्वैरिणी कुतः दुष्टचारिणी न संभवतीत्यर्थः ।

छाशाम्भा.

*अभिशासनम्— अभिशास्तिः

यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदधमघशंसे
दधात । जही चिकित्वो अभिशास्तिमेतामग्ने
यो नो मर्चयति द्वयेन ॥

यो मर्त्य आगोऽपराधमेनः पापं च नोऽस्मभ्यमभि
भराति अभितः करोति । तस्मिन्नघशंसेऽन्नं पापमधि
दधात ददात्वग्निः । इदिति पूरणः । आगोऽपराधं यो
मह्यमिदं करोति तस्मा एवाग्निस्तत्करोत्वित्यर्थः । अथ
प्रत्यक्षेणोच्यते । हे अग्ने एतामभिशास्तिं जहि । उत्तरत्र
यच्छब्दश्रवणात्तदानुगुण्येनैवमभिशांसकमिति व्याख्येयम् ।
योऽभिशास्ता नोऽस्मान् द्वयेनोक्तेनागसा एनसा वा
मर्चयति बाधते, तमिति । ऋसा.

* अभिशास्ति, अभिशास्तिपावन्, अभिशास्तिपा, अभि-
शास्तिचातन इत्येतानि पदानि वेदेषु बहुस्थलेषु दृश्यन्ते, तत्र
वीरहत्यादिहिंसारूपदोषारोपरूपाया अभिशास्तेः प्राप्तौ त्यागदण्ड-
प्रायश्चित्तादेशस्य प्रकृतोपयोगिनः अदर्शनात् तेषां संप्रहोऽत्र
न कृतः । परमेतदत्रावधार्य अभिशास्तिपदं हिंसारूपमहादोषा-
रोपरूपार्थं एवाभिधया वेदेषु बहुशः दृश्यते, अभिशास्तिभया-
त्तद्वारणार्थं देवताश्च प्रार्थ्यन्ते इत्यपि तत्रावगम्यते । अभि-
शास्तिः साहसरोप इत्यर्थोऽवसीयते ।

(१) छाड. ५।११.

(२) ऋसं. ५।३।७.

अभिशास्तत्यागः

वायव्यं गोमृगमालभेत यमजघ्नवाँसम-
भिशाँसैयुरपूता वा एतं वागृच्छति यमज-
घ्नवाँसमभिशाँसन्ति नैप ग्राम्यः पशुर्ना-
ऽऽरण्यो यद्गोमृगो नैवैप ग्रामे नारण्ये यम-
जघ्नवाँसमभिशाँसन्ति वायुर्वै देवानां
पवित्रं वायुमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति स
एवैनं पवयति ।

गोभिः सहारण्ये चरितुं गतादृपभात् कस्यांचिन्मृग्या-
मुत्पन्नो गोमृगः । उभयलक्षणदर्शनात्तथात्वं निश्चयेम् ।
कश्चित्पुरुषो ब्राह्मणं न हतवांस्तथापि शङ्कया तादृशं यं
पुरुषं जना ब्रह्महेत्यपवदेयुस्तस्यायं पशुः । यद्यप्यस्य
पुरुषस्य ब्रह्महेत्याप्रयुक्तो नरको नास्ति तथाप्यपूता
वागृच्छति एतं निन्दारूपा वाक् शङ्कितैर्जनैः क्रियमाणा
प्रानोत्सेव । तामेव निन्दां निमितीकृत्यैव विहितो गोमृगो
मुख्यो ग्राम्यो न भवति मृग्यासुत्यन्नत्वात् । नापि मुख्य
आरण्यो वृषभादुत्पन्नत्वात् । अभिशास्तस्य ग्रामे नास्ति
वासो बन्धुभिः सह व्यवहाराभावात्, नापि वानप्रस्था-
दिवदरण्ये ग्रामवासित्वात् । देवानां मध्ये वायोः पवित्रत्वं
द्रव्यशुद्धिहेतुत्वादवगम्यते । तच्च याज्ञवल्क्येन स्मर्यते —
'रथ्याकर्दमतोयानि स्पृष्टान्यन्त्यश्ववायसैः । मरुताकैण
शुध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥' इति (यास्मृ. १।१९७)।
अनुष्ठितेऽप्यस्मिन् पशौ निन्दां केचिद्दौकिका न परि-
त्यजन्तीति चेत्तर्हि निन्दन्तु नाम ते, तथाप्यसौ अभिज्ञैः
शिष्टैर्व्यवहार्य एव । तैसा.

अभिशास्तस्य आर्विज्यानधिकारः

अथ हैतदेव गीर्णं यद्विभ्यदार्विज्यं कारयत
उत वा मा न बाधेतोत वा मे न यज्ञवेशसं
कुर्यादिति तद्ध तत्पराडेव यथा गीर्णं न हैव
तद्यजमानं भुनक्ति ।

गीर्णमुदाहृत्य निषेधति — अथ हैतदेवेति । यजमानो
यस्मिन् ग्रामे यजते तत्र कश्चिद् ब्राह्मणो ग्रामणीः प्रभुर्भूत्वा
प्रयोगकौशलरहितोऽवतिष्ठते । तेनार्विज्यं वर्जयितुमयं यज-
मानो विभेति । केनाभिप्रायेणेति, तदुच्यते । अयमत्र प्रभु-

र्मायि द्वेषं कृत्वा कालान्तरे मां बाधेत । अथवेदानीमेव
यज्ञवेशसं यज्ञविधातं कुर्यात् । तदुभयं मा भूदित्यनेनाभि-
प्रायेण तस्माद्गीतिं प्राप्नुवन् आर्विज्यं तेन प्रशुणाकार-
यत इति यदस्ति तदेतद्गीर्णम् । यथा लोके गीर्णमुदरस्थं
पुनर्भोगयोग्यं न भवति तथा तद्ध तस्मिन् यागे तद्गीति-
मात्रप्रयुक्तमार्विज्यं पराडेव निकृष्टमेव । तत्तादृशं प्रयोग-
कौशलरहितेन प्रशुणा कृतमार्विज्यं यजमानं न पालयति ।
ऐत्रासा.

स्तेयानृताभिशांसनयोरपराधत्वम्

अनेनसमेनसा सोऽभिशास्तादेनस्वतो वाऽपह-
रादेनः । एकातिथिमप सायं रुणद्धि विसानि
स्तेनो अप सो जहरेति * ॥

अभिशास्तनिष्कृतिः अभिशास्तन्यागश्च

एतामेवाभिशास्यमानाय कुर्यात् शमलं वा
एतमृच्छति यमश्लीला वागृच्छति यैवैनमसाव-
श्लीलं वान्वदति तामस्य त्रिवृतौ निष्टपतस्तेजस्वी
भवति य एतया स्तुते ।

एतामेव सूर्याख्यां विष्टुतिं अभिशास्यमानाय परे-
निन्द्यमानाय यजमानायोद्गाता कुर्यात्, यं यजमानम-
श्लीला निन्दारूपा वाक् ऋच्छति प्राप्नोति, एतं यजमानं
शमलं पापमेव ऋच्छति प्राप्नोति । यैव सा वाक् एनम-
श्लीलं अश्रीकरं निन्दारूपं वदति अस्य यजमानस्य
अश्लीलवादिनीं वाचं अस्यां विष्टुतौ प्रयुज्यमानौ उभय-
तस्त्रिवृतौ निष्टपतो निर्दहतः अश्लीलवादिन्यो वाचो
निर्दहो यजमानो निर्दोषो जायते इत्यर्थः । अन्योऽपि यो
यजमान एतया स्तुते स्तावयति सोऽपि तेजस्वी भवतीति ।

तासा.

अपघ्नन् पवते मृधोपसोमो अरात्र इत्य-
नृतमभिशास्यमानाय प्रतिपदं कुर्यात् ।

अरावाणो वा एते येऽनृतमभिशाँसन्ति
तानेवास्मादपहन्ति ।

*सायणभाष्यं स्थलनिर्देशश्च दिव्यप्रकरणे (पृ. ४२९)
द्रष्टव्यः ।

कथमनेन स्तोत्रेण यजमानस्याभिशांसनमपहतं भवती-
त्यत्राह— अरावाणो वेति । अनृताभिशांसका एवारावाणो
अरावतः अरावः अपन्नं पवते मृधोपसोम इति श्रूय-
माणप्रतिपत्नित्वं प्रयुञ्जान् उद्राता अस्माद्यजमानात् ताने-
वारातीनेवापहन्ति । तासा.

इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तम-
श्रीला वागभ्यवदत् स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा
एतमुपहव्यं प्रायच्छत्तं विश्वे देवा उपाह्वयन्त
यदुपाह्वयन्त तस्मादुपहव्यः ।

अथोपहव्यशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं दर्शयितुमाह— इन्द्रो
यतीनिति । पूर्वमिन्द्रः यतीन् ज्योतिष्टोमाद्यकृत्वा प्रकारा-
न्तरेण वर्तमानान् ब्राह्मणान् सालावृकेयेभ्य अरण्यश्वभ्यः
प्रायच्छत् । तं ब्राह्मणहन्तारं इन्द्रं अश्रीला निन्दिता
वाक् अभ्यवदत् सर्वे एनं निन्दुरित्यर्थः । स इन्द्रः
तत्प्रमाणं प्रजापतिमुपागच्छत् । तस्मै एतमुपहव्यं एकाहं
प्रायच्छत् । स इन्द्रस्तमन्वतिष्ठदित्यर्थः । तेन विश्वे देवा
एनमिन्द्रमुपाह्वयन्त, एहि निर्दुप्रस्वमसीत्यब्रुवन् । यस्मा-
दनेनोपाह्वयन्त अत उपाह्वानसाधनत्वादस्योपहव्यमिति
नाम् । तासा.

• अभिशास्यमानं याजयेत् ।

अथेन्द्रस्याभिशांसनपरिहारप्रसङ्गेनात्राधिकारिणमाह—
अभिशास्यमानमिति । अभिशास्यमानं अन्यैर्दोषारोपणेन
निन्द्यमानम् । तासा.

३ देवता वा एतं परिवृञ्जन्ति यमनृतमभि-
शांसन्ति देवता एवास्यान्नमादयन्ति ।

अभिशास्याय अयमुपहव्य उचित इत्याह— देवता
चेति । यं यजमानं अनृतमभिशांसन्ति जनाः एतं देवताः
परिवृञ्जन्ति वर्जयन्ति न तस्य हविराददत इत्यर्थः । अत
एतदनुष्ठानेन देवता एवास्यान्नमादयन्ति याजका एनं
यजमानं देवतार्हहविष्कं कारयन्तीत्यर्थः । तासा.

तस्य पूतस्य स्वदितस्य मनुष्या अन्नम-
दन्ति ।

(१) तासा. १८११९. (२) तासा. १८१११०.

(३) तासा. १८११११. (४) तासा. १८१११२.

न केवलं देवार्ह एवासौ किन्तु मनुष्यैरपि संव्यवहार्यं
इत्यत आह—तस्येति । स्वदितस्य स्वशब्दितस्य अनिन्दित
इति सर्वैर्व्यवहृतस्य अथवा भाव्यपेक्षायां निर्देशः, स्वर्ग-
प्राप्तियोग्यस्येत्यर्थः । तासा.

वीरहत्या—वीरहत्या, तद्दण्डश्च [मनुष्यहत्या, तद्दण्डश्च]

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः
सुभगा वोधतु त्मना । सीव्यत्वपः सूच्या-
च्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥

संपूर्णचन्द्रा पौर्णमासी राका । तां देवीं सुहवां स्वाहा-
नामाह्वानप्रयोजनकारिणीं सुष्टुती शोभनया स्तुत्याऽहं हुवे
आह्वयामि । सा च सुभगा शोभनधना नोऽस्माकमाह्वानं
शृणोतु । श्रुत्वा च त्मना आत्मना स्वयमेव बोधतु
अस्मदभिप्रायं बुध्यताम् । बुद्ध्वा चापः कर्म पुत्रोत्पादन-
लक्षणं सूच्या सूचीस्थानीयया अच्छिद्यमानया अविच्छि-
न्नया अनुग्रहबुद्ध्या सीव्यतु संतनोतु । यथा वस्त्रादिकं
सूच्या स्यूतं चिरं तिष्ठति एवमिदं करोतु । कृत्वा च
वीरं विक्रान्तं शतदायं बहुधनं बहुप्रदं वा उक्थ्यं प्रशस्यं
पुत्रं ददातु । ऋसा.

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे
पणिः । स वैरदेय इत्समः ॥

उत घ अपि च । घेति पूरणः । नेमः । ' त्वो नेम
इत्यर्धस्य ' इति निरुक्तम् (नि. ३।२०) । नेमोऽर्धः ।
जायापत्योर्मिलित्वैककार्यकर्तृत्वादेक एव पदार्थः । 'अर्धं
शरीरस्य भार्या ' इत्यादिस्मृतेः । शशीयस्या अर्धभूत-
स्तरन्तः पुमानस्तुतः इति ब्रुवे । बहुधा स्तुतोऽपि गुण-
स्यातिबाहुल्यादस्तुत एवेति ब्रुवे पणिः स्तोताहम् । स च
तरन्तो वैरदेये । वीरा धनानां प्रेरयितारो दानशीलाः ।
तैर्दातव्यं धनं देयम् । तस्मिन् धने समः सर्वेभ्यो दाते-
त्यर्थः । इदिति पूरणः । ऋसा.

(१) ऋसं. २।३२।४; तैसं. ३।३।११।५; कासं. १।३।१६;
मैसं. ४।१२।६, ४।१३।१०; असं. ७।४।८।१; सामब्रा.
१।५।३; आपगृ. ६।१४।३; नि. १।१।३१; आपश्रौ. १।१०।७,
५।२०।६; शाश्रौ. १।१५।४, ८।६।१०; वैसु. १।१६;
आगृ. १।१४।३; शागृ. १।२२।१२; गोगृ. २।७।७;
हिरु. २।१।३; ऋग्वि. १।३।०।३.

(२) ऋसं. ५।६।१८.

^१वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्रासयते न वा एतस्य ब्राह्मणा ऋतायवः पुराऽन्नमक्षन् पङ्क्तयो याज्यानुवाक्या भवन्ति पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्तः पुरुषो देवानेव वीरं निरवदायाग्निं पुनरा धत्ते ।

देवानां मध्ये वीरोऽग्निः । तद्वधकारिणो यजमानस्या-
न्नमृतायवः सत्यमिच्छन्तो ब्राह्मणाः पुरा नैवाक्षत्रैव भुक्त-
वन्तः । 'अश भोजने' इत्यस्य रूपम् । 'अग्ने तमद्याश्वं
न' इत्यादयश्चतस्र ऋचः पङ्क्तयः । तासु प्रधानहविषो
द्वे स्विष्टकृतो द्वे । ताश्चाग्निकाण्डे - अग्निर्मूर्धेत्यनुवाक
इष्टकोपधानार्थत्वेनाम्नाताः । इह तु वाचनिकस्तद्विधिः ।
शाखान्तरे तु याज्याप्रस्तावे समाम्नाताः । पुरुषस्य हस्तद्वय-
पादद्वयशिरोभिः पञ्चाभिः पाङ्क्तत्वम् । देवानेव देवानामेव
मध्ये वीरमग्निं निरवदायोत्सर्जनलक्षणवधभयान्निष्कृष्य ।
तैसा.

^२वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्रासयते न वा एतस्य ब्राह्मणा ऋतायवः पुराऽन्नमक्ष-
न्नाग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्वैश्वानरं द्वादशकपालम-
ग्निमुद्रासयिष्यन् ।

^३वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुत्सादयते शतदायो वीरो यदेताश्शताक्षरा अक्षरपङ्क्तयो वीरमेवैतद्देवानामवदयतेऽन्यस्यै वै प्रमाया आधे-
योऽन्यस्यै पुनराधेयो न वै तामाधेयेन स्पृणोति यस्यै पुनराधेयः पुनराधेयेन वाव तौ स्पृणोति जरा वै देवाहितमायुस्तावतीर्हि समा जीवति तस्मादाहुः शतदायो वीर इति यदेताः शताक्षरा अक्षरपङ्क्तयो भवन्ति यावदेव वीर्यं तदाप्नोति तत्स्पृणोत्यायुषा वा एष वीर्येण न्यृध्यते योऽग्निमुत्सादयते शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यं आयुर्वीर्यं हिरण्यं यावद्विरण्यं शत-
मानं ददात्यायुरेव वीर्यं पुनरालभते ।

- (१) तैसं. १।५।२।१. (२) तैसं. २।२।५।५.
(३) कासं. ९।२; कसं. ८।५; मैसं. १।७।५.

^४देवा वा असुरान् हत्वा वैरदेयादीषमा-
णास्ते दिशोऽमोहयन्नेत्र इदमन्योऽनु प्रजाना-
दिति ।

^५देवा वा असुरान् हत्वा वैरदेयादीषमाणास्त
ऋतून् संवत्सरममोहयन् ।

^६देवा वा असुरान् हत्वा वैरदेयादीषमाणास्ते
यज्ञं मध्यतः प्राविशन्नेतां वाव तदृचं प्राविशन्
विराजमेव यद्विराजा यजति देवतानामभीष्ट्या ।

आदित्या वा असुरान् हत्वा वैरदेयादीषमा-
णास्ते देवान् प्राविशन् द्विदेवत्यान्वाव तत्प्रा-
विशन्नेते हि देवानां सह भूयिष्ठाः ।

नारकाय वीरहणम् ।

- (१) नारकाय वीरहणं नष्टाग्निं शूरं वा । शुम.
(२) नरकस्वामिने वीरहणमग्न्युद्रासिनम् । 'वीरहा
वा एष देवानां योऽग्निमुद्रासयते' इति हि ब्राह्मणम् ।

तैब्रासा. ३।४।१।१

^७वैरहत्याय पिशुनम् ।

- (१) वैरहत्याय पिशुनं परवृत्तसूचकम् । शुम.
(२) वैरहत्याय वीरहत्याभिमानिने, पिशुनं प्रभोः कण्ठे
परदोषसूचकम् । तैब्रासा. ३।४।७।१

उग्रं वचो अपावधीं त्वेषं वचो अपा-
वधीं स्वाहेति । अशनयापिपासे ह वा उग्रं
वचः । एनश्च वैरहृत्यं च त्वेषं वचः । एतं
ह वाव तच्चतुर्धा विहितं पाप्मानं देवाः
अपजग्निरे ।

(१) कासं. २३।८. (२) कासं. २८।२.

(३) कासं. २८।३. (४) कासं. २८।६.

(५) शुमा. ३०।५; तैब्रा. ३।४।१।१.

(६) शुमा. ३०।९३; तैब्रा. ३।४।७।१.

(७) तैब्रा. १।५।१।५; तैसं. १।२।१।१।२; कासं. २।८।

मैसं. १।२।७; शुमा. ५।८; सासं. १।३।५३; शब्रा.
३।४।४।२३, २४, २५. (तैत्तिरीयब्राह्मणं परित्यज्य अन्येषु ग्रन्थेषु
केवलं 'उग्रं वचो अपावधीं त्वेषं वचो अपावधीं' इति मन्त्र एव
समुपलभ्यते.)

क्षुत्पिपासे एवोग्रं वच उच्यते । क्षुधिताः स्मः पिपा-
सिताः स्मो नास्माकमन्नपाने विद्येते, इत्येतद्वाक्यं घोरं
कृपालवः श्रोतुं न सहन्ते । तदेतदुग्रत्वं यदेतद्गोवधादि-
रूपमुपपातकं, यच्च वीरहत्यादिरूपं महापातकं तदेतत्त्वेषं
वच इत्यनेनाभिधीयते । त्वेषंशब्देन दीतिवाचिना चित्त-
क्लेशरूपा ज्वाल्योपचर्यते । उपपातकं महापातकं च निष्पन्न-
मिति श्रुतवताश्चित्ते महान् क्लेशो भवति । क्षुत्पिपासे महा-
पातकोपपातके इत्येवं फलरूपेण तत्साधनरूपेण चावस्थितं
चतुर्विधं पाप्मानं देवा उपसङ्गमेन विनाशितवन्तः ।

तैत्रासा.

अशनयापिपासे ह वा उग्रं वचः । एनश्च
वैरहृत्यं च त्वेषं वचः । एतमेव तच्चतुर्धा
विहितं पाप्मानं यजमानो अपहते ।

इन्द्रश्च वै नमुचिश्चासुरः समदधातां न
नौ नक्तं न दिवा हनन्नाद्रेण न शुष्केणेति
तस्य व्युष्टायामनुदित आदित्येऽपां फेनेन शिरो-
ऽच्छिनदेतद्वै न नक्तं न दिवा यत् व्युष्टा-
यामनुदित आदित्य एतन्नाद्रं न शुष्कं यदपां
फेनस्तदेनं पापीयं वाचं वददन्ववर्तत वीरहन्न-
द्रुहों द्रुहं इति तं नर्चा न साम्नाऽपहन्तु-
मशक्नोत् ।

इन्द्रश्च नमुचिर्नामासुरश्च पुरा समदधातां संधान-
मकुर्वातां, नावावयोरन्यतरोऽपि नक्तं रात्रौ न हनत् न
हन्तव्यः दिवा अहन्यपि मा हन्तु तथा आद्रेण च न हन्तु
नापि शुष्केण च नीरसेन वज्रादिनेति । एतत् उक्तं
भवति, इन्द्रः सर्वानसुरान् जित्वा सर्वेभ्योऽसुरेभ्योऽधिकं
नमुच्याख्यमासुरं बलात् जग्राह । स चासुरः इन्द्रादधिक-
बलः सन् तमेव जग्राह, गृहीत्वा च त्वां विसृजामि, यदि
त्वं मां अहोरात्रयोः आद्रेण शुष्केण न हन्यादिति एव-
मात्मकं संशयकं वाक्यामिन्द्रं प्रत्युक्तवानिति, तामिन्द्रः
ऋचा तथा साम्ना गानविशिष्टेन मन्त्रेण अपहन्तुं विना-
शयितुं नाशक्नोत् ।

तासा.

.. वीरहा वा एष देवानां यः सोममभिषु-

(१) तैत्रा. १।५।१।६. (२) तात्रा. १।२।६।८.

(३) तात्रा. १।६।१।१२.

पोति याः शतं वैरं तद्देवानवदयतेऽथ या
दशदशप्राणाः प्राणांस्ताभिस्स्पृणोति यैकादश्या-
त्मानं तथा या द्वादशी सैव दक्षिणा ।

यो यजमानः सोममभिषुणोति एष देवानां मध्ये
वीरहा वै वीरो वीर्यवान् यः सोमः तस्य हन्ता खलु,
तस्मादस्य वीरहन्तृतालक्षणो दोषो जायत इत्यर्थः । तत्र
याः शतं शतसंख्याभावः तत्तेन शतेन वैरं वीरहननलक्षणं
पापं देवान् प्रत्यनवदयते निरस्यति । अथ शतादधिकत्वात्
दश या गावः ताभिः प्राणान् स्पृणोति प्रीणयति, 'दश-
संख्या हि प्राणा नव वै पुरुषे प्राणाः नाभिर्दशमी' इति हि
ब्राह्मणं, अथ या एकादशी गौः तयात्मानं स्पृणोति, अथ
या द्वादशी द्वादशसंख्यापूरणी सैव यजन्म्य दक्षिणा । तासा.

वीरहृत्यां वा एते व्रन्ति । ये ब्राह्मणा-
स्त्रिसुपर्णं पठन्ति । ते सोमं प्राप्नुवन्ति ।
आसहस्रात्पङ्क्तिं पुनन्ति ।

वेदशास्त्रतदनुष्ठानपरो ब्राह्मणोऽभिषिक्तो राजा वा
वीरः । तैआसा.

ब्रह्महृत्या—ब्रह्महृत्या, तदपनोदश्च

विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानामा-
सीत्स्वस्त्रीयोऽसुराणां तस्य त्रीणे शीर्षाण्या-
सन्स्तोमपानं सुरापानमन्नादनं स प्रत्यक्षं
देवेभ्यो भागमवदत्परोक्षमसुरेभ्यः सर्वस्मै वै
प्रत्यक्षं भागं वदन्ति यस्मा एव परोक्षं
वदन्ति तस्य भाग उदितस्तस्मादिन्द्रोऽविभेदी-
दृष्ट्वै राष्ट्रं वि पर्यावर्तयतीति तस्य वज्रमा-
दाय शीर्षाण्यच्छिनद्यत्स्तोमपानमासीत्स कपि-
ञ्जलोऽभवद्यत्सुरापानं स कलविङ्को यदन्ना-
दनं स तित्तिरिः ।

विश्वानि बहुविधानि रूपाणि यस्यासौ विश्वरूपः ।
त्रिभिः शिरोभिः उपेतत्वाद्रिश्वरूपत्वम् । यो विश्वरूप-
नामकः त्वष्ट्रः पुत्रः स देवानां पुरोहितो न तु शरीरसंबन्धी,
असुराणां तु भागिनेयः । स च सात्त्विकेन शिरसा सोमं
पिबति । राजसेन अन्नमत्ति । तामसेन सुरां पिबति । स
च यजमण्डपेषु गत्वा सर्वेषां श्रोत्रप्रत्यक्षं यथा भवति

(१) तैआ. १।५।१।११. (२) तैसं. २।५।१।११.

तथा देवेभ्यो हविर्भागो युक्त इति वदति । सर्वेषां परोक्षं यथा भवति तथा रश्मिः ऋत्विग्भिः सहायं हविर्भागोऽसुरेभ्यो युक्तोऽतस्तानेवोद्दिश्य प्रयच्छतेति स एवं वदति । तेषामृत्विजा तस्मिन्परोक्षवादे विश्राम उत्पन्नः । तस्य परोक्षवादस्य हृदयपूर्वकत्वात् । लोकेऽपि तवायं भाग इति सर्वस्मै पुरुषाय प्रीतिमुत्पादयितुं तस्मिन्ने सर्वे वदन्ति । हृदयपूर्वकत्वाभावात् स उदितो भवति । परोक्षं यदर्थं तु भाग उच्यते तस्यैव भागो हृदयपूर्वकत्वाद् उदितो भवति । एवं वृत्तान्तं श्रुत्वा तस्माद्भिश्चरुनादिन्द्रोऽविभेत् । किमिति, ईदृक् स्वामिद्रोऽं सर्वथा कृत्वा राष्ट्रं विपर्यावर्तयतीति । अस्मत्तोऽपनीयासुरेभ्यः समर्पणं विपर्यावृत्तिः । ततस्तस्य द्रोहिणः शिरसु छिन्नेषु तानि शिरांसि पश्चिन्नरूपेणोत्पन्नानि । तैसा.

तस्याञ्जलिना ब्रह्महत्यामुपागृह्णात्ता संवत्सरमभिभस्तं भूतान्यभ्यक्रोशन्ब्रह्महन्ति ।

तस्येन्द्रस्य प्रत्यवायं जनाम्वादं च दर्शयति—तस्येति । तस्यासुरस्य वधेन निष्पन्ना या ब्रह्महत्या तामञ्जलिना स्वी चकार । पापिना शिक्षायां ईश्वरेण नियुक्तानां यमच्चित्रगुप्तादीनां पुरतोऽञ्जलिं कृत्वा निर्भयः सन् ब्रह्महत्या मया बुद्धिपूर्वकमेव कृतेत्येवमङ्गी चकारेत्यर्थः । प्रायश्चित्तमकृत्वा संवत्सरं निरन्तरं ब्रह्महत्यामङ्गीकृत्यैव तस्यौ । आत्मतत्त्वज्ञानेन पापलेमभावात् भीत्यभावस्तस्य युक्तः । अत एव कौपीतकिन इन्द्रवाक्यमेतदामनन्ति—‘यन्मां हि विजानीयास्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहमहनमरुन्मुवान् यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्’ इत्यादि । दुरिताभावेऽपि सर्वप्राणिनस्तमिन्द्रं ब्रह्महन्तित्येवं संबोध्य अभितस्तस्य आक्रोशं कृतवन्तः । तैसा.

स पृथिवीमुपासीद्दस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रति गृह्णाति साऽब्रवीद्धरं वृणै स्वातात्पराभविष्यन्ती मन्ये ततो मा परा भूवभिति पुरा ते संवत्सरादपि रोहादित्यब्रवीत्तस्मात्पुरा संवत्सरात् पृथिव्यै स्वातमपि रोहति वारेवृत् ह्यस्यै तृतीयं ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णात्तत् स्वकृतमिरिणमभवत्तस्मादाहिताग्निः श्रद्धादेवः स्वकृत

इरिणे नाव स्येद्ब्रह्महत्यायै ह्येष वर्णः ।

ततस्तस्य जनाम्वादस्य परिहाराय इन्द्रेणानुष्ठितं उपायविशेषं दर्शयति— स पृथिवीमिति । उपासीदुपेत्य प्रार्थितवान् । स्वातात्पराभविष्यन्ती मन्ये, जनाः स्वेच्छया तत्र तत्र भूमिं खनन्ति तदुपद्रवात्पराभूता पीडिता भविष्यामीति मनसा चिन्तयामि । स्वातप्रदेशः संपूरणमन्तरेण पासुप्रक्षेपणात्तृणाद्युत्पत्तेर्वाऽपि रोहात्परितो भूयादिति वरः । तदिदमस्यै वारेवृत्तमस्याः पृथिव्याः स्वातपूरणं वरेण लब्धम् । पृथिव्याः स्वीकृतः तृतीयो ब्रह्महत्याया भागः स्वकृतमिरिणमभवत् । इतस्तत आनीय प्रक्षितं न भवतीति स्वतःसिद्धमपरक्षेत्रमासीत् । यस्मादिरिणं ब्रह्महत्यायाः स्वरूपं तस्मादाहिताग्निः श्रद्धादेवः तस्मिन्निरिणे कदाचिदपि न तिष्ठेत् । यद्वा, देवयजनत्वेन नाध्यवस्येत् । श्रद्धैव देवो यस्यासौ श्रद्धावानित्यर्थः । तैसा.

स वनस्पतीनुपासीद्दस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रति गृह्णाति तेऽब्रुवन् वरं वृणामहे वृक्णात्पराभविष्यन्तो मन्यामहे ततो मा परा भूमेत्यात्रश्चनाद्दो भूयाँस उच्छिष्टानित्यब्रवीत्तस्मादात्रश्चनाद् वृक्षाणां भूयाँस उच्छिष्टान्ति वारेवृत् ह्येषां तृतीयं ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णन्त्स निर्यासोऽभवत्तस्मान्निर्यासस्य न आशयं ब्रह्महत्यायै ह्येष वर्णोऽथो खलु य एव लोहितो यो वा आत्रश्चनान्निर्येपति तस्य न आशयं काममन्यस्य इति ।

एकस्य ब्रह्महत्याभागस्य परिहारोपायमुक्त्वा अपरस्य तं दर्शयति— स इति । वृक्णात् छेदनात् । आत्रश्चनाच्छिन्नप्रदेशान्द्रूयांसो बह्वङ्कुरा उच्छिष्टान्ति वरः । वृक्षाभिर्गत्य घनीभूतो रसो निर्यासः । ब्रह्महत्यायाः स्वरूपत्वान्निर्यासस्य स्वरूपं न भोज्यं भवति । अपि च पश्चान्तरमस्ति, न सर्वोऽपि निर्यासो निषिद्धः किन्तु यो लोहितवर्णो यश्च छिन्नवृक्षप्रदेशान्निर्गतस्तदेवोभयं निषिद्धम् । अन्यस्य तु निर्यासस्य स्वरूपमाशयं इच्छायां सत्यां अशितुं योग्यम् । तैसा.

(१) तैस. २।५।१।१. (२) तैसं. २।५।१।१.

(१) तैसं. २।५।१।१.

सं स्त्रीषाँ सादमुपासीद्दस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रति गृहीतेति ता अब्रुवन् वरं वृणामहा ऋत्विष्यात्प्रजां विन्दामहै काममा विजानितोः सं भवामेति तस्मादृत्विष्यात्स्त्रियः प्रजां विन्दन्ते काममा विजानितोः सं भवन्ति वारेवृतँ ह्यासां तृतीयं ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णन्सा मलवद्वास। अभवत्तस्मान्मलवद्वाससा न सं वदेत न सह आसीत् नास्या अन्नमद्यात् ब्रह्महत्यायै ह्येषा वर्णं प्रतिमुच्य आस्तेऽथो खल्वाहुरभ्यञ्जनं वाव स्त्रिया अन्नमभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यं काममन्यदिति ।

त्रिषु ब्रह्महत्याभागेषु द्वयोः परिहारमुक्त्वा तृतीयस्यावशिष्टस्य परिहारं दर्शयति — स इति । स्त्रियः सम्यक् सीदन्ति विश्रम्भेणोपविशन्ति यस्यां सभायामिति स्त्रीसभाविशेषः स्त्रीपंसादः । ऋत्विष्यादृतु-संबन्धाद्वीर्यात् प्रथमसंभोगादेव गर्भे जातेऽपि काममुद्दिश्य आ विजानितोरा प्रसवात्पुरुषेण संगच्छेमहि । गर्भोपद्रवः प्रत्यघायश्च निषिद्धदिनकृतोऽस्माकं मा भूदिति वरः । अत एव याज्ञवल्क्यस्मृतिः— ‘यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्’ । इति । यो ब्रह्महत्यायाः तृतीयो भागः सा मलवद्वाससा रजस्वला योषिदभवत् । यस्मादियं ब्रह्महत्याया रूपं शरीरे कञ्चुकवत् प्रतिमुच्य आस्ते तस्मात्तया सह संभाषणं न कुर्यात् । तया सहैकस्मिन् गृहे वासो न कर्तव्यः । तत्स्वामिकं तत्पृष्ठं वाऽन्नं नाश्री-यात् । अपि च अभिज्ञाः केचिदेवमाहुः— स्त्रियाः शृङ्गारोपयोगित्वेनाभ्यञ्जनमेवान्नस्थानीयं, तदीयं तैलादिकमेव न गृह्णीयात् । तया वा स्वशरीराभ्यञ्जनं न कारयेत् । अन्यदन्नं सत्यामिच्छयां भोक्तव्यमिति । तैसा.

यां मलवद्वाससाँ संभवन्ति यस्ततो जायते सोऽभिशास्तो, यामरण्ये तस्यै स्तेनो, यां परार्चो तस्यै ऋतमुख्यपगल्भो, या स्नाति तस्या अप्सु मारुको, या अभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा, या प्रलिखते तस्यै खलतिरपमारी, या आङ्क्ते तस्यै काणो, या दतो घावते

(१) तैसं. २।५।१।१. (२) तैसं. २।५।१।१.

व्य. कां. २०१

तस्यै श्यावदन्, या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी, या कृणक्ति तस्यै क्लीवो, या रज्जुं सृजति तस्या उद्बन्धुको, या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादुको, या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः, तिस्रो रात्रीर्ब्रतं चरेदञ्जलिना वा पिबेदखर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथाय ।

प्रसङ्गाद्रजस्वलाव्रतानि विधत्ते— यामिति । अभिशास्तो मिथ्यापवादयुक्तः । यामरण्ये, मलवद्वाससाँ संभवन्तीत्यनुवर्तते । पराचीमुच्चारणभीत्या लज्जया वा पराङ्मुखी-म् । सभायामवाङ्मुखो वक्तुमशक्तो ऋतमुख्यपगल्भ इत्युच्यते । मारुको मरणशीलः । दुश्चर्मा कुष्ठी । प्रलिखते भित्तौ चित्रादिकं करोति । खलतिः केशशून्यः । अपमारी दुर्मरणयुक्तः । काणः कुण्ठिताक्षः । श्यावदन्मलिनदन्तः । कृणक्ति तृणादि छिनत्ति । उद्बन्धुको रज्जुं बद्ध्वा मरणशीलः । खर्वेण वह्निपक्वेन शरावादिना । खर्वो वामनः । यस्मादुक्ता दोषा वर्तन्ते तस्मात्त्परिहाराय रजस्वलाव्रतं संभवादिवर्जनरूपं नियममाचरेत् । भोजनेऽञ्जलिदग्धशरावादिर्वा साधनमस्तु । व्रताचरणमुत्पत्त्य-मानायाः प्रजाया रक्षणार्थं भवति । अत्र मीमांसा । तृ-तीयाध्यायस्य चतुर्थे पादे चिन्तितम्— ‘न संवदेत मलवद्वाससेत्यपि पूर्ववत् । पुमर्थः स्यात्कतौ कापि संवा-दस्याप्रसक्तितः ॥’ दर्शपूर्णमासप्रकरणे श्रूयते— ‘मलवद्वाससा न संवदेत’ इति । अस्य निषेधस्य प्रक-रणात् कृत्वङ्गत्वमिति चेन्न । अप्रसक्तप्रतिषेधप्रसङ्गात् । ‘यस्य व्रत्येऽहन् पत्न्यनालम्भुका भवति । तामुपरुच्य यजेत ।’ इति रजस्वलाया निःसारणान्न क्रतौ संवाद-प्रसक्तिः । तस्मात्केवलपुरुषार्थस्यास्य प्रकरणादुत्कर्षः । तैसा.

सर्वस्य वा एषा प्रायश्चित्तिः सर्वस्य भेषजँ सर्वं वा एतेन पाप्मानं देवा अत-रन्नपि वा एतेन ब्रह्महत्यामतरन् सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्यां योऽश्रमेधेन यजते य उ चैनमेवं वेद ।

येयमश्रमेधानुष्ठितिः सैषा सर्वस्य पाप्मन उपपातक-

(१) तैसं. ५।३।१२।१,२.

रूपस्य महापातकरूपस्य च प्रायश्चित्तिर्भवति । किं च सर्वस्य व्याधिजातस्य तद्धेतुपापक्षयद्वारेणाश्वमेधानुष्ठानं भेषजम् । अत एवेदानीन्तना देवाः पूर्वस्मिन् मनुष्यजन्मनि एतेनाश्वमेधेन गोवधादिरूपमुपपातकं ब्रह्महत्यादिरूपं महापातकं च परिहृतवन्तः । तस्माद्विदानीमपि योऽश्वमेधकृतुना यजते सोऽयमुपपातकमहापातके तरति । योऽपि च पुरुष एनमश्वमेधं शास्त्रोक्तप्रकारेण जानाति । ज्ञानं च द्विविधं अर्थनिर्णय उपासनं च । तत्रार्थनिर्णयः पदवाक्यप्रमाणपर्यालोचनया संपद्यते । उपासनाप्रकारस्तु सतमकाण्डस्यान्तिमानुवाके ' यो वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरो वेद ' इत्यस्मिन्नाभिधास्यते ।

तेसा. तैसा.

१ गर्भेणाविज्ञातेन ब्रह्महाऽवभृथमव यन्ति ॥

२ ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥

३ नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥
अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥
आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा ।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैवा गौरनाद्या ॥

निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो
वि दुनोति सर्वम् । यो ब्राह्मणं मन्यते अन्न-
मेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥

य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयु-
र्धनकामो न चित्तात् । सं तस्येन्द्रो हृदये-
ऽग्निभिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥
न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद् इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥
शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदन् ।
अन्नं यो ब्रह्मणां मत्वः स्वाद्वद्भीति मन्यते ॥

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका
दन्तास्तपसाभिदिग्धाः । तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देव-
पीयून् हृद्वलैर्धनुभिर्देवजूतैः ॥

(१) तैसं. ६।५।१०।३.

(२) शुभा. ३९।१३; तैसं. १।४।३।५।१; शब्रा. १३।३।
५।३; तैसा. ३।२०।१; माश्रौ. १।२।५.

(३) असं. ५।१८, १९.

तीक्ष्णोपवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति
शरव्यां न सा मृषा । अनुहाय तपसा
मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥

ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥
गौरैव तान् हन्यमाना वैतहव्या अवातिरन् ।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥

एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत ।

प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभवं पराभवन् ॥

देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभू-
यान् । यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स
पितृयाणमप्येति लोकम् ॥

अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद् उच्यते ।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः ॥
इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते ।
सा ब्राह्मणस्येपुर्घोरा तथा विध्यति पीयतः ॥
अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन् ।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन् ॥

ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्ययन् ब्राह्मणं जनाः ।
पेत्वस्तेपामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥

ये ब्राह्मणं प्रत्यष्टीवन् ये वास्मिन्कुल्कमीषिरे ।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ॥
ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥
क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते ।

क्षीरं यदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किल्बिषम् ॥
उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥

अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्धनुः । व्यास्या
द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥
तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् ।

ब्रह्मणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥
तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोपगा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद् मन्यते ॥

विषमेतदेवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत् ।
 न ब्राह्मणस्य गां जग्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥
 नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत ।
 प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभवं पराभवन् ॥
 यां मृतायानुवध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम् ।
 तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमद्भुवन् ॥
 अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः ।
 तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥
 येन मृतं स्नपयन्ती श्मश्रूणि येनोन्दते ।
 तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥
 न वर्षं भैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।
 नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥
 अपहतं ब्रह्मज्यस्य ।

ब्रह्मज्यस्य ब्राह्मणानां मन्त्राणा वा क्षपयितुर्तुःरात्मनो
 राक्षसस्यापहतमपघातं विनाशं कृतवन्त इति शेषः ।
 तैत्रासा.

प्रजापतेरक्षयश्चयत् । तत्परापतत्ततोऽश्वः सम-
 भवश्चदश्वयत्तदश्वस्याश्वत्वं तद्देवा अश्वमेधेनैव
 प्रत्यदधुरेष ह वै प्रजापतिं सर्वं करोति
 योऽश्वमेधेन यजते सर्व एव भवति सर्वस्य
 वा एषा प्रायश्चित्तिः सर्वस्य भेषजं सर्वं
 वा एतेन पाप्मानं देवा अतरन्नपि वा एतेन
 ब्रह्महत्यामतरंस्तरति सर्वं पाप्मानं तरति ब्रह्म-
 हत्यां योऽश्वमेधेन यजते ।

ब्रह्महत्यायै स्वाहेति द्वितीयामाहुतिं जुहोति ।
 अमृत्युर्ह वा अन्यो ब्रह्महत्यायै मृत्युरेष ह वै
 साक्षान्मृत्युर्यद्ब्रह्महत्या साक्षादेव मृत्युमपजयति ।
 एतां ह वै मुण्डिभ औदन्यः । ब्रह्महत्यायै
 प्रायश्चित्तिं विदां चकार यद्ब्रह्महत्याया आहुतिं
 जुहोति मृत्युमेवाहुत्या तर्पयित्वा परिपाणं
 कृत्वा ब्रह्मघ्ने भेषजं करोति तस्माद्यस्यैषाश्वमेध
 आहुतिर्हूयतेऽपि योऽस्यापरीषु प्रजायां ब्राह्मणं
 हन्ति तस्मै भेषजं करोति ।

(१) तैत्रा. ३।७।१।२. (२) शब्रा. १।३।१।११.

(३) शब्रा. १।३।५।३,४.

एतेन हेन्द्रोतो दैवापः शौनकः । जनमेजयं
 पारिक्षितं याजयां चकार तेनेष्ट्वा सर्वा पाप-
 कृत्यां सर्वा ब्रह्महत्यामपजघान सर्वां ह वै
 पापकृत्यां सर्वा ब्रह्महत्यामपहन्ति योऽश्वमेधेन
 यजते ।

श्रेष्ठो ह वेदस्तपसोऽधिजातो ब्रह्मज्यानां
 क्षितये संबभूव ऋज्यद् भूतं यदसृज्यतेर्दं
 निवेशनमनृणं दूरमस्येति ।

ब्रह्महत्यां वा एते व्रन्ति । ये ब्राह्मणा-
 स्त्रिसुपर्णं पठन्ति । ते सोमं प्राप्नुवन्ति ।
 आसहस्रात्पङ्क्तिं पुनन्ति ।

ये ब्राह्मणास्त्रिसुपर्णं पठन्ति त्रिसुपर्णमन्त्रं सर्वदा जपन्ति,
 एते पुरुषा ब्रह्महत्या विनाशयन्ति । ततस्ते निष्पापाः सन्तः
 सोमभागं प्राप्नुवन्ति । ते यस्यां ब्राह्मणपङ्क्तौ भोजना-
 र्थमुपविशन्ति ता पङ्क्तिं सहस्रब्राह्मणपर्यन्तां पुनन्ति
 शुद्धां कुर्वन्ति । तैत्रासा.

भ्रूणहत्या, अन्ये च महादोषाः

येभिः पाशैः परिविक्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग
 आपित उत्सितश्च । वि ते मुच्यन्तां विमुचो
 हि सन्ति भ्रूणान्नि पूषन् दुरितानि मृश्व ॥

येभिः यैः पापरूपैः पाशैः, परिविक्तः ज्येष्ठे अकृतदार-
 परिग्रहे पूर्वे गृहीतदारः पुरुषः, अङ्गेअङ्गे अवयवेऽवयवे,
 विबद्धः विविधं बद्धः, आपितः आर्ति प्रापितः, [उत्थितः]
 उत्क्रान्तावस्थितिश्च भवति, ते तथाविधाः पाशा वि
 मुच्यन्तां विसृज्यन्ताम् । हि यस्माद्, विमुचः विमोकारो
 देवाः सन्ति विद्यन्ते । तस्माद् विमुच्यन्तां इति संबन्धः ।
 हे पूषन् पोषक देव, भ्रूणान्नि भ्रूणहनि । भ्रूणशब्दो गर्भ-
 वचनः । 'गर्भो भ्रूण इमौ समौ' इत्यभिधानात् । यद्वा
 'कल्पप्रवचनाध्यायी भ्रूणः' इति बोधायनस्मरणात् कल्प-
 प्रवचनसहितसाङ्गवेदाध्यायी भ्रूणः । तं हतवान् भ्रूणहा ।
 तस्मिन् भ्रूणान्नि दुरितानि परिवेदनोद्भवानि पापानि मृश्व
 मार्जय । भ्रूणहा पूर्वमेव पापी तत्रैव पापायतने इदमपि
 पापं निवेशयेत्यर्थः । असा.

(१) शब्रा. १।३।५।११. (२) गोत्रा. १।१।९.

(३) तैत्रा. १।०।४।१. (४) असं. ६।११।२।३.

मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान् । नदीनां फेनां अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥

हे पाप्मन् परिवेदनजनितपाप मरीचीः अग्निसूर्यादि-प्रभावविशेषान् अनु प्र विश । परिविक्तं विसृज्य प्रगच्छेत्यर्थः । अथवा धूमान् अग्नेरुत्पन्नान् अनु प्र विश । यद्वा उदारान् ऊर्ध्वं गतान् मेघान्मना परिणतास्तान् गच्छ प्र-विश । उत वा अग्नि वा तज्जन्यान् नीहारान् अवश्यायान् गच्छ । तथा च तैत्तिरीये सृष्टिं प्रक्रम्य आमनायते-तस्मात् तेगानाद् धूमोऽजायत । तद् भूयोऽतप्यत । तस्मात्तेपानान्मरीचयोऽजायन्त । तस्मात् तेपानाद् उदारा अजायन्त । तद् भूयोऽतप्यत । तद् अभ्रमिव समहन्यत इति (तैत्रा. २।२।९।२) । हे पाप्मन् नदीनां सरितः तान् प्रसिद्धान् फेनान् फेनिलान् प्रवाहान् अनु वि विश्व अनुप्रविश्य विविधं गच्छ । असा.

रौज्जुदालमग्निष्ठं भिनोति । भ्रूणहत्याया अपहृत्यै । पौतुद्रवावभितो भवतः । पुण्यस्य गन्धस्यावरुद्ध्यै । भ्रूणहत्यामेवास्मादपहृत्य । पुण्येन गन्धेनोभयतः परिगृह्णाति ।

योऽयं श्लेष्मातकवृक्षजन्यो यूपस्तमेनमग्निष्ठं मिनोत्य-ग्निसमीपे यथा स्थितो भवति तथा प्रक्षिपेत् । तत्प्रक्षेपेण भ्रूणहत्या गर्मादिवधदोषो विनाशितो भवति । देव-दारुवृक्षस्य गन्धः सुरभिः । अतस्ताभ्यां यूपभ्यां पुण्य-गन्धप्राप्तिः । अग्निष्ठयूपप्रक्षेपेणास्माद्यजमानाद् भ्रूणहत्यादि-दोषमपहृत्य देवदारुयूपद्वयेन यजमानस्योभयतः सुरभि-गन्धपरिग्रहो भवति । तैत्रासा.

भ्रूणहत्यायै स्वाहेत्यवभृथ आहुतिं जुहोति । भ्रूणहत्यामेवावयजते । तदाहुः । यद्भ्रूणहत्याऽ-पात्र्याऽथ । कस्माद्यज्ञेऽपि क्रियत इति । अमृ-त्युर्वा अन्यो भ्रूणहत्याया इत्याहुः । भ्रूणहत्या वाव मृत्युरिति । यद्भ्रूणहत्यायै स्वाहेत्यवभृथ आहुतिं जुहोति । मृत्युमेव आहुत्या तर्पयित्वा

(१) असं. ६।११३।२.

(२) तैत्रा. ३।६।२०।१.

(३) तैत्रा. ३।१।१५।२-३.

परिपाणं कृत्वा । भ्रूणघ्ने भेषजं करोति । एतां ह वै मुण्डिम औदन्यवः । भ्रूणहत्यायै प्रायश्चित्तिं विदांचकार । यो हास्यापि प्रजायां ब्राह्मणं हन्ति । सर्वस्मै तस्मै भेषजं करोति ।

त्रिवेदिब्राह्मणः कल्पसहितः स्वशाखाध्यायी वा गर्भो वा भ्रूणः । तस्य हत्याभिमानिन्ये स्वाहुतमिदमस्तु । अनया आहुत्या दोषं विनाशयति । तत्र भ्रूणहत्याविषये चो-द्यवादिन एवमावाहुः । यद्यस्मात्कारणाद्या भ्रूणहत्या से-यमयात्र्या पुरुषस्यापान्त्रीकरणमर्हति । कर्मानुष्ठानादिषु पा-त्रं योग्यं सन्तं पुरुषमयोग्यं करोति । अथेवं सति कस्मा-त्कारणादस्मिन्न्यज्ञमव्येऽपि तस्या भ्रूणहत्याया आहुतिः क्रियते । न त्वियं कर्तुं युक्ता, किं त्वधिकारसिद्धये कृ-ष्णाण्डादिहोमवत् कर्मादावेव आहुतिः कर्तव्यति चोद्यम् । अत्र शास्त्रार्थरहस्याभिज्ञा एवमाहुः - भ्रूणहत्याया इतरो यः पापविशेष एतामपेक्ष्य स सवोऽपि अमृत्युरेव पापान्तरेणेदृशवाधाभावात् । तस्मादतिवाधकत्वाद् भ्रूण-हृत्यैव मृत्युरिति तेषां वचनम् । एवं सति अवभृथा-हुतिव्यतिरेकेण तस्य प्रतीकारो नास्ति । तस्मात् कर्ममध्येऽपि अवभृथे यद्येतामाहुतिं जुहुयात्तदानीं अनया आहुत्या मृत्युदेवतामेव तृतां कृत्वा यजमानं च परि-पाणं सर्वतः पात्रं कृत्वा भ्रूणघ्ने भ्रूणहत्यारूपाय पाप्मने-भेषजं शमनं करोति । उदकमात्मन इच्छतीत्युदनुजल-मात्राहारः कश्चित्पत्नी मुनिस्तस्य पुत्र औदन्यवः । तस्य च मुण्डिम इति नामधेयम् । स चाश्वमेधावभृथ-मन्तरेण केवलामप्येतामाहुतिं भ्रूणहत्यायाः प्रायश्चित्तं मन्यते । तिष्ठतु मुण्डिमो वयं त्वेवं मन्यामहे । अस्याः श्वमेधयाजिनः प्रजायां पुत्रभृत्यादिरूपायामपि यः कश्चिद् ब्राह्मणं हन्ति तस्मै सर्वस्मै ब्रह्मवधदोषायैमामाहुतिं भेषजं करोति । किमु वक्तव्यमवभृथेऽनुष्ठीयमानेऽश्वमेधयाजिनो भ्रूणहत्यां नाशयतीति । तैत्रासा.

तद्वा अस्यैतत् । अतिच्छन्दोऽपहतप्राप्मा-भयं रूपमशोकान्तरमत्र पितापिता भवति मातामाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदा यज्ञा अयज्ञा अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति

(१) शब्रा. १।४।७।१।२२; बृड. ४।३।२२.

भ्रूणहाभ्रूणहा पौल्कसोऽपौल्कसश्चाण्डालोऽचाण्डालः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसोऽनन्वागतः पुण्येनान्वागतः पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाच्छोकान् हृदयस्य भवति ।

यदर्वाचीनमेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मोक्षयध्व इति । त एतैरजुहवुस्तेऽरेपसोऽभवन् ।

वेदत्रयविद्ब्राह्मणो भ्रूणः तदीयहन्याया अर्वाचीनं यत्पापं तस्मात्सर्वस्मान्मुक्ता भवित्यथेति । अरेपसः पापरहिताः । तैआसा.

कूर्ममाण्डैर्जुहुयाद्योऽपूत इव मन्येत । यथा स्तेनो यथा भ्रूणहैवमेव भवति योऽयोनौ रेतः सिञ्चति । यदर्वाचीनमेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मुच्यते ।

यः पुमान् संदिग्धेन पापेन स्वस्य पूतत्वं नास्तीति मनसि शङ्कते स पुमान् कूर्ममाण्डैर्जुहुयात् । अयोनौ प्रतिषिद्धयोनौ यो रेतः सिञ्चति, एष सुवर्णस्तेयकारिणा भ्रूणहत्याकारिणा च समो भवति, सोऽपि कूर्ममाण्डैर्जुहुयात् । भ्रूणहत्यासमस्यापि मुख्य-भ्रूणहत्याया अर्वाचीनत्वात्तेन होमेन निवृत्तिर्युज्यते । तैआसा.

अकार्यकार्यवकीर्णी स्तेनो भ्रूणहा

गुरुतल्पगः ।

वरुणोऽपामघमर्षणस्तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥

अकार्यं शास्त्रप्रतिषिद्धं कलञ्जभक्षणादिकं तत्कृत्वा शीलं यस्यासावकार्यकारी, प्रतिषिद्धस्त्रीगमनवानवकीर्णी । ब्राह्मणसुवर्णहर्ता स्तेनः । वेदवेदाङ्गविद्ब्राह्मणो गभो वा भ्रूणस्तं हन्तीति भ्रूणहा । गुरुदारगामी तु गुरुतल्पगः । एतादृशपापकारिणमपि मामघमर्षणः पापविनाशकोऽपां स्वामी चरुणस्तस्मात्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते मोचयति । तैआसा.

भ्रूणहत्यां वा एते व्रन्ति । ये ब्राह्मणास्त्रिसुपर्णं पठन्ति । ते सोमं प्राप्नुवन्ति । आसहस्रात्पङ्क्तिं पुनन्ति ।

(१) तैआ. २।७।१. (२) वैआ. २।८।१.

(३) तैआ. १०।१।१५; मउ. ५।११.

(४) तैआ. १०।४९.

ब्राह्मणगर्भस्य राजगर्भस्य वा वधो भ्रूणहत्या ।

तैआसा.

प्रतर्दनो ह वै देवोदासिरिन्द्रस्य प्रियं धामोपजगाम युद्धेन च पौरुषेण च तं हेन्द्र उवाच प्रतर्दन वरं वृणीष्वेति स होवाच प्रतर्दनस्त्वमेव वृणीष्व यं त्वं मनुष्याय हिततमं मन्यस इति तं हेन्द्र उवाच न वै वरोऽवरस्मै वृणीते त्वमेव वृणीष्वेत्यवरो वै किल म इति होवाच प्रतर्दनोऽथो खल्विन्द्रः सत्यादेव नेयाय सत्यं हीन्द्रस्तं हेन्द्र उवाच मामेव विजानीह्येतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये यन्मां विजानीयात्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमह-नमरन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छं वह्नीः संधा अतिक्रम्य दिवि प्रल्हादीनवृण-महमन्तरिक्षे पौलोमान्पृथिव्यां कालखञ्जास्तस्य मे तत्र न लोम च नामीयते स यो मां वेद न ह वै तस्य केन च कर्मणा लोको मीयते न स्तेयेन न भ्रूणहत्याया न मातृवधेन न पितृवधेन नास्य पापं च न चकृषो मुखान्नीलं वेतीति ।

निरुक्तम्

सप्तमर्यादान्याख्यानम्

सप्त मर्यादाः कवयस्ततश्चुस्तासामेकामिदभ्यं-हुरो गात् । सप्त एव मर्यादाः कवयश्चक्रुः । तासामेकामपि अभिगच्छन् अंहस्वान् भवति । स्तेयं तल्पारोहणं ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां सुरापानं दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवां पातके-ऽनृतोद्यमिति ।

सप्त मर्यादाः सप्त स्थितीः कवयः मेघाविनः हिरण्य-गर्भमनुप्रभृतयः ततश्चुः कृतवन्तः । नित्या एव हि ताः, तैस्तु तत्प्रख्यायिकानुस्मरणार्थं ग्रन्थसंदर्भोऽभिव्याञ्जितः, एतदेव करणमित्युपचर्यते । तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् । इत् इत्यनर्थकः, अप्यथे वा । तासां मर्यादानां एकां अभिगच्छन् अभिक्रामन् अंहस्वान्

(१) शाआ. ५।१; कौड. ३।१. (२) नि. ३।२७.

भवति । गात् इत्येतत् अमेः समीपमाकृष्य एकामप्य-
मिगच्छन् इति । कतमाः पुनस्ताः मर्यादाः ? इति ।
स्तेयं, तल्पारोहणं इत्येवमाद्याः । दुभा.

* गौतमः

निमित्तविशेषे साहसानुशा

प्राणसंशये ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत + ।

(१) प्राणग्रहणेन पुत्रदारहिरण्यादेरपि ग्रहणं, 'प्राणा
हेते बहिश्चराः' इति दर्शनात् । अपिशब्दाद्वैश्यश्चद्रा-
वपि । क्षत्रियस्यार्थासिद्धत्वात् रक्षणादौ प्रवृत्तेः । यद्वा
क्षत्रियस्यापि । मभा.

(२) प्राणसंशये सति ब्राह्मणोऽपि रक्षार्थं शस्त्र-
माददीत । 'तदलाभे क्षत्रवृत्तिरिति' शस्त्रग्रहणे सिद्धे पुन-
रुपादानं ब्राह्मणवृत्तेः सतोऽप्यनिषेधार्थम् । अपिशब्दात् किं
पुनर्वैश्यश्चद्रौ । गौमि.

(३) ब्राह्मणग्रहणं वैश्यस्यापि प्रदर्शनार्थम् ।

स्मृच. ३१३

दुर्बलहिंसायां चाविमोचने शक्तश्चेत् × ।

यत्र दुर्बलस्य हिंसा विनाशो भवति तत्र तद्विमोचने
विमोक्षणे शक्तश्चेत् तदविमोचने यावान् हन्तुर्दोषस्ता-
वानस्यापि भवति । चशब्दात् क्षुद्रव्याध्यादिपीडितस्यापि

*निबन्धकृद्भिः गौतम - आपस्तम्ब - बौधायन - वसिष्ठ - वचनानि
अन्यप्रकरणगतानि साहसप्रकरणे समुद्धृतानि । तानि न साक्षात्साह-
सानुगतानि । यानि तु सूत्राणि स्तेयवाग्दण्डपारुष्यस्त्रीसंग्रहण-
विषयाणि साहसप्रतिपादकानि तानि तत्तत्पदेषु द्रष्टव्यानि ।

+ इदं वचनं आपदवृत्तिप्रकरणगतमाततायिप्रतीकाराभ्यनुष्ठानार्थं
अत्रोद्धृतं निबन्धकृद्भिः ।

× गौतमधर्मसूत्रे इदं वाक्यं प्रायश्चित्तप्रकरणे पठितम् । मेधा.
व्याख्यानं 'आत्मनश्च परित्राणे' इति मनुवचने द्रष्टव्यम् ।

(१) गौध. ७।२५; मभा.; गौमि. ७।२५; स्मृच.
३१३; रत्न. १२७; विता. ७५६; समु. १४७.

(२) गौध. २१।१९; मेधा. ८।३४८ चा(च); मभा.;
गौमि. २१।१९; स्मृच. ३१३ (चा०); रत्न. १२७ मेधावत्;
विता. ७५६ मेधावत्; समु. १४७ स्मृचवत्.

भक्तौपधाच्छादनाद्यदाने शक्तौ सत्यां तद्धनने यावान्
दोषस्तावान् एवास्यापि भवति । ननु चाहारार्थं यः प्र-
मापयति तद्विच्छेदेऽपि दोषः प्राप्नोतीति । उच्यते, अतु-
ल्यत्वादाहारप्राणविच्छेदयोः । आहारविच्छेदे मूलादि-
भिरपि क्षुन्निवृत्तेः शक्या कर्तुं, प्राणविच्छेदे तु न
कश्चिदस्ति प्रतीकार इति । *मभा.

साहसिका महान्तोऽपि नानुसरणीयाः

दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः । साहसं च महताम् ।

(१) इदानीं पूर्वपक्षीकरोति वेदविदां शीलं धर्ममूलं
न भवति यतः — दृष्ट इति । धर्ममूलत्वं न प्राप्नो-
तीति शेषः । यथा प्रजापतिः स्वां दुहितरमभ्यव्यायत्,
यथेन्द्रस्याहल्यागमनादि, यथा व्यासभीष्मादीनामनाश्र-
मावस्थानम् । किञ्च — साहसमिति । अत्रापि धर्म-
मूलत्वं न प्राप्नोतीति शेषः, चशब्दोपादानात् । सहस्र-
ब्देन बलमुच्यते । यथा च नारदः— 'सहो बलमिहोच्यते'
इति । तेन शास्त्रं लोकसंव्यवहारं चानवेक्ष्य यत् क्रियते
तत् साहसम् । महतां लोकविख्यातानामित्यर्थः । यथा
रामस्य ताटकादिस्त्रीवधः, जामदग्न्यस्य मातुः शिरश्छेदः,
वसिष्ठस्य जलप्रवेश इत्यादि । तेन अयुक्तं शीलस्य
धर्ममूलत्वमिति । कथं पुनर्धर्मव्यतिक्रमसाहसयोः भेदः ?
विषयाभिलोपेण यद्युक्तमाचर्यते स धर्मव्यतिक्रमः,
क्रोधाद्यभिभवेन यत् क्रियते तत् साहसम् । मभा.

(२) यदि शीलं प्रमाणं, अतिप्रसङ्गः स्यात् । कथं ?
कतकभरद्वाजौ व्यत्यस्य भार्ये जग्मतुः । वसिष्ठः चण्डाली-
मक्षमालाम् । प्रजापतिः स्वां दुहितरम् । रामेण पितृ-
वचनादविचारेण मातुः शिरश्छिन्नमित्यादिसाहसमपि
प्रमाणं स्यात्वेत्याह— दृष्ट इति । महतामेतादृशं साहस-
मपि धर्मव्यतिक्रम एव दृष्टो, न तु धर्मः । रागद्वेष-
निबन्धनत्वात् । गौमि.

नै तु दृष्टार्थेऽवरदौर्बल्यात् ।

(१) अत्रोत्तरमाह— न त्विति । तुशब्दः मक्षनिवृ-

* गौमि. मभावत् ।

(१) गौध. १।३-४; मभा.; गौमि. १।३.

(२) गौध. १।५; मभा.; गौमि. १।४ 'अवरदौर्बल्यात्'
पतावदेव.

स्यर्थः । दृष्टार्थो दृष्टप्रयोजनः तस्मिन् दृष्टप्रयोजने शीलं धर्ममूलं न भवति । तथा च वसिष्ठः—‘अगृह्यमाणकारणो धर्मः’ इति । नैतद्द्विवचनं, दृष्टार्थं धर्मव्यतिक्रमसाहसे इति । तस्मिन् गृह्यमाणे ‘ईदूदेत्’ इत्यादिना प्रगृह्यसंज्ञाया सत्यां ‘दृष्टार्थं अवरदौर्वल्यात्’ इति पाठः प्राप्नोति । अवरदौर्वल्यात्, न वरः अवरो निरुद्धः द्वेषाद्याभिभूतः अग्रमार्थज्ञान इत्यर्थः, तस्य दौर्वल्यात् धर्माधर्म-परिज्ञानाद्यक्तेरित्यर्थः । एतच्चात्तनेन ज्ञापितं भवति— महतामपि तद्विदां कदाचिदभिभवोऽस्तीति, शरीर-वतः प्रियाप्रिययोरवश्यंभावित्वात् । तस्मान्नावदेतेषां रागादिदोषेणाभिभवः, तावत्तेषां आचारोऽपि न ब्राह्मः । तथा च वसिष्ठः— ‘शिष्टः पुनरकामात्मा’ इति । अथवा—अवरशब्देनेदानीन्तनाः कलियुगपुरुषा उच्यन्ते, तेषां दौर्वल्यात् असामर्थ्यात् । मभा.

(२) न च तेषामेवंविधं दृष्टमित्येतावताऽस्मदादी-नामपि प्रसङ्गः । कुतः— अवरोति । अवरेषामस्मदा-दीनां दुर्बलत्वात् । तथा च श्रूयते— ‘तेषां तेजोवि-शेषेण प्रत्यवायो न विद्यते । तदन्वीक्ष्य प्रयुञ्जानः सीदत्स्वधरको जनः ॥’ इति । गौमि.

स्वधर्मातिक्रमसाहसदण्डः

शिष्टाकरणे प्रतिषिद्धसेवायां च नित्यं चेल-पिण्डादूर्ध्वं स्वहरणम् ।

(१) नित्यं शिष्टाकरणे नित्यं विहितस्थाननुष्ठाने, न सकृत्, प्रतिषिद्धस्याभक्ष्यमक्षणादेरासेवने, न प्रमादात्, चेलपिण्डाद्भक्ताच्छादनमात्राद्यदन्यत्तस्याप-हारः कर्तव्यः । भक्ताच्छादनं तु यावदन्यस्य द्रव्यस्यागमनकालस्तावदस्य, मोक्तव्यम् । ततोऽपि यद्यतिक्रामति पुनरस्य स्वमपहर्तव्यमेवेति । एवंकृते दण्डभयात् स्वकर्मण्येव प्रवर्तत इति । चकारात्प्रायश्चित्तं च कारयितव्यम् । मभा.

(२) शिष्टं विहितम् । नित्यं शिष्टस्याकरणे नित्यं च प्रतिषिद्धसेवायां, चैलपिण्डादूर्ध्वं चैलमाच्छादनं पिण्डो ग्रासस्ताभ्यामूर्ध्वं यावता तयोर्निवृत्तिस्ततोऽधिकं यत्स्वं तस्य हरणं कार्यम् । आच्छादनासनार्थं यत्किञ्चित्परिहाप्या-वशिष्टमस्य स्वं हर्तव्यमित्येवमतो निवृत्तेः । गौमि.

(१) गौध. १२१२४; मभा.; गौमि. १२१२४.

आपस्तम्बः

ब्राह्मणस्य शस्त्रग्रहणनिषेधप्रतिप्रसवौ । निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा ।

परीक्षार्थोऽपि ब्राह्मण आयुधं नाऽऽददीत ॥ गुणदोषज्ञानं परीक्षा । तथा अर्थः प्रयोजनं यस्य सः । एवंभूतोऽपि ब्राह्मण आयुधं न गृह्णीयात् किं पुन-र्हिंसार्थं इत्यपिशब्दार्थः । उ.

यो हिंसार्थमभिक्रान्तं हन्ति मन्युरेव मन्युं स्पृशति न तस्मिन् दोष इति पुराणे ।

अस्य (पूर्वसूत्रस्य) प्रतिप्रसवः— यो हिंसार्थमिति । यस्तु हिंसार्थं मारणार्थमभिक्रान्तमभिपतितं हन्ति न तस्मिन् दोषो विद्यत इति पुराणे श्रुतम् । दोषाभावे हेतुः—यस्मान्मन्युरेव मन्युं स्पृशति न पुनः पुरुषः पुरु-पम् । उ.

साहसिका महान्तोऽपि नानुसरणीयाः

दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च पूर्वेषाम् । यदि पूर्ववत्यादिषु मैथुने दोषः, कथं तर्हि उतथ्य-भारद्वाजौ व्यत्यस्य भायं जग्मतुः, वसिष्ठश्चण्डालीमक्ष-मालां, प्रजापतिश्च स्वां दुहितरम् । तत्राह— दृष्ट इति । सत्यं, दृष्टोऽयमाचारः पूर्वेषाम् । स तु धर्मव्यतिक्रमः, न धर्मः, गृह्यमाणकारणत्वात् । न चैतावदेव, साहसं च पूर्वेषां दृष्टम् । यथा जामदग्न्येन रामेण पितृवचनाद-विचारेण मातुः शिरस्त्रिच्छन्नम् । उ.

तेषां तेजोविशेषेण प्रत्यवायो न विद्यते । किमिदानीं तेषामपि दोषः ? नेत्याह—तेषामिति ।

ॐ मेधा., सूत्र. व्याख्यानं ‘शस्त्रं द्विजाभिग्राह्यं’ इति मनुवचने द्रष्टव्यम् ।

(१) आध. ११२९१६; हिध. ११२७; मेधा. ८१३४८ (न ब्राह्मणः परीक्षार्थमपि शस्त्रमाददीत); मिता. २१२८६ (=) (ब्राह्मणः परीक्षार्थमपि शस्त्रं नाददीत); सूत्र. ३१३; पमा. ४६६ (=) मितावत्; रत्न. १२७ थोऽपि (थमपि); दधि. ८ (ब्राह्मणः परीक्षार्थमपि न शस्त्रमुपाददीत) बौधायनः; व्यप्र. ४०० (=) मितावत्; व्यउ. १३३ रत्नवत्; विता. ७५६ रत्नवत्; समु. १४७.

(२) आध. ११२९१७; हिध. ११२७.

(३) आध. २११३१७. (४) आध. २११३१८.

तादृशं हि तेषां तेजः यदेवंविधैरपि पाप्मभिर्न प्रत्यव-
यन्ति । 'तद्यथेपीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हाऽस्य सर्वे
पाप्मानः प्रदूयन्ते' इति श्रुतेः (छाउ. ५।२४) । उ.
तदन्वीक्ष्य प्रयुञ्जानः सीदत्यवरः ।

न चैतावताऽर्वाचीनानामपि तथा प्रसङ्ग इत्याह
—तदन्वीक्ष्येति । तदिति 'नपुसकमनपुसकेन' इत्येकशेष
एकवद्भावश्च । तं व्यतिक्रमं तच्च साहसमन्वीक्ष्य दृष्ट्वा
स्वयमपि तथा प्रयुञ्जानोऽवर इदानीन्तनः सीदति प्रत्य-
वैति । न ह्यग्निः सर्वं दहतीत्यस्माकमपि तथा शक्ति-
रिति । उ.

महासाहसिकशूद्रादिदण्डः, ब्राह्मणे विशेषश्च

✽ पुरुषवधे स्तेये भूम्यादान इति स्वान्या-
दाय वध्यः ।

चक्षुनिरोधस्वेतेषु ब्राह्मणस्य ।

नियमातिक्रमिणमन्यं वा रहसि बन्धयेत् ।

आसमापत्तेः ।

आसमापत्तौ नादयः ।

आचार्य ऋत्विक् स्नातको राजेति त्राणं
स्युरन्यत्र वध्यात् ।

बौधायनः

वधसाहसं तदण्डश्च

अवध्यो वै ब्राह्मणः सर्वापराधेषु । ब्राह्मणस्य
ब्रह्महत्यागुरुतल्पगमनसुवर्णस्तेयसुरापानेषु कुसि-
न्धभगसृगालसुराध्वजांस्तप्तेनायसा ललाटेऽङ्क-
यित्वा विषयान्निर्धमनम् × ।

+ क्षत्रियादीनां ब्राह्मणवधे वधः सर्वस्वहरणं च ।

✽ एषां सजाणां व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च स्तेयप्रकरणे
द्रष्टव्यः ।

× व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च दण्डमातृकायां (पृ. ५७०)
द्रष्टव्यः ।

+ इमानि वचनानि वस्तुतो दण्डपारुष्यसंबन्धीन्यापि निबन्ध-
कारानुसारेणान् संमृहीतानि ।

(१) आध. २।१३।९.

(२) बौध. १।१०।२०; अप. २।२७७; व्यक. १२२;
स्मृच. ३१२, ३२५; विर. ३७२; पमा. ४५४; रत्न. १२६;
विचि. १६४; दवि. ७०; सवि. ४७४; व्यग्र. ३९४ पक्षे
(णस्य च) (व०); व्यड. १३३ णवधे (णस्य वधे); विता. ७५१
दीनां (णं) शेषं व्यडकः; समु. १४६.

तेपामेव तुल्यापकृष्टवधे यथाबलमनुरूपात्
दण्डान् प्रकल्पयेत् ।

क्षत्रियवधे गोसहस्रमृषभैकाधिकं राज्ञ उत्सृजेद्वैर-
निर्यातनार्थम् ।

शतं वैश्ये दश शूद्र ऋषभश्चात्राधिकः ।

शूद्रवधेन स्त्रीवधो गोवधश्च व्याख्यातोऽन्यत्रा-
ऽऽत्रेय्या वधात् ।

धेन्वनडुहोश्च वधे धेन्वनडुहोरन्ते चान्द्रायणं चरेत् ।

आत्रेय्या वधः क्षत्रियवधेन व्याख्यातः ।

हंसभासबर्हिणचक्रवाकप्रचलाककाकोलूककण्टकडि-
डिकमण्डूकडेरिकाश्वबभ्रुनकुलादीनां वधे शूद्रवत् ।

(१) बौध. १।१०।२१; अप. २।२७७ पङ्क (वङ्क)
(यथा ... ल्ययेत्०); व्यक. १२२ पङ्क (वङ्क) पान् (पं) षडान् (ण्ड);
स्मृच. ३१२ मेव + (तु) पान् (पं) षडान् (ण्ड) : ३२५ मेव +
(तु) तुल्याप (वला) पान् (पं) षडान् (ण्ड); विर. ३७२ पङ्क (वङ्क)
पान् (पं च) षडान् (ण्ड) (प्र०); पमा. ४५४ पान् (पं) षडान् (ण्ड);
रत्न. १२६ प्रकल्प (च कल्प) शेषं व्यकवत्; विचि. १६४ पान्
दण्डान् (पं च दण्डं); दवि. ७० प्रक (क) शेषं विचिवत्;
व्यग्र. ३९४ पान् दण्डान् प्र (पं दण्डं च); व्यड. १३३
व्यप्रवत्; विता. ७५१ मेव + (च) यथा ... प्र (अनुरूपं दण्डं);
समु. १४६ पमावत्.

(२) बौध. १।१०।२२-४; अप. २।२७७ क्षत्रिय ... काधिकं.
(गोसहस्रमृषभैकाधिकं) शतं (शतशतं) द्र ऋ (द्रे वृ); व्यक. १२२
ऋषभैका (वृषा) द्र ऋ (द्रे वृ); स्मृच. ३२५ भैका (भा);
विर. ३७२ भैका (भा) द्र ऋ (द्रे वृ) श्वात्रा (श्वा); विचि. १६४-५
ऋषभैका (वृषभा) द्वैर (द्वैरि) द्र ऋ (द्रे वृ) श्वात्रा (श्वा);
दवि. ७० (ऋषभैकाधिकं०) द्र ऋ (द्रे वृ); समु. १४६ स्मृचवत्.

(३) बौध. १।१०।२५-८; अप. २।२७७ ख्यातोऽ
ख्यातौ । अ) (वधात् ... श्व वधे०) डुहोरन्ते (डुहोश्चान्ते) प्रचलाक
(वलाका) कण्टक ... काश्च (नकुलमण्डूकहिण्डिकाभेरीकश्च); व्यक.
१२२-३; स्मृच. ३२५ (अन्यत्रा ... शूद्रवत्०); विर. ३७२
स्त्रीवधो गो (गोवधः स्त्री) (वधात् ... श्व वधे०) प्रचलाक (वलाका)
कण्टक ... वधे (मूषिकभेकतैलीकवभ्रुनकुलादीनां वधः); विचि.
१६५ (वधात् ... श्व वधे०) रन्ते (श्चान्ते) ख्यातः + (अतो)
बर्हिण(बर्हि) प्रचलाक (वलाका) कण्टक ... काश्च (मण्डूकनकुल-
भेरीक) वधे (वधः); व्यनि. ५१९ (शूद्र ... व्याख्यातः०)
प्रचला (वला) कण्टक ... दीनां (मण्डूकश्चनकुलडैरिकवभ्रुकुला-
दीनां); दवि. ७०-७१ (वधात् ... श्व वधे०) प्रचलाक (वलाका)

(१) यत्तु बृहस्पतिनोक्तम्—‘प्रकाशवधकाराश्च तथा चोपांशुघातकाः । ज्ञात्वा सम्यक् धनं हृत्वा हन्तव्या विविधैर्वधैः ॥’ इति, तत् ब्रह्मक्षत्रियादिविषयम् । यदाह बौधायनः—‘क्षत्रियादीनामित्यादि । स्मृच. ३१२

(२) क्षत्रियादीनामिति । सर्वत्र निकृष्टजातीयानोत्कृष्टजातीयवधे वधः सर्वस्वहरणं च दण्डो द्रष्टव्यः । तेषामेवेति । तुल्यापकृष्टता चात्र जातितोऽभिजनधनवर्तनादिभिः । यथावत् यथास्वशक्ति । तथा स्मृत्यन्तरम्—‘देशकालवयश्शक्तिवत् संचिन्त्य कर्मणि । तथाऽपराधं वाऽवेष्य दण्डं दण्डयेषु पातयेत् ॥’ इति । क्षत्रियवध इति । दण्डः प्रायश्चित्तं चैतत् । यथा ‘श्रमिः खाटयेद्राजा निहीनवर्णगमने स्त्रियं प्रकाशम्’ इति । राज्ञे पालयित्रे त्यजेत् । एवं च वैरनिर्यातनमपि कृतं भवति । वैरस्य पापस्य निर्यातनमप्यातनं नाश इत्यनर्थान्तरम् । यद्वा—स्वजातीयनिमित्तकोपप्रशमनम् । यथा—‘द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा । स तस्योत्पादयेत्तुष्टिम् ॥’ इति । शतामिति । सर्वत्र प्रायश्चित्तार्थं इति शेषः । एषोऽपि राज्ञे त्यागः । शूद्रवधेनेति । ऋषभैकादशगोलूकजनमत्रातिदिश्यते । इह चान्द्रायणस्याऽभ्युपचयो द्रष्टव्यः । आह च मनुः—‘स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ।’ इति प्रस्तुत्य, ‘उभयातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान् पिबेत् ।’ इति । ‘एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः । अवकीर्णिवर्जं शुद्धयर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥’ इति । अन्यत्रेति । तस्या वधे वक्ष्यति—‘आत्रेय्या वधः क्षत्रियवधेन व्याख्यातः’ इति । अनात्रेयीस्त्रीवधे ऋषभैकादशदानमित्यर्थः ।

धेन्वनडुहोश्चेति । वध इति शेष । धेनुः पयस्विनी, अनड्वान् अनोवहनक्षमः पुङ्गवः । अयमपि ऋषभैकादशगोदानातिदेशः । वधे इति । ऋषभैकादशगोदानस्थान्ते तु नात्र दानतपसोः समुच्चयः । अत एवैतत् ज्ञापितं भवति—‘धेन्वनडुहावच विशिष्टपुरुषसंवाग्निधनावग्निहोत्रादिविशिष्टोपयोगार्थौ । दुर्भिक्षादिषु च बहुदोग्धृत्वेन बहुवोदृत्वेन कण्टक ... काश्च (मण्डूकनकुलाहिखञ्जरीट) वधे (वधः); समु. १४६ स्मृचवत् : १६३ (शूद्रवधेन ... व्याख्यातः) प्रचलाक (बलाका) कण्टक ... शूद्रवत् (मण्डूकनकुलभैरिकवभ्रुकोकिलादीनां वधे क्षुद्रपशुवत्) ।

व्य.कां २०२

प्रजासंरक्षणार्थौ वेति । अन्यथा शूद्रहत्यातः तस्य प्रायश्चित्तं गुरुतरं न स्यादिति । आत्रेय्या इति । ‘रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीमाहुरत्र ह्येप्यदमत्यं भवति’ इति । गोवधे इत्यन्ये । क्षत्रियवधदण्डप्रायश्चित्तयोरुभयोरयमतिदेशः । हंसेति । शूद्रं हत्वा यत्प्रायश्चित्तं तत्प्रायश्चित्तमेतेषां वधे भवति । सर्वत्र चातिदेशे मानाधीनता । इह मण्डूकग्रहणं मार्जारदीनामपि प्रदर्शनार्थम् । आह च मनुः—‘मार्जारनकुलै हत्वा चापं मण्डूकमेव च । श्रगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥’ इति । प्रचलाको डम्बः । डिडुकिः चुचुन्दरी । आदिग्रहणात् ऋषभैकादशेऽपि ग्रहणम् । ‘ऋषभैकादशैः शूद्रहत्यावत् प्रायश्चित्तम्’ इति स्मृत्यन्तरात् । एवं तावत् ‘शास्ता राजा दुरात्मनाम्’ इति मत्वा प्रायश्चित्तान्यपि राज्ञा कारयितव्यानीत्यर्थः । तानि दिङ्मात्रेण दाशतानि । बौवि. (पृ. ९२-४)

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा वर्णानां वाऽपि संकरे । गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यतिक्रमे ॥

अथेदानीं विप्रविशोश्च शस्त्रग्रहणे कारणमाह—गवार्थे इति । अर्थशब्दश्चात्र रक्षणप्रयोजनवचनः । वर्णानां संकरः, अनर्हस्त्रीपुंसलक्षणः । शस्त्रग्रहणे हेतुः—धर्मव्यपेक्षयेति । धर्मबुद्धयेति यावत् ।

बौवि. (पृ. १४०-४१)

भार्यार्थमपि ब्राह्मण आयुधं नाददीत ।

षट्स्वनभिचरन् पतति ।

भूतमत्तोन्मत्तप्रमत्तविसन्नाहस्त्रीबालवृद्धब्राह्मणैर्न युध्येत । अन्यत्राऽऽततायिनः ।

भीतः त्रस्तः । मत्तः सुरादिपानी । उन्मत्तो विरुद्धचेष्टः । प्रमत्तो विगतचेताः । विसन्नाहो विगलित-

(१) बौध. २।२।८० ब्राह्मणार्थे गवार्थे (गवार्थे ब्राह्मणार्थे) तिक्रमे (पेक्षया); स्मृच. ३१३; रत्न. १२७ विशौ (वैश्यौ); व्यग्र. ३९५-६ थें वा (मथें) वाऽपि (चापि) संक (सङ्क); व्यउ. १३३ थें वा (थें च) नां वाऽ (नाम); विता. ७५५-६; समु. १४७.

(२) स्मृच. ३१३; व्यग्र. ३९६ भार्या (हास्या) ब्राह्मण (ब्रह्म); समु. १४७.

(३) स्मृच. ३१५; समु. १४७.

(४) बौध. १।१०।११-१२.

कवचादिबन्धः विगतव्यापारो वा । शेषाः प्रसिद्धाः ।
तेन युध्येत तान् न हिंस्यादित्यर्थः । तथा च
गौतमः— 'न दोषो हिंसायामाहवे । अन्यत्र व्यश्रसार-
ध्यायुधकृताञ्जलिप्रकीर्णकेशभ्राड्मुखोपविष्टस्थलवृक्षारूढ-
दूतगोब्राह्मणवादिभ्यः' इति (गौध. १.०।१६-७) ।
व्यश्रसारथीत्यत्र व्यश्रो विसारथिगिति योजना ।
व्यश्रादिशब्दो दूतादिभिः प्रत्येकं संबन्धनीयः । अदूतो-
ऽपि दूतोऽहमिति यो वदति गोरहं ब्राह्मणोऽहमिति ।
पूर्वोक्तान् विशिनष्टि— अन्यत्राऽऽततायिन इति ।
आततायी साहसकारी । बौवि. (पृ. ९०-९१)

अथाऽप्युदाहरन्ति—

अध्यापकं कुले जातं यो हन्यादाततायिनम् ।
न तेन भ्रूणहा भवति मन्युस्तं मन्युमृच्छतीति ॥

तद्विंसायां दोषाभावं परकीयमतेनो मन्यस्यति—
अथेति । भ्रूणहा यज्ञसाधनवधकारी । भ्रूणो यज्ञः,
विभर्ति सर्वमिति । एवं ब्रुवतैतदभिप्रेतम्— आततायि-
विषयेऽपि ब्राह्मणवधे दोषोऽस्तीति । इतरथा 'न तेन
भ्रूणहा भवति' इति नाऽवक्ष्यत् । बौवि. (पृ. ९१)

वसिष्ठः

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा । आततायिनः ।

आततायिनं हत्वा नात्र प्राणच्छेत्तुः किञ्चित्किल्बि-
षमाहुः । षड्विधा ह्याततायिनः । अथाऽप्यु-
दाहरन्ति—

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः ॥
आततायिनमायान्तमपि वेदान्तपारगम् ।
जिघांसन्तं जिघांसीयात्र तेन ब्रह्महा भवेत् ॥

(१) बौध. १।१०।१३-४.

(२) वस्मृ. ३।१६-८ (ख) प्राणच्छेत्तुः (त्राणमिच्छोः)
ह्या (स्वा).

(३) वस्मृ. ३।१९; गोरा. ८।३५० रहरश्चैव (रापहारी च);
स्मृच. ३।१५; रत्न. १२८; द्वा. २३४ गोरक्त, मनुवसिष्ठौ;
विता. ४९१ (=) क्षेत्रदारहरश्चैव (स्त्रीहारी धनहारी च) उक्तः ।
७६१; समु. १४७.

(४) वस्मृ. ३।२०; स्मृच. ३।१४ पारगम् (गं रणे)

स्वाध्यायिनं कुले जातं यो हन्यादाततायिनम् ।
न तेन भ्रूणहा स स्यान्मन्युस्तं मृत्युमृच्छति ॥

यत्तु बौधायनेनोक्तम्— 'षट्स्वनभिचरन् पतति' इति ।
पट्सु आततायिध्विति शेषः । के पुनस्त इत्यपेक्षिते
वसिष्ठः—अग्निद इति । उदाहरणभूतानां अत्यन्तप्रसिद्धानां
षड्विधत्वादुभयत्र षड्ग्रहणं, न पुनः परिसंख्यार्थं, विधा-
न्तरेणाततायिनां लोके विद्यमानत्वात् । × स्मृच. ३।१५
आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददी-
याताम् ।

क्षेत्रियस्य तु तन्नित्यमेव रक्षणाधिकारात् ।

विष्णुः

साहसप्रकाराः

परदारभिमर्शं स्तेयमुभयं पारुष्यं परहिंसा च ।

अत्र कात्यायनः 'सहसा यत्कृतं कर्म तत्साहसमुदाहृतम्'
इति । एतदेवाह नारदः—'सहसा क्रियते कर्म यत्किञ्चि-
द्वलदर्पितैः । तत्साहसमिति प्रोक्तं सहो बलमिहोच्यते ॥'
इति । साधारणपरधनयोर्हरणं बलावष्टम्भेन क्रियमाणं
साहसमित्यर्थः । अत एवाह याज्ञवल्क्यः 'सामान्यद्रव्यप्र-
समहरणात्साहसं स्मृतम्' इति । एतच्चतुर्विधमित्याह विष्णुः
'परदारभिमर्शं स्तेयमुभयं पारुष्यं परहिंसा च' इति ।
बृहस्पतिस्तु—'मनुष्यहरणं चौर्यं परदारभिमर्शनम् । पारुष्य-
मुभयं चेति साहसं तु चतुर्विधम् ॥' इति वचनद्वये क्रमस्य
प्रयोजनाभावादविवक्षितत्वमिति मन्तव्यम् । यत्तु शङ्ख-
लिखितोक्तम्—'चौर्यपारुष्यहिंसाः साहसपदवाच्याः' इति,
तत्र स्त्रीसंग्रहणस्य चौर्यान्तिरेकात् स्त्रीसंग्रहणस्तेये चौर्य-
पदेन संगृहीते इति मन्तव्यम् । सवि. ४।५१-५२

× अधिकं स्मृच. व्याख्यानं 'गुरुं वा बालवृद्धौ वा' इति
मनुवचने द्रष्टव्यम् । अन्ये आततायिनः कात्यायने द्रष्टव्याः ।

ब्रह्म (भ्रूण); रत्न. १२७ पारगम् (गं रणे) ब्रह्म (भ्रूण); विता. ७५८ पारगम् (गं रणे); समु. १४७ स्मृचवत्.

(१) वस्मृ. ३।२१ (ख) स्तं मृत्यु (स्तन्मन्यु).

(२) वस्मृ. ३।२६; स्मृच. ३।१३ विष्णुः; रत्न. १२७
संकरे (संसर्गे) विष्णुः; समु. १४७ विष्णुः.

(३) वस्मृ. ३।२७. (४) सवि. ४।५२.

महापातकसाहसदण्डविधिः

अथ महापातकिनो ब्राह्मणवर्जं सर्वे वध्याः । न शरीरो ब्राह्मणस्य दण्डः । स्वदेशाद् ब्राह्मणं कृताङ्कं विवासयेत् । तस्य च ब्रह्महत्यायामशिरस्कं पुरुषं ललाटे कुर्यात् । सुराध्वजं सुरापाने । श्वपदं स्तेये । भगं गुरुतल्लगमने । अन्यत्रापि वध्यकर्मणि तिष्ठन्तं समग्रधनमक्षतं विवासयेत् ।

कूटशासन-विधाग्निदान-प्रसह्यतास्कर्य-स्त्रीबालपुरुषघात-धान्यापहार-कन्यानृत-साहसदण्डविधिः

कूटशासनकर्तृश्च राजा हन्यात् । कूटलेख्यकारांश्च । गैरदाग्निदप्रसह्यतस्करान् स्त्रीबालपुरुषघातिनश्च । ये च धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्योऽधिकमपहरेयुः । धरिममेयानां शताद्भ्यधिकम् ।

ये चाकुलीना राज्यमभिकामयेयुः ।

सेतुभेदकांश्च ।

प्रसह्यतस्कराणां चावकाशभक्तप्रदांश्च । अन्यत्र राजाशक्तेः ।

स्त्रियमशक्तभर्तृकां तदतिक्रमणीं च * ।

सैत्विति । शङ्खलिखितवाक्यस्थसेतुभङ्गापेक्षयातिशयितसेतुभङ्गोऽत्र विवक्षित इति दण्डविकल्पोपपत्तिः ।

विर. ३६५

* स्थलादिनिर्देशः स्त्रीसंग्रहणप्रकरणे द्रष्टव्यः ।

(१) विस्मृ. ५।१-८.

(२) विस्मृ. ५।९-१०; अप. २।२९४ राजा हन्यात् (राजन्यात्) का (क); व्यक्र. १२२ का (क).

(३) विस्मृ. ५।११; व्यक्र. १२२; स्मृच. ३२४ (ग्र...रान्०); मसु. १।५७ स्मृचवत्.

(४) विस्मृ. ५।१२-३.

(५) विस्मृ. ५।१४; व्यक्र. १२२ चा (वा); विर. ३६९; विधि. १६२; दधि. २६५; सेतु. ३०७.

(६) विस्मृ. ५।१५; व्यक्र. १२१ कांश्च (कृतश्च); विर. ३६५ व्यकवत्; विधि. १५८ कांश्च (कृतः); दधि. ३१२ व्यकवत्; सेतु. २५७ व्यकवत्.

(७) विस्मृ. ५।१६-७; व्यक्र. ११७ चाव (अव); विर. ३४० व्यकवत्; विधि. १४६ व्यकवत्; दधि. ८२ चाव (अव) प्रदां (दां) राजा (राज); वीमि. २।२७९ (प्रत.....दांश्च०); सेतु. २४९ व्यकवत्.

अकुलीना राज्ञो यत्कुलं तदप्रसूताः । विर. ३६९
दोषमनाख्याय कन्यां प्रयच्छेत् । तां च
बिभृयात् । अदुष्टां दुष्टामिति ब्रुवन्नुत्तमसाहसम् ।

पशुपक्षिकीदृग्वनस्पतिघात-विमांसविक्रयसाहसेषु दण्डविधिः

* गजाश्रोष्ट्रगोघाती त्वेककरपादः कार्यः । विमांसविक्रयी च । ग्रान्यपशुघातो कार्षापणशतं दण्ड्यः । पशुस्वामिने तन्मूल्यं दद्यात् । आरण्य-पशुघाती पञ्चाशतं कार्षापणान् । पक्षिघाती मत्स्यघाती च दश कार्षापणान् । कीटोपघाती च कार्षापणम् । फलोपगमद्रुमच्छेदी तूत्तमसाहसम् । पुष्पोपगमद्रुमच्छेदी मध्यमम् । बर्ही-गुल्मलताच्छेदी कार्षापणशतम् । तृणच्छेद्येकम् । सर्वे च तत्स्वामिनां तदुत्पत्तिम् ।

अधिकृतानामपथदान-आसनाप्रदान-अपूजासु भोजन-

निमन्त्रणसंबन्धतिक्रमेषु च दण्डविधिः

येषां देयः पन्थास्तेषामपथदायी कार्षापणा-नां पञ्चविंशतिं दण्ड्यः । आसनाहस्यासनमद-दच्च । पूजाहमपूजयंश्च । प्रातिवेद्यब्राह्मण-निमन्त्रणातिक्रामी च । निमन्त्रयित्वा भोजना-दायी च । निमन्त्रितस्तथेत्युक्त्वा चाभुञ्जानः सुवर्णमाषकं, निमन्त्रयितुश्च द्विगुणमन्नम् ।

येषामिति, येषां पन्था देयो भवति, तेषामपथदायी पथदायी न भवतीत्यर्थः । निकेतयितुर्निमन्त्रयितुः । प्राति-

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दण्डपारुष्यप्रकरणे द्रष्टव्यः ।

(१) विस्मृ. ५।४५-७.

(२) विस्मृ. ५।९१-७ (क) णानां (ण) णनि (णे नि) क्रामी (क्रमे) दायी च (दायिनश्च) : (ख) णनि (णे नि) क्रामी (क्रमे) दायी च (दायिनश्च) ल्युक्त्वा चा (ल्युक्तवान्); अप. २।२६३ षामपथ (षां सू [त्व] पथ) णानां (ण) ददच्च (दत्त्वा) (णनिमन्त्र०) ल्युक्त्वा चा (ल्युक्तवान्) निमन्त्र (निकेत); व्यक्र. १२० मपथदा (मदा) णानां (ण) ति द (तिर्द) क्रामी (क्रमी) दायी च (दायी) ल्युक्त्वा चा (ल्युक्तवान्) निमन्त्र (निकेत); मसु. ८।३९२ (प्राति-वेद्यब्राह्मणातिक्रमकारी च) यज्ञावदेव; विर. ३५८ पञ्च (च) चासु (असु) निमन्त्र (निकेत) (अन्नम्०); दधि. ३०४ णानां (ण) विंशतिं (विंशतिपणान्) दच्च (दत्त) णनि (णे नि) क्रामी (क्रमे) निमन्त्र (निकेत); सेतु. ३०४ (पञ्च०) चासु (असु) निमन्त्र (निकेत).

वेश्यब्राह्मणनिमन्त्रणातिक्रामी असत्यपि दोषे प्राप्ते निमन्त्रणावसरे निरन्तरगृहवासिब्राह्मणनिमन्त्रणास्वीकारी ।
विर. ३५८

चतुर्वर्णानां अमक्ष्यापेयादिना दूषणे उद्यानभृन्त्यादिदूषणे
च दण्डविधिः

अभक्ष्येण ब्राह्मणदूषयिता षोडश सुवर्णान् ।
जात्यपहारिणा शतम् । सुरया वध्यः । क्षत्रियं
दूषयितुस्तदर्धम् । वैश्यं दूषयितुस्तदर्धमपि ।
शूद्रं दूषयितुः प्रथमसाहसम् ।

अस्पृश्यः कामचारेण स्पृशन् स्पृश्यान्
वध्यः । रजस्वलां शिफाभिस्ताडयेत् ।

पथ्युद्यानोदकसमीपेऽप्यशुचिकारी पणशतम् ।
तच्चपास्यात् × ।

कामचारेण स्वेच्छया । रजस्वलां स्पृशन्तीमिति
शेषः । शिफाभिर्वृक्षनेत्रैः । विर. ३५५

अमक्ष्यं विष्मूत्रादि । जात्यपहारि सुराव्यतिरिक्तं
लशुनादि, सुरायाः पृथगुक्तत्वात् । शूद्रस्यामक्ष्यं कपिला-
दुग्धादि, निषिद्धं पञ्चनखमांसादि, तदर्धं तदर्धं इत्यत्रा-
व्यवहितस्तत्पदार्थः । विर. ३६१

× व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च सीमाविवादप्रकरणे (पृ. ९२५)
द्रष्टव्यः ।

(१) विस्मृ. ५।९८-१०३; अप. २।२९५ णदू (णस्य दू);
व्यक्र. १२१; विर. ३६०-६१ णदूषयिता (णस्य दूषयित्वा)
र्धमपि (र्धम्); दीक. ५६ (अभक्ष्येण ब्राह्मणस्य दूषयिता षोडश
सुवर्णान् दण्डयः) एतावदेव; विचि. १५५ णदूषयिता (णं दूष-
यित्वा) तुस्त (त्वा त) धमपि (र्धम्) (शूद्रं...साहसम्०);
द्वि. ३०८ णदू (णस्य दू) यं दू (यद्) धमपि (र्धम्) द्रं दू (द्रदू);
सेतु. २९६ णदूषयिता (णं दूषयित्वा) सुरया+ (ब्राह्मणं दूषयित्वा)
धमपि (र्धम्).

(२) विस्मृ. ५।१०४ (क) स्पृशन् स्पृश्यान् (स्पृश्यं
स्पृशन्): (ख) अस्पृश्यः..... वध्यः (कामचारेणास्पृश्यत्वैवणिकं
स्पृश्यन् वध्यः); व्यक्र. १२० चा (का); विर. ३५५ स्पृश्यान्
(अस्पृश्यान्); द्वि. ३०२ स्पृशन् स्पृश्यान् (अस्पृश्यान्
स्पृशन्).

गृहभूकुड्यादिभेदन-गृहपीडाकरद्रव्यक्षेप-साधारण्यापलाप-
प्रेषिनाप्रदान-पितृपुत्रादित्यागादिदोषेषु दण्डविधिः

गृहकुड्यादिभेत्ता मध्यमसाहसं, तच्च
योजयेत् । गृहपीडाकरं द्रव्यं प्रक्षिपन् पण-
शतम् ।

साधारण्यापलापी च । प्रेषितस्याप्रदाता च ।
पितृपुत्राचार्ययाज्यत्विजामन्योन्यापतितत्यागी च ।
न च तान् जह्यात् । शूद्रप्रव्रजितानां दैवे
पित्र्ये भोजकश्च । अयोग्यकर्मकारी च ।
समुद्रगृहभेदकश्च । अनियुक्तः शपथकारी ।
पशूनां पुंस्त्वोपघातकारी च ।

(१) तत् गृहकुड्यादिभेत्ता योजयेत् प्रतिसंस्क्रुयात् ।
पूर्वे याज्ञवल्क्येन कुड्यमात्रसंवाग्धिनि भेदमात्रे दशपणा-
त्मको दण्ड उक्तः, इह च गृहसहितकुड्यादिगते प्रौढ-
विदारणे मध्यमसाहसमित्यविरोधः ।

अत्र (गृहपीडेयत्र) पीडाकरद्रव्यस्य गृहे क्षेपं कुर्वतः
षोडशपणदण्डाभिधानं याज्ञवल्क्यस्य, विष्णोश्च तत्रैव
पणशतदण्डाभिधानम् । तदत्र पीडातिशयहेतुत्वाहेतु-
त्वाभ्यां व्यवस्था । विर. ३५४

प्रव्रजितशब्दोऽत्र बौद्धादिशब्दपरः । समुद्रगृहभेदकः
मुद्रितगृहसुद्रामोचकः । अग्रे वर्तमानमनियुक्तमिति

(१) विस्मृ. ५।१०८-१० (क) कुड्यादिभेत्ता (भूकुड्या-
द्युपभेत्ता) साहसं+ (दण्डयः) गृहपी (गृहे पी) : (ख) तच्च (तं
च) शेषं पूर्ववत्; व्यक्र. १२० कुड्यादि (भङ्गाद्युप); विर. ३५४
दिभेत्ता (द्युपभो) प्रक्षिपन् (क्षिपन् दण्डयः); विचि. १५२-३;
द्वि. २९६ ह (हे) (गृहकु ... येत्०) : २९८ दिभे (द्युपभे)
(गृहपी ... शतम्०); सेतु. २५५ चा (त्तारं) (गृहपी ...
शतम्०) : २५३ प्रक्षिपन् (क्षिपन् दण्डयः) (गृहकु ... येत्०).

(२) विस्मृ. ५।१११-९; व्यक्र. १२० ण्याप (णाप)
दाता च (दानाच्च) न्याप (न्यमप) जितानां (जितान्)
पित्र्ये भोजकश्च (पैत्र्ये च भोजकस्य) क्तः श (क्तश्) पशूनां+
(च) (च०); विर. ३५४-५ ण्याप (णाप) न्याप (न्यमप) जह्या
(यज्या) ज्ये (त्रे) क्तः श (क्तश्) थकारी + (च) स्त्वोप (स्त्वाभि);
द्वि. ३०१ (अनियुक्तः शपथकारी) एतावदेव : ३०३
(पितृपुत्राचार्ययाज्यत्विजामन्योन्यापतितत्यागी । न च ताम्
जह्यात्) एतावदेव. 'पशूनां पुंस्त्वोपघातकारी च' इति वचनस्य
अधिकाः पाठभेदाः दण्डपारुष्यप्रकरणे द्रष्टव्याः.

पदमत्रापि योज्यम् ।

विर. ३५५

(२) तान् पतितान् इति शेषः । त्यागो विहितस-
त्काराद्यनाचरणम् । अत्यागश्च निषिद्धसंभाषणाद्या-
चरणम् । अयं शतदण्डो विदुषोरन्योन्यत्यागे ।

दवि. ३०३-४

पितापुत्रविरोधे साक्ष्यादीनां दण्डविधिः

पितापुत्रविरोधे तु साक्षिणां दशपणो
दण्डः । यस्तयोश्चान्तरे स्यात्तस्योत्तमसाहसम् ।

(१) निर्बन्धातिशय एतत् । अम. २।२३९

(२) सान्तर्रीयः स्यादिति तयोर्मध्यगो भूत्वा विरोध-
मुत्पादयतीत्यर्थः । कामधेनौ यस्तयोरन्तरे स्यादिति
पठितम् ।

दवि. २६९

तुलामानकूटत्व-विक्रयदोष-शुल्कग्रहणदोषेषु दण्डविधिः

तुलामानकूटकर्तुश्च । तदकूटे कूटवादिनश्च ।
द्रव्याणां प्रतिरूपविक्रयिकस्य च । संभूयवणिजां
पण्यमनर्घेणावरुन्धताम् । प्रत्येकं विक्रीणतां च ।
गृहीतमूल्यं पण्यं यः क्रेतुर्नैव दद्यात्तस्यासौ
सोदङ्गो दाप्यः । राज्ञा च पणशतं दण्ड्यः * ।
क्रीतमक्रीणतो या हानिः सा क्रेतुरेव स्यात् + ।
राजविनिषिद्धं विक्रीणतस्तदपहारः ।

तारिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन् दश पणान्
दण्ड्यः । ब्रह्मचारिवानप्रस्थभिक्षुगुर्विणीतीर्थानु-
सारिणां नाविकः शौल्किकः शुल्कमाददानश्च ।
तच्च तेषां दद्यात् ÷ ।

* व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च क्रयविक्रयानुशये
(पृ. ८७८) द्रष्टव्यः ।

+ स्थलादिनिर्देशः क्रयविक्रयानुशये (पृ. ८९०) द्रष्टव्यः ।
÷ स्थलादिनिर्देशः प्रकीर्णके द्रष्टव्यः ।

(१) विस्मृ. ५।१२०-२१ (ख) रे (रः); अप. २।२३९
ता (तु) धे तु (ध) श्रान्त (रन्त) (स्यात्०) सम् (सः); व्यक.
१२०; दवि. २६९ (तु०) योश्चान्तरे (योः सान्तर्रीयः); सेतु.
२९५-६ योश्चान्तरे (योः सान्तरः).

(२) विस्मृ. ५।१२२-६ (ख) मानकूट + (कर्म); व्यक.
१११ प्रत्येकं (प्रत्येकस्य); विर. २९९ मान (नाणक) तदकूटे
(तद) क्रयिक (क्रायक) प्रत्येकं (प्रत्येकस्य).

(३) विस्मृ. ५।१३०; अप. २।२६१ विनि (नि).

ग्रन्थिभेदकानां उत्क्षेपकाणां च करच्छेदः ।

वस्त्राञ्जलवद्द्रव्यं उत्कृत्यापहरतां ग्रन्थिभेदकानाम् ।
ये वस्त्रपात्रान्मुक्त्विष्यापहरन्ति ते उत्क्षेपकाः । वै.

जातिभ्रंशकरभक्षणे दण्डविधिः

जातिभ्रंशकरस्याभक्ष्यस्य भक्षयिता विवास्यः ।

भक्षयिता भोक्ता कामादिति शेषः । 'अस्तिारः
स्वयं कार्या राज्ञा निर्विषयास्तु ते' इति मनुदर्शनात् ।

दवि. ३०९

अभक्ष्याविक्रयविक्रय-देवमूर्तिभेदनयोर्दण्डविधिः

अभक्ष्यस्याविक्रयस्य च विक्रयी । देवप्रतिमा-
भेदकश्चोत्तमसाहसं दण्डनीयः ।

(१) अत्र प्रथमादिसाहसानां विकल्पः प्रतिमा-
पकर्षोत्कर्षाभ्यां परिस्थाप्यः । विर. ३६४

(२) (अभक्ष्यस्य) इत्यपरं विष्णुवचनम् । सर्वत्रात्र
विक्रयो न दूषणपरः । अन्यथा औषधत्वेनापि तद्विक्रये
दोषः स्यात् । एवं चामीषां वाक्यानां उत्तमानुत्तम-
विषयतया वा व्यवस्था द्रष्टव्या । दवि. ३०९

कूटसाक्षि-उत्कोचजीविसभ्य-दण्डयमोचयित्-अदण्ड्य-
दण्डयितृणां दण्डविधिः

कूटसाक्षिणां सर्वस्वापहारः कार्यः । उत्कोच-
जीविनां सभ्यानां च * ।

* व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च समाप्रकरणे (पृ. २६)
साक्षिप्रकरणे च (पृ. २४५) द्रष्टव्यः ।

(१) विस्मृ. ५।१३६.

(२) विस्मृ. ५।१७३; अप. २।२३३ विवा (निर्वा):
२।२९५; व्यक. १२१; विर. ३६२; विचि. १५६
क्ष्य (क्ष); दवि. ३०९ क्ष्यस्य + (च); सेतु. २९७.

(३) विस्मृ. ५।१७४ (क) स्य च (स्य); अप. २।२२३
स्य च (स्य); व्यक. १२१; विर. ३६४ स्या (स्य चा) स्य च
(स्य) दण्डनीयः (दण्ड्यः); विचि. १५८ क्रेय (क्रय्य) दण्डनीयः
(दण्ड्यः); दवि. ३०९ दण्डनीयः (दण्ड्यः); ३१२ (अभ
... ..क्रयी०) दण्डनीयः (दण्ड्यः); सेतु. २५६ स्य च (स्य)
दण्डनीयः (दण्ड्यः); ३०६ विरवत्.

दण्ड्यमुन्मोचयन् दण्डाद् द्विगुणं दण्डमावहेत् ।
नियुक्तश्चाप्यदण्ड्यानां दण्डकारी नराधमः ॥

दण्डादवर्द्धस्य यो दण्डस्तस्मात्, नियुक्तो राज-
पुरुषः । 'आलम्बकं रक्षेदर्थिप्रत्यर्थिनामिति वचनात् ।
यश्च दण्डनाधिकृतो दण्डानर्हादण्डत्वेन यावद्गृह्णाति स
तद्विगुणं दाय्य इत्यर्थः । अत्र वध्योन्मोचने वध-
दण्डस्य द्वैगुण्यासंभवाद्भ्रमप्रतिनिपिद्धेन सुवर्णशतग्रहणा-
नन्तरं वध इति प्रतिभाति । दवि. ३३५-६

राज्याङ्गदूषणसाहसदण्डविधिः

स्वाम्यमात्यदुर्गकोषदण्डराष्ट्रभिन्नाणि प्रकृतयः ।
तद्दूषकांश्च हन्यात् ।

अमात्यशब्देन प्रधानशिष्टोऽत्र विवक्षितः । स्वराष्ट्र-
परराष्ट्रयोश्चरक्षुः स्याद् दुष्टांश्च हन्यात् । विर. ३७०
निमित्तविशेषे साहसानुशा । आततायिनः ।

आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्र-
माददीयाताम् × ।

नैखिनां शृङ्गिणां चैव दंष्ट्रिणांमाततायिनाम् ।
हस्त्यश्वानां तथाऽन्येषां वधे हन्ता न दोषभाक् ॥
गुरं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥
उद्यतासिर्विषाग्निं च शापोद्यतकरं तथा ।

× स्थलादिनिर्देशः वसिष्ठे (पृ. १६०८) द्रष्टव्यः ।

(१) विस्मृ. ५।१९५ (क) षड्यमुन्मो (षड्यं प्रमो)
ण्डाद् (ण्डयाद्) : (ख) षड्यमुन्मो (षड्यं प्रमो); अप. २।२४३
षड्यमु (षड्यु) षडाद् (ण्डयाद्); व्यक्र. १२२ षड्यमु (षड्यु);
विर. ३६८; विचि. १६१ षड्यमु (ण्डयात्); दवि. ३३५
वहे (हरे); सेतु. २५८ द्विगुणं (द्विशतं) वहे (हरे).

(२) विस्मृ. ३।३३-४; व्यक्र. १२२; स्मृच. ३२४;
विर. ३७० दुर्गं ... त्राणि (सुहृकोषराष्ट्रदुर्गबलानि राज्याङ्गानि);
विचि. १६३ दुर्गं (सुहृत्) भिन्ना (दुर्गा) कांश्च (कान्); दवि.
२१३ दुर्गं (सुहृत्) : ३१७; समु. १५७.

(३) विस्मृ. ५।१८८ (ख) शृङ्गि (दंष्ट्रि) दंष्ट्रि (शृङ्गि).

(४) विस्मृ. ५।१८९; सेतु. १००. (५) विस्मृ. ५।१९०.

(६) विस्मृ. ५।१९१; व्यनि. ५२० सिवि (सिं वि)
वा (चा) समन्तुः; दवि. २३४ सिविषा (सिं करा) चैव
(चापि) सु (नि).

आथर्वणेन हन्तारं पिशुनं चैव राजसु ॥

भार्यातिक्रमिणं चैव विद्यात्सप्तातंतायिनः ।

यशोवित्तहरानन्यानाहुर्धर्मार्थहारकान् ॥

परदारभिमर्शकः परक्षेत्रापहारी उद्यतासिः
अग्निदो गरदः परद्रव्यापहारी महाभियोगेषु
कूटसाक्षी मिथ्यामहाभियोगी चेत्याततायिनः ।

अत्र परशब्देन ब्राह्मण उच्यते । ब्राह्मणदारभिमर्शां,
ब्राह्मणक्षेत्रापहारी, ब्राह्मणधनापहारी, ब्राह्मणे महापातका-
भियोक्ता, शस्त्रपाणिः ब्राह्मणे, ब्राह्मणे महाभियोगे कूट-
साक्षी, ब्रह्मगृहेष्वग्निदः, ब्राह्मणे गरदश्चेति । अत्र गरदत्वं
औपध्यादिना निवृत्ते विषे । अन्यथा महापातकित्व-
प्रसङ्गात् । सवि. १५२-३

उद्यतासिः प्रियाधर्षी धनहर्ता गरप्रदः ।

अथर्वहन्ता तेजोन्नः षडेते आततायिनः ॥

तेजोन्नश्चात्र यो मद्यदानेन ब्राह्मं तेजो हन्ति
सोऽभिप्रेतः । दवि. २३५

शङ्खः शङ्खलिखितौ च

साहसप्रकाराः

चौर्यपारुष्यहिंसाः साहसपदवाच्याः ÷ ।

मातापितापुत्राबन्धोन्वत्यागादौ मातापितागुर्वतिक्रमे च
दण्डविधिः

न मातापित्रोरन्तरं इच्छेत्पुत्रः । कामं मातु-
रेव यत् सा हि साधारणी पोषणीया च । न

÷ सवि. व्याख्यानं 'परदारभिमर्श' इति विष्णुवचने
द्रष्टव्यम् ।

(१) विस्मृ. ५।१९२; व्यनि. ५२० पू., समन्तुः ÷;
दवि. २३४ पू.

(२) सवि. १५२. (३) दवि. २३४ बृहद्विष्णुः.

(४) सवि. ४५२.

(५) अप. २।२३७ (अत्याज्या माता तथा पिता सपिण्डा
गुणवन्तः सर्वे वाऽत्याज्याः, यस्त्यजेत्कामादपतितान् स दण्डं
प्राप्नुयात् द्विगुणं शतम्) एतावदेव; व्यक्र. १२० इच्छे-
(गच्छे); विर. ३५७; विचि. १५४ (पुत्रादीन् यस्त्यजेत्कामा-
त्स दिशतं दण्डं प्राप्नुयात्) शंखः, एतावदेव; व्यनि. ५१०;
वीभि. २।२३७ (यस्त्यजेत्कामादपतितान् स हि शतं दण्डं
प्राप्नुयात्) शंखः, एतावदेव; सेतु. ३०४ विचिवत्, शंखः.

पुत्रः प्रतिमुच्येतान्यत्र सौत्रामणीत्यागाञ्जीवन्तुणा-
न्मातुः। एवमत्याज्या माता तथा पिता सपिण्डा-
गुणवन्तः सर्व एवात्याज्याः। यस्यजेत्कामाद-
पतितान् स दण्डं प्रायुयाद् द्विशतम्।

अत्र विष्णुयाज्ञवल्क्ययोः शतदण्डो विदुषोरन्योन्य-
त्यागे, मनुस्मृत्यु पट्टशतदण्डो विदुषा कामादेकतरत्यागे,
शङ्खलिङ्गितयोर्द्विशतदण्डस्तु कामादविद्वत्तया एकतरेण
त्यागे। एवं च विदुषोरन्योन्यत्यागेऽप्यनयैव दिशा दण्ड
ऊह्यः।

विर. ३५७

न मातापितरावतिक्रामेन्न गुरुं, त्रयाणाम-
तिक्रमेऽङ्गच्छेदः।

अतिक्रमोऽत्र पदाभिघातः। अभिघातकरणस्यैवाङ्गस्य
छेदनम्।

विर. ३५८

प्रतिमारामकूपपादिभङ्गे कूटशासनतुलामानप्रतिमानकरणे
वापीकूपादिदूषणेऽदासीदासदानादौ च दण्डविधिः

प्रतिमारामकूपसंक्रमध्वजसेतुनिपानभङ्गोपु तत्स-
मुत्थापनं प्रतिसंस्कारोऽष्टशतं च।

(१) दण्ड इति शेषः। निपानं गवादिजलपानार्थं कूप-
समीपकृतजलाधारः, प्रतिसंस्कारः पुनः सजीकरणम्।
उत्कृष्टप्रतिमादिभङ्गेष्वयं दण्डः। अनुत्कृष्टप्रतिमादि-
भङ्गे तु मानव इत्यविरोधः।

विर. ३६४

(२) सर्वभङ्गे समुत्थापनं तज्जातीयस्य करणम्। एक-
देशभङ्गे तस्यैव संस्कारः। हन्यादित्यनुवृत्तौ विष्णुः 'सेतु-
भेदकृतश्च'। याज्ञवल्क्यः 'सेतुभेदकरं चाशु शिलां वद्ध्वा
प्रवेशयेत्'। अत्र प्रतिमाभङ्गे तदुत्कर्षार्थकर्षतारतम्यात्
तद्भङ्गकस्य धनिकाधनिकत्वाभ्यां चोत्तमादिसाहसदण्डः
पणशतात्मकदण्डश्च व्यवस्थान्यः। सेतुभङ्गे तु यद्य-
सावाधिकं तद्भङ्गं कुर्यात् यथोक्तो वधः। अन्यत्र
शङ्खोक्तो दण्ड इति व्यवस्था।

दवि. ३१२

(१) अप. २।२३७ णामतिक्रमेऽङ्ग (णां व्यतिक्रमादङ्ग);
विर. ३५८; विचि. १५५ न...च्छेदः (मातापित्रोर्गुरोश्चा-
तिक्रमेऽङ्गच्छेदः) शंखः; दवि. २५५ विष्णुः; सेतु. २५८
विचिवत्, शंखः.

(२) व्यक. १२१; विर. ३६४; विचि. १५८ प्रतिमाराम
(आरामप्रतिमा) पनं (न) शंखः; दवि. ३१२ च+ (दण्डः);
सेतु. २५६ प्रतिमाराम (आरामप्रपा) पनं (न) शंखः; समु. १५८.

वापीतडागोदपानभेदमार्गसद्रव्यदूषणेऽदासी-
दाससंप्रदानकरणे।

तीक्ष्णशलाकादिना मार्गदूषणे विपादिना रसद्रव्यदूषणे
अदास्याश्च दासाय दाने शारीरो वधात्मको दण्डः, स्वल्पे
तास्मिन् अङ्गच्छेदमात्रं वा।

विर. ३६५-६

कूटशासनप्रयोगे राजशासनप्रतिषेधे कूटतुला-
मानप्रतिमानव्यवहारे शारीरोऽङ्गच्छेदो वा।

(१) कूटशासनप्रयोगे कूटराजाज्ञादेरनुष्ठाने, राज-
शासनप्रतिषेधे राजाज्ञालङ्घने, मानं प्रस्थादि, शारीरो
मरणरूपः, अङ्गं येन तत्कुरुते, विकल्पस्त्वपराधोत्कर्षा-
पकर्षाभ्यां व्यवस्थितः।

विर. ३६९-७०

(२) यत्तु प्रकाशतस्करप्रकरणे शारीरो मुण्डनादिरूप
इति तत्रैव व्याख्यात तत्कूटतुलादिव्यवहारमात्रविषयम्।

+ दवि. २६४

पितापुत्रविरोधसाक्ष्यादिदण्डविधिः

पितापुत्रयोर्विरोधे साक्षी न तिष्ठेत्। यस्ति-
ष्ठेत् स दण्ड्यस्तीन् कार्षापणान्। यश्चान्तरे
तिष्ठेत् सोऽप्यष्टशतं दाप्यः।

मध्यमापराधविषयमेतत्।

अप. २।२३९

× कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

साहसम्

साहसम्। साहसमन्वयवत्प्रसभकर्म। निर-
न्वये स्तेयमपन्वयने च।

+ शेषं विरवत्।

× स्युतिषु साहसे संगृहीताः अन्येऽपि अपराधाः सन्ति, ते
अर्थशास्त्रकारेण प्रकीर्णके निविष्टास्तत्र द्रष्टव्याः।

(१) व्यक. १२१; विर. ३६५; विचि. १५८ वापी+
(कूप) रणे + (च) शंखः; दवि. २९६ (मार्गसद्रव्यदूषणे)
एतावदेवः ३१७ (अदासीदाससंप्रदानकरणे) एतावदेवः सेतु.
३०६ विचिवत्, शंखः.

(२) अप. २।२९४; व्यक. १२२; विर. ३६९; विचि.
१६२ (प्रतिमान०) रे+ (च) शंखः; व्यनि. ५०२ शारीरो
(शारीरे) दो (दे) : ५०४ (कूटशासनप्रयोगराजशासनप्रतिषेध-
कूटतुलामानप्रतिमाने व्यवहारेण) : ५१८ षेधे (क्षेपे) शारी
..... वा (शरीराङ्गच्छेदौ); दवि. २६४ राज षेधे
(राजाज्ञाप्रतिघाते); सेतु. ३०७ विचिवत्.

(३) अप. २।२३९. (४) कौ. ३।१७.

साहसमिति सूत्रम् । ब्रह्मात् क्रियमाणं परस्वहरणादि साहसम् । यदाह नारदः— 'सहसा क्रियते कर्म यत् किञ्चिद् ब्रह्मार्थैः । तत् साहसमिति प्रोक्तं सहो बलमिहोच्यते ॥' तदुच्यते इति सूत्रार्थः । तद् गताध्याये प्रस्तुतम् । तस्य स्वरूपं दण्डश्चात्राभिधीयते । साहसमिति । अन्वयवत्प्रसभकर्म, अन्वयः अनेकसाधारण्यं तद्वतोऽनेकसाधारणस्य द्रव्यस्य प्रसभकर्म एकेनानेकान्तर्गतेन ब्रह्मटपहरणं, साहसम् । निरन्वये असाधारणद्रव्ये परकीयद्रव्य इति यावत् । स्तेयं स्तेयव्यपदेश्यं अर्थात् प्रसभहरणं प्रच्छन्नहरणं वा । अपव्ययने च परकीयं गृहीत्वा न गृहीतमित्यपलापे च विषये, स्तेयं भवति ।

श्रीम्.

रत्नसारफल्गुकुप्यानां साहसे मूल्यसमो दण्ड इति मानवाः । मूल्यद्विगुण इत्यौशनसाः । यथापराध इति कौटल्यः । पुष्पफलशाकमूलकन्डपक्वान्नचर्मवेणुमृद्भाण्डादीनां क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादशपणावरश्चतुर्विंशतिपणपरो दण्डः ।

कालायसकाष्ठरज्जुद्रव्यक्षुद्रपशुपटादीनां स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशतिपणावरोऽष्टचत्वारिंशत्पणपरो दण्डः । ताम्रवृत्तकंसकाचदन्तभाण्डादीनां स्थूलकद्रव्याणां अष्टचत्वारिंशत्पणावरः षण्णवृत्तिपरः पूर्वः साहसदण्डः । महापशुमनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णसूक्ष्मवस्त्रादीनां स्थूलकद्रव्याणां द्विशतावरः पञ्चशतपरः मध्यमः साहसदण्डः ।

स्त्रियं पुरुषं वाऽभिषह्य वध्नतो वन्धयतो वन्धं वा मोक्षयतः पञ्चशतावरः सहस्रपर उत्तमः साहसदण्ड इत्याचार्याः ।

रत्नसारफल्गुकुप्यानामित्यादि । मूल्यसमः रत्नादित्तन्मूल्यतुल्यः । यथापराधः अपराधानुरूपः । शेषं सुगमम् । पुष्पफलेत्यादि । पुष्पादिपट्कं प्रतीतं चर्मभाण्डं वेणुभाण्डं मृद्भाण्डं चेति त्रिकं एतदादीनां क्षुद्रकद्रव्याणां, साहसे, द्वादशपणावरश्चतुर्विंशतिपणपरो दण्डः, द्वादशपणोऽधमदण्डः चतुर्विंशतिपण उत्तमदण्डः ।

स्थूलकद्रव्याणां दण्डमाह—कालायसेत्यादि । ताम्रवृत्तैत्यादि । ताम्रभाण्डवृत्तभाण्डकंसभाण्डकाचभाण्डगज-

(१) कौ. ३:१७.

दन्तभाण्डादीनां स्थूलकद्रव्याणां, साहसे, अष्टचत्वारिंशत्पणावरः षण्णवृत्तिपरः, दण्ड इति वर्तते, तत्र षण्णवृत्तिपणदण्डः, पूर्वः साहसदण्डः पूर्वसाहसाख्यः । महापशुमनुष्येत्यादि । महापशुमनुष्यक्षेत्रप्रभृतीनां स्थूलकद्रव्याणां, साहसे, द्विशतावरः द्विशतपणाधमः पञ्चशतपरः पञ्चशतपणोत्तमः दण्डः । स च पञ्चशतपणः मध्यमः साहसदण्डः ।

स्त्रियमित्यादि । तां, पुरुषं वा, अभिषह्य प्रसह्य वध्नतः, वन्धयतः, वन्धं वा मोक्षयतः, पञ्चशतावरः पञ्चशतपणाधमः सहस्रपरः सहस्रपणोत्तमः दण्डः । स च उत्तमः साहसदण्डो नाम्ना । इत्याचार्या मन्यन्त इति शेषः । श्रीम्.

यैः साहसं प्रतिपत्तेति कारयति स द्विगुणं दद्यात् । यावद्विरण्यमुपयोक्ष्यते तावद् दास्यामीति स चतुर्गुणं दण्डं दद्यात् । य एतावद्विरण्यं दास्यामीति प्रमाणमुद्दिश्य कारयति स यथोक्तं हिरण्यं दण्डं च दद्याद् इति बार्हस्पत्याः ।

स चेत् कोपं मदं मोहं वाऽपदिशेत्, यथोक्तवद्दण्डभेनं कुर्यादिति कौटल्यः ।

दण्डकर्मसु सर्वेषु रूपमष्टपणं शतम् । शतावरेषु व्याजीं च विद्यात् पञ्चपणं शतम् ॥ प्रजानां दोषबाहुल्याद् राज्ञां वा भावदोषतः । रूपव्याज्यावधर्मिष्ठे धर्म्या तु प्रकृतिः स्मृता ॥ य इति । यः, साहसं, प्रतिपत्तेति 'अहमन्युपगन्ता' इत्युक्त्वा, कारयति, स द्विगुणं साहसार्थद्विगुणं दण्डं दद्यात् । 'यावद्विरण्यमुपयोक्ष्यते साहसकरणार्थं तावद् दास्यामि' इत्युक्त्वा यः साहसं कारयति, स चतुर्गुणं साहसार्थचतुर्गुणं, दण्डं दद्यात् । य इति । 'एतावद् हिरण्यं दास्यामि' इति प्रमाणं साहसार्थदेयद्रव्येयत्तां, उद्दिश्य निर्दिश्य, कारयति, स यथोक्तं हिरण्यं, दण्डं च दद्यात् । इति बार्हस्पत्याः ।

स्वमतमाह—स इति । स कारयिता, कोपं, मदं चित्तविभ्रमं, मोहं अज्ञानं वा, अपदिशेच्चेत् कारणाया हेतुं कथयेच्चेद्, एनं कारयितारं, यथोक्तवद्दण्डं कर्तृसमानदण्डं कुर्यात् । इति कौटल्यः ।

(१) कौ. ३:१७.

दण्डकर्मस्वित्यादि । सर्वेषु दण्डकर्मसु दण्डविधिषु, रूपं तत्संज्ञं दण्डादुपरि नियतग्राह्यं द्रव्यं, विद्यात् जानी-
यात् । रूपं कियद्, अष्टपणं शते दण्डपणशतेऽष्टपणात्म-
कम् । शतावरेषु शतान्यूनेषु दण्डकर्मसु, व्याजीं तत्संज्ञं
दण्डद्रव्यादुपरि नियतग्राह्यं द्रव्यं, विद्यात् । व्याजीं किमा-
त्मिकां, पञ्चपणं शते शते पञ्चपणात्मिकाम् । शतमिति
मान्तपाठश्चिन्त्यः ।

प्रजानामिति । तासां, दोषबाहुल्याभिमुत्ताद्, राज्ञां
वा भावदोषतः तासामदुष्टत्वेऽपि राज्ञां धनलिप्तालक्षण-
चिन्तवृत्तिदोषाभिमुत्ताद् वा, कल्प्यमाने इति शेषः, रूप-
व्याज्यौ अधर्मिष्ठे धर्मिष्ठे न भवतः । अतस्तदकल्पनानु-
कूलं राजभिः प्रजाभिश्चाचरितव्यमित्यभिप्रायः । अत
एवाह—धर्म्यां तु प्रकृतिः स्मृतेति । यथाविहितो दण्ड
एव तु धर्म्यः स्मृतिषु कथितः । श्रीमू.

आशुमृतकपरीक्षा

आशुमृतकपरीक्षा । तैलाभ्यक्तमाशुमृतकं परी-
क्षेत । निष्कीर्णमूत्रपुरीषं वातपूर्णकोष्ठत्वक्कं शून-
पादपाणिमुन्मीलिताक्षं सव्यञ्जनकण्ठं पीडननि-
रुद्धोच्छ्वासहतं विद्यात् ।

तमेव संकुचितबाहुसक्थिमुद्बन्धहतं विद्यात् ।
शूनपाणिपादोदरमपगताक्षमुद्बन्धनाभिमवरोपितं वि-
द्यात् । निस्तब्धगुदाक्षं संदष्टजिह्वामाध्मातोदरमुदक-
हतं विद्यात् । शोणितानुसिक्तं भग्निन्नगात्रं काष्ठै
रश्मिभिर्वा हतं विद्यात् । संभग्निस्फुटितगात्रमव-
क्षिप्तं विद्यात् । श्यावपाणिपाददन्तनखं
शिथिलमांसरोमचर्माणं फेनोपादिग्धमुखं विषहतं
विद्यात् । तमेव सशोणितदंशं सर्पकीटहतं
विद्यात् । विक्षिप्तवस्त्रगात्रमतिवान्तविरिक्तं मदन-
योगहतं विद्यात् । अतोऽन्यतमेन कारणेन हतं
हत्वा वा दण्डभयादुद्बन्धनिकृत्तकण्ठं विद्यात् ।

आशुमृतकपरीक्षेति सूत्रम् । अन्तरेण व्रणाभिघातादि-
कमकाण्डे मृत आशुमृतकः तस्य परीक्षाऽभिधीयत इति
सूत्रार्थः । द्रव्यापहारिणः कण्टकाः प्रागुक्ताः, प्राणापहा-
रिण इदानीमुच्यन्ते । तैलेत्यादि । आशुमृतकं, तैलाभ्यक्तं

(१) कौ. ४।७.

व्य. अं. २०३

परीक्षेत तस्य कायमखिलं तैलेनाभ्यक्तं कृत्वा परीक्षेत ।
तैलाभ्यक्षने हि कृते गूढाः-प्रहारा व्यक्तीभवन्तीति तद्व्य-
क्तीभावानुरूपा परीक्षा प्रवर्तत इति । निष्कीर्णमूत्रपुरीष-
मिति । निःसृतकीर्णमूत्रपुरीषं, वातपूर्णकोष्ठत्वक्कं वात-
पूर्णमुदरं त्वक् च यस्य तं, शूनपादपाणिं प्रवृद्धपादपाणिं,
उन्मीलिताक्षं अमीलितनेत्रं, सव्यञ्जनकण्ठं सचिह्नः
पतितत्वरूपचिह्नयुक्तः कण्ठो यस्य तं, इत्थम्भूतं जनं,
पीडननिरुद्धोच्छ्वासहतं कण्ठपीडनकृतेनोच्छ्वास-
निरोधेन हतं विद्यात् ।

तमेवेति । उक्तलक्षणमेव, संकुचितबाहुसक्थिं प्रात-
संकोचभुजोरं, उद्बन्धहतं उल्लम्बनहतं, विद्यात् ।
शून्यादि । शूनपाणिपादोदरं, अपगताक्षं अन्तर्मग्नचक्षुषं,
उद्बृत्तनाभिं उद्गतनाभिं, अवरोपितं शूलरोपितं, वि-
द्यात् । निस्तब्धगुदाक्षमिति । गुदमक्षि च निर्गतं यस्य तं,
संदष्टजिह्वं, आध्मातोदरं शूनोदरं, उदकहतं विद्यात् ।
शोणितानुसिक्तमित्यादि । स्फुटार्थम् । संभग्नेत्यादि । अव-
क्षिप्तं प्रासादादिपातितम् । श्यावपाणीत्यादि । श्यावशब्दः
कपिशार्थः । विषहतं वत्सनाभादिस्थावरविषहतम् । तमे-
वेति । श्यावपाणिपाददन्तनखत्वादियुक्तमेव । विक्षिते-
त्यादि । विक्षितवस्त्रगात्रं वस्त्रं गात्रं च तत इतो विसारितं
थेन त्रम् । मदनयोगहतं मदकरसरदानहतं विद्यात् । नि-
ष्कीर्णेत्यादिनोक्तेषु कारणेषु अन्यतमदर्शनेन हतमनुमिनु-
यात्, हन्ना वा स्वदण्डभयादुल्लम्बनच्छिन्नकण्ठमनु-
मिन्यादित्याह — अत इत्यादि । श्रीमू.

विषहतस्य भोजनशेषं पयोभिः परीक्षेत ।
हृदयादुद्घृत्याग्नौ प्रक्षिप्तं चिटचिटाद्यदिन्द्रधनु-
र्वर्णं वा विषयुक्तं विद्यात् । दग्धस्य हृदय-
मदग्धं दृष्ट्वा वा ।

तस्य परिचारकजनं वाग्दण्डपारुष्यातिलब्धं
मार्गेत । दुःखोपहतमन्यप्रसक्तं वा स्त्रीजनं,
दायनिवृत्तिस्त्रीजनाभिमन्तारं वा बन्धुम् । तदेव
हतोद्बन्धस्य परीक्षेत । स्वयमुद्बन्धस्य वा विप्र-
कारमयुक्तं मार्गेत ।

सर्वेषां वा स्त्रीदायाद्यदोषः कर्मस्पर्धा प्रति-
पक्षद्वेषः पण्यसंस्था समवायो वा विवादपदा-

(१) कौ. ४।७.

नामन्यतमं वा रोषस्थानम् । रोषनिमित्तो घातः ।

विषहृतस्येत्यादि । हृदयादुद्धृत्य हृदयदेशात् खण्डम-
वदाय । चिदचिदायत् चिदचिदाशब्दं कुर्वत् ।

विषदपरिज्ञानोपायमाह—तस्येति । विषहृतस्य, परिचार-
कजनं, वाग्दण्डपारुष्यातिलब्धं वाक्पारुष्यदण्डपारुष्या-
पीडितं, मार्गेत अन्विष्येत, तथाभूतो हि परिजनः
स्वामिनो विषदायी संभाव्यत इति । दुःखोपहतमिति ।
तथाभूतं, स्त्रीजनम् । अन्यप्रसक्तं वा पुरुषान्तरसक्तं वा
स्त्रीजनं, मार्गेतेति वर्तते । दायनिवृत्तिस्त्रीजनाभिमन्तारं वा
'अमुकेन विभक्तव्यो दायस्तस्य मरणे निवृत्तो मामभिगमि-
ष्यतीत्यभिमानवन्तं तस्य स्त्रीजनो मद्रोग्यो भविष्यती-
त्यभिमानवन्तं च वा, बन्धुं मार्गेत । तदेव यथोक्त-
मेव, हतोद्बद्धस्य हत्वोद्बद्धतस्य, परीक्षेत । स्वयमुद्बद्धस्य
वेति । स्वयमुद्बद्धनमृतस्य, विप्रकारं अयुक्तं मात्रातिगं
पीडनं, मार्गेत केन कीदृशमुत्पादितमित्यन्विष्येत ।

सामान्यतः परमारणनिमित्तान्याह—सर्वेषां वेति ।
जनसामान्यस्य, रोषस्थानं कोपहेतुः, स्त्रीदायाद्यदोषः स्त्री-
निमित्तो दायदत्तनिमित्तश्च दोषः, कर्मस्पर्धा राजकुलनि-
योगापचारादिकृतः संघर्षः, प्रतिपक्षद्वेषः शत्रुवैरं, पण्य-
संस्था वाणिज्यं अपचारादिद्वारेण, समवायो वा समूहो
वा प्राधान्यभङ्गद्वारेण, विवादपदानां अन्यतमं वा
पूर्वोक्तानां विवाहसंयुक्तादीनामेकतमं वा, भवतीति
शेषः । रोषनिमित्तो, घातः वधः । श्रीमू.

स्वयमादिष्टपुरुषैर्वा चौरैरर्थनिमित्तं सादृश्या-
दन्यवैरिभिर्वा हतस्य घातमासन्नेभ्यः परीक्षेत ।
येनाहूतः सहस्थितः प्रस्थितो हतभूमिमानो तो
वा, तमनुयुञ्जीत । ये चास्य हतभूमावासन्न-
चरास्तानेकैकशः पृच्छेत्—केनायमिहानीतो हतो
वा कः सशस्त्रः संगूहमान उद्विग्नो वा युष्माभिर्दृष्ट
इति । ते यथा ब्रूयुस्तथानुयुञ्जीत ।

अनाथस्य शरीरस्थमुपभोगं परिच्छेदम् ।
वस्त्रं वेषं विभूषां वा दृष्ट्वा तद्व्यवहारिणः ॥

(१) ऊ. ६१७.

अनुयुञ्जीत संयोगं निवासं वासकारणम् ।
कर्म च व्यवहारं च ततो मार्गणमाच्छेत् ॥
रज्जुशस्त्रविषैर्वाऽपि कामक्रोधवशेन यः ।
घातयेत् स्वयमात्मानं स्त्री वा पापेन मोहिता ॥
रज्जुना राजमार्गे तां चण्डालेनापकर्षयेत् ।
न श्मशानविधिस्तेषां न संबन्धिक्रियास्तथा ॥
बन्धुस्तेषां तु यः कुर्यात् प्रेतकार्यक्रियाविधिम् ।
तद्गतं स चरेत् पश्चात् स्वजनाद् वा
प्रमुच्यते ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन् ।
याजनाध्यापनाद् यौनात् तैश्चान्योऽपि

समाचरन् ॥

स्वयमिति । आत्मना हतस्य, आदिष्टपुरुषैः स्व-
नियुक्तपुरुषैर्वा हतस्य, चौरैः अर्थनिमित्तं धनार्थं हतस्य,
सादृश्यादन्यवैरिभिर्वा हतस्य हतादन्यस्मिन् वैरवन्दिः
'स एवायमिति सादृश्याद् मिथ्याबुद्धिं कृत्वा हतस्य,
घातं, आसन्नेभ्यः हतप्रत्यासन्नजनेभ्यः, परीक्षेत अन्वि-
ष्य जानीयात् । येनाहूत इत्यादि । संगूहमानः छन्नचरः ।
उद्विग्नः भीतः । शेषं सुबोधम् ।

अनाथस्येत्यादिश्लोकद्वयमेकान्वयम् । अनाथस्य
मृतस्य, शरीरस्थं, उपभोगं माल्यादि, परिच्छेदं छत्रोपा-
नहादि, वस्त्रं, वेषं जटिलमुण्डितत्वादि, विभूषां वा,
दृष्ट्वा, तद्व्यवहारिणः माल्याद्युपभोगव्यवहर्तृन्
मालाकारादीन्, अनुयुञ्जीत पृच्छेत्, किं किं, संयोगं
सख्यं, निवासं, वासकारणं, कर्म च वृत्तिं च, व्यवहारं
च दानादानक्रियानुष्ठानं च, अर्थाद्धतस्य । ततो मार्गणं
घातकान्वेषणं, आचरेत् ।

रज्जुशस्त्रेत्यादि । श्लोकद्वयमेकान्वयम् । रज्जुना गुणेन,
पुंस्त्वमार्थं, 'रज्ज्वा वे'ति पाठ एव वा प्रमादाद् विरू-
पितः । संबन्धिक्रियाः ज्ञातिकार्याणि निवपनानि । शेषं
सुगमम् । रज्जुवस्त्रेति कापि पाठः ।

बन्धुस्तेषामित्यादि । तेषां आत्मघातिनाम् । स पश्चात्
तद्गतं चरेत् आत्मघातिप्रेतक्रियाकर्ता देहान्ते आत्म-
घातिगतिं प्राप्नुयात् । स्वजनाद् वा प्रमुच्यते स्वजनपरि-
त्यक्तश्च भवति, अर्थात् पतितत्वेन हेतुना ।

संस्त्रेणेति । पतितेन सह, याजनाध्यापनात्, यौनाद् विवाहसंवन्धाच्च, समाचरन् व्यवहरन्, संवत्सरेण वर्षेणैकेन, पतति । तैश्च पतितसंसर्गपतितैश्च, समाचरन् व्यवहरन्, अन्योऽपि, संवत्सरेण पतति । श्रीम्.

एकाङ्गवर्धनिष्कयः

एकाङ्गवधनिष्कयः । तीर्थघातग्रन्थिभेदोर्ध्वकराणां प्रथमेऽपराधे संदंशच्छेदनं चतुष्पञ्चाशत्पणो वा दण्डः । द्वितीये, छेदनं पणस्य शस्यो वा दण्डः । तृतीये दक्षिणहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः । चतुर्थे यथाकामी वधः ।

पञ्चविंशतिपणावरेषु कुक्कुटनकुलमार्जारश्चसूकरस्तेषु हिंसायां वा चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः, नासाग्रच्छेदनं वा । चण्डालारण्यचरणामर्धदण्डाः । पाशजालकूटावपातेषु वद्धानां मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यानामादाने तच्च तावच्च दण्डः ।

मृगद्रव्यवनान्मृगद्रव्यापहारे शस्यो दण्डः । बिम्बविहारमृगपक्षिस्तेषु हिंसायां वा द्विगुणो दण्डः ।

कारुशिल्पिकुशीलवतपस्विनां क्षुद्रकद्रव्यापहारे शस्यो दण्डः । स्थूलकद्रव्यापहारे द्विशतः । कृषिद्रव्यापहारे च ।

एकाङ्गवर्धनिष्कय इति सूत्रम् । एकाङ्गं हस्तः पादः अङ्गुलिः कर्ण इत्येवमादि तस्य वधः छेदनं एकाङ्गवधः तद्युक्तो निष्कयः तत्प्रतिनिधिर्धनदण्डः एकाङ्गवधनिष्कयः सोऽभिधीयत इति सूत्रार्थः । पूर्वाध्याये 'शारीरमेव दण्डं भजेति, निष्कयद्विगुणं वा' इत्युक्तम् । कस्मिन्नपराधे शारीरदण्डः, स कस्याङ्गस्य, कियान् वा तस्य निष्कय इत्येतत्तु नोक्तम् । तदिह प्रतिपाद्यत इति संगतिः ।

तीर्थघातग्रन्थिभेदोर्ध्वकराणामिति । तीर्थघातः तीर्थे वस्त्राद्यपहर्ता ग्रन्थिभेदः बन्धच्छेत्ता संधिच्छेदको वा ऊर्ध्वकरः पुटच्छेदकः गृहोर्ध्वपटलादौ प्रवेशद्वारकृद् वा एषां त्रयाणां, प्रथमे, अपराधे, संदंशच्छेदनं कनिष्ठिकाङ्गुष्ठयोश्छेदनं, दण्डः । वा अथवा संदंशच्छेदामावपक्षे,

(१) कौ. ४।१०.

चतुष्पञ्चाशत्पणो= दण्डः । द्वितीये अपराधे, पणस्य छेदनं पणशब्देन व्यवहारसाधनाङ्गुलिलक्षणात् सर्वाङ्गुलिच्छेदनं, शस्यो वा दण्डः शतपणो वा निष्कयः । तृतीये अपराधे, दक्षिणहस्तवधः, चतुःशतो वा दण्डः निष्कयरूपः । चतुर्थेऽपराधे, यथाकामी वधः शुद्धभिन्नो वा यथेच्छम् ।

पञ्चविंशतीत्यादि । पञ्चविंशतिपणावरेषु पञ्चविंशतिपणाधस्तनमूल्येषु । हिंसायां वा अर्थात् कुक्कुटादीनाम् । अर्धदण्डाः सप्तविंशतिपणात्मकाः । पाशजालकूटावपातेष्वित्यादि । पाशः कर्णिका, जालं आनायः, कूटावपातः तृणादिच्छन्नो मृगपातनार्थो गर्तः, इत्येतेषु । तच्च तावच्च दण्डः अपहृतं च अपहृतसममन्यच्चेति द्वितयं दण्डः ।

मृगद्रव्यवनादित्यादि । मृगवनात् चन्दनादिपण्यद्रव्यवनाच्च । बिम्बविहारमृगपक्षिस्तेषु, बिम्बो नानावर्णः कृकलासः, विहारमृगः क्रीडामृगः कृष्णसारादिः, विहारपक्षी शुकादिः, तेषां स्तेषु ।

कारुशिल्पिकुशीलवतपस्विनामित्यादि । कारुः स्थूलशिल्पिकारी, शिल्पी सूक्ष्मशिल्पकर्ता, कुशीलवः चारणः, तपस्वी तापसः, एतेषाम् । कृषिद्रव्यापहारे हलादिचौर्ये । श्रीम्.

दुर्गमकृतप्रवेशस्य प्रविशतः प्राकारच्छिद्राद् वा निक्षेपं गृहीत्वाऽपसरतः कन्धरावधो, द्विशतो वा दण्डः । चक्रयुक्तां नावं क्षुद्रपशुं वाऽपहरत एकपादवधः त्रिशतो वा दण्डः । कूटकर्कण्यक्षारलाशलाकाहस्तविषमकारिण एकहस्तवधः, चतुःशतो वा दण्डः ।

स्तेनपारदारिकयोः साचिव्यकर्मणि स्त्रियाः संगृहीतायाश्च कर्णनासाच्छेदनं, पञ्चशतो वा दण्डः । पुंसो द्विगुणः ।

महापशुमेकं दासं दासीं वाऽपहरतः प्रेतभाण्डं वा चिक्रीणानस्य द्विपादवधः, षट्छतो वा दण्डः ।

(१) कौ. ४।१०.

वर्णोत्तमानां गुरूणां च हस्तपादलङ्घने राजयानवाहनाद्यारोहणे चैकहस्तपादवधः सप्तशतो वा दण्डः ।

शूद्रस्य ब्राह्मणवादिनो देवद्रव्यमवस्तृणतो राजद्विष्टमादिशतो द्विनेत्रभेदिनश्च योगाञ्जनेनान्यत्वमष्टशतो वा दण्डः ।

चोरं पारदारिकं वा मोक्षयतो राजशासनमूनमतिरिक्तं वा लिखतः कन्यां दासीं वा सहिरण्यमपहरतः कूटव्यवहारिणो विमांसविक्रियिणश्च वामहस्तद्विपादवधो नवशतो वा दण्डः । मानुषमांसविक्रये वधः ।

देवपशुप्रतिमामनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णरत्नसस्यापहारिण उत्तमो दण्डः शुद्धवधो वा । पुरुषं चापराधं च कारणं गुरुलाघवम् । अनुबन्धं तदात्वं च देशकालौ समीक्ष्य च ॥ उत्तमावरमध्यत्वं प्रदेशा दण्डकर्मणि । राज्ञश्च प्रकृतीनां च कल्पयेदन्तरास्थितः ॥

अननुज्ञातप्रवेशस्य दुर्गं प्रविशतः, प्राकारच्छिद्रात्रि-
श्लेषमपहृत्यापसरत इत्यनयोः, कन्धरावधः अर्थात्
पादपश्चाद्भागगतसिराद्वयच्छेदनं दण्डः द्विशतपणो वा
निष्क्य इत्याह—दुर्गमित्यादि । चक्रयुक्तामित्यादि ।
धनयुक्तां शस्त्रयुक्तां वा । कूटकाकण्यक्षारलाशलाका-
हस्तविषमकारिण इत्यादि । काकण्यक्षादयो द्यूतसमाह्वये
उक्ताः । कूटकाकण्यक्षादिकारिणः हस्तविषमं हस्त-
कौशलात् काकण्यक्षादिचारवैषम्यकरणं तत्कारिणश्च ।

स्तेनपारदारिकयोरिति । सांचिव्यकर्मणि साहाय्य-
करणे । स्त्रियाः संगृहीतायाश्चेति त्वकारात् सांचिव्य-
कर्तुर्जनस्य च । द्विगुणः सहस्रपणः ।

महापशुमित्यादि । महापशुर्गवाश्वमहिषादिः । प्रेतभाण्डं
शवमुखपटादिकम् । द्विपादवधः चरणद्वयच्छेदनम् ।

वर्णोत्तमानामित्यादि । हस्तपादलङ्घने हस्तेन पादेन
वा ताडने । एकहस्तपादवधः एकस्य हस्तस्य पादस्य च
छेदनम् ।

शूद्रस्य ब्राह्मणवादिन इति । ब्राह्मणोऽहमिति
वादिनः शूद्रस्य, देवद्रव्यं अवस्तृणतः अवच्छाद्यापहरतः,

राजद्विष्टं आदिशतः राजोऽनिष्टं मरणपरचक्राक्रमणादिकं
भविष्यत् कथयतो दैवज्ञादेः, द्विनेत्रभेदिनश्च, योगा-
ञ्जनेनान्यत्वं अन्धङ्करणौषधयुक्ताञ्जनलेपेनान्यजननं,
अष्टशतो वा दण्डः निष्क्यार्थः ।

चोरमित्यादि । मोक्षयतः बन्धनान्मोचयतः । सहिरण्यं
अपहरतः अलङ्कारेण सहितं यथा भवति तथा हरतः ।
कूटव्यवहारिणः धूपितरञ्जितादिकपटस्वर्णव्यवहर्तुः । वि-
मांसविक्रियिणश्च अभक्ष्यं सुगालादिमांसं विक्रेतुश्च । वाम-
हस्तद्विपादवधः सव्यहस्तच्छेदनं पादद्वयच्छेदनं च ।

देवेत्यादि । देवसंबन्धिपश्चादिनवकहर्तुः, उत्तमो
दण्डः । शुद्धवधो वा अक्लेशमारणं वा ।

प्रान्ते श्लोकावाह — पुरुषमित्यादि । प्रदेश, राज्ञश्च,
प्रकृतीनां अमात्यादीनां च, अन्तरास्थितः मध्यस्थः सन्,
पुरुषं च, अपराधं च, कारणं च, गुरुलाघवं पुरुषादि-
गौरवलाघवं, अनुबन्धं आयति, तदात्वं च तत्कालफलं
च, देशकालौ च, समीक्ष्य पर्यालोच्य, दण्डकर्मणि उत्तमा-
वरमध्यत्वं उत्तमत्वं प्रथमत्वं मध्यमत्वं च कल्पयेत् ।

श्रीम्.

शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः

शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः । कलहे घ्नतः पुरुषं
चित्रो घातः । सप्तरात्रस्यान्तः मृते शुद्धवधः
पक्षस्यान्तरुत्तमः । मासस्यान्तः पञ्चशतः समु-
त्थानव्ययश्च ।

शस्त्रेण प्रहरत उत्तमो दण्डः । मदेन हस्त-
वधः । मोहेन द्विशतः । वधे वधः । प्रहारेण
गर्भं पातयत उत्तमो दण्डः । भैषज्येन
मध्यमः । परिच्छेदेन पूर्वः साहसदण्डः ।

प्रसभस्त्रीपुरुषघातकाभिसारकनिप्राहकावधोषकाव-
स्कन्दकोपवेधकान् पथिवेदमप्रतिरोधकान् राज-
हस्त्यश्वरथानां हिंसकान् स्तेनान् वा शूलानारो-
हयेयुः । यश्चैनान् दहेद् अपनयेद्वा स . तमेव
दण्डं लभेत, साहसमुत्तमं वा ।

शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्प इति सूत्रम् । शुद्धः अक्लेश-
मारणं चित्रः क्लेशमारणं इति द्विप्रकारो दण्डविधिरुच्यते

(?) कौ. ४।११.

इति सूत्रार्थः । पूर्वाध्याये वधः प्रस्तुतः । स कस्मिन्नप-
राधे कीदृशः कर्तव्य इत्येतदिहाभिधीयते । कलहे व्रत
इत्यादि । मृते अर्थाच्छस्त्रादिप्रहृते । समुत्थानव्ययश्च
चिकित्सनादिव्ययश्च ।

शस्त्रेणेति । तेन प्रहस्तः, उत्तमो दण्डः । मदेन ब्र-
ह्मण, प्रहरतः, हस्तवधः । मोहेन क्रोधेन, प्रहरतः, द्वि-
शतः पणशतद्वयदण्डः । वधे कृते सति, वधः हन्तुः । प्रहा-
रेणेत्यादि । भैषज्येन औषधेन, गर्भं पातयत इति संब-
ध्यते । परिक्लेशेन कृच्छ्रकर्मानुष्ठापनेन ।

प्रसभेत्यादि । प्रसभस्त्रीपुरुषघातकः बलात्कारेण स्त्रियाः
पुरुषस्य वा घातकः प्रसभाभिसारकः स्त्रीहठाभिसरण-
कर्ता प्रसभनिग्राहकः बलाज्जानपदकर्णनासादिच्छेदकर्ता
अवधोषकः 'हरिष्यामि हनिष्यामि' इत्येवमवधोषणकर्ता
अवस्कन्दकः बलात्कारप्रामादेद्रव्यापहारकः उपवेधकः
भित्तिसंधिच्छेदनेन चौर्यकर्ता इत्येतान्, पथिवेश्मप्रतिरोध-
कान् पान्थविश्रमशालापानीयशालयोश्चौर्यकारकान्, राज-
हस्त्यश्वरथानां राजसंबन्धिनानां गजाश्वसहितानां रथानां
हिंसकान्, स्तेनान् वा तेषामेव चोरान् वा, शूलान्
वध्यात्पणशस्त्रविशेषान् आरोहयेयुः । आरोपयेयुरिति
क्वचित् पाठः । यश्चैनानित्यादि । एतान् शूलरोपणमारि-
तान् । श्रीम्.

हिंसस्तेनानां भक्तवासोपकरणान्निमन्त्रदानवैया-
पृत्यकर्मसूक्तमो दण्डः । परिभाषणमविज्ञाने ।
हिंसस्तेनानां पुत्रदारमसमन्त्रं विसृजेत्, समन्त्र-
माददीत । राज्यकामुकमन्तःपुरप्रधर्षकमटव्यमित्रो-
त्साहकं दुर्गराष्ट्रदण्डकोपकं वा शिरोहस्तप्रादीपिकं
घातयेत् । ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत् ।

मातृपितृपुत्रभ्रात्राचार्यतपस्विघातकं वा त्वक्छिरः-
प्रादीपिकं घातयेत् । तेषामाक्रोशे जिह्वा-
च्छेदः । अङ्गाभिरदने तदङ्गान्मोच्यः । यह-
च्छाघाते पुंसः, पशुयूथस्तेये च शुद्धवधः ।
दशावरं च यूथं विधात् ।

हिंसस्तेनानामिति । हिंसाणां स्तेनानां च, भक्तवासो-
पकरणान्निमन्त्रदानवैयापृत्यकर्मसु भक्तदाने वासस्थानदाने

(१) कौ. ४।११९.

उपकरणदाने अश्विदाने मन्त्रदाने वैयापृत्यकर्मणि कैङ्कर्य-
करणे च, उत्तमो दण्डः । परिभाषणमविज्ञाने । हिंसस्तेना
इत्यपरिज्ञानाद् भक्तदानादौ उपालम्भः दण्डः । हिंस-
स्तेनानां असमन्त्रं पुत्रदारं सहमन्त्रणरहितान् पुत्रान् दारां-
श्च, विसृजेत् निरपराधत्वात् । समन्त्रं पुत्रदारं, आददीत
अपराधित्वेन गृहीत्वा दण्डयेत् । राज्यकामुकमित्यादि ।
अटव्यमित्रोत्साहकं अटवीचराणां पुलिन्दादीनां अमि-
त्राणां उत्साहजनकम् । दुर्गराष्ट्रदण्डकोपकं दुर्गराष्ट्र-
वासिनां सेनायाश्च कोपोत्पादकम् । शिरोहस्तप्रादीपिकं
घातयेत् शिरसि हस्ते च दीपितप्रदीपं कृत्वा मारयेत् ।
ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेदिति । राज्यकामुकादिश्चेद् ब्राह्मणः
तं तमोगृहं प्रवेशयेदपुनर्निर्गमाय ।

मातृपितृपुत्रादि । अत्वक्छिरःप्रादीपिकं घातयेत्
त्वग्वियोजिते शिरस्यग्निं दीपयित्वा मारयेत् । तेषामाक्रोशे
मात्रादीनां निन्दने । अङ्गाभिरदने नखादिना
मात्राद्यङ्गविलेखने, तदङ्गाद् मोच्यः करादिकमङ्गं यत्
तेषां विलेखितं तेनाङ्गेन विलेखनकर्ता वियोज्यः । यहच्छ-
या पुरुषवधे पशुयूथचौर्ये चाङ्गेशमारणं दण्ड इत्याह—
यहच्छाघात इत्यादि । यूथमानमाह—दशावरमित्यादि ।
श्रीम्.

उत्सृज्यमाणं सेतुं भिन्दतस्तैत्रवाप्सु निमज्ज-
नम् । अनुदकमुत्तमः साहसदण्डः । भग्नोत्सृष्टकं
मध्यमः । विषदायकं पुरुषं स्त्रियं च पुरुषपत्नीमपः
प्रवेशयेदगर्भिणीम् । गर्भिणीं मासावरप्रजाताम् ।
पतिगुरुप्रजाघातिकां अग्निविषदां संधिच्छेदिकां
वा गोभिः पादयेत् ।

विवीतक्षेत्रखलवेश्मद्रव्यहस्तिवनादीपिकमग्निना
दाहयेत् । राजाक्रोशकमन्त्रभेदकयोरनिष्टप्रवृत्तिकस्य
ब्राह्मणमहानसावलेहिनश्च जिह्वामुत्पाटयेत् । प्रहर-
णावरणस्तेनमन्तयुधीयमिषुभिर्घातयेत् । आयुधी-
यस्योत्तमः । मेढ्रफलोपघातिनस्तदेव छेदयेत् ।
जिह्वानासोपघाते संदंशवधः ।

एते शास्त्रेष्वनुगताः छेशदण्डा महात्मनाम् ।
अङ्घ्रिष्ठानां तु पापानां धर्म्यः शुद्धवधः स्तुतः ॥

(१) कौ. ४।११९.

उदकधारणमिति । जलं धारयन्तं, सेतुं, भिन्दतः, तत्रैव सेतौ, अप्सु निमज्जनं दण्डः । अनुदकं सेतुं, भिन्दतः, उत्तमः साहसदण्डः । भ्रमोत्सृष्टकं, स्वयं भ्रमम-संस्कृतविसृष्टं, सेतुं भिन्दतः, मध्यमः साहसदण्डः । विषदायकमिति । तादृशं, पुरुषं, स्त्रियं च, पुरुषर्षीं पुरुषघातिनीं, अपः प्रवेशयेद्, अगर्भिणीं, सा चेद् गर्भिणी न भवति । गर्भिणीं मासावरप्रजातामिति । सा चेद् गर्भिणी, प्रसवानन्तरमेकमासेऽतीते तामप्सु प्रवेशयेत् । पतिगुरुप्रजाघातिकामित्यादि । संधिच्छेदिकां, संधिं छित्त्वा चौर्यकारिणीम् । गोभिः, पादयेत् पादाघातेन मारयेत् । 'प्रातिपदिकाद्वात्वर्थ' इत्यादिना पादशब्दात् पादाघात-वृत्तौर्णौ च ।

विवीतक्षेत्रेत्यादि । विवीतक्षेत्राद्यादीपनकर्तारम् । राजा-क्रोशकमन्त्रभेदकयोरिति । तयोः, अनिष्टप्रवृत्तिकस्य राज-मरणाद्यनिष्टवार्ताप्रसारकस्य, ब्राह्मणमहानसावलेहिनश्च ब्राह्मणमहानसादन्नमपहृत्यं भुञ्जानस्य च, जिह्वां, उत्पाद-येत् छिन्द्यात् । प्रहरणावरणस्तेनमिति । आयुधस्यावरण-स्य च चोरं, अनायुधीयं अनस्त्रजीविनं, इषुभिः घा-तयेत् । आयुधीयस्योत्तमः स चेदस्युधादिचोर आयुधजीवी त्रस्योत्तमसाहसः । मेदूफलोपघातिन इति । लिङ्गाण्डयोः रतिसामर्थ्यमञ्जकस्य, तदेव मेदूफलमेव, छेदयेत् । जिह्वानासोपघात इति । जिह्वाया रसास्वादनशक्त्युपघाते नासाया गन्धग्रहणशक्त्युपघाते च, संदंशवधः कनि-ष्ठिकाङ्गुष्ठयोश्छेदनं दण्डः ।

एत इति । एत उक्ताः क्लेशदण्डाः, महात्मनां मन्वा-दीनां, शास्त्रेषु, अनुगता अनुज्ञाता विहिताः । अक्लिष्टानां अदुष्कराणां अल्पानामित्यर्थः, पापानां, शुद्धवधः अक्लेशदण्डः, धर्म्यः न्याय्यः, स्मृतः । श्रीम्.

अतिचारदण्डः

अतिचारदण्डः । ब्राह्मणमपेयमभक्ष्यं वा संग्रासयत उत्तमो दण्डः, क्षत्रियं मध्यमः, वैश्यं पूर्वः साहसदण्डः, शूद्रं चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः । स्वयंप्रसितारो निर्विषयाः कार्याः । परगृहाभिगमने दिवा पूर्वः साहसदण्डः, रात्रौ मध्यमः । दिवा रात्रौ

(१) कौ. ४।१३.

वा सशस्त्रस्य प्रविशत उत्तमो दण्डः । भिक्षुक-वैदेहकौ मत्तोन्मत्तौ बलादापदि चातिसंनिक्छ्याः प्रवृत्तप्रवेशाश्चादण्ड्याः, अन्यत्र प्रतिषेधात् । स्ववेश्मनो विरात्रादूर्ध्वं परिवार्यमारोहतः पूर्वः साहसदण्डः । परवेश्मनो मध्यमः । ग्रामाराम-वाटभेदिनश्च ।

अतिचारदण्ड इति सूत्रम् । अतिचारस्य अमक्ष्यमक्ष-णागम्यागमनादेर्दण्डोऽभिधीयत इति सूत्रार्थः । चोरादि-कण्टकशोधनकथनानन्तरमवशिष्टं स्वधर्मव्यतिक्रमिणां कण्टकानां शोधनमिह प्रतिपाद्यते । ब्राह्मणमपेयमित्यादि । संग्रासयतः संग्रसमानं प्रयोजयतः । शेषं स्फुटम् । स्वयं-प्रसितार इत्यादि । विनैव परंप्रेरणां अपेयामक्ष्यग्रासिनः, निर्विषयाः कार्याः देशान्निष्कासयितव्याः । परगृहाभिगमन इत्यादि । सशस्त्रस्य प्रविशतः शस्त्रसहितस्य परगृहं प्रवि-शतः । भिक्षुकवैदेहकाविति । तौ, मत्तोन्मत्तौ बलात् मधु-पानविकृतचित्तः विभ्रान्तचित्तश्चेत्येतौ बलात्कारेण, आप-दि च आपत्समये आपन्नाश्च, अतिसंनिक्छ्या बान्धवाः, प्रवृत्तप्रवेशाश्च सौहार्दारब्धप्रवेशाश्च, अदण्ड्याः अर्थात् परगृहं प्रविशन्तः । कदा, अन्यत्र प्रतिषेधाद् गृहजन्मप्रति-षेधाभावे । स्ववेश्मन इति । स्वगृहस्य, विरात्रादूर्ध्वं रात्रि-यामापगमात् परतः, परिवार्यं प्राकारकुब्जादिकं, आरो-हतः, पूर्वः साहसदण्डः । परवेश्मनः, परिवार्यमारोहतो, मध्यमः । ग्रामारामवाटभेदिनश्च ग्रामवृत्तिमुपवनवृत्तिं च भित्त्वा ग्राममुपवनं च प्रविशतश्च, मध्यमः इति संब-ध्यते । श्रीम्.

ग्रामेष्वन्तः सार्थिका ज्ञातसारा वसेयुः । मुषितं प्रवासितं चैषामनिर्गतं रात्रौ ग्रामस्वामी दद्यात् । ग्रामान्तेषु वा मुषितं प्रवासितं विवीताध्यक्षो दद्यात् । अविवीतानां चोररज्जुकः । तथाप्यगुप्तानां स्त्रीमाव-रोधविचयं दद्युः । असीमावरोधे पञ्चग्रामी दशग्रामी वा ।

दुर्वलं वैश्वं शकटमनुत्तब्धमूर्धस्तम्भं शस्त्रमन-पाश्र्वयमप्रतिच्छन्नं श्वभ्रं कूर्पं कूटावपात वा कृत्वा हिंसायां दण्डपारुष्यं विद्यात् ।

(१) कौ. ४।१३.

वृक्षच्छेदने दम्बरश्मिहरणे चतुष्पदानामदान्त-
सेवने वाहने काष्ठलोष्टपाषाणदण्डबाणवाहुविक्षेपणेषु
याने हस्तिना च संघट्टने 'अपेहि' इति प्रक्रोशन्-
दण्ड्यः ।

ग्रामेष्वन्तरित्यादि । सार्थिका वणिजो यदि ग्रामा-
न्तर्वसेयुः, तर्हि स्ववशास्थितं सारद्रव्यं तद्ग्रामे मुख्यायावे-
वैवसेयुः । मुषितं, प्रवासितं च अन्यत्र नीतं च,
एषां सार्थिकानां, अनिर्गतं रात्रौ नक्तं ग्रामादन्निर्गतं,
ग्रामस्वामी दद्यात् । ग्रामान्तेषु ग्रामसीमासु, मुषितं,
प्रवासितं, द्रव्यं, विवीताध्यक्षो दद्यात् । अविवीतानां
प्रदेशानां, चोररज्जुकः चोरग्रहणनियुक्तः, दद्यात् ।
तथाप्ययुक्तानां तेन प्रकारेणाप्यरक्षितानां, सीमावरोधवि-
चय दद्युः यस्य सीमायां मोषणं जातं तत्सीमास्वामी यथा
विचयं कुर्यात् तथावसरं दद्युः । असीमावरोधे सीमावरो-
धस्याप्यभावे, पञ्चग्रामी दशग्रामी वा अर्थात् मोषणदेश-
निकटवर्तिनी, दद्यात् मुष्टं प्रत्यानीय प्रतिपादयेत् ।

दुर्बलमिति । दुर्बलं जीर्णदीर्णकुड्यं, वेष्टम गृहं, कृत्वा,
शकटं. अनुत्तब्धमूर्धस्तम्भं अनुद्धृतशिरःस्थूणं, कृत्वा,
शस्त्रं, अनपाश्रयं असम्यग्बद्धोर्ध्वाधारं, कृत्वा, अप्रति-
च्छन्नं अमृत्यूरितं, शस्त्रं गर्तं, कूपं, कूटावपातं वा कूट-
गुप्तं वा, कृत्वा, हिंसायां, दण्डपारुष्यं तद्विहितं दण्डं,
विद्यात् हिंसितुः ।

वृक्षच्छेदन इति । वृक्षस्य छेदनावसरे, दम्बरश्मिहरणे
दम्बनस्यवन्धनावसरे, चतुष्पदानां, अदान्तसेवने वाहने
अदान्तशिक्षणार्थं वाहने, काष्ठलोष्टपाषाणदण्डबाणवाहु-
विक्षेपणेषु कलहायमानयोरन्योन्यं प्रति काष्ठलोष्टादिप्रेरणा-
वसरेषु, याने हस्तिना च गजमारुह्य गमनावसरे च,
संघट्टने छिन्नवृक्षसंघट्टनादितोऽङ्गभङ्गादिप्रसङ्गे, 'अपेही'-
ति प्रक्रोशन्, संघट्टनप्राप्तेः पूर्वमेव 'अपसरानसरे'ति
प्रक्रोशन्, अदण्ड्यः । श्रीम्.

हस्तिना रोषितेन हतो द्रोणान्नं कुम्भं माल्यानु-
लेपनं दन्तप्रमार्जनं च पटं दद्यात् । अश्वमेधाव-
भृथस्नानेन तुल्यो हस्तिना वध इति पाद-
प्रक्षालनम् । उदासीनवधे यातुरुत्तमो दण्डः ।

(१) श्रौ. ४।१३.

शृङ्गिणा दंष्ट्रिणा वा हिंस्यमानममोक्षयतः स्वामि-
नः पूर्वः साहसदण्डः । प्रतिक्रुष्टस्य द्विगुणः ।
शृङ्गिदंष्ट्रिभ्यामन्योन्यं घातयतस्तच्च तावच्च दण्डः ।
देवपशुमृपभमुक्षाणं गोकुमारीं वा वाहयतः पञ्चशतो
दण्डः । प्रज्ञासयत उत्तमः ।

लोमदोहवाहनप्रजननोपकारिणां क्षुद्रपशूनामा-
दाने तच्च तावच्च दण्डः । प्रवासने च, अन्यत्र
देवपितृकार्येभ्यः ।

छिन्ननस्यं भग्नयुगं तिर्यक्प्रतिमुखागतं च प्रत्या-
सरद्वा चक्रयुक्तं यानपशुमनुष्यसंबाधे वा हिंसाया-
मदण्ड्यः । अन्यथा यथोक्तं मानुषप्राणिहिंसायां
दण्डमभ्यावहेत् । अमानुषप्राणिवधे प्राणिदानं च ।

बाले यातरि, यानस्थः स्वामी दण्ड्यः । अस्वा-
मिनि यानस्थः प्राप्तव्यवहारो वा याता । बालाधि-
ष्ठितमपुरुषं वा यानं राजा हरेत् । कृत्याभिचारा-
भ्यां यत् परमापादयेत् तदापादयितव्यः ।

हस्तिना रोषितेन हत इति । गजेन तद्गमनमार्गाभि-
मुखशयनकोपितेन हतः, द्रोणान्नं द्रोणपरिमाणमोदनं,
कुम्भं मद्यकुम्भं, माल्यानुलेपनं, दन्तप्रमार्जनं पटं च
दन्तसक्तासृक्प्रमृष्टिसाधनं वस्त्रं च, दद्यात् हस्तिने । तेन
हस्तिसकाशादात्मघातमिच्छता पूर्वसज्जितं द्रोणान्नादिकं
तन्मरणानन्तरं तदीयो बन्धुर्दद्यादित्यर्थः । कस्मादेवं हन्ता
पूज्यत इत्यत्राह — अश्वमेधावभृथस्नानेनेति । अश्वमेध-
यज्ञान्तस्नानेन, तुल्यः तुल्यपुण्यः, हस्तिना वध इति
हेतोः, पादप्रक्षालनं हस्तिनः पूजाविशेषोऽयमित्यर्थः ।
अरोषयितृवधे हस्त्यारोहस्योत्तमसाहसो दण्ड इत्याह—
उदासीनेत्यादि ।

शृङ्गिणेति । शृङ्गिणा गवादिना, दंष्ट्रिणा वा श्वादिना
वा, हिंस्यमानं, अमोक्षयतः, स्वामिनः हिंसकस्वामिनः,
पूर्वः साहसदण्डः । 'हिंसन्तं वारय' इत्यप्रतिक्रुष्टस्यायं
दण्डः, प्रतिक्रुष्टस्य त्वाह—प्रतिक्रुष्टस्य द्विगुण इति ।
शृङ्गिदंष्ट्रिभ्यामिति । ताभ्यां, अन्योन्यं शृङ्गिणा दंष्ट्रिणं
दंष्ट्रिणा शृङ्गिणं च, घातयतः, तच्च तावच्च तन्मूल्यं
तत्परिमाणमन्यच्च द्रव्यं, दण्डः । देवपशुमिति ।
देवसंक्रान्धिनं पशुं, ऋषभं, उक्षाणं देवगोवृन्दसेक्तारं

शुक्लं, गोकुमारीं वा, वाहयतः हरतः, पञ्चशतो दण्डः ।
प्रवासयतः मारयतः, उत्तमः ।

लोमदोहवाहनप्रजननोपकारिणामिति । ऊर्णादिदानोप-
कारिणां, क्षुद्रपशूनां मेषादीनां, आदाने अपहरणे, तच्च
तावच्च दण्डः । प्रवासने च, तच्च तावच्च
दण्डः । अन्यत्र देवपितृकार्येभ्यः, देवपितृकार्याथं
प्रवासने तु न दोषः ।

छिन्ननस्यमिति । छिन्नवलीवर्तनासारज्जुकं, भग्नयुगं
भग्नेषान्तदारुकं, तिर्यकप्रतिमुखागतं च, तिर्यगागतम-
भिसुखागतं च, प्रत्यासरट् वा पश्चादपसरट् वा, चक्रयुक्तं
शकटं, यदा भवति तदेति शेषः, यानपशुमनुष्यसंवाधे
वा ततद्गतो गच्छतां यानपश्वादीनां भ्रमणसंकटे वा,
हिंसायां पशुमनुष्यवधसंभवे, अदण्ड्यः शाकटिकः ।
अन्यथा छिन्ननस्यत्वाद्यभावे, मानुषप्राणिहिंसायां, यथोक्तं
दण्डं अन्यावहेत् । अमानुषप्राणिवधे अजकुक्कुटादि-
वधे, प्राणिदानं च, कार्यम् ।

बाले यातरीति । यन्तरि अप्राप्तव्यवहारे सति,
यानस्थः स्वामी दण्ड्यः, शकटनिमित्तप्राणिहिंसासंभवे ।
अस्वामिनि याने, यानस्थो दण्ड्यः, प्राप्तव्यवहारो याता
वा यन्ता वा दण्ड्यः । बालाधिष्ठितमपुरुषं वेति ।
बाल्यन्तुकं प्रधानपुरुषरहितं वा, यानं, राजा हरेत् ।
कृत्याभिचाराभ्यामिति । ताभ्यां, यत् मारणस्तम्भनादि,
परं अन्यजनं, आपादयेत् प्रापयेत्, तद्, आपादयितव्यः
अर्थात् कृत्याभिचारकारकः । श्रीमू.

मनुः

स्तेयसाहसयोर्निरुक्तिः

स्यात्साहसं त्वन्वयवत् प्रसभं कर्म यत्कृतम् ।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वाऽपव्ययते च यत्*॥
साहसिकः पापकृत्तमः, तस्योपेक्षा राशौ नैव कर्तव्या
१ ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥

* साहसपदनिरुक्तिः अव्यवहितोत्तरश्लोकस्य मेषातिथि-
व्याख्याने द्रष्टव्या । व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च स्तेये
द्रष्टव्यः ।

(१) मस्मृ. ८।३४४; स्मृचि. २६ ऋं (ऋ); समु.
१५९; नन्द. क्षय (क्षय्य).

(१) सहो बलं, तेन वर्तते साहसिकः । दृष्टादृष्टदोषा-
नपरिगणय्य, बलमाश्रित्य, स्तेयहिंस्रासंग्रहणादिपरपीडा-
करेषु वर्तमानः प्रकाशं पुरुषः साहसिकः । तदुक्तं, ' स्या-
त्साहसमिति । न स्तेयादिभ्यः पदार्थान्तरं साहसं, किन्तु
प्रसह्यकरणात् तान्येव साहसानि भवन्ति । यदप्यग्निदाह-
वल्गुपाटनादि साऽपि द्रव्यनाशात्मकत्वाद्धिसैवेति, तस्य
निग्रहं नोपेक्षेत न विलम्बेत क्षणमपि, यदा गृहीतस्तदैव
निग्रहीतव्यः । इन्द्रस्वामिकं स्थानं स्वर्गाख्यमैन्द्रं तदाभि-
मुख्येन प्राप्नुमिच्छन् । अथवा स्वमेव राज्यपदमैन्द्रमिव
इच्छन् अविचालित्वसामान्यं, निग्राह्य, निग्रहेण हि प्रता-
पानुग्रहाभ्यां प्रजा अनुप्रवर्तन्ते । तदुक्तं ' समुद्रमिव
सिन्धवः' इति । यशोऽक्षयमव्ययं च, द्वेषविशेष्यविशेषणे,
स्थानमव्ययं यशोऽक्षयमिति । अथोभयेनापि यशो विशि-
ष्यते । क्षयो मात्रापचयः । व्ययो निरन्वयविनाशः ।
उभयमपि तत्रास्ति । न मालिनीभवति यशो न कदाचिद्धि-
च्छिद्यते । भूतार्थवाद्दस्तुतिरियम् । + मेधा.

(२) इदानीं साहसमाह—ऐन्द्रमिति । सर्वाधिपत्यलक्षणं
पदं चाविनाशनं अनपचयं ख्यातिं चाभिसुख्येन इच्छन्
राजा साहसेन बलवशेनापि अग्निदाहवल्गुपाटनादिकारिणं
मनुष्यं क्षणमपि नोपेक्षेत । गोरा.

(३) अक्षय्यं स्वरूपेण, अव्ययं फलेन । नन्द..
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः ।

साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥

(१) अयमपरार्थवादो निग्रहविधिस्तुत्यर्थः । वाचा
दुष्टो वाग्दुष्टः तस्करश्चौरः । दण्डेनैव दण्डपारुष्यकृत्,
दण्डः प्रहरणोपलक्षणार्थः । त्रिभ्य एतेभ्योऽनन्तराति-
क्रान्तेभ्यः पापकारिभ्योऽयमतिशयेन पापकृत्तमः ।

* मेधा..

(२) वाग्दुष्टो वाक्पारुष्यकृत्, दण्डेन हिंसको दण्ड-
पारुष्यकृत् । मवि..

+ मवि., मच. मेधावत् । समु. मेधावत् गोरावच्च ।

* गोरा., मवि., समु., मच., नन्द. मेधावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३४५ [सतः (सकः, रुकात्) Noted
by Jha.]

१ त्वात्सिद्धैवेति.

साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
स विनाशं ब्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥

(१) अयमप्यर्थवादः । साहसे स्थितं पुरुषं यो मर्षयति । प्रकृत्यर्थेऽयं णिच् । यो मृष्यति क्षमते, स विनाशं प्राप्नोति । द्वेष्यतां च प्रजासु प्राप्नोति, द्वेष्यश्चाभिभूयते ।
मेधा.

(२) स साहसकारिभिः क्षिप्रमेव विनाश्यते । गोरा.

(३) स पापकृत्यामुपेक्षणान्धर्मबुद्ध्या विनश्यति ।
अपक्रियमाणराष्ट्रतया जनविद्वेषं च गच्छति । ममु.

नै मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।
समुत्सृजेत्साहसिकान् सर्वभूतभयावहान् ॥

(१) अत आह, पार्श्वस्थस्य कस्यचित्स्नेहहेतोरमात्यादिना प्रार्थ्यमानो न मृष्येत् । अथवा स एवातिबहुधनं ददातीति नोपेक्षेत । सर्वेषां भूतानां भयमावहन्ति साहसिकाः । अयमप्यर्थवादः ।
मेधा.

(२) अयं मित्रं भवतु मां नापकरोतु प्रत्युपकरिष्यतीति वा । सर्वभूतभयावहानित्यनेन मामुपकरिष्यतीति निरस्तम् ।
मच.

निमित्तविशेषे साहमानुज्ञा

शैलं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ।

द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥

आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ।

स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च प्रन् धर्मेण न दुष्यति ॥

(१) मस्मृ. ८।३४६.

(२) मस्मृ. ८।३४७; स्मृचि. २६.

(३) मस्मृ. ८।३४८ [द्विजा प्लवे (विप्राणां विप्लवे धर्मविप्लवे) Noted by Jha]; मित्ता. २।२१ (=) पू. २।२८६ (=) पू.; स्मृच. ३१३; पमा. ४६७ (=) पू.; रत्न. १२७; दवि. ९ त्रौप (त्राव); नृप्र. २०८. धर्मो यत्रोप (यत्र धर्मोप) पू.; सवि. १५४ (=) पू.; व्यप्र. १५ (=) पू. : ३९५ : ४०० (=) पू.; व्यड. ९ (=) पू. : १३३ : १३७ पू., स्थितिः; विता. ७५५ : ८०५ पू.; बाल. २।२१, २।२८६ उत्त.; समु. १४७.

(४) मस्मृ. ८।३४९ ग. प्रन् धर्मेण (धर्मेण प्रन्) [भ्युप (भ्युप) दुष्यति (नश्यति) Noted by Jha]; मेधा.

१ नपे.

(१) 'वैणवीं धारयेद्यष्टिम्' इति विधानादनुदित-शस्त्रग्रहणाः श्रोत्रियाः । स्वत्रलाविष्टं भवति च साहसिके बलातिशयधायि च शस्त्रमतः साहसिकत्वाशङ्कया शस्त्रग्रहणमप्राप्तं विधीयते—शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यमिति । एतावता वाक्यं विच्छिद्यते । अवशिष्टं तु 'प्रन् धर्मेण' इत्यनेनाभिसंबध्यते इत्यतो द्वे एते वाक्ये । ये त्वेतेष्वेव निमित्तेषु ग्रहणमिच्छन्ति नान्यदेति तेषामतार्कितोपनता-ततायिसुखपतितस्याशस्त्रस्य का गतिः । न हि ते शस्त्र-ग्रहणं तस्य प्रतिपालयन्ति । अथैवं व्याख्यायते 'धर्मो यत्रोपरुध्यते' 'विप्लवे कालकारिते' राजनि व्यतिक्रान्ते, संस्थायां प्रवृत्तायां, शस्त्रं ग्राह्यम् । अन्यदा तु सौराज्य राजैव रक्षतीति । न हि प्रसार्य हस्तौ राजा प्रतिपुरुषं आसितुं शक्नोति । भवन्ति केचिद्दुरात्मानो ये राज-पुरुषानपि शूरतमाभियुक्तान् त्राधन्ते, शस्त्रवतस्तु विभ्य-तीति सार्वकालिकं शस्त्रधारणं युक्तम् । किं पुनर्ग्रहणमत्र विभीषिकाजननमात्रम् ? नेत्याह । प्रन्धर्मेण न दुष्य-तीति हिंसापर्यन्तोऽयमुपदेशः । यत्त्वापस्तम्बेनोक्तं 'न ब्राह्मणः परीक्षार्थमपि शस्त्रमाददीते'ति असति वृथा-भिहिते निमित्ते आकर्षणस्य प्रतिषेधो, न ग्रहणस्य, विकोशा हि परीक्ष्यन्ते ।

धर्मस्योपरोधो यदा यज्ञादीनां विनाशः कैश्चित्क्रियते, वर्णानां विप्लवोऽव्यवस्थानं वर्णसंकरादि, कार्यकालकारिते राजमरणादौ, तत्र स्वधनकुटुम्बरक्षार्थं शस्त्रं ग्राह्यम् । अन्ये तु परार्थमप्यस्मिन्नवसरे । तथा च गौतमः—'दुर्वल-हिंसायां चाविमोचने शक्तश्चेदि'ति । उक्तं यज्ञविनाशशङ्क-कानिवृत्त्यर्थं शस्त्रग्रहणम् । निमित्तान्तरमाह—आत्मनश्च परित्राणे, परिः सर्वतोभावे । शरीरभार्याधनपुत्ररक्षार्थं प्रन्धर्मेण न दुष्यति । दक्षिणानां च संगरोऽवरोधः । यदि यज्ञार्थं कल्पिता दक्षिणाः कैश्चिदपहियेरस्तदा तन्निमित्तं

भ्युप (भ्यव); मित्ता. २।२१ (=) दुष्यति (दण्डभाक्); स्मृच. ३१३ भ्युप (भ्यव); रत्न. १२७; दवि. ९; सवि. १५४ (=) आत्मनश्च (आत्मना स्व) प्राभ्युप (त्तादिवि) दुष्यति (दुष्यते); व्यप्र. १५ (=), ३९५; व्यड. ९ (=) उत्त. : १३३; विता. ७५५ स्मृचवत्; बाल. २।२८६; समु. १४७. स्मृचवत्; नन्द. स्मृचवत्.

१ मात्रं. २ धाभिहते.

योद्धव्यम् । अन्ये तु एवमभिसंभवन्ति । दक्षिणानां हेतोः संगरे । यदुपरोधः प्रवृत्ते धर्मोऽप्रवृत्ते दक्षिणासंगर इति(१) । विशेषाणामभ्यवपत्तिः परिभवः । यत्र स्त्रियः साध्यो हठात्केनचिदुपगम्यन्ते हन्यन्ते वा, एवं ब्राह्मणाः केनचिद्धन्यन्ते, तत्र भ्रन् खड्गादिना न दुष्यति, हिंसाप्रतिषेधातिक्रमो न कृतो भवतीत्यर्थः । असति प्रतिषेधे कामचारप्राप्तौ विध्यन्तरपर्यालोचनया गौतमवचनमनुध्यायमानेन 'दुर्बलहिंसायां चाविमोचने शक्तश्चेत्' इत्यवश्यं हनने प्रवर्तितव्यम् । अथ प्रहारशङ्का भवति तदा सर्वत एवात्मानं गोपायेदित्युक्तेषु । * मेधा.

(२) ब्राह्मणादिभिश्च खड्गाद्यायुधं ग्रहीतव्यम् । यस्मिन् काले वर्णाश्रमिणां चौरादिभिः धर्मं कर्तुं न दीयते तत्र, तथा द्विजानां ब्राह्मणादीनां राजाभावपरचक्राक्षेपकारादिभिः कालजनिते वर्णानां संकरे, तथा आत्मनश्च शरीरदारादिरक्षायां, दक्षिणासंबन्धिनि संगरे अपहारनिमित्ते संग्रामे, स्त्रीब्राह्मणरक्षायां च धर्मेण अकूटयुद्धेन तेन शस्त्रेणानेनानन्यगतिकः परान् हिंसन्न प्रत्यवैत्येवं चात्र साहसदण्डो न कार्यः । × गौरा.

(३) द्विजातिभिस्त्रिभिरपि ग्राह्यं किमुत राज्ञेत्यर्थः । धर्मस्योपरोधे बलात्साहसिकैरधर्मप्रवर्तने । द्विजातीनां विप्लव उत्तमया स्त्रिया अधमेन योगात्संकरे कालकारिते न तु देशकृते । तेषां तत्प्रायत्वेन निवर्तनासंभवात् । आत्मनः परित्राणे प्राणरक्षणे । दक्षिणानां दक्षिणार्थं तदपहारे केनचिक्लियमाणे संगरे युद्धे । स्त्रीविप्रयोरभ्युपपत्तौ प्राणरक्षणे । धर्मेण विषदिग्धशराद्यधार्मिकप्रकारत्यागेन । मवि.

(४) मनुस्तु क्रोधादितः प्रेरितानां साहसिकानामुक्तो यो दण्डस्तस्याभावं दोषाभावकथनमुखेन विधितः प्रेरितानां साहसिकानां कथयति—शस्त्रमित्यादि । धर्मस्तटाकारामादिको भेदनच्छेदनादिना साहसिकैर्यत्र देशे काले चोपरुच्यते । तथा शूद्रेतरवर्णसंकरे परदाराक्रमणादिरूपे राजाभावकालकारिते, तथात्मनः परतः प्राणसंशये, तथा दक्षिणानां गवां संगरे ग्रहणनिमित्तकयुद्धे । तथा स्त्रीविप्राभ्यवपत्तौ दुर्बलहिंसानिवारणे, द्विजातिभिः क्षत्रियधर्माश्रयणरहितैरपि समर्थैः शस्त्रं ग्राह्यमिति संबन्धः ।

* मित्ता. व्याख्यानं दर्शनविधौ (पृ. ८३) द्रष्टव्यम् ।

× मसु., दवि., मच. गोरवत्.

क्षत्रियस्य प्रजामात्ररक्षणार्थं शस्त्रग्रहणं प्राप्तमिति तद्व्यतिरिक्तविप्रवैश्यविषयं द्विजातिग्रहणम् । तथा च बौधायनः—'ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा वर्णानां वाऽपि संकरे । गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यतिक्रमे ॥' गौतमोऽपि—'प्राणसंशये ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत । दुर्बलहिंसायां विमोचने शक्तश्चेदिति । ब्राह्मणग्रहणं वैश्यस्यापि प्रदर्शनार्थम् । अत एव विष्णुः—'आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीयाताम्' इति । यत्तु बौधायनेनोक्तं—'भार्यार्थमपि ब्राह्मण आयुधं नाददीते'ति, यदप्यापस्तम्बेन—'परीक्षार्थोऽपि ब्राह्मण आयुधं नाददीत' इति, उभयत्रापि अपिशब्देन विभीषिकार्थं हिंसार्थं वा ब्राह्मणस्य शस्त्रग्रहणं दूरोत्सारितमिति गम्यते । तेन विभीषिकार्थं ब्राह्मणस्य शस्त्रग्रहणविधानं पूर्वोक्तं विरुध्यते । सत्यम् । अत एव पूर्वोक्तधर्मोपरोधादिशस्त्रग्रहणविधिविषयादन्यत्र प्रतिषेधोऽवतिष्ठते इति व्यवस्थापनीयम् । 'भ्रन् धर्मेण न दुष्यति' इति वदता मनुना हिंसापर्यन्तोऽयं शस्त्रग्रहणोपदेशो न विभीषिकामात्रसंजननायेति दर्शितम् । 'भ्रन् धर्मेण न दुष्यति' इत्यस्य यद्यपि क्षात्रयुद्धधर्मेण भ्रन् न दुष्यतीत्यर्थोऽवभाति तथापि धर्मोपरोधकादिहिंसाया अवश्यकर्तव्यत्वात्तत्र क्षात्रयुद्धधर्मेण भ्रन्नित्यर्थोयोगात् धर्मेण हिंसादिविधिना प्रेरितो भूत्वा भ्रन्न दुष्यतीत्यर्थोऽवगन्तव्यः । एतदुक्तं भवति—धर्मोपरोधकादिहिंसायाश्चोदितत्वात्कर्ता न दुष्यतीति । तथा च मनुवृत्तावुक्तम्—'स्तेनादीनां वधः क्षात्रधर्मेणेत्युक्तं, तद्धननस्यावश्यकर्तव्यत्वात् । तस्माद्धर्मेण शास्ता न दुष्यतीति द्रष्टव्यमिति । * स्मृच. ३१३

(५) धर्मेण हेतुना भ्रन् नार्थार्थेन दुष्यति, न साहसिको भवति । नन्द.

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।

* व्यप्र. स्मृचवत् ।

(१) मसृ. ८१५०; मित्ता. २१२१ (=); अप. २१२१ ब्राह्मणं (श्रोत्रियं); स्मृच. ३१३; रत्न. १२७; दवि. ९ द्वा (द्वं) सवि. १५२ (=); व्यप्र. १४ (=); व्यउ. ८ (=); व्यम. १०४; वित्ता. ७५७; बाल. २१२८६; सेतु. १००; ससु. १४७.

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् * ॥

(१) आत्मपरित्राणार्थमविचारेण योद्धव्यम् । तदनु-
दर्शयति— गुरुमिति । आतताय्युच्यते यः शरीरघनदार-
पुत्रनाशे सर्वप्रकारमुद्यतः । तमविचारयन्न विचारयन्
हन्यात् । गुर्वादिग्रहणमर्थवादः । एतेऽपि हन्तव्याः किमु-
तान्य इति । एतेषां त्वाततायित्वेऽपि वधो नास्ति । ‘आचा-
र्यं च प्रवक्तारम्’ इत्यनेनापकारिणामपि वधो निषिद्धः ।
‘गुरुमाततायिनं’ इति शक्यः संबन्धस्तथा सत्याततायि-
विशेषणमेतत्ततो गुर्वादिव्यतिरिक्तस्य आततायिनः प्रतिषेधः
कुतः स्याद्वाक्यान्तराभावात् । अथ ‘नाततायिवधे दोषः’
इत्येतद्वाक्यान्तरं सामान्येनाभ्यनुज्ञापकमिति । तदपि न ।
विधेरश्रवणात् । पूर्वशेषतया चार्थवादत्वे प्रकृतवचनत्वात्
इह भवन्तस्त्वाहुर्यद्यपि आततायिनमित्येव विधिरवशिष्टो-
ऽर्थवादस्तथापि गुर्वादीनां वधानुज्ञानं यतोऽन्यदपकारि-
त्वमन्यदाततायित्वं, यो ह्यन्यां काञ्चन पीडां करोति न सर्वेण
शरीरादिना सोऽपकारी, अन्यस्त्वाततायी, तथा च
पृच्छते— ‘उद्यतासिर्विषाग्निभ्यां शापोद्यतकरस्तथा ।
आथर्वणेन हन्ता च पिशुनश्चापि राजतः ॥ भार्याति-
क्रमकारी च रन्ब्रान्वेषणतत्परः । एवमाद्यान्विजानीयात्स-
र्वानेवाततायिनः ॥’ आयान्तमिति वचनादात्तशस्त्रो हन्तु-
मभिधावन्, दास्यन् वा जिहीर्षन् हन्तव्यः । कृते तु
दोषे किमन्यत्करिष्यतीति उपेक्षा इति ब्रुवते । तदयुक्तम् ।
यतः ‘प्रकाशमप्रकाशं चे’ति वक्ष्यति । सम्पन्नौ ह्येतौ करि-
ष्यन् कृतवांश्च, दुष्टौ चेति । तस्मादायान्तमित्यनुवादः
कर्तुमागतं कृत्वा वा गतमिति । आततायित्वाच्चासौ
हन्यते । न च कृतवत आततायित्वमपैति । नास्यात्मनो
रक्षार्थं एव वध ‘आत्मनश्च परित्राण’ इत्यनेनोक्तः ।

×मेधा.

(२) आततायिनं हननप्रवृत्तं हन्यादेवाङ्गच्छेदादि-
रूपघातेन न त्वत्यन्तं, ‘अन्यत्र गोब्राह्मणादि’ति गौतम-
स्मृतेः । मवि.

* मिता., अप., व्यप्र. व्याख्यानानि व्यवहारमातृकायां
प्रथमभागे दर्शनविधौ (पृ. ८३, ८४, ८५ इत्यत्र क्रमेण) द्रष्ट-
व्यानि । दवि., व्यप्र. मित्वावज्ञावः ।

× गौरा. मेधावत् ।

१ तस्त्वा. २ सृष्ट्येदिति त.

(३) घर्मोपरोधकादिहननचोदना स्मृत्यनुमेया । न
प्रत्यक्षश्रुतेति दर्शयितुमुपक्रमस्मृतिवाक्यमाह मनुः—
गुरुमिति । अत्र गुर्वादिपदानि अन्यपरतया प्रयुक्तानीति
दर्शयितुं तेषां तात्पर्याथो वृत्तिकारेण दर्शितः । गुरुं वा
मान्यतमं वेत्यर्थः । बालवृद्धौ वा कृपाविषयमपीत्यर्थः ।
ब्राह्मणं वा बहुश्रुतं समस्तपात्रगुणयुक्तमित्यर्थः । उत्तरा-
र्थाथोऽपि तेनैव दर्शितः । वधार्थमधिकारविच्छेदा-
र्थमवश्यमेतीत्याततायिनमायान्तं प्रवृत्तं प्राणाद्यपहारे
हन्यादेव, अविचारयन्निति अवधारणं नियमपरमिति ।
काल्यायनोऽपि— ‘विनाशहेतुमायान्तं हन्यादेवाविचा-
रयन्’ । विनाशहेतुं उदासीनम् (?) । जलभेदादिविनाश-
हेतुमाततायिनमिति यावत् । एतदुक्तं भवति । किमात-
तायिवधः सदोषो निर्दोषो वेति विचारो न कर्तव्यः ।
वैधत्वादिति । क्वचिदपि विचारयन्निति पाठादर्शनात् ।
वसिष्ठोऽपि वैधत्वं दर्शयति— ‘आततायिनमायान्तमपि
वेदान्तगं रणे । जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन भ्रूणहा-
भवेत् ॥’ इति । अत्र केचिदाहुः । आततायिवधविधि-
वाक्यत्रयेऽप्यायान्तमिति वचनादात्तशस्त्रो हन्तुमुन्मुखोऽ-
भिधावन् दारादीन् वा जिहीर्षन् हन्तव्यः । कृते त्वनर्थे
किमन्यत्करिष्यतीति उपेक्षणीय एवेति । तत्र कृते त्वनर्थं
इत्याद्ययुक्तमित्यपरे दूषयन्ति । करिष्यन् कृतवांश्च द्रावपि
दौष्ट्येन समौ वधाहंवेव । तस्मादायान्तमिति पदं
कृत्वाऽऽगतस्याप्याततायिन उपलक्षणार्थमुक्तमिति । अन्ये
पुनरेवमाहुः—वर्तमानार्थजिघांसन्तमिति विधिवाक्यस्थ-
पदपर्यालोचनया वर्तमानविषदानादिव्यापारा एवातता-
यिन उच्यन्ते । तव्यापारनिवारणं च यत्राततायिवधमन्त-
रेण न संभवति तत्रैव तद्वधाम्यनुज्ञा, सत्यां गतौ वध-
स्यानुचितत्वात् । तेन विषोपदानादौ व्याप्रियमाणः
प्रहरणादिमात्रेणानिवार्यः हन्तव्यः । विषदानादौ व्यापृतस्य
ग्रह(प्रहर)णादिमात्रेण निवारयितुं शक्यस्य वा वधो
दोषनिमित्तमेवेति । तदपि न । न हि विषदानादिव्यापारेषु
व्यापृतानां व्यापारनिवृत्तावपि पूर्वसिद्धं परशरीरादिविना-
शहेतुत्वलक्षणमाततायित्वमपैति, तदुक्तं मेधातिथिना—
‘आततायित्वाच्चासौ हन्यते । न हि कृतवत आततायित्व-
मपैती’ ति । तेन विषदानादौ व्यापृतोऽपि आततायित्वा-
द्धन्तव्य इति मेधातिथेरभिप्रायः ।

ननु च दारादिरक्षणार्थो वध इति कृते दारादि-
विघ्नवे पश्चाद्बधो व्यर्थ इति उपेक्ष्य एव कृतवानाततायी,
न हन्तव्यः। भैवम्। न दारादिरक्षणार्थो वधविधिः किन्तु
दारादिविघ्नवादिनिमित्ते वधो विधीयते। रक्षणार्थस्तु
वधविधिरात्मनश्च परित्राण इत्यादौ क्वचिदेव, तस्मात्कृत-
वानित्याततायी नोपेक्ष्यः। स्मृच. ३१३-४

(४) गुरुबालवृद्धबहुश्रुतब्राह्मणानामन्यतमं वधोद्यत-
मागच्छन्तं विद्यावित्तादिभिस्त्क्रष्टं पलायनादिभिरपि
स्वनिस्तरणाशक्तौ निर्विचारं हन्यात्। अत एवोशना—
'गृहीतशस्त्रमाततायिनं हत्वा न दोषः'। कात्यायनश्च
भृगुशब्दोल्लेखेन मनुक्तश्लोकमेव व्यक्तं व्याख्यातवान्।
'आततायिनि चोत्कृष्टे तपःस्वाध्यायजन्मतः।
वधस्तत्र तु नैव स्यात्पापं हीने वधो भृगुः॥'
मेधातिथिगोविन्दराजौ तु 'स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च ब्रन्धमेण
न दुष्यति' इति पूर्वस्यायमनुवादः। गुर्वादिकमपि हन्यात्
किमुतान्यमपीति व्याचक्षाते। ममु.

(५) अथवा — दुरुक्तभाषणमेवात्र हिंसा 'वाग्भि-
सैसैर्जघान ताम्' इति वचनात्। अथवा प्रतिकूलचरणे
हन्तिप्रयोगो, यथा चात्र प्रतिभाति तथा द्वैतविवेके
वक्ष्यामः। दवि. १०

(६) अविचारयन् गुर्वादीन् हन्यात्, त्यागं कुर्यात्
न तु हिंसां कुर्यात्। हन हिंसागत्योरित्यस्य धातोर्गत्यर्थता,
न हिंसार्थम्। भाच.

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।

क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः*॥

उद्यतासिर्विषाग्निभ्यां शापोद्यतकरस्तथा।

आथर्वणेन हन्ता च पिशुनश्चापि राजनि+॥

* 'अग्निदो' इत्यस्य श्लोकस्य व्याख्यानं वसिष्ठे (पृ. १६०८)
द्रष्टव्यम्।

+ 'उद्यतासि' इत्यादिश्लोकयोर्व्याख्यानं एतत्तमानकात्या-
यनवचनयोरेपरि अस्मिन्नेव प्रकरणे द्रष्टव्यम्।

(१) मस्मृ. ८।३५० इत्यस्योपरिष्ठात् प्रक्षिसश्लोकोऽयम्;
गोरा. रहरश्चैव (रापहारी च) ह्या (आ) वसिष्ठः; मिता. २।२९
(=); मवि. गोरावत्, स्मृत्यन्तरम्; दवि. २३४ गोरावत्,
मनुवसिष्ठैः; सवि. १५३ (=) रहरश्चैव (रापहर्ता च) ह्या
(आ); मच. (=) सविवत्; व्यग्र. १४ (=) ह्या (आ);
भाच. (=) गोरावत्. अधिकस्थलनिर्देशो वसिष्ठे द्रष्टव्यः।

(२) मस्मृ. ८।३५० इत्यस्योपरिष्ठात् प्रक्षिसश्लोकोऽयम्;
मेधा. (=); भाच. (=).

भार्यारिक्थापहारी च रन्ध्रान्वेषणतत्परः।

एवमाद्यान्विजानीयात्सर्वानेवाततायिनः॥

नैततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।

प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ÷॥

(१) न कश्चन इति नाधर्मो न दण्डो न प्रायश्चित्त-
मिति। प्रकाशं जनसमक्षं, अप्रकाशं विषादिदानेन
येनकेनचिदुपायेन। मन्युः क्रोधाभिमानिनी देवताऽसौ
मन्युमृच्छति। नात्र हन्तृहन्तव्यभावोऽस्ति पुरुषयोः,
अयं आततायिक्रोध इतरेण हन्यत इत्यर्थवादोऽयम्।
यथा प्रतिग्रहकामः, को मद्यं ददातु, नाहं प्रतिग्रहीता,
न त्वं दाता, ततश्च कुतः प्रतिग्रहदोषो मामेवमत्रापि।
इह साहसिके दण्डो नाम्नातः, स दण्डपारुष्ये द्रष्टव्यः।
इह त्वधिकतरो यत उक्तं 'विज्ञेयः पापकृत्तमः'
इति। मेधा.

(२) हन्तुकृतो मन्युः क्रोधाभिमानिनी देवता तं
मन्युं हन्यमानगतं क्रोधं निवर्तयति। साहसे चापराधा-
पेक्षया प्रथममध्यमोत्तमसाक्षादङ्गच्छेदनिर्वासनादयो
दण्डाः कार्याः। * गोरा.

(३) न कश्चन दोषो भवतीति ब्रह्महत्यादिऋतमपि
पापं न तादृशं भवति। तथाहि प्रायश्चित्तमपि तत्रात्फ-
मेव स्मृतिकारिर्निबद्धम्। हन्तुर्हिंसा आततायिनो हिंसां
प्रति ऋच्छति तत्प्रतिरुद्धा न फलं प्रसूते। तन्न कर्तरि
पापं जनयति हिंसितेन हिंसाकरणादिति तात्पर्यम्। मवि.

÷ विश्व., मिता. व्याख्याने व्यवहारमातृकायां (पृ. ८२,
८३) द्रष्टव्ये।

* शेषं मेधावत्। मसु., मच. गोरावत्।

(१) मस्मृ. ८।३५० इत्यस्योपरिष्ठात् प्रक्षिसश्लोकोऽयम्;
मेधा. (=) रिक्थापहारी (तिक्रमकारी); भाच. रन्ध्रा (छिद्रा)
शेषं मेधावत्.

(२) मस्मृ. ८।३५१ [स्तं मन्यु (स्तन्मन्यु) Noted by
Jha]; विश्व. २।२९ (=) पू.; मिता. २।२९ (=) प्रकाशं
वाऽ(प्रच्छन्नं वा) : २।२८६ (=); स्मृच. ३१४; पमा.
४६७ (=); रत्न. १२७; दवि. ९ पू.; नृप्र. २०८ नाततायि
(न तत्रारि); सवि. १५२ (=) मितावत् : १५५ (=) पू.;
व्यग्र. १४ (=), ४०० (=) मितावत्; व्यड. ९ (=)
पू. : १३७ पू., स्मृतिः; विता. ४९९ पू. : ७५७; सैतु.
१०० (=); समु. १४७.

(४) एतद्भाष्यकारो मेधातिथिव्याचष्टे । न कश्च-
नेति । नेहाधर्मो न दण्डो न प्रायश्चित्तम् । प्रकाशं
आभाष्य जनसमक्षम् । अप्रकाशं विषदानादिना येन-
केनचिदुपायेन । मन्युः क्रोधाभिमानिनी देवता । स
मन्युमुच्छति । नात्र हन्तृहन्तव्यभावोऽस्ति पुरुषयोः ।
आततायिक्रोधः इतरेण क्रोधेन हन्तव्य इत्यर्थवादोऽय-
मित्यादिग्रन्थेन अत्राप्रकाशवधेऽपि दोषाभावं वदन्
मनुरप्युपप्लवं कृत्वा गतेऽप्याततायिनि विषदानादिना
वधो न दोषायेति दर्शयति उपप्लवकरणसमये विषदाना-
संभवात् ।

+ स्पृच. ३१४

आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् ।
न हिंस्याद्ब्राह्मणान् गाश्च सर्वाश्चैव तपस्विनः ॥

(१) आचार्यं उपनेता । प्रवक्ता अध्यापको
व्याख्याता । गुरुस्ताभ्यामन्यः पितृव्यमातुलादिः । सर्वा-
श्चैव तपस्विनः । प्रायश्चित्तप्रवृत्तान् पाताकिनोऽपीति
सर्वग्रहणम् । अविशेषेण सर्वभूतानां तत्र तत्र हिंसा
निषिद्धा । पुनर्वचनमाचार्यादीनामाततायिनामपि निषे-
धार्थमिति केचित् । यस्तु 'गुरुं वा बालवृद्धौ वा'
इत्यादिरर्थवादोऽस्यैव प्रतिप्रसवः । उपाध्यायस्त्वाह
नायं प्रतिषेधः पर्युदासोऽयं संकल्पविधानार्थो 'नोद्यन्त-
मादित्यमीक्षेत' इतिवत् । अतः प्रयत्नेनातिक्रान्तं भवति
संकल्पप्रतिषेधश्चेति । अथवा दुरुक्तभाषणं हिंसा 'वाग्भि-
स्तैस्तैर्ज्ञानं ताम्' इति प्रयोगदर्शनात् । अथवा प्रति-
कूलाचरणे हन्तिः प्रयुक्तः ।

* मेधा.

(२) आचार्यमध्यापयितारं चोपनयनमात्रकारिणं
लोकवत् (१) पितरं मातरं गुरुं 'अल्पं वा बहु वा यस्य'
त्युक्तं, गोब्राह्मणतपोनिष्ठांश्चाततायिनोऽपि न हिंस्याद-
न्यथा सामान्यहिंसानिषेधे सतीदं पृथक् वचनं अनर्थकं
स्यात् ।

गोरा.

(३) आचार्यं उपनयनपूर्वकवेदाध्यापकं प्रवक्तारं
वेदार्थव्याख्यातारं, गुरुं 'अल्पं वा बहु वा यस्य' इत्यु-

+ मेधावद्भावः; अयं ग्रन्थः मेधातिथिसमीक्षार्थं धृतः ।

* अन्यव्याख्यानानि अत्रैव गतांशानि ।

मस्य. ४।१६.२ [ब्राह्मणान् गाश्च (ब्रह्मर्हं गां वा (१))
[अप. १।१५४ गान् (गं); दधि.
२.३९ गाश्च (गां च); समु. १४७.

क्तम् । आचार्यादींस्तु न हिंस्यात् । प्रतिकूलाचरणेऽत्र
हिंसाशब्दः । गोविन्दराजस्तु सामान्येन हिंसानिषेधा-
दाततायिनोऽप्येतान् हिंस्यादिति व्याख्यातवांस्तदयुक्तम् ।
'गुरुं वा बालवृद्धौ वा' इत्यनेन विरोधात् । ममु.

महापातकिसाहासिकदण्डविधिः

+ ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेथी च गुरुतल्पगः ।

एते सर्वे पृथग्ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥

चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ।

शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।

स्तेथे च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पमान् ॥

असभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याविवाहिनः ।

चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥

ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ।

निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥

प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम् ।

नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥

आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः ।

विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥

इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः ।

सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ॥

मातापितास्त्रीपुत्राणामन्योन्यत्वागे दण्डः

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ।

त्यजन्नपतितानेतान् राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥

(१) माता न त्यागमर्हति । न त्याज्या । त्यागः
स्वग्रहान्निष्कासनं, मातृवृत्तेः स्वलिताया उपकारस्योप-
क्रियायामुदितायामकरणे । एवं पित्रादीनामपि व्याख्ये-
यम् । संबन्धे साहचर्यात् स्त्री भार्यैवाभिप्रेता । अपतितान-
नांमेषां त्यागो नास्ति । मातुस्तु 'न माता पुत्रं प्रति
पततोत्येके' इति शातातमः । भार्यायाश्चापि त्यागोऽ-

+ 'ब्रह्महेत्याद्यष्टश्लोकानां व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च
प्रथमभागे दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५८०-८१) द्रष्टव्यः ।

(१) मस्य. ८।३८९; अप. २।२३७ दण्ड्यः (दाप्यः);
व्यक. १२० अपक्व; विर. ३५७; विचि. १५४ शा (की) ;
१८२ (=); दधि. ३०४; वीमि. २।२३७; सेतु. ३०३४;
समु. १५७.

संभोगो गृहकार्यनिषेधश्च । भक्तवस्त्रादिदानं तु न निषि-
ध्यते । 'योषित्सु पतितास्वपि । वस्त्रान्नपानं देयं च
वसेयुः स्वगृहान्तिके ॥' इति पठ्यते । मेधा.

(२) मातृपितृभार्यापुत्राः त्यागं भरणशुश्रूषाद्यकरणा-
त्मकं नार्हन्ति । अत एतानपतितानपि परित्यजन्
अन्योन्यपरित्यागे राज्ञा षट् शतानि दण्ड्यः । *गोरा.

(३) समुच्चितानां त्याग एतत् । अप. २।२३७

निमित्तविशेषेषु प्रातिवेश्यब्राह्मणाद्यभोजने दण्डविधिः

प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विशतिद्विजे ।

अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥

(१) विशन्त्यस्मिन्निति वेशो निवासस्तत्प्रातिगतः
प्रतिवेश्यः गृहामिमुखस्तत्र भवः प्रातिवेश्यः । प्रदीर्घपाटे
स्वार्थिकोऽण् । एवमनुवेश्यः पृष्ठतो वसन्, तौ चेन्न
भोजयेत् यदि स्वगृहमानीय कल्याणे विवाहाद्युत्सवे
विंशतिमात्रा यत्र द्विजा अन्ये भोज्यन्ते, तदा माषकं
सुवर्णं दण्डं दाप्यो, हिरण्यमित्युत्तरत्र विशेषणादिहापि
विज्ञायते । अर्हौ यदि तौ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ योग्यौ
भवतो न द्विषन्तौ नात्यन्तनिर्गुणौ । ÷ मेधा.

(२) प्रातिवेश्यो निरन्तरगृहस्थः । अनुवेश्यस्तद-
नन्तरः । कल्याणे उत्सवे । विंशतिब्राह्मणा यत्र भोज्यन्ते
तत्र । अर्हौ योग्यौ । विप्र इति वचनात् क्षत्रियस्य
तादृग्ब्राह्मणाभोजने न दोष इत्यर्थः । माषकं सुवर्णस्य ।
+ मवि.

(३) उत्तरत्र हैरण्यग्रहणादिह रौप्यमाषं दण्डमर्हति ।
X ममु.

(४) माषकश्चात्र रौप्यो बोद्धव्यः । उत्तरश्लोके मान-
वेन अधिके भूतितुल्यात्मके प्रातिवेश्यश्रोत्रियाभोजन-
रूपेऽपराधे विशिष्य हिरण्यमाषकदण्डाभिधानादिति हला-
युधः । X विर. ३५९

(५) स्वगृहस्याभिमुखं गृहं प्रतिवेशः, अभिंतः समी-
पस्थं गृहमनुवेशस्तत्रस्थौ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ । नन्द.

* मवि., ममु. गोरावत् । ÷ गोरा. मेधावत् ।

+ मच., माच. मविवत् । X शेषं मविवत् ।

(१) मस्य. ८।३९२ [प्राति (प्रति) Noted by
Jha]; अप. २।२६३; व्यक. १२०; विर. ३५८ प्रो
(प्रो); दवि. ३०५; समु. १५७.

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन् ।

तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हैरण्यं चैव माषकम् ॥

(१) अप्रातिवेश्यार्थोऽयमारम्भः । सब्रह्मचारिणामयं
नियमः । श्रोत्रियस्तादृशमेव श्रोत्रियं गुणवन्तं, भूति-
कृत्येषु भूतिर्विभवस्तन्निमित्तेषु कार्येषु, विभवे धनसंपत्तौ
सत्यां यानि क्रियन्ते गोष्ठीभोजनादीनि, अथवा भूति-
ग्रहणं कृत्यविशेषणं, भूतिमन्ति यानि कृत्यानि प्राचुर्येण
प्रभूततया विवाहादीनि क्रियन्ते, यत्र विंशतेरधिकनरा
भोज्यन्ते तादृशेषूत्सवेषु, अभोजयंस्तदर्थमन्नं भूतिकृत्येषु
भोक्तव्यं तादृग्विगुणं तस्मै दापयेत्, राज्ञे वा, उभयं,
हिरण्यं माषकं वा । मेधा.

(२) विद्याचारवांस्तथाविधमेव गुणवन्तं विभव-
कार्येषु विवाहादिषु प्रकृतत्वात्प्रातिवेश्यानुवेश्यावभोजयन्
तदन्नं भोजिताद्द्विगुणमन्नं दाप्यो हिरण्यमाषकं च राज्ञा ।
ममु.

पितापुत्रविरोधसाक्षादिदण्डविधिः

पितापुत्रविरोधे तु साक्षिणां दशपणो दमः ।

यस्तयोः सान्तरः स्यात्तु तस्य तूत्तमसाहसम् ॥
सान्तरः स्यात् तयोर्मध्यगो भूत्वा विरोधमुत्पादयेत् ।

विर. ३६०.

अभक्ष्यापेयादिप्राशयित्प्रसित्तुदण्डविधिः

अभक्ष्यमथवाऽपेयं वैश्यादीन् प्रशयन् द्विजान् ॥
जघन्यमध्यमोत्कृष्टान् दण्डान्नाहुर्यथाक्रमम् ॥

पैणाः शूद्रे भवेद्दण्डः चतुःपञ्चाशदेव तु ।
प्रसितारः स्वयं कार्या राज्ञा निर्विषयास्तु ते ॥

अत्र विष्णुक्तो दण्डो ब्राह्मणादिषु उत्तमेषु दूषितेषु,
मन्वाद्युक्तश्चानुत्तमेष्वित्यविरोधः । विर. ३६१

(१) मस्य. ८।३९३ है (हि) [तदन्नं (तदन्नं) हैरण्यं
चैव (दण्डं चैव स) Noted by Jha]; अप. २।२६३;
विर. ३५९; दवि. ३०५ षमो (पु भो); समु. १५७.

(२) विर. ३६०.

(३) अप. २।२३३ प्राश (भक्ष) शान् दण्डानाहुर्य (द-
दण्डानहैष); व्यक. १२१ नाहुर्य (नहैष); विर. ३६१
व्यकवत्; विचि. १५५; दवि. ३०८ वैश्यादीन् प्राश (ब्राह्म-
णान् प्राश) पू; सेतु. २९७ प्राशयन् (प्रासयेत्).

(४) अप. २।२३३; व्यक. १२१; विर. ३६१ प्रसि
(शासि); विचि. १५५ पू; दवि. ३०९ उत्त.; सेतु.
२९७ पू.

धर्मोपजीविनो धर्मच्युतस्य दण्डविधिः

यथापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ।

दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥

(१) धर्मजीवनो ब्राह्मणो, धर्मसमयात् च्युतः स्व-
कर्तव्यभ्रष्टः, दण्डेनैव तमप्योषेत्, दण्डेन विवासनादिना,
तमप्योषेत् दहेदित्यर्थः । मवि.

(२) याजनप्रतिग्रहादिना परस्य यागदानादिधर्म-
मुत्पाद्य यो जीवति स धर्मजीवनो ब्राह्मणः सोऽपि यो
धर्ममर्यादायाश्च्युतो भवति तमपि स्वधर्मात्परिभ्रष्टं
दण्डेनोपतापयेत् । * ममु.

(३) धर्मात् प्रच्युतो धार्मिकत्वख्यापनेन जीवंश्चोर-
नुल्य इत्यभिप्रायः । नन्द.

उत्कृष्टकर्मभिर्जीविन् अधमजातीयो दण्ड्यः

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ।

तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥

यो जात्या अधमो निःकृष्टः क्षत्रियादिः । सत्यपि

प्रकृतत्वे राजन्यस्य सर्वेषामयं ब्राह्मणवृत्तिप्रतिषेधः । एव-
मेवायं श्लोकः । उत्कृष्टो निरपेक्षो ब्राह्मण एव । कर्मभि-
रध्ययनोऽदिभिर्जीवति । दण्डोऽयं सर्वस्वग्रहणप्रवासनैः ।

+ मेधा.

तडाग-झोडागार-देवतागार-जलमार्गादिभेदनाम्परिषेधु

दण्डविधिः

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ।

यद्वापि प्रतिसंस्क्रुर्याद्वाप्यस्तूत्तमसाहसम् × ॥

* मच. ममुवत् । + अन्यव्याख्यानानि यथाश्रुतानि ।

× विर. व्याख्यानं 'यस्तु पूर्वनिविष्टस्य' इति श्लोके
द्रष्टव्यम् । दवि. व्याख्याने मवि., ममु. च अनूदितम् ।

(१) मस्मृ. १।२७३; व्यक. १६४; विर. ६२५
तमप्यो (समाप्तो); दवि. २६० तमप्यो (समाप्तो) द्वि वि
(द्विधि); बाल. २।२७६; सेतु. ३२८ वनः (विनः)
तमप्यो (समाप्तो) माद्धि विच्युतम् (म्याद्धिच्युतम्); समु.
१५८ वनः (विनः) क्रमेण यमः.

(२) मस्मृ. १०।९६ [लोभाद (मोहाद) Noted by
-Jha]; अप. २।२३३ प्रवा (विवा): २।३०३; व्यक.
१२१ पू.; विर. ३६३ कर्मभिः (जातिभिः); विचि. १५७;
दवि. ३०२; धीमि. २।३०४ जात्या (जातो); सेतु.
-२९७, ३०५.

(३) मस्मृ. १।२७९ ग. यद्वा (तद्वा) [तडागभेदकं

(१) तडागग्रहणमुपलक्षणार्थम् । नद्युदकहरणेऽप्ययं
दोष इति केचित् । तदयुक्तम् । महान् हि तडागभेदने
अपराधः । स्वल्पो नदीभेदने । तडागस्य हि वप्रभेदने-
नोदकहरणेऽप्ययमेव विधिः । मेधा.

(२) तडागभेदकं तडागजलस्य बहिर्निःसारकं
अप्सु मज्जयित्वा हन्यात् । शुद्धवधेन शिरश्छेदेन ।
यस्त्वङ्गुलीकरच्छेदादिको वधः सोऽतिदुःखहेतुत्वादशुद्ध-
वधः । एतत् कामतः । अकामे त्वाह तच्चापीति ।
तत्तडागादि विगुणीकृतं सम्यक्कृत्वोत्तमसाहसं दण्डं
दद्यात् । मवि.

(३) तटाकमहत्वाल्पत्वानुसारेणात्र दण्डविकल्पे
व्यवस्था कार्या । स्मृच. ३२६

(४) यः स्नानदानादिना जलोपकारकं भागं सेतु-
भेदादिना विनाशयति तमप्सु मज्जनेन प्रकारान्तरेण वा
हन्यात् । यद्वा यदि तडागं पुनः संस्क्रुर्यात्तदोत्तमसाहसं
दण्ड्यः । ममु.

(५) अनेककोटिजीविनाशकत्वाद्बर्धाः । यदि वा
प्रतिसंस्क्रुर्यात्, विषादिना द्रव्येण दूषयेत्तदा संस्क्रुर्या-
दिति । * मच.

(६) शुद्धवधेन शस्त्रवधेन । नन्द.

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् ।

हस्त्यश्वरथहर्तृश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥

* शेषं मविवत् ।

(तडागभेदकान्) डाग (डाक) यद्वापि (तथापि) द्वाप्यस्तू
(द्वाप्यश्चो) Noted by Jha]; अपु. २२७।५४ पूर्वोषे
(तडागदेवतागारभेदकान् घातकेन्द्रः) पू.; व्यक. १२१
यद्वा (तद्वा) द्वाप्यस्तू (द्वात्चो); मवि. यद्वा (तच्चा);
स्मृच. ३२६ डाग (टाक) यद्वा (तच्चा) द्वाप्यस्तू (द्वात्चो);
विर. ३६५ व्यकवत्; व्यनि. ५०९ डाग (टाक) द्वाप्यस्तू
(द्वात्चो); दवि. ३१३ यद्वा (तच्चा) द्वाप्यस्तू (द्वात्चो);
सवि. ४७४ डागभे (टाकळे) यद्वापि (स यदि) द्वाप्यस्तू
(द्वात्चो); मच. यद्वापि (यदि वा); भाच. मविवत्.

(१) मस्मृ. १।२८०; मित्ता. २।२७३; अप. २।२७३
कोष्ठा (अग्न्या); व्यक. ११४ दकान् (दिनः); विर. ३२०
हर्तृश्च (हन्तृश्च) शेषं व्यकवत्; विचि. १३६ (=) रयन्
(रितः) शेषं व्यकवत्; व्यनि. ५०९ को (गो); दवि.
७४ हर्तृश्च (हन्तृश्च) उक्त. : १३८, १४२ विरक्तः; व्यक.

(१) कोष्ठागारं राजगृहम् । मवि.

(२) राजसंनन्धिधान्यादिषु धनागारायुधग्रहयोर्देव-
प्रतिमाग्रहस्य च बहुधनव्ययसाध्यस्य विनाशकान् हस्त्यश्व-
रथस्य चापहर्तृन् शीघ्रमेव हन्यात् । यत्तु संक्रमध्वज-
यष्टिदेवताप्रतिमाभेदिनः पञ्चशतदण्डं वक्ष्यति सोऽस्मा-
देव देवतागारभेदकस्य वधविधानान्मृन्मयपूजितोज्जित-
देवताप्रतिमाविषयोऽत्र द्रष्टव्यः । मसु.

(३) अविचारयन् इत्यनेन सदस्यपि प्रश्नो न कार्यः ।
मच.

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ।

आगमं वाप्यपां भिन्धात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥

(१) हरेत् स्वसमीपतडागं प्रति नयेत् । आगमं
तडागे जलागमं रुन्ध्यात् । आगमं वाप्यपां भिद्यादिति
क्वचित्पाठः । स दाप्यः तत्सम्यक्करणपूर्वम् । + मवि.

(२) यः पुनः प्रजायै पूर्वं केनचित्कृतस्य तडागस्यो-
दकमेव गृह्णाति । कृत्स्नतडागोदकनाशने वधदण्डः
प्रागुक्तः । तथोदकागमनमार्गं सेतुबन्धादिना यो नाशयति
स प्रथमसाहसं द्रष्टव्यः । मसु.

(३) अत्र च (द्वितीयश्लोकेन) तडागभेदके
उत्तमसाहसाभिधानं पूर्वोक्ततडागापेक्षया उत्कर्षमादाये-
त्यविरोधः । तोयाधारविशेषादेव विकल्प इत्यन्ये ।
विर. ३६५

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ।
द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥

+ स्पृच. मविबद्भावः ।

२६३ कोष्ठा (अन्य); वीमि. २।२७३ अपवत्; सेतु.
२३७-८ व्यकवत्; समु. १५८ को (गो) क्रमेण यमः.

(१) मसु. ९।२८१ भिन्धा (भिद्या) [(डाग (डाक)
Noted by Jha]; व्यक. १२१; मवि. भिन्धात्
(रुन्ध्यात्); स्पृच. ३२६ डाग (टाक) वाप्यपां भिन्धात्
(वाप्युपारुन्ध्यात्); विर. ३६५ वाप्य (चाप्य); व्यनि. ५१०
पूर्वनि (पूर्व नि) डाग (टाक) बृहस्पतिः; दवि. ३१३
विरवत्; मच. मसुवत्; सेतु. २५७ विरवत्.

(२) मसु. ९।२८९; अप. २।२८२ भङ्क्ता (भेत्ता)
वास (माप); व्यक. १३२ स्य च (स्याव) शेषं अपवत्;
विर. ३६७ स्य च (स्याव) भङ्क्ता (भेत्ता); विचि. १५९ भेत्ता
(भेत्ता) शेषं अपवत्; व्यनि. ५११ भङ्क्ता (भेत्ता);
दवि. २९९ व्यकवत्; वीमि. २।२८२ अपवत्; बाल.

(१) दुर्गगतानां प्राकारादीनां विनाशने प्रवासनं
दण्डः । परिखा भूभागाः स्वताः । मेधा.

(२) राजगृहपुरादिसंनन्धिनः प्राकारस्य भेदकं तदी-
यानामेव परिखाणां पूरयितारं तद्वतानां द्वाराणां भङ्क्तारं
शीघ्रमेव देशान्निर्वासयेत् । मसु.

(३) परिखाः परितः सजलखाताः । ते चेत्स्थास्यन्ति
पुनः करिष्यन्तीति कृत्वा क्षिप्रं प्रवासनमिति । मच.

विविधद्रव्यनाशपराधेषु दण्डविधिः

*द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।

स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञे दद्याच्च तत्समम् ॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च ।

मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥

संक्रमध्वजप्रतिमादिद्रव्यभेदनदूषणादौ दण्डविधिः

*संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।

प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥

(१) संक्रमः येन संक्रामन्ति मार्गोपावतरन्ति जलोप-
स्पर्शादिना निमित्तेन, शुभ्रं वासः ध्वजः चिह्नं राजामा-
त्यादीनां देवायतनेषु च । यष्टिः ईदृशे च । प्रतिमाना-
मिति व्याख्यातम् (१) । प्रतिकुर्यात्समदधीताप्रत्यापत्तिं
नयेत् । मेधा.

(२) ध्वजो देवकुलादिध्वजः । यष्टिः ग्रामादिपताका-
यष्टिः । प्रतिमानां मनुष्यप्रतिकृतीनाम् । देवप्रतिमासु तु
वधस्तदायतनभेद एव वधोक्तः । मवि.

(३) संक्रमो जलोपरि गमनार्थं काष्ठशिलादिरूपः,
ध्वजः चिह्नं राजद्वारादौ, यष्टिः पुष्करिण्यादौ, प्रति-
माश्च क्षुद्रा मृन्मय्यादयस्तासां विनाशकः पञ्चशतपणान्
दद्यात्तच्च विनाशितं सर्वं पुनर्नवं कुर्यात् । X मसु.

* एतौ श्लोकौ दण्डपारुष्ये मनुना आम्नातौ । अनयो-
र्व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दण्डपारुष्यप्रकरणे द्रष्टव्यः ।

X विर., मच. मसुवत् ।

२।२२९; सेतु. २५७ अपवत्; समु. १५८ रस्य (राणां)
भङ्क्ता (भेत्ता) क्रमेण यमः

(१) मसु. ९।२८५; अप. २।२३३; व्यक. १२१
पञ्च दद्याच्छ (दद्यात्पञ्चश) उक्तः; विर. ३६३ च (त्स)
शेषं व्यकवत्; विचि. १५७ व्यकवत्; व्यनि. ५१० तत्सर्वं
(तत्पूर्व); सेतु. २५६ विरवत्; समु. १५८ च तत्सर्वं
(अथापूर्व) क्रमेण यमः.

अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ।

मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥

(१) यानि स्वयमदुष्टानि द्रव्याणि ल्याभार्थं दूषयति, तथा धान्यविक्रयी क्षेत्रे निर्दोषं धान्यमुत्तमं तृणसुसैयोजयति, कुङ्कुमादेश्च तेन अकुङ्कुमादिना द्रव्यान्तरेणैकीकरणं, मणयो मुक्तास्तेषां भेदनं द्विधाकरणम् । अत्र वेधतिभेदने विद्यते अनेकार्थत्वाद्वातूनाम् । वेधतेः रूपमेतत् । मणयो हीनमध्यमोत्कृष्टतमा भवन्ति । तत्र दण्डकल्पना कर्तव्या । मध्यमेषु मध्यम उत्तमेषुत्तमः ।

मेधा.

(२) अदुष्टद्रव्याणामपद्रव्यप्रक्षेपेण दूषणे, मणीनां च माणिक्यादीनामभेदानां विदारणे, वेध्यानामपि मुक्तादीनामनवस्थानवेधने प्रथमसाहसो दण्डः कार्यः । सर्वत्र परकीयद्रव्यनाशे द्रव्यान्तरदानादिना स्वामितुष्टिः कार्या ।

*मसु.

राजमार्गदूषणे दण्डविधिः

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ।

स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् * ॥

अनार्तः सन् यो राजपदेषु पुरीषं कुर्यात् कार्षापणद्वयं दण्डं दद्यात्स चामेध्यं शीघ्रमेवापसारयेत् । मसु

आपद्रवस्तथा वृद्धो मर्मिणी बाल एव वा ।

परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः + ॥

अभिचारमूलक्रियाकृत्यासु दण्डविधिः

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ।

मूलकर्मणि चानार्तैः कृत्यासु विविधासु च ॥

* विर., मच. मसुवत् ।

× मेधा. व्याख्यानं सीमाविवादप्रकरणे (पृ. ९३९) द्रष्टव्यम् ।

+ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च सीमाविवादप्रकरणे (पृ. ९३९) द्रष्टव्यः ।

(१) मसु. ११२८६ [मपवे (मपि वे) Noted by Jha]; अप. २१२३३ च (तु); व्यक. १२१ मपवेधे च (मववाधेषु); विर. ३६२-३ अपवत्; विचि. १५६ अपवत्; व्यनि. ५११ मप (मप्य); दवि. ३१०; सेतु. ३०५ मपवे (मुपरो) च (तु); समु. १५८ सः (सम्) क्रमेण यमः.

(२) अपु. २२७१५५ उत्तरार्धे (स हि कार्षापणं दण्ड्यस्तममेध्यं च शोधयेत्). अवशिष्टस्थलादिनिर्देशः सीमाविवादप्रकरणे (पृ. ९३९) द्रष्टव्यः ।

(३) मसु. ११२९० क., ख., घ., ङैः (सैः) [सैः

व्य.कां. २०५

(१) अदृष्टेनोपायेन मन्त्रादिशक्त्या मारणमभिचारः । तत्र प्रवृत्तानाममृतेऽभिचारणीये दण्डोऽयम् । अनभिवारणीयाभिचारेषु नैतावता मुच्यते । तत्र मनुष्यमारणदण्डश्च विज्ञेयः । सर्वग्रहणं लौकिकवैदिकयोरविशेषेण दण्डार्थम् । वैदिकाः श्येनादयः । लौकिकाः पादपांशुग्रहणसूचीभेदनादयः । मूलकर्म वशीकरणादि । आतापितृभार्यादयस्ततोऽन्येऽनाताः । कृत्या अभिचारप्रकारा एव मन्त्रादिशक्तय उच्चाटनसुहृद्बन्धुकुलद्वेषविचितीकरणादिहेतवो भूतविद्यादिषु प्रसिद्धाः । *मेधा.

(२) अनाते असंवन्धिनि विषये । मूलकर्मणि सूनादिप्रयोगरूपवशीकरणकर्मणि । भर्त्रादौ तु संवन्धिनि वशीकरणे कृते न दोषः । अनातैरिति पाटेऽसंवन्धिभिरित्यर्थः । कृत्यासु रोगाद्युत्पत्त्यर्थं मातृग्रहाद्युत्थापने ।

+ मवि.

(३) एवं मातृपितृभार्यादिव्यतिरिक्तैरसत्त्वैर्व्यामोह्यधनग्रहणाद्यर्थं वशीकरणे तथा कृत्यासुच्चाटनापाटादिहेतुषु क्रियमाणसु नानाप्रकारासु द्विशतपणदण्ड एव कर्तव्यः ।

× मसु.

राजपुरुषाणां धनलोभादिदोषेषु दण्डविधिः

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ।

भृश्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षदिमाः प्रजाः ॥

(१) परस्वमादातुं शीलं येषां ते परस्वादायिनः, शठाः असम्यक्कारणः प्रायेणाधिकृताः सन्तो भवन्ति । प्राक्शुचयोऽपि रक्षन्ति वित्तानि । अतः प्राक्शुचित्वा-नुमानेन नोपेक्षणीयाः । यत्नतः प्रतिजागरितव्याः । तेभ्यो रक्षदिमाः प्रजाः । न केवलं राजार्थनाशः अन-वेक्षया, यावत्प्रजा अपि निर्धनीकुर्वन्ति । मेधा.

* विर. मेधावत् । + दवि. मविवत् मसुवत् ।

× अत्रोद्धृतोऽनुद्धृतभागश्च मेधावत् ।

(सौ) Noted by Jha]; अप. २१२३३ चानार्तैः (विद्वेषे); व्यक. १२१; मवि. सैः (सै); विर. ३६२; विचि. १५६ मविवत्; व्यनि. ५११ मविवत्; दवि. ३०९; सेतु. ३०५; समु. १५८ क्रमेण यमः.

(१) मसु. ७११२३; व्यक. १२२ राज्ञो हि (राष्ट्रेषु); विर. ३६७ व्यकवत्; दवि. १२० व्यकवत्.

१ दण्डः स वि. २ पौत्रभा. ३ लादिदे. ४ माने. नो.

(२) रक्षाधिकृता रक्षार्थमधिकृताः ग्रामाध्यक्षा-
दयो भृत्याः । मच.

ये कार्याधिकृत्योऽर्थमेव गृहीयुः पापचेतसः ।

तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥

(१) ये रक्षाधिकृताः कार्याधिकृत्यो व्यवहर्तृभ्यो
व्यापारवद्भ्यो धनलाभोद्देशिकया दण्डयन्ति जनपदांस्तेषां
सर्वस्वहरणप्रवासने राजा कुर्यात् । ÷ मेघा.

(२) कार्याधिकृत्यो वादिप्रभृतिभ्य उक्तोचरूपेणार्थ-
मेव गृहीयुर्न राजकार्यं कुर्युः । * मवि.

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्याणाम् ।

धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ॥

(१) ये कार्याणामर्थिप्रत्यर्थिनां कार्येषु व्यवहार-
दर्शनादिषु नियुक्ता अधिकृता राजस्थानीयप्रभृतयस्ते
धनोष्मणा पच्यमाना अन्यतरस्माद्धनं गृहीत्वा कार्याणि
नाशयेयुस्तान्निःस्वान्कारयेत् सर्वस्वहरणं तेषां कार्यम् ।
सैन्यानामभ्यासेन चर्तमानानां सत्यपि वक्ष्यमाणे दण्डा-
न्तरविधावेष एव दण्डो न्याय्यः । येऽप्यन्ये सेनापति-
प्रभृतयः कस्यचित्साहाय्यके नियुज्यन्ते ततश्चार्यं गृहीत्वा
नाशयन्ति, तेऽप्येवमेव दण्ड्याः । अन्ये तु 'येऽनि-

÷ मच. मेधावत् मविवत् । * ममु., विर. मविवत् ।

(१) मस्मृ. ७।१२४; व्यक. १२२ विंके (विं) मेव
(मेवं हि) क्रमेण कात्यायनः; विर. ३६७ व्यकवत्; विचि.
१६० (=) व्यकवत्; इवि. १२० व्यकवत्; सेतु. ३०६
(=) व्यकवत्.

(२) मस्मृ. ९।२३१ [नृपः (हुषः) Noted by
Jha]; मेघा. 'येऽनियुक्ता' इति पाठः; व्यक. १२२
क्रमेण कात्यायनः; विर. ३६७ ये नि (विनि) कार्या (कर्मा)
नास्ताग्निःस्वा (नाग्निःस्वास्ता); विचि. १६० (=) ये
नि (विनि) नास्ताग्निःस्वा (नाग्निःस्वास्ता); इवि. १०६
नास्ताग्निःस्वा (ना निःस्वास्ता); सेतु. ३०६ ये नि (विनि)
स्तु (श्च) स्ताग्निःस्वा (निमांस्ता) क्रमेण याज्ञवल्क्यः; समु.
१६५ नास्ता (वात् ता).

१ हल्लेशोदे. २ दक्षितादि. ३ सत्याना.

युक्ता' इत्यकारप्रक्षेपं पठन्ति । ये राजर्वाह्यभ्याद्वला-
तिशयाद्वाऽन्यस्य साहाय्यं कुर्वन्ति कार्यनाशनार्थं द्विती-
यस्य, तेषामयं दण्डः । धनोष्मणेत्यविवक्षितम् । अनि-
युक्ता इत्येतदेव प्रधानम् । +मेघा.

(२) ये नियुक्ताः प्राड्विवाकाद्याः हन्युरुक्तोच-
ग्रहणेन जितमप्यजितं कुर्वन्तः । धनोष्मणा पाकः, किं
नो भवति राजा चेजानीयाद्दण्डमात्रं ग्रहीष्यतीत्यतिधन-
तया निर्भयता । निःस्वान् अपहृतसर्वस्वान् । × मवि.

(३) [धनोष्मणा पच्यमानाः] उक्तोचधनतेजसा
विकारं भजन्तः । ममु.

कूटशासनकर्तृश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।

स्त्रीबालब्राह्मणान्श्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ॥

(१) कूटशासनस्य कर्तारो, यत्रैव राजादिष्टं तद्राज-
कृतमिति वदन्ति । शासनं राजादेशः । एतस्य गृहे न
भोक्तव्यमस्य चायं प्रसाद आज्ञातः, इयं वा स्थिती
राजा कृतेति पत्रकं राजाधिकृतलेखकलिखितमिति शासनं,
राजादेशसंबन्धिशासनं तत्कूटं कुर्वन्ति पालयन्ति । प्रकृ-
तीनां क्रुद्धलुब्धानां दूषका भेदकाः । स्त्रीबालयोर्ब्राह्मणस्यापि
हन्तारः । द्विट्सेविनो राजशत्रुसेविनः प्रच्छन्नं गतागति-
कान् । मेघा.

(२) द्विट्सेविनः शत्रुसेवकान् । द्वितीयपादस्तु
'स्वाम्यमात्यदुर्गकोशदण्डराष्ट्रमित्राणि प्रकृतयः तद्दूष-
कांश्च हन्यादिति' विष्णुवचनमिदं व्याख्यातः ।

स्मृच. ३२४

(३) कूटराजाशलेखकान्, अमात्यानां च भेद-
कान्, स्त्रीबालब्राह्मणघातिनः, शत्रुसेविनश्च राजा
हन्यात् । ममु.

+ ममु. मेधावत् । × मच. मविवत् ।

(१) मस्मृ. ९।२३२; अप. २।२९४; व्यक. १२२;
स्मृच. ३२४; विर. ३७०; विचि. १६२ स्त्रीबाल (बाल-
स्त्री); व्यनि. ५०४, ५०८; इवि. २६६, ३१७; सवि.
४७५ द्विट्सेविनस्त. (स्ववनवास्त); सेतु. ३०७; समु.
१५७.

१ बलेल्लाह.

याज्ञवल्क्यः

साहसनिरुक्तिस्तद्व्यञ्ज

सामान्यद्रव्यप्रसमहरणात्साहसं स्मृतम् ।

तन्मूल्याद्द्विगुणो दण्डो निह्वे तु चतुर्गुणः ॥

(१) स्तेयमपि प्रसह्य कृतं साहसमेव यस्माद्, अतो नात्र स्तेयदण्डः । किं तर्हि— 'सामान्यप्रसमद्रव्यहरणात् साहसं स्मृतम् । तन्मूल्याद्द्विगुणो दण्डो निह्वे तु चतुर्गुणः ॥' सामान्यं द्रव्यं द्वयोर्यदन्यतरेण प्रसमं प्रसह्यान्तरं परिभूयापन्हियते, तत् स्तेयमपि प्रसह्य हरणात् साहसमिति स्मृतं महर्षिभिर्यस्मात्, तस्मान्न तत्र स्तेयदण्डः । किं तर्हि अपहृतद्रव्यमूल्याद् द्विगुणः साहसिकदण्ड इत्यभिप्रायः । प्रसह्यापहृत्य निह्वे कृते मूल्याच्चतुर्गुणः । सामान्यद्रव्यहरणं चोदाहरणार्थम् । अन्यदपि यत् प्रसह्यं स्तेयमन्यद्वा क्रियते, तत् सर्वं साहसमेव । तथा च नारदः— 'सहसा क्रियते' इति । विश्व. २।२३६

(२) संप्रति साहसं नाम विवादपदं व्याचिख्यास्तल्लक्षणं तावदाह— सामान्येति । सामान्यस्य साधारणस्य यथेष्टविनियोगानर्हत्वाविशेषेण परकीयस्य वा द्रव्यस्यापहरणं साहसम् । कुतः । प्रसमहरणात् प्रसह्य हरणात् । बलावष्टम्भेन हरणादिति यावत् । एतदुक्तं भवति । राजदण्डं जनक्रोशं चोद्धृष्य राजपुरुषेतरजनसमक्षं यत्किञ्चिन्मारणहरणपरदारप्रघर्षणादिकं क्रियते तत्सर्वं साहसमिति साहसलक्षणम् । अतः साधारणघनपरधनयोर्हरणस्यापि बलावष्टम्भेन क्रियमाणत्वात्साहसत्वमिति ।

तत्र परद्रव्यापहरणरूपे साहसे दण्डमाह— तन्मूल्यादिति । तस्यापहृतद्रव्यस्य मूल्याद् द्विगुणो दण्डः । यः पुनः

(१) वास्व. २।२३०; विश्व. २।२३६ द्रव्यप्रसम (प्रसमद्रव्य); मिता.; अप. णात् (णं); ब्यक. १२० तु (च) शेषं विश्वत्; स्मृच. ६ अपवत्, पू. : ३१६ अपवत्, पू. : ३१७ उच.; विर. ३५१ द्रव्यप्रसम (प्रभवद्रव्य) तु (च); पमा. ४५१ उच.; रत्न. १२८ अपवत्; विचि. १५१ द्रव्यप्रसम (प्रभवद्रव्य) तु (च); स्मृचि. २६ पू.; दवि. २९४ उच.; सवि. ४५२ पू.; वीमि.; व्यप्र. ३९३ अपवत्; व्यड. १२९ पू. : १३१ उच.; वित्त. ७४८; सेतु. २५८-९ विचिवत्; समु. १४८ णात् (णं) व्य (अ).

साहसं कृत्वा नाहमकार्षमिति निह्वेते तस्य मूल्याच्चतुर्गुणो दण्डो भवति । एतस्मादेव विशेषदण्डविधानात् प्रथमसाहसादिसामान्यदण्डविधानमपहारव्यतिरिक्तविषयं गम्यते ।

(३) सामान्यस्थानेषां भ्रात्रादीनां मध्यमकस्य घनस्य प्रसमं स्वामिसमक्षं तानवगणय्य हठादपहरणं साहसम् । एतच्च न साहसस्य लक्षणं किन्तूपलक्षणम् । तल्लक्षणं त्वाह नारदः— 'साहसादि'ति + अप.

(४) सामान्यद्रव्यं बहुजनैः प्रहरादिकालक्रमेण रक्ष्यमाणं द्रव्यं, एतच्छलेन हतुं न शक्यते, रक्षणे प्रमादासंभवात् । तेनास्य प्रायेण बलादपहरणम् । तदेतदभिसंघायोक्तं— 'सामान्यद्रव्यप्रसमहरणमिति । साहसं स्मृतं साहसलक्षणं स्तेयं स्मृतमित्यर्थः । #स्मृच. ३१६

साहसकारयितृदण्डः

यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमन् ।

यश्चैवमुक्त्वाऽहं दाता कारयेत्स चतुर्गुणम् ॥

(१) अन्येनापि प्रयोक्तृतया— 'यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमन् । यस्त्वेवमुक्त्वाहं दाता कारयेत् स चतुर्गुणम् ॥' पूर्वोक्ताद् द्विगुणं दण्डं कारयिता दाप्यः । यस्त्वेवमुक्त्वा कारयेत् 'क्रियतामिदं यद्यत्र कश्चिद् विरोधो भविष्यति, ततोऽहमेव निर्वहणं करिष्यामीति, सं चोक्तद्विगुणदण्डाच्चतुर्गुणं दण्डय इत्यवसेयम् । विश्व. २।२३७

(२) साहसस्य प्रयोजयितारं प्रत्याह— यः साहसमिति । यस्तु साहसं कुर्वित्येवमुक्त्वा कारयत्यसौ साह-

× शेषं मिता. व्याख्यानं 'सहसा क्रियते' इत्यादिषु नारद-श्लोकेषु द्रष्टव्यम् । विर., दवि., विता. मितान्त । वीमि. मितान्त अपवच्च ।

+ शेषं मितान्त ।

* शेषं मितान्त । व्यप्र. स्मृचवत् ।

(१) वास्व. २।२३१; अणु. २५८।२६ श्रे (स्त्वे); विश्व. २।२३७ अपवत्; मिता.; अप.; ब्यक. १२३; स्मृच. ३१२; विर. ३७५; पमा. ४५१; रत्न. १२८; विचि. १६६; दवि. ७५ यश्चै (तयै); सवि. ४६५; वीमि.; व्यप्र. ३९३ ऽहं दाता (हन्तारं); व्यड. १३१ कश्च (क्षे); व्यम. १०५; विता. ७४८; सेतु. ३०९; समु. १४७.

सिकाङ्गुणाद्विगुणं दण्डं दाप्यः। यः पुनरहं तुभ्यं धनं दास्यामि त्वं कुर्वित्येवमुक्त्वा साहसं कारयति स चर्तुगुणं दण्डं दाप्योऽनुबन्धातिशयात् । Xमिता.

(३) तव दण्डसंभवे अहं तद्धनं दास्यामीत्येवमुक्त्वा यः साहसं कारयेत्, स साहसकर्तुश्चतुर्गुणं दण्डं दाप्यः। वीमि. पूज्यातिक्रम - भ्रातृभार्याप्रहारं-प्रतिश्रुताप्रदान - मुद्रासहितगृहभङ्ग - सामन्तादिपीडाकरणापराधेषु दण्डविधिः

अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृद्भ्रातृभार्याप्रहारदः ।

संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकृत् ॥

सामन्तकुलिकादीनामपकारस्य कारकः ।

पञ्चाशत्पणिको दण्ड एषामिति विनिश्चयः ॥

(१) साहसिकत्वादेव च — अर्घ्याक्रोशेत्यादि । स्पष्टार्थो श्लोकौ । विश्व. २।२३८

(२) साहसिकविशेषं प्रत्याह—अर्घ्याक्षेपेत्यादि । अर्घ्य-स्यार्थाहंस्याचार्यादेराक्षेपमाज्ञातिक्रमं च यः करोति, यश्च भ्रातृभार्यां ताडयति, तथा संदिष्टस्य प्रतिश्रुतस्यार्थस्या-प्रदाता, यश्च मुद्रितं गृहमुद्राटयति, तथा स्वगृहक्षेत्रादि-संसक्तगृहक्षेत्रादिस्वामिनां कुलिकानां स्वकुलोद्भवानां आदिग्रहणात्स्वग्राम्यस्वदेशीयानां च योऽपकर्ता, ते सर्वे पञ्चाशत्पणपरिमितेन दण्डनीयाः । + मिता.

(३) संदिष्टस्य प्रेषितस्य । * विर. ३५६

(४) संदिष्टस्य परप्रेषितस्य हिरण्यादेः प्रतिधातुं गृही-

X अप., व्यक., स्पृच., विर., दवि. मितावत् ।

+ अप. मितावत् । * शेषं मितावत् । दवि. विरवत् ।

(१) यास्मृ. २।२३२; अपु. २५८।२७ अर्घ्या (आर्या) दः (कः) दकृत् (दकः); विश्व. २।२३८; मिता. (क) क्रोशा (क्षेपा) दः (कः); अप. दः (कः); व्यक. १२० दकृत् (दकः); विर. ३५५ दः (कः) शेषं व्यकवत्; पमा. ४५१; विचि. १५३ विरवत्; दवि. २५५ पू. : ३०० व्यकवत्; वीमि.; व्यप्र. ३९३ प्रहारदः (पहारकः); व्यउ. १३१ अपवत्; विता. ७४८ क्रोशा (क्षेपा); सेतु. ३०२ विरवत्; समु. १५६ अर्घ्या (आर्या) दः (कः).

(२) यास्मृ. २।२३३; अपु. २५८।२८; विश्व. २।२३९; मिता.; अप.; व्यक. १२०; विर. ३५५; पमा. ४५१; विचि. १५३ मपकारस्य (माकारस्याप) विश्व. (निष्ठी); दवि. ३००; वीमि.; व्यप्र. ३९३; व्यउ. १३१; विता. ७४८; सेतु. ३०२; समु. १५६.

तस्याऽप्रदाता । आदिप्रदात्क्रेत्यादयः तेषामन्यतमस्या-पकारकर्ता । एषां पूर्वोक्तानां पञ्चाशत्पणमितो दण्ड इति धर्मशास्त्रे विनिश्चयः । चकाराद्वाचिकस्याऽप्रवक्तुः समु-चीमि.

विधवागमन—परभयानिवारण—वृथाक्रेश—चाण्डालकृतस्पृश्यस्पर्श-शूद्रप्रजितादिभोजन—अयुक्तशपथ—अयोग्यकर्मकरण—पशुपुंसवो-पधान—साधारणापलाप—दासीगर्भपात—पितृपुत्राद्यन्योन्यत्यागेषु दण्डविधिः

स्वच्छन्दं विधवागामी विकृष्टे नाभिधावकः ।

अकारणे च विक्रोशा चण्डालश्चोत्तमान् स्पृशन् ॥

शूद्रप्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः ।

अयुक्तं शपथं कुर्वन्नयोग्यो योग्यकर्मकृत् ॥

वृषक्षुद्रपशूनां च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत् ।

साधारणस्यापलापी दासीगर्भविनाशकृत् ॥

(१) यास्मृ. २।२३४; अपु. २५८।२९ न्दं (न्द) हे ना (हेना) रणे (रेण [रणं ?]) चण्डा (चाण्डा); विश्व. २।२४० न्दं (न्द) हे ना (हेऽन); मिता. शन् (शेत); अप. विश्ववत्; व्यक. १२० न्दं (न्द) धावकः (घातकः) चण्डा (चाण्डा); विर. ३५५ न्दं (न्द) हे ना (हेऽन) धाव (धाय) चण्डा (चाण्डा); पमा. ४५१; विचि. १५३ पूर्वार्धं विरवत्; स्पृचि. २६ न्दं (न्द); दवि. ३०० न्दं (न्द) हे ना (होऽन); सवि. ४६६ न्दं (न्द) णे च (णेन) मान् (मां); वीमि.; व्यप्र. ३९४ हे ना (हेना) णे च (णेन); व्यउ. १३१ न्दं (न्द) मान् (मां); विता. ७४८-९ न्दं (न्द) कृष्टे (कृष्टेऽ); सेतु. ३०२ पूर्वार्धं विर-वत्; समु. १५७ व्यउवत्.

(२) यास्मृ. २।२३५; अपु. २५८।३०; विश्व. २।२४१; मिता. (क) द्र (द्रः); अप.; व्यक. १२० ग्यो (ग्योऽ); विर. ३५६ व्यकवत्; पमा. ४५१; विचि. १५३ क्तं (क्त); स्पृचि. २६; दवि. ३०० ग्यो यो (ग्यायो); सवि. ४६६; वीमि.; व्यप्र. ३९४; व्यउ. १३१; विता. ७४९; सेतु. ३०२-३ पित्र्ये (पैत्रे) ग्यो (ग्ये); समु. १५७.

(३) यास्मृ. २।२३६; अपु. २५८।३१ क्षुद्र (शूद्र); विश्व. २।२४२ तकृत् (तकः); मिता.; अप.; व्यक. १२०; विर. ३५६ वृष (वृक्ष) शकृत् (शकः); पमा. ४५१-२; विचि. १५३ विरवत्; स्पृचि. २६; दवि. ३०० तकृत् (तकः) पी + (च) शेषं विरवत्; सवि. ४६६ अयुवत्; वीमि.; व्यप्र. ३९४; व्यउ. १३१ वृष (वृक्ष); विता. ७४९; सेतु. ३०३ विरवत्; समु. १५७.

^१पितापुत्रस्वसृभ्रातृदम्पत्याचार्यशिष्यकाः ।

एषामपतितान्योन्यत्यागी च शतदण्डभाक् ॥

(१) एतदपि श्लोकचतुष्टयं स्पष्टार्थमेव ।

विश्व. २।२४०-४३

(२) नियोगं विना यैः स्वेच्छया विधवां गच्छति ।
चौरादिभयाकुलैर्विक्रुष्टे च यः शक्तोऽपि नाभिधावति ।
यश्च वृथाक्रोशं करोति । यश्च चण्डाले ब्राह्मणादीन्
स्पृशति । यश्च शूद्रप्रव्रजितान् दिगम्बरादीन् दैवे
पित्र्ये च कर्मणि भोजयति । यश्चायुक्तं 'मातरं गमि-
ष्यामी'त्येवं शपथं करोति । तथा यश्च अयोग्य एव
शूद्रादियोग्यकर्माध्ययनादि करोति । वृषो बलीवर्दः क्षुद्र-
पशवोऽजादयस्तेषां पुंस्त्वस्य प्रजननशक्तेर्विनाशकः ।
वृक्षक्षुद्रपशूनामिति पाठे हिंसाद्यौषधप्रयोगेन वृक्षादेः
फलप्रसूनानां पातयिता । साधारणमपलपति साधारण-
द्रव्यस्य च वञ्चकः । दासीगर्भस्य च पातयिता । ये च
पित्रादयोऽपातिता एव सन्तोऽन्योन्यं त्यजन्ति ते सर्वे
प्रत्येकं पणशतं दण्डार्हा भवन्ति । *मिता.

(३) स्वच्छन्देन स्वेच्छया न शास्त्रवशाद्विधवागामी,
चौरादिभिरभिभूयमानेन जनेन विक्रुष्टेन 'धावत धावते'-
त्यार्तस्वने कृते विक्रोष्टारं प्रत्यनभिधावकः, अकारणे चौरा-
द्युपद्रवविरहेऽपि विक्रोष्टा, उत्तमान् द्विजातीन् बुद्धिपूर्वं
चण्डालः स्पृशन्, शूद्राणां प्रव्रजितानां देवान्पितृन् वो-
द्दिश्य भोजयिता, अयुक्तमनर्हं कोशपानादिकं ब्राह्मणोऽपि
कुर्वन्, अयोग्योऽनुपनीतोऽकृतप्रायश्चित्तो वा यद्योग्यस्यो-
पनीतादेः कर्म कुर्वन्, वृषस्योक्षणः क्षुद्रपशूनामजावि-
कादीनां च पुंस्त्वप्रतिघातं वृषणमर्दनेन करोति, साधा-
रणं स्वस्यान्यस्य च यद्द्रव्यं तस्यापलापी, दास्या गर्भस्य

* विर., दवि. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२३७; अपु. २५८।३२; विश्व. २।२४३;
मिता. (क) पिता (पितृ); अप.; व्यक. १२० शत
(शतं); विर. ३५६; पमा. ४५२ पिता (पितृ) शिष्यकाः
(ऋत्विजाम्); विचि. १५३ स्वसृ (सुहृद्) न्योन्य (नां च);
स्मृचि. २६; दवि. ३००; सवि. ४६६; वीमि.; व्यप्र.
३९४ पिता (पितृ); व्यउ. १३१; वित्ता. ७४९ षाम
(षान्); सेतु. ३०३ पिता (पितृ) शेषं विन्नवत्; समु.
१५७ पमावत्

नाशकः, पित्रादीनामपतितानामन्योन्यत्यागी च, शत-
संख्याकपणदण्डभाक् । अप.

(४) आद्येन चकारेण कारणेऽपि विक्रोशाकर्तुः,
द्वितीयेन पतितस्य, तृतीयेन पास्त्रण्डिनां, चतुर्थेन
मनुष्ययज्ञस्य, पञ्चमेन वृषस्य, षष्ठेन मातापुत्रयोरन्योन्यं
त्यागिनः समुच्चयः — पितापुत्राद्योरेकतरेणैव अरस्य
त्यागे तु शङ्खः — 'यस्त्यजेत्कामादपतितान् स हि शतं
दण्डं प्राप्नुयात्' । इदं तु अविदुषा त्यागे कृते । विदुषा
कृते त्यागे त्वाहं मनुः— 'न माता न पिता न स्त्री
न पुत्रस्त्यागमर्हति । त्यजन्नपतितानेतान् राज्ञा दण्ड्यः
शतानि षट् ॥' + वीमि.

तरिकेण स्थलजशुल्कग्रहणे प्रातिवेश्यब्राह्मणानिमन्त्रणे च दण्डः

तरिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन् दाप्यः पणान् दश ।

ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे * ॥

पितापुत्रविरोधसाक्ष्यादिदण्डविधिः

^१पितापुत्रविरोधे तु साक्षिणां त्रिपणो दमः ।

अन्तरे च तयोर्यः स्यात्तस्याप्यष्टगुणो दमः ॥

(१) एवमादेयव्यवहारविषये तावद् दण्डव्यवस्थोक्ता ।

भ्रात्रादिकृते त्वनादेयव्यवहारे— 'पितापुत्रविरोधादौ
साक्षिणां द्विशतो दमः । सान्तरश्च तयोर्यः स्यात् तस्या-
प्यष्टशतो दमः ॥' सर्वत्र पितापुत्रादिविरोधेऽनादेयव्यव-

+ शेषं मितावत् ।

* व्याख्यासंग्रहः संभूयसमुत्थानप्रकरणे (पृ. ७७८) द्रष्टव्यः ।

(१) यास्मृ. २।२६३; व्यक. १२० उत्तरार्धे (ब्राह्मणः
प्रातिवेश्यांश्च तद्देवानिमन्त्रयन्); विर. ३५९ (=) श्याना...णे
(श्यांस्तु तद्देवानिमन्त्रयन्); सवि. ४९५ तरिकः (तरिते)
नारदः; सेतु. ३०४ (=) पू. अवशिष्टस्थलादिनिर्देशः
संभूयसमुत्थानप्रकरणे (पृ. ७७८) द्रष्टव्यः ।

(२) यास्मृ. २।२३९; विश्व. २।२४५ धे तु (धादौ)
त्रिपणो (द्विशतो) अन्तरे च (सान्तरश्च) गुणो (शतो); मिता.;
अप. च (तु); व्यक. १२०-२१ च (तु) गुणो (शतो);
विर. ३६० णां (णः) गुणो (शतो); पमा. ४५७ णां (णः)
रे च (रेण) क्रमेण नारदः; दवि. २६९ विरवत्; नृप्र. २७९
पमावत्, स्मरणम्; वीमि. रोधे (वादे) च (तु) गुणो
(पणो); वित्ता. ७६७-८; राकौ. ४९२ (=); सेतु.
२९६ च (तु) शेषं विरवत्; समु. १५७ रोधे तु (वादिषु)
रे च (रेव) स्याप्य (स्य चा).

हारे साक्षिणो द्रष्टारो वा ये स्युः, साक्षिवचनस्य लक्षणा-
र्थत्वात्, तेषां द्विशतो दमः । यस्तु पितापुत्रादीनां
सान्तरः विश्लेषकरः स्यात्, तस्याप्यष्टशतम् । यद्वा
तयोरेव पितापुत्रयोः सान्तरः स्यात् व्याजव्यवहृतेत्यर्थः ।
द्वयमप्येतदविरोधाद् युक्तम् । विश्व. २।२४५

(२) पितापुत्रयोः कलहे यः साक्ष्यमङ्गीकरोति न
पुनः कलहं निवारयति असौ पणत्रयं दण्ड्यः । यश्च
तयोः सपणे विवादे पणदाने प्रतिभूर्भवत्यसौ, चकारात्त-
योः कलहं वर्धयति सोऽपि त्रिपणादष्टगुणं चतुर्विंशति-
पणान् दण्डनीयः । दम्पत्यादिष्वयमेव दण्डोऽनुसरणीयः ।
×मिता.

(३) अष्टशतो दमः, अष्ट शतानि यस्मिन् दमे
सोऽष्टशतो दमः । अत्र चोत्कृष्टगुणेन पित्रादिना विरोधे
विष्णुकृतो दमः, न्यूनगुणेन तु विरोधे याज्ञवल्कीय
इति श्रेयम् । * विर. ३६०

(४) यस्तु तयोर्विवादेऽन्तरे मध्ये प्रवेश्य कलहवर्धकः
स्यात्तस्य, अपिवाद्वात्तत्र विवादे प्रतिभुवोऽष्टपणमितो
दमः कार्यः । वीमि.

अभक्ष्यापेयादिना चातुर्वर्ण्यदूषणे दण्डविधिः

अभक्ष्येण द्विजं दूष्य दण्ड उत्तमसाहसम् ।
मध्यमं क्षत्रियं वैश्यं प्रथमं शूद्रमधिकम् ॥

× अप. मितवत् । * दवि. विरवत् ।

(१) चात्सृ. २।२९६; अपु. २५८।७५ अम.....दूष्य
(अभक्ष्यैर्दूषयन् विप्रं) पू.; विश्व. २।२९९ पूर्वार्धे (अभक्ष्यै-
र्दूषयन् विप्रं दण्ड्य उत्तमसाहसम्) मध्यमं क्षत्रियं (क्षत्रियं
मध्यमं); मिता. (क) दूष्य (दूष्यो); अप. २।२९५ पूर्वार्धे
(द्विजं प्रदूष्याभक्ष्येण दण्ड्य उत्तमसाहसम्) मध्यमं क्षत्रियं
(क्षत्रियं मध्यमं); ब्यक. १२१ अम...दूष्य (द्विजं प्रदूष्या-
भक्ष्येण) मध्यमं क्षत्रियं (क्षत्रियं मध्यमं); विर. ३६१ व्यक-
कत्; विधि. १५५ अम...दूष्य (द्विजं प्रदूष्याभक्ष्येण) सम्
(सं:) मध्यमं क्षत्रियं (क्षत्रियं मध्यमो) अमं (अमः) मर्षि
(मर्ष); दवि. ३०८ पूर्वार्धे विचिवत्, मध्यमं क्षत्रियं (क्षत्रियं
मध्यमं); सवि. ४९२; वीमि. ण्ड उ (ण्ड्यु) शेषं अपुवत्;
ब्यक. १६५-६ मर्षि (मर्ष); ब्यम. १०९ दूष्य (दूष्यन्)
दण्ड (दण्ड्य) मर्षि (मर्ष); विता. ७६२ दूष्य (दूष्यत्)
सम् (सं); राकौ. ४९४ दण्ड (दण्ड्य) मर्षि (मर्ष);
सेतु. २९६ पूर्वार्धे विचिवत्, मध्यमं क्षत्रियं (क्षत्रियं मध्यमो)
अमं (अमः); ससु. १५७.

(१) यो राजप्रसादाद्यवष्टम्भात् प्रसह्य साहसिकत्वेन
—‘अभक्ष्यैर्दूषयन् विप्रं दण्ड्य उत्तमसाहसम् । क्षत्रियं
मध्यमं वैश्यं प्रथमं शूद्रमधिकम् ॥’ उपपत्तनीयामभक्ष्यै-
ल्लेशुनादिभिरयं दण्डोऽवसेयः । स्पष्टमन्यत् ।

+ विश्व. २।२९९

(२) प्रसंगात् नृपाश्रयव्यतिरिक्तव्यवहारविषयमपि
दण्डमाह— अभक्ष्येणेति । मूत्रपुरीषादिना अभक्ष्येण
भक्ष्यानर्हेण ब्राह्मणं दूष्यान्नपानादिमिश्रेण स्वरूपेण
वा दूषयित्वा स्वादयित्वात्तमसाहसं दण्ड्यो भवति ।
क्षत्रियं पुनरेवं दूषयित्वा मध्यमम् । वैश्यं दूषयित्वा
प्रथमम् । शूद्रं दूषयित्वा प्रथमसाहसस्यार्धं दण्ड्यो
भवतीति संबन्धः । लशुनाद्यभक्ष्यदूषणे तु दोषतारतम्या-
दण्डतारतम्यमूहनीयम् । ×मिता.

जारप्रच्छादन—शववस्तुविक्रय—गुरुताडन—राजयानाधारोहण—
दिनेत्रभेदन—राजद्रिडुपजीवन—शूद्रकृतविप्रलोपजीवनेषु अपराधेषु
दण्डविधिः

जारं चौरैरित्यभिवदन् दाप्यः पञ्चशतं दमम् ।

उपजीव्य धनं मुञ्चंस्तदेवाष्टगुणीकृतम् ॥

(१) लोभादिना प्रच्छन्नं यदि तु—‘चौरं चौरैरित्यभिवदन्
दाप्यः पञ्चशतं दमम् । उपजीव्य धनं मुञ्चंस्तदेवाष्ट-
गुणीकृतम् ॥’ चौरमतिक्रम्याचौरमेवान्यं चोरेति वदतः
पञ्चशतो दमः । द्रव्यमुपजीव्य मुञ्चतस्तदेवोपभुक्तं द्रव्य-
मष्टगुणं दण्डं चेत्युक्तम् । ऋज्वन्यत् । विश्व. २।३०४

(२) स्ववंशकलङ्कभयाजारं पारदारिकं चौरं निर्गच्छे-
त्यभिवदन् पञ्चशतं पणानां पञ्च शतानि यस्मिन्
दमे स तथोक्तस्तं दमं दाप्यः । यः पुनर्जारहस्ताद्धन-
मुपजीव्य उत्कोचरूपेण गृहीत्वा जारं मुञ्चत्यसौ याव-
द्गृहीतं तावदष्टगुणीकृतं दण्डं दाप्यः । *मिता.

+ अप. विश्ववत् । × वीमि. मितवत् ।

* अप., विर., वीमि. मितवत् । दवि. मितवत्
विचिवत् ।

(१) चात्सृ. २।३०१; अपु. २५८।७७ जारं चौरैरित्यभि
(अचौर्यं चौरैरिति) पू.; विश्व. २।३०४ जारं चौरैरित्यभि
(चौरं चौरैरिति); मिता.; अप. २।३००; ब्यक. १२१
कतिचिदेवाक्षरतपि समुपलभ्यन्ते; विर. ३६२; विधि. १५६;
दवि. ३१०; सवि. ४९३; वीमि.; ब्यम. १०९ णीक-
(णं सं); विता. ७६४; सेतु. ३०५; ससु. १५७.

(३) उत्क्रोचामादाय तु तं त्यजन् पणानां पञ्चशती
अष्टगुणा दण्ड इत्यर्थः । उत्क्रोचामष्टगुणमित्यन्ये ।

विचि. १५६

मृताङ्गलप्रविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा ।

राजधानासनारोर्दुर्दण्ड उत्तमसाहसः ॥

(१) साहसिकतयैव तु—मृताङ्गलप्रविक्रेतुरित्यादि ।

विश्व. २।३०६

(२) मृतशरीरसंबन्धिनो वस्त्रपुष्पादेर्विक्रेतुः, गुरोः
पित्राचार्यादेस्ताडयितुः, तथा राजानुमतिं विना तद्यानं
गजाश्वादि, आसनं सिंहासनादि आरोहतश्चोत्तमसाहसो
दण्डः ।

× मिता.

(३) तथाशब्देन रज्जुवेणुदण्डातिरिक्तेन पृष्ठभिन्नदेशे
चा भार्यापुत्रादिताडयितुस्संग्रहः ।

वीमि.

द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्टादेशकृतस्तथा ।

विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोऽष्टशतो दमः ॥

(१) द्विनेत्रग्रहणं कृत्स्नेन्द्रियलक्षणार्थम् । एतच्च पशु-

× अप. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।३०३; अपु. २२७।६४ उक्त. :
२५८।७८-९ ण्ड उत्तम (ण्डो मध्यम); विश्व. २।३०६
याना (शय्या) शेषं अपवत् ; मिता. ; अप. २।३०२ अपवत् ;
व्यक. १२१ अपवत् ; स्मृच. ३३२ दुर्दण्ड उत्तम (हे दण्डो
मध्यम) उक्त. ; विर. ३६२ अपवत् ; पमा. ५८० उक्त. ;
विचि. १५६ अपवत् ; दवि. १०० (मृताङ्गलप्रविक्रेतुर्दण्डो
मध्यमसाहसः) यतावदेव : २६४ अपवत्, उक्त. ; सवि.
४९३ सः (सम्) क्रमेण नारदः ; वीमि. ; व्यग्र. ५७०
सः (सम्) शेषं स्मृचवत्, उक्त. ; व्यड. १६५ (=) सः
(सम्) ; व्यम. ११० नासना (नसमा) सः (सम्) ;
विता. ८२९ ; राकौ. ४९५ ; सेतु. ३०५ अपवत् ; ससु.
१६५.

(२) यास्मृ. २।३०४; अपु. २५८।८०; विश्व. २।३०७;
मिता. ; अप. २।३०३ च (तु) ; व्यक. १०५ द्विष्टा
(दुष्टा) ; विर. २६६ अपवत् : ३६३ अपवत्, उक्त. ; पमा.
५८१ त्वेन च (चिहेन) ; विचि. ११६ : १५७ अपवत्,
उक्त. ; दवि. २५७ (द्विनेत्रभेदिनश्चैव शूद्रस्याष्टशतो दमः)
यतावदेव : ३१८ (च०) : ३२३ उक्त. ; वीमि. ; व्यड.
१६५ (=) ; व्यम. ११० ; विता. ८२९ ; राकौ. ४९५
रज्जु. (रज्जो) ; सेतु. २१९ अपवत् : २९७ अपवत्, उक्त. ;
ससु. १६५ रज्जो (रज्जु).

विषयं द्रष्टव्यम् । राजा द्विष्टो यस्य स राजद्विष्टः ।
स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।३०७

(२) यः पुनः क्रोधादिना परस्य नेत्रद्वयं भिनत्ति ।
यश्च ज्योतिःशास्त्रवित् गुर्वादिहितेच्छुव्यतिरिक्तो राज्ञो
द्विष्टमनिष्टं, संवत्सरान्ते तव राज्यच्युतिर्भविष्यतीत्येव-
मादिरूपमादेशं करोति । तथा यः शूद्रो भोजनार्थं
यज्ञोपवीतादीनि ब्राह्मणलिङ्गानि दर्शयति तेषां अष्टशतो
दमः । अष्टौ पणशतानि यस्मिन् दमे स
तथोक्तः । श्राद्धभोजनार्थं पुनः ' शूद्रस्य विप्रवेष-
धारिणस्तप्तशलाकया यज्ञोपवीतवद्रपुष्यालिखेत् ' इति
स्मृत्यन्तरोक्तं द्रष्टव्यम् । वृत्त्यर्थं तु यज्ञोपवीतादिब्राह्मण-
लिङ्गधारिणो वध एव । ' द्विजातिलिङ्गिनः शूद्रान्
घातयेत् ' इति स्मरणात् । मिता.

(३) यश्च राजद्विष्टस्य आज्ञाकारी । विप्रत्वेन जीवता
शूद्रेण यदि द्विजातिभिः सह ब्राह्मो यौनो वा संवन्ध
आचरितस्तदाऽसौ वध्य एव । + अप.

(४) तथाशब्देन संवत्सरान्ते तव राज्यच्युतिर्भविष्यती-
ति राजद्विष्टमाशंसतः संग्रहः । × वीमि.

शस्त्राघात-गर्भपात-स्त्रीपुंवध-दुष्टस्त्रीकृतपुंवधादिदोषेषु दण्डविधिः

शस्त्राघाते गर्भस्य पातने चोत्तमो दमः ।

उत्तमो वाऽधमो वाऽपि पुरुषस्त्रीप्रमापणे ॥

(१) स्त्रीष्वदुष्टासु चोरयितुं—'शस्त्राघाते गर्भस्य
पातने चोत्तमो दमः । उत्तमो वाधमो वापि पुरुषः
स्त्रीप्रमापणे ॥' ब्राह्मणस्त्रीशस्त्राघातने गर्भस्य चाविशो-
षेण व्यापत्तावुत्तमो दण्डः कार्यः, वध इत्यर्थः ।
उत्तमो वा ब्राह्मणः, अधमो वा शूद्रादिः, अपिश्चब्दा-
न्मध्यमोऽपि क्षत्रियादिः पुरुषः स्त्रीप्रमापणे वध्य एवे-
त्याभिप्रायः । तथा च कात्यायनः—'गर्भस्य पातने स्तेनो
ब्राह्मण्यां शस्त्रपातने । अदुष्टां योषितं हत्वा हन्तव्यो
ब्राह्मणोऽपि हि ॥' विश्व. २।२८१

+ शेषं मितावत् । × शेषं अपवत् ।

(१) यास्मृ. २।२७७; अपु. २५८।६४-५; विश्व.
२।२८१ स्त्री (षः स्त्री) ; मिता. ; अप. ; व्यक. १२२
चोत्तमो दमः (दण्ड उत्तमः) पू. ; विर. ३७० पाते (घाते)
पात (घात) पू. ; पमा. ४५२ ; विचि. १६३ पाते (घाते) ;
दवि. ३०३ पात (घात) पू. ; वीमि. ; ससु. १५७.

(२) परगात्रेषु शस्त्रस्यावपातने दासीब्राह्मणगर्भ-
व्यतिरेकेण गर्भस्य पातने चोत्तमो दमो दण्डः । दासी-
गर्भनिपातने तु 'दासीगर्भविनाशकृदित्यादिना शत-
दण्डोऽभिहितः । ब्राह्मणगर्भविनाशे तु 'हत्वा गर्भमवि-
ज्ञातं' इत्यत्र ब्रह्महत्यातिदेशं वक्ष्यते । पुरुषस्य स्त्रियाश्च
प्रमाणे शीलवृत्ताद्यपेक्षयोत्तमो बाधमो वा दण्डो व्यव-
स्थितो वेदितव्यः । +मिता.

(३) ब्राह्मणीगर्भपातने तु—'हत्वा गर्भमविज्ञातमेत-
देव व्रतं चरेत्' इति प्रायश्चित्तमात्रातिदेशादप्राप्तो दण्डोऽ-
नेन विधीयत एव । पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव वधे यथा-
संख्यमुत्तमाधमौ ज्ञेयौ । अधमः प्रथमसाहसः । वा-
शब्दद्वयादण्डान्तरमपि गुणाद्यपेक्षया वेदितव्यम् । Xअप.

(४) तत्र ब्राह्मणीगर्भवधे सर्वस्वहरणं यद्यपि शृङ्ग-
ग्राहिकतया न क्वचिदुक्तं तथाप्यौचित्यादेव तत्र
द्रष्टव्यम् । दवि. ३०३

(५) ब्राह्मणत्वादिविशिष्टपुरुषस्त्रियोः प्रमाणे मारणे
उत्तमसाहसः प्रथमसाहसो वा दण्डः । वृत्तशीलपेक्षया
वा विकल्पः । अपिशब्दाद्वृत्तशीलान्यतरसत्त्वे मध्यम-
साहसो दण्डः । चकारेण 'रत्नापहार्युत्तमसाहसमि'ति
विष्णुक्तस्याऽऽप्रकृष्टरत्नहरणस्य संग्रहः । Xवीमि.

विप्रदुष्टां स्त्रियं चैव पुरुषघ्नीमगर्भिणीम् ।

सेतुभेदकरीं चाप्सु शिलां बद्ध्वा प्रवेशयेत् ॥

(१) स्तेयव्यतिरेकेणापि तु—विषप्रदामिति । औष-
धादिव्याजेन विषप्रदां स्त्रियम् । चशब्दात् पुरुषं च ।
एवकारोऽन्यत्र स्त्रीवधाभावज्ञापनार्थः । वधामावेऽपि
विषादिमृत्युनिमित्तप्रयोक्त्री हन्तव्येत्यर्थः । पुरुषघ्नीं साह-

+ विर., दवि. मितावत् । X शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२७८; अपु. २।५८।६५ (शिलां बद्ध्वा
क्षिपेदप्सु नरघ्नीं विषदां स्त्रियम्) एतावदेव; विश्व. २।२८२
प्रदुष्टां (षप्रदां); मिता.; अप. चैव (भ्रूण); व्यक. १२१
प्रदुष्टां (षाग्निदां) रीं चा (रं वा); विर. ३६६ प्रदुष्टां
(षाग्निदां); पमा. ४५२; विचि. १५९ विरवत्; व्यनि.
५०९ प्रदुष्टां (षाग्निदां) रीं चा (रीम); दवि. ३१२ रीं
चाप्सु (रं चाप्सु) उक्त. : ३१४ चाप्सु (चैव) शेषं विरवत्;
सवि. ४६४; वीमि.; राकौ. ४८३; सेतु. ३०८ विरवत्;
समु. १५८.

सिकपरपुरुषप्रसङ्गातिशयात् पुरुषमारणनिमित्तभूताम् ।
ज्ञात्यादिभयाच्च गर्भं पातयित्वा अगर्भिण्यहमिति या
वदति, तामगर्भिणीमाहुः । तथा च स्मृत्यन्तरं— 'या
पातयित्वा स्वं गर्भं ब्रूयादहमगर्भिणी । तामप्सु प्रक्षिपेद्
राजा जारैश्च नरमारिणीम् ॥' इति । सेतुः कुल्यासंक्रमः,
मर्यादा वा । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२८२

(२) विशेषेण प्रदुष्टा विप्रदुष्टा भ्रूणघ्नी स्वगर्भपातिनी
च । या च पुरुषस्य हन्त्री, सेतूनां भेत्री च एता
गर्भरहिताः स्त्रीर्गले शिलां बद्ध्वा अप्सु प्रवेशयेत् यथा
न प्लवन्ति । +मिता.

(३) विविधं प्रकषेण दुष्टामेनस्विनीं, तथा भ्रूणस्य
गर्भस्य पुरुषस्य हन्त्रीं, बहूनां लोकानामुपकारकस्य
सेतोभेत्रीमगर्भिणीं स्त्रियं शिलां बद्ध्वा जले निमज्जयेत् ।
अप.

(४) आद्यचकारेण विषाग्निदपुरुषसमुच्चयः । द्वितीय-
चकारेण 'वापीकूपतडागोदपानभेदमार्गसरसद्रव्यदूषणेऽ-
दासीदाससंप्रदानकरणे चे'ति शङ्खोक्तसमुच्चयः । +वीमि.

विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् ।

विकर्णकरनासौष्टीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ॥

(१) भर्त्रादीनां तु विषप्रदानादौ वधप्रकारमाह—
विषाग्निदामिति । गुरुः श्वशुरादिः । निजा भ्रात्रादयः ।
स्पष्टमन्यत् । विषाग्निदानेन च वधसिद्धावयं मारणविधिः ।
X विश्व. २।२८३

(२) अगर्भिणीमित्यनुवर्तते । या च परवधार्थमन्न-
पानादिषु विषं ददाति क्षिपति । या च दाहार्थं
ग्रामादिष्वग्निं ददाति । तथा या च निजपतिगुर्वपत्याग्नि
मारयति तां विच्छिन्नकर्णकरनासौष्टीं कृत्वा अदान्तैर्दुष्ट-
बलीवर्दैः प्रवाह्य मारयेत् । स्तेयप्रकरणे यदेतत्साहसिकस्य

+ शेषं मितावत् । X विर., दवि. विश्ववत् ।

(१) यास्मृ. २।२७९; अपु. २।२७।६१-२ पणी (पिणी)
मापये (वासये) : २५८।६६ पति (निज); विश्व. २।२८३
सौ (सो); मिता.; अप. मापये (वासये); व्यक. १२१;
स्मृच. ३२५; विर. ३६६; पमा. ४५२; विचि. १५९
षाग्निदां (प्रदुष्टां); व्यनि. ५०९; दवि. ३१४; सवि.
४६४ सौ (सो); वीमि. कर्णकर (च्छिन्नकर्ण); राकौ.
४८३ कर्ण (वर्ण); सेतु. ३०८ विचिवत्; समु. १५८.

दण्डविधानं तत्प्रासङ्गिकमिति मन्तव्यम् । *मिता.

(३) या तु मनुष्यमृत्यवे विपं, ग्रामादिदाहाय चाग्निं ददाति, तथा पतिं गुरुं पितरं श्वशुरं वा निजमपत्यं वा हन्ति, तस्याः कर्णौ हस्तौ नासामोष्ठौ च छित्त्वा तां बली-वर्दमारोप्य देशाद्दहिः कुर्यात् । प्रमापयेदिति पाठे तां पादयोर्वरत्रया युगे बद्ध्वा बलीवर्दा यथा आकृष्य प्रमाप-यन्ति तथा कुर्यात् । अप.

क्षेत्रवेश्मादिदाहराजपत्नीगमनापराधेषु दण्डविधिः

क्षेत्रवेश्मवनग्रामविधीतखलदाहकाः ।

राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना ॥

(१) अन्विष्य घातकास्तथा वक्ष्यमाणाश्च— 'क्षेत्र-वेश्मग्रामवनविधीतादेश्च दाहकाः । राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना ॥' चशब्दः श्रोत्रियादिस्वर्थः । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२८६

(२) क्षेत्रं पक्कफलसस्योपेतम् । वेश्म गृहम् । वनमटर्वा क्रीडावनं वा । ग्रामम् । विधीतमुक्तलक्षणं खलं वा ये दहन्ति, ये च राजपत्नीमभिगच्छन्ति तान् सर्वान् कटैर्वीरणमयैर्वेष्टयित्वा दहेत् । क्षेत्रादेर्दाहकानां मारणदण्डप्रसंगाद्दण्डविधानम् । मिता.

(३) वेश्मनो महतो राजकीयादेः । +अप.

(४) चकारेण— 'प्राकारस्य च भेत्तारं परिखानां च पूरकम् । द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रमेव प्रमापयेत् ॥' इति मनुक्तसमुच्चयः । तुशब्देन प्रकारान्तरेण तद्धननं व्यवच्छिनत्ति । +वीमि.

राजपुरुषकृतापराधेषु दण्डविधिः

ये राष्ट्राधिकृतास्तेषां चारैर्ज्ञात्वा विचेष्टितम् ।

साधून् संमानयेद्राजा विपरीतांश्च घातयेत् ॥

* वीमि. मितावत् । + शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२८२; अणु. २२७।६२-३ वन ... काः (ग्रामवनविदारकास्तथा नराः); २५८।६७; विश्व. २।२८६ वनग्राम (ग्रामवन) तखल (तादेश्च); मिता.; अप.; व्यकृ. १२१ वनग्राम (ग्रामवन); विर. ३६६ व्यक-वत्; पमा. ४५२; विचि. १५९; व्यनि. ५०९ व्यास्तु (व्याः स्युः) शेषं व्यकवत्; दवि. ३१६ व्यकवत्; सवि. ४६७ व्यास्तु (व्याः स); वीमि.; सेतु. २५७; समु. १५८.

(२) यास्मृ. १।३३८; विश्व. १।३३४ राजा (त्रिव्यं)

उत्कोचजीविनो द्रव्यहीनान्कृत्वा विवासयेत् ।

सद्दानमानसत्कारान् श्रोत्रियान् वासयेत्सदा ॥

(१) कथं पुनः पीडाः प्रजाभ्यो विजानीयाद् राजा । ननुक्तं तत्र तत्र च निष्णातानध्यक्षान् कुर्यादिति । एत एव यदा विकुर्युस्तदा कथमिति चेत् । उच्यते— ये राष्ट्राधिकृता इति । यदा तु दुष्टजनाः सहाध्यक्षैरे-कीभूय लुब्धाः साधुजनं खलीकुर्युः, ततस्तानपि 'उत्को-चजीविनो द्रव्यहीनान् कृत्वा विवासयेत् ।' ये तु साध-वस्तान्—'सदानमानसत्कारैः श्रोत्रियान् वासयेत् सदा' श्रोत्रियवचनं दृष्टान्तार्थम् । यद्वा दानादिभिरपि श्रोत्रि-यानेव वासयेत्, न करदानप्यविनीतानित्यर्थः ।

विश्व. १।३३४-५

(२) राष्ट्रे राष्ट्राधिकारेषु ये नियुक्तास्तेषां विचेष्टितं चरितं चारैरुक्तलक्षणैः सम्यक् ज्ञात्वा साधून् सुचरितान् संमानयेत् दानमानसत्कारैः पूजयेत् । विपरीतान् दुष्ट-चरितान् सम्यग्निदित्वा घातयेत् अपराधानुसारेण । ये पुनरुत्कोचजीविनस्तान् द्रव्यरहितान् कृत्वा स्वराष्ट्रान् प्रवासयेत् । श्रोत्रियान् सद्दानमानसत्कारैः सहितान् कृत्वा स्वराष्ट्रे स्वदेशे सदैव वासयेत् । मिता.

(३) ये राष्ट्रे करादानाय प्रजापालनाय चाधिकृता नियुक्तास्तेषां विचेष्टितं विविधं व्यापारजातं चारवचने-भ्योऽवधार्य साधून् यथोक्तकारिणो दानादिना संमानयेत् । विपरीतानसाधून् घातयेत् यथादोषं दण्डयेत् । उत्कोच-जीविनशीलान् द्रव्यहीनान् कृत्वा देशाभिर्वासयेत् । कार्यार्थं कार्यिणो धनादानमुत्कोचः । श्रोत्रियान् दानमान-

श्च (स्तु); मिता.; अप. १।३३६-७ श्च (स्तु); व्यक. १२२ त्वा वि (त्वापि) श्च (स्तु); स्मृच. ३३२; विर. ३६८ श्च (स्तु); विचि. १६० विरवत्; वीमि. विरवत्; समु. १६५ प्त्वि (ष्ट्वि) श्च (स्तु).

(१) यास्मृ. १।३३९; विश्व. १।३३५ सदा (सदा) रान् (रैः); मिता.; अप. १।३३७-८ सदा (सदा); व्यक. ११२ पू. : १२२ द्रव्य (द्रव्ये) सदा (सदा); स्मृच. ३३२ पू., व्यासः; विर. ३०७ विवा (प्रवा) पू. : ३६८ विवा (प्रवा) सदा (सदा); पमा. ५८० पू., व्यासः; विचि. १३१ पू. : १६० अपवत्; दवि. १०६ पू.; वीमि. रान् (रैः); व्यप्र. ५६९ पू., व्यासः; सेतु. २३२ पू.; समु. १६५ पू., व्यासः.

सत्कारंयुक्तान् कृत्वा सर्वदा वासयेत् । मानः पूजा सत्कारः
साधुत्वख्यापको व्यापारः अप.

(४) विपरीतान् असाधून् । घातयेत् हन्यात् ।
एतच्च वधाहंपराधे । अन्यत्र त्वपराधानुसारेण दण्डये-
दिति तात्पर्यम् । अत एव तुशब्दस्तेषां पातनव्यवच्छेदा-
येति । वीमि.

अवध्यं यश्च वध्नाति वद्धं यश्च प्रमुञ्चति ।
अप्राप्तव्यवहारं च स दाप्यो दममुत्तमम् ॥

(१) वर्णापार्थिकथया (?) तु— अवध्यं यश्च
वध्नाति वध्यं यश्च प्रमुञ्चति । अप्राप्तव्यवहारं च स
दाप्यो दममुत्तमम् ॥ अप्राप्तव्यवहारो व्यवहारेणा-
स्पृष्टीकृतः । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२४९

(२) यः पुनर्वन्धनानर्हमनपराधिने राजाशया विना
वध्नाति । यश्च वद्धं व्यवहारार्थमाहूतं अनिवृत्तव्यवहारं
चोत्सृजत्यसौ उत्तमसाहसं दाप्यः । + मित्ता.

(३) बन्धनानर्हं वध्नाति योऽधिकृतो बन्धनानर्हं
प्रमुञ्चति न वध्नाति व्यवहारार्थमाहूतं चाऽनिर्णीतव्यव-
हारं योऽधिकृतो मुञ्चति स उत्तमसाहसं दमं दाप्यः । चकार-
रैस्ताडनीयताडनकर्तृबद्धोन्मोचयितुश्च संग्रहः । वीमि.

ऊनं वाऽभ्यधिकं वाऽपि लिखेद्यो राजशासनम् ।
पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः × ॥

अविज्ञातहन्तुरन्वेषणविधिः

अविज्ञातहतस्याशु कलहं सुतवान्धवाः ।

प्रष्टव्या योषितश्चास्य परपुंसि रताः पृथक् ॥

+ अप. मित्तावत् ।

× व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च प्रकीर्णके द्रष्टव्यः ।

(१) यास्मृ. २।२४३; अपु. २५८।३७ वद्धं (वध्यं);
विश्व. २।२४९ वध्यं (वध्यं) वद्धं (वध्यं); मित्ता.; अप.
वध्यं (वध्यं [वध्यं]); व्यक. १२२ वध्यं (वध्यं) श्व व
(स्तु व) वद्धं (वध्यं); विर. ३६८ वध्यं (वध्यं) वद्धं
(वध्यं); पमा. ४५७; विचि. १६०-६१ प्रमु (विमु);
दवि. ३३५ वध्यं (वध्यं) वद्धं यश्च (यश्च वध्यं) दम
(दण्ड); वीमि. विश्ववत्; विता. ७६८ श्व व (स्तु व);
सेतु. २५७ वद्धं (वध्यं) अप्रा (संप्रा); समु. १५८ वध्यं
(वध्यं) वद्धं (वध्यं) दम (दण्ड).

(२) यास्मृ. २।२८०; विश्व. २।२८४ तश्चा (तो वा);
मित्ता.; अप.; व्यक. १२३; विर. ३७७; पमा. ४५३

स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामो वा केन वाऽयं गतः सह ।
मृत्युदेशसमासन्नं पृच्छेद्वाऽपि जनं शनैः ॥

(१) भर्त्रादीनां त्विदानीं सामान्येनाविज्ञातकर्तृक-
वधनिष्पत्तावन्वेषणप्रकारमाह—अविज्ञातेति । हन्तुरवि-
ज्ञानेऽनन्तरमेव शीघ्रं हतस्य पुत्राः स्वजनाश्च प्रष्टव्याः
कलहं केन सहास्य कलहो भूतपूर्वः । साक्षारः क एनं
प्रतीत्यर्थः । योषितश्चास्य भार्याः, किं कापि परपुरुषे
सक्ता इति । एवं पृथक् पृथक् ज्ञातयः प्रष्टव्याः । तत्रा-
तिवेद्यादौ वा याः परपुंसि रता योषितः पृथगेकैकशः
प्रष्टव्याः । तदीयभार्या एव वा सपत्यः परपुरुषप्रसक्ति-
मन्योन्यं प्रष्टव्याः । प्रमाणान्तरमूलत्वादस्यार्थस्य तदनु-
सार्यन्वेषणं कार्यम् । किञ्च—स्त्रीवृत्तिद्रव्यकामो वेति ।
स्यादिकामो वाऽस्य क्रीडा इत्येवं च पुत्रादयः प्रष्टव्याः ।
किमस्य क्वचित् परस्त्रीप्रसङ्ग आसीत् । का वाऽस्य वृत्तिः ।
किं वाऽस्य द्रव्यमभिप्रेतं, शरीरलभं वा । केन वा सहायं
गृहान्निर्गतः । केन वाऽस्य मैत्रम् । अनेकविधत्वाद् दुष्टजन-
चेतसां सर्वमेवमादि प्रष्टव्यम् । यत्र वाऽसौ व्यापादितः,
तं देशमासन्नो गोपाल्मदिजनः शनैः प्रष्टव्यः । कोऽत्र
तदानीं भवद्भिर्दृष्ट इत्येवमनुमानकुशलतया घातकोऽन्वे-
ष्टव्यः । घातकश्चात्रोदाहरणार्थः । सर्वेषामेव त्वकार्य-
कारिणामेवमन्वेषणप्रकार इत्यवसेयम् ।

विश्व. २।२८४, ८५

(२) अविज्ञातकर्तृके हनने हन्तृज्ञानोपायमाह—
अविज्ञातेति । अविज्ञातहतस्याविज्ञातपुरुषेण घातितस्य
संवन्धिनः सुताः प्रत्यासन्नवान्धवाश्च केनास्य कलहो
शु (पि); विचि. १६८; दवि. ७०; सवि. ४६५; वीमि.;
व्यड. १२५, १३२; विता. ७५१; सेतु. २६०; समु-
१४६.

(१) यास्मृ. २।२८१; विश्व. २।२८५ द्रव्यवृत्ति (वृत्ति-
द्रव्य); मित्ता.; अप. मृत्यु (तत्प); व्यक. १२३ वाऽयं
(चाऽयं) शेषं अपवत्; विर. ३७७ वाऽयं गतः सह (वा
साहसं गतः) मृत्यु (तत्प) जनं (शनैः); पमा. ४५३;
विचि. १६८ अपवत्; दवि. ७० सन्नं (पन्नं) द्वा (च्चा);
वीमि. अपवत्; व्यड. १२५ तः स (तस्त्वि) जनं (समं);
१३२ सन्नं (सीनं) जनं (समं); विता. ७५१; सेतु.
२६० वाऽयं (वाऽप) मृत्यु (तत्प) सन्नं (पन्नं); समु.
१४६ द्वा (च्चा).

अत इति कलहमाद्यु प्रष्टव्याः । तथा मृतस्य संबन्धि-
न्यो ज्योपितो यश्च परंपुंसि रता व्यभिचारिण्यस्ता अपि
प्रष्टव्याः । कथं प्रष्टव्या इत्यत आह— स्त्रीद्रव्येति । किमयं
स्त्रीकामो द्रव्यकामो वृत्तिकामो वा, तथा कस्यां किंसं-
द्रिव्यां वा स्त्रियामस्य तिगासीत्, कस्मिन् वा द्रव्ये
प्रीतिः, कुतो वा वृत्तिकामः, केन वा सह देशान्तरं गत
इति नानाप्रकारं व्यभिचारिण्यो योपितः पृथक्पृथक्
विश्वास्य प्रष्टव्याः । तथा मरणदेशनिकटवर्तिनो गोपा-
यविकाद्या ये जनास्तेऽपि विश्वासपूर्वकं प्रष्टव्याः । एवं
नानाप्रकारैः प्रश्नैर्हन्तारं निश्चिन्य तदुचितो दण्डो विधा-
तव्यः ।

(३) चकारेणाऽयं कस्य भार्यायां रत इति प्रष्टव्यं
समुच्चिनोति, अपिकारेण प्रश्नं विनापि विरोधनिहमभु-
संख्यादिति समुच्चियते ।

नारदः

साहसनिश्चिः ॥ त्रसश्चस्वमश्च साहसप्रकाराः, तत्र दण्डमिच्छि ।
साहसा क्रियते कर्म यत्किञ्चिद् बलदपि ते
तत् साहसमिति प्रोक्तं सहो बलमिहोच्यते ॥

(१) नारदेनापि साहसस्य स्वरूपं विवृतम्—साहसं
तदिदं साहसं चौर्यवाग्दण्डपारुष्यस्त्रीसंग्रहणेषु व्यासक्त-
मपि बलदपान्नाशम्भोपाधितो भिद्यते इति दण्डातिरेकाय
पृथगीभिधानम् ।

(२) यत्किञ्चिन्मध्यगधनापहरणादिकमित्यर्थः ।

(३) अत्र च साहसे बले रक्षितुर्न ज्ञानवारणं,
चौर्यं तु तस्य ज्ञानवारणमिति विशेषः । * विर. ३४८

(४) सहसा बलेन बलवद्विः प्रसह्य प्रतिसातं यत्कि-

* दवि विरवत् ।

(१) नासं. १५११; नास्मृ. १७११; अपु. २५३।२६
सहो बलमिहो (विवादपदसु); विश्व. २।२३६; मिता. २।२३०;
अप. २।७२ : २।२३० सहसा (साहसात); व्यक. ११९;
स्मृच. ५; विर. ३४८; पमा. ४४९; रत्न. १२६;
विचि. १४९; व्यनि. ५१७; स्मृचि. २५ सहो (महा);
दवि. २९३; सवि. ४५१-२; वीमि. २।२३०; व्यप्र. ३९२;
व्यउ. १३०; व्यम. १०३; विता. ७४६; राकौ. ४९१;
सेतु. २५३; समु. १४६; विन्व. ५३ मिति प्रोक्तं (मिलुक्तं).

ञ्चित् कर्म क्रियते परस्वहरणादि, तत् साहसमिति चतु-
र्दशं विवादपदं उच्यते । सहो बलं, तस्मिन् भवं साह-
सम् ।

नामा. १५।१ (पृ. १५९)

तस्यैव भेदः स्तेयं स्याद्विशेषस्तत्र तूच्यते ।

आधिः साहसमाक्रम्य स्तेयमाधिश्छलेन तु ॥

(१) आधिः पीडा, सा यत्रातिक्रम्य क्रियते तत्सा-
हसम् । छलेन त्वाधिकरणे चौर्यम् । व्यक. १०९

(२) आधिः क्रुधाः । स आक्रम्यार्थहरणद्वारा क्रिय-
माणः साहसम् । छलेन पुनरर्थहरणद्वारा क्रियमाणः
स्तेयमित्यर्थः । * स्मृच. ७

(३) आधिद्रव्यहरणम् । तद्यदाक्रम्य रक्षकानवधीयं
द्विर्यते तत्साहसम् । यत्तु छलेन गोपनेन हृतं तत्स्तेयम् ।
एवञ्च तस्यैव भेद इत्यत्र तत्पदार्थः साहसं, तदेकदेशोऽ-
नैयाधिकद्रव्यहरणमात्रात्मको विवक्षित इति मन्तव्यम् ।

विर. ३८७

आक्रम्य रक्षितुर्ज्ञाने सत्येव बलेन आधिः पीडनं
साहसम् । छलेन तु रक्षितुर्ज्ञानवारणेन स्तेयमित्यर्थः ।

* विर. ३४९

(४) प्रसह्यं बलात् अप्रज्ञातमादीनं स्तेयमित्युच्यते ।
एष एव तस्य साहसस्य भेदो विशेषश्च ।

नामा. १५।११ (पृ. १६१)

मनुष्यमारणं स्तेयं परदाराभिर्भर्शनम् ।

पारुष्यमुभयं चेति साहसं पञ्चधा स्मृतम् ॥

* व्यप्र. स्मृचवत् । × विचि., दवि. विरवत् ।

(१) नासं.-१५।११ स्यादि (तु वि) तू (चो) धिः सा
(धेः सा); नास्मृ. १७।१२ तूच्यते (इश्यते); व्यक. १०९
स्तेयं स्यादि (स्यात् स्तेयं वि); स्मृच. ७; विर. २८७;
३४९ स्तत्र तूच्यते (स्तत्र कीर्यते); रत्न. १२३ स्तेयं
(स्तेयः); विचि. १५९ तूच्यते (कीर्यते); दवि. २९३
उत्तः; व्यनि. ५१७ स्तेयं (त्रेधा) तु (च); वीमि. २।२३०
विरवत्; व्यप्र. २२२, ३८५; व्यउ. १२३ (=);
विता. ७७६; सेतु. २५४ विचिवत्; समु. १४८.

(२) नास्मृ. १५।२ उत्तरार्धे (पारुष्यं द्विविधं त्रेयं साहसं
च चतुर्विधम्); मिता. २।७२ (=) पञ्चधा स्मृतम् (स्यात्-
तुर्विधम्); अप. २।७२ स्तेयं (चौर्यं) मर्शनम् (मर्षणं
[शन] म्) पञ्चधा स्मृतम् (तु चतुर्विधम्) मनुः : २।२३०
स्तेयं (चौर्यं); व्यक. ११९ स्तेयं (चौर्यं) मुभयं (मुत्तमं);

अत्र प्रकाशकृतत्वलक्षणमाक्षितं सामान्यलक्षणम् । पञ्चधेति त्रिभागः, प्राणिहिंसा स्तेयं परदारपरिग्रहौ वाक्पारुष्यं दण्डपारुष्यमित्युद्देशः । इह च साहसे रक्षितुर्ज्ञानवारणं नास्ति, स्तेये तु तदस्तीति तस्यासाहसत्वादुक्तविभागानुपपत्तिः स्तेयलक्षणे साहसलक्षणे चाव्यातिः । रक्षिसमक्षकृतस्यापि परद्रव्यग्रहणस्यापह्नवे स्तेयत्वादतस्समक्षकृतस्यापि परदारपरिग्रहादेः साहसत्वात् । अतस्तदुभयमनुद्याप्युपेक्ष्य—‘सहसा क्रियते कर्म यत्किञ्चिद्बलदर्पितैः । तत्साहसमिति प्रोक्तं सहो बलमिहोच्यते ॥’ इति नारदेनैवोक्तम् । एवं च समाख्यानगतं बलकृतत्वमात्रमेतन्मते साहसलक्षणम् । तदेतत् स्पष्टमाह—‘आधिः साहसमाक्रम्य स्तेयमाधिच्छलेन तु ।’ आधिः पीडनं तद्वलेन यत्र क्रियते तत् साहसम् । यत्र तु रक्षितुरपवार्यं छलेन क्रियते तत् स्तेयमित्यर्थः । एतेन स्तेयस्य द्विरूपत्वमुक्तम् । अत एव स्तेयादीनामविशेषश्रुतावपि बलावष्टम्भेन क्रियमाणानामेषां साहसत्वम् । अतस्तत्रैव दण्डाधिक्यं न तु रक्षि क्रियमाणानामिति । तत्र प्रतिपादोक्त एव दण्ड इति मिताक्षराकारः । एतदेवाभिसंधाय याज्ञवल्क्येन—‘सर्वः साक्षी संग्रहणे चौर्यपारुष्यसाहसे’ इति पृथगुपादानं कृतम् ।

दवि. २९३-४

तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं प्रथमं मध्यमं तथा ।

उत्तमं चेति श्लेषेषु तस्योक्तं लक्षणं पृथक् ॥

विर. ३४८ स्तेयं (चौर्यं) र्शनं (षण्) ; स्मृसा. ११४ स्तेयं (चौर्यं) मर्षं (मर्दं) चेति... .. स्मृतम् (चैव साहसं स्यात् चतुर्विधम्) ; रत्न. १२५ मितावत् ; दीक. ५३ चेति (चैव) ; ब्यनि. ७६ स्तेयं (चौर्यं) शेषं मितावत्, कात्यायनः : ५१७ स्तेयं (चौर्यं) ; द्दवि. ३२ र्शनं (षण्) उत्तरार्धे (द्वे पारुष्ये प्रक्षीर्णं च दण्डस्थानानि षड् विदुः) : २९३ र्शनं (षण्) चेति (चैव) ; ब्यत. २१३ दवि (घृ. २९३) वत् ; ब्यप्र. १२० (=) स्तेयं (चौर्यं) शेषं मितावत् ; ब्यउ. १३० मितावत् ; विता. १३६ (=) स्तेयं (चौर्यं) शेषं मितावत् ; सेतु. १२० चेति (चैव) : २५३ स्तेयं (चौर्यं) र्शनं (षण्) ; भ्याच. ८।७२ (=) मितावत्.

(१) नासं. १५१२; नास्मृ. १७।३; मिता. २।२३०; ब्यक. ११९ ज्ञेयं (प्रोक्तं); स्मृच. ६; विर. ३४९ व्यकवत्; पमा. ४५०; रत्न. १२६ चेति (चेति); दीक. ५३;

(१) तस्य च दण्डवैचित्र्यप्रतिपादनार्थं प्रथमादिभेदेन त्रैविध्यमभिधाय तल्लक्षणं तेनैव विवृतम्—तत्पुनस्त्रिविधमिति । मिता. २।२३०

(२) तत् साहसं त्रिविधं, प्रथमं, मध्यमं, उत्तममिति । फल्गुसारादिविषयभेदेन मनुसंहितासु शास्त्रान्तरेषु च तस्य त्रिप्रकारस्यापि लक्षणमुक्तम् ।

नाभा. १५।२ (घृ. १५९)

फलमूलोदकादीनां क्षेत्रोपकरणस्य च ।

भङ्गाक्षेपावमर्दाद्यैः प्रथमं साहसं स्मृतम् ॥

परपरिग्रहे फलमूलोदकशाकपुष्पादीनां क्षेत्रोपकरणस्य हल्युगावरत्रादेः भङ्गः, क्षेत्रोपकरणस्य फलकन्दशाकादीनामाक्षेपो हरणं, उदकादेश्च सेतोरवमर्दः, सस्यादेश्चाहरणं, सर्वेषां वा यथासंभवम् । एतत् प्रथमं साहसमल्पद्रव्यापहारविषयम् । नाभा. १५।३ (घृ. १५९)

वासःपश्वन्नपानानां गृहोपकरणस्य च ।

एतेनैव प्रकारेण मध्यमं साहसं स्मृतम् ॥

ब्यनि. ५१७ श्लेषु (श्लेषैः); स्मृचि. २६; सवि. ४५२ (=); ब्यप्र. ३९२; ब्यउ. १३०; विता. ७४७ (=); राकौ. ४९१; सेतु. २५३ व्यकवत्.

(१) नासं. १५।३; नास्मृ. १७।४ पाव (पोप); मिता. २।२३० नास्मृवत्; ब्यक. ११९; स्मृच. ६, ३२३; विर. ३४९ पाव (पाप); पमा. ४५०; रत्न. १२६; दीक. ५३ विरवत्; विचि. १४९-५० पाव (पाप) प्रथ....स्मृतम् (परदारप्रथर्षणम्); ब्यनि. ५१७ नास्मृवत्; स्मृचि. २६ विरवत्; सवि. ४५२ (=) पावमर्दा (पोऽसमर्था); ब्यप्र. ३९२; ब्यउ. १३० नास्मृवत्; ब्यम. १०३ नास्मृवत्; विता. ७४७ (=) नास्मृवत्; राकौ. ४९१ नास्मृवत्; सेतु. २५३; समु. १५६.

(२) नासं. १५।४; नास्मृ. १७।५; मिता. २।२३०; अप. २।२३० वासः (नाशः) पाना (याना); ब्यक. ११९ णस्य (णानि); स्मृच. ६, ३२३; विर. ३४९; पमा. ४५०; रत्न. १२६; दीक. ५३; ब्यनि. ५१७ पाना (धान्या); सवि. ४५२ (=); ब्यप्र. ३९२ पाना (पाला) हो (हा); ब्यउ. १३० पाना (याना) तेनै (तैरे) ब्यम. १०३; विता. ७४७ (=); राकौ. ४९१; सेतु. २५३ पाना (याना) एते (अने); समु. १५६.

वल्गाणां पशूनामजादीनां पक्वान्नस्य क्षीरादेर्गृहोप-
करणस्य घटपीठकोद्गुलमुसलशूर्पादेः पूर्ववद् भङ्गादि-
करणं मध्यमद्रव्यविषयत्वान्मध्यमं साहसम् ।

नाभा. १५।४ (पृ. १५९)

व्यापादो विषशस्त्राद्यैः परदाराभिमर्शनम् ।

प्राणोपरोधि यच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसम् ॥

व्यापादो मारणं विषशस्त्राग्निहस्तमुष्टयादिभिः ।
परदाराणां चातिक्रमः । अन्यदपि येन म्रियते तस्यानु-
ष्ठानं पुत्रमरणकथनाद्यनृतं, तद् हि उत्कृष्टविषयत्वा-
दुत्तमसाहसम् । नाभा. १५।५ (पृ. १६०)

तस्य दण्डः क्रियापेक्षः प्रथमस्य शतावरः ।

मध्यमस्य तु शास्त्रज्ञैर्दण्डः पञ्चशतावरः ॥

तस्य त्रिप्रकारस्य साहसस्य दण्डः, क्रियत इति
क्रिया द्रव्यं, तदपेक्षो द्रव्यतत्सारापेक्षो भिद्यते । तत्र
प्रथमस्य तावत् फलादिविशेषवशात् पञ्चशतादारभ्य
यावच्छतं, न शतादवाक् । अल्पेऽप्यपराधे बहुदण्ड-
वचनं प्रसङ्गनिवृत्त्यर्थम् । मध्यमसाहसस्य सहस्रादारभ्य
यावत् पञ्चशतानि । नाभा. १५।६ (पृ. १६०)

(१) नासं. १५।५ राभिमर्शनम् (रप्रर्षणम्); नास्मृ. १७।६; मिता. २।२३०; अप. २।२३० र्शन (र्ष [र्श] ण); व्यक्र. ११९ दो (रो) राभिमर्शनम् (रप्रर्षणम्) हुक्त...
सम् (हुक्तमं साहसं स्मृतम्); स्मृच. ६ उत्तरार्धं व्यकवत् : ३२३; विर. ३४९ णो (णा) शेषं नासंवत्; पमा. ४५०; रत्न. १२६; दीक. ५३; विचि. १५० न्यदुक्तसु (धमध्यमो)
उत्तः; व्यनि. ५१७ राभिमर्शनम् (रप्रर्षणम्) उत्तरार्धं व्यकवत्; स्मृचि. २६; सवि. ४५२ (=) उत्तरार्धं व्यक-
वत्; व्यग्र. ३९२; व्यउ. १३० उत्तरार्धं व्यकवत्; व्यम. १०३; विता. ७४७ (=); राकौ. ४९१ र्शन (र्षण); सेतु. २५३ नासंवत्; समु. १५६ उत्तरार्धं व्यकवत्.

(२) नासं. १५।६; नास्मृ. १७।७; मिता. २।२३०
पेक्षः (क्षेपः); अप. २।२३०; व्यक्र. ११९; स्मृच. ३२३; विर. ३५१; पमा. ४५०; रत्न. १२९; दीक. ५३
मितावत्; विचि. १५०; व्यनि. ५०३, ५१८; स्मृचि. २६; द्वि. २९४; नृप्र. २६७ (=); सवि. ४५२ (=) पूर्वार्धं (तस्य दण्डक्रियापेक्षा प्रथमस्य दशापरः)
वरः (परः); व्यग्र. ३९३ तस्य (तत्र); व्यउ. १३०
पेक्षः (क्षेपे); व्यम. १०५ तु (च); विता. ७४७ (=)
दण्डः (ण्ड); राकौ. ४९१; सेतु. २५९; समु. १५४.

उत्तमे साहसे दण्डः सहस्रावर इष्यते ॥

वधः सर्वस्वहरणं पुरात्रिर्वासनाङ्कने ।

तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तमसाहसे ॥

(१) वधादयश्चापराधतारतम्यादुत्तमसाहसे समस्ता
व्यस्ता वा योज्याः । मिता. २।२३०

(२) तदङ्गच्छेदः साहसकरणीभूताङ्गच्छेदः ।

विर. ३५१

(३) वधस्ताडनादिः, सर्वस्वहरणं, ततो महति पुरा-
त्रिर्वासनं वधादि कृत्वा, ततोऽपि महति पूर्वत्रयमङ्कनं
च, येनाङ्केन हस्तेन पादेन वा साहसं कृतं तस्य छेदनम् ।
एवम्प्रकारो दण्ड उत्तमसाहसे । नाभा. १५।७ (पृ. १६०)

अविशेषेण सर्वेषामेष दण्डविधिः स्मृतः ।

वधादृते ब्राह्मणस्य न वधं ब्राह्मणोऽर्हति ॥

(१) नास्मृ. १७।८; मिता. २।२३०; पमा. ४५०;
रत्न. १२९; दीक. ५३; व्यनि. ५१८; स्मृचि. २६;
द्वि. २९४; नृप्र. २६७ (=); सवि. ४५३ (=) वर
इष्यते (पर उच्यते); व्यग्र. ३९३; व्यउ. १३०; व्यम.
१०५; विता. ७४७ (=); राकौ. ४९१; समु. १५६.

(२) नासं. १५।७; नास्मृ. १७।८; मिता. २।२६ से
(सः) : २।१५५ (=) : २।२३० : २।२७४ उक्तः;
अप. २।२६ षड उ (षडत्) से (सः) : २।१५५ (=)
पू. : २।२३०; व्यक्र. ११९ से (सम्); स्मृच. १२५,
३२३; विर. ३५१; पमा. ४०४ इत्युक्तो (इत्येको) से
(सः) स्मरणम् : ४४२, ४५०; रत्न. १२९ से (सः);
दीक. ५३ से (सः); विचि. १५०; व्यनि. ५०३, ५१८;
स्मृचि. २६; द्वि. १३३ से (सः) : २९४; नृप्र. ३२
से (सम्) : २६७ (=); सवि. ४५३ (=) नाङ्के
(नं तु वा); व्यग्र. ३६६ से (सम्) स्मरणम् : ३९३;
व्यउ. १०७ योगीश्वरः : ११० से (सम्) : १३०;
व्यम. १०५ से (सः); विता. २९ (=) : ८५ वधः
(धन) से (सः) : ७४७ (=) से (सः); राकौ.
४९१; सेतु. २५९; प्रका. ७८; समु. १५६.

(३) नासं. १५।८; नास्मृ. १७।९; मिता. २।२६;
अप. २।२६ सर्वेषा (वर्णाना) पू. : २।२७७; व्यक्र. १२३
मेष (मेवं); स्मृच. १२५ वधं (वन्धं); विर. ३७४; रत्न.
१२७ (=); विचि. १६६; वीमि. २।२८२ वधादृते
(वध्याXX); व्यग्र. ३९३; व्यउ. १३० उक्तः; व्यम.
१०३; विता. ८५ पू. : ८८ उक्तः : ७५४; प्रका. ७८।९;
समु. १५६.

शिरसो मुण्डनं दण्डस्तस्य निर्वासनं पुरात् ।
ललाटे चाभिशास्ताङ्कः प्रयाणं गर्दभेन च ॥

अविशेषेणेति । अविशेषेण क्षात्रियावेदशूद्रादीनामपि पञ्चविधो दण्ड उत्तमसाहसे । इतरयोरपि प्रथममध्यम-
योरपि यथोक्तो वधं मुक्त्वा अन्यस्तुल्यः, ब्राह्मणस्य तु
वधो नास्ति, तुल्यदोषत्वेऽपि जातेः पूज्यत्वात् ।

शिरस इति । ब्राह्मणस्योक्तमेव— शिरसो मुण्डनं
पञ्चसटं कार्यम् । ततो महति पुराभिर्वास्यः । ततोऽपि
महति ललाटेऽभिशास्ताङ्कनं कुक्कुटाद्यं क्रमात् कार्यम् ।
गर्दभेन चाधिष्ठाने भ्रामयितव्यः ।

नाभा. १५।८-९ (पृ. १६०-६१)

स्यातां संबन्धवहायौ तौ धृतदण्डौ तु पूर्वयोः ।

धृतदण्डोऽप्यसंभाष्यो ज्ञेय उत्तमसाहसे ॥

प्रथममध्यमयोश्च कतारौ दण्डितौ कृतप्रायश्चित्तौ
च संभोजनादिमहत्तः न त्याज्या । उत्तमसाहसे तु धृत-
दण्डोऽपि त्याज्य एव, न संभोज्यः ।

नाभा. १५।१० (पृ. १६१)

अपराधविषयकपश्चात्तापे सति असति च कर्तव्यता,

अयुक्तं साहसं कृत्वा प्रत्यापत्तिं भजेत यः ।

ब्रूयात् स्वयं वा सदसि तत्स्वार्धविनयः स्मृतः ॥

(१) नासं. १५।९ इ. प्रया (श्लो निर्वा) ; नास्मृ. १७।१० ;
मिता. २।२६ ; अप. २।२६, २।२७ ; व्यक. १२३ ;
स्मृच. १२५ (=) ; विर. ३७४ च (तु) ; पमा. २०५ (=) ;
रत्न. ५४ : १२७ (=) ; विचि. १५६ ; विरवत्. नृप्र. १७ च (वा) ;
सवि. ४९४ चाभिशास्ताङ्कः (गर्दभस्याङ्कः) स्मरणम् ;
वीमि. २।२८२ दण्डस्तस्य (तत्र दण्डो) ; व्यप्र. ३९३ ; व्यउ. १३० विरवत् ; व्यम. १०३ ;
विता. ८८, ७५४ चाभि (वाभि) च (वा) ; प्रका. ७८
मनुः ; समु. १५६.

(२) नासं. १५।१० भाष्यो (भोज्यो) ; नास्मृ. १७।११ ;
अप. २।२३० तौ (द्वौ) वयोः (वकौ) ; स्मृच. ३२३ तौ
(द्वौ) से (सः) : ३२४ (=) से (सः) उक्तः ; विर. ३५१
तौ (द्वौ) ; रत्न. १२९ विरवत् ; विचि. १५० विरवत् ;
व्यनि. ५०३ : ५१८ तौ (तु) ज्ञेय (दण्ड्य) ; सवि. ४७४
(=) धृत (कृत) उक्तः ; समु. १५६ विरवत्.

(३) नासं. २।२२० ; नास्मृ. ४।२४५ सदसि (सदिति) ;
अभा. ७३ नास्मृवत् ; व्यक. १२३ जेत (जेतु) ; स्मृच. १२६
भजेत (ब्रजेतु) स्वार्धविनयः (स चाश्रो दमः) ;

गृहमानस्तु दौर्दशील्यात् यदि पापः स हीयते ।
सभ्याश्वास्य न दुष्यन्ति तीव्रो दण्डश्च पात्यते ॥

(१) अत्र अयुक्तं वियुक्तं विरुद्धं किमपि कस्यापि
कृत्वा अथवा चौर्यादिकं साहसमापि कस्यापि कृत्वा
तेनावेदितः सन् धर्माधिकरणस्याग्ने यः प्रत्यापत्तिं करोति
मिथ्यां न करोति तस्याधममध्यमोत्तमानुसारेण यः शास्त्रे
विहितो दण्डः तस्य विनयस्याधर्ममेव विनयोऽस्य भव-
तीति । अनावेदितोऽपि यः स्वयमेव प्रतिपत्तिं करोति
तस्यायमेव क्रम इति ।

गृहमानस्त्विति । यदि पुनरयुक्तसाहसादिकं कृत्वा
करणावेदितोऽपि मिथ्यां करोति, पश्चात्स दिव्यादि-
क्रियाभिः पराजीयते च, तदा यस्य तस्य (?) सभ्याः
कुपिता भवन्ति, तीव्रो दण्डश्च तस्य द्विगुणादिक इति ।

अभा. ७३-४

(२) प्रत्यापत्तिर्विनयकर्तृसान्निध्यं, ब्रूयाद्वा सदसि
साहसं कृतं, तेन अवगृहमानत्वमुक्तम् । तेन साहसमगृह-
माने तत्कर्तारि अनधिकदण्डः, गृहमाने तु अधिक इति
पूर्वोत्तरश्लोकार्थः । ह्येवायुधस्तु साहसकार्येऽप्यन्यायसाहसं
कृत्वा यदि प्रत्यापत्तिं प्राप्य भजेत, स्वयमेव वा
साहसकर्तृत्वं निवेद्य दण्डो भवेत्क्रियतेति वेदितं, तस्य
यथोक्तदण्डादिदण्डः । यस्तु दौर्दशील्यं गृहमानः तस्मात्
देव जीवति, तस्य त्रिविक्रितादिभिः साहसकारित्वं निश्चित्य
स्वल्पेऽपि साहसे तीव्रो दण्ड इत्यर्थमाह । विर. ३७६

वि. ३७६ पत्ति (सति) ; पमा. २०९ भजेत (ब्रजेतु)
स्वयं (सर्व) स्वार्धविनयः (स चाश्रो दमः) ; विचि. १५६
पत्ति (सति) भजेत (करोति) ; दवि. ७८ विरवत् ; नृप्र.
१७ स्वयं (सर्व) शेषं स्मृचवत् ; सेतु. ३०८ भवेत्विचवत् ;
समु. ६९ स्मृचवत्.

(१) नासं. २।२२१ पापः (पाप) : पात्यते (प्राथिवात्) ;
नास्मृ. ४।२४६ दौर्दशील्यात् (वैचित्र्यात्) हीयते (जीयते)
श्वास्य (स्तस्य) दु (तु) ; अभा. ७३ दौर्दशील्यात् (ये
शल्यात् ?) हीयते (जीयते) श्वास्य (स्तस्य) दु (तु) ; व्यक.
१२३ हीयते (जीवति) दु (तु) ; विर. ३७६ व्यकवत् ;
विचि. १६८ ल्यात् (ल्य) पापः (वातः) हीयते (जीवति)
स्य न दु (न्येन तु) श्च पात्यते (स्तु पचते) ; दवि. ७९
हीयते (जीवति) न दु (प्रदु) ; सेतु. ३०८ पूर्वाधे- (गृह-
मानस्तु दुःशीलं यदि वाऽतः स जीवति) षड्श्च (षडस्तु) .

(३) अयुक्तमिति । अयुक्तं प्रतिषिद्धं चौर्यपरघातादि कृत्वा प्रत्यापत्तिं भजेत् 'अशोभनंमकार्यं मया कृतं, शासनीयोऽस्मि, प्रम्नादान्मथैतत् कृतमिति' प्रतिपद्येत स्वयमेव, स्वयं वाऽकार्यस्य चोदितो राजकुले प्रणिपत्य 'इदं मयाकार्यं कृतं शोधयत मामि'ति तस्य द्विप्रकार-स्यापि अस्मिन् कार्ये विहितो यो दण्डः तस्यार्थः स्मृतः । प्रायश्चित्तं तु (न) तद्वशेन, 'ख्यापनानुतापादिना पापस्य क्षयाद्' इति स्मरणात् । अन्योऽप्येवं मा कार्षी-दित्यर्धदण्डः ।

गूहमानस्त्विति । यस्तु स्वयं न प्रकाशयति गूहमान एव, लिखितेऽपि व्यवहारे मिथ्येति ब्रुवन् पापं गूहमानो यदि, हीयते, सभ्याश्च साधवो न दुष्यन्ति, तीव्रश्च दण्डो महान् पार्थिवात् । शिष्टविगर्हणा च परलोकविरुद्धा कष्टे-यमवस्थंति तीव्रो दण्डः । तस्माद् यदि प्रमादेन पापं कुर्यान्न गूहेत् । तथा सति प्रत्यवायो मन्दः शिष्ट-विगर्हणाभावात् । दृष्टे चापि दण्डलाभ इति ।

नाभा. २।२२०-२१ (पृ. ८१-८२)

अविक्रेयविक्रये ब्राह्मणदण्डः

अविक्रेयाणि विक्रीणन् ब्राह्मणः प्रच्युतः पथः ।

मार्गे पुनरवस्थाप्यो राज्ञा दण्डेन भूयसा * ॥

अत्र यानि अविक्रेयाणि निर्दिष्टानि तानि विक्रीणन् ब्राह्मणो मार्गच्युतो भवति । स च राज्ञा पुनरपि मार्गे संस्थापनीयः । महता दण्डेनेति । अभा. ४६

राजघृतवस्तुनि आक्रममाणो वधदण्डार्हः

गन्धमाल्यमदत्तं तु भूषणं वास एव वा ।

पादुकेति राजोक्तं तदाक्रामन्वधमर्हति (?) * ॥

एतानि वस्तुनि राजकीयानि यो दर्पात्स्वयमाक्रामति स राज्ञः सकाशाद्बधमर्हतीति । अभा. २६

* अयं श्लोकः प्रकरणान्तरस्थोऽपि निबन्धकारानुसारेणान्नो-द्धृतः ।

(१) नासं. २।६३; नास्मृ. ४।६७; अभा. ४६; अप. २।२३३; व्यक्र. १२१; विर. ३६४; दवि. ३११; सेतु. ३०६.

(२) नास्मृ. २।३५; अभा. २६ उत्तरार्धे (पद्मसनं पादु-केति राजोक्तोऽयं वध ? र्हति ?) .

बृहस्पतिः

साहसनिरुक्तिः, पञ्च-त्रयश्च साहसप्रकाराः,
तत्र दण्डविधिश्च

स्तेनानामेतदाख्यातं सर्वेषां दण्डनिग्रहम् ।

साहसस्याधुना सम्यक् श्रूयतां वधशासनम् ॥

मनुष्यमारणं चौर्यं परदाराभिमर्शनम् ।

पारुष्यमुभयं चेति साहसं पञ्चधा स्मृतम् * ॥

इति वचनाद्यद्यपि स्त्रीसंग्रहणचौर्यपारुष्याणां साह-सत्वं तथापि तेषां स्वन्नलावष्टम्भेन जनसमक्षं क्रिय-माणानां साहसत्वम् । रहसि क्रियमाणानां तु संग्रहणादि-शब्दवाच्यत्वमिति तेषां साहसात्पृथगुपादानम् ।

मिता. २।७२

हीनमध्योत्तमत्वेन त्रिविधं तत्प्रकीर्तितम् ।

द्रव्यापेक्षो दमस्तत्र प्रथमो मध्यमोत्तमौ ॥

प्रथमो मध्यमोत्तमौ इति प्रथममध्यमोत्तमसाहसरूप इत्यर्थः । इत्थं हीनादिद्रव्यापेक्षेण प्रथमादिसाहसानां व्यवस्थितत्वेऽपि तेषां हीनत्वादितारतम्यात् साहसानां न्यूनाधिकसंख्याभेदो व्यवस्थितो द्रष्टव्यः । दवि. १४१

साहसस्तेयं तत्र दण्डश्च

सौमप्रतं साहसस्तेयं श्रूयतां क्रोधलोभजम् ।

साहसस्तेयं साहसलक्षणं स्तेयमित्यर्थः । स्मृच. ३१६

* 'साहसं पञ्चधा प्रोक्तं' इत्यग्निमहस्पतिवचनानुसारेण स्मृतिचन्द्रिकापाठ एव सम्यक् लगते ।

(१) व्यनि. ५१७; समु. १४६ उक्त.

(२) स्मृच. ६ : ३१२ पञ्चधा स्मृतम् (तु चतुर्विधम्); पमा. ४५० चेति (चैव) शेषं स्मृचवत्; रत्न. १२६ पञ्चधा स्मृतम् (स्याच्चतुर्विधम्); नृप्र. २६७ भयं चेति (त्तमं चैव) शेषं रत्नवत्; सवि. ४५२ मारणं (हरणं) शेषं स्मृचवत्; व्यसौ. ४५ रत्नवत्; व्यप्र. ३९२ रत्नवत्; व्यम. २ चौर्यं (स्तेयं) शेषं रत्नवत् : १०३ रत्नवत्; विता. ३५ चौर्यं (स्तेयं) शेषं रत्नवत् : ७४६ रत्नवत्; समु. १४६.

(३) अप. २।२३० स्तत्र (श्वात्र) मध्यमोत्तमौ (मध्य उत्तमः); व्यक. ११९ मध्यमोत्तमौ (मध्य उत्तमः); विर. ३५० मौ (मः); दवि. १४१ विरवत् : २९४ व्यकवत्; सेतु. २५४ व्यकवत्, मनुः : २५९ मनुः.

(४) स्मृच. ३१६; रत्न. १२८; सवि. ४५८; व्यप्र. ३९६ साहस (साहसं); विता. ७७४ व्यप्रवत्; समु. १४८.

क्षेत्रोपकरणं सेतुं पुष्पमूलफलानि च ।
विनाशयन् हरन् दण्ड्यः शतायमनुरूपतः ॥
पशुवस्त्रान्नपानानि गृहोपकरणं तथा ।
हिसयन् चौरवद्वाप्यो द्विशताद्यं दमं तथा ॥
स्त्रीपुंसौ हेमरत्नानि देवविप्रधनं तथा ।
कौशेयं चोत्तमं द्रव्यमेषां मूल्यसमो दमः ॥
द्विगुणो वा कल्पनीयः पुरुषापेक्षया नृपैः ।
हर्ता वा घातनीयः स्यात्प्रसङ्गविनिवृत्तये ॥

(१) तत्र तावत्साहसस्तेयकर्तृविषये दण्डानाह बृहस्पतिः
—क्षेत्रेति । अत्र विनाशयन् हरन् हिसयन् चोरयन् हन्ता

(१) अप. २।२३० पुष्पमूल (मूलपुष्प) ताद्य (तोद्य);
व्यक. ११९; स्मृच. ३१६ तुं पुष्पमूल (तुमूलपुष्प) च
(क्ष्य); विर. ३५०; रत्न. १२८ सेतुं (चैव); विचि.
१५० मनुः; दवि. १४१; व्यम. १०४ सेतुं (चैव);
विता. ७७४ व्यमवत्; सेतु. २५४ मनुः; समु. १४८
पूर्वार्धं स्मृचवत्; विव्य. ५३ क्षेत्रो...सेतुं (क्षेत्रं सदस्तथा
धान्यं) शता...पतः (स च सत्यानुसारतः) मनुः.

(२) अप. २।२३० ता (तो); व्यक. ११९ हिसयन्
चौरवद् (हारयन् चोरयन्); स्मृच. ३१६ चौरवद् (चोर-
यन्); विर. ३५०; रत्न. १२८ स्मृचवत्; विचि. १५० चं
द (बद्) शेषं स्मृचवत्, मनुः; दवि. १४१ नानि (नादि)
चं (न्तं); व्यम. १०४ चौरवद्वाप्यो (चोरयन् शास्यो);
विता. ७७४ चं (च); सेतु. २५४, २५९ स्मृचवत्, मनुः;
समु. १४८ स्मृचवत्.

(३) अप. २।२३० त्तमं (त्तम); व्यक. ११९ अपवत्;
स्मृच. ३१६ सौ (सो); विर. ३५० अपवत्; रत्न. १२८
सौ (गो) कौशे (यौषे) त्तमं (त्तम); विचि. १५० सौ
(गो) मनुः; दवि. १४१; व्यम. १०४ रत्नवत्; विता.
७७४ सौ (गो) कौशे (यौषे); सेतु. २५४ सौ (गो) धनं
(धने) मनुः : २५९ सौ (गो) मनुः; समु. १४८ सौ
(गो) त्तमं (त्तम).

(४) अप. २।२३० हर्ता (हन्ता); व्यक. ११९ हर्ता
(हन्ता) विनिवृत्तये (प्रधनं तथा); स्मृच. ३१६ अपवत्:
३१७ पूः; विर. ३५० षो वा कल्पनीयः (णः कल्पनीयश्च)
वा षा (च षा); रत्न. १२८ अपवत्; विचि. १५० हर्ता
..... स्यात् (हर्तारो घातनीयाः स्युः) मनुः; दवि. १४१
वा वा (च षा) : २९५ वा वा (च षा) उक्तं; व्यम.
१०५ त्य (व्य); विता. ७७४ हर्ता वा (हन्ता च); सेतु.
२५४, २५९ मनुः; समु. १४८.

वेति च वदन् इदं दण्डशास्त्रं साहसस्तेयकर्तृविषयं इति
दर्शयति । तस्य कोधलोभवत्त्वेन हननोपेतस्तेयकारित्वात् ।
हन्ता वा घातनीय इत्यब्राह्मणविषयम् । स्मृच. ३१६

(२) शताद्यं शतावरं द्विशतान्तः । अनुरूपतः विना-
शितापहृतमूल्यानुसारेण । पुरुषापेक्षया आढ्यदरिद्र-
पुरुषापेक्षया । अत्र यस्य मूल्यमात्रं संभवति, तस्य
तन्मात्रं, यस्य त्वधिकं, तस्य द्विगुणो दण्डः । यस्य तु
न मूल्यमात्रमपि, चौर्यं चातिप्रसङ्गः, तस्य वध इति
व्यवस्था । * विर. ३५०-५१

साहसिकवधदण्डविचारः । साहसिका राज्ञा नोपेक्षणीयाः । साह-
सिकघातकतत्साहायाः तदण्डश्च ।

साहसं पञ्चधा प्रोक्तं वधस्तत्राधिकः स्मृतः ।
तत्कारिणो नार्थदमैः शास्या वध्याः प्रयत्नतः ॥
प्रकाशवधका ये तु तथा चोपांशुघातकाः ।
ज्ञात्वा सम्यक् धनं हत्वा हन्तव्या विविधैर्वधैः ॥
मित्रप्राप्त्यर्थलोभैर्वा राज्ञा लोकेहितैषिणा ।
न मोक्तव्याः साहसिकाः सर्वभूतभयावहाः ॥
लोभाद्भयाद्वा यो राजा न हन्यात्पापकारिणः ।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं राज्याच्च परिहीयते ॥

* दवि. विरवत् ।

(१) व्यक. १२२; स्मृच. ३१२; उक्त., नारदः; विर-
३७१; विचि. १६३-४ (=); दवि. ६१; समु. १४६
उक्त., नारदः.

(२) अप. २।२७७ वधका (घातका); व्यक. १२२
हत्वा (हित्वा) हन्तव्या (हन्याद्वा); स्मृच. ३१२ ये तु
(राक्ष); विर. ३७१ तु (च) हत्वा (हित्वा); पमा. ४५४;
रत्न. १२६ अपवत्; विचि. १६४ (=) ज्ञात्वा.....हत्वा
(राज्ञा सम्यग्वधं हित्वा); सवि. ४५८ का ये तु (कार्येषु)
काः (कान्); व्यम. ३९४ अपवत्; व्यड. १३२ अपवत्;
व्यम. १०३ अपवत्; विता. ७५१ म्यक् धनं हत्वा
(म्यक्तया त्वाशु); समु. १४६ स्मृचवत्.

(३) अप. २।२७७ लोभैर्वा (लोभे वा) भूत (लोक);
व्यक. १२२ साहसिकाः (प्रयत्नेन); विर. ३७१; विचि.
१६४ संदर्भेण कालायनः; दवि. ६२ भूत (लोक); वीमि.
२।२८२ राज्ञा (राज) कालायनः.

(४) अप. २।२७७ हन्यात्पाप (हन्त्यन्याय्य); व्यक.
१२२; विर. ३७२; विचि. १६४ क्षुभ्य (अश्य) संदर्भेण
कालायनः; वीमि. २।२८२. प्रक्षु (प्रोज्ज).

बन्धाभिषिषश्लेण परान् यस्तु प्रमापयेत् ।
क्रोधादिना निमित्तेन नरः साहसिकस्तु सः ॥
एकस्य बहवो यत्र प्रहरन्ति रुषान्विताः ।
मर्मप्रहारको यस्तु घातकः स उदाहृतः ॥
मर्मघाती तु यस्तेषां यथोक्तं दापयेद्दमम् ।
आरम्भकृत् सहायश्च दोषभाजौ तदर्धतः ॥
क्षतस्याल्पमहत्त्वं च मर्मस्थानं च यत्नतः ।
सामर्थ्यं चानुबन्धं च ज्ञात्वा चिह्नैः प्रसाधयेत् ॥

(१) तत्कारिणः साहसलक्षणवधकारिणः ।

स्मृच. ३१२

(२) मित्रप्राप्त्यर्थलोभेन मोक्तव्या इत्यन्वयः ।
किन्तु राज्ञा लोकहितैषिणा हन्तव्या इति संबन्धः ।
विर. ३७२

(१) व्यक. १२२; विर. ३७२; विचि. १६४ संदर्भेण कात्यायनः.

(२) अप. २१२७७ को (दो); व्यक. १२३ यत्र (यस्य) को यस्तु (दो यश्च); विर. ३७३ को यस्तु (दोषस्तु) कः स (कस्य); रत्न. १२६; विचि. १६५-६ को यस्तु (दो यश्च); व्यनि. ४९४ एकस्य (कृतस्य) को (दो) कात्यायनः; दवि. ७४ अपवत्; व्यप्र. ३९५; व्यउ. १३३; व्यम. १०३; विता. ७५३; सेतु. २५८ विरवत्; समु. १४६ एकस्य (एकं तु) उत्तरार्धे (मर्मप्रहारी यस्तेषां स घातक उदाहृतः).

(३) अप. २१२७७ मर्म (सम) जौ त (जस्त); व्यक. १२३ जौ त (जस्त) बृहस्पतिः कात्यायनश्च; स्मृच. ३१२ उत्तरार्धस्तु मनोरित्युक्तम्; विर. ३७३-४ इमम् (इमम्) जौ त (जस्त); पमा. ४५५ संदर्भेण कात्यायनः; रत्न. १२६ दाप (प्राप) जौ (गी); विचि. १६५-६ यश्च (याश्च) जौ त (जस्त); व्यनि. ४९५ तु (त्र) कृत् (क.) यश्च (याश्च) जौ तदर्धतः (जस्तदर्धतः) कात्यायनः; दवि. ७४ ती तु यस्ते (तिनमेते) जौ त (जस्त); नृप्र. ४४ उक्त., स्मरणम्; व्यप्र. ३९५ रत्नवत्; व्यउ. १३३ रत्नवत्; विता. ७५३ दापये (प्राप्तुया) जौ (गी) र्धतः (र्धकम्); सेतु. २५८ जौ त (जस्त); समु. १४६.

(४) अप. २१२७७ साध (साध); व्यक. १२३ साध (शोध) बृहस्पतिः कात्यायनश्च; विर. ३७४; रत्न. १२६; विचि. १६६ साध (काश); व्यप्र. ३९५; व्यउ. १३३; विता. ७५३ साध (धार); सेतु. २५८ साध (काश);

एकस्य मर्मघातितदघातिरूपा बहवो यत्र प्रहारं कुर्वन्ति, तत्र मर्मघातिनमेवं यथोक्तं दण्डं दापयेदित्यर्थः । यथोक्तश्च यजातीयस्य प्राणिनो घातकानाधिकृत्य य उक्तः सः, तद्घातिनस्तु दण्ड आरम्भकृदित्यादिनोक्तः । मर्मघातित्व-तद्घातित्वनिश्चयार्थं क्षतस्येत्यादि ।

विर. ३७४

अविशातघातकाधनेषणविधिः

हृतः संदृश्यते यत्र घातकस्तु न दृश्यते ।

पूर्ववैरानुमानेन ज्ञातव्यः स महीभुजा ॥

प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च तस्य मित्रारिवान्धवाः ।

प्रष्टव्या राजपुरुषैः सामादिभिरुपक्रमैः ॥

विज्ञेयोऽसाधुसंसर्गाच्चिह्नैर्होडेन वा नरैः ।

एषोदिता घातकानां तस्कराणां च भावना ॥

(१) अ. २१२८१ तः सं (तस्तु) कस्तु (कश्च) मानेन (सारेण); व्यक. १२३; स्मृच. ३१२ तः सं (तस्तु); विर. ३७७; पमा. ४५३; रत्न. १२६; दीक. ५५; विचि. १६८ कस्तु (कश्च) क्रमेण याज्ञवल्क्यः; व्यनि. ४९४ संदृ (स दृ); दवि. ७०; सवि. ४५८ हतः (घातः) वैरा (मेवा) भुजा (भुजा); व्यप्र. ३९४ अपवत्; व्यउ. १३२; विता. ७५०; सेतु. २६० कस्तु (कश्च) मानेन (सारेण); समु. १४६ स्मृचवत्.

(२) अप. २१२८१ प्रा (प्र); व्यक. १२३; विर. ३७७; पमा. ४५३ अपवत्; रत्न. १२६; विचि. १६८-९ प्रा (प्र) त्रारि (त्राणि) क्रमेण याज्ञवल्क्यः; व्यनि. ४९४ वेश्यौ च (वेश्याश्च) त्रारि (त्राणि); दवि. ७० पुरु (पुरु); व्यप्र. ३९४ अपवत्; व्यउ. १३२ अपवत्; विता. ७५० अपवत्; सेतु. २६० अपवत्.

(३) अप. २१२८१ ह्यहो (ह्यहो) पू; व्यक. १२३ ह्यहोडे (ह्यभेदे) च भा (विभा); स्मृच. ३१२ ह्यहोडेन वा नरैः (ह्यहोडेन तस्करः); विर. ३७७ ह्यहो (ह्यहो) वा नरैः (मानवैः); पमा. ४५३ ह्यहोडेन वा नरैः (ह्यहोदेश्च लक्षणैः); रत्न. १२६; विचि. १६९ गांश्चिह्नैर्हो (गांश्चिह्नैर्हो) रैः (रः); व्यनि. ४९४ योऽसाधु (यः साध्य) ह्यहो (ह्यहो) पू; सवि. ४५८ (विशेषः साधुसंसर्गः चिह्नैरोडेन वा पुनः । एषोऽपि घातकानां तु तस्कराणां भवेदिति ॥); व्यप्र. ३९४; व्यउ. १३२ योऽसा (याः सा) गांश्चि (गांश्चि) चान्धा (विभा); विता. ७५१ देन (देन); सेतु. २६० अपवत्; समु. १४६ स्मृचवत्.

गृहीतः शङ्कया यस्तु न तत्कार्यं प्रपद्यते ।
 शपथेन विशोद्धव्यः सर्ववादेष्वयं विधिः ॥
 दिव्यैर्विशुद्धो मोक्ष्यः स्यादशुद्धो वधमर्हति ।
 निग्रहानुग्रहाद्राज्ञः कीर्तिर्धर्मश्च वर्धते ॥
 तत्कार्यं हननरूपं, न प्रतिपद्यते पृष्टः सन्नानुमन्यते ।
 विर. ३७७

आत्महत्यादोषः

विपोद्धन्धनशस्त्रेण य आत्मानं प्रमापयेत् ।
 मृतोऽमेध्येन लेप्यो नान्यं संस्कारमर्हति ॥

निमित्तविशेषे साहसानुशा

स्वाध्यायिनं कुले जातं यो हन्यादाततायिनम् ।
 अहत्वा भ्रूणहा स स्यान्न हत्वा भ्रूणहा भवेत् ॥
 नाततायिवधे हन्ता किल्बिषं प्राप्नुयात् क्वचित् ।
 विनाशार्थिनमायान्तं घातयन्नापराध्नुयात् ॥
 आततायिनमुत्कृष्टं वृत्तस्वाध्यायसंयुतम् ।
 यो न हन्याद्वधप्राप्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

यत्तु कात्यायनेनोक्तं—‘आततायिनि चोत्कृष्टे तपः-
 स्वाध्यायजन्मतः । वधस्तत्र तु नैव स्यात्पापे हीने वधो

(१) व्यक. १२३ धेन (धैः स); विर. ३७७; रत्न. १२६ न विशो (नावो); विचि. १६९; व्यनि. ५१९ वादे (पापे) शेषं व्यकवत्, नारदः; व्यप्र. ३९४ रत्नवत्; व्यउ. १३२ रत्नवत्; विता. ७५१ रत्नवत्; सेतु. २६०; समु. १४६ व्यकवत्.

(२) अप. २।२८१ मोक्ष्यः (मेध्यः) हाद्रा (है रा); व्यक. १२४; स्मृच. ३१२ मोक्ष्यः (मान्यः) पू; विर. ३७८; विचि. १६९; व्यनि. ५१९ नारदः; सेतु. २६१; समु. १४६ स्मृचवत्, मनुः.

(३) द्दीक. ५६.

(४) रत्न. १२७; व्यम. १०४; समु. १४७ दात (दात).

(५) स्मृच. ३१४; रत्न. १२७ पू; व्यनि. ५१९ शार्थिन (शनार्थ); व्यप्र. १८; व्यउ. ११; विता. ७५७ पू; समु. १४७.

(६) स्मृच. ३१५; रत्न. १२८; व्यनि. ५२०; व्यप्र. १९; व्यउ. ११ सुत (वृत्); व्यम. १०४; विता. ७५८-९ द्रध (द्रद); समु. १४७.

भृगुः ॥’ इति । तपःस्वाध्यायजन्मत उत्कृष्टे ब्राह्मणे न वध इत्यर्थः । यच्च बृहस्पतिनोक्तं—‘आततायिनमुत्कृष्टं वृत्तस्वाध्यायसंयुतम् । यो न हन्याद्वधप्राप्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥’ उत्कृष्टं ब्राह्मणमित्यर्थः । वधप्राप्तं—‘स्वाध्यायिनं कुले जातं यो हन्यादाततायिनम्’ ‘न तेन भ्रूणहा भवेत्’ ‘मन्युस्तं मन्युमृच्छति’ इत्यादिवचनापातमात्राद्वधप्राप्तमित्यर्थः । तदेतद्वचनद्वयं पूर्वोक्तात्मत्राणव्यतिरिक्तविषये ब्राह्मणाततायिनि द्रष्टव्यम् ।

स्मृच. ३१५

साहसकल्पदोषाः

अधारितब्रह्मसूत्रं वृषलाशनसेविनम् ।
 प्रत्यच्छं सर्वमादाय वेदविद्ब्रह्मो निवेदयेत् ॥
 त्यक्ताग्निं संध्यया हीनं नित्यमस्नायिनं द्विजम् ।
 अर्कोपस्थानहीनं च शूद्रप्रेष्यकरं तथा ॥
 अकर्तो नित्ययज्ञानां प्रत्यहं पणमाप्नुयात् ॥

कात्यायनः

साहसनिरुक्तिः

सैहसा यत्कृतं कर्म तत्साहसमुदाहृतम् ॥

सान्वयस्त्वपहारो यः प्रसह्य हरणं च यत् ।

साहसं च भवेदेवं स्तेयमुक्तं विनिह्ववः ॥

(१) अन्वयो रक्षणकालक्रमप्राप्तपालकनरनैरन्तर्धे, तस्मिन् सति योऽपहारः स सान्वयोऽपहारः । स च प्रसह्य क्रियमाणः साहसं च स्तेयं च इत्येवं द्विरूपमापद्यते । उक्तप्रकारविपरीतोऽपि निह्ववो द्रव्यापहारः स्तेयरूपमेवापद्यत इति स्मृतावुक्तमित्यर्थः । स्मृच. ३१६

(२) अत्र सान्वयो रक्षकपुरुषसमक्षं तदनभिभवेन विवक्षितः । प्रसह्य हरणमित्यनेन रक्षकमभिभूय हरणं विवक्षितम् ।
 विर. २८७

(१) व्यनि. ५१६ सूत्रं (सूत्रः) सेविनम् (सेविकः) पण (पाप); समु. १५८.

(२) सवि. ४५१.

(३) व्यक. १०९ हरणं (करणं); स्मृच. ३१६; विर. २८७ त्वप (स्तु प्र) सं च (सं तु); सवि. ४५७ वः (वे); समु. १४८ सं च (सं तु).

द्रव्यनाशादिप्रथममध्यमोत्तमसाहसानि तदण्डविधिश्च
क्षतं भङ्गोपमदौ वा कुर्याद्द्रव्येषु यो नरः ।

प्राप्नुयात्साहसं पूर्वं द्रव्यभाक् स्वाम्युदाहृतः ॥

क्षतं किञ्चिन्नाशः, भङ्गोऽर्धनाशः, उपमर्दः सर्वनाशः ।
द्रव्यमिह कुड्यातिरिक्तम् । महामूल्यमल्पाभिघातेना-
प्यनुपयुक्ततां यद्याति स्फटिकादि, तदभिप्रेतं, तेन न
'अभिघाते तथा भेदे' इत्यादियाज्ञवल्क्येन विरोधः ।
नापि परस्परलघुगुरुणां क्षतादीनां समानदण्डप्रयोजकत्व-
मिति । विर. ३५३

हरेर्दिन्द्रियाहहेद्वाऽपि देवानां प्रतिमां यदि ।

तद्गृहं चैव यो भिन्द्यात् प्राप्नुयात् पूर्वसाहसम् ॥

प्राकारं भेदयेद्यस्तु पातयेच्छातयेत्तथा ।

बध्नीयादम्भसो मार्गं प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥

राजक्रोडासु ये सक्ता राजवृत्त्युपजीविनः ।

अप्रियस्य च यो वक्ता वधं तेषां प्रकल्पयेत् ॥

राजक्रीडासु राजासाधारणक्रीडासु ये सक्ताः तदनु-
मतिं विनेति शेषः । एवं राज्ञः प्रजापालनरूपां वृत्तिं
तदनुमतिं विना आलम्बन्ते ये ते, ये च राज एवाप्रिय-
वादशीलाः । विर. ३६८-९

(१) अप. २।२३० वा (च); विर. ३५३; विचि. १५२
ज्ञोपमदौ (ज्ञोऽवमदौ); दवि. ३०० क्षतं...दौ
(क्षतिर्भङ्गोऽवमदौ) व्येषु (व्येन); सेतु. २५५ ज्ञोप (ज्ञाव).

(२) अप. २।२३३ मां (मा); व्यक. १२१; स्मृच. ३२६;
विर. ३६४ द्वा (च्चा); विचि. १५७-८; व्यनि. ५१०;
दवि. ३१२ अपवत्; सवि. ४७४ मां यदि (मादिकम्)
चैव (चापि); सेतु. २५६; समु. १५८ अपवत्.

(३) व्यक. १२१ पात (पार) बध्नी...मार्गं (वा
बध्नीयादम्भमार्गं); विर. ३६७; दवि. २९९ तथा (त वा)
दम्भसो (दथवा).

(४) व्यक. १२२ सक्ता (शक्ता) च (तु); स्मृच. ३३२
कल्प (वर्त); विर. ३६८ च यो वक्ता (तु वक्तारो);
पमा. ५८० यस्य च (यं चास्य); विचि. १६१ सक्ता
(शक्ता) यो वक्ता (वक्तारो); दवि. २१४ उक्त. : २६५
च (तु); व्यप्र. ५७० पमावत्; सेतु. ३०६ विचिवत्;
समु. १६५ स्मृचवत्.

प्रतिरूपस्य कर्तारः प्रेक्षकाः प्रकराश्च ये ।

राजार्थमोषकाश्चैव प्राप्नुयुर्विविधं वधम् ॥

प्रतिरूपस्य राजवेशस्य राजानुमतिं विना कारकाः,
प्रेक्षणाः राजकार्यवाधे नृत्यादिप्रेक्षकाः । प्रकरा ये
दण्डाख्यं करं प्रकृष्टं गृह्णन्ति । विर. ३६९

प्रेमाणेन तु कूटेन मुद्रया वाऽपि कूटया ।

कार्यं तु साधयेद्यो वै स दाप्यो दण्डमुत्तमम् ॥

प्रमाणं लिखितादि । स्मृच. ३२६

एकं चेद्ब्रह्मो हन्युः संरब्धाः पुरुषं नराः ।

मर्मघाती तु यस्तेषां स घातक इति स्मृतः ॥

तेन स एव वधापराधदण्डभाक् । स्मृच. ३१२

व्यापादनेन तत्कारी वधं चित्रमवाप्नुयात् ॥

तत्कारी साक्षाद्बधकारी । विर. ३७१

आरम्भकृत्सहायश्च तथा मार्गानुदेशकः ।

आश्रयः शस्त्रदाता च भक्तदाता विकर्मिणाम् ॥

(१) व्यक. १२२ विविधं वधम् (द्विविधं दमम्); विर.
३६९ क्षकाः (क्षणाः); विचि. १६१; दवि. १२०
विरवत् : २६५ (प्रतिरूपस्य कर्तारः प्राप्नुयुर्विविधं वधम्)
यतावदेव : ३१६ उक्त.; सेतु. ३०६-७ काः प्र (कप्र).

(२) अप. २।२९४ ण्डसु (ण्ड उ); व्यक. १२२;
स्मृच. ३२६ दण्ड (दम); विर. ३७०; विचि. १६२;
दवि. २६५ वाऽपि कूटया (कूटयाऽपि वा); सवि. ४७५
वाऽपि कूटया (वाऽनुकूल्या) दण्डमुत्तमम् (त्तमसाहसम्);
समु. १५८ स्मृचवत्.

(३) स्मृच. ३१२; पमा. ४५४; व्यप्र. ३९५;
व्यउ. १३३; समु. १४६.

(४) व्यक. १२२ नेन (ने तु); विर. ३७१; विचि.
१६४ व्यकवत्; दवि. ६१ (=) व्यकवत्.

(५) अप. २।२३१ यः श (यज्ञ); व्यक. १२३;
स्मृच. ३१२; विर. ३७५ मिं (र्म); पमा. ४५५
मार्गा (धर्मा); रत्न. १२६ विक (च क); विचि. १६७;
व्यनि. ४९५ भक्त...णाम् (भरदाता च कर्मणाम्) उक्त.,
काल्यायनः; दवि. ७५; सवि. ४६४ कृत्स (कः स) गांतु
(गोप) मिं (र्म); व्यप्र. ३९५ तथा मार्गानु (दोषवक्ताऽनु)
क्तदाता (क्तदायो); व्यउ. १३३ श्र (स्तु) शेषं व्यप्रवत्;
व्यम. १०३; विता. ७५४; सेतु. ३०९ विरवत्; समु.
१४६ क्रमेण ब्रह्मस्यतिः.

युद्धोपदेशकश्चैव तद्विनाशप्रवर्तकः ।
 उपेक्षाकार्ययुक्तश्च दोषवक्ताऽनुमोदकः ॥
 अनिपेक्षा क्षमो यः स्यात्सर्वे ते कार्यकारिणः ।
 यथाशक्त्यनुरूपं तु दण्डमेषां प्रकल्पयेत् ॥
 (१) अनुरूपं दोषानुरूपम् । स्मृच. ३१२

(२) तद्विनाशप्रवर्तकः युद्धोपदेशं विनैव विषादिना
 नाशप्रवर्तकः । उपेक्षाकारी निषेधे साक्षादक्षमोऽपि
 परादिनापि निषेधानुकूलकारी । अयुक्तो राज्ञाऽनियुक्तः,
 घातनीयद्रोषवक्ता, अयुक्तो घातकासंबन्ध इत्येके ।
 विर. ३७५-६

साहसकदन्वेषणविधिः

विना चिह्नैस्तु यत्कार्यं साहसाख्यं प्रवर्तते ।
 शपथैः स विशोध्यः स्यात्सर्ववादेष्वयं विधिः ॥
 स इति साहसकर्तृत्वेनाभियुक्तः परामृश्यते ।
 स्मृच. ३१२

(१) अप. २।२३१ वर्त (दर्श) क्तश्च (क्तस्य) क्ताऽनु
 (वत्रु); व्यक्र. १२३ क्षाकार्य (क्षकोऽनि); स्मृच. ३१२
 वर्त (दर्श) क्षा (क्षा); विर. ३७५; पमा. ४५५
 कार्ययुक्तश्च (कारकश्चैव); रत्न. १२६; विचि. १६७ तद्विना
 (तथा ना); व्यनि. ४९५ युद्धो (युक्त्यो) शप्रवर्तकः (शः
 प्रदर्शकः) वक्ता (युक्ता); दवि. ७५; सवि. ४६४ युद्धो
 (यद्धो) वर्त (दर्श); व्यप्र. ३९५; व्यउ. १३३; व्यम.
 १०३; विता. ७५४; सेतु. ३०९ विचिवत्; समु. १४६-७
 स्मृचवत्.

(२) अप. २।२३१ ते का (तत्का); व्यक्र. १२३ क्त्य
 (ब्दा) शेषं अपवत्; स्मृच. ३१२ अपवत्; विर. ३७५
 तु (च); पमा. ४५५ ण्डमे (ण्डं ते) शेषं अपवत्; रत्न.
 १२६; विचि. १६७; व्यनि. ४९५ षेद्धा क्ष (षेधक्ष) पूः
 दवि. ७५ तु (च); सवि. ४६५ उक्तः ४७३ स्यात्स
 (सन्स) पू. याज्ञवल्क्यः; व्यप्र. ३९५; व्यउ. १३३;
 व्यम. १०३ क्त्य (क्त्या); विता. ७५४ पूर्वार्धे (उपेक्षकः
 शक्तिर्मांश्च सर्वे ते घातकाः स्मृताः); सेतु. ३०९; समु.
 १४७ अपवत्, क्रमेण बृहस्पतिः.

(३) स्मृच. ३१२; पमा. ४५३; नृप्र. २६९ वारे
 (पापे); समु. १४६ तैते (तितम्).

आततायिनः । निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा ।
 उद्यतासिर्विषामिश्च शापोद्यतकरस्तथा ।
 आथर्वणेन हन्ता च पिशुनश्चापि राजनि ॥
 भार्यातिक्रमकारी च रन्ध्रान्वेषणतत्परः ।
 एवमाद्यान्विजानीयात्सर्वानेवाततायिनः ॥
 यैशोवृत्तहरान् पापानाहुर्धर्मार्थहारकान् ॥
 अनाक्षारितपूर्वो यस्त्वपराधे प्रवर्तते ।
 प्राणद्रव्यापहारे च तं विद्यादाततायिनम् ॥

कात्यायनेनैव एवमाद्यानित्युक्तम् । एवमाद्या-
 नेवंप्रकारानित्यर्थः । स्मृच. ३१५

प्राणद्रव्यापहारे अन्यास्मिन्नपि तत्तुल्यापराधे च यस्त्व-
 नाक्षारितपूर्वोऽवाधितपूर्वः प्रवर्तते तं आततायिनं विद्या-
 दित्यर्थः । अनेन अर्थादाक्षारितपूर्वो यः पूर्वोक्तविष-
 दानाद्यपराधे प्रवर्तते नासावाततायीत्युक्तम् । एवं च
 'आततायी वधोद्यतः' इत्यमरसिंहकृतोऽर्थनिर्देशः
 क्षेत्रदारापहर्त्रादीनामर्थानां प्रदर्शनार्थमिति मन्तव्यम् ।
 एवं च 'षट्स्वप्यनभिचरन् पतती'ति आततायिवध-
 मात्रमकुर्वन् पतितो भवतीत्यर्थोऽवगन्तव्यः । तदेतद्वि-
 धायनवचनं आत्मत्यागाविषये तद्व्यतिरिक्तधर्माद्युपरोध-
 विषयेऽपि गोब्राह्मणेतरशेषाततायिविषये द्रष्टव्यम् ।

(१) मिता. २।२१ (=); स्मृच. ३१५ विं (वि)
 शा (चा) श्वापि (श्वैव); रत्न. १२८ विं (वि) श्वापि
 (श्वैव); दवि. २३४ (उद्यतासिं करामिं च शापोद्यतकरं
 तथा । आथर्वणेन हन्तारं पिशुनं चापि राजनि ॥) विष्णुकात्यायनौ;
 सवि. १५३ (=) विं (वि) : १५४ (=) पूर्वार्धे
 (उद्यतासिं च विषदं शापोद्यतकरं तथा) पूः; व्यप्र. १५
 (=) विं (वि); व्यम. १०४ विं (वि); विता. ७६१
 श्वापि (श्वैव); समु. १४७-८ स्मृचवत्.

(२) मिता. २।२१ (=); स्मृच. ३१५ कारी (चारी);
 रत्न. १२८; दवि. २३४ (भार्यातिक्रमिणं चैव विद्याद
 सप्ताततायिनः) एतावदेव, विष्णुकात्यायनौ; सवि. १५३
 (=); व्यप्र. १५ (=); व्यम. १०४ वाने (वांश्च);
 विता. ७६२; समु. १४८.

(३) स्मृच. ३१५; समु. १४८.

(४) स्मृच. ३१५; रत्न. १२८; दवि. २४० तं...
 नम् (प्रवृत्तस्याततायिता); विता. ७६२ पूः; समु. १४८.

गवां पर्युदासवचनात्तदितरपश्चादितिर्यग्जातीनामप्यातता-
यिनां वधो विहित इत्यवगम्यते । अत एव कात्यायनेन
आततायिपश्चादिवधेऽपि दोषाभावो दर्शितः । 'नखिनां
शृङ्गिणां चैव दंष्ट्रिणां चाततायिनाम् । हस्त्यश्वानां
तथाऽन्येषां वधे हन्ता न दोषभाक् ॥' अन्येषां चञ्च्वा-
दिशालिनां पश्यादीनाम् । एवं चाततायिनां वधे यत्र
दोषाभाव उक्तस्तत्र घातकानां वधनिबन्धनदण्डाभावः
प्रत्येतव्यः । अस्मिन् साहस्राख्यवधे दोषाभावकथनस्य
दण्डाभावप्रतिपत्त्यर्थत्वात् । स्मृच. ३१५-६

नखिनां शृङ्गिणां चैव दंष्ट्रिणां चाततायिनाम् ।
हस्त्यश्वानां तथाऽन्येषां वधे हन्ता न दोषभाक् *॥
विनाशहेतुमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥
आततायिनमायान्तमपि वेदान्तपारगम् ।
जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥
गर्भस्य पातने स्तेनो ब्राह्मण्यां शस्त्रपातने ।
अदुष्टां योषितं हत्वा हन्तव्यो ब्राह्मणोऽपि हि ॥
उद्यतानां तु पापानां हन्तुर्दोषो न विद्यते ।
निवृत्तास्तु यदारम्भाद्ग्रहणं न वधः स्मृतः ॥
आततायिनि चोत्कृष्टे तपःस्वाध्यायजन्मतः ।
वधस्तत्र तु नैव स्यात् पापे हीने वधो भृगुः ॥

* स्मृच. व्याख्यानं पूर्वश्लोके, 'आततायिनमुत्कृष्टमिति
बृहस्पतिवचने च द्रष्टव्यम् ।

- (१) स्मृच. ३१६; रत्न. १२८; व्यनि. ५२० नखि
(श्लिखि); विता. ७६२ उक्तः; समु. १४८.
(२) स्मृच. ३१४; समु. १४७.
(३) मिता. २१२१ (=) पारगम् (गं रणे); द्दवि.
२३९; सवि. १५२ (=) मितावत्; व्यप्र. १४ (=)
मितावत्; व्यड. ८ (=) मितावत्; व्यम. १०४;
सेतु. १००.
(४) विश्व. २१८१.
(५) स्मृच. ३१५; व्यनि. ५२० वृत्ता (वृत्त);
व्यप्र. १९ स्तु यदा (नां तथा); समु. १४७.
(६) स्मृच. ३१५; समु. ८१३५० पापे (पापं); रत्न.
१२७; द्दवि. २४१; मच. ८१३५१ न्तः (न्मनः); व्यप्र.
१९ पापे... स्युः (पापं हीनवधे पुनः); व्यड. ११ पापे...
स्युः (पापं हीनवधे तु न); व्यम. १०३ जन्मतः (संयुतै);

व्यासः

वधसाहसकर्तुर्दण्डः । मिथ्याभैषज्यापराधः ।

ज्ञात्वा तु घातकं सम्यक् ससहायं सबान्धवम् ।
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥

आरम्भकृत्सहायश्चेति द्रव्यसहितसहायो विवक्षितः ।
इह त्वत्यन्तसंनिहितसहाय इति न तेन सह विरोधः ।
बान्धवाश्च ये साहसकर्तारं बुद्ध्वापि न तं परित्यजन्ति ।
विर. ३७८

भिषजो द्रव्यभेदेन क्लेशयन्ति चिरं नरान् ।
व्याधिप्रकोपं कृत्वा तु धनं गृह्णन्ति चातुरान् ॥

देवलः

आत्महत्यादोषः । निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा ।

आत्मत्यागः परत्यागात्पापीयान् पातकादपि ।
पातके निष्कृतिः प्रोक्ता कथमात्मघ्ननिष्कृतिः ॥
आत्मानं बुद्धिसंपन्नं योग्यं सर्वार्थसिद्धिषु ।
श्रमदुःखभये त्यक्त्वा रौरवे परिपच्यते ॥
उद्यम्य शस्त्रमायान्तं भ्रूणमप्याततायिनम् ।
निहत्य भ्रूणहा न स्यादहत्वा भ्रूणहा भवेत् ॥

परवधार्हं (दि) पातकादात्मनापानास्थानादात्मत्यागः
पापीयानित्युक्तदोषमवैत्य भ्रूणमपि ब्राह्मणमपि दण्डापूप-

विता. ७५७ न्तः (न्मभिः); बाल. २१२८६ शृगुः
() शेषं वितावत्; समु. १४७.

(१) अप. २१२८१; व्यक. १२३; स्मृच. ३१२ त्रैर्व
(त्रव); विर. ३७८ जनकरै (गजजनकै); पद्मा. ४५४
स्मृचवत्; विचि. १६९ विरवत्; द्दवि. ७६ विरवत्; सवि.
४५८ स्मृचवत्; व्यप्र. ३९४ स्मृचवत्; व्यड. १३२
स्मृचवत्; सेतु. २६०-६१ विरवत्; समु. १४६ स्मृचवत्.

(२) अप. २१२४२.

(३) स्मृच. ३१५; रत्न. १२७ (=); व्यनि. ५१९
पर (परि) पातके (घातके) त्मन्न (त्मह); विता. ७५८
त्यागः परत्यागा (नाशः परवधा) बृहस्पतिः; समु. १४७
त्यागः परत्यागा (त्यागात् परत्यागः).

(४) स्मृच. ३१५; रत्न. १२७ (=); विता. ७५८
बृहस्पतिः; समु. १४७.

(५) स्मृच. ३१५; व्यप्र. २०; व्यड. ११; विता.
७५८ बृहस्पतिः; सेतु. १०० कालावनः; समु. १४७.

न्यायात् गामप्याततायिन्नमात्मपरित्राणायावश्यं हन्यादि-
त्यर्थः । यच्चूशनसा ब्राह्मणस्य रुधिरोत्पादननिमित्तदोष-
मभिधायामिहितम् 'गृहीतशस्त्रमाततायिनं हत्वा न दोषः
स्यादि'ति तदपि पूर्वोक्तात्मपरित्राणविषये द्रष्टव्यम् ।

स्मृच. ३१५

उशना

गर्भपातनसाहसे दण्डः । निमित्तविशेषे साहसानुशा ।

परिक्षेपेण पूर्वः स्याद्भैषज्येन तु मध्यमः ।

प्रहारेण तु गर्भस्य पातने दण्ड उत्तमः ॥

गृहीतशस्त्रमाततायिनं हत्वा न दोषः ।

यमः

विषासिद्ध-चौर-वधकारि-तडागभेदकादि-साहसिकेषु दण्डविधिः

विषासिद्धायाकाश्चौरा घातकाश्चोपघातकाः ।

स्वशरीरेण दण्ड्याः स्युर्मनुराह प्रजापतिः ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ।

तद्वाऽपि प्रतिसंस्क्रुयाद्दद्याद्भोक्तमसाहसम् ॥

यस्तु पूर्वनिषिद्धस्य तडागस्योदकं हरेत् ।

आगमं चाप्यपां भिन्द्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥

उपघातकाः अन्यद्वारा घातकाः । स्मृच. ३२६

साहसिकस्तेयादिक्कद्ब्राह्मणदण्डविधिः

न शरीरो ब्राह्मणस्य दण्डो भवति कर्हिचित् ।

गुप्ते तु बन्धने बद्ध्वा राजा भक्तं प्रदापयेत् ॥

(१) अप. २१२७७ दण्ड (दम); विर. ३७१; विचि. १६३

१६३ ऋषज्ये (ऋषजे); व्यनि. ५१९ व्यासः; दवि. ३०३; समु. १५७ व्यासः.

(२) स्मृच. ३१५ षः + (स्यात्); ममु. ८१३५०;

मच. ८१३५१; बाल. २१२८६; समु. १४७ स्मृचवत्.

(३) व्यक. १२१ विषा (उल्का); स्मृच. ३२५; विर. ३६६

व्यकवत्; दवि. ७८ द्वितीयतृतीयपादौ : ३१५ विषा

...श्चौरा (उल्कादिदायकाश्चैव) मंनुराह (नंरा आह);

समु. १५८.

(४) अप. २१२३३; समु. १५८ डाग (टाक) द्वाऽपि

(चापि).

(५) अप. २१२३३; समु. १५८ षिद्ध (विष्ट) डाग

(टाक) चाप्यपां भिन्वा (वाऽप्सुपारुन्ध्या).

(६) अप. २१२७७ शरीरो ब्राह्मणस्य (ब्राह्मणस्य शरीरो);

अथवा बन्धनं रज्ज्वा कर्म वा कारयेन्नृपः ।

मासार्धमासं कुर्वीत कार्यं विज्ञाय तत्त्वतः ॥

यथापराधं विप्रं तु विकर्माण्यपि कारयेत् ।

राजदुष्टानि यो भाषेदण्डो निर्विषयः स्मृतः ॥

अवध्या ब्राह्मणा गावो लोकेऽस्मिन् वैदिकी

श्रुतिः ॥

(१) रक्षाकर्म पश्चादिपालनरूपं गृहीतम् ।

स्मृच. ३१७

(२) साहसचौर्ययोर्ममः- न शरीर इत्यादि । गुप्ते

रक्षिते यतः पलायनं न भवति । विकर्माणि उच्छिष्ट-

मार्जनादीनि । यो राजदुष्टानि भाषते, तस्य दण्डो निर्वि-

षयः, निर्विषयत्वं देशान्निःसारणमिति यावत् ।

विर. ३७४-५

आत्महत्यायत्नकरणे दण्डः

आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वादिभिरुपक्रमैः ।

मृतोऽमेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥

दण्ड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पणिकं दमम् ॥

व्यक. १२३ ने (नं); स्मृच. ३१७; विर. ३७४; रत्न.

१२७ कर्हि (कस्य); विचि. १६६ णस्य (णे वै); व्यनि.

४९५ कात्यायनः; दवि. ६७; सवि. ४६३ (=) पू.

वीमि. २१२८२; व्यप्र. ३९३ रत्नवत्; व्यउ. १३१

कर्हि (कस्य) ने (नं); विता. ७५४ रत्नवत्; समु. १४८-

(१) अप. २१२७७; व्यक. १२३ रज्ज्वा (कृत्वा);

स्मृच. ३१७ अथ...कर्म (अथवाप्यधनं रक्षाकर्म); विर.

३७४; विचि. १६६; दवि. ६७; वीमि. २१२८२;

समु. १४८ र्यं (र्यं).

(२) अप. २१२७७ पू.; व्यक. १२३; स्मृच. ३१७

पू.; विर. ३७४; विचि. १६६ पू.; व्यनि. ४९५ विप्रं तु

...ण्यपि (विप्रास्तु कर्माण्यपि च) पू., कात्यायनः; दवि.

६७ पू. : ३१८ दु (द्वि) उत्त.; सवि. ४६३ यथा (तथा)

पू.; वीमि. २१२८२ पू.; समु. १४८.

(३) व्यक. १२३ ध्या (ध्यो) णा (णो); विर. ३७४;

सवि. ४६३; समु. १४८.

(४) यमस्मृ. २०-२१; दवि. ३१९ रज्ज्वा (वजा)

जीवतो (जीवेत्तेव) शतं (शतो) तृतीयार्धं विना.

संवर्तः

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा

आततायिन्यदोषोऽन्यत्र गोब्राह्मणात् ।

गोब्राह्मणं यदा हन्यात् तदा प्रायश्चित्तं कुर्यात् ।

वृद्धहारीतः

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा । साहसिकानां दण्डविधिः, तत्र
ब्राह्मणे विशेषश्च ।

अग्निदं गरदं हिंस्रं चौरं दुर्वृत्तमेव च ।
धूर्तं पतितमित्यादीन् हन्यादेवाविचारयन् ॥
अङ्कयित्वा श्रपादेन गर्दभे चाधिरोह्य वै ।
प्रवासयेत्स्वराष्ट्रान्तु ब्राह्मणं पतितं नृपः ॥
कुलटां कामचारेण गर्भघ्नीं भर्तृहिसिकाम् ।
निवृत्तकर्णनासोष्ठीं कृत्वा नारीं प्रमापयेत् ॥
परद्रव्यादिहरणं परदारभिमर्शनम् ।
यः कुर्यात्तु बलात्तस्य हस्तच्छेदः प्रकीर्तितः ॥
ब्रह्मघ्नं च सुरापं वा गोस्त्रीवालनिषूदनम् ।
देवविप्रस्वहन्तारं शूलमारोपयेन्नरम् ॥
फालितं पुष्पितं वाऽपि वनं छिन्द्यात्तु यो नरः ।
तडागसेतुं यो भिन्द्यात्तं शूलेनानुरोहयेत् ॥
अग्निदं गरदं गोघ्नं बालस्त्रीगुरुघातिनम् ।
भगिनीं मातरं पुत्रीं गुरुदारान् स्तुषामपि ॥
सार्धं तपस्विनीं वाऽपि गच्छन्तमतिपापिनम् ।
हिंस्रयन्त्रप्रयोक्तारं दाहयेद्वै कटाग्रिना ॥
अदण्डयित्वा दुर्वृत्तांस्तत्पापं पृथिवीपतिः ।
संप्राप्य निरयं गच्छेत्तस्मात्तान् दण्डयेत्तथा ॥

सुमन्तुः

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा

आततायिवधे दोषोऽन्यत्र गोब्राह्मणात् । यदा
हतः प्रायश्चित्तं स्यात् ।

- (१) ब्यग्र. १८; ब्यड. ११ (गोब्राह्मणम्०).
(२) बृहास्मृ. ७।१९०-१२० (३) बृहास्मृ. ७।२००.
(४) बृहास्मृ. ७।२०२. (५) बृहास्मृ. ७।२१८-२१.
(६) मित्ता. २।२१ ब्राह्मणात् (ब्राह्मणवधात्) (यदा...
स्यात्०); स्मृच. ३१५ नात् (आत) वधे + (न); रत्न.
१२८ (अन्यत्र गोब्राह्मणात्) पत्तावदेव; ब्यनि. ५२०

गौः ब्राह्मणो वा आततायी यदा हतः तदा प्राय-
श्चित्तं स्यात्, दोषः स्यादित्यर्थः । आत्मपरित्राणव्यति-
रिक्तविषयमेतत् । यदाह देवलः— आत्मत्याग इति ।
स्मृच. ३१५

पैठीनसिः

घातकसहायादिसाहसिकदण्डविधिः

हन्ता मन्त्रोपदेशा च तथा संप्रतिपादकः ।
प्रोत्साहकः सहायश्च तथा मार्गानुदेशकः ॥
उपेक्षकः शक्तिमांश्च दोषवक्ताऽनुमोदकः ।
अकार्यकारिणामेषां प्रायश्चित्तं तु कल्पयेत् ॥
यथाशक्त्यनुरूपं च दण्डं चैषां प्रकल्पयेत् ॥
एवमन्येऽप्यवकाशदानादिना घातकोपकारिणः स्तेय-
प्रकरणीया इहोदाहरणीयाः । व्यासः — 'ज्ञात्वा तु घातकं
सम्यक् ससहायं सन्नान्धवम् । हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरद्वेग-
जनकैर्नृपः ॥' सहायोऽत्रात्यन्तसंनिहितो विवक्षितः ।
वान्धवाश्च ये साहसकर्तारं ज्ञात्वाऽपि न तं परित्यजन्ति
ते एवात्रोक्ता इति रत्नाकरः ।

अत्र साक्षात्प्रयुक्त्यनुग्रहानुमतिनिमित्तभेदात् पञ्चविधो
वधः स चास्माभिर्द्वैतविवेके भेदप्रभेदाभ्यां विस्तरेण
प्रपञ्चितः । तत्रानुग्राहकादीनां प्रत्यासत्तिव्यवधानापेक्षया
व्यापारगतगुरुलाघवापेक्षया च फलगुरुलाघवात् प्राय-
श्चित्तगुरुलाघवं तत्रैव व्यवस्थितम् । यथा अनुग्राहकस्य
पादोनं, प्रयोक्तुरर्धम् । अनुमन्तुः सार्धपादः । निमित्तिनां
तु पाद इति ।

(आततायिन्यदोषः अन्यत्र गोब्राह्मणात्); सवि. १५४ नात्
(आत) वधे + (न) णात् (णेभ्यः) (यदा ... स्यात्०);
ब्यग्र. १६ (यदा ... स्यात्०) : १७ नात् (आत) वधे +
(न) यदा ... स्यात् (स्नातः प्रायश्चित्तं कुर्यात्); ब्यड. ९
मितावत् : १० यदा ... स्यात् (स्नातः प्रायश्चित्तं कुर्यात्);
ब्यम. १०३ (यदा ... स्यात्०); वित्ता. ७५७ मितावत्;
बाल. २।२६ (पृ. ३८) मितावत्; सेतु. १०० नात्
(आत) वधे + (न) (यदा...स्यात्०); समु. १५७
नात् ... णात् (आततायिन्यदोषोऽन्यत्र ब्राह्मणात्).

(१) दृवि. ७६.

एवं व्यवस्थिते प्रायश्चित्ते यत्र विशेषवचनं नास्ति तत्र दण्डोऽप्येवमेव द्रष्टव्यः । द्वयोस्तुल्ययोगक्षेमत्वात् । उभयत्र व्यवधानाऽव्यवधानयोरनुरोध्यत्वात् । पैठीनसि-
वाक्ये द्वयोस्तुल्यवत्कल्पनीयत्वोपदेशाच्च । निमित्तिनस्तु आक्रोशनादिदण्ड एव न तु हिंसादण्डोऽपि, तत्र तस्या-
भिसंधानाभावात् । अत एवाततायिनि प्रमादमृते दण्डा-
भावमाह मिताक्षराकारः । यत्र तु विधिप्राप्तमाक्रोशनादि तत्र तद्दण्डोऽपि नास्ति । उक्तं च भवदेवभङ्गेन । यदा विहितवाग्दण्डघनदण्डशारीरादिदण्डेष्वपराधानुरूपेषु गल्-
पाशादिना म्रियते तदापि न दोषः । मन्युत्पादनेऽपि दण्डानां विहितत्वेन निषेधानवकाशात् । यतो न हिंस्यादित्यनेन साक्षात्परप्राणवियोगफलव्यापारकर्तृत्वं निषिध्यते । न च निमित्तिनो वाग्दण्डनिमित्तातिरिक्त-
व्यापारे कर्तृत्वमस्ति, तदेव हि मन्युत्पादनद्वारेण परम्परया वधकारणमतः कथं तस्य निषेधविषयत्वमपीति ।

एवं च प्रयोज्यस्यापि विध्यतिक्रमनिबन्धनं पापमात्रं न तु दण्डोऽपि । स्थपतेः स्वर्ग इव हिंसायां तस्य स्वरसा-
भावात् । परप्रयुक्त्या प्रवर्तमानस्य तत्पुत्रादिस्थानी-
यत्वात् । स्वामिप्रयुक्त-हृय-हस्ति-कुक्कुर-वानरादिवत् प्रवृत्तेः परार्थीनत्वात् । एवं च यथा तत्र स्वामिन एव दण्डः । पुत्रापराधेन पितेत्यादिदण्डपारुष्यदण्डमातृकालिखितनारदवचनस्वरसात् । एवमिहापि प्रयोजक एव दण्ड्यो न तु प्रयोज्योऽपि न्यायसाम्यात् । दर्शितं चैव तदर्थं बृहस्पतिवचनं स्तौयदण्डमातृकायाम् । इत्थमपराधानु-
सारेण दण्डव्यवस्थितौ 'ज्ञात्वा तु घातकम्' इत्यादि-
व्यासवाक्ये रत्नाकरियं बान्धवव्याख्यानं चिन्त्यम् ।

न हि साहसिकापरित्यागमात्रं प्ररुद्धो दोषो येन तत्र वधः स्यात् । साहसानभिसंधायिनोऽपि स्नेहादिनापि तत्संभवात् । तस्माद् ये बान्धवाः साहसिनं न निवार-
यन्ति प्रत्युत साहसफलार्थितया स्वयमपराधयन्तः परं
प्रेरयन्ति तेषां तत्सुख्योगक्षेमत्वादयं दण्डविधिः ।

अन्यथा घातकांश्चोषघातकाः स्वशरीरेण दण्ड्याः
स्युरिति यमवचने स्वशरीरेण दण्डोऽप्यत्रापराधानुरूपो
विवक्षित इति रत्नाकरियमेव व्याख्यानं विरुध्यते ।

द्वि. ७६-८

गालवः

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा

उद्यम्य शस्त्रमायान्तं भ्रूणमप्याततायिनम् ।
निहत्य भ्रूणहा न स्यादहत्वा भ्रूणहा भवेत् ॥

अग्निपुराणम्

मर्यादाभेदकादिषु दण्डविधिः

मर्यादाभेदकाः सर्वे दण्ड्याः प्रथमसाहसम् ॥
द्विगुणं दापयेच्छिन्ने पथि सीम्नि जलाशये ॥

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा

गृहक्षेत्रापहर्तारं तथा पत्न्यभिगामिनम् ।
अग्निदं गरदं हन्यात्तथा चाभ्युद्यतायुधम् ॥
राजा गवाभिचारेभ्यो हन्याच्चैवाऽऽततायिनः ॥

राजपुरुषाणां धनलोभादिदोषेषु दण्डविधिः

रक्षार्थाधिकृतैर्यैस्तु प्रजाभ्योऽर्थो विलुप्यते ।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥
ये नियुक्ताः स्वकार्येषु हन्युः कार्याणि

कर्मिणाम् ।

निर्घृणाः क्रूरमनसस्तान्निःस्वान् कारयेन्नृपः ॥

प्रतिमादिभेदने अमक्ष्यभक्षणे च दण्डः

प्रतिमासंक्रमभिदो दद्युः पञ्चशतानि ते ॥
अमक्ष्यभक्ष्ये विप्रे वा शूद्रे वा कृष्णलो दमः ॥

ब्रह्मपुराणम्

आततायिविशेषः

परदारान् रमन्तस्तु द्वेषात्तत्पतिभिर्हताः ॥

इति ब्रह्मपुराणदर्शनात् ब्राह्मणादेः प्रवृत्तक्रियस्य वधो गम्यत इति । तच्चिन्त्यं, वचनस्यास्य पातित्यं विधातुं वधानुवादरूपत्वात् 'पतितास्ते प्रकीर्तिताः' इत्युपसंहार-
दर्शनात् वधस्यानुवाद एव ।

(१) रत्न. १२७; व्यम. १०४.

(२) अपु. २२७।२२. (३) अपु. २२७।३३.

(४) अपु. २२७।३९, ४०.

(५) अपु. २२७।४७, ४८. (६) अपु. २२७।५६.

(७) अपु. २२७।६०.

(८) द्वि. २३८.

सिद्धमाक्षिपतीति चेन्न, आक्षिपतु नाम, न त्वयं विधिपूर्वको हि नियमः प्रत्युत द्वेषादिति वचनाद् वैरिवधकोटिः कटाक्षत इति ।

अत्रोच्यते, प्रियाधर्षिणो वचनादेवाततायित्वमाततायिवधे वचनादेव पापाभाव इति । एतच्च भवदेवमतमाश्रित्योक्तम् । दवि. २३८

मत्स्यपुराणम्

राजप्रतिकूलसाहासिकदण्डविधिः

राज्ञः कोषापहन्तुंश्च प्रतिकूलेष्ववस्थितान् ।

अरीणामुपकर्तुंश्च घातयेद्विधैर्दमैः ॥

ब्राह्मणामन्त्रणसंबन्धिदोषे दण्डः

आमन्त्रितो द्विजो यस्तु वर्तमानः प्रतिग्रहे ।

निष्कारणं न गच्छेत्तु स दाप्योऽष्टशतं दमम् ॥

द्विजे भोज्ये तु संप्राप्ते पापे नास्ति व्यतिक्रमः ॥

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा । आततायिनः ।

गुरुं वा तापसं वाऽपि ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥

नातसायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।

प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥

गृहक्षेत्रापहर्तारं तथा पत्न्यभिगामिनम् ।

अग्निदं गरदं चैव तथा ह्यभ्युद्यतायुधम् ॥

अभिचारं च कुर्वाणो राजगामि च पैशुनम् ।

एतान् हि लोके धर्मज्ञाः कथयन्त्याततायिनः ॥

भविष्यपुराणम्

निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा

पुत्रः शिष्यस्तथा भार्या शासितश्चेद्विनश्यति ।

न शास्ता तत्र दोषेण लिप्यते देवसत्तम ॥

(१) दवि. ३१७.

(२) अप. २।२६३ आ (नि) तु (त) ; व्यक. १२० ; विर. ३५९ ; दवि. ३०७ दमम् (दमः) विष्णुः ; सेतु. ३०४.

(३) दवि. ३०७. (४) बाल. २।२१.

(५) दवि. २३४ ; बाल. २।२१ (गृहक्षेत्राभिहन्तारस्तथा पत्न्यभिगामिनः । अग्निदो गरदश्चैव तथैवाभ्युद्यतायुधः ॥ अभिचारिणो कुर्वाणो राजगामि च पैशुनम् । एते हि कथिता लोके धर्मक्षैरततायिनः ॥). (६) दवि. २३१.

हत्वा तु प्रहरन्तं वै ब्राह्मणं वेदपारगम् ।

कामतोऽपि चरेद्वीर द्वादशाब्दाख्यमुत्तमम् ॥

क्षिण्वानमपि गोविप्रं न हन्याद्वै कदाचन ॥

संग्रहकारः (स्मृतिसंग्रहः)

साहसनिरुक्तिः । निमित्तविशेषे साहसानुज्ञा ।

मनुष्यमारणादीनि कृतानि प्रसभं यदि ।

साहसानीति कथ्यन्ते यथाख्यान्यन्यथा पुनः ॥

ननु पारुष्यद्वयस्य साहसविशेषत्वात् पदान्तरत्वेनोक्तिरयुक्ता । सत्यम् । सहसा क्रियमाणस्य साहसविशेषत्वं, छलेन पुनः क्रियमाणस्य पदान्तरत्वमेव, साहसलक्षणाभावात् । तथा चोक्तं तेनैव—‘तस्यैव भेदः स्तेयं स्याद्विशेषस्तत्र तूच्यते । आधिः साहसमाक्रम्य स्तेयमाधिश्छलेन तु ॥’ आधिः क्लेशः । स आक्रम्यार्थहरणद्वारा क्रियमाणः साहसम् । छलेन पुनरर्थहरणद्वारा क्रियमाणः स्तेयमित्यर्थः । नन्वेनेन स्तेयस्य भेद उक्तो न पारुष्यस्य । सत्यम् । अपृथगुद्दिष्टस्यापि भेद उक्ते पृथगुद्दिष्टस्य सुतरामेव भेदो लक्ष्यत इति स्तेयमात्रस्योक्त-इत्यविरोधः । अतः पदान्तरत्वेनाप्युक्तिर्युक्तैव । अत एव संग्रहकारः—‘मनुष्यमारणादीनि कृतानि प्रसभं यदि । साहसानीति कथ्यन्ते यथाख्यान्यन्यथा पुनः ॥’ अन्यथा पुनः यद्यप्रसभं कृतानि तदा यथाख्यानि स्तेयस्त्रीसंग्रहणवाक्यपारुष्यदण्डपारुष्याख्यानीत्यर्थः ।

नन्वेवं स्तेयस्त्रीसंग्रहणयोरपि साहसात् पृथगुद्देशनं कार्यम् । सत्यम् । अत एव मनुना—‘स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च’ इति पृथगुद्दिष्टम् । नारदेन तयोः प्रायेण छलेनैव क्रियमाणत्वात् पदान्तरत्वं स्फुटमेवैति साहसान्तर्भाव एवोद्देशदशायां दर्शितः, पारुष्यद्वयस्य तु प्रायेण प्रसभं क्रियमाणत्वात् पदान्तरत्वमव्यक्तमिति पृथगप्युद्देशः कृत इति सर्वमनवद्यम् । स्मृच. ७

आततायिद्विजाग्न्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ।

कलौ युगे त्विमान् धर्मान् वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥

(१) दवि. २३५ ; व्यप्र. १७ ; व्यउ. १० ; सेतु. १०१ द्वीर (द्वीरो).

(२) दवि. २४० ; व्यप्र. १८ ; व्यउ. ११.

(३) स्मृच. ७ ; व्यप्र. २२३ ; समु. १४६.

(४) व्यम. १०४ उत्तरार्धे (इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः) ; समु. १४७.

स्तेयम्

*वेदाः

राजा स्तेनं वध्नाति

अथ राजन् पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ।

हे राजन् राजमान वरुण पशुतृपं न तायुं स्तैन्य-
प्रायश्चित्तं कृत्वावसाने धासादिभिः पशूनां तर्पयितारं
स्तेनमिव दाम्नो रजोर्वत्सं न वत्समिव च वसिष्ठं मां
बन्धकात्पापादव सृज विसुञ्च । ऋसा.

स्तेनत्वापवादः

वैत्सप्रियं वै भालन्दनमृषयोऽध्यवदन्स्तेना
इति स एतत्सूक्तमपश्यत्तेनाधिवादमपजायत्तेनाप-
चितिमगच्छत् तदधिवादमेवैतेनापजयत्यपचितिमेव
गच्छति ।

स्तेयस्य दुष्टत्वं शपथविभाव्यत्वं च

अनेनसमेनसा सोऽभिश्स्तादेनस्वतो वाऽपहरा-
देनः । एकातिथिमप सायं रुणद्धि विसानिं स्तेनो
अप सो जहारेति + ॥

स्तेनो हन्तव्यः

पुरुषो सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत्
स्तेयमकार्षीत् परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य
कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते
सोऽनृताभिसंधोऽनृतेनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं
प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ।

अथ यदि तस्याकर्ता भवति तत एव सत्यमा-
त्मानं कुरुते स सत्याभिसंधः सत्येनात्मानमन्त-

* वेदेषु विविधस्तेनस्तेयदर्शकवचनानि परःशतानि उप-
लभ्यन्ते । परं तेषु दण्डव्यवहृतवोधकनिर्देशाभावात् तेषामत्र
संग्रहो न कृतः ।

+ अस्य सायणमार्थं दिव्यप्रकरणे (पृ. ४२९) द्रष्टव्यम् ।

(१) ऋसं. ७।८६।५. (२) मैसं. ३।२।२.

(३) ऐत्रा. ५।३०।११. (४) छाउ. ६।१६.

र्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते ।

शृणु— यथा सोम्य पुरुषं चौर्यकर्मणि संदिह्यमानं
निग्रहाय परीक्षणाय च उत अपि हस्तगृहीतं बद्धहस्तं
आनयन्ति राजपुरुषाः । किं कृतवानयमिति पृष्ट्वाश्च
आहुः—अपहार्षीद्वनमस्यायम् । ते च आहुः—
किमपहरणमात्रेण बन्धनमर्हति, अन्यथा दत्तेऽपि धने
बन्धनप्रसङ्गात्; इत्युक्ताः पुनराहुः—स्तेयमकार्षीत्
चौर्येण धनमपहार्षीत् इति । तेषु एवं वदत्सु इतर अप-
हुते— नाहं तत्कर्तेति । ते च आहुः— संदिह्यमानं
स्तेयमकार्षीः त्वमस्य धनस्येति । तस्मिंश्च अपहृत्वाने
आहुः—परशुमस्मै तपतेति शोधयत्वात्मानमिति । स
यदि तस्य स्तैन्यस्य कर्ता भवति बहिश्चापहृते, स एवं-
भूतः तत एवानृतमन्यथाभूतं सन्तमन्यथात्मानं कुरुते ।
स तथा अनृताभिसंधोऽनृतेनात्मानमन्तर्धाय व्यवहितं
कृत्वा परशुं तप्तं मोहात्प्रतिगृह्णाति, स दह्यते, अथ
हन्यते राजपुरुषैः स्वकृतेनानृताभिसंधिदोषेण ।

अथ यदि तस्य कर्मणः अकर्ता भवति, तत एव
सत्यमात्मानं कुरुते । स सत्येन तथा स्तैन्याकर्तृतया
आत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति । स सत्याभि-
संधः सन् न दह्यते सत्यव्यवधानात्, अथ मुच्यते च
मृषाभियोकृत्यः । ततपरशुहस्ततलसंयोगस्य तुल्यत्वेऽपि
स्तेयकर्त्रकत्रोरनृताभिसंधो दह्यते न तु सत्याभिसंधः ।
छाशाम्ना.

गौतमः

वर्णभेदेन स्तेयदण्डः

अष्टापाद्यं स्तेयकिल्बिषं शुद्रस्य ।

(१) साहसदण्डमुक्त्वा स्तेय इदानीमाह— अष्टा-
पाद्यमिति । स्तेयेन यदुपात्तमधर्मकारणात् तद्द्रव्यं

(१) गौध. १२।१२; मिता. २।२७५ (=); मभा. ;
गौमि. १२।१२; द्वि. ३६ विष्णुः ; विता. ७८८; समु.
१५१.

किल्बिषशब्देनोच्यते, स्तेयकिल्बिषं स्तेयधनमित्यर्थः । तदष्टगुणं दण्डः, 'समप्रेम्सुर्दण्ड्यः' इत्यत्र दण्ड्यशब्दस्य नदीस्रोतोन्वायेनाधिकृतस्यात्र षष्ठ्यनुरूपार्थे दण्ड इत्येवं भवतीति । किल्बिषशब्देन वा दण्ड उच्यते । स्तेय-किल्बिषं स्तेयदण्ड इत्यर्थः । स गृहीतः स्यादष्टगुण इति । तत्र ब्राह्मणसुवर्णवर्जं द्रष्टव्यं, तस्य महापातकमध्ये उपदेशाद्दण्डगौरवं भवतीति । मभा.

(२) उक्तः साहसदण्डः । स्तेयदण्डमाह— अष्टा-पाद्यमिति । स्तेयं चौर्यम् । स्तेयोपात्तं द्रव्यं किल्बिष-निमित्तत्वात्किल्बिषमुच्यते । स्तेयेनोपात्तं द्रव्यमष्टगुण-मापादनीयं शूद्रस्य । कर्तारि षष्ठ्येषा । स्तेयकिल्बिषं शूद्रोऽष्टगुणमापादयेद्राज्ञे दण्डरूपेण प्रतिपादयेदिति । तत्रैको गुणः स्वामिने देयः, शेषो राज्ञे । उक्तं च 'चौरहृतमवजित्ये'त्यादिना । गौमि.

द्विगुणोत्तराणीतरेषां प्रतिवर्णम् ।

इतरेषां वैश्यादीनां स्तेयकिल्बिषाणि प्रतिवर्णं द्विगुणो-त्तराण्यापादनीयानि । वैश्यस्य षोडशगुणं, क्षत्रियस्य द्वात्रिंशद्गुणं, ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिगुणमिति । *गौमि.

विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वम् ।

(१) जात्युत्कर्षवद्विज्ञानोत्कर्षादपि दण्डभूयस्त्वं द्रष्टव्यं, तत्स्वजातिविहितात् 'अध्यर्धं विदुषो ज्ञेयम्' इति स्मृत्य-न्तरदर्शनात् । उपपन्नं चैतत्, यतोऽसौ ज्ञात्वाऽतिक्रम-तीति । विदुषो दण्डभूयस्त्वमिति सिद्धे अतिक्रमग्रहणं नियमार्थं, चौर्यविषय एवेदं, न साहसविषये । प्रायश्चित्त-विषयेऽपीति । एवं च ब्रुवता दण्डविधानात् प्रायश्चित्त-स्थापि गुरुलघुभावकल्पनाऽस्तीति प्रदर्शितं भवति । साहसप्रकरणे च यदुक्तं 'श्रोत्रियस्यार्धदण्डः' इति तच्चोपपन्नम् । मभा.

* मभा. गौमिवत् ।

(१) गौध. १२१३; मिता. २१२७ (=); मभा.; गौमि. १२१३; दवि. ३६ विष्णुः ; विता. ७८८; समु. १५१.

(२) गौध. १२१४; मेधा. ८१३७ क्रमे (क्रम); मिता. २१२७ (=); मभा.; गौमि. १२१४; दवि. ३६ विष्णुः ; विता. ७८८; समु. १५१.

(२) कस्मादिदमेवमित्याह— विदुषोऽतिक्रम इति । यथा यथा वर्णोत्कर्षेण विद्योत्कर्षस्तथा तथा विहिताति-क्रमे दण्डभूयस्त्वं भवति । निषेधदोषं ज्ञात्वाऽपि प्रवर्तमानस्य दोषाधिक्यं भवति । अजानतस्त्वन्यकूप-पतनवदनुग्रहोऽस्ति । गौमि.

फलहरितधान्यशाकादाने पञ्चकृष्णलमल्पे ।

(१) अस्यापवादमाह— फलेति । फलानामाम्रादीनां हरितधान्यस्य व्रीह्यादेः अपक्वस्येत्यर्थः, शाकस्य च मूल-कादेरपहरणे माषमात्रदण्डः । कुतः 'पञ्चकृष्णलको माषः' इति स्मृत्यन्तरदर्शनात् । अल्पे उदरपूरणमात्रे । अधिके अन्यद्रव्ये वा अष्टापाद्यमित्येतदेव द्रष्टव्यम् । मभा.

(२) कृष्णलं गुञ्जाबीजप्रमाणम् । 'माषो विंशति-भागस्तु ज्ञेयः कार्षापणस्य हि । कृष्णलस्तु चतुर्थांशो माषस्यैव प्रकीर्तितः ॥' इति । *गौमि-

दण्डानहंस्तेयम्

गोऽग्न्यर्थे तृणमेधान् वीरुद्धनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम् ।

(१) ब्रह्मचारिप्रकरणे उक्तस्यादत्तादानप्रतिषेधस्य इदानीमपवादमाह— गोऽग्न्यर्थ इति । गवाथं तृणानि । अग्निग्रहणेन श्रौतस्य स्मार्तस्यापि ग्रहणं, न लौकिकस्य, तदर्थमेधान् काष्ठानि । वीरुद्धा करवीरादीनां पुष्पाणि ।

* शेषं मभावत् ।

(१) गौध. १२१५; व्यक. ११५; मभा.; गौमि. १२१५ ल्ये (ल्यम्); विर. ३२५ लमल्पे (लं मन्ये); दवि. १४७ (धान्य०) मल्पे (मन्ये).

(२) गौध. १२१५; मेधा. ८१३९ (गो... ..तीनां च०); गोरा. ८१३९ (पुष्पाणि फलानि अपरिवृतानाम्) यत्तावदेव; मिता. २१२६ थं तृणमेधान् (थं तृणमेधांसि); अप. २१२६ थं (थी); मभा.; गौमि. १२१५; मवि. ८१३९ (अपरिवृतानाम्) यत्तावदेव; समु. ८१३९ (गो... ..धान्०) च पु (पु); विचि. १४७ (फलानि चा-गृहीतानि) यत्तावदेव; दवि. ४१ थं... ..रुद्ध (थं तृण-मेधांस्तु वीरुद्धो व); मच. ८१३९ (गो... ..धान्०) परिवृता (नृता); विता. ६६९ (फलानि चापरिवृतानाम्) यत्तावदेव; सेतु. २५० विचिवत्; समु. १५१ (वीरुद्ध०).

वनस्पतिशब्दोऽत्र वृक्षपर्यायः । साक्षाद्वनस्पतीनां पुष्पा-
संभवात् । यथाह मनुः— ‘अपुष्पाः फलवन्तो ये ते
वनस्पतयः स्मृताः ।’ इति । पुष्पाणि देवार्चनार्थानि
नानुभवार्थानि, गोऽग्निसाहचर्यात् । चकारात्पत्राणि
ब्राह्मणभोजनार्थानि । वीरुद्वनस्पतिपुष्पाणि चेति वक्तव्ये
ओपधार्थं मूलादेरपि ग्रहणार्थमसमासः । स्ववत् यथा
तेषां पीडा न भवति तथा गृहीतव्यमिति । यथाह
व्यासः— ‘पक्ष्मपक्ष्मं प्रचिन्वीत मूलच्छेदं तु वर्जयेत् ।
मालाकार इवारामे न यथाऽङ्गारकारकः ॥’ इति ।
फलानि चाम्रफलादीनि । आपत्सूचनार्थं पृथग्भि-
धानम् । चकाराच्छाकं च । अपरिवृत्तानामनारामीकृता-
नाम् । उभयविशेषणं चेदम् । एवं चारामे तृणादेरपि
प्रतिषेधः सिद्धः । मभा.

(२) एतानि तृणादीनि स्वामिभिरदत्तान्यपि स्ववदा-
ददीत । यथा स्वामी निःशङ्कमादत्ते तद्वदाददीत । ते
वीरुद्वनस्पतयोऽपरिवृताश्चेत्तेषां फलान्यपि स्ववदाददीत
न स्वाम्यपेक्षा । फलविषयमेतदपरिवृत्तत्वं न तृणादि-
विषयम् । पृथग्वाक्यत्वात् । * गौमि.

स्तेयमहापातकदण्डविधिः । दण्ड्योत्सर्गे राज्ञो दोषः । ब्राह्मणे
विशेषः ।

स्तेनः प्रकीर्णकेशो मुसली राजानमियात्कर्मा-
चक्षणः ।

यदि चैषां पुत्रादीनां पित्र्यमृगं न प्रतिकुर्यात्
कश्चित्, ततः स्तेनो भवतीति, अस्य ‘अष्टापाद्यं
स्तेयकिल्बिषं’ इति दण्डश्च विहित इत्यनेनैव प्रसङ्गेन
हिरण्यस्तेनस्यापि दण्ड उच्यते — स्तेन इति । स्तेनः
सुवर्णस्तेनः, अन्यद्रव्यापहारिणस्तु ‘अष्टापाद्यं’ इत्युक्त-
त्वात्, स्मृत्यन्तरदर्शनाच्च—‘सुवर्णस्तेनकृद्भिर्गो राजानम-
भिगम्य तु । स्वकर्म ख्यापयन् ब्रूयात् मां भवाननुशा-
स्तिवति ॥’ दण्डप्रकरणे गमनोपदेशः प्रायश्चित्तार्थः,
तथा च मनुः—‘राजभिर्भृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि
मानवाः । निर्मल्यः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥’
इति । स्तेये कृते स्तेनो भवति । स्तेयः परस्वापहारः ।

* गौमि. मभावत् ।

(१) गौ. १२।४०; सभा. मि (मी); गौमि. १२।४०.

बुद्धिपूर्वविषय एवेदम् । अबुद्धिपूर्वकस्तेयं नोपपद्यत
इति । महत्यपहृते त्वेतद् द्रष्टव्यं, विशेषानारम्भात् ।
प्रकीर्णकेशो मुक्तकेशः मृतसममात्मानं मन्यमानः ।
मुसली स्ववधसाधनमुसलहस्तो राजानं च गच्छेत्, कर्म
कथयन् स्तेनोऽहमस्मीति । मभा.

(२) ‘आयसः खादिरो वा मुसल’ इति स्मृत्यन्तरं
तद्वान् । ‘अंसे मुसलमाधाय’ इत्यापस्तम्बः । * गौमि.

पूतो वधमोक्षाभ्याम् ।

तत एवमुपस्थितः—पूत इति । पूतः शुद्धो भवतीति ।
वधान्मारणाद्वा मोक्षाद्वा । वधस्ताडनं, तदपि सकृदेव,
स्मृत्यन्तरदर्शनात्, ‘गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु
तं स्वयम् ।’ इति । तत्र राज्ञा यदि निःशङ्केन ताडितो
न म्रियेत ततोऽपि पूत एव भवतीति द्रष्टव्यम् । अ-
ब्राह्मणविषयं चेदं ताडनं, ‘न शारीरो ब्राह्मणदण्डः’ इति
वक्ष्यमाणत्वात् । तथा च मनुः—‘वधेन शुष्यति स्तेनो
ब्राह्मणस्तपसैव वा ।’ इति । अत्रैवकारात् ब्राह्मणस्तप-
सैवेति भाष्यकृता व्याख्यातम् । ततश्च अब्राह्मणस्य
ताडनं, ब्राह्मणस्य मोक्ष इति द्रष्टव्यम् । तथापि ब्राह्मणस्य
स्वयंगमनपक्षे मोक्षः । यस्तु बलादानीयते तस्य मोक्षः
तपश्च द्रष्टव्यम् । एवं सर्वत्र स्वयंगमनपक्षे दण्ड एव,
बलादानयनपक्षे दण्डश्च प्रायश्चित्तं चेति द्रष्टव्यम् ।
तपस्त्वश्रोत्रियब्राह्मणस्य सान्तपनं द्रष्टव्यं अश्रोत्रियब्राह्म-
णस्य सुवर्णहरणं चेत् । तथाह मनुः—‘चरेत्सान्तपनं कृच्छं
निर्यात्यात्मविशुद्धये ।’ इति । निर्यात्येति सर्वस्तेयशेषत्वे-
नान्वेतीति द्रष्टव्यम् । श्रोत्रियस्यापस्तम्बोक्तं द्रष्टव्यम्—
‘स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा गुरुदारं च गत्वा ब्रह्महत्याम-
कृत्वा । चतुर्थकाला मितभोजिनः स्युः’ इत्यादि । कथं
श्रोत्रियस्य गौरवमिति चेत् ‘विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वं’
इत्युक्तत्वात् । श्रोत्रियब्राह्मणसुवर्णहरणे त्वश्रोत्रियस्य
चैतदेव । श्रोत्रियस्य षड्वर्षे द्रष्टव्यम् । यथाहोशना—
‘सुवर्णस्तेयकृत् षड्वर्षे ब्राह्मणो व्रतं चरेत्’ इति ।
श्रोत्रियस्यापि यदा प्रायश्चित्तं समुच्चीयते तदा अश्रोत्रिय-
सुवर्णहरणे श्रोत्रियस्य भार्गवीयं द्रष्टव्यम्—‘ब्राह्मणस्वं

* गौमि. मभावत् ।

(१) गौ. १२।४१; सभा.; गौमि. १२।४१.

हरेद्यस्तु चरेच्चन्द्रायणादिकम् ।' इति । अश्रोत्रियस्य पूर्वमुक्तमौशनसं द्रष्टव्यम् । श्रोत्रियस्वहरणे त्वेतदेव द्विगुणं 'श्रोत्रियस्वहरणे द्विगुणम्' इति कण्ववचनात् । वैश्यस्यापि क्षत्रियवद्द्रष्टव्यम्—'वैश्यस्य क्षत्रियवचोरदण्डः' इत्यौशनसवचनात् । श्रोत्रियस्वहरणे—'तपसाऽपनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् । चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेत् ब्रह्महणो व्रतम् ॥' इति मनुनोक्तं वा द्रष्टव्यम् । शूद्रस्य प्रायश्चित्तं सर्वत्र 'निष्कालको वा घृताक्तो गोमयाभिना पादप्रभृत्यात्मानमवदाहयेत्' इति वसिष्ठोक्तं द्रष्टव्यम् । अपहृतद्रव्यवशादपि प्रायश्चित्तस्य गुरुलघुभावः कल्प्यः । कुतः ? 'तथा परिमेयानां शतादभ्यधिके वधः' इति लिङ्गात् । कार्षापणमूल्यादधिक एव राज्ञा ताडनम् । इतरत्र सर्वत्र तु मोक्ष एव द्रष्टव्यः । कार्षापणमूल्यादधिक एव समस्तप्रायश्चित्तप्रवेशः । 'अधे अर्धे पादे पादम्' इति च द्रष्टव्यम् । शूद्रस्य च वैश्यवत्कल्प्यम् 'अन्यूनभावे वैश्यवच्छूद्रस्य कल्प्यम्' इति शङ्खवचनादिति ।

* मभा.

अधननेनस्वी राजा ।

दयादियोगादधन एनस्वी राजा भवति । चोरस्य यावत्पापं तावदस्य भवतीत्यर्थः । तथा च स्मृत्यन्तरम्—'स्तेनस्याप्नोति किंस्त्रिभं' इति । यथा वधार्हस्यावधे दोषः एवं मोक्षार्हस्यामोक्षे दोषो द्रष्टव्यः । तथा च वसिष्ठः—'एनो राजानमृच्छत्युत्पृजन्तं सकित्त्रिषम्' इति ।

मभा.

नै शारीरो ब्राह्मणदण्डः ।

कर्मवियोगविख्यापनविवासानाङ्ककरणानि । अवृत्तौ प्रायश्चित्ती सः + ।

* गौमि. मभावत् ।

+ एतद्वचनत्रयव्याख्यासंग्रहः व्यवहारमातृकायां (पृ. ५६७-५६८) द्रष्टव्यः ।

(१) गौध. १२।४२; मभा. ; गौमि. १२।४२.

(२) गौध. १२।४३; व्यक्र. ११६. [अवशिष्टस्थलादि-निर्देशः व्यवहारमातृकायां (पृ. ५६७) द्रष्टव्यः ।]

(३) गौध. १२।४४-५; व्यक्र. ११६. [अवशिष्टस्थलादि-निर्देशः व्यवहारमातृकायां (पृ. ५६८) द्रष्टव्यः ।]

चोरसाहाय्ये अधर्मसंयुक्तप्रतिग्रहे च दण्डः

चोरसमः सचिवो मतिपूर्वे ।

चोरस्य सचिवः सहायः बुद्धिपूर्वे प्रतिश्रयान्नादिदाने चोरवन्निग्राह्यः । एवं चाबुद्धिपूर्वे न दोषः । ÷ मभा. प्रतिग्रहीताऽप्यधर्मसंयुक्ते ।

अपिशब्दान्मतिपूर्वं इत्यनुवर्तते । योऽन्यस्य द्रव्यमनेन चोरितमिति जानन्नेव ततः प्रतिगृह्णाति सोऽपि तस्मिन्नधर्मसंयुक्ते प्रतिग्रहे चोरसमः । प्रकरणादेव सिद्धेऽधर्मसंयुक्तग्रहणमन्यत्रापि पापविषये प्रतिग्रहीतुस्तत्त्वापं भवतीति ज्ञापनार्थम् । × गौमि.

स्तेयदोषप्रतिप्रसवः

द्रव्यादानं विवाहसिद्धयर्थम् ।

(१) यदा पित्रादिर्दद्यात् तदा आच्छाद्यालङ्कृतां दद्यादित्युक्तम् । तत्र द्रव्याभावे कथमित्यत आह—द्रव्यादानमिति । द्रव्यस्य परकीयस्यादानं अननुज्ञातस्य स्वीकरणं विवाहसिद्धये यावता विवाहो निर्वर्तते आत्मीयाभावे तावदपहृत्य दद्यादित्यर्थः । मभा.

(२) द्रव्यमननुज्ञातमपि शूद्राच्चैलादिकमादेयं, विवाहसिद्धयर्थं यावता विवाहः सिद्धयति तावत् । अधिके दोषः । गौमि.

धर्मतन्त्रसङ्गे च ।

(१) धर्मतन्त्रस्याग्निहोत्रादेः प्रवृत्तस्य विच्छेदः सङ्गः, तस्मिंश्च सति परस्वापहरणं कुर्यात् । तन्त्रग्रहणं यत् प्रक्रान्तमवश्यकर्तव्यं तस्यैव सङ्गे, न त्वप्रवृत्तस्य प्रवृत्त्यर्थम् । सिद्धयर्थमित्यस्यानुकर्षणार्थश्चकारः । यावता निर्वर्तते तावदेव गृह्णीयात् न ततोऽधिकमिति । एवं चाधिकग्रहणे स्तेयमेव भवति । मभा.

÷ गौमि. मभावत् । × मभा. गौमिवत् ।

(१) गौध. १२।४६; अप. २।२७६ पूर्वे (पूर्वम्); मभा.; गौमि. १२।४६; व्यनि. ५०८ अपवत्; समु. १५२.

(२) गौध. १२।४७; अप. २७६ क्ते (क्तत्); मभा.; गौमि. १२।४७; व्यनि. ५०८ (अधर्मसंयुक्ते ०); समु. १५२ (प्रतिग्राहिणश्च) एतावदेव.

(३) गौध. १८।२५; मभा. ; गौमि. १८।२४.

(४) गौध. १८।२६; मभा. ; गौमि. १८।२४ सङ्गे (संवेगे).

(२) तथा धर्मस्य पशुवन्धादेः प्रवृत्तस्य यत्तन्त्रमङ्ग-
मश्रादि तस्य संयोगेऽविच्छेदसिद्धयर्थं यावता तन्निर्वर्तते
तावदननुज्ञातमप्यादेयम् । गौमि.

शूद्रात् ।

कुतस्तदादेयमित्यत आह—शूद्रादिति । यज्ञार्थं हि
घनम् । न च शूद्रस्य वैदिकेषु कर्मस्वधिकारः । अतः
प्रथमं तावच्छूद्रादाददीत । मभा.

अन्यत्रापि शूद्रात् । बहुपशोर्हीनकर्मणः ।

इतराम्योऽपि दृश्यन्त इति पञ्चम्यान्त्रल्ल । शूद्राद-
न्यतोऽपि द्रव्यमादेयं स चेद्बहुपशुस्तथा हीनकर्मा भवति
तदनु रूपं कर्म न करोति निषिद्धं वा कर्म सेवते । शूद्र-
ग्रहणं विधिरयं यथा स्यादिति । तेन शूद्रालाभे वैश्यात् ।
तदलाभे क्षत्रियात् । गौमि.

शैतगोरनाहिताग्नेः ।

अन्यकर्मकृतोऽपि शतगोः अग्न्याधानमकुर्वतः ।
शतग्रहणं द्रव्यपरिमाणोपलक्षणार्थं, शतनिष्कत्येत्यर्थः ।
एवं सर्वत्र । मभा.

सहस्रगोश्चासोमपात् ।

यश्चाहिताग्निरपि सहस्रगुः सोमं न पिबति तस्माद-
प्याददीत । चशब्दादन्यतोऽपि । यः प्रभूतघनत्वे सति
तदनु रूपं कर्म न करोति तस्मादप्याददीत । मभा.

सप्तमीं चाभुक्त्वाऽनिचयाय ।

(१) न केवलं निमित्तद्वयमेव परद्रव्यादाने । किंच-
सप्तमीमिति । सप्तमीं वेलाभुक्त्वा घनक्षयात्,
परद्रव्यादानं कुर्यात् । तथाह मनुः—‘तथैव सप्तमे भक्ते
भक्तानि षडनश्रता । अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीन-
कर्मणः ॥’ इति । हीनकर्माधिकारार्थश्चकारः । तथोदा-
हृतं च मनुवचनम् । अनिचयाय उदरपूरणमात्रम् ।
मभा.

(२) सप्तम्यर्थे द्वितीया । षट्सु वेलासु भोज्यालाभे-

(१) गौघ. १८१२७; मभा. ; गौमि. १८१२४.

(२) गौघ. १८१२८-९; मभा. ; गौमि. १८१२५.

(३) गौघ. १८१३०; मभा. ; गौमि. १८१२६.

(४) गौघ. १८१३१; मभा. ; गौमि. १८१२७.

(५) गौघ. १८१३२; मभा. ; गौमि. १८१२८.

नाभुक्त्वा सप्तम्यां वेलायां यावता वृत्तिस्तावदननुमतम-
प्यादेयम् । अनिचयः पुनस्तेन निचयो न कर्तव्यः । श्वो
भोज्यमपि नादेयम् । गौमि.

अप्यहीनकर्मभ्यः ।

अस्यामवस्थायामहीनकर्मभ्योऽप्यादेयम् । अपिशब्दः
कथाञ्चिदस्यानुज्ञातमिति दर्शयति । तेन प्राणसंशय एवेदं
भवति । गौमि.

आचक्षीत राज्ञा पृष्टः ।

(१) यद्यसावेवं कुर्वन् स्वामिभिर्गृहीतो राजसकाशं
नीतस्तेन पृष्टः किमित्थमकार्षीरिति तदा स्वामवस्थामा-
चक्षीत । न तु मिथ्या वदेत् । गौमि.

(२) न तु स्वयं गत्वा कथयेत् । * मभा.

तेन हि भर्तव्यः श्रुतशीलसंपन्नश्चेत् ।

(१) हिशब्दो यस्मादर्थे । यस्मात्तेन हि भर्तव्यः
‘विभृयात् ब्राह्मणान् श्रोत्रियान्’ इति वचनात् । श्रुत-
शीलसंपन्नो यदि भवति । श्रुतेन वेदार्थविज्ञानेन, शीलं
तच्चोदितकर्मानुष्ठानेनापि संपन्नः सम्यक् स्तः । ‘विभृ-
यात् ब्राह्मणान् श्रोत्रियान्’ इति श्रोत्रियार्णा भरणो-
पदेशात् भर्तव्यवचनेनैव श्रुतिशीलसंपन्नता सिद्धेति चेत्,
उच्यते—अश्रोत्रियाणामपि भरणोपदेशात् ‘निरुत्साहाश्च
ब्राह्मणान्’ इति । एवं च परस्वापहरणे अब्राह्मणो न
भर्तव्य इति प्रदर्शितम् । तेनेति वचनं राज्ञो धर्मार्थ-
मेवास्य भरणं न वृत्त्यर्थमिति । मभा.

(२) हिश्वार्थे, तेन च राज्ञा स न केवलमदण्ड्यः
किं तर्हि तत आरभ्य भर्तव्यः तवेयमवस्था मया न
ज्ञातेति सान्त्वयित्वा स चेच्छ्रुतवृत्तशीलसंपन्नो भवति ।
श्रुतं शास्त्रपरिज्ञानं शीलं तदनुकूल आचारः ।
इतरोऽपि न दण्ड्यो भरणं तु तस्य तादृशं न कार्यम् ।
दण्डाभावः पूर्वयोरपि निमित्तयोः समानः ।

. गौमि.

* शेषं गौमिवत् ।

(१) गौघ. १८१३३; मभा. ; गौमि. १८१२९.

(२) गौघ. १८१३४; मभा. ; गौमि. १८१३०.

(३) गौघ. १८१३५; मभा. ; गौमि. १८१३१.

धर्मतन्त्रपीडायां तस्य करणेऽदोषः ।

(१) यस्माद्भर्तव्यस्तस्मादस्य धर्मतन्त्रपीडायां—धर्म-
शब्देनाग्निहोत्रादय उच्यन्ते; तन्त्रशब्देन विवाहः, पीडा-
शब्देनात्मपीडा 'सप्तमीं चाभुक्त्वा' इत्यनेनोक्ता । धर्म-
विच्छेदे विवाहसिद्धये आत्मपीडायां चेत्यर्थः । तस्य
चौर्यस्य करणे अदोषः दण्डो नास्तीत्यर्थः । राज्ञ उपेक्षया
धर्मतन्त्रपीडायां सत्यां चौर्यं कृत्वा स्वदोषादागते चौर्ये
ब्राह्मणस्य दण्डपातनं न युक्तमित्यभिप्रायः ।

केचिद्व्याचक्षते—श्रुतशीलसंपन्नश्चेत् भर्तव्यत्वादाच-
क्षीत । अश्रोत्रियोऽप्याचक्षीत । यस्मात्तस्मादश्रोत्रियस्यापि
धर्मतन्त्रपीडायां दण्डो नास्ति इति ।

अपरे व्याचक्षते — त्रिभूयाच्छ्रोत्रियानिति योऽसौ
भर्तव्यः सोऽस्मिन्नपराधेऽपि भर्तव्य एव । हिशब्द
एवशब्दार्थे, तदनुरूपोऽर्थः अस्यापि दातव्य इत्यर्थः ।
अश्रोत्रियमपि न दण्डयेत् यतस्तस्यापि तस्मिन्नपराधे
दण्डो नास्तीति । कुतः ? धर्मतन्त्रपीडायामित्यस्य सूत्रस्या-
श्रोत्रियार्थत्वादारम्भस्येति । मभा.

(२) यदि पशुन्ध्यादौ धर्मे प्रवृत्तस्य तदङ्गं पश्चादि
केनचित्पीडितं भवति हतमपहृतं वा तस्मिन्निवेदिते
तदैव तस्य प्रतिविधानं कार्यं राज्ञा । अकरणे दोषो
भवति । गौमि.

प्रकाशचौर्यप्रसङ्गात् करशुल्कस्थापनाविधिः

राज्ञे बलिदानं कर्षकैर्दशममष्टमं षष्ठं वा ।

(१) कर्षकैः क्षेत्रे यल्लब्धं तस्य दशमभागोऽष्टमः
षष्ठो वाऽशो राज्ञो बलिदानं कररूपेण देयः । अस्य राज्ञः
कर्षकैः क्षेत्रे यल्लब्धं तद्रक्षणनिमित्ता वृत्तिरेषा । कृष्याया
भूमैरतिभोगमध्यमभोगाल्यभोगविषयोऽयं व्यवस्थितो
विकल्पः । अतिभोगे दशमांशो मध्यमभोगेऽष्टमांशोऽल्प-
भोगे षष्ठांश इति । गौमि.

(२) अधुना रक्षणनिमित्तामस्य वृत्तिमाह— राज्ञे
बलिदानमिति । नियुक्ताय देयमिति राजग्रहणम् ।
प्रतिसंवत्सरं देयमिति बलिग्रहणम् । दानं कर्तव्यमिति
शेषः । कर्षकैः यावन्तः कृषिजीविनः, न तु वैश्येनैव

(१) गौघ. १८।३६; मभा. ; गौमि. १८।३२ तस्य
करणे दोषः (तस्याकरणे दोषः).

(२) गौघ. १०।२३; मभा. ; गौमि. १०।२४.

दशमं वाऽष्टमं वा, षष्ठं वा, अधममध्यमोत्तमभूभाग-
क्रमेण व्यवस्थितविकल्पो द्रष्टव्यः । मभा.

पशुहिरण्ययोरप्येके पञ्चाशद्भागः ।

(१) ये पशुभिर्जीवन्ति ये वा हिरण्यप्रयोक्तारो
वार्षुषिकास्तैः पञ्चाशत्तमो भागो राज्ञे देय इत्येके ।
तद्यथा यस्य पञ्चाशत्पशवः सन्ति स प्रतिसंवत्सरमेकं पशुं
राज्ञे दद्यात् । यस्य वा पञ्चाशन्निकैर्वृद्धिप्रयोगः स
प्रतिसंवत्सरमेकैकं निष्कं राज्ञे बलिरूपेण दद्यादिति ।
गौमि.

(२) पशुपालनेनोपजीवतः सकाशात्पशूनां पञ्चा-
शद्भागं गृह्णीयात् । हिरण्यं वार्षुषिकसकाशात् । 'समार्थं
धनमुद्धृत्य महार्थं यः प्रयच्छति । स वै वार्षुषिको
नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥' इति वार्षुषिकस्य प्रति-
षेधादेवास्याभावः प्राप्नोतीति चेत् — नैष दोषः, 'कामं
परिलुप्तकृत्याय पापीयसे दद्याताम्' इति वसिष्ठेन प्रका-
रान्तरेणाभ्यनुज्ञानात् । एकेग्रहणात् तु गौतमः, तत्र
येषामप्रतिप्रसवः तेषु न गृह्णीयात् । येषां प्रतिषेधा-
भावादेव वार्षुषिकत्वं स्यात्, तेषु गृह्णीयादित्येवं
द्रष्टव्यम् । मभा.

विंशतिभागः शुल्कः पण्ये । मूलफलपुष्पौषध-
मधुमांसतृणन्धनानां षाष्टः । तद्रक्षणधर्मित्वात् ।
तेषु तु नित्ययुक्तः स्यात् ।

(१) विंशतीति । यद्वणिग्भिर्विक्रीयते तत्पण्यं तत्र
विंशतितमो भागो राज्ञे देयस्तस्यैव दीयमानस्य शुल्क

(१) गौघ. १०।२४; मभा. ; गौमि. १०।२५.

(२) गौघ. १०।२५-८; अप. २।२६१ भागः शुल्कः
(भागाः शुल्कं) षाष्टः (षष्ठः) (तु०); व्यक. १११ षाष्टः
(षाष्टम्) (तु०) नित्यं (निर्लं); मभा. षाष्टः (षाष्ट्यः);
गौमि. १०।२६-९ षाष्टः (षष्ठः); उ. २।२६।९ षष्ठः (षष्ठि)
षाष्टः (षाष्टिक्यम्) (तद्रक्ष..... स्यात्०); विर. ३०४
(फल०) षाष्टः (षाष्टं) (तु०); विचि. १२९ (फल०)
षष्ठमधुमांस (षष्ठिमांसमधु) षाष्टः (तु षष्ठः) (तद्रक्ष.....
स्यात्०); दवि. ९४ (विंशति.....पण्ये०) (फल०)
षाष्टः (षष्टिः) तद्रक्षण (क्षण) (तु०); सेतु. २९५ (मूल-
फल०) षष्ठमधुमांस (षष्ठिमांसमधु) षाष्टः (षष्ठः) (तद्रक्ष
..... स्यात्०).

इति संज्ञा । शुल्कप्रदेशाः 'प्रातिभाव्यं वणिक्शुल्कमि'-
त्सादयः ।

मूलेति । मूलं हरिद्रादि । फलमात्रादि । पुष्पमुत्प-
ल्लादि । औषधं त्रिल्वादि । शिष्टानि प्रसिद्धानि । एतेषु
पण्येषु षाष्टितमो भागो राज्ञे देवो विक्रेत्रा ।

कस्मात्पुनरेवं राज्ञे देय इत्यत आह— तद्रक्षणेति ।
तेषां करदायिनां रक्षणरूपेण धर्मेण तद्रत्वात्तेषामयं रक्षक
इति कृत्वेति ।

तेष्विति । तेषु कर्षकादिषु नित्ययुक्तः स्याद्रक्षणे
नित्यमवहितः स्यात् । अपर आह— तेषु ब्रल्यादिषु
नित्ययुक्तः स्यात् । तात्पर्येणाऽऽदतीत शुल्कं ह्यस्यैतद्धन-
मिति ।

(२) विंशतीति । पण्यं पणनीयं यद्वणिग्भिर्विक्रीयते
हिंवादि तेषु विंशतिभागं गृह्णीयात् । शुल्कग्रहणं संज्ञार्थं,
ततश्च 'प्रातिभाव्यवणिक्शुल्क' इत्यादौ व्यवहारसिद्धिः ।

मूलेति । मूलं हरिद्रादि, फलं मरीचादि, पुष्पं कुमु-
म्मादि, औषधं अभयादि, तृणं यत्किञ्चित् कटादि ।
शेषाः प्रसिद्धाः ।

कस्मात्पुनरेतद्राज्ञो देयमित्यत आह— तद्रक्षणेति ।
तेषां करदायिनां रक्षणं तद्रक्षणं, स एव धर्मः यस्यासौ
तद्रक्षणधर्मा, तस्य भावस्तद्रक्षणधर्मित्वं, तस्मात्तद्रक्षण-
धर्मित्वात् तच्छीलित्वादित्यर्थः । वचनगम्येऽर्थे हेतुवचनं
देशकालापेक्षया उक्तपरिमाणादप्यत्यतरभागग्रहणार्थं,
इतरथा सर्वमेव राजा रक्षतीति साधारणोऽर्थं हेतुः
स्यादिति । तथा चाहोशना— 'देशकाललाभानुरूपतः
करान् प्रकल्पयेत्' इति ।

तेष्विति । तेषु तु ब्रल्यादानेषु सर्वदा सत्यपि कार्य-
व्यग्रत्वे तत्परो भवेत् । तुशब्दो विशेषवाची अन्येष्वपि
द्रव्यार्जनोपायेषु धर्मादनपेतेषु तत्परो भवेत्, अत्र
विशेषत इति ।

(३) षाष्टं षष्टितमं भागम् । तेषु मूलादिषु रक्षण-
धर्मित्वाद्रक्षणे आगमधर्मित्वान्नित्ययुक्तः स्यान्नित्यावहितः
स्यादित्यर्थः । अत्र विंशतिभागः परदेशागतं द्रव्यमपेक्ष्य,
वस्तुविशेषापेक्षया तु षाष्टी भागो यथाश्रुत्वैव संकोचा-
भावात् ।

विर. ३०४-५

अधिके न वृत्तिः ।

(१) राज्ञोऽधिकं रक्षणमिति यदुक्तं तद्द्वारेण यदा-
गतं धनं तदधिकं तेनात्मनः पोष्यवर्गस्य च हस्त्यश्वादीनां
च वृत्तिः स्यात् । न तु पूर्वैर्यत्संचित्य खातं कोशरूपेण
तेन जीवेत् । आपदि तु तेनापि जीवेत् । तथा च
व्याघ्रः— 'कुटुम्बपोषणं कुर्यान्नित्यं कोशं च धारयेत् ।
आपदोऽन्यत्र कोशात् न गृह्णीयात्कदाचन ॥' इति ।

गौमि.

(२) स्यादिति शेषः । कुटुम्बपोषणादधिकं यत्कोश-
रूपेणानुप्रविष्टं तस्मिन् कोशे वृत्तिर्न स्यात्, कुटुम्ब-
पोषणार्थं, अन्यत्रापदः, तस्मिन् न गृह्णीयादित्यर्थः ।
तथा च व्याघ्रः— 'कुटुम्बपोषणं कुर्यान्नित्यं कोशं च
वर्धयेत् । अन्यत्रापत्तितः कोशं न गृह्णीयात्कदाचन ॥'
इति । केचिद्व्याचक्षते— अधिकेन रक्षणद्वारा आगतेन
जीवनं स्यादिति । तत्र 'राज्ञोऽधिकं' इत्यनेन पुनरुक्त-
प्रसङ्गोऽस्ति उत नास्तीति निरूपणीयम् ।

मभा.

शिल्पिनो मासि मास्येकैकं कर्म कुर्युः ।

एकेनाह्वा साध्यमेकं कर्म । शिल्पिनो लोहकीरादयः ।
तेऽपि प्रतिमासं राज्ञे स्वीयमेकमहःकर्म कुर्युः । एष एषां
शुल्कः ।

*गौमि.

एतेनात्मोपजीविनो व्याख्याताः ।

(१) आत्मोपजीविनो ये शरीरायासेन जीवन्ति काष्ठ-
वाहादयस्तेऽप्येते च शिल्पिपूक्तप्रकारेण व्याख्याताः,
मासि मास्येकैकं कर्म कुर्युरिति । नर्तकादिष्वप्येषैव
गतिः ।

गौमि.

(२) आत्मोपजीविनो नटनर्तकादयः, तेऽप्येकमहो
राज्ञः कर्म कुर्युरिति, शिल्प्यात्मोपजीविन इति वक्तव्ये
पृथग्ग्रहणं आत्मोपजीविनामलोपकारित्वादनित्यत्वार्थम् ।
आत्मोपजीविनश्चेत्येवमपि न कृतं, स्मृत्यन्तरेऽपि

* मभा. गौमिवत् ।

(१) गौध. १०१२९; मभा. ; गौमि. १०१३० अधिके
न (अधिकेन).

(२) गौध. १०१३०; मभा. ; गौमि. १०१३१.

(३) गौध. १०१३१; मभा. ; गौमि. १०१३२ नात्मोप
(नात्मनोप).

शिल्पिनो यद्यदुक्तं तस्य सर्वस्याप्यनुप्रवेशार्थम् ।
यथाहोशना— 'शिल्पिनो मासि मासि कर्मैकं प्रोक्तं,
तदभावे कार्पापणं वा दद्यात्' इति । मभा.

नौचक्रीवन्तश्च ।

(१) नौश्च चक्रं च नौचक्रे । चक्रशब्देन तद्वच्छकटं
लक्ष्यते । तद्वन्तो नौचक्रीवन्तः । 'आसन्दीवदष्टीवदि'-
त्यादिना कथंचिद्रूपसिद्धिः । नौवन्तो नौजीविनः ।
चक्रवन्तः शकटजीविनः । तेषुपि राज्ञ एकमहस्तकर्म
कुर्युः । गौमि.

(२) चक्रं शकटं, नौचक्राभ्यां य उपजीवन्ति ।
बहुवचनात् वर्धकिनापितादयः । चकारात् वन्यमुग्रा-
घातकादयः । पूर्ववदनित्यता मा भूदिति पृथग्रहणम् ।
मभा.

भक्तं तेभ्यो दद्यात् ।

(१) 'शिल्पिनो मासि मासी'त्यारभ्य येऽनुक्रान्ता-
स्तेभ्यः कर्म कुर्वद्भ्यो भक्तमन्नं दिवा भोजनं दद्याद्राजा ।
गौमि.

(२) तेभ्यः शिल्पिप्रभृतिभ्यः भक्तं भोजनं शुल्कं
दद्यात् । तद्ग्रहणमनन्तराणामेव मा भूदिति । मभा.

पण्यं घणिग्भिरर्घापचयेन देयम् ।

(१) मासि मास्यैकैकमित्यनुवर्तते । विंशतिभागः
शुल्कः पण्य इत्युक्तम् । ततः शुल्कादधिकमिदं मासि
मास्यैकं पण्यमर्थापचयेन प्राप्तस्य मूल्यस्य किञ्चिन्मूलां
कल्पयित्वा वणिजो राज्ञे दद्युः । तत्र बृहस्पतिः—
'शुल्कं ददुस्ततो मासमेकैकं पण्यमेव च । अर्धावरं च
मूल्यान वणिजस्ते पृथक्पृथक् ॥' इति । गौमि.

(२) अर्धापचयः अर्धावरमूल्यम् । *मभा.

(३) अर्धापचये मूल्यापचये । तेन मूल्यापचये
पण्यमप्रयच्छन्नपि वणिक् न दण्ड्य इति तात्पर्यम् ।

विर. ३०३

* मभा. गौमिवत् ।

(१) गौध. १०१३२; मभा. ; गौमि. १०१३३.

(२) गौध. १०१३३; मभा. ; गौमि. १०१३४.

(३) गौध. १०१३४; व्यक. १११; मभा. ; गौमि.
१०१३५ रर्षा (रर्षा); विर. ३०३ चयेन (चये न); द्वि.
१०० विरवत् .

चोरहनं राज्ञ स्वामिने प्रदेशमलब्धेऽपि चौरै

चौरहृतमपजित्य यथास्थानं गमयेत् ।

(१) चौरैर्हृतं द्रव्यं तानपजित्य यथास्थानं गमयेत् ।
स्वामिन एव दद्यात् । जेतुस्तु जयफलं किञ्चित् ।

गौमि.

(२) चोराद्यपहतं तत आच्छिद्य स्वामिन एव
प्रत्यर्पयेत् । न तु 'जेता लभेत सांग्रामिकम्' (गौध.
१०११९) इत्यनेन कण्टकमर्दनव्याजेन वा किञ्चिदुप-
जीवेत् । आच्छिद्येति वक्तव्ये अपजित्येति वचनं
योऽप्यन्य आच्छिनत्ति असावप्यमुष्मै दापनीय इति ।
स्वामिने दद्यादिति वक्तव्ये 'यथास्थानं गमयेत्' इत्या-
रम्भः स्वाम्यभावेऽपि तद्भृत्येभ्यो यथाहृतोऽर्पयेदिति ।
चोरग्रहणं बलात्करणादेरप्युपलक्षणम् । मभा.

कोशाद्वा दद्यात् ।

(१) यद्यन्विष्यापि चोरा न दृष्टास्त एव वा जित्वा
गतास्तदा स्वकोशादादाय तावद्धनं स्वामिने दद्याद्यावद्-
पहतं चौरैरिति । गौमि.

(२) अनपजये, दुर्गदेशादिषु गतत्वात्, यावन्मात्र-
मपहतं तत्स्वधनाद्दद्यात् । कोशाद्देति नोक्तं, यथास्थानं
गमयेत् कोशाद्वा गमयेदिति मा भूदाशङ्केति । मभा.

(३) प्रथमपक्षकरणासमर्थविषये द्वितीयः पक्षः ।

स्मृच. १३४

हारीतः

राज्ये चौरदोषः

पापास्तु यस्य राष्ट्राद्धै वर्धन्ते दस्यवः सदा ।
तत्पापमतिवृद्धं हि राज्ञो मूलं निकृन्तति ॥

(१) गौध. १०१४६; मिता. २१३६, २१२७२ मप
(मव); अप. २१३६ तमपजित्य (तं विजित्य); मभा. ;
गौमि. १०१४६; स्मृच. १३४ जित्य (हृत्य); पमा. ४४९
मितावत्; व्यड. १२५; विता. ५६७, ७९५ मितावत्;
प्रका. ८४; समु. १५२ मितावत्.

(२) गौध. १०१४७; मिता. २१३६ कोशाद्वा द (स्वको-
शाद्) : २१२७२ कोशा (स्वकोशा); अर. २१३६;
मभा. ; गौमि. १०१४७; स्मृच. १३४; पमा. ४४९
कोशा (स्वकोशा); विता. ५६७ कोशाद्वा (दोशाद्) :
७९५ पमावत् ; प्रका. ८४; समु. १५२.

(३) व्यक. ११० राज्ञो (राज्ञां); विर. २९४.

आपस्तम्बः

तस्करभयराहिनराज्यकरणं मुख्यो राजधर्मः

क्षेमकृद्राजा यस्य विषये ग्रामेऽरण्ये वा तस्कर-
भयं न विद्यते ।

यस्य राज्ञो विषये ग्रामेऽरण्ये च चोरभयं नास्ति
स एव राजा क्षेमकृत् क्षेमङ्करः । न त्वन्यः शतं तुभ्यं
शतं तुभ्यमिति ददानोऽपि । उ.

ग्रामेषु नगरेषु चार्यान् शुचीन् सत्यशीलान्
प्रजागुण्ये निदध्यात् । तेषां पुरुषास्तथागुणा
एव स्युः । सर्वतो योजनं नगरं तस्करेभ्यो
रक्ष्यम् । क्रोशो ग्रामेभ्यः ।

तत्र यन्मुष्यते तैस्तत्प्रतिदाप्यम् ।

ग्रामेष्विति । आर्यान् शुचीन् सत्यशीलानिति
व्याख्यातम् । एवंभूतान् पुरुषान् ग्रामेषु नगरेषु च
प्रजानां रक्षणार्थं निदध्यात् नियुञ्जीत । तेषामिति ।
तेषां नियुक्तानां ये पुरुषा नियोज्याः तेऽपि तथागुणा
आर्यादिगुणा एव स्युः । सर्वत इति । सर्वतः सर्वासु
दिक्षु योजनमात्रं नगरं तस्करेभ्यो रक्षणीयम् । रक्ष्य-
न्नित्यपपाठः । क्रोशो ग्रामेभ्य इति । ग्रामेभ्यस्तु
सर्वासु दिक्षु क्रोशो रक्ष्यः । ग्रामेभ्य इति 'यत-
श्चाध्वकालपरिमाणं तत्र पञ्चमी वक्तव्या' इति पञ्चमी ।
तत्रेति । तत्र योजनमात्रे क्रोशमात्रे वा यन्मुष्यते चोर्यते
ते नियुक्ताः स्वामिभ्यस्तत्प्रतिदद्वु राज्ञा तैस्तत् प्रतिदाप्यं
राजा तैः प्रतिदापयेदिति प्रायेण दन्त्योष्ठ्यं वकारं
पठन्ति (१) । उ.

शूद्रादीनां स्तेयादिमहापातकदण्डविधिः, ब्राह्मणे विशेषश्च
पुरुषवधे स्तेये भूम्यादाने इति स्वान्यादाय वध्यः ।

(१) आध. २।२५।१५; हिघ. २।१८ यस्य (न
चास्य) (न०); व्यक. ११०; विर. २९४.

(२) आध. २।२६।४-७; हिघ. २।१९ (नगरेषु०)
शीलान्+ (धर्मार्थकुशलान्); व्यक. ११८; विर. ३४३
चार्यान् (आचार्यान्); विचि. १४७ तथागुणा एव (एव
तथागुणाः); दवि. ८६ चार्यान् (आर्यान्); सेतु. २५०.

(३) आध. २।२६।८; हिघ. २।१९; व्यक. ११८
व्यम् (दातव्यम्); दवि. ८६ (अत्र यन्मुष्येत तैस्तु
प्रतिपाद्यम् ।) .

(४) आध. २।२७।१६; हिघ. २।१९ भूम्यादाने-

चक्षुनिरोधस्त्वेतेषु ब्राह्मणस्य ।

भूम्यादानं परक्षेत्रस्य बलास्वीकारः, पुरुषवधादिषु
निमित्तेषु शूद्रः सर्वस्वहरणं कृत्वा पश्चाद्बन्धुः मारयि-
तव्यः । चक्षुनिरोध इति । ब्राह्मणस्य त्वेतेषु निमित्तेषु
चक्षुषो निरोधः कर्तव्यः । पट्टबन्धादिना चक्षुषो निरो-
द्धव्ये, यथा यावज्जीवं न पश्यति । न तूत्पाटयितव्ये 'न
शारीरो ब्राह्मणदण्डः । अक्षतो ब्राह्मणो ब्रजेत्' इति
स्मरणात् । चक्षुनिरोध इति रेफलोपसृष्टान्दसः । उ.

नियमातिक्रमिणमन्यं वा रहसि बन्धयेत् ।
आसमापत्तेः । असमापत्तौ नाशयः । आचार्य
ऋत्विक् स्नातको राजेति त्राणं स्युरन्यत्र
वध्यात् * ।

स्तेनः प्रकीर्णकेशोऽसे मुसलमाधाय राजानं
गत्वा कर्माऽऽचक्षीत । तेनैनं हन्याद्वधे मोक्षः ।

स्तेनो ब्राह्मणस्वर्णहारी । असे स्वे स्कन्धे । मुसल-
माधाय आयसं खादिरं वा धारयन् । राजानं गत्वा
कर्माऽऽचक्षीत, एवंकर्माऽस्मि, शाधि मामिति । स
तेन मुसलेन एनं स्तेनं हन्यात्, यथा मृतो भवति ।
वधेन स्तेयात् मोक्षो भवति । उ.

अनुज्ञातेऽनुज्ञातारमेनः स्पृशति ।

यदि राजा दयादिना तमनुजानीयात् गच्छेति, तदा
तमनुज्ञातारं राजानमेव तदेनः स्पृशति । उ.

अग्निं वा प्रविशेत् । तीक्ष्णं वा तप आयच्छेत् ।

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च व्यवहारमातृकायां
(पृ. ५६९) द्रष्टव्यः ।

(परदारानुप्रवेश) ; अप. २।२७०; व्यक. ११६; विर.
३३०; विचि. १४२ (पुरुषवधस्तेयभूम्यादानेषु) एतावदेव;
दवि. ६५; सेतु. २४४ (पुरुषवधस्तेयभूम्यादानेषु वधः) .

(१) आध. २।२७।१७ क्षुनिं (क्षुनि) ; हिघ. २।१९;
मिता. २।२६ धस्त्वेतेषु (धो) ; अप. २।२६ मितावत् :
२।२७० धस्त्वेतेषु (धस्तु तेषु) ; व्यक. ११६ स्वेते (श्वैते) ;
स्मृच. १२४ मितावत् ; विर. ३३० स्वेतेषु (श्व तेषु) ;
दवि. ६५; मिता. ८७ मितावत् ; सेतु. २४४ व्यकवत् ;
प्रका. ७८ मितावत् ; समु. ६८ मितावत् .

(२) आध. १।२५।४; हिघ. १।२३-४.

(३) आध. १।२५।५; हिघ. १।२४.

(४) आध. १।२५।६-७; हिघ. १।२४.

तीक्ष्णं तपः महापराकादि । तद्वा आयच्छेत् आवर्तयेत् ।

भक्तापचयेन वाऽऽत्मानं समाप्नुयात् ।

भक्तमन्त्रम् । तस्यापचयो ष्हासः । प्रथमे दिने यावन्तो ग्रासाः ते एकेन न्यूना द्वितीये । एवं तृतीयादिष्वपि आ एकस्माद् ग्रासात् । तत्रापि यदि न समाप्तिः ततस्तत्रैव ग्रासपरिमाणापचयः कर्तव्यः । एवं भक्तापचयेनात्मानं समाप्नुयात् समापयेत् ।

कृच्छ्रसंघत्सरं वा चरेत् ।

अथ वा संघत्सरमेकं नैरन्तर्येण कृच्छ्रांश्चरेत् । एषामेनस्सु गुरुषु गुरुणि, लघुषु लघूनीति व्यवस्था ।

अथाप्युदाहरन्ति । स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा गुरुद्वारं च गत्वा ब्रह्महत्यामकृत्वा । चतुर्थकालमिति भोजिनः स्युः अपोऽभ्यवेयुः सवनानुकल्पम् । स्थानासनाभ्यां विहरन्त एते त्रिभिर्वर्षैरप पापं नुदन्ते ।

अस्मिन्नेव विषये पुराणश्लोकमप्युदाहरन्तीत्यर्थः । ब्रह्महत्याभ्यतिरिक्तानि स्तेयादीनि कृत्वा चतुर्थकालाश्चतुर्थो भोजनकालो येषाम् । यथा— अद्य दिवा भुङ्क्ते श्वे नक्तमिति, ते तथोक्ताः । तथापि मितभोजिनः न मृष्टाशिनः । अपोऽभ्यवेयुः भूमिगतास्वप्सु स्नानं कुर्युः । सवनानुकल्पं, यथा सवनानि प्रातःसवनादीन्यनुकल्पानि अनुसृतान्यनुष्ठितानि भवन्ति तथा त्रिषवणमित्यर्थः । तिष्ठेयुरहनि, रात्रावासीरन् । एवं स्थानासनाभ्यां विहरन्तः कालक्षेपं कुर्वन्तः । एते त्रिभिर्वर्षैस्तत्पामपनुदन्ते ।

दण्डार्हानर्हस्तेयविचारः । दण्ड्योत्सर्गे राज्ञो दोषः ।

परपरिग्रहमविद्वानाददान एधोदके मूले पुष्पे

(१) आध. १।२५।८; हिघ. १।२४.

(२) आध. १।२५।९; हिघ. १।२४.

(३) आध. १।२५।१०-११; हिघ. १।२४ कल्पम् (कल्पयेत्); मभा. १।२।४१ (अथाप्युदाहरन्ति०) (अपो... नुदन्ते०).

(४) आध. १।२८।११; हिघ. १।२० पुष्पे फले (फले पुष्पे) (गन्धे ग्रासे०); दवि. १।५२ एधो (एधो) पुष्पे फले (फले पुष्पे).

फले गन्धे ग्रासे शाक इति वाचा बाध्यः ।

एधश्चोदकं च एधोदकम् । ग्रासो गवाद्यर्थो यवसादिः । सर्वत्र विषयसप्तमी । यः परपरिग्रहोऽयमित्यविद्वान् अजानन् एधादिकमादत्ते गृह्णाति, स तस्मिन् विषये तत्र नियुक्तेन राजपुरुषेण निष्ठुरया वाचा बाध्यः निवार्यः ।

विदुषो वाससः परिमोषणम् ।

यस्तु विद्वानेवादत्ते तस्य वाससोऽपहारः कर्तव्यः ।

अदण्ड्यः कामकृते तथा प्राणसंशये भोजनमाददानः ।

तथाशब्दस्य भोजनमित्यनेन संबन्धः । प्राणसंशयदशायामेधोदकादेरादाने कामकृतेऽप्यदण्ड्यः । तथा भोजनमप्याददानः प्राणसंशये न दण्ड्य इति ।

प्राप्तनिमित्ते दण्डाकर्मणि राजानमेनः सृशति ।

प्राप्तं दण्डनिमित्तं यस्य तस्मिन् पुरुषे दण्डाकर्मणि दण्डस्याऽक्रियायां यदि दययाऽर्थलोभेन वा प्राप्तदण्डं न कुर्यात् तदा तदेनो राजानमेव सृशति ।

स्तेयदोषे आपदनापत्कालद्रव्यविशेषादिविचारः

यथा कथा च परपरिग्रहमभिमन्यते स्तेनो ह भवतीति कौत्सहारीतौ तथा काण्वपुष्करसादी ।

यथा कथा च आपन्ननापदि वा भूयांसमल्पं वा, परपरिग्रहं परस्वमभिमन्यते ममेदमस्त्विति बुद्धौ कुरुते, सर्वथा स्तेन एव भवतीति कौत्सादयो मन्यन्ते ।

सैन्यपवादाः परपरिग्रहेष्विति वार्ष्ण्यायणिः ।

वार्ष्ण्यायणिस्तु मन्यते केषुचित्परपरिग्रहेषु स्तेयस्यापवादाः सन्तीति ।

(१) आध. १।२८।१२; हिघ. १।२०; दवि. १।५२ (विद्वांश्चेद्वाससः परिमोषणे).

(२) आध. १।२८।१३; हिघ. १।२०; दवि. १।५२ अदण्ड्यः (न दण्ड्यः).

(३) आध. १।२८।१४; हिघ. १।२०.

(४) आध. १।२८।१; हिघ. १।२६ काण्वपुष्क (कण्वपुष्क).

(५) आध. १।२८।२; हिघ. १।२६ परपरि (पर).

शम्योषा युग्यघासो न स्वामिनः प्रतिषेधयन्ति ।

शामी वीजकोशी तस्यामुप्यन्ते दहन्ते कालवशेन पच्यन्ते इति शम्योषाः कोशीधान्यानि मुद्गमाषचणकादीनि । युगं वहतीति युग्यः शकटवाही बलीवर्दः, तस्य घासो भक्षः तृणादिः युग्यघासः । एते आदीयमानाः स्वामिनो न प्रतिषेधयन्ति स्वामिभिः प्रतिषेधं न कारयन्ति । एतेष्व्वादीयमानेषु स्वामिनो न प्रतिषेद्धमहन्तीत्यर्थः । स्वयंग्रहणेऽपि न स्तेयदोष इति यावत् । अत्र स्मृत्यन्तरे विशेषः— ‘चणकव्रीहिगोधूमयवानां मुद्गमाषयोः । अनिपिद्वैर्ग्रहीतव्यो मुष्टिरेकोऽध्वनि स्थितैः ॥’ इति । मनुस्तु— ‘द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविधु द्वे च मूलके । आददानः परश्चेन्नान्न दण्डं दातुमर्हति ॥’ उ.

अतिव्यवहारो व्यृद्धो भवति ।

शम्योषादिष्वपि अतिव्यवहारो व्यृद्धो दुष्टो भवति, अतिमान्नापहारे स्तेयदोषो भवतीत्यर्थः । उ.

सर्वत्रानुमतिपूर्वमिति हारीतः ।

सर्वेषु द्रव्येषु सर्वास्ववस्थासु स्वाम्यनुमतिपूर्वमेव ग्रहणमिति हारीत आचार्यो मन्यते । उ.

दण्ड्यादण्डने दोषः

अन्नादे भ्रूणहा मार्षिं अनेना अभिशंसति ।

स्तेनः प्रमुक्तो राजनि याचन्ननृतसंकरे ॥

इति ।

षडङ्गस्य वेदस्याध्येता भ्रूणः । तं यो हतवान् स भ्रूणहा । सोऽन्नादे मार्षिं लिम्पति । किं ? प्रकरणादेन इति गम्यते । भ्रूणघ्नो योऽन्नमत्ति तस्मिन्स्तदेनः संक्रामति । तस्मात्तस्योन्नतमपि अभोज्यमिति प्रकरणसंगतः पादः । इतरत् पुराणश्लोके पठ्यमाने पठितम् । अनेनसं योऽभिज्ञंसति मिथ्यैव ब्रूते — इदं त्वया कृतमिति । स तस्मिन्नाभिशंसति तदेनो मार्षिं । मनुस्तु — ‘पतितं पतितेत्युक्त्वा चोरं चोरेति वा पुनः । वचनानुल्यदोषः

(१) आध. १।२८।३; हिध. १।२६.

(२) आध. १।२८।४; हिध. १।२६.

(३) आध. १।२८।५; हिध. १।२६.

(४) आध. १।१९।१५; हिध. १।१९.

स्यान्मिथ्या द्विदोषभागभवेत् ॥’ इति द्वैगुण्यमाह । तदभ्यासे द्रष्टव्यम् । ‘स्तेनः प्रकीर्णकेश’ इति वक्ष्यति । स एव तृतीयस्य पादस्यार्थः । कर्तृभेदादपौनरुक्त्यम् । संकरः प्रतिज्ञा प्रतिश्रवः । सत्यसंगर इति यथा । यः प्रतिश्रुत्य न ददाति सोऽनृतसंकर इति । ककारस्तु छान्दसः । तस्मिन् याचकः स्वयमेनो मार्षिं । तस्मात्प्रतिश्रुतं देयमिति । उ.

शुल्कस्थापना

धार्म्यं शुल्कमवहारयेत् ।

तत्र गौतमः— ‘विंशतिभागः शुल्कः पण्ये’ इति (गौध. १।०।२५) । यद्वणिग्भिर्विक्रीयते हिङ्गवादि, तस्य विंशतितमं भागं राजा गृह्णीयात् । तस्य शुल्क इति संज्ञा । एष धार्म्यः धर्म्यः शुल्कः । तमधिकृतैरेवाऽवहारयेत् ग्राहयेदिति । मूलादिषु विशेषस्तेनैवोक्तः— ‘मूलफलपुष्पौषधिमधुमांसतृणेष्वन्धानां पाष्टिक्यमिति’ (गौध. १।०।२६) । उ.

अकरः श्रोत्रियः ।

श्रोत्रियः करं न दाप्यः । अन्ये दाप्याः । ६ उ.

सर्ववर्णानां च स्त्रियः ।

अकराः । वर्णग्रहणात् प्रतिलोमादिस्त्रियो दाप्याः । उ.

कुंमाराश्च प्राक् व्यञ्जनेभ्यः ।

व्यञ्जनानि श्मश्र्वादीनि । यावत्तानि नोत्पद्यन्ते तावदकराः । उ.

‘ये च विद्यार्था वसन्ति ।

विद्यामुद्दिश्य ये गुरुषु वसन्ति ते जातव्यञ्जना अप्यसमाप्तवेदा अकराः । उ.

तपस्विनश्च ये धर्मपराः ।

तपस्विनः कृच्छ्रचान्द्रायणादिप्रवृत्ताः । धर्मपराः, अफलाकाङ्क्षिणः नित्यनैमित्तिकधर्मनिरताः । धर्मपरा

(१) आध. २।२६।९; हिध. २।१९.

(२) आध. २।२६।१०; हिध. २।१९.

(३) आध. २।२६।११; हिध. २।१९ (च०).

(४) आध. २।२६।१२; हिध. २।१९.

(५) आध. २।२६।१३; हिध. २।१९.

(६) आध. २।२६।१४; हिध. २।१९.

इति किम् ? ये अभिचारकामा मन्त्रसिद्धये तपस्तप्यन्ते
ते अकरा मा भूवन्निति । उ.

शूद्रश्च पादावनेका ।

यज्ञैर्वर्णिकानां पादावनेका स शूद्रोऽप्यकरः । उ.

अन्धमूकबधिररोगाविष्टाश्च ।

एतेऽप्यकराः यावदान्ध्यादि । उ.

ये व्यर्था द्रव्यपरिग्रहैः ।

ये च परिव्राजकादयः द्रव्यपरिग्रहैर्व्यर्था निष्प्रयोजनाः शास्त्रतो येषां द्रव्यपरिग्रहः प्रतिषिद्धः तेऽप्यकराः । तथा च वसिष्ठः— 'अकरः श्रोत्रियो राजा पुमाननाथः प्रव्रजितो बालवृद्धतरुणप्रशान्ताः' इति । उ.

बौधायनः

स्तेयमहापातकदण्डविधिः । दण्ड्योत्सर्गे राज्ञो दोषः ।

स्तेनः प्रकीर्य केशान् सैध्रकं मुसलमादाय स्कन्धेन राजानं गच्छेदनेन मां जहीति तेनैनं हन्यात् । वधे मोक्षो भवति ।

ब्राह्मणस्वर्गे हरति बलेन वञ्चनया चौर्येण वा यो ब्राह्मणः स स्तेन इति गीयते । तस्यैतत्प्रायश्चित्तम्— प्रकीर्य केशानित्यादि । सैध्रको दृढदारुनिर्मितः । सैध्रकं मुसलं स्कन्धेनादाय राजानं गच्छेदिति.संबन्धः ।

बौचि. (पृ.११०)

अथाप्युदाहरन्ति—

स्कन्धेनादाय मुसलं स्तेनो राजानमन्वियात् । अनेन शाधि मां राजन् क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ शासने वा विसर्गे वा स्तेनो मुच्येत किल्बिषात् । अशासनात्तु तद्राजा स्तेनादाप्नोति किल्बिषमिति ॥

अथेदानीं स्तेनशासनमपि राज्ञ आवश्यकमित्येतत्प्रदर्शयितुं तदशासने दोषमाह— अथाऽपीति । शासनं वधः । विसर्गो मोक्षः । किल्बिषं पापम् ।

बौचि. (पृ.११०)

(१) आध. २।२६।१५; हिध. २।१९.

(२) आध. २।२६।१६; हिध. २।१९.

(३) आध. २।२६।१७; हिध. २।१९.

(४) बौध. २।१।१७. (५) बौध. २।१।१८-२०.

शुल्कस्थापना

सामुद्रः शुल्कः । वरं रूपमुद्धृत्य दशपणं शतम् । अन्येषामपि सारानुरूपेणानुपहृत्य धर्मं प्रकल्पयेत् ।

(१) सामुद्रः समुद्रागतपण्यगोचरः शुल्कः, तत्र पण्येषु वरं रूपं मुक्ताफलादि उद्धृत्य गृहीत्वा शतपणमूल्ये दशपणं शुल्कं गृह्णीयात् । अन्येषामपि लाभभूयस्त्वप्रयोजकदेशान्तरागतानां सारानुरूपेण श्रेष्ठं वस्तुद्धृत्य गृहीत्वा धर्म्यं धर्मादनपेतं शुल्कं प्रकल्पयेत् गृह्णीयादित्यर्थः । अनुपहृत्येत्यनेनैव वणिजो द्रव्योपघातो न कार्य इत्युक्तम् । हलायुधस्तु उपहृत्येति पठित्वा गृहीत्वेति व्याख्यातवान्, फलतो न विशेषः । विर. ३०५

(२) 'षड्भागभृतो राजा' (बौध. १।१८।१) इत्युक्तम् । तस्य क्वचिदपवादमाह— सामुद्र इति । राज्ञो भवतीति शेषः । द्वीपान्तरागाहृतं सामुद्रं वस्तु तत्संबन्धी सामुद्रः शुल्कः पणद्रव्यम् ।

तस्मिन् भागः क्रियानित्यत आह— वरमिति । गृह्णीयाद्राजेति शेषः । वरमुत्कृष्टद्रव्यरूपं रत्नादिद्रव्यं स्वामिने प्रदाय शेषं शतधा विभज्य दशपणं गृह्णीयात् । अनेन सामुद्रे दशभागः शुल्क इत्युक्तं भवति ।

अन्येषामपीति । असामुद्राणामपि द्रव्याणां सारफल्गुत्वापेक्षया वरं रूपमनुपहृत्यैव धर्मं प्रकल्पयेदात्मार्थम् । तत्र सारफल्गुविभागो गौतमेनोक्तः— 'विंशतिभागः शुल्कः पण्ये । मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणेष्वनानां षाष्ठयम्' इति । षष्ठतमं षाष्ठयम् । बौचि. (पृ.९१)

वसिष्ठः

स्तेयदुष्टलक्षणानि

स्तेनोऽनुप्रवेशान्न दुष्यति शस्त्रधारी सहोढो व्रणसंपन्नश्च न्यपदिष्टस्त्वेकेषाम् ।

(१) बौध. १।१०।१५-६; अप. २।२६।१ सामुद्रः (सामुद्र) रूप्येणा (सारेणा); व्यक. १११ रूप्ये (रूपे) धर्म (धर्मे); विर. ३०५ दशपणं शतम् (शतपणमूल्ये दशपणं) रूप्ये (रूपे) धर्म (धर्म्य); द्बि. ९४ पणं (पलं) धर्म (धर्मे).

(२) वस्मृ. १९।२६ (क) प्यति (प्यते) व्रश्च (व्रो), (ख) (स्तेनाभिश्चरत्तदुष्टशस्त्रधारिसहोद्व्रणसंपन्नपदेष्ट्वेकेषाम्); व्यक. ११६; मन्मा. १२।४८ प्यति (प्यते); विर. ३३३ स्त्वे (श्रै).

अनुप्रवेशः चोरानुगमनमात्रम् । कस्तर्हि दुष्यतीत्य-
ब्राह्म शस्त्रधारी, शस्त्रग्रहणनिमित्तं विना तद्वासी, सहोदः
सल्लोन्नः, चोरचिह्नव्रणसंपन्नश्च, - व्यपदिष्टश्चैकेषां शस्त्र-
ग्रहणादिभिर्विनैव आतोपन्यस्तचौर्यः । विर. ३३३

स्नेयमहापातकदण्डविधिः । दण्ड्योत्सर्गे राज्ञो दोषः ।

ब्राह्मणसुवर्णहरणे प्रकीर्य केशान् राजानमभि-
धावेत् स्तेनोऽस्मि भोः शास्तु मां भवानिति तस्मै
राजौदुम्बरं शस्त्रं दद्यात्तेनाऽऽत्मानं प्रमापयेत्,
मरणात् पूतो भवतीति विज्ञायते ।

निष्कालको वा घृताक्तो गोमयाग्निना पाद-
प्रभृत्यात्मानमभिदाहयेत् मरणात्पूतो भवतीति
विज्ञायते ।

* दण्ड्योत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत् त्रिरात्रं
पुरोहितः कृच्छ्रमदण्ड्यदण्डने पुरोहितस्त्रिरात्रं
राजा । अथाप्युदाहरन्ति—

अन्नादे भ्रूणहा मांष्टिं पत्यौ भार्याऽपचारिणी ।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥
राजभिवृत्तदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।

निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥
एनो राजानमृच्छति उत्सृजन्तं सकिल्बिषम् ।
तं चेद्दातयते राजा हन्ति धर्मेण तुष्कृतम् ॥ इति ॥

अर्थस्थापना शुल्कस्थापना च

गार्हस्थ्यज्ञानां च मानोन्माने रक्षिते स्याताम् ।
अधिष्ठानानिर्हारः सार्थानामर्धमानमानमूल्य-
मात्रं नैहारिकं स्यात् महामहयोः त्वनत्ययः स्याद-
भयं च ।

* व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च व्यवहारमातृकायां (पृ. ५७०)
द्रष्टव्यः ।

(१) वस्मृ. २०।४५ (ख) हरणे (हरात्) (मां०)
दद्यात् (दध्यात्).

(२) वस्मृ. २०।४६ (ख) मभि (मति); मभा.
१२।४१ मभि (मभ) (मर... ..यते०).

(३) वस्मृ. १९।९.

(४) वस्मृ. १९।१० (क) निर्हारः (त्र नीहारः)
सार्था हरिकं (सार्थानां मानमूल्यमात्रं नैहारिकं)
खन वं च (स्थानात्पथः स्यात्?), (ख) (अधिष्ठानान्ना)

-अधिष्ठानात् पत्तनादेर्यो निर्हारः निष्कृष्य हरणम् ।
सर्थानां पण्यपूर्णानां हरणपक्षेऽर्धमानं मूल्यमात्रं मानं
भाण्डं तन्मूल्यं यत्तेन मात्रा परिमाणं यस्येति व्यधि-
करणेऽपि बहुव्रीहिः । तेन भाण्डस्य पत्तनादेर्निर्हारपक्षे
तन्मूल्यानुसारेण राजशुल्कं देयम् । नैहारिकं निर्हार-
संबन्धि । महामहयोर्महोत्सवयोः राज्ञः पुत्रजन्मादीन्द्र-
महादिरूपयोस्त्वित्थमपि निर्हारं कुर्वतोऽनत्ययोऽदण्डः
स्यादभयमताडनं चेत्यर्थः । विर. ३०३-४

शुल्के चापि मानवं श्लोकमुदाहरन्ति—

न भिन्नकार्षापणमस्ति शुल्कं
न शिल्पवृत्तौ न शिशौ न दूते ।

न भैक्षलब्धे न हृतावशेषे
न श्रोत्रिये प्रव्रजिते न यज्ञे ॥

भिन्नो न्यूनः कार्षापणो मूल्यं यस्य तद्विन्नकार्षापणं
पण्यं, शुल्कोऽपि भिन्नकार्षापणः तेन कार्षापणादवार्ग्यं
यस्य मूल्यं तत्र वस्तुनि शुल्को न ग्राह्य इत्यर्थः । न
शिल्पवृत्तौ, न शिल्पिना शिल्पित्वात् प्राप्तवित्ते, शिशौ,
विक्रय्य गवादि वत्सादौ, दूते दूतवस्तुनि, कृतावशेषे
वणिजः शेषवस्तुनि । यज्ञे यज्ञार्थमानीयमानैर्द्रव्ये ।
हलायुधस्तु शिशुशिल्पिदूतान् बुद्धिसिद्धित्य एव न शिशु-
प्रभृतिभ्यः वणिगभ्यः क्वचिदपि शुल्कद्रव्यं ग्राह्यमित्यत्र
वाक्ये प्राह । विर. ३०५-६

विष्णुः

प्रकाशवन्नकानां शुल्कपरिहर्तुकृतुलामानकर्त्रादीनां दण्डः
शुल्कस्थानमपक्रामन् सर्वापहारमाप्नुयात् ।

नीहारसार्थानामस्मात् मूल्यमात्रं नैहारिकं स्यात् महामहस्थः
स्यात्); व्यक. १११; विर. ३०३.

(१) वस्मृ. १९।२४-५ (क) शुल्कं (शुल्के), (ख)
(शुल्के चापि०) भिन्न (रिक्त) दूते (धर्मे) लब्धे (वृत्तौ);
मिता. २।२६३ (शुल्के...हरन्ति०); अप. २।२६३
(शुल्के...हरन्ति०) भैक्ष (भैक्ष्य) हृता (हुता); व्यक.
११२; विर. ३०५ हरन्ति (हरति) हृता (कृता); विचि.
१३० (मानवं०) भैक्ष (भैक्ष्य); दवि. ९५ वृत्तौ (वित्ते)
भैक्षलब्धे (भैक्ष्यसंधे) हृता (कृता); धीमि. २।२६३
मितावत्; समु. ९१ (शुल्के...हरन्ति०) भिन्न (हीन) हृता
(श्रुता) सृष्ट्यन्तरम्.

(२) वस्मृ. ३।३१ (क) नमप (नादप); अप.

अनाक्रामन् परिहरन् । सवापहारं अयं च सर्व-
स्वापहारो वारंवारशुल्कस्थानपरिहारे । याज्ञवल्कीयस्त्वष्ट्र-
गुणदण्डोऽनभ्यासे परिहारस्येत्यविरोधः । विर. २९८

तुल्यमानकूटकर्तुंश्च । तदकूटे कूटवादिनश्च ।
द्रव्याणां प्रतिरूपविक्रयिकस्य च । संभूयवणिजां
पण्यमनर्धेणावरुन्धताम् । प्रत्येकं विक्रीणतां च ।

प्रतिरूपकं च कृतकमुक्तादि । संभूयवणिजामित्यादि,
मिलित्वा वणिजामधिकमूल्यं पण्यमल्पमूल्येन क्रीणता-
मल्पमूल्यं च वस्त्वधिकेन विक्रीणतां च एकैकस्योत्तम-
साहसं दण्ड इत्यर्थः । विर. २९९

उत्तमं साहसं दण्डनीयो भिपङ्गमिध्याचरन्नुत्तमेषु
पुरुषेषु । मध्यमेषु मध्यमम् । तिर्यक्षु प्रथमम् ।

प्रान्थिभेदकानां करच्छेदः ।

द्युते कूटाक्षदेविनां करच्छेदः । उपधिदेविनां
सदंशच्छेदः ।

२।२६२ सर्वा (सर्वस्वा); व्यक्र. १११ मप (मपा); विर.
२९८ मप (मना); दीक्र. ५३ मपक्रा (मनाक्र); विचि.
१२७ व्यकवत्; दवि. ९३ विरवत्; सेतु. २३१ दीक्रवत् :
३२१ माम् (मवाम्) ।

(१) विस्मृ. ५।१२२-६ मानकूट+(कर्म); व्यक्र.
१११ मान (नाणक) (तदकूटे०) ल्येकं (त्येकस्य); विर.
२९९ मान (नाणक) तदकूटे कूट (तदकूट) कयिक (कायक)
त्येकं (त्येकस्य) ।

(२) विस्मृ. ५।१७४-७; अप. २।२४२ मध्यमेषु
मध्यमम् (मध्यमं मध्यमेषु); व्यक्र. ११२ अपवत्; विर.
३०६ दण्डनीयो (दण्ड्यो); विचि. १३० (पुरुषेषु०)
मध्यमेषु ... प्रथमम् (मध्यमं मध्यमेषु प्रथमं तिर्यक्षु) शेषं
विरवत्; दवि. १०५ (पुरुषेषु०) शेषं विरवत्; सेतु. २३२
विचिवत् ।

(३) विस्मृ. ५।१३६ ।

(४) विस्मृ. ५।१३४-५; अप. २।२०२ द्यूते+(च)
कूटा (कपटा); व्यक्र. ११२ द्यूते+(च); विर. ३०८
(द्यूते०) : ६१७; पमा. ५७६ उप (उपा); रत्न. १२४
द्यूते+(च) (उप ... च्छेदः०); विचि. २६० (द्यूते०);
व्यनि. ४८२ व्यकवत्; दवि. १०८ विचिवत्; वीमि.
२।२०३ कूटा (कपटा); व्यप्र. ३८८ व्यकवत्, (उपधि ...
... च्छेदः०) : ५६७; व्यउ. १२६ व्यप्रवत्; वित्ता.

याज्ञवल्क्यः— 'राक्ष मृत्निहं निर्वास्यः कूटाक्षो-
पधिदेविन्ः । विष्णुः— 'कूटाक्षदेविनां करच्छेद उपधि-
देविनां सदंशच्छेदः । पूर्ववाक्ये चिह्नमपि यथायथं
करसदंशच्छेदात्मकमेव विवक्षितमेकमूलत्वानुरोधात् ।
सदंशच्छेदश्च तर्जन्यङ्गुष्ठच्छेदः । एतच्चापराधातिशये
द्रष्टव्यम् । विर. ३०८

एते दोषानुरूपत एव दण्ड्याः । कूटमानाः
कूटतुल्याः उत्कोचजीविनः कपटोपायाः कितवाः
पण्ययोपितः प्रतिरूपकराः नैगमाद्याश्च भूरिधना
अपि (न ?) धनदण्ड्या अपि तु दोषानुसारेण ।

एते प्रकाशतस्कराः । न पुनर्धनानुरूपत इत्यर्थः ।
प्रतिरूपकराः मिथ्यानाणकादिकारिणः मङ्गलादेशवृत्त-
यश्चकारेण समुच्चिताः । सवि. ४६०

अप्रकाशनस्कराणां पशुधान्यवस्त्रभक्ष्यपेयरत्नादिद्रव्यहारिणां
दण्डविधिः

गोऽश्वोष्ट्रगजापहार्येककरपादिकः कार्यः, अजा-
द्यपहार्येककरश्च ।

अजाद्यपहार्येककरः कार्य इत्यन्वयः । अत्र पूर्वं व्यासे-
नाजाविहरणे अर्धत्रयोदशपणा इत्यभिधानादनेनाजा-
विहरणे एककरत्वस्योक्तेर्विरोधस्य प्रसङ्गे धनस्यैवचौरत्वे
यज्ञोपयुक्ताजाविहरणे वा विष्णुरिति परिहारः ।

विर. ३२०

धान्यापहार्येकादशगुणं दण्ड्यः । सत्यापहारी
च । सुवर्णरजतवस्त्राणां पञ्चाशतस्त्रभ्यधिकमप-
हरन् विकरः । तदूनमेकादशगुणं दण्ड्यः ।

७४० (उपधि ... च्छेदः०); सेतु. २९०; समु. १६५.
(१) सवि. ४६०.

(२) विस्मृ. ५।७७-८ (क) पादिकः (पादः) अप
(व्यप), (ख) करपादिकः (पादकरः) अप (वाप);
व्यक्र. ११४; विर. ३२०; विचि. १३६ जापहार्येक (जाप-
हारकः एक); व्यनि. ५१०-११ पादिकः (पादः) अपहार्येक
(व्यपहारे एक); दवि. १३० (अजा ... च्छेदः०) : १३२
(गो ... कार्यः०) अप (व्यप) करश्च (करः कार्यः);
सेतु. २३८ विचिवत्; समु. १५० करपादिकः (पादः)
अप (व्यप) करश्च (करः) ।

(३) विस्मृ. ५।७९-८२; व्यक्र. ११४ (सुवर्ण ...
दण्ड्यः०); विर. ३२२ (=) व्यकवत् .

सूत्रकार्पासगोमयगुडदधिक्षीरतक्रतृणलवणमृद-
भस्मपक्षिमत्स्यघृततैलमांसमधुवैदलवेणुमृन्मयलोह-
भाण्डानामपहर्ता मूल्यात् त्रिगुणं दण्ड्यः ।
पक्वानानां च ।

पुष्पहरितगुल्मवल्लीलतापर्णानामपहरणे पञ्च
कृष्णलान् । शाकमूलफलानां च ।

रैत्नापहार्युत्तमसाहसम् ।

अवव्यसधनविपयमेतत् । विर. ३२४

अनुक्तद्रव्याणामपहर्ता मूल्यसमम् ।

क्षुद्रद्रव्यापहारे मूल्याद् द्विगुणो दमः ।

एतदल्पप्रयोजनशरावादिविषयमिति वेदितव्यम् ।

सवि. ४५७

उत्तममध्यमाधमद्रव्याणां हरणे मूल्यानुसारतो
दण्डः ।

उक्तो दण्डः शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां विदुषां
स्तेषु द्विगुणोत्तराणि किल्बिषाणि ।

अयमर्थः— यस्मिन्नपहारे यो दण्ड उक्तः स शूद्र-
कर्तृके अपहार्यद्रव्यस्य अष्टगुण आपादनीयः । वैश्य-
कर्तृके अपहारे षोडशगुणः । क्षत्रियकर्तृके अपहारे द्वा-
त्रिंशद्गुणः । ब्राह्मणकर्तृके अपहारे चतुष्पष्टिगुणो दण्ड
आपादनीयः । एवं विट्छूद्रादिकर्तृकेऽपहारे दण्ड
ऊहनीयः ।

सवि. ४५५-६

(१) विस्मृ. ५।८३-४ (ख) भाण्डा (दण्डा); व्यक. ११५
गुड ... तक्र (क्षीरतक्रगुड) पक्षिमत्स्य (मत्स्यपक्षि)
(तैल०); विर. ३२७ गुड ... वेणु (दधिक्षीरतक्रलवण-
गुडतृणमृद्भस्ममत्स्यपक्षितैलघृतमांसमधुवैणवेषु) त्रिगुणं (द्विगुणं);
दवि. १४९ गुड ... तक्र (दधिक्षीरतक्रगुड) पक्षि...वैदल
(मत्स्यपक्षितैलघृतमांसमधुविदल) त्रिगुणं (द्विगुणं)।

(२) विस्मृ. ५।८५-६.

(३) विस्मृ. ५।८७; व्यक. ११४; विर. ३२४; विचि.
१३९; दवि. १४५ सम (सः); वीसि. २।२७३;
सेतु. २४१.

(४) विस्मृ. ५।८८; व्यक. ११५; विर. ३२८; विचि.
१४१ सम + (दमम्); दवि. १५३ द्रव्याता
(द्रव्यहरणे); सेतु. २४३ विचिवत्.

(५) सवि. ४५७.

(६) सवि. ४५५. (७) सवि. ४५५ शूद्रवै (शूद्रावै).

ब्राह्मणे शतगुणो वा पूर्णं वाऽपि शतं भवेत् ।

निकृष्टे द्विगुणं कल्पयेत् ।

निकृष्टो जात्या आचारेण धनेन वेति निवन्धन-
कारः । न च दिव्यमातृकायां 'द्विगुणार्थं यथाभिहिता
समयक्रिया वैश्यस्य, त्रिगुणार्थं राजन्यस्य, चतुर्गुणार्थं
ब्राह्मणस्य' इति विष्णुवचने शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणाना-
मेकद्वित्रिचतुःसंख्यया दिव्यक्रियायां तारतम्यमुक्तं;
अत्रापि दण्डकल्पनमष्टमांशषोडशांशचतुर्विंशद्वात्रिंश-
कल्पनया भाव्यमिति वाच्यम् । दण्डविधायकदिव्यविधा-
यकशास्त्रयोर्वैदमूलत्वेन न्यायमूलत्वाभावात् वाचनिक-
मिदं तारतम्यम् ।

सवि. ४५६

दशकुम्भीधान्यहरणे एकादशगुणं दाप्यः ।

विंशतिद्रोणकं कुम्भी खारीपर्याय इति चन्द्रिका-
कारः । तद्द्विगुणापहारे एकादशगुणं तद्धनं दापयित्वा
अङ्गच्छेदनवधरूपदण्डा योज्या यथायोगम् ।

सवि. ४५६

मैणीनां प्राणकलञ्जापहारे हस्तच्छेदो, वधः
कुकूलारोहणम् ।

प्राणो नाम चतुर्मापात्मकः परिमाणविशेषः ।
कलञ्जो नाम धरणम् । यथाह विष्णुगुप्तः— 'पञ्च-
गुञ्जलको मापः प्राणस्तेषु चतुर्गुणैः । कलञ्जो धरणं
प्राहुः मणिमानविशारदाः ॥' इति । अत्र केचिच्चतुर्गुणैः
इति पदसामर्थ्याद्विंशतिगुणात्मको माषो न भवति,
विधेयस्यैव प्राधान्यात्, प्रधानपरामर्षस्य न्याय्यत्वात्,
षोडशमाषात्मकः प्राण इत्याहुः । एतदेव सम्यक्-
तथा व्यवहारात् । कलञ्जस्तु प्राणाद्वितयं 'कलञ्जः
प्राणयुग्यकम्' इति लक्षणात् लोकाचारतो व्यवस्था ।
एतत्सर्वं दण्डकथनं बलावष्टम्भे वेदितव्यम् । साहसं
प्रकृत्य मन्वादिभिरुक्तत्वात् ।

सवि. ४५७

दोषानुविद्धाः प्रच्छन्नाः गूढतस्कराः । उक्षेपकः
संधिभेत्ता पशुस्त्रीमन्थिभेदकाः परस्परं दण्ड्याः ।

(१) सवि. ४५६. (२) सवि. ४५६.

(३) सवि. ४५६. (४) सवि. ४५७.

(५) सवि. ४६०.

दोषा रात्रिः । सवि. ४६०
कूटशासनकर्तृश्च राजा हन्यात् । कूटलेख्य-
कारांश्च* ।

गरदाभिदप्रसह्यतस्करान् स्त्रीबालपुरुषघातिनश्च* ।
ये च धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्योऽधिकमप-
हरेयुः । धरिममेयानां शतादभ्यधिकम्* ।
प्रसह्यतस्कराणां चावकाशभक्तप्रदांश्च ।
अन्यत्र राजाशक्तेः* ।

राज्ञश्चैरनिवारणे न शक्तिः, तदा ग्रामनिवासिनां
आत्मत्राणाय चौररक्षणेऽपि न वध इत्यर्थः । वै.
स्तेनाः सर्व एवापहृतं धनिकस्य धनं दाप्याः ।
ततस्तेषामभिहितदण्डप्रयोगः ।

करशुल्कस्थापना

प्रैजाभ्यो बल्यर्थं संवत्सरेण धान्यतः पट्टमंशमा-
दद्यात् । सर्वसस्येभ्यश्च । द्विकं शतं पशुहिरण्येभ्यो
वस्त्रेभ्यश्च । मांसमधुघृतौषधिगन्धपुष्पमूलफल-
रसदारुपत्राजिनमृद्गाण्डाश्मभाण्डवैदलेभ्यः पशु-
भागम् । ब्राह्मणेभ्यः करादानं न कुर्यात् । ते हि
राज्ञो धर्मकरदाः । राजा च प्रजाभ्यः सुकृतदुष्कृत-
षष्ठांशभाक् ।

स्वदेशपण्याच्च शुल्कांशं दशममादद्यात् । पर-
देशपण्याच्च विंशतितमम् ।

स्वदेशपण्ये वणिज उत्पन्ने लाभे दशमांशं राजा
गृह्णीयात् । परदेशपण्ये च उत्पन्ने लाभे विंशतितममंशं
गृह्णीयादित्यर्थः । विर. ३०४

* स्थलनिर्देशः साहस्रप्रकरणे (पृ. १६०९) द्रष्टव्यः ।

(१) विस्मृ. ५।८९-९० व एवाप (वर्मप) (धनं०) ;
अप. २।२७५ (धनं०) ; व्यक्र. ११६ (स्तेनाः०) एवाप
(एव वाप) (धनं०) ; स्मृच. ३१८ (धनं०) : ३१९
(स्तेनाः सर्व एवापहृतं दाप्याः) एतावदेव ; विर. ३३१ ;
विचि. १४३ (=) ; सेतु. २४४ ; समु. १५० अपवत् .

(२) विस्मृ. ३।२२-२८ .

(३) विस्मृ. ३।२९-३० ; व्यक्र. ११९ प्याच्च (प्यात्) ;
विर. ३०४ प्याच्च शुल्कांशं (प्याच्च शुल्कं) ; विचि. ३२९
व्यकवत् ; सेतु. ३९५ व्यकवत् .

व्य. कां. २१०

चौरहृतं चैरेऽलम्बेऽपि स्वामिने प्रत्नर्पणीयम्
चौरहृतं धनमवाप्य सर्वमेव सर्ववर्णेभ्यो
दद्यात् । अनवाप्य च स्वकोशादेव दद्यात् ।

शङ्खः शङ्खलिखितौ च

मानार्थस्थापनविधिः

तुलामानप्रतीमानव्यवहारार्थसंस्थापनं देश-
द्रव्यानुरूपं प्रत्ययितपुरुषाधिष्ठितम् ।

प्रकाशवच्चक-कूटतुलामानव्यवहारादिदण्डविधिः

कूटतुलामानप्रतीमानव्यवहारे शारीरोऽङ्गच्छेदो वा ।
मानं प्रस्थादि । शारीरो मुण्डनादिरूपः । अङ्गच्छेदः
कर्णादिच्छेदः । अर्थगौरवागौरवाभ्यां विकल्पव्यवस्थितिः ।
विर. २९८

प्रतिषिद्धभाण्डनिर्हारे ।

शारीरोऽङ्गच्छेदो वा दण्ड इत्यनुवृत्तौ शङ्खलिखितौ
—प्रतीति । निर्हारे विक्रये । नाशितभाण्डमूल्यो यदि,
तदैवमित्यविरोधः । एवञ्च राज्ञा निषिद्धमपि राजयोग्य-
मपि विक्रीय यदि मूल्यदानाशक्त एव कश्चित् स्यात्,
तदा तत्राप्ययं दण्डो न्यायतौल्यात् । विर. ३०१

अप्रकाशतस्कराणां पशुपुरुषभाण्डाद्यपहारिणां दण्डविधिः

राजपुत्रापहारेऽष्टसहस्रं शारीरो वा दण्डः
तत्कुलीनेष्वर्धं स्त्रीपुरुषयोश्च ।

अष्टसहस्रमष्टाधिकसहस्रं, तच्च कार्यापणानाम् ।
तत्कुलीनेषु राजकुलीनेषु राजपुत्रव्यतिरिक्तेष्वर्धं अष्टा-
धिकसहस्रार्धं, स्त्रीपुरुषयोश्च राजकुलीनयोरर्धं अष्टाधिक-
सहस्रार्धं, शारीरो वेति विकल्पे धनवत्त्वाधनवत्त्वाभ्यां
व्यवस्था । विर. ३१८

(१) विस्मृ. ३।६६-७; व्यक्र ११८ चौर (चौराप)
(च०) ; विर. ३४५ चौर... मवाप्य (चौरापहृतं द्रव्यं)
(च०) ; दवि. ८८ व्यकवत् .

(२) व्यक्र. १११; विर. ३०२; दवि. ९७ संस्था
(स्था) .

(३) व्यक्र. १११; विर. ३९८; विचि. १२७ शंखः;
दवि. ९०; सेतु. २३० .

(४) विर. ३०१; दवि. ९२ .

(५) व्यक्र. ११४; विर. ३१८; दवि. १२७ अर्थ...
...श्च (पुत्रेष्वर्धं स्त्रीपुरुषयोः) .

हस्त्यश्वरथगोवृषयानेषु राजपुत्रापहारवदण्डः ।
अजाम्बिकेष्वर्धत्रयोदशपणा नकुलविडालाप-
हरणे कार्षापणाः ।

अत्र व्यासेन वाजिवारणहरणे सर्वस्वग्रहणमुक्तं अनेन
त्वष्टसहस्रमुक्तमिति विरोधो वाजिवारणगौरवागौरवाभ्यां
परिहार्यः । विर. ३१८

सुवर्णरजतापहारे शारीरोऽङ्गच्छेदो वा ।

शारीरो दण्डस्ताडनम् । अङ्गं कर्णादि । पञ्चाशदून-
विषयं निर्धनविषयं चैतत् । विर. ३२४

अष्टशतं सीताद्रव्यापहरणे यथाकालम् ।

अष्टशतमष्टाधिकशतम् । सीता कृष्यमाणा भूमिः
तद्द्रव्यं हलकुहालादि, यथाकालं कर्षणसमये ।

विर. ३२४

कृतकाष्ठाश्मकौलालचर्मवेत्रदलभाण्डेषु मूल्या-
त्पञ्चगुणस्त्रयो वा कार्षापणाः । एकचक्रापहरणे
चत्वारिंशत्, शकटे त्वशीतिशतम् ।

कृतकाष्ठं घटितकाष्ठं, कौलालं कुलालनिर्मितं मृन्म-
यमिति यावत् । भाण्डपदमश्मादिभिः संबध्यते । एक-
चक्रमेकं रथाङ्गम् । चत्वारिंशत् पणा एव, अशीति-
शतमशीत्याधिकशतम् । विर. ३२७

(१) व्यक्र. ११४ रथगो (गोरथ) के ... पणा
(केऽर्धत्रयोदशं) हरणे + (त्रयः); विर. ३१८ (अजा...
... कार्षापणाः ०) : ३१९ (हस्त्य दण्डः ०) ; दवि.
१३० (रथ०) वृषया (वृषाय) (अजा.....कार्षापणाः ०) ;
१३२ (हस्त्य.....दण्डः ०) केष्वर्ध (केऽर्धं) हरणे +
(त्रयः).

(२) व्यक्र. ११४; विर. ३२४ रजता (रत्ना); विचि.
१३९ शंखः; दवि. १४५ विरवत्; सेतु. २४१ शंखः

(३) व्यक्र. ११५ हरणे...लम् (हारे च); विर. ३२४;
त्रिचि. १३९ प (मि) शंखः; दवि. १४५ हरणे (हारे);
सेतु. २४१ प (धि) शंखः.

(४) व्यक्र. ११५ दल (विदल) शतम् (तमः); विर.
३२७; दवि. १४७ (कृत कार्षापणाः ०) पह
(ह) शकटे त्वशी (कटेऽशी) : १४९ (एक.....
शतम् ०); सेतु. २४२ (दल०) दे व्वशी (देऽशी).

वर्णविशेषकृतचौर्यदण्डविधिः

अत्राहणो ब्राह्मणस्य समिदाज्येध्माप्रिकाष्ठ-
तृणोलपपुष्पफलमूलान्यपहरन् बलादविज्ञातो वा
हस्तच्छेदनमाप्नुयात् । कुशकरकामिहोत्रद्रव्यापहारे
प्रत्यक्षतोऽङ्गच्छेदः स्यात्, अप्रत्यक्षं यथाविदितो-
ऽयं किल्बिषीति ब्राह्मणः खरयानमवाप्नुयात् ।
मूत्रमौण्ड्यमितरेषां खरयानमेव च ।

ब्राह्मणोऽत्र यागादिपरः । अग्रे ब्राह्मण एव कर्म-
वियोगविख्यापनविवासनाङ्ककरणानां वक्ष्यमाणत्वात् ।
समिदादीन्यत्र यागार्थमानीतानि, करकः कमण्डलुः ।
अग्निहोत्रद्रव्याणि हवनीयादीनि, किल्बिषी चौरः प्रक-
रणात् । मूत्रमौण्ड्यं मूत्रेण मुण्डनम् । इतरेषां क्षत्रिया-
दीनाम् । विर. ३२९-३०

अन्यूनभावे वैश्यवत् शूद्रस्य कल्प्यम् ।

चौर्यशङ्कितशोधनदण्डौ

असाक्षिप्रणिहिते दिव्यम् । अथवा मित्रैः
सज्जनैरात्मानं नाशोधयेदेव । स चेद्दण्ड्योऽर्थिनां
चार्थं दापयेत् ।

दण्ड्यादण्डने राजदोषः

अत्रादे भ्रूणहा मार्षि पत्यौ भार्यापचारिणी ।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि
किल्बिषम् ॥

(१) मेधा. ८।३३३ (कुशकरकामिहोत्रद्रव्याप्यपहरतोऽ-
ङ्गच्छेदः स्यात्) शंखः, एतावदेव; अप. २।२७५ पुष्प.....
हरन् (शष्पपुष्पभ्रूपफलान्यपहरेत्) कुश + (चर्मभाण्डं)
व्यापहारे (व्याप्यपहरतः) मूत्र (मूत्र) मेव च (मेव) :
व्यक्र. ११५ यथाविदितो (यदा विदितो) शेषे अशुद्धि-
बाहुव्यम्; विर. ३२९ तृणोलप (तृणोपल); विचि. १४३
(ब्राह्मणस्य तु मौण्ड्यमितरेषां खरयानम् ।) शंखः, एतावदेव;
दवि. १५० तृणोलप (तृणोपल) न्यप (घप) बला ...
वा (वा बलादविज्ञातो) व्यापहारे (व्याप्यपहरेत्) यथावि
(यदा वि) मवाप्नु (माप्नु); सेतु. २४३ दाज्ये (धाये)
तृणोलप (तृण) ज्ञातो (ज्ञाते) (कुश मेव च०).

(२) मभा. १२।४१ शंखः. (३) अप. २।२६९.

(४) चतुर्वर्गचिन्तामणिः Vol. III Part. I Page
781. [Dharmasutra of Shankhalikhita
Page 46. edited by Prof. P. V. Kane.]

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

कारुकरक्षणम्

कारुकरक्षणम् । प्रदेष्टारस्वयस्त्रयोऽमात्याः
कण्टकशोधनं कुर्युः ।

अर्थ्यप्रकाराः कारुशासितारः संनिक्षेप्तारः
स्ववित्तकारवः श्रेणीप्रमाणा निक्षेपं गृहीयुः ।
विपत्तौ श्रेणी निक्षेपं भजेत । निर्दिष्टदेशकालकार्यं
च कर्म कुर्युः । अनिर्दिष्टदेशकालकार्यापदेशम् ।

अथ चतुर्थं कण्टकशोधनं नामाधिकरणमारभ्यते ।
कण्टकानां, कण्टकाः प्रजापीडाकरत्वात् कण्टकतुल्याः
कारुकवैदेहकादयः, तेषां शोधनं तेभ्यः प्रजापीडा यथा
न भवेत् तथा तच्छमनं कण्टकशोधनम् । तदस्मिन्नधि-
करणे प्रस्तुतम् । तत्र प्रथमं सूत्रं— कारुकरक्षणमिति ।
नाडिन्धमतक्षायस्कारादयः कारुकाः तेभ्यः प्रजानां
रक्षणमिति सूत्रार्थः । प्रदेष्टार इति । कण्टकशोधनाधि-
कृताः प्रदेष्टार इत्याख्यायन्ते । ते त्रयस्त्रयः, अमात्याः
ज्ञानपदत्वाद्यमात्यगुणयुक्ताः, कण्टकशोधनं कुर्युः । इह
वीप्सा कण्टकशोधनस्थानेषु सर्वेष्वपि प्रदेष्टृत्रित्वप्रति-
पत्त्यर्था ।

कीदृग्गुणाः कारवः निक्षेपं ग्रहीतुमर्हन्तीत्याह—
अर्थ्येत्यादि । अर्थ्यप्रकाराः अर्थानपेतप्रकाराः शुचि-
स्वभावा इत्यर्थः अर्थनीयस्वभावा वा, अप्रतीकारा
इति काचित्के पाठे अनाशंसनीयप्रतिकारा इत्यर्थो
वाच्यः । कारुशासितारः बहूनां कारुणामधश्चराणामुपरि
स्थित्वा कर्तव्योपदेष्टारः, संनिक्षेप्तारः प्रातिवेशिकानु-
वेशिकसाक्षिकं निक्षेपग्रहणप्रत्यर्पणव्यवहर्तारः, स्ववित्त-
कारवः स्वधनेनापि भूषणशिल्पकारिणः, एतेन भक्षित-
निक्षेपनिष्क्रयार्पणशक्तत्वलक्षणां धनवत्तामाह । श्रेणी-
प्रमाणाः श्रेणीविधेयाः, उक्तविशेषणपञ्चक्युक्ताः, निक्षेपं
गृहीयुः । विपत्तौ ग्रहीतुमरणदीर्घप्रवासादिना निक्षेप-
हानिसंभवे श्रेणी निक्षेपं भजेत भागशो दद्यात् ।
निर्दिष्टदेशकालकार्यं चेति । अयं देशोऽयं काल इदं च
कार्यवस्तुस्वरूपमित्येवं निर्दिष्टं व्यवस्थापितं देशादिकं
सह्य तत् तथाभूतं, कर्म कुर्युः । अनिर्दिष्टदेशकाल-

(१) कौ. ४१९.

कार्यापदेशं कर्म कुर्युरिति वर्तते । अर्थाद् यद् बहुतर-
देशकालैकसाध्यं अनन्योच्छेद्यनानावैचित्र्ययोगकमनीय-
तया स्वरूपतो निर्देष्टुमशक्यं च भवति, तत् कर्म ।

श्रीमू.

कालातिपातने पादहीनं वेतनं तद्विगुणश्च
दण्डः । अन्यत्र भ्रेषोपनिपाताभ्यां नष्टं विनष्टं
वाभ्यावहेयुः । कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशस्तद्वि-
गुणश्च दण्डः ।

तन्तुवाया दशैकादशिकं सूत्रं वर्धयेयुः । वृद्धि-
च्छेदे छेदद्विगुणो दण्डः ।

सूत्रमूल्यं वानवेतनम् । क्षौमकौशेयानामध्यर्ध-
गुणम् । पत्रोर्णाकम्बलदुकूलानां द्विगुणम् ।

मानहीने हीनावहीनं वेतनं तद्विगुणश्च दण्डः ।
तुलाहीने हीनचतुर्गुणो दण्डः । सूत्रपरिवर्तने
मूल्यद्विगुणः । तेन द्विपटवानं च्याख्यातम् ।

ऊर्णातुलायाः पञ्चपलिको विहननच्छेदो रोम-
च्छेदश्च ।

कालातिपातन इत्यादि । निर्दिष्टकालातिक्रमे पादहीनं
वेतनं, तद्विगुणश्च दण्डः । अन्यत्र भ्रेषोपनिपाताभ्या-
मिति । भ्रेषो व्यालकृत उपपन्नः उपनिपातो दैवान्या-
दिकृतः तदतिरिक्तेन निमित्तेन, नष्टं अत्यन्तनाशं गतं,
विनष्टं वा एकदेशलुप्तं वा, अभ्यावहेयुः निर्यातयेयुः ।
कार्यस्य अन्यथाकरणे निर्दिष्टप्रकारातिरिक्तप्रकारेण करणे,
वेतननाशः तद्विगुणश्च दण्डः ।

तन्तुवायकमाह— तन्तुवाया इति । कुविन्दकाः,
दशैकादशिकं सूत्रं वर्धयेयुः दशपलस्य सूत्रस्य
सकाञ्चिकमेकादशपलाधिकमुतं सूत्रं दद्युः । वृद्धिच्छेदे
छेदद्विगुणो, दण्डः ।

वानवेतनमाह— सूत्रमूल्यं वानवेतनमिति । ऊक्ति-
कर्मणो वेतनं सूत्रमूल्यं यावत् तावद् दातव्यम् । क्षौम-
कौशेयानां वानवेतनं अर्धगुणं सूत्रमूल्यं सार्धगुणम् ।
पत्रोर्णाकम्बलदुकूलानां वानवेतनं द्विगुणं सूत्रमूल्य-
द्विगुणम् ।

मानहीने इति । निर्दिष्टायामविस्तारहानौ, हीनाव-
हीनं हीनस्यावहीनं अर्थादष्टहस्तायामचोदनायां सप्त-

(१) कौ. ४१९.

हस्तायामवाने अष्टमांदाहीनं वानवेतनं, देयम् । तद्वि-
गुणश्च दण्डः अयथोक्तवानकारिणो भवति । तुलाहीने
इति । अन्तरालसूत्रन्यूनतायां, हीनचतुर्गुणो दण्डः ।
सूत्रपरिवर्तने दत्तं सूत्रमपहृत्यान्यस्य सूत्रस्य प्रतिनिधाने,
मूल्यद्विगुणः, दण्डः । एष एवैकसूत्रवानविधिद्विसूत्र-
वानेऽपि ऊह्य इत्याह— तेन द्विपटवानं व्याख्यात-
मिति ।

ऊर्णातुलाया इति । शतपलाया ऊर्णायाः पञ्चपलो
विहननच्छेदः विहननं पिञ्जनं शोधनं तन्निमित्तच्छेदः ।
रोमच्छेदश्च पञ्चपलः, वाननिमित्तः । श्रीम् .

रजकाः काष्ठफलकभ्रक्षणशिलासु वस्त्राणि
नेनिज्युः । अन्यत्र नेनिजतो वस्त्रोपघातं षट्पणं
च दण्डं दद्युः ।

मुद्राङ्कादन्यद् वासः परिदधानास्त्रिपणं दण्डं
दद्युः । परवस्त्रविक्रयावक्रयाधानेषु च द्वादशपणो
दण्डः । परिवर्तने मूल्यद्विगुणो वस्त्रदानं च ।
मुकुलावदातं शिलापट्टशुद्धं धौतसूत्रवर्णं प्रमृष्टश्वेतं
चैकरात्रोत्तरं दद्युः ।

पञ्चरात्रिकं तनुरागं, षड्रात्रिकं नीलं, पुष्प-
लाक्षामञ्जिष्ठा रक्तं, गुरुपरिकर्म यत्नोपचार्यं जात्यं
वासः सप्तरात्रिकम् । ततः परं वेतनहानिं प्राप्नुयुः ।

श्रद्धेया रागविवादेशु वेतनं कुशलाः कल्पयेयुः ।
रजककर्माह— रजका इत्यादि । ते, काष्ठफलक-
भ्रक्षणशिलासु काष्ठफलकेषु मसृणशिलासु च, वस्त्राणि
नेनिज्युः शोधयेयुः । अन्यत्र खरशिलादौ नेनिजतः
नेजनं कुर्वन्तः, णिजेरभ्यस्ताच्छतरि जसि रूपमिदम् ।
वस्त्रोपघातं, षट्पणं दण्डं च दद्युः ।

मुद्राङ्कादित्यादि । मुद्रारायुधप्रतिमोपरञ्जितात् ।
शेषं सुबोधम् । अर्पितवस्त्रप्रत्यर्पणकालनियमं तदतिक्रमे
दण्डं चाह— मुकुलावदातमिति । मुकुलवन्मसृणसितं,
शिलापट्टशुद्धं शिलापट्टस्वच्छं, धौतसूत्रवर्णं क्षालित-
सूत्रधवलं, प्रमृष्टश्वेतं च अत्यन्तधवलं च, एवं चतु-
ष्पकारधावल्यं वस्त्रं, एकरात्रोत्तरं पूर्वपूर्वापेक्षया एक-
रात्राधिकप्रत्यर्पणकालमुत्तरोत्तरं यस्मिंस्तत् तथाभूतं

(१) कौ. ४।१.

दद्युः । तत्राद्यं मुकुलावदातमेकरात्रेण प्रत्यर्पणीयं द्वितीयं
द्विरात्रेण तृतीयं त्रिरात्रेण चतुर्थं चतुरात्रेणेति व्यवस्था ।

रञ्जनार्थान् दिवसानाह— पञ्चेत्यादि । तनुरागं
शोणशिलावृक्षत्वग्योगसाधितकषायरञ्जनीयं वस्त्रं, पञ्च-
रात्रिकं पञ्चरात्रेण देयम् । नीलं नील्या महारसया
रक्तं, पुष्पलाक्षामञ्जिष्ठा रक्तं, पुष्पं कुङ्कुमकुसुम्भशोफालि-
कादि, लाक्षा अलक्तः, मञ्जिष्ठा अञ्जनवल्लिकाल्या,
आभिः रञ्जितं, षड्रात्रिकम् । गुरुपरिकर्म बहुशिल्पं,
अत एव यत्नोपचार्यं यत्नसंस्कार्यं, जात्यं प्रशस्तं, वासः
नेत्रादि, सप्तरात्रिकं सप्तरात्रप्रत्यर्पणीयम् । ततः परं
विहितकालातिक्रमे वेतनहानिं प्राप्नुयुः ।

श्रद्धेया इति । आताः, कुशलाः रागगुणपरीक्षा-
निपुणाः, रागविवादेशु वेतनं कल्पयेयुः । श्रीम् .

परार्थानां पणो वेतनं मध्यमानामर्धपणः,
प्रत्यवराणां पादः ।

स्थूलकानां माषद्विमाषकं द्विगुणं रक्तकानाम् ।
प्रथमनेजने चतुर्भागाः क्षयः । द्वितीये पञ्चभागः ।
तेनोत्तरं व्याख्यातम् ।

रजकैस्तुन्नवाया व्याख्याताः ।

सुवर्णकाराणाम् । अशुचिहस्ताद् रूप्यं सुवर्ण-
मनाख्याय सरूपं क्रीणतां द्वादशपणो दण्डः,
विरूपं चतुर्विंशतिपणः, चोरहस्तादष्टचत्वारिं-
शत्पणः । प्रच्छन्नविरूपमूल्यहीनक्रयेषु स्तेयदण्डः ।
कृतभाण्डोपधौ च ।

सुवर्णान्माषकमपहरतो द्विशतो दण्डः । रूप्य-
धरणान्माषकमपहरतो द्वादशपणः । तेनोत्तरं
व्याख्यातम् ।

वर्णोत्कर्षमसाराणां योगं वा साधयतः पञ्चशतो
दण्डः । तयोरपचरणे रागस्यापहारं विद्यात् ।

रागवेतनमाह — परार्थानामिति । प्रशस्तानां
रागाणां, पणो वेतनं, मध्यमानां अर्धपणः, प्रत्यवराणां
अधमानां पादः पादपणः ।

द्विषेजनश्रुतिमाह— स्थूलेत्यादि । स्थूलकानां निषे-
जने माषद्विमाषकं माषकं द्विमाषकं वा वेतनं अधम-

(१) कौ. ४।१.

मध्यमोत्तमानुसारेण कल्प्यम् । रक्तकानां द्विगुणं द्विमाषक-
चतुर्माषकादि पूर्ववत् । नेजनावृत्तिकृतमर्षक्षयमाह—
प्रथमनेजन इति । तत्र, चेतुर्भागः क्षयः क्रयणकालिक-
मूल्यस्य चतुर्भागो हीयते । द्वितीये नेजने, पञ्चभागः
क्षयः, अर्थात् प्रथमनेजनमूल्यस्य । तेनोत्तरं व्याख्यात-
मिति । अनया रीत्या तृतीयादौ नेजने द्वितीयादिनेजन-
मूल्यादेः षड्भागादिः क्षयो द्रष्टव्य इत्यर्थः ।

रजकैस्तुन्नवाया व्याख्याता इति । तुन्नवायाः सौ-
चिकाः । तैरपि ब्रह्मणां सतरात्रेण प्रत्यर्पणं, विना-
शितानां प्रथमनेजनाद्यनुसारेण चतुर्भागादिहीनमूल्यदानं
च रजकवत् कर्तव्यमित्यर्थः ।

सुवर्णकाराणामिति । संबद्धमभिधीयत इति शेषः ।
अर्थात् तत्प्रतारणपरिहारोपायोऽभिधीयते । अशुचिहस्ता-
दिति । अशुचयो दासकर्मकरादयः तद्द्वारेण, सरूपं
भूषणाद्याकारयुक्तं, रूप्यं सुवर्णं च, अनाख्याय सौव-
र्णिकमनिवेद्य क्रीणतां, द्वादशपणो दण्डः । विरूपं तत्
क्राणतां चतुर्विंशतिपणः । चोरहस्तात् क्रीणतां, अष्ट-
चत्वारिंशत्पणो दण्डः । प्रच्छन्नविरूपमूल्यहीनक्रयेषु स्तेय-
दण्ड इति । अन्याविदितं विनाशितरूपं रूप्यसुवर्णं
हीनेन मूल्यान क्रीणानस्य चोरदण्डः । कृतभाण्डोपधौ
च निर्मितभाण्डपरिवर्तने च, स्तेयदण्ड इति वर्तते ।
सुवर्णादिति । तस्मात्, माषकं सुवर्णषोडशभागम् ।
अपहरतः, द्विशतो द्विशतपणो दण्डः । रूप्यधरणात्
धरणप्रमाणाद् रूप्यात्, माषकमपहरतः, द्वादशपणो
दण्डः । तेनोत्तरं व्याख्यातमिति । अनेन प्रकारेण
द्विमाषकाद्यपहारे दण्डद्वैगुण्यादिकं कल्पनीयमित्यर्थः ।

वर्णेत्यादि । वर्णोत्कर्षं, असारणां हीनवर्णानां, साध-
यतः, योमं वा सारैसारयोमं वा साधयतः, पञ्चशतो
दण्डः । तयोरिति । कृत्रिमवर्णोत्कर्षस्य असारयुक्तस्य
चेत्येतयोः, रागस्य वर्णस्य, अपचरणे यथाविध्यग्निप्रक्षे-
पेणापगमने, अपहारं विद्यात् । श्रीम् ।

माषको वेतनं रूप्यधरणस्य । सुवर्णस्याष्टभागः ।
शिक्षाविशेषेण द्विगुणं वेतनवृद्धिः । तेनोत्तरं
व्याख्यातम् ।

(१) कौ. ४११.

ताम्रवृत्तकंसवैकृन्तकारकूटानां पञ्चकं शतं वेत-
नम् । ताम्रपिण्डो दशभागक्षयः । पलहीने हीन-
द्विगुणो दण्डः । तेनोत्तरं व्याख्यातम् ।

सीसत्रपुपिण्डो विंशतिभागक्षयः । काकणी चास्य
पलवेतनम् । कालायसपिण्डः पञ्चभागक्षयः । काक-
णीद्वयं चास्य पलवेतनम् । तेनोत्तरं व्याख्यातम् ।

रूपदर्शकस्य स्थितां पणयात्रामकोप्यां कोपयतः
कोप्यामकोपयतो द्वादशपणो दण्डः ।

व्याजीपरिशुद्धा पणयात्रा । पणान्माषकमुप-
जीवतो द्वादशपणो दण्डः । तेनोत्तरं व्याख्यातम् ।

कूटरूपं कारयतः प्रतिगृह्यतो निर्यापयतो वा
सहस्रं दण्डः । कोशे प्रक्षिपतो वधः ।

सरकपांसुधावकाः सारत्रिभागं लभेरन् । द्वौ
राजा रत्नं च । रत्नापहार उत्तमो दण्डः ।

खनिरत्ननिधिनिवेदनेषु षष्ठमंशं निवेत्ता लभेत ।
द्वादशमंशं भृतकः ।

कर्मवेतनमाह— माषको वेतनं रूप्यधरणस्येति ।
धरणप्रमाणस्य रूप्यस्य शिल्पकरणे रूप्यमाषक एको
वेतनम् । सुवर्णस्य षोडशमाषकमितस्य स्वर्णस्य शिल्पे,
अष्टभागः सुवर्णमाषकस्याष्टमांशः, वेतनम् । शिक्षावि-
शेषेण शिल्पवैचित्र्येण, द्विगुणा वा वेतनवृद्धिः । तेनो-
त्तरं व्याख्यातमिति । अनेन प्रकारेण गुरुशिल्पकरणे
वेतनवृद्धिः कल्पनीया ।

ताम्रवृत्तकंसवैकृन्तकारकूटानामिति । ताम्रादीनां
पञ्चानां, पञ्चकं शतं तुलाप्रमाणस्य कर्मणि पञ्चपणं
वेतनम् । कर्मणि क्षयमानमाह— ताम्रपिण्ड इति ।
दशभागक्षयः कर्मकरणे दशभागहानिर्भवति । पलहीन
इत्यादि । कर्मण्येकपलहानौ, हीनद्विगुणो दण्डः ।
एवं द्विपलादिहानौ दण्डविधिरूह इत्याह— तेनोत्तरं
व्याख्यातमिति ।

सीसत्रपुपिण्ड इत्यादि । सुत्रोधम् ।

रूपदर्शकस्येति । पणपरीक्षको रूपदर्शकः तस्य,
स्थितां वर्तमानां, पणयात्रामकोप्यां अदूषणीयं पण्यव-
हारं, कोपयतः दूषयतः, कोप्यामकोपयतः दूषणीयाप-
हृतः, द्वादशपणो दण्डः ।

व्याजीपरिशुद्धा पणयात्रेति । राजदेयं शते पञ्चभागां दत्त्वा पणयात्रां कुर्यात् । पणादिति । पणात् मापकं उपजीवतः एकस्मिन् शुद्धे पणे माषमेकं हरतः लक्षणाध्यक्षस्य, द्वादशपणो दण्डः । एवमुपजीवनवहुत्वे दण्डबहुत्वमूह्यमित्याह — तेनोत्तरमित्यादि ।

कूटरूपमिति । कपटनाणकं, कारयतः, प्रतिगृह्यतः स्वीकुर्वतः, निर्यापयतो वा निर्गमयतो वा, सहस्रं पणसहस्रं, दण्डः । कोशे प्रक्षिपतः अकूटरूपैः सह मिश्रयतः, वधः ।

सरक्रेत्यादि । सरकपांसुधावकाः सरकं रत्नं खनिषु रत्नसंपृक्तपांसुधावनकर्मकराः, सारत्रिभागं तत्कर्मलब्ध-सारवस्तुत्रिभागं लभेरन् । द्वौ सारत्रिभागौ, रत्नं च, राजा लभेत । रत्नापहारे उत्तमो दण्डः, सरकपांसुधावकानाम् ।

खनिरत्ननिधिनिवेदनेष्विति । खन्यादीनामनर्हस्त-गतानां राज्ञे निवेदनेषु, षष्ठं अंशं, निवेत्ता निवेदयिता, लभेत । भूतकः खन्यादिनिवेदनवृत्तिः, द्वादशमंशं लभेत । श्रीम् ।

शतसहस्रादूर्ध्वं राजगामी निधिः । ऊने षष्ठमंशं दद्यात् । पौर्वपौरुषिकं निधिं जानपदः शुचिः स्वकरणेन समग्रं लभेत । स्वकरणाभावे पञ्चशतो दण्डः । प्रच्छन्नादाने सहस्रम् ।

भिषजः प्राणाबाधिकमनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ पूर्वः साहसदण्डः । कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यमः । मर्मवेधवैगुण्यकरणे दण्डपारुष्यं विद्यात् ।

निधिः क्रियद्द्रव्यमानादूर्ध्वं राजगामीत्याह— शत-सहस्रादित्यादि । तावत्पणमानपर्यन्तस्त्पलब्धगामीत्यर्थः । ऊने, षष्ठं अंशं, दद्याद् राज्ञे । पौर्वपौरुषिकमिति । पितृ-पितामहादयः पूर्वपुरुषाः तैः स्थापितं, निधिं, जानपदः, शुचिः सद्वृत्तः, स्वकरणेन साक्ष्यलेख्यादिभिः स्वत्व-विभावेन, समग्रं लभेत शतसहस्रातिगमपि । स्वकरणा-भावे पञ्चशतो दण्डः । प्रच्छन्नादाने अप्रकाश्य स्वायत्ती-करणे, सहस्रं दण्डः ।

प्राणबाधाकरं रोगमनिवेद्य राज्ञे रोगिणं चिकित्सतो

(१) कौ. ४१९.

वैद्यस्य तद्विपत्तौ पूर्वः साहसदण्डः, चिकित्सादोषेण तद्विपत्तौ मध्यम इत्याह— भिषज इत्यादि । मर्मवेध-वैगुण्यकरण इति । मर्मणि शस्त्रक्रियान्यथाकरणे, दण्डपारुष्यं विद्यात् तदाख्येन विवादपदेन भिषजमाभि-युञ्जीत, भिषक्क्रियादोषेण रोगिणो यदङ्गमुपहतं तद् भिषज उपहन्यादित्यर्थः । श्रीम् ।

कुशीलवा वर्षारात्रिमेकस्था वसेयुः । कामदान-मतिमात्रमेकस्यातिवादं च वर्जयेयुः । तस्यातिक्रमे द्वादशपणो दण्डः । कामं देशजातिगोत्रचरणमैथुना-पहाने नर्मयेयुः ।

कुशीलवैश्वारणा भिक्षुकाश्च व्याख्याताः । तेषा-मयश्शूलेन यावतः पणानभिवदेयुः, तावन्तः शिफाप्रहारा दण्डाः । शेषाणां कर्मणां निष्पत्ति-वेतनं शिल्पिनां कल्पयेत् ।

एवं चोरानचोराख्यान् वणिक्कारुकुशीलवान् ।

भिक्षुकान् कुहकांश्चान्यान् वारयेद् देश-पीडनात् ॥

कुशीलवा इति । लङ्घनप्लवनगीतादिवृत्तयः, वर्षा-रात्रिं वर्षाकालिकरात्रीः, एकस्था वसेयुः एकं स्थानमा-श्रित्य वसेयुः, न तु स्थानात् स्थानान्तरं गच्छन्तः स्ववृत्तिमनुतिष्ठेयुः, तदनुष्ठाने हि सति कर्षकाणां तदा-सङ्गात् कृषिकर्मणे (गो) वर्षाकालकरणीयस्योपघातः स्यादिति । कामदानमतिमात्रमिति । प्रीतिवशात् केनचित् न्याय्यां मात्रामतिक्रम्य दीयमानं द्रव्यं, वर्जयेयुः न स्वीकुर्युः । एकस्यातिवादं च बहुषु मध्ये एकस्यातिस्तुतिं च, वर्जयेयुः । तस्यातिक्रमे द्वादशपणो दण्डः । काममिति ॥ देशजातिगोत्रचरणमैथुनापहाने चरणः शाखाध्येता शेषं प्रतीतं, देशजात्याद्यपहासादिपरिहारे सति, कामं नर्मयेयुः विनोदयेयुः प्रेक्षकान् ।

कुशीलवोक्तमेव विधानं चारणानां भिक्षुकाणां च द्रष्टव्यमित्याह— कुशीलवैरित्यादि । चारणाः अङ्ग-विक्षेपमात्रकर्तारः । तेषां निर्धनानां दण्डे विशेषमाह— तेषामिति । तेषां, अयश्शूलेन हृदयतोदकत्वाद् अयश्शूलः तुल्येन परममोद्घाटनेन निमित्तेन, यावतः पणान्,

(१) कौ. ४१९.

अभिषेदेयुः दण्डत्वेन विदभ्युर्धर्मस्थाः, तावन्तः विहित-
पणतुल्यसंख्याः, शिफाप्रहाराः दण्डाः धनदण्डप्रति-
निधयः कार्याः ।

शिल्पिनामुक्तातिरिक्तकर्मविषयं निष्पत्तिवेतनमृहनी-
यमुक्तदिशेत्याह— शोषाणामित्यादि । अभ्यायान्ते
श्लोकमाह— एवमित्यादि । चोरान् अचोराख्यान्
चोरकर्मकुर्वाणान् अपि अचोरसंज्ञान् । कुहकान्
ऐन्द्रजालिकान् ।

वैदेहकरक्षणम्

वैदेहकरक्षणम् । संस्थाध्यक्षः पण्यसंस्थायां
पुराणभाण्डानां स्वकरणविशुद्धानामाधानं विक्रयं वा
स्थापयेत् । तुलामानभाण्डानि चावेक्षेत, पौतवा-
पचारात् ।

परिमाणीद्रोणयोरर्धपलहीनातिरिक्तमदोषः ।
पलहीनातिरिक्ते द्वादशपणो दण्डः । तेन पलोत्तरा
दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ।

तुलायाः कर्षहीनातिरिक्तमदोषः । द्विकर्षहीना-
तिरिक्ते षट्पणो दण्डः । तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धि-
र्व्याख्याता ।

आढकस्यार्धकर्षहीनातिरिक्तमदोषः । कर्षहीना-
तिरिक्ते त्रिपणो दण्डः । तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धि-
र्व्याख्याता ।

तुलामानविशेषाणामतोऽन्येषामनुमानं कुर्यात् ।

वैदेहकरक्षणमिति सूत्रम् । वैदेहकाः वणिजः कण्टकेषु
प्रधानाः, तेभ्यो जनपदस्य रक्षणमभिधीयते इति
सूत्रार्थः । 'वणिकूकास्कुशीलवान्' इति वणिकप्रस्तावात्
तद्रक्षणप्रकारो व्युत्पाद्यते । संस्थाध्यक्ष इति । विपणि-
मार्गाध्यक्षः, पण्यसंस्थायां पण्यशालायां, पुराणभाण्डानां
पुराणानां धान्यादिपण्यानां, पुराणत्वोक्तिः कालपरिवास-
संभावितगुणयोगार्था, स्वकरणविशुद्धानां विभावितस्वत्वा-
नां, एतच्च चोरितत्वपरिहारार्थम् । आदानं ग्रहणं
प्रवेशनं, आधानपाठे निवेशनं, विक्रयं वा, स्थापयेत् ।
तुलामानभाण्डानि च परिमाण्यादीनि द्रोणाढकार्दीनि च,
अवेक्षेत परीक्षेत, पौतवापचारात् पौतवदोषं परिहर्तुम् ।

(१) कौ. ४।२.

परिमाणीद्रोणयोरिति । तुलादण्डधान्यमानविशेषयोः
अर्धपलहीनातिरिक्तं अर्धपलन्यनत्वमर्धपलाधिकत्वं च,
अदोषः दोषाभावः । पलहीनातिरिक्ते एकपलहानौ तद-
तिरेके वा, द्वादशपणो दण्डः । तेन पलोत्तरा द्विपल-
हान्यतिरेके चतुर्विंशतिपणो दण्ड इत्यादिरूपा, दण्डवृद्धिः
व्याख्याता ।

तुलाया इत्यादिस्तुलाया आढकस्येत्यादिराढकस्य
चार्षकैर्कर्मण्यनातिरिक्तविषयविधानग्रन्थः स्पष्टार्थः ।

अनुक्तानां तुलाविशेषमानविशेषाणां हीनातिरिक्त-
विषयं विधानमुक्तदिशानुमेयमित्याह — तुलामान-
विशेषाणामित्यादि ।

तुलामानाभ्यामतिरिक्ताभ्यां क्रीत्वा हीनाभ्यां
विक्रीणानस्य त एव द्विगुणा दण्डाः । गण्यपण्ये-
ष्वष्टभागं पण्यमूल्येष्वपहरतः षण्णवतिर्दण्डः ।
काष्ठलोहमणिमयं रज्जुचर्ममृन्मयं सूत्रवल्करोममयं
वा जात्यमित्यजात्यं विक्रयाधानं नयतो मूल्याष्ट-
गुणो दण्डः ।

सारभाण्डमित्यसारभाण्डं, तज्जातमित्यतज्जातं,
राढायुक्तमुपधियुक्तं समुद्रपरिवर्तितं वा विक्रयाधानं
नयतो हीनमूल्यं चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः, पणमूल्यं
द्विगुणः, द्विपणमूल्यं द्विशतः । तेनार्धवृद्धौ दण्ड-
वृद्धिर्व्याख्याता ।

कारुशिल्पिनां कर्मगुणापकर्षमाजीवं विक्रय-
क्रयोपघातं वा संभूय समुत्थापयतां सहस्रं दण्डः ।

तुलामानाभ्यामतिरिक्ताभ्यामिति । तुलाविशेषेण
भाजन्यादिना मानविशेषेण च प्रस्थकुडुवादिनातिरिक्तेन,
क्रीत्वा, हीनाभ्यां ताभ्यां, विक्रीणानस्य, त एव द्वादश-
पणादय एव, द्विगुणा दण्डाः । गण्यपण्येष्विति । तेषु
विषये, पण्यमूल्येषु अष्टभागं अपहरतः षण्णवतिर्दण्डः ।
काष्ठादिमयं पण्यं निकृष्टं श्रेष्ठव्यपदेशेन विक्रयमाधानं
च कुर्वतो मूल्याष्टगुणो दण्ड इत्याह काष्ठेत्यादि ।

सारेत्यादि । सारभाण्डमित्यसारभाण्डं कर्पूरादिकम-
कृत्रिमं सारपण्यमित्युक्त्वा तत् कृत्रिमं, हीनमूल्यं
पणावरमूल्यं, विक्रयाधानं नयतः, तज्जातमित्यतज्जातं

(१) कौ. ४।२.

तद्देशजमित्युक्त्वा अतद्देशजं, हीनमूल्यं विक्रयाधानं नयतः, रादायुक्तं रादा शोभा तथा गुणवद्रत्नलक्षणात् श्रेष्ठरत्नयुक्तं अर्थात् कृत्रिममौक्तिकादिकं, हीनमूल्यं विक्रयाधानं नयतः, उपधियुक्तं कृत्रिमपण्यमिश्रं, हीनमूल्यं विक्रयाधानं नयतः, समुद्रपरिवर्तिमं समुद्रस्य मंपुटस्य पूर्वदर्शितस्य परिवर्तेन कृतं कस्मिंश्चित् समुद्रे पण्यं प्रदर्शयान्यस्मात् समुद्राद् उद्धृतमित्यर्थः, हीनमूल्यं विक्रयाधानं नयतः, चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः। पणमूल्यं एकपणमूल्यं असारभाण्डादिकं, विक्रयाधानं नयतः, द्विगुणः उक्तदण्डद्विगुणो दण्डः। द्विपणमूल्यं विक्रयाधानं नयतः, द्विशतः। तेन उक्तप्रकारेण, अर्धवृद्धौ त्रिपणचतुष्पणादिपण्यमूल्यवृद्धौ, दण्डवृद्धिः व्याख्याता।

कारुण्यशिल्पिनामिति। कारुण्यां शिल्पिनां च, कर्मगुणापकर्षे 'एवंगुणकं भाण्डं निर्मातव्यमि'त्युक्ते 'तादृग्गुण मा कुरु' इति प्रतिषेधेन कर्मगुणहानि, संभूय ऐकमत्येन, समुत्थापयतां, आजीवं लाभं, संभूय समुत्थापयतां एकपणवेतनं कर्म पणद्वयवेतनं कल्पयतां, विक्रयक्रयोपघातं वा विक्रयोपघातं वा स्वपण्यविक्रये मूल्यातिरेचनेनोपघातं वा क्रयोपघातं वा परपण्यस्वीकरणे मूल्यपातनेनोपघातं वा, संभूय समुत्थापयतां, सहस्रं दण्डः पणसहस्रं प्रत्येकं दण्डः। श्रीम्.

वैदेहकानां वा संभूय पण्यमवरुन्धतामनघेण विक्रीणतां क्रीणतां वा सहस्रं दण्डः।

तुलामानान्तरमर्धवर्णान्तरं वा। धरकस्य मायकस्य वा पणमूल्यादष्टभागं हस्तदोषेणाचरतो द्विशतो दण्डः। तेन द्विशतोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता।

धान्यस्नेहक्षारलवणगन्धभैषज्यद्रव्याणां समवर्णोपधाने द्वादशपणो दण्डः।

यन्निसृष्टमुपजीवेयुः, तद्देशां दिवससंजातं संख्याय वणिक् स्थापयेत्। क्रेतृविक्रेत्रोरन्तरपतितमदायादन्यं भवति। तेन धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः। अन्यथानिचितमेषां पण्याध्यक्षो गृह्णीयात्। तेन धान्यपण्यविक्रये व्यवहरेतानुग्रहेण प्रजानाम्।

(१) कौ. ४।२.

वैदेहकानां वेति। वणिजां च, संभूय ऐकमत्येन, पण्यं अवरुन्धतां अन्यत्र विक्रेतुमविसृजतां, अनघेण अयुक्तेन मृत्येन, विक्रीणतां, क्रीणतां वा, सहस्रं दण्डः प्रत्येकम्।

तुलत्यादि। तुलामानान्तरं आयमान्यादितुलाभ्य उत्पद्यमानो लाभविशेषः प्रस्थादिमानविशेषेभ्य उत्पद्यमानो लाभविशेषश्च, अर्धवर्णान्तरं वा मूल्यभेदनिमित्तो लाभविशेषश्च, पुस्तके लेख्यं इति वाक्यशेषः। धरकस्य तुलाधारकस्य, मायकस्य वा, पणमूल्यादष्टभागं एकपणमूल्यस्याष्टमांशप्रमाणं तुलामानान्तरं, हस्तदोषेण, आचरतः कुर्वतः, द्विशतो दण्डः। तेन उक्तविधिना, द्विशतोत्तरा चतुर्भागाद्याहरणे द्विगुणादिका, दण्डवृद्धिः व्याख्याता।

धान्यस्नेहक्षारलवणगन्धभैषज्यद्रव्याणामिति। धान्यादीनां, समवर्णोपधाने तुल्यवर्णैर्हीनमूल्यैर्धान्यादिभिर्मिश्रणे, द्वादशपणो दण्डः।

यन्निसृष्टमिति। यत् निसृष्टं उपजीव्यत्वेनानुमतं उपजीवेयुः विक्रेत्रादयः। तद् एषां दिवससंजातं प्रतिदिनोत्पन्नं, संख्याय संख्याय परिच्छिद्य, वणिक् स्थापयेत् संस्थाध्यक्षः प्रकल्पयेत्। क्रेतृविक्रेत्रोरन्तरपतितमिति। क्रेतृविक्रेतृशब्दौ क्रयविक्रयोपलक्षकौ, क्रये विक्रये च पण्यानां संस्थाध्यक्षेण स्वयं क्रियमाणे अन्तरागतमाधिकं धनं, अदायादन्यं दयादानानर्हं अन्याविभाज्यं भवति केवलराजप्राहमेव भवतीत्यर्थः। आदायादन्यमिति वृद्धपाठो मातृकासु चिन्त्यार्थः। अदायादन्यमित्येव वा पाठः शुद्धः संभाव्यते। तेनेति। धान्यपण्यनिचयांश्च, तेन संस्थाध्यक्षेण, अनुज्ञाताः कुर्युः। एषां अन्यथानिचितं अननुज्ञातनिचितं, पण्याध्यक्षो गृह्णीयात्। तेनेति। तेन निचितेन, धान्यपण्यविक्रये विषये, प्रजानां अनुग्रहेण व्यवहरेत प्रजानामुपकारो यथा स्यात् तथा समाचरेदित्यर्थः। श्रीम्.

अनुज्ञातक्रयादुपरि चैषां स्वदेशीयानां पण्यानां पञ्चकं शतमाजीवं स्थापयेत्। परदेशीयानां दशकम्। ततः परमर्धं वर्धयतां क्रये विक्रये वा भावयतां पणशते पञ्चपणाद् द्विशतो दण्डः।

(१) कौ. ४।२.

तेनार्धवृद्धौ दण्डवृद्धिर्याख्याता ।

संभूयक्रये चैषां अविक्रीते नान्यं संभूयक्रयं दद्यात् । पण्योपघाते चैषामनुग्रहं कुर्यात् पण्यबाहुल्यात् ।

पण्याध्यक्षः सर्वपण्यान्येकमुखानि विक्रीणीत । तेष्वविक्रीतेषु नान्ये विक्रीणीरन् । तानि दिवसवेतनेन विक्रीणीरन् अनुग्रहेण प्रजानाम् ।

देशकालान्तरितानां तु पण्यानाम्—

प्रक्षेपं पण्यनिष्पत्तिं शुल्कं वृद्धिमवक्रयम् ।

व्ययानन्यांश्च संख्याय स्थापयेदर्धमर्धवित् ॥

किं तन्निसृष्टमित्याह— अनुज्ञातक्रयादुपरि चेति । स्वीकरणकालिकादर्घादुपरि, एषां वणिजां, स्वदेशीयानां स्वदेशभवानां, पण्यानां, पञ्चकं शतं आजीवं स्थापयेत् शते पञ्चपणिकं लाभं व्यवस्थापयेत् । परदेशीयानां पण्यानां, दशकं शतं शते दशपणिकं लाभं स्थापयेत् । ततः परं उक्तलाभादधिकं, अर्धं मूल्यं, वर्धयतां, क्रये विक्रये वा, भावयतां लाभमुत्पादयतां, पणशते पञ्चपणात् पणपञ्चकमात्रेण लाभभावनादपि, द्विशतो दण्डः । तेनेति । उक्तविधिना, अर्धवृद्धौ अर्धवर्धनेन लाभवर्धने, दण्डवृद्धिः व्याख्याता पणशते दशपणभावनाच्चतुश्शतो दण्ड इत्यादिरीत्या दण्डस्य वृद्धिः व्याख्याता ।

संभूयेत्यादि । एषां वणिजां, संभूयक्रये संभूयक्रीते, अविक्रीते अकृतविक्रये सति, अन्यं संभूयक्रयं, न दद्यात् अर्थाद् वणिगन्तरेभ्यः । पण्योपघाते च जलान्वादिजनिते पण्यदूषणे, एषां संभूयक्रयकारिणां, अनुग्रहं उपकारं, कुर्यात्, पण्यबाहुल्यात् पण्यानां बहुत्वे सति । इदमुत्तरवाक्येन वा संबध्यते ।

पण्याध्यक्ष इति । सः, सर्वपण्यानि, एकमुखानि विक्रीणीत एकविक्रेतृद्वारेण विक्रीणीत । तेषु सर्वपण्येषु, अविक्रीतेषु सत्सु, अन्ये पूर्वाङ्गीकृतविक्रयकर्मभ्योऽतिरिक्ताः, न विक्रीणीरन् । तानि पण्यानि दिवसवेतनेन दिवसवेतनदानेन, विक्रीणीरन्, प्रजानां, अनुग्रहेण आनुकूल्येन ।

देशकालव्यवहितपण्यविषयमाह — देशकालान्तरितानां तु पण्यानामिति । इदं प्रक्षेपमित्यादिवक्ष्यमाण-

श्लोकान्वयि । देशव्यवहितानां कालव्यवहितानां च पण्यानां, प्रक्षेपं वस्तुमूल्यं, पण्यनिष्पत्तिं, इदमियता कालेन निष्पद्यत इत्यमुमर्थं, शुल्कं, वृद्धिं, अवक्रयं शकटबलीवर्दादिभाटकं, अन्यान् व्ययांश्च, संख्याय, अर्धं, स्थापयेत् कल्पयेत्, अर्धवित् अर्धविधानाभिज्ञः संस्थाध्यक्षः । श्रीमू.

गूढाजीविनां रक्षा

गूढाजीविनां रक्षा । समाहर्तृप्रणिधौ जनपदरक्षणमुक्तम् । तस्य कण्टकशोधनं वक्ष्यामः ।

समाहर्ता जनपदे सिद्धतापसप्रव्रजितचक्रचरचारणकुहकप्रच्छन्दककार्तान्तिकनैमित्तिकमौढूर्तिकचिकित्सकोन्मत्तमूकबधिरजडान्धवैदेहककारुशिल्पिकुशीलववेशशौण्डिकापूपिकपाकमांसिकौदनिकव्यञ्जानान् प्रणिदध्यात् । ते भ्रामाणामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः । यं चात्र गूढजीविनं शङ्केत, तं सत्रिसवर्णेनापसर्पयेत् । धर्मस्थं प्रदेशारं वा विश्वासोपगतं सत्री ब्रूयात्— असौ मे बन्धुरभियुक्तः, तस्यायमनर्थः प्रतिक्रियतां, अयं चार्थः प्रतियुक्ततां इति । स चेत् तथा कुर्यात्, उपदा-
ग्राहक इति प्रवास्येत ।

तेन प्रदेशारो व्याख्याताः ।

गूढाजीविनां रक्षेति सूत्रम् । गूढाजीविनः प्रच्छन्नलञ्चग्रहणजीवनाः कूटसाक्ष्यादयः तेषां रक्षा वारणं प्रतिक्रियाभिधीयत इति सूत्रार्थः । प्रकटकण्टकाः प्रच्छन्नकण्टका इति द्विविधेषु कण्टकेषु कार्वादिप्रकटकण्टकरक्षणं पूर्वमुक्तं, प्रच्छन्नकण्टकरक्षणं त्वधुनोच्यते । समाहर्तृप्रचारे जनपदरक्षणस्योक्तत्वात् पुनरपि रक्षणप्रस्तावः किमर्थं इत्याशङ्क्य गूढकण्टकेभ्यो रक्षणस्यानुक्तस्याभिधानार्थं इत्यभिप्रायवानाह समाहर्तृप्रणिधावित्यादि ।

गूढकण्टकपरिज्ञानार्थमपसर्पप्रणिधानमाह — समाहर्तृत्यादि । सिद्धतापसेत्यादिपदे चक्रचरः अश्वस्तनिकः, प्रच्छन्दकः स्वच्छन्दचरः, वेशो वेस्यावाटचरः, शेषाः प्रतीताः । त इत्यादि । ते सिद्धतापसादिव्यञ्जनाः । प्रणिहिताः, भ्रामाणां ग्राममुख्यानां, अध्यक्षाणां च, शौचाशौचं विद्युः । यं चेति । अत्र ग्राममुख्येषु अध्यक्षेषु च, यं गूढजीविनं शङ्केत, तं, सत्रिसवर्णेन सत्रिणा

(१) कौ. ४।४.

सवर्णेन, अपसर्पयेत् सापसर्पं कुर्यात् । धर्मस्थं, 'प्रदेशारं वे'ति प्रक्षिप्तं प्रतिभाति । विश्वासोपगतं विश्वस्तं, सत्री प्रणिहितः, ब्रूयात् । वचनप्रकारः—असौ मे बन्धुरित्यादि । स्पष्टार्थम् ।

तेनेति । उक्तेन धर्मस्थविधानेन, प्रदेशारः कण्टक-शोधनाधिकृताः, व्याख्याताः उक्तविधाना बोद्धव्याः । श्रीम् ।

ग्रामकूटमभ्यक्षं वा सत्री ब्रूयात्— असौ जाल्मः प्रभूतद्रव्यः, तस्यायमनर्थः । तेनैनमाहारयस्वेति । स चेत् तथा कुर्याद्, उक्तोचकः इति प्रवास्येत ।

कृतकाभियुक्तो वा कूटसाक्षिणोऽभिज्ञातानर्थ-वैपुल्येन आरभेत । ते चेत् तथा कुर्युः, कूटसाक्षिण इति प्रवास्येरन् ।

तेन कूटश्रावणकारका व्याख्याताः ।

यं वा मन्त्रयोगमूलकर्मभिः श्माशानिकैर्वा संवननकारकं मन्येत, तं सत्री ब्रूयात्— अमुष्य भार्या स्तुषां दुहितरं वा कामये । सा मां प्रतिकामयतां, अयं चार्थः प्रतिगृह्यताम् इति । स चेत् तथा कुर्यात् संवननकारक इति प्रवास्येत ।

तेन कृत्याभिचारशीलौ व्याख्यातौ ।

ग्रामकूटमिति । ग्राममुख्यं, अव्यक्षं वा, सत्री ब्रूयात्, किमिति, असौ जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी, प्रभूतद्रव्यः प्रचुरधनः । तस्य अयं अनर्थः आगतित इति शेषः । तेन उपस्थितानर्थापदेशेन, एनं धनिकं, आहारयस्व अर्थात् सर्वस्वं, इति । स चेदित्यादि स्पष्टम् ।

कूटसाक्षिपरीक्षणमाह— कृतकाभियुक्तो वेति । मृषाभियुक्तः सत्री, कूटसाक्षिणः अभिज्ञातान् शङ्कितान्, अर्थवैपुल्येन प्रभूतधनार्पणोपधया, आरभेत प्रलोभयेत् । ते चेदित्यादि स्पष्टम् ।

तेनेति । उक्तेन कूटसाक्षिविधानेन, कूटश्रावणकारकाः अग्रहीत एव ऋग्ने 'ऋणममुकेन मत्सकाशादेतावद् गृहीतमि'त्येवं मृषार्थं प्रातिवेशिकानानुवेशिकांश्च साक्ष्यार्थं ये श्रावयन्ति त एते कूटश्रावणितारः, व्याख्याताः उक्तविधाना बोद्धव्याः ।

(१) कौ. ४।४.

यं वेत्यादि । यं वा पुरुषं, मन्त्रयोगमूलकर्मभिः मन्त्रोपायैरौषधप्रयोगैश्च, श्माशानिकैर्वा श्मशानकरणीय-कर्मभिर्वा, संवननकारकं वशीकरणकर्तारं मन्येत, तं सत्री ब्रूयात्, किमिति, अमुष्य भार्यामित्यादि । सुवो-धम् ।

तेनेत्यादि । कृत्याभिचारशीलौ कृत्याशीलः पिशा-चावेशनकर्ता अभिचारशीलो मन्त्रप्रयोगेण मारणशीलः । श्रीम् ।

यं वा रसस्य वक्तारं क्रेतारं विक्रेतारं भैषज्या-हारव्यवहारिणं वा रसदं मन्येत, तं सत्री ब्रूयात् असौ मे शत्रुस्तस्योपघातः क्रियतां अयं चार्थः प्रतिगृह्यतां इति । स चेत् तथा कुर्याद्, रसद इति प्रवास्येत । तेन मदनयोगव्यवहारी व्याख्यातः ।

यं वा नानालोहक्षारणां अङ्गारभस्त्रासदंशमुष्टि-काधिकरणीविम्बटङ्कमूषाणामभीक्ष्णं क्रेतारं मषी-भस्मधूमदिग्धहस्तवस्त्रलिङ्गं कर्मारोपकरणसंवर्गं कूटरूपकारकं मन्येत, तं सत्री शिष्यत्वेन संव्यव-हारेण चानुप्रविश्य प्रज्ञापयेत् । प्रज्ञातः कूटरूप-कारक इति प्रवास्येत ।

तेन रागस्यापहर्ता कूटसुवर्णव्यवहारी च व्याख्यातः ।

आरवधारस्तु हिंसाया गूढाजीवास्त्रयोदश ।

प्रवास्या निष्कर्यार्थं वा ददुर्दोषविशेषतः ॥

यं वा रसस्येत्यादि । रसस्य विषस्य । भैषज्याहार-व्यवहारिणं भेषजाभ्यवहार्ययोर्विषोपयोजनशीलम् । शेषं सुगमम् । तेनेति । उक्तेन रसदविधानेन, मदनयोग-व्यवहारी मदनयोगः मदनजनकौषधदानोपायः तद्व्यव-हारी, व्याख्यातः ।

यं वेति । यं वा, नानालोहक्षारणां नानाजातीयानां लोहानां क्षारणां च, अङ्गारादीनां अङ्गारो निर्वाणाभिक-मिन्धनं भस्त्रा ध्यानहतिः सदंशः कङ्कमुखः मुष्टिका कर्मारोपकरणभेदः अधिकरणी लोहाभिघाताधारः, विम्बः प्रतिमा, टङ्कः दारणः, मूषा ताम्राद्यावर्तनी, इत्येतासां, अभीक्ष्णं क्रेतारं, मषीभस्मधूमदिग्धहस्तवस्त्रलिङ्गं

(१) कौ. ४।४.

मध्याद्युपलितहस्तवस्त्रचिह्न, कर्मारोपकरणमवर्गं अयस्कार-
कर्मसाधनसंयत्नं, कूटरूपकारकं मन्येत, तं सत्री
शिष्यत्वेन, संव्यवहारेण च परस्परव्यवहारेण च, अनु-
प्रविश्य आश्रित्य, प्रज्ञापयेत् ईदृग्व्यापारोऽयमिति राज्ञे
निवेदयेत् । प्रज्ञातः तथा विदितः, कूटरूपकारक इति,
प्रवास्येत ।

तेनेति । उक्तेन विधानेन, रागस्यापहर्ता स्वर्णादिवर्ण-
कस्य हानिकर्ता, कूटसुवर्णव्यवहारी च, व्याख्यातः
उक्तविधानो द्रष्टव्यः ।

आरब्धारस्त्विति । हिंसायाः लोकोपद्रवस्य, आरब्धारः
कर्तारः, गूढाजीवाः त्रयोदश धर्मस्थः प्रदेशा ग्राममुख्यः
अध्यक्षः कूटसाक्षी कूटश्रावकः संवननकर्ता कृत्याशीलः
अभिचारशीलः रसदः मदनयोगव्यवहर्ता कूटरूपकर्ता
कूटसुवर्णव्यवहारीत्युक्तास्त्रयोदशसंख्याः, प्रवास्याः
स्वदेशान्निष्कासयितव्याः । दोषविशेषतो निष्कयार्थं वा
दद्युः अपराधतारतम्येन दण्डं च दद्युः । श्रीम् ।

सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम्

सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम् । सन्निप्रयोगादूर्ध्वं
सिद्धव्यञ्जना माणवा माणवविद्याभिः प्रलोभ-
येयुः । प्रस्वापनान्तर्धानद्वारापोहमन्त्रेण प्रतिरोध-
कान्, संवननमन्त्रेण पारतल्पिकान् ।

तेषां कृतोत्साहानां महान्तं संघमादाय रात्रा-
वन्यं ग्राममुद्दिश्यान्त्यं ग्रामं कृतकस्त्रीपुरुषं गत्वा
ब्रूयुः— इहैव विद्याप्रभावो दृश्यताम् । कृच्छ्रः
परग्रामो गन्तुं इति । ततो द्वारापोहमन्त्रेण द्वारा-
ण्यपोह्य, 'प्रविश्यताम्' इति ब्रूयुः । अन्तर्धान-
मन्त्रेण जाग्रतामारक्षिणां मध्येन माणवानतिक्राम-
येयुः । प्रस्वापनमन्त्रेण प्रस्वापयित्वा रक्षिणः
शय्याभिर्माणवैः संचारयेयुः । संवननमन्त्रेण
भार्याव्यञ्जनाः परेषां माणवैः संमोदयेयुः ।

सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनमिति सूत्रम् । सिद्ध-
व्यञ्जनाः मुण्डजटिलादयः पूर्वोक्ताः तैः माणवानां
चोरपारदारिकादीनां कुपुंरुषाणां प्रकाशनमिति सूत्रार्थः ।
कण्टकविशेषपरिज्ञानोपायः सन्निप्रयोग उक्तः, अपर-
इदानीमभिधीयते । सन्निप्रयोगादिति । तत ऊर्ध्वं,

(१) कौ. ४१५.

सिद्धव्यञ्जना माणवाः, माणवविद्याभिः प्रस्वापनान्त-
र्धानादिकारिभिः कुमन्त्रैः, प्रलोभयेयुः, अर्थात् कण्ट-
कान् । तत्र विशेषमाह— प्रस्वापनेत्यादि । प्रतिरोध-
कान् चोरान् । पारतल्पिकान् पारदारिकान् ।

तेपामित्यादि । तेषां प्रतिरोधकारतल्पिकानाम् ।
कृतोत्साहानां स्वव्यापारकुतोभयानुष्ठानमार्गप्रदर्शकसिद्ध-
लाभजनितोत्साहाना, महान्तं संघं आदाय रात्रौ अन्यं
ग्रामं उद्दिश्य, प्रस्थिता इति शेषः, अन्यं उद्दिष्टग्रामा-
दितरं, ग्रामं, कृतकस्त्रीपुरुषं कृतकाः कृत्रिमाः स्वप्रवृ-
त्त्यानुकृत्याय दत्तसंकेताः स्वविधेयाः स्त्रीपुरुषा यस्मिंस्तं
तथाभूतं, गत्वा ब्रूयुः । किमिति, इहैव अस्मिन्नेव ग्रामे,
विद्याप्रभावः प्रस्वापनादिमन्त्रमहिमा, दृश्यताम् । पर-
ग्रामो गन्तुं कृच्छ्रः श्रमवशाद् विदूरत्वाच्चाशङ्क्यः इति ।
ततो द्वारापोहमन्त्रेण द्वारागलापोहनमन्त्रेण, द्वाराण्यपोह्य
पूर्वसंकेतापोहितार्गलेष्वेव द्वारेषु अर्गलापोहनमभिनीय
प्रविश्यतामिति ब्रूयुः । अन्तर्धानमन्त्रेण, जाग्रतां
जाग्रत्त्वेऽपि संकेतवशादपश्यन्तमिवात्मानमभिनयतां, आर-
क्षिणां मध्येन, माणवान् अतिक्रामयेयुः । प्रस्वापनमन्त्रेण,
रक्षिणः, प्रस्वापयित्वा अस्वपत एव स्वापाभिनयं कार-
यित्वा, शय्याभिः रक्षिशयनीयवर्त्मना, माणवैः संचारयेयुः ।
प्रस्वापयित्वेति ल्यत्रकरणं समासाविवक्षया । प्रतिरोधक-
प्रत्यायकमुक्त्वा पारतल्पिकप्रत्यायकमाह— संवननेत्यादि ।
संवननमन्त्रेण, परेषां भार्याव्यञ्जनाः परदारच्छलधारिणीः
पूर्वदत्तसंकेता एव वनिताः, माणवैः, संमोदयेयुः वशी-
करणाभिनयद्वारेण सङ्गसुखमनुभावयेयुः । श्रीम् ।

उपलब्धविद्याप्रभावानां पुरश्चरणाद्यादिशेयुर-
भिज्ञानार्थम् । कृतलक्षणद्रव्येषु वा वेदमसु कर्म
कारयेयुः, अनुप्रविष्टान् वैकत्र ग्राहयेयुः ।

कृतलक्षणद्रव्यक्रयविक्रयधानेषु योगसुरामत्तान्
वा ग्राहयेयुः । गृहीतान् पूर्वापदानसहायाननु-
युञ्जीत । पुराणचोरव्यञ्जना वा चोराननुप्रविष्टा-
स्तथैव कर्म कारयेयुः ग्राहयेयुश्च ।

गृहीतान् समाहर्ता पौरजानपदानां दर्शयेत्—
चोरग्रहणीं विद्यामधीते राजा, तस्मैपदेशादिमे

(१) कौ. ४१५.

चोरा गृहीताः, भूयश्च ग्रहीष्यामि, वारयितव्यो वः स्वजनः पापाचारः इति ।

उपलब्धविद्याप्रभावानामिति । एवं प्रत्यक्षदृष्टमन्त्र-महिम्नां, पुरश्चरणादि पुरश्चरणप्रभृतिकं मन्त्रसिद्ध्यङ्गं कर्म, आदिशेयुः, अभिज्ञानार्थं स्मरणार्थम् । कृतलक्षण-द्रव्येषु वेति । कृतस्वामिचिह्नद्रव्योपेतेषु, वेस्मसु, कर्म चौर्ये, कारयेयुः, पूर्वोक्तान् गृहीतमन्त्रान् माणवान् । अनुप्रविष्टान् वा अन्तः प्रविष्टांश्च, एकत्र क्वचिद् गृहे, ग्राहयेयुः ।

कृतलक्षणद्रव्यक्रयविक्रयाधानेष्विति । कृतलक्षण-द्रव्याणां मुष्टानां क्रयणविक्रयणाधीकरणावसरेषु, योग-सुरामत्तान् वा भेषजयुक्तमद्यपानमत्तान् वा, ग्राहयेयुः । गृहीतान् तथाग्रहणं प्रातान् माणवान्, पूर्वापदानसहा-यान् पूर्वकृतानि चौर्याणि चौर्यसहायांश्च, अनुयुञ्जीत पृच्छेत् । पुराणचोरव्यञ्जना वेति । पुरातनतस्करच्छन्नानो वा भूत्वा, चोरान् अनुप्रविष्टाः, तथैव पूर्वोक्तरीत्यैव, कर्म कारयेयुः ग्राहयेयुश्च ।

गृहीतानिति । ग्रहणं प्राप्तांश्चोरान्, समाहर्ता, पौर-जानपदानां दर्शयेत् । किं कृत्वा, चोरग्रहणीं विद्यामधीति राजेत्याद्युक्त्वा । श्रीम्.

यं चात्रापसर्पोपदेशेन शम्याप्रतोदादीनामपहर्तारं जानीयात्, तमेषां प्रत्यादिशेद्— एष राज्ञः प्रभाव इति ।

पुराणचोरगोपालकव्याधश्चगणिनश्च वनचोरा-टविकाननुप्रविष्टाः प्रभूतकूटहिरण्यकुप्यभाण्डेषु सार्थव्रजग्रामेष्वेनानभियोजयेयुः । अभियोगे गूढ-बलैर्घातयेयुः, मदनरसयुक्तेन वा पथ्यादनेन । अनु-गृहीतलोप्त्रभारानायतगतपरिश्रान्तान् प्रस्वपतः ग्रहवणेषु योगसुरामत्तान् वा ग्राहयेयुः ।

पूर्ववच्च गृहीत्वैनान् समाहर्ता प्ररूपयेत् ।

सर्वज्ञख्यापनं राज्ञः कारयन् राष्ट्रवासिषु ॥

यं चात्रेति । यं च जनं, अत्र पुरादौ, शम्याप्रतो-दादीनां अपहर्तारं युगकीलकतोत्रादीनां चोरयितारं, अपसर्पोपदेशेन जानीयात्, तं, एषां पौरजानपदानां,

(१) कौ. ४।५.

प्रत्यादिशेत् प्रज्ञापयेत्, किं कृत्वा, एष राज्ञः प्रभाव इति अन्यल्पविषयस्यापि चौर्यस्येदं परिज्ञानं राज्ञो माहात्म्यकृतमित्युक्त्वा ।

वनचोरग्रहणोपायमाह — पुराणचोरेत्यादि । पुराण-चोराः गोपालकाः व्याधाः श्वगणिनश्च, राजपुरुषभूता इति शेषः, वनचोराटविकान् वनचोरान् अटवीचरान् पुलिन्दार्दांश्च, अनुप्रविष्टाः, प्रभूतकूटहिरण्यकुप्यभाण्डेषु प्रभूतानि प्रचुराणि कृतानि फालानि हिरण्यानि कुप्य-भाण्डानि च येषु तेषु तथाभूतेषु, सार्थव्रजग्रामेषु वणिक्संघगतागतमार्गेषु गोष्ठेषु ग्रामेषु च, एनान् वनचोराटविकान्, अभियोजयेयुः चौर्यायोद्योजयेयुः । अभियोगे आरब्धे सति, गूढबलैः गूढसैन्यैः, घातयेयुः । मदनरसयुक्तेन मोहजनकविषयुक्तेन, पथ्यादनेन वा पथिभोजनेन वा, घातयेयुः । अनुगृहीतलोप्त्रभारान् उपगृहीतमुष्टद्रव्यभारान्, आयतगतपरिश्रान्तान्, दीर्घा-ध्वगमनपरिखिन्नान्, अत एव प्रस्वपतः एनान्, ग्राहयेयुः । प्रहवणेषु तुष्टिभोजनदानेषु, योगसुरामत्तान् वीर्यवन्मद्यपानमत्तान् वा, ग्राहयेयुः ।

अध्यायान्ते श्लोकमाह— पूर्ववच्चेति । समाहर्ता, पूर्ववत् पूर्वोक्तपुरराष्ट्रचोरवत्, एनान् वनचोराटवि-कान्, गृहीत्वा, राज्ञः सर्वज्ञख्यापनं 'चोरग्रहणीं विद्या-मधीति राजा सर्वांश्चोरान् जानाति तत्प्रभावादिमे चोरा गृहीताः' इत्येवं सर्वज्ञत्वख्यापनं, कारयन्, राष्ट्रवासिषु, प्ररूपयेद् दर्शयेत् । श्रीम्.

शङ्कारूपकर्माभिग्रहः

शङ्कारूपकर्माभिग्रहः । सिद्धप्रयोगादूर्ध्वं शङ्का-रूपकर्माभिग्रहः । क्षीणदायकुटुम्बमल्पनिर्वेशं विप-रीतदेशजातिगोत्रनामकर्मापदेशं प्रच्छन्नवृत्तिकर्माणं मांससुरामक्ष्यभोजनगन्धमाल्यवस्त्रविभूषणेषु प्रस-क्तमतिव्ययकर्तारं पुंश्रलीचूतशौण्डिकेषु प्रसक्तम-भीक्षणप्रवासिनमविज्ञातस्थानगमनमेकान्तारण्यनि-ष्कुटविकालचारिणं प्रच्छन्ने सामिषे वा देशे बहु-मन्त्रसंनिपातं सद्यःक्षतव्रणानां गूढप्रतिकारयितारं अन्तर्गृह्नित्यमभ्यधिगन्तारं कान्तापरं परपरि-

(१) कौ. ४।६.

ग्रहाणां परस्त्रीद्रव्यवेदमनामभीक्षणप्रप्रारं कुत्सित-
कर्मशस्त्रोपकरणसंसर्गं विरात्रे छन्नकुड्यच्छायासंचा-
रिणं विरूपद्रव्याणामदेशकालविक्रेतारं जातवैराशयं
हीनकर्मजातिं विगूह्यमानरूपं लिङ्गेनालिङ्गिनं
लिङ्गिनं वा भिन्नाचारं पूर्वकृतापदानं स्वकर्मभिरपदिष्टं
नागरिकमहामात्रदर्शने गूह्यमानमपसरन्तमनुच्छ्वा-
सोपवेशिनमाविष्टं शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णं शस्त्रहस्त-
मनुष्यसंपातत्रासिनं हिंस्रस्तेननिधिनिक्षेपापहार-
वरप्रयोगगूढाजीविनामन्यतमं शङ्केतेति शङ्काभि-
ग्रहः ।

शङ्कारूपकर्माभिग्रह इति सूत्रम् । आत्मनः परान्
प्रति परेपामात्मानं प्रति चेति शङ्का द्विरूपा रूपं
लोपत्रं कर्म संधिच्छेदादि एतैर्लिङ्गैरभिग्रहः चोराणां
ग्रहणमभिधीयत इति सूत्रार्थः । गूढाजीविनां रक्षा
प्रक्रान्ता । तत्र सिद्धव्यञ्जनादिभिर्ग्रहीतुं शक्यानां गूढा-
जीविनां ग्रहणप्रकार उक्तः, तदग्राह्याणां शङ्कारूपकर्म-
भिर्ग्रहणप्रकार इदानीमुच्यते ।

सिद्धप्रयोगादूर्ध्वमिति । सिद्धव्यञ्जनप्रयोगात् परतः,
शङ्कारूपकर्माभिग्रहः, वक्ष्यत इति क्रियाध्याहारः ।
शङ्काभिग्रहं तावदाह— क्षीणदायकुटुम्बमिति । दायः
कुलकमागतं द्रव्यं कुटुम्बं कृषिः तदुभयं क्षीणं यस्य तं
तथाभूतं, अल्पनिवेशं भक्तव्ययापर्याप्तभृतिं कर्माननु-
रूपनिहीनभृतिं वा, विपरीतदेशजातिगोत्रनामकर्मापदेशं
अन्यथाकल्पितदेशजात्यादिव्यवहारं, प्रच्छन्नवृत्तिकर्माणं
अन्याविदितवृत्त्यर्थकर्माणं, मांससुरादिष्वष्टसु, प्रसक्तं
प्रकर्षेण सक्तं, अतिव्ययकर्तारं, पुंश्र्वलीयूतशौण्डिकेपु
प्रसक्तं, अभीक्षणप्रवासिनं पौनःपुन्यप्रवासशीलं अवि-
ज्ञातस्थानगमनं क्व तिष्ठति क्व गच्छतीत्यन्याविदित-
स्थानगमनं, एकान्तारण्यनिष्कुटविकालचारिणं विजने
वने गृह्यारामे च विकाले चरणशीलं, प्रच्छन्ने सामिषे
वा देशे बहुमन्त्रसंनिपातं अन्यदर्शनागोचरे देशे सामिषे
सद्रव्ये धनिकगृहनिकटदेशे वा बहुमन्त्रयन्तं बहुकुत्वो
गच्छन्तं च, सद्यःक्षतव्रणानां गूढप्रतिकारयितारं व्रण-
कारणोद्भेदशङ्कया रहसि चिकित्सयितारं, अन्तर्यह-
नित्यं गर्भगृहनित्योपविष्टं, अभ्यधिगन्तारं आगच्छतोऽ-
भिसुखं झटिति गत्वा प्रतिनिवर्तमानं, कान्तापरं

स्त्रीलोलं, परपरिग्रहाणां परपरिजनानां, परस्त्रीद्रव्यवेदमनां
अभीक्षणप्रप्रारं, कुत्सितकर्मशस्त्रोपकरणसंसर्गं मारण-
चौर्यादिगर्हितकर्मोपयोगिषु शस्त्रेषु उपकरणेषु परिचय-
वन्तं, शास्त्रेत्यपि पाठः । विरात्रे अर्धरात्रे, छन्नकुड्य-
च्छायासंचारिणं छन्नं यथा भवति तथा कुड्यच्छायायां
संचरणशीलं, विरूपद्रव्याणां विनष्टस्वरूपाणां द्रव्याणां,
अदेशकालविक्रेतारं अदेशे अकाले च विक्रयकारिणं,
जातवैराशयं, हीनकर्मजातिं, विगूह्यमानरूपं छाद्यमान-
स्वरूपं, लिङ्गेनालिङ्गिनं अनुपात्तलिङ्गिचिह्नं लिङ्गि-
त्रतेन युक्तं, लिङ्गिनं वा भिन्नाचारं उपात्तलिङ्गिचिह्नं
वा लिङ्गिभ्रतरहितं, पूर्वकृतापदानं पूर्वमन्यत्र कृतचौर्यं,
स्वकर्मभिरपदिष्टं परदारग्रहणादिभिः ख्यातं, नागरिक-
महामात्रदर्शने नगररक्षिपुरुषस्य महामात्रस्य च दर्शने,
गूह्यमानमपसरन्तं स्वरूपं छाद्यन्तं निलीय चरन्तं च,
अनुच्छ्वासोपवेशिनं तूर्णां बहिर्भूम्यादावुपवेशनशीलं,
आविष्टं भीतं, शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णं शुष्कः श्वामः
भिन्नः अयथाप्रकारश्च स्वरो मुखवर्णश्च यस्य तं तथा-
भूतं, शस्त्रहस्तमनुष्यसंपातत्रासिनं शस्त्रपाणिपुरुषागमन-
भीरुकं, एवम्भृतैर्विशेषणैर्यथासंभवं युक्तं जनं, हिंस्र-
स्तेनादीनां हिंस्रो घातुकः स्तेनश्चोरः निधिनिक्षेपापहारो
निधिनिक्षेपयोरपहर्ता वरप्रयोगः वरः क्रोधस्तान्निमित्तः
प्रयोगः शस्त्रप्रयोगो यस्य स तथाभूतः गूढाजीवी प्रतीतः
इत्येतेषां अन्यतमं, शङ्केत । 'वरो ना भूपजामात्रो-
दैवादेरीप्सिते क्रुधि' इति केशवः । इति शङ्काभि-
ग्रह इति । व्याख्यात इति शेषः । श्रीम् .

रूपाभिग्रहस्तु । नष्ट्रापहृतमविद्यमानं तज्जात-
व्यवहारिषु निवेदयेत् । तच्चेन्निवेदितमासाद्य
प्रच्छादयेयुः, साचिव्यकरदोषमाप्नुयुः । अजा-
नन्तोऽस्य द्रव्यस्यातिसर्गेण मुच्येरन् । न चानि-
वेद्य संस्थाध्यक्षस्य पुराणभाण्डानामाधानं विक्रयं
वा कुर्युः ।

तच्चेन्निवेदितमासाद्येत, रूपाभिग्रहीतमागमं
पृच्छेत् — कुतस्ते लब्धं इति । स चेद् ब्रूयाद्—
दायाद्यादवाप्तममुष्माल्लब्धं, क्रीतं कारितमाधि-
प्रच्छन्नं अयमस्य देशः कालश्चोपसंप्राप्तः, अय-

मस्यार्थः प्रमाणं लक्षणं मूल्यं च इति, तस्या-
गमसमाधौ मुच्येत ।

नाष्टिकश्चेत् तदेव प्रतिसंद्ध्यत्, यस्य पूर्वो
दीर्घश्च परिभोगः शुचिर्वा देशस्तस्य द्रव्यमिति
विद्यात् । चतुष्पदानामपि हि रूपलिङ्गसामान्यं
भवति, किमङ्गपुनरेकयोनिद्रव्यकर्तृप्रसूतानां कुप्या-
भरणभाण्डानाम् इति ।

रूपाभिग्रहस्त्विति । वक्ष्यत इति शेषः । नष्टापहृत-
मिति । प्रमादभ्रष्टं चोरेणापहृतं द्रव्यं, अविद्यमानं,
तज्जातव्यवहारिषु तज्जातिद्रव्यव्यवहारिषु, निवेदयेत् ।
निवेदितं आसाद्य प्रच्छादयेयुश्चेत्, साचिव्यकरदोषं
चौर्यसाहाय्यकारिदण्डं, आप्नुयुः । अजानन्तः अमु-
कस्येदमित्यविदन्तः, अस्य द्रव्यस्य, अतिसर्गेण अर्पणेन,
मुच्येरन् अपराधमुक्ताः स्युः । न चेति । संस्थाव्यक्षस्य
पण्यसंस्थाधिकारिणः, अनिवेद्य, पुराणभाण्डानां,
आधानं विक्रयं वा, न च कुर्युः ।

तच्चेदिति । निवेदितं तद् नष्टापहृतं, आसाद्येत चेत्,
रूपाभिग्रहीतं जनं, आगमं पृच्छेत् -- कुतस्ते लब्धमिति ।
स चेद्ब्रूयात्, किमिति, दायाद्यादवातं दायादभावा-
ल्लब्धं, अमुष्माल्लब्धं, क्रीतं, कारितं नवनिर्मापितं,
आधिप्रच्छन्नं आधीकरणवशादियन्तं कालमप्रकाशतया
स्थितं, अयं अस्य देशः अस्यार्थस्यायं साक्षी यद्वा
अस्यायं प्रदेशः, उपसंप्राप्तः उपसंप्राप्तिमान्,
अस्यायं कालश्च उपसंप्राप्तिमान्, अयं अस्य
अर्धो रूपमूल्यं, इदं प्रमाणं लक्षणं मूल्यं च
इदमस्य सुवर्णकर्षादिमानं इदमस्य चिह्नं इदमस्य प्रकृ-
तिमूल्यं, इति, तर्हीति शेषः, तस्य द्रव्यस्य, आगम-
समाधौ आगमसमर्थने रति, मुच्येत रूपाभिग्रहीतः ।
अन्यथा तु तस्य चोरदण्ड इत्यर्थम् ।

नाष्टिकश्चेदिति । नाष्टिकोऽभियोक्ता, तदेव प्रतिसं-
द्ध्याच्चेत् रूपाभिग्रहीतप्रयुक्तमेव समाधानं यदि प्रतिसं-
दधीत, यस्य रूपाभिग्रहीतनाष्टिकयोरन्यतरस्य, पूर्वो, दी-
घश्च, परिभोगः अनुभवः, शुचिर्वा देशः विश्वास्यवचन-
श्च साक्षी, तस्य द्रव्यमिति, विद्यात् निर्णयेत् । न च
तदीयत्वमसंभावितमित्याह — चतुष्पदानामपि हीति ।
तेषामपि हि भिन्नयोर्न्यादिप्रसूतानां, रूपलिङ्गसामान्यं

आकृतिसादृश्यं चिह्नसादृश्यं च, भवति । एवं स्थिते इति
शेषः, एकयोनिद्रव्यकर्तृप्रसूतानां, कुप्याभरणभाण्डानां
कुप्यनिर्मितभूषणपात्राणां, किमङ्गपुनः किमु वक्तव्यं,
तेषां रूपलिङ्गसामान्यं सुतरां भवतीत्यर्थः । इति अतः
कारणात् । श्रीमू.

स चेद् ब्रूयात् --- याचितकमवक्रीतकमाहितकं
निक्षेपमुपनिधिं वैयापृत्यभर्मं वामुष्येति, तस्याप-
सारप्रीतसंधानेन मुच्येत ।

नैवं इत्यपसारो वा ब्रूयाद्, रूपाभिग्रहीतः
परस्य दानकारणमात्मनः प्रतिग्रहकारणमुपलिङ्गनं
वा दायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकोपदेष्टृभिरुप-
श्रोतृभिर्वा प्रतिसमानयेत् ।

उज्झितप्रनष्टनिष्पतितोपलब्धस्य देशकाललाभो-
पलिङ्गनेन शुद्धिः । अशुद्धस्तच्च तावच्च दण्डं
दद्यात् । अन्यथा स्तेयदण्डं भजेत इति रूपाभि-
ग्रहः ।

स चेदिति । स रूपाभिग्रहीतः, याचितकं याञ्चया
लब्धं, अवक्रीतकं भाटकगृहीतं, आहितकं 'आधित्वेन
गृहीतं, निक्षेपं भूषणभाण्डनिर्माणार्थं निक्षितं, उपनिधिं
रक्षणाय विश्वासाद् दत्तं, वैयापृत्यभर्मं वा कर्मणः
कृतस्य दत्तां भृतिं वा, अमुष्येति ब्रूयाच्चेत् अमुकपुरुष-
संबन्धीत्येवं वदेच्चेत्, अर्थान्नाष्टिकार्थितं रूपं, तस्य
द्रव्यस्य, अपसारप्रतिसंधानेन मदीयमेवेदं याचितका-
दीत्यपसारपुरुषकृतेनाभ्युपगमेन, मुच्येत, अर्थात् सः ।

नैवमित्यपसारो वा ब्रूयादिति । न मे याचितकादी-
त्यपसारो यदि वदेत्, रूपाभिग्रहीतः, परस्य अपसारस्य,
दानकारणं, आत्मनः प्रतिग्रहकारणं, उपलिङ्गनं वा
लिङ्गैरभिज्ञापनं च, प्रतिसमानयेत् निरूपयेत्, कैः,
दायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकोपदेष्टृभिः उपश्रोतृभिर्वा,
वाशब्दश्चार्थे । तत्र निबन्धको लेखकः, उपदेष्टा लेख-
नीयवाक्यवक्ता, शेषाः प्रतीताः ।

उज्झितेत्यादि । उज्झितप्रनष्टनिष्पतितोपलब्धस्य
उज्झितं विस्मृतं वस्त्राभरणादि प्रनष्टं स्वयूथच्युतं
गोमहिषादि निष्पतितं छन्नापसृतं दासीदासादि तस्योप-

लब्धस्य देशकाललाभोपलिङ्गनेन देशादीनां विभावनेन, शुद्धिः अभियोक्तुः । अशुद्धः अविभावितदेशादिः सः, तच्च तावच्च दण्डं दद्यात् यत् स्वीयमित्युक्तं तत्समं अन्यच्च तत्समपरिमाणं दण्डं दद्यात् । अभियोक्ता । अन्यथा स्तेयदण्डं भजेत देशानुपलिङ्गनेन स्वत्वस्याविभावने, चौर्यदण्डभाग् भवति । इति रूपाभिग्रह इति । व्याख्यात इति शेषः । श्रीम्.

कर्माभिग्रहस्तु । मुषितवेश्मनः प्रवेशनिष्कसनमद्वारेण, द्वारस्य संधिना बीजेन वा वेधं, उत्तमागारस्य जालवातायननीत्रवेधं, आरोहणावतरणे च कुड्यस्य वेधं उपखननं वा गूढद्रव्यनिक्षेपग्रहणोपायमुपदेशोपलभ्यं अभ्यन्तरच्छेदोत्करपरिमर्दोपकरणमभ्यन्तरकृतं विद्यात् । विपर्यये बाह्यकृतम् । उभयत उभयकृतम् ।

अभ्यन्तरकृते पुरुषमासन्नं व्यसनिनं क्रूरसहायं तस्करोपकरणसंसर्गं स्त्रियं वा दरिद्रकुलामन्यप्रसक्तां वा परिचारकजनं वा तद्विधाचारमतिस्वप्नं निद्राङ्कान्तमाधिक्रान्तमाविष्टं शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णमनवस्थितमतिप्रलापिनमुच्चारोहणसंरब्धगात्रं विलूननिघृष्टभिन्नपाटितशरीरवस्त्रं जातकिणसंरब्धहस्तपादं पांसुपूर्णकेशनखं विलूनभुप्रकेशनखं वा सम्यकूस्तातातुलिप्तं तैलप्रमृष्टगात्रं सद्योधौतहस्तपादं वा पांसुपिच्छिलेषु तुल्यपादपदनिक्षेपं प्रवेशनिष्कसनयोर्वा तुल्यमाल्यमद्यगन्धवस्त्रच्छेदविलेपनस्वेदं परीक्षेत । चोरं पारदारिकं वा विद्यात् ।

सगोपस्थानिको बाह्यं प्रदेशं चोरमार्गणम् ।

कुर्यान्नागरिकश्चान्तर्दुर्गे निर्दिष्टहेतुभिः ॥

कर्माभिग्रहस्त्विति । उच्यत इति शेषः । चौर्यं नाम त्रिविधं— आभ्यन्तरकृतं बाह्यकृतं उभयकृतमिति । तत्राभ्यन्तरचौर्यमाह— मुषितवेश्मन इति । चोरितगृहस्य, अद्वारेण पश्चाद्द्वारेण प्रवेशनिष्कसनं प्रवेशो निर्गमनं च, द्वारस्य संधिना मुरुङ्गया बीजेन वेधसाधनेन वा वेधं निर्माणं, उत्तमागारस्य उपरिभूमिकायाः जालवातायननीत्रवेधं आनायगवाक्षवलीक-

भेदनं, आरोहणावतरणे च कुड्यस्य वेधं पदन्यासस्थानकरणं, गूढद्रव्यनिक्षेपग्रहणोपायं कुड्यगृहितस्य द्रव्यनिक्षेपस्य ग्रहणं प्रत्युपायभूतं, उपदेशोपलभ्यं उपदेशैकविज्ञेयं, अभ्यन्तरच्छेदोत्करपरिमर्दोपकरणं अन्तर्गतकुड्यच्छेदपांसूत्करपरिमर्दनसाधनं, उपखननं वा कुड्यसमीपभूखननं वा, अभ्यन्तरकृतं आभ्यन्तरजनकृतं, विद्यात् अभ्यहेत् । विपर्यये उक्तलक्षणवैपरीत्ये, बाह्यकृतं विद्यात् । उभयतः उभयलक्षणसत्त्वे, उभयकृतं विद्यात् ।

अभ्यन्तरकृतत्वशङ्कायां परीक्षणमाह— अभ्यन्तरकृत इति । अभ्यन्तरजनकृतं चौर्यमित्यूहे सति, पुरुषं आसन्नं आभ्यन्तरं, परीक्षेत, कथम्भूतं परीक्षेत, व्यसनिनं द्यूतमद्यप्रसक्तं, क्रूरसहायं क्रूरस्यक्तात्मानस्तेषां सहायं, तस्करोपकरणसंसर्गं, स्त्रियं वा दरिद्रकुलां, अन्यप्रसक्तां स्त्रियं वा, परिचारकजनं वा, तद्विधाचारं अन्यस्त्रीप्रसक्तं, अतिस्वप्नं मोषणानन्तरदिवसेऽतिमात्रनिद्रं, निद्राङ्कान्तं स्वापाभावश्रान्तं, आधिक्रान्तं, आविष्टं भीतं, शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णं, अनवस्थितं, अतिप्रलापिनं, उच्चारोहणसंरब्धगात्रं उच्चारोहणपरवशवपुषं, विलूननिघृष्टभिन्नपाटितशरीरवस्त्रमित्यादि विशेषणसतकं स्फुटार्थम् । पांसुपिच्छिलेषु तुल्यपादपदनिक्षेपं पांसुषु पङ्किलेषु च स्वपादसदृशचरणन्यासं, प्रवेशनिष्कसनयोर्वा प्रवेशनिर्गमनयोर्वा, तुल्यमाल्यमद्यगन्धवस्त्रच्छेदविलेपनस्वेदं मुषितवेश्मनतेन माल्यमद्यगन्धेन समानगन्धं वस्त्रच्छेदेन समानवस्त्रच्छेदं विलेपनस्वेदेन तुल्यविलेपनस्वेदम् । चोरं पारदारिकं वा विद्यादिति । पूर्वोक्तविशेषणाविशिष्टं परीक्ष्य तस्कर इति वा पारतल्पिक इति वा जानीयात् ।

विधिशेषं श्लोकेनाह — सगोपस्थानिक इति । गोपो दशकुलीपञ्चकुलीरक्षकः स्थानिको दुर्गजनपदचतुर्भागरक्षी ताभ्यां सहितः, प्रदेशं कण्टकशोधनाधिकृतः, बाह्यं चोरमार्गणं कुर्यात् । नागरिकश्च, अन्तर्दुर्गे दुर्गान्तर्भागे, निर्दिष्टहेतुभिः, चोरमार्गणं कुर्यात् । श्रीम्.

वाक्यकर्मानुयोगः

वाक्यकर्मानुयोगः । मुषितसंनिधौ बाह्यानामभ्यन्तराणां च साक्षिणमभिज्ञस्तस्य देशजातिगोत्रनामकर्मसारसहायनिवासाननुयुञ्जीत । तांश्चापदेशैः

प्रतिसमानयेत् । ततः पूर्वस्याहः प्रचारं रात्रौ निवासं च आ ग्रहणादिति अनुयुञ्जीत । तस्यापसारप्रतिसंधाने शुद्धः स्यात् । अन्यथा कर्मप्राप्तः ।

त्रिरात्रादूर्ध्वमग्राह्यः शङ्कितकः, पृच्छाभावादन्यत्रोपकरणदर्शनात् ।

अचोरं चोर इत्यभिव्याहरतश्चोरसमो दण्डः, चोरं प्रच्छादयतश्च ।

वाक्याकर्मानुयोग इति मूत्रम् । वाक्येन कर्मणा च शङ्काभिग्रहीतस्य अनुयोगोऽभिधीयत इति सूत्रार्थः । शङ्कादिलिङ्गानां व्यभिचारसंभवाद् वस्तुतोऽचोरस्यापि दण्डभयादिनानृतवादित्वदर्शनाच्च चोरत्वनिर्णयाय वाक्यकर्मानुयोगः प्रस्तुयते ।

मुषितसंनिधाविति । चोरहृतधनस्य जनस्य संनिधौ, ब्राह्मणानां अभ्यन्तराणां च संनिधौ, साक्षिणं, अभिशस्तस्य शङ्काभिग्रहीतस्य, देशं, जातिं, गोत्रं, नाम, कर्म, सारं धनं, सहायं निवासं चेत्येतान् देशादीन् अष्टौ, अनुयुञ्जीत । तांश्चेति । अभिशस्तदेशादीन्, अपदेशैः निमित्तैरुपपत्तिभिः, प्रतिसमानयेत् पर्यालोचयेत् सुष्ठु न वेति । तत इति । पश्चात्, पूर्वस्य अहः प्रचारं, रात्रौ निवासं च शयनं च, आ ग्रहणात् यावदभिशस्तग्रहणकालं, इत्यनुयुञ्जीत अनुयोगोचितेन प्रकारेण पृच्छेद्, अभिशस्तम् । तस्य अभिशस्तस्य, अपसारप्रतिसंधाने अपराधापसरणकारणोपलब्धौ, शुद्धः स्याद्, अभिशस्तः । अन्यथा कर्मप्राप्तः कृतापराधः ।

त्रिरात्रादूर्ध्वमिति । तिसृषु रात्रिषु अतीतासु, शङ्कितकः, अग्राह्यः ग्रहीतुं योग्यो न भवति, कस्मात्, पृच्छाभावात् मोषणदिवसपूर्वदिवसादिचरितस्य विस्मृति-संभवेन प्रश्नायोगात्, अन्यत्रोपकरणदर्शनात् मोषणसाधनानामचोरगृहेषूपलम्भसंभवाच्च ।

अचोरमिति । तं, चोर इति अभिव्याहरतः प्रदेशादेः, चोरसमो दण्डः । चोरं प्रच्छादयतश्च तं अचोर इत्यभिव्याहरतश्च, अथवा चोरं गृहान्तरवस्थाप्याप्रकाशयतश्च, चोरसमो दण्डः । श्रीमू.

चोरेणाभिस्तो वैरद्वेषाभ्यमपदिष्टकः शुद्धः

(१) कौ. ४।८.

स्यात् । शुद्धं परिवासयतः पूर्वः साहसदण्डः ।

शङ्कानिष्पन्नं उपकरणमन्त्रिसहायरूपवैयापृत्य-करान् निष्पादयेत् । कर्मणश्च प्रवेशद्रव्यादानांशविभागैः प्रतिसमानयेत् ।

एतेषां कारणानां अनभिसंधाने विप्रलपन्तमचोरं विद्यात् । दृश्यते ह्यचोरोऽपि चोरमार्गे यदृच्छया संनिपाते चोरवेषशर्हभाण्डसामान्येन गृह्यमाणो दृष्टः चोरभाण्डस्योपवासेन वा यथा हि माण्डव्यः कर्महेतुशभयादचोरः 'चोरोऽस्मि' इति ब्रुवाणः ।

तस्मात् समाप्तकरणं नियमयेत् ।

मन्दापराधं बालं वृद्धं व्याधितं मत्तमुन्मत्तं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तमत्याशितमामकाशितं दुर्बलं वा न कर्म कारयेत् ।

चोरेणाभिस्त इति । चोरेणान्यश्चोर इत्युक्तः, वैरद्वेषाभ्यां अपदिष्टकः वैरेण द्वेषेण च निमित्तेन कृताभि-शंसन इति विभावितश्चेत्, शुद्धः स्यात् । शुद्धं, परिवासयतः अमोचयतः प्रदेशः, पूर्वः साहसदण्डः ।

शङ्कानिष्पन्नमिति । शङ्काग्रहीतं, उपकरणादीन् पञ्च, निष्पादयेत् पृष्ट्वा साधयेत् । तत्र रूपं लोप्यं, शेषं प्रतीतम् । कर्मणश्च प्रवेशेत्यादि । चौर्यार्थं द्रव्य-रक्षागृहे केन केन प्रवेशः कृतः केन द्रव्यं गृहीतं कस्य कियानंशविभागः इति प्रवेशादिप्रश्नैस्तत्त्वं विचारयेत् ।

एतेषां कारणानामिति । उक्तानां चोरत्वसाधकानां, अनभिसंधाने अपरिचिन्तने, विप्रलपन्तं भयादिना विरुद्धवाचिनमपि, अचोरं विद्यात् । किमर्थं परीक्षायत्नो महानुपदिश्यत इत्यत्राह — दृश्यते हीत्यादि । चोरभाण्डस्योपवासेन मुष्टद्रव्यस्य समीपस्थित्या । माण्डव्यः आणिमाण्डव्यो नाम महर्षिः । स किलाचोर एव राजपुरुषताडनादिक्लेशभीत्या चोरमात्मानं वदन् विनैव परीक्षां तं चोरं मन्यमानेन राज्ञा शूलमारोपित इति महाभारते कथानुसंधेया ।

तस्मादिति अदण्ड्यदण्डप्रणयनं मा प्रसाङ्क्षीदिति हेतोः, समाप्तकरणं सम्यग् बहुप्रकारपरीक्षावधारितापराधं, नियमयेत् दण्डयेत् ।

मन्दापराधमित्यादि । अल्पापराधम् । अत्याशितं
अतिमात्रभुक्तान्नम् । आमकाशितं अजीर्णान्नम् ।

श्रीम्.

तुल्यशीलपुंश्र्वलीप्रावादिकथावकाशभोजनदातृ-
भिरपसर्पयेत् । एवमतिसंदध्यात् । यथा वा निक्षे-
पापहारे व्याख्यातम् ।

आप्तदोषं कर्म कारयेत् । न त्वेव स्त्रियं गर्भिणीं
सूतिकां वा मासावरप्रजाताम् । स्त्रियास्त्वर्धकर्म ।
वाक्यानुयोगो वा ।

ब्राह्मणस्य सत्रिपरिग्रहः श्रुतवतस्तपस्विनश्च ।
तस्यातिक्रम उत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च कर्मणा
व्यापादनेन च ।

व्यावहारिकं कर्मचतुष्कं— षड् दण्डाः, सप्त
कशाः, द्वावुपरिनिबन्धौ, उदकनालिका च ।

चोरादीन् कथं जानीयादित्याह— तुल्यशीलित्यादि ।
तुल्यशीलादिभिः तुल्यशीलाः समानवृत्ताः पुंश्र्वल्यो
बन्धक्यः, प्रावादिकाः प्रवदनचारिणः दक्षमाषाः
कथावकाशभोजनदातारः कथादातारः कथकाः अव-
काशदातारो भोजनदातारश्च इत्येतैः, अपसर्पयेत्
अपसर्पैः कृतैर्जानीयात्, अर्थाच्चोरादीन् । एवमति-
संदध्यात् उक्तेन प्रकारेण तान् वञ्चयेत् । ज्ञानोपायान्तर-
मन्यत्रोक्तं चेहातिदिशति— यथा वेति । निक्षेपापहारे,
यथा व्याख्यातं 'क्षीणदायकुटुम्बमि'त्यादिना निरूपितं,
तथा वा जानीयादिति वाक्यशेषः ।

निश्चितापराधस्य दण्डमाह— आप्तदोषमिति ।
निश्चितापराधं, कर्म कारयेत् । गर्भिण्याः स्त्रियाः प्रसूता-
याश्चानतीतमासाया न दण्ड इत्याह— न त्वेवेत्यादि ।
स्त्रियास्त्वर्धकर्ममिति । पुंसो यावद् दण्डकर्म विहितं
तस्यार्धं स्त्रियाः । वाक्यानुयोगो वा वाचा परिभाषणं
वा कर्तव्यं, अर्धस्याप्ययोगे ।

ब्राह्मणस्येति । तस्य, श्रुतवतो विदुषः, तपस्विनश्च,
सत्रिपरिग्रहः सत्रिभिः परिग्रहणं तथा परिग्रहणेन ततइतः
पर्यटनक्लेशयोजनेति यावत्, अर्थाद् दण्डः । तस्यातिक्रम
इति । उक्तदण्डातिरिक्तदण्डकरणे, कर्तुः, कारयितुश्च,

(१) कौ. ४।८.

व्य. कां. २१२.

उत्तमो दण्डः उत्तमसाहसः, कर्मणा, व्यापादनेन च
द्रोहचिन्तनेन च हेतुना ।

व्यावहारिकं कर्मचतुष्कमिति । लोकव्यवहारप्रसिद्धानि
चतुष्प्रकाराणि दण्डकर्माणि भवन्ति । षड् दण्डाः
दण्डाघाताः पडित्येकः प्रकारः, सप्त कशाः कशाप्रहाराः
इति द्वितीयः, द्वौ उपरिनिबन्धौ हस्तयोः पृष्ठतः कृत्वा
संश्लेषितयोर्वन्धनं तेन सह शिरसो बन्धनं चेति द्विरूपं
बन्धनमिति तृतीयः, उदकनालिका च नासायां
सलवणोदकनिषेचनं च इति चतुर्थः । श्रीम्.

परं पापकर्मणां नववेत्रलताद्वादशकं, द्वावूर्ध्वेष्टौ,
विंशतिर्नक्तमाललताः, द्वात्रिंशत् तलाः, द्वौ वृश्चिक-
बन्धौ, उल्लम्बने च द्वे, सूची हस्तस्य, यवागूपीतस्य,
एकपर्वदहनमङ्गुल्याः स्नेहपीतस्य प्रतापनमेक-
महः, शिशिररात्रौ बल्बजाग्रशय्या चेत्यष्टादशकं
कर्म ।

तस्योपकरणं प्रमाणं प्रहरणं प्रधारणमवधारणं
च खरपट्टादागमयेत् । दिवसान्तरमेकैकं च कर्म
कारयेत् ।

पूर्वकृतापदानं, प्रतिज्ञायापहरन्तं, एकदेशष्ट-
द्रव्यं, कर्मणा रूपेण वा गृहीतं, राजकोशमवस्तु-
जन्तं, कर्मवध्यं वा राजवचनात् समस्तं व्यस्तम-
भ्यस्तं वा कर्म कारयेत् ।

सर्वापराधेष्वपीडनीयो ब्राह्मणः । तस्याभि-
शस्ताङ्को लालाटे स्याद् व्यवहारपतनाय । स्तेये
श्चा, मनुष्यवधे कबन्धः, गुरुतल्पे भगं, सुरापाने
मद्यध्वजः ।

ब्राह्मणं पापकर्माणमुद्घुष्याद्भुक्तव्रणम् ।

कुर्यान्निर्विषयं राजा वासयेदाक्रेषु वा ॥

अन्यत् पापकर्मणां चतुर्दशमेदं दण्डनकर्माह— परं
पापकर्मणामिति । परं उक्तचतुष्कातिरिक्तं, पापकर्मणां,
नववेत्रलताद्वादशकं नवहस्तदीर्घवन्यलतया द्वादश
प्रहाराः, द्वौ ऊर्ध्वेष्टौ द्वाभ्यां रज्जुभ्यां पादयोर्वेष्टनं
तेन सह शिरसोऽपि वेष्टनमिति द्विप्रकारावूर्ध्वेष्टौ,
विंशतिर्नक्तमाललताः विंशतिः करञ्जलताप्रहाराः,

(१) कौ. ४।८,

द्वात्रिंशत् तलाः चपेटाघाताः, द्वौ वृश्चिकवन्धौ वाम-
करस्य वामपादस्य च पृष्ठतः संयोज्य वन्धनमित्येको
वृश्चिकवन्धः दक्षिणकरस्य दक्षिणपादस्य च तथा
संयोज्य वन्धनमित्यपर इत्येव द्वौ, उल्लम्बने च द्वे संयुक्त-
वद्धकरद्वयस्य ऋजुध्वलम्बनं संयुक्तवद्धपादद्वयस्योर्ध्व-
लम्बनं चेति द्विप्रकारे उल्लम्बने, सूची हस्तस्य करस्य
नखे सूचीप्रवेशनं, यवागृपीतस्य यवागृपानस्य कारणे(ने)ति
शेषः, यवागृं पाययित्वा मूत्रनिरोधनेनावस्थापनमित्यर्थः ।
अङ्गुल्या एकपर्वदहनं, स्नेहपीतस्य प्रतापनमेकमहरिति
पायितसर्पिष आतपेऽग्नौ वैकदिनप्रतापनं, शिशिररात्रौ
बल्वज्राग्रशय्या च जलसिक्तबल्वज्राग्रशय्याशायनं च,
इत्यष्टादशकं पूर्वोक्तचतुष्केण सहाष्टादशावयवकं, कर्म ।

तस्येति । उक्तस्य कर्मणः, उपकरण रज्ज्वादि,
प्रमाणं दण्डकशाद्यायामः, प्रहरणं वेत्रनक्तमालादि,
प्रधारणं दण्डनीयस्य स्थापनप्रकारः, अवधारणं च
शरीरानुगुणदण्डप्रकारनिर्धारणं च, खरपट्टात् कर्तृनाम-
प्रसिद्धाच्चौर्यशास्त्राद्, आगमयेद् अधीयीत ।

दिवसान्तरमित्यादि । दण्डितं दिवसव्यवधानेनैकैकं
कर्म कृच्छ्रव्यापारं, कारयेत् । इत्युत्सर्गः ।

विशेषविधिमाह — पूर्वोत्यादि । पूर्वकृतापदानं
पूर्वकृतचौर्यं, प्रतिज्ञायापहरन्तं अपहरिष्यामीति प्रति-
श्रुत्यापहरन्तं, एकदेशदृष्टद्रव्यं नष्टद्रव्यैकदेशयुक्ततयोप-
लब्धं, कर्मणा गृहीतं अद्वारप्रवेशनिर्गमसंधिच्छेदनादि-
कर्मयुक्तत्वेन दृष्टं, रूपेण वा गृहीतं लोप्त्रयुक्तं गृहीतं,
राजकोशं अवस्तृणन्तं राजधनमवच्छादयन्तं, कर्मवध्यं
वा कृतमहापराधं वा, राजवचनात्, समस्तं समुदितं,
व्यस्तं तद्विपरीतं, अभ्यस्तं वा आवृत्तं वा, कर्म कारयेद्
यावत्प्राणवियोगम् । स एष क्षत्रियादीनां दण्डविधिः ।

ब्राह्मणस्य विधिमाह — सर्वापराधेष्वित्यादि ।
वधताडनादिना दण्डेन न योज्यः । कस्तर्हि तस्य
दण्डस्ताह— तस्येति । ब्राह्मणस्य, अभिशस्ताङ्कः,
ललाटे स्यात् कर्तव्यः, किमर्थं, व्यवहारपतनाय व्यव-
हारत् पतनाय प्रच्युतये अज्ञानात् तेनान्यः सहव्यवहारं
मा कार्षीदित्येतदर्थमित्यर्थः । अपराधभेदेनाङ्कभेदा-
नाह— स्तेय इति । तत्र, श्वा अभिशस्ताङ्कः कर्तव्यः,

मनुष्यवधे कवन्धः, गुरुतले गुरुदारगमने, भगं योनिः,
सुरापाने मद्यध्वजः ।

श्लोकमाह— ब्राह्मणमित्यादि । उद्दुष्य पापकर्मा-
मुक इति पुरग्रामादिषु सघोषणं दर्शयित्वा । निर्विषयं
कुर्यात् स्वदेशान्निष्कासयेत् । श्रीमू.

सर्वाधिकरणरक्षणम्

सर्वाधिकरणरक्षणम् । समाहर्तृप्रदेशारः पूर्व-
मध्यक्षाणामध्यक्षपुरुषाणां च नियमनं कुर्युः ।

खनिसारकर्मान्तेभ्यः सारं रत्नं वापहरतः शुद्ध-
वधः । फल्गुद्रव्यकर्मान्तेभ्यः फल्गु द्रव्यमुपस्करं
वा पूर्वं साहसदण्डः ।

पण्यभूमिभ्यो वा राजपण्यं माषमूल्यादूर्ध्वमा
पादमूल्यादित्यपहरतो द्वादशपणो दण्डः । आ
द्विपादमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः । आ त्रिपाद-
मूल्यादिति षट्त्रिंशत्पणः । आ पणमूल्यादित्यष्ट-
चत्वारिंशत्पणः । आ द्विपणमूल्यादिति पूर्वः
साहसदण्डः । आ चतुष्पणमूल्यादिति मध्यमः ।
आ अष्टपणमूल्यादित्युत्तमः । आ दशपणमूल्या-
दिति वधः ।

सर्वाधिकरणरक्षणमिति सूत्रम् । सर्वेषां अधिकरणानां
धनोत्पत्तिस्थानानां अधिकरणस्थानां वा समाहर्त्रादीनां
रक्षणं धनहरणाद् वारणं सर्वाधिकरणरक्षणं, तदुच्यते
इति सूत्रार्थः । जानपदादिकण्टकशोधनमुक्तम् । राज-
धनापहारिशोधनमधुनाभिधीयते ।

समाहर्तृप्रदेशार इति । समाहर्तारः प्रदेशारश्च, पूर्वं
कार्यारम्भात् प्राक्, अध्यक्षाणां, अध्यक्षपुरुषाणां च,
नियमनं व्यवस्थापनं कुर्युः ।

खनिसारकर्मान्तेभ्य इति । खनिकर्मान्तेभ्यः रत्नस्वर्ण-
रजतादिकर्मस्थानेभ्यः सारकर्मान्तेभ्यः चन्दनागुर्वादिकर्म-
स्थानेभ्यः, सारं रत्नं वा, अपहरतः, शुद्धवधः धन-
दण्डामिश्रो घातदण्डः । फल्गुद्रव्यकर्मान्तेभ्य इति ।
कार्पासादिद्रव्यकर्मान्तेभ्यः, फल्गु द्रव्यं, उपस्करं वा
वेशवारं वा, अपहरत इति वर्तते । पूर्वः साहसदण्डः ।

पण्यभूमिभ्यो वेति । जीरकाजमोदाद्युत्पत्तिभूमिभ्यः,

(१) कौ. ४।९.

राजपण्यं, माषमूल्यादूर्ध्वं, आ पादमूल्यात् पादः पण-
चतुर्भागश्चतुर्भाषाः आ चतुर्भागमूल्यात्, इत्येवं अप-
हरतः द्वादशपणो दण्डः । आ द्विपादमूल्यादिति । चतु-
र्भागमूल्यादूर्ध्वमष्टमापमूल्यान्तं, अपहरतः, चतुर्विंशति-
पणः । आ त्रिपादमूल्यादिति षट्त्रिंशत्पण इत्यादि आ
दशपणमूल्यादिति वध इत्येतदन्तं सुत्रोधम् । श्रीमू.

कोष्ठपण्यकुप्यायुधगारेभ्यः कुप्यभाण्डोपस्कराप-
हारेष्वर्धमूल्येष्वेत एव दण्डः । कोशभाण्डागा-
राक्षशालाभ्यश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डः ।

चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घातः । इति राज-
परिग्रहेषु व्याख्यातम् ।

बाह्येषु तु प्रच्छन्नमहनि क्षेत्रखलवेशमापणेभ्यः
कुप्यभाण्डमुपस्करं वा माषमूल्यादूर्ध्वमा पादमूल्या-
दित्यपहरतस्त्रिपणो दण्डः । गोमयप्रदेहेन वा
प्रलिप्यावधोषणम् । आ द्विपादमूल्यादिति षट्पणः,
गोमयभस्मना वा प्रलिप्यावधोषणम् । आ त्रिपाद-
मूल्यादिति नवपणः, गोमयभस्मना वा प्रलिप्याव-
धोषणं, शरावमेखलया वा । आ पणमूल्यादिति
द्वादशपणः, मुण्डनं प्रत्राजनं वा । आ द्विपण-
मूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः, मुण्डस्येष्टकाशकलेन
प्रत्राजनं वा । आ चतुष्पणमूल्यादिति षट्-
त्रिंशत्पणः । आ पञ्चपणमूल्यादिति अष्टचत्वारिं-
शत्पणः । आ दशपणमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः ।
आ विंशतिपणमूल्यादिति द्विशतः । आ त्रिंशत्पण-
मूल्यादिति पञ्चशतः । आ चत्वारिंशत्पणमूल्यादिति
साहस्रः । आ पञ्चाशत्पणमूल्यादिति वधः ।

प्रसह्य दिवा रात्रौ वान्तर्यामिकमपहरतोऽर्ध-
मूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डः । प्रसह्य दिवा रात्रौ
वा सशस्त्रस्यापहरतश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव दण्डः ।

कुटुम्बिकाध्यक्षमुख्यस्वामिनां कूटशासनमुद्रा-
कर्मसु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डः । यथापराधं वा ।

कोष्ठपण्यकुप्यायुधगारेभ्य इति । कोष्ठागारात् पण्या-
गारात् कुप्यागारात् आयुधागाराच्च, कुप्यभाण्डोपस्करा-
पहारेषु, अर्धमूल्येषु अर्धमाषमूल्यादिद्विमाषमूल्यान्तेषु

(१) कौ. ४।९.

विषये, एत एव द्वादशपणादयो, दण्डः । कोशभाण्डा-
गाराक्षशालाभ्य इति । नाभ्यः, चतुर्भागमूल्येषु काकणी-
मूल्येषु माषमूल्यान्तेषु अपहृतेषु विषये, एत एव द्विगुणा
दण्डः चतुर्विंशतिपणाश्चत्वारिंशत्पणादयः ।

चोराणामभिप्रधर्षणे इति । स्वयमपहृतवतामेव राज-
पुरुपाणां चोरापहरणच्छलकल्पने, चित्रो घातः क्लेशवधः ।
इति अनेन प्रकारेण, राजपरिग्रहेषु राजकीयेषु प्रदेशेषु,
व्याख्यातम् ।

बाह्येषु त्वित्यादि । बाह्येषु राजकीयातिरिक्तेषु पौर-
जानपदक्षेत्रादिषु । शेषं सुगमम् । चोरस्य निर्धनत्वे
दण्डप्रकारमाह— गोमयप्रदेहेन वेति । गोशकृदुपलेयेन,
प्रलिप्य देहं प्रकर्षेण लिप्त्वा, अवधोषणं षट्पण्य-
पुरस्सरं नगरमभितः संचारणम् । आ द्विपादमूल्यादिति-
त्यादि । स्पष्टम् । शरावमेखलया वेति । अवधोषणमिति
वर्तते, शरावो मृद्भाण्डविशेषः, प्रोतशरावां रक्षानां कण्ठे
बद्ध्वा पूर्ववन्नगरमभितः संचारणं गोमयभस्माभावपक्षे
दण्ड इत्यर्थः । आ पणमूल्यादिति द्वादशपण इत्यादि
आ पञ्चाशत्पणमूल्यादिति वध इत्यन्तं वाक्यजातं
स्पष्टार्थम् । यदत्र चतुर्विंशतिपणदण्डासामर्थ्ये मुण्डी-
कृत्येष्टकाखण्डप्रक्षेपेण देशाद् बहिर्निष्कासनमुक्तं, तत्
षट्त्रिंशत्पणादिसहस्रपणान्तदण्डासामर्थ्ये दण्डापूर्विका-
न्यायेन सिद्धं द्रष्टव्यम् ।

प्रसह्येति । बलात्कारेण, दिवा रात्रौ वा, अन्तर्या-
मिकं यामान्तरालकालरक्षान्यापृतं, अपहरतो मुष्णतः,
अर्धमूल्येषु माषमूल्यादूर्ध्वमित्याद्युक्तमूल्यापेक्षयार्धमूल्येषु
अर्थादर्धमाषमूल्यप्रभृतिषु द्विमाषमूल्यान्तेषु विषये,
एत एव पूर्वोक्तास्त्रिपणादय एव वधान्ताः, द्विगुणाः
अर्थात् षट्पणादयः, दण्डः । इह द्विगुणा इति पाठो
नास्तीति भाषास्वरसतो गम्यते । अन्तर्यामिकमेव दिवा
रात्रौ वा प्रसह्य शस्त्रपाणेर्मुष्णतो माषचतुर्भाग (काकणी)
मूल्यादिषु माषमूल्यान्तेषु विषयेऽपि यथोक्ता एव दण्डा
इत्याह— प्रसह्य दिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्येत्यादि ।

कुटुम्बिकाध्यक्षमुख्यस्वामिनामिति । कुटुम्बिनः
सुवर्णाध्यक्षादेर्ग्राममुख्यस्य समाहर्तुश्चेत्येतेषां चतुर्णां,
कूटशासनमुद्राकर्मसु कपटलेख्यकर्मसु कपटलक्ष्यकर्मसु

च, पूर्वमध्यमोत्तमवधाः दण्डाश्चन्वारो यथाक्रमेण भवन्ति ।
यथापराधे वा अयमगधानुगुण्येन वा दण्डः । श्रीमू.

*धर्मस्थीयाञ्चारकान्निस्सारयतो बन्धनागाराच्छ-
य्यासनभोजनोच्चारसंचारं रोधबन्धनेषु त्रिपणोत्तरा
दण्डः कर्तुः कारयितुश्च ।

चारकादभियुक्तं मुञ्चतो निष्पातयतो वा मध्यमः
साहसदण्डः अभियोगदानं च । बन्धनागारात्
सर्वस्वं वधश्च ।

बन्धनागाराध्यक्षस्य संरुद्धकमनाख्याय चारयत-
श्चतुर्विंशतिपणो दण्डः । कर्म कारयतो द्विगुणः ।
स्थानान्यत्व गमयतोऽन्नपानं वा रुन्धतः षण्णव-
तिर्दण्डः । परिक्लेशयत उत्कोचयतो वा मध्यमः
साहसदण्डः । व्रतः साहस्रः ।

परिगृहीतां दासीमाहितिकां वा संरुद्धिकामधि-
चरतः पूर्वः साहसदण्डः । चोरडामरिकभार्या
मध्यमः । संरुद्धिकामार्यामुत्तमः । संरुद्धस्य वा
तत्रैव घातः । तदेवाध्यक्षेण गृहीतायामार्यायां
विद्यात् । दास्यां पूर्वः साहसदण्डः ।

चारकमभित्त्वा निष्पातयतो मध्यमः । भित्त्वा
वधः । बन्धनागारात् सर्वस्वं वधश्च ।

एवमर्थचरान् पूर्व राजा दण्डेन शोधयेत् ।

शोधयेयुश्च शुद्धास्ते पौरजानपदान् दमैः ॥

बन्धनाध्यक्षशोधनमाह— धर्मस्थीयादिति । धर्म-
स्थपरिकल्पितात्, चारकात् संरोधागारात्, निस्सारयतः
लज्जग्रहणेन तद्गतान् बहिः संचारयतः, बन्धनागारात्
कारागृहात् निस्सारयतः, रोधबन्धनेषु रोधागारेषु
बन्धनागारेषु च शय्यासनभोजनोच्चारसंचारं शयनीया-
सनभोजनानि मूत्रपुरीषोत्सर्गस्थानं च, कर्तुः, कारयि-
तुश्च, त्रिपणोत्तराः उत्तरोत्तरत्रिपणाधिकाः, दण्डाः ।

चारकादिति । धर्मस्थीयसंरोधगृहात्, अभियुक्तं
मुञ्चतः, निष्पातयतो वा निष्पातनप्रतिकूलानाचरणा-

* धर्मस्थीयादित्यस्य प्राक् वर्तमानः 'धर्मस्थक्षेदि'त्यारभ्य
'तदष्टगुणं दण्डं दद्यादित्यन्तो भागः समाप्रकरणे
(पृ. २७-२८) द्रष्टव्यः ।

(१) कौ. ४।९.

निष्पातनं प्रयोजयतश्च, मध्यमः साहसदण्डः, अभियोग-
दानं च अभियुक्तदेयद्रव्यदानं च । बन्धनागारात्
प्रदेष्टृकारागृहात्, अभियुक्तं मुञ्चत इति वर्तते, सर्वस्वं
सर्वस्वहरणं, वधश्च दण्डः ।

संरुद्धं जनं बन्धनागाराध्यक्षाननुज्ञया चारयतश्चतु-
र्विंशतिपणो दण्डः, तद्विगुणः कर्म कारयत इत्याह—
बन्धनागाराध्यक्षस्येत्यादि । स्थानान्यत्वमित्यादि ।
स्थानान्यत्व स्थानं दम् (?) । परिक्लेशयतः ताडना-
दिना दुन्वतः । उत्कोचयतः उत्कोचधनं दापयतः ।
शेषं स्पष्टम् ।

परिगृहीतामिति । क्रयाधिगतां, दासीं, आहितिकां
वा, संरुद्धिकां बन्धनागाररुद्धां, अधिकरतो गच्छतः,
पूर्वः साहसदण्डः । चोरडामरिकभार्यां चोरभार्यां डमर-
गतकभार्यां च, अधिकरतः, मध्यमः । संरुद्धिकां,
आर्यां कुलस्त्रियं, अधिकरतः, उत्तमः । तत्रैव संरुद्धस्य
वा बन्धनागार एव संरुद्धस्य च अर्थात् पूर्वोक्ताः
स्त्रीरधिकरतः, घातः वधः । तदेवेति । वधरूपं विधान-
मेव, अध्यक्षेण, गृहीतायां अधिकरितायां, 'आर्यायां,
विद्यात् । दास्यां, अध्यक्षेण गृहीतायामिति वर्तते, पूर्वः
साहसदण्डः, अध्यक्षस्य ।

चारकमिति । धर्मस्थीयसंरोधागारं, अभित्त्वा
निष्पातयतः अर्थात् संरुद्धं, मध्यमः साहसदण्डः ।
भित्त्वा निष्पातयतः, वधः । बन्धनागारात् निष्पातयतः,
सर्वस्वं सर्वस्वहरणं, वधश्च दण्डः ।

अध्यायप्रान्ते श्लोकमाह— एवमिति । अनेन
प्रकारेण, अर्थचरान् राजार्थव्यवहाराधिकृतान्, राजा,
दण्डेन शोधयेत् । ते च अर्थचराश्च, शुद्धाः, भूत्वेति
शेषः, पौरजानपदान्, दमैः दण्डैः, शोधयेयुः । श्रीमू.

मनुः

स्तेयविवादपदप्रतिज्ञा

एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः ।

स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥

(१) मस्मू. ८।३०१ [विधि ण्ये (त्रिविधं
दण्डनिर्णयम्) Noted by Jha]; व्यक. १०९ स्यातः
(स्याथ) ण्ये (ण्यम्); विर. २८६ स्यातः (स्याथ);
सेतु. २२७.

एष निःशेषोक्तो दण्डयारुध्यनिर्णयो, १ निर्णयो दण्ड-
व्यवस्था । दण्डशब्दो हि साधनोपलक्षकतया विवाद-
पदेऽन्विताथो नामधेये पूर्वपदम् । स्तेनस्य चौरस्य
दण्डभेदानतःपरं वक्ष्यामीति उपसंहारोपन्यासार्थः
श्लोकः । मेधा.

स्तेयसाहसयोर्निरुक्तिः

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं कृत्वापव्ययते च यत् ॥

(१) परद्रव्यापहरणं स्तेयमुच्यते । धात्वर्थप्रसिद्ध्या
चास्यैव कर्ता स्तेनः । तस्य कर्तव्यत्वेन इह तु विशेषे-
णायं व्यवहार इष्यते, तदर्थोऽयं श्लोकः । न परद्रव्या-
दानमात्रं स्तेयं, ऋणादाननिक्षेपादिष्वपि स्तेयदण्डप्रसङ्-
गात् । [किं तर्हि, निरन्वयं आरक्षकपुरुषवर्जितमवसरं
अभिज्ञाय यत् क्रियते तच्चौर्यम् । तथा सान्वयमनवसरे
प्रसह्य कृतमपि अपहृते च यत् 'कृतमिदं न मया'

(१) मस्यु. ८।३३२ क., ख., घ., कृत्वा (ह्रस्वा),
ग., कृत्वापव्ययते (ह्रत्वापहृयते), [कृत्वापव्ययते च यत्
(कृत्वा चापहृतो भयात्, कृत्वा चापहृते च यः, कृत्वा चापहृते
च यत्) Noted by Jha]; गोरा. कृत्वापव्ययते (ह्रत्वा-
पहृयते); मिता. २।२६६ व्ययते (हुवते) [कृत्वा ...
च यत् (कृत्वा यन्निहृते भयात्) Noted by Jha];
व्यक. १०९ च यत् (च यः); स्मृच. ३१६ उक्त.;
विर. २८६, ३५०; पमा. ४३५ कृत्वा यत् (ह्रत्वा-
पव्ययते यदि); दीक. ५३ रन्वयं (रन्वये) कृत्वा (ह्रत्वा)
च (तु); व्यनि. ५००-५०१ स्यात्साहसं (साहसं स्यात्);
द्वि. ८०; सवि. ४५७ कृत्वा...यत् (वञ्चयित्वाऽपकर्ष-
णम्); व्यग्र. ३८५ कृत्वा...यत् (कृत्वा यन्निहृते भयात्);
व्यड. १२३ मितावत्; विता. ३५ मितावत् : ७७५
व्ययते (हृयते); सेतु. २२७; समु. १४८; नन्द.
८।३०१.

१ (निर्णयो०). २ व्येन. ३ किं तर्हि न च त्वयं
आरक्षिपुरुषेण वर्जितमनिज्ञातेन यः क्रियते तच्चौर्यम् । द्रव्या
कृत्वापि चेत्तापहृते यत्कृतमिदं तन्मयेति विद्यायान्यत्र संकिन्त्या
इति । न तच्चौर्यं किं तर्हि स्यान्न साहसं अन्वयवत् मारक्षप्रदेशे
प्रसभं प्रसप्तप्रकाशं तथा कृन्मध्यमपहृते चेत्सेयमेव संज्ञामेदो
दण्डभेदामहि । (आदर्शपुस्तके पादटिप्पण्यां उल्लिखितोऽयं ग्रन्थः
उपरि संशोध्य समुल्लिखितः).

इति. तदपि स्तेयमेव । विद्ययाऽन्यत्र संप्राप्त्या किं न
तच्चौर्यं ? किं तर्हि. स्यात्साहसं अन्वयवत् आरक्षक-
प्रदेशे प्रसभं प्रसह्य प्रकाशं कृतम् ।] मंजाभेदो दण्ड-
भेदार्थः । कर्म यत्कृतं परपीडाकरं वस्तुघातनाभिदाह-
द्रव्यापहरणादि । अभिदाहे यद्यपि द्रव्यापहरणं नास्ति,
तथापि चौर्यमेव, रहसि करणादपहृवाच्च मन्यन्ते ।
चौर्ये हि द्रव्यविशेषाश्रयो दण्डः, सोऽत्र न स्यात् ।
एवमर्थमेव स्तेयप्रकरणे लक्षणं 'प्रसभं कर्म' इति ।
कर्मग्रहणात् द्रव्यापहारादन्यदप्येवं कृतमयुक्तं साहसमेव ।
कस्तर्हि अभिदाहादौ अप्रसभं कृते दण्डः ? कण्टकशुद्धौ
वक्ष्यामः । अत एव मंधिच्छेदे सत्यपि द्रव्यापहरणे
कण्टकशुद्धौ दण्डमामनन्ति, अन्यथा स्तेय एवावश्यत् ।
मेधा.

(२) यत्कर्म धान्यापहारादि द्रव्यस्वामिसमक्षमेव
प्रसह्य कृतं तत्साहसं स्यात् । अतस्तत्र स्तेयदण्डो न
कार्य इत्येतदर्थः स्तेयप्रकरणेऽस्योपदेशः । यत्पुनः परोक्षं
कृतं तत्स्तेयं भवेत् । यदपि च ह्रत्वाऽपहृते तदपि
स्तेयमेव । * गोरा.

(३) अन्वयवत् द्रव्यरक्षिराजाध्यक्षादिसमक्षम् ।
प्रसभं बलावष्टम्भेन यत्परधनहरणादिकं क्रियते तत्साह-
सम् । स्तेय तु तद्विलक्षणं निरन्वयं द्रव्यस्वाम्याद्यसमक्षं
वञ्चयित्वा यत्परधनहरणं तदुच्यते । यच्च सान्वयमपि
कृत्वा न मयेदं कृतमिति भयात् निहृते तदपि स्तेयम् ।
मिता. २।२६६

(४) अत्र साहसं सहसा अविविच्य दोषगुणौ यदि
कृतं तदा, स्तेयमपि तथैवेत्याशङ्कां प्रसङ्गादपनयति -
स्यादिति । नैव तावन्मात्रं साहसं किन्तु प्रसभं हठा-
त्स्वामिसमक्षं बलवदन्वयवदनुबन्धि उत्तरकालमपि यत्र
न तद्गोच्यते साहसं तदित्यर्थः । निरन्वयं उत्तरकाल-
निह्वययत्नसहितं यच्च कृत्वा स्वामिनोऽपव्ययते तदैव
निह्ववाय यतते तद्द्रव्याहरणं स्तेयम् । एवं च युद्धा-
दिना यत्परस्वहरणं परमारणादि तत्साहसं, निह्ववप्रयत्न-
वता तु यत् परस्वमादीयते तत् स्तेयमित्यर्थः । तथा

* मसु., मच., नन्द., भाच. गोरावत् ।

१ दार्थः । अपहृत्य यत्तेन मया कृतमित्याह कर्म.

२ क्षणं 'स्तेयं प्रसभं . ३ एवमन्विच्छेदसत्य.

अनिह्वयेन चायत्तकलहार्तिनिमित्तकं ताडनादि क्रियते
तद्दण्डगारुष्यमित्युक्तम् । मवि.

राज्यकण्टकाः प्रकाशाप्रकाशनस्कराः । कण्टकशुद्धिः, नदर्थ
चाराबन्धकविधिः ।

सैम्यङ्गनिविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ।

कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥

(१) देशनिवेशो दुर्गकरणं च यत्सप्तमाध्याये उक्तं
तत्कृत्वा कण्टकोद्धरणं, तेनापि राष्ट्ररक्षा क्रियते ।
कण्टकशब्दः पीडाहेतुसामान्यात्तस्करादिषु प्रयुक्तः ।

मेधा.

(२) निविष्टदेशो जनाभ्युषितदेशः । शास्त्रतः
शास्त्रोक्तविधिना । कण्टकानां क्षुद्रशत्रूणां तस्करादीना-
मुद्धरणे । मवि.

(३) 'जाङ्गलं सत्यसंपन्नम्' इत्युक्तरीत्या सम्यगा-
श्रितदेशस्तत्र सप्तमाध्यायोक्तप्रकारेण कृतदुर्गश्चौरसाह-
सिकादिकण्टकनिराकरणे प्रकृष्टं यत्नं सदा कुर्यात् ।

ममु.

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।

नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥

(१) एतदेव (कण्टकोद्धरणं) दर्शयति । आर्यवृत्तं
शास्त्रचोदितं, कर्तव्येतरानुष्ठाननिषेधौ, तद्वृत्तं येषा-
मित्युत्तरपदलोपी समासः । तेन दीनानाथश्रोत्रिया
अकरशुल्कदा गृह्यन्ते । तद्रक्षणोद्दि त्रिदिवगमनं युक्तम् ।
अन्येषां तु वृत्तिपरिक्रीतत्वादकरणे प्रत्यवायो यथोत्तरत्र
वक्ष्यते— 'स्वर्गाच्च परिहीयते' इति । रक्षणे तु वृत्ति-
निष्क्रयणेन प्रत्यवायाभावमात्रं न तु स्वर्गः । अथवा
वृत्तिनियमापेक्षं त्रिदिवप्राप्तिवचनं, यथोक्तं प्राक् ।
अन्ये तु वृत्तिपरिक्रीतत्वंदर्शनादर्थवादमात्रं राज्ञः स्वर्ग-
वचनं, अवृत्तिदपरिपालनमपि वृत्तिप्रयुक्तं स्वराज्यभाग-
स्थानीयास्ते राज्ञः । यथैव च शिल्पिजीविनः 'शिल्पिनो

(१) मस्सु. १।२५२ ग., शास्त्रतः (शास्त्रतः) धरणे नि
(द्वारगैर्नि) [देशस्तु (देशेषु) दुर्गश्च (दुर्गस्तु) Noted
by Jha].

(२) मस्सु. १।२५३.

१ (च०). २ ननिषेधस्तद्, ३ रक्षानुवृ. ४ अन्येषां
तु. ५ त्वादज्ञेनमर्थ.

मासि मास्येकैक कर्म कुर्युः' (गौध. १०।३०) इति
वृत्त्यर्थं शिल्पं कुर्वाणा राज्ञा कर्म कार्यन्ते करग्रहणाय,
एवं राजाऽपि वृत्तियुक्तः प्रजापालनप्रवृत्तो नित्यकर्म-
वदार्यपरिपालनं कार्यते शास्त्रेण । यथैव हि कामश्रुतितो-
ऽग्न्याहितो नित्यान्यनुतिष्ठति न स्वर्गादिलाभाय । न हि
तानि फलार्थतया नोदितानि, अथ च क्रियन्ते,
तद्देतद्द्रष्टव्यम् । अतो यावती काचित्फलश्रुतिः सा
सर्वाऽर्थवाद इति कोवर(?) विष्णुस्वामी । यदत्र तत्त्वं
तदर्थितमधस्तात् ।

(२) यस्मात्साध्वाचाराणां रक्षणाच्चौरादीना च
शासनात्प्रजापालनयुक्ता राजानः स्वर्गं गच्छन्ति ।
तस्मात्कण्टकोद्धरणे यत्नं कुर्यात् । ममु.

अंशासंतस्करान् यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ।

तस्य प्रभुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥

(१) शासनं यथाशास्त्रं वधादि, दण्डमन्तरेण
तस्कराणां निर्ग्रहो रक्षा च न शक्यते । अतो वृत्ति
गृहीत्वा यस्तस्करवधाज्जगुप्सते तस्योभयो दोषः । इह
राष्ट्रकृतोऽमुत्र स्वर्गपरिहानिः । युक्ता च बलिपरिगृहीतस्य
तन्निष्कृतिमकुर्वतो दोषवत्ता । मेधा.

(२) यश्च पुनर्नृपतिश्चौरादीननिराकुर्वन् षड्भागा-
युक्तं करं गृह्णाति तस्मै राष्ट्रवासिनो जनाः कुप्यन्ति ।
कर्मान्तरार्जिताऽप्यस्य स्वर्गप्राप्तिरनेन दुष्कृतेन प्रति-
बध्यते । ममु.

(३) अशासन् अरक्षन् । भाच.

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ।

तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ॥

(१) प्रसिद्धमेवैतच्छ्लोके तस्करवैधविधिशेषतया
अनूद्यते । मेधा.

(१) मस्सु. १।२५४ [तस्य (यस्य) गाञ्च (गांस्त)
Noted by Jha]; व्यक. ११०; विर. २९४; विचि.
१२४; द्वि. ४ अशा.....रान् (अंशांशं तस्कराद्);
विच्य. ५१ यस्तु (यो हि).

(२) मस्सु. १।२५५ [तस्य ...ते (तस्याभिवर्धते)
सिच्य (सेच्य) Noted by Jha]; व्यक. ११० तु
(वा); विर. २९४ तु (हि).

१ ग्रहरक्षा न. २ धर्मविशेष.

(२) यस्य राज्ञो बाहुवीर्याश्रयेण राष्ट्रं चौरादिभय-
रहितं भवति तस्य नित्यं तद्बुद्धिं गच्छति । उदक-
सेकेनेव वृक्षः । ममु.

^१ विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्ययन्ते दस्युभिः प्रजाः ।
संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥

(१) पूर्वोक्तयुक्तताऽप्रमादयोरन्यथात्वे दोषमाह ।
यदि सम्यग्गुल्मस्थानानि प्रति न जागर्ति तदा छिद्रा-
न्वेपिभिर्दस्युभिः चौरैः प्रजा ह्यह्यन्ते । तासु किं
करिष्यति । अतस्तादृशो राजा मृत एव । जीवितं
मरणमेव । अतोऽप्रमत्तेन भवितव्यम् । विक्रोशन्त्यः
आक्रन्दन्त्यः । ह्यह्यन्ते संपश्यतः सभृत्यस्य । निर्दिष्टं
द्रक्ष्यते । केवलं च भृत्यास्तदीयाः पश्यन्ति नानुधावन्ति
नै मोक्षयन्ति । सर्वे ते मृतकल्पाः । मेधा.

(२) यस्य राज्ञः सभृत्यस्य पश्यत एव राष्ट्रादाक्र-
न्दन्त्यः प्रजाः शत्रुप्रभृतिभिः अपन्ह्यन्ते स स्वजीवित-
कार्याभावात् मृत एव न तु जीवति । गौरा.

^२ द्विविधांस्तस्करान् विद्यात्परद्रव्यापहारिणः ।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥

(१) चाराः प्रच्छन्ना राष्ट्रे राजकृत्यज्ञानिनस्ते
चक्षुषी इव यस्य स चारचक्षुः । प्रकाशैतस्कराणां
नोस्ति तस्करव्यवहारो यथा लोकेऽन्येषामटवीरात्रि-
चराणामस्ति, तैः सामान्योपादानं तद्वन्निग्रहार्थं क्रियते ।
मेधा.

(२) चार एव चौरज्ञानहेतुत्वाच्चक्षुरिव यस्यासौ
राजा, चारैरेव प्रकटतया गूढतया द्विप्रकारन्यायेन पर-
धनग्राहिणो जानीयात् । ममु.

(१) मस्मृ. ७।१४३ [मृतः स (मृतस्तु) न तु (न
स, न च, स न) Noted by Jha]; व्यक. ११०
न तु (च न); विर. २९४ न तु (न हि).

(२) मस्मृ. ९।२५६ हारिणः (हारकान्); व्यक.
१०९; स्मृच. ३१७; विर. २८९; व्यनि. ५०१; सवि.
४६० या (न्या); विता. ७७७ त्वर (त्सर्व); सेतु.
२२७; समु. १४९.

१ योरप्रमा. २ (न०). ३ शस्तस्क. ४ नातित.
५ माससौः.

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ।
प्रच्छन्नवञ्चकास्तेषु ये स्तेनाटविकादयः ॥

(१) तत्र ये क्रयार्थं मानतुलादिना मुष्णन्ति, द्रव्या-
गामागमस्थाननिर्गमनाश्रयं कुर्वन्ति ते प्रकाशवञ्चका
वाणिजकाः । प्रच्छन्नास्तु ये रात्रौ मुष्णन्ति ते स्तेनाः,
आटविका विजने प्रदेशे वसन्ति । अपरे तु प्रसह्य
हारिणो न केवलमेत एव किं तर्हिमे चान्ये, यानूर्ध्वं
वक्ष्यामः । मेधा.

(२) तेषां पुनश्चौरादीनां मध्यात्रे तुलाप्रतिमानोप-
चयापचयादिना हिरण्यादिपण्यविक्रयिणः परधनमनु-
चितेन गृह्णन्ति ते प्रकाशवञ्चकाः । स्तेनाश्चौराः सद्य-
विच्छेदादिना गुप्ताटव्याश्रयाश्च परधनं गृह्णन्ति ते
प्रच्छन्नवञ्चकाः । ममु.

उत्कोचकाश्चौपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा ।
मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह ॥

(१) उत्कोचका ये कस्याचित्कार्ये कस्याचिद्राजा-
मात्यादिः प्रवृत्तौ अर्थग्रहणेन कार्यसिद्धौ प्रवर्तन्ते । औप-
धिकाः छद्मव्यवहारिणः । अन्यद् ब्रुवन्ति अन्यदा-
चरन्ति. प्रत्यक्षं प्रीतिं दर्शयित्वा अपकारे वर्तन्ते ।
विनाऽप्यर्थग्रहणेन निमित्तान्तरतः अन्यतोऽपरस्य कार्य-
सिद्धिमवश्यं विज्ञाय मया तवैतत्क्रियत इति परं

(१) मस्मृ. ९।२५७ [स्तेषां (स्तेषां) स्तेते...दयः
(स्तेवं स्तेनाटव्यादयो जनाः, स्तेने स्तेनाटव्यादयो जनाः,
श्वैव स्तेना अटविका जनाः, स्तेषां ये स्तेनाटविकादयः)
Noted by Jha]; व्यक. १०९ कास्तेते (का शेया);
विर. २९१ स्तेते...दयः (स्तेषां स्तेनाटव्यादयो जनाः);
द्वि. ११८ पू. : १२१ विरवत्, उत्त.; समु. १४९
ये स्तेना (स्तेना आ).

(२) मस्मृ. ९।२५८ [पूर्वार्धे (उत्कोचकाश्चौपधिकान्
वञ्चकान् कितवास्तथा), वृत्ताश्च (वृत्तांश्च), भद्रा...सह
(भद्रश्च प्रेक्षणिकैः सह, भद्राश्चेक्षणिकास्तथा, भद्राश्चेक्षणिका-
स्तथा, भद्राश्चेक्षणिकास्तथा) Noted by Jha]; व्यक.
१०९ काश्चौ (काः सो); विर. २९१ श्वे (श्वै) शेषं
व्यकवत्; द्वि. ११८ उत्कोच (औत्कोचि) श्वे (श्वै);
समु. १४९ श्वे (श्वै).

१ त्कार्येण क. २ वृत्तो ग्रहणातिकार्यसिद्धौ. ३ वर्तते ।

गृह्णन्ति. भीषिकाप्रदर्शनं वा उपधिः । वञ्चकाः कितवा धनग्रहणार्थं सदा देविन इत्यर्थः । पृथगर्थे वा पदं वञ्चकाः. विप्रलम्भकाः । इदं कार्यं वयमेव करिष्यामस्तव नान्येऽत्रस्था इत्युक्त्वा न कुर्वन्ति, उपेत्य नानाकारैर्नानाविधैरुपायैर्ग्रामीणान् मुष्णन्ति । शिव-माधवादयः शिवमादित्यं उपजीवन्ति । मङ्गलादेशवृत्ताः शान्त्युपदेशिका ज्योतिषिकादयः । अथवा एतां देवतां त्वदर्शनाहं प्रीणयामि दुर्गां मार्तण्डं चेति तथा आढ्यानां धनमुपजीवन्ति । अथवा मङ्गलं तवास्त्विति वादिनः मङ्गलादेशवृत्ताः । अभद्रा भद्राः । प्रेक्षणिकाः सर्वस्य करदर्शनेन प्रशंसन्ति पुरुषलक्षणानि । मेधा.

(२) उत्क्रोचका उत्क्रोचग्राहिणः । औपधिकाः स्तुत्यादिकृतेनोपधिना छलेन गृह्णन्तः । वञ्चका वेषान्तरेण भ्रममुत्पाद्य आदातारः । कितवा द्यूतकृतः । मङ्गलादेशो मङ्गलस्तुतिपाठः वृत्तं चरितं येषाम् । भद्राः सुरूपतामात्मनो विधाय स्त्र्यादिव्यामोहकाः । ईक्षणिकाः प्रेक्षणीयकर्तारो नटादयः । मवि.

(३) उत्क्रोचका ये कार्यिभ्यो धनं गृहीत्वा कार्यमयुक्तं कुर्वन्ति । औपधिका भयदर्शनाद्ये धनमुपजीवन्ति । वञ्चका ये सुवर्णादि द्रव्यं गृहीत्वा परद्रव्यप्रक्षेपेण वञ्चयन्ति । कितवा द्यूतसमाह्वयदेविनः । धनपुत्र-लाभादिमङ्गलमादिश्य ये वर्तन्ते ते मङ्गलादेशवृत्ताः । भद्राः कल्याणाकारप्रच्छन्नपापा ये धनग्राहिणः । ईक्षणिका हस्तरेखाद्यबलोकनेन शुभाशुभफलकथन-जीविनः । ममु.

असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः ।

शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥

(१) महामात्रा मन्त्रिपुरोहितादयो राजनैकटिकास्ते चेदसम्यक्कारिणः । चिकित्सका वैद्याः । शिल्पोपचार-

(१) मस्मृ. ९।२५९ [पचार (पकार) Noted by Jha]; व्यक. १०९; विर. २९१; दवि. ११८ पचार (पकार); समु. १४९.

१ उपभावनग्रहणार्थं. २ पादवञ्चकाः. ३ नान्यत्र.

४ कुर्वन्त उ. ५ कारणनाना. ६ (उप०). ७ यान्त्यु. ८ तथाऽस्त्विति. ९ सर्वस्य करवर्धने अभद्रा भद्राप्रेक्षणिकाः प्रशंसिपुरुषलक्षणाः ।.

युक्ता चित्रपत्रच्छेदरूपकारादयः । उपचार उपायनं, अनुपयुज्यमानस्वशिल्पकौशल दर्शयित्वाऽनुष्ठाय धनं नयन्ति, एवं पण्ययोषितो निपुणाश्चोपचारेणासत्प्रीति-दर्शनेन । असम्यक्कारिण इति सर्वत्रानुयुज्यते । मेधा.

(२) महामात्राः अमात्या राज्ञः, तथा चिकित्सका भिषजः । असम्यक्कारिणोऽयुक्तकारिणः । शिल्पयुक्ताः चित्रकारादयः । उपकारयुक्ताः केशादिसंस्कर्तारः । निपुणाः स्वस्ववृत्तिकुशलाः । पण्ययोषितो वेद्याः । मवि.

(३) महामात्रा हस्तिशिक्षाजीविनः । चिकित्सकाः चिकित्साजीविनः । असम्यक्कारिण इति महामात्रचिकित्सकविशेषणम् । शिल्पोपचारयुक्ताः चित्रलेखाद्युपाय-जीविनः तेऽप्यनुपजीव्यमानशिल्पोपायप्रोत्साहनेन धनं गृह्णन्ति । पण्यस्त्रियश्च परवशीकरणकुशलाः । ममु.

(४) शिल्पोपकारयुक्ताः छत्रतालवृन्ताद्युपकार-कारिणः । नन्द.

एवमाद्यान् विजानीयात्प्रकाशांल्लोककण्टकान् ।

निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः ॥

(१) एवमाद्यान्, न शक्यते धूर्तानां परद्रव्यापहृ-रिणां प्रकारान् संख्यातुमित्याद्यग्रहणं, तथा ह्यौसक्तं कथयन्ति अवधीरयन्तीमनुरागिणीं, तथाऽभृत्यो भृत्य-वदात्मानं दर्शयित्वा नयति हिरण्यं ऋजुप्रकृतेर्न चार्थ-भृतः, त्वं ब्रह्मा त्वं बृहस्पतिरित्युक्त्वा मूर्खादथात्रयन्ति देहि प्रसादेन कतिपयैर्वाऽहोभिः प्रत्यर्पयामीति सिद्धे प्रयोजने तनुतरो भवति प्रियवाद्यप्रियवादी संपद्यते । निगूढचारिणः । मेधा.

(२) विजानीयात् किमन्याय्यं कुर्वन्तीति । प्रकाशान् धनिनः समक्षं गृहीतृन् । निगूढकारिणो निह्वेनाहर्तृन् । आर्यलिङ्गिनो ब्रह्मचर्यादिवेषान् । मवि.

(३) एवमादीन् प्रकाशं लोकवञ्चकान् चारैर्जानीयात् ।

(१) मस्मृ. ९।२६० माद्यान् (मादीन्) [विजानी-यात् (विजातीयान्) Noted by Jha]; व्यक. १०९; मवि. चारि (कारि); विर. २९१; दवि. ११८; समु. १४९ विरवत्.

१ हाराणां. २ शक्यं क. ३ वधार. ४ तथा मृत्यो.

अन्यानापि प्रच्छन्नचारिणः शूद्रादीन् ब्राह्मणादिवेष-
धारिणो धनग्राहिणो जानीयात् । ममु.

तान् विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ।
चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साह्य वशमानयेत् ॥

(१) तत्कर्मकारिभिः तुल्यकर्मकारिभिर्विद्यापूर्वे ये
तत्कर्म कृतवन्तः । अथवा संप्रत्येव तत्कर्म कार्यन्ते
अन्तर्भावसिद्धयर्थं लब्धान्तरा आगत्य कथयिष्यन्ति ।
तथान्यैरपि चारैरनेकसंस्थानैः । मेघा.

(२) सुचरितैः सम्यक्चरद्भिः, तत्कर्मकारिभिः चोर-
त्वेन तेष्वत्मानं प्रकाशयद्भिः गूढैश्चारैः अनेकसंस्थानैः
अनेकवेशैः प्रोत्साह्य चौर्यादिकरणं प्रवर्त्य वशमानयेत्
गृह्णीयात् । मवि.

(३) तानुक्तान् वञ्चकान् सभ्यैः प्रच्छन्नैः तत्कर्म-
कारिभिः वणिजां स्तेये वणिगिभरित्येवमादिभिः पुरुषैरेत-
द्व्यतिरिक्तैः सप्तमाध्यायोपदिष्टकापटिकादिभिश्चारैरनेक-
स्थानस्थैश्चात्वा प्रोत्साह्य स्ववशान् कुर्यात् । ममु.

तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ।
कुर्वीत शासनं राजा सम्यक् सारापराधतः ॥

(१) दोषान् स्तेयादीन् अभिख्याप्य लोके लोकानु-
द्वेष्टार्थम् । स्वे स्वे कर्मणि वित्तग्रहणघातनादौ कृते ।
सारापराधत इति, मुपितवस्तुनः सारतां ज्ञात्वा सम्यक्
च चौरापराधं ज्ञात्वेत्यर्थः । मवि.

(२) तेषां प्रकाशाप्रकाशतस्कराणां स्वकर्मणि चौर्यादौ

(१) मस्मृ. १।२६१ त्साह्य (त्साह्य) [त्साह्य (च्छाह्य,
त्सार्य) Noted by Jha]; व्यक. ११० सुच (तु च)
कारि (वेदि); विर. २९३ सुच (तु च) गूढै (स्तैस्तै);
व्यनि. ५०४ सुच (तु च) कारि (चारि) प्रोत्साह्य
(प्रसह्य); समु. १४९ व्यनिवत्.

(२) मस्मृ. १।२६२ [ख्याप्य (ज्ञाप्य) Noted by
Jha]; व्यक. ११० षानभिख्याप्य (षमभिख्याय); विर.
२९३ प्य (य); विचि. १२३ त्वतः (त्ततः); व्यनि.
५०४; दवि. ८१ पराधतः (उसारतः); सेतु. २२९
दविवत्; समु. १४९.

१ (तत्कर्मकारिभिः-०). २ थाचैरपि चारैस्तत्कर्म-
कारिभिरने.

व्य. कं. २१३

ये पारमार्थिका दोषाः संधिच्छेदादयस्तान् लोके प्रख्याप्य
तद्गतधनशरीरादिसामर्थ्यापेक्षयाऽपराधापेक्षया च राजा
दण्डं कुर्यात् । ममु.

(३) अभिख्याप्य लोकैः कथयित्वा । सारशब्दोऽप-
हृतधनपरः तेनापहृतधनानुसारिणा अपराधेन तान्
दण्डयेदित्यर्थः । विर. २९३

(४) सारापराधतः, सारतश्च अपराधतश्च । नन्द-
ने हि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ।
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥

(१) पापविनिग्रहः पापान्निवृत्तिः स्तेनानाम् । मवि.

(२) यस्माच्चौराणां पापाचरणबुद्धीनां विनीतवेषेण
पृथिव्यां चरतां दण्डव्यतिरेकेण पापक्रियायां नियमं
कर्तुमशक्यमत एषां दण्डं कुर्यात् । ममु.

तस्करादिकण्टकान्वेषणविधिः

सैभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ।

चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणां च ॥

जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ।

शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥

एवंविधान्नपो देशान् गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।

तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥

(१) सभा ग्रामनगरादौ नियतं जनसमूहस्थानं, प्रपा
जलदानगृहं, अपूपविक्रयवेश्म, पण्यस्त्रीगृहं, मद्यान्न-

(१) मस्मृ. १।२६३ [निभृतं (निगूढं) Noted
by Jha]; व्यक. ११० पापवि (न्यायवि); विर.
२९३ शक्यः कर्तुं (कर्तुं शक्यः).

(२) मस्मृ. १।२६४; अप. २।२६८ मनुनारदौ; व्यक.
११७; विर. ३३६; व्यनि. ५०५ पूष (वृत्) वेश
(वेश्म) याः (या) उत्तरार्धे (चतुष्पथं चैत्यवृक्षः समाज-
प्रेक्षणादि च); समु. १४९ जाः (जः).

(३) मस्मृ. १।२६५; अप. २।२६८ जी (शी) चाप्य
(वाप्य) मनुनारदौ; व्यक. ११७; विर. ३३६; व्यनि.
५०५; समु. १४९.

(४) मस्मृ. १।२६६; अप. २।२६८ श्वाप्य (रप्य)
मनुनारदौ; व्यक. ११७; विर. ३३६; व्यनि. ५०५ लैः
स्वा (लस्या); समु. १४९.

विक्रयस्थानानि, चतुष्पथाः, प्रख्यातवृक्षमूलानि, जर्न-
समूहस्थानानि, जीर्णवाटिकाः, अटव्यः, शिल्पगृहाणि,
शिल्पगृहाणि, आम्रादिवनानि, कृत्रिमोद्यानानि । एवं-
प्रकारान् देशान् सैन्यैः पदातिसमूहैः स्थावरजङ्गमैरेक-
स्थानस्थितैः प्रचारिभिश्चान्यैः चारैः तस्करनिवारणार्थं
चारयेत् । प्रायेणैवंविधे देशेऽन्नयानस्त्रीसंभोगस्वप्नहर्त्रा-
द्यन्वेषणार्थं तस्करा अवतिष्ठन्ते । मसु.

(२) अपूपशाला कन्दुकशाला । वेशो वेश्यागृहं,
मद्यान्नविक्रया मद्यान्नविक्रयस्थानानि । चैत्यवृक्षाः
प्रौढशदपाः । सभाया उपात्तत्वात्तद्व्यमेलके समाजपदं,
कदाचित्तत्रापि चौरसंभवात् । प्रेक्षणानि प्रेक्षणीय-
नृत्यादिस्थानानि । कारुकावेशनानि शिल्पिगृहाणि ।
गुल्मैः पदातिसमूहैः, अस्यैव विशेषणं स्थावरजङ्गमैः ।
तेन स्थितैः संचरद्भिः पदातिसमूहैः चारैश्च तस्कर-
प्रतिषेधार्थं संभविचौराणि स्थानान्यनुचारयेदित्यर्थः ।

विर. ३३६-७

तैस्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ।

विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥

(१) तत्सहायैस्तोषामेव तस्कराणां सहायतां गतैः ।
सम्यक् तेषामनुगतैः । नानाकर्मप्रवेदिभिः तत्कर्मप्रवे-
दिभिः । नानाकर्मप्रचारिभिरिति क्वचित्पाठः । उत्साह-
येत् चौर्यं कुर्म इत्युक्त्वा उद्यमं कारयेत् । पूर्वतस्करैः
अन्यराष्ट्रे कृतचौर्यैः । मवि.

(२) तेषां साहाय्यं प्रतिपद्यमानैस्तच्चरितानुवृत्तिभिः
संधिच्छेदादिकर्मानुष्ठानवेदिभिः पूर्वचौरैः चाररूपैः चार-
मायानिपुणैस्तस्करान् जानीयात् उत्सादयेच्च । मसु.

(३) स्वानुगतैः आत्मवशैः । नन्द.

भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ।

शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥

(१) मसु. ११२६७; गोरा. [त्साद (त्साह)
Noted by Jha]; अप. २१२६८ तत्स (तान् स)
वेदि (वादि) त्साद (त्साह) क्रमेण मनुनारदौ; मवि.
' प्रचारिभिः ' इति क्वचित्पाठः; त्साद (त्साह); व्यनि.
५०५ वैरनु (वैः स्वानु); समु. १४९ वैरनु (वैः सहानु)
त्साद (त्साह); नन्द. त्साद (त्साह) शेषं व्यनिवत्.

(२) मसु. ११२६८ [ज्योपदे (ज्यप्रदे) Noted

(१) ते पूर्वचौराश्चरभूताः आगच्छतांस्मद्गृहं गच्छं-
मस्तत्र मोदकपायसादीन्यक्षीम इत्येवं भक्ष्यभोज्यव्याजेन,
अस्माकं देशे ब्राह्मणोऽस्ति सोऽभिलषितार्थसिद्धिं जानाति
तं पश्याम इत्येवं ब्राह्मणानां दर्शनैः, कश्चिदेक एव
बहुभिः सह योत्स्यते तं पश्याम इत्येवं शौर्यकर्मव्याजेन,
तेषां चौराणां राज्ञो दण्डधारकपुरुषाः समागमं कुर्यु-
र्ग्राहयेयुश्च । मसु.

(२) समागमे राजपुरुषैर्ग्रहणयोग्ये देशे । नन्द.

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये ।

तान् प्रसह्य नृपो हन्यात् समित्रज्ञातिबान्धवान् ॥

(१) नोपसर्पेयुर्जातशङ्काः । मूलप्रणिहिताः स्वराष्ट्र-
स्थितप्रकृत्यादिप्रेषिताः । प्रसह्य तत्र गत्वा बलात् ।

मवि.

(२) ये चौरास्तत्र भक्ष्यभोज्यादौ निग्रहणशङ्कया
नोपसर्पन्ति ये च मूले राजनियुक्तपुराणचौरवर्गं प्रणि-
हिताः सावधानभूताः तैः सह संगतिं भजन्ते तांश्चौरान्
तेभ्य एव ज्ञात्वा तदेकतापन्नमित्रपित्रादिज्ञातिस्वजन-
सहितान् बलादाक्रम्य राजा हन्यात् । मसु.

(३) तत्र समागमे ये यदृच्छ्या नोपसर्पेयुरिति ।
मूलप्रणिहिताः प्रणिहितमूलाः ज्ञातकारणाः । भक्ष्य-
भोज्यापदेशेनात्मवशं जानन्त इति यावत् । नन्द.

न होढेन विना चौरं घातयेद्धारमिको नृपः ।
सहोढं सोपकरणं घातयेद्विचारयन् ॥

धार्मिको राजा हृतद्रव्यसंधिच्छेदोपकरणव्यतिरेकेण
अनिश्चितचौरभावं न घातयेत् किन्तु द्रव्येण चौर्योप-
करणेन च निश्चितचौरभावमविचारयन् घातयेत् । मसु.

by Jha]; अप. २१२६८ ज्योप (ज्याप) क्रमेण मनु-
नारदौ; व्यनि. ५०५ मां (मों) कुर्यु...गमम् (कुर्यात्तेषां
समागतम्); मच. अपवत्; समु. १४९ ज्योप (ज्याप)
शौ (चौ) कुर्युस्ते (कुर्यान्ते); नन्द. ज्योप (ज्याप)
गमम् (गमे).

(१) मसु. ११२६९ [मित्र (पुत्र) Noted by
Jha]; व्यनि. ५०५ पूर्वार्धे (ये तत्र नोपसर्पन्ति मूलप्रणि-
हितान् जनान्) सद्य (गृह्य); समु. १४९.

(२) मसु. ११२७०; अप. २१२७५; व्यनि. ५०५;
समु. १४९.

स्तेनमिदेषः
अभिष्वपि ज्ञेये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ।
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वास्तानपि घातयेत् ॥

(१) भाण्डं मूलधनं शस्त्रादिक्रयणार्थम् । अवकाशः शयनादिस्थानम् । एतच्च चौरताज्ञाने सति । मवि.

(२) ग्रामादिष्वपि ये केचिच्चौराणां चौरत्वं ज्ञात्वा भक्तदाः, चौर्योपयुक्तभाण्डादि गृहावस्थानं ये ददति तानपि नैरन्तर्याम्यपराधगोचरापेक्षया घातयेत् । ममु.

अभिदानं भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदानं ।
संनिधातृश्च मोषस्य हन्याच्चौरानिवेश्वरः ॥

(१) शीतापनोदनाद्यर्थं येऽग्निं ददति, शस्त्रं कर्तारि-
कादि, मोषस्य संनिधातारः सर्वे चौरवत् ज्ञेयाः । शस्त्रा-
वकाशदग्रहणं प्रागुक्तमभ्युपसंहारार्थमुच्यते । मेधा.

(२) अभिदानं गृहदाहाद्यर्थं ततः करिष्यतीति
ज्ञात्वाऽपि । संनिधातृन् मोषस्थानसमीपनेतृन् । मोषस्य
चौरस्य । मवि.

(३) ग्रन्थिभेदादिकारिणो विज्ञाय अभिभक्तशस्त्रा-
वस्थानप्रदानं मुष्यत इति मोषश्चौरधनं तस्यावस्थापकान्
चौरवद्राजा निग्रहणीयात् । ममु.

(४) एकं भक्तपदं सिद्धान्नपरं, अपरं भक्तपदं
तद्व्यतिरिक्ताशनीयपरं, भाण्डं शस्त्रान्यचौर्योपकरणं,
अवकाशोऽवस्थानदेशः, अभिश्चौर्यानुकूलः, संनिधातृश्च
मोषस्य, मोषणीयस्य द्रव्यस्यापहारानुकूलसंनिधानकार-
कान् । एतच्च भयाज्ञानविरहेण नेयम् । विरं. ३३९

(१) मस्मृ. १।२७१; अयु. २२७।५२ वकाश (रकोश);
अप. २।२७६ दाश्चै (दांश्चै); व्यक. ११७; विर. ३३९
घात (ताड); रत्न. १२६; व्यनि. ५०७ अपवत्, याज्ञ-
वल्क्यः; वित्ता. ७९३ भाण्डा (भक्ता) उक्तः; बाल. २।२७६; समु. १५२.

(२) मस्मृ. १।२७८ रानि (रमि) [मोषस्य (मोक्षस्य)
Noted by Jha]; अप. २।२७६; व्यक. ११७;
विर. ३३९ निवे (नरे); विचि. १४४; व्यनि. ५०९
हन्यात् (शिष्यात्); दवि. ८२; बाल. २।२७६ रानिवे-
श्वरः (रमिवेश्वरम्); सेतु. २४७; संसु. १५८ भक्त (गर)
निष्ठा (विधा) यम्; विच्य. ५२.

१ मोक्षस्य. २ तारः (कर्तारः).

(५) किञ्च अभिदानमिति । भक्तं भक्तसंयुक्तं
गरदादि दातृन् । शस्त्रावकाशदाश्च शस्त्रैः शरीरस्याव-
वकाशदातृन् तच्छेदकान् । संनिधातृन् मोषस्य, मुष्यस्य
ज्ञात्वापि क्रयादिकारिणो वा भक्तदायकादीनामुक्तत्वात् ।
ईश्वर इत्यनेन समर्थः । सामन्ता अपि तथा कुर्युरिति
ध्वनितम् । मच.

(६) मोषस्य मोषितद्रव्यस्य समोषसाधनस्य वा ।
नन्द.

(७) मोषस्य मुषितस्य वस्तुनः, संनिधातृन् समीप-
वर्तिनः, ईश्वरः चौरानिव शिष्यात् क्षिपेत् । भाच.

योऽदत्तादायिनो हस्तालिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ।
याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ॥

(१) अतिदेशोऽयम् । यो ब्राह्मणश्चौरानुपजीवति स
चौरवद्दण्ड्यः । याजनाध्यापनेनापि । अपिः क्रियान्तर-
सूचकः । तेन प्रतिग्रहप्रीतिदाया अपि गृह्यन्ते । क्षत्रिया-
दीनामन्यथैव वार्त्तादिस्वकर्मणा चौरधनं गृह्यताम् ।
ब्राह्मणग्रहणं तु मया किल धर्मेणार्जितं याजयतेत्यभि-
माननिवृत्त्यर्थम् । अदत्तमादत्ते गृह्णातीत्यदत्तादायि
चोरः । लिप्सेत लब्धुमिच्छेदगृहीतास्वपि दक्षिणासु
तत्संबन्धादेव चौरनिग्रहः । मेधा.

(२) अदत्तप्राहिणश्चौरस्य ब्राह्मणो याजनाध्यापन-
प्रतिग्रहैरपि परकीयं धनमण्वपि गृह्णाति सोऽपि चौरो
विज्ञेयः । अतश्चासौ चौरवद्दण्ड्यः । गोरार.

(३) अदत्तादायिनश्चौरस्य हस्ताद्यो ब्राह्मणो याज-
नाध्यापनप्रतिग्रहैरपि परकीयधनं ज्ञात्वा लब्धुमिच्छेत् स
चौरवच्चौरतुल्यो ज्ञेयः, अतः स इव दण्ड्यः । ममु.

(४) अदत्तादायिनश्चौरस्य लिप्सेतेति ग्रहणपरं,

* मवि., भाच. गोरारवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३४०; मित्ता. २।११४ नेना (नादा);
अप. २।२७६ योऽद (अद); व्यक. ११८ नापि (नैव);
विर. ३४०; पमा. ४८२ (=); विचि. १४४; दवि.
८४; सवि. २८७ योऽद (अद) नो हस्ता (नश्चोरा) वा
(त्र) स्पृत्यन्तरम्; व्यग्र. ४१५-६; वित्ता. २७९ (=);
राकौ. ४४२; बाल. २।२७६; सेतु. २४७; समु. ९८;
विच्य. ५२.

सन्प्रयोगस्य निदिध्यासनादिवदार्पत्वेनाविवक्षितत्वात् ।
धनमिति परकीयमिति ज्ञात्वेति शेषः ।

इहापि मनुष्यमारणप्रकरणपरिसमाप्तिनिश्चितन्यायाद्
यथा तथेति श्रवणाच्च स्तेनद्रव्यक्रेतुस्तत्परिग्रहीतुश्च
स्तेनत्वातिदेशमात्रमेव, वास्तवस्य स्तेयस्याभावात् ।
तदपि तदुक्तदण्डप्राप्त्यर्थमेव प्रकरणात्, न तु प्राय-
श्चित्ताद्यतिदेशपरम् । अतः स्तेनहस्ताद्ब्राह्मणस्वमपि
सुवर्णं क्रीत्वा गृहीत्वा वा महापातकित्वं न भवतीति
ध्येयम् । दवि. ८४

(५) अदत्तमादातुं शीलं यस्य सोऽदत्तादायी तस्य
य ज्ञाद्यर्थधनस्त्वानुत्पत्तेरिति भावः । मच.

(६) अदत्तादायीति स्तेनसाहसिकयोर्ग्रहणम् । नन्द.

राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान् सामन्तांश्चैव चोदितान् ।

अभ्याघातेषु मध्यस्थान् शिष्याञ्चौरानिव द्रुतम् ॥

(१) कृतौ (?) सामन्तान् समीपवासिनः, चोदितान्
आहूतान् । अभ्याघातेषु चौरैः क्रियमाणेषु घातेषु ।
मध्यस्थान् उदासीनतया स्थितान् । मवि.

(२) ये राष्ट्रेषु रक्षानियुक्ताः, ये च सीमान्तवासिनः
क्रूराः सन्तः चौर्योपदेशे मध्यस्था भवन्ति तान् चौरवत्
क्षिप्रं दण्डयेत् । ममु.

(३) राष्ट्राधिकृतान् ग्रामवासिनः, देशितान् ग्रामा-
दिरक्षार्थमादिष्टान्, प्रजानां चौरादिभिरुपहतेषु क्रिय-
माणेषु मध्यस्थान् उपेक्षकान् चौरवद्दण्डयेदिति
वाक्यार्थः । विर. ३४१

(४) अभ्याघातेषु चौरादपहृतद्रव्येषु चोरघातकेषु
वा, मध्यस्थान् चोरोऽपि न चोरोऽयमिति वादिनः ।
मच.

(१) मस्मृ. १।२।७२ [राष्ट्रेषु रक्षाधि (राष्ट्रे पुरे वाधि)
द्रुतम् (द्रुतान्) Noted by Jha]; अपु. २२।७।५२
(राष्ट्रेषु राष्ट्राधिकृतान् सामन्तान् पापिनो हरेत्) एतावदेव;
अप. २।२।७६ रक्षा (राष्ट्र) ध्याञ्चौ (ध्याञ्चौ); व्यक. १।१८
रक्षाधिकृतान् (राष्ट्राधिकृतान्); विर. ३४१ रक्षा
(राष्ट्र) चोदि (देशि) घाते (गते); विचि. १।४६ चोदि
(देशि) घाते (गते) रानिव (रमिव); दवि. ८३ चोदि
(देशि) निव द्रुतम् (निवेश्चरः); बाल. २।२।७६; सेतु.
२।४९ धि (दि) चोदि (देशि) रानिव (रमिव); समु.
१।५३ रक्षा (राष्ट्र) श्वैव चोदि (श्व यथोदि); विच्य. ५२.

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ।

दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम्* ॥

ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने ।

शक्तितोऽनभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥

(१) शक्तौ सत्यामालस्यादिना । ते निर्वास्याः ॥
ये तु चौरैः कृतसंकेतास्तेषां पूर्वत्र वध उक्तो घातयेदिति ।
परिच्छदो गवाश्वादिः । तदपि निर्वासेनापहर्तव्यं, नास-
त्परिच्छदः हर्तव्यो धनं तु हर्तव्यम् । मेधा.

(२) तदाभङ्गे सेत्वादिभङ्गे । हिताभङ्ग इति
क्वचित्पाठः । हिता नदीमध्यसेतुः । पथि मोषादि
चौर्यसाहसादि तेषां मर्षणे सहने । मवि.

(३) ग्रामलुण्ठने तस्करादिभिः क्रियमाणे, हिताभङ्गे
जलसेतुभङ्गे जाते । 'क्षेत्रोत्पन्नसस्यनाशने वृत्तिभङ्गे च'
इति मेधातिथिः । पथि चौरदर्शने तन्निकटवर्तिनो
यथाशक्ति ये रक्षां न कुर्वन्ति ते शय्यागवाश्वादि-
परिच्छदसहिता देशान्निर्वासनीयाः । ममु.

रौद्रः कोषापहर्तृश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ।

घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ.
१६२९) द्रष्टव्यः ।

(१) मस्मृ. १।२।७४ तोऽन (तो ना) [हिताभङ्गे
(इडाभङ्गे, तडागभङ्गे, सेतुभङ्गे) Noted by Jha];
अप. २।२।७६ हिता (हिडा); व्यक. १।१८; मवि.
हिता (तया) भिदर्शने (दिमर्षणे); विर. ३४१; विचि.
१।४६; बाल. २।२।७६ तोऽन (तो ना); सेतु. २।४९
ऽनभि (न हि); समु. १।५२ हिता (हिडा) मोषाभिद
(चोराभिम्) शक्तितोऽन (शक्तास्त्वन); विच्य. ५३ षाभि
(षादि) .

(२) मस्मृ. १।२।७५ [प्रतिकूलेषु च (प्रातिकूल्येष्वव,
प्रतिकूलेषु वा, प्रतिकूल्येष्वव) धान....कान् (अरीणामुप-
धावतो घातयेद्विविधैर्विधैः) Noted by Jha]; मिता.
२।३।०२ जाप (कार); अप. २।२।८२; व्यक. १।२२ पु
च (ऽथवा) चोप (चाप); विर. ३६७ हर्तुं (हन्तुं) पु च
(ष्वव) [ररीणां (वीराणां) Noted by Jha];
पमा. ५।८१ ररीणां....कान् (हरेत् सर्वस्वमेव च); विचि.
१।६० राज (राज) हर्तुं (हन्तुं) पु च (ष्वव); व्यनि.
१ कर्तव्यो.

(१) कोशो राज्ञां धनसंचयस्थानं, तत्रापहर्तारो द्रव्यजातिपरिमाणानपेक्षमेव वध्याः । ये च प्रातिकूल्येन वर्तन्ते, यद्राज्ञां देशान्तरादानेतुमभिप्रेतं तद्देशदुर्लभमैजाविकाश्चादि, प्राच्यानामुदीच्यानां कलिङ्गदेशोद्भव-हस्त्यादि तदानयनप्रतिबन्धे ये वर्तन्ते, तथा यानि मित्राणि तानि शत्रून् कुर्वन्ते कृत्वा शत्रुभिः संयोजयन्ति । अरीणामुपजापकाः प्रोत्साहकास्तान् घातयेत्, स्वतन्त्रप्रयोजनत्वान्नावश्यं घातनमित्युक्तम् । मेघा.

(२) अरीणां संबन्धिन उपजापकान् स्वप्रकृतिभेदकान् । मवि.

(३) राज्ञो धनगृहादनापहारिणः, तथा तदाश्व-व्याघातकारिणः, शत्रूणां च राज्ञा सह वैरवृद्धिकारिणोऽप-राधापेक्षया करचरणजिह्वाच्छेदनादिभिर्नानाप्रकारदण्डै-र्शातयेत् । मसु.

(४) उपजापकान् तत्पक्षपातिनो भूत्वा राजद्विच्छ-प्रकटकान् । मच.

(५) अरीणामुपजन्तुन् मित्राण्यथो यथा भवेयुस्तथा भेदकान् । इत्यर्थः । कृतसन्धीनामरीणामुपजापकानिति वा । नन्द.

चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः ।

अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥

(१) चिकित्सका मिषजस्तेषां मिथ्याप्रचाराणा-मौषधदानमुभयथा संभवति । यदि वाऽविज्ञातशास्त्र-

५०८ (राज्ञः कोशापहर्तृश्च हन्यादेवाविचारयन्) नारदः, एतावदेव : ५०८ प्रतिकूलेषु च (प्रातिकूल्येष्वेव) उत्तरार्धे (अरीणामुपजन्तुंश्च शातयेद्विधैर्वधैः); दवि. ३१६ विरवत्; सवि. ४९३ (=) मितावत्; वीमि. २।३०२ पु च (व्यव) जाप (जाय); व्यग्र. ५६९ पु च (प्वव) रोषं पमावत्; व्यड. १६५ जाप (जीव) क्रमेण याज्ञवल्क्यः; व्यम. ११० पु च (प्वव); विता. ८२७; बाल. २।२७६; सेतु. ३०६ पूर्वार्धे (कोषाणामपहन्तुंश्च प्रतिकूले-ष्ववस्थितान्) याज्ञवल्क्यः; समु. १६५ व्यमवत्; भाच. जाप (याज).

(१) मसु. ९।२८४; व्यनि. ५१० बृहस्पतिः; समु. १५८ क्रमेण यमः.

१ माजनेयाश्चादि.

प्रयोगतया शास्त्रे परिचितेऽपि वाऽतत्परतयाऽर्थलिप्सया । अमानुषेषु गवाश्वहस्त्यादियु प्रथमः साहसदण्डोऽनुप-क्तव्यः । एवं मानुषेषु तु मध्यम इति । तथाप्रचारेण यद्याश्वेव विपद्येत तदा महान् दण्डः कल्पनीयः ।

मेघा.

(२) सर्वेषां कायशल्यादिभिर्गजां दुश्चिकित्सां कुर्वतां दण्डः कर्तव्यः । तत्र गवाश्वदिविषये दुश्चिकित्सायां प्रथमसाहसदण्डो मानुषविषये पुनर्मध्यमसाहसः । मसु.

चौरादिकण्टकानिग्रहो राज्ञो धर्मः

परमं यत्नमातिष्ठेस्तेनानां निग्रहे नृपः ।

स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ॥

(१) कश्चित् करुणावान् 'कूरं हिसाकर्म' इति मन्यमानो न प्रवर्तते । अतस्तत्प्रवृत्त्यर्थं स्तेननिग्रह-स्तुत्यर्थवादः प्रक्रम्यते । नात्र हिंसादोषोऽस्ति प्रत्युत दृष्टा-दृष्टोपकारहेतुत्वात्स्तेनहिंसैव श्रेयस्करी । वेदतुल्यतां च ख्यापयितुमर्थवादा भूयांसस्तत्र हि प्रायेण सार्थवादका विध्युद्देशा इति तत्प्रतीत्यनुसरणेन वैदिकोऽयमर्थ इति प्रसिद्धिः । भवन्ति चात्र केचित्प्रतिपत्तारो ये स्तुति-भिर्रतितरां प्रवर्तन्ते । परमं यत्नं प्रकृष्टमतिशयवत्तात्पर्यं आश्रयेत् चरैश्चारयेत् साक्षात्प्रकाशं चातिप्रयत्नतः । स्तेनाः चौराः । निग्रहो नियमनवधबन्धनादि ।* एवं कृते यशः ख्यातिर्भवति । निरुपद्रवोऽस्य राज्ञो देशः, स्तेना नाभिभवन्ति, निशा दिवा तुल्या तत्र, इति सर्वत्र स्थितं भवति । राष्ट्रं वर्धते । राष्ट्रं जनपदस्त-स्मिन्निवासिनश्च पुरुषाश्चौरैरनुपद्रूयमाणा वर्धन्ते । श्रीभिः प्रमोदमाना बहुपर्यन्तदेशान्तरस्था अपि निरुपद्रवं राष्ट्र-माश्रयन्ते । ततो वर्धते । मेघा.

(२) चौरनियमे प्रकृष्टमभियोगं राजा कुर्यात् । यस्मात्तन्निग्रहात् राज्ञः प्रजा निरुपद्रवतया च देशो जनघनबाहुल्येन वृद्धिमेति । *गोरा.

* मसु. गोरावत् ।

(१) मसु. ८।३०२ [हाद (हाचा) Noted by Jha]; गोरा. यशो (प्रजा); व्यक. ११० राष्ट्रं च (राज्यं वि); विर. २९३; विचि. १२४; स्मृचि. २५; सेतु. २२९; विन्व. ५१ हाद (हेणा).

१ शब्दोऽनु. २ रिति. ३ न्ते दे.

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ।
सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥

(१) अभयं चौरादिभ्योऽधिकृतेभ्यश्चासहण्डनिवारणेन यो ददाति स सर्वदैव पूज्यो भवति स्वैरकथास्वपि राज्याच्युतो वनस्थोऽपि । सत्रं क्रतुविशेषो गवामयनादि, तदस्य वर्धते निष्पद्यते । सर्वाङ्गमुत्पन्नं एवंगुणमित्येतद्वर्धत इत्यनेनाह । अहरहः सत्रफलं प्राप्नोतीत्यर्थः । अभयं यत्र दक्षिणा । अन्येषु सत्रेषु दक्षिणा नास्ति । इदं तु सर्वेभ्योऽपि विशिष्टं यद्दक्षिणा । वत्सगवाश्वादिभिः (१) दक्षिणा विलक्षणा इत्यर्थवान् सत्रव्यतिरेकः । मेधा.

(२) चौरपापस्य निग्रहणेन साधूनामभयं ददाति स सदा सर्वस्य पूज्यो भवति । यस्मात् सत्रं क्रतुविशेषवत् स्तेननिग्रहः संपद्यते । स्तेननिग्रहाख्यं तस्यान्यसत्रविलक्षणमतिशयेन संपद्यते । अन्यत् किल सत्रं नियतकालं भवति, इदं सदैव भवति च, अदक्षिणं च अन्यत् सत्रं, इदं पुनरभयं दक्षिणा यस्य तदभयदक्षिणम् ।

* गोरा.

सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः ।

अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥

(१) सर्वतः सकाशाद्यज्ञादेः तथा ग्रामवासिभिः वनवासिभिश्च कृताद्धर्मात् षड्भागं राजा लभते । एवमधर्मादपि चौरैः प्रलभ्यकृताद्राज्ञः षड्भागो भवति, न केवलं स्तेनैर्भे मुष्यन्ते तदरक्षतो राज्ञामधर्मो, यावद्ये हरन्ति तेषामपि चौरभावेनाधर्मोदयस्तद्विशेषेणापि राजानः संबध्यन्ते । तान् नियह्यतां अदृष्टदोषसंबन्धनिवारणमपि । रक्षणां रक्षणे अधिकृतस्य राजस्तदकरणाद्युक्तः प्रत्यवायः । ननु च भृतिपरिक्रीतत्वाद्धर्मषड्भागवचनम-

* मसु. गोरावत् ।

(१) मसु. ८।३०३; व्यक. ११० सत्रं हि वर्धते (कृत्वं हि वर्धते); विर. २९३-४ हि व (विव); विचि. १२४ हि यो (तु यो); स्मृचि. २५; सेतु. २२९ विचिवत्.

(२) मसु. ८।३०४ [भवत्यस्य (भवत्येव) Noted by Jha]; विचि. २६३ राज्ञो भवति (भवत्यस्य हि.) पू.; दवि. ५ ह्यरक्षतः (ह्यरक्षणात्).

१ आदिभिः + (ये मुष्यन्ते तदरक्षतो राज्ञामधर्मो यावद्ये हरन्ति). २ प्रका. ३ चौर्यसा. ४ तानि निमृह्यन्ति. ५ रक्षैव । तत्राधि.

युक्तम् । उक्तं दीनानाथपरिव्रजितादयः संन्यकरप्रदाः ।
परिपूर्णस्वधर्ममालने च न काप्यनुपपत्तिः । मेधा.

(२) सर्वतो भृतिप्रदानव्यतिरिक्ताच्च श्रोत्रियादीनां साधूनां सकाशाद्धर्मषड्भागो राज्ञः प्रजारक्षणाद्भवति । अरक्षतश्च अधर्मादपि लोके चर्यमाणात् षड्भागोऽस्य भवति । तस्माद्यत्नतः स्तेननिग्रहेण प्रजासंरक्षणं कुर्यात् । न च वृत्तिपरिक्रीतत्वाद्गोत्रो धर्मप्राप्तिरयुक्ता । वृत्तिपरिक्रयवद्धर्मभागपरिक्रयस्यापि शास्त्रीयत्वात् । गोरा.

(३) प्रजा रक्षतो राज्ञः सर्वस्य भृतिदातुर्वणिगादेः भृत्यदातुश्च श्रोत्रियादेः सकाशाद्धर्मषड्भागो भवति । * मसु.

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यद्वर्धते ।

तस्य षड्भागभाप्राजा सम्यग्भवति रक्षणात् ॥

(१) यदुक्तं सर्वत इति तस्य प्रपञ्चोऽयम् । अध्ययनादयो धर्मार्थतयाऽन्यत्र ज्ञापिताः प्रसिद्धरूपाश्च । अर्चनं देवगुरुणां पूजनम् । तस्येति कर्मणोऽध्ययनादेः पदार्थस्येति योजनीयम् । क्रियायाः स्त्रीलिङ्गत्वात् । नै च षड्भाग इति वैचनात् कर्तुः पञ्च कर्मफलांशैः षष्ठोः नृपतेः, समग्रकर्मफलभोक्तृत्वस्याधिकारतः कर्तुरवगतत्वात् । अपि तु सम्यग्रक्षणात्स्वकर्मानुष्ठानात् तावन्मात्रं राज्ञः फलमुत्पद्यत इति । नान्यकृतस्य शुभस्याशुभस्य वा अन्यत्र गमनं, नाकर्तुः फलमस्तीति स्थितम् । मेधा.

(३) यः कश्चिदध्ययनयजनयाजनदेवतार्चनादि करोति तस्य यत्फलं तस्य फलस्य राज्ञा सम्यक् प्रजापालनात् षड्भागः प्राप्यते । गोरा.

रक्षन् धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ।
यजतेऽहरहर्ह्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥

(१) भूतानि स्थावरजङ्गमानि चौरैभ्यो रक्षन्, वध्यांश्च शास्त्रतो वधार्हास्तांश्च घातयन् सहस्रशतदक्षि-

* शेषं गोरावत् ।

(१) मसु. ८।३०५ [यद्ददाति (यज्जुहोति) Noted by Jha]; विचि. २६३.

(२) मसु. ८।३०६; विचि. २६३-४; स्मृचि. २५ यजतेऽ (यजेता).

१ पालिनकानुप. २ (न च०). ३ कर्तुं कः ४. शास्त्र प.

गानां, पौण्डरीकादीनां कर्तृनां फलमन्वहं राजा प्राप्नो-
तीति स्तुतिः । मेघा.

(२) भूतानि स्थावरजङ्गमानि शान्त्रव्यवस्थया
राजा रक्षन् वध्यान् स्तेनादीन् यथाशास्त्रं घातयन्
लक्षदक्षिणानां यज्ञानां संबन्धि फलं प्रत्यहमर्जयति ।
तत्र महाप्रयासकर्मसंबन्धि फलं कथमल्पप्रयासात्कर्मणः
प्राप्यते । तथा सति को नाम प्रयासेषु वर्तेत इति
चोदनीयम् । फलोपभोगकालाल्पभूयस्त्वे च विशेष-
संभवात् । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् । गोरा.

योऽरक्षन् बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ।

प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत् ॥

(१) बलिप्रभृतीनि राजग्राह्यकरनामानि देशभेदेर्भू-
यानि माणवकवत्प्रसिद्धानि, तत्र बलिर्धान्यादेः पशो
भागः, करो द्रव्यादानं, शुल्कं वणिक्प्राप्यभागः, प्रति-
भागं फलोपभोगिकाद्युपायनम् । राजैतद् गृह्णाति चौरै-
भ्यश्च न रक्षति, स सद्य आयुःक्षयान्नरकं गच्छेत् ।
गृहीत्वा राजभागं रक्षा कर्तव्या । नरकायुःक्षयभयादिति
श्लोकतात्पर्यम् । मेघा.

(२) यो राजा प्रजासंरक्षणमकुर्वन् धान्यादेः षड्-
भागादिकं करं गुल्मदास्यादिकं स्थलपथादिजीविभ्यो
गतगतभ्यो भूतेर्भोगं फलं फलकुसुमाद्युपायनं शुल्कं
दण्डं व्यवहारादौ गृह्णाति स आयुःक्षयेण सत्यमेव नरकं
याति । गोरा.

(३) प्रीतिभोगमिति क्वचित्पाठः, तत्र प्रीत्योप-
दौकितं फलादीत्यर्थः । मवि.

(४) यो राजा रक्षामकुर्वन्, बलिं धान्यादेः
षड्भागं, ग्रामव्यसिम्बः प्रतिमासं वा भाद्रपौषनियमेन
ग्राह्यं (करं), शुल्कं स्थलजलपथादिना वणिज्याकारितेभ्यो
नियतस्थानेषु द्रव्यानुसारेण ग्राह्यं दानमिति प्रसिद्धं,
प्रतिभागं फलकुसुमशाकतृणाद्युपायनं प्रतिक्लिन्ग्राह्यं,

(१) मस्मृ. ८।३०७ [प्रतिभागं (सूतिभागं, प्रतिभोगं,
प्रीति भोगं) Noted by Jha]; गोरा. प्रतिभागं
(भूतिभोगं); मवि. भागं (भोगं) ' प्रीतिभोगमिति
क्वचित्पाठः; स्मृचि. २५ मविवद; द्वि. ५ मविवद; मच.
प्रतिभागं (प्रीतिभोगं); नन्द. मचवद; भाच. मचवद.

१ सै मा. २ लभ.

दण्डं व्यवहारादौ गृह्णाति स मृतः मन् सद्य एव
नरकं याति । मम.

अरक्षितारं राजानं बलिपट्टभागहारिणम् ।

तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥

पूर्वस्य शेषोऽयं निन्दार्थवादः । न रक्षति, अतोऽ-
जीविता प्रजानां राजभागग्रहणेन । एतदेव स्पष्टयति ।
बलिपट्टभागहारिणं तं तादृशं राजानमाहुः शिष्टाः सर्व-
लोकस्य सर्वस्याः प्रजायाः समग्रं मलं पापं तस्य हारकं
स्वीकर्तारं. सर्वेण प्रजापापेन दृष्यत इत्यर्थः । मेघा.

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् ।

अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥

मर्यादा शास्त्रशिष्टसमाचारनिरुद्धा धर्मव्यवस्था या
साऽनवेक्षिताऽतिक्रान्ता येन । नास्ति परलोको नास्ति
दत्तं नास्ति हुतमिति नास्तिकः । प्रथमो रागादिना त्यक्त-
धर्मो, 'द्वितीयो वस्तुविपरीतनिश्चयः । विलुम्पति हरति
धनान्यसद्गुणैः प्रजानां, तत्तुल्योऽरक्षिता । तमधोगतिं
विद्यान्नरकपतितमधोगतं विद्यान्नरकपतितमेवाचिरात् ।
पाठान्तरं, 'असत्यं च नृपं त्यजेत् ।' अन्यदुक्त्वा
अन्यत्करोति यस्तं त्यजेत्तद्विषये नासीत् ।

मेघा.

अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात् प्रयत्नतः ।

निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥

निग्रहेण च पापानां साधूनां संग्रहेण च ।

द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः * ॥

क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्याणां नृणाम् ।

बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥

* अनयोर्व्याख्यासंग्रहः स्वलादिनिर्देशश्च दण्डमातृकार्या
(पृ. ५७७) द्रष्टव्यः ।

(१) मस्मृ. ८।३०८ ख., राजानं (अत्तारं) [हारकम्
(हारिणम्) Noted by Jha]; मेघा. राजानं
(अत्तारं); मवि. मेधावद.

(२) मस्मृ. ८।३०९ [प्रलुम्प (प्रलोप) विद्याद
(गच्छेत्) Noted by Jha]; मेघा. पेक्षि (वेक्षि)
नृपं तिस्र (असत्यं च नृपं त्यजेत्) इति पाठान्तरम् ;
भाच. पेक्षि (वेक्षि).

१ (द्वितीयो).

यः क्षिप्रो मर्षयत्यातैस्तेन स्वर्गे महीयते ।
यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति* ॥

स्तेयमहापातकदण्डविधिः । दण्ड्यस्य मोक्षे राजा दोषभाक् ।

राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ।
आचक्षणेन तस्तेयमेवंकर्माऽस्मि शाधि माम् ॥
स्कन्धेनादाय मुसलं लशुडं वाऽपि खादिरम् ।
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥

(१) अविशेषोनादाने सुवर्णहारी स्तेनो द्रष्टव्यः ।
तस्यैव शास्त्रान्तरे गमनविधानात् । न चेदमागमनपरं
विधिशास्त्रं दण्डविधित्वात् । उक्तं हि 'स्तेनस्यातः
प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये' इति (मस्मृ. ८।३०१) ।
अतोऽनुवार्द्धमात्रं राजसकाशं सुवर्णचौरेण गन्तव्यमिति ।
मुक्तकेशेन धीमता धैर्यवता । धावतेति पाठान्तरम् ।
आचक्षणेन कथयता पथि तत्पातकमेवंकर्माऽस्मि
ब्राह्मणस्य मयेयत्सुवर्णं हृतमिति कुरु निग्रहं मे ।

स्कन्धेनेति । वर्णानामनुक्रमेण मुसलादीनामुपदेशं
मन्यन्ते । तदयुक्तम् । वाशब्दो न समर्थितः स्यात् ।
न च ब्राह्मणस्येदं प्रायश्चित्तमिच्छन्ति, तत्प्रायश्चित्तेषु
निरूपयिष्यामः । खादिरजातिर्लशुड एव, न मुसलेना-
नुषक्तव्यः । मेघा.

(२) 'सुवर्णस्तेयकृद्भिः' (मस्मृ. ११।९९) इत्या-
दिना प्रायश्चित्तप्रकरणे वक्ष्यमाणस्तेनकर्तव्यः (?) अनेन
श्लोकद्वयेन अस्मिन् दण्डप्रकरणेऽनूद्यते सुवर्णस्तेनं
प्रति दण्डाख्यराजकर्तव्यस्योपदेशार्थः । ब्राह्मणसुवर्ण-
चौरेण मुक्तकेशेनादराद्वेगगतिना ब्राह्मणसुवर्णमियन्मया-
ऽपहृतं इत्येवं तस्तेयं ख्यापयता मुसलाख्यमायुधं
खादिरमयं वा लशुडं शक्त्याख्यं चायुधं तीक्ष्णोभयप्रान्त-

* अमयोर्व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दर्शनविधौ
(७८) द्रष्टव्यः ।

(१) मस्मृ. ८।३१४ ख., धावता (धीमता); मेघा.
धावता (धीमता); अप. ३।२५७ पू.

(२) मस्मृ. ८।३१५ [वाऽपि (वाऽथ) Noted by
Jha]; मिता. ३।२५७ लशुडं (लकुटं) शक्तिं.... क्षणा
(अस्ति चोभयतरतीक्ष्ण); अप. ३।२५७ शक्तिं.... क्षणा
(अस्ति चोभयतरतीक्ष्ण).

१ दमगमनस्यात्र रा. २ व्यम् ।.

मयोमयं वा दण्डं स्कन्धेन गृहीत्वा राजसमीपं गन्तव्यम् ।
गत्वा च ब्राह्मणसुवर्णापहारी चाहं, अनेन मुसलादिना
मां जहीत्येवं रात्रे वक्तव्यम् । गोरा-

सुवर्णस्तेयकृद्भिः राजानमभिगम्य तु ।

स्वकर्म ख्यापयन् ब्रूयान्मां भवाननुशास्विति ॥

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ।

वधेन शुद्धयति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥

तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।

चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः* ॥

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।

अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥

(१) शासनान्मुसलादिभिः प्रहरणात् क्षत्रियादिः
पापान्मुच्यते । विमोक्षादुत्सर्गात् । गच्छ क्षान्तमिति ।
'ब्राह्मणस्तपसैव' इति वधतपसी विहिते । तत्र वधस्तावत्
ब्राह्मणस्य नास्ति, तपस्तु प्रायश्चित्तम् । न च तपसि
इच्छातो राजाभिगमनमस्ति । तस्मात् क्षत्रियादीनामेष
विमोक्षः । स च धनदण्डं गृहीत्वा । यत आह अशा-
सित्वेत्यादि । न च विमोक्षेणात् शुद्धौ सत्यां रात्रस्तद-

* एषां व्याख्यासंग्रहः प्रायश्चित्तकाण्डे संग्रहीष्यते ।

(१) मस्मृ. ११।९९; अपु. १६।१२०; गौमि.
१।२४०. [अवशिष्टस्थलादिनिर्देशः प्रायश्चित्तकाण्डे संग्रहीष्यते]

(२) मस्मृ. ११।१००; मस्मृ. ८।३१५ इत्यस्योपरिष्ठात्
प्रक्षिप्तत्वेनायमेव श्लोकः समुद्धृतः, ति (ते) व तु (व वा);
अपु. १६।१२१ तु तं स्वयम् (त्वय्यगतम्) ढ्यति (ढ्यते)
व तु (व वा); मिता. ३।२५७ व तु (व वा); मभा.
१।२।४१ मिलावत्; गौमि. १।२।४१ पू., स्मरणम् : १।२।४३
व तु (व च) उक्त. [अवशिष्टस्थलादिनिर्देशः प्रायश्चित्तकाण्डे
संग्रहीष्यते ।]

(३) मस्मृ. ११।१०१ [हणो (हणि, हति) Noted
by Jha]; मभा. १।२।४१. [अवशिष्टस्थलादिनिर्देशः प्राय-
श्चित्तकाण्डे संग्रहीष्यते]

(४) मस्मृ. ११।१०२.

(५) मस्मृ. ८।३१६; गोरा. अशासित्वा (प्रशाधित्वा) ;
मभा. १।२।४२ चतुर्थपादः, स्मृत्यन्तरम्.

१ तप इ. २ क्षणम्.

शासनात् दोषोपपत्तिः । न च शासनमपि विहितं मोक्षोऽपि विहितः, तत्र यस्मिन्पक्षे शासनं तदपेक्षं दोष-वचनम् । पाक्षिकं हि तथा कल्पेत । न च नित्य-वच्छ्रुतस्य पाक्षिकत्वं युक्तं कल्पयितुम् । तथा च सामान्येन वसिष्ठादय आहुः—‘एनो राजानमृच्छति उत्सृ-जन्तं सकिल्बिषम् । तं चेत् घातयते राजा भ्रन् धर्मेण न दुष्यति ॥’ (वस्मृ. १९।३१) । नायं विकल्पो युक्तः ।

कचिदियं हिंसा प्रतिषिद्धा ‘न हिंस्याद्भूतानि’ इति रागादिना पुरुषार्थतया प्राप्ता । कचिद्विहिता क्रत्वर्थत्वेन ‘यो दीक्षितो यदग्नीषोमीयमि’ति । इयं तु शासनविमोक्षणवचनानात् न हि नाम प्रतिषिद्धा उक्ते सति विधौ । कथं न प्रतिषेधो, ‘न हिंस्याद्भूतानी’ति सामान्यतः प्रतिषेधो विधिविशेषमन्तरेण न शक्यो बाधितुम् ।

अथोच्यते । नैवायं प्रतिषेधस्य विषयः । कर्माथत्वात् । कथं पुनरन्तरेण विधिं कर्माथता शक्याऽवगन्तुम् । लोकेत इति चेन्नौकिकी तर्हि प्रवृत्तिः । कथं तर्हि (न) प्रतिषेधस्तत्रावतरेत् । ननु च प्रधाने प्रवृत्तिर्निरूप्य-ताम् । यदि तावद्वैदिकी प्रवृत्तिस्ततस्तदङ्गे हिंसायामपि तत एव, एका हि प्रवृत्तिरङ्गप्रधानयोः । अथ लिप्सात्तोऽङ्गेऽपि तैत एव प्रवृत्तिः । सुतरां तर्हि हिंसेयं लौकिकी । जीविकार्थिनो हि प्रजापालनाधिकारनियमोऽत्र वैधः । तेनेयमङ्गस्थाऽपि हिंसा द्येनेन तुल्यत्वात्प्रतिषेध-विषयः । न च लौकिकमस्या नियतमङ्गत्वम् । न हिंसामन्तरेण प्रजापालनमशक्यम् । निरोधादिनाऽपि शक्यत्वात् । नैप नियम एकरूपाङ्गप्रधानयोः प्रवृत्तिरिति । र्थेनाग्नीषोमीययोरेनेन न विशेषः स्यादतो लिप्सालक्षणेऽपि प्रधानेऽङ्गे विधिलक्षणमभ्युपेतव्यम् । न चैषां हिंसा विधिलक्षणा शक्याऽभ्युपगन्तुं, स्वरूपस्य कार्यस्य च लौकिकत्वात्पालनस्य हिंसायाश्च । अथ विधिलक्षणा, षोडशिशिग्रहणवद्विकल्पितुमर्हति शासनवचनेन प्रतिषिद्धा ।

अन्ये तु मन्यन्ते । द्वे एते वाक्ये । शासनादिति स्तेनस्य शुद्धिरुच्यते । परेषामर्थेन राजस्तदशासने दोषः ।

१ वचनाना न. २ श्रुत्वा स. ३ तत्र प्र. ४ नो हि. ५ स्यान्नाभी. ६. (न०). ७ चैष हिं.

व्य.कां. २१४

तत्र यदि राजा शासनदोषमात्मन्यङ्गीकृत्य मुञ्चेत् मुच्ये-तैवैनसः । एवं ब्राह्मणस्यापि स्वयमागतस्य वधः शुद्धि-हेतुः ‘लक्ष्यं वा स्याज्जन्ये शस्त्रभृतामि’ति (गौध. २२।२) वचनात् । ‘न शारीरो ब्राह्मणद्रण्डः’ इति (गौध. १२।४३) । तेन राजा यदि प्रतिषेधातिक्रमेण हन्यात् ब्राह्मणः शुच्ये-देव । अशासित्वा मुसलादिभिरहत्वा स्तेनस्य यत्पापं तेन युज्यते ।

(२) राजसंबन्धिहननेन परित्यागेन वा स चौरस्त-स्मात्पापात् प्रमुच्यते । तं पुनः स्तेनं ‘न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्’ इति (मस्मृ. ८।३८०) वक्ष्य-माणत्वात् ब्राह्मणतस्करहन्ता राजा तस्य संबन्धि यत्पापं प्राप्नोति तस्मादसौ राजा न हन्तव्यः । इत्येवम्परमेत-त्सर्वमिहाभिधानम् । गौरा..

(३) सकृन्मुसलादिप्रहारेण प्राणपरित्याजनान्मृतक-कल्पस्य जीवतोऽपि परित्यागाद्वा स चौरस्तस्मात्पापात् प्रमुच्यते । अत एव याज्ञवल्क्यः—‘मृतकल्पः प्रहारातो जीवन्नपि विशुध्यति’ इति । तं पुनः स्तेनं करुणादिभि-रहत्वा स्तेनस्य यत्पापं तद्राजा प्राप्नोति । मसु..

(४) किल्बिषं पापं सहस्रदण्डं वा । *मच..

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्याऽपचारिणी ।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥

(१) अन्नमत्तीयन्नादो भ्रूणहा ब्रह्महा तदीयमन्नं यो मुङ्क्ते तस्मिन्स्तदब्रह्महत्यापापं मार्ष्टि निरस्य न्येस्यति श्लेषयति । यथा मलिनं वस्त्रमुदके मृज्यते तन्मलं तत्र संक्रामत्येवं, अर्थवादश्चायम् । तस्य तत्पापमुत्पद्यते, न पुनैर्ब्रह्मन्नो नश्यति । पत्यौ भर्तारि, भार्याऽपचारिणी जारिणी, स चेत्क्षमते । अत्रापि भर्तुरुत्पद्यते पापं, न तत्र तस्या अपैति । गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च, शिष्यः सूर्याभ्युदितादिभिरपराध्य तु गुरौ क्षममाणे तत्पापं प्राक्षि-पति । एवं याज्यो याजके । सोऽपि गुरुरेवैत्यतो याजक-ग्रहणं न कृतम् । एवं चौरा राजनि । न चेद्राजा नित्यहते । याज्योऽपि कर्मणि प्रवृत्ते विधिमपक्रामति

* श्लेषं मसुवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३१७.

१ न रा. २ रस्यति. ३ नर्भक्षो विशिष्यति.

चेद्याजकवचने नावतिष्ठते तदा त्याज्यो न पुनस्तस्य ताडनादि शिष्यवत्कर्तव्यम् । अन्नादादिषु सर्वेष्वन्यत्र विधिरस्तीति नैसिद्धिरतोऽर्थवादोऽयम् । + मेधा.

(२) स्तेनश्च राजनि सहमाने सति । असति तस्मात् राज्ञा वक्तव्यः । * गोरा.

(३) स्तेनस्य परस्य पापेन राजा तज्जातीयपापवान् भवतीति स्तेनदृष्टान्तेनान्येषामपि परपापवत्त्वमाह— अन्नाद इति । अन्नादे तदन्नभोक्ता भ्रूणहा स्वकिल्बिषं मार्ष्टि संक्रामयतीत्यन्वयः । पतिपदमुपलक्षणं येन येन संगता तं तमपि । अत एवोक्तं 'निःश्वासाद्वात्रसंस्पर्शादि'-त्यादि । याज्यश्च याजक इति शेषः । एतेनान्यपापेनान्यस्यापि तज्जातीयपापजन्म विवक्षितं न तु पापिनः पापनाश इति केचित् । तत्र 'दानेनाकार्यकारिणः' (मस्त्र. ५.१०७) इति वचनात् शुध्यन्त्येव ते सर्वदा, अन्यथा बहुविक्तव्ययायासप्रायश्चित्तादौ तादृशे कोऽपि न प्रवर्तते । अत एव यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषमिति संगतम् । अत्र भ्रूणहेत्यादित्रयं सिद्धवत्कृत्य राजनि पापसंक्रान्तिरुक्ता, अतश्चतुर्णां परस्परदृष्टान्तता तेन पापिनोऽन्नं न भोक्तव्यं भार्यादिकं च शासनीयमिति भावः । मच.

चौरस्य पापस्य च दण्डेन प्रायश्चित्तवच्छुद्धिः

राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।

निर्मलाः स्वर्गमावाप्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥

(१) यदुक्तं पापकारिणो निग्रहेण कर्मकृतो रक्षन्त इति तत्स्फुटयति । धृतो विनिर्पातितो दण्डो येषां राजभिस्ते कृत्वा पापानि कृतपापा राजनिग्रहेण निर्मला निरस्तपापा भवन्ति । अपगते च पापे यदेषां स्वर्गारोहकं कर्म तेन स्वर्गं प्राप्नुवन्ति । महद्भि पापं शुद्धस्य कर्मणः फलस्य प्रतिबन्धकम् । सुकृतिनो नित्यं सुकृतकर्मकारिणः । यथा सन्तो धार्मिकास्तद्वत् । असतामधर्मो

+ मसु. मेधावत् । * शेषं मेधावत् ।

(१) मस्त्र. ८।३१८ क., घ., भिर्धृत (भिः कृत), ग., भिर्धृत (निर्धृत), [भिर्धृत (निर्धृत, निर्धृत) Noted by Jha]; मभा. १२।४०; उ. २।२९।९; विचि. १८९ (=); दचि. ११.

१ नाशुद्धि. २ पातिते द.

नैवोत्पद्यते । एषामुत्पन्नो निग्रहेण विनाशित इति प्राक्प्रध्वंसाभावयोर्विशेषः । मानवग्रहणं तु प्रकरणाच्चौराणामेव । दण्डशब्दस्तु शारीरनिग्रहविषयो न हि प्रकरणमतिक्रामति । धनदण्डो हि राजार्थः । वृत्तिर्हि सा राज्ञः । शारीरे तु दण्डे दण्ड्यमानार्थता न शक्यते निहोतुम् । त्वकसंस्कारो हिंसा । अथेयं बुद्धिः, पालनमेव हिंसामन्तरेण न निष्पाद्यते, तच्च राजार्थमिति कुतो मार्यमाणार्थता मारणस्य । अथ किम् । पालनं न पाल्यमानार्थदृष्टमेवापह्नयते । न हि तद्राष्ट्रसुपादेयं, राजैव स्वरक्षार्थं करशुल्कादिभृत्या उपादीयन्ते । अतः सुतरां रक्षोपभोगित्वं हिंसायां हिंस्यमानार्थता सिद्धिः । कथं वा हिंसया विना न रक्षानिवृत्तिर्यदि तावदेवमर्थं निगृह्यन्ते, पुनरकार्यमावर्तयिष्यते, तन्निरोधनादपि शक्यते नियन्तुम् । अथ तान्निगृहीतान् दृष्ट्वा भयादन्ये न प्रवर्तयिष्यन्त इति । धनदण्डेनापि शक्यते दुःखयितुम् । हन्यमानेष्वपि सहस्रशः प्रवर्तन्ते । तस्मादियं हिंसा रक्षा सती हिंस्यमानसंस्कार इति मन्तव्यम् । अतश्च कैरणादिच्छेदने नियमो हस्त्यादिविधिश्च दण्ड्येऽदृष्टमाधास्यति न राजार्थो भविष्यति । तस्माच्छारीरदण्डे पापान्मुक्तिर्न धनदण्ड इति स्थितम् तथा च महापातकिनां हृतसर्वस्वानामप्सु प्रवेशितदण्डानां संव्यवहारपरिहारार्थमङ्कनं वक्ष्यति । यदि च धनदण्डेन शुध्येयुः पुनरङ्कनमनर्थकं स्यात् । अत्र च स्वयमागतस्य नानीवस्य च विशेषो यः स्तेन एव विशेषो भवतु । इदं तु सर्वं शारीरदण्डविषयम् । मेधा.

(२) ते समुद्धृताः पापानि कृत्वा, पूर्वाज्जनं तथा क्रतुवरान् कृत्वा, स्वर्गमपापाः सन्तः शिष्टा इव शुभकारिणो ब्रजन्ति, ये तत्पापनिमित्तं राजभिः कृतदण्डा भवन्ति । इह पापानीति बहुवचनात् हिरण्यस्तेनविषय एष दण्डेन न कार्यानिष्कृतिः अपि तु सकलैस्त्रिविषयेत्यवसीयते । न च स्वयमागतविषयैव । दण्डेन पापनिष्कृतिः, न हठदण्डितविषये इति मन्तव्यम् । हठदण्डितस्यापि 'यदि संसाधयेत्तच्चे'त्यादिनिष्कृतेर्दक्षितत्वात् । साम्ययातनाभिर्वा कथं परवशस्य निष्कृतिः स्यात् । गोरा.

१ हणानु प्र. २ कार. ३ (च०).

(३) सुवर्णस्तेयादीनि पापानि कृत्वा पश्चाद्राज-
भिर्विहितदण्डा मनुष्याः सन्तः प्रतिबन्धकदुरिताभावा-
त्पूर्वाञ्जितपुण्यवशेन साधवः सुकृतकारिण इव स्वर्गं
गच्छन्ति । एवं प्रायश्चित्तवहण्डस्यापि पापक्षयहेतुत्व-
मुक्तम् । ममु.

प्रकाशतस्करदण्डाः

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्द्वै मूल्यतोऽपि वा ।
स प्राप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥

(१) येषां द्रव्याणां समत्वेन विनिमय उक्तो यथा
‘तिला धान्येन तत्समाः’ इति (मस्मृ. ११।१५४) ।
तत्र यदि विषममाचरति, व्यवहारार्थं तिल दत्त्वा
बहुधान्यं व्रीह्यादि गृह्णीयात्, असति वा विनिमये
मूल्यतः क्रयव्यवहारेण व्रीह्यादिधान्येभ्योऽधिकेन मूल्येन
क्रीणाति । अथवा कस्यचिदुत्तरीयमुपबर्हणमस्ति विक्रेतव्यं,
कस्यचिदन्तरे शाटकाः, तत्र यस्योपबर्हणमस्ति तस्यान्तर
उपयुज्यन्ते, उपबर्हणेन च ते सममूलाः, तत्र तदीयां
कार्यवत्तां ज्ञात्वा समत्वेन न ददात्यधिकमूल्यं गृह्णाति,
स उच्यते समैर्विषमं चरति मूल्येन, तयोः क्रेतुर्विक्रेतुश्च
तौ दण्डौ, चरति मूल्यत इत्येकार्थः, तथैव वाशब्दोऽ-
स्मिन्पक्षे पादपूरण एव । प्रथममध्यमोक्त्या क्रयविक्रयौ
विकल्पितौ द्रव्यसारापेक्षया । मेधा.

(२) समैः सममूल्यदातृभिः सहोत्कृष्टापकृष्टविषय-
द्रव्यदानेन यो व्यवहरत्यसौ पूर्वसाहसं प्राप्नोति । समे
च द्रव्ये ब्रह्मत्वं च मूल्यमाददानो मध्यमसाहसमित्यर्थः ।
अप. २।२४४

(३) समैर्ऋजुशीलैः विषमं वक्रं विचरेत् व्यवहारं
कुर्यात् । मूल्यतो विषमं चरेत् अधिकं गृह्णीयात् ।
व्यवहारमात्रे पूर्वं दमम् । मूल्यतो मध्यमम् । मवि.

(१) मस्मृ. १।२८७ स प्रा (समा) [ममेव (म एव)
Noted by Jha]; अपु. २२७।५६-७ (समैश्च विषमं
यो वा चरेत् मूल्यतोऽपि वा । समाप्त्याः पूर्वं दमं मध्यममेव
वा ॥); अप. २।२४४; व्यक. १।१०; विर. २९६ द्वै (द्वा);
विचि. १२५ मेव वा (मेव च); द्दवि. ९० हिं (श्व)
यस्तु (यत्र) द्वै (द्वा); सेतु. २३०; ससु. १५९ चरेद्वा
(कारयेत्).

१ चौ क्र.

(४) समैः सममूल्यदातृभिः सहोत्कृष्टापकृष्टद्रव्य-
दानेन यो विषमं व्यवहरति, सममूल्यं द्रव्यं दत्त्वा
यः कस्यचिद्बहुमूल्यं कस्यचिदल्पमूल्यमिति विषमं
मूल्यं गृह्णाति, सोऽनुबन्धविशेषापेक्षया प्रथमसाहसं
मध्यमसाहसं वा दण्डं प्राप्नुयात् । ममु.

(५) समैः सममूल्यदातृभिः नानापुरुषैः सह
उत्कृष्टापकृष्टविषमद्रव्यदानेन यो व्यवहरति असौ पूर्व-
साहसं प्राप्नोति । समैर्वा द्रव्यैः क्रेतव्यैर्मूल्यतो विषमं
चरन् योऽधिकमूल्यं गृह्णन् मध्यमसाहसं प्राप्नोतीत्यर्थः ।
हलायुधस्तु विनिमयप्रवृत्तयोरेकतरस्यार्थित्वं ज्ञात्वा
अल्पमूल्येन बहुमूल्यस्य विनिमयव्यवहारं विषमं
यश्चरति, यो वा क्रेतुरार्थिताविशेषं ज्ञात्वा अल्पमूल्यं
वस्तु बहुमूल्येन विक्रीणीति, स धनापेक्षया प्रथमं साहसं
मध्यमं साहसं वा दण्ड्य इत्याह । विर. २९६

(६) समैः साधारणैर्वस्तुभिर्विषमं विलक्षणं वस्तु
परिवर्तेन मूल्येन वा गृह्णन् षष्ठभागहानौ सार्धपणशतद्वयं,
पञ्चमादिभागहानौ तु पञ्चपणशतं दमं दाप्य इत्यर्थः ।
विचि. १२५

(७) द्वयोः सकाशात् समं मूल्यं तयोरेकस्योत्कृष्ट-
मन्यस्यापकृष्टं पण्यं वैषम्येण ददानः पूर्वसाहसं दाप्यः ।
समे द्रव्ये क्रेतव्ये क्वचिदाधिकं मूल्यं वैषम्येण गृह्णन्
मध्यमसाहसं दाप्य इत्यर्थ इति रत्नाकरः ।

विनिमयप्रवृत्तयोः क्रयप्रवृत्तयोर्वा द्वयोरेकतरस्यार्थित्वं
ज्ञात्वाऽल्पमूल्येन बहुमूल्यं परिवर्तयन् अल्पमूल्ये विक्रेये
बहुमूल्यं गृह्णन् पूर्वसाहसं मध्यमसाहसं वा धनापेक्षया
दाप्य इत्यर्थ इति हलायुधः ।

अत्र पूर्वव्याख्याने पूर्वमध्यमसाहसयोर्यां विषम-
व्यवस्था श्रूयते साऽपहृतद्रव्यन्यूनाधिकभावमादाय
समर्थनीया अन्यथा अदृष्टार्थत्वापातात् ।

दवि. ९०-९१

(८) समपण्ये मानतुलादिना यो विषमं चरेत्, यो
वा मूल्यतो विषमं चरेत्, पूर्वं दमं प्रथमं साहसम् ।

नन्द.

अर्बीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टा तथैव च ।
मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्दधम् ॥

(१) मस्मृ. १।२९१ ग., घ., बीजोत्कृष्टा (बीजोत्कृष्टं)

(१) अवीजं वीजमित्युक्त्वा विक्रीणीति स्वरूप-
लोपेन, धान्यशाकादीनां वीजानि चिरप्रोक्षितानि
क्षेत्रे प्ररोहन्ति न च तानि शक्यन्ते बन्ध्यानीति ।
क्षेत्रात्तु वीजमुत्कर्षति शोभनं यद्वीजं क्षिप्रं प्ररोहति
तदुत्कृष्य तदाभासं प्रतिधान्यादि क्षिप्त्वा विक्रीणीते ।
अथवा न्युतं वीजं क्षेत्रादेवोद्धृत्य नयन्ति । मर्यादा
शास्त्रदेशान्चारनिरूढा स्थितिः । विकृतं कर्णनासादि-
कर्तनम् । मेधा.

(२) अवीजविक्रयी वीजमेतदित्युक्त्वा । वीजस्यो-
त्कृष्टा वीजकाले महर्षताकामोत्कर्षकारी । मर्यादाया
ग्रामादिसमयस्य भेदकः । विकृतं कुत्सितं नासाच्छेदादि ।
मवि.

(३) अवीजं वीजप्ररोहासमर्थं व्रीह्यादि प्ररोहसमर्थ-
मिति कृत्वा यो विक्रीणीते, तथाऽपकृष्टमेव कतिपयोत्कृष्ट-
प्रक्षेपेण सर्वमिदं सोत्कर्षमिति कृत्वा यो विक्रीणीते,
यश्च ग्रामनगरादिसीमां विनाशयति स विकृतनासाकर-
चरणकर्णादिरूपं वर्षं प्राप्नुयात् । ममु.

(४) अवीजविक्रयी, अवीजं वीजतया यो विक्रीणीते;
वीजोत्कर्षी, उतं वीजं बलेन योऽपहरति; मर्यादाभेदकः,
देशजातिकुलशास्त्रराजलोकस्थित्यतिक्रमकारी ।

विर. २९६

(५) यश्च परोतं क्षेत्रं बलेन वहति स वीजोत्क्रोष्टेति
भिश्चाः । दवि. ९२

[वीजोत्कृष्टा (वीजात्कृष्टा, वीर्यात्कृष्टा, वीजोत्कृष्टयः, बीजो-
त्कृष्टः, बीजोत्कृष्टाः, बीजोत्कृष्टोः) विकृतं (विविधं) Noted
by Jha]; अप. २।२४४ चैव (यश्च) कश्चै (नाचै)
द्रवम् (दमम्); व्यक. ११० कृष्टा (कृष्टा); विर. २९६
चैव (यस्तु) कृष्टा (कृष्टी); विचि. १०२-३ कृष्टा
(कृष्टी) विकृतं प्राप्नुयात् (प्राप्नुयादिकृतं) : १२५-६ चैव
(यस्तु) विकृतं प्राप्नुयात् (प्राप्नुयादिकृतं); दवि. ९१ चैव
... .. छ (यस्तु वीजोत्क्रोष्टा) : २६१ चैव (यस्तु)
कृष्टा (कृष्टा) विकृतं (विचित्रं); सेतु. १९६ क्रयी
(क्रये) कृष्टा (कृष्टी) श्वैव (स्वैव) विकृतं प्राप्नुयात्
(प्राप्नुयादिकृतं) : २३१ विरवत्; समु. १५९; विव्य. ४८
कृष्टा (कृष्टा).

१ चिरप्रोषिता.

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च ।
तानि निर्हरतो लोभात् सर्वहारं हरेन्नृपः ॥

(१) राज्ञः संवन्धितया प्रख्यातानि यानि भाण्डानि
राजोपयोगितया, यथा प्राच्येषु हस्तिनः, काश्मीरेषु
कुङ्कुमं पट्टोर्णादीनि, प्रतीच्येष्वश्वः, दाक्षिणात्येषु
मणिमुक्तादीनि, यद्यस्य राज्ञो विषये सुलभं अन्यत्र
दुर्लभं तत् तत्र प्रख्यातं भवति । तेन हि राजान
इतरेतरं संदधते । प्रतिषिद्धानि यानि राज्ञा मदीया-
देशान्नैतदन्यत्र नेयं अत्रैव वा विक्रेयं, यथा दुर्भिक्षे
धान्यमित्येवमादीनि । लोभान्निर्हरतो देशान्तरं नयतो
विक्रीणानस्य वा सर्वहारं हरेत्, सर्वहरणं सर्वहारः ।
अयं धनलोभान्नयतो दण्डः । राजान्तरोपायनार्थं
त्वधिकतरः शारीरोऽपि दुर्गावरोधादिः । *मेधा.

(२) तानि लोभादन्यत्र देशे विक्रीणानस्य वणिजो
राजा सर्वहारं कुर्यात्, यत्किञ्चित् भाण्डेनार्जितं तत्सर्वं
हरेदित्यर्थः । विर. ३०१

शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी ।

मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ॥

(१) क्रयविक्रयी वाणिजक उच्यते । शुल्कस्थानं
परिहरन् उत्पथेन गच्छन्नकाले वा रात्रौ शुल्काध्यक्षेषु
गतेषु । संख्याने मिथ्यावादी न्यूनं कथयति गणना-
याम् । उपलक्षणं चैतसंख्यानं, तेन प्रच्छादनेऽप्येष
एव विधिः । दाप्योऽष्टगुणमत्ययं, दण्डं, यावदपहृते
तावदष्टगुणं, यावान्वा तस्यापहृतस्योचितः शुल्कस्तम-
ष्टगुणं दाप्यः । आद्यमेव युक्तम् । अत्ययशब्दो हि तत्र
समञ्जसः तद्धेतुत्वाद्द्रव्ये । अन्ये त्वकाले क्रयविक्रयी
इति संवन्धं कुर्वन्ति । अकालश्चाग्रहीते शुल्के रहसि वा,

* व्याख्यानान्तराणि मेधावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३९९ [हरेन्नृपः (नृपो हरेत्) Noted
by Jha]; अप. २।२५० निर्हरतो (निक्षिपतो) :
२।२६१ राज्ञः (राज्ञा) हारं हरे (स्वं हारये); व्यक. १११;
विर. ३००; विचि. १२९; दवि. ९२; बाल. २।२६१;
सेतु. ३०२ राज्ञः (राज); समु. १५९.

(२) मस्मृ. ८।४००; व्यक. ११० ख्याने (स्थाने);
विर. २९७; दवि. ९३; बाल. २।२६२; समु. १५९.

१ दण्डो या. २ क्रय इ.

प्रतिषेधोऽयम् ।

मेधा.

(२) शुल्कमोषणायोऽथेन गच्छति । अकाले रात्र्यादौ वा क्रयविक्रयं करोति । शुल्कखण्डनार्थं विक्रेय-द्रव्यस्यात्पां संख्यां वक्ति । राजदेयमपलपितमष्टगुण दण्डरूपतया दान्यः । ममु.

प्रकाशतस्काप्रकरणे प्रसङ्गात् अर्धमानादिव्यवस्थाविधिः

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ।

विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥

(१) आपणभूमौ ये विक्रेतारस्ते न स्वेच्छया मूल्यं कर्तुं लभेरन् नापि राजा क्रीणीयात् स्वरुचिकृतेन मूल्येन । कथं तर्हीदमिदं निरूप्य, आगमं, किं प्रत्या-गच्छति देशान्तरादुत न, तथेयतो दूरादागच्छति । एवं निर्गमस्थाने, किं संप्रत्येव विक्रीयत उत तिष्ठति । संप्रति निष्कामतो द्रव्यस्य स्वल्पोऽपि लाभो महाफलः तदुत्थितेन मूल्येन द्रव्यान्तराविषयेण पुनर्लाभो स्थानात् । वृद्धिक्षयौ, कियत्यस्य वृद्धिस्तिष्ठति कीदृशो वा क्षय इति, एतत्सर्वं परीक्ष्य स्वदेशे क्रयविक्रयौ कारयेत् । यथा न वणिजां पीडा भवति नापि क्रेतृणां, तथाऽर्धं व्यवस्थापयेत् । मेधा.

(२) आगममेतावता व्यथेनागमनमत्रेति । एवं निर्गमश्चकारात् स्थानमेतदवशिष्टं तिष्ठतीति । वृद्धिमेताव-द्वर्धत इति । क्षयमानीयमानद्रव्यस्यैवापचय इतस्ततः पातेन । मवि.

(३) आगमं देशान्तरीयस्य विक्रयस्य दूरदुर्गमासन्न-सुगमदेशादेशवर्तिन आगमनम् । निर्गमं निर्गमनं स्वदेशीयपण्यस्य तादृशदेशे गमनम् । स्थानं चिरमचिरं वा कालमेतस्मिन् क्रीते इयान् भक्तादिव्ययो वृत्त इत्यवस्थानम् । तथा वृद्धिक्षयौ एतावान् लाभ उपक्षयो वा भवति इति विचार्य परामृष्य यथा क्रयकर्तृणाम-नुचिते लाभहानी न भवतः, तथा राजा क्रयविक्रयौ कारयेत् । विर. ३०१-२

(१) मस्मृ. ८।४०१ [विचार्य (विज्ञाय) Noted by Jha]; अप. २।२५१ निर्गमं (निगमं) सर्वं (सर्वं); व्यक्र. १११; विर. ३०१ पण्या (शस्या); दवि. ९८ : विरवत्; बाल. २।२५३; समु. ९०.

(४) शस्यपदमुपलक्षणमाद्यर्थं वा, बहुवचनं कडारा इतिवत् । तेन पञ्चविधपण्यपरिग्रहः । दवि. ९८

पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते ।

कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ॥

(१) आगमनिर्गमनादेर्द्रव्यस्यानित्यत्वादुपचयाप-चयावर्धस्यानेकरूपौ । ततोऽर्घसंस्थापनं पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे प्रत्यक्षीकार्यं, न सकृत्कृतं मन्तव्यं, नापि वणिजो विश्वसितव्याः । किं तर्हि, स्वयं प्रतिजागरणीयम् । यद्द्रव्यं त्रिरेण निष्कामति तत्र पक्षेऽर्घ्यवेधमन्यत्र पाञ्चरात्रिकम् । मेधा.

(२) आगमनिर्गमोपाययोगादेः पण्यानामनियतत्वाद्-स्थिरार्धादीनां पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे गते, स्थिरप्रायार्धाणां पक्षे पक्षे गते वणिजामर्घविदां प्रत्यक्षं नृपतिरातपुरुषैः व्यवस्थां कुर्यात् । ममु.

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ।

षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥

(१) तुल प्रसिद्धौ, मानं प्रस्थो द्रोग इत्यादि । प्रतीमानं सुवर्णादीनां परिच्छेदार्थं यत्क्रियते, सर्वं तत्सुलक्षितं राजचिह्नैरङ्कितं कार्यं, स्वयं प्रत्यक्षेण परि-च्छिद्य स्वमुद्रया । परीक्षयेत् षट्सु षट्सु मासेषु पुनः परीक्षां कारयेदात्तैरधिकारिभिः यथा न विचालयन्ति केचित् । * मेधा.

* गोरा., ममु., मच., भाच. मेधावत् ।

(१) मस्मृ. ८।४०२; मित्ता. २।२५१ पक्षेऽथवा (मासे तथा); अप. २।२५१ पूर्वार्धे (पञ्चरात्रे सप्तरात्रे पक्षे मासे तथा गते); व्यक्र. १११; विर. ३०१; पमा. ४६१; दवि. ९८; नृप्र. २६९ पक्षेऽथ (मासेऽथ) चैषां (चैव); दीप्ति. २।२५१ मित्तावत्; विता. ७७३ मर्घ (मर्घ्य) शेषं मित्तावत्; राका. ४९३ मित्तावत्; समु. ९१ अपवत्.

(२) मस्मृ. ८।४०३ [सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् (सर्वं तु स्यात्सुलक्षितम्, सर्वं तत्स्यात्सुलक्षितम्, सर्वं स्यात्सुपरीक्षितम्, सर्वतः स्यात्सुलक्षितम्) Noted by Jha]; अप. २।२४४ च स्यात्सुल (तत्स्यात्सुल); व्यक्र. १११ अयवत्; मवि. च स्यात्सुल (पार्थिवल); विर. ३०१; दवि. ९७; मच. च स्यात्सुल (तत्स्यात्सुल); बाल. २।२५१ सुल (त्वल); समु. ९१ मविवत्.

१ इमा. २ सर्वतोभागे त.

(२) तुल्यमानं कार्पासादितुल्यरूपं मानम् । प्रती-
मानं माषकादिप्रतिकृत्यप्रमाणम् । पार्थिवेन लक्षितं मुद्रि-
तम् । मवि.

शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः ।
कुर्युर्ध्वं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत् ॥

(१) येषु प्रदेशेषु शुल्कमादीयते तानि शुल्कस्थानानि
राजभिर्बणिग्भिश्च प्रतिदेशनियतानि कल्पितानि ।
तेषु स्थानेषु ये कुशलाः शौल्किकाः ये धूर्तेर्न च शक्यन्ते
वञ्चयितुं, तथा सर्वेषां पण्यानामागमक्षयक्रयसारासारादि-
विधिज्ञाः विचक्षणास्ते भाण्डस्यागतस्यै देशान्तरे नीय-
मानस्य वाऽर्धं कुर्युः । ततो विंशतिभागं राजा गृह्णी-
यात् । किं पुनरर्धकरणेन, एतावदेव वक्तव्यं, पण्यानां
विंशतिभागमिति । सत्यम् । यदा स्वरूपेण द्रव्यं राजा
न गृह्णाति, स्वरूपकान्युपयुज्यन्ते शौटकादीनि, विंशति-
विंशतिभागः प्राविंशतेर्न पाटनमन्तरेणोपपद्यत इत्येव-
मर्थमर्धकरणम् । अविक्रेयाणामात्मोपयोगिनां नास्ति
शुल्क इति ज्ञापयितुं यथापण्यम् । एवं कालानुरूप्येण,
न सर्वपण्यं सर्वदा विक्रीयत एकरूपेणार्धेण, अतो देश-
कालापेक्षया पण्यानामर्धव्यवस्था न नियतोऽर्ध इति ।

मेधा.

(२) शुल्कस्थानेषु पण्यविक्रयस्थानेषु । अर्धं मूल्यं
कुर्युर्व्यवस्थापयेयुः नियुक्ताः । विंशं विंशतिभागैकभागं
हरेदर्धकरणमिति । मवि.

(३) स्थलजलपथव्यवहारतो राजग्राह्यो भागः
शुल्कम् । तस्यावस्थानेषु ये कुशलाः तथा सर्वपण्यानां
सारासारज्ञास्ते पण्येषु यमर्धं मूल्यमनुरूपं कुर्युस्ततो
लभधनाद्विंशतिभागं राजा गृह्णीयात् । *ममु.

(४) एतच्च परदेशपण्याभिप्रायं विष्ण्वनुसारात् ।
विर. ३०४

* गौरा. मसुवत् । गौरा. व्याख्यानं अशुद्धिसंदेहाच्च सं-
गृहीतम् ।

(१) मसु. ८।३९८ [नृपो हरेत् (हरेन्नृपः) Noted
by Jha]; अप. २।२६१; व्यक. १११; विर. ३०४;
विचि. १२९; बाल. २।२६१; समु. ९१.

१ ग्भिः स्वप्न. २ क्रयविक्रयसारसादि. ३ स्यान्वदे.
४ न्तरानी. ५ साट.

(५) एवं राजकीयदण्डस्य राजसूयवत्प्राकरणिकत्वा-
च्छुल्कादेरपि तदन्तर्गतत्वं प्रकटयन्नाह—शुल्केति । क्रय-
स्थानेषु जलस्थलव्यवहर्तृभ्यो ग्राह्यो भागः शुल्कः । अयं
तु मूल्यनिर्णयनिमित्तः । सर्वपण्यविचक्षणाः तत्सारा-
सारज्ञाः । अर्धं मूल्यम् । यथापण्यं, पण्यं विक्रयद्रव्यं
तदनुरूपम् । ततो लभधनाद्विंशतिभागं हरेदित्यन्वयः ।
मच.

प्रकाशतरकरदण्डः (पूर्वतोऽनुवृत्ताः)

सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः ।
प्रवर्तमानमन्याये छेदयेत्प्रवशः क्षुरैः + ॥

(१) यावन्तः केचन कण्टकाः पूर्वमुक्तास्तेषां पाप-
तमः सुवर्णकारः । यदि निर्धारणे षष्ठी । कथं न 'न
निर्धारण' इति (व्यासू. २।२।१०) समासाभावः । तस्य
च पापतमत्वं स्वल्पेनैवापहरणेन महत एनस उत्पत्ति-
ब्राह्मणस्वर्णापहरणे च महापातकं अतस्तमन्याये प्रवर्त-
मानं छेदयेत्प्रवशः । परिवर्तनतुलान्तरतापच्छेदादिभिः
अपहरन्ति, गृह्णते । न चात्र न्हियमाणद्रव्यपरिमाणापेक्षा,
न स्वामिजात्यपेक्षा । अभ्यासस्त्वपेक्ष्यत इति, महत्त्वा-
दण्डस्य । अन्याये तु प्रवृत्तौ धनदण्डेन क्षुरमांसलव-
च्छेदो विनिमातव्यः । शारीरनिग्रहे निगृह्यमाणानां पाप-
मपैतीति प्रतिपादितम् । मेधा.

(२) तद्देवब्राह्मणराजस्वर्णविषयं द्रष्टव्यम् ।

* मिता. २।२९७.

(३) तद्ब्राह्मणसुवर्णापहारिसुवर्णकारविषयम् ।

अप. २।२९६

(४) सर्वेभ्यः कण्टकेभ्यः क्षुद्रशत्रुभ्यः पापिष्ठम् ।

मवि.

(५) सर्वकण्टकानां मध्येऽतिशयेन पापतमं सुवर्ण-
कारं तुल्यच्छन्नकषपरिवर्तापद्रव्यप्रक्षेपादिना हेमादिचौर्ये

+ भाच. व्याख्यानं अशुद्धिसंदेहाच्चोद्धृतम् ।

* सवि. मितावत् ।

(१) मसु. ९।२९२; मिता. २।२९७; अप. २।२९६;
व्यक. ११२; विर. ३०९; रत्न. १२४; विचि. १३१;
व्यनि. ५१२; दवि. १०१; सवि. ४९३; दीप्ति. २।२९७-
(=); व्यप्र. ३८८ प्रवर्त (अवर्त); व्यउ. १२६ व्यप्रवत् ;
विता. ७८०; सेतु. २३३; समु. १५९.

प्रवर्तमानमनुबन्धापेक्षया अङ्गाविशेषेण सर्वदेहं वा स्वण्डशस्त्रेदयेत् । मसु.

(६) कण्टकः प्रकाशतस्करः । + विर. ३०९

(७) प्रवर्तमानमिति नित्यप्रवृत्तौ लट् । तेनाभ्यासे शास्तिरियमित्याहुः । विचि. १३१

शास्मलीफलके ऋक्षणे नेनिज्यानेजकः शनैः ।

न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् * ॥

(१) शास्मली नाम वृक्षस्तद्विकारे फलके । स हि प्रकृत्यैव दृढो भवति । न च वाससोऽपि पातैरवयवा अस्य च्यवन्ते । ते हि च्युता वासः पाटयेयुः । न चायं जातिनियमोऽदृष्टाय । तेनान्यदपि यत्काष्ठमेवं-स्वभावं तत्फलके न दोषः । ऋक्षणेऽपरुषे च । वासांस्य-न्यदीयानि अन्यदीर्घासोभिर्न निर्हरेत्, बद्धोपरिवेष्टय तीर्थे प्रक्षालयितुं न नेयेत् । बन्धनाद्वाससां विनाशो मा भूत् । अधिकं हि तानि पीडितानि भवन्ति । न च वासयेत् अन्यदीयानि वासांस्यन्यस्यै न प्रयच्छेत्, वसनार्थं न दद्यात् । एतद्वि वासनं वस्तेऽपरस्तं रजको वासयति । अश्रुतत्वाद्दण्डस्य प्रकृतमाषकयोजना कर्तव्या । मेघा.

(२) वासोभिर्बद्ध्वा वासांसि न नेयेत् । न वासये-त्स्वगृहे न स्थापयेदित्यर्थः । धनमादायाच्छादनार्थं न दद्यादित्यर्थः । अप. २।२३८

(३) नेनिज्यात् क्षालयेत् । नेजकश्चैलनिर्णेजकः । निर्हरेत् परिवर्तयेत् । वासयेत् चिरं स्थापयेत् । × मवि.

+ शेषं मेधावत् । * मिता. व्याख्यानं 'वसानस्त्रीन् पणान् दण्ड्य' इति याज्ञवल्क्यवचने द्रष्टव्यम् । × भाच. मविवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३९६; मिता. २।२३८ ली (ले) नेनि ... शनैः (निज्याद्वासंसि नेजकः); अप. २।२३८ मिता-वत्; व्यक. ११३ ब्र च (ब्र वि); विर. ३१३ नेनिज्या (निर्णिज्या); पमा. ४५६; दीक. ५३ उक्त.; दवि. ११२ ली (ले) ऋक्षणे (स्रक्ष्मे) नेनिज्या (निर्णिज्या) निर्ह (निर्ह) च वास (विवास); व्यप्र. २८९ मितावत्; विता. ५७०, ७६४ मितावत्; समु. ८९ ली (ले) नेनि ... शनैः (नृज्याद्वासंसि नेजकः) निर्ह (र्ने ह).

१ प्रयच्छन् वस.

(४) शास्मल्यादिवृक्षसंवाग्निफलके अंशुषे रजकः शनैः शनैः वासांसि प्रक्षालयेन्न परकीयैर्वक्त्रैरन्यवक्त्राणि नयेन्न चान्यवासांस्यन्यपरिधानार्थं दद्यात् । यद्येवं कुर्यात्तदाऽसौ दण्ड्यः स्यात् । +मसु.

(५) वासयेदाच्छादयेत् अन्यं स्वं वा । मच.

(६) न निर्हरेत् न मेळयेत् । × व्यप्र. २८९

तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम् ।

अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम् ॥

(१) तन्तुन् वयति तन्तुवायः कुविन्दः, शाटकादेः पटस्य कर्ता । स सूत्रपलानि दश गृहीत्वा शाटकं वयत्रैकपलाधिकं वक्त्रं दद्यात् । अनया वृद्ध्या सर्वं दद्यात् । स्थूलसूत्रमादिवाससां रोमवतां च कल्पना कर्तव्या । अन्यथा द्वादशपणो दण्डः । वृद्धयदानेऽयं दण्डो, मूलच्छेदे तु सूत्राणि गणोक्तः । एवं विंशतिपलं यदि न ददाति वृद्धि, द्विगुणो दण्डः । एवं कल्पना कार्या त्रिगुणश्चतुर्गुण इत्यादि । अन्ये तु दण्डं राजभाम-मित्याहुः । मेघा.

(२) द्वादशकार्पापणपरिमाणो दण्डो द्वादशकः ।

अप. २।१८१

(३) तन्तुनां दशपलं गृहीतमेकपलाधिकं संमाथ स्वामिने पटादीन् कृतान् प्रयच्छेत् । एवं गणनयैव सर्वत्र संख्यानम् । द्वादशकं तस्य तन्तोद्वादशं भागम् । मवि.

(४) तन्तुवायो वक्त्रनिर्माणार्थं दश पलानि सूत्रं गृहीत्वा पिष्टभक्ष्याद्यनुप्रवेशादेकादशपलं वक्त्रं दद्यात् । यदि ततो न्यूनं दद्यात् तदा द्वादश पणान् राशो दाप्यः स्वामिन्श्च तुष्टिः कर्तव्यैव । *मसु.

(५) स्थूलसूत्रविषयमेतदग्रिमानुसारात् । याज्ञवल्क्यः— 'शते दशपला वृद्धिरौणे कार्पासिके तथा । मध्ये पञ्चपला

+ गौरा. मसुवत् । × शेषं नितावत् ।

* भाच. मसुवत् ।

(१) मस्मृ ८।३९७ वायो दशपलं (वायः पलं दत्त्वा) पलं.....पलाधि (फलं फलादि) Noted by Jha]; अप. २।१८१; व्यक. ११३; विर. ३१२; व्यनि. ५१३ पलं (पलात्); समु. ९०.

१ शाकटका.

तौले सूक्ष्मे तु द्विपला स्मृता ॥' (यास्मृ. २।१७९) । स्थूलमध्यमयोर्विशिष्योपादानेन 'शते दशपला वृद्धिरित्यत्र तदतिरिक्तं स्थूलं सूत्रं लगति । *विर. ३१२

(६) पट्टकदशपलादशम्यो लाभेभ्यः एकफलाधिकमेकमाधिकं लाभ राज्ञो दद्यात् । द्वादशकं फलद्वादशभागम् । नन्द.

कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाषण्डस्थांश्च मानवान् ।

विकर्मस्थान् शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात् ॥

(१) कितवान् द्यूतसमाह्वयकर्तृन् । कुशीलवान् नदान् । केरानतिवक्रचेष्टितान् । पाषण्डान् बौद्धादीन् । विकर्मस्थानधर्महेतुकर्मकर्तृन् । पतितानन्त्यजादीन् । शौण्डिकान् मद्यविक्रेतृन् । निर्वासयेत् बहिरेव वासयेत् । मवि.

(२) कितवानां नीचकारित्वप्रख्यापनायात्र कुशीलवाद्यनेकनीचसाहचर्यकरणमिति मन्तव्यम् । दःसङ्गेन कुमार्गित्वं अधिलम्बेन प्रजानामापद्यत इति क्षिप्रग्रहणं कृतम् । स्मृच. ३३०

(३) द्यूतादिसोविनो, नर्तकगायकान्, वेदविद्विषः, श्रुतिस्मृतिवाह्यव्रतधारिणः, अनापदि परकर्मजीविनः, शौण्डिकान् मद्यकरान् मनुष्यान् क्षिप्रं राजा राष्ट्रा-न्निर्वासयेदिति । कितवप्रसङ्गेनान्येषामप्यभिधानम् । मसु.

(४) कितवा वञ्चकाः द्यूतकाराः । कुशीलवाः स्वकौशलबलेनानिच्छतोऽपि पुरुषान् ये वञ्चयन्ति ते मताः । केराः परस्त्रीपुरुषसंकेतकारिणः । पाषण्डस्थाः

* शेषं मसुवत् ।

(१) मस्मृ. ९।२२५ [कुशीलवान् (शीलवान्) क्रूरान् (केतान्) Noted by Jha]; व्यक. ११३; मवि. क्रूरान् (केरान्) निर्वा (न वा); स्मृच. ३३० कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् (कुशीलवांश्च कितवान्); विर. ३१५ क्रूरान् (केरान्); पमा. ५७८ क्रूरान् (कौलान्) षडस्थांश्च (षडानपि); दधि. ११५ विरवत् : १५५ विरवत्, प्रथम-चतुर्थपादौ; मच. विरवत्; बाल. २।१०३ शीलवान् (शीलान्) क्रूरान् (चौरान्); ससु. १६४ स्मृचवत्; निन्द. क्रूरान् (कौलान्); भाच. क्रूरान् (चौरान्) :

क्षपणकादिपाषण्डाश्रिताः । विकर्मस्था अत्यन्तविरुद्ध-कर्मशीलाः । शौण्डिका अत्यन्तमद्यपानप्रसक्ताः ।

विर. ३१५

(५) एवञ्च कुशीलवादीनां वञ्चनादिभिरर्थापहारित्वं अपेक्षितम् । पूर्वापरनिबन्धेषु स्तेयप्रकरणे पाठस्वरसात् शौण्डिकादेरपि तादृशस्यैवायं दण्डो न च तत्तज्जाति-मात्रस्य अदृष्टार्थत्वापातात् ।

कुल्लुकभङ्गेन तु वाक्यस्यास्य द्यूतप्रकरणान्तःपाति-त्वात् कितवप्रसङ्गेनान्येषामभिधानमित्युक्तम् ।

नारायणेन तु निर्वासयेत् बहिरेव वासयेत् इति व्याख्यातम् । अतः कुशीलवान्नटानित्यादिव्याख्यानाच्च प्रकाशतस्करत्वमेषामेव न मन्यत इति गम्यते । अथ येषु प्रकाशतस्करत्वेनोपदिष्टेषु विशिष्य दण्डो नोपदिष्ट-स्तेषु कथं तन्निर्णयो दोषानुसारादिति प्राञ्चः ।

तथाहि सर्वानेतानभिधाय—'नैगमाद्या भूरिधना दण्ड्या दोषानुसारतः । यथा ते नातिवर्तन्ते तिष्ठन्ति समये यथा ॥' इति व्यासवचनं निबन्धेषु पठितम् । तत्र प्रतिभाति, समभिव्याहृतानामेकत्र यो दण्डः श्रुतः स एवान्यत्रापि बोद्धव्यः साहचर्यात् । तेषु द्वित्राणां यत्र दण्डभेदश्रुतिस्तत्रापराधस्य गौरवलाघवाभ्याम-भ्यासानभ्यासाभ्यां वा दण्डस्य धनवत्त्वाधनवत्त्वादि-भिर्व्यवस्था ।

यत्र तु एकत्रापि दण्डश्रुतिर्नास्ति तत्र तुल्यन्यायतया दोषानुसारेण वा तत्कल्पनमिति । सोऽयं प्रकार एव-जातीयेऽन्यत्रापि द्रष्टव्यः । दवि. ११५-६

एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ।

विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥

(१) एते कितवादयः तथा प्रच्छन्नतस्करा वेषान्तर-धराश्चौरा विकर्मक्रियया सज्जनेष्वपि द्यूतादिक्रियाप्रवर्त-नेन बाधन्ते बाधां कुर्वन्ति । भद्रिकाः सद्बृत्ताः । अत्र कितवप्रसङ्गादप्युक्तम् । मवि.

(२) एते कितवादयो गूढचौरा राष्ट्रे वर्सन्तो नित्यं वञ्चनात्मकक्रियया सज्जनान् पीडयन्ति । *मसु.

* भाच. मसुवत् ।

(१) मस्मृ. ९।२२६; स्मृच. ३३०; विर. ३१५; बाल. २।२०३; ससु. १६४ राष्ट्रे (राज्ये) :

(३) प्रच्छन्नतस्करास्तत्तुल्याः । विर. ३१५

(४) अत एषां निरासे यत्नाधिक्यं सूचयति— एत इति । वर्तमानाः स्वस्वकर्मणा विकर्मक्रियया विकर्मणा चौर्यादिना क्रियया देहधारणादितया ब्राधन्ते साधुभिः संगमय्य स्वटोपैस्तान् दूषयन्तीति भावः । भद्रिका भद्रेण साधुना धनपुत्रादिसूचककर्मणा जीवतीः । मच.

(५) भद्रिकाः सुशीलाः ब्राधन्ते दुःशीलाः कुर्वन्ति । नन्द.

अप्रकाशतस्करदण्डाः

संधिं भित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः । तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ॥

(१) संधिः गृहवास्तुगर्भः । मवि.

(२) यतो हस्तश्छिन्नस्तत्र शूलद्वयं निवेशयेदित्यर्थः । अप. २।२७३

(३) तानिति शेषः । स्मृच. ३१८

(४) ये रात्रौ संधिच्छेदं कृत्वा परधनं तस्करा मुष्णन्ति तेषां राजा हस्तद्वयं छित्त्वा तीक्ष्णे शूले ताना-रोपयेत् । मसु.

(५) तानिति विभक्तिव्यत्ययेनानुषङ्गः । विर. ३१६

(६) संधिं भित्तिम् । मच.

(७) संधिः कपाटयन्त्रादिकम् । नन्द.

÷ मिता. व्याख्यानं ' धुद्रमध्यमहाद्रव्य ' इति याज्ञवल्क्य-वचने द्रष्टव्यम् ।

(१) मस्मृ. १।२७६ क., घ., भित्त्वा (छित्त्वा), ग., भित्त्वा (छित्त्वा) तीक्ष्णे (तीक्ष्ण); अपु. २।२७।५३-४ भित्त्वा (कृत्वा); मिता. २।२७५ (क) तीक्ष्णे (तीक्ष्ण) (ख) भित्त्वा (छित्त्वा) तीक्ष्णे (तीक्ष्ण); अप. २।२७३; व्यक. ११३ अपुवत्; स्मृच. ३१८; विर. ३१६ अपुवत्; रत्न. १२४; विचि. १३३-४ तीक्ष्णे (तीक्ष्ण) शेषं अपुवत्; व्यनि. ५०८ भित्त्वा (छित्त्वा); दवि. १२४ तीक्ष्णे (तीक्ष्ण) शेषं व्यनिवत्; नृप्र. २६५ दविवत्, स्मरणम्; सवि. ४६१ तीक्ष्णे (तीक्ष्ण); व्यप्र. ३८८ सविवत्; व्यउ. १२७ सविवत्; व्यम. १०२ सविवत्; विता. ७८२ सविवत्; सेतु. २३५ अपुवत्; समु. १५०; विव्य. ५१ विधिवत्.

व्य. क्रं. २१५

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः । मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥

(१) सत्कुले जाताः विद्यादिगुणयोगिनः कुलीनाः, नारीणां च विशेषतो गुणरूपसौभाग्यसंपन्नानामित्यर्थः । चशब्दात् कुलीनानामित्येव । परस्परपेक्षाणि नारीणां विशेषणानि । मुख्यानि उत्तमानि । रत्नानि वज्रवैडूर्य-मरकतप्रभृतीनि । अत्रापि सुवर्णशततुल्यानीत्यपेक्ष्यं अन्यथोत्तमत्वमापेक्षिकमिति दण्डो न व्यवतिष्ठेत् । वध-मर्हत्यनुबन्धाद्यपेक्षया सर्वत्रार्हत्यर्थो योजनीयः । अकुली-नानामविशिष्टानाममुख्यानां च हरणे त्वेकादशगुण इत्येव । मेघा.

(२) वधः उत्कृष्टापकृष्टापेक्षया मारणाङ्गछेदादिः । मवि.

(३) महाकुलजातानां मनुष्याणां विशेषेण स्त्रीणां महाकुलप्रसूतानां श्रेष्ठानां च रत्नानां वज्रवैदूर्यादीनाम-पहारे वधमर्हति । मसु.

(४) नारीणां विशेषतः कुलजानाम् । कपिञ्जलानि-तित्वत् त्रित्वं विवक्षितम् । मच.

(५) न्हियमाणहरणयोर्जातिगुणाद्यपेक्षया वधशब्दार्थः कल्पनीयः छेदनरूपो मारणरूपो वा । नन्द.

असंधितानां संदाता संदितानां च मोक्षकः । दासाश्वरथहर्ता च प्राप्नोति स्याच्चोरकित्त्वपम् ॥

+ मिता. व्याख्यानं ' धुद्रमध्यमहाद्रव्य ' इति याज्ञवल्क्य-वचने द्रष्टव्यम् ।

(१) मस्मृ. ८।३२३; मिता. २।२७५ च वि (वा वि) मुख्या...त्नानां (रत्नानां चैव सर्वेषां); व्यमा. ३१६ मुख्या.....त्नानां (रत्नानां चैव सर्वेषां) उक्त.; अप. २।२७५; व्यक. ११३-४ : ११५ उक्त.; विर. ३१७ : ३२४ उक्त.; पमा. ४४३ मुख्या...त्नानां (रत्नानां चैव मुख्यानां); दवि. १२५ : १४५ उक्त.; नृप्र. २६५ व्यमावत्; सवि. ४५६ व्यमावत्; व्यप्र. ३९०; व्यउ. १२८ क्रमेण व्यासः; व्यम. १०२ उक्त.; विता. ७८३ उक्त. : ७८४ (=) व्यमावत्; सेतु. २३६ : २४१ उक्त.; समु. १५० पमावत्.

(२) मस्मृ. ८।३४२ ग., पूर्वाधे (असंधितानां संधाता संधितानां च मोक्षकः), [संदाता (संध्याता) Noted by १ विशेषे त्वे.

(१) पश्चादयो विमुक्तशृङ्खलादिबन्धना मुस्तादियव-
भूयिष्ठेषु विजनेषु वार्यन्ते । ततश्चेन्निद्रायति स्वामिनि
पाले वा कश्चित् संदानवतः कुर्यात् । खलीनकबन्धा-
दिना नूनं निनीपत्यसाविति शङ्कया चौरवदण्ड्यः ।
यस्तु स्वामिगृहच्युतं यूथभ्रंशागतं वा रक्षितुमेव वा
वध्नीयान्न तस्य दोषः, एवं गवादीनामपि गले दामादि-
संदाने एष एव दमः । ये च संदिताः पादस्थशृङ्खला-
दिना, तेषां मोक्षकः । दासांश्च रहसि प्रोत्साह्य
भक्तदासादीनपरहरति 'अहं ते बहु ददामि किमेतं भजसे'
इति । कुलीनानां हरणे वध उक्तः 'पुरुषाणामित्यत्र
(मस्मृ. ८।३२३), अनेन दासानामुच्यते । यत एव
तत्रैव कुलीनानामित्युक्तं, एवं प्रोत्साह्य नयनग्रहणं न
कर्तव्यम् । तच्च बलादिना चौर्येण वेति । अश्वरथहर्तेति ।
अश्वानां रथानां च । महापशूनामित्यत्र राजसंबन्धिनो-
ऽश्वा, इमे तु जानपदानाम् । तत्र राजेच्छया दण्डः ।
इह तु नियतो वधः । यद्यपि बहवश्चोरदण्डास्तथापि
स्मृत्यन्तरे 'बन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः ।
प्रसह्य घातिनश्चैव शूलमारोपयेन्नरान् ॥' इति (यास्मृ.
२।२७३) । इहापि सामान्यदण्डो येन येनेत्युपक्रम्य
तत्तदेव हरेदिति । अन्ये त्वश्वयुक्तो रथ इति सामान्यं
मन्यन्ते प्रदर्शनाच्चाश्वगोरथादीनाम् । तत्र केवला-
नामश्वानां रथस्य च दण्डश्चिन्यः । स्मृत्यन्तरे केवला-
नामश्वानां चोरदण्डस्योक्तत्वात् रथयुक्तानामपि सिद्धः ।
ये तु प्रोत्साह्य नयनं हरणं मन्यन्ते तेषामश्वरथशब्देन
रथकारो लक्ष्यते, रथकर्तेति । तच्च सर्वशिल्प्यर्थम् ।
शिल्पिनां हरणे चौरदण्डः । अश्वानामपि प्रोत्साहनं
वडवादर्शनेन । मेधा.

(२) असंदितानां अबद्धानां अस्वामिकतयोत्सृष्टानां
संवाहनादिकर्ता संदाता । संदितानामन्यपशूनां तद्वि-

Jha.]; व्यक. ११४; विर. ३१९ पूर्वार्धे (असंघितानां
संघाता संघितानां विमोक्षकः); विचि. १३६ च मो
(विमो) हर्ता (हन्ता); दवि. १२८ उक्त. : १२९ च मो
(विमो); समु. १५७ पूर्वार्धे (असंघितानां संघाता
संघितानां च मोक्षकः).

१ संजात ए. २ च्यन्ते । यथेवं तत्रैव कुलीन-
मित्युक्तमेवं प्रो. ३ तत्र प्रबला.

रोधाचणरबुद्धया मोक्षकः । दासाश्वरथहर्ता कथञ्चित्
प्रतारणादिना तैः स्वकर्म कारयन् । तेन तदस्तेयेऽपि
तत्कर्मस्तेयात्तस्तेयातिदेशः । मवि.

(३) अबद्धानामश्वानीनां परकीयानां यो दपेण
बन्धयिता, बद्धानां मन्दुरादौ मोचयिता, यो दासा-
श्वरथापहारी स चौरदण्डं प्राप्नुयात् । स च गुरुलघ्व-
पराधानुसारेण मारणाङ्गच्छेदनधनाद्यपहाररूपो बोद्धव्यः ।
* ममु.

(४) संघाता हरणहेतुबन्धनकारी, मोक्षकोऽपि
हरणहेतुमोक्षणकारी विवक्षितः । चौरकिस्त्रिषं चौरदण्डं
शारीरमार्थं वा । विर. ३१९

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।

कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥

(१) महापशवा हस्त्यश्वादयः, तेषां हरणे, काल-
कार्यापेक्षा दण्डप्रकल्पतिः । ननु च सर्वत्रैव कालाद्य-
पेक्षोक्ता । तथा च 'कालदेशवयःशक्तीश्चिन्तयेद्दण्ड-
कर्मणी'ति । सत्यम् । विज्ञाते दण्डस्वरूपे न्यूनाधिक-
भावोऽनुबन्धाद्यपेक्षः । यथा वधविधौ ताडनमारणादि-
कल्पनापेक्ष्या । इहात्यन्तविलक्षणो दण्डः । तथाहि
विंशतिपणोऽपि खड्गः शत्रोरुद्यतशस्त्रस्य संनिधौ यदि
न्हियते तेन कार्यातिशयेन तेन च कालेन मास्यं
दण्डः । अन्यदा द्विगुण एकादशगुणो वा । तथौषध-
मलभ्यत्वेन महाप्रयोजनं तदुपयोगवेलायां न्हियते ।
लभ्यमानमपि काथाद्यपेक्षं कालातिक्रमणेन महदातुरस्य
दुःखं जनयतीति । तत्र महान् दण्डः । अन्यदा तु
स्वल्प इति । न तत्रान्तरमन्तरेणेदृशं वैषम्यं लभ्यते ।
अन्यथा स एवैकः श्लोको दण्डविधौ पठितव्यः स्यात् ।
तस्माद्वक्तव्यमिदं विग्रहकालेऽश्वानीनां राजापेक्षो दण्डः ।
शस्त्राणां राजोपयोगिनां कदाचित् क्षमा कदाचित्
महान् दण्डः । गोमहिष्यादीनां तु प्रजासंबन्धिनानां न

* गोर. ममुवत् । गोर. व्याख्यानां अशुद्धिसंदेहात्प्रोद्धृतम् ।

(१) मस्मृ. ८।३२४ राजा दण्डं (दण्डं राजा); अप.
२।२७५; व्यक. ११४; विर. ३१९; विचि. १३५ राजा
दण्डं (राजदण्डं); दवि. १२९ रणे (रणात्) शेषं मस्मृ-
वत्; सेतु. २३७.

१ राज्यापे.

राज्ञा क्षन्तव्यं, कार्यं च यदश्वादिभिः कर्तव्यं तदप्य-
पेक्ष्यम् । विग्रहोऽपि यदि पर्वतादौ भवति तत्र
नातीवाश्वैः प्रयोजनं, भवन्त्येव दण्डादयः । कालमासाद्य
ज्ञत्वा निरूप्य, दण्डं कल्पयेत् । स एवात्र प्रभवति
न शास्त्रम् । मेधा.

(२) हस्त्यश्वगोमहिष्यादीनां महतां पशूनां हरणे
खड्गादीनां कल्याणघृतादेश्च, कालं विग्रहदुर्भिक्षात्मकं,
कार्यं चापहारप्रयोजनं द्यूतवैररज्ज्ववसादादिरूपं
पश्चालोच्य राजा न्यूनाधिकं दण्डं प्रकल्पयेत् । अनुबन्धं
परिज्ञाय । अनेनैतल्लाघवार्थमपि सादरार्थमुच्यते ।
शस्त्रौषधहस्ताद्यपहारे विग्रहादौ स्थूलानर्थोत्पादनात् ।

*गोरा.

(३) महापशूनामश्वादीनां हरणे वधः । शस्त्राणा-
मौषधस्य च हरणे तदेकादशगुणमित्यादिः कार्यबहुत्वात्प-
त्वमपेक्ष्य दण्डः । तथा शस्त्रादीनां युद्धकालादौ हरणे
ततो द्विगुणमित्याद्युन्नेयमित्यर्थः । मवि.

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छूरिकायाश्च भेदने ।

पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥

(१) ब्राह्मणसंस्था ब्राह्मणाश्रिता ब्राह्मणस्वामिकाः ।
तासां हरणे षष्ठ्यर्थे सप्तमी । पशूनां चाजैडकादीनाम् ।
बहुवचनं सर्वत्रात्र विवक्षितम् । सद्यस्तत्क्षणादविचार्य ।
पादस्यार्धमर्धपादं तदस्यास्तीत्यर्धपादिकः । तच्च संभवति
यदि पादार्धं छिद्यते, तेन स्तेनार्धपादच्छेदनं कर्तव्यमिति
वाक्यार्थः । खरिका यया गोरथक्षेत्रादौ बाह्यते बलीवर्दः ।
भेदने, बाह्यमानायाः प्रतोदेन पीडोत्पादनं भेदनं,
वाहनेऽपलक्षणार्थं व्याचक्षते । पूर्वोऽवश्यं वाहयन्

* ममु., मच., नन्द., भाच. गोरावत् ।

(१) मसृ. ८।३२५ [छूरिका (खरिका, खुरिका)
Noted by Jha]; गोरा. छूरि (नासि); व्यरु.
११४ छूरि (स्थूरि) हरणे चैव (चैव हरणे); मवि.
छूरि (स्थूरि); ममु. गोरावत्; विर. ३१९ छूरि (स्फुरि)
हरणे चैव (चैव हरणे); विचि. १३५ छूरि (तूलि);
यनि. १३१ विरवत् : १३९ मविवत्; मच. मविवत्;
स्तु. २३७ विचिवत्; समु. १५१ पादि (पाद) शेषं
मविवत्; द्विच्य. ५२ रणे (रतः) शेषं विचिवत्.

१ क्षम् । २. दार्धं तेन छिद्यते तेना.

दुःखयति, अवश्यमयं दण्डं हन्येवान्ये पठन्ति । अन्ये
तु पादस्य पश्चान्नागं चतुर्थे (?) खरिकामाहुः ।
खरिकेति या प्रसिद्धा । पलायनशीलायाः पालोऽर्ध-
पादिकः कार्यः । अन्ये त्वधिकरणसप्तमीं मत्वा गोसंस्थ-
दध्यादीन्यध्याहरन्ति । तदयुक्तम् । श्रुतपदसंबन्धसंभवे
कृतोऽध्याहारः । मेधा.

(२) ब्राह्मणसंस्थासु ब्राह्मणसंबन्धिनीपु । स्थूरपृष्ठेन
भारवोद्धा वृषः तद्भारः स्थूरिका तस्या भेदने पाठयित्वा
तद्गतधान्यादेरपहार इत्यर्थः । पशूनां महिषादीनाम् ।
अर्धपादिकः छिन्नार्धपादद्वयः । मवि.

(३) ब्राह्मणसंबन्धिनीनां गवामपहारे वन्ध्यायाश्च
गोर्वाहनार्थं नासाच्छेदने पशूनां चाजैडकादीनां दण्ड-
भूयस्त्वाद्यागाद्यर्थानां हरणेऽनन्तरमेव छिन्नार्धपादिकः
कार्यः । *ममु.

(४) स्फुरिका वन्ध्या, भेदनमिह वाहनार्थं नासा-
भेदनम् । पशवश्चात्र अविचिडालनकुलव्यतिरिक्तक्षुद्र-
पशवः । विर. ३२०

(५) तूलिका नासा, भेदनं रन्ध्रकरणम् ।

विचि. १३५

(६) पशवोऽत्राजाविकविडालनकुलव्यतिरिक्ताः क्षुद्र-
पशव इति रत्नाकरः । मध्यमाः पशव इति प्रति-
भाति । ब्राह्मणस्वामिकया गवा साहचर्यात् पशूनां
महिषादीनामिति नारायणव्याख्यानाच्च । न च नारदीय-
स्फुराच्छेदनविरोधः । तन्मतेऽपि तुल्यत्वात् ।

वस्तुतस्तु नारदवचने गोपदमुत्कृष्टगवीपरं, मनुवचने
त्वप्रकृष्टगवीपरं, पशुपदं चात्राब्राह्मणस्वामिकाप्रकृष्ट-
गवादिपरमिति न विरोधगन्धः । अर्धपादिकः छिन्नार्ध-
पादद्वय इति नारायणः । दवि. १३१

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् ।

हस्त्यश्वरथहर्तृश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥

अङ्गुली ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ।

द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥

* गोरा., मच. ममुवत् ।

+ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ.
१६२९) द्रष्टव्यः ।

(१) मसृ. ९।२७७ ली (लीः); मिता. २।२७४

(१) ग्रन्थि भिनत्तीति ग्रन्थिभेदः । भेदनं मोक्षो ग्रन्थेः, वल्लप्रान्तादौ ग्रन्थिः । यद्वा यद्द्रव्यं गृहीतं तत्केनचिच्छलेन ग्रन्थिमवमोच्य ये निर्नीपन्ति ते ग्रन्थि-भेदाः । तेषां प्रमथायां प्रवृत्तौ अङ्गुलीनां छेदः, द्वितीयस्यां प्रवृत्तौ हस्तचरणयोस्तृतीयस्यां मारणम् । *मेघा.

(२) अङ्गुली अङ्गुष्ठतर्जन्यौ, ग्रन्थिभेदस्य ग्रन्थि विलस्य सुवर्णादि हरतः प्रथमे ग्रहे प्रथमवारो । एवं द्वितीय इत्यादौ । एतेनान्यत्रापि पुनः पुनः करणे दण्डाधिक्यं द्रष्टव्यम् । मवि.

क्षेत्रिकस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् ।

ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रिकस्य तु ॥

(१) क्षेत्रस्वामिनः स्वक्षेत्रेऽत्ययोऽतिक्रमोऽपराधो यदि भवेत्स्वकृतः, अकाले वापनं, निदाधे अयोग्य-वीजवापः, स्वपशुभिर्भक्षणं, ग्रहे वाऽविदितफलप्रवेश इत्यादि, तदा राज्ञो यावान् भाग आगच्छति तं दशगुणं दण्डनीयः । अथ तस्याज्ञातमेतत्प्रयुक्तैर्भृत्यैः क्षेत्रजाग-र्यानि युक्तैर्वा अपराद्धं, तदा अर्धदण्डो भृत्यानामत्यये क्षेत्रिकस्य दण्ड इति संवन्धः । क्षेत्रप्रसङ्गादत्र (स्वामि-पालविवादे) इदमुक्तम् । मेघा.

(२) क्षेत्राधिकृतस्यैव पशुभिः सस्यात्यये कृते राज्ञो ग्राह्यस्वभागाद्दशगुणोऽन्योऽपि भागो दण्डत्वेन ग्राह्यः ।

* ममु., मच., नन्द. भेधावत् ।

(ख) ली (लीः); अप. २।२७४; स्मृच. ३१८; विर. ३२१; पमा. ४४० मित्तावत्; रत्न. १२५; विचि. १३६ ली (ली) मे ग्रहे (मागमे) [मे ग्रहे (मागसि) Noted by Jha]; व्यनि. ५०८-९ ली ग्रन्थि (लि संधि); दवि. १३२ चरणौ (पादौ च); नृप्र. २६४; सवि. ४६२ छेदयेत्प्रथमे (भेदयेत्प्रथम); व्यप्र. ३८९; व्यड. १२७; व्यम. १०२ (=); विता. ७८२ ली (ली); समु. १५०.

(१) मस्मृ. ८।२४३ क., घ., कत्या (यस्या); व्यक. ११४; विर. ३२२ ततो (अतो); विचि. १३७-८ (=); दवि. १३९; सेतु. २३९ नात्क्षेत्रि (नात्कर्ष); समु. ११८.

१ कृते अ. २ निदानं अ. ३ गिरणं वा विदितफलके प्रायश इत्यादि. ४ क्षेत्रिक.

क्षेत्रिकाज्ञाने पालमात्रदोषात्तन्नाशे ग्राह्यस्वभागात्पञ्चगुणो भागो भृत्यानां पालानां दण्डः । भृत्येन च क्षेत्रिकाय सदो देयस्तुल्यन्यायत्वात् । मवि.

(३) क्षेत्रकर्पकस्यात्मपशुसस्यभक्षणेऽयथाकालं वप-नादौ वाऽपराधे सति यावतो राजभागस्य तेन हानिः कृता ततो दशगुणदण्डः स्यात् । क्षेत्रिकाविदिते भृत्या-नामुक्तापराधे क्षेत्रिकस्यैव दशगुणार्धदण्डः । क्षेत्रसस्य-प्रसङ्गाच्चेदमुक्तं (स्वामिपालविवादे) । *ममु.

(४) मनुः— 'धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतो ह्यधिको वधः । शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्ध-नम् ॥ क्षेत्रिकस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् । अतोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रिकस्य तु ॥' कुम्भो विशतिः प्रस्थाः, शेषे दशकुम्भाधिकन्यूने । तस्य च तद्धनं स्वामिनो यदपहृतं तद्दाप्यः । क्षेत्रिकस्यात्यये कृषीवलभागापहरणे 'धान्यापहार्येकादशगुणं दण्ड्यः शस्यापहारी च' (विस्मृ. ५।७९-८०) । मनुक्त-धान्यापहारे एकादशगुणदण्डाभिधानं स्वामिने च हृत-धान्यदानं च प्रथमधान्यचौर्यविषयम् । बार्हस्पत्यं तु स्वामिने एकादशगुणधान्यदानं राज्ञश्च तद्द्विगुणधनदानं चौर्याभ्यासविषयमित्यविरोधः । हलायुधस्तु द्वितीये श्लोके क्षेत्रस्वामिनोऽत्ययेन दोषेण यदा शस्यनाशो भवति, तदा राज्ञा स्वग्राह्यभागाद्दशगुणं दण्डनीयः । एतज्ज्ञा-नाच्च । भृत्यदोषेण शस्यनाशे भृत्य एव तद्धनं दण्ड्य इत्यर्थमाह । विर. ३२२-३

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्याधिकं वधः । शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् + ॥

(१) कुम्भशब्दः परिमाणविशेषे वर्तते न घटमात्रे । क्वचिद्विशतिप्रस्थाः क्वचिद्द्विंशतिरिति देशभेदात् व्यवस्था । दशभ्योऽधिकं हरतो वधविधिरुक्तार्थोऽनु-

* गोरा., मच., भाच. ममुवत् । गोरा., नन्द. अशुद्धि-संदिहान्नोद्धतम् ।

+ विर. व्याख्यानं 'क्षेत्रिकस्यात्यये दण्डो' इति पूर्वश्लोके द्रष्टव्यम् ।

(१) मस्मृ. ८।३२०; अशु. २२७।३५-६ दाप्यस्त ... नम् (तस्य दण्डं प्रकल्पयेत्); मिता. २।२७५ शेषेऽप्ये (शेषे); अप. २।२७५; व्यक. ११४ धिकं (धिको);

चन्धादिना नियम्यते । शेषेषु दशसु प्राकृत एकादशगुणो
दण्डः । तस्य च तद्धनमिति सर्वत्र स्तेये योज्यम् ।
धान्यं व्रीहियवादिसप्तदशानीति स्मर्यते । मेधा.

(२) विंशतिद्रोणकः कुम्भः । × मिता. २।२७५.

(३) कुम्भो द्रोणद्वयम् । तदुक्तम्—‘पलद्वयं तु प्रसृतं
द्विगुणं कुडवं मतम् । चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्था-
श्चत्वार आढकः ॥ आढकैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितो
बुधैः । कुम्भो द्रोणद्वयं शूर्पः खारी द्रोणास्तु षोडश ॥’
इति । दशम्यः कुम्भेभ्योऽधिकधान्यहारिणो वधः ।
शेषेऽनधिके हृते यत्र धान्यापहारे यो दण्डस्तमेकादश-
गुणं दण्डं दाप्यः । यावदपहृतं तावच्च स्वामिने ।
अप. २।२७५.

(४) कुम्भः पलशतद्वयम् । वधस्ताडनादि । ब्राह्म-
णादिद्रव्ये त्वङ्गच्छेदादिः । शेषे ततः प्राक् तस्य तद्धनं
दाप्य इत्युभयत्र । मवि.

(५) शेषशब्दो यद्यप्युक्तसंख्यातिरिक्ते न्यूनाधिक-
संख्याके वर्तितुमर्हति, तथाऽपि लघुदण्डाभिधानान्न्यून-
संख्याक एव वर्तते इति मन्तव्यम् । कुम्भशब्दः खारी-
पर्यायः, तत्र क्वचिद्देशे कुम्भशब्दप्रयोगात् । खार्याः पुन-
रियत्ता स्मृत्यन्तरे दर्शिता— ‘अङ्गुल्यग्रत्रयग्राह्या
शरणमित्यभिधीयते । शरणं पाणितलं मुष्टिः प्रसृतिश्च
तथाऽञ्जलिः ॥ कुडपश्च तथा प्रस्थ आढको द्रोण एव
च । मानी खारी च विज्ञेयाः संख्यायाश्चतुरुत्तराः ॥’
इति । ‘दाप्यस्तस्य च तद्धनम्’ इत्यनेन यद्यपि प्रकृतं
धान्यात्मकमेव धनं तत्स्वामिने स्तेनापहृतं दाप्य इति

× शेषं ‘क्षुद्रमध्यमहाद्रव्य’ इति याज्ञवल्क्यवचने द्रष्टव्यम् ।
स्मृच. ३१९; विर. ३२२ ऽभ्यधिकं (ह्यधिको); पमा.
४४२; रत्न. १२५ धिकं- (धिके); विचि. १३७ भ्यधि
(प्यधि) बृहस्पतिः; स्मृचि. २५ रत्नवत्; दवि. ३८ कं
वधः (को दमः) पू. : १३४ भ्यधि (प्यधि); नृप्र. २६४
भ्यधिकं (प्यधिको); व्यग्र. ३९० शेषेऽप्ये (शेषेष्वे) दहनम्
(दनात्); व्यउ. १२८ रत्नवत्; व्यम. १०२ भ्यधिकं
(प्यधिके) शेषेऽप्ये (शेषेष्वे); विता. ७८३ धिकं (धिके)
शेषेऽप्ये (शेषेष्वे); बाल. २।२७५ ‘शेषे त्वे’ इति पाठः;
सेतु. २३८ (=) भ्यधि (प्यधि); ससु. १५१; विव्य.
ऽभ्यधि (ह्यधि) क्रमेण याज्ञवल्क्यः.

१ तत्तस्य.

प्रतिभाति, तथाऽपि ‘स्तेनाः सर्व एवापहृतं दान्याः’
इति विष्णुस्मरणात् सर्वत्र कृते स्तेये योज्यम् । स्मृच. ३१९

(६) द्विपलशतं द्रोणो विंशतिद्रोणश्च कुम्भः, दश-
संख्येभ्यः कुम्भेभ्योऽधिकं धान्यं हरतो वधः । स हर्तु-
स्वामिगुणवत्तापेक्षया ताडनाङ्गच्छेदमारणात्मको ज्ञेयः ।
शेषे पुनरेकस्मादारभ्य दशकुम्भपर्यन्तहरणे निहृतैकादश-
गुणं दण्डं दाप्यः । स्वामिनश्चापहृतं दाप्यः । *ममु.

(७) प्रमाणस्थपुरुषस्य प्रमाणस्थकरचरणस्य द्वाद-
शभिः प्रसृतिभिः कुडवो भवति । चतुर्भिः कुडवैः
प्रस्थो भवति । विंशतिप्रस्थैः कुम्भ इति रत्नाकरादयः ।
ईदृशदशकुम्भाश्च पुरुपाहारमानेन खारीति मैथिलः ।
इतोऽप्यधिकं धान्यमपहरन् मारणीयः । न्यूनं
त्वपहरन् तत्समं धान्यं स्वामिनि तदेकादशगुणं च
राजनि दण्डत्वेन दाप्य इत्यर्थः । अन्ये तु— ‘पलं च
कुडवः प्रस्थ आढको द्रोण एव च । धान्यमानेन
बोद्धव्याः क्रमशोऽमी चतुर्गुणाः ॥ द्रोणैः षोडशभिः
खारी विंशत्या कुम्भ उच्यते । कुम्भैस्तु दशभिर्वाहो
धान्यसंख्या प्रकीर्तिता ॥’ विंशत्या द्रोणैरित्यन्वयः ।
एतद्वाक्यानुसारेण च कुम्भमाहुः । विचि. १३७

(८) कुम्भो विंशतिः प्रस्था इति रत्नाकरः ।
विंशतिद्रोण इति मिताक्षराकारः । कुल्लूकभट्टोऽप्याह
द्विपलशतं द्रोणः, विंशतिद्रोणः कुम्भ इति । यत्तु
धृतद्रोणेन परिमितः कुम्भ इति गोपथब्राह्मण तद्द्रव-
द्रव्यविषयम् । ‘माषकं पञ्चकृष्णलम्— ‘माषकाणि
चतुःषष्टिः पलमेकं विधीयते । द्वात्रिंशत्पलिकं प्रस्थं
स्वयमुक्तमथर्वणा ॥ आढकस्तु चतुःप्रस्थैश्चतुर्भिर्द्रोण
आढकैः ॥’ स्कन्दपुराणे— ‘पलद्वयं हि प्रसृतिस्तद्द्वयं
कुडवं स्मृतम् । चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थमाढकैश्च चतु-
र्गुणैः ॥ चतुर्गुणो भवेद्द्रोण इत्येतद्द्रव्यमानकम् ॥’
तमेनं द्रोणं पूर्णपात्रं व्यवहरन्ति । चतुर्वर्गचिन्तामणौ
द्रवद्रव्यविषये स्कन्दपुराणमिति कृत्वा वचनमिदमव-
तारितम् । एवमेव प्रसृतिप्रभृति द्रोणान्तमुक्त्वा भविष्य-
पुराणे— ‘कुम्भो द्रोणद्वयं सूर्यः खारी द्रोणास्तु षोडश ।’
सूर्य इति द्रोणस्य नामान्तरं, केचित्सूर्य इति पठन्ति ।
विष्णुधर्मोत्तरे कुडवप्रभृति द्रोणान्तमुक्त्वा— ‘द्रोणैः

* मच. मसुवत् ।

योडशभिः खारी विंशत्या कुम्भ उच्यते । कुम्भैस्तु दशभिः खारी धान्यसंज्ञा प्रकीर्तिता ॥' इत्युक्तम् । विंशत्येति द्रोणैरित्यनुपङ्गः । धान्येति यवादीनामपि द्रवद्रव्याणामपि चोपलक्षणं स्कन्दपुराणीयसामान्याभिधानस्वरसादिति महार्णवकारः ।

बालभूषणे चण्डेश्वरः—'कुडवाद्या वेदगुणा प्रस्थाद-द्रोणमानकाः खार्यः । कुम्भो विंशतिखार्या दृष्टो लोके यथाक्रमशः ॥' लोके मिथिलादौ । तदेवं द्रोणद्वयेन विंशत्या द्रोणैरिति च द्विविधः कुम्भः । दानविवेके तु पणसहस्रपरिमितः कुम्भ इत्युक्तम् । एवं च नानार्थ एव कुम्भशब्दः । बराहपुराणे—'पलद्वयं तत्प्रसृतिर्मुष्टिरेकपलं स्मृतम् । अष्टमुष्टिर्भवेत् कुञ्चिः कुञ्चयोऽष्टौ च पुष्कलम् ॥ पुष्कलानि च चत्वारि आदकः परिकीर्तितः । चतुरादको भवेद्द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम् ॥' तथा—'चतुर्भिः सेरिकाभिश्च प्रस्थ एकः प्रकीर्तितः ॥' तत्र हेमाद्रिः—'सेरिका कुडवः । तथा कल्पतरुः—'सेरिका कुडवः स च द्वादशप्रसृतिपरिमितः । द्वादश-प्रसृतिभिः सेरिका तच्चतुष्टयं प्रस्थ इति समयप्रकाश-रत्नाकर-स्मृतिसागरेष्वप्युक्तम् ।

तथा भूपालपद्धतौ प्रमाणस्थपुरुषस्य प्रमाणस्थकर-चरणस्य द्वादशप्रसृतिभिः कुडव उत्तरोत्तरं चतुर्गुणाः प्रस्थादकद्रोणा भवन्ति । ततश्चतुःषष्ट्या कुडवैर्द्रोणं इत्युक्तम् । एवमेव कल्पतरुकारः । यत्तु पठन्ति—'पञ्चकृष्णालको माषस्तैश्चतुःषष्टिभिः पलम् । द्वात्रिंशता पलैः प्रस्थो मागधेषु व्यवस्थितः ॥ आदकस्तैश्चतुर्भिस्तु द्रोणः स्याच्चतुरादकः ॥' तथा—'सर्वेषामेव मानानां मागधं श्रेष्ठमुच्यते ॥' तदेतन्मागधमात्र इत्याहुः । तत्र, गोपथब्राह्मणसंवादित्वेन साधारण्यौचित्यात् मागधेष्विति व्यवहरणपरम् । एवञ्च श्रेष्ठतापि न परिमाण-धिन्यात्, अपि तु वेदमूलकत्वादिति ध्येयम् ।

दवि. १३४-६

(९) कुसलात् किञ्चिन्न्यूनं धान्यभाजनं कुम्भः, दशभ्यः कुम्भेभ्य इत्येकपुरुषस्य संवत्सरभोजनपर्यन्त-धान्यग्रहणं, ततोऽभ्यधिके हरणे दण्डः स्यात् । दशभ्यः कुम्भेभ्यो न्यूनं हरणे ह्यतादेकादशगुणं धान्यं हर्ता दण्डत्वेन दाप्यः । धान्यस्वामिने तद्भृतं धान्यं च

दाप्यम् । ब्राह्मणधान्यहरणे क्षत्रियादीनामयमेव दण्डो-ऽवगन्तव्यः । नन्द-

(१०) अभ्यधिकं हरतः वधः ताडनादि । एत-द्विप्रविपयम् । क्षत्रियादाववगच्छेदित्यर्थः । भाच-

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ।

सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् * ॥

(१) धरणं धरिमा, तुला, तेन मीयन्ते परिच्छिद्यन्ते तानि धरिममेयानि । धृतादीनां द्रवाणां प्रस्थादिमेयताऽ-स्तीति, कठिनानां परिमेयता भवतीति, तदर्थमाह सुवर्णरजतादीनाम् । आदिग्रहणादेव रजते लब्धे पुनरुपादानानुत्पन्नग्रहणार्थात् प्रवालादीनि गृह्यन्ते । न तु ताम्रलोहादीनि । तेषां शतादूर्ध्वं हरणे वधः । किं पुनरेतच्छतं, पलानामुत कर्षाणामेव कर्षापणानां वा । केचिदाहुः पलानामिति । न त्वत्र विशेषो हेतुरस्ति, तस्माद्यस्मिन् देशे धरिममानकाले यथा संख्यया व्यव-हारः । शतमिदं सुवर्णस्य, क्वचित्तोले क्वचित्पलेषु, यथादेशं व्यवस्था । उत्तमानां च वाससां कौशेयपट्टादी-नामिति । शतादभ्यधिके वध इत्यनुषङ्गः । अत्रापि शाटकयुगमेकमिति संख्यायते । पुष्पपटाद्युपवर्हणं त्वेक-मेवेति । ननु च सुवर्णरजतादीनामित्येव सिद्धे परिमेय-ग्रहणमनर्थकम् ? नानर्थकं, कर्पूरागरुकस्तूरिकादीनां

* दण्डविवेके उक्तानां ग्रन्थानामनुवादः ।

(१) मस्त्व. ८।३२९; गौरां. उत्तमानां (महार्घाणां); मिता. २।२७५ तथा धरिममेयानां (रत्नानां चैव सर्वेषां); अप. २।२७५; व्यक. १।१४; मभा. १।२।४१ (=) धरिममेयानां (परिमेयानां) पू.; स्मृच. ३।९ धरिम (गणिम); विर. ३।२३; पमा. ४।४२ तथा वधः (रत्नानां चैव सर्वेषां शतादभ्यधिकं वधः); रत्न. १।२५ उक्त.; विचि. १।३८ तथा (तुला) भ्यधि (प्यधि); स्मृचि. २।५; दवि. १।४३ के वधः (को दमः); नृप्र. २।६४ मितावत्; सवि. ४।६२ वाससाम् (साहसाः) शेषं मितावत्; व्यप्र. ३।९० उक्त.; व्यउ. १।२८ उक्त., क्रमेण व्यासः; व्यम. १।०२ उक्त.; सेतु. २।४१ तथा धरिम (तुलापरिम) भ्यधि (प्यधि); ससु. १।५०. [मिता., पमा., सवि., नृप्र. एषु ग्रन्थेषु श्लोकार्थौ व्यत्यासेन पठितौ].

१ वधः केचिदाहुः । पलानामिति । न तत्र विशेषहेतु-रित्यनु.

महाघाणो ग्रहणार्थम् । आदिग्रहणाद्धि तैजसानि गृह्यन्ते, निष्कादिपरिमाणव्यपदेश्यानि वा । न हि कर्पूरादीनां कर्षादिव्यपदेशोऽस्ति । यद्यपि सुवर्णवज्रजतेऽपि शतसंख्या तथापि प्रायश्चित्तभेदवद्दण्डभेदोऽपि युक्तो विषमसमीकरणस्य न्याय्यत्वादतो यावत्सुवर्णगतस्य मूल्यं तावति रूपे गृहीते वधः । कर्पूरादीनां तु पलानामेव शतसंख्या ।

×मेधा.

(२) धरिमेण तुल्या मीयन्त इति धरिममेयानि, तान्येव सुवर्णरजतादीनामित्यनेन विशेषितानि । यदि सुवर्णरजतादीनामित्येतावन्मात्रमुच्यते ततो लोहानामेव ग्रहणं स्यात् । अथ धरिममेयानामित्येवोच्येत, तदा गुडादीन्यपि गृह्येरन् । उभयोपादाने तु लोहव्यतिरिक्तानामपि मुक्ताप्रवालादीनां तुलामेयानां परिग्रहः । महार्धत्वेन सुवर्णरजतप्रकारत्वात् । प्रकारवचनश्चायमादिशब्दः । अत एव गुडादीनां धरिममेयत्वेऽपि निवृत्तिः । अमहार्धत्वेन सुवर्णतुल्यताविरहात् । तेन लोहानामपि त्रपुसीसादीनामसाराणां नेह ग्रहणम् । उक्तानि च वासांसि पत्तो (त्रो)र्णनेत्रपटीप्रभृतीनि ।

अप. २।२७५

(३) धरिमा तुला तन्मेयानां सुवर्णरजतव्यतिरिक्तानां ताम्रादीनां, शतात् निष्कशतात् । एतच्च षोडशमाषकरूपसुवर्णचतुष्टयरूपनिष्कव्यवस्थया ग्राह्यम् । अत्रापि वधो मारणं ब्राह्मणद्रव्यत्वे अन्यत्र त्वङ्गच्छेदादि । सुवर्णेति । सुवर्णरजतोत्तमवाससामल्पानामपि हरणे वध एवेत्यर्थः ।

*मवि.

(४) यथा धान्येन वध उक्तस्तथा तुलापरिच्छेद्यानां सुवर्णरजतादीनामुत्कृष्टानां च वाससां पट्टादीनां पलशताधिकेऽपहृते वधः कर्तव्य एव । विषमसमीकरणं चात्र देशकालापहर्तृद्रव्यस्वामिजातिगुणापेक्षया परिहरणीयम् । एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् ।

+ममु.

(५) हेम्नो रजतस्य वा शतकर्षाधिकस्य तथा वाससो वा शताधिकमूल्यस्य हर्ता वध्यः । विचि. १३८

(६) धरिमेति, धरणं तुला तेन परिच्छेद्यानां कार्पासादिद्रव्याणां पलशताधिकेऽपहृते वधः ।

÷मच.

× गोरा., स्मृच. मेधावत् । * भाच. मविवत् ।

+ मेधावद्भावः । ÷ शेषं ममुवत् ।

पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते । शेषेष्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥

(१) सुत्रोघोऽयम् । मूल्यादिति नापहृतमेव द्रव्यं देयं, क्वचित्तजातीयं नैव प्राप्यते । अतो रूपकैर्धान्यादिना वा विनिमेयम् ।

मेधा.

(२) पञ्चाशत इति ताम्रादिविषयम् । शेषे पञ्चाशत ऊने ।

×मवि.

(३) पूर्वोक्तानां पञ्चाशदूर्ध्वं शतं यावदपहारे कृते हस्तच्छेदनं मन्वादिभिरभिहितम् । शेषेष्वेकपलादारभ्य पञ्चाशत्पलपर्यन्तापहारे अपहृतगुणादेकादशगुणं दण्डं दाय्यः ।

+ममु.

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।

कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥

(१) कृष्यमाणा भूमिः सीता, तद्द्रव्याणि लाङ्गलकुहालकादीनि, तदपहरणे दण्डः प्रकल्प्यः । किं इच्छयैव ? नेत्याह । कालमासाद्य कार्यं च, कर्षणकाले प्रत्यासन्ने महान् दण्डः । अकृष्टे च यदा तस्मिन् महतः फलस्य नाशस्तदा भूयानेव । आसाद्यासन्नं ज्ञात्वेत्यर्थः । अन्यदा तु द्रव्यजात्याद्यनुरूपः । एवं शस्त्राणां च खड्गादीनां युद्धकाले, औषधस्य भेषजार्थमुपयोगकाले, तेन चौषधेन हृतेनानुपयुक्तेन यद्यातुरस्य महती पीडा

× भाच. मविवत् । + गोरा., मच., नन्द. ममुवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३२२ श्लोका (त्वेका) [मिष्यते (मुच्यते) श्लोका (त्वेका) Noted by Jha]; मिता. २।२७५; अप. २।२७५ श्लोका (त्वेका); व्यक्र. ११४ ल्याद् (ल्यं द); स्मृच. ३१९; विर. ३२३ श्लोका (ऽप्येका); पमा. ४४३ अपवत्; रत्न. १२५ विरवत्; विचि. १३८ विरवत्; स्मृचि. २५ ल्याद् (ल्यद) शेषं विरवत्; दवि. १४३ विरवत्; नृप्र. २६४-५; सवि. ४६२ शेषे (शते); व्यप्र. ३९०; व्यड. १२८ विरवत्, क्रमेण व्यासः; व्यम. १०२ दण्डं (दण्डः); विता. ७८४ नारदः; सेतु. २४१ विरवत्; समु. १५०.

(२) मस्मृ. ९।२९३ [प्रकल्पयेत् (प्रवर्तयेत्) Noted by Jha]; मवि. शस्त्राणां (शष्पाणां); विर. ३२४ हरणे (हारे तु); दवि. १४६ हरणे (हारे तु) काल ... च (कार्यं [फालो] माषोदकानां च); समु. १५१.

जायतेऽन्यच्च तस्मिन् काले न लभ्यते तद्व्ययमपि बाध-
कादिसंस्कारापेक्षया चिरेणोपयोगार्थमेवमाद्यपेक्षा राज-
दण्डप्रकल्पनायै प्रभवेत् । शस्त्राणां राजोपकरणानाम् ।
अन्यथाऽपि जनपदस्य भ्रातृव्यतस्कराशाङ्किकनस्तदा
महान् दण्डः । स्वले स्वल्पः । मेधा.

(२) सीताद्रव्यं हलादि । शष्पाणां औषधिद्रव्याणाम् ।
शस्त्राणामिति क्वचित् । कालं कृषिसमयादिं, कार्यं
दुर्भिक्षादिना बहुप्रयोजनतां ज्ञात्वा दण्डतारतम्यं
कुर्यात् । मवि.

(३) कृष्यमाणभूमिद्रव्याणां हलकुहालादीनामपहरणे,
खड्गादीनां च शस्त्राणां, औषधस्य च कल्याणघृतादे-
श्चौष्ये सत्युपयोगकालेतरकालापेक्षया प्रयोजनापेक्षया च
राजा दण्डं कुर्यात् । मसु.

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्विन्याच्च यः प्रपाम् ।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन् समाहरेत् ॥

(१) प्रपिबन्त्यस्यामिति प्रपा, जलाधारस्थानं उद्धृत-
जलनिधानं वा । माषस्य जातिर्न निर्दिष्टा । सा मरु-
जाङ्गलानूपभेदा द्रष्टव्या । तच्च रज्ज्वादि समाहरेद्दद्या-
त्तस्मिन् स्थाने न राजनि । मेधा.

(२) कूपसमीपे रज्जुघटयोर्जलोद्धारणाय घृतयो रज्जुं
घटं वा हरेत् । यो वा पानीयदानगृहं विदारयेत् स
सौवर्णं माषं दण्डं प्राप्नुयात् । 'यन्निर्दिष्टं तु सौवर्णं
माषं तत्र प्रकल्पयेत्' इति कात्यायनवचनात् । तच्च
रज्ज्वादि तस्मिन् कूपे समर्पयेत् । *मसु.

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ।

दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तुणस्य च ॥

* गौरा., मवि., मच., नन्द., भाच. मसुवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३१९ क., घ., द्विन्या (द्विधा), ग.,
तच्च (तं च); अपु. २२७।३४-५ यः प्रपाम् (तां प्रपाम्)
उत्तरार्धे (स दण्डं प्राप्नुयान्मासं दण्ड्यः स्यात्प्राणिताब्दे) ;
अप. २।२७५ स दण्डं (दण्डं स); व्यक. ११५; विर.
३२८; विचि. १४१ रज्जुं घटं (रज्जुघटं); स्मृचि. २५
विचिवत्; दवि. १५०; सेतु. २४३ रज्जुं घटं (रज्जुघटं)
प्रपाम् (प्रपा) तच्च (तं च); ससु. १५१.

(२) मस्मृ. ८।३२६ [गोमयस्य (आवसस्य) Noted
by Jha]; अप. २।२७५; व्यक. ११५; विर. ३२६;

वेणुवैणवभाण्डानां लवणानां तथैव च ।

मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥

मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ।

मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥

अन्येषां चैवमादीनां मद्यानामोदनस्य च ।

पक्वानानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः ॥

(१) सूत्रमूर्णासणादि । लवणानि सैन्धवविडलवणादीनि ।
यच्चान्यत्पशुसंभवमामिपादि । अन्येषामपूपमोदकादी-
नाम् । आदिशब्दः प्रकारे, प्रकारः सादृश्यं तुल्यता
सदृशकार्यकरणोपयोगादिरूपा । तथा च सर्पिमण्डेषु-
खण्डशर्कराकिलाटकूर्चिकाद्या अपूपा गृह्यन्ते । पशुसंभवं
राङ्कवाजिनाद्यपीच्छन्ति केचित् । आदिग्रहणात्प्रकृते-
र्विकृतिरपि । यच्चोभयोपादानं दग्धः क्षीरस्य चेति
तदुदाहरणार्थम् । एवं सूत्रग्रहणेन सूत्रमयं वासोऽपि
गृह्यते । नलिकादीनां सत्यपि सूत्रमयत्वे पशुसंभवत्वे
उत्तमत्वादुत्तमानां चेति अयमपवादविषयः । प्रकृत्यन्तरे

पमा. ४४४; विचि. १४०; दवि. १४८; व्यग्र. ३९१;
व्यउ. १२९ क्रमेण नारदः; सेतु. २४१-२४३; ३२३
किण्वानां (द्विन्यानां); ससु. १५१.

(१) मस्मृ. ८।३२७ वैणव (वैदल); अप. २।२७५;
व्यक. ११५; विर. ३२६; पमा. ४४४; विचि. १४०;
दवि. १४८; व्यग्र. ३९१; व्यउ. १२९ (=); सेतु.
२४२, ३२३; ससु. १५१.

(२) मस्मृ. ८।३२८; अप. २।२७५; व्यक. ११५
यच्चा (यद्वा); विर. ३२६; पमा. ४४४ मत्स्यानां
(अजानां); विचि. १४०; दवि. १४८; व्यग्र. ३९१
तैलस्य च (लवणस्य) शेषं पमावत्; व्यउ. १२९ पमावत्;
सेतु. २४२, ३२३; ससु. १५१ मांस (माष) शेष
पमावत्.

(३) मस्मृ. ८।३२९ नां म (नाम); अप. २।२७५;
व्यक. ११५ वां चैव (वामेव); विर. ३२६ ज्ञानां च (नां
चैव) शेषं व्यकवत्; मसु. श्लोकव्याख्याने ' नां मद्यानां '
इति पाठः स्वीकृतः; पमा. ४४४; विचि. १४० वां चैव
(वामेव) उत्तरार्धे (फलानां चैव सर्वेषां हरणे द्विगुणो दमः १);
दवि. १४८ व्यकवत्; व्यग्र. ३९१; व्यउ. १२९ मद्यानां
(माषाणां); सेतु. २४२, ३२३ विचिवत्; ससु. १५१;
नन्द. नां मद्या (नामाद्या); भाच. नां मद्या (नामाद्या).

तैलशब्दः स्नेहवांची, न तिलविकार एव । तेनातसी-
प्रियङ्गुपञ्चाङ्गुलतैलादयोऽपि गृह्यन्ते । मेघा.

(२) ऊर्णादिसूत्रस्य कार्पासिकस्य च किण्वस्य
सुरावीजद्रव्यस्य च, सूक्ष्मवेणुखण्डनिर्मितजलाहरणभाण्डा-
दीनां, यदप्यन्यत्पशुसंभवं च मृगचर्मस्त्रङ्गशृङ्गादि,
अन्येषामप्येवंविधानामसारप्रायाणां मनःशिलादीनां,
मद्यानां द्वादशानां, पक्वान्नानामोदनव्यतिरिक्तानामप्य-
पूपमोदकादीनां च कार्पासादिशब्दार्थानां प्रसिद्धानां
चापहारे कृते मूल्याद्द्विगुणो दण्डः कार्यः । मसु.

(३) किण्वं सुराप्रकृतिद्रव्यम् । आद्यानां भक्ष्या-
णाम् । नन्द.

(४) अद्यानां अदनीयानाम् । भाच.

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ।

अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥

(१) नवमालिकादीनि पुष्पाणि । हरितं धान्यं
क्षेत्रस्थं अपक्वम् । नगा वृक्षाः । अन्येष्वपरिपूतेषु बहु-
वचनात्परिपवनस्य च धान्येष्वेव तुषपलालादिविमोक्ष-
रूपस्य संभवादुत्तरश्लोके धान्यग्रहणमेवाकृष्यते । गुल्मा-
दीनां हि सत्यपि पलाशव्यामिश्रत्वे पुष्पाणां च, न परि-
पूतव्यवहारः । सप्तमी हरणापेक्षा । तत्तु पूर्वस्मादनुवर्तते ।
अत्र पञ्चकृष्णलो दण्डः । कृष्णलानां द्रव्यजातिः अल्प-
त्वमहत्त्वप्रयोजनापेक्षा । सुवर्णस्येति पूर्वं । मेघा.

(२) पुष्पेषु नीलीक्षेत्रेषु धान्येषु गुल्मलतावृक्षेषु पुरुष-
भारप्रायेषु वक्ष्यमाणात् श्लोकात् परिपवनसंभवाच्च धान्येषु
खलवासितापहृतेषु, देशकालापेक्षया सुवर्णस्य रूप्यस्य वा
पञ्चकृष्णलपरिमाणो दण्डः स्यात् । गौरा.

(३) हरिते माषादौ शमीधान्ये, धान्ये शुकधान्ये ।
एष्वल्पेषु तथाऽपरिपूतेष्वपृथक्कृतबुसेषु । मवि.

(१) मस्मृ. ८।३३० [पुष्पेषु (लतासु) Noted by
Jha]; गौरा. [अन्ये (अल्पे) Noted by Jha];
व्यक्र. ११५ अन्ये (अल्पे) लः (लाः); मवि. अन्ये (अल्पे);
विर. ३२५ व्यकवत्; विचि. १३९ पुष्पे... धान्ये (पुष्पे
हरितधान्ये च) शेषं व्यकवत्; दवि. १३८ मविवत् : १४६
व्यकवत्; सेतु. २३९ व्यकवत्; ससु. १५१.

१ हरन्ति धा. २ शे व्या. ३ (-न०).

व्य. कां. २१६

(४) पुष्पेषु, हरिते क्षेत्रस्थे धान्ये, गुल्मलतावृक्षेष्व-
परिपूतेषु अनपावृतवृक्षेषु, वक्ष्यमाणश्लोके धान्यादिषु
निर्देशात्परिपवनसंभवाच्च धान्येषु अन्येषु समर्थपुरुषभार-
हार्येषु हृतेषु देशकालापेक्षया सुवर्णस्य रूप्यस्य वा
पञ्चकृष्णलमापपरिमाणो दण्डः स्यात् । मसु.

(५) हरिते धान्ये क्षेत्रस्थमासुरूपे धान्येषु हृते ।
नसौ वृक्षः । अल्पेषु एकपुरुषोद्वाह्यादपि न्यूनेषु । अपरि-
पूतेषु अनपहृतकल्केषु । धान्येष्विति वचनविपरिणामे-
नान्वयः । * विर. ३२५

(६) सुवर्णमापः 'पञ्चकृष्णलको माप' इत्युक्तेः, न
तु रूप्यमापकः । X मच.

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ।

निरन्वये शतं दण्डः सान्त्वयेऽर्धशतं दमः ॥

(१) मूढं इक्षुः, फलं द्राक्षादि । निरन्वये द्रव्यहरणे ।
अन्वयोऽनुनयः स्वामिनः प्रीत्यादिप्रयोगः । यत्त्वदीयं
तन्मदीयमेवेत्यनया बुद्ध्याऽहं प्रवृत्तो न चेदेवं तद्गृहाणे-
त्येवमादिबचनं, तद्यत्र न क्रियते तन्निरन्वयम् । साहस-
प्रकारत्वादधिको दण्डः । अन्वयेन सह सान्वयः । येन
सह कश्चिदपि संबन्धो नास्त्येकग्रामवासादिस्ततः
शतं दण्ड्यः । अथवा अनारक्षं निरन्वयम् । सति तु
रक्षके उभयाभ्यामधादल्पो दण्डः । खलस्थेषु धान्येष्वयं
दण्डः । तत्र हि परिपूयन्ते । गृहस्थेषु त्वेकादशगुणः
प्रागुक्तः । + मेघा.

(२) अपासितेषु शेषेषु शाकादिषु वाऽपहृतेषु
स्वामिना सह सग्रामेऽपहारे पणशतं दण्डः । संगतेषु
पुनः पञ्चाशतं दण्डः । गौरा.

(३) परिपूतेष्वपास्तबुसेषु । शाकमूलफलेषु बहु-
मूल्यात्यन्तोपयुक्तेषु । निरन्वये तद्द्रव्यसंबन्धयोग्यता-

* दवि. विरवत् मचवत् । X शेषं मसुवत् ।

+ विर. मेधावत् । भाव. मेधातिथ्युक्तद्वितीयपक्षवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३३१; व्यक्र. ११५ मनुयमौ; विर.
३२४; विचि. १३९; दवि. १३७, १४६ दण्डः (दण्ड्यः);
सेतु. २३९ उत्तरार्धे (निरन्वयः शतं दण्ड्यः सान्त्वयोऽ-
र्धशतं दमम्); ससु. १५१ उत्तरार्धे (निरन्वयः शतं दण्ड्यः
सान्त्वयो द्विशतं दमम्).

१ मूलमिक्षुद्राक्षादि ।

पादकज्ञानोपाधिकोऽन्वयो यस्तमभिधाय यत्र हरणं न भवति तत्र । तद्विपरीतं सान्वयम् । मवि.

(४) निष्पुलाकीकृतेषु वृक्षेषु धान्येषु शाकादिषु चानहृतेषु, अन्वयो द्रव्यस्वामिनां संबन्धः, येन सह कश्चिदपि संबन्धो नास्त्येकग्रामवासादिस्तत्र शतं दण्डयः । सान्वये तु पञ्चाशत्पणो देयः । खलस्थेषु च धान्येष्वयं दण्डस्तत्र हि परिपूयन्ते । गृहेष्वेकादशगुणो दण्डः प्रागुक्तः । ममु.

(५) तद्विशेषेषु धान्यादिचतुष्टयेषु व्यवस्थया शत-मर्घशतं वा दमं दापयन् तान् उद्दिशति— परीति । परिपूतेषु यज्ञाद्यर्थं संस्कृतेषु अपसारिततुषेषु वा । निर-न्वये संपूर्णहृते, द्रव्यस्वामिना एकग्रामवासाद्यसंबन्ध इति केचित् । X मच.

युञ्जैतान्युपकृतानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ।

तं शतं दण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात् * ॥

(१) एतानि सूत्रादीनि, उपकृतानि प्रत्यासन्न-दानोपभोगादिकार्यकालानि, अथवा संस्कृतानि कृत-सामर्थ्याधानानि । यथा तदेव सूत्रं तन्तुवायहस्ते वायनार्थं दत्तं किञ्चिद् द्विगुणीक्रियते, किञ्चित्परिवर्त्यते, एवं दधि-मन्थनमरीचशर्करादिसंस्कृतं, क्षीरं घृतमित्यार्देः संस्कारः, तत्र शतं दण्डः । आद्यमिति पाठे प्रथमसाहसः । अग्निं गृहात्, परिगृहीतं शालाग्निहोत्रेत्यार्थं, हेमन्ते वा शीतादितानां दरिद्राणामप्रणीतमपि, अग्नेरुपकल्पनं पाककाले शीतादिनिवृत्त्यर्थं वा तापनकाले । अविशेषे-णायमग्नेर्दण्डः स्वल्पस्य बहोरुपकृतस्यानुपकृतस्य च । सत्यपि सूत्रादिदण्डे आदिग्रहणेनाग्नेस्तन्मूल्यादि न संभवति । क्रयविक्रयव्यवहाराप्रसिद्धेः । यावता वेन्धने-

X नन्द. मचवत् । * दण्डविवेके गोविंदराजसर्वज्ञ-नारायणकुल्लकरत्नाकराणामनुवादः ।

(१) मस्मृ. ८।३३३ यश्चै (यस्त्वे): क., ग., घ., तं शतं (तमाद्यं); अणु. २२७।३७; अप. २।२७५ यश्चैता (यश्चैर्था); विर. ३२६; विचि. १४०; दवि. १४८; सेतु. २४२ उक्त. : ३२३; संसु. १५१ यश्चै (यस्त्वे) तं शतं (तमाद्यं).

१ लादि सं. २ अक्षिगृ. ३ द्विके. हे. ४ कालः शी. ५ कालः । अ. ६ (न०).

नामिरुपहृत्य परिमाण उत्पद्यते यावतीभिर्दक्षिणाभिस्त-न्मूल्याद्द्विगुणो दण्डः संभवति, शक्यते व्यपदेशुं, तुष्टयुत्पत्तिश्च स्वामिनः स्थितैव । अतस्त्रेताग्निहरणे यावत्पुनराधाने गच्छति प्रायश्चित्तेषु च तावदग्निमते दायः । अतोऽयमग्नेर्दण्डः शालाप्रणीताग्निविषय एव, स्वल्पत्वात् । त्रेतायां तु तन्मूल्याद्द्विगुण इति । तथा च सुलभेष्वधिकारनिवृत्तिमकुर्वन्तु यागाङ्गद्रव्येष्वपहियमा-णेषु 'कुशकरकाग्निहोत्रद्रव्याण्यपहरतोऽङ्गच्छेदः स्यात्' इति शङ्कः । अग्निषु तु हृतेष्वधिकार एव निवर्तते । तत्र कथं महान् दण्डो न स्यात् ? मेधा.

(२) एतानि सूत्रादीनि द्रव्याणि उपभोगार्थमुद्य-मितानि यो मनुष्यश्चोरयेत्, यश्चाग्निं लौकिकमपि चोरयेत् तं प्रथमसाहसं राजा दण्डयेत् । अग्नेश्च मूल्य-व्यवहाराप्रसिद्धेस्तन्मूल्यात् द्विगुणो दम इत्येतदसंभवे सति सूत्रादिभ्यः पृथग्रहणम् । गोरा.

(३) उपकृतानि भोजनादिप्रयोजनार्थं सज्जितानि । आद्यं प्रथमसाहसम् । अग्निं त्रेताग्निमाधानादिसंस्कृतम् । मवि.

(४) यः पुनरेतानि सूत्रादिद्रव्याण्युपभोगार्थं कृत-संस्काराणि मनुष्यश्चोरयेत्, यश्च त्रेताग्निं गृह्याग्निं वाऽग्निगृहाच्चोरयेत् राजा प्रथमं साहसं दण्डयेत् । अग्नि-स्वामिनश्चाधानोपक्षयो दातव्यः । गोविन्दराजस्तु लौकिकाग्निमपि चोरयतो दण्ड इत्याह, तदयुक्तम् । अल्पापराधे गुरुदण्डस्यान्याय्यत्वात् । * ममु.

(५) उपकृतानां कार्यार्थं संनिधापितानाम् । अग्निरिह लौकिकः । 'विषये लौकिकं स्यादिति' नयात्, विषये संशये । विर. ३२६

अप्रकाशचौर्याभ्यासे शारीरो दण्डः

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।

तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥

(१) भूयोभूयः प्रवृत्तस्यायं दण्डः । यो धनेन दण्डितोऽपि न मार्गे अवतिष्ठते तस्य त्रिचतुर्दण्डितस्या-

* विचि., मच., भाच. ममुवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३३३ मेधाः ८।२९ पू.; संसु. १५१-१ दातव्यः ८५.

नवतिष्ठमानस्य द्रव्यजातिपरिमाणानपेक्षः संधिच्छेदाद्य-
नपेक्षः चौर्यक्रियामान्नाशितोऽङ्गच्छेदः । यस्य यस्याङ्गस्य
त्रलमाश्रित्यावतिष्ठते स्तेनश्चौर्ये प्रवर्तते तत्तदस्य हरेत्
छिन्त्यात् । यथा कश्चित्पादत्रलमाश्रित्यावष्टभ्य पलायते
न मामनुगन्तुं कश्चिदपि शक्नोतीति तस्य पादच्छेदः ।
अन्यः संधिभेदज्ञोऽर्हामिति, तस्य हस्तच्छेदः । प्रत्या-
देशाय प्रतिरूपफलदर्शनाय । स्वावष्टम्भेन साभिमानं
सक्रोधं सावज्ञं न्यकरणं वा प्रत्यादेशः । य एवं करोति
तस्य तस्याहमेवं कर्तेति व्याख्यापनं प्रत्यादेशः । मेधा.

(२) यच्च येन हस्तपादादिकाङ्गेन येन प्रकारेण
ग्रन्थिच्छेदनिःश्रेण्यारोहणादिना चोरो मनुष्येषु विरुद्धं
धनापहारादि कर्तुर्माहते तत्तदेवाङ्गं तस्याभ्यासप्रवृत्तौ
सत्यां तदपराधच्छेदनाय राजा छेदयेत् । गोर.

(३) विचेष्टते विरुद्धं चेष्टते द्रव्यं हरति । हरेदपनये-
दतिशयितापराधे । प्रत्यादेशायान्यस्यापि निषेधाय ।
मवि.

(४) येन येनाङ्गेन हस्तपादादिना येन प्रकारेण
संधिच्छेदादिना चोरो मनुष्येषु विरुद्धं धनापहारादिकं
चेष्टते तस्य तदेवाङ्गं प्रसङ्गनिवारणाय राजा छेदयेत् ।
तत्र धनस्वाम्युत्कर्षापेक्षया अयमङ्गच्छेदः । *ममु.

वर्णतः स्तेयदोषतारतम्यम्

अष्टपादाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य तु ॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वाऽपि शतं भवेत् ।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः × ॥

* मच., नन्द., भाच. ममुवत् । × मिता. व्याख्यानं
'शूद्रमध्यमहाद्रव्य' इति याज्ञवल्क्यवचने द्रष्टव्यम् ।

(१) मरुट्. ८।३३७ स्य तु (स्य च) [व तु (व च)
Noted by Jha]; मिता. २।२७५; अप. २।२७५;
व्यक. १।१८ अष्टपाद्यं तु (अष्टपाद्यं हि); विर. ३४२ धं
तु (धं हि) स्य तु (स्य च); पमा. ४४२ स्य तु (स्य च);
विचि. १।४४ धं तु (धं च) शैव (शास्य) याज्ञवल्क्यः;
व्यनि. ५।१४ धं तु (धं हि); दवि. ३७ वि (विं); नृप्र.
२।६४ षम् (षी); व्यप्र. ३।९०; व्यउ. १।२८; पिता.
७।८८; सेतु. ३।२८ याज्ञवल्क्यः; समु. १।५१.

(२) मरुट्. ८।३३८; मिता. २।२७५ विद्धि सः
१ इं त.

(१) 'तद्दोषगुणविद्धि स' इति हेत्वभिधानाद्विदुषां
दण्डोऽयम् । यत्र खलु जन एकं कर्मापणं द्राम्यते तत्र
विद्वान् शूद्रोऽष्टगुण, अष्टभिः आपाद्यते संवध्यते
यत्किल्बिषं पापं, तदेवमुच्यते । अष्टभिर्वा आपाद्यते
आहन्यते गुण्यत इति यावत्, उभयथाऽप्यष्टगुणस्य
वाचकोऽष्टपाद्यशब्दः । एवं तदेव द्विगुणं वैश्यस्य, स
हि साक्षादध्ययनज्ञानयोरधिकृतः । शूद्रस्तु कथाश्चिद्
ब्राह्मणापाश्रितस्तत्संगत्या क्रियदपि ज्ञास्यति । क्षत्रियस्तु
रक्षाधिकारदोषेण समाने विद्वत्त्वे ततोऽपि द्विगुणं दण्ड्यते ।
ब्राह्मणे तु दण्डविधौ न तृप्यति । चतुःषष्टिः शतमैष्ट-
विंशाधिकशतमिति वा । तस्य हि प्रवचनमुपदेष्टृत्वं वा
अधिकं च रक्षा ततो भवेत् । प्राकृतजनस्य तिर्यकप्रत्यस्य
कोऽपराधः । अविद्वांसो गुणदोषानभिज्ञा अकार्ये
प्रवर्तन्ते । विद्वानपि तथैव चेद्वर्तेत, हन्त हंतं जगत्,
तृतीयस्य शिक्षितुरभावात्, तदुक्तं 'द्वौ लोके घृतव्रतौ
राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः' इति (गौध. ८।१) । राज्ञः
पूर्वेण दण्डाधिक्यमनेन ब्राह्मणस्य, आधिक्यमात्र-
विधिश्चायं न यथाश्रुतसंख्याविधिः ब्राह्मणदण्डेऽनवस्था-
श्रवणात्, अयं वा अयं वेति, न च विकल्पो युक्तो
व्यवस्थाहनुत्वाभावात् । तुल्यबलस्यैव विषयस्या-
नुपपत्तेः । को हि राजा द्विगुणमुत्सृज्य चतुःषष्टिं
ग्रहीष्यति । यदि परमदृष्टार्थं दण्डे विकल्पः, उपपद्येत ।
न चादृष्टार्थोऽयमित्युक्तम् । तथा च गौतमो (१।२।१४)
'विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वम्' इत्याह । तस्मादनवस्था-
विधित्वं व्याहरन्ति । न च गुणापेक्षो विकल्पो युक्तो
अष्टादिश्लोकेनैव सिद्धत्वात् । अर्थवादाच्चात्र विध्यवगातिः

(वेदिनः); अप. २।२७५ विद्धि (वद्धि); व्यक. १।१८
वाऽपि (चाऽपि) विद्धि सः (विद्धिषः); पमा. ४४२ [वाऽपि
(चाऽपि) दोषगुणविद्धि सः (दानगुणवेदिनः) Noted by
Jha]; विचि. १।४४; व्यनि. ५।१४; दवि. ३७ मिता-
वत्; नृप्र. २।६४ दोषगुणविद्धि सः (देशगुणवेदिनः);
व्यप्र. ३।९० मितावत्; व्यउ. १।२८ मितावत्; पिता. ७।८८
पू; सेतु. ३।२८ पूर्ण (पूर्वं) णा (णं) याज्ञवल्क्यः; समु.
१।५१ मितावत्.

१ लज. २ गुणामष्ट. ३ चष्टिशतमष्टविंशं वा शत-
मिति । त. ४ हन्त ज. ५ मात्रावि. ६ चेति.
७ नष्टा. ८ व्यगतिः.

स चाधिक्याविधौ लब्धालम्बन इति न यथाश्रुतपरि-
कल्पने विकल्पने समर्थः । *मेधा.

(२) यस्मिंस्तेये यो दण्ड उक्तः स गुणदोषज्ञस्य
शूद्रस्याष्टभिरापाद्यते गुणतोऽष्टगुणः कार्यः । षोडशगुणो
विदुषो वैशस्य, द्वात्रिंशद्गुणः शास्त्रोक्तस्य क्षत्रियस्य,
चतुःषष्टिगुणो ब्राह्मणस्य द्विचतुःषष्टिगुणो वा पूर्णं वा
ज्ञातं गुणातिशयापेक्षया, यस्मादसौ ब्राह्मणः स्तेयगुण-
दोषज्ञः । × गोरा.

(३) अष्ट दण्डा आपाद्या येन किल्बिषेण स्तेयेन
तदष्टपाद्यम् । + अप. २।२७५

(४) अष्टपाद्यमष्टगुणं, यदपहृतं द्रव्यं तन्मूल्यादष्ट-
गुणितो दण्डो ग्राह्य इत्यर्थः । एतच्च प्रागुक्तप्रतिनियत-
दण्डरज्जुघटादिस्तेयव्यतिरेकेण, किंविषयस्यापराधस्याष्ट-
गुणत्वं, अष्टगुणदण्डापनोद्यतैव ।

ब्राह्मणस्येति । ब्राह्मणस्य पक्षत्रयं निर्गुणगुणवदति-
गुणापेक्षया । अत एव तृतीये हेतुतया ज्ञानमुक्तम् ।
दोषः पापः गुणः पुण्यम् । केचित्तु दोषगुणित्वं सर्व-
विशेषणम् । तथा च तदज्ञस्य शूद्रस्य स एवाष्टगुणः,
एवं क्षत्रियादेरपीत्याहुः । अन्ये तु शूद्रादिपदानि
राजसेवकशूद्रादिपराणि, अत्र तेषामितरशूद्राद्यपेक्षयाऽ-
ष्टगुणत्वादित्याहुः । मवि.

(५) तद्दोषगुणविद्धि स इति सर्वत्र संबध्यते ।

÷ मसु.

(६) ब्राह्मणस्य तु चतुःषष्ट्यादिविकल्पस्तपोविद्यादि-
क्रमापेक्षया । ब्राह्मणस्य दण्डाधिक्ये हेतुस्तद्दोषेत्यादि ।
अन्येषां तद्वत्त्वं विप्रोपदेशादिति भावः । विदुषि विप्रे
चतुःषष्टिं, तपोयुक्ते तस्मिन् ज्ञातं, तपोऽभियुक्ते तस्मिन्
अष्टाविंशत्युत्तरशतमित्युच्यते । ÷ मच.

(७) ज्ञानतारतम्यतश्च दण्डतारतम्यं श्लोकद्वयेनाह—
अष्टपाद्यं त्विति । स्तेये कृते आपाद्यमापादयितव्यं
किल्बिषं दण्डः शूद्रस्याष्ट भवति अपहृतद्रव्याष्टगुणं
भवतीत्यर्थः अज्ञत्वात् । वैश्ये तु षोडशगुणमल्पज्ञत्वात् ।
क्षत्रियस्य द्वात्रिंशद्गुणं ज्ञत्वात् ।

* विर. मेधाक्त् । × विचि., व्यप्र. गोरवत् ।

+ शेषं मेधाक्त् । ÷ शेषं गोरवत् ।

ब्राह्मणस्येति । ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिगुणं ज्ञतमत्वात् ।
ब्राह्मणविषये विज्ञानतारतम्याभिप्रायेणोक्तं पूर्णं वाऽपी-
त्यादि, तद्दोषगुणवित्तस्य स्तेयस्य करणं दोषोऽकरणं गुण
इत्येवं वेत्ति । यद्वा गुण आवर्तनमुत्तरोत्तराधिक्यं
वेत्तीति तद्दोषगुणविद्धि यस्मात् स ब्राह्मणः तस्मात्तस्य
दण्डो देय इति । एवं हेतुवचनबलादेवैष ज्ञानवैषम्य-
प्रयुक्तो दण्डे वैषम्याविधिः क्षत्रियादिविषयि कल्पनीयः ।
अन्ये त्वाहुः । किल्बिषशब्दोऽयं दोषवचनः नार्थदण्ड-
वचनः, तत्र हेतुर्वाग्दण्डपारुष्ययोर्जात्युत्कर्षवशेन दण्ड-
लाघववचनमिति । * नन्द.

(८) शूद्रस्य अष्टभिर्भागो ग्राह्यो भवति । वैश्यस्य
षोडशो भागः हेरत् । किल्बिषं दण्डनिमित्तापराधम् ।

भाच.

स्तेयदोषप्रतिप्रसवः

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ।

तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुब्रवीत् ॥

(१) वनस्पतिरेव वानस्पत्यं वृक्षाः । स्वार्थे प्रत्ययः ।
ग्रासार्थं गृह्यमाणमस्तेयं वंशाङ्कुरादि । - मूलफलं
वनस्पतीनां, अन्यत् विससत्यादि । सूत्रादिगणे ('सूत्र-
कार्पास' मस्मृ. ८।३२६) अग्रासार्थं मूलफलाहरणे दण्ड
उक्तः । अस्तेयवचनं ग्रासार्थं, मात्रार्थमक्षीणवृत्तेरपि
कथञ्चिजातलौल्यस्य स्मृत्यन्तरदर्शनात्स्वापरिवृत्तेश्च
दण्डः । तथा च गौतमः — 'पुण्याणि स्ववदाददीत
फलानि चापरिवृत्तानाम्' (गौध. १.२।२५) इति । दार्व-
ग्न्यर्थं, आहिताग्नेरसंनिहिते वनस्पताबुद्ध्याद्यौ तद्धार-
णार्थं काष्ठमदोषं, पालाशीर्वा समिधो व्यादध्यात् ।
अप्रचुरपलाशे च ग्रामे कथं स्यादिति यदि गृह्येरन् न
दोषः । तृणं च गोभ्यः । तादर्थ्ये चतुर्थी । गोप्रहणात्
प्रस्तारार्थं दोष एव । ये तु ग्रासार्थपदेन गवामभि-

* दण्डविवेके नन्दनावतरणवद्भावः ।

(१) मस्मृ. ८।३२६; विचि. १४७ ग्न्यर्थं (ग्न्यर्थं);
व्यनि. ५३५ दा (द); बाल. २।२७५ मूलफलं (फलं
मूलं); सेतु. २५० ग्न्यर्थं (न्यार्थं) र्थम (र्थं न); समु.
१५२; विव्य. ५३.

१ सत एव वा.

संबन्धमिच्छन्ति तेषां गोभ्य इति नोपगच्छते । पशू हि तत्र युक्ता । मेधा.

(२) 'पुष्पाणि फलानि अपरिवृतानाम्' इति गौतमस्मरणात् अपरिवृतवनस्पत्यादिसंबन्धि मूलफलं, गवाभिसाहचर्ये दृष्टार्थे, शास्त्रिताग्न्यर्थे च दारु, गत्यन्तराभावे च गोभ्यासार्थे तृणं परकीयमपि अस्त्येयं मनुराह, अतश्चात्र दण्डाद्यभावः । गौरा.

(३) वानस्पत्यं वनस्पतिवृक्षमात्रं तद्भवम् । तेनौषधी-मात्रव्यवच्छेदः । एतच्चारण्यगतं, 'अपरिवृतानाम्' इति गौतमस्मरणात् । अपरिवृताऽपरिवृहीता अत्रेष्टा । अग्न्यर्थे वैतानिकाग्न्यर्थम् । एवं च वृक्षास्तृणकाष्ठादीनि च गृहाच्छादनाव्यर्थमरण्यादपि राजाऽननुमत्या नीतानि सौम्यनिमित्तान्येवेत्युक्तम् । मवि.

(४) तस्मान्न दण्डो नाऽप्यधर्मः । * ममु.

(५) उपसंहारस्य फलवादेन राज्ञो महत्कार्ये दण्ड-मित्यत्र सूचितस्य प्रतिप्रसवमाह— वानस्पत्यमिति । वानस्पत्यं वनस्पत्युद्भवम् । 'ग्राम्येच्छया गोप्रचारो भूमौ राजवशेन वा । द्विजस्तृणैः पुष्पाणि सर्वतः स्ववदा-हरेत् ॥' इति याज्ञवल्क्योक्तेः (यास्मृ. २।१६६) । गोप्रचारः गोचरणार्था भूमिः । स्ववदात्मीयवत् । तथा गौतमोऽपि—'वीरुद्वनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम्' (गौध. १।०।२५) । मच.

(६) वनस्पतयो वृक्षवत्यादयस्तत्र भवः वानस्पत्यः मूलफलादिरहित इति शेषः, अग्न्यर्थे, गोभ्यो गवाम् । नन्द.

^१द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविश्वू द्वे च मूलके ।

आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति ॥

(१) द्विजग्रहणं शूद्रप्रतिषेधार्थम् । अध्वगो नैकग्रामवासी । तत्रापि क्षीणवृत्तिः क्षीणपथ्योदनः । द्वाविश्वू दण्डौ, मूलके, प्रदर्शनार्थं चैतत्परिमितहरीतक-

* शेषं गौरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३४१; मिता. २।२७५; पमा. ४४४; विचि. १४६; नृप्र. २६५; सवि. ४६५; व्यप्र. ३९१; व्यड. १२९; विता. ७९६; सेतु. २४९; समु. १५२; विव्य. ५३.

मुद्रादिशमीधान्यानाम् । तथा च 'शमीत्रपुसयुग्मघासेषु च न प्रतिषेधः' इति स्मृत्यन्तर्गम् । परक्षेत्रात् परकीय-स्थानादित्यर्थः परिवृतादपि । मेधा.

(२) द्विजातिः पथिकः क्षीणराथेयः द्वाविश्वू द्वे च मूलके त्रपुसादि परक्षेत्रान् गृह्णन् दण्डं दातुं योग्यो न भवति । *गौरा.

(३) आददानो अनुक्त्वाऽपि । मवि.

(४) इक्षुमूलयोर्ग्रहणं प्राणधारणार्थानां फलादीनाम-प्युपलक्षणार्थम् । नन्द.

चणकत्रीहिगोधूमयवानां मुद्रमापयोः ।

अनिषिद्धैर्ग्रहीतव्यो मुष्टिरेकः पथि स्थितैः ॥

यैज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ।

ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥

यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।

कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥

(१) अत्राङ्गग्रहणाच्च केवलं सर्वासां दक्षिणानाम-संपत्तौ । वैश्यानामिदमाहरणं विधीयते । अपि च तस्मिन्नपि परवादावाहरेदिति तत्स्वीकारोत्पत्तिमात्रमुच्यते । नोपायविशेषः । अतश्च याज्ञया विनिमयेन चौयैण वाऽ-पहर्तव्यम् । ननु च चौयैण स्वाम्यं नोत्पद्यत इत्युक्तम् । नैष दोषः । इह स्वशब्देनैवोक्तं हर्तव्यमिति । एवं ह्याह, 'हर्तव्यं हीनकर्मणः' इति (मस्मृ. १।१।१६) अयं चापहारः प्रागारब्धयागस्य सर्वाङ्गोपेतस्यैकाङ्गासंपत्तौ प्रारिप्स्य-मानस्य वेति न विशेषहेतुरस्ति, ब्राह्मणस्य विशेषेणेति वचनात् क्षत्रियवैश्ययोरप्यस्ति, तदेकाङ्गग्रहणमस्मि-न्निति । ननु 'न क्षत्रियो याचेदि'ति क्षत्रियस्य याज्ञा प्रतिषिद्धा । अत्यल्पमिदमुच्यते । ब्राह्मणस्यापि चौयै निषिद्धम् । तस्मात्तस्मिन्निति नास्त्यर्जनोपायनियमः । धार्मिके सतीत्यनुवादोऽयम् । यो हि धर्मज्ञो राजा

* ममु. गौरावत् ।

(१) मिता. २।२७५; पमा. ४४४ कः (का); द्वि-४१ व्यो (व्या) कः (का); नृप्र. २६५; सवि. ४६५ दविवत्; व्यप्र. ३९१ पमावत्; व्यड. १२९; विता. ७९६; समु. १५२.

(२) मस्मृ. १।१।११. (३) मस्मृ. १।१।१२.

तस्मिन्निमित्ते चौर्ये विहितमिति । अन्यस्य तु निग्रहीत-
त्वात्कुतः प्रवृत्तिः । बहुपशुग्रहणं धनमात्रोलक्षणार्थम् ।
(हीनक्रतुरित्युपलक्षणार्थं) कुतः, कर्मयोगादन्यदपि
दानादि न करोति । (आहिताग्नी) सत्यप्यसोमपे ।
कुटुम्बात् गृहादित्यर्थः । गृहाद्धि चौर्ये दोषवत्तरमत-
स्तदनुज्ञायते । न पुनरप्येवमेव नियमोऽन्यतोऽपि यत्
खलादेः संपद्यते तत्कर्तव्यमेव । वक्ष्यति च ' खलात्क्षेत्राद-
गाराद्वा ' (मस्मृ. ११।१७) इति । मेधा.

(२) क्षत्रियादेर्यजमानस्य यदि यज्ञ इतराङ्गसंपत्तौ
सत्यामेकेनाङ्गेन विना निरुद्धः स्यात्तदा यो वैश्यो
बहुपश्वादिधनः तस्य प्राक् यज्ञसिद्धयर्थं चौर्येणाहरेत् ।
एतच्च धर्मप्रधाने राजनि सति कार्यम् । स हि शास्त्र-
मनुतिष्ठन्तं उपेक्षते । गोरा.

(३) यज्वनः क्षत्रियस्य विशेषेण तु ब्राह्मणस्य ।
एकेनाङ्गेनाप्राप्तेन आज्यस्य पशोर्वस्त्रादीनां वा दक्षिणा-
नामन्यतमस्याभावेन प्रतिरुद्धः प्रतिबद्धः । धार्मिके
सतीत्यधार्मिकस्य राज्ञो यज्ञसंपत्त्यनुरोधेन वैश्यधनापहर-
णानुपपत्तेरुक्तम् ।

य इति । हीनक्रतुरकृतपञ्चमहायज्ञः । असोमपः
अपीतसोमः । एतेन सोमपस्य पञ्चयज्ञाकरणेऽपि श्रेष्ठ-
तोक्ता । तस्य वैश्यस्य कुटुम्बात् कुटुम्बार्थधनादाकृष्यै-
कमंशं राजा ब्राह्मणाय दद्यात् । मवि.

(४) क्षत्रियादेर्यजमानस्य विशेषतो ब्राह्मणस्य यदि
यज्ञ इतराङ्गसंपत्तौ सत्यामेकेनाङ्गेनासंपूर्णः स्यात्तदा यो
वैश्यो बहुपश्वादिधनः पाकयज्ञादिरहितोऽसोमयाजी तस्य
गृहात्तदङ्गोचितं द्रव्यं बलेन चौर्येण वाहरेत् । एतच्च
धर्मप्रधाने सति राजनि कार्यम् । स हि शास्त्रार्थमनु-
तिष्ठन्तं न निग्रहति । मसु.

(५) विहितदक्षिणा तु शूद्रादिप्रतिग्रहेणापि देयेत्याह—
यज्ञश्चेति पञ्चभिः । प्रतिरुद्धः असमाप्तकल्पः । एकेन
दक्षिणारूपेण । धार्मिक इति विशेषणाद्बलादपि वैश्या-
दिभ्यो दक्षिणा ग्राह्येति शेषः । ब्राह्मणस्य विशेषेणेति
विशेषणं दक्षिणार्थं क्षत्रियस्यापि भिक्षासूचकम् ।

किञ्च य इति । कुटुम्बात् गृहादपि ग्राह्यम् । यज्ञ-
सिद्धये यज्ञसमाप्तये । तद्द्रव्यं दक्षिणारूपमिति भावः ।
मच.

(६) अथ वर्षत्रयपर्याप्तभृत्यवृत्तिना वक्ष्यमाणेन
किञ्चिन्न्यूनधनेन र्नातकेन निवेदितस्य कोशाहीनस्य राज्ञः
कर्तव्यमाह— यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादिति । श्लोकद्वयमेकं
वाक्यं, सति राजनि दानशीले राजनि विद्यमानेऽपि
एकेनाङ्गेनैकाङ्गवैकल्येन यज्ञः प्रतिरुद्धश्चेद्विहितश्चेत्
राज्ञः कोशाभावादिति भावः ।

य इति । हीनक्रतुः अनग्न्याधानादिकान्तस्य वैश्यस्य
कुटुम्बात् गृहाद्यज्ञसिद्धये एकाङ्गहीनयज्ञस्य समाप्तये
यावता द्रव्येण स यज्ञः सिद्धयति तावद्द्रव्यमाहरेत्
प्रसह्य गृह्णीयात्, स राजेति विपरिणामः । राजैव कर्ता
न यज्वा, कुत एतत् ? राज्ञ एवाहरणबल्लोपपत्तेः । महा-
भारतेऽप्यस्य वचनस्य चतुर्थः पादो ' यज्ञार्थं पार्थिवो
हरेत् ' इति पठ्यते । तनापि राजैव कर्ता व्याख्येयो न
यज्वेति । नन्द.

आहरेत् त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वैश्वमनः ।
न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥

(१) वैश्यासंभवे शूद्रादप्याहर्तव्यम् । त्रीणि वा द्वे
वेत्यङ्गप्रकरणादङ्गानि वेदितव्यानि । अत्रार्थवादो न हि
शूद्रस्येति । यद्यपि पूर्वमनेकोपायकृतमाहरणं विहितं
तथापि भिक्षणमत्र नास्ति । न यज्ञार्थं धनं शूद्रादिप्रो-
भिक्षेतेति । ननु च स्मृत्यन्तरेऽविशेषेण शूद्रधनेन यागः
प्रतिषिद्धः । अस्योपदेशस्य सामर्थ्याच्छूद्रात्प्रतिगृह्णीतेति
द्रष्टव्यम् । अन्ये त्वाहुः । ब्राह्मणेन स्वीकृतत्वात्त्रैव
तच्छूद्रधनमिति । यस्तु प्रतिषेधः स शूद्रस्य शान्तिक-
पौष्टिकादि येन धनेन करोति ऋत्विग्वत्तत्र द्रष्टव्यः ।
इह तु भूतपूर्वगत्या शूद्रधनव्यपदेशोऽस्य स्यात् ।
सांप्रतिकत्वाभावे च सा । मेधा.

(२) यज्ञस्य द्वित्राङ्गवैकल्ये सति, तानि त्रीणि
वाऽङ्गानि द्वे वाऽङ्गे, निर्विकल्पं शूद्रगृहाच्चौर्येण आहरेत्,
यस्मात् शूद्रस्य यज्ञसंबन्धो मनागपि नास्ति । यज्ञार्थं
च धनम् । तथा च ' यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा ' इति स्मर्यते ।
भिक्षितशूद्रधनस्य प्रतिषेधो भविष्यति ' न यज्ञार्थं धनं शूद्रादि ' इति । गोरा.

(३) यदि तु यज्ञाङ्गद्वयत्रयस्यासंपत्तिस्तदा शूद्रस्यैव
(१) मस्मृ. ११।१३.

तथाविधस्य धनादित्याह— आहरेदिति । यज्ञेषु परि-
ग्रहो यज्ञनिमित्तधनपरिग्रहो, यज्ञार्थता धनस्य । मवि.

(४) यज्ञस्य द्वित्र्यङ्गवैकल्ये सति तानि त्रीणि
चाऽङ्गानि द्वे वाऽङ्गे वैश्यादलाभे सति निर्विशङ्कं
शूद्रस्य गृहाद्वलेन चौयणं वाहरेत् । यस्माच्छूद्रस्य
कचिदपि यज्ञसंबन्धो नास्ति । 'न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो
भिक्षेत' इति वक्ष्यमाणप्रतिषेधः शूद्राद्याचनस्य न तु
त्रलग्रहणादेः । ममु.

(५) कश्चिदिति यज्ञोद्देशेन 'न यज्ञार्थं धनं'
इत्यादिवचनविरोधात् तत्समाप्त्यर्थे तु न दोषः । मच.

(६) वैश्याभावे राजा किं कुर्यादित्यपेक्षायामाह—
आहरेत् त्रीणि वा द्वे वेति । न केवलमङ्गं राजा शूद्रस्य
गृहादाहरेत् किन्तु त्रिभिरङ्गैः । यज्ञप्रतिग्रहहेतुरुत्तरार्ध-
नोक्तः, परिग्रहः संबन्धः । नन्द.

योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।

तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेद्विचारयन् ॥

(१) ब्राह्मणक्षत्रियाम्यामप्येवंविधाभ्यां आहर्तव्यमिति
श्लोकार्थः । गोग्रहणं तावत्परिमाणधनोपलक्षणार्थम् ।
अयज्वाऽसोमयाजी । *मेघा.

(२) योऽनाहिताग्निर्गोशतपरिमाणधन आहिताग्निरपि
वा असोमयाजी गोसहस्रपरिमाणधनस्तयोरपि गृहाम्यां
प्रकृतमङ्गद्वयं त्रयं वा क्षिप्रमाहरेत् । वैश्यादपहरण-
स्योक्तत्वात् ब्राह्मणाच्च वक्ष्यमाणत्वात् इदं क्षत्रिय-
विषयम् । *गोरा.

(३) द्वित्राणामाहरणे तेषां क्लेशभावात् । मच.

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः ।

तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥

(१) अयं सर्ववर्णविषयः श्लोकः । आदाननित्यो
यः सर्वकालं कृषिप्रतिग्रहकुसीदादिभिर्धनमर्जयति, न
च ददाति, तत उपायान्तराप्याश्रयणीयानि । अदातु-

* ममुः, मच., नन्द., भाच. मेघावत् ।

× मवि. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ११११४ [तयोरपि ('द्वयोरपि) Noted
by Jha]; व्यनि. ५१६; समु. १५२.

(२) मस्मृ. ११११५ [तथा (यथा) प्रवर्धते (विवर्धते,
प्रवर्धते) Noted by Jha].

रित्ययागशीलस्यापि द्रष्टव्यम् ।

मेघा.

(२) प्रतिग्रहादिना आदानं धनग्रहणं नित्यं
यस्यासौ आदाननित्यो ब्राह्मणस्तस्मादिष्टापूर्तदानरहितात्
यज्ञाङ्गयाञ्चायां कृतायामददन् चौयणं हरेत् । एवंकृते
अस्यापहतुः ख्यातिः प्रकाशते धर्मश्च वृद्धिमेति ।

* गोरा.

(३) अदातुरदानशीलादादाननित्याभित्यार्जकात् अ-
प्रयच्छतः तदा तद्धनमददतोऽपि त्रैवर्णिकादाहरेत् ।
एकमङ्गं द्वयं त्रयमित्यन्येषूक्तमतस्तु बह्वपि ग्राह्यम् ।
ब्राह्मणस्य त्वयज्वनोऽपि धनमनादेयमिति वक्ष्यति ।
एतच्च राजा स्वकोशे सत्यपि गृहीत्वा दद्यादिति
ग्राह्यम् । मवि.

(४) आदाननित्यात् प्रतिग्रहपरात् । अदातुः स्वर-
सतः । अप्रयच्छतः अनिषेधकात् । अस्य अयज्वनो
यज्वनो वा । यशोऽसुकस्य धनेनास्मद्यागः समाप्त इति
वर्धते परधर्मोत्पादकत्वोपकारात् । मच.

(५) एवं कुर्वतो राज्ञः फलमाह— आदाननित्या-
च्चादातुरिति । अदातुरित्यप्रयच्छतोऽदातुः कदर्यादिति
यावत् । तद्द्रव्यमाहरेत्तथा कुर्वतो राज्ञो यशः प्रथते ।
नन्द.

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनभ्रता ।

अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥

(१) आत्मकुटुम्बावसादेऽपि पूर्ववत्परादानं कर्त-
व्यम् । अश्वस्तनग्रहणादेकदिननिवृत्त्यर्थमेवानुजानाति
नाधिकम् । हीनकर्मण इति 'किमर्थम् ? स्मृत्यन्तरे—
'हीनादादेयमादौ स्यात्तदलाभे समादपि । असंभवे
त्वाददीत विशिष्टादपि धार्मिकात् ॥' सप्तमे भक्ते, व्यहं
येन न भुक्तं चतुर्थेऽहनि प्रातर्भोजनार्थं परादाने प्रव-
र्तते । 'सायंप्रातर्मुञ्जीते' त्यहन्यहनि भक्तद्वयं विहितम् ।
मेघा.

* ममु. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ११११६; मिता. २१२७५ 'के' (क्त);
पमा. ४४४; दवि. ४१; नृप्र. २६५ मितावत्; व्यग्र.
३९१ भक्ता (नक्ता) कर्मणः (कर्मणा) : ४२४; व्यड.
१२९ श्रता (श्रतः) पू; विता. ७९७; समु. १५२;
नन्द. विधा (निधा).

१ कर्मार्थम्. =

(२) सायंप्रातर्भोजनोपदेशात् व्यहर्मेभुक्ते चतुर्थे प्रातः सप्तमे भक्ते यागादिकर्मरहितादौहिकमात्रपर्याप्त यथैव यज्ञप्रतिरोधस्तथैव हर्तव्यम् । *गोरा.

(३) हीनकर्मणः पतितादेरपि । मवि.

(४) अनश्रता चातुर्वर्ण्येन । हीनकर्मणः कर्दर्या-दपि । मच.

(५) एवं यज्ञापदि राज्ञः कर्तव्यमुक्तमधुना क्षुत्पीडापदि पुरुषेण कर्तव्यमाह—तथैव सप्तमे भक्त इति । सप्तमे भक्तानि षडनश्रता व्यहमसुज्जानेन सप्तमे भक्ते सप्तम्यां भुक्तं तु चतुर्थेऽहनि हीनकर्मणः स्वस्माद्धीन-कर्मणः पुरुषात्, अश्वस्तननिधानाय श्वो भवं श्वस्तनं निधानं न्यासः श्वस्तनं च तन्निधानं चेति श्वस्तन-निधानं तदभावायाश्चस्तननिधानाय, एवमापद्विषये परस्वहरणं यथोक्तं कुर्वन् राज्ञा न दण्ड्यः । नन्द.

(६) हीनकर्मणः शूद्रात् । भाच.

खलत्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाऽप्युपलभ्यते ।

आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥

(१) यतो वाऽपीति, आरामादेरपि, आख्यातव्यं पृच्छत इत्येव । यदि पृच्छतीति वचनं, न हठात्पुनः प्रेषणादिना प्रश्नसौ कारयितव्यः । अथवा पृच्छते धनस्वामिने । यदि पृच्छति राजेति । राजपुरापनीत एव विषयभेदो दर्शयितव्यः । तथा च गौतमः— 'आचक्षीत राज्ञा पृष्ट' इति (गौध. १८।३४) । भक्तच्छेदे यज्ञप्रतिबन्धतः प्रकरणाविशेषादुभयत्रायं विधिज्ञेयः । मेधा.

(२) धान्यादिक्षोदनात् क्षेत्राद्वा यतो वाऽन्यस्मा-द्देशाद्धीनकर्मसंबन्धेन लभ्यते ततो हर्तव्यं, यदि वाऽसौ धनस्वामी पृच्छति तदा तस्य पृच्छतः तच्चौर्यं संनिमित्तकम् । *गोरा.

(३) खलादेरपि राक्षतात् स्वयमेवाहर्तव्यं प्रार्थनेन वा ग्राह्यम् । न तेनास्य पतितग्रहणदोषः । दिने वार-द्वयभोजननियमाद्भोजनद्वयं भवतीति व्यवस्थया सप्तमे भक्त इत्युक्तम् । आख्यातव्यमिति । तस्मै तथाऽन्यस्मा

* मसु. गोरावत् ।

(१) मसु. १११७; व्यप्र. ४२४ तु (च).

अपि अरक्षितादाने कुतः प्रातमिदमिति पृष्टेन नाक्षेप्तव्यं, तथा पत्युरित्यर्थः । मवि.

(४) अश्वस्तननिधानाय भक्तं द्रव्यं कुतो हर्तव्य-मित्यपेक्षायामाह—खलत्क्षेत्रादगाराद्देति । यतो वाऽप्युप-पद्य लभ्यते ततो हर्तव्यमित्यनुषङ्गनीयम् । नन्द.

ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन ।

दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन् हर्तुमर्हति ॥

(१) क्षत्रियेणेति क्षत्रियग्रहणं वैश्यशूद्रयोरपि प्रदर्श-नार्थम् । कदाचनेति महत्यामापदीत्यर्थः । दस्युनिष्क्रिय-योर्ब्राह्मणयोरेव । दस्युस्तस्को निष्क्रियस्त्वकर्मानाश्रमी । मेधा.

(२) उक्तेष्वपि निमित्तेषु ब्राह्मणधनं क्षत्रियेण न हर्तव्यम् । अर्थाच्च वैश्यशूद्राभ्यामपि न हर्तव्यम् । प्रति-षिद्धकृद्धिहिताननुष्ठानयोः पुनर्ब्राह्मणयोरत्यन्तापदि क्षत्रियो हर्तुमर्हति । *गोरा.

(३) दस्युः शूद्रः, निष्क्रियौ क्षत्रियविशौ, तेषां वित्तमजीवन् क्षत्रियो राजा गृह्णीयात् । मवि.

(४) तत्र प्रतिप्रसवमाह— ब्राह्मणेति । क्षत्रियेण-त्युपलक्षणं वैश्यशूद्रयोः दस्युनिष्क्रिययोः अजीवन् वृत्त्य-न्तराभावात् । निष्क्रियो धर्महीनः । मच.

(५) तद्द्रव्यं तस्मै स्वामिने जात्या स्वस्मादपकृष्टा-द्धर्तव्यं नोत्कृष्टादित्याह— ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यमिति । ब्राह्मणक्षत्रियग्रहणमुत्कृष्टापकृष्टजात्युपलक्षणार्थम् । अस्या-पवादेनोत्तरार्धेनोक्तं दस्युः सहिसः निष्क्रियस्त्वयं कर्तनज-धर्मक्रियः, दस्युनिष्क्रिययोर्ब्राह्मणयोरिति विपरिणामः, अजीवन् वृत्तिहीनः । नन्द.

(६) दस्यति यः स दस्युः निष्क्रियः तस्कराना-श्रमिणौ तयोः स्वं द्रव्यं क्षत्रियः अजीवन् हर्तुं स्वीकर्तुं अर्हति । भाच.

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ।

स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥

(१) प्लवः समुद्रतरणः । उभौ यस्यापहरति यस्यै

* मसु. गोरावत् ।

(१) मसु. १११८; व्यनि. ५१६; ससु. १५२.

(२) मसु. १११९; व्यनि. ५१६; ससु. १५२.

च प्रयच्छति । शेषोऽर्थवादः ।

मेघा.

(२) यो हीनकर्मादिभ्यः संप्रयच्छति स कृत्वा प्रव-
मात्मानमुक्तेभ्यो विहितेषु निमित्तेषु उक्तरूपं यज्ञाङ्गादि-
धनं कृत्वा साधुभ्य ऋत्विगादिभ्यो ददाति स यस्याप-
हरति तं धनसंरक्षणदुःखाद्यस्मै ददाति तं दौर्गत्यादेरि-
त्येवं द्वावपि तौ नौरूपमात्मानं कृत्वा दुःखान्मोचयति ।

गोरा.

(३) आत्मानं प्रवृत्तं कृत्वेत्यात्मनस्तरणं तारणं पर-
स्येति दर्शयति । तथा च राज्ञा दस्युनिष्क्रिययोर्द्रव्यं
गृहीत्वाऽपि देयमित्यर्थः । तावुभावित्यर्थलाभेन साधून-
न्यांश्च तद्विनिवियोगेन ।

मवि.

(४) यो हीनकर्मादिभ्य उक्तेभ्योऽभिहितेष्वपि
निमित्तेषूक्तानुरूपं यज्ञाङ्गादि साधनं कृत्वा साधुभ्य
उक्तेभ्य ऋत्विगादिभ्यो धनं ददाति स यस्यापहरति
तद्दुरितं नाशयति यस्मै तद्ददाति तद्दौर्गत्याभिघातादि-
त्येवं द्वावप्यात्मानं उडुपं कृत्वा दुःखान्मोचयति ।

×मसु.

(५) चातुर्वर्ण्यस्य बलबुद्धिमत्तः उपायान्तरमाह—
य इति । असाधुभ्यो दस्त्वादिभ्यः । साधुभ्यो यागादि-
शीलेभ्यः । उभौ दातृप्रतिग्राहकौ । प्रवृत्तं प्रवस्थानीयम् ।

मच.

(६) अपरमपि परस्वादानविषयमाह— योऽसाधु-
भ्योऽर्थमादायेति । असाधुभ्योऽयज्ञशीलेभ्यः, तौ उभौ
तानुभवान् ।

नन्द.

यद्वनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः ।

अयज्वनां तु यद्विच्छामसुरस्वं तदुच्यते ॥

(१) अयमस्यार्थवाद एव । गुणवद्भ्यो नापहर्तव्यं
निर्गुणेभ्यस्तु न दोषः ।

मेघा.

(२) यजनस्वभावानां संबन्धि यद्द्रव्यं तद्यागादौ
विनियोगाद्देवस्वं विद्वांसो मन्यन्ते । यागशून्यानां
यत्पुनर्द्रव्यं तद्विकर्मविनियोगाद्दार्माभावादसुरसंबन्धि ।

× भाव. मसुवत् ।

(१) मसु. ११२०; व्यनि. ५१६ तु (च) मसु
(मसु); मसु. १५२ मसु (मसु).

व्य.कां. २१७

अतस्तदपहृत्य यागसंपादनेन देवस्वं कर्तव्यम् ।

×गोरा.

(३) यज्वाऽयज्वनोर्धनेषु देवासुरस्वदृष्टिमारोपयति—
यदिति ।

मच.

(४) अत्रोपपत्तिमाह—यद्वनं यज्ञशीलानामिति ।
नन्द.

न तस्मिन् धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः ।

क्षत्रियस्य हि बालिद्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥

(१) अस्मिन्निति चौरत्वेनानीतेभ्यो राज्ञा दण्डो
न कर्तव्यो यतस्तस्यैव बालिद्यान्मौख्यात् क्षुधाऽव-
सीदन्ति । क्षुधेत्यविवक्षितम् । उभयोः प्रकरणादर्थाद्-
त्वात् ।

मेघा.

(२) तस्मिन्निति चौर्ये कुर्वाणे ब्राह्मणे धर्मप्रधानो
राजा दण्डं न कुर्यात् । यस्माद्राजमौख्यात् ब्राह्मणः
क्षुदवसादं प्राप्नोति ।

×गोरा.

(३) आरोपस्य फलमाह— नेति ।

मच.

स्तेनप्रकरणोपसंहारः

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ।

यसोऽस्मिन् प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥

अनेनानन्तरप्रक्रान्तेन मार्गेण चौरनिग्रहं कुर्वाणो,
यज्ञः सकलजनसाधुवादो, अस्मिँल्लोके यावज्जीवं, प्रेत्य
मृतश्चानुत्तमं स्वर्गाख्यं सुखमश्नुते इति । प्रकरणोप-
संहारोऽयम् ।

मेघा.

करग्रहणविचारः

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्यविरश्च यः ।

श्रोत्रियेषूपकुर्वन् न दाप्याः केनचित्करम् ॥

(१) सप्तत्या स्यविरः, प्रकृत्या विरूप इतिवचुतीया ।
सप्ततिवर्षाणि यस्य जातस्य स एवमुच्यते । श्रोत्रियेषु
वेदाध्यायिषूपकुर्वन् पादशुश्रूषादिना कारुर्कर्मणा वा,
एते न कर्मवत्कारुशिल्पिनो, 'मासि मासी'त्यादि दाप्याः ।

× मसु. गोरावत् ।

(१) मसु. ११२१.

(२) मसु. ८१३४३; व्यनि. ५१६.

(३) मसु. ८१३९४ [दाप्याः केनचित्करम् (दाप्यः
केनचित्करम्) Noted by Jha]; मच. दाप्याः (दाप्यः).

१ लाञ्. २ नान्त.

क्षीणकोशेनापि न दाप्याः इति केनचिद्ग्रहणम् । मेधा.
(२) अन्धवधिरपङ्कवः सप्ततिवर्षात्प्रभृति च वृद्धः
श्रोत्रियाणां च शुश्रूषादिनोषकारकः केनचिदपि क्षीण-
कोशेनापि राज्ञा धान्यपङ्कभागं शुल्कदानादिकं राजदेयं
न दापनीयः । *गोरा.

(३) जडः विकलवागादिः । पीठसर्पी पीठद्वयेन
गच्छन् खञ्जः । श्रोत्रियेषूपकुर्वन् तेषां परिचर्यापरः
शूद्रादिः । करं निवासनिमित्तकम् । मवि.

(४) दण्डप्रसङ्गेन करादानं बुद्धिस्थं क्वचिन्निवर्तयति
अन्ध इति । जडो वधिरः, पीठसर्पी पङ्गुः परायत्त-
गमनेन पीठवत्सर्पुं शीलमस्येति, सप्तत्या स्थविरः
सतत्युत्तरवयाः एतांश्चतुरः शुश्रूषया धनैर्वोपकुर्वन् न
करं दाप्य इत्यन्वयः । श्रोत्रियेष्विति विषयसप्तमी ।
केनचिद्राज्ञां, करपदं दण्डशुल्कयोरुपलक्षणम् । मच.

(५) पीठसर्पी पङ्गुः, सप्तत्या वयसा सप्तत्या,
अब्राह्मणा अप्येते करं न दाप्याः । नन्द.

श्रोत्रियं व्याधितातौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् ।

महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत् सदा ॥

(१) संपूजनमनुग्रहः । अनेकार्थत्वाद्दातॄणां न हि
बालादीनामन्या पूजोपपद्यते । श्रोत्रियोऽत्र ब्राह्मण एवेति
स्मरन्ति । आर्तः प्रियवियोगादिना । अकिञ्चनो दुर्गतः ।
महाकुलीनः ख्यातिधनविद्याशौर्यादिगुणे कुले जातो
महाकुलीनः । आर्यः ऋजुप्रकृतिरवक्रः । एतेषां दान-
मानादिभिरनुग्रहः कर्तव्यः । केचिदकिञ्चनं महाकुलीन-
विशेषणं व्याचक्षते । मेधा.

(२) अध्ययनानुष्ठानवन्तं ब्राह्मणं रोमिणं प्रिय-
वियोगाक्रान्तं बालवृद्धदरिद्रमहाकुलीनोत्पन्नार्जवोपेतान्
राज्ञा दानमानप्रियकरणेन सर्वदा पूजयेत् । गोरा.

(३) आर्यं आर्यप्रधानम् । मवि.

(४) न केवलमनादानं यदि ते निःस्वास्तेभ्यः
प्रत्युतान्धादिद्वादशेभ्यो दानमेवेत्याह— श्रोत्रियमिति ।
आर्तः पुत्रादिनाशेन । अकिञ्चनः निःस्वः । आर्योऽ-
वक्रबुद्धिर्व्यवहारेऽपि । मच.

* ममु. गौरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३९५ [व्याधितातौ (व्याधितार्त)
Noted by Jha].

(५) पुनर्वृद्धग्रहणं आदरातिशयार्थम् । नन्द.

याज्ञवल्क्यः

स्तेयलक्षणम्

इदानीं स्तेयं प्रस्तूयते । तल्लक्षणं च मनुनाऽभिहि-
तम्— 'स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं कृत्वाऽपह्नुवते च यत् ॥' इति
(मस्मृ. ८।३३२) । अन्वयवत् द्रव्यरक्षिराजाध्यक्षादि-
समक्षम् । प्रसभं बलावष्टम्भेन यत्परधनहरणादिकं
क्रियते तत्साहसम् । स्तेयं तु तद्विलक्षणं निरन्वयं द्रव्य-
स्वाम्याद्यसमक्षं वञ्चयित्वा यत्परधनहरणं तदुच्यते ।
यच्च सान्वयमपि कृत्वा न मयेदं कृतमिति भयाग्निहुते
तदपि स्तेयम् । नारदेनाप्युक्तम्— 'उपायैर्विधिधैरेषां
छलयित्वाऽपकर्षणम् । सुप्तमत्तप्रमत्तेभ्यः स्तेयमाहुर्मनी-
षिणः ॥' इति । मिता.

प्रकाशनस्करदण्डाः

मानेन तुलया वाऽपि योऽशमष्टमकं हरेत् ।

दण्डं स दाप्यो द्विशतं वृद्धौ हानौ च कल्पितम् ॥

(१) अकूटेनैव कौशलात्— 'मानेन तुलया वाऽपि
योऽशमष्टमकं हरेत् । दण्डं स दाप्यो द्विशतं वृद्धौ
हानौ च कल्पितम् ॥' एतदपि स्तेयद्रव्यसारतापेक्षया
व्यवस्थापनीयम् । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२५०

(२) यः पुनर्वणिक् व्रीहिकार्पासादेः पण्यस्याष्टममंशं
कूटमानेन कूटतुलया वा अन्यथा वा परिहरति असौ
पणानां द्विशतं दण्डनीयः । अपहृतस्य द्रव्यस्य पुनर्वृद्धौ
हानौ च दण्डस्यापि वृद्धिहानी कल्प्ये । *मिता.

(३) मानेन कुडवादिना । +अप.

(४) मानं प्रस्थद्रोणादि, तुला सुवर्णादितुलनदण्डः ।

* विर., पमा., विचि. मितावत् । + शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२४४; अपु. २५८।३८ दण्डं.... शतं
(द्वाविंशतिपणान् दाप्यो); विश्व. २।२५०; मिता.; अप.;
व्यक. ११०; विर. २९५ योऽशमष्टमकं (यो योऽशमष्टमं);
पमा. ४५८; विचि. १२४-५ मकं ह (ममाह); दवि. ८९
योऽश... रेत् (यो हरेदशमष्टमम्) स (प्र); वीमि.;
विता. ७६८; राकौ. ४९३ विरवत्; सेतु. २३० विचि-
वत्; समु. १५९ मकं ह (ममाह) च (प्र); विच्य.
५१ शमष्टमकं (शादधिकमा).

एतच्च प्रतिमानस्यपुंल्लक्षणम् । दवि. ८९

(५) अपिशब्देन गणनावञ्चनादिपरिग्रहः । चकारान्मूल्यविशेषापहृतद्रव्यस्य न्यूनाधिकभावः समुच्यते । षीमि.

भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुडादिषु ।

पण्येषु प्रक्षिपन् हीनं पणान् दाप्यस्तु षोडश ॥

(१) साहस्यदिना क्रेतुर्भ्रमं चिकीर्षुः— 'भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुलादिषु । पण्येषु हीनं क्षिपतः पणान् दाप्यस्तु षोडश ॥' हीनं हीनमूल्यम् । ऋज्वन्त्यत् । विश्व. २।२५१

(२) भेषजमोषधद्रव्यम् । स्नेहो घृतादिः । लवणं प्रसिद्धम् । गन्धद्रव्यमुशीरादि । धान्यगुडौ प्रसिद्धौ आदिशब्दाद्धिङ्गुमरीचादि । एतेष्वसारद्रव्यं विक्रयार्थं मिश्रयतः षोडशपणो दण्डः । *मिता.

(३) हीनं अल्पमूल्यम् । षीमि.

(४) हीनमपद्रव्यं, एतच्च विक्रेतव्ये प्रक्षेपमात्रेण बोद्धव्यम् । बृहस्पतिस्तु तादृशे विक्रीते सति द्विगुणपण्यदानं दण्डं च वदतीत्यविरोधः । विर. २९७

(५) यथोक्तं द्रव्यं विक्रीणन्परद्रव्येण विमिश्रित्य यो विक्रीणीति तस्य षोडशपणा दण्ड इत्यर्थः । गुरुमूल्यकद्रव्येषु बृहस्पत्युक्ता लघुमूल्यकेषु याज्ञवल्क्योक्ता व्यवस्था इत्यविरोधः । विचि. १२६

(६) अत्रापद्रव्यप्रक्षेपस्य विक्रयपर्यन्ततायां दोषत्वमन्यथाऽदृष्टार्थत्वाभिपातः । अभिसंधिमात्रस्याऽपि दण्डप्रयोजकत्वकल्पनायामतिप्रसंगश्च स्यात्, अतो वचनमिदमल्पव्यामिश्रणपरं श्रुतभेषजादिमात्रविषयं वा । तस्य कस्यचित् स्वरूपेणैवाल्पत्वात् काचिदपकर्षस्याल्प-

षीमि. मितावत् । * पमा. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२४५; अपु. २५८।३९; विश्व. २।२५१ प्रक्षिपन् हीनं (हीनं क्षिपतः); मिता.; अप. उत्तरार्धे (पण्येषु हीनं क्षिपतः पणा दण्डस्तु षोडश); व्यक्र. ११० उत्तरार्धे (पण्येषु हीनं क्षिपतः पणा दण्डस्त्रयोदश); विर. २९७ अपवत्; पमा. ४५८ दाप्य (दण्ड्य); विचि. १२६ अपवत्; व्यनि. ५११ अपवत्; दवि. १०० अपवत्; षीमि.; विता. ७६८; राकौ. ४९३ गन्ध (हिङ्गु); समु. १५९ धान्य (द्रव्य).

स्यैव समवायादिति प्रतिभाति । दवि. १०१

(७) तुशब्देन द्विशतादिपूर्वोक्तदण्डव्यवच्छेदः । षीमि.

तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च ।

एभिश्च व्यवहर्ता यः स दाप्यो दममुत्तमम् ॥

(१) स्वाभिप्रेतव्यवहारसिद्धयर्थं— 'तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च । एभिश्च व्यवहर्ता यः स दाप्यो दममुत्तमम् ॥' शासनग्रहणं सर्वलेख्यलक्षणार्थम् । मानानि सेतिकाप्रस्थप्रभृतीनि । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२४६

(२) तुला तोलनदण्डः । शासनं पूर्वोक्तम् । मानं प्रस्थद्रोणादि । नाणकं मुद्रादिचिह्नितं द्रम्मनिष्कादि । एतेषां यः कूटकृत् देशप्रसिद्धपरिमाणादन्यथा न्यूनत्वमाधिक्यं वा द्रम्मादेरव्यवहारिकमुद्रात्वं वा ताम्रादिगर्भत्वं वा करोति, यश्च तैः कूटैर्जानन्नपि व्यवहरति, तावुभौ प्रत्येकमुत्तमसाहसं दण्डनीयौ । *मिता.

(३) शासनं 'दत्त्वा भूमिं निबन्धं च' इत्यत्रोक्तम् । षीमि.

(४) शासनं राजनिबद्धचिह्नमुद्रा । विर. २९९

(५) आद्यचकारेण कूटकारयितुर्द्वितीयचकारेण कूटव्यवहारयितुः संग्रहः । षीमि.

अकूटं कूटकं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम् ।

स नाणकपरीक्षी तु दाप्य उत्तमसाहसम् ॥

षीमि. मितावत् । * पमा. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२४०; अपु. २२७।६०-६१ मानानां (कृतां च) णकस्य (शकस्य) : २५८।३४ दम (दण्ड); विश्व. २।२४६; मिता.; अप.; व्यक्र. १११; विर. २९९; पमा. ४५७ श्व (स्तु); विचि. १२७ कृन्ना (कान); दवि. ९६. दम (दण्ड); नृप्र. २६९ कृन्ना (कान [श]) श्व (स्तु); षीमि.; विता. ७६८ कृन्ना (कं ना); राकौ. ४९२ दविवत्; सेतु. २३१; समु. १५९ दविवत्.

(२) यास्मृ. २।२४१; अपु. २५८।३५ क्षी तु (क्षार्या) उत्तम (प्रथम); विश्व. २।२४७ उत्तम (प्रथम); मिता.; अप.; व्यक्र. १११; विर. २९९ अकूटं (न कूटं); पमा. ४५७; विचि. १२७ नाण (कान); दवि. ९७ अकूटं

(१) जानन्नपि तु लोभादिना— 'अकूटं कूटं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम् । स नाणकपरीक्षी तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥' तुशब्दः सुवर्णमाणिक्यादावतिरिक्त-दण्डज्ञापनार्थः । विश्व. २।२४७

(२) नाणकपरीक्षणं प्रत्याह— अकूटमिति । यः पुनर्नाणकपरीक्षी ताम्रादिगर्भमेव द्रम्मादिकं सम्यगिति ब्रूते, सम्यक् वा कूटकमिति असावुत्तमसाहसं दण्ड्यः ।
+मिता.

(३) यो नाणकस्य द्रम्मादेः परीक्षया जीवति स चेदकूटं समीचीनमसमीचीनमिति ब्रूयात्कूटं चाकूट-मिति । तदैव स उत्तमसाहसं दण्ड्यः । एतच्च तत्त्व-वेदिनो रागद्वेषादिवशादन्यथा ब्रुवतो दमविधानम् ।

*अप.

(४) कानको मुद्रापो मुद्रापरीक्षकः । ×विचि. १२८

(५) इदं आशयापराधे, तद्व्यतिरेके तूत्तमादस्य-मर्हतीत्याहुरिति रत्नाकरः । अत्र यद्यप्याशयापराधाभावे दण्डाभाव एव उचितस्तथापि परीक्षणासमर्थस्य तत्र प्रवृत्तिरेव दोष इत्यभिसंधाय दण्डाभिधानमिति प्रति-माति । दवि. १७

(६) चकारेण कूटं जानन्नपि न जानामीति ब्रूते इति समुचीयते ।
÷वीमि.

^१संभूय कुर्वतामर्धं सबाधं कारुशिल्पिनाम् ।

अर्धस्य न्हासं वृद्धिं वा जानतां दम उत्तमः ॥

+ पमा. मितावत् । * विर. अपवत् ।

× शेषं अपवत् । ÷ शेषं मितावत् ।

(अकूटे) कूटं (कूटे); वीमि. प्यकूटकम् (प्यकूटकृत);
विता. ७६८; राकौ. ४९३ अकूटं (अकूटे) दाप्य (दण्ड्य);
सेतु. २३२; समु. १५९.

(१) यास्मृ. २।२४९; अणु. २५८।४० उत्तरार्धे (अर्धस्य न्हासं वृद्धिं वा सहस्रो दण्ड उच्यते); विश्व. २।२५५ सबा (साबा) उत्तरार्धे (अर्धस्य हानौ वृद्धौ वा साहस्रो दण्ड उच्यते); मिता. नतां (नतो); अप. सबा (संबा) उत्तरार्धे (अर्धस्य न्हासे वृद्धौ वा साहस्रो दण्ड उच्यते); व्यक. १११ सबा (साबा) उत्तरार्धे (अर्धस्य हानिं वृद्धिं च साहस्रो दण्ड उच्यते); विर. ३०० सबा (साबा) उत्तरार्धे (अर्धस्य हानिं वृद्धिं च साहसं दण्ड

(१) एवं तावत् प्रत्येकव्यतिक्रमेऽनुशासनमुक्तम् । इदानीं कारुकादीनां संभूयव्यतिक्रमेऽनुशासनमाह— संभूयेति । संभूयैकमत्वेन कारुशिल्पिनां सबाधं पीडा-करमन्यशिल्पिजनस्य तन्निष्पादितद्रव्यस्य वा कुर्वतां कार्पाणसहस्रं दण्डः शिल्पार्धस्य हानौ वृद्धौ वा कर्तव्यः । ये हि भाजनादीनि द्रव्याणि स्वयमेव कृत्वा विक्रीणन्ति, ते शिल्पिनः कांस्यकारादयः । ये तु परकी-यान्येव गृहादीनि निष्पादयन्ति, ते कारवः । तेषामा-गन्तुकशिल्पिजनस्यानवकाशार्थं कारयितृजनार्थिताति-शयाद्वा अर्धस्य हानिं वृद्धिं वा यदा कुर्युः, तदाऽयं दण्ड इत्यवसेयम् । विश्व. २।२५५

(२) वणिजः प्रत्याह—संभूयेति । राजनिरूपिता-र्धस्य न्हासं वृद्धिं वा जानन्तोऽपि वणिजः, संभूय मिलित्वा, कारुणां रजकादीनां, शिल्पिनां चित्रकारा-दीनां, सबाधं पीडाकरमर्धान्तरं लाभलोभात् कुर्वन्तः पणसहस्रं दण्डनीयाः । ×मिता.

(३) पण्यानां राजकृतमर्धं विदित्वा ततोऽन्यथाभूत-मर्धं वाणिज्याजीविनां कारुशिल्पिप्रभृतिजनस्य, सबाधं पीडाकरं कुर्वतां राजकृताधीपक्षयाऽर्धस्य न्हासे वृद्धौ वा पणसहस्रपरिमितो दण्डः कार्यः । *अप.

(४) कारवोऽत्र प्रतिमाघटकादयः, शिल्पिनश्चित्र-कारादयः । तेषां सबाधमतिपीडाकरमर्धं ये वणिजः संभूय कुर्वन्ति, ये वा राजस्थापितस्य मूल्यस्य न्हासं वृद्धिं च संभूय कुर्वन्ते तेषां सहस्रपणात्मको दण्ड इत्यर्थः । +विर. ३००

^१संभूय वणिजां पण्यमनर्धेणोपरुन्धताम् ।

विक्रीणतां वा विहितो दण्ड उत्तमसाहसः ॥

× पमा., वीमि., विता. मितावत् । * मितावद्भावः ।

+ विचि., दवि. विरवत् ।

उच्यते); पमा. ४५८; विचि. १२८ व्यकवत्; दवि. ९७ तामर्धं सबा (तां सर्वं साबा) उत्तरार्धे व्यकवत्; वीमि.; विता. ७६९ न्हासं वृद्धिं (वृद्धिं न्हासं) नतां (नतो); राकौ. ४९३ सबा (साबा); सेतु. ३०१-२ उत्तरार्धे (अर्धस्य हानिं वृद्धिं च सहस्रो दण्ड उच्यते); समु. ९१ सबा (साबा).

(१) यास्मृ. २।२५०; विश्व. २।२५६; मिता.; अप.

(१) उक्तादेव हेतोः— 'संभूय वणिजां पण्यमनघे-
णोपरुन्धताम् । विक्रीणतां वा विहितो दण्ड उत्तम-
साहसः ॥'

विश्व. २।२५६

(२) ये पुनर्वणिजो मिलित्वा देशान्तरादागतं पण्य-
मनघेण हीनमूल्येन प्रार्थयमाना उपरुन्धन्ति, महाघेण
वा विक्रीणते, तेषामुत्तमसाहसो दण्डो विहितो मन्वा-
दिभिः ।

* मिता.

(३) राजनिर्मितमर्षमगणयित्वा स्वयं कल्पितेन
महताऽर्धेण वणिजां मिलितानां वणिगन्तरैराहृतं पण्य-
मुपरुन्धतां विरुद्धं विक्रयं कुर्वतां, तथा राजकृतादर्धा-
द्विहीनार्धापादनेन स्वकीयस्य पण्यस्य निर्गम(मं)
कुर्वतामुत्तमसाहसो दण्डः ।

अप.

(४) अनघेण अनुचितमूल्येन ।

दवि. ९२

प्रकाशस्तेयप्रकरणे प्रसंगतः अर्धस्थापनाविधिः

राजनि स्थाप्यते योऽर्धः प्रत्यहं तेन विक्रयः ।

क्रयो वा निःस्रवस्तस्माद्वणिजां लाभकृत् स्मृतः ॥

(१) केन तर्ह्येण पण्यानां विक्रय इति । उच्यते—
'राजनि स्थाप्यते योऽर्धः प्रत्यहं तेन विक्रयः । क्रयो
वा ।' कार्य इति शेषः । यश्चासौ राजकुलाधिष्ठितनिपुण-
वणिङ्गनिरूपितो दिवसार्धः, तेन क्रीतानां पुनर्विक्रयः
कस्मात्, यस्माच्च— 'विक्रयो वाऽपि वणिजां लाभतः
स्मृतः ॥' स्मृत इति वचनाल्लाभेनापि विक्रयो धर्म
इति ज्ञायते ।

विश्व. २।२५७

* विर., पमा., विचि., दवि., वीमि., विता. मितान्त ।

तां वा वि (तामभि); ब्यक. १११ सः (सम्); विर.
३०० णोप (णाव) वा वि (वाभि); पमा. ४५८ जां
(जा) वा (च); विचि. १२८ णोप (णाव); दवि.
९२ विरवत्; वीमि.; विता. ७६९; सेतु. ३०२ जां
(जः) णोप (णाप); समु. ९१.

(१) यास्मृ. २।२५१; अपु. २५८।४१ धः (र्धः)

निःस्रव (विक्रय); विश्व. २।२५७ निःस्रवस्तस्माद्
(विक्रयो वाऽपि व) कृत् (तः); मिता.; अप. राजनि स्थाप्यते
(राजभिः स्थापितो) कृत् (कः); ब्यक. १११ जां (जो)
कृत् (कः); विर. ३०२ निःस्रव (निश्चय) जां (जो);
पमा. ४५८; दवि. १०० राजनि स्था (राज्ञा संस्था) पू.;
वीमि.; विता. ७७० निःस्र (विल); राकौ. ४९३ प्यते
(पिते); समु. ९१ राजनि-स्थाप्यते (राजभिः स्थापितो)

(२) केन पुनरघेण पणितव्यमित्यत आह—राजनीति ।

राजनि संनिहिते सति यस्तेनार्धः स्थाप्यते विरुप्यते
तेनार्धेण प्रतिदिनं क्रयो विक्रयो वा कार्यः । निर्गतः
स्रवो निःस्रवो विशेषस्तस्माद्राजनिरूपितार्धाद्यो निःस्रवः
स एव वणिजां लाभकारी न पुनः स्वच्छन्दपरिकल्पि-
तात् । मनुना चार्धकरणे विशेषो दर्शितः— 'पञ्चरात्रे
पञ्चरात्रे पक्षे मासे तथा गते । कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्ष-
संस्थापनं नृपः ॥' इति ।

+मिता.

(३) राजभिर्योऽर्धः स्थापितो निर्मितस्तेन वणिग्भिः
प्रत्यहं विक्रयः क्रयश्च कार्यः । तस्मादर्धाद्यो निःस्रवो
द्रव्योत्कर्षः स एव वणिजां प्रशस्तो लाभः । नान्यथा ।

*अप.

(४) राजनि राजविषये रात्रे वा योऽर्धः स्थापितः
तेनैव क्रयविक्रयौ, तस्मात्क्रयाद्विक्रयाद्वा यो निश्चयो
लाभः स एव तेषां लाभकृत् उपचयकृत् नान्यो
दण्डापादकत्वादिति द्वितीयश्लोकार्थः । * विर. ३०३

(५) अथैवं दण्डवर्जनं वृत्तिश्च तेषां कथं स्यादत
आह— राजनीत्यादिना । राजसंनिधौ तदनुमत्या
वणिग्भिर्योऽर्धां व्यवस्थाप्यते, प्रत्यहं तेनार्धेण विक्रयः
क्रयश्च वणिजां कार्यः । तस्मात् क्रयविक्रयाद्यो निर्गतः
स्रवोऽवशेषः वृद्धिभाग इति यावत् स एव लाभकृद्वणिजां
वृत्तेर्हेतुरित्यर्थः ।

*वीमि.

स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग् गृह्णीत पञ्चकम् ।

दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी ॥

(१) लाभकल्पना तु वणिजां किं यदृच्छयैव ।
नेत्युच्यते । कथं तर्हि— 'स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग्
गृह्णीत पञ्चकम् । दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रय-
विक्रयी ॥' इति । यो यस्य पण्यस्य सद्यः क्रयविक्रयी,
स तस्य दशकं पञ्चकं वा गृह्णीयादित्यर्थः ।

विश्व. २।२५८

+ पमा. मितान्त । * मितान्तान्तः ।

(१) यास्मृ. २।२५२; अपु. २५८।४२; विश्व.
२।२५८; मिता.; अप. श्ये (शे); ब्यक. १११; विर.
३०२; पमा. ४५८; दवि. ९९; सवि. ३१२ शतं वणिग्
(वणिक् शतं) उत्तरार्धे (परदेशे तु दशकं यः सद्यः षण्-
विक्रयी); वीमि.; विता. ७७०; राकौ. ४९३; समु. ९१
देश (देश्य) पार (पर).

(२) स्वदेशप्राप्तं पण्यं गृहीत्वा यो विक्रीणीति असौ पञ्चकं शतं पणशते पणपञ्चकं लाभं गृह्णीयात् । परदेशात्प्राप्ते पुनः पण्ये शतपणमूल्ये दशपणान् लाभं गृह्णीयात् । यस्य पण्यस्य ग्रहणदिवस एव विक्रयः संपद्यते । यः पुनः कालान्तरे विक्रीणीति तस्य कालोत्कर्षवशात्लाभोत्कर्षः कल्प्यः । एवं च यथावै निरूपिते पणशते पञ्चपणो लाभो भवति तथैवाधो राज्ञा स्वदेशपण्यविषये स्थापनीयः । *मिता.

पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवम् ।

अधोऽनुग्रहकृत्कार्यः क्रेतुर्विक्रेतुरेव च ॥

(१) राज्ञा तु किं यदृच्छयैवार्धः स्थाप्यः । नेत्याह— 'पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवम् । अधोऽनुग्रहकृत्कार्यः क्रेतुर्विक्रेतुरेव च ॥' विश्व. २।२५९

(२) पारदेश्यपण्येऽर्धनिरूपणप्रकारमाह— पण्यस्योपरीति । देशान्तरादागते पण्ये देशान्तरगमनप्रत्याममनभाण्डग्रहणशुल्कादिस्थानेषु यावानुपयुक्तोऽर्थस्तावन्तमर्थं परिगणय्य पण्यमूल्येन सह मेलयित्वा, यथा पणशते दशपणो लाभः संपद्यते तथा क्रेतुर्विक्रेतोरनुग्रहकार्यधो राज्ञा स्थापनीयः । मिता.

(३) क्रयदिनाद्दिनान्तरविक्रयविषयमाह— पण्यस्योपरीति । स्वदेशपरदेशादागतस्य पण्यस्योपरि तत्प्रतिबद्धो व्ययः संस्थाप्यः, पण्येनैव तन्निबन्धनं सकलं व्ययं परिशोध्य क्रेतुर्विक्रेतुश्च तुल्यानुग्रहेहेतुरधो राज्ञा परिकल्पनीयः । अप.

(४) दूरदेशस्थत्वादिना चिरविक्रयविलम्बे तु दत्तपण्यमूल्योपरि पण्यानयनरक्षणादिसमुद्भवं व्ययं व्ययितं धनं संस्थाप्य मेलयित्वा मूल्यव्यययोर्मिलितयोः शतपणमूल्यकयोस्तु देशविदेशभेदेन पञ्चदशपणो यो निःस्वो भवति, तथा क्रेतुर्विक्रेतुश्चाऽनुग्रहकृदुपकारी अधो राज्ञा कार्यः । चकारात्यौरजनस्य समुच्चयः । एवकारेण राज्ञाऽर्धकरणे उपेक्षा व्यवच्छिद्यते । वीमि.

* अप., विर., पमा., दवि., वीमि., विता. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२५३; अपु. २५८।४३; विश्व. २।२५९; मिता.; अप. ग्रहकृत् (ग्राहकः); व्यक. १११; विर. ३०२; पमा. ४५९; वीमि.; विता. ७७३ (=); समु. ९१.

प्रकाशस्तेयदण्डप्रकरणानुवृत्तिः

भिषङ्मिथ्याचरन् दाप्यस्तिर्यक्षु प्रथमं दमम् ।
मानुषे मध्यमं राजपुरुषेषूत्तमं दमम् ॥

(१) अज्ञानाद् विपर्ययतो वा— 'भिषङ्मिथ्याचरन् दाप्यस्तिर्यक्षु प्रथमं दमम् । मानुषे मध्यमं दाप्य उत्तमं राजमानुषे ॥' पशवो वर्णापशदाश्च तिर्यञ्चः । विट्छूद्राः मानुषम् । क्षत्रिया ब्राह्मणाश्च राजमानुषम् । एवं मिथ्याचरतो वैद्यस्य प्रथमसाहसादयो दण्डाः । उदाहरणार्थं चैतत् । सर्वथा चिकित्स्यस्वरूपं पीडाविशेषं च वैद्यकृतमालोच्य यथाहं दण्डकल्पनेत्यवसेयम् ।

विश्व. २।२४८

(२) चिकित्सकं प्रत्याह— भिषङ्मिथ्याचरन्निति । यः पुनर्भिषक् मिथ्या आयुर्वेदानभिज्ञ एव जीवनार्थं चिकित्सितज्ञोऽहमिति तिर्यङ्मनुष्यराजपुरुषेषु चिकित्सा-माचरत्यसौ यथाक्रमेण प्रथममध्यमोत्तमसाहसान् दण्डनीयः । तत्रापि तिर्यगादिषु मूल्यविशेषेण वर्णविशेषेण राजप्रत्यासत्तिविशेषेण दण्डानां लघुगुरुभावः कल्पनीयः । मिता.

(३) तिर्यक्षु गवादिषु मिथ्याचिकित्सा-माचरन् वैद्यः प्रथमसाहसं दण्डं दाप्यः । मानुषे मध्यमसाहसं, राजसंभ्रन्धिमानुषे तु पुनरुत्तमसाहसं दाप्यः । अयथा-शास्त्रं मिथ्या । +अप.

कूटस्वर्णव्यवहारी विमांसस्य च विक्रीयी ।

त्र्यङ्गहीनस्तु कर्तव्यो दाप्यश्चोत्तमसाहसम् ॥

+ वीमि. अपवत् ।

(१) यास्मृ. २।२४२; अपु. २५८।३६ पुरुषे...दमम् (मानुषेषूत्तमं तथा); विश्व. २।२४८ उत्तरार्धे (मानुषे मध्यमं दाप्य उत्तमं राजमानुषे); मिता. दाप्य (दण्ड्य); अप. पुरुषेषु (मानुषे तु); व्यक. ११२ अपवत्; विर. ३०६ अपवत्; पमा. ४५७ मितावत्; दवि. १०४ पुरुषे...दमम् (मानुषे तूत्तमं तथा); वीमि. मितावत्; राकौ. ४९३ अपवत्; विता. ७६८; समु. १५८ पुरु (मानु).

(२) यास्मृ. २।२९७; अपु. २५८।७५-६ स्वर्णव्यव (वादी स्वर्ण) त्र्यङ्गहीनस्तु (अङ्गहीनश्च); विश्व. २।३०० नस्तु (नास्तु) व्यो (व्या) प्य (प्या); मिता. (ख) त्र्य (अ); अप. २।२९६; व्यक. ११२ त्र्य (अ) शेषं विश्व-

(१) प्रच्छन्नतास्कर्ययोगात्— 'कूटस्वर्णव्यवहारी विमांसस्य च विक्रीयी । व्यङ्गहीनास्तु कर्तव्या दाप्या-श्चोत्तमसाहसम् ॥' धूपितरञ्जितादि कूटस्वर्णम् । श्व-सृगालादिप्रभवं विमांसम् । तद्विशेषापेक्षयैव धनदण्डः । व्यङ्गहीनत्वं च व्यस्तसमस्ततया योज्यम् । द्वौ हस्ता-वेकश्च पादस्त्रयङ्गानि । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।३००

(२) रसवेधाद्यापादितवर्णोत्कर्षैः कूटैः स्वर्णैर्व्यवहार-शीलो यः स्वर्णकारादिः, यश्च विमांसस्य कुत्सितमांसस्य श्वादिसंबद्धस्य विक्रयशीलः सौनिकादिः । चशब्दात्कूट-रजतादिव्यवहारी च । ते सर्वे प्रत्येकं नासाकर्णकरै-स्त्रिभिरङ्गैर्हीनाः कार्याः । चशब्दात्त्रयङ्गच्छेदेन समुच्चित-मुत्तमसाहसं दण्डं दाप्याः । यत्पुनर्मनुनोक्तं—'सर्वकण्टक-पापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः । प्रवर्तमानमन्याये छेदये-च्छवशः क्षुरैः ॥' इति (मस्मृ. १।२९२) । तदेव-ब्राह्मणराजस्वर्णविषयम् । *मिता.

(३) असुवर्णे सुवर्णबुद्धिं परस्योत्पाद्य यो व्यवहरति, यश्च विरुद्धं विड्वराहादिमांसं समीचीनमांसबुद्धिसुत्पाद्य विक्रीणीति, स त्रिभिरङ्गैर्नासाकर्णहस्तैर्हीनः कार्यः । उत्तमसाहसं च दण्ड्यः । +अप.

(४) त्रिभिर्नासादन्तकरैः । विर. ३०९

(५) आद्येन चकारेण ब्राह्मणस्य शरीरदण्डानर्हस्य निर्वासनादि समुच्चिनोति । द्वितीयेन मिलितस्य दण्ड-द्रव्यस्य कर्तव्यत्वमभिप्रेति । तुशब्देन— 'सर्वकण्टक-पापिष्ठमि'ति देवब्राह्मणस्वर्णपरमन्यत्र व्यवच्छिनत्ति । वीमि.

मृच्चर्ममणिसूत्रायःकाष्ठवल्कलवाससाम् ।

अजातौ जातिकरणे विक्रेयाष्टगुणो दमः ॥

* दवि. मितावत् । + मितावद्भावः । विचि. अपवत् । वत्; विर. ३०९ नस्तु (नाश्च) व्यो (व्या) व्यश्चो (व्यास्तु) काल्यायनः; विचि. १३१ च्य (अ) नस्तु (नः प्र); व्यनि. ५१२ विमां (कुमां); दवि. १०२, ३०८ नस्तु (नास्तु) व्यो (व्याः) दाप्य (शास्या); सवि. ४९२ व्यनिवत्; वीमि.; व्यड. १६४; व्यम. १०९ मितावत्; विता. ७६३ मितावत्; राकौ. ४९४ च्य (अ) दाप्य (दण्ड्य); सेतु. २२४, २३३ विचिवत्; समु. १५९ मितावत्; विव्य. ५१ विमां (अमां) नस्तु (नः प्र).

(१) यास्मृ. २।२४६; विश्व. २।२५२ उत्तरार्धे (अजा-

(१) क्रेतुः पण्यस्वरूपाज्ञत्वमभिप्रेत्य— 'मृच्चर्ममणि-सूत्रायःकाष्ठवल्कलवाससाम् । अजातेर्जातिकरणाद् विक्रये-ऽष्टगुणो दमः ॥' मृदादीनामजात्यं जात्यमिति कृत्वा विक्रीणन्कतघोडशपणादष्टगुणं दण्ड्यः । स्पष्टमन्यत् ।

विश्व. २।२५२

(२) न विद्यते बहुमूल्या जातिर्यास्मिन्मृच्चर्मादिके तदजाति, तस्मिन् जातिकरणे, विक्रयार्थं, गन्धवर्णरसान्तरसंचारणेन बहुमूल्यजातीयसादृश्यसंपादनेन । यथा मल्लिकामोदसंचारेण मृत्तिकायां सुगन्धामलकमिति । मार्जारचर्मणि वर्णोत्कर्षापादनेन व्याघ्रचर्मोति । स्फटिक-मणौ वर्णान्तरकरणेन पद्मराग इति । कार्पासिके सूत्रे गुणोत्कर्षाधानेन पट्टसूत्रमिति । काल्यायसे वर्णोत्कर्षा-धानेन रजतमिति । विन्वक्काष्ठे चन्दनामोदसंचारणेन चन्दनमिति । कङ्कोले त्वगाख्यं लवङ्गमिति । कार्पासिके वाससे गुणोत्कर्षाधानेन कौशेयमिति । विक्रेयस्यापादितसादृश्यमृच्चर्मादेः पण्यस्याष्टगुणो दण्डो वेदितव्यः । *मिता.

(३) मृदादीनां मध्ये किञ्चिदनुत्कृष्टजातीयमपि तदु-त्कृष्टजातीयद्रव्यसादृश्यमापाद्य क्रेतारं प्रति समीचीनमे-तदिति भ्रान्त्यापादनेनासमीचीनं द्रव्यं दत्त्वा यः समीचीनद्रव्यमूल्यमादत्ते, तस्य तत एव मूल्यादष्टगुणो दण्डः । +अप.

समुद्रपरिवर्तं च सारभाण्डं च कृत्स्नमम् ।

आधानं विक्रयं वाऽपि नयतो दण्डकल्पना ॥

* विर., विचि., दवि., वीमि., विता. मितावत् ।

+ मितावद्भावः । विचि. अपवत् ।

तेर्जातिकरणाद् विक्रयेऽष्टगुणो दमः); मिता.; अप. क्रेया (क्रयेऽ); व्यक. ११२; विर. ३०९ क्रेया (श्रेयोऽ) काल्या-यनः; पमा. ४५८; विचि. १३२ विरवत्, उत्त.; व्यनि. ५१२ त्रायः (त्राणां) तौ जा (तेर्जा) क्रेया (क्रयेऽ); दवि. १०२ वल्कल (पाषाण) के (की); वीमि.; विता. ७६८; सेतु. २३३ सूत्रा (मुद्रा) जानि (जात) क्रेया (श्रेयोऽ) काल्यायनः; समु. १५९.

(१) यास्मृ. २।२४७; विश्व. २।२५३; मिता. (ख) मुद्र (मुद्र); अप.; व्यक. ११२ वा (चा); विर. ३१० विश्ववत्, काल्यायनः; पमा. ४५८ वा (चा);

भिन्ने पणे तु पञ्चाशत्पणे तु शतमुच्यते ।

द्विपणे द्विशतो दण्डो मूल्यवृद्धौ च वृद्धिमान् ॥

(१) यदि तु समुद्रगकादिस्थं दर्शयित्वा समुद्रकान्तरपरिवर्तनेन कर्पूरादिसारद्रव्यं कृत्रिमकरणेन वा काश्चिदाधानं विक्रयं वा कुर्यात्, तस्यापि व्याजव्यवहारिणः— 'समुद्रपरिवर्ते च सारभाण्डं च कृत्रिमम् । आधानं विक्रयं वाऽपि नयतो दण्डकल्पना ॥' उक्तार्थः श्लोकः ।

किं स्वमत्यैव दण्डकल्पना । नेत्याह— 'भिन्ने पणे तु पञ्चाशत्पणे तु शतमुच्यते । द्विपणे द्विशतो दण्डो मूल्यवृद्धौ तु वृद्धिमान् ॥' अनिर्दिष्टविषये तु द्रव्ये मूल्यानुसारिणी दण्डकल्पनेत्यभिप्रायः ।

विश्व. २।२५३-४

(२) मुद्रं पिधानम् । मुद्रेण सह वर्तत इति समुद्रं करण्डकम् । परिवर्तनं व्यत्यासः योऽन्यदेव मुक्तानां पूर्णं करण्डकं दर्शयित्वा हस्तलाघवेनान्यदेव स्फटिकानां पूर्णं करण्डकं समर्पयति, यश्च सारभाण्डं कस्तूरिकादिकं कृत्रिमं कृत्वा विक्रयमाधिं वा नयति, तस्य दण्डकल्पना वक्ष्यमाणा वेदितव्या । कृत्रिमकस्तूरिकादेर्मूल्यभूते षणे भिन्ने न्यूने । न्यूनपणमूल्य इति यावत् । तस्मिन् कृत्रिमे विक्रीते पञ्चाशत्पणो दण्डः । पणमूल्ये पुनः शतम् । द्विपणमूल्ये द्विशतो दण्डः, इत्येवं मूल्यवृद्धौ दण्डवृद्धिरुच्येया ।

+मिता.

(३) मुद्रया द्वारबन्धेन सह वर्तत इति समुद्रम् । तदन्यत्समीचीनं प्रदर्शयन्त्यत्ततोऽपकृष्टं क्रेत्रे चोत्तमर्णाय वा कौशलेन भ्रान्तिं जनयन्नर्पयति । यश्चासारमल्पमूल्यं

+ पमा., विचि., वीमि., विता. मितावत् ।

विचि. १३२ (=) विश्ववत्; दवि. १०३ विश्ववत्; वीमि. विश्ववत्; विता. ७६९; सेतु. २३४ विश्ववत्, काल्यायनः; समु. १५९.

(१) यास्मृ. २।२४८; विश्व. २।२५४ च (तु); मिता. (क) तु प (च प); अप. विश्ववत्; व्यक. ११२; विर. ३१० द्विपणे (द्विगुणो) काल्यायनः; पमा. ४५८ भिन्ने (हीने) च (तु); विचि. १३२ द्विपणे (द्विगुणो); दवि. ३०३; वीमि. विश्ववत्; विता. ७६९ विश्ववत्; सेतु. २३४ काल्यायनः; समु. १५९ पमावत्.

मृदादिकं सारभाण्डतया कस्तूरिकादिमहार्थपण्यतया परं प्रत्याधानकृते नयति विक्रीणीते वा तस्य दण्डकल्पनोच्यते । भिन्ने पणे पणादल्पमूल्ये द्रव्य आहिते विक्रीते वा पञ्चाशत्पणो दण्डः । पणमूल्ये तु पणशतम् । द्विगुणमूल्ये तु द्वे पणशते । इत्थं यावन्तः पणा मूल्यस्य वर्त- (ध)न्ते तावन्ति पणशतानि दण्डे वर्धनीयानि । Xअप.

(४) समुद्रं संपुटं, कृत्वेति पूरणीयम् । ऊनसुवर्णादि पूर्णसंपुटपरिवर्ते कृत्वा आधानं धारणं नयतः, सारभाण्डं च कस्तूरिकादि कृत्रिमं कृत्वा विक्रयं नयतः, दण्डकल्पना कार्या ।

* विर. ३१०

अग्नौ सुवर्णमक्षीणं रजते द्विपलं शते ।

अष्टौ त्रपुणि सीसे च ताम्रे पञ्च दशायसि ॥

(१) आवर्तनायाम्नौ क्षिप्तं सुवर्णमक्षीणं, तावदेवेत्यर्थः । रजतादौ पलशताद् द्विपलादिकः क्षयः । अनेन प्रकारेणोपक्षीणं सुवर्णकारादयो न दापनीयाः । विश्व. २।१८२

(२) दोह्यादिपरीक्षाप्रसंगेन स्वर्णादेरपि परीक्षामाह— अग्नौ सुवर्णमक्षीणमिति । वह्नौ प्रताप्यमानं सुवर्णं न क्षीयते । अतः कटकादिनिर्माणार्थं यावत्स्वर्णकारहस्ते प्रक्षिप्तं तावत्तुलितं तैः प्रत्यर्पणीयम् । इतरथा क्षयं दाप्या दण्ड्याश्च । रजते तु शतपले प्रताप्यमाने पलद्वयं क्षीयते । अष्टौ त्रपुणि सीसे च । शते इत्यनुवर्तते । त्रपुणि सीसे च शतपले प्रताप्यमानेऽष्टौ पलानि क्षीयन्ते । 'ताम्रे पञ्च दशायसि' ताम्रे शतपले पञ्चपलानि । अयसि दशपलानि क्षीयन्ते । अत्रापि शत इत्येव । कांस्यस्य तु त्रपुताम्रयोनित्वात्तदनुसारेण क्षयः कल्पनीयः ।

X मितावद्भावः । * शेषं मितावत् । दवि. विरवत् ।

(१) यास्मृ. २।१७८; अपु. २५७।२९ रजते द्विपलं (द्विपलं रजते); विश्व. २।१८२ रज... शते (द्विपलं रजते शतम्) त्रपुणि (तु त्रपु); मिता.; अप.; व्यक. ११३ त्रपुणि सीसे च (तु त्रपुसीसेषु) शेषं अपुवत्; विर. ३११ रज... शते (द्विपलं रजते शतम्) त्रपुणि सीसे च (तु त्रपुसीसेषु); विचि. १३३ रजते द्विपलं (द्विपलं रजते) त्रपुणि सीसे च (हि त्रपुसीसे तु); व्यनि. ५१३ पूर्वार्थो विश्ववत्, ताम्रे (ताम्रः); मच. ८।३९७ रजते द्विपलं (द्विपलं रजते) उत्तरार्थे (अष्टौ तु त्रपुसीसेषु ताम्रे पञ्च दशानि तु); वीमि.; व्यप्र. २८९; व्यम. ८५; विता. ५७१; राकौ. ४७३; सेतु. २३४ अपुवत्; समु. ९०.

ततोऽधिकक्षयकारिणः शिल्पिनो दण्ड्याः । * मिता.

(३) दशायसि शूद्रे । विर. ३१२

(४) चकारेण कांस्यस्य त्रपुताम्रयोनिकस्य तदंशानु-
सारेण क्षयः समुचीयते । × वीमि.

शते दशपला वृद्धिरौर्णे कार्पाससौत्रिके ।

मध्ये पञ्चपला वृद्धिः सूक्ष्मे तु त्रिपला मता ॥

(१) तौलिकादिभिस्तु वस्त्रनिर्माणायार्पिते सूत्रे—
‘शते दशपला वृद्धिरौर्णे कार्पासिके तथा । मध्ये पञ्चपला
हानिः सूक्ष्मे तु त्रिपला मता ॥’ पलशते दशपलान्यौर्ण-
कार्पासिकयोर्वृद्धिः स्थूले सूत्रे स्यात् । मध्यमे तत्तद्वृद्धितः
पञ्चपलहान्या वृद्धिरित्यर्थः । सूक्ष्मे तु त्रिपला वृद्धिः ।
तथा च नारदो दशपलां वृद्धिसुक्त्वाह— ‘स्थूलपूत्र-
वतामेषां मध्यानां पञ्चकं शतम् । त्रिपलं तु सुसूक्ष्मा-
णाम्...॥’ इति । विश्व. २।१८३

(२) कचित्कम्बलादौ वृद्धिमाह— शते दशपलेति ।
स्थूलेनौर्णसूत्रेण यत्कम्बलादिकं क्रियते तस्मिन् शतपले
दशपला वृद्धिर्वेदितव्या । एवं कार्पाससूत्रनिर्मिते पटादौ
वेदितव्यम् । मध्ये अनतिसूक्ष्मसूत्रनिर्मिते पटादौ
पञ्चपला वृद्धिः । सुसूक्ष्मसूत्ररचिते शते त्रिपला वृद्धि-
र्वेदितव्या । एतच्चाप्रक्षालितवासोविषयम् ।

+ मिता.

* अप. मितावत् । × शेषं मितावत् ।

+ अप., विर., वीमि. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।१७९; अपु. २५७।३० ससौत्रिके (सिके
तथा) वृद्धिः सू (श्रेया सू); विश्व. २।१८३ ससौत्रिके
(सिके तथा) वृद्धिः सू (हानिः सू); मिता.; अप.
ससौत्रिके (सिके तथा); व्यक. ११३ ससौत्रिके (सिके तथा)
वृद्धिः सू (सौत्रे सू); विर. ३१२ ससौत्रिके (सिके तथा)
वृद्धिः ... मता (तौले सूक्ष्मे तु द्विपला स्मृता); विचि.
१३३ मता (स्मृता) शेषं व्यकवत्; व्यनि. ५१४ ससौत्रिके
(सिके तथा) वृद्धिः सू (सूत्रे सू); मच. ८।३९७ व्यनिवत्;
वीमि. वृद्धिः सू (सौत्रे सू); व्यप्र. २८९ सौत्रि (सूत्र);
व्यम. ८६ सौत्रि (सौत्रे); विता. ५७१ व्यप्रवत्; राकौ.
४७३ दश (दशा) सौत्रि (सौत्रे) वृद्धिः सू (सूत्रे सू); सेतु.
२३५ कार्पा (कार्पा) शेषं विचिवत्; समु. ९० सौत्रि
(सूत्रे) सौत्रि (सूत्रे) सूक्ष्मे तु (सूक्ष्मे).

व्य. कां. २१८

कार्मिके रोमबद्धे च त्रिशद्भागः क्षयो मतः ।

न क्षयो न च वृद्धिश्च कौशेये वल्कलेषु च ॥

(१) अस्य विशेषेऽपवादः— चार्मिक इति ।
चर्मकृतं चार्मिकं कुरुण्टादि । रोमबद्धं दूष्यपटादि ।
तत्र हि छेदनात् त्रिशद्भागः क्षयः । कौशेयवाल्कलयोस्तु
साम्यमेव । कौशेयं त्रसरीमयम् । स्पष्टमन्यत् ।
विश्व. २।१८४

(२) द्रव्यान्तरे विशेषमाह— कार्मिक इति ।
कार्मिकं कर्मणा चित्रेण निर्मितम् । यत्र निष्पन्ने पटे
चक्रस्वस्तिकादिकं चित्रं सूत्रैः क्रियते तत्कार्मिक-
मित्युच्यते । यत्र प्रावारादौ रोमाणि ब्रव्यन्ते स
रोमबद्धः, तत्र त्रिशत्तमो भागः क्षयो वेदितव्यः ।
कौशेये कौशप्रभवे वाल्कलेषु वृक्षत्वङ्निर्मितेषु वसनेषु
वृद्धिन्हासौ न स्तः किन्तु यावद्वयनार्थं कुविन्दादिभ्यो
दत्तं तावदेव प्रत्यादेयम् । *मिता.

(३) चकारैर्गोधूमादीनां बहूनामनुक्तानां पेषणादौ
क्षयवृद्धयोरभावः समुचीयते । ×वीमि.

देशं कालं च भोगं च ज्ञात्वा नष्टे बलाबलम् ।

द्रव्याणां कुशला ब्रूयुर्यत्तहाप्यमसंशयम् ॥

(१) वृद्धयनुसारेणैव क्षयमालोच्य रजकादिभिर्वस्त्रा-
दीनाम्—‘देशं कालं च भोगं च ज्ञात्वा नष्टे
बलाबलम् । द्रव्याणां कुशला ब्रूयुर्यत् तद् दाय्यमसं-
शयम् ॥’ स्वदेशोत्पन्नं परदेशोत्पन्नं चिरन्तनमल्पकालिकं

* अप. मितावत् । × शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।१८०; अपु. २५७।३१ श्व (स्तु);
विश्व. २।१८४ का (चा) वृद्धिश्च (वृद्धिः स्यात्) वल्कलेषु च
(वाल्कले तथा); मिता. (क) वल्क (वाल्क); अप. वृद्धिश्च
(वृद्धिः स्यात्) वल्क (वाल्क); व्यक. ११२ त्रिशद्भागः (विश-
भागः) शेषं अपवत्; विर. ३१३ वृद्धिश्च (वृद्धिः स्यात्);
मच. ८।३९७ द्वे च (द्वे तु) वृद्धिश्च (वृद्धिस्तु) वल्क
(वाल्क); वीमि.; व्यप्र. २८९-९० द्वे (न्ये) वल्क (वाल्क);
व्यम. ८६; विता. ५७१ द्वे (न्ये); समु. ९० वितानवत्.

(२) यास्मृ. २।१८१; अपु. २५७।३२; विश्व.
२।१८५; मिता.; अप. प्यम (प्या अ); व्यक. ११३;
विर. ३१४; व्यनि. ५१४; दवि. ११३ भोगं च (विहाय);
सवि. ४९५ (=); वीमि.; राकौ. ४७३; समु. ९०.

मुक्तममुक्तं दुर्लभमनुल्लभं वेत्येवं बृष्टे विलावलं
ज्ञात्वा द्रव्याणां बलविलक्षणकुशला यन्मूल्यं ब्रूयुः,
तद्विचिचारं नाशयिता दद्यात् । राज्ञा चाददद् द्राप्यः ।
एवं परीक्ष्य क्रीते क्रेतुर्ग्रामिचारस्ते राजदण्डादिप्रसङ्गः ।
न च विक्रेता व्यभिचरन्नपि विक्रीतं प्राप्नुयादिति
स्थितम् । तथा च स्वायम्भुवम् — 'परेण तु दशाहस्य
न दद्यान्नाभिं दापयेत् । आददानो ददच्चैव दण्ड्यो राज्ञा
शतानि पट् ॥' इति (मस्मृ. ८।२२३) । विश्व. २।१८५
(२) द्रव्यानन्त्यात्प्रतिद्रव्ये क्षयवृद्धिप्रतिपादनाशक्तैः
सम्बन्धेन न्यासवृद्धिशानोपायमाह — देशं कालमिति ।
शाणक्षौमादौ द्रव्ये नष्टे न्यासमुपगते द्रव्याणां कुशलाः
द्रव्यवृद्धिक्षयाभिज्ञाः देशं कालमुपभोगं तथा नष्टद्रव्यस्य
कुशलं सारोसारतां च परीक्ष्य यत्कल्पयन्ति तदसंशयं
क्षिप्विनो द्राप्याः । + मिता.

(३) चकारेण न्यासयोग्यस्थाने न्यासनीयमिति
संमुच्यते । * वीमि.

वसानस्त्रीन् पणान् दण्ड्यो नेजकस्तु परांशुकम् ।
विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु पणान् दश ॥

(१) प्रक्षालनार्थमर्पितम् — 'वसानस्त्रीन्' पणान्
द्राप्यो रजकस्तु परांशुकम् । विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु
पणान् दश ॥ परांशुकमुत्कृष्टं वस्त्रम् । तत्परिधाने
रजकस्य त्रिषणो दम् । एवं मध्यमाधमेषु पणापचय-
कल्पना । तथाऽभ्यासापेक्षया व्यतिरेककल्पना । विक्रयादि-
करणेषु तु स्वामिनो मूल्यं, राज्ञे दण्डश्चेत्यवसेयम् ।
भाण्ड(ट) केनार्पणमपक्रयः । आधमनमाधानम् ।
स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२४४

(२) साहसप्रसङ्गात्तत्सदृशापराधेषु निर्णेजकादीनां

+ अप. मितावद्भावः । * शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२३८; अपु. २५८।३३ याव (याप);
विश्व. २।२४४ दण्ड्यो ने (द्राप्यो र) याव (याप);
मिता.; अप. दण्ड्यो (द्राप्यो); व्यक. ११३ अपवत्;
विर. ३१३ अपवत्; पमा. ४५५; दीक. ५३ नेज (रज);
विचि. १३१ अपवत्; दवि. ११३ अपवत्; नृप्र. २७०;
वीमि. अपवत्; व्यग्र. २८९; व्यम. ८५;
विता. ५६९ परां (वरां): ७६४; राकौ. ४९२ दण्ड्यो
ने (द्राप्यो र); सेतु. २३२-३ राकौवत्; समु. ९०.

दण्डमाह — वसानस्त्रीनिति । नेजको वस्त्रस्य धावकः
स यदि निर्णेजनार्थं समर्पितानि वाससि स्वय-
माच्छादयति तदा असौ पणत्रयं दण्ड्यः । यः पुनस्तानि
विक्रीणति, अवक्रयं वा, एतावत्कालमुपभोगार्थं वस्त्रं
दीयते मह्यमेतावद्धनं देयमित्येवं भाटकेन यो ददाति,
आधित्वं वा नयति, स्वमुद्देभ्यो याचितं वा ददाति,
असौ प्रत्यपरार्थं दशपणान् दण्डनीयः । तानि च
वस्त्राणि श्लक्ष्णशाल्मलीफलके श्लक्ष्णनीयानि न पाषाणे,
न च व्यत्यसनीयानि, न च स्वंगृहे वासयितव्यानि,
इतरथा दण्ड्यः । 'शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे निज्याद्वासांसि
नेजकः । न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च
वासयेत् ॥' इति मनुस्मरणात् (मस्मृ. ८।३९६) । यदा
पुनः प्रमादात्तानि नाशयति तदा नारदेनोक्तं द्रष्टव्यम् —
'मूल्याष्टभागो हीयेत सकृद्भौतस्य वाससः । द्विः
पाद्मस्त्रितुतीयांशश्चतुर्थोऽर्धमेव च ॥ अर्धक्षयात्तु परतः
पादांशापचयः क्रमात् । यावत्क्षीणदशं जीर्णं जीर्णस्या-
नियमः क्षये ॥' इति । अष्टपणक्रीतस्य सकृद्भौतस्य
वस्त्रस्य नाशितस्याष्टमभागपणोनं मूल्यं देयम् । द्विर्भौतस्य
तु पादोनं पणद्वयोनं, त्रिर्भौतस्य पुनस्तुतीयांशन्यूनम् ।
चतुर्भौतस्यार्धं पणचतुष्टयं देयम् । ततः परं प्रति-
निर्णेजनमवशिष्टं मूल्यं पादाद्यपचयेन देयं यावज्जीर्णम् ।
जीर्णस्य पुनर्नाशितस्येच्छातो मूल्यदानकल्पनम् ।

*मिता.

(३) अवक्रयोऽत्र भाटकम् । आधानं बन्धकम् ।
याचितं सुहृदे याचितस्य दानम् । ×विर. ३।१४

अप्रकाशतस्करदण्डाः

बन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः ।

प्रसह्य घातिनश्चैव शूलमारोपयेन्नरान् ॥

* अप., वीमि. मितावत् । × विचि., दवि. विरवत् ।

(१) यास्मृ. २।२७३; अपु. २५८।६१-२; विश्व.
२।२७७; मेधा. ८।३४२; मिता. शूलमा (शूलान्); अप.;
व्यक. ११४; स्मृच. ३१२ मितावत्, स्मृत्यन्तरम्; विर.
३२० आ (अ); पमा. ४४१ घातिन (घातकां) रान्
(ः) शेषं मितावत्; रत्न. १२६ मितावत्; विचि. १३५
विरवत्; व्यनि. ५०९ नश्चै (नं चै); दवि. १३० विर-
वत्; नृप्र. २६३; सवि. ४५८ बन्दिग्रा (बन्दीग्र) वाजि
(राज) शेषं मितावत्; वीमि.; व्यग्र. २८९ रान् (ः)

(१) चोरादिविशेषे तु वधप्रकारमाह — बन्दिग्राहं-
स्तथेति । तथान्वाब्दः प्रकारार्थः । नरवचनमब्राह्मणा-
र्यम् । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२७७

(२) अपराधविशेषेण दण्डविशेषमाह— बन्दि-
ग्राहंस्तथेति । बन्दिग्राहादीन् बलावष्टम्भेन घातकांश्च
नरान् शूलनारोपयेत् । अयं च वधप्रकारविशेषोपदेशः ।
'कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् । हस्त्यश्वरथहर्तृश्च
हन्यादेवाविचारयन् ॥' इति मनुस्मरणात् (मस्मृ.
१।२८०) । मिता.

(३) शूलारोपणं च वधपर्यन्तम् । प्रसह्य घातिनो
जनसमक्षं मनुष्यादिहन्तारः । अप.

(४) मिताटीका— ननु 'शूलनारोपयेन्नरान्' इत्य-
नेन बन्दिग्राहादीनां शूलारोपणमात्रं प्रतीयते न वधः ।
ततश्च 'श्रोत्रियायोपकल्पयेत्' इत्यत्र यथा विधिसिद्धि-
स्तथा शूलारोपणमात्रेणैव विधिसिद्धेस्तन्मात्रमेव कृत्वा
पुनरुत्तरणीया न वध्याः स्युरित्यत आह । अयं च
वधप्रकार इति । अग्न्यगारेति मनुवचनेनैवैतेषामपि
वधसिद्धौ केन प्रकारेण वध इत्याकाङ्क्षायां शूलारोपण-
रूपवधप्रकारविशेषोऽस्मिन् वचने विधीयत इत्यर्थः ।

* सुबो.

(५) बन्दीकृत्य धनवतः पुरुषान् गृह्णन्ति तान्
बन्दिग्राहान् अश्वगजान्यतरहारिणो बलान्मनुष्यघातिनश्च
चौरान् नरान् शूले वधार्थमारोपयेत् । वीमि.

उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसदंशहीनकौ ।

कार्यौ द्वितीयापराधे करपादैकहीनकौ ॥

* बाल. सुबोवत् ।

शेषं मितावत्; व्यड. १२७ व्यप्रवत्; व्यम. १०३ मितावत्;
विता. ७५१ आ (अ) शेषं मितावत्; सेतु. २३७;
समु. १४६ मितावत्, स्मृत्यन्तरम्; विव्य. ५२ रिणः
(रकः) घातिन (ग्राहिण) .

(२) यास्मृ. २।२७४; अपु. २५८।६२-३; विश्व.
२।२७८ य (येऽ) ; मिता.; अप.; व्यक. ११४ सदंश
(नासावि); विर. ३२१ दंशहीन (दंशभेद) या (येऽ);
रत्न. १२४; विचि. १३७ दंशहीन (दंशभेद) पू.; दधि.
१३३ विश्ववत्; नृप्र. २६३ दैक (देन); सवि. ४६१
पू.; वीमि.; व्यप्र. ३८८; व्यड. १२६; व्यम. १०२
पादैक (पादवि); विता. ७८२; समु. १५० .

(१) द्रव्यादिविशेषोपेक्षया तु— 'उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ
करसदंशहीनकौ । कार्यौ द्वितीयेऽपराधे करपादैक-
हीनकौ ॥' उत्क्षेपकः पटाक्षेपकः । ग्रन्थिभेदको ग्रन्थि-
भेत्ता । ताबुभावपि करसदंशहीनौ प्रथमेऽपराधे कार्यौ ।
करसदंशोऽङ्गुलयः, तद्दीनौ । यद्वा करसंपुटः कर-
सदंशः, तद्दीनौ । अन्यतरहस्तच्छेदनमित्यर्थः । द्वितीये-
ऽपराधे त्वेको हस्तः पादश्च । स्पष्टमन्यत् ।

विश्व. २।२७८

(२) बन्धाद्युत्क्षिपति अपहरतीत्युत्क्षेपकः । बन्धादि-
बद्धं स्वर्णादिकं विस्रस्योत्कृत्य वा योऽपहरति असौ
ग्रन्थिभेदः । तौ यथाक्रमं करेण सदंशसदृशेन तर्जण्या-
ङ्गुष्ठेन च हीनौ कार्यौ । द्वितीयापराधे पुनः, करश्च
पादश्च करपादं तच्च तदेकं च करपादैकं तद्दीनं ययोस्तौ
करपादैकहीनकौ कार्यौ । उत्क्षेपकग्रन्थिभेदकयोरेकमेकं
करं पादं च छिन्द्यादित्यर्थः । एतदभ्युत्तमसाहसप्राप्ति-
योग्यद्रव्यविषयम् । 'तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तम-
साहसः' इति नारदवचनात् । तृतीयापराधे तु वध
एव । तथा च मनुः— 'अङ्गुलीग्रन्थिभेदस्य छेदे-
त्यथमे ग्रहे । द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥'
इति (मस्मृ. १।२७७) । * मिता.

(३) योऽङ्गुष्ठाङ्गुलिभ्यां परस्वमुत्क्षिपति अपहरति,
यश्च ग्रन्थिभिनत्ति, तौ करसदंशेनाङ्गुष्ठाङ्गुलिभ्याम्-
पराधहेतुभूताभ्यां हीनौ कार्यौ । द्वितीयेऽपराधे एकैकं
करेणैकेन च पादेन हीनौ कार्यौ । अप.

(४) करसदंशः कराङ्गुष्ठप्रदेशिन्यौ, करसदंशस्य
भेदो ययोस्तौ तथेति व्यधिकरणेऽपि बहुव्रीहिः ।

विर. ३२१

(५) यश्चौरार्थं परपशून्भ्याजयति बन्धनविमोक्षं
वा तेषां करोति तस्याङ्गुष्ठतर्जन्यौ छेदे इत्यर्थः ।

विचि. १३७

(६) अत्र मिताक्षराकारः— एतद्वचनमुत्तमसाहस-
प्राप्तियोग्यापहारविषयम् । 'तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड
उत्तमसाहसः' इति नारदवचनादित्याह । तच्चिन्त्यं,
'तन्मूल्याद्द्विगुणो दण्ड' इत्यादौ साहसप्रकरणीये वाक्ये
प्रथमसाहसादिसामान्यदण्डविधानमपहारव्यतिरिक्तविषय-

* वीमि. मितावत् ।

मिति खोक्तिविरोधात् ।

विमांसविक्रयादावसाहसेऽपि याज्ञवल्क्येन करादि-
च्छेदस्य विधानात् । नारदवचनस्य विषयान्तरेषु
चरितार्थत्वात् तस्य सामान्यमुखप्रवृत्तत्वेन दण्डविशेषा-
नवरुद्धविषयकत्वाच्च ।

तथा हि तदङ्गं साहसकरणभूतमङ्गमिति सर्वेषु निव-
न्धेषु व्याख्यातम् । न चोत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ संदंशमात्र-
साध्यौ न वा पादस्य तत्रोपयोगो दण्डसमुच्चयश्च वचना-
भावेऽनुबन्धगौरवाद्यभावे च दुर्वच एव प्रमाणाभावात् ।
संदंशादिच्छेदविधेरुपस्थितेन ग्रन्थिभेदोत्क्षेपलक्षणेन निमि-
त्तेनान्वये निमित्तान्तरानपेक्षितत्वाच्च । दवि. १३३-४

(७) अङ्गुष्ठतर्जन्योर्ग्रन्थिमोचने साधकतमत्वेनात्र
संदंशशब्देन तयोर्ग्रहणम् । व्यप्र. ३८८

स्तेये दण्डविक्रयान्नो न्यायः, स्तेयप्रकाराश्च

क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे सारतो दमः ।

देशकालवयःशक्ति संचिन्त्यं दण्डकर्मणि ॥

(१) यश्चायमुक्तः शारीरो दण्डः, यश्च स्मृत्यन्त-
रोक्तो धनदण्डः, तत्र सर्वत्र साधारणोऽयं न्यायबीज-
संक्षेपः— क्षुद्रमध्येति । अन्यत्रापीति शेषः ।

विश्व. २।२७९

(२) जातिद्रव्यपरिमाणतो मूल्याद्यनुसारतो दण्डः
कल्पनीय इति जातिद्रव्यपरिमाणपरिग्रहविनियोगवयः-
शक्तिगुणदेशकालादीनां दण्डगुरुत्वभावकारणानामान-
न्यात्प्रतिद्रव्यं वक्तुमशक्तेः सामान्येन दण्डकल्पनोपाय-
माह— क्षुद्रमध्येति । क्षुद्राणां मध्यमानामुत्तमानां च
द्रव्याणां हरणे सारतो मूल्याद्यनुसारतो दण्डः कल्पनीयः ।
क्षुद्रादिद्रव्यस्वरूपं च नारदेनोक्तम्— ‘मृद्गाण्डासन-
स्रट्वास्थिदारुचर्मतृणादि वत् । शमीधान्यं कृताब्जं च
क्षुद्रं द्रव्यमुदाहृतम् ॥ वासः कौशेयवर्जं च गोवर्जं पशव-
स्तथा । हिरण्यवर्जं लोहं च मध्यं व्रीहियवा अपि ॥
हिरण्यरत्नकौशेयस्त्रीपुङ्गोगजवाजिनः । देवब्राह्मणराज्ञां

(१) यास्मृ. २।२७५; विश्व. २।२७९; मिता.; अप.;
व्यक. ११५ उत्तरार्धे (देश कालं वयः शक्ति संचिन्त्यं दण्ड-
कर्मणि); विर. ३२८ व्यकवत्; स्मृचि. २५ देशक्ति
(देशं कालं वयः शक्तिः); दवि. १४२ व्यकवत्; बीमि.;
विता. ७८४ कि (क्तिः) न्यं (न्य); ससु. १५१.

च द्रव्यं विज्ञेयमुत्तमम् ॥’ त्रिप्रकारेष्वपि द्रव्येष्वौत्सर्गिकः
प्रथममध्यमोत्तमसाहसरूपो दण्डनियमस्तेनैव दर्शितः—
‘साहसेषु य एवोक्तस्त्रिषु दण्डो मनीषिभिः । स एव
दण्डः स्तेयेऽपि द्रव्येषु त्रिष्वनुक्रमात् ॥’ इति ।
मृन्मयेषु मणिकमल्लिकादिषु गोवाजिव्यतिरिक्तेषु च
महिषमेषादिपशुषु ब्राह्मणसंवन्धिषु च कनकधान्यादिषु
तरतमभावोऽस्तीति उच्चावचदण्डविशेषाकाङ्क्षायां
मूल्याद्यनुसारेण दण्डः कल्पनीयः ।

तत्र च दण्डकर्मणि दण्डकल्पनायां तद्धेतुभूतं देश-
कालवयःशक्तीति सम्यक् चिन्तनीयम् । एतच्च जाति-
द्रव्यपरिमाणपरिग्रहादीनामुपलक्षणम् । तथाहि— ‘अष्टा-
पाद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य । द्विगुणोत्तराणीतरेषां प्रति-
वर्णम् । विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वम् ।’ इति (गौष.
१।१२-१४) । अयमर्थः— किल्बिषशब्देनात्र दण्डो
लक्ष्यते । यस्मिन्नपहारे यो दण्ड उक्तः स विद्वच्छूद्र-
कर्तृकेऽपहारेऽष्टगुण आपादनीयः । इतरेषां पुनर्विद्व-
क्षत्रब्राह्मणादीनां विदुषां स्तेये द्विगुणोत्तराणि किल्बि-
षाणि षोडशद्वान्त्रिंशच्चतुःषष्टिगुणा दण्डा आपादनीयाः ।
यस्माद्विद्वच्छूद्रादिकर्तृकेष्वपहारेषु दण्डभूयस्त्वम् । मनु-
नाऽप्ययमेवार्थो दर्शितः— ‘अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य
स्तेये भवति किल्बिषम् । षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिं-
शच्छत्रियस्य तु ॥ ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वाऽपि
शतं भवेत् । द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तदोषगुणवेदिनः ॥’
इति (मस्मृ. ८।३३७-८) । तथा परिमाणकृतमपि
दण्डगुरुत्वं दृश्यते । यथाह मनुः— ‘घान्यं दशम्यः
कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः । शेषेष्वेकादशगुणं
दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥’ इति (मस्मृ. ८।३२०) ।
विंशतिद्रोणकः कुम्भः । हर्तुर्हि यमाणस्वामिगुणापेक्षया
सुभिक्षदुर्भिक्षकालाद्यपेक्षया ताडनाङ्गच्छेदनवधरूपा
दण्डा योज्याः । तथा संख्याविशेषादपि दण्डविशेषो
रत्नादिषु— ‘सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ।
रत्नानां चैव सर्वेषां शतादभ्यधिके वधः ॥ पञ्चाशत-
स्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते । शेषेष्वेकादशगुणं
मूल्यादण्डं प्रकल्पयेत् ॥’ (मस्मृ. ८।३२१-२) ।
तथा द्रव्यविशेषादपि ‘पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां वा
विशेषतः । रत्नानां चैव सर्वेषां हरणे वधमर्हति ॥’

(मस्मृ. ८।३२३) । अकुलीनानां तु दण्डान्तरम् — 'पुरुषं हरतो दण्डः प्रोक्त उत्तमसाहसः । स्येपराधे तु सर्वस्वं कन्यां तु हरतो वधः ॥' इति । क्षुद्रद्रव्याणां तु मापतो न्यूनमूल्यानां मूल्यात्पञ्चगुणो दमः । 'काष्ठभाण्ड-
नृणादीनां मृन्मयानां तथैव च । वेणुवैणवभाण्डानां तथा स्नाय्वस्थिचर्मणाम् ॥ शाकानामार्द्रमूल्यानां हरणे फलमूलयोः । गोरसेक्षुविकाराणां तथा लवणतैलयोः ॥ पक्वानानां कृतानानां मत्स्यानामामिपस्य च । सर्वेषां मूल्यभूतानां मूल्यात्पञ्चगुणो दमः ॥' इति नारदस्मरणात् ।

यः पुनः प्रथमसाहसः क्षुद्रद्रव्येषु शतावरः पञ्चशत-
पर्यन्तोऽसौ माषमूल्ये तदधिकमूल्ये वा यथायोग्यं
व्यवस्थापनीयः । यत् पुनर्मानवं क्षुद्रद्रव्यगोचरवचनं
'तन्मूल्याद्द्विगुणो दम' इति तदल्पप्रयोजनशरावादि-
विषयम् । तथाऽपराधगुरुत्वादिपि दण्डगुरुत्वम् । यथा—
'संधि भित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तत्कराः । तेषां
छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत् ॥' इत्येवं
सर्वेषामानन्त्यात्प्रतिद्रव्यं वक्तुमशक्तेर्जातिपरिमाणादिभिः
कारणैर्दण्डगुरुत्वभूतः कल्पनीयः । पथिकादीनां
पुनरल्पापराधे न दण्डः । यथाह मनुः— 'द्विजोऽध्वगः
क्षीणवृत्तिर्द्विविधो द्वे च मूलके । आददानः परश्चेन्नत्र
दण्डं दातुमर्हति ॥' (मस्मृ. ८।३४१) । तथा —
'चणकत्रीहिगोधूमयवानां मुद्रमाषयोः । अनिषिद्धैर्ब्रह्मी-
तव्यो मुष्टिरेकः पथि स्थितैः ॥ तथैव सप्तमे भक्तं भक्तानि
षडनश्नता । अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥'
इति (मस्मृ. ११।१६) । X मिता.

(३) क्षुद्रद्रव्याणि मृद्भाण्डादीनि, मध्यमानि वस्त्रा-
दीनि, महाद्रव्याणि हिरण्यादीनि, तेषां सारतो यथासारं
दमो धनापहाराङ्कनगात्रच्छेदवधात्मा चौराणां कल्प्यः ।
देशश्च कालश्च वयश्च शक्तिश्च देशकालवयःशक्ति ।
एतत्सर्वं दण्डे कार्यं ब्राह्मणैः सह नृपेण चिन्तनीयम् ।

* अप.

(४) मिताटीका— परिग्रहविनियोगेति । 'ब्राह्मण-
परिग्रहीतायाः गोहर्षणेऽधिको दण्डः' इति । ब्राह्मणपरि-
ग्रहो अधिकदण्डकारणं तथा सा गौर्दोहाय, यद्यभिहोत्रे

X नीमि. मितावद्भावः । * मितावद्भावः ।

विनियुक्ता तस्या हरणे ततोऽप्यधिको दण्ड इति विनि-
योगोऽप्यधिकदण्डकारणम् । एवंविधपरिग्रहविनियोग-
योरभावो न्यूनदण्डकारणं इत्यवबोद्धव्यम् । 'साहसेषु
य एवोक्त' इत्यनेन नारदवचनेन क्षुद्रमध्यमोत्तमद्रव्या-
पहारेष्वविशेषेण यथाक्रमं प्रथममध्यमोत्तमसाहसदण्ड-
प्राप्तौ विशेषप्रापकं मूलवचनं पूर्वार्धं तात्पर्यतो व्याचष्टे ।
मृन्मयेषु मणिमल्लिकादिष्विति । अत्र मृन्मयेष्वितीति
क्षुद्रस्य द्रव्यस्योपलक्षकम् । 'गोव्यतिरिक्तेष्विति मध्य-
मस्य, 'ब्राह्मणसंबन्धिष्विति उत्तमस्येति विवेकः । मूल्या-
ग्रनुसारेण दण्डः कल्पनीय इत्युक्तम् । तत्रादिशब्द-
वाच्यान् प्रदर्शयिषुर्मूलवचनस्योत्तरार्धे व्याचष्टे । तत्र
दण्डकल्पनायामिति ।

नन्वत्र वचन उपात्ता देशकालवयःशक्तय एव किं
दण्डकल्पनायां हेतव इत्याशङ्क्य नैवमपि तु हेत्वन्तरा-
प्यन्येन देशादिकेनोपलक्ष्यन्ते इत्याह । एतच्च जाति-
द्रव्येति । जात्यपेक्षया गुणापेक्षया च दण्डविधिं दर्शयति ।
तथा ह्यष्टापाद्यमिति । विट्क्षत्रियाब्राह्मणादीनामिति ।
अत्र 'विदुषामित्येतत् विट्क्षत्रियादिविशेषणम् । शूद्र-
त्वद्विजात्यपेक्षया विद्वत्स्वरूपगुणापेक्षया च दण्डविधान-
मिति जातिगुणापेक्षा ।

ननु 'हरतोऽप्यधिकं वध' इति मनुना वधदण्डोऽ-
भिहितः । वधशब्देन च ताडनादिप्राणवियोजनान्ता
व्यापाराः कथ्यन्ते । ते सर्वत्र समुचिता एव प्रयोक्तव्या
इत्यत आह । हर्तुर्निहियमाणेति । हर्तुर्गुणापेक्षया न्हिय-
माणस्य द्रव्यस्वामिनो गुणापेक्षया चेत्यर्थः ।

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिरिति । क्षीणवृत्तिः क्षीणपाथेयः ।
अध्वगः पथिकः । द्विजो द्विजातिः । अध्वगक्षीण-
वृत्तिपदे द्विजविशेषणे । हीनकर्मण इति । हीनकर्मणोऽ-
त्याचाराद्धर्तव्यम् । न पुनरुत्कृष्टादित्यर्थः । * सुबो.

चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः ।

सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥

* बाल. सुबोवद्भावः ।

(१) यास्मृ. २।२७०; अपु. २।५।५९; विष्णु.
२।२७४; मिता.; दा. २२४ पू.; अप. २।२७० :
२।२७४ पू.; बृह. १।१६; विर. ३३१; पमा. ४४५ उक्त.;
रत्न. १२५ पू.; विचि. १४३; बृह. ५०७ द्विप्र (दि प्र);

महापराधिनमपि ब्राह्मणं नैव घातयेत् ॥

(१) लोप्रादिभिश्चौर्ये स्पष्टीकृते— 'चोरं प्रदाप्या-
प्रहृतं घातयेद् विविधैर्वधैः ।' स्मृत्यन्तरोक्तदण्डैः शारी-
रैश्च नेत्राद्युद्धारलक्षणैः प्राणहरणशूलारोमणादिभिश्चेत्य-
भिप्रायः ।

एवमब्राह्मणम् । ब्राह्मणं तु कथं कुर्यात्— 'सचिह्नं
ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद् विप्रवासयेत् ।' सचिह्नं श्रपदा-
द्यङ्कितम् । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२७४

(२) चौरै दण्डमाह— चौरमिति । यस्तु प्रागुक्त-
परीक्षया तन्निरपेक्षं वा निश्चितचौर्यस्तं स्वामिने अपहृतं
धनं स्वरूपेण मृत्युकल्पनया वा दापयित्वा विविधै-
र्वधैर्घातयेत् । एतच्चोत्तमसाहसदण्डप्राप्तियोग्योत्तम-
द्रव्यविषयम् । न पुनः पुष्पवस्त्रादिक्षुद्रमध्यमद्रव्यापहार-
विषयम् । 'साहसेषु य एवोक्तस्त्रिषु दण्डो मनीषिमिः ।
स एव दण्डः स्तेयेऽपि द्रव्येषु त्रिष्वनुक्रमात् ॥' इति
नारदवचनेन वधरूपस्योत्तमसाहसस्योत्तमद्रव्यविषये
व्यवस्थापितत्वात् । यत्पुनर्वृद्धमनुवचनम्— 'अन्यायोपात्त-
वित्तत्वाद्धनमेषां मलात्मकम् । अतस्तान् घातयेद्राजा
नार्थदण्डेन दण्डयेत् ॥' इति, तदपि महापराधविषयम् ।

चौरविशेषेऽपवादमाह— सचिह्नमिति । ब्राह्मणं
पुनश्चौरं महत्यप्यपराधे न घातयेदपि तु ललाटेऽङ्क-
यित्वा स्वदेशान्निष्कासयेत् । अङ्कनं च श्रपदाकारं
कार्यम् । तथा च मनुः— 'गुह्यतल्पे भगः कार्यः
सुरापाने सुराध्वजः । स्तेये च श्रपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः
पुमान् ॥' इति (मस्मृ. १।२३७) । एतच्च दण्डोत्तर-
कालं प्रायश्चित्तमचिकीर्षतो द्रष्टव्यम् । यथाह मनुः—

नृप्र. २६१ पू., २६२ उक्त.; सवि. ४६७ प्रवा (निवा)
उक्त., मनुः.; वीमि.; व्यप्र. ३९०; व्यउ. १२७ पू.,
१२८ उक्त.; व्यम. १०२; विता. ७९० पू., ७९२ उक्त.;
बाल. २।८१ उक्त.; सेतु. २४४; समु. १५० पू., १५७
उक्त.

(३) पमा. ४४५. [(इदमुत्तरार्धं मुद्रितयाज्ञवल्क्यरमृति-
पुस्तकेषु नोपलभ्यते । मत्स्यपुराणविज्ञानविशिष्टपुस्तके तु वर्तते
एव । व्याख्यातं चैतत् विज्ञानेश्वरेण । तस्य नासंमतमिति
प्रतिभाति । मुद्रितमिताक्षरायां पुनर्नोपलभ्यते) —इयं टिप्पणी
पद्मसूत्राधवे ४४५ पृष्ठे द्रष्टव्या] .

'प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्वे वर्णा यथोदितम् ।
नाङ्क्या राजा ललाटे तु दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥' इति
(मस्मृ. १।२४०) । *मिता.

(३) इदं मध्यविधब्राह्मणपरम् । विचि. १४३
चौरान्वेषणम्

ग्राहकैर्गृह्यते चौरौ लोप्रेणाथ पदेन वा ।

पूर्वकर्मापराधी च तथा चाशुद्धवासकः ॥

(१) यदि पुनः प्रत्येकं प्रतिग्रहादिना संभूयार्त्विज्या-
दिना वा कृच्छ्रार्जितं द्रव्यं कश्चिदपहृत्य गच्छेत् स
कथं ज्ञातव्यः । ज्ञातस्य वा किं तस्य कर्तव्यमित्यपेक्षिते
स्तेनस्वरूपनिरूपणाय— ग्राहकैरिति । अपहृतद्रव्य-
स्वामिभिश्चोरत्वप्रतिपादनेन ग्राहकैर्गृह्यते चोरः । अथवा
लोप्रेण अपहृतद्रव्येण, अपहरणदेशाद्वा निपुणैरुनीय-
मानेन पदेन, यद्वा पूर्वकर्माणां संभावितचौर्यापराधात्,
तथाऽन्यैरपि स्मृत्यन्तरोक्तचोरत्वप्रतिपादकैर्वक्ष्यमाणैर-
शुद्धवासकादिभिः । अशुद्धो वासो यस्यासौ अशुद्धवासकः
कुतस्तस्योऽयमित्यविज्ञायमानो लुब्धवेश्यादिगृहनिवासी ।

विश्व. २।२७०

(२) तत्र तस्करग्रहणपूर्वकत्वाद्दण्डस्य ग्राहणस्य
ज्ञानपूर्वकत्वात् ज्ञानोपायं तावदाह— ग्राहकैरिति ।
यश्चौरोऽयमिति जनैर्विख्याप्यते असौ ग्राहकै राजपुरुषैः
स्थानपालप्रभृतिभिर्ग्रहीतव्यः । लोप्रेणापहृतभाजनादिना
वा चौर्यचिह्नेन नाशदेशादारभ्य चौर्यपदानुसारेण वा
ग्राह्यः । यश्च पूर्वकर्मापराधी प्राक् प्रख्यातचौर्यः ।
अशुद्धोऽप्रज्ञातो वासः स्थानं यस्यासावशुद्धवासकः
सोऽपि ग्राह्यः । +मिता.

* अप., वीमि., व्यप्र., व्यम., विता. मितान्त ।

+ व्यप्र., व्यउ., विता. मितान्त ।

(१) यास्मृ. २।२६६; अपु. २५८।५५ च तथा चा
(वा तथैवा); विश्व. २।२७० धी च तथा चा (धाद्वा
तथैवा); मिता.; अप.; व्यक. ११६ धी च तथा चा (धात्
तथा वा); स्मृच. ३१८ पू.; विर. ३३४; पमा. ४३६;
रत्न. १२५; स्मृचि. २५ तथा चा (यथा वा); नृप्र. २६१
(=) धी च (धाच्च); सवि. ४५९ धी (धे); वीमि. तथा चा
(तथैवा); व्यप्र. ३८५; व्यउ. १२३; विता. ७९०. चा
(वा); राकौ. ४८२ न वा (न च); सेतु. २४६ वीमिक्त ;
समु. १४९ वीमिक्त .

(३) चौरस्य दण्डनार्थं परिज्ञानोपायमाह —
ग्राहकैरिति । ग्राहकैश्चौरग्रहणाधिकृतैः लोप्रादिना चौरा
गृह्यते अवगम्यते । लोपत्रमनहनद्रव्यैकदेशः । पांसुकर्ममा-
दिवर्ती पादाङ्कः पदे तस्य पुरुषस्य पादेन संमितम् ।
यस्य गृहं प्रति नष्टदेशादारम्भ पदपरम्परा जाता सोऽपि
चौरः । अपहृतस्य गवादेः पदपरम्परा यस्य गृहं प्रति
प्रवृत्ता सोऽपि चौरः । एतच्च चौर्याव्यभिचारिधर्म-
जातस्य प्रदर्शनार्थम् । तेन यद्यद्यवशिष्टं तण्डुलादि
परस्परगृहे दृश्यते तस्यैकप्रकारकत्वं परस्परचौरत्वं
श्रूयते । यश्च पूर्वं पूर्वं कृतेन चौर्यकर्मणाऽपराधीति
ज्ञातः, यश्चाशुद्धवासको, न विद्यते शुद्धः समीचीनो
वासो निवासस्थानं यस्य सोऽशुद्धवासकः, सोऽपि
चौरः । अप.

(४) अशुद्धवासकः अपरिचितदेशवासः ।

+ विर. ३३५

(५) यश्चानिश्चितवासस्थलः सोऽपि गृह्यते चौर्य-
कारित्वेन शङ्क्यते । + वीमि.

अन्येऽपि शङ्क्या ग्राह्या जातिनामादिनिह्वैः ।

द्यूतस्त्रीपानसक्ताश्च शुष्कभिन्नमुखस्वराः ॥

परद्रव्यगृहाणां च पृच्छका गूढचारिणः ।

निराया व्ययवन्तश्च विनष्टद्रव्यविक्रयाः ॥

+ शेषं मितवत् ।

(१) यास्य. २।२६७; अपु. २५८।५६; विश्व. २।२७१; मिता.; अप. जातिनामा (नामजात्या); व्यक. ११६ शुष्कभिन्न (भिन्नशुष्क) शेषं अपवत्; विर. ३३४ व्यकवत्; पमा. ४३६; रत्न. १२५; स्मृचि. २५; नृप्र. २६१ (=); सवि. ४५९ न्ये (न्यो) ह्या (ह्यः); वीमि. अपवत्; व्यप्र. ३८५; व्यउ. १२३; विता. ७९० शङ्क्या (शङ्किता); सेतु. २४६ व्यकवत्; समु. १४९.

(२) यास्य. २।२६८; अपु. २५८।५७; विश्व. २।२७२ णां (णा); मिता. (क) पृ (प्र); अप.; व्यक. ११६; विर. ३३५ पृ (प्र) या व्य (यव्य); पमा. ४३६ पृ (प्र); रत्न. १२५ या व्य (यव्य); स्मृचि. २५; नृप्र. २६१ णां च (णां वा) पृ (प्र); सवि. ४५९ णः (मिः); वीमि.; व्यप्र. ३८५ रत्नवत्; व्यउ. १२३; विता. ७९० रत्नवत्; सेतु. २४६ रत्नवत्; समु. १४९ विरवत्.

(१) लोप्रादिवच्च— अन्येऽपि शङ्क्या ग्राह्या इति । प्रमाणान्तरमूलत्वादस्याः स्मृतेस्तदनुसारेणैकैर्विविधैः व्याख्या कार्या । पदार्थास्तु निगदोक्ता एकैव विश्व. २।२७१-७२

(२) न केवलं पूर्वोक्ता ग्राह्याः किन्तु अन्येऽपि वक्ष्यमाणैर्लिङ्गैः शङ्क्या ग्राह्याः । जातिनिह्वेन माहं शूद्र इत्येवंरूपेण, नामनिह्वेन नाहं लपित्थ इत्येवंरूपेण, आदिग्रहणात्स्वदेशग्रामकुलाद्यपलापेन च लक्षिता ग्राह्याः । यत्राप्याङ्गनामद्यपानादिव्यमनेष्वतिप्रसक्तास्तथा 'कुत-
स्योऽसि त्वमिति चौरग्राहिभिः पृष्टो यदि शुष्कमुखो भिन्नस्वरो वा भवति तर्ह्यसावापि ग्राह्यः । बहुवचनात् स्विन्नललाटादीनां ग्रहणम् ।

तथा ये निष्कारणं कियदस्य धनं किं वाऽस्यै गृहमिति पृच्छन्ति, ये च वेपान्तरधारणेनात्मानं गूहयित्वा चरन्ति, ये च आयाभावेऽपि बहुव्ययकारिणः, ये वा विनष्टद्रव्याणां जीर्णवन्त्रभिन्नभाजनादीनामविज्ञात-
स्वामिकानां विक्रायकास्ते सर्वे चौरसंभावनया ग्राह्याः ।

एवं नानाविधचौर्यलिङ्गान् पुरुषान् गृहीत्वा एते चौराः किं वा साधव इति सम्यक् परीक्षित न पुनर्लिङ्ग-
दर्शनमात्रेण चौर्यनिर्णयं कुर्यात् । अचौरस्यापि लोप्रादि-
चौर्यलिङ्गसंबन्धसंभवात् । यथाह नारदः—'अन्यहेस्ता-
त्परिभ्रष्टमकामादुत्थितं भुवि । चौरिण वा परिक्षितं लोपत्रं यत्नात्परीक्षयेत् ॥' तथा— 'असत्याः सत्य-
संकाशाः सत्याश्चासत्यसंनिभाः । दृश्यन्ते विविधा भावास्तस्मादुक्तं परीक्षणम् ॥' * मिता.

(३) विनष्टद्रव्यविक्रयाः हृतद्रव्यैकदेशभूतद्रव्य-
विक्रयकर्तारः । विर. ३३५

गृहीतः शङ्क्या चौर्ये नात्मानं चेद्विशोधयेत् ।

दापयित्वा हृतं द्रव्यं चौरदण्डेन दण्डयेत् ॥

* अप., वीमि., व्यप्र., व्यउ., विता. मितवत् ।

(१) यास्य. २।२६९; अपु. २५८।५८; विश्व. २।२७३; मिता. हृतं (रतं); अप. ये नात्मानं चेदि (ये आत्मानं चेन्न); व्यक. ११७ नात्मानं चेदि (आत्मानं चेन्न); विर. ३३८ ये नात्मानं चेदि (रो यथात्मानं न) द्रव्यं (दण्डं); रत्न. १२५; दवि. ८४ चौर्ये चेदि

(१) उक्तन्यायानुसारेण च— 'गृहीतः शङ्कया चौर्ये नात्मानं चेद्विशोधयेत् । दापयित्वा हृतं द्रव्यं चौरदण्डेन दण्डयेत् ॥' स्मृत्यन्तरानुसारेण यथाहै दण्डकल्पना । विश्व. २।२७३

(२) एवं चौर्यशङ्कया गृहीतेनात्मा संशोधनीय इत्याह— गृहीतः शङ्कयेति । यदि चौर्यशङ्कया गृहीतस्तन्निस्तरणार्थमात्मानं न शोधयति तर्हि वक्ष्यमाण-धनदापनवधादिदण्डभाग् भवेत् । अतो मानुषेण तदभावे दिव्येन वा आत्मा शोधनीयः । ननु नाऽहं चौर इति मिथ्योत्तरे कथं प्रमाणं संभवति । तस्याभाव-रूपत्वात् । उच्यते । दिव्यस्य तावद्भावाभावगोचरत्वं 'रुच्या वाऽन्यतरः कुर्यात्' इत्यत्र प्रतिपादितम् । मानुषं पुनर्यद्यपि साक्षाच्छुद्धमिथ्योत्तरे न संभवति तथापि कारणेन संसृष्टे भावरूपमिथ्याकारणसाधनमुखेनाभावमपि गोचरयत्येव । यथा नाशापहारकाले अहं देशान्तरस्थ इत्यभियुक्तैर्भाविते चौर्याभावस्याप्यर्थात्सिद्धेः शुद्धिर्भव-त्येव । मिता.

(३) शङ्कया संदेहेन चौर्यविषयेण गृहीतोऽभियुक्तो यद्यात्मानं दिव्येन मानुषेण वा प्रमाणेन न शोधयेद् व्यपेतचौर्यशङ्कं न कुर्यात्, तदाऽपहृतं द्रव्यं दापयित्वा वक्ष्यमाणेन चौरदण्डेन दण्डनीयः । न चात्र वाच्यं चौरत्वेन आशङ्कितस्य प्रमाणानर्हता मिथ्यावादित्वा-दिति । यतो न मिथ्यावादित्वमात्रं साधनानर्हत्वे प्रयोज-कम् । किन्तु प्रथमवादिनोऽवष्टम्भाभियुक्तत्वे सति । अतोऽत्र युक्तं यच्छङ्कितः प्रमाणं कुर्यादिति । न च चौर्याद्यभावे प्रमाणाभावः । तथा हि सति 'महाभियोगे-ष्वेतानि' 'रुच्या वाऽन्यतरः कुर्यात्' 'राजभिः शङ्कि-तानां च' इत्यादिवचनानि नैवाऽऽरभ्येरन् । न च वाच्यं मानुषप्रमाणानामभावो न साध्य इति । यस्माच्चौर्याद्य-भावाव्यभिचारिणं भावविशेषं साधयतां सिध्यत्येवाभाव-साधकत्वमपि । यथा यत्र कालेऽस्य द्रव्यं केनाप्यपहृतं तदा ततोऽपहारप्रदेशादतिदूरेऽहं व्यवस्थितो महता व्याध्यादिना क्लान्त इत्यादि भावयन् साधयत्येव (यस्तु स्वमात्मानं न); नृप्र. २६१ द्रव्यं (दण्डं); बीमि. येँ चेद्वि (र आत्मानं चेन्न); विता. ७९२; राकौ. ४८२; समु. १५०.

आत्मनश्चौर्याद्यभावमिति । अत एव शङ्कः— 'असाक्षि-प्रणिहिते दिव्यम्' इत्युक्त्वा 'अथवा मित्रैः सज्जनै-रात्मानं ना शोधयेदेव । स चेद्दण्डोऽर्थिनां चार्थं दापयेत् ।' इत्युक्तवान् । अप.

(४) तत्र न चौरत्वातिदेशः, अपि तु संसर्गादि-दर्शनेन चौरतया अभियुक्तस्य विचारवैमुख्यं चौरतामेव निश्चाययतीति युक्तं ततो हृतदापनम् । दवि. ८४

(५) अथशब्देन लोपत्रलाभानन्तर्यार्थकेन तदसत्त्व एव पदचिह्नाद्यनुसरणमिति सूचयति । चकाराच्चौरप्रीतं तथाशब्देन निश्चितकुलादिकं च समुच्चिनोति । एवकारः पूर्वार्धेऽन्वितोऽन्यकोटिव्यवच्छेदार्थकतया निश्चयबोध-नार्थः । अपिकारेण चकारैश्च चौरभक्ताश्रयदानादि-कारिणो नानास्मृत्युक्तान् बहून् समुच्चिनोति । *वीमि. स्तेनातिदेशः

भक्तावकाशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान् ।

दत्त्वा चौरस्य वा हन्तुर्जानतो दम उत्तमः ॥

(१) चौरोऽयं साहसिको वा प्रसह्य हन्तीत्येवं जानतश्चौरसाहसिकयोर्भक्तादिदानं कुर्वतो दण्ड उत्तम-साहसः । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२८०

(२) अचौरस्यापि चौरुपकारिणो दण्डमाह—भक्तेति । भक्तमशनम् । अवकाशो निवासस्थानम् । अग्निश्चौरस्य शीतापनोदाद्यर्थः । उदकं तृषितस्य । मन्त्रः चौर्यप्रका-रोपदेशः । उपकरणं चौर्यसाधनम् । व्ययः अपहाराय देशान्तरं गच्छतः पाथेयम् । एतानि चौरस्य हन्तुर्वा दुष्टत्वं जानन्नपि यः प्रयच्छति तस्योत्तमसाहसो दण्डः ।

* 'ग्राहकैर्गृह्यते' इत्यारभ्य प्रकृतश्लोकपर्यन्तं व्याख्यान-मिदम् ।

(१) यास्मृ. २।२७६; अपु. २५८।६३-४ वा हन्तुर्जा (हन्तुर्वा जा); विश्व. २।२८० वा हन्तुर्जा (हन्तुर्वा जा) दम (दण्ड); मिता.; अप. व्ययान् (व्ययम्) वा हन्तुर्जा (हन्तुर्वा जा); व्यक. ११७ दत्त्वा (कृत्वा) शेषं विश्ववत्; विर. ३३९ व्यकवत्; पमा. ४४६ मन्त्रो (शस्त्रो); विचि. १४५ व्यकवत्; दवि. ८१ विश्ववत्; सवि. ४६४ वा (चा); बीमि. निश्चवत्; व्यप्र. ३९१; व्यउ. १२९ भक्ता (भुक्ता) रण (रणे); विता. ७९४ हन्तु (हन्तु); सेतु. २४८ दत्त्वा (कृत्वा) दम (दण्ड) शेषं अपुवत्; समु. १५२ विश्ववत्.

चौरोपेक्षिणामपि दोषः— 'शक्ताश्च य उपेक्षन्ते तेऽपि तद्दोषभागिनः ।' इति नारदस्मरणात् । *मिता.

स्तनालाभे हनदानम्

घातितेऽपहृते दोषो ग्रामभर्तुरनिर्गते ।
विवीतभर्तुस्तु पथि चौरौद्धर्तुरवीतके ॥

(१) प्रयत्नेनान्विध्यमाणघातकचौराद्यनुपलब्धौ तु कथामिति— 'घातितापहृते दोषो ग्रामभर्तुरनिर्गते ।' पदादौ प्रयातचिह्न इति शेषः । 'विवीतभर्तुस्तु पथि ।' विवीताच्युक्कण्ट इति शेषः । तुशब्दोऽन्यस्यानि समर्थस्य यथासनिधानं दोषवत्त्वज्ञापनार्थः । 'चौरौद्धर्तुरवीतके ।' पूर्वोक्ताद्यभावे चौरौद्धर्तुरेव दोषः । सर्वथा चाऽपहृतं द्रव्यं प्रयत्नेनान्विध्य राज्ञा लब्धव्यामित्यभिप्रायः । यदा अपहृते द्रव्ये घातिते च सद्व्यक्ते चोरे द्रव्यानुपलब्धौ कस्य दोष इत्यपेक्षाते ग्रामभर्तुरनिर्गत इत्यादि समानम् ।

विश्व. २।२७५

(२) चौरादर्शने अपहृतद्रव्यप्राप्त्युपायमाह— घातित इति । यदि ग्राममध्ये मनुष्यादिप्राणिबधो धनापहरणं वा जायते तदा ग्रामपतेरेव चौरौपेक्षादोषः तत्परिहारार्थं स एव चौरं गृहीत्वा राज्ञेऽर्पयेत् । तदशक्तौ हृतं धनं धनिने दद्याद्यदि चौरस्य पदं स्वग्रामान्निर्गतं न दर्शयति । दर्शिते पुनस्तत्पदं यत्र प्रविशति तद्विषयाधिपतिरेव चौरं धनं वाऽर्पयेत् । तथा च नारदः— 'गोचरे यस्य लुप्येत तेन चौरः प्रयत्नतः । ग्राह्यो दाप्योऽथवा शेषं पदं यदि न निर्गतम् ॥ निर्गते पुनरेतस्मान्न चेदन्यत्र पातितम् । सामन्तान् मार्गपालांश्च दिक्पालांश्चैव दापयेत् ॥' इति । विविते त्वपहारे विवितस्वामिन एव दोषः । यदा त्वध्वन्येव तद्भूतं भवत्यवीतके वा विवितान्यत्र क्षेत्रे तदा चौरौद्धर्तुर्मार्गपालस्य दिक्पालस्य वा दोषः ।

+मिता.

* अप., वीमि. मितावत् । + वीमि. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२७१; अपु. २५८।६० पू.; विश्व. २।२७५ तेऽप (ताऽप); मिता. ; अप.; व्यक्र. ११८ तेऽपह (तेऽथ ह); विर. ३४३ पूर्वाधे (ग्रामेषु च भवेदोषो ग्रामभर्तुर-वीक्षिते ।) स्तु (श्व) रोद्ध (रघ); पमा. ४४७; व्यड. १२५; विता. ७९४-५; समु. १५२.

व्य. कां. २१९

(३) विवितं तृणादिप्रयोजनम् । -अप.

(४) ग्रामः ग्रामाध्यक्षः । ग्रामग्रामवहिःसीमाभ्यन्तरतद्बहिःसीमाभ्यन्तरतद्बहिर्भूतदेशेषु चोरिणं राज्ञा ग्रामरक्षकवहिःसीमारक्षकेभ्यो दापयितव्यम् । विर. ३४४ स्वसीम्नि दद्याद्ग्रामस्तु पदं वा यत्र गच्छति । पञ्चग्रामी बहिः क्रोशाद्दशग्राम्यथवा पुनः ॥

(१) असंनिहिते तु ग्रामभर्तुरिति— 'स्वसीम्नि दद्याद्-ग्रामस्तु पदं वा यत्र गच्छति । पञ्चग्रामी बहिः कृष्याद् दशग्राम्यपि वा तथा ॥' स्वशब्दो धनज्ञात्यर्थः । यत्र द्विपदचतुष्पदाद्यनवरतं संचरति, सा स्वसीमा । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२७६

(२) यदा पुनर्ग्रामाद्बहिः सीमापर्यन्ते क्षेत्रे मोषादिकं भवति तदा तद्ग्रामवासिन एव दद्दुः, यदि सीम्नो बहिश्चौरपदं न निर्गतम् । निर्गते पुनर्यत्र ग्रामादिके चौरपदं प्रविशति स एव चौरापर्णादिकं कुर्यात् । यदा त्वनेकग्राममध्ये क्रोशामात्राद्बहिः प्रदेशे घातितं मुषितं वा, चौरपदं च जनसंमर्दादिना भग्नं, तदा पञ्चानां ग्रामाणां समाहारः पञ्चग्रामी दशग्रामसमाहारो दशग्रामी वा दद्यात् । विकल्पवचनं तु यथा तत्प्रत्यासत्त्यपहृतधनप्रत्यर्पणादिकं कुर्यादित्येवमर्थम् । यदा त्वन्यतोऽपहृतं द्रव्यं दापयितुं न शक्नोति तदा स्वकोशा-देव राज्ञा दद्यात् । 'चौरहृतमवजित्य यथास्थानं गमयेत् स्वकोशाद्वा दद्यात्' इति गौतमस्मरणात् (गौध. १०।४६-७) । मुषितामुषितसंदेहे मानुषेण दिव्येन वा निर्णयः कार्यः । 'यदि तस्मिन् दाप्यमाने भवेन्मोषे तु संशयः । मुषितः शपथं दाप्यो बन्धुभिर्वाऽपि साधयेत् ॥' इति वृद्धमनुस्मरणात् ।

मिता.

(३) ग्रामसीम्न्येव यदि मोषो भवति, तदा स एव ग्रामो मुषितं दद्यात् । यदि तु पदं चौरमागौ ग्रामसीम्नो

÷ शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२७२; अपु. २५८।६०-६१ म्यथ (म्योऽथ); विश्व. २।२७६ क्रोशा ... पुनः (कृष्याद् दशग्राम्यपि वा तथा); मिता.; अप.; विर. ३४४ क्रोशाद् (कृष्या द); पमा. ४४७; नृप्र. २६३ द्यामस्तु (द्यास्तु) क्रो (को); व्यड. १२५; व्यम. १०२; विता. ७९५ क्रमेण नारदः; समु. १५२.

बहिः कंचन ग्रामं प्रति यायात्तदा स एव ग्रामो दद्यात् । यदा तु क्रोशमात्रव्यवस्थितानामनेकेषां ग्रामाणां मध्ये चौर्यं भवति, तदा तुल्याध्वानः पञ्च ग्रामाः समाहृता मोषं दद्युः । यदा पुनर्दश ग्रामा मोषस्थानात्तुल्यान्तराला भवन्ति तदा दशाऽपि समाहृता हृतं दद्युः । अप.

(४) यदि पदं वा गच्छति, यदि तु पदमेव गच्छति, तदा तत्स्वामिभ्य एव, यदा तु बहिःसीमायां चौरोद्धर्ता न कृतः, समन्ततश्च तस्यां वधश्चोरणं वा कृतं, तदा तत्संनिहितग्रामे समाधेयं तत्, तत्र पञ्चत्व-दशत्वयोः प्रायिकतयाऽनुवादः । विर. ३४४

(५) मिताटीका— विकल्पवचनं तु यथा तत्प्रत्यासत्तीति । अपहृतभूप्रदेशाद्ये ग्रामाः संनिहिता त एव दद्युर्न पुनः पञ्चग्राम्येव दशग्राम्येवेत्येवं नियम इति । नियमनिवृत्त्यर्थं अथवेति विकल्पवचनमित्यर्थः । सुवो.

स्तेयदोषप्रतिप्रसवः

बुभुक्षितस्यहं स्थित्वा धान्यमब्राह्मणाद्धरेत् । प्रतिगृह्य तदाख्येयमभियुक्तेन धर्मतः ॥

(१) दुस्तरत्वादेव चापदाम्— 'बुभुक्षितस्यहं स्थित्वा धनमब्राह्मणाद्धरेत् । प्रतिगृह्य तदाख्येयमभियुक्तेन धर्मतः ॥' स्वरूपपरिमाणाद्यविप्रतिपत्त्येत्यर्थः । विश्व. ३४३

(२) यदा कृष्यादीनामपि जीवनहेतूनामसंभवस्तदा कथं जीवनमित्यत आह— बुभुक्षित इति । धान्याभावेन त्रिरात्रं बुभुक्षितोऽनश्नन् स्थित्वा अब्राह्मणाच्छूद्रात्तदभावे वैश्यात् तदभावे क्षत्रियाद्वा हीनकर्मण एकाहपर्याप्तं धान्यमाहरेत् । यथाह मनुः— 'तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता । अश्वस्तन-विधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥' इति (मस्मृ. ११।१६) । तथा च प्रतिग्रहोत्तरकालं यदपहृतं तद्धर्मतो यथावृत्त-माख्येयम्, यदि नाष्टिकेन स्वामिना त्वयेदं किं नामापहृतमित्यभियुज्यते । यथाह मनुः— 'खलात्क्षेत्राद-गाराद्वा यतो वाऽप्युपलभ्यते । आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥' इति (मस्मृ. ११।१७) । मिता.

(१) यास्मृ. ३।४३; विश्व. ३।४३ धान्य (धन); मिता.; अप. ३।४२ तदा (तथा); वीमि.

(३) बुभुक्षितोऽनश्नन्स्यहं त्रिरात्रं यावदास्थाय ब्राह्मणव्यतिरिक्तस्य स्वामिनो धान्यं हरेच्चोरयेत्तच्च धान्यं प्रतिगृह्योपादाय, किमिति त्वयैतदस्मदीयं धान्यं गृहीतमित्याक्षितेन धर्मतस्तथ्यमेव तस्य कथनीयम् । मया त्रिरात्रमभुञ्जानेन स्थितवता प्राणधारणार्थं भव-दीयं धान्यमपहृतमिति । ×अप.

पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूलफले तृणे ।

अदत्तादानमेतेषामस्तेयं तु यमोऽब्रवीत् ॥

तृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाशं वै हरन् द्विजः । गोब्राह्मणार्थं गृह्णन् वै न स पापेन लिप्यते ॥

नारदः

स्तेयलक्षणं स्तेयप्रकाराश्च

सहसा क्रियते कर्म यत्किञ्चिद् बलदपितैः ।

तत् साहसमिति प्रोक्तं सहो बलमिहोच्यते* ॥

तस्यैव भेदः स्तेयं स्याद्विशेषस्तत्र तूच्यते ।

आधिः साहसमाक्रम्य स्तेयमाधिदृष्टलेन तु* ॥

तैदपि त्रिविधं प्रोक्तं द्रव्यापेक्षं मनीषिभिः ।

क्षुद्रमध्योत्तमानां तु द्रव्याणामपकर्षणान् ॥

(१) अपकर्षणमपहरणम् । दवि. १४०

(२) तदपि स्तेयं द्रव्यापेक्षं त्रिविधं जनमध्यमो-त्तमम् । क्षुद्रद्रव्यापकर्षणादल्पं, मध्यमद्रव्यापकर्षणान्मध्य-मं, उत्तमद्रव्यापकर्षणादुत्तमम् ।

नामा. १५।१२ (पृ. १६१)

× वीमि. अपवत् ।

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ. १६४१) द्रष्टव्यः ।

(१) व्यनि. ५१५; समु. १५२ पुष्पे (पुष्प) नारदः.

(२) व्यनि. ५१५; समु. १५२ हरन् (हेरेत्) स्मृत-न्तरम्.

(३) नासं. १५।१२ नीषि (हर्षि); नास्मृ. १७।१३; व्यक. १०९; स्मृच. ८ प्रोक्तं (ज्ञेयं) कर्षणाद् (हारतः); विर. २८८-९; पमा. ४३६ प्रोक्तं (ज्ञेयं) उत्तरार्धे (क्षुद्र-मध्यममुख्यानां द्रव्याणामपहारतः); रत्न. १२३; व्यनि. ५०२ उक्तः; दवि. १४० द्रव्या (सर्वा) तु (च); व्यप्र. ३८६ प्रोक्तं (ज्ञेयं); व्यउ. १२३ व्यप्रवत्; विता. ७७७ त्रि (द्वि) शेषं व्यप्रवत्; समु. १४८ स्मृचवत्.

मृद्गाण्डासनखट्वास्थिदारुचर्मतृणादि यत् ।
शमीधान्यं कृतान्नं च क्षुद्रद्रव्यमुदाहृतम् ॥
वासः कौशेयवर्जं च गोवर्जं पशवस्तथा ।
हिरण्यवर्जं लोहं च मध्यं त्रीहियवा अपि ॥
३ हिरण्यरत्नकौशेयस्त्रीपुंगोगजवाजिनः ।
देवब्राह्मणराज्ञां च विज्ञेयं द्रव्यमुत्तमम् ॥

(१) नासं. १५१३ शमीधान्यं (फलं चान्य); नास्मृ. १७१४: मित्ता. २१२७५ (क) क्षुद्र (क्षुद्रं); अप. २१२७५ खट्वास्थिदारु (खड्गादि चारु); व्यक. १०९; स्मृच. ८; विर. २८८ यत् (कम्); पमा. ४३६ दारु (तत्तु) क्षुद्र (क्षुद्रं) हारीतः; रत्न. १२३; व्यनि. ५०२; स्मृचि. २५; द्रवि. १४० खट्वा (खर्वा) यत् (कम्); सवि. ४५५ शमीधान्यं (शिविराजं) मनुः; दीमि. २१२७३ क्षुद्र (क्षुद्रं); व्यप्र. ३८५ क्षुद्र (क्षुद्रं); व्यउ. १२३; व्यम. १०१; विता. ७७५ रिथ (दि); समु. १४८ दारु (चारु).

(२) नासं. १५१४ वर्जं च (वर्जं यद्); नास्मृ. १७१५; मित्ता. २१२७५ वर्जं (वर्ज्यं); अप. २१२७५ वा अपि (वं तथा); व्यक. १०९; स्मृच. ८ वर्जं च (वर्जं तु) अपि (दि च); विर. २८८ अपि (यपि); पमा. ४३६ वर्जं च (वर्जं तु) मध्यं...अपि (मद्यत्रीहियवा-दिकम्) हारीतः; रत्न. १२३ अपि (दि च); व्यनि. ५०२; स्मृचि. २५; द्रवि. १४०; सवि. ४५५ मध्यं... अपि (मध्यमं त्रीहयस्तथा) मनुः; दीमि. २१२७३ गोवर्जं (गोचर्यं); व्यप्र. ३८५ रत्नवत्; व्यउ. १२३ रत्नवत्; व्यम. १०१ रत्नवत्; विता. ७७५ रत्नवत्; समु. १४८ स्मृचवत्.

(३) नासं. १५१५ नः (नाम्) विज्ञेयं द्रव्य (द्रव्यं विज्ञेय); नास्मृ. १७१६; मित्ता. २१२७५ (क) विज्ञेयं द्रव्य (द्रव्यं विज्ञेय), (ख) श्रेय (श्रेयं) विज्ञेयं द्रव्य (द्रव्यं विज्ञेय); अप. २१२७५ विज्ञेयं द्रव्य (द्रव्यं विज्ञेय); व्यक. १०९ श्रेय (श्रेयं) गो (सौ); स्मृच. ८; विर. २८८ श्रेय (श्रेयं) गो (सौ) शेषं अपवत्; पमा. ४३६ गो (स) हारीतः; रत्न. १२३ ण्यरत्न (ण्यं रत्न) श्रेय (श्रेयं); व्यनि. ५०२ ण्य (ण्यं) श्रेय (श्रेयं); स्मृचि. २५; द्रवि. १४० विरवत्; सवि. ४५५ गो (सा) नः (भिः) शेषं अपवत्, मनुः; दीमि. २१२७३ अपवत्; व्यप्र. ३८५ ण्य (ण्यं); व्यउ. १२३ श्रेय (श्रेयं); व्यम. १०१ श्रेय

उपायैर्विविधैरेषां छलयित्वाऽपकर्षणम् ।
सुप्तमत्तप्रमत्तेभ्यः स्तेयमाहुर्मनीषिणः ॥

(१) शमीधान्यं शिम्बिधान्यं माषमुद्रादि । कृतान्नं सिद्धान्नम् । कौशेयमतसीमयम् । हिरण्यं मुवर्णं रजतं च । अप. २१२७५

(२) शमीधान्यं शिम्ब्यां भवं मुद्रादि । लोहशब्दो धातुपरः । मध्यमिति मध्यमद्रव्यमित्यर्थः । उपायैः कूट-तुलनसंधिभेदनादिभिः । छलयित्वा गोपयित्वा । अप-कर्षणं अपहरणम् । विर. २८८

(३) मृद्गाण्डेति । मृन्मयं घटादि, आसनं पीठिका, खट्वा, अस्थि कङ्कतादि, काष्ठचर्मतृणादि, माषादिफलं, पकान्नादि, क्षुद्रद्रव्याणि । एषामपहरणे प्रथमं स्तेयम् । वास इति । कौशेयादन्यद् वस्त्रम् । कौशेयपर्युदासात् तत् उत्कृष्टपत्रपट्टेणादिव्युदासोऽर्थात् । गोवर्जमजादयः पशवः । गोवर्जनाद् हस्त्यादिवर्जितम् । हिरण्यवर्जितानि ताम्रायस्त्रपुसीसादीनि । अत्रापि मण्यादिपर्युदासो द्रष्टव्यः । त्रीहियवादि द्रव्यं, तेषां हरणे मध्यमस्तेयम् ।

हिरण्येति । गतार्थः श्लोकः । एतदपहरणादुत्तम-स्तेयम् ।

उपायैरिति । उपायैर्विविधैः संदेशकूटलेख्यसंधि-च्छेदग्रन्थिभेदाद्यैरेषां त्रिप्रकाराणां च वञ्चयित्वा स्वामिनोऽपहरणं सुप्तमत्तप्रमत्तेभ्यश्च त्रिप्रकारं स्तेय-माहुः । नामा. १५१३-६ (पृ. १६१-२)

तस्करप्रकाराः

३ द्विविधास्तस्करा ज्ञेयाः परद्रव्यापहारिणः ।

प्रकाशाश्चाप्रकाशाश्च तान् विद्यादात्मवान् नृपः ॥

(श्रेयं); विता. ७७५ ण्य (ण्यं) श्रेय (श्रेयं); समु. १४८ गो (स).

(१) नासं. १५१६; नास्मृ. १७१७ धैरेषां छल (धैः सर्वैः कल्प) मत्तप्र (प्रमत्त); मित्ता. २१२६६; व्यक. १०९ तेभ्यः (तेषु); स्मृच. ८ छल (वञ्च); विर. २८८ षां (वं); पमा. ४३५; रत्न. १२३; व्यनि. ५०२ स्मृचवत्; स्मृचि. २५; नृप्र. २६० छल (कल्प); व्यप्र. ३८५; व्यउ. १२३; विता. ७७५; राकौ. ४८२ रेषां (स्तेषां); समु. १४८.

(२) नासं. १५१३; नास्मृ. २१११ विद्या (विन्द्या).

परद्रव्यापहरणशीला द्विप्रकाराश्चोराः प्रच्छन्नाश्च
प्रकाशाश्च । ते राज्ञा ज्ञेयाः ।

नामा. १९१५३ (पृ. १८१)

प्रकाशवञ्चकास्तत्र कूटमानतुलाश्रिताः ।

उत्कोचकाः सोपधिकाः कितवाः पण्ययोपिताः ॥

प्रतिरूपकराश्चैव मङ्गलादेशवृत्तयः ।

इत्येवमादयो ज्ञेयाः प्रकाशास्तस्करा भुवि ॥

(१) नैगमादिच्छन्नना परद्रव्यापहारिणश्चेत् प्रकाश-
तस्करा न स्वरूपत इत्यवगन्तव्यम् । स्मृच. ३१७

(२) सोपधिकाः ये भयमाशां वा दर्शयित्वा
परस्य धनमपहरन्ति । कितवाः छन्ननाऽर्थहराः ।
मङ्गलादेशकारिणः अनादेश्यमङ्गलादेशद्वाराऽर्थहराः ।
इत्येवमादय इत्यादिपदेन वाक्यान्तरस्थप्रकाशतस्कर-
ग्रहणम् । विर. २९०

(३) प्रकाशेति । तत्र द्विप्रकाराणां मध्ये प्रकाश-
चोरा एते बक्ष्यमाणाः । कूटमानाश्रिताः कूटतुलाश्रिताश्च
वणिजः, उत्कोचका उत्कोचभक्षाः राजकुलाद्याश्रिताः,
सोपधिका विप्रलम्भकाः, कितवाश्च, वेद्याश्च ।

प्रतिरूपेति । कूटशासनकार्षापणविवर्णादिकराः,
ज्योतिषनैमित्तिकेक्षणिकादयः । एवमादयः प्रकाशा

(१) नासं. १९१५४ चक्रः सो (दकाः सो); नास्मृ. २१२
स्तत्र (स्तु ते) सोपधि (साहसि); व्यक. १०९ कितवाः
(वञ्चकाः); स्मृच. ३१७ लाश्रि (लाः स्तु); विर.
२९०; पमा. ४३८; रत्न. १२४ व्यकवत्; व्यनि. ५०३
वञ्चका (तस्करा) शेषं व्यकवत्; ददि. ५५२ उत्कोच
(औत्कोचि); सवि. ४६० श्रिताः (स्तथा); व्यक.
३८६-७ व्यकवत्; व्यउ. १२४ व्यकवत्; व्यम. १०१
कितवाः पण्य (वञ्चकाः पाप) स्मृत्यन्तरम्; विता. ७७८
व्यकवत्; सेतु. २२८; समु. १४८ स्मृचवत्.

(२) नासं. १९१५५ शास्तस्करा भुवि (शा लोकवञ्चकाः);
नास्मृ. ३१३ शास्तस्करा भुवि (श्लोकतस्कराः); व्यक.
१०९; स्मृच. ३१७; विर. २९० वृत्तयः (कारिणः);
पमा. ४३८; रत्न. १२४; व्यनि. ५०३; सवि. ४६०
पू.; व्यप्र. ३६५ व्यउ. १२४; व्यम. १०१ स्मृत्य-
न्तरम्; विता. ७७८; सेतु. २२८ शास्त (शत) ज्ञेयं
विरवत्; समु. १४८.

लोकचोराः । तत्र यत्नः कर्तव्यः प्रतिमासतुलाद्यवेक्षणा-
दिना । नामा. १९१५४-५ (पृ. १८१)

अप्रकाशास्तु विज्ञेया बहिरभ्यन्तराश्रिताः ।

सुप्रमत्तप्रमत्तार्तान् मुष्णन्त्याक्रम्य ये नराः ॥

देशग्रामगृहघनाश्च पथिघना ग्रन्थिमोचकाः ।

इत्येवमादयो ज्ञेया अप्रकाशास्तु तस्कराः ॥

अप्रकाशास्त्विति । प्रच्छन्नचोरास्तु बहिर्ग्रामाद-
टव्याद्याश्रिताः ग्रामजनपदनगरपथ्यन्तराश्रिताश्च, सुता-
दीनां केचिच्छन्नना, प्रसह्य केचित् । तान् विदित्वा
निगृह्णीयात् ।

देशेति । देशप्रातका ग्रामघातका गृहघातकाश्च
मार्गमुषः ग्रन्थिच्छेत्तार एवम्प्रकाराः प्रच्छन्नचोराः ।

नामा. १९१५६-७ (पृ. १८१-२)

तान् विदित्वा तु कुशलैश्चरैस्तत्कर्मवेदिभिः ।

अनुसृत्य तु गृह्णीयाद्गूढप्रणिहितैश्चरैः ॥

तानेवम्प्रकारान् बुद्ध्वा कुशलैश्चरैः तत्कर्मकारिभि-
श्चोरव्यञ्जनैः पुराणचौरैश्चानुसृत्य गृह्णीयात् । अमुत्रासत्
इति तैश्चारयित्वा गृह्णीयात् । अथवा चोरव्यञ्जनास्तैः
सहैकार्थीभूताश्चोराः कस्मिंश्चिद् गृहे फल्गु द्रव्यं तत्र
निधाय तान् नीत्वा मोषयित्वा प्रत्ययमुत्पाद्य पुनः
ग्रामान्तरेषु मनुष्यान् गूढान् निधाय तत्र प्रवेक्ष्य
ग्राहयेयुः । नामा. १९१५८ (पृ. १८२)

प्रकाशवस्करदण्डाः

लोहानामपि सर्वेषां हेतुरग्निः क्रियाविधौ ।

क्षयः संस्क्रियमाणानां तेषां दृष्टोऽग्निसंगमात् ॥

(१) नासं. १९१५६ उत्तरार्धे (सुप्तान् मत्तान् प्रमत्तान्श्च
मुष्णन्त्याक्रम्य चैव ये); नासं. २११४ स्तु (श्च) उत्तरार्धे
(मुष्णान् प्रसक्ताश्च नरा मुष्णन्त्याक्रम्य चैव ते); व्यक. १०९
चार्तान् (चांश्च); विर. २९२; व्यनि. ५०३ व्यकवत्;
सेतु. २२८ सुप्त (सप्त) मुष्णन्त्या (संतुष्या); समु. १४८.

(२) नासं. १९१५७; नास्मृ. २११५ पथि (यज्ञ)
स्तु (श्च).

(३) नासं. १९१५८ (तान् विदित्वा सुनिपुणैश्चरै-
स्तत्कर्मकारिभिः । अनुसृत्य ग्रहीतव्या गूढैः प्रणिहितैश्चरैः ॥);
व्यक. ११० श्रैः (नरैः); विर. २९२.

(४) नासं. १०११०; नास्मृ. १२११०; क्षिः क्रियाविधौ

सुवर्णस्य क्षयो नास्ति रजते द्विपलं शतम् ।
शतमष्टपलं ज्ञेयं क्षयस्तु त्रपुसीसयोः ॥

ताम्रे पञ्चपलं विद्याद्विकारा ये च तन्मयाः ।
तद्धातूनामनेकत्वादयसोऽनियमः क्षये ॥

(१) क्रियाविधौ घटनकर्मणि, लोहानां धातूनां, सुवर्णशब्दोऽत्र शुद्धपरः अन्यादशो तत्रापि क्षयात् । रजते द्विपलं शतं, पलशते ध्यायमाने पलद्वयं क्षयो भवति, एवमुत्तरत्रापि । तन्मयास्ताम्रमयाः कांस्यादयः, तद्धातूनामयोहेतुभूतानां प्रापाणमृत्तिकादीनामनेकत्वाद्वाहुल्यादनियमः क्षये न नियमः कर्तुं शक्यते, अयःशब्दोऽपि शुद्धाद्योव्यतिरिक्त्यायःपरः । शुद्धे तु नियमोऽप्रत एव उक्तः । उक्तक्षयादप्यधिकक्षये सुवर्णकारादयो दण्ड्याः, तद्वाप्याश्चेति परिगणनफलम् । विर. ३११

(२) लोहानामपीति । लोहानामपि, न वस्त्राणामेव । सुवर्णादीनां सर्वेषां हेतुरग्निः कटकादिक्रियाविधौ । न ह्यग्निसंयोगमन्तरेणाविलीनानां कटकादयः शक्याः कर्तुम् । ततोऽग्निसंगमात् संस्क्रियमाणानां यः क्षयो दृष्टः स उच्यते क्रमेण ।

सुवर्णस्येत्यादि । सुवर्णं न क्षीयते । रजतं पलशते द्वे पले क्षीयते । पात्रादिकरणे त्रपुसीसयोः क्षयः शतेऽष्टौ पलानि । शते पञ्चपलं ताम्रे क्षयः । ताम्र-विद्यारेषु सर्वेष्वेवम् । अयसो लोहस्य न क्षयनियमः तन्निमित्तानां येभ्यो लोहमुत्पद्यते तेषामनेकत्वात् कुतश्चिदुत्पन्नस्य कश्चित् क्षय इत्यनियमः ।

नामा. १०११७-११ (पृ. ११२-३)

(भिक्त्रिया विधौ); व्यक. ११३; विर. ३११; व्यनि. ५१३ शिः (शि) षां ट (षामि); नृप्र. १८४ शिः (शि) क्षय... प्रमाणां (संक्षयः स्तुषमन्तानां); समु. ९० नामपि (नां चैव) शिः (शि) षां ट (षामि).

(१) नासं. १०१११ ते (तं) यस्तु (यः स्यात्); नास्मृ. १३१११ रज (राज); व्यक. ११३ णस्य (णेषु) रज (राज); विर. ३११ णस्य (णे तु); व्यनि. ५१३ यत्पष्ट (शते त्वष्ट) यस्तु (यं तु); नृप्र. १८४ यस्तु (यः स्यात्); समु. ९० लं शतम् (लं शते) शेषं व्यनिकर.

(२) नासं. १०११२ तद्धा (तद्धे); नास्मृ. १२११२ दध (दाय); व्यक. ११३; विर. ३११ विधा (दधा) च (तु);

तान्तवस्य च संस्कारे क्षयवृद्धी उदाहृते ।
तत्र कार्पासिकोर्णानां वृद्धिर्दशपला शते ॥

तन्तुविकारस्य वस्त्रकम्बलादेः संस्कारे कार्पासोर्णसूत्रयोः दशभिः पलैः कृतमेकादशपलं भवति । एवं शतपलस्य दशोत्तरं शतं भवति । तन्तुविकाराणामेषा वृद्धिरुक्ता ।
नामा. १०११३ (पृ. ११३)

स्थूलसूत्रकतामेषां मध्यानां पञ्चकं शतम् ।
त्रिपलं तु सुसूक्ष्माणामतः क्षय उदाहृतः ॥

स्थूलसूत्रपटादीनामेषा वृद्धिरुक्ता— दशपलं शते । मध्यानां शते पञ्चपला वृद्धिः । सूक्ष्माणां शते त्रीणि पलानि सत्रिभागानि । एतेनान्तरालावस्थानामनुपातेन कर्तव्यो विभागः । क्षयमुदाहृतं वक्ष्यामः ।

नामा. १०११४ (पृ. ११३)

त्रिंशंशो रोमबद्धस्य क्षयः कर्मकृतस्य च ।
कौशेयवल्कलानां तु नैव वृद्धिर्न च क्षयः ॥

(१) उक्तादधिकक्षये शिल्पी दण्ड्यः । अप. २१८०

(२) रोमबद्धः कम्बलादिः । कर्मकृतः कृतकर्म-निष्पन्न एव कृतचित्रादिः । विर. ३१३

व्यनि. ५१३ ऽनियमः (निष्कर्म); नृप्र. १८४ द्विषात् (ज्ञेया [ये]); समु. ९० षाः (षाः).

(१) नासं. १०११३ तत्र (यत्र) ल्य (लं); नास्मृ. १२११३ तत्र (स्य) ल्य (लं) शतम्; अप. २१८० च (तु); व्यक. ११३ च (तु); विर. ३१२; नृप्र. १८४-५ वस्त्र च (तानां तु) षी उदाहृते (द्विरुदाहृता) तत्र (स [त] त्र) न्युं (नि) फल्य शते (पलं च [स्य] तम्).

(२) नासं. १०११४ षां (षां) शतम् (शते) म्नाः (मन्नाः); नास्मृ. १२११४ ताम्रे (तं) ते सुसू (सस्य) षा... इतः (त्रेषा वृद्धिरुदाहृता); विश्व. २११८३ चतुर्विंशतिं विना; अप. २१८० शतम् (शते) लं (ला); व्यक. ११२; विर. ३१३ कं शतम् (विद्युत्तः); नृप्र. १८४ सूत्र (स्तनु) पलं (शते).

(३) नासं. १०११५ बद्ध (विद्ध); नास्मृ. १२११५ बद्ध च (स्य तु) नै (सै); अप. २१८० नां तु (दीनां); व्यक. ११३ स्व च (स तु) शेषं अपक्व; विर. ३१३-५; व्यनि. ५१४ बद्ध (बन्ध) कर्म (चर्म) नां तु (क्षीनां); नृप्र. १८५ तु (च).

(३) पुष्पपट्टानां च रोमविद्धस्य छेदकृतः क्षयः त्रिंशत्शः । उत्पादितशिल्पविशेषाणां तु कौशेयानां वल्कलानां च न वृद्धिर्न च क्षयः समान्येव सूत्राप्येतानि भवन्ति । नाभा. १०।१५ (पृ. ११३)

मूल्याष्टभागो हीयेत सुकृद्धौतस्य वाससः ।
द्विः पादस्त्रिभिर्भागस्तु चतुर्धौतेऽर्धमेव च ॥
अर्धक्षयान्तु परतः पादांशापचयः क्रमात् ।
यावत्क्षीणदशं जीर्णं जीर्णस्यानियमः क्षये * ॥

(१) सकृद्धौतस्य वाससः अष्टपणमूल्यवाससः मूल्याष्टभागमपनीय सप्तपणान् रजको दाप्यः । द्विः-कृत्वो धौतस्य पादश्चतुर्थो भागः, त्रिःकृत्वो धौतस्य तृतीयो भागः, चतुःकृत्वो धौतस्यार्धम् । अर्धक्षयान्तु परतः यावत्क्षीणदशं वस्त्रं, तावत् क्रमेण पादस्यांशस्यापचयः । जीर्णं त्वनियमः, तत्र मध्यस्थैरुक्तानुसारेणोहः कर्तव्य इत्यर्थः । X विर. ३१४

(२) मूल्येति । सकृद्धौतस्य दीनारमूल्यस्य पादार्धं हीयेत । तन्मूल्यार्धैकादशभिर्ग्राह्यम् । द्विर्धौतस्येत्येवं सर्वत्र । द्विर्धौतस्य पाद ऊनः, त्रिर्धौतस्य त्रिभागोनः, एवं चतुर्धौतमर्धमूल्यं भवति ।

* श्लोकद्वयस्य मित्ताव्याख्यानं 'वसानस्त्रीन् पणान् दण्ड्यः' इति याज्ञवल्क्यवचने (पृ. १७३६) द्रष्टव्यम् ।

1-92 दवि. विरवत् ।

(१) नासं. १०१८ स्तु (श्व); नास्मृ. १२।८ चतुर्धौते (चतुःकृत्वो); मित्ता. २।२३८ खिभागस्तु (स्तृतीयांशः); अप. २।१८१ व च (व तु) शेषं नास्मृवत्; व्यक. ११३ अपवत्; विर. ३१४ चतुः.....च (चतुःकृत्वाऽर्धमेव तु); पमा. ४५६ मितावत्; दवि. ११३ नास्मृवत्; नृप्र. १८५ अपवत्; व्यप्र. २८९ मितावत्; व्यम. ८५ गो (गे) शेषं मितवत्; विता. ५६८ पू. : ५६९ मितावत्, उक्त. : ७६७ मितावत्; राकौ. ४९२ मितावत्; ससु. ८९ मितावत्.

(२) नासं. १०१९; नास्मृ. १२।९; मित्ता. २।२३८ (क) क्षये (क्षयः); अप. २।१८१ जीर्णं (वस्त्रं) क्षये (क्षयः); व्यक. ११३ दांशाप (दशोऽप) जीर्णं (वस्त्रं); विर. ३१४ जीर्णं (वस्त्रं); पमा. ४५६ क्षये (क्षयः); दवि. ११३ जीर्णं जीर्णस्या (वस्त्रं जीर्णः स्यात्); नृप्र. १८३-४; व्यप्र. २८९ पू.; व्यम. ८५ पू.; विता. ५६९ पू., ७६७; राकौ. ४९२ विरवत्; ससु. ८९ पू. : ९० पमावत्, उक्त.

अर्धेति । पञ्चमादारभ्याष्टमो भागोऽपचीयते । पञ्चमे साष्टभागमर्धम् । षष्ठे सपादम् । एवं यावत् क्षीणदशं जीर्णम् । ततः क्षयनियमो नास्ति । इच्छातः क्रयः ।

नाभा. १०।८-९ (पृ. ११२)

अप्रकाशतस्करदण्डाः

स्वदेशघातिनो ये स्युस्तथा मार्गनिरोधकाः ।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा शूले निवेशयेत् ॥

(१) यस्य राज्ञो देशे चौरा वसन्ति, तद्राजदेशः तेषां चौराणां स्वदेशः, तद्घातिनः, स्वदेशघातिनः, एतेन परदेशघाते चौरैः क्रियमाणे तेषां सर्वस्वग्रहणं न कर्तव्यं तद्राजानुकूलत्वात्, परेण तु करणीयमेव सामर्थ्ये सतीति भावः । विर. ३१७

(२) अत्र वाक्यस्यास्य रत्नाकरादौ पान्थमुषमुप-क्रम्यावतारणेऽपि तत्र परिसंख्यायकस्य स्वदेशीयमार्ग-निरोधस्य समभिव्याहारदर्शनेऽपि परदेशीयद्विचतुष्पद-हारिभ्योऽपि दण्डाभावो न्यायसाम्यादिति प्रतिभाति । एवञ्च 'परदेशाहृतं द्रव्यमि'त्यादिकात्यायनवचनेन सममेकमूलकत्वमेवेति । दवि. १२५

(३) स्वदेशं गन्ति ये मार्गं च, तेषां सर्वस्वं गृहीत्वा धनं भूयो हस्तापादादिच्छेदनं, मरणं न विद्यते, निन्दा यस्यां क्रियायामिति (तां) प्रवर्तयेत् ।

नाभा. ११।६७ (पृ. १८४)

अप्रकाशस्तेषु दण्डविवेकसाधनो न्यायः

प्रथमे ग्रन्थिभेदानामङ्गुल्यङ्गुष्ठयोर्वधः ।
द्वितीये चैव यच्छेषं तृतीये वधमर्हति ॥

(१) अङ्गुल्यङ्गुष्ठयोर्वधः छेदनम् । शेषमत्र

(१) नासं. १५।६७ मार्गनिरोधकाः (मार्गोपरोधिनः) राजायेत् (भूयो निन्दां प्रवर्तयेत्); नास्मृ. २१।७ मार्गनिरोधकाः (यज्ञावरोधिनः) राजायेत् (भूयो निन्दां प्रकल्पयेत्); व्यक. ११३ रोधकाः (रोधिनः); विर. ३१७ नारदकात्यायनौ; व्यनि. ५०८ व्यकवत्, नारदकात्यायनौ; दवि. १२५ नारदकात्यायनौ; सेतु. २३६ नारदकात्यायनौ.

(२) नासं. १९।९०-९१ तृती... ..ति (दण्डः पूर्वश्च साहसः); नास्मृ. २१।३२ यच्छे... ..ति (तज्ज्ञेयं दण्डः पूर्वस्तु साहसः); विर. ३२२; पमा. ४४१; रत्न. १२५ पू.; व्यप्र. ३८९ ल्यङ्गुष्ठ (ग्रहस्त) पू.; व्यउ. १२७.

करचरणरूपमेव पूर्ववाक्यानुसारात्, तृतीये वधं
मारणमेव । विर. ३२२

(२) ग्रन्थिच्छेदानां प्रथमे ग्रहणे अङ्गुल्यङ्गुष्ठयोः
छेदः दक्षिणहस्तस्य । द्वितीये पुनरपि ग्रहणे शेषस्या-
ङ्गुलित्रयस्य छेदः । नाभा. १९।९०-९१ (पृ. १८८)

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु स्थूरायाश्छेदनं भवेत् ।

दासी तु हरतो नित्यमर्धपादावकर्तनम् ॥

(१) ब्राह्मणसंस्थासु ब्राह्मणस्वामिकासु । स्फुरा
पाष्णोरपरिभागः । विर. ३१९

(२) ब्राह्मणसंस्थासु ब्राह्मणस्वामिकासु । एवञ्च
दासीषु ब्राह्मणस्वत्वेन गौरवाद्दण्डाधिक्यदर्शनाद्दासेष्वपि
ब्राह्मणस्वामिकेषु चौरदण्डः शारीरमार्थं वाऽधिकं
वाच्यमन्यस्वामिकेष्वल्पमिति प्रतिभाति । दवि. १२८

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।

छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥

हस्तादीनां येनाङ्गेन चौर्यं करोति, तदेव छेत्तव्यम् ।

नाभा. १९।९२ (पृ. १८८)

गरीयसि गरीयांसमगरीयसि वा पुनः ।

स्तेने निपातयेद्दण्डं न यथा प्रथमे तथा ॥

महति महान्तमल्पमल्पे दण्डं निपातयेत् चोरे ।
सर्वत्र द्वितीयादिषु ततोऽधिकं, न तुल्यम् ।

नाभा. १९।९३ (पृ. १८८)

अप्रकाशतस्करदण्डप्रकरणानुवृत्तिः

महापशून् स्तेनयतो दण्ड उत्तमसाहसः ।

मध्यमो मध्यमपशून् पूर्वः क्षुद्रपशौ हृते ॥

(१) नासं. १९।९१; नास्मृ. २१।३३ दाव (दवि);
व्यक. ११४ उत्तरार्धे (दासी च हरतो मध्यस्तथा पादस्य
छेदनम्); विर. ३१९ स्थू (स्फु) उत्तरार्धे (दासीषु हरतो
मध्यस्तथा पादस्य छेदनम्); दवि. १२८ स्थू (स्फु) उत्तरार्धे
(दासी तु हरतो मध्यस्तथा पादस्य छेदनम्) : १३१ स्थू
(स्फु) पू.

(२) नासं. १९।९२; नास्मृ. २१।३४ छेत्तव्यं तत्त-
देवास्य (तत्तदेवास्य छेत्तव्यं); व्यक. ११५ नास्मृवत्.

(३) नासं. १९।९३; नास्मृ. २१।३५.

(४) नास्मृ. २१।२९ शून् स्ते (शून्स्ते) उत्तरार्धे (मध्यमो

(१) मध्यमं मध्यमसाहसम् । पूर्वं प्रथमसाहसम् ।
स्मृच. ३१९

(२) अत्रापि महापशवो विरुद्धदण्डा अनवरुद्धा
विवक्षिताः । विर. ३२१

(३) महापशवो हस्त्यश्वादयः । विचि. १३५

(४) महान्तः पशवो हस्त्यादयः, मध्यमा वृषा-
दयः । एतद्विशेषविहितेतरविषयम् । दवि. १२९

काष्ठभाण्डतृणादीनां मृन्मयानां तथैव च ।

श्रेणुवैणवभाण्डानां तथा स्नाय्वस्थिचर्मणाम् ॥

शाकानामार्द्रमूलानां हरणे फलपुष्पयोः ।

गोरसेक्षुविकाराणां तथा लवणतैलयोः ॥

मध्यमपशुं पूर्वः क्षुद्रपशुं हरन्); अप. २।२७५ क्रमेण मनुः;
व्यक. ११४ सः (सम्) मो (मं); स्मृच. ३१९ पूर्वः (पूर्व)
शेषं व्यकवत्; विर. ३२१ मपशून् (मपशौ); रत्न. १२५
पशौ हृते (पशुं हृतः) शेषं स्मृचवत्; विचि. १३५;
व्यनि. ५१० शौ हृते (शोर्हृतौ); दवि. १२८ क्षुद्र (क्षुद्रे);
सवि. ४६२ शून् स्ते (शून् स्ते) उत्तरार्धे (मध्यमं मध्यमपशौ पूर्व
शूद्रपशौ हृते); व्यप्र. ३८९ शौ हृते (शून् हृतः);
व्यउ. १२७ शौ हृते (शून् हृतः) शेषं स्मृचवत्;
व्यम. १०२ षड उ (षडमु) शौ हृते (शून् कृते) शेषं स्मृचवत्;
विता. ७८३ स्तेन (श्चोर) शेषं व्यप्रवत्; सेतु. २३७;
समु. १५० मो (मं) पूर्वः (पूर्व).

(१) नासं. १९।८२ भाण्ड (काण्ड); नास्मृ. २१।२२
भाण्ड (काण्ड) तथा... ..णाम् (वेतसस्यास्त्रिचर्मणोः);
मिता. २।२७५; अप. २।२७५ क्रमेण मनुः; व्यक. ११५;
विर. ३२७; पमा. ४४३; विचि. १४०-४१; दवि. १४९
चर्म (चर्मि); सवि. ४५६-७; व्यप्र. ३९१; व्यउ. १२८;
विता. ७८४ या स्नाय्वस्थि (शाऽस्नाय्वस्थि); सेतु. २४२ तथा
स्नाय्व (तथान्नाय्व); समु. १५१.

(२) नासं. १९।८२-३ नामार्द्र (हरिव); नास्मृ. २१।२३
कानामार्द्र (कहरित) फल (तृण); मिता. २।२७५ पुष्प
(मूल); अप. २।२७५ नामार्द्र (नां सार्द्र) क्रमेण मनुः;
व्यक. ११५; विर. ३२७; पमा. ४४३ मितावत्; विचि.
१४१ क्षुवि (तद्वि); दवि. १४९ मितावत्; सवि. ४५७
शाका (शाखा) पुष्प (मूल); व्यप्र. ३९१ मितावत्; व्यउ.
१२८ मितावत्; विता. ७८४ मितावत्; सेतु. २४२
विचिवत्; समु. १५१ मितावत्.

पैकान्नानां कृतान्नानां मद्यानामामिषस्य च ।
सर्वेषामल्पमूल्यानां मूल्यात्पञ्चगुणो दमः ॥

(१) इदं प्रचुरकाष्ठादिविषयम् । विचि. १४१
(२) काण्डशब्देन पूर्वाधन्व(?)शरादय उच्यन्ते ।
तृणशब्देन दर्भमुञ्जादय उच्यन्ते । हरितशब्देन घास
उच्यते यवसादिः । मूले कन्दादि । पक्वान्नं मोदकादि ।
कृतान्नं सक्तुपृथुकलाजादि ।

नाभा. १९।८२-८ (पृ. १८७)
तुलाधरिममेयानां गणिमानां च सर्वशः ।

एभ्यस्तूक्छमूल्यानां मूल्याद्दशगुणो दमः ॥
(१) तुलाधरिमं कर्पूरादि, मेयं व्रीह्यादि, गणिमं
पूगादि । एभिः काष्ठादिभिः । विर. ३२३

(२) तुलाधरिमं कर्पूरादि । मेयं व्रीह्यादि । गणिमं
पूगैलाप्रभृति । एभिः काष्ठादिभिः । तेन पूर्वोक्तकाष्ठाद्यः
पेक्षयाऽधिकमूल्यानां धरिममेयगणिमानामन्यतमस्यापहारे
तन्मूल्याद्दशगुणो दण्ड इत्यर्थः । विचि. १३८

(३) तुलाधारिमं कार्पासादि । मेयं व्रीह्यादि ।
गणिमं हरीतकीविभीतिकादि । एतेषां हृतानां यन्मूल्यं,
तस्य पञ्चगुणो दण्डः । एभ्यः काष्ठादिभ्यः उत्कृष्ट-
मूल्यानां वस्त्रकुङ्कुमचन्दनादीनां हरणे मूल्याद्
दशगुणो दण्डः । दीनारमूले हृते दश दीनारा दान्याः,
एको मुषितस्य, नव राज्ञः ।

नाभा. १९।८४-५ (पृ. १८७)

(१) नासं. १९।८३-४; नास्मृ. २।१२४; मिता. २।२७५ मद्या (मत्स्या) धामल्पमूल्यानां (षां मूल्यभूतानां); अप. २।२७५ मद्या (मधु), क्रमेण मनुः; व्यक. १।१५ मामिष (मोदन); विर. ३२७-८ व्यकवत्; पमा. ४४३ मद्या (मत्स्या); विचि. १४१ व्यकवत्; दवि. ३७ उक्त. : १५० धामल्प (षां स्वल्प) शेषं व्यकवत्; सवि. ४५७ पमावत्; व्यप्र. ३९१ धानामामिष (ह्निानामामिष); व्यउ. १२८ व्यप्रवत्; वित्त. ७८४ व्यप्रवत्, पू.; सेतु. २४२ व्यात्पञ्चगुणो (व्यात्स्यात् षड्गुणो) शेषं व्यकवत्; ससु. १५१ न्नानां (नां तु) शेषं पमावत्.

(२) नासं. १९।८४-५ धरि (धरि); नास्मृ. २।१२५ शः (तः) दश (दष्ट); अप. २।२७५ क्रमेण मनुः; व्यक. १।१५ धरि (धरि); एभ्य. (एभि) ; विर. ३२३ एभ्य (एभि); विचि. १३८; दवि. १४३ भ्यस्त (मिष्ट); सेतु. २४० धरि (परि) शेषं विरवत्.

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ।
न्यूनं वैकादशगुणं दण्डं दाप्योऽब्रवीन्मनुः ॥

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्योऽभ्यधिकं हरतो वधः । पुण्ड्र-
वर्धनश्रीवर्धनादीनामेकादशगुणमित्येव । समं मुषितस्य,
शेषं राज्ञः । नाभा. १९।८५-६ (पृ. १८७)

सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ।
रत्नानां चैव सर्वेषां शतादभ्यधिके वधः ॥
रत्नानां वज्रमणिमुक्तादीनां शतादभ्यधिकं हरतो
वधः । नाभा. १९।८६-७ (पृ. १८७)

पुरुषं हरतः पात्यो दण्ड उत्तमसाहसः ।
सर्वस्वं स्त्री तु हरतः कन्यां तु हरतो वधः ॥

(१) हस्ताविति छित्तेति शेषः । कामधेनौ— दृष्ट-
मिति पठितम् । सर्वस्वमिति नारीं हरतः सर्वस्वग्रहणं
दण्ड इत्यर्थः । दवि. १२६

(२) पुरुषस्त्वविशिष्टः । हरत उत्तमसाहसः । स्त्रियं
हरतः सर्वस्वम् । कन्यां तु वधः ।

नाभा. १९।८७-८ (पृ. १८७)

सौहसेषु य एवोक्तस्त्रिषु दण्डो मनीषिभिः ।
स एव दण्डः स्तेयेऽपि द्रव्येषु त्रिष्वनुक्रमात् ॥

(१) नासं. १९।८५-६ न्यूनं वै (हृते त्वे); नास्मृ. २।१२६.

(२) नासं. १९।८६-७ सुवर्णं (हिरण्यं) सर्वेषां
(मुख्यानां); नास्मृ. २।१२७ सर्वेषां (मुख्यानां); अपु. २।२७।३६ (सुवर्णरजतादीनां नृत्नीणां हरणे वधः) एतावदेव;
व्यक. १।१४; विर. ३२४; रत्न. १।२५; दवि. १४४;
नृप्र. २६४ (=); व्यम. १०२; वित्त. ७८३-४.

(३) नासं. १९।८७-८ पात्यो दण्ड उ (वासो दण्डस्तु)
हर...वधः (कन्यां तु हरतो वर्ष एव च) ; नास्मृ. २।१२८;
व्यक. १।१४ पात्यो (हस्तौ) स्त्री तु हरतः (हरतो नारी);
रत्न. १।२५ स्त्री तु हरतः (हरतो नारी) उक्त. ; दवि. १२६ व्यकवत्; व्यप्र. ३८९ रत्नवत्, उक्त. ; व्यउ. १२७ रत्नवत्, उक्त. ; व्यम. १०२ रत्नवत्, उक्त. ; वित्त. ७८३ तु (च) शेषं रत्नवत्, उक्त. ; बाल. २।२७५ (सर्वस्वं हरतः स्त्री तु कन्यापहरणे वधः ।) उक्त., कालायनः; ससु. १५० रत्नवत्, उक्त.

(४) नासं. १५।२०; नास्मृ. १।७।२१; मिता. २।२७०, २७५; अप. २।२७५ द्रव्येषु त्रि (त्रिषु द्रव्ये);

(१) त्रिषु प्रथममध्यमोत्तमेषु, द्रव्येषु त्रिषु क्षुद्र-
मध्यमहत्सु, एष प्रथममध्यमोत्तमसाहसदण्डान्तिदेशः
क्षुद्रमध्यमहत्सु द्रव्येषु विरुद्धदण्डानवरुद्धेषु द्रष्टव्यः ।

विर. ३२९

(२) यथैव साहसेषु प्रथममध्यमोत्तमेषु क्रमेण
प्रथममध्यमोत्तमसाहसदण्डाः प्रोक्ताः, तथा क्रमेण
क्षुद्रमध्यमोत्तमानि द्रव्याणि मृद्गाण्डवासोहिरण्यादीनि,
क्षुद्रमध्यमोत्तमद्रव्यापहारेषु प्रथममध्यमोत्तमसाहस-
दण्डाः, देशकालपुरुषापरान्तराणां परीक्ष्य सर्वत्र ।

नाभा. १५।२० (पृ. १६३)

न त्वहोढान्विताश्चौरा वध्या राज्ञा ह्यनागसः ।

सहोढान् सोपकरणान् क्षिप्रं राजा प्रवासयेत् ॥

(१) सहोढान् सलोपान्, सोपकरणान् सन्धि-
भेदनादीन् ।

विर. ३३१

(२) लोप्यादिरहिता अनागममविचार्य न वध्याः ।
चोरा ये तु सहोढाः सन्धिच्छेदाद्युपकरणयुक्ताश्च,
क्षिप्रमेव हन्तव्याः पूर्वोक्तेन न्यायेन ।

नाभा. १९।६६ (पृ. १८७)

पश्चात्तस्तेनदण्डः

राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ।

आचक्ष्णाणेन तस्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम् ॥

पश्चात्तापेनैव कर्तव्यम् । इदं मयामुष्य हृतं, शाधि
मामिति ।

नाभा. १९।१०४ (पृ. १९०)

अनेना भवति स्तेनः स्वकर्मप्रतिवेदनात् ।

राजानं तत्सृष्टेदेन उत्सृजन्तं सकिल्बिषम् ॥

व्यक. ११५; विर. ३२८ वेऽपि (येषु); पमा. ४४२
एवोक्तलि (एवास्ते त्रि); रत्न. १२५; विचि. १४१ विरवत्;
द्वि. १४३ विरवत्; नृप्र. २६२; सवि. ४५५ मनुः;
व्यप्र. ३८९; व्यड. १२७; विता. ७७७; राकौ. ४८२
अपवत्, मनुः; सेतु. २४३ विरवत्; समु. १५१.

(१) नासं. १९।६६ पूर्वार्धे (लोप्यादिरहिताश्चौरा राज्ञा-
ऽवध्या ह्यनागमम्) क्षिप्रं राजा प्र (चोरान् क्षिप्रं वि); नास्यु.
२१।६ ह्यना (अना) उत्तरार्धे (सहोढान् स्तेयकारणाक्षिप्रं
चोरान्प्रशासयेत्); व्यक. ११६ गस्तः (गमाः) वास
(माप); विर. ३३१ मसः (गमाः).

(२) नासं. १९।१०४ पूर्वार्धे (पिहितं) नास्यु.
२१।६ ह्यना (अना) उत्तरार्धे (सहोढान् स्तेयकारणाक्षिप्रं
चोरान्प्रशासयेत्); व्यक. ११६ गस्तः (गमाः) वास
(माप); विर. ३३१ मसः (गमाः).

(३) नासं. १९।१०४ पूर्वार्धे (पिहितं) नास्यु.
२१।६ ह्यना (अना) उत्तरार्धे (सहोढान् स्तेयकारणाक्षिप्रं
चोरान्प्रशासयेत्); व्यक. ११६ गस्तः (गमाः) वास
(माप); विर. ३३१ मसः (गमाः).

चोरस्तेनापापो भवति । दुष्टमुत्सृजन्तं तत्कृतं पापं
राजानं गच्छति । स तत्फलं भुङ्क्ते ।

नाभा. १९।१०५ (पृ. १९०)

राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।

निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥

(१) दण्ड्यास्तु तेन दण्डेन क्षीणपापा भवन्तीत्याह
नारदः— राजभिरिति ।

स्मृच. १२८

(२) तत् प्रायश्चित्तदण्डरूपदण्डपरम् । प्रकरणात् ।
अत एव कल्पतरौ सुवर्णस्तेयमुसलाघातप्रकरणे एव
तल्लिखितमिति ।

विचि. १८९

(३) एतत् प्रतिपाद्यते— न शासनं शिष्टपरि-
पालनार्थमेवाहृष्टार्थमपि । तेऽप्येवमनुग्रहीता भवन्ति ।
सर्वहितत्वमेव राज्ञ इति । नाभा. १९।१०६ (पृ. १९०)
शासनाद्वाऽपि मोक्षाद्वा स्तेनो मुच्येत किल्बिषान् ।
अशासन् तमसौ राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥

यदि शिष्यते अथ मुच्यते सर्वथा स्तेनः शुद्धो
भवति । अशासत् तेन कृतं पापं राजा आप्नोति ।
तस्मादवश्यं धर्मार्थमधर्मनिवृत्त्यर्थं दृष्टार्थं चोरार्थं च
शासयेदिति बहुफलत्वमनुशासनस्योक्तम् ।

नाभा. १९।१०७ (पृ. १९०)

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।

अतः प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥

इहाशिष्टा यमेन शास्यन्ते, शिष्टास्तु न यमेन ।
तस्मादिह शासनं सुष्ठु दृष्टार्थमिति तेषां वृत्त्यर्थमेव ।
शास्तेति । 'अनित्यमागमशासनमित्येतत् ज्ञापितं
'युवोरनाकौ' इत्यादिना ।

नाभा. १९।१०८ (पृ. १९०)

वेद (पाद) उत्तरार्धे (राजा ततः सृष्टेदेनमुत्सृजेत् सकिल्बि-
षम्) ।

(१) नासं. १९।१०६; नास्यु. २१।४८; स्मृच.
१२८; विचि. १८९; प्रका. ८१; समु. ७०.

(२) नासं. १९।१०७; नास्यु. २१।४९ नाद्राऽपि
(नादा वि) मुच्येत (मुच्यन्ति) सत् तमसौ राजा (अनित्य-
मागमशासनमित्येतत् ज्ञापितं युवोरनाकौ) इत्यादिना ।
नाभा. १९।१०७; नास्यु. २१।४९ नाद्राऽपि (नादा वि) मुच्येत (मुच्यन्ति) सत् तमसौ राजा (अनित्य-
मागमशासनमित्येतत् ज्ञापितं युवोरनाकौ) इत्यादिना ।

व्य.कां. २२०

विदुः स्नेहस्व कृषिभेदेनैः ऋणतारतम्यम्
 अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ।
 द्वाष्टापाद्यं तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य तु ॥
 ब्राह्मणस्य चतुष्पष्टिं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
 विद्यापि च विशेषेण विद्वत्स्वभ्यधिकं भवेत् ॥
 हृतस्याष्टगुणं शूद्रस्य स्तेये दण्ड इति केचित् ।
 अन्येऽष्टगुणोऽधर्मः तस्य हृतस्य य उक्तः स्तेय इति ।
 पूर्वपूर्वाद् द्विगुणमुत्तरोत्तरस्य । शूद्रादीनां वा स्वहरणे
 एवमेव धर्म इति । हृतं वा दापयित्वा ततोऽष्टगुणं दण्डः
 शूद्रस्य, षोडशगुणं वैश्यस्य, द्वात्रिंशद्गुणं क्षत्रियस्य,
 चतुष्पष्टिगुणं ब्राह्मणस्य इति ।

नाभा. १९१०९-१० (पृ. १९१)

स्तेयदोषप्रतिप्रसन्नः

समित्पुषोदकादानेष्वस्तेयं सपरिग्रहात् * ॥
 वैर्तमानोऽध्वनि श्रान्तो गृह्णेत्रेकाशनः स्वयम् ।
 ब्राह्मणो नापराधोति द्वाविक्षू पञ्च मूलिकान् × ॥
 चौरान्वेषणम्
 सहोदग्रहणात्स्तेयं होढेऽसत्युपभोगतः ।
 शङ्का त्वसज्जनैकार्थ्यादमायव्ययतस्तथा ॥

(१) सहोदग्रहणात् सलोपग्रहणात् होढेऽसत्युप-
 योगतः असति होढे लोप्य उपयोगतः अन्यथा लभ्यकर्पूरा-
 ह्युपयोगतः स्तेयं ज्ञेयम् । शङ्का तु स्तेयस्य असज्जनैका-

* व्याख्यानं स्थलदिनिर्देशश्च दण्डमातृकाप्रकरणे
 (पृ. ५९९) द्रष्टव्यः ।

× व्याख्यानं दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५९९) द्रष्टव्यम् ।

(१) नासं. १९१०९; नास्मृ. २१५९. द्वाष्टापाद्यं तु
 (द्विरष्टापाद्यं).

(२) नासं. १९११० पू.; नास्मृ. २१५२ चतुष्पष्टि
 मनुः (चतुष्पष्टीत्येवं).

(३) व्यनि. ५१५ त्रेकाशनः (त्रयशनं) पञ्च मूलिकान्
 (पञ्च मूलके). [अर्वादिदिनिर्देशः दण्डमातृकाप्रकरणे
 (पृ. ५९९) द्रष्टव्यः].

(४) नासं. १५५ होढेऽस्य (लति); नास्मृ. १७१८
 होढेऽस (होढम) कार्यादनीयं (कत्वादन्याय); अप.
 २१२६८ पास्ते (जे स्ते) देऽस (दे स); व्यक. ११६
 होढे (होढे) स्तथा (स्तथा); विर. ३३३ शोभ (शोभ);
 सेतु. २४५ देऽस (दे स) शोभ (शोभ).

स्थात्, असज्जनैर्मद्यपुनोद्यांसकैः ऐकार्थ्यात् एकेप्रयो-
 जनकत्वात्, अनार्यव्ययतस्तथा शङ्केति प्रथम-
 श्लोकार्थः । विर. ३३४

(२) लोप्येणापहृतद्रव्यैकदेशेन सह ग्रहणादवसरा-
 भावे स्तेयम् । लोप्याभावे अतिभोगात् पूर्वावस्थाया
 गन्धमाख्यवस्त्रादीनाम् । शङ्कया सर्वं दृष्ट्वा शङ्कित
 इवोद्विग्न इव भवति, तत्रापि स्तेयं संभाव्यम् । शङ्का-
 भावे न निश्चयः तदन्वसज्जनैर्दूतकदासीपत्यादिदुष्टजनै-
 रेककार्यत्वात् संभाव्यं स्तेयम् । न विद्यते (आयः)
 आगमो यस्य सोऽनायः । अनायस्य व्ययोऽनायव्ययः ।
 अनायव्ययाच्च संभाव्यमेवम् ।

नाभा. १५१७ (पृ. १६२)

अन्यहस्तात्परिभ्रष्टमकामादुत्थितं भुवि ।

चौरेण वा परिक्षिप्तं लोप्यं यत्नात् परीक्षयेत् ॥

तस्माच्चौरत्वनिश्चयो दृष्टेनादृष्टेन वा प्रमाणेनैवेति
 स्थितम् । दवि. ८१

अहोढान् विमृशेच्चौरान् गृहीत्वा परिशङ्क्या ।

भयोपधाभिश्चित्राभिर्भूयुस्तथ्यं यथा हि ते ॥

(१) अहोढान् होढरहितान्, तथा गृहीतपरि-
 शङ्कया उपधाभिश्चित्राभिर्व्यजैर्नानाविधैः देशादिकं
 प्रष्टव्यास्ते यथातथ्यं ब्रूयुरित्युत्तरश्लोकार्थः । विर. ३३४

(२) सलोप्यानपि चौरान् सहोढा दृष्टा इत्येतावता
 न शासितव्याः, विचारयेदेव अचोरशङ्कया । माण्डव्य-

(१) मिता. २१२६७; पमा. ४३७७ वा (णाप्ति);
 दवि. ८१ स्थितं भुवि (द्वृतं मथि) परि (प्रति); च्यम.
 २३९ दुत्थितं (दन्वितं) परि (प्रति) लोप्यं यत्नात्
 (लोप्यन्नात्); सवि. १४५९ सुवि (सु-वा) चौरेण वा
 परि (चौरैर्वापि मथि); व्यम. ३८६ मथि (प्रति); व्यड.
 १२४ व्यप्रकट; विता. ७९९ व्यप्रकट; समु. १४९.

(२) नासं. १९१६८ अहो (सहो) युस्तथ्यं (युः सत्यं);
 नास्मृ. २११८ त्वा परि (तान् यदि) उत्तरार्थे (भयो-
 पधाभिश्चित्राभिर्भूयुस्तथा यथा कृतम्); अप. २१२६८ त्वा
 परिशङ्क (तान् परिशंस्य); व्यक. ११६ अहो (सहो)
 अत्रा (तत्र) मयो (नयो); विर. ३३४ त्वा प (तप) भयो
 (तपो); व्यनि. ५०६ (=) उत्त.; सेतु. २४५ गृहीत्वा
 (गृहीत) भयो (तपो) द्रष्टव्यं. १४९. उत्त.; कथ्यन्तम्.

वदन्तोरस्यापि होमसंभवात्, इत्यावदन्तभिर्नामिः । इन्द्रं दृष्टमिति । ब्रह्मत्वेऽप्योत्पादकैश्चिन्नैस्तानि न किञ्चिन्निरुद्धं न दारच्छेदनागमिप्रदातृत्वाभिः (१) यथा । तेः संक्रान्तिः कृत्यं वदन्ति तथा । नामा. १९।६८ (पृ. १८४)

देशं ग्रामं दिशं नाम जातिं वा संप्रतिश्रयम् । कृतं कार्यं सहायाश्च प्रष्टव्याः स्तुर्निगूह्ये ॥

देशं कृततत्यां युयमिति, कस्मिन् काले, इहगिताः, कस्यां दिशि कस्मिन् देशे कृतो वा प्रविष्टाः, जातिर्भवतां का, किं नाम रूपं च, केन वेषेण प्रविष्टा इहेति, प्रतिश्रयश्चेह कासीदागच्छतां वेति, चौयणं चेहत्या भक्तदानोपकरणप्रच्छादनादिना सहाय्यं के कृतवन्त इति निगूह्य प्रष्टव्याः । नामा. १९।६९ (पृ. १८४)

वर्णस्वराकारभेदात् संसंदिग्धनिवेदानात् । अदेशकालद्रष्टव्यभिव्यक्त्याभिसाधनात् ॥

वर्णभेदात् पृष्ठः सन् विवर्णो भवति । स्वरभेदात् सगद्गदो भवति । आकारभेदात् चाक्षविषादादियोगास्पृष्टः स्पष्टं ब्रवीति । अदेशे च विन्निके शून्ये, अकाले च रात्र्यादौ दृष्टे, क्लोषित इति तस्य स्पष्टं निर्णयवचनात् परिच्छिद्यते चोर इति । नामा. १९।७० (पृ. १८४)

असद्वययात्पूर्वचौर्यात्सत्संसर्गकामणाल । लेशोरप्यवगन्तव्या न होदितैव केवलम् ॥

(१) नासं. १९।६७ पूर्वार्धे (देशं कालं कर्म प्रष्टव्यं नाम रूपं प्रतिश्रयम्) कृतं... ग्रामं (कृत्यं कर्म सहायांश्च); नासं. २९।९ ग्रामं (कोलं) नाम जातिं (जातिं नाम) उत्तरार्धे (कृत्यं कर्मकरा वा स्तुः प्रष्टव्यास्ते विनिग्रहे); अप. २।२६८ कृतं कार्यं (कृतकार्यं) नि (वि); व्यक. ११६ वा सं (वासी) कृतं कार्यं (कृतकार्यं); विर. ३३४ याश्च (यास्तु) शेषं व्यकवत्; व्यनि. ५०६ (=) नि (वि); सेतु. २४५ विरवत्; समु. १४९ सहायाश्च (समायां च) स्तुत्कवत्.

(२) नासं. १९।७० त्रिवासस्या (दासस्याय); नासं. २९।९ संसंदिग्ध (संसदि त्व) शेषं नासंत्वर; अप. २।२६८ दृष्टत्वात्रिवासस्या (दृष्टत्वात्रिवेशस्य); व्यक. ११६ कालं (काले) स्यावि (स्य वि); विर. ३३४ संसंदिग्ध (संदिग्धवि) दृष्ट (वृत्त); व्यनि. ५०६ स्यावि (स्य वि); सेतु. २४५ विरवत्; समु. १४९ वर्णस्वरा (स्वरवर्णां) शोध (रोध) स्तुत्कवत्.

(३) नासं. १९।७१; नासं. १९।७१; लेशैः (लेशैः)

। असद्वययात्, कृतपास्तदास्त्रादिर्न कृष्यात् । पूर्वचौर्यात् पूर्वकाले त्रैलोक्येऽप्युत्पादकैश्चिन्नैस्तानि न किञ्चिन्निरुद्धं न दारच्छेदनागमिप्रदातृत्वाभिः संक्रान्तिः कृत्यं वदन्ति तथा । नामा. १९।७१ (पृ. १८५)

दस्युवृत्ते यदि नरे शङ्का स्यात् तस्करेऽपि वा । यदि स्युदयेन लेखेन कार्यः स्याच्छपथं नरः ॥

(१) लेखेन कुक्लिच्छेन मुक्ताशोषणादिना । विर. ३३४

(२) अशुभवृत्ते मनुष्ये चोरो न वेति शङ्का स्यात् यदि, स यथोक्तानामन्यतमेन लेखेन युक्तः स्यात्, गोबीजकाञ्चनपुत्रसस्तकादिभिः दिव्यैर्वा शपथं कारयितव्यः । तस्करेऽपि चेति पाठे दस्युवृत्ते शङ्कायां मानुषः शपथः, तस्करे दिव्य इति । नामा. १९।७२ (पृ. १८५)

गवादिषु प्रनष्टेषु द्रव्येष्वपहृतेषु वा । पदेनान्वेषणं कुर्युरा मूलात्तद्विद्मो जनाः ॥

(१) गवादिषु द्रव्येषु प्रनष्टेषु स्वयमेवापहृतेषु केनापि हृतेषु वा तत्पादेनान्वेषणं कारयिष्ये । विर. ३३४

(२) गवादिषु गोऽप्यविमर्शेषाम्नादिषु प्रनष्टेषु, द्रव्येषु वा क्लिच्छेनान्नादिनाऽपहृतेषु गवादिषु, मनुष्यपदेन यतोऽपहृतं द्रव्यं तत् आरभ्य यत्र प्रविष्टं मन्हेत् घोषे वा तावदन्वेषणं कुर्युः अपूर्वमनुषादिपदज्ञानकुशलाधिष्ठितः । नामा. १९।२२ (पृ. १६३)

व्यक. ११६ प्यव (प्यव); विर. ३३४ व्यकवत्; व्यनि. ५०६ (=) लेखे (पतौ) व्या (व्यो) देनैव केवलम् (देरपि केवले); सेतु. २४५ लेखैरप्यव (शोरैरप्यव); समु. १४९ लेखे (पतौ) देनैव केवलम् (देरैव केवले) स्थत्यन्तरम्.

(१) नासं. १९।७२ रेऽपि (रो न); नासं. २९।१२ नरः (ततः); व्यक. ११७; विर. ३३८ शङ्का स्यात् (शङ्कते) श्वेत (शति) पथं नरः (पथस्तथा).

(२) नासं. १९।२१; नासं. १७।२२ पदेना (पदस्या); अप. ३।२६८ वा (च); व्यक. ११६ अपवत्, पृ. ३३५ वा (च) पदे (प्रदि); सेतु. २४६-७ पृ. ५ (अप) अपह (पपह) वा (च).

ग्रामे ब्रजे विवृते वा यत्र तन्निपतेत् पदम् ।
बोढव्यं तद्भवेत्तेन न चेतसोऽन्यत्र तन्नयेत् ॥

(१) ततो यस्य ग्रामे ब्रजे विवृते वा तत्पदं निप-
तेत्, तेन ग्रामादिमता तद्बोढव्यं, अपगतं गवादि देव-
त्वेन स्वीकार्यम् । विर. ३३६

(२) ग्रामादौ यत्र तत्पदं प्रविष्टं, तेन ग्रामादिना
चोरदोषोऽनुभवितव्यः, स ग्रामादिस्ततो ग्रामान्निर्गत्या-
न्यत्र न नयेत् । अन्यत्र स मुच्यते यो नयेत् । इतर-
स्याप्येषैव गतिः । नामा. १५१२२ (पृ. १६३)

पदे प्रमूढे भग्ने वा विषमत्वाज्जनान्तिके ।

यस्त्वात्सन्नन्तरो ग्रामो ब्रजो वा तत्र पातयेत् ॥

(१) पदे कियद्दृष्टेऽप्रे, तथाऽपरिचिते तत्संनिहित-
ग्रामे पातयेत् । विर. ३३६

(२) ग्रामाद् बहिरटव्यां प्रमूढं न ज्ञायते तत्पदमत-
श्चेतश्च पदबहुत्वात् । भग्ने वीपयुपरि गमागमवैषम्यात् ।
यत्र पदं भग्ने प्रमूढं वा, तत्सं देशस्य संनिक्वृष्टतरे
ग्रामे ब्रजे वा तन्नेषु पातयेत् । तथा सति स एव
रक्षिष्यन्ति तद्भ्यात् । इत्थं कृते चोराणां अपेक्षानिर्गमा-
भ्रमन्नश्चेत्ता भ्रमन्ति । नामा. १५१२३ (पृ. १६३)

स्तत्रोऽप्यवि द्यमेर्षन्न स्तेनप्रस्योऽनुचिर्जनः ।

कूर्मोप्राधेर्दुष्टो वा शंसुष्टो वा दुस्तन्निभिः ॥

(३) स्तेनहितग्रामदेशे यत्र ग्रामे स्तेनप्रस्यो दुर्जना
वसति तत्र जातव्यः । विर. ३३६

(४) यत्र तत्पदं भग्ने प्रमूढं वा तस्य देशस्य तुल्या-
ध्वंस्यैः ग्रामे यदि इत्यादि स्थिते देशे चोरप्रभे

(१) नासं. १५१२२ तत्रि (संनि); नास्यु. १७१२३ द्वीति
(विके) तत्रि (संनि); अप. २१२६८; विर. ३३५; सेतु.
२४७ बोढव्यं (बोढव्यं).

(२) नासं. १५१२३; नास्यु. १७१२४; अप. २१२६८;
व्यक. ११६ पदे (पादे); विर. ३३५ प्रमू (प्रमू); सेतु.
२४७ जना (जला) पात (यात).

(३) नासं. १५१२४ स्तेन (स्तेय) राधेर्दु (दानेर्दु);
नास्यु. १७१२५ स्तेन (तेन) राधे (नादे); अष. २१२६८;
व्यक. ११७; विर. ३३५ सस्ते (सीमा) दुं (दु); सेतु. २४७
समे (सीमा) पू.

त्रिःसत्यशौचो जनः पूर्वकार्य एव संभावितः निषाद-
दासीपतिद्यूतकरशौण्डिकादिभिः संसृष्टः, तत्र पातये-
दित्येव । तत्र हि संभाव्यते चौरत्वम् । तथाभूतो जनः
शक्नोऽत्यनार्यप्रायः ॥ तस्मिन् सत्यनार्यप्राये न्याय्यं
पातयेत् । नामा. १५१२४ (पृ. १६४)

ग्रामेष्वन्वेषणं कुर्युश्चण्डालवधकादयः ।

रात्रिसंचारिणो ये च बहिः कुर्युर्बहिश्चराः ॥

ग्रामेषु चोरान्वेषणं कुर्युः । ग्रामग्रहणे नगरस्यापि
द्रष्टव्यम् । चण्डालाश्च वधकाश्च चेटिकागोमलिका-
शौण्डिकादयश्चराः, रात्रिसंचारिणो ये च भाण्डवाहि-
कृभिण्डकपुरुषाः, ग्रामादिषु बहिरन्वेषणं कुर्युरित्येव ।
नामा. १५१२५ (पृ. १६४)

नैवान्तरीक्षान्न दिवो न समुद्रान्न चान्यतः ।

दस्यवः संप्रवर्तन्ते तस्मादेवं प्रकल्पयेत् ॥

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ।

चतुष्पथाश्चित्यवृक्षाः समाजप्रेक्षणानि च ॥

शून्यागाराण्यरण्यानि देवतायतनानि च ।

चौरविचयान्येतानि चोरग्रहणतत्परैः ॥

समादीनि नित्यं चारैः परीक्ष्याणि तेऽत्र चोरविहैः
ग्रहीतव्याः, तदन्वेषणतत्परैः परीक्ष्य एतैर्ग्रहीतव्यास्तैः ।
नामा. १५१२६ (पृ. १६२)

तथैवान्ये प्रणिहिताः श्रद्धेयाश्चित्रवादिनः ।

चौरा ह्युत्साहयुयुस्तांस्तस्करान् पूर्वतस्कराः ॥

तथाऽन्ये प्रणिहिताश्चौराः तैः सहत्य दक्षितप्रत्ययाः
अन्तर्धानमन्त्रोऽयं अनेन मन्त्रेणापिहितो न दृश्यते

(१) नासं. १५१२५; नास्यु. १७१२६; अप. २१२६८;
व्यक. ११७; विर. ३३५ शण्डा (शण्डा).

(२) अप. २१२६८; विर. ३३५; सेतु. २४७ वः संप्र
(वक्त्र अ).

(३) नासं. १५१५९; अप. २१२६८ जपेक्ष (जाः प्रेक्ष)
मनुनारदौ.

(४) नासं. १५१६०; व्यक. ११७ चारैः...तानि
(विचित्रैश्चारयेच्चारैः) उक्तः; विर. ३३७ व्यकवत्; उक्त.

(५) नासं. १५१६१; व्यक. ११७; विर. ३३७
तथैवा (तथा च) चौरा (चौरा) ह्ये (देवे).

मनुष्यः' इति पूर्वं राहा संकेतिते गृहे दिक्च एव प्रविश्य भाजनादि गृहीत्वा निष्कामन्ति । गृहजनश्च नृष्णीमस्तौ । ततोऽपरस्मिन् गृहे गृहमनुष्ये प्रवेश्य ते तथोत्पादितप्रत्ययाः चित्रवादिनः 'इदं चेदं चास्मिन् गृहेऽस्ति पर्याप्तमेतदस्माकमिति प्रोत्साह्य प्रवेश्य ग्राहयेयुः । नामा. १९।६१ (पृ. १८२)

अन्नपानमहादानैः समाजोत्सवदर्शनैः ।

तथा चौर्यापदेशैश्च कुर्वन्तेषां प्रसर्पणम् ॥

श्रद्धेयवाक्याः पुराणचोराः तैः सहैकीभूता भोजनं चोद्दिश्य पानं वा 'युयं निमन्त्रिताः आगच्छतास्मद्गृहे भोक्तुमिति दारकस्य बहुदण्डनमिति निमित्तेषुद्दिश्य, महादानं वा अहमस्मिन् देशे वस्तुमुत्सहे देशान्तरं यास्यामि यन्ममास्ति तद् युष्मभ्यं दास्यामि अमनुष्यायां वेलायामागच्छतेति, समाजं वा पुत्रं वा पश्यामः उत्सवं चेति, रात्राबागच्छत अदो गृहं तन्मुष्याम इति, एवमेषां समागमं कारयेयुः । समागतान् ग्राहयेयुः ।

नामा. १९।६२ (पृ. १८३)

ये तत्र नोपसर्पन्ति चारैः प्रणिहितैरपि ।

तेऽपि स्युः संप्रहीतव्याः सपुत्रज्ञातिबान्धवाः ॥

ये तथा प्रणिहिता अपि तस्मिन् समागमे नोपसर्पन्ति, ये गताः तेऽप्यनुगत्य सपुत्रद्वया(?) ग्रहितव्याः ।

नामा. १९।६३ (पृ. १८३)

अचौरा अपि दृश्यन्ते चौरैः सह समागतः ।

यदृच्छया नैव तु तान् नृपो दण्डेन संस्पृशेत् ॥

अचोरा अपि यदृच्छया चौरैः समागता दृश्यन्ते । तान् विचार्य राजा मुञ्चेत् । न तावता अविचार्यैव शासितव्याः, चौरैः सह दृष्ट्वा इत्येतावता नाविचार्य

(१) नासं. १९।६२; व्यक. ११७ चौ (सौ) प्रसर्पणम् (समागमम्); विर. ३३७ अन्नपान (अन्नद्वैः) यौ (रो) प्रसर्पणम् (समागमम्);

(२) नासं. १९।६३; चौरैः (सुताः) तैरपि (जा अपि) मि स्युः सं (मिस्रत्य) शाति (पशु); अप. २।२६८ सर्पन्ति (सर्पयुः) पुत्र (मित्र); व्यक. ११७; विर. ३३७.

(३) नासं. १९।६४ उत्तरार्धे (शादृच्छिकान् नैव तु तान् राजा दण्डेन शासयेत्); अप. २।२६८ मनुनारदौ; व्यक. ११७; विर. ३३७; व्यनि. ५०६; समु. ५४९-५७.

शासितव्याः । विचार्य शासयेदित्यर्थः ।

नामा. १९।६४ (पृ. १८३)

यौस्तत्र चोरान् गृहीयात्तान् विताड्य निबध्य च । अवधुष्य च सर्वत्र हन्याच्चित्रवधेन तु ॥

तथा गृहीतान् चोरान् ताडयित्वा लगुडादिना, गर्दभादिना च भ्रामयित्वा, अवधुष्य च सर्वत्र चतुष्पय-चत्वरशृङ्गाटकेष्वेवंकर्माण इति छेदनताडनदहनदिभिर्-मार्गवित्तव्यास्ते अन्ये मैवं कुरुतेति प्रत्यादेशार्थम् ।

नामा. १९।६५ (पृ. १८३)

स्तेनातिदेशः

चोराणां भक्तदा ये स्युस्तथाप्युदकदायकाः ।

आवासदा देशिकदास्तथैवान्तरदायकाः ॥

क्रेतारश्चैव भाण्डानां प्रतिग्राहिण एव च ।

समदण्डाः स्मृताः सर्वे ये च प्रच्छादयन्ति तान् ॥

(१) आहायकाश्चौराणां प्रेरकाः तेषामादेशकारिणः । अथवा आदेशकारस्तेषां प्रेरकाः । अन्तरदायकाश्चौराव-

(१) नासं. १९।६५ विताड्य (याताड्य) हन्याच्च (वध्याच्च) तु (ते); अप. २।२६८ यात्ता (युत्ता) निबध्य (विडम्ब्य) धुष्य (धोष्य) मनुनारदौ; व्यक. ११७ निबध्य (विडम्ब्य); विर. ३३७ या (ता) ताड्य निबध्य (माव्यं विलोभ्य); पमा. ४४९ ज्व निबध्य (व्यामिबन्ध्य) धुष्य (धुष्य); व्यनि. ५०६ निबध्य (विलोभ्य); समु. १४९ बध्य (बन्ध्य) धुष्य (जित्);

(२) नासं. १९।६३; नासं. २।१९३ स्युः (स्यु) चोराणां (काश्च त) कान्तर (वेचक); व्यक. ११७; आहायका-देशिकरास्तेषां चान्तरदायकाः) उक्त.; विर. ३३७; आहायका-देशिकरास्तेषां चान्तरदायकाः) उक्त.; स्मृ. २।२६८ (आहायकादेशिकरास्तेषां चान्तरदायकाः) उक्त.; विचि. ३४५ (आहायकादेशिकरास्तेषां चान्तरदायकाः) उक्त.; व्यक. ११७; आहायकादेशिकरास्तेषां चान्तरदायकाः) उक्त.; कात्यायनः १।१।३. २।२७३ व्यकवत्, उक्त.; विहा. १७९४ (आहायकादेशिकरास्तेषां चान्तरदायकाः) उक्त.; सेतु. २३८ दविवत्, उक्त.

(३) नासं १९।७४; नासं. २।१९४ ताः चौरैः (वास्तु ते); अप. २।२७६; व्यक. ११७ उक्त.; विर. ३४० उक्त.; स्मृ. १२६ सर्वे (सैते) उक्त.; विचि. १४५ उक्त.; द्वि. ८३ उक्त.; कात्यायनः १।१।३. २।२७३ उक्त.; विहा. ७९४ रत्नवत्, उक्त.; सेतु. २३८ रत्नवत्, उक्त.

काशदायकाः । समदण्डाश्चैरेण । तान् चौरान् ।
विर. ३४०

(२) देशिकदा मार्गदेशिकं ददति । अन्तरदाः
छिद्रदाः । क्रेतारश्चाप्रकाशं द्रव्याणाम् । चोरहस्ताद-
मूल्याय प्रतिग्राहणश्च, चौरैरानीय स्थापयन्ति । चोरान्
ये प्रच्छादयन्ति च । एते सर्वे चोरतुल्या निग्राह्याः ।

नाभा. १९।७३:४ (पृ. १८५)

भक्तवकाशदातारः स्तेनानां ये प्रसर्पताम् ।

शक्ताश्च ये उपेक्षन्ते तेऽपि तद्दोषभागिनः ॥

स्तेनानां मुषितुं गच्छतां, मुषित्वा बोपसर्पतां, ये
भक्तदाः ज्ञानपूर्वकमवकाशदातारश्च प्रच्छादनार्थं मोष-
निधानार्थम् । 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' (व्यासू. १।४।३०)
इति ज्ञापकात् तृजन्तेन समासः । अभिधावतेत्युद्धोषिते
त्रातुं शक्ताः सन्तो ये चौदासीन्येन आसते, ते सर्वे
चोरतुल्याः । नाभा. १५।१८ (पृ. १६२)

उत्क्रोशतां जनानां च न्हियमाणे धने तथा ।

श्रुत्वा ये नाभिधावन्ति तेऽपि तद्दोषभागिनः ॥

अपि चेति न पूर्वं एव एतेऽपीति समुच्चयार्थः ।

उत्क्रोशतां धनं गृहीत्वा चौरा गच्छन्ति परित्रायध्वं
परित्रायध्वमिति, धने न्हियमाणे आह्वानं कुर्वतां ये न
धावन्ति शक्ता अशक्ता वा, तेऽपि तद्दोषेण संबध्यन्ते ।

नाभा. १५।१९ (पृ. १६२-३)

राष्ट्रेषु राष्ट्राधिकृताः सामन्ताश्चैव चोदिताः ।

अभ्याघातेषु विज्ञेया यथा चोरास्तथैव ते ॥

(१) नासं. १५।१९ शक्ताश्च (शक्तौ च); नास्य.
१७।१९; मित्त. २।२७६ उक्त.; व्यक. १।१७; विर. ३३९
नां वे (नां तु); पमा. ४४७ उक्त.; रत्न. १।२६; विचि.
१।४५ नां वे (नां च); दवि. ८३; नृप्र. २६६ उक्त.;
सवि. ४६४ उक्त.; वीमि. २।२७३; व्यप्र. ३९२ ये उ
(यद्) उक्त.; व्यउ. १।२९ उक्त.; व्यम. १०२; विता.
७९३ स्तेनानां (चौराणां); सेतु. २४८ नां वे (नां च)
वे उ (यद्); समु. १।५२; विव्य. ५२ विचिवत्.

(२) नासं. १५।१९. ने. तथा (नेऽपि च); नास्य.
१।७२०; अफ. १।२७६ धने (धने); पमा. ४४७ च
(तु); व्यनि. ५०८ चैव (तु); व्यप्र. ३९२ च (तु);
व्यउ. १।२५ नाभि (नाभि); विह. १।५२ तथा (तदा).

(३) नासं. १५।७५; नास्य. १।५५; विज्ञेया

राष्ट्रेष्वधिकृताः प्रत्यन्तेषु च निवेशिताः अयुक्त-
चौरैर्घरणिकादयः (१) प्रतिवेशाश्चाभिधावतेति चोदिताः
अभ्याघातेषु यदि नाभिधावन्ति, चोरवत् ते विज्ञेयाः ।
अवश्यं तेषां चौरैः सह संबिदस्तीति गम्यते ।

नाभा. १९।७५ (पृ. १८५)

स्तेनालाभे हतदानम्

गोचरे यस्य मुष्येत तेन चौरः प्रयत्नतः ।
ग्राह्यो दाप्योऽथवा मोषं पदं यदि न निर्गतम् ॥

(१) गोचरे विषये । विर. ३४४

(२) यस्य वसत्यां मुषितं ग्रामस्य ग्रामण्यो वा, तैर्न
प्रयत्नतः चोरा मृग्याः । अन्यथा मोषं दाप्यः । पदं
चिह्नं ततो ग्रामात् निर्गतं यदि न दर्शयेत् । अथान्यस्य
गोचरं प्रविष्टनष्टं चोरलिङ्गं दर्शयेत्, शुद्धो भवति ।
नाभा. १९।७६ (पृ. १८५)

निर्गते तु पदे तस्मात् न चेदन्यत्र पातितम् ।

सामन्तान् मार्गपालांश्च दिक्पालांश्चैव दापयेत् ॥

(१) पदे चौरमार्गे तस्माद्ग्रामान्निर्गते, तद्यदि न
ग्रामान्तरे पातितं चौरैर्न तदा सामन्तादीन् दापयेत् ॥
अप. २।२७१

(तु मध्यस्थां).

(१) नासं. १९।७६ मुष्येत (मुषितं) ग्राह्यो (गृह्य)
थवा (न्यथा); नास्य. २।१।१६ चौरः (चौराः) ग्राह्यो
(मृग्या) थवा (न्यथा); भित्त. २।२७१ मुष्ये (मुष्ये)
मोषं (शेषं); अप. २।२७१; व्यक. १।१८ थवा (न्यथा);
विर. ३४४ मुष्येत (दृश्येत) ग्राह्यो दाप्योऽथ (मृग्यो
वाप्यथ); पमा. ४४८ मोषं (द्रव्यं); नृप्र. २६२ गोचरे
(गोपदे) मोषं (शेषं); २६६ पमावत्; व्यउ. १।२५;
व्यम. १०२ पमावत्; विता. ७९५; समु. १।५२ पमावत्.

(२) नासं. १९।७७ नं चेद ... तम् (नष्टेऽन्यत्र
निपातिते); नास्य. २।१।१७ पूर्वापे (निर्गते तु यदा यस्मि-
न्नेऽन्यत्र न पातयेत्); भित्त. २।२७१ तु पदे (पुनरे);
अप. २।२७१; व्यक. १।१८; विर. ३४४; पमा. ४४८
नैते (शितं) पातितम् (याति तत्) शेषं मित्तवत्; नृप्र.
२६२ तु पदे तस्मात् (पुनरेतत्स्यात्); २६६ तु पदे तस्मात्
(पुनरेतत्स्य); व्यउ. १।२५ चेद (तद्) शेषं मित्तवत्;
व्यम. १०२ मित्तवत्; विता. ७९५ नैते (शितं) शेषं
मित्तवत्; समु. १।५२ मित्तवत्.

(२) तस्मान्निर्गते तु पदे तत्र पदं याति, तत्स दद्यात्, न चेद्भतिर्दृश्यते, तदा सामान्तादयो दद्यु- रित्यर्थः ।

विर. ३४४

(३) नष्टेऽन्यत्र निपातिते निर्गते तस्माद् गोचराद- न्यगोचरं प्राप्य नष्टे, अन्यत्र तु निपातिते तस्य पूर्वैव यातिः, अनिपातिते नष्टे सामान्तादयो दाप्याः ।

नाभा. १९१७७ (तु. १८६)

गृहे वै मुषिते राजा चौरग्राहंस्तु दापयेत् ।
आरक्षकान् राष्ट्रिकांश्च यदि चौरौ न लभ्यते ॥
यदि वा दाप्यमानानां तस्मिन् मोषे ससंशये ।
मुषितः शपथं कार्यो मोषवैशोध्यकारणात् ॥

तेषां दाप्यमानानां दण्डवासिकादीनां च यदि मोषे संशयः स्यात् नाल्पं मोष इति, मुषितः शपथं कारयितव्यः मोषविशोधननिमित्तप्रत्ययकारणात् । कृते शपथे, दाप्याः । अथ न संशयस्तेषां, दाप्या एव ।

नाभा. १९१७९ (पृ. १८६)

अचोरे दापिते मोषे चोरान्वेषणकारणात् ।
उपलब्धे लभेरंस्ते द्विगुणं तत्र दापितान् ॥

अचोरे अविद्यमानचोरे मिथ्याभियोगान्मोषे दापिते चोरान्वेषणार्थमुपलब्धे मिथ्याभावे अभियोक्ता तेभ्यो द्विगुणं दाप्यः । राजकुले च यथाहं दण्डयः । अन्य आह—अमुपलभ्यमाने चोरे मिथ्यादापिते मोषे यदि चोरमन्विष्यानयेयुः, चोरो द्विगुणं तेभ्यो दाप्यः । मोषं च मुषितस्य, राजकुले च दण्डमिति ।

नाभा. १९१८० (पृ. १८६)

चौरैर्द्वैतं प्रयत्नेन सरूपं प्रतिपादयेत् ।
तदभावे तु मूल्यं स्याद् दण्डं दाप्यश्च तत्समम् ॥

(१) नासं. १९१७८ वै (तु) चौर...वेत् (दापये- दण्डवासिकान्) आर...कांश्च (आरक्षिकान् वाहिकांश्च) ; नास्मृ. २१११८.

(२) नासं. १९१७९; नास्मृ. २१११९ दाप्यमानानां (दोषकतैव) ससं (तु सं) कार्यो मोषवैशोध्य (शाप्यो मोषे वै शुद्धि).

(३) नासं. १९१८०; नास्मृ. २११२० (अचौरौ बोधितो मोषं चौरौ वै शुद्ध्यकारणात् । चौरै लब्धे लभेरंस्ते द्विगुणं प्रतिपादितः ॥).

(४) नासं. १९१८१; नास्मृ. २११२१ चौरैर्द्वैतं प्रयत्नेन

चौरैः द्वैतं द्रव्यं मुषितं प्रयत्नेन सरूपं यथाभूतं तथाभूतं प्रतिपादयेद् इदं द्रव्यं दीनारादि यच्च न चास्मादासमादिपुरादि(?) चेति । अप्रतिपादनेनानीते मोषे विसंवदिते मूल्यं चोरसमं दण्डयः ।

नाभा. १९१८१ (पृ. १८६)

स्तेनेष्वलभ्यमानेषु राजा दद्यात् स्वकाङ्क्षानात् ।
उपेक्षमाणो ह्येनस्वी धर्मादर्थाच्च हीयते ॥

चौरैष्वलभ्यमानेषु राजा स्वधनाद् दद्यात् तद्धनं, नास्ति तस्य रक्षितव्यस्यारक्षणात् स्वदोषात्तद्वत्वात् । उपेक्षमाणोऽददत् स्वधनाच्चोरमन्विष्यादापयंश्च स्वार्थात् तन्निमित्ताद्दीयते । तस्माद् यथोक्तं कर्तव्यम् ।

नाभा. १९१२६ (पृ. १६४)

वात्ता त्रयीमप्यथ दण्डनीतिं
राजाऽनुवर्तेत सदाऽप्रमत्तः ।

हन्यादुपायैर्विधिर्गृहीत्वा
पुरे च राष्ट्रे च विघुष्य चोरान् ॥

वात्ता कृषिगोरक्षवाणिज्यलक्षणां, त्रयीमृग्यजुस्साम- लक्षणां, दण्डनीतिं च सदा राजा अनुवर्तेत । कुटुम्बिनो ब्राह्मणादीन् न पीडयेदित्यर्थः । अर्थशास्त्रं च मनसा नित्यमवेक्षेतेत्यर्थः । अथवा कृष्यादि सदा कुर्यात्, तेनोक्तानि च कर्माणि नित्यं कुर्यात् । अर्थशास्त्रं च यथोक्तं तथा कुर्यात् । किञ्च उपायैर्यथोक्तैरनेकप्रकारै- श्चोरान् गृहीत्वा पुरे च राष्ट्रे च चकाराद् ग्रामे च विघुष्य प्रकारान्यमोपत्रासजननार्थं हन्यादित्युप- संहारार्थः ।

नाभा. १९११९९ (पृ. १९२२)

बृहस्पतिः

स्तेनप्रकाराः

प्रकाशाश्चाप्रकाशाश्च तस्करा द्विविधाः स्मृताः ।
प्रज्ञासामर्थ्यमायाभिः प्रभिन्नास्ते सहस्रधा ॥

(चौरद्वैतं प्रथमैव); विव्य. ५३ सरू (स्वरू).

(१) नासं. १५१२६; नास्मृ. १७१२७ ब्रह्मात् (दृग्भाव); व्यनि. ५१४ काङ् (तो घ); समु. १५२ स्तेने (चोरे) काङ् (तो घ).

(२) नासं. १९११९९; नास्मृ. २११६१ व्ययि (तु यं चा) जै सदाऽप्र (तेनजताप्र) हन्या... चोरेण (हन्यादुपायैर्विधिर्गृहीत्वा तथैव अस्तेन निघृह्य पाक्यात्).

(३) नासं. ३०९९; नास्मृ. २११७९ तस्करा द्विविधाः

प्रज्ञा परद्रव्यहरणानुकूला, माया परव्यामोहनम् ।

विर. २८९

नैगमा वैद्यकितवाः सभ्योत्कोचकवञ्चकाः ।

दैवोत्पाताविदो भद्राः शिल्पज्ञाः प्रतिरूपकाः ॥

अक्रियाकारिणश्चैव मध्यस्थाः कूटसाक्षिणः ।

प्रकाशतस्करा ह्येते तथा कुहकजीविनः ॥

(१) के पुनः प्रकाशतस्करा इत्यपेक्षिते स्वयमेवाह

—नैगमा इति । प्रतिरूपकाः प्रतिरूपकराः ।

स्मृच. ३१७

(२) नैगमा अत्र कपटतुलादिधारणद्वारा अर्थहारिणः ।

वैद्या रोगं प्रकोप्यार्थहारिणः । कितवा कृटदेवनद्वारा

अर्थहारिणः । सभ्याः पार्षदाः अर्थलोभेनान्यायवादिनः ;

उत्कोचकाः कार्याधिकृताः सन्तः उत्कोचग्राहकाः ।

वञ्चकाः संभूयोद्यतानां प्रच्छाद्येतरार्थग्राहिणः । दैवं

भाग्यमुत्पातोद्भूतं तद्विदो मिथ्योक्त्याऽर्थहराः । भद्राः

शान्तिनियुक्ताः शान्तिमकृत्वैवार्थहराः । शिल्पज्ञाः कूट-

शिल्पेनार्थहराः । प्रतिरूपकाः कूटशिवाङ्गादिद्वारा अर्थ-

हराः । अक्रियाकारिणो भूतका भृतिं गृहीत्वा अक्रिया-

कारिणः । मध्यस्था मूल्यव्यवस्थापकाः कूटमूल्यव्यवस्था-

पनेनार्थहराः । कूटसाक्षिणोऽयथावादेन परव्यवहार-

साक्षिणः । कुहकजीविन इन्द्रजालादिनार्थहारिणो

विवक्षिताः । विर. २८९-९०

(३) वञ्चकाः संभूयोद्यतानां प्रच्छाद्यैकतरार्थहारिण

(द्विविधास्तस्कराः) ; विर. २८९ तस्क स्मृताः

(द्विविधास्तस्करा मताः) स्रथा (सशः) ; पमा. ४३७ ;

रत्न. १२४ ; सवि. ४६० ; व्यप्र. ३८६ ; व्यउ. १२८

स्रथा (सशः) ; विता. ७७७ उक्त. ; सेतु. २२७ स्रथा

(सशः) शेषं स्मृचवत् ; समु. १४८.

(१) व्यक. १०९ ; स्मृच. ३१७ ; विर. २८९ ; पमा.

४३८ ; रत्न. १२४ ; दवि. ११६ भ्योत्को (भ्या उ) रूप

(रूपि) ; व्यप्र. ३८६ ; व्यउ. १२४ ; व्यम. १०१ विदो

भद्राः (कराः शुद्राः) क्रमेण नारदः ; विता. ७७८ ; सेतु.

२२७ ; समु. १४८.

(२) व्यक. १०९ ; स्मृच. ३१७ ; ह्येते (ह्येते) जीवि

(जीवि) ; विर. २८९ ; पमा. ४३८ ; रत्न. १२४ ; दवि.

११७ ; व्यप्र. ३८६ ; व्यउ. १२४ ; व्यम. १०१ विदो

भद्राः (कराः शुद्राः) क्रमेण नारदः ; विता. ७७८ ; सेतु.

२२७ ; समु. १४८. (३)

इति रत्नाकरः । ये सुवर्णादिद्रव्यं गृहीत्वाऽपद्रव्यप्रक्षेपेण

वञ्चयन्ति इति मनुटीका । दैवं भाग्यमुत्पातोद्भूतं तद्विदो

मिथ्योक्त्या अर्थहारिण इति रत्नाकरः । हल्ययुधस्तु

‘तथैवोत्पातविद’ इति पठित्वा ये मिथ्यैवोत्पातदर्शनेन

गृह्णन्तीत्याह । भद्राः शान्तिनियुक्ताः शान्तिमकृत्वै-

वार्थहरा इति रत्नाकरः । कल्याणाकारतया प्रच्छन्नपापा

घनग्राहिण इति मनुटीकायां कुल्लकभट्टः । स्वरूपतामा-

त्मनो निधाय स्यादिव्यामोहका इति सर्वज्ञः । शिल्पज्ञाः

कूटशिल्पेनार्थहराः प्रतिरूपकाः कूटशिवाङ्गादिद्वारा

अर्थहरा इति रत्नाकरः । मिथ्याश्रमणलिङ्गदण्डादि-

धारिण इति हल्ययुधः । *दवि. ११७

संधिच्छिदः पान्थमुषो द्विचतुष्पदहारिणः ।

उत्क्षेपकाः शस्यहरा ज्ञेयाः प्रच्छन्नतस्कराः ॥

उत्क्षेपकाः रक्षकस्याग्रत एवानवहितस्य दृष्टिं वञ्च-

यित्वा अर्थहारिणः । शस्यहरशब्देन एतद्वाक्यपूर्वोक्त-

प्रच्छन्नहारकमात्रं विवक्षितम् । Xविर. २९२

प्रकाशतस्करदण्डाः

शुल्कं दद्युस्ततो मासमेकैकं पण्यमेव च ।

अर्धावरं च मूल्येन वणिजस्ते पृथक् पृथक् ॥

प्रच्छाद्य दोषं व्यामिश्र्य पुनः संस्कृत्य विक्रयी ।

पण्यं तद्विगुणं दाप्यो वणिपदण्डं च तत्समम् ॥

* शेषं विरवत् । X दवि. विरवत् ।

(१) विर. २९२ पान्थ (प्रान्त) ; पमा. ४३८ ; व्यनि.

५०३ षपद (ष्याद) ; दवि. १२१ व्यनिवत् ; सेतु. २२८ ;

समु. १४८ नारदः .

(२) मभा. १०१३४ दद्युस्त (दद्यात्) अर्धावरं च

(अर्धावरं) ; गौमि. १०१३५.

(३) अप. २१२४४ पूर्वार्धे (प्रच्छन्नदोषव्यामिश्रं पुनः

संस्कृतविक्रयी) पण्यं (पण्ये) ; विर. २९७ पण्यं तद्वि-

(पण्यं तु द्वि) पूर्वार्धे अपवत् ; पमा. ४३९ स्य (श्रं) दण्डं

(दण्डव्यः) ; रत्न. १२४ ; विचि. १२६ च्छाद्य (च्छन्न) इत्य

(श्रं) ल (त) ; व्यनि. ५१३ प्रच्छा...स्य (अभिन्नदोष-

व्यामिश्रं) वणि...मम् (मणिगण्डश्च तत्समः) ; दवि. १०७

तद्वि (तद्वि) शेषं अपवत् ; व्यप्र. ३८७ ; व्यउ. १२६ ;

व्यम. १०१ दण्डं (दण्डं) ; विता. ७७९ पण्यं (पण्यं) ;

सेतु. २३१ पूर्वार्धे (प्रच्छन्नदोषव्यामिश्रपुनः संस्कृतविक्रयी) ;

समु. १४८. (४)

(१) प्रच्छन्नदोषो गोपितदोषः । व्यामिश्रमनभि-
मतद्रव्येण । पुनः संस्कृतं पुरातनमेव संभावनादिना
नवीकृतम् । विर. २९७

(२) संगुप्तदोषमपद्रव्यमिश्रितं वा शाणादिना
पुनर्नवीकृतं वा यो विक्रीणीति स कृतभाजनाद्द्विगुणं
भाजनादिकं केतरि क्रीतद्रव्यसमं च दण्डं राजनि दाप्य
इत्यर्थः । विचि. १२६

अल्पमूल्यं तु संस्कृत्य नयन्ति बहुमूल्यताम् ।
स्त्रीवालकान् वञ्चयन्ति दण्ड्यास्तेऽर्थानुसारतः ॥
हेममुक्ताप्रवालाद्यान् कृत्रिमान् कुर्वते तु ये ।
केतुर्मूल्यं प्रदाप्यास्ते राज्ञा तद्द्विगुणं दमम् ॥
द्विगुणं विक्रीततादृग्द्रव्यमूल्यापेक्षया ।

विर. ३११

अज्ञातौषधिमन्त्रस्तु यश्च व्याधेरतत्त्वविन् ।
रोगिभ्योऽर्थं समादत्ते स दण्ड्यश्चौरवद्विपक् ॥

(१) अप. २।२४६ सारतः (रूपतः); व्यक. ११२
अपवत्; विर. ३१० ण्ड्यास्तेऽ (ण्ड्या अ); पमा. ४३९;
रत्न. १२४; विचि. १३२ अल्प (स्वल्प) ण्ड्यास्तेऽर्था-
नुसारतः (ण्ड्या अर्थानुरूपतः); व्यनि. ५१३; दवि. १०१;
व्यप्र. ३८८; व्यउ. १२६; व्यम. १०१ अल्प (स्वल्प)
स्त्रीवालकान् (ये चाक्षकान्); विता. ७७९-८० अल्प (स्वल्प)
स्त्री (ये); सेतु. २३४ ण्ड्यास्तेऽर्थानुसारतः (ण्ड्या अर्थानु-
रूपतः); समु. १५०.

(२) अप. २।२४६ चान् कृत्रिमान् (चं कृत्रिमं) केतुर्मू-
(केत्रे मू); व्यक. ११२ अपवत्; विर. ३१०-११ चान्...
...र्वते (चं कुर्वते कृत्रिमं) केतुर्मू (केत्रे मू) शा तद्दि (ज्ञे च
दि); पमा. ४४० मुक्ता (रत्न); रत्न. १२४ पमावत्;
विचि. १३३ विरवत्; व्यनि. ५१३ चान् कृत्रिमान् (नां
कृत्रिमं) केतु...स्ते (ते तन्मूल्यं प्रदाप्यास्तु); दवि. १०१
विरवत्; व्यप्र. ३८८ पमावत्; व्यउ. १२६ पमावत्;
व्यम. १०१ मुक्ता (रत्न) तद्दि (च दि); विता. ७८०
पमावत्; सेतु. २३४ विरवत्; समु. १५० मुक्ता (रत्न)
शा (ज्ञे).

(३) अप. २।२४२ पूर्वार्धे (अज्ञानज्ञौषधं तन्त्रं यश्च
व्याधेरतन्त्रवित्) समा (उपा); व्यक. ११२ ज्ञातौषधि
(जातौषध); विर. ३०६ षधि (षध); पमा. ४३९; रत्न.
१२४; व्यनि. ५१० षधि (षध) यश्च (यस्तु) ऽर्थं समा
(ह्यर्थमा); दवि. १०४ मतुः; व्यप्र. ३८७; व्यउ. १२६

व्य. कां. २२१

अन्यायवादिनः सभ्यास्तथैवोत्कोचजीविनः ।

विश्वस्तवञ्चकाश्चैव निर्वास्याः सर्व एव ते ॥

सभ्याः पार्यदाः । अर्थालाभेनान्यायवादिनः । विलब्ध-
वञ्चकाः सम्यङ्निर्णयानुकूलवञ्चनव्यतिरिक्तवञ्चनकर्तारः ।
उत्कोचादायिनो द्विविधाः— उत्कोचग्राहिणस्तदा-
जीविनश्च । दवि. १०५

कूटाक्षदेविनः क्षुद्रा राजभागहराश्च ये ।

गणका वञ्चकाश्चैव दण्ड्यास्ते कितवाः स्मृताः * ॥

ज्योतिर्ज्ञानं तथोत्पातमविदित्वा तु ये नृणाम् ।

श्रावयन्त्यर्थलोभेन विनेयास्ते प्रयत्नतः ॥

अर्थलोभेनेति वचनादर्थानुसारी दण्डः ।

दवि. ११२

दण्डाजिनादिभिर्युक्तमात्मानं दर्शयन्ति ये ।

हिसन्ति छद्मना नृणां वध्यास्ते राजपूरुषैः ॥

मध्यस्था वञ्चयन्त्येकं स्नेहलोभादिना यदा ।

साक्षिणश्चान्यथा ब्रूयुर्दाप्यास्ते द्विगुणं दमम् ॥

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च धृतसमाहये द्रष्टव्यः ।

ज्ञातौ (ज्ञानौ); व्यम. १०१; विता. ७७९; समु. १५०.

(१) व्यक. ११२; विर. ३०७ श्वस्न (श्रब्ध); पमा.
४३९; रत्न. १२४; विचि. १३०-३१ विरवत्; दवि. १०५
विरवत् : ३३८ (अन्यायवादिनः सभ्या निर्वास्याः सर्व एव ते)
एतावदेव; व्यप्र. ३८७; व्यउ. १२६; व्यम. १०१;
विता. ७७९; सेतु. २३२ विरवत्.

(२) व्यक. ११२; विर. ३०८ प्रयत्नतः (ऽपि यत्नतः);
पमा. ४३९; रत्न. १२४; दवि. ११२ विरवत्; व्यप्र.
३८७; व्यउ. १२६; व्यम. १०१ तु ये (तथा) श्राव-
यन्त्यर्थलोभेन (शकुनादि च ये ब्रूयुः); विता. ७७९; सेतु.
२३२ विरवत्.

(३) व्यक. ११२ दिभिर्यु (दिना यु); स्मृच. ३२५
दिभिर्यु (दिना यु) नृणां (शून्ये); विर. ३०८-९ व्यक्त्वत्;
पमा. ४३९ नि छ (न्तदछ); रत्न. १२४; विचि. १३१
पूर्वार्धे (दण्डादियुक्तमात्मानं दर्शयन्ति मृषा तु ये) नृणां
(नूनं ये); दवि. ११५, ११७ दिभिर्यु (दिना यु) नृणां
(चार्थं); व्यप्र. ३८८; व्यउ. १२६; विता. ७७९ नृणां
(नृंश्च); समु. १५० दिभिर्यु (दिना यु) हिंस (युक्)
नृणां (चार्थं).

(४) व्यक. ११३ यदा (यतः); विर. ३१४; पमा.

मन्त्रौषधिबलात्किञ्चित्संभ्रान्तिं दर्शयन्ति ये ।
मूलकर्म च कुर्वन्ति निर्धास्यास्ते महीभुजा ॥
यावन्ति वञ्चयन्ति तद्द्विगुणं, मूलकर्म वशीकरणमत्र ।
विर. ३१५

अप्रत्याशनस्करदण्डाः

संधिच्छेदकृतो ज्ञात्वा शूलमाग्राहयेत् प्रभुः ।
तथा पान्थमुपो वृक्षे गले वद्ध्वाऽवलम्बयेत् ॥
एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टचारिणि ।
वहूनां भवति क्षेमस्तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥
मनुष्यहारिणो राज्ञा दग्धव्यास्तु कटाग्निना ।
गोहर्तुर्नामिकां छित्त्वा वद्ध्वाऽम्भसि निमज्जयेत् ॥
कटेन वेष्टयित्वा तत्प्रभवेणाग्निना दाह्या इत्यर्थः ।
विर. ३१७

प्रथमे ग्रन्थिभेदानां अङ्गुल्यङ्गुष्ठयोर्वधः ।
द्वितीये हस्तपच्छेदं तृतीये वधमर्हति ॥

४४०; रत्न. १२४; दवि. १०६ यदा (तथा); व्यग्र. ३८८; व्यड. १२६; व्यम. १०१ वञ्चयन्त्येकं खेह (वञ्चकाः स्युश्चेद्राग); त्रिता. ७८० स्या वञ्चयन्त्येकं (स्यो वञ्चयेल्लोक); समु. १५० खेह (राग).

(१) व्यक. ११३; स्मृच. ३२६; विर. ३१५ त्संभ्रान्तिं दर्श (यावन्ति वञ्च); दवि. ११५; सवि. ४७५ आ (आ) दर्श (जन); समु. १५८.

(२) अप. २१२७३ पूर्वार्धे (संधिच्छिदो हतं त्याज्याः शूलमारोपयेत्ततः); व्यक. ११३; स्मृच. ३१८ उक्तः; विर. ३१७ पूर्वार्धे (संधिच्छिदो हतं त्याज्याः शूलमारोहयेत्ततः); पमा. ४४० गले (गलं); रत्न. १२५ उक्तः; दवि. १२४ पूर्वार्धे (संधिच्छिदो हतं दाप्याः शूलमारोपयेत्ततः); सवि. ४६१ पमावत्, उक्तः; व्यग्र. ३८८ वृक्षे (वृक्षं); व्यड. १२७; व्यम. १०२ उक्तः; विता. ७८२ ऽवल (च ल) उक्तः; सेतु. २३५ (संधिच्छिदोऽसकृद्ये तान् शूलमारोपयेत्ततः) पू. : २३६ उक्तः; समु. १५०.

(३) स्मृच. ३१८; समु. १५०.

(४) व्यक. ११४ द्ध्वाऽम्भसि नि (द्ध्वा चाम्भसि); स्मृच. ३१८ उक्तः; विर. ३१७ पू.; पमा. ४४० स्तु (स्ते) छित्त्वा नि (छित्त्वात् वद्ध्वा वाऽम्भसि); रत्न. १२५ उक्तः; विचि. १३४; दवि. १२५ पू.; सेतु. २३६ पू.; समु. १५० व्यास्तु (व्या.वै); विव्य. ५१ पू.

(५) स्मृच. ३१८ दानां (दान्तं) पू.; सवि. ४६२ पू.; समु. १५०.

उत्क्षेपकस्य संदंशश्छेत्तव्यो राजपूरुषैः ।
धान्यहर्ता दशगुणं दाप्यः स्याद्द्विगुणं दमम् ॥
तृणं वा यदि वा काष्ठं पुष्पं वा यदि वा फलम् ।
अनापृच्छथ तु गृहानो हस्तच्छेदनमर्हति ॥

(१) तृणमिति, तद्द्विजव्यतिरिक्तविषयमनापद्विषयं वा गवादिव्यतिरिक्तविषयं वेति । मिता. २११६६

(२) तृणमिति बृहस्पतिवचनमप्यतिप्रसङ्गविषयमेव । तृणाद्यपहारविषयेण मूल्यद्विपञ्चगुणदण्डेन समं हस्तच्छेदस्य वैषम्येण विकल्पायोगादिति द्रष्टव्यम् ।

दवि. १४२

वृत्तस्वाध्यायवान् स्तेयी बन्धनात् छिद्यते चिरम् ।
स्वामिने तद्धनं दाप्यः प्रायश्चित्तं च कार्यते ॥

ईष्टकापूर्णसंयुक्तो रक्तमाल्यविभूषितः ।

घोषितस्तेन चौर्येण स्तेनो राज्ञा निहन्यते ॥

अन्नप्रदाता स्तेनानां स्तेन एव स उच्यते ।

तस्य हत्वा तु सर्वस्वं श्वपदं तु मुखेऽङ्कयेत् ॥

भित्त्वा गृहं गृहीत्वा स्वं कृत्वा संस्कारमेव च ।

राजा साहसिकं राष्ट्रात्त्यजेत् ॥

चौरान्वेषणम्

संसर्गचिह्नलोप्त्रैश्च विज्ञाता राजपूरुषैः ।

प्रदाप्यापहृतं शास्या दमैः शास्त्रप्रचोदितैः ॥

(१) स्मृच. ३१८ संदंश (संदेशः) पू.; विर. ३२२ हर्ता (हारा) प्यः स्या (प्यास्त) उक्तः; पमा. ४४० स्य संदंशश्छे (स्तु संदंशैर्मे); रत्न. १२४ पू.; व्यग्र. ३८८ पू.; व्यड. १२६ पू.; व्यासः; विता. ७८२ पू.; समु. १५०.

(२) मिता. २११६६ (=) पृच्छथ तु (पृच्छन् हि); अप. २११६६ पृच्छथ (पृष्टं) स्मृत्यन्तरम् : २१२७५ पृच्छथ तु (पृच्छंस्तु) स्मृतिः ; व्यक. ११५; विर. ३२९; विचि. १४२; दवि. ४२ (=) तु (हि) : १४२; विता. ६६९ (=) तु (हि); सेतु. २४३-४ पृच्छथ (पृष्टं); समु. १५१ स्मृत्यन्तरम्.

(३) अप. २१२७० नात् छि (ने छे); विर. ३३१ च कार्यते (तु कारयेत्); विचि. १४३-४ च (स); दवि. ६७; सेतु. २४५ वृत् (व्रत) च (न).

(४) व्यनि. ५०७.

(५) व्यक. ११०; स्मृच. ३१८ सर्ग (सर्गैः) ता (तो)

(१) संसर्गैः कुत्सितसंसर्गैः । चिह्नं चौर्यसाधन-
संग्रहवत्त्वादिकम् । लोपत्रं स्तेयावातं धनम् । प्रदाप्यः
स्वामिन इति शेषः । स्मृच. ३१८

(२) संसर्गो निर्णीतचौरैः सह मिलनम् । चिह्नम-
साधारणं चौर्यादिचिह्नलिङ्गम् । लोपत्रं मुषितद्रव्यम् ।
विर. २९३

(३) संसर्गः प्रमितैश्चौरैः सह मिलनम् । चिह्नं चौर-
त्वलिङ्गं संधिखनित्रादि । लोपत्रं चोरितद्रव्यम् । एषाम-
न्यतमेनापि चौरमवधार्य चोरितद्रव्यं तद्द्वारा द्रव्य-
स्वामिने प्रदाप्य राजा शास्त्रदृष्टेन दण्डेन तं शमये-
दित्यर्थः । विचि. १२४

(४) इह संसर्गादिकं राजपुरुषाणां ग्रहणनिमित्तं न
तु निश्चायकमविनाभावाभावात् । दवि. ८१

स्तेयदोषप्रतिप्रसवः

त्रैपुषे वारुके द्वे तु पञ्चाश्रं पञ्चदाडिमम् ।
खर्जूरबदरादीनां मुष्टिं गृह्णन्न दुष्यति ॥

कात्यायनः

स्तेयसाहसयोर्लक्षणम्

प्रैच्छन्नं वा प्रकाशं वा निशायामथवा दिवा ।
यत्परद्रव्यहरणं स्तेयं तत्परिकीर्तितम् ॥
सान्वयस्त्वपहारो यः प्रसह्य हरणं च यत् ।
साहसं च भवेदेवं स्तेयमुक्तं विनिहवः * ॥

प्रकाशतस्करदण्डाः

तुल्यमानप्रतीमानप्रतिपररूकलक्षितैः ।
चरन्नलक्षितैर्वाऽपि प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥

* व्याख्यासंग्रहः खलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ. १६४८) द्रष्टव्यः ।

प्या (प्योऽ) स्या (स्यो) ; विर. २९३ ; पमा. ४३९ लोपत्रै
(रूपै) शास्या (दण्ड्या) ; रत्न. १२५ ता (तो) स्या
(स्यो) ; विचि. १२३-४ ; व्यनि. ५०४ ज्ञाता (ज्ञेयो)
प्या (प्योऽ) शास्या (राक्ष) ; दवि. ८० चिह्नलोपत्रै (लोपत्र-
चिह्नै) चोदि (देखि) ; विता. ७९० स्या (स्यो) उक्त. ;
सेतु. २२९ वितावत् ; समु. १५० चिह्नलोपत्रै (लोपत्रचिह्नै) .

(१) कात्यायनस्मृतिसारोद्धारः (By Prof. P. V. Kane) Page 99 Verse 822 A. गृहस्थरत्नाकर.

(२) दा. २२४ ; दात. १८२ उक्त. ; विचि. ९६ उक्त.
(३) व्यक. ११० ; विर. २९५ प्रती (प्रति) ; विचि.

(१) प्रतिमानं परिमाणमिति प्रसिद्धम् । तुल्यमान-
प्रतिमानैः प्रतिरूपकैराभासलक्षितैर्वा चरन् व्यवहरन्
पूर्वसाहसं प्राप्नुयात् । एतच्चाष्टमांशाधिकहरणपक्षे, तेन
न पूर्वयाज्ञवल्क्येन विरोधः । विर. २९५-६

(२) तच्च सुवर्णादिमाननिश्चयार्थं राजचिह्नाङ्कितं
शिलाशकलादि, प्रतिमानेति प्रसिद्धम् । दवि. ८९

अविद्वान् याजको वा स्यात् प्रवक्ता चानवस्थितः ।
तावुभौ चोरदण्डेन विनीय स्थापयेत्पथि ॥
उत्कोचजीविनो मत्तान् शोधयित्वा स्वमण्डलात् ।
सर्वस्वहरणं कृत्वा राजा विप्रान् विवासयेत् ।
इतरानपि तत्कृत्वा वधाद्यैरेव योजयेत् ॥

अप्रकाशतस्करदण्डः

स्वदेशघातिनो ये स्युस्तथा मार्गनिरोधकाः ।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा शूले निवेशयेत् * ।
येन येन परद्रोहं करोत्यङ्गेन तस्करः ।

छिन्द्यात्तत्तु नृपस्तस्य न करोति यथा पुनः ॥

इति कात्यायनवचनं तद्व्यक्तमेवातिप्रसङ्गविषयं 'न
करोति यथा पुनरि'त्यभिधानात् । एवञ्च यत्र दण्डे
विशेषो न श्रूयते तत्रैव तद्व्यक्तव्यवस्थानुसारेणैव
तत्कल्पनमिति प्रतिभाति । दवि. १४२

सर्वस्वं हरतः स्त्री तु कन्यापहरणे वधः ।
वाजिवारणबालानां चाददीत बृहस्पतिः ॥

* व्याख्यासंग्रहः नारदे असिधेव प्रकरणे (पृ. १७४८)
द्रष्टव्यः ।

१२५ ; दवि. ८९ प्रतीमान (प्रतिमानैः) ; विचि. ५१ पूर्व-
साहसम् (तस शतद्रव्यम्).

(१) विचि. ३१२५२ ; कात्यायनस्मृतिसारोद्धारः (By
Prof. P. V. Kane) Page 100 Verse 828.

(२) समु. १६५.

(३) अप. २।२७३ ; विर. ३१७ नारदकात्यायनौ ; व्यनि.
५०८ धकाः (धिनः) नारदकात्यायनौ ; दवि. १२५ नारद-
कात्यायनौ ; सेतु. २३६ नारदकात्यायनौ.

(४) अप. २।२७४ लभेन (ल्यशेन) तत्तु (दङ्ग) ;
व्यक. ११५ तत्तु (तं तं) ; विर. ३२९ ; विचि. १४१-२
तु नृ (तन्तु) ; दवि. १४२ तु नृपरतस्य (तत्रैव नृपतिः).

(५) व्यक. ११४ ; विर. ३१८ उक्त. ; रत्न. १२५

सर्वस्वमित्यनुषङ्गः, हरणे इत्यपि पूर्णीयम् ।

विर. ३१८

मानवाः सद्य एवाहुः सहोढानां प्रवासनम् ।

गौतमानामनिष्टं यत्प्राण्युच्छेदाद्विगर्हितम् ॥

सहोढमसहोढं वा तत्त्वागमितसाहसम् ।

प्रगृह्य चिह्नमावेद्य सर्वस्वैर्विनियोजयेत् ॥

अयःसंदानगुप्ताश्च मन्दभक्ता बलान्विताः ।

कुर्युः कर्माणि नृपतेरामृत्योरिति कौशिकः ॥

(१) अत्र कात्यायनवाक्ये वृत्तस्वाध्यायवतः प्रवासनं, तच्छून्यस्य धनवतः सर्वस्वहरणं, निर्धनस्य तु तथाविधस्य बन्धनादिकमभिप्रेतं ब्राह्मणविषयं चैतत् । तत्त्वागमितसाहसं तत्त्वेन आगमितं ज्ञापितं साहसं चौर्यं यस्य स तथा । पूर्वं बलान्विताः सन्तः अयः-संदानगुप्ता लौहनिगडवद्धाः मन्दभक्ताः कर्ममात्रौपयिकब्रह्मजनकभोजनभाजः कर्माणि कुर्युरामृत्योरिति योजना ।

विर. ३३२

(२) सहोढं लोपत्रम् । सर्वस्वेनेति । इदं तु वृत्तस्वाध्यायरहितधनवद्ब्राह्मणपरम् । निगडबन्धनफिञ्चि-द्भक्ष्यदानराजदास्याचरणं तु तादृशनिर्धनब्राह्मणपरम् ।

विचि. १४३

पैदेशाद्भृतं द्रव्यं स्वदेशे यः समाहरेत् ।

गृहीत्वा तस्य तद्द्रव्यमदण्डं तं विसर्जयेत् ॥

बाला (लोहा) चाद (वाद) उक्तः; दवि. १३० उक्तः, व्यासः; व्यग्र. ३८९ बाला (लोहा) उक्तः, नारदः; व्यग्र. १२७ व्यग्रवत्, नारदः; व्यग्र. १०२ व्यग्रवत्, नारदः; विता. ७८३ रत्नवत्, नारदः; बाल. २१२७५; सेतु. २३७; समु. १५० व्यग्रवत्, नारदः.

(१) व्यक्र. ११६ पू.; विर. ३३२; दवि. ६६ पू.

(२) अप. २१२७५ ह्य चिह्न (ह्याऽऽच्छिन्न) विनियो (विप्रयो); विर. ३३२ प्रगृ (संगृ); विचि. १४३ तत्त्वा (मत्वा) ह्य चि (ह्याच्चि) स्वैर्विनि (स्वेन वि); दवि. ६६ (सहोढमसहोढं वा सर्वस्वैर्विप्रयोजयेत्) पतावदेव; सेतु. २४४.

(३) अप. २१२७५ दान (धान) श्र ('स्तु) ; विर. ३३२; विचि. १४३ बला (गुणा); दवि. ६६ बलान्विताः (महाबलाः); सेतु. २४४-५ दानगुप्ता (धानयुक्ता).

(४) अप. २१२७५ स्वदे...हरेत् (वैदेश्येन यदा भवेत्);

वैदेश्येन देशान्तरादागतेन इति हल्ययुधः । तदेतदसाधारणनिमित्तकमपि सर्वजातेसाधारणमुक्तम् ।

दवि. ४२

येन दोषेण शूद्रस्य दण्डो भवति धर्मतः ।

तेन चेत्क्षत्रविप्राणां द्विगुणो द्विगुणो भवेत् ॥

अविद्वच्छूद्रापेक्षया विदुषः शूद्रस्याश्रुणो यो दण्डः तादृशमेव विद्वक्षत्रविप्राणां तेन द्विगुणो द्विगुणः षोडशगुणद्वान्त्रिंशद्गुणचतुःषष्टिगुणो दण्ड इत्यर्थः ।

विर. ३४२

चौरान्वेषणम्

अन्यहस्तात्परिभ्रष्टमकामादुद्धृतं भुवि ।

चौरेण वा परिक्षिप्तं लोपत्रं यत्नान् परीक्षयेत् ॥

स्तेनातिदेशः

चौराणां भक्तदा ये स्युस्तथाग्न्युदकदायिनः ।

क्रेतारश्चैव भाण्डानां प्रतिग्राहिण एव च ।

समदण्डाः स्मृता ह्येते ये च प्रच्छादयन्ति तान् ॥

(१) भाण्डानां चोरितद्रव्याणां, प्रतिग्राहिणः तेषां मुषितधनप्रतिग्रहकर्तारः ।

विर. ३४०

(२) चोरितद्रव्याणां तथा ज्ञातानां क्रेता प्रहीता संगोता च चौरसमदण्ड्य इत्यर्थः ।

विचि. १४५

स्तेनालोभे हतदानम्

गृहेषु मुषितं राजा चौरग्राहंस्तु दापयेत् ।

आरक्षकांस्तु दिक्पालान् यदि चौरौ न लभ्यते ॥

विर. ३३३; दवि. ४२ स्वदे...रेत् (वैदेश्येन यदा भवेत्).

(१) विर. ३४२ चेत् (विट्) अवशिष्टस्थलादिनिर्देशः दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५९५) द्रष्टव्यः ।

(२) अप. २१२६८; विर. ३३७.

(३) व्यक्र. ११७ दायिनः (दायकाः) ह्येते (सर्वे); विर. ३४० ह्येते (सर्वे) अन्त्यार्धद्वयम्; पमा. ४४६ दायिनः (दायकाः); दीक. ५४ विरवत्, अन्त्यार्धद्वयम्; विचि. १४५ श्वैव (श्वौर) अन्त्यार्धद्वयम्; व्यनि. ५०७ विरवत्, अन्त्यार्धद्वयम्; दवि. ८३ विरवत्, अन्त्यार्धद्वयम्; व्यग्र. ३९२ क्रेता (छेत्ता); व्यग्र. १२९ व्यग्रवत्; सेतु. २४८-९ अन्त्यार्धद्वयम्; समु. १५२; विचि. ५२ ता ह्येते (ताश्चैव) अन्त्यार्धद्वयम्.

(४) अप. २१२७१ पु (तु) आरक्षकांस्तु (अरक्षकांश्च);

(१) चौरप्राहश्चौरान्वेषणे विशिष्य नियुक्तः । आर-
क्षको ग्रामरक्षानियुक्तः । दिक्पालो दिक्षु नियुक्तो, देश-
पतिर्यस्य प्रसिद्धिः । अत्र च गृहेष्विति उपलक्षणं यथा-
संभवमुपितदातृत्वम् । विर. ३४३

(२) गृहेष्वित्युपलक्षणम् । यदि चौरोऽन्विष्यमाणो
न लभ्यते तदा तदनुसंधायकद्वारा वा देशपतिद्वारा वा
चोरितं धनं राजा दापयेदित्यर्थः । आरक्षकः कोटवार
इति प्रसिद्धः । देशपतिस्तद्देशरक्षाधिकृतः ।

विचि. १४७

(३) दिक्पालो दिक्षु नियुक्तः स च स्थानपाल
इति मिताक्षरा । देशपतिरिति प्रसिद्धो देशपाल इति
रत्नाकरः । यत्र ग्रामे विशिष्टरक्षानियुक्तो नास्ति तद्विष-
यमिदम् । *दवि. ८६-७

अचौरादापितं द्रव्यं चौरान्वेषणतत्परैः ।

उपलब्धे लभेरंस्ते द्विगुणं तत्र दापयेत् ॥

ग्रामान्तेषु हृतं द्रव्यं ग्रामाध्यक्षं प्रदापयेत् ।

विवीते स्वामिना देयं चौरोद्धर्ता त्ववीतके ॥

विवीते अरण्ये । स्वामिना राजा चौरोद्धर्ता चौरा-
श्रयभूतेनाविवीते क्षेत्रादौ । विचि. १४८

स्वदेशे यस्य यत्किञ्चित् हृतं देयं नृपेण तत् ।

गृह्णीयात्तत्स्वयं नष्टं प्राप्तमन्विष्य पार्थिवः ॥

चौरैर्हृतं प्रयत्नेन स्वरूपं प्रतिपादयेत् ।

तदभावे तु मूल्यं स्यादन्यथा किल्बिषी नृपः ॥

* शेषं विरवत् ।

व्यक. ११८ पितं (पिते) काल्यायननारदौ; विर. ३४३;

विचि. १४७ हांस्तु (हांश्च); दवि. ८६; सेतु. २५०.

(१) व्यक. ११७; विर. ३३८; दवि. ८४ स्ते
(स्तत्).

(२) अप. २।२७१ न्तेषु (न्तरे) त्ववी (विवी); व्यक.

११८ न्तेषु (न्ते तु) त्ववी (विवी); विर. ३४५; विचि.

१४८ द्दतां (द्दतां) त्ववी (विवी); दवि. ८७ पू.; सेतु.

२५० विचिवत्.

(३) अप. २।२७१ ण तत् (ण तु); व्यक. ११८;

विर. ३४५ यत्कि (वा कि); विचि. १४८; सेतु. २५१

मन्विष्य (मन्यस्य).

(४) अप. २।२७१; व्यक. ११८ नारदकाल्यायनौ;

लब्धे तु चौरै यदि च मोषस्तस्मान्न लभ्यते ।

दद्यात्तमथवा चौरं दापयेत्तु यथेष्टतः ॥

(१) चौरं वा धनं वेति विकल्पः । विर. ३४५

(२) मोषो मुपितद्रव्यं स यत्र चौरमकाशात्न लभ्यते
तत्र मूल्यं वा राजा स्वयं स्वामिने दद्यात् चौरमेव वा
नस्मिन् विमृजेत् । इच्छया तु तथा कुर्याद्यथा चौरस्त-
मस्मै ददातीत्यर्थः । दवि. ८६

स्तेयदोषप्रतिप्रभवः

त्रैपुषे वारुके द्वे तु पञ्चान्नं पञ्चदाडिमम् ।

खर्जूरवदरादीनां मुष्टिं गृह्णन्न दुष्यति ॥

व्यासः

स्तेनप्रकाराः

प्रैकाशाश्चाप्रकाशाश्च द्विविधास्तस्कराः स्मृताः ।

स्वचिह्नैरेव विज्ञेयाश्चरैस्तस्करवेदिभिः ॥

स्वचिह्नैः चौरचिह्नैर्मोपादिभिः । विर. २८९

प्रैकाशापणसंस्थाश्च नानापण्योपजीविनः ।

प्रकाशवञ्चका ज्ञेया भिषक्प्रभृतयोऽपरे ॥

आपणः पण्यवीथी ।

विर. २९१

तुलामानविशेषेण लेख्येन गणनेन च ।

अर्थस्य वृद्धिन्हासेन मुष्णन्ति वणिजो नरान् ॥

विर. ३४५ तु (ऽपि) नृपः (नरः); विचि. १४८ पाद
(दाप) नृपः (नरः); दवि. ८६; सेतु. २५१.

(१) अप. २।२७१ ब्धे तु (ब्धेऽपि) च (तु); व्यक.
११८ च (वा); विर. ३४५ ब्धे तु (ब्धे च) वेत्तु यथे-
ष्टतः (येद्वा यथेच्छतः); दवि ८६ ब्धे तु (ब्धे च); सेतु.
२५१ मथवा (दर्थं वा) वेत्तु यथेष्टतः (येद्वा यथोदितः).

(२) काल्यायनस्मृतिसारोद्धारः (By Prof. P. V.
Kane) Page 99 Verse 822 A. गृहस्थरत्नाकर.

(३) व्यक. १०९ द्विविधास्तस्कराः (तस्करा द्विविधाः)
ख (सु); विर. २८९; रत्न. १२५ व्यकवत्; सेतु. २२७
उत्त., मनुः.

(४) व्यक. १०९; विर. २९१.

(५) व्यक. ११०; विर. २९५; विचि. १२४ अर्थ
(अर्थं) नरान् (जनान्); दवि. ९० गणनेन (गणितेन)
पूः; सेतु. २२९ नरान् (जनान्); विव्य. ५१ नरान्
(परान्).

तद्द्रव्यसदृशैरन्यैर्हीनमूल्यैर्विमिश्रणम् ।
कुर्वन्त्यौपाधिकाश्चान्ये पण्यानां परिवर्तने ॥
अनिच्छन्तमभूमिज्ञं संयोज्य व्यसने नरम् ।
अंपकर्षन्ति तद्द्रव्यं वेद्याकितवशिल्पिनः ॥
अनिच्छन्तं प्रवृत्त्यनुमुखम् । अभूमिज्ञं कार्याकार्य-
ज्ञानहीनम् । एतेनैषां विश्रब्धवञ्चकत्वमुक्तम् ।

विर. ३०७

न्यायस्थाने येऽधिकृता गृहीत्वार्थं विनिर्णयम् ।
कुर्वन्त्युक्तोचकास्ते तु राजद्रव्यविनाशकाः ॥
विनिर्णयं विरुद्धनिर्णयम् । विर. ३०७
स्त्रीपुंसौ वञ्चयन्तीह मङ्गलादेशवृत्तयः ।
गृह्णन्ति छद्मना चार्थमनार्यास्त्वार्यलिङ्गिनः ॥
उत्क्षेपकः संधिभेत्ता पान्थमुद् ग्रन्थिभेदकः ।
स्त्रीपुंगोऽश्वपशुस्तेयी चौरौ नवविधः स्मृतः ॥

(१) व्यक. ११० श्रणम् (श्रितम्, तने (तनम्);
विर. २९५ पधि (पाधि); विचि. १२४ द्रव्यसदृशैरन्यै
(द्रव्यं सदृशैर्द्रव्यै) पधि (पधि) तने (तनम्); सेतु. २३०
रन्यै (द्रव्यै) पधि (पधि); विव्य. ५१ पधि (पधि).

(२) व्यक. ११२; विर. ३०७; विचि. १३०; दवि.
१०५; सेतु. २३२.

(३) व्यक. ११२; स्मृच. ३३२; विर. ३०७ येऽधि
(षधि); पमा. ५८० येऽधि... ..र्थ (गृहीत्वार्थं अधर्मेण)
उत्तरार्थे (करोत्युत्तरकार्याणि राजद्रव्यविनाशकः); दवि. १०५
येऽधि (षधि); व्यप्र. ५६९ येऽधि... ..त्वार्थ (गृहीत्वार्थ-
मधर्मेण); समु. १६५ न्याय (न्यास).

(४) व्यक. ११२ र्यास्त्वा (र्याश्वा); स्मृच. ३१७ सौ
(सो); विर. ३०८ र्यास्त्वा (र्या आ); रत्न. १२४;
दवि. ११९ वृत्तयः (कारिणः) स्त्वा (श्वा); सवि. ४६०
चा (छा) ङिनः (ङकाः); व्यप्र. ३८७; व्यड. १२५;
समु. १४९.

(५) व्यक. १०९ गोऽश्व (सोश्व); स्मृच. ३१८;
विर. २९२ गोऽश्व (सयोः); पमा. ४३८ मुद् ग्रन्थि-
भेदकः (उद्ग्रन्थिकादयः) उत्तरार्थे (स्त्रीपुंसयोः पशुस्तेयी चोरा
नवविधाः स्मृताः); व्यनि. ५०३ मुद् ग्रन्थि (उद्ग्रन्थि);
रत्न. १२४; सवि. ४६१ गोऽश्व (सोश्व) नारदः; दवि.
१२१ संधिभेत्ता (च संविद्धौ) गोऽश्व (सोश्व); व्यप्र.
३८७; व्यड. १२४; व्यम. १०१ भेदकः (मोचकः);

उत्क्षेपको धनिनामनवधानमवधार्यान्तिकस्थं धन-
मुद्धृत्य ग्राहकः । संधिभेत्ता गृहाणां विच्छेदाय कृत-
संचरस्थाने पृष्ठसंधाववस्थाय तत्रत्यमितिभेत्ता । पान्थमुद्
उत्कटकान्तरादौ पथिकानां धनापहारकः । ग्रन्थिभेदकः
परिधानादिग्रथितधनं ग्रहीतुं तद्ग्रन्थिमोचकः । 'स्त्रीपुंगो-
ऽश्वपशुस्तेयी'ति द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणः शब्दः प्रत्येकमभि-
संबन्ध्यते । अत एव नवविध इत्युक्तम् ।

स्मृच. ३१८

साधनाङ्गान्विता रात्रौ विचरन्त्यविभाविताः ।
अविज्ञातनिवासाश्च ज्ञेयाः प्रच्छन्नतस्कराः ॥

(१) रात्राविति प्रायिकामिप्रायेणोक्तम् । दिवा-
ऽप्यरण्यादावविभावितानां विचरतां संभवात् ।

स्मृच. ३१८

(२) साधनाङ्गान्विताः स्तेयकरणखनित्राद्यन्विताः ।
अविज्ञातनिवेशाः अनवगतप्रवेशकाः । विर. २९२

प्रकाशतस्करदण्डाः

नैगमाद्या भूरिधना दण्ड्या दोषानुरूपतः ।

यथा ते नातिवर्तन्ते तिष्ठन्ति समये तथा ॥

दोषानुरूपतो दण्ड्या न पुनर्धनानुरूपत इत्यर्थः ।
दोषानुरूपतोऽस्मिन् दोषे ग्राह्य एतावान् दण्ड इति
विध्यनुरूपत इत्यर्थः । ते च विधयो विस्तारभयान्न
प्रदर्शिताः, ग्रन्थान्तरे द्रष्टव्याः । स्मृच. ३१७

विता. ७८१ संधि (कुड्य) गोऽश्व (सोश्व) नव (नाना);
समु. १४९.

(१) व्यक. १०९ निवासा (विशेषा) तस्कराः (वञ्चकाः);
स्मृच. ३१७ नाङ्गा (नाथ) तस्कराः (वञ्चकाः); धिर.
२९२ वासा (वेशा); पमा. ४३८; व्यनि. ५०३; दवि.
१२१ साध (शोध) विच (ये च) वासा (वेशा); सवि.
४६१ नाङ्गा (नाथ) नारदः; व्यप्र. ३८७; व्यड. १२४;
व्यम. १०१ पूर्वार्थे (साधनाद्यन्विता रात्रौ यदि प्रच्छन्न-
चारिणः); विता. ७८१ पूर्वार्थे (साधनाद्यन्विता रात्रौ
विरता भविता दिवा); समु. १४९.

(२) व्यक. ११३; स्मृच. ३१७; विर. ३१५ तथा
(यथा); रत्न. १२४; दवि. ११६ रूपतः (सारतः)
तथा (यथा); व्यप्र. ३८७ नाति (न नि); व्यड. १२६;
समु. १४९.

अप्रकाशनेकरदण्डाः

संधिच्छेत्ताऽनेकविधं धनं प्राप्नोति वै गृहान् ।
प्रदाप्यः स्वामिने सर्वं तीक्ष्णशूले निवेशयेत् ॥

(१) यः प्राप्नोति तं प्रदाप्य पश्चाच्छूले निवेशये-
दित्यर्थः । स्मृच. ३१८

(२) तस्य हृतदापनमात्रे तात्पर्यमनेकधनलाभाभि-
धानं तु पक्षप्राप्तानुवाद एव । दवि. १२४

स्त्रीहर्ता लोहशयने दग्धव्यो वै कटाग्निना ।

नरहर्ता हस्तपादौ छित्त्वा स्थाप्यश्चतुष्पथे ॥

पुरुषं हरतः प्रोक्तो दण्ड उत्तमसाहसः ।

सर्वस्वं हरतो नारीं कन्यां तु हरतो वधः ॥

(१) अत्र चैकवस्तुहरणे परस्परविरुद्धशारीरार्थ-
दण्डानां हारकोत्कृष्टापकृष्टजातीयत्वधनवत्त्वाधनवत्त्व-
कार्योत्कर्षापकर्षैर्व्यवस्था कार्या । विर. ३१८

(२) इदं (नरहर्तेति) मध्यविधपुरुषापहरणे । इदं
(सर्वस्वमिति) अपकृष्टनार्यपहरणे । विचि. १३५

अश्वहर्ता हस्तपादौ कटिं छित्त्वा प्रमाप्यते ।

पशुहर्तुस्त्वर्धपादं तीक्ष्णशस्त्रेण कर्तयेत् ॥

(१) स्मृच. ३१८ संधिच्छेत्ता (संधिं भित्त्वा); विर.
३१६ तीक्ष्ण (हतं); विचि. १३४ दाप्यः (दाप्य)
तीक्ष्ण (हतं); दवि. १२४ शूले (नृपे) शेषं विचिवत्;
सवि. ४६१ संधिच्छेत्ता (संधिं छित्त्वा) दाप्यः (दाप्य);
सेतु. २३५ (=) तीक्ष्ण (हतं); समु. १५० स्मृचवत्;
विच्य. ५१ विरवत्.

(२) व्यक. ११४; स्मृच. ३१८ नर (नृ) दौम (च);
विर. ३१७-८; रत्न. १२५; विचि. १३४ बृहस्पतिः;
दवि. १२५; सवि. ४६२ दग्धव्यो वै (दहते वा); व्यप्र.
३८९; व्यउ. १२७; व्यम. १०२; विता. ७८२; सेतु.
२३६ विचिवत्; समु. १५० स्मृचवत्; विच्य. ५१ विचिवत्.

(३) मिता. २१२७५ (=) तः प्रोक्तो दण्ड (तो दण्डः
प्रोक्त) सर्व...री (स्वयंपराधे तु सर्वस्वं); अप. २१२७५ (=)
प्रोक्तो (हस्तौ); विर. ३१८; विचि. १३५; सवि. ४५६
तः प्रोक्तो दण्ड (तो दण्ड उक्त) शेषं मितावत्, मनुः;
विता. ७८४ (=) मितावत्; सेतु. २३६; समु. १५०
सविवत्, स्मृत्यन्तरम्; विच्य. ५१.

(४) अप. २१२७३ स्त्र (श्वा); व्यक. ११४ अपवत्;
स्मृच. ३१९ श्वहर्ता हस्त (श्वापहरणे); विर. ३२१ अप-

एतच्च विदिग्राश्वहरणे, सामान्याश्वहरणे विष्णुना
एककरपादिकत्वप्रतिपादनात् । एतदपि (पशुहर्तुगिति)
विरुद्धदण्डनमनवरुद्धहरणे । विर. ३२१

उत्क्षेपकप्रन्थिभेदौ संदंशेन वियोजयेत् ॥

मध्यहीनद्रव्यहारी पुष्पमूलफलस्य च ।

दाप्यस्तु द्विगुणं दण्डमथवा पञ्च कृष्णालान् ॥

मध्यहीनद्रव्यं लवणादि । पञ्च कृष्णालान् कृष्णाल-
शब्देन त्रियवमितद्रव्यमभिप्रेतम् । विर. ३२५

अल्पधान्यापहरणे क्षीरे तद्विकृतौ तथा ।

स्वामिने तत्समं दाप्यो दण्डं च द्विगुणं नृपे ॥

अत्र पञ्चगुणदण्डावरुद्धक्षीरादितोऽल्पे क्षीरतद्विकृती
ग्राह्ये इत्यविरोधः । विर. ३२८

चौरान्वेषणम्

ते पदेनानुगन्तव्या विभाव्या लोप्त्रदर्शनैः ।

द्यूतस्त्रीपानसक्त्या च निरायव्ययकर्मभिः ॥

स्तेनालामे हनदानम्

ग्रंथ्याहर्तुमशक्तस्तु धनं चौरैर्हृतं यदि ।

स्वकोशात्तद्वि देयं स्यादशकेन महीक्षिता ॥

स्तेयदोषप्रतिप्रसवः

पैकंपकं प्रचिन्वीत मूलच्छेदं तु वर्जयेत् ।

मालाकार इवारामे न यथाऽङ्गारकारकः ॥

वत्; रत्न. १२५ उक्त.; विचि. १३५ पू., १३६ उक्त.,
स्त्र (श्वा) तीक्ष्णशस्त्रेण (अतीक्ष्णे शस्त्रे); दवि. १३०
पू. : १३२ स्वर्धपादं (श्वार्धपादः) उक्त.; सवि. ४६२
प्यते (पयेत्) र्धं (अ) शेषं स्मृचवत्; व्यप्र. ३८९ उक्त.;
व्यउ. १२७ उक्त.; व्यम. १०२ उक्त.; विता. ७८३
उक्त.; सेतु. २३७ पू. : २३८ स्त्र (श्वा) उक्त.; समु.
१५० स्मृचवत्; विच्य. ५२ प्यते (पयेत्) उक्त.

(१) व्यक. ११४; विर. ३२१; दवि. १३२ वि (नि).

(२) व्यक. ११५; विर. ३२५; दवि. १४७ स्त्र
(स्तद्); सेतु. २४१ दविवत्.

(३) व्यक. ११५; विर. ३२८ धान्या (मूल्या);
विचि. १४०; सेतु. २४१, २४३.

(४) व्यनि. ५०६; समु. १४९.

(५) व्यम. ८८ क्षिता (श्रुता) कृष्णद्वैपायनः; विता.
५६७ रैहं (रह); समु. १५२-३.

(६) मभा. १२।२५.

उशना

अप्रकाशतस्करदण्डः

सुवर्णस्तेयकृत् षड्वर्षं ब्राह्मणो व्रतं चरेत् ।
वैश्यस्य क्षत्रियवच्चौरदण्डः ।

यमः

अप्रकाशतस्करदण्डः

फलेषु हरिते धान्ये शाकमूले ससियुजे ।
अल्पेषु परिपूतेषु दण्डः स्यात् पञ्चकृष्णलाः ॥

स्तेयदोषप्रतिप्रसवः

अस्तेयमग्नये काष्ठमस्तेयं च तृणं भवेत् ।
कन्याहरणमस्तेयं याऽवरा याऽनलङ्कृता ॥
अन्यस्मै दातुमलङ्कृतां नाहरेत् । व्यनि. ५१५
पैथिकः क्षीणवृत्तिस्तु द्वाविधु द्वे च मूलके ।
आददानः परक्षेत्रान् न दण्डं दातुमर्हति ॥

लोकाक्षिः (लौगाक्षिः ?)

अप्रकाशतस्करदण्डः

अनुभूतचिह्नानि मुषित्वा गृह्यतः पूर्वसाहसं
दण्डः, तद्द्रव्यद्विगुणं च राजा हरेत् ।

कण्वः

अप्रकाशतस्करदण्डः

श्रीत्रियस्वहरणे द्विगुणम् ।

वृद्धमनुः

अप्रकाशतस्करदण्डः

अन्यायोपात्तवित्तत्वाद्धनमेषां मलात्मकम् ।
ततस्तान् घातयेद्राजा नार्थदण्डेन दण्डयेत् ॥

(१) मभा. १२।४१. (२) व्यक. ११५.

(३) व्यनि. ५१५; समु. १५१ भवेत् (गवे).

(४) व्यनि. ५१५. (५) मभा. १०।४२.

(६) मभा. १२।४१.

(७) मित्ता. २।२७० तत (अत); व्यक. ११६ मित्ता-
वत्, बृहस्पतिः; विर. ३३२ नमे (नं वे); दीक. ५४ तत
(अत) शेषं विरवत्; विचि. १४२-३ नमे (न ते) नारदः;
दवि. ५९; बीमि. २।२७३ मित्तावत्, मनुः; समु. १५०
मित्तावत्, सृत्यन्तरम्.

(१) इति, तदपि महापराधविषयम्।

मिता. २।२७०

(२) एतत् ब्राह्मणेतरचौरविषयम् । विर. ३३२
स्तेनालाम्भे हतदानम्

तस्मिन्नेहाप्यमानानां भवेन्मोषे तु संशयः ।
मुषितः शपथैः शाप्यो बन्धुभिर्वा विशोधयेत् ॥
यस्मादपहृताल्लब्धं द्रव्यात्स्वल्पं तु स्वामिना ।
तच्छेषमाप्नुयात्तस्मात्प्रत्यये स्वामिना कृते ॥

(१) मुषितामुषितसंदेहे मानुषेण दिव्येन वा निर्णयः
कार्यः । मित्ता. २।२७२

(२) इयन्मुषितं इयद्वेति मुषितः शपथं कारयित्त्वो
निर्णयार्थं बन्धुभिर्वा विशोधयेत् । इयन्मुषितं मयेति
मुषितेन प्रत्यये कृते, तदेकदेशे चौराल्लब्धे, तस्मादेव
शेषो ब्राह्मः यद्यसौ बलवत्प्रमाणं स्वकर्तृकशोपानपहारे
दर्शयतीत्यर्थः । विर. ३४६

अग्निपुराणम्

प्रकाशतस्करदण्डः

द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम् ।
राजा पृथक्पृथक् कुर्याद्दण्डमुत्तमसाहसम् ॥
द्रव्याणां दूषको यश्च प्रतिच्छन्दकविक्रयी ।
मध्यमं प्राप्नुयाद्दण्डं कूटकर्ता तथोत्तमम् ॥

स्तेयदोषप्रतिप्रसवः

ब्राह्मणः शाकधान्यादि ह्यल्पं गृह्यन्न दोषभाक् ।
गोदेवार्थं हरंश्चाऽपि हन्याद्दुष्टं वधोद्यतम् ॥

(१) मित्ता. २।२७२ तस्मिन्नेहाप्यमानानां (यदि तस्मिन्
दाप्यमाने) थैः शा (थं दा) विशो (ऽपि सा); अप.
२।२७१ न्मोषे (होषे) थैः शा (थं दा) कात्यायनः; व्यक.
११८ थैः शा (थान् दा) वा वि (वाऽपि); विर. ३४५;
पमा. ४४९ मित्तावत्; दवि. ८८ थैः शा (थान् दा);
वित्ता. ७९२ विशोष (ऽपि दाप) शेषं मित्तावत्; समु.
१५२ मित्तावत्.

(२) अप. २।२७१ क्रमेण कात्यायनः; व्यक. ११८;
विर. ३४६; विचि. १४८; सेतु. २५१.

(३) अपु. २२७।५७-५९.

(४) अपु. २२७।३८.

मत्स्यपुराणम्

प्रकाशतस्करदण्डः

वासांसि फलके सूक्ष्मे निर्णेज्यानि शनैः शनैः ।
अतोऽन्यथा यः कुर्वति दण्डः स्याद्रूप्यमाषकम् ॥

स्नेयदोषप्रतिप्रसवः

त्रैपुपोर्वासके द्वे द्वे तावन्मात्रं फलेषु च ।
शाकं स्तोकप्रमाणेन गृह्णानो नैव दुष्यति ॥

शुक्रनीतिः

कूटपण्यविक्रेतृदण्डः, स्तेयप्रसङ्गेन शिल्पिनां विविधभृति-
विचारश्च

कूटपण्यस्य विक्रेता स दण्ड्यश्चौरवत्सदा ॥
दृष्ट्वा कार्याणि च गुणान् शिल्पिनां भृतिमावहेत् ।
पञ्चमांशं चतुर्थांशं तृतीयांशं तु कर्षयेत् ॥
अर्धं वा राजताद्राजा नाधिकं तु दिने दिने ।
विद्रुतं न तु हीनं स्यात्स्वर्णं पलशतं शुचि ॥

(१) दक्. ११२. (२) दक्. ४०.

(३) शुनि. ४१८१५-२६.

चतुःशतांशं रजतं ताम्रं न्यूनं शतांशकम् ।
वङ्गं च जसदं सीसं हीनं स्यात्षोडशांशकम् ॥
अयोऽष्टांशं त्वन्यथा तु दण्ड्यः शिल्पी सदा नृपैः ।
सुवर्णं द्विशतांशं तु रजतं च शतांशकम् ॥
हीनं सुघटिते कार्ये सुसंयोगे तु वर्धते ।
षोडशांशं त्वन्यथा हि दण्ड्यः स्यात्स्वर्णकारकः ॥
संयोगघटनं दृष्ट्वा वृद्धिं ऋत्सं प्रकल्पयेत् ।
स्वर्णस्योत्तमकार्ये तु भृतिस्त्रिंशांशकी मता ॥
षष्ठ्यांशकी मध्यकार्ये हीनकार्ये तदर्धकी ।
तदर्धा कटके ज्ञेया विद्रुते तु तदर्धकी ॥
उत्तमे राजते त्वर्धा तदर्धा मध्यमा स्मृता ।
हीने तदर्धा कटके तदर्धा संप्रकीर्तिता ॥
पादमात्रा भृतिस्ताम्रे वङ्गे च जसदे तथा ।
लोहेऽर्धा वा समा वाऽपि द्विगुणा त्रिगुणाऽथवा ॥
घातूनां कूटकारी तु द्विगुणो दण्डमर्हति ।
लोकप्रचारैरुत्पन्नो मुनिभिर्विधृतः पुरा ॥
व्यवहारोऽनन्तपथः स वक्तुं नैव शक्यते ॥

वाक्पारुष्यम्

वेदाः

ब्राह्मणं प्रति अकुशलोक्तिनिषेधः

न त्वेवान्यत्कुशलाद्ब्राह्मणं ब्रूयादतिद्युम्न एव
ब्राह्मणं ब्रूयान्नातिद्युम्नेन च ब्राह्मणं ब्रूयान्नमोऽस्तु
ब्राह्मणेभ्य इति शौरवीरो माण्डूकेयः ।

गौतमः

शूद्रद्वतवाग्दण्डपारुष्यदण्डसामान्यविधिः

शूद्रो द्विजातीनभिसंधायाभिहत्य च वाग्दण्ड-
पारुष्याभ्यामङ्गं मोच्यो येनोपहन्यात् ।

‘दण्डो दमनादित्याहुस्तेनादान्तान् दमयेत्’ इति
सामान्येनाभिहितम् । तत्र कापरार्थे कियान् दण्ड इति
तद्वक्तव्यमित्याह— शूद्र इति । शूद्र उक्तः । स द्विजा-
तीनुपनीतान् ब्राह्मणादीनतिसंधाय बुद्धिपूर्वमतिक्रम्य न
तु परिहासादिना । अभिहत्य च अभिशब्दो बुद्धिपूर्व-
ज्ञापनार्थः । अभिहत्य ताडयित्वा । क्रमेण वाग्दण्ड-
पारुष्याभ्याम् । तत्र वाक्पारुष्येणातिसंधाय दण्ड-
पारुष्येणाभिहत्येति क्रमो द्रष्टव्यः । वाक्पारुष्येणाति-
क्रमणमतिक्रम्य परुषादिवचनम् । परुषशब्द उग्रपर्यायः ।
उग्रया वाचा अतिक्रम्य उग्रेण च दण्डेनाभिहत्य
चेत्यर्थः । ततश्च उपलादिना न दोषः । अङ्गं
शरीरावयवः मोच्यः छेद्यः येन हस्तादिना उपहन्यात्
पीडयेत् । एवञ्च विनाऽपि दण्डेन दण्डपारुष्यं भवतीति

(१) शाखा. ७।९, १०, ११.

(२) गौध. १२।१; अप. २।२०७ तीनभि (तिमभि)
च्यो येनो (च्यं यो नाभि); व्यक. १०३ यामि (य नि);
मभा. नभि (नति); गौमि. १२।१ मङ्गं (मङ्ग);
उ. २।२७।१४ मभावत्; विर. २५२ नभि (न्वाचाऽभि)
च वाग्दण्डपारुष्याभ्यामङ्गं (दण्डेनाङ्गं); विचि. १११
व्यकवत्; व्यप्र. ३८२; व्यउ. १२१; सेतु. २१२ यामि
(य नि) नोप (नाप).

ज्ञापयति । वाक्पारुष्ये वाक्छेदनम् । हस्तादिना
दण्डपारुष्ये तदङ्गछेदनमिति द्रष्टव्यम् । चशब्दादुभया-
परार्थे उभयं मोच्यः । *मभा.

वेदाध्यायिशूद्रदण्डः

अथ हास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रपूरण-
मुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः ।

पञ्चवर्षादूर्ध्वमयं, अथशब्दोपादानात् । तथा च
स्मृत्यन्तरम्— ‘वेदं श्रुत्वा तु पञ्चाब्दः शूद्रश्चेद्दण्ड-
भागभवेत् । अप्राप्तपञ्चवर्षो न दण्डमर्हति कुत्रचित् ॥’
इति । हशब्दो बुद्धिपूर्वसूचनार्थः । न गोप्तुरेवेत्येवमर्थ-
मस्यशब्दस्योपादानम् । वेदं साङ्गम् । कुतः ? ‘साङ्गो
वेदः स्त्रीशूद्रसकाशे नाध्येतव्यः’ इति गृह्यस्मृतिदर्शनात् ।
उपशब्देन समीपवाचिना अक्षरश्रवण एव दोष इति
दर्शयति । ततश्च ध्वनिमात्रश्रवणे न दोषः । हशब्देन
बुद्धिपूर्वं एव दण्डविधानात् प्रमादात् कदाचिदक्षर-
श्रवणेऽपि दोषाभावो द्रष्टव्यः । त्रपुजतुभ्यां त्रपुंणा
जतुना चेति द्रष्टव्यम् । तताभ्यामिति च द्रष्टव्यं,
पूरणोपदेशसामर्थ्यात् । श्रोत्रद्वयपरिग्रहार्थः प्रतिशब्दः
उदाहरणे द्विजातिभिः सह जिह्वाच्छेदः कर्तव्यः । धारणे
स्वयमेवोदाहरण इत्यर्थः । परशुना शरीरभेदः कर्तव्यः ।
*मभा.

* गौमि., विर., व्यप्र. मभावत् ।

× गौमि. मभावत् ।

(१) गौध. १२।४; अप. २।२०७ थ हा (था) णे जि
(णाञ्जि); व्यक. १०३ थ हा (था); मभा. श्रोत्र-
(प्रति); गौमि. १२।४ मभावत्; विर. २५४ थ हा (था)
श्रोत्र (कर्ण); विचि. १११ थ हा (था) स्यां (ना);
व्यनि. ४८८ थ हा (था) शेषं मभावत्; दवि. ३२१
थ हा (था) ष्वत (णुत) श्रोत्र (कर्ण) धारणे (च) भेदः
(छेदः); सेतु. २९७ भेदः (छेदः) शेषं व्यकवत्;
समु. १६१ व्यनिवत्.

त्रैविणिककृतवाक्पारुष्ये दण्डः

शतं क्षत्रियो ब्राह्मणाक्रौशे ।

क्षत्रियश्चेद् ब्राह्मणमाक्रौशेद्वाचा परुषया मिन्देत् ततः शतं दण्ड्यः । दण्डप्रकरणे सर्वत्र ताम्रिकस्य कार्पापणस्य ग्रहणमिति स्मार्तां व्यवहारः । शतं कार्पापणानि दण्ड्यः । दण्डपारुष्ये द्विगुणम् । अथाह बृहस्पतिः— 'वाक्पारुष्ये कृते यस्य यथा दण्डो विधीयते । तस्यैव द्विगुणं दण्डं कारयेन्मरणादते ॥' इति ।

× गौमि.

अध्यर्ध वैश्यः ।

वैश्यस्तु ब्राह्मणाक्रौशेऽध्यर्धं शतं दण्ड्योऽर्धाधिकं पञ्चाशदधिकं शतं दण्ड्यः ।

गौमि.

ब्राह्मणस्तु क्षत्रिये पञ्चाशत् ।

आक्रुष्टे इति वर्तते । ब्राह्मणेन क्षत्रिये आक्रुष्टे ब्राह्मण अश्रोत्रियश्चेत् कुतः? तुशब्दोपादानात्, पञ्चाशद्दण्ड्यः । समवर्णेषु द्वादश वा कल्प्यं अवचनीयेषु द्विगुणं कल्प्यम् ।

*मभा.

तदर्थं वैश्ये ।

वैश्ये आक्रुष्टे ब्राह्मणः पञ्चविंशतिर्दण्ड्यः ।

*मभा.

शूद्रे न किञ्चित् ।

आक्रुष्टे न किञ्चित् ब्राह्मणो दण्ड्यः । अवचनादेवं सिद्धमिति चेत् न, क्षत्रियवैश्ययोर्दण्डप्रापणार्थत्वात् । एवञ्च तद्विषये दण्डः कल्प्यः, क्षत्रिये चतुर्विंशतिपणं, षट्त्रिंशतं वैश्य इति । तथाह उशना— 'शूद्रमाक्रुश्य क्षत्रियश्चतुर्विंशतिदण्डभाग् वैश्यः षट्त्रिंशत्' इत्यादि ।

*मभा.

ब्राह्मणराजन्यवत्क्षत्रियवैश्यौ ।

× मभा. गौमिवत् । * गौमि. मभावत् ।

(१) गौध. १२१६; मभा.; गौमि. १२१६.

(२) गौध. १२१७; मभा.; गौमि. १२१७.

(३) गौध. १२१८; मभा.; गौमि. १२१८.

(४) गौध. १२१९; मभा.; गौमि. १२१९.

(५) गौध. १२१९०; मभा.; गौमि. १२१९० शूद्रे न (न शूद्रे).

(६) गौध. १२१९१; मेघा. ८१२६८; मिता. २१२०७ श्यौ (श्ययोः); मभा.; गौमि. १२१९१; नृप्र. २७७ (वद०) श्यौ (श्ययोः); विष्म. ७१७ मिताकप्र.

। यत् ब्राह्मणक्षत्रिययोः परस्पराक्रौश उक्तं नत् क्षत्रिय-वैश्ययोरेपि द्रष्टव्यम् । क्षत्रिये शतं वैश्ये पञ्चाशदिति । एवमन्तरजानामपि द्रष्टव्यम्, तथाह जमदग्निः— 'मातृतुल्यमनुलोमानां पितृतुल्यं प्रतिलोमानाम्' इति ।

*मभा.

हारीतः

असमवर्णकृतवाक्पारुष्यदण्डसामान्यविधिः

अधोवर्णानामुत्तमवर्णाक्रौशाक्षेपाभिभवे अष्टौ

पुराणाः+ ।

अनृताभिंशंसने तदङ्गच्छेद् पञ्चशतं वा । आद्येषु पादो न वा किञ्चित् । स्वामित्वादादि-वर्णत्वाच्च । उत्तमानामीशानतमो ब्राह्मणः+ ।

वेदाध्यायिशूद्रदण्डः

तस्माद्वेदश्रुतिश्रवणे शूद्रस्य त्रपुसीसौ विप्लान्य कर्णौ पूरयेत् ।

विप्लान्य द्रवीकृत्य ।

विर. २५४

मिथ्यावाक्पारुष्ये दण्डसामान्यविधिः

मिथ्यादूषिणां मेलकानां च राजा जिह्वां छिन्वात् दण्डयेद्वा सहस्रम् ।

मिथ्यादूषिणां मिथ्यावाक्पारुष्यकारिणां, मेलकानां वाक्पारुष्यमेलयितृणां, कचित्पाठो मिथ्यादृष्टीनामिति, तत्रापि स एवार्थो विवक्षितः ।

विर. २५९

आपस्तम्बः

शूद्रकृतवाक्पारुष्ये दण्डः

जिह्वाच्छेदनं शूद्रस्य आर्यं धार्मिकमाक्रौशतः ।

* गौमि. मभावत् ।

+ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दण्डपारुष्यप्रकरणे द्रष्टव्यः ।

(१) विर. २५४; दवि. ३२१.

(२) व्यक. १०४ (च०) छिन्वात् (छित्वा); विर. २५८ (च राजा०) 'मिथ्यादृष्टीनां' इति कचित्पाठः; दवि. २१५ पिणां (पितानां) (च राजा०) सह (सह); व्यप्र. ३८४ (सहस्रम्); व्यड. १२२ व्यप्रवत्.

(३) व्याध. २१२७१४; हिघ. २१९९; व्यक. १०३; विर. २५३ (श्यौ (श्ययोः)); व्यप्र. ३८२; व्यड. १२१.

शूद्रो द्विजातीनामन्यतमं धार्मिकं स्वकर्मस्यं यद्या-
क्रोशति निन्दति गर्हते, तदा तस्य जिह्वा छेत्तव्येति । उ.

वसिष्ठः

पानकाभिर्शंसने दण्डः

पतितं पतितेत्युक्त्वा चौरं चौरैति वा पुनः ।
वचनात्तुल्यदोषः स्यात् मिथ्या द्विर्दोषतां ब्रजेत् ॥

विष्णुः

हीनवर्णकृन्वाक्पारुष्ये दण्डः

हीनवर्णोऽधिकवर्णस्य येनाङ्गेनापराधं कुर्यात्
तदेवास्य शातयेत् * ।

आक्रोशयिता च विजिह्वः ।

दूर्पेण धर्मोपदेशकारिणो राजा तप्तमासेचयेत्तैल-
मास्ये ।

द्रोहेण च नामजातिग्रहणे दशाङ्गुलोऽस्य
शङ्कुर्निखेयः ।

उत्तमवर्णस्य धर्मोपदेशकारिणाम् । अस्य हीनवर्णस्य
मुखे ज्वलन्नयोमयः शङ्कुः । वै.

प्रातिलोभ्येन पारुष्ये द्विगुणो दमः ।

अयमर्थः— द्विगुणास्त्रिगुणा दमाः ब्राह्मणाक्षेपकारिणोः
क्षत्रियवैश्ययोः पञ्चाशत्पणापेक्षया द्विगुणाः शतं पणाः,
त्रिगुणाः सार्धशतं पणा दण्डो वेदितव्य इति ।

सवि. ४७८

वाक्पारुष्यविशेषाः, तत्र दण्डाश्च

श्रुतदेशजातिकर्मणामन्यथावादी कार्षापणशतद्वयं
दण्ड्यः ।

काणखज्जादीनां तत्त्ववाद्यपि कार्षापणद्वयम् ।

* स्थलादिनिर्देशः दण्डपारुष्यप्रकरणे द्रष्टव्यः ।

(१) वस्मृ. २०।४०. (२) विस्मृ. ५।२३.

(३) विस्मृ. ५।२४. (४) विस्मृ. ५।२५.

(५) सवि. ४७८.

(६) विस्मृ. ५।२६; अप. २।२०७ शतद्वयं (शतं);
व्यक. १०३; विर. २५५ (शत०).

(७) विस्मृ. ५।२७ तत्त्व (तथा); व्यक. १०२ काण
(दण्डः. काण) तत्त्व (तथा) बृहस्पतिः; विर. २४८ काण

गुरूनाक्षारयन् कार्षापणशतम् ।

परस्य पतनीयाक्षेपे कृते तूत्तमसाहसम् । उप-
पातकयुक्ते मध्यमम् । त्रैविद्यवृद्धानां क्षेपे जाति-
पूगानां च । ग्रामदेशयोः प्रथमम् ।

न्यङ्गतायुक्ते क्षेपे कार्षापणशतम् ।

मातृयुक्ते तूत्तमम् ।

(१) परस्येति । उत्तमवर्णाक्षेपविषयमेतत् । त्रैविद्ये-
ति । अल्पाशयदोषविषयमेतत् ।

अप. २।२१०-११

(२) तत्त्वं याथार्थ्यं, सगुणातिदरिद्रविषयमेतत् ।

विर. २४८

एतदपि व्यङ्गता शक्ते बोद्धव्यम् । बाह्यादयश्चा-
ज्ञानि ।

विर. २५०

त्रैविद्यवृद्धानामित्यत्र उत्तमसाहसमित्यनुषङ्गः,
जातिपूगानामित्यत्र मध्यममित्यनुषङ्गः । विर. २५६

(३) उपपातकं गोवधादि, पूगानां सभ्यादिसंघा-
नाम् । न्यङ्गमश्लीलम् । वै.

काणं वाऽप्यथवा खज्जमन्यं वाऽपि तथाविधम् ।
तथ्येनाऽपि वदन् दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥

(दण्ड्यः काण); विचि. ११० (काणखज्जादीनां तथा)
पलावदेव, बृहस्पतिः; व्यनि. ४८६ द्वयम्+(दण्डः); दवि.
२१० विरवत्; व्यप्र. ३८४ तत्त्ववाद्यपि (तथावाच्यपि);
व्यउ. १२२ व्यप्रवत्; सेतु. २१० (काणखज्जादीनाम्)
पलावदेव; समु. १६० द्वयम्+(दण्ड्यः).

(१) विस्मृ. ५।२८ क्षारयन् (क्षिपन्); अप. २।२०५
णश (णं श); व्यक. १०३; विर. २५०; व्यप्र. ३८२;
व्यउ. १२१; सेतु. २१४.

(२) विस्मृ. ५।२९-३२ थमम् (थमसाहसम्); अप.
२।२१०-११ नीया (नीये) क्षेपे जाति (जाति); व्यक.
१०४; विर. २५६ तूत्त (उत्त); दवि. २०८ तूत्त (उत्त);
व्यप्र. ३८४ परस्य (परस्परं) युक्ते+(तु); व्यउ. १२२
व्यप्रवत्.

(३) विस्मृ. ५।३३ (ख) युक्ते (युक्ता); व्यक. १०२
न्यङ्ग (व्यङ्ग); विर. २५० न्यङ्गतायु (न्यङ्गता उ.).

(४) विस्मृ. ५।३४; व्यक. १०३ त्तमम् (त्तमसाहसम्);
विर. २५२.

(५) विर. २४७-८ मत्तुनारदविष्णवः.

कार्षापणावरं कार्षापणद्वयं कार्षापणोऽवरः कनिष्ठो
यस्येति व्युत्पत्त्या । विर. २४८

तुल्यकालं रूक्षयोः सम एव दण्डः ।

समासमवर्णाक्रोशक्षेपादिषु दण्डाः

समवर्णाक्रोशने द्वादश पणान् दण्ड्यः । हीन-
वर्णाक्रोशने षट् ।

यथाकालमुत्तमसवर्णाक्षेपे तत्प्रमाणो दण्डः ।
त्रयो वा कार्षापणाः । शुक्तवाक्याभिधाने त्वेवमेव ।

(१) अल्पधनविषयमेतत् । अप. २।२०४

(२) समवर्णाक्रोशने समवर्णमात्राक्रोशने ।

विर. २४७

(३) कालोऽत्राक्षेपकालस्तमनतिक्रम्येति यथाकालम् ।
तत्प्रमाणः षट्कार्षापणप्रमाणो दण्डः कार्यः । वै.

शङ्खः शङ्खलिखितौ च

समासमवर्णाक्षेपान्तिक्रमादिषु दण्डाः

यथाकालमुत्तमवर्णाक्षेपे तत्प्रसादो दण्डस्यो
वा कार्षापणाः । शुक्तवाक्याभिधानेऽप्येवमेव ।

सवर्णव्यतिक्रमे द्वादश कार्षापणाः । यथारूप-
विशिष्टाक्षेपे ह्यविशिष्टस्य चतुर्विंशतिरविशिष्टातिक्रमे
च विशिष्टस्य ततोऽर्धम् ।

(१) सवि. ४७७.

(२) विस्मृ. ५।३५-६ षट्+(दण्ड्यः); अप. २।२०४
षट् (तु षट्); व्यक. १०२ (सम... .. दण्ड्यः०); विर. २४७;
विचि. ११० (सवर्णाक्रोशने सार्धद्वादशपणो दण्डः ।
हीनवर्णे काकिण्यधिकषट्पणो दण्डः ।) बृहस्पतिः; व्यग्र. ३८०
(हीन... ..षट्०); व्यड. ११९ व्यप्रवत्; व्यम. ९९
व्यप्रवत्; सेतु. २१० समव (सव) पणान् (पणा); समु.
१६० शने (शे) शेषं व्यप्रवत्.

(३) विस्मृ. ५।३७-९ (ख) शुक्त (शुष्क); अप.
२।२०४ सव (समव) शुक्त (शुष्क).

(४) व्यक. १०२ वर्णा (सवर्णा); विर. २४८ .

(५) अप. २।२०४; व्यक. १०२ द्वादशेपे
(द्वे क्षेपे) द्वादशतिक्रमे + (च); विर. २४८ (द्वौ)
(अविशिष्टातिक्रमे षट्०); व्यग्र. ३८०
सवर्ण पणाः (समवर्णव्यतिक्रमे द्वादशपणाः)
द्वादशतिक्रमे (द्वयातिक्रमे); व्यड. १२० (कार्षा०) द्वादशतिक्रमे
(द्वयातिक्रमे).

तत्प्रसादो वाक्पारुष्यकृता कार्यः, दण्डो राज्ञस्यो
वा कार्षापणा देयाः । वाशब्दः समुच्चये । शुक्तं परुषं
परुषवाक्येऽतिदेशात्तदन्यवाक्पारुष्यपरः । उत्तमवर्णा-
क्षेप इत्यत्राक्षेपशब्दः यथारूपविशिष्टस्य जात्यादिमतो-
ऽविशिष्टेन जात्यादिहीनेनाक्षेपे कृते तस्य चतुर्विंशतिः
पणाः । अविशिष्टस्य विशिष्टेनाक्षेपे कृते वाक्पारुष्ये
तदर्धमित्यर्थः । विर. २४८

वर्णभेदेन आक्रोशदण्डाः

आक्रोशे ब्राह्मणस्य क्षत्रियः पणशतं दण्ड्यः,
शतार्धं वैश्यस्य, पञ्चविंशतिं शूद्रस्य ।

अधिकृतविप्रगुरुभर्त्सने दण्डाः

तथाऽधिकृतान् विप्रान् गुरुंश्च निर्भर्त्सन्
मुण्डनं ताडनं वा, गोमयानुलेपनं खरारोहणं
दर्पहरो दण्डो वा ।

(१) आक्रोश इत्यधिकृत्याहतुः शंखलिखितौ —
तथेति । अप. २।२०५

(२) क्रोशत इत्यनुवृत्तौ शङ्खलिखितौ— तथेति ।
अपराधतारतम्यमपेक्ष्यात्र व्यवस्थितविकल्पः ।

विर. २५०

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

वाक्पारुष्यम्

वाक्पारुष्यम् । वाक्पारुष्यमुपवादः कुत्सन-
मभिभर्त्सनमिति ।

शरीरप्रकृतिश्रुतवृत्तिजनपदानां शरीरोपवादेन
काणखञ्जादिभिः सत्ये त्रिपणो दण्डः । मिथ्योप-
वादे षट्पणो दण्डः ।

(१) व्यक. १०३; विर. २५१ णस्य (णः) वः
पणशतं (यस्य शतं); व्यग्र. ३८१; व्यड. १२० .

(२) अप. २।२०५ त्सनं (त्सयतो) (ताडनं वा०)
नुले (ले) रोह (रोप) हरो (हारो); व्यक. १०२ ताडनं
वा (ताडनं) नुले (ले) दर्पहरो (द्रव्यहारो); विर. २५०
विप्रान् गुरुंश्च (गुरुन् विप्रांश्च) मुण्डनं ताडनं वा (ताडनं);
द्वि. २१२ नुले (प्रले) शेषं विरक्त; व्यग्र. ३८२ त्सनं
(त्स) हरो दण्डो (हरणं वाग्दण्डो); व्यड. १२१ व्यप्रवत्.

(३) कौ. ३।१८.

शोभनाक्षिदन्त इति काणखञ्जादीनां स्तुति-
निन्दायां द्वादशपणो दण्डः ।

वाक्पारुष्यमिति सूत्रम् । वक्तव्यवचनं वाक्पारुष्यम् ।
तच्च दण्डश्चाभिधीयत इति सूत्रार्थः । तत् त्रिधा
विभजते—वाक्पारुष्यमित्यादि । उपवादोऽङ्गवैकल्यादि-
वचनं, कुत्सनं कुष्ठोन्मादादिवचनं, अभिभर्त्सनं घाता-
दिभयोपदर्शनम् ।

... शरीरेत्यादि । शरीरं प्रकृतिः -- स्त्रीपुरुषादिलक्षणा
श्रुतं वृत्तिर्जनपद इति पञ्च विषया वाक्पारुष्यस्य, 'तेषां
शरीरादीनां मध्ये, काणखञ्जादिभिः काण एकदृक् खञ्जः
कोलः आदिना कुण्णिदन्तुरादिग्रहणं एतैः काणखञ्जकुणि-
शब्दैः शरीरोपवादेन, सत्ये काणत्वादौ यथायं सति
त्रिपणो दण्डः । मिथ्योपवादे षट्पणो दण्डः ।

... शोभनाक्षिदन्त इतीति । शोभनाक्षः शोभनदन्त
इति, सीत्या, काणखञ्जादीनां, स्तुतिनिन्दायां स्तुति-
व्याज्जेन निन्दायां कृतायां, द्वादशपणो दण्डः । श्रीम्.

कुष्ठोन्मादकैल्यादिभिः कुत्सायां च । सत्य-
मिथ्यास्तुतिनिन्दासु द्वादशपणोत्तरा दण्डास्तुल्येषु ।
विशिष्टेषु द्विगुणः । हीनेष्वर्धदण्डः । परस्त्रीषु द्वि-
गुणः । प्रमादमदमीहादिभिरर्धदण्डाः ।

कुष्ठोन्मादयोश्चिकित्सकाः संनिष्ठाः पुमांसश्च
प्रमाणम् । क्लीबभावे स्त्रियः मूत्रफेनः अप्सु विघ्ना-
निमज्जनं च ।

प्रकृत्युपवादे ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रान्तावसायि-
नामपरेण पूर्वस्य त्रिपणोत्तराः दण्डाः । पूर्वणापरस्य
द्विपणाधराः । कुब्राह्मणादिभिश्च कुत्सायाम् ।

तेन श्रुतोपवादो वाग्जीवनानां, कारुकुशीलवानां
वृत्त्युपवादः, प्राग्घूणकगान्धारादीनां च जनपदोप-
वादा व्याख्याताः ।

कुत्सविषयमाह— कुष्ठोन्मादकैल्यादिभिः कुत्सायां
चेति । कुष्ठी उन्मत्तः क्लीब इत्यादिप्रकारेण कुत्सने च,
द्वादशपणो दण्डः इति वर्तते । सत्यमिथ्यास्तुतिनिन्दासु
कुष्ठोदिसत्यत्वे तन्मिथ्यात्वे कुष्ठ्यादीन् प्रति कृत्य इत्या-

दिरीत्या स्तुतिनिन्दायां च, द्वादशपणोत्तराः उत्तरोत्तर-
द्वादशपणाधिकाः द्वादशपणश्चतुर्विंशतिपणः षट्त्रिंशत्पणः
इत्येवंरूपाः दण्डा भवन्ति, तुल्येषु समानेषु विषये ।
विशिष्टेषु गुणाधिकेषु विषये, द्विगुणः दण्डः । हीनेषु
अर्धदण्डः । परस्त्रीषु विषये द्विगुणः । प्रमादमदमीहा-
दिभिः कुत्सायां अर्धदण्डाः उक्ताः सर्वे दण्डा अर्ध-
हीनान् ।

कुत्सनस्य सत्यासत्यविषयत्वनिर्णयप्रमाणापेक्षायामाह
—कुष्ठोन्मादयोश्चिकित्सका, इत्यादि । क्लीबभावे, स्त्रियः,
मूत्रफेनः अनुपलभ्यमानो मूत्रे फेनः, अप्सु विघ्नानि-
मज्जनं च, प्रमाणम् ।

प्रकृतिविषयस्योपवादस्य दण्डमाह— प्रकृत्युपवादे
ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रान्तावसायिनामपरेण पूर्वस्येत्यादि ।
अन्तावसायिना चण्डालेन शूद्रस्य, शूद्रेण वैश्यस्य,
वैश्येन क्षत्रियस्य, क्षत्रियेण ब्राह्मणस्य, चोपवादे, उत्तरो-
त्तरत्रिपणाधिकाः दण्डाः । पूर्वेण अपरस्य उपवादे
द्विपणाधराः उत्तरोत्तरद्विपणाधराः दण्डाः । कुब्राह्मणा-
दिभिश्च कुत्सायां, द्विपणाधरा इत्येव ।

प्रकृत्युपवाददण्डविधानं श्रुतोपवादादिष्वतिदिशति—
तेनेति । उक्तेन प्रकृत्युपवादेन, वाग्जीवनानां श्रुतोपवादः
विद्याकुत्सनं, कारुकुशीलवानां वृत्त्युपवादः जीविका-
कुत्सनं, प्राग्घूणकगान्धारादीनां हूणका नाम जनपद-
विशेषः कामगिर्युत्तरतोवृत्तिरुदीन्यः तस्य पूर्वावयवः
प्राग्घूणकाः भाषायां तु 'चण्डा(ल)राष्ट्रमि'त्युक्तम् ।
गान्धाराः प्रसिद्धाः तदादीनां जनपदोपवादाश्च जनपद-
दोषोद्भावनेन कुत्सनानि च, व्याख्याताः । प्राग्घूणकेति
चायं भाषापाठः । अर्थशास्त्रस्यादर्शे तु क्वचित् प्राकारण-
कारयोर्मध्ये वर्णस्यैकस्य लेखनस्थानमुत्सृष्टम् । क्वचित्
प्राणकेति पाठः । श्रीम्.

यः परं 'एवं त्वां करिष्यामि' इति करणेना-
भिभर्त्सयेदकरणे, यस्तस्य करणे दण्डः ततोऽर्ध-
दण्डं दद्यात् ।

अशक्तः कोपं मदं मोहं वाऽपदिशेत्, द्वादश-
पणं दद्यात् ।

जातवैराशयः शक्तश्चापकर्तुं यावज्जीविकावस्थं दद्यात् ।

स्वदेशग्रामयोः पूर्वं मध्यमं जातिसंघयोः ।

आक्रोशाद् देवचैत्यानामुत्तमं दण्डमर्हति ॥

अभिभर्त्सनविषयमाह— य इति । यः परं अन्यं, 'एव त्वां करिष्यामि' इति 'तव पादं भङ्क्ष्यामि भुजं भङ्क्ष्यामि' इत्येवं, करणेन शरीरावयवेन, अभिभर्त्सयेत् तर्जयेत्, अकरणे उक्तस्याक्रियायां, तस्य अभिभर्त्सकस्य, करणे यो दण्डः 'पाणिपाददन्तभङ्गे' इत्यादिना दण्डपारुष्ये वक्ष्यमाणः, ततोऽर्धदण्डं दद्यात् ।

अशक्त इति । उक्तपादभङ्गादिकरणाशक्तः, कोपं मदं मोहं वा, अपदिशेत् पादभङ्गादेरुक्तिकारणं वदेच्चेत्, द्वादशपण दण्डं स दद्यात् । शक्तस्य कोपाद्यपदेशो न स्वीकार्य इत्यभिप्रायः ।

जातवैराशय इति । तथाभूतः, अपकर्तुं शक्तश्च जनः, उक्तविधमभिभर्त्सनं कुर्वन्निति शेषः, यावज्जीविकावस्थं यावज्जीवस्थेयं आस्वमरणप्रतिभुवं, दद्याद् धर्मस्थेभ्य इत्यर्थम् ।

अध्यायान्ते श्लोकमाह— स्वदेशग्रामयोरिति । तयोः, आक्रोशात् निन्दनात्, पूर्वं दण्डं पूर्वसाहसं अर्हति । जातिसंघयोः अर्थात् स्वीयोः, आक्रोशात् मध्यमं मध्यमसाहसं दण्डं, अर्हति । देवचैत्यानां आक्रोशात् उत्तमं उत्तमसाहसं दण्डं, अर्हति । श्रीम्.

मनुः

समासमवर्णानां परस्परक्रोशे दण्डाः

एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥

(१) पूर्वोपसंहारोऽपरसंक्षेपोपन्यासः श्लोकार्थः । दण्डवाचिके ईत्युक्तौ क्रमभेदो लाघवात्, वाक्पारुष्यं स्यात्ततो दण्डव्यापारः । द्वन्द्वे चेतरेतरयोगात् व्यस्तक्रम-समासार्थप्रतिपत्तेरैकस्योभयार्थप्रतिपादनात् दण्डशब्देन

(१) मस्मृ. ८।२६६; विर. २४२ धर्मः (धर्म्यः) ण्ये (ण्यः) त ऊर्ध्वं (तः परं); सेतु. २०२ ण्ये (ण्यः) त ऊर्ध्वं (तः परं); समु. १५९ उक्त.

१ इत्युक्त्वा क्र.

वागर्थोऽप्युपात्त इति कः क्रमभेदः । तथा च तथासख्य-सूत्रारम्भो महाभाष्यकारेण समर्थितः एतदेव दर्शन-माश्रित्य, संज्ञानामासनिर्देशादिति । मेधा.

(२) एषोऽनन्तगोक्तो धर्मादनपेनः सीमाविनिर्णये निःशेषेणोक्तः । अनन्तं परुषभाषणविषयनिर्णयं प्रकरणेण वक्ष्यामि, दण्डपारुष्यतो वाक्पारुष्यस्य प्रायेणा-सहत्वम् । प्रथमं वाक्पारुष्यविचारः अनुक्रमण्यां पुनः 'पारुष्ये दण्डवाचिके' इति, वृत्तानुरोधाद्दण्डशब्दस्य पूर्वाभिधानम् । गोरा.

(३) एष सीमानिश्चयं धर्मो निःशेषेणोक्तः । अत ऊर्ध्वं वाक्पारुष्यं वक्ष्यामि । दण्डपारुष्याद्वाक्पारुष्य-प्रवृत्तेः पूर्वमभिधानम् । अनुक्रमश्रुत्यां तु 'पारुष्ये दण्ड-वाचिके' इति दण्डशब्दस्य अल्पस्वरत्वात्पूर्वनिर्देशः । ममु.

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।

वैश्योऽध्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥

(१) परुषवचनमाक्रोशः । स च बहुधा, चतुर्सा-श्लीलभाषणात् मर्मणि तोदः, अभिशापः अकारणं 'हन्त वृषलो भूयाः', असता दुःखोत्पादनं 'कन्या ते गर्भिणी' ति, पातकोपपातकैर्योजनमिति । तत्र द्वयोर्ब्राह्मणाक्रोशे क्षत्रियवैश्ययोस्यं दण्डः । अन्यत्र 'पतनीये कृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसः' इत्यादिः (यास्मृ. २।२१०) स्मृत्य-न्तरोक्तः । तस्य शूद्रस्य च वधः । ताडनजिह्वाच्छेदन-मारणादिरूपः आक्रोशभेदात् वेदितव्यः । मेधा.

(१) मस्मृ. ८।२६७ ध्यर्धं (ध्यर्धं) [ऽध्यर्धं (सार्धं, वर्षं) Noted by Jha]; अपु. २२७।२३ माक्रुश्य (मानस्व) उत्तरार्धे (वैश्यश्च द्विशतं राम शूद्रश्च वधमर्हति); मिता. २।२०७; अप. २।२०७ मस्मृवत्; व्यक. १०३ मनुनारदौ; विर. २५० ध्यर्धं (ध्यर्धं); पमा. ४३१ मस्मृवत्; रत्न. १२०; व्यनि. ४८६ धंशतं द्वे वा (धं शतं चैव) मनुनारदौ; स्मृचि. २४ विरवत्; दवि. २०५ द्वे वा (त्वेव); नृप्र. २७७ मस्मृवत्; सवि. ४७८ मस्मृवत्; व्यप्र. ३८१; व्यउ. १२०; व्यम. ९९; विता. ७२७ द्वे वा (विवात्) शेषं विरवत्; सेतु. २११ ऽध्य (ह्य) द्वे वा (द्वेषा); समु- १६० द्वे वा (चैव).

१ अकरणहन्ता वृषलभूयाः । असतां दुःखो. २ पम्भो- ३ यावै.

(२) 'वादेष्विति (मस्मृ. ८।२६९) वक्ष्यमाणत्वात् मातृभगिन्याद्यश्रीलपत्नीयवर्जं परुषं, ब्राह्मणमाक्रुश्य पणशतं क्षत्रियो, वैश्योऽध्वर्षशतं द्वे वा, शूद्रस्तु वधमर्हति । पुनराक्रोशविशेषापेक्षया ताडनजिह्वाकर्तनाद्यमर्हति । गोरा.

(३) आक्रुश्य 'त्वं पापिष्ठोऽसि' इत्यादिना । अध्वर्षशतं सार्धशतं अल्पाक्षेपे । द्वे वेत्यतिशयिते । एते सर्वे पणाः । वधस्ताडनम् । मवि

(४) द्विजस्य चौरित्याक्षेपरूपं परुषमुक्त्वा क्षत्रियः पणशतं दण्डमर्हति । एवं सार्धशतं द्वे वा शते लघवगौरवापेक्षया वैश्यः । शूद्रोऽप्येवं ब्राह्मणाक्रोशे ताडनादिरूपं वधमर्हति । ममु.

(५) आक्रुश्य मध्यमेन वाक्यारुध्येणेति शेषः, इति पारिजातः । अध्वर्षं सार्धं शतं, द्वे वेति आक्रोशगौरवापेक्षया । वधस्ताडनजिह्वाच्छेदाद्यात्मकः ।

विर. २५०-५१

(६) इदमत्र चिन्त्यं वाक्यस्यास्य मध्यपारुध्यविषयत्वेनान्तरोक्तं वैश्यमित्यादि वृहस्पतिवचनं प्रथमपारुध्यविषयं प्राप्तं दण्डलाघवदर्शनात् । तथा च शूद्रस्योत्तमे पारुध्ये को नाम दण्डोऽस्तु न तावज्जिह्वाच्छेद एव मध्यमेनावरोधात् । नान्यः— अनभिधानादिति ।

अत्र उत्तमे ब्राह्मणाक्षेपे जिह्वाच्छेदो द्रष्टव्य औचित्यात्, 'अनुताभिशांसने तदङ्गच्छेदः' इति हारीतवाक्ये रत्नाकरकृतैव तीत्राक्रोशे जिह्वाच्छेदव्याख्यानाच्चेति ।

दवि. २०६

(७) द्वे वेति गुणवद्ब्राह्मणापेक्षया । वधं ताडनादिरूपं, हुङ्काराद्यल्पाक्रोशे, उत्तरत्र जिह्वाच्छेदस्य वक्ष्यमाणत्वात् । *मच.

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशांसने ।

वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशत् शूद्रे द्वादशको दमः ॥

* नन्द., भाच. मचवत् ।

(१) मस्मृ. ८।२६८; अपु. २२७।२४ दण्ड्यः (दन्यः) स्वाद (वाऽप्य); मिता. २।२०७; अप. २।२०७ इये स्याद (श्यस्याऽप्य); व्यक. १०३; विर. २५१ पञ्चाशद्ब्राह्मणो (विप्रः पञ्चाशतं) इये स्वादर्ध (श्यस्य त्वर्ध) द्वादशको (तु द्वादशो); पमा. ४३१; रत्न. १२० पञ्चाशद्ब्राह्मणो (विप्रः

(१) अभिशांसनं सर्वप्रकार आक्रोशः । पतनीयादन्यः । तत्र दण्डान्तरविधानात् । निमित्तसप्तमी चैषा । वैश्य इति विषयसप्तमी । ब्राह्मणस्याक्रोशुराक्रुश्यमानस्य च दण्ड उक्तः । क्षत्रियादीनां त्वितरेतरं स्मृत्यन्तरमन्वेपणीयम् । तथा च गौतमः—'ब्राह्मणराजन्यवत् क्षत्रियवैश्यौ' (गौध. १२।११) परस्परक्रोशे । क्षत्रियश्चैश्यमाक्रोशेत् पञ्चाशतं दण्ड्यः । वैश्यः क्षत्रियं, शतम् । एवं क्षत्रियः शूद्रमाक्रोशेत् पञ्चविंशतिर्दण्ड्यः । वैश्यः पञ्चाशतम् । शूद्रस्य तु तदाक्रोशे गुणापेक्षिको दण्डो वक्ष्यते । मेधा.

(२) ब्राह्मणेन क्षत्रियवैश्यशूद्रेषु उक्ताद्याक्षेपे कृते पञ्चाशत् पञ्चविंशतिः द्वादश पगान् यथाक्रमं ब्राह्मणो दण्ड्यः । * गोरा.

(३) अभिशांसने आक्रोशे । वैश्ये आक्रुश्यमाने विप्रेण । एवं शूद्र इत्यत्रापि । मवि.

विप्रक्षत्रियवत्कार्यो दण्डो राजन्यवैश्ययोः ।
वैश्यक्षत्रिययोः शूद्रे विप्रे यः क्षत्रशूद्रयोः ।
समुत्कर्षापकर्षाभ्यां विप्रदण्डस्य कल्पना ।
राजन्यवैश्यशूद्राणां वधवर्जमिति स्थितिः ॥
समुत्कर्षेति । क्षत्रादीनामपि स्वावरवर्गेष्वक्रोशे विप्रस्येव दण्डकल्पितिरित्यर्थः । मवि.

समवर्णाक्रोशे तदत्यन्तनिन्दायां च दण्डः

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ।

वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥

* ममु., मच., नन्द. गोरावत् ।

पञ्चाशतं); दीक. ५१ रत्नवत्; व्यनि. ४८७ पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः (विप्राः पञ्चाशतं दण्ड्याः) मनुनारदौ; स्मृचि. २४ को (मो); सवि. ४७८ इये स्वादर्ध (श्यस्य त्वर्ध); व्यग्र. ३८१ रत्नवत्; व्यउ. १२० रत्नवत्; विला. ७२७; सेतु. २११ रत्नवत्; समु. १६० णो दण्ड्यः (णे दण्डः).

(१) मस्मृ. ८।२६९ इत्यस्योपरिष्ठात् प्रक्षिप्तकोऽयम् ।

(२) मस्मृ. ८।२६९ इत्यस्योपरिष्ठात् प्रक्षिप्तकोऽयम्, षांसनां (षांस्तु) वध (धन); स्मृचि. २४.

(३) मस्मृ. ८।२६९; अप. २।२०४ (=) णे (र्ण); व्यक. १०२ मनुनारदौ; स्मृच. ३२६ णे द्विजातीनां (णांस्तु सर्वेषां) मे (मः) पू.; विर. २४९ मनुनारदौ;

(१) द्विजातिग्रहणमतन्त्रम् । समवर्णे द्वादश व्यतिक्रमे परस्परक्रोशे दण्डः । साम्यं च जातिवित्तबन्धुवयः-कर्मविद्याभिः, विशेषानुपदेशात् । तत्र समानजातीये वित्ताधिके द्विगुणं, तस्मिन्नेव बन्धुत्वाधिके त्रिगुणं, यावत्सर्वगुणातिगुणस्य षड्गुणम् । वादा आक्रोशा अवचनीया अत्यन्तदृशंसाः मातृभगिनीभार्यादिगताः । तदेव द्विगुणं दण्डपरिमाणम् । नपुंसकलिङ्गात् । सर्वशेषोऽयं न समवर्णविषय एव । अथवा तदेव शतमिति योजना । लिङ्गसामर्थ्याच्छतस्य च प्रथमश्लोके श्रुतत्वात् । अतोऽवचनीयेषु समवर्णेष्वपि द्विशतो दमः । लिङ्गोपपत्त्यर्थं परिमाणपदमश्रुतमध्याहर्तव्यम् । शते तु व्यवहितकल्पना ज्यायसी । मेधा.

(२) द्विजातीनां समजातिविषये उक्तरूपे आक्रोशे कृते व्यतिक्रमे सति द्वादशैव पणान् दण्ड्यः । अवचनीयेषु वादेषु मातृभगिन्याद्यश्लीलरूपेषु 'शतं ब्राह्मण-माक्रुश्य' इत्यादि यदुक्तं तदेव दण्डं द्विगुणं दण्डात् भवति । *गोरा.

(३) द्विजातीनां त्रयाणां व्यतिक्रमे आक्रोशे । अवचनीयेष्वश्लीलेषु 'त्वं स्वसृगामी'त्यादिषु आक्रोश-मात्रतात्यर्थेणोक्तेषु समवर्णेषु । मवि.

(४) द्विजातिपदमत्रातन्त्रं, व्यतिक्रमे वाक्पारुष्ये अप्रकाशनीयप्रकाशादन्यस्मिन्निति यावत् । वादेष्ववचनीयेष्वित्यनेन अप्रकाश्यप्रकाशको वादो विवक्षितः । विर. २४९

(५) व्यतिक्रमेऽल्पवाक्पारुष्ये । यदिदं द्वादशैत्युक्तं तदेव द्विगुणं भवेत् । नन्द.

(६) द्विजातीनां व्यतिक्रमे द्विजस्य द्विजः क्षत्रियस्य क्षत्रियः वैश्यस्य वैश्यः शूद्रस्य शूद्रः, व्यतिक्रमे द्वादशैव पणान् दण्ड्यः । व्यतिक्रमे द्विगुणं चतुर्विंशतिपणाः । भाच.

* मसु. गोरावत् ।

द्वि. २०४ मनुनारदौ; सवि. ४७६ वर्णे द्विजातीनां (जातो तु सर्वेषां) पू.; व्यप्र. ३८० मनुनारदौ; व्यउ. ११९-२० षे (र्ण); ससु. १६०.

व्य. कां. २२३

शूद्रकृते उच्चवर्णक्षेपे धर्मोपदेशे च दण्डाः

एकजातिर्द्विजातीस्तु वाचा दारुणया क्षिपन् । जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ॥

(१) एकजातिः शूद्रः । स त्रैवर्णिकान् क्षिपन् आक्रोशान् दारुणया पातकादियोगिन्या वाचा नृशंसादिरूपया जिह्वाच्छेदं लभते । जघन्यप्रभव इति । पादाभ्यां ब्रह्मण उत्पन्न इति । हेत्वभिधानं प्रतिलोमानामपि ग्रहणार्थम् । तेषुपि जघन्यप्रभवा एव 'नास्ति पञ्चमः' इति वर्णान्तरनिषेधात् । मेधा.

(२) अत्यन्ताभ्यासे एतत् । अप. २।२०७

(३) शूद्रो द्विजातीन् पातकाभियोगिन्या वाचा आक्रुश्य जिह्वाच्छेदं लभेत । यस्मादसौ पादाख्यान्निकृष्टाङ्गाजातः । *मसु.

(४) एकजातिरिह शूद्रः उपनयनाभावात्, दारुणया मर्मस्पर्शा पातित्यादिवोधिकाया, जघन्यप्रभवः श्रुतौ पद्भ्यामुत्पन्नत्वेन बोधितत्वात् । एतेन संकरजातानामपि द्विजातिं प्रति दारुणक्षेपे अयं दण्डः, तेषामपि जघन्यजातत्वात् । विर. २५४

(५) सः द्विजातिः जघन्यस्य शूद्रस्य प्रभवः । भाच.

नामजातिग्रहं तेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ।

निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥

* गोरा., मच., नन्द. मसुवत् ।

(१) मसु. ८।२७० [तीस्तु (तिं च) Noted by Jha]; अप. २।२०७ तीस्तु (तिं तु) पन् (पेत्); व्यक. १०३ तीस्तु (तिं तु) मनुनारदौ; विर. २५३ मनुनारदौ; पमा. ४३४ मनुनारदौ; व्यनि. ४८७ मनुनारदौ; स्मृचि. २४; द्वि. २०६ तीस्तु (तिं तु) च्छेदं (क्षेदं) मनुनारदौ; बाल. २।२०७; सेतु. २१२ तीस्तु (तिं तु) प्राप्नुयाच्छेदं (छेदमाप्नोति) मनुनारदौ; ससु. १६१.

(२) मसु. ८।२७१ तेषां (त्वेषां); अप. २।२०७ हं ते (हांस्ते); व्यक. १०३ क्षेप्यो (खेयो) शेषं मसुवत्, मनुनारदौ; विर. २५३ क्षेप्यो (खेयो) मनुनारदौ; पमा. ४३४ तेषां (त्वेषां) क्षेप्यो (खेयो) मनुनारदौ; व्यनि. ४८७ व्यकवत्, मनुनारदौ; स्मृचि. २४ ममि (मति) क्षेप्यो (वेयो); द्वि. २०६ तेषां (त्वेषां) निक्षेप्योऽयो (विषेयोऽय) मनुनारदौ; मच. विरवत्; बीमि. २।२११ निक्षेप्यो

(१) अभिद्रोह आक्रोशः कुत्साबुद्धिः, ब्राह्मणक त्वं मा मया स्पर्धिष्ठाः । एवमन्यदपि योज्यम् । ग्रहणं ग्रहः । निरुपपदं नाम गृह्णाति कुत्साप्रत्यययोगेन वा, 'देवदत्तके'ति । अभिद्रोहेण क्रोधेनाभिद्रोहः क्रोधः गर्हा श्रेयः । न प्रणयेन । निश्चेप्यः प्रक्षेप्यः । शङ्कुः कीलकः । ज्वलन्नग्निना दीप्यमानोऽयोमयो लोहमयः ।
* मेधा.

(२) अत्यन्ताभ्यासे एतत् । अप. २।२०७

(३) नामग्रहं मैत्र इति । जातिग्रहं ब्राह्मण इति । अभिद्रोहेणाक्रोशाभिमानेन कुर्वतः शूद्रस्य । ज्वलन्नग्निततः । मवि.

(४) अमुकनामाऽसि त्वं अमुकजातिस्त्वम् । अभिद्रोहेण आक्रोशाभिमानेन ग्रहं कलहं कुर्वतः यस्तस्य आस्ये मुखे अयोमयः शङ्कुः दशाङ्गुलः ज्वलन् स्थाप्यः । भाच.

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।

तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥

(१) अयं ते स्वधर्मः, इयं वा अत्रेतिकर्तव्यता, मैवं कार्षीः, छान्दसोऽसीत्येवमादि व्याकरणलेशज्ञेयता दुन्दुक्त्वेन दर्पवन्तः शूद्रा उपदिशन्ति । तेषामेष दण्डः । यस्तु प्रणयात् ब्राह्मणापाश्रयादेव व्युत्पन्नो विस्मृतं कथञ्चिद्देशकालविभागं स्मारयेत्, पूर्वाह्नकालं नातिक्रामय, क्रियतां दैवं कर्म, देवांस्तर्पयोपवीती भव, मा प्राचीनावीतं कार्षीरिति, तस्य न दोषः । तप्तमग्निसंबन्धात् पीडाकरम् । आसेचयेत् क्षारयेत् । युक्तं वक्त्रे, मुखेनोपदेशकत्वात् । श्रोत्रस्य कोऽपराधः ? प्रागसत्कर्त्तव्य-

* गोरा., ममु., विर., मच., नन्द. मेधावत् । दवि. व्याख्यानं पूर्वग्रन्थेषु गतार्थम् ।

(विधेयो); सेतु. २१२ मभि (मति) मनुनारदौ; समु. १६१ ग्रहं तेषा (ग्रहे दोष) क्षेप्यो (खेयो).

(१) मस्मृ. ८।२७२ [दर्पेण (धर्मेण) Noted by Jha]; अप. २।२०७ विप्राणा (द्विजाना); व्यक. १०३ अपवत्, मनुनारदौ; विर. २५४ अपवत्, मनुनारदौ; स्मृचि. २४; दवि. ३२१ अपवत्, मनुनारदौ; समु. १६१. १ गर्भः क्षे. २ वानित्या.

श्रवणम् ।

+मेधा.

(२) कथञ्चिद्धर्मलेशमवगम्यायं ते धर्मोऽनुष्ठेयं इति ब्राह्मणस्याहङ्कारादुपदिशतोऽस्य शूद्रस्य मुखे कर्णयोश्च ज्वलत्तैलं राजा प्रक्षेपयेत् । ममु.

मिथ्याक्षेपे अङ्गवैकल्योक्तौ गुर्वाद्याक्षारणे च दण्डः

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ।

वितथेन ब्रुवन् दर्पादाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ॥

(१) सत्ये च श्रुते, नैतदनेन सम्यक् श्रुतमित्याह । श्रुतमेव वाक्षिपति । नैतत्संस्कारकं यदनेन श्रुतमिति । ब्रह्मावर्तीयमभिजनाभिमानिनं ब्राह्मकोऽयमित्याह । एवं जातिब्राह्मणं क्षत्रियोऽयमित्याह, क्षत्रियं वा हेलया ब्राह्मण इति । कर्म, स्नातक इति । शरीरावयवः शारीरमव्यङ्गं, दुश्चर्मैति । वितथेन, वितथमनृतम् । 'प्रकृत्यादिभ्यः' इति तृतीया । अथवाऽयं धर्मो वैतथ्यं, तस्य वाच्यं प्रति कारणता युक्तैव । स्वगुणमदात् परावज्ञानं दर्पः । अज्ञानात् परिहासतो वा न दोषः । कस्य पुनरयं दण्डः । सर्वेषामिति ब्रूमः । शूद्राधिकाराच्छूद्रस्यैवेति परे । द्विजातिविषये वैतथ्ये । मेधा.

(२) शारीरं कर्म भारवहनादि, वितथेन ब्रुवन् त्वश्रुतादि । दर्पादभिमानात् । अश्रुताद्यभिमानेन ब्रुवन् द्विज एव दण्ड्यो न तु शूद्रस्तस्य तु वध एव । *मवि.

(३) समानजातिविषयमिदं दण्डलाघवात् न तु शूद्रस्य द्विजात्याक्षेपविषयम् । न त्वयैच्छुतं, न भवान् तद्देशजातो, न तवेयं जातिर्न तव शरीरसंस्कारमुपनयनादि कृतमित्यहङ्कारेण मिथ्या ब्रुवन् द्विशतं दण्डं दाप्यः स्यात् । वितथेनेति तृतीयाविधाने 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया । *ममु.

+ सर्वव्याख्यानानि मेधावत् ।

* दवि. मविवत् ममुवत् विरवच्च, सर्वेषामनुवादात् । भाच. मविवत् ।

× गोरा. ममुवत् । गोरा. व्याख्यानमशुद्धिसिद्धेहाहो-
च्छ्रुतम् ।

(१) मस्मृ. ८।२७३; व्यक. १०३; विर. २५४ ब्रुवन् (वदन्); विचि. १११ (=); स्मृचि. २४ दमम् (दमः); दवि. २०७; सेतु. २१३.

१ रेऽव्यङ्गं.

(४) कर्म तपश्चर्यादिरूपं, शारीरं शरीरावयवं, वितथेनासत्येन । तेन श्रुतदेशजातितपश्चर्याशरीरावयव- विशेषमधिकृत्य दर्पादसत्यं वदति तत्र द्विशतं दण्डः । वितथेनेति 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानमि'ति तृतीया । श्रुतादिवितथवचनोदाहरणानि । नानेन वेदः श्रुतः । नास्यार्यावर्तो देशः । नायं विप्रः । नानेन तपः कृतम् । नायमदुश्चर्मा इत्यादि । दर्पः स्वगुणदाढर्यज्ञानेन पराव- ज्ञानम् । विर. २५५

(५) समवर्णे आह— श्रुतमिति । न त्वं द्विजातिर्न तवायमुचितो देश इत्येवं वितथेन वितथं ब्रुवन्, शूद्रः शूद्रस्यैव ब्रुवन् । 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानमि'ति तृतीया । अथवा स्वख्यात्यर्थं दर्पात् मिथ्या वदन् शूद्रो दण्डनीय इत्याह— श्रुतमिति । मयैतत्पुराणादिकं श्रुतं, मम मध्यदेशे वसतिः, अतीव कुलीनोऽहं, अतीव सत्कर्माऽस्मि, ममातीव चूडादिसंस्कारो वृत्त इति । अन्यथा वितथेनेत्यनुपपत्तेरिति । मच.

(६) सर्ववर्णानामविशेषेण दण्डमाह— श्रुतं देशं चेति । देशं जन्मभूम्यादिकम् । कर्म यज्ञादिकम् । शारीरमुपनयनादिकम् । वितथेन वैतथ्येन । नन्द. काणं वाऽप्यथवा खञ्जमन्यं वाऽपि तथाविधम् । तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम्* ॥

(१) एकेनाक्षणा विकलः काणः । खञ्जः पादविकलः । तथाविधं कुर्णं चिपटं, तथ्येन नासत्येन, अपिशब्दात् वितथेन, अकाणे काणे च काण इत्युक्ते कार्षापणावरो दण्डः । अत्यन्ताल्पो यदि दण्डः कथञ्चिदनुग्राहातया तदा कार्षापणोऽवरो दण्डः । अन्यथा द्वौ त्रयः पञ्च वा पुरुषविशेषापेक्षयाऽपि दण्ड्यः शूद्रः, सर्वे वा पूर्ववत् । मेघा.

* मित्ता. व्याख्यानं 'सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैः' इति याज्ञवल्क्यवचने द्रष्टव्यम् ।

(१) मसृ. ८१२७४; मित्ता. २१२०४; अप. २१२०४ । ऽप्यथ (यदि) पणा (पणं); व्यक. १०२ मनुनारदौ; विर. २४७-८ ब्रुवन् (वदन्) मनुनारदविष्णवः; पमा. ४३१; रत्न. १२१; स्मृचि. २४ मन्यं (मन्वं); नृप्र. २७६; व्यप्र. ३८४ मनुनारदौ; व्यड. १२२ मनुनारदौ; विता. ७२४; ससु. १६०.

१ चिपटं त.

(२) काणं पादविकलं वा अन्यमपि वा तथारूपं अङ्गविकलमन्धादिकं काणादिशब्देन सत्येनापि ब्रुवन् यदि सर्वनिकृष्टं कार्षापणं दण्डं दाप्यः । *गोर.

(३) तदाक्षेतुरत्यन्तोत्कर्षे स्वल्पे वा आश्चर्यदोषे ग्राह्यम् । अप. २१२०४

(४) ब्रुवन् काणस्त्व इत्यादिकमभिमानात् कार्षापणोऽ- त्यन्तावरो यत्र दण्डे तम् । अधिकस्तंभवे तु ततोऽपि किञ्चिदधिकं दाप्य इत्यर्थः । मवि.

(५) किञ्चान्यत् वस्तुतोऽङ्गहीनस्य तथावदने दण्ड- माह—काणमिति । तथाविधं विरूपम् । तथ्येनापीत्यत्रा- पेरेवधारणार्थत्वात् परिहासवारणाय । कार्षापणावरं पणा- दपि न्यूनं पुनः प्रसङ्गवारणाय । मच.

भातरं पितरं जायां भ्रातरं श्वशुरं गुरुम् ।

आक्षारयन् ज्ञतं दाप्यः पन्थानं चाद्दद्गुरोः ॥

(१) आक्षारणं भेदनं द्वेषजननमनृतन । एषा ते माता न स्नेहवती द्वितीये पुत्रेऽत्यन्तवृष्णावती कनक- मयमङ्गुलीयकं रहसि तस्मै दत्तवती इत्येवमाद्युक्त्वा भेदयति । एवं पितापुत्रौ जायापती भ्रातृन् गुरुशिष्यौ । तनयग्रहणं द्वितीयसंबन्धिप्रदर्शनार्थम् । अन्यथा मातर- मित्युक्ते मातरं पुत्रान्निन्दतो दण्डः स्यात् न पुत्रं मातुः । यद्यपि भेदनमुभयाधिष्ठानं तथापि यन्मुखेन क्रियते स एव भेदयितव्य इति व्यवहारः । तत्रासति तनयग्रहणे प्रदर्शनार्थं यदैव मातरमाह—'नैष ते पुत्रोऽमक्तो दुःशीलश्च' इत्येवमादिना मातरमाक्षारयति तत्रैव स्यान्न पुत्रं, यथा दर्शितम् । अन्ये तु चित्तकदर्शनोत्पादनमा-

* मसु., नन्द., माच. गोरवत् ।

(१) मसृ. ८१२७५ श्वशुरं (तनवं); अपु. २२७१२८ जायां (ज्येष्ठं) दाप्यः (दण्ड्यः); मित्ता. २१२०४; व्यक. १०२ मसृवत्; विर. २५० मसृवत्; पमा. ४३१ चा (वा); रत्न. १२०; व्यनि. ४८५ गुरुम् (गुरुन्) शेषं मसृवत्; स्मृचि. २४ चा (वा) शेषं मसृवत्; दवि. २११ मसृवत्; २१२ आक्षारयन् (आक्रोशवन्) इति धर्मकोषे पाठान्तरम्; नृप्र. २७६ भ्रातरं श्वशुरं (श्वशुरं आक्षरं); वीमि. २१२०४; व्यप्र. ३८२; व्यड. १२१ चा (वा); व्यम. ९९; विता. ७२४ चा (वा); राक्षै. ४८८-९; सेतु. २१४ दाप्यः (दण्ड्यः) शेषं मसृवत्; ससु. १६०

क्षारणमाहुः । प्रवत्स्यामि धनं श्रुतं वाऽर्जयितुं तीर्थाद्युप-
सेवितुं, तत्प्रवासशङ्कया च मानसी तृणया पीडा
भवतीति तथा न कर्तव्यम् । यावद्गुरवस्ते जीवेयु-
स्तावन्नान्यं समाचरेन्न तैरननुज्ञात इति च । यत्तु वि-
द्वेषणादिना चित्ते खेदोत्पादनं तत्र शतान्न मुच्यते प्रति-
रोद्धा गुरोरिति महत्त्वाद्दोषस्य । जायाया अनुकूलायाः
पुत्रवत्याः, करोत्यन्यं विवाहमित्येतदाक्षारणम् । एवं
गुणवतः पुत्रस्याक्षारणेऽन्यकरणम् । गुरोः सर्वप्रकारं
पन्थानमत्यजतः शतं दण्डः । मेधा.

(२) 'क्षारिताक्षारितौ सद्भिरभिशास्ताबुदाहृतौ' इति
त्रिकाण्डदर्शनात् मातृपितृभार्याभ्रातृपुत्रगुरूणां महा-
पातकाभिशापमुत्पादयन् गुरोश्च पन्थानमददत् शतं
दण्ड्यः । अभ्यासानभ्यासाक्षारणेन वाऽत्र मातृभार्यादीनां
दण्डस्य विषमसमीकरणं परिहरणीयम् । गोरा.

(३) यदा पुनः पुत्रादयो मात्रादीन् शपन्ति
तदा शतं दण्डनीया इति तेनैवोक्तम्— मातरमिति ।
एतच्च सापराधेषु मात्रादिषु गुरुषु निरपराधायां च
जायायां द्रष्टव्यम् । मिता. २।२०४

(४) आक्षारयन् अगम्यमैथुनेनाभिशांसन् । जाया-
संनिधेरजायाया एव मातरं पितरं चेति ग्राह्यम् । तेनात्र
जायां प्रति तव माता स्वैरिणीत्यादिरभिशापो द्रष्टव्यः ।
*मवि.

(५) 'आक्षारितः क्षारितोऽभिशातः' इत्याभि-
धानिकाः । मात्रादीन् पातकादिनाऽभिशापन्, गुरोश्च
पन्थानमत्यजन् दण्ड्यः । भार्यादीनां गुरुलघुपापाभि-
शापेन दण्डसाम्यं समाधेयम् । मेधातिथिस्तु आक्षारणं
भेदनमित्युक्त्वा मातृपुत्रपित्रादीनां परस्परभेदनकर्तुर्यं
दण्डविधिरिति व्याख्यातवान् । *मसु.

(६) आक्षारयन् वाक्पारुष्यविषयीकुर्वन् ।
विर. २५०

(७) मिथ्याभिशापेन योजयन्निति हलायुधः ।
आक्षारयन् अगम्यमैथुनेनाभिशांसन्, तेन जायां प्रति

* भाच. मविवत् ।

× गुरोस्तद्भावः । मच. मसुवत् ।

तव माता स्वैरिणीत्यादिरभिलापो द्रष्टव्यः । एवं मात्रा-
दिव्पपीति नारायणः ।

धर्मकोषे तु 'आक्रोशयन्' इति पठित्वा आक्रोशनं
साक्षेपाह्वानमिति व्याख्यातम् । *दवि. २११-१२

(८) आक्षारयन् वाक्पारुष्येण क्रोधयन् मातापितृ-
गुरुष्वेष्टभ्रातृणामाक्षारणे सकृत्कृते अन्येषामसकृत्कृते
दण्डः, अतुल्यकक्षित्वात् । नन्द.

पतितं पतितेत्युक्त्वा चौरं चौरैति वा पुनः ।
वचनानुल्यदोषः स्यान्मिथ्या द्विदोषतां ब्रजेत् ॥

पतितं पातकिनम् । उक्त्वा आक्रोशबुद्ध्या तुल्य-
दोषोऽतस्तुल्यो दण्डः । एवं द्विदोषतां द्विगुणदोषता-
मित्यादि । मवि.

ब्राह्मणक्षत्रिययोः परस्परक्रोशे विद्वद्भ्योः स्वजात्याक्रोशे
च दण्डाः

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ।
ब्राह्मणे साहसः पूर्वं क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ॥

(१) ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां परस्परक्रोशे कृते तयोरयं
दण्ड इत्येवमध्याहारेण योजना । तादर्थ्यं चतुर्थी वा ।
तद्विनयाय दण्डः कर्तव्यः । पातकस्याक्रोशे कृते अयं
दण्डो दुःखोत्पादनरूपे । *मेधा.

(२) वर्णानां स्वजातिविषये वाक्पारुष्यातिशये दण्डं
श्लोकद्वयेनाह—ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां त्विति । विजानता
राज्ञा । ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां वाक्पारुष्यातिशये कृते तयो-
र्दण्डौ कार्यावित्यर्थः । तादुत्तरार्धेनोक्तौ । नन्द.

* शेषं मेधा., मिता., मसु., विर. इत्येतेषां विवरणम् ।

× सर्वव्याख्यानानि मेधावत् ।

(१) मस्मृ. ८।२७७ इत्यस्योपरिष्ठात् प्रक्षिप्तश्लोकोऽयम् ।

(२) मस्मृ. ८।२७६ [तु दण्डः (च दण्डः)
Noted by Jha]; व्यक. १०३; विर. २५५ त्वेव
(च्वेव); दवि. २०१ विरवत्; वीमि. २।२११ विजानता
(विजानतः) त्वेव (चैव); व्यप्र. ३८३ त्वेव (त्वेष);
व्यउ. १२१; बाल. २।२०७; सेतु. २१२ त्वेव (चैव);
ससु. १६० सः पूर्वं (सं पूर्वं) त्वेव मध्यमः (मध्यमं
सृतम्).

विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ।

छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ॥

(१) एवमेव प्रथममध्यमौ साहसवित्यतिदिश्यते । तेनैव क्रमेण वैश्यस्य शूद्राक्रोशे प्रथमः । शूद्रस्य वैश्याक्रोशे मध्यमः । छेदवर्जं दण्डस्य प्रणयनमिति 'एकजाति-द्विजातीनि'त्यनेन जिह्वाच्छेदं प्राप्तं निवर्तयति । स्वजातिं प्रतीति । नैवं मन्तव्यं समानजातीयं प्रतीति । किं तर्हि, याऽत्र जातिरुपात्ता वैश्यशूद्राविति । स्वग्रहणं श्लोकाभि-प्रायं, परस्परक्रोशे यावत् । स्वजातिमिति पूर्वत्रापि संबन्धनीयम् । प्रणयनं प्रवर्तनम् । क्षत्रियस्य वैश्यशूद्रा-क्षारणे प्रथमार्धसाहसः । एवं ब्राह्मणस्य वैश्यशूद्रयोः कल्प्यम् । मेधा.

(२) वैश्यशूद्रयोः परस्परजातिं प्रति पतनीयाक्रोशे ब्राह्मणक्षत्रियवत् । प्रथममध्यमसाहसात्मकं जिह्वाच्छेद-वर्जं यथावदण्डस्य करणम् । एवं च ब्राह्मणक्षत्रियाक्रोशे एवं शूद्रस्य जिह्वाच्छेदनमवतिष्ठते । *गोरा.

(३) विट्शूद्रयोरेवमेवान्योन्याक्षारणे प्रथमो वैश्यस्य शूद्रस्य मध्यमः । तयोस्तु स्वस्वजात्याक्षारणे छेदवर्जं तत्त्वजात्युचितदण्डमात्रप्रणयनम् । तेनार्थाद् ब्राह्मण-क्षत्रियाक्षारणे छेद एवेत्यर्थः । मवि.

(४) वैश्यशूद्रयोरप्येवमेव । स्वजातिं प्रति तुल्यजातिं प्रति तत्त्वतः स्वरूपगुणोत्कर्षापकर्षलक्षणात् । छेदवर्ज-मिति जिह्वाच्छेदनिवृत्त्यर्थम् । Xविर. २५६

(५) उक्तदण्डमन्यत्रातिदिशति — विडिति । शूद्राक्रोशिनि वैश्ये प्रथमः । वैश्याक्रोशिनि शूद्रे मध्यमः । स्वजातिं प्रति संनिधेः स्वस्य जातिर्यदनन्तरं तत्त्वजातिस्तेन वैश्यः क्षत्रियमाक्रुश्य प्रथमसाहसं दद्यात् । वैश्यमाक्रुश्य शूद्रो मध्यमसाहसं दद्यात् । अन्यथा

* मसु. गोरावत् । X दवि. विरवत् ।

(१) मसु. ८।२७७ [स्वजातिं (सजातिं) विनिश्चयः (विनिर्णयः) Noted by Jh&]; मिता. २।२०७ पृ.; व्यक. १०४ रेव (स्वेव); विर. २५६ व्यकवत्; दवि. २०१ व्यकवत्; व्यग्र. ३८३ व्यकवत्; व्यउ. १२२ त्येति (श्येति) शेषं व्यकवत्; विता. ७२७ पू.; बाल. २।२०७ वत्त.; समु. १६०.

१ जातीयप्र. २ हणश्लो.

'समवर्णे द्विजातीनामिति वैश्यस्य द्वादशस्योक्तत्वात्तत्त्वतः परिहासं विना छेदवर्जं जिह्वाच्छेदं विना । अतो ब्राह्मण-क्षत्रियाक्रोशिनि शूद्रे जिह्वाच्छेदः प्रथमोक्तः पर्याप्तः ।

मच.

(६) एवमेवेति मध्यमसाहसातिदेशः स्वजातिं प्रति वाक्यारूप्य इति शेषः । अपरार्धेऽपि स्वजातिं प्रती-त्यनुषङ्गः । शूद्रस्येति च विपरिणामः, तेनायमर्थः शूद्रस्य जिह्वाच्छेदवर्जनं दण्डप्रणयनं स्वजातिविषये न द्विजातिविषये इति । नन्द.

याज्ञवल्क्यः

वाक्यारूप्यलक्षणविभागौ

इदानीं वाक्यारूप्यं प्रस्तूयते । तल्लक्षणं चोक्तं नारदेन— 'देशजातिकुलादीनामाक्रोशं न्यङ्गसंयुतम् । यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्यारूप्यं तदुच्यते ॥' इति । देशादीनामाक्रोशं न्यङ्गसंयुतम् । उच्चैर्भाषणमाक्रोशः, न्यङ्गमवद्यं तदुभययुक्तं यत्प्रतिकूलार्थमुद्वेगजननार्थं वाक्यं तद्वाक्यारूप्यं कथ्यते । तत्र कलहप्रियाः खलु गौडा इति देशाक्रोशः । नितान्तं लोलुपाः खलु विप्रा इति जात्याक्रोशः । क्रूरचरिता ननु वैश्रामिन्ना इति कुला-क्षेपः । आदिग्रहणात्स्वविद्याशिल्पादिनिन्दया विद्व-च्छिल्पादिपरुषाक्षेपो गृह्यते । तस्य च दण्डतारतम्यार्थं निष्ठुरादिभेदेन त्रैविध्यमभिधाय तल्लक्षणं तेनैवोक्तम्— 'निष्ठुराश्लीलतीव्रत्वादपि तत्त्रिविधं स्मृतम् । गौरवानु-क्रमात्तस्य दण्डोऽपि स्यात्क्रमाद्गुरुः ॥ साक्षेपं निष्ठुरं ज्ञेयमश्लीलं न्यङ्गसंयुतम् । पतनीयैरुपाक्रोशैस्तीव्रमाहु-र्मनीषिणः ॥' इति । तत्र धिङ्मुखं जालममित्यादि सा-क्षेपम् । अत्र न्यङ्गमित्यसभ्यम् । अवद्यं भगिन्यादिग्रमनं तद्युक्तमश्लीलम् । सुरापोऽसीत्यादिमहापातकाद्याक्रोशै-र्युक्तं वचस्तीव्रम् । मिता. २।२०४

समगुणेषु सवर्णेषु निष्ठुराक्षेपे दण्डः

सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैर्न्यूनाङ्गेन्द्रियरोगिणाम् ।

क्षेपं करोति चेद्दण्ड्यः पणानर्धत्रयोदशान् ॥

(१) यासु. २।२०४; अपु. २५८।१ दशान् (दश); विश्व. २।२०८ न्यू (हीं) शेषं अपुवत्; मिता.; अप.; व्यक. १०२; विर. २४७ अपुवत्; पमा. ४३०; रत्न. १२१ दण्ड्यः (दण्ड्यः); स्पृचि. २४; व्यवि. ४८६; दवि. २१०; नृम. २७६; सवि. ४७७; वीमि. ;

(१) प्रायेण द्यूतप्रभवत्वाद् वाग्दण्डपारुष्ययोर्विनाशकारणत्वसामान्याद् द्यूतव्यवहारानन्तरमारम्भः । तत्रापि दण्डपारुष्यस्यापि कारणभूतत्वाद् वाक्पारुष्यमेव तावदुच्यते — सत्यासत्येति । हीनाङ्गाः खज्जादयः । हीनेन्द्रियाः काणादयः । कुञ्जद्विभूता रोगिणः । तेषां यद्यनेपराधिनामेव चापलाद् विद्यमानेन्द्रियवैकल्यादिना सत्येनैव दुष्टया वाचा क्षेपं कुर्यात्, असत्येनापि हे काण इत्यकाणमेवाधिक्षिपेत् । अन्यथास्तोत्रेण वा सातिशयस्तुतिपदैः प्रसिद्धं मुखं हे चतुर्वेदिन्, इत्येवं चिदन् अर्धत्रयोदशपणान् राजावेदने कृते दण्ड्यः । स्मृत्यन्तराच्च तस्यापि प्रसादनं कार्यम् । विश्व. २।२०८

(२) तत्र निष्ठुराक्रोशे सवर्णविषये दण्डमाह — सत्यासत्येति । न्यूनाङ्गाः करचरणादिविकलाः । न्यूनेन्द्रिया नेत्रश्रोत्रादिरहिताः । रोगिणो दुश्चर्मप्रभृतयः । तेषां सत्येनासत्येनान्यथास्तोत्रेण च निन्दार्थया स्तुत्या । यत्र नेत्रयुगलहीन एषोऽन्ध इत्युच्यते तत्सत्यम् । यत्र पुनश्चक्षुष्मानेवान्ध इत्युच्यते तदसत्यम् । यत्र विकृताकृतिरेव दर्शनीयस्त्वमसीत्युच्यते तदन्यथास्तोत्रम् । एवंविधैर्यः क्षेपं निर्मत्सिनं करोत्यसौ अर्धाधिकत्रयोदशपणान् दण्डनीयः । 'काणं वाऽप्यथवा खज्जमन्यं वाऽपि तथाविधम् । तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षाषणावरम् ॥' इति (मस्मृ. ८।२७४) यन्मनुवचनं तदतिदुर्वृत्तवर्णविषयम् । यदा पुनः पुत्रादयो मात्रादीन् शपन्ति तदा शतं दण्डनीया इति तेनैवोक्तम् — 'मातरं पितरं जायां भ्रातरं श्वशुरं गुरुम् । आक्षारयन् शतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥' इति (मस्मृ. ८।२७५) । एतच्च सापराधेषु मात्रादिषु गुरुषु निरपराधायां च जायायां दृष्टव्यम् । मिता.

(३) द्वादश पणान् साधान् दण्ड्यः । अर्धः त्रयोदशो येषां पणानां तेऽर्धत्रयोदशाः पणाः । * अप.

(४) प्रथमवाक्पारुष्ये समजातिगुणविषयमेतत् । + विर. २४७

* शेषं मितावत् । पमा. अपवत् । वीमि. अपवत् विरवत् । + दवि., व्यप्र. विरवत् । व्यप्र. ३८०; व्यउ. ११९; व्यम. ५९ अपवत्; विता. ७२६; राकौ. ४८८; सेतु. २१० अणुवत्; समु. १६०.

समगुणेषु सवर्णेषु अश्लीलक्षेपे दण्डः

अभिगन्ताऽस्मि भगिनीं मातरं वा त्वेति ह । शपन्तं दापयेद्राजा पञ्चविंशतिकं दमम् ॥

(१) राजावेदने एव च — 'अभिगन्तासि भगिनीं मातरं वा त्वेति हि । शपन्तं दापयेद् राजा पञ्चविंशतिकं दमम् ॥' अयं च सवर्णानां समानगुणानां च दण्डकल्पः । विश्व. २।२०९

(२) अश्लीलक्षेपे दण्डमाह — अभिगन्ताऽस्मीति । त्वदीयां भगिनीं मातरं वा अभिगन्ताऽस्मीति शपन्तं, अन्यां वा त्वजायामभिगन्तेत्येवं शपन्तं, राजा पञ्चविंशतिकं पणानां पञ्चाधिका विंशतिर्यस्मिन् दण्डे स तथोक्तस्तं दमं दापयेत् । मिता.

(३) प्रथमे वाक्पारुष्ये दण्ड उक्तः संप्रति मध्यमे वाक्पारुष्ये दण्डमाह — अभिगन्ताऽस्मीति । अप.

(४) तव भगिनीं मातरं वा अभिगन्ताऽस्मि मिथुनं भूयोऽपि भोक्ष्यमाणोऽहमिति शपन्तं उद्वेजयन्तं समजातिगुणं राजा पञ्चविंशतिपणमितं दमं दापयेत् । वाशब्दो अनास्थायां, तेन पुत्रीं जायां वा तवाभिगन्ताऽहमित्यादिकमपि संगृहीतम् । हशब्दः पादपूरणे । वीमि.

विषमगुणेषु सवर्णेषु निष्ठुराश्लीलक्षेपेषु दण्डः

अर्धोऽधमेषु द्विगुणः परस्त्रीषूत्तमेषु च ॥

(१) यास्मृ. २।२०५; अपु. २५८।२ ह (च); विश्व. २।२०९ सि (सि) ह (हि); मिता. २।२०५; अप.; व्यक. १०२; विर. २४९ सि (सि) वा (च) ह (हि); पमा. ४३३ अपवत्; रत्न. १२० अपवत्; दीक. ५१ त्वेति ह (तथाविधम्); विचि. ११०-११ सि (सि) वा त्वेति ह (यमयेरिह) शपन्तं (पणं तु); व्यनि. ४८६; स्मृचि. २४; दवि. २११ वा (च) ह (हि), विवादचिन्तामणौ ' मातरं यन्मेति हि ' इति पठितम्; नृप्र. २७६; वीमि.; व्यप्र. ३८३; व्यउ. १२१ ह (हि); व्यम. ९९ त्वे (न वे) ह (च); विता. ७२५; राकौ. ४८८; सेतु. २१०; समु. १६०.

(२) यास्मृ. २।२०६; अपु. २५८।३; विश्व. २।२१०; मिता.; अप.; व्यक. १०२; विर. २४५; रत्न. १२०; विचि. ११०; दवि. २००; नृप्र. २७६; वीमि.; व्यप्र. ३८१ धो (धी); व्यउ. १२०; विता. ७२६; सेतु. २०९; समु. १६०.

(१) गुणवर्णवैपम्ये पुनः—‘अर्धोऽधमेपु द्विगुणः परस्त्री-
पूत्तमेपु च । दण्डप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरम् ॥’
निरूप्येति शेषः । उक्तदण्डादर्थत्रयोदशपणावधिकान्
वर्णगुणाद्यधमेपु अर्धदण्डः । द्विगुणं च परस्त्रीपु । पर-
शब्द उक्तदण्डार्थः । परैरुक्तैः गुणतो वर्णतो वा परि-
णीताः परस्त्रियः, तास्वार्धक्षितासु । उक्तमेपु च गुण-
वर्णादिभिः पुरुषेपु स्त्रीपु वा । अर्धवचनं द्विगुणवचनं
चोभयमपि यथाहृदण्डोपलक्षणार्थमित्येतद् दर्शयति ।
दण्डप्रणयनं कार्यमिति न्यूनतया आधिक्येन वा यथाह
वर्णजात्युत्तराधरमालोच्येत्यभिप्रायः । जातिशब्दश्च जन्म-
निमित्तवाद् वयोवचनतया गुणलक्षणार्थोऽवसेयः ।

विश्व. २।२१०

(२) एवं समानगुणेषु वर्णिषु दण्डमभिधाय विप्रम-
गुणेषु दण्डं प्रतिपादयितुमाह—अर्धोऽधमेष्विति । अधमेपु
आक्षेपपेक्षया न्यूनवृत्तादिगुणेष्वर्धो दण्डः । पूर्ववाक्ये
पञ्चविंशतेः प्रकृतत्वात्तदपेक्षयार्धः सार्धद्वादशपणात्मको
द्रष्टव्यः । परभार्यासु पुनरविशेषेण द्विगुणः पञ्चविंशत्य-
पेक्षयैव पञ्चाशत्पणात्मको वेदितव्यः । तथोक्तमेपु च
स्वापेक्षयाऽधिकश्रुतवृत्तेषु दण्डः पञ्चाशत्पणात्मक एव ।

*मिता.

(३) प्रथमे मध्यमे च वाक्पारुष्ये सवर्णानां दण्ड
उक्तः । तस्यैव दण्डनीयगुणसदसद्भावकृतं विशेषमाह—
अर्धोऽधमेष्विति । विद्यानुष्ठानादिगुणवताऽधमेषु अधम-
गुणेषु आक्रुष्टेषूक्तस्यार्धमेव दण्डः स्यात् । तत्र प्रथमे
वाक्पारुष्ये षट्पणाः । पणचतुर्थांशश्च दण्डार्थः, मध्यमे
तु द्वादश सार्धाः । यस्तु परस्त्रीराक्षिपति, तथाऽल्प-
गुणश्च सन्नुत्तमगुणांस्तस्योक्तो द्विगुणो दण्डः । तत्र
प्रथमे वाक्पारुष्ये पञ्चविंशतिः ।

+अप.

(४) अर्धता चापराधानुरूपा । दण्डस्य अधमता
वर्णतो गुणतश्च ।

विचि. ११०

इन्द्रियनाशप्रतिज्ञयाक्षेपे पापाक्षेपे त्रैविद्यनृपदेवजातिपूगग्राम-
देशाक्षेपे च दण्डाः

बाहुग्रीवानेत्रसक्थिनाशे वाचिके दमः ।

शत्यस्तदर्धिकः पादनासाकर्णकरादिषु ॥

* विर., व्यप्र. मितावत् । दवि. विरवत् विचिक्च ।

+ वीमि. अपवत् ।

(१) यास्मृ. २।२०८; अपु. २।५८।५ दधि (तेऽधि) ;

(१) वधप्रतिशया तु वाक्पारुष्ये—‘बाहुग्रीवा-
नेत्रसक्थिनाशे वाचिके दमः । शत्यस्तदर्धिकः
पादनासाकर्णकरादिषु ॥’ इति । बाह्यादिच्छेदस्ते मया
कर्तव्य इत्येवं तथाकरणमर्थस्य ब्रुवतः शत्यो दमः
कार्यः । शतेनाभिनिर्वृत्तः शत्यः । शतं दण्ड्य इत्यर्थः ।
पादादिच्छेदनप्रतिज्ञायां तु ततोऽर्धे, पञ्चाशदित्यर्थः ।
आदिशब्दश्च दण्डपारुष्योक्तदन्तभङ्गाद्यर्थः । ऊर्वास्थि
सक्थीत्युच्यते । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२१२

(२) पुनर्निष्ठुराक्षेपमाधिकृत्याह—बाहुग्रीवेति । बाह्या-
दीनां प्रत्येकं विनाशे, वाचिके वाचा प्रतिपादिते तत्र
बाहू छिनन्तीत्येवंरूपे शत्यः शतपरिमितां दण्डो वेदि-
तव्यः । पादनासाकर्णकरादिषु आदिग्रहणात् स्निग्धादिषु
वाचिके विनाशे तदर्धिकः तस्य शतस्यार्धे तदर्धे
तद्यस्यास्त्यस्यै तदर्धिकः पञ्चाशत्पणिको दण्डो वेदितव्यः ।

*मिता.

(३) अत्र बाह्यादिपदेन प्रधानाङ्गविवक्षा, पाद-
नासाकर्णकरादिपदेन चाऽप्रधानाङ्गविवक्षा । शत्यः
शतपरिमितः । विर. २४९

(४) दमः समानगुणजातिमतः । +वीमि.

अशक्तस्तु वदन्नेवं दण्डनीयः पणान् दश ।

तथा शक्तः प्रतिभुवं दाप्यः क्षेमाय तस्य तु ॥

(१) प्रागुक्तं शक्तसंबन्धितया बाह्यादिच्छेदवाक्यम्—
‘अशक्तस्तु वदन्नेवं दण्डनीयः पणान् दश । तथा
शक्तः प्रतिभुवं दाप्यः क्षेमाय तस्य तु ॥’ वाङ्मात्रेणापि

* अप. मितावत् । + शेषं मितावत् ।

विश्व. २।२१२; मिता.; अप. अपुवत्; व्यक. १०२ अपु-
वत्; विर. २४९; पमा. ४३२; रत्न. १२०; व्यनि.
४८६ धिकः (धिके); स्मृचि. २४-५; दवि. २११ नासा-
कर्ण (कर्णनासा); सवि. ४७८ धि (धि); वीमि.; व्यप्र.
३८३; व्यड. १२१ के (को); व्यम. ९९; विता.
७२९; समु. १६०.

(१) यास्मृ. २।२०९; अपु. २।५८।६ दाप्यः
(दद्यात्); विश्व. २।२१३; मिता.; अप.; व्यक. १०२;
विर. २४९; पमा. ४३२; रत्न. १२०; व्यनि. ४८६६
द्वि. २११; वीमि.; व्यप्र. ३८३; व्यड. १२१; व्यम.
९९; विता. ७२९; समु. १६०.

वदतः कर्तुमशक्तस्य दशपणो दण्डः । शक्तस्तु प्रागुक्तदण्डं दाप्यः । त्रासापनोदनाय च समर्थं क्षेमाय प्रतिभुवं दाप्यः । विश्व. २।२१३

(२) यः पुनर्ज्वरादिना क्षीणशक्तिस्त्वद्वाह्वाद्यङ्ग-भङ्गं करोमीत्येवं शपन्त्यसौ दशपणान् दण्डनीयः । यः पुनः समर्थः क्षीणशक्तिं पूर्ववदाक्षिपत्यसौ पूर्वोक्तशतादिदण्डोत्तरकालं तस्याशक्तस्य क्षेमार्थं प्रतिभुवं दापनीयः । मिता.

(३) सामान्येनोक्तस्य विषयविशेषे व्यवस्थामाह—अशक्तस्त्विति । वाह्वादिच्छेदं कर्तुं समर्थः स यदि तं ब्रूयात्तदोक्तं दण्डं गृहीत्वा क्षितस्य क्षेमाय परिरक्षणार्थं प्रतिभुवं दाप्यः । वाह्वादिच्छेदासमर्थस्तु चेद्दशैव पणान् दाप्यः । अप.

(४) तुशब्देनाधिकतमशक्तकव्यवच्छेदः । तथा-शब्देन प्रतिभुवोऽभावे राज्ञा बन्धनीय इति समुच्चीयते । उत्तमाधमभेदेनात्रापि न्यूनाधिक्यम् । *वीमि.

पतनीयकृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसः ।
उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥

(१) ब्रह्महा गोघ्नो वा त्वमित्येवमादिके क्षेपे—‘पतनीयकृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसम् । उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥’ विश्व. २।२१४

(२) तीत्राक्रोशे दण्डमाह—पतनीयेति । पातित्य-हेतुभिर्ब्रह्महत्यादिभिर्वर्णिनामाक्षेपे कृते मध्यमसाहसं दण्डः । उपपातकसंयुक्ते पुनर्गोत्रस्त्वमसीत्येवमादिरूपे क्षेपे प्रथमसाहसं दण्डनीयः । Xमिता.

* शेषं मितावत् । X अप. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२१०; अपु. २५८।७; विश्व. २।२१४ ण्डो (ण्ड्यो) सः (सम्); मेघा. ८।२६७ नीय (नीये) पू., स्मृत्यन्तरम्; मिता.; अप.; व्यक. १०३; विर. २५५ नीय (नीये) सः (सम्); पमा. ४३३; रत्न. १२१ नीय (नीये); दवि. २०८ कृते (कृता) सः (सम्); सवि. ४७८ कृते (कृति) तु (च); वीमि.; व्यप्र. ३८३ ण्डो मध्य (ण्ड उक्त); व्यउ. १२१ व्यप्रवत्; विता. ७३०; राकौ. ४८९ रत्नवत्; सेतु. २११ विरवत्; समु. १६०.

(३) मध्यमसाहसादिकं प्राग्लक्षितम् । इदं च समानगुणादिपरम् । उत्तमाधमभेदेन न्यूनाधिक्यं चोहनीयम् । वीमि.

त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसः ।

मध्यमो जातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः ॥

(१) नृपग्रहणमाचार्यपितृश्रोत्रियादीनामपि सामान्या-ल्लक्षणार्थम् । पूगशब्दश्चात्र गणमात्रवचनः । ततश्च जातिपूगानां जातिमतां गणानां श्रोत्रियादिसमुदायाना-मित्यर्थः । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२१५

(२) त्रैविद्याः वेदत्रयसंपन्नास्तेषां, राज्ञां, देवानां च क्षेपे उत्तमसाहसो दण्डः । ये पुनर्ब्राह्मणमूर्धाव-सिक्तादिजातीनां पूगाः संघास्तेषामाक्षेपे मध्यमसाहसो दण्डः । ग्रामदेशयोः प्रत्येकमाक्षेपे प्रथमसाहसो दण्डो वेदितव्यः । मिता.

(३) ऋग्यजुःसामवेदिनां नृपतेर्ब्राह्मणादिदेवानां वा क्षेपुर्रुत्तमसाहसो दण्डः कार्यः । ब्राह्मणादिजातीनां पूगानां परिषदादीनां व्यवहारनिर्णयाद्येककार्यकारिणां विदुषामाक्षेपुर्मध्यमसाहसः, ग्रामस्य जनपदस्य वा क्षेपं कुर्वतः प्रथमसाहसः । अप.

(४) ग्रामदेशयोः प्रथम इत्यत्राप्युपपातकयुक्त इत्यनुपङ्गो युक्तः साहचर्यादिति केचित् । तन्न । आक्षेपविशेषेणैवाप्यनाक्षेप्यतारतम्यापेक्षया यथोत्तरं दण्डापकर्षविधानात् पापपरत्वस्य स्मृत्यन्तरसंवादात् । दवि. २०९

इति याज्ञवल्क्यवचनं तत्र लघुतः क्षेपो विविक्षितः ।

दवि. २१४.

(५) श्रोत्रियादेस्तु द्वैगुण्यादिकमूहनीयम् । पतनीया-क्रोशे मनुः — ‘ब्राह्मणश्रोत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो

(१) यास्मृ. २।२११; अपु. २५८।८ जाति (ज्ञाति); विश्व. २।२१५; मिता.; अप.; व्यक. १०४; विर. २५६-७ देवा (देशा); पमा. ४३४; रत्न. १२१ क्षेप (दण्ड) पू.; व्यनि. ४८८; दवि. २०९ : २१४ पू.; सवि. ४७९; वीमि.; व्यप्र. ३८४ उक्त.; व्यउ. १२२ उक्त.; व्यम. ९९ रत्नवत्, पू.; विता. ७३०; सेतु. २१४ विरवत्; समु. १६१.

विधानतः । ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये चैव मध्यमः ॥' शूद्रानुवृत्तौ बृहस्पतिः — 'विक्रोशकस्तु विप्राणां जिह्वाच्छेदनमर्हति ॥' तथा — 'नामजातिग्रहं तेषाम-भिद्रोहेण कुर्वतः । विधेयोऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलनास्ये दशाङ्गुलः ॥' इदं तु मात्सर्यानुबन्धातिशयपूर्वकाक्रोश-परमित्याभाति । वीमि.

राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारं तस्यैवाक्रोशकारिणम् ।
तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं छित्त्वा जिह्वां प्रवासयेत् ॥

(१) प्रसह्यकारितया तु— 'राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारं तस्यैवाक्रोशकं तथा । तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं छित्त्वा जिह्वां प्रवासयेत् ॥' विश्व. २।३०५

(२) राज्ञोऽनिष्टस्यानभिमतस्यामित्रस्तोत्रादेः प्रकर्षेण भूयोभयो वक्तारं, तस्यैव राज्ञ आक्रोशकारिणं निन्दाकरणशीलं, तदीयस्य च मन्त्रस्य स्वराष्ट्रविवृद्धि-हेतोः परराष्ट्रापक्षयकरस्य वा भेत्तारं अमित्रकरणेषु जपन्तं तस्य जिह्वास्तुक्त्य स्वराष्ट्राभिकासयेत् । क्रोश-पहरणादौ पुनर्वध एव । 'राज्ञः क्रोशापहर्तृश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपकारकान् ॥' इति (मस्मृ. १।२७५) मनुस्मरणात् । विविधैः सर्वस्वा-पहाराङ्गच्छेदवधरूपैरित्यर्थः । सर्वस्वापहारेऽपि यद्यस्य जीवनोपकरणं तन्नापहर्तव्यं चौपोपकरणं विना । यथाह नारदः — 'आयुधान्यायुधीयानां बाह्यादीन् बाह्य-जीविनाम् । वेद्यास्त्रीणामलङ्कारान् वाद्यतोद्यादि-तद्विदाम् ॥ यच्च यस्योपकरणं येन जीवन्ति काशकाः । सर्वस्वहरणेऽप्येतन्न राजा हर्तुमर्हति ॥' इति । ब्राह्मणस्य पुनः 'न शारीरो ब्राह्मणे दण्डः' इति निषेधाद्ब्रह्मस्थाने शिरोमुण्डनादिकं कर्तव्यम् । 'ब्राह्मणस्य वधो मौण्ड्यं

पुराभिर्वासनाङ्कने । ललाटे चाभिशास्ताङ्कः प्रयाणं गर्दभेन तु ॥' इति मनुस्मरणात् । अमिता.

(३) राज्ञो जनपदादिपालकस्य यदनिष्टमप्रियं शत्रु-प्रशंसादि तस्यातिशयेन वक्तारं, तथा राजविषयस्या-क्रोशस्य शपथस्य कर्तारं, तदीयमन्त्रस्य च संधिविग्रहा-दिविषयस्य भेत्तारं प्रकाशयितारं छिन्नजिह्वं कृत्वा प्रवासयेत् । अप.

(४) आद्यचकारेण— 'अपवक्तुश्च राजानं धर्मं च स्वे व्यवस्थितम् । जिह्वाच्छेदाद्भवेत् शुद्धिः सर्वस्वहरणे न चेत् ॥' इति नारदोक्तसर्वस्वापहारसमुच्चयः । द्वितीयचकारेण— 'राज्ञः क्रोशापहर्तृश्च प्रतिकूले व्यवस्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥' इति मनुक्तस्य (मस्मृ. १।२७५) तत्तदपराधेषु समुच्चयः । वीमि.

असमवर्णेषु क्षेपे दण्डाः

दण्डप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरैः + ॥

(१) वर्णानां मूर्धावसिक्तादीनां च परस्परक्षेपे दण्डकल्पनामाह—दण्डप्रणयनमिति । वर्णा ब्राह्मणादयः । जातयो मूर्धावसिक्ताद्याः । वर्णाश्च जातयश्च वर्णजातयः । उत्तराश्च अधराश्च उत्तराधराः वर्णजातयश्च ते उत्तरा-धराश्च वर्णजात्युत्तराधराः तैः वर्णजात्युत्तराधरैः, पर-स्परमाक्षेपे क्रियमाणे दण्डस्य प्रणयनं प्रकर्षेण नयनमूहन वेदितव्यम् । तच्च दण्डकल्पनमुत्तराधरैरिति विशेषेणोपा-दानादुत्तराधरभावापेक्षयैव कर्तव्यमित्यवगम्यते । यथा मूर्धावसिक्तं ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादुत्कृष्टं चाक्रुश्य ब्राह्मणः क्षत्रियाक्षेपनिमित्तात् पञ्चाशत्पणदण्डात् किञ्चिदधिकं पञ्चसप्तत्यात्मकं दण्डमर्हति । क्षत्रियोऽपि तमाक्रुश्य

* दवि. मितवत् ।

+ विश्व. व्याख्यानं 'अर्धोऽधमेषु' इति पूर्वार्धे (पृ. १७८१) द्रष्टव्यम् ।

(१) यास्मृ. २।२०६; अपु. २५८।३; विश्व. २।२१० धरैः (धरम्); मिता.; अप.; व्यक. १०२; विर. २४५; रत्न. १२०; दवि. २००; नृप्र. २७६; सवि. ४५७ (—) रैः (रे); वीमि.; व्यग्र. ३८१; व्यउ. १२०; विता. ७२६; समु. १६०.

(१) यास्मृ. २।३०२; अपु. २५८।७८-९ कारिणं (कं तथा); विश्व. २।३०५ अपुवत्; मिता.; अप. २।३०१; व्यक. १०४ अपुवत्; विर. २५७ अपुवत्; विचि. १११ अपुवत्; व्यनि. ४८९ अपुवत्; दवि. २१३ अपुवत्, शकारिणम् (शिनं तथा) इति मिताक्षरायां इत्याह; व्यग्र. ३८४ अपुवत्; व्यउ. १२२ अपुवत्; १६४ च (तु); व्यम. १०९; विता. ८२७; राकौ. ४९५ अपुवत्; सेतु. २१३ विरवत्; समु. १६५.

व्य. कां. २२४

ब्राह्मणाक्षेपनिमित्ताच्छतदण्डाद्धीनं पञ्चममतिमेव दण्ड-
मर्हति । नृधावसिक्तोऽपि तावाक्रुश्य तमेव
दण्डमर्हति । मूर्धावसिक्ताम्ब्रह्मयोः परस्परक्षेपे ब्राह्मण-
क्षत्रिययोः परस्परक्रोधानिमित्तकौ यथाक्रमेण दण्डौ
वेदितव्यौ । एवमन्यत्रान्यूहनीयम् । *मिता.

(२) इदानीं ब्राह्मणादिवर्णानां मूर्धावसिक्तद्विजाती-
नामन्योन्यमाक्रोश्याक्रोशकभावे राज्ञा दण्डः कल्पनीय
इत्याह — दण्डप्रणयनमिति । वर्णानां जातीनां च
मव्यादुत्तरैश्चाधराणामधैश्चतरेषामाक्षेपे कृते स्वयमभ्यूह्य
दण्डप्रणयनं गजा कुर्यात् । तत्र मूर्धावसिक्ता अम्ब्रह्मादयः ।
अनुलोमजा मातृभिस्तुल्यवर्णाः । ततश्च ते क्षत्रियादि-
वदेव दण्डभाजः । अप.

(३) तत्रोत्तराधैररिति विशेषानुपादानाद्यादृगुत्तरा-
धरभावस्तादृगपेक्षयैव कार्यम् । विर. २४६

प्रातिलोम्यापवादिषु द्विगुणत्रिगुणा दमाः ।

वर्णानामानुलोम्येन तस्मादर्धार्धहानितः ॥

(१) एतदेवोदाहरणेन स्पष्टयति — प्रतिलोमापवादे-
ष्विति । वर्णान्त्याः शूद्राः । तेषां प्रतिलोमापवादे
ब्राह्मणादिक्रमोक्तदण्डस्य चतुर्गुणादिकल्पनम् । एवं
वैश्यक्षत्रियानुलोमान्तरप्रभवयोर्गुणाद्युत्कर्षेऽपि योज्यम् ।
आनुलोम्येन तु तस्मादेवार्धहानतः उक्तदण्डादर्धाप-
चयेन । शूद्रापवादे अर्धदण्डो वैश्यस्य, पादः क्षत्रियस्य,
अर्धपादो ब्राह्मणस्य । एवं गुणाद्यानुलोम्येऽपि योज्यम् ।
विश्व. २।२११

(२) एवं सवर्णविषये दण्डमाभिधाय वर्णानामेव
प्रतिलोमानुलोमाक्षेपे दण्डमाह—प्रातिलोम्यापवादेष्विति ।
अपवादा अधिक्षेपाः । प्रातिलोम्येनापवादाः प्राति-

* दवि., व्यप्र. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२०७; अपु. २५८।४ दर्धा (देवा);
विश्व. २।२११ (प्रतिलोमापवादिषु चतुर्गुणद्विगुणा दमाः । वर्णा-
न्त्येष्वानुलोम्येन तस्मादेवार्धहानतः); मिता.; अप. प्रा (प्र)
म्या (मा); व्यक. १०२ अपवत्; विर. २४५ प्रा (प्र);
पमा. ४१८; दवि. २०० म्येन (म्ये तु); नृप्र. २७६;
सवि. ४७८ (=) वादे (राधे) णत्रि (णास्त्रि) हानितः
(भागिनः); वीमि. द्विगुणत्रि (चतुर्गुणत्रि); विता. ७२७;
समु. १६० णत्रि (णास्त्रि).

लोम्यापवादांस्तेषु. ब्राह्मणाक्रोशकारिणोः क्षत्रियवैश्ययो-
र्यथाक्रमेण पूर्ववाक्याद्द्विगुणपदोपात्तपञ्चाशत्पणाशेक्षत्रा
द्विगुणाः शतपणाः, त्रिगुणाः सार्धशतपणाः दण्डा वेदि-
तव्याः । शूद्रस्य ब्राह्मणाक्रोशे ताडनं जिह्वाच्छेदनं वा
भवति । यथाह मनुः — ‘शतं ब्राह्मणं आक्रुश्य
क्षत्रियो दण्डमर्हति । वैश्योऽर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु
वधमर्हति ॥’ इति (मस्मृ. ८।२६७) । विट्शूद्रयो-
रपि क्षत्रियादनन्तरैकान्तरयोस्तुल्यन्यायतया शतमर्ध-
शतं च यथाक्रमेण क्षत्रियाक्रोशे वेदितव्यम् । शूद्रस्य च
वैश्याक्रोशे शतम् । आनुलोम्येन तु वर्णानां क्षत्रियविट्-
शूद्राणां ब्राह्मणेनाक्रोशे कृते तस्माद् ब्राह्मणाक्रोशनिमि-
त्ताच्छतपरिमितात् क्षत्रियदण्डात् प्रतिवर्णमर्धस्यार्धस्य
हानिं कृत्वाऽवशिष्टं पञ्चाशत्पञ्चविंशतिसार्धद्वादशपणा-
त्मकं यथाक्रमं ब्राह्मणो दण्डनीयः । तदुक्तं मनुना—
‘पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिर्शंसने । वैश्ये
स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥’ इति (मस्मृ.
८।२६८) । क्षत्रियेण वैश्ये शूद्रे वाक्रुष्टे यथाक्रमं
पञ्चाशत्पञ्चविंशतिकौ दमौ । वैश्यस्य च शूद्राक्रोशे
पञ्चाशदित्यूहनीयम् । ‘ब्राह्मणराजन्यवत्क्षत्रियवैश्ययोः’
इति गौतमस्मरणात् । ‘विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति
तत्त्वतः ।’ इति (मस्मृ. ८।२७७) मनुस्मरणाच्च ।
*मिता.

नारदः

वाक्पारुष्यनिरुक्तिः, तत्प्रकाराश्च

देशजातिकुलादीनामाक्रोशान्यङ्गसंयुतम् ।

यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ॥

* अप., विर., दवि., वीमि. मितावत् ।

(१) नासं. १३, १७।१ संयु (संहि); नास्मृ. १८।१;
अपु. २५३।२७ शन्यङ्ग (शाब्दङ्ग); मिता. २।२०४ क्रोश
(क्रोशं); अप. २।२०४ नामा तम् (नां क्रोशनं
न्यङ्गसंक्षितम्); व्यक. १०१ शन्य... .. तम् (शं व्यङ्गसंक्षि-
तम्); स्मृच. ६; विर. २४२ संयु (संक्षि); पमा. ४२८;
रत्न. ११९; दीक. ५१; विचि. १०८-९ न्यङ्ग (न्यङ्कु);
व्यनि. ४८३ विरवत्; स्मृचि. २४ मितावत्; दवि. १९६
विरवत्, विचिवच्च; नृप्र. २७५ न्यङ्ग (व्यङ्ग) वा ते
(तद्वाक्पारुष्यमुच्यते); सवि. ४७६ शन्यङ्ग (शं व्यङ्ग्य);

(१) देशादीनामाक्रोशं न्यङ्गसंयुतम् । उच्चैर्भाषण-
माक्रोशः, न्यङ्गमवयं तदुभययुक्तं यन्प्रतिकूलार्थ-
मुद्देशजननार्थं वाक्यं तद्वाक्पारुष्यं कथ्यते । तत्र कलह-
प्रियाः खलु गौडा इति देशाक्रोशः । नितान्तं लोड्डमाः
खलु विप्रा इति जाल्याक्रोशः । क्रूरचरिता ननु
वैश्रामित्रा इति कुलाक्षेपः । आदिग्रहणात्स्वविद्या-
शिखादिनिन्दया विद्वच्छिखादिपरुषाक्षेपो गृह्यते ।

*मिता. २।२०४

(२) क्रोशनं आक्रोशनमाक्षेपः । न्यङ्गमसंभ्यवचनम् ।

+अप. २।२०४

(३) यद्वचनं देशाद्याक्षेपार्थबोधकं, यच्चात्यन्त-
दुःखकारार्थकं तद्वाक्पारुष्यम् । स्मृच. ६

(४) आक्रोश आक्षेपः । आदिशब्देन बुद्ध्या-
देरुपादानम् । न्यङ्गसंज्ञितं निकृष्टाङ्गसंज्ञावत् ।

Xविर. २४२

(५) आक्रोशः उच्चैर्भाषणं, न्यङ्कु अवयं ताभ्यां
संयुतं यत्प्रतिकूलार्थकं वचः तद्वाक्पारुष्यमिति सामान्य-
लक्षणम् । मिताक्षराऽप्येवम् । अन्यत्तु सकलमपि
व्याख्यानमयुक्तम् । सामान्यलक्षणाक्षमत्वात् ।

विचि. १०९

(६) यत्तु आक्रोशान्यङ्कुसंयुतमिति पठित्वा उच्चै-
र्भाषणमाक्रोशः, न्यङ्कु अवयं तदुभयसंयुक्तं यत्
प्रतिकूलार्थमुद्देशजनकं वाक्यं तद्वाक्पारुष्यमिति सामान्य-
लक्षणपरमिति मिताक्षराकृता व्याख्यातम् । तच्चिन्त्यम् ।
यत्रोच्चैरवयवभाषणं नास्ति तत्र हूङ्कारानुकारादावव्याप्तेः ।

दवि. १९६-७

(७) यो यस्मिन् देशे जातस्तद्देशसंबद्धं, जातिर्ब्राह्म-
णादिः तज्जातिसंबद्धं च, तत्कुलसंबद्धं च, विद्याशिल्प-
स्वजनादिसर्वसंबद्धं चाक्रोशनं न्यङ्गरूपम् । तेषां तत्रा-
क्रोशः प्रसिद्ध एव । न्यङ्गं मर्मगोप्यम् । तदुभयसंयुक्तं

* सवि., व्यप्र., व्यउ., विता. मितावत् ।

+ शेषं मितावत् । X उदाहरणानि मितावत् ।

धीभि. २।२०४ क्रोश (क्षेपं); व्यप्र. ३७९; व्यउ. ११८;
विता. ७२१ मितावत्; राकौ. ४८८; सेतु. २०२ विचि-
वत्; समु. १५९ क्रोश (क्षेप); विच्य. ४९ विचिवत्.

देशादिविषयं प्रतिकूलार्थविषयं वचः (वाक्)पारुष्य-
मुच्यते । -नाभा. १६; १७१ (पृ. १६५)

निष्टुराश्लीलतीव्रत्वात्तदपि त्रिविधं स्मृतम् ।

गौरवानुक्रमात्तस्य दण्डोऽपि स्यात् क्रमाद्गुरुः ॥

अपि तावत् साहसं त्रिविधमित्युक्तं, तथैव वाक्पा-
रुष्यमपि त्रिविधं निष्टुरत्वादश्लीलत्वात् तीव्रत्वाच्च ।
गौरवानुक्रमादन्य त्रिविधस्य गौरवं क्रमेण । निष्टुरा-
दश्लीलं गुरु, ततोऽपि तावत्, तेनैव क्रमेण दण्डोऽपि
त्रिविध एव लघुर्लघौ गुरौ गुरुः ।

नाभा १६, १७२ (पृ. १६५)

साक्षेपं निष्टुरं ज्ञेयमश्लीलं न्यङ्गसंयुतम् ।

पतनीयैरुपक्रोशैस्तीव्रमाहुर्मनीषिणः ॥

(१) तत्र धिङ्मुखं जात्ममिन्यादि साक्षेपम् । अत्र

÷ मितावद्भावः ।

(१) नासं. १६, १७२ तस्य (दस्य) स्यात् क्रमाद्गुरुः
(त्रिविधः स्मृतः); नास्मृ. १८।२ पि स्यात् (प्यत्र);
मिता. २।२०४ (क) तदपि त्रि (दपि तत्रि); अप. २।२०४ पू.,
काल्यायनः; व्यक्र. १०१ पि स्यात् (प्युक्तः);
स्मृच. ६ पू.; विर. २४२-३ व्यकवत्; पमा. ४२९
नास्मृवत्; रत्न. ११९; विचि. १०९ तस्य (तेषां) पि
स्यात् (प्युक्त); व्यनि. ४८४ तस्य (दस्य) शेषं नास्मृवत्,
काल्यायनः; स्मृचि. २४ तस्य (तेषां) शेषं मितावत्;
दवि. १९६ तस्य (तेषां) शेषं व्यकवत्; नृप्र. २७५; व्यप्र.
३७९; व्यउ. ११९ (=); विता. ७२२; सेतु. २०३
दविवत्; समु. १५९ व्यकवत्.

(२) नासं. १६, १७३; नास्मृ. १८।३ पत (पात);
मिता. २।२०४ रूप (रुपा); अप. २।२०४ साक्षेपं
(आक्षेपो) संयु (संज्ञि) रूप (रुपा) काल्यायनः; व्यक्र.
१०१ न्यङ्गसंयु (व्यङ्गसंज्ञि) रूप (रुपा); स्मृच. ६; विर.
२४३ संयु (संज्ञि) पत (तप); पमा. ४२९ पत (पात);
रत्न. ११९ मितावत्; विचि. १०९ न्यङ्ग (न्यङ्कु) शेषं
विरवत्; व्यनि. ४८४ संयु (संज्ञि); स्मृचि. २४ विचिवत्;
दवि. १९६ न्यङ्गसंयु (न्यङ्कुसंज्ञि) क्रोशै (न्यासै); नृप्र.
२७५ न्यङ्ग (व्यङ्ग) उपक्रोशैः (पान्क्रोशं); व्यप्र. ३७९
मितावत्; व्यउ. ११९ विरवत्; विता. ७२२ मितावत्;
राकौ. ४८८ व्यनिवत्; सेतु. २०३ पूर्वार्धं व्यनिवत्, पत
(ताप); समु. १५९; विच्य. ५० विचिवत्.

न्यङ्गमित्यस्यम् । अवद्यं भगिन्यादिगमनं तद्युक्त-
मश्लीलम् । सुरापोऽसीत्यादिमहापातकाद्याक्रोशैर्युक्तं वच-
स्तीव्रम् । * मिता. २।२०४

(२) धिङ्मूर्खान्त्यजेत्यादि साक्षेपं, न्यङ्कुरिहासत्य-
मवद्यं तेन भगिन्यादिगमनयुक्तमश्लीलं, सुरापोऽसीत्या-
दिमहापातकाक्रोशयुक्तं वचस्तीव्रमिति मिताश्रयकारः ।

अत्राक्रोशान्यङ्कुसहितप्रतिकूलार्थानां त्रयाणामेषां
विवरणमिति व्यवहारतरङ्गे गणेश्वरमिश्राः ।

युक्तं चैतत् — तथाहि अन्यर्थसंज्ञावगमितं वाक्क-
रणकमनोविरुक्षणलक्षणं सामान्यलक्षणं देशाद्याक्रोशो
न्यङ्कुसंज्ञितं निष्ठुरार्थमिति विभागः । तेषां लघव-
गौरवातिगौरवानुसारिण्यो लघुगुरुगुरुतरदण्डसंवादिन्यो
निष्ठुरादयः संज्ञाः, तासां विवरणं साक्षेपमित्यादि ।

दवि. १९६

(३) साक्षेपं मातैवंप्रकारेण तव पिता च त्वमपि न
किञ्चित् जानासि इत्यादि निष्ठुरम् । न्यङ्कसंयुतं अश्ली-
लम् । पतनीयैः चोरस्त्वं गुरुतल्पग इत्यादिभिरपवादैर्युतं
वचस्तीव्रमुच्यते । उत्तरोत्तरो गुरुः ।

नाभा. १६, १७।३ (पृ. १६५)

उद्दिश्यात्मानमन्यं वा क्षिपेद्यस्तु निरूप्य च ।
आक्रोशैव स मन्तव्यो यदि संस्पर्शनंतयोः ॥
आक्षिपेन्निन्दयेत्, निरूप्य अभिसंधाय । यदि
संस्पर्शनं तयोः, यदि आक्षेपपुराक्षेपद्वेषः, एतच्चाभि-
संधानज्ञापनार्थम् । विर. २४४

पातकाभिज्ञसने दण्डः

पतितं पतितेत्युक्त्वा चौरं चौरैति वा पुनः ।
वचनात्तुल्यदोषः स्यान्मिथ्या द्विदोषतां व्रजेत् ॥
(१) सत्यवादित्वेऽपि वाक्पारुष्यदण्डो नापैतीत्याह

* स्मृच., व्यप्र., व्यउ., विता. मितावत् ।

(१) विर. २४४.

(२) नासं. १६, १७।२० तां व्रजेत् (भाग् भवेत्);
नास्मृ. १८।२१; व्यक. १०४; स्मृच. ३२७; विर.
२५७-८; रत्न. १२१; व्यनि. ४८९ तां व्रजेत् (वाग्
भवेत्); सवि. ४७५ चतुर्थपादं विना, बृहस्पतिः; व्यप्र.
३८४; व्यउ. १२२; व्यम. ९९; सेतु. २१३; ससु.
१६०.

वचोभङ्ग्या नारदः— पतितमिति । वचनात्तथ्यवच-
नात् । * स्मृच. ३२७

(२) वचनाच्छास्त्ररूपात् । विर. २५८

(३) 'द्विदोषतां व्रजेदि'त्यन्यः । कृतप्रायश्चित्तं
राज्ञा च दण्डितमपवदन् दण्ड्य इत्युक्तम् । कारणं
चात्रोक्तम् । ब्राह्मणो राजा चाप्रतिहतौ ताम्यां पूर्वं
भृतत्वादिति । दण्डस्त्वविशेषित इति स विशेष्यते ।
द्वाम्यामुक्ताभ्यां शुद्धं पूर्वं पतितं पतितेत्युक्त्वा प्रत्यक्ष-
मामन्य, चोरं च तथा सुशुद्धं चोरेत्यामन्य अस्मादेव
वचनात् पतितचोरतुल्यदोषः स्यात् । अस्मिन् व्याख्याने
'मिथ्या द्विदोषतामि' ति दुर्गमं एवं नेतव्यं स्यात् ।
अकारणमेवैवं दण्डितस्त्वं, एवञ्च तस्य प्रायश्चित्तं
चरितमिति मिथ्यावचने द्विदोषत्वम् । अथवा न
सम्यगुभयं कृतं, तस्माच्चोरः पतित इत्येवमुक्त्वा
तुल्यदोषः स्यादसम्यकरणे । सम्यकरणे तु मिथ्यावच-
नाद् द्विदोषत्वमिति । आ (सु?) युक्तैर्वा दृष्टे व्यवहारे
दण्डिते चोरेति ब्रुवंस्तुल्यदोषः, तेषां राज्ञा प्रमाणीकृत-
त्वात् । पुना राज्ञा दृष्टे सम्यगेव स्यात् द्विदोषतामिति ।
तथा वसिष्ठेनाप्युक्तं — 'भ्रूणहा प्रायश्चित्तं चरन् भ्रूण-
हणे भिक्षां देहीति ब्रूयाद् निरुक्ते ह्येनः कनीयो भवति'
इत्युक्त्वेदमाह— 'पतितं पतिते'ति । एतद्विषयमेतदिति ।
स न वक्तव्यः इत्यस्य दृष्टान्तत्वेन चार्थवादः । भृगु-
संहितायामपि 'काणं वाऽप्यथवा खड्गमन्यं वाऽपी'-
त्यनन्तरं वाक्पारुष्यप्रकरणे यत् पठितं, केषाञ्चिन्नास्त्येव ।
तत्रापि संरब्धयोरक्रोशे सम्यङ्मिथ्यावचनयोर्दोष इत्या-
द्येतावत् । कृतपावनं दण्डितं च न किल्बिषेणापवदेत्
इति सर्वविषयवचनाच्चोरपतितयोरेव विशेषेण वदतः
संबोधनं च न सम्यक् विलक्ष्यते । प्रदर्शनार्थं वा
कल्पनीयः । सर्वेष्वेव व्याख्यानेषु युक्तं विचार्यम् ।
यश्चौर्यादि न करोति, कथं तं चोरेति वचनात् तुल्य-
दोषता, मिथ्या वा द्विदोषता । अनेन न वक्तव्यमित्ये-
तावतोऽर्थवादो मिथ्या द्विरिति वचने दण्ड्य इति, तत्
पूर्वश्लोकेनैवोक्तत्वादनर्थकम् । द्विरिति च क्रियाभ्या-
वृत्तिवचनो दुर्गमः । असमासे दोषतामित्यसंबद्धं, कथं
पुरुषो दोषतां व्रजेत् । अथ समासः, सुजर्थो नास्ति

* व्यप्र. स्मृचरत् ।

उत्तरपदस्याक्रियावचनात् । तस्माच्चिन्त्यम् । अथवा
अयमर्थः— वाक्यारूप्ये पठितत्वात् पठितं पठितबुद्धयैव
न अदुष्टकर्मा क्रीडार्थक्रियया वा पठितेति समक्षमा-
मन्त्य । 'पूर्वत्रासिद्धम्' (व्यासू. ८।२।१) इति
चासिद्धत्वादसंहिता (?) । ततश्च पठित इत्युक्त्वा
रोषेण चोरमपि तथैव । सकृद्वचनात् द्विरित्युक्तम् ।
अत्र वचनात् तुल्यदोषः स्यात् । तुल्यशब्दः साधारण-
दोषः स्याद्वा । दोषसंबन्धे वचनमात्रानुरूपो दण्डः ।
मिथ्या ब्रुवन् सकृदज्ञानाद् वदन्ननुरूपदण्ड इति द्वि-
र्वचनादपेक्ष्यते । तथा च सुज्ञर्थः संपन्नो भवति ।
सकृत् प्रमादाद् ब्रूयात् । द्वितीयं न प्रमादेन ब्रवीति,
बुद्धिपूर्वं परोपघातार्थमेव । अतः परोपघातसामान्याद्
दोषभाग् भवति । पूर्वमंशस्योक्तत्वादिति समस्तचोर-
दोषभाग् भवेत् । बुद्धिपूर्वमुभयोः परोपघातस्य तुल्य-
त्वात् । नामा. १६, १७।२० (पृ. १६९-७०)

दुष्टस्यैव तु यो दोषान् कीर्तयेत् क्रोधकारणात् ।
अन्यापदेशवादी च वाग्दुष्टं तं नरं विदुः ॥

(१) क्रोधकारणादिति वदन् दुष्टपरिहरणकारणाद्दोष-
कीर्तनं न दोषकारीति दर्शयति । * स्मृच. ३२७
(२) अदुष्टस्यैवेत्येवकारोऽप्यर्थः । अन्यापदेशवादी
योऽन्यमपदिश्यान्त्यदोषान् वदति । वाग्दुष्टं वाक्यारूप्य-
कर्तारम् । × विर. २४५

नै किल्विषेणापवदेत् शास्त्रतः कृतपावनम् ।
न राज्ञा धृतदण्डं च दण्डभाक्तव्यतिक्रमात् ॥

(१) कृतपावनं कृतकिल्विषनाशनं, अपवदेत्
आक्रोशेत्, उद्धृतदण्डं कृतदण्डम् । अत्र हेतुर्दण्ड-

* व्यप्र. स्मृचवत् । × दवि. विरवत् ।
(१) व्यक. १०२ तु यो (हि यान्) कात्यायनः ;
स्मृच. ३२७; विर. २४५ दुष्टस्यैव तु (अदुष्टस्यैव) क्रोध
(दोष) क्रमेण कात्यायनः; रत्न. १२१; व्यनि. ४८५ दुष्ट-
स्यैव तु (अदुष्टस्यैव) क्रोध (कोप) कात्यायनः; दवि.
१९९ क्रोध (दोष) क्रमेण कात्यायनः; व्यप्र. ३८०; व्यज.
११८; समु. १६०.

(२) नासं. १६, १७।१८ भाक्त... मात् (येत् तच्चति-
क्रमे); नास्मृ. १८।१९; अप. २।२०७ ज्ञा (ज्ञो) च
(तु); व्यक. १०३ ज्ञा घृ (ज्ञोद्धृ); विर. २५५ (=)
व्यकवत्; दवि. २०९ व्यकवत्.

भाक् तद्व्यतिक्रमादाक्रोशकर्ता यतः । विर. २५५

(२) कृतशास्त्रोक्तप्रायश्चित्तं राज्ञा च दण्डितं,
व्यस्तसमस्तग्रहणं, न दोषेण दूषयेत् । दूषयन्तं दण्डयेत् ।
नामा. १६, १७।१८ (पृ. १६८)

लोकेऽस्मिन् द्वाववक्तव्याववध्यौ च प्रकीर्तितौ ।
ब्राह्मणश्चैव राजा च तौ हीदं विभृतो जगत् ॥
अत्र हेतुरुच्यते — लोकेऽस्मिन्निति । यतो लोकेऽ-
स्मिन् द्वाववक्तव्यौ यथाब्रूतां तथा कर्तव्यम् । यच्च
ताभ्यां कृतं तन्न विचार्य प्रमाणीकर्तव्यम् । अदण्ड्यौ च
अन्यथाकृतेऽपि । तत् प्रमाणमेव ब्राह्मणश्च राजा च ।
यतस्तौ जगद् विभृतः । ब्राह्मणः प्रतिग्रहादिनेतरान् धर्मो
स्थापयति । 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्बृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥' इत्यादिना ।
राजा च पालनदानादिना । तस्मान्नापवदेत् ताभ्यां
शोधितमिति । नामा. १६, १७।१९ (पृ. १६८-९)

सवर्णक्षेपादौ दण्डाः

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ।
वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥

ब्राह्मणस्य ब्राह्मणे धत्रियस्य क्षत्रिये वैश्यस्य वैश्येऽ-
तिक्रम आक्रोशे प्रकृतत्वाद् द्वादशैव सर्वथा वचने षणः ।
अवचनीयेषु चतुर्विंशतिः ।

नामा. १६, १७।१६ (पृ. १६८)

ब्राह्मणोऽपि स्वजातीयमृणादिव्यपदेशतः ।
वाक्यारूप्यं प्रकुर्वाणः स भवेदुपपातकी ॥

काणं वाऽप्यथवा स्वस्त्रमन्यं वाऽपि तथाविधम् ।
तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥

(१) नासं. १६, १७।१९ वध्यौ (दण्ड्यौ); नास्मृ.
१८।२० विमृ (विम्र); व्यक. १०४; विर. २५७; व्यनि.
४८९ विमृ (विम्र) शेषं नासंक्त; दवि. २१३; सेतु. २१३;
समु. १६१ व्यनिकवत्.

(२) नासं. १६, १७।१६ णे (णं) जाती (जादी);
नास्मृ. १८।१७ णे द्वि (णेद्वि); व्यक. १०२ मनुनारदौ;
विर. २४९ मनुनारदौ; दवि. २०४ मनुनारदौ; व्यप्र.
३८० मनुनारदौ.

(३) व्यनि. ४८९.

(४) नासं. १६, १७।१७ ऽप्यथ (वदि) षवरम्

(१) कार्पाण्णावरं कार्पाण्णद्वयं कार्पाण्णोऽवरः कनिष्ठो
यस्येति. व्युत्पत्त्या । विर. २४८

(२) काण्वञ्जकुण्विधिरार्दीस्तंध्येनापि 'काणे'त्यादि
ब्रुवन् दण्डं दाप्यः कार्पाण्णादधिकम् ।

नामा. १६, १७।१७ (पृ. १६८)

अक्षरक्षेमभिश्मनात्रो दण्डाः

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।

वैश्योऽध्यर्धं शतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥

ब्राह्मणमाक्रुश्य वाक्पारुष्येण क्षत्रियादयो यथोक्तं
दण्ड्याः । नामा. १६, १७।१४ (पृ. १६७)

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिश्मने ।

वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥

ब्राह्मणोऽपीतरानाक्रुश्य यथोक्तं पञ्चाशत् पञ्चविंशतिः
द्वादश च दण्ड्यः । नामा. १६, १७।१५ (पृ. १६८)

शूद्रकृते ब्राह्मणराजन्याद्याक्षेपादौ दण्डाः

एकजातिद्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन् ।

जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ॥

नामजातिग्रहं तेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ।

निखेयोऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥

(पात्परम्); नास्मृ. १८।१८ णं वाऽ (णम) दाप्यो दण्डं
(दण्ड्यो राज्ञा); व्यक. १०२ मनुनारदौ; विर. २४७-८
ब्रुवन् (वदन्) मनुनारदविष्णवः; व्यप्र. ३८४ मनुनारदौ;
व्यउ. १२२ मनुनारदौ.

(१) नासं. १६, १७।१४; नास्मृ. १८।१५; व्यक. १०३
ध्यर्धं (ध्यर्धं) मनुनारदौ; व्यनि. ४८६ द्वे वा
(चैव) मनुनारदौ.

(२) नासं. १६, १७।१५ पञ्चा... णो (विप्रः पञ्चाशतं)
इये स्याद् (इयं चैवा) द्वे (द्वं); नास्मृ. १८।१६;
व्यनि. ४८७ पञ्चा... दण्ड्यः (विप्राः पञ्चाशतं दण्ड्याः)
मनुनारदौ.

(३) नास्मृ. १८।२२; व्यक. १०३ तींस्तु (ति तु)
मनुनारदौ; विर. २५३ मनुनारदौ; पमा. ४३४ मनुनारदौ;
व्यनि. ४८७ मनुनारदौ; दवि. २०६ तींस्तु (ति तु)
च्छेदं (छेदं) मनुनारदौ; सेतु. २१२ तींस्तु (ति तु)
प्राप्नुयाच्छेदं (छेदमाप्नोति) मनुनारदौ.

(४) नासं. १६, १७।२१ शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये (शङ्कुः शूद्र-

शूद्रस्येति वृचनन्- तेषामिति बहुवचनाद्
द्विजातीनां रोपेण नाम गृहीत्वा आक्रोशतः, नामग्रहणं
सौतिलक दत्तिलकेति, जातिग्रहणं वा ब्राह्मणस्त्वमित्यादि
कुर्वतो लोहमयः शङ्कुरष्टादशाङ्गुलो मुखे निखेयः-।

नामा. १६, १७।२२ (पृ. १७०)

धर्मोपदेशं दर्पेण द्विजानामस्य कुर्वतः ।

तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥

शूद्रस्य दर्पाद् धर्मोपदेशं वेदवेदीङ्गस्मृतिशास्त्रार्थो-
पदेशं कुर्वतः प्रतिपिद्धकरणत्वात् तप्तं तैलं मुखे श्रोत्रे
च दापयेद् राज्ञा । दण्डाभिप्रायेण वचनादभिवर्णमिति
गम्यते, नोष्णमात्रम् । नामा. १६, १७।२२ (पृ. १७०)

राज्ञः क्षेपे दर्पणः

अवक्रुदय च राजानं वर्त्मनि स्वे व्यवस्थितम् ।

जिह्वाच्छेदाद्भवेच्छुद्धिः सर्वस्वहरणेन वा ॥

बृहस्पतिः

पारुष्यभेदाः । वाक्पारुष्यप्रकाराः ।

अप्रियोक्तिस्ताडनं च पारुष्यं द्विविधं स्मृतम् ।

एकैकं तु त्रिधा भिन्नं दमश्चोक्तस्त्रिलक्षणः ॥

स्याद्यः) नास्मृ. १८।२३ तेषां (त्वेषा); व्यक. १०३ नास्मृ-
वत्, मनुनारदौ; विर. २५३ मनुनारदौ; पमा. ४३४ तेषा
(चैवा) मनुनारदौ; व्यनि. ४८७ नास्मृवत्, मनुनारदौ; दवि.
२०६ नास्मृवत्, मनुनारदौ; सेतु. २१२ ममि (मति)
खेयो (क्षेप्यो) मनुनारदौ.

(१) नासं. १६, १७।२२; नास्मृ. १८।२४; व्यक. १०३
मनुनारदौ; विर. २५४ मनुनारदौ; पमा. ४३४ दर्पे
(धर्मे) द्विजाना (विप्राणा) सेच (सिञ्च) बृहस्पतिः; व्यनि.-
४८८ बृहस्पतिः; दवि. ३२१ मनुनारदौ; सेतु. २९७.

(२) नासं. १६, १७।२७ अव (उप); नास्मृ. १८।३०
अव (उप) च (तु) वर्त्मनि (कर्मणि) द्विः (द्वः); व्यक. १०४;
विर. २५७ वर्त्मनि (कर्मणि) हरणे (ग्रहणे); विचि. १११
पूर्वार्धे (आक्रुदय चैव राजानं धर्मे स्वे हि व्यवस्थितम्) वा
(च); व्यनि. ४८८ अव (उप); दवि. २१३ द्विः (द्वः)
हरणे (ग्रहणे); वीमि. २।३०२ अवक्रुदय च (अपवक्तुश्च)
वर्त्मनि (धर्मे स्वे) च्छुद्धिः (द्बुद्धिः) णेन वा (णे न चेत्);
व्यप्र. ३८४; व्यउ. १२२; सेतु. २१३ क्रुदय (क्रम्य)
वर्त्मनि स्वे (धर्मार्थे च); समु. १६१ अव (अप) द्विः (द्वः).

(३) अप. २।२०४; व्यक. १०१; विर. २४३

देशभ्रामकुलादीनां क्षेपः पापेन योजनम् ।
द्रव्यं विना तु प्रथमं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ॥
भगिनीमातृसंबन्धमुपपातकशंसनम् ।
पारुष्यं मध्यमं प्रोक्तं वाचिकं शास्त्रवेदिभिः ॥
अभक्ष्यापेयकथनं महापातकदूषणम् ।
पारुष्यमुत्तमं प्रोक्तं तीव्रं मर्माभिघट्टनम् ॥

(१) द्रव्यं विनेत्यत्र द्रव्यशब्दोऽभिधेयपरः । तेनो-
च्यमानार्थव्यतिरेकेणैवंविधमभिधानं वाक्पारुष्यमित्यर्थः ।

अप. २।२०४

(२) द्रव्यं विना द्रव्यवैशिष्ट्यं विनेत्यर्थः । स्मृच. ६

(३) द्रव्यं विनेति द्रव्यशब्दोऽयमभिधेयपरः ।
तेनैवमभिधेयमभिधानं विनापि वाक्पारुष्यमित्यर्थः ।
भगिनीमातृसंबन्धमुपपातकशंसनं तव भगिनी तव माता
मया ग्राह्यत्वमिक्तीर्तनमित्यर्थः । विर. २४४

(४) द्रव्यं विना पदार्थं विना तेनासत्यम् । इदं

तु त्रिधा (च द्विधा); विचि. १०९ दम (दण्ड); सेतु. २०३
विचिवत्; विव्य. ५०.

(१) अप. २।२०४ ग्राम (धर्म); व्यक. १०१ पेन
(पे नि); स्मृच. ६; विर. २४३-४ पेन (पनि); पमा.
४२९ द्रव्यं (इष्टं); रत्न. ११९ क्षेपः (क्षेपं); विचि. १०९
ग्राम (काल) शेषं व्यकवत्; व्यनि. ४८५ ग्राम (जाति);
वीमि. २।२११ विचिवत्; व्यप्र. ३८०; व्यउ. ११९;
व्यम. ९८ व्यकवत्; विता. ७२२ रत्नवत्; सेतु. २०३
ग्राम (काल) पेन (पनि); समु. १५९.

(२) अप. २।२०४ मातृ (आतृ) बन्ध (बद्ध); व्यक.
१०२; स्मृच. ६ न्यसु (न्य उ); विर. २४४; पमा.
४३०; रत्न. ११९; विचि. १०९ स्मृचवत्; व्यनि. ४८५;
द्वि. १९८; वीमि. २।२११; व्यप्र. ३८०; व्यउ.
११९; व्यम. ९८ स्मृचवत्; विता. ७२२ संबन्धसु (संयोग
उ) वाचिकं (चाधिकं); सेतु. २०३-४; समु. १५९.

(३) अप. २।२०४ ब्र... नम् (ब्रमर्मातिपातनम्);
व्यक. १०२; स्मृच. ६; विर. २४४ कथ (प्रथ); पमा.
४३०; रत्न. १२०; विचि. १०९; व्यनि. ४८५ दूषणम्
(शंसनम्) तीव्रं... नम् (तीव्रमाहुर्मनीषिणः); द्वि.
१९८; वीमि. २।२११; व्यप्र. ३८०; व्यउ. ११९;
व्यम. ९८ ब्रं (ब्र); विता. ७२२ मिष (दिष); सेतु.
२०४; समु. १५९.

तु सर्वाङ्गविधि । तेनामन्यं मर्माभिधानं प्रथमम् । असत्य-
मुपपातकाभिधानं द्वितीयम् । अमत्यमहापातकाभिधान-
मुत्तमं वाक्पारुष्यमित्यर्थः । विचि. १०९-१०

(५) वन्दुतन्दु मातृपदं मातृमपनीपदं तेन भगिनीं
मातृमपनीं वा गतौ यनामीति कीर्तनमित्यर्थः । यथा-
व्याख्यानात्स्योऽपातकाभावात् । द्वि. १९८

(६) अभिघट्टन उत्पादनम् । व्यप्र. ३८०

मनामनजानिगुणकृतवाक्पारुष्येषु दण्डः

सैमजातिगुणानां तु वाक्पारुष्ये परस्परम् ।

विनयोऽभिहितः शान्ते पणा अर्धत्रयोदशाः ॥
अर्धस्त्रयोदशो येषां ते अर्धत्रयोदशाः मार्धद्वादशो-
त्यर्थः । *रत्न. १२०

सैमानयोः मसो दण्डो न्यूनस्य द्विगुणस्तु सः ।
उत्तमस्यार्धिकः प्रोक्तो वाक्पारुष्ये परस्परम् ॥

(१) अयुगपत्संप्रवृत्तयोः समानयोरपि विषमो

* स्मृच., सवि., व्यप्र. रत्नवत् । स्मृच. व्याख्यानं अशुद्धि-
संदेहात्प्रोद्धतम् ।

(१) अप. २।२०४ णा अ (णस्त्व) दशाः (दशः);
स्मृच. ३२६ दशाः (दश); विर. २४७ तु (च)
णा अ (णान) दशाः (दश); पमा. ४३० णा अ (णान)
दशाः (दश); रत्न. १२०; विचि. ११० णा अ (णास्त्व)
दशाः (दश); द्वि. २१० तु (च) दशाः (दश);
सवि. ४७६ ऽ मि (नि); वीमि. २।२११ हितः (मतः)
दशाः (दश); व्यप्र. ३८० सविवत्; व्यउ. ११९
सविवत्; विता. ७२३ (=); सेतु. २१० दविवत्; समु.
१६०.

(२) अप. २।२०६; व्यक. १०२; स्मृच. ३२६
धिकः (धिकः); विर. २४५; रत्न. १२० स्मृचवत्;
विचि. ११० स्तु (श्च); व्यनि. ४८६ णस्तु सः (णः
स्मृतः) प्रोक्तो (दण्डो); द्वि. २०० धिकः (धिको) शेषं
व्यनिवत्; सवि. ४७७ न्यून... सः (न्यूनं स्याद्विगुणः
स्मृतः) धिकः प्रोक्तो (धिकं प्रोक्तं); वीमि. २।२११
स्याधिकः प्रोक्तो (स्यधिकत्प्रोक्तो) व्ये (व्यं); व्यप्र. ३८१
णस्तु सः (णो दमः); व्यउ. १२० धिकः (धिकः) शेषं
व्यप्रवत्; विता. ७२६ स्मृचवत्; सेतु. २०९ विचिवत्;
समु. १६० स्मृचवत्; विव्य. ५० णस्तु सः (णः स्मृतः)
नारदः.

दण्डः । तथा च नारदः— 'पूर्वमाक्षारयेद्यस्तु नियतं
स्यात्स दोषभाक् । पश्चाद्यः सोऽप्यसत्कारी पूर्वं तु
विनयो गुरुः ॥'

स्मृच. ३२६-७

(२) परस्परं वाक्पारुष्ये वृत्ते आक्षेपकस्य दण्डे
यद्यसावाक्षेप्येण समो जात्यादिभिस्तदा समो दण्डोऽथ
न्यूनः तदा तस्योक्ताद्विगुणः । अथोत्कृष्टस्तदा तस्यो-
क्तादधो दण्ड इत्यर्थः ।

विर. २४५

^१क्षिपन् स्वस्त्रादिकं दद्यात् पञ्चाशत्पणिकं दमम् ॥

^२देशादिकं क्षिपन् दण्ड्यः पणानर्धत्रयोदश ।

पापेन योजयन् दर्पाद् दण्ड्यः प्रथमसाहसम् ॥

असमवर्णकृतवाक्पारुष्ये दण्डाः

^३विप्रे शतार्धं दण्डस्तु क्षत्रियस्याभिर्शंसने ।

विशस्तथाऽर्धपञ्चाशत् शूद्रस्यार्धत्रयोदश ॥

विप्रे आक्षेपतीति शेषः । अभिर्शंसनमाक्रोशः ।

दवि. २०५

^४संच्छूद्रस्यायमुदितो विनयोऽनपराधिनः ।

गुणहीनस्य पारुष्ये ब्राह्मणो नापराधन्यात् ॥

^५वैश्यस्तु क्षत्रियाक्रोशे दण्डनीयः शतं भवेत् ।

तदर्धं क्षत्रियो वैश्यं क्षिपन् विनयमर्हति ॥

(१) अप. २।२०५; व्यक. १०३; विर. २५०; पमा. ४३१; व्यनि. ४८६; दवि. २१२; व्यप्र. ३८१ स्वस्त्रा (विप्रा) : ३८३ स्वस्त्रा (श्वस्त्रा); व्यउ. १२० स्वस्त्रा (विप्रा) : १२१ स्वस्त्रा (श्वस्त्रा); सेतु. २१४; समु. १६० त्पणि (त्पण).

(२) अप. २।२११ दण्ड्यः (दाप्यः) दश (दशान्); विर. २५७; दवि. २०९ दश (दशान्); व्यप्र. ३८४ दण्ड्यः (दाप्यः); व्यउ. १२२.

(३) व्यक. १०३; विर. २५१ विशस्तथाऽर्धं (वैश्यस्य त्वर्थ); रत्न. १२०; दवि. २०५ विशस्तथाऽर्धं (वैश्यस्य चार्ध); व्यप्र. ३८२ थाऽर्धं (थाऽर्धं); व्यउ. १२० न्यप्रवत्; व्यम. ९९; सेतु. २११ प्रे (प्रः) ण्डस्तु (ण्ड्यस्तु) शेषं दविवत्; समु. १६०.

(४) व्यक. १०३; स्मृच. ३२७ उक्त.; विर. २५१; पमा. ४३४ मुदितो (मुदितो); रत्न. १२०; व्यनि. ४८७ पमावत्; दवि. २०५; समि. ४७९ उक्त.; व्यप्र. ३८२; व्यउ. १२०; समु. १६० पमावत्.

(५) व्यक. १०३; विर. २५२ क्रोशे (क्षेपे); पमा.

शूद्राक्रोशे क्षत्रियस्य पञ्चविंशतिको दमः ।

वैश्यस्य चैतद्विगुणः शास्त्रविद्विरुदाहृतः ॥

शूद्रकृतद्विजक्षेपधर्मोपदेशादौ दण्डाः

^१वैश्यमाक्षारयन् शूद्रो दाप्यः स्यात्प्रथमं दमम् ।
क्षत्रियं मध्यमं चैव विप्रमुत्तमसाहसम् ॥

(१) प्रथमं दमं पणानां द्वे शते सार्धे, मध्यमं पञ्चशतानि, उत्तमं सहस्रम् ।

विर. २५२

(२) जिह्वाच्छेदनरूपोऽत्रोत्तमसाहसो द्रष्टव्यः ।

व्यप्र. ३८२

धर्मोपदेशकर्ता च वेदोदाहरणान्वितः ।

आक्रोशकस्तु विप्राणां जिह्वाच्छेदेन दण्ड्यते ॥

शूद्र इत्यनुवृत्तौ बृहस्पतिः— धर्मोपदेशेति ।

विर. २५२

वाक्पारुष्यप्रकरणोपसंहारः

एष दण्डः समाख्यातः पुरुषापेक्षया मया ।

समन्यूनाधिकत्वेन कल्पनीयो मनीषिभिः ॥

४३२ स्तु (स्य) शतं (प्रदो); रत्न. १२०; व्यनि. ४८७; दवि. २०५ विरवत्, पू.; व्यप्र. ३८२; व्यउ. १२०; सेतु. २११-२ विरवत्; समु. १६०.

(१) व्यक. १०३ गुणः (गुणं) हतः (हतम्); विर. २५२ क्रोशे (क्षेपे) पञ्च (पण) चै... ..णः (चेत्स्याद्-द्विगुणं) हतः (हतम्); पमा. ४३२ वैश्य... ..णः (बृहस्पते द्विगुणं तत्र) हतः (हतम्); रत्न. १२० व्यकवत्; व्यनि. ४८७ तद्वि (व द्वि); दवि. २०५ क्रोशे (क्षेपे) शेषं व्यकवत्; व्यप्र. ३८२; व्यउ. १२०; सेतु. २१२ विरवत्, पू.; समु. १६० व्यकवत्.

(२) अप. २।२०७; व्यक. १०३; विर. २५२; पमा. ४३२; रत्न. १२०; व्यनि. ४८७; दवि. २०५; व्यप्र. ३८२; व्यउ. १२०; समु. १६०.

(३) अप. २।२०७ स्तु (श्व) च्छेदे... ..ते (च्छेदन-मर्हति); व्यक. १०३; विर. २५२ स्तु (श्व); रत्न. १२०; विचि. १११ देन (दात्स); दवि. ३२१ विरवत्; वीमि. २।२११ आ (वि) च्छेदे... ..ते (च्छेदनमर्हति) उक्त.; व्यप्र. ३८२; व्यउ. १२१; व्यम. ९९; सेतु. २१२ विरवत्; समु. १६१ विरवत्.

(४) अप. २।२११; व्यक. १०४; विर. २५७ मनीषिभिः (महाभिभिः); दवि. २०९; व्यप्र. ३८४; व्यउ. १२२.

कात्यायनः

वाक्पारुष्यप्रकारः

यस्त्वसत्संज्ञितैरङ्गैः परमाक्षिपति क्वचित् ।
अभूतैर्वाथ भूतैर्वा निष्ठुरा वाक् स्मृता तु सा ॥
न्यङ्गावगूरुणं वाचा क्रोधात्तु कुरुते यदा ।
वृत्तदेशकुलानां तु अश्लीला सा बुधैः स्मृता ॥
(१) न्यङ्गावगूरुणं निकृष्टाङ्गप्रकाशनेन तिरस्करणम् ।

*अप. २।२०४

(२) कल्पतरौ न्यङ्गावगूरुणमिति पठित्वा निकृष्टा-
ङ्गप्रकाशनेन तिरस्करणमिति व्याख्यातम् । न्यग्भाव-
करणमिति तु माधवादिसंमतः पाठः । व्यप्र. ३७९
महापातकयोक्त्री च रागद्वेषकरी च या ।
जातिभ्रंशकरी वाऽथ तीव्रा सा प्रथिता तु वाक् ॥
हुङ्कारं कासनं चैव लोके यच्च विगर्हितम् ।

* व्यक., विर., दवि. अपवत् ।

(१) अप. २।२०४ शितै (शकै) ; व्यक. १०१ यस्त्व
(यत्त्व) ; स्मृच. ६ तु सा (बुधैः) शेषं व्यकवत् ; विर.
२४३ वाथ (रथ) ; पमा. ४२९ माक्षि (स्याक्षि) अभूतै
(अमूलै) भूतै (मूलै) तु सा (बुधैः) ; व्यनि. ४८४ पति
(पता) शेषं व्यकवत् ; दवि. १९७ व्यकवत् विरवच्च ;
व्यप्र. ३७९ व्यकवत् ; व्यउ. ११९ व्यकवत् ; सेतु. २०३
दविवत् ; समु. १५९ स्मृचवत् ।

(२) अप. २।२०४ क्रोधा (ऽऽक्रोशा) यदा (यदि) ;
व्यक. १०१ तु (च) ; स्मृच. ६ न्यङ्गावगूरुणं (न्यग्भावकरणं)
त्तदे (त्तेर्दे) तु अश्ली (चाप्यश्ली) ; विर. २४३ तु (च) ;
पमा. ४२९ न्यङ्गावगूरुणं (न्यग्भावकरणं) तदे (त्तेर्दे) तु अ
(वाऽप्य) ; व्यनि. ४८४ त्ते (त्तेर्दे) तु (च) ; दवि.
१९८ गूरुणं वाचा (पूरणं वचो) तु (च) , कामधेनावङ्गैति
पठितमित्याह ; व्यप्र. ३७९ न्यङ्गावगूरुणं (न्यग्भावकरणं) ;
व्यउ. ११९ व्यप्रवत् ; सेतु. २०३ न्यङ्गावगूरुणं (न्यङ्कार-
गूहनं) तु (च) ; समु. १५९ स्मृचवत् ।

(३) अप. २।२०४ ; व्यक. १०१ ; स्मृच. ६ ; विर.
२४३ वाऽथ (या च) ; पमा. ४२९ ; व्यनि. ४८४ योक्त्री
च रागद्वे (युक्ता च जगद्वे) वाऽथ (याऽथ) तु (च) ; दवि.
१९८ रागद्वेष (राजस्तेय) वाऽथ (या च) ; व्यप्र. ३७९
वाऽथ (चाथ) ; व्यउ. ११९ ; सेतु. २०३ वाऽथ (या च) ;
प्रथि (कथि) ; समु. १५९ योक्त्री (युक्ता) सा प्र (संप्र) .

(४) अप. २।२०४ ; व्यक. १०१ ; स्मृच. ६ रं (रः) ;

व्य. कं. २२५

अनुकुर्यादनुभूयाद्वाक्पारुष्यं तदुच्यते ॥
योऽगुणान् कीर्तयेत्क्रोधान् निर्गुणे वा गुणज्ञताम् ।
अन्यसंज्ञानियोजी च वाग्दुष्टं तं नरं विदुः ॥

(१) कात्यायनस्त्वन्यापि वाक्पारुष्यभेदानाह—
हुङ्कार इति । स्मृच. ६

(२) अगुणान् कीर्तयेद्गुणिनीति शेषः । अन्यसंज्ञा-
नियोजी निन्दितसंज्ञाव्यपदेशकारी । * विर. २४२
वाक्पारुष्यदोषत्वत्वे अर्थो दण्डः

मोहात्प्रमादात्संहर्यान् प्रीत्या वोक्तं मयेति यः ।
नाहमेवं पुनर्वक्ष्ये दण्डार्थं तस्य कल्पयेत् ॥

परिहार्यवाक्पारुष्यकाराभिप्रायमेतत् । विर. २४६
वाक्पारुष्यदोषतदपवादौ, तत्साधनं च

यत्र स्यात्परिहारार्थं पतितस्तेनकीर्तनम् ।

वचनात्तत्र न स्यात्तु दोषो यत्र विभावयेत् ॥

(१) वचनात् पतितान्कीर्तनादित्यर्थः । यत्राभि-
योगादौ पातित्यादिकं साधयेत् तत्रापि वचनाद्दोषो न
स्यादित्यर्थः । स्मृच. ३२७

(२) यत्र परिहारार्थं पतितान्सर्गपरिहारार्थं पाति-
त्यादि कीर्तितमिति विभावयति तत्र न दोष इत्यर्थः ।
विर. २५८

* दवि. विरवत् ।

विर. २४२ मनुः ; व्यनि. ४८३ कासनं चैव (चैव त्वङ्कारं)
दनुन् (दथन्) ; समु. १५९-६० स्मृचवत् ।

(१) व्यक १०२ ; स्मृच. ६ नियोजी च (नुयोगी वा)
तं नरं (त्वन्तरं) ; विर. २४४-५ क्रोधात् (द्वेषात्) ; दवि.
१९९ योऽयु (अयु) ; व्यप्र. ३८० ; व्यउ. ११८ ; समु.
१६० स्मृचवत् ।

(२) व्यक. १०२ कात्यायनोशनसौ ; विर. २४६ कात्या-
यनोशनसौ ; विचि. ११० वोक्तं (चोक्तं) कात्यायनोशनसौ ;
व्यनि. ४८५ त्रमा षात् (त्रमोहात्संघर्षात्) ; दवि.
२०४ वोक्तं (चोक्तं) नाहमेवं (आह नैवं) कात्यायनोशनसौ ;
सेतु. २१० वोक्तं ... यः (चोक्तमपैति यत्) कात्यायनोशनसौ ।

(३) व्यक. १०४ कीर्तनम् (कीर्तितः) ; स्मृच. ३२७ ;
विर. २५८ ; रत्न. १२१ हारा (हासा) षो य (षम) ;
दवि. २१४ स्तेन (त्वेन) नारदः ; व्यप्र. ३८१ पूर्वार्धे
(यच्च स्यात्परिहारार्थं पतितत्वेन कीर्तितम्) ; व्यउ. ११८
कीर्तनम् (कीर्तितम्) ; विता. ७३० हारा (हासा) ; सेतु.
२१३ न स्या (तत्स्या) शेषं व्यकवत् ; समु. १६० .

अन्यथा तुल्यदोषः स्यान्मिध्योक्तौ तूत्तमः स्मृतः ॥
 अन्यथा संसर्गपरिहारार्थमन्तरेण । विर. २५८
 महता प्रणिधानेन वाग्दुष्टं साधयेन्नरम् ।
 अतद्व्यं श्रावितं राजा प्रयत्नेन विचारयेत् ॥
 अंतुताख्यानशीलानां जिह्वाच्छेदो विशोधनम् ॥
 वाग्दुष्टोऽत्र वाक्पारुष्यकारी । साधयेत् सत्यमसत्यं
 वा अनेनोक्तमिति चिन्तयेत् । जिह्वाच्छेद इत्यब्राह्मण-
 विषयम् । विर. २५८

व्यासः

पातकामिशंसने दण्डाः

पापोपपापवक्तारो महापातकशंसकाः ।
 आद्यमध्येोत्तमान् दण्डान् दद्युस्त्वेते यथाक्रमम् ॥
 (१) उपपातकगणे यन्न निर्दिष्टं शास्त्रतः प्रतिषिद्धं
 च तदिह पापशब्दवाच्यम् । अप. २।२१०
 (२) अत्र महापातकं प्रसिद्धं ततो न्यूनमुपपाप-
 मुपपातकमिति यावत् । ततो न्यूनं पापम् । तत्र पापे
 अधमो दण्डः, उपपापे मध्यमो महापातके तूत्तमः ।
 विर. २५६

उशना

असवर्णकृतवाक्पारुष्ये दण्डाः

शूद्रमाकुश्य क्षत्रियश्चतुर्विंशतिपणान् दण्डभाग्
 वैश्यः षट्त्रिंशत् ।

(१) व्यक. १०४ तुल्य (त्वल्य) स्मृतः (दमः);
 विर. २५८; दवि. २१४ चै तू (चतु) नारदः.

(२) व्यक. १०४ प्रणिधानेन (तु प्रयत्नेन) श्रावितं
 (साधितं); विर. २५८; दवि. २१५ उक्तः, नारदः.

(३) व्यक. १०४ दो वि (दादि); विर. २५८; दवि.
 २१५ नारदः; व्यप्र. ३८४; व्यउ. १२२ ख्यानशीलानां
 (ख्यमेलकानां).

(४) अप. २।२१० स्त्वेते (स्ते ते); व्यक. १०४
 स्त्वेते (स्ते वै); विर. २५६; पमा. ४३३ मनुः; व्यनि.
 ४८८ अपवत्, मनुः; दवि. २०८ अपवत्; व्यप्र. ३८३
 अपवत्; व्यउ. १२२ मनुः; सेतु. २११ स्क्ते (स्ते);
 समु. १६०-६१ अपवत्, मनुः.

(५) ममा. १२।१० (पणान्); मौमि. १२।१०.

वाक्पारुष्यदोषाल्लते अर्थो दण्डः

मोहात्प्रमादात्संहर्षात् प्रीत्या वोक्तं मयेति यः ।
 नाहमेवं पुनर्वक्ष्ये दण्डार्थं तस्य कल्पयेत् ॥

आनाम्नाते दण्डे विधिः

येत्र नोक्तो दमः पूर्वैरानन्त्यात्तु महात्मभिः ।
 तत्र कार्यं परिज्ञाय कर्तव्यं दण्डधारणम् ॥

यमः

वेदाध्यायिशूद्रदण्डः

श्वेण्डशश्छेदयेज्जिह्वामृचं वै यद्युदाहरेत् ॥

जमदग्निः

असवर्णेषु वाक्पारुष्ये दण्डाः

मौतृतुल्यमनुलोमानां पितृतुल्यं प्रतिलोमानाम् ।

अग्निपुराणम्

वैश्यशूद्रकृते उच्चवर्णक्षेपे धर्मोपदेशे च दण्डाः

क्षत्रियस्याग्रयाद्वैश्यः साहसं पूर्वमेव तु ।
 शूद्रः क्षत्रियमाकुश्य जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात् ॥
 धर्मोपदेशं विप्राणां शूद्रः कुर्वन् दण्डभाक् ।
 श्रुतदेशादिवितथी दाप्यो द्विगुणसाहसम् ॥
 उत्तमः साहसस्तस्य यः पापैरुत्तमान् क्षिपेत् ।
 प्रमादाद्यैर्मया प्रोक्तं प्रीत्या दण्डार्थमर्हति ॥

(१) अप. २।२११ वोक्तं (चोक्तं); व्यक. १०२
 कात्यायनोशनसौ; स्मृच. ३२७ हर्षा (धर्षा); विर. २४६
 कात्यायनोशनसौ; रत्न. १२१ स्मृचवत्; विचि. ११०
 अपवत्, कात्यायनोशनसौ; दवि. २०४ वोक्तं (चोक्तं)
 नाहमेवं (आह नैवं) कात्यायनोशनसौ; व्यप्र. ३८४ स्मृच-
 वत्; व्यउ. १२२ स्मृचवत्; व्यम. ९९ स्मृचवत्; विता.
 ७३० हर्षा (धर्षा) वोक्तं (चोक्तं); सेतु. २१० वोक्तं....
 यः (चोक्तमपैति यत्) कात्यायनोशनसौ.

(२) व्यक. १०४; स्मृच. ३२८ पूर्वै (सर्वै); विर.
 २५९ तु (च); विचि. १११-२. पूर्वैरानन्त्यात्तु (सर्वै
 राजन्याच्च) कर्तव्यं (सर्वस्वं); दवि. २१४; सवि. ४८३
 परि (प्रति) शेषं स्मृचवत्; सेतु. २१४ पूर्वै (सर्वै) तु
 (ख); समु. १६४ स्मृचवत्.

(३) व्यनि. ४८८; समु. १६१.

(४) ममा. १२।१० (पणान्); (५) अप. २।२७।२५.

(६) समु. २२७।२६, २७.

दण्डपारुष्यम्

वेदाः

ब्राह्मणविषयकदण्डपारुष्ये दण्डविधिः

^१ देवा वै यज्ञस्य स्वगाकर्तारं नाविन्दन्ते शंयुं
बार्हस्पत्यमब्रुवन्निमं नो यज्ञं स्वगा कुर्विति ।
सोऽब्रवीद्वरं वृणै यदेवाब्राह्मणोक्तोऽश्रद्धानो यजातै
सा मे यज्ञस्याशीरसदिति तस्माद्यद्ब्राह्मणोक्तोऽ-
श्रद्धानो यजते शंयुमेव तस्य बार्हस्पत्यं यज्ञस्या-
शीर्गच्छत्येतन्ममेत्यब्रवीत् किं मे प्रजाया इति
योऽपगुरातै शतेन यातयाद्यो निहनत्सहस्रेण
यातयाद्यो लोहितं करवद्यावतः प्रस्कद्य पांसून्
संगृह्णात्तावतः संवत्सरान् पितृलोकं न प्र जाना-
दिति तस्माद्ब्राह्मणाय नाप गुरेत न नि हन्यान्न
लोहितं कुर्यादेतावता हैनसा भवति ।

यस्यै देवाय यद्दविर्विहितं तस्य हविषः सांकर्यमन्त-
रेण तस्य तस्य देवस्य स्वगतं कुर्विति बृहस्पतिपुत्रं
शंयुनामानं प्रति देवा अब्रुवन् । तदाऽसौ शंयुरप्येवं
चिन्तितवान्— एतत्काम एतेन यज्ञेन यजेतेत्येतादृशेन
ब्राह्मणेनानुक्तो यः कश्चिद्यजेत स्वेच्छयैव, यश्चान्यः
श्रद्धारहितो यजते, तयोरुभयोर्यज्ञफलं ममास्त्विति
वरः । तत आरभ्य तत्फलद्वयं शंयुमेव प्राप्नोति ।
पुनरपि शंयुरेवमुवाच— तदेतदुभयं मम संपन्नं,
मदीयायाः पुत्रपौत्रादिरूपायाः प्रजायाः किं दास्यतेति ।
ततो देवा अपगोरणादिकर्तुर्यातना त्वत्पुत्राधीना भव-
त्विति वरं दत्तवन्तः । अपगोरणं ताडनोद्योगः ।
तमुद्योगं ब्राह्मणविषये यः करोति तं पुरुषं शतनिष्क-
दण्डेन यातयात् क्लेशयेत् । यो निहनत्ताडयेत्तं सहस्र-
निष्कदण्डेन क्लेशयेत् । यस्तु ब्राह्मणशरीरे लोहितं
ताडनेन ग्राह्यति, लोहितं भूमौ पतित्वा यावतः परमा-
थून् व्याप्नोति तावतः संवत्सरानयं पितृलोकं न प्राप्नोति,

(१) तैसं. २।६।१०।१-२.

किन्तु यमयातनामनुभवति तत्सर्वं त्वत्प्रजाधीनमिति
वरः । यस्मादुत्करीत्या ब्राह्मणाधिक्षेपादौ प्रत्यवायोऽस्ति
तस्मात्तन्न कुर्यात् । करणे चैतावता पूर्वोक्तपापेन युक्तो
भवति । तैसा.

* अभिक्रुद्धावगोरणे ब्राह्मणस्य वर्षशतमस्वर्ग्यम् ।

अभिक्रुद्धेन, न परिहासादिना, अवगोरणे प्रहरणो-
द्यमने ब्राह्मणस्यानपराधिनः । अपराधिनः आततायित्व-
प्रसङ्गेन न दोष इति । वर्षशतमस्वर्ग्यं नरकपतनम् ।
समानजातीयविषयमिदम् । क्षत्रियादिभिः कृते— 'द्विगुणं
त्रिगुणं चैव चतुर्गुणमथापि वा । क्षत्रविट्शूद्रजातीनां
ब्राह्मणस्य वधे कृते ॥' इति प्राजापत्यस्मृतिलिङ्गात् ।
वर्षाणामपि द्विगुणत्रिगुणत्वादि कल्प्यम् । अनेनैव
न्यायेन ब्राह्मणेन कृते क्षत्रविट्शूद्रजातीनां त्रिपादमर्धं
पादमिति द्रष्टव्यम् । ब्राह्मणक्षत्रियवत् क्षत्रियवैश्ययोरपि,
एवं क्षत्रियवैश्यवद्वैश्यशूद्रयोरपि कल्प्यम् । एवं सर्वस्यो-
त्तमस्योत्तमस्य नीचेन नीचेन वधे कृते द्रष्टव्यम् । मभा.

^२ निघाते सहस्रम् ।

आयुधेन पाणिना वा निघाते सहस्रं वर्षाणामस्वर्ग्यं,
अधिकृतत्वात् । मभा.

^३ लोहितदर्शने यावतस्तत्प्रस्कन्द्य पांसून् संगृह्णीयात् ।

रुधिरोत्पादने कृते तद्रुधिरं ब्राह्मणादवसृत्य यावतः
पांसून् संगृह्णीयात् पिण्डीकुर्यात् तावन्ति वर्षसहस्राणि
नरकपतनं, अपरिमितकालमित्यर्थः । दोषविशेषकथनं
प्रायश्चित्तविशेषज्ञापनार्थम् । यथाह कण्वः— 'अवगूर्यं

* उपरिनिर्दिष्टश्रुतिवचनं गौतमेन सायणापेक्षया अन्यथा
व्याख्यातमित्येतद्व्यदर्शनार्थं गौतमसूत्राणि समुद्धृतानि ।

(१) गौध. २१।२०; मभा.; गौमि. २१।२० गोरणे
(गोरणं).

(२) गौध. २१।२१; मभा.; गौमि. २१।२१.

(३) गौध. २१।२२; मभा.; गौमि. २१।२२.

चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने । कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत
विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥' इति प्रायश्चित्तविशेषात्
दण्डविशेषो द्रष्टव्यः । मभा.

गौतमः

शूद्रकृते द्विजातिविषयके वाग्दण्डपारुध्ये दण्डविधिः

शूद्रो द्विजातीनभिसंधायाभिहत्य च वाग्दण्ड-
पारुष्याभ्यामङ्गं मोच्यो येनोपहन्यात् * ॥

आर्यमाम्येप्रेप्सुशूद्रस्य दण्डः

आसनशयनवाक्पथिपु समप्रेप्सुर्दण्ड्यः ।

आसनादिष्वार्यैस्तुल्यत्वं स्वेच्छया कामयमानः ।

आसनादिपृच्छितादिगुणेषु समत्वं, वाक्साम्यं समकालो-
च्चारणं, पथि साम्यं पृष्ठतो मुक्त्वा सह गमनम् ।
दण्डः स्थानाद्यपेक्षया शतादर्वाग् द्रष्टव्यः । X मभा.

शिष्यशासनरूपे दण्डपारुध्ये दण्डः

शिष्यशिष्टिरवधेन । अशक्तौ रज्जुवेणुविद-
लाभ्यां तनुभ्याम् । अन्येन घनत्राज्ञा शास्यः+ ।

हारीतः

हीनवर्णकृतेषु, उत्तमवर्णकृतेषु च वाग्दण्डपारुध्येषु

दण्डविधिः

अधोवर्णानामुत्तमवर्णाक्रोशाक्षेपाभिभवे अष्टौ
पुराणाः, श्रीवाससन्नगलस्तनकचवक्त्रग्रहणेषु
त्रिंशत् । रोमोत्पाटनतर्जनावगूरणेषु त्रिषष्टिः ।
शिखाकर्णाङ्गभङ्गच्छेदेषु द्विशतम् । पादताडनेऽ-
नृताभिशंसने तदङ्गच्छेदः पञ्चशतं वा । आद्येषु
पादो न वा किञ्चित् । स्वामित्वादादिवर्णत्वाच्च ।
उत्तमानामीशानतमो ब्राह्मणः ।

* व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च वाक्पारुष्यप्रकरणे (पृ.
१७६८) द्रष्टव्यः ।

X गौमि. मभावत् ।

+ व्याख्यानं अभ्युपेत्याशुश्रूषाप्रकरणे (पृ. ८१५)
द्रष्टव्यम् ।

(१) गौध. १२१५; मभा.; गौमि. १२१५; विर.
२६९ सम (समत्वं) दण्ड्यः+(शतम्); दवि. ३२२
सम... ण्ड्यः (समत्वेऽमुर्दण्ड्यः शतम्).

(२) गौध. २१४९-५१; व्यक. १०६ विद (द);
विर. २७२ व्यकवत्; समु. ९८. अवशिष्टस्थलादिनिर्देशः
अभ्युपेत्याशुश्रूषाप्रकरणे (पृ. ८१५) द्रष्टव्यः ।

(३) व्यक. १०३ अष्टौ (षष्टौ) (श्रीवा... पाद-

(१) अधोवर्णोऽनन्तरो वर्णो विप्रस्य क्षत्रिय
इत्यादिः । पुराणशब्दोऽत्र द्वात्रिंशद्रूप्यकृष्णलपरः ।

विर. २५१

अनृताभिशंसनमाक्रोशः, अङ्गमत्र जिह्वा, अपकृष्ट-
वर्णेषु उत्कृष्टवर्णं प्रति मिथ्यातीव्राक्रोशे जिह्वाच्छेदः,
पञ्चाशतं वा दण्ड्यः, आद्येषु उत्कृष्टवर्णेषु निकृष्टं प्रति
मिथ्यातीव्राक्रोशे पञ्चाशत्पादः । मतान्तरमाह— न
वा किञ्चित्, अत्र हेतुः, स्वामित्वादादिवर्णत्वाच्च,
आदिवर्णत्वाच्छूद्रापेक्षया वैश्यादीनां प्रथमवर्णत्वात् ।

विर. २५३

त्रिंशत्पुराणा इत्यर्थः । एवमुत्तरत्र । आद्येष्वित्या-
दिना हीनवर्णस्य दण्डमुक्त्वा अधिकस्याप्युक्तः ।

विर. २६७

(२) [आदौ रत्नाकरानुवादः, तदुत्तरमेष ग्रन्थः]—
वस्तुतस्तु, अभिशंसनमेव आक्रोशः । तस्मिन् अस-
त्यर्थेऽतितीत्रे जिह्वाच्छेदोऽन्यत्र पञ्चाशत्पुराणो दण्डः ।
विषमयोस्तुल्यवद्विकल्पानुपपत्तेः, सत्ये तु पारिशेष्यादष्टौ
पुराणाः ।

यद्वा पादच्छेदनेऽनृताभिशंसने इति समभिव्याहार-
दर्शनात् पादताडने तदङ्गच्छेदः । अनृताभिशंसने
पञ्चाशत्पाद इति व्यवस्थेति प्रतिभाति ।

तथा न वा किञ्चिदिति मतं यद्यप्यसंकुचितविषय-
मिति युक्तं त्रैवर्णिकोपक्रमत्वात् हेतुसाधारण्याच्चेति ।
तथापि ब्राह्मणमात्रपरतया नेयम् । उपसंहारे ईशान-
ताडने०) पादो न वा किञ्चित् (पादोनं वा) (ईशानतमो
ब्राह्मणः०) : १०५ क्षेपाभिभवे (भिमवाक्षेपेषु) सज्जन
(सज्जन) पादो न वा किञ्चित् (पादोनं वा) मीशानतमो
ब्राह्मणः (मीशानां मध्यमानामधोवर्णानामीशानतमा ब्राह्मणाः);
विर. २५१ (क्रोशा०) अष्टौ (षष्टौ) (श्रीवा.....
ब्राह्मणः०) : २५३ (अधोवर्णा.....पादताडने०) पञ्चाशतं
(पञ्चाशतं) (किञ्चित्०) (ईशानतमो ब्राह्मणः०) :
२६६-७ पादो न वा किञ्चित् (पादोनं वा) दादि (दाद्य);
दवि. २०२ अधो...क्रो (अधमवर्णस्योत्तमवर्णानामाक्रो)
(श्रीवा... द्विशतम्०) पाद.....शंसने (अनृताभिशंसने
पादताडने) वा । आद्येषु (त्वाद्येषु) तमो+(हि) : २५४
अधो...क्रो (अधोवर्णस्योत्तमवर्णानामाक्रो) गलस्तन (गल-
हस्तन) ग्रहणेषु (प्रहरणेषु) पादो न वा (पादोनं)
तमो+(हि).

तमो ब्राह्मण इत्यनुवाददर्शनात् । उपदधाति इत्यत्र सामान्येन प्राप्तेऽञ्जनद्रव्ये 'तेजो वै धृतम्' इत्यनुवाददर्शनेन तद्विशेषपरिनिष्ठावत् । न च स्वामित्वस्यैवायमित्यनुवाद इति वाच्यम् । ईशानतम इति तमोपादानविरोधात् । अनुवादमात्रस्य वैयर्थ्याच्च ।

न च, यथा— 'तिलांश्च विकिरेत्तत्र परितो बन्धयेदजाम् । असुरोपहतं श्राद्धं तिलैः शुद्धयत्यजेन च ॥' इत्यत्र अजानात्मकदेशे फलसंबन्धप्रतिपादनार्थमजेनेत्यनूद्यते । तथा इह किञ्चित् प्रयोजनमस्ति तस्मात् कामं पूर्वपूर्वो वर्ण उत्तरोत्तरस्यादित्वादभ्यर्हितत्वेन स्वामी । ब्राह्मणस्तु स्वामितमः स्वामित्वात् । अतस्तस्यैव दण्डाभावो वैश्यक्षत्रिययोस्तु स्वाम्यतारतम्यानुसारी दण्डलेशोऽस्त्येवेति तात्पर्यार्थो गम्यते ।

स चायं दण्डाभावो निर्गुणशूद्रपरत्वेन व्यवतिष्ठते । गुणहीनस्येत्यादिवक्ष्यमाणबृहस्पतिवचनसंवादात् । अन्यत्र सर्वत्र दण्डोपदेशात् ब्राह्मणपदं च न कृषीवलादिसाधारणजातिमात्रपरमपि तु गुणवदभिप्रायम् । तस्यैवेशानसामर्थ्यात् । तदेवं न वेति विकल्पस्य विषयव्यवस्थायामष्टदोषदुष्टत्वमप्यपास्तं भवतीति चतुरस्रम् ।

दवि. २०२-४

आपस्तम्बः

दण्डपारुष्यानन्तर्भाविशिष्यशासनम्

अपराधेषु चैनं सततमुपालभेत ।

अभित्रास उपवास उदकोपस्पर्शनमदर्शनमिति दण्डा यथामात्रमानिवृत्तेः ।

(१) अपराधेषु कृतेष्वेनं शिष्यं सततमुपालभेत—

इदमयुक्तं त्वया कृतमिति ।

अभित्रास इति । अभित्रासो भयोत्पादनम् । उपवासो भोजनलोपः । उदकोपस्पर्शनं शीतोदकेन स्नापनम् । अदर्शनं यथा आत्मानं न पश्यति तथा करणम् ।

(१) आध. १।८।२९-३०; हिघ. १।८ नमद (नान्यद); व्यक. १०६; विर. २७२ अभि (अति) (उपवास०) (अदर्शनं०); विचि. ११९ अभि.....मिति (अभित्रासमुपवासमुदकोपस्पर्शनमिति); व्यप्र. ३७८ अभि (अति) (अदर्शनं०) मात्रमानिवृत्तेः (तन्मात्रनिवृत्तिः); व्यउ. ११८ व्यप्रवत्; सेतु. २२१ चैनं (चैवं) शेषं विचिवत्.

गृहप्रवेशनिषेधः । सर्वत्र प्यन्तात् प्रत्ययः । इत्येते दण्डाः शिष्यस्य यथामात्रं यावत्पराधमात्रा तदनु रूपं व्यस्ताः समस्ताश्च । आनिवृत्तेः यावदसौ न ततोऽपराधान्निवर्तते तावदेते दण्डाः । उ.

(२) उपालभेत रूक्षोक्तिभिस्तिरस्कुर्यात् । अतित्रासोऽतिभीत्युत्पादनम् । उदकोपस्पर्शनमतिशयितजाड्यकाले । यथामात्रं सामर्थ्यापराधानुरूपमात्रम् । आनिवृत्तेः अपराधस्येति शेषः । विर. २७३

आर्थसाम्यप्रेक्षुशूद्रस्य दण्डः

वाचि पथि शय्यायामासन इति समीभवतो दण्डताडनम् ।

(१) यस्तु शूद्रो वागादिध्वार्यैः समीभवति, न तु न्यग्भूतः, तस्य दण्डेन ताडनं कर्तव्यम् । स दण्डेन ताडयितव्यः । अयमस्य दण्डः । उ.

(२) शूद्र इत्यनुवृत्तावापस्तम्बः— वाचीति । पूर्ववाक्ये अस्मिन्नेव विषये दण्ड्यत्वाभिधानं पारुष्यकर्तुर्धनवत्त्वपक्षे, इदं तु निर्धनत्वपक्षे दण्डताडनमित्यविरोधः । विर. २६९

वसिष्ठः

वाग्दण्डपारुष्येषु दण्डसामान्यविधिः

दण्डस्तु देशकालधर्मवयोविद्यास्थानविशेषैर्हिंसाक्रोशयोः कल्प्य आगमाद् दृष्टान्ताच्च ।

वृक्षच्छेदनिषेधः

पुष्पफलोपगान् पादपान् न हिंस्यात् कर्षणकरणार्थं चोपहन्यात् । गार्हस्थ्यार्हानां च ।

(१) आध. २।२७।१५; हिघ. २।१९; व्यक. १०६; गौमि. १२।५; विर. २६९; विचि. ११८ न इति (ने च); दवि. ३२२ (वाचि०) षडता (षडस्ता); सेतु. २२० विचिवत्.

(२) वस्मृ. १९।७.

(३) वस्मृ. १९।८-९ (ख) स्थाङ्गानां च (स्थं गां च); व्यक. १०९ पुष्पफलो (फलपुष्पो) ज्ञानां (ज्ञे); विर. २८६ पुष्प...नां च (फलपुष्पोपगमान् वृक्षान् न हिंस्यात्कर्षणार्थं चोपहन्यात् । गार्हस्थ्यार्हे च); दवि. २३० (फलपुष्पोपगान् पादपान् हिंस्यात्) प्लावदेव : ३२५ पुष्पफलो (फलपुष्पो) णकरणार्थं (णार्थं) चोप (चोप)

कर्मणाम् कृपिहेतुहलाचर्यम् । संभवासंभवनमित्क-
विकल्पपरो वाशब्दः । गार्हस्थ्यार्हं गृहस्थकर्म दृष्टमदृष्टं
वा, येन गृहोपकरणं यज्ञोपकरणं च सिद्धयति । लक्ष्मी-
धरेण तु कार्षापणमिति पठितम् । तन्न अग्निमस्वरसभङ्ग-
प्रसङ्गात् प्रकाशहल्ययुधपारिजातविरोधान्मूलस्मृत्यदर्शना-
च्चोपेक्षितम् । विर. २८६

विष्णुः

हीनवर्णकृतेषु उत्तमवर्णकृतेषु च दण्डपारुष्येषु दण्डविधिः ।
आयतान्यप्रेषुशूद्रस्य दण्डः ।

हीनवर्णोऽधिकवर्णस्य येनाङ्गेनापराधं कुर्यात्त-
देवास्य शातयेत् ।

एकसोनोपवेशी कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः ।
निष्ठीव्योऽष्टद्वयविहीनः कार्यः । अवशर्षयिता च
गुदहीनः ।

प्रहारोपमनपादादिलुण्ठनकरादिभङ्गचेष्टादिरोधप्रहारदिषु
दण्डविधिः

हस्तैर्नोद्गूरयित्वा दश कार्षापणान् । पादेन
विंशतिम् । काष्ठेन प्रथमसाहसम् । पाषाणेन
मध्यमम् । शस्त्रेणोत्तमम् ।

(१) अधमो यदा शस्त्रेणोत्तमस्योद्गूरणं करोति,
तदा असौ उत्तमसाहसं दण्ड्य इति शस्त्रेणोत्तममित्य-
स्यार्थः । विर. २६३

ज्ञानां (ज्ञे) ; सेतु. २९४ पुष्प...नां च (फलपुष्पोपभोगात्
वृक्षान्न हिंस्यात्, कर्षणार्थं बोपहन्यात् गार्हस्थ्यस्याङ्गे च) .

(१) विस्मृ. ५१९९.

(२) विस्मृ. ५१२०-२२; व्यक. १०६ (निष्ठीव्यो...
हीनः०); विर. २६८ व्यकवत्; दवि. ३२२ एका
(उक्तृष्टेन एका) वेशी + (अपकृष्टजः) .

(३) विस्मृ. ५१६०-६४ (क) यित्वा (यिता), (स्र)
नोद्गूरयित्वा (नावगोरयिता); व्यक. १०५ तिम् (तिः)
(पाषाणेन मध्यमम्०); विर. २६३ व्यकवत्; विचि. ११३-४
द्गूरयित्वा (झोरयित्वा) (पाषाणेन मध्यमम्०)
त्तमम् (त्तमसाहसम्); दवि. २५० त्वा + (तु) (पाषा-
णेन मध्यमम्०); व्यग्र. ३७२ (पाषाणेन मध्यमम्०);
व्यं. ११३ व्यकवत्; सेतु. २१६ त्तमम् (त्तमसाहसम्)
शेषं व्यकवत्.

(२) सजातीयविषयं सर्वमेतत् । 'हीनवर्णोऽधिक-
वर्णस्य येनाङ्गेनापराधं कुर्यात् तदेवास्य शातयेत्' इति
सामान्यसूत्रात् । वै.

पादकेशांशुककरलुण्ठने दश पणान् दण्ड्यः ।

शोणितेन विना दुःखमुत्पादयिता द्वात्रिंश-
त्पणान् । सह शोणितेन चतुःषष्टिम् ।

कैरपाददन्तभङ्गे कर्णनासाविकर्तने मध्यमम् ।

चेष्टाभोजनवाग्बोधे प्रहारदाने च ।

नेत्रकन्धराबाहुसक्थ्यंसभङ्गे चोत्तमम् । उभय-
नेत्रभेदिनं राजा यावज्जीवं बन्धनात्त विमुञ्चेत् ।
तादृशमेव वा कुर्यात् ।

(१) शोणितेनेति । एतत्तु शस्त्रकरणकदुःखोत्पादने ।
विर. २६४

(२) नेत्रेति । पादमूलयोः संधिः सक्थि । तादृशं
यादृशमन्यं कृतवान् । विचि. ११६

(३) प्रहारदाने च नेत्रकन्धरासक्थ्यामिति चकारो
मध्यममित्यस्यानुप्रकर्षकः । भङ्गे चेति नेत्रादीनामित्य-
न्वयः । दवि. २५७

(१) विस्मृ. ५१६५.

(२) विस्मृ. ५१६६-७; व्यक. १०५ शोणितेन विना
(दण्ड्यः शोणितेन विना); विर. २६४ द्वात्रिंशत्प (त्रिंशतं प) .
शेषं व्यकवत्; विचि. ११५ विरवत्; दवि. २५५ व्यकवत्;
वीमि. २१२९ द्वात्रिंशत्प (त्रिंशतं प); व्यग्र. ३७२ ता
(ता); व्यं. ११३ व्यकवत्; सेतु. २१८ विरवत्.

(३) विस्मृ. ५१६८; दवि. २५० विक (वक) .

(४) विस्मृ. ५१६९; अप. २१२०; दवि. २५७-
(च०) .

(५) विस्मृ. ५१७०-७२; अप. २११९ (नेत्र...
त्तमम्०) बन्ध...ञ्चेत् (न मुञ्चेद्वन्धनात्) : २१२०
सक्थ्यंस (सक्थि) (उभय...कुर्यात्०); व्यक. १०५
सक्थ्यंस (सक्थां); विर. २६५ सक्थ्यंस (सक्थां च) विमुं
(मु) ; दीक. ५६ (नेत्रक...त्तमम्०) भेदिनं (भेदकं) याव...
ञ्चेत् (बन्धनात् यावज्जीवं न मुञ्चेत्); विचि. ११६ कन्धरा
(स्कन्ध) सक्थ्यंसभङ्गे (सक्थिभङ्गेषु) बन्ध...ञ्चेत् (न बन्ध-
नान्मोचयेत्) (वा०); दवि. २५७ बाहुसक्थ्यंस (सक्थां च)
भेदिनं (मञ्जनं) विमुं (मु) ; सेतु. २१९ रावा... भङ्गे
(रसक्थिभङ्गेषु) भेदिनं (भेदनं) विमुञ्चेत् (मोचयेत्) (वा०) .

एकं बहूनां प्रहरतां दण्डः

एकं बहूनां निघ्नतां प्रत्येकमुक्तादण्डाद् द्विगुणः।
उल्लोशन्तमनभिधावतां तत्समीपवर्तिनां संसरतां
च ।

प्रत्येकस्य प्रत्येकमित्यर्थः । स्मृच. ३२९

पुरुषपीडायां पशुपीडायां पशुपक्षिक्रीड्यानादिषु च दण्डः

सर्वे च पुरुषपीडाकरास्तदुत्थानव्ययं दद्युः ।

ग्राम्यपशुपीडाकराश्च ।

पशूनां पुंस्त्वोपघातकारी च ।

कार्षापणशतं दण्ड्य इत्यनुवृत्तौ विष्णुः— पशूना-
मिति । पुंस्त्वोपघातोऽण्डच्छेदः । विर. २७८

(१) विस्मृ. ५।७३-४ (ख) निघ्न (विघ्न); अप. २।२२१ निघ्न (घ्न) कस्युक्ता (कं स्वोक्ता) (संसरतां०);
व्यक. १०६ निघ्न (विघ्न) मुक्तादण्डाद् (श उक्तो दण्डो)
संसरतां (सतां) च (वा); स्मृच. ३२९ बहूनां निघ्नतां
(घ्नतां बहुनां) मुक्तादण्डाद् (स्योक्तदण्डो) (उल्लो...च०);
विर. २६९ निघ्न (विघ्न) मुक्तादण्डाद् (श उक्तो दण्डो)
संसरतां (सतां); रत्न. १२२ मुक्तादण्डाद् (स्योक्तो दण्डो)
(संसरतां०); दवि. २४९ मुक्ताद् (स्योक्तद्) (उल्लो...
च०); ३०२ मुक्ताद् (स्योक्तद्) (संसरतां०); व्यग्र. ३७५
निघ्न (घ्न) मुक्तादण्डाद् (श उक्तो दण्डो) उल्लो (ल्लो)
संसरतां (सतां); व्यड. ११४ निघ्न (घ्न) मुक्तादण्डाद्
(श उक्तदण्डो) संसरतां च (सतां वा); व्यम. १००
मुक्तादण्डाद् (श उक्तो दण्डो) (उल्लो...च०); विता. ७३८
मुक्ता...गुणः (श उक्तो द्विगुणो दण्डः) उल्लो (ल्लो)
संसरतां (शते); समु. १६२ स्मृचवत्.

(२) विस्मृ. ५।७५-६; व्यक. १०६; स्मृच. ३२९
स्थान (स्थं) दद्युः (दाप्याः); विर. २७१ स्तदु (स्समु);
पमा. ४२० स्तदु (स्समु) दद्युः (दाप्याः); रत्न. १२२
(च०) शेषं पमावत्; दवि. २२१ च पु (पु) स्तदु (स्समु);
व्यग्र. ३७५ च पु (पु) शेषं पमावत्; विता. ७४१
(समुत्थानव्ययं दाप्यो ग्राम्यं पशुपीडाकरश्च) पतावदेव;
समु. १६३ स्मृचवत्.

(३) विस्मृ. ५।११९ (ख) (च०); अप. २।२२६
(च०); व्यक. १०७ अपवत्; विर. २७८ अपवत्; ३५५
स्त्वोप (स्वाभि); पमा. ४२३ अपवत्; विचि. १२२;
व्यनि. ४९६ स्त्वो...च (स्त्वघाती); व्यग्र. ३७७
घातकारी च (घाती); व्यड. ११६ व्यग्रवत्; सेतु. ३२४;
समु. १६३ व्यग्रवत्.

गजाश्वोष्ट्रगोघाती त्वेककरपादः कार्दः । विमांस-
विक्रयी च ।

(१) विमांसं विरुद्धमांसं श्वशृगालादिमांसमिति
यावत् । विर. २७९

(२) विरुद्धमांसं श्वविड्वराहादेस्तद्विक्रयशीलो
विमांसविक्रयी । वै.

ग्राम्यपशुघाती कार्षापणशतं दण्ड्यः । पशु-
स्वामिने च तन्मूल्यं दद्यात् ।

ग्राम्यपशुपीडातिशयेन पशुमरणे त्वाह— ग्राम्येति ।

स्मृच. ३२९

आरण्यपशुघाती पञ्चाशतं कार्षापणान् । पक्षि-
घाती मत्स्यघाती च दश कार्षापणान् । कीटोप-
घाती कार्षापणम् ।

(१) विस्मृ. ५।४८-९; अप. २।२२६ गजाश्वो (अश्वो);
व्यक. १०७ त्वे (ह्ये); विर. २७९ गजा.....कर (गवाश्व-
गजोष्ट्रोपघाती चैकैक); पमा. ४२३ गो.....कार्यः (गोघाते-
ऽप्येकपादः) विमांस (मांस); विचि. १२२ गजा (अजा)
(गो०) त्वे (ह्ये); व्यनि. ४९६ त्वेककर (ह्येक) विमांस
(मांस); दवि. २२२ श्वोष्ट्र... कर (श्वगोष्ट्रोपघाती चैक)
(विमांस...च०); ३०९ (गजा... कार्यः०); व्यग्र. ३७७
(च०); व्यड. ११६ गजा (गवा) (गो०) (च०);
बाल. २।२२९ (च०); सेतु. २२४ (च०) शेषं विचिवत्;
विच्य. ५० गजा (अजा) त्वे (ह्ये) (विमांस... च०).

(२) विस्मृ. ५।५०-५१ (च०); अप. २।२२६ म्य
(म) तीम (च) ने च (नश्च); व्यक. १०७ तीम (च)
पणशतं (पणं); स्मृच. ३२९ पणशतं (पणं) ने च (नश्च);
विर. २७९ ने च (नश्च); पमा. ४२० घाती (घाते)
पणशतं (पणं) च (तु); ४२३ पणशतं दण्ड्यः (पणम्)
ने च तन्मू (नश्च पशुम्); विचि. १२२ म्य (म) तीम (च)
ने च (नः); व्यनि. ४९६ तीम (च) ने च (नश्च);
दवि. २२२ विरवत्; व्यग्र. ३७५ पणशतं (पणं) च (तु) :
३७७ म्य (म) तीम (च); व्यड. ११५ व्यग्र (घ. ३७५)
वत्; ११६ म्य (म); बाल. २।२२९ म्य (म); सेतु.
२२४ तीम (च) (च०).

(३) विस्मृ. ५।५२-४ ती का (ती च का); अप. २।२२६
पञ्चाशतं कार्षापणान् (पञ्चशतं कार्षापणानाम्); व्यक. १०७
शतं (शत्); विर. २७९ आर (अर) शतं कार्षापणान्
(शतं कार्षापणानाम्); पमा. ४२३; विचि. १२३ आर (अर)

अतर्ज्जीविनामेप दण्ड इति कृत्यसागरस्मृतिसारौ ।
हल्ययुधस्ताह—परपरिगृहीतकीटमत्स्यादिवधे दण्डोऽयं
स्वामिने मूल्यज्ञानाभिधानादिति । दवि. २२२

वृक्षवर्णावृणादिच्छेदे दण्डविधिः

फलोपभोगद्रुमच्छेदी तूत्तमसाहसम् । पुष्पोप-
भोगद्रुमच्छेदी मध्यमम् । वल्लीगुल्मलताच्छेदी
कार्षापणशतम् । तृणच्छेद्येकम् । सर्वे च
तत्स्वामिनां तदुत्पत्तिम् ।

(१) सर्वे फलोपभोगद्रुमच्छेदकादयः, तत्स्वामिनां
छिन्नद्रुमादिस्वामिनां, तदुत्पत्तिं फलोपभोगद्रुमाद्युत्पत्तिं
युनः प्ररोपितद्रुमादिभोगकालपर्यन्तं दाप्या इति शेषः ।
स्मृच. ३३०

(२) दद्युरिति शेषः । विर. २८६

(३) इहास्वामिकेषु वृक्षलतादिषु स्वयं परद्वारा वा
छिन्नेषु छेत्तुर्दण्डो विध्यतिक्रमात् तेषामपि वृथाच्छेदस्य
निषिद्धत्वात् । 'फलपुष्पोपयोगान् पादपान्न हिंस्यात्'
इत्यादिवसिष्ठादिवचनदर्शनात् । 'फलदानां तु वृक्षाणां
छेदने जप्यमृकशतम् । गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां
च वीरुधाम् ॥' इत्यादिप्रायश्चित्तोपदेशाच्च । स च
दण्डः प्रकीर्णकप्रकरणे विस्तरेण वक्ष्यते । सस्वामिकेषु
तु तत्स्वामिने तत्प्रतिनिधितन्मूल्ययोरेकतरदानमपीति
विशेषः । दवि. २३०

(४) फलैरुपगम्यन्त इति फलोपगमाः । फलोप-
कारिणः पनसाम्रादयः । पुष्पैरुपगम्यन्त इति पुष्पोप-
गमाः । पुष्पोपकारिणश्चम्पकादयः । वै.

पञ्चा (च पञ्चा) पक्षि गान् (पक्षिमत्स्यघाती च दश
कार्षापणम्) (कीटो णम्०) ; व्यनि. ४९६ आर
(अर) पञ्चा ... गान् (कार्षापणपञ्चाशतम्) कीटो (कीटो) ;
दवि. २२२ आर (अर) ; व्यप्र. ३७७ व्यकनत् ; व्यउ. ११६
व्यकनत् ; बाल. २।२२९ ; सेतु. २२४ दविवत्.

(१) विस्मृ. ५।५५-९ भोग (गम) ; अप. २।२२९
साहसम्+(दण्डः) पुष्पो द्रुम (पुष्पोपभोग) ; व्यक.
१०८ भोग (ग) ; स्मृच. ३३० पुष्पो ध्यमम् (पुष्पो-
पभोगच्छेदी मध्यमसाहसम्) चैकम्+(च.) ; मसु. ८।२८५
तूत्तम (तूत्तम) चैकम्+(कार्षापणं च) (सर्वे त्तिम्०) ;
विह. २८५ भोग (ग) ध्यमम् (ध्यमसाहसम्) ; पमा. ४२६

शङ्खलिखितौ

प्रहारोद्यमने निपातने च दण्डः

प्रहारोद्यमे षट्पञ्चाशन्निपातने तद्विगुणम् ।

प्रन्हियतेऽनेनेति प्रहारोऽश्मदण्डादिः, षट्पञ्चाशत्
पडधिकपञ्चाशत्, इदं चोत्तमवर्णेनाधमवर्णस्य दण्डो-
द्यमने बोद्धव्यम् । * विर. २६३

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

दण्डपारुष्यम्

दण्डपारुष्यम् । दण्डपारुष्यं स्पर्शनमवगूर्णं
प्रहतमिति ।

नाभेरधःकायं हस्तपङ्कभस्मपांसुभिरिति स्पृशत-
स्त्रिपणो दण्डः । तैरेवामेधैः पादष्ठीविकाभ्यां
च षट्पणः । छर्दिमूत्रपुरीषादिभिर्द्वादशपणः ।
नाभेरुपरि द्विगुणाः । शिरसि चतुर्गुणाः समेषु ।
विशिष्टेषु द्विगुणाः । हीनेषु अर्धदण्डाः ।
परस्त्रीषु द्विगुणाः । प्रमादमदमोहादिभिरर्ध-
दण्डाः ।

पादवस्त्रहस्तकेशावलम्बनेषु षट्पणोत्तरा दण्डाः ।
पीडनावेष्टनाञ्जनप्रकर्षणाध्यासनेषु पूर्वः साहस-
दण्डः । पातयित्वाऽपक्रमतोऽर्धदण्डाः ।

* दवि. विरवत् ।

तूत्तम (तूत्तमं) ध्यमम्+(साहसम्) ; रत्न. १२३ फलोप
(फल) ध्यमम् (ध्यमसाहसम्) ; विचि. १२३ भोग (ग)
चैकम्+(कार्षापणम्) ; दवि. २३० (फलोपगद्रुमच्छेदी
तूत्तमसाहसम्) यत्तावदेव : ३२४ विरवत् ; मच. ८।२८५
च्छेदी तू (च्छेत्ता तू) चैकम्+(पणम्) (सर्वे त्तिम्०) ;
व्यप्र. ३७६ पुष्पो मम् (पुष्पोपभोगच्छेदी मध्यमसाह-
सम्) सर्वे च (सर्वे) ; व्यउ. ११६ चैकम् (चर्धकम्) शेषं
व्यप्रवत् ; विता. ७४५ भोग (भोग्य) पुष्पोपभोगद्रुम
(पुष्पोपभोग्य) सर्वे च (सर्वे) ; सेतु. २९४ तू (उ) सर्वे च
(सर्वे) ; ससु. १६३ पुष्पो मम् (पुष्पोपभोगच्छेदी
मध्यमसाहसम्) .

(१) व्यक. १०५ षट् णम् (षट्कं च संनिपाते
तु दिमाषकः) ; विर. २६३ ; दवि. २५१ ; सेतु. २१७-
तद्वि. (द्वि.) .

(२) कौ. ३।१९.

महाजनस्येति । जनसमूहस्य, एकं जनं, घृतः, प्रत्येकं द्विगुणो दण्डः एकस्यैकं घृतो यो दण्डस्तद्विगुणो दण्डः । कौ.

पर्युषितः कलहोऽनुप्रवेशो वा नाभियोज्य इत्याचार्याः ।

नास्त्यपकारिणो मोक्ष इति कौटल्यः ।

कलहे पूर्वागतो जयति, अक्षममाणो हि प्रधावति । इत्याचार्याः । नेति कौटल्यः । पूर्वं पश्चाद् वागतस्य साक्षिणः प्रमाणम् । असाक्षिके घातः कलहोपलिङ्गनं वा ।

घाताभियोगमप्रतिब्रुवतस्तदहरेव पश्चात्कारः ।

कलहे द्रव्यमपहरतो दशपणो दण्डः ।

क्षुद्रकद्रव्यहिंसायां तच्च तावच्च दण्डः ।

स्थूलकद्रव्यहिंसायां तच्च द्विगुणश्च दण्डः ।

वस्त्राभरणहिरण्यसुवर्णभाण्डहिंसायां तच्च पूर्वश्च साहसदण्डः ।

परकुञ्चमभिघातेन क्षोभयतस्त्रिपणो दण्डः । छेदनभेदने षट्पणः । पातनभङ्गने द्वादशपणः प्रतीकारश्च ।

दुःखोत्पादनं द्रव्यमन्यवेश्मनि प्रक्षिपतो द्वादशपणो दण्डः । प्राणाबाधिकं पूर्वं साहसदण्डः ।

क्षुद्रपशूनां काष्ठादिभिर्दुःखोत्पादने पणो द्विपणो वा दण्डः । शोणितोत्पादने द्विगुणः ।

महापशूनामेतेष्वेव स्थानेषु द्विगुणो दण्डः, समुत्थानव्ययश्च ।

पुरोपवनवनस्पतीनां पुष्पफलच्छायावतां प्ररोहच्छेदने षट्पणः । क्षुद्रशाखाच्छेदने द्वादशपणः । पीनशाखाच्छेदने चतुर्विंशतिपणः । स्कन्धवधे पूर्वं साहसदण्डः । समुच्छितौ मध्यमः ।

पुष्पफलच्छायावद्गुल्मलतास्वर्धदण्डः । पुण्यस्थानतपोवनश्मशानद्रुमेषु च ।

सीमवृक्षेषु चैलेषु द्रुमेष्वालक्षितेषु च ।

त एव द्विगुणा दण्डाः कर्त्या राजवनेषु च ॥

पर्युषित इति । चिरातीतः, कलहः, अनुप्रवेशो वा

(१) कौ. ३।१९.

द्वुतद्रव्यायत्तीकरणं वा, नाभियोज्यः अभियोक्तुमर्हो न भवति । इत्याचार्याः ।

कलहानुप्रवेशालक्षणापराधकारिणः अपराधः पर्युषित इत्येतावता मोक्षणं न भवति, किन्तु चिरादपि सोऽभियोज्य एवेत्येवं स्वमतमाह—नास्त्यपकारिण इत्यादि ।

कलह इति । कलहे, पूर्वागतः पूर्वावेदकः, जयति । कुतः हि यतः, अक्षममाणः प्रधावति परकृतमावाधमसहमानो धर्मस्थायावेदयितुं त्वरितः पूर्वं गच्छति, अर्थात् पश्चादागतः पराजयते । इत्याचार्याः ।

नेति कौटल्य इति । पूर्वागमनं पश्चादागमनं वा यद्यकिञ्चित्करं, किं तर्हि तत्त्वनिर्णयसाधनमित्याकाङ्क्षायामाह—पूर्वं पश्चाद्वेत्यादि । असाक्षिके घातः कलहोपलिङ्गनं वेति । साक्ष्यभावे घातदर्शनेन तत्त्वनिर्णयः घातादर्शने लिङ्गैः कलहस्याभ्युहनम् ।

घाताभियोगमिति । घातविषयमभियोगं, तदहरेव तस्मिन्नेव दिने, अप्रतिब्रुवतः, पश्चात्कारः पराजयः ।

कलह इत्यादि । कलहायमानयोर्द्वयोर्द्रव्यमपहरतोऽन्यस्य दशपणो दण्डः । अपहृतद्रव्यप्रत्यानयनं तु सिद्धमेव । इह 'द्विशतपणो दण्डः' इति तु भाषानुसारेण पाठोऽनुमेयः ।

क्षुद्रकेत्यादि । क्षुद्रकद्रव्यहिंसायां क्षुद्रकद्रव्याणां पुष्पफलादीनां हिंसायां कलहकारिभिरुपहनने, तच्च हिंसितं क्षुद्रद्रव्यं च स्वामिने देयमिति शेषः । तावच्च तत्परिमाणं द्रव्यं च दण्डो भवति ।

स्थूलकेत्यादि । कालायसादिस्थूलकद्रव्यहिंसायां, तच्च, द्विगुणः तद्द्रव्यद्विगुणो दण्डश्च ।

वस्त्राभरणेत्यादि शोणितोत्पादने द्विगुण इत्येतदन्तं सुबोधम् । 'पातनभङ्गने द्वादशपणः' इति क्वचिन्न पठ्यते ।

महापशूनामिति । गवादीनां, एतेष्वेव स्थानेषु दुःखोत्पादनादिषु क्षुद्रपशूकेषु, विषयेषु, द्विगुणो दण्डः । समुत्थानव्ययश्च तत्त्वस्वीकरणार्थो व्ययश्च देयः ।

पुरोपवनेत्यादि । प्ररोहच्छेदने पल्लवच्छेदने, स्कन्धवधे प्रघाणभङ्गने । समुच्छितौ उन्मूलने । शेषं स्पष्टम् ।

पुष्पफलच्छायावद्गुल्मलतास्विति । .पुष्पादिमत्सु

स्तम्बेषु बह्वीषु च विषये प्ररोहच्छेदनादौ, अर्धदण्डः वनस्पत्युक्तदण्डस्यार्धम् । पुण्यस्थानतपोवनश्मशानद्रुमेषु च, अर्धदण्ड इति संबध्यते ।

सीमवृक्षेष्वित्यादिरध्यायान्तश्लोकः सुबोधः । कौ.

मनुः

शूद्रकृतेषु त्रैवर्णिकविषयकदण्डपारुष्येषु दण्डविधिः ।

आर्यसाम्यप्रेम्नुशूद्रस्य दण्डः ।

एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥

(१) दण्डपारुष्यं दण्डेन दुःखोत्पादनं, यथा कण्टकादेः परुषस्य स्पर्शः पीडाकर एवं पीडाकरत्व-सामान्यात् पारुष्यशब्दप्रयोगः । तत्र निर्णयो दण्ड-विशेषनिर्णयः । पूर्वप्रकरणोपसंहारापरोपन्यासार्थः श्लोकः ।
मेधा.

(२) एषोऽनन्तरो वाक्संबन्धिनः पारुष्यस्य दण्ड-प्रकारो यः प्रागुक्तोऽस्मादनन्तरं हस्तकाष्ठशस्त्रादि-संबन्धिनः पारुष्यस्य दुःखोत्पादनहेतोः ताडनहिंसना-दर्दण्डनिर्णयं वक्ष्यामि । *गोरा.

(३) तत्त्वतो धर्मतः । मवि.

(४) दण्डपारुष्यस्य प्रतिव्यक्ति दण्डनिर्णयं अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामीत्यर्थः । दण्डपारुष्यव्यक्तयस्तु दिङ्मात्रतः परिशिष्टकारेण प्रदर्शिताः— 'दुःखं रक्तं व्रणं भङ्गं छेदनं भेदनं तथा । कुर्याद्यः प्राणिनां तद्धि दण्डपारुष्य-मुच्यते ॥'
स्मृच. ३२७

येन केनचिदङ्घ्रिणेन हिंस्याच्छ्रेयांसमन्त्यजः ।

छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥

(१) अन्त्यजः शूद्रश्चण्डालपर्यन्तः । श्रेष्ठः त्रैवर्णिकः ।

* मसु., मच. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।२७८; स्मृच. ३२७; विर. २५९; सवि. ४८० तत्त्व (सत्त्व); सेतु. २१४; समु. १६१.

(२) मस्मृ. ८।२७९ च्छ्रेयांस (च्छेच्छेष्ट) [च्छ्रेयांस-मन्त्यजः (च्छेदवकृष्टजः) Noted by Jha]; मेधा. ८।२९ उक्त.; मिता. २।२१५; अप. २।२१५; व्यक. १०५; गौमि. १।२।१. (येनाङ्घ्रिणावरो वर्णो ब्राह्मणस्याप-
१ पुरुष. २ हारोपन्या.

तं चेद्विंशत्यादङ्घ्रिणेन केनचित् साक्षाद्दण्डखड्गादिप्रहरण-व्यवधानेन वा तदङ्गमस्य छेत्तव्यम् । हिंसा च क्रोधेन प्रहरणं, ताडनेच्छया हस्ताद्युद्यम्य वेगेन निपातनं न मारणमेव । तत्तदिति वीप्सा अङ्गमिति छेत्तव्यमिति चैकत्वविवक्षा मा विज्ञायीति, तेनानेकेनाङ्घ्रिणेन प्रहरणेऽ-नेकस्यैव छेदः । अनुशासनमुपदेशः, मनुकृतैषा मर्यादा । अनुशासनग्रहणं कारुणिकस्य राज्ञः प्रवृत्त्यर्थम् । मेधा.

(२) अन्त्यजः शूद्रो येन केनचिद्वस्तपादादिना वा न साक्षाद्दण्डादिना व्यवहितेन वा द्विजमेव प्रहरेत्तत्त-देवाङ्गमस्य छेदनीयमित्येवं मनुसंबन्धी उपदेशः । मनुग्रहणमादरार्थं, अस्यैवोत्तरप्रपञ्चः । *गोरा.

(३) द्विजातिमात्रस्यापराधे शूद्रस्याङ्घ्रिच्छेदविधाना-द्वैश्यस्यापि क्षत्रियापकारिणोऽयमेव दण्डस्तुल्यन्यायत्वात् ।
Xमिता. २।२१५

(४) अत्र च श्रेयांसमिति वचनात् क्षत्रियवैश्य-पीडाकरमपि शूद्राङ्घ्रिं छेद्यम् । अप. २।२१५

(५) अथ दण्डपारुष्यमाह— येन केनचिदिति । श्रेयांसं स्वस्य पूर्ववर्णम् । अन्त्यजस्तस्मादपरवर्णः । नन्द.

(६) अन्त्यजः शूद्रः श्रेष्ठं विप्रं येन केनचित् अङ्घ्रिणेन हिंस्यात् करेण पादेन वा तत्तदेव अङ्गमस्य शूद्रस्य छेत्तव्यं, तन्मनोरनुशासनम् । भाच.

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ।

पादेन प्रहरन् कोपात् पादच्छेदनमर्हति ॥

* मसु., स्मृच., विर., पमा., दवि., मच., व्यप्र. गोरावत् ।

X सवि. मितावत् ।

राष्ट्रयात् । तदङ्घ्रिं तस्य छेत्तव्यं तन्मनोरनुशासनम् ॥); उ. २।२७।१४ गौमिवत्; स्मृच. ३२८; विर. २६८; पमा. ४१७ च्छ्रेयांस (च्छेच्छेष्ट); रत्न. १२२; विचि. ११७; स्मृचि. २३ पमावत्; दवि. २५२; च्छप्र. २७३; सवि. ४८१ शृगुः; व्यप्र. ३७४; व्यउ. ११४; व्यसु. १००; विता. ७३७; सेतु. २१७, २२०; समु. १६२.

(१) मस्मृ. ८।२८०; मिता. २।२१५; अप. २।२१५; व्यक. १०५ हरन् (हरेत्); स्मृच. ३२८; विर. ३६८; पमा. ४१८; रत्न. १२२ पू.; विचि. ११४, १ श्रापितेना. २ पदेशोपनुक्त. ३ त्थर्थः.

(१) उद्यम्य उत्क्षिप्यैव कोपात्ताडनेच्छोस्तदङ्गा(?)
मनिपातर्यतोऽप्यस्य पाणिच्छेत्तव्यः । दण्डग्रहणं समान-
पीडाकरस्य हिंसासाधनस्योपलक्षणार्थम् । तेन मृदु-
शिफादावन्यो दण्डः । पादेन प्रहरन्निति । अत्राप्युद्यम्ये-
त्यपेक्षितव्यम् । अवगुरतोऽप्येष एव । मेधा.

(२) हस्तं दण्डं वाऽवगूर्य हस्तच्छेदनयोग्यो भवति ।
पादेन क्रोधेन प्रहरन् पादच्छेदनाहो भवति । +गोरा.

(३) उद्यममात्रे त्वाह— पाणिमिति । प्रहरन्
प्रहारार्थमुद्यमं कुर्वन् प्रहरंश्च । मवि.

(४) येनकेनचिदङ्गेनेति सामान्योक्तिं स्वयमेव
मनुर्विशेषनिष्ठां कर्तुमाह— पाणिमिति । पाणिं दण्डं
बोद्धम्येत्यत्र प्रहरन्नित्यनुषज्यते । स्मृच. ३२८-९

(५) येनेत्यस्य विवरणं पाणिमिति पञ्चभिः । दण्डः
लगुडादिः । अस्थिभेदनपर्यन्तं कोपादित्यनुवर्तते, तद-
भावे वाग्दण्डादिः । मच.

(६) उक्तमर्थं चतुर्भिः श्लोकैः प्रपञ्चयति । पाणि-
मुद्यम्येति । पादेन प्रहरन् पादप्रहारहेतोः पादमुद्यम्ये-
त्यर्थः । नन्द.

(७) पाणिं हस्तं वा उद्यम्य हिंस्यात्तर्हि पाणि-
च्छेदनं अर्हति । भाच.

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ।

कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वाऽस्यावकर्तयेत् ॥

+ मसु. गोरावत् ।

११७; स्मृचि. २३; दवि. २५५; सवि. ४८२ उत्तरार्धं
तु यमस्य; वीमि. २।२२९; व्यप्र. ३७४; व्यउ. ११४
पू.; व्यम. १०० पू.; विता. ७३७ पू.; सेतु. २१७ वा
(तु); ससु. १६२; विव्य. ५०.

(१) मस्मृ. ८।२८१; अप. २।२१५ पकृ (वकृ) स्फिचं
(स्फिचौ) स्याव (प्यस्य); व्यक. १०५ पकृ (वकृ) मनु-
नारदौ; गौमि. १२।५ कृष्टजः (कृष्टकः) चं वाऽस्याव (जौ
वाऽप्यस्य); विर. २६८ स्याव (स्य प्र) मनुनारदौ; पमां.
४१९; विचि. ११४ : ११७-८ पकृ (वकृ); व्यनि.
४९३ स्याव कर्त (स्यं निहन्त) मनुनारदौ; स्मृचि. २३
पकृ (वकृ) स्फिचं (स्फिचं); दवि. ३२१ वाऽस्या.... येत्
(चंस्यावकर्तयेत्) धर्मकोषे तु 'मेहं वाऽप्यस्य कर्तयेदिति'
पठितं श्लुक्तं, मनुनारदौ; वीमि. २।२२९ पकृ (वकृ); ससु.
१ यतोऽस्य.

(१) उत्कृष्टो ब्राह्मणो जातितो दौःशील्यादवकृष्टोऽपि,
इतरे वर्णा औत्तराधयेण परस्परपेक्षयोत्कृष्टाश्चावकृष्टाश्च,
तत्रेहावकृष्टज इति जनिना जन्मावकर्ष उपात्तः, तत्सं-
निधानादुत्कर्षोऽपि जन्मनैव । जन्मना च निरपेक्षो-
त्कर्षो ब्राह्मणस्य नापकर्षः । तेन शूद्रस्यायं ब्राह्मणेन
सहैकमासनमारूढवतो दण्डः । कटिः श्रोणी, तत्र कृत-
चिह्नः । अङ्गविधौ न सुधाकुङ्कुमादिना चिह्नकरण-
मात्रमपि । अयं तु दण्डख्यापनार्थम् । अतिक्रमाद्विभि-
युरिति । तेन देशान्तरे यदनपायि तच्चिह्नमायसो लेखना-
दुपदिश्यते । तथा च वक्ष्यति 'उद्वेजनकरैर्दण्डैश्चिह्नयित्वे'-
ति (मस्मृ. ८।३५२) । राष्ट्रञ्च निष्कास्यः । स्फिक्
श्रोण्येकदेशः । सव्यो दक्षिणश्च । तं चावकर्तयेत् चिह्नेन ।
विकल्पविधानात्तावन्मात्रच्छेदो न सर्वस्य स्फिजः । अभि-
प्रेप्सुरिति च नेच्छामात्रेण । किं तर्हि । प्राप्तवत् एव ।
इच्छाया शक्यापह्नवत्वाद्दण्डस्य च महत्वात् । * मेधा.

(२) ब्राह्मणेन सहैकस्मिन्नासने निकृष्टजन्मा शूद्र
उपविशन् कट्यां कृततप्तायःस्थिरचिह्नो देशान्निर्वास-
नीयः । स्फिजाख्यं वा श्रोण्यधः कर्तनं कुर्यात् । Xगोरा.

(३) उत्कृष्टस्योत्तमजातेः । अपकृष्टः क्षत्रियादिः ।
कट्यामिति क्षत्रविशोः । शूद्रस्य च तदुभयस्य सहा-
सनेच्छायाम् । स्फिचमिति शूद्रस्य ब्राह्मणसहासने-
च्छायाम् । मवि.

(४) ब्राह्मणेन सहासनोपविष्टः शूद्रः कट्यां तप्त-
लोहकृतचिह्नोऽपदेशो निर्वासनीयः, स्फिचं वाऽस्य यथा
न म्रियेत तथा छेदयेत् । +मसु.

(५) गुणदोषवाद्विकल्पः । नन्द.

अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वाबोष्ठी छेदयेन्नृपः ।

अवमूत्रयतो मेढ्रमवशार्थयतो गुदम् ॥

* विर. मेधावत् । दण्डविवेके मन्वर्थविवृतिविवादरत्ना-
करयोरुद्धारः ।

X भाच. गोरावत् । + मच. मसुवत् ।

१६२-३ स्फिचं वाऽस्याव (स्फिचौ वास्य नि); विव्य. ५०
पकृ (वकृ).

(१) मस्मृ. ८।२८२ [मेहं (शिश्रं) Noted by
Jha]; अपु. २२७।३० अवमू (अपमू) मवशर्थ
(मपशब्द); सिता. २।२१५; अप. २।२१५; व्यक. १०५

(१) मूत्रेणावसिञ्चतोऽभिमुखं वा तदवमानार्थं क्षिपतोऽसत्यपि संस्पर्शोऽवमानयते मूत्रेणेति, निष्कर्तव्यः, समानफलत्वाद्भेदस्यापि दण्डोऽयम् । निष्ठीवनं नासिका-स्यश्रावः, तस्य प्राणेन क्षेपे नासापुटच्छेदः 'येनाङ्गेन' इत्युक्तत्वात् । शर्धनं कुत्सितो गुदशब्दः । दर्पान्न प्रमादात् । मेधा.

(२) निष्ठीवनेन श्लेष्मणा अमर्षेण श्लेष्माणं वमयन् शूद्रस्य द्वावप्योष्ठौ छेदयेत्, एवं मूत्रेणावमानयतो लिङ्गं, अधमाङ्गध्वनिना अवमानयतः पायुं छेदयेत् । गोरा.

(३) अवनिष्ठीवतः उत्तमस्योपरि निष्ठीवतः । एव-मवमूत्रणमुपरि मूत्रणम् । अवशर्धनं कुत्सितगुदशब्द-करणं तदुपरि । *मवि.

(४) कोपाद्दर्पादिति च^१ वदन् मोहप्रमादादिना प्रहारावनिष्ठीवनादिकं कुर्वन् न दण्ड्य इति दर्शयति । स्मृच. ३२९

(५) दर्पेण श्लेष्मणा ब्राह्मणानपमानयतः शूद्रस्य राजा द्वावोष्ठौ छेदयेत् । मूत्रप्रक्षेपेणापमानयतो मेढूम् । शर्धनं कुत्सितो गुदशब्दस्तेनावमानयतो दर्पान्न प्रमादा-द्गुदं छेदयेत् । ममु.

^१केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेद्विचारयन् ।

पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥

* विर. मविवत् ।

मनुनारदौ; स्मृच. ३२८; विर. २६८ मनुनारदौ; पमा. ४१८; विचि. ११४, ११८ निष्ठीवतो (ष्ठीवयतो); व्यनि. ४९३ मनुनारदौ; स्मृचि. २३; दवि. २५३ शर्धं (शब्द) मनुनारदौ; सवि. ४८२ शर्धं (मेह) यमः; वीमि. २।२२९ विचिवत्; व्यप्र. ३७४ मनुनारदौ; व्यड. ११५ ष्ठीवतो (ष्ठीवतो) मनुनारदौ; विता. ७३७; सेतु. २१७ शर्धं (शब्द); समु. १६२ शर्धं (शर्धं); विव्य. ५० मूत्र (मेह) शेषं विचिवत्.

(१) मस्मृ. ८।२८३ [हस्तौ (हस्तं) दाढिकायां (नासिकायां) Noted by Jha]; अप. २।२१५ यां च (यां तु) षु च (षु तु); व्यक. १०५ मनुनारदौ; स्मृच. ३२९ दविचा (दवचा); विर. २६८ मनुनारदौ; पमा. ४१९; विचि. ११४, ११८; व्यनि. ४९३ दाढि-

(१) दर्पादित्यनुवर्तते । परिभवबुद्ध्या केशेषु ब्राह्मणं गृह्णतः शूद्रस्य हस्तौ छेदयेत् । द्विवचनमेकेनापि द्वाभ्यां तुल्यपीडाकरणे उभयच्छेदो नैकस्यैव । दाढिका इमश्रु । अन्यदपि यदङ्गं गृह्यमाणं ग्रीवादितुल्यपीडाकरं तत्र सर्वथाऽप्ययमेव दण्डः । अविचारयन् पीडा कियत्यस्य गृहीतस्य संजाता महती स्वल्पा वेति । एतदनुबन्धश्लोकप्राप्तं विचारणं निवार्यते । ग्रहणमात्रे दण्डः । *मेधा.

(२) केशपादश्मश्रुग्रीवावृषणानां चान्यतमस्मात् ब्राह्मणं शूद्रस्य हस्ताभ्यामाकर्षयतो हस्तौ अविलम्बमानो राजा छेदयेत् । गोरा.

(३) वृषणेषु वृषणादिष्वित्यर्थः । नान्यथा बहु-वचनोपपत्तिः । अप. २।२१५

(४) केशेष्वेकेन हस्तेन गृह्णतोऽप्युभयहस्तच्छेदन-विधिः द्विवचनात् गम्यते । दाढिका पुरुषस्य प्रधानं लिङ्गमुच्यते । स्मृच. ३२९

(५) दर्पादित्यनुवर्तते । अहङ्कारेण केशेषु ब्राह्मणं गृह्णतः शूद्रस्य पीडाऽस्य जाता न जाता वेत्यविचारयन् हस्तौ छेदयेत् । पादयोः श्मश्रुणि च ग्रीवायां वृषणे च हिंसार्थं गृह्णतो हस्तद्वयच्छेदमेव कुर्यात् । +ममु.

(६) पादयोरित्यादिषु गृह्णत इत्येव । नन्द.

सर्वणविषयकदण्डपारुष्ये दण्डविधिः

त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ।

मांसभेत्ता तु षण्णिष्कान् प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥

* मवि. मेधावद्भावः । + मच. ममुवत् ।

कायां (नासिकायां) षु च (तथा) मनुनारदौ; स्मृचि. २३; दवि. २५४ मनुनारदौ; सवि. ४८२ पू., यमः; वीमि. २।२२९; व्यप्र. ३७४ मनुनारदौ; व्यड. ११५ मनुनारदौ; सेतु. २१७; समु. १६२; विव्य. ५०.

(१) मस्मृ. ८।२८३ [म्नेत्रा (भेदी, भेदे) Noted by Jha]; मिता. २।२१८ तु (च); अप. २।२१८; व्यक. १०५; स्मृच. ३२८; विर. २६४ च दर्शकः (प्रवर्तकः); पमा. ४१५ भेत्ता तु षण्णि (च्छेदे शतं नि); रत्न. १२२; विचि. ११५; व्यनि. ४९१; स्मृचि. २३; दवि. २५३ च द. (प्रद); सवि. ४८० भेद (च्छेद)

१ कर उम.

(१) द्विजातीनामयं परस्परापराधे, शूद्रस्य तु शूद्रापराधे मन्यते । यः केवलामेव त्वचं भिन्द्यात् विदारयेत् न लोहितं दर्शयेत् तस्य शतं दण्डः । तावदेव लोहितदर्शने । यद्यपि त्वग्भेदमन्तरेण न लोहितं दृश्यते तथाप्यधिकापराधाधिकदण्डे प्राप्ते शतवचनं नियमार्थम् । अन्ये तु कर्णनासिकादेरपि खवति शोणितं बहिस्त्वग्भेदेऽपि तदर्थमुच्यते इत्याहुस्तदयुक्तम् । अन्तर्भेदे हि महत्त्वात् महादण्डो युक्तस्तस्माद्यत्रेपत्त्ववति शोणितं तत्र शतं शिरोभेदे तु मासवत् । निष्कशब्दः सुवर्णपरिमाणवाचीत्युक्तम् । प्रवास्योऽस्त्रां भेदकस्तत्प्रयोजक इति । वज्रन्तेन समासं कृत्वा तं करोतीति पठितव्यः, अस्थिभेदकृदिति । प्रवासनमर्थशास्त्रप्रवृत्त्या मारणं निर्वासनं वा । दण्डविधौ ह्यर्थशास्त्रश्रवणं दृश्यते । तथाहि दशबन्धमिति ब्राह्मणस्य औशनस्ये च प्रयोगः । निर्वासनं ब्राह्मणस्य नान्येषाम् । मेधा.

(२) चर्ममात्रभेदकृत् समानजातिः, न तु शूद्रो ब्राह्मणस्य, दण्डलाघवात् पणशतं दण्डनीयः । तथा रुधिरोत्पादी शतमेव दण्ड्यः । मांसभेदकृत् षण्णिकान् दण्ड्यः । अस्थिभेदी देशान्निर्वास्यः । *गोरा.

(३) निबन्धातिशये सति लोहितदर्शकस्य शतमन्यथा चतुःषष्टिः । अप. २।२१८

(४) त्वग्भेदक इत्यादि समावकृष्टविषयापराधकरणे । शतं पणान् । षण्णिकान् दीनारान् । प्रवास्यो देशान्निर्वास्यो गृहीतसर्वस्वः । अस्थिभेदकोऽस्थिमङ्गप्रहारकृत् । मवि.

(५) मांसभेत्ता व्रणकर्ता । स्मृ. ३२८

(६) अत्र 'सह शोणितेने'त्यनेन विष्णुना शोणितेन चतुःषष्टिपणदण्डाभिधानादधिकत्वग्भेदादिप्रयुक्तशोणिते इदं बोद्धव्यम् । विर. २६४

(७) निष्कोऽत्र राजतो विशेषणाभावात् आनु-

* मसु., मच., माच. गोरावत् ।

च दर्शकः (तदर्शकः) भेत्ता (च्छेत्ता); वीसि. २।२२० मित्तावत्; व्यप्र. ३७२; व्यउ. ११३ मित्तावत्; विता. ७३८ मित्तावत्; सेतु. २१८; समु. १६२; विव्य. ५० भेत्ता तु (स्व भेत्ता).

रूप्याच्च ।

+दवि. २५६

वनस्पतिच्छेदने दण्डविधिः

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगो यथायथा ।

तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ॥

(१) वनस्पतिग्रहणं सर्वस्थावरप्रदर्शनार्थम् । फलपुष्पत्रच्छायादिना महोपभोग्यस्य वृक्षस्य हिंसायां विनाशो दमः दण्ड उत्तमसाहसः । स मध्यमस्य मध्यमो निकृष्टस्य प्रथमस्तथा स्थानविशेषो द्रष्टव्यः, पत्रच्छेदः फलच्छेदः शाखाच्छेद इति । फलानामपि विशेषो महार्थता दुष्प्रापता, तथा स्थानविशेषोऽपि द्रष्टव्यः । सीम्नि चतुष्पथे तपोवन इति । ×मेधा.

(२) वनस्पतिवृक्षाणां सर्वेषां येन येन प्रकारेण उपभोगः छायादानात्मकेन निकृष्टः कुसुमदानरूपेण मध्यमः फलदानात्मकेन उत्कृष्टः तदपेक्षया छेदने दण्डः कार्यः । छायामात्रोपभोगिनि वटादौ स्वल्पो दण्डः, पुष्पोपभोगिनि मल्लिकादौ मध्यमः, फलोपभोगिन्याम्रादौ उत्कृष्टः । *गोरा.

(३) वृकायदण्डप्रसङ्गेन स्थावरस्यापि । 'योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः स्थाणुमन्ये नु संयन्ती'ति श्रुतेः, 'तस्मात्प्रयन्ति पादपाः' इति स्मृतेः, तेषां कायाभिमानित्वेन हिंस्यत्वात्तत्कर्तुः प्रथमसाहसादिदण्डो ज्ञेय इत्याह — वनस्पतीनामिति । तथाच विष्णुः— 'फलोपभोगद्रुमच्छेत्ता तत्तमसाहसं पुष्पोपभोगच्छेदी कार्षापणशतं तृणच्छेद्येकपणम्' इति । छेद्यत्र हिंसकः । धारणा शास्त्रमर्यादा । मच.

+ शेषव्याख्याने सर्वज्ञानारायणकुल्लूकभट्टयोरुद्धारः ।

× विर., दवि., व्यप्र. मेधावत् ।

* मवि., मसु., नन्द., भाच. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।२८५ क., ख., भोगो (भोगं); अप. २।२२९; व्यक. १०८; विर. २८४ काल्यायनः; पमा. ४२५; रत्न. १२३; विचि. १२२; दवि. ३८ षामुपभोगो (षां विनियोगो) काल्यायनः : २२९ भोगो (योगो) : ३२३ काल्यायनः; सवि. ४८४ भोगो यथायथा (भोगे यथातथम्) मिति धारणा (मविचारणे); व्यप्र. ३७६; व्यउ. ११६; व्यम. १००; विता. ७४४; समु. १६३.

१ नाशमाह दण्ड.

प्राणिपीडने दण्डविधिः

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ।

यथायथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा ॥

(१) यदुक्तं त्वग्भेदक इति तस्य विशेषोऽयम् ।

असति मनुष्यग्रहणे प्राणिमात्रहिंसाविषयत्वेऽस्य श्लोकस्य महापशूनां क्षुद्राणां च पशुपक्षिमृगाणां तुल्यदण्डता मा भूदिति तदर्थमिदम् । यथायथा महद्दुःखमिति । स्वल्पे भेदने शोणिते च प्राणिनां महत्त्वादल्पत्वं प्रहारस्य शतादूनोऽपि दण्डः, महति शतादभ्यधिकोऽपि । अन्ये तु महद्ग्रहणं महति दुःखे दण्डवृद्धयर्थं, नाल्पेऽपचयार्थं, यथाश्रुतमेव । तत्र दुःखाय प्रहृते दुःखोत्पत्त्यर्थं प्रहारे । प्रमादे तु न वृद्धिः । 'अनुबन्धं परिज्ञाय' इति अस्यैव श्लोकद्वयमुदाहरणं भङ्ग्या व्याख्येयम् । मेघा.

(२) मनुष्याणां पशूनां च पीडोत्पादनार्थं प्रहारे दत्ते सति यथायथा महती पीडा त्वग्भेदादावपि मर्मभेदानादिना भवति तथातथा त्वग्भेदकरो शतं दण्ड्य इत्येवमादितोऽधिकमपि दण्डं कुर्यात् । * गोरा.

(३) दुःखाय न मरणाय । मवि.

(४) मनुष्याणां पशूनां पीडोत्पादनार्थं प्रहारे कृते सति यथायथा पीडाधिक्यं तथातथा दण्डमप्यधिकं कुर्यात् । एवं च मर्मस्थानादौ त्वग्भेदानादिषु कृतेषु 'त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यः' इत्युक्तादप्यधिको दण्डो दुःखविशेषापेक्षया कर्तव्यः । ममु.

(५) दुःखाय दुःखोदयमभिसंधाय, तेन प्रमादकृते, बलादिकृते च न दोष इति दर्शितम् । Xविर. २६६

* ममु., मच., नन्द. गोरावत् ।

X दवि. विरवत् ।

(१) मस्मृ. ८।२८६ [महद्दुःखं (भवेद्दुःखं) Noted by Jha]; व्यक. १०५ हते (हते); स्मृच. ३२८; विर. २६६ हते (कृते); पमा. ४१७ हते (हते) महद्दुःखं (भवेद्दुःखं) काल्यायनः; विचि. ११६-७; व्यनि. ४९२; स्मृचि. २४; दवि. २५८ विरवत्; सवि. ४८३ (=); च्यप्र. ३७३ व्यकवत्, काल्यायनः; व्यउ. ११४ काल्यायनः; सेतु. २२०; समु. १६२ हते (सते) काल्यायनः.

१ हणात् म. २ दस्तु.

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ।

समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥

(१) अङ्गानामवपीडना दृढरज्ज्वादिग्रहणसंधिविश्लेषणादिना, तत्र यावता धनेन पथ्यभिषगौषधादिमूलेन प्रत्यापत्तिमायाति तावदेतौ पीडितस्य दाप्यः । एवं प्राणशोणितयोरवपीडनायामिति समस्तमपि योज्यम् । अथवा प्राणशोणितयोः समुत्थानव्ययं दाप्य इति संबन्धः, सामर्थ्यादपचितयोरिति लभ्यते । समुत्थानं प्रकृत्यापत्तिः । प्राणो बलम् । प्रहारेणास्वस्थस्य भोजनादृते कार्शाद्युत्पत्तौ बलमपचीयते । तत्राङ्गेऽनष्टे प्रत्यागते च यावद्बलमस्तावत्तदुपयोगे यत्किञ्चिद्घृतैलादि दापनीयः । एवं शोणिताद्युत्पत्तौ तद्दुर्बलीभूतस्य व्याध्यन्तरं वा प्राप्तस्याप्रकृतशरीरावस्थाप्राप्तेः समुत्थानव्ययं दाप्यः । न चेत्तद्युक्ताति तदा तच्च दण्डं च परिपिण्ड्य सर्वे राज्ञे दद्यात् । मेघा.

(२) अङ्गेनोदरवाहादीनां येन वस्त्रादिबन्धनादिना पीडनानि कृतानि, तथा प्राणस्य वायोर्धेन निरोधादिना पीडनानि कृतानि, रुधिरस्यापि येन दृढमुष्टिरज्ज्वाद्याकर्षणेन बहिःस्रवणवर्जितमपि पीडनं कृतं, स शरीरस्य प्राग्रूपापत्त्युत्पादकमौषधादिव्ययं तस्य राज्ञा दापनीयः आत्मीयश्च दण्डं, यदाऽसौ समुत्थानव्ययं न युक्ताति तदा तद्व्ययं दण्डं चोभयमपि दण्डार्थं राज्ञा दापनीयः । गोरा.

(३) अङ्गावपीडनमङ्गभङ्गः । व्रणो मांसभेदः । शोणितं त्वग्भेदेन रक्तोत्पादः । समुत्थानं संरोहणम् । तद्यावता भवति भग्नादीनां तावत् भग्नाङ्गादिभ्यो

(१) मस्मृ. ८।२८७ [समुत्थानव्ययं (संवर्धनव्ययं) Noted by Jha]; मेघा. व्रण (प्राण); गोरा. नायां (नानां) व्रण (प्राणे) सर्वं (ज्ञत); व्यक. १०६ व्रण (प्राण); मवि. प्राणपदं व्रणपदस्थाने क्वचित् पठ्यते; विर. २७० व्यकवत्; व्यनि. ४९४ नायां च (ने चास्य); स्मृचि. २४ व्यकवत्; दवि. २२० ज्ञाव (ज्ञानां) समुत्थानव्ययं (सर्वस्वं च व्ययं); मच. मेधावत्; बाल. २।२२२ ज्ञाव (ज्ञानां) व्रण (प्राण); समु. १६२ स्तथा (रपि) सर्वं (सर्वं).

१ ग्रहणसंबन्धि. २ दपीडि. ३ नानामि. ४ घुपपत्तौ.

दापनीयः । प्राणपदं ब्रणपदस्थाने क्वचित्पठ्यते, तत्र प्राणो बल तस्य समुत्थानं प्राणवस्थाप्राप्तिः । तथा सर्वे दण्डं प्रागुक्तं यथायोग्यं दण्ड्यः । वेति समुच्चये । *मवि.

(४) अङ्गानां करचरणादीनां ब्रणशोणितयोश्च पीडनायां सत्यां समुत्थानव्ययं यावता कालेन पूर्वावस्था-प्राप्तिः समुत्थानसंबन्धो भवति तावत्कालेन पथ्यौपधा-दिना यावान् व्ययो भवति तमसौ दापनीयः । अथ तं व्ययं पीडोन्वाडको न दातुमिच्छति, तदा यः समुत्थान-व्ययो यश्च दण्डस्तमेनं दण्डत्वेन राज्ञा दाप्यः । मसु.

(५) नेत्रामेव पीडाविशेषनिमित्तं दण्डविशेषमाह— अङ्गति । अङ्गानां करचरणादीनाम् । प्राणे निश्वासा-वरोधने कृते । समुत्थानव्ययं येन व्ययेनौपधादिना समुत्थानुमर्हति तं दातुं नेच्छति तावदेवासौ दाप्यः 'त्वग्भेदकः शतमित्यनेनोक्तं सर्वे तावदभावे सर्वस्वं देयमित्याह— सर्वेति । एतत्तु वधमुद्दिश्य पीडामात्र इति पूर्वस्माद्भेदः । मच.

(६) अङ्गावपीडनायां कृतायां ब्रणशोणितयोश्च कृतयोः समुत्थानं नामावृत्त्यावर्तितं तदर्थं व्ययं समुत्थान-व्ययमपीडिताय राज्ञा विचिकित्सादिहेतोर्दाप्यः, अपि च सर्वे दण्डम् । अथवैतस्मिन्निमित्ते यावद्राज्ञः प्रदेयं दण्डात्मकं द्रव्यं तावत्पीडितायापि पीडको दाप्यः । नन्द.

गृहोपकरणादिद्रव्यभाण्डपुष्पमूलफलादिनाशने
दण्डविधिः

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञे दाद्याच्च तत्समम् ॥

* दवि. मविवत् ।

(१) मसु. ८।२८८ [द्रव्याणि (द्रव्यादि) Noted by Jha]; अपु. २२७।३३-४ हिंस्याद्यो यस्य (यो हिंसेत्य) उत्तरार्धे (स तस्योत्पाद्यः तुष्टिं तु राज्ञे दद्यात्ततो दमम्); मिता. ३।२६४ द्रव्याणि... यस्य (यो यस्य हिंस्याद् द्रव्याणि); अष. २।२३०; व्यक. ११९ राज्ञे (राज्ञो); विर. ३५२; विचि. १५१; व्यनि. ५१८ राज्ञे (राज्ञो दण्डं च); स्मृचि. २४; दवि. २९५ हिंस्याद्यो (हिंसेद्यो); समु. १५८ दविवत्, क्रमेण यमः; विम. ५३.

(१) द्रव्याणि गृहोपकरणानि शूर्पोल्लवटस्थाली-पिठरादीनि अन्यानि वाऽनुक्तदण्डविशेषाणि तेषां हिंसा प्राग्रपनाशः सत्यपि कार्यक्षमत्वे । ज्ञानतोऽज्ञानत इति, प्रमादकृते बुद्धिपूर्वे चाविशेषेण हिंसा, तस्य द्रव्य-स्वामिनो जनयेत्परितोषं तद्रूपान्यदानेन मूल्येन प्रणयेन वा । राज्ञे तु द्रव्यमूल्यं द्रव्यं वा दद्यात् । अस्य क्वचिदपवादः 'चर्मचार्मिके'त्यादि । मेधा.

(२) चर्मचार्मिकादिवक्ष्यमाणानि कटकाङ्ग-दादीनि द्रव्याणि यस्य संबन्धीनि यो ह्येतात् प्रमादाद्वा नाशयेत्स तस्य प्रतिस्कारादिना तुष्टिमुत्पादयेत्, राज्ञे विनाशितद्रव्यसमानं दण्डं दद्यात् । *गोरा.

(३) हिंस्यात् विनाशमङ्गादिना । तुष्टिमुत्पादयेत् वाचाऽपि । तत्समं तन्मूल्येन तुल्यं दण्डम् । ज्ञानतोऽ-ज्ञानतस्त्वर्थमित्यर्थसिद्धत्वात्क्रोक्तम् । तुष्ट्युत्पादने तु न विशेष इति तदपेक्षया ज्ञानतोऽज्ञानत इत्युक्तम् । X मवि.

(४) द्रव्यनाशोऽपि हिंसाविशेषोऽतस्तत्रापि स्वामिनो मूल्यद्रव्यादिना तुष्टिं विदधदपि राजकीयदण्डमर्हती-त्याह— द्रव्याणीति । तुष्टिं प्रणिपातेन धनेन वा । राज्ञस्तु तत्समं नाशितद्रव्यमूल्यसमं दद्यात् । मच.

(५) द्रव्याणि वस्त्रादीनि, तुष्टिमुत्पादयेत्तदा द्रव्यदाना-दिना । तत्समं हिंसितद्रव्यसमं, अज्ञानतो हिंसायां तुष्टिः, ज्ञानतो हिंसायां तुष्टिः राज्ञे तत्समं द्रव्यदानं च । नन्द.

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च ।

मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥

(१) चर्मचार्मिकयोर्द्वन्द्वं कृत्वा भाण्डपदेन विशे-प्येण समासः । अथवा चार्मिकभाण्डयोर्विशेषणसमासं कृत्वा चर्मशब्देन द्वन्द्वः । चर्मविकाराचार्मिकाणि

* मसु. गोरावत् । X साच. मविवत् ।

(१) मसु. ८।२८९; अप. २।२३०; व्यक. ११९; विर. ३५२ लोष्ट (लोष्ट्); विचि. १५२ षु च (ऽपि च); व्यनि. ५१८; दवि. २९५ विरवत्; सेतु. २५४ येषु च (येऽपि च); ३०८-९ लेषु च (लेषु हँ); समु. १५८ काष्ठ (कांस्य) क्रमेण यमः.

१ द्रव्याणि गृहोपकरणान्यन्यानि वाऽनुक्तदण्डविशेषाणि शूर्पोल्लवटस्थालीपिठरादीनि. ३ चार्मिक.

भाण्डानि कटिसूत्रवरत्रादीनि, चर्माण्यविकृतानि गवा-
दीनाम् । अथवा चर्मभाण्डानि केवलचर्ममयानि, चर्मा-
वनद्धानि चार्मिकाणि । काष्ठमयभाण्डान्युल्लखलमुसल-
फलकादीनि । लोष्टो मृद्विकारः, पाषाणाकृतिः पिण्डी-
भूता मृत् तन्मयानि स्वल्पभाकाधानादीनि । तन्नाशने
मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डस्तुष्टयुत्पत्तिश्च स्वामिनः स्थितैव ।
मेघा.

(२) चर्मसु चर्मकाष्ठमृन्मयेषु भाण्डेषु पुष्पमूलफलेषु
च परकीयेषु च नाशितेषु तन्मूल्यात् पञ्चगुणो दण्डो
राज्ञो देयस्तुष्टयुत्पत्तिश्च स्वामिनः कार्या । *गोरा.

(३) चर्मादिभाण्डेषु नष्टेषु चर्मास्यायं चार्मिकः
मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः द्रव्यस्वामिने मूल्यं पञ्चगुणं
देयम् । भाच.

यानसंबन्धनिमित्तेषु प्राणिहिंसाद्रव्यनाशेषु स्वाम्या-
दीनां दण्डविचारः

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ।
दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥

(१) सत्यामपि हिंसायां क्वचिद्दोषो नास्तीत्येतदनेन
प्रकरणेन प्रदर्श्यते । यानं गन्व्यादि यदारुह्य यान्ति
पन्थानम् । तच्च गन्व्यादि बलीवर्दगर्दभमहिषादिवाह्यम् ।
त एव वा गर्दभादयः पृष्ठारोह्या यानानि । याता तदा-
रूढः सारथ्यादिः । यानस्वामी यस्य तत्स्वयानम् ।
तत्रैषां चक्रवेगादिभी रथ्याकर्षणयुक्तैर्वाश्वादिभिः कस्य-
चिद्द्रव्यस्य नाशो वा मरणं तत्र पशुस्वामिपालव्यतिक्रम-
न्याये प्राप्ते कदाचिद्यातुदोषः कदाचित्स्वामिनः कदा-
चिदुभयैः कदाचिन्न कस्यचिदपीति यो विशेषस्तत्र
नोक्त इहैवेष्यते स उच्यते । अतिवर्तनानि अतिक्रम्य
हिंसादण्डं वर्तन्ते । नात्र दण्डोऽस्ति । दण्डनिमित्तानि
न भवन्तीति यावत् । शेषे दण्डः, उक्तेभ्यो निमित्तेभ्यः ।
अन्यत्र तान्यपि वक्ष्यन्ते । मेघा.

* मवि., ममु., मच., नन्द. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।२९० [यातुश्च (गन्तुश्च) Noted
by Jha]; व्यक. १०८ यातुश्च (यन्तुश्च); मवि.
अभिवर्तनानीति क्वचित्पाठः; विर. २८०-८१ स्य चैव
यातुश्च (स्यैव हि यन्तुश्च); दवि. २२४ स्य चैव यातुश्च
(स्यैव हि जन्तोश्च); बाल. २।२९०; समु. १६३.

व्य. कां. २२७

(२) यानस्य गन्व्यादेर्यातुश्च सारथ्यादेः यानस्वामिनः
यत्संबन्धियानं तेषां छिन्ननासास्यत्वादीनि वक्ष्य-
माणानि निमित्तादीनि अतिवर्तनानि दण्डं चातिक्रम्य
वर्तन्ते । तेषु सत्सु यानेन प्राणिहिंसाद्रव्यविनाशयोरपि
कृतयोः सारथ्यादेः दण्डो न भवतीति मन्वाद्य आहुः ।
तन्निमित्तव्यतिरेकेषु पुनर्दण्डः क्रियते । * गोरा.

(३) यानस्य यद्यपि पशुवादेर्न दण्डस्तथापि शिविका-
वाहकमनुष्यादिरूपस्यास्तीति यानग्रहणम् । यातु-
र्यापयितुर्नेतुः सारथ्यादेः । यानस्वामिनोऽधिकृतस्य ।
वक्ष्यमाणान्यतिवर्तनानि दण्डातिवृत्तेर्दण्डातिभावस्था-
नानि । अभिवर्तनानीति क्वचित्पाठः । तत्र दण्डार्थं
निवर्तनं विरोधनं नास्तीत्यर्थः । मवि.

^१ छिन्ननस्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ।

अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥

^२ छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ।

आक्रन्दे चाऽप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥

(१) यत्र नास्ति दोषस्तानि तावदाह । नासायां भवं
नास्यं, 'शरीरावयवाद्यत्' (व्यास. ५। १। ६), नासिका-

* ममु., विर., मच., नन्द. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।२९१ नस्ये (नास्ये); मिता. २।२९९;
अप. २।२९८ अक्षभङ्गे (अक्षाभावे) चक्रभङ्गे (चक्राभावे);
व्यक. १०८ नस्ये भग्न (नासे भिन्न); स्मृच. ३२९ छिन्न
(छिन्ने) भग्नयुगे (युगे भग्ने); विर. २८१ नस्ये (नास्ये)
भग्न (भिन्न) च या (तु या); पमा. ४२१ मस्मृवत्;
दवि. २२४ भग्न (भिन्न); सवि. ४८४ स्मृचवत्; व्यप्र.
३७५ स्मृचवत्; व्यउ. ११५ छिन्न (छिन्ने) भग्नयुगे (युगे
भिन्ने); विता. ७६३ यानस्य (युग्मस्य); सेतु. २२५
नस्ये भग्न (नास्ये भिन्न); समु. १६३ स्मृचवत्.

(२) मस्मृ. ८।२९२; मिता. २।२९९ योक्त्र (योक्त्)
चाऽप्य (सत्य); अप. २।२९८ योक्त्र (योक्त्); व्यक.
१०८ चा (वा); स्मृच. ३२९ श्म्यो (श्मे) चा (वा);
विर. २८१ छेद (भेद); पमा. ४२१; दवि. २२४ छेद
(भेद) चा (वा) दण्डं (दण्डो); सवि. ४८५ पै (पै)
दण्डं (दण्डो); व्यप्र. ३७५; व्यउ. ११५ चाऽप्यपैहीति
(वाऽपि याहीति); विता. ७६३ न्दे चा (न्दने) दण्डं
(दोषं) उक्त.; सेतु. २२५ चा (वा); समु. १६३
अपवत्.

पुटसंयोगिनी बलीवर्दानां रज्जुः, अश्वाना खलीनं, हस्तिनामङ्कुशस्तस्मिन् छिन्ने त्रुटिने । युगे च भग्ने, रथाङ्गकाष्ठं युगम् । छिन्नं नास्यमस्येति बहुव्रीहिणा रथ उच्येत, पशुर्वा । उभयोरपि साक्षात् पारस्पर्येण संबन्धात् । तिर्यक्प्रतिमुखागते याने, तिरश्चीनं वा प्रतीचीनं वा कथञ्चिद्भूवैषम्यात् पशुत्रासाद्वा यानं गच्छेत् कश्चिदपर्यायेन दुष्येत् । प्राजको हि संमुखीनान् शक्तो रक्षितुं, तिर्यक्प्रत्यगवस्थितौ त्वदृश्यमानस्य कथं शक्तो रक्षितुम् । प्रतिमुखागतं प्रत्यगावृत्तिः । अन्ये तु तिर्यगागते हिंस्यमाने ऋजुगामिन्येव याने न दोषमाहुः । प्रतिमुखं चाभिमुखं मन्यन्ते । अभिमुखागतः किमिति चक्रिणं दृष्ट्वा पन्थानं न ददाति । अक्षचक्रे रथाङ्गे प्रसिद्धे । यन्त्राणि चर्मबन्धनानि शकटकाष्ठानाम् । योक्त्रं पशुग्रीवाकाष्ठम् । रश्मिः प्रग्रहो हस्तवृद्धिः युग्यानां संचरणनियमनार्थः । आक्रन्दः उच्चैः शब्दः, अपेहीत्य-पसरेत्यर्थः । इतिकरणो भाषाप्रसिद्धतदर्थशब्दोच्चारणार्थो न त्वयमेव शब्दः प्रयोक्तव्यः । अविधेयेषु युग्येष्वप-सरापसरेति क्रोशतः प्राजकस्य पथो नातिक्रामन्तं यदि हिंस्यान्न दोषः । * मेघा.

(२) छिन्ननासिकारज्जौ बलीवर्दे, भग्ने युगाख्ये काष्ठे, गन्ध्यादौ भूमिवैषम्यादिना तिरश्चीनं वा गते प्रतीचीनं वा, तथा यानस्य गन्ध्यादेरक्षप्रविष्टकीलकादि तस्य भङ्गे, यन्त्राणां च चर्मबन्धानां छेदने, योक्त्राख्य-पशुग्रीवाकाष्ठरज्जुच्छेदने, अपसरापसरेत्येवं सारथ्यादि-संबन्धिनि चाह्वाने सति यानेन प्राणिर्हिंसाद्रव्यविना-शयोः कृतयोः सारथ्यादेर्दण्डो न भवतीति मनुराह । गोरा.

(३) यन्त्राणां काष्ठसंघिघटनानाम् । योक्त्रं युगादि-बन्धनरज्जुः । रश्मिः अश्वापकर्षणरज्जुः । आक्रन्दे सारथिना अन्येन वा आक्रुष्टे । अशक्यनिवर्तनत्वे सतीदिम् । * मवि.

(४) नासायां भवं नास्यम् । 'शरीरावयवाद्यत्' (व्यास. ५।१।६) । सां चेह बलीवर्दानासासंबन्धिनी रज्जुः । छिन्ननास्यरज्जौ बलीवर्दादिके, भग्नेयुगाख्ये

१ * स्मृत्. मेघावत् । * दवि. मविवत् मसुवत् ।

१ (शक्तो०). २ वधियु. ३ मन्यदि.

काष्ठे, रथादौ भूमिवैषम्यादिना तिरश्चीनं वा गते, तथा चक्रान्तःप्रविष्टाशकटभङ्गे, यन्त्राणां चर्मबन्धनानां छेदने, योक्त्रस्य पशुग्रीवारज्जोः, रश्मिः प्रहरणस्य च छेदने, अपसरापसरेत्युच्चैःशब्दे सारथ्यादिना कृते च यानेन प्राणिर्हिंसाद्रव्यविनाशयोः कृतयोः सारथ्यादेर्दण्डो नास्तीति मनुराह । * मसु.

(५) योक्त्रस्य छेदने च यन्तुर्यानस्वामिनो याना-रूढानां वा दण्डं मनुरवर्वात् । नन्द.

यन्त्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ।

तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ॥

(१) प्राजको यानसारथिस्तस्य वैगुण्यमशिक्षितत्वं, न तु प्रमादः । प्रमादे हि शिक्षितस्य स्वामिनो न दोषः । तस्मादेतोर्यदि युग्यं सहसा अपवर्तते स्पष्टं मार्गं हित्वा तिर्यक् पश्चाद्वा गच्छेत् गतं च किञ्चिन्नाशयेत्तत्र स्वामी दण्ड्यः । अशिक्षितः प्राजकः किमित्यारोपितः । 'मनुष्य-मारणे क्षिप्रं' (मस्मृ. ८।२९६) इत्यादिवक्ष्यमाणेन प्राणिभेदेन द्रव्यभेदेन च दण्डान्तरविधानात् द्विशतं इति (न ?) विवक्षितम् । दण्डनिमित्तमेतदित्येतावतैव वाक्यस्यार्थवत्त्वात्, उत्तरत्र न कश्चिदन्योऽर्थः श्रूयते येन वाक्यं तत्र संख्याविधायकमित्युच्येत । मेघा.

(२) यत्र पुनः सारथेरकौशलात् यानमन्यथा ब्रजति तत्र हिंसायां अकुशलसारथिकरणाद्यानस्वामी द्विशतं दण्डं दाप्यः । सारथेश्च 'मनुष्यमारणे क्षिप्रं' इत्येवं वक्ष्यमाणो भवति । एवं च द्विशतप्रहणस्योत्तरश्लोके च शतप्रहणस्याविवक्षितत्वमाहुस्तदसत् । अप्रमादाभि-घायित्वाद्दोषः । * गोरा.

(३) प्राजकः सारथिः । स्वामी रथी ।

अप. २।२९८.

* विर., मच. मसुवत् ।

* मसु., विर., मच. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।२९३ क., युग्यं (युग्यं); अप. २।२९८; व्यक. १०८ शतं दमम् (शतो दमः); स्मृच. ३२९; विर. २८२ पव (तिव); दवि. २२५; सवि. ४८५ पव (पि व); चीमि. २।३००. त्वा (त्वा); व्यप्र. ३७६; व्यड. ११५ त्राप (त्र. प्र) युग्यं (युग्यं); बाल. २।३००; सेतु. २२५ (=) विरवत्; समु. १६३ त्वा (द्वा).

(४) अपवर्तते व्यातवर्ते युग्यं रथादि । वैगुण्याद-
ज्ञानात् । स्वामी दण्ड्यः तादृकसारथिकरणात् । अङ्ग-
भङ्गादिरूपायां हिंसायां भूतायां द्विशतं पणान् दण्ड्यो
नान्यथा । मवि.

(५) प्राजकस्य नोदकस्य, शकटादिनेतुरिति यावत् ।
द्विशतग्रहणं तत्तत्प्राणिहिंसायां विशेषविहितदण्डोप-
लक्षणार्थम् । प्राजकस्य वैगुण्यात् एकहस्तत्वादिकात्
स्वामिना वेतनलाघवार्थमनुमतात् । स्मृ. च. ३२९-३०

(६) यत्र निमित्ते युग्यं यानं रथादिकं प्राजकस्य
वैगुण्यात् सारथेरसामर्थ्यात् अपवर्तते विषमं प्रवर्तते तत्र
निमित्ते मनुष्यपश्वादिहिंसायां द्विशतं दमं स्वामी दण्ड्यो
भवेदनात्प्राजकनियोगात् । प्राजकस्य 'मनुष्यमारणे क्षिप्रं
चोरवदि'त्यादिश्लोकद्वये वक्ष्यमाणः, सर्वजनसामान्येऽपि
एवं दण्ड इत्यवगन्तव्यम् । नन्द.

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम् ॥

(१) यदि पुनः सारथिः कुशलस्तदा सारथिरेव
'मनुष्यमारणे' इत्यादिवक्ष्यमाणं अर्हति दण्डं, न स्वामी
द्विशतं, अकुशले तु सारथौ स्वाम्यतिरिक्ता अन्येऽपि
यानारूढाः अकुशलसारथिकयानारोहणात् सर्वे शतं शतं
दण्ड्याः । सारथेस्तु 'मनुष्यमारणे' इत्यादिः स्थित एव ।

* गोरा.

(२) आतो विशः प्राजको दण्ड्यः स्वाम्यपराधा-
भावात् । तत्रानाप्ते अज्ञे युग्यस्थानरथस्थाः, सारथि-
पक्षपूरकतया विशाताः स्वामिना नियुक्तास्ते दण्ड्याः ।
अनःस्वामी ते च सर्वे शतं प्रत्येकं दण्ड्याः । X मवि.

(३) प्रगुणप्राजकप्रमादादिना प्रवृत्ते युग्ये न स्वामी
दण्ड्यः, किन्तु प्राजक इत्याह स एव — प्राजकश्चे-
दिति । आप्तः प्रगुण इत्यर्थः । स्मृ. च. ३३०

* ममु., मच. गोरावत् । X भाच. मविवत् ।

(१) मस्मृ. ८।२९४; मिता. २।३०० पृ.; अप. २।२९८;
व्यक. १०८; स्मृ. च. ३३० पृ.; विर. २८२;
पमा. ४२२ पृ.; दवि. २२५ केऽनाप्ते (कोऽनाप्तः);
व्यप्र. ३७६ पृ.; व्यउ. ११६ प्रा (त्रा) पृ.; विता. ७६३
दाप्तः (ः) पृ.; बाल. २।३०० उक्त.; सेतु. २२५ पृ.;
समु. १६३ प्रा (त्रा) पृ.

(४) प्राजक आप्तश्चेन्मनुष्यपश्वादिहिंसायां प्राजक
एव दण्डमर्हति न स्वामी । नन्द.

सं चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ।

प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ॥

(१) उक्तो हिंसायां दमः । तत्र विशेषं वक्तुमिद-
माह । स प्राजकः पथि संरुद्धोऽप्रजघनावसर्पिणा संरुद्धो
निरुद्धगतिः पश्चात्स्थितेन असुशिक्षितत्वात् प्रमा-
दाद्वा वेगेन धुर्याश्चोदिताः पुनः स्थिरयतश्चेन्निकटो
रथस्तेन च तस्य वेगनिरोधे कृते यदि पुरोरथस्था-
वेगपातात् पशुभी रथयुक्तैरश्वादिभिः रथेन रथावयवैर्वा
प्राणिनो मनुष्यादीन् मारयेत् ततो दण्डस्य विचारो
नास्ति । स्थित एव दण्डः । अथवा जवोत्पतिता अश्वाः
पथि संरोधकसंमुखीनरथदर्शनेन बलाद्विधार्यमाणा-
स्तिर्यग्गत्या गच्छेयुः पार्श्वकीयान् प्रत्यगवस्थितत्वात्तथा
हन्युस्तत्र दण्डोऽविचारितो, नास्ति प्राजके दोषाभावात् ।
अथवा पथि स्थितो वर्तमानः, संरुद्धो विधियमाणः,
विचारितो विशेषेण विहितो विशेषित इतिवत् ।

मेधा.

(२) स प्राजकः संमुखागतयानान्तरादवरुद्धैर्बली-
वर्दादिभिः संरुद्धयानो रथान्तरेण वा भूमिवैषम्यात्प्रत्य-
गपसर्पिणा अकुशलत्वात् प्राणिनो रथेन प्रमापयेत्तत्र
दण्डो मन्वादिभिर्विचारितः । गोरा.

(३) अशक्यविषये तु हिंसायामाह—स चेदिति । स
युग्यादिः । पशुभिर्हस्त्यादिभिः । उपलक्षणं चैतत् । प्रपात-
गमनोच्चारोहणतिर्यग्गमनादिनाऽपीत्यशक्यप्रतीकारागन्तु-
निमित्तवशादित्यर्थः । दण्डोऽविचारितो न निर्णीतो
मुनिभिः नास्त्येवेत्यर्थः । * मवि.

* भाच. मविवत् । दण्डविवेके रत्नाकरसर्वज्ञनारायणोल्लेखः ।

(१) मस्मृ. ८।२९५ [ऽविचारितः (विचारितः,
विचलितः) Noted by Jha]; अप. २।२९८ पथि
(प्रति) ऽविचारितः (विचारितः); व्यक. १०८ ऽविचारितः
(विचारितः); विर. २८२; दवि. २२६; बाल. २।२९९
उक्त. २।३००; सेतु. २२५-६ चेत्तु पथि संरुद्धः (केपथि
न संरुद्ध) ऽविचारितः (विचारितः).

१ पथितो न स्थि. २ द्धो न विधियमाणोऽथवा वि.
३ चेत् ।

(४) स चेतप्राजकः संमुखागतैः प्रचुरगवादिभी रथान्तरेण वा संरुद्धः स्वरथगमनानवधानात् प्रत्यक्सर्पणाक्षमः संकटेऽपि स्वरथतुरगान् प्रेरयन्, तुरगै रथेन वा रथावयवैर्वा प्राणिनो व्यापादयति तत्राविचारितो दण्डः कर्तव्य एव । * ममु.

(५) प्रकारान्तरेण दण्डमाह—स चेदिति । पशुभिः गजादिभिः स्वरथसंबन्धव्यतिरिक्तैः रथेन रथान्तरेण वा बद्धो गन्तुमशक्तः सन् परावृत्तत्वात् उक्तातिरिक्तापाश्चात्यात् । प्रमापयेत् हिंस्यात् । अकुशलो भूत्वा लोभायत्तो यतः प्रवृत्तः, अतो दण्डार्हः । अविचारितः पूर्वं विचारो न कृतः केवलं किन्तु दण्डोऽस्तीति । मच.

(६) योऽयं स्वामिप्राजकरथस्थानां दण्ड उक्तस्तत्र प्राजकं प्रति नियममाह— स चेत्त्विति । स आतोऽनातो वा प्राजकः पथि पथिकैः संरुद्धः पशुभिः स्वरथाहिभिर्वलीवर्दादिभी रथेन वा प्राणभृतः प्रमापयति चेत्तत्र प्रमापणे दण्डः अविचारितोऽसंदिग्धः, पुनस्तद्गयात्पथोऽपक्रमणनिमित्तरूपपतनादिहेतुके प्रमापन्न इति । नन्द.

प्राणिविशेषहिंसाभेदेन दण्डभेदाः

मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् ।

प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥

(१) तादृशे प्राजके रथपशुभिर्मनुष्यश्चेन्मार्यते तदा चौरवत्तस्य किल्बिषं, दण्डः । यद्यपि चौरस्य वैधसर्वस्वहरणादयो दण्डास्तथापीह धनदण्ड एव गृह्यते न वधः । महत्स्वर्धमिति तत्रैवार्धसंभवात् । स चोत्तमसाहसः कैश्चिदभ्युपगतः, यतश्च क्षते क्षुद्रकपशूनां तृतीय-

* विर. ममुवद्भावः ।

(१) मस्मृ. ८।२९६; मित्ता. २।३०० षं (षी); अप. २।२९८; व्यक. १०८; विर. २८३ क्षिप्रं (क्षिप्तं) भृत्सु (वत्सु); पमा. ४२४; व्यनि. ४९७ गजोष्ट्रहयादिषु (खरोष्ट्रगवादिषु) काल्यायनः; स्मृचि. २४ मित्तावद; दवि. २६६ भृत्सु (वत्सु); सवि. ४९३ षं (षी) प्राण... .. र्धं (प्राणिहृत्सु महत्स्वर्धं) याज्ञवल्क्यः; व्यम. १०९ मित्तावद; विता. ७६४ मित्तावद; बाल. २।२२९; सेतु. २२६ दविवद; समु. १६३.

१ मीतु. २ वधः स.

स्थानप्राप्तानां द्विशतो दमोऽतः प्रथमस्थानां मनुष्याणामुत्तमो युक्त इति । प्राणभृतः प्राणवन्तो मनुष्यतिर्यक्पक्ष्यादयः । महत्सु, महत्त्वं गवां प्रभावतो, हस्त्यादीनां प्रमाणतः । आदिग्रहणाद्दर्भाश्वतरव्याघ्रादयश्च कथञ्चित्परिगृह्यन्ते । वयं तु ब्रूमः 'सहस्रम्' इत्येवमवक्ष्यत् यद्यन्ये चौरवद्दण्डा नाभिप्रेता अभविष्यन्, तस्मादर्धग्रहणाद्बधो मा भूत्, धनदण्डास्तु सर्वस्वहरणादयः सर्वे चौरोक्ताः पुरुषापेक्षया अतिदिश्यन्ते । ननु च मनुष्यमारणेऽन्यस्य चौरदण्डस्यातिदेशो युक्तः । स प्रतिपदं मनुष्यहनने विहितः । स च 'पुरुषाणां कुलीनानां' इति (मस्मृ. ८।३२३) वध एव । तत्र किमिति वाक्यान्तरगतार्धशब्दानुरोधेनैव व्याख्यायते । वरमर्धस्यैव गुणतः काञ्चिद्दत्तिराश्रीयताम् । सत्यं, यद्यर्धशब्दो मारणेन संबध्यमानोऽन्यथोपपद्येत, न च चौरवदित्यस्यानुषङ्गागतस्यार्थान्तरवृत्तिः पूर्वापरवाक्ययोः शक्या । मेधा.

(२) प्राजकस्याकौशलेन मनुष्यमारणे सत्यपि चौरवत्तस्य उत्तमसाहसो न तु वधादि चौरदण्डः । प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं दर्शनात्, महत्सु च प्राणिषु प्रभावतो गवादिषु प्रमाणतः स्यात्, मारितेषु उत्तमस्य साहसस्यार्धं पञ्चशतानि दण्डो भवेत् । * गोरा.

(३) अथ लगुडादिना बुद्धिपूर्वं मारणे दण्डमाह—मनुष्यमारण इति । प्राणभृत्सु महत्सु गवादिषु अर्धे यस्य चौर्ये यावान् दण्डो धनकृतस्तदर्धम् । मवि.

(४) सकृदपराधे कीदृश इत्याह—मनुष्यमारण इति । ममु.

(५) एवं यानेन प्रमापणे दण्ड उक्तः । अथ पारुष्येण मनुष्यपश्चादिमारणे दण्डं श्लोकत्रयेणाह—मनुष्यमारण इति । किल्बिषं दण्डः स चार्थविषय एव, अर्थविषयसामर्थ्यात् चौरकिल्बिषं उत्तमसाहसः, गवादीनां प्रभावतो महत्स्वम् । नन्द.

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ।
पञ्चाशत्सु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥

* ममु., विर., मच. गोरावद ।

(१) मस्मृ. ८।२९७; मित्ता. २।३०० द्रकाणां (द्राणां च);

१ कशाचि. २ पद्यते न.

(१) अपचितपरिमाणाः क्षुद्रकाः । ते च केचि-
द्वयसः वत्सकिशोरककलभादयः । केचिजातिस्वभावतोऽ-
जैडकादयः । तत्राजाविकानां पञ्च माषान् वक्ष्यति ।
परिशेषाणां गवादीनामेवायं दण्डोऽल्पपरिमाणानाम् ।
शुभा मृगाः पृषतादयः आकारतो लक्षणतश्च । पक्षिणो
हंसशुकसारिकादयः । अशुभाः काकोलूकश्चूरागालादयः ।
पशुशब्दश्चतुष्पाजातिवचनः । हिंसामात्रेण दण्डमिमं
इच्छन्ति । न प्रकृतयानविधिहेतुं ब्रुवते । 'तत्र दण्डो
विचारित' इत्यनेनैव यानप्रकरणं व्यवच्छिन्नम् । विचा-
रितः समाप्तविचार इत्यर्थः । इदानीमेतत्प्रकरणनिरपेक्ष्य-
मुच्यत इति । एवं तु 'प्राणभृत्सु महत्स्वर्ध' इति
हस्तादिच्छेदो न मारणमित्यर्धशब्दो नेयः स्मृत्यन्तरात्
[इयं पङ्क्तिः पूर्वश्लोकभाष्यांशः, लेखकप्रमादात्
ततो भ्रष्टा इति भाति] । मेधा.

(२) अजाविकानां वक्ष्यमाणत्वादपचितप्रमाणानां
वत्सकिशोरादीनां पशूनां हिंसायां द्विशतो दण्डः कार्यः ।
पुनर्मृगपक्षिषु वराहादिषु हिंसायां पञ्चाशत्पणो दण्डो
भवेत् । गोरा.

(३) क्षुद्रपशूनां मृगपक्ष्यादीनां द्विशत इत्युत्तमदण्डो-
पदर्शनमेतत् । तत्र तत्र तु क्षुद्रत्वे ऋसः क्रमेणोह्यः ।
एतच्च परिग्रहीतविषये । अपरिग्रहीतेऽप्याह—पञ्चाश-
त्त्विति । शुभेषु चित्रमृगशुक्रादिषु । मवि.

(४) क्षुद्रकाणां पशूनां जातितो विशेषापादिष्टेतरेषां
वनचरादीनां वयसा च किशोरादीनां मारणे द्विशतो
दण्डः स्यात् । शुभेषु मृगेषु रुरुपृषतादिषु पक्षिषु च
शुकहंससारसादिषु पक्षिषु हतेषु पञ्चाशद्दण्डो भवेत् ।
*ममु.

* दण्डविवेके सर्वशनारायणकुल्लूकादीनामनुवादः । मच.
ममुवत् ।

अप. २।२९८; विर. २७९. (=) तु भवेद् (दुत्तरो द)
उत्त. : २८३ नां तु (नां च); पमा. ४२४; व्यनि.
४९७ नां तु (नां च) द्विशतो (दशमो) शप्तु (शतं)
काल्यायनः; स्मृचि. २४; दवि. २२८ नां तु (नां च);
सवि. ४९३ याज्ञवल्क्यः; व्यम. १०९ सायां (सने)
दण्डः (दण्डं); विता. ७६४; बाल. २।२२९; सेतु. २२४
तु भवेद् (दुत्तमो द) उत्त. : २२६ दविवत्; समु. १६३.
१ श्व शू. २ प्रकृतया न विधि.

(५) क्षुद्राणां मार्जारादीनां, मृगपक्षिषु हिंसितेषु ।
नन्द.

गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः ।
माषिकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥

(१) पञ्च माषाः परिमाणमस्येति पाञ्चमाषिकः ।
माषस्य च द्रव्यजातेरेनुपपादनात् मध्यमकल्पनायाश्च
न्याय्यत्वात् रौप्यस्य निर्देशोऽयमित्याहुः । हिरण्यं तु
युक्तमेवं तत्सममिति न बाधितं भवति । अनुबन्धाद्य-
पेक्षया तु द्रव्यजातः कल्प्येति सिद्धान्तः । मेधा.

(२) खरच्छागाविविषयवधे रूप्यमाषकपरिमाणो
दण्डः स्यात्, उत्तरोत्तरमपचितदण्डाभिधानदर्शनादहै-
रण्यं माषग्रहणं, पूर्वदण्डानूनत्वात् नापि ताम्रिकस्य
करणं भत्यन्तलघुत्वात् । एवं श्वसूकरमारणेऽपि रूप्य-
माषकपरिमाणो दण्डः स्यात् । गोरा.

(३) पञ्चमाषिकः सुवर्णमाषाः पञ्च तन्निष्पाद्यो
माषकः सुवर्णमाषकः । सूकरो ग्राम्यः । वराहे त्वधि-
कम् । मवि.

(४) गर्दभच्छागौडकादीनां पुनर्मारणे पञ्चरूप्यमाष-
कपरिमाणो दण्डः स्यात् । न चात्र हैरण्यमाषग्रहणं,
उत्तरोत्तरलघुदण्डाभिधानात् । श्वसूकरमारणे तु पुना
रौप्यमाषपरिमाणो दण्डः स्यात् । * ममु.

गोकुमारीदेवपशूनुक्षाणं वृषभं तथा ।
वाहयन् साहसं पूर्वं प्राप्नुयादुत्तमं वधे ॥

* मच. ममुवत् ।

(१) मस्मृ. ८।२९८ ख., त्पञ्च (त्पाञ्च), ग., माषिकस्तु
(माषकस्तु), [माषिकस्तु (मासिकस्तु) Noted by
Jha]; मिता. २।३०० षिकः (षकः) षिकस्तु (षकस्तु);
अप. २।२९८ मितावत्; व्यक. १०८ मितावत्; विर. २८३
नां तु (नां च) षिकस्तु (षकस्तु); पमा. ४२५; व्यनि.
४९७ मितावत्, काल्यायनः; स्मृचि. २४; दवि. २२८
विरवत्; सवि. ४९३ श्व (स) तने (तितैः) शेषं मितावत्,
याज्ञवल्क्यः; व्यम. १०९ कानां तु (कान् हन्तुः) शेषं
मितावत्; विता. ७६४ गर्दभा (गवया) षिकः (षकः)
षिकस्तु (षकश्च); बाल. २।२२९ अपवत्; सेतु. २२६
नां तु (नां च); समु. १६३ सेतुवत्.

(२) अप. २।२२६ रीदे (रीदै); व्यक. १०८; विर.

गोकुमारी वृषेण संयुक्ता गौः । देवपशुः देवाय दत्तः पशुः । उक्षा 'उक्ष सेचने' इत्यनुसारात् बीजसेक्ता वृषः । वृषभपदेन जीर्णवृषोऽत्र उक्तः । विर. २७९

भार्यापुत्रदासशिष्यादीनां ताडने कृते दण्डविचारः

भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः ।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥

(१) प्राप्ता अपराधं प्राप्तापराधाः, अपराधो व्यतिक्रमः नीतिभ्रंशः । स यदा तैः कृतो भवति तदा ताडयितव्याः । ताडनमपि हिंसेत्युक्तम् । सा च 'न हिंस्याद्भूतानी'ति प्रतिषिद्धाऽपराधे निमित्ते भार्यादीनां प्रतिप्रसूयते । संवन्धिषब्दाश्चैते । यस्य भार्या यश्च यस्य दासः स तेनानुशासनीयः । मार्गस्थापनोपाय-विधिपरश्चायम् । न ताडनविधिरेव । तेन वाग्दण्डाद्यपि कर्तव्यम् । अपराधानुरूपेण कदाचित्ताडनम् । सोदरस्थाने कनीयान् पठितव्यः । भ्राता तथाऽनुजः । स हि ज्येष्ठस्य पुत्रवत्ताडनार्हः । वैमात्रेयोऽपि चेदपि नृको गुणवज्ज्येष्ठतन्त्रश्च सोऽप्यनुमार्गगामी ताडनादिपर्यन्तैरुपायैर्निवारणीयः । वेणुदलं वंशत्वक् । एतदप्युपलक्षणं तथाविधानां मृदुपीडासाधनानां शिफादीनाम् ।

मेधा.

(२) भार्यादयः कृतापराधा रज्ज्वा वेणुत्वचा

२७९; पमा. ४२४ नुक्षणं (नक्षत्रं) नास्त्वर्थं श्लोकः मुद्रित-मनुस्मृतिपुस्तकेषु । अस्मत्संगृहीतप्राचीनतमपुस्तके वर्तते । तत्र तु— 'गां कुमारीं ग्राम्यपशूनुक्षणं वाजिनं तथा । दारयन् साहसं त्वर्षं प्राप्नुयात् घातने समम् ॥' इत्येवं पाठो दृश्यते ।
व्यचि. ४९६ श्नु (श्नु) ; दवि. ३१८ दुत्तमं (दष्टमं) ; सेतु. २२४; समु. १६३ री (री) शेषं व्यनित्तं.

(१) मस्मृ. ८।२९९ क., ख., घ., शिष्यो (प्रेथ्यो) ; गोरा. पुत्रश्च दासश्च शिष्यो (शिष्यश्च दासश्च पुत्रो) ; अप. २।६ च सोदरः (सहोदरः) : २।२२२; व्यक. १०६ ड्याः स्यू (ड्यास्तु) ; विर. २७९; विचि. ११९ धास्ताड्याः स्यू (घस्ताड्यः स्वाद) ; स्मृचि. २४ नारदः; दवि. २३१; व्यग्र. ३३ अपवत् : ३७८ दासश्च शिष्यो (शिष्यश्च दासो) ता च (ताऽय) ; व्यड. २० अपवत् : ११७ व्यप (पृ. ३७८) ; बालं. २।२२९ शिष्यो (प्रेथ्यो) ; सेतु. २२१; विम. १ धास्ताड्याः (धा दण्ड्याः) शेषं अपवत्; समु. १६४.

वा दण्डनीयाः स्युरिति हिंसादण्डापवादः । साधने नियमार्थश्चारम्भः । * गोरा.

(३) अथ भार्यापुत्रादीनामनुशासनप्रकारमन्यथा-नुशासने दण्डविधानार्थमाह— भार्या पुत्रश्चेति । नन्द.

(४) भार्यादयः प्राप्तापराधा रज्ज्वा वेणुदलेन वा ताड्याः ताडनीयाः । सोदरः भ्राता च अन्यमातृजो न । भाच.

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथञ्चन ।

अतोऽन्यथा तु प्रहरन् प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥

(१) उक्तताडनसाधनाभ्यामन्येन प्रकारेण भ्रन्नस्थ्यादिषु लगुडादिभिर्वा चौरदण्डं प्राप्नोति । निन्दैषा । न त्वयमेव दण्डः । योऽन्यत्र हिंसाया दण्डः सोऽत्र भवतीत्युक्तं भवति । मेधा.

(२) ते पुनः शरीरस्य पृष्ठदेशे ताडनीयाः न तु कदाचित् उत्तमाङ्गे न वक्षसि । उक्तप्रकारव्यतिरेकेण ताडयित्वा दण्डरूपेण वाग्दण्डरूपचौरदण्डं प्राप्नुयात् ।

गोरा.

(३) चौरकिल्बिषं ताडितस्यामरणे स्तेयदण्डः, मरणे तु भूयस्त्वमूह्यमित्यर्थः । मवि.

(४) रज्ज्वादिभिरपि देहस्य पृष्ठदेशे ताडनीयाः न तु क्षिरसि । उक्तव्यतिरेकेण प्रहरणे वाग्दण्डधनदण्डरूपं चौरदण्डं प्राप्नुयात् । मसु.

(५) पृष्ठतोऽमर्मणि, नोत्तमाङ्गे न मर्मणीत्यर्थः । न्यायसाम्यात् । विर. २७१

याज्ञवल्क्यः

दण्डपारुष्यलक्षणम्

संप्रति दण्डपारुष्यं प्रस्तूयते । तत्स्वरूपं च नारदे-नोक्तम्— 'परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधादिभिः । मस्मादिभिश्चोपघातो दण्डपारुष्यमुच्यते ॥' इति ।

* मसु., मच. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३००; अप. २।६ कथञ्च (कदाच) : २।२२२; व्यक. १०६; विर. २७९ अपवत्; विचि. ११९ तस्तु (तश्च) कथञ्च (कदाच) ; स्मृचि. २४ नारदः; दवि. २३१ अपवत्; व्यग्र. ३३, ३७८; व्यड. २०-२१, ११७; बाल. २।२२९ अपवत्; सेतु. २२१ अपवत्; समु. १६४.

परगात्रेषु स्थावरजङ्गमात्मकद्रव्येषु हस्तपादायुधैरादि-
ग्रहणाद्ग्रावादिभिर्योऽभिद्रोहो हिंसनं दुःखोत्पादनं तथा
भस्मना आदिग्रहणाद्रजःपङ्कपुरीषाद्यैश्च य उपघातः
संस्पर्शनरूपं मनोदुःखोत्पादनं तदुभयं दण्डपारुष्यम् ।
दण्ड्यतेऽनेनेति दण्डो देहस्तेन यत्पारुष्यं विरुद्धाचरणं
जङ्गमादेर्द्रव्यस्य तद्दण्डपारुष्यम् । तस्य चावगोरणादि-
करणभेदेन त्रैविध्यमभिधाय हीनमध्यमोत्तमद्रव्यरूपकर्म-
त्रैविध्यात् पुनत्रैविध्यं तेनैवोक्तम्— 'तस्यापि दृष्टं
त्रैविध्यं हीनमध्यमोत्तमक्रमात् । अवगोरणनिःशङ्कपातन-
क्षतदर्शनैः ॥ हीनमध्योत्तमानां च द्रव्याणां समत्ति-
क्रमात् । त्रीण्येव साहसान्याहुस्तत्र कण्टकशोधनम् ॥'
इति । निःशङ्कपातनं निःशङ्कप्रहरणम् । त्रीण्येव
साहसानि त्रिप्रकाराण्येव सहसा कृतानि दण्डपारुष्या-
णीत्यर्थः ।

तथा वाग्दण्डपारुष्ययोरुभयोरपि द्वयोः प्रवृत्त-
कलहयोर्मध्ये यः क्षमते तस्य न केवलं दण्डाभावः
किन्तु पूज्य एव । तथा पूर्वं कलहे प्रवृत्तस्य
दण्डगुरुत्वम् । कलहे च बद्धवैरानुसंधातुरेव दण्ड-
भाक्त्वम् । तथा तयोर्द्वयोरपराधविशेषापरिज्ञाने दण्डः
समः । तथा श्वपचादिभिरार्याणामपराधे कृते सज्जना
एव दण्डदापनेऽधिकारिणस्तेषामशक्यत्वे तान् राजा
घातयेदेव, नार्थं गृह्णीयादित्येवं पञ्च प्रकारा विधयस्ते-
नैवोक्ताः— 'विधिः पञ्चविधस्तूक्त एतयोरुभयोरपि ।
पारुष्ये सति संरम्भादुत्पन्ने क्रुद्धयोर्द्वयोः ॥ स मन्यते
यः क्षमते दण्डभाग् योऽतिवर्तते । पूर्वमाक्षारयेद्यस्तु
नियतं स्यात्स दोषभाक् ॥ पश्चाद्यः सोऽप्यसत्कारी पूर्वं
तु विनयो गुरुः । द्वयोरपन्नयोस्तुल्यमनुबध्नाति यः
पुनः ॥ स तयोर्दण्डमान्नोति पूर्वो वा यदि वेतरः ।
पारुष्यदोषावृत्तयोर्गुणपत्संप्रवृत्तयोः ॥ विशेषश्चेन्न लक्ष्येत
विनयः स्यात्समस्तयोः । श्वपाकषण्डचण्डालव्यङ्गेषु
वधवृत्तिषु ॥ हस्तिपत्रात्यदासेषु गुर्वाचार्यनृपेषु च ।
मर्यादातिक्रमे सद्यो घात एवानुशासनम् ॥ यमेव ह्यति-
वर्तेरन्नेतेः सन्तं जनं नृषु । स एव विनयं कुर्यान्न तद्वि-
नयेभाङ्गुपः ॥ मला ह्येते मनुष्याणां धनमेषां मला-
त्मकम् । अतस्तान् घातयेद्राजा नार्थदण्डेन दण्डयेत् ॥'
इति ।

मितां. २।२।१२

दण्डपारुष्यनिर्णयहेतुः

असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चागमेन च ।
द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृतो भयात् ॥

(१) वाक्पारुष्यपूर्वकत्वाद् दण्डपारुष्यस्यानन्तरमा-
रम्भः । पाण्यादिना अभिघातादिकं दण्डपारुष्यम् । तत्र
निर्जनेऽभिहत्य न मयाऽयमभिहत इत्येवं मिथ्यावादित्वे
दौष्ट्यातिशयाद्वा क्षताद्यात्मनः कृत्वा निर्दोषजनाव्या-
रोपे कथं स्यादित्यपेक्षिते आह—'असाक्षिकहते चिह्नै-
र्युक्तिभिश्चागमेन च । द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृता-
द्भयात् ॥' असाक्षिकेऽभिहते क्षतादिभिश्चिह्नैस्तद्व्यभि-
चारे वा कूटचिह्नकारिदुष्टपुरुषभयाद् व्यवहार एव
प्रागुक्तन्यायेन चतुष्पाद्युक्त्यागमानुसारेणैव विद्वज्जन-
समक्षं स्वयं वा राज्ञा द्रष्टव्यः । अयं च सर्वव्यवहारपद-
साधारणः श्लोकः कार्यगौरवप्रतिपत्त्यर्थमिहाम्नात इत्य-
वसेयम् । विश्व. २।२।१६

(२) एवम्भूतदण्डपारुष्यनिर्णयपूर्वकत्वाद्दण्डप्रणयनस्य
तत्स्वरूपसंदेहे निर्णयहेतुमाह—असाक्षिकेति । यदा कश्चि-
द्रहस्यहमनेन हत इति राज्ञे निवेदयति तदा 'चिह्नै-
र्गणादिस्वरूपगतैर्लिङ्गैर्युक्त्या कारणप्रयोजनपर्यालोचना-
त्मिकया आगमेन जनप्रवादेन चशब्दादिव्येन वा कूट-
चिह्नकृतसंभावनाभयात् परीक्षा कार्ये । *मिता.

(३) अथ दण्डपारुष्यनिमित्ते दण्डविधिः । दण्ड-
पारुष्यं नाम शरीरस्य ताडनेनामेव्यसंयोजनेन ताडनार्थ-
मवगूरणेन वा परस्य दुःखोत्पादनम् । तत्रापराधसदस-
द्भावसंदेहे निर्णयहेतुस्तावदाह—असाक्षिक इति ।

* व्यप्र. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२।१२; अपु. २।५।१९ तो म (ताड);
विश्व. २।२।१६ अपुवत्; मिता.; अप. क्षिक (क्षिके)
कृतो भयात् (कृतावृते); व्यक. १०७ न च (न वा) शेष
अपुवत्; स्मृच. २५ क्षिक (क्षिके) शेष अपुवत्; विर.
२७४ अपुवत्; पमा. ४० स्मृचवत् : ४१२; रत्न. १२९
अपुवत्; व्यनि. ४९४ अपुवत्; नृप्र. २७२-३ कृतो
(शुतो); वीमि.; व्यप्र. ३७१ : ३७८ चिह्नैर्यु (चिहे यु);
व्यउ. ११२ न च (न वा) : ११८ अपुवत्; विता.
७३४-५; शकौ. ४९० अपुवत्; प्रका. १४ क्षिक (क्षिके)
चिह्नैर्यु (चिहे यु) शेष अपुवत्; समु. १० अपुवत्.

१ चिह्नैर्वर्णादि.

असाक्षिके देशेऽहमनेन हत इति केनचिद्राज्ञे निवेदिते राज्ञा सम्यैश्च द्वेपादिकृतमिथ्याचिह्नं वर्जयित्वाऽन्यैश्चिह्नैर्युक्तिभिरागमेन आप्तवाक्येन चकारादिव्यैश्च विवादोऽयं वादी साधुरयमसाधुरयमिति विचार्य निर्णेतव्यः । चिह्नं क्षतादि । युक्तिभिर्हन्तृहन्तव्ययोः संनिधानं द्वेषहेतुसंभव इत्यादिभिः । आगम आप्तवाक्यम् । केचित्पठन्ति— 'कूटचिह्नकृताद्भयात्' इति । तस्यार्थः— न ऋणादिदर्शनमात्रेण विना विचारो निर्णयः कार्यः । यतो मत्सरादिवशात् कूटं कृत्रिममपि चिह्नं कर्तुं शक्यते ।

*अप.

(४) चिह्नैर्हन्तुरसाधारणैरुपवीतादिभिः ।

Xविर. २७४

(५) असाक्षिकं रहसि हते पादायुधादिना ताडिते हन्त्रा विप्रतिपत्तौ च कृतायां स व्यवहारश्चिह्नैर्ऋणादिभिर्देहस्थैर्युक्तिभिः प्रयोजनपर्यालोचनादिभिः आगमेन जनप्रवादेन चकारात् दिव्येन द्रष्टव्यो निर्णेतव्यः । कूटं कपटचिह्नातिरिक्तैरित्यर्थः । तुशब्देनाहमनेन ताडित इति वाङ्मात्रेण दण्डप्रणयनादि व्यवच्छिन्नन्ति ।

वीमि.

स्मृत्यनुक्तपारुष्ये दण्डविधिः

यत्र नोक्तो दमः सर्वैः प्रमादेन महात्मभिः ।
तत्र कार्यं परिज्ञाय कर्तव्यं दण्डधारणम् ॥

नानभिधानभ्रान्त्यानध्यवसायः कार्यः, किं तर्हि उक्तमनुक्तं वा द्वयोर्गुणादिभिरनुबन्धादिभिश्च स्वरूपमालोच्य पीडानुसारेण सर्वत्र दण्डमानकर्तव्यताध्यवसानमित्यभिप्रायः ।

विश्व. २।२१७

साधनभेदेन जातितो गुणतो वा समहीनोत्तमभेदेन

च दण्डभेदाः

भैस्मपङ्करजःस्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः ।

अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठयूतस्पर्शने द्विगुणः स्मृतः ॥

* स्मृच. व्याख्यानं अपराकौ गतार्थम् ।

X शेषं मित्तावत् ।

(१) विश्व. २।२१७.

(२) यास्मृ. २।२१३; अपु. २५८।१०; विश्व. २।२१८; मित्ता. (क) गुणः स्मृतः (गुणस्ततः); अप. मित्तावत्; व्यक. १०४; विर. २६१ मित्तावत्; पमा. ४१३; रत्न. १२२; विचि. ११२; व्यनि. ४९०; दवि

समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणस्तूत्तमेषु च ।

हीनेष्वर्धदमो मोहमदादिभिरदण्डनम् ॥

(१) एतदेवोदाहरणमात्रतया प्रपञ्चयति—भस्मेति ।

मेध्यत्वेऽपि भस्मकर्मभूलिप्रक्षेपणे निर्दोषस्य कृते दशपणो दण्डः स्मृत इत्युक्तोऽपि स्मरणानुसारादविरुद्ध इत्यवसेयम् । अमेध्यादिस्पर्शे तु ततो द्विगुणः विंशतिपण इत्यर्थः । निष्ठयूतग्रहणं निष्ठयूतसदृशमेध्यस्य प्रतिपत्त्यर्थम् । तथा च मूत्रपुरीषादौ दण्डातिरेकसिद्धिः ।

यच्चैतदुक्तं— 'समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणस्तूत्तमेषु च ।

हीनेष्वर्धदमो मोहमदादिभिरदण्डनम् ॥' कृतव्याख्यानमेतत् । विश्व. २।२१८-९

(२) एवं निश्चिते साधनविशेषेण दण्डविशेषमाह—भस्मेति । भस्मना पङ्केन रेणुना वा यः परं स्पर्शयत्यसौ दशपणं दण्डं दाप्यः । अमेध्यमिति अश्रुश्लेष्मनख-केशकर्णविट्दूषिकाभुक्तोच्छिष्टादिकं च गृह्यते । पार्ष्णिः पादस्य पश्चिमो भागः । निष्ठयूतं मुखनिःसारितं जलम् । तैः स्पर्शने ततः पूर्वाद्दशपणाद्द्विगुणो विंशतिपणो दण्डो वेदितव्यः । पुरीषादिस्पर्शने पुनः कात्यायनेन विशेष उक्तः—'छर्दिमूत्रपुरीषाद्यैरापाद्यः स चतुर्गुणः । षड्गुणः कायमध्ये स्यान्मूर्ध्नि त्वष्टगुणः स्मृतः ॥' इति । आद्यग्रहणाद्दशपणासुखान्जानो गृह्यन्ते ।

एवम्भूतः पूर्वोक्तो दण्डः सर्वविषये द्रष्टव्यः । परभार्यासु चाविशेषेण । तथोत्तमेषु स्वापेक्षयाऽधिकश्रुतवृत्तेषु पूर्वोक्ताद्दशपणाद्विंशतिपणाच्च दण्डाद्द्विगुणो

२५२ मित्तावत्; नृप्र. २७३; सवि. ४८१ पणः (गुणः); वीमि. मित्तावत्; व्यग्र. ३७१; व्यड. ११२ मित्तावत्; व्यम. १००; विता. ७३५; राकौ. ४९० मित्तावत्; सेतु. २१५; समु. १६२.

(१) यास्मृ. २।२१४; अपु. २५८।११ ष्वर्ध (ष्वर्ध); विश्व. २।२१९; मित्ता. (क) ष्वेवं (ष्वेव); अप. मोह (मः प्रोक्तो); व्यक. १०४; स्मृच. ३२९ उक्तः; विर. २६१ मित्तावत्; पमा. ४१३; रत्न. १२२ मित्तावत्; विचि. ११२ मित्तावत्; व्यनि. ४९०; दवि. ३९ (मोहमदादिभिरदण्डनम्) एतावदेव : २५२ अपुवत्; नृप्र. २७३ मोहमदा (मोहमत्सा); सवि. ४८१ पू; वीमि.; व्यग्र. ३७१; व्यड. ११३; व्यम. १००; विता. ७३५; राकौ. ४९० अपवत्; सेतु. २१५ मित्तावत्; समु. १६२.

दण्डो वेदितव्यः । हीनेषु स्वापेक्षया न्यूनवृत्तश्रुतादिषु पूर्वोक्तस्यार्धदमः पञ्चपणो दशपणश्च वेदितव्यः । मोहश्चित्तवैकल्यम् । मदो मद्यपानजन्योऽवस्थाविशेषः । आदिग्रहणात् ग्रहावेशादिकम् । एतैर्युक्तेन भस्मादिस्पर्शने कृतेऽपि दण्डो न कर्तव्यः । मिता.

(३) जातितो गुणतो वा तुल्यं परं भस्मकर्दम-धूलिभिर्योजयतो दशपणो दण्डः । यदि पुनरमेध्यादिभिः संयोजयति तदा विंशतिपणः । अत्र यदि परस्त्रीमात्रे, तथा जातितो गुणतो बान्कटेषु नरेपृक्तमपराधं कुत्रात्तदा पूर्वोक्ताद्दण्डाद्द्विगुणो दण्डः कार्यो विंशतिपणः स्यात् । यत्र विंशतिपणस्तत्र चत्वारिंशत्यणः स्यात् । जातितो वा गुणतो वा हीनविषय उक्तस्यार्धं दण्डनीयः । मदादिना लुप्तज्ञानस्यापराधाभावतो दण्डाभावः । अमेध्यां वसाशुक्रादिशरीरमलात्मकम् । पार्ष्णिः पादा-परभागः । निष्ठयुतं निंष्टीवनम् । अप.

(४) पार्ष्णिश्चरणस्य पश्चिमो भागः । चरण एव तात्पर्यमस्येत्येके । * विर. २६१

(५) अथात्र दण्डपारुष्यनिश्चयानन्तरकृत्यं दण्डं यथायथमाह प्रकरणसमाप्तिपर्यन्तेन— भस्मेति । भस्म-पङ्करजोभिः प्रत्येकं परस्य स्पर्शं योजने तत्कर्तुर्दशपणमितो दण्डः । अमेध्यामश्रुप्रभृति, पार्ष्णिश्चरणस्य पश्चाद्भागः, निष्ठयुतं मुखश्लेष्म एतैः परस्य स्पर्शने कृते तत्कर्तुस्ततो दशपणाद्द्विगुणो दण्डः । एवं दण्डः समेषु सर्वाण्यु द्रष्टव्यः । परभार्यासूत्तमेपु च वर्णेषु विषये तादृशापराधे कृते समेषूक्ताद्दण्डात् द्विगुणो दमः । हीनेषु वर्णेषु विषये तादृशापराधे समेषूक्तस्य दण्डस्यार्धो दमः कार्यः । मोहोऽनभिज्ञता, मदो मद्यादिभिः । आदिपदेनोन्माद-परिग्रहः । एतैर्भस्मादिस्पर्शने कृतेऽपि दण्डाभावः । चकारेणोत्तरोत्तरं त्रिगुणचतुर्गुणौ दण्डाविति समुच्चीयते । वीमि.

अब्राह्मणकृते ब्राह्मणविषये दण्डपारुष्ये दण्डविधिः

विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु ।
उद्गूर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तु तदर्धिकः ॥

* शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२।१५; अपु. २।५।१२ धिकः (धकः); विश्व. २।२।२० संस्पर्शे (स्पर्शने); मिता.; अप.; व्यक. व्य. कं. २२८

(१) अयं चान्यो विशेषः— विप्रपीडाकरमिति । उद्गूर्णानिपाते प्रथमसाहसो दण्डः । प्रहारायोद्गूर्णेनैव विश्वम्भेणाब्राह्मणस्य ब्राह्मणशरीरस्पर्शनेऽर्धदण्डः । सर्वट्ट-मन्यत् । विश्व. २।२।२०

(२) प्रातिलोम्यापराधे दण्डमाह— विप्रपीडाकर-मिति । ब्राह्मणानां पीडाकरमब्राह्मणस्य क्षत्रियादेर्यदङ्ग करचरणादिकं तच्छेत्तव्यम् । क्षत्रियवैश्ययोरपि पीडा कुर्वतः शूद्रस्याङ्गच्छेदनमेव । 'यन केनाचिदङ्गेन हिस्याच्छेयांसमन्यजः । छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनु-शासनम् ॥' इति (मस्मृ. ८।२।७९) । द्विजातिमात्र-स्यापराधे शूद्रस्याङ्गच्छेदविधानात् वैश्यस्यापि क्षत्रिया-पकारिणोऽयमेव दण्डस्तुल्यन्यायत्वात् । उद्गूर्णे वधार्थ-मुद्यते शस्त्रादिके प्रथमसाहसो दण्डो वेदितव्यः । शूद्रस्य पुनरुद्गूर्णेऽपि हस्तादिच्छेदनमेव । 'पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति' इति मनुस्मरणात् (मस्मृ. ८।२।८०) । उद्गूर्णार्थं शस्त्रादिस्पर्शने तु तदर्धिकः प्रथमसाहसार्धदण्डो वेदितव्यः । भस्मादिसंस्पर्शे पुनः क्षत्रियवैश्ययोः प्रातिलोम्यापराधेषु द्विगुणत्रिगुणा दमा इति वाक्पारुष्योक्तन्यायेन कल्प्यम् । शूद्रस्य तत्रापि हस्तच्छेद एव । 'अवनिष्टीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ छेदये-न्तुपः । अवमूत्रयतो मद्गुमवशार्धयतो गुदम् ॥' इति मनुस्मरणात् (मस्मृ. ८।२।८२) । + मिता.

(३) तुशब्दपाठे ब्राह्मणाङ्गच्छेदव्यवच्छेदः । वीमि. उच्चजातिकृते सजातीयकृते वा परगात्रविषये दण्डपारुष्ये दण्डाः उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ । परस्परं तु सर्वेषां शस्त्रे मध्यमसाहसः ॥

+ अप., विर., दवि., वीमि., व्यप्र. मितावत् ।

१०५; विर. २६७ अपुवत्; पमा. ४१७; रत्न. १२२ करं (करे) शेषं अपुवत्; व्यनि. ४९२ संस्पर्शे (स्पर्शने) धिकः (धकः); दवि. २५० अपुवत्; नृप्र. २७३ उद्गु (उद्गी) रौं तु (रौंन) धिकः (धकम्); सवि. ४८१ स तु (स च) शेषं अपुवत्; वीमि. स्य तु (स्य च); व्यप्र. ३७३; व्यड. ११४ धिकः (धकम्); व्यम. १००; विता. ७३६; समु. १६२.

(१) यास्मृ. २।२।१६; अपु. २।५।१३ शस्त्रे (शस्त्रे); विश्व. २।२।२१; मिता.; अप.; व्यक. १०५ हस्त (हस्त)

(१) अनुत्कृष्टविषयत्वे तु— 'उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ । परस्परं तु सर्वेषां शस्त्रे मध्यमसाहसः ॥' तुशब्दः प्रत्येकमवधारणार्थः । हस्त एवोद्गूर्णे दशकः, पाद एव विंशतिकः । तथाच समुच्चये समुच्चयसिद्धिः । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् । एतच्च सर्ववर्णानां तुल्यगुणादियोगे स्यात् । शस्त्रोद्गूर्णे तु मध्यमसाहसो दण्डः । विश्व. २।२२१

(२) एवं प्रातिलोम्यापराधे दण्डमभिधाय पुनः सजातिमधिकृत्याह— उद्गूर्ण इति । हस्ते पादे वा ताडनार्थमुद्गूर्णे यथाक्रमं दशपणो विंशतिपणश्च दण्डो वेदितव्यः । परस्परवधार्थं शस्त्रे उद्गूर्णे सर्वेषां वर्णिनां मध्यमसाहसो दण्डः । Xमिता.

(३) हस्ते परपीडार्थमुद्यमिते दशमो दमः । पादे विंशतिको दमः । शस्त्रे मध्यमसाहसः । उद्यमन एवैतन्न तु निपातने, तत्र दण्डान्तरविधानात् । परस्परमिति वचनात् सजातिविषयमेतत् । हीनजाते-रुत्तमजातिं प्रत्युद्गूर्णमानस्य दण्डान्तरविधानात् । अप.

(४) आद्यतुशब्देन निपातनव्यवच्छेदः । द्वितीयतु-शब्देनासमानजातीयानामुक्तदण्डव्यवच्छेदः । *वीमि.

पादकेशांशुककरोल्लुञ्चनेषु पणान् दश ।

पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे शतं दमः ॥

X विर., पमा., दवि., व्यग्र. मित्तावत् ।

* शेषं मित्तावत् ।

रं तु (रस्य) सः (सम्); विर. २६३ रं तु (रस्य) सः (सम्); पमा. ४१४; रत्न. १२२; विचि. ११४ सः (सम्); द्रवि. २५० विरवत्; नृप्र. २७३; सवि. ४८२ दश (परि) सः (सम्); वीमि.; व्यग्र. ३७२; व्यड. ११३; व्यम. १००; विता. ७३७ विचिवत्; सेतु. २१७ विरवत्; समु. १६२.

(१) यास्मृ. २।२१७; अपु. २५८।१४; विश्व. २।२२२ करोल्लुञ्च (करोल्लुञ्च) कर्षांशुकावेष्ट (कर्षांशुकावेष्ट); मित्ता.; अप. रोल्लु (राल्लु); व्यक. १०४ अपवत्; स्मृच. ३२८ ल्लुञ्च (ल्लुञ्च); विर. २६२; पमा. ४१५ पीडा (पिडा); रत्न. १२२; विचि. ११३ करो...दश (कराकर्षणेषु पणा दश); दवि. २५३ रोल्लुञ्च (रोल्लुञ्च) करोल्लुञ्च (पादन्वासे); नृप्र. २७४; सवि. ४८२ शंशुक-करोल्लुञ्च (शंशुककरोल्लुञ्च) कर्षांशुका (पर्षांशुका) इत्ये

(१) जात्यादिसाम्य एव तु— 'पादकेशांशुककरोल्लुञ्चनेषु पणान् दश । पीडाकर्षांशुकावेष्ट पादाध्यासे शतं दमः ॥' पादकेशवस्त्राणामालुञ्चने अवधूनने साक्षेपं दशपणो दण्डः स्यात् । पीडाकर्षांशुकेन त्वावेष्टय ग्रीवादौ पादन्यासे शतं दण्ड्यः । आज्ञानं ध्यामीकरणं [ध्यामीकरणं श्यामीकरणं मलिनीकरणमित्यर्थः । 'ध्यामं दमनके गन्धतुणे श्यामेऽभिधेयवत्' इति विश्वः— इति पादटिप्पण्याम्] । पीडया कर्षणेनाज्ञानं पीडाकर्षांशुकेन । आज्ञनेन ध्यामीकरणेन त्वावेष्टय वशं नीत्वेत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् ।

विश्व. २।२२२

(२) पादकेशवस्त्रकरणामन्यतमं गृहीत्वा य उल्लुञ्चति झटित्याकर्षयति असौ दशपणान् दण्ड्यः । पीडा च कर्षांशुकावेष्टय पादाध्यासश्च पीडाकर्षांशुकावेष्ट-पादाध्यासं तस्मिन् समुच्चिते शतं दण्ड्यः । एतदुक्तं भवति । अंशुकेनावेष्टय गाढमापीड्याकृष्य च यः पादेन घट्टयति तं शतं पणान् दापयेदिति । *मित्ता.

(३) पादयोः केशानामंशुकस्य वस्त्रस्य हस्तयोर्वा समानजातीयस्य पुंस आलुञ्चन आकर्षणे दश पणान् दण्ड्यः । पीडादीनां समुच्चितानां करणे पणशतं दमः । पीडा निष्पीडनम् । आकर्ष आक्रोश आकर्षणम् । अंशुकावेष्टो ग्रीवादौ वस्त्रबन्धनम् । पादाध्यासो मूर्धादौ पादन्यासः । अप.

शोणितेन विना दुःखं कुर्वन् काष्ठादिभिर्नरः ।
द्वात्रिंशतं पणान् दण्ड्यो द्विगुणं दशनेऽसृजः ॥

* विर., वीमि., व्यग्र., व्यड., व्यम., विता. मित्तावत् । (यानि); वीमि.; व्यग्र. ३७३; व्यड. ११४; व्यम. १००; विता. ७३७; सेतु. २१८ रोल्लुञ्चनेषु (कराकर्षणेषु); समु. १६२ रोल्लुञ्च (राल्लुञ्च) पणान् (पणा).

(१) यास्मृ. २।२१८; अपु. २५८।१५ दण्ड्यो (दाप्यो); विश्व. २।२२३ दुःखं कुर्वन् (कुर्वन् दुःखं); मित्ता.; अप. दुःखं (पीडां) शेषं अपवत्; पमा. ४१५; रत्न. १२२ शतं (शत्) गुणं (गुणो); व्यनि. ४९१ पणान् दण्ड्यो (पणं दाप्यो); नृप्र. २७४ कुर्वन् (कुर्यात्); सवि. ४८२ (=) त्रिंशतं (त्रिंशति) दशनेऽसृजः (दशने अल्लुञ्च); वीमि.; व्यग्र. ३७२. पणान् (पणं).

(१) साम्य एव— 'शोणितेन विना कुर्वन् दुःखं काष्ठादिभिर्नरः । द्वात्रिंशत् पणान् दण्डयो द्विगुणं दर्शनेऽसृजः ॥' असृजो लोहितस्येत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२२३

(२) यः पुनः शोणितं यथा न दृश्यते तथा मृदु-ताडनं काष्ठलोष्टादिभिः करोत्यसौ द्वात्रिंशत् पणान् दण्ड्यः । यदा पुनर्गाढताडनेन लोहितं दृश्यते तदा द्वात्रिंशतो द्विगुणं चतुःषष्टिपणान् दण्डनीयः । त्वङ्मांसास्थिभेदे पुनर्विशेषो मनुना दर्शितः— 'त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः । मांसभेत्ता च षण्णिकान् प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥' इति (मस्मृ. ८।२८४) । *मिता.

(३) शोणितमदर्शयित्वैव काष्ठादिभिः परस्य समान-जातीयस्य दुःखमुत्पादयन् द्वात्रिंशत् पणान् दाप्यः । शोणितदर्शने तु चतुःषष्टिम् । अप.

कैरपाददतो भङ्गे छेदने कर्णनासयोः ।

मध्ये दण्डो व्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ॥

(१) निकृष्टविषयत्वे तु— 'करपाददन्तमङ्गे छेदने कर्णनासयोः । मध्यो दण्डो व्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ॥' साम्ये हि शत्रोद्गूरुणमात्र एव मध्यमस्योक्त-त्वान्निकृष्टविषयमेतदिति व्याख्येयम् । ऋज्वन्यत् । विश्व. २।२२४

(२) करपाददन्तस्य प्रत्येकं भङ्गे कर्णनासस्य च

* अप., विर., पमा., वीमि., व्यप्र., व्यज., विता. मितावत् ।

गुणं (गुणो); व्यज. ११३; व्यम. १०० विना (समं) गुणं (गुणो); विता. ७३७ ऽसृजः (स्तृतः); समु. १६२ अपुवत्.

(१) यास्मृ. २।२१९; अपु. २५८।१६; विश्व. २।२२४ दतो (दन्त); मिता.; अप. विश्ववत्; व्यक. १०५ विश्ववत्; विर. २६५ विश्ववत्; पमा. ४१५; रत्न. १२२ छेद (भेद); विचि. ११६ कल्प (कल्पे) शेषं विश्ववत्; दवि. २५७ विचिवत्; सवि. ४८२-३ (=) पाददतो भङ्गे (वदन्तमङ्गे च) मध्यो (मध्ये); वीमि.; व्यप्र. ३७३; व्यज. ११४; व्यम. १०० रत्नवत्; विता. ७३७; सेतु. २१९ कल्प (कल्पे); समु. १६२.

प्रत्येकं छेदने रूढव्रणस्योद्भेदने मृतकल्पो यथा भवति तथा हते ताडिते मध्यमसाहसो वेदितव्यः । अनुबन्धादिना विषयस्य साम्यमत्रापादनीयम् । × मिता.

(३) मिताटीका— ननु कर्णनासच्छेदाद्यपेक्षया करपाददन्तमङ्गस्याल्पत्वेनैकरूप्येण सर्वत्र मध्यमसाहसं दण्डविधानमनुपपन्नं स्यादित्यत आह— अनुबन्धादि-नेति । अनुबन्धो दोषोत्पादः । 'दोषोत्पादेऽनुबन्धः स्यादित्यमरः । आदिशब्दात् व्यवहारसौकर्यं गृह्यते । कर्णनासच्छेदनरूढव्रणोद्भेदनादौ दोषाधिक्यं प्रत्यक्ष-सिद्धम् । करपादयोस्तु साक्षाच्छरीरावयवत्वेन तद्भङ्गे व्यवहारसौकर्याभावेन शरीरयात्रायाः दुर्लभत्वात् दोषा-धिक्यम् । दन्तमङ्गेऽभ्यवहारसौकर्याभावेन परम्परया जीवनसंकोचादोषाधिक्यं इत्यनुबन्धादिना करपाददन्त-मङ्गादिरूपस्य विषयस्य साम्यमूह्यमित्यर्थः । सुत्रो.

(४) तथापदेनाङ्गुलिच्छेदसंग्रहः । *वीमि.

'चेष्टाभोजनवाप्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने ।

कन्धराबाहुसक्त्रां च भङ्गे मध्यमसाहसः ॥

(१) चेष्टादिप्रतिरोधकेऽभिघाते अक्ष्यादीन्द्रियाधि-ष्ठानप्रत्येकभेदने कन्धरादिभेदने चोत्तमसाहसो दण्डः । चेष्टानिरोधो मूर्च्छा । भोजननिरोधोऽत्याभिघाताद् भोक्तु-मशक्तिः । वागुच्चारणाशक्तिर्वाग्रोधः । कन्धरा गलस्कन्ध-संचारिणी सिरा । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२२५

(२) गमनभोजनभाषणनिरोधे नेत्रस्य आदिग्रहणा-जिह्वायाश्च प्रतिभेदने । कन्धरा ग्रीवा, बाहुः प्रसिद्धः, सक्त्रि ऊरुस्तेषां प्रत्येकं भङ्गने मध्यमसाहसो दण्डः । *मिता.

× अप., विर., पमा., विचि., दवि., वीमि., व्यप्र. मितावत् ।

* शेषं मितावत् । + पमा., व्यप्र. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२२०; अपु. २५८।१७; विश्व. २।२२५ मध्यम (उत्तम); मिता.; अप. सक्त्रां च (सक्त्र्यङ्घ्रि); व्यक. १०५ प्रति (प्रवि) सः (सम्); विर. २६५ प्रति (पु वि); पमा. ४१६; रत्न. १२२; दवि. २५७ प्रति (प्रवि); सवि. ४८३ (=) भोजन (भेदन) धे (ध) भेद (रोव) सः (सम्); वीमि.; व्यप्र. ३७३; व्यज. ११४; विता. ७३८; समु. १६२ भङ्गे (भेदे).

(३) चेष्टा गमनागमनमूत्रपुरीषोत्सर्गादिः । भोजन-
मभ्यवहारः । वाग्ब्याहारः । एषां कस्यचिद्रोधे प्रति-
बन्धे, नेत्रादेश्च ज्ञानेन्द्रियाधिष्ठानस्य प्रतिभेदने तदधि-
ष्ठानत्वविनाशे, कन्धराया ग्रीवाया बाहोः सक्शो जघन-
स्याङ्घ्रेः पादस्य वा भङ्गे मध्यमसाहस एव दण्डः ।
पूर्वमिदं च वाक्यं ब्राह्मणव्यतिरिक्तस्य समानजाती-
यस्यापराधुवतो दण्डविधायकम् । विष्णुः—‘चेष्टा-
भोजनवाग्नाथे प्रहारदाने च नेत्रकन्धरावाहुसक्थिभङ्गे
चोत्तमम्’ (विस्मृ. ५।६९-७०) । उत्तममुत्तमसाहसः,
दण्ड इति शेषः । अत्र क्षत्रियस्य वैश्यमपराधुवतो
वैश्यस्य क्षत्रियमपराधुवतो यथाक्रमं दण्डदाने मध्यमोत्तम-
साहसयोर्विषयव्यवस्था । अथवा मध्यमसाहसविधिः
शूद्रस्य समानजातीयापराधे । उत्तमसाहसस्तु समान-
जातीयापराध एव क्षत्रियवैश्ययोः । अन.

(४) चकारेण पार्थिवप्रभृतिसंग्रहः । *वीमि.

एकं व्रतां बहूनां च यथोक्ताद्द्विगुणो दमः ।
कलहापहृतं देयं दण्डश्च द्विगुणस्ततः ॥

(१) सर्वत्रैवास्मिन् प्रकरणे— ‘एकं व्रतां बहूनां
तु यथोक्ताद् द्विगुणा दमाः । कलहापहृतं देयं दण्डश्च
द्विगुणस्ततः ॥’ कलहापहृतादित्यर्थः । एतच्चाभिहतायैव
देयं राजदण्डव्यतिरेकेणेत्यवसेयम् । तथा च बृहस्पतिः—
‘दण्डस्त्वभिहतायैव दण्डपारुष्यकल्पितः । हृते तद्द्विगुणं
चान्यद् राजदण्डस्ततोऽधिकः ॥’ इति । यत्तु नारदीयं—

* शेषं मितवत् ।

(१) यास्मृ. २।२२१; अयु. २२७।५९ उक्तः ।
२५८।१८ णो दमः (णा दमाः) ण्डश्च (ण्डस्तु) णस्ततः
(णः स्मृतः); विश्व. २।२२६ नां च (नां तु) णो दमः
(णा दमाः); मिता.; अप. नां च (नां तु) स्ततः
(स्तथा); व्यक. १०६ दण्डश्च ... स्ततः (दण्डं च
द्विगुणं ततः) शेषं विश्ववत्; स्मृच. ३२९ नां च (नां तु)
पू.; विर. २६९-७०; पमा. ४१६ पू. : ४२० स्ततः
(स्तथा) उक्तः; विचि. ११९ णस्ततः (णः स्मृतः); दवि.
२२० उक्तः; २४९ पू.; नृप्र. २७४ णो (णं) पू.;
सवि. ४८३ (=) पू.; वीमि.; व्यप्र. ३७३ पू. : ३७५
उक्तः; व्यड. ११४ पू. : ११५ श्च (श्चेत्) उक्तः; विता.
७३८ पू. : ७४९ उक्तः; सेतु. २२१ विचिवत्; समु. १६२
नां च (नां तु) पू. : १६३ उक्तः.

‘यमेव ह्यतिवर्तेरन्नेते सन्तं जनं नृपु । स एव विनयं
कुर्यान्न तद्विनयभाङ् नृपः ॥’ इति । एतच्छूद्रविषयं
द्रष्टव्यम् । शूद्राणां ह्युक्त्यापराधे राज्ञा अर्थदण्डो न
ग्राह्यः । किं तर्हि । अनावेद्य स्वयमेवोत्कृष्टैरर्थदण्डेन
विनयः कार्यः । राज्ञा त्वावेदिते वध एव । तथा चान-
न्तरमेवाह—‘मला ह्येते मनुष्येषु धनमेषां मलात्मकम् ।
अतस्तान् घातयेद्राजा नार्थदण्डेन दण्डयेत् ॥’ इति ।
स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२२६

(२) यदा पुनर्वहवो मिलिता एकस्याङ्गभङ्गादिकं
कुर्वन्ति तदा यस्मिन् यस्मिन् अपराधे यो
यो दण्ड उक्तस्तत्र तस्माद्द्विगुणो दण्डः प्रत्येकं वेदि-
तव्यः । अतिक्रूरत्वात्तेषां प्रातिलोम्यानुलोम्यापराधयो-
रप्येतस्यैव सवर्णविषयेऽभिहितस्य दण्डजातस्य वाक्पा-
रुष्योत्तक्रमेण हानि वृद्धि च कल्पयेत् । ‘वाक्पारुष्ये
य एवोक्तः प्रातिलोम्यानुलोमतः । स एव दण्डपारुष्ये
दाप्यो राज्ञा यथाक्रमम् ॥’ इति स्मरणात् ।

किञ्च । कलहे वर्तमाने यद्येनापहृतं तत्तेन प्रत्यर्प-
णीयम् । अपहृतद्रव्याद्द्विगुणश्चापहारनिमित्तो दण्डो
देयः । *मिता.

(३) यदा पुनरेकं प्रति बहवो हन्तारो दण्डपारुष्य-
कर्तारो भस्मकर्मपांसुसंयोगकर्तारो भवन्ति तदा तेषां
तस्मिन् विषये यो दण्ड उक्तस्तस्माद्द्विगुणो दण्डः प्रत्येकं
कार्यः । कलहे च वर्तमाने येन यस्य यदपहृतं तेन
तस्मै तद्वत्त्वा ततो द्विगुणं धनं राज्ञे देयम् । अप.

(४) बहूनां प्रत्येकं द्विगुणो दमो न पुनः समुदा-
यस्य प्रहारकस्य, प्रत्येकमेवापराधाधिक्यात् । अत एव
विष्णुः— ‘एकं व्रतां बहूनां प्रत्येकस्योक्तदण्डो द्विगुणः’
इति (विस्मृ. ५।७३) । प्रत्येकस्य प्रत्येकमित्यर्थः ।
Xस्मृच. ३२९

(५) एकं बहवो यत्र घ्नन्ति तत्रैकस्य हन्तृत्वे यो
दण्डो यत्रोक्तस्तद्द्विगुणस्तस्मिन्नपरे दण्ड इत्यर्थः, न
हीनोत्तमभेदे । न चात्र दण्डाधिक्यन्यूनते द्रष्टव्ये ।
Xवीमि.

* विर., पमा., विचि., दवि., व्यप्र., व्यड., विता.
मितवत् । X शेषं अपवत् ।

दुःखमुत्पादयेद्यस्तु स समुत्थानजं व्ययम् ।
दाप्यो दण्डं च यो यस्मिन् कलहे समुदाहृतः ॥

(१) यो दुःखमुत्पादयेत्, तेन यावत् सम्यगस्यो-
त्थानं निर्दुःखता भवति, तावद् यो व्ययः स समुत्था-
नजो व्ययः, स देयः । चकारात् राजावेदनप्रवृत्त्युप-
क्षयश्च । राज्ञे च यथोदाहृतो दण्डः । स्वयं चाददद्
राज्ञा दाप्यः । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२२७

(२) यो यस्य ताडनाद्दुःखमुत्पादयेत् स तस्य
ब्रणरोपणादौ औपधार्यं पथ्यार्थं च यो व्ययः क्रियते तं
दद्यात् । समुत्थानं ब्रणरोपणम् । यस्मिन् कलहे यो
दण्डस्तं च दद्यान्न पुनः समुत्थानजव्ययमात्रम् । मित्ता.

(३) यस्तु शस्त्रादिताडनेन परस्य दुःखमुत्पादयेत्
स ब्रणारोपणादौ समुत्थाने यो धनव्ययस्तं दद्यात् ।
यश्च यस्मिन् कलहे दण्डपारुष्ये दम उक्तस्तं च राज्ञे
दद्यात् । अप.

(४) दुःखमुत्पादयेत् मनुष्यग्राम्यशूनामिति शेषः ।
स्मृच. ३२९

(५) चकारेण च समुच्चयार्थकेन विकल्पं वार-
यति । + वीमि.

यानयुग्मगोगजाश्वादिनिमित्तेषु प्राणिहिसाद्रव्यनाशेषु
स्वाम्यादीनां दण्डविचारः

चतुष्पादकृतो दोषो नैपैहीति प्रजल्पतः ।

काष्ठलोष्टेषुपाषाणबाहुयुग्यकृतस्तथा ॥

(१) अकामतस्तु प्रवृत्तत्वात् — 'चतुष्पादकृते

+ शेषं मित्तावत् ।

(१) यास्मृ. २।२२२; अपु. २५८।१९; विश्व. २।२२७;
मित्ता.; अप. स समुत्थानजं (समुत्थानधन);
व्यक. १०६ दाहृतः (दीरितः); स्मृच. ३२९ पू.;
विर. २७०; पमा. ४२० नजं (नजं); व्यनि. ४९५ पू.;
वीमि.; व्यप्र. ३७५; व्यउ. ११५ जं व्ययम् (जो व्ययः);
विता. ७४१; समु. १६३.

(२) यास्मृ. २।२९८; विश्व. २।३०१ कृतो (कृते)
पै (पे) जल्प (भाष) युग्यकृतः (युद्धकृते); मित्ता.;
अप. २।२९७ बाहु (बाह्व); व्यक. १०८ जल्प (भाष)
१ अपैहीति पाठोऽप्राणिनीयः । बहुनिबन्धन्येषु दृष्टत्वात्-
थैव स्थापितः ।

दोपो नापेहीति प्रभापतः । काष्ठलोष्टेषुपाषाणबाहुयुद्धकृते
तथा ॥ 'हुष्टोऽयं वलीवर्दादिः, अपसर्पणाय त्वर्यताम्'
इत्येवंवादिनः स्वामिनश्चतुष्पादकृतेऽपराधे न दोषः ।
एवमेव चास्यासावर्थः । काष्ठादि क्षिपतोर्बाहुयुद्धेन वा
संरन्धयोः । तथाशब्दादनभिक्रुष्टे सदोषतैवेति गम्यते ।

विश्व. २।३०१

(२) विषयविशेषे दण्डाभावमाह— चतुष्पादेति ।
चतुष्पादैर्गोगजादिभिः कृतो यो दोषो मनुष्यमारणादि-
रूढोऽसौ गवादिस्वामिनो न भवति अपसरेति प्रकर्मणो-
च्चैर्भाषमाणस्य । तथा लकुटलोष्टसायकपाषाणोत्क्षेपणेन
बाहुना युग्येन च युगं वहता अश्वादिना कृतो यः
पूर्वाक्तो दोषः सोऽपि काष्ठादीन् प्रास्यतो न भवत्य-
पसरेति प्रजल्पतः । काष्ठाद्युत्क्षेपणेन हिंसायां दोषाभाव-
कथनं दण्डाभावप्रतिपादनार्थम् । प्रायश्चित्तं पुनरबुद्धि-
पूर्वकरणनिमित्तमस्त्येव । काष्ठादिग्रहणं च शक्तितोमरादे-
रुपलक्षणार्थम् । * मित्ता.

(३) विषयविशेषे दण्डापवादमाह— चतुष्पादेति ।
चतुष्पादैर्गोगजाश्वादिभिः कृतो मनुष्यमारणादिरपराध-
स्तद्वाहकस्य दण्डनिमित्तं भवति । यद्यसावुच्चैरपेहीति
परं प्रति ब्रूयात्, काष्ठादि व्यापारयतश्चापेहीत्युच्चैर्भाष-
माणस्य काष्ठादिकृतोऽपराधो दण्डनिमित्तं न भवति ।
लोष्टो मृत्पिण्डः । इषुर्बाणः । युग्यं यानम् । अप.

(४) अस्यार्थः— अमनुष्यैः पशुपक्ष्यादिभिः स्वत
एव कृतो हिंसादिदोषः तत्स्वामिनां तेषु बलवर्धन-
घासादिदायित्वेऽपि न भवति । तथाऽन्यप्रेरितकाष्ठलोष्ट-
पाषाणपृष्ठयानवाहादिकृतो हिंसादिदोषः प्रेरकस्यापसरेति
पुनः पुनरुच्चैरुच्चरितुः न भवतीति । ततोऽत्र दण्डो
नास्तीत्यभिप्रायः । स्मृच. ३२५

(५) काष्ठलोष्टेषुपाषाणबाहुयोग्याकृतः काष्ठलोष्टेषु-

* विता. मित्तावत् ।

ष्टेयु (ष्टेय) युग्य (योग्या); स्मृच. ३२५ चतुष्पाद (अमनुष्य)
बाहुयुग्य (बाहायुध); विर. २८० ष्पाद (ष्पद) शेषं
व्यकवत्; द्वि. २२३ ष्पाद (ष्पद) जल्प (भाष) ष्टेयु
(ष्टेयु) युग्य (योग्या); वीमि. पै (पे); विता. ७६३ ना
(वा) कृतस्त (कृते त); समु. १५८ युग्य (युग्म).

पाषाणवाहुभिरभ्यासकरणे यः परमो घातो दण्डौचित्य-
लक्षणो दोषः प्रथममेव अपेहीति भाषमाणस्य न भवती-
त्यर्थः । एतच्च एवंविधस्यान्यस्याप्यभ्यासकरणस्योप-
लक्षणं न्यायसाम्यात् । विर. २८०

(६) चतुष्पदमश्रवणादिक्रमाख्यान्यथा वा नय-
तस्तथा काष्ठादिना न्यायसाम्यात् अन्यैर्वा द्रव्यैर्योग्यम-
भ्यासं कुर्वतः परोपघातशङ्कया प्रथममेव दूरमपेहीति
प्रजल्पतः प्रकषेणोच्चैर्भाषमाणस्याश्वादिक्वतमनुष्यादि-
दोषोऽश्वादिनेतुरभ्यासकर्तुश्च न भवतीत्यर्थः ।

दवि. २२३-४

(७) अपेहीति प्रकषेणोच्चैर्जल्पतः चतुष्पादेन
हस्तिवृषादिना कृतो मारणादिरूपो दोषोऽपराधस्तत्स्वा-
मिनो न भवति । तथा अपेहीति प्रजल्पतः शकटास्थितै-
र्युग्यभिन्नैः सर्वैरेव व्यापार्यमाणैर्वा काष्ठादिभिः कृतो
दोषो न भवति । तथापदेन तथोक्तच्छेदसंग्रहः । वीमि.
छिन्ननस्येन यानेन तथा भग्नयुगादिना ।

पश्चाच्चैवापसरता हिंसने स्वाम्यदोषभाक् ॥

(१) अनभिप्रेतत्वादेव च— 'छिन्ननास्येन यानेन
तथा भग्नयुगेन च । पश्चाच्चैवापसरता हिंसिते स्वाम्य-
दोषभाक् ॥' नस्तादिरहितबलीवर्दादियुक्तं छिन्न-
नास्यम् । तथाशब्दः प्रकारार्थः । स्पष्टमन्यत् ।

विश्व. २१३०२

(२) नसि भवा रज्जुर्नस्या छिन्ना शकटादियुक्त-
बलीवर्दनस्या रज्जुर्यस्मिन् याने तत् छिन्ननस्यं शकटादि-
तेन । तथा भग्नयुगेन आदिग्रहणात् भग्नाक्षचक्रादिना
च यानेन पश्चात्पृष्ठतोऽपसरता, च शब्दात्तिर्यगपगच्छता
प्रतिमुखं चागच्छता च, मनुष्यादिहिंसने स्वामी
प्राजको वा दोषभाक् न भवति । अतत्प्रयत्नजनितत्वा-
द्धिसनस्य । तथा च मनुः— 'छिन्ननस्ये भग्नयुगे
तिर्यक्प्रतिमुखागते । अक्षमङ्गे च यानस्य चक्रमङ्गे
तथैव च ॥ छेदने चैव यन्त्राणां योक्तुरभ्योस्तथैव
च । आक्रन्दे सत्यपेहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥' इति

(१) यास्मृ. २।२९९; विश्व. २।३०२ नस्ये (नास्ये)
युगादिना (युगेन च) हिंसने (हिंसिते); मिता.; अप.
२।२९८; विर. २८० नस्ये (नास्ये) सरता (सरतां) दोष
(दण्ड); वीमि.; विता. ७६३ पस (नुस); समु. १५८.

(मस्मृ. ८।२९१-२) ।

* मिता.

(३) चकारात्पश्चादपसरणव्यतिरिक्ता अपि यानस्य
गतयः परिगृह्यन्ते । Xअप.

शक्तोऽप्यमोक्षयन् स्वामी दंष्ट्रिणां शृङ्गिणां तथा ।
प्रथमं साहसं दद्याद्विक्रुष्टे द्विगुणं तथा ॥

(१) हिंसतः परिगृहीतस्य बलीवर्दादेः— 'शक्तोऽ-
प्यमोक्षयन् स्वामी शृङ्गिणो दंष्ट्रिणस्तथा । प्रथमं साहसं
दाप्यो विक्रुष्टे द्विगुणं तथा ॥' तथाशब्दोऽपराधविशेषा-
नुसारेण दण्डविशेषकल्पनाप्रतिपत्त्यर्थः । प्रसिद्धमन्यत् ।

विश्व. २।३०३

(२) उपेक्षायां स्वामिनो दण्डमाह— शक्तोऽप्य-
मोक्षयन्निति । अप्रवीणप्राजकप्रेरितैर्दंष्ट्रिभिर्गजादिभिः
शृङ्गिभिर्गवादिभिर्वध्यमानं समर्थोऽपि तत्स्वामी यद्य-
मोक्षयन्नुपेक्षते तदा अकुशलप्राजकनियोजनमिमित्तं
प्रथमसाहसं दण्डं दद्यात् । यदा तु मारितोऽहमिति
विक्रुष्टेऽपि न मोक्षयति तदा द्विगुणम् । यदा पुनः प्रवीण-
मेव प्राजकं प्रेरयति तदा प्राजक एव दण्ड्यो न स्वामी ।
यथाह मनुः— 'प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति'
इति (मस्मृ. ८।२९४) । प्राजको यन्ता । आतोऽभि-
युक्तः । प्राणिविशेषाच्च दण्डविशेषः कल्पनीयः । यथाह
मनुः— 'मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषी भवेत् ।
प्राणभृत्सु महत्त्वर्थं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ क्षुद्राणां च
पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः । पश्चात्शतु भवेद्दण्डः
शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्प-

* वीमि. मितावत् । X शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।३००; अपु. २५८।७६-७ ऽप्य (ह)
णां शृङ्गिणां (णः शृङ्गिणः); विश्व. २।३०३ दंष्ट्रिणां शृङ्गिणां
(शृङ्गिणो दंष्ट्रिणः) दद्याद्वि (दाप्यो वि); मिता.; अप.
२।२९९; व्यक. १०६; स्मृच. ३२५ ऽप्य (ह); विर.
२७३ ऽप्यमोक्ष (ह्यमोच) दंष्ट्रि ... तथा (पक्षिणां
शृङ्गिणामपि) दद्याद्वि (दण्ड्यो वि); विचि. १२० ऽप्य (ह)
दद्याद्वि (दण्ड्यो वि); व्यनि. ४९४ मोक्ष (मोष); दवि. २२३
ऽप्यमोक्ष (ह्यमोच) दद्याद्वि (दण्ड्यो वि); वीमि. ऽप्य (ह)
दंष्ट्रिणां शृङ्गिणां (शृङ्गिणो दंष्ट्रिणः); व्यम. १०९ विचिवत् ;
विता. ७६३ ऽप्य (ह) द्विगुणं (मध्यमं); राकौ.
४९४ विचिवत् ; सेतु. ३०१ स्मृचवत् ; समु. १५८
ऽप्य (ह) णं तथा (णं ततः) .

अमाषकः । माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वशूकरनिपातने ॥
इति (मसृ. ८।२९६-८) । *मिता

(३) दंष्ट्रिणां गजादीनां शृङ्गिणां बलीवर्दादीनां
स्वामी प्राणिव्यापादने प्रवर्तमानानां तन्निवारणे शक्तः
सन् यो न निवारयति, तस्य प्रथमसाहसो दण्डः ।
यस्तु व्यापाद्यमानेन त्रायस्वेति विक्रुष्टेऽपि न निवार-
यति तस्य पूर्वोक्ताद्द्विगुणो दण्डः । अप.

(४) स्त्रीयं शृङ्गिणमपसारयेत्यसकृदाक्रोशे . कृते
विक्रुष्ट इति । विर. २७३

द्रव्यविनाशे दण्डविधिः

अभिघाते तथा छेदे भेदे कुड्यावपातने ।

पणान् दाप्यः पञ्च दश विंशतिं तद्व्ययं तथा ॥

(१) दपैव च— 'अभिघाते तथा भेदे छेदे
कुड्यावपातने । पणान् दाप्यः पञ्च दश विंशतिं तद्व्ययं
तथा ॥' प्रातिवेशिकग्रहाणां दौरात्म्यात् पाषाणादिना
अभिघाते कृते पञ्च पणान् दाप्यः । तथा भेदेऽभिघात-
संज्ञासाज्जाते दश पणान् दाप्यः । छेदने तु तद्द्वैधी-
भावे कुड्यावपातने वा विंशतिम् । व्ययं तु व्यापन्न-
समाधानार्थं ग्रहिणे दद्यात् सर्वत्र साहसिकत्वात् ।
विश्व. २।२२९

(२) मुद्गरादिना कुड्यस्याभिघाते विदारणे द्विधा-
करणे च यथाक्रमं पञ्चपणो दशपणो विंशतिपणश्च दण्डो
वेदितव्यः । अवपातने पुनः कुड्यस्यैते त्रयो दण्डाः
समुच्चिता ग्राह्याः । पुनः कुड्यसंपादनार्थं च धनं
स्वामिने दद्यात् । Xमिता.

* वीमि. मितावत् ।

X पमा., सवि., व्यप्र., व्यउ., विता. मितावत् । दण्ड-
विवेके मिताक्षरारत्नाकरयोरुद्धारः, हलपुषमत्तं च मितावत् ।

(१) यासृ. २।२२३; अपु. २५८।२१ छेदे भेदे
(भेदे छेदे) तद्व्ययं (तद्व्ययं); विश्व. २।२२९ छेदे भेदे
(भेदे छेदे); मिता.; अप.; व्यक ११९ तद्व्ययं (तद्व्ययं)
शेषं विश्ववत्; विर. ३५१ छेदे भेदे (भेदे छेदे) मात (घात)
तद्व्ययं (तद्व्ययं); पमा. ४२८; विचि. १५१ पणान् (पणा)
शेषं विश्ववत्; दवि. २९८ दाप्यः (दण्ड्यः) शेषं विश्ववत्
क्रान्तेन्यदावमि तद्व्ययमिति प्राठः इत्याह; सवि. ४८३ (=);
वीमि.; व्यप्र. २७७; व्यउ. ११७ तद्व्ययं (तद्व्ययं);

(३) कुड्यस्यापहर्ता पञ्च पणान् दाप्यः । छेत्ता
दश । भेत्ता विंशतिम् । पातयिता तु कुड्यव्ययं
स्वामिने दाप्यः । अप.

(४) अभिघातो बन्धशिथिलीकरणहेतुः, भेदः
क्वापि बन्धादिविघटनं, छेदो द्वैधीकरणं, एभ्यो बलवान्
विमर्दोऽभिघातनं एषु कुड्याभिघातादिषु यथाक्रमं पञ्च-
दशविंशतिचत्वारिंशत्पणा दण्डाः । अभिघातादौ तु
यावत्कुड्यं मन्दीभूतं, तावदपेक्षयाऽपि साहसकर्तृपार्श्वे ।
विर. ३५२

(५) परकीयकुड्याभिघाते शिथिलीकरणे पञ्चदश
पणाः । भेदे बन्धशिथिलीकरणे विंशतिं, छेदे द्विधा-
करणे तथा विमर्दे अवघातने उभयत्रापि चत्वारिं-
शत्पणदण्डः । तत्सजीकरणं च ' स तस्योत्पादयेत्तुष्टिम्'
इति मनुवचनात् । * विचि. १५१

(६) तद्व्ययं कुड्यस्य पुनः करणार्थं व्ययितं धनम् ।
तथाशब्देन साहित्यं विवक्षितम् । + वीमि.

दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन् प्राणहरं तथा ।
षोडशाद्यः पणान् दाप्यो द्वितीयो मध्यमं दमम् ॥

(१) परकीये— 'दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन्
प्राणहरं तथा । षोडशाद्ये पणान् दाप्यो द्वितीये मध्यमं
दमम् ॥' दुःखोत्पादि द्रव्यं कण्टकादि । प्राणहरं
सर्पादि । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२३०

(२) परगृहे दुःखजनकं कण्टकादि द्रव्यं प्रक्षिपन्
षोडशपणान् दण्ड्यः । प्राणहरं पुनर्विषभुजङ्गादिकं

* दण्डविवेके तु रत्नाकरवत् मिश्राः इत्युक्तम् ।

+ शेषं मितावत् ।

विता. ७४१; सेतु. २५५ पूर्वार्थे (अवघाते तथा भेदे छेदे
कुड्यादिघातने) तद्व्ययं (तद्व्ययं); समु. १६४ विश्ववत्.

(१) यासृ. २।२२४; अपु. २५८।२२ द्वितीयो
(द्विगुणो); विश्व. २।२३० शाशः (शाशे) तीयो (तीये);
मिता.; अप.; व्यक. ११९; विर. ३५३ दाप्यो (दण्ड्यो);
पमा. ४२८; विचि. १५२ दाप्यो (दण्ड्यो) तीयो (तीये);
दवि. २९६ विरवत्; सवि. ४८३ (=); वीमि.; व्यप्र.
३७७ विरवत्; व्यउ. ११७ विरवत्; विता. ७४३ दाप्यो
(दण्ड्यो) दमम् (तथा); सेतु. २५५ (१); क्षिपन् (क्षिपं)
दाप्यो (दण्ड्यो); समु. १६४; विश्व. २।२३०

प्रक्षिपन् मध्यमसाहसं दण्ड्यः । *मिता.

(३) दुःखहेतुद्रव्यं कण्टकविष्टाग्रावास्थ्यादि ।

विता. ७४१

पशुविषयदण्डपारुष्ये दण्डविधिः

दुःखे च शोणितोत्पादे शाखाङ्गच्छेदने तथा ।

दण्डः क्षुद्रपशूनां तु द्विपणप्रभृतिः क्रमात् ॥

(१) द्विगुण इति शेषः । शोणितोत्पादशाखाङ्ग-
च्छेदनेषूत्तरोत्तरो द्विगुणः । शृङ्गकर्णपुच्छादीनि शाखाः ।
चक्षुरादीन्यङ्गानि । क्षुद्रपशवश्छागादयः । सप्तमन्यत् ।

विश्व. २।२३१

(२) पशुभिद्रोहे दण्डमाह — दुःखे चेति ।

क्षुद्राणां पशूनां अजाविकहरिणप्रायाणां ताडनेन दुःखो-
त्पादने असृक्स्त्रावणे शाखाङ्गच्छेदने । शाखाशब्देन
चात्र प्राणसंचाररहितं शृङ्गादिकं लक्ष्यते । अङ्गानि
करचरणप्रभृतीनि । शाखा चाङ्गं च शाखाङ्गं तस्य
छेदने द्विपणप्रभृतिर्दण्डः । द्वौ पणौ यस्य दण्डस्य स
द्विपणः । द्विपणः प्रभृतिरादिर्यस्य दण्डगणस्यासौ द्वि-
पणप्रभृतिः । स च दण्डगणो द्विपणः चतुष्पणः षट्-
पणोऽष्टपण इत्येवंरूपो न पुनर्द्विपणस्त्रिपणश्चतुष्पणः
पञ्चपण इति । कथमिति चेदुच्यते । अपराधगुरुत्वात्ता-
वत् प्रथमदण्डाद्गुस्तरमुपरितनं दण्डत्रितयमवगम्यते ।
तत्र चाश्रुतत्रिणादिसंख्याश्रयणाद्वरं श्रुतद्विसंख्याया
एवाभ्यासाश्रयणेन गुरुत्वसंपादनमिति निरवद्यम् ।

*मिता.

* अप., विर., पमा., विचि., दवि., सवि., वीमि.,
व्यप्र., व्यउ. मितावत् ।

X अप., पमा., सवि., वीमि., व्यप्र., विता. मितावत् ।
दण्डविवेके हलायुधमतं विरवत्, मिताक्षरा चोद्धृता ।

(१) यास्मृ. २।२२५; अपु. २५८।२३ तु (स्यात्)
तिः (ति); मिता.; अप. खे च (खेऽथ); व्यक. १०७
खे च (खिते) द्विपणप्रभृतिः (द्विपणा द्विगुणाः); विर.
२७८ खे च (खेषु) तु (च) पणप्रभृतिः (पणात् द्विगुणः);
पमा. ४२२; रत्न. १२३; दीक. ५२ दि...मात्
(द्विगुणात् द्विगुणक्रमः); व्यनि. ४९६ तु (च); दवि.
२२१ खे च (खेषु) पणप्रभृतिः (पणात् द्विगुणः); सवि.
४८३ (=) तु (च) पण (गुण); वीमि. त्यादे (ज्ञेदे)
तु (स्यात्); व्यप्र. ३७६; व्यउ. ११६; व्यम. १००;

(३) शाखा अनारम्भकशृङ्गादिरूपा, अङ्गमारम्भकं
करचरणादि । तेन क्षुद्रपशूनामजादीनां शोणितं विना
दुःखोत्पादे, शोणितोत्पादे, शाखाच्छेदे, अङ्गच्छेदे
यथाक्रमं द्विपणचतुष्पणाष्टपणषोडशपणा दण्डाः ।

विर. २७८

लिङ्गस्य छेदने मृत्यौ मध्यमो मृत्यमेव च ।

महापशूनामेतेषु स्थानेषु द्विगुणो दमः ॥

(१) परकीयानां तु— 'लिङ्गस्य छेदने मृत्यौ
मध्यमो मृत्यमेव च । महापशूनामेतेषु स्थानेषु
द्विगुणा दमाः।' स्वकीये द्विपणादिमध्यमान्ता यथास्थानं
दण्डाः परकीये तु दण्डो मृत्यु चेति योज्यम् । महा-
पशवो गवादयः । तेषां प्रागुक्तशोणितदुःखोत्पादादिषु
स्थानेषु द्विपणाद्युक्तदण्डाद् द्विगुणा यथास्थानं दण्डाः
कार्याः । विश्व. २।२३२

(२) तेषां क्षुद्रपशूनां लिङ्गच्छेदने मरणे च
मध्यमसाहसो दण्डः । स्वामिने च मृत्युं दद्यात् ।
महापशूनां पुनर्गोणजवाजिप्रभृतीनामेतेषु स्थानेषु ताडन-
लोहितस्त्रावर्णादिषु निमित्तेषु पूर्वाक्तादृष्टद्विगुणो
दण्डो वेदितव्यः । *मिता.

वनस्पतिवृक्षलतागुल्मादीनां छेदनादौ दण्डविधिः

प्रैरोहिशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे ।

उपजीव्यद्रुमाणां च विंशतेर्द्विगुणो दमः ॥

* अप., विर., पमा., दवि., वीमि., व्यप्र., व्यउ.,
विता. मितावत् ।

विता. ७४३; समु. १६३.

(१) यास्मृ. २।२२६; अपु. २५८।२४ च (वा) णो
दमः (णा दमाः); विश्व. २।२३२ णो दमः (णा दमाः);
मिता.; अप.; व्यक. १०७; विर. २७८; पमा. ४२२;
रत्न. १२३; व्यनि. ४९६ मध्यमो (मध्यमे); दवि. २२१
मध्यमो (अधमो); वीमि.; व्यप्र. ३७६; व्यउ. ११६;
व्यम. १०० पशूनामेतेषु (पशुषु चैतेषु); विता. ७४३;
समु. १६३.

(२) यास्मृ. २।२२७; अपु. २५८।२५ च (तु) णो
दमः (णा दमाः); विश्व. २।२३३ हिशाखिनां (हशाखिका)
च (तु) तेर्द्विगुणो दमः (त्तिद्विगुणा दमाः); मिता.;
अप. णो दमः (णा दमाः); व्यक. १०८ च (तु) शेषं
अपवत्; विर. २८४; पमा. ४२६; विचि. १२२ च (तु)

(१) आरामारोपितानां सपरिग्रहाणां— 'प्ररोह-
शाखिकाशाखास्कन्धसर्वविदारणे । उपजीव्यद्रुमाणां तु
विंशतिद्विगुणा दमाः ॥' उपजीव्यद्रुमा आम्रादयः । तेषां
प्ररोहच्छेदने विंशतिपणो दमः । शाखिकादिच्छेदनेषु
त्तरोत्तरद्विगुणकल्पना । प्ररोहः पल्लवः । अल्पाः शाखाः
शाखिकाः । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२३३

(२) प्ररोहा अङ्कुरास्तद्वन्त्यः शाखाः प्ररोहिण्यः
याश्छिन्नाः पुनरुक्ताः प्रतिकण्डं प्ररोहन्ति ताः शाखाः
येषां वटादीनां ते प्ररोहिशाखिनस्तेषां शाखाच्छेदने ।
यतो मूलशाखा निर्गच्छन्ति स स्कन्धस्तस्य छेदने
समूलवृक्षच्छेदने च यथाक्रमं विंशतिपणदण्डादारभ्य
पूर्वस्मात् पूर्वस्मादुत्तरोत्तरो दण्डो द्विगुणः । एतदुक्तं
भवति । विंशतिपणश्चत्वारिंशत्पणोऽशीतिपण इत्येवं त्रयो
दण्डा यथाक्रमं शाखाच्छेदनादिष्वपराधेषु भवन्तीति ।
अप्ररोहिशाखिनामप्युपजीव्यवृक्षाणामाम्रादीनां पूर्वोक्तेषु
स्थानेषु पूर्वोक्ता एव दण्डाः, अनुपजीव्याप्ररो-
हिशाखिषु पुनर्वृक्षेषु कल्प्याः । * मिता.

(३) प्ररोहिणां न्यग्रोधादीनामुपजीव्यानां च टङ्काम्रा-
दीनां शाखिनां वृक्षाणां च शाखायाः स्कन्धस्य सर्वस्य
वृक्षस्य च भेदने यथाक्रमं त्रयो दण्डा भवन्ति । तत्र
शाखाया भेदने विंशतिः । स्कन्धस्य द्विगुणाश्चत्वारिंशत् ।
सर्वस्य द्विगुणा अशीतिः । प्ररोहो न्यग्रोधः । स्कन्धः
प्रधानशाखामूलम् । अप.

(४) प्ररोहिशाखिनो येषां शाखा अपि प्ररोहन्ति
ते वटादयः । उपजीव्यद्रुमाः येषां छायाद्युपजीव्यते ते
आम्रादयः । +विर. २८४

(५) चकारेण प्ररोहिणामेव ग्रामादिस्थैरुपवेशनाद्यर्थ-
मुपजीव्यत्वे तद्विदारणे पुनस्तद्द्वैगुण्यमिति समुचीयते ।
वीमि.

* पमा., सवि., व्यप्र., विता. मितावत् ।

+ शेषं मितावत् । विचि., दवि. विरवत् ।

दवि. ३२३; नृप्र. २७४; सवि. ४८४ (=); वीमि.;
व्यप्र. ३७७ च (तु); व्यउ. ११६ रोहि (रोह) च (तु);
विता. ७४३; राकौ. ४९० रोहि (रोह); सेतु. २९३
च (तु); समु. १६३.

व्य.कां. २२९

चैत्यश्मशानसीमासु पुण्यस्थाने सुरालये ।

जातद्रुमाणां द्विगुणो दमो वृक्षेऽथ विश्रुते ॥

(१) उपजीव्यानामेव च— 'चैत्यश्मशानसीमान्त-
पुण्यस्थाने नृपालये । जातद्रुमाणां द्विगुणा दमा वृक्षे च
विश्रुते ॥' चातुर्थिकाद्यपनोदनसमर्थः पिप्पलादिवृक्षो
विश्रुतः । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२३४

(२) वृक्षविशेषान् प्रत्याह— चैत्येति । चैत्यादिषु
जातानां वृक्षाणां शाखाच्छेदनादिषु पूर्वोक्तादण्डाद्-
द्विगुणः । विश्रुते च पिप्पलपलाशादिके द्विगुणो दण्डः ।
मिता.

(३) चैत्यादिस्थानजातानां द्रुमाणां शाखास्कन्ध-
सर्वविदारणेषु विश्रुतद्रुमविषयेषु पूर्वोक्ता विशत्यादयो
दमा द्विगुणा वेदितव्याः । चैत्यं मनोहरस्थानम् । अप.

(४) चकारेण समुत्थानव्ययदानं समुचीयते ।

* वीमि.

गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम् ।

पूर्वस्मृतादर्धदण्डः स्थानेषुक्तेषु कर्तने ॥

(१) चैत्यादिजातानामेव तु— 'गुल्मगुच्छक्षुपलता-
प्रतानौषधिवीरुधाम् । पूर्वस्मृतादर्धदण्डः स्थानेषुक्तेषु
कृन्तने ॥' गुल्मादीनामुक्तेषु चैत्यादिस्थानेषु जातानां
कृन्तने प्रागुक्तप्ररोहादिक्रमेणैव स्मृतादेकगुणादर्धदण्डाः

* शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२२८; विश्व. २।२३४ सीमासु
(सीमान्त) सुरा (नृपा) णो दमो वृक्षेऽथ (णा दमा वृक्षे च);
मिता. (क) क्षेऽथ (क्षे च); अप. णो दमो वृक्षेऽथ
(णा दमा वृक्षे च); व्यक. १०८; विर. २८४ णो दमो
(णा दमा); पमा. ४२७; विचि. १२२ विरवत्; दवि.
३२४ मितावत्; नृप्र. २७४ सीमासु (स्थानेषु); सवि.
४८४ (=) पुण्य (अन्य) क्षेऽथ (क्षेषु); वीमि. मितावत्;
व्यप्र. ३७७; व्यउ. ११७ मितावत्; विता. ७४४ स्थाने
(स्थान) क्षेऽथ (क्षे च); सेतु. २९३; समु. १६४.

(२) यास्मृ. २।२२९; विश्व. २।२३५ कर्तने (कृन्तने);
मिता.; अप.; व्यक. १०८ विश्ववत्; विर. २८४ षूक्तेषु
(ष्वेतेषु); पमा. ४२७; विचि. १२२ विश्ववत्; दवि.
३२४; नृप्र. २७४; वीमि.; व्यप्र. ३७७; व्यउ. ११७;
विता. ७४४; सेतु. २९४-५ षूक्तेषु (षु च. वि); समु-
१६३.

कल्प्याः । गुल्मः गुञ्जादि । गुच्छः कुन्दादि । क्षुपो जात्यादिविद्यः । लता प्रसिद्धा । प्रताना वल्हरी । आम्या ओषधयः । आरण्या वीरुधः । विश्व. २।२३५

(२) गुल्मादीन् प्रत्याह— गुल्मेति । गुल्मा अनति-दीर्घनिविडलता मालत्यादयः । गुच्छा अवल्लीरूपाः असरलप्रायाः कुरण्टकादयः । क्षुपाः करवीरादयः सरल-प्रायाः । लता दीर्घयायिन्यो द्राक्षातिमुक्ताप्रभृतयः । प्रतानाः काण्डप्ररोहरहिताः सरलयायिन्यः सारिवाप्रभृतयः । ओषधयः फलपाकावसानाः शालिप्रभृतयः । वीरुधः छिन्ना अपि या विविधं प्ररोहन्ति ताः गुडूची-प्रभृतयः । एतेषां पूर्वोक्तेषु स्थानेषु विकर्तने छेदने पूर्वोक्तादण्डादर्धदण्डो वेदितव्यः । * मिता.

(३) वृक्षेभ्यो न्यूनपरिमाणा उद्भिजा गुल्माः कुरु-वकादयः । ततो न्यूनपरिमाणा गुच्छाः । ततोऽपि न्दही-वांसः क्षुपाः । लता वल्लयः । ता एव स्थूलाः प्रतानाः । त्रीहियवादयः फलपाकान्ता ओषधयः । बीजकाण्डप्ररो-हिण्यो वीरुधः । आसां पूर्वोक्तेषु दण्डनिमित्तेषु पूर्वो-क्तदण्डानामर्धमर्धं ग्राह्यम् । अप.

(४) स्थानेषु स्कन्धशाखामूलेषु । Xविर. २८५

(५) समुत्थानव्ययदानं चात्रापि द्रष्टव्यम् । वीमि.

नारदः

दण्डपारुष्यलक्षणं तत्प्रकाराश्च

परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधादिभिः ।

भस्मादिभिश्चोपघातो दण्डपारुष्यमुच्यते+ ॥

* पमा., दवि., व्यप्र. मितावत् । X शेषं मितावत् ।
+ मिताक्षराव्याख्यानं 'असाक्षिकहते चिह्नैः' इति याज्ञवल्क्य-वचनादौ (पृ. १८१३) द्रष्टव्यम् । पमा., रत्न., व्यप्र. मितावत् ।

(१) नासं. १६, १७।४; नास्मृ. १८।४ दिक्शिपो-घातो (दीनासुपक्षेपैः); अपु. २५३।२८ भस्मा... घातो (भस्मादिभिश्चोपघातैः); मिता. २।२१२; अप. २।२१२ भस्मादि (तस्मादे) घातो (घाते); व्यक. १०४; स्मृच. ७; विर. २६० श्लोप (श्राव); पमा. ४०९ नास्मृवत्; रत्न. १२१; स्मृचि. २३ श्लोप (श्राप); दवि. ३३ श्लोप (श्रापि); नृप्र. २७१; सवि. ४८०; वीमि. २।२१२; व्यप्र. ३६९; व्यड. १११ भस्मा (अस्मा); व्यम. १००; विता. ७३१ व्यसवत्; राको. ४९०; सेतु. २१५ विरवत्; समु. १६१.

(१) परगात्रेषु स्थावरजङ्गममूर्तिषु । दण्डो द्रोहः । पारुष्यं निष्ठुरता । स्मृच. ७

(२) अभिघातस्ताडनम् । *दवि. ३३

(३) वाक्पारुष्यं निरूप्य दण्डपारुष्यं प्रस्तौति— परगात्रेष्विति । रोषात् परशरीरेष्वभिद्रोहः प्रहरणं हस्तादिभिः भस्मादिभिश्चोपघातो रज्जुपापणादिभिश्च भस्मधूलीपानीयाशुच्यादिना, दण्डपारुष्यमुच्यते ।

नामा. १६, १७।४ (पृ. १६५)

तस्यापि दृष्टं त्रैविध्यं हीनमध्योत्तमक्रमात् ।

अवगोरणनिःशङ्कपातनक्षतदर्शनैः ॥

हीनमध्योत्तमानां तु द्रव्याणां समतिक्रमात् ।

त्रीण्येव साहसान्याहुस्तत्र कण्टकशोधनम् ॥

(१) निःशङ्कपातनं निःशङ्कप्रहरणम् । त्रीण्येव साहसानि त्रिप्रकाराण्येव सहसा कृतानि दण्डपारुष्याणी-त्यर्थः । +मिता. २।२१२

* मिताक्षराव्याख्यानमपि समुद्धृतम् ।

+ पमा., रत्न., व्यप्र. मितावत् ।

(१) नासं. १६, १७।५ तस्या (तत्रा) हीन (मृदु) गोरणनिःशङ्क (गूरणनिःसङ्ग); नास्मृ. १८।५ हीन (मृदु) त्तम (त्तमं); मिता. २।२१२ (क) निःशङ्क (निःसङ्ग), (ख) स्यापि (स्योप) निःशङ्क (निःसङ्ग); अप. २।२१२ उत्तरार्धे (अवगूरणनिःसङ्गपातक्षतजदर्शनैः); व्यक. १०४ तस्या (तत्रा) हीन (मृदु) गोर... तन (गूरणनिःसङ्ग-पीडना); स्मृच. ७; विर. २६० हीन (मृदु) गो (गू); पमा. ४१० गो (गू); रत्न. १२१; व्यनि. ४९० हीन (मृदु) निःशङ्क (निःसङ्ग); स्मृचि. २३ हीन (मृदु); दवि. २१९ हीन (मृदु) गो (गू) शङ्क (शल्क); नृप्र. २७१; सवि. ४८० तस्या (अस्या) अव (अप) निः... क्षत (निःसङ्कपातक्षतज) मनुः; व्यप्र. ३६९; व्यड. १११ क्षत (क्षम); विता. ७३१-२; सेतु. २१५ हीन (मृदु) गोरण (गूहन); समु. १६१ नक्षत (क्षतज).

(२) नासं. १६, १७।६ इत्तत्र (हुः प्रोक्तं); नास्मृ. १८।६ समतिक्रमात् (अपकर्षणात्); अप. २।२१२ द्रव्याणां (वर्णानां) पू.; व्यक. १०४ द्रव्याणां (त्रयाणां) साहसा (साधना) धनम् (धने); स्मृच. ७ पू.; विर. २६० तु (च) धनम् (धने); पमा. ४१० सम (अन); रत्न. १२१ पू.; व्यनि. ४९० द्रव्याणां (त्रयाणां) धनम् (धने); स्मृचि. २३ तु (च) पू.; दवि. २१६ तु (च) पू.;

(२) कर्तृव्यापारतारतम्यात्, कर्मभूतद्रव्यवैशिष्ट्य-
तारतम्याच्च, प्रथममध्यमोत्तमभावेन त्रैविध्यमित्यर्थः ।
ननु पारुष्यद्वयस्य साहसविशेषत्वात् पदान्तरत्वेनोक्तिर-
युक्ता । सत्यम् । सहसा क्रियमाणस्य साहसविशेषत्वं
छलेन पुनः क्रियमाणस्य पदान्तरत्वमेव । साहसलक्षणा-
भावात् । तथा चोक्तं तेनैव— 'तस्यैव भेदः स्तेयं
स्याद्विशेषस्तत्र तूच्यते । आधिः साहसमाक्रम्य स्तेय-
माधिरच्छलेन तु ॥' आधिः क्लेशः । स आक्रम्यार्थ-
हरणद्वारा क्रियमाणः साहसम् । छलेन पुनरर्थहरणद्वारा
क्रियमाणः स्तेयमित्यर्थः । नन्वेव स्तेयस्य भेद उक्तो
न पारुष्यस्य । सत्यम् । अपृथगुद्दिष्टस्यापि भेद उक्ते
पृथगुद्दिष्टस्य सुतरामेव भेदो लक्ष्यत इति स्तेयमात्र-
स्योक्त इत्यविरोधः । अतः पदान्तरत्वेनाप्युक्तिर्युक्तैव ।
अत एव संग्रहकारः— 'मनुष्यमारणादीनि कृतानि
प्रसभं यदि । साहसानीति कथ्यन्ते यथाख्यान्यन्यथा
पुनः ॥' अन्यथा पुनः यद्यप्रसभं कृतानि तदा यथा-
ख्यानि स्तेयस्त्रीसंग्रहणवाक्पारुष्यदण्डपारुष्याख्यानी-
त्यर्थः । नन्वेवं स्तेयस्त्रीसंग्रहणयोरपि साहसात् पृथगुद्दे-
शनं कार्यम् । सत्यम् । अत एव मनुना 'स्तेयं च
साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ।' (मस्मू. ८।६) इति
पृथगुद्दिष्टम् । नारदेन तु तयोश्छलेनैव क्रियमाणत्वात्
पदान्तरत्वं स्फुटमेवेति साहसान्तर्भाव एवोद्देशदशायां
दर्शितः । पारुष्यद्वयस्य तु प्रायेण प्रसभं क्रियमाणत्वात्
पदान्तरत्वमव्यक्तमिति पृथगप्युपदेशः कृत इति सर्व-
मनवद्यम् । स्मृच. ७

(३) अवगूरुणं शस्त्राद्युत्थापनम् । निःशङ्कपातनं
निर्दयं शस्त्रादिना घातनमरुधिरं मध्यममेव । निःशङ्क-
पातनं सरुधिरं क्षतदर्शनपदेन विवक्षितमुत्तमम् ।

नारदीय एवावगूरुणादिभेदेन त्रैविध्यमभिधायाक्षेप्य-
द्रव्यभेदेन प्रत्येकमेषां त्रैविध्यमाह— 'हीनमध्योत्तमानां
च द्रव्याणां समतिक्रमात् । त्रीण्येव साहसान्याहुस्तत्र
कण्टकशोधने ॥' कण्टकशोधने दण्डे कर्तव्ये साहसानि
अवगूरुणादिद्रव्यभेदेन त्रीणि प्रत्येकमधममध्यमोत्तम-

नृप्र. २७१-२; सवि. ४८० हुस्तत्र क (हुस्तदक) मनुः;
व्यप्र. ३६९ तु (च); व्यउ. १११ तु (च); विता.
७३२ सम (अन); समु. १६१.

भावेन त्रीण्याहुरित्यर्थः । एष च पाठो मिताक्षरा-
प्रकाश-हल्ययुध-पारिजातेषु दृष्टः । लक्ष्मीधरेण तु त्रयाणां
समतिक्रमात् त्रीण्येव साधनानीति पठितं तस्यापि
त्रीण्येव साधनान्याहुरिति पाठतस्त्रयाणां त्रित्वमेक
विवक्षितम् । विर. २६०

(४) अवगूरुणं शस्त्राद्युत्थापनं निःशङ्कपातनम-
रुधिरं शस्त्रादिघातनम् । अत्र प्रहरणस्य प्रारम्भो
निष्पत्तिः फलानुबन्ध इत्यस्य वैचित्र्यात् त्रैविध्यमुक्तं
मृदुमध्यमोत्तमक्रमादित्यनेन यथोत्तरं बलवत्त्वमुक्तम् ।
सर्वविधं चैतत् स्वयंकृतमन्यद्वारकृतं चेति द्विवि-
धम् । तथा द्वयोः परस्परेण प्रवर्तितमेकतरेण वेति
द्विविधम् । प्रहर्ता चैकानेकभावाद्दुत्तमादिभेदाच्चानेक-
विधः स्थावरजङ्गमभेदाद्द्विपदचतुष्पदभेदाच्चास्य
द्वैविध्यमधिकम् ।

एवमाद्यत्त्वानाद्यत्वादयोऽपि द्रष्टव्यास्तत्र ते विशेषा
दण्डविशेषोपयोगिनः प्रमुख एवानुसंधेयाः । तथा
स्वामिने हृतभग्नदानमपहर्तुर्दण्डद्वैगुण्यं गाढप्रहर्तुः
समुत्थानव्ययदानमित्यादिकं च दण्डोपदेशकाल एवा-
कल्पनीयम् । दवि. २१९-२०

(५) तत्रापीति । दण्डपारुष्येऽपि त्रैविध्यं त्रिप्रकारत्वं
दृष्टमधममध्यमोत्तमक्रमेण । अवगूरुणेन मन्दः ।
निःसङ्गप्रहरणैर्मध्यमः । शोणितोत्पादनैरुत्तमः ।

हीनेति । निःकृष्टमध्यमोत्तमानां द्रव्याणां हरणात्
त्रीणि साहसान्युक्तानि । तान्येवैतानि दण्डपारुष्याणि ।
तेषां च शोधनमुक्तं पूर्वस्मिन् विवादपदे 'सहोद-
दर्शनात् स्तेयमित्यादिना । दण्डश्चोक्तः । तस्य चास्य
चैकत्वमुक्तमेतेन । नाभा. १६, १७।५-६ (पृ. १६५-६)

दण्डपारुष्ये दोषराहित्यदण्डभाक्त्वविचारः, पञ्चप्रकारैस्तत्रा-
पङ्क्तविचारश्च

विधिः पञ्चविधस्तूक्त एतयोरुभयोरपि ।

विशुद्धिर्दण्डभाक्त्वं च तत्र संबध्यते यथा #॥

* पञ्चविधविधेः मिताक्षराव्याख्यानं 'असाक्षिकहते' इति
यादवत्ववचने (पृ. १८१३) द्रष्टव्यम् । पमा., दवि., व्यप्र.
मितावत् ।

(१) नासं. १६, १७।७; नास्मृ. १८।७; मिता.
२।२१२ पू.; व्यक. १०७; विर. २७४; पमा. ४१० पू.;

(१) विधिः क्रिया । अत्र वाक्पारुष्यं त्रिधा निष्ठुराश्लीलतीव्रत्वात् । एवं दण्डपारुष्यं द्विधा अभिद्रोहाघातरूपत्वात् । विशुद्धिः दण्डाभावः । यथा तथा वक्ष्यते इति शेषः । विर. २७४-५

(२) अथवा पूर्वश्लोके यथा त्रीणि साहसानि कण्टकशोधनमिति, न च दण्डपारुष्यसाहसयोरेतयोरुभयोरप्युपलब्धौ विधिः पञ्चविध उक्तः । असज्जनैकार्थ्यादीनां विशुद्धिश्च, प्रथमसाहसादिना दण्डभाक्त्वं चाकार्यकारिणां यथा भवति ' भक्तावकाशदातार' इत्यादिना, तदेवात्राप्युक्तं द्रष्टव्यम् । नाभा. १६, १७।७ (पृ. १६६)

पारुष्ये सति संरम्भादुत्पन्ने क्षुब्धयोर्द्वयोः ।

स मान्यते यः क्षमते दण्डभाग् योऽतिवर्तते ॥

(१) क्षुब्धयोः क्रुद्धयोः । मान्यते पूज्यते न दण्ड्यते इत्यर्थः । क्षमते पारुष्यं नानुब्रूयति, अतिवर्तते पारुष्यं तनोति । विर. २७५

(२) [रत्नाकरव्याख्यानोद्धारानन्तरमुक्तम्]— वस्तुतस्तु यः क्षमते सहते न तु स्वयमपि प्रतिपारुष्यं प्रवर्तयति स मान्यते वाचा पूज्यते, यस्तु तादृशमप्यतिवर्तते पुनराक्षरयति स दण्डभाग् दण्ड्यते ।

दवि. २१६

(३) संरम्भात् क्षुभितयोः पारुष्य उत्पन्ने सति यः क्षमते स पूज्यो न दण्ड्यः । यस्त्वतिवर्तते आक्रोशैः प्रहरणेन वा, स दण्ड्यः ।

नाभा. १६, १७।८ (पृ. १६६)

पारुष्यदोषावृत्तयोर्युगपत्संप्रवृत्तयोः ।

विशेषश्चेन्न दृश्येत विनयः स्यात्समस्तयोः ॥

दवि. ३३ पू. ; नृप्र. २७२ पू. ; व्यग्र. ३७० पू. ; व्यड. ११२ पू. ; विता. ७३२ पू. ; समु. १६१ पू.

(१) नासं. १६, १७।८; मिता. २।२१२ क्षुब्ध (क्रुद्ध) मान्य (मन्य); अप. २।२१२ रम्भा (बन्धा); व्यक. १०७ न्ने (न्न); विर. २७५; पमा. ४१०-११; रत्न. १२१; दवि. २१५ न्ने क्षुब्ध (क्रुद्ध); नृप्र. २७२ न्ने...योः (न्नेनूर्ध्वमूर्ध्वयोः) ऽतिवर्तते (निवर्तते); व्यग्र. ३७० क्षुब्ध (क्रुद्ध); व्यड. ११२ व्यप्रवत्; विता. ७३२ क्षुब्ध (क्रुद्ध) योऽति (यो नि); समु. १६१ क्षुब्ध (क्रुद्ध) योऽति (योऽतु).

(२) नासं. १६, १७।९ षावृत्त (षधुत); नास्म.

(१) विशेषदर्शने तु तदनुसारेण विषम एव दमः स्यादित्यभिप्रायः । स्मृच. ३२६

(२) विशेषोऽयमेवं पूर्वं कृतवानित्याद्याकारः । विर. २७५

(३) यद्यपि प्रहारयोः पूर्वापरभावेऽज्ञाते वादिनोः शपथादिना निर्णयात्तयोर्निश्चयः, अन्यथा विवादानां रोहात् । तथापि मह्योरिव मेघयोरिव वाऽवास्तवं यत्र यौगपद्यं यत्र च प्रधानयोः कलहे तत्तद्देश्यानां संमदं प्रहारप्राथम्यं दुर्बोधं तद्विषयमिदम् ।

उपलक्षणं चैतत्, तेन यत्रैकस्यारम्भकत्वेऽन्यस्यानुबन्धित्वे यत्र चैकस्याल्पेऽपि पारुष्ये प्राथमिके अन्यस्य पश्चात्तनेऽपि तस्मिन्नधिके अपराधसाम्यं तत्रापि सम एव दण्डः । एतदभिप्रायकमेव रत्नाकरीयमादिपदम् । दवि. २३२

(४) पारुष्यदोषधुतयोर्वाग्दण्डपारुष्यदोषधुतयोः रोपाविष्टयोरन्यतरोऽपि न क्षमते । युगपद् घाताघातादि कुर्वतोर्विशेषाभावे घाते प्रतिघातः आक्रोशे प्रत्याक्रोशः, उभयोस्तुल्यो दण्डः । नाभा. १६, १७।९ (पृ. १६६)

पूर्वमाक्षारयेद्यस्तु नियतं स्यात्स दोषभाक् ।

पश्चाद्यः सोऽप्यसत्कारी पूर्वं तु विनयो गुरुः ॥

१।८।८; मिता. २।१० पार... तयोर्यु (पारुष्ये साहसे वाऽपि यु) दृश्येत (लभ्येत) ; २।२१२ दृश्येत (लक्ष्येत); अप. २।१० दृश्येत (लभ्येत) ; २।२१२; व्यक. १०७; स्मृच. ३२६ स्मृत्यन्तरम्; विर. २७५ वृत्त (च त); पमा. ४११ दृश्येत (लक्ष्येत); रत्न. १२० स्मृत्यन्तरम्; स्मृचि. २४ दोषा (दोष) शेषं पमावत्; दवि. २३२ विरवत्, काल्यायनः; नृप्र. २७२ पमावत्; व्यत. २०२ पार... तयोर्यु (पारुष्ये साहसे चैव यु) दृश्येत (लभ्येत); सवि. ४७६ वृत्त (दुभ) यः स्यात् (यश्चेत्) सुमन्तुः; व्यसौ. २८ मिता. २।१० वत्; व्यग्र. ९७ व्यतवत् ; ३७० पमावत्; व्यड. ११२ अपवत्; व्यम. ९९ स्मृत्यन्तरम्; विता. १०० मिता. २।१० वत्; ७२५ पार... तयोर्यु (पारुष्ये साहसे चैव यु) याज्ञवल्क्यः ; ७३३ वृत्त (दुभ) दृश्येत (लभ्येत); सेतु. १०१-२ मिता. २।१० वत्; समु. १६१.

(१) नासं. १६, १७।१०; नास्म. १।८।९; मितां. २।१०, २।१२; अप. २।१०, २।१२; व्यक. १०७; स्मृच. ३२७; विर. २७५; पमा. ८६ काल्यायनः ; ४११ क्षार

(१) पूर्वे त्वाक्षारणे निमित्ते तन्निमित्तको विनयः पश्चादाक्षारणानिमित्तकविनयादभ्यधिको भवेदित्यर्थः ।

स्मृच. ३२७

(२) पूर्वं प्रथममाक्षारयेत् पारुष्यं कुर्यात् । दोषभाक् दण्ड्यः । असत्कारी अपराधवान् । पूर्वं तु विनयो गुरुरित्यनेन तदन्यस्मिन् लघुर्विनय इत्युक्तम् ।

*विर. २७५

(३) यः पूर्वमाक्रोशेनातिक्रामेत् तर्जनादिना, स नित्यं दोषभाक् । पश्चादपि य आक्षारयेत्, न क्षमेत्, सोऽप्यसत्कारी अशोभनकारी दण्ड्य इत्यर्थः । तयोः पूर्वस्य महान् दण्डः प्रथमातिक्रामात् । इतरस्य प्रथमं क्षमणादल्पः, पश्चादप्यतिक्रामन् दण्ड्यः ।

नाभा. १६, १७।१० (पृ. १६६)

द्वयोरापन्नयोस्तुल्यमनुबध्नाति यः पुनः ।

स तयोर्दण्डमाप्नोति पूर्वो वा यदि वोत्तरः ॥

(१) वर्णादितः समयोर्निबन्धे तु विशेषदर्शने तन्निमित्तमपि विनयगौरवं भवतीत्याह स एव — द्वयोरापन्नयोरिति । तुल्यमापन्नयोः समत्वेनैव आक्षेपकरयोरिति यावत् । तयोर्दण्डमवाप्नोति तुल्यमापन्नयोर्द्वयोः । दण्डो मिलितयोर्यावान् तावन्तमाप्नोतीत्यर्थः ।

स्मृच. ३२७

* दवि. विरवत् ।

(क्षर); रत्न. १२० वें तु (वें च); विचि. १२० प्यसत् (प्यतत्) यो (ये); ब्यनि. २१, ४९२; दवि. २३२ दोष (दण्ड); नृप्र. २७२ क्षार (कार); ब्यत्. २०२; सवि. ४७७ घः सोऽप्य (बस्योघ); ब्यसौ. २७-८; ब्यप्र. ९७, ३७०; ब्यउ. ११२; ब्यम. ९९; विता. १००, ७२५-६, ७३२; सेतु. १०१ स्यात्स (स्यान्न); समु. १६१.

(१) नासं. १६, १७।११ वोत्तरः (वेतरः); नास्मृ. १८।१०; मिता. २।२१२ नासंवत्; अप. २।२१२ वोत्तरः (वा परः); ब्यक. १०७; स्मृच. ३२७ पुनः (पुमान्) स तयोर्दण्डमाप्नोति (तयोर्दण्डमवाप्नोति); विर. २७५ यः पुनः (योऽधिकम्); पमा. ४११ विरवत्; दवि. २३२ विरवत्; नृप्र. २७२ पुनः (परः); ब्यप्र. ३७० नासंवत्; ब्यउ. ११२ नासंवत्; विता. ७३२ नासंवत्; समु. १६१ स्मृचवत्.

(२) द्वयोरापन्नयोस्तुल्यं पारुष्येः तुल्यं प्रवृत्तयोः । अनुबध्नाति असकृत् कलहं करोति । × विर. २७५

(३) द्वयोः संरम्भादुपशान्तयोः यः पुनः पुनरनुब्रवति, अपसर्पे न ददाति, स दण्ड्यः, यदि पूर्वं मारयति यदि पश्चाद्वा । इतर उपशान्तो न दण्ड्यः । नाभा. १६, १७।११ (पृ. १६६)

श्वपाकपण्डचण्डालव्यङ्गेषु वधवृत्तिषु ।

हस्तिपत्रात्यदासेषु गुर्वीचार्यातिगेषु च ॥

मैर्यादातिक्रमे सद्यो घात एवानुशासनम् ।

न च तद्दण्डपारुष्ये दोषमाहुर्मनीषिणः ॥

(१) श्वपाकः क्षत्रियायामुग्राजातः, उग्रस्तु— 'शुद्रायां क्षत्रियाजातं प्राहुरुग्रमिति द्विजाः' इति देवलेन दर्शयिष्यते । पशुशब्दः क्लीबपरः । चाण्डालः शुद्रात् ब्राह्मण्यां जातः । वधकवृत्तिः परवध एव वृत्तिर्जीवनं

× दवि. विरवत् ।

(१) नासं. दासेषु (दारेषु) तिगे (न्तगे), अयं श्लोको मूले नोपलभ्यते, परन्तु भाष्यस्योपलभ्यमानत्वात् अयं श्लोको मूले वर्तत इत्यनुमीयते, पाठभेदास्तु भाष्यानुसारेण निर्दिष्टाः; नास्मृ. १८।११ पण्ड (मेद); मिता. २।२१२ पण्ड (षण्ड) र्यातिगेषु (यैन्पेषु); अप. २।२१२ व्यङ्गेषु (वेश्यासु) दासेषु (दारेषु); ब्यक. १०७ व्यङ्गेषु (वेश्यासु) वध (बक); विर. २७६ पूर्वार्धे (श्वपाकपशुचाण्डालवेश्यावधकवृत्तिषु); पमा. ४११ पूर्वार्धे (श्वपाकषण्डपाखण्डव्यङ्गेषु बधिरेषु च) तिगे (न्तिके); विचि. १२१ व्यङ्गेषु वध (वेश्यावधक) तिगे (न्तगे); दवि. २१७ विरवत् : २६१ तिगेषु (तिगमेषु) उक्तः; नृप्र. २७२ पण्ड (मेद [चण्ड]); ब्यप्र. ३७० मितावत्; ब्यउ. ११२ पण्ड (शिल्पि) तिगे (न्वये); विता. ७३३ पण्ड (षण्ड) ब्राह्म (ब्राह्म); बाल. २।२१२ तिगे (नुगे) : पण्ड (पशु) व्यङ्गेषु वध (वेश्यासुकर) इति कल्पतरौ पाठः; सेतु. २२२ व्यङ्गेषु वध (वेश्यावधक); समु. १६१ दासे (देशे) तिगे (न्तिके).

(२) नासं. अयं श्लोको मूले नोपलभ्यते, परन्तु भाष्यस्योपलभ्यमानत्वात् मूले वर्तत इत्यनुमीयते; नास्मृ. १८।१२ दोष (स्तेय); मिता. २।२१२ पूः; अप. २।२१२ त एवा (तयेच्चा); ब्यक. १०७; विर. २७७; पमा. ४११ पूः; विचि. १२१; दवि. २१७ : २६१ पूः; नृप्र. २७२ पूः; ब्यप्र. ३७० पूः; ब्यउ. ११२ पूः; विता. ७३३ पूः; सेतु. २२३; समु. १६१ पू.

यस्य स. वधकवृत्तिः स्वार्थे कन् । हस्तिपको हस्त्यधि-
रोहकः । दासोऽत्र गृहज्रातादिः । गुर्वाचार्यातिगः गुर्वा-
चार्यवचनलङ्घनकर्ता । मर्यादा धर्मव्यवस्था । सद्योऽ-
विलम्बितम् । घात एव ताडनमेव । विर. २७७

(२) कामधेनौ कल्पतरौ च 'वेश्यासु वधकर्तृषु'
इति स्पष्टमेव पठितम् । अत्र मिताक्षरायां 'व्यङ्गेषु वध-
कर्तृषु' इति पाठः । *दवि. २१७

(३) श्वपाकः सौबलः । पण्डः षण्डः । व्यङ्गो
हीनाङ्गः । वधवृत्तयो वधकारिणः घाल्यघातकाः । हस्तिपा
हस्त्यारोहाः । ब्राह्म्याः संस्कारहीना द्विजातयः । गुरवः
पितृव्यतिरिक्ता मातुल्यादयः । अन्तगाः शिष्याः ।
एतेषां दारेषु मर्यादातिक्रमेण गमने सद्यो वध एव
दण्डः । तेऽपि यदि ताडनमारणादि कुर्युः, न दण्ड-
पारुष्यदोषमाप्नुयुः, न दण्ड्याः न साधुकृतमित्यनु-
ज्ञातव्या राजा । एवं ब्रुवता अन्यैः स्वयं निग्रहो न
करणीय इत्युक्तं भवति । अयमत्रार्थः—'श्वपाकपण्ड-
चण्डालेष्वन्तस्थवधकारिषु' इति श्वपाकादयो मर्यादा-
भिगम इति हस्तिपकादिदारेषु गच्छेयुः । गुर्वाचार्याति-
क्रमे च तथा वाग्दण्डपारुष्येषु हन्तव्याः । एतेन दण्ड-
पारुष्यदोषः । एतेषु दण्डपारुष्यनिग्रहो वध एवेति ।
नाभा. (पृ. १६७)

यमेव ह्यतिवर्तेरन्नेते सन्तं जनं नृषु ।

स एव विनयं कुर्यान्न तद्विनयभाङ् नृपः ॥

(१) श्वपाकादयो येषु पारुष्यं कुर्वते, त एवैषां
घातरूपं दण्डं कुर्युः । *विर. २७७

(२) यमेव सज्जनमेतेऽतिवर्तेरन् संसर्गवाग्दण्डपारु-
ष्यादिना, स एव विनयं वधादि कुर्यात् । न तत्र

* शेषं विरवत् । × दवि. विरवत् ।

(१) नासं. १६, १७।१२; नास्मृ. १८।१३ तैरन्नेते
(तैर्न जीवः); विश्व. २।२२६; मिता. २।२१२; अप. २।२१२ जनं (जना) भाङ् नृपः (भागवेत्); व्यक. १०७; विर. २७७; पमा. ४११ नास्मृवत्; विचि. १२१
पूर्वांशं (यमेते ह्यतिवर्तेरन्नेतेऽतिवर्तेरन्नेते) दवि. २१७
नृषु (प्रति); व्यग्र. ३७० पू; व्यड. ११२ ह्यति (त्वति);
विश्व. ७३३; सेतु. २२३ विचि. १२१; ससु. १६१ ह्यति
(व्यक्ति).

राजैव शिष्यादिति नियमोऽस्ति ।

नाभा. १६, १७।१२ (पृ. १६७)

मला ह्येते मनुष्याणां धनमेषां मलात्मकम् ।
अतस्तान् घातयेद्राजा नार्थदण्डेन दण्डयेत् ॥

(१) तेषामसामर्थ्ये तु राजा घातरूपमेव दण्डं
कुर्यान्नार्थदण्डं, अत्र हेतुः— मला ह्येते इत्यादि ।

* विर. २७७

(२) घात एव, धनदण्डो नेत्यत्र कारणमाह—
मनुष्येषु मलाः पापा एते शास्या एव । तद्धनं पाप-
करम् । तस्माद् घात एव दण्डः ।

नाभा. १६, १७।१३ (पृ. १६७)

हीनवर्णकृते ब्राह्मणविषये दण्डपारुष्ये दण्डविधिः

येनाङ्गेनावरो वर्णो ब्राह्मणस्यापराधनुयात् ।

तदङ्गं तस्य छेत्तव्यमेवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥

(१) अवरो हीनवर्णः । विर. २६७

(२) येनाङ्गेन हस्तेन पादेन वा शूद्रो ब्राह्मणं
प्रहरेत् तदेवाङ्गं छेत्तव्यम् । एवं शुद्धिः, न धनदण्डेन ।

नाभा. १६, १७।२७ (पृ. १७०)

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ।

कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचौ वाऽस्यावकर्तयेत् ॥

* दवि. विरवत् ।

(१) नासं. १६, १७।१३ ध्याणां (ध्येषु); नास्मृ. १८।१४ ध्याणां (ध्येषु) अतस्ता (अपि ता); विश्व. २।२२६
नासं. २।२१२; अप. २।२१२ धनमेषां मला
(मलमेषां धना) अतस्ता (अपि ता); व्यक. १०७ अतस्ता (अपि
ता); विर. २७७ व्यकवत्; पमा. ४१२; विचि. १२१;
दवि. २१७ व्यकवत्; व्यग्र. ३७०; व्यड. ११२; विता. ७३३ ह्येते (एते) धन (द्रव्य); सेतु. २२३; ससु. १६१.

(२) नासं. १६, १७।२३ ङं तस्य (ङमेव); नास्मृ. १८।२५
वरो (वर); व्यक. १०५; विर. २६७;
विचि. ११७; व्यनि. ४९२ येनाङ्गेना (येन येना); व्यग्र. ३७४
शुद्धि (बुद्धि); व्यड. ११४; सेतु. २१७, २२०.

(३) नासं. १६, १७।२४ उत्तरार्थे (कटिदेशेऽङ्ग
निर्वास्यः स्फिचो वास्य कर्तयेत्); नास्मृ. १८।२६ स्याप
(स्याव); व्यक. १०५ नास्मृवत्, मनुनारदौ; विर. २६८
स्फिचौ वाऽस्याव (स्फिचं वाऽस्य प्र) मनुनारदौ;
व्यनि. ४९३ स्फिचौ.....येत् (स्फिचं वाऽस्य निकृन्तयेत्)

(१) सहासनमभिप्रेपुरेकासनोपवेशी, अभिप्रेपु-
पदस्य अभिप्रातिपरत्वात् । तथा च विष्णुः—
'एकासनोपवेशी कथ्यां कृताङ्को निर्वास्यः' इति ।
उत्कृष्टो ब्राह्मणः । अपकृष्टजः शूद्रः । कृताङ्कः तप्त-
लोहशालकया कृतचिह्नः । स्फिक् श्रोण्येकदेशः ।
विर. २६८

(२) एकमासनं य इच्छति, सहास्त इत्यर्थः,
उत्कृष्टस्योत्कृष्टस्यावरवरणजः । अङ्कयित्वा कटिदेशे
निर्वास्यः स्फिजं वाऽस्य छित्त्वा ।

नामा. १६, १७।२४ (पृ. १७०)

अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्रावोष्ठी छेदयेन्नृपः ।
अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥

(१) अवनिष्ठीवतो दर्पाद्दुपरि निष्ठीवनं दर्पात्
कुर्वतः । अवमूत्रयतः मूत्रेण सेकं कुर्वतः । अवशर्ध-
यतो गुदं, गुदेन कुत्सितशब्दं कुर्वतः । विर. २६९

(२) दर्पादवमत्योपनिष्ठीवतः शूद्रस्य द्विजातेरोष्ठ-
द्वयस्य छेदः, तथा मूत्रयतः शिक्षस्य, तथा पातक-
कर्मादि कुर्वतो गुदस्य छेदः ।

नामा. १६, १७।२५ (पृ. १७१)

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेद्विचारयन् ।
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥

(१) हस्ताविति द्विवचनं एकेनापि करेण ग्रहणे
हस्तच्छेदनार्थम् । दाढिका इमश्रु । विर. २६९

(२) एतेषु गृह्णतस्तत्क्षणमेव स हस्तौ छेदयेदिति ।

नामा. १६, १७।२६ (पृ. १७१)

मनुनारदौ; दवि. ३२१ स्फिचौ... येत् (स्फिजं चास्याव-
क्थयेत्) .

(१) नासं. १६, १७।२५ तो मेढ्र (तः शिक्ष); नास्मृ.
१८।२७ नासंवत्; व्यक. १०५ मनुनारदौ; विर. २६८
मनुनारदौ; व्यनि. ४९३ शर्ध (शर्द) मनुनारदौ; दवि.
२५३ शर्ध (शब्द) मनुनारदौ; व्यप्र. ३७४ मनुनारदौ;
व्यउ. ११५ वतो (कृतो) मनुनारदौ.

(२) नासं. १६, १७।२६ दाढिकायां च (नासिकायां ना);
नास्मृ. १८।२८ यां च (यां तु); व्यक. १०५ मनुनारदौ;
विर. २६८ मनुनारदौ; व्यनि. ४९३ षु च (तथा)
मनुनारदौ; दवि. २५४ मनुनारदौ; व्यप्र. ३७४ मनुनारदौ;
व्यउ. ११५ मनुनारदौ.

त्वक्छेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ।
मांसभेत्ता तु षण्णिकान् प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥

राजनि दण्डपारुष्ये दण्डः .

राजनि प्रहरेद्यस्तु कृतागस्यपि दुर्मतिः ।

शूल्यं तमग्नौ विपचेद्ब्रह्महत्याशतातिगम् ॥

(१) योऽब्राह्मणः । कृतागसि कृतापराधे । शूल-
मारोप्य यत्संस्क्रियते तत् शूल्यं तेन प्रथमतस्तस्य शूल-
भेदेन पीडां विधाय अभिविपाकेन पीडा कर्तव्येत्यर्थः ।
विर. २६७-८

(२) यो राजनि कृतापराधेऽपि प्रहरेत्, शूले
प्रोल्लैमग्नौ विविधं पचेद् ब्रह्महत्याशतादभ्यधिकं
पापम् । नामा. १६, १७।२८ (पृ. १७१)

अश्वत्थकीयकृतापराधे तत्प्रभोर्दण्डविचारः

पुत्रापराधे न पिता श्वान् शुनि न दण्डभाक् ।
न मर्कटे च तत्स्वामी तेनैव प्रहितो न चेत् ॥

पुत्रे दोषवति न पिता दण्ड्यः, शुनि च दोषवति
तत्स्वामी । मर्कटे चैवम् । न चेत् ते पित्रादिभिः
प्रयुक्ताः । प्रयुक्ताश्चेत् पित्रादयो दण्ड्याः ।

नामा. १६, १७।२९ (पृ. १७१)

अप्रकाशदण्डपारुष्ये परीक्षानिधिः

केश्विक्त्वाऽऽत्मनश्चिह्नं द्वेषात्परमभिद्रवेत् ।
हेत्वर्थगतिसामर्थ्यैस्तत्र युक्तं परीक्षणम् ॥

(१) नास्मृ. १८।२९.

(२) नासं. १६, १७।२८ शूल्यं (शूले) तिगम् (धिकम्);
नास्मृ. १८।३१ नासंवत्; व्यक. १०५; विर. २६७;
विचि. ११७; दवि. २५८; व्यप्र. ३७४ तिगम् (नि च);
व्यउ. ११४; सेतु. २२०.

(३) नासं. १६, १७।२९ श्वान् शुनि न (न श्वान्
शुनि) तेनैव (तैरेव); नास्मृ. १८।३२ श्वान् शुनि न
(नाश्वे न शुनि); अप. २।२२२ शुनि न (न शुनि) हितो
न (हुता [तो] तु); व्यक. १०६ शुनि न (न शुनि);
स्मृच. ३३० श्वान् शुनि न (न स्वामीति) तेनैव (तैरेव);
विर. २७३; विचि. ११९-२० श्वान् शुनि न (श्वान्
शुनि) च (तु); व्यनि. ४९४ श्वान् शुनि न (नाश्वेन
शुनि) टे न (टे न) प्रहितो (प्रेषिता); दवि. २२३ राधे
(राद्ध); सेतु. ३०१ च (तु); समु. १६३ नासंवत्.

(४) अप. २।२१२ हेत्वर्थ... .. यैस्त (युक्तिहेत्वर्थ-

आत्मनश्चिह्नं, त्रयीदिरूपं, परमभिद्रवेत् अहमनेन
ब्रणवान् कृतोऽयं दण्ड्यतामित्यनुयुञ्ज्यात् । हेतुर्गद्द-
स्वरादिः, अर्थः प्रयोजनं, गतिः संनिधिगमनं, सामर्थ्यं
प्रहारक्षमता । विर. २७४

बृहस्पतिः

दण्डपारुष्यलक्षणम्

हस्तप्राणालगुडैर्भस्मकर्दमपांसुभिः ।

आयुधैश्च प्रहरणं दण्डपारुष्यमुच्यते ॥

(१) परगात्रेष्विति शेषः । स्मृच. ७

(२) अत्र भस्मादिभिर्दण्डादिभिरायुधैरिति करण-
त्रैविध्यात् प्रहरणस्य त्रिविधत्वमुक्तं तत्र यथोत्तरं
बलवत् । दवि. २१९

वाक्पारुष्यापेक्षया दण्डपारुष्यस्य दण्डविधौ विशेषः

वाक्पारुष्ये कृते यस्य यथा दण्डो विधीयते ।

तस्यैव द्विगुणं दण्डं कारयेन्मरणाहते ॥

विविधदण्डपारुष्येषु समाधिकविषयेषु दण्डविधिः

भस्मादीनां प्रक्षेपणं ताडनं च करादिना ।

प्रथमं दण्डपारुष्यं दमः कार्योऽत्र माषिकः ॥

(१) माषिकः माषमितः । विर. २६१

(२) माषिको राजतः माषमितः । विचि. ११२

(३) ताडनमत्रोद्यमनमात्रमिति प्रहेश्वरमिश्राः ।

एवमेव हरिनाथोपाध्यायाः । एवं व्याख्याने कामं

प्रथममिति घटते दण्डगौरवं तु दुर्घटम् । 'उद्गूरणात्तु

संबन्धैस्तः) व्यक. १०७ नारदबृहस्पती; विर. २७३-४

तत्र युक्तं (युक्तं तत्र); व्यप्र. ३७८ गति (मति) नारद-
बृहस्पती; व्यउ. ११८ व्यप्रवत्; सेतु. २२२ विरवत्.

(१) अप. २।२१२ रणं (रणैः); व्यक. १०४;

स्मृच. ७; विर. २५९; दीक. ५१ हस्त (दण्ड);

व्यनि. ४८९; दवि. २१९; सेतु. २१४-५; समु. १६१.

(२) मभा. १२।६; गौमि. १२।६.

(३) अप. २।२१४ क्षे (क्षि); व्यक. १०४; स्मृच.

३२८ दीनां प्रक्षे (दिना प्राक्षि) षिकः (षकः); विर. २६१;

विचि. ११२; दवि. २५१ कार्योऽत्र (कर्पोऽत्र); सवि.

४८१ दीनां प्रक्षे (दिना प्र [क्षि] क्षे) षिकः (षकः);

सेतु. २१५ प्रक्षेपणं (क्षेपणं च); समु. १६१ स्मृचवत्;

द्विव्य. ५० माषिकः (आर्थिकः).

हस्तस्य कार्यो द्वादशक्री दमः । स एव द्विगुणः प्रीकतः
पातनेषु सजातिषु ॥' इति कात्यायनविरोधात् । तस्मात्
प्रहरणमेव ताडनपदार्थः प्रत्युत ताडनं चेति चकारः
समुच्चयार्थः । न्यूनश्च ताडयिता । प्रथममित्यस्य तु
मुख्यमिदं पारुष्यमित्यर्थ इति भाति । दवि. २५१-२

ईष्टकोपलकाष्टैश्च ताडने तु द्विमाषकः ।

द्विगुणः शोणितोद्भेदे दण्डः कार्यो मनीषिभिः ॥

एष दण्डः समेषूक्तः परस्त्रीष्वधिकेषु च ।

द्विगुणस्त्रिगुणो ज्ञेयः प्राधान्यापेक्षया बुधैः ॥

समेषु जाल्यादिभिस्तुल्येषु । विर. २६१

उद्यतेऽश्मशिलाकाष्ठे कर्तव्यः प्रथमो दमः ।

परस्परं हस्तपादे दशविंशतिकस्तथा ॥

(१) अयं चोभयोरेव समानजात्योर्दण्ड इति मन्त-
व्यम् । विर. २६३

(२) उभयोरिदं हस्ते दश पादे विंशतिः काष्ठादौ
द्वादश । इदमपि समयोरेव । विचि. ११३

मध्यमः शस्त्रसंधाने सयोज्यः क्षुब्धयोर्द्वयोः ।

कार्यः क्षतानुरुपस्तु लग्ने घाते दमो बुधैः ॥

यदा तु शस्त्रेण क्षतमेव करोति, तदा क्षतगौरवा-

(१) अप. २।२१६ षकः (षिकः); स्मृच. ३२८ पू.;
विर. २६४; विचि. ११५ षैश्च ता (षाैस्ता); व्यनि.
४९१; दवि. २५५ श्च (स्तु) तु (च) षिकः (षकः);
सवि. ४८१ श्च... श्च (श्चकाफलकाषैश्च) पू.; व्यप्र.
३७२ षैश्च (षेन); व्यउ. ११३ व्यप्रवत्; सेतु. २१८
विचिवत्; समु. १६१ पू. : १६२ उक्त.

(२) अप. २।२१४; व्यक. १०४; स्मृच. ३२८;
विर. २६१; विचि. ११२; दवि. २५१ षूक्तः (युक्तः);
सवि. ४८१; सेतु. २१५ प्राधान्या (प्रधाना); समु. १६२.

(३) व्यक. १०५ पू.; विर. २६३; विचि. ११३;
व्यनि. ४९१ तेऽश्म (ते तु); दवि. २५० काष्ठे (काष्ठैः)
पू.; व्यप्र. ३७२ पू.; व्यउ. ११३ पू.; सेतु. २१६ पादे
(पाते); समु. १६२ तेऽश्म (तेऽश्म) कस्तथा (कौ दमौ).

(४) अप. २।२१६ क्षता (कृता); स्मृच. ३२८
अपवत्, उक्तः; विर. २६४; विचि. ११४-५; दवि.
२५५ रूपस्तु (रूपं तु) उक्तः; सवि. ४८१ क्षता (कृता)
पस्तु (पैस्तु) उक्तः; व्यप्र. ३७२ धाने (पाते) क्षता (कृता);
व्यउ. ११३ व्यप्रवत्; सेतु. २१८ उक्त.

गौरवानुसारेण दण्डः कार्य इत्युत्तरखण्डार्थः ।

विर. २६४

त्वग्भेदे प्रथमो दण्डो मांसभेदे तु मध्यमः ।

उत्तमस्त्वस्थिभेदे तु घातने तु प्रमापणम् ॥

घातने वधे, प्रमापणं वध एव । विर. २६५

कर्णनासाकरच्छेदे दन्तभेदेऽङ्घ्रिभेदने ।

कर्तव्यो मध्यमो दण्डो द्विगुणः पतितेषु च ॥

पतितेषु स्वस्थानात् च्यावितेषु । विर. २६५

दण्डपारुष्येण पीडकः पीडापरिहारव्ययं अपहृतं च दाप्यः

अङ्गावपीडने चैव भेदने छेदने तथा ।

समुत्थानव्ययं दाप्यः कलहापहृतं च यत् ॥

समुत्थानव्ययं भग्नसंघटनाथं भेषजपथ्यादिजनक-
घनव्ययम् । विर. २७०

पीडिताय दण्डदानं राक्षे च

दण्डस्त्वभिहतायैव दण्डपारुष्यकल्पितः ।

हृते तद्द्विगुणं चान्यद् राजदण्डस्ततोऽधिकः ॥

पशुपीडायां दण्डविधिः

श्रान्तान् क्षुधातान् तृषितानकाले वाहयेत्तु यः ।

स गोत्रो निष्कृतिं कार्यो दाप्यो वा प्रथमं दमम् ॥

(१) अप. २।२।१८ तु घातने (स्यात् घातेन); व्यक. १०५ ने तु (ने च); विर. २६४ (=); विचि. ११५ मस्त्व (मश्वा) तने (तके); व्यनि. ४९१; दवि. २२७ चतुर्थपादः : २५६ स्थिभेदे (स्थिभङ्गे); सेतु. २१८-९ दे तु घा (देन घा); समु. १६२ तु घा (च घा); विव्य. ४७ मस्त्व (मश्वा) तु घातने तु (च घातके च).

(२) व्यक. १०५; विर. २६५; विचि. ११५; व्यनि. ४९१ भेदेऽङ्घ्रि (भेदाङ्ग) पु च (सति); दवि. २५६ भेदे (भङ्गे) च (तु); सेतु. २१९; समु. १६२ ऽङ्घ्रि (ऽङ्ग) पु च (सति); विव्य. ५०.

(३) अप. २।२।२२ पीडने (भेदने) भेदने (पीडने); व्यक. १०६; स्मृच. ३२९ चैव (ष्वेव) त्थान (त्थानं); विर. २७० भेदने छेदने (छेदने भेदने) च यत् (तथा); पमा. ४२० भेदने छेदने (छेदने पीडने); रत्न. १२२; विचि. ११८; व्यनि. ४९४; व्यप्र. ३७५; विता. ७४०; सेतु. २२१ च यत् (तथा); समु. १६२ चैव (ष्वेव).

(४) विश्व. २।२।२६.

(५) व्यक. १०८; विर. २८०; दवि. ३१८ वा प्रथमं

व्य. कां. २३७

वृषाधिकारे बृहस्पतिः — श्रान्तानिति । एवञ्च दण्डप्रायश्चित्तयोर्विकल्पदर्शनात् दण्डेनापि पापं क्षीयते इत्याहुः । विर. २८०

शूद्रकृते द्विजातिविषयके दण्डपारुष्ये दण्डविधिः

येनाङ्गेन द्विजातीनां शूद्रः प्रहरते रुषा ।

छेत्तव्यं तद्भवेत्तस्य मनुना समुदाहृतम् ॥

परस्परं दण्डपारुष्ये कृते नीचकृते च विशेषतः दोपराहित्य-
दण्डभाक्त्वदण्डदापयितृविचारः

द्वयोः प्रहरतोर्दण्डः समयोस्तु समः स्मृतः ।

आरम्भकोऽनुवन्धी च दाप्यः स्यादधिकं दमम् ॥

परस्परपारुष्यकारिषु दममाह बृहस्पतिः— द्वयो-
रिति । स्मृच. ३२९

आक्रुष्टस्तु समाक्रोशंस्ताडितः प्रतिताडयन् ।

हत्वाततायिनं चैव नापराधी भवेन्नरः ॥

पश्चात्कारिणि योऽल्पदण्ड उक्तो नारदेन असावनु-
बन्धकलहे, अननुबन्धे तु बृहस्पतिनाऽनपराधाभिधानं,
तदपि तन्न्यूनसमानौ प्रति मन्तव्यम् । अधिकं प्रति
एवंविधेऽपि अपराधस्योक्तत्वात् । तथा च — 'वाक्पा-
रुष्यादिना नीचो यः सन्तमभिलङ्घयेत् । स एव
ताडयंस्तस्य नान्वेष्टव्यो महीभृता ॥' विर. २७६

वाक्पारुष्यादिना नीचो यः सन्तमभिलङ्घयेत् ।
स एव ताडयंस्तस्य नान्वेष्टव्यो महीभुजा ॥

(१) नीचोऽनुत्तमः, सन्तमुत्तमम् । स एव उत्तम
(वाऽप्यथवा); सेतु. ३०१ प्रथमं (मध्यमं).

(१) स्मृच. ३२८; समु. १६२.

(२) अप. २।२।१२; स्मृच. ३२९; विर. २७५;
व्यनि. ४९२; दवि. २३३; समु. १६२.

(३) अप. २।२।१२ आक्रुष्टस्तु (पूर्वाक्रुष्टः); व्यक. १०७; विर. २७६; पमा. ४१२ क्रुष्ट (क्रुष्ट) हत्वाततायिनं (हत्वाऽपराधिनं); रत्न. १२१ हत्वाततायिनं (हत्वाऽपराधिनं); विचि. १२०-२१; व्यनि. ४९२, ५१९; दवि. २१५ प्रथमचतुर्थपादौ : २३३; व्यत. २०१ समा (यदा); व्यप्र. ३७१ रत्नवत्; व्यड. ११२ ताडयन् (दापयेत्) शेषं रत्नवत्; व्यम. १०० रत्नवत्; सेतु. २१६ समा (यदा) : २२२; समु. १६२ रत्नवत्.

(४) अप. २।२।१२; व्यक. १०७; विर. २७६ मुजा (युजा); विचि. १२१; दवि. २१६; सेतु. २२२.

एव, तस्य ताडयन्निति हिंसार्थे षष्ठी, न अन्येष्टव्यः न तस्य दण्डः करणीय इत्यर्थः । विर. २७६

(२) नीचः शूद्रादिः । सन्तं ब्राह्मणादिकम् । स एव ब्राह्मणादिस्तस्य शूद्रादेः । हिंसार्थे षष्ठी । नान्वेष्टव्यो न दण्ड्य इत्यर्थः । विचि. १२१

(३) दण्डश्चायं द्विधा प्रसक्तः । वाक्पारुष्ये तस्यैवौचित्यादनुचितस्य दण्डपारुष्यस्य प्रणयनात् राजकर्तव्यस्य तस्य स्वयंकरणाच्च, तदुक्तं ताडयन्निति, स एवेति, एतच्च श्रपाकादिपरं नारदवचनेनैकमूलकत्वे लघवात् । अस्तु वा तदितरपरमपि न्यायसाम्यात् । दवि. २१६

प्रातिलोम्यास्तथा चान्त्याः पुरुषाणां मलाः स्मृताः । ब्राह्मणातिक्रमे वध्या न दातव्या धनं क्वचित् ॥

दातव्या दापयितव्या इत्यर्थः । विर. २७७

अप्रकाशदण्डपारुष्ये परीक्षाविधिः

विविक्ते ताडितो यस्तु हेतिर्दृश्यो न वा भवेत् । हन्ता तदनुमानेन विज्ञेयः शपथेन वा ॥

अन्तर्वेद्मन्यरण्ये वा निशायां यत्र ताडितः ।

शोणितं तत्र दृश्येत न पृच्छेत्तत्र साक्षिणः ॥

विविक्ते ताडितो यस्तु ताड्येन ताडकेऽदृश्यमाने मध्यस्थेऽसति अदृश्यमाने वा ताडित इत्यर्थः । अनुमानेन अविनाभूतेन धर्मेण । शोणितं ताडकत्वाविनामूतम् । विर. २७३

कैश्चित्कृत्वात्मनश्चिह्नं द्वेषात्परमभिद्रवेत् ।

हेत्वर्थगतिसामर्थ्यैस्तत्र युक्तं परीक्षणम् ॥

कात्यायनः

सजातीयेषु दण्डपारुष्ये दण्डविधिः

उद्गूरणे तु हस्तस्य कार्यो द्वादशको दमः ।

स एव द्विगुणः प्रोक्तः पातने तु सजातिषु ॥

(१) व्यक. १०७ धनं (दमं); विर. २७७.

(२) व्यक. १०७ [व्यवहारकल्पतरौ इमौ श्लोकौ नोपलभ्येते, व्याख्यानस्योपलभ्यमानत्वात् स्थलनिर्देशः समुद्धिखितः]; विर. २७३.

(३) व्यक. १०७ नारदबृहस्पती; व्यप्र. ३७८ गति (प्रति) नारदबृहस्पती.

(४) व्यक. १०४; विर. २६२ ने तु (नेषु); पमा.

उद्गूरणे हस्तस्य प्रहारार्थं हस्तोद्यमे, पातने हस्तस्यैव यथाक्रमं द्वादशपणः चतुर्विंशतिपणो दण्ड इत्यर्थः । विर. २६२-३

छर्दिमूत्रपुरीपाद्यैरापाद्यः स चतुर्गुणः ।

षड्गुणः कायमध्ये स्यात् मूर्ध्नि त्वष्टगुणः स्मृतः ॥

(१) पुरीपादिस्पर्शने पुनः कात्यायनेन विशेष उक्तः— छर्दिमूत्रेति । आद्यग्रहणाद्द्रसाशुक्रासृज्जानो गृह्यन्ते । मिता. २।२१४

(२) आदिग्रहणाद्द्रसाशुक्रादयो ग्राह्याः, आपाद्यः स चतुर्गुणः, कायमध्यशिरोव्यतिरिक्तसर्वाङ्गस्पर्शने चतुर्गुण इत्यर्थः । चतुर्गुणो दशपणात्, एवं षड्गुणादिकमपि । विर. २६२

(३) वान्तमूत्रादिना समस्य परस्याधःकाये योजने दाप्यो दशपणश्चतुर्गुणः । एवं मध्याङ्गादौ षड्गुणादिरित्यर्थः । विचि. ११३

कैर्णौष्ठघ्राणपादाक्षिजिह्वाशिश्नकरस्य च ।

छेदने चोत्तमो दण्डो भेदने मध्यमो भृगुः ॥

× दवि. विरवत् ।

४१४ ने तु स (नेषु स्व); विचि. ११३ ने तु (ने च) ने तु स (ने च द्वि); व्यनि. ४९०; दवि. २५१ ने तु (णात्) ने तु (नेषु); व्यप्र. ३७२; व्यड. ११३; सेतु. २१६ ने तु स (नेषु द्वि); समु. १६२ उद्गू (उद्गो).

(१) मिता. २।२१४; अप. २।२१४; व्यक. १०४ स्यात् (तु); विर. २६२ स्यात् (तु) त्वष्ट (चाष्ट); पमा. ४१३ चैरापाद्यः स (चैः पादादौ च) स्यात् (तु); रत्न. १२२; विचि. ११२-३ रापाद्यः स (रधःसु च) स्यात् (तु); व्यनि. ४९० रापाद्यः स (रधोनामेः) स्यात् (तु) स्मृतः (दमः); दवि. २५३ विरवत्; सवि. ४८१; वीभि. २।२१४ व्यकवत्; व्यप्र. ३७१ चैरापाद्यः (चैः स्पर्शने); व्यड. ११३; व्यम. १००; विता. ७३६; सेतु. २१६ रापाद्यः स (राधे स स्यात्) स्यात् (तु); समु. १६२.

(२) अप. २।२१९ (=) भृगुः (गुरुः); व्यक. १०५ स्य च (स्य तु); स्मृच. ३२८; विर. २६५ पादा (नासा) शेषं व्यकवत् : ६५८ मो दण्डो (मं दद्यात्) ध्यमो (ध्यमं); पमा. ४१७ दाक्षि (दादि) शिक्ष (नासा); रत्न. १२२; विचि. ११५; व्यनि. ४९१; दवि. २५६ व्यकवत्; सवि. ४८० शिक्ष (सुख) भृगुः (गुरुः) यमः; व्यप्र. ३७३;

छेदने स्वस्थानात् च्यावने, भेदने विदारणे ।
विर. २६५
आभीषणेन दण्डेन प्रहरेद्यस्तु मानवः ।
पूर्वं वा पीडितो वाऽथ स दण्ड्यः परिकीर्तितः ॥
आभीषणेन खड्गादिना । विर. २७६

शिष्यं क्रोधेन हन्याच्चेदाचार्यो लतया विना ।
येनात्यन्तं भवेत्पीडा वादः स्याच्छिष्यतः पितुः* ॥
दण्डपारुष्ये प्रतिलोमानुलोमनीचेषु दण्डविधिः

वाक्पारुष्ये यथैवोक्ताः प्रतिलोमानुलोमतः ।
तथैव दण्डपारुष्ये पात्या दण्डा यथाक्रमम् + ॥

कात्यायनस्तु वाक्पारुष्योक्तप्रतिव्यक्तिदण्डनिर्णय
इहानुक्तदण्डविषये क्वचिदनुसंधेय इति दर्शयति—
वाक्पारुष्य इति । एवं चात्र प्रतिव्यक्ति दण्डनिर्णयः
प्रातिलोम्यादावपि कात्यायनेन स्मृत इति न क्वचिद-
स्मृता दण्डाः पात्याः । नन्वेवमपि क्वचिदत्रापराधानु-

* स्थलादिनिर्देशः व्यवहारस्वरूपप्रकरणे (पृ. ५)
द्रष्टव्यः ।

+ मिताक्षराव्याख्यानं 'एकं म्रानं बहूनां' इति याज्ञवल्क्य-
वचने (पृ. १८१८) द्रष्टव्यम् ।

व्यउ. ११३; व्यम. १०० कर्णौ दाक्षि (कर्णभ्राण-
पदाक्षीणि); सेतु. २१९; समु. १६२ भ्राणपादा (पादभ्राणा)
चोत्त (तूत्त) .

(१) अप. २।२१२ वा पी (चाऽऽपी); व्यक. १०७
आभी (अभी); विर. २७६; पमा. ४१२ आभी (अभी);
विचि. १२०; दवि. २३३ उत्तरार्धे (पूर्वं वाऽपकृतो वाऽथ
सोऽपि दण्डोऽधिकं भवेत्) .

(२) मिता. २।२२१ यथै लोमा (य एवोक्तः
प्रातिलोम्या) तथैव (स एव) पात्या दण्डा (दाप्यो राज्ञा)
स्मरणम्; व्यक. १०६; स्मृच. ३२८ प्रति मतः
(प्रातिलोम्यानुलोम्यतः); विर. २६९ क्ताः (क्तः) पात्या
दण्डा (पात्यो दण्डो); पमा. ४१८ विरवत्; रत्न. १२२
प्रतिलोमा (प्रातिलोम्या); विचि. ११८ क्तः (क्तः);
व्यनि. ४९३; सवि. ४८१ यथै लोमा (यथा प्रोक्ताः
प्रातिलोम्या) दण्ड (दण्डे); व्यप्र. ३७४ रत्नवत्; व्यउ.
११४-५ रत्नवत्; व्यम. १०० रत्नवत्; विता. ७३८
तथैव (त एव) पात्या दण्डा (राज्ञा कार्या) मनुः; सेतु.
२२०-२१; समु. १६२ स्मृचवत्.

सारेण कल्पिता दण्डाः पात्याः, अनन्तव्यक्तिषु प्रति-
व्यक्ति दण्डनिर्णयस्मरणायोगात् । सत्यम् । अत एवो-
क्तमुशनसा— 'यत्र नोक्तो दमः सर्वैरानन्त्यास्तु
महात्मभिः । तत्र कार्यं परिज्ञाय कर्तव्यं दण्डधारणम् ॥'
स्मृच. ३२८

अस्पृश्यधूर्तदासानां म्लेच्छानां पापकारिणाम् ।
प्रातिलोम्यप्रसूतानां ताडनं नार्थतो दमः ॥

पापकारिणोऽतिशयेन प्रातिलोम्यप्रसूता निषादादयः ।
विर. २७८

पीडिताय पीडापरिहारव्ययहनभसादिदानविधिः

वाग्दण्डस्ताडनं चैव येषूक्तमपराधिषु ।
हृतं भग्नं प्रदाप्यास्ते शोध्यं निःस्वैस्तु कर्मणा ॥
(१) निःस्वैर्निधनैः, कर्मणा सेवादिरूपेण, शोध्यं
पूरणीयम् । विर. २७०

(२) भग्नं गृहस्थादि । दवि. २२०

३ देहेन्द्रियविनाशे तु यथा दण्डं प्रकल्पयेत् ।

तथा तुष्टिकरं देयं समुत्थानं च पण्डितैः ।

समुत्थानव्ययं चासौ दद्यादात्रणरोपणम् ॥

(१) अप. २।२१२ प्रातिलोम्य (प्रतिलोम); व्यक.
१०७; विर. २७८ : ६५५ म्लेच्छानां (नराणां) शेषं
अपवत्; विचि. १२२; दवि. ५८ ताडनं (ताडयेत्);
सेतु. ३१२ म्लेच्छानां (नराणां); समु. ६९ सेतुवत्;
विव्य. ५०.

(२) अप. २।२२१; व्यक. १०६; विर. २७० राधिषु
(कारिषु) प्रदा (तु दा); दवि. २२० प्रदा (च दा)
स्वैस्तु (स्वैः स्व) .

(३) अप. २।२२२ पणम् (पणात्); व्यक. १०६;
स्मृच. ३२९ देयं (ज्ञेयं) स्थान (स्थानं) पणम् (पणात्);
विर. २७१ पण्डितैः (पीडितैः) दा (द्वा); पमा. ४१९
यथा (यदा) तथा (तदा) तृतीयार्धं विना : ४२० स्थान
(स्थानं) तृतीयार्धः; रत्न. १२२; व्यनि. ४९५ पणम्
(पणात्) तृतीयार्धः; दवि. २२१ पणम् (हणात्); सवि.
४८४ चासौ पणम् (दाप्यः कलहाय कृतं च यत्);
व्यप्र. ३७४ तृतीयार्धं विना : ३७५ तृतीयार्धः; व्यउ. ११५
तथा (त्रणि) चासौ (वासौ); व्यम. १०० तृतीयार्धं विना;
विता. ७४०; समु. १६३ अपवत्.

(१) व्रणादिदुःखेषु अतिदुःसहेषु जातेष्वह कात्या-
यनः—देहेन्द्रियेति । तुष्टिकरं दुस्सहव्रणतुष्टिकरं देयं
दुस्सहव्रणादिकारिणा देयम् । समुत्थानं व्ययं पण्डितैः
व्रणगुरुत्वानुसारेण कल्पितमिति शेषः । समुत्थानं च
आव्रणरोपणाद्देयम् । 'समुत्थानव्ययं चासौ दद्यादा व्रण-
रोपणात्' इति तेनैवोक्तत्वात् । समुत्थानव्ययं भिषग्भे-
षजपथ्यपानाद्यर्थं क्रियमाणं व्ययम् । स्मृच. ३२९
(२) व्रणपदमत्र पीडाहेतुमुपलक्षयति । रोपणपदं
शान्तिपरम् । विर. २७१

प्रमापणे प्राणभृतां प्रतिरूपं तु दापयेत् ।

तस्यानुरूपं मूल्यं वा दाप्य इत्यत्रवीन्मनुः ॥

(१) प्रतिरूपं प्रमापितस्य गुणादिना समम् । एतत्तु
स्वामिने प्रतिरूपादिदानम् । विर. २८४

(२) परकीयाणां द्विचतुष्पदानां दण्डपातनजनिता
या हिंसा या रथाद्यभिघातप्रभवा तदुभयसाधारणमिदं
वचनम् । प्रतिरूपं प्रमापितस्य गुणादिना सदृशम् ।
एतच्च प्रतिरूपादिदानं प्रमापितस्वामिनः ।

दवि. २२९

पशुपक्षिवनस्पतिषु दण्डपारुष्ये दण्डविधिः

श्रान्तान् क्षुधार्तान् तृषितानकाले वाहयेत्तु यः ।
खरगोमहिषोष्ट्रादीन् प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥

त्रिपणो द्वादशपणो वधे तु मृगपक्षिणाम् ।

सर्पमार्जारनकुलश्वसूकरवधे नृणाम् ॥

अत्रात्यन्तापकृष्टमृगपक्षिघातेषु त्रिपणः, उत्कृष्टतद्वा-

(१) व्यक. १०८; विर. २८४; पमा. ४२५ प्रति...
येत् (दद्यात् तत्प्रतिरूपकम्) दाप्य (दद्यात्); दवि. २२९;
सेतु. २२६ दाप्य (दण्ड); समु. १६३ पमावत्.

(२) अप. २।२२६ पूर्वार्धे (श्रान्तान् तृषार्तान् क्षुधितान-
काले वाहयेन्नरः); व्यक. १०८ क्षुधार्तान् तृषितान् (तृषार्तान्
क्षुधितान्) तु यः (नरः); विर. २८०; व्यनि. ४९६
अकाले (नाकाले) तु वः (नरः); दवि. ३१९; समु.
१६३ क्षुधार्तान् तृषितान् (तृषार्तान् क्षुधितान्) येत्तु यः
(नरः) मनुः.

(३) व्यक. १०८; विर. २७९ वधे तु (घाते तु)
मृग (पशु); पमा. ४२४ त्रि (द्वि); व्यनि. ४९६;
दवि. २२३ वधे तु (घाते तु); व्यप्र. ३७७ त्रिपणो
(द्विपण) पणो (पणा) श्वसूकर (शूकरश्च); व्यउ. ११६

तेषु द्वादशपणः । विष्णूक्तस्तु पञ्चाशत्पणोऽत्यन्तोत्कृष्टमृग-
पक्षिवधविषयः । 'पञ्चाशदुत्तरो दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु'
इति वचनात् । विर. २७९

गोकुमारीदेवपशुमुक्षणं वृषभं तथा ।

वाहयन् साहसं पूर्वं प्राप्नुयादुत्तमं वधे ॥

गोकुमारी वृषेण संयुक्ता गौः । देवपशुदेवतोद्देशे-
नोत्कृष्टपशुः । उक्त्वा 'उक्ष्ण सेचने' इति धात्वर्थानुसारा-
द्वीजमोक्ता वृषः । वृषभो जीर्णवृषः । दवि. ३१८

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगो यथायथा ।

तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा * ॥

वनस्पतिशब्द उपयुक्तसर्वस्थावरोपलक्षणार्थो न्याय
साम्यात् । तथातथा उपयोगगौरवलाघवानुसारेण ।

विर. २८४

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ।

यथायथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथातथा * ॥

अप्रकाशदण्डपारुष्ये परीक्षाविधिः

हेत्वादिभिर्न पश्येच्चेद्दण्डपारुष्यकारणम् ।

तदा साक्षिकृतं तत्र दिव्यं वा विनियोजयेत् ॥

साक्ष्यभावे च दिव्यम् । विचि. १२०

व्यासः

दण्डपारुष्यलक्षणम्

भस्मादिना प्रक्षिपणं ताडनं च करादिना ।

आवेष्टनं चांशुकाद्यैर्दण्डपारुष्यमुच्यते ॥

* अन्यव्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च मनौ अस्मिन्नेव
श्लोके (घृ. १८०४-५) द्रष्टव्यः ।

त्रि (द्वि) श्वसूकरवधे (शूकरश्चपचे); सेतु. २२४ त्रिपणो
(त्रिपणो) वधे तु (घाते तु); समु. १६३.

(१) व्यप्र. ३७७; व्यउ. ११६. [अपराकैकरूपतर्वादिग्रन्थेषु
मनोरथं श्लोकः, मनुस्मृतौ तु नोपलभ्यते ।]

(२) अप. २।२१२ तदा ... तत्र (तत्र साक्षीकृतं चैव);
व्यक. १०७ तदा (तद्) वा वि (वाऽथ); विर. २७४
वा वि (चापि); विचि. १२०; व्यनि. ४९५ हेत्वा (हेत्वा)
तदा साक्षि (तदसाक्षी) वा विनि (वाऽध्वनि); व्यप्र. ३७९
वा वि (न वि); व्यउ. ११८; सेतु. २२२; समु. १०
तदा (तद्) वा वि (चैव) नारदः.

(३) स्मृच. ७, ३२८; रत्न. १२१ भस्मादिना प्रक्षि
(हस्तादिना प्राक्षि) चांशु (वांशु); व्यप्र. ३७० भस्मादिना

आदिग्रहणेनोपरि प्रक्षपणाद्दुःखकरं कर्मपांसुमलादि
द्रव्यं गृह्यते । करादिनेत्यनेनादिशब्देन लघुडपाषाणेषुका-
युधादिद्रव्यं, आद्यग्रहणेन रज्जुशृङ्खलादि द्रव्यम् ।

स्मृच. ३२८

यमः

भार्यापुत्रदासदासीशिष्यानां दण्डपारुष्यविचारः
भार्या पुत्रश्च दासश्च दासी शिष्यश्च पञ्चमः ।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥
अधस्तात्तु प्रहर्तव्यं नोत्तमाङ्गे कथञ्चन ।
अतोऽन्यथा प्रवृत्तस्तु यथोक्तं दण्डमर्हति ॥

वधकृद्द्विजदण्डः

वैध्ये कर्मणि तिष्ठन्तं समग्रधनसंयुतम् ।
विवासयेत् द्विजं राजा दोषं विख्याप्य संसदि ॥

वृद्धहारीतः

देवताब्राह्मणगुरुणां पादादिना प्रहारे दण्डविधिः
दैवतं ब्राह्मणं गां च पितृमातृगुरुस्तथा ।
पादेन ताडयेद्यस्तु तस्य तच्छेदनं स्मृतम् ॥
तेषामुपरि हस्तं तु दोषोऽश्लेढं तु कामतः ॥

(भस्मादीनां); व्यड. १११ भस्मादिना (हस्तादिना) चांशु
(बांशु); विता. ७३२ भस्मादिना (हस्तादिना); समु.
१६१ व्यप्रवत्.

(१) व्यमा. २८५; विर. २७२; व्यनि. ४९५
शिष्यश्च (भृत्यश्च) मनुः; व्यप्र. ३७८; व्यड. ११७;
बाल. २।१३५ (पृ. १८५) (=) पूर्वार्धे (पुत्रः शिष्यस्तथा
भार्या दासी दासस्तु पञ्चमः); सेतु. २२१.

(२) व्यमा. २८५ कथञ्च (कदाच); विर. २७२ तैव्यं
(तैव्या) कथञ्च (कदाच); विचि. ११९ उक्तः; व्यनि.
४९३ तैव्यं (तैव्या) मनुः; व्यप्र. ३७८; व्यड. ११७;
सेतु. २२१ तैव्यं (तैव्या).

(३) व्यनि. ४९८. (४) वृहास्मृ. ७।२०३-४.

सुमन्तुः

परस्परं पारुष्ये दण्डविधिः

पारुष्यदोषादुभयोर्युगपत्संप्रवृत्तयोः ।
विशेषश्चेन्न दृश्येत विनयश्चेत्समस्तयोः ॥

वृद्धकात्यायनः

दण्डपारुष्ये स्वयं प्राणत्यागे न दण्डः

उक्त्वा परुषमुक्तस्तु ताडयित्वा तु ताडितः ।
यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणान्तेन न स्यात्स किल्बिषी ॥

परिशिष्टकारः

दण्डपारुष्यलक्षणम्

दुःखं रक्तं व्रणं भङ्गं छेदनं भेदनं तथा ।
कुर्याद्यः प्राणिनां तद्धि दण्डपारुष्यमुच्यते ॥
स्थावरजङ्गमप्राणिनां प्राण्यन्तरकृतं नखादिना त्वग्मे-
दादिभवं दुःखं रक्तव्रणादिकं च दण्डपारुष्यमुच्यते
इत्यर्थः ।

स्मृच. ३२८

अग्निपुराणम्

अन्त्यजातिर्द्विजातिं तु येनाङ्गोनापराध्नुयात् ।
तदेव छेदयेत्तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन् ॥
उत्कृष्टासनसंस्थस्य नीचस्याधो निकृन्तनम् ।
यो यदङ्गं च रुजयेत्तदङ्गं तस्य कर्तयेत् ॥
अर्धपादकराः कार्या गोगजाश्वोष्टघातकाः ।
वृक्षं तु विफलं कृत्वा सुवर्णं दण्डमर्हति ॥

(१) सवि. ४७६.

(२) व्यनि. ४९२.

(३) स्मृच. ३२७; रत्न. १२१; सवि. ४८० रक्तं
व्रणं (व्रणं रक्त) घः (घत्); व्यप्र. ३७०; व्यड. १११;
विता. ७३२; समु. १६१.

(४) अपु. २२७।२९.

(५) अपु. २२७।३१, ३२.

स्त्रीसंग्रहणम्

वेदाः

भ्रातृभगिनीविवाहः तन्निषेधश्च

*ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरु
चिदंर्णवं जगन्वान् । पितुर्नपातमा दधीत वेधा
अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा
भवाति । महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तारं
उर्विया परि ख्यन् ॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं
मर्त्यस्य । नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः
पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥

न यत्पुरा चक्रमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं
रपेम । गन्धर्वो अप्स्वप्या च योपा सा नो नाभिः
परमं जामि तन्नौ ॥

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता
विश्वरूपः । नाकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद
नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥

को अस्य वेद प्रथमस्याहः क ई ददर्श क इह
प्र व. चत् । बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव
आहनो वीच्या नृन् ॥

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ
सहश्रेय्याय । जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि
चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये
चरन्ति । अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह
रथ्येव चक्रा ॥

* 'ओ चित् सखायं' इत्याद्यारभ्य 'अन्यमू षु' इत्य-
न्तानां चतुर्दशमन्त्राणां, सायणभाष्यं स्थलनिर्देशश्च सौपुंथर्म-
प्रकरणे (घ. १७५-७८) द्रष्टव्यः ।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरु-
न्मिमीयात् । दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमी-
र्यमस्य विभृयादजामि ॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः
कृणवन्नजामि । उप बर्द्धहि वृषभाय बाहुमन्य-
मिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्नि-
र्ऋतिर्निगच्छात् । काममूता बह्वेतद्रपामि तन्वा मे
तन्वं सं पिपृधि ॥

न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः
स्वसारं निगच्छात् । अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व
न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥

बतो ब्रतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम् ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते
लिबुजेव वृक्षम् ॥

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते
लिबुजेव वृक्षम् । तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा
तवाधा कृणुष्व संचिदं सुभद्राम् ॥

पितापुत्रीविवाहः

प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो
अपौहत् । पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा
अनुभृतमनर्वा ॥

यथा स्वाशेन भगवान् रुद्रः प्रजापतिर्वास्तोष्पतिं रुद्र-
मसृजत् तदेतदादिभिस्तिष्ठभिर्वदति । यस्य प्रजापते-
रिष्णदेषणवद् वीरकर्मम् । लिङ्गव्यत्ययः । वीरकर्म ।
रेत इत्यर्थः । येन रेतसोत्पन्ना वीरा भवन्ति तादृशैः
प्रथिष्ट प्रथितमासीत् तद्रेतोऽनुष्ठितं प्रजापतिनापत्यार्थं
निषिक्तं नर्यो नरेभ्यो हितो यद्वा नेतृभ्यो देवेभ्यो हितो

(१) क्रसं. १०।६११५.

रुद्रोऽपौहत् अपोहति । तदेवाह । पुनस्तद्रेत आ वृहति । सर्वत उत्खिदति । उद्गमयति पुरुषाकारेण स्वयमुत्पन्नः सन् । कीदृशं रेतः । यद्रेतः कनायाः कान्ताया दुहितुः स्वपुत्र्याः । तस्यामित्यर्थः । तत्र प्रजापतिनानुभूतमाः आसीत् । कीदृशो रुद्रः । अनर्वान्यस्मिन्नप्रत्युतः । 'प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमम्यायदिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये ।' (ऐत्रा. ३।३३) इति ब्राह्मणम् । ऋसा.

मध्या यत्कर्त्तव्यमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् । मनानप्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥

कामं यथेच्छं कृण्वाने कुर्वाणे पितरि प्रजापतौ युवत्यां दुहितर्युषसि दिवि वा । दिवमित्यन्य इति हि ब्राह्मणं प्रदर्शितम् । मध्या तयोर्मध्येऽन्तरिक्षमध्ये वाभीके समीपे यत्कर्त्तव्यं कर्माभवत् मिथुनीभावाख्यं तदानीं मनानगल्पं रेतो जहतुः त्यक्तवन्तौ । किं कुर्वाणाविति तत्राह । वियन्तौ परस्परमभिगच्छन्तौ । प्रजापतिना सानौ समुच्छिन्ते स्थाने सुकृतस्य यज्ञस्य योनौ निषिक्तमासीदित्यर्थः । ततो रुद्र उत्पन्न इत्यर्थः । ऋसा,

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्षमया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत् । स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥

पिता प्रजाप्रतिर्यद्यदा स्वां दुहितरं दिवमुषसं वाधिष्कन् अध्यस्कन्दत् तदानीमेव क्षमया पृथिव्या सह संजग्मानः संगच्छमानः प्रजापतिरस्मिँल्लोके रोहितो भूत्वा रेतो नि षिञ्चत् निषेकमकरोत् । 'तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैदिति ब्राह्मणं (ऐत्रा. ३।३३) । तदानीं स्वाध्यः सुध्यानाः सुकर्माणो वा देवा ब्रह्माजनयन् उदपादयन् । किं तद्ब्रह्मेति तदाह । वास्तोष्पतिं यज्ञवास्तुस्वामिनं व्रतपां व्रतस्य कर्मणो रक्षःप्रभृतिभ्यः पालकं निरतक्षन् समुदपादयन् । यज्ञवास्तुस्वामित्वं दत्त्वा कर्मरक्षकत्वेन निर्मितवन्त इत्यर्थः । ऋसा.

भ्रातृभगिनीविवाहः

यैस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तंभितो नाशयामसि ॥

(१) ऋसं. १०।६।१।६. (२) ऋसं. १०।६।१।७.

(३) ऋसं. १०।१६।२।५; अंसं. २०।१६।१।५;

हे योपित् यो राक्षसो भ्राता भ्रातृरूपो भूत्वा पतिर्भूत्वा वा भूत्वा त्वां निपद्यते अभिगच्छति । अथवा जार उपपतिरूपो वा भूत्वाभिगच्छति । एवंभूतो यो राक्षसादिस्ते तव प्रजां जिघांसति हन्तुमिच्छति । स्पष्टमन्यत् । ऋसा.

शूद्रकनार्यस्त्रीसंग्रहणम्

शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ।

यद्यदा शूद्रा कान्चिद्दासी कदाचिदर्यः स्वकीयः स्वामी जारो यस्याः सेयमर्यजारा भवति, तदानीं सा दासी स्वामिस्वीकारमात्रेणात्यन्तं हृष्यति, न तु स्वकीयकुटुम्बपोषाय धनायति धनमात्मन इच्छति । न हि स्वामिस्वीकाराद्धनं अधिकं मन्यते । तैसा.

स्त्रियाः व्यभिचारदोषः

ऋतं वै सत्यं यज्ञोऽनृतं स्यनृतं वा एषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरत्यनृतमेव निरवदाय ऋतं सत्यमुपैति यन्मिथुया प्रतिब्रूयात्प्रियतमेन याजयेदथ यद्वाचयति मेध्यामेवैनां करोत्यामपेपा भवन्ति सर्वस्या हसोऽवेष्ट्यै यद्भृज्येयुरनवेष्टम हः स्यात्पात्रेभ्यो वै ताः प्रजा वरुणोऽगृह्णाद्यत्पात्राणि पात्रेभ्य एवैना वरुणान्मुञ्चति प्रतिपुरुषं भवन्ति प्रतिपुरुषमेवा ह्योऽवयजलेकमधि भवति गभभ्यस्तेन निरवदयतेऽन्नाद्वै ताः प्रजा वरुणोऽगृह्णाच्छूर्पेणाञ्जं विभ्रति तस्माच्छूर्पेण जुहुतः स्त्रीषु सौ जुहुतो मिथुना एव प्रजा वरुणान्मुञ्चतः पुरस्तात्प्रत्यञ्चौ तिष्ठन्तौ जुहुतः पुरस्तादेवा ह्योऽवयजतो यत्पात्राणि य एव द्विपादः पशवो मिथुनास्तेषामेतत्पुरस्ताद् ह्योऽवयजतोऽथ यन्मेषश्च मेषी च य एव चतुष्पादः पशवो मिथुनास्तेषामेतदुपरिष्ठाद् ह्योऽवयजत उभयत एवा ह्योऽवयजतः पुरस्ताच्चोपरिष्ठाच्च ।

मागृ. २।१८।२.

(१) तैसं. ७।४।१९।२-३; मैसं. ३।१।१।१; कासं. ४।८; शुभा. २३।३०; तैत्रा. ३।९।७।३; शब्रा. १३।९।२।८; शाश्रौ. १६।४।४.

(२) मैसं. १।१०।१।१; कासं. ३६।६; तैत्रा. १।६।५।४; माश्रौ. १।७।४.

शूद्रकार्यस्त्रीसंग्रहणं आवेकृतशूद्रस्त्रीसंग्रहणं च
यद्दरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते ।
शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥

(१) क्षत्ता पालागलीमभिमेथयति— यद्दरिणः ।
यदा हरिणो मृगः यवं सस्यं अत्ति भक्षयति । अथ
तदा क्षेत्री । न पुष्टं पशु । पशुमिति प्राप्ते विभक्ति-
लोपः । पुष्टं पशुं मन्यते अवगच्छति । मम क्षेत्रं
भक्षितमिति यथा । एवं शूद्रा यत् यस्य शूद्रस्य भर्तुः ।
अर्यजारा अर्यः वैश्यः जारो यस्याः सा अर्यजारा भवेत्
तदा स शूद्रः क्षेत्री न पोषाय ममैतदिति मन्यते । न
च तस्यां धनायति धनमिव च तां न मन्यते परस्योप-
भोग्यत्वात् । शुउ.

(२) वैश्यो यदा शूद्रां गच्छति तदा शूद्रः पोषाय
न धनायते पुष्टिं न इच्छति मद्भार्या वैश्येन भुक्ता
सती पुष्टा जातेति न मन्यते किं तु व्यभिचारिणी
जातेति दुःखितो भवतीत्यर्थः । शुम.

यद्दरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते ।
शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनुमन्यते ॥

(१) पालागली प्रत्याह— यद्दरिणो यवमत्ति न
पुष्टं बहु मन्यते क्षेत्रीति । यदुक्तं भवतोऽप्येतदेवमिति
सोऽल्लुण्ठमाह । इयांस्तु विशेषः । शूद्रो यत् अर्यायै
अर्यायाः वैश्यायाः जारः जारयिता । तदा क्षेत्री वैश्यः
आत्मनः पोषं नानुमन्यते । न हि सा तस्य पोष्या
निकृष्टश्च शूद्रः उत्कृष्टा वैश्या इति । शुउ.

(२) यत् यदा शूद्रः अर्यायै अर्याया वैश्याया
जारो भवति तदा वैश्यः पोषं पुष्टिं नानुमन्यते मम स्त्री
पुष्टा जातेति नानुमन्यते किं तु शूद्रेण नीचेन भुक्तेति
क्लिश्यतीत्यर्थः । शुम.

ब्राह्मणीसंग्रहदोषः

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिस्त्रिषेऽकूपारः सलिले
मावरिश्वा । वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः
प्रथमजा ऋतेन ॥

(१) शुमा. २३।३०, ३१; तैसं. ७।४।१९।२; मैसं.
३।१३।१; कसं. ४।८; श्राव. १३।२।९।८ : १३।५।२।८;
तैजा. ३।९।७।३; शाश्रौ. १।३।४।४, ६.

(२) असं. ५।१७।१ षेऽकू (षे कू) उग्रो (उग्रं) ऋतेन

अत्रेतिहासमाचक्षते । जुहूरिति वाङ्नाम । सा ब्रह्मणो
जाया च । बृहस्पतेर्वाचस्पतित्वाद्बृहस्पतेर्जुहूर्नाम भार्या
बभूव । कदाचिदस्य किस्त्रिषमस्या दौर्भाग्यरूपेणा-
सांचक्रे । अत एव स एनां पर्यत्याक्षीत् । अनन्तर-
मादित्यादयो देवा मिथो विचार्यैनामकिस्त्रिषां कृत्वा
पुनर्बृहस्पतये प्रादुरिति । तदत्र वर्ण्यते । प्रथमा मुख्यास्ते
देवा ब्रह्मकिस्त्रिषे । ब्रह्मणो बृहस्पतेः किस्त्रिषे पापे जुहूदौ-
र्भाग्यरूपे विषयेऽवदन् । निष्कृत्युपायमवोचन् । के ते ।
अकूपारः । अत्र यास्कः—आदित्योऽप्यकूपार उच्यतेऽकू-
पारो भवति दूरपारः । इति (नि. ४।१८) । अकुत्सित-
पारो महागतिरादित्यः सलिलेऽब्देवता वरुणो मातरिश्वा
वायुर्वीळुहराः । हस्तेरमुनि रूपं हर इति । हरति विनाश-
यति तमांसीति हरस्तेजः । प्रभूततेजस्कः । तपः । तपसा
तापनेनोत्र उद्वर्णोऽग्निर्मयोभूः सुखस्य भावयिता सोमो
देवीर्देव्य आपः । कीदृश्यः । ऋतेन सत्यभूतेन ब्रह्मणा
प्रथमजा आदित एवोत्पादिताः । एत उपायमुक्त्वा
प्रायश्चित्तमप्यकारयन्निति भावः । ऋसा.

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छ-
दृहणीयमानः ।

अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीद्भिर्होता
हस्तगृह्या निनाय ॥

प्रथमो मुख्यः सोमो राजादृहणीयमाणः । पापापगमने-
नालज्जमानः संस्तामेनामकिस्त्रिषां ब्रह्मजायां पुनर्बृहस्पतये
प्रायच्छत् । ततो वरुणोऽन्वर्तिता । ऋतिः सौत्रो धातु-
वृणायां वर्तते । तस्य तृचि रूपम् । सोममनुमोदयितासीत् ।
सर्वथा त्वं परिग्रहाणेति दयामकार्षीत् । तथा मित्रश्च ।
अनन्तरं होता देवानामाह्वाता मनुष्याणां होमनिष्पादको
वामिर्हस्तगृह्या तां हस्ते गृहीत्वा निनाय आनैषीत्
प्रादादित्यर्थः । ऋसा.

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति
चेदवोचन् । न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं
गुपितं क्षत्रियस्य ॥

(ऋतस्य); कसं. १०।१०९।१; कौसू. ४।८।११.

(१) असं. ५।१७।२; ऋसं. १०।१०९।२.

(२) असं. ५।१७।३ वेयमिति (येति) वोचन् (वोचत्)
प्रह्ये (प्रहेया); ऋसं. १०।१०९।३.

देवा बृहस्पतिमुजुः । हे बृहस्पते अस्या आधिः, आधीयन्त आभरणान्यत्रेति आधिः शरीरम् । अस्याः शरीरं हस्तेनैव ब्राह्मो ग्रहितव्यमेव । पुनस्ते देवा इदानीमियं ब्रह्मजायेत्येवावोचन् अवादिषुः । चशब्दश्चेदर्थे । एषा ब्रह्मजाया पुरा प्रह्वे । हि गतौ वृद्धौ च । प्रहिताय त्वया भार्यान्वेषणार्थं प्रेषिताय दूताय तथा न तस्यै । स्वात्मानं न प्रकाशयति । तत्र दृष्टान्तः । यथा क्षत्रियस्य राज्ञो गुपितं रक्षितं राष्ट्रं राज्यं शत्रवे यथा न प्रकाशयति तद्वदसौ दौर्भाग्ययुक्ततया तस्मै स्वात्मानं न प्रकाशितवती । इदानीं तु तद्राहित्येन प्रकाशमानेयं ब्रह्मजायैवेत्यब्रुवन् । ऋसा.

यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छ्रुतां ग्राममवपद्यमानाम् । सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् । तेन जायामन्वविन्दद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥

एवं स्वपतिर्मांलभतेति जुहुः परोक्षतया वदति । हे देवाः पूर्वं स ब्रह्मचारी जायाभावेन ब्रह्मचारी चरति । अत एव विषः सर्वेषु यज्ञेषु व्याप्तवान् देवान् वेविषत् स्तुतिभिर्हविर्भिश्च व्याप्तवान् देवानामेकमङ्गं भवति । जायापती यज्ञस्य द्वे अङ्गे खलु । तेन देवानां परिचरणेन बृहस्पतिर्जायां जुह्वनामिकां मामन्वविन्दत् अनुगम्यालभत । नशब्द उपमार्थे । पूर्वं यथा सोमेन नीतां सोमो दददन्धर्वाय (ऋसं. १०।८५।४१) । इत्यादिक्रमेण नीतां जुह्वं जुह्वं यथा लब्धवान् तद्वदिदानीमपि । ऋसा.

३ देवा एतस्यामवदन्त पूर्वं सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः । भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धा दधाति परमे व्योमन् ॥

पूर्वं चिरन्तना देवा आदित्यादय एतस्यां विषयेऽ-

(१) असं. ५।१७।४; कौसू. १२६।९.

(२) असं. ५।१७।५; ऋसं. १०।१०९।५.

(३) असं. ५।१७।६ देवां(वा) पसे (पसा); ऋसं. १०।१०९।४.

व्य. सं. २३१

वदन्त । इयं पापरहितेत्यवादिषुः । तथा ये सप्तर्षयः सप्तसंख्याका ऋषयस्तपसे तपश्चरणाय निषेदुः निषण्णा बभूवुः । तेऽप्यवादिषुः । ततो भीमा शत्रुरूपानां पापानां भयङ्करी सुकृतवत्येषा जाया ब्राह्मणस्य बृहस्पतेरुपनीता समीपे देवैः स्थापिता । तथाहि । तपःप्रभावो दुर्धा दुर्धानामपि परमे व्योमन् व्योमन्युत्तमे स्थाने दधाति विदधाति खलु । तस्मादेनामपि देवतापरिग्रहरूपस्तपोमहिमा बृहस्पतेरन्तिके स्थापयति । ऋसा.

४ ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते ।

वीरा थे नृहन्ते मिथो ब्रह्मजायां हिनस्ति तान् ॥

उत यत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वं अब्राह्मणाः ।

ब्रह्मा चेद्वेस्तेमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः ।

तत् सूर्यः प्रभुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।

राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥

लाभहेतुमाह । देवा ब्रह्मजायां जुह्वं बृहस्पतये पुनरददुः । वैशब्दः प्रसिद्धिवाची । उताप्यर्थे । मनुष्या अपि पुनरददुः । एवं देवमनुष्यैः कृतं दानं सत्यं यथार्थं कृण्वानाः कुर्वाणा राजानोऽपि पुनस्तस्मै ददुः । एतमव्यवहार्यनिमित्तं पापमपि व्यनाशयन्निति भावः । ऋसा.

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् ।

ऊर्जं पृथिव्या भक्तवायोरुगायमुपासते ॥

देवैः देवा निकिल्बिषं तस्याः किल्बिषाभावं, कृत्वी कृत्वा, ब्रह्मजायां ब्रह्मणो बृहस्पतेर्मायां, पुनर्दाय पुनर्दत्त्वा । पृथिव्या ऊर्जं रसभूतमन्नं हवीरूपं, भक्तवाय भक्त्वा विभज्य, उरुगायं बहुकीर्तिं बहुभिः स्तोतव्यं वा बाह्यस्वत्यं यज्ञमुपासते सेवन्ते । ऋसा.

(१) असं. ५।१७।७-९.

(२) असं. ५।१७।१० उत (अददुः) कृण्वा (गृह्णा); ऋसं. १०।१०९।६.

(३) असं. ५।१७।११ कृत्वी (कृत्वा); ऋसं. १०।१०९।७.

नस्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा श्ये ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥
 न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
 यस्मिन् ० ॥
 नास्य क्षत्ता निष्कधीवः सूनानामेत्यप्रतः ।
 यस्मिन् ० ॥
 नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
 यस्मिन् ० ॥
 नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते विसम् ।
 यस्मिन् ० ॥
 नास्मै पृथिं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
 यस्मिन् ० ॥
 नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
 विजानिर्त्यत्र ब्राह्मणो रात्रि वसति पापया ॥

परदारसंग्रहो दोषः

यैस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो
 अभ्यैमि देवाः । ते वाचं वादिषुर्मोक्षरां मद्देवपत्नी
 अप्सरसावधीतम् * ॥

पितापुत्री-आतृभगिनीसङ्गः

यैस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
 बजस्तान्त्सहतामितः क्लीवरूपांस्तिरीटिनः ॥

हे गर्भिणि यो राक्षसादिः त्वा त्वां स्वप्ने निद्रावस्थायां
 भ्राता सहोत्पन्न इव भूत्वा विश्वासं जनयन् निपद्यते
 निपतति अभिगच्छति । तथा यश्च पितेव जनक इव
 तद्रूपधारी भूत्वा स्वप्ने त्वां निपद्यते । यद्वा तान् इति
 बहुवचनेन निर्देशात् यः कश्चित् स्वप्ने स्वकीयसहजरूपेण
 निपद्यते यश्च भ्राता भूत्वा यस्तु पितेव भूत्वेति योज्यम् ।
 भ्रात्रादिरूपेणागत्य गर्भध्वंसनं अन्यत्राप्याम्नायते —
 'यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । प्रजां
 यस्ते जिघांसति तं इतो नाशयामसि ॥' इति (ऋसं.
 १०।१६२।५) । तान् सर्वान् बजः श्वेतसर्षपः सहतां
 अभिमवतु इतः अस्माद् गर्भिणीसकाशात् । तथा
 क्लीवरूपान् षण्डरूपं धृत्वा आगतान् तिरीटिनः अन्तर्धा-

* सायणभाष्यं ऋणादानप्रकरणे (पृ. ६०३) द्रष्टव्यम् ।

(१) असं. ५।१७।१२-८.

(२) असं. ६।११।८।३. (३) असं. ८।६।७.

नेन अटतश्च । सहतां इति संबन्धः ।

असा.

पितापुत्रीविवाहनिषेधः

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्विवमित्यन्य
 आहुरुषसमित्यन्ये तामृश्यो भूत्वा रोहितं
 भूतामभ्यैत्तं देवा अपश्यन्नकृतं वै प्रजापतिः
 करोतीति ते तमैच्छन् एनमारिष्यति ।

पुरा कदाचित्प्रजापतिः स्वकीयां दुहितरमभिलक्ष्य
 भार्यात्वेन ध्यानमकरोत् । तस्यां दुहितरि महर्षीणां
 मतभेद आसीत् । अन्ये केचन महर्षयो दिवं द्युलोक-
 देवतां ध्यातवानित्याहुः । अपरे तु महर्षय उषसमुषः-
 कालदेवतां ध्यातवानित्याहुः । ऋश्यो मृगविशेषः ।
 तथा चाभिधानकार आह— गोकर्णपृषतैर्गदर्यरोहिताश्च-
 मरो मृगा इति । स प्रजापतिस्तथाविध ऋश्योऽभूत् ।
 सा च दुहिता रोहितं लोहितं भूता प्राप्ता । ऋतुमती
 जातेत्यर्थः । तादृशीं तां दुहितरमभ्यैदभिगतवान्मिथुनधर्म
 प्राप्तवानित्यर्थः । तं दुहितृगामिनं प्रजापतिं देवाः
 परस्परमिदमब्रुवन् । अयं प्रजापतिरकृतं वै, अकर्तव्यमेव
 निभिद्धाचरणं करोतीति विचार्य यः पुरुष एनं प्रजापति-
 मारिष्यति, आर्तिं प्रापयितुं क्षमस्तादृशं पुरुषमैच्छन्न-
 न्वेषणं कृतवन्तः । ऐत्रासा.

स्त्रियाः व्यभिचारदोषः

पत्नीं वाचयति । मेध्यामेधैनां करोति । अथो
 तप एधैनामुप नयति । यज्जारं सन्तं न प्रब्रूयात् ।
 प्रियं ज्ञातिं रून्ध्यात् । असौ मे जार इति
 निर्दिशेत् । निर्दिश्यैवेनं वरुणपाशेन प्राहयति ।

पितापुत्रीविवाहनिषेधः

प्रजापतिर्हि वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ । दिवं
 वोषसं वा मिथुन्येनया स्याभिति ता संबभूव । तद्वै
 देवानामाग आस । य इत्थं स्वां दुहितरमस्माकं
 स्वसारं करोतीति । ते ह देवा ऊचुः । योऽयं देवः
 पशूनामीष्टेऽतिसन्धं वा अयं चरति य इत्थं स्वां
 दुहितरमस्माकं स्वसारं करोति विध्येमभिति तं
 रुद्रोऽभ्यायत्य विन्याध तस्य सामि रेतः प्रचस्कन्द
 तथेन्नूनं तदास । तस्मादेतदृषिणाभ्यनूक्तम् ।

(१) ऐत्रा. ३।३३. (२) तैत्रा. १।६।५।२.

(३) शब्रा. १।७।४।१-४.

पिता यत्स्वां दुहितरमाधिष्कन् क्षमया रेतः संज-
ग्मानो निषिञ्चदिति तदाभिमारुतमित्युक्तं तस्मि-
स्तद्व्याख्यायते यथा तद्देवा रेतः प्राजनयंस्तेषां
यदा देवानां क्रोधो व्यैदथ प्रजापतिमभिषज्यंस्तस्य
तं शल्पं निरकृन्तन्स वै यज्ञ एव प्रजापतिः ।

स्त्रियाः व्यभिचारदोषः

अथ प्रतिप्रस्थाता प्रतिपरैति । स पत्नीमुदाने-
ष्यन्पृच्छति केन चरसीति वरुण्यं वा एतस्त्री करोति
यदन्यस्य सत्यन्येन चरत्यथो नेन्मेऽन्तःशल्पा जुहव-
दिति तस्मात्पृच्छति निरुक्तं वा एनः कनीयो
भवति सत्यं हि भवति तस्माद्देव पृच्छति सा यन्न
प्रतिजानीत ज्ञातिभ्यो हास्यै तदहितं स्यात् ।

श्रोत्रियदारसंग्रहदोषः

अथ यस्य जायायै जारः स्यात् । तं चेद्विध्या-
दामपात्रेऽग्निमुपसमाधाय प्रतिलोमं शरबर्हिस्तीर्त्वा
तस्मिन्नेतास्तिस्रः शरभृष्टीः प्रतिलोमाः सर्पिषात्त्वा
जहुयान्मम समिद्धेऽहौषीराशापराकाशौ त आददेऽ-
साविति नाम गृह्णाति मम समिद्धेऽहौषीः पुत्र-
पशून्स्त आददेऽसाविति नाम गृह्णाति मम समिद्धेऽ-
हौषीः प्राणापानौ त आददेऽसाविति नाम गृह्णाति
स वा एष निरिन्द्रियो विसुकृदस्माल्लोकात्प्रैति यमेवं-
विद्ब्राह्मणः शपति तस्मादेवंविच्छ्रोत्रियस्य जायाया
उपहासं नेच्छेदुत ह्येवंवित्परो भवति ।

पितापुत्रीविवाहः

प्रजापतिरुषसमध्यैत् स्वां दुहितरं तस्य रेतः
परापतत् तदस्यां न्यषिच्यत तदश्रीणादिदं मे मादु-
षदिति तत्सदकरोत् पशून्नेव ।

पूर्वं प्रजापतिः स्वदुहितरमेवोषसमध्यैदध्यगच्छत्
तस्य रेतः परापतत् तदस्यां पृथिव्यां निषिच्य च तद-
श्रीणात् अपचत् केनाभिप्रायेण मादुषदिति दुष्टं मा भू-
दिति तत्पक्वं रेतः सदकरोत् तदेव विवृणोति पशून्करो-
दिति एतत् श्रायन्तीयमभवदिति शेषः । तासा.

गौतमः

परदारामिमर्शं दण्डसामान्यविधिः

परदारामिमृष्टः स्तब्धश्चेद् ब्राह्मणः ।

(१) शब्रा. २।५।२।२०. (२) शब्रा. १।४।१।४।११.
(३) ताब्रा. ८।२।१०. (४) सवि. ४६८.

स्तब्धः स्वशने क्षमते । तथा च मनुः—‘स्त्रियं
स्पृशेददेशे यः स्पृशे वा मर्षयेत्तदा । परस्परस्यानुमते
सर्वे संग्रहणं स्मृतम् ॥’ इति । सवि. ४६८

प्रतिषेधे पुमान् दण्ड्यः तदर्धं स्त्री ।

अस्यार्यो विवृतो निबन्धनकारेण— पतिपित्रादि-
भिर्येन संभाषणं निषेध्यं तत्र प्रवर्तमाना स्त्री शतपणं
दण्ड्यां । पुरुषोऽप्येवं निषिद्धः सन् प्रवर्तमानो द्विशतं
दण्ड्य इति । सवि. ४६८-९

आर्यस्त्र्यभिगमिशूद्रदण्डः

आर्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः सर्वस्वहरणं च ।

(१) शूद्र इति प्रकृतं षट्यन्तमपेक्षते । आर्यास्त्रै-
वर्णिकाः । तेषां चेत्स्त्रियं शूद्रोऽभिगच्छेत्तस्य लिङ्गो-
द्धारो लिङ्गोत्पाटनं कार्यं यच्च यावच्च स्वं तस्य च हरणं
दण्डः । आर्याभिगमनमित्येव सिद्धे स्त्रीग्रहणं आर्य-
गृहीतायां शूद्रायामपीति सूचनार्थम् । तत्र वैश्यस्त्रियां
स्वहरणं क्षत्रियायां लिङ्गोद्धारः । ब्राह्मण्यामुभयमिति ।
गौमि.

(२) आर्याणां ब्राह्मणादीनां आर्यवृत्ता चेत् स्त्री ।
कुत एतत्, स्त्र्यभिगमन इति वक्तव्ये आर्यस्त्र्यभि-
गमन इत्यारम्भात् एवं च वेश्यारूपेण स्थितायाम-
दण्ड्यः । स्त्रियामेवाभिगमनप्रसिद्धेरार्यागमन इत्येव सिद्धे
स्त्रीग्रहणमार्यपरिगृहीतायां शूद्रायामपीत्येवमर्थम् ।
अभिगमने कृते अभिशब्दो बुद्धिपूर्वार्थः । ततश्च
स्वप्रादावबुद्धस्य तथैव कृतस्य लघुतरो दण्डो द्रष्टव्यः ।
लिङ्गस्योद्धारः उत्पाटनं सर्वस्वहरणं च कर्तव्यं, तल्लिङ्गो-
द्धारो धनस्य चेति वक्तव्ये स्वहरणं चेत्यभिधानात् ।
चकारः समुच्चयार्थः, विकल्पो मा भूदित्यसमासः, क्षत्रिय-

(१) सवि. ४६८.

(२) गौध. १।२।२; मेघा. ८।३।७४; अप. २।२।८६;
व्यक. १।२६ सर्वस्व (स्व); मभा. व्यकवत्; गौमि. १।२।२
व्यकवत्; उ. २।२।७।९ व्यकवत्; स्मृच. ३।२।२; मसु.
८।३।७४ (च०); विर. ३।९।१ स्त्र्यभि (स्त्री); पमा.
४।६।६; रत्न. १।३।१; चिचि. १।७।९ मसुवत्; दवि. १।७।२
हरणं (ग्रहणं); वीमि. २।२।८६ (च०); व्यम. १।०।६
आर्य (आचार्य); बाल. २।२।८६ सर्वस्व (सर्व); सेतु.
२।६।८ स्त्र्यभि (स्त्री) (सर्वस्वहरणं च०); २।६।९ (च०);
समु. १।५।५.

वैश्यस्त्रीगमने यथासंख्येनैकैकं, ब्राह्मणस्य तूभयमिति ।
*मभा.

गुप्ता चेद्वधोऽधिकः ।

स यदि शूद्रस्तासां गोता रक्षिता भवति तदा वधः
कार्यः । अधिकग्रहणात्पूर्वोक्तदण्डद्वयमपि भवति ।

×गौमि.

अंगुष्ठमप्युत्कृष्टवर्णां शूद्रो गच्छेद्विच्छेद-
मर्हति ।

अत्रापिशब्दो व्युत्क्रमेण संबन्धनीयः । लिङ्गच्छेदन-
मर्हतीति तेन सर्वस्वापहारसमुच्चयः सिद्धः । सवि. ४७०

वैधः सर्वस्वापहारो गुप्तां तु ब्रजतोऽस्य च ।

अस्य शूद्रस्येत्यर्थः । सवि. ४७०

हीनपुरुषस्य उच्चस्त्रियाश्च व्यभिचारे दण्डः

श्रमिः खादयेद्राजा निहीनवर्णगमने स्त्रियं प्रकाशम् ।

अत्र निहीनवर्णगमने स्त्रियाः पातित्यमुक्तम् । तस्याः
सामान्यतः पतितप्रायश्चित्ते प्राप्त आह—श्रमिः खाद-
येदिति । निहीनवर्णो व्याख्यातः ‘भ्रूणहनि हीनवर्ण-
सेवायां च’ इत्यत्र । तद्रामने तां श्रमिः खादयेद्राजा
प्रकाशं जनसमक्षम् । तथाह. मनुः— ‘भर्तारं
लङ्घयेद्या तु जातिस्त्रीगुणदर्पिता । तां श्रमिः खादयेद्राजा
संस्थाने बहुसंस्थिते ॥’ इति । अबुद्धिपूर्वे अयं राजदण्डः,

* गौमिवद्भावः ।

× मभा. गौमिवत् ।

(१) गौघ. १२३; मेधा. ८१७४ गुप्ता (गुप्तां)
(वधोऽधिकः०); व्यक. १२६ द्वधोऽधिकः (द्वादिः);
मभा. गुप्ता (गोप्ता); गौमि. १२३ मभावत्; उ.
२१२७१; स्मृच. ३२२; मसु. ८१३७४ गुप्ता (गुप्तां);
विर. ३९१, ३९५; रत्न. १३१ मसुवत्; विचि. १७९
मसुवत्; दवि. १७२ द्वधो (द्वरो); वीमि. २१२८६;
व्यम. १०६; बाल. २१२८६ मभावत्; सेतु. २६९
मभावत्; ससु. १५५ मसुवत्.

(२) सवि. ४७०. (३) सवि. ४७०.

(४) गौघ. २३१९४; व्यक. १०६; मभा.; गौमि.
२३१९४ श्रमिः खा (श्रमिरा); विर. ३९७ निहीन
(हीन); विचि. १८५ मिः + (तु) निहीन (हीन)
(प्रकाशम्०); दवि. १७३ मिः + (च) निहीन (हीन);
सेतु. २७२ गमने (गमे) शेषं विचिवत्; विव्य. ५५
विचिवत्.

बुद्धिपूर्वे वसिष्ठोक्तं द्रष्टव्यम्—‘शूद्रो ब्राह्मणीमुपगच्छेत्
वीरगैर्वैष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येत् । ब्राह्मण्याः शिरसि
वपनं कारयित्वा सर्पिपाऽभ्यज्य नग्नां कृष्णखरमारोप्य
महापथमनुसंभ्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते । वैश्यश्चेत्
ब्राह्मणीमुपगच्छेत्लोहितदर्भैर्वैष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्येत् ।
ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिपाऽभ्यज्य नग्ना
गौरखरमारोप्य मंहोर्पैथमनुसंभ्राजयेत् पूता भवतीति
विज्ञायते । राजन्यश्चेत् ब्राह्मणीमुपगच्छेच्छरपत्रैर्वैष्टयित्वा
राजन्यमग्नौ प्रास्येत् । ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा
सर्पिपाऽभ्यज्य नग्ना श्वेतखरमारोप्य महापथमनुसंभ्राजयेत्
पूता भवतीति विज्ञायते । एवं वैश्यो राजन्यायां शूद्रश्च
राजन्यवैश्ययोः’ इति । निहीनवर्णगमन इत्युक्तत्वात्
क्षत्रियवैश्याभ्यां बुद्धिपूर्वगमने ब्राह्मण्याः कल्प्यम् । यथाह
मनुः—‘जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्ब्रूहे । उत्तमां
सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ॥’ इति । अयमेव क्षत्रिया-
वैश्यागमनेऽपि द्रष्टव्यः, सामान्येनोक्तत्वात् । एवञ्च
निहीनवर्ण इत्ययमपि दण्डो द्विजातिस्त्रीणां सामान्यः,
सामान्येनोक्तत्वादेव । अनुलोमसंपर्के तु व्याघ्र आह—
‘वर्णानामनुलोमानां परस्परसमागमे । व्युत्क्रमेण ततो
राजा खादयेद्वानरैः स्त्रियम् ॥ सृगालैर्बुद्धिपूर्वं चेत् पुरुषो
वधमर्हति । अयमेवानुलोमानां स्वजातिव्युत्क्रमेष्वपि ॥’
इति । प्रतिलोमसमागमे बुद्धिपूर्वं चाबुद्धिपूर्वं च मनुनोक्तं
द्रष्टव्यं—‘प्रतिलोमे वधः पुंसां स्त्रीणां नासादिकर्तनम्’
इति । ननु च—‘एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि’
इति, ‘यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्द्रवतम्’ इति च
सिद्धे अयं दण्डविधिरनर्थक इति । अत्रोच्यते या स्वय-
मेव राजानं गच्छति तस्या दण्ड एव, यया तु बलादानी-
यते तस्या दण्डश्च प्रायश्चित्तं च, या स्वयमपि
न गच्छति न बलादानीयते तस्याः प्रायश्चित्त-
मेवेति । अयमेव न्यायः सर्वत्र दण्डप्रायश्चित्त-
योर्द्रष्टव्यः । अत्र प्रतिलोमानां स्वजातिव्युत्क्रमे
‘प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः’ इति प्रायश्चित्ताभावा-
दन्येषां संकरदोषपरिहारार्थं दण्डः कल्प्यः । एवं च
‘प्रतिलोमे वधः पुंसां स्त्रीणां नासादिकर्तनम्’ इति
तेषामपि द्रष्टव्यम् । तथा पातकोपपातकविषयेऽपि
ब्राह्मण्या अनुलोमानन्तरजस्य यो दण्ड उक्तः तस्यार्थं

द्रष्टव्यं, तथैकान्तरद्वयन्तरयोश्च, कुतः ? 'चण्डालस्य समीपे तु नाख्येतव्यं कदाचन । तथा पारशवस्यापि चण्डालार्थो हि स स्मृतः ॥' इति व्याघ्रधर्मलिङ्गात् ।

× मभा.

पुमांसं घातयेत् ।

(१) अनन्तरोक्ते विषये गन्ता पुमान् राज्ञा घातयितव्यः । वधप्रकारश्चानन्तरमेव वसिष्ठवचनेन दर्शितः । गौमि.

(२) प्रकाशमित्यनुवर्तते । घातनप्रकारश्च वसिष्ठोक्तो द्रष्टव्यः । उदाहृतश्च विशेषात् । बुद्धिपूर्वेऽबुद्धिपूर्वे सकृद्गमने अभ्यासे च विशेषवचनान्तराभावाच्च सर्वत्र हननमेव द्रष्टव्यम् । एवं वर्णानामनुलोमानां प्रतिलोमानां च स्वर्गव्युत्क्रमे परस्परव्युत्क्रमे च हननमेव द्रष्टव्यम् । तथा च स्मृत्यन्तरवाक्यानि चोदाहृतानि । एवञ्च स्त्रीणामपि सकृद्गमनेऽभ्यासे च पूर्वोक्त एव दण्ड इति द्रष्टव्यम् । मभा.

यथोक्तं वा ।

(१) लिङ्गोद्धार इत्यादि यथोक्तं वा दण्डप्रणयनं कर्तव्यम् । सप्रत्ययाप्रत्ययाभ्यासानभ्यासापेक्षोऽयं विकल्पः । गौमि.

(२) लिङ्गोद्धार इत्यादि यथोक्तं वा शूद्रस्य द्रष्टव्यम् । तत्र सञ्छूद्रस्य यथोक्तमितरस्येदमिति द्रष्टव्यम् । मभा.

कन्याकृत्कन्यादूषणदण्डः

कन्यैव कन्यां दूषयति तदङ्गच्छेदो वा. मौण्ड्यं वा ।

हारीतः

हीनपुरुषस्य उच्चस्त्रियाश्च व्यभिचारे दण्डः

श्रेयसः शयनशायिनं राजा बद्ध्वा श्वभिः

× गौमि. मभावत् ।

(१) गौध. २३।१५; व्यक. १२६; मभा.; गौमि. २३।१५; विर. ३९७; द्दवि. १७३.

(२) गौध. २३।१६; व्यक. १२६; मभा.; गौमि. २१।१६; विर. ३९७; द्दवि. १७३.

(३) सवि. ४७२.

(४) व्यक. १२६; विर. ३९६; विचि. १८५

खादयेत् काष्ठैश्चैनां दहेत् ।

श्रेयस उत्कृष्टवर्णस्य शयनशायिनं स्त्रीगामिनम् । एनामुत्कृष्टवर्णस्त्रियम् । विर. ३९७

आपस्तम्बः

कन्यापरदारसंनिकर्षकरणे दण्डः

अबुद्धिपूर्वमलङ्कृतो युवा परदारमनुप्रविशन् कुमारीं वा वाचा बाध्यः । बुद्धिपूर्वं तु दुष्टभावो दण्ड्यः ।

(१) यत्र परदार आसते कुमारी वा पतिवरा, तत्र युवा अलङ्कृतः अबुद्धिपूर्वमज्ञानादनुप्रविशन् वाचा बाध्यः— अत्रेयमास्ते, माऽत्र प्रविशेति । बुद्धिपूर्वमिति । यस्तु जानन्नेव दुष्टभावः प्रलोभनार्थं प्रविशति स दण्ड्यो द्रव्यानुसूपमपराधानुरूपं च । दुष्टभावग्रहणमाचार्यादि-प्रेषितस्य प्रवेशे दण्डो मा भूदिति । उ.

(२) यद्यदुष्टाशय एवाज्ञानादलङ्कृतः परस्त्रियाः परकन्यायाश्च समीपमुपसर्पति, स वाचा बाध्यः भर्त्सनीयः । विर. ३८५

परदारमैथुने दण्डः

संनिपाते वृत्ते शिश्नस्य छेदनं सवृषणस्य ।

संनिपातो मैथुनं, तस्मिन् वृत्ते शिश्नच्छेदनं दण्डः । सवृषणस्येत्युपसर्जनस्यापि शिश्नस्य विशेषणम् । सवृषणस्य शिश्नस्य छेदनमिति । उ.

(काष्ठैश्चैनां दहेत्०); द्दवि. १७३ श्चैनां (श्चैतां); वीमि. २।२८६ श्चैनां दहेत् (श्चैनां दाहयेत्); सेतु. २७१ दहेत् (दाहयेत्).

(१) आध. २।२६।१८-९; हिध. २।१९; अप. २।२८४ वाचा बाध्यः (स्वाच्यः) शंखलिखितौ; व्यक. १२५; विर. ३८५ युवा परदारमनु (वा परदारेषु) वा वाचा (वाचा) (दुष्टभावो०); व्यनि. ३९९; द्दवि. १५६ (कुमारी वा०) (दुष्टभावो०); सेतु. २६६ दारमनुप्र (दारानुप) वाचा बाध्यः (चावध्यः) (दुष्टभावो०); समु. १५४ दारम (दारान) बाध्यः (ताड्यः) तु (चेत्) शंखः .

(२) आध. २।२६।२० शिश्नस्य छेदनं (शिश्नच्छेदनं); हिध. २।१९ आधवत्; व्यक. १२५; विर. ३८९; द्दवि. १६० संनिपाते वृत्ते (पूर्वसंनिपाते); सेतु. २६७ (वृत्ते०) सवृष (वृष).

कन्यादूषणे दण्डः

कुमार्यां तु स्वान्यादाय नाश्यः ।

(१) कुमार्यां तु संनिपाते वृत्ते सर्वस्वहरणं कृत्वा देशान्निर्वास्यः, न शिश्नच्छेदः । उ.

(२) स्वानि धनानि आदाय नाश्यो निर्वास्यः । एतच्च हीनायामकामायाम् । विर. ४०२

कन्यादूषणे परदारदूषणे च राज्ञः कर्तव्यम्

अथ भृत्ये राज्ञा ।

अथ संनिपातात्प्रभृति ते परदारकुमार्यां राज्ञा भृत्ये प्रासाच्छादनप्रदानेन भर्तव्ये । उ.

रक्ष्ये चात ऊर्ध्वं मैथुनात् ।

अथ प्रथमात् संनिपातात् ऊर्ध्वं मैथुनाच्च रक्ष्ये यथा पुनः मैथुनं नाचरतः तथा कार्ये । उ.

निर्वेषाभ्युपाये तु स्वामिभ्योऽवसृजेत् ।

यदि ते एवं निरुद्धे निर्वेषणमभ्युपेतः अभ्युपगच्छतः तदा निर्वेषाभ्युपाये तु स्वामिहस्ते अवसृजेत् दद्यात् । परदारं भर्त्रे श्वशुराय वा, कुमारीं पित्रे भ्रात्रे वा । अनभ्युपगमे तु प्रायश्चित्तस्य यावज्जीवं निरोधः । उ.

प्रायश्चित्तोत्तरं कन्या परदारश्च धर्माहसंबन्धाः

चरिते यथापुरं धर्माद्धि संबन्धः ।

चरिते तु निर्वेषे यथापुरं यथापूर्वं धर्मात्, तृतीयायै पञ्चमी । धर्मेण संबन्धो भवति । हिशब्दो हेतौ । यस्मादेवं तस्मात् अवश्यं प्रायश्चित्तं कारयितव्ये । ततो यज्ञविवाहादौ न कश्चिद्दोष इति । उ.

आर्यस्य शूद्रागमने दण्डः

नाश्य आर्यः शूद्रायाम् ।

(१) आर्यः त्रैवर्णिकः, शूद्रायां परभार्यायां प्रसक्तो राज्ञा राष्ट्राणां नाश्यः निर्वास्यः । उ.

(१) आध. २।२६।२१; हिध. २।१९ नाश्यः (वास्यः); व्यक. १२७; विर. ४०२; दवि. १८४.

(२) आध. २।२६।२२; हिध. २।१९ भृत्ये राज्ञा (राज्ञा भृत्ये).

(३) आध. २।२६।२३; हिध. २।१९.

(४) आध. २।२६।२४; हिध. २।१९.

(५) आध. २।२७।१; हिध. २।१९.

(६) आध. २।२७।९; हिध. २।१९; विर. ३९३; विचि. १८४ आर्यः (आर्यस्तु); दवि. १७१.

(२) आर्यो ब्राह्मणादिः, नाश्यो निर्वास्यः ।

बृहस्पतेर्हीनायामार्धिकस्तत इति वाक्ये अन्यपूर्वा शूद्रा विवक्षिता, इह त्वनन्यपूर्वा, तेन न निर्वासदण्डविधिविरोध इति, शूद्रायामनन्यपूर्वायामिति विशेषयतः कल्प-तरुकारस्याभिप्रायः । शूद्राव्यतिरिक्तहीनविषयमेव बृहस्पतिवाक्यमित्यन्ये । विर. ३९३

आर्यस्त्रैवर्णिकः शूद्रदण्डः

वध्यः शूद्र आर्यायाम् ।

शूद्रस्तु त्रैवर्णिकस्त्रियां प्रसक्तो वध्यः । एतच्च योऽन्तःपुरादिष्वधिकृतो रक्षकः सन् स्वयं गच्छति, तस्य भवति । अन्यस्य तु पूर्वोक्तं शिश्नच्छेदनमेव । तथा च शूद्राधिकारे गौतमः— 'आर्यस्त्रैवर्णिकगमने लिङ्गोद्धारः स्वहरणं च । गोप्ता चेद्बधोऽधिकः' इति । याज्ञवल्क्येन प्रातिलोभ्येन गमनमात्रे वध उक्तः— 'सजाताहुत्तमो दण्डः आनुलोभ्ये तु मध्यमः । प्रातिलोभ्ये वधः पुंसां स्त्रीणां नासादिकृन्तनम् ॥' इति । सोऽनुबन्धाभ्यासाद्यपेक्षो द्रष्टव्यः । तथा 'नाश्य आर्यश्शूद्रायामि'-त्याचार्यवचनमव्यभ्यासापेक्षं, ब्राह्मणादेः क्रमविवाहे या शूद्रा तद्विषयं वा द्रष्टव्यम् । उ.

परमुक्तस्त्रियाः प्रायश्चित्तम्

दारं चास्य कर्शयेत् ।

अस्य शूद्रस्य या दारभूता तेन भुक्ता त्रैवर्णिकस्त्री तां च कर्शयेत् व्रतनियमोपवासैः । या प्रजाता न भवति तद्विषयमेतत् । 'ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रियः शूद्रेण संगताः । अप्रजाता विशुद्धयन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः ॥' इति स्मरणात् । उ.

बोधायनः

शूद्रादीनां उच्चवर्णस्त्रीगमने दण्डः

शूद्रं कटाभिना दहेत् ।

(१) आध. २।२७।९; हिध. २।१९; विर. ३९५; विचि. १८५; दवि. १७३.

(२) आध. २।२७।१०; हिध. २।१९; विर. ३९५ दारं... येत् (दारांश्चास्य चाकर्षयेत्); विचि. १८५ दारं... येत् (दारांश्चास्यापकर्षयेत्); दवि. १७३ विचिवत्.

(३) बोध. २।२।५९; विर. ३९५; विचि. १८५; वीमि. २।२८६; सेतु. २७१.

(१) द्विजस्त्रीगमने इति शेषः । कटो वीरणः ।
विर. ३९५

(२) राज्ञोऽयमुपदेशः । मरणान्तिकं चैतत् । कटः
कटप्रकृतिद्रव्यं वीरणानि । उक्तं च—‘शूद्रश्चेद्ब्राह्मणी-
मभिगच्छेत् वीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येत्’ इति ।
बौवि. (पृ. १३६)

अथाप्युदाहरन्ति—

अब्राह्मणस्य शारीरो दण्डः संग्रहणे भवेत् ।
सर्वेषामेव वर्णानां दारा रक्षयतमा धनात् ॥

अब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यश्च । तयोः शारीरो दण्डः
अग्नौ प्रक्षेपः कर्तव्यः । क्व ? संग्रहणे पारदार्ये । निगुप्त-
ब्राह्मणीगमने मतिपूर्वे वैश्यो लोहितदर्भैर्वेष्टयित्वाऽग्नौ
प्रक्षेप्तव्यः । राजन्यः शरपत्रैरिति । अथ प्रपञ्चः—
सर्वेषामिति । अपीति शेषः । बौवि. (पृ. १३६-७)

चारणदाररङ्गावतारस्त्रीषु गमने दण्डाभावः

न तु चारणदारेषु न रङ्गावतारे वधः ।

संसर्जयन्ति ता ह्येतास्त्रिगुप्तांश्चालयन्त्यपि ॥

अब्राह्मणवध उक्तः । अत्रापवदति— न त्विति ।
चारणदाराः देवदास्यः । रङ्गावतारः पण्यस्त्रियः । तासु
संग्रहणे वधो न कर्तव्यः । येन ताः संसर्जयन्ति संबन्ध-
यन्ति आत्मना निगुप्तान् रक्षितानपि पुंसो द्रव्यलिप्सया ।
तानेव क्षीणद्रव्यांश्चालयन्ति उत्सृजन्ति च । एवंस्वभाव-
त्वादासां तद्रमने प्रायश्चित्तमप्यत्यमेव । ‘पशुं वेद्यां च
यो गच्छेत् प्राजापत्येन शुद्ध्यति’ इति । तथाऽन्यत्रापि
—‘जात्युक्तं पारदार्यं च गुरुतत्पत्वमेव च । चारणादि-
स्त्रीषु नास्ति कन्यादूषणमेव च ॥’ इति । बौवि. (पृ. १३७)

स्त्रीणां परपुरुषदूषितानां अदुष्टत्वम्

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित् ।
मासि मासि रजो ह्यासां दुरितान्यपकर्षति ॥

अथ नानाबीजायतनत्वादपवित्रं स्त्रीक्षेत्रम् । ततस्तत्रो-
त्पन्नमपि क्षेत्रजगूढोत्पन्नकानीनसहोदपौनर्भवाख्यमपत्य-
मप्यपवित्रमेतन्मूत्रच्छर्दिवदसंव्यवहार्यमित्याशङ्क्याह—
स्त्रियः पवित्रमिति । परपुरुषसंसर्गाविषयाणि मानसानि
वाचिकानि च दुरितानि पापानि । न पुनर्हिंसादि-

(१) बौध. २।२।६०-६१. (२) बौध. २।२।६०.

(३) बौध. २।२।६३.

निमित्तान्यपकर्षति ।

बौवि. (पृ. १३७)

सोमः शौचं ददत्तासां गन्धर्वः शिक्षितां गिरम् ।
अग्निश्च सर्वभक्ष्यत्वं तस्मान्निष्कल्मषाः स्त्रियः ॥

तासां स्त्रीणां सोमः शौचं दत्तवान् । यत एव देवता
ताभ्यो वरं ददौ तस्मात्ताभिर्यदशौचं क्रियते तद्गर्त्रा
नैवाऽवेक्षणीयम् । देवताप्रसादप्रसङ्गादिदमन्यदुच्यते—
गन्धर्वः शिक्षितां गिरं भाषणप्रकारम् । अतोऽनुचित-
भाषणेऽपि तासु क्षान्तेन भवितव्यम् । तथा चोक्तं अत्र-
लक्षणे ‘स्त्रीषु क्षान्तम्’ इति । अग्निश्च सर्वभक्ष्यत्वं सर्व-
भोग्यत्वं दत्तवान्, यत एवं देवताभ्यो लब्धवराः स्त्रियः
तस्मात् निष्कल्मषाः विगतकल्मषाः काञ्चनसमाः, अप-
राधेष्वपि न त्याज्या इत्यभिप्रायः ।

बौवि. (पृ. १३७-८)

वसिष्ठः

शूद्रादीनां उच्चवर्णस्त्रीगमने दण्डः

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्बीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्र-
मग्नौ प्रास्येत् । ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा
सर्पिषा समभ्यज्य नग्नां कृष्णं खरमारोप्य महापथ-
मनुसंभ्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते । वैश्यश्चेद्-
ब्राह्मणीमधिगच्छेद्भोहितदर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौ
प्रास्येत् । ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पि-
षाऽभ्यज्य नग्नां गौरं खरमारोप्य महापथमनुसं-
भ्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते । राजन्यश्चेद्ब्राह्म-
णीमभिगच्छेच्छरपत्रैर्वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येत्,
ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषा सम-
भ्यज्य नग्नां श्वेतं खरमारोप्य महापथमनुसंभ्राजयेत्
पूता भवतीति विज्ञायते । एवं वैश्यो राजन्यायां
शूद्रश्च राजन्यावैश्ययोः ।

(१) बौध. २।२।६४.

(२) वस्मृ. २।१।१-६ (ख) वपनं (वापनं) समभ्यज्य
नग्नां कृष्णं ... संभ्रा (अभ्यज्य नग्नां खरमारोप्य महा-
पथमनुभ्रा) वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमधिग (वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमधिग) गौरं
खर (गोरथ) राजन्यम ... वपनं (राजन्यमग्नौ प्रास्येत्
ब्राह्मण्याः शिरोवापनं) समभ्यज्य नग्नां श्वेतं ... विज्ञायते
(अभ्यज्य नग्नां रक्तखरमारोप्य महापथमनुभ्राजयेत्); व्यंक-
१२६ वपनं ... नग्नां कृष्णं (वापनं कृत्वा सर्पिषाभ्यज्य

नग्नां) संत्राज (ब्राज) मधिगच्छे (माभिगच्छे) वपनं
 नग्नां गौरं (वापनं कृत्वा सर्पिषाम्युक्ष्य नग्नां) संत्राज
 (ब्राज) शरपत्रै (शरै) वनपं नग्नां श्वेतं (वापनं
 कृत्वा सर्पिषाम्युक्ष्य नग्नां) संत्राज (ब्राज) वपनं कारयित्वा
 (वापनं कृत्वा) : मभा. २३।१४ शूद्रश्चेद् (शूद्रो)
 मभिगच्छे (मुपगच्छे) समभ्यज्य (अभ्यज्य) कृष्णं खर
 (कृष्णखर) मधिगच्छे (मुपगच्छे) गौरं खर (गौरखर)
 मभिगच्छे (मुपगच्छे) समभ्यज्य (अभ्यज्य) श्वेतं खर
 (श्वेतखर) राजन्यावैश्ययोः (राजन्यवैश्ययोः) ; गौमि.
 २३।१४ वीरणं (तृणै) प्रास्येत् (प्रास्य) समभ्यज्य
 (अभ्यज्य) (कृष्णं०) मधिगच्छे (मभिगच्छे) (गौरं०)
 समभ्यज्य (अभ्यज्य) (श्वेतं०) राजन्यावैश्ययोः (राजन्य-
 वैश्ययोः) ; ममु. ८।३७७ (वैश्यं लोहितदमैः क्षत्रियं शर-
 पत्रैर्वैश्यं) एतावदेव ; विर. ३९७-८ अभिगच्छेद्दीर (गच्छे-
 दीर) वपनं कारयित्वा (वापनं कृत्वा) समभ्यज्य नग्नां
 कृष्णं नुसं (अभ्युक्ष्य नग्नां खरमारोप्य महापथं)
 अधिगच्छे (गच्छे) गौरं ... संत्रा (खरमारोप्य महापथमनुब्रा)
 समभ्यज्य नग्नां श्वेतं संत्रा (अभ्यज्य नग्नां खरमारोप्य
 महापथमनुब्रा) राजन्यायां शूद्रश्च (राजन्यायां मैथुनमाचरन्
 शूद्रस्तु) ; विचि. १८० (वैश्यो लोहितदमैः क्षत्रियः
 शरपत्रैरावेष्ट्य) एतावदेव : १८५-६ अभिगच्छेद्दीरणै
 (गच्छेद्दीरणै) वपनं कारयित्वा (वापनं कृत्वा) समभ्यज्य
 नग्नां कृष्णं संत्रा (अभ्युक्ष्य नग्नां खरमारोप्य
 महापथमनुब्रा) अधिगच्छेद्वैश्योः (गच्छेच्छरपत्रै) भ्यज्य
 नग्नां गौरं (अभ्युक्ष्य नग्नां) मनुसं (मनु) पत्रै (पणै) सम-
 भ्यज्य नग्नां श्वेतं (अभ्युक्ष्य नग्नां) राजन्यायां शूद्रश्च
 (राजन्यायां मैथुनमाचरन् शूद्रस्तु) ; दवि. १७०
 (वीरणैः शूद्रं लोहितदमैर्वैश्यं शरपत्रैः क्षत्रियं वेष्ट-
 यित्वाऽनौ प्रास्येत्) एतावदेव ; मच. ८।३७७
 (लोहितदमैः संवेष्ट्य क्षत्रियः वैश्यस्तु शरपत्रैः)
 एतावदेव ; व्यम. १०७ (राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रै-
 र्वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येदेवं वैश्यो राजन्यायां मैथुनमाचरन्
 शूद्रस्तु राजन्यवैश्ययोः) एतावदेव ; विता. ८०५ (राजन्य-
 श्चेद्ब्राह्मणीमधिगच्छेच्छरपत्रैर्वैष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येदेवं
 वैश्यो राजन्यायां शूद्रो राजन्यवैश्ययोः) एतावदेव ; बाल.
 २।२८६ अभिगच्छे (अधिगच्छे) कारयित्वा (कृत्वा) सम-
 भ्यज्य (अभ्यज्य) (कृष्णं०) मनुसं (मनु) (गौरं०)
 (श्वेतं०) न्यायां (न्याया मैथुनमाचरन्) ; सेतु. २७२
 मनुसं (मनु) अभ्यज्य (अभ्युक्ष्य) (गौरं०) (श्वेतं०)
 वेष्टयित्वा ; समु. १५५ व्यमवत् .

आर्यस्त्रीणां शूद्रदूषितानां शुद्धिविधिः

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रियः शूद्रेण संगताः ।
 अप्रजास्तां विशुद्ध्यन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः ॥
 प्रतिलोमं चरेयुस्ताः कृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम् ॥

विष्णुः

स्त्रीसंग्रहणलक्षणानि

संलोभनापाङ्गदर्शनविहसनसहैकत्रनिवासाः
 संग्रहगमकाः ।

मोहादियं मया भुक्तेति यो वदति स तु प्राह्यः ।
 मोहो दर्पादीनामुपलक्षकः । सवि. ४६८

वर्णानुसारेण परस्त्रीगमने दण्डविधिः

प्रतिषिद्धे प्रवर्तमानयोः स्त्रीपुंसयोः संग्रहणे
 वर्णानुसारेण दण्डः ।

एतच्चावरोधस्त्रीविषयमिति भावचिः । सवि. ४६९
 गुप्तपरदाराभिगमने साक्षीतिपणसाहस्रम् ।

एतच्च गुरुसखीभार्यादिव्यतिरिक्तविषयं द्रष्टव्यम् ।

सवि. ४६९

राजन्यवैश्यौ ब्राह्मणीं गुप्तां सेवमानौ कटाभिना
 दग्धय्यौ ।

आनुलोम्येन वा असवर्णं वा व्रजन्त्याः नासादेः
 कर्तनं वधदण्डो वा कल्प्यः ।

पारजायी सवर्णागमने तूत्तमसाहसं दण्ड्यः ।
 हीनवर्णागमने मध्यमम् । गोगमने च । अन्त्यागमने
 वध्यः । उत्तमागमने च ।

(१) वस्मृ. २।१।१४ जास्ता (जाता) ; उ. २।२७।१०
 वस्मृवत्, स्मरणम् ; स्मृच. २४६ ; दवि. २३७ स्त्रियः
 (भार्याः) स्मरणम् ; विभ. १६ दविवत्, स्मृत्यन्तरम् ;
 समु. १२२.

(२) सवि. ४६८. (३) सवि. ४६८.

(४) सवि. ४६९. (५) सवि. ४६९.

(६) सवि. ४७०. (७) सवि. ४७०.

(८) विस्मृ. ५।४०-४३ (उत्तमागमने च०) ; व्यक. १२६
 ध्यमम् (ध्यमः) (अन्त्या ... ने च०) ; विर. ३९०
 वध्यः (च वधः) ; विचि. १८३ (पार ... मध्यमम्०) च ।
 अन्त्या (वा । अन्त्या) वध्यः (वा वधः) ; दवि. १९४
 जायी सवर्णा (जातीया सवर्णाभि) ; सेतु. २६८ च । अन्त्या
 (अन्त्या) वध्यः (वा वधः) .

अन्यागमने अस्पृश्याभिगमने, पारजायी पार-
दारिकः । विर. ३९०

स्त्रियमशक्तभर्तृकां तदतिक्रामणीं च ।

(१) हन्यादित्यनुवृत्तौ विष्णुः—स्त्रियमिति । अव-
शक्तभर्तृकां अनुपयुक्तभर्तृकां तदतिक्रामणीं अन्यपुरुष-
गामिनीं, मिलितमिदं हनननिमित्तम् । विर. ३९९

(२) असक्तभर्तृकामनुपयुक्तभर्तृकाम् । क्वचिद-
शक्तेति तालव्यपक्षोऽपि दृश्यते । Xदवि. १७५

गुरुतल्पगमने दण्डः

अथ महापातकिनो ब्राह्मणवर्जं सर्वे वध्याः । न
शारीरो ब्राह्मणस्य दण्डः । स्वदेशात् ब्राह्मणं कृताङ्कं
विवासयेत् । भगं गुरुतल्पगमनेः ।

सकामहीनस्त्रीगमने न उच्चपुरुषो दुष्यति

अनुलोमासु कामतो न दोषः ।

अयमर्थः—हीनवर्णां सानुरागां कन्यां योऽपहरति
तस्य न दोषः । दोषाभावादेव दण्डाभाव इति दण्डाभू-
षिक्या गम्यते । अयमेवासुरविवाह इत्याहुरसहाय-
प्रभृतयः । यथाह याज्ञवल्क्यः—‘सकामास्वनुलोमासु न
दोषस्त्वन्यथा दमः’ इति । सवि. ४७१—२

कन्यादूषणे दण्डः

कन्यादूषको मिथ्यावादी द्विशतं तदर्धं वा ।

दण्ड्य इति शेषः । अयमर्थः—मिथ्याभिर्शंसनैर्द्विशतं
दण्ड्यः । नित्यदूषणे शतं दण्ड्य इति । अपस्मारराज-
यक्ष्मादिदीर्घरोगकुत्सितरोगसंशुद्धिमैथुनत्वादिदूषणानि ।
सवि. ४७३

पशुगमने दण्डः

पशुगमने कार्षापणशतं दण्ड्यः ।

X शेषं विरवत् ।

* स्थलादिनिर्देशः दण्डमातृकायां (घृ. ५७१) द्रष्टव्यः ।

(१) विस्मृ. ५।१८ क्राम (क्रम); व्यक. १२७ मशक्त
(मसक्त) क्राम (क्रम); विर. ३९९ मशक्त (मवशक्त);
विचि. १८६; दवि. १७५ मशक्त (मसक्त); सेतु.
२७३ दविवत्.

(२) सवि. ४७१.

(३) सवि. ४७३.

(४) विस्मृ. ५।४४ दण्ड्यः (दण्डः); विर. ४०७.

व्य. कां. २३२

शङ्खः शङ्खलिखितौ च

स्वदारनियमाद्यतिक्रमे दण्डविधिः

सर्वेषां स्वदारनियमः स्वकर्मप्रतिपत्तिश्च, येन
येनाङ्गेनापराधं कुर्यात् तत्तस्य छेत्तव्यमष्टसहस्रं वा
दण्डोऽन्यत्र ब्राह्मणात् । अदण्ड्यो हि ब्राह्मणः ।

येन येनाङ्गेन हस्तादिना, ब्राह्मणवर्जमयं दण्डः
सर्वेषां, ब्राह्मणवर्जमित्यन्वयात् । विर. ३८८

वर्णानुसारेण परस्त्रीगमने दण्डविधिः

अनिवेदितप्रवेशे तत्रोत्तममुत्तमायां, विपर्यये
मध्यमसाहसं, प्रतिलोमैकान्तरावस्कन्दने सर्वस्वं
वधो वा, विपर्यये संनिरोधः सर्वस्वं वा ।

अनिवेद्य स्त्रीगृहं प्रविश्य उत्तमां ब्राह्मणस्त्रियमभि-
गच्छतो ब्राह्मणस्योत्तमसाहसो दण्डः । विपर्यये ब्राह्मणस्य
क्षत्रियादिगमने मध्यमसाहसो दण्डः । प्रतिलोमैकान्तराव-
स्कन्दने प्रतिलोमस्य शूद्रादेरेकान्तरितद्विजातिस्त्रीगमने
वधः सर्वस्वापहारसहितो दण्डः । वाशब्दः समुच्चये ।

‘आर्यस्त्रीगमने लिङ्गोद्धारः सर्वस्वहरणं च, गुप्ता चेद्वधोऽ-
धिकः’ इति गौतमवचनात् । विपर्यये संनिरोधः, ब्राह्मण-
स्यागुप्तपत्नीगमने वैश्यस्य संवत्सरं बन्धनागारे तिरो-
हितस्य सर्वस्वापहारो दण्डः, ‘वैश्ये सर्वस्वदण्डः स्यात्सं-
वत्सरनिरोधतः’ इति मनुवचनादिति लक्ष्मीधरेण व्याख्या-
तम् । हलायुधस्तु यो हीनजातिरुत्तमजातीयस्त्रीगृहमनिवेद्य
प्रविशति, तदासौ दुष्टत्वमुर्जीय उत्तमसाहसं दण्ड्यः ।
यदि तूत्तमजातीय एव हीनजातीयायाः पूर्ववद्गृहं प्रविशति,
तदासौ मध्यमसाहसं दण्ड्यः । यदि तु प्रतिलोमो हीनः
एकान्तरितामुत्तमजातीयां स्त्रियमभिगच्छति, यथा ब्राह्मणो

(१) व्यक. १२५ पत्तिश्च + (धर्मो) तत्तस्य (तत्तदे-
वास्य) सहस्रं (शतं); विर. ३८७-८; विचि. १७४
(सर्वेषां ... पत्तिश्च०) विष्णुः; दवि. १५९ स्वकर्म
(स्वकार्यं) पत्तिश्च + (धर्मो) तत्तस्य (तदेवास्य) दण्डोऽन्यत्र
(दण्ड इत्यन्यत्रैवं); व्यम. १०७० (येन येनाङ्गेनापराधं
कुर्यात्तत्तस्य छेत्तव्यमन्यत्र ब्राह्मणात्) एतावदेव; विता. ८०६
व्यमवत्; सेतु. २६३ (सर्वेषां ... पत्तिश्च०) (दण्डो); समु.
१६२ व्यमवत्, शंखः; विच्य. ५४ (सर्वेषां ... पत्तिश्च०)
धं कुर्यात् तत्तस्य छेत्तव्य (धस्तस्य कर्तन) सह (साह) शंखः०
(२) व्यक. १२६ प्रवेशे + (स्त्रीगृहेषु); विर. ३९०.

वैश्यां, क्षत्रियः द्यूतां *तदा तस्य संनिरोधो बन्धनं सर्व-
स्वहरणं वा अपराधमहत्त्वामहत्वाभ्यां व्यवस्था कार्या ।
संवत्सरनिरोधितस्य सर्वस्वापहरणं दण्डो वैश्ये — 'वैश्ये
सर्वस्वदण्डः स्यादि' ति मनुवचनात् । विर. ३९०-९१

क्षत्रियवैश्ययोरन्योन्यस्त्रयभिगमने दण्ड्यावुभौ ।

अत्र विज्ञानेशः—यथाक्रमं सहस्रशतपणात्मकौ दण्डौ
वेदितव्यौ । यथाह मनुः—'वैश्यश्चेत् क्षत्रियां गुतां वैश्यां
वा क्षत्रियो ब्रजेत् । यो ब्राह्मण्यामगुतायां तावुभौ दण्ड-
मर्हतः ॥' इत्याह । भारुचिस्त्वन्यथा व्याचष्टे —
वैश्यस्य भार्यायां यः क्षत्रियः ब्रजति तस्यैव
भार्यायां वैश्यो ब्रजति चेच्छतपणात्मको दण्डो वेदितव्यः ।
तथा अन्यस्य यस्य कस्यचिद्वैश्यस्य भार्यायां क्षत्रियो
गच्छति सहस्रपणान् दण्ड्यः । क्षत्रियायां वैश्यो गच्छन्
सहस्रपणान् दण्ड्य इति । सवि. ४७१

कन्यादूषणे वर्णानुसारेण दण्डविधिः

कन्यायामसकामायां ब्यङ्गुलच्छेदो दण्डः ।
उत्तमायां वधो जघन्यस्य । समायां शुल्कमाभरणं
द्विगुणं च स्त्रीधनं दत्त्वा प्रतिपद्येत ।

सकामायां दण्डः षट्शतरूपो मनुक्तो द्यङ्गुल-
च्छेदसहकारी आसुरविवाहोक्तदानवत्, द्विगुणं स्त्रीधनं
शुल्कं च कन्यायै तद्वन्धुभ्यश्च दत्त्वा तां गृह्णीयात्,
समायामिच्छन्त्यामिति शेषः । इदमप्यङ्गुलिषाध्य-
मैथुनविषयम् । हरिहरस्तु द्यङ्गुलपरिमाणलिङ्गच्छेद
इत्याह । ×विर. ४०३

* अत्र ब्राह्मणो वैश्यः, क्षत्रियां द्यूत इति वक्तव्यम् ।

× विचि., दवि. विरवत् ।

(१) सवि. ४७१.

(२) अप. २।२८८ दण्डः + (च) समायां + (सका-
मायां च) पद्येत + (स्व [स] कन्याम्); व्यक. १२७
दण्डः + (च) पद्येत + (स्वकन्याम्); विर. ४०२ द्विगुणं
च (च द्विगुणं) पद्येत (प्राद्येत); विचि. १७६ (कन्या ...
जघन्यस्य०) समायां ... पद्येत (समां शुल्कमाभरणं द्विगुणं
स्त्रीधनं च दत्त्वा प्रतिपद्यते) शंखः; दवि. १८२ दण्डः +
(च) (समायां ... पद्येत०) : १८४ (कन्या ... जघन्यस्य०)
प्रतिपद्येत (प्रपद्येत कन्याम्); वीमि. २।२९४ (कन्या ...
जघन्यस्य०) समायां (समां) शंखः; सेतु. २७५ (कन्या ...
जघन्यस्य०) समायां (समां) च स्त्रीधनं (स्त्रीधनं च) शंखः;

स्त्रीकृतकन्यादूषणे दण्डः

या स्त्री योन्यङ्गुलिप्रवेशेन कन्यां दूषयेत् तं
शिरसो मुण्डनं कृत्वा गर्दभेन राजमार्गं गमनं
कारयेत् ।

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

कन्याप्रकर्म

कन्याप्रकर्म । सवर्णामप्राप्तफलां कन्यां प्रकुर्वतो
हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः । मृतायां वधः ।
प्राप्तफलां प्रकुर्वतो मध्यमाप्रदेशिनीवधो द्विशतो वा
दण्डः । पितुश्चावहीनं दद्यात् । न च प्राकाम्यसका-
मायां लभेत । सकामायां चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः,
स्त्रियास्त्वर्धदण्डः । परशुल्कावरुद्धायां हस्तवधश्चतुः-
शतो वा दण्डः, शुल्कदानं च ।

सप्तार्तवप्रजातां वरणादूर्ध्वमलभमानां प्रकृत्य
प्राकामी स्यात्, न च पितुरवहीनं दद्यात् । ऋतु-
प्रतिरोधिभिः स्वाम्यादपक्रामति । त्रिवर्षप्रजाताते-
वायास्तुल्यो गन्तुमदोषः । ततः परमतुल्योऽप्यन-
लङ्कृतायाः । पितृद्रव्यादाने स्तैयं भजेत् ।

कन्याप्रकर्मैति सूत्रम् । कन्यायाः योनिक्षतेन दूषण-
मित्यर्थः । दण्डप्रस्तावात् तन्निमित्तो दण्डविधिरिहोच्यते ।
सवर्णामित्यादि । अप्राप्तफलां अनुद्भिन्नपुष्पात् । मृतायां
योनिक्षतवशेन प्रमीतायां सत्याम् । प्राप्तफलामित्यादि ।
मध्यमाप्रदेशिनीवधः ज्येष्ठातर्जन्योदछेदः । पितुश्च, अव-
हीनं नष्टं तत्प्रार्थितं, दद्यात् । न चेत्यादि । अकामायां
कन्यायां, प्राकाम्यं इच्छापूर्तिं, न च लभेत । अतो दण्ड-
मात्रलाभफलं तद्रमणमित्युपदेशः । सकामायामिति ।
इच्छन्त्यां तस्यां, चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः । स्त्रियास्तु,
अर्धदण्डः सप्तविंशतिपणः । परशुल्कावरुद्धायामिति । पर-
शुल्कग्रहणप्रतिबद्धायां कन्यायां, हस्तवधः, चतुःशतो वा
दण्डः, अर्थात् प्रकुर्वतः । शुल्कदानं च पूर्वदत्तशुल्काय
परस्मै कर्तव्यं, पक्षद्वयेऽपि ।

सप्तार्तवप्रजातामिति । सप्त आर्तवानि प्रज्जलानि

विद्य. ५४ (कन्या ... जघन्यस्य०) च स्त्रीधनं (स्त्रीधनं च)
पद्येत (पादयेत्) शंखः .

(१) विचि. १७६ (कन्या ... जघन्यस्य०) (२) सवि. ४७१

यस्यास्तां तथाभूतां, वरणादूर्ध्वं अलभमानां कृतवरणं पुरुषं तावन्तं कालमनासादयन्तीं, प्रकृत्य, प्राकामी प्राकाम्यवान् यथच्छेद्योक्ता, स्यात् । न च पितुः, अवहीनं शुल्कं, दद्यात् । कुतः, ऋतुप्रतिरोधिभिः आर्तवरूपैस्तस्करैर्निमित्तभूतैः, स्वाम्याद् अपक्रामति स्वामित्वादपैति, पिता । त्रिवर्षप्रजातार्तवाया इति । वर्षत्रयोपजातरजस्काया विषये, तुल्यो गन्तुं अदोषः सजातीयस्तां गच्छन् निर्दोषः । ततः परं वर्षत्रयादूर्ध्वं, अतुल्योऽपि गन्तुं अदोषः, अनलङ्कृतायाः पितृद्रव्य-रहितायाः विषये । पितृद्रव्यादाने स्तेयं भजेतेति । पितृ-द्रव्यसहितायाः ग्रहणे चौर्यदण्डं प्राप्नुयात् । श्रीमू.

परमुद्दिश्यान्यस्य विन्दतो द्विशतो दण्डः । न च प्राकाम्यसकामायां लभेत । कन्यामन्यां दर्शयित्वा न्यां प्रयच्छतः शत्यो दण्डस्तुल्यायां, हीनायां द्विगुणः । प्रकर्मण्यकुमार्याश्चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः शुल्कव्ययकर्मणी च प्रतिदद्याद् अवस्थाय । तज्जातं पश्चात् कृता द्विगुणं दद्यात् । अन्यशोषितो-पधाने द्विशतो दण्डः, मिथ्याभिशांसिनश्च पुंसः । शुल्कव्ययकर्मणी च जीयेत । न च प्राकाम्यसकामायां लभेत ।

स्त्री प्रकृता सकामा समाना द्वादशपणं दण्डं दद्यात्, प्रकत्रीं द्विगुणम् । अकामायाः शत्यो दण्डः आत्मरागार्थं, शुल्कदानं च । स्वयं प्रकृता राजदास्यं गच्छेत् ।

परमुद्दिश्येत्यादि । योऽभिप्रेतः स एवाहमित्यात्मानं व्यपदिश्य तदन्यस्य कन्यां विवहतो द्विशतो दण्डः । न च कामचारसकामायां तस्यां विन्देत । कन्यामन्या-मित्यादि । तुल्यायां सजातीयायां सत्याम् । हीनायां हीनजातीयायां सत्याम् । प्रकर्मण्यकुमार्या इति । अकु-मार्याः दत्ताया अक्षतयोनेः क्षतयोनीकरणे, चतुष्पञ्चा-शत्पणो दण्डः । शुल्कव्ययकर्मणी च पूर्वप्रतिग्रहीतृदत्तं शुल्कं तत्कृतं कर्मव्ययं च, प्रतिदद्यात्, अवस्थाय विवाहप्रतिभुवे । पश्चात् कृता द्वितीयानन्तरं तृतीयेन स्वीकृता, तज्जातं दण्डं, द्विगुणं अष्टोत्तरशतपणं, दद्यात् । अन्यशोषितोपधान इति । क्षतयोनित्वप्रदर्शनार्थं अन्य-

(१) कौ. ४।१२.

रधिरस्य स्ववस्त्रलेपने, द्विशतो दण्डः, स्त्रियाः । मिथ्या-भिशांसिनश्च पुंसः अक्षतयोनिभेव क्षतयोनिरिति मिथ्या वदतः पुरुषस्य च, द्विशतो दण्डः । शुल्क-व्ययकर्मणी च जीयेत शुल्कं कर्मव्ययं च दापयेत् । न च प्राकाम्यमित्यादि प्रतीतम् ।

स्त्रीति । सकामा, समाना तुल्यजातीया स्त्री, प्रकृता क्षतयोनितां नीता, द्वादशपणं दण्डं दद्यात् । प्रकत्रीं तद्योनिक्षतिकर्त्री, द्विगुणं चतुर्विंशतिपणं दद्यात् । अकामायाः शत्यो दण्ड इत्यादि । अनिच्छन्त्या एव पुंस स्वरागार्थं प्रकर्मणि कार्यमाणे, कारयितुः शत्यो दण्डः । शुल्कदानं च । स्वयं प्रकृता स्वयं कृतयोनि-क्षतिः, राजदास्यं राजदासीभावं, गच्छेत् । श्रीमू.

बहिर्ग्रामस्य प्रकृतायां मिथ्याभिशांसने च द्विगुणो दण्डः । प्रसह्य कन्यामपहरतो द्विशतः । ससुवर्णामुत्तमः । बहूनां कन्यापहारिणां पृथग् यथोक्ता दण्डाः । गणिकादुहितरं प्रकुर्वतश्चतु-ष्पञ्चाशत्पणो दण्डः, शुल्कं मातृभोगः षोडशगुणः । दासस्य दास्या वा दुहितरमदासीं प्रकुर्वतश्चतुर्वि-ंशतिपणो दण्डः शुल्काबन्ध्यदानं च । निष्कया-नुरूपां दासीं प्रकुर्वतो द्वादशपणो दण्डः बन्धा-बन्ध्यदानं च । साचिव्यावकाशदाने कर्तृसमो दण्डः ।

प्रोषितपतिकामपचरन्ती पतिबन्धुस्तत्पुरुषो वा संगृहीयात् । संगृहीता पतिमाकाङ्क्षेत । पतिश्चेत् क्षमेत, विसृज्येतोभयम् । अक्षमायां स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम् । वधं जारंश्च प्राप्नुयात् । जारं चोर इत्यभिहरतः पञ्चशतो दण्डः । हिरण्येन मुञ्चतस्तदष्टगुणः ।

बहिरिति । ग्रामस्य, बहिर्देशे विजने, प्रकृतायां सत्यां, द्विगुणः चतुर्विंशतिपणः दण्डः, स्त्रियाः । मिथ्या-भिशांसने च प्रकृत्य न प्रकृतेति मिथ्यावादे च द्विगुणो दण्डः, पुंसः । प्रसह्य कन्यामित्यादि । उत्तमः साहसं-दण्डः । पृथक् प्रत्येकम् । गणिकादुहितरमिति । तां, प्रकुर्वतः, चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः । शुल्कं मातृभोगः षोडशगुणः शुल्कं मात्रे देयं उक्तदण्डषोडशगुणं चतुष्पष्टय-

(१) कौ. ४।१२.

धिकाष्टशतपणात्मकं भवति । दासस्य दास्या वेत्यादि । शुल्कान्धदानं च शुल्काभरणयोर्दानं च । निष्क्रयानुरूपां दास्यमोक्षणानुरूपां रूपादिमत्तया । साचिव्यावकाशदान इति । कन्यादूषणं प्रति साहाय्यदाने प्रदेशदाने च, कर्तृसमः दूषकदण्डतुल्यः, दण्डः । प्रोषितपतिकामित्यादि । अपचरन्तीं व्यभिचरन्तीम् । तत्पुरुषः पतिभृत्यः । संगृह्णीयात् नियम्य रक्षेत् । आकाङ्क्षेत प्रतीक्षेत । उभयं विसृज्येत जारो जारिणी च न दण्ड्येत । जारमित्यादि । अभिहरतः व्यभिचारगोपनार्थमभिवदतः हिरण्येन मुञ्चतस्तदष्टगुण इति । हिरण्यमुक्तोचं गृहीत्वा जारं मुञ्चतो रक्षिपुरुषस्य गृहीतहिरण्याष्टगुणो दण्डः ।

श्रीम्.

केशाकेशिकं संग्रहणम् । उपलिङ्गनाद् वा शरीरोपभोगानां, तज्जातेभ्यः, स्त्रीवचनाद् वा ।

परचक्राटवीहृतामोघप्रच्यूढामरण्येषु दुर्भिक्षे वा त्यक्तां प्रेतभावोत्सृष्टां वा परस्त्रियं निस्तारयित्वा यथासंभाषितं समुपभुञ्जीत । जातिविशिष्टामकामामपत्यवतीं निष्क्रयेण दद्यात् ।

चोरहस्तान्नदीवेगाद् दुर्भिक्षाद् देशविभ्रमात् । निस्तारयित्वा कान्ताराज्ज्वां त्यक्तां मृतेति वा ॥ भुञ्जीत स्त्रियमन्येषां यथासंभाषितं नरः । न तु राजप्रतापेन प्रमुक्तां स्वजनेन वा ॥ न चोत्तमां न चाकामां पूर्वापत्यवतीं न च । ईदृशीं त्वनुरूपेण निष्क्रयेणापवाहयेत् ॥

संग्रहणज्ञानोपायमाह—केशाकेशिकं संग्रहणमिति । परस्परकेशग्रहणपुरस्सरारब्धा कामकेलिः केशाकेशि तदेव केशाकेशिकं, तत्प्रत्यक्षदृष्टं कर्तृभूतं, संग्रहणं, बोधयतीति शेषः । उपलिङ्गनाद्वा शरीरोपभोगानां कस्तूर्याद्युपभोगलिङ्गदर्शनाद् वा, संग्रहणं जानीयात् । तज्जातेभ्यः तद्विषयेङ्गितज्ञेभ्यो जानीयात् । स्त्रीवचनाद् वा परामृष्टस्त्रीवाक्याद् वा जानीयात् ।

दण्डानर्हं परस्त्रीग्रहणप्रकारमाह—परचक्राटवीहृता-मिति । परचक्रापहृतां आटविकहृतां च, ओघप्रच्यूढां नदीप्रवाहनीतां, अरण्येषु दुर्भिक्षे वा त्यक्तां, प्रेतभावो-

(१) कौ. ४।१२.

त्सृष्टां वा रोगोन्मूर्च्छनात् मृतत्वबुद्ध्या परित्यक्तां वा, परस्त्रियं, निस्तारयित्वा विपटुत्तीर्णां कृत्वा, यथासंभाषितं समुपभुञ्जीत परस्परसंविदनुरोधेन भार्याकृत्य दासीकृत्य वा सम्यक् उपभुञ्जीत । इह निस्तारयित्वेति समासाकरणमार्थम् । जातिविशिष्टां जात्युत्कर्षवतीं, अकामां सजातित्वेऽप्यकामां, अपत्यवतीं, निष्क्रयेण दद्यात् निस्तरणश्रमवेतनग्रहणेन तत्स्वामिनेऽर्पयेत् ।

अध्यायान्ते श्लोकानाह—चोरहस्तादित्यादि । राजप्रतापेन स्वजनेन वा प्रमुक्तां राजकोपत्यक्तां स्वजनपरित्यक्तां वा । न तु भुञ्जीतेत्यत्र संबन्धनीयम् । एवं तृतीयश्लोकपूर्वाधेऽपि न च भुञ्जीतेति योजनीयम् । ईदृशीं उत्तमजातिं अनिच्छन्तीं पूर्वापत्यवतीं च । अपवाहयेत् । अपनाययेत् । प्रदापयेदिति कापि पाठः । श्रीम्.

अतिचारदण्डः

कामं भार्यायामनिच्छन्त्यां कन्यायां वा दारा-र्थिनां भर्तारि भार्याया वा संवननकरणम् । अन्यथा हिंसायां मध्यमः साहसदण्डः ।

मातापित्रोर्भगिनीं मातुलानीं आचार्यानीं स्तुषां दुहितरं भगिनीं वाधिचरतस्त्रिलिङ्गच्छेदनं वधश्च । सकामा तदेव लभेत । दासपरिचारकाहितकमुक्तश्च च ।

ब्राह्मण्यामगुप्तायां, क्षत्रियस्योत्तमः, सर्वस्वं वैश्यस्य । शूद्रः कटाग्निना दह्येत । सर्वत्र राज-भार्यागमने कुम्भीपाकः ।

श्रपाकीगमने कृतकबन्धाङ्कः परविषयं गच्छेत्, श्रपाकत्वं वा शूद्रः । श्रपाकस्यार्यागमने वधः, स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम् । प्रव्रजितागमने चतुर्विंशतिपणो दण्डः । सकामा तदेव लभेत । रूपाजीवायाः प्रसह्योपभोगे द्वादशपणो दण्डः । बहूनामेकामधिचरतां पृथक् चतुर्विंशतिपणो दण्डः । स्त्रियामयोनीं गच्छतः पूर्वः साहसदण्डः । पुरुषमधिमेहतश्च ।

मैथुने द्वादशपणः तिर्यग्योनिष्वनात्मनः ।

दैवतप्रतिमानां च गमने द्विगुणः स्मृतः ॥

(१) कौ. ४।१३.

अदण्ड्यदण्डने राज्ञो दण्डस्त्रिशद्गुणोऽम्भसि ।

वरुणाय प्रदातव्यो ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम् ॥

तेन तत्पूयते पापं राज्ञो दण्डापचारजम् ।

शास्ता हि वरुणो राज्ञां मिथ्या व्याचरतां नृषु ॥

भार्यायामनिच्छन्त्यां विषये भर्तुः संवननकरणं, कन्यायामनिच्छन्त्यां दारार्थिनां संवननकरणं, भर्तारि अनिच्छति भार्यायाः संवननकरणं चाभ्यनुजानाति— कामं भार्यायामित्यादि । अन्यथा उक्तातिरिक्तविषये, हिंसायां संवननादिना हिंसने, मध्यमः साहसदण्डः ।

मातापित्रोर्भगिनीमित्यादि । मातुलानीं मातुल- भार्याम् । आचार्यानीं आचार्यपत्नीम् । त्रिलिङ्गच्छेदनं मेदुमुष्कच्छेदनम् । सकामा तदेव लभेतेति । मातापितृ- भगिन्यादिः सकामा चेत् त्रिलिङ्गच्छेदनं सस्तनभग- च्छेदनं, वधं च, लभेत । दासपरिचारकाहितकभुक्ता च तदेव लभेत तुल्यन्यायात् दासादिरपि तदेव लभेत ।

ब्राह्मण्यमगुतायामिति । तस्यां स्वतन्त्रायां, क्षत्रियस्य गन्तुः, उत्तमः साहसदण्डः । सर्वस्वं सर्वस्वहरणं, वैश्यस्य दण्डः । शूद्रः ब्राह्मणीगन्ता, कटाभिना दहेत अग्निप्रदी- पनेन नगरं परिगमय्य दग्धव्यः । सर्वत्र क्षत्रियादिषु सर्वेषु विषये, राजभार्यागमने, कुम्भीपाकः ततश्चाष्टभर्जनं दण्डः ।

श्रपाकीगमन इत्यादि पुरुषमधिमेहतश्चेत्येतदन्तं चाक्याष्टकं सुबोधम् ।

मैथुन इत्यादि । तिर्यग्योनिषु गवादियोनिषु । अना- त्मनः दुरात्मनः । द्विगुणः चतुर्विंशतिपणः ।

अदण्ड्यदण्डन इति । दण्डानर्हस्य दण्डने, राज्ञो दण्डः त्रिशद्गुणः, गृहीताद् दण्डात्, स कस्मै दातव्यः, अम्भसि वरुणाय प्रदातव्यः जले वरुणमुद्दिश्य प्रक्षेप्तव्यः । ततः परं ब्राह्मणेभ्यः, प्रदातव्यः ।

तेनेति । तेन तथा प्रदानेन, राज्ञो दण्डापचारजं दण्डान्यथाप्रणयनजनितं, तत् पापं, पूयते शोध्यते । लूयत इति पाठे छिद्यत इत्यर्थः । कस्माद् वरुणाय दानेन राजपापं पूयते, हि यस्मात् कारणाद्, वरुणः, नृषु, मिथ्या अनृतं, व्याचरतां विधिमाचरतां, राज्ञां, शास्ता शासकः । 'मिथ्या च चरताम्' इत्यपि पाठः । श्रीम्.

मनुः

संग्रहणलक्षणानि

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ।

नदीनां वाऽपि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥

(१) परस्य पत्न्येति प्रकृते पुनः परस्त्रीग्रहणं मातृभगिनीगुरुपत्न्यादीनामप्रतिषेधार्थम् । न हि ताः सत्यपि परसंबन्धित्वे परस्त्रीव्यपदेश्याः । तीर्थमुच्यते येन मार्गेण नदीतडागादिभ्यो जलमानेतुमवतरन्ति, स हि विजनप्रायो भवति । नानुदकार्थेन तत्र संनिधीयते । संकेतस्थानं तादृशमत्र कल्पितायामवश्यमेव गन्तव्यमह- मपि संनिधीयमानो नाशङ्क्यो भविष्यामीति उदकार्थी दिवा शौचाचारं वा करिष्यन् प्रतिपालयतीति जन्म मंस्यन्ते । प्रदेशान्तरे तु किमत्रायं प्रतिपालयतीति शङ्क्य स्यादतस्तीर्थे प्रतिषेधः । अरण्यं हि ग्रामाद्विजनो देशो गुल्मवृक्षलतादिगहनः । वैनं वृक्षसंततिः, नदीनां संभेदः समागमः । सोऽपि हि संकेतस्थानम् । स संग्रहणं प्राप्नुयात् । परस्त्रीकामत्वं संग्रहणम् । अतश्च यस्तत्र दण्डः सोऽस्य स्यादित्युक्तं भवति । अनाक्षारितस्यापि सत्यपि कारणेऽयं प्रतिषेधः । यत्त्वापस्तम्बेनोक्तं 'नासं- भाष्य स्त्रियमतिव्रजेदि'ति तदन्येषु संनिहितेष्वेतच्छास्त्र- ज्ञेषु प्रकौशे एतच्छास्त्रं, भगिनी नमस्ते इत्याद्यभिवादन- मविलम्बमानेन कर्तव्यम् । मेघा.

(२) उदकावतरणे ग्रामाद्दहिर्निर्जने प्रदेशे वृक्ष- गुल्मलताकीर्णे वा देशे नदीनां वा संगमे, यः परस्त्रियं अनाक्षारितोऽपि पूर्वं कारणादपि संभाषेत, स वक्ष्यमाणं दोषं प्राप्नुयात् । सम्यग्गृह्यते ज्ञायतेऽस्य स्त्रिया संबन्ध इति येन तत्संग्रहणम् । गोप्.

(३) संग्रहणं समीचीनं ग्रहणं परस्त्रिया आत्मीयता- करणं तत्र य उक्तो दण्डः परस्य पत्न्येत्यत्र प्रथम-

(१) मस्मृ. ८।३५६; स्मृच. ९ (=) स्त्रियं... देत्ती (स्त्रियाऽभिभाषेत ती) वने (गृहे) वाऽपि (चैव); विचि. १७३ वने (गृहे); स्मृचि. २६; मच. वने इत्यत्र गृहे इत्यपि पाठः; बाल. २।२८४; सेतु. २६४ विचिक्त्; समु. १५३ स्त्रियं योऽभिवदेत्ती (स्त्रिया यो भाषेत ती) वने (गृहे).

१ यच्चिति. २ वनवृ. ३ काश्ये ए.

साहसः तं प्राप्नुयादित्यर्थः ।

*मवि.

(४) तीर्थारण्यवनादिकं निर्जनदेशोपलक्षणमात्रम् । यः पुरुषः परस्त्रियमुदकावतरणमार्गोऽरण्ये ग्रामाद्दहिर्गुल्म-लताकीर्णं निर्जने देशे वने बहुवृक्षसंतते नदीनां संगमे पूर्वमनाक्षारितोऽपि कारणादपि संभाषेत स संग्रहणं सहस्रपणदण्डं वक्ष्यमाणं प्राप्नुयात् । सम्यग्गृह्यते ज्ञायते येन परस्त्रीसंभोगाभिलाष इति संग्रहणम् । Xमसु.

(५) अथ स्त्रीसंग्रहणं, प्रथमं तावत्तस्य लक्षणमाह—परस्त्री योऽभिभाषेतेति । अरण्ये कान्तारे, वने उपवने । नन्द.

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ।

सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥

(१) संग्रहणं स्मृतं, यां न केनचित्संबन्धेन संबन्धिनी तस्या वस्त्रमाल्यादिदानेनोपकारकरणं, तद्वात्रो-पक्रान्तं भोजनपीनानादिना, केलिः परिहासो वक्रमणिता-दिना । भूषणं हारकटकादि तदङ्गलम्, तदीयमेतद्वेति ज्ञात्वा विनाप्रयोजनेनान्यगृहीतमपि, स्मृश्यते । एकस्यां खट्वायामसंस्काङ्गयोरपि सहासनं, सर्वमेतत्तुल्यदण्डम् । मेधा.

(२) अङ्गानुलेपनाद्युपचारकरणं क्रीडा अलङ्करण-वाससां स्पर्शनं एकखट्वासनं एकयानगमनं इत्येतत्सर्वं संग्रहणं मन्वादिभिः स्मृतम् । -गोरा.

(३) उपचारक्रिया उद्वर्तनादि । भूषणवाससामङ्ग-स्थानाम् । संग्रहणं तावद्दण्डविषयः । अत्र तु व्यापारा-धिक्येन द्वैगुण्यादि कल्प्यम् । मवि.

(४) उपकारक्रिया हिताचरणं, केलिर्नर्म, उत्तम-मिति शेषः । +विर. ३८१

(५) संग्रहणान्याह—उपचरति द्वाभ्याम् । उपचार-क्रिया संकसुगन्धानुलेपनकेशप्रसाधनजलक्षेपादि । केलि-

* शेषं गोरावत् । माच. मविवत् ।

X मच. मसुवत् ।

= मसु. गोरावत् । + विचि. विरवत् ।

(१) मसु. ८१३५७; व्यक. १२४ चार (कार) चारदः मनुश्च; स्मृच. ९ (=) व्यकवत्; विर. ३८१ चार (कार) खट्वा (स्य्या); विचि. १७१ विरवत्, क्रमेण व्यासः; व्यवि. ३९९ व्यकवत्; स्मृचि. २६; सेतु. २६३ विरवत्; समु. १५३ व्यकवत्.

स्तदुचितपरिहासादिः । भूषणवाससां स्पर्शोऽन्योन्याकर्ष-णम् । सर्वं संग्रहणं सम्यक् गृह्यते ज्ञायतेऽनेनेति परस्त्रीषु-संभोगाभिलाष इति । मच..

स्त्रियं स्पृशेद्देशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया ।

परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥

(१) अदेशस्पर्शस्तु यत्र विनैव तत्स्पर्शनं गमना-गमनादि संसिध्यति । महाजनसंकुले न दोषः । तथा शरीरावयवोऽपि देशस्तत्र, हस्तस्कन्धस्पृष्टभाण्डारोपणे तत्स्पर्शो न दोषः । ओष्ठचिबुकस्तनादिषु दोषः । तथा वा स्तनादिस्पर्शेनोत्पीडितो यदि कश्चित्सहते, भवति मा कार्षीरित्यादिना न प्रतिषेधति । परस्परस्यानुमते, मतिपूर्वमेतस्मिन् कृते दोषोऽयम् । न पुनः कर्मादौ । तत्रै खलु पुरुषं कण्ठेऽवलम्बते, पुरुषो वा स्तनान्तरे स्त्रियं, तद्भस्तगृहीतद्रव्यादानप्रवृत्तः । शुष्के पतिष्यामीति कर्दमे पततीतिवत्, तावपि न दुष्येताम् । मेधा.

(२) योऽदेशे स्तनयोरङ्गं वा, निर्जने प्रदेशे वा स्पृशेत् । तथा वा अप्रदेशे श्रौण्यादौ निर्जने वा देशे स्पृष्टः तूष्णीमासीत्, तदेतदन्योन्यस्याङ्गीकरणे सति संग्रहणं मन्वादिभिः स्मृतम् । *गोरा.

(३) परस्परस्यानुमते न त्वज्ञानेऽपि । मवि.

(४) अदेशे विविक्तदेशे अस्पृश्ये स्तनादौ वा । नन्द.

(५) एतत्सर्वं संग्रहणं स्मृतं दण्डस्य ग्रहणं स्मृतम् । माच.

* मसु., मच. गोरावत् ।

(१) मसु. ८१३५८ [मते (मते): Noted by Jha]; मित्ता. २१२८४ तथा (तथा); व्यक. १२४ मित्तावत्, नारदः मनुश्च; पमा. ४६३; रत्न. १३२ मित्तावत्; विचि. १७१ स्पृशेद् (स्पृशल्य) श्रो... .. तथा (श्रामर्षयेत् या) क्रमेण व्यासः; स्मृचि. २६ मित्तावत्; दवि. १५६ मते सर्वं (मते तच्च); नृप्र. २०७; सवि. ४६८ तथा (तदा); व्यप्र. ३९८ मित्तावत्; व्यड. १२५ मित्ता-वत्; विता. ७९९ मित्तावत्; सेतु. २६३ मित्तावत्; समु. १५३.

१ स्य य. २ कस्तत्सहते मवेत्त का. ३ खलं पुरु. ४ चाशुष्के प.

दर्पाद्वा यदि वा मोहाच्छ्लायया वा स्वयं वदेत् ।

पूर्वं मयेयं भुक्तेति तच्च संग्रहणं स्मृतम् X ॥

परस्त्रीसंभाषायां दोषविचारः

परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन्नहः ।

पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥

(१) संभाषां संभाषणं, तैत्तिर्या आलापं कुर्वन् संग्रहणादिदोषैः तत्स्त्रीप्रार्थनादिभिः पूर्वमाक्षारितोऽभि-
शास्तः अयमेनामुपजपतीति अन्यत्र दृष्टदोषः शङ्क्य-
मानदोषो वा चपलः रहः उद्वातादौ निषिद्धसंभाषण
इति केचित् । स कारणादप्यन्यपत्न्या संभाषणं कुर्वन्
प्रथमसाहसं दण्डं प्राप्नुयाद्वापयितव्य इत्यर्थः । मेघा.

(२) परदारगमनपूर्वदोषैः पूर्वमुत्पन्नाभिशापः पर-
भार्यया सह संभाषणं कुर्यात् स प्रथमसाहसं दण्डं
प्राप्नुयात् । *गोरा.

(३) तत्स्त्रीप्रार्थनादिदोषैः पूर्वमुत्पन्नैरपवाद-
प्रार्थनाभिशापादिभिः पुरुषः उचितकारणव्यतिरेकेण
परभार्यया संभाषणं कुर्वन् प्रथमसाहसं दण्डं प्राप्नुयात् ।
+ममु.

यैस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ।

न दोषं प्राप्नुयात्किञ्चिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥

X भिता. व्याख्यानं ' नीवीस्तन ' इति याज्ञवल्क्यवचने
दृष्टव्यम् ।

* मवि., विर. गोरावत् । + मच., भाच. ममुवत् ।

(१) भिता. २।२८४ (ख) मयेयं (ममेयं); पमा.
४६४; सवि. ४६८; नृप्र. २०७ दर्पा (द्रेषा) च्छ्लायया
(च्छलाषो); व्यप्र. ३९८ मनुनारदौ; व्यउ. १३६; विता.
७९९.

(२) मस्मृ. ८।३५४; गोरा. भाषां योजयन्नहः (भाषं
योजयेत् सह); अप. २।२८४ पुरु...हः (संभाषं पुरुषो
योजयन् सह); व्यक. १२५ भाषां...न्नहः (भाषं यो भजे-
न्नहः); विर. ३८४ गोरावत्; रत्न. १३० भाषां...न्नहः
(भाषं योजयेन्नहः); विचि. १७२ परस्य पत्न्या (परपत्न्या
स्तु); व्यम. १०६ भाषां योजयन्नहः (भाषे योजयेत्सह);
विवा. ७९९ गोरावत्; सेतु. २६४ विचिकेत्, ब्रह्मपतिः;
समु. १५४

(३) मस्मृ. ८।३५५; भिता. २।२८४; अप. २।२८४
१ षः सं. २ तमालपितुं कुर्वन् सं. ३ साहित्ये पू.

(१) पूर्वस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । अनाक्षारितोऽप्य-
कारणात् संभाषयन् मिश्रयन् पूर्वदण्डभाक् । मेघा.

(२) यः पुनः पूर्वाभिशापरहितः कारणेन केन-
चिज्जनसमक्षं अभिभाषणं कुर्यात् स न दण्डं प्राप्नुयात्
यस्मान्न कश्चिदपराधोऽस्ति । + गोरा.

(३) अनाक्षारित इत्यसंभावितपरदारगामित्वमिष्टम् ।
सोऽपि कारणादावश्यकनिमित्तादेवाभिभाषेतान्यथा तु
पूर्वदण्डव्ययः । मवि.

(४) संभाषणमात्रं न दण्डावहमित्याह - यस्त्विति ।
कारणात् क्रयविक्रयभिक्षादिभ्यः । व्यतिक्रमोऽपराधः ।
मच.

भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा ।

संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥

(१) भिक्षुका भिक्षाजीवनो भिक्षायाचनारूपं संभा-
षणमवारिताः कुर्युर्यदि स्वामिना न निषिद्धाः । अथवा
नैते वारयितव्याः । बन्दिनः स्तावकाः । दीक्षिता यत्ने
भृतिवचनार्थं संभाषेरन् । कारवः सूपकारादय एते
तीर्थादिष्वपि न निवार्याः । * मेघा.

(२) भिक्षाजीविनः स्तावकाः यशार्थं कृतदीक्षाः
सूपकारादयो भिक्षादिस्वरूपार्थं गृहे स्त्रीभिः सह संभा-
षणं अनिवारिता एव कुर्युः । तेषां निवारणात् नास्त्येव
संग्रहणाभावः । गोरा.

(३) केषाञ्चित्परदारासंभाषणे देहयात्रादिक्रयानुत्पत्तेः
प्रतिप्रसवतया तत्संभाषणमाह - भिक्षुका इति । भिक्षवो
ब्रह्मचारिसंन्यासिनः 'भवति भिक्षां देही'ति तद्विना

+ ममु. गोरावत् । * ममु. मेघावत् ।

रितः पूर्वमभि (रितो दोषैरभि); व्यक. १२५; विर. ३८४;
रत्न. १३०; विचि. १७२-३; सवि. ४६८ क्षारितः पूर्व-
मभिभाषेत (कारितः पूर्व विभाषेताभि); व्यप्र. ४०१;
विता. ७९९ त्किञ्चिन्न (त्किञ्चिन्न) क्रमः (क्रमम्); सेतु.
२६४; समु. १५४.

(१) मस्मृ. ८।३६०; अप. २।२८५; व्यक. १२५
सह (गृहे); विर. ३८६ व्यकवत्; हीक. ५५; विचि.
१७० व्यकवत्; व्यनि. ३९९; स्मृति. २७; दवि. १५६
रह (गृह); बाल. २।२८४; सेतु. २६३ व्यकवत्; समु.
१५४.

भिक्षांऽलम्बेः । श्रुतिः बन्दिनः स्तुतिपाठकाः 'वदान्या त्वमसि कमलनयने विष्णुमित्रस्य पुत्री'त्यादिनाऽभि-
मुखीकृत्य वस्त्रानादि प्रार्थयमानाः । दीक्षिता यज्ञे वृता
ऋत्विजः हविष्कृदेहीत्याह्वानं कुर्वन्ति हविष्कृद्यजमान-
मनीति । कारवः शूर्पकारादयः । मच.

(४) अप्रतिवारिताः स्त्रीबन्धुभिरनिषिद्धाश्चेत् ।
नन्द.

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ।
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥

(१) केचिद्भिक्षुकादीनां निवारितानां संभाषणे
दण्डोऽयमिति मन्यन्ते । तदसत् । नैव ते निवार्या इत्यु-
क्तम् । कुतश्च भिक्षुकाणां सुवर्णो दण्डः । तस्मात्कोऽपि
प्रकाशमनाक्षारितोऽपि कथंचिन्निषिद्धः स्वामिना, समा-
चरन् सुवर्णं दण्ड्यः । मेधा.

(२) स्वामिना निषिद्धः सन् स्त्रीभिः संभाषणं न
कुर्यात् । निषिद्धः संभाषमाणस्तु राज्ञे सुवर्णं दण्डं दद्यात् ।

* गौरा.

(३) प्रतिषिद्धः भिक्षुकादिरपि । सुवर्णमेकम् ।
X मवि.

चारणदारादिस्त्रीभिः सह संभाषणे उपकारादौ च दोषविचारः
नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु ।
सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ॥

* मसु., विर., दवि., नन्द. गौरावत् ।

X मच., भाच. मविवत् ।

(१) मसु. ८।३६१; गौरा. भाषां पर (भाषं सह);
अप. २।२८५ गौरावत्; व्यक. १२५ संभाषां (भाषणं);
विर. ३८६ गौरावत्; विचि. १७३; व्यनि. ३९९ पर
(सह); स्मृचि. २७ गौरावत्; दवि. १५७ न संभाषां
(संभाषणं) समा (न चा); बाल. २।२८६; सेतु. २६४;
ससु. १५४ व्यनित् ।

(२) मसु. ८।३६२ [नारीर्नि (दारात्रि) Noted
by Jha]; मिता. २।२८५ नारीर्नि (नारीं नि); अप.
२।२८५ मितावत्; व्यक. १२५; विर. ३८७; रत्न.
१३०; विचि. १७४-५ मितावत्; दवि. १५८ मितावत्;
वीभि. २।२८५; व्यप्र. ४०१ नालो (रत्नो); विता.
४०१ च (क) शेषं मितावत्; सेतु. २६५ मितावत्; ससु.
१५४.

(१) यः संभाषणप्रतिषेध उपकारक्रियाप्रतिषेधश्च
नैष चारणदारेषु स्यात् । चारणा नटगायनाद्याः प्रेक्षण-
कारिणः । तथा आत्मोपजीविषु वेषेण जीवत्सु, ये दाराः,
अथवा आत्मा जायैव 'अर्धो ह वा एष आत्मेति' तां य
उपजीवन्ति, उत्कृष्टमाकारं सज्जयन्ति संश्लेषयन्ति ते,
चारणपुरुषेण निगूढाः प्रच्छन्नापणभूमौ प्रतिष्ठन्ते । गृह-
वेषत्वादेव ताः प्रसिद्धवेश्याभ्यो भिद्यन्ते । चारयन्ति च,
ता मैथुनं प्रवर्तयन्ति, नेत्रभ्रूविलासपरिहासादिभिः पुरुषा-
नाकर्षयन्ति तदनुज्ञाताः । सज्जनं चारणं संप्रयोग एव ।
अथवा स्वा नारीः सज्जयन्ति अन्याश्च स्त्रीभिश्चारयन्ति
प्रवर्तयन्ति, वेश्यात्वं कुट्टिनीत्वं च स्वदाराणां कारयन्ती-
त्यर्थः । मेधा.

(२) परस्त्रियं योऽभिवदेत् इत्यादिसंभाषणनिषेध-
विधिः नटगायनादिदारेषु वेशजीविदारेषु च नास्ति ।
यतश्चारणा आत्मोपजीविनश्च स्वभार्याः परपुरुषे सं-
श्लेषयन्ति प्रच्छन्नाश्च भूत्वा नैतत्किलास्माभिः ज्ञातमिति-
कृत्वा वेशकर्मणि सूचयन्त्यतस्तद्वाराणां वेश्याप्रकारत्वात्
नास्ति संभाषणे निषेधः । *गौरा.

(३) चारणा नटादयः । ते चारणाः नारीः स्वदारां
निरूढानिहुतनटभार्यात्वादिस्वरूपाः चारयन्ति भ्राम-
यन्ति तत्र तत्र पुरुषलाभार्थमतस्तेषां तद्वृत्तित्वाच्च
दोषः । मवि.

(४) 'परस्त्रियं योऽभिवदेत्' इत्यादिसंभाषणनिषेध-
विधिर्नटगायनादिदारेषु नास्ति । तथा 'भार्या पुत्रः
स्वका तनुः' इत्युक्तत्वाद्भार्यात्वात्मा तयोपजीवन्ति
धनलाभाय तस्या जारं क्षमन्ते ये, तेषु नटादिव्यति-
रिक्तेषु अपि ये दारास्तेष्वप्येवं निषेधविधिर्नास्ति ।
यस्माच्चारणा आत्मोपजीविनश्च परपुरुषानानीय तैः
स्वभार्या संश्लेषयन्ते । स्वयमागतांश्च परपुरुषान् प्रच्छन्ना
भूत्वा स्वाज्ञानं विभावयन्तो व्यवहारयन्ति । मसु.

(५) चारणो नटः । 'भार्या पुत्रः स्विका तनुः'
इत्यादिस्मरणादिह आत्मा भार्या तेनात्मानं भार्या
जीवनार्थमुपजीवतीति, आत्मोपजीवी शैल्ल्यादिः । एतौ
हि स्वां स्त्रियमप्यलङ्कृत्य व्यभिचारयत इत्यतोः

* मसु., विर., विनि. गौरावत् ।

१ सुवर्णाणां.

नैतत्संग्रहे ढण्डः । अभिगमदण्डस्त्वत्रापि, स तु बन्धक्य-
भिगमप्रकरणे वक्ष्यते । विचि. १७५

(६) आत्मोपजीविषु वेद्याजनेष्विति नारायणः + ।
दवि. १५८

(७) परदारस्तानां स्त्रीविशेषे उक्तदण्डभावमाह—
नैप इति द्विभ्याम् । एष उक्तदण्डविधिर्न पञ्चसु
परदारेषु चारिणनटगानांघात्मोपजीविषु, आत्माऽत्र
आत्मभार्या तां भोगार्थं विक्रीय जीविनस्तेषु । तत्र
दृष्टार्थतामाह—सज्जयन्तीति । सज्जयन्ति परपुरुषैः सह
स्वस्त्रियः श्लेषयन्ति, चारयन्ति स्वागतान् पुरुषान्
निगूढाः स्वर्षं प्रच्छन्ना भूत्वा अज्ञानं विभावयन्तो
मैथुनादिना स्वपरस्त्रिया सह ।

(८) चारणदारेषु रङ्गोपजीविनां दारेषु, संभाषित-
प्विति विपरिणामः, एष पूर्वोक्तः सुवर्णदण्डविधिर्न
स्यात् । आत्मोपजीविषु रूपाजीवासु वेद्यासु कस्यचिद्दा-
स्त्वेन स्थितास्त्वित्यर्थः । ते चारणा नारोः पुरुषेषु
सज्जयन्ति अभिसारयन्ति । एवं तेषां शीलं तस्मान्नैप
दण्डविधिरिति । ॥ नन्द.

(९) एष विधिः आत्मोपजीविषु चारणदारेषु
मटादिस्त्रीषु न कर्तव्यः । भाच.

किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन् ।

प्रेष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च # ॥

(१) रहोऽप्रकाशं विजने देशे चारणनारीभिः
संभाषां कुर्वन् किञ्चित्सुवर्णदण्डान्तात्पर्यं स त्रिंशद्भाग-
दिकं जातिप्रतिष्ठाने अपेक्ष्य दण्ड्यः । यतो न परिपूर्णं
तासु वेद्यात्वम् । भर्तृभिरनुज्ञाता हि ताः प्रणयन्ते । तत्र
भर्तृविज्ञानार्थं दूतीमुखेन व्यवहर्तव्यम् । न तु साक्षात्ता-

× मसुवद्भावः ।

+ एष अंश उपलब्धस्त्वर्षनारायणटीकायां नास्ति ।

* अस्य श्लेषस्त्व नन्द. व्याख्यानं अशुद्धिसंदेहाच्चोद्धृतम् ।

(१) मस्यु. ८।३६३; गोरा. त्संभाषां ताभिरा (द्रहः
संभाषणं); अप. २।२८५ तु (हि) भाषां (भाषं) प्रै (प्रे)
क्तासु (क्तास्तु); व्यक. १२५ भाषां (भाषं), प्रै (प्रे);
द्वि. ३८७; विचि. १७३-४ तु (हि) प्रै (प्रे); दवि.
१५८ (तु०) भाषां (भाषं); बाल. २।२८५; सेतु. २६५

विचि. १५४ प्रै (प्रे); संसु. १५४ प्रै (प्रे);

व्य. कां. २३३

भिरस्वतन्त्रत्वात् । प्रकाशं तु नृत्यन्तीनां गायन्तीनां वाऽ-
भिनयतालादिनिरूपणावसरे कीदृशमेतदित्यादिप्रश्नद्वारं
संभाषणमनिषिद्धम् । प्रेष्या दास्यः सप्तभिदांसयोनि-
भिरुपनताः । एकं भजन्ते एकैभक्ता एकेनावरुद्धाः ।
तत्रान्योऽप्यस्ति । दण्डलेशः । किं पुनरयं दासीशब्दः
संबन्धिशब्दो य एव यस्याः स्वामी तस्यैव दासी उत
सूपकारादिशब्दवत् कर्ममूलकः । इह तावदाद्या एव
स्थितिः विशेषेणोपादानेऽसामर्थ्यात् । या यस्य दासी
वेद्यावच्चान्यैः संसृज्यते । राजदासीव दासी वा मा
निगूह्यते । सा चैत्रावरुद्धा न दोषः संग्रहणे । अव-
रुद्धायामनेन दण्ड उक्तः । रिक्तविभागे चैतन्निपुणं
वक्ष्यामः । प्रव्रजिताः अरक्षकाः शीलमित्रादयः । ता
हि कामुक इव लिङ्गप्रच्छन्नाः । मेधा.

(२) चारणात्मोपजीविस्त्रीभिः रहोऽप्रकाशं संभाषणं
कुर्वन् किञ्चिदेव स्वल्पं दण्डं दापनीयः । दासीभिरव-
रुद्धाभिर्वोद्गाभिर्नृत्तचारिणीभिश्च सह संभाषणं कुर्वन्
काश्चित् दण्डमात्रां दाप्यः स्यात् । * गोरा.

(३) किञ्चिद्दाप्यः शक्यनुरूपम् । मवि.

(४) प्रेष्यासु दासीषु, एकभक्तासु एकपुरुषमात्रा-
वरुद्धासु, प्रव्रजितासु बौद्धादिब्रह्मचारिणीषु । किञ्चि-
न्मनुनैव दर्शितसुवर्णापेक्षया अल्पम् । विर. ३८७

(५) ताभिः सह व्यवहरन्नपि किञ्चिद्दाप्य इत्याह—
किञ्चिदिति । स्त्रीपणं विना पुनः प्रसक्तिवारणाय ।
तासामपि परदारत्वात् । प्रेष्यासु दासीषु प्राकाराव-
रुद्धासु । एकभक्तासु भुजिष्यासु । तदुक्तं याज्ञवल्क्येन—
‘अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च । मम्यास्त्रपि
पुमान् दाप्यः पञ्चाशत्पत्रिकं दमम् ॥’ इति । प्रव्रजितासु
बौद्धादिब्रह्मचारिणीषु नित्यं व्रजनेशीलसु कुलटासु
वा । मच.

परदारामिमर्शदोषेषु दण्डः तत्रयोजनं च

परदारामिमर्शेषु प्रवृत्तान्नुन्महीपतिः ।

उद्देजनकरैर्दण्डैः चिह्नयित्वा प्रवासयेत् ॥

* मवि., मसु., विर., विचि., भाच. गोरावद्भावः ।

(१) मस्यु. ८।३५२ चिह्न (छिन्न) [पूर्वार्धे (परदारोप-
सेवार्थां चैष्टमानंभ्रराधिपः); चिह्नयित्वा (परिचिह्नय)
Noted by Jha]; अप. २।२८३ चान्नुन् (त्सेपु);

(१) विवाहसंस्कृतायां स्त्रियां दारशब्दो वर्तते । ध्यात्मनोऽन्वः परः अभिमर्शः संभोग आलिङ्गनादारम्भ, आलिङ्गनं जनद्वयसमवायैः भोगजन्यायाः प्रीतिः प्रवृत्तिः प्रारम्भस्तन्निर्वृत्यै दूतीसंप्रेषणादिना प्रोत्साहनम् । अथ च संग्रहणमभिमर्शनं प्रचक्षते । अयमर्थः— परभार्यागमने प्रवृत्तं पुरुषं ज्ञात्वोद्वेजनकरैस्तीक्ष्णाग्रैः शक्तिशूलादिभिरङ्कयित्वा नासाच्छेदादिभिर्विवासयेत् । सर्वत्रात्र विशेषदण्डस्योक्तत्वादस्य विषयभावो, न सामान्यदण्डोऽयं, किं तर्हि, पुनः पुनः प्रवृत्तौ । इदं तु युक्तम् । अलभ्यमानस्य विषयान्तरं प्रवासस्य धन-दण्डस्य च कार्यभेदात्समुच्चयः । तथा दर्शयिष्यामः ।

मेघा.

(२) स्त्रीसंग्रहणमिदानीमाह—परदाराभिमर्शेष्विति । परदारसंभोगेषु बहुषु प्रवृत्तान् मनुष्यान् पीडाकरै-र्दण्डैर्नासौष्ठकर्तनादिभिरङ्कयित्वा राजा देशान्निर्वासयेत् ।

+ गौरा.

(३) दण्डैः शिशुच्छेदादिभिः । मवि.

(४) त्रीन् ब्राह्मणतरान् । उद्वेजनकरैः कर्षनासि-कादिच्छेदरूपैः । विचि. १७४

(५) परदाराभिरतस्य स्वजातौ दण्डमाह षट्त्रिंशता श्लोकैः— परदारोति । नूनिति विशेषणाद्देवतिर्यक्षु च श्लेषः । उद्वेगजनकैः नासौष्ठकर्तनादिभिः । सर्वत्र ब्राह्मणं तु विवासयेत् । मच.

तैत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ।

येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥

+ मसु. गौरावत् ।

व्यक. १२५ चिह्न (चित्र); विर. ३८८ मशेषु (मशेषु); जनकरै (गजनकै); रत्न. १३१ षु प्रवृत्तान्नु (तु प्रवृत्तं तु) बृहस्पतिः; विचि. १७४ षु (तु) चान्नु (चःस्त्रीन्); व्यनि. ४००; दवि. १५९ मशेषु (मशेषु तु) चान्नु (चांस्तान्); स्मृचि. २६ रामि (राप) प्रवासयेत् (विसर्ज-येत्) शेषं विरक्तं; मच. जनकरै (गजनकै); व्यम. १०७ रत्नवत्, बृहस्पतिः; विता. ८०५ षु प्रवृत्तान्नु (तु प्रवृत्तं) उद्वे... चिह्न (उद्वेगजनकैश्चिह्नैः) बृहस्पतिः; मसु. १५४ षु (तु); विव्य. ५४ विचिवत्.

(१) मसु. ८१३५३ [लोकस्य जायते (जायते लोक्यां)]

१ नार. २ यमो.

(१) समुत्थानमुत्पत्तिः ततः परदारगमनात्, संकरोऽवान्तरवर्णरूपो जायते । येन जातेन अधर्मो— मूलमस्य लोकस्य दिवः पतिता वृष्टिस्तां— हरति । अधर्मः— धर्मो हि सति 'आदित्यजायते वृष्टिः', न च संकरे सत्यपि कारीरीयागो, नापि पात्रे दानं अतो दानयागहोमानां सस्योत्पत्तिहेतुभूतानाम-भावात्सर्वजगन्नाशसमर्थो भवति । तस्मात्परदारिकान्-अधर्ममूलवर्णसंकरः स्यादिति, सस्यादिनिष्पत्तिमूलं च वृष्टिं रक्षन्—प्रवासयेत् । मेघा.

(२) यस्मात्परदारसंगमनसमुद्भूतो लोकस्य वर्ण-संकर उत्पद्यते येन वर्णसंकरेण यागाद्यधिकृतयजमाना-भावात् 'अग्नौ प्रास्ते'त्येतदभावे सति वृष्ट्याख्यजगन्मू-लविनाशोऽधर्मो मूलच्छेदेन विनाशाय संपद्यते । X गौरा.

(३) ननु तद्रव्यस्य तथैव स्थाने किमिति दण्डनीयं तत्राह— तदिति । वर्णसंकरो शूद्रादि-मिश्रणम् । संकरोऽपि किं स्यात्तत्राह— येनेति । 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदि-त्याजायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥' इति प्रजोत्पत्ति-हेतुराहुतिः । सा च संकरजेन हुता न फलतीति मूलहरोऽधर्मः । मूलं ब्राह्मण्यादि वा । मच.

(४) दण्डप्रकर्षे हेतुमाह— तत्समुत्थो हीति । तत्समुत्थः परदाराभिमर्शनसंभूतः, येन वर्णसंकरेण, अधर्म इति पदं, मूलं हरेद्धर्मस्य मूलहरः । नन्द.

(५) तत्समुत्थः असत्स्त्रीपुरुषसंयोगात् समुत्थः । वर्णसंकरः येन वर्णसंकरेण मूलं धर्मः तस्य हरः अधर्मः सर्वनाशाय कल्पते । मच.

वर्णभेदेन परदाराभिमर्शेषु दण्डविधिः । तत्र अब्राह्मण-स्यैव शारीरदण्डः, ब्राह्मणस्य तु मौण्ड्यप्रवसनादिः ।

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति । चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्षयत्तमाः स्मृताः ॥

X मसु. गौरावत् ।

Noted by Jha]; अप. २।२८३; व्यक. १२५; विर. ३८८; दवि. १५९ लोकस्य (लोकस्य); स्मृचि. २६.

(१) मसु. ८।३५९ स्मृताः (सदा); मेघा. ८।३७५ चतुर्णामपि (सर्वेषामेव) स्मृताः (सदा) उक्तः; अप.

(१) उक्तं संग्रहणस्वरूपम् । दण्ड इदानीमत्रोच्यते ।
अब्राह्मणः क्षत्रियादिः, संग्रहणे कृते, चतुर्णामपि वर्णानां
हीनोत्तमजातिभेदमनपेक्ष्य, प्राणान्तं प्राणत्याजने मारणे
पर्यवसितं, दण्डमर्हति । कथं पुनर्ब्राह्मण्यां शूद्रायां च
सगृहीतस्य समो दण्डः । अत्र हेतुस्वरूपमर्थमाह ।
दारा रक्ष्यतमाः सदा । सर्वस्य कस्यचिद्राज्ञा दारा धन-
शरीरेभ्योऽतिशयेन रक्ष्याः । तुल्यश्च संकरे शूद्रस्यापि
कुलनाशः । एतदुक्तं भवति । वाचनिकोऽयमर्थोऽत्र
हेतुर्वक्तव्यः । उक्तोऽसौ । अत्र पूर्वं व्याचख्युः, न
सर्वस्मिन् संग्रहणे प्रागुक्तदण्डोऽयम् । किं तर्हि, मुख्ये
स्पर्शविशेषजन्यप्रीतिविशेषात्मके गमने । कथं हि
तीर्थादिष्वभिषेकनं गमनं च समदण्डावुपपद्येयाताम् ।
तस्माद्ब्राह्मणः शूद्रो द्विजातिस्त्रीगमने प्राणच्छेदाहो
नान्यः । न हि विषमसमीकरणं न्याय्यमतश्च प्रागुक्तेषु
संग्रहणेष्वनुबन्धाद्यपेक्षया दण्डः कल्प्यः । यत्रैवं निश्चितं,
गमनार्थं एवायनुपकारक्रियादिरूपक्रमस्तत्र मुख्यदण्ड
एव युक्तो न ह्यत्र वैषम्यमस्ति । दृष्टं चैतदप्यहत्वाऽ-
पीति (?) । यच्चैदमुक्तं, यद्यत्रायं दण्डो, मुख्ये संग्रहणे
किं करिष्यतीति । नैवान्यन्मुख्यसंग्रहणमस्ति । न ह्यस्य
लौकिकः पदारथोऽवधृतो येन परस्य दारोपचारादौ
प्रयुक्त इत्येवमस्यैव, यं च भवान् मुख्यं संग्रहणं मन्यते
तत्र महान्दण्डः । प्रतिषिद्धं परस्त्रीगमनं शास्त्रपर्यनुयोज्य-
मिति चेत् उपकारादावपि प्रतिषेधं विद्धि । प्रतिषेध-
वद्धि प्रायश्चित्तमपि तुल्यप्रसक्तमिति चेत्क्वा नामेय-
मनिष्ठापत्तिः । किन्तु प्रसज्येत यदा संग्रहणशब्देन
तदुच्येत, सिक्ते हि रेतसि तच्छब्देनाभिधानं, यत्र
यादृशो दण्डस्तत्र तत्समानं दुःखं प्राप्तम् । अतोऽस्मि-
न्विपर्यये रेतःसेकनिमित्तं तच्छब्देनाभिधानात् उपका-

२।२८५ मसृक्त, उक्त. ; व्यक., १२५; विर. ३८८; रत्न.
१२१ पू., बृहस्पतिः; विचि. १७४ पू.; ज्यनि. ४००;
स्मृचि. २६; दवि. १६० दण्ड (वध) वर्णानां (चैतेषां) :
२३६ चतुर्णामपि (सर्वेषामेव) उक्त. ; व्यस. १०७ दण्ड
(वध) पू., बृहस्पतिः; वित्त. ८०५ पू., बृहस्पतिः;
सेतु. २६३ पू.; समु. १५४.

१. षे। ज. २ दस्वनुकारादौ. ३ दुच्यते स्ति.
४ गन्धेनाद्यभि.

रादौ कल्प्यम् । यदि च संलापादौ स्वल्पो दण्डः स्या-
त्तदा प्रवर्तेरन् । ततश्च परस्त्रीसंलापादिभिः व्यादीपित-
मन्मथाः स्मरशराकृष्यमाणाः शरीरनिरपेक्षा राजनिग्रहं न
गणयेयुः । आत्रायामेव तु प्रवृत्तौ निगृह्यमाणेष्वप्रबन्धवृत्तौ
रागे शक्यं निराकरणं, तस्मात्परस्त्रीसुपजपतामेव महादण्डो
युक्तः । इह त्वन्तग्रहणादादिभूतेनान्येन दण्डेन भवि-
तव्यम् । न ह्यसत्यादावन्तो भवति । प्राणोऽन्तो यस्य
प्राणान्तस्तावत्यातयितव्यो यावत् प्राणेषु पतति । तेन
सर्वस्वग्रहणाङ्गच्छेदाद्यप्युक्तं भवति । एकैकस्य च दण्ड-
त्वमन्यत्र ज्ञातं समुदाये दण्ड्यते । इति बहुदण्डेष्व-
भ्रातेषु स महान् यो द्विजातीयस्त्रीसंग्रहणेऽब्राह्मणस्य,
इति युक्तैव कल्पना । न सर्वत्र । तत्र कुलस्त्रीभिरनि-
च्छन्तीभिः भर्तृमतीभिः संगृह्यमाणस्य प्राणापहरणं
हीनजातीयाभिरपि । मेधा.

(२) दण्डभूयस्त्वादब्राह्मणः शूद्रो ब्राह्मण्यामनि-
च्छन्त्यां संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति । चतुर्णामपि वर्णानां
धनपुत्रादीनां मथ्यात् दारा अतिशयेन रक्षणीयाः । अत
उत्कृष्टसंग्रहणादपि वर्णैः भार्या संरक्षणीया । *गोरा.

(३) अब्राह्मणः संग्रहण इत्यत्र ब्राह्मण्या इति
शेषः । व्यक. १२५

(४) संग्रहणे परदारमैथुने न तु संभाषादौ ।
ब्राह्मणस्य तु दण्डनमेवेत्यर्थः । मवि.

(५) अब्राह्मणः संग्रहणे प्रातिलोभ्येनेति शेषः ।

+विर. ३८८

(६) अत्र प्रतिभाति एतद्वाक्यद्वयं [‘परदाराभिमर्षे’
‘तत्समुत्थो’; ‘अब्राह्मणः संग्रहणे’] यद्यप्यभिगमविषय-
मित्युचितं पूर्वत्र स्वदारनियम इति लिङ्गात्, उत्तरत्र
परदाराभिमर्षे त्विति सामान्याभिधानस्वरसात् तत्समुत्थो
हीत्सांदिहेतुमन्निगदसंबन्धाच्च । उभयत्र दण्डगौरवाच्च
संग्रहणे परदारमैथुने न तु संभाषादाविति सर्वशीय-
व्याख्यानदर्शनाच्च । तथापि ‘पूर्वसंनिपाते शिक्षस्य छेदनं
सवृषणस्य’ इत्यापस्तम्बसंवादादङ्गपदस्यापि शिक्षपरत्वे
संभाविते येन येनेति वीप्सानुपपत्तेर्बाधकत्वादङ्गेन
हस्तादिनेति रत्नाकरदर्शनाच्च । उत्तरत्र संग्रहणस्य साक्षा-

* मसु., मच. गोरावत् । + विचि. विरवत् ।

१ पतितभूतेनात्येनमभिवसता व्या.

देवाभिधानात् दण्डगौरवे व्यवस्थाया वक्ष्यमाणत्वात् ।
 वैरा रक्ष्यतेमा इत्युत्तराहारस्याविश्वसङ्गवारणप्रतया-
 ऽप्युत्तराहारमयोरपि वाक्ययोः सर्वेषु पूर्वनिबन्धेषु
 संग्रहप्रकरणे अवतारणाच्च संग्रहविषयत्वं निश्चितम् ।
 किन्तु हस्तादिच्छेद—सहस्रदण्ड—प्रवासन—वधानाम-
 तुल्यरूपाणां संग्राहस्त्रीप्रातिलोभ्यमात्रेण समञ्जयितुम-
 शक्यत्वादियमत्र व्यवस्था । ब्राह्मणस्य संग्रहणस्य गौरवे
 तदभ्यासे च सचिह्नप्रवासनमन्यत्र सहस्रपणात्मको
 दण्डः । अब्राह्मणस्य तु प्रतिलोभोत्तमसंग्रहे तदभ्यासे
 च वधः । अन्यत्र धनिकस्य सहस्रदण्डो निर्धनस्य
 हस्तच्छेद इति ।

×दवि. १६०—६१

सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन् ।
 शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः ॥
 (१) गुप्ता भ्रष्टशीलाऽपि यदि केनचिद्रक्ष्यते पित्रा
 भ्रात्रा बन्धुभिर्वा तां हठाद्व्रजन् सहस्रं ब्राह्मणो दाप्यः ।
 गुप्ता शीलवती चेत्प्रवासनाङ्कने चाधिके । अथापि
 शीलवत्यपि गुप्तशब्देनोच्येत । तथापि सहस्रमात्राद्-
 ब्राह्मणो नै मुच्येत । अङ्कनप्रवासने सर्वत्र मुखीक्रियेते
 परदारभिर्गणैः ।

मेधा.

(२) ब्राह्मणो रक्षितां ब्राह्मणीं हठात् गच्छन् सहस्रं
 दण्ड्यः । इच्छन्त्या तु पुनः सह मैथुने पञ्चशतानि
 दण्डनीयः ।

*गोरा.

× व्यक., मवि., मसु. व्याख्यानाभि च समुद्धानि ।

÷ मिताक्षराव्याख्यानं 'सजातावृत्तमो दण्ड' इति याज्ञ-
 वल्यवचने द्रष्टव्यम् । * मसु., मच. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३७८; मिता. २।८१ पू., स्मरणम् :
 २।२८६; स्मृच. ३२० गुप्तां विप्रां (विप्रां गुप्तां) पू. :
 ३२१ उक्त.; विर. ३९३; पमा. ४६४; विचि. १८०;
 व्यनि. ४०१ गुप्तां विप्रां (विप्रां गुप्तां); दवि. १६७;
 सवि. १५१ (=) पू. : ४६९; वीमि. २।२८६; व्यग्र.
 ३९६ स्मृचवत्, पू. : ३९९; व्यड. १३४ स्मृचवत्, पू. :
 १३६ पञ्च दण्ड्यः (पञ्च-दण्डः) गतः (गते) उक्त.; व्यम.
 १०५ स्मृचवत्, पू. : १०६ उक्त.; विता. १८७ व्रजन्
 (भ्रजन्) पू., सृतिः : ८०२; बाल. २।८६ पू., सृतिः
 : २।२८६ 'व्रजेत्' इति पाठः; सेतु. २७० संगतः (संगतः);
 समु. १५४ स्मृचवत्; विव्य. ५५ क्रमेण बृहस्पतिः.

१ नोच्यते । २. (न०). ३ मुच्यते ।

(३) गुप्तां स्वनिबन्धेन रक्षिताम् । स्मृच. ३२०
 यत्तु मनुना सानुराग्या ब्राह्मण्या सहः संमतस्य
 मध्यमसाहस्रमुक्तं 'शतानी'ति तदरक्षितचरितशक्ति-
 विषयम् । स्मृच. ३२१

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ।
 इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥

(१) यत्र क्षत्रियादीनां वध उक्तस्तत्र ब्राह्मणस्य
 मौण्ड्यं, यथा—'अब्राह्मणः संग्रहणात् प्राणान्तं दण्डमर्हति'
 तथा तु 'पुमांसं दाहयेदिति । प्राणानामन्तं गच्छति
 प्राणान्तं वा करोति प्राणान्तकः । 'अन्येष्वपि दृश्यते'
 (व्यास. ३।२।१०१) इति दण्डः । अन्ये तु प्राणान्तिक
 इति पाठान्तरं, प्राणान्ते भवः प्राणान्तिकः अध्यात्मा-
 दित्वाङ्ग, इतरेषां ब्राह्मणादन्येषां क्षत्रियादीनां
 वर्णानां प्राणान्तिक एव, श्रुतं मारणादि पूर्वमेव,
 तदनन्तरमिदमुच्यते, उच्यमानं मौण्ड्यं, तच्छेषतया
 सहस्रं दण्डो विधीयत इति मन्यन्ते । अन्यथा
 ब्राह्मणस्य प्राणान्तदण्डविधानात् कः प्रसङ्गो ब्राह्मणस्य
 येनैवमुच्यते 'मौण्ड्यं प्राणान्तिक' इति, 'पुमांसं
 दाहयेदिति' ति सामान्यविधानप्रसक्तमिति चेत्तत्रैव कर्तव्यं
 स्यात्तथा हि स्फुटं तद्विषयत्वं प्रतीयते । मेधा.

(२) ब्राह्मणस्य वधदण्डस्थाने शिरोमुण्डनं शास्त्रे-
 णोपदिश्यते । क्षत्रियादीनां पुनस्क्तेषु वधदण्डो भवति ।

*गोरा.

(३) उत्तमसाहस इति शेषः । स्मृच. १२५
 न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।
 राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात् समग्रधनमक्षतम् ॥

* मवि., मसु., विर., विचि., मच., नन्द. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३७९. ख., दण्डः प्राणान्तिको (दण्डः
 प्राणान्तिको); अप. २।८३; स्मृच. १२५; विर. ३९३;
 पमा. २०९; विचि. १८०; व्यनि. ४०१; दवि. १६३
 न्तिको दण्डो (न्तिके दण्डे); नृप्र. १०५ (=) पूर्वार्धे
 (ब्राह्मणस्य वधस्थाने मौण्ड्यं [दण्डो] विधीयते); सवि.
 ४९५ प्राणान्तिको (प्राणान्तिको); व्यग्र. १३९; विता.
 ८८; बाल. २।२६; सेतु. २७०; प्रका. ७८; समु. ६८;
 विव्य. ५५ पू., क्रमेण बृहस्पतिः.

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि ।
 तस्मादस्य वधं राजा मनसाऽपि न चिन्तयेत् ॥
 सर्वपापकारिणमपि ब्राह्मणं कदाचिदपि न हन्यात् ।
 अपि सर्वधनसंयुक्तमश्वतशरीरं राष्ट्रान्निर्वासयेत् । ब्राह्मण-
 वधादपि अधिकोऽन्यः पृथिव्यामधर्मो नास्ति । ब्राह्मणं
 सर्वपापकारिणमपि राजा मनसाऽपि न हन्यात् ।

+गोरा.

वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो ब्रजेत् ।
 यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ॥

(१) अगुताया ब्राह्मण्यां गमने 'वैश्यं पञ्चशतं
 कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिणमिति' तत्र वैश्यस्य पञ्चशतः,
 य एव परियालयति स एव चेन्नाशयति युक्तं तस्य दण्ड-
 महत्त्वम् ।

मेधा.

(२) वैश्यो यदि रक्षितायां क्षत्रियायां गच्छेत्
 क्षत्रियो वा वैश्यां तदा यो ब्राह्मण्यामरक्षितायां गमने
 क्षत्रियवैश्ययोः दण्डो 'वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु
 सहस्रिणम्' इति तं दण्डं तौ क्षत्रियवैश्यौ चार्हतः ।
 अतश्च वैश्यस्य क्षत्रियागमने पञ्चशतानि क्षत्रियस्य
 वैश्याधिगमने रक्षाधिकृतत्वादधिकगुणत्वात् दण्ड-
 सहस्रमिति ।

*गोरा.

(३) 'वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिणम्'
 इति उक्तं दण्डमर्हत इत्यर्थः । प्रातिलोम्येऽप्यल्पदण्डा-
 र्हेत्वाथ अत्यन्तनिर्गुणपतिपत्नीविषय एव वैश्यदण्डोऽयं

÷ श्लोकद्वयस्य स्थलादिनिर्देशः व्याख्यानान्तराणि च
 दण्डमानुक्रियां (पृ. ५७९) द्रष्टव्यानि ।

+ मसु., मच., नन्द., भाच. गोरावत् ।

× मिताक्षराव्याख्यानं 'सजातावुत्तमो दण्ड' इति
 याज्ञवल्क्यवचने द्रष्टव्यम् ।

* मवि., पमा., व्यप्र., भाच. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३८२; मिता. २।२८६; अप.
 २।२८६; स्मृच. ३२२ ब्रजेत् (ब्रजन्); विर. ३९३
 ब्रजेत् (ब्रजन्) तावुभौ (तत्समं); पमा. ४६७; विचि.
 १८१; दवि. १६७ तावुभौ (तत्समं); सवि. ४७१;
 वीमि. २।२८६; व्यप्र. ४००; व्यउ. १३६ यो ब्राह्मण्याम
 (ब्राह्मण्यां यथ); व्यम. १०६; विता. ८०५; बाल.
 २।२८६; सेतु. २७१ दविवत्; समु. १५५ स्मृचवत्;
 विव्य. ५५.

द्रष्टव्यः । आनुलोम्येऽपि गुणदण्डार्हेत्वायात्यन्तसगुणपति-
 पत्नीविषय एवायं क्षत्रियदण्डो द्रष्टव्यः । एवञ्च पारि-
 शेप्यात् 'वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्' इत्यनेनोक्तो
 गुणदण्डः स्वजातावेवात्यन्तसगुणपतिपत्नीविषय एवाव-
 तिष्ठते इत्यवगन्तव्यम् ।

स्मृच. ३२२

(४) अयं च वैश्यस्य रक्षितक्षत्रियागमने पञ्चशत-
 रूपो दण्डो लघुत्वाद्गुणवद्वैश्यस्य निर्गुणजातिमात्रेण-
 जीविक्षत्रियायाः शूद्राभ्रान्त्यादिगमननिषयो बोद्धव्यः ।
 क्षत्रियस्य रक्षितवैश्यायां ज्ञानतो युक्तः सहस्रं दण्डः ।

+मसु.

(५) दण्डमर्हतः इत्यत्र दण्डो मध्यमसाहसः ।

विर. ३९३

क्षत्रियां चैव वैश्यां च गुप्तां तु ब्राह्मणो ब्रजन् ।
 न मूत्रमुण्डः कर्तव्यो दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥

न मूत्रमुण्ड इति । मौण्ड्यमत्र विधेयं तद्विधौ च
 क्षत्रियवन्मूत्रेण तन्मा भूदित्येतदर्थं मूत्ररूपविशेषण-
 निषेधः । तथा च मूत्रार्द्रशिरस्त्वस्य विशेषणमात्रस्य
 निषेधो मुण्डना तु कर्तव्यैव ।

मवि.

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते ब्रजन् ।
 शूद्रायां क्षत्रियविशोः साहसो वै भवेद्दमः ॥

(१) गुप्ते क्षत्रियवैश्ये गच्छन् ब्राह्मणः सहस्रं
 दण्ड्यः । प्रवासनाङ्कने स्थिते एव । शूद्रायां गमने
 क्षत्रियवैश्ययोः साहसो दण्डः । सहस्रमेव साहसं

+ यथाश्रुतव्याख्या गोरावत् । विचि., मच. मसुवत् ।

* मिताक्षराव्याख्यानं 'सजातावुत्तमो दण्ड' इति याज्ञ-
 वल्क्यवचने द्रष्टव्यम् ।

(१) मस्मृ. ८।३८२ इत्यस्योपरिष्ठात्प्रक्षिप्तश्लोकोऽयम् ।

(२) मस्मृ. ८।३८३; मिता. २।२८६ साहसो वै
 (सहस्रं तु); अप. २।२८६; स्मृच. ३२१ पू. [श्वैसर-
 मुद्रितस्मृतिचन्द्रिकायां (पृ. ७४६) 'दण्डोऽगुप्त' इति पाठः];
 विर. ३९३; पमा. ४६४ मितावत्; दीक. ५५; विचि.
 १८१; दवि. १६७ सहस्रं (साहसं) साहसो (साहसो);
 सवि. ४६९ मितावत्; वीमि. २।२८६ दण्डं...ते (दाप्यो
 गृहं गुप्तं ततो) द्रायां (द्राणां) हसो (हसं); व्यप्र. ३९९
 मितावत्; व्यम. १०६ पू.; विता. ८०२ मितावत्, उक्तः;
 सेतु. २७१ हसो (हसं) उक्तः; समु. १५४ मितावत्.

स्वार्थिकोऽण् । सहस्रं वा अस्यास्ति साहस्रो दण्डोऽन्यै-
षदार्यः । मत्वर्थायोऽण् । मेधा.

(२) क्षत्रियावैश्ये रक्षिते ब्राह्मणो गच्छन् सहस्रं
दण्ड्यः । क्षत्रियवैश्यौ रक्षितां शूद्रां गच्छतोः सहस्र-
षरिष्माणो दण्डः स्यात् । ×गोरा.

(३) यत्तु ब्राह्मणस्य शूद्रेतरानुलोम्ये तेनोक्तम्—
'सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन्' इति ।
ते क्षत्रियावैश्ये । अत्र गुप्ते मानसव्यभिचारानवकाशाय
गृहव्यापारासक्तचित्ततया सुरक्षिते विवक्षिते । न तु
स्वगृहेऽवरुद्धे गुरुरदण्डत्वात् । स्मृच. ३२१

(४) तत्रापि पूर्वं क्षत्रियभुक्तायां वैश्यस्य गमने
साहस्रः सहस्रपणनियतः । +मच.

क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतो दमः ।

मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥

(१) वैश्यस्य पञ्चशतानि दण्डः । अगुप्तां च
क्षत्रियां गच्छतः क्षत्रियस्य स एव, यदि वा मौण्ड्यं
मुण्डनमिच्छेत्प्राप्त्याद्गर्दभमूत्रेण, एष एव वैश्यागमन
उभयोर्दण्डः । *मेधा.

(२) अरक्षितक्षत्रियागमने वैश्यस्य पञ्चशतानि
दण्डः स्यात् । क्षत्रियस्य त्वरक्षितागमने गर्दभमूत्रेण
मुण्डनं पञ्चशतरूपं वा दण्डमाप्नुयात् । +मसु.

(३) (वैश्ये) व्रजति, इति विपरिणामः । नन्द.
अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥

× मसु., भाच., नन्द. गोरावत् । + शेषं गोरावत् ।

* अस्मिन् श्लोके गोविन्दराजीया नोपलभ्यते ।

÷ विर., दवि., मच., भाच. मसुवत् ।

(१) मसु. ८१३८४ शतो (शतं); मेधा. शतो (शतं)
मिच्छे (मृच्छे); विर. ३९६ लक्ष्मीधरेण तु दण्डमेवेत्यस्य स्थाने
मौण्ड्यमेवेति षठितम् ; विचि. १८१ वैश्ये (वैश्यस्व);
दवि. १७० मिच्छे (मृच्छे) वा (च); बाल. २१२८६;
सेतु. २६९ मिच्छे (मृच्छे); मसु. १५४ सेतुवत् ; भाच.
सेतुवत् .

(२) मसु. ८१३८५ [पूर्वांशे (विप्रः क्षत्रियविट्शूद्रस्त्री-
रूपानां परिव्रजन्) Noted by Jha]; अप. २१२८६
क्षत्रियावैश्ये (वैश्यराजन्ये) दण्ड्यः (दाप्यः); स्मृच. ३२१
दण्डोऽस्ति. २ त्र. पदा. ३ इति क्ष.

(१) ब्राह्मणस्य क्षत्रियाद्यगुप्तास्त्रीगमन उभयोर्दण्डः ।
अन्यजश्चण्डालश्चपचादिस्तत्र सहस्रम् । तत्रापि सहस्र-
पणदण्डसंग्रहः ब्राह्मणस्य । चतुर्ष्वपि वर्णेषु गुप्तागमने
सहस्रं, श्रोत्रियदारेषु प्रवासनाङ्कने, अन्यत्र प्रवासनमेव,
श्रोत्रियदारेषु प्रायश्चित्तमहत्त्वादेव कल्प्यते । अगुप्तागमने
पञ्चशतानि प्रवासनाङ्कने च । यद्यप्यगुप्तापरदाराव्यपदेश्या
भवति विवाहसंस्कारे सति तथापि स्वैरिणी भर्तृस्वता-
मतिक्रान्ता, अब्राह्मणस्य प्राणान्तो गुप्तागमने दण्डो
बलात्, सकामागमने साहस्रो दण्डः प्रवासनाङ्कने च,
अगुप्तागमने 'वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिण-
मिति । मेधा.

(२) वैश्यां क्षत्रियां शूद्रां रक्षितां ब्राह्मणो व्रजन्
पञ्चशतानि दण्ड्यः स्यात् । चण्डालादिस्त्रियं गच्छन्
पुनः सहस्रं दण्ड्यः । ×गोरा.

(३) अन्यजातयः रजकचर्मकृन्नटबुरुडकैवर्तमेद-
भिह्लाः स्मृत्यन्तरोक्ताः । एवं स्त्रीसंग्रहणान्तं समर्थितं
उत्तरे चाध्याये शेषं वाच्यम् । मवि.

(४) क्षत्रियावैश्ये इति द्वितीयाद्विवचनं, अन्यज-
स्त्री रजकादिस्त्री । एवञ्चान्यागमने वधोक्तिर्ब्राह्मण-
व्यतिरिक्तविषया । विर. ३९४

(५) शूद्रां गुप्तामगुप्तां वेति नारायणः । अत्र
शूद्रामित्यत्र 'हीनायामर्धिक' इति बृहस्पतिवाक्ये
हीनायामित्यत्र चान्यपूर्वा शूद्रा विवक्षिता, अनन्यपूर्वायां
निर्वासनस्मरणात् । तथा चापस्तम्बः— 'नाश्य आर्यः
शूद्रायाम्' तद्ब्राह्मणपरिणीतानन्यपूर्वाशूद्राविषयम् ।
आर्यो ब्राह्मणादिर्नाश्यो निर्वास्यः । अत एवात्र शूद्रायाम-
नन्यपूर्वायामिति कल्पतरुकृता व्याख्यातम् । यत्तु

× मसु. गोरावत् ।

क्षत्रियावैश्ये (वैश्यराजन्ये) जस्त्रियम् (जः स्मृतः); विर.
३९४; पमा. ४७१ चतुर्थः पादः; दीक. ५५ त्सहस्र
(त्साहस्रं); विचि. १७८ अगु...श्ये (अगुप्तां क्षत्रियां वैश्यां)
सं त्व (स्त्रम) : १८१-२; व्यनि. ४०१ क्षत्रियावैश्ये
(वैश्यराजन्ये) वा (च); दवि. १७१; वीमि. २१२९४;
व्यप्र. ४०४ चतुर्थः पादः; व्यम. १०६ क्षत्रियावैश्ये
(वैश्यराजन्ये); वित्ता. ८०२ व्यमवत् : ८१२ चतुर्थः पादः;
बाल. २१२८६; मसु. १५४ व्यमवत् .
१ गुप्ता.

चूद्राव्यतिरिक्तहीनाविषयं बृहस्पतिवचनमिति केन-
चदित्युक्तं, तत्र, दण्डविसंवादात् निर्वासनापेक्षया
मध्यमदण्डस्य लघुत्वात् । दवि. १७१

(६) अगुप्ततिसृष्वपि ब्राह्मणं प्रति दण्डमाह—
अगुप्त इति । अन्यजस्त्रियं चण्डालादिजातिमिति
अन्यजगुप्तागुप्तसाधारणविषयं, चतुर्णां संनिधेः प्रकर-
णस्य बलीयस्त्वात् । मच.

(७) शूद्रां च, अगुप्तामिति विपरिणामः । नन्द.

संवत्सराभिशास्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।

ब्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ॥

(१) अभिशास्तस्तत्पापकारीत्यभिशाब्दितः । यो यस्यां
स्त्रियां संगृहीतः सोऽभिशास्तो दण्डितः । स चेत्संवत्सरं
अतिपात्य अतीते संवत्सरे पुनस्तस्यामेव संगृह्यते तदा
तस्यैकं वारमभिशास्तस्य संवत्सरे गते पुनर्दुष्टस्य द्विगुणो
दण्डः । संवत्सराभिशास्तस्येति समासपाठे कथञ्चिद्योजना ।
ब्रात्यया सह संवासे तावदेव, किं यावदेव पुनर्दुष्टस्य,
नेति ब्रूमः, तत्राप्युत्तमाधममध्यमानामनेकविधो दण्डः ।
तत्र कोऽसाविह ? द्विगुण इति न ज्ञायते । किं
तर्हि ? चाण्डाल्या संवासे यावदेव तावदेव ब्रात्ययेति ।
'सहस्रं त्वन्यजस्त्रियमि'ति । ब्रातः पूगः संघः तेन चरति
पुंश्रली, कर्तव्यं, अथवा ब्रातमर्हति ब्रात्येत्यस्तु यकारो
दण्डादिः । का च ब्रातमर्हति ? याऽनेकपुरुषोपयोग्या
पुंश्रली सा हि पुरुषब्रातमर्हति । अथवाऽनेकपुरुष-
स्वामिका ग्रामस्य दास्यश्च ब्रात्याः । ये तूद्वाहहीना
ब्रात्यां मन्यन्ते, तेषां मते न मुख्यः शब्दार्थः । अयं
हि ब्रात्यशब्दः स्मृतिकारैः सावित्रीपतितेषु प्रयुक्तः,
न च स्त्रीणां तत्संभवः । अथ स्त्रीणां विवाहश्च तदावृत्ति-
वचनादुपनयनं, तद्धीनपुरुषवद्व्याख्या, गौणस्तर्हि न
मुख्यः । यदि नमोपनयनशब्दोऽनुपनयने विवाहे
प्रयुक्तः तथाप्युपनयनहीनोऽप्येव इत्युक्ते न विवाहहीन
इति प्रतीयते ॥ यथाऽसिद्धीऽयं देशोऽस्त्युक्तेऽपि सिंह-
शब्दस्य माणवके प्रयुक्तस्यापि देशस्यामणवकत्वं
सस्य. ८१३७३; मेधा; सभि. ४३३; त्रिर.
३३४; विचि. ३७८ तावदेव (वा स स); कवि. ४०१;
दवि. ३६३; १७८ उच्यते; सस्य. १५४ चण्डाल (चण्डाल);
विचि. ३७८; २ (सं०).

प्रतीयते । अस्ति तत्र मुख्ये, इहासंभव इति चेत्सासंभव-
मात्रनिबन्धना गौणी प्रतीतिः । किं तर्हि ? संबन्धमप्यम-
पेक्ष्य भवेदुपनयनशब्दो विवाहे गौणः । ब्रात्यशब्दस्तु
गौण इति को हेतुः । गौणत्वेऽपि विवाहाभावनिबन्धन
इति दुरुपपादम् । ब्रात्यजाऽपि काकाज्जातः काकः
श्येनाज्जातः श्येन इति ब्रात्येति शङ्क्यते । बहुसंबन्ध-
प्रत्यासक्त्या हि तत्र रूपातिदेशप्रतिपत्तिः । ब्रात्यभार्या
तु सत्यपि संबन्धे न ब्रात्यशब्देन शक्याभिधातुं,
सोऽयमित्यभिसंबन्धे हि पुंयोगादाख्यायामिति तथा
मवितव्यं, तावतश्चायं भेदविवक्षायां तद्धितेनेति ।
तस्माद्यदि गौणो ब्रात्यशब्दो ग्रहीतव्यस्तज्ज्जाताः
प्रत्येयाः । अथ शब्दार्थे, ब्रातमर्हतीति । विवाहभ्रष्ट
तु न मुख्या न गौणीति । न च विवाहकालः स्त्रीणां
नियतो यत्कालाद्ब्रष्टा ब्रात्याः स्युः, यदपि प्रगृतोर्ध्विवह्नाः
तदपि स्वयंवरश्च ऋतुमत्याः, विना तत् परेणाम्यनुज्ञात-
मेव काममामरणं तिष्ठेदृष्टे कन्या इति । मेधा.

(२) परस्त्रीगमनदोषेण पुंसो दण्डितस्य पुनः
संवत्सरेऽतीते तस्यामेवाभिशास्तस्य तस्य यथोपदेशस्य
द्विगुणो दण्डः कर्तव्यः ब्रात्यागमने दण्डः कल्पते । इह
चाण्डाल्या सह निर्देशात् 'सहस्रं त्वन्यजस्त्रियमि' इति
चाण्डालीगमनतुल्य एव, स पुनः संवत्सरेऽतीति तामेव
ब्रात्यां गच्छतो द्विगुणो दण्डः कर्तव्य इति । चाण्डाली-
गमने दण्डः 'सहस्रं त्वन्यजस्त्रियमि' ति चाण्डाली
संवत्सरेऽतीति तामेव चाण्डालीं पुनर्गच्छति तदा
द्विगुणः कर्तव्यः ।

गोर.

(३) वस्तुतो दुष्टस्य लोकैरभिशास्तस्य संवत्सरपर्यन्तं
तच्छोधनमकुर्वतस्तद्दोषार्हदण्डाद्द्विगुणो दमः । ब्रात्यश्च
यदिदुपनयनस्थानीयविवाहकालेऽपरिणीतया कन्यया
प्रवृत्तरेजसा सकृत्संयोगे तेन ब्रात्यया सकृत्संबन्धमात्रेण
तज्जातीयगमनदण्डाद्द्विगुणो दण्ड इत्यपेक्षितम् । न तु
संवत्सराभिशास्तस्येत्यत्राप्यन्वयः । प्रायश्चित्तं तु पृथगे-
वाचरणीयम् । एवं चाण्डाल्यापि संवासे तावदेवेति
श्रावान् ब्रात्यया सह संवासे सर्वास्त्रियतो द्विगुणीयत्वे
दण्डस्तावदेव दण्डः । प्रायश्चित्तं त्वन्यदेवेत्यर्थः । मवि.

मच. गोरकव । मच. यविक ।
वि. १ त पव. २ (इति०).

(४) परस्त्रीगमनेन दुष्टस्य पुंसो दण्डितस्य च संवत्सरतिक्रमेणाभिज्ञस्तस्य पूर्वदण्डाद्द्विगुणो दमः कार्यः । तथा ब्राह्मणायामने यो दण्डः परिकल्पितः चाण्डाल्या सह निर्देशाच्चाण्डालीगमनरूपः, तथा चाण्डालीगमने यो दण्डः 'सहस्रं त्वन्यजस्त्रियम्' इति । संवत्सरे त्वतीति यदि तामेव ब्राह्मणायाम् । तामैव चाण्डालीं पुनर्गच्छति तदा द्विगुणः । कर्तव्यः । एतत्पूर्वस्यैवोदाहरणद्वयं ब्राह्मणायामनेऽपि, चाण्डालीगमनदण्डप्रदर्शनार्थम् । सर्वस्यैव तु पूर्वाभिज्ञस्तदण्डितस्य संवत्सरतिक्रमे पुनस्तामेव गच्छतः पूर्वसाद्द्विगुणो दण्डो बोद्धव्यः । ममु.

(५) संवत्सराभिज्ञस्तस्येति यत्राभिगमे यो दण्ड उक्तः, संवत्सरव्यापकश्चेत् तन्मूलो दण्डो द्विगुणो ग्राह्यः । एवञ्च समयाधिक्यमादायैव तदनुसारेणेति परमार्थः । तथा 'ब्राह्मणायामे सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु । ब्राह्मणः धर्मश्रद्धाचारा 'अवसन्नकर्मधर्मा च' ब्राह्मणेति हारीतोक्तेः । हस्त्युधस्तु ब्राह्मणऽतिक्रान्तविवाहकालं कन्येत्याह । विर. ३९४

(६) आदौ परस्त्रीगमनदोषेण दुष्टस्य संवत्सरोपरि तस्यामिवाऽभिज्ञस्तस्य प्रथमदमाद्द्विगुणदमः । ब्राह्मणेत्यादि । ब्राह्मणायामे । ब्राह्मणश्च भ्रष्टधर्माचारः । 'अवसन्नकर्मधर्माचारो ब्राह्मणः' इति हारीतवचनात् । 'ब्राह्मणः अतिक्रान्तविवाहकालं कन्या' इति हस्त्युधः । ब्राह्मणायामने चाण्डालीगमने च दमः सहस्रपणरूपः, स एव पुनर्ममने द्विगुणः कार्यः । तेन सर्वत्रैव सजातीयव्यभिचारे सत्यभ्यासे द्वितीये प्रथमदण्डद्वैगुण्यमित्यर्थः । विचि. १७९

(७) यत्राभिगमे यो दण्ड उक्तः संवत्सरव्यापके तस्मिन् द्विगुणो ग्राह्यः । एतच्च समयाधिक्यमादायै- तदनुसारेणाधिको दण्ड इति परमार्थ इति रत्नाकरः । कल्पतरौ तु व्याख्यातम्— संवत्सरमनेनोपमुक्ता परस्त्रीति यस्याभिज्ञापः स' संवत्सराभिज्ञस्तस्य संवत्सरमुपमुक्तायां यो दण्ड उक्तः स द्विगुणः स्यात् । दुष्टस्येति न केवलमभिज्ञस्तस्य किन्तु दुष्टस्य स्वरूपतो दोषमात्र इति । मनुटीकायां तु— परस्त्रीगमनदोषेण दुष्टस्य पुंसो दण्डितस्य संवत्सरतिक्रमे पुनस्तामैवाभिज्ञस्तस्य पूर्वदण्डात् द्विगुणो दण्डः कार्यः इति

व्याख्यातम् । ब्राह्मणायामे भ्रष्टधर्माचारो । 'अनुपपन्नकर्म- धर्माचारः, ब्राह्मणायामे' इति हारीतोक्तेरिति रत्नाकरः । लक्ष्मीधरोऽप्याह ब्राह्मणायामे अत्यन्तदुराचारा, वधवन्धोप- जीविप्रभृतय इति । अतिक्रान्तविवाहकालं कन्येति हस्त्युधः । एतमेव मनुस्मृत्यायां नारायणः । कुल्लूक- मस्तु ब्राह्मणायामे, ब्राह्मणेत्याह । ब्राह्मणायामे चाण्डालीं च गत्वाऽदण्डितस्य वत्सरान्त एव गच्छतः, 'सहस्रं त्वन्यजस्त्रियम्' इति मनुस्मृतौ दण्डो द्विगुणः कार्य इति मनुस्मृत्यैवोदाहरणद्वयम् । तच्च— ब्राह्मणायामने चाण्डालीगमनदण्डप्राप्त्यर्थमिति कुल्लूकमहः । नारायण- स्त्वाह— विवाहकालेऽप्यप्रिणीतयाः कन्यया प्रवृत्तरजसा सकृत् संयोगमात्रेण सजातीयगमनदण्डात् द्विगुणो दण्डो न त्वन्यत्रापि संवत्सराभिज्ञस्तस्येत्यस्यान्यत्र इति । यः स्वरूपतो दुष्टो, वर्षावच्छिन्नपरस्त्रीगमनेनाभिज्ञस्तः सकृदपि ब्राह्मणायामे चाण्डालीमभिगच्छति तस्य वर्षावच्छिन्न- परदारगमनदण्डाद्द्विगुणो दण्ड इति कल्पतरुस्वरसः । तथा— 'मौण्ड्यं प्राणान्तिके दण्डे ब्राह्मणस्य विधीयते । इतिरेषां । तु वर्षानां । दण्डः, प्राणान्तिको भवेत् । यः यत्राभिगमे प्राणान्तिको दण्डः उक्तस्तत्र ब्राह्मणस्य शिरोमुपडनमेव दण्ड इत्यर्थः । वि. १६१-३

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् ।

अगुप्तमङ्गसर्वस्यैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥

(१) मस्य. ८।३७४ [गुप्तमङ्ग (गुप्ते जाङ्ग) Noted by Jha]; मेधा. सर्वस्यैर्गु (सर्वस्वी गु); मिता. २।२८६; अप. २।२८६ अगु...गुप्तं (अगुप्तैकाङ्गसर्वस्वी गुप्ते); मवि. अगु...स्यैर्गु (अगुप्तैकाङ्गसर्वस्वी गु); स्मृच. ३२२ सर्वस्यैर्गु (सर्वस्वी गु); विर. ३९६ अपवत्; पमा. ४६६ मविवत्; रत्न. १३१; विचि. १७९ (=) वसन् (विशन्); दवि. १७२ अगु...गुप्तं (अगुप्तैकाङ्गसर्वस्वी गुप्ते) कल्पतरौ तु 'अगुप्तमङ्गसर्वस्वी गुप्तं सर्वेण हीयते' इति पाठः; सवि. ४७० वसन् (विशेत्) उत्तरार्धे, (गुप्तौ लिङ्गाङ्गसर्वस्वे, अगुप्तौ द्रव्यमान- कम्) हारीतः; व्यप्र. ४०० अपवत्; व्यज. १३६ जातं (जात्यं) वसन् (विशेत्) शेषं अपवत्; व्यम. १०६ समङ्गसर्व- स्यैर्गु (सं लिङ्गसर्वस्वं गु); विता. ८०४-५ अगु...गुप्तं (अगुप्तै- काङ्गसर्वस्वं गुप्ते); बाल. २।२८६ उक्तः; सैतु. २४८ वसन् (विशन्) अगु...गुप्तं (अगुप्तैकाङ्गसर्वस्वी गुप्ते); समु. १५५ गुप्तमगुप्तं (गुप्तमगुप्तां) समङ्गसर्वस्वीर्गु (सं लिङ्ग सर्वस्वी गु).

(१) शूद्र आचाण्डालात्, गुप्तं वर्णं द्वैजातं द्विजातीनां स्त्रियः, आवसन् मैथुनेन गच्छन्, रक्षिता भर्त्रादिभिः, स नियमेन दण्ड्यः । क्रो दण्ड इति चेदगुप्तां चेद्रच्छत्यङ्गसर्वस्वी हीयते । अङ्गं च सर्वस्वं च तद्वान्, केन हीयते ? प्रकृतत्वात्ताभ्यामेव, अन्यस्यानिर्देशाद्विशेषस्यानुपादानात्, अपराधानन्तरमेवाङ्गं, गुप्तं चेद्रच्छति, सर्वेण हीयते, नैकेनाङ्गेन, यावच्छरीरेणाऽपि, हान्युद्देशेनाङ्गच्छेदनसर्वस्वहरणमरणान्युपदिष्टानि भवन्ति, हानिरस्य कर्तव्येत्यर्थः । तथा च गौतमः—‘आर्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः सर्वस्वहरणं च । गुप्तां चेत् ।’
मेधा.

(२) शूद्रो यदि भर्त्रा रक्षितामरक्षितां वा पुनर्गच्छेत्तदा स्त्रीं अरक्षितां गच्छन् लिङ्गच्छेदसर्वस्वापहाराभ्यां योजनीयः । रक्षितां पुनर्गच्छन् शरीरघनहीनः कर्तव्यः । कार्यानुबन्धापेक्षया दण्डस्य गुरुलघुभावः कल्पनीयः ।
* गोरा.

(३) द्वैजातं वर्णं द्विजातित्रयस्य स्त्रियः । अगुप्ते, बाह्यायेकाङ्गकर्तनं सर्वस्वग्रहणं चेत्येकाङ्गसर्वस्वं, तद्वानगुप्तैकाङ्गसर्वस्वी । सर्वेण शरीरेण हीयते वियोज्यते ।
मवि.

(४) गुप्तायां संग्रहे तु सर्वेण लिङ्गेन शरीरेण च हीयते इति ।
* स्मृ. च. ३२२

(५) द्वैजातं वर्णं द्विजस्त्रियमावसन्नभिगच्छन्नगुप्तैकाङ्गसर्वस्वी अगुप्तायामेकाङ्गेन सर्वस्वेन च हीयते । सर्वेण अङ्गेन सर्वस्वेन च ।
विर. ३९६

(६) कल्पतरौ तु—‘अगुप्तमङ्गसर्वस्वी गुप्तं सर्वेण हीयते’ इति पठित्वा अगुप्तमरक्षितं अङ्गसर्वस्वच्छित्तो हीयते । तेन येनाङ्गेनापराध्यते तेन सर्वस्वेन च हीयते इत्यर्थः । रक्षितं तु व्रजन् सर्वेणाङ्गेन हीयते इत्यत्र इति व्याख्यातम् । एतन्मते रक्षिताभिगन्तुः सर्वस्वग्रहणं नास्ति । शूद्रस्वेत्यनुवृत्तौ गौतमः—‘आर्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः सर्वस्वग्रहणं च । गुप्ता चेद्रधोऽधिकः ।’ आर्यस्त्री त्रैवर्णिकस्त्री । एतद्दर्शनात् पूर्ववाक्ये

* पितृ, अप., ममु., पमा., विचि., व्यप्र., व्यम., निता. गोरावत् ।

× शेषं गोरावत् ।

व्य. कां. २३४

एकमङ्गं लिङ्गमेव, सर्वाङ्गच्छेदो वध एव । एकमूलत्वानुरोधात् ।
दवि. १७२

(७) द्वैजातं द्विजातिसंवन्धिनं वर्णमावसन् रक्षा-युक्तां द्विजातिस्त्रियं गच्छन् । अत्र द्विजातिशब्दः क्षत्रिय-वैश्यस्त्रीविषयो ब्राह्मण्या उक्तपूर्वत्वात् । अगुप्ते रक्षारहितद्विजातिस्त्रीगमने एकाङ्गसर्वस्वेन च हीयते । एकाङ्गेन हस्तादिना सर्वस्वेन च हीयते, अगुप्तैकाङ्गोत्यत्र शाकल्यमतेन यकारलोपे कृते छन्दोनुसाराद्यकारलोपस्यासिद्धत्वमनाहत्य वृद्धिविधानं, गुप्ते रक्षितद्विजातिस्त्रीगमने सर्वेणाङ्गेन सर्वस्वेन च हीयते ।
* नन्द.

‘वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात् संवत्सरनिरोधतः । सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हेति ॥

(१) वैश्यस्य सर्वस्वदण्ड उक्तः । इह तु साहचर्यात् सत्यपि द्विजातित्वे न वैश्यस्य समानजातियागमे दण्डोऽयं, किं तर्हि ? ब्राह्मणक्षत्रिययोरेव । एवं क्षत्रियस्य ब्राह्मणीगमने सहस्रं मौण्ड्यं च मूत्रेण, उदकस्थाने गर्दभमूत्रं ग्रहीतव्यम् । अन्ये व्याचक्षते । अन्यस्यानुपादानात् समानजातीय एव संवत्सरनिरोधनेन दण्डाधिक्यं यदि संवत्सरमवरुद्धं करोति ततोऽयं दण्डः । आद्यमेव तु व्याख्यानं न्याय्यम् । न च समहीनोत्तमानां कथं समदण्डत्वमिति वाच्यम् । यत् उदतं ‘सर्वेषामेव वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा’ इति । मेधा.
(२) वैश्यो गुप्तब्राह्मणीगमने संवत्सरवन्धने च स्थाप्यः सर्वस्वं दण्डनीयः । क्षत्रियागमने वैश्यस्य ‘वैश्यश्चेत् क्षत्रियां गुप्तां’ इति वक्ष्यति । क्षत्रियो गुप्तब्राह्मणीगमने सहस्रं दण्डनीयः । शिरोमुण्डनं स्वस्मूत्रेणास्य कार्यम् ।
* गोरा.

(३) संवत्सरनिसेधः संवत्सरं बन्धनागारे तस्य

× भा. च. द्विजातिमदं नन्दवत् । शेषं गोरावत् ।

* ममु., विचि., दवि., मच. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३७५; व्यक. १२६ स्वदण्डः (स्वं दण्ड्यः) घतः (पितः) पू.; स्मृ. च. ३२२ घतः (पितः); विर. ३९१ वैश्यः (वैश्ये) पू. : ३९६ स्मृ. च. च. विचि. १८० (=) सर्वस्वदण्डः (सहस्रं दण्ड्यः); दवि. १३० मूत्रेण (शूद्रस्य); बाल. २।२८६; समु. १५५ स्मृ. च. च.

स्थापनं कृत्वा सर्वस्वं दण्ड्य इत्यर्थः । एतच्च ब्राह्मणी-
तरगुप्तागमने वैश्यस्य । मूत्रेण मुण्डनं नरमूत्रेणाद्रै शिरः
कृत्वा मुण्डनम् । मवि.

(४) निरोधतः कारागृहनिरुद्धः । इच्छन्त्यां ब्राह्मण्यां
वर्तमानयोरयं दण्डः । × नन्द.

ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ ।
वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥

(१) अगुप्ता व्याख्याता । भ्रष्टशीलाऽनाया च ।
तद्रूपेण वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात् । करोतिः प्रकरणाद्दण्डे
वर्तते । दण्डयेदित्यर्थः । पञ्च शतान्यस्येति पञ्चशतः ।
बहुव्रीहिर्मन्वर्थीयः । तथा कर्तव्यं यथा पञ्चशतान्यस्य
भवन्ति । किं यदधिकं तत्तस्यापहर्तव्यमित्यर्थः ? नेति
ऋमः । तथा सति यस्य पञ्च वै शतानि धनं वान्यूनं
तस्य दण्डो न कश्चिदुक्तः स्यात्, कस्तर्ह्यर्थः पञ्चशतं
कुर्यादिति । दण्डाधिकाराद्दण्डं पञ्चशतसंबन्धिनं कुर्यात् ।
एवं सहस्रिणं क्षत्रियमिति । सहस्रमस्यास्ति दण्डो, न
गृहे धनम् । अङ्गसर्वस्वीति व्याख्येयं तथा कर्तव्यं
यथाङ्गं सर्वस्वं च तस्य दण्डो भवति । क्षत्रियस्याधिको
दण्डो, रक्षाधिकृतो रक्षति तत्, पुनः स एवापरार्थ्यति ।
मघा.

(२) अरक्षितां पुनर्ब्राह्मणीं यदि वैश्यक्षत्रियौ गच्छेतां
तदा वैश्यः पञ्चशतं दण्ड्यः । क्षत्रियं पुनः रक्षाधि-
कृतत्वाद्द्वैश्यादधिकदण्डः सहस्रदण्डोपेतः कार्यः । *गोरा.

(३) पञ्चशतं दण्डम् । क्षत्रियं सहस्रिणमिति ।
तस्य रक्षाधिकृतत्वादधिको दण्डः । अन्ये तु पञ्चशतं
पञ्चशतशेषमात्रवित्तम् । सहस्रिणं सहस्रमात्रशेषवित्तमि-
त्याहुः । मवि.

× भाच. यथाश्रुतार्थः । * नन्द. गोराक्त् ।

(१) मस्मृ. ८।३७६ [यद्यगुप्तां तु (यद्यगुप्तायां)
Noted by Jha]; मिता. २।२८६ गच्छेतां (सेवेतां);
अप. २।२८६; स्मृच. ३२२ यद्यगुप्तां तु (तु यदाऽगुप्तां);
विर. ३९६ गच्छे...वौ (सेवेयातामिति स्थितिः) पू.; पमा.
४६५; रत्न. १३१ स्मृचवत्; विचि. १८०; दवि. १६९;
सवि. ४७० स्त्रिणम् (स्रकम्) शेषं मितावत्; वीमि.
२।२८६ मितावत्; व्यप्र. ४०० मितावत्; व्यम. १०६
स्मृचवत्; वित्त. ८०३ मितावत्; सेतु. २६८ विरवत्;
ससु. १५५ स्त्रिणम् (स्रकम्).

(४) पञ्चशतं कुर्यात्पञ्चशतकार्षापणदण्डेन दण्डवे-
दित्यर्थः । स्मृच. ३२२

(५) अरक्षितां तु ब्राह्मणीं यदि वैश्यक्षत्रियौ गच्छ-
तस्तदा वैश्यं पञ्चशतदण्डयुक्तं कुर्यात् । क्षत्रियं पुनः
सहस्रदण्डोपेतम् । वैश्ये चायं पञ्चशतदण्डः शूद्राभ्रमा-
दिना निर्गुणजातिमात्रोपजीविब्राह्मणीगमनविषयः । तदि-
तरब्राह्मणीगमने वैश्यस्यापि सहस्रं दण्ड एव । + मसु.

(६) अगुप्ताविषयकमाह— ब्राह्मणीमिति । पञ्च-
शतं पञ्चशतानि दण्डनीयत्वेनास्य सन्तीति तादृशं वैश्यं
कुर्यादेवं क्षत्रियं सहस्रिणम् । आदौ क्षत्रियमुक्तामन्यथा
न वैश्यस्य दण्डलघुता बहुपुंभोग्यत्वेन प्रायश्चित्तलघु-
त्वादतो गच्छेतामिति साहित्यमुक्तेम् । वैश्यं सहस्रिण-
मिति मेधातिथिः । शूद्राभ्रमादिति पञ्चशतमिति
कुल्लुकः । धनदण्डमात्रमत्र । मच.

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्त्रया सह ।

विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ॥

(१) तावेव क्षत्रियवैश्यौ गुप्तया ब्राह्मण्या विप्लुतौ
कृतमैथुनौ मैथुनप्रवृत्तावेव विप्राशूद्रवद्दण्ड्यौ 'गुप्ते
सर्वेण हीयते' इति । दग्धव्यौ वा कटाग्निना वाशब्दो
वधप्रकारविकल्पे, वधविकल्पे न । न हि शूद्रस्य गुप्ते
वधादन्यो दण्ड आम्नातः । मेधा.

(२) तावेव द्वावपि क्षत्रियवैश्यौ रक्षितया ब्राह्मण्या
सह कृतमैथुनौ शूद्रवत् 'गुप्ते सर्वेण हीयते' इति दण्ड्यौ ।
कटाग्निना वा सर्वथा दग्धव्याविति चात्यन्तश्रोत्रियदार-
गुणवद्ब्राह्मणीविषयं दण्डगुरुत्वात् । 'वैश्यः सर्वस्वदण्ड्यः
स्यात् सहस्रं क्षत्रियस्तथा' इत्युक्तत्वात् । *गोरा.

(३) शूद्रवद्दण्ड्यौ एकाङ्गच्छेदसर्वस्वग्रहणाभ्याम् ।
कटाग्निना शवाग्निना । × मवि.

+ विचि. मसुवत् । * मसु., विचि., दवि. गोराक्त् ।
× भाच. मविवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३७७; मिता. २।२८६ तु (हि); अप.
२।२८६; स्मृच. ३२२; विर. ३९६ विप्लुतौ (गुप्तां चेत)
ण्ड्यौ (ण्ड्यो) व्यौ (व्यो) उक्त.; पमा. ४६५; रत्न.
१३१ मितावत्; विचि. १८० (=) तु (च) वा (तु);
दवि. १६९; वीमि. २।२८६ मितावत्; व्यप्र. ४००
मितावत्; व्यम. १०६ मितावत्; वित्त. ८०३ मितावत्;
सेतु. २६८ विरवत्, उक्त.; ससु. १५५.

(४) शूद्रवद्दण्डौ लिङ्गेन धनेन शरीरेण हीनौ कार्यावित्यर्थः । स्मृच. ३२२

(५) गुतायां तु तस्यां समेत्य गमने शूद्रवद्दण्डेन विकल्पमाह— उभावपीति । विखलितौ कृतमैथुनौ । शूद्रवच्छरीरसर्वस्वं वैश्यस्य क्षत्रियस्याङ्गसर्वस्वमिति भेदः । अगुणवद्ब्राह्मणीविषयको दण्डः, दाहस्तु गुणवद्ब्राह्मणीविषयः । कटाग्निना शरपत्रेण । तत्रापि 'लोहित-दग्धैः संवेष्ट्य क्षत्रियः, वैश्यस्तु शरपत्रैरिति वसिष्ठोक्तेः ।

मच.

भर्तारं विलङ्घ्य अन्यपुरुषगामिन्याः स्त्रियाः तल्लग्नपुरुषस्य च दण्डः

भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ।

तां श्वभिः खादयेद्गजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥

(१) लङ्घनं भर्तारमतिक्रम्यान्यत्र पुरुषे गमनं, तच्चेत् स्त्री करोति दपेण—बहवो मे ज्ञातयो बलिनो द्रविणसंपन्नाः, स्त्रीगुणो रूपसौभाग्यातिशयसंपत्, किमनेन स्त्रीरूपेणेत्येवं—दपेण । तां श्वभिः खादयेद्यावन्मृता । संस्थानं देशः । बहवः संस्थिता यत्र जनाश्चत्वरदौ । मेघा.

(२) या स्त्री बलवदाढ्यपित्रादिबान्धवदपेण रू-
नैदग्ध्याद्गुणगणगर्विता पूर्वं च भर्तारं पुरुषान्तरकरणेन उल्लङ्घयेत् तां राजा बहुजनाकीर्णं प्रदेशे श्वभिर्भक्षयेत् ।
× गोरा.

(३) लङ्घयेदन्यपुरुषगमनेन पित्रादिज्ञातिदर्पिता स्त्रीणां गुणैश्च दर्पिता स्त्री । बलेति क्वचित्पाठः, तत्रापि बलं गुण एव । संस्थाने सभायां, बहुसंस्थिते बहुभिरधि-
ष्ठितायाम् । मवि.

(४) स्त्रीप्रसङ्गेन तस्याः प्रकारान्तरेण दण्डमाह—

× मसु., विर., विचि. गोसवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३७१; व्यक. १२७ स्त्री ज्ञाति (ज्ञातिस्त्री); मवि. 'गुण' इत्यत्र 'बल' इति पाठः; स्मृच. ३२३ व्यकवत्; विर. ३९९ व्यकवत्; विचि. १७८ (=) गुण (बल); स्मृचि. २८ विचिवत्; दवि. १७४ व्यकवत्; सेतु. २७३ विचिवत्; मसु. १५५ स्त्री ज्ञाति (ज्ञातिस्त्री); विच्य. ५४ स्त्री ज्ञातिगुण (स्त्री पित्रादिबल) न्यरदः

१ पाग.

भर्तारमिति । भर्तारं लङ्घयेत् रतिविशेषलोभेन त्यजे-
न्नाशयेद्वा । ननु तत्यागे जीवनं कुत इत्यत्राह । ज्ञातिः
सत्कुलप्रचुरधनादियुक्तपित्रादिः, गुणः सौन्दर्यं पुंजो-
षणादि ताभ्यां गर्विता दर्शिता । तां श्वभिरेव खादयेत् ।
संस्थाने संस्थाप्यते मार्यतेऽत्रेति वधस्थले बहुसंस्थिते
बहुजनाकीर्णे तां दृष्ट्वा यथाऽन्याः न कुर्युरिति भावः ।
मच.

(५) अथ स्त्रीणां व्यभिचारे दण्डमाह—भर्तारं
लङ्घयेदिति । लङ्घयेद्व्यभिचरेत्, ज्ञातिगुणदर्पिता
ज्ञातिगुणेन पित्रादिसकाशाह्लब्धस्त्रीधनादिगौरवेण,
स्त्रीगुणेन सौभाग्यसौन्दर्यादिना च गर्विता बहुसंस्थिते
बहुभिर्जनैर्वृते, संस्थाने वध्यघातस्थाने अथवा बहुभिः
पुरुषैरारूढं ऊरुमूलप्रदेशे । नन्द.

पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।

अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥

(१) योऽसौ पत्न्या जारः स आयसे लोहशयने
तप्तेऽग्निसमे कृते दाहयितव्यः । तत्र च शयनस्थितस्य
काष्ठानि वध्यघातिनोऽभ्यादध्युरपरि क्षिपेयुः ।
यावत्काष्ठप्रहारैरग्निज्वालामिः शयनतापेन च मृतः ।
मेघा.

(२) तं दर्पिताजारं पुरुषं दाहयेदिति । तं पाप-
कारिणं पुरुषं अयोमये शयने अग्निज्वलिते राजा दाह-
येत् । काष्ठानि निक्षिपेयुः यावदसौ पापकृद्दग्धः स्यात् ।
* गोरा.

(३) तस्य उपपतेर्दण्डमाह— पुमांसमिति । पापं
पापिनमिति वक्तव्ये अत्यन्तपापख्यापनार्थम् । शयने
अधोनिवेशनसाम्यात्तप्ते प्रज्वलिते । यथाऽर्धदग्धो न
पलायते तथा कुर्यादित्याह— अभ्यादध्युरिति । तस्माद्-
हेत् अब्राह्मणं चेत् । ब्राह्मणं चेद्विवासयेदेव 'न जातु

* मसु., विर., विचि., दवि. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३७२; गोरा. पुमांसं (पुरुषं); अप.
२।२८६ पुमांसं दाह (पुमान्संदाह) दध्यु (दद्यु); व्यक.
१२६; विर. ३९१ पुमांसं दाह (पुसां संदाह) पू. :
३९२ तत्र (यत्र) उक्त. ; विचि. १७८ (=) दध्यु (दद्यु);
स्मृचि. २८; दवि. १६६ पू. : १७५ अभ्यादध्यु (अस्या
दद्यु); मसु. १५५ विचिवत्.

ब्राह्मणं हन्यादि'ति उदर्कनिषेधात् । मच.

(४) ब्राह्मण्याः शूद्रगमनेऽयं दण्डः ब्राह्मण्यां दूषयितुः शूद्रस्य दण्डमाह— पुमांसं दाहयेदिति । पुमांसं शूद्रं दाहयेद्दहेत भस्मीक्रियेत । नन्द.

(५) काष्ठानि आच्येन अभ्यादभ्युः अवसिञ्चेत्, तत्र दहेत पापकृत् । भाच.

कामाभिपातिनी या तु नरं स्वयमुपव्रजेत् ।

राज्ञा दास्ये नियोज्या सा कृत्वा तद्दोषघोषणम् ॥

सवर्णासवर्णादिङ्घने कन्यादूषणे दण्डविधिः

'योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ।

सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ॥

(१) प्रासङ्गिकमिदम् । तुल्यः समानजातीयः । सोऽनिच्छन्तीं कुमारीं दूषयेत्कौमार्यादपन्यावयेत्स्त्रीपुरुषसंभोगेन सद्यस्तस्मिन्नेवाहन्यविलम्बं हन्तव्यः । सकामाया दूषणं नास्ति, कुतो वधप्राप्तिः? यच्चात्र भविष्यति तद्वक्ष्यामः । यद्यपि तुल्यवध इत्येवात्र श्रुतं, वधेऽपि जाल्यपेक्षायामवश्यम्भाविन्यां प्रत्यासत्त्या संबध्यते ।

मेघा.

(२) यस्तुल्यजातीयोऽनिच्छन्तीं कन्यां दूषयति गच्छति स तत्क्षणादेव ब्राह्मणवर्जं लिङ्गच्छेदादिकं वधमर्हति । सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयात् ।

* गौरा.

(३) दूषयेत् मैथुनेन । एतच्च सजातित्वेऽपि । तुल्यः सजातीयः न वधं प्राप्नुयाद्दण्डमात्रं तु प्राप्नुयादेव ।

मवि.

कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ।

जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे ॥

* ममु., विर., मच. गौरावत् ।

(१) मस्सु. ८।३५८ इत्यस्योपरिष्ठात् प्रक्षिप्तश्लोकोऽयम् ।

(२) मस्सु. ८।३६४; गौरा. स सद्यो (समानां); मिता. २।२८८; अष. २।२८८; व्यक. १२७; विर. ४०१; पमा. ४७१; विचि. १७५-६; स्मृचि. २७; दवि. १८३; नन्द. स सद्यो (सवर्णां); व्यग्र. ४०३; व्यउ. १३८; विता. ८१७; सेतु. २७४; समु. १५६ प्रामुयान्नरः (आप्तुमर्हति); विव्य. ५४ स्तुल्यो (स्तन्यो).

(३) मस्सु. ८।३६५; मिता. २।२९० पू.; अप.

(१) जातिधनशीलविद्यानामन्यतमेनापि पितृकुल्य-
दुत्कृष्टं भजन्तीं प्रवर्तितमैथुनां न किञ्चिद्दण्डयेत् ।
कन्यायाः स्वातन्त्र्याभावात्तद्रक्षाधिकृतानां पित्रादीनां
दण्डे प्राप्ते प्रतिषेधः । जघन्यं जाल्यादिभिर्हीनं सेवमानां
मैथुनीयानुकूलयन्तीं संयतां निवृत्तक्रीडनविहारां कञ्चुकि-
भिरधिष्ठितां पितृगृह एव वासयेद्यावन्निवृत्ताभिलाषा
संबाता । अथ हीनजातीये निवृत्तप्रीतिविशेषा तदा
आऽन्योच्छ्वासात्संयतैव तिष्ठेत् । मेघा.

(२) उत्कृष्टं पुरुषं कन्यां सेवमानां न किञ्चिदपि
दण्डं राजा दापयेत् । हीनजातिं पुनः सेवमानां रक्षितां
पितृगृहे स्थापयेत् यावदनिवृत्ताभिलाषा स्यात्, वृत्त-
हीनजातिसंप्रयोगाद्यावज्जीवं स्थापयेत् । * गौरा.

(३) न दापयेत् कन्यां पुरुषं च । संयतां बद्धाम् ।
मवि.

(४) उत्कृष्टं उत्तमं विप्रं पुरुषं भजन्तीं कन्यां
किञ्चिद्दण्डमपि न दापयेत् । जघन्यं शूद्रं सेवमानां
कन्यां संयतां अवरुद्धां गृहे वासयेत् । भाच.

उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ।

शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि X।

(१) अकामाया दूषणे ब्राह्मणवर्जमविशेषेण हीनो-
त्तमानां वध एव दण्ड इत्युक्तम् । सकामाया दूषणे
त्विदमाहुः । उत्तमां रूपयौवनजात्यादिभिः । जघन्योऽ-

* ममु., मच., नन्द. गौरावत् ।

X मिता. व्याख्यानं 'दूषणे तु करच्छेद' इति याज्ञवल्क्यवचने
द्रष्टव्यम् । पमा., सवि., व्यग्र. मितावत् ।

२।२८८; व्यक. १२७; विर. ४०४; विचि. १७७
नारदः; स्मृचि. २७ न किञ्चिदपि (किञ्चिद्दण्डं न) सेव
(सेव्य); दवि. १८४; सेतु. २७५-६ नारदः; समु.
१५६; विव्य. ५४ नारदः.

(१) मस्सु. ८।३६६; अपु. २२७।४१ नस्तु (नः स्त्री)
पू.; गौरा. दद्यात् (दाप्यः); मिता. २।२८८; अष.
२।२८८; व्यक. १२७; विर. ४०२ समा...यदि (समा-
गच्छेत्समामपि); पमा. ४७१; विचि. १७६ (=) मां
सेव (मां भज) समामिच्छे (सम इच्छे); स्मृचि. २७ सेव
(सेव्य) पू.; दवि. १८१ पू., १८३ उक्त.; सवि. ४७२ पू.;
१ नायोत्कल.

त्यन्तनिकृष्टो नातिसाम्येऽपि गुणैर्वध्यः । समां तु गच्छन् सकामां स शुल्कमासुरविवाह इव पित्रे दद्यात् । न चेदिच्छति पिता तदा राज्ञे दण्डं तावन्तम् । ननु च गान्धर्वोऽयं विवाहः 'इच्छयाऽन्योन्यसंयोग' इति, तत्र न युक्तो दण्डः । केनोक्तं गान्धर्वे नास्ति दण्डः । अत एव नायं सतीधर्मः । न चायं विवाहः, अग्नि-संस्काराभावात् । यदपि शाकुन्तले व्यासवचनम्— 'अमन्त्रकमनग्निकमिति तद्दुष्यन्तेन कामपीडितेनैवं कृतं, न चेच्छासंयोगमात्रं विवाहः, स्वीकरणोपायभेदा-दग्नौ विवाहाः, न पुनर्विवाहभेदात्, वृत्तवरणं तत्र पुनः कर्तव्यमेवमिति ।

अथवा ऋतुदर्शनोत्तरकालं गान्धर्वः । प्रागृतोः शुल्को दण्डो वा । अथ कन्यायाः का प्रतिपत्तिः । तस्मा एव देया निवृत्ताभिलाषा चेत्काममन्यत्र प्रति-पाद्या । शुल्कग्रहणं चात्रापि सकृदुपभोगनिष्कृत्यर्थम-स्त्येव । वरश्चेन्निवृत्ताभिलाषो हठाद्ग्राहयितव्यः । मेधा.

(२) उत्कृष्टजातीयां कन्यां इच्छन्तीमनिच्छन्तीं वा हीनजातिर्गच्छन् जात्यपेक्षया अङ्गच्छेदमारणात्मकं वधमर्हति । समानजातीयां पुनरिच्छन्तीं गच्छन् यदि पिता इच्छति तदा पितुः शुल्कमनुरूपमासुरवहद्यान्न तु दण्ड्यः, अथ पिता नेच्छति तदा राज्ञे शुल्कपरिमाणं द्वाप्यः ।

#गोरा.

(३) उत्तमां स्वोत्तमजातिं कन्याम् । शुल्कं पित्रे मूल्यं दद्यात् । अनुमन्यते यदि तस्यै दातुमिच्छेत् अनिच्छया त्वन्यस्यै कन्यां दद्यात् ।

मवि.

(४) उत्तमामिच्छन्तीं, समां सजातीयाम् । शुल्कं उभयसंप्रतिपन्नद्रव्यमासुरविवाहवत् ।

विर. ४०२

(५) पुंकर्तृके त्वाह— उत्तमामिति । उत्तमां उत्कृष्ट-जातिं जघन्यो जातितो न्यूनः शूद्रो वधमङ्गच्छेदन-मारणादिकम् । क्षत्रियादिजातिः समानजातीयां सेवमानः शुल्कं दद्यात् । शुल्कदाने पितुरिच्छैव कारणमित्याह—

* मसु., विचि., नन्द., माच. गोरावत् ।

मच. समा (स्वार्थ); व्यग्र. ४०३; व्यउ. १३७ पू., १३८ उक्त.; विता. ८१७; सेतु. २७४ मां सेव (मां भज) समामिच्छे (संप्रयच्छे); समु. १५६; विव्य. ५४ मां सेव (मां भज).

इच्छेदिति । स्वार्थं कन्यार्थं वा । जघन्यां गृह्णीयादेव पितुरिच्छया । य इत्यादिश्लोकत्रये एतस्योत्कृष्टराग्ये द्रष्टव्यः । अन्यथा तत्कर्मणो रागं विनाऽनुपपत्तेः । मच.

(६) तेन सकामाया दूषणे न तस्या एव दानं अकामाया दूषणे वरस्य वधः पुनर्विवाहश्चेत्यर्थः । वधश्च ब्राह्मणभिन्नस्यैव 'न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्ववस्थितम्' इति मनुक्तेः । तस्य तु सर्वस्व-हरणादि । पुनर्विवाहाभावे कथं मनुर्वरस्य वधं ब्रूयात् ।

विता. ८१७

अभिपह्य नु यः कन्यां कुर्याद्दूषेण मानवः ।

तस्याशु कर्त्ये अङ्गुल्यौ दण्डं चार्हति षट्शतम् #॥

(१) यद्यपि सकामा कन्या, पित्रादयस्तु तस्याः संनिहिताः ताननिच्छतोऽभिषह्याभिभूय दूषेण बलेन 'कः किं कर्तुं मे शक्तः', कन्यानुरागमात्राश्रितः कन्यां कुर्यात् विकुर्यात् दूषयेत् । अनेकार्थः करोतिः । तस्याशु कर्त्याः छेत्तव्याः अर्धाङ्गुलयः, षट्शतानि वा दण्ड्यः । अन्ये तु योऽकामां दूषयेदित्यस्यैव वधार्थस्योपसंहारोऽ-यम् । ताडनात्प्रभृति मारणं यावद्दधार्थः, तत्र समां निकृष्टजातीयां च दूषयन्न मार्यतेऽपि त्वङ्गुली व्यस्व छिद्येत ।

मेधा.

(२) मनुष्यः प्रसह्य हठात् अहङ्कारेण समानो

* मिताक्षरान्याख्यानं 'दूषणे तु करच्छेद' इति याव-वक्ष्यवचने द्रष्टव्यम् । दण्डविवेके मिताक्षरान्याख्यानं सर्व-नारायणव्याख्यानं च समुद्रतम् । पमा., व्यप्र., विता. मितावत् ।

(१) मसु. ८१३६७ [कर्त्ये अङ्गुल्यौ (कर्त्ये अङ्गुल्यः) चार्हति (वार्हति) Noted by Jha]; मिता. २१२८८ (ख) अभि (अवि); अप. २१२८८; व्यक. १२७ षट् (षज्य) कर्त्ये (कर्त्ये); मवि. कर्त्ये (कर्त्ये); विर. ४०३ मविवत्; पमा. ४७०; विचि. १७६ (=) षट् (सह्य) कर्त्ये अ (कर्तेद); व्यनि. ४०२ तस्याशु... ल्यौ (छेत्तव्ये अङ्गुली तस्य); दवि. १८२ अङ्गु... शतम् (चाङ्गुल्यौ दण्डः षट्शतमर्हति); मच. षट् (षज्य) इति पाठः; वीमि. २१२८६; व्यप्र. ४०३; व्यउ. १३७ अग्नि-षट्शतम् (अगुष्ठां खलु) कर्त्ये अ (कर्तेद); विता. ८१६ षट्शतम् (तत्समम्); सेतु. २७५ कर्त्ये अ (कर्तेद); समु. १५६ अभिषह्य (अविषह्यां) दूषेण (दूषेणेण) तस्य... ल्यौ (छेत्तव्ये अङ्गुली तस्य).

समानजातीयां गमनवर्जं अङ्गुलिप्रक्षेपमात्रेणैव नाशये-
चस्य क्षिप्रमेवाङ्गुलिद्वयं कर्तनीयं दण्डं षट्शतमसौ
दापनीयः । * गोरा.

(३) अभिषह्य प्रसह्य, कन्यां क्षतयोनित्वेन दुष्टां
कुर्यादित्यर्थः । तस्याविलम्बेनाङ्गुल्यौ कन्यादूषणहेतुभूते
कर्त्तव्ये छेद्ये । अप. २।२८८

(४) अभिषह्य प्रसह्य कन्यां कुर्यात् योनावङ्गुलि-
प्रक्षेपेण विवृतयोनिं कुर्यात् । कल्प्ये कर्त्तव्ये । एतच्चाधम-
जातिपुरुषविषयम् । उत्तमसमयोरह--दण्डमिति । चकारो
वाकारार्थे । एतच्च कन्यायाश्चाकामत्वे । मवि.

(५) अभिषह्य अभिभूय, कुर्यात् दूषयेत्, कल्प्ये
छेद्ये । विर. ४०३

(६) ऋते मैथुनं कन्यादूषकस्य अङ्गुलिच्छेदरूपं
दण्डमाह—अभिषज्येति । अभिषज्य प्रसह्य कन्यामात्रं
धनादेर्दर्पादङ्गुलिप्रवेशादिना विरोधिलक्षणया तामेव
कन्यां क्षतयोनिं कुर्यादित्यर्थः । कन्यां कुर्याद्विकुर्यादिति
मेधातिथिः । अङ्गुल्यौ तर्जन्यङ्गुष्ठौ । मच.

सकामां दूषयंस्तुल्यो नाङ्गुलिच्छेदमाप्नुयात् ।
द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसङ्गविनिवृत्तये ॥

(१) सकामामित्यनुवादः । पूर्वस्यापि सकाम-
मिष्यत्वात् । अभिषह्य करणे पूर्वदण्डोऽप्रकाशं चौर्य-
वद्विशतोऽङ्गुलीच्छेदवर्जितः । अथवा कस्मिंश्चित्पुरुषे

* ममु., विचि. गोरावत् ।

(१) मस्य. ८।३६८ [दूषयंस्तुल्यो (दूषयेद्यस्तु)
Noted by Jha]; मिता. २।२८८ (क) दूषयंस्तुल्यो
(दूषयन् कन्यां) माप्नुयात् (मर्हति), (ख) माप्नुयात्
(मर्हति); अप. २।२८८ लिच्छेदमाप्नुयात् (ली छेदमर्हति);
व्यक. १२७ यंस्तुल्यो (यानस्तु) ङ्गुलि (ङ्गुली); विर.
४०३ दूषयंस्तुल्यो (दूषमाप्नुस्तु); पमा. ४७० माप्नुयात्
(मर्हति); विचि. १७७ (=); व्यनि. ४०२; दवि.
१८४ निरवत्; सवि. ४७२ यंस्तुल्यो (यानस्तु) शेषं पमा-
वत्; वीमि. २।२८६; व्यप्र. ४०३ यंस्तुल्यो (यन्कन्यां)
शेषं पमावत्; व्यउ. १३७ दमं (पणं) शेषं सविवत्; विता.
८१६ व्यप्रवत्; सेतु. २७५; समु. १५६ यंस्तुल्यो
(यन्कन्यां) शेषं अपवत्; विव्य. ५४ यंस्तुल्यो (यंस्त्वन्वो)
शेषं पमावत्.

१ पूर्व द.

अनुरागवती कन्या तेन संयुज्यमाना कन्यात्वनिवृत्तौ
सकामा येन विवृतीक्रियते तस्यायं दण्डः । अथवा
हस्तस्पर्शमात्रमिह दूषणं, प्रार्थनीयायाः कन्याया हस्त-
स्पर्शः, मया स्पृष्टां ज्ञात्वा नान्य एतामर्थयिष्यत्यन्य-
स्मिन्ननुरागिणीं मन्यमानः । मेधा.

(२) समानजातिरिच्छन्तीं कन्यामङ्गुलिमात्रप्रक्षेपेण
नाशयन् अङ्गुलिच्छेदं न प्राप्नुयात् । किन्तु पौनः-
पुन्येन एष प्रसङ्गान्नावर्तते तदर्थं शतद्वयं दण्डं दाप्यः ।

* गोरा.

(३) हीनकन्याविषयमेतत् । विर. ४०३

(४) रागस्य वैचित्र्यात्तथेच्छन्तीं दूषयन् दण्डभागि-
त्याह— सकामामिति । प्रसङ्गविनिवृत्तये पुनःप्रसक्ति-
वारणाय तेनैव तामनुरज्य यः संभोगस्तन्निवृत्तये च
प्रतिलोमजाऽनुलोमजकन्यामात्रे धनदण्डमात्रमङ्गुलि-
प्रक्षेपाद्यैरधिकदूषणाभावात् । मच.

(५) प्रसङ्गविनिवृत्तये इति अतिप्रसङ्गनिवारणार्थ-
मित्यर्थः । संभोगनिवृत्त्यर्थमिति भारुचिः । सवि. ४७२

(६) प्रसङ्गविनिवृत्तयेऽन्यत्र पुनरेवंकरणविनिवर्त-
नाय । नन्द.

कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः ।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश × ॥

(१) बालभावाद्विषादिद्वेषाद्वा कन्यैव कन्यां नाश-

* ममु., विचि., सवि. गोरावत् ।

× मिताक्षराभ्याख्यानं 'दूषणे तु करच्छेद' इति याज्ञवल्क्य-
वचने द्रष्टव्यम् । दण्डविवेके मिताक्षराकुल्लक्षणारायणनन्दनादी-
नामुद्धारः ।

(१) मस्य. ८।३६९; गोरा. द्विगु (त्रिगु) फा (खा);
मिता. २।२८८ स्याद् (तु) पू.; अप. २।२८८ द्विगु
(त्रिगु); व्यक. १२७ कन्यां या (या कन्यां) द्विगु (त्रिगु);
विर. ४०३ तस्याः स्याद् (त्स्यात्तस्या); पमा. ४७०;
विचि. १७७; दवि. १८६ द्विगु (त्रिगु) श्रैवा (श्व प्रा);
सवि. ४७२ कन्यां या (कन्यायाः) स्याद् (तु) पू.;
वीमि. २।२८६ मितावत्; व्यप्र. ४०३ मितावत्, पू.;
विता. ८१७ मितावत्, पू.; बाल. २।२८८ (=) उत्त.;
सेतु. २७६ नारदः; समु. १५६ तो दमः (तं दमम्) द्विगु
(त्रिगु); विव्य. ५४ च्छिफाश्चै (द्वित्वा चै) नारदः;
नन्द. च्छिफा (च्छिफा).

येत्सा द्विशतं दाप्या । शुल्कश्च त्रिगुणः । किं पुनः
शुल्कस्य परिमाणम् ? एषामन्यद्रूपसौन्दर्याद्यपेक्षं
सौभाग्यापेक्षं च । शिफाः रज्जुलताप्रहाराः । मेघाः ।

(२) या कन्यैव कन्यां अमरां अङ्गुलिप्रक्षेपेण
नाशयेत्तस्या द्विशतो दण्डः स्यात् । शुल्कं वाऽसौ कन्या-
पिनुरदद्यात्, शिखाप्रहारांश्च दश प्राप्नुयात् । × गौराः ।

(३) अयमर्थः— या कन्या केनापि हेतुनाऽङ्गुल्या-
दिना कन्यां क्षतयोनिं कुर्यात्सा पणशतद्वयं रात्रे दद्यात् ।
तथा यच्छुल्कं मूल्यं कन्याऽर्हति, तत्रिगुणं तस्यै दूषि-
तायै दत्त्वा दश शिफाश्चाप्नुयात् । रज्जुप्रहारो लता-
प्रहारो वा शिफा । अप. २।२८८

(४) कन्या स्वयमन्यां कन्यां कुर्यात् अङ्गुली-
प्रक्षेपेण । शुल्कं कन्याशुल्कं पित्रे स्पृष्टमैथुनताशङ्कयाऽ-
न्येनापरिणयनात् । शिफा वृक्षजटाः दश दशकृत्वस्ताभि-
स्ताडनं प्राप्नुयात् । मवि.

(५) द्विगुणं द्विशतापेक्षया । विर. ४०४

(६) कुर्यादविप्रहृत्यनुवर्तते । येन शुल्केन तां पिता
दास्यति तत्रिगुणम् । दशशिखाश्चाप्नुयात्तस्याः शिरसि
दशशिखाश्च कारयेत् । शिफा इति वा पाठः । शिफा
जटा । *नन्द.

या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति ।
अङ्गुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्ब्रहनं तथा ॥

(१) स्त्रियां कन्यानां कन्यालिङ्गं नाशयन्त्यां मौण्ड्यं

× ममु., विचि., मच. गौरावत् ।

* भाच. नन्दवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३७० ग., वा (च) [या तु... स्त्री
(कन्यां प्रकुर्यात्सा तु स्त्री) रेव वा छेदं (श्छेदनं चैव)
Noted by Jha]; मिता. २।२८८ (ख) वा (च);
अप. २।२८८ वा (च); व्यक. १२७; विर. ४०३-४ तु
कन्यां (कन्यां वि) सा सद्यो (सद्योऽसौ) वा (च); पमा.
४७०; विचि. १७७ (=) रेव वा (रचयेत्); दवि.
१८६ सा सद्यो (सद्योऽसौ) वा (च) ब्रहनं (ब्रह्मं);
सवि. ४७२ उत्तरार्धे (अङ्गुल्यादेरवच्छेदः कारणोद्ब्रहनं तथा);
चोमि. २।२८६ वा (च); व्यप्र. ४०३ ब्रहनं (ब्रासनं);
च्यड. १३७; विता. ८१७; सेतु. २७६ (=) वा (च);
समु. १५६ तथा (ततः).

केशवपनं दण्डोऽङ्गुलिच्छेदो वा, खरेणोद्ब्रहनं केशच्छेद-
पक्षे । कन्याजात्यादिभेदाभिग्राह्यभेदात् त्रैवर्णिकस्त्रीणां
ब्राह्मणादिक्रमेणैवं दण्डमिच्छन्ति, मुद्राश्च कल्पयन्ति ते
प्रमाणाभावाद्दुपेक्षणीयाः । मेघाः ।

(२) या पुनः स्त्री कन्यां नाशयेत् सा तत्क्षणादेव
शिरोमुण्डनमनुवन्धापेक्षया अङ्गुल्योरेव छेदनमर्हति ।
तथा खरेण राजमार्गं वहनमर्हति इदं चात्र पूर्वार्थ्यां
विकल्पिताभ्यां समन्वितम् । गोस.

(३) स्त्री चात्र कन्याव्यतिरिक्ता वेदितव्या ।
कन्यायाः पूर्वमुक्तत्वात् । अप. २।२८८

(४) स्त्री युवती । मौण्ड्यं ब्राह्मणी । खरेणोद्ब्रहनं
क्षत्रिया । इतरे अङ्गुलीच्छेदम् । *मवि.

(५) या पुनः कन्यामङ्गुलिप्रक्षेपेण स्त्री नाशयेत्सा
तत्क्षणादेव शिरोमुण्डनं, अनुवन्धापेक्षयाऽङ्गुल्योरेव
छेदनं, गर्दभेण च राजमार्गं वहनमर्हति । × ममु.

(६) योषित्कर्तृकेऽपि तस्मिन्दण्डमाह— या त्विति ।
स्त्रीपदमत्र क्लीबोपलक्षकं न्यायस्य तुल्यत्वात् । पूर्वं तु
कन्यापदं गोबलीवर्दन्यायेन दण्डविशेषार्थम् । मौण्ड्यं
शिरोमुण्डनं, विकल्पविच्छेदतारतम्यापेक्षया । अत्रापि
पूर्वोक्ता हेतवोऽधिकं तु द्वेषमात्रम् । मच.

(७) या तु युवती स्त्री कन्यां प्रकुर्यात् कन्यायाः
संभोगं कुर्यात् सा स्त्री सद्यः मौण्ड्यं मुण्डस्य भावः
मौण्ड्यं दण्डं अर्हति । तथा खरेण गर्दभेन उद्ब्रहनं च
पुनः अङ्गुल्योश्छेदनं कर्तनम् । भाच.

साहसादीनां परस्त्रीसंग्रहणान्तानां दण्डनिबन्धनानां

पदानां उपसंहारः

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।
न साहसिकदण्डेनौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥

(१) यस्य राज्ञः पुरे देशे राष्ट्रे स्तेनश्चैरो नास्ति
स शक्रस्येन्द्रस्य लोकं स्थानं भजते स्वर्गं प्राप्नोति ।
नान्यस्त्रीगोऽन्यस्य या स्त्री भार्याऽवरुद्धा पुनर्भूत्वा,
स्त्रीसंग्रहणमभार्याया अप्यसंबन्धिन्याः प्रतिषेधार्थम् ।
दुष्टवाक् त्रिविधस्याक्रोशस्य कर्ता । साहसिक उक्तः ।

* दवि. मविवत् । × विचि. ममुवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३८६ ख., श्रौ (श्रौ); व्यक. १२८;
विर. ४०८; विचि. २६४; दवि. ३३; सेतु. २७९.

दण्डेन हन्ति दण्डपारुष्यकृत् । शक्रलोकभागिति सर्वत्रानु-
षङ्गः । स्तेनादीनां शरीरनिग्रहशेषोऽयमर्थवादः । मेधा.

(२) यस्य राज्ञो राष्ट्रे चौरपारदारिकवाक्पारुष्य-
दण्डपारुष्याग्निदाहादिसाहसकारिणः न सन्ति स राजा
स्वर्गं व्रजेत् । * गौरा.

(३) अत्रान्तरा उच्चावचाननुक्तान् कांश्चिद्राज-
धर्मान् प्रसङ्गादाह—यस्येति । दुष्टवाक् दुष्टपारुष्यकृत् ।
दण्डज्ञो दण्डपारुष्यकृत् । मवि.

(४) राजाऽवश्यं स्तेनादिपञ्चसु दण्डपरो भवेदित्ये-
तच्छक्यमाविष्कुर्वन् आह— यस्येति द्वाभ्याम् । अन्य-
स्त्रीणः पारदारिकः । स शक्रलोकभाक् मृत्वेति शेषः ।
मच.

(५) य एते वाक्पारुष्यदण्डपारुष्यस्तेयसाहसस्त्री-
संग्रहणरूपाः पञ्च दोषा उक्तास्तेषु प्रवर्तमानानां
निग्रहेण राज्ञां फलमाह— यस्य स्तेन इति । यस्य पुरे
स्तेनो नास्ति दण्डभयाद्यस्य विषये चोरो नास्ति ।
दण्डेन हन्तीति दण्डघ्नः दण्डपारुष्यकृत् । पुर इति
राष्ट्रस्याप्युपलक्षणम् । नन्द.

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ।

साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥

(१) साम्राज्यं परप्राणवित्तस्वातन्त्र्यं, सजात्येषु
समानेषु मूर्धनि, राजानः सजात्या अभिप्रेतास्तेषु
मूर्धन्यधितिष्ठति, तस्याज्ञाकराः संभवन्तीत्यर्थः । लोके
च यशस्करः, ख्यातिमुत्पादयति । उभयत्रापि निग्रह एव
कर्ता हेतुत्वात् । जनमारकोऽयं क्रोधन इति नै वदन्त्यपि
तु स्तुवन्ति । मेधा.

(२) एतेषां स्तेनादीनां स्वराष्ट्रे राज्ञो निग्रहः सम-
जातीयेषु मध्ये राजत्वस्य करको लोके च ख्याते-
रुत्पादकः । * गौरा.

(३) साम्राज्यं समीचीनं राज्यम् । सजात्येषु मध्ये ।
मवि.

* मसु. गौरावत् ।

(१) मसु. ८३८७ [सजात्येषु (त्वरज्येषु) Noted
by Jha]; विर. ४०८; विचि. २६४ कृत्सजात्येषु (कृत-
सजात्येषु); सैतु. २८०.

२ समानस्यार्थिनो रा. ३ शयुत्पादयन्ति ।
४ (क).

(४) पञ्चानां स्तेनादीनाम् । विषये राष्ट्रे । स्वजात्येषु
राजसु मध्ये साम्राज्यकृत् एवं कुर्वन् चक्रवर्ती स्यादिति
भावः । यशस्करः लोके स्वानुरूपं यशो धत्ते । मच.

याज्ञवल्क्यः

स्त्रीसंग्रहणस्वरूपम्

स्त्रीसंग्रहणारूपं विवादपदं व्याख्यायते । प्रथम-
साहसादिदण्डप्राप्त्यर्थं त्रेधा तत्स्वरूपं व्यासेन विवृतम्—
'त्रिविधं तत्समाख्यातं प्रथमं मध्यमोत्तमम् । अदेशकाल-
भाषामिर्निर्जने च परस्त्रियाः ॥ कटाक्षावेक्षणं हास्यं
प्रथमं साहसं स्मृतम् । प्रेषणं गन्धमाल्यानां धूपभूषण-
वाससाम् ॥ प्रलोभनं चान्नपानैर्मध्यमं साहसं स्मृतम् ।
सहासनं विविक्तेषु परस्परमुपाश्रयः ॥ केशाकेशिग्रहश्चैव
सम्यक् संग्रहणं स्मृतम् ॥' स्त्रीपुंसयोर्मिथुनीभावः संग्रह-
णम् । मिता.

संग्रहणलक्षणानि, परस्त्रीपुरुषसंभाषायां दण्डविधिः, वर्णभेदेन
संग्रहणे दण्डविधिश्च

पुमान् संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रिया ।

सद्यो वा कामजैश्चिह्नैः प्रतिपत्तौ द्वयोस्तथा ॥

(१) राजपत्न्यभिगमनप्रसङ्गात् परपरिग्रहीतस्त्री-
मात्राश्रयं संग्रहणविधिमाह—पुमानिति । पुंग्रहणं पुंसो
दमातिरेकार्थम् । केशाकेशिग्रहणं यन्त्रारूढग्रहणार्थम् ।
साद्यैर्वा कामजैर्नखदन्तक्षतादिभिश्चिह्नैः, द्वयोरेव वा
संप्रतिपत्तौ । विश्व. २।२८७

(२) संग्रहणज्ञानपूर्वकत्वात्कर्तुर्दण्डविधानं तज्ज्ञा-
नोपायं तावदाह—पुमानिति । संग्रहणे प्रवृत्तः पुमान्
केशाकेश्यादिभिर्लिङ्गैर्ज्ञात्वा ग्रहीतव्यः । परस्परं केश-
ग्रहणपूर्विका क्रीडा केशाकेशि । 'तत्र तेनेदमिति सरूपे'
इति बहुव्रीहौ सति 'इच् कर्मव्यतिहारे' इति समासान्त
इच्प्रत्ययः । अव्ययत्वाच्च लुप्ततृतीयाविभक्तिः । ततश्चा-
यमर्थः । परभार्यया सह केशाकेशिक्रीडनेनाभिनवैः
कररुहदशानादिकृतत्रणैः रागकृतौलिङ्गैर्द्वयोः संप्रतिपत्त्या

(१) यासु. २।२८३; अपु. २५८।६८ स्त्रिया (स्त्रियाः)
पु.; विश्व. २।२८७ स्त्रिया (स्त्रियाः) सद्यो वा (साद्यैर्वा);
मिता. अपुवत्; अप.; व्यक. १२४; विर. ३८१; पमा.
४६३; रत्न. १३२ अपुवत्; नृप्र. २०६; वीमि.; व्यग्र.
३९८; व्यड. १३६ अपुवत्; व्यम. १०८ अपुवत्; विता.
७९८; राकौ. ४८४ अपुवत्; समु. १५३.

वा ज्ञात्वा संग्रहणे प्रवृत्तो ग्रहीतव्यः । परस्त्रीग्रहणं
मिथुक्तावरुद्धादिव्युदासार्थम् । * मिता.

(३) अथ परस्त्रीसंभोगात्मके संग्रहणे निमित्ते
पुरुषस्य ग्राह्यतायां कारणमाह— पुमानिति । संग्रहणे
परस्त्रिया सह मिथुनीभावे निमित्ते दण्डयितुं पुमान्
ग्राह्यः । केन हेतुनेत्यपेक्षित उक्तं— केशाकेशि, परस्त्रिया
सह परस्परकेशग्रहणवत्या क्रीडया पुमान् ग्राह्य
इत्यन्वयः । बहुव्रीहिसमासात्मकं तृतीयान्ता(न्त)-
वृत्तीच्छमासान्तं केशाकेशीत्यव्ययम् । न केवलमयमेव
हेतुः, किन्तु सद्यः संभूतानि परस्परमिथुनीभावामिलाषा-
दुत्पन्नानि दन्तनखक्षतादीनि चिह्नानि सुरत(ता)-
व्यभिचारीणीति, तैरपि हेतुभिर्ग्राह्यः । उक्तहेत्वभावेऽपि
द्वयोः स्त्रीपुंसयोः सिद्धो मिथुनीभाव आवयोरित्येवं-
रूपायां संप्रतिपत्तौ सत्यामपि ग्राह्यः । अप.

(४) तत्रादौ संग्रहणस्य मिथुनीभावस्वरूपज्ञापकमाह—
पुमानिति । केशाकेशि परस्परकेशग्रथननीव्याद्याकर्षणं,
अदेशकाले निर्जननिशीथादौ संभाषा सहावस्थानं च
यथा स्यात्तथा परस्त्रिया संग्रहणे मिथुनीभावे पुरुषो
ग्राह्यः, तन्मैथुनकर्तृत्वेन निश्चयः । सद्य एव कामा-
न्वितैरनखक्षतादिभिश्चिह्नैश्च ग्राह्यः । द्वयोः स्त्रीपुंसयोस्तथा
प्रतिपत्तौ परस्परमैथुनभावयोरित्येवं संप्रतिपत्तौ च
ग्राह्यः । नीवी परिधानग्रन्थिः, स्तनप्रावरणं बन्धनांशुकं,
सक्थिनिरुद्धाः केशाश्च, एषामवमर्शनं यथा स्यात् ।
चकारेण गन्धमाल्यप्रेषणादिसमुच्चयः । एवकारेणाऽन्यथा-
सिद्धिश्चाङ्क्या उक्तस्थलेषु व्यवच्छेदः । +वीमि.

(५) द्वयोरित्यनेनान्यतरेण प्रतिपत्तेऽपि व्यभिचारे
न निश्चयः । व्यम. १०८

नीवीस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनम् ।

अदेशकालसंभाषं सहावस्थानमेव च X ॥

* पमा., विता. मितावत् ।

+ उत्तरश्लोकं संगीत्येदं व्याख्यानं कृतम् । विर., व्यप्र.
वीमिवद्भावः । X वीमि.व्याख्यानं पूर्वश्लोके द्रष्टव्यम् ।

(१) यास्मृ. २।२८४; अपु. २५।६९-७० सक्थि
(सक्थि) मर्श (मर्द); विश्व. २।२८९ सक्थि (नाभि)
मर्श (भाषा); मिता. सहावस्थान (सहैकासन); अप.
सहाव (सहैक); व्यक. १२४ सक्थि... नम् (मूलेकाग्र-
व्य. कां. २३५

(१) अन्यतरानिच्छायां तु पुमान् योषिद्वा— 'नीवी-
स्तनप्रावरणनाभिकेशावमर्शनम् ।' अदेशकालसंभाषं
सहावस्थानमेव च ॥ स्त्री निषिद्धा शतं दण्ड्या कुर्वती
द्विशतं पुमान् । अनिषेधे तयोर्दण्डो यथा संग्रहणे तथा ॥'
नीव्यादिस्पर्शनादेशकालसंभाषणसहावस्थानादि पुंसा
निवारिता स्त्री कुर्वती शतं दण्ड्या । स्त्रिया निवारितः
पुमान् द्विशतं दण्ड्यः । द्वयोरपि त्वन्योन्यमिच्छया संग्र-
हणोक्त एव दण्डः । नीवी रथानापरिवर्तिकादेशः । रहो-
विवक्षया संभाषणमदेशकालसंभाषणम् । स्पष्टमन्यत् ।

विश्व. २।२८९-९०

(२) यः पुनः परदारपरिधानग्रन्थिप्रदेशकुचप्रावरण-
जघनमूर्धरुहादिस्पर्शनं साभिलाष इवाचरति । तथा
अदेशे निर्जने जनताकीर्णे बान्धकाराकुले अकाले संल-
पनं करोति । परभार्यया वा सहैकमञ्जकादौ रिरंसयेवाव-
तिष्ठते यः सोऽपि संग्रहणे प्रवृत्तो ग्राह्यः । एतच्चाशङ्क्य-
मानदोषपुरुषविषयम् । इतरस्य तु न दोषः । यथाह
मनुः— 'यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् । न
दोषं प्राप्नुयात्किञ्चिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥' इति । यः
परस्त्रिया स्पृष्टः क्षमतेऽसावपि ग्राह्य इति तेनैवोक्तम् ।
'स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तथा । परस्परस्या-
नुमते सर्वे संग्रहणं स्मृतम् ॥' इति । यश्च मयेयं
विदग्धाऽसकृद्रमितेति श्लाघया भुजङ्गजनसमक्षं ख्यापय-
त्यसावपि ग्राह्य इति तेनैवोक्तम्— 'दर्पाद्वा यदि वा
मोहाच्छ्लाघया वा स्वयं वदेत् । पूर्वं मयेयं मुक्तेति तच्च
संग्रहणं स्मृतम् ॥' इति । * मिता.

(३) संग्रहणे ग्राह्य इत्यनुवर्तते । यः परस्त्रीणां
नीव्यादिस्पर्शं करोति, यत्र देशे च काले च परस्त्रिया
सह भाषमाणः शिष्टैर्न गर्ह्यते ततोऽन्यो देशः कालश्चा-
देशकालम् । तत्र यः परस्त्रीसंभाषणं कुरुते, यश्चैकत्र

* विर., पमा., रत्न., व्यप्र., व्यउ., विता. मितावत् ।
दर्शनम्); विर. ३८१-२ सक्थि (मूह) मर्श (दर्श);
पमा. ४६३ साषं सहाव (भाषा सहैक); रत्न. १३२ अप-
वत्; नुप्र. २०६ पमावत्; वीमि. अपवत्; व्यप्र. ३९८
अपवत्; व्यउ. १३५ अपवत्; विता. ७९९ सक्थि
(जह्वा) शेषं अपवत्; राकौ. ४८४ अपवत्; समु. १५३
पमावत्.

शयन आसने वा परस्त्रिया सहावतिष्ठते, स पुमान् संग्रहणे ग्राह्यः । नीवी परिधानग्रन्थिः । कुचयोरवरणं स्तनप्रावरणम् । सक्थि जघनम् । अप.

स्त्री निषेधे शतं दद्यात् द्विशतं तु दमं पुमान् । प्रतिषेधे तयोर्दण्डो यथा संग्रहणे तथा * ॥

(१) प्रतिषिद्धयोर्द्वयोः स्त्रीपुंसयोः पुनः संलापादिकरणे दण्डमाह—स्त्रीति । प्रतिषिध्यत इति प्रतिषेधः पतिपित्रादिभिर्भेन सह संभाषणादिकं निषिद्धं तत्र प्रवर्तमाना स्त्री शतपणं दण्डं दद्यात् । पुरुषः पुनरेवं निषिद्धे प्रवर्तमानो द्विशतं दद्यात् । द्वयोस्तु स्त्रीपुंसयोः प्रतिषिद्धे प्रवर्तमानयोः संग्रहणे संभोगे वर्णानुसारेण यो दण्डो वक्ष्यते स एव विज्ञेयः । एतच्च चारणादिभार्याव्यतिरेकेण । 'नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु । सज्जयन्ति हि ते नारीं निगूढाश्चारयन्ति च ॥' इति मनुस्मरणात् ।

×मिता.

(२) उभावपि निवारितौ चेत् परस्परमालपतस्तदा द्वौ प्रत्येकं प्रथमसाहसं दण्ड्यावित्यर्थः । + विचि. १७३

(३) अत्र मानवं वचनमभ्यासविषयं धनिकविषयं वा । याज्ञवल्कीयं त्वनभ्यासनिर्धनविषयमिति प्रतिभाति । + दवि. १५७

(४) स्त्रीपुरुषौ द्वावपि चेत्प्रतिषिद्धौ परस्परमालापादिकं कुरुतः तदा संग्रहणे यथा उत्तमसाहसो दण्डस्तथा तयोर्दण्ड इत्यर्थः । तुद्यब्देन द्वितीयस्य निषेधो व्यवच्छिद्यते ।

+वीमि.

* विश्व. व्याख्यानं पूर्वश्लोके द्रष्टव्यम् ।

× अप., विर., रत्न., व्यप्र., व्यम., विता. मितावत् ।

+ शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२८५; अपु. २५८।७०-७१; विश्व. २।२९० निषेधे...दमं (निषिद्धा शतं दण्ड्या कुर्वती द्विशतं) प्रति (अनि); मिता.; अप.; व्यक. १२५ दद्यात् (दण्ड्या); विर. ३८६ व्यकवत्; रत्न. १३० व्यकवत्; विचि. १७३ व्यकवत्; व्यनि. ३९९; दवि. १५७ व्यकवत्; वीमि. प्रतिषेधे (निषिद्धयोः); व्यप्र. ४०१; व्यम. १०६ व्यकवत्; विता. ८०१ व्यकवत्; सेतु. २६५ व्यकवत्; समु. १५४ व्यकवत्.

संजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः । प्रातिलोम्ये वधः पुंसो नार्याः कर्णादिकर्तनम् ॥

(१) अनुमानकौशलात् प्रत्यक्षोपलम्भनाद्वा स्पष्टीकृते संग्रहणे—'संजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः । प्रातिलोम्ये वधः पुंसां स्त्रीणां नासादिकृन्तनम् ॥' आनुलोम्यादिविशेषे स्मृत्यन्तरानुसासद् धनदण्डवधदण्डयोर्यथाह व्यवस्था कल्पनीया । उदाहरणार्थं चैतदाचार्योक्तमित्यवसेयम् । ऋज्वन्यत् ।

विश्व. २।२८८

(२) तदिदानीं संग्रहणे दण्डमाह—संजातावुत्तम इति । चतुर्णामपि वर्णानां बलात्कारेण सजातीयगुप्तपरादारभिगमने साशीतिपणसहस्रं दण्डनीयः । यदा त्वानुलोम्येन हीनवर्णो स्त्रियमगुप्तमभिगच्छति तदा मध्यमसाहसं दण्डनीयः । यदा पुनः सर्वणामगुप्तमानुलोम्येन गुप्तां वा व्रजति तदा मानवे विशेष उक्तः—'सहस्रं ब्राह्मणे दण्ड्योऽगुप्तां विप्रां बलाद्ब्रजन् । शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः ॥' तथा—'सहस्रं ब्राह्मणे दण्डं दाप्यो मुक्ते तु ते व्रजन् । शूद्रायां क्षत्रियविशोः सहस्रं तु भवेद्दमः ॥' इति । एतच्च मुरुसखिभार्यादिव्यतिरेकेण द्रष्टव्यम् । 'माता मातृष्वसा श्वश्र्मांतुलानी पितृष्वसा । पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी स्नुषा ॥ दुहिताचार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता । राश्री प्रव्रजिता धात्री साध्वी वर्णोत्तमा च या ॥ आसामन्यतमां गच्छन्

(१) यास्मृ. २।२८६; अपु. २५८।६८-९ सजा (स्वजा) पुंसो (पुंसां) णादि (णाव); विश्व. २।२८८ पुंसो...तनम् (पुंसां स्त्रीणां नासादिकृन्तनम्); मिता.; अप.; व्यक. १२५-६ सजा (स्वजा) पुंसो (पुंसां); स्मृच. ३२१; विर. ३९० प्राति (प्रति); पमा. ४६४; रत्न. १३०; विचि. १८३ सजा (स्वजा); व्यनि. ४०० पुंसो (पुंसां) नार्याः कर्णादि (स्त्रीणां नासादि); स्मृचि. २६ विचिवत्; दवि. १६६ उक्त., क्रमधेनाववकर्तनमिति पठितम् : १६७ विचिवत्, पू.; नृप्र. २०७ संजाताडु (अज्ञानाडु) म्ये वधः (म्येऽधमः); सवि. ४६९ संजाताडु (संजातासु); वीमि.; व्यप्र. ३९९; व्यड. १३६ विचिवत्; व्यम. १०६; विता. ८०१ सजा (स्वजा) म्ये तु (म्येऽध); राकौ. ४८४ विचिवत्; सेतु. २६७-८; विव्व. ६५ विचिवत्.

गुरुतल्पग उच्यते । शिश्रस्योक्तर्तनात्तत्र नान्यो दण्डो विधीयते ॥' इति नारदस्मरणात् । प्रातिलोम्ये उत्कृष्टवर्णस्त्रीगमने क्षत्रियादेः पुरुषस्य वधः । एतच्च गुप्ताविषयम् । अन्यत्र तु धनदण्डः—'उभावपि हि तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह । विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कयामिना ॥ ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु सेवेतां वैश्यार्थिवौ । वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥' इति मनुस्मरणात् । शूद्रस्य पुनरगुप्तामुत्कृष्टवर्णीं स्त्रियं ब्रजतो लिङ्गच्छेदनसर्वस्वापहारौ । गुप्तां तु ब्रजतस्तस्य वधसर्वस्वापहारविति तेनैवोक्तम्—'शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् । अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥' इति । नार्याः पुनर्हीनवर्णे ब्रजन्त्याः कर्णयोरादिग्रहणात्सादेश्च कर्तनम् । आनुलोम्येन वा सर्वेण वा ब्रजन्त्याः दण्डः कल्प्यः । अयं च वधाद्युपदेशो राज्ञ एव तस्यैव पालनाधिकारान्न द्विजातिमात्रस्य । तस्य 'ब्राह्मणः परीक्षार्थमपि शस्त्रं नाददीत' इति शस्त्रग्रहणनिषेधात् । यदा तु राज्ञो निवेदनेन कालविलम्बनेन कार्यमितिपाताशङ्का तदा स्वयमेव जारादीन् हन्यात्—'शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुच्यते' । तथा 'नातताश्विन्धे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन । प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥' इति शस्त्रग्रहणाभ्यनुज्ञानाच्च । तथा क्षत्रियवैश्ययोरेन्योन्यस्यभिगमने यथाक्रमं सहस्रपञ्चशतपणात्मकौ दण्डौ वेदितव्यौ । तदाह मनुः—'वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो ब्रजेत् । यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुमौ दण्डमर्हतः ॥' इति । * मित्ता ।

(३) सर्वेषां वर्णानां सजातौ सर्वेण यत्संग्रहणं तत्रोत्तमसाहसो दण्डः । आनुलोम्ये ब्राह्मणादेः क्षत्रियादिस्त्र्यभिगमने तु मध्यमसाहसो दण्डः । गुप्तां बलाद्रच्छत एतत् । यदाह मनुः—'सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते ब्रजन् । शूद्रायां क्षत्रियविशोः साहसो वै भवेद्दमः ॥' ते क्षत्रियावैश्ये । तथा—'अगुप्ते वैश्यराजन्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो ब्रजन् । शतानि पञ्च दाप्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥' प्रातिलोम्ये हीनवर्णाः पुरुष उत्तमवर्णा स्त्री-

त्येवंरूपे संग्रहणे पुंसो वधः । स्त्रियास्तु कर्णकरनासौष्टच्छेदनं कार्यम् । गुप्तायां स्त्रियामेतत् । अप.

(४) स्त्रीपुंसयोः परस्परानुरागजोपगमने तु दण्डमाह याज्ञवल्क्यः— सजाताविति । अत्र नार्या अपि दण्डाभिधानात् अन्योन्यानुरागजोपभोगविषयमिदं वचनमिति गम्यते, गुरुदण्डाभिधानात्, संबन्धिभिः प्रसह्य परिपालितचरितशालिनीविषयमिति च गम्यते । मध्यमो दण्डः चत्वारिंशत्सहितपञ्चशतकार्षापणात्मकः । एवं च पञ्चशताधिकत्वात् अयमपि गुरुदण्डः । 'ऋणं वा यदि वा दण्डः प्रायश्चित्तमथापि वा । यत्र पञ्चशतादिः स्यात्तत्कार्यं गुरु कीर्तितम् ॥' इति स्मरणात् । तेन गुरुत्वान्मध्यमोऽपि पूर्वोक्तगुप्ताविषय एव । कर्णादिकर्तनं तु प्रातिलोम्ये एव, तदनन्तराभिधानात् वधार्धतुल्यत्वाच्च । एवं च सजातावानुलोम्ये च नार्याः पुंसोऽभिहितार्धदण्डः कल्पनीय इति वधार्धतुल्यकर्णादिकर्तनाभिधानादेवावगन्तव्यम् । स्मृच. ३२१

(५) कर्णादीत्यादिशब्दः केशादिपरः । एवञ्च पुंसः कार्योऽधिकार्यामिति बृहस्पतिवाक्येऽपि स्त्रीकर्णादिसहितमेव प्रमापणं द्रष्टव्यम् । विर. ३९०

(६) चतुर्णामपि वर्णानां बलात्कारेण सजातीयगुप्तपरभार्यागमने साशीतिपणसहस्रो दण्डः । यदा त्वानुलोम्येन हीनवर्णगुप्तपरभार्यागमनं तदा मध्यमसाहसो दण्डः । × पमा. ४६४

(७) यत्तूक्तं रत्नाकरकृता बृहस्पतिवाक्येऽपि स्त्रीणां कर्णादिकर्तनसहितमेव प्रमापणमिति, तत्रोत्तमस्त्रिया हीनाभिगमानुमतावभिलाषप्रकाशने वा कर्णच्छेदो न त्वन्यत्राऽपराधाभावादिति प्रतिभाति । *दवि. १६६-७

(८) एतच्चानुरागजसंग्रहणविषयम् । स्त्रिया अपि दण्डाभिधानात् । बलात्कारोपधिकृतयोस्तु स्त्रिया अनुराधित्वेन दण्डाभावात् । अस्मादेव प्रातिलोम्येन गमने पुरुषस्य वधं विधाय स्त्रियास्तदर्थतुल्यकर्णनासादिकर्तनविधानात् सजातीयागमने पुरुषस्य यावुक्तावुत्तममध्यमसाहसौ दण्डौ तदर्धं स्त्रिया दण्ड इति सूचितम् ।

×व्यप्र. ३९९

(* सवि, बीमि, व्यप्र., विता. मित्तावत् ।

× शेषं मित्तावत् । * शेषं मित्तावत् विरवच्च ।

पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्तुषामपि ।
मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा ॥
आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः ।
छित्त्वा लिङ्गं वधस्तस्य सकामायाः स्त्रिया अपि ॥

(१) प्रायश्चित्तातिरेकार्थं तु भेदेनाह—पितृष्वसामित्यादि । अत्र एवशब्दार्थं तु शब्दस्योत्कृष्य योजना, गच्छन् गुरुतल्पग एवेति । एतदुक्तं भवति—युक्तं मन्त्रिभार्यादिषु समत्ववचनं पितृष्वस्त्रादिषु गुरुतल्पग एव, यथाभ्यर्हिते मन्त्रिणि किमयं राजसम इत्युच्यते श्रवमयं राजैवेति । एवञ्च वदना पितृष्वस्त्रादिषु गुरुतल्पान्यूनत्वं तत्समातिरेकश्च दर्शितो भवति । अन्ये तु मुख्यमेव गुरुतल्पं व्याचक्षते । (तदयुक्तं ?) तत्त्वह मातुरनुगदानात् (अयुक्तम्) । स्मृत्यन्तरे च 'ब्रह्महसुरापगुरुतल्पग' इत्युक्त्वा 'मातापितृयोनिबंधाग' इत्युक्तं, 'सुपायां गवि च तत्समोऽवकर इत्येके' इति च । तदसमञ्जसं स्यात्, अतः पूर्वैव व्याख्या ज्यायसी । मातुः सपत्नीति चासवर्णाभिप्रेता इतरासु तु गुरुतल्पसमत्वं मुख्यमेव यतः । स्पष्टमन्यत् । विश्व. ३।२।२७-८

(२) गुरुतल्पातिदेशमाह—पितुरिति । पितृष्वस्त्रादयः प्रसिद्धास्ताः गच्छन् गुरुतल्पगस्तस्य लिङ्गं छित्त्वा राज्ञा वधः कर्तव्यो दण्डार्थं प्रायश्चित्तं च तदेव । चशब्दाद्राज्ञीप्रव्रजितादीनां ग्रहणम् । यथाह नारदः—'माता मातृष्वसा श्वश्रूमातुलानी पितृष्वसा । पितृष्वसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सस्त्री स्तुषा ॥ दुहिताचार्य-

(१) यास्मृ. ३।२।३२; विश्व. ३।२।२७ पूर्वार्धे (पितृष्वसां मातुलानीं स्तुषां मातृष्वसामपि); मिता.; अप.; स्मृच. ३।२.२; विर. ३।२.२ पू.; रत्न. १।३.१; विचि. १।८.४ पू.; व्यनि. ४०० उक्त.; दवि. १।७.९; वीमि.; व्यम. १।०.७; विता. ८०३; सेतु. २।७० पू.; समु. १।५.५.

(२) यास्मृ. ३।२।३३; विश्व. ३।२।२८ याः स्त्रिया अपि (याश्च योषितः); मिता. छित्त्वा लिङ्गं (लिङ्गं छित्त्वा); अप. गच्छंस्तु (गच्छंश्च) छित्त्वा लिङ्गं (लिङ्गं छित्त्वा) अपि (तथा); व्यक. १।२.७ अपि (तथा) उक्त.; स्मृच. ३।२.२ व्यकवत्; विर. ३।२.२ व्यकवत्; ३।२.९ व्यकवत्, उक्त.; रत्न. १।३.१ व्यकवत्; विचि. १।८.४ व्यकवत्; व्यनि. ४०० स्त्रिया अपि (स्त्रियस्तथा); दवि. १।७.९ व्यकवत्; वीमि.; व्यम. १।०.७; विता. ८०३; सेतु. २।७० व्यकवत्; समु. १।५.५ व्यकवत्.

भार्या च सगोत्रा शरणागता । राज्ञी प्रव्रजिता चात्री साध्वी वर्णोत्तमा च वा ॥ आसामन्यतमां गच्छन् गुरुतल्पग उच्यते । शिश्रस्योत्कर्तनात्त्र नान्यो दण्डो विधीयते ॥' इति । राज्ञी राज्यस्य कर्तुर्भार्या, न क्षत्रियस्यैव । तद्गमने प्रायश्चित्तान्तरपदेशात् । धात्री मातृव्यतिरिक्ता स्तन्यदानादिना पोषयित्री । साध्वी व्रतचारिणी । वर्णोत्तमा ब्राह्मणी । अत्र मातृग्रहणं दृष्टान्तार्थम् । अयं च लिङ्गच्छेदवधात्मको दण्डो ब्राह्मणव्यतिरिक्तस्य । 'न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्ववस्थितम् ।' इति तस्य वधानिषेधात् वधस्यैव प्रायश्चित्तरूपत्वात् । अस्य च विषयं गुरुतल्पप्रायश्चित्तप्रकरणे प्रपञ्चयिष्यामः । अत्र स्तुषामगिन्योः पूर्वश्लोकेन गुरुतल्पसमीकृतयोः पुनर्ग्रहणं प्रायश्चित्तविकल्पार्थम् । यदा पुनरेताः स्त्रियः सकामाः सत्य एतानेव पुरुषान् वशीकृत्योपसृजते तदा तासामपि पुरुषवद्वध एव दण्डः प्रायश्चित्तं च । एतानि गुर्वधिकेपादितनयागमनपर्यन्तानि महापातकविदेशविषयाणि सद्यःपतनहेतुत्वात्पातकान्युच्यन्ते । यथाह यमः—'मातृष्वसा मातृसस्त्री दुहिता च पितृष्वसा । मातुलानी स्वसा श्वश्रूमात्वा सद्यः पतेन्नरः ॥' इति । गौतमेन पुनरन्येषामपि पातकत्वमुक्तम्—'मातृपितृयोनिबंधागस्तेननास्तिकनिन्दितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतित्त्यागिनः पतित्ताः । पातकसंयोजकाश्चेति । तेषां च महापातकोपपातकमध्यमाठान्महापातकान्यूनत्वमुपपातकाच्च गुरुत्वमवगम्यते । तदुक्तम्—'महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु । तानि पातकसंज्ञानि तन्न्यूनमुपपातकम् ॥' इति । तथा चाङ्गिराः—'पातकेषु सहस्रं स्यान्महस्तु द्विगुणं तथा । उपपापे तुरीयं स्यान्नरकं वर्षसंख्यया ॥' इति । * मिता.

अन्त्याभिगमने त्वङ्कथः कुबन्धेन प्रवासयेत् ।
भूद्रस्तथान्त्य एव स्यादन्त्यस्यार्यगमे वधः ॥

* अप., स्मृच., विर., विचि., वीमि., व्यम., विता. मितवत् ।

(१) यास्मृ. २।२.९४; अपु. २.५.८।७३ (कुबन्धेनाङ्कथ समयेदन्त्याप्रव्रजितागमे) पतनवेव; विश्व. २।२.९७ कु. (क) थान्त्य (थङ्क्य); मिता.; अप. २।२.९३ त्वङ्कथ- (त्वाङ्क्य) शेषं विश्ववत्; विर. ३.९.४ त्वङ्क्यः (त्वङ्क)

(१) कामतस्तु त्रैवर्णिकानां— 'अन्त्याभिगमने त्वङ्क्यः कबन्धेन प्रवासयेत् । शूद्रस्तथाङ्क्य एव स्यादन्त्यस्यार्यागमे वधः ॥' अन्त्यशब्दोऽयं शूद्रान्नि-
कृष्टापशदवचनः । तामन्त्यामपशदस्त्रियं गच्छंस्त्रैवर्णिकः
कबन्धेनाङ्कयित्वा स्वराष्ट्राद्धिष्कार्यः । शूद्रस्तथाङ्क्य
एव स्यात् न वहिष्कार्यः । प्रायश्चित्तं त्वकुर्वतः कामतो
चाऽभ्यासादेतद् द्रष्टव्यम् । ततश्च शूद्रस्याप्रवासनं दासत्व-
ज्ञापनार्थम् । दासीकृत्य च प्रायश्चित्तं कारयितव्यम् ।
अन्त्यस्य त्वपशदस्य शूद्राद्यार्यस्यभिगमे वध एव ।
अत्रया दिशा संग्रहणस्वरूपगिरिज्ञानोपायदण्डप्रपञ्चः
कार्यः । विश्व. २।२९७

(२) अन्त्या चाण्डाली तद्रमने त्रैवर्णिकान्प्राय-
श्चित्तानभिमुखान् 'सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम्' इति मनु-
वचनात्पणसहस्रं दण्डयित्वा कुबन्धेन कुत्सितबन्धेन
भगाकारेणाङ्कयित्वा स्वराष्ट्रात्प्रवासयेत् । प्रायश्चित्ता-
भिमुखस्य पुनर्दण्डनमेव । शूद्रः पुनश्चाण्डाल्यभिगमेऽ-
न्त्य एव चाण्डाल एव भवति । अन्त्यजस्य पुनश्चाण्डा-
लादेरुत्कृष्टजातिस्यभिगमे वध एव । * मिता.

(३) अन्त्याश्चाण्डालक्षत्रायोगवस्त्रियः । तदभिगन्तारं
द्विजातिं प्रायश्चित्तमकुर्वाणं कबन्धेन शिरोरहितेन पुंसा
ललाटेऽङ्कयित्वा स्वराष्ट्रात्प्रवासयेत् । शूद्रस्तु प्रायश्चित्तं
कुर्वाणोऽप्यङ्क्य एव । अन्त्यस्य चाण्डालादेरुत्तमवर्णो
गच्छतो वध एव । अप.

(४) अङ्ककबन्धः अशिरस्कपुरुषाकारपुरुषाङ्कः
तेनाङ्कयित्वा त्रैवर्णिकं निर्वासयेत् । तथा शूद्रोऽङ्क्य
एव स्यात्, एवकारेण प्रवासनमात्रनिषेधः । तेनान्त्या-

* पमा. मितावत् । दण्डविवेके विवादरत्नाकरमतं मिता-
क्षरमतं च अनूदितम् ।

शेषं विश्ववत्; पमा. ४७१ थान्य (थाङ्क्य) मूलपाठोऽपि
धृतः; स्त. १३२ कु (क); विचि. १७९ (=) त्वङ्क्यः
कुबन्धेन (त्वङ्क्येनैव) थान्य (थाङ्क्य); व्यनि. ४०१
त्वङ्क्यः (ऽङ्कित्वा); दवि. १७६ त्वङ्क्यः (त्वङ्कं) शेषं
विश्ववत्, कामधेनौ कल्पतरौ चाङ्कयेति पठितम् ।; सवि. ४७३
बन्धेन (दण्डेन) र्यागमे (भिगमे); वीमि.; व्यप्र. ४०४
त्वङ्क्यः (त्वङ्क्य); व्यउ. १३८ त्वङ्क्यः कु (त्वाङ्क्य
क.) मनु.; व्यङ्. १०७ पमावत्; विता. ८११; स्मृ.
१५५; विचि. ५५

भिगमे वधोक्तेरविरोधः । अन्त्यस्यार्यागमे वधः । आर्षो
त्रैवर्णिकस्त्री, तदभिगमे, अन्त्यश्चाण्डालो वध्य इत्यर्थः ।
पारिजाते तु 'शूद्रस्तथान्त्य एव स्यादिति' पठितं
व्याख्यातं च अन्त्य एव स्यान्न पुनः शूद्रेषु प्रवेश
इति । अत्राविरोधो व्यक्त एव । विर. ३९४-५

(५) शूद्रस्त्वन्त्याभिगमे तथा भगाद्याकारेणाङ्क्य
एव, न तु प्रवास्यः स्यात् । * वीमि.

कन्याहरणे कन्यादूषणे च वर्णभेदेन दण्डविधिः

अलङ्कृतां हरन् कन्यामुत्तमं ह्यन्यथाधमम् ।

दण्डं दद्यात्सवर्णासु प्रातिलोम्ये वधः स्मृतः ॥

(१) संग्रहणप्रायत्वात् कन्याहरणमपि प्रसङ्गादाह—
अलङ्कृतामिति । अलङ्कृतोपकृतविवाहा । स्पष्ट-
मन्यत् । विश्व. २।२९१

(२) पारदार्यप्रसङ्गात्कन्यायामपि दण्डमाह—
अलङ्कृतामिति । विवाहाभिमुखीभूतामलङ्कृतां सवर्णां
कन्यामपहरन्नुत्तमसाहसं दण्डनीयः । तदनभिमुखीं
सवर्णां हरन् प्रथमं साहसम् । उत्कृष्टवर्णजां कन्यामप-
हरतः पुनः क्षत्रियादेर्वध एव । दण्डविधानाच्चापहर्तु-
सकाशादाच्छिद्यान्यस्मै देयेति गम्यते । + मिता.

(३) भारुच्यादयस्तु, राज्ञा दण्डनीय एव । किन्तु
तस्य वरसंपत्तिरस्ति चेत् तस्मै देयेति पैशाचविवाहस्य
सद्भावादित्याहुः । धारेश्वरादयस्तु, वरसंपत्तिप्रतिपादनं
ह्यर्थदण्डान्तरम् । सवर्णां चेत्तस्मै देयेत्याहुः । सवि. ४७१

(४) अलङ्कृतामिति विवाहार्थमलङ्कृतां कन्यां
सवर्णासु मध्ये सवर्णामिति यावत् संभोगार्थमकाम्यं

* शेषं मितावत् ।

+ अप., विर., पमा., विचि., दवि., सवि., व्यप्र.,
विता. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२८७; विश्व. २।२९१ ह्यन्य (लन्य)
वर्णासु (वर्णस्तु); मिता. (ख) हरन् (हरेत्); अप. ह्यन्य
(लन्य) वर्णासु (वर्णा तु); व्यङ्. १२७; विर. ४०४;
पमा. ४६९; विचि. १७७; स्मृचि. २७ दण्डं दद्यात्
(दण्डः स्यात्); दवि. १८५ स्मृतः (तथा); सवि. ४७१
उत्तमं (ह्युत्तमं); वीमि.; व्यप्र. ४०२ ह्यन्य (लन्य);
व्यउ. १३७ हरन् (हरेत्) ह्यन्य (लन्य); विता. ८११
हरन् (हरेत्); सेतु. २७६; सशु. १५६ व्यप्रवत्; विचि.
५५.

इस्नुत्तमसाहसं, अन्यथा विवाहार्थमलङ्कृतत्वाभावे
सवर्णमकामां कन्यां हरन्नधमं प्रथमसाहसं दण्डं दद्यात् ।
प्रातिलोभ्येऽपकृष्टेनोक्तद्वर्णकन्याहरणे भर्तुर्वधः स्मृतः ।
वीमि.

सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः ।

दूषणे तु करच्छेद उत्तमायां वधस्तथा ॥

(१) कन्यास्वेव— 'सकामास्वनुलोमासु न दोष-
स्त्वन्यथाधमः ॥' इच्छन्तीषु कन्यासु सवर्णास्वनुलोमासु
वा प्रदूष्यापहृतासु न दोषः, गान्धर्वविवाहविषयत्वात् ।
यस्त्वनलङ्कृतापहरणे अधमो दण्डः, सोऽन्यथा निष्का-
मास्वित्यर्थः । दूषणे तु कन्याभिगमने करच्छेदः, अनि-
च्छायामेव । अन्यथा त्वङ्गुलिविच्छेदः स्मृत्यन्तरानु-
सारत् । प्रातिलोभ्येन तु कन्यादूषणे वध एव । तथा-
शब्दः स्मृत्यन्तरोक्तद्वारोहणादिप्रकारार्थः । स्पष्ट-
मन्यत् । विश्व. २।२९२

(२) आनुलोभ्यापहरणे दण्डमाह—सकामास्विति ।
यदि सानुरागां हीनवर्णां कन्यामपहरति तदा दोषा-
मावाह दण्डः । अन्यथा त्वनिच्छन्तीमपहरतः प्रथम-
साहसो दण्डः । कन्यादूषणे दण्डमाह—दूषणे त्विति ।
अनुलोमास्वित्यनुवर्तते । यद्यकामां कन्यां बलात्कारेण
नखक्षतादिना दूषयति तदा तस्य करः छेत्तव्यः । यदा
पुनस्तामेवाङ्गुलिप्रक्षेपेण योनिक्षतं कुर्वन् दूषयति तदा
मनूक्तपट्टशतसहितोऽङ्गुलिच्छेदः । 'अभिषह्य तु यः
कन्यां कुर्यादप्येण मानवः । तस्याश्च कर्त्तव्यं अङ्गुल्यौ
दण्डं चार्हति षट्शतम् ॥' इति । यदा पुनः सानुरागां
पूर्ववद्दूषयति तदापि तेनैव विशेष उक्तः— 'सकामां
दूषयन् कन्यां नाङ्गुलिच्छेदमर्हति । द्विशतं तु दमं
दाप्यः प्रसंगविनिवृत्तये ॥' इति । यदा तु कन्यैव

(१) यास्मृ. २।२८८; विश्व. २।२९२ दमः (ऽधमः);
मिता.; अप. विश्ववद; व्यक. १२७; विर. ४०४; पमा.
४६९ षत्तथा (धः स्मृतः); विचि. १७७ छेद उत्त (च्छेद-
स्तूत); व्यवि. ४०२ उत्तरार्थे (अन्यथा प्रातिलोभ्येन गमने वध
इत्यते); दवि. १८५ दोषस्त्व (दोषो ह्य) दमः (ऽधमः)
शेषं विचिवदः १८२ उक्तः; सवि. ४७२ पू.; वीमि.;
व्यप्र. ४०३ पमावद; व्यउ. १३७; विता. ८१६; सेतु.
२७६ स्वनुलोमा (स्वानुलोम्या) शेषं विचिवद; समु. १५६
असाहसः.

कन्यां दूषयति विदग्धा वा तत्रापि विशेषस्तेनैवोक्तः ।
'कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्यास्तु द्विशतो दमः । या-
तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति ॥ अङ्गु-
ल्योरेव वा छेदं स्वरेणोद्वहनं तथा ॥' इति । कन्यां
कुर्यादिति कन्यां योनिक्षतवतीं कुर्यादित्यर्थः । यदा
पुनरुत्कृष्टजातीयां कन्यामविशेषात्सकामामकामां वाभि-
गच्छति तदा हीनस्य क्षत्रियादेर्वध एव । 'उत्तमां
सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ।' इति मनुस्मरणात् ।
यदा सवर्णां सकामामभिगच्छति तदा गोमिथुनं शुल्कं
तस्मिन्ने दद्यात् यदीच्छति । पितरि तु शुल्कमनिच्छति
दण्डरूपेण तदेव राज्ञे दद्यात् । सवर्णमकामां तु गच्छतो
वध एव । यथाह मनुः— 'शुल्कं दद्यात्सेवमानः
समामिच्छेत्स्मिता यदि । योऽकामां दूषयेत्कन्यां स
सद्यो वधमर्हति । सकामां दूषयस्तुल्यो न वधं प्राप्नु-
यान्नरः ॥' इति । *मिता.

(३) उत्तमवर्णेन हीनवर्णासु सकामासु कन्यास्वप-
हृतासु नास्त्यपहर्तुर्दोषः । अन्यथा त्वकामास्वधमः
प्रथमसाहसः । एतच्चापहारमात्रे दण्डविधानम् । कन्यां
दूषयतोऽधुना दण्डमाह—दूषणे इति । यस्तु कन्याया
अङ्गुल्या योनिक्षतं कृत्वा दूषणं करोति, तस्य करच्छेदो
दण्डः । अस्मिन्दोष उत्तमवर्णकन्याविषये दूषयितुर्वधः ।
करशब्दोऽत्राङ्गुल्यां वर्तते । अप.

(४) अन्यथा तु तस्या अकामत्वे हर्तुर्दमः ।
नारदः— 'सकामायां तु कन्यायां सवर्णे नास्त्यतिक्रमः ।
किन्त्वलङ्कृत्य सत्कृत्य स एवैनां समुद्वहेत् ॥' अका-
मायां तु हृतायां शंखः— 'समां शुल्कमाभरणं द्विगुणं
च स्त्रीधनं दत्त्वा प्रतिपद्येत ।' Xवीमि.

कन्यादोषख्यापनपशुगमनहीनस्त्रीगमनादौ दण्डविधिः
शतं स्त्रीदूषणे दद्यात् द्वे तु मिथ्याभिशांसने ।
पशून् गच्छन् शतं दाप्यो हीनां स्त्रीं गां च
मध्यमम् ॥

* पमा., विर., विचि., दवि., सवि., व्यप्र., व्यउ.,
विता. मितावद ।

X शेषं मितावद ।
(१) यास्मृ. २।२८९; अणु. २५८।७१ दद्यात् (दाप्यो).
गां च (गाश्च) उक्त.; विश्व. २।२९३ दद्यात् (दाप्या).
शंसने (शंसिता) हीनां स्त्रीं (हीनस्त्रीं); मिता.; अप.

(१) दूषयितुर्दण्ड उक्तः । दूष्या तु कन्या— 'शतं स्त्री दूषणे दाप्या द्वे तु मिथ्याभिशांसिता । पशून् गच्छन् शतं दाप्यो हीनस्त्रीं गां च मध्यमम् ॥' स्त्री-त्वेनोपगम्य दूषिता कन्या स्त्रीत्युक्ता । सा दूषणे कृते शतं दण्ड्या । यदि त्वदुष्टामेव दूषितेयमिति ब्रूयात्, ततो मिथ्याभिशांसिता द्वे शते दण्ड्यः । गोव्यतिरिक्ता-श्वादिपशुगमने शतं दण्ड्यः । हीनां त्वनुलोमां स्त्रियं गां च गच्छतो मध्यमो दण्डः । हीनस्त्रीवचनं गवादिष्वपि स्त्रीवद् दण्डदानदृष्टान्तत्वेन । अन्यथा तु प्रागेवोक्तत्वात् पुनरुक्तैव स्यात् । तस्मात् पशवादिष्वपि स्त्रीष्विव गन्तुर्दण्डादिकल्पनं परिग्रहविशेषाश्रयं योज्यम् ।

विश्व. २।२९३

(२) स्त्रीशब्देनात्र प्रकृतत्वात्कन्याऽवमृश्यते । तस्या यदि कश्चिद्विद्यमानानेवापस्मारराजयक्ष्मादिदीर्घकुत्सित-रोगसंसृष्टमैथुनत्वादिदोषान् प्रकाश्येयमकन्येति दूषयति असौ शतं दाप्यः । मिथ्याभिशांसने तु पुनरविद्यमान-दोषाविष्कारेण दूषणे द्वे शते दापनीयः । गोव्यतिरिक्त-पशुगमने तु शतं दाप्यः । यः पुनर्हीनां स्त्रियमन्याव-सायिनीमविशेषात् सकामामकामां वा गां चाभिगच्छ-त्यसौ मध्यमसाहसं दण्डनीयः ।

मिता.

(३) स्त्रियाः कन्याया दूषणं क्षतयोनित्वादिकेना-कन्यात्वाभिधानम् । तत्कर्तुः पणशतं दण्डः । तदेव चेन्मिथ्या ब्रूयात्पणशतद्वयं दण्ड्यः । गोव्यतिरिक्तं पशुं गच्छन् पणशतं दाप्यः । अन्त्यजां स्त्रीं गां च गच्छतो मध्यमसाहसो दण्डः । हीनस्त्रीं गच्छतो ब्राह्मणव्यति-रिक्तस्यायं दण्डः । ब्राह्मणस्य तु सहस्रं, 'सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम्' इति वचनात् ।

अप.

(४) हीनास्त्रीं स्त्रियनासादिकाम् । विर. ४०७

शंसने (शंसिता) पशून् (पशुं) हीनां स्त्रीं (हीनस्त्रीं); व्यक. १२८ (=) हीनां स्त्रीं गां च (हीनास्त्रीं चैव) उक्तः; विर. ४०७ दाप्यो... च (दण्ड्यो हीनास्त्रीं चैव) उक्तः; पमा. ४६९ हीनां स्त्रीं (हीनस्त्रीं); स्मृचि. २७ दद्यात् (दाप्यो) शेषं पमावत्; दवि. १९१ व्यकवत्, उक्तः : २१० शंसने (शंसिता) पू.; वीमि.; व्यप्र. ४०३; व्यड. १३८; व्यम. १०८ हीनां (दीनां); विता. ८१९; सेतु. २७९ (=) विरवत्, उक्तः; समु. १५६.

(५) वरस्य तु मिथ्यादोषाभिधायित्वे 'दूषयंस्तु मृपा शतम्' इति प्रथमाध्याये दण्ड उक्तः । यथार्थं दोषाभिधायित्वे तु वरस्य न दोषः । पशूनिति गोव्यति-रिक्तपशून् छाग्यादिकानित्यर्थः । हीनां स्त्रीं शूद्रां गां वा गच्छन्मध्यमं साहसं दाप्यः । चकारेण गुप्तश्चत्रिया-वैश्ययोर्गमने उत्तमसाहसं दाप्य इति पूर्वोदाहृतं मनु-वाक्यसिद्धं समुचीयते ।

* वीमि.

दास्यादिसाधारणस्त्रीगमने दण्डविधिः, प्रसङ्गविशेषेषु

वेद्ययवेतनविचारश्च

अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च ।

गम्यास्वपि पुमान् दाप्यः पञ्चाशत्पणिकं दमम् ॥

(१) परिग्रहानुसारेणैव च— 'अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च । गम्यास्वपि पुमान् दाप्यः पञ्चा-शत्पणिकं दमम् ॥' भुजिष्याः कर्मकारिण्यो दास्यः । तास्वपि स्वामिकर्मपरिहापणेनाक्रम्य गच्छतो दण्डः । गम्यास्वपि शूद्रादीनामुपरतभर्तृकासु भ्रातृभार्यासु पुष्पा-ञ्जल्याद्यनुपनीतासु । पुंवचनमवरुद्धादिस्त्रीणामर्धदण्ड्यत्व-ज्ञापनार्थम् ।

विश्व. २।२९४

(२) साधारणस्त्रीगमने दण्डमाह—अवरुद्धास्विति । गच्छन्नित्यनुवर्तते । उक्तलक्षणा वर्णस्त्रियो दास्यस्ता एव स्वामिना शुश्रूषाहानिव्युदासार्थं गृह एव स्यात्तव्य-मित्येवं पुरुषान्तरोपभोगतो निरुद्धा अवरुद्धाः । पुरुष-नियतपरिग्रहा भुजिष्याः । यदा दास्योऽवरुद्धा भुजिष्या वा भवेयुस्तदा तासु, तथा चशब्दाद्वेश्यास्वैरिणीनामपि साधारणस्त्रीणां भुजिष्याणां च ग्रहणं, तासु च सर्वपुरुष-साधारणतया गम्यास्वपि गच्छन् पञ्चाशत् पणान् दण्ड-नीयः । परपरिग्रहीतत्वेन तासां परदारतुल्यत्वात् । एतच्च

* शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२९०; अपु. २५८।७२; विश्व. २।२९४; मिता.; अप.; व्यक. १२८; विर. ४०६; पमा. ४६७; रत्न. १३२; स्मृचि. २७; व्यवि. ४०३; दवि. १८९; नृप्र. २०८-९ णिकं (णकं); मच. ८।३६३; सवि. ४७३ अव (अप) पञ्चाशत्पणिकं (पञ्चाशत्पणिकं); वीमि.; व्यप्र. ४०१; व्यड. १३८; व्यम. १०७; विता. ८०८; बाल. २।१३४; सेतु. २७८; समु. १५५ नृप्रवत्.

स्पष्टमुक्तं नारदेन— 'स्वैरिण्यब्राह्मणी वेश्या दासी निष्कासिनी च या । गम्याः स्युरानुलोम्येन स्त्रियो न प्रतिलोमतः ॥ आस्वेव तु भुजिष्यासु दोषः स्यात्परदारवत् । गम्यास्वपि हि नोपेयाद्यत्ताः परपरिग्रहाः ॥' इति । निष्कासिनी स्वाम्यनवरुद्धा दासी ।

ननु च स्वैरिण्यादीनां साधारणतया गम्यत्वाभिधानमुक्तम् । न हि जातितः शास्त्रतो वा काश्चन लोके साधारण्यः स्त्रिय उपलभ्यन्ते । तथाहि । स्वैरिण्यो दास्यश्च तावद्दर्शयित्वा एव । 'स्वैरिणी या पतिं हित्वा सर्वार्थं कामतः श्रयेत् । वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ॥' इति मनुस्मरणात् । न च वर्णस्त्रीणां पत्यौ जीवति मृते वा पुरुषान्तरोपभोगो घटते । 'दुःशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः । परिचार्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्यतिः ॥ कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः । न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥' इति निषेधस्मरणात् । नापि कन्यावस्थायाः साधारणत्वम् । पित्रादिपरिरक्षितायाः कन्याया एव दानोपदेशात् । दात्रभावेऽपि तथाविधाया एव स्वयं-बरोपदेशात् । न च दासीभावात्स्वधर्माधिकारच्युतिः । पारतन्त्र्यं हि दास्यं न स्वधर्मपरित्यागः । नापि वेश्या साधारणी वर्णानुलोमजन्व्यतिरेकेण गम्यजात्यन्तरासंभवात् । तदन्तःपातित्वे च पूर्वदेवागम्यत्वम् । प्रतिलोमजे तु तासां नितरामगम्यत्वम् । अतः पुरुषान्तरोपभोगे तासां निन्दितकर्माभ्यासेन पातित्यात् पतितसंसर्गस्य निषिद्धत्वाच्च न सकलपुरुषोपभोगयोग्यत्वम् ।

सत्यमेवम् । किं त्वत्र स्वैरिण्याद्युपभोगे पित्रादिरक्षकराजदण्डभयादिदृष्टदोषाभावाद्गम्यत्ववाच्योक्तिः । दण्डभावावश्चावरुद्धासु दासीष्विति नियतपुरुषपरिग्रहोपाधितो दण्डविधानात्तदुपाधिरहितास्वर्थादवगम्यते । स्वैरिण्यादीनां पुनर्दण्डभावावो विधानाभावात् । 'कन्यां भजन्तीः सुकृष्टां न किञ्चिदपि दापयेत् ।' इति लिङ्गनिदर्शनाच्चावगम्यते । प्रायश्चित्तं तु स्वधर्मस्खलननिमित्तं गम्यानां ऋन्तृणां चाविशेषाद्भवत्येव । यत्पुनर्वेश्यानां जात्यन्तरासंभवेन वर्णान्तःपातित्वमनुमानादुक्तं— 'वेश्या वर्णानुलोमजन्तःपातिन्यो मनुष्यजात्याश्रयत्वात् ब्राह्मणादिवत्' इति । तत्र । तत्र कुण्डगोलकादिभिरनैकान्तिकत्वात् ।

अतो वेश्याख्या काचिज्जातिरनाविर्वेश्यायामुत्कृष्टजातेः समानजातेर्वा पुरुषादुत्पन्ना पुरुषसंभोगवृत्तिर्वेश्येति ब्राह्मण्यादिवल्लोकप्रसिद्धिबलादभ्युपगमनीयम् । न च निर्मूल्यं प्रसिद्धिः । स्मर्यते हि स्कन्दपुराणे— 'पञ्चचूडा नाम काश्चनाप्सरसस्तत्संततिर्वेश्याख्या पञ्चमी जातिः' इति । अतस्तासां नियतपुरुषपरिणयनविधिविधुरतया समानोत्कृष्टजातिपुरुषाभिगमने नादृष्टदोषो नापि दण्डः । तासु चानवरुद्धासु गच्छतां पुरुषाणां यद्यपि न दण्डस्तथाप्यदृष्टदोषोऽस्त्येव । 'स्वदारनियतः सदा' इति नियमात् । 'पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते' इति प्रायश्चित्तस्मरणाच्चेति निरवद्यम् । * मिता.

(३) अवरुद्धासु दासीषु अन्येनावरुध्य घृता या दास्यः तासु अनुलोमजास्वपि । विर. ४०६

(४) हीनां स्त्रीमित्युक्तमपवदति— अवरुद्धास्वित्यादि । दासी पुरुषविशेषेण विवाह्या परिग्रहीता च त्रिविधा, एकेन पुरुषेण स्वभोगार्थं पुरुषान्तरोपभोगतो निरुद्धा भुजिष्या वेश्या चेति । भुजिष्या च स्वमित्त-पुरुषान्तरोपभोगविषयः स्वपरिचर्याकारिणी । तासु त्रिविधासु आद्यचरमकथितासु नियतपुरुषेण गम्यास्वपि परः पुमान् गच्छन् पञ्चाशत्पणमितं दमम् । वीमि.

प्रसह्य दास्यभिगमे दण्डो दशपणः स्मृतः । बहूनां यद्यकामाऽसौ चतुर्विंशतिकः पृथक् ॥ (१) अदत्तैव शुक्लं— 'प्रसह्य दास्यभिगमे दण्डो दशपणः स्मृतः । बहूनां यद्यकामासौ द्विर्द्वादशपणः पृथक् ॥' अकामाभिगमने बहूनामेकस्यामेव

* अप., पमा., रत्न., दवि., सवि., व्यप्र., व्यउ., व्यम., विता. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२९१; अपु. २५८।७३ पू.; विश्व. २।२९५ चतुर्विंशतिकः (द्विर्द्वादशपणः); मिता.; अप.; व्यक. १२८ उक्त.; विर. ४०६ दास्यभिगमे (दास्यागमने); पमा. ४६८; विचि. १८७-८ बहूनां (बहुना) शेषं विरवत्; व्यनि. ४०३ दास्यभिगमे (वेश्यागमने); दवि. १९० (=) दण्डो ... स्मृतः (पञ्चाशत्पणिको दमः) शेषं विरवत्; सवि. ४७३ ऽसौ (सा) तिकः (तितः); वीमि.; व्यप्र. ४०२; व्यउ. १३८; विता. ८१०; बाल. २।१३४ पू.; सेतु. २७८ विरवत्; समु. १५५ बहूनां (बहवो).

दास्यां प्रत्येकं चतुर्विंशतिपणो दण्डः । विश्व. २।२९५

(२) 'अवरुद्धासु दासीषु' इत्यनेन दासीस्वैरि-
ष्यादिभुजिष्याभिगमने दण्डं विदधतस्तास्वभुजिष्यासु
दण्डो नास्तीत्यर्थादुक्तं तदपवादमाह— प्रसहेति ।
पुरुषसंभोगजीविकासु दासीषु स्वैरिष्यादिषु शुल्कदान-
विरहेण प्रसह्य बलात्कारेणाभिगच्छतो दशपणो दण्डः ।
यदि बहव एकामनिच्छन्तीमपि बलात्कारेणाभिगच्छन्ति
तर्हि प्रत्येकं चतुर्विंशतिपणपरिमितं दण्डं दण्डनीयाः ।
यदा पुनस्तदिच्छया भाटिं दत्त्वा पश्चादनिच्छन्तीमपि
बलाद्ब्रजन्ति तदा तेषामदोषः, यदि व्याध्याद्यभिभव-
स्तस्या न स्यात् । 'व्याधिता सश्रमा व्यग्रा राज-
कर्मपरायणा । आमन्त्रिता चेन्नागच्छेददण्ड्या वडवा
स्मृता ॥' इति नारदवचनात् । मिता.

(३) परदासीं हठादभिगच्छतो दशपणो दण्डः ।
अनिच्छन्तीं बहूनामभिगच्छतां प्रत्येकं चतुर्विंशतिपणः ।
अप.

(४) एवं च सकामाया वेश्याया एकेन बहुभिर्वा-
ऽभिगमे दण्डाभावः । अवरुद्धाभुजिष्योरपि नियत-
पुरुषस्याभिगमे दण्डाभावः, गम्यास्वित्यभिधानादिति
मिताक्षरास्वरसः । मिश्रास्तु— 'वेश्यागामी द्विजो दण्ड्यो
वेश्याशुल्कं पणं स्मृतम् ।' इति नारदेन शुल्कतुल्यदण्डो
मन्व्यमसाहस्ररूपे ब्राह्मणस्योक्त इति न कापि दण्डाभाव
इत्याहुः । तेषां चायमाशयः— 'बहुभिर्भुक्तपूर्वा या तां
गच्छेयुर्नराधमाः । तस्यां वेश्यावदिच्छन्ति दण्डनं न
तु दारवत् ॥' इति व्यासेन नराधमत्वेनोपन्यसात्
सामान्यत एव भुक्तपूर्वागमने दण्ड उक्तः । 'स्वदार-
निरतश्चैवेति ग्रन्थकृता प्रथमाध्याये स्वदारव्यतिरिक्त-
समनमर्थतः प्रतिषिद्धमिति गम्यास्वित्यनेन नान्यापेक्षा-
स्पदण्डप्रयोजकगमनयोग्यास्वित्येव विवक्षणीयं, न च
निषिद्धेऽपि वेश्यागमने भानाभावाद्दण्डाभावः । 'अग-
म्यागामिनः शास्त्रिदण्डो राजः प्रकीर्तितः । प्रायश्चित्त-
विधानं तु पापराशेर्विशोधनम् ॥' इति प्रायश्चित्तदण्ड
शुक्ले नारदेन, ग्रन्थकृता तु दशपणपरिमितं विरोध इति
कर्म, प्रकृतदण्डस्य शूद्रपरत्वात् । एवं च पञ्चदशपणो
दण्डः, क्षत्रियस्य अथमसहस्रो, वैश्यस्य तदर्ध-

व्य. कां. २३६

मित्यहम् । एवं दशपणस्थलेऽपि द्वैगुण्यं वैश्यादेः
कल्पनीयमित्यामाति । वीमि.

गृहीतवेतना वेश्या नेच्छन्ती द्विगुणं वहेत् ।
अगृहीते समं दाप्यः पुमानप्येवमेव हि ॥

यदा तु शुल्कं गृहीत्वा स्वस्थापि अर्थपतिं नेच्छति
तदा द्विगुणं शुल्कं दद्यात् । तथा शुल्कं दत्त्वा स्वय-
मनिच्छतः स्वस्थस्य पुंसः शुल्कहानिरेव । 'शुल्कं गृहीत्वा
पण्यस्त्री नेच्छन्ती द्विगुणं वहेत् । अनिच्छन् दत्तशुल्कोऽपि
शुल्कहानिमवाप्नुयात् ॥' इति तेनैवोक्तम् । तथान्योऽ-
पि विशेषस्तेनैव दर्शितः— 'अप्रयच्छंस्तथा शुल्कमनुभूय
पुमान् स्त्रियम् । अक्रमेण च संगच्छन् पाददन्तनखा-
दिभिः ॥ अयोनौ वाऽभिगच्छेद्यो बहुभिर्वाऽपि वासयेत् ।
शुल्कमष्टगुणं दाप्यो विनयं तावदेव तु ॥ वेश्याप्रधाना
यास्तत्र कामुकास्तद्गृहोषिताः । तत्समुत्थेषु कार्येषु
निर्णयं संशये विदुः ॥' इति । मिता.

अयोनिपुरुषप्रव्रजितान्यतमगमने दण्डविधिः

अयोनौ गच्छतो योषां पुरुषं वाऽपि मेहतः ।
चतुर्विंशतिको दण्डस्तथा प्रव्रजितागमे ॥

(१) अविशेषेणैव तु— 'अयोनौ गच्छतो योषां
पुरुषं चाभिमेहतः । द्विर्द्वादशपणो दण्डस्तथा प्रव्रजिता-
गमे ॥' आस्त्रपादादौ पुरुषस्य शिश्नप्रक्षेपणं पुरुष-
मेहनम् । व्यभिचारिणीत्वाद् ज्ञातिभित्तयता स्त्री
प्रव्रजिता । स्पष्टमन्यत् । विश्व. २।२९६

(१) वास्तु. २।२९२; मिश्र.; अथ. अथं कोको नोप-
कृत्यते; विता. ८११ दाप्यः (दाप्य) .

(२) वास्तु. २।२९३; विश्व. २।२९६ वाऽपि (चापि)
चतुर्विंशतिको (द्विर्द्वादशपणो); मिता.; अथ. २।२९२
वाऽपि (चापि); अथ. १२८ चतुर्विंशतिको (चत्वारिंशत्पणो);
चिर. ४०६-७ योषां (सम्प्रतः) चतुर्विंशतिको (चत्वारिं-
शत्पणो); पसा. ४७१ (=) प्रव्रजितागमे (प्रव्रजितासु च);
विचि. १८८ तौ योषां (तस्तेषां) येषं व्यकवत्; व्यञ्जि.
४०३; दवि. १७९ व्यकवत्, उक्त. : १९२ व्यकवत्;
वीमि.; अथ. ४०४ वाऽपि (वाऽपि); व्यज. १३९
व्यप्रवत्; व्यम. १०८ पुरुषं वाऽपि (पुरीषं वाऽपि);
विता. ८११ व्यप्रवत्; सेतु. ३२५ व्यकवत्; समु. १५६
व्यप्रवत्.

(२) यस्तु स्वयोषां मुखादावभिगच्छति पुरुषं
वाभिमुखो मेहति तथा प्रव्रजितां वा गच्छत्यसौ चतु-
र्विंशतिपणान् दण्डनीयः । मिता.

(३) यः पुनरयोनौ मुखादौ योषां योषितं गच्छति,
यश्च पुरुषमधि पुरुषस्योपरि मेहं मूत्रपुरीषं चोत्सृजति,
यश्च प्रव्रजितां श्रमणिकादिकासुपैति, तस्य चतुर्विंशतिपणो
दण्डः । चत्वारिंशत्पणो दण्ड इति वा पाठे चत्वारिं-
शत्पणरूपः । अप.

(४) यन्नकामाऽसौ बहुभिर्गम्यते तदा पृथक् पृथक्
चतुर्विंशतिपणो दण्डः । अयोनौ पुरुषं मेहतः अति-
रागेण पुरुषमभिगच्छतः । प्रव्रजिता शाक्यादिस्त्री
तस्या गमे अभिगमे । विर. ४०७

(५) अयोनौ स्त्रिया एव मुखादौ गच्छतः मेद-
प्रयोगं कुर्वतः । पुरुषं मेहतः अतिरागेण पुरुषमभि-
गच्छतः । प्रव्रजिता तापसी । विचि. १८८

(६) तत्राऽयोनिपदं मानुषीयोन्यतिरेकपरं, तस्य
द्वौ भेदौ, स्त्रीपुंसयोरवयवान्तरं गवादियोनिश्च । तयो-
रङ्गान्तराभिगमे दण्डमाह याज्ञवल्क्यः— 'अयोनौ
गच्छतो योषां पुरुषं वापि मेहतः । चत्वारिंशत्पणो दण्ड-
स्तथा प्रव्रजितागमे ॥' मिताक्षरायां चतुर्विंशतिको दण्ड
इति पठितम् । अयोनौ योषामिति— अयोनौ मुखे,
द्रविडोक्तलादौ दृष्टत्वात् कामागमेषु श्रुतत्वाच्च । तत्र
हीदमौपरिष्कमित्याख्यायते जघन्यस्य कर्मणः उपरिष्ठात्
प्रवर्त्यमानत्वात् । आह च वात्स्थायनः— तस्या वदने
यजघनकर्म तदौपरिष्कमिति । इह याः स्वौपरिष्क-
मिच्छन्ति, न ताभिः सह युज्यन्ते इत्यादिवचनाद्देश्या-
दास्यादौ फलतः तस्यावगमात्, 'धर्मपत्न्यां सुव्रतायां
मुखे मैथुनकारिणः । पत्नी विधातुर्भवति..... ॥'
इति कर्मविपाकसमुच्चयवचनसंवादाच्च धर्मपत्नीमात्रे
निषेधः पर्यवस्यति, एवञ्च तत्रैवायं दण्डः । तस्य निषे-
धेन सममेकविषयत्वात् । स्वयोषां यो मुखादावभिगच्छ-
तीति विज्ञानेश्वरीयव्याख्यानदर्शनाच्चेति केचित् । तन्न—
'अयोनौ गच्छतो योषामिति सामान्यश्रुतौ बाधका-
भावात् । निषेधस्यापि तथाविधक्रियामात्रविषयत्वात् ।
दण्डभेदप्रकरणोपदर्शितविष्णुपुराणसंवादात् । पुरुषं वापि

मेहत इत्यतिरागेण पुरुषमेवाभिगच्छत इत्यर्थः ।

दवि. १९२-३

(७) अपिकारेण गन्तव्यात्वे पूर्वदण्डाधिक्यं समु-
चिनोति । वीभि.

नारदः

संग्रहणलक्षणानि

परस्त्रिया सहाकालेऽदेशे वा पुरुषस्य तु ।
स्थानसंभाषणामोदाख्यः संग्रहणक्रमाः ॥

(१) अकाले रात्र्यादौ, अदेशे निर्जनादौ, स्थान-
मेकत्र स्थितिः, आमोदः परिहासः । विर. ३८०

(२) संग्रहणमिति, सम्यग्गृह्यते तदनुरक्ततया प्रमी-
यते आशयो येन तत्संग्रहणम् । अनन्यथासिद्धपरस्त्री-
संलापादि तेन कर्मणा वचसा च परस्परमनुरक्तवचनु-
मीयेते । अनन्यथासिद्धत्वबलदेवाज्ञतया ऋजुतया
कार्यौत्कण्ठ्यादिना अन्यथाभिसंधिना वा कृतः संल-
पादिर्न संग्रहणम् । एतत्परमेव मनुवचनमपि—
'भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्त्रथा । संभाषणं
गृहे स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥' इति । विचि. १७०

(३) परमार्यया सहाकाले रात्र्यादौ अदेशे दिवाप्य-
पवरकादौ मिथः परस्परतो रहसि वा, उभयत्र
महाजनमध्ये प्रकाशमदोष इत्युक्तं भवति, पुरुषस्य
सहस्थानसंभाषणामोदा इति क्रीडारतिविस्त्रम्भाख्य एते
संग्रहणारम्भाः संग्रहणान्येव ।

नामा. १३६२ (पृ. १३७-८)

नदीनां संगमे तीर्थेष्वारामेषु वनेषु च ।

स्त्रीपुंसौ यत्समेयातां तच्च संग्रहणं स्मृतम् ॥

नदीसंगमादिषु व्याजेन रहः स्त्रीपुंसौ संगच्छेयतां,

(१) नासं. १३६२ पुरुषस्य तु (भवतो मिथः); नास्मृ-
१५६२ नासंवत्; स्मृच. ८; विर. ३८० उदेशे च
(अदेशे); विचि. १७० विरवत्; सेतु. २६१ उदेशे च
पु (अदेशे पू); समु. १५३ दाख्यः (दाः स्त्रियाः).

(२) नासं. १३६३ उत्तरार्धे (स्त्री पुमांश्च समेयातां आहं
संग्रहणं भवेत्); नास्मृ. १५६३ त्समे (त्समी); व्यक.
१२४ तच्च (त्तु); विर. ३८०; विचि. १७० तीर्थेषु
(तीर्थेषु आ) त्समे (त्समी); व्यनि. ३९९ वा (ऽप्या); सेतु-
२६१-२ विचिवत्; समु. १५३ वा (ऽप्या).

क्त संग्रहणं ग्राह्यम् । नामा. १३१६३ (पृ. १३८)

द्वितीयाप्रस्थापनैर्वाऽपि लेखसंप्रेषणैरपि ।

अन्यैश्च विविधैर्दोषैर्ग्राह्यं संग्रहणं बुधैः ॥

द्वितीयाप्रस्थापनमपि भावदोषलिङ्गम् । एवं लेखा-
संप्रेषणमपि । परभार्यायां परपुरुषस्य वा परस्परतः कः
प्रसङ्गः ? दुष्टैरन्यैरपि प्रेक्षितप्रकाशनपरिहासादिभिः
संग्रहणमेवासंबद्धानाम् । नामा. १३१६४ (पृ. १३८)

स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तथा ।

परस्परस्यानुमतं सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥

स्त्रियं परः स्पृशेत् स्तनोष्ठादौ, तथा वा तत्र स्पृष्टो
मर्षयेत् । अन्योन्यानुमते प्रीयमाणवाप्रीयमाणौ वा न
रुष्टौ, सर्वमेवंरूपं संग्रहणं भवेत् ।

नामा. १३१६५ (पृ. १३८)

वैखैराभरणैर्मात्वैः पानैर्भक्ष्यैस्तथैव च ।

संप्रेष्यमाणैर्गन्धैश्च वेद्यं संग्रहणं बुधैः ॥

भक्ष्यादिप्रेषणैरप्यसंबद्धानां संग्रहणम् ।

नामा. १३१६६ (पृ. १३८)

उपकारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ।

सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥

उपचारक्रिया उद्यतवस्त्रालङ्कारदानादि, केलिर्निर्म-
हसः, भूषणवासस्पर्शः, एकखट्वासनादि सर्वं संग्रह-

(१) नासं. १३१६४ वाऽपि लेख (श्रैव लेखा) उत्तरार्धे
(अन्यैरपि व्यतीचारैः सर्वं संग्रहणं स्मृतम्); नास्मृ. १५१६४;
विर. ३८० प्रस्थापनै (संप्रेषणै) उत्तरार्धे (अन्यैर्वाऽपि
व्यभिचारैराद्यं संग्रहणं स्मृतम्); विचि. १७० प्रस्थापनै
(संप्रेषणै) उत्तरार्धे (अन्यैर्वाऽपि व्यभिचारैराद्यं संग्रहणं
स्मृतम्).

(२) नासं. १३१६५ तथा (तथा) मतं... स्मृतम् (मते
तच्च संग्रहणं भवेत्); नास्मृ. १५१६५; अप. २१२८४
व्यासः; व्यक. १२४ मतं (मते) नारदः मनुश्च; स्मृच. ९
मतं (मते:).

(३) नासं. १३१६६ पूर्वार्धे (मर्षयैर्वा यदि वा भोज्यैर्वस्त्रै-
र्मात्वैस्तथैव च) : वेद्यं (सर्वं) बुधैः... भवेत्); नास्मृ.
१५१६८.

(४) नासं. १३१६७ उपकार (उपचार); नास्मृ.
१५१६६; अप. २१२८४ कार (कारः) खट्वा (शय्या)
व्यासः; व्यक. १२४ नारदः मनुश्च.

णम् ।

नामा. १३१६७ (पृ. १३८)

दर्पाद्वा यदि वा मोहाच्छ्लेषा वा स्वयं वदेत् ।

पूर्वं मयेयं भुक्तेति तच्च संग्रहणं स्मृतम् ॥

दर्पान्मोहाद् वेदशोऽहमिति श्लाघमानो वा स्वयमे-
वाकस्माद् ब्रूयात् मयेयं भुक्तपूर्वेति अन्तर्गतं गूहितुम-
शक्तः, तदपि संग्रहणम् । नामा. १३१६८ (पृ. १३८)

पाणौ यश्च निगृहीयाद्रेण्यां वस्त्राञ्चलेऽपि वा ।

तिष्ठ तिष्ठेति वा ब्रूयात् सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥

पाणिग्रहणाच्चपि संग्रहणलिङ्गं प्रीतिप्रकाशनात् ।

नामा. १३१६९ (पृ. १३८)

संग्रहणदोषप्रतिप्रसवः

नाथवत्या परगृहे संयुक्तस्य स्त्रिया सह ।

दृष्टं संग्रहणं तज्ज्ञैर्नागतायाः स्वयं गृहे ॥

(१) नाथवत्यास्तावत्संग्रहणं दृष्टं दण्डयतानीजं
यदि सैव संग्रहीतुर्यं स्वेच्छया समागत्य संग्राहयति तदा
तदपि न दृष्टमित्यर्थः । विचि. १७५

(२) नाथवद्ग्रहणं वेद्यादिनिवृत्त्यर्थम् । गु (तायाः
तया) । पुरुषस्यास्वग्रहे परग्रहे संयुक्तस्य परस्त्रिया सह

संग्रहणज्ञैः संग्रहणं दृष्टं ज्ञातम् । स्वयमागतायां पुरुषस्य
ग्रहे संयुक्तायां न संग्रहणम् । नात्र पुरुषस्य दोषः ।

नामा. १३१६० (पृ. १३७)

अदुष्टस्यक्तदारस्य क्लीबस्याक्षमकस्य च ।

स्वेच्छानुपेयुषो दारात्र दोषः साहसे भवेत् ॥

(१) नासं. १३१६८ पूर्व...तच्च (मयेयं भुक्तपूर्वेति सर्वं);
नास्मृ. १५१६९ पूर्व...ति (मयेयं भुक्तपूर्वेति); अप.
२१२८४; व्यक. १२४; विर. ३८१; विचि. १७२;
व्यप्र. ३९८ मनुनारदौ; समु. १५३.

(२) नासं. १३१६९ अले (न्तरे); नास्मृ. १५१६७
यश्च (यच्च); अप. २१२८४; व्यक. १२४; स्मृच. ९;
विर. ३८१ यश्च नि (यश्चापि) द्वेष्यां (द्वेष्यां); विचि.
१७२ विरवत्; समु. १५३.

(३) नासं. १३१६०; नास्मृ. १५१६० नाथवत्या
(नाथवत्या); व्यक. १२५; विर. ३८५ दृष्टं (दृष्टं);
विचि. १७५ विरवत्; द्वि. १५७ विरवत्, कालायनः;
सेतु. २६६ विरवत्; विव्य. ५४ विरवत्.

(४) नासं. १३१६१ अद् (प्रदु) स्याक्ष (स्य क्ष)

(१) तेन क्लीवस्याक्षमस्य वा स्वेच्छान् स्वच्छन्दान् दारान् तथादुष्टत्यक्तान् स्वच्छन्दान् दारानुपगच्छतः पुरुषस्य न दण्ड इत्यर्थः । स्वेच्छान् दारान् उपेयुष इत्यन्वयः । विर. ३८६

(२) परित्यक्तान् क्लीवपतिकानक्षमपतिकान् वा परदारान् स्वेच्छांस्तद्गृहेऽपि संगृह्यतो अभिगच्छतो वा न दण्ड इत्यर्थः । विचि. १७५

(३) प्रदुष्टा एव त्यक्ताः प्रदुष्टत्यक्ताः ता दारा यस्य, दुष्टेत्युत्सृष्टा भार्या येन, क्लीवस्य च क्षमकस्य च गच्छन्ती परेणेच्छति, तस्य दारैरिच्छद्भिः संगच्छतो न साहसदोषः संग्रहणमित्यर्थः । पूर्वस्यापवादः ।

नाभा. १३६१ (पृ. १३७)

वर्णभेदेन संग्रहणे दण्डविधिः

स्वजात्यतिक्रमे पुंसांमुक्तमुत्तमसाहसम् ।

विपर्यये मध्यमस्तु प्रतिलोमे प्रमापणम् ॥

स्वजातीयाया ब्राह्मण्या ब्राह्मणस्य, क्षत्रियायाः क्षत्रियस्येत्यादि, संग्रहणे उत्तमसाहसं सहस्रमिति । विपर्यये ब्राह्मणस्योनया क्षत्रियवेत्यादि, मध्यमसाहसं पञ्च शतानि । प्रतिलोमे ब्राह्मण्याः क्षत्रियस्य, क्षत्रियाया वैश्यस्येत्यादि, संग्रहणे मरणमेव दण्ड इति ।

नाभा. १३७० (पृ. १३९)

माता मातृष्वसा श्वश्रूमातुलानी पितृष्वसा ।

पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी स्तुषा ॥

स्वेच्छानु (स्वेच्छैरु) दारात्र (दारैर्न) साहसे (साहसो); नास्मृ. १५६१ स्याक्षमक (स्य क्षयिक) स्वेच्छा (सेच्छा); व्यक. १२५ अदु (प्रदु) नारदकालायनौ; विर. ३८६ विष्णुः; विचि. १७५ स्याक्षमकस्य (स्याप्यक्षमस्य) विष्णुः; दवि. १५८ अदु (प्रदु) स्वेच्छा (सेच्छा) नारदकालायनौ; सेतु. २७० स्वेच्छा (सेच्छा) विष्णुः; विज्य. ५४ साहसे (संग्रहे).

(१) नासं. १३१७०; नास्मृ. १५१७० (सजात्यतिक्रमे पुंसां दण्डं उत्तमसाहसः । मध्यमस्तानुलोमेन प्रतिलोमे प्रमापणम् ॥).

(२) नासं. १३१७३; नास्मृ. १५१७३; मिता. २१२८६; अप. २१२८६; व्यक. १२६; स्मृच. ३२२; विर. ३९२; पमा. ४६५; रत्न. १३९; विचि. १८४; व्यनि. ४००; स्मृचि. २६; दवि. १७८; सवि. ४६९; व्यग्र. ३९९; व्यड. १३४; व्यस. १०७; विता. ८०३; सेतु. २६९; समु. १५५; विज्य. ५५ पू.

दुहिताऽऽचार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता ।
राज्ञी प्रव्रजिता धात्री साध्वी वर्णोत्तमा च या ॥
आसामन्यतमां गत्वा गुरुतल्पग उच्यते ।
शिश्नस्योत्कर्तनान्तर नान्यो दण्डो विधीयते ॥

(१) ब्राह्मणव्यतिरिक्तगुरुतल्पगविषयमेतत् ।

अप. २१२८६

(२) स्वजातावपि क्वचित् शारीरदण्डं अमराधाधिक्यं प्रदर्शयन्नाह नारदः—मातेति । अन्योऽस्मान्भूत इति शेषः । अधिकस्य विधानात् (यास्मृ. ३१२३३ इत्यत्र) । स्मृच. ३२२

(३) माताऽत्र जननीव्यतिरिक्ता पितृपत्नी; गुप्ता-विषयमेतत् । विर. ३९२

(४) माताऽत्र जननीव्यतिरिक्ता पितृपत्नी, गुरु-तल्पग उच्यते इत्यतिदेशसामर्थ्यात् । मातृग्रहणं दृष्टान्त्वार्यमिति मिताक्षराकारः । पितृव्यपदं भ्रात्रादिपरमपि तुल्यन्यायात् । एवं भगिनीसखीति दुहिनादिसखीपरमपि न्यायसाम्भवात् । राज्ञी राज्यकर्तुर्भार्येति मिताक्षरा-कारः । युक्तं चैवत् क्षत्रियागमने दण्डान्तरपेदेऽस्मत् ।

(१) नासं. १३१७४; नास्मृ. १५१७४; मिता. २१२८६; अप. २१२८६; व्यक. १२६; स्मृच. ३२२; विर. ३९२ धात्री साध्वी (साध्वी धत्री); पमा. ४६५; रत्न. १३२; विचि. १८४ च या (तु या); व्यनि. ४००; स्मृचि. २६; दवि. १७८ च या (ऽपि या) शेषं विरक्तः; सवि. ४६९; व्यग्र. ३९९; व्यड. १३४; व्यस. १०७; विता. ८०३; सेतु. २६९; समु. १५५; विज्य. ५५.

(२) नासं. १३१७५ नाचत्र नान्यो दण्डो (नं दण्डो नान्यंस्तत्र); नास्मृ. १५१७५ नाचत्र (नं तस्य); मिता. २१२८६ गत्वा (गच्छन्); अप. २१२८६; व्यक. १२६ नाचत्र (नं तत्र); स्मृच. ३२२ व्यक्तवत्; विर. ३९२; पमा. ४६५ गत्वा (गच्छन्) नाचत्र (नं तस्य); रत्न. १३९ मितावत्; सुबो. २१२३ नान्यो (नास्व) शेषं मितावत्; विचि. १८४; व्यनि. ४०० लक्ष्मी (लक्ष्मी); स्मृचि. २७ च...यते (नान्यो दण्डः स्यात्सार्धवर्षिकः) शेषं मितावत्; दवि. १७८; सवि. ४६९ मितावत्; व्यग्र. ४०० मितावत्; व्यड. १३४ विधी (विधी) शेषं मितावत्; व्यस. १०७ मितावत्; विता. ८०३ मितावत्; सेतु. २६९; समु. १५५ व्यक्तवत्; विज्य. ५५.

सगोत्रेत्यनेन प्रातायाः सपत्नीमात्रादेः पुनरुपादानं
शिशुच्छेदादधिकस्य वधदण्डताडनादेः प्राप्यर्थम् ।
नान्यो दण्डो विधीयते इति तु शिशुच्छेदस्यावश्यकत्व-
त्वपरं शिशुच्छेदं विहाय दण्डान्तरं न कार्यमिति वाक्यार्थ-
पर्यवसानादिति प्रतिभाति । तथा स्त्रीणां प्रव्रज्यानिषे-
धात् प्रव्रजिता श्रुतिस्मृतिविहितयथावद्विधवाधर्मवती
विरक्ततया संन्यासितुल्याचारां विवक्षिता, राज्ञीसमभि-
व्याहारेण पूज्यतमत्वावगमात् । यत्तु—‘चत्वारिंशत्पणो
दण्डस्तथा प्रव्रजितागमे ।’ इति याज्ञवल्क्येनोक्तम् ।
तत्र प्रव्रजिता शाक्यादिस्त्री विवक्षिता दास्यादिसमभि-
व्याहारेण हीनात्वप्रतिपत्तेरिति न दण्डविरोधः । वर्णो-
त्तमा ब्राह्मणीति मिताक्षराकारः । तदिदं वचनं गुता-
विषयमिति रत्नाकरः । दवि. १७८-९

(५) मात्रादयो गुरुत्वः तद्रमने गुरुत्वमगः ।
पितृव्यस्त्री सखिस्त्री शिष्यस्त्री भगिनी भगिन्या अपि
सखी भगिनीवदेव । साध्वीति वर्णोत्तमाविशेषणम् ।
आसामन्यतमागमने शिशुच्छेद एव दण्डः । नान्य इति
वचनं लोभादिना धनादिदण्डनिवृत्त्यर्थम् ।

नामा. १३। ७३-५ (पृ. १४०)

कन्यादूषणे वर्णभेदेन दण्डविधिः

कन्यायामसकामायां द्वयङ्गुलस्यावकर्तनम् ।
उत्तमायां वधस्त्वेव सर्वस्वहरणं तथा ॥

(१) द्वयङ्गुलस्य अङ्गुलिद्वयस्य, अङ्गुलीत्याच्य-
मैथुनविषयमेतत् । येन येनाङ्गेनापराध्नुयात्तदेवास्य
छिन्यादिति सामान्यप्राप्तत्वादिति पारिजातः ।

*विर. ४०२

(२) कन्यायामसकामायामनिच्छन्त्यां स्वजात्यस्या-
कन्याकरणे द्वयङ्गुलस्य छेदनम् । उत्तमायामनिच्छन्त्या-
मधमजात्यस्य वध एव । ताडनं वध इति केचित्,
अधमस्य सिसृक्षाभावादिति । मारणमित्यन्ये । द्वयङ्गु-
लच्छेदादतिरिक्तेन भवितव्यम् । सिसृक्षापि किं न संभ-
वतीति संसर्ग एवैतदन्यदुच्यते इत्यन्ये । सर्वस्वहरणं च ।
नामा. १३। ७१ (पृ. १३९)

* दवि. विरवत् ।

(१) नासं. १३। ७१ स्थान (स्थप); नास्मृ. १५। ७१
स्वहरणं (संग्रहणं); व्यक. १२७; विर. ४०२ स्त्रेव
(स्त्वेवं); दवि. १८१ विरवत्; सेतु. २७५ विरवत्.

सकामायां तु कन्यायां सर्वर्णे नास्त्यतिक्रमः ।
किन्त्वलङ्कृत्य सत्कृत्य स एवैनां समुद्भहेत् ॥
इच्छन्त्यां सर्वर्णे नास्ति दोषः । किन्तु सत्कृत्याल-
ङ्कृत्य स एवोद्भहेत् । अन्यथा दण्ड्यः ।

नामा. १३। ७२ (पृ. १३९)

योऽकामां दूषयति प्रतिलोमे वधः स्मृतः ।
सकामायां तु गमनाद्धनदण्डः प्रकीर्तितः ॥

दास्यादिसाधारणस्त्रीगमने दोषविचारः

स्वैरिण्यब्राह्मणी वैश्या दासी निष्कासिनी च या ।
गम्याः स्युरानुलोम्येन स्त्रियो न प्रतिलोमतः + ॥

(१) स्वैरिणी स्वरसात् पुंश्रली । अब्राह्मणीति
विशेषणेन क्षत्रियाद्येति यावत् । दासी स्वीया कर्मकरी
निष्कामिनी कुटुम्बिनिर्गता पुंश्रली । गम्याः स्युरिति
निषेधमात्रं न तु पापनिषेधः । विर. ४०६

(२) स्वैरिणी पत्यादित्यक्ता यथेष्टाचारा । अ-
ब्राह्मणी ब्राह्मण्या अन्या क्षत्रिया, वैश्या, दासी च ।
निष्कासिनी अनिरुद्धा । एताः स्त्रियो गम्याः तद्रमने
न दण्ड्याः । आनुलोम्येन ब्राह्मणः क्षत्रियादिस्वैरिण्यां,
क्षत्रियो वैश्यादिस्वैरिण्यामित्यादि । विपरीते दण्ड्यः ।

नामा. १३। ७८ (पृ. १४०)

अस्वेव तु भुजिष्यासु दोषः स्यात्परदारवत् ॥
गम्या अपि हि नोपेया यत्ताः परपरिग्रहाः ॥

+ मिता, व्याख्यानं याज्ञवल्क्यवचने द्रष्टव्यम् ।

(१) नासं. १३। ७२; नास्मृ. १५। ७२ सर्वर्णे (संगये);
अप. २। २८८ सत्कृत्य (संस्कृत्य); व्यक. १२७; विर.
४०२; विचि. १७६; व्यनि. ४०३; दवि. १८३ लङ्कृत्य;
वीमि. २। २८६; सेतु. २७५; समु. १५६ सत्कृत्यम्.

(२) स्मृचि. २७.

(३) नासं. १३। ७८ प्रतिलोम (प्रातिलोम); नास्मृ.
१५। ७८; मिता. २। २९० (स्त्र) सिनी (सनी); व्यक.
१२८; अप. २। २९०; विर. ४०५ सिनी (सिनी); पसा.
४६८; रत्न. १३२ च या (तया); दवि. १८८; समु.
२०९ मितवत्; व्यग्र. ४०२; व्यज. १३८; व्यग्र. १०५
विता. ८०८; सेतु. २७७ निष्कासिनी (निष्कासिणी);
समु. १५६ मितवत्.

(४) नासं. १३। ७९ या यत्ताः पर (यत्ताःस्त्वेदन्);
नास्मृ. १५। ७९; मिता. २। २९० अपि (स्वपि) या यत्ताः
(यायत्ताः); अप. २। २९० यत्ताः पर (यत्ताःस्त्वेदन्);

(१) भुजिष्यासु अन्येनावरुध्य भुज्यमानासु ।
सपरिग्रहाः परेणावरुद्धाः । विर. ४०६

(२) आस्वेव स्वैरिष्यादिषु नियतपुरुषपरिग्रहासु
परदारवदेव दोषः । गमने दण्डश्च । गम्या अपि अभु-
जिष्याः विप्लुता अप्यगम्याः यदि कस्यचित् परिग्रहे
वर्तेरन् यावत्कालं तावत् । नाभा. १३।७९ (पृ. १४०)

अन्यजपशुवेद्यागमने दण्डविधिः

पशुयोन्मवतिक्रामन्विनेयः स दमं शतम् ।

मध्यमं साहसं गोषु तदेवान्त्यावसायिषु ॥

(१) सदृशं शतं दशाधिकपणशतम् । स दमं शत-
भेति लक्ष्मीधरः । तत्र स गन्ता पणशतं दमं दद्यादिति
स्फुट एवार्थः । पूर्वं गोगमने वध उक्तः शूद्रस्य, अयं
तु मध्यमसाहसः क्षत्रियवैश्ययोरिति पूर्वेण सममविरोधः ।
विर. ४०७

(२) पशुरजमहिष्यादिः । योनिग्रहणमन्यप्रदेश-
निवृत्त्यर्थम् । गत्वा दण्ड्यो दशोत्तरं शतम् । गोषु योन्या-
मतिक्रम्य मध्यमसाहसम् । तदेव मध्यमसाहसमन्तावसा-
यिषु चण्डालादिषु । नाभा. १३।७६ (पृ. १४०)
सुवर्णं तु भवेद्दण्ड्यो गां ब्रजन् मनुजोत्तमः ।
वेद्यागामी द्विजो दण्ड्यो वेद्याशुल्कसमं दमम् ॥

व्यक. १२८ अपवत्; विर. ४०५ अपवत्; पमा. ४६८;
रत्न. १३२; दवि. १८८ अपवत्; नृग्र. २०९ अपि
(स्वपि) या यत्ताः पर (यावत्स्ताः स); व्यग्र. ४०२
मितावत्; व्यड. १३८ अपि (स्वपि) यत्ताः पर (यत्स्तावत्
स); व्यम. १०७ पू.; विता. ६०८ मितावत्; सेतु.
२७७ यत्ताः पर (यत्स्ताः स); समु. १५६ नृप्रवत्.

(१) नासं. १३।७६ पूर्वर्षे (पशुयोन्मामतिक्रम्य विनेयः
सदृशं शतम्) न्या (न्ता); नास्मृ. १५।७६; व्यक. १२८;
विर. ४०७ स दमं (सदृशं); विचि. १८८; व्यनि. ४०३
न्या (न्ता) शेषं विरक्तं; बाल. २।२८९ विनेयः स दमं
(विनेयः सततं) तदेवा (भवेत्); सेतु. २७८ दमं शतम्
(शतं दमम्); समु. १५६ स दमं शतम् (स्याच्छतं
दमम्) तदेवान्ता (तथैवान्ता); विव्य. ५५.

(२) व्यक. १२८ दमम् (पणम्); विर. ४०८;
विचि. १८८ समं दमम् (पणं स्पृतम्); दवि. १९०
दमम् (दमः) उक्तः; १९४ पू.; मत्स्यपुराणम्; बीमि.
२।२८६ शुल्कसमं दमम् (शुल्कं पणं स्पृतम्) उक्तः;
सेतु. २७९.

यद्वेद्यागमने शुल्कं पञ्चशतपणरूपं तावान् वेद्या-
गामिनो ब्राह्मणस्य दण्डः । विचि. १८८

अगम्यागमने प्रायश्चित्तं राजदण्डो वा

अगम्यागामिनः शास्ति दण्डो राज्ञा प्रकीर्तितः ।

प्रायश्चित्तविधानं तु पापानां स्याद्विशोधनम् ॥

अगम्यागामिनो यथोक्तो दण्डो राज्ञा प्रणीतः
शास्ति । प्रायश्चित्तविधावत्र नान्यो दण्डोऽस्ति । तस्मा-
द्यथोक्तो दण्डो न प्रमाद्यः । तेषामप्यनुग्रहो भवत्येव ।
इतरथोभयोः प्रत्यवायः स्यात् ।

नाभा. १३।७७ (पृ. १४०).

बृहस्पतिः

संग्रहणप्रकाराः, तल्लक्षणानि च

पौरुष्यं द्विविधं प्रोक्तं साहसं च द्विलक्षणम् ।

पापमूलं संग्रहणं त्रिप्रकारं निबोधत ॥

(१) संग्रहणं परस्त्रिया सह पुरुषस्य संबन्धः ।
स्मृच. ८.

(२) तत्र परदारपदेन स्वभार्याव्यतिरिक्ता स्त्री
विवक्षिता । सा द्विविधा परिणीता अपरिणीता चेति ।
तयोः परिणीता अनेकविधा साध्वी बन्धकीति, उत्तमा
हीनेति स्वजना अस्वजनेति, गुप्ता अगुप्ता चेति,
ह्रीन्नादिभार्या अन्येति ।

अपरिणीता त्रिविधा कन्या ब्रात्या वेश्येति । एते
विभाजकोपाधयोः बलछलानुरागादिप्रयोगवद्दण्डभेदाय
भवन्तीति परिभाषान्यायेन प्रमुखे दर्शिताः । आसाम-
भिमर्षणमपि द्विविधं संग्रहणमभिगमश्च । तत्र संग्रहणं
नाम समीचीनं ग्रहणं परस्त्रिया आत्मीयताकरणम् ।

(१) नासं. १३।७७ कीर्तितः (चोदितः) न तु पापानां
स्याद् (वत्र प्रायश्चित्तं); नास्मृ. १५।७७ नः शास्ति
(नश्वास्ति) कीर्तितः (चोदितः); व्यक. १२८; विर. ४०८
स्ति द (स्तिर्द); विचि. १८९ पापानां स्याद् (पापराशेर्वि);
दवि. १८९ विरवत्; बीमि. २।२८६ स्ति द (स्तिर्द);
राज्ञा (राज्ञः) शेषं विचिवत्; सेतु. २७९.

(२) अप. २।२८३; व्यक. १२४; स्मृच. ८ उक्तः;
विर. ३७८ द्विलक्ष (त्रिलक्ष) त्रिप्र (विरा); पमा. ४६२
उक्तः; रत्न. १२९ उक्तः; व्यनि. ३९८ उक्तः; दवि.
१५४; व्यग्र. ३९७ उक्तः; व्यड. १३५ उक्तः; समु.
१५३ उक्तः.

चादिभजते बृहस्पतिः— पारुष्यमिति । दविः १५४

बलोपाधिकृते द्वे तु तृतीयमनुरागजम् ।
तत्पुनस्त्रिविधं प्रोक्तं प्रथमं मध्यमोत्तमम् ॥
अनिच्छन्त्या यत्क्रियते सुप्तोन्मत्तप्रमत्तया ।
प्रलपन्त्या वा रहसि बलात्कारकृतं तु तत् ॥
छेदना गृहमानीय दत्त्वा वा मदकारणम् ।
संयोगः क्रियते यस्याः तदुपाधिकृतं विदुः ॥
अन्योन्यचक्षुरागेण दूतीसंप्रेषणेन वा ।
कृतं रूपार्थलोभेन ज्ञेयं तदनुरागजम् ॥

कार्मणं कर्मणा वशीकरणम् । स्मृच. ८

(१) अप. २।२८३; व्यक. १२४; स्मृच. ८ पाधि (पधि) [उत्तरार्धः 'ज्ञेयं तदनुरागजं' इत्यस्य उत्तरं पतितः]; विर. ३७९ मोत्त (मुत्त); पमा. ४६२; रत्न. १२९ स्मृचवत्, पू.; व्यनि. ३९८ स्मृचवत्; दवि. १५४ कृते (हते); व्यग्र. ३९७ स्मृचवत्; व्यउ. १३५ प्रोक्तं (ज्ञेयं); समु. १५३ पू., १५४ उक्त.

(२) अप. २।२८३; व्यक. १२४; स्मृच. ८ सुप्तो (मत्तो) वा (च) : ३१९; विर. ३७९; पमा. ४६२ पूर्वार्धे (अनिच्छया त्वपकृतं मत्तोन्मत्तकृतं तथा) प्रलपन्त्या वा (प्रलये यत्तु); रत्न. १२८ कृतं तु तत् (कृतस्तथा) : १२९ सुप्तो (मत्तो); व्यनि. ३९८ सुप्तो (मत्तो) वा (ऽपि); दवि. १५५ वा रहसि (रहसि वा); व्यग्र. ३९६, ३९७ सुप्तो (मत्तो); व्यउ. १३० : १३५ व्यप्रवत्; विता. ८१३ तं तु तत् (तानि च); समु. १५३.

(३) अप. २।२८३ मदकारणम् (मद्यकार्मणम्); व्यक. १२४ अपवत्; स्मृच. ८ अपवत्; विर. ३७९ दत्त्वा ... रणम् (गत्वा वा तत्त्वसद्धानि); पमा. ४६२ यस्याः (यत्तु); रत्न. १३० यस्याः तदु (यत्तु तत्तु); व्यनि. ३९८ वा (च); दवि. १५५ मदकारणम् (मद्यकार्मणम्); व्यग्र. ३९७ दत्त्वा वा (दत्त्वास्या) यस्याः तदुपा (यत्र तत्तुप); व्यउ. १३५ दत्त्वा वा (दत्त्वास्या) यस्याः तदु (यत्तु तत्तु); समु. १५३ यस्याः तदु (यस्यां तत्तु) शेषं अपवत्.

(४) अप. २।२८३ वा (च); व्यक. १२४ अपवत्; स्मृच. ८; विर. ३७९ वा (च) धलोभेन (बलोभेन); पमा. ४६२ चक्षु (मनु) दूती (दूत); रत्न. १२९ अपवत्; व्यनि. ३९८; दवि. १५५; व्यग्र. ३९७; व्यउ. १३५ रूपार्थलोभेन (लोभार्थरूपेण); समु. १५३.

अपाङ्गप्रेक्षणं हास्यं दूतीसंप्रेषणं तथा ।

स्पर्शो भूषणवस्त्राणां प्रथमः संग्रहः स्मृतः ॥

प्रेषणं गन्धमाल्यानां फलमद्यान्नवाससाम् ।

संभाषणं च रहसि मध्यमं संग्रहं विदुः ॥

एकशय्यासनं क्रीडा चुम्बनालिङ्गनं तथा ।

एतत्संग्रहणं प्रोक्तमुत्तमं शास्त्रवेदिभिः ॥

वर्णभेदेन संग्रहणे दण्डविधिः

त्रयाणामपि चैतेषां प्रथमो मध्य उत्तमः ।

विनयः कल्पनीयः स्यादधिको द्विणाधिके ॥

(१) त्रयाणामप्येतेषां प्रथममध्यमोत्तमसाहसकारिणाम् । यथाक्रमं प्रथममध्यमोत्तमदण्डाः, अधिकधनस्य तु प्रथमादिभ्योऽधिकोऽपि दण्ड इत्यर्थः । विर. ३८४

(२) एषु त्रिषु संग्रहणेषु यथाक्रमं प्रथममध्यमो-

(१) व्यक. १२४; स्मृच. ८; विर. ३७९; पमा. ४६२ दूती (दूत) भूषण (भूषणं); दीक. ५५ संग्रहः (साहसः); रत्न. १३०; विचि. १७०; व्यनि. ३९८ प्रेक्षणं (प्रेषणं); दवि. १५५; व्यग्र. ३९७ व्यासवृहस्पती; व्यउ. १३५; सेतु. २६१; समु. १५४; विव्य. ५३.

(२) व्यक. १२४. च (वा); स्मृच. ८ फलमद्यान्न (धूपमध्वान्न) च रहसि (रहसि च); विर. ३८०; पमा. ४६२-३ फलमद्यान्न (धूपमध्वान्न) च रहसि (रहसि च); दीक. ५५ मद्यान्न (सद्गन्ध); रत्न. १३० च (वा); विचि. १७१; व्यनि. ३९८; व्यग्र. ३९८ मद्यान्न (धूपान्न) व्यासवृहस्पती; व्यउ. १३५; सेतु. २६२ व्यप्रवत्; समु. १५४ स्मृचवत्.

(३) व्यक. १२४; स्मृच. ८ लिङ्गनं (लिङ्गने); विर. ३८० स्मृचवत्; पमा. ४६३; दीक. ५५; रत्न. १३०; विचि. १७१; व्यनि. ३९८; दवि. १५६; व्यग्र. ३९८ व्यासवृहस्पती; व्यउ. १३५; विता. ७९७ 'परस्परमथाश्रयः' इति वा पाठः, पू.; सेतु. २६३ एकशय्यासनं (एकशययनं) लिङ्गनं (लिङ्गने); समु. १५४ स्मृचवत्; विव्य. ५३.

(४) अप. २।२८४; व्यक. १२४; विर. ३८४; दवि. ५३. उत्तमः (उत्तममध्यमः) : १५६; विचि. १७२; व्यग्र. ३९९; व्यउ. १३६ धिके (धिकः); व्यग्र. १३६ कर्त्तुं द्विणाधिके (कोऽपि बलाद्रहः); विता. ७९८ कर्त्तुं द्विणाधिके; सेतु. २६४ (=); समु. १५४ व्यमवत्.

त्तमसाहसो दण्डा अधिकधनस्य त्वधिकोऽपि दण्ड इत्यर्थः । विचि. १७२

सहसा कामयेद्यस्तु धनं तस्याखिलं हरेत् ।

उत्कृत्य लिङ्गवृषणौ भ्रामयेद्गर्दभेन तु ॥

(१) ब्राह्मणेतरसवर्णाविषये तु बृहस्पतिरपराधिनो दण्डमाह— सहसेति । कामयेत् परस्त्रियं व्रजेदित्यर्थः ।

स्मृच. ३२०

(२) यः सहसा बलेन परस्त्रियमनिच्छन्तीमेवाभिगच्छति, तस्य सर्वस्वं गृहीत्वा लिङ्गवृषणौ छित्वा गर्दभेन पुरपरिभ्रामणं दण्डः । विर. ३८९

छद्मना कामयेद्यस्तु तस्य सर्वहरो दमः ।

अङ्कयित्वा भगाङ्केन पुराभिर्वासयेत्ततः ॥

(१) छद्मना कामयेत् वञ्चनया संगच्छेत् । सर्वहरः सर्वस्वहरणं, तद्भगाङ्ककरणानन्तरमित्यर्थः ।

स्मृच. ३२०

(२) यस्तु छद्मना छलेन परस्त्रियमनिच्छन्तीमेवाभिगच्छति, तस्य सर्वस्वमादाय भगाङ्केनाङ्कयित्वा पुराभिर्वासनं दण्डः । विर. ३८९

दमोऽन्तिमः समायां तु हीनायामधिकस्ततः ।

पुंसः कार्येऽधिकार्यां तु गमने संप्रमापणम् ॥

(१) अप. २।२८६ सहसा कामयेद्यस्तु (सहसायः कामयेते); व्यक. १२५; स्मृच. ३२०; विर. ३८८; पमा. ४६६; रत्न. १२९; दवि. १६५ लिङ्ग (लिङ्ग); सवि. ४६७; व्यग्र. ३९६; व्यउ. १३४ क्रमेण मनुः; व्यम. १०५ दविवत्; विता. ८१३ उत्तरार्धे (उत्कृत्य लिङ्गवृषणौ अङ्कयित्वा परिग्रहम् । उत्कृत्य लिङ्गवृषणौ भ्रामयेद्गर्दभेन तु); सेतु. २६६ काम (कार); समु. १५३-४.

(२) अप. २।२८६; व्यक. १२५; स्मृच. ३२०; विर. ३८९; पमा. ४६६ काम (कार); रत्न. १२०; विचि. १८२-३ छद्मना (सहसा); दवि. १६५ सर्वहरो दमः (सर्वहरो दमः); व्यग्र. ३९८; व्यउ. १३६; व्यम. १०५; सेतु. २६६-७ पमावत्; समु. १५४.

(३) व्यक. १२५; स्मृच. ३२० अन्तिमः (नेयः) संप्र (संप्र); विर. ३८९; रत्न. १३० स्मृचवत्; विचि. १८३ अन्तिमः (कः संस्तः) कने (फलं); दवि. १६५; व्यग्र. ३९७ अन्तिमः (मधि) शेषं स्मृचवत्; व्यउ. १३४ (=) अन्तिमः (नेयः) संप्रमापणम् (संप्रमापणे); व्यम. १०६ अन्तिमः

(१) तस्यात्रायमर्थः । समायां जारसवर्णपरभार्या-गमनविषये 'छद्मना कामयेदि'त्यादिवाक्योक्तो दमो-नेयः पुमांसं जारभूतं प्रापणीयः । हीनायां जारतो हीनवर्णायां गमने ततः छद्मना गमननिमित्तकाद्दमादधिकोऽर्थो दमः पुंसः कार्यः । अधिकायां जारतोऽधिकवर्णायां गमने संप्रमापणं प्रमापणमपि पुंसः कार्यम् । सर्वस्वहरणं कृत्वा प्रमापयेदित्यर्थः । अत्रापि पुंस एवापराधित्वात्तस्यैव दण्डाभिधानमिति मन्तव्यम् । तेनात्रापि स्त्रिया नास्ति दण्डः । तथापि परपुरुषसंपर्कज-दोषसद्भावादसंव्यवहार्यताऽस्ति । ततश्चात्रापि —'अनिच्छन्ती तु या भुक्ता गुतां तां वासयेद्गृहे । मलिनाङ्गीमघःशय्यां पिण्डमात्रोपजीविनीम् ॥ कारयेन्निष्कृतिं कृच्छं पराक वा समे गताम् । हीनवर्णोपभुक्ता या त्याज्या वध्याऽथवा भवेत् ॥' इत्युक्तमनुसंधेयम् ।

स्मृच. ३२१

(२) यस्तु बलच्छले विहाय दूतादिप्रेषणद्वारा समानजातीयां परस्त्रियं गच्छति, तस्यान्तिमः उच्चमो दण्डः, हीनायां तु बलच्छले विहाय गच्छतो मध्यमो दण्डः । उत्कृष्टजातीयां तु दूतादिप्रेषणद्वारा बलच्छलाभ्यां वा गच्छतो मारणमेवेत्यर्थः । विर. ३८९

(३) एतद्दर्शनाद्बलच्छलाभ्यां सजातीयाभिगमे उत्तमाधिको दण्डो हीनजातीयाभिगमे उत्तम इति गम्यते, हीनस्य बलेनोत्तमाभिगमे विचित्रो वध इति शेषः । अपराधगौरवात् । 'पुमांसं दाहयेत् पापं शयने तत आयसे' इति वचनाद्वा । दर्पगमनाधिकारे मनुविरिति कृत्वा कामधेन्वादावस्यावतारणात् । *दवि. १६६

सुगुप्तां ब्राह्मणीं यान्तो दम्भव्यास्तु कटाभिना ।।

स्त्रीसंग्रहणे स्त्रीणां दण्डविधिः

गृहमागत्य या नारी प्रलोभ्य स्पर्शनादिना ।

कामयेत्तत्र सा दण्ड्या नरस्यार्धदमः स्मृतः ॥

* शेषं विरवत् ।

(नेयः) समायां तु (समायां यो); विता. ८१३-४ सोऽन्तिमः (मः समः) मधि (मधि); सेतु. २६७; समु. १५४ अन्तिमः (नेयः).

(१) विचि. १८३.

(२) व्यक. ३२६; स्मृच. ३२३; विर. ३९८ (=)

छिन्ननासौष्ठवकर्णां तां परिभ्राम्याप्सु मज्जयेत् ।
खादयेद्वा सारमेयैः संस्थाने बहुसंस्थिते ॥

तत्र सा दण्ड्या, यः स्त्रियं प्रलोभ्य संगच्छतः पुरुषस्य
दण्डः तेन दण्ड्या, तद्दण्डार्धः पुरुषस्य । छिन्नेत्यादिना
तस्या एवाधिको वैकल्पिक उक्तः । बहुसंस्थिते बहु-
भिराकीर्णं । विर. ३९८-९.

अनिच्छन्ती तु या मुक्ता गुप्तां तां वासयेद् गृहे ।
मलिनाङ्गीमघःशय्यां पिण्डमात्रोपजीविनीम् ॥

कैरयेन्निष्कृतिं कृच्छ्रं पराकं वा समे गताम् ।

हीनवर्णोपमुक्ता या त्याज्या वध्याऽथवा भवेत् ॥

गुप्तां पुनः संभोगरहितां वासयेद्विशुद्धिपर्यन्तमिति
शेषः । समे गतां समवर्णे पुंसि संगतामित्यर्थः ।
हीनवर्णोपमुक्ताविषये वचनान्तरपर्यालोचनया यद्वक्तव्यं
तद्विस्तरभयादिह नोक्तम् । स्वाक्षरे प्रायश्चित्तकाण्डे
वक्ष्यते । स्मृच. ३२०

कात्यायनः

संग्रहणलक्षणानि

येनि कर्माण्यभिलषन् पुमान् च कुरुते क्वचित् ।

आरम्भास्ते तु निर्दिष्टा मर्हिताः कामसाधकाः ॥

रत्न. १३२; विचि. १८६; व्यनि. ४०२; दवि. १६४;
वीमि. २।२९४; व्यग्र. ४०४; व्यउ. १२९; व्यम. १०७
नारदः; विता. ८०७; सैतु. २७३; समु. १५५.

(१) व्यक. १२६ कर्णां तां (कर्णां तु); विर. ३९८
(=) खाद... भैयैः (खादयेत्सारमेयैर्वा); विचि. १८६ छिन्न
(छिन्न); व्यनि. ४०२ कर्णां तां (कर्णां तु) भ्राम्या (भ्राम्या);
दवि. १६४ कर्णां तां (कर्णां तां); वीमि. २।२९४ स्य
मच्छ (शु भञ्ज) पू.; सैतु. २७३; समु. १५५ व्यकवत्.

(२) व्यक. १२७; स्मृच. ३२०, ३२१; विर. ४०७;
व्यनि. ४०२; व्यम. १०५ क्रमेण कालायनः; विता.
८१४ न्ती तु या मुक्ता (न्ती तु यां मुक्ता) नाङ्गी (नाङ्गी);
सैतु. २७३; विम. १६ पूर्वै (व्यभिचरन्तीं दन्तभक्तं शुद्धां
तां रक्षयेद्गृहे) पिण्डमात्रोप (पिण्डमात्रोप); समु. १५४.

(३) व्यक. १२७; स्मृच. ३२०, ३२१; विर. ४००
ऽथवा (च सा); व्यनि. ४०२ समे (समा) वा (सा);
व्यम. १०५ वत्... क्रमेण कालायनः; विता. ८१४ श्रुति
(श्रुतिः) वर्णोप (वर्णोप); सैतु. २७३; विम. १६ ऽथवा
क्वेत् (च वर्णोप.); समु. १५४.

(४) व्यक. १२४; विर. ३८२.

व्य. कां. २३७

परस्त्रियमभिलषन् यावन्तं कर्मकलापं पुमान् करोति,
सर्वोऽसौ संग्रहणारम्भः । विर. ३८२

दूतोपचारयुक्तश्चेदवेलास्थानसंगतः ।

कण्ठकेशाम्बरग्राही कर्णनासाकरादिषु ॥

एकस्थानासनाहारः संग्रहो नवधा स्मृतः ।

न ग्राह्यो ह्यन्वयाकारी ग्राह्यो दण्डमर्हति ॥

(१) अञ्जलं वस्त्रप्रान्तम् । स्मृच. ८

(२) अत्र करादिष्वित्यादिशब्देन कण्ठकेशकर्णनासा-
तिरिक्तं अङ्गं ग्राह्यम् । तेन भूतोपचारयुक्तस्ताम्बूला-
शुपकरणयुक्तः । कण्ठे केशोऽम्बरे कर्णे नासायां करादा-
विति षट्सु स्थितिः, एकस्थान एकासन एकाहारश्च
भवति, स नवप्रकारः संग्रहो ग्राह्यैर्निश्चेतव्य इत्यर्थः ।
न ग्राह्य इत्यादिनाशेन एतैरेव चिह्नैर्भावान्तरप्रयुक्तैर्न
संग्रहो निश्चेतव्यः । यस्तु तेनैव तथात्वनिश्चयं कुरुते, स
एव दण्ड्यः । विर. ३८२-३

गैर्भपातो नखानां च दर्शनं गर्भधारणम् ।

धारणं परवस्त्राणां अलङ्कारायुधस्य च ॥

एभिश्चिह्नैः सदा ज्ञेया व्यभिचाररताः स्त्रियः ॥

गर्भपात इत्यादिना, एभिर्गर्भपातादिभिर्निमित्तै-
र्व्यभिचाररता इति ज्ञेयमित्युक्तम् । विर. ३८३

गन्धमात्याम्बरैश्चैव लेख्यसंप्रेषणैरपि ।

ग्राहकं सर्वमेव स्यादारम्भकरणं हि तत् ।

अस्मादकार्ये संस्पर्शात् ग्रहं संग्रहणं विदुः ॥

(१) व्यक. १२४ संगतः (संस्थितः); स्मृच. ८ संगतः
(संस्थितः) शाम्बरग्राही (शाम्बरग्राहः); विर. ३८२ दूतो
(भूतो); समु. १५३ संगतः (संस्थितः) शाम्बरग्राही
(शाम्बरग्राहः).

(२) व्यक. १२४ कारी (कारि); स्मृच. ८ हारः
(हारः) पू.; विर. ३८२ नवधा (सुप्तिभिः); समु. १५३
स्मृचवत्, पू.

(३) व्यक. १२४; विर. ३८२; व्यनि. ३९९; समु.
१५३ गर्भपातो (दन्तपाद) धारणं परवस्त्राणां (परवस्त्राय
कारणं) स्मृत्यन्तरम्.

(४) व्यक. १२४; विर. ३८२; व्यनि. ३९९; समु.
१५३ स्मृत्यन्तरम्.

(५) व्यक. १२४ श्वैव (श्वैवि) रपि (स्तथा) तत्
(स्त); विर. ३८३ अस्मादकार्ये (अस्मादकार्ये).

कामी तु संस्थितो यत्र आरम्भकामसाधके ।
तत्तस्माद्ग्रहणं तस्य ग्राह संग्रहणं ह्यतः ॥
ग्राहकं ग्रहणस्यावरोधस्य निमित्तमिति हलायुधः ।
विर. ३८४

संग्रहणदोषप्रतिप्रसवः

अतोऽन्येन प्रकारेण प्रवृत्तौ ग्रहणं भवेत् ।
स्वयमेवागतायां तु पुंगुहे न तु दोषभाक् ॥

(१) अभिगमनानुवृत्तौ कात्यायनः— अत इति ।
व्यक. १२५

(२) अभिगमनानुवृत्तौ विष्णुः— अत इति ।
विर. ३८५

(३) पुंगुह इति । स्वगृहं गते पुंसि स्त्रियां स्वयमुप-
स्थितायां अधिकः पुंसो न दोष एवेत्यर्थः । एतद्वचनं
कल्पतरौ संग्रहणप्रकरणे पठितम् । रत्नाकरे त्वभिगमना-
नुवृत्तौ कात्यायन इति कृत्वा तत्रैवावतारितम् ।
दवि. १५७-८

प्रदुष्टत्यक्तदारस्य क्लीवस्याक्षमकस्य च ।
स्वेच्छयोपेयुषो दारान्न दोषः साहसे भवेत् ॥

अस्यार्थः— प्रदुष्टास्त्यक्ताः स्वदारा येन तस्य
दुष्टान् दारान् तथा क्लीवाक्षमयोदाराणामेवेच्छयोप-
गच्छन् न दण्डनीय इति ।
व्यक. १२५

स्त्रीपुरुषयोः संग्रहणे दण्डविधिः

स्त्रीषु वृत्तोपभोगः स्यात्प्रसह्य पुरुषो यदा ।
वधस्तत्र प्रवर्तेत कार्यातिक्रमणं हि तत् ॥

तदगुणवतो जायायां द्रष्टव्यम् । अत्र मन्वादिभिः
पुरुषस्यैव दण्डाभिधानं दण्डप्रापकस्त्रीगतापराधाभावा-
दिति मन्तव्यम् । तथापीतरपुरुषसंसर्गजं पापं नार्याः
संपद्यते । ततश्चासंन्यवहार्यता अत्रापि दण्ड्यायामिव
समाना । सा प्रायश्चित्तेन क्वचिदपैति क्वचिन्नेत्याह

(१) व्यक. १२४; विर. ३८३ ग्राह संग्रहणं (प्रासङ्गग्रहणं).

(२) व्यक. १२५; विर. ३८६ पुंगुहे (स्वगृहे) विष्णुः;
दवि. १५७ न तु (स न).

(३) व्यक. १२५ नारदकालायनौ; विर. ३८६ प्रदुष्ट
(अदुष्ट) स्वेच्छयो (स्वेच्छानु) विष्णुः; दवि. १५८ स्वेच्छयो
(स्वेच्छानु) नारदकालायनौ.

(४) व्यक. १२५; स्मृच. ३२० वधस्तत्र (वधे तत्र);
विर. ३८९ भोगः (योगः); व्यग्र. ३९७ वृत्तो (कृतो);

बृहस्पतिः— अनिच्छन्तीति । स्मृच. ३२०
सर्वेषु चापराधेषु पुंसो योऽर्थदमः स्मृतः ।
तदर्थं योषितो दद्युः वधे पुंसोऽङ्गकर्तनम् ॥
योषितो दद्युः इति, पुरुषवदपराधकर्तव्यं इति शेषः ।
स्मृच. ३२१

नास्वतन्त्राः स्त्रियो ग्राह्याः पुमांस्तत्रापराध्यते ।
प्रभुणा शसनीयास्ता राजा तु पुरुषं नयेत् ॥

(१) तद्व्रताचरणार्हास्वतन्त्रासु द्रष्टव्यम् । स्मृच. ३२०
(२) सतन्त्राः सस्वामिकाः स्त्रियो राजा न ग्राह्या न

कर्षणीयाः, राजा तु पुरुषं नयेत् स्त्रीस्वामिनं पुरुषं
प्रापयेत् । स्वामिद्वारैव तदण्डो ग्राह्य इति तात्पर्यम् ।
विर. ४००

प्रोषितस्वामिका नारी प्रापिता यद्यभिग्रहे ।

तावत्सा बन्धने स्थाप्या यावत्स्यादागतः प्रभुः ॥
अभिग्रहे अभिसारनिमित्तग्रहे सति राजपुरुषैर्यदि

राजगृहं नीता । विर. ४००

स्वैरिणीगमनविचारः

कामार्ता स्वैरिणी या तु स्वयमेव प्रकामयेत् ।
राजादेशेन भोक्तव्या विख्याप्य जनसंनिधौ ॥

व्यउ. १३५ वृत्तो (कृतो) शेषं स्मृचवत्; व्यम. १०५ वृत्तो
(कृतो) वधस्तत्र (वधे तस्य); विता. ८१४ वृत्तोप (यः कृतो)
शेषं स्मृचवत्; सेतु. २६७ विरवत्; समु. १५३ स्मृचवत्.

(१) स्मृच. ३२१ चतुर्थपादं विना; रत्न. १३०; व्यग्र.
३९९ योऽर्थ (ह्यर्थ); व्यउ. १३६-७; व्यम. १०६; समु.
१५४.

(२) व्यक. १२७ ध्यते (ध्यति); स्मृच. ३२३ व्यक-
वत्; विर. ४०० नास्व (न स); विचि. १८७ अस्ता
(या सा) शेषं व्यकवत्; दवि. १६४; सेतु. २७४ तु (च);
समु. १५५ व्यकवत्.

(३) व्यक. १२७ तस्यादा (त्प्रत्या); स्मृच. ३२३
व्यकवत्; विर. ४००; विचि. १८७; दवि. १६५; सेतु.
२७४; समु. १५५ व्यकवत्.

(४) अप. २।२९०; व्यक. १२८; विर. ४०५ क्लम
(क्लम) व्यनि. ४०३ कामा ... या तु (यं कामार्ता
स्वैरिणी या) राजा ... क्तव्या (राजा देशादिभोक्तव्या)
व्यासः; सेतु. २७७; समु. १५५ राजा ... क्तव्या (राजा
देशादिभोक्तव्या) व्यासः.

व्यासः

संग्रहणलक्षणानि

संग्रहस्त्रिविधो ज्ञेयः प्रथमो मध्यमस्तथा ।
उत्तमश्चेति शास्त्रेषु तस्योक्तं लक्षणं पृथक् ॥
त्रिविधं तत्समाख्यातं प्रथमं मध्यमोत्तमम् * ॥
अदेशकालसंभाषा निर्जने च परस्त्रिया ।
अपाङ्गप्रेक्षणं हास्यं प्रथमः संग्रहः स्मृतः ॥
एतच्च रिरंसया विशेषणीयम् । विर. ३७९
प्रेषणं गन्धमाल्यानां धूपभूषणवाससाम् ।
प्रलोभनं चान्नपानैर्मध्यमः संग्रहः स्मृतः ॥

* अयमर्थश्लोकः पूर्वश्लोकार्थदर्शकः पूर्वश्लोकस्थाने पठनीयः ।

(१) अप. २।२८४; व्यक. १२४ ज्ञेयः (प्रोक्तः);
स्मृच. ८; विर. ३७९; रत्न. १३०; विचि. १६९ ज्ञेयः
(प्रोक्तः) मध्यमस्तथा (मध्य उत्तमः) उत्तमश्चेति (उक्तश्चेति स्व);
व्यग्र. ३९७; सेतु. २६१; समु. १५३; विच्य. ५३ ज्ञेयः
(प्रोक्तः) मस्तथा (मोत्तमः) उत्तमश्चेति (उक्तश्चेति स) .

(२) मित्ता. २।२८३; स्मृचि. २६; सवि. ४६७
नारदः; वीमि. २।२८३; विता. ७९७; राकौ. ४८४.

(३) मित्ता. २।२८३ संभाषा (भाषाभिः) या (याः)
अपाङ्गप्रे (कटाक्षान्ते) मः स्मृतः (मं साहसं स्मृतम्);
व्य. २।२८४ निर्जने (अरण्ये) प्रथ... स्मृतः (पूर्वसंग्रहणं
स्मृतम्); व्यक. १२४ अपवदः; स्मृच. ८ अपाङ्गप्रे (कटा-
क्षान्ते); विर. ३७९ काल (काले) षा (ष्य) निर्जने (अरण्ये)
या (याः); विचि. १६९ काल (काले) निर्जने (अरण्ये)
या (याः) प्रथ... .. स्मृतः (पूर्व संग्रहणं स्मृतम्); स्मृचि.
२६ या (याः) अपाङ्गप्रे (कटाक्षान्ते) मः स्मृतः
(मं साहसं स्मृतम्); सवि. ४६७-८ या (याम्) उत्तरार्धे
(कटाक्षवीक्षणं हास्यं प्रथमं साहसं स्मृतम्) नारदः; वीमि.
२।२८३ काल (काले) पू; विता. ७९७ मित्तावदः; राकौ.
४८४ स्मृचिवदः; सेतु. २६१ काल (काले) निर्जने (अरण्ये)
प्रथ... स्मृतः (पूर्व संग्रहणं स्मृतम्); समु. १५३ मित्तावदः;
विच्य. ५३ या (याः) प्रथ... स्मृतः (प्रथमं संग्रहणं स्मृतम्) .

(४) मित्ता. २।२८३ मः संग्रहः स्मृतः (मं साहसं
स्मृतम्); अप. २।२८४ क्रमेण मनुः; व्यक. १२४; स्मृच.
८; विर. ३८०; विचि. १७१ बृहस्पतिः; स्मृचि. २६
चात्र (चात्र) मः ... स्मृतः (मं समुदाहृतम्); दवि. १५६
शूष (पूष) मः ... स्मृतः (मः साहसः स्मृतः); सवि. ४६८
श्रीवाचन, नारदः; वीमि. २।२८३ मः ... स्मृतः (मं समु-

शय्यासने विविक्ते तु परस्परमुपाश्रयः ।
केशकेशिग्रहश्चैव ज्ञेय उत्तमसंग्रहः ॥
विविक्ते रहसि । केशकेशिग्रहैः परस्परकेशग्रहण-
पूर्वकक्रीडाभिः । स्मृच. ८
अपाङ्गप्रेक्षणं हास्यं दूतीसंप्रेषणं तथा ।
स्पर्शो भूषणवस्त्राणां प्रथमः संग्रहः स्मृतः ॥
प्रेषणं गन्धमाल्यानां फलधूपान्नवाससाम् ।
संभाषणं च रहसि मध्यमं संग्रहं विदुः ॥
एकशय्यासनं क्रीडा चुम्बनालिङ्गनं तथा ।
एतत् संग्रहणं प्रोक्तमुत्तमं शास्त्रवेदिभिः ॥

श्रीसंग्रहणे दण्डविधिः

गुप्तायाः संग्रहे दण्डो यथोक्तः परिकीर्तितः ।
इच्छन्त्यामागतायां तु गच्छतोऽर्धदमः स्मृतः ॥
यथोक्त उत्तमसाहसरूपः । एष त्वर्धदण्डः क्लीबादि-
भार्याव्यतिरिक्तासु, क्लीबादिभार्यासु दण्डाभावोक्तेः ।
विर. ३९२

साधारणश्रीगमने दण्डविधिः

बहुभिर्भुक्तपूर्वा या गच्छेद्यस्तां नराधमः ।
तस्य वेद्यावदिच्छन्ति दण्डनं न तु दारवत् ॥

दाहृतम्) उक्तः; विता. ७९७ वीमिवदः; राकौ. ४८४
वीमिवदः; सेतु. २६२; समु. १५३; विच्य. ५३ बृहस्पतिः..

(१) मित्ता. २।२८३ शय्या...तु (सहासनं विविक्तेषु)
ज्ञेय...ग्रहः (सम्यक् संग्रहणं स्मृतम्); अप. २।२८४ मुपा
(समा) क्रमेण मनुः; व्यक. १२४ मुपा (मपा); स्मृच. ८
सने (सनं) मुपा (मपा) हश्चै (हैश्चै); विर. ३८१ मुपा
(मपा); विचि. १७१ विरवदः; स्मृचि. २६ शय्यासने
(सहासनं) ज्ञेय...ग्रहः (सम्यक् संग्रहणं स्मृतम्); सवि.
४६८ स्मृचिवदः, नारदः; वीमि. २।२८३ स्मृचिवदः; विता.
७९८ स्मृचिवदः, उक्तः; राकौ. ४८४ क्ते (क्तं) श्लेषं
स्मृचिवदः; सेतु. २६३; समु. १५३ स्मृचिवदः.

(२) व्यग्र. ३९७-८ व्यासबृहस्पती. [वस्तुतस्तु एते श्लोका
व्यासस्य न सन्ति उपर्युक्तैः पुनरुक्तेः ।]

(३) स्मृच. ३२१ प्रायाः (प्रायां) परिकीर्तितः (समु-
दाहृतः); विर. ३९२ हे (हो); रत्न. १३१ स्मृचिवदः;
व्यनि. ४०१ स्मृतः (मतः) उक्तः; दवि. ५० कीर्तितः
(कल्पितः) : १६४; सेतु. २७०; समु. १५४ स्मृचिवदः.

(४) अप. २।२९०; व्यक. १२८; विर. ४०५;

परोपरुद्धागमने पञ्चाशत्पणिको दमः ।
प्रसह्य वेद्यागमने दण्डो दशपणः स्मृतः ॥

यमः

मातृष्वसादिगमने पातित्यम्

मातृष्वसा मातृसखी दुहिता च पितृष्वसा ।
मातुलानी स्वसा श्वश्रूगत्वा सद्यः पतेद्विजः ॥

वर्णभेदेन स्त्रीसंग्रहणे दण्डविधिः

शूद्रं तु घातयेद्राजा शयने तप्त आयसे ।
दहेत्पापकृतं तत्र काष्ठैः पर्णैस्तृणैस्तथा ॥

ब्राह्मणीगन्तारमित्यनुवृत्तौ यमः — शूद्रमिति ।

विर. ३९५

वृषलं सेवते या तु ब्राह्मणी मदमोहिता ।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने वध्यघातिनाम् ॥

(१) 'मदमोहिते'ति वदन् वधदण्डस्यासार्वत्रिकत्वं दर्शयति । तेन 'नार्याः कर्णादिकर्तनम्' इति प्रागुक्तो दण्डो रागादत्यन्तासक्ताविषय इति मन्तव्यम् । अत्यन्तासक्तरहिताविषये तु न शारीरो दण्डः । संव्यवहारार्थं 'यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम्' इति प्रायश्चित्तविधानात् ।

स्मृच. ३२३

(२) वध्यघातिनां संस्थाने, वध्यान् ये घातयन्ति चाण्डालादयः, तैरधिष्ठिते देशे ।

विर. ३९८

विचि. १८९ गच्छे... धमः (तां गच्छेयुर्नाराधमाः) तस्य (तस्याः); व्यनि. ४०३ पूर्वा या (पूर्वा तु) दण्डनं न तु (दण्डं न पर); दवि. १८८; वीमि. २।२८६ गच्छे... धमः (तां गच्छेयुर्नाराधमाः) तस्य (तस्याः); सेतु. २७७; समु. १५५ पूर्वा या (पूर्वा तु) दण्डनं न तु (दण्डं तु पर).

(१) अप. २।२९०; व्यक. १२८; स्मृच. ३२३ त्वपि (त्वम); विर. ४०६ परोष (पराव); रत्न. १३२; विचि. १८७ विरवत्; दवि. १९० (=) उक्त.; व्यग्र. ४०२; सेतु. २७८ विरवत्; २७९ उक्त.; समु. १५५ स्मृचवत्.

(२) दवि. १८०.

(३) विर. ३९५; विचि. १८५; दवि. १७४ पर्णै (पर्णै); सेतु. २७१.

(४) व्यक. १२६; स्मृच. ३२३; विर. ३९८; रत्न. १३२; विचि. १८६; व्यनि. ४०१ श्रुति (स्त्रादि); दवि. १७४; वीमि. २।२८६; व्यम. १०७; विता. ८०७ तां श्वभिः (श्वभिस्तं.); सेतु. २७२; समु. १५५; विच्य. ५४ ब्राह्मणी (कुमारी).

(३) एतद्दर्शनात् गौतमवाक्ये पुरुषवधे प्रकाश-
त्वाभिधानात् स्त्रियाः श्वभिः खादनं निवृत्तमिति भ्रमो
हेयः ।

दवि. १७४

वैश्यं वा क्षत्रियं वाऽपि ब्राह्मणीं सेवते तु या ।
शिरसो मुण्डनं तस्याः प्रयाणं गर्दभेन तु ॥

इह ब्राह्मण्या नयायाः शिरोमुण्डन-सार्परभ्युक्षण-
स्वराधेहण-राजपथानुव्रजनानि वसिष्ठेन विहितानि पूता
भवतीत्युपसंहारदर्शनात् प्रायश्चित्तरूपाणि । अत एव
कल्पतरौ— शूद्रमग्नौ प्रास्येदित्यन्तमेव तद्वाक्यं पठित-
मतस्तदिहोपेक्षितम् । अत एव 'अनिच्छन्ती च या
मुक्ते'त्यादि बृहस्पतिवचनमपि नात्रावतारितम् ।

दवि. १७४

बन्धकीगमने दण्डविधिः

परदारो स्वर्णासु दण्ड्याः स्युः पञ्चकृष्णलान् ।
असवर्णास्वानुलोम्ये दण्डो द्वादशकः स्मृतः ॥

(१) बन्धकीमधिकृत्याह यमः— परेति । द्वादशकः
द्वादशपणः ।

अन. २।२९०

(२) द्वादशकः द्वादशकार्षापणमित्यर्थः । तदेतद्वन्ध-
कीविषयम् ।

स्मृच. ३२३

साहसिकादिदुष्टरहितराज्यस्तुतिः

दुष्टाः साहसिकाश्चण्डाः कितवा बाधकास्तथा ॥
यस्य राष्ट्रे न सन्तीह स राजा शकलोकभाक् ॥
संवर्तः

स्त्रीसंग्रहणलक्षणानि, स्त्रीसंग्रहणनिर्णयश्च

नेच्छन्त्या यानि चिह्नानि बलात्कारकृतानि च ।
परपुंसः प्रसङ्गेषु नारीणां तानि शृण्वतः ॥

(१) व्यक. १२६; स्मृच. ३२३; विर. ३९८; रत्न-
१३२; विचि. १८६; व्यनि. ४०१; दवि. १७४ तु च
(यदा); वीमि. २।२८६ तस्याः (तस्य) भेन तु (भेन च);
व्यम. १०७; विता. ८०७; सेतु. २७२; समु. १५५.

(२) अप. २।२९०; व्यक. १२८ स्मृतः (मतः);
स्मृच. ३२३ दारे (दार) स्मृतः (मतः); विर. ४०५;
दवि. १८८ दण्ड्याः (दाप्याः) स्मृतः (मतः); सेतु-
२७७ पर (पार) स्मृतः (दमः); समु. १५६ स्मृचवत्, पू-

(३) व्यक. १२८ बाधका (बन्धका); विर. ४०८;
सेतु. २८०.

(४) स्मृच. ३१५; रत्न. १२८; सवि. ४६५ परपुंसः

नेखदन्तक्षतक्षामा सकचग्रहविक्षता ।

सद्यो विध्वंसिता नारी बलात्कारेण दूषिता ॥

उच्चैर्विक्रोशयन्ती च रुदन्ती लोकसंनिधौ ।

तस्य नाम्ना वदन्ती च यथाहं तेन दूषिता ॥

शोचेदेवंविधैर्लिङ्गैः व्रणीकृतपयोधरा ।

छिन्नालङ्कारकेशैश्च व्याकुलीकृतलोचना ॥

राज्ञा सभ्यैः सभां नीत्वा स्वयमन्विष्य तत्क्षणात् ।

यद् ब्रूयात् सहजं वाक्यं तत्कर्तव्यं प्रयत्नतः ॥

विवादे साक्षिणामत्र न कुर्वीत परिग्रहम् ।

प्रार्थनादभिशस्तस्य न दिव्यं दातुमर्हति ॥

बलात्कारेण सद्यो विध्वंसिता दूषिता नारी या

नेखदन्तक्षताद्यन्विता विध्वंसकस्य नाम्ना तत्कृतविध्वं-

सनप्रकारं वदन्ती शोचेत्, तां तत्क्षणाद्राज्ञा स्वयम-

न्विष्य सभ्यैः सह सभां प्राप्य का तव पीडिति पृच्छेत् ।

ततस्तदा तथाऽऽवेदितं तदाकर्ण्य चिह्नैरेवात्र राज्ञा

निर्णेतव्यमित्यर्थः ।

स्मृच. ३२०

(पुनः पुनः); व्यग्र. ३९६; व्यड. १३४; विता. ८१३
शृण्वतः (शृण्वते) उक्तं, बृहस्पतिः; समु. १५३ च (तु).

(१) स्मृच. ३१९ सक...क्षता (कचग्रहविक्षिता);
रत्न. १२८; सवि. ४६५ क्षतक्षामा (क्षता क्षामा) विक्षता
(पीडिता); व्यग्र. ३९६ विक्षता (वीक्षिता) विध्वंसिता
(विश्वासिता); व्यड. १३४ विध्वंसिता (विश्वासिता);
विता. ८१३ बृहस्पतिः; समु. १५३ सकचग्रहविक्षिता
(कचग्रहविक्षिता).

(२) स्मृच. ३१९; रत्न. १२९; सवि. ४६५ रुदन्ती
(रुदती); व्यग्र. ३९६; व्यड. १३४; विता. ८१३ बृह-
स्पतिः; समु. १५३.

(३) स्मृच. ३१९ व्रणीकृत (वामीकृत); रत्न. १२९
छिन्ना (चिह्ना); सवि. ४६५ बृहस्पतिः; व्यग्र. ३९६ रत्न-
वत्; व्यड. १३४ रत्नवत्; समु. १५३ स्मृचवत्.

(४) स्मृच. ३१९; रत्न. १२९; सवि. ४६६; व्यग्र.
३९६ वाक्यं (तत्र); व्यड. १३४ व्यग्रवत्; विता. ८१३
बृहस्पतिः; समु. १५३.

(५) स्मृच. ३२०; रत्न. १२९ न कुर्वीत (प्रकुर्वीत);
सवि. ४६६ प्रार्थना (वर्तना); व्यग्र. ३९६ रत्नवत्; व्यड.
१३४ रत्नवत्; विता. ८१३ नादभि (नेऽप्यभि) शेषं
रत्नवत्, बृहस्पतिः; समु. १५३.

बृहदारितः

परस्त्रीगमने दण्डविधिः

प्रत्येकं दण्डनं कुर्याद्दुर्वृत्तस्य परस्त्रियाम् ॥

चुम्बने तालुविच्छेदो द्वौ हस्तौ परिरम्भणे ।

हस्तस्याङ्गुलिविच्छेदः केशादिग्रहणे स्त्रियाः ॥

दाहयेत्तप्ततैलेन हस्तमुष्टया च ताडनम् ।

सुरतं याचमानस्य जिह्वाच्छेदं च कामतः ॥

परद्रव्यादिहरणं परदारामिर्शनम् ।

यः कुर्यात्तु बलात्तस्य हस्तच्छेदः प्रकीर्तितः ॥

यो गच्छेत्परदारांस्तु बलात्कामाच्च वा नरः ।

सर्वस्वहरणं कृत्वा लिङ्गच्छेदं च दापयेत् ॥

दहेत् कटाग्निना देहं गुरुस्त्रीगामिनं तथा ॥

कामोङ्गितेषु सर्वत्र ताल्वोश्च दहनं स्मृतम् ।

दृष्ट्वा मुहुः प्रेरणे तु नेत्रयोः स्फोटनं चरेत् ॥

स्मृत्यन्तरम्

वर्णभेदेन परस्त्रीगमने दण्डविधिः

आनुलोम्येन.....स्त्रिया नासादिकर्तनम् ।

असवर्णानुगमने वधदण्डः प्रकीर्तितः ॥

अयं च दण्डस्याप्युपदेशो राज एव । तस्यैव प्राञ्चे
अधिकारात् । न द्विजातिमात्रस्य । ब्राह्मणः परीक्षार्थ-
मपि शस्त्रं नाददीतिति शस्त्रग्रहणनिषेधात् । 'धिग्दण्डो
वाग्दमश्चैव विप्रायत्ताबुभाविमौ' इति निषेधाच्च ।

सवि. ४७०-७१

अग्निपुराणम्

संग्रहणोपक्रमनिषेधः । स्वयंवरानुशा । वर्णभेदेन स्त्रियाः

व्यभिचारदण्डः । वर्णानुलोम्येन व्यभिचारे दण्डः ।

परस्त्रियं न भाषेत प्रतिषिद्धो विशेन्न हि ॥

अदण्ड्या स्त्री भवेद्राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयम् ॥

भर्तारं लङ्घयेद्या तां श्रमिः संघातयेत्स्त्रियम् ॥

ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात् ।

वैश्यागमे तु विप्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे ॥

क्षत्रियः प्रथमं वैश्यो दण्ड्यः शूद्रागमो भवेत् ॥

(१) बृहास्मृ. ७।२०४-६.

(२) बृहास्मृ. ७।२००-२०२. (३) बृहास्मृ. ७।२०७.

(४) सवि. ४७०. (५) अगु. २२७।४०.

(६) अगु. २२७।४१. (७) अगु. २२७।४२-४.

मत्स्यपुराणम्

प्रतिषिद्धानां परस्त्रियाः अगारप्रवेशे दण्डः

३मिक्षुकोऽप्यथवा नारी योऽपि स्यात्तु कुशीलवः ।
प्रविशेत् प्रतिषिद्धस्तु प्राप्नुयात् द्विशतं दमम् ॥
येस्तु संचारकस्तत्र पुरुषः स तथा भवेत् ।
पारदारिकवदण्डयो यश्च स्यादवकाशदः ॥

परस्त्रीसंग्रहणे दण्डविधिः

बैलात्संदूषयेद्यस्तु परभार्या नरः क्वचित् ।
वधदण्डो भवेत्तस्य नापराधो भवेत्स्त्रियाः ॥

(१) अफ. २।२८५; व्यक. १२५; विर. ३८५; द्विशतं
दमम् (पूर्वसाहसम्).

(२) अफ. २।२८५; व्यक. १२५; विर. ३८५;
विचि. १७४ : १८२ यस्तु (यश्च) षः संत्त्या (षस्तु तदा)
यश्च स्यादव (यश्चागाराव); दवि. १५५ स तथा (स्यथ
वा); सेतु. २६५; विव्य. ५४.

(३) व्यक. १२७; विर. ४००; विचि. १८७ नरः
क्वचित् (कथञ्चन) वधदण्डो (वधो दण्डो); दवि. १६३
भवेत्स्त्रियाः (परस्त्रियाः); वीमि. २।२८६ विचिवत्; सेतु.
२७४ नरः (पुनः); विव्य. ५५ (=) भवेत्स्त्रियाः (ऽस्ति
श्लेषितः) श्लेषं विचिवत्.

गुप्तास्त्रेवं भवेदण्डः सुगुप्तास्त्रधिकं भवेत् ॥
अद्रव्यां मृतपत्नीं तु संगृह्णापराधुयात् ।
बलात् परिगृहाणस्तु सर्वस्वं दण्डमर्हति ॥

कन्यादूषणे दण्डविधिः

अकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ।
सकामां दूषमाणस्तु प्राप्तः प्रथमसाहसम् ॥

पशुगमनदण्डः

४तिर्यग्योनौ तु गोवर्जं मैथुनं यो निषेवते ॥
स पणं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्याश्च यवसोदकम् ॥

विष्णुपुराणम्

पशुगमनायोनिगमननिषेधः

नान्ययोनावयोनौ वा ।

(१) दवि. १६९.

(२) व्यक. १२७ धुयात् (धुते); विर. ४०१;
दवि. १६३ बलात् (सात्रां).

(३) व्यक. १२७ अकामां (योऽकामां) माणस्तु (यानस्तु)
प्रथम (परम); विर. ४०१; दवि. १८३ श्लोकस्तु नोप-
लभ्यते, परन्तु व्याख्यानात् व्यकवत् पाठोऽनुमीयते.

(४) व्यक. १२८; विर. ४०७; दवि. १९४ तु (च);
बाल. २।२८९ पणं (शतं); सेतु. २७९.

(५) दवि. १६१.

द्यूतसमाह्वयम्

वेदाः

धृतानुमतिः

मा वो व्रन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् ।
सुमैरिद्व आ विवासे ॥

हे मित्रादयो देवा देवयन्तं देवान् कामयमानं यजमानं यः शत्रुर्हन्ति व्रन्तं तादृशं शत्रुं वो युष्मभ्यं मा प्रति वोचे दुरुक्तकथनभीत्या अहं न कथयामि । तथा यजमानं यः शत्रुः शपति तमपि शपन्तं मा प्रति वोचे । भवद्भिरेव विचार्यं शिक्षणीय इत्यर्थः । अहं तु सुमैरिद्व धनैरेव वो युष्माना विवासे । सर्वतः परिचरामि । ऋसा.

चतुरश्रिद्वदमानाद्विभीयादा निधातोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥

व्रन्तं शपन्तं च मा प्रति वोचे इति यदुक्तं तत्रोपपत्तिरुच्यते । दुरुक्ताय न स्पृहयेत् दुष्टं वाक्यं न कामयेत् किन्तु दुरुक्ताद्विभीयात् । तत्रावशिष्टो मन्त्रभागः सर्वोऽपि दृष्टान्तः । चिदिति उपमार्थे वर्तते । अक्षयूतं कुर्वतोरुभयोर्मध्ये यः पुमान् चतुरश्रतुःसंख्याकान् कपर्दकान् ददमानाददतो हस्ते धारयतः पुरुषात् आ निधातोः कपर्दकनिपातपर्यन्तं विभीयात् अस्य जयो भविष्यति । न भविष्यतीत्यन्यो भीतिं प्राप्नुयात् । अत्र यथा भयं तथा दुरुक्ताद्भेतव्यमिति धर्मरहस्यम् । तस्मादहं व्रन्तं शपन्तं मा प्रतिवोच इत्यभिप्रायः । ऋसा.

अक्षक्रीडा दोषः

न स स्वो दक्षो वरुण धृतिः सा सुरा मन्यु-
र्विभीदको अचित्तिः । अस्ति ज्यायान् कनीयस
उपारे स्वप्नश्चनेदन्तस्य प्रयोता * ॥

* सायणभाष्यं स्थलनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ. १५९१)
द्रष्टव्यः ।

(१) ऋसं. १।४।१।८.

(२) ऋसं. १।४।१।९; नि. ३।१६.

अक्षक्रीडायामनृतकरणे दोषः

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवो अप्यूहे
अग्ने । किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते
निर्ऋथं सचन्ताम् ॥

यदि वाहमनृतदेवोऽनृता असत्यभूता देवा यस्य तादृशो यद्यहमास अस्मि । अथवा मोघं वा निष्फले वा देवानप्यूहे उपगच्छामि । अहं यद्युक्तरूपोऽस्मि हे अग्ने तर्हि मां वाधस्व । न ह्यहं तथाविधोऽस्मि । एवं सति हे जातवेदो जातानां वेदितरग्ने अस्मभ्यं किंकारणं हृणीषे कुध्यसि । तव क्रोधोऽस्मासु न जायतामित्यर्थः । द्रोघवाचोऽनृतवाचो राक्षसास्ते तव निर्ऋथम् । निष्पूर्वोऽर्तिर्हिंसायां वर्तते । निर्ऋथं निःशेषेणार्तिं हिंसां सचन्तां सेवन्ताम् । ऋसा.

अक्षक्रीडानिषेधः

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिषे
वर्ततानाः । सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको
जागृविर्मह्यमच्छान् ॥

बृहतो महतो विभीतकस्य फलत्वेन संबन्धिनः प्रवा-
तेजाः प्रवणे देशे जाता इरिण आस्फारे वर्ततानाः-
प्रवर्तमानाः प्रावेपाः प्रवेपिणः कम्पनशीला अक्षा मा
मां मादयन्ति हर्षयन्ति । किञ्च जागृविर्जयपराजययोर्हर्ष-
शोकाभ्यां कितवानां जागरणस्य कर्ता विभीदको
विभीतकविकारोऽक्षो मह्यं मामच्छान् अचच्छदत् ।
अत्यर्थं मादयति । तत्र दृष्टान्तः । सोमस्येव यथा
सोमस्य मौजवतस्य । मुजवति पर्वते जातो मौजवतः
तस्य । तत्र ह्युत्तमः सोमो जायते । भक्षः पानं यज-
मानान् देवांश्च मादयति तद्वदित्यर्थः । तथा च

(१) ऋसं. ७।१०।१।१४; अंसं. ८।४।१।४ देव आस
(देवो अस्मि); बृदे. ६।३०.

(२) ऋसं. १०।३।४।१; नि. ९।८; ऋग्वि. ३।१०।१६
बृदे. ७।३६.

यास्कः — 'प्रवेपिणो मा महतो विभीतकस्य फलानि मादयन्ति । प्रवातेजाः प्रवणेजा इरिणे वर्तमाना इरिणं निर्ऋणमृणातेरपार्णे भवत्यपरता अस्मादोषधय इति वा सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो मौजवतो मुजवति जातो मुजवान् पर्वतो मुजवान् मुजो विमुच्यत इषीकयेषी-केशतेर्गतिकर्मण इयमपीतरेषीकैतस्मादेव विभीतको विभेदनात् जागृविर्जागरणान्मह्यमचच्छदत् ।' इति (नि. १।८) । ऋसा.

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् । अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्र-तामप जायामरोधम् ॥

एषा अस्मदीया जाया मा मां कितवं न मिमेथ न च चुकोष न जिहीळे न च लजितवती । सखिभ्योऽ-स्मदीयेभ्यः कितवेभ्यः शिवा सुखकर्यासीत् अभूत् । उतापि च मह्यं शिवा आसीत् । इत्थमनुव्रतामनुकूलां ज्ञानमेकपरस्यैकः परः प्रधानं यस्य तस्याक्षस्य हेतोः कारणादहमपारोषं परित्यक्तवानस्मीत्यर्थः । ऋसा.

द्वेष्टि श्वश्रुरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्दितारम् । अश्वस्येव जरतो वस्यस्य नाहं वि-न्दामि कितवस्य भोगम् ॥

श्वश्रूजायाया माता गृहमतं कितवं द्वेष्टि निन्दती-त्यर्थः । किञ्च जाया भार्याप रुणद्धि निरुणद्धि । अपि च नाथितो याचमानः कितवो धनं मर्दितारं धन-दानेन सुखयितारं न विन्दते न लभते । इत्थं बुद्ध्या विमृशन्नहं जस्तो बुद्धस्य वस्यस्य । वस्त्रं मूल्यम् । तदहंस्याश्वस्येव कितवस्य भोगं न विन्दामि न लभे । ऋसा.

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यामृशद्देदेने वाज्यक्षः । पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जनीमो जज्ञता बद्धमेतम् ॥

यस्य कितवस्य वेदने धने वाजी बलवानक्षो देवोऽ-गृधत् अभिकाङ्क्षां करोति तस्यास्य कितवस्य जायां अयामन्ये प्रतिकितवाः परि मृशन्ति वल्लकेशाद्याकर्षणेन संस्पृशन्ति । किञ्च पिता जननी च भ्रातरः सहोदरा-

(१) ऋसं. १०।३।१२. (२) ऋसं. १०।३।१३.
(३) ऋसं. १०।३।१४.

श्वैनं कितवमाहुः वदन्ति । न वयमस्मदीयमेनं जानीमः ॥ रज्ज्वा बद्धमेतं कितवं हे कितवाः यूयं नयत यथेष्टदेशं प्रापयतेति । ऋसा.

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः । न्युताश्च बभ्रवो वाचमक्रत एमीदेपां निष्कृतं जारिणीव ॥

यद्यदाऽहमादीध्ये ध्यायामि तदानीमेभिरक्षैर्न दवि-षाणि न दूषये न परितपामि । यद्वा न दविषाणि न देविष्यामीत्यर्थः । परायद्भ्यः स्वयमेव परागच्छद्भ्यः सखिभ्यः सखिभूतेभ्यः कितवेभ्योऽव हीये अवहितो भवामि । नाहं प्रथममक्षान् विसृजामीति । किञ्च बभ्रवो बभ्रवर्णा अक्षा न्युताः कितवैरवक्षिताः सन्तां वाचमक्रत शब्दं कुर्वन्ति । तदा संकल्पं परित्यज्याक्ष-व्यसनेनाभिभूयमानोऽहमेषामक्षाणां निष्कृतं स्थानं जारिणीव यथा कामव्यसनेनाभिभूयमाना स्वैरिणी संकेतस्थानं याति तद्वदेमीत् गच्छाम्येव । ऋसा.

सैभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः । अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीन्ने दधत आ कृतानि ॥

तन्वा शरीरेण शूशुजानः शोशुचानो दीप्यमानः कितवः कोऽत्रास्ति धनिकस्तं जेष्यामीति पृच्छमानः पृच्छन् सभां कितवसंबन्धिनीमेति गच्छति । तत्र प्रतिदीन्ने प्रतिदेवित्रे कितवाय कृतानि देवनोपयुक्तानि कार्माण्या दधतो जयार्थमाभिमुख्येन मर्यादया वा दधतोऽस्य कितवस्य काममिच्छामक्षासोऽक्षा वि तिरन्ति वर्धयन्ति । ऋसा.

अक्षास इदं कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तप-नास्तापयिष्णवः । कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥

अक्षास इदक्षा एवाङ्कुशिनोऽङ्कुशान्तो नितो-दिनो नितोदितवन्तश्च निकृत्वानः पराजये निकर्तन-शीलाः छेत्तारो वा तपनाः पराजये कितवस्य संताप-कास्तापयिष्णवः सर्वस्वहारकत्वेन कुटुम्बस्य संतापन-शीलाश्च भवन्ति । किञ्च जयतः कितवस्य कुमारदेष्णा

(१) ऋसं. १०।३।१५. (२) ऋसं. १०।३।१६.
(३) ऋसं. १०।३।१७.

अनदानेन धान्यतां लभ्यन्तः कुमाराणां दातारो भवन्ति । अपि च मध्वा मधुना संपृक्ताः प्रतिक्रितवेन कर्षणा परिवृद्धेन सर्वस्वहरणेन कितवस्य पुनर्हणः पुनर्हन्तारो भवन्ति । ऋसा.

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा । उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥

एषामक्षाणां त्रिपञ्चाशः त्र्यधिकपञ्चाशत्संख्याको व्रातः सङ्घः क्रीळति आस्फारे विहरति । अक्षिकाः प्रायेण तावद्भिरक्षैर्दीव्यन्ति हि । तत्र दृष्टान्तः । सत्यधर्मा सविता सर्वस्य जगतः प्रेरकः सूर्यो देव इव । यथा सविता देवो जगति विहरति तद्वदक्षाणां सङ्घ आस्फारे विहरतीत्यर्थः । किञ्चोग्रस्य चित् क्रूरस्यापि मन्यवे क्रोधमैतैः न नमन्ते न प्रह्वीभवन्ति न वशे वर्तन्ते । तं नमयन्तीत्यर्थः । राजा चिजगत ईश्वरोऽप्येभ्यो नम इन्नमस्कारमेव देवनवेलायां कृणोति नावज्ञां करोतीत्यर्थः । ऋसा.

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते । दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युत्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥

अपि चैतेऽक्षा नीचा नीचीनस्थले वर्तन्ते । तथाप्युपरि पराजयाद्गीतानां द्यूतकराणां कितवानां हृदयस्योपरि स्फुरन्ति । अहस्तासो हस्तरहिता अप्यक्षा हस्तवन्तं द्यूतकरं कितवं सहन्ते पराजयकरणेनाभिभवन्ति । दिव्या दिवि भवा अपकृता अङ्गारा अङ्गारसदृशा अक्षा इरिण इन्धनरहित आस्फारे न्युत्ताः शीताः शीतस्पर्शाः सन्तोऽपि हृदयं कितवानामन्तःकरणं निर्दहन्ति । पराजयजनितसंतापेन भस्मीकुर्वन्ति । ऋसा.

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क स्वित् । ऋणावा विभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥

क स्वित् कापि चरतो निवेदाद्दृच्छतः कितवस्य जाया भार्या हीना परित्यक्ता सती तप्यते । वियोगज-

(१) ऋसं. १०१३४१८. (२) ऋसं. १०१३४१९.

(३) ऋसं. १०१३४१९०.

व्य. कां. २३८

संतापेन संतप्ता भवति । माता जनन्यपि पुत्रस्य कापि चरतः कितवस्य संबन्धाद्धीना तप्यते । पुत्रशोकेन संतप्ता भवति । ऋणावाक्षपराजयादृणवान् कितवः सर्वतो विभ्यद्धनं स्तेयजनितमिच्छमानः कामयमानोऽन्येषां ब्राह्मणादीनामस्तं गृहं, अस्तं पस्त्यमिति गृहनामसु पाठात् । नक्तं रात्रावुपैति चौर्यार्थमुपगच्छति । ऋसा.

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम् । पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्स्तो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥

कितवं कितवः । विभक्तिव्यत्ययः । अन्येषां स्वव्यतिरिक्तानां पुरुषाणां जायां जायामूतां स्त्रियं नारीं सुखेन वर्तमानां सुकृतं सुष्ठु कृतं योनिं गृहं च दृष्ट्वाय मजाया दुःखिता गृहं चासंस्कृतमिति ज्ञात्वा तताप तप्यते । पुनः पूर्वाह्णे प्रातःकाले बभ्रून् बभ्रुवर्णान् अश्वान् व्यापकानश्वान् युयुजे युनक्ति । पुनश्च वृषलो वृषलकर्मा स कितवो रात्रावग्नेरन्ते समीपे पपाद शीतार्तः सन् शेते । ऋसा.

यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव । तस्मै कृणोमि न धना रुणधिम दशाहं प्राचीस्तदहं वदामि ॥

हे अक्षाः वो युष्माकं महतो गणस्य संघस्य योऽक्षाः सेनानीर्नेता बभूव भवति व्रातस्य च । गणव्रातयोरस्यो भेदः । राजेश्वरः प्रथमो मुख्यो बभूव तस्मा अक्षाय कृणोम्यहं अञ्जलिं करोमि । अतः परं धना धनान्यक्षार्थमहं न रुणधिम न संपादयामीत्यर्थः । एतदेव दर्शयति । अहं दश दशसंख्याका अङ्गुलीः प्राचीः प्राङ्मुखीः करोमि । तदेतदहं ऋतं सत्यमेव वदामि नाचूतं ब्रवीमीत्यर्थः । ऋसा.

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः । तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सचितायमर्थः ॥

हे कितव बहु मन्यमानो महत्तन्ने विश्वासं कुर्वस्व-मक्षैर्मा दीव्यः द्यूतं मा कुरु । कृषिमित् कृषिमेव कृषस्व कुरु । वित्ते कृष्या संपादिते धने रमस्व मतिं कुरु ।

(१) ऋसं. १०१३४१९१. (२) ऋसं. १०१३४१९२.

(३) ऋसं. १०१३४१९३; बृदे. १।५२.

तत्र कृषौ गावो भवन्ति । तत्र जाया भवति । तदेवं धर्मरहस्यं श्रुतिस्मृतिकर्ता सविता सर्वस्य प्रेरकोऽयं दृष्टिगोचरोऽयं ईश्वरो वि चष्टे विविधमाख्यातवान् । ऋषाः

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु । नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो वभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥

हे अक्षाः यूयं मित्रं कृणुध्वम् । अस्मासु भैत्रीं कुरुत । खल्विति पूरणः । नोऽस्मान् मृळत सुखयत च । नोऽस्मान् धृष्णु धृष्णुना । तृतीयार्थे प्रथमा । घोरेणासहने माभि चरत मा गच्छत । किञ्च वो युष्माकं मन्युः क्रोधोऽरातिरस्माकं शत्रुर्नि विशतां । अस्मच्छत्रुषु तिष्ठत । अन्योऽस्माकं शत्रुः कश्चिद् वभ्रूणां वभ्रुवर्णानां युष्माकं प्रसितौ प्रबन्धने नु क्षिप्रमस्तु भवतु । ऋषाः

वृत्तविधिः

निरुप्तं हविरुपसन्नमप्रोक्षितं भवत्यथ मध्याधिदेवनमवोक्ष्याक्षान्युप्य जुहोति । निषसाद् धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुकृत्तरिति त्रिवै विराड् व्यक्रमत गार्हपत्यमाहवनीयं मध्याधिदेवनं, विराज एवैनं विक्रान्तमनुविक्रमयति प्रत्येव तिष्ठति गच्छति प्रतिष्ठां, धर्मधृत्या जुहोति धर्मधृतमेवैनं करोति सवितारं धारयितारं, गां घ्नन्ति तां विदीव्यन्ते तां सभासद्भ्य उपहरन्ति तेनास्य सोऽभीष्टः प्रीतो भवति, प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिरित्यामन्त्रणे जुहोति मन्त्रवत्या वैश्वदेव्या, मन्त्रमेवास्मै गृह्णाति तमभिसमेत्य मन्त्रयन्ते । सह वै देवाश्च मनुष्याश्चौदनपचन आसंस्ते मनुष्या देवानत्यचरंस्तेभ्यो देवा अन्नं प्रत्युह्य गार्हपत्यमभ्युदक्रामस्तांस्तस्मिन्नवागच्छंस्ते मनुष्या एव देवानत्यचरंस्तेभ्यो देवाः पशून् प्रत्युह्याहवनीयमभ्युदक्रामस्तांस्तस्मिन्नवागच्छंस्ते मनुष्या एव देवानत्यचरंस्तेभ्यो देवा यज्ञं प्रत्युह्य सभामभ्युदक्रामस्तांस्तस्यामन्वागच्छंस्ते मनुष्या एव देवानत्यचरंस्तेभ्यो देवा विराजं प्रत्युह्यामन्त्रणमभ्युदक्रामस्तांस्ततो नानु-

(१) ऋसं. १०१३।१४.

(२) ऋसं. ८।७; ऋसं. ७।४.

प्राच्यवन्तैते वै देवानां संक्रमाः श्रेयोसं श्रेयोसं लोकमभ्युत्क्रामति य एषं वेदैतद्वै देवानां संख्यमनभिजितं यदामन्त्रणं तस्मादामन्त्रणं सु प्रातर्गच्छेत्सत्यमेव गच्छति तस्मादामन्त्रणं नाहुत एयात्तस्मादामन्त्रणे नानृतं वदेद्वह्निवै नामौदनपचन आस्य वह्निर्जायते य एवं वेद गृह्या गार्हपत्यो गृहवान् भवति य एवं वेद धिष्ण्या आहवनीय उपैनं यज्ञो नमति य एवं वेद सप्रथा मध्याधिदेवनं प्रथते प्रजया पशुभिर्य एवं वेदानाम् आमन्त्रणं नैनमाप्नोति य ईप्सति य एवं वेद ।

त्रिर्वा इदं विराड् व्यक्रमत गार्हपत्यमाहवनीयं सभ्यं तद्विराजमापदन्नं वै विराड् वावैतदापन्मध्याधिदेवने राजन्यस्य जुहुयाद्धारुण्य ऋचा वरुणो वै देवानां राजा राज्यमस्मा अवरुन्धे हिरण्यं निधाय जुहोत्यग्निमत्येव जुहोत्यायतनवत्यन्धोऽध्वर्युः स्याद्यदनायतने जुहुयात्शतमस्मा अक्षान् प्रयच्छेत्तान् विचिनुयात्शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्या आयुरेव वीर्यमाप्नोति गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुस्तस्याः पशूनि न हिंस्युस्तां सभासद्भ्य उपहरेत्तया यद्गृह्णीयात्तद्ब्राह्मणेभ्यो देयं तत्सभ्यमन्नमवरुन्धे ।

तेन स्येनाधिदेवनं कुर्वन्ति तत्र पश्वौही विदीव्यन्त आशां वा एष उपाभिषिञ्चत आसा पश्वौह्याशामेवास्मा अकस्ततश्चतुःशतमक्षणवोह्याह । उद्भिन्नं राज्ञः । इति चत्वारो वै पुरुषा ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रस्तेषामेवैनमुद्भेदयति ततः पञ्चाक्षान् प्रयच्छन्नाह दिशो अभ्यभूदयमितीम् एवास्मै पञ्च दिशोऽन्नाद्याय प्रयच्छति क्षेत्रं ददाति तेन क्षेत्रे धृतो भवति वरं वृणीते सोऽस्मै कामः समृध्यते यत्कामो भवति मङ्गल्यनाम्नो ह्यति यत्पूर्वं व्याहार्षं तन्नेन्मोघमसदित्यसा अमुष्य पुत्रोऽमुष्यासौ पुत्र इति नामनी व्यतिषजति स्वर्गस्य लोकस्य समष्टयै ।

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्ताम् ।

(१) मैसं. १।६।११. (२) मैसं. ४।४।६.

(३) शुभा. १०।२८; शुका. १।१।२३ स्ये (रस्व यन्त्रम्).

(१) पञ्चाक्षान् पाणावावपति । अभिभूरसि । कृत-
त्रेताद्वापरकल्पयश्चत्वारोऽक्षाः पञ्चमो रमणः । तत्र कलिः
सर्वानन्यान् अभिभवति स उच्यते । यजमानो वा
तत्संबन्धेन । अभिभूरसि अभिभविताऽसि । एतास्तत्र
पञ्चदिशः कपटोपलक्षिताः क्लृप्ताः भवन्तु । शुभ.

(२) 'अभिभूरित्यस्मै पञ्चाक्षान् पाणावावाये'ति ।
यजमानहस्ते द्यूतसाधनभूतान् पञ्चाक्षान् सौवर्णकपर्दान्
निदध्यात् । अक्षा यजमानो वा देवता । चतुर्णामक्षाणां
कृतसंज्ञा पञ्चमस्य कलिरिति । यदा पञ्चाप्यक्षाः एकरूपाः
पतन्ति उत्ताना अवाञ्चो वा तदा देवितुर्जयः । तत्र कलिः
सर्वानक्षानभिभवति तं प्रत्युच्यते, तत्संबन्धेन यजमानं
प्रति वा । हे अक्ष, यद्वा हे यजमान, त्वमभिभूरसि
अभिभविता अभितो व्यातासि । एताः कपर्दिकोप-
लक्षिताः पञ्च दिशः पूर्वादयश्चतस्र ऊर्ध्वा चेति पञ्च
दिशः ते त्वदर्थं कल्पन्तां त्वत्प्रयोजनसमर्था भवन्तु ।
कृतेः सर्वाक्षामिभावकत्वात्सुन्वतोऽपि जयापेक्षित्वात्
पञ्चाक्षव्यापकत्वमिति भावः । शुभ.

दिशोऽभ्ययं राजाऽभूदिति पञ्चाक्षान् प्रय-
च्छति । एते वै सर्वेयाः । अपराजयिनमेवैनं करोति ।

अजस्रं त्वां सभापालाः । विजयभागं समिन्ध-
ताम् । अग्ने दीदाय मे सभ्य । विजित्यै शरदः
ऋतम् ।

अन्नमावसथीयम् । अभिहराणि शरदः शतम् ।
आवसथे श्रियं मन्त्रम् । अहिर्बुध्नियो नियच्छतु ।

अथ सभ्याग्नेरुपस्थानमन्त्रमाह—अजस्रमिति । यत्रा-
क्षैर्दोष्यन्ति विजयन्ते सा सभा तस्यां सभायां साधुः
सोऽग्निः सभ्यः । हे सभ्य त्वामस्मदीयाः सभापालकाः
समिन्धतां सम्यग्दीप्यन्ताम् । कीदृशं त्वां अजस्रमन-
वस्तं विजयभागं विजयेन लभ्यो भागो यस्य तादृशम् ।
हे सभ्याग्ने मे मम शतं शरदः शतसंख्याकान् संवत्स-
रान् विजित्यै विजयाय त्वं दीदाय दीप्यस्व ।

अथावसथोपस्थानमन्त्रमाह—अन्नमिति । अहि द्यूते
विजयं प्राप्ताः पुरुषा आगत्य यत्र भोजनार्थं निवसन्ति
स प्रदेश आवासयस्तत्रानीतमावसथीयं तादृशमन्नमभि-
हराभ्यामिमुख्येनोपहरामि । कश्चिदपि न हिनस्तीत्यहिः ।

(१) त्रैत्र. १।७।१०।५. (२) त्रैत्र. ३।७।४।५.६.

बुध्ने मूले जगदादौ भवो बुध्नियः । अहिर्बुध्नियं इत्येत-
न्नामकः पञ्चमोऽग्निः शतं शरदः शतसंख्याकान् संव-
त्सरान् आवसथेऽस्मदीये गृहे श्रियं धनादिसमृद्धि-
मन्त्रमृगादिसमृद्धिं च नियच्छतु ददातु । तैत्रासा.

अथास्मै पञ्चाक्षान् पाणावावपति । अभिभूरत्ये-
तास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तामित्येष वाऽअयानभि-
भूर्यत्कलिरेष हि सर्वानयानभिभवति तस्मादाहाभि-
भूरसीत्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तामिति पञ्च वै
दिशस्तदस्मै सर्वा एव दिशः कल्पयति ।

बृतनिन्दा

त्रैया वै नैर्ऋता अक्षाः स्त्रियः स्वप्नो यदीक्षते
तेनाक्षैश्च स्त्रीभिश्च व्यावर्तते यां प्रथमां दीक्षितो
रात्रीं जागर्ति तथा स्वप्नेन व्यावर्तते ।

अथ श्वोभूते । अक्षावापस्य च गृहेभ्यो
गोविकर्तस्य च गवेधुकाः संभृत्य सूयमानस्य गृहे
रौद्रं गावेधुकं चरुं निर्वपति ते वा एते द्वे सती
रत्ने एकं करोति संपदः कामाय तद्यदेतेन यजते
यां वा इमां सभायां प्रन्ति रुद्रो हैतामभि-
मन्यतेऽग्निर्वै रुद्रोऽधिदेवनं वा अग्निस्तस्यैतेऽ-
अङ्गारा यदक्षास्तमेवैतेन प्रीणाति तस्य ह वा-
एषानुमता गृहेषु हन्यते यो वा राजसूयेन यजते
यो वैतदेवं वेदैतद्वा अस्यैकं रत्नं यदक्षावापश्च
गोविकर्तश्च ताभ्यामेवैतेन सूयते तौ स्वावनप-
क्रमिणौ कुरुते तस्य द्विरूपो गौर्दक्षिणा शितिबाहुर्वा
शितिवालो वासिर्नखरो वालदाङ्गाक्षावपनं प्रबद्ध-
मेतदु हि तयोर्भवति ।

बृतपरिभाषा

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै
कल्पिनं द्वापरयाधिकल्पितमास्कन्दाय सभास्थानुम् ।

अक्षराजाय कितवं धूर्तं, कृताय आदिनवदर्शं आदि-
नवो दोषस्तं पश्यति तथाभूतं, त्रेतायै कल्पिनं कल्पकं,
द्वापराय अधिकल्पिनं अधिकल्पनाकर्तारम् । अथ
दशमे यूषे । आस्कन्दाय सभास्थानुं सभायां स्थिरम् ।

शुभ.

(१) शत्रा. ५।४।४।६. (२) मैसं. ३।६।३.

(३) शत्रा. ५।३।१।१०. (४) शुभा. ३।०।१८.

ये वै चत्वारः स्तोमाः । कृतं तत् । अथ ये पञ्च । कलिः सः । तस्माच्चतुष्टोमः । तच्चतुष्टोमस्य चतुष्टोमत्वम् ।

पूर्वोक्ताल्लिङ्गवृत्पञ्चदशः सप्तदश एकविंश इत्येवं-
रूपाः स्तोमा ये सन्ति ते कृतयुगस्य स्वरूपभूताः ।
कृतयुगे हि धर्मस्य चत्वारः पादा विद्यन्ते । ये त्वन्येन
केनचित्स्तोमेन सह पञ्च स्तोमास्तेषां कलियुगरूपत्वम् ।
तत्र तन्मध्यगतानां चतुर्णां कृतयुगार्थत्वेन विभागे सति
कलेरसाधारणस्तोम एक एव परिशिष्यते । धर्मश्च कलि-
युग एकपादेव । ततः कलिस्वरूपत्वेन पञ्चस्तोमपक्षस्य
निन्दितत्वाच्चतुष्टोमपक्षस्य कृतयुगस्वरूपत्वेन प्रशस्तत्वा-
दयं सोमयागश्चतुष्टोम एव कर्तव्यः । चत्वारः स्तोमा
अत्रेति व्युत्पत्त्या सोमयागस्य चतुष्टोमत्वं संपन्नम् । तैत्रासा.

अक्षराजाय कितवम् । कृताय सभाविनम् ।
त्रेताया आदिनवदर्शम् । द्वापराय बहिःसदम् ।
कलये सभास्थाणुम् ।

अक्षा द्यूतसाधनविशेषास्तेषां राजा तदभिमानी
देवविशेषस्तस्मै कितवं द्यूतकुशलम् । कृताय कृतयुगा-
भिमानीने सभाविनं द्यूतसमाया अधिष्ठातारम् । त्रेतायै
त्रेतायुगाभिमानीन आदिनवदर्शं मर्यादायां देवनस्य
द्रष्टारं परीक्षकम् । द्वापराय द्वापरयुगाभिमानीने बहिः-
सदं बहिःसदनशीलं स्वयमदीव्यन्तम् । कलये कलियुगा-
भिमानीने सभास्थाणुमदेवनकालेऽपि सभां यो न
सुञ्चति सोऽयं स्तम्भसमानत्वात्सभास्थाणुस्तम् । तैत्रासा.

यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेन
सर्वं तदभिसमैति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति
यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ।

यथा लोके कृतायः कृतो नामायो द्यूतसमये प्रसिद्ध-
श्चतुरङ्कः, स यदा जयति द्यूते प्रवृत्तानां, तस्मै
विजिताय तदर्थमितरे त्रिद्व्येकाङ्का अधरेयाः त्रेताद्वापर-
कलिनामानः संयन्ति संगच्छन्तेऽन्तर्भवन्ति, चतुरङ्के
कृताये त्रिद्व्येकाङ्कानां विद्यमानत्वात्तदन्तर्भवन्तीत्यर्थः ।
यथा अयं दृष्टान्तः, एवमेनं रैकं कृतायस्थानीयं त्रेता-
द्ययस्थानीयं सर्वं तदभिसमैति अन्तर्भवति रैके । किं

(१) तैत्रा. १।५।१।११. (२) तैत्रा. ३।४।१।६।१.

(३) छाड. ४।१।४,६.

तत् ? यत्किञ्च लोके सर्वाः प्रजाः साधु शोभनं धर्मजातं
कुर्वन्ति, तत्सर्वं रैकस्य धर्मेऽन्तर्भवति, तस्य च फले
सर्वप्राणिधर्मफलमन्तर्भवतीत्यर्थः । तथा अन्योऽपि
कश्चित् यः तत् वेद्यं वेद । किं तत् ? यत् वेद्यं सः
रैकः वेद, तद्वेद्यमन्योऽपि यो वेद, तमपि सर्वप्राणि-
धर्मजातं तत्फलं च रैकमिवाभिसमैतीत्यनुवर्तते । सः
एवंभूतः अरैकवोऽपि मया विद्वान् एतदुक्तः एवमुक्तः,
रैकवत्स एव कृतायस्थानीयो भवतीत्यभिप्रायः ।

छाशाम्ना.

द्यूते जयार्थं देवताह्वानं जयकर्म च

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।

ग्लहे कृतानि कृष्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥

उद्भिन्दतीं पणवन्धेन धनस्य उद्भेदनं कुर्वतीं
संजयन्तीं सम्यक् जयं प्राप्नुवतीं साधुदेविनीं जयोपाय-
परिज्ञानेन अक्षशलाकादिभिः शोभनं क्रीडन्तीं एवं-
गुणविशिष्टामप्सरां द्यूतक्रियाधिदेवतां अप्सरोजातीयां
अहं स्तौमीति शेषः । अपि च ग्लहे, ग्लहते पणवन्धेन
कल्प्यत इति द्यूतक्रियाज्येयोऽर्थो ग्लहः तस्मिन् ग्लहे
निमित्ते कृतानि द्यूतजयचिह्नानि कृतत्रेतादिशब्द-
वाच्यानि अयसंज्ञकानि कृष्णानां कुर्वाणाम् । कृताय-
लभो हि महान् द्यूतजयः । तदुक्तं द्यूतक्रियामधिकृत्य
आपस्तम्बेन — ‘कृतं यजमानो विजिनाति’ इति
(आप. ५।२०।१) । एवम्भूतां तां अप्सरां इह
अस्मिन् द्यूतजयकर्मणि अहं हुवे आह्वयामि । आगत्य
सा मम जयं करोतु इत्यर्थः । असा.

विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।

ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥

विचिन्वतीं एकत्र निर्वाधे कोष्ठे त्रिचतुरान् अक्षान्
विशेषेण समुच्चिन्वतीं संघीकुर्वतीम् । पुनस्तानेव
जयार्थं बहुषु कोष्ठेषु आकिरन्तीं समन्ताद् विक्षिपन्तीम् ।
अन्यद् व्याख्यातम् । असा.

यैथैः परिचृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात् ।

सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्रोतु मायया ।

सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥

(१) असं. ४।३।८।१; कौसू. ४।१।१३.

(२) असं. ४।३।८।२. (३) असं. ४।३।८।३.

या गन्धर्वस्त्री अयैः अक्षगतसंख्याविशेषैः कृतादि-
शब्दवाच्यैः परिनृत्यति अभिमतजयप्राप्त्या परितुष्टा
नर्तनं करोति । कीदृशी । ग्लहात् गृह्यमाणात् पण-
चन्धात् कृतं एतत्संज्ञं अयं आदधानः आदधाना
कुर्वाणा । कृतग्लहत्वं तस्या असाधारणो गुणः । सा
तादृशी नः अस्माकं कृतानि कृतशब्दवाच्यान् चतुः-
संख्यायुक्तान् अयान् शेषन्ती अवशेषयन्ती प्रहान्
प्रहन्तव्यानश्चान् मायया व्यामोहकशक्त्या आप्रोतु
अधितिष्ठतु । एकादयः पञ्चसंख्यान्ता अक्षविशेषा
अयाः । तत्र चतुर्णां कृतं इति संज्ञा । तथा च
तैत्तिरीयकम् — ‘ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत् ।
अथ ये पञ्च कलिः सः’ इति (तैत्रा. १।५।११।१) ।
तस्य च कृतस्य लभाद् द्यूतजयो भवति । अत एव
दाशतय्यां लब्धकृतायात् कितवाद् भीतिराम्नाता—
‘चतुरश्रिद् ददमानाद् विभीयाद् आ निधातोः’ इति
(ऋसं. १।४।१९) । तत्र च निरुक्तम् — ‘चतुरोऽ-
श्चान् धारयत इति तद् यथा कितवाद् विभीयात्’ इति
(नि. ३।१६) ।

सा द्यूताधिदेवता पयस्वती द्यूतजितेन पयउपलक्षि-
तेन गवादिधनेन तद्वती नः अस्मान् ऐतु आगच्छतु ।
नः अस्माकं इदं पणितव्यत्वेन कल्पितं धनं अन्ये
कितवा मा जैषुः मापहार्षुः । असा.

या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च विभ्रती ।

आनन्दिनी प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥

या गन्धर्वस्त्री द्यूतक्रियासु उक्ता अक्षेषु द्यूतसाधनेषु
प्रमोदते प्रहृष्यति । किं कुर्वती । शुचं इष्टजयवियोगात्
शोकं पुनर्जिगीषया क्रोधं कोपं च विभ्रती धारयन्ती ।
आनन्दिनी द्यूतजनितहर्षयुक्ता प्रमोदिनी द्यूतासक्तान-
न्यानपि प्रमोदयन्तीम् । यद्वा आनन्दिनी सुखवती
प्रमोदिनी प्रहर्षवती ईदृशीं तां प्रागुक्तां अप्सरां इह
द्यूतकर्मणि जयार्थं अहं हुवे आह्वयामि । असा.

येथा वृक्षमशनिर्विश्राहा हन्त्यप्रति ।

एवाहमद्य कितवानक्षैर्वध्यासमप्रति ॥

अशनिः वैद्युतोऽग्निः अप्रति । न विद्यते प्रति प्रति-

(१) असं. ४।३।८।४.

(२) असं. ७।५।२।१; कौसू. ४।१।१३.

निधिः समानो यस्य अप्रतिमः सन् विश्वाहा विश्वेषु
सर्वेष्वहःसु यथा वृक्षं तरुं हन्ति बाधते । यद्वा विश्वस्य
हन्ता । अशनिः अप्रति अप्रतिपक्षं यथा वृक्षं विनाश-
यति एव एवं अहं अप्रति अप्रतिनिधिः सन् । प्रति-
कितवपराजये मम सदृशः अन्यो नास्तीत्यर्थः । यद्वा
अप्रति अप्रतिपक्षं वध्यासं इति संबन्धः । अद्य इदानीं
कितवान् । कितवः किं तवास्तीति शब्दानुकृतिरिति
यास्कः (नि. ५।२२) । अक्षैर्दोष्यन् पुरुषः परैरपन्धिय-
माणधनः किं तवास्ति न किञ्चिद् इति सर्वैर्भाष्यत्
इत्यर्थः । तादृशान् कितवान् अक्षैः देवनसाधनैः अप्रति
अप्रतिपक्षं वध्यासं हनिष्यामि । यथा प्रतिकितवा द्यूत-
क्रियायां मम प्रतिस्पर्धिनो न भवन्ति तथा अक्षैः परा-
जितान् करिष्यामीत्यर्थः । असा.

तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम् ।

समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥

तुराणां द्यूतकर्माणि त्वरमाणानां अतुराणां अत्वर-
माणानाम् । अहमेव प्रथमः अक्षप्रक्षेपेण प्रतिवादिनं
जेप्यामि अहमेवेति अहमहमिकया त्वरमाणास्तुराः ।
विमृश्यकारिण्यः अतुराः । तासां अवर्जुषीणां अवर्जन-
शीलानां प्रतिकितवैः पराजयेऽपि पुनरहमेव जेष्यामीदृ-
द्यूतक्रियां अपरित्यजन्तीनां पुनः पुनर्जयलभाद् अवर्ज-
यन्तीनां वा । सर्वदा द्यूतव्यसनवतीनामित्यर्थः । विशां
प्रजानां भगः भाग्यं जयलक्षणं विश्वतः सर्वतः समैतु
सम्यग् अभिमुखं आगच्छतु । द्यूतजयकामिनं मामिति
शेषः । न केवलं तत एव जयप्रार्थना अपि तु मम
अन्तर्हस्तं हस्तमध्ये कृतम् । कृतशब्दवाच्यश्रुतःसंख्या-
युक्तः अक्षविषयः अयः । स हस्तमध्ये स्थितो वर्तते ।
एकादयः पञ्चसंख्यान्ता अक्षविषया अयाः । तत्र
चतुर्णां कृतं इति संज्ञा । तथा च तैत्तिरीयकम् — ‘ये
वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत् । अथ ये पञ्च कलिः सः’
इति (तैत्रा. १।५।११।१) । तत्र कृतस्य लभाद् द्यूत-
जयो भवति । अत एव दाशतय्यां लब्धकृतायात् कित-
वाद् भीतिराम्नायते— ‘चतुरश्रिद् ददमानाद् विभीयाद्
आ निधातोः’ इति (ऋसं. १।४।१९) । तत्र निरु-
क्तम् — ‘चतुरोऽश्चान् धारयत इति तद् यथा

(१) असं. ७।५।२।२.

कित्वाद् विभीयाद्' इति (नि. ३।१६) । असां.

'ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः । रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥

स्ववसुं स्वकीयधनं स्वकीयेभ्यः स्तोतृभ्यो हीयमानं धनं यस्य तं अग्निं नमोभिः स्तोत्रैः ईळे स्तौमि । इह द्यूतकर्माणि प्रसक्तः प्रकर्षेण आसक्तोऽग्निः देवनकर्माधिपतिः नः अस्माकं दीव्यतां कृतं कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुं अयं वि चयत् विचिनोत् , करोत्वित्यर्थः । वाजयद्भिः वाजं अन्नं कुर्वद्भिः । अन्नलाभकारणैः रथैरिव स्थितैरक्षैः प्र भरे प्रहरे । प्रतिकितवान् इति शेषः । ततः मरुताम् । देवोपलक्षणम् । सर्वेषां देवतां स्तोमं स्तोत्रं संघं वा प्रदक्षिणं अनुक्रमेण ऋष्यां समर्धयेयम् । ऋसा.

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे । अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥

हे इन्द्र त्वया युजा सहायेन वृतं वृणोति अक्षैः संरुणद्दीति वृत् प्रतिकितवः । तादृशं कितवं वयं जयेम । तथा भरेभरे सग्रामेसंग्रामे द्यूतलक्षणे अस्माकं जिगीषूणां अंशं जयलक्षणं उद् अव उद्गमय । किञ्च अस्मभ्यं वरीयः उरुतरं धनं सुगं सुगमनं कृधि कुरु । हे मघवन् धनवन् इन्द्र शत्रूणां शतयितृणां प्रतिकितवानां वृष्ण्या वृष्ण्यानि वृष्णि भवानि । वीर्याणि जयलक्षणानि प्र रुज निवारय । यथा प्रतिकितवा अस्मान् न जयेयुः यथा तान् वयं जयेम जयेन च तेभ्यो धनं स्वीकुर्याम तथा कुर्विति इन्द्रः प्रार्थ्यते । असा.

अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् ।

अर्वि वृको यथा मथदेवा मश्रामि ते कृतम् ॥

ल्येके हि कितवाः अस्मिन् पदे प्रतिकितवं अश्वत्थकादिभिः संरोत्स्यामीति अङ्गान् कुर्वन्ति तत्रैव च संरुन्धन्ति । तादृशः प्रतिकितवोऽत्र संरोध्यते । हे

(१) असं. ७।५२।३; ऋसं. ५।६०।१; मैसं. ४।१४।११; तन्वा. २।७।१२।४; आश्रौ. २।१३।२; ह्रदे. ५।४८.

(२) असं. ७।५२।४; ऋसं. १।१०।२।४.

(३) असं. ७।५२।५.

कितव संलिखितं पदेषु सम्यग् अङ्गान् लिखितवन्तमपि त्वा त्वां अजैषं अहमेव जयामि । उत अप्यर्थे । संरुधं संरोद्धारमपि त्वां अजैषं जयामि । यद्वा संलिखितं सम्यग् लिखितं चिह्नितं पदमभिलक्ष्य त्वां जयामि । उत अपि च संरुधं, संरुन्धन्ति अत्रेति अधिकरणे कप्रत्ययः । तादृशं स्थानमभिलक्ष्य त्वां जयामि । किञ्च वृकः अरण्यश्चा अर्वि अजं यथा मथत् मश्राति एव एवं ते तव कृतं कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुं अयं मश्रामि विनाशयामि । असा.

उत प्रहामातिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले । यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥

उत अपि च अतिदीवा अतिशयेन दीव्यन् पुरुषः । प्रहां अक्षैः प्रहन्तारं प्रतिकितवं जयाति । यतः श्वघ्नी 'श्वघ्नी कितवो भवति स्वं हन्ति स्वं पुनराहृतं भवतीति यास्कः (नि. ५।२२) । परस्वस्य हन्ता कितवः काले द्यूतकाले कृतमिव । इवशब्द एवार्थे । कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुं अयमेव वि चिनोति मृगयते । हस्तस्थेष्वक्षेषु प्रागेव निधानात् कृतत्वं अक्षाणां लाभाय अन्विष्यते अतो जयातीति संबन्धः । यो देवकामः देवान् कामयमानः दीव्यन् पुरुषः धनं न रुणद्धि द्यूतलब्धं धनं न व्यर्थं स्थापयति किं तु देवतार्थं विनियुङ्क्ते तं रायः धनेन स्वधाभिः अन्नैर्बलैर्वा सं सृजत्येव संयोजत्येव । इन्द्र इति देवता गम्यते । इत् अवधारणे । असा.

गोभिष्टरेमामति दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे । वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥

हे इन्द्र दुरेवां दुष्टगमनां दारिद्र्यात् आगतां अमतिं दुर्बुद्धिं गोभिः पशुभिः तरेम । हे पुरुहूत बहुभिराहृत इन्द्र विश्वे सर्वे वयं यवेन वा । यवशब्दो धान्योपलक्षणम् । धान्येन वा क्षुधं बुभुक्षां तरेम निवारयेम । राजसु नृपेषु राजमानेषु दीव्यत्सु वा पुरुषेषु । स्थितानीति शेषः ।

(१) असं. ७।५२।६ ; २०।८९।९; ऋसं. १०।४२।९.

(२) असं. ७।५२।७ ; २०।१७।१० ; २०।८९।१० ; २०।९४।१०; ऋसं. १०।४२।१०, १०।४३।१०, १०।४४।१०.

प्रथमा प्रथमानि मुख्यानि प्रकृततर्मानि घनानि वयं
अरिष्टासः अहिंसिताः प्रतिक्रितवैरपराजिताः सन्तः वृज-
नीभिः बलकारिणीभिरक्षयलाकाभिः जयेम साधयेम ।

असा.

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥

मे मम दक्षिणे हस्ते पाणौ कृतं कृतशब्दाच्यो
लाभहेतुः अयः अस्ति । कृतायलाभो हि महान् द्यूतजयः ।
तद् उक्तं द्यूतक्रियां अधिकृत्य आपस्तवेन—‘कृतं
यजमानो विजिनाति’ इति (आप. ५।२०।१) । तथा
मे मम सव्ये हस्ते जय आहितः कृतायसाध्यो जयो
निहितोऽस्ति । अतः अहं गोजित् परकीयानां गवां
जेता भूयासम् । अश्वजित् प्रतिक्रितवसंबन्धिनां अश्वानां
जेता । धनंजयः, धनशब्दः सामान्यवाची, दासी-
भूम्यादिधनस्य जेता । हिरण्यजित् सुवर्णस्य जेता भूया-
सम् । लोके हि कितवा द्यूतकर्मणि गवादिधनं शुल्कं
कुत्वा दीव्यन्ति तत्र ये जयन्ति ते तद्धनं स्वीकुर्वन्ति ।
अत्र जयस्य पूर्वार्धेन उक्तत्वाद् गवादिधनजयलाभः
उत्तरार्धेन प्रार्थ्यते ।

असा.

अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।

सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नात्रेव नह्यत ॥

अनया देवनसाधनभूतान् अक्षान् जयाय प्रार्थयते ।
हे अक्षाः द्युवं द्यूतक्रियां फलवतीं फलोपेतां दत्त प्रय-
च्छत । यथा द्यूतेन धनलाभो भवति तथा कुरुतेत्यर्थः ।
तत्र दृष्टान्तः क्षीरिणीं गामिवेति । फलं कस्माद् भवति
तं आह । कृतस्य कृतशब्दाच्यस्य चतुःसंख्यायुक्ताक्ष-
विषयस्य लाभहेतोः अयस्य धारया संतत्या उपर्युपरि लाभ-
हेतुकृतायप्रवाहेण मा मां सं नह्यत संयोजयत । तत्र
दृष्टान्तः धनुः स्नात्रेवेति । यथा धनुः कर्मुकं स्नात्रा
स्नावनिर्मितया मौर्व्या संनह्यन्ति । यथा मौर्वीसंनह्यं
कर्मुकं जयकारि भवति एवं मां कृतायपरम्परया जयिनं
कुरुतेत्यर्थः ।

असा.

इदमुप्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी ।

घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ॥

(१) असं. ७।५२।८ (२) असं. ७।५२।९.

(३) असं. ७।११।११; वैसू. ६।१०; कौसू. ४।१।१३.

उप्राय उद्गूर्णत्रलोय बभ्रवे बभ्रुवर्णाद्य एतत्संज्ञकाय
द्यूतजयकारिणे देवाय इदं नमः नमस्करणम् । भवतु
इति शेषः । यो बभ्रुः अक्षेषु देवनसाधनेषु तनूवशी
यथाकामी स्वेच्छाधीनजय इत्यर्थः । घृतेन आज्येन
मन्त्राभिमन्त्रितेन कलिम् । पराजयहेतुः पञ्चसंख्यायुक्तोऽ-
क्षविषयोऽयः कलिरित्युच्यते । तं शिक्षामि ताडयामि
हन्मीत्यर्थः । एकादयः पञ्चसंख्यान्ता अक्षविषया अयाः ।
तत्र पञ्चानां कलिरिति संज्ञा । तथा च तैत्तिरीयकम्—
‘ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत् । अथ ये पञ्च कलिः
सः’ इति (तैत्रा. १।५।११।१) । तत्र कलिशब्दाच्यस्य
अयस्य आगमने पराजयो भवति । तं अनेन आज्येन
विनाशयामि । अहं अन्यैर्न पराजीये किं तु अन्यान्
अहमेव जयामीत्यर्थः । कलिं शिक्षामि शक्तं समर्थं
कर्तुमिच्छामि । यथा कलिः स्वयं पराजयसमर्थः
पराजयवान् भवति तथा करोमीत्यर्थः । अस्मिन्नर्थे
देवतानुग्रहं आशास्ते । स नमस्कृतः अक्षद्यूतदेवता
बभ्रुः ईदृशे देवननिबन्धने कलिपराभावनरूपे बलक्षणे
च फले नः अस्मान् मृळाति मृडयतु सुखयतु । असा.

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसुनक्षेत्र्यः
सिकता अपश्च । यथाभागं हव्यदाति जुषाण्य
मदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥

हे अग्ने त्वं अप्सराभ्यः । अप्सु सरन्त्यक्षरन्त्यः
अन्तरिक्षचारिण्यो वा । ताम्यः तदर्थं घृतं अक्षम्य-
ञ्जनसाधनं आज्यं वह प्रापय । अस्माकं जयार्थमिति
शेषः । तथा अक्षेभ्यः अक्षशब्देन तैर्दीव्यन्तः प्रतिक्रि-
तवा उच्यन्ते । अक्षहस्तेभ्यः प्रतिक्रितवेभ्यः पांसुन्
सूक्ष्मान् भूरजःकणान् सिकताः शर्कराः अपः उदकानि
च प्रापय । यथा तेषां पराजयो भवति तथा तन्मुखेषु
पांखादीन् प्रक्षिपेत्यर्थः । किं च यथाभागं भागं अनतिक्रम्य
स्वीयस्वीयभागानुसारेण हव्यदाति हविषः प्रदानं जुषाणाः
सेवमाना देवा इन्द्राद्या उभयानि द्विप्रकाराणि औषध-
पाशुकभेदेन सोमाज्यभेदेन श्रौतस्मार्तकर्मभेदेन वा
द्विविधानि हव्या हव्यानि हवींषि । आस्वाद्येति शेषः ।
मदन्ति माद्यन्ति तृप्ता भवन्ति । ते देवा अपि अस्माकं
द्यूतजयं कुर्वन्तु इति प्रार्थना ।

असा.

(१) असं. ७।११।१२.

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा
सूर्यं च । ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे
कितवं रन्धयन्तु ॥

अप्सरसः द्यूतक्रियादेवताः सधमादं सह संभूय
मादः मादनं यस्मिन् मदनकर्मणि तत् । सहमदनं यथा
भवति तथा मदन्ति माद्यन्ति । कुत्रेति तद् उच्यते ।
हविर्धानं हविर्धीयते अत्रेति हविर्धानो भूलोकः । तं
सूर्यं सूर्याधिष्ठितं द्युलोकं तं च अन्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्ये
अन्तरिक्षलोके माद्यन्ति । ताः अप्सरसः मे मम हस्तौ
देवनसाधनौ पाणी घृतेन घृतवत् सारभूतेन जयलक्षणेन
फलेन सं सृजन्तु संयोजयन्तु । तथा सपत्नं प्रतिदीव्यन्तं
कितवं मे मम रन्धयन्तु वरायन्तु स्वाधीनं कुर्वन्तु ।

असा.

आदिनवं प्रतिदीन्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।

वृक्षमिवाशान्या जहि योऽस्मान् प्रतिदीव्यति ॥

प्रतिदीन्ने प्रतिकूलं दीव्यते प्रतिकितवाय प्रतिदिवानं
जेतुं आदिनवं आदीव्यामि अक्षैः आदीवनं करोमि ।
अस्मान् आदीव्यतः घृतेन घृतवत्सारभूतेन जयलक्षणेन
फलेन अभि क्षर संयोजय । देवनक्रियाभिमानी देवः
संबोध्यते । यः कितवः अस्मान् प्रतिदीव्यति जेतुं
प्रतिकूलं द्यूतं करोति तं अशान्या विद्युता वृक्षं शुष्कं
तरुमिव जहि तिरस्कुरु ।

असा.

ये नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं
शेषणं च । स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वैभिः
सधमादं मदेम ॥

यो देवः नः अस्माकं द्युवे द्यूताय तदर्थं, यद्वा द्युवे
दीव्यते नः । मंह्यम् । अथ वा नः अस्मदीयाय द्युवे
दीव्यते पुरुषाय इदं प्रतिकितवसंबन्धि धनं चकार
जयेन संपादितवान् । यश्च देवः अक्षाणां परकीयानां
रूढमं ग्रहणं स्वकीयैरक्षैर्जित्वा स्वीकरणं शेषणं स्वीयानां
अक्षाणां जयाहस्थाने अवशेषणं च कृतवान् । स देवः
द्यूताभिमानो नः अस्मदीयं इदं हविः जुषाणः सेवमानो
भवतु । वयं च गन्धर्वैभिः गन्धर्वैः अक्षाधिष्ठायकैः
सधमादं सहमदनं यथा तथा मदेम हृष्यास्म । असा.

(१) असं. ७।११४।३ : १४।२।३४.

(२) असं. ७।११४।४. (३) असं. ७।११४।५.

संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो
ह्यक्षाः । तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम
पतयो रयीणाम् ॥

हे गन्धर्वाः अक्षा वा यूयं संवसव इति संप्राप्तधनाः
संप्रापितधना यतो भवथ अतो वः युष्माकं संवसव
इति नामधेयं भवति । हि यस्माद् उग्रंपश्या उग्रं-
पश्यायाः राष्ट्रभृतः । इदं द्वयं अप्सरोविशेषनामधेयम् ।
तयोः संबन्धिनो भवन्ति अक्षाः । अक्षाणां एतत्संबन्धित्वं
तैत्तिरीये श्रूयते— 'उग्रंपश्ये राष्ट्रभृच्चाचराणि यद्
अक्षवृत्तं अनुवृत्तं एतत्' इति (तैआ. २।४।१) ।
तेभ्यः गन्धर्वाप्सरोभ्यः तदधिष्ठितेभ्यः अक्षेभ्यो वा वः
युष्मभ्यं युष्मदर्थं इन्दवः इन्दुमन्तः सोमवन्तः सोमोप-
लक्षितहविर्युक्ता वयं हविषा उचितेन विधेम परिचरेम ।
अनन्तरं वयं दीव्यन्तः रयीणां धनानां पतयः स्वामिनः
स्याम भवेम । द्यूते प्रतिकितवजयेन धनवन्तः स्यामे-
त्यर्थः ।

असा.

देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूपिम ।

अक्षान् यद् बभ्रुनालभे ते नो मृडन्वीदृशे ॥

नाथितः उपतप्तः देवान् अग्न्यादीन् हुवे आह्वयामि
धनलाभार्थं इति यत् । ब्रह्मचर्यं वेदग्रहणार्थं ब्रह्मचारि-
नियमं ऊषिम उषितवन्त इति यत् । बभ्रून् बभ्रुवर्णान्
बभ्रुणा अक्षाभिमानिना देवेन अधिष्ठितान् वा अक्षान्
देवनसाधनभूतान् आलभे देवितुं स्पृशामीति यत् तेन
कारणेन ते देवादयः ईदृशे जयलक्षणे फले नः अस्मान्
मृडन्तु सुखयन्तु ।

असा.

द्यूतकृतर्णदोषः

यद्धस्ताभ्यां चकूम किल्बिषाण्यक्षाणां गन्तुमुप-
लिप्समानाः । उग्रंपश्ये उग्रजितौ तद्द्याप्सरसावन्तु
दत्तामृणं नः * ॥

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु
दत्तं न एतत् । ऋणान्नो नर्णमेत्सीमानो यमस्य
लोके अधिरज्जुरायत् * ॥

* सत्यगमार्थं स्थलनिर्देशश्च ऋणादानप्रकरणे (पृ. ६०२-
६०३) द्रष्टव्यः ।

(१) असं. ७।११४।६. (२) असं. ७।११४।७.

यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैभि यं याचमानो
अभ्यैमि देवाः । ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मदेवपत्नी
अप्सरसावधीतम् * ॥

आपस्तम्बः

राजाधिकृतसभैवाधिदेवनाहं

सभाया मध्येऽधिदेवनमुद्धत्यावोक्ष्याक्षान्निवपे-
द्युम्मान् वैभीतकान् यथार्थान् ।

पूर्वोक्तायाः सभाया मध्ये अधिदेवनं यस्योपरि
कित्वा अक्षैर्दोव्यन्ति तत्स्थानमधिदेवनम् । तत् पूर्वं
काष्ठादिना उद्धन्ति उद्धत्यावोक्षति । अवोक्ष्य तत्राक्षान्
सुग्मसंख्याकान् वैभीतकान् विभीतकवृक्षस्य विकारभूतान्
यथार्थान् यावद्भिर्द्युतं निर्वर्तते, तावतो निवपति । कः ?
यस्तत्र राज्ञा नियुक्तः सभिको नाम । उ.

आर्याः शुचयः सत्यशीला दीवितारः स्युः ।

आर्याः द्विजातयः । शुचयोऽर्थशुद्धाः । सत्यशीलाः
सत्यवादिनः । एवम्भूता एव पुरुषास्तत्र दीवितारः
स्युः । न एव तत्र दीव्येयुरित्यर्थः । ते च तत्र देवित्वा
मयाभाषितं पणं सभिकाय दत्त्वा गच्छेयुः । स च राजे
तमायमहरहः प्रतिमासं प्रतिचंवत्सरं वा दद्यात् । स एव
च स्थानान्तरे दीव्यतो दण्डयेत्, समास्थाने च कलह-
कस्यम् । तत्र याज्ञवल्क्यः— 'ग्लहे शतिकवृद्धेस्तु
सभिकः पञ्चकं शतम् । गृहीयाद्दूर्त्तकित्वादितरादशकं
शतम् ॥ स सम्यक्पालितो दद्याद्राज्ञे भागं यथाकृतम् ।
जितमुद्ग्राहयेज्जैत्रं दद्यात्सत्यं वचः क्षमी ॥' इति
(यास्मृ. २।१९९-२००) । उ.

विष्णुः

श्रुतसमाह्वयवर्गमध्ये सभिक-जयि-राजमित्रांशः षण्णंशः,
राजसभिकजयिजितानां कृत्यं च
द्वैन्दुमुद्धे समाह्वये षण्णवतुर्भासो राज्ञे दातव्यः ।
षण्णवतुर्भास इत्यनेन उभयभ्यां दातव्यः कर इति
प्रतीयत इत्याह भारुचिः । सवि. ४८७

* सावणमार्षं स्थलनिर्देशश्च ऋणादानप्रकरणे (पृ. ६०३)
द्रष्टव्यः ।

- (१) भाष. २।२५।१२; हिघ. २।१८.
- (२) भाष. २।२५।१३; हिघ. २।१८.
- (३) सवि. ४८७.

व्य. कां. २३९

मह्यमहिषवर्जं समाहूतं जयिने दद्यात् पराजितं
पणं चापि दद्यात् ।

अयमर्थः—समाहूतं समाह्वय इति इष्टमह्यमहिषान्
वर्जायित्वा मेषकुक्कुटातिरिक्तादिकं मृतं वा हीनं वा
जयिने दद्यात् । यदि न ददाति राज्ञा दातव्य इति ।
सवि. ४८७

ग्लेहवृद्धिं गृहीयात् सभिकः ।

श्रुतसभाधिकारिणो वृत्तिमाह—ग्लेहेति । सभिकः
सभ्यः श्रुत इत्यनुवर्तते । सवि. ४८७

द्युतं कारयेत्सभिको देयं च दद्यात्तत्कृतम् ।
तस्य कर्तव्यमाह विष्णुः— श्रुतमिति । तथा च

नारदः— 'सभिकः कारयेद् द्युतं देयं दद्याच्च तत्कृतम्'
इति । तत्र विशेषमाह याज्ञवल्क्यः— 'स सम्यक्पालितो
दद्याद्राज्ञे भागं यथाकृतम् । जितमुद्ग्राहयेज्जैत्रे दद्यात्
सत्यं वचः क्षमी ॥' (इति यास्मृ. २।२००) । जितमुद्ग्रा-
हयेत् जितसकाशादुद्धरेत्तज्जैत्रे दद्यात् । श्रुतकारिणां
विश्वाससाधनं सकृत्सकृत्सत्यवाक्यं दद्यात् । सवि. ४८७
जितो यदि पणं सभिकाय न दद्यात् राज्ञा
दाप्यः ।

अदत्तराजभागे प्रच्छन्ने द्युते जितं पणं न दापये-
दिति स्पष्टार्थः । सवि. ४८८

श्रुतसमाह्वययोः मिथ्याचारिणं दण्डनिधिः

श्रुते कूटाक्षदेविनां करच्छेदः । उपधिदेविनां
संदंशच्छेदः * ।

संदंशोऽङ्गुष्ठतर्जनी । किर. ६१७

गौक्षिकचार्मिकद्वयः प्रतारका विवसत्याः ।
गौक्षिकाश्चार्मिकाः चर्मणा व्यवहरन्ति । अत्र
भारुचिः—गौक्षिकचार्मिकग्रहणेनोभयोश्चातुर्यैकविषय-
त्वेन चौर्यमेवेति, अयं गौक्षिकविद्युक्तिरेकैव कित्वा
[अयं गौक्षिकादिः कितवप्यतिरिक्त एक एव (?)] ।
इतरस्तु वज्रनीयकोटिरेवेति गौक्षिकदयो न दण्ड्याः,

* व्याख्यानान्तरं स्थलादिनिर्देशश्च स्तेयप्रकरणे (पृ. १६६९)
द्रष्टव्यः ।

- (१) सवि. ४८७. (२) सवि. ४८७.
- (३) सवि. ४८७. (४) सवि. ४८८.
- (५) सवि. ४८८.

अपि तु देशान्निर्वास्याः । अतश्च 'द्यूतं निषिद्धं मनुना'
इत्यादिवचनजातं कपटद्यूतविषयमिति मन्तव्यम् ।
सवि. ४८७-८

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

द्यूतसमाह्वयम्

द्यूतसमाह्वयम् । द्यूताध्यक्षो द्यूतमेकमुखं कार-
येत् । अन्यत्र दीव्यतो द्वादशपणो दण्डः गूढा-
जीविज्ञापनार्थम् ।

द्यूताभियोगे जेतुः पूर्वः साहसदण्डः । परा-
जितस्य मध्यमः । बालिशजातीयो ह्येष जेतुकामः
पराजयं न क्षमत इत्याचार्याः । नेति कौटल्यः
पराजितश्चेद् द्विगुणदण्डः क्रियेत न कश्चन
राजानमभिसरिष्यति । प्रायशो हि कितवाः कूट-
देविनः ।

तेषामध्यक्षाः शुद्धाः काकणीरक्षांश्च स्थापयेयुः ।
काकण्यक्षणामन्योपधाने द्वादशपणो दण्डः ।
कूटकर्मणि पूर्वः साहसदण्डः, जितप्रत्यादानम् ।
उपधौ स्तेयदण्डश्च ।

जितद्रव्याध्यक्षः पञ्चकं शतमाददीत, काकण्य-
क्षारलशलाकावक्रयमुदकभूमिकर्मक्रयं च । द्रव्या-
णामाधानं विक्रयं च कुर्यात् । अक्षभूमिहस्त-
दोषाणां चाप्रतिषेधने द्विगुणो दण्डः ।

तेन समाह्वयो व्याख्यातः अन्यत्र विद्याशिल्प-
समाह्वयादिति ।

द्यूतसमाह्वयमिति सूत्रम् । द्यूतं अक्षशलाकाद्यप्राणि-
क्रीडा समाह्वयो मल्लमेषकुक्कुटादिप्राणिदेवनं तयोः
समाहारो द्यूतसमाह्वयं, तत्संबद्धो व्यवहारो दण्डश्चाभि-
धीयत इति सूत्रार्थः । पारुष्यप्रसङ्गात् सर्वविधपारुष्य-
विसंवादादिदोषनिदानस्यास्यैह कथनसंगतिः ।

द्यूताध्यक्ष इति । सः, द्यूतं एकमुखं एकमार्गं
एकस्मिन् प्रदेशे इत्यर्थः, कारयेत् । अन्यत्र प्रदेशान्तरे,
दीव्यतः द्वादशपणो दण्डः । ननु च द्यूतमेव ताव-
न्निन्दितं प्रतिषिद्धं च शास्त्रेषु— 'प्रकाशमेतत्तास्कर्यं
यद् देवनसमाह्वयम्' इति, 'प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा द्यूतं
राष्ट्रे निवारयेद्' इति च स्मृतौ, 'अक्षैर्मा दीव्यः' इति

° (१) कौ. ३।२०.

चाम्नाये । तत् कुतोऽस्य प्रवर्तनविधिः कुतस्तरां
चैकमुखत्वनियमनमित्याशङ्कामपाकर्तुमेकमुखत्वनियमस्य
प्रयोजनमाह— गूढाजीविज्ञापनार्थमिति । गूढाजीविन-
स्तस्करसाहसिकादयो लोककण्टकाः तज्ज्ञापनार्थम् ।
अयमाशयः— प्रतिषेधातिक्रमेण प्रवृत्तौ श्येनादिवदयं
द्यूतसमाह्वयस्य विधिः । तच्च लोके कण्टकप्रायजनभूयिष्ठ-
सेव्यं सुरापानवदधर्मरूपमप्येकमुखतया प्रवर्त्यमानं
कण्टकज्ञानसाधनीभूय तदुद्धरणरूपधर्मान्तरोपायतां प्रति-
पद्यत इति तदेकमुखत्वनियमोऽप्युपपद्यत इति ।

द्यूताभियोगे जेतुरित्यादि । द्यूतविषयमभियोगं
द्यूतजेता कुर्वन् पूर्वसाहसं दण्ड्यः, द्यूतपराजितस्तद्द्विगुणं
दण्डं मध्यमसाहसम् । पराजितस्य दण्डाधिक्ये अधर्म-
जयकामुकता हेतुरित्याह— बालिशजातीयो हीत्यादि ।
बालिशजातीयो मूर्खप्रायः । नेति कौटल्य इत्याचार्य-
मतप्रतिषेधे कारणमाह— पराजितश्चेदिति । स चेद्
द्विगुणदण्डः क्रियेत, न कश्चन राजानमभिसरिष्यति
न कोऽपि पराजितो जेतुकृतमालमदुःखं राशे निवेदयि-
तुमागमिष्यति । माभिसरतु को दोष इति चेत् तत्राह—
प्रायशो हि कितवाः कूटदेविन इति । प्रायेण हि धूर्ताः
कपटदेवनशीलाः । अतश्च तेषु एकान्तजयिभ्य आपत्-
तोऽनर्थजातात् कूटानभिज्ञतया नित्यपराजयिनामानिर्मोक्ष
एवापद्येतेत्यभिप्रायः ।

तेषामिति । कितवानां, अध्यक्षः द्यूतकर्मप्रत्यवेक्षकाः,
शुद्धाः कूटरहिताः, काकणीः कपर्दान्, अक्षांश्च पाश-
कांश्च तथाविधान्, स्थापयेयुः देवनार्थम् ।

काकण्यक्षणामिति । तेषां, अन्योपधाने अन्येषां
स्थापितातिरिक्तानां तज्जातीयानां उपधाने, द्वादशपणो
दण्डः । इहान्यशब्दस्य सापेक्षत्वेऽपि समास आर्षः ।
कूटकर्मणीति । कपटाक्षादिसूत्रौ, पूर्वः साहसदण्डः,
जितप्रत्यादानं जितद्रव्यापहरणं च । उपधौ स्थापितेष्वे-
वाक्षादिषु रेखाव्यत्ययकरणलक्षणे व्याजे मणिमन्त्रादिना
बुद्धिवञ्चनायां वा, स्तेयदण्डश्च, चकारात् पूर्वोक्तं च ।

जितद्रव्यादिति । जिताद् द्रव्याद्, अध्यक्षः, पञ्चकं
शतं आददीत शते विंशतिभागं गृह्णीयात्, आत्मवृत्त्य-
र्थम् । काकण्यक्षारलशलाकावक्रयं काकण्यः कपर्दाः
अक्षाः पाशकाः अरलाः चर्मपट्टिकाजातीयाः साधनभेदाः

शलाका दन्तादिमय्यो दीर्घचतुरसाः काकण्यादीनां द्वेचनसाधनानां अवक्रयं भाटकं, उदकभूमिकर्मक्रयं च, आददीत, जेतुसकाशात् । द्रव्याणां आधानं विक्रयं च कुर्याद् द्यूतकरैराधीयमानानि विक्रीयमाणानि च द्रव्याणि स्वीकुर्यात् । अक्षभूमिहस्तदोषाणां च अक्षदोषस्य भूमिदोषस्य हस्तदोषस्य च, अप्रतिषेधने प्रतिषेधाकरणे, द्विगुणः स्वादेयद्रव्यभागद्विगुणः, दण्डः अक्षक्षस्य ।

अप्राणिद्यूतोक्तं दण्डविधानं द्विपदचतुष्पदादि-प्राणिद्यूते विद्याशिल्पसमाह्वयातिरिक्तेऽतिदिशति—
त्वेनेत्यादि । श्रीम्.

मनुः

द्यूतसमाह्वयप्रतिज्ञा

अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः।
क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥

(१) द्यूतं वक्तुमुपक्रमते अयमिति । पुत्राणां क्षेत्र-
जादीनां क्रियाविधिः पुत्रत्वोत्पादनविधिः क्रमेण । द्यूत-
धर्मं निबोधतेत्यन्वयः । मवि.

(२) एष दायभागः पुत्राणां क्षेत्रजादीनां क्रमेण
विभागकरणप्रकारो युष्माकमुक्तः । इदानीं द्यूतव्यवस्थां
शृणुत । मसु.

(३) विभागप्रकरणमुपसंहरन् द्यूतं प्रतिजानीते—
अयमिति । पुत्राणामौरसादीनाम् । क्रियाविधिः पिण्ड-
दानं च । मच.

द्यूतसमाह्वययोलक्षणम्

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।

प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥

(१) मसु. १।२२० ग., धर्म (धर्मान्) [विभागो (हि
भागो) Noted by Jha]; भाच. धर्म (धर्मान्).

(२) मसु. १।२२३; मिता. २।१९९ क्रियते यस्तु
(क्रियमाणस्तु); अप. २।१९९; व्यक. १६२; स्मृच. ९
मितावत् : ३३०; विर. ६१०; पमा. ५७२; रत्न. १६४;
विचि. २५८; व्यनि. ४७८ यस्तु (यस्तु); स्मृचि. ३६;
द्वि. १०७ तल्लोके (लोके तत्) शेषं मितावत् ; नृप्र. २७७
मितावत् ; सवि. ५७-८ ते यस्तु (माणं तु) निषण्डः;
बीमि. २।१९९; व्यप्र. ५६५ मितावत् ; व्यड. १६३
सविवत् ; विता. ७१६ मितावत् ; राकौ. ४८६ मितावत् ;
असु. २८८; समु. १६४; नन्द. ८।७ सविवत्.

(१) द्यूतं अप्राणिभिरक्षशलाकादिभिर्यत्क्रियते,
पणेन क्रीडनम् । प्राणिभिर्मेषादिभिः युद्धकरणेन यत्नेन
नियम्य क्रीडनं तत्समाह्वयः । मवि.

(२) अक्षशलाकादिभिरप्राणैर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतं
कथ्यते । यः पुनः प्राणिभिर्मेषकुक्कुटादिभिः पणपूर्वकं
क्रियते स समाह्वयो ज्ञेयः । लोकप्रसिद्धयोरप्यनयोर्लक्षण-
कथनं परिहारार्थम् । मसु.

(३) प्राणिभिर्मेषकुक्कुटादिभिः यत्कर्म पणपुरः-
सरमिति शेषः । * मच.

(४) द्यूतसमाह्वययोः करणत एव भेदो न स्वरूपत
इत्यभिप्रायेणाह—अप्राणिभिर्यदिति । अप्राणिभिर्दान्त-
शाङ्गदारवमार्तिकैरक्षैः प्राणिभिः कुक्कुटकुक्कुटमहिप-
वर्त्यादिभिः । + नन्द.

द्यूतोपकरणानि

काकिन्यो वदिकाश्चैव शलाका मौर्य एव च ।

अक्षाः सबीजाः कुहका द्यूतोपकरणानि षट् ॥

द्यूतसमाह्वयनिषेधः । द्यूतसमाह्वयकारिणां दण्डः,

इतरकण्टकदण्डश्च ।

द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्राभिवारयेत् ।

राज्यान्तकरणवेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥

(१) अत्र च तुल्यविषयत्वात् समाह्वयमप्येकीकृत्य
दर्शयति — द्यूतमिति । मवि.

(२) निवारणमत्र निर्वासनेन न दण्डेन । अत
एव निवारणाय निर्वासनमाह स एव—कुशीलवांश्चेति ॥

स्मृच. ३३०

(३) द्यूतसमाह्वयौ वक्ष्यमाणलक्षणौ राजा स्वराष्ट्रा-

* शेषं मसुवत् । + भाच. नन्दवत् ।

(१) अप. २।१९९.

(२) मसु. १।२२१ क., ख., घ., राज्या (राजा),
[निवारयेत् (निवासयेत्) Noted by Jha]; व्यक. १६३;
स्मृच. ३३० पू.; विर. ६११ निवार (निवास) राज्या
(राष्ट्र)-दोषौ (द्वेष्यौ) क्षिताम् (क्षिताम्); पमा. ५७८-
राज्यान्तकरण (राज्यान्तकारिणा); रत्न. १६४ विरवत् ; व्यनि.
४७९ द्यूत (द्यू नि) राज्या... ..तौ (राज्यस्यान्त-
करावेतौ); स्मृचि. ३६ द्यूत (द्यू नि); व्यप्र. ५६८ राष्ट्रान्ति
(राज्ये नि); बाल. २।२०३; समु. १६४ द्यूत (द्यू नि)
करण (कारिणा).

निवर्तयेत् । यस्मादेतौ द्वौ दोषौ राज्ञां राज्यविनाश-
कारिणौ । ममु.

प्रकाशमेतत्कार्यं यद्देवनसमाह्वयौ ।

तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान् भवेत् ॥

(१) तार्कर्यं तस्करत्वम् । यत्नवान् भवेत्
यःनवान् भूत्वा तौ निवारयेत् । स्मृच. ३३०

(२) प्रकटमेतच्चौर्यं यद्द्यूतसमाह्वयौ, तस्मात्त्रि-
वारणे राजा नित्यं यत्नयुक्तः स्यात् । ममु.

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत् वा ।

तान् सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः * ॥

(१) घातयेत्ताडनादिना । द्विजलिङ्गिनो द्विजलिङ्गो-
षवीतादिधरान् । मवि.

(२) द्यूतसमाह्वयौ यः कुर्यात् यो वा सभिकः
कारयेत्तेषामपराधापेक्षया राजा हस्तच्छेदादिवधं कुर्यात् ।
यज्ञोपवीतादिद्विजचिह्नधारिणः शूद्रान् हन्यात् । ममु.

(३) निमित्तमनुवदन्नैमित्तिकमाह— द्यूतमिति ।
कारयेत्सभिकः । घातयेत् अपराधानुरूपेण हस्तच्छेदं
कुर्यात् । तत्रैव ब्राह्मणत्वेन प्रतीयमाना अपि ये शूद्रा-
स्तान् प्रत्याह— द्विजलिङ्गिन इति । एतेऽवश्यमन-
पेक्ष्यतया देशान्निःसारणीया इति भावः । मच.

* मिता. व्याख्यानं ' राजा सचिह्नं निर्वास्याः ' इति
य. श्रवणवचने द्रष्टव्यम् । अप., विर., पमा., विचि., वीमि.,
व्यप्र., व्यम., विता. मितावद्भावः ।

(१) मस्मृ. ९।२२२; विश्व. २।२०६ ह्यौ (ह्यम्)
पू.; व्यक. १६३ पूर्वार्धे; संदिग्धतया समुपलभ्यते; स्मृच.
३३०; विर. ६११; पमा. ५७८; रत्न. १६४; विचि.
२५८; स्मृचि. ३६; सवि. ४८६ नित्यं (नित्य); व्यप्र.
५६८; बाल. २।२०३; सेतु. २८८; समु. १६४.

(२) मस्मृ. ९।२२४; मिता. २।२०२; अप. २।२०२
त्कारयेत् वा (चश्च कारयेत्) : २।३०३ उक्त.; विर. ६११
अपवत्; पमा. ५७७; दीक. ५१ त्कारयेत् वा (यस्तु
त्कारयेत्); विचि. २५८ अपवत्; व्यनि. ४७९ अपवत्;
स्मृचि. ३६ अपवत्; नृम. २७९; वीमि. २।२०३ वा
(च) : २।३०४ उक्त.; व्यप्र. ५६७; व्यउ. १६३ (=);
व्यम. १०९ तान् सर्वान् (सर्वास्तान्); विता. ७२०;
राकौ. ४८७; सेतु. २८८-९ अपवत्; समु. १६४ यः ...
वा (के कुर्युश्च कारयेत्).

द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ।

तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥

(१) पुराकल्पे पुराणकथासु । मवि.

(२) नेदानीमेव परं किन्तु पूर्वस्मिन्नपि कल्पे द्यूत-
मेतदतिशयेन वैरकरं दृष्टम् । अतः प्राज्ञः परिहासार्थ-
मपि तन्न सेवेत । ममु.

(३) द्यूतस्यानर्थावहत्वं ऐतिह्येनाह— द्यूतमिति ।
पुराकल्पे संसारानादितया बलभद्रदन्तवक्त्रयुधिष्ठिर-
दुर्योधनादिकाले । हास्यार्थं कुतूहलार्थमपि । द्यूतषट्
समाह्वयोपलक्षकं, धनकारित्ववैरकरत्वहेतोरभयसाधार-
ण्यात् । मच.

(४) द्यूतस्य दोषमाह, स्वयमपि राजा द्यूतं न
कार्यमिति चाह— द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टमिति । पुराकल्पे
पूर्वस्मिन् काले वैरकरं दृष्टं नलयुधिष्ठिरादिषु । नन्द.

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः ।

तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥

(१) विविधः कल्यो विकल्पः । सम एव राज्ञो-
च्यते । ' द्यूतधर्मं निबोधत ' इति तत आरभ्य द्वित्राः
श्लोका विधायकाः । अन्यः सर्वोऽप्यर्थवादः । मेधा.

(२) प्रकाशं कर्तव्यवृत्त्युत्पादनेन । यथेष्टं यस्व
यथेच्छति नृपस्तस्य तथा कार्यो दण्डभेदः । न त्वत्र
शास्त्रे दण्डो नियम्यत इत्यर्थः । मवि.

(३) यो मनुष्यस्तद्द्यूतं गूढं प्रकटं वा कृत्वा सेवेत
तस्य यथा नृपतेः इच्छा भवति तथाविधो दण्डो भवति ।
ममु.

(४) तस्मात्तत्कारी दण्डार्ह इत्याह— प्रच्छन्नमिति ।
तत् द्यूतसमाह्वयं प्रच्छन्नम् । यथा स्यात् प्रकाशं
यथा स्यादिति । नृपतेरिच्छया दण्डो वधो वेत्यन्वयः ।

(१) मस्मृ. ९।२२७; विर. ६११ वैरकरं (वै विकृतं);
व्यनि. ४७९ पूर्वार्धे (द्यूतात्पुरातने कल्पे दृष्टं वैरतरं महत्);
स्मृचि. ३६; बाल. २।२०३; सेतु. २८९; समु. १६४.

(२) मस्मृ. ९।२२८; विश्व. २।२०६ तन्नि...नरः
(द्यूतं राष्ट्रे निवारयेत्) पू.; विर. ६११; रत्न. १६४ प्रच्छ
...वा (प्रकाशे वाऽप्रकाशे वा); स्मृचि. ३६ थेटं (थोक्तं);
बाल. २।२०३; सेतु. २८९; समु. १६४.

१ (अन्यः) .

यद्वा 'पणे सहस्रं नृपतेः' इत्युक्तम् । मच.

(५) दण्डविकल्पः दण्डभेदोऽर्थहरणादिलक्षणः ।
नन्द.

(६) तद् द्यूतं यः निषेवेत तस्य दण्डविकल्पः
शतदण्डः स्यात्, यथेष्टं नृपतेः तथा वा दण्डः । भाच.

कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाषण्डस्थांश्च
मानवान् ।

विकर्मस्थान् शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्
पुरात् * ॥

एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ।
विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः* ।

अष्टादशपदोपसंहारः

उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः ।

अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥

(१) सर्वव्यवहारोपसंहारार्थः श्लोकः । मेघा.

(२) अष्टादशसु ऋणादानादिषु व्यवहारपदेषु परस्परं
विवदमानयोरर्थप्रत्यर्थिनोः कार्यनिर्णयोऽयं विस्तरे-
णोक्तः । ममु.

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन् महीपतिः ।

देशानलब्धांलिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ॥

(१) अलब्धांलिप्सेतेति संतोषपरेण न भवितव्य-
मित्यर्थः । मेघा.

(२) राजकृत्यशेषमाह— एवमिति । मवि.

(३) अनेनोक्तप्रकारेण धर्मादनपेतं निर्णयं कुर्वन्
राजा जनानुरागाद्देशाल्लब्धुमिच्छेत् लब्धांश्च सम्यक्
पालयेत् । एवं सम्यग्व्यवहारदर्शनस्यालब्धप्रदेशप्राप्त्यर्थ-
त्त्वमुक्तम् । ममु.

* व्याख्यासंग्रहः सत्यादिनिर्देशश्च स्तेयप्रकरणे (पृ. १७१०-
११) द्रष्टव्यः ।

(१) मस्मृ. ९।२५०; व्यक. १६३ विस्तरशो (विस्तरेण)
हारस्य (हारवि); विर. ६१८ ऽयं विस्तरशो (विस्तरेणायं)
हारस्य (हारवि); सेतु. ३२९ मिथो (मिथ्या) शेषं विरवत्.

(२) मस्मृ. ९।२५१; व्यक. १६३ धर्म्याणि कार्याणि
(कार्याणि सर्वाणि); विर. ६१८ पूर्वार्धे (एवं कार्याणि सर्वाणि
कुर्वन् सम्यक् महीपतिः); सेतु. ३२९ पूर्वार्धे (एवं कार्याणि
सर्वाणि पश्यन् सम्यक् महीपतिः) लब्धांलिप्सेत (लब्धानीप्सेत).

(४) महीपतित्वं द्योतयति— देशानिति । मच.

(५) कुर्वन्लिप्सेत नाकुर्वन् । नन्द.

(६) अलब्धान् अमात्यान् लिप्सेत । भाच.

अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम् ।
साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् * ॥

(१) अनेनेति पूर्वोक्तप्रकारप्रत्ययवमर्शः । विधिना
प्रकारेण । साक्षिप्रत्ययौ । सिद्धशब्दः प्रत्येकमपि संब-
ध्यते । साक्षिभिः सिद्धानि निर्णीतानि । प्रत्ययः अनुमानं
दैवी वा क्रिया । कार्याणि न केवलं ऋणादानं अन्य-
दपि समतां नयेदर्थिप्रत्यर्थिविप्रतिपत्तिमपाकुर्यादैकमत्यं
उत्पादयेत् । उपसंहृतमृणादानं, समाप्तो व्यवहारः ।
सर्वत्र जयपराजयप्रकाराणामेवंरूपत्वात् । न हि साक्ष्या-
दिभ्य ऋते किञ्चिदुत्तरेषु विवादेशु विप्रतिपत्तिनिश्च-
निमित्तम् । केवलं दण्डविशेषस्तत्स्वरूपं च वक्तव्य-
मित्युत्तरः प्रपञ्चः । कीदृशोऽस्वामिविक्रयः कीदृशोऽ-
नुशय इति स्वरूपं व्यवस्थाप्यते । मेघा.

(२) परस्परं विवदमानयोरर्थप्रत्यर्थिनोः अनेनोक्त-
प्रकारेण राजा साक्षिनिर्णीतानि अनुमानशपथादिप्रत्यय-
निर्णीतानि कार्याणि आर्थिप्रत्यर्थिविप्रतिपत्तिरोधेन
समीकुर्यात् । + गोरा.

याज्ञवल्क्यः

द्यूतसमाह्वयस्वरूपम्

अधुना द्यूतसमाह्वयाख्यं विवादपदमधिक्रियते ।
तत्स्वरूपं च नारदेनाभिहितम्— 'अश्वघ्नशलाकाचैर्दे-
वनं जिह्वकारितम् । पणक्रीडा वयोमिश्रं पदं द्यूतसमा-
ह्वयम् ॥' इति । अक्षाः पाशकाः । वज्रशर्मपट्टिका ।
शलाका दन्तादिमय्यो दीर्घचतुरस्राः । आद्यग्रहणाच्च
तुरङ्गादिक्रीडासाधनं करितुरङ्गरथादिकं गृह्यते । तैर्प्रा-
णिभिर्यद्देवनं क्रीडा पणपूर्विका क्रियते । तथा वयोमिः

* अयं श्लोको वस्तुतः ऋणादानोपसंहारे एव निवेद्य-
तत्रैव सम्यक् लगते । परन्तु निबन्धकाराणामनुसारेण अस्माभि-
रत्र निविष्टः ।

+ व्याख्यानान्तरेषु गोरावद्भावः ।

(१) मस्मृ. ८।१७८; व्यक. १६३ मिथो (मिथ्या) ;
विर. ६१८ समतां (समतां); सेतु. ३२९ व्यकवत्.

१ प्रत्ययः सि. २ प्रति.

पक्षिभिः कुक्कुटपारावतादिभिः चशब्दान्मल्लमेधमाहिषा-
दिभिश्च प्राणिभिर्या पणपूर्विका क्रीडा क्रियते तदुभयं
यथाक्रमेण द्यूतसमाह्वयाख्यं विवादपदम् । द्यूतं च
समाह्वयश्च द्यूतसमाह्वयम् । तदुक्तं मनुना—‘अप्राणि-
भिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते । प्राणिभिः क्रियमाणस्तु
स विज्ञेयः समाह्वयः ॥’ इति (मस्मृ. १।२२३) ।

मिता.

सभिकेन द्यूते दृश्यर्थं ग्राह्याः पणांशाः

ग्लहे शक्तिकवृद्धेस्तु सभिकः पञ्चकं शतम् ।

गृहीयाद्भूर्तकितवादितराद्दशकं शतम् ॥

(१) विसंवादप्रसङ्गेनाखिलविसंवादैकारणभूतं द्यूत-
समाह्वयव्यवहारमाह— गलत्सभिकेति । तुशब्दोऽ-
वधारणार्थः । गलत्सभिकवृद्धिरेव सभिकस्य, नान्यदपि
स्वपरिभाषितमुखपट्टादीत्याभिप्रायः । गलितं निर्गलितं
यत् सभिकहस्तात् पराजितानां देवनार्थं द्रव्यं, यच्च
द्यूतोपकरणमक्षादि, तद् गलत्सभिकं द्रव्यम् । तदर्था
वृद्धिर्गलत्सभिकवृद्धिः । तां सभिको द्यूतसमायोजको
भूर्तमण्डलाधिपतिर्गृहीयात् । क्रियन्ती । पञ्चकं शतम् ।
भूर्तकितवाज्जेटुः द्यूतोपकरणनिमित्तम् । इतरात् परा-
जितात् प्रयुक्तस्वद्रव्यनिमित्तं दशकं शतमित्यर्थः ।

विश्व. २।२०३

(२) तत्र द्यूतसमाधिकारिणो वृत्तिमाह— ग्लह
इति । परस्परसंप्रतिपत्त्या कितवपरिकल्पितः पणो ग्लह
इत्युच्यते । तत्र ग्लहे तदाश्रया शक्तिका शतपरिमिता
तदधिकपरिमाणा वा वृद्धिर्यस्यासौ शक्तिकवृद्धिस्तस्मात्
भूर्तकितवापञ्चकं शतमात्मवृत्त्यर्थं सभिको गृहीयात् ।
षड्रपणा आयो यस्मिन् शते तत्पञ्चकं शतम् । ‘तदस्मिन्
वृद्धयायत्नम्’ (व्यास. ५।१।४७) इत्यादिना कन् ।
जितग्लहस्य विशस्तितमं भागं गृहीयादित्यर्थः ।

(१) यास्मृ. २।१९९; अपु. २५७।४९; विश्व. २।२०३
ग्लहे... .. स्तु (गलत्सभिकवृद्धिस्तु) व्याख्यायां तु गलत्सभिक-
वृद्धिं तु इति पाठो धृतः; मिता. ; अप. ; उ. २।२५।१३;
विर. ६१३; पमा. ५७३; व्यनि. ४८० गुह्नी शकं
(गृहीयुर्भूर्तकितवाः तस्करा दशकं); स्मृचि. ३६; नृप्र.
२७८ वृद्धेस्तु (वृत्तिस्तु); सवि. ४८७ भूर्त (द्यूत);
वीमि. दशकं (पञ्चकं); व्यप्र. ५६५; व्यउ. १६४;
विता. ७१७; समु. १६४.

सभा कितवनिवासार्था यस्यास्त्यसौ सभिकः । कल्पिता-
क्षादिनिखिलक्रीडोपकरणस्तदुपचितद्रव्योपजीवी सभा-
पतिरुच्यते । इतरस्मात्पुनरपरिपूर्णशक्तिकवृद्धेः कितवाद्द-
शकं शतं जितद्रव्यस्य दशमं भागं गृहीयादिति यावत् ।
* मिता.

(३) तत्र सभापतिना यावती वृद्धिर्यतश्च ग्राह्या
तदाह—ग्लह इति । यः सभां कृत्वा द्यूतोपकरणानि च
प्रगुणीकृत्य कितवेभ्यो देवितुं वृद्ध्या धनं प्रयच्छति स
सभिको भूर्तकितवाद्भूर्तो विजयी वा कितवो द्यूतकर्ता
स भूर्तकितवस्तस्माच्छक्तिकवृद्धेः शतसंख्याकग्लहे पणे
विषयभूते यो वृद्धिं जितवान् स शक्तिकवृद्धिस्तस्मात्
पञ्चकं शतं गृहीयात् । यः पराजितः स इतरस्तस्मात्तु
दशकं शतम् । + अप.

(४) [मिताक्षरामनूद्याह] हलायुधस्तु शक्तिका शत-
परिमाणा यस्य वृद्धिः स शक्तिकवृद्धिः येन शतमेकं
जितमिति यावत्, तस्मात् पञ्चकं शतं सभिको गृही-
यादितराद्दशकं शतं येन शतमेकं पराजितं तस्माद्दशकं
शतं गृहीयादित्यर्थं इत्याह । विर. ६१३

(५) इतरात् शतन्यूनवृद्धेर्दशकं शतं दश माषान्
गृहीयादित्यर्थः । तुशब्देन पराजितात् पञ्चकशतादि-
ग्रहणं व्यवच्छिद्यते । × वीमि.

सभिककृत्यं राज्ञे जेत्रे च पणांशदापनम्

सं सम्यक्पालितो दद्याद्वाज्ञे भागं यथाकृतम् ।
जितमुद्ग्राहयेजेत्रे दद्यात्सत्यं वचः क्षमी ॥

(१) स्वार्थहेतोरेव च राज्ञा—‘स सम्यक् पालितो दद्याद्
राज्ञे भागं यथाकृतम् । जितमुद्ग्राहयेजेत्रे दद्यात् सत्य-
वचाः क्षमी ॥’ यथाकृतं यथापरिभाषितं यथा वा
स्मृत्यन्तरे निरूपितमित्यर्थः । तद्यथा बृहस्पतौ—‘राज-

* पमा., सवि., व्यप्र., व्यउ., विता. मितावत् ।

+ मितावद्भावः । × शेषं मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२००; अपु. २५७।५०; विश्व.
२।२०४ तस्यं वचः (सत्यवचाः); मिता. ; अप. दद्या...
कृतम् (भागं राज्ञे दद्याद्यथाश्रुतम्); उ. २।२५।१३ जेत्रे
(जैत्रं); विर. ६१३ विश्ववत्; पमा. ५७४ जितमुद्ग्रा
(जितं तदा); स्मृचि. ३६-७; दवि. १०७ जेत्रे (जैत्रे);
नृप्र. २७८; सवि. ४८७; वीमि.; व्यप्र. ५६५-६;
व्यउ. १६४; विता. ७१८ दविवत्; समु. १६४.

द्यूतः सकितवात् सभिकाद् दशकं शतम् । यथासमयं वा स्याद् इति । किञ्च जितं यत् कितवैः, तत् पराजितेभ्यः सभिक उद्ग्राहयेत् । जेत्रे च येन जितं तस्मै, सभिक एव सत्यवचनो भूत्वाऽविसंवादेन क्षमी चानुत्तापवान् पुनर्दद्यादित्यवसेयम् । विश्व. २।२०४

(२) एवं क्लृप्तवृत्तिना सभिकेन किं कर्तव्यमित्याह—स इति । य एवं क्लृप्तवृत्तिर्द्यूताधिकारी स राज्ञा धूर्तकितवेभ्यो रक्षितस्तस्मै राज्ञे यथासंप्रतिपन्नमंशं दद्यात् । तथा जितं यद्द्रव्यं तदुद्ग्राहयेत् बन्धकग्रहणेनःसेधादिना च पराजितसकाशादुद्धरेत् । उद्धृत्य च तद्धनं जेत्रे जयिने सभिको दद्यात् । तथा क्षमी भूत्वा सत्यं वचो विश्वासार्थं द्यूतकारिणां दद्यात् । तदुक्तं नारदेन—‘सभिकः कारयेद् द्यूतं देयं दद्याच्च तत्कृतम्’ इति । * मिता.

(३) स सभिकः पूर्वोक्तो राज्ञा सम्यक्पालितः कितवेभ्यः सम्यग्रक्षितो राज्ञे यथाश्रुतमङ्गीकृतं स्वकीयाद्दनाद्भागं दद्यात् । जितं धनं पराजिताकितवादुद्ग्राहयेत् उत्कालयेत् । तथैतावति काले तुभ्यमित्यद्धनं दास्यामीति जेत्रे सत्यं वचस्तद्विश्वासाय क्षमी संदद्यात् । अप.

(४) सत्यवाक् क्षमी संदद्यात् सत्यं वचः इति दृष्ट-मूलभूतयाज्ञवल्क्यमिताक्षरयोर्दृष्टं, तत्र जितं सत्यवचाश्च जेत्रे दद्यादित्यर्थः । इति फलतो न विशेषः ।

विर. ६१३-४

राजकृत्यं द्यूते जितद्रव्यदापनम्

प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्तमण्डले ।
जितं ससभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥

* पमा., दवि., नृप्र., सवि., वीमि., व्यप्र., व्यउ., वित्ता. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२०१; अपु. २५७।५१; विश्व. २।२०५ तिना भागे (तिभागे तु); मिता. ; अप. नृपतिना भागे (भागे च नृपतिः) न तु (तु न); विर. ६१५ धूर्त (धूर्त) शेषं विश्ववत् ; पमा. ५७५; स्मृसा. ८० विरवत् ; स्मृचि. ३६ तिना भागे (तिभागे च); दवि. ११० धूर्त (धूर्त); नृप्र. २७८; वीमि. न तु (स तत्); व्यप्र. ५६६; व्यउ. १६४; व्यम. १०८; वित्ता. ७१९; राकौ. ४८६ तु (तत्) शेषं विश्ववत् ; सेतु. २९० विरवत् ; समु. १६५ विश्ववत्.

(१) यथाकृत एव—‘प्राप्ते नृपतिभागे तु प्रसिद्धे धूर्तमण्डले । जितं ससभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥’ स्पष्टार्थः श्लोकः । विश्व. २।२०५

(२) यदा पुनः सभिको दापयितुं न शक्नोति तदा राजा दापयेदित्याह— प्राप्ते नृपतिनेति । प्रसिद्धे अप्रच्छन्ने राजाध्यक्षसमन्विते ससभिके सभिकसहिते कितवसमाजे सभिकेन च राजभागे दत्ते राजा धूर्त-कितवमविप्रतिपन्नं जितं पणं दापयेत् । अन्यथा प्रच्छन्ने सभिकरहिते अदत्तराजभागे द्यूते जितपणं जेत्रे न दापयेत् । *मिता.

(३) द्यूतां द्यूतकारास्तन्मण्डले ससभिके नृपतिः प्रसिद्धे यथाश्रिभाषिते भागे प्राप्ते जितं दापयेदन्यथा नैव । अप.

चो। जयपराजयनिर्णयोपायः । द्यूते मिथ्याचारिणां दण्डविधिः ।

द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि ।

राज्ञा सचिह्नं निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः ॥

(१) स्पष्टार्थः श्लोकः । नन्वेतद् द्यूतं स्वयम्भुक्च निषिद्धं—‘प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद् देवनसमाह्वयम्’ इति । तथा चोक्तं—‘प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा द्यूतं राष्ट्रे निवारयेत्’ इति च । वेदेऽपि ‘अक्षैर्मा दीव्यः’ इति प्रतिषेधः । सत्यम् । प्रतिषेधातिक्रमेण प्रवृत्तौ ज्येनादि-वदयं विधिरित्यविरोधः । मानवस्तु दण्डविधिर्धर्म-विरोधितया नानामुखत्वेन वेति । विश्व. २।२०६

(२) जयपराजयविप्रतिपत्तौ निर्णयोपायमाह—द्रष्टार इति । द्यूतव्यवहाराणां द्रष्टारः सभ्यास्त एव कितव एव राज्ञा नियोक्तव्याः । न तत्र ‘श्रुताध्ययनसंपन्नाः’ इत्यादिर्नियमोऽस्ति । साक्षिणश्च द्यूते द्यूतकार एव कार्याः । न तत्र ‘स्त्रीबालवृद्धकितवेत्यादिनिषेधोऽस्ति । कचिद् द्यूतं निषेधुं दण्डमाह—राज्ञेति । कूटरक्षा-

* पमा., व्यप्र., व्यउ. मितावत् ।

(१) यास्मृ. २।२०२; अपु. २५७।५२ चिह्नं (चिह्ना); विश्व. २।२०६ अपुवत् ; मिता. ; अप. ; व्यक. ११२, १६२ उक्त.; विर. ३०८, ६१७ उक्त.; पमा. ५७५ पू. : ५७६ उक्त.; विचि. २६० विश्ववत्, उक्त.; व्यनि. ४८२ उक्त.; दवि. १०८ उक्त.; नृप्र. २७९; सवि. ४८८; व्यप्र. ५६७; व्यउ. १६४ पू.; व्यम. १०९ उक्त.; वित्ता. ७१९; राकौ. ४८६; समु. १६५.

दिभिरुपधिना च मतिवञ्चनहेतुना मणिमन्त्रौषधादिना ये दीव्यन्ति तान् श्रपदादिना अङ्कयित्वा राजा स्वराष्ट्रा-
न्निर्वासयेत् । नारदेन तु निर्वासने विशेष उक्तः—
‘कूटाक्षदेविनः पापान् राजा राष्ट्राद्विवासयेत् । कण्ठे-
क्षमालामासज्य स ह्येषां विनयः स्मृतः॥’ इति । यानि
च मनुवचनानि द्यूतनिषेधपराणि—‘द्यूतं समाह्वयं चैव
यः कुर्यात् कारयेत् वा । तान् सर्वान् घातयेद्राजा
शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥’ इत्यादीनि, तान्यपि कूटाक्ष-
देवनविषयतया राजाध्यक्षसमिकरहितद्यूतविषयतया च
योज्यानि । * मिता.

राजाधिकृतं द्यूतं कार्यम् । समाह्वये द्यूतधर्मातिदेशः ।

द्यूतमेकमुखं कार्यं तस्करज्ञानकारणात् ।

एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते समाह्वये ॥

(१) प्रयोजनान्तरापेक्षया तु—‘द्यूतमेकमुखं कार्यं
तस्करज्ञानकारणात् । एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते
समाह्वये ॥’ एकमुखमेकमार्गं एकस्मिन् प्रदेशे राज-
कीयचारपुरुषाद्यधिष्ठितं तस्करादिप्रजाकण्टकपरिज्ञानार्थ-
मधर्मरूपमपि धर्मान्तरोपायतया महतेऽभ्युदयाय संपद्यत
इति । अतः कार्यमेवेत्याभिप्रायः । ये वाऽखिलस्वधर्म-
त्यागेनापद्यन्ति द्यूतैकनिरताः तद्विषयतया स्वायम्भुधे
द्रष्टव्यदिवचनान्यवसेयानि । एतेन पाषण्डादिधर्मो
व्यस्यतः । यथायमक्षाद्यप्राणिदेवने द्यूताख्ये विधि-
रुक्तः, समाह्वयसंज्ञकेऽपि कुक्कुटमेषादिभिः सपणप्राणि-
द्यूतेऽप्येव विधिर्ज्ञेयः सभिक्राधीनत्वराजवृद्धिदानादिक
इत्यभिप्रायः । विश्व. २।२०७

(२) कपूर्वोक्तं द्यूते तदेकमुखं एकं मुखं प्रधानं
अस्य द्यूतस्य तत्तत्सोक्तं कार्यम् । राजाध्यक्षाधिष्ठितं राज्ञा
कारयितव्यमित्यर्थः । तस्करज्ञानकारणात् । तस्करज्ञान-

* जम., पमा., सवि., वीमि., व्यप्र., मिता. मितावत् ।

(१) यास्य. २।२०३; अम्य. २।५७।३; विश्व. २।२०७; मिता.; अम.; विर. ६१२ कृते स (द्यूतम्);
प्रमा. ५७७ उक्त.; रत्न. १६४ विरवत्; विचि. २।५९;
व्यनि. ४८.१. विरवत्; स्मृचि. ३६; इति. १०७ पू. :
१०८ विरवत्, उक्त.; नृप्र. २७९; सवि. ४८८; वीमि.;
व्यप्र. ५६८; व्यउ. १६३ पू.; व्यम. १०९ उक्त.;
मिता. ७२०; राक्षौ. ४८७ उक्त.; सेतु. २८९ विरवत्;
स्मृ. १६४ पू. : १६५ उक्त.

रूपं प्रयोजनं पर्यालोच्य प्रायशश्चौर्यार्जितधना एव
कितवा भवन्त्यतश्चौरविज्ञानार्थमेकमुखं कार्यम् ।

द्यूतधर्मं समाह्वयेऽतिदिशन्नाह— एष एवेति । ग्लहे
शतिकवृद्धेरित्यादिना यो द्यूतधर्म उक्तः स एव प्राणि-
द्यूते मल्लमेषमहिषादिनिर्वर्त्ये समाह्वयसंज्ञके ज्ञातव्यः ।
* मिता.

नारदः

द्यूतसमाह्वययोर्लक्षणम्

अक्षवधशलाकाद्यैर्देवनं जिह्वकारितम् ।

पणक्रीडावयोभिश्च पदं द्यूतसमाह्वयम् + ॥

(१) अक्षाः पाशकाः । वधश्चर्मादिवलयवेधः ।
शलाका कितवेभ्यो ज्ञेया । आद्यशब्दादन्येषामपि कपर्दका-
दीनां ग्रहणम् । देवनं क्रीडा, वीजिगीषा वा । जिह्वं
कुटिलम् । जिताद्यदद्रव्यं गृह्यते स पणः । वयोसि
पक्षिणः । अक्षादिभिरचेतनैर्वयःप्रभृतिभिश्च चेतनैर्जिह्वेन
कुटिलभावेन देवनं द्यूतम् । अप. २।१९९

(२) ब्रध्नं चर्ममयपट्टिका । आद्यशब्देन कपर्दकादयो
गृह्यन्ते । अक्षादिभिः पणपूर्वं देवनं क्रीडनं जिह्वकारितं
कौटिल्येन कृतं द्यूताख्यम् । तथा वयोभिः कुक्कुटादि-
पक्षिभिः पणपूर्वं देवनं समाह्वयाख्यम् । तद्द्रव्यं मिलितं
द्यूतसमाह्वयाख्यमेकमेव पदमित्यर्थः । वयोग्रहणं प्राण्युप-
लक्षणार्थम् । स्मृच. ९

* अप., विर., पमा., विचि., दवि., सवि., वीमि., व्यप्र.,
मिता. मितावत् ।

+ मिता. व्याख्यातं ‘ग्लहे शतिकवृद्धेरितु’ इति याज्ञवल्क्य-
वचने द्रष्टव्यम् । पमा., रत्न., नृप्र., सवि., व्यप्र., व्यउ.,
मिता. मितावत् ।

(१) नासं. १८।१ वध (वधं); नास्य. १९।१ वध
(बध्न); अपु. २५३।२९ वध (वज्र) जिह्वकारितम् (द्यूत-
सुच्यते) पण (पशु) पदं... यम् (प्राणिद्यूतं समादिशेत);
मिता. २।१९९ (ख) वध (बध्न); अप. २।१९९;
व्यक. १६२; स्मृच. ९ क्रीडा (पूर्व) वध (बध्न); विर.
६१० वध (वध) हयम् (हयः); पमा. ५७२; रत्न.
१६४; व्यवि. ४७८ वध (वधि) जिह्व (जल्प); स्मृचि.
३६ वध (वध); नृप्र. २७७ नास्यवत्; सवि. ४८६
नासंवत्; व्यप्र. ५६५ नास्यवत्; व्यउ. १६३ नासंवत्;
मिता. ७१६-७; राक्षौ. ४८६; ससु. १६४.

(३) अक्षाः पाशकाः, बन्धाश्चर्मपट्टिकाः, शलाका दन्तादिघटिताश्चतुरसा देवनविशेषात्मिकाः । आद्य-शब्देन चतुरङ्गादिसाधनानां करितुरगादीनां ग्रहणम् । अक्षबन्धशलाकाद्यैः देवनं द्यूतं वयोभिश्च पणक्रीडा समाह्वयः । वयःशब्दः पक्षिवाची प्राण्यन्तरमप्युपलक्ष्य-यति । विर. ६१०

(४) अक्षैः वध्रैः शलाकादिभिर्वराटिकादिभिश्च समविषमादिभिश्च देवनं क्रीडया विजिगीषया वा परस्परं छलप्रायं द्रष्टव्यम् । पणं कृत्वा क्रीडा वयोभिश्च योधनं 'मदीये जितेऽयं वः पणः, हर्तव्योऽयं त्वदीय' इति कुक्कुटबालमेषयुद्धबलीवर्द्धधावनादिभिः । पूर्वं द्यूतं नाम, एतत्परं समाह्वयं, षोडशं विवादपदम् ।

नाभा. १८११ (पृ. १७१-७२)

समिकेन चूरे इत्यर्थं ग्राह्याः पणांशः, राक्षे पणांशदानं च

समिकः कारयेद् द्यूतं देयं दद्याच्च तत्कृतम् ।

दशकं तु शतं वृद्धिस्तस्य स्यात् द्यूतकारिता ॥

समिको देवयिता । स कारयेत् । तन्निमित्तं च देयं सचकुले । जेतुश्च तस्य वृद्धिर्लाभः । शताद् दशकं द्यूतकरणनिमित्ता वृद्धिः । नाभा. १८१२ (पृ. १७२)

समिकरहितं द्यूतं, तत्रापि राज्ञः पणांशो ग्राह्यः

अथवा कितवो राज्ञे दत्त्वा भागं यथोदितम् ।

प्रकाशं देवनं कुर्यादेवं दोषो न विद्यते ॥

(१) अथवा समिकं विना कितव एव राज्ञः भागं दत्त्वा प्रकटं देवनं कुर्यात् । कितव इति ज्ञान्यभि-

(१) नासं. १८१२ देयं दद्याच्च (दद्याद् देवे च) शतं (शताद्); नास्मृ. १९१२ तु (च) कारिता (कारिणः); विर. ६१२-४ तत्कृतम् (तत्कृतः); व्यनि. ४८१ दद्याच्च तत्कृतम् (दद्याच्च तत्कृतम्) तु (च); सवि. ४८७ पू.; न्यग्र. ५६५ स्तस्य (स्तस्यः) कारिता (कारिणः); ५६६ पू.; व्यज. १६४ पू.; विर. ७१८ कः (कं) पू.; समु. १६४.

(२) नास्मृ. १९१८ कितवो (कितवा) यदेवं (युदेवं); अप. २१२०० दितम् (कितम्); स्मृच. ३३१ कालावनः; विर. ६१३ कालं (काल); पण्य. ५७३; व्यनि. ४८१; सवि. ४८६ (=); न्यग्र. ५६५ सार्थं (सार्थं); समु. १६४ कालावनः.

व्य. कं. २४०

प्रायेणैकवचनम् ।

अप. २१२००

(२) दोषो राजवञ्जनलक्षणो द्यूतकारित्वलक्षणो वा । स्मृच. ३३१

अक्षद्यूते जयपराजयलक्षणम्

^१द्विरभ्यस्ताः पतन्त्यक्षा गृहे यस्याक्षदेविनः ।

जयं तस्यापरस्याहुः कितवस्य पराजयम् ॥

द्विरभ्यस्ताः एकरूपाः तृतीयोऽन्यः सत्त्वस्य (?) । तस्मिन् पतिते स जयति, इतरो जितो भवति तं पणम् ।

नाभा. १८१३ (पृ. १७२)

द्यूते जयपराजयनिर्णयोत्तमः

^२कितवेष्वेव तिष्ठेन् कितवाः संशयं प्रति ।

त एव तत्र द्रष्टारस्त एवैषां तु साक्षिणः ॥

संशये कितवेष्वेव तिष्ठेयुः, नान्यत्र राजकुलादौ । त एव प्रमाणम् । व्यवहारदर्शने त एव कितवाः साक्षिणः ।

न तत्र साक्षिपरीक्षा । नाभा. १८१४ (पृ. १७२)

कितवसमिकयोः परस्परं शक्तिर्बन्धिता

अशुद्धः कितवो नान्यदाश्रयेत् द्यूतमण्डलम् ।

प्रतिहन्यान्न कितवं दापयन्तं स्वमिष्टतः ॥

(१) अदत्तदेवोऽशुद्धः स्वं स्वकीयं धनं साधयति कितवस्तं राजा न वारयेत् । अप. २१२००

(२) अशुद्धोऽशोधितहारितधनः, स्वं स्वलभ्यमर्थ-मित्यर्थः । विर. ६१४

(३) असंमतौ दानग्रहणे नान्यं द्यूतमण्डलमाश्रयेत्, अन्यसमिकमण्डले न दीव्येत् । न च समिको दापयन्तं रोधनादिना प्रतिहन्यात् । न किञ्चित् कुर्यात्,

(१) नासं. १८१३ गृहे (गेहे); नास्मृ. १९१३ यस्याक्षदेविनः (यस्यक्षदेविनः); विर. ६१४; व्यनि. ४८१ जयं तस्या (जयस्तस्य); समु. १६५ व्यनिकव.

(२) नासं. १८१४ ठेरेन् (ठेरेः) तत्र (तस्य) स्त-एवैषं तु- (स्तस्यस्त एव च); नास्मृ. १९१४ तत्र (तस्य) एवैषं तु (एव स्तस्य); अप. २१२०२ तु (च); विर. ६१७-एवैषं तु (एव) स्त एवैषां तु (स्तस्य-चैते तु); पमा. ५७६ तत्र प्रक- (च एव) विष्णुः; व्यनि. ४८३ पमावत्, विष्णुः; व्यग्र. ५६७ पमावत्, विष्णुः; समु. १६५ विष्णुः.

(३) नासं. १८१५ ङः (ङं) न्यदाश्र (न्यदाश्र) कितवं (समिको); नास्मृ. १९१५ कितवं (समिकं) यन्तं स्व (स्वत्त्व); अप. २१२००; विर. ६१४ द्यतः (च्छतः).

यथेष्टं दापयितुं लभेत । नामा. १८१५ (पृ. १७२)

राजानधिकृतयूते दण्डः अलामश्व

अनिर्दिष्टस्तु यो राज्ञा द्यूतं कुर्वति मानवः ।

न स तं प्राप्नुयात्कामं विनयं चैव सोऽर्हति ॥

(१) अनिर्दिष्टो यो भूपेनानियुक्तः सन् द्यूतं कुर्वति ससभिको भवन् स तं कामं सभिकलभ्यं भागं न लभेत दण्डं च प्राप्नुयात् । अप. २।२०१

(२) यत्तु वदन्ति राजाविदिते द्यूते जितमपि जयी न लभते प्रत्युत दण्ड्यः । 'प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे द्यूतमण्डले । जितं ससभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥' इति याज्ञवल्कीयात् । 'अनिर्दिष्टस्तु यो राज्ञा द्यूतं कुर्वति मानवः । न स तं प्राप्नुयात्कामं विनयं चैव सोऽर्हति ॥' इति नारदवचनाच्चेति । तत्रेदं प्रतिभाति यद्वा पुनः पराजितं स सभिको दापयितुं न शक्नोति तदा राजा दापयेत् इत्याहेति कृत्वा मिताक्षरायां पराशरभाष्ये च याज्ञवल्क्यवचनमिदमवतारितम् । तथा च यथा ऋणादानप्रकरणे अधमणैर्जैह्म्याददीयमानं ऋणं साधयते राज्ञे साधितादर्थोद्विशत्यंशो धनिकेन दीयते अन्यथा तु न साधनं न वा तस्मै दानं, तथा प्रकृतेऽपि वाच्यम् । तुल्यन्यायात् । एवञ्च राजभागे प्राप्त एव राजा पराजितमर्थं जयिने दापयेन्न त्वन्यथेति वाक्यार्थः । द्यूतमण्डले ससभिके जितमित्यपि तत्परमेव तथैव राजाश-परिकल्पनात् ।

एवं राजादेशं विना यः स्वेच्छया द्यूतं प्रवर्तयेत् स तत्र जितमपि न प्राप्नुयात् न खलु जिह्मः किवत्वा राजबलं विना शक्या दापयितुमिति नारदीयपादोन-श्लोकवाक्यार्थः । एवं स्थिते यस्मिन् राजव्यापारे विना जितोऽप्यर्थः प्राप्तुमशक्यो राजा च भृतिं विना न व्याप्रियत इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामवधृतमतो राजभागं परिकल्प्य राजाज्ञामादायैव प्रवर्तितव्यमिति वाक्ययोरेक-वाक्यतया तात्पर्यार्थो गम्यते ।

(१) नास्मृ. १९।७; अप. ३।२०१; विर. ६१५ इस्तु (६ तु); पमा. ५७७; स्मृसा. ८० स तं (च त्रं); विचि. २६०; व्यनि. ४८२; द्दवि. ११०; चन्द्र. १०० विरवद; वीमि. २।२०३ इस्तु (६ तु) कुर्वति (कुर्वितु); व्यप्र. ५६७; सेतु. २९०; तं (स त्व); स्वसु. ३६५.

यच्च नारदीयवाक्यप्रतीके दण्डः श्रूयते तत्र यथा तरिमत्यां नद्यां तरशुल्कभिया ब्राहुभ्यामुत्तरतस्तथा प्रकृतेऽपि राजदेयखण्डनमेव दण्ड्यमानस्यापराधो न त्वन्यत् । 'ब्राहुभ्यामुत्तरन् पणशतं दण्ड्यः' इति वसिष्ठ-वचनेनैकमूलकत्वात् तस्माद्राजाज्ञां विना प्रवर्तितं द्यूतं वा ततो जयो वा न सिद्धयति तत्सिद्धावपि पराजितं न लभ्यते इत्येवमाद्यर्थपरिकल्पने वाक्यस्यादृष्टार्थत्वं स्यात् ।

तस्माद्राजदण्डमगणयित्वा स्वयं जितार्थसाधनमध्व-वसाय राजाज्ञां विनापि कृते द्यूते परिपणितं पराजितेन देयं, यदि तवाक्षा द्विरभ्यस्ताः पतन्ति यदि वा मन्मेष-स्त्वन्मेषादपसरति तदा शतं ते ददामीति स्वरसतः प्रकृतिस्थान्युपगमेऽपवादकाभावादिति । दवि. ११०-११

पणपरिकल्पनं क्वचित् कृताकृतम्

परिहासकृतं यच्च यच्चाप्यविदितं नृपे ।

तत्रापि नाप्नुयात्काममथवाऽनुमतं तयोः ॥

(१) क्वचित्पणपरिकल्पनं कृताकृतमित्याह नारदः— परिहासकृतमिति । काम्यत इति कामः पणः, नाप्नुयात् द्यूतस्य तत्रालस्याप्रनोदनार्थत्वादित्यभिप्रायः । तयोर्बैतृ-जितयोर्देवनात् प्राप्नुमत्तं कामं परिहासकृतादावपि जेता प्राप्नुयादिति शेषः । स्मृच. ३३१

(२) नारदः— 'अनिर्दिष्टं तु यो राज्ञा द्यूतं कुर्वति मानवः ॥ परिहासकृतं यच्च यच्चाप्यविदितं नृपे ॥ न स तं प्राप्नुयात्काममथवा नाशमाप्तयोः ॥' अथवेति समुच्चये । 'न स तं प्राप्नुयात्कामं विनयं चैव सोऽर्हति ।' तेन परिहासकृते अविदितकृते च सभिकोऽपि तं कामं तयोः प्राश्ने नाप्नुयात्, तच्चयोरिति पाठे तु तत्स्वलभ्यमित्यर्थः । विर. ६१५

(१) स्मृच. ३३३; विर. ६१५ उत्तरार्धे (न स तं प्राप्नुयात्काममथवा नाशमाप्तयोः); पमा. ५७७ क्लाम (क्लाम्य); स्मृसा. ८० उत्तरार्धे (तत्रापि नाप्नुयात्कामं विनयं चैव सोऽर्हति । अथानुमतं तयोर्दापयेत्सकृदेव तु ॥); विचि. २६० उत्तरार्धे (तत्रापि नाप्नुयात्कामं विनयं चैव सोऽर्हति । अथवा-नुमतं तयोर्दापयेत्सकृदेव तु ॥); चन्द्र. १०० पू.; वीमि. ३।२०३ अथवा ... तयोः (विनयं चैव सोऽर्हति); व्यप्र. ५६६; सेतु. २९० तत्रापि ना (न स तं प्रा); समु. ३६५.

कित्वाद् सभिको पणांशातिरिक्तं विशेषेण न गृहीयात् ।
भक्ष्यभोज्यान्नपानानि स्वल्पान्यन्यानि कानिचित् ।
प्रीत्या तु सक्तद्राजीवेत् प्रसङ्गं तु विवर्जयेत् ॥
आजीवेत् उपजीवेत् । तेन सभिको भक्ष्यभोज्या-
दीनि स्वल्पानि कितवपाश्र्वे गृहीयात् न तु बहूनि प्रीत्या-
पीत्यर्थः । विर. ६१५

द्यूते मिथ्याचारिणां दण्डविधिः

कूटाक्षदेविनः पापान् राजा राष्ट्राद्विवासयेत् ।
कण्ठेऽक्षमालामासज्य स ह्येषां विनयः स्मृतः ॥
कूटाक्षदैवतशीलानधर्मपुरुषान् कण्ठे मालामक्षैर्ग्रथि-
तामासज्य द्यूतमण्डलाद् देवतस्थानानिर्वासयेत् ।
नामा. १८१६ (घ. १७२)

बृहस्पतिः

समाह्वयलक्षणम्

अन्योन्यं परिगृहीताः पक्षिमेषवृषादयः ।
प्रहरन्ते कृतपणास्तं वदान्त समाह्वयम् ॥
द्यूतस्य निषेधोऽभ्यनुज्ञानं च ।
द्यूतं निषिद्धं मनुना सत्यशौचधनापहम् ।
अभ्यनुज्ञातमन्यैस्तु राजभागसमन्वितम् ॥
सभिकमधिष्ठितं कार्म्यं तस्करज्ञानहेतुना ॥

(१) स्मृच. ३३१ तु.स. (इतुल.); विर. ६१५;
स्मृस्म. ८०. स्मृचवद.; विचि. २६० चित् (च); समु.
१६५.

(२) नासं. १८१६ राजा....वेत् (निर्भेदे द्यूतमण्ड-
लात्); नास्मृ. १९१६ राजा...वेत् (निर्भेदे द्यूतमण्डलात्)
ह्येषां (ह्येषु); मित्ता. २१२०२; व्यक. ११२, १६३ पूर्वार्थः
नास्मृवत्; विर. ३०७, ६१६ व्यकवत्; पमा. ५७६;
दीक. ५१; व्यनि. ४८२ पूर्वार्थः नास्मृवत्, मासज्य स
ह्येषां (मासज्य सर्वेषां); स्मृचि. ३७; दवि. १०९ व्यकवत्;
न्यप्र. २७९; सवि. ४८८ पापान् (प्राप्तान्); वीमि.
२१२०३; व्यप्र. ५६७; विता. ७२०; राकौ. ४८६;
समु. १६५.

(३) अप. २१९९ न्यं प (न्यप); व्यक. १६२;
स्मृच. ९ स्तं व (स्तद); विर. ६१० वृषा (मृगा);
पमा. ५७३ अपवत्; रत्न. १६४; विचि. २५८ विरवत्;
व्यनि. ४७८ गृहीताः (गृहीतां) वृषा (मृगा); वीमि.
२१२०३ विरवत्; सेतु. २८८; समु. १६४ स्मृचवत्.

(४) अप. २१२०३ सल (सस्य) अभ्यनुज्ञात् (तत्प्रवर्तित)

(१) राजभागरहितं न प्रवर्तयित्व्यमित्यर्थः ।

अप. २१२०३

(२) अस्यायमर्थः—द्यूतं तावद्राशा सर्वथा निवर्त-
नीयम् । यदि तु तस्करज्ञापनाय क्रियते तदा उक्त-
क्रमेणेति । विर. ६१२

द्यूते सभिकराजविधिः ग्राह्याः पणांशाः

राजवृद्धिः सकितवात् सभिकाद् दशकं शतम् ।
यथासमयं वा स्यात्

सभिको ग्राहकस्तत्र दद्याज्जेत्रे नृपाय च ॥

द्यूतप्रराजितकितवानां तु बन्धनादिना पणग्राहको
भवेत् । पणग्रहणात्प्रागेव स्वद्रव्यं जेत्रे नृपाय च यथा-
भागं दद्यात् सभिक इत्यर्थः । स्मृच. ३३१

द्वन्द्वयुद्धेन यः कश्चिदवसादमवाप्नुयात् ।

तस्वामिना पणो देयो यस्तत्र परिकल्पितः ॥

द्वन्द्वयुद्धे मल्लमेधादिद्वन्द्वयुद्धे, अवसादं पराजयम् ।

विर. ६१४

रहो जितोऽनभिज्ञश्च कूटाक्षैः कपटेन वा ।

मोच्योऽभिज्ञोऽपि सर्वस्वं जितं सर्वं न दापयेत् ॥

तृतीयार्थं विना; स्मृच. ३३१; विर. ६११-२ अन्य ... तु
(तत्प्रवर्तितमन्यैश्च); ज्ञानहेतुना (ज्ञानकं हि तत्); पमा.
५७३ तृतीयार्थमेव; ५७८; विचि. २५९ विरवत्; व्यनि.
४८० अभ्यनुज्ञात् (तत्प्रवर्तित) ज्ञानहेतुना (ज्ञानकं हि तत्);
स्मृचि. ३६ विरवत्; सवि. ४८६ (=); व्यप्र. ५६८;
सेतु. २८९ विरवत्; समु. १६४.

(१) विचि. २१२०४.

(२) स्मृच. ३३१ कस्तत्र (को द्रव्यं); विर. ६१२
कस्तत्र (कस्तस्य); पमा. ५७४; स्मृचि. ३६ च (वा);
व्यप्र. ५६६; सेतु. २९० विरवत्; समु. १६४ स्मृचवत्.

(३) अप. २१२००; स्मृच. ३३१; विर. ६१४ देव
(दे तु); पमा. ५७७; विचि. २५९; व्यनि. ४८२;
सवि. ४८६ मिना (मिने); वीमि. २१२०३; व्यप्र. ५६६
यस्तत्र (यस्तत्र); सेतु. २८९ यस्तत्र ... तः (यतस्तत्र
निरूपितः); समु. १६५.

(४) अप. २१२०१ दापयेत् (दाप्यते); व्यक. १६३;
विर. ६१६; दीक. ५०-५१ जितं (जितः) शेषं अपवत्;
स्मृचि. ३७.

धृतसमाह्वययोः मिथ्याचारिणां दण्डविधिः
कूटाक्षदेविनः क्षुद्रा राजभागहराश्च ये ।
गणका वञ्चकाश्चैव दण्ड्यास्ते कितवाः स्मृताः ॥
ग्लहः प्रकाशः कर्तव्यो निर्वास्याः कूटदेविनः ॥
गणनावञ्चकाः गणनायां वञ्चकाः असम्यग्गणना-
कारिण इत्यर्थः । विर. ६१६

धृते जयपराजयनिर्णयोपायः
स एव साक्षी संदिग्धौ सभ्यैश्चान्यैस्त्रिभिर्वृतः ॥
सभिकानुवृत्तौ बृहस्पतिः— स एवेति ।

अप. २।२०२

उभयोरपि संदिग्धौ कितवाः स्युः परीक्षकाः ।
यदा विद्वेषिणस्ते तु तदा राजा विचारयेत् ॥

अष्टादशपदोपसंहारः

एवं वादिकृतान् वादान् प्रपश्येत्प्रत्यहं नृपः ।
नृपाश्रयास्तथा चान्ये विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सह ॥

कात्यायनः

धृतस्य निषेधोऽन्यनुष्ठानं च

धृतं नैव तु सेवेत क्रोधलोभविवर्धनम् ।

असाधुजननं क्रूरं नराणां द्रव्यनाशनम् ॥

(१) व्यक. ११२ भाग (भाव्य) गणका (गणानां) :
१६३ गणका (गणानां); विर. ३०८ भाग (द्रव्य) गणका
(गणानां) : ६१६ क्षुद्रा (पापा) का वञ्च (नावञ्च); पमा.
४३९ भाग (भार्या); रत्न. १२४ भाग (भाव्य); स्मृसा.
८०; विचि. २६० (=) क्षुद्रा (पापा) गणका (गणानां);
दवि. १०८ का वञ्च (नावञ्च); व्यप्र. ३८७ रत्नवत्;
व्यउ. १२६ रत्नवत्; व्यम. १०१ रत्नवत्; विता. ७७९;
सेतु. २९० क्षुद्रा (पापा) गणका वञ्चकाश्चैव (सगणो
वञ्चकाश्चैव); समु. १५० रत्नवत्.

(२) व्यक. ११२, १६३; विर. ३०७, ६१६;
स्मृसा. ८०; विचि. २५९ ग्लहः (ग्रहः); दवि. १०८
ग्लहः (गृहः); वीमि. २।२०३; सेतु. २९० दविवत्.

(३) अप. २।२०२ ग्यौ (ग्ये); व्यक. १६३; विर. ६१७.

(४) अप. २।२०२ ग्यौ (ग्ये) वाः स्युः (वास्तु);
व्यक. १६३ वाः स्युः (वास्तु); विर. ६१८ व्यकवत्;
पमा. ५७६; व्यप्र. ५६७; समु. १६५.

(५) व्यक. १६३; विर. ६१८.

(६) विर. ६१९; रत्न. १६४; विचि. २५९ धृतम्
(धितम्).

धृतं धृतात्कलिर्यस्माद्धिषं सर्पमुखादिव ।
तस्माद्राजा निवर्तेत विषये व्यवसनं हि तत् ॥
वर्तेत चेत्प्रकाशं तु द्वारावस्थिततोरणम् ।
असंमोहार्थमार्याणां कारयेत्तत्करप्रदम् ॥

धृते सभिकराजजयिभिः ग्राह्याः पणांशाः

सैभिकः कारयेद् धृतं देयं दद्यात्स्वयं नृपे ।
दशकं तु शते वृद्धिं गृहीयाच्च पराजयात् ॥

जेने राज्ञे च दत्तस्य स्वद्रव्यस्य पणप्रतिनिधेः वृद्धिः
पणग्रहणकाले पणेन सह सभिकेन ग्राह्या । ' दशकं तु
शते वृद्धिं गृहीयात्तु पराजयात् ' इति तेनैवोक्तत्वात् ।
पराजयात् पराजितादित्यर्थः । स्मृच. ३३१

जेतुर्दद्यात्स्वकं द्रव्यं जितं ग्राह्यं त्रिपक्षकम् ।

सद्यो वा सभिकेनैव कितवात्तु न संशयः ॥

त्रिपक्षकमित्यनेन यथासामर्थ्यमा त्रिपक्षात् पणदान-
काले देव इति दर्शितम् । स्मृच. ३३१

प्रसह्य दापयेद्द्रव्यं तस्मिन् स्थाने न चान्यथा ।
जितं वै सभिकस्तत्र सभिकप्रत्याक्रिया ॥

(१) विर. ६१९; रत्न. १६४; विचि. २५९; व्यनि.
४७९ वे व्य (वव्य); समु. १६४ ये व्य (वव्य) स्मृत्यन्तरम्.

(२) विर. ६१९; रत्न. १६४; व्यनि. ४८० वर्तेत
(वर्तेते) तु (तत्) द्वारावस्थित (द्वारावस्थित) ; समु. १६४
पूर्वार्धे (वर्तेते चेत्प्रकाशं तत् द्वारावस्थितौ नृणाम्) स्मृत्यन्तरम्.

(३) अप. २।२०० त्वयं नृपे (च यन्नुपे) तु शते (च
शतं); स्मृच. ३३१ याच (यात्तु) उक्तः; विर. ६१२
शते (शतं) जयात् (जये); व्यनि. ४८१ त्वयं नृपे (च
तं नृपे) तु शते (च शतं) याच पराजयात् (यात्तु पराजितात्);
स्मृचि. ३६ त्वयं नृपे (च तच्छतम्) शते (शतं); समु.
१६४ स्मृचवत्, उक्तः.

(४) अप. २।२०० क्षकम् (क्षिकम्); स्मृच. ३३१
जितं ग्राह्यं (जिताद्ग्राह्यं); विर. ६१२ त्वकं (त्वयं) त्रिप
(विप) तु न संशयः (दानसंशये); पमा. ५७५; व्यनि.
४८१; स्मृचि. ३६; व्यप्र. ५६६ क्षकम् (क्षिकम्)
सभिकेनैव (कितवेनैव) कितवात्तु (सभिकात्तु); समु. १६४
स्मृचवत्.

(५) अप. २।२०१ वेद्द्रव्यं (वेदेयं) प्रत्याक्रिया (प्र
क्रिया); विर. ६१५.

अनभिज्ञो जितो मोच्योऽभिज्ञो वाऽपि जितो रहः ।
सर्वस्वेऽपि जितेऽभिज्ञं न सर्वस्वं प्रदापयेत् ॥

अक्षयूते जयपराजयलक्षणम्

एकरूपा द्विरूपा वा द्यूते यस्याक्षदेविनः ।

दृश्यते च जयस्तस्य यस्मिन्नक्षा व्यवस्थिताः ॥

(१) अप. २।२०१ ऽभिज्ञो वापि (ऽमोच्योऽभिज्ञो) ऽपि
जितेऽभिज्ञं (विजितेऽभिज्ञे); विर. ६१६; स्मृचि. ३७ नारदः.

(२) विर. ६१४ न्रक्षा व्यवस्थिताः (न्रक्षा व्यवस्थिता);
च्यनि. ४८२ एक... .. द्यूते (एकरूपो द्विरूपो वा द्यूते)
च जय (विजय); समु. १६५ च जय (विजय).

द्यूते जयपराजयनिर्णयोपायः

विग्रहे च जये लाभे करणे कूटदेविनाम् ।

प्रमाणं सभिकस्तत्र शुचिः स्यात् सभिको यदि ॥

म्लेच्छश्वपाकधूर्तानां कितवानां तपस्विनाम् ।

तद्धृताचारभेतृणां निश्चयो न तु राजनि ॥

राजनीति पूर्वोक्तसकलसम्योपलक्षणार्थम् । तेन श्रुत-

व्ययनसंपन्ना इत्याद्युक्ताः सभ्या म्लेच्छादिविवादिषु
नादरणीयाः । अप. २।२०२

(१) अप. २।२०२ हे च (हेऽथ) शुचिः स्यात् (शुचिश्च);
व्यक. १६३ शुचिः स्यात् (शुचिश्च); विर. ६१७.

(२) अप. २।२०२ भेतृणां (भेतृणां); व्यक. १६३;
विर. ६१७ निश्चयो (निश्चये).

प्रकीर्णकम्

गौतमः

नृपाश्रितो व्यवहारः । राजब्राह्मणाभ्यां दण्डोपदेशाभ्यां चतुर्वर्णा-
श्रमो लोकः पालनीयः प्रतिषिद्धाद्वारणीयः संकराच्च रक्षणीयः ।

द्वौ लोके धृतव्रतौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः * ।

(१) आपदवृत्तिमाश्रितो यदि तत्रैव रमेत केनासौ
निवार्यत इत्याह— द्वाविति । लोको राष्ट्रं वीप्सालोप-
श्चात्र द्रष्टव्यः लोके लोके, धृतव्रतौ व्रतानां कर्मणां
धारयितारौ द्वौ राजा बहुश्रुतश्च ब्राह्मणः तौ सर्वस्य
सर्वापदो दण्डोपदेशाभ्यां निवारयितारौ । गौमि.

(२) द्वौ राजबहुश्रुतब्राह्मणौ धृतव्रतौ परेषां धर्म-
रक्षणव्रतसंकल्पौ । विर. ६२६

तयोश्चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्यान्तःसंज्ञानां च
चलनपतनसर्पणानामायत्तं जीवनम् ।

(१) चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्य चातुर्वर्ण्यस्यान्तर-
प्रमावास्त्वनुलोमादयस्तन्मूलत्वात् पृथक् नोक्ताः । अन्तः-
संज्ञाः वृक्षादयः स्थावरा वृद्धिक्षयवन्तो येषामन्तःसंज्ञा
न बहिस्ते तथोक्ताः । तथा च मनुः—‘तमसा बहुरूपेण
चेष्टित्वाः कर्महेतुना । अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःख-
सम्बन्धिताः ॥’ इति । चलनाः पश्चादयः । पतनाः
पक्षिणः । सर्पणाः सरीसृपा भुजगादयः । एषां मनुष्या-
दीनां जीवनं तयो राजब्राह्मणयोरायत्तं तदधीनम् । राजा
तु परिपन्थिनिग्रहादिना तेषां जीवनहेतुः । इतरस्तु कथं
बहुश्रुत इत्यत आह— ‘अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगा-
दित्यमुपतिष्ठते । अग्निव्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः
प्रजाः ॥ इत्यादिनिग्रहैः जीवने हेतुः । गौमि.

* मया व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च समाप्रकरणे (पृ. २४)
द्रष्टव्यः ।

(१) गौध. ८।२; व्यक. १३४ ज्ञानां च (ज्ञानां);
सभा.; गौमि. ८।२ व्यकवत्; विर. ६२५ मनु.....ज्ञानां
च (मनुष्यस्य) सर्पणानामा. (सर्पिणामा).

(२) यतः— तयोरिति । तयोः समुदितयोः समान-
निर्देशात् । चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्य चातुर्वर्ण्यस्येत्यर्थः ।
अन्तःसंज्ञाः अनुलोमप्रतिलोमाः चकारात् देवानां च,
‘इतः प्रतिदानाद्धि देवा उपजीवन्ति’ इति श्रुतेः ।
चलनाः स्थावराः वृक्षादयः, पतनाः पक्षिणः, सर्पणाः
क्रीटादयः, एतेषामायत्तमधीनं जीवनं प्राणधारणम् ।
कथं? ब्राह्मणेनानुग्रह्यमाणा वर्णाश्रमिणः दृष्टादृष्टार्थ-
क्रियानुष्ठानात् वृष्ट्यादिनिमित्तद्वारेण लोकोपकारे वर्तन्त
इति तावद्ब्राह्मणायत्तम् । तथा च मनुः— ‘अग्नौ
प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते’ इत्यादि । राजा च
परिपन्थिनिग्रहद्वारेण हिंसानिग्रहद्वारेण च साक्षाज्जीवन-
हेतुरिति । मभा.

(३) चतुर्विधस्य ब्राह्मणादिभेदवतः, चलनाः संकर-
जातयः, पतनाः पक्षिजातयः, सर्पिणः क्रीटाजातयः ।

विर. ६२६

प्रसूतिरक्षणमसंकरो धर्मः ।

न च जीवनमात्रमेव तदधीनं किं तर्हि— प्रसूति-
रक्षणमिति । प्रसूतिरभिवृद्धिः । दण्डोपदेशाभ्यां यथोक्त-
कारितया वृष्ट्यादिद्वारेण रोगाद्युपद्रवशात्त्या चाभिवृद्धि-
र्भवति । चोरनिग्रहद्वारेण पण्डप्रायश्चित्तोपदेशाभ्यां
भवति वर्णानामसंकरोऽसंमेलनमपि । विहितोपदेशात्
प्रतिषिद्धसेवायां दण्डधारणाच्च धर्मोऽपि भवति ।
एतत्सर्वं तयोरायत्तम् । Xगौमि.

राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम् * ।

वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् ।

X: मभा. गौमिवत् ।

* व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ.
५६७) द्रष्टव्यः ।

(१) गौध. ८।३; व्यक. १६४; मभा.; गौमि. ८।३;
विर. ६२५.

(२) गौध. ११।९; मभा.; गौमि. ११।९.

(१) वर्णा ब्राह्मणादयः । आश्रमा ब्रह्मचर्यादयः । तान् न्यायतो यथाशास्त्रं षष्ठांशादिभागस्वीकारेणाभिरक्षेत् । अभितो रक्षेत् । यथा वर्णाश्रमधर्मानुष्ठानेन निरपायार्ते भवेयुः । अथ वा न्यायत इति यथा देशादिधर्माणां भङ्गो न भवति तथा रक्षेदिति । अनुलोमादयोऽवान्तर-प्रभवा वर्णा एष्वेवान्तर्भूताः । रक्षणं सर्वभूतानामिति चोरादिभ्यो रक्षणं पूर्वोक्तम् । इदं तु वचनं वर्णाश्रम-धर्मेषु संकरो मा भूदिति । गौमि.

(२) वर्णा अनुपनीता ब्राह्मणादयः । उत्तरकाल-माश्रमाः । न्यायतः लोकशास्त्राविरुद्धेन मार्गेण यथेषां शास्त्रविहितकर्मानुष्ठानोपद्रवो लोकव्यवस्थाभङ्गश्च न भवति तथा रक्षेदित्यर्थः । अभिग्रहणमाभिमुख्यार्थं, ततश्च स्वयमेव विचार्य रक्षेत् । येषां वर्णत्वमाश्रमत्वं च नास्ति प्रतिलोमानां, तेषामपि रक्षणार्थो विसमाप्तः । येषां वर्णत्वं नास्ति आश्रमत्वमेवानुलोमानां तेषामप्युप-संग्रहार्थमाश्रमग्रहणम् । तेषां तु 'शूद्रश्चतुर्थो वर्णः' इत्यत्र वर्णत्वनिराकरणात् । 'प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः' इत्यत्र उपनयनविधानादाश्रमत्वमेवेति । इतरथा वर्णा-नामेवाश्रमविधानादाश्रमत्वे सत्यपि वर्णत्वानपममाच्च वर्णग्रहणेनैव लभ्यमानत्वादिति । चकाराद्देवताप्रतिमाश्च । तथा च व्याघ्रः— 'ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रान-न्तरजांस्तथा । देवताप्रतिमाश्चापि रक्षेद्भूपः प्रयत्नतः ॥' इति । 'रक्षणं सर्वभूतानाम्' इति चोरादिभ्यो रक्षण-स्योक्तत्वात् । अन्योन्यासंकरार्थं इहोपदेशः । मभा.

चलन्तश्चैतान् स्वधर्मे स्थापयेत् । एतान् पूर्वोक्तान् यद्यालस्यादिना ये चलन्ति न कुर्वन्ति तान् निगृह्य स्वधर्ममेव कारयेदित्यर्थः । चकारात् प्रतिषिद्धसैवने च । X मभा.

धर्मस्य ह्यंशभागभवतीति विज्ञायते ।

कस्मादेवं करोतीत्याह— धर्मस्येति । हिशब्दो हेत्वर्थः । यस्माद्रक्षणतः धर्मस्यांशो भवतीति अरक्षणतोऽप्यधर्मस्येत्यर्थसिद्धम् । अंशः षष्ठो भागः । तथा च

X गौमि. मभावत् ।

(१) गौध. ११११०; मभा.; गौमि. ११११०.

(२) गौध. १११११; मभा.; गौमि. १११११ (विज्ञा-यते०).

मनुः— 'सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षणात् । अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥' इति (मस्मृ. ८।३०४) । अमूर्तस्य धर्मस्य विभागसंभवात् यावान् वर्णाश्रमाणां धर्म उत्पद्यते ततः षष्ठांशपरिमाणो राज्ञोऽपि विहितकर्मानुष्ठानादुत्पद्यत इति द्रष्टव्यम् । इतिकरणश्चोपसंहारप्रदर्शनार्थः, यतः एतदेवमतो रक्षेत् स्थापयेच्चेति । विज्ञायत इति श्रुतिसूचनार्थम् । तदपि सर्वधर्माणां श्रुतिमूलत्वाद्दक्षणे गौरवोत्पादनार्थम् । X मभा.

दण्डो दमनादित्याहुस्तेनादान्तान् दमयेत् * ।

अथ दौःशील्यात् व्यवस्थां नानुमन्यन्ते ततः— दण्ड इति । दमनयोगाद्दण्डशब्दस्य दण्डत्वमित्याहु-र्धर्मज्ञाः । तेनादान्तान् अवश्यान् दमयेद्वशं नयेत् । दण्डेनादान्तान् दमयेदित्येवं सिद्धे दण्डः— 'धिग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्वाग्दण्डं तदनन्तरम् । तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डं ततः परम् ॥ देवदानवगान्धर्वा रक्षांसि पतगो-रगाः । तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥' इति ।

+ गौमि.

वर्णाश्रमाः स्वस्वधर्मनिष्ठाः प्रेत्य कर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवृत्त-चित्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यन्ते ।

वर्णा ब्राह्मणादयः । आश्रमा ब्रह्मचर्यादयः । ते स्वधर्मनिष्ठा वर्णप्रयुक्तानाश्रमप्रयुक्तानुभवप्रयुक्तांश्च धर्मानुष्ठितवन्तः । प्रेत्य भ्रंशेन लोकान्तरं गत्वा तस्य तस्य कर्मणः फलं स्वर्गादिकमनुभूय ततस्तदनन्तरं शेषेण मुक्तावशिष्टेन कर्मणा विशिष्टदेशादिकान् मुक्त्वा जन्म प्रतिपद्यन्ते । तत्र विशिष्टशब्दो देशादिभिः सर्वैः संब-ध्यते । विशिष्टो देश आर्यावर्तादिः । विशिष्टजातिर्ब्राह्मण-जातिः । विशिष्टकुलमध्यनादिसंपन्नम् । विशिष्टरूपं कान्तिमद्विशिष्टायुः सषोडशं वर्षशतम् । 'स ह षोडशं वर्षशतमजीवति'ति दर्शनात् । रोगरहितत्वमप्यायुषो

X गौमि. मभावत् ।

* स्थलादिनिर्देशः दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५६७) द्रष्टव्यः ।

+ मभा. गौमिवद्भावः ।

(१) गौध. १११११; मभा. वर्णाश्रमाः स्वस्वधर्मनिष्ठाः (वर्णा आश्रमाश्च स्वधर्मनिष्ठाः); गौमि. १११२९ विच (चित्र) व्याख्यानावसरे तु 'चित्त' इति पाठः.

विशेषः । विशिष्टश्रुतं 'ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः' इत्यत्र
व्याख्यातम् । विशिष्टवृत्तमनुपाधि चारित्रम् । विशिष्टवित्तं
धर्माञ्जितं धर्मे प्रयुज्यमानं च । सुखं निरपायस्थाना-
धिष्ठानेनानिषिद्धसुखसेवनम् । विशिष्टमेधा ग्रन्थार्थयो-
र्ग्रहणशक्तिरिति । मेधाशब्दे सकारान्तत्वमार्पे सुमेधसो
दुर्मेधस इत्यादिष्वेव दर्शनात् । कर्माणि भुज्यमानानि
पुण्यान्यपुण्यानि च सशेषान्येवं भुज्यन्ते । ऐहिकस्य
शरीरग्रहणादेरपि पुण्यापुण्यनिवन्धनत्वात् । * गौमि.

विश्वञ्चो विपरीता नश्यन्ति ।

ये वर्णाश्रमाः स्वानि कर्माणि यथावन्नानुतिष्ठन्ति ते
विपरीता विश्वञ्चो नानायोनीर्गच्छन्तो नश्यन्ति । अनर्थ-
परम्परामनुभवन्तीति । * गौमि.

तौनाचार्योपदेशो दण्डश्च पालयते ।

तान् विपरीतान् यथोक्तमकुर्वतो वर्णानाश्रमांश्चाचा-
र्योपदेशस्तावत्पालयते । तत्राप्यतिष्ठतो राजदण्डः ।
* गौमि.

तैस्माद्राजाचार्यावनिन्द्यौ ।

तस्माद्धेतो राजाचार्यौ मान्यावनिन्द्यौ इति । यद्यपि
निश्चयनकाले हितैषितया प्रमुखपुरुषौ भवतस्तथापि तयो-
र्निन्दा न कार्या । * गौमि.

देशादिधर्माः

देशजःतिकुलधर्माश्चात्रायैरविरुद्धाः प्रमाणम् ÷ ।

आपस्तम्बः

नृपाश्रितो व्यवहारः । शास्त्रराजपुरोहितैः चतुर्वर्णाश्रमो
लोकः स्वकर्माणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धाश्चरणीयश्च ।

+ शास्त्रैरधिगतानामिन्द्रियदौर्बल्याद्विप्रतिपन्नानां

* मभा. गौमिवद्भवः ।

× अस्मिन् प्रकरणे देशधर्मवचनानि प्रकीर्णके केनापि
विचित्रकारेण नोद्धृतानि । अस्माभिस्तु प्रकीर्णकविषयास्तुगतत्वात्
स्मृतिचन्द्रिकामालोच्य तदीयादिकप्रकरणात् समुद्धृतानि ।

÷ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दर्शनविधौ (पृ. ६७)
द्रष्टव्यः ।

+ सर्वेषां सत्राणां उज्जलाव्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च दण्ड-
स्तवकाप्रकरणे (पृ. ५६८-९) द्रष्टव्यः ।

(१) गौघ. १११३२; मभा.; गौमि. १११३०.

(२) गौघ. १११३३; मभा.; गौमि. १११३१.

(३) गौघ. १११३४; मभा.; गौमि. १११३२.

(४) स्मृच. १० ब्राह्म (मां आ).

शास्ता निर्वेषमुपदिशेद्यथाकर्म यथोक्तम् ।

तस्य चेच्छास्त्रमतिप्रवर्तेरन् राजानं गमयेत् ।

राजा पुरोहितं धर्मार्थकुशलम् ।

स ब्राह्मणान् नियुञ्ज्यात् ।

बलविशेषेण वधदास्यवर्जं नियमैरुपशोषयेत् ।

इतरेषां वर्णानामा प्राणवियोगात्समवेक्ष्य तेषां
कर्माणि राजा दण्डं प्रणयेत् ।

न च संदेहे दण्डं कुर्यात् ।

सुविचितं विचित्या दैवप्रभेभ्यो राजा दण्डाय
प्रतिपद्येत । एवंवृत्तो राजोभौ लोकावभिजयति ।

देशादिधर्माः

एतेन देशकुलधर्मा व्याख्याताः ।

'ज्येष्ठो दायाद' इत्यादिकं शास्त्रविप्रतिषेधादप्रमाण-
मित्युक्तम् । एतेन देशधर्माः कुलधर्माश्च व्याख्याताः ।
शास्त्रविप्रतिषिद्धा मातुलसुतापरिणयनादयोऽप्रमाणं विप-
रीताः प्रमाणमिति । गौतमोऽप्याह—'देशकुलधर्मांश्चा-
त्रायैरविरुद्धाः प्रमाणमिति । उ.

बौधायनः

नृपाश्रितो व्यवहारः । राजा चतुर्वर्णाश्रमो लोकः स्वधर्मे
स्थापयित्वा रक्षणीयः ।

षड्भागभूतो राजा रक्षेत् प्रजाम् ।

रक्षकाभावे सति आगः प्रवर्तते । ततश्च वर्णसंकरोऽपि
जायते । अतस्तत्परिहारार्थमाह—षड्भागेति । षट्शब्दोऽत्र
लुप्तपूरणप्रत्ययो द्रष्टव्यः । भृतिवैतनं धनं तद्ग्राही भृतः ।
राजा चात्राभिषिक्तः । स चापि तासां प्रजानां षड्भाग-
भाग् भवति । ब्राह्मणस्यानुरक्षितस्य धर्मषड्भागभाग्
भवति । तथा च वसिष्ठः—'राजा तु धर्मेणानुशासन् षड्
धनस्य हरेदन्यत्र ब्राह्मणात् । इष्टापूर्तस्य तु षड्मंशं
भजति' इति । इष्टं वर्णसामान्याधिकारावष्टम्भेन विहितो
ज्येष्ठिष्ठोमादिः । पूर्तं तु साधारणो धर्मः सर्वेषां सत्यम-
क्रोधे दानमहिंसा प्रजननमित्यादि । अभिषिक्तस्य प्रजा-
परिपालनं धर्मः । गौतमश्च तदेवाधिकृत्य वदति—'चलत-
श्चैनान् स्वधर्मे स्थापयेत् । धर्मस्य ह्यंशभाग् भवति'
इति (गौघ १११०-११) । वसिष्ठश्च—'स्वधर्मो राजः

(१) आध. २११५१.

(२) बौघ. १११०११.

परिपालनं भूतानाम्' इति (वस्मृ. १९।१) । आचार्यश्च स्वधर्मेषु स्थापनमेव रक्षणमिति मत्वा अस्येमे स्वधर्मा इत्याह ।
बौवि. (पृ. ८८-९)

देशादिधर्मपालनम्

पञ्चधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरतः ।

दक्षिणेन नर्मदामुत्तरेण कन्यातीर्थम् । उत्तरतस्तु दक्षिणेन हिमवन्तमुदग्विन्ध्यस्य । एतद्देशप्रसूतानां शिष्टानां परस्परं पञ्चधा विप्रतिपत्तिः विसंवादः 'यान् पदार्थान् अनुतिष्ठन्ति दाक्षिणात्याः न तानुदीच्याः । यानुदीच्या न तान् दाक्षिणात्याः' इति । बौवि. (पृ. ६)

यानि दक्षिणतस्तानि व्याख्यास्यामः ।

निगदव्याख्यातमेतत् । बौवि. (पृ. ६)

यैथैतदनुपेतेन सह भोजनं स्त्रिया सह भोजनं पर्युषितभोजनं मातुलपितृष्वसदुहितृगमनमिति । तत्रेमान्युदाहरणानि— यथेति । मातुलदुहितृगमनं पितृष्वसदुहितृगमनमिति संबन्धः । ऋज्वन्यत् ।

बौवि. (पृ. ६)

अथोत्तरतः ऊर्णाविक्रयः शीघ्रुपानमुभयतोद्वि-
व्यवहारः आयुधीयकं समुद्रसंयानमिति ।

ऊर्णायास्तद्विकारस्य च कम्बलादेर्विक्रयः । उभयतो दन्ता अश्वादयः । व्यवहारः विक्रयादिः । आयुधीयकं शस्त्रधारणम् । समुद्रसंयानं नावा द्वीपान्तरगमनम् ।
बौवि. (पृ. ६)

इतरदितरस्मिन् कुर्वन् दुष्यतीतरदितरस्मिन् । इतरत् अनुपेतेन सह भोजनादि, इतरस्मिन्नुत्तरापये कुर्वन् दुष्यति तत्रत्यैशिशैः दूष्यत इत्यर्थः । एवमूर्णा-
विक्रयादीनि कुर्वन्वितरत्र । तस्मादनुपेतेन सह भोज-
नादीनि दाक्षिण्यैशिशैराचर्यमाणत्वात् दोषामावाच-
कैरेव कर्तव्यानि । ऊर्णाविक्रयादीनि चोदीन्यैरेव ।

(१) बौध. १।१।१९; स्मृच. १०.

(२) बौध. १।१।२०; स्मृच. १०.

(३) बौध. १।१।२१; स्मृच. १० पतेन (पनीतेन)
स्त्रिया (मायया च).

(४) बौध. १।१।२२; स्मृच. १०.

(५) बौध. १।१।२३; स्मृच. १० (इतरस्मिन् कुर्वन्
दुष्यतीति । इतर इतरस्मिन्).

व्य. कां. २४१

तदेतद्भट्टकुमारिलैर्निरूपितम्— 'स्वमातुलमुतां प्राप्य दाक्षिणात्यस्तु तुप्यति ।' इति । तथाहि— अहिच्छत्र-
ब्राह्मण्यः सुरां पिबन्ति । इति च । बौवि. (पृ. ६-७)

तत्र तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यात् ।

ननु किमिति व्यवस्था ? यावता मूलश्रुतिरेषामविशे-
षेण कल्प्यते यथा होलाकादीनाम् । यथा वा बौधायनीयं
धर्मशास्त्रं कैश्चिदेव पठ्यमानं सर्वाधिकारं भवति ।
गौतमीयगोभिलीये छन्दोगैरेव पठ्येते, वासिष्ठं तु बृहृचैः,
अथ च सर्वाधिकाराणि । यथा वाऽन्यानि शास्त्राणि
यथा वा गृह्यशास्त्राणि सर्वाधिकाराणि, तद्वदनुपनीत-
सहभोजनादीन्यपि समानि कस्मान्न भवन्तीत्याशङ्क्याह
— तत्र तत्रेति । एवं व्यवस्थितविषयैव मूलश्रुतिः
कल्प्यते । किन्नामाऽनुपपत्तिर्न कल्पयतीत्यभिप्रायः ।
तस्माद्व्यवस्थितविषयमेवानुष्ठानं तद्वर्जनं च ।

बौवि. (पृ. ७)

मिथ्यैतदिति गौतमः ।

गौतमग्रहणमादरार्थम्, नात्मीयं मतं पर्युदसितुम् ।
स ह्येवमाह— 'देशजातिकुलधर्माश्चात्रायैरविरुद्धाः प्रमा-
णम्' । तद्विरुद्धो देशादिधर्मो न कर्तव्यः । तद्विरुद्ध-
श्चायम् । आह च गृत्समदः— 'अनुपनीतसहभोजने
द्वादशरात्रमुच्छिष्टभोजने द्विगुणम्' इति । प्रायश्चित्त-
विधानान्निषेधः कल्प्यते । तथा 'स्त्रिया सह भोजने
त्रिरात्रोपवासो घृतप्राशनं चे'ति । तथा 'पर्युषितभोजने
अहोरात्रोपवासः' इति संवर्तः । तथा मातुलदुहितृगमने-
ऽप्याह— 'सखिभायां समारुह्य मातुलस्यात्मजां तथा ।
चान्द्रायणं द्विजः कुर्यात् श्वश्रूमपि तथैव च ॥' इति ।

तथा विवाहेऽपि— 'पञ्चमीं मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं
पितृबन्धुतः' इति । आह च— 'पतृष्वसेयीं भगिनीं
स्वसीयीं मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुरासौ च गत्वा
चान्द्रायणं चरेत् ॥ एवमूर्णाविक्रयादिष्वपि आम्नाय-
विरोधः प्रसिद्धः । ऊर्णां तावदप्येषु पठिता । शीघ्र-
पाने गौतमः— 'नित्यं मद्यमपेयं ब्राह्मणस्य' इति ।
तथोभयदन्तव्यवहारे वसिष्ठः— 'अश्वलवणमप्ययम्'

(१) बौध. १।१।२४; स्मृच. १० (देशप्रामाण्यात्)
एतावदेव.

(२) बौध. १।१।२५.

इति प्रकृत्य 'ग्राम्यपञ्चानामेकशफाः केशिनश्च' इत्याह ।
तथा च श्रुतिः— 'य उभयादत्प्रतिगृह्णात्यश्वं वा पुरुषं
वा वैश्वानरं द्वादशकालं निर्वपेत्' इति प्रायश्चित्तम् ।
तथा आयुधीयकेऽपि 'परीक्षार्थोऽपि ब्राह्मण आयुधं
नाददीत' इति । स्वयमेव पतनीयेषु समुद्रसंयानं वक्ष्यति ।
एवमादीन्यालोच्य आम्रायैरविरुद्धाः प्रमाणमित्युक्तम् ।
अतो 'मिथ्यैतदिति गौतमः' इत्युपपन्नं भवति ।
बौवि. (पृ. ७-८)

उभयं चैव नाद्रियेत ।

एतदेव स्वमतमित्याह— उभयमिति । चशब्दः
पक्षव्यावृत्त्यर्थः । अनुपेतादिसहभोजनमूर्णाविक्रयादि
चोभयमपि न कर्तव्यमित्यभिप्रायः । बौवि. (पृ. ८)
शिष्टस्मृतिविरोधदर्शनात् शिष्टागमविरोधदर्शनाच्च ।
कस्मादित्याह— शिष्टेति । शिष्टागमविरोधस्तावत्
स्वयमुदितः 'पञ्चधा विप्रतिपत्तिः' इत्यत्र । स्मृतिविरोध-
श्चानुपनीतादिसहभोजने प्रायश्चित्तविधानात् । शिष्टस्मृति-
विरोधः मनुविरोधः । शिष्टो हि मनुः । तद्विरोधश्च ।
तस्मृतिः शिष्टस्मृतिः । शिष्टस्मृतिविरोधः सोऽपि दर्शित
एव । एकसूत्रतां त्वेके मन्यन्ते । यथा होलाकादयो व्यव-
स्थितदेशविषया अप्यव्यवस्थिताः कर्तव्याः इत्थमिमेऽ-
पीत्यस्य चोद्यस्य व्यवस्थितदेशश्रुत्यनुमानमुक्तं 'तत्र
तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यात्' इति । तत्राह— 'उभयं
चैव नाद्रियेत शिष्टस्मृतिविरोधदर्शनात्' इति । स च
विरोध उक्तः । तस्मादविरुद्धत्वाद्द्वोलाकाद्यनुष्ठानं सर्वाधि-
कारकम् । इह विरोधादनुपनीतसहभोजनादिवर्जनं सर्वा-
धिकारमिति विशेषः । आहुश्च न्यायविदः 'विरोधे
त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्' इति ।

(बौवि. पृ. ८-९)

प्रागदर्शनात्प्रत्यक्कालकवनादक्षिणेन हिमवन्त-
मुदक्पारियात्रमेतदार्यावर्तं तस्मिन् य आचारः स
प्रमाणम् ।

तत्रापि शिष्टस्मृतिविरोधेऽनपेक्ष्यमेव । बौवि. (पृ. ९)

(१) बौघ. १।१।२६.

(२) बौघ. १।१।२६ (क) (शिष्टागमविरोधदर्शनाच्च०).

(३) बौघ. १।१।२७ (क) गदर्शना (मिनशना) कवना
(कवना).

गङ्गायमुनयोरन्तरमित्येके ।

आर्यावर्तत्वे विकल्पः ।

बौवि. (पृ. ९)

अथाप्यत्र भाल्लविनो गाथामुदाहरन्ति ।

आर्यावर्तान्तरप्रदर्शनार्थं भाल्लविनः छन्दोगविशेषाः
गाथा श्लोकः । बौवि. (पृ. ९)

पैत्र्यात्सिन्धुर्विसरणी सूर्यस्योदयनं पुरः ।

यावत्कृष्णो विधावति तावद्धि ब्रह्मवर्चसमिति ॥

कृष्णः कृष्णमृगः । ब्रह्मवर्चसं अध्ययनज्ञानानुष्ठाना-
भिजनसंपत् । म्लेच्छदेशस्त्वतः परम् । बौवि. (पृ. ९)

वासिष्ठः

नृपाश्रितो व्यवहारः । ब्राह्मणेन राज्ञा च उपदेशदण्डाभ्यां
चतुर्वर्णाश्रमो लोकः पालनीयः स्वकर्माणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धा-
द्वारणीयश्च ।

त्रैयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् । तेषां ब्राह्मणो
धर्मान् प्रब्रूयात् । तं राजा चानुशिष्यात् ।

राजा तु धर्मेणानुशासत् षष्ठं षष्ठं धनस्य हरेत् ।
अन्यत्र ब्राह्मणात् । इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं भजतीति

ह ब्राह्मणो वेदमाद्यं करोति, ब्राह्मण आपद उद्ध-
रति तस्मात् ब्राह्मणोऽनाद्यः । सोमोऽस्य राजा

भवतीति ह प्रेत्य चाभ्युदयिकमिति ह विज्ञायते ।
वर्णग्रहणमुपनयनादपि प्राङ्निदेशवर्तित्वप्राप्त्यर्थम् ।

निर्देश आज्ञा । विर. ६२६
स्वधर्मो राज्ञः पालनं भूतानां तस्यानुष्ठानात्
सिद्धिः । भयकारुण्यहानं जरामयं (र्यं) वै तत्सत्र-

(१) बौघ. १।१।२८.

(२) बौघ. १।१।२९.

(३) बौघ. १।१।३० (क) सरणी (धरणी) ष्णो विधावति
(ष्णा विधावन्ति).

(४) वस्मृ. १।४०-४२ (ख) धर्मान् प्र (धर्म यद्) तं...
शिष्यात् (तत् राजा चानुशिष्यत्); व्यक. १६४ वशे (निर्देशे)
(तेषां०) (तं०); मभा. २८।५० (ब्राह्मणो धर्मान् प्रब्रूयात्)
एतौवदेव; विर. ६२६ व्यकवत्.

(५) वस्मृ. १।४३-६; व्यक. १६६ (राजा तु... मंशं
भजतीति ह०) सोमोऽस्य (सोमो); विर. ६३३-४ व्यकवत्.

(६) वस्मृ. १।१।१-६ (ख) स्वधर्मो (धर्मो) भय-
कारुण्य... सामर्थ्याच्च (भयकारणं ह्यपालनं वै एतत् सत्र-

माहुर्विद्वांसस्तस्माद्गार्हस्थ्यनैयमिकेषु पुरोहितं
दध्यात् । विज्ञायते, ब्रह्मपुरोहितं राष्ट्रमुत्प्रेतीति ।
उभयस्य पालनादसामर्थ्याच्च । देशधर्मजातिकुल-
धर्मान् सर्वानेवैताननुप्रविश्य राजा चतुरो वर्णान्
स्वधर्मे स्थापयेत् । तेष्वपचरत्सु दण्डं धारयेत् ।

राज्ञा विवाहव्यवस्था कार्या

उद्वाहकारिणं त्वागमयेत्कस्य न सह विवाहो
युज्यते इति वर्णविभागप्रतिपादनाय संप्रदानं
रक्षेत् * ।

देशादिधर्मपालनम्

आर्यावर्तः प्रागादर्शात् प्रत्यक्कालकवनादुदक्पा-
रियात्रादक्षिणेन हिमवत उत्तरेण च विन्ध्यस्य ।
तस्मिन् देशे ये धर्मा ये चाचारास्ते सर्वत्र प्रत्ये-
तव्याः । न त्वन्ये प्रतिलोमकल्पधर्माणः । एत-
दार्यावर्तमित्याचक्षते । गङ्गायमुनयोरन्तरेऽप्येके ।
यावद्वा कृष्णमृगो विचरति तावद्ब्रह्मवर्चसमित्यन्ये ।
अथापि भाल्लविनो निदाने गाथामुदाहरन्ति ।

पश्चात्सिन्धुर्विहरिणी सूर्यस्योदयनं पुरः ।

यावत्कृष्णोऽभिधावति तावद्ब्रह्मवर्चसम् ॥

त्रैविद्यवृद्धा यं ब्रूयुर्धर्मं धर्मविदो जनाः ।

पवने पावने चैव स धर्मो नात्र संशयः ॥ इति ।

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् श्रुत्यभावादब्रवीन्मनुः ।

विष्णुः

नृपाश्रिता व्यवहारः । राज्ञा चतुर्वर्णाश्रमो लोकः स्वर्कर्मणि
स्थाप्यः प्रतिषिद्धात्रिवारणांयश्च ।

अथ राजधर्माः । प्रजापरिपालनम् । वर्णा-
श्रमाणां स्वे स्वे धर्मे व्यवस्थापनम् । राजा च

* एतद्वचनं परनिहिततरङ्गे निधिविचारे विवादरत्नाकरकारेण
लिखितं, तत्र तस्यार्थो न लगते ।

माहुर्विद्वांसस्तस्माद्गार्हस्थ्यनैयमिकेषु । पुरोहिते दद्यात् विज्ञायते
ब्राह्मणः पुरोहितो राष्ट्रं दधातीति । तस्य भयमपालनादसाम-
र्थ्याच्च (जातिकुल (जातिधर्मकुल) नैवैता (न वैता) तेष्वप
... धारयेत् (तेष्वधर्मपरेषु) ।

(१) विर. ६४५.

(२) वस्सु. ११७-१६.

(३) विस्मृ. ३११-२१.

जाङ्गलं पशव्यं सस्योपेतं देशमाश्रयेत् । वैश्यशूद्र-
प्रायं च । तत्र धन्वन्महीवारिवृक्षगिरिदुर्गाणा-
मन्यतमं दुर्गमाश्रयेत् । तत्र स्वस्वग्रामाधिपान्
कुर्यात् । दशाध्यक्षान् । शताध्यक्षान् । देशाध्य-
क्षांश्च । ग्रामदोषाणां ग्रामाध्यक्षः परीहारं कुर्यात् ।
अशक्तो दशग्रामाध्यक्षाय निवेदयेत् । सोऽप्यशक्तः
शताध्यक्षाय । सोऽप्यशक्तो देशाध्यक्षाय ।
देशाध्यक्षोऽपि सर्वात्मना दोषमुच्छिन्द्यात् ।
आकरशुल्कतरनागवनेष्वाम्नान् नियुञ्जीत । धर्मिष्ठान्
धर्मकार्येषु । निपुणानर्थकार्येषु । शूरान् संग्राम-
कर्मसु । उग्रानुप्रेषु । षण्ढान् स्त्रीषु ।

महीदुर्गं मह्यामेवेष्टकापाषाणादिनिमित्तं दुर्गम् ।
महौवो(मह्यामेवो)चावचप्रदेशप्रदेशप्रचुरदुर्गमित्यन्ये । तत्र
दुर्गे स्थितः सन् । तरस्तीर्यते नद्यादि येनेति तरो
नौकादिस्तजं शुल्कं जलजं शुल्कमिति यावत् । नागा
गजाः । वनानि अरण्यानि । नागवन्ति वनानीति वा ।
नगः पर्वतः, तत्संबन्धि नागम् । गिरिदुर्गमिति वा ।
अर्थकार्येषु सुवर्णादिपरीक्षासु । यद्वा ऊहापोहादिनिर्णय-
वत्सु कार्येषु निपुणान् पण्डितान् नियुञ्जीत । वै.

नृपाश्रिताः केचिद्व्यवहाराः

आज्ञाप्रतिघाते द्विगुणो दमः ।

अयमर्थः— द्विगुण इति द्वैगुण्योक्त्यैवासतं द्रव्यं
तस्मै दापयितव्यमिति ज्ञायत इति भारुचिः ।

सवि. ४९७

अनादिष्टः सन्नध्यक्षतां ब्रजति तदनुसारेण
दण्ड्यः ।

पुत्रसंशये माता तमङ्कमारोपयेद्विकृतिश्चेन्नर्णे-
तव्यः ।

विकृतिः कामविकारः । तद्विशतिवर्षीयमातृकपञ्च-
दशवर्षीयपुत्रविषयम् (?) । सवि. ४९८

अत्र राज्ञो हृदयमेव प्रमाणम् ।

एकेनापि प्रकारेण निर्णयाभावे अभिषिक्तस्य राज्ञो
हृदयमेव प्रमाणमित्याह विष्णुः— अत्रेति ।

सवि. ४९८

(१) सवि. ४९७. (२) सवि. ४९७.

(३) सवि. ४९८. (४) सवि. ४९८.

देशादिधर्मपालनम्
परदेशावाप्तौ तद्देशधर्मान्नोच्छिन्त्यात् ।

शङ्खलिखितौ

नृपाश्रितो व्यवहारः—पितृमातृविवादे पुत्रः प्रष्टव्यः ।

स्वपन्तं पुत्रमाहूय ज्ञातव्यम् ।

पितापुत्रसंशये निर्णयप्रकारमाह विष्णुः— 'पुत्रसंशये माता तमङ्कमारोपयेद्विकृतिश्चेन्निर्येतव्यः' इति । विकृतिः कामविकारः । तद्विशतिवर्षीयमातृकपञ्चदशवर्षीयपुत्र-विषयम् (?) । वृद्धमातृविषये तदभावान्निर्णयान्तरमाह तुः शङ्खलिखितौ— स्वपन्तमिति । सवि. ४९८

नृपाश्रितव्यवहारेषु कानिचिदपवादस्थानानि

न वैष्टिकं जाडुधिकं क्षेत्रद्रव्यापहरणं पुष्पमूल-प्रचयनं स्वयमर्जितप्रवेशनं निष्क्रमणप्रवेशनेष्व-निवेदनं स्कन्धवाह्येषु शुल्को गणसमयश्रेणीपू-चरणव्यवहारनिष्ठा स्वामिनः परिज्ञातारोऽन्यत्र राजाभिद्रोहात् नगरनिवासिनां विप्रेतराणामपि परिग्रहा अनपराधाः ।

न वैष्टिकं विष्टिः कर्मकरः तत्संबन्धि देयं वैष्टिकम् । जाडुधिकं जड्वाजन्यदेयं, स्वयमर्जितस्य पण्यस्य राज्ञे अनिवेद्यापि प्रवेशनमनपराधः । निष्क्रमणप्रवेशनेष्व-निवेदनं राजपुरुषेभ्य इति शेषः । स्कन्धवाह्येषु शुल्कः स्कन्धे वहनयोग्येषु शुल्कदानम् । गणो ब्राह्मणसमुदायः । समयः पाषण्डादीनां, श्रेणी शिल्पिसमूहः, पूगो वणि-ज्जादिसमूहः, गणादीनां चरणमाचारः, व्यवहारो विवादः तत्र निष्ठा निर्णयः । स्वामिनः तत्र प्रधानभूतः परि-ज्ञातारः स्वे स्वे वृत्ते आचारव्यवहारप्रवर्तकत्वेन लक्षण-परिज्ञातारः । अन्यत्र राजाभिद्रोहाद्गणान्यन्तरेष्वपि राजद्रोहकारिषु न ते प्रभवः, किन्तु राजैव, तेन राज-द्रोहादन्यत्र नगरवासिगणादिषु मुख्यानां स्वातन्त्र्येणा-चाराविवादपरिच्छेदो न दण्डायेत्यर्थः ।

* विर. ६६२

* 'गणसमयश्रेणीपूग' इत्यस्य वचनस्य व्याख्यानं सभा-प्रकरणे (पृ. २६) समुद्धृतमप्यत्र अर्थसंगत्यर्थं पुनरुद्धृतम् ।

(१) विस्मृ. ३।४२. (२) सवि. ४९८.

(३) विर. ६६२.

महाभारतम्

देशधर्मपालनम्

जातिश्रेण्यधिवासानां कुलधर्माश्च सर्वतः ।
वर्जयन्ति च ये धर्मं तेषां धर्मो न विद्यते ॥

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

प्रकीर्णकानि

प्रकीर्णकानि । प्रकीर्णकं तु । याचितकावक्रीत-काहितकनिक्षेपकाणां यथादेशकालमदाने, याम-च्छायासमुपवेशसंस्थितीनां वा देशकालातिपातने, गुल्मतरदेयं ब्राह्मणं साधयतः, प्रतिवेशानुवेशयो-रुपरि निमन्त्रणे च द्वादशपणो दण्डः ।

संदिष्टमर्थमप्रयच्छतो, भ्रातृभार्या हस्तेन लङ्घयतो, रूपाजीवामन्योपरुद्धां गच्छतः, पर-वक्तव्यं पण्यं क्रीणानस्य, समुद्रं गृहमुद्भिन्दतः, सामन्तचत्वारिंशत्कुल्या बाधामाचरतश्चाष्टचत्वारिंशत्पणो दण्डः ।

कुलनीवीग्राहकस्यापव्ययने, विधवां छन्द-वासिनीं प्रसह्याधिचरतः, चण्डालस्यायां स्पृशतः, प्रत्यासन्नमापद्यनभिधावतो, निष्कारणमभिधावने कुर्वतः, शाक्यजीवकादीन् वृषलप्रव्रजितान् देव-पितृकार्येषु भोजयतः शत्यो दण्डः ।

शपथवाक्यानुयोगमनिसृष्टं कुर्वतो, युक्तकर्म चायुक्तस्य, क्षुद्रपशुवृषाणां पुस्त्वोपघातिनो, दास्य गर्भमौषधेन पातयतश्च पूर्वः साहसदण्डः ।

पितापुत्रयोर्दम्पत्योर्भ्रातृभगिन्योर्मातुलभागिने-ययोः शिष्याचार्ययोर्वा परस्परमपतितं त्यजतः सार्थाभिप्रयातं ग्राममध्ये वा त्यजतः पूर्वः साहस-दण्डः । कान्तारे मध्यमः । तन्निमित्तं श्रेष्यत् उत्तमः । सहप्रस्थायिष्वन्येष्वर्धदण्डः । पुरुषम-बन्धनीयं बध्नतो बन्धयतो बन्धं वा मोक्षयतो बालमप्राप्तव्यवहारं बध्नतो बन्धयतो वा सहस्र-दण्डाः ।

प्रकीर्णकानीति सूत्रम् । प्रकीर्णानि विश्विस्तानि परि-शिष्टानि च, तत्र किञ्चित् किञ्चित् विवाहसंयुक्तादिशेषं किञ्चित् किञ्चिदध्यक्षप्रचारकण्टकशोधनान्तर्गतम् । तान्यु-

(१) भा. १२।३६।१९. (२) कौ. ३।२०.

च्यन्त इति सूत्रार्थः । प्रकीर्णकं त्विति । प्रतिपाद्यत इति शेषः । याचितकेत्यादि । याचितकावक्रीतकाहितकानि प्रतीतानि, निक्षेपको भूषणादिनिर्माणार्थमपितं सुवर्णादि, एतेषां, यथादेशकालं अदाने द्वादशपणो दण्डः । यामच्छायासमुपवेशसंस्थितीनां वा देशकालातिपातनं 'नक्तममुकयामे दिवाऽमुकच्छायानालिकायां चामुकदेशे संभूयोपवेष्टव्यमि'त्येवं कृतसंकेतानां समुपवेशव्यवस्थानां देशकालातिक्रामणे वा द्वादशपणो दण्डः । इदं समयस्थानपाकर्मशेषम् । गुल्मतरेदेयं गुल्मतारणभृतिं नदी-तारणभृतिं च, ब्राह्मणं साधयतः ब्राह्मणात् प्रयत्नेन गृह्णतः द्वादशपणो दण्डः । प्रतिवेशानुवेशयोरुपरि निमन्त्रणे च प्रतिवेशः प्रतिमुखगृहं अनुवेशोऽनन्तरगृहं तयोर्विद्यमानं श्रोत्रियमतिक्रम्यान्वस्य निमन्त्रणे च, द्वादशपणो दण्डः ।

संदिष्टमिति । प्रतिश्रुतमर्थमप्रयच्छतः, भ्रातृभार्यो हस्तेन लङ्घयतः अवलम्बमानस्य, रूपाजीवां गणिकां, अन्योपरुद्धां गच्छतः, अष्टचत्वारिंशत्पणो दण्डः । इदं साहसशेषम् । परवक्तव्यं परपरीवादगोचरं पण्यं क्रीणानस्य, अष्टचत्वारिंशत्पणो दण्डः । इदमस्वामि-विक्रयशेषम् । समुद्रं मुद्रया युक्तं गृहं उद्भिन्दतः, अष्टचत्वारिंशत्पणः । इदं साहसशेषम् । सामन्त-चत्वारिंशत्कुल्याः सामन्तिकानां चत्वारिंशतः कुल्यानां वाधां आचरतश्च, अष्टचत्वारिंशत्पणो दण्डः । इदं वास्तुकशेषम् ।

कुलनीवीग्राहकस्यापव्ययन इति । कलसाधारणं धनं गृहीत्वाऽपलपने, विधवां छन्दवासिनीं स्वच्छन्दवर्तिनीम-कामां, प्रसह्याधिचरतः बलाद् गच्छतः, चण्डालस्य आर्योऽप्युपगतः, प्रत्यासन्नं अन्तिकस्य आपदि अनभि-धावतः अभिधाव्यारक्षतः, निष्कारणमभिधावनं कुर्वतः, शाक्यजीवकादीन् शाक्यान् क्षपणकादींश्च वृषलप्रव्रजितान् देवपितृकार्येषु भोजयतः, शस्त्यो दण्डः शतपण-दण्डः ।

शपथवाक्यानुयोगमनिसृष्टं कुर्वत इति । आधिकर-णिकाः साक्ष्याद्यनुयोगं शपथपूर्वं यमनुतिष्ठन्ति स शपथवाक्यानुयोगः तं धर्मस्थाननुज्ञातं कुर्वतः, युक्तकर्म चायुक्तस्य अनधिकृतस्याधिकृतकर्म कुर्वतश्च,

क्षुद्रपशुवृपाणां, पुंस्त्वोपघातिनः, दास्या गर्भे औषधेन पातयतश्च सावयतश्च, पूर्वः साहसदण्डः ।

नितापुत्रयोरित्यादि । सार्थाभिप्रयातं ग्राममध्ये त्यजतः संघसाह्याश्रयेण प्रस्थितं रोगादिवशात् ग्रामान्तरे त्यक्त्वा गच्छतः सार्थमुख्यस्य । शेषं सुवोधम् । कान्तारे मध्यम इति । दुर्गमे अरण्ये त्यजतो मध्यमसाहसः । तन्निमित्तं भ्रेषयतः कान्तारत्यागेन निमित्तेन विगत-जीवितं कुर्वतः, उत्तमसाहसः । सहप्रस्थायिषु अन्येषु सार्थान्तर्गतेषु विषये, अर्धदण्डः । श्रीम्.

आचार्यशिष्यधर्मभ्रातृसमानतीर्थानां वानप्रस्थयतिब्रह्मचारि-विषये अन्यथा वा व्यतिक्रमे दण्डविधिः

विवादपदेषु चैषां यावन्तः पणा दण्डाः तावती रात्रीः क्षपणाभिषेकाभिकार्यमहाकृच्छ्रवर्धनानि राज्ञश्चरेयुः । अहिरण्यसुवर्णाः पाषण्डाः साधवः । ते यथास्वमुपवासव्रतैराराधयेयुः अन्यत्र पारुष्यस्तेषां साहससंग्रहणेभ्यः । तेषु यथोक्ता दण्डाः कार्याः ।

प्रव्रज्यासु वृथाचारान् राजा दण्डेन वारयेत् ।

धर्मो ह्यधर्मोपहतः शास्तरं हन्त्युपेक्षितः ॥

विवादपदेषु चैषामिति । व्युत्क्रमागतानामाचार्यादीनां विवादपदेषु रिक्तविषयेषु, यावन्तः पणाः दण्डाः पराजि-तानां शास्त्रोक्ताः, तावतीः तत्समानसंख्याः, रात्रीः, क्षपणाभिषेकाभिकार्यमहाकृच्छ्रवर्धनानि क्षपणमुपवासः अभिषेकः स्नानं अभिकार्यं होमः महाकृच्छ्रं चान्द्रायण-प्राजापत्यादिकं प्रशस्तव्रतं तैर्वर्धनानि श्रेयोयोजनानि, राज्ञश्चरेयुः राजार्थं कुर्युः, अर्थात् पराजिता आचार्यादयः वर्तनानीति पाठे क्षपणादीनां महाकृच्छ्रान्तानां वर्तनानि अनुष्ठानानि राजार्थं कुर्युरित्यर्थः । अहिरण्यसुवर्णा इति । अहिरण्यसुवर्णहीनाः, पाषण्डाः, साधवः धर्मशीलाः । ते कथञ्चिद् विवादपदेषु पराजयदण्डं प्राप्ता इत्यर्थे, यथास्वं उपवासव्रतैः, आराधयेयुः धर्ममुपासीरन् राज-श्रेयोऽर्थे । तत्रापवादमाह— अन्यत्र पारुष्यस्तेषां साहस-संग्रहणेभ्य इति । वक्ष्यमाणवाक्पारुष्यदण्डपारुष्यस्तेषां दिविवादव्यतिरेकेण । के तर्हि तेषां पारुष्यादिषु दण्डा-स्तत्राह— तेष्विति । तेषु विषये, यथोक्ताः पारुष्यादि-प्रकरणोक्ताः, दण्डाः, कार्याः । अध्यायान्ते श्लोकमाह—

(१) कौ. ३।१६.

प्रवज्यास्वित्यादि । प्रवज्यासु वृथाचारान् चतुर्थाश्रमेषु
मिथ्याचारान् । शेषं सुगमम् । श्रीम्.

उपनिपातप्रतीकारः

उपनिपातप्रतीकारः । दैवान्यष्टौ महाभयानि—
अग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मूपिका व्यालाः सर्पा
रक्षांसीति । तेभ्यो जनपदं रक्षेत् ।

ग्रीष्मे बहिरधिश्रयणं ग्रामाः कुर्युः । दशकुली-
संग्रहेणाधिप्राता वा । नागरिकप्रणिधावग्निप्रति-
षेधो व्याख्यातः । निशान्तप्रणिधौ राजपरिग्रहे च ।
बलिहोमस्वस्तिवाचनैः पर्वसु चाग्निपूजाः कार-
येत् । वर्षारात्रमनूपग्रामाः पूर्वेलासुत्सृज्य वसेयुः ।
काष्ठवेणुनावश्चावगृह्णीयुः ।

उह्यमानमलाबूढतिप्लवगण्डिकावेणिकाभिस्तार-
येयुः । अनभिसरतां द्वादशपणो दण्डः अन्यत्र
प्लवहीनेभ्यः ।

पर्वसु च नदीपूजाः कारयेत् । मायायोगविदो
वेदविदो वर्षमभिचरेयुः । वर्षावग्रहे शचीनाथ-
गङ्गापर्वतमहाकच्छपूजाः कारयेत् ।

उपनिपातप्रतीकार इति सूत्रम् । उपनिपाता नाम
दैव्योऽन्यादिनिमित्ता विपदः, तेषां प्रतीकारोऽभिधीयत
इति सूत्रार्थः । कण्टकास्तावद् द्विविधा मनुष्यकण्टका
देवकण्टकाश्चेति । तत्र मनुष्यकण्टकाः कारुकादय
उक्ताः, देवकण्टकास्त्वधुनोच्यन्ते । दैवान्यष्टावित्यादि ।
स्पष्टार्थम् ।

तेष्वष्टसु अग्नितो रक्षणप्रकारमाह — ग्रीष्म इति ।
तस्मिन्, ग्रामाः, अधिश्रयणं पाकस्थाल्याश्चुल्यां निवे-
शनं, बहिः गृहबहिर्देशे, कुर्युः । दशकुलीसंग्रहेण दश-
कुलीरक्षकेण गोपनाप्रा, रक्षकेणेत्येव भाषापाठः । अधि-
छिता वा 'इहाधिश्रयणं कर्तव्यमिति' चोदिता वा,
कुर्युः । नागरिकप्रणिधौ, अग्निप्रतिषेधः अग्निमयपरिहार
विधिः, व्याख्यातः 'अग्निप्रतीकारं च ग्रीष्मे' इत्यादि-
नोक्तः । निशान्तप्रणिधौ राजपरिग्रहे च व्याख्यातः
'मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तःपुरमग्निरन्यो न
ब्रह्मतीत्यादिनोपदिष्टः ।

बलीत्यादि । पर्वसु पूर्णिमादिषु, बलिहोमस्वस्तिवाचनैः

(१) कौ. ४।३.

भूतत्रलिभिः रक्षाहोमैः शान्तिकैः स्वस्तिवाचनैश्च, अग्नि-
पूजाः कारयेत् ।

अथ जलप्रतिषेधमाह— वर्षारात्रमिति । वर्षाकालिक-
रात्रीः, अनूपग्रामाः जलप्रायप्रदेशवासिनः, पूर्वेलां
उत्सृज्य जलप्रवाहसंनिवृद्धं तटं परिहृत्य, वसेयुः । इह
वर्षापूर्वपदकाद् रात्रिशब्दात् अचप्रत्ययोऽन्वेष्यः । रात्रि-
मिति वा पाठः । काष्ठवेणुनावश्च काष्ठं वेणुं नावं च
जलप्रवाहतरणार्थाः, अवगृह्णीयुः संगृह्णीयुः ।

उह्यमानमिति । प्रवाहेण नीयमानं बाहुतरणाक्षमं,
अलाबूढतिप्लवगण्डिकावेणिकाभिः अलाबूढतिप्लवगण्डिका
चर्मभस्त्रा प्लव उडुपं गण्डिका तरुप्रकाण्डकं वेणिका
जलतरणसाधनभेदः ताभिः, तारयेयुः । अनभिसरतां
तारयेतुमनभिगच्छतां, द्वादशपणो दण्डः । अन्यत्र
प्लवहीनेभ्य इति । तरणसाधनहीनाश्चेदनभिसरन्तो नाप-
राध्यन्तीत्यर्थः ।

पर्वसु चेति । अमावास्यादिषु, नदीपूजाः कारयेत्
जलविपत्प्रशमार्थम् । मायायोगविद इति । शैवादयो
मान्त्रिकाः, वेदविदः अथर्ववेदनिपुणाः, वर्षे अतिवृष्टिं,
अभिचरेयुः जपहोमादिना प्रशमयेयुः । वर्षावग्रह इति ।
वृष्टिप्रतिबन्धे सति, शचीनाथगङ्गापर्वतमहाकच्छपूजाः
इन्द्रजाह्नवीशैलसमुद्रपूजाः कारयेत् । श्रीम्.

व्याधिभयमौपनिषदिकैः प्रतीकारैः प्रतिकुर्युः ।
औषधैश्चिकित्सकाः, शान्तिप्रायश्चित्तैर्वा सिद्ध-
तापसाः ।

तेन मरको व्याख्यातः । तीर्थाभिषेचनं महा-
कच्छवर्धनं गवां श्मशानावदोहनं कबन्धदहनं
देवरात्रिं च कारयेत् ।

पशुन्याधिमरके स्थानान्यर्थनीराजनं स्वदैवत-
पूजनं च कारयेत् ।

दुर्भिक्षे राजा बीजभक्तोपग्रहं कृत्वानुग्रहं
कुर्यात् । दुर्गसेतुकर्म वा भक्तानुग्रहेण । भक्तसं-
विभागं वा । देशनिक्षेपं वा । मित्राणि वा
व्यपाश्रयेत् । कर्शनं वसनं वा कुर्यात् ।

निष्पन्नसस्यमन्यविषयं वा सजनपदो यायात् ।
समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत् । धान्यशाकमूल-

(१) कौ. ४।३.

फलावापान् सेतुषु कुर्वीत । मृगपशुपक्षिव्याल-
मत्स्यारम्भान् वा ।

अथ व्याधिभयप्रतीकारः । व्याधिस्तावद् द्विविधः
कृत्रिमोऽकृत्रिमश्च । आद्य औपनिषदिकोक्तविषधूम-
विषाम्बुवादिदोषप्रभवः, द्वितीयो धातुदोषजः । तत्र
कृत्रिमव्याधिभयं औपनिषदिकोक्तैर्विधानैः प्रतिकुर्युः,
अकृत्रिमव्याधिभयं भिषज औषधैः सिद्धतापसाश्च
शान्तिकर्मभिर्भ्रंतोपवासादिभिः प्रतिविदध्युरित्याह—
व्याधिभयमित्यादि ।

तेनेति । उक्तेन व्याधिशमनप्रकारेण, मरको मारी-
नामा महाव्याधिः व्याख्यातः उक्तप्रतीकारः ।
विशेषं त्वाह—तीर्थाभिषेचनमिति । गङ्गादितीर्थस्नानं,
महाकच्छवर्धनं समुद्रपूजनं, गवां श्मशानावदोहनं
श्मशाने दोहनं, कवन्धदहनं तण्डुलसक्नुनिर्मितस्य
कवन्धस्य श्मशाने दहनं, देवरात्रिं च देवं क्वचित्
स्थानेऽर्चयित्वा रात्रिजागरणं च, कारयेत् ।

पशुव्याधिमरक इति । पशूनां गजाश्वादीनां व्याधौ
मरके च, स्थानानि भिन्नस्थानस्थितीः, अर्थनीराजनं
नीराजनद्रव्यैर्नीराजनं, स्वदैवतपूजनं च कारयेत् । तत्र
गजस्य स्वदैवतं सुब्रह्मण्यः, अश्वस्याश्विनौ, गोः पशुपतिः,
महिपस्य वरुणः, वेसरस्य वायुः, अजस्याग्निरिति
बोद्धव्यम् ।

दुर्भिक्षभयप्रतीकारमाह—दुर्भिक्ष इति । दुर्भिक्षसमये,
राजा, बीजभक्तोऽग्रहं प्रजानां बीजभक्ताभ्यामनुकूल-
चरणं कृत्वा, अनुग्रहं कुर्यात् । दुर्गसेतुकर्म वा दुर्गकर्म
सेतुनिर्माणकर्म वा, भक्तानुग्रहेण भक्तदानेन, कुर्यात् ।
भक्तसंविभागं वा दुर्गसेतुकर्माभावेऽपि केवलान्नदानं,
कुर्यात् । देशानिक्षेपं वा अनन्तरदेशे तद्देशराजान्तिके
'प्रजा इमा मे कञ्चित् कालं रक्षित्वा प्रत्यर्पय' इत्युक्त्वा
प्रजानिक्षेपणं वा, कुर्यात् । मित्राणि वा धनदानाद्युपकार-
क्षमाणि, व्यपाश्रयेत प्रजाभक्तार्थम् । कर्शनं निरुपयोग-
जनानां तत्काले देशान्तरप्रेषणेनाल्पत्वकरणं, वमनं वा
सुभिक्षविदेशप्रेषणं वा, कुर्यात् ।

निष्पन्नसस्यमिति । सस्यसमृद्धं, अन्यविषयं वा अन्य-
देशं वा, सजनपदो जानपदसहितो, यायात् उपजीव-
नार्थम् । समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत्, मत्स्यपक्षि-

कूर्मादिजलचरजन्तुभक्षणेन जीवनार्थम् । धान्यशाकमूल-
फलावापान्, सेतुषु कुर्वीत जलाधारान् निर्माव तत्र
कुर्वीत । मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान् वा मृगादीनां
वधारम्भान् वा कुर्वीतेति वर्तते । श्रीमू-

मूषिकभये मार्जारनकुलोत्सर्गः । तेषां ग्रहण-
हिंसायां द्वादशपणो दण्डः । शुनामन्निग्रहे च
अन्यत्रारण्यचरेभ्यः ।

सुहिक्षीरलिप्तानि धान्यानि विसृजेत् । उप-
निषद्योगयुक्तानि वा । मूषिककरं वा प्रयुञ्जीत ।
शान्तिं वा सिद्धतापसाः कुर्युः । पर्वसु च मूषिक-
पूजाः कारयेत् ।

तेन शलभपक्षिक्रिमिभयप्रतीकारा व्याख्याताः ।
व्यालभये मदनरसयुक्तानि पशुशवानि प्रसृ-
जेत् । मदनकोद्रवपूर्णान्यौदर्याणि वा ।

लुब्धकाः श्वगणिनो वा कूटपञ्चरावपातैश्चरेयुः ।
आवरणिनः शस्त्रपाणयो व्यालानभिहन्युः । अन-
भिसर्तुर्द्वादशपणो दण्डः । स एव लाभो व्याल-
घातिनः ।

पर्वसु च पर्वतपूजाः कारयेत् । तेन मृगपक्षि-
सङ्घग्रहप्रतीकारा व्याख्याताः ।

सर्पभये मन्त्रैरोषधिभिश्च जाङ्गलीविद्वेश्वरेयुः ।
संभूय चोपसर्पान् हन्युः । अथर्ववेदविदो वाभि-
चरेयुः । पर्वसु च नागपूजाः कारयेत् । तेनोदक-
प्राणिभयप्रतीकारा व्याख्याताः ।

रक्षोभये रक्षोन्नान्यथर्ववेदविदो मायायोगविदो
वा कर्माणि कुर्युः । पर्वसु च वितर्दिच्छत्रोल्लोपिका-
हस्तपताकाच्छागोपहारैः चैत्यपूजाः कारयेत् । चरुं
वश्चराम इत्येवं सर्वभयेष्वहोरात्रं चरेयुः ।

सर्वत्र चोपहतान् पितेवानुगृहीयात् ।
मायायोगविदस्तस्माद् विषये सिद्धतापसाः ।
वसेयुः पूजिता राज्ञा दैवात्प्रतिकारिणः ॥

मूषिकप्रतीकारमाह—मूषिकभय इति । तस्मिन्नु-
त्पन्ने, मार्जारनकुलोत्सर्गः मार्जाराणां नकुलानां चोत्सर्गः
गृहेषु स्वैरसंचारघटना कर्तव्या । तेषां मार्जारनकुलानां,
ग्रहणहिंसायां ग्रहणे हिंसने वा, द्वादशपणो दण्डः । शुनां

अनिग्रहे च परोपद्रवादनिवारणे च द्वादशपणो दण्डः । अन्यत्रारण्यचरेभ्य इति । वनेचराणां शुनामनिग्रहे दण्डा-
भावः ।

स्तुहीत्यादि । स्तुहिक्षीरल्लितानि धान्यानि, विसृजेत्
विकिरेत्, तानि हि भक्षयित्वा मूपिका म्रियेरन्निति ।
उपनिषद्योगयुक्तानि वा उपनिषदुक्तौपधयुक्तानि वा,
धान्यानि विसृजेत् । मूपिककरं वा प्रयुञ्जीत अमुकग्रहे
प्रतिदिनमेतावन्तो मूपिका देया इति मूपिकरूपं करं वा
कल्पयेत् । शान्तिं वा मूपिकशमनार्थं जपहोमादिकर्म वा,
सिद्धतापसाः कुर्युः । पर्वसु च पूर्णिमादिषु च, मूपिकपूजाः
भारयेत् ।

उक्तरीत्या शलभभयपक्षिभयक्रिमिभयानां प्रतीकारा
द्रष्टव्या इत्याह— तेन शलभेत्यादि ।

व्यालभयप्रतीकारमाह— व्यालभय इति । व्यालाः
हिंस्रमृगाः व्याघ्रादयः तत्कृते भये, मदनरसयुक्तानि
उपनिषदुक्तेन मदनरसेन युक्तानि, पशुशवानि पशूनां
भोमहिषमेषादीनां तद्भक्ष्याणां शवानि कुणपान्, प्रसृजेत्
बद्धोचरे क्षिपेत् । मदनकोद्रवपूर्णानि वनकोद्रवेण
करकेण च पूर्णानि, औदर्याणि वा पशुकोष्ठान् वा
प्रसृजेत् । व्याला हि तद्भक्षणान्भ्रियन्ते ।

सुषका इति । व्याधाः, श्वगणिनो वा श्वभिर्मुग्धान्
वे ग्राहयन्ति ते वा, कूटपञ्जरावपातैः कपटकुलायैः
तृष्णदिच्छत्रैः पातनगतैश्च चरेयुः व्यवहरेयुः । आवर-
णिनः सावरणाः, शस्त्रपाणयस्तीक्ष्णाः, व्यालान् अभि-
हन्त्युः । अनभिसर्तुरिति । व्यालेन द्रुह्यमाणं दृष्ट्वानभि-
मच्छतः, द्वादशपणो दण्डः । स एव लामो व्यालघातिन
इति । व्यालं हतवते द्वादशपणं पारितोषिकं देयम् ।

पर्वसु चेति स्फुटार्थम् ।

सर्पप्रतीकारमाह— सर्पभय इति । तस्मिन् सति, मन्त्रैः
अरुन्दादिभिः, ओषधिभिश्च विषघ्नीभिः, जाङ्गलीविदः
विषचिकित्सितकुशलाः, चरेयुः प्रतीकारव्यवहारं कुर्युः ।
समूय वा, उपसर्पान् दृष्टिगोचरमुपगतान् सर्पान्, हन्युः
अथात् पौराः । अथर्ववेदविदो वा अभिचारमन्त्राभिज्ञा
वा, अभिचरयुः मन्त्रप्रयोगैः सर्पान् हन्युः । पर्वसु च
सर्पपूजाः सर्पपूजाः, कारयेत् । तेन उक्तप्रकारेण,
सर्पप्रतिभयप्रतीकाराः व्याख्याताः नक्रादिजलचर-

प्राणिभयस्य प्रतिविधय ऊह्याः ।

रक्षःप्रतीकारमाह— रक्षोभय इति । तस्मिन् सति,
अथर्ववेदविदो, मायायोगविदो वा, रक्षोघ्नानि रक्षोघात-
कराणि, कर्माणि कुर्युः । पर्वसु च कृष्णचतुर्दश्यष्टम्यादिषु
च, वितर्दिच्छत्रोच्छ्रोपिकाहस्तपताकाच्छागोपहारैः वितर्दि-
वेंदिका छत्रमातपत्रं उच्छ्रोपिका भक्ष्यभेदः हस्तपताका
शुद्रध्वजः छागोपहारः छागवलिदानं इत्येतैः, चैत्यपूजाः
चित्ताङ्के रक्षःपूजाः, कारयेत् । चरं वश्रराम इति
युष्मभ्यं हविः पचाम इत्येवं वदन्तः सन्तः, सर्वभयेषु
अहोरात्रं नक्तन्दिवं, चरेयुः संचरेयुः ।

सर्वत्र चेति । सर्वेषु भयेषु, उपहतान् पीडितान्
जनान्, पितेव अनुग्रहणीयात्, राजा ।

श्लोकमाह— मायेत्यादि । तस्मात् विपत्प्रतीकार-
करणेन जनाः सर्वथानुग्राह्या इत्येतस्मात् कारणात् ।
शेषं सुबोधम् । श्रीमू-

* मनुः

ऋषिग्याज्ययोरन्यतरेणान्यतरस्य त्यागे दण्डः

ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक् त्यजेद्यदि ।
शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतं शतम् + ॥

मातापितास्त्रीपुत्राणामन्योन्यत्यागे दण्डः

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ।
त्यजन्नपतितानेतान् राज्ञा दण्डथः शतानि षट् × ॥
आश्रमिद्विजानां कार्याणि तच्छिष्टैर्निर्णयानि, तत्संमतौ राज्ञा
आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ।
न विब्रूयानृपो धर्मं चिकीर्षन् हितमात्मनः+॥

* अत्र येषां श्लोकानां व्याख्यासंग्रहो नोद्घृतस्तेषां व्याख्या-
संग्रहः तत्प्रकरणे द्रष्टव्यः ।

* अन्येषु विवादपदेषु अस्माभिर्निवेशिताः श्लोका अपि अत्र
संगृहीताः । मनुना साधारणव्यवहारमातृकार्या तथा स्वयं परि-
गणिताष्टादशपदेषु वा ये श्लोका व्यवस्थया नोक्तास्तेऽत्र प्रकीर्ण-
कत्वेन धृताः, यतः एतानधिकृत्यैव अन्यैः स्मृतिकारैः प्रकीर्णकं
नाम पदान्तरं समुद्दिष्टम् ।

+ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च संभूयसमुत्थानप्रकरणे
(पृ. ७७६) द्रष्टव्यः ।

× व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ.
१६२७) द्रष्टव्यः ।

÷ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च समाप्रकरणे (पृ. ३७)
द्रष्टव्यः ।

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
सान्त्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् * ॥

निमित्तविशेषेषु प्रातिवेश्यानुवेश्यद्विजानिमन्त्रणे दण्डः
प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशतिद्विजे ।
अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् = ॥

श्रोत्रियाभोजने दण्डः

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन् ।
तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हरिण्यं चैव माषकम् = ॥

करदानानर्हाः

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः ।
श्रोत्रियेषूपकुर्वश्च न दाप्याः केनचित्करम् ॥
श्रोत्रियं व्याधितातौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् ।
महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा × ॥

नेजककृत्यम्

शाल्मलीफलके ऋक्षणे नेनिज्यान्नेजकः शनैः ।
न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् ÷ ॥

तन्तुवायकृत्यम्

तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम् ।
अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम् ॥

अर्धरथापना

शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः ।
कुर्युर्ध्वं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत् ॥

क्रयविक्रयादौ राजनियमातिक्रमे दण्डविधिः

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च ।
तानि निर्हरतो लोभात् सर्वहारं हरेन्नृपः ॥
शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी ।
मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ॥

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च सभाप्रकरणे (पृ. ३७)
द्रष्टव्यः ।

= व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ.
१६२८) द्रष्टव्यः ।

× व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च स्तेयप्रकरणे (पृ.
१७२७-८) द्रष्टव्यः ।

÷ 'शाल्मलीफलके' इत्यारभ्य 'तुलामानं प्रतीमानं'
इत्यन्तानां श्लोकानां व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च स्तेयप्रकरणे
(पृ. १७०६-९) द्रष्टव्यः ।

व्य. क्रं. २४२

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयाबुभौ ।
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥
पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते ।
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्धसंस्थापनं नृपः ॥

तुलामानप्रतीमानादिस्थापना

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥

नौयायिव्यवहारः

पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे ।
पादं पशुश्च योषिञ्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् + ॥
भाण्डपूर्णानि यानानि तार्थं दाप्यानि सारतः ।
रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित् पुमांसश्चापरिच्छदाः ॥

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् ।

नदीतीरेषु तद्विद्यात् समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ।

ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे ॥

यन्नावि किञ्चिद्दशाणां विशीर्येतापराधतः ।

तद्दशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोऽशतः ॥

एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ।

दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः ॥

राज्ञा वैश्यशूद्रौ स्वकर्मणि प्रवर्तनीयौ

वाणिज्यं कारयेद्द्वैश्यं कुसीद कृषिमेव च ।

पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् * ॥

आपदि क्षत्रियवेश्यौ ब्राह्मणेन स्वस्वकर्मणां भर्तव्यौ

क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्षितौ ।

विभ्रयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयेत् ॥

ब्राह्मणेन संस्कृतद्विजा दास्ये न नियोज्याः

दास्यं तु कारयेन्मोहाद्ब्राह्मणः संस्कृतान् द्विजान् ।
अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥

+ 'पणं यानं' इत्यारभ्य 'एष नौयायिनां' इत्यन्त-
श्लोकानां व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च अग्रे नौयायिव्यवहारे
द्रष्टव्यः ।

* 'वाणिज्यं कारयेद्' इत्यारभ्य 'वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन ?
इत्यन्तानां श्लोकानां व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च अभ्युपेला-
शुश्रूषाप्रकरणे (पृ. ८१९-२३) द्रष्टव्यः ।

शूद्रो दासमेवाहति

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥
न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ।
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥

सप्तविधा दासाः

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्त्रिमौ ।
पैतृको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥

भार्यापुत्रदासा न धनस्वाम्यमर्हन्ति

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम् ॥

ब्राह्मणेन शूद्रद्रव्यं हरणीयम्

विस्त्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत् ।
न हि तस्यास्ति किञ्चित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ॥
वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् ॥

राज्ञा प्रत्यहं व्यवहारोऽवेक्षणीयः

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान् वाहनानि च ।
आयव्ययौ च नियतावाकरान् कोशमेव च ॥

(१) राजधर्माणामनुसंधानार्थं कर्मान्ताः कृषिशुल्क-
स्थानानि, वाहनानि हस्त्यादि आयव्ययमिदमस्य
प्रविष्टमिदं निर्यातमित्येवं सततं गवेषणीयम् । आकरा
धातवः सुवर्णाद्युत्पादे भवन्ति भूमयः । कोशो द्रव्य-
निश्चलस्थानम् । मेघा.

(२) प्रत्यहं कर्मान्तान् कृषिशुल्कादिस्थानानि धन-
संचयं च, योगक्षेमार्थं प्रति जागृयादिति व्यवहारदर्शना-
शक्तस्यापि राजधर्मापरित्यागार्थं पुनर्वचनम् । गोरा.

(३) कर्मान्तान् शस्त्रपातादिकर्मशालाः । आकरान्
सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानानि । मवि.

— (४) प्रत्यहं तदधिकृतद्वारेण प्रारब्धदृष्टादृष्टार्थः
कर्मणां निष्पत्तिं नृपतिर्निरूपयेत् । तथा हस्त्यश्वादीनि
किमद्य प्रविष्टं किं निःसृतमिति, सुवर्णरत्नोत्पत्ति-
स्थानानि, भाण्डागारं चावेक्षेत । व्यवहारदर्शनाशक्तोऽपि

(१) मसृष्ट. ८।४।१९.

१ स्थानादपवाहनम् । हस्त्यादि.

राजा धर्मान्न परित्यजेदिति दर्शयितुमुक्तस्यापि पुन-
र्वचनम् । मसु.

(५) 'राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि' इत्युपक्रम्याध्यायद्वय-
समाप्यं सार्थवाद्दमुपसंहरति— अहन्यहन्येति द्वाभ्याम् ।
*मच.

(६) कर्मान्तान् कर्मनिष्पत्तिं, नियतौ राजशास्त्र-
सिद्धौ । नन्द.

व्यवहारप्रकरणोपसंहारः

एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान् समापयन् ।
व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥

(१) उक्तेन प्रकारेण व्यवहारानुष्ठादानीन् समापयन्
निर्णयावसानं कुर्वन्, यत्किञ्चित्सर्वमविशातदोषं
तत्सर्वं व्यपोह्यापनुद्य पापं परमां गतिमभिप्रेतां स्वर्गाप-
वर्गभूमिं प्राप्नोति लभते । मेघा.

(२) एवमुक्तनीत्या एतानुष्ठादानादीन् व्यवहारान्
निर्णयेनान्तं नयन् राजा अपक्षपातव्यवहारदर्शनेन शास्त्र-
दानसामर्थ्यात् प्रमादकृतसंचितपापं अपनुद्य ब्रह्मलोकं
प्राप्नोति इति समस्तव्यवहारासमाप्तावपि प्रधानविवाद-
समाप्त्यभिप्रायेणेदं फलकथनम् । गोरा.

(३) बह्वर्थविषयत्वेनाध्यायस्य दीर्घत्वादतः परम-
ध्यायानुसंतानेऽतिदीर्घता स्यादिति अपर्यवसित एव
प्रतिज्ञातार्थेऽध्यायमुपसंहरति—एवमिति । समापयन्
संस्थां नयन्, व्यपोह्य निरुह्य । परमां गतिं ब्रह्मप्राप्ति-
लक्षणामिति । मवि.

(४) एवमुक्तप्रकारेणैतान् सर्वान् ऋणादानादीन्
व्यवहारांस्तत्त्वतो निर्णयेनान्तं नयन् पापं सर्वमपहाय
स्वर्गादिप्राप्तिरूपामुत्कृष्टां गतिं लभते । मसु.

नृपाश्रितो व्यवहारः—कण्टकोद्धारः

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन् महीपतिः ।
देशानलब्धांल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् × ॥

* शेषं मसुवत् ।

× अत्र संगृहीतानां कण्टकोद्धारविषयकश्लोकानां व्याख्या-
संग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च स्तेयसाहससीमाविवादादिप्रकरणेषु
द्रष्टव्यः । अन्ये च श्लोका राजनीतिकाण्डे संग्रहीत्यन्ते । अत्र
च दण्डमातृकार्या ये श्लोका न संगृहीतास्त एव संगृहीताः ।

(१) मसृष्ट. ८।४२०; गोरा. किल्बिषं (कर्मणं);
पमा. ५८३; दीक. ५६ किल्बिषं (कर्मणं) पू. : ५७ उक्तः;

सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ।
 कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥
 रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।
 नेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥
 अशासंस्तस्करान् यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ।
 तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥
 निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ।
 तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ॥
 द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारिणः ।
 प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥
 प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ।
 प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥
 उत्कोचकाश्चौपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा ।
 मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षुणिकैः सह ॥
 असम्यकारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः ।
 शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥
 एवमाद्यान् विजानीयात्प्रकाशांलोककण्टकान् ।
 निगूढचारिणश्चान्यानार्थानार्थलिङ्गिनः ॥
 तान् विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ।
 चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साह्य वशमानयेत् ॥
 तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ।
 कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः ॥
 न हि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ।
 स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥
 सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ।
 चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥
 जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ।
 शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥
 एवंविधान् नृपो देशान् गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
 तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥
 तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ।
 विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥
 भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ।

व्यनि. ५३४ पयन् (पयेत्) प्राप्नोति (स याति); सवि.
 ५०३ समापयन् (सदा नयन्) प्राप्नोति परमां गतिम् (ब्रह्म-
 लोके महीयते); समु. १६५.

शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥
 ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये ।
 तान् प्रसह्य नृपो हन्यात् समित्रज्ञातिबान्धवान् ॥
 न होढेन विना चौरं घातयेद्धारमिको नृपः ।
 सहोढं सोपकरणं घातयेद्विचारयन् ॥
 ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ।
 भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वास्तानपि घातयेत् ॥
 राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान् सामन्तांश्चैव चोदितान् ।
 अभ्याघातेषु मध्यस्थान् शिष्याच्चौरानिव द्रुतम् ॥
 यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीविनः ।
 दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥
 ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने ।
 शक्तितोऽनभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥
 राज्ञः कोषापहर्तृश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ।
 घातयेद्विधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥
 संधि भित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ।
 तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ॥
 अङ्गुली ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ।
 द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥
 अग्निदान् भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ।
 संनिधातृंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥
 तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा
 यद्वाऽपि प्रतिसंस्क्रुयोद्दाप्यस्तूतमसाहसम् ॥
 कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् ।
 हस्त्यश्वरथहर्तृश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥
 यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ।
 आगमं वाऽप्यपां भिन्द्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥
 समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ।
 स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् ॥
 आपद्रतस्तथा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा ।
 परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥
 चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः ।
 अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥
 संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।
 प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥
 अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ।

मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥
 समैर्हि विपमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ।
 स प्राप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥
 बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गं निवेशयेत् ।
 दुःखिता यत्र दृश्येरन् विकृताः पापकारिणः ॥
 प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ।
 द्वाराणां चैव भङ्गकारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥
 अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ।
 मूलकर्मणि चानाप्तः कृत्यासु विविधासु च ॥
 अवीजविक्रयी चैव वीजोत्कृष्टा तथैव च ।
 मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्बधम् ॥
 सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः ।
 प्रवर्तमानमन्याये छेदयेद्द्वयशः क्षुरैः ॥
 सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।
 कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥

सप्ताङ्गराज्यव्यसननिवारणचिन्तनम्

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ।
 सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥
 सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ।
 पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्ब्यसनं महत् ॥
 सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टद्वयस्य त्रिदण्डवत् ।
 अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किञ्चिदतिरिच्यते ॥
 तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते ।
 येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते ॥
 चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम् ।
 स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥
 पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ।
 आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥
 आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ।
 कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीनिषेवते ॥

युगकृत् राजा

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ।
 राज्ञो वृत्ताच्च सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥
 कलिः प्रसुप्तो भवति स जम्भदद्वापरं युगम् ।
 कर्मस्वभ्युत्थतस्तेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥

(१) मत्स्य. ९।२९४-३२५.

देवकार्यकरणत् देवतामथो राजा

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ।
 चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥
 वार्षिकंश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ।
 तथाऽभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥
 अष्टौ मासान् यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।
 तथा हरेत् करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥
 प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ।
 तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥
 यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ।
 तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥
 वरुणेन यथा पाशैर्वद्ध एवाभिदृश्यते ।
 तथा पापान्निगृहीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥
 परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ।
 तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥
 प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु ।
 दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥
 यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ।
 तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥
 एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः ।
 स्तेनान् राजा निगृहीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च ॥

ब्राह्मणरक्षणं राजधर्मः

परामप्यापदं प्राप्नो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ।
 ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥
 यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।
 क्षय्यी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥
 लोकानन्यान् सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः ।
 देवान् कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान् समृध्नुयात् ॥
 यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा ।
 ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तान् जिजीविषुः ॥
 अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
 प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निदैवतं महत् ॥
 इमशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
 ह्ययमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥
 एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।
 सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥

क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान् प्रति सर्वशः ।
ब्रह्मैव संनियन्तु स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥
अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शान्मयति ॥
नाब्रह्म क्षत्रमृषोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते ।
ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते ॥
दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ।
पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥

लोकहितेषु भृत्यनियोजनम्

एवं चरन् सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ।
हितेषु चैव लोकस्य सर्वान् भृत्यान् नियोजयेत् ॥
एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ॥

देशधर्मपालनम्

देशधर्मान् जातिधर्मान् कुलधर्माश्च शाश्वतान् ।
पाषण्डगणधर्माश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान् मनुः ॥
सद्भिराचरितं यत्स्याद्धारिणिकैश्च द्विजातिभिः ।
तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् * ॥

परस्वानादान—स्वार्थसंग्रहादयो राजधर्माः

अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः ।
न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ॥

करदण्डशुल्कादि शास्त्रविहितं वर्जयित्वा अन्यत्पौरघन-
मनादेयं राज्ञः क्षीणकोशस्यापि । यत्तु शास्त्रन्यायागतं
रक्षानिवेशधनं तत्सूक्ष्मं कार्पाणमात्रमपि न त्यजेत् ।
तदुक्तं— 'बल्मीकपथवद्राजा कोशवृद्धिं तु कारयेत्'
इति । मेधा.

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ।
दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति ॥

अनादानार्हमनादेयम् । अहं कृत्यस्तच्च दर्शितम् ।
दौर्बल्यं ख्याप्यते प्रकृतिभिरस्मान् दण्डयति स्तेनाटविक-
सामन्तादीन् न शक्तो विजेतुमिति । परे अस्याशक्ति

* व्याख्यासंग्रहः खलादिनिर्देशश्च दर्शनविधौ (पृ. ७७)

द्रष्टव्यः ।

(१) मस्मृ. १।१।८.

(२) मस्मृ. ८।१।७०; समु. ७०.

(३) मस्मृ. ८।१।७१.

१ स्वश.

प्रथयन्ति राष्ट्रीयाः अतस्तैरभिदोच्यमानो विरक्तप्रकृति-
रिह नश्यति आदानादिह, प्रेत्य बाधर्मदण्डनात् । मेधा.
स्वादानाद्दर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् ।
बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते ॥

स्वस्य न्यायप्राप्तस्यादानं, शोभनं वाऽऽदानं,
भव्यमेव शोभनं, वर्णयोरेव संसर्गः समानजातीयैर्वर्ण-
संसर्गः द्विष्टत्वात्संसर्गस्य च संबन्धिनोरश्रुतत्वाद्दर्णानां
प्रस्तुतत्वात्तत्रैवापेक्षा युक्ता । यस्तु वर्णानामवान्तरप्रभवैः
संसर्गो नासौ वर्णानामेव संबन्धितया व्यपदेष्टुं शक्यते ।
कश्चित्तु नकारं पठति वर्णासंसर्गादिति, सर्वथा वर्ण-
संकरप्रतिषेधानुवादोऽयम् । दुर्बलानां बलवद्विद्वेषिभिरभि-
भूयमानानां तेभ्यस्त्राणाद्धेतोः राज्ञो बलं संजायते ।
सम्यग्व्यवहारदर्शनं कर्तव्यं अधर्मदण्डनं च न कर्तव्यमि-
त्येतद्विशेषाः पठिष्यन्ते श्लोकानामर्थवादाः । मेधा.

नस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ।

वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥

तथा चैतदेव प्रपञ्चयति । अयं सेवक आत्मीयोऽतः
प्रियः न केवलं राष्ट्रवासी, यस्यैव राष्ट्रं तमेवावतिष्ठतेऽतो-
ऽप्रियः (?) । तद्धि हित्वा यमवत्प्रजासु तुल्यः परिपालने
व्यवहारे च स्यात् । ईदृशी हि यमस्य वृत्तिर्दृष्टा ।
यमस्येत्यणो बाधकं तत्रौपसंख्यानिकं यकारमिच्छन्ति ।
कः पुनर्यमतुल्यतां भजति जितक्रोधो जितेन्द्रियः । राग-
द्वेषौ जयेत् प्रसङ्गाख्यानेन । मेधा.

याज्ञवल्क्यः

प्रकीर्णकस्वरूपम्

सांप्रतं प्रकीर्णकाख्यं व्यवहारपदं प्रस्तूयते । तल्लक्षणं
च कथितं नारदेन—'प्रकीर्णकेषु विशेषा व्यवहारा नृपा-
श्रयाः । राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तकर्मकरणं तथा ॥ पुरः-
प्रदानं संभेदः प्रकृतीनां तथैव च । पाखण्डिनैगमश्रेणी-
गणधर्मविपर्ययाः ॥ पितापुत्रविवादश्च प्रायश्चित्तव्यति-
क्रमः । प्रतिग्रहविलोपश्च कोपश्चाश्रमिणामपि ॥ वर्णसं-
करदोषश्च तद्वृत्तिनियमस्तथा । न दृष्टं यच्च पूर्वेषु सर्वे

(१) मस्मृ. ८।१।७२; मेधा. दर्णसं (दर्णसं); गोश.

बलं... राज्ञः (बलवान् ख्याप्यते राजा); मच. दर्ण (दर्म).

(२) मस्मृ. ८।१।७३; व्यक. ५; स्मृच. २४ याज्ञ-

वल्क्यः; नृप्र. ७ अम (दर्म); प्रका. ३७ याज्ञवल्क्यः; समु.

९ याज्ञवल्क्यः.

तस्यात् प्रकीर्णकम् ॥' इति । प्रकीर्णके विवादपदे ये विवादा राजाशोऽङ्घनतदाज्ञाकरणादिविषयास्ते नृपसम-वायिनः । नृप एव तत्र स्मृत्याचारव्यपेतमार्गे वर्तमानानां प्रतिकूलतामास्थाय व्यवहारनिर्णयं कुर्यात् । एवं च वदता यो नृपाश्रयो व्यवहारस्तत्प्रकीर्णकमित्यर्थाऽल्लक्षितं भवति ।

नृपाश्रितो व्यवहारः — राजशासनविपर्यासे पारदार्य-चौर्यकर्तुर्मोचने च दण्डः

ऊनं वाऽप्यधिकं वाऽपि लिखेद्यो राजशासनम् । पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उक्तमः ॥

(१) यत्पूर्वप्रकरणेष्वनुक्तं, तत् पूर्वनिर्णीतव्यवहार-परिपूर्णायेदानीमाह — न्यूनमिति । शासनवचनं सर्व-लभ्यलक्षणार्थम् । लेखयिता लेखको वा न्यूनातिरिक्तादि-लेख्यदोषकर्ता, रक्षणार्पितं पारदारिकादिकं मोक्तुकाम उत्तमसाहसं दण्ड्यः । विश्व. २।२९८

(२) तत्रापराधविशेषेण दण्डविशेषमाह — ऊन-मिति । राजदत्तभूमिर्निबन्धस्य वा परिमाणान्यूनत्वमा-धिक्यं वा प्रकाशयन् राजशासनं योऽभिलिखति यश्च पारदारिकं चौरं वा गृहीत्वा राज्ञेऽनर्पयित्वा मुञ्चति तावुभावुत्तमसाहसं दण्डनीयौ । मित्ता.

(३) अधुना प्रकीर्णकाख्यं विवादपदं प्रस्तौति—ऊन-मिति । दत्तस्य भूम्यादे राजनिर्दिष्टं यत्परिमाणं तच्छासने न लिखति, किन्तु ततो न्यूनमधिकं वा यः शासन-लेखनेऽधिकृतः स लिखेत् । यश्चौरादिग्रहणेऽधिकारी चौरं पारदारिकमन्यं वा दण्डनीयं गृहीत्वा राजाज्ञामन्तरेण मुञ्चेत् स उत्तमसाहसं दण्डनीयः । अप.

(१) यास्मृ. २।२९५; अपु. २२७।६३-४ दारिकचौरं वा (जायिकचौरौ च) : २५८।७४; विश्व. २।२९८ ऊनं वाऽप्य (न्यूनमन्य) चौरं (चौरौ); मित्ता. वाऽप्य (वाऽन्य); अप. २।२९४ लिखेद्यो (यो लिखेद्) चौरं (चौरौ); व्यक. १२२ चौरं (चौरौ) यमः; स्मृच. ३३२ वाऽप्य (वाऽन्य) चौरं (चौरौ); विर. ३६९ व्यकवत्; पमा. ५८० ऊनं (न्यूनं) शेषं मित्तावत्; विचि. १६२ ऊनं (न्यूनं) लिखेद्यो (लिखतो) चौरं (चौरान्); दवि. २६५ लिखेद्यो (लिखतो) चौरं वा (चौराणां) : ३३६ चौरं वा (चौरौ च) उक्तः; वीमि.; व्यप्र. ५६९ पमावत्; व्यम. १०९ व्यकवत्; विता. ८२७ अतो (अते) शेषं मित्तावत्; राकौ. ४९४ ऊनं

(४) राजाज्ञाप्रतीघातविशेषे केनचित्कृते राज्ञा स्वय-मन्विष्य भाविते दण्डमाह याज्ञवल्क्यः—ऊनमिति । अन्यूनानतिरेकेण लेखनस्यादुष्टलक्षणस्य च राजादिष्टस्या-तिक्रमे तदाज्ञाप्रतीघातकत्वेनातिदौष्ट्यादुत्तमसाहस-दण्डोऽत्र ग्राह्य इत्यर्थः । स्मृच. ३३२

(५) आद्येनापिकारेण विरुद्धार्थशिष्टस्य, द्वितीयेन लेखनस्य समुच्चयः । × वीमि.

नृपाश्रितो व्यवहारः—राजपुराणां कर्मकारिणां कार्येष्वप-राधविचारः । श्रोत्रियसत्कारः ।

ये राष्ट्राधिकृतास्तेषां चारैर्ज्ञात्वा विचेष्टितम् । साधून् संमानयेद्राजा विपरीतांश्च घातयेत् * ॥ उत्कोचजीविनो द्रव्यहीनान् कृत्वा विवासयेत् । सदानमानसत्कारान् श्रोत्रियान् वासयेत्सदा * ॥

नृपाश्रितो व्यवहारः—पीडाकृद्भयः प्रजा रक्षणीया

चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः ।

पीड्यमानाः प्रजा रक्षेत्कायस्थैश्च विशेषतः = ॥

नृपाश्रितो व्यवहारः — कुलजातिश्रेणिगणजानपदात्मको लोकः स्वकर्मणि स्थाप्यः प्रतिषिद्धाच्च वारणीयः

कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणान् जानपदानपि । स्वधर्माच्चलितान् राजा विनीय स्थापयेत्पथि + ॥

+ प्रकीर्णकत्वेन संगृहीताः केचिद्व्यवहाराः

अभक्ष्येण द्विजं दूष्य दण्ड उत्तमसाहसम् ।

मध्यमं क्षत्रियं वैश्यं प्रथमं शूद्रमधिकम् ॥

कूटस्वर्णव्यवहारी विमांसस्य च विक्रयी ।

अङ्गहीनस्तु कर्तव्यो दाप्यश्चोत्तमसाहसम् ÷ ॥

(न्यूनं) चौरं (चौरौ); सेतु. ३०७ विचिवत्; समु. १६५ मित्तावत्.

× शेषं मित्तावत् ।

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च राजनीतिकाण्डे संग्रहीयते ।

= व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५८४) द्रष्टव्यः ।

+ अत्र याज्ञवल्क्येन अन्यप्रकरणेषु अनुक्तोऽध्यायान्ते चोक्तो व्यवहारः संगृहीतः । व्याख्यानादिकं च तत्प्रकरणे द्रष्टव्यम् ।

† व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ. १६३६) द्रष्टव्यः ।

÷ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च स्तेयप्रकरणे (पृ. १७३२-३) द्रष्टव्यः ।

चतुष्पादकृतो दोषो नापैहीति प्रजल्पतः ।
 काष्ठलोष्टेषुपाषाणबाहुयुग्यकृतस्तथा ॥
 छिन्ननस्येन यानेन तथा भग्नयुगादिना ।
 पश्चाच्चैवापसरता हिंसने स्वाम्यदोषभाक् ॥
 शक्तोऽप्यमोक्षयन् स्वामी दंष्ट्रिणां शृङ्गिणां तथा ।
 प्रथमं साहसं दद्याद्विक्रुष्टे द्विगुणं तथा ॥
 जारं चौरैर्यभिवदन् दाप्यः पञ्चशतं दमम् ।
 उपजीव्य धनं मुञ्चस्तदेवाष्टगुणीकृतम् ÷ ॥
 राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारं तस्यैवाक्रोशकारिणम् ।
 तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं छित्त्वा जिह्वां प्रवासयेत् ॥
 मृताङ्गलमविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा ।
 राजयानासनारोहदुर्दण्ड उत्तमसाहसः * ॥
 द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्टदेशकृतस्तथा ।
 विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोऽष्टशतो दमः * ॥
 दुर्दृष्टांस्तु पुनर्दृष्ट्वा व्यवहारान्नुपेण तु ।
 सभ्याः सजयिनो दण्डथा विवादाद्द्विगुणं दमम् + ॥
 यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः ।
 तमाथान्तं पुनर्जित्वा दापयेद्द्विगुणं दमम् + ॥
 राज्ञाऽन्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरुणाय तम् ।
 निवेद्य दद्याद्विभेभ्यः स्वयं त्रिंशद्गुणीकृतम् × ॥

नारदः

प्रकीर्णकपदस्य लक्षणं, तद्भेदाश्च

प्रकीर्णके पुनर्ज्ञेया व्यवहारा नृपाश्रयाः ।

राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तत्कर्मकरणं तथा ॥

॥ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दण्डपाहृष्यप्रकरणे (पृ. १८१९-२०) द्रष्टव्यः ।

÷ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ. १६३६) द्रष्टव्यः ।

§ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च वाक्पारुष्यप्रकरणे (पृ. ६७८३) द्रष्टव्यः ।

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ. १६३७) द्रष्टव्यः ।

+ व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च पुनर्न्यायप्रकरणे (पृ. ५४७) द्रष्टव्यः ।

× व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५८६) द्रष्टव्यः ।

(१) नासं. १९११; नास्मृ. २०११ ज्ञेया ... श्रयाः पुनर्ज्ञेयो व्यवहारो नृपाश्रयः; अपु. २५३।३० पूर्वार्धे (प्रकी-

पुरप्रदानं संभेदः प्रकृतीनां तथैव च ।
 पापण्डनैगमश्रेणीगणधर्मविपर्ययः ॥
 पितापुत्रविवादश्च प्रायश्चित्तव्यतिक्रमः ।
 प्रतिग्रहविलोपश्च कोप आश्रमिणामपि ॥
 वर्णसंकरदोषश्च तद्वृत्तिनियमस्तथा ।
 न दृष्टं यच्च पूर्वेषु सर्वं तत्स्यात्प्रकीर्णकम् ॥

* मिता. व्याख्यानं ' ऊनं वाऽप्यधिकं ' इति याज्ञवल्क्य-
 वचने (पृ. १९३१) द्रष्टव्यम् । पमा., वीमि., व्यग्र., व्यड.
 मितावत् ।

र्णकः पुनर्ज्ञेयो व्यवहारो निराश्रयः) त्कर्म (त्कर्मा) ; मिता.
 २।२९५ (क) णके पुनर्ज्ञेया (णकेषु विज्ञेया) ; व्यक. १६३
 बहून्यक्षराणि गलितानि, अनः पाठो नोदधृतः; स्मृच. ९ :
 ३३१ उक्तः; विर. ६२१ पूर्वार्धे (प्रकीर्णकः पुनर्ज्ञेयो व्यवहारो
 नृपाश्रयः) ; पमा. ५७९ मितावत् ; व्यनि. ५२३ विरवत् ;
 दवि. २६२ नास्मृवत् ; सवि. ४९६ त्कर्मकरणं तथा
 (त्कर्माकरणानि च) ; वीमि. २।२९५ मितावत् ; व्यग्र.
 ५६८ ; व्यड. १६४ ; राकौ. ४९४ त्कर्म (त्कर्मा) शेषं
 मितावत् ; बाल. २।२९५ ' प्रकीर्णकं पुनर्ज्ञेयो व्यवहारो नृपा-
 श्रयः ' इति कल्पतरुपाठः ; समु. १६५.

(१) नासं. १९१२ प्रदानं (प्रधान) र्ययः (र्ययाः) ;
 नास्मृ. २०।२ ; मिता. २।२९५ पुर (पुरः) षण्ड (खण्डि)
 र्ययः (र्ययाः) ; व्यक. १६३ पुरप्रदानं (पुरःप्रधान) ;
 स्मृच. ९ प्रदानं (प्रमाणं) र्ययः (र्ययाः) : ३३२ प्रदानं
 (प्रमाणं) ; विर. ६२१ षण्ड (षण्डि) शेषं नासंवत् ; पमा.
 ५७९ पुरप्रदानं (पुनः प्रमाण) र्ययः (र्ययाः) ; व्यनि.
 ५२३ प्रदानं (प्रधान) ; दवि. २६२ व्यनिवत् ; सवि. ४९६
 प्रदानं संभेदः (प्रमाणसंभेदाः) र्ययः (र्ययाः) ; वीमि.
 २।२९५ संभेदः (भेदश्च) षण्ड (खण्डि) र्ययः (र्ययाः) ;
 व्यग्र. ५६८ पुरप्रदानं (पुरः प्रमाणं) षण्ड (खण्ड) र्ययः
 (र्ययाः) ; व्यड. १६४ षण्ड (खण्डि) ; समु. प्रदानं (प्रमाणं).

(२) नासं. १९१३ पिता (पितृ) ; नास्मृ. २०।३ ;
 मिता. २।२९५ (क) कोप आ (कोपक्षा) ; व्यक. १६३ ;
 स्मृच. ९, ३३२ ; विर. ६२१ कोप (लोप) शेषं नासंवत् ;
 पमा. ५७९ कोप (लोप) ; व्यनि. ५२३ नासंवत् ; दवि.
 २६२ ग्रह ... कोप (ग्रहावल्लोपश्च लोप) ; सवि. ४९६
 क्रमः (क्रमाः) कोप (लोप) ; वीमि. २।२९५ मितावत् ;
 व्यग्र. ५६९ ; व्यड. १६४ ; समु. १६५.

(३) नासं. १९१४ सर्वं ... णकम् (तत्सर्वं स्यात्प्रकीर्णके) ;
 नास्मृ. २०।४ नासंवत् ; मिता. २।२९५ (ख) णकम्

(१) नृपेण यद्यत्स्वाज्ञातिक्रमादौ प्रतिवादित्वमास्थाय निणेतव्यं, यच्च ऋणादानादिपूर्वोक्तपदेषु नोक्तं, तत्सर्वं प्रकीर्णकारणं पदमित्यर्थः । स्मृच. ९

प्रतीघातो भङ्गः । तत्कर्म सिंहासनाधिरोहणादिराजकर्म । पुरप्रमाणं पौरचरितलेख्यप्रमाणम् । संभेदः प्रकृतीनां राज्याङ्गानां ममोद्भेदो दूषणैः प्रसिद्धैः । पाषण्डादयः प्राग्नेकधा व्याख्याताः । परधर्माणां करणं धर्मविपर्ययः । पितापुत्रविवादोऽत्र ऋणादानाद्यनन्तर्भूतोऽभिहितः । न हृष्टं यच्च पूर्वेष्विति प्रागुक्तसर्वशेषतयाऽभिधानात् । स्मृच. ३३२

(२) पुरशब्दश्च पुरवासिलोकपरः । नैगमा वणिजः, श्रेण्यः अन्यदेशपण्योपजीविनो वणिजः, तद्वृत्तिनियमस्तेषां वर्णानां वृत्तिनियमः, पूर्वेषु विवादपदेषु यत्किञ्चिद्विधेयं निषेधं च पूर्वं नोक्तं, तत्प्रतिपादनाय प्रकीर्णकमारभ्यते । विर. ६२२

(३) राज्ञ आज्ञाप्रतीघात आदेशलङ्घनं, तत्कर्मकरणं तदसाधारणक्रियाचरणम् । पुरशब्दः पुरवासिलोकपरः, नैगमाः अत्र वणिजः, नानापौरसमूह इति हलायुधः । श्रेण्यो वणिज एवान्यदेशपथोपजीविनः । एककर्मप्रवृत्ता वणिक्कृषीवलादय इति कल्पतरुः । तद्वृत्तिनियमस्तेषां वर्णानां प्रवृत्तिनियमः । दवि. २६२

(४) एतद्वचनं नारदीयम् । नारदोक्ताष्टादशविवादपदमध्यगतसप्तदशविवादिषु यत्रोक्तं तदेव प्रकीर्णकं कथितम् । अस्मदीयस्मृतिनिबन्धस्तु सर्वस्मृतिसमुच्चय इति तदनुसारेण प्रतिपाद्ये तत्तदाकाङ्क्षावशात् तत्र तत्र विवादपदे राजैकनियता अपि व्यवहारा निर्णीताः । अत्र व्यवहारपदे प्रकीर्णकारण्ये मदीयग्रन्थानुसारेण नारदीयानुसारेण च यत्पूर्वं नोक्तं तदेव कथ्यते । तथा हि— राज्ञामाज्ञाप्रतीघात इत्यस्यार्थः, राज्ञाऽस्मै ब्राह्मणाय क्षत्रियाय वा एतावद्द्रव्यं देयं इत्याज्ञायां दत्तायां यस्तु न करोति तेन द्रव्यं तस्मै

(र्णके); व्यक. १६३; स्मृच. ९, ३३२; मसु. ८।८ उक्तः; विर. ६२२; पमा. ५७९; व्यनि. ५२३ दोषश्च (हेतुश्च) शेषं नासंबतः; दवि. ३५, १२२ उक्तः. २६२ पू.; सवि. ४९६ वर्ष (धर्म); व्यग्र. ५६९ त्तिनि (त्तिनि); व्यउ. ३६४; विवा. ८२६ उक्तः; ससु. १६५.

दापयित्वा स तद्विगुणं दण्ड्य इति । तदाह विष्णुः— 'आज्ञाप्रतीघाते द्विगुणो दमः' इति । अयमर्थः— द्विगुण इति द्वैगुण्योक्त्यैवाज्ञतं द्रव्यं तस्मै दापयितव्यमिति ज्ञायत इति भारुचिः । तत्कर्मकरणानीत्यस्यार्थः— तस्य राज्ञः कर्म राज्यं तस्य करणं मुद्रिका-मण्हीत्वेति शेषः । 'अनादिष्टः सन्नध्यक्षतां व्रजति तदनुसारेण दण्ड्यः' इति विष्णुस्मरणात् । पुरप्रमाणसंभेदाः— पुरं प्रसिद्धं प्रमाणानि साधनानि हरत्यश्वरथपदातिप्रभृतीनि तेषां संभेदः शत्रूणां आवेदनं ममोद्घाटनमिति यावत् । प्रकृतीनां त्वमात्यानां परस्परपैशुन्यकथनेन भेदकरणम् । तथा च संवर्तः— 'अमात्यानां च पैशुन्ये पुरमानप्रभेदने । मध्यमं चोत्तमं चैव दण्ड एष क्रमोदितः ॥' इति । यथाक्रमं प्रकृतीनां पैशुन्ये मध्यमसाहसं पुरप्रमाणमर्मकथने उत्तमसाहसं दण्ड्यः । चकाराच्छारीरो दण्डो यथार्ह इति । अत्र पैशुन्यशब्दः भावे ध्ययन्तः । पिशुनस्य भावः पैशुन्यम् ।

पाषण्डनैगमश्रेणिगणधर्मविपर्यया इति । अस्यार्थः— पाषण्डिनां धर्माः पट्टणे अस्मिन् स्थले पाषण्डिनः स्थापयितव्याः, नैगमा अपि श्रेणयोऽपि गणा अपीत्यादिप्रतिनियतस्थलावस्थानानि धर्माः तेषां विपर्ययो न तु कुङ्कुमवसन्तान्दोलिकादयस्तेषां समयानपाकर्माख्ये प्रतिपादितत्वात् । तेषां विवादानां वादिप्रतिवादिस्त्वावे चतुर्व्यापित्वसद्भावात् राजैकनियतत्वाभावाच्च ।

पितापुत्रविवादश्चेति । अयमर्थः— यः कश्चिद्द्वन्द्वीकृतो वा देशान्तरगतो वा चिरकालमपि स्थित्वा समागत्यासौ मम पिता असौ पुत्र इत्यादि, पितृपुत्रग्रहणं पत्न्यादीनामुपलक्षकम् । असौ मम पतिरियं पत्नीत्यादि, अत्र साक्षिणो न सन्ति स्वयं तु न जानन्ति दिव्यादिकं नावनरति शपथादिभिः शोधयितुमनुचितमिति, अतश्च राजैकनियतत्वात् राजैव निर्णयः कार्य इति । पितापुत्रसंशये निर्णयप्रकारमाह विष्णुः— 'पुत्रसंशये माता तमङ्गमारोपयेद्विकृतिश्चेन्निर्येतव्यः' इति । विकृतिः कामविकारः । तद्विशतिवर्षीयमातृकपञ्चदशवर्षीयपुत्रविषयम् (?) । वृद्धमातृविषये तदभावाभिर्णयान्तरमाहतुः शङ्खलिखितौ— 'स्वमन्तं पुत्रमाहूय ज्ञातव्यम्' इति । एकैनापि प्रकारेण निर्णयभावे अभिषिक्तस्य राज्ञो हृदयमेव

प्रमाणमित्याह विष्णुः— 'अत्र राज्ञो हृदयमेव प्रमाणम्' इति । अत एवाह कालिदासः— 'सतां हि संदेह-पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणस्य वृत्तयः' इति । प्रायश्चित्तव्यतिक्रम इत्यस्यार्थः— प्रायश्चित्तकरण-व्यतिक्रमः । तद्व्यतिक्रमे प्रायश्चित्तं कारयितव्यमिति प्रायश्चित्तकरणस्य राजैकनियतत्वात् राजैव प्रायश्चित्तं कार्यमिति । तथा च देवलः— 'कृच्छ्राणां दापको राजा निर्देष्टा धर्मपालकः' इति । महापापेषु कृच्छ्राणां प्रायश्चित्तानां दापको राजा भवति । ब्रह्महत्यादिप्रायश्चित्तेषु राजाज्ञां विना द्विजाद्यैः प्रायश्चित्तं न प्रवर्तयितव्यमित्य-र्णवकारः ।

प्रतिग्रहविलोपश्चेति प्रतिग्रहशब्देन स्वाध्यायग्रहणं लक्ष्यते । परकृतोपसर्गात्त्रैविद्यवृद्धानामाक्रोशं वेदाध्ययन-विषयं कृत्वा तत्परिपालनं कर्तव्यम् । तस्य राजैक-नियतत्वात् ।

लोप आश्रमिणामपीति, अस्यार्थः— आश्रमिणां ब्रह्मचारिग्रहिवानप्रस्थयतीनां तद्विशेषाणां कुटीचकबहू-दकहंसपरमहंसानां एकतीर्थ्यादीनां लोपः तद्धर्मलोपः स च निर्वाहः । यतीनां मध्ये यस्तु भ्रष्टः स तु राज्ञो दास इति पूर्वमेव प्रतिपादितत्वात् तदेतद्विषयं न भवतीत्यव-गन्तव्यम् ।

सर्वसकरदोषः स्पष्ट एव । तद्वृत्तिनियमः सोऽपि स्पष्टः । न दृष्टं यच्च पूर्वेष्विति । अयमर्थः— यस्तु ग्रामेऽ-भिशास्तः प्रत्यर्थी नास्ति ग्रामीणास्तु अभिशाप इति वदन्ति तत्र राज्ञा निर्णयः कार्यं इत्याद्युक्तम् ।

सवि. ४९६-९

(५) राजाश्रया व्यवहाराः प्रकीर्णकेऽस्मिन् विवादपदे । एते व्यवहाराः— राजाज्ञाप्रतीघातस्तस्य यत्कर्म तत्करणं स्वयं निग्रहकरणं तेन वा यत् कर्म कर्तव्यं एवं चैवं चेति । एते एवमादयः । पूर्वेषु च बाधेषु यन्नोक्तमृणादानादिषु परीक्षोपायादि तत्सर्वं प्रकी-र्णके द्रष्टव्यम् । यथैवैते दोषा न संभवन्ति, तथा कर्तव्य-मित्येष संक्षेपः ।

नाभा. १९।१-४ (पृ. १७३)

व्य. कां. २४३

राज्ञा चतुर्वर्णाश्रमो लोकः स्वकर्माणि स्थाप्यः प्रतिविद्धाच्च निवारणीयः

राज्ञा त्ववहितः सर्वानाश्रमान् परिपालयेत् ।
उपायैः शास्त्रविहितैश्चतुर्भिः प्रकृतीस्तथा * ॥
यो यो वर्णोऽवहीयेत यश्चोद्रेकमनुब्रजेत् ।
तं तं दृष्ट्वा स्वतो मार्गात्प्रच्युतं स्थापयेत्यथि * ॥
अशास्त्रोक्तेषु चान्येषु पापयुक्तेषु कर्मसु ।
प्रसमीक्ष्यात्मना राजा दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् * ॥
राजेति । चतुर्भिः सामादिभिः । गतार्थः शेषः ।
यो य इति । यो यो वर्णः स्वमार्गादवहीयेत उत्सृ-
जेत्, यो वोद्रेकं गच्छेत्, तं तं नियम्यानुगृह्य स्वमार्गं
स्थापयेत् ।

अशास्त्रोक्तेष्विति । अशास्त्रोक्तेषु प्रवर्तमानेष्वनुरूपं दण्डं धारयेत् । नाभा. १९।५-७ (पृ. १७३)

श्रुतिस्मृतिन्यायाविरोधिराजशासनं प्रवर्तननिवर्तनात्मकम्

श्रुतिस्मृतिविरुद्धं च भूतानामहितं च यत् ।
न तत् प्रवर्तयेद्राज्ञा प्रवृत्तं च निवर्तयेत् + ॥
न्यायापेतं यदन्येन राज्ञाऽज्ञानकृतं भवेत् ।
तदप्यन्यायविहितं पुनर्न्याये निवेशयेत् + ॥
राज्ञा प्रवर्तितान् धर्मान् यो नरो नानुपालयेत् ।
दण्ड्यः स पापो बध्यश्च लोपयन् राजशासनम् - ॥

काशशिस्त्रिप्रभृतीनां वृत्तिसाधनानि न हरणीयानि

आयुधान्यायुधीयानां वाह्यादीन् वाह्यजीविनाम् ।
वेश्यास्त्रीणामलङ्कारान् वाद्यातोद्यादि तद्धिदाम् X ॥
यच्च यस्योपकरणं येन जीवन्ति कारुकाः ।
सर्वस्वहरणेऽप्येतत् न राजा हर्तुमर्हति X ॥

* स्थलादिनिर्देशः दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५८६) द्रष्टव्यः ।

+ स्थलादिनिर्देशः दर्शनविधिप्रकरणे (पृ. ९०) द्रष्टव्यः ।
'न्यायापेतं' इत्यस्य नाभा. व्याख्यानं दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५८६) द्रष्टव्यम् । व्याख्यानान्तराणि च दर्शनविधौ कात्यायने (पृ. १०४) द्रष्टव्यानि ।

÷ स्थलादिनिर्देशः दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५८७) द्रष्टव्यः ।

X व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ. ५९०-९१) द्रष्टव्यः ।

राजशासनं लोकैर्नानिक्रमणीयम् । राजदण्डप्रयोजनम् ।

राजशासनप्रामाण्यम् ।

अनादिश्चाप्यनन्तश्च द्विपदां पृथिवीपतिः ।
दीप्तिमत्त्वाच्छुचित्वाच्च यदि स्यान्न पथश्च्युतः* ॥
यदि राजा न सर्वेषां नियतं दण्डधारणम् ।
कुर्यात्पथे व्यपेतानां विनश्येयुरिमाः प्रजाः ॥
ब्राह्मण्यं ब्राह्मणो हन्यात् क्षत्रियः क्षात्रमुत्सृजेत् ।
स्वकर्म जह्याद् वैश्यश्च शूद्रः सर्वान् विशेषयेत् ॥
राजानश्चेन्नाभविष्यन् पृथिव्यां दण्डधारणे ।
शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः ॥
सतामनुग्रहो नित्यमसतां निग्रहस्तथा ।
एष धर्मः स्मृतो राज्ञामर्थश्चापीडयन् प्रजाः ॥
न लिप्यते यथा वह्निर्दहन् शश्रुदिमाः प्रजाः ।
तथा न लिप्यते राजा दण्डं दण्ड्येषु पातयन् ॥
आज्ञा तेजः पार्थिवानां सा च वाचि प्रतिष्ठिता ।
ते यद् ब्रूयुरसत्सद्वा स धर्मो व्यवहारिणाम् ॥
राजा नाम चरत्येष भूमौ साक्षात् सहस्रदृक् ।
न तस्याज्ञां व्यतिक्रम्य संतिष्ठेन् प्रजाः क्वचित् ॥
रक्षाधिकारादीशत्वाद् भूतानुग्रहदर्शनात् ।
यदेव कुरुते राजा तत्प्रमाणमिति स्थितिः ॥
विगुणोऽपि यथा स्त्रीणां पूज्य एव पतिः सदा ।
प्रजानां विगुणोऽप्येवं पूज्य एव नराधिपः ॥
राज्ञामाज्ञाभयाद्यस्मान्न च्यवेरन् पथः प्रजाः ।
व्यवहारादतो ज्ञेयं संवृत्तं राजशासनम् ॥
स्थित्यर्थं पृथिवीपालैश्चरित्रविषयाः कृताः ।
चरित्रेभ्योऽस्य तत्प्राहुर्गरीयो राजशासनम् ॥
तपःक्रीताः प्रजा राज्ञा प्रभुरासीत् ततो नृपः ।
तस्मात्तद्वचसि स्थेयं वार्ता चासां तदाश्रया ॥
देवकार्यकरणात् देवतामयो राजा, तस्य कर्तव्यानि
पञ्च रूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः ।
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य धनदस्य च + ॥

* 'अनादिश्चाप्यनन्तश्च' इत्यारभ्य 'तपःक्रीताः प्रजा राजा'
इत्यन्तानां श्लोकानां व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च दण्डमातृका-
प्रकरणे (पृ. ५८७) द्रष्टव्यः ।

+ 'पञ्च रूपाणि' इत्यारभ्य 'तस्य वृत्तिः प्रजारक्षा' इत्य-
न्तानां श्लोकानां व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च दण्डमातृकाप्रकरणे
(पृ. ५८८) द्रष्टव्यः ।

कारणान्निर्निमित्तं वा यदा क्रोधवशं गतः ।
प्रजा दहति भूपालस्तदाग्निरभिधीयते ॥
यदा तेजः समालम्ब्य विजगीषुरुदायुधः ।
अभियाति परान् राजा तदेन्द्रः समुदाहृतः ॥
विगतक्रोधसंतापो हृष्टरूपो यदा नृपः ।
प्रजानां दर्शनं याति सोम इत्युच्यते तदा ॥
धर्मासनगतः श्रीमान् दण्डं धत्ते यदा नृपः ।
समः सर्वेषु भूतेषु तदा वैवस्वतो यमः ॥
यदातिथिगुरुप्राज्ञान् भृत्यादीनवनीपतिः ।
अनुगृह्णाति दानेन तदा स धनदः स्मृतः ॥
तस्मात्तं नावजानीयान्नाक्रोशेच्च विशेषतः ।
आज्ञायां चास्य तिष्ठेत् मृत्युः स्यात्तद्व्यतिक्रमे ॥
तस्य वृत्तिः प्रजारक्षा वृद्धप्राज्ञोपसेवनम् ।
दर्शनं व्यवहाराणामात्मनश्चाभिरक्षणम् ॥

ब्राह्मणसेवा राजधर्मः

ब्राह्मणानुपसेवेत नित्यं राजा समाहितः ।
संयुक्तं ब्राह्मणैः क्षत्रं मूलं लोकाभिरक्षणे + ॥

ब्राह्मणस्य विशेषाधिकाराः

ब्राह्मणस्यापरीहारोऽजघन्यासनमग्रतः ।
प्रथमं दर्शनं प्रातः सर्वेषां चाभिवादनम् × ॥
अग्रं नवेभ्यः सस्येभ्यो मार्गदानं च गच्छतः ।
भैक्षहेतोः परागारे प्रवेशश्चानिवारितः ॥
समित्पुष्पोदकादानेष्वस्तेयं सपरिग्रहात् ।
अनाक्षेपः परेभ्यश्च संभाषश्च परस्त्रिया ॥
नदीष्ववेतनस्तारः पूर्वमुत्तारणं तथा ।
तरेष्वशुल्कदानं च न चेद् वाणिज्यमस्य तत् ॥
वर्तमानोऽध्वनि श्रान्तो गृह्णेत्रेकाशनः स्वयम् ।
ब्राह्मणो नापराधोति द्वाविक्षू पञ्च मूलिकान् ॥
नाभिश्स्तान्न पतितान्न द्विषो न च नास्तिकात् ।
न सोपधानान्निमित्तं न दातारं प्रपीड्य च ॥

+ व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च दण्डमातृकाप्रकरणे (पृ.
५८८) द्रष्टव्यः ।

× 'ब्राह्मणस्यापरीहारो' इत्यारभ्य 'वर्तमानोऽध्वनि'
इत्यन्तानां श्लोकानां व्याख्यानसंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दण्ड-
मातृकाप्रकरणे (पृ. ५९१) द्रष्टव्यः ।

(१) नासं. १९।३८; नास्मृ. २०।४० न च (नापि)
उत्तारार्थं (नोपसन्नान्निमित्तं दातारं न प्रपीड्य च).

ब्राह्मणेन ग्राह्यमित्युक्तं, तदपवादः । अभिशस्तात्र
ग्राह्यम् । न पतितात् । न द्विषः वैरिणः नास्तिकाच्च ।
भिन्नमर्यादो हि स भवति । सोपधाच्च, व्याजेन यो
जीवति, सः । अनिमित्तं च । यज्ञादिनिमित्तमुद्दिश्य यो
ददाति, तस्यापीडया ग्राह्यम् । न ददातीत्येव सर्वम् ।
नाभा. १९।३८(पृ. १७८)

आपदि ब्राह्मणवृत्तिः

आपत्स्वनन्तरा वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ।

वैश्यवृत्तिस्तत्रोक्ता न जघन्या कथञ्चन ॥

(१) इदानीं आपद्ब्राह्मणवृत्तिरुच्यते— आपत्स्विति ।
ब्राह्मणस्य आपत्सु स्वकीयवृत्त्या कुटुम्बावर्तनपीडासु
अनन्तरवृत्तिरिवरुद्धा । क्षत्रियवृत्तिरित्यर्थः । तथा
अवृष्ट्या कुटुम्बावर्तनपीडासु वृत्त्यसंभवे ततो वैश्यवृत्ति-
रुक्ता । न जघन्वा कथमपि शूद्रवृत्तिर्न तस्येति ।
अभा. ४५

(२) आपत्प्रदर्शनार्थमुच्यते । आपत्स्विति बहुवचन-
निर्देशान्नैकस्यामापदीति गम्यते । अजीवनावस्थाया-
मित्यर्थः । तथाऽन्यत्राप्युक्तम्— ‘अजीवन्तस्त्वधर्मेणा-
नन्तरां पापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेयुरिति । अनन्तरा
ब्राह्मणस्य क्षत्रियवृत्तिः, सा विधीयते । क्षत्रवृत्ती राज-
धर्मेष्वा । तत इति । तथाऽप्यजीवतो वैश्यवृत्तिरुक्ता ।
न जघन्या शूद्रवृत्तिः कस्याञ्चिदापदि । जघन्यशब्दो
ब्राह्मणवृत्त्यपेक्षया सर्वासां जघन्यत्वेऽपि सति द्वयोरनु-
ज्ञातत्वाद् वैश्यवृत्त्यनन्तरवचनाच्च शूद्रवृत्तिविषयः ।

नाभा. २।५२ (पृ. ३६)

न कथञ्चन कुर्वीत ब्राह्मणः कर्म वार्षलम् ।

वृषलः कर्म न ब्राह्मं पतनीये हि ते तयोः ॥

(१) वृषलशब्देन शूद्र उच्यते । तस्य कर्म सर्वा-
शित्वं सर्वविक्रयत्वं च । एतद्वार्षलं कर्म ब्राह्मणः
कथमपि आपद्गतोऽपि न कुर्यात् । तथा ब्राह्मणस्य
यत्कर्म तत् शूद्रः सन् यज्ञोपवीतवेदाध्ययनव्याहृतिहोमा-
दिकं न कथञ्चन कुर्वीत । पतनीये हि ते तयोः । इतरे-

(१) नासं. २।५२; नास्मृ. ४।५६; अभा. ४५.

(२) नासं. २।५३ ये हि ते (यौ हि तौ); नास्मृ.
४।५७; अभा. ४५.

तरविरुद्धकर्मणा । तयोर्ब्राह्मणवृषलयोः । पतनीये भवत
इत्यर्थः । अभा. ४५

(२) ब्राह्मणस्य वृषलवृत्तिनिषेधार्थं ‘न जघन्ये’ति
निषिद्धोऽर्थः पूर्वेणार्धेनानुद्यते । उत्कृष्टस्य निकृष्टकर्म-
प्रतिषेधात् निकृष्टस्योत्कृष्टकर्म गुणवत् स्यादिति
तन्निवृत्त्यर्थमाह न केनचिदपि प्रकारेण शौद्रं कर्म
ब्राह्मणः कुर्वीत शुश्रूपादि, शूद्रोऽपि तथैव ब्राह्मणकर्मा-
ध्यापनादि । यथा ब्राह्मणस्य शूद्रकर्म पतनीयं, तथा
शूद्रस्यापि ब्राह्मणकर्म । शूद्रस्य ब्राह्मणकर्मप्रतिषेधात्
क्षत्रियवैश्ययोरापदि अध्यापनाद्यस्तीति गम्यते । तथा च
श्रुतावप्युक्तं— ‘स ह श्वोभूते समित्पाणिः केशिनी
राजानमाजगामे’ति । नाभा. २।५३ (पृ. ३६)

उत्कृष्टं चापकृष्टं च तयोः कर्म न विद्यते ।

मध्यमे कर्मणी हित्वा सर्वसाधारणे हि ते ॥

(१) शूद्रस्य ब्राह्मं उत्कृष्टं, ब्राह्मणस्य शूद्रकर्माप-
कृष्टम् । तत एव तयोस्ते कर्मणी निषिद्धे । ये तु मध्यमे
द्वे कर्मणी क्षत्रवृत्तिवैश्यवृत्तिश्च एते ब्राह्मणस्यापि
क्वचिदापत्काले विहिते । शूद्रस्यापि क्वचिदधिकापत्काले
विहिते इति । अभा. ४५

(२) उत्कृष्टनिकृष्टे ब्राह्मणशूद्रयोः कर्मणी न विद्येते ।
नोभे उभयोर्निषिध्येते । ब्राह्मणस्यापकृष्टं शूद्रस्योत्कृष्टम् ।
कुत एतत् । द्वयोराल्मीययोर्विहितत्वात् । पूर्वोक्त एवा-
यमर्थः प्रयत्नेन वर्जनार्थः । मध्यमे कर्मणी हित्वा
वर्जयित्वा सर्वेषां त्रयाणां साधारणत्वात् तयोरापदि अना-
पदीति विशेषः । सर्वग्रहणाद् ब्राह्मणकर्मणः शूद्रस्य पत-
नीयवचनाच्च कृष्यादि पालनादि च शूद्रस्यापि कस्यां
चिदवस्थायां अनुजानाति । नाभा. २।५४ (पृ. ३६)

आपदं ब्राह्मणस्तीर्त्वा क्षत्रवृत्त्या भृते जने ।

उत्सृजेत् क्षत्रवृत्तिं तां कृत्वा पावनमात्मनः ॥

(१) यदा आपदा ब्राह्मणः क्षत्रियवृत्तिं कारितः,
तामापदं तीर्त्वा तां क्षत्रियवृत्तिमुत्सृजेत् । कृत्वा पावन-
मात्मनः । ब्राह्मणेषु प्रसह्य प्रायश्चित्तं भवतीत्यर्थः ।

अभा. ४५

(१) नासं. २।५४; नास्मृ. ४।५८; अभा. ४५.

(२) नासं. २।५५; नास्मृ. ४।५९ कृत्वा भृते जने
(वृत्त्यजितैर्धनैः); अभा. ४५ भृते (श्रिते).

(२) आपत्सु ब्राह्मणः क्षत्रवृत्तिमाश्रयेदित्युक्तं, तत् क्रियन्तं कालमिति न ज्ञायते इत्यतो विशिनष्टि । आपदं तीर्त्वाऽतिक्रम्य । क्षत्रवृत्त्या भृते जने, क्षत्रवृत्त्येतद् भृते जन इत्यनेनापि संबध्यते । आपदां तरणं देवपितृकर्माद्यनुष्ठानं कृत्वा कलत्रं च भृत्वा जीवयित्वाऽतिक्रान्तायामापद्युत्सृजेत् क्षत्रवृत्तिम् । यथा आरोग्यार्थमौषधपानं रोगनिवृत्तावुत्सृज्यते, तथोत्सृज्य । पावनं शुद्धिं प्रायश्चित्तं, पूयते येन तद् पावनम् । यदत्रोक्तं तत् कुर्यात् ।

नाभा. २।५५ (पृ. ३७)

तस्यामेव तु यो वृत्तौ ब्राह्मणो रमते सदा ।

काण्डपृष्ठश्च्युतो मार्गाद् अपाङ्क्तेयः प्रकीर्तितः ॥

(१) यः पुनस्तत्रैव रतिं व्रजति स ब्राह्मणः काण्डपृष्ठ इति । पतितः क्षत्रिकः पतिताका स्त्रीवत्(?) स्वर्गात् च्यवत्तेऽसौ, पितृश्राद्धकर्मादिषु अपाङ्क्तेयः प्रकीर्तितः ।

अभा. ४५

(२) यो नोत्सृजत्यतिक्रान्तायामापदि, तस्यामेव क्षत्रवृत्तौ रमते रसात् तल्लुखास्वादात्, काण्डपृष्ठ आयुधजीवित्वं आपन्नः क्षत्रियभूत इत्यर्थः । मार्गाद् ब्राह्मणधर्मात् च्युतः प्रतिसिद्धसेवनाद् अपाङ्क्तेयः । काण्डपृष्ठ इति स उक्तः । एतेन वैश्यवृत्तिरपि व्याख्याता— अस्यामप्येषा गतिः किं पुनर्वैश्यवृत्तिरिति ।

नाभा. २।५६ (पृ. ३७)

वैश्यवृत्ताविक्रयं ब्राह्मणस्य पयो दधि ।

घृतं मधु मधूच्छिष्टं लाक्षाक्षाररसासवाः ॥

मांसौदनतिलक्षौमसोमपुष्पफलोपलाः ।

मनुष्यविषशस्त्रान्बुलवणापूपवीरुधः ॥

चेलकौशेयचर्मास्थिकुतपैकशफा मृदः ।

उद्विक्लेशपिण्याकशाकाद्रौषधयस्तथा ॥

(१) अत्र प्रसिद्धानि प्रतीतानि । मधूच्छिष्टं तुच्छकं मदनं (तुच्छकमदनं) च तदुच्यते (?) । क्षारा गुडाद्याः । रसा घृततैलाद्याः । आसवः सुरा । औदनः कूरः । क्षौमं तसरः । सोमः यज्ञद्रव्यम् । उपलाः पाषाणाः । मनुष्यः पुरुषः । अम्बु पानीयम् । अपूपाः

(१) नासं. २।५६ ब्राह्म... सदा (रमते ब्राह्मणो रसात्) दपा (तसोऽपा) ; नास्मृ. ४।६० ; अभा. ४५.

(२) नासं. २।५७-९ चेल (नील) द्रौष (बौष) ; नास्मृ. ४।६१-३ वृत्ताविति (वृत्त्या चाविति) ; अभा. ४५.

पक्वान्नम् । वीरुधः गुल्मलतादयः । कौशेयं पट्टसूत्रम् । कुतपं ऊर्णासंभूतम् । एकशफाः एकसंतततखुरा अश्वसमाः । उद्विक्लेशः । केशाः चमराद्याः । पिण्याकः खलः । शाकानि आद्रौषधयः, एतद् ब्राह्मणस्याविक्रयम् । श्लोकत्रयोद्विष्टमिति । अभा. ४६

(२) वैश्येति । वैश्यवृत्त्या यदा जीवति, तदा अपवाद उच्यते । पयआदीन्यविक्रयाणि । एतस्मादेव गम्यते वैश्यस्य पयआदिविक्रये न दोष इति । मधूच्छिष्टं सिक्थम् । क्षारा गुडादयः । रसास्तैलादयः । आसवः सुरा ।

मांसौदनेति । क्षौमग्रहणात् कार्पासानामदोषः । सोमो यज्ञे न विक्रयः । उपला रत्नादयो दृषदन्ताः । वीरुधो लतावस्त्वयः । नील्या रक्तं नील वस्त्रादि । कोशसंभूतं कौशेयम् । छागरोमभिः क्रियते प्रस्तरणं कुतपः । एकशफा अश्वदयः । मृद्ग्रहणादन्येषां पार्थिवानां हरितालादीनामदोषः । केशाश्चामरादयः । शाकाद्या ओषधयः । ओषध्यः फलपाकान्ताः । नाभा. २।५७-९ (पृ. ३७-८)

ब्राह्मणस्य तु विक्रयं शुष्कं दारु तृणानि च ।

गन्धद्रव्यैरकावेत्रतूलमूलकुशादृते ॥

(१) ब्राह्मणस्य तु वैश्यवृत्तावपि वर्तमानस्य शुष्कदारुणि तृणानि च शुष्काणि विक्रयाणि । तत्र गन्धद्रव्यं उशीरवालकमुस्ताद्यम् । एरका पर्णिपुष्पग्रन्थीनि । वेत्रतूलमूलकुशाश्च प्रसिद्धाः । एतान् विना ऋते ।

अभा. ४६

(२) अविक्रयवचनादेव शेषाणां विक्रयत्वेऽवगतेऽपि विक्रयवचनं विक्रयप्रदर्शनार्थम् । एवं च किलाटकूर्चिकादीनां प्रतिषेधः सिद्धो भवति । ब्राह्मणस्य तु विक्रयमुच्यते— शुष्कदारु तृणानि च । अनेनोत्सर्गेण प्राप्तानां प्रतिषेध उच्यते— गन्धद्रव्याणि चन्दनागरकालेयकादीनि, एरका, तूलं शाल्मलीतूलादि, मूलं कन्दादि, तुषम् । एतेभ्यो विना । नाभा. २।६० (पृ. ३८)

स्वयं शीर्णं च विदलं फलानां बदिरेङ्गुदे ।

रज्जुः कार्पासिकं सूत्रं तच्चेदविकृतं भवेत् ॥

(१) नासं २।६० शुष्कं (शुष्क) कावेत्र (कालेय) कुशा (तुषा) ; नास्मृ. ४।६४ ; अभा. ४६.

(२) नासं. २।६१ शीर्णं च (विशीर्णं) बदिरे (बदरे) ; नास्मृ. ४।६५ ; अभा. ४६.

(१) अत्र स्वयं शीर्षं च यदन्यदपि फलं किञ्चित्प्रतिभवंति । तथा विदलं मुद्गमाषाढकीवल्याद्यम् । फलाद्यं फलानां मध्ये वदिराणि इङ्गुदानि च । रज्जुः वलिवसु-वादिक्कम् । तथा यच्च कार्पासोद्भवं सूत्रं तद्यदि अविकृतं रक्तं न भवेत् । एतानि ब्राह्मणस्य विक्रेयाणीति ।

अभा. ४६

(२) विक्रेयमित्यनुवर्तते । स्वयं विशीर्षं वंशादि, ओषधीग्रहणेन प्रतिषिद्धस्य पुनः प्रतिप्रसवः फलत्वात् प्रतिषिद्धयोर्वदरैङ्गुदयोरनुज्ञा । रज्जुः शुल्वादि । कार्पासिकं सूत्रम् । भेदेन वा कार्पासिकं वस्त्रादि । एवञ्च शौमप्रतिषेधोऽर्थवान् भवति । सूत्रमविशेषेण । तदुभयमविकृतं यदि भवति लाक्षाकुसुम्भादिरक्तं यदि न भवति ।

नाभा. २।६१ (पृ. ३८)

अशक्तौ भेषजस्यार्थं यज्ञहेतोस्तथैव च ।

यद्यवश्यं तु विक्रेयास्तिला धान्येन तत्समाः ॥

(१) अत्र तिला यथा अन्यद्धान्यं विक्रेयम् । तथा तेषु तिला धान्यसमा एव यज्ञार्थमभ्यनुज्ञाताः । अथवा अशक्तौ अपाटवे भेषजार्थं चेति ।

अभा. ४६

(२) अशक्तौ व्याधितः औषधार्थं यज्ञसिद्धयर्थं च विक्रीयमाणेषु तिलेषु असंभवे अवश्यं विक्रेयत्वे तिला धान्येन समा विक्रेयाः । प्रतिषिद्धानां विशिष्टे विषये प्रतिप्रसवः ।

नाभा. २।६२ (पृ. ३८)

अविक्रेयाणि विक्रीणन् ब्राह्मणः प्रच्युतः पथः ।

मार्गं पुनरवस्थाप्यो राज्ञा दण्डेन भूयसा ॥

(१) अत्र यानि अविक्रेयाणि निर्दिष्टानि तानि विक्रीणन् ब्राह्मणो मार्गच्युतो भवति । स च राज्ञा पुनरपि मार्गं संस्थापनीयः । महता दण्डेनेति । इति ऋणादाने आपद्ब्राह्मणवृत्तिः ।

अभा. ४६

(२) अविक्रेयाणि प्रतिषिद्धानि विक्रीणानो ब्राह्मणः प्रच्युतः स्वमार्गात् स्वधर्माद् राज्ञा पुनः स्वधर्मोऽवस्थापयितव्यः, भूयसा दण्डेन । भूयोग्रहणं न दण्डमात्रार्थं, यावता दण्डेन भीतो न भूयो विक्रीणीते तावतेति ।

नाभा. २।६३ (पृ. ३८)

(१) नासं. २।६२; नास्मृ. ४।६६; अभा. ४६,

(२) नासं. २।६३; नास्मृ. ४।६७; अभा. ४६.

ब्राह्मणस्य वृत्तिः राजप्रतिग्रहेण प्रशस्ता । राजधनप्रशंसा ।

अर्थानां भूरिभावाच्च देयत्वाच्च महात्मनाम् । श्रेयान् प्रतिग्रहो राज्ञामन्येभ्यो ब्राह्मणादृते ॥

राज्ञामर्थानां प्रभूतत्वादवश्यं देयत्वाच्च महात्मानः स्वार्थं द्रव्यमार्जयन्ति । तस्मात् पीडाभावाद् राज्ञः सकाशाच्छ्रेयान् प्रतिग्रहो ब्राह्मणस्यान्येभ्यः । ब्राह्मणास्तु ततोऽपि श्रेयान् ।

नाभा. १९।३९ (पृ. १७९)

ब्राह्मणश्चैव राजा च द्वावप्येतौ धृतव्रतौ ।

नैतयोरन्तरं किञ्चित् प्रजाधर्माभिरक्षणात् ॥

ब्राह्मणाच्च राजश्च प्रतिग्रहः प्रशस्यतर इत्युक्तः । तत्र कारणमुच्यते । द्वावप्येतौ धृतव्रतौ । नानयोर्विशेषोऽस्ति प्रजाभिरक्षणात्, एकः पालनेन इतरो धर्मोपदेशेन ।

नाभा. १९।४० (पृ. १७९)

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रक्षार्थं शासतोऽशुचीन् ।

मेध्यमेव धनं प्राहुस्तीक्ष्णस्यापि महीपतेः ॥

सदसदुपादानतो मेध्यमेव धनं प्राहुः । तीक्ष्णस्याप्त्र-य(?)त्वादशुद्धं राज्ञो धनम् । तस्मान्नातः प्रतिग्रहः श्रेयानित्याशङ्कानिवृत्त्यर्थमाह—धर्मज्ञस्येत्यादि । साधूनां रक्षणाार्थं अशुचीन् दण्डयतो यथोक्तकारिणोऽपि, किं पुनर्धर्मज्ञस्येति । धर्मज्ञस्य शुद्धमित्येवंपरमेतद्, न तीक्ष्णस्य शुद्धताप्रतिपादनार्थम् । तस्य प्रतिषिद्धत्वात्—‘यो राज्ञः प्रतियद्गीयाल्लुब्धस्योच्छ्रावर्तिनः । स पर्यायेण यातीमान् नरकानेकविंशतिम् ॥’ इति ।

नाभा. १९।४१ (पृ. १७९)

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छ्रावर्तिनः ।

स पर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥

शुचीनामशुचीनां च संनिपातो यथाम्भसाम् । समुद्रे समतां याति तद्ब्राह्मणं धनागमः ॥

(१) नासं. १९।३९; नास्मृ. २०।४१ अर्थानां भूरि (अर्थानां भूरी) प्रति (परि) ज्ञामन्येभ्यो (ज्ञां सर्वेषां).

(२) नासं. १९।४०; नास्मृ. २०।४२ धृत (दृढ) नैत (नान) धर्माभिरक्षणात् (धर्मेषु रक्षतोः).

(३) नासं. १९।४१; नास्मृ. २०।४४.

(४) नासं. १९।४१ क्वाति (क्षीयात्) [‘धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य’ इत्यस्व व्याख्यानावसरे समुद्धृतोऽयं श्लोकः]; नास्मृ. २०।४३.

(५) नासं. १९।४२ समुद्रे (स तत्र); नास्मृ. २०।४५ ज्ञां (ज्ञो).

अत्र दृष्टान्त उच्यते—शुचीनामिति । गतार्थः
श्लोकः । नाभा. १९।४२ (पृ. १७९)

यथा ह्यग्नौ स्थितं दीप्ते शुद्धिमायाति काञ्चनम् ।
एवं धनागमाः सर्वे शुद्धिमायान्ति राजसु ॥

द्वितीयो दृष्टान्तः—अग्नौ स्थितं दीप्ते अशुद्धमपि
काञ्चनं निर्मलं शुद्धं भवति यथा, एवमेवागमा असदु-
पादाना अपि राजसु स्थिता राजपरिगृहीताः शुद्धा
भवन्ति । नाभा. १९।४३ (पृ. १७९)

य एव कश्चित्स्वद्रव्यं ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
तद्राज्ञाप्यनुमन्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥
अन्यप्रकारादुचितात् भूमेः षड्भागसंज्ञितात् ।
बलिः स तस्य विहितः प्रजापालनवेतनम् ॥

राज्ञा अनुमन्तव्यमित्युक्तम् । तत्र कारात्, कारः
करः, उचितात् षड्भागाद् धनान्ना (द ?) नुमन्तव्यम् ।
विहितो बलिर्वृत्तिः स तस्य प्रजापालनवृत्तिः । तस्माद्
राज्ञा नानुमन्तव्यम् । नाभा. १९।४५ (पृ. १८०)

शक्यं तत्पुनरादातुं यन्न ब्राह्मणसात्कृतम् ।

ब्राह्मणाय तु यद् दत्तं न तस्याहरणं पुनः ॥

ब्राह्मणस्य कराननुमानने हेतुः— ब्राह्मणादादातुर्म-
शक्यं यथा अन्येषां दत्तं शक्यं न तथा तस्य, पुनरा-
दाने प्रत्यवायात् । षड्भागेन विना वृत्त्यभावात् ।
नाभा. १९।४६ (पृ. १८०)

दानमध्ययनं यज्ञः कर्मास्योक्तं त्रिलक्षणम् ।

याजनाध्यापने वृत्तिस्तृतीयस्तु प्रतिग्रहः ॥

त्रीण्यदृष्टार्थानि कर्तव्यानि । त्रीणीच्छातो जीवनानि ।

नाभा. १९।४७ (पृ. १८०)

(१) नासं. १९।४३ यथा ह्यग्नौ (यदा चाग्नौ) मायाति
(माप्नोति) एवं धना (एवमेवा) ; नास्मृ. २०।४६.

(२) नासं. १९।४४ य एव (यदा च) त्वद्र (त्वं द्र) ;
नास्मृ. २०।४७.

(३) नासं. १९।४५ प्रकारा (त्र कारा) वेतनम् (वेतनः) ;
नास्मृ. २०।४८ ; व्यनि. ५३२-३ कारा (करा) संज्ञि
(संस्थि).

(४) नासं. १९।४६ यन्न (यद) ; नास्मृ. २०।४९
दत्तं (हर्तुं) णाय (णेभ्यः) तस्या (तस्य).

(५) नासं. १९।४७ ; नास्मृ. २०।५० स्तु (श्व).

स्वकर्मणि द्विजस्तिष्ठन् वृत्तिमाहारयेत् कृताम् ।
नासद्भ्यः प्रतिगृह्णीयात् वर्णेभ्यो नियमे सति ॥

स्वधर्मे ब्राह्मणरित्यन्, न क्षत्रधर्मादौ, कृतां विप्रः
कामेनोक्तां वृत्तिं गृह्णीयात् । न वृत्तिसंकरं कुर्यात् ।
असद्भ्यो वर्णेभ्यो न प्रतिगृह्णीयात् । प्रशस्तेभ्य एव
गृह्णीयादित्यर्थः । नियमे सति अनापदीत्यर्थः ।

नाभा. १९।४८ (पृ. १८०)

अंशुचिर्वचनाद्यस्य शुचिर्भवति पूरुषः ।

शुचिश्चैवाशुचिः सद्यः कथं राजा न दैवतम् ॥

विदुर्य एव देवत्वं राज्ञो ह्यमिततेजसः ।

तस्य ते प्रतिगृह्णन्तो न लिप्यन्ते कथञ्चन ॥

अष्टौ मङ्गलानि

लोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ।

हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः ॥

एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्चयेच्च तान् ।

प्रदक्षिणं च कुर्वीत तथा ह्यायुर्न हीयते ॥

बृहस्पतिः

प्रकीर्णकपदस्य लक्षणं तज्ज्ञेदाश्च

एष वादिकृतः प्रोक्तो व्यवहारः समासतः ।

नृपाश्रयं प्रवक्ष्यामि व्यवहारं प्रकीर्णकम् ॥

(१) वादिकृतः अर्थिप्रत्यर्थिभ्यां राजानि मिथो

विसंवादमावेद्य कृतः । स च ऋणादानादिद्यूतान्त-

विषयो न द्यूतमात्रविषय इति । एषशब्दोऽत्र प्रागुक्त-

सप्तदशपदान्तर्गतशेषगणे वर्तते, न पुनरनन्तरोक्तद्यूत-

समाह्वयान्तर्गतविशेषेवावतिष्ठते । समासत इत्युभयत्र

(१) नासं. १९।४८ ; नास्मृ. २०।५१ पूर्वार्धे (स्वधर्मे
ब्राह्मणस्तिष्ठेद्वृत्तिमाहारयेन्नृपात्) प्रति (परि).

(२) नासं. १९।४९ ; नास्मृ. २०।५२ पूरुषः (मानवः)
सद्यः (सम्यक्).

(३) नासं. १९।५० य एव (यस्यैव) तस्य ते (तस्य हि)
कथञ्च (कदाच) ; नास्मृ. २०।५३.

(४) नासं. १९।५१ ; नास्मृ. २०।५४.

(५) नासं. १९।५२ ; नास्मृ. २०।५५ च तान् (त्वयम्)
तथा... ..ते (यथास्यायुः प्रवर्धते).

(६) व्यक. १६३ ; स्मृच. ३३१ ; विर. ६२१ ; द्दवि.
२५९ ; सवि. ४९६ ; व्यप्र. ५६८ ; समु. १६५.

संबध्यते । नृपाश्रयं दुष्टचेष्टोपेताश्रयान्तरसापेक्षनृपाश्रयम् ।
एकाश्रयव्यवहाराभावात् प्रकीर्णकं प्रकीर्णकव्यपदेश-
योगिनं, तद्योगश्च विप्रकीर्णानां नृपाश्रयाणामेकत्र संनि-
वेशात् । स्मृच. ३३१

(२) यद्यपि मनुष्यमारणादिव्यवहारा अपि नृपा-
श्रिता एव तथापि तेषु वादिप्रतिवादिभ्यां स्वस्वपक्षेषु
दर्शितेषु विचार्य तयोरेकतरस्यापराधिनो राजानुशासनम् ।
प्रकीर्णके तु शिरोवादिनं विनाऽपि चरादिमुखाद्वर्णा-
श्रमिणां दोषं श्रुत्वा विचार्य तेषां यथाविहितं दण्डं
विधाय धर्म्यं पथि स्थापनमित्येवास्य तेभ्यो भेदः ।

दवि. २५९.६०

(३) पूर्वेषु सप्तदशसु प्रकरणेषु व्यवहारस्य चतु-
र्व्यापित्वं प्रतिपादितम् । चतुर्व्यापित्वं नाम अर्थिप्रत्यर्थि-
सम्यराजरूपान् अवयवान् चतुरो व्याप्नोतीति । अत्र
प्रकीर्णकाख्ये राजैकनियतत्वमिति संगतिः । एष इति
सप्तदशविवादपदात्मकः । सवि. ४९६

षड्भागकरशुल्कं च गर्ते देयं तथैव च ।

संग्रामचौरभेदी च परदाराभिर्मर्शकः ॥

गोत्राह्वणजिघांसा च शश्याव्याघातकृत्तथा ।

एतान् दशपराधांस्तु नृपतिः स्वयमन्विषेत् ॥

निष्कृतीनामकरणमाज्ञासेधव्यतिक्रमः ।

वर्णाश्रमविलोपश्च वर्णसंकरलोपनम् ॥

निधिनिष्कुलवित्तं च दरिद्रस्य धनागमः ।

एतांश्चरैः सुविदितान् स्वयं राजा निवारयेत् ॥

अनाम्नातानि कार्याणि क्रियावादांश्च वादिनाम् ।

प्रकृतीनां प्रकोपश्च संकेतश्च परस्परम् ॥

(१) व्यक. १६४; विर. ६२२ (=) षड्भाग (सङ्गाग)
मर्शकः (मर्दनम्); दवि. २६३ गकर (गस्तर) चतुर्थ-
पादं विना.

(२) व्यक. १६४; विर. ६२३ (=); दवि. २६३
व्याघात (घातन) चतुर्थः पादः.

(३) व्यक. १६४ विलोपश्च (विरोधश्च); विर. ६२३
(=); दवि. २६३ श्रमविलो (श्रमणां लो).

(४) व्यक. १६४; विर. ६२३ निष्कुल (निष्कल)
(=); दवि. २६३ पू.

(५) व्यक. १६४; विर. ६२३ (=); दवि. २६३
वादांश्च (वादाश्च).

अशास्त्रविहितं यच्च प्रजायां संप्रवर्तते ।

उपायैः सामभेदाद्यैरेतानि शमयेन्तृपः ॥

अत्र षड्भागपदं प्रनष्टाधिगतसुवर्णादिपरं, तत्र राज्ञः
षड्भागग्रहणसंबन्धात् वैश्वदेवमन्त्रमितिवत् । आज्ञासेध-
व्यतिक्रमः राजाज्ञया वादिनोर्यस्य आसेधोऽवरोधस्तस्य
नाभ्यामतिक्रमणं तच्च व्यवहारवर्गे स्फुटम् । निधिर्द्विविधो
वक्ष्यमाणलक्षणः । निष्कुलवित्तमुच्छन्नबन्धोर्भृतस्य धनं
संबन्धिनो ग्राहकस्य दण्डहेतुरित्यर्थः । दरिद्रस्य धनागम
आकस्मिकः, अन्यमुपायं विना निध्यादिलाभनिश्चयात्
दण्डहेतुः । दवि. २६३

देशादिधर्मपालनम्

* देशजातिकुलानां च ये धर्माः प्राक्प्रवर्तिताः ।

तथैव ते पालनीयाः प्रजा प्रक्षुभ्यतेऽन्यथा ॥

जनापरक्तिर्भवति बलं कोशश्च नश्यति ॥

उदुह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः ।

मध्यदेशे कर्मकराः शिल्पिनश्च गवाशिनः ॥

मत्स्यादाश्च नराः पूर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः ।

उत्तरे मद्यपा नार्यः स्पृश्या नृणां रजस्वलाः ॥

खशजाताः प्रगृह्णन्ति भ्रातृभार्यामभर्तृकाम् ।

अनेन कर्मणा नैते प्रायश्चित्तदमार्हकाः ॥

कात्यायनः

प्रकीर्णकपदस्य लक्षणं तद्भेदाश्च

पूर्वोक्तादुक्तशेषं स्यादधिकारच्युतं च यत् ।

आहृत्य परतन्त्रार्थनिबद्धमसमञ्जसम् ॥

दृष्टान्तत्वेन शास्त्रान्ते पुनरुक्तक्रियास्थितम् ।

अनेन विधिना यच्च वाक्यं तत्स्यात्प्रकीर्णकम् ॥

राजधर्मान् स्वधर्माश्च संदिग्धानां च भाषणम् ।

पूर्वोक्तादुक्तशेषं च सर्वं तत्स्यात्प्रकीर्णकम् ॥

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दर्शनविधौ (पृ. १०१)
द्रष्टव्यः । स्मृतिचन्द्रिकायां आचाराध्याये देशधर्मप्रकरणे (पृ.
१०) एते श्लोकाः समुपलभ्यन्ते ।

(१) व्यक. १६४; विर. ६२३ (=); दवि. २६३
प्रवर्तते (प्रकीर्त्यते).

(२) व्यक. १६३ न्वार्थ (न्वाच्च); विर. ६२२.

(३) व्यक. १६३; विर. ६२२.

(४) व्यक. १६४ च भाषणम् (विशेषणम्) उत्तरार्धे

नृपाश्रितो व्यवहारः—राजोपजीविनां राजक्रीडासक्तानां

राज्ञ अप्रियवक्तुश्च दण्डः

राजक्रीडासु ये सक्ता राजवृत्त्युपजीविनः ।
अप्रियस्य च यो वक्ता वधं तेषां प्रकल्पयेत् * ॥

देशादिधर्मपालनम्

X यद्यदाचर्यते येन धर्म्यं वाऽधर्म्यमेव वा ।
देशस्याचरणान्नित्यं चरित्रं तद्धि कीर्तितम् ॥
न्यायशास्त्राविरोधेन देशदृष्टेस्तथैव च ।
यं धर्मं स्थापयेद्राजा न्याय्यं तद्राजशासनम् ॥
धर्मं च व्यवहारं च चरित्रं चापि (?) लोपयेत् ।
स्थित्यैतत् स्थापयेद्राजा धर्म्यं तद्राजशासनम् ॥
प्रतिलोमप्रसूतेषु तथा दुर्गनिवासिषु ।
विरुद्धं नियतं प्राहुस्तं धर्मं न विचालयेत् ॥
तस्माच्छास्त्रानुसारेण राजा कार्याणि साधयेत् ।
वाक्याभावे तु सर्वेषां देशदृष्टमतं नयेत् ॥
यस्य देशस्य यो धर्मः प्रवृत्तः सार्वकालिकः ।
श्रुतिस्मृत्यविरोधेन देशदृष्टः स उच्यते ॥
गोत्रस्थितिस्तु या येषां क्रमादायाति धर्मतः ।
कुलधर्मं तु तं प्राहुः पालयेत्तं तथैव च ॥
लिङ्गिनः श्रेणिपूगाश्च वणिग्नातास्तथापरे ।
स्वधर्मैर्णैव कार्याणां कुर्युस्ते निश्चयं सदा ॥
देशपत्तनगोष्ठेषु पुरग्रामेषु वादिनाम् ।
तेषां स्वसमयैर्धर्मः शास्त्रतोऽन्येषु तैः सह ॥

(प्रायुक्ता ... शेषं ... वक्ष्याम्येतत्प्रकीर्णकम्); विर. ६२२;
अनि. ५२३ धर्मान् स्वधर्माश्च (धर्माश्च दण्डांश्च) च भाषणम्
(विशेषतः) उत्तरार्धे (प्रायुक्तार्थस्य शेषं च वक्ष्याम्येतत्प्रकीर्णके);
द्वि. २६३ स्वध (त्वध) पू.; सेतु. २९१ च सर्वं ...
धर्मकम् (यत् तत्प्रकीर्णकमुच्यते) उक्त.; समु. १६५ धर्मान्
स्वधर्माश्च (धर्माश्च दण्डांश्च) च भाषणम् (विशेषणम्) उत्तरार्धं
व्यनिवत्, बृहस्पतिः.

* व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च साहसप्रकरणे (पृ. १६४९)
द्रष्टव्यः ।

X व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च दर्शनविधौ (पृ. १०३-४)
द्रष्टव्यः ।

पितामहः

देशधर्मपालनम्

देशपत्तनगोष्ठेषु पुरग्रामेषु वासिनाम् ।
तेषां स्वसमयैर्धर्मशास्त्रतोऽन्येषु तैः सह + ॥

व्यासः

नृपाश्रितो व्यवहारः—उक्तोचजीविराजपुराणां दण्डः
न्यायस्थाने येऽधिकृता गृहीत्वार्थं विनिर्णयम् ।
कुर्वन्त्युक्तोचकास्ते तु राजद्रव्यविनाशकाः * ॥
उक्तोचजीविनो द्रव्यहीनान् कृत्वा विवासयेत् ॥

देवलः

नृपाश्रितो व्यवहारः— प्रायश्चित्तनिर्देशो राज्ञा कार्यः
कृच्छ्राणां दापको राजा निर्देष्टा धर्मपालकः ॥

देशादिधर्मपालनम्

३ येषु देशेषु ये देवा येषु देशेषु ये द्विजाः ।
येषु देशेषु यत्तोर्यं या च यत्रैव मृत्तिका ॥
येषु स्थानेषु यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः ।
तत्र तत्रावमन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः ॥
यस्मिन् देशे पुरे ग्रामे त्रैविचे नगरेऽपि वा ।
यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचारयेत् ॥

उशना

नृपाश्रितो व्यवहारः— राजा करः कल्पनीयः

४ देशकाललाभानुरूपतः करान् प्रकल्पयेत् ।
५ शिल्पिनो मासि मासि कर्मैकं प्रोक्तं, तद्भावे
कार्षापणं वा दद्यात् ।

राजप्रशंसा

प्रेकृतीनां बलं राजा ।

+ स्थलादिनिर्देशः दर्शनविधौ (पृ. १०५) द्रष्टव्यः ।
* व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च स्तेयप्रकरणे (पृ. १७६४)
द्रष्टव्यः ।

(१) स्मृच. ३३२; पमा. ५८०; समु. १६५. [वस्तु-
तस्तु नेदं व्यासवचनं याज्ञवल्क्ये अस्यार्थस्य समुपलभ्यमानत्वात्
(यास्मृ. १।३३९) ।]

(२) सवि. ४९८. (३) स्मृच. १०.

(४) मभा. १०।२७. (५) मभा. १०।३१.

(६) मेधा. ८।४९.

यमः

नृपाश्रितो व्यवहारः — पौराणिकधर्मप्रवर्तनम्
यैत्किञ्चित्कुरुते राजा शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
भृत्यास्तदनुकुर्वन्ति नर्तक्यो नर्तनं यथा ॥
तस्मात्पौराणिकान् धर्मान् निपुणैर्मन्त्रिभिः सह ।
प्रशिष्यान् नृपतिः सम्यक् ब्रह्मक्षत्रविवृद्धये ॥

प्रकीर्णकप्रकरणोपसंहारः

स्तेनाः सुरापा ब्रह्मघ्ना गुरुदाराभिगामिनः ।
न सन्ति यस्य राष्ट्रेषु स राजा शक्रलोकभाक् ॥
पतितधनव्यवस्था
पतितस्य धनं हृत्वा राजा पर्यादि दापयेत् ।
सर्वस्वं तु हरेद्राजा चतुर्थं वाऽवशेषयेत् ॥
भृत्येभ्योऽन्नं स्मरन् धर्मं प्राजापत्यमिति श्रुतिः ॥

संवर्तः

नृपाश्रितो व्यवहारः — अमात्यपैशुन्ये पुरमानप्रभेदेने च दण्डः
अमात्यानां च पैशुन्ये पुरमानप्रभेदेने ।
मध्यमं चोत्तमं चैव दण्ड एष क्रमोदितः ॥
यथाक्रमं प्रकृतीनां पैशुन्ये मध्यमसाहसं पुरप्रमाण-
मर्मकथने उत्तमसाहसं दण्ड्यः । चकाराच्छारीरो दण्डो
यथाहं इति । अत्र पैशुन्यशब्दः भावे ष्यञन्तः । पिशु-
नस्य भावः पैशुन्यम् । सवि. ४९७

बृद्धहारीतः

नृपाश्रितो व्यवहारः — राजा करः कल्पनीयः
न्यायेन पालयेद्राजा धर्मात् षड्भागमाहरेत् ।
त्रिभागमाहरेद्धान्यात् धनात् षड्भागमेव च ॥

अनिर्दिष्टकर्तृकवचनानि

देशधर्मपालनम्

विरुद्धास्तु प्रदृश्यन्ते दाक्षिणात्येषु संप्रति ।
स्वमातुलसुतोद्वाहो मातृबन्धुत्वदूषितः ॥

- (१) व्यक्र. १६४ नृपतिः (भूपतिः); विर. ६२५.
(२) विर. ६३७; सेतु. ३२९ मतुः.
(३) विर. ६३८ द्वितीयाधं विन्म; व्यनि. ५३२ भ्योऽन्नं
(भ्योऽनु); दवि. ५० अथमार्धः; समु. ७० व्यनिवत्.
(४) सवि. ४९७.
(५) बृहत्सं. ७।२।२.
(६) समु. १०-११.

व्य. कं. २४४

अभर्तुकभ्रातृभार्याग्रहणं चातिदूषितम् ।
कुले कन्याप्रदानं च देशेष्वन्येषु दृश्यते ॥
तथा मातृविवाहोऽपि पारसीकेषु दृश्यते ॥
तथैकादशरात्रादौ श्राद्धे मुक्तं तु यैर्द्विजैः ।
तेभ्यः श्राद्धं पुनर्दानं केचिन्नेच्छन्ति देशिनः ॥
दत्त्वा धान्यं वशं त्वन्ये शरदि द्विगुणं पुनः ।
गृह्णन्ति बद्धक्षेत्रं च प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥
भुज्यतेऽन्यैरप्रविष्टे मूले तच्च विरुध्यते ।
इत्थं विरुद्धानाचारान् प्रभूतान्विनितवर्तयेत् ॥
देशजात्यादिधर्मस्य प्रामाण्यमविरोधिनः ।
शास्त्रेणातो नृपः सर्वं शास्त्रं दृष्ट्वा प्रवर्तयेत् ॥

अग्निपुराणम्

संकीर्णदण्डः

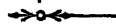
शूद्रादीन् घातयेद्राजा पापान् विप्रान् प्रवासयेत् ।
महापातकिनां वित्तं वरुणायोपपादयेत् ॥
आह्वानकारी वध्यः स्यादनाहूतमथाऽऽह्वयन् ।
दाण्डिकस्य च यो हस्तादभियुक्तः पलायते ॥
हीनः पुरुषकारेण तं दण्ड्याहाण्डिको धनम् ॥

देवीपुराणम्

नृपाश्रितो व्यवहारः — चतुर्वर्णाश्रमधर्मरक्षणार्थं
चारनियोजनम्

वेश्यादिभवने यस्य राष्ट्रे भुञ्जीत संयमी ।
ब्रह्मचारी व्रती यत्र वेश्यादिवृषलीकृतम् ॥
अन्नं भुञ्जीत वै तत्र जायते लोकसंक्षयः ॥
मैद्याद्यैर्गर्हितैर्यत्र संकरश्चैव योगिनाम् ।
नृपराष्ट्रभयं तत्र कारणस्यान्यथागमः ॥
काषायवस्त्रभूयिष्ठो यतिवेशो यतिव्रतम् ।
सङ्गं वेश्यादिभिः कुर्यात्तदा लोकभयं भवेत् ॥
तस्माद्राजा समाचारं धर्माधर्मे व्यवस्थितः ।
सिद्धान्तवेदशास्त्राणां पालनाय नियोजयेत् ॥

- (१) अणु. २२७।५१. (२) अणु. २२७।६६,६७.
(३) विर. ६२४; दवि. २७०.
(४) विर. ६२४; दवि. २७१ वरश्चैव (करः शिव)
अस्थान्य (धं चान्य).
(५) विर. ६२४; दवि. २७० पूर्वार्धे (काषायेण तु
भूमिष्ठो सती वा त्यजति व्रतम्).
(६) विर. ६२४.



नौयायिव्यवहारः । विशेषतस्तत्र तरशुल्कविचारः ।

वसिष्ठः

संयाने दशवाहावाहिनी द्विगुणकरणा स्याद्-
दशपुरुषवती प्रत्येकं प्रपाः स्युः पुंसां चावरार्धं वाहं
वहेत्, अध्यर्धाः स्त्रियः स्युस्तरोऽष्टौ माषाः शर-
मध्याया अशरमध्यायाः पादः कार्षापणस्य निरुद-
कस्तरो माष्यः ।

संयानेनेति व्युत्पत्त्या संयानशब्दो नदीपरः तत्र
वाहिनी नौः, वाहयन्तीति वाहाः, ते दश यस्यां
सा दशवाहा, सा चासौ वाहिनी चेति दशवाहा-
वाहिनी । द्विगुणकरणा द्विगुणानि अरित्रादीनि
यस्याः सा नौस्तथा एकविधा नौः कार्या । तथा
दशपुरुषवती वाहकादन्ये दश पुरुषाः, तेषां प्रयोजनमाह
त एव प्रपाः स्युः त एव दश वाहानां प्रपाः प्रकर्षेण परि-
पालकाः स्युः । अस्यां नावि यावान् भार आरोप्यस्तमाह
पुंसामित्यादिना, सा नौर्यावन्तं भारं वहति तदपेक्षयावरार्धं
अवरं न्यूनमर्धं यस्मिन् वाहे स वाहो भारः । तेन
यावतः पुरुषानसौ परमविधुरा वहति तावन्न तु सम-
धिकमारोप्यमित्यर्थः । अध्यर्धाः स्त्रियः पुरुषापेक्षया
तासामतिभीरुत्वात्, तरः शुल्कः माषः पुराणस्य विंशति-
तमो भागः । शरमध्यायाः यस्यां नद्यां घनुष्पता क्षिप्त-
शरो मध्ये पतति तस्याः, अशरमध्याया यां शरो लङ्घ-
यति तस्याः, पादः कार्षापणस्य चतुर्भागाः । निरुदकोऽ-
स्पोदकः, माष्यः माषपरिमाणः । विर. ६३९

(१) वस्मृ. १९।११-५ (क) संयाने दशवाहावाहिनी
द्विगुणकारिणी स्यात् । प्रत्येकं प्रयास्यः पुमान् (?) । पुंसां
शतावरार्धं चाऽऽह्वयेदन्वर्थाः स्त्रियः स्युः । कराष्ठीलमाषः
शरमध्यायः पादः कार्षापणाः स्युः निरुदकस्तरो माष्यः ।),
(ख) (संयानयेदवाहावाहिनीयद्विगुणकारिणी स्यात् प्रत्येकं
प्रयास्यः पुमान्, शतं वा रार्धं तदेतदप्यर्थाः स्त्रियः कराष्ठी
मानधारमध्यमाः पादः कार्षापणस्य निरुदकोऽन्तरो माना ।);
विर. ६३८-९.

अकरः श्रोत्रियो राजा पुमाननाथः प्रव्रजितो
बालवृद्धतरुणप्रजाताः प्रागमिकः कुमार्यो मृत-
पत्यश्च । बाहुभ्यां तरन् शतगुणं दाप्यः ।

राजा पुमाननाथश्च स्वजनरहितो रोगातो वा तरुण-
प्रजाता अचिरप्रसूताः प्रागमिको लेखहारकादिः मृतपत्यो
विधवाः । विर. ६४१

नदीकक्ष्वनदाहशैलोपभोगा निष्कराः स्युस्त-
दुपजीविनो वा दद्युः ।

विष्णुः

तारिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन् दश पणान्
दण्ड्यः । ब्रह्मचारिवानप्रस्थभिक्षुगुर्विणीतीर्थानु-
सारिणां नाविकः शौल्किकः शुल्कमाददानश्च ।
तच्च तेषां दद्यात् ।

तरिकस्तररुपशुल्कनियुक्तः, आददानश्च दाप्य इत्य-
नुषङ्गः, तच्च तरशुल्कं तेषां ब्रह्मचार्यादीनां जह्यात्
त्यजेत् । विर. ६४१

(१) वस्मृ. १९।१५-६ (क) राजा पुमाननाथः प्रव्र-
जितो (राजपुमाननाथप्रव्रजित) गमिकः (गामिकाः) पत्यश्च
(पत्यश्च) तरन् (उत्तरन्) दाप्यः (दद्यात्), (ख) राजा
पुमाननाथः प्रव्रजितो (राजपुमाननाथ प्रव्रजित) जाताः प्राग
(दाता प्रागा) मृतपत्यश्च (मृतापत्यश्च) तरन् (उत्तरन्)
दाप्यः (दद्यात्); उ. २।२६।१७ प्रजाताः (प्रशान्ताः)
(प्रागमि दाप्यः ०); विर. ६४०-४१; दवि. १११,
२७६ (अकरः पत्यश्च ०) बाहुभ्यां दाप्यः (बाहु-
भ्यामुत्तरन् पणशतं दण्ड्यः) : २७५ वृद्ध (वृद्धा) (बाहुभ्य
..... दाप्यः ०).

(२) वस्मृ. १९।१७ (ख) दाह...भोगा (शैलोपमाहा).

(३) वस्मृ. ५।१३१-३; विर. ६४१ तारिकः स्थलजं
(तरिकश्च स्थल) दण्ड्यः (दाप्यः) (नाविकः शौल्किकः ०)
दद्यात् (जह्यात्); दवि. २७५ तारिकः स्थलजं (तरिकः स्थल)
दण्ड्यः (दाप्यः) (शौल्किकः ०) दद्यात् (जह्यात्).

मनुः

पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे ।

पादं पशुश्च योपिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥

(१) नदीतीरे यानं गन्त्रीशकटादि तरे पणं दाप्यम् ।

भाण्डपूर्णानामुत्तरत्रोपदेशाद्विक्तभाण्डानां यानानां यान-
द्रव्यानयनार्थमुत्तार्यमाणानामयं राजभागः । पौरुषवाह्यो
भारो द्रव्यानयनार्थमानीयमानोऽर्धपणं दाप्यः । पशुगौ-
महिष्यादिः पादं स्त्री च, रिक्तको न किञ्चिद्यो गृहीतवान्
भारं स पुमान् पादार्धं दाप्यः । रिक्तस्य पुंसो नदी-
लङ्घनसामर्थ्यसंभावनया लाघवादल्पमादानम् । स्त्री,
अशक्तत्वात्स्वयं तरेणे, बहु दाप्यते, तरे तरनिमित्तम् ।

मेधा.

(२) भाण्डपूर्णानि यानानीति वक्ष्यति । अतो रिक्तं
गन्त्यादि तरमूल्यं पणं राज्ञा दाप्यम् । एवं पुरुषवाह्यो
भारोऽर्धपणं दाप्यः । गवादिश्च पशुः स्त्री च पणचतु-
र्भागां दापनीयः । भाररहितो मनुष्यः पणाष्टभागं दाप-
नीयः ।

* गोरा.

(३) पशुः छागो मेष इत्यादिः । मवि.

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः ।

रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुमांसञ्चापरिच्छदाः ॥

(१) भाण्डं द्रव्यं वस्त्रब्रीह्यादि तेन पूर्णानि यानानि
सारतस्तार्यं तारार्थं दाप्यानि । यदि महार्थं वस्त्रादि
तत्र बह्वारोपितं तदा बहु दाप्यानि, अथ ब्रीह्यादिना
नातिशैरेण तदाऽलम् । एवं नद्याः सुतरदुस्तरत्वेन
कल्पना कर्तव्या । रिक्तभाण्डानि यानानि यत्किञ्चित्पण-
पादानि । भाण्डशब्दोऽत्र धनवचनः । ये च परिच्छदा-
कोशतो (?)ऽपरिच्छदास्ते न पादार्धमपि तु यत्किञ्चि-

* मसु., मच., नन्द., भाच. गोरावत् ।

(१) मसु. ८१४०४ [पुमान् (नरः) Noted by
Jha]; अप. २१२६३ तरे दाप्यं (तरे [रं] दाप्यः) पौ
(पु) तरे (तरम्) रिक्तकः (द्विकरः); विर. ६४० पूर्वार्धे
(पणं याने तरं दद्यात्पौरुषेऽर्धपणं तरम्) रिक्तकः (रिक्तकः);
वीमि. २१२६३ दाप्यं पौरुषो (दाप्यः पौरुषे); विता. ५८६ पौ (पु); ससु. ९१ पौ (पु).

(२) मसु. ८१४०५; मित्ता. २१२६३; अप. २१२६३;
विर. ६४०; वीमि. २१२६३; विता. ५८६; ससु. ९१-
१ तरेण पादं दा. २ तरेण. ३ चरेण तदा. . .

क्तोऽधिकं न्यूनं वा, अत्र न शक्यो नियमोऽतः कल्प-
नैव शास्त्रार्थः । मेधा.

(२) द्रव्यपूर्णानि गन्त्यादीनि द्रव्यगतोत्कर्षापरक-
गुरुलघुभावापेक्षया तरमूल्यं दाप्यानि । पुमांसश्च परि-
च्छदाहार्ण वणिक्प्रभृतयोऽपि अपरिच्छदा आयाता यत्कि-
ञ्चिद्दापनीयाः । अन्यस्य पुंसः 'पादार्धं रिक्तकः पुमान्'
इत्युक्तं, अत्र नियमस्य कर्तुमशक्यत्वात् । एतावदेवो-
पदेशार्थं, एवं द्रव्यरहितानि मञ्जूषादिनि भाण्डानि
यत्किञ्चित् स्वयं दाप्यानि । गोरा.

(३) भाण्डपूर्णानि पण्यद्रव्यपूर्णानि । रिक्तभाण्डानि
चर्मभाण्डादीनि । अपरिच्छदाः परिकरशून्याः । अत्र
यानादीनां दापनं तन्नेतृपुरुषदापनपरम् । मवि.

(४) पण्यद्रव्यपूर्णानि शकटादीनि द्रव्यगतोत्कर्षा-
पेक्षया तरं दाप्यानि । द्रव्यरहितानि च गोणीकम्बला-
दीनि, यत्किञ्चित्स्वल्पं तार्यं दाप्यम् । अपरिच्छदा दरिद्राः
उक्तपदार्थदानापेक्षया यत्किञ्चिद्दापनीयाः । *मसु.

(५) सारतः तार्यं भाण्डसारूप्येण तार्यं तरः,
भाण्डानि भाररहितानि यानानि यत्किञ्चिद्द्रव्यं तत्काल-
संनिहितं तार्यं दाप्यानि, परिहितयत्किञ्चित्ताम्बूलदिकं
तार्यं दाप्याः । नन्द.

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् ।

नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥

(१) पारावारोत्तारणे पूर्वं दानम् । अयं नावा ग्रामा-
न्तरगमने । दीर्घाध्वनि योजनादिपरिमाणेन गन्तव्ये ।
यथादेशं यस्मिन् देशे यत्तदिदानं नाविकैः स्थापितं
तदेव । यथाकालं कालो वर्षादि बहूदकस्तत्रान्यन्मूल्यम् ।
स्वल्पोदकायां सरिति चिरेण ग्रामप्राप्तौ नाविकानामधि-
कतरायासवतामधिकमूल्यं, तरमूल्ये कारणे कार्यशब्द-
स्तरो भवेदिति । यावद्यावद्दीर्घो देशस्तावत्तरपणो वर्धते ।
एतच्च नदीतीरेषु विद्यात् । समुद्रे सागरे नास्ति तरलक्ष-
णम् । न शक्यते लक्षयितुं कति योजनानि नौर्व्यूढा येन
तदनुसारेण मूल्यं कल्प्यते । नदनदीषु शक्यते ज्ञातुमयं
पन्था योजनमात्रो द्वियोजन इति । तत्र हि तत्र ग्रामाः

* विर., मच., भाच. मसुवत् ।

(१) मसु. ८१४०६; विर. ६४०; बाळ. २१२६३;
ससु. ९१.

पूर्वदृष्टप्रमाणान् वृद्धान्निधिपालने नियुञ्ज्यात्' इति ।

* मभा.

उर्ध्वमधिगन्तुश्चतुर्थं राज्ञः शेषः ।

संवत्सरात्परतो येनाख्यातं तस्मै चतुर्थं, राज्ञः शेषम् ।
आख्यातुश्चतुर्थं दत्त्वा शेषं स्वयं गृह्णीयात् उत नियु-
क्ताय देयमिति संदेहः स्यादिति तन्निराकरणार्थं शेषं
राज्ञ इत्युक्तम् । + मभा.

निधिव्यवस्था

निध्यधिगमो राजधनम् ÷ ।

(१) अथ प्रनष्टाधिगताधिगन्तुश्चतुर्थमित्यस्यापवाद-
माह—निध्यधिगम इति । निधिश्रेदधिगतस्तद्राजधन-
मेव भवति । अधिगन्त्रे अनुग्रहानुरूपं किञ्चिद्देयमिति ।
गौमि.

(२) प्रनष्टाधिगताधिगन्तुश्चतुर्थमुक्तं तद्विशिनष्टि-
निध्यधिगम इति । निधेः पूर्वनिहितस्याधिगमो लाभः
स राज्ञ एव, न ततोऽधिगन्तुश्चतुर्थः एवञ्च निधे-
रन्यद्द्रव्यं यत्तस्मादेव चतुर्थांश इति द्रष्टव्यम् । ननु च
निधेर्यदन्यद्द्रव्यं राज्ञः कथं तत्प्राप्तिः, अधिगमस्य
साधारणत्वेनोक्तत्वात् येन पूर्वमधिगम्यते तेनैव तस्य
गृह्यमाणत्वादिति अत्रोच्यते— यस्मिन्ननुभूतचिह्नानि
दृश्यन्ते तद्राज्ञे कथयेत् इतरत् स्वयं गृह्णीयादिति एवं
चातुर्भूतचिह्नानि मुषित्वा गृह्यतो दोषः, यथाह लोकाक्षिः
— अनुभूतचिह्नानि मुषित्वा गृह्यतः पूर्वसाहसं दण्डः

* शेषं गौमिवत् ।

+ गौमि. मभावत् ।

÷ विश्व. व्याख्यानं ' इतरेण निधौ ' इति याज्ञवल्क्यवचने
द्रष्टव्यम् । मेधा. व्याख्यानं ' ममायमि ' ति मनुवचने द्रष्टव्यम् ।

(१) गौध. १०१३७; मिता. २१३३ श्रुतुर्थं (श्रुतुर्थोऽशौ)
शेषः (शेषम्); व्यक. ११८ शेषः (शेषम्); मभा. ;
गौमि. १०१३७; स्मृच. १३३ श्रुतुर्थं (श्रुतुर्थो); विर.
३४७ व्यकवत्; द्वि. २७४ मितावत्; विता. ५६४ मितावत्;
सेतु. २५२ व्यकवत्; प्रका. ८४ स्मृचवत्; समु. ७२.

(२) गौध. १०१४२; विश्व. २१३७; मेधा. ८१३५;
मिता. २१३५ धनम् + (भवति); अप. २१३५; मभा. ;
गौमि. १०१४३; स्मृच. १३४; विर. ६४३ गमो + (न);
विता. ५६४ राजधनम् (राज्ञो धनम्); सेतु. २९२ गमो
रत्नधनम् (गमे न राजा धनम्); समु. ७३.

तद्द्रव्यद्विगुणं च राजा हरेत्' इति असति धनग्रहणे
निध्यधिगमो राज्ञ इत्युक्ते अराज्ञ इति प्रतिषेधोऽप्या-
शङ्कयेत् । मभा.

नै ब्राह्मणस्याभिरूपस्य * ।

(१) अभिरूपः पट्कर्मनिरतः तस्य ब्राह्मणस्य चेन्नि-
ध्यधिगमो न तद्राजधनं किं तर्हि अधिगन्तुर्ब्राह्मण-
स्यैवेति । गौमि.

(२) तस्य कर्मसाधनत्वात् । X मभा.

अब्राह्मणोऽप्याख्याता षष्ठं लभेतेत्येके ।

(१) अब्राह्मणोऽपि निधिमधिगम्य यद्याचष्ट इद-
मित्थमासादितमिति स तस्य निधेः षष्ठं लभेतेत्येके
स्मर्तारो मन्यन्ते । ब्राह्मणोऽनभिरूपे कल्प्यः । गौमि.

(२) अब्राह्मणः क्षत्रियादिः, आख्याता पूर्वं ज्ञाप-
यिता, षष्ठमंशं लभेतेत्येके मन्यन्ते, चारित्र्यशफलं हि
तदिति, एक इति वचनात् न तु गौतमः, अपरिमित-
सारत्वान्निधीनाम् । अतो यत्किञ्चिदस्य देयमिति न तु
षष्ठ एवांश इति । अपिशब्दात् ब्राह्मणोऽप्यनभिरूप
इति । मभा.

बालधनव्यवस्था

रैक्ष्यं बालधनमा व्यवहारप्रापणात् समावृत्तेर्वा ।

* विश्व. व्याख्यानं ' इतरेण निधौ ' इति याज्ञवल्क्य-
वचने द्रष्टव्यम् ।

X शेषं गौमिवत् ।

(१) गौध. १०१४३; विश्व. २१३७ स्याभि (स्यानभि);
मिता. २१३५; अप. २१३५ न ब्रा (तद्ब्रा); मभा. ;
गौमि. १०१४४ नकारस्तु पतित इति माति; विर. ६४३
(न०); विता. ५६४; सेतु. २९२ (न०); समु. ७३.

(२) गौध. १०१४४; विश्व. २१३७; मिता. २१३५
(क) गोऽप्या (गो व्या) षष्ठं (षष्ठमंशं), (ख) षष्ठं
(षष्ठमंशं); अप. २१३५ ख्याता (ख्यातं) षष्ठं (षष्ठमंशं);
मभा. ; गौमि. १०१४५; विर. ६४३ गोऽप्या (ण आ)
षष्ठं लभेते (षष्ठमंशं लभत इ); विता. ५६४ ऽप्याख्या-
(पाख्या) षष्ठं (षष्ठमंशं); सेतु. २९२ (अब्राह्मण आख्यात्वा
षष्ठमंशं लभते इत्येके); समु. ७३ (इत्येके०).

(३) गौध. १०१४५; अप. २१२५ प्रापणात् (प्राप्तेः)
(समावृत्तेर्वा०); मभा. ; गौमि. १०१४८-९; व्यग्र. ४६०
अपवत्, विष्णुः.

(१) बालोऽप्राप्तषोडशवर्षः । तस्य यदि हितैपिणो रक्षकाश्च पित्रादयो न सन्ति सन्तो वा मूर्खाश्चाधार्मिकाश्च तदा तद्धनं राज्ञा रक्ष्यम् । आ कुतः । व्यवहारप्रापणात् । यावदसौ व्यवहारप्राप्तः षोडशवर्षो भवति । आङ्गनुवर्तते । अधीतवेदस्य गुरुकुलान्निवृत्तिः समावृत्तिः । आ वा तस्या इति । गौमि.

(२) बालः अप्राप्तषोडशवर्षः तद्ग्रहणमन्येषामपि रक्षणासमर्थानामुपलक्षणम् । तद्धनं वन्धुभ्यो रक्षेत् । अन्येभ्यस्तु रक्षणस्य 'रक्षणं सर्वभूतानां' इत्यनेनैव सिद्धत्वात् । आ व्यवहारप्रापणात् रक्षणसामर्थ्योपजननात्, आ समावृत्तेर्वा सत्यपि सामर्थ्यलक्षणे । विकल्पस्तु अध्ययनाद्यभियोगापेक्षया वर्णनीयः । मभा.

धने चोरहते व्यवस्था

चौरहृतमपजित्य यथास्थानं गमयेत् । कोशाद्वा दद्यात् * ।

बौधायनः

प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था

अब्राह्मणस्य प्रनष्टस्वामिकं रिक्तं संवत्सरं परिपाल्य राजा हरेत् ।

असावस्य द्रव्यस्य प्रभुरित्यज्ञानमात्रे प्रनष्टशब्दः । ब्रह्मस्वमिति तु विज्ञाते ब्राह्मण एवाददीत । उक्तं चैतच्छ्रौचाधिष्ठानाध्याये 'न तु कदाचिद्राजा ब्राह्मणस्य स्वमाददीत' इति । बौवि. (पृ. ९१-९२)

बालधनव्यवस्था

तेषामप्राप्तव्यवहारानामंशान् सोपचयान् सुनिगुप्तान् निदध्यात् ।

अप्राप्तव्यवहाराश्च बाला आ षोडशाद्वर्षात् । तथा हि—'गर्मस्थैः सदृशो ज्ञेय आष्टमाद्वत्सराच्छिष्टः । बाल आ षोडशाद्ज्ञेयः पौगण्डश्चेति शब्द्यते ॥' तेषां पुत्राणां

* व्याख्यासंग्रहः स्थलादिनिर्देशश्च स्तेयप्रकरणे (पृ. १६६३) द्रष्टव्यः ।

(१) बौध. १।१०।१७; व्यक. १४०; विर. ११७; विचि. ४८; बाल. २।१७३; सेतु. १४३; विव्य. ३५.

(२) बौध. २।२।४२; व्यक. १६१; विर. ५९९ अंशान्... निदध्यात् (सोपचयानंशान् सुगुप्तान् निदध्यात्); स्मृसा. १३७ सुनियु... ध्यात् (सुगुप्तान् निदध्यात्).

मध्ये बालानामंशान् सोपचयान् गुप्तान्निदध्यात् । उपचयो नैव्यायिकी वृद्धिः । तथा बालानां द्रव्यं वर्धयेत् । उपचयीयमानांशान् वा सुगुप्तान् रक्षितान् परैरनुपहतान् आव्यवहारप्रापणाभिदध्यात् । बौवि. (पृ. १३४)

वसिष्ठः

बालधनव्यवस्था

संपन्नं च रक्षयेत् राजा, बालधनान्यप्राप्तव्यवहाराणां प्राप्तकाले तु तदद्यात् ।

प्रनष्टस्वामिकधनं राजगामि

प्रहीणद्रव्याणि राजगामीनि भवन्ति ।

निधिव्यवस्था

अप्रज्ञायमानं वित्तं योऽधिगच्छेद्राजा तद्धरेदधिगन्त्रे षष्ठमंशं प्रदाय ।

ब्राह्मणश्चेदधिगच्छेत् षट्कर्मसु वर्तमानो न राजा हरेत् ।

विष्णुः

निधिव्यवस्था

आकरेभ्यः सर्वमादद्यात् ।

निधिं लब्ध्वा तदर्धं ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् । द्वितीय-

(१) वस्मृ. १६।६ (क) राजा (राज) तदद्यात् (तद्यत्), (ख) (संपन्नतामाचरेत् । राजा बालानामप्राप्तव्यवहाराणां प्राप्तकाले तु तदद्यत्).

(२) वस्मृ. १६।१७ (ख) प्रहीण (गृहिणां).

(३) वस्मृ. ३।१४; मित्ता. २।३५ अधिगन्त्रे...प्रदाय (षष्ठमंशमधिगन्त्रे दद्यात्); अप. २।३५ नं वित्तं (नवित्तं); स्मृच. १३४; विर. ६४३ तद्धरे (तदुद्धरे); मपा. २२५-६ अप्रज्ञा (अज्ञा) अधिगन्त्रे (दधिकं तु); दीक. ३५ (अप्रज्ञायमानं वित्तं यो गच्छेद्राजा तमुद्धरेत् । अधिगन्त्रे षष्ठभागं प्रदाय स तु सर्वशः); दवि. २८७; वीमि. २।३५ यो (सो) तद्धरे (तदुद्धरे) प्रदाय (प्रदद्यात्); विता. ५६४ प्रदाय (प्रदद्यात्); सेतु. २९२ षष्ठमंशं (अष्टममंशं); प्रका. ८४; समु. ७३.

(४) वस्मृ. ३।१५; अप. २।३५ गच्छेत्... हरेत् (गच्छति षट्सु कर्मसु वर्तमानः सर्वं हरेत्); मभा. १।२।४२ षट् (षट्सु); स्मृच. १३४ न राजा (सर्व); विर. ६४३; मपा. २२६; दवि. २८९; प्रका. ८४; समु. ७३.

(५) विस्मृ. ३।५५; विर. ६४४.

(६) विस्मृ. ३।५६-६०; विर. ६४४ दद्यात् + (दत्त्वा)

मर्धं कोशे प्रवेशयेत् । निधिं ब्राह्मणो लब्ध्वा सर्वमादद्यात् । क्षत्रियश्चतुर्थमंशं राज्ञेऽपरं चतुर्थमंशं ब्राह्मणेभ्योऽर्धमादद्यात् । वैश्यस्तु चतुर्थमंशं राज्ञे दद्यात् ब्राह्मणेभ्योऽर्धमंशमादद्यात् ।

शूद्रश्चावाप्तं द्वादशधा विभज्य पञ्चांशान् राज्ञे दद्यात् पञ्चांशान् ब्राह्मणेभ्योऽशद्वयमादद्यात् । अनिवेदितविज्ञातस्य सर्वमपहरेत् ।

स्वनिहिताद्राज्ञे ब्राह्मणवर्जं द्वादशमंशं दद्युः । परनिहितं स्वनिहितमिति ब्रुवंस्तत्समं दण्डमावहेत् ।

ब्राह्मणेभ्योऽर्धं दद्यादित्यनुपञ्जनीयम् । अश परिशिष्टं

ब्राह्मणो लब्ध्वा सर्वं (लब्ध्वा ब्राह्मणः स्वयं) राज्ञेऽपरं (राज्ञे दद्याच्छ्रेयं) भ्योऽर्धमंशमा (भ्यो दद्यादर्धमा) वैश्यस्तु (वैश्यः) ऽर्धमंशमा (ऽर्धमंशमंशं स्वयमा) ; मपा. २२५ (निधिं लब्ध्वा ... प्रवेशयेत्०) निधिं ... मादद्यात् (निधिं च ब्राह्मणो लब्ध्वा सर्वमादद्यात् । क्षत्रियश्चतुर्थमंशं राज्ञे दद्याच्चतुर्थमंशं ब्राह्मणेभ्योऽर्धमादद्यात् । वैश्यश्चतुर्थमंशं राज्ञे दद्याद्ब्राह्मणेभ्योऽशमादद्यात्) ; व्यनि. ५३३ श्वतुर्थमंशं राज्ञेऽपरं चतुर्थमंशं (श्वतुर्थमंशं राज्ञे दद्यात् । चतुर्थं) वैश्यस्तु (वैश्यः) ऽर्धमंशमा (ऽर्धं । चतुर्थमंशमा) ; दवि. २८८ (निधिं लब्ध्वा ब्राह्मणेभ्यस्तदर्धं दत्त्वा द्वितीयमर्धं कोशे प्रवेशयेत् । निधिं लब्ध्वा ब्राह्मणः स्वयमेवादद्यात् । क्षत्रियश्चतुर्थमंशं राज्ञे दद्यात् चतुर्थमंशं ब्राह्मणेभ्यः, अर्धं स्वयमेवादद्यात् । वैश्यश्चतुर्थमंशं राज्ञे दद्यात् ब्राह्मणेभ्योऽर्धं स्वयमंशद्वयमादद्यात्) ; सेतु. २९३ (क्षत्रियश्च चतुर्थमंशं राज्ञे दद्याच्चतुर्थमंशं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा अर्धमादद्यात् । वैश्यश्चतुर्थमंशं राज्ञे दद्यात् ब्राह्मणेभ्योऽर्धमंशं स्वयमादद्यात्) षतावदेव.

(१) विस्मृ. ३।६१-२; विर. ६४४ (शूद्रस्त्ववाप्तं द्वादशधा विभज्य पञ्चमं राज्ञे दद्यात् ब्राह्मणेभ्योऽशद्वयमेव दद्यादवशिष्टं सर्वं स्वयमादद्यात्) ; व्यनि. ५३३ वाप्तं (वाप्तं निधिं) भ्योऽश (भ्यः स्वयमंशं) सर्वं (सर्वस्व) ; दवि. २८८ पञ्चांशा ... दद्यात् (पञ्चांशं राज्ञे पञ्चांशं ब्राह्मणेभ्योऽशद्वयं स्वयमादद्यात्) (अनि ... हरेत्०) : २९२ (शूद्र ... दद्यात्०) सर्वमप (सर्वस्वमा) ; सेतु. २९३ पञ्चांशान् ब्राह्मणं ... दद्यात् (ब्राह्मणेभ्योऽशद्वयमेव दद्यात्) शातस्य ... हरेत् (शातस्य सर्वस्वमादद्यात्) .

(२) विस्मृ. ३।६३-४; विर. ६४२ ब्रुवंस्त ... वहेत् (वदन्तस्तत्समं दण्डमावहेत्) ; मपा. २२५ राज्ञे (राज्ञे) ; दवि. २८६ विरवत् ; सेतु. २९१ ब्राह्मण + (धन) ५४२ ... वहेत्०) .

स्वयमादद्यात् ।

विर. ६४४

बालानाथस्त्रीधनव्यवस्था

बालानाथस्त्रीधनानि च राजा परिपालयेत् ।

अनाथोऽवेक्षकरहितोऽन्धपङ्गवादिः । मध्येऽनाथपदप्रयोगादुभयत्रान्वयेन बालस्त्रियोरप्यनाथत्वं गम्यते । वै.

धने चौरहते व्यवस्था

चौरहृतं धनमवाप्य सर्वमेव सर्ववर्णेभ्यो दद्यात् ।

अनवाप्य च स्वकोशादेव दद्यात् * ।

शङ्खः शङ्खलिखितौ च

बालानाथस्त्रीधनव्यवस्था

रक्षेत्राजा बालानां धनान्यप्राप्तव्यवहारानां श्रोत्रियवीरपत्नीनां प्रहीणस्वामिकानि राजगामीनि भवन्ति ।

श्रोत्रियवीरपत्नीनां श्रोत्रिये वीरे प्रोषितेऽपगते वा तत्पत्नीनाम् ।

विर. ५९९

न हार्यं स्त्रीधनं राज्ञा तथा बालधनानि च ।

नार्याः षडागमं वित्तं बालानां पैतृकं धनम् ÷ ॥

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

बालादिधनव्यवस्था

प्राप्तव्यवहाराणां विभागः । अप्राप्तव्यवहाराणां देयविशुद्धं मातृबन्धुषु प्रामवृद्धेषु वा स्थापयेयुर्व्यवहारप्रापणात् । प्रोषितस्य वा । संनिविष्टसममसंनिविष्टेभ्यो नैवेशनिकं दद्युः । कन्याभ्यश्च प्रादानिकम् + ।

अदायादकं राजा हरेत् स्त्रीवृत्तिप्रेतकार्यवर्जमन्यत्र श्रोत्रियद्रव्यात् । तत् त्रैविद्येभ्यः प्रयच्छेत् × ।

* स्थलनिदेशः स्तैयप्रकरणे (पृ. १६७१) द्रष्टव्यः ।

÷ व्याख्यानं स्थलादिनिदेशश्च दायभागप्रकरणे (पृ. १४७३) द्रष्टव्यः ।

+ व्याख्यानं स्थलनिदेशश्च दायभागे (पृ. ११९९-१२००) द्रष्टव्यः ।

× व्याख्यानं स्थलनिदेशश्च दायभागे (पृ. १४७४) द्रष्टव्यः ।

(१) विस्मृ. ३।६५; व्यक. १६१; विर. ५९८ (च०) ; स्मृसा. ७४ च राजा (राजा तु) : १३७ = १४४ (च०) .

(२) व्यक. १६१; विर. ५९९; स्मृसा. १३७ .

मनुः

बालानाथधनव्यवस्था

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ।
यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ॥

(१) ननु च व्यवहारदर्शनं वक्तव्यतया प्रस्तुतम् । तत्र कः प्रसङ्गो बालधनरक्षायाः । उच्यते । विवादपद-
तामेवैतद्विषयान्निवर्तयितुमिदमारभ्यते । बालधनं राज्ञा
स्वधनवत्परिपालनीयम् । अन्यथा पितृव्यादिबान्धवा
मयेदं रक्षणीयं मयेदमिति विवेदेरन् । न चान्यः
प्रसङ्गोऽस्ति । आशङ्क्यमानव्यवहारवच्च । न केवलेषु
राजधर्मेषूपदिश्यते अतोऽस्मिन्नेवावसरे वक्तव्यम् । बालो
दायादोऽस्य तदिदं बालदायादिकम् । दायादः स्वाम्यत्रो-
च्यते । बालस्वामिकं धनं तावद्राजा रक्षेद्यावदसौ समा-
वृत्तो गुरुकुलात्प्रत्यागतो यावद्वाऽतीतशैशवः अतिक्रान्त-
बालभावः । अयं च विकल्पो यो गृहशैशवो भवति
तदर्थमतीतशैशव इत्युच्यते । यस्तु व्रतकः स निवृत्तेऽपि
शैशवे आ समावर्तनात्प्रतिपाल्यधनः स्यात् । अथवा
द्विजातीनां समावर्तनमवधिरन्येषां शैशवात्ययः । *मेधा.

(२) अनुपालयेत् स्वगोचरीकृत्य स्थापयेत् । समा-
वृत्तः षट्त्रिंशदब्दादिषु । तन्मध्ये चेद्धनेन कार्यं तदा
यावद्वैत्यवध्यन्तरम् । शैशवं षोडशाब्दात्प्राक् । मवि.

(३) अविद्यमानात्पुरुषविषयमेतत् । स्मृच. १३२

(४) अनाथबालस्वामिकं धनं पितृव्यादिभिरन्यायेन
गृह्यमाणं तावद्राजा रक्षेत् । यावदसौ षट्त्रिंशदब्दादिकं
ब्रह्मचर्यमित्याद्युक्तेन प्रकारेण गुरुकुलात्समावृत्तो न भवति
तादृशस्यावश्यकबाल्यविगमात् । यस्त्वशक्त्यादिना बाल
एव समावर्तते सोऽपि यावदतीतबाल्यो भवति तावत्तस्य
धनं रक्षेत् । बाल्यं च षोडशवर्षपर्यन्तम् । 'बाल
आषोडशाद्दर्षात्' इति नारदवचनात् । ममु.

* गोरा. मेधावत् । मच. मेधागतं ममुगतं च ।

(१) मस्मृ. ८।२७ ख., यावच्चा (यावद्वा); व्यक.
१६१ दिकं (गतं) यावच्चा (यावद्वा); मवि. मस्मृवत् ;
स्मृच. १३२ त्त स्यात् (त्स्यात् स) शेषं मस्मृवत् ; विर.
५९८ व्यकवत् ; स्मृसा. १३७ मस्मृवत् ; विवि. ३४४
यादिकं (यगतं) त्त स्यात् (त्स्यात्) ; प्रका. ८३ स्मृवत् ;
समु. ७२ स्मृवत्.

व्य. कां. २४५

(५) कार्यादिसामर्थ्यापेक्षया व्यवस्थापनीयो
विकल्पः । नन्द.

(६) बालस्य बन्धुरहितस्य । समावृत्तः लब्धानुज्ञः ।
भाच.

वंशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥

(१) यः कश्चिदनाथस्तस्य सर्वस्य धनं राजा यथाव-
त्परिरक्षेत् । तथा चोदाहरणमात्रं वशादयः । एवं प्रजा-
पालनमनुष्ठितं भवति । पूर्वस्तु श्लोकः कालनियमार्थः ।
वशा बन्ध्या, अपुत्राऽसमर्थपुत्राऽविद्यमानपुत्रा दुर्गतपुत्रा
वा । वशाश्चापुत्राश्चेति द्वन्द्वः । ननु च वशाऽप्यपुत्रैव ।
सत्यम् । उभयोपादानं तु सत्यपि भर्तरि तस्याः संरक्षणार्थं,
तस्यां ह्यधिविन्नायां भर्ता निरपेक्षो भवति । निष्कुला-
ग्रहणं तासां विशेषणं, यासां न कश्चिद्देवरपितृव्यमातु-
लादिः परिरक्षकोऽस्ति स्त्रीत्वाच्च स्वयमसमर्थाः, बान्ध-
वास्तु मत्सरिणः, तासां च तदुच्यते । बन्धुभिर्हि स्त्रीणां
शील्यरीरघनानि रक्षितव्यानि । तदुक्तं—'विनियोगात्म-
रक्षासु भरणे च स ईश्वरः ॥ परिक्षीणे पतिकुले निर्मनुष्ये
निराश्रये । तत्सपिण्डेषु वाऽसत्सु पितृपक्षः प्रभुः स्त्रियाः ॥
पक्षद्वयावसाने तु राजा भर्ता प्रभुः स्त्रियाः ॥'

या तु स्वयमेव कथञ्चिच्छक्ता न तत्र बान्धवानां
व्यापारोऽस्ति । अत एवाह । आतुरास्त्विति । असामर्थ्य-
मेतेन लक्ष्यते । अन्यैस्त्वातुरभर्तृका आतुरा व्याख्याता ।
अविधवाऽपि भर्तुरसामर्थ्याद्राज्ञैव रक्षया स्यादिति । निर्म-
नुष्याणामेतत् । कुलं बन्धुजातं यासां नास्ति ताः
निष्कुलाः । अन्ये तु कुलटां निष्कुलामाहुः । तासामपि
वेशाद्युपार्जितं धनं अपतितानां राजा रक्षयम् । अस्मिन्
पक्षे स्वतन्त्रनिष्कुलाग्रहणम् । पतिव्रतासु विधवासु ।
मृतभर्तृका विधवा । धव इति भर्तृनाम । तद्विरहिता
विधवा । ताश्चेत्पतिव्रता भवन्ति तदा ता रक्षयधनाः ।
व्यभिचाररतानां तु स्त्रीधनानर्हत्वं स्मृत्यन्तरे पठ्यते
'अपकारक्रियायुक्ता निर्लज्जा चार्थनाशिका । व्यभि-
चाररता या च स्त्रीधनं न तु साऽर्हति ॥' इति ।

(१) मस्मृ. ८।२८; गोरा. वशा (बन्ध्या); व्यक.
१४८; स्मृच. १३२; विर. ५१२; दवि. ३१९; विता.
४४५ स्वात् (स्वात्) मनुनारदौ; प्रका. ८४; समु. ७२.

तस्यास्तु निष्कासनं विहितम् । निष्कासनं च प्रधानवेष्टमनो बहिरवस्थापनम् । न तु निर्वासनमेव । यतः पतितानामपि तासां गृहान्तिके वासो भक्ताच्छादन-मात्रदानं च विहितम् । 'एवमेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि । बन्धनपानं देयं च वसेयुश्च गृहान्तिके ॥' तेन यः कश्चित्स्त्रीणां निर्वासनविधिः 'स्त्रीधनं द्रव्य-सर्वस्वम्' इत्यादिषु श्रूयते स एवविषय एव द्रष्टव्यः । तथापि यावद्भिन्नोत्सर्पणादिना किञ्चिदर्थितं तदर्हत्येव । न बान्धवा अपहरेयुः । इह त्वस्मिन्नेव निमित्ते आधिबेदनं विहितं न तु स्त्रीधनापहारः । तथा ह्याह 'मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूलं च या भवेत् । व्याधिता चाधिबेत्तव्या हिंसाऽ-र्थघ्नी च सर्वदा ॥' अतश्च मानवस्मृतिवलेन च 'स्त्रीधनं न तु साऽर्हति' इत्येषा स्मृतिरेवं व्याख्यायते । आधिबेद-निकं स्त्रीधनमेषा नार्हति, नैतस्यै देयमित्यर्थः । यदुक्तम् 'अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिबेदनिकं समम्' इति, न तु प्राग्दत्तमस्या अपहर्तव्यम् । वयं तु ब्रूमः । पुरुषद्वेषिण्या व्यभिचाररतायाश्च युक्त एवापहारः । यत इहाप्युक्तं— 'अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्तमेव वा । सा त्रीन्मासान्परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥' भूषणपरि-च्छदैर्वियुक्ता कर्तव्येत्यर्थः । * मेधा.

(२) यथा बालधनस्य राज्ञा रक्षणं स्यादेवं सत्यपि भर्तारि वन्ध्यासु स्त्रीष्वप्रजासु निष्कुलासु च कन्यकासु मृतप्रोषितभर्तृकासु साध्वीषु व्याधितासु च रक्षणं स्यात् । अत्र गोबलीवर्दन्यायेनानेकशब्दोपादानम् । गोरा.

(३) वशा वन्ध्या । अपुत्रा मृतपुत्रा अजातपुत्रा वा । तदा यावत्तत्कुल्यगोचरेण तयोर् यदि सिद्धिस्तावत्तद्विचि-रक्ष्यं तत्पोषणं च कार्यं ते यदि निष्कुले रक्षकस्वकुल्य-रहिते स्यातां तदाऽप्येवं यावज्जीवरक्षणं स्वगोचरेण स्थापनं च राज्ञा कार्यम् । एवंविधासु च पतिव्रतासु पत्युद्देशेन ब्रह्मचर्यादिव्रतकारिणीषु वा । मवि.

(४) निष्कुलाः स्वपक्षहीनाः । स्मृच. १३२

(५) वशासु वन्ध्यासु कृतदारान्तरपरिग्रहः स्वामी निर्वाहार्थोपकल्पितधनोपायासु निरपेक्षः । अपुत्रासु च स्त्रीषु प्रोषितभर्तृकासु, निष्कुलासु सपिण्डरहितासु, साध्वीषु च

* मव., नन्द., माच. मेधावद् । .

स्त्रीषु, विधवासु, रोगिणीषु च यद्धनं तस्यापि बालधन-स्येव राज्ञा रक्षणं कर्तव्यम् । अत्र चानेकशब्दोपादो-गोबलीवर्दन्यायेन पुनरुक्तिपरिहारः । ममु.

एवमेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ।

बन्धनपानं देयं च वसेयुश्च गृहान्तिके ॥

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्दरेयुः स्वबान्धवाः ।

ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥

(१) बान्धवानां स्त्रीधनमपहरतामयं चोरदण्डः । ते हि बहुभिरुपधिभिरपहरन्ति । अस्वतन्त्रैषा स्त्री, किं ददाति किं वा भुङ्क्ते, वयमत्र स्वामिन इति अचौर्याशङ्कया, चोरदण्डो विधीयते । जीवन्तीनां तासां स्वबान्धवा देवरादयस्तद्धनं ये हरेयुस्तान् शिष्यात् पृथिवीपति-र्निगृह्णीयात् । चोरदण्डो वक्ष्यमाणः 'येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते । तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥' इति (मस्मृ. ८।३३४) । स्वबन्धुभ्यश्चैत-द्विशेषेण राज्ञा रक्षितव्यम् । चौररक्षा तु संवराष्ट्रविषया विहिता । मेधा.

(२) भाविस्वाम्यादस्मादधीनत्वादिव्याजेन ये बान्धवास्तासा जीवन्तीनां धनं हरेयुः । वक्ष्यमाणचौर-दण्डेन धर्मप्रधानो राजा दण्डयेत् । + गोरा.

(३) यदि तु तासां वित्तं संभवति तदाह— जीवन्तीनामिति । मवि.

(४) स्त्रीधनस्य रक्षणीयप्रकरणे तदपहर्तृदण्डविधान-माह— जीवन्तीनां त्विति । स्वदेवरादयो बान्धवाः सोदरादयः । जीवन्तीनामिति विशेषणान्मृतासु बान्धवा-नामेव स्त्रीधने स्वामित्वं गम्यते । नन्द.

+ मवि., ममु., मच., माच. गोरावद् ।

(१) मस्मृ. ८।२८ इत्यस्योपरिष्ठात् प्रक्षिसक्कोऽयम्, ख. पुस्तके नायं प्रक्षिसक्कोऽयम्; ससु. १२२ ज्ञापनं (ज्ञासां) यं च (यं तु).

(२) मस्मृ. ८।२९ [तद्दरेयुः स्वबान्धवाः (हरेयु-र्बान्धवा धनम्) Noted by Jha]; मिता. २।१४७; अप. २।१४३; व्यक. १४८; स्मृच. १३२, २८४; विर. ५१२; रत्न. १६२; मपा. ६७०; दवि. ३२०; व्यस. ७०; विता. ४४५ तासां ये (तासां यत्) मनुनारदौ; प्रका. ८४; ससु. ७२.

प्रनष्टस्वामिकधनव्यवस्था

प्रनष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ।
अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परतो नृपतिर्हरेत् * ॥

(१) यद्द्रव्यं स्वामिनो नष्टं प्रमादात्कथञ्चित्पथि गच्छतो भ्रष्टमरणे कान्तारे वा स्थापयित्वाऽरण्यपालै-
रन्यैर्वा राजपुरुषैर्लब्धं राजसकाशमानीतं तद्राज्ञा स्वां
रक्षां कृत्वा राजद्वारे राजमार्गे वा प्रकाशं स्थापयितव्यम् ।
षट्दशघोषणेन वा कस्य किं हारितमिति प्रकाशयितव्यम् ।
यतः प्रदेशाल्लब्धं तस्मिन्नेव प्रदेशे रक्षितपुरुषाधिष्ठितं
कर्तव्यम् । एवं त्रीणि वर्षाणि स्थापयितव्यम् । तत्रा-
र्वाक् त्रिभ्यो वर्षेभ्यो यः कारणत आत्मीयं ज्ञापयेत्तस्यो-
द्धृतवक्ष्यमाणषड्भागादिभागकं समर्पयितव्यं परतः स्व-
कोष्ठे प्रवेशनीयमिति ।

प्रनष्टः स्वामी यस्य रिक्थस्य तत्प्रनष्टस्वामिकं, प्रन-
ष्टोऽविज्ञातः, रिक्थं धनं, त्रयाणामब्दानां समाहारस्त्र्यब्दं
त्रिवर्षवत् । त्र्यब्दे ङीवभावः । अब्दशब्दः संवत्सरपर्यायः ।
निधापयेत्स्थापयेत् । अर्वाक्त्र्यब्दात्पूर्वं त्रिभ्यो वर्षेभ्यः ।
हरेत्स्वामी स्वीकुर्यात् । अर्वाक्शब्दोऽवधौ दिग्देशा-
दिकान् पूर्वानाह ।

अन्ये तु नृपतिः हरेदिति भोगानुज्ञानमपहारमाहुः ।
न हि ऊर्ध्वमपि त्रिभ्यो वर्षेभ्यः परकीयस्य द्रव्यस्यापहारो
युक्तस्तस्मात्त्रिभ्यो वर्षेभ्य ऊर्ध्वमनागच्छति स्वामिनि
राज्ञा भोक्तव्यम् । तैरयं श्लोकः कथं व्याख्यापनीयो
'यत्किञ्चिद्दशवर्षाणी'ति । यदि च परकीयस्यापहारो
न युक्त इत्युच्यते भोगोऽपि नैव युक्तः । परकीयं वस्त्रादि
च भुज्यमानं नश्यत्येव तत्रानपहारवाचोयुक्तिरेवापहार-

* मिता. व्याख्यानं 'प्रनष्टाधिगतं' इति याज्ञवल्क्यवचने
द्रष्टव्यम् ।

(१) मसृ. ८१३० परतो (परेण); मिता. २१३३:
२१९७३ रिक्थं (द्रव्यं); अप. २१९७३ मितावत्; सृच.
१३३; मपा. २२६ त्र्यब्दं (अब्दं) त्र्यब्दात् (अब्दात्)
परतो (परेण); द्वि. २७३ रिक्थं... त्र्यब्दं (द्रव्यं त्र्यब्दं
राजा); नृप्र. १७४ पूर्वार्धे (प्रनष्टस्वामिकद्रव्यं राक्षे चैतन्नि-
ज्ञामयेत्) त्र्यब्दाद्धरेत् (संवत्सरात्); वीमि. २१९७३
प्रनष्ट... रिक्थं (प्रनष्टाधिगतं द्रव्यं); व्यप्र. २९७ मितावत्;
व्यम. ८७ मितावत्; विता. ५६३ राजा (राज्ञा); राक्षौ.
३६६ मितावत्; प्रका. ८४; समु. ७२:

फलस्य सद्भावात् । गजतुरगादेस्तु कीदृशो भोग इति
वाच्यम् । तस्मान्न यथाश्रुतार्थत्यागे कारणमस्ति । हर-
तिश्च गृह्णात्यर्थे असकृद्दृष्टप्रयोग ऋक्थं हरेदित्यादौ ।
तस्मात्परेण नृपतिर्हरेत्स्वीकुर्यादित्ययमेवार्थः । * मेधा-

(२) अज्ञायमानस्वामिकं धनं राजा कस्य किं प्रनष्ट-
मित्येवं षट्हादिना ख्याप्य द्वारादौ वर्षत्रयं स्थापयेत् ।
वर्षत्रयादर्वाक् स्वाम्यायातो गृह्णीयादूर्ध्वं पुनर्नृपतिर्गृह्णी-
यात् । यावत्स्वाम्यागच्छति तावदपहरेत् । एवं परकी-
यस्य धर्मतो वर्षशतैरपि स्वापहारस्यान्याय्यत्वात् प्रनष्ट-
इत्यादि सोऽर्वाक् । गोरा.

(३) उत्कृष्टगुणब्राह्मणे स्वामिन्येतत् । अप. २१९७३

(४) प्रनष्टोऽदृश्यमानः स्वामी यस्य तद्राजभृत्यैर्लब्धं
धनं प्रनष्टस्वामिकं हरेत् स्वामी कृत्स्नं, परेण नृपतिर्हरेत्
रक्षकभागमात्रं वक्ष्यमाणम् । मवि.

(५) तदत्यन्तदूरदेशस्वामिस्थितिसंभावनाविषयम् ।
निधापनं च स्वधनामिश्रभावेन राज्ञा कार्यम् ।

ननु नृपतिः हरेदित्येतत्परद्रव्यापहारप्रतिषेधकशास्त्र-
विरुद्धम् । सत्यम् । अत एवास्य पृथङ्निहितस्थानात्
नृपतिः स्वधनस्थानमाहरेत् इत्यर्थोऽवगन्तव्यः । एवं
चावधिमतिक्रम्यागतायापि स्वामिने रूपसंख्यादिभिर्भा-
वितं प्रनष्टाधिगतं देयमेव । किन्तु ततः किञ्चिद्द्रव्यमव-
ध्यतिक्रमापराधात् नृपो गृह्णीयात् । × स्मृच. १३३

(६) तद्बहुश्रुतवृत्तसंपन्नब्राह्मणविषयमिति मदनरत्ने ।
ब्राह्मणमात्रविषयमिति केचित् । व्यप्र. २९७

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि ।
संवाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥

(१) कथं पुनः स्वामी प्रनष्टे धने स्वामित्वं
ज्ञापयितुमलम् ? आह । यः कश्चिदागत्य ममेदं
स्वं द्रव्यमिति ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि । अनु-
योज्यः प्रष्टव्य इत्यर्थः । कोऽसावनुयोगविधिः, 'को
भवान्, किं द्रव्यं हारितं, किं रूपं, किं परिमाणं,
किं संख्यान्कं, संपतितमपतितं वा, यदि पतितं
कस्मिन्देसे, तथा कुत आगमितं त्वया' इत्येवं पर्यनुयोगः

* मसृ., मच. मेधावत् । × भाच. सृचवत् ।

(१) मसृ. ८१३१; व्यक. ११८ रूप (रूपं);
सृच. १३३ऽनुयो (नियो); विर. ३४७ व्यकवत्; मपा.
२२६; सेतु. २५२; प्रका. ८४ सृचवत्; समु. ७२:

कर्तव्यः । स यदि संवादयति रूपसंख्यादीन्, रूपं प्राणिवस्त्रादिविषयं, शुक्लं वस्त्रं गौर्वैत्येवमादि । तथा संख्या दश गावो वा युगानि वा । आदिग्रहणाद्ग्रस्तादि-प्रमाणं सुवर्णादिपरिमाणं प्रकीर्णरूपकं वा एतत्सर्वं संवादयति तदाऽसौ स्वामी भवति । अतस्तद्द्रव्यमर्हति स्वीकर्तुम् । संवाद उच्यते, यादृशमेकेन प्रमाणेन परिच्छिन्नं तादृशमेवास्यानेन परिच्छिद्यते । रूपसंख्यादिग्रहणं च प्रदर्शनार्थं स्वामित्वकारणानामन्येषामपि साक्ष्यादीनाम् ।

* मेधा.

(२) रूपं नीलवदीर्घत्वादि । मवि.

(३) सभ्यैः संवाद्य सभ्यानां सम्यक् वेदयित्वा । नन्द.

अवेद्यानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ।

वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥

(१) मिथ्या प्रवर्तमानस्य दण्डोऽयमुच्यते । यो न ज्ञापयति नष्टस्य धनस्य देशं कालं चास्मिन्देशे काले वा हारितं, तत्त्वतः परमार्थतो वर्णं शुक्लादिकं रूपं पटी शाटकयुगं वेत्यादिकमाकारं प्रमाणं पञ्चहस्तायामं सप्तहस्तामात्रं वाऽवेद्यानस्तदा तत्समं यावति द्रव्ये मिथ्या-प्रवृत्तस्तत्तुल्यं दण्डमर्हति ।

मेधा.

(२) नष्टद्रव्यस्य देशकालौ यथासंभवं च वर्णं शुक्लादिकं आकारं कटकत्वादिकं प्रमाणं च यथावदज्ञानतः तत्तुल्यं दण्डमिति ।

+ गोरा.

(३) अवेदयन्नप्रतिपादयन् । देशमस्मिन्देशे इति । वर्णं नीलत्वादि । रूपं कटकत्वादि । प्रमाणं दैर्घ्याद्येकत्वादि ।

× मवि.

(४) तत्त्वतो वेद्यानोऽपि विसंवादं कुर्वाणः तत्समं प्रनष्टाधिगतसमम् ।

स्मृच. १३३

* गोरा., मसु., मच. मेधावत् ।

+ मसु. गोरावत् । × भाच. मविवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३२ [वर्णं रूपं (वर्णरूप) Noted by Jha]; व्यक. ११९ यानो (यस्तु); स्मृच. १३३; विर. ३४७ व्यकवत्; दवि. २७२; सेतु. २५२ देशं (देश) शेषं व्यकवत्; प्रका. ८४; समु. ७२ यानो... कालं (यन् प्रनष्टस्य देशकालौ); भाच. देशं कालं (देश-कालौ).

(५) प्रमाणं संख्यां साक्ष्यादि वा । मच.

आददीताथ षड्भागं प्रनष्टाधिगतान्नुपः ।

दशमं द्वादशं वाऽपि सतां धर्ममनुस्मरन् * ॥

(१) आददीत गृहीयात्षष्ठं भागं दशमं द्वादशं वा प्रनष्टलब्धाद्द्रव्यात्, अवशिष्टं स्वामिनेऽर्पयेत् । तत्र प्रथमे वर्षे द्वादशो भागो द्वितीये दशमस्तृतीये षष्ठ इति । अथवा रक्षाक्लेशक्षयोपक्षो भागविकल्पः । सतां धर्ममनुस्मरन् शिष्टानामेव समाचार इति जानानः ।

+ मेधा.

(२) अब्दात्परं यद्ग्राह्यं तदाह— आददीतेति । अतिनिर्गुणवदतिगुणवदपेक्षया विकल्पः । सतां धर्ममिति व्यवहारसिद्धं यावत्तावद्वैत्यर्थः ।

× मवि.

(३) अथेत्यतिक्रान्तावधेः स्वामिनः समागमनानन्तर्यमुच्यते । समागमनस्यात्यन्तविलम्बे षष्ठो भागः नातिविलम्बे तु दशमो भागो विलम्बाभावे तु द्वादशो भाग इति व्यवस्थाऽवगन्तव्या । यत्तु गौतमेनोक्तम् 'ऊर्ध्व-मधिगन्तुश्चतुर्थः राज्ञः शेषः' इति तदतिक्रान्तावधिकस्य स्वामिनो नाशनिश्चयविषये द्रष्टव्यम् । स्वामिनि श्रियमाणे त्वधिगन्तुर्नृपभागचतुर्थांशो भवतीत्यस्मादेव वचनात् गम्यते ।

स्मृच. १३३

(४) पूर्वं प्रनष्टः देशान्तरं गतः आगतः पश्चादधिगतः तस्मात्पुरुषात् राजा षड्भागं आददीत स्वीकुर्यात् ।

भाच.

प्रनष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ।

यांस्तत्र चौरान् गृहीयात्तान् राजेभ्येन घातयेत् ॥

* मिता.व्याख्यानं ' प्रनष्टाधिगतं ' इति याज्ञवल्क्यवचने द्रष्टव्यम् ।

+ गोरा., अप., विर. मेधातिथिद्वितीयपक्षवत्, मच. मेधा-तिथिप्रथमपक्षवत् ।

× मसु. विकल्पव्यवस्था मविवत्, शेषं मेधावत् । नन्द. मविवत् मेधातिथिद्वितीयपक्षवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३३; मिता. २।३३, २।१७३; अप. २।१७३; व्यक. ११९ वाऽपि (चाऽपि); स्मृच. १३३; विर. ३४७; मपा. २२६; दवि. २७३; नृप्र. १७४ ताथ (त तु); व्यम. ८७; विता. ५६४; प्रका. ८४; समु. ७२.

(२) मस्मृ. ८।३४; व्यक. ११९; स्मृच. १३३

(१) प्रनष्टमधिगतं प्रनष्टाधिगतं पूर्वं प्रनष्टं पश्चादधि-
गतमधिष्ठितं युक्तैस्तत्परैरारक्षपुरूपैस्तिष्ठेत् तथास्थितमपि
यदि केचन चोरा गृह्णीयुस्तान् राजा इभेन हस्तिना
घातयेत् । हस्तिप्रहणं अदृष्टार्थम् । मेधा.

(२) यद्द्रव्यं कस्यचित्प्रनष्टं सद्राजपुरुषैर्लब्धं तद्रक्ष-
येत् । नियुक्तं रक्षितं कृत्वा राजा स्थाप्यं तस्मिंश्च द्रव्ये
यान् चौरान् राजा गृह्णीयात् तान् शतादभ्यधिके वध
इति दर्शनात् सुवर्णशतमूल्यादिचौर्ये सति हस्तिना
घातयेत् । +गोरा.

(३) यद्द्रव्यं कस्यापि प्रनष्टं सत् राजपुरुषैः प्राप्तं
रक्षायुक्तैः रक्षितं कृत्वा स्थाप्यम् । तस्मिंश्च द्रव्ये यांश्चौरान्
गृह्णीयात्तान् हस्तिना घातयेत् । गोविन्दराजस्तु 'शता-
दभ्यधिके वधः' इति दर्शनादत्रापि शतसुवर्णस्य मौल्या-
दिकद्रव्यहरणे वधमाह । तन्न । तत्र संधिं कृत्वा तु
यच्चौर्यमिति यत्स्वाम्येऽपि प्रनष्टराजरक्षितद्रव्यहरणेनैव
विशेषेण वधविधानाच्छतादभ्यधिके वध इत्यस्य विशेषो-
पदिष्टवधेतरविषयत्वात् । *ममु.

निधिव्यवस्था

ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ।

तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ॥

(१) निखातायां भूमौ गुप्तं स्थापितं धनं निधि-
रुच्यते । वर्षशतिका वर्षसहस्रिकाश्च निधयो भवन्ति ।
तत्र यदि भूमेर्विदार्यमाणयाः कथञ्चित्केनचिन्निधि-
रासाद्यते स तु राजधनम् । तथा च गौतमः—
'निध्यधिगमो राजधनम्' इति । एतच्चास्मर्यमाण-
निघातुके निधौ द्रष्टव्यम् । तस्य आख्याता षड्

+ मवि. गोरावद्भावः ।

* मच. ममुवत् ।

यांस्त ... यात् (ये तत्र चोरा गृह्णीयुः); विर. ३४७ घातयेत्
(ताडयेत्); विचि. १४९; दवि. १२३ युक्तै (लुक्तै);
प्रका. ८४ स्मृचवत्; समु. ७२ स्मृचवत्.

(१) मस्मृ. ८।३५ [ममाय (ममेद) मानवः (हेतुना)
Noted by Jha]; मिता. २।३५; अप. २।३५;
स्मृच. १३४; विर. ६४२ मानवः (हेतुतः); मपा. २२६;
दवि. २८६ विरवत्; वीमि. २।३५; व्यम. ८८ वा (च);
विता. ५६५; सेतु. २९१ वा (च) शेषं विरवत्; प्रका.
८४; समु. ७३.

लभेतेत्युक्तम् । अयं तु श्लोको यत्राख्यातेव निघाता
तत्पुरुषो वा पितृपितामहादिस्तद्विषयो द्रष्टव्यः । ममायं
निधिरिति यो ब्रूयात्सत्येन प्रमाणेन ज्ञापयेदित्यर्थः ।
तस्याददीत षड्भागमिति निश्चिते तत्स्वामिकत्वे राज्ञः
पश्चादिभागग्रहणम् । विकल्पश्च आख्यातृगुणापेक्षया ।

+ मेधा.

(२) तत्संबन्धीदं निधानमित्येवं निधिं अन्येन वा
तथ्ये सति तयोः रूपसंख्यादि पूर्वप्रतिज्ञासंवादेन मनुष्यो
ब्रूयात्तस्य ततो निधानाद्देशकालवर्णाद्यपेक्षया षड्भागं
द्वादशमेव वा राजा गृह्णीयात् शिष्टं तस्योत्सृजेत् ।

× गोरा.

अनृतं तु वदन् दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ।

तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसी कलाम् ॥

(१) यस्तु मयाऽयं निहितो मत्पूर्वजेन वेति प्रतिज्ञां
न साधयति सोऽसत्यवादी दण्ड्यः । यावत्तस्य वित्तमस्ति
ततोऽष्टमं भागं तस्यैव वा निधानस्याल्पीयसी कलां मात्रां
भागमित्यर्थः । न तु तदेव द्रव्यं सुवर्णादिकं दापयेत्किन्तु
तत्परिमाणमन्यद्वा सममूल्यं यथा धनमात्रया दण्डितोऽ-
वसादं न गच्छेद्विनयं वा ग्राह्येत । अनुबन्धादिविशेषा-
पेक्षया पुरुषगुणापेक्षया च विकल्प आश्रयणीयः । आति-
शयनिकात्पूर्वदण्डात्स्वल्पो दण्ड इति ज्ञापयति । तेन
यस्य बहु वित्तं स्वल्पो निधिस्तत्र निध्यपेक्षां मात्रामष्टमां
अर्वाचीनां दण्ड्यः । सा ह्यल्पीयसी भवति । मेधा.

(२) अस्वीयं स्वीयं ब्रुवन् स्वधनस्याष्टमं भागं
दण्ड्यः । यद्वा तस्यैव निधानस्यात्यन्ताल्पं भागं विम-
ण्य स विषादं न गच्छति विनयं च गृह्णीयात्तं
दण्ड्यः । गुणवदगुणापेक्षया विकल्पः । ÷ गोरा.

(३) तस्यैवेति ब्राह्मणस्य दण्डः । तस्य निधानस्य
शततमो भागो यावान्भागस्तावतीमल्पीयसी कलामंशम् ।
संख्याय व्यवस्थाप्य । मवि.

+ अप., ममु., मच., नन्द. मेधाक्त ।

× मिता. गोरावत् । ÷ ममु., मच. गोरावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३६ ख, संख्याया (संख्यया); अप.
२।३५ पू.; स्मृच. १३४ स्ववि (स वि) पू.; विर. ६४२
दण्ड्यः (दाप्यः) संख्याया (संख्यया); दवि. २८७
मस्मृवत्; सेतु. २९१ संख्याया (मुख्यस्या); प्रका. ८४
स्मृचवत्, पू.; समु. ७३.

(४) स्ववित्तस्य अष्टमं अंशं दण्ड्यः । वा पक्षान्तरं, तस्यैव निधानस्य द्रव्यपूर्णकुम्भस्य संख्यायात्पीयसी कलं तुच्छककलाम् । कला तु षोडशो भाग इत्यमरः । षोडशीं गृह्णीयादित्यर्थः । भाच.

विद्वान्स्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् । अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥

(१) यदा विद्वान् ब्राह्मणः पूर्वंः पित्रादिभिरुपहितं निधिं पश्येत्तदा सर्वमेवाददीत । न राज्ञे पूर्वोक्तं भागं दद्यात् । अस्यार्थवादः सर्वस्याधिपतिर्हि सः । तथा चोक्तं सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदमिति । एतच्चाशेषतो ग्रहणं यो ब्राह्मणस्वामिक एव निधिः । यस्त्वविज्ञातस्वामिकः तस्मिन्विद्वद्ब्राह्मणदृष्टेऽप्यस्त्येव राज्ञो भागः । यतो वक्ष्यति 'निधीनां तु पुराणानाम्' इति । × मेधा.

(२) शास्त्रवित्पुनर्ब्राह्मणः पित्रादिस्थापितं निधिं दृष्ट्वा राज्ञो भागं न दद्यात् । अशेषं गृह्णीयाद्यस्मात्सर्वस्य धनजातस्य ब्राह्मणः प्रभुः इत्यशेषग्रहणार्थवादः । एवं च ममायमिति । अयमविद्वद्ब्राह्मणविषयः क्षत्रि-
यादिविषयश्च । +गोरा.

(३) विद्वद्ग्रहणं षट्कर्मिणोऽप्युपलक्षणार्थम् ।

स्मृच. १३४

(४) विद्वान्पुनर्ब्राह्मणः पूर्वमुपनिहितं निधिं दृष्ट्वा सर्वं गृह्णीयात् । न षड्भागं दद्यात् । यस्मात्सर्वस्य धनजातस्य प्रभुः । अत एवोक्तम् 'सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदम्' इति । तस्मात्परनिहितविषयमेतद्वचनम् । तथा च नारदः— 'परेण निहितं लब्ध्वा राजा ह्यपहरेन्निति । राजा स्वामी निधिः सर्वः सर्वेषां ब्राह्मणादृते ॥' याज्ञ-
चल्क्योऽप्याह—'राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद्द्विजेभ्योऽर्धं द्विजः पुनः । विद्वानशेषमादद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः ॥' अतो यन्मेधातिथिगोविन्दराजाभ्यां 'ममायमिति यो ब्रूयात्' इत्युक्तं, राजदेयार्थनिरासार्थं पित्रादिनिहित-
विषयत्वमेवास्य वचनस्य व्याख्यातं तदनार्थम् । नारदा-

× मवि. मेधावत् । + शेषं मेधावत् ।

(१) मस्मृ. ८।३७ [निधिम् (धनम्) Noted by Jhs]; अप. २।३४; स्मृच. १३४; मपा. २२६ तोऽ-
स्मा (मया); दवि. २८९; प्रका. ८४; समु. ७३
नैवधि (स्वापि).

दिमुनिव्याख्याविपरीतं स्वकल्पितं न मेधातिथिगोविन्द-
राजव्याख्यानमाद्रिये । * ममु.

(५) इति मनुवचने विद्वत्त्वमपि षट्कर्मनिरत-
ब्राह्मणपरमेव । दवि. २८९

[मन्वर्थमुक्तावलीमतं खण्डयति] तत्र यद्यपि नारदवाक्ये सर्वेषामिति षष्ठ्यन्तादुपस्थितेषु स्वामिषु ब्राह्मणादृते इत्यनेन ब्राह्मणस्वामिकस्य निधेः राजगामित्वं प्रतिपिध्यते, न तु ब्राह्मणाधिगतस्य याज्ञवल्क्य-
वाक्ये च ब्राह्मणस्य सर्वप्रभुत्वश्रुतिरर्थवादमात्रं सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदमित्यादिवत् ।

अन्यथा बहुविरोधोऽतिप्रसङ्गश्च स्यादतो न तदभि-
धानवैफल्यापत्तेरपि परनिधिपरत्वं कल्प्यते ।

तथापि राजा लब्ध्वेत्यत्र निधिपदस्य परनिधिर-
त्वध्रौव्यादादद्यादित्यत्रापि तस्यैवान्वयत उपस्थितत्वात् । स च ब्राह्मणस्वामिकोऽपि यदि तत्त्वेन न निश्चीयते तदा तं राजा हरेदेव । अन्यथा अनध्यवसायेनापारग्रहे निधि-
ग्राहकानेकवचनवैफल्यात् ।

अथ यदि निधिपात्रलिखनाद्वा दैवज्ञप्रश्नादेर्वा तत्तथावप्रियते तदा राजापि न हरेत् । ब्राह्मणादृते इति नारदवचनात् । तस्मादेनं प्राप्य ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ब्रह्मस्वं ब्राह्मणो नयेदिति संभूयसमुत्थानप्रकरणीयवृह-
स्पतिवचनसंवादात् ततः सजातिरित्यनपत्यधनप्रकरणीय-
नारदवचनस्वरसाच्च ।

नन्वेवं परस्वादानं ब्राह्मणस्य स्यादिति चेत् न अस्मादेव वचनात् परकीयेऽपि निधौ तस्य स्वत्वाव-
गमात् । 'स्वामी रिक्थक्रयविभागपरिग्रहाधिगमेष्विति गौतमस्मरणाच्च । अधिगमो निध्यादेः प्राप्तिरिति निबन्धेषु व्याख्यानात् । दवि. २९०

ब्राह्मणस्तु निधिं लब्ध्वा क्षिप्रं राज्ञे निवेदयेत् । तेन दत्तं तु भुञ्जीत स्तेनः स्यादनिवेदयन् ॥

यं तु पश्येन्निति राजा पुराणं निहितं क्षितौ । तस्माद्द्विजेभ्यो दत्त्वाऽर्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥

* मच. ममुवत् ।

(१) मस्मृ. ८।३७ इत्यस्योपरिध्यात् प्राक्षिप्तश्लोकोऽयम् ।

(२) मस्मृ. ८।३८; अप. २।३४ यं तु (यत्र)

(१) यो राज्ञा स्वयं निधिरधिगतस्तस्माच्चिधेरयं ब्राह्मणेभ्यो दाननियमो राज्ञः । कोशशब्देन वित्तसंचय-स्थानमुच्यते । पुराणं निहितं क्षिताविति निधिरूपानु-वादः ।

मेधा.

(२) यं पुनः चिरन्तनमस्वामिकं भूमिप्रक्षिप्तं निधि-लभेत तस्मादर्धं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा अर्धमात्मनोऽर्थागारं प्रवेशयेत् ।

+ गोरा.

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ ।

अर्धभागक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥

(१) अन्येनापि दृष्टस्य निधे राज्ञा भागः पूर्वोक्तो ग्रहीतव्य इत्यस्य विधेरर्थवादोऽयं निधीनां हि पुराणाना-मिति । धातूनामेव च क्षितावयं त्वप्राप्तविधिः । सुवर्ण-रूप्यादि बीजम् । मृदः सिन्दूरकालाञ्जनाद्याश्च धातवः । सुवर्णाद्याकरभूमिर्धः खनति यो वा पर्वतादिषु गैरि-कादिधातूनुपजीवति तेनापि पूर्ववद्राज्ञे भागो दातव्यः । अर्धभागिति अर्धशब्दोऽशमात्रवचनः समासनिर्देशात् । यथा ग्रामार्थो नगरार्थमिति । नपुंसकलिङ्गस्तु समप्रवि-भागः । इह तु समासे लिङ्गविशेषप्रतिपत्त्यभावात्पूर्वस्य चशब्दवशात् षड्दशद्वादशादेर्भागस्य प्रकृतत्वात्तद्वचनो विज्ञायते । अर्धं भजत एकदेशं गृह्णातीत्यर्थः । अत्र हेतुः रक्षणादिति । यद्यपि क्षितौ निहितस्य केनचिदज्ञा-नात् राजकीयरक्षोपयुज्यते, तथापि तस्य बलवताऽपहारः संभाव्यते अतोऽस्त्येव रक्षाया अर्थवत्त्वम् । एतदर्थ-मेवाह । भूमेरधिपतिर्हि सः । प्रभुरसौ भूमेस्तदीयायाश्च भुवो यल्लब्धं तत्र युक्तं तस्य भागादानम् । × मेधा.

(२) चिरन्तनानां निधीनामस्वामिकानां अन्येनापि

+ मवि., स्मृच., मसु., मच., नन्द. गोरावत् ।

× नन्द. मेधावत् ।

प्रवे (निवे); स्मृच. १३४ धर्मर्ष (र्षं शेषं) शेषं अपवत् ;

विर. ६४५ यं तु (यत्तु) प्रवे (निवे); मपा. २२६; सेतु. २९३ यं तु (यस्तु) णं नि (णनि) प्रवे (निवे); प्रका.

८४ स्मृचवत् ; ससु. ७३ तस्माद् (तस्य) प्रवे (निवे).

(१) मस्मृ. ८।३९; मेधा. नां तु (नां हि); स्मृच.

१३४ मेधावत् ; विर. ६४५ मेव च क्षितौ (माकरस्य च)

अर्ध...द्राजा (रक्षणादर्धभाग्राजा); मच. मेधावत् ; सेतु. २९३

निधीनां तु (निधानानां) शेषं विरवत् ; प्रका. ८४ मेधावत् ;

संसु. ७३ मेधावत् ; नन्द. मेधावत्.

लब्धानां भूमिगतानां च सुवर्णानां अर्धहरो राज्ञा यस्माद्रक्षणादसौ भूमिस्वामीति ।

गोरा.

(३) धातूनां हेमादीनामाकरस्थानां चकाराद्रत्ना-नां च । रक्षणादिति भूमेरधिपतिरिति च हेतुद्वयम् ।

मवि.

(४) तत् उक्तलक्षणब्राह्मणाधिगतास्मर्धमाणस्वामिक-निधिविषयं, पुराणानामित्यभिधानात् । यत्तु वसिष्ठे-नोक्तम्— ‘अप्रज्ञायमानं वित्तं योऽधिगच्छेद्राजा

तद्धरेदधिगन्त्रे षष्ठमंशं प्रदाय’ इति (वस्मृ. ३।१४) । तदुक्तलक्षणरहिताधिगन्तृविषयम् । स्मृच. १३४

(५) निधीनां पुरातनानामस्वकीयानां विद्वद्ब्राह्मणे-तरलब्धानां सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानानां चार्धहरो राजा । यस्मादसौ रक्षति भूमेश्च प्रभुः ।

+ मसु.

धने चौरहने व्यवस्था

दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम् ।

राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्रोति किल्बिषम् ॥

(१) चौरैः यन्नीतं किञ्चिद्धनं तद्राजा प्रत्याहृत्य नात्मन्युपयुञ्जीत । किं तर्हि य एव मुषितास्तेभ्य एव प्रतिपादयितव्यम् । सर्वग्रहणेन च चण्डालेभ्योऽपि देयमिति । ‘चौराहृतम्’ इत्यन्यस्मिन्पाठे चौरैः समाहृतमिति विग्रह्य साधनं कृतेति समासः । पाठान्तरे चौरहृतमिति तृतीयेति योगविभागात्पूर्ववद्वा समासः । अयं त्वत्रार्थो, यच्चौरैः हृतमशक्यप्रत्यान-यनं तद्राज्ञा स्वकोशादातव्यम् । उत्तरश्लोकार्ध एवं योजनीयः । राजा तदुपयुञ्जान इति । अनेकार्थ-त्वाद्दातूनामुपपूर्वो युजिर्लक्षणया वाऽप्रतिपादन एव द्रष्टव्यः । यो ह्यन्यस्मै प्राप्तकालं धनं न ददाति स्वप्रयोजनेषु विनियुङ्क्ते तेन तदीयमेव तदुपयुक्तं भव-तीति युक्तमुच्यते । राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्रोति किल्बिषं पापम् ।

* मेधा.

+ मच. मसुवत् । अर्धशब्दो मेधावत् ।

* गोरा. मेधावत् ।

(१) मस्मृ. ८।४०; मेधा. चौराहृतं इति, चौरहृतं इति पाठः; मित्ता. २।३६ चौरैर्हृतं (चौरहृतं); अप. २।३६ मित्तावत् ; वीभि. २।३६; व्यम. ८८ युञ्जा (युञ्जा); वित्ता. ५६७ व्यमवत् ; ससु. १५२; नन्द. मित्तावत् ; माच. मित्तावत्.

(२) यच्चौरैर्हृतं लोकानां धनं तद्राज्ञा चौरैभ्यश्चा-
हृतं धनं तेभ्यो देयम् । यस्मात् राजा स्वीकुर्वन् चौरस्य
यावत्पापं तावत्प्राप्नोति । +गोरा.

(३) यद्धनं चौरैर्लोकानामपहृतं तद्राज्ञा चौरैभ्य
आहृत्य धनस्वामिभ्यो देयम् । तद्धनं राजा स्वयमुप-
युञ्जानश्चौरस्य पापं प्राप्नोति । +मसु.

याज्ञवल्क्यः

प्रनष्टस्वामिकधनव्यवस्था

प्रनष्टाधिगतं देयं नृपेण धनिने धनम् ।

विभावयेन्न चेच्छिञ्जेस्तत्समं दण्डमर्हति ॥

(१) यस्माच्च राजा व्यवहारविधावभ्यो दण्ड-
धरः, तस्मात्—‘प्रनष्टाधिगतं देयं नृपेण धनिने धनम् ।
विभावयेन्न चेच्छिञ्जेस्तत्समं दण्डमर्हति ॥’ कस्यचित्
प्रनष्टं यदि राजान्येन वाधिगतं लब्धं तद् यदि धनिना
प्रार्थ्यते । ततः, किं तत्, कियत्संख्यं चेत्येवं पृष्ट्वावि-
संवादकस्यान्विष्यार्पणीयम् । न चेदेवं विभावयेत् तत्समं
दण्ड्यः । विश्व. २।३५

(२) परावर्त्य व्यवहारमुक्त्वा इदानीं परावर्त्य
द्रव्यमाह— प्रनष्टाधिगतमिति । प्रनष्टं हिरण्यादि शौल्कि-
कस्थानपालादिभिरधिगतं राज्ञे समर्पितं यत्तद्राज्ञा धनिने
दातव्यम् । यदि धनी रूपसंख्यादिभिर्लिङ्गैर्भावयति ।
यदि न भावयति तदा तत्समं दण्ड्यः । असत्यवादि-
त्वात् । अधिगमस्य स्वत्वनिमित्तत्वात्स्वत्वे प्राप्ते तत्परा-
वृत्तिरनेनोक्ता । अत्र च कालावधिं वक्ष्यति—‘शौल्कि-
कैः स्थानपालैर्वा नष्टापहृतमाहृतम् । अर्वाक्संवत्सरात्स्वामी
हरेत् परतो नृपः ॥’ इति । मनुना पुनः संवत्सत्रयमव-
धिन्वेन निर्दिष्टम्—‘प्रनष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं
निधापयेत् । अर्वाक्यब्दाद्धरेत्स्वामी परतो नृपतिर्हरेत् ॥’
इति । तत्र वर्षत्रयपर्यन्तमवश्यं रक्षणीयम् । तत्र यदि
संवत्सरादर्वाक् स्वाम्यागच्छेत्तदा कृत्स्नमेव दद्यात् ।
यदा पुनः संवत्सरादूर्ध्वमागच्छति तदा षड्भागं रक्षण-

+ नन्द. गोरावत् ।

+ मवि., मच., भाच. मसुवत् ।

(१) यास्य. २।३३; अपु. २५३।६१-२ दण्ड (दातु);
विश्व. २।३५; मित्ता.; अप.; गौमि. १०।३७; स्मृच.
१३३ पू.; दवि. २७२; सवि. ४९० देयं (द्रव्यं); वीमि.;
वित्ता. ५६३; प्रका. ८४ पू.; समु. ७२.

मूल्यं गृहीत्वा शेषं स्वामिने दद्यात् । यथाह— ‘ आद-
दीताथ षड्भागं प्रनष्टाधिगतान्दृपः । दशमं द्वादशं
वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥’ इति । तत्र प्रथमे वर्षे
कृत्स्नमेव दद्यात्, द्वितीये द्वादशं भागं, तृतीये दशमं,
चतुर्थादिषु षष्ठं भागं गृहीत्वा शेषं दद्यात् । राजभागस्य
चतुर्थोऽशोऽधिगन्त्रे दातव्यः । स्वाम्यनागमे तु कृत्स्नस्य
धनस्य चतुर्थमंशमधिगन्त्रे दत्त्वा शेषं राजा गृह्णीयात् ।
तथाह गौतमः—‘प्रनष्टस्वामिकमधिगम्य संवत्सरं राज्ञा
रक्ष्यमूर्ध्वमधिगन्तुश्चतुर्थोऽशो राज्ञः शेषम्’ इति । अत्र
संवत्सरमित्येकवचनमविवक्षितम् । ‘राजा त्र्यब्दं निधाप-
येत्’ इति स्मरणात्—‘हरेत् परतो नृपः’ इत्येतदपि
स्वामिन्यनागते व्यब्दादूर्ध्वं व्ययीकरणाभ्यनुज्ञापरम् ।
ततः परमागते तु स्वामिनि व्ययीभूतेऽपि द्रव्ये राजा
स्वांशमवतार्य तत्समं दद्यात् । एतच्च हिरण्यादिविषयम् ।
गवादिविषये वक्ष्यति—‘पणानेकशफे दद्यात्’ इत्यादिना ।
मिता.

(३) न चेद्विभावयति तदा स्तेयप्रवृत्तत्वात्प्रनष्टद्रव्य-
समेन धनेन दण्डनीयः । +अप.

(४) ‘व्यवहारान्न यः पश्ये’दित्युक्तं तत्र न केवल-
मुक्तलक्षण एव व्यवहारो द्रष्टव्यः, किन्तु प्रतिवादिशून्यो-
ऽपि साक्ष्यादिनिबन्धननिर्णयफलकतया पराजयनिबन्धन-
दण्डग्रहणफलकतया च व्यवहारप्रतिरूपकः संदिह्यमान-
स्वत्वनिध्यादौ ममायमिति प्रतिज्ञातत्साधकप्रमाण-
निर्देशरूपोऽपि तथेत्यभिप्रेत्य निध्यादौ व्यवस्थामाह
चतुर्भिः—‘प्रनष्टाधिगतमिति । निधिस्तावत्पूर्वनिखातं
चिरप्रतिष्ठं धनम् । तच्च स्वस्वपित्रादिनिहितपरनिहित-
भेदाद्द्विधा । तत्राद्यं प्रनष्टमथाऽधिगतं धनिना
राजपुरुषादिना धनं निधिरूपं वा धनिने ममेदं
घनमिति ब्रुवते नृपेण देयं चेत् लिङ्गैः प्रमाणैस्तद्धनं
विभावयेत् स्वीयतया प्रमापयेत् । न चेद्विभावयेत्तदा
विवादविषयीभूतनिधिसमं दण्डं तादृगनृताभिधानापर-
ाधेनार्हति । वीमि.

हृतं प्रनष्टं यो द्रव्यं परहस्तादवाप्नुयात् ।

अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षण्णवर्ति पणान् ॥

+ शेषं विश्ववत् ।

(१) यास्य. २।१७२; अपु. २५७।२३; विश्व.

(१) यतश्चैतदेवं अतः— 'हृतं प्रनष्टं यो द्रव्यं पर-
हस्तादवान्नुयात् । अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षण्णवति
पणान् ॥' स्पष्टार्थः श्लोकः । विश्व. २।१७६

(२) तस्करस्य प्रच्छादकं प्रत्याह— हृतमिति । हृतं
प्रनष्टं वा चौरादिहस्तस्थं द्रव्यं अनेन मदीयं द्रव्यमप-
हृतमिति नृपस्यानिवेद्यैव दर्पादिना यो गृह्णाति असौ
षडुत्तरान्नवति पणान् दण्डनीयः । तस्करप्रच्छादकत्वेन
दुष्टत्वात् । *मिता.

(३) अव्यवस्थायां मूलधनानुसारेण वृद्धिक्षयी ।
व्यवस्थायां तु व्यवस्थानुसारेणैव तावित्यर्थः । विचि. ४५

(४) अस्वामिनो विक्रेतुस्तत्सकाशात् क्रेतुश्च प्रच्छा-
देन स्वामिनो दण्डमाह—हृतमिति । तुशब्देन निवेदने
दण्डं व्यवच्छिन्नमिति । वीमि.

शौलिकैः स्थानपालैर्वा नष्टापहतमाहृतम् ।

अर्वाकसंवत्सरात्स्वामी हरेत् परतो नृपः ॥

(१) अर्वाकं संवत्सरात् स्वामी गृह्णीयात् । परतो
नृपतिर्गृह्णीयात् । विश्व. २।१७७

(२) राजपुरुषानीतं प्रत्याह— शौलिकैरिति ।
यदा तु शुल्काधिकारिभिः स्थानरक्षिभिर्वा नष्ट-
मपहृतं द्रव्यं राजपार्श्वं प्रत्यानीतं तदा संवत्सरादर्वाकं
प्राप्तश्चेत् नाष्टिकस्तद्द्रव्यमवाप्नुयात् । ऊर्ध्वं पुनः संवत्स-

* अप., स्मृच., विर., पमा., दवि., व्यप्र., विता.
मितावत् ।

२।१७६; मिता.; अप.; व्यक. १३८; स्मृच. २१३;
विर. ११०; पमा. २९१; विचि. ४४; व्यति. २७६;
स्मृचि. १७; दवि. ३२९; नृप्र. १७१; सवि. ४९५
(=); वीमि.; व्यप्र. २९२; विता. ५७४; राकौ. ४६८;
सेतु. १४०; समु. १०४.

(१) यास्मृ. २।१७३; अणु. २५७।२४ शौलिक
(शौलिक) हरेत् (लभते); विश्व. २।१७७ हरेत् (लभते);
मिता. २।३३, १७३; अप.; व्यक. ११८; स्मृच. १३३;
विर. ३४६; विचि. १४८ हरेत् (हरेत्); सवि. ४९०
पूर्वार्धे (शौलिके स्थानपाले वा निष्टापहतमाहृतम्) त पर
(त्तर); वीमि.; व्यप्र. २९७; व्यम. ८७; विता.
५६३ त पर (त्तर); राकौ. ४६८ हरेत् (उद्धरेत्);
सेतु. २५१ विचिवत्; प्रका. ८४; समु. ७२; विव्य. ५३
विचिवत्.

व्य. कां. २४६

राद्राजा गृह्णीयात् । स्वपुरुषानीतं च द्रव्यं जनसमूहेषु
द्वेष्य यावत्संवत्सरं राज्ञा रक्षणीयम् । यथाह गौतमः—
'प्रनष्टस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुर्विख्यातं संवत्सरं
राज्ञा रक्ष्यम्' इति । यत्पुनर्मनुना विध्यन्तरमुक्तम्—
'प्रनष्टस्वामिकं द्रव्यं राजा त्र्यब्दं निघापयेत् । अर्वाकं
त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परतो नृपतिर्हरेत् ॥' इति तत् श्रुत-
वृत्तसंपन्नब्राह्मणविषयम् । रक्षणनिमित्तषड्भागादिग्रहणं
च तेनैवोक्तम्—'आददीताथ षड्भागं प्रनष्टाधिगतात्
नृपः । दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥'
इति (मस्मृ. ८।३३) । तृतीयद्वितीयप्रथमसंवत्सरेषु
यथाक्रमं षष्ठादयो भागा वेदितव्याः । प्रपञ्चितं
चैतत्पुरस्तात् । + मिता.

(३) प्रनष्टाधिगतं संवत्सरादर्वागेव ग्रहीतुम-
र्हीत्याह याज्ञवल्क्यः—शौलिकैरिति । स्मृच. १३३

पणानेकशफे दद्याच्चतुरः पञ्च मानुषे ।

महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके ॥

(१) पारितोषिकान् राज्ञे—'पणानेकशफे दद्याच्चतुरः
पञ्च मानुषे । महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके ॥'
विश्व. २।१७८

(२) मनूक्तषड्भागादिग्रहणस्य द्रव्यविशेषेऽपवाद-
माह—पणानेकशफे दद्यादिति । एकशफे अश्वदौ
प्रनष्टाधिगते तत्स्वामी राज्ञे रक्षणनिमित्तं चतुरः
पणान् दद्यात् । मानुषे मनुष्यजातीये द्रव्ये पञ्च
पणान् । महिषोष्ट्रगवां रक्षणनिमित्तं प्रत्येकं द्वौ द्वौ
पणौ अजाविके पुनः प्रत्येकं पादं पादम् । दद्यादिति
सर्वत्रानुषण्यते । अजाविकमिति समासनिर्देशेऽपि पादं
पादमिति वीप्साबलात्प्रत्येकं संबन्धोऽवगम्यते ।

× मिता.

+ अप., वीमि. मितावत् ।

× स्मृतिचन्द्रिकायां मिताक्षराऽपरार्कानुवादः । वीमि.
मितवत् ।

(१) यास्मृ. २।१७४; अणु. २५७।२५; विश्व.
२।१७८; मिता.; अप.; व्यक. ११८; स्मृच. १३३;
विर. ३४६; दवि. २७४ गवां द्वौ (गवादौ); नृप्र. १७४;
वीमि.; व्यम. ८७; राकौ. ४६९; सेतु. २५२ मानुषे
(मानुके); प्रका. ८४; समु. ७२-३.

(३) द्रव्यविशेषं प्रति यावदधिगमे देयं तदाह—
पणानिति । एतच्च प्रतिव्यक्तिं देयम् । न तु प्रतिजाति ।
× अप.

निधिव्यवस्था

राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद्द्विजेभ्योऽर्धं

द्विजः पुनः ।

विद्वानशेषमादद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः ॥

(१) यत्तत्सन्नस्वामिकं निध्यादिकं तत्र का कथा ।
उच्यते—राजा लब्ध्वा निधिं दद्यादिति । स सर्वस्य
प्रभुरित्यनेन प्रतिग्रहाद्यभावेऽपि स्वत्वसंबन्धोऽस्तीति
ज्ञापयति । * विश्व. २।३६

(२) रथ्याशुल्कशालादिनिपतितस्य सुवर्णादेर्नष्टस्या-
धिगमे विधिमुक्त्वा अधुना भूमौ चिरनिखातस्य सुव-
र्णादेर्निधिशब्दवाच्यस्याधिगमे विधिमाह— राजेति ।
उक्तलक्षणं निधिं राजा लब्ध्वा अर्धं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा
शेषं कोशे निवेशयेत् । ब्राह्मणस्तु विद्वान् श्रुताध्य-
यनसंपन्नः सदाचारो यदि निधिं लभेत तदा सर्वमेव
गृह्णीयात् । यस्मादसौ सर्वस्य जगतः प्रभुः । मिता.

इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्टांशमाहरेत् ।

अनिवेदितविज्ञातो दाप्यस्तं दण्डमेव च ॥

(१) इतरेण ब्राह्मणेनैवानभिरूपेणेत्यर्थः । गौतमीयं
त्वब्राह्मणविषयं 'निध्यधिगमो राजधनम्' इति । यावान्
निध्यधिगमः स सर्वो राजधनमित्यर्थः । तथा च

× शेषं मितवत् ।

* अप., वीमि., विश्ववत् ।

(१) यास्मृ. २।३४; विश्व. २।३६; मिता.; अप.;
समु. ८।३७; विर. ६।४३-४; व्यनि. ५३३ निधिं (निधीन्);
द्वि. २८९; दात. १८३; वीमि.; व्यम. ८८; विता.
५६४ लब्ध्वा निधिं (लब्धनिधिः); सेतु. २९२; समु.
७३; विच. ९७.

(२) यास्मृ. २।३५; विश्व. २।३७ स्तं द (स्तद्);
मिता.; अप.; स्मृच. १३४ माहरेत् (माणुयात्); विर.
६।४४ ज्ञातो (ज्ञातं) शेषं विश्ववत्; व्यनि. ५३३ दाप्यस्तं
(राक्षस्तद्); द्वि. २८७ पू.: २९२ उक्त.; दात. १८३;
मच. ८।३९ अनि (अना); वीमि.; व्यम. ८८ ज्ञातो
(ज्ञानो); विता. ५६४; सेतु. २९२ पू.; प्रका. ८४
स्मृचवत्, पू.; समु. ७३; विच. ९७

'न ब्राह्मणस्यानभिरूपस्य' इत्युक्त्वाह— 'अब्राह्मणोऽ-
प्याख्याता षष्ठं लभेतेत्येके' इति । अनाख्याय तु गृह्णन्
ब्राह्मणोऽपि सर्वमादाय शक्त्यनुरूपेण दण्ड्यः स्यात् ।
विद्वान्स्तु 'स सर्वस्य प्रभुरिति वचनादनाख्यायापि
गृह्णन् न दोषभागित्यर्थः । विश्व. २।३७

(२) इतरेण तु राजविद्वद्ब्राह्मणव्यतिरिक्तेन अविद्व-
द्ब्राह्मणश्चात्रियादिना निधौ लब्धे राजा षष्टांशमधिगन्त्रे
दत्त्वा शेषं निधिं स्वयमाहरेत् । यथाह वसिष्ठः—'अप्रज्ञा-
यमानं चित्तं योऽधिगच्छेद्राजा तद्धरेत् षष्टमंशमधिगन्त्रे
दद्यात्' इति । गौतमोऽपि—'निध्यधिगमो राजधनं
भवति, न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य, अब्राह्मणोऽप्याख्याता
षष्टमंशं लभेतेत्येके' इति । अनिवेदित इति कर्तरि
निष्ठा । अनिवेदितश्चासौ विज्ञातश्च राज्ञोऽप्यनिवेदित-
विज्ञातः, यः कश्चिन्निधिं लब्ध्वा राज्ञे न निवेदितवान्
विज्ञातश्च राज्ञा स सर्वं निधिं दाप्यो दण्डं च शक्त्य-
पेक्षया । अथ निधेरपि स्वाम्यागत्य रूपसख्यादिभिः
स्वत्वं भावयति तदा तस्मै राजा निधिं दत्त्वा षष्ठं
द्वादशं वांशं स्वयमाहरेत् । यथाह मनुः—'ममायमिति
यो ब्रूयन्निति सत्येन मानवः । तस्याददीत षड्भागं
राजा द्वादशमेव वा ॥' इति (मस्मृ. ८।३५) । अंश-
विकल्पस्तु वर्णक्रमानुपेक्षया वेदितव्यः । + मिता.

पने चौरहृते व्यवस्था

देयं चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जानपदाय तु ।

अददद्धि समाप्नोति किल्बिषं यस्य तस्य तत् ॥

(१) यतश्च निध्यादिष्वस्वामिकेषु राज्ञः प्रभुत्वं,
तत एव च—'देयं चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जनपदाय तु ।'
कस्मात् । यस्माद्—'अददद्धि समाप्नोति किल्बिषं तस्य
यस्य तत् ।' पालकत्वेन हि राजगामिता निध्यादेः ।
पालकश्चेत् किमिति परकीयं चोरादिहृतं न प्रयच्छेदित्य-
भिप्रायः । जनपदग्रहणं सर्वार्थम् । न ब्राह्मणायैवेत्यर्थः ।

+ अप., वीमि. मितवत् ।

(१) यास्मृ. २।३६; अपु. २५३।६२ जान (जन);
विश्व. २।३८ जान (जन) यस्य तस्य (तस्य यस्य);
मिता.; अप. विश्ववत्; व्यनि. ५३२ अपुवत्, पू., नारदः;
द्वि. ८५ तु (च) दद्धि (दत् स) यस्य तस्य (तस्य
यस्य); वीमि.; विता. ५६७ अद (आद) यस्य तस्य (तस्य
यस्य); समु. १५२.

तथा च बृहस्पतिः—‘चौरापहृतं तु सर्वेभ्योऽन्विष्याग्नीयं अलाभे स्वकोशाद् वा, अददच्चोरकिखिषी स्यात्’ इत्यादि । विश्व. २।३८

(२) चौरहृतं प्रत्याह—देयमिति । चौरैर्हृतं द्रव्यं चौरभ्यो विजित्य जानपदाय स्वदेशनिवासिने यस्य तत् द्रव्यं तस्मै राज्ञा दातव्यम् । हि यस्मात् अददत् अप्रयच्छन् यस्य तदपहृतं द्रव्यं तस्य किल्बिषमाप्नोति । तस्य चोरस्य च । यथाह मनुः—‘दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम् । राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥’ इति । यदि चौरहस्तादादाय स्वयमुपभुङ्क्ते तदा चौरस्य किल्बिषमाप्नोति । अथ चौरहृतमुपेक्षते तदा जानपदस्य किल्बिषम् । अथ चौरहृताहरणाय यतमानोऽपि न शक्नुयादाहृतं तदा तावद्धनं स्वकोशाद् दद्यात् । यथाह गौतमः—‘चौरहृतमवजित्य यथास्थानं गमयेत्कोशाद् दद्यात्’ इति । कृष्णद्वैपायनोऽपि—‘प्रत्याहृतं न शक्तस्तु धनं चौरैर्हृतं यदि । स्वकोशात्तद्धि देयं स्यादशक्तेन महीक्षिता ॥’ इति । + मिता.

नारदः

निधिव्यवस्था

परेण निहितं लब्ध्वा राजन्युपहरेन्निधिम् ।
राजगामी निधिः सर्वः सर्वेषां ब्राह्मणादृते ॥
परेण निहितं निधिं यो लभेत स राज्ञे दौकयेत् ।
अत्र हेतुमाह—अस्वामिकं राजगामि यतः सर्वं तस्मात् तस्योपहरेद् ब्राह्मणवर्जम् । तेन यल्लब्धं तदात्मन एव । इतरो यद् राजा तुष्टो ददाति तदेव लभत इति ।

नामा. ८।६ (पृ. १०७)

ब्राह्मणोऽपि निधिं लब्ध्वा क्षिप्रं राज्ञे निवेदयेत् ।
तेन दत्तं च भुञ्जीत स्तेनः स्यादनिवेदयन् ॥

+ अप., वीमि. मितावत् ।

(१) नासं. ८।६; नास्मृ. १०।६; मसु. ८।३७ राजन्यु (राजा ह्य); विर. ६४३; मपा. २२६ राजन्यु (राजैवो); दीक. ३४-५; दवि. २८९ : २९२ पू.; नृप्र. १७४ परेण निहितं (चिरेण पिहितं); सेतु. २९२ लब्ध्वा (दृष्ट्वा).

(२) नासं. ८।७; नास्मृ. १०।७; विर. ६४३ राज्ञे निवे (राजनि वे) च (तु) वेदयन् (वेदने); मपा. २२७ च (तु); दीक. ३५ मपावत्; दवि. २९२ च (तु)

ब्राह्मणोऽपि लब्ध्वा निधिं राज्ञे निवेदयेत् अयं मया लब्ध इति । तेनानुज्ञातो भुञ्जीत, अन्यथा चोरः स्यात् ।

नामा. ८।७ (पृ. १०७)

प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था

अस्वामिकमदायाद् दशवर्षस्थितं ततः ।

राजा तदात्मसात्कुर्यादेवं धर्मो न हीयते * ॥

अस्वामिकं प्रमीतस्वामिकमदायाद् दद्यादादिक्रकथ-हरशून्यम् । अत्र च एकाब्दव्यब्ददशाब्दानां शङ्कित-दूरदूरतरदूरतमाद्यवस्थितदायादागमनापेक्षया व्यवस्था कार्या । विर. ११७

स्वमप्यर्थं तथा नष्टं लब्ध्वा राज्ञे निवेदयेत् ।

गृहीयात्तत्र तं शुद्धमशुद्धं स्यात्ततोऽन्यथा ॥

आत्मीयमप्यर्थं नष्टमित्यवघोषितं पुनर्लभेत चेत् तथैव राज्ञे निवेदयेत् । अनुज्ञातं तच्छुद्धं भवति, अशुद्धमन्यथा स्यात् । नामा. ८।८ (पृ. १०७)

धने चोरहृते व्यवस्था

स्तेनेष्वलभ्यमानेषु राजा दद्यात् स्वकाद् धनात् ।

उपेक्षमाणो ह्येनस्वी धर्मादर्थोच्च हीयते × ॥

बृहस्पतिः

प्रनष्टास्वामिकधनव्यवस्था

राजाददीत षड्भागं नवमं द्वादशं तथा ।

शुद्रविद्विद्विज्जातीनां विप्राद्गृहीत विशकम् ॥

* स्थलादिनिर्देशः संभूयस्सुस्थानप्रकरणे (पृ. ७८२) द्रष्टव्यः ।

× व्याख्यानं स्थलादिनिर्देशश्च स्तेयप्रकरणे (पृ. १७५७) द्रष्टव्यः ।

वेदयन् (वेदने) उक्त. ; नृप्र. १७४ क्षिप्रं राज्ञे (क्षत्रियाय) पू. ; सेतु. २९२ दविवत् .

(१) नासं. ८।८ शुद्धं स्यात् (शुद्धः स्याद्); नास्मृ. १०।८; विर. ६४२ तत्र तं (तु ततः); नृप्र. १७४ उक्त-रार्थे (गृह्णन् शुद्धोऽप्यशुद्धः स्यात्ततो द्रष्टव्यस्तु नान्यथा) उक्त. ; सेतु. २९१ लब्ध्वा राज्ञे (लब्धं राशि) तत्र तं (तु ततः) शेषं नासंवत् .

(२) व्यक. १४०; विर. ११६; विचि. ४७ द्वादशं (दशमं); व्यनि. २८१ जातीनां (जातानां); बाल. २।१७३; सेतु. १४३; ससु. ७२ व्यनिवत्; विच्य. ३५ नारदः .

त्र्यब्दादूर्ध्वं तु नागच्छेद्यत्र स्वामी कथञ्चन ।
तदा गृहीत तद्राजा ब्रह्मस्वं ब्राह्मणान् श्रयेत् ॥
ब्राह्मणान् श्रयेत् अन्यब्राह्मणेभ्योऽर्पयेदित्यर्थः ।

विर. ११६

चोरोपहृतं तु सर्वेभ्योऽन्विष्यार्पणीयं अलाभे
स्वकोशाद्वा, अददच्चोरकिल्बिषी स्यात् ।

व्यासः

धने चोरहते व्यवस्था

प्रत्याहर्तुमशक्तस्तु धनं चौरैर्हृतं यदि ।
स्वकोशात्तद्धि देयं स्यादशक्तेन महीक्षिता * ॥

उशाना

निधिव्यवस्था

विद्याभिजनयुक्तान् पूर्वदृष्टप्रमाणान्वृद्धान्निधि-
पालने नियुञ्ज्यात् ।

* स्थलादिनिर्देशः स्तेयप्रकरणे (पृ. १७६५) द्रष्टव्यः ।

(१) व्यक. १४० अत्र (तत्र); विर. ११६; विचि. ४८
त्र्यब्दा (अब्दा) ब्राह्मणान् (ब्राह्मणं); व्यनि. २८२
विचिवत्; बाल. २।१७३ व्यकवत्; सेतु. १४३ ब्राह्मणान्
(ब्राह्मणं); समु. ७२ विचिवत्; विच्य. ३५ विचिवत्,
नारदः.

(२) विश्व. २।३८.

(३) मभा. १०।३६.

अग्निपुराणम्

निधिव्यवस्था

कोषे प्रवेशयेदर्धं नित्यं चार्धं द्विजे ददेत् ।
निधिं द्विजोत्तमः प्राप्य गृहीयात्सकलं तथा ॥
चतुर्थमष्टमं भागं तथा षोडशमं (कं) द्विजः ।
वर्णक्रमेण दद्याच्च निधिं पात्रे तु धर्मतः ॥

प्रनष्टस्वामिकथनव्यवस्था

अनृतं तु वदन्दण्ड्यः सुवित्तस्यांशमष्टमम् ।
प्रनष्टस्वामिकमृकथं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ॥
अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ।
ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽर्थयुक्तो यथाविधि ॥
संपाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥

बालानाथधनव्यवस्था

बालदायादिकमृकथं तावद्राजाऽनुपालयेत् ।
यावत्स्यात्स समावृत्तो यावद्वाऽतीतशैशवः ॥
बालपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥
जीवन्तीनां तु तासां ये संहरेयुश्च बान्धवाः ।
तान् शिष्याञ्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥

धने चोरहते व्यवस्था

सामान्यतो हृतं चौरैस्तद्वै दद्यात्स्वयं नृपः ।
चौररक्षाधिकारिभ्यो राजाऽपि हृतमाप्नुयात् ॥
अहते यो हृतं ब्रूयान्निःसार्यो दण्ड्य एव सः ।
न तद्राज्ञा प्रदातव्यं गृहे यद्गृहगैर्हृतम् ॥

(१) अणु. २२३।१४-२३.

परिशिष्टम्

व्यवहारस्वरूपम्

गौतमः

व्यवहारविभागाः

द्विरुत्थानो द्विगतिः * ।

व्यवहार इत्यनुषज्यते । तत्र निबन्धनकारेण ऋणादानादिदायविभागान्तानां देयनिबन्धनता साहसादिपञ्चकस्य दण्डनिबन्धनत्वमिति द्विरुत्थानतेत्यर्थ इति । यद्यपि मन्वादिभिः—‘तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः । संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः । क्रयविक्रयानुशयौ विवादः स्वामिपालयोः ॥ सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके । स्तेर्यं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ स्त्रीपुंघर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च । पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारं विदुर्बुधाः ॥’ इत्येवमुक्तप्रकारेण क्रमिकाणि व्यवहारपदान्युक्तानि । अत्र वाक्पारुष्यं दण्डपारुष्यं-स्त्रीसंग्रहणानन्तरं दायविभागः क्रमिकः, निबन्धनकारेण तु-त्रयोदशविवादपदं दाय इत्युक्तम् । उभयोर्महान् विरोधः । स

* अस्मिन् प्रकारेण पूर्वं (पृ. १) एतद्वचनं समुद्धृतमपि तत्र टीकायाः संपूर्णतयाऽनुद्धारादत्र पुनरुद्धृतम् ।

(१) सवि. ४५०.

परिह्रियते, तथोक्तं नारदेन—‘ऋणादानं ह्युपनिधिः संभूयोत्थानमेव च । दत्तस्य पुनरादानं अशुश्रूषाऽभ्युपेत्य च ॥ वेतनस्यानपकर्मं तथैवास्वामिविक्रयः । विक्रीयासंप्रदानं च क्रीत्वानुशय एव च ॥ समयस्यानपकर्म विवादः क्षेत्रजस्तथा । स्त्रीपुंसयोश्च संबन्धो दायभागोऽथ साहसम् ॥ वाक्पारुष्यं तथा प्रोक्तं दण्डपारुष्यमेव च । द्यूतं प्रकीर्णकं चैव..... ॥’ इति नारदवचनानुसारिनिबन्धनकारवचनम् । अतश्च तद्व्याख्येयस्यापि गौतमसूत्रस्य नारदवचनानुसारित्वमेव । एतदनुसारेणैवास्माभिरप्युक्ता विवादपदानां संगतिः । अतश्च ऋणादानादिदायविभागान्तानां देयनिबन्धनत्वेन प्रतिपादनं साहसादिपञ्चकस्य दण्डनिबन्धनत्वमिति सूचयितुं ‘अथ साहसमि’त्यथशब्दः प्रयुक्तः । अतश्च देयप्रतिपादनानन्तरं दण्डप्रतिपादनस्यावसर इति संगतिः । अत्रापि वाक्पारुष्यदण्डपारुष्याणां परस्परं भेदाभावेऽपि दण्डाल्यत्वमहत्त्वार्थं पृथगग्रहणम् । अतश्च प्रकरणत्रयस्यापि संगतिरुक्तैव । अनेन विज्ञानयोगिना यदुक्तं विवादपदानां परस्परं संगतिर्नास्तीति, तत्परास्तं वेदितव्यम् ।

सवि. ४५०-५१

सभा

-

महाभारतम्

सभ्यैः सत्यमेव वक्तव्यम्

सभां प्रपद्यते ह्यार्तः प्रज्वलन्निव हव्यवाद् ।
तं वै सत्येन धर्मेण सभ्याः प्रशमयन्त्युत ॥
धर्मप्रश्नमतो ब्रूयादार्थः सत्येन मानवः ।
विब्रूयुस्तत्र तं प्रश्नं कामक्रोधबलातिगाः ॥
यो हि प्रश्नं न विब्रूयाद्धर्मदर्शी सभां गतः ।
अनृते या फलावाप्तिस्तस्याः सोऽर्थं समश्नुते ॥

(१) भा. २।६८।६०, ६१, ६३, ७७-८०.

विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्रोपपद्यते ।

न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥

अर्धं हरति वै श्रेष्ठः पादो भवति कर्तुषु ।

पादश्चैव सभासत्सु ये न निन्दन्ति निन्दितम् ॥

अनेना भवति श्रेष्ठो मुच्यन्ते च सभासदः ।

एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्दते ॥

वितथं तु वदेयुर्ये धर्मं प्रल्हाद् पृच्छते ।

इष्टापूर्तं च ते घ्नन्ति सप्त सप्त परावरान् ॥

साक्षी

महाभारतम्

शृणुसाक्ष्यनिन्दा । साक्षिणां सत्यवचनापवादविषयः ।
 पृष्ठो हि साक्षी यः साक्ष्यं जानमानोऽन्यथा वदेत् ।
 स पूर्वानात्मनः सप्त कुले हन्यात्तथा परान् ॥
 आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च
 चौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
 अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये
 धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥
 न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति
 न स्त्रीषु राजन्न विवाहकाले ।
 प्राणात्यये सर्वधनापहारे
 पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥
 पृष्ठं तु साक्ष्ये प्रवदन्तमन्यथा
 वदन्ति मिथ्योपहितं नरेन्द्र ।
 एकार्थतायां तु समाहितायां
 मिथ्या वदन्तमनृतं हिनस्ति ॥
 ज्ञानन्नविब्रुवन्प्रश्नान्कामात्क्रोधाद्भयात्तथा ।
 सहस्रं वारुणान् पाशानात्मनि प्रतिमुञ्चति ॥
 साक्षी वा विब्रुवन्साक्ष्यं गोकर्णशिथिलश्चरन् ।
 सहस्रं वारुणान्पाशानात्मनि प्रतिमुञ्चति ॥
 तस्य संवत्सरे पूर्णे पाश एकः प्रमुच्यते ।
 तस्मात्सत्यं तु वक्तव्यं जानता सत्यमञ्जसा ॥

(१) भा. (भाण्डा.) १।७।३.

(२) भा. (भाण्डा.) १।६।२९.

(३) भा. (भाण्डा.) १।७।१६, १७.

(४) भा. २।६।७४-८५.

विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्रोपपद्यते ।
 न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥
 अर्धं हरति वै श्रेष्ठः पादो भवति कर्तृषु ।
 पादश्चैव सभासत्सु ये न निन्दन्ति निन्दितम् ॥
 अनेना भवति श्रेष्ठो मुच्यन्ते च सभासदः ।
 एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥
 वितथं तु वदेयुर्ये धर्मं प्रल्हादं पृच्छते ।
 इष्टापूर्तं च ते घ्नन्ति सप्त सप्त परावरान् ॥
 हृतस्वस्य हि यद्दुःखं हतपुत्रस्य चैव यत् ।
 ऋग्निः प्रति यच्चैव स्वार्थाद्भ्रष्टस्य चैव यत् ॥
 स्त्रियाः पत्या विहीनाया राज्ञा प्रस्तस्य चैव यत् ।
 अपुत्रायाश्च यद्दुःखं व्याघ्राघ्रातस्य चैव यत् ॥
 अध्यूदायाश्च यद्दुःखं साक्षिभिर्विहतस्य च ।
 एतानि वै समान्याहुर्दुःखानि त्रिदिवेश्वराः ॥
 तानि सर्वाणि दुःखानि प्राप्नोति वितथं ब्रुवन् ॥

साक्षिलक्षणम्

समक्षदर्शनात्साक्षी श्रवणाच्चेति धारणात् ।
 तस्मात्सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥
 कुलीनस्त्रियः सभायां न नेयाः
 धर्म्या स्त्रियं सभां पूर्वे न नयन्तीति नः श्रुतम् ।
 स नष्टः कौरवे येषु पूर्वो धर्मः सनातनः ॥

अग्निपुराणम्

कौटसाक्ष्यदण्डः

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन् वर्णांश्च प्रदापयेत् ।
 विवासयेत् ब्राह्मणं तु भोज्यो (अन्यो) विधिर्न
 हीरितः ॥

(१) भा. २।६९।९. (२) अपु. २२।७।७, ८.

दिव्यम्

महाभारतम्

अग्निविधिः

त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि नित्यदा ।

(१) भा. (भाण्डा.) १।५।२३.

साक्षिवत्पुण्यपापेषु सत्यं ब्रूहि कवे वचः ॥
 धर्मे प्रयतमानस्य सत्यं च वदतः समम् ।
 पृष्ठो यद्ब्रुवं सत्यं व्यभिचारोऽत्र को मम ॥

(१) भा. (भाण्डा.) १।७।२.

स्कन्दपुराणम्

शपथकोशधटविषापिनतप्तमापफालतन्दुलजलानि दिव्यानि
एवंविधस्त्रसौ देवो भट्टादित्योऽत्र तिष्ठति ।
भूयानतोऽपि बहुशः पापहा धर्मवर्धनः ॥
दिव्यमष्टविधं चात्र सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
पापानां चोपमुक्तं हि यथा पार्थ हलाहलम् ॥

अर्जुन उवाच—

दिव्यप्रकारमिच्छामि श्रोतुं चाहं मुनीश्वर ।
कथं कार्याणि कानीह स्फुटं येः पुण्यपापकम् ॥

नारद उवाच—

शपथाः कोशधटकौ विषाग्नी तप्तमापकौ ।
फालं च तन्दुलं चैव दिव्यान्यष्टौ विदुर्वुधाः ॥
असाक्षिकेषु चार्थेषु भिद्यो विवदमानयोः ।
राजद्रोहाभिशापेषु साहमेषु तथैव च ॥
अविदस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनाभिलङ्घयेत् ।
महर्षिभिश्च देवैश्च सत्यार्थाः शपथाः कृताः ॥
जवनो नृपतिः क्षीणो मिथ्याशपथमाचरन् ।
वसिष्ठप्रे वर्षमध्ये सान्वयः किल भारत ॥
अन्धः शत्रुगृहं गच्छेद्यो मिथ्याशपथांश्चरेत् ।
रौरवस्य स्वयं द्वारमुद्घाटयति दुर्मतिः ॥
मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।
तांश्च देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपुरुषाः ॥
आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं
यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये धर्मो हि जानाति
नरस्य वृत्तम् ॥
एवं तस्मादभिज्ञाय सत्यार्थशपथांश्चरेत् ।
वृथा हि शपथान्कुर्वन्प्रेत्य चेह विनश्यति ॥
इदं सत्यं वदामीति ब्रुवन् साक्षी भवान्यतः ।
शुभाशुभफलं देहि शुचिः पादौ रवेः स्पृशेत् ॥
अथ शास्त्रस्य विप्रोऽपि शस्त्रस्यापि च क्षत्रियः ।
मां स्पृशंस्तथा वैश्यः शूद्रः स्वगुरुमेव च ॥
मातरं पितरं पूज्यं स्पृशेत्साधारणं त्विदम् ।
कोशस्य रूपं पूर्वं ते व्याख्यातं पाण्डुनन्दन ॥

(१) स्कन्दपुर. (कौमारिकाखण्ड) अध्यायः ४३, ४४.

विप्रवर्जं तथा कोशं वर्णिनां दापयेन्नृपः ।
यो यो यद्देवताभक्तः पाययेत्तस्य तं नरम् ॥
समभक्तं च देवानामादित्यस्यैव पाययेत् ।
सर्वेषां चोप्रदेवानां स्नापयेदायुधास्त्रकम् ॥
स्नानोदकं वा संकल्पं गृहीत्वा पाययेन्नरम् ।
त्रिसप्तरात्रमध्ये च फलं कोशस्य निर्दिशेत् ॥
अतः परं महादिव्यविधानं शृणु यद्भवेत् ।
संशयच्छेदि सर्वेषां धाष्टर्यात्तद्विव्यमेव च ॥
सशिरस्कं प्रदातव्यमिति ब्रह्मा पुराऽब्रवीत् ।
महोघ्राणां च दातव्यमशिरस्कमपि स्फुटम् ॥
साधूनां वर्णिनां राजा न शिरस्कं प्रदापयेत् ।
न प्रवाते धटं देयं नोष्णकाले हुताशनम् ॥
वर्णिनां च तथा फालं तन्दुलं मुखरोगिणाम् ॥
कुष्ठपित्तादितानां च ब्राह्मणानां च नो विषम् ।
तप्तमापकमर्हन्ति सर्वे धर्म्यं निरत्ययम् ॥
न व्याधिमरके देशे शपथान्कोशमेव च ।
दिव्यान्यासुरकैर्मन्त्रैः स्तम्भयन्तीह केचन ॥
प्रतिघातविदस्तेषां योजयेद्धर्मवत्सलान् ।
दिव्यानां स्तम्भकान् ज्ञात्वा पापान्नित्यं महीपतिः ॥
विवासयेत्स्वकाद्राष्ट्रात्ते हि लोकस्य कण्टकाः ।
तेषामन्वेषणे यत्नं राजा नित्यं समाचरेत् ॥
ते हि पापसमाचारास्तस्करेभ्योऽपि तस्कराः ।
प्राग्दृष्टदोषान् स्वल्पेषु दिव्येषु विनियोजयेत् ॥
महत्त्वपि न चार्थेषु धर्मज्ञान् धर्मवत्सलान् ।
न मिथ्यावचनं येषां जन्मप्रभृति विद्यते ॥
श्रद्धयात्पार्थिवस्तेषां वचनादेव भारत ।
ज्ञात्वा धर्मिष्ठतां राजा पुरुषस्य विचक्षणः ॥
क्रोधाहोभात्कारयंश्च स्वयमेव प्रदुष्यति ।
तस्मात्पापिषु दिव्यं स्यात्तत्रादौ प्रोच्यते धटे ॥
सुसमायां पृथिव्यां च दिग्भागे पूर्वदक्षिणे ।
यज्ञियस्य तु वृक्षस्य स्थाप्यं स्यान्मुण्डकद्वयम् ॥
स्तम्भकस्य प्रमाणं च सप्तहस्तं प्रकीर्तितम् ।
द्वौ हस्तौ निखनेत्काष्ठं दृश्यं स्याद्धस्तपञ्चकम् ॥
अन्तरं तु तयोः कार्यं तथा हस्तचतुष्टयम् ।
मुण्डकोपरि काष्ठं च दृढं कुर्याद्विचक्षणः ॥
चतुर्हस्तं तुलाकाष्ठमत्रणं कारयेत्स्थिरम् ।
खदिरार्जुनवृक्षाणां शिंशपाशालजं त्वथ ॥

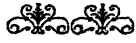
तुलाकाष्ठे तु कर्तव्यं तथा वै शिष्यकद्वयम् ।
 प्राङ्मुखो निश्चलः कार्यः शुचौ देशे धटस्तथा ॥
 पाषाणस्यापि जायेत स्तम्भेषु च धटस्तथा ।
 वणिकसुवर्णकारो वा कुशलः कांस्यकारकः ॥
 तुलाधारधरः कार्यो रिपौ मित्रे च यः समः ।
 श्रावयेत्प्राङ्विवाकोऽपि तुलाधारं विचक्षणः ॥
 ब्रह्मघ्ने ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातके ।
 तुलाधारस्य ते लोकास्तुलां धारयतो मृषा ॥
 एकस्मिन्स्तोलयेच्छिष्ये ज्ञातं सूपोषितं नरम् ।
 द्वितीये मृत्तिकां शुभ्रां गौरां तु तुलयेद्बुधः ॥
 इष्टिकाभस्मपाषाणकपालास्थीनि वर्जयेत् ।
 तोलयित्वा ततः पूर्वं तस्मात्तमवतारयेत् ॥
 मूर्ध्नि पत्रं ततो न्यस्य न्यस्तपत्रं निवेशयेत् ।
 पत्रे मन्त्रस्त्वयं लेख्यो यः पुरोक्तः स्वयंभुवा ॥
 ब्रह्मणस्त्वं सुता देवि तुलानान्नेति कथ्यते ।
 तुकारो गौरवे नित्यं लकारो लघुनि स्मृतः ॥
 गुरुलाघवसंयोगात्तुला तेन निगद्यसे ।
 संशयान्मोचयस्वैनमभिशास्तं नरं शुभे ॥
 भूय आरोपयेत्तं तु नरं तस्मिन् सपत्रकम् ।
 तुलितो यदि वर्धेत शुद्धो भवति धर्मतः ॥
 हीयमानो न शुद्धः स्यादिति धर्मविदो विदुः ।
 शिष्यच्छेदे तुलाभङ्गे पुनरारोपयेन्नरम् ॥
 एवं निःसंशयं ज्ञानं यच्चान्यायं न लोपयेत् ।
 एतत्सर्वं रवौ वारे कार्यं संपूज्य भास्करम् ॥
 अथातः संप्रवक्ष्यामि विषदिव्यं शृणुष्व मे ॥
 द्विप्रकारं च तत्प्रोक्तं घटसर्पविषं तथा ।
 शृङ्गिणो वत्सनाभस्य हिमशैलभवस्य वा ॥
 यवाः सप्त प्रदातव्या अथवा षड्घृतप्लुताः ।
 मूर्ध्नि विन्वस्तपत्रस्य पत्रे चैवं निवेशयेत् ॥
 त्वं विषं ब्रह्मणः पुत्रं सत्यधर्मे व्यवस्थितः ।
 त्रायस्वैनं नरं पापात्सत्येनास्य भवामृतम् ॥
 येन वेपथिना जीर्णं कृदिमूर्च्छाविवर्जितम् ।
 तं तु शुद्धं विज्ञानीयमिति धर्मविदो विदुः ॥
 क्षुधितं क्षुधितः सर्पं घटस्थं प्रोच्य पूर्ववत् ।
 संपूजेच्छालिकः सप्त न दशेच्छुष्यतीति सः ॥

आग्निदिव्यं यथा प्राह विरञ्चिस्तच्छृणुष्व मे ।
 सप्तमण्डलकान्कुर्यादेवस्याग्रे रवेस्तथा ॥
 मण्डलान्मण्डलं कार्यं पूर्वेणेति विनिश्चयः ।
 षोडशाङ्गुलकं कार्यं मण्डलात्तावदन्तरम् ॥
 आर्द्रवाससमाहूय तथा चैवाप्युपोषितम् ।
 कारयेत्सर्वदिव्यानि देवब्राह्मणसंनिधौ ॥
 प्रत्यक्षं कारयेदिव्यं राज्ञो वाधिकृतस्य वा ।
 ब्राह्मणानां श्रुतवतां प्रकृतीनां तथैव च ॥
 पश्चिमे दिनकाले हि प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः शुचिः ।
 चतुरस्रे मण्डलेऽन्ये कृत्वा चैव समौ करौ ॥
 लक्षयेयुः कृतादीनि हस्तयोस्तस्य हारिणः ।
 सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि बध्नीयुः करयोस्ततः ॥
 नवेन कृतसूत्रेण कार्पासेन दृढं यथा ।
 ततस्तु सुसमं कृत्वा अष्टाङ्गुलमथायसम् ॥
 पिण्डं हुताशंसतप्तं पञ्चाशत्पलिकं दृढम् ।
 आदौ पूजां रवेः कृत्वा हुताशस्याथ कारयेत् ॥
 रक्तचन्दनधूपाभ्यां रक्तपुष्पैस्तथैव च ।
 अभिशस्तस्य पत्रं च बध्नीयाच्चैव मूर्धनि ॥
 मन्त्रेणानेन संयुक्तं ब्राह्मणाभिहितेन च ।
 त्वमग्ने वेदाश्चत्वारस्त्वं च यज्ञेषु हूयसे ॥
 पापं पुनासि वै यस्मान्तस्मात्पावक उच्यसे ।
 त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वं मुखं ब्रह्मवादिनाम् ॥
 जठरस्थोऽसि भूतानां ततो वेत्सि शुभाशुभम् ।
 पापेषु दर्शयात्मानमर्चिष्मान्भव पावक ॥
 अथवा शुद्धभावेषु शीतो भव महाबल ।
 ततोऽभिशास्तः शनकैर्मण्डलानि परिक्रमेत् ॥
 परिक्रम्य शनैर्जह्याल्लोहपिण्डं ततः क्षितौ ।
 विपत्रहस्तं तं पश्चात्कारयेद् व्रीहिमर्दनम् ॥
 निर्विकारौ करौ दृष्ट्वा शुद्धो भवति धर्मतः ।
 भयाद्वा पातयेद्यस्तु तदधो वा विभाव्यते ॥
 पुनस्त्वाहारयेल्लोहं विधिरेष प्रकीर्तितः ।
 अथातः संप्रवक्ष्यामि तप्तमाषविधिं शृणु ॥
 कारयेदायसं पात्रं तान्नं वा षोडशाङ्गुलम् ।
 चतुरङ्गुलखातं तु मृन्मयं वापि कारयेत् ॥
 पूरयेद्घृततैलाभ्यां पलैर्विशतिभिस्ततः ।
 सुवस्त्रे निक्षिपेत्तत्र सुवर्णस्य तु माषकम् ॥

बह्व्युक्तं विन्यसेन्मन्त्रमभिशास्तस्य मूर्धनि ।
 अङ्गुष्ठाङ्गुलियोगेन तप्तमाषं समुद्धरेत् ॥
 शुद्धं ज्ञेयमसदिग्धं विस्फोटादिविवर्जितम् ।
 फालशुद्धिं प्रवक्ष्यामि तां शृणु त्वं धनंजय ॥
 आयसं द्वादशपलं घटितं फालमुच्यते ।
 अष्टाङ्गुलमदीर्घं च चतुरङ्गुलविस्तृतम् ॥
 बह्व्युक्तं विन्यसेन्मन्त्रमभिशास्तस्य मूर्धनि ।
 त्रिः परावर्तयेज्जिह्वां लिहन्नस्मात्षडङ्गुलम् ॥
 गवां क्षीरं प्रदातव्यं जिह्वाशोधनमुत्तमम् ।
 जिह्वापरीक्षणं कुर्याद्गधा चेन्न विमोच्यते ॥
 तं विशुद्धं विजानीयाद्विशुद्धा चेत्तु जायते ।
 तन्दुलस्याथ वक्ष्यामि विधिधर्मं सनातनम् ॥
 चौर्ये तु तन्दुला देया न चान्यत्र कथंचन ।
 तन्दुलानुदके सिक्त्वा रात्रौ तत्रैव स्थापयेत् ॥
 प्रभाते कारिणे देया भक्षणाय न संशयः ।
 त्रिःकृत्वः प्राङ्मुखश्चैव पत्रे निष्ठीवयेत्ततः ॥

पिप्पलस्याथ भूर्जस्य न त्वन्यस्य कथंचन ।
 तांस्तु वै कारयेच्छुद्धांस्तन्दुलान् शालिसंभवान् ॥
 मृन्मये भाजने कृत्वा सवितुः पुरतः स्थितः ।
 तन्दुलान्मन्त्रयेच्छुद्धान् मन्त्रेणानेन धर्मतः ॥
 दीयसे धर्मतस्त्वज्ञैर्मानुषाणां विशोधनम् ।
 स्तुतस्तन्दुल सत्येन धर्मतस्त्वातुमर्हसि ॥
 निष्ठीवने कृते तेषां सवितुः पुरतः स्थिते ।
 शोणितं दृश्यते यस्य तमशुद्धं विनिर्दिशेत् ॥
 एवमष्टविधं दिव्यं पापसंशयच्छेदनम् ।
 भट्टादित्यस्य पुरतो जायते कुरुनन्दन ॥
 जलदिव्यं तथा प्राहुर्द्विप्रकारं पुराविदः ।
 जलहस्तं स्मृतं चैकं मज्जनं चापरं विदुः ॥
 बाणक्षेपस्तथादानं यावद्वीर्यवता कृतम् ।
 तावत्तं मज्जयेज्जीवेत्तथा तच्छुद्धिमादिशेत् ॥
 एवंविधमिदं स्थानं भट्टादित्यस्य भारत ।
 ममैव कृपया भानोजार्जतमेतन्महीतले ॥

मानसंज्ञाः



अनिर्दिष्टकर्तृकवचनानि

भावसाध्यत्वभावोऽपि केचित्स्यात्संशयेषु च ।
 साध्य्यादीनामभावेऽत्र दिव्याभावे च कुत्रचित् ॥
 दिव्ये तु मूर्द्धदण्डाभ्यां साध्यर्थं हेम कल्पयेत् ।
 तत्रारभ्यार्थकाकण्याः शूद्रो दूर्वाकारः शपेत् ॥
 त्रिकाकण्यूनषण्मानात् कृष्णलात्तिलहस्तकः ।
 द्विगुणाद्रूप्यपाणिस्तु त्रिगुणात् काञ्चनं दधत् ॥
 चतुर्गुणात् करे कृत्वा मृत्तिकां लाङ्गलोद्धृताम्
 नीचः पञ्चगुणात्पुत्रदारैरन्यत्रमातकैः ॥
 षणानां दशमानानां दशकाद्धर्मशोधनम् ।
 तत्रैवार्थेषु लेढव्यं फालं फालोपजीविना ॥
 स्यात्पञ्चदशकात्कोशः त्रिंशतस्तण्डुलाः स्मृताः ।

(१) व्यवि. २१८-२२०.

व्य. क्रं. २४७

चत्वारिंशत्तत्ता (?) तु तप्तमाषसमुद्धृतिः ॥
 पञ्चाशतस्तुला ज्ञेयाः सप्तषष्ठे जलं भवेत् ।
 पञ्चसप्ततिकादग्निः शातात्स्यात् विषभक्षणम् ॥
 एतानि शूद्रस्योक्तानि द्विगुणैः विशः स्मृताः ।
 चत्वारिंशद्धान्यमाषः तौ अथः तौ च कृष्णलम् ॥
 कृष्णलद्वितयं प्रोक्तं अण्विकाऽप्यत्र (?)
 पणोऽप्यसौ ।
 तिस्रोऽण्विकाः कृष्णलं च हेममाष इतीर्यते ॥
 शाणोण्विकाश्चतस्रस्तु दीनारास्था (ख्यः?) चतुर्दश ।
 अण्विका विंशतिः निष्कं शाणं साष्टाण्विकं तु तत् ॥
 अष्टाण्विकाधिकं निष्कद्वितयं चित्रको भवेत् ।
 सषोडशाण्विकं निष्कद्वयं कर्षक उच्यते ॥

दशभिर्वा पणं चैका दशभिस्तु चतुष्पणैः ।
 निष्कैर्द्वादशभिर्वेति लौकिको मानसंग्रहः ॥
 यो राजसर्षपस्यार्धो लौकिकः काकणिस्तु सः ।
 काकणिस्त्रितयं गौरो माषः स्यादर्धतण्डुलः ॥
 स काकणिद्वयं मानद्वितयं मध्यमो यवः ।
 काकणिद्वितयं न्यूनसप्तमाषस्तु कृष्णलः ॥
 कार्षापणस्त्वष्टमानो दशमानपणः परः ।
 शाणोषिका चतुष्का स्यात् लौकिकेऽप्येवमेव सः ॥
 षट्काकणिकमानायो माषोऽन्यश्चतुरण्विकः ।
 कार्षापणोऽन्यो निष्का मा पूर्वदेशे प्रवर्तते ॥
 सुवर्णोऽष्टाण्विकायुक्तं निष्कद्वयमिहोच्यते ।
 सुवर्ण एव दीनारः चित्रकश्चेति कथ्यते ॥
 अक्षार्धं द्वयणुकाद्यर्धमानयुक्तं द्विनिष्ककम् ।
 रूप्यमानेन (तु) माषः स्यात् मानैर्धचतुर्दशैः ॥
 सप्ताण्विकाधिकं निष्कं पुराण (णं ?) मानं
 (मानवं ?) च तत् ॥

शतमानं पलं च स्यात् निष्कैर्धचतुर्दशैः ।
 तैरेव राजतं निष्कं अथ तान्त्रिकमुच्यते ॥
 पाञ्चरात्रवैखानसानुसारि निष्कप्रमाणम्
 स्यादण्विकाचतुष्केण त्रिनिष्कः कर्षकः पणः ॥
 पूर्णोऽर्धपादपादोननिष्कषोडशको भवेत् ।
 साहसो द्विगुणो मध्य उत्तमः स्याच्चतुर्गुणः ॥
 अर्धपादोननिष्को द्विनिष्कषोडशकोऽथवा ।
 पूर्वस्तद्विगुणो मध्ये मध्याद् द्विगुण उत्तमः ॥
 यवश्च कृष्णलं माषः सुवर्णो रूप्यनिष्ककः ।
 मानवोक्तयवादिभ्यः षष्टांशो नास्ति वैष्णवे ॥

विष्णुगुप्तः

पञ्चगुञ्जलको माषः प्राणस्तेषु चतुर्गुणैः ।
 कलञ्जो धरणं प्राहुः मणिमानविशारदाः ॥

(१) सवि. ४५७.

निर्णयकृत्यम्

नारदः

पराजितदण्डविचारः

मिथ्याभियोगिनो ये स्युर्द्विजानां शूद्रयोनयः ।
 तेषां जिह्वां समुत्कृत्य राजा शूले निवेशयेत् ॥
 द्विजानां शूद्रयोनयः प्रेषणकारिण एव विहिताः ।
 यदा पुनस्ते एव शूद्रा द्विजानामेव मिथ्याभियोगिनो
 ये स्युः भवन्ति । दर्पाद्वा निजदुर्वचनात् विक्षेपकारिणो

(१) नास्मृ. २।३७ निवेशयेत् (निधापयेत्); अभा.
 २६ नास्मृवत्; व्यक. १०१; दीक. ३२; व्यचि. ९७;
 दवि. ३५१ जिह्वां (जिह्वाः); चन्द्र. १६८; व्यसौ. ९२.

भवन्ति तदा तान् शूद्रान् राजा खण्डितजिह्वान् कृत्वा
 शूले निधापयेत् । ततस्तेन पापेन न गृह्यते । अन्यथा
 शिष्टपालनार्थं दुष्टनिग्रहार्थं करग्राहिणो निर्मितस्य राज्ञ
 एव स दोष इति । अभा. २६

अग्निपुराणम्

पराजितदण्डविचारः

यो यावद्विपरीतार्थं मिथ्या वा यो वदेत्तु तम् ।
 तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्विगुणं दमम् ॥

(१) अणु. २२७।६-७.

पुनर्न्यायः

ॐ नमः

अग्निपुराणम्

निवर्तनीयं कार्यम् । पुनर्न्यायवादिनो दण्डः ।

अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात्कार्यमन्यथा ।

(१) अपु. २२.७।४९.

तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत् ॥

यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः

तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद्द्विगुणं दमम् ॥

(१) अपु. २२.७।६५.

दण्डमातृका

महाभारतम्

ब्राह्मणाः स्त्रियश्चावध्याः

न तु ते ब्राह्मणं हन्तुं कार्या बुद्धिः कथंचन ।
अवध्यः सर्वभूतानां ब्राह्मणो ह्यनलोपमः ॥
द्विजोत्तम विनिर्गच्छ तूर्णमास्यादपावृतात् ।
न हि मे ब्राह्मणो वध्यः पापेष्वपि रतः सदा ॥
अवध्याः स्त्रिय इत्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये ।
धर्मज्ञान् राक्षसानाहुर्न हन्यात्स च मामपि ॥
अवध्यास्तु स्त्रियः सृष्टा मन्यन्ते धर्मचिन्तकाः ।
तस्माद्धर्मेण धर्मज्ञ नास्मान् हिंसितुमर्हसि ॥

मनुः

शूद्रदण्डधनविनियोगः

शूद्रोत्पन्नांशपापीयान्नैवं मुच्येत किल्बिषात् ।
तेभ्यो दण्डाहतं द्रव्यं न कोशे संप्रवेशयेत् ॥

(१) भा. (भाण्डा०) १।२४।३.

(२) भा. (भाण्डा.) १।२५।२.

(३) भा. (भाण्डा.) १।१४६।२९.

(४) भा. (भाण्डा.) १।२०९।४.

(५) मरु. ८।३८५ इत्यस्योपरिष्ठात् एते प्रक्षिप्तश्लोकः ।

अयाजिकं तु तद्राजा दद्याद् भृतकवेतनम् ।

यथा दण्डगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यस्तु लम्भयेत् ॥

भार्यापुरोहितस्तेना ये चान्ये तद्विधा द्विजाः ॥

अनिर्दिष्टकर्तृकवचनानि

दण्डप्रयोजनम्

दुर्बलानामनाथानां बालवृद्धतपस्विनाम् ।

अनार्यैः परिभूतानां सर्वेषां पार्थिवो गतिः ॥

यदि नैताः प्रजा राजा दण्डेनातोद्य पालयेत् ।

ततोऽन्योन्यमभिघ्नन्त्यो विनश्येयुः परस्परम् ॥

दण्डाङ्गचिन्ताः

कालद्वेषवयःश्रुत्तीश्चिन्तयेत् दण्डकर्मणि ।

अग्निपुराणम्

दण्डेन प्रजारक्षणं राजधर्मः

दण्डे सर्वं स्थितं दण्डो नाशयेद्दुष्प्रणीकृतः ।

अदण्ड्यान् दण्डयन्नश्येद्दण्ड्यान्

राजाऽप्यदण्डयन् ॥

(१) अभा. ३. शंखलिखितस्मृतौ (आनन्दाश्रम, श्लोकः २५)

समुपलभ्यते अयं श्लोकः ।

(२) अभा. ३.

(३) मेघा. ८।३२४. (४) अपु. २२.६।१४-२०.

देवदैत्योरगनराः सिद्धा भूताः पतत्रिणः ।
 उत्क्रमेयुः स्वमर्यादां यदि दण्डान्न पालयेत् ॥
 यस्माददान्तान् दमयत्यदण्ड्यान् दण्डयत्यपि ।
 दमनादण्डनाच्चैव तस्मादण्डं विदुर्बुधाः ॥
 तेजसा दुर्निरीक्ष्यो हि राजा भास्करवत्ततः ।
 लोकप्रसादं गच्छेत् दर्शनाच्चन्द्रवत्ततः ॥
 जगद्ब्रह्मोति वै चारैरतो राजा समीरणः ।
 दोषनिग्रहकारित्वाद्राजा वैवस्वतः प्रभुः ॥
 यदा दहति दुर्बुद्धिं तदा भवति पावकः ।
 यदा दानं द्विजातिभ्यो दद्यात्तस्माद्धनेश्वरः ॥
 घनधाराप्रवर्षित्वाद्देवादौ वरुणः स्मृतः ।
 क्षमया धारयँल्लोकान्पार्थिवः पार्थिवो भवेत् ॥
 उत्साहमन्त्रशक्त्याद्यै रक्षेद्यस्माद्धरिस्ततः ॥

महापातकेषु अङ्कनानि

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।
 स्तेयेषु श्वपदं विद्यादब्रह्महत्या (घाते) शिरः पुमान् ॥

मानसोल्लासः

अपराधकृत्सर्वो दण्ड्यः

ऋत्विक् पुरोहितः पुत्रो भ्राता बन्धुस्तथा
 सुहृत् ।

अदण्ड्यो नृपतेर्नास्ति स्वधर्माच्चलितो नरः ॥

क्लेशदण्डप्रकाराः

केशानां कर्णयोरक्ष्णोर्नासिकायास्तथैव च ।

जिह्वायाः करयोस्तद्वदङ्गुलीप्रजनस्य च ॥

(१) अपु. २२७।५०.

(२) मासो. २।२०।१२४५, १२८८-१३००.

पादयोरेवमादीनामङ्गानां छेदनं च यत् ।
 अपराधानुसारेण क्लेशदण्डः स उच्यते ॥
 बन्धनं ताडनं वाचा रूक्षया भर्त्सनं तथा ।
 एवंविधप्रकारोऽपि क्लेशदण्डः प्रकीर्तितः ॥

अर्थदण्डप्रकाराः

पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ।
 मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं चैव चोत्तमः ॥
 विवादेन समः कापि द्विगुणः कापि कथ्यते ।
 त्रिगुणो वा कचित् प्रोक्तः क्वचिदुक्तश्चतुर्गुणः ॥
 सर्वस्वस्याधिकः कापि दमः सर्वस्वमेव वा ।
 दोषद्रव्यानुसारेण दण्डोऽर्थहरणः स्मृतः ॥

दण्डप्रयोजनम्

दण्डो रक्षति मर्यादां दण्डो धर्मं प्रवर्तयेत् ।
 निवारयेदधर्माच्च तस्माद् दण्डं प्रयोजयेत् ।
 दण्डहीने यतो राष्ट्रे मात्स्यो न्यायः प्रवर्तते ।
 तस्माद् दण्डं प्रयुञ्जीत दुष्टानां धार्मिको नृपः ॥
 दण्डपातभयाल्लोको धर्मे तिष्ठति सूत्रितः ।
 करीव विजयो मत्तोऽप्यङ्कुशेन वशीकृतः ॥
 वीत्रदण्डभयाल्लोके भृशमुद्विजते जनः ।
 तस्मान्मृदुप्रयोगेण प्रजापालनमाचरेत् ॥
 यथोक्तदण्डविन्यासाद् भूपतेर्धर्मचारिणः ।
 यशो धर्मस्तथा राष्ट्रं कोशश्च परिवर्धते ॥

सप्तविंशतिः राज्यस्थैर्यनिमित्तानि

एवमङ्गानि राज्यस्य सप्त शक्तित्रयं तथा ।
 षाड्गुण्यं च तथा प्रोक्तमुपायश्च चतुर्विधः ॥
 राज्यस्थैर्यनिमित्तानि प्राप्त्यराज्यस्य भूपतेः ।
 विंशतिः सोमभूपालः कृतवान् नीतिकोविदः ॥

ऋणादानम्

वेदाः

ऋणलिङ्गानि

न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीन् अश्रद्धां
अवृध्वा अयज्ञान् ।
प्रप्र तान्दस्यूरभिर्विवाय पूर्वश्चकारापरौ
अयज्युन् ॥

अक्रतूनयज्ञान् ग्रथिनो जल्पकान् मृध्रवाचो हिसित-
वचस्कान् पणीन् पणिनामकान् वार्धुषिकानश्रद्धान् यज्ञा-
दिषु श्रद्धारहितानवृधान् स्तुतिभिरभिभवर्धयतोऽयज्ञान्
यज्ञहीनान् तान् दस्युन् वृथा कालस्य नेतृनग्निः
प्रप्र अत्यन्तं नि विवाय । नितरां गमयेत् । तदेवाह ।
अग्निः पूर्वो मुख्यः सन् अयज्यूनयजमानानपरान्
जघन्यान् चकार । ऋसा.

केदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो
अस्तृतम् ।

इन्द्रो विश्वान् बेकनाटाँ अहर्दश उत ऋत्वा
पणीन् अभि ॥

कदू कदा खल्वस्येन्द्रस्य तविषीर्वलान्यधृष्टा अधृष्टा-
न्यधर्षकाण्यासन् । कदु कदा नु खलु वृत्रघ्नो
वृत्रहन्तुरिन्द्रस्य हन्तव्यमस्तृतमर्हिसितमभवत् । न कदा-
चिदित्य.....व्ययं हं अभवदित्यर्थः । अथवास्य महान्ति
बलानि सेनालक्षणानि कदाप्यधृष्टान्यन्यबलैरर्हिसितानि
तथा वृत्रघ्नो शारीरं बलमस्तृतमन्यैरर्हिस्यम् । ईहशेन

(१) ऋसं ७।६।३. (२) ऋसं. ८।६।१०.

द्विविधेन बलेनेन्द्रो विश्वान् सर्वान् बेकनाटान् । अनेन
कुसीदिनो वृद्धिजीविनो वार्धुषिका उच्यन्ते । कथं
तद्व्युत्पत्तिः । वे इत्यपभ्रंशो द्विशब्दार्थे । एकं कर्षा-
पणं ऋषिकाय प्रयच्छन् द्वौ मह्यं दातव्य.....नयेन
दर्शयन्ति ततो द्विशब्देनैकशब्देन च नाटयन्तीति
बेकनाटाः । तानहर्दशः । अहःशब्देन तदुत्पादक
आदित्योऽभिधेयो भवति । तं पश्यन्तीत्यहर्दशः । ननु
सर्वे सूर्यं पश्यन्ति कोऽत्रातिशय इति उच्यते । इहैव
जन्मनि सूर्यं पश्यन्ति न जन्मान्तरे । लुब्धका अय-
ष्टारोऽन्धे तमसि मज्जन्ति । अथवा लौकिकान्येवाहानि
पश्यन्ति न पारलौकिकान्यदृष्टानि । दृष्टप्रधाना हि
नास्तिकाः । अतो.....शान् पणीन् पणिसदृशान् शूद्र-
कल्पान् । उतशब्द एवार्थे । ऋत्वोत् कर्मणैव ताडनादि-
व्यापारेणैवाभि भवतीति शेषः । यद्वा । पणीनुत पणी-
नेवाभिभवति न यद्यारम् । पणीनां निन्दा स्मर्यते—
'गोरक्षकानापणिकांस्तथा कारकुशीलवान् । प्रेष्यान्
वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥' (मस्तु.
८।१०२) इति । ऋसा.

निरुक्तम्

कुसीदिनः

'बेकनाटाः खलु कुसीदिनो भवन्ति द्विगुण-
कारिणो वा द्विगुणदायिनो वा द्विगुणं कामयन्त
इति वा ।

(१) नि. ६।२६.

उपनिधिः

महाभारतम्

न्यासलिङ्गम्

कुंत एव परित्यक्तुं सुतां शक्याम्यहं स्वयम् ।
बालामप्राप्तवयसमजातव्यञ्जनाकृतिम् ॥
भर्तुरर्थाय निक्षिप्तां न्यासं धात्रा महात्मना ।
यस्यां दौहित्रजाल्लोकानाशंसे पितृभिः सह ।
स्वयमुत्पाद्य तां बालां कथमुत्सृष्टुमुत्सृहे ॥

(१) भा. (आण्डा.) १।१४५।३४, ३५.

अग्निपुराणम्

निक्षेपभोगनाशादौ दण्डः

'निक्षेपस्य समं मूल्यं दण्ड्यो निक्षेपभुक्त्या ॥
वस्त्रादिकस्य धर्मज्ञ तथा धर्मो न हीयते ॥
यो निक्षेपं घातयति यत्रानिक्षिप्य याचते ।
तन्नुभौ चौरवच्छास्यौ दण्ड्यौ वा द्विगुणं दमम् ॥

(१) अगु. २२७।८-१०.

अस्वामिविक्रयः

अग्निपुराणम्

अस्वामिविक्रतुदण्डः

अज्ञानाद्यः पुमान् कुर्यात् परद्रव्यस्य विक्रयम् ।

(१) अणु. २२७।१०.

निर्दोषो ज्ञानपूर्व तु चौरवृद्धमर्हति ॥

(१) अणु. २२७।११.

संभूयसमुत्थानम्

गौतमः

ऋत्विगाचार्यत्यागनियमः

अज्ञानादनध्यापनादृत्विगाचार्यौ पतनीयसेवायां च हेयौ । अन्यत्र हानात्वंतति ।

अज्ञानादनध्यापनादिति । यदि कर्मणि प्रवृत्त ऋत्विक् मन्त्रान् कर्मपद्धतिं वा न जानाति स च, य आलस्यादिना नाध्यापयत्याचार्यस्तावुभौ हेयौ त्याज्यौ । इदं पति-

(१) गौध. २१।१२, १३; मेधा. ८।३८८ अज्ञा ...
दृत्वि (अथायाजकादृत्वि); मभा. नादनध्या (नाध्या);
गौमि. २१।१२, १३.

तेन सह शयनासनादेः सेवायां प्रागप्यब्दात्परित्यागार्थम् ।
तर्हि संवत्सरेण पततीति वचनमनर्थकम् । न तादृश-
स्त्यागोऽत्र विवक्षितः । किं तर्हि ऋत्विगाचार्यान्तरमुपादे-
यम् । अनुपादाने दोष इति ।

अन्यत्रेति । अन्यत्राज्ञानादनध्यापनादन्यत्र तयो-
स्त्यागो न कर्तव्यः । कुर्वन् पतति । गौमि.

अग्निपुराणम्

मूल्यं गृहीत्वा शिल्पादाने दण्ड्यः

मूल्यमादाय यः शिल्पं न दद्याद्दण्ड्य एव सः ।।

(१) अणु. २२७।११.

दत्ताप्रदानिकम्

गौतमः

दानाङ्गनियमः

स्वस्ति वाच्य भिक्षादानमपूर्वम् ।

स्वस्तीति भिक्षुकं वाचयित्वा तत उदकदानपूर्वमस्मै
भिक्षादानं कर्तव्यम् । भिक्षादाने स्त्रिया अधिकारात्
तस्या एव च याचितत्वादतस्तामेवं कारयेत् गृहस्थः ।
केचिद्व्याचक्षते वैश्वदेवानन्तरमेव विधानादग्रभैक्षस्यायं
विधिर्न सामान्यस्येति । तेषां पक्षे स्वस्तिवाचनं पुरुषेणैव

(१) गौध. ५।१९; मभा.; गौमि. ५।१६; सवि.
२८४; समु. ९७.

कारयितव्यमिति द्रष्टव्यम् । मभा.

ददातिषु चैवं धर्म्येषु ।

ददातिशब्देन हिरण्यादिदानमुच्यते । धर्म्यग्रहणान्न
दृष्टार्थं मित्रादिभ्यो दानम् । एवमेव उदकपूर्वं दद्यात् ।
चकारादेव सिद्धे एवशब्दः समस्तप्रापणार्थः । ततश्च
यथा भिक्षादानं स्त्रीकृतमपि भर्तुरनुज्ञया प्रमाणं
भवति तद्वत् हिरण्यादिदानमपि प्रमाणं भवति ।
तथा च नारदः— स्त्रीकृतान्यप्रमाणानि कार्या-

(१) गौध. ५।२०; मभा.; गौमि. ५।१७; सवि.
२८४ ददातिषु (तथाऽतिथिषु); समु. ९७.

ण्याहुरनापदि । विशेषतो गृहक्षेत्रदानधर्मान्नविक्रयाः ॥
एतान्येव प्रमाणानि भर्ता यद्यनुमन्यते ॥' इत्यादि ।
भिक्षादानमपि भर्तुरनुज्ञया विना न कार्यम् । तथा च
मनुः—'ब्राह्म्या वा युवत्या वा वृद्ध्या वाऽपि योषितां ।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं कार्यं किञ्चिद्गृहेष्वपि ॥' ममा.

आपस्तम्बः

दानाङ्गनियमः

सर्वाण्युदकपूर्वाणि दानानि ।

सर्वाणीति वचनात् भिक्षाऽप्युदकपूर्वमेव देया । उ.

यथाश्रुति विहारे ।

विहारे यज्ञकर्मणि यानि दानानि दक्षिणादीनि, तानि

(१) आध. २।१।८; हिध. २।४; सवि. २८४;

समु. ९७.

(२) आध. २।१।९; हिध. २।४.

यथाश्रुतेव । नोदकपूर्वाणि ।

भारद्वाजः

भवेदानलक्षणम्

आक्रोशादर्थहीनानां प्रतीकारं च यद्भयात् ।

प्रदीयते तत्कर्तृभ्यो भयदानं तदुच्यते ॥

स्मृत्यन्तरम्

दानाङ्गनियमः

देवात्कृष्णाजिनं पुच्छे गां पुच्छे करिणं करे ।

केसरेषु तथैवाश्वान् दासीं शिरसि दापयेत् ॥

अग्निपुराणम्

प्रतिश्रुत्याप्रदाने दण्डः

प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्मृपः ॥

(१) सवि. २८६.

(२) समु. ९७.

(३) अगु. २२।१।२.

अभ्युपेत्याशुश्रूषा

आपस्तम्बः

अन्तेवासिगुरुवृत्तिः

तस्मिन् गुरोर्वृत्तिः ।

तस्मिन्नन्तेवासिनि गुरोर्वृत्तिः । वृत्तेः प्रकारो वक्ष्यते ।

उ.

पुत्रमिवैनमनुकाङ्क्षन् सर्वधर्मेष्वनपच्छादयमानः
सुयुक्तो विद्यां ग्राहयेत् ।

एनं शिष्यं पुत्रमिव अस्याभ्युदयः स्यादिति अनु-
काङ्क्षन् सर्वेषु धर्मेषु किञ्चिदप्यनपच्छादयमानः अगूहन्
सुयुक्तः सुष्ठु अवहितः तत्परो भूत्वा विद्यां ग्राहयेत् ।

उ.

नै चैनमध्ययनविघ्नेनात्मार्थेषूपरुन्ध्यादनापत्सु ।
न चैनं शिष्यमध्ययनविघ्नेन आत्मप्रयोजनेष्वना-
पत्सुपरुन्ध्यात् । उपरोधः अस्वतन्त्रीकरणम् । 'अनाप-
त्स्विति वचनादापद्यध्ययनविघातेनाऽप्युपरोधे न दोषः ।

उ.

(१) आध. १।८।२४; हिध. १।८.

(२) आध. १।८।२५; हिध. १।८.

(३) आध. १।८।२६; हिध. १।८.

अन्तेवास्यनन्तेवासी भवति विनिहितात्मा गुरा-
वनैपुणमापद्यमानः ।

'आपद्यमान' इत्यन्तर्भावित्यर्थः । योऽन्तेवासी
विनिहितात्मा द्वयोराचार्ययोः विविधं निहितात्मा गुरा-
वनैपुणमापादयति— न अनेन अयं प्रदेशः सम्यमुक्त
इति, सोऽन्तेवासी न भवति । स त्याज्य इत्यर्थः ।
अपर आह— योऽन्तेवासी वाङ्मनःकर्मभिरनैपुणमाप-
द्यमानो गुरौ विसदृशं निहितात्मा भवति अनुरूपं न
शुश्रूषते सोऽन्तेवासी न भवतीति ।

उ.

आचार्योऽप्यनाचार्यो भवति श्रुतात्परिहरमाणः ।
आचार्योऽप्यनाचार्यो भवतीति, त्याज्य इत्यर्थः ।
किं कुर्वन् ? श्रुतात्परिहरमाणः तेन तेन व्याजेन
विद्याप्रदानमकुर्वन् ।

उ.

अपराधेषु चैनं सततमुपालभेत ।

अपराधेषु कृतेष्वेनं शिष्यं सततमुपालभेत, इदमयुक्तं
त्वया कृतमिति ।

उ.

(१) आध. १।८।२७; हिध. १।८.

(२) आध. १।८।२८; हिध. १।८.

(३) आध. १।८।२९; हिध. १।८.

अभिन्नास उपवास उदकोपस्पर्शनमदर्शनमिति
दण्डा यथामात्रमानिवृत्तेः ।

अभिन्नासो भयोत्पादनम् । उपवासो भोजनलोपः ।
उदकोपस्पर्शनं शीतोदकेन स्नापनम् । अदर्शनं यथा
आत्मानं न पश्यति तथा करणम् । गृहप्रवेशनिषेधः ।
सर्वत्र ष्यन्तात् प्रत्ययः । इत्येते दण्डाः शिष्यस्य यथामात्रं
यावत्परार्थमात्रा तदनुरूपं व्यस्ताः समस्ताश्च । आनिवृत्तेः
यावदसौ न ततोऽपराधाच्चिर्वर्तते तावदेते दण्डाः । उ.
निवृत्तं चरितब्रह्मचर्यमन्येभ्यो धर्मेभ्योऽनन्तरो
भवेत्यतिसृजेत् ।

एवं चरितब्रह्मचर्यं निवृत्तं गुरुकुलात् कृतसमावर्तन-
मित्यर्थः । एवंभूतमन्येभ्यो धर्मेभ्यो यमसौ आश्रमं प्रति-
पित्सते तत्र तेभ्योऽनन्तरो भव यथा त्वमन्तरितो न
भवसि तथा भवेत्युक्त्वाऽतिसृजेत् । तं तमाश्रमं प्रति-
पत्तुमुत्सृजेत् । उ.

बौधायनः

अध्यायः शिष्यः

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा ।
विद्यया सह मर्तव्यं न चैनामूषरे वपेत् ॥
अनर्हाय विद्या न दातव्येत्याह—धर्मार्थौ यत्रेति ।
यथा कृषीवलः शुभं वीजमूषरे न वपति । तथा शुश्रूषा-
दिवर्जिते विद्या न दातव्येत्यर्थः । बौवि. (पृ. २०)
अग्निरिव कक्षं दहति ब्रह्मपृष्ठमनादृतम् ।
तस्माद्द्वै शक्यं न ब्रूयात् ब्रह्म मानमकुर्वतामिति ॥
अयोग्याध्यापने दोषमाह— अग्निरिव कक्षमिति ।
शक्यं मानमिति संबन्धः । वैशब्दः पादपूरणः । ब्रह्म
विद्या मानं पूजा । बौवि. (पृ. २०)

वसिष्ठः

अध्यायः शिष्यः

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मां शेव-
धिस्तेऽहमस्मि । असूयकायानृजवेऽयताय न मां
ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ॥
अमेव विद्याः शुचिप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्यो-

(१) आध. १।८।३०; हिध. १।८.

(२) आध. १।८।३१; हिध. १।८.

(३) बौध. १।२।४८. (४) बौध. १।२।४९.

(५) वस्मू. २।१४-८.

पपन्नम् । यस्तेन द्रुह्येत्कतमच्च नाह तस्मै मां ब्रूया
निधिपाय ब्रह्मन् ॥

य आतृणत्त्यवितथेन कर्मणा बहुदुःखं कृर्वन्न-
मृतं संप्रयच्छन् । तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै
न द्रुह्येत्कतमच्च नाह ॥

अध्यापिता ये गुरुं नाऽऽद्वियन्ते विप्रा वाचा
मनसा कर्मणा वा । यथैव ते न गुरोर्भोजनीया-
स्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् ॥

दहत्यग्निर्यथा कक्षं ब्रह्मपृष्ठमनादृतम् ।

न ब्रह्म तस्मै प्रब्रूयाच्छक्यं मानमकुर्वत इति ॥

मनुः

अध्यायः शिष्याः

* आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ।
आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः ॥
नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥
अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥
धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा ।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥
विद्ययैय समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना ।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनाभिरिणे वपेत् ॥
विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिष्टेऽस्मि रक्ष माम् ।
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥
यमेव तु शुचिं विद्याः नियतब्रह्मचारिणम् ।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥
अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ।
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥

अग्निपुराणम्

भार्यापुत्रदासशिष्यादिताडनविशेषे दोषः

भार्या पुत्राश्च दासाश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः ।
कृतापराधास्ताड्याः स्यू रज्वा वेणुदलेन वा ।
पृष्ठे न मस्तके हन्याच्चौरस्याप्रोति किल्बिषम् ॥

* मनुस्मृतेः व्यवहारप्रकरणे एतेषां श्लोकानामभावात् टीका
नोद्धता ।

(१) मस्मू. २।१०९-११५, २४१.

(२) अणु. २२७।४५-६.

वेतनानपाकर्म

कात्यायनः

भाण्डवाहकधर्मः

भाण्डवाहकदोषेण वणिजो यदि द्रव्यं नश्येत्
तद्भाण्डवाहको दद्यात् ।

लघुहारीतः

भाटकम्

अनुच्छिष्टं तु यद्द्रव्यं दासक्षेत्रगृहादिकम् ।
स्वबलेनैव भुञ्जानश्चौरवदण्डमर्हति ॥

(१) मेधा. ८।२१५.

(२) लहास्मृ. ५०, ५१.

अन इवाहं च धेनुं च दासीदासं तथैव च ।
फलभुक् प्रत्यहं दद्याद्भोगं पणचतुष्टयम् ॥

अग्निपुराणम्

स्वानिभृतयोः दोषे दण्डः

भृतिं गृह्य न कुर्याद्यः कर्माष्टौ कृष्णला दमः ।
अकाले तु त्यजन् भृत्यं दण्ड्यः स्यात्तावदेव तु ॥

वेद्याधर्मः

गृहीत्वा वेतनं वेद्या लोभादन्यत्र गच्छति ।
वेतनं द्विगुणं दद्यादण्डं च द्विगुणं तथा ॥

(१) अगु. २२७।१२-३.

(२) अगु. २२७।४४-५.

क्रयविक्रयानुशयः

निरुक्तम्

स्त्रीपुरुषविक्रयविचारः

स्त्रीणां दानविक्रयातिसर्गा विद्यन्ते न पुंसः ।
पुंसोऽपीत्येके शौनःशेषे दर्शनात् * ।

विष्णुः

कन्याविषयानुशयादौ दण्डविधिः

दोषमनाख्याय कन्यां प्रयच्छन् । तां च
बिभृयात् । अदुष्टां दुष्टामिति ब्रुवन्नुत्तमसाहसम् ।

भारद्वाजः

परिवृत्तेः परिवर्तनावधिः

संधिश्च परिवृत्तिश्च विभागश्च समा यदि ।
आदशाहान्निवर्तन्ते विपमा नववत्सरात् × ॥

अग्निपुराणम्

क्रयविक्रयः—कन्याविषयानुशये दण्डविधिः

क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्यस्येहानुशयो भवेत् ।

* व्याख्यानं दायभागे (पृ. १२५५) द्रष्टव्यम् ।

× स्थलादिनिर्देशः दायभागे (पृ. १५८२) द्रष्टव्यः ।

(१) नि. ३।४.

(२) विस्मृ. ५।४५-७.

(३) अगु. २२७।१३-७.

सोऽन्तर्दशाहात्तस्वामी दद्याच्चैवाददीत च ॥
परेण तु दशाहस्य नादद्यान्नैष दापयेत् ।
आददद्धि ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥
वरदोषानविख्याप्य यः कन्यां वरयेदिह ।
दत्ताऽप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्ड्यः शतद्वयम् ॥
प्रदाय कन्यां योऽन्यस्मै पुनस्तां संप्रयच्छति ।
दण्डः कार्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः ॥
सत्यङ्कारेण वाचा च युक्तं पुण्यमसंशयम् ।
लुब्धोऽन्यत्र च विक्रेता षट्शतं दण्डमर्हति ॥

मत्स्यपुराणम्

कन्याविषयानुशये दण्डविधिः

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं पणवति पणान् ॥
यः कन्यां दर्शयित्वाऽन्यां बोद्धुरन्यां प्रयच्छति ।
उत्तमं तस्य कुर्वीत राजा दण्डं तु साहसम् ॥
वरो दोषं समासाद्य यः कन्यां संहरोदिह ।
दत्ताऽप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्ड्यः शतद्वयम् ॥

(१) दवि. १८५-६.

स्वामिपालविवादः

महाभारतम्

पशुपालनभृतिः

वैश्यस्यापि हि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि शाश्वतम् ।
दानमध्ययनं यज्ञः शौचेन धनसञ्चयः ॥
पितृवत्पालयेद्वैश्यो युक्तः सर्वान्पशूनिह ।
विकर्म तद्भवेदन्यत्कर्म यत्स समाचरेत् ॥
रक्षया स हि तेषां वै महत्सुखमवाप्नुयात् ।
प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददौ पशून् ॥
ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ।
तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि यच्च तस्योपजीवनम् ॥
षण्णामेकां पिबेद्धेनुं शताच्च मिथुनं हरेत् ।
लब्धाच्च सप्तमं भागं तथा शृङ्गे कला खुरे ॥
सस्यानां सर्वबीजानामेषा सांवत्सरी भृतिः ।
न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति ॥
वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथञ्चन ॥

नारदः

पशुनाशे व्यवस्था

बालाश्चर्मापरे सक्थी वस्तिस्नायूनि रोचनाम् ।
दद्यात्पशुमते सर्वं मृतेष्वङ्गान्श्च दर्शयेत् ॥

व्यासः

द्विजबान्धवगोक्तसस्यभक्षणं क्षम्यम्

आक्रम्य च द्विजैर्मुक्तं परिक्षीणं च बान्धवैः ।
गोभिश्च नरशार्दूल वाजपेयाद्विशिष्यते ॥

(१) भा. १२।६०।२१-७.

(२) Dr. Jolly—Narada Preface page
8—Nepalese MS.

(३) स्मृच. २१२ च द्विजैर्मुक्तं (यद्द्विजैर्मुक्तं) णं च

स्मृत्यन्तरम्

सस्यनाशे दण्डः

वैत्सानां द्विगुणः प्रोक्तः सवत्सानां चतुर्गुणः ॥

अनिर्दिष्टकर्तृकवचनम्

सस्यनाशे दण्डः

गुरोः क्षुद्रात् पशो रात्रावहि कामादकामतः ।
महानल्पः शस्यनाशो दण्डभेदाय भिद्यते ॥

अग्निपुराणम्

पालधर्माः सस्यरक्षा च

दद्याद्धेनुं न यः पालो गृहीत्वा भक्तवेतनम् ।
स तु दण्ड्यः शतं राज्ञा सुवर्णं वाऽप्यरक्षिता ॥
धनुःशतं परीणाहो भ्रामस्य तु समन्ततः ।
द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि नगरस्य च कल्पयेत् ॥
वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्टो नावलोकयेत् ।
तत्रापरिवृते धान्ये हिंसिते नैव दण्डनम् ॥

(गैश्च); व्यउ. १०१; व्यप्र. ३५३; विता. ६८२-३
णं च (गैश्च) नर (राज); समु. १०४ च (यत्) णं च
(गैश्च).

(१) पमा. ३८१; दवि. २८४ (सन्नानां द्विगुणो दण्डो
वसतां तु चतुर्गुणः) नारदः.

(२) दवि. २८२.

(३) अपु. २२७।१८-२१.

सीमाविवादः

नारदः

बलाद्भूमिर्न हर्तव्या

अतो भूमिर्न हर्तव्या जानता भूमिजं भयम् ।
बलाद्धृताया भूमेस्तु करणं न प्रमाणकम् ॥

(१) स्मृचि. २३.

अग्निपुराणम्

गृहाद्याहरणे दण्डः

गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ॥

(१) अपु. २२७।२१-२२.

स्त्रीपुंधर्माः

वेदाः

एका द्वयोः पत्नी

आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्पमेवातिप्रदर्वता
जयन्ती ।

विश्वे देवा अन्वमन्यन्त दृद्धिः समु श्रिया
नासत्या सचेथे ॥

सविता स्वदुहितरं सूर्याख्यां सोमाय राज्ञे प्रदातुमै-
च्छत् । तां सूर्यां सर्वे देवा वरयामासुः । तेऽन्योन्यमृचुः ।
आदित्यमवधिं कृत्वाजि धावाम । योऽस्माकं मध्ये
उज्जेप्यति तस्येयं भविष्यतीति । तत्राश्विनानुदजयताम् ।
सा च सूर्या जितवतोस्तयोः रथमारोह । अत्र प्रजा-
पतिवै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् (ऐन्द्रा. ४।७) ।
इत्यादिकं ब्राह्मणमनुसंधेयम् । इदं चाख्यानं सूर्याविवा-
हस्य स्तावकेन सत्येनोत्तमिता भूमिरिति सूक्तेन विस्पष्ट-
यिष्यते । हे अश्विनौ वां युवयो रथं कार्पमेव । कार्प-
शब्दः काष्ठवाची । यथा काष्ठमाजिधावनस्यावधितया
निर्दिष्टं लक्ष्यमाशुगामी कश्चित् सर्वेभ्यो धावद्भ्यः पूर्वं
प्राप्नोति एवमेव सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वमर्वता शीघ्रमवधिं
प्राप्नुवता युष्मदीयेनाश्वेन करणभूतेन युवाभ्यां जयन्ती
जीयमाना सूर्यस्य सवितुर्दुहितातिष्ठत् आरूढवती ।
विश्वे सर्व इतरे देवा एतदारोहणस्थानं ह्यद्भिर्हृदयैरन्व-
मन्यन्त अन्वजानन् । तदानीं हे नासत्यावश्विनौ श्रिया
ऋक्सहस्रलाभरूपया संपदा कान्त्या वा युवां स सचेथे
संगच्छेथे ।

वेद्या

कौमाय पुँञ्चल्लम् । नर्माय पुँञ्चल्लम् ।

वसिष्ठः

स्त्रीरक्षा, रजस्वलाधर्माश्च

अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधाना । अनश्रिकाऽ-
नुदक्या वा अनृतमिति विज्ञायते ।

(१) ऋसं. १।११६।१७.

(२) शुभा. ३०।५,२०.

(३) वसु. ५।१-१६.

अथाप्युदाहरन्ति—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।

पुत्रश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

तस्या भर्तुरभिचार उक्तः प्रायश्चित्तरहस्येषु ।

मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥

त्रिरात्रं रजस्वलाऽशुचिर्भवति, सा नाञ्ज्यान्ना-

भ्यञ्ज्यान्नाप्सु स्नायान्, अधः शयीत, दिवा न

स्वप्यात्, नाग्निं स्पृशेत्, न रज्जुं सृजेत्, न दन्तान्

धावयेत्, न मांसमश्नीयान्, न ग्रहान्निरीक्षेत,

न हसेत्, न किञ्चिदाचरेत्, अखर्वेण पात्रेण

पिवेत्, अञ्जलिना वा पिवेत्, लोहितायसेन वा ।

विज्ञायते हीन्द्रस्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं हत्वा पाप्मगृहीतो

महत्तमाधर्मसंबद्धोऽहमित्येवमात्मानं अमन्यत, तं

सर्वाणि भूतान्यभ्याक्रोशन, भ्रूणहन् भ्रूणहन्

भ्रूणहन्निति, स स्त्रिय उपाधावन्, अस्यै मे ब्रह्म-

हत्यायै तृतीयं भागं प्रतिगृहीतेति गत्वैवमुवाच, ता

अब्रुवन्, किं नोऽभूदिति, सोऽब्रवीद्वरं वृणीध्व-

मिति, तः अनुवन्तौ प्रजां विन्दामहा इति,

काममा विजनितोः संभवाम इति, तथेति ताः

प्रतिजगुहुस्तृतीयं भ्रूणहत्यायाः । सैषा भ्रूणहत्या

मासि मास्याविर्भवति । तस्माद्रजस्वलात्रं नाश्रीयात् ।

अतश्च भ्रूणहत्याया एवैषा रूपं प्रतिमुच्य आस्ते

कञ्चुकभिव । तदाहुर्ब्रह्मवादिनः । अञ्जनाभ्यञ्ज-

नमेवास्या न प्रतिग्राह्यम् । तद्धि स्त्रिया अन्नमिति ।

तस्मात्तस्यास्तत्र न च मन्यन्ते । आचारायाश्च

योषित इति सेयमुपयाति ।

उदक्यास्त्वासते येषां ये च केचिदनग्रयः ।

कुलं चाश्रोत्रियं येषां सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ॥ इति ।

ऋतुकालगामी स्यात्पर्ववर्जं स्वदारेषु । अतिर्य-

गुपेयात् ।

अथाप्युदाहरन्ति—

यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये कुर्वीत मैथुनम् ।

भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं रेतसो भुजः ॥

(१) वसु. १२।१८-२४.

या स्यादनित्यचारेण रतिः साऽधर्मसंश्रिता ॥
अपि च काठके विज्ञायते । अपि नः श्रो
विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयीरन्निति स्त्रीणा-
मिन्द्रदत्तो वर इति ।

महाभारतम्

स्त्रीणां सर्वशुश्रूषा धर्मः । भार्यामहिमा । स्त्री अवध्या ।

बहुपत्नीकता नाधर्मः । स्त्री लाज्या ।

भार्या पुत्रोऽथ दुहिता सर्वमात्मार्थमिष्यते ॥
एतद्धि परमं नार्याः कार्यं लोके सनातनम् ।
प्राणानपि परित्यज्य यद्ब्रह्मद्विहास्यते ॥
उत्सृष्टमासिपं भूसौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः ।
प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम् ॥
व्युष्टिरेषा परा स्त्रीणां पूर्वं भर्तुः परां गतिम् ।
गन्तुं ब्रह्मन्सपुत्राणामिति धर्मविदो विदुः ॥
यज्ञैस्तपोभिर्नियमैर्दानैश्च विविधैस्तथा ।
विशिष्यते स्त्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते स्थितिः ॥
इष्टानि चाप्यपत्यानि द्रव्याणि सुहृदः प्रियाः ।
आपद्धर्मप्रमोक्षाय भार्या चापि सतां मतम् ॥
आपद्धर्मं धनं रक्षेद्द्वारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्द्वारैरपि धनैरपि ॥
दृष्टादृष्टफलार्थं हि भार्या पुत्रो धनं गृहम् ।
सर्वमेतद्विधातव्यं बुधानामेष निश्चयः ॥
एकतो वा कुलं कृत्स्नमात्मा वा कुलवर्धनः ।
न समं सर्वमेवेति बुधानामेष निश्चयः ॥
अवध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये ॥
न चाप्यधर्मः कल्याण बहुपत्नीकृतां नृणाम् ।
स्त्रीणामधर्मः सुमहान्भर्तुः पूर्वस्य लब्धने ॥
भृशं दुःखपरीताङ्गी कन्या तावभ्यभाषत ॥
धर्मतोऽहं परित्याज्या युवयोर्नात्र संशयः ।
त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्रातं सर्वं मयैकया ॥
इत्यर्थमिष्यतेऽपत्यं तारयिष्यति मामिति ॥
आत्मा पुत्रः सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल ॥

(१) भा. १।१५।३, ४, १२, २२, २४, २६-२९, ३१,
३६.

(२) भा. (भाण्डा.) १।१४।१, ३, ४, ११.

याज्ञवल्क्यः

व्यवहारप्रकरणे स्त्रीपुंसपदव्यवस्था

व्यवहारप्रकरणमध्ये स्त्रीपुंसयोगाख्यमप्यपरं विवाद-
पदं मनुनारदाभ्यां विवृतम् । तत्र नारदः— 'विवाहा-
दिविधिः स्त्रीणां यत्र पुंसां च कीर्त्यते । स्त्रीपुंस-
योगसंज्ञं तद्विवादपदमुच्यते ॥' इति । मनुरप्याह—
'अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्यः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ।
विपयेषु च सजन्त्यः संस्थाप्या ह्यात्मनो वशे ॥' इत्यादि ।
यद्यपि स्त्रीपुंसयोः परस्परमर्थिप्रत्यर्थितया नृपसमक्षं
व्यवहारो निषिद्धस्तथापि प्रत्यक्षेण कर्णपरम्परया वा
विदिते तयोः परस्परतिचारे दण्डादिना दम्पती निज-
धर्ममार्गं राज्ञा स्थापनीयो । इतरथा दोषभाग्भवति ।
व्यवहारप्रकरणे राजधर्ममध्येऽस्य स्त्रीपुंसधर्मजातस्यो-
पदेशः । एतच्च विवाहप्रकरण एव सप्रपञ्चं प्रतिपादित-
मिति योगीश्वरेण न पुनरत्रोक्तम् । मिता. २।२९५

नारदः

कन्यादानकालः

व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नः सोमो भुङ्क्तेऽथ योषितः ।
पयोधारस्तु गान्धर्वो रजस्यभिः प्रकीर्तितः ॥
तस्मादव्यञ्जनोपेतामरजामपयोधराम् ।
अभुक्तपूर्वा सोमाद्यैर्दद्याद्दुहितरं पिता ॥
चतुःस्वैरिणीदोषतारतम्यम्
स्वैरिणीनां चतसृणां सा श्रेष्ठा तूत्तरोत्तरा ।
विकल्पं तदपत्यानां रिक्थपिण्डोदकादिषु ॥
प्रोषितमर्तुकशूद्रावृत्तम्
न शूद्रायाः स्मृतः कालो न च धर्मव्यतिक्रमः ।
विशेषतोऽप्रसूतायाः संवत्सरपरा स्थितिः ॥
प्रजामवृत्तौ भूतानां दृष्टिरेषा प्रजापतेः ।
जीवति श्रूयमाणे तु स्यादेष द्विगुणो विधिः ॥

उशना

ज्येष्ठपूर्वं यवीयसः विवाहः

प्रैत्रजिते ज्येष्ठे क्षपणं नास्ति सद्य एव निविशेत् ।

(१) Dr. Jolly—Narada preface page
11—Nepalese MS.

(२) Dr. Jolly—Narada Preface page
12—Nepalese MS. (३) मभा. १।२।१९.

स्मृत्यन्तरम्

पतिप्रीणनं धर्मः

यद्यदिष्टतमं लोके यद्यत्पत्युः समीहितम् ।
तत्तद्गुणवते देयं पतिप्रीणनकाम्यया ॥

कन्याविक्रयनिन्दा

तं देशं पतितं मन्ये यत्रास्ते शुल्कविक्रयी ।

अग्रियुराणम्

विविधाः स्त्रीपुंथर्माः

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि ।
यत्पुंसः परदारेषु तदेनां चारयेद् व्रतम् ॥
साध्वीस्त्रीणां पालनं च राजा कुर्यान्न धार्मिकः ।
स्त्रिया प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्यैकदक्षया ॥

(१) दात. १९०. (२) मच. ९१९८.

(३) अपु. १६९१३९. (४) अपु. २२२१९-२६.

सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।
यस्मै दद्यान्पिता त्वेनां शुश्रूषेत्तं पतिं सदा ॥
मृते भर्तरि स्वर्ग्याद्ब्रह्मचर्ये स्थिताऽङ्गना ।
परवेश्मरुचिर्न स्यान्न स्यात्कलहशालिनी ॥
मण्डनं वर्जयेन्नारी तथा प्रोपितभर्तृका ।
देवताराधनपरा तिष्ठेद्भर्तृहिते रता ॥
धारयेन्मङ्गलार्थाय किञ्चिदाभरणं तथा ।
भर्ताऽग्निं या विशेन्नारी साऽपि स्वर्गमवाप्नुयात् ॥
श्रियः संपूजनं कार्यं गृहसंमार्जनादिकम् ।
द्वादश्यां कार्तिके विष्णुं गां सवत्सां ददेत्तथा ॥
सावित्र्या रक्षितो भर्ता सत्याचारव्रतेन च ।
सप्तम्यां मार्गशीर्षे तु सितेऽभ्यर्च्य दिवाकरम् ॥
पुत्रानाप्नोति च स्त्रीह नात्र कार्या विचारणा ॥

दायभागः

वेदाः

पितुः कन्यायां संततिः । यावज्जीवं भर्तृरहिताः

कन्याः, तासां तत्पुत्राणां च भागः ।

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता
पृथिवी महीयम् । उत्तानयोश्चम्बोर्योनिरन्तरत्रा
पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥

दीर्घतमा ब्रवीति । मे मम द्यौर्दुलोकः पिता पालकः ।
न केवलं पालकत्वमात्रं अपि तु जनिता जनयितोत्पाद-
यिता । तत्रोपपत्तिमाह । नाभिरत्र नाभिभूतो भौमो
रसोऽत्र तिष्ठतीति शेषः । ततश्चान्नं जायते अन्नाद्रेतः
रेतसो मनुष्य इत्येवं पारम्पर्येण जननसंबन्धिनो हेतो
रसस्यात्र सद्भावात् । अनेनैवाभिप्रायेण जनितेत्युच्यते ।
अत एव बन्धुबन्धिका तथेयं मही महती पृथिवी मे
माता मातृस्थानीया स्वोद्भूतौषध्यादिनिर्मात्रीत्यर्थः ।
किञ्चोत्तानयोरुर्ध्वतनयोश्चम्बोः सर्वस्यात्त्रयोर्भोगसाध-
नयोः द्यावापृथिव्योरन्तर्मध्ये योनिः सर्वभूतनिर्माणाश्रय-

(१) ऋसं. १११६४१३३; असं. ९१९०१२; नि.

४१२९.

मन्तरिक्षं वर्तत इति शेषः । अत्रास्मिन्नन्तरिक्षे पिता
दुलोकः । अधिष्ठात्रधिष्ठानयोरभेदेन आदित्यो द्यौश्च्यते ।
स्वरश्मिभिः । अथवा इन्द्रः पर्जन्यो वा । दुहितुर्दूरे
निहिताया भूम्या गर्भं सर्वोत्पादनसमर्थं वृष्ट्युदकलक्षण-
माधात् । सर्वतः करोति । ऋसा.

अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सद-
सस्त्वामिये भगम् । कृधि प्रक्रेतमुप मास्या भर
दद्धि भागं तन्वो येन मामहः * ॥

वप्रीभिः पुत्रमश्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ
जभर्थ । व्यन्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुख-
च्छित्समरन्त पर्व × ॥

उत त्यं पुत्रमश्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थे-
ष्विन्द्रं आभजत् ॥

* व्याख्यानं स्थलनिर्देशश्च दायभागे (पृ. १४१५)
द्रष्टव्यः ।

× व्याख्यानं स्थलनिर्देशश्च स्त्रीपुंथर्मप्रकरणे (पृ. ९७१)
द्रष्टव्यः ।

(१) ऋसं. ४१३०१६.

उतापि च शतक्रतुः शतकर्मन्द्रस्त्र्यं तं प्रसिद्धममुवः
एतन्नाम्न्याः पुत्रं परावृत्तमेतन्नामकमुक्थेषु स्तोत्रेष्वामजत्
भागिनं कृतवान् । ऋसा.

वातोपधूत इपितो वशां अनु तृषु यदन्ना वेवि-
पट्टितिष्ठसे । आ ते यतन्ते रथ्यो यथा पृथक्
शर्धास्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥

हे अग्ने यद्यदा त्वं वातोपधूतो वायुना कम्भितो
वशान् कान्तान् वनस्पतीननु प्रति तृषु क्षिप्रमिषितः
प्रेरितश्च सन् अन्नान्यदनीयानि वनस्पत्यादीनि स्थाव-
राणि वेविपट्ट्यान्नुवन् वितिष्ठसे इतस्ततो गच्छसि तदानीं
धक्षतः काननानि दहतस्ते तवाजराणि जरारहितानि
शर्धांसि तेजांसि यथा रथ्यो रथिनस्तद्वत् पृथगा यतन्ते
गच्छन्ति । ऋसा.

पुत्रप्रतिग्रहः (दत्तकलिङ्गम् ?)

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृ-
तत्वमानश । तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति
गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥

नाभानेदिष्टः स्वपित्रा मनुनाभ्यनुज्ञातः सत्रमासीनान्
अङ्गिरसोऽभ्येत्य मां प्रतिगृह्णीत युष्मभ्यं यज्ञं प्रज्ञापया-
मीति यदुक्तवान् तदुच्यते । इतिहासस्त्रिवदमित्थेति पूर्व-
सूक्ते नाभानेदिष्टं शंसति नाभानेदिष्टं वै मानवमिति
ब्राह्मणानुसारेण 'मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजदि'ति तैत्ति-
रीयब्राह्मणानुसारेण च सप्रपञ्चमभिहितः । तथा चास्या
ऋचोऽयमर्थः । यज्ञेन यजनीयेन हविषा दक्षिणयत्विग्भ्यो
देयया समक्ताः संगता येऽहीनैकाहसत्राणि कुर्वन्तो ययं
इन्द्रस्य सख्यं सखिकर्म अत एवामृतत्वममरणधर्मं देव-
त्वमानश आनशिध्वे प्राप्ताः स्थ । हे अङ्गिरसः तेभ्यो
वो युष्मभ्यं भद्रं कल्याणं कर्मास्तु । हे सुमेधसः सुप्रज्ञा
हे अङ्गिरसः ते यूयमिदानीमागतं मानवं मनोः पुत्रं मां
प्रति गृभ्णीत प्रतिगृह्णीत । मयि प्रतिगृहीते सति यज्ञं
साधु करिष्यामीति तदर्थं प्रतिगृह्णीत । ऋसा.

(१) ऋसं. १०१९१७; मैसं. ४१११४; सासं.
२३३३; आपश्रौ. ३११५५; माश्रौ. ५११७३७.
(२) ऋसं १०१६२१; ऐब्रा. ५१३१९२; कौब्रा.
२३१८; आश्रौ. ८११२१; शाश्रौ. १०८११४, १२१८८,
१६११३०.

यं उदाजन् पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन् परि-
वत्सरे वलम् । दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति
गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥

हे अङ्गिरसः पितरोऽस्माकं पूर्वजत्वेन पितृभूता ये
यूयं गोमयं गवात्मकं पणिभिरपहृतं वसु धनमुदाजन्
तैरधिष्ठितात्पर्वतादुदगमयन् । किञ्चर्तेन सत्यभूतेन यज्ञेन
परिवत्सरे पर्यागते वत्सरे संपूर्णे सत्रान्त इत्यर्थः । तत्र
वलं वलनामानं गवामपहर्तारमसुरमभिन्दन् व्यनाशयन्
तेभ्यो वो युष्मभ्यं दीर्घायुत्वं प्रभूतजीवनमस्तु । शोपं
पूर्ववत् । ऋसा.

यं ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन् पृथिवीं
मातरं वि । सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति
गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥

हे अङ्गिरसः ये भवन्त ऋतेन सत्यभूतेन यज्ञेन
दिवि द्युलोके सूर्यं सुष्ठु सर्वस्य प्रेरकमादित्यमारोहयन्
अस्थापयन् किञ्च मातरं सर्वेषां निर्मात्री पृथिवीं व्यप्र-
थयन् प्रसिद्धामकुर्वन् सत्रादिकर्मकरणेन तेभ्यो
युष्मभ्यं सुप्रजास्त्वं सुपुत्रत्वमस्तु । ऋसा.

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा
ऋषयस्तत् शृणोतन । सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो
अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥

हे देवपुत्रा देवानां पुत्रा अग्नेः 'पुत्रा ऋषयोऽतीन्द्रि-
यार्थस्य द्रष्टारो हे अङ्गिरसः अयं नाभा नाभानेदिष्टः
पुरोवर्ती जनो वो युष्माकं गृहे गृहभूते यज्ञे वल्गु
कल्याणं वचो वदति । तद्वाक्यं यूयं शृणोतन महतादरेण
शृणुत । तेभ्यो युष्मभ्यं सुब्रह्मण्यं शोभनं ब्रह्मवर्चसमस्तु ।
इदानीं आगतं मानवं मां प्रति गृभ्णीत प्रतिगृह्णीत ।

ऋसा.

कानीनः

प्रसदे कुमारीपुत्रम् ।

सिलाची नाम कानीनोजबभ्रु पिता तव ।

अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ॥

(१) ऋसं. १०१६२२. (२) ऋसं. १०१६२३.

(३) ऋसं. १०१६२४.

(४) शुमा. ३०१६ ; तैब्रा. ३४११२ मदे (मुदे).

(५) असं. ५१५८.

स्वयंदत्तः । ज्येष्ठत्वं पुत्रत्वं दायदत्तं च पितुः संकेताधीनम् ।

अथ ह शुनःशेषो विश्वामित्रस्याङ्कमाससाद् स होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्ऋषे पुनर्मे पुत्रं देहीति नेति होवाच विश्वामित्रो देवा वा इमं मह्यमरास-तेति स ह देवरातो वैश्वामित्र आस तस्यैते कापिलेयबाभ्रवाः * ।

अथाभिषेचनीयसमाप्तेरनन्तरं हरिश्चन्द्रसहितेषु ऋत्विक्षु विस्मितेषु स शुनःशेष इत ऊर्ध्वं ऋस्य पुत्रोऽस्त्विति विचारे सति तदीयेच्छैव नियामिकेति महर्षीणां वचनं श्रुत्वा शुनःशेषः स्वेच्छया विश्वामित्रपुत्रत्वमङ्गीकृत्य सहसा तदीयमङ्कमाससाद् । पुत्रो हि सर्वत्र पितुरङ्के निषीदति । तदानीं सुयवसपुत्रोऽजीगर्तो विश्वामित्रं प्रत्येव-मुवाच । हे महर्षे मदीयपुत्रमेतं पुनरपि मह्यं देहीति, स विश्वामित्रो नेति निराकृत्यैवमुवाच । प्रजापत्यादयो देवा एवेमं शुनःशेषं मह्यमरासत दत्तवन्तस्तस्मात्तुभ्यं न दास्यामीति । स च शुनःशेषो देवैर्दत्तत्वादेवरात इति नामधारी विश्वामित्रपुत्र एव आस । तस्य च देव-रातस्यैते कपिलगोत्रोत्पन्ना बभ्रुगोत्रोत्पन्नाश्च बन्धवोऽ-भवन् ।

ऐब्रासा.

यैथैवाङ्गिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रतामिति, स होवाच विश्वामित्रो ज्येष्ठो मे त्वं पुत्राणां स्यास्तव श्रेष्ठा प्रजा स्यात् । उपेया दैवं मे दायं तेन वै त्वोपमन्त्रय इति * ।

विश्वामित्रेणैवं बोधितः शुनःशेषः पुनरपि गाथया विश्वामित्रं प्रत्येवमुवाच । अयं विश्वामित्रो जन्मना क्षत्रियः सन् स्वकीयेन तपोमहिम्ना ब्राह्मण्यं प्राप्तवानि-त्येवं तद्दृष्टान्तं सूचयितुं हे राजपुत्रेति संबोधितवान् । स वै तथाविधो राजजातीय एव सन् यथा येन प्रकारेण नोऽस्माभिः सर्वैरा समन्ताज्जपय ब्राह्मणत्वेन ज्ञायसे तथै-चास्मद्विषयेऽपि त्वं वद । कथं वदितव्यमिति तदुच्यते । अहमिदानीमङ्गिरोगोत्रः सन् तत्परित्यागेन तव पुत्रत्वं येनैव प्रकारेणोपेयां तथैवानुगृहाणेति शेषः । ऐब्रासा.

* पूर्वमिदं वचनं अस्मिन् प्रकरणे (पृ. १२६०) गृहीत-मपि व्याख्यानोद्धरणार्थं पुनरुद्धृतम् ।

(१) ऐब्रा. ३३।५. (२) ऐब्रा. ३३।५.

पितुः दायदिमर्कस्वहरः पुत्रः । पुत्रस्य गृहे पितुर्वासः ।

अथातः पितापुत्रीयं संप्रदानमिति चाचक्षते पिता पुत्रं प्रेष्याह्वयति नवैस्तृणैरगारं संस्तीर्याभि-मुपसमाधाय उदकुम्भं सपात्रं उपनिधायान्तेन वाससा संप्रच्छन्नः श्येत एत्य पुत्र उपरिष्ठादभि-निपद्यत इन्द्रियैरस्येन्द्रियाणि संस्पृश्यापि वास्याभि-मुखत एवासीताथास्मै संप्रयच्छति वाचं मे त्वयि दधानीति पिता वाचं ते मयि दध इति पुत्रः प्राणं मे त्वयि दधानीति पिता प्राणं ते मयि दध इति पुत्रश्चक्षुर्मे त्वयि दधानीति पिता चक्षुस्ते मयि दध इति पुत्रः श्रोत्रं मे त्वयि दधानीति पिता श्रोत्रं ते मयि दध इति पुत्रो मनो मे त्वयि दधानीति पिता मनस्ते मयि दध इति पुत्रोऽन्नरसान्मे त्वयि दधा-नीति पिता अन्नरसांस्ते मयि दध इति पुत्रः कर्माणि मे त्वयि दधानीति पिता कर्माणि ते मयि दध इति पुत्रः सुखदुःखे मे त्वयि दधानीति पिता सुखदुःखे ते मयि दध इति पुत्र आनन्दं रतिं प्रजातिं मे त्वयि दधानीति पिता आनन्दं रतिं प्रजातिं ते मयि दध इति पुत्र इत्यां मे त्वयि दधानीति पिता इत्यां ते मयि दध इति पुत्रो धियो विज्ञातव्यं कामान्मे त्वयि दधानीति पिता धियो विज्ञातव्यं कामांस्ते मयि दध इति पुत्रोऽथ दक्षिणावृदुपनिष्कामति तं पिताऽनुमन्त्रयते यशो ब्रह्मचर्यसमन्नाद्यं कीर्तिस्त्वा जुषतामित्यथेतरः सव्यमंसमन्ववेक्षते पाणिनान्त-र्धाय वसनान्तेन वा प्रच्छाद्य स्वर्गां लोकान् कामा-नवाप्नुहीति स यद्यगदः स्यात् पुत्रस्यैश्वर्ये पिता वसेत्परि वा ब्रजेद्ययुर्वै प्रेयाद्यदेवैर्न समापयति तथा समापयितव्यो भवति ।

विद्यापणलब्धं द्रव्यम्

जनको ह वैदेहः । बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे तत्र ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेषां ब्राह्मणानामनूचानतम इति ।

स ह गवां सहस्रमवरुरोध । दश दश पादा

(१) कौड. २।१५.

(२) शब्रा. १।४।१।१-३.

एकैकस्याः शृङ्गयोरावद्धा वभूवुस्तान् होवाच
ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उद-
जतामिति ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः ।

अथ ह याज्ञवल्क्यः । स्वमेव ब्रह्मचारिणमुवा-
चैताः सौम्योदज सामश्रवा इति ता होदाचकार ते
ह ब्राह्मणाश्चुकुधुः कथं नु नो ब्रह्मिष्ठो ब्रुवीतेति ।

द्विमातृकः— मातृद्वारा ब्राह्मणायणः

भारद्वाजीपुत्रो वात्सीमाण्डवीपुत्रात् वात्सी-
माण्डवीपुत्रः पाराशरीपुत्रान् गार्गीपुत्रः पाराशरी-
कौण्डिनीपुत्रात् पाराशरीकौण्डिनीपुत्रो गार्गी-
पुत्रात् । शौनकीपुत्रः काश्यपीवालाक्यामाठरीपुत्रात्
काश्यपीवालाक्यामाठरीपुत्रः कौत्सीपुत्रात् ।

पुत्रप्रकाराः

अथोदक्षेत्रजकृत्रिमपुत्रिकापुत्रस्त्रीद्वारजासुराध्यू-
दजदक्षिणाजानां पित्रोश्च ।

ज्येष्ठपुत्रांशे पितुः अस्वाम्यम् । भूमिशूद्रौ अदेयौ ।

ज्येष्ठं पुत्रमपभज्य भूमिशूद्रवर्जं योगाविशेषात्स-
र्वेषाम् ।

ज्येष्ठपुत्रस्य विभागं दत्त्वा भूमिशूद्रवर्जं ददाति ।
कुत एतत् ? सर्वमनुष्याणां हि भूम्या योगोऽविशिष्टः ।
धारणं चङ्क्रमद्वारेण शूद्रस्य च शुश्रूषोपनततेति ।

कर्कभाष्यम् (पृ. ८७५)

शूद्रदानं वा दर्शनाविरोधाभ्याम् ।

वाशब्दः पक्षव्यावृत्तौ । शूद्रस्य दानं भवति । दृश्यते
हि शूद्रस्य दानं पुरुषमेधे स पुरुषं प्राचीदिग्बोतुरिति ।
न च विरोधो गर्भदासस्य । तस्माच्छूद्रो दीयत एव ।
अनेन च न्यायेन भूमेरप्येकदेशदाने नैव विरोधः ।
कचिच्च दृश्यते सभूमि सपुरुषमिति ।

कर्कभाष्यम् (पृ. ८७५)

गौतमः

स्त्रीधनमविभाज्यम्

दायं तु न भजेरन् ।

(१) शब्रा. १४।९।४।३०-३१.

(२) इमी. ८ (सत्याषाढसूत्रमेतत्)

(३) काश्रौ. २२।१०. (४) काश्रौ. २२।११.

(५) गौध- २।१।१६; मभा.; गौमि. २।१।१६.

दायं तदीयं धनं न भजेरन् न गृह्णीयुरित्यर्थः । मातु-
दायं स्त्रीधनम् । दायामावे आत्मीयादपि द्रव्यादशना-
च्छादने दातव्ये इति तुशब्दोपादानम् । निस्स्वयोः पति-
तावस्थायामपि अशनाच्छादनचोदनादपतितयोरप्यर्थ-
सिद्धम् । अत्र पतिताया अपि मातुस्त्यागो नास्तीति द्रष्ट-
व्यम् । कुतः ? स्मृत्यन्तरदर्शनात् । यथाह वसिष्ठः—‘माता
तु पुत्रं प्रति न पतति’ इत्यादि । पतितावस्थायामपि
पुत्रेण माता न त्यक्तव्येत्यभिप्रायेण तदुक्तमिति । मभा.

हारीतः

एकेनोद्धृताऽपि भूविभाज्या

चिरप्रनष्टां वसुधामेक एवाद्धरेच्छमात् ।
भागं तुरीयकं दत्त्वा विभजेयुर्यथांशतः ॥

अविभाज्यम्

योगक्षेमं प्रचारान् न विभजेरन् ।

अप्रातस्य प्रातियोगः । प्रातस्य रक्षणं क्षेमः ।

सवि. ३७०

वसिष्ठः

पुत्रप्रशंसा

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
उपासते सुतं जातं शकुन्ता इव पिप्पलम् ॥
मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन वा ।
एष नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च ॥
संतानवर्धनं पुत्रमुद्यतं पितृकर्मणि ।
देवब्राह्मणसंपन्नमभिनन्दन्ति पूर्वजाः ॥
नन्दन्ति पितरस्तस्य सुवृष्टैरिव कर्षकाः ।
यद्गयास्यो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ॥

विष्णुः

धनागमविचारः तत्प्रकाराश्च

अथ गृहाश्रमिणस्त्रिविधोऽर्थो भवति । शुक्लः

(१) विर. ४९९ (पूर्वनष्टान्तु यो भूमिमैक एवाद्धरेच्छ-
मात् । यथाभागं लभन्तेऽन्ये दत्त्वांशन्तु तुरीयकम् ॥); स्मृसा.
६१ मेक... मात् (मेकः पूर्वोद्धरेद्यदि); स्मृचि. ३०
मेक... मात् (मेक उद्धरते यदि).

(२) सवि. ३७०.

(३) वस्मृ. ११।३६-९ (क)नन्दन्ति (तन्वन्ति) वृष्टै (कृष्टै)
(ख) एष नो (अथनो) त्रमुद्यतं (त्रं तुप्यन्तं).

(४) विस्मृ. ५८।१-१२.

शबलोऽसितश्च । शुक्लेनार्धेन यदौर्ध्वदेहिकं करोति
तेनास्य देवत्वमासादयति । यच्छबलेन तन्मानुष्यम् ।
यत्कृष्णेन तत्तिर्यक्त्वम् । स्ववृत्त्युपार्जितं सर्वेषां
शुद्धम् । अनन्तरवृत्त्युपात्तं शबलम् । एकान्तरवृत्त्यु-
पात्तं च कृष्णम् ।

क्रमागतं प्रीतिदायः प्राप्तं च सह भार्यया ।

अविशेषेण सर्वेषां धनं शुद्धमुदाहृतम् ॥

उत्क्रोचशुल्कसंप्राप्तमविक्रयस्य विक्रयैः ।

कृतोपकारादाप्तं च शबलं समुदाहृतम् ॥

पार्श्विकद्यूतचौर्याप्तप्रतिरूपकसाहसैः ।

व्याजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णं समुदाहृतम् ॥

यथाविधेन द्रव्येण यत्किञ्चिच्छुक्रुते नरः ।

तथाविधमवाप्नोति स फलं प्रेत्य चेह च ॥

पित्रा कृतः पुत्रो भागहरः, अकृतः स्वस्थानानुसारेण

कृतत्वेन प्रथमं धनपिण्डभागित्वं अकृतत्वेन च
स्वस्वस्थाने ।

विभाज्याविभाज्यविवेकः

अपित्र्यं गार्भं धार्मं मैत्रं वैद्यमाकस्मिकमा-
दशाब्दं प्रविभाज्यमत ऊर्ध्वं सर्वमविभाज्यम् ।

अत्राह भारुचिः— अपित्र्यं अविद्यमान-
पितृद्रव्यम् । एतत् त्रितयविशेषणम् । गार्भं स्त्रीधनम् ।
धार्मं इष्टापूर्तादिकम् । मैत्रं मित्रसकाशाह्णधम् । वैद्यं
विद्यातो लब्धम् । आकस्मिकं अकस्माल्लब्धं निध्या-
दिकं प्रतिग्रहादिना वा लब्धम् । सवि, ४४७

महाभारतम्

विभागनिन्दा

आसीद्विभावसुर्नाम महर्षिः कोपतो भृशम् ।

भ्राता तस्यानुजश्चासीत्सुप्रतीको महातपः ॥

स नेच्छति धनं भ्रात्रा सहैकस्थं महासुनिः ।

विभागां कीर्तयत्येव सुप्रतीकोऽथ नित्यञ्च ॥

अथाब्रवीच्च तं भ्राता सुप्रतीकं विभावसुः ।

विभामं बहवो मोहात्कर्तुमिच्छन्ति नित्यदा ।

ततो विभक्ता अन्योन्यं नाद्रियन्तेऽर्थमोहिताः ॥

(१) दमी. ४१.

(२) सवि. ४४७.

(३) म्मु. (भाष्य.) ३१३५१०-११७.

व्य. क्रं. २४९

ततः स्वार्थपरान् मूढान् घृथग्भूतान् स्वकैर्धनैः ।

विदित्वा भेदयन्त्येतानमित्रा मित्ररूपिणः ॥

विदित्वा चापरे भिन्नानन्तरेषु पतन्त्यथ ।

भिन्नानामतुलो नाशः क्षिप्रमेव प्रवर्तते ॥

तस्माच्चैव विभागार्थं न प्रशंसन्ति पण्डिताः ।

गुरुशास्त्रे निवृद्धानामन्योन्यमभिशङ्किनाम् ॥

नियन्तुं न हि शक्यस्त्वं भेदतो धनमिच्छसि ।

यस्मात्तस्मात्सुप्रतीकं हस्तित्वं समवाप्स्यसि ॥

शप्तस्त्वेवं सुप्रतीको विभावसुमथाब्रवीत् ।

त्वमप्यन्तर्जलचरः कच्छपः संभविष्यसि ॥

पितृपुत्रोर्विभागप्रशंसा

न च पित्रा विभज्यन्ते नरा गुरुहिते रताः ।

युञ्जते धुरि नो गाश्च कृशाः संशुक्षयन्ति च ॥

ज्येष्ठकनिष्ठवृत्तिः । आतृणां सहवासविधिः । भागानर्हः । आतृणां

भागः । विभाज्याविभाज्ये । मातरि तत्समाह्व च वृत्तिः ।

युधिष्ठिर उवाच ।

यथा ज्येष्ठः कनिष्ठेषु वर्तेत भरतर्षभ ।

कनिष्ठाश्च यथा ज्येष्ठे वर्तेरंस्तद्ब्रवीहि मे ॥

भीष्म उवाच ।

ज्येष्ठवत्तात वर्तस्व ज्येष्ठोऽसि सततं भवान् ।

गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥

न गुरावकृतप्रज्ञे शक्यं शिष्येण वर्तितुम् ।

गुरोर्हि दीर्घदर्शित्वं यत्तच्छिष्यस्य भारत ॥

अन्धः स्यादन्धवेलायां जडः स्यादपि वा बुधः ।

परिहारेण तद्ब्रूयाद्यस्तेषां स्याद्ब्यतिक्रमः ॥

प्रत्यक्षं भिन्नहृदया भेदयेयुः कृतं नराः ।

श्रियाऽभितप्ताः कौन्तेय भेदकामास्तथारयः ॥

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।

हन्ति सर्वमपि ज्येष्ठः कुलं यत्रावजायते ॥

अथ यो विनिकुर्वीत ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः ।

अज्येष्ठः स्यादभागश्च नियम्यो राजभिश्च सः ॥

निकृती हि नरो लोकान्पापान्नाच्छत्यसंशयम् ।

विदुलस्येव तत्पुष्पं मोघं जनयितुः स्मृतम् ॥

(१) भा. (भाष्य.) ११५७११.

(२) भा. १३११०५.

सर्वानर्थः कुले यत्र जायते पापपूरुषः ।
 अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधाति च ॥
 सर्वे चापि विकर्मस्था भागं नार्हन्ति सोदराः ।
 नाप्रदाय कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥
 अनुपपन्नं पितुर्दायं जङ्घाश्रमफलोऽध्वगः ।
 स्वयमीहितलब्धं तु नाकामो दातुमर्हति ॥
 भ्रातृणामविभक्तानामुत्थानमपि चेत्सह ।
 न पुत्रभागां विषमं पिता दद्यात्कदाचन ॥
 न ज्येष्ठो वाऽवमन्येत दुष्कृतः सुकृतोऽपि वा ।
 यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयश्चेत्तदाचरेत् ॥
 धर्मं हि श्रेय इत्याहुरिति धर्मविदो जनाः ।
 दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान्पिता दश ॥
 दश चैव पितृन्माता सर्वा वा पृथिवीमपि ।
 गौरवेणाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः ॥
 माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः ।
 ज्येष्ठे भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत ॥
 स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात्स चैतान्प्रतिपालयेत् ।
 कनिष्ठास्तं नमस्येरन् सर्वे छन्दानुवर्तिनः ॥
 तमेव चोपजीवेरन् यथैव पितरं तथा ।
 शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत ॥
 आचार्यशास्ता या जातिः सा सत्या साऽजराऽमरा ।
 ज्येष्ठा मातृसमा चापि भगिनी भरतर्षभ ॥
 भ्रातुर्भार्या च तद्वत्स्याद्यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत् ॥
 ज्येष्ठमहिमा

ज्येष्ठस्त्राता भवति वै ज्येष्ठो मुञ्चति कृच्छृतः ।
 ज्येष्ठश्चेन्न प्रजानाति कनीयान् किं करिष्यति ॥
 ज्येष्ठोऽयमिति राज्ये च स्थापितो विकलोऽपि सन् ।
 निर्जित्य परराष्ट्राणि पाण्डुर्मह्यं न्यवेदयत् ॥
 कुलधर्मस्थापनाय ज्येष्ठोऽहं ज्येष्ठभाङ्गुन च ।
 बहूनां भ्रातृणां मध्ये श्रेष्ठो ज्येष्ठो हि श्रेयसा ॥
 कनीयानपि स ज्येष्ठः श्रेष्ठः श्रेयान्कुलस्य वै ।
 तस्माज्ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च पाण्डुर्धर्मभृतां वरः ॥

(१) भा. (भाण्डा.) १।२२३।४.

(२) भा. (भाण्डा. परिशिष्टं) १।८२।११-१६ (पंक्तिः).

जैज्ञे क्रमेण चैतेन तेषां दुर्योधनो नृपः ।
 जन्मतस्तु प्रमाणेन ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः ॥
 युधिष्ठिरो राजपुत्रो ज्येष्ठो नः कुलवर्धनः ।
 प्राप्तः स्वगुणतो राज्यं न तस्मिन्वाच्यमस्ति नः ॥
 अयं त्वनन्तरस्तस्मादपि राजा भविष्यति ।
 एतद्धि ब्रूत मे सत्यं यदत्र भविता ध्रुवम् ॥
 प्रैज्ञाचक्षुरचक्षुष्ट्वाद्भूतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
 राज्यमप्राप्तवान् पूर्वं स कथं नृपतिर्भवेत् ॥
 स एष पाण्डोर्दायाद्यं यदि प्राप्नोति पाण्डवः ।
 तस्य पुत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्येति चापरः ॥

पुत्रमहिमा

नै हि धर्मफलैस्तात न तपोभिः सुसंचितैः ।
 तां गतिं प्राप्नुवन्तीह पुत्रिणो यां व्रजन्ति ह ॥
 तपो वाप्यथवा यज्ञो यच्चान्यत्पावनं महत् ।
 तत्सर्वं न समं तात संतत्येति सतां मतम् ॥
 भार्या पतिः संप्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः ।
 जायाया इति जायात्वं पुराणाः कवयो विदुः ॥
 यदागमवतः पुंसस्तदपत्यं प्रजायते ।
 वत्तारयति संतत्या पूर्वप्रेतान्पितामहान् ॥
 पुत्रान्मनो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ।
 तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥
 न वाससां न रामाणां नापां स्पर्शस्तथा सुखः ।
 शिशोरालिङ्ग्यमानस्य स्पर्शः सूनोर्यथा सुखः ॥
 ब्राह्मणो द्विपदां श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ।
 गुरुर्गरीयसां श्रेष्ठः पुत्रः स्पर्शवतां वरः ॥
 स्पृशतु त्वां समाश्लिष्य पुत्रोऽयं प्रियदर्शनः ।
 पुत्रस्पर्शात्सुखतरः स्पर्शो लोके न विद्यते ॥
 त्रिषु वर्षेषु पूर्णेषु प्रजाताहमरिंदम ।
 इमं कुमारं राजेन्द्र तव शोकप्रणाशनम् ॥

(१) भा. (भाण्डा.) १।१०७।२४, २६, २७.

(२) भा. (भाण्डा.) १।१२९।५, १५.

(३) भा. (भाण्डा.) १।१३।२१.

(४) भा. (भाण्डा.) १।४१।२८.

(५) भा. (भाण्डा.) १।६८।३६-३८, ५५-६५.

आहर्ता वाजिमेघस्य शतसंख्यस्य पौरव ।
इति वागन्तरिक्षे मां सूतकेऽभ्यवदत्पुरा ॥
ननु नामाङ्कमारोप्य स्नेहाद्ग्रामान्तरं गताः ।
मूर्ध्नि पुत्रानुपाधाय प्रतिनन्दन्ति मानवाः ॥
वेदेष्वपि वदन्तीमं मन्त्रवाद् द्विजातयः ।
जातकर्मणि पुत्राणां तवापि विदितं तथा ॥
अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादभिजायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥
पोषो हि त्वदधीनो मे संतानमपि चाक्षयम् ।
तस्मात्त्वं जीव मे वत्स सुसुखी शरदां शतम् ॥
त्वदङ्गेभ्यः प्रसूतोऽयं पुरुषात्पुरुषोऽपरः ।
सरसीवामलेऽऽत्मानं द्वितीयं पश्य मे सुतम् ॥
यथा ह्याहवनीयोऽग्निर्गार्हपत्यात्प्रणीयते ।
ततः त्वत्तः प्रसूतोऽयं त्वमेकः सन्दिधा कृतः ॥

पुत्रमाहिमा । पुत्रप्रकाराः ।

कुलवंशप्रतिष्ठां हि पितरः पुत्रमब्रुवन् ।
उत्तमं सर्वधर्माणां तस्मात्पुत्रं न संत्यजेत् ॥
स्वपत्नीप्रभवान्पञ्च लब्धान्क्रीतान्विवर्धितान् ।
कृतानन्यासु चोत्सन्नान् पुत्रान्वै मनुरब्रवीत् ॥
धर्मकीर्त्यावहा नृणां मनसः प्रीतिवर्धनाः ।
त्रायन्ते नरकाज्जाताः पुत्रा धर्मप्लवाः पितृन् ॥
स त्वं नृपतिशार्दूल न पुत्रं त्यक्तुमर्हसि ।
आत्मानं सत्यधर्मो च पालयानो महीपते ।
नरेन्द्रसिंह कपटं न वोढुं त्वमिहार्हसि ॥
वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात्क्रतुः ।
वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यं पुत्रशताद्वरम् ॥
एतावदुक्त्वा वचनं प्रातिष्ठत शकुन्तला ।
अथान्तरिक्षे दुःषन्तं वागुवाचाशरीरिणी ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मन्त्रिभिश्चावृतं तदा ॥
भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः
भरस्व पुत्रं दुःषन्तं मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥
रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥
जाया जनयते पुत्रमात्मनोऽङ्गं द्विधा कृतम् ।
तस्माद्भरस्व दुःषन्तं पुत्रं शकुन्तलं नृप ॥

(१) भा. (भाण्डा.) ११६९।१७-२१,२८-३३.

अभूतिरेषा कस्यज्याजीवञ्जीवन्तमात्मजम् ।
शाकुन्तलं महात्मानं दौःषन्ति भर पौरव ॥
भर्तव्योऽयं त्वया यस्माद्स्माकं वचनादपि ।
तस्माद्भवत्वयं नाम्ना भरतो नाम ते सुतः ॥
भृशं दुःखपरीताङ्गी कन्या तावभ्यभाषत ॥
धर्मतोऽहं परित्याज्या युवयोर्नात्र संशयः ।
त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्रातं सर्वं मयैकया ॥
इत्यर्थमिष्यतेऽपत्यं तारयिष्यति मामिति ।
तस्मिन्नुपस्थिते काले तरतं प्लवन्मया ॥
इह वा तारयेद्दुर्गादुत वा प्रेत्य तारयेत् ।
सर्वथा तारयेत्पुत्रः पुत्र इत्युच्यते बुधैः ॥
आकाङ्क्षन्ते च दौहित्रानपि नित्यं पितामहाः ।
तान्स्वयं वै परित्रास्ये रक्षन्ती जीवितं पितुः ॥
आत्मा पुत्रः सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल ।
स कृच्छ्रान्मोचयात्मानं मां च धर्मेण योजय ॥
वाक्यं चोवाच । स्वचापल्यादिदं प्राप्तवानहम् ।
शृणोमि च नानपत्यस्य लोकाः सन्तीति ॥

पुत्रिका

तौः सर्वास्वनवद्याङ्गयः कन्याः कसललोचनाः ।
पुत्रिकाः स्थापयामास नष्टपुत्रः प्रजापतिः ॥
ददौ स दश धर्माय सप्तविंशतिमिन्दवे ।
दिव्येन विधिना राजन्कश्यपाय त्रयोदश ॥
ततः पञ्चाशतं कन्याः पुत्रिका अभिसंदधे ।
प्रजापतिः प्रजा दक्षः सिसृक्षुर्जनमेजय ॥
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥
पुत्रो ममेयमिति मे भावना पुरुषोत्तम ।
पुत्रिका हेतुविधिना संज्ञिता भरतर्षभ ॥
एतच्छुल्कं भवत्वस्याः कुलकृञ्जायतामिह ।
एतेन समयेनेमां प्रतिगृहीष्व पाण्डव ॥

(१) भा. (भाण्डा.) १११४।७१,३-६,११.

(२) भा. (भाण्डा.) ११९०।६७.

(३) भा. (भाण्डा.) ११६०।११,१२.

(४) भा. (भाण्डा.) ११७०।७,८.

(५) भा. (भाण्डा.) ११२०।७।२१-३.

स तथेति प्रतिज्ञाय कन्यां तां प्रतिगृह्य च ।
उवास नगरे तस्मिन्कौन्वेयञ्चिहिमाः समाः ॥

दौहित्रमहिमा

एवं राजा स महात्मा ह्यतीव

स्वैर्दौहित्रैस्तारितोऽमित्रसाहः ।

त्यक्त्वा महीं परमोदारकर्मा

स्वर्गं गतः कर्मभिर्व्याप्य पृथ्वीम् ॥

नियोगेन त्रिभ्योऽधिका नोत्पाषाः

नोतश्चतुर्थं प्रसवमापत्स्वपि वदन्त्युत ।

अतः परं चारिणी स्यात्पञ्चमे बन्धकी भवेत् ॥

स त्वं विद्वन्धर्ममिमं बुद्धिगम्यं कथं नु माम् ।

अपत्यार्थं समुत्क्रम्य प्रमादादिव भाषसे ॥

पुत्र-पुत्री-परिग्रहः

तैयोः पुमांसं जग्राह राजोपरिचरस्तदा ।

स मत्स्यो नाम राजासीद्दार्मिकः सत्यसंगरः ॥

या कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्यसगन्धिनी

राज्ञा दत्ताऽथ दाशाय इयं तव भवत्विति ॥

पुत्रेषु मातृपितृस्वान्यं समम्

मातापित्रोः प्रजायन्ते पुत्राः साधारणाः कवे ।

तेषां पिता यथा स्वामी तथा माता न संशयः ॥

दत्तककन्या

चैशंपायन उवाच ।

शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताऽभवत् ।

तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥

पैतृष्वसैयंय स तामनपत्याय वीर्यवान् ।

अग्न्यमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यस्य वीर्यवान् ॥

राज्याधिकारः

सैयं त्वामनुसंप्राप्ता विक्रमेण वसुन्धरा ।

निर्जिताश्च महीपाला विक्रमेण त्वयाऽनघ ॥

तेषां पुराणि राष्ट्राणि गत्वा राजन्सुहृद्वृतः ।

भ्रातृपुत्रांश्च पौत्रांश्च स्वे स्वे राज्येऽभिषेचय ॥

(१) भा. (भाण्डा.) ११८८।२६.

(२) भा. (भाण्डा.) ११९१।६५, ६६.

(३) भा. (भाण्डा.) ११५७।५१, ५४.

(४) भा. (भाण्डा.) ११९९।२८.

(५) भा. (भाण्डा.) ११९०।१९, २.

(६) भा. १२।३।४२-४.

बालानपि च गर्भस्थान् सान्त्वेन समुदात्तरन् ।
रञ्जयन् प्रकृतीः सर्वाः परिपाहि वसुन्धराम् ॥

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

वानप्रस्थाद्याश्रमिरिक्थविभागः

आश्रमिणः पाषण्डा वा महत्यवकाशे परस्पर-
मबाधमाना वसेगुः । अल्पां बाधां सहेरन् । पूर्वा-
गतो वा वासपर्यायं दद्यात् । अप्रदाता निरस्येत ।

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामाचार्यशिष्यधर्मभ्रातृ-
समानतीर्थ्या रिक्थभाजः क्रमेण ।

आश्रमिण इत्यादि । सुत्रोधम् । अल्पां बाधां सहेर-
न्विति । अमहति अवकाशे परस्परबाधमल्पं जायमानं
क्षमेरन् । पूर्वागतो वा, वासपर्यायं वासवारं, दद्यात्
नवागताय । अप्रदाता पूर्वागतः, निरस्येत बहिष्कियेत ।

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामित्यादि । तत्र धर्मभ्राता
सखा, समानतीर्थ्यः समानगुरुकुलवासी । क्रमेण
आचार्याभावे शिष्यः शिष्याभावे धर्मभ्रातेत्यादिक्रमेण ।
शेषं प्रतीतम् । श्रीम्.

मनुः

धनागमाः

श्रुतशौर्यतपःकन्यायाज्यशिष्यान्वयागतम् ।

धनं सप्तविधं शुद्धं उभयोऽप्यस्य तद्विधः * ॥

तत्र श्रुततपसी प्रतिग्रहनिमित्तं, एकोऽपि प्रतिग्रहो
निमित्तभेदाद्भेदेनोक्तः । प्रतिग्राह्यगुणा अपि सामर्थ्या-
त्तत्र द्रष्टव्याः, यदि नात्यन्तदुष्टो दाता भवति तस्मादागतं
शुद्धं भवति । याज्यशिष्यशब्दाभ्यां याजनाध्यापने
गृह्येते । अन्वयागतं पितृपैतामहादि । कन्यादानकाले
श्वशुरगृहाल्लब्धम् । शौर्येण क्षत्रियस्य । कन्यान्वयौ
सर्वसाधारणौ । मेघा.

कुसीदकृषिवाणिज्यशिल्पसेवानुवृत्तितः ।

कृतोपकारादाप्तं च शबलं समुदाहृतम् ॥

सेवा प्रेष्यकरत्वं, यथेच्छविनियोज्यता अनुवृत्तिः
प्रियतानुकूल्य । तत्र कुसीदकृषिवाणिज्यान्यवैश्यस्य ।
वैश्यस्य प्रशस्तान्येव । सेवा द्विजातिशुश्रूषा शूद्रस्य

* मेधातिथिभाष्ये षतद् श्लोकत्रयं समुपलभ्यते ।

(१) कौ. ३।१६. (२) मस्मृ. ४।२२७.

(३) मस्मृ. ४।२२८.

प्रशस्तैव । अन्या तु तस्य निन्दिता । शबलग्रहणेनाचिर-
स्थायिता फलस्योच्यते । न यावज्जीवं तत्फलं भवति ।

मेघा.

^१पार्श्विकद्यूतचौर्यार्तिप्रतिरूपकसाहसैः ।

व्याजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णं समुदाहृतम् ॥

पार्श्विकः पार्श्वस्थः उत्कोचादिना धनमर्जयति ।

ज्ञात्वा धनागमं कस्यचिदहं ते दापयामि मह्यं त्वया
किञ्चिद्दातव्यमिति यो गृह्णाति स पार्श्विकः । न कर्ता
कारयिता, तटस्थो न त्वज्ञतया गृह्णाति । यथा च
गृहीत्वाऽधमर्णाय प्रतिभूत्वेनावतिष्ठते । प्रतिरूपको
दाम्भिकः । कुसुम्भाद्युपहितकुङ्कुमादिविक्रयो व्याजः ।
आर्तिः परपीडा । प्रच्छन्नहरणं चौर्यम् । प्रसभं साहसम् ।
ननु चौर्यसाहसाम्यां स्वाम्यमेव नास्ति तन्निमित्तेष्वपठित-
त्वात् । 'स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेष्विति ।
तथा 'विद्याशिल्पं भृतिमेवेत्यादि । तथा 'सप्त वित्ता-
गमा धर्म्याः' इति च । अथास्मादेव वचनात्स्वाम्य-
कारणत्वमनयोरिति । कथं तर्हि बलाद्भुक्तं न जीर्यतीति ।

केचित्तावदाहुः । नैवायं पाठोऽस्ति 'द्यूतचौर्यार्ति'ति ।
अपि तु वैर्यार्तिं, वैरिणः सकाशात्तत् गृह्यते संधान-
काले, यद्येतावद्दासि तदा त्वया संधिं करोमि, शक्तिवि-
हीनतया ददाति । साहसमपि न प्रसह्य हरणं, किं तर्हि,
यत्प्राणसंदेहेनार्ज्यते पोतयौतृतया, रहसि राजप्रतिषिद्ध-
प्रतिक्रयेण च । अन्ये तु मन्यन्ते । नैव बलादपहरणेन
स्वाम्यं भोगेन वा जरणं विरुध्यते, यत्र बलं प्रथम-
मपहारकाले, असत्यपि बले उपेक्षया भोगस्तत्र स्वाम्यम् ।
यत्र त्वारम्भात्प्रभृति सार्वकालिको बलोपभोगस्तत्र
जीर्यतीति कथ्यते । तस्मादुभयमविरुद्धम् । इदं युक्तं,
यच्चौर्यसाहसाम्यां स्वत्वानुत्पत्त्या पाठविभागः कृतः,
अन्यैश्च स्मृतिकारैः स्वत्वहेतुष्वपरिगणनात् । मेघा.

ज्येष्ठमहिमा

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ।

पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥

(१) मस्मृ. ४।२२९.

(२) मस्मृ. ९।१०६, १०७.

१ (न०). २ याचत. ३ यतो व. ४ त्वस.

५ त्पत्तिपा. ६ गङ्गातां थ.

यस्मिन्नृणं संनयति येन चानन्यमश्नुते ।

स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान् विदुः* ॥

मेघातिथिना तु "उत्पन्नमात्रेण ज्येष्ठेन संस्काररहिते-
नापि मनुष्यः पुत्रवान् भवति । ततश्च नापुत्रस्य लोकोऽ-
स्तीत्यलोकता परिहृता । तथा 'प्रजया पितृभ्यः' इति श्रुतेः
'पुत्रेण जातमात्रेण पितृणामनृणश्च' इत्युक्तम् । यस्मिन्नृण-
मिति तु साधारणम् । अत एव तत्र यस्मिन् जाते ऋणं
शोधयति येन जातेनामृतत्वं च प्राप्नोति । तथा च
श्रुतिः 'ऋणमस्मिन्नि'ति । स एव पितृधर्मण हेतुना
जातः पुत्रो भवति । तेनैकेनैव ऋणापनयनाद्युपकारस्य
कृतत्वात् । इतरांस्तु ऐच्छिकान्मुनयो जानन्ति" इति
तेनोक्तम् । मेघा. (बाल. २।१३५) [पृ. २४१]

अविभाज्यद्रव्यविशेषाः, स्त्रियोऽविभाज्याः

तृण्डुलानि च वस्त्राणि अलङ्कारश्च वाहनम् ।

उदकं च स्त्रियश्चापि न विभाज्याः समा अपि ॥

बृहस्पतिः

पुत्रमहिमा

वृषोत्सर्गं गयाश्राद्धमिष्टापूर्तं तथैव च ।

पालयिष्यति वार्धक्ये श्राद्धं दास्यति चान्वहम् ॥

यथा जलं कुप्लवेन तरन् मज्जति मानवः ।

तथा पिता कुपुत्रेण तमस्यन्धे निमज्जति ॥

गुणाधिक्ये भागाधिक्यम्

वैयोविधातपोभिश्च व्यंशं हि लभते धनम् ॥

कात्यायनः

विषमविभागहेतुः कर्मानुष्ठानतारतम्यम्

यथा यथा विभागान्नं धनं यागार्थतामियात् ।

तथा तथा विधातव्यं विद्वद्भिर्भागगौरवम् ॥

* इदं श्लोकद्वयं पूर्वं दायभागे (पृ. ११९६) समुद्धृतमपि
बालम्बद्ध्यां समुपलब्धमेघातिथिभाष्यस्य समुद्धरणार्थं पुनः समु-
द्धृतम् ।

(१) सवि. ३७२ (मनुस्मृतौ नोपलभ्यते).

(२) विर. ५८६.

(३) विर. ५८६; दात. १७२; विच. ८०.

(४) नृप्र. २१८.

(५) स्मृच. २६५ गातं (गाच्च) यागा (याथा); पमा.
४९०; नृप्र. ३५; दानि. २ गातं (गस्यं); समु. १२८.

तत्रापि कर्मानुष्ठातृत्वतारतम्येन लभ्यधनपरिमाण-
त्तरतम्यं भवति न पुनर्विद्यातारतम्येनेति । अत आह
कत्यायनः— यथा यथेति । द्रव्यबाहुल्ये सतीति
शेषः । स्मृच. २६५

बृद्धहारीतः

स्त्रीधनविभागः । अनेकपितृकाणां द्वैमातृकाणां च भागविधिः ।
यैतैवृत्कं धनं पुत्रा विभजेयुः सुनिर्णयम् ।
मातृकं चेद्दुहितरस्तदभावे तु तत्सुतः ॥
अविभक्तपितृकाणां पितृतो भागकल्पना ॥
द्वैमातृणां मातृतश्च कल्पयेद्वा समोऽपि वा (?) ॥

लघुहारीतः

अविभाज्यम् । पितृप्रसादलब्धमपि स्थावरं न भोक्तव्यम् । सर्वो-
नुमत्या एव स्थावरद्विपदानां व्यवहारः ।
अविभाज्यं सगोत्राणामासहस्राद्धनादपि ।
यज्ञं क्षेत्रं च पत्रं च कृतान्नमुदकं स्त्रियः ॥
पितृप्रसादात् भुज्यन्ते धनानि विविधानि च ।
स्थावरं न तु भुज्येत प्रसादे सति पैतृके ॥
स्थावरं द्विपदं चैव यद्यपि स्वयमर्जितम् ।
असंभूय सुतान् सर्वान्न दानं न च विक्रयः ॥

अग्निपुराणम्

गुणज्येष्ठ एव ज्येष्ठांशभाक्

निवर्तयेरंस्तस्मात्तु ज्येष्ठांशं भाषणादिके ।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान् गुणतोऽधिकः ॥
पतितस्त्रीणां वृत्तिः
एवमेव विधिं कुर्युर्योषित्सु पतितास्वपि ।
वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥

- (१) बृहास्पृ. ७।२२५, २६०, २६१.
(२) लहास्पृ. ११४, ११६, ११७.
(३) अणु. १७०।५-८.

शुक्रनीतिः

स्थावरे न पितुः पितामहस्य वा प्रभुत्वम्

मृणिमुक्ताप्रवालानां सर्वस्यैव पिता प्रभुः ।
स्थावरस्य तु सर्वस्य न पिता न पितामहः ॥

स्वत्वायोगमयोर्विचारः

वैतेते यस्य यद्धस्ते तस्य स्वामी स एव न ।
अन्यस्वमन्यहस्तेषु चौर्याद्यैः किं न दृश्यते ॥
तस्माच्छास्त्रत एव स्यात्स्वाम्यं नानुभवादपि ।
अस्यापहृतमेतेन न युक्तं वक्तुमन्यथा ।

विदितोऽर्थागमः शास्त्रे यथावर्णं पृथक् पृथक् ॥
शास्त्रि तच्छास्त्रधर्मं यत् म्लेच्छानामपि तत्सदा ।
पूर्वाचार्यैस्तु कथितं लोकानां स्थितिहेतवे ॥

पितृकृतो विभागः । अपुत्रमृतस्त्रियहराः क्रमेण । अविभाज्यम् ।

सैमानभागिनः कार्योः पुत्राः स्वस्य च वै स्त्रियः ।
स्वभागार्धहरा कन्या दौहित्रस्तु तदर्धभाक् ॥
मृतेऽधिपेऽपि पुत्राद्या उक्तभागहराः स्मृताः ।
मात्रे दद्याच्चतुर्थांशं भगिन्यै मातुर्धकम् ॥
तदर्धं भागिनेयाय शेषं सर्वं हरेत्सुतः ।
पुत्रो नप्ता धनं पत्नी हरेत्पुत्री च तत्सुतः ॥
माता पिता च भ्राता च पूर्वालाभाच्च तत्सुतः ॥
पित्रादिधनसंबन्धहीन यद्यदुपार्जितम् ।
येन स काममदनीयादविभाज्यं धनं हि तत् ॥

(१) शुनी. ४।८०३-४.

(२) शुनी. ४।८०५-८. [पतत्सदृशाः श्लोकाः अस्मिन्
प्रकरणे संग्रहकारे निर्दिष्टाः (पृ. ११४२)].

(३) शुनी. ४।८०९-१२, ८१४-१५.

साहसम्

ॐ नमः

स्मृत्यन्तरम्

शूद्रस्य विप्रवेषधारणे दण्डः

शूद्रस्य विप्रवेषधारिणस्तप्रशलाकया यज्ञोपवीत-
चद्रपुष्यालिखेत् ।

(१) मिता. २।३०४; अप. २।३०३ यज्ञो... .. लिखेत्

गर्भवातिनी तदन्तारश्च दण्ड्याः

या पातयित्वा स्वं गर्भं ब्रूयाद्दहमगर्भिणी ।

तामप्सु प्रक्षिपेद्राजा जरैश्च नरमारिणीम् ॥

(यज्ञोपवीतं दद्यादपुष्यपि लिखेत्); वित्ता. ८२९ लिखेत्

(वृत्त्यर्थं तद्विप्रधारणे वध एव ।)

(१) विश्व. २।२८२.

दण्डपारुष्यम्

वेदाः

याननिमित्तकार्हिस्ता

वृशो वैजानस्यरुणस्य त्रैधात्वस्यैक्ष्वाकस्य पुरो-
हित आसीत्स ऐक्ष्वाकोऽधावयत् ब्राह्मणकुमारं रथेन
व्यच्छिनत्स पुरोहितमब्रवीत्तव मा पुरोधायामिद-
भीदृशुपागादिति तमेतेन साम्ना समैरयत्तद्वाव स
तर्ह्यकामयत कामसनि साम वाशं काममेवै-
तेनावरुन्धे ।

विजानस्य पुत्रो वृशो नाम कश्चिदृषिः स ऐक्ष्वा-
कस्य इक्ष्वाकुकुलजस्य त्रैधात्वस्य त्रिधातुः पुत्रस्य व्यरु-
णस्य एतन्नाम्नो राज्ञः पुरोहितः पुरोधा आसीत् स च

(१) तात्त्रा. १३।३।१२.

ऐक्ष्वाको राजा रथवाहनाश्वानधावयत् शीघ्रं गमयत्,
पथो मध्ये व्यवस्थितं कश्चिद्ब्राह्मणकुमारं ब्राह्मणपुत्रं
रथेन रथावयवेन चक्रेण व्यच्छिनत् विच्छिन्नावयवमक-
रोत्, स कुमारः पुरोहितं वृशमब्रवीत् तव पुरोधावां
पौरोहित्ये वर्तमाने मां इदानीं ईदृक् एवरूपं हिंसन्
उपागात् प्राप्नोदिति एवमुक्तवन्तं एतेन वाशेन साम्ना
समैरयत् सङ्घतावयवमकरोत् तद्वाव तत् खलु तर्हि
तस्मिन् काले स ऋषिरकामयत यस्मादेवं तस्माद्वाशं साम
कामसनि कामप्रदं अतोऽनेन स्तुवन् एतेन साम्ना
अभिलषितं सर्वमेव काममेति कामयितव्यं फलं अवरुन्धे
तस्याः

॥ समाप्तं व्यवहारकाण्डम् ॥



श्लोकार्थानुक्रमणिकायां निर्दिष्टाः संक्षेपाः

| | | | | | |
|----------|----------------------|---------|-----------------------|----------|-------------------|
| अङ्गि. | अङ्गिराः | परा. | पराशरः | विध. | विष्णुधर्मः |
| अग्निः | अग्निः | परि. | परिशिष्टकारः | विपु. | विष्णुपुराणम् |
| अग्नि. | अग्निपुराणम् | पार. | पारस्करः | विरा. | विराट् |
| आदि. | आदिपुराणम् | पिता. | पितामहः | विष्णुः | विष्णुः |
| आप. | आपस्तम्बः | पैठी. | पैठीनासिः | वृका. | वृद्धकात्यायनः |
| आश्व. | आश्वलायनः | प्रचे. | प्रचेताः | वृगौ. | वृद्धगौतमः |
| उत्त. | उत्तथ्यः | प्रजा. | प्रजापतिः | वृम. | वृद्धप्रथितामहः |
| उश. | उशाना | प्रव. | प्रवराध्यायः | वृम. | वृद्धमनुः |
| ऋष्य. | ऋष्यशृङ्गः | वृप. | वृहत्पराशरः | वृया. | वृद्धयाज्ञवल्क्यः |
| कण्वः | कण्वः | वृम. | वृहन्मनुः | वृव. | वृद्धवसिष्ठः |
| कात्या. | कात्यायनः | वृय. | वृहद्यमः | वृशा. | वृद्धशातातपः |
| कार्णा. | कार्णाजिनिः | वृह. | वृहस्पतिः | वृहा. | वृद्धहारीतः |
| कालि. | कालिकापुराणम् | बौका. | बौधायनकारिका | वेदाः | वेदाः |
| कालौ. | कातीयलौगाक्षिसूत्रम् | बौधा. | बौधायनः | व्याघ्रः | व्याघ्रः |
| कौ. | कौटिलीयमर्थशास्त्रम् | बौशे. | बौधायनगृह्यशेषसूत्रम् | व्यापा. | व्याघ्रपात् |
| गरु. | गरुडपुराणम् | ब्रह्म. | ब्रह्मपुराणम् | व्यासः | व्यासः |
| गार्ग्यः | गार्ग्यः | भवि. | भविष्यपुराणम् | शंखः | शंखः शंखलिखितौ च |
| गुप्तः | विष्णुगुप्तः | भा. | महाभारतम् | शाक. | शाकलः |
| गोभि. | गोभिलः | भार. | भारद्वाजः | शाता. | शातातपः |
| गौत. | गौतमः | भाष्य. | भाष्यकारः | शुनी. | शुक्रनीतिः |
| जातू. | जातूकर्णः | मत्स्य. | मत्स्यपुराणम् | शौन. | शौनकः |
| जाबा. | जाबालिः | मनुः | मनुः | षट्त्रि. | षट्त्रिंशन्मतम् |
| जैमि. | जैमिनीयसूत्रम् | मरी. | मरीचिः | संभ्र. | संभ्रकारः |
| दक्षः | दक्षः | मार्क. | मार्कण्डेयपुराणम् | संव. | संवर्तः |
| देव. | देवलः | मासो. | मानसोऽज्ञासः | सुम. | सुमन्तुः |
| देवी. | देवीपुराणम् | यमः | यमः | सूतः | सूतः |
| नार. | नारदः | याज्ञ. | याज्ञवल्क्यः | स्कन्द. | स्कन्दपुराणम् |
| नि. | निरुक्तम् | लुहा. | लुहहारीतः | स्मृत्य. | स्मृत्यन्तरम् |
| निघ. | निघण्टुकारः | लिङ्ग. | लिङ्गपुराणम् | हरि. | हरिवंशः |
| पञ्चा. | पञ्चाध्यायी | लौगा. | लौगाक्षिः, लोकाक्षिः | हारी. | हारीतः |
| पद्म. | पद्मपुराणम् | वसि. | वसिष्ठः | | |
| | | वारा. | वाल्मीकिरामायणम् | | |

* एतच्चिह्नानि वचनानि पाठभेदरूपाणि स्थलादिनिर्देशे द्रष्टव्यानि ।

+ वचनस्योपरि २, ३ इत्याद्यङ्कः तत्पत्रगततद्वचनसंख्याबोधकः ।

× एतच्चिह्नानि निरुक्तवचनानि व्याख्याग्रन्थे समुद्धृतान्यपि श्लोकार्थानुक्रमणिकायां तेषां संग्रहस्यावश्यकत्वात् संगृहीतानि ।

विवादपदेषु निर्दिष्टश्लोकार्थानुक्रमणिका

| श्लोकः | ऋषिः | पृष्ठम् | श्लोकः | ऋषिः | पृष्ठम् | श्लोकः | ऋषिः | पृष्ठम् |
|---------------|---------|---------|-----------------|----------|---------|-------------------|---------|---------|
| अंशं च लभे | कौ. | ८६२ | अकुर्वतस्तु | काल्या. | ६५६ | अक्षय्या वृद्धि | नार. | ६२६ |
| *अंशं दायद्ध | मनुः | १२४६ | *अकुर्वन्तं त | " | ८७६ | अक्षराजाय | वेदाः | १८९७, |
| अंशं हरेत् | देव. | १५२६ | *अकुर्वन्स त | " | " | | | १८९८ |
| *अंशं हरेत् द | " | " | अकुर्वन्स्वामि | बृह. | ९५४ | *अक्षवज्रश | नार. | १९१० |
| अंशग्राहिभि | विष्णुः | १३८९ | अकूटं कूट | याज्ञ. | १७२९ | अक्षवध्रश | " | " |
| अंशपिण्डवि | नार. | १३४७; | *अकूटं कूट | " | १७३० | *अक्षवध्रिश | " | " |
| | देव. | १४०४ | अकृतः स तु | मनुः | ७६०; | *अक्षवध्रिश | " | " |
| अंशभाजं न | शान. | १३६५ | नार. | ७६२; यमः | ७६९ | अक्षस्याहमे | वेदाः | १८९४ |
| अंशमंशं य | मनुः | ११९१ | अकृतामपि | विष्णुः | ६१० | अक्षाः फलव | " | १९०१ |
| *अंशांशं तस्क | " | १६९२ | अकृता वा कृ | मनुः | १३००; | अक्षान् यद् | " | १९०२ |
| अकन्येति तु | " | ८८२; | | देव. | १३५० | *अक्षाभावे च | मनुः | १८०७ |
| | नार. | १०९७ | | बृह. | १५१६ | अक्षार्थं व्यणु | आनि. | १९६८ |
| अकरः श्रोत्रि | आप. | १६६६; | *अकृतो वा कृ | मनुः | १३०० | अक्षावापस्य | वेदाः | १८९७ |
| | वसि. | १९४४ | अकृत्वा प्रेत | शंखः | १४७३ | अक्षास इदं | " | १८९४ |
| अकरणे द्वा | कौ. | ८६२ | अकृन्वन् क | वेदाः | ६०४ | अक्षासो अस्य | " | " |
| अकरदाः प | " | ९३२ | अकभिर्मं पि | " | ११२२ | अक्षुण्णवेद | शंखः | १२८१ |
| अकर्ता नित्यं | बृह. | १६४८ | *अक्रमेण च | नार. | ८५१ | अक्षेषु मृग | भा. | १०३१ |
| अकर्मा दस्यु | वेदाः | ८१० | अक्रमेण तु | " | " | अक्षैर्मा दैव्यः | वेदाः | १७९५, |
| अकर्मिणः | बौधा. | १३८७ | अक्रमोढा सु | काल्या. | १३५०, | | | १८९५ |
| अकस्मात्क्रोध | भा. | ८६१ | | १४०३ | | | | ९९७ |
| अकामतः का | याज्ञ. | ९१४ | अक्रियाकारि | बृह. | १७५८ | अक्ष्यौ नौ मधु | " | ९९६ |
| अकाममन | काल्या. | ६५५ | अक्लिष्टं फल | भा. | १२८४ | अक्ष्यौ वृषभ्य | " | ९९६ |
| अकामां दूष | मत्स्य. | १८९२ | अक्लिष्टानां तु | कौ. | १६१९ | *अगतस्यापि | वृम. | ८५५ |
| अक्रममायाः श | कौ. | १८४९ | अक्षता च क्ष | याज्ञ. | १०८८ | अगन्त देवः | वेदाः | १००३ |
| अकामे पित | शंखः | ११४८ | *अक्षताभिः स | नार. | ८३३ | अगम्यायामि | नार. | १८८४ |
| अकामो वा स | भा. | १२८६ | अक्षता भूयः | विष्णुः | १२७९ | अगस्त्यः खन | वेदाः | १६८, |
| *अकारणं च | माज्ञ. | १६३४ | अक्षतायां क्ष | याज्ञ. | १३३१ | | | ११२० |
| अकारणे च | " | " | *अक्षता वा क्ष | " | १०८८; | अगुणान् क्री | काल्या. | १७९१ |
| *अकारणेन | " | " | | मनुः | १३०० | *अगुप्तं विज्ञ | मनुः | १८६२ |
| अकार्यकारि | पैठी. | १६५३ | अक्षदुग्धो स | वेदाः | १४६४, | अगुप्तमज्ञ | " | " |
| अकार्यकार्यं | वेदाः | १६०३ | | १६०० | | *अगुप्तां क्षत्रि | " | १८६० |
| अकार्यमेत | वृम. | १११६ | *अक्षबन्धश्च | नार. | १९१० | *अगुप्तां खल्ल | " | १८६७ |
| अकार्यवशा | वारा. | १०७७ | *अक्षबन्धश्च | " | " | अगुप्तामप्यु | मैत. | १८४२ |
| अकाले तु त्य | अमु. | १९७५ | अक्षमज्ञे च | मनुः | १८०७ | अगुप्ते क्षत्रि | मनुः | १८६० |
| अकीर्तिं जन | भा. | १९८४ | *अक्षमज्ञे तु | " | " | *अगुप्तेऽक | " | १८६२ |
| अकीर्तिः परि | " | १०३६, | अक्षमूमिह | कौ. | १९०४ | *अगुप्ते वैश्य | " | १८६० |
| | " | १३९०, | अक्षमां ज्ञान | काल्या. | १११० | *अगुप्तेकाज्ञ | " | १८६२ |
| *अकुर्वन्तं त | काल्या. | ८७६ | अक्षमायां क्षि | कौ. | १८४९ | अगृहीते स | याज्ञ. | ८४६, |
| अकुर्वन्तस्त | " | " | अक्षमाला त्र | मनुः | १०५१ | | | १८७९ |
| *अकुर्वन्तु त | " | " | अक्षया वृद्धि | वसि. | ६०९ | अग्रेपयन्ते | व्यासः | १०८९ |
| | " | " | | | | अपनये यवि | वेदाः | ९२४ |

| | | | | | |
|---------------------|--------------|---------------------|--------------|------------------|--------------|
| अग्निं पुरस्ता | वेदाः ११४४ | अग्रतस्ते ग | वाराः १०७५, | अच्छलेनैव | मनुः ७४१३ |
| अग्निं प्रजाप | बृह. १३४८; | | १०७६ | | नार. ७४८ |
| | जावा. १३५६ | अग्रदिधिषुः | वेदाः १५९२ | अच्छिन्नं तन्तुं | वेदाः १००६ |
| अग्निं वा प्रवि | आप. १६६४ | अग्राह्याः कर्म | कौ. ६८० | अजखं त्वां स | १८९७ |
| अग्निं हृदयं | वेदाः ९९७ | अग्न्यमग्रे प्र | भा. १९८६ | *अजातेर्जाति | याज्ञ. १७३३ |
| अग्निः पुत्रस्य | ११६२ | अघोरचक्षु | वेदाः ९८६, | अजातेष्वेव | काल्या. ९१९ |
| अग्निः शुश्रूषि | कात्या. ११०९ | | १००२ | अजातौ जाति | याज्ञ. १७३३ |
| अग्निः सुभगां | वेदाः १००१ | अध्वनेनस्वी | गौत. १६५९ | *अजातौषध | बृह. १७५९ |
| अग्निचिता स्त्री | ९९५ | अङ्कयित्वा भ | बृह. १८८६ | अजाद्यपहा | विष्णुः १६६९ |
| अग्निदं गर | बृहा. १६५३ | अङ्कयित्वा श्व | बृहा. १६५३ | अजानन्तोऽस्य | कौ. १६८३ |
| ” ” | अपु. १६५४; | *अङ्गर्हीनः प्र | याज्ञ. १७३३ | *अजानत्रौष | बृह. १७५९ |
| | मत्स्य. १६५५ | *अङ्गर्हीनश्च | १७३२ | *अजानन् यः | विष्णुः ७५७ |
| *अग्निदानं गर | मनुः १६९७ | अङ्गर्हीनस्तु | १९३२ | *अजानानां पक्षि | मनुः १७१८ |
| अग्निदानं भक्त | १९२९ | * ” ” | १७३२ | *अजानानः प्र | विष्णुः ७५७ |
| | स्कन्द. १९६६ | अङ्गादङ्गात्सं | वेदाः १२६२, | अजावयो गृ | वसि. ११८४ |
| अग्निदिव्यं य | वसि. १६०८; | १४१५; बौधा. १२६८; | १२६८, | *अजावापहा | विष्णुः १६६९ |
| अग्निदो गर | मनुः १६२६ | बृह. १५१५; भा. १९८५ | बौधा. १२६८; | *अजाविकं च | मनुः १२०८ |
| | मत्स्य. १६५५ | नि. १२५५ | नि. १२५५ | *अजाविकं चै | ” ” |
| * ” ” | बौधा. १९७४ | X ” ” | वेदाः १००४ | अजाविकं तु | ” ” |
| अग्निरिव क | वेदाः ६०१ | अङ्गादङ्गात् | शौन. १३६४ | *अजाविकं त्वि | ” ” |
| अग्निस्तस्मा | ६०४ | अङ्गादङ्गत् | मनुः १८०५ | अजाविकं सै | ” ” |
| अग्निर्मा तस्मा | ६०४ | *अङ्गानां पीड | वेदाः ९९८ | *अजाविकस | नार. ९१७ |
| अग्निर्वा य | ६०४ | अङ्गान्यजप्र | कौ. १६१९ | *अजाविके च | ” ” |
| | ६०४ | अङ्गाभिरद | मनुः १८०५; | *अजाविके त | ११६ |
| अग्निर्वै नः प | ११४३, | अङ्गावपीड | बृह. १८३१ | अजाविके तु | मनुः ९०९; |
| | १६०० | *अङ्गवभेद | वेदाः ११६१ | *अजाविके द्वौ | नार. ९१६ |
| अग्निर्हि प्रम | भा. ११३३ | अङ्गिरस इ | वेदाः ११६१ | *अजाविकेऽर्धे | गौत. ९०४ |
| अग्निशिष्टादि | कात्या. ११०९ | *अङ्गुलिं संधि | मनुः १७१४ | *अजाविकेऽर्धे | शंखः १६७२ |
| अग्निश्च सर्व | बौधा. १८४५ | *अङ्गुलीं प्रन्थि | १७१४ | *अजाविकेषु | मनुः १६०९ |
| अग्निष्टोमादि | कौ. ७७२ | अङ्गुलीं प्रन्थि | १७१३, | अजाविकेष्व | शंखः १६७२ |
| *अग्निष्ट्वा तस्मा+ | वेदाः १००३ | | १९२९ | अजाविके स | नार. ९१७ |
| अग्निहोत्रं ग | अग्नि. १३७४ | *अङ्गुलीं प्रन्थि | १७१३ | अजाविषु द्वौ | गौत. ९०४ |
| अग्निहोत्रं त्र | शंखः १२८१; | *अङ्गुल्यादौ | १८६९ | *अजाव्यपहा | विष्णुः १६६९ |
| | भा. १३८३ | *अङ्गुल्यो रच | १८६९ | *अजाश्वेषु | १७९७ |
| अग्ने दीदाय | वेदाः १८९७ | अङ्गुल्योरेव | ” ” | *अजाश्वेषु घा | ” ” |
| अग्नेरनुत्र | ९९१ | *अङ्गुल्योरेव | ” ” | अजिह्वैरज्ञा | भा. ११९ |
| * ” ” | १००० | अङ्गुल्योरेव | ” ” | अजीवन्स्वेच्छ | बृहा. ७३२ |
| अग्नेरिन्द्रस्य | नार. १९३६ | अङ्गुल्योरेव | स्कन्द. १९६७ | *अजुष्टमेव | कात्या. ८९७ |
| अग्नेरिवांस्य | वेदाः ९९७ | अङ्गुल्योरेव | वारा. १०७६ | अजैषं त्वा सं | वेदाः १९०० |
| अग्ने सपत्न | ९९१ | अङ्गुल्योरेव | वेदाः ८१० | अज्ञातदोषा | नार. ११८० |
| अग्नौ सुवर्ण | याज्ञ. १७३४ | अङ्गुल्योरेव | नि. १२५३ | *अज्ञातदोषे | ” ” |
| *अग्न्यागारायु | मनुः १६३० | अङ्गुल्योरेव | कौ. १६८६ | *अज्ञातपितृ | १३४७ |
| *अग्न्यागारायु | १६२९ | अङ्गुल्योरेव | नार. १७५७ | अज्ञातयोनि | कण्वः ८३९ |
| *अग्न्यादिभिश्चो | नार. १८२४ | अङ्गुल्योरेव | १७५५ | *अज्ञातशंस | कात्या. १२२५ |
| अग्न्याधानादि | शौन. १३६३ | अङ्गुल्योरेव | कात्या. १७६३ | *अज्ञातौषध | बृह. १७५९ |
| अग्रं नवेभ्यः | नार. १९३६ | अङ्गुल्योरेव | नार. १७५७ | अज्ञातौषधि | ” ” |
| | | अङ्गुल्योरेव | याज्ञ. १६३६ | | |

| | | |
|-----------------|---------|------------|
| अज्ञानतः प्र | विष्णुः | ७५७ |
| *अज्ञानतः यः | " | " |
| अज्ञानदोषा | नार. | ११०० |
| *अज्ञाननाशि | कात्या. | ७५४ |
| अज्ञानाङ्गान् | मनुः | ७५९ |
| अज्ञानादन् | गौत. | १९७२ |
| *अज्ञानादुत्त | याज्ञ. | १८७२ |
| अज्ञानाद्यः पु | मत्स्य. | ७६९; |
| | अपु. | १९७२ |
| *अज्ञानाध्याप | गौत. | १९७२ |
| *अज्ञानेन हि | कात्या. | ९५८ |
| *अज्ञानोक्तान् | " | " |
| *अज्ञानोक्तौ तु | " | " |
| अज्ञानोक्तौ द | " | " |
| *अज्ञानौषधि | बृह. | १७५९ |
| अज्ञानमानं | वसि. | १९४९ |
| अज्ञेयः स्याद | भा. | १९८३ |
| अज्ञेयवृत्ति | मनुः | ११९८ |
| अञ्जनं रोच | भा. | १०२८ |
| अञ्जनाभ्यञ्ज | वसि. | १९७७ |
| अण्डिका विश | अग्नि. | १९६७ |
| अतः परं चा | भा. | १९८६ |
| अतः परं प्र | मनुः | ८४४, |
| | | १७६४ |
| * " " | | १७७३ |
| अतः परं म | स्कन्द. | १९६५ |
| अतः पितृवि | विष्णुः | १२८१ |
| अतः पुत्रेण | भारत. | ६९२ |
| अतः प्रच्छन्न | " | १७५१ |
| *अतः प्रवृत्ते | " | १०९६ |
| अत ऊर्ध्वं सु | बौधाय. | १०२० |
| *अत ऊर्ध्वं पि | नार. | ६९० |
| " " " | " | ११५२ |
| अत ऊर्ध्वं प्र | शंख. | १०२४; |
| कात्या. | मनुः | ११०९; १८०१ |
| * " " | " | ८४४ |
| अत ऊर्ध्वं रि | शंख. | ११४८ |
| अत ऊर्ध्वं वि | अनि. | ७५६ |
| अत ऊर्ध्वं स | वसि. | १०२२; |
| | मनुः | १४७६ |
| अत ऊर्ध्वम | कौ. | १०३५ |
| अत एतानि | भा. | १२८५ |
| अतथ्यं श्रावि | कात्या. | १७९२ |
| *अतथ्यं साधि | " | " |
| अतश्च भ्रूण | वसि. | १९७७ |

| | | |
|------------------|---------|--------|
| अतश्च सुत | कात्या. | ८०५ |
| अतश्चैवाह | वारा. | १०७५ |
| अतस्तद्विषे | बृह. | १४०२ |
| *अतस्तान् घा | वृम. | १७६६ |
| " " " | नार. | १८२८ |
| " " " | बृह. | १४०२ |
| *अतस्तु विप | भा. | १२४३ |
| अतस्ते निय | कौ. | ९३२ |
| अतिकर्षणे | नार. | ८५१ |
| *अतिक्रमेण | वृम. | ९६२ |
| अतिक्रामन्ति | मनुः | ६१८ |
| अतिक्रामन्दे | " | १०५६, |
| अतिक्रामेत्प्र | " | १३९३ |
| " " " | कौ. | १६२० |
| अतिचारद | वेदाः | १६०२ |
| अतिच्छन्दोऽन | " | १०१० |
| अति तिस्रो ब्रा | आप. | १७९५ |
| *अतित्रास उ | " | " |
| *अतित्रासमु | " | " |
| अतिथिनामा | भा. | १०२९ |
| अतिथेराति | वेदाः | ११८१ |
| अतिमात्रम् | " | १६०० |
| अतियाच्चा तु | कौ. | ८४३ |
| अतिरेकेण | भा. | ८१८ |
| अतिर्यगुपे | वसि. | १९७७ |
| अतिव्यवहा | स्मृत. | १६६६ |
| अतिघट्ट भ्रूण | वसि. | ६०९ |
| अतिव्यवह | नौघ्रा. | १३८७ |
| अतीताज्ञाम | मनुः | ३१४३९; |
| याज्ञ. | वृष. | १४६३ |
| " " " | मनुः | १४४० |
| अतिवसंज्ञा ग | भा. | १२४३ |
| अतीवाज्ञाम | " | १०२९ |
| अतुल्याः स्युः प | जैमि. | ७७० |
| *अतोऽन्तराध | कात्या. | १५८ |
| *अतोऽन्यगम | नार. | ११०० |
| अतोऽन्यतमे | कौ. | १६१५ |
| अतोऽन्यथांश | नार. | १५५२ |
| अतोऽन्यथा ह्ये | " | ९४७ |
| अतोऽन्यथाग | " | ११००; |
| | देव. | १११३ |
| अतोऽन्यथा तु | मनुः | १८१२ |
| *अतोऽन्यथाऽन | नार. | १५५३ |
| *अतोऽन्यथा नां | " | १५५२ |
| अतोऽन्यथा प्र | यमः | १८३५ |
| अतोऽन्यथा म | भा. | ८१९ |
| अतोऽन्यथा यः | मत्स्य. | १७६७ |

| | | |
|-----------------|---------|-------|
| अतोऽन्यथा व | नार. | ११०२; |
| मनुः | १७०९; | १९२७ |
| अतोऽन्येन प्र | कात्या. | १८८८ |
| अतोऽपत्यं द्व | नार. | ११०३ |
| अतोऽप्रवृत्ते | " | १०९६ |
| अतो भूमिर्न | " | १९७६ |
| *अतोऽधदण्डो | मनुः | १७१४ |
| अतोऽर्वाक् प | बृह. | ८९५ |
| अत्ययो यथा | कौ. | १०३५ |
| *अत्याज्या माता | शंख. | १६१२ |
| अत्यारात्पर | बृह. | ९५३ |
| अत्र गाथा य | भा. | १२८६ |
| अत्र गाथा वा | मनुः | १०७१ |
| अत्र नो मुह्य | भा. | १२८६ |
| *अत्र भ्रातृणां | वसि. | १४६९ |
| *अत्र यन्मुख्ये | आप. | १६६४ |
| *अत्र शक्तिवि | नार. | ७२४ |
| *अत्रात्मभर | देव. | १४६१ |
| अत्रायुदाह | भा. | १०३२ |
| " " " | वसि. | १२७३ |
| अत्रिरददा | वेदाः | १२५८ |
| अथ ऋत्विजि | शंख. | ७७१ |
| अथ कार्यवि | कात्या. | ७५५ |
| अथ केन प्र | भा. | १२८६, |
| " " " | " | १४७३ |
| अथ क्षत्रा पा | वेदाः | १००९ |
| अथ गृह्यश्च | विष्णुः | १९८२ |
| अथ चेच्छुद्धा | " | १२४० |
| अथ चेत्प्रति | शंख. | ७७१ |
| अथ चेत्स द्वि | कात्या. | १४५६ |
| *अथ चेदसु | शंख. | ७७१ |
| *अथ चेदसु | नार. | ९४५ |
| *अथ चेदन्य | भा. | १२४४ |
| अथ चेदबां | शंख. | ७७१ |
| *अथ चेद्वि | " | " |
| अथ चेदक्षी | देव. | १५२६ |
| *अथ चेदत्त | कात्या. | १३५६ |
| अथ तस्यापि | वृम. | ८५५ |
| *अथ तेषाम | शंख. | १२८२ |
| अथ त्रयो वा | वेदाः | १२६२ |
| अथ त्विदं प्र | भा. | १०३७, |
| | | १२८४ |
| अथ दक्षिणां | बौधे. | १३८५ |
| *अथ दत्तक | पैठी. | १३५६ |
| अथ दत्तक्री | " | " |
| *अथ देयम | नार. | ७९८ |

| | | | | | |
|--------------------------|---------------|------------------|---------------|-------------------------|--------------|
| अथ देया तु | भा. १२८७ | अथवा भर्त | भा. १०३० | अथाप्यत्र भा | बौधा. १९२० |
| *अथ द्वयोर | कात्या. ७६८ | अथवा मित्रैः | शंखः १६७२ | अथाप्युदाह | ,, १०२०, |
| अथ द्वादश | विष्णुः १२७९ | अथवा याव | विष्णुः १४२८ | १२६८, १२६९, १२७०, १३९८, | |
| अथ पत्न्याच्चा | हारी. १०१४ | अथवार्यमा | कौ. ८१७ | १४६९, १६०८, १६६७, १८४५; | |
| अथ पुत्रस्य | ,, १२६४; | अथवा शुद्ध | स्कन्द. १९६६ | वसि. १६०८, १६६८, १९७७; | |
| वसि. १२७२; विष्णुः १२७९; | | अथवाऽहम | वेदाः १०१० | आप. १६६५ | |
| शंखः १२८२; मनुः १२८९ | | अथ विष्णुप्र | भा. १०३० | अथाब्रवीच्च | भा. १९८३ |
| *अथ प्रच्छन्न | नार. १७५१ | अथ व्याहृति | बौधे. १३८५ | अथाभ्यगच्छ | ,, १०३३ |
| अथ प्रतिप्र | वेदाः १००८, | अथ शक्तिवि | नार. ७२४ | *अथायाजका | गौत. १९७२ |
| | १८४१ | अथ सास्त्रस्य | स्कन्द. १९६५ | *अथार्पितान् | याज्ञ. ९१२ |
| अथ प्रवृत्ति | शंखः १०२४; | अथ सूद्रापु | विष्णुः १२४१ | अथावस्कन्दं | कौ. ८६३ |
| कात्या. ११०९ | | अथ श्वोभूते | वेदाः १८९७ | अथावेद्य प्र | कात्या. ९६० |
| अथ प्रागेव | ,, ८०५ | अथ संग्राम | ब्रह्म. १३७४ | अथासदद्रव्य | हारी. ७९४ |
| अथ बन्धूनां | ,, १३८४ | *अथ संसृष्टि | गौत. १४६५ | अथासपत्नी | वेदाः ९९० |
| अथ ब्रह्मा म | वेदाः १००९ | Xअथ स ओकः | नि. १२५४ | अथास्मै पद्मा | ,, १८९७ |
| अथ ब्राह्मण+ | विष्णुः १२४० | अथ सप्तमे | वेदाः ६०४ | *अथास्य वेद | गौत. १७६८ |
| अथ ब्राह्मणो | वेदाः ७९२ | अथ सर्पेण | नार. ९१८ | *अथास्यानुम | नार. ७६३ |
| अथ भृत्ये रा | आप. १८४४ | अथ सोमम | वेदाः ११८१ | अथैकपुत्रा | विष्णुः १२४० |
| अथ भ्रातृणां | वसि. ११८४, | अथ स्त्रीणां ध | विष्णुः १०२३ | अथैको दर्श | बृह. ६७१ |
| | १४०७, १४६९ | *अथ स्त्रीधर्माः | ,, ,, | अथैतयोः प | वेदाः १५९२ |
| अथ महापा | विष्णुः १६०९, | अथ स्त्रीभ्यः पु | वेदाः १००८ | Xअथैतां जाम्या | नि. १२५४ |
| | १८४७ | अथ ह याज्ञ | ,, १०१०, | Xअथैतां दुहि | ,, १२५५ |
| अथ मूलम | मनुः ७५९ | १४०५, १४२४, १९८२ | | अथैनं वन्न | बौधे. १३८५ |
| अथ य आत्मा | वेदाः ९२५ | अथ ह विश्वा | ,, १२६१ | अथैनामक | वेदाः ९९८ |
| अथ यदि त | ,, १६५६ | अथ ह शुनः | ,, १२६०, | अथो खल्वाहु | ,, ९९४ |
| अथ यदेव | ,, १२६२ | | १९८१ | अथोदक्षेत्र | ,, १९८२ |
| अथ यद्यपः | ,, ८१३ | अथ ह सीता | ,, १००६ | अथो ततस्य | ,, ९२२ |
| अथ यद्येषां | कालौ. १३५६; | अथ हास्य वे | गौत. १७६८ | अथो तप ए | ,, १००६, |
| | प्रव. १३८४ | अथ हैतदे | वेदाः १५९४ | | १८४० |
| अथ यस्माद् | वेदाः ८१४ | अथ होता प | ,, १००९ | अथोत्तमर्णो | विष्णुः ६१० |
| अथ यस्मान्न | ,, १००८ | अथागच्छेत्स | कात्या. ११०९, | अथोत्तरतः | बौधा. १९१९ |
| अथ यस्य जा | ,, १८४१ | १४६०; नार. १४५० | | अथोदस्थात्स | वेदाः ९७० |
| अथ ये दत्त | कालौ. १३५६ | अथातः पिता | वेदाः १९८१ | अथोदीच्यः प | कात्या. ८९८; |
| अथ ये पञ्च | वेदाः १८९८ | अथातः पुत्र | बौधे. १३८४ | सुम. | ९०० |
| अथ यो दक्षि | ,, ७९१ | अथातः सप्र | वेदाः १२६२ | वेदाः | १००९ |
| अथ यो विनि | भा. १९८३ | ,, + | स्कन्द. १९६६ | अथोद्गाता वा | ,, ९९७ |
| अथ राजघ | विष्णुः १९२१ | अथातो दक्षि+ | वेदाः ७९२ | अथो नि शुष्ण | ,, ९९७ |
| *अथ राज्ञा भृ | आप. १८४४ | अथादायाद | वसि. १२७३ | अथोपगम | नार. ८३२ |
| अथर्ववेद | कौ. १९२५ | *अथादायादा | ,, ,, | अथो यो मन्यु | वेदाः ९९७ |
| अथर्वहन्ता | विष्णुः १६१२ | अथाध्वर्युः कु | वेदाः १००९ | अथोऽष्टांशं त्व | शुनी. १७६७ |
| *अथ वज्राघ्न | ब्रह्म. १३७४ | अथान्तरिक्षे | भा. १९८५ | अदण्डयित्वा | बृहा. १६५३ |
| अथवा कित | नार. १९११ | अथापि तस्मा | आप. ११६६ | *अदण्डो मुच्य | मनुः ७५९ |
| *अथवाप्यथ | यमः १६५२ | अथापि नित्या | ,, ,, | अदण्ड्यः काम | आप. १६६५ |
| अथवा बन्ध | ,, ,, | अथापि भाल्ल | वसि. १९२१ | अदण्ड्यदण्ड | कौ. १८५१ |
| *अथवा ब्राह्म | विष्णुः १२४० | *अथापुत्रस्य | शंखः १४७१ | अदण्ड्याः काण | उश. ९२० |
| | | अथाप्यत्र अ | हारी. ११६३ | अदण्ड्यागन्तु | नार. ९१९५ |
| | | | | उश. | ९२० |

| | | | | | |
|--------------------|--------------|-------------------|---------------|--------------------------|--------------|
| *अदण्ड्या गर्भि | नार. ११९ | *अदायकं रा | कात्या. १५२३ | अदेयदान | गौत. ७९४ |
| अदण्ड्यानं द | अपु. १९६९ | अदायादकं | कौ. १४७४, | *अदेयदाय | नार. ८०१ |
| अदण्ड्या मृत | उश. ९२० | | १९५० | अदेयदेय | बृह. ८०२ |
| अदण्ड्याश्चोत्स | ,, ,, | | देव. १५२६ | * , , | ,, ७२७ |
| अदण्ड्या स्त्री | अपु. १८९१ | * , , | कौ. १३९१ | अदेयमथ | नार. ७९८ |
| अदण्ड्या हस्ति | नार. ९१९; | *अदायिकं तु | देव. १५२६ | *अदेयमाहु | ,, ७९९ |
| | उश. ९२० | अदायिकं रा | कात्या. १५२३ | अदेयादिक | बृह. ८३४ |
| *अदण्ड्यो मुच्य | मनु. ७६० | अदास इति | नार. ८३३ | अदेयान्याहु | नार. ७९८ |
| अदण्ड्यो नृप | मासो. १९७० | *अदास इत्य | ,, ,, | * , , | बृह. ८०२ |
| अदण्ड्यो मुच्य | मनु. ७५९ | *अदासीदास | शंखः १६१३ | अदेवृष्ण्यप | वेदाः १००२ |
| अदण्ड्यो हि ब्रा | शंखः १८४७ | अदितिः कौश्लि | कौ. ८६३ | अदेशकाल | नार. १७५३; |
| *अदण्ड्यौ काण | उश. ९२० | अदितिरिव | वेदाः ९९४, | याज्ञ. १८७१; व्यासः १८८९ | व्यासः १८८९ |
| *अदत्तं तु क्ष | नार. ८०० | | १००७ | *अदेशकाले | नार. १७५३; |
| अदत्तं तु भ | ,, ,, | अदीयमाना | मनु. १०४२ | व्यासः १८८९ | वेदाः ९९७ |
| अदत्तं त्यक्त | कात्या. ७६७ | अदीव्यन्तुणं | वेदाः ६०४ | अदो यत् ते | कौ. ७७२ |
| *अदत्तं यश्च | मनु. ७९६; | अदुर्मङ्गलीः | ,, ९८६ | अदोषस्त्यक्तु | वारा. १०७६ |
| | नार. ८०१ | अदुर्मङ्गली | ,, १००३ | अङ्घ्रिर्दत्ता स्व | हरि. १३७६ |
| अदत्तत्यक्त | कात्या. ७६७ | *अदुष्टं ऋत्वि | नार. ७८३ | अङ्घ्रिर्ददौ सु | वासि. १०२१ |
| अदत्तभोक्ता | बृह. ८०४ | अदुष्टं चर्त्वि | ,, ,; | अङ्घ्रिर्वाचा च | ,, , |
| *अदत्तमूल्ये | नार. ८८८ | | शुनी. ७९० | *अङ्घ्रिश्च वाचा | ,, , |
| अदत्तादान | याज्ञ. १७४४ | *अदुष्टं वर्त्वि | नार. ७८३ | अदभ्योऽभिर्भ्रंहा | मनु. १९३१ |
| *अदत्तादाय | नार. ८०१ | अदुष्टत्यक्त | ,, १८८१ | अद्यसन्न स | वेदाः ९६५ |
| *अदत्तादायि | मनु. १६९७ | * , , | कात्या. १८८८ | अद्यप्रभृति | भा. १०२६, |
| अदत्तान्याहु | भार. ८०७ | *अदुष्टमान | दक्षः १११५ | | १३९० |
| अदत्तायां तु | ब्रह्म. १३७४ | अदुष्टमेव | कात्या. ८९७ | अद्याप्यनुवि | ,, १०२७, |
| *अदत्ता सुता | वासि. १२७३ | *अदुष्टश्चात्वि | नार. ७८३ | | १२८४, १२८५ |
| अदत्तेऽन्यत्र | नार. ८८८ | अदुष्टश्चेद् | ,, १०९७ | अथैव त्वं व | भा. १२८६ |
| अदत्तेऽर्थेऽस्त्रि | बृह. ६५१ | *अदुष्टस्यैव | ,, १७८७ | अद्रव्यां मृत | मत्स्य. १८९३ |
| *अदत्त्वा तन्मृ | कात्या. ८०६ | *अदुष्टां च त्य | याज्ञ. १०७९ | अद्धारि न च | भा. १०२८ |
| *अदत्त्वा तु गृ | ,, ,, | अदुष्टां तु त्य | ,, , | अद्घमुप | वारा. १०७७ |
| अदत्त्वा तु मृ | ,, ७१०, | अदुष्टां दुष्ट | विष्णुः १६०९, | अघः पश्यस्व | वेदाः ९७४ |
| | ८०६ | | १९७५ | *अघनस्य स्त्री | विष्णुः ६७८ |
| *अदत्त्वाऽपि मृ | ,, ,, | *अदुष्टां यस्त्य | याज्ञ. १०७९ | अघनस्य ह्य | नार. ७०० |
| अददत्कार | नार. ८५० | अदुष्टां शोषि | कात्या. १६५१ | अघनास्त्रय | ,, ८३४, |
| *अददत् स | याज्ञ. १९६० | अदुष्टां लभ | देव. १११२ | | १४०२ |
| अददद्वि स | ,, ,, | अदुष्टापति | परा. १११७ | *अघनो दास्य | वासि. १९८२ |
| अददद्याच्य | नार. ७०५ | अदुष्टास्ते तु | बृह. ९५१ | अघसः सर्वे | कालि. १३७७ |
| *अदम्या हस्ति | उश. ९२० | अदूषितानां | मनु. १६३१, | अघमर्णात् | शुनी. ७३१ |
| *अदर्शयश्च | मनु. ६६२ | | १९२९ | अघमर्णाथ | मनु. ७१८ |
| अदर्शयन् स | ,, ,, | अदूष्या हि स्त्रि | भा. १०२६ | *अघमवर्ण | हारी. १७९४ |
| अदर्शयित्वा | ,, ६८१ | अदृष्टलुद्धि | ,, १०३२ | अघमोत्तम | कात्या. ९२९ |
| अदातरि. पु | ,, ६६४ | *अदृष्टमेव | कात्या. ८९७ | अघमो भार | नार. ८२८ |
| अदाद्यमोऽत्र | वेदाः ११२२ | अदेयं दत्त्वा | शंखः ७९४ | अघममूले | भा. १२८६ |
| अदान्मे प्रौह | ,, ८११ | अदेयं न दे | विष्णुः ,, | अघमादिपि | मनु. १७०९ |
| *अदायकं च | देव. १५२६ | अदेयं यश्च | मनु. ७९६ | अघमेण च | ,, १९७४ |
| अदायकं तु | ,, ,, | अदेयदानं | हारी. ७९४ | अघमेण न | भा. १२८६ |

| | | | | | |
|-----------------|--------------|----------------|--------------|---------------|---------------|
| अधस्तात्तु प्र | यमः १८३५ | अध्यूहः सम | भा. १२८७ | *अनर्थशीला | नार. १०३९ |
| अधस्ते अस्म | वेदाः ९९९ | अध्यूहायाश्च | " १९६४ | अनर्थत्वान्म | भा. १०३२ |
| अध स्या योष | " ८११ | अध्वयुश्च य | वेदाः ८१४ | अनर्पितं तु | नार. ७६४ |
| अथा चिदोकः | " १२५३ | *अनंशाश्वाश्र | वसि. १३८९ | २ अनर्हता रा- | भा. ८१९ |
| अधारितत्र | बृह. १६४८ | अनंशास्त्वाश्र | " " | अनर्हता लो | " " |
| अधार्मिकं त्रि | मनुः १७०१ | अनंशौ ह्यीब | मनुः १३९२ | अनर्हमय | वारा. १०७५ |
| अथा सरस्व | वेदाः १००२ | अनग्नंभालु | वेदाः १००४ | अनर्हेषु च | भार. ८०७ |
| अधिकं तव | हारी. ६३६ | अनगना चाप्र | शुनी. १११९ | अनवाप्य च | विष्णुः १६७१, |
| अधिकं वाऽपि | नार. ७९९ | अनग्निकाऽनु | वसि. १९७७ | | १९५० |
| अधिकस्य च | बृह. १४६२ | अनइवाहं च | लहा. १९७५ | *अनवाप्य स्व | " १६७१ |
| अधिका किल | भा. १२८३ | अनइवाहं त | नार. ७६४ | *अनवेक्षित | मनुः १७०१ |
| अधिकाधिक | विष्णुः ८१६ | अननुगच्छ | कौ. ९३२ | अनश्रवोऽन | वेदाः ९७८ |
| अधिके न वृ | गौत. १६६२ | *अननुज्ञातां | विष्णुः ९०५ | अनसां दोह्या | विष्णुः ८९१ |
| *अधिकेन वृ | " " | अननुज्ञातो | " " | अनाकारित | नार. ६२६ |
| अधिक्रियत | नार. ६४८ | अननुज्ञाप्य | कात्या. ८९८ | अनाकालभृ | " ८२९, |
| अधि पेशांसि | वेदाः ८४१ | *अनन्तरं स | मनुः १४७६ | | ८३१ |
| अधिरुक्त्वा वि | " ८११ | अनन्तरः स | " " | *अनाकाले भृ | " " |
| अधिविचलि | याज्ञ. १४४२ | अनन्तरः स्मृ | नार. ११०४, | अनाक्षारित | कात्या. १६५० |
| अधिविद्या तु | मनुः १०५७; | | ११०५ | अनाक्षपः प | नार. १९३६ |
| | याज्ञ. १०८७ | अनन्तरम | भा. १०२९ | अनाख्यातं व्य | बृह. ७५० |
| अधिष्ठाता ऋ | बृह. ७०८; | अनन्तरवृ | विष्णुः १९८३ | अनाख्याय द | याज्ञ. १०७९ |
| | कात्या. ७१४ | अनन्ताः पुत्रि | वसि. १२७१ | अनागसस्त्वा | वेदाः ११४३ |
| | वसि. १६६८ | अनन्यकर्मा | भा. १०३२ | अनाचरन्ती | वारा. १०७६ |
| *अधिष्ठानात्र | " " | अनन्यपुरु | हारी. १०१५ | अनाच्छेद्यक | बृह. ८७२ |
| अधिष्ठानान्नि | " " | अनन्यभावा | वारा. १०७६ | अनाजानन्म | वेदाः ६०५ |
| *अधिष्ठानान्नो | " " | अनन्वयिनः | बृह. १४०३ | अनात्मीयस्य | शंखः ७५७ |
| *अधीति देव | वेदाः १२६१ | अनपत्यः शु | भा. १२८४ | अनाथस्य श | कौ. १६१६ |
| अधीयत दे | " " | अनपत्यतै | " १२८३ | अनाथान्कृप | भा. १०२९ |
| *अधोवर्गस्यो | हारी. १७९४ | अनपत्यरि | विष्णुः १४७१ | अनादिश्वाप्य | नार. १९३६ |
| अधोवर्णना | " १७६९, | *अनपत्यस्य | " १४७० | अनादिष्टः स | विष्णुः १९२१ |
| | १७९४ | " " | मनुः १४७४; | अनादेयं ना | मनुः १९३१ |
| *अध्यग्न्यध्याव | मनुः १४३१; | बृह. १४०३, | १५५८ | अनादेयम | कौ. ९३२ |
| नार. १४४९; | कात्या. १४५२ | | | अनादेयस्य | मनुः १९३१ |
| अध्यग्न्यध्यावा | मनुः १४३१; | Xअनपत्योऽश्वा | नार. १५५२ | अनापदि पु | गौत. ७९४ |
| नार. १४४९; | कात्या. १४५२ | अनपत्योऽस्मि | वारा. १३२९ | अनापदिस्थः | कात्या. ८३८ |
| *अध्यग्न्यध्याह | मनुः १४३२; | अनपेक्षित | मनुः १७०१ | अनापृच्छंस्तु | बृह. १७६० |
| | नार. १४४९ | अनभिस्रो जि | कात्या. १९१५ | *अनापृच्छन् | " " |
| अध्यर्ध वैश्यः | गौत. १७६९ | अनभिसर | कौ. १९२४ | अनापृच्छन् तु | " " |
| अध्यापकं कु | बौधा. १६०८ | अनभिसर्तु | " १९२५ | *अनापृच्छय हि | " " |
| अध्यापिता ये | वसि. १९७४ | *अनयंश्चापि | नार. ८५० | | " " |
| *अध्यावसानि | कात्या. १४५३ | *अनयन्नाद | " " | *अनापृष्टं तु | " " |
| *अध्यावहनि | " १४५२ | अनयन्भाट | " " | अनाभ्रातानि | " १९४१ |
| अध्यावाहनि | " " | *अनयन्भाण्ड | " " | अनायैः परि | अनि. १९६९ |
| | अनि. १४६३ | *अनयन्भार | " " | अनावृतं चे | नार. ९१६ |
| * " " | कात्या. १४५३ | अनयन् वाह | " " | अनावृताः कि | भा. १०२७, |
| *अध्याहवनि | " " | अनर्थजन | " ११०० | | १२८४ |
| अध्यूहं विद्म | भा. १२८७ | अनर्थशीलां | " १०९९ | अनवृताः पु | अनि. १११८ |

श्रीकार्धानुक्रमणिका

७

| | | | | | |
|-----------------|--------------------|---------------------------------------|---------------------------------|------------------|---------------------|
| अनावृता हि | भा. १०२७, १२८५ | अनिवेदित विष्णुः १९५०; याज्ञ. १९६० | शंखः १८४७; | अनुपूर्व | वेदाः १००७ |
| *अनावृते चे | नार. ९१७ | अनिवेद्य नृ | ” १९५८ | अनुबन्धं त | कौ. १६१८ |
| अनावृष्टिः क | हरि. १३७६ | अनिश्चित्य नृ | ” ८४७ | अनुभूतवि | लौगा. १७६६ |
| *अनावेदित | याज्ञ. १९६० | अनिषिद्धा य | कात्या. ९५९ | अनुभूतवि | वेदाः ९९७ |
| अनावेद्य तु | बृह. ७२७ | अनिषिद्धैर्प्र | मनुः १७२३ | अनुमानेन | बृह. १५८१ |
| अनाव्याधां दे | वेदाः १००१ | *अनिषेधक्ष | कात्या. १६५० | अनुमार्गेण | कात्या. ७५३ |
| अनाश्रित्य पि | व्यासः १२३० | *अनिषेधे त | याज्ञ. १८७२ | अनुयुञ्जीत | कौ. १६१६ |
| अनाहिताग्निः | कौ. ७७२; | अनिषेधा क्ष | कात्या. १६५० | *अनुरूपाम | नार. १०९९ |
| अनिगृहीते | हारी. १०१६ | *अनिष्ठां न ल | देव. १११२ | अनुलोमासु | विष्णुः १८४७ |
| *अनिच्छतः प्र | कौ. ८६३ | *अनिष्ठां लभ | ” ” | अनुवर्तेत | विरा. १११७ |
| अनिच्छतः प्रा | मनुः ८२० | अनिसृष्टोप | कौ. ६३८ | अनुव्रज्या च | मनुः १९७४ |
| | ” ” | अनीशः पूर्व | बृह. १५६७ | अनुव्रतः पि | वेदाः ९९८ |
| | १९२७ | *अनीशाः पूर्व | ” ” | अनुशयते | विष्णुः ८९१ |
| अनिच्छन्तम | व्यासः १७६४ | अनीशाः स्त्रीष | कात्या. १४५८ | *अनुशास्य च | नार. ८२६ |
| *अनिच्छन्तीं तु | बृह. १८८७ | अनीश्वराः पि | कौ. ११४९ | अनुशास्यश्च | ” ” |
| अनिच्छन्तीं तु | ” ” | अनीश्वराः स | ” १२३४ | *अनुशास्यस्स | ” ” |
| अनिच्छन्त्या य | ” १८८५ | अनीश्वरा वि | भा. ८६० | अनुशास्याश्च | ” ” |
| *अनिच्छन् दत्त | नार. ८५१ | अनुकुर्याद् | कात्या. १७९१ | *अनुशास्यो गु | ” ” |
| अनिच्छन् शुल्क | ” ” | अनुकूलक | दक्षः १११५ | अनुशिष्टा ज | वारा. १०७७ |
| *अनिच्छया त्व | बृह. १८८५ | अनुकूला त्व | ” १११४ | अनुशिष्टाऽस्मि | ” १०७६ |
| *अनिन्द्रिया अ | मनुः १०४९ | अनुकूलाम | नार. १०९९ | *अनुशिष्य च | नार. ८२६ |
| अनियम्यांश्च | कात्या. ७८९ | *अनुक्तद्रव्य | विष्णुः १६७० | *अनुशिष्यश्च | ” ” |
| अनियुक्तः श | विष्णुः १६१० | अनुक्तद्रव्या | ” ” | *अनुसृत्य अ | ” १७४६ |
| *अनियुक्तश | ” ” | अनुक्तानां द्वि | ” ६१० | अनुसृत्य तु | ” ” |
| अनियुक्तस्तु | कात्या. ८०६ | *अनुक्तानां हि | ” ” | अनुस्मृतिः कृ | प्रजा. ८९९ |
| अनियुक्ता तु | नार. ११०१, १४०२ | अनुक्रमत्र | नार. १०९५ | *अनुस्यूतिः कृ | ” ” |
| अनियुक्ताया | वसि. १०२२, १२७२ | *अनुक्रमातु | ” ” | अनुहाय त | वेदाः १४६४, १६०० |
| अनियुक्ता सु | मनुः १३९५ | अनुगृहीत | कौ. १६८२ | *अनुहानां क | विष्णुः १४१६ |
| *अनिरुद्धा य | कात्या. ९५९ | अनुगृह्णाति | नार. १९३६ | *अनुहानां च | ” ” |
| अनिर्गते द | बृह. ६५३ | अनुच्छिद्यं तु | लहा. १९७५ | अनुहानां तु | ” ” |
| अनिर्देशाहां | मनुः ९११ | *अनुज्ञया त | नार. १०९५ | *अनुहानां स्व | ” ” |
| अनिर्दिष्टं च | कात्या. ६५७ | अनुज्ञया व | ” ” | अनुहानाम | ” ” |
| अनिर्दिष्टं तु | नार. ७६४ | अनुज्ञातक | कौ. १६७८ | *अनुक्थभाज | नार. १३४७ |
| * ” ” | ” १९१२ | अनुज्ञाता त्व | भा. १२८६ | अनुक्षरा ऋ | वेदाः ९८२ |
| अनिर्दिष्टे | कौ. १६७३ | अनुज्ञातेऽनु | आप. १६६४ | अनुष्णा अस्मि | ” ६०२ |
| अनिर्दिष्टस्तु | नार. १९१२ | अनुज्ञातो गु | शंखः १०२४ | अनुष्णा गृहा | ” ६०४ |
| *अनिर्दिष्टाच्च | कात्या. ६५७ | अनुत्पन्नप्र | नार. ११०१ | अनुत्तं तु व | मनुः १९५५; |
| *अनिर्दिष्टो धा | बृह. ७८५ | अनुदकमु | कौ. १६१९ | अनुत्तं सत्य | अपु. १९६३ |
| अनिर्दिष्टो वा | ” ” | अनुद्दिष्टं तु | नार. ७६४ | अनुत्तं स्त्री अ | भा. १०३२ |
| *अनिर्मुक्तस्य | मनुः ६३८ | अनुनाऽस्यां पृ | वेदाः ११४४ | *अनुत्ताख्यमे | वेदाः ९९५ |
| अनिर्वृतं नि | ” १०६५ | अनुपघ्नन् | विष्णुः १२०५, १२१२; भा. १९८४ | अनुत्ताख्यान | कात्या. १७९२ |
| *अनिर्वृत्तं नि | ” ” | * ” ” | मनुः १२१२ | अनुत्तान्मे म | ” ” |
| *अनिर्वृत्तं नि | ” ” | अनुपस्थाष | ” ७६०; | अनुत्तान्मोक्ष्य | भा. १०२८ |
| *अनिर्वृत्तं नि | ” ” | कात्या. ७६७ | कात्या. ७६७ | अनुत्ताभिर्शं | हारी. १७६९ |

| | | | | | |
|---------------|--------------------|-----------------------|--------------|-------------------|---------------|
| *अनृताभिर्धा | हारी. १७९४ | *अन्तरेण तं | याज्ञ. १६३५ | अन्यं वृणीष्व | भा. ८१८ |
| अनृताकृतु | मनुः १०५९ | *अन्तरे तु तं | ” ” | *अन्यक्षेत्रे तु | कात्या. ९६० |
| अनृते तु पृ | याज्ञ. ९४१ | *अन्तरेव तं | ” ” | ” ” | प्रजा. ९६१ |
| अनृतेऽपि हि | भा. १०३१ | अन्तरे वा मृ | कौ. ७३६ | अन्यक्षेत्रेषु | कात्या. ९६० |
| अनृते या फ | ” १९६३ | *अन्तर्गृहब | बृह. ७६५ | अन्यक्षेत्रोप | नार. ९४६ |
| अनेकदोष | कात्या. १११० | अन्तर्गृहे ब | ” ७६४ | अन्यगोत्राय | स्मृत्य. १११८ |
| अनेकधा कृ | बृह. ११०९, | २ अन्तर्धनं च+ | प्रजा. १५६१ | अन्यग्रामात्स | बृह. ९५१ |
| | १३४९ | *अन्तर्धनं तु | ” ” | अन्यग्रामोत्त | भार. ९०० |
| अनेकधा त्ते | ” ८३४ | अन्तर्धानम | कौ. १६८१ | Xअन्यतरः सं | नि. १२५४ |
| *अनेकधा त्वं | ” ” | अन्तर्वेद्यां तु | नार. १०९८ | अन्यतरादा | कौ. ७३७ |
| अनेकपितृ | याज्ञ. १२००; | अन्तर्वेद्यामृ | कौ. १०३४ | अन्यतराभा | आप. १०१७; |
| | विष्णुः १२८० | अन्तर्वेदमन्य | बृह. १८३२ | कौ. १०३४, | १४१० |
| अनेकानि स | मनुः १०६२ | अन्तिमा स्वैरि | नार. ७०२ | Xअन्यतरोऽर्द्ध | नि. १२५४ |
| अनेकार्थाभिः | नार. ७४९ | अन्तेवासी गु | याज्ञ. ८२४ | *अन्यत्तु ब्राह्म | नार. १५१२ |
| अनेकेभ्योऽपि | कात्या. ११०९ | *अन्तेवासी वा | आप. १४६६ | *अन्यत्र करा | ” १९४० |
| अनेके यस्य | बृम. १५८८ | अन्तेवासी स | नार. ८२८ | *अन्यत्र कारा | ” ” |
| अनेकमुक्ता | हारी. ११९५ | अन्तेवास्थन | आप. १९७३ | अन्यत्र क्षेत्र | भा. १२८७ |
| *अनेन कर्म | मनुः ७७६ | अन्त्यजातिर्द्वि | अपु. १८३५ | *अन्यत्र गोब्रा | सुम. १६५३ |
| ” ” | बृह. १९४१ | अन्त्यवृद्धौ प्र | विष्णुः ६३६ | अन्यत्र जाम | भा. १२८६ |
| अनेन किं न | वृव. ६७७ | अन्त्यागमने | ” १८४६ | अन्यत्र दीव्य | कौ. १९०४ |
| *अनेन क्रम | मनुः ७७६ | अन्त्याभिगम | याज्ञ. १८७४ | अन्यत्र नेनि | ” १६७४ |
| अनेन क्रमे | विष्णुः १२४१ | अन्धः शत्रुगृ | स्कन्द. १९६५ | अन्यत्र ब्राह्म | नार. १५१२; |
| अनेन तु वि | मनुः १२९४ | अन्धः स्यादन्ध | भा. १९८३ | अन्यत्र भेषो | वसि. १९२० |
| अनेन नारी | ” १०६४ | अन्धजडह्नी | बौधा. १३८७ | अन्यत्र मिथु | कौ. १६७३ |
| अनेन विधि | ” ७५९, | अन्धमूकब | आप. १६६७ | अन्यत्र मिथु | वेदाः १०१० |
| | ७७६, १०७५, १७२७, | अन्धादिषु श | व्यासः ८०६ | अन्यत्र रज | नार. ६९९ |
| | १९०७; याज्ञ. ७७९, | *अन्धोऽचिकित्स | याज्ञ. १३९८ | *अन्यत्र राज | विष्णुः १६०९ |
| | १०८९; कात्या. ८०५, | अन्धोऽचिकित्स्य | ” ” | अन्यत्र राजा | ” ” |
| | १९४१ | अन्धो जडः पी | मनुः १७२७, | अन्यत्र संप्र | वसि. १०२२ |
| अनेन शाधि | बौधा. १६६७ | अन्नं पानं च | १९२७ | *अन्यत्र संस्था | ” ” |
| अनेनसमे | वेदाः १५९४, | अन्नं भुञ्जीत | भा. १२४४ | अन्यत्रातता | बौधा. १६०७ |
| | १६५६ | अन्नं यो ब्रह्म | देवी. १९४३ | अन्यत्रापि. व | विष्णुः १६०९ |
| अनेन सर्व | नार. ९१६ | अन्नं ह प्राणः | वेदाः १४६४, | अन्यत्रापि शू | गौत. १६६० |
| *अनेना भव | ” १७५१; | | १६०० | अन्यथा कर्म | कौ. १६८६ |
| | भा. १९६३, १९६४ | | ” १००५, | अन्यथा कारि | कात्या. ६३१ |
| अनेनाघेण | कौ. ९२८ | | १९६० | अन्यथा क्रिय | बृह. ७३४ |
| अनेनैव क्र | स्मृत्य. १३७३ | अन्नपानम | नार. १७५५ | अन्यथा चेत्कृ | ” ८९६ |
| अनेनैव गु | नार. ९४६ | अन्नप्रदाता | बृह. १७६० | अन्यथा चेत्क | ” ” |
| *अनेनैव प्र | ” १६४२ | अन्नमावस | वेदाः १८९७ | अन्यथा चेत्क | ” ” |
| अनो मनस्म | वेदाः १००० | *अन्नाकालमृ | नार. ८३०, | *अन्यथा तु न | ” ९५१ |
| अन्तः कृणुष्व | ” ९९७ | | ८३१ | अन्यथा तु भ | ” ” |
| अन्तःकोशमि | ” ९९६ | *अन्नाच्छादन | कात्या. १४५७ | *अन्यथा तुल्य | कात्या. १७९२ |
| अन्तकः पव | भा. १०३२ | अन्नादे भ्रूण | आप. १६६६; | अन्यथा त्वल्प | ” ” |
| अन्तभाजो वै | वेदाः १००५ | वसि. १६६८; मनुः १७०३; | शंखः १७६२ | *अन्यथा द्विगु | व्यासः ७८९ |
| अन्तरे तु त | स्कन्द. १९६५ | अन्तरे च त | बृह. १५२० | *अन्यथा न तु | कात्या. ८०४ |
| अन्तरे च त | याज्ञ. १६३५ | | | अन्यथा न प्र | ” ” |

| | | |
|------------------|---------|-------|
| अन्यथा न भ | बृह. | १५१ |
| अन्यथा नश्य | हारी. | ६३६ |
| * " " | कात्या. | ६५८ |
| अन्यथा निक्षे | कौ. | ७३७ |
| अन्यथा निचि | " | १६७८ |
| अन्यथा पूर्वः | " | १३२ |
| *अन्यथा प्राप्ति | याज्ञ. | १८७६ |
| अन्यथा यथो | कौ. | १६२१ |
| अन्यथा राज | भा. | १०३३ |
| अन्यथा वा नि | कौ. | ७३५ |
| अन्यथा शास्त्र | नार. | ११५५ |
| अन्यथा स्तेय | कौ. | १६८४ |
| अन्यथा हिंसा | " | १८५० |
| अन्यदीया तु | कात्या. | ८३९ |
| अन्यदुप्तं जा | मनु. | १०७१ |
| अन्यद्रव्यव्य | नार. | ७४७ |
| अन्यप्रकारा | " | १९४० |
| अन्यमुद्दिश्य | मत्स्य. | ८५५ |
| अन्यमू षु त्वं | वेदा. | ८५७, |
| | १७८, | १८३६ |
| अन्यवर्णस्त्री | शंख. | १२४३ |
| अन्यशास्त्रोद्भू | वसि. | १२७८ |
| अन्यशोणितो | कौ. | १८४९ |
| अन्यसंज्ञानि | कात्या. | १७९१ |
| *अन्यसंज्ञानु | " | " |
| अन्यसंज्ञां ग | भा. | १०३१ |
| *अन्यस्मिंश्च नि | मनु. | १०६६ |
| *अन्यस्मिन् वि | " | " |
| अन्यस्मिन् हि | " | " |
| अन्यस्मै त्रिधि | बौधा. | १०१९; |
| | वसि. | १०२१ |
| अन्यस्यां यो म | नार. | १०९५ |
| अन्यस्या गर्भ | वेदा. | १२५७ |
| अन्यस्यापि ज | वारा. | १०७६ |
| अन्यस्यै वै प्र | वेदा. | १५९६ |
| अन्यस्वमन्य | संग्र. | ११४२; |
| | शुनी. | १९८८ |
| अन्यहस्तात्प | नार. | १७५२ |
| | कात्या. | १७६२ |
| अन्यहस्ते च | याज्ञ. | ८८५ |
| * " " | नार. | ८८८ |
| *अन्यहस्ते तु | याज्ञ. | ८८५; |
| | नार. | ८८८ |
| *अन्यहस्तेन | याज्ञ. | ८८५ |
| अन्यां चेद्दर्श | मनु. | ८८१ |
| अन्या किल त्वां | वेदा. | ९७८, |

| | | |
|--------------------|--------|-------|
| अन्यापदेश | नार. | १८३६ |
| अन्यामिच्छ पि | वेदा. | १७८७ |
| अन्यामिच्छ प्र | वेदा. | ९८२ |
| " " | " " | " " |
| अन्यायच्छन्न | नार. | ९१६ |
| अन्यायवादि | बृह. | १७५९ |
| अन्यायोपात्त | बृह. | १७६६ |
| *अन्या वो अन्या | वेदा. | ८५७ |
| अन्यासां चैव | उश. | १११३ |
| *अन्याहृतादि | बृह. | ७२५ |
| अन्यनभावे | शंख. | १६७२ |
| अन्ये जायां प | वेदा. | १८९४ |
| अन्ये स्वाहुर | बृह. | १३४८ |
| अन्येन घ्नना | गौत. | ८१५ |
| अन्येन मत्प्र | वेदा. | ९७८, |
| | १८३६ | |
| अन्येन मदा | " | ९७७, |
| | " | १८३६ |
| *अन्येनानुम | बौधा. | १२६९ |
| *अन्येनापह | याज्ञ. | १५७२ |
| अन्येऽपि शङ्क | " | १७४१ |
| *अन्येऽपि शङ्के | " | " |
| अन्ये वा स्वप्र | कौ. | ७७२ |
| अन्येषां चैव | नार. | ६२६; |
| | मनु. | १७१८ |
| *अन्येषां त्वा श्र | वसि. | १३८९ |
| अन्येषां लग्न | बृह. | ७८६ |
| अन्येषामपि | भा. | १२८६; |
| | बौधा. | १६६७ |
| *अन्येषामेव | मनु. | १७१८ |
| अन्येष्वपरि | " | १७१९ |
| *अन्यैरपि व्य | नार. | १८८१ |
| *अन्यैर्वाऽपि व्य | " | " |
| अन्यैश्च विवि | " | " |
| अन्यो अन्यम | वेदा. | ९९८ |
| अन्यो अन्यस्मै | " | " |
| अन्योदर्यस्तु | याज्ञ. | १५४६; |
| | बृया. | १५६२ |
| *अन्योदर्यस्य | याज्ञ. | १५४६ |
| *अन्यो धर्मोऽस्ति | अङ्गि. | १११६ |
| अन्योन्यं लज | नार. | १०९९ |
| अन्योन्यं नामि | भा. | ८६१ |
| अन्योन्यं परि | बृह. | १९१३ |
| अन्योन्यगुण | मनु. | १९३० |
| अन्योन्यचक्षू | बृह. | १८८५ |
| *अन्योन्यपरि | " | १९१३ |

| | | |
|-----------------|------------|-------|
| *अन्योन्यमनु | बृह. | १८८५ |
| अन्योन्यस्याव्य | मनु. | १०५४ |
| अन्योन्यापह | याज्ञ. | १५७२; |
| | कात्या. | १५७४ |
| *अन्योन्यापाह | याज्ञ. | १५७२ |
| अन्योन्याथस्य | बृह. | ६७७ |
| *अन्योऽपि शङ्क | याज्ञ. | १७४१ |
| अन्योऽप्यथ न | भा. | १२८६ |
| *अन्योऽप्यमति | नार. | ७८२ |
| अन्यो यदि द | कात्या. | १५२३ |
| अन्यो वाऽसति | नार. | ७८२ |
| *अन्वये मति | याज्ञ. | ७९६ |
| अन्वर्तिता व | वेदा. | १८३८ |
| *अन्वादेयं च | मनु. | १४३९ |
| *अन्वाधानादि | शौन. | १३६३ |
| अन्वाधेयं च | मनु. | १४३८ |
| अन्वाधेयं त | कात्या. | १४५३ |
| *अन्वाधेयं तु | मनु. | १४३९; |
| | कात्या. | १४५३ |
| अन्वारूढा जी | बृह. | ११०७ |
| अन्वाहितं च | दक्ष. | ८०७ |
| अन्वाहितं या | नार. | ७९८ |
| अन्वाहितादि | बृह. | ७२५ |
| अन्वाहिते या | " | ७५२ |
| *अन्वेक्षणं चा | आप. | ८४२ |
| अपकर्षन्ति | व्यास. | १७६४ |
| अपकारकि | कात्या. | १४५७ |
| अपकारक्ष | " | ६७३ |
| *अपकारप | " | १४५७ |
| *अपक्रुद्य च | नार. | १७८८ |
| अपघ्नन्नेषि | वेदा. | ९७५ |
| अपघ्नन् प | " | १५९४ |
| *अपचारकि | कात्या. | १४५७ |
| Xअपततं भ | नि. | १२५३ |
| अपतत्रसि | भा. | ८६० |
| अपतिरप | गौत. | १०१२ |
| अपतीनां तु | भा. | १०२६, |
| | | १३९० |
| अपत्यं कर्म | " | १२८३ |
| Xअपत्यं कस्मा | नि. | १२५३ |
| अपत्यं गुण | भा. | १२८४ |
| अपत्यं जड | गौत. | १३८६ |
| अपत्यं धर्म | भा. | १०३३, |
| | १२८४; मनु. | १०५२ |
| अपत्यं नाम | भा. | १२८४ |
| *अपत्यं भ्रातु | मनु. | १३१८ |

| | | | | | | | | |
|------------------|---------|-------|-----------------|----------|------|------------------|------------|-------|
| अपत्यमन | भा. | १२८४ | *अपालकायाः | विष्णुः | ९०५ | अपुत्रस्य ध | विष्णुः | १४७० |
| अपत्यमुन्या | नार. | ११०२ | *अपालान्वा वि | मनुः | ९११ | अपुत्रस्य प | व्यासः | १५२४ |
| *अपत्यलोभा | देव. | १११२ | *अपालान्वा स | " | " | अपुत्रस्य पि | बृह. | १३६२ |
| अपत्यलोभा | मनुः | १०६३ | अपालायाः स्वा | विष्णुः | ९०५ | *अपुत्रस्य प्र | बृह. | १५१३ |
| अपत्यहेतो | भा. | १०३१ | *अपालायान्तु | " | " | *अपुत्रस्य भ्रा | शंखः | १४७१ |
| अपत्यार्थ म | वारा. | १३२९ | अपाले स्वामि | स्मृत्य. | ९२१ | अपुत्रस्य मृ | परा. | १५२७ |
| अपत्यार्थ स | भा. | १९८६ | अपास्ताश्च त | भा. | १०३३ | अपुत्रस्य स्व | शंखः | १४७१; |
| अपत्यार्थ स्त्रि | नार. | ११०२ | अपास्मत् त | वेदाः | १००३ | पैठी. | १५२७; यमः | १५२७ |
| अपत्यार्थी श्वे | भा. | १२८५ | अपास्य श्रोत्रि | काल्या. | १५२३ | * " " | देव. | १५२५ |
| अपत्येनानु | " | १२८३ | अपास्याः केदयं | वेदाः | १००४ | अपुत्रस्याथ | काल्या. | १५२१ |
| अपत्योत्पाद | " | १२८४ | अपि च काठ | वसि. | १९७८ | *अपुत्रस्यार्य | " | " |
| अपत्या तु भ | दक्षः | १११४ | *अपि च प्रापि | बौधा. | १४६७ | *अपुत्रस्यास्य | " | " |
| *अपत्याऽभि भ | " | " | अपि ताः संप्र | भा. | १०३२ | अपुत्रां गुर्वे | याज्ञ. | १०८९ |
| अपदेशैश्च | मनुः | ७४२ | *अपि तान् घा | नार. | १८२८ | *अपुत्राः क्षत्र | बृह. | १५१८ |
| अपयात्रित | शंखः | १३९० | अपितुका ब | कौ. | ११९९ | *अपुत्रा चेतस | " | १४५० |
| *अपयात्रीकृ | " | " | अपितुद्रव्या | " | १५४३ | अपुत्रा जात | यमः | १११३ |
| अपमित्य धा | वेदाः | ६०२ | अपित्यं गार्भं | विष्णुः | १९८३ | *अपुत्रा दुहि | वसि. | १२७३ |
| अपमित्यम | " | " | *अपित्यं तद्ध | काल्या. | १४०३ | अपुत्रा पति | कौ. | १४३० |
| *अपमृत्रय | मनुः | १८०२ | अपित्यं द्वि | " | " | अपुत्रापुत्र | उश. | १५२६ |
| *अपयातित | शंखः | १३९० | अपि नः श्वा वि | वसि. | १९७८ | अपुत्रा प्रान्तु | यमः | १११३ |
| *अपयात्रिते | " | " | अपि या निर्न | वारा. | १०७५ | *अपुत्रा मृत | शौन. | १३६३ |
| अपराजयि | वेदाः | १८९७ | अपि वल्लान्न | ब्रह्म. | १३७४ | अपुत्रार्यां मृ | मनुः | १२९८ |
| अपराधेषु | आप. | १७९५, | अपि वा कर्म | जैमि. | ७७० | अपुत्रायाः दु | कौ. | १४३० |
| | | १९७३ | अपि वा गुण | बौधा. | १०१९ | अपुत्रायाश्च | स्मृत्य. | १४६३; |
| *अपरिगृही | गौत. | १३८६ | Xअपि वा धव | नि. | १२५७ | | भा. | १९६४ |
| *अपरुद्धासु | याज्ञ. | १८७७ | अपि विश्वकृ | भा. | १०३३ | *अपुत्रायास्तु | पार. | १४६२ |
| अपरैभ्यस्त्र | नार. | ११०५ | अपि वृश्च पु | वेदाः | ८१० | अपुत्रा योषि | याज्ञ. | १४००; |
| अपरौ दुह्या | वेदाः | १००५ | *अपि सर्पेण | नार. | ९१८ | वृहा. | १४०४ | |
| *अपवक्तुश्च | नार. | १७८८ | अपीव योषा | वेदाः | ९७० | अपुत्रा शय | काल्या. | १४५६, |
| अपविद्धः प | वसि. | १२७८ | *अपुत्रकस्य | देव. | १५२५ | | १५२०; वृम. | १५२७ |
| अपविद्धः स | शंखः | १२८३; | अपुत्रको द्वि | शाक. | १३५५ | *अपुत्राश्च पि | व्यासः | १४१४ |
| | यमः | १३५१ | *अपुत्रधनं | विष्णुः | १४७० | *अपुत्रिकस्य | देव. | १५२५ |
| अपविद्धश्च | ब्रह्म. | १३७४ | अपुत्रपितृ | काल्या. | १५२४ | अपुत्री भार्ये | भा. | १२८५ |
| अपविद्धस्त्वे | विष्णुः | १२७९ | अपुत्रपौत्र | विष्णुः | १४७१ | अपुत्रेण तु | ब्रह्म. | १३७४ |
| अपव्ययमा | कौ. | ८४३ | *अपुत्रमृत | परा. | १५२७ | अपुत्रेण प | याज्ञ. | १३४२ |
| अपहतं ब्र | वेदाः | १६०१ | अपुत्रकर्त्तव्य | विष्णुः | १२४० | अपुत्रेण सु | मनुः | १३१६; |
| अपहवे तद् | मनुः | ७२० | अपुत्रस्त्वङ्ग | वारा. | १३२९ | बृह. | १३४८; यमः | १३५२ |
| *अपहवे तु | " | " | *अपुत्रस्य अ | पैठी. | १५२७ | अपुत्रेणैव | अत्रि. | १३५२ |
| अपां प्रचार | शंखः | १२०७ | *अपुत्रस्य ऋ | विष्णुः | १२४० | अपुत्रोऽनेन | मनुः | १२९४ |
| अपाः सोमम | वेदाः | ९७० | अपुत्रस्य ग | गर्. | १३७६ | अपुत्रो ब्राह्म | " | १३०५; |
| अपागाहन्न | " | १००४ | " " + | कालि. | १३७७ | अनि. | १३७४ | |
| अपाङ्गप्रेक्ष | बृह. | १८८५ | अपुत्रस्य च + | बुय. | १३५५ | शौन. | १३६३ | |
| " " + | व्यासः | १८८९ | * " " | काल्या. | १५२१ | कालि. | १३७७ | |
| *अपाङ्गप्रेष | बृह. | १८८५ | " " | देव. | १५२५ | बृह. | ६५३ | |
| अपात्रे पात्र | नार. | ८०० | *अपुत्रस्य जा | पैठी. | १५२७ | *अपूर्णेऽपि प्र | " | " |
| अपापां त्यज | भा. | १०३० | *अपुत्रस्य तु | देव. | १५२५ | अपो मा प्राप | वेदाः | १००४ |

| | |
|------------------------|-------------|
| अप्यकार्यश | मनुः १३९४ |
| अप्यन्योन्यं प्र | भा. १०३२ |
| अप्यहीनक | गौत. १६६० |
| *अप्रकाशाश्च | नार. १७४६ |
| अप्रकाशास्तु | " " |
| *अप्रजःस्त्रीध | याज्ञ. १४४५ |
| अप्रजस्त्रीध | " " |
| अप्रजस्य म | भा. १२८३ |
| अप्रजां दश | बौधा. १०२० |
| अप्रजां नव | हारी. १०१६ |
| * " " | बौधा. १०२० |
| *अप्रजाः सन्तु | वसि. १२७१ |
| अप्रजाः सन्त्व | " " |
| *अप्रजा चेत्स | बृह. १४५० |
| अप्रजाता वि | वसि. १०२२ |
| * " " | " १८४६ |
| *अप्रजायां मृ | मनुः १२९८ |
| अप्रजायां ह | देव. १४६२ |
| अप्रजायाम | मनुः १४३९; |
| याज्ञ. १४४४; यमः १४६२; | |
| वृका. १४६३ | |
| * " " | मनुः १४४० |
| अप्रजा विध | प्रजा. १३५० |
| अप्रजास्ता वि | वसि. १८४६ |
| *अप्रजास्त्रीध | याज्ञ. १४४५ |
| अप्रजायामा | वसि. १९४९ |
| अप्रतिवादि | वेदाः ८१३, |
| | १००५ |
| अप्रतिविहि | कौ. १०३९ |
| अप्रतीकारे | " ९३० |
| अप्रत्ता चेत्स | बृह. १४५० |
| अप्रत्ता दुहि | वसि. १२७३ |
| अप्रत्तायास्तु | पार. १४६२ |
| अप्रदाता नि | कौ. १९८६ |
| अप्रपन्नाऽपि | काल्या. ७१४ |
| अप्रमत्ता च | भा. १०२८ |
| अप्रमत्ता र | आप. १२६७; |
| | बौधा. १२७१ |
| अप्रमत्ता स | भा. १०२८ |
| अप्रमत्तो र | पैठी. १११५ |
| अप्रमादं पु | भा. १०२९ |
| अप्रमोदात्सु | मनुः १०५३ |
| अप्रयच्छंस्त | नार. ८५१ |
| अप्रयच्छन् दो | गौत. १०१२ |
| अप्रयच्छन् पि | बृह. ११०६ |
| अप्रयच्छन् स | याज्ञ. १०७८ |

| | |
|--------------------|---------------------------|
| *अप्रवृत्तौ तु | नार. ११०० |
| अप्रवृत्तौ स्मृ | " " ; |
| | देव. १११२ |
| अप्रशस्तास्तु | विष्णुः १३९० |
| *अप्रसन्नापि | काल्या. ७१४ |
| अप्रसूतां प्र | भा. १०३० |
| अप्रसूता च | देव. १११२ |
| अप्रसूता तु | नार. ११०० |
| अप्राणिभिर्य | मनुः १९०५ |
| अप्राप्तव्यव | नार. ६९५; |
| | कौ. ११९९, १९५०; |
| | काल्या. १२०१; याज्ञ. १६४० |
| अप्राप्तमपि | मनुः १०४१ |
| *अप्राप्तेऽपि स | काल्या. ७५५ |
| *अप्राप्तेऽर्थकि | " ८८९ |
| *अप्राप्तेऽर्थे कृ | " " |
| अप्राप्तेऽर्थे कि | " " |
| अप्राप्ते वै स | " ७५५ |
| अप्रियं च हि | भा. १०२९ |
| *अप्रियं चास्य | काल्या. १६४९ |
| अप्रियं प्रिय | भा. १०३२ |
| अप्रियशीलां | शंखः १०२४ |
| अप्रियस्य च | काल्या. १६४९, |
| | १९४२ |
| *अप्रियस्य तु | " १६४९ |
| अप्रियोक्तिस्ता | बृह. १७८८ |
| अप्सरसः स | वेदाः १००२, |
| | १९०२ |
| *अप्सु जलका | वसि. १०२१ |
| अबर्ध्य यश्च | याज्ञ. १६४० |
| *अबर्ध्यं यस्तु | " " |
| अबन्धके स्या | वृहा. ७३१ |
| *अबन्ध्यं यश्च | याज्ञ. १६४० |
| अबन्ध्वेके द | वेदाः ६०३, |
| | ६०६ |
| अबीजविक्र | मनुः १७०५, |
| | १९३० |
| अबुद्धिपूर्व | आप. १८४३ |
| *अब्दादूर्ध्वं तु | बृह. १९६२ |
| अब्दान्भण्यादि | विष्णुः ८९१ |
| अब्राह्मणं तु | भा. १२४३ |
| अब्राह्मणः सं | मनुः १८५६ |
| अब्राह्मण आ | गौत. १९४८ |
| अब्राह्मणस्य | बौधा. १८४५, |
| | १९४९ |
| अब्राह्मणाद् | मनुः १९७४ |

| | |
|------------------|--------------|
| अब्राह्मणाश्च | भा. ८१९ |
| *अब्राह्मणोपा | गौत. १९४८ |
| अब्राह्मणोऽप्या | " " |
| अब्राह्मणो ब्रा | शंखः १६७२ |
| *अब्राह्मणो व्या | गौत. १९४८ |
| *अभक्षणे प्र | हारी. ६६१ |
| अभक्ष्यभक्ष्ये | अपु. १६५४ |
| अभक्ष्यमथ | मनुः १६२८ |
| *अभक्ष्यस्य चा | विष्णुः १६११ |
| अभक्ष्यस्यावि | " " |
| अभक्ष्यापेय | बृह. १७८९ |
| अभक्ष्येण द्वि | याज्ञ. १६३६, |
| | १९३२ |
| अभक्ष्येण ब्रा | विष्णुः १६१० |
| *अभक्ष्यैर्दूष | याज्ञ. १६३६ |
| अभयवन | कौ. ९०६ |
| *अभयस्य तु | मनुः १७०० |
| अभयस्य हि | " " |
| अभये प्रत्य | हारी. ६६१ |
| अभर्तुकाम्रा | अनि. १९४३ |
| अभवद्दुःख | भा. ८४० |
| अभावयंस्त | बृह. ७६५ |
| *अभावेऽशाह | काल्या. १५६० |
| *अभावे च दु | नार. १५१२ |
| अभावे ज्ञात | याज्ञ. १०८३ |
| अभावे ज्ञात् | " ९४१ |
| *अभावे ज्ञान | " " |
| अभावे तद | काल्या. १४५९ |
| अभावे तु दु | नार. १५१२ |
| *अभावे त्वन | विष्णुः १०२३ |
| *अभावे दुहि | नार. १४४९, |
| | १५१२ |
| *अभावे पूर्व | कालि. १३७७ |
| अभावेऽर्थह | काल्या. १५६० |
| अभिक्रुद्धाव | वेदाः १७९३ |
| *अभिगन्ताऽसि | याज्ञ. १०८० |
| अभिगन्ताऽस्मि | " १७८० |
| अभिगम्य प | भा. १०२६, |
| | १३९० |
| अभि गावो अ | वेदाः ९७५ |
| अभिघाते त | याज्ञ. १८२१ |
| अभिचारं च | मत्स्य. १६५५ |
| *अभिचाराणि | " " |
| अभिचारेषु | मनुः १६३१, |
| | १९३० |
| अभिजिघ्रन्ती | वेदाः ९६९ |

| | | | | | | | | |
|------------------|---------|-------|------------------|------------|-------------|-----------------|---------|------|
| अभिज्ञानेन | कौ. | ७३७ | *अभ्याघाते तु | नार. | १७५६ | अमृत्युर्ह वा | वेदा: | १६०१ |
| अभिज्ञानैश्च | नार. | ९४५ | अभ्याघातेषु | मनु: | १६९८, | अमेध्यं शोध | कात्या. | ९५९ |
| अभिज्ञाऽस्मि य | वारा. | १०७७ | | १९२९; नार. | १७५६ | अमेध्यपार्ष्णि | याज्ञ. | १८१४ |
| अभि तिष्ठामि | वेदा: | ९९९ | *अभ्यादधुश्च | मनु: | १८६५ | अमेध्यो वा ए | वेदा: | ७९१ |
| *अभि तेऽर्थां स | ” | ९९० | अभ्यादधुश्च | ” | ” | अमोक्षो धर्म | कौ. | १०३६ |
| अभिनास उ | आप. | १७९५, | अभ्यावर्तां चा | वेदा: | ८११ | अमोक्ष्या भर्तु | ” | ” |
| | | १९७४ | अभ्युपगम्य | बौधा. | १२६८ | अम्बष्टोऽत्रौ त | नार. | ११०५ |
| आभि त्वा मनु | वेदा: | ९९७ | अभ्युपेताह | नार. | ६९८ | अम्बष्टो माग | ” | ” |
| आभि त्वा योष | ” | ९७५ | *अभ्युपेत् च | ” | ८२४ | *अम्बुवाताह | मनु: | १०७४ |
| अभि द्वितीयां | ” | १००५ | अभ्युपेत् तु | ” | ” | अम्बे अम्बिके | वेदा: | ८४१ |
| अभि नः सुष्ठु | ” | १००६ | अभ्रातर इ | वेदा: | ९९६, | अयं त्वनन्त | भा. | १९८४ |
| *अभिन्नदोष | बृह. | १७५८ | | १२५९ | ” | अयं द्विजैर्हि | मनु: | १०६८ |
| अभि प्रवन्त | वेदा: | ९७१ | अभ्रातरो न | ” | ९७० | अयं धर्मान् | भा. | ८१९ |
| अभिभूरस्ये | ” | १८९६, | अभ्रातृकां प्र | वसि. | १२७३; | अयं नाभा व | वेदा: | १९८० |
| | | १८९७ | | मनु: | १२९४ | अयं भारस्त्व | शुनी. | ८५६ |
| अभियाति प | नार. | १९३६ | Xअभ्रातृक इ | नि. | १२५९ | अयं योनिश्च | वेदा: | ९७० |
| अभियोक्ता ध | कात्या. | ७६७ | अभ्रातृका पुं | वसि. | १२७२ | अयं राजा द | वारा. | १३२९ |
| अभियोगे गू | कौ. | १६८२ | *अभ्रातृका हि | ” | ” | अयःसंदान | कात्या. | १७६२ |
| अभि वर्धतां | वेदा: | ९९९ | Xअभ्रातृकेव | नि. | १२५५ | *अयःसंधान | ” | ” |
| अभिवाद्याऽभ्य | भा. | १२८६ | अभ्रातृको ह | याज्ञ. | १३३८ | अयज्ञिया वै | वेदा: | १००५ |
| अभिवास्तस्य | स्कन्द. | १९६६ | अभ्रातृर्ध्नीं व | वेदा: | १००१ | अयज्ञो वा ए | ” | १००६ |
| अभिवास्तस्यमा | वेदा: | १५९५ | Xअभ्रातृमती | नि. | १२५५ | अयज्वनां तु | मनु: | १७२७ |
| अभिशापाद् गु | नार. | १०९४ | अभ्रातेव पुं | वेदा: | १२५४ | *अयथास्त्र | नार. | ११५५ |
| *अभिषज्य तु | मनु: | १८६७ | *अभि वौभय | मनु: | १७०२ | अयमुक्तो वि | मनु: | १९०५ |
| Xअभिषहमा | नि. | १२५४ | अमतेनैव | कात्या. | ७११ | अयमोमे वि | वेदा: | ८१० |
| अभिषह्य तु | मनु: | १८६७ | *अमनुष्यकृ | याज्ञ. | १८१९ | अयाजिकं तु | मनु: | १९६९ |
| अभिषेकं क | वारा. | १०७६ | अमाजुरश्चि | वेदा: | ९७९ | अयुक्तं चैव | कात्या. | ८७६ |
| अभिषेक्तुका | भा. | १३९१ | अमाजूरिव | ” | १४१५, | *अयुक्तं तत्र | ” | ” |
| अभिसंधिमा | गौत. | १२६२ | | १९७९ | अपु. | अयुक्तं शप | याज्ञ. | १६३४ |
| *अभिसह्य तु | मनु: | १८६७ | अमात्यः प्राड् | अपु. | १९६९ | अयुक्तं साह | नार. | १६४४ |
| अभिहराणि | वेदा: | १८९७ | अमात्यानां च | संव. | १९४३ | *अयुक्तशप | याज्ञ. | १६३४ |
| *अभीषणेन | कात्या. | १८३३ | अमानुषप्रा | कौ. | १६२१ | अयुक्ते कार | कात्या. | ७११ |
| अभुक्तपूर्वा | नार. | १९७८ | अमानुषेषु | मनु: | १६९९, | अयोपयकर्म | विष्णु: | १६१० |
| अमृतं गोपा | वेदा: | ९८१, | | १९२९ | वेदा: | *अयोनौ क्रम | नार. | ८५१ |
| | | १००१ | अमावास्या च | वेदा: | ८४२ | अयोनौ गच्छ | याज्ञ. | १८७९ |
| अमृतं वा प | कौ. | ९२६ | अमितस्य प्र | शुनी. | १११९ | अयोनौ यः स | नार. | ८५१ |
| अमृतेरेषा | भा. | १९८५ | अमितस्य हि | वारा. | १०७७ | *अयोनौ वाऽभि | ” | ” |
| *अमृतेरथ | कात्या. | १७९१ | अमी ये सुभ | वेदा: | ६०५ | *अयोनौ वा स | ” | ” |
| अमृतेर्वाथ | ” | ” | अमुकहस्त | विष्णु: | १०२३ | अरं दासो न | वेदा: | ८१० |
| अमूम याज्ञि | वेदा: | १००४ | अमू च मां च | वेदा: | ९९७ | अरक्षमन | भा. | १०३३ |
| अमोगभुक्तिः | कात्या. | ९५४ | *अमू ये दिवि | ” | ६०५ | *अरक्षकांश्च | कात्या. | १७६२ |
| *अमोगे भुक्तिः | ” | ” | अमूर्या यन्ति | ” | ९९६, | अरक्षमाणः | भा. | १०३१ |
| अभ्यङ्क्ते तस्यै | वेदा: | ९९२ | | १२५९ | अरक्षिता गृ | मनु: | १०४८ | |
| अभ्यनुज्ञात | बृह. | १९१३ | *अमूलैर्वाथ | कात्या. | १७९१ | अरक्षितारं | ” | १७०१ |
| अभ्यन्तरकृ | कौ. | १६८५ | अमृत इत्प | वेदा: | ११५९ | अरक्षितार | ” | ” |
| अभ्यागच्छद्दि | भा. | १२८४ | अमृत्युर्वा अ | ” | १६०२ | अरजांसि च | भा. | १०२८ |

| | | | | | |
|------------------|--------------|-----------------|--------------|-------------------|-------------|
| अरणस्य रे | नि. १२५३ | अर्थप्रत्यय | भार. ६६०; | अर्मेभ्यो हस्ति | वेदाः ९०३ |
| अरण्यपशु | विष्णुः १७९७ | | मरी. " | अर्वाङ्गिग्ने | " ११५८ |
| अरतिद्वय | कात्या. ९५९ | *अर्थमात्रेण | कात्या. ७५३ | *अर्वाकं चेदप | नार. ८८७ |
| अराजकाः प्र | भा. ८६० | अर्थमिद्धा उ | वेदाः ९६४ | अर्वाकं त्र्यब्दा | मनुः १९५३; |
| *अराजदैव | कात्या. ७५३; | *अर्थशस्त्वाग | बृह. १५६९ | | अपु. १९६२ |
| | याज्ञ. ८४६ | *अर्थमंग्राम | ब्रह्म. १३७४ | अर्वाकं पक्षा | कात्या. ८९८ |
| अराजदैवि | कात्या. ७५३; | अर्थस्य वृद्धि | व्यासः १७६३ | *अर्वाक्संवत्स | मनुः १९५३ |
| | याज्ञ. ८४६ | अर्थस्य संग्र | मनुः १०४७ | " " | याज्ञ. १९५९ |
| अरावाणो वा | वेदाः १५९४ | *अर्थस्य न्हासं | याज्ञ. १७३० | अर्हः पूरुरि | भा. १३९१ |
| अरिक्थभाज | नार. १३४७: | अर्थाः प्रत्यय | भा. ८६१ | अर्हश्चैपे | वेदाः ८११ |
| | शंखः १३९० | *अर्थाच्चेदव | नार. ८८७ | अर्हविभोज | मनुः १६२८. |
| अरिष्टं यत्किं | वेदाः १०११ | अर्थानां भूरि | " १९३९ | | १९२७ |
| अरिष्टासू स | " १००४ | *अर्थानां सार्व | " ६२५ | अलङ्कारं ना | " १०४२ |
| अरीश्व विजि | भा. ८६१ | अर्थाश्चैवाधि | भा. ८६१ | अलङ्कारो भा | आप. १४१५ |
| अरीणामुप | मत्स्य. १६५५ | *अर्थानां भूरि | नार. १९३९ | अलङ्कृता ह | याज्ञ. १८७५ |
| * " " | मनुः १६९८ | अर्थिप्रत्यर्थि | " ९४४ | अलङ्कृत्य य | भा. १०२९ |
| अरुनुदः सू | बृह. ८७४ | अर्थेन च स | जैमि. १४२४ | अलभ्यमाना | कौ. ८६३ |
| अरुन्धतीव | भा. १०२८ | अर्थेऽपव्यय | मनुः ७१९ | अलाभापुः | भा. १०३२ |
| *अरूपं रूप | मनुः १०४८ | *अर्थे पनाम | विष्णुः ११७५ | अलाभे पूर्व | कालि. १३७७ |
| अर्कोपस्थान | बृह. १६४८ | *अर्थे विवद | मनुः ७१९ | अलोकाचरि | अनि. १११८ |
| अर्घपतने | कौ. ७३७ | अर्थेऽविशेषि | विष्णुः ६६२; | अल्पं चापि प्र | भा. १२४३ |
| अर्घप्रक्षेप | याज्ञ. ७७८ | | नार. ६७० | अल्पधान्याप | व्यासः १७६५ |
| अर्घवशाद् | विष्णुः ८७८ | अर्थेष्वधिकृ | " ८२८ | अल्पमूल्यं तु | बृह. १७५९ |
| *अर्घ्वेदत्र | नार. ८८७ | अर्थप्रकाराः | कौ. १६७३ | *अल्पमूल्याप | व्यासः १७६५ |
| अर्घ्वेदप | " " | *अर्धे त्रयोद | याज्ञ. ९१२ | अल्पां वाधां स | कौ. १९८६ |
| *अर्घ्वेदव | " " | अर्धे द्वयोर | बृह. ७६६; | अल्पामायाप | वारा. १०७६ |
| *अर्घस्य वृद्धि | याज्ञ. १७३० | | कात्या. ७३८ | *अल्पेनापि च | कात्या. ७५५ |
| *अर्घस्य वृद्धि | व्यासः १७६३ | *अर्धे द्वयोर् | बृह. ७६६ | अल्पेषु परि | यमः १७६६ |
| *अर्घस्य हानिं | याज्ञ. १७३० | अर्धे भार्या म | भा. १०२६ | *अल्पेष्वपरि | मनुः १७१९ |
| *अर्घस्य हानो | " " | अर्धे वा राज | शुनी. १७६७ | अल्पो वा बहु | भा. १२८६ |
| अर्घस्य न्हासं | " " | अर्धे हरति | भा. १९६३, | *अवकृष्य च | नार. १७५५ |
| *अर्घस्य न्हासे | " " | | १९६४ | *अवक्रम्य च | " १७८८ |
| *अर्घाच्चेदप | नार. ८८७ | अर्धक्षयान्तु | नार. १७४८ | अ(व)पकयस्त्रि | कात्या. ८९८ |
| *अर्घाच्चेदेव | " " | अर्धत्रयोद | याज्ञ. ९१२ | अवकयस्त्रि | भार. ९७० |
| *अर्घाधीवर | बृह. १७५८ | अर्धपादक | अपु. १८३५ | अवक्रयो नि | सुम. ९०० |
| अर्घोऽनुग्रह | याज्ञ. १७३२ | अर्धपादोन | अनि. १९६८ | अवकुट्टय च | नार. १७८८ |
| *अर्घोऽनुग्रह | " " | अर्धभागक्ष | मनुः १९५७ | *अवगूरण | " १८२४ |
| अर्घ्याक्रोशाति | " १६३४ | अर्धाधमेषु | याज्ञ. १७८० | अवगूर्णे नि | कौ. १७९९ |
| *अर्घ्याक्षेपाति | " " | अर्धाधिके क्र | कात्या. ८९८ | *अवगूहन | नार. १८२४ |
| *अर्थं प्रक्षेप | " ७७८ | अर्धाधिकेन | बृह. ९०१ | अवगूरण | " " |
| अर्थकार्ये पु | भा. १०२९ | अर्धाधिक्ये क्र | व्यासः ८९९ | *अवघाते त | याज्ञ. १८२१ |
| अर्थदत्तम | सुम. ९०० | अर्धावरं च | बृह. १७५८ | अवघुष्य च | नार. १७५५ |
| अर्थदानम | कौ. ७९४ | अर्धोऽधमेषु | याज्ञ. १७८० | *अवघोष्य च | " " |
| *अर्थदानैर्म | नार. १७५५ | अर्धो वा एष | वेदाः ९९४, | *अवजित्स्व च | " " |
| *अर्थधर्मप | शंखः ११४८ | | १००७ | अव ज्यामिव | वेदाः ९९९ |
| अर्थधर्मयो | " " | *अपयेत्कृत | कात्या. ८५४ | अव दीक्षाम | " १००३ |

| | | |
|-----------------|---------|-------|
| अवयमिव | वेदाः | १७० |
| *अत्र यामिव | " | १९९ |
| *अवधेनाथ | नार. | ८२६ |
| *अवध्यं यस्तु | याज्ञ. | १६४० |
| अवध्यः सर्वे | भा. | १९६९ |
| अवध्यां स्त्रिय | " | १९७८ |
| अवध्याः स्त्रिय | " | १९६९ |
| अवध्या ब्राह्म | यमः | १६५२ |
| अवध्यास्तु त्रि | भा. | १९६९ |
| *अवध्या ब्राह्म | यमः | १६५२ |
| अवध्या वै ब्रा | बौधा. | १६०६ |
| अवनिष्ठीकृ | मनुः | १८०३ |
| अवनिष्ठीव | " | १८०२ |
| | नार. | १८२९ |
| अवमूत्रय | मनुः | १८०२ |
| | नार. | १८२९ |
| अवमेहय | मनुः | १८०३ |
| अव राजन् | वेदाः | १६५६ |
| अवरुद्धं व | वारा. | १०७७ |
| अवरुद्धासु | याज्ञ. | १८७७ |
| अवरुध्य प | आप. | ९०४ |
| अवरोधनं | " | ८४२ |
| *अवर्तमान | मनुः | १७०८ |
| अवशर्थायि | विष्णुः | १७९६ |
| अवशिनः की | आप. | ८४२ |
| अवशिष्टं हि | " | १०१८ |
| अवश्यं भर | भा. | ८१८ |
| अवश्यं हि घ | " | १२४३ |
| अवश्यकार्याः | नार. | १५८४ |
| अवश्यपोष्य | शुनी. | ८५६ |
| *अवधीवय | मनुः | १८०३ |
| अवस्करं भ्र | कौ. | ९२६ |
| अवस्करस्थ | नार. | ९४६ |
| अवहार्यो भ | मनुः | ७५८ |
| अवहीनान् वा | कौ. | ८६२ |
| अवाग्दुष्टानु | व्यासः | ११११ |
| अवाच्या वै प | भा. | ८१८ |
| अवार्थस्त | कौ. | ८६३ |
| अविं वृको य | वेदाः | १९०० |
| अविक्रयं सु | वारा. | १३२९ |
| अविक्रयाणि | नार. | १६४५, |
| | | १९३९ |
| अविज्ञातं तु | कात्या. | ८९७ |
| अविज्ञातक्र | बृह. | ७६६; |
| | कात्या. | ७६८ |
| अविज्ञातानि | मरी. | ७६९; |

| | | |
|-----------------|------------|------------|
| *अविज्ञातवि | व्यासः | १७६४ |
| अविज्ञातस्था | " | " |
| अविज्ञातह | कात्या. | ७६८ |
| अविज्ञाताश्च | याज्ञ. | १६४० |
| " | बृह. | ७६६; |
| " | कात्या. | ७६८ |
| अविज्ञातोप | " | ८०५ |
| अविदस्तत्त्व | स्कन्द. | १९६५ |
| अविद्यमाने | बौधा. | १०१९; |
| | नार. | ११०२, १५८४ |
| *अविद्याः समं | गौत. | १२०४ |
| *अविद्यानां च | मनुः | १२११ |
| अविद्यानां तु | " | " |
| अविद्वांश्चैव | " | १९३० |
| अविद्वान् या | कात्या. | १७६१ |
| *अविधानं वि | वृगौ. | १३७१ |
| अविधाय वि | बृम. | १३६२; |
| | वृगौ. | १३७१ |
| अविधिनाथ | नार. | ८२६ |
| *अविभक्तं वि | देव. | १२०३ |
| अविभक्तं स्था | यमः | १५६१ |
| *अविभक्तध | कात्या. | १५२२ |
| अविभक्तप | स्मृत्य. | १५२९ |
| अविभक्तपि | बृह. | १९८८ |
| अविभक्तवि | देव. | १२०३ |
| अविभक्ताः पृ | आनि. | १५८९ |
| अविभक्ताः सु | " | " |
| अविभक्ता ऋ | कात्या. | ७१४ |
| अविभक्ता वि | बृह. | ८०३; |
| | आश्व. | १५८८ |
| " | नार. | ६९०; |
| " | बृह. | १५८५ |
| *अविभक्ते कु | याज्ञ. | ६८२ |
| अविभक्ते घ | कात्या. | १५२२ |
| अविभक्ते नि | " | १२०१ |
| *अविभक्तेऽनु | " | " |
| *अविभक्ते मृ | " | " |
| *अविभक्ते सु | " | " |
| अविभक्तैः कु | याज्ञ. | ६८२ |
| अविभक्तैः कृ | विष्णुः | ६७९ |
| अविभक्तैश्च | स्मृत्य. | १५८९ |
| अविभज्य पृ | कात्या. | ७८८ |
| *अविभागः स | व्यासः | १२३१ |
| *अविभागः स्त्री | गौत. | १२०४ |
| अविभाज्यं स | व्यासः | १२३१; |
| उन्न. | १२३२; लहा. | १९८८ |

| | | |
|-----------------|-------------|-------|
| अविभाज्ये च | लौगा. | १२३३ |
| *अविभाज्ये तु | " | " |
| *अविभाव्य स | गौत. | १२०४ |
| अविरोधेन | कात्या. | ८७५ |
| अविर्धान्याय | गौत. | ११८२ |
| अविवाद्याः स | नार. | १०९४ |
| अविवीतानां | कौ. | १६२० |
| अविशेषण | नार. | ११३१, |
| | १६४३; वेदाः | १३८५; |
| | विष्णुः | १९८३ |
| X " " | नि. | १२५५ |
| २ " " + | " | १४१५ |
| *अविषह्य तु | मनुः | १८६७ |
| *अविषह्यां तु | " | " |
| *अवीक्ष्य बीजं | कात्या. | ८३७ |
| अवीरामिव | वेदाः | ९८७ |
| अवृत्तिकर्षि | मनुः | १०६०; |
| | बृह. | ११०७ |
| अवृत्तौ प्राय | गौत. | १६५९ |
| अवेक्ष्य बीजं | कात्या | ८३७ |
| *अवेदयस्तु | मनुः | १९५४ |
| *अवेदयन् | " | " |
| अवेदयानो | " | " |
| अवैद्याः समं | गौत. | १२०४ |
| *अवैद्यानां तु | मनुः | १२११ |
| अव्यक्तमेव | शुनी. | ७६९ |
| अव्युष्टा इन्दु | वेदाः | ५९९ |
| अशक्तः कुत्सि | कौ. | ८४४ |
| अशक्तः कोपं | " | १७७२ |
| *अशक्तः प्रेत | नार. | ९४८ |
| अशक्तप्रेत | " | " |
| अशक्तस्तु व | याज्ञ. | १७८१ |
| अशक्तस्तूर्ण | नार. | ९१६ |
| अशक्तालस | बृह. | ७८४ |
| *अशक्तावभि | नार. | ९१६ |
| अशक्तितो न | कात्या. | ९६० |
| अशक्तो दश | विष्णुः | १९२१ |
| अशक्तो बन्ध | कात्या. | ७२९ |
| *अशक्तौ बन्ध | " | " |
| अशक्तौ भेष | नार. | १९३९ |
| अशक्तौ रज्जु | गौत. | ८१५, |
| | | १७९४ |
| अशनयापि | वेदाः | १५९६, |
| | | १५९७ |
| *अशनानिष्ट | नार. | ८२९ |
| अशान्तलाप्ते | बृह. | ६५१ |

| | |
|---------------------|-----------------------|
| अशासं त्वा वि | वेदाः ९८९ |
| अशासंस्तस्क | मनुः १६९२, १९२९ |
| अशासन् त | नार. १७५१ |
| अशासनानु | बौधा. १६६७ |
| * " " | नार. १७५१ |
| अशासित्वा तु | मनुः १७०२ |
| अशास्त्रविहि | बृह. १९४१ |
| अशास्त्रोक्तेषु | नार. १९३५ |
| अशीतिभागं | मनुः ६११; नार. ६२४ |
| अशीतिभागो | याज्ञ. ६१९; |
| बृह. ६३१; बृहा. ७३१ | |
| अशुचयो हि | कौ. ७३७ |
| अशुचिर्वच | नार. १९४० |
| अशुचिहस्ता | कौ. १६७४ |
| *अशुद्धं कित | नार. १९११ |
| अशुद्धः कित | " " |
| अशुद्धस्तच्च | कौ. १६८४ |
| अशुभं कर्म | नार. ८२९ |
| अशुभं दास | " " |
| *अशुल्कोपग | " १३४७ |
| अशुल्कोपन | " ११०२, १३४७ |
| *अशुल्कोपह | " ११०२ |
| अशुश्रूषाक | बौधा. १०२० |
| अशुश्रूषाऽभ्यु | नार. ८२४; बृह. ८३४ |
| *अशुश्रूषामु | नार. ८२५ |
| अशेषतोऽप्या | मनुः १९५६ |
| *अशेषमप्या | " " |
| अशेषात्मज | संभ्र. १५२९ |
| अरमकूटाश्च | व्यासः ९६१ |
| अरमनोऽस्थीनि | मनुः ९३४ |
| *अरमादिभिश्चो | नार. १८२४ |
| अश्रद्धयाऽदे | वेदाः ७९२ |
| अश्रवं हि भू | " ९६४ |
| अश्रीर इव | " ९७३ |
| अश्रीरा तनू | " ९८४ |
| अश्रुणि कृप | " १६०१ |
| *अश्लीला तनू | " ९८४ |
| अश्वं यजमा | " १००९ |
| अश्वः कनिक | " ९९६ |
| अश्वः खरो वृ | नार. ६९५ |
| *अश्वतरग | शंखः ९०५ |
| अश्वमहिभ्यो | गौत. ९०४ |

| | |
|------------------|-----------------------------|
| अश्वमेधान | कौ. १६२१ |
| *अश्वस्तननि | मनुः १७२५ |
| अश्वस्तनवि | " " |
| अश्वस्तुष्टो ग | विष्णुः ९०५ |
| अश्वस्थेवं ज | वेदाः १८९४ |
| अश्वहर्ता ह | व्यासः १७६५ |
| *अश्वापहर | " " |
| अश्वो यमस्य | वेदाः १९८० |
| अश्वोष्ट्रगोघा | विष्णुः १५९७ |
| अष्टधा तु भ | भा. १२४४ |
| *अष्टपादं हि | मनुः १७२१ |
| अष्टमांशाधि | व्यासः ८९९; स्मृत्य. ९०१ |
| अष्टशतं सी | शंखः १६७२ |
| अष्टाङ्गुलम | स्कन्द. १९६७ |
| अष्टाधिकवि | अनि. " |
| अष्टादशसु | मनुः १९०७ |
| अष्टापदी च | वेदाः १६०० |
| *अष्टापाद्यं च | मनुः १७२१ |
| अष्टापाद्यं तु | " " |
| अष्टापाद्यं स्ते | नार. १७५२ |
| *अष्टापाद्यं हि | गौत. १६५६ |
| अष्टाशीतिस | मनुः १७२१ |
| *अष्टौ तु त्रपु | यमः १११३ |
| अष्टौ त्रपुणि | याज्ञ. १७३४ |
| अष्टौ दश द्वा | " " |
| अष्टौ पुत्रासो | वसि. १०२२ |
| अष्टौ मासान् | वेदाः ९८२ |
| अष्टौ वर्षाण्यु | मनुः १९३० |
| २ " " + | नार. ११०० |
| अष्टौ विप्रसु | देव. १११२ |
| अष्टौ विवाहा | विष्णुः १०२३ |
| अष्टौ संस्कार | नार. १०९८ |
| *अष्टौ हि त्रपु | स्मृत्य. १४२२ |
| असंख्यातदे | याज्ञ. १७३४ |
| असंख्यातम | कौ. ६७९ |
| असंदितानां | नार. ७४७ |
| *असंदिष्टं च | मनुः १७११ |
| *असंदिष्टं तु | नार. ७८१ |
| असंदिष्टश्च | " " |
| *असंधितानां | " " |
| असंप्रत्यय | मनुः १७११ |
| *असंबोध्य सु | व्यासः ७६८ |
| असंभूय सु | " १५८७ |
| " " ; | " " |
| लहा. १९८८ | " " |

| | |
|--------------------|--------------------|
| असंभोज्या ह्य | मनुः १६२७ |
| असंमोहार्थ | कात्या. १९१४ |
| *असंमृष्टवि | गौत. १४६५ |
| असंसृष्टिवि | " " |
| *असंसृष्टोऽपि | याज्ञ. १५४६ |
| असंसृष्ट्यपि | " " |
| " " | वृथा. १५६२ |
| असंस्कृता भ्रा | बृह. १५८६ |
| असंस्कृताम | बौधा. १२७० |
| *असंस्कृताश्च | याज्ञ. १४१९ |
| असंस्कृतास्तु | " " |
| व्यासः. १४२२, १५८७ | |
| *असंस्कृते तु | व्यासः ९६१ |
| असंस्कृतेन | कात्या. १५२३ |
| *असंहितानां | मनुः १७१२ |
| *असत्कालस | बृह. ७८४ |
| असज्जन्त प्र | भा. १०३३ |
| *असति पित | बौधा. ११८३ |
| असत्प्रतिग्र | कौ. ७७२ |
| असत्प्रलापो | व्यासः ११११ |
| असत्यः सर्व | वारा. १०७६ |
| असत्यशीला | " " |
| असत्यामपि | संभ्र. १५३० |
| असत्सङ्गे वि | बृह. ११०६ |
| असत्सु देव | नार. ७०३, ११०३ |
| असत्स्वज्ञे | बौधा. १४६८ |
| *असत्स्वन्येषु | " " |
| असद्दर्भस्त्व | भा. १०३२ |
| असद्वा हसि | " १०२८ |
| असद्ययात्पू | नार. १७५३ |
| *असमक्षं स | व्यासः ७८९ |
| असमग्रदा | विष्णुः ६७९ |
| *असमग्र्याव | " " |
| असमज्ञ इ | वारा. १३२९ |
| असमानप्र | गौत. १०११ |
| असमापतौ | आप. १६०६, १६६४ |
| असमाप्ते तु | कौ. ७७२ |
| असमाहार्य | कात्या. ७६७ |
| असम्यक्कारि | मनुः १६९४, १९२९ |
| *असवर्णः प्र | कात्या. १३५० |
| असवर्णप्र | " " |
| *असवर्णाः स | " १३४९ |
| असवर्णा भ्रा | कौ. १२८८ |

| | | | | | |
|------------------|---------------|-------------------|--------------|------------------|--------------|
| *असवर्णात्प्र | कात्या. १३५० | अस्मभ्यामिन्द्र | वेदाः १९०० | अहं पितेव | वेदाः ११६० |
| असवर्णानु | स्मृत्य. १८९१ | अस्माकमपि | भा. १२८५ | अहं वदामि | भा. ९९७ |
| *असवर्णाप्र | कात्या. १३५० | *अस्मात्तु कार्य | कात्या. १८८७ | अहं विशिष्टः | भा. ८१९ |
| असवर्णास्त्रा | यमः १८९० | अस्मादकार्य | ” ” | अहं वि ध्यामि | वेदाः १००१ |
| *असवर्णे तु | कात्या. ८३६ | अस्मिस्तु लोके | भा. १०२७, | अहत्वा भ्रूण | बृह. १६४८ |
| असाक्षिकह | याज्ञ. १८१३ | | १२८४ | अहन्यहन्य | मनुः १९२८ |
| असाक्षिके घा | कौ. १८०० | अस्मै कामायो | वेदाः ९९८ | अहमस्मि स | वेदाः ९९० |
| असाक्षिकेषु | स्कन्द. १९६५ | अस्य स्नुषा श्व | ” १००६. | अहश्च रात्रि | भा. १९६४; |
| *असाक्षिके ह | याज्ञ. १८१३ | *अस्यां जनिव्य | वसि. १२७३ | | स्कन्द. १९६५ |
| असाक्षिप्राणि | शंखः १६७२ | अस्यां यो जाय | ” ”; | अहश्च गत्री | वेदाः ८४२ |
| असाधुजन | कात्या. १९१४ | | मनुः १२९४ | अहिंसितौ पि | ” ६०४ |
| असात्री या प | हारी. १०१७ | *अस्या दधुश्च | ” १८६५ | अहितानि च | भा. १०२८ |
| असाव्यश्वापि | भा. १०३३ | अस्यान्यथाक | विष्णुः ८५९ | अहिरण्यमु | कौ. १९२३ |
| असाव्यस्तु स | ” ” | अस्यापहत | संग्र. ११४२; | अहिर्बुधिनयो | वेदाः १८९७ |
| असारं बाल | कौ. ६६२ | | शुनी. १९८८ | अहते यो ह | अपु. १९६२ |
| *असिं चोभय | मनुः १७०२ | *अस्यापि दृष्टं | नार. १८२४ | अहोढान् वि | नार. १७५२ |
| असितस्य ते | वेदाः ९९६ | *अस्यापमत्यं | शंखः १२८२ | अहोरात्रमु | मनुः १३९२ |
| असिन्वन्दैः | ” ११२०, | अस्येदं क्रय | कात्या. ८९८ | आ अष्टपण | कौ. १६८८ |
| | ११५९. | *अस्वतन्त्रत | संग्र. ११५७ | आकरशुल्क | विष्णुः १९२१ |
| असि सत्य ऋ+ | ” ५९९ | *अस्वतन्त्रता | विष्णुः १०२३ | आकरेभ्यः स | ” १९४३ |
| असीमावरो | कौ. १६२० | *अस्वतन्त्राः पि | शंखः ११४७ | आकाङ्क्षन्ते च | भा. १९८५ |
| असुतस्य प्र | बृह. १५१३ | अस्वतन्त्राः त्वि | मनुः १०४४ | आकाङ्क्षेताष्ट | देव. १११२ |
| *असुताः स्वपि | व्यासः १४१४ | अस्वतन्त्रा घ | गौत. १०१२ | *आकाममन | कात्या. ६५५ |
| *असुताश्च पि | ” ” | अस्वतन्त्रा ह्री | वसि. १९७७ | आकाशभूत | ” ६५७ |
| असुतास्तु पि | मनुः १४०८; | अस्वतन्त्रेण | बृह. ८८९ | Xआकुरते स | नि. १२५७ |
| | व्यासः १४१४ | अस्वातन्त्र्यं प | देव. १११२ | *आकृष्टस्तु स | बृह. १८३१ |
| असूयकाय | मनुः १९७४ | अस्वातन्त्र्यम | नार. १०९८, | *आक्रन्दनेऽप्य | मनुः १८०७ |
| असूयकाया | वसि. ” | | १५५५ | आ क्रन्दय घ | वेदाः ९९८ |
| असूयवस्त्व | भा. १२८६ | अस्वामिकम | ” ७८२, | आक्रन्दे चाऽप्य | मनुः १८०७ |
| असौ च या न | वेदाः ९२२ | | १९६१ | *आक्रन्दे वाऽपि | ” ” |
| असौ मे कामः | ” १००६ | अस्वामिकस्य | भा. १२८७ | *आक्रन्दे वाऽप्य | ” ” |
| असौ मे जार | ” ” | अस्वामिकेभ्य | शुनी. ७६९ | *आक्रन्दे सत्य | ” ” |
| | १८४० | अस्वामिना कृ | मनुः ७६०; | आक्रमणे | वेदाः ९२४ |
| असौ मे स्मर | ” ९९७ | नार. ७६२; यमः ७६९ | कौ. १६२१ | *आक्रमेण च | नार. ८५१ |
| असौ वा आदि | ” १०१० | अस्वामिनि या | ” ९२८ | आक्रम्य च द्वि | व्यासः १९७६ |
| *अस्कन्नवेद | शंखः १२८१ | अस्वामिप्रति | ” ७५७; | *आक्रम्य यद् | ” ” |
| अस्तं ननक्षे | वेदाः ९८८ | अस्वामिविक | कात्या. ७६६ | *आक्रुर्य चैव | नार. १७८८ |
| अस्ति ज्यायान् | ” १५९१, | | ” ८३९ | *आक्रुष्टस्तु य | बृह. १८३१ |
| | १८९३ | अस्वाम्यं तु भ | ” ८३९ | आक्रुष्टस्तु स | ” ” |
| अस्ति वै तव | भा. १२८४ | * ” | देव. ११५६ | *आक्रोशकश्च | ” १७९० |
| अस्ति वै पत्न्या | वेदाः १००७ | अस्वाम्यं हि भ | ” ” | आक्रोशकस्तु | ” ” |
| अस्तेयमग्न | यमः १७६६ | अस्वाम्यनुम | नार. ७६३; | आक्रोशयन् | मनुः १७७७ |
| अस्थिरि त्वा गा | वेदाः १००७ | | कात्या. ९६० | आक्रोशयिता | विष्णुः १७७० |
| अन्नस्ते मध्ये | ” १६०० | अहं गमिष्या | वारा. १०७६ | आक्रोशादर्थ | भार. १९७३ |
| अस्पृश्यः काम | विष्णुः १६१० | अहं चाप्यनि | भा. १०२७ | आक्रोशाद् दे | कौ. १७७३ |
| अस्पृश्यधूर्तौ | कात्या. १८३३ | अहं दुर्गं ग | वारा. १०७६ | आक्रोशो ब्राह्म | शंखः १७७१ |

| | | |
|-----------------|---------|-------|
| आक्रोष्टैव स | नार. | १७८६ |
| आक्षारयन् | मनुः | १७७७ |
| *आक्षिप्तमोघ | नार. | १०९४ |
| ” | ” | १०९५ |
| ” | ” | १०९४ |
| *आक्षेपो निष्ठु | ” | १७८५ |
| *आख्यातव्यं च | मनुः | १७२६ |
| आख्यातव्यं तु | ” | ” |
| आख्याय प्रोषि | कौ. | १०४० |
| आगःसु ब्राह्म | मनुः | १६२७ |
| आगच्छत आ | वेदाः | ९९९ |
| आगच्छन्त्याश्च | वारा. | १०७७ |
| आगतं तु प | भा. | १०२९ |
| *आगतस्यापि | वृम. | ८५५ |
| आगधिता प | वेदाः | ९६६ |
| आगन्तुकाः क्र | बृह. | ७८६ |
| आगमं च प्र | ” | ९५० |
| *आगमं चाप्य | मनुः | १६३० |
| ” | यमः | १६५२ |
| *आगमं निर्ग | मनुः | १७०७ |
| आगमं निर्ग | ” | ” |
| ” | ” | १९२७ |
| आगमं वाप्य | ” | १६३०, |
| ” | ” | १९२९ |
| *आगमं वाप्यु | ” | १६३०; |
| ” | यमः | १६५२ |
| आगमेनोप | याज्ञ. | ७६२ |
| आ गर्भसंभ | ” | १०८९ |
| आ घा ता गच्छा | वेदाः | ९७७, |
| ” | ” | १८३६ |
| आ घा योषेव | ” | ९६३ |
| आचक्षणेन | मनुः | १७०२; |
| ” | नार. | १७५१ |
| आचक्षीत रा | गौत. | १६६० |
| आचतुरं वा | वेदाः | १०१० |
| आ चतुर्थीतु | कात्या. | १२०२ |
| आ चतुष्पण | कौ. | १६८८, |
| ” | ” | १६८९ |
| आ चत्वारिंश | ” | ” |
| आचारहीनः | बृह. | १४०२ |
| आचारायाश्च | वसि. | १९७७ |
| आचार्यं च प्र | मनुः | १६३७ |
| आचार्यं धर्म | शौन. | १३६३ |
| आचार्यः शिक्ष | नार. | ८२७ |
| आचार्य ऋत्वि | आप. | १६०६, |
| ” | ” | १६६४ |

| | | | |
|------------------|----------|---------|-------|
| आचार्यपत्नीं | याज्ञ. | १८७४ | |
| आचार्यपुत्रः | मनुः | १९७४ | |
| आचार्यगास्ता | भा. | १९८४ | |
| *आचार्यस्त्र्यभि | गौत. | १८४१ | |
| आचार्यस्य च | नार. | ८२७ | |
| आचार्यस्याप्य | संघ. | १५३० | |
| आचार्यं त्रिमु | बृह. | ८०३ | |
| आचार्योऽप्यना | आप. | १९७३ | |
| आचूडान्तं न | कालि. | १३७७ | |
| आचूडान्मध्य | स्मृत्य. | १३७३ | |
| आजामि त्वाज | वेदाः | ९९८ | |
| आर्जावन्स्वेच्छ | याज्ञ. | ७४६ | |
| आज्ञयाऽपि क्र | वृका. | ९०१ | |
| आज्ञा तेजः पा | नार. | १९३६ | |
| आज्ञाधिर्नाम | मरी. | ६६०; | |
| ” | भार. | ” | |
| आज्ञाधिस्तत्क | ” | ९०० | |
| आज्ञाप्रतिघा | विष्णुः | १९२१ | |
| आज्ञायां चास्य | नार. | १९३६ | |
| आज्ञासंपादि | याज्ञ. | १०८८, | |
| ” | ” | १४०० | |
| आज्यं विना य | बृह. | १३४८ | |
| आञ्जनस्य म | वेदाः | ९९७ | |
| आढकं भर्तुं | प्रजा. | १५२६ | |
| आढकस्यार्थ | कौ. | १६७७ | |
| आढकांस्तु च | नार. | १४०२ | |
| *आढकास्तु च | ” | ” | |
| आढ्यं वा रूप | भा. | १०३० | |
| आण्डात् पत | वेदाः | १००३ | |
| आततायिद्वि | संघ. | १६५५ | |
| आततायिनं | वसि. | १६०८ | |
| आततायिन | ” | ” | |
| ” | ” | ” | |
| विष्णुः | १६१२; | मनुः | १६२५; |
| बृह. | १६४८; | कात्या. | १६५१; |
| ” | ” | ” | ” |
| मत्स्य. | १६५५ | ” | ” |
| कात्या. | १६५१ | ” | ” |
| संव. | १६५३ | ” | ” |
| सुम. | ” | ” | ” |
| *आततायिव | ” | ” | ” |
| आतिपातिका | कौ. | ८७९ | |
| आ ते नयतु | वेदाः | ९९८ | |
| आ ते यतन्ते | ” | १९८० | |
| आत्मजं पुत्र | भा. | १२८७ | |
| आत्मजाः पर | देव. | १३५० | |
| *आत्मज्ञे स्तव | बृह. | ८०३ | |
| आत्मत्यागः प | देव. | १६५१ | |

| | | | |
|-----------------|---------|-------|------|
| *आत्मन्यागान् प | देव. | १६५१ | |
| आत्मत्राणे व | वसि. | १६०८; | |
| ” | विष्णुः | १६१२ | |
| आत्मनश्च प | मनुः | १६२३ | |
| *आत्मनाशः प | देव. | १६५१ | |
| *आत्मना स्वप | मनुः | १६२३ | |
| आत्मनो जन्म | भा. | १०२७ | |
| आत्मनो मृग | ” | १२८४ | |
| आत्मन्वार्युर्व | वेदाः | १००२ | |
| *आत्मपितुः स्व | वृशा. | १५२८ | |
| आत्मपितृश्च | ” | ” | |
| *आत्मभावेन | नार. | ८४९ | |
| आत्ममातुल | वृशा. | १५२८ | |
| आत्मवंशस्त्र | भा. | १०३० | |
| आत्मवत्तस्य | ” | १२८७ | |
| आत्मवद् प्र | ” | ” | |
| आत्मविक्रयि | कौ. | ८१७ | |
| आत्मशुक्राद् | भा. | १२८४ | |
| आत्मात्मनैव | ” | १०२६ | |
| आत्माधिगतं | कौ. | ८१७ | |
| आत्मानं घात | यमः | १६५२ | |
| *आत्मानं दर्श | मनुः | १३०९ | |
| आत्मानं पित | वेदाः | १००० | |
| आत्मानं बुद्धि | देव. | १६५१ | |
| आत्मानं सत | भा. | १९७८ | |
| आत्मानं सत्य | ” | १९८५ | |
| आत्मानं स्पर्श | मनुः | १३०९ | |
| आत्मानमात्म | ” | १०४८ | |
| आत्मा पुत्रः स | भा. | १९७८, | |
| ” | ” | १९८५ | |
| आत्मा पुत्र इ | शंखः | १२८१ | |
| आत्मा पुत्रश्च | भा. | १२८६ | |
| आत्मार्थं विनि | काल्या. | ८७६ | |
| Xआत्मा वै पुत्र | नि. | १२५५ | |
| ” | बौधा. | १२६८; | |
| ” | ” | ” | |
| वेदाः | १४१५; | भा. | १९८५ |
| *आत्मासि पुत्र | वेदाः | १४१५ | |
| आत्मा हि जज्ञे | ” | १२६० | |
| आत्मिके रात | बृह. | ८०३ | |
| आत्मीकृत्य तु | लिङ्ग. | १३७६ | |
| आत्मीकृत्य सु | स्कन्द. | १३७५ | |
| आत्मीयस्य वि | कात्या. | ८९७; | |
| ” | व्यासः | ८९९ | |
| आत्मैवेदम | वेदाः | १०१० | |
| आ त्रिंशत्पण | कौ. | १६८९ | |
| आ त्रिपञ्चादि | ” | ८७९ | |

| | |
|--------------------|-------------------|
| आ त्रिपादम् | कौ. १६८८, १६८९ |
| आत्रिभोगात् | सुम. ९०० |
| आत्रेभ्या बधः | बौधा. १६०६ |
| आथर्वणेन | विष्णुः १६१२; |
| मनुः १६२६; कात्या. | १६५० |
| आददद्धि द | अपु. १९७५ |
| *आददद्धि स | याज्ञ. १९६० |
| आददानः प | मनुः १७२३; |
| | यमः १७६६ |
| आददानो द | मनुः ८८० |
| *आददीत तु | १९५४ |
| आददीत न | १०४३ |
| आददीताथ | १९५४ |
| आदनीतार्थ | कात्या. ७२७ |
| आदद्याद्वा | ८३८ |
| आदध्यात् त | ६५७ |
| आ दशपण | कौ. १६८८, १६८९ |
| *आदशाहं नि | भार. १५८२ |
| आ दशाहाभिः+ | व्यासः ८९९ |
| ॥ ॥ | सुम. ॥ ॥ |
| १५८२; भार. | १५८२, १९७५ |
| *आदातरि पु | मनुः ६६४ |
| आदानकालि | कात्या. ७३० |
| आदाननित्या | मनुः १७२५ |
| *आदाने च वि | कात्या. १४५८ |
| *आदाने वाऽपि | ॥ ॥ |
| आदाने वा वि | ॥ ॥ |
| *आदाय तनु | देव. १५२६ |
| *आदाय दद्या | बृह. १५१३ |
| आदाय दाप | ॥ ॥ ; |
| | प्रजा. १५२६ |
| आदित्यं चरुं | वेदाः ९९१ |
| आदित्यः सत्य | ॥ १००६ |
| आदित्यचन्द्रा | भा. १९६४; |
| | स्कन्द. १९६५ |
| आदित्या वा अ | वेदाः १५९६ |
| आदिनवं प्र | ॥ १९०२ |
| आदिप्रभृति | भा. १०३० |
| आदिशेत्प्रथ | बौधा. १२६८ |
| *आहतायां तु | ब्रह्म. १३७४ |
| *आदौ कोऽहं द | बृह. ६७१ |
| *आदौ पितृकृ | ॥ ७०७ |
| आदौ पूजां र | स्कन्द. १९६६ |
| *आदौ प्रतिग्र | याज्ञ. ७३२ |

| | |
|-----------------|---------------------|
| आदौ मध्येऽव | नार. ८४८ |
| *आदौ मध्ये वि | ॥ ॥ |
| आद्यमध्योत्त | व्यासः १७९२ |
| *आथे तु वित | विष्णुः ६६२; |
| | याज्ञ. ६६५ |
| आथेपु पादो | हारी. १७६९, १७९४ |
| आथौ तु वित | विष्णुः ६६२; |
| | याज्ञ ६६५; बृह. ६७१ |
| आ द्विपणम् | कौ. १६८८, १६८९ |
| आ द्विपादम् | ॥ १६८८, १६८९ |
| आधत्त पित | वेदाः १२५९; |
| | शंखः १२८१ |
| *आधत्तोऽथ ध | नार. ८३२ |
| आधयो द्विवि | कात्या. ६६० |
| आधाता यत्र | ॥ ६५६ |
| आधानं विक्र | ॥ ॥ ; |
| | याज्ञ. १७३३ |
| आधानविक्र | कौ. ७३५ |
| आधाने हि स | आप. १०१७ |
| आधारपरि | कौ. ९३० |
| आधारभूतः | नार. ७८० |
| *आधारभूताः | ॥ ॥ |
| आधार्याणि वि | भा. ८१८ |
| आधि दुष्टेन | कात्या. ६५६ |
| आधि प्रविश्य | स्मृत्य. ६६१ |
| आधि विना ल | हारी. ६०८ |
| आधिः प्रणश्ये | याज्ञ. ६४३ |
| आधिः साहस | नार. १६४१, १७४४ |
| आधिक्यं न्यून | कात्या. ९५४ |
| *आधिदृष्टेन | ॥ ६५६ |
| आधिपालकृ | पिता. ६७५ |
| आधिपालप्र | कौ. ६३८ |
| आधिभोगस्त्व | कात्या. ६३१ |
| आधिमन्यं स | ॥ ६५५ |
| आधिमैकं द्व | ॥ ६५६ |
| आधिरन्यः प्र | स्मृत्य. ६६१ |
| आधिरन्योऽथ | नार. ६५० |
| * ॥ ॥ | स्मृत्य. ६६१ |
| *आधिरन्योऽधि | नार. ६५०; |
| | स्मृत्य. ६६१ |
| आधिर्बन्धः स | बृह. ६५० |
| *आधिर्यो द्विवि | नार. ६४९ |

| | |
|------------------------|---------------|
| आधिवेदिनि | विष्णुः १४२८; |
| याज्ञ. १४४३; बृह. | १४६२ |
| आधिश्चतुर्वि | भार. ६६० |
| *आधिश्च द्विवि | नार. ६४९; |
| | कात्या. ६६० |
| *आधिश्च भुज्य | याज्ञ. ६८५ |
| *आधिस्तु त्रिवि | भार. ६६० |
| *आधिस्तु द्विगु | नार. ६४९ |
| आधिस्तु द्विवि | ॥ ॥ ; |
| | बृह. ७३१ |
| * ॥ ॥ | भार. ६६० |
| आधिस्तु भुज्य | याज्ञ. ६८५ |
| *आधिस्तु सोद | बृह. ६५३ |
| आधीकृतं तु | कात्या. ६५५ |
| आधीपर्णा का | वेदाः ९९८ |
| आथेः प्रवेश | कात्या. ६६०; |
| | भार. ॥ |
| आथेः समधि | हारी. ६३६ |
| *आथेः साहस | नार. १६४१ |
| आथेः स्वीकर | याज्ञ. ६४१ |
| *आथौ तु वित | ॥ ६६५ |
| *आथौ नष्टे तु | कात्या. ६५६ |
| आथौ नष्टे ध | हारी. ६३६ |
| आथौ प्रतिग्र | याज्ञ. ७३२; |
| | बृह. ७३४ |
| आध्यर्थः केव | भार. ७३१ |
| आध्यर्थस्त्वृणि | नार. ६४९ |
| आध्यादि तत्कृ | लौगा. १४६३ |
| आध्युपभोगे | विष्णुः ६३६ |
| आ नः प्रजां ज | वेदाः ९८५ |
| आनन्दाय स्त्री | ॥ ९९५ |
| आनन्दिनीं प्र | ॥ १८९९ |
| आनयित्वा त | भा. १२८८ |
| आ नस्तुजं र | वेदाः ११५९ |
| आनुपूर्व्येण | भा. १०२७, |
| | १२४३ |
| आनुलोम्येक | देव. १२५२ |
| *आनुलोम्येन | ॥ ॥ |
| ॥ ॥ + | नार. ११०५ |
| ॥ ॥ | ॥ ११०४; |
| विष्णुः १८४६; स्मृत्य. | १८९१ |
| आनुप्यार्थं हि | ॥ १३७३ |
| आनुशंस्यं प | भा. १२४४ |
| आ नो अग्ने सु | वेदाः ९९७ |
| आ नो भर प्र | ॥ ६०० |
| आन्तरेऽपि | भा. १०२८ |

| | |
|-----------------|---------------|
| आपः सप्त सु | वेदाः १००३ |
| आ पञ्चपण | कौ. १६८९ |
| आ पञ्चाशत्प | " " |
| आ पणमूल्या | " १६८८, |
| | १६८९ |
| आपत्कालकृ | कात्या. ६३१ |
| * " " | नार. ६९८ |
| *आपत्कालाद् | " " |
| आपत्काले कु | स्मृत्य. १५८८ |
| *आपत्काले कृ | कात्या. ६३१ |
| आपत्काले तु | " ८०४ |
| *आपत्कालेऽपि | " " |
| *आपत्काले प्र | " " |
| आपत्कृताद् | नार. ६९८ |
| आपत्सु च नि | अनि. १११८ |
| आपत्स्वनन्त | नार. १९३७ |
| *आपत्त्वपि च | " ७९८ |
| आपत्त्वपि न | दक्षः ८०७ |
| आपत्त्वपि हि | नार. ६२७, |
| | ७९८ |
| आपदं निस्त | " ६२७ |
| आपदं ब्राह्म | " १९३७ |
| आपदर्थं ध | भा. १९७८ |
| आपद्रतस्त | मनुः ९३९, |
| | १६३१, १९२९ |
| *आपद्रतोऽथ | " ९३९ |
| आपद्रतोऽभ्यु | हारी. १२६६ |
| आपद्रतो ह्यु | यमः १३५२ |
| आपद्रमप्र | भा. १९७८ |
| आपद्यपत्य | मनुः १०७५, |
| | ११२७ |
| *आपद्यपि च | नार. ७९८ |
| " " | दक्षः १३५२; |
| | संप्र. १३८४ |
| आपद्यपि वि | हारी. ७९४ |
| आपद्यपि हि | मनुः १९७४ |
| आपस्तत्सत्य | वेदाः १००६ |
| *आ पुनः संस्का | हारी. १०१४ |
| आपो न सिन्धु | वेदाः ९२४ |
| आपो वरुण | " १००५ |
| आप्तः शक्तोऽर्थ | मनुः १९७४ |
| आप्तदोषं क | कौ. १६८७ |
| आप्तभावेन | नार. ८४९ |
| *आप्नुयात्साह | कात्या. ८५४ |
| *आप्नोति तस्य | बृह. १५५८ |
| आप्या अमृज | वेदाः १५९२ |

| | |
|-----------------|---------------|
| आबन्ध्यानिच | कौ. १४३० |
| आभाषितश्च | भा. ८६० |
| आभिर्मत्प्रता | वेदाः ८१४ |
| आभिर्विश्वा अ | " ८१० |
| आभीषणेन | कात्या. १८३३ |
| आभूतिरेषा | वेदाः १००५ |
| आभ्यन्तरं भ | भा. ८६१ |
| आमन्त्रिता च | नार. ८५१ |
| *आमन्त्रिता चे | " " |
| *आमन्त्रिता तु | " " |
| आमन्त्रितो द्वि | मत्स्य. १६५५ |
| आमोहमस्मि | वेदाः १००४ |
| आम्नाये स्मृति | बृह. १५१२ |
| *आयच्छेच्छक्ति | " ९१९ |
| आयत्यां च त | भा. ८६० |
| आयव्ययज्ञैः | बृह. ७८४ |
| आयव्ययेऽन्न | " ११०६ |
| *आयव्ययेऽर्थ | " " |
| आयव्ययौ च | मनुः १९२८ |
| *आयव्ययौ य | नार. ७८१ |
| आयसं द्वाद | स्कन्द. १९६७ |
| आयान्ति पुत्र | कालि. १३७७ |
| आयुः सा हर | विष्णुः १०२३ |
| आयुधानां चा | नार. ६२६ |
| आयुधान्यायु | " १९३५ |
| आयुधी चोत्त | बृह. ८३५ |
| *आयुधी तूत | नार. ८२८; |
| | बृह. ८३५ |
| आयुधीयस्यो | कौ. १६१९ |
| आयुधेश्च प्र | बृह. १८३० |
| *आयुर्हरति | विष्णुः १०२३ |
| आयुषः क्षप | लहा. १४०४; |
| | हारी. १४६६ |
| *आयुषः रक्ष | " " |
| आयुषा वा ए | वेदाः १५९६ |
| आयुष्कामेन | मनुः १०७१ |
| *आयुष्यक्षप | हारी. १४६६ |
| *आये व्ययेऽन्न | बृह. ११०६ |
| आयोर्ह स्कम्भ | वेदाः १५९१ |
| आरक्षकांस्तु | कात्या. १७६२ |
| आरक्षकान् | नार. १७५७ |
| *आरक्षिकान् | " " |
| आरष्यपशु | विष्णुः १६०९, |
| | १७९७ |
| आरब्धारस्तु | कौ. १६८० |
| आरमेत त | मनुः १९३० |

| | |
|-------------------|--------------|
| आरमेतैव | मनुः १९३० |
| *आरम्भकः स | बृह. १६४७; |
| | कात्या. १६४९ |
| आरम्भकृन्त | बृह. १६४७; |
| | १६४९ |
| आरम्भकोऽनु | " १८३१ |
| आरम्भास्ते तु | कात्या. १८८७ |
| *आरामप्रति | शंखः १६१३ |
| आरामायत | याज्ञ. ९४२ |
| आरुह्य संश्र | कात्या. १२२७ |
| आ रोह चर्मो | वेदाः १००२ |
| आ रोह तल्पं | " " |
| आरोहन् सूर्या | " " |
| आ रोह सूर्ये | " १००१ |
| आ रोहोरुमु | " १००३ |
| *आर्तः कुर्यात्सु | मनुः ८४५ |
| आर्तस्तु कुर्या | " " |
| आर्तार्ते मुदि | बृह. ११०७ |
| *आर्तोऽपि कुर्या | मनुः ८४५ |
| आर्द्रवासस | स्कन्द. १९६६ |
| आर्पणात्पूर्व | भार. ६६० |
| आर्षपुत्र पि | वारा. १०७५ |
| आर्षप्राणो ध्व | कौ. ८१७ |
| *आर्षस्त्रीगम | गौत. १८४१ |
| आर्षस्त्र्यभिग | " " |
| आर्षाः शुचयः | आप. १९०३ |
| *आर्षाक्रोशाति | याज्ञ. १६३४ |
| आर्षावर्तः प्रा | वसि. १९२१ |
| आर्षे किमव | वारा. १०७७ |
| *आर्षश्चैव हि | नार. १०९८ |
| आर्षश्चैवाथ | " " |
| आर्षे गोमिथु | भा. १२८६ |
| आवपातिक | शंखः १३९० |
| *आवरणिनः | कौ. १९२५ |
| आवर्तनं नि+ | वेदाः ९०२ |
| आवसथे त्रि | " १८९७ |
| आवहेयुर्भ | नार. ८७१ |
| *आवां प्रजां ज | वेदाः ९८६ |
| " " | " १००३ |
| आ वां रथं दु | " १९७७ |
| आ वामगन्सु | " ९८१, |
| | १००१ |
| आवासदा दे | नार. १७५५ |
| आवाहयामि | भा. १२८६ |
| आ विशतिप | कौ. १६८९ |
| आ विद्याग्रह | नार. ८२६ |

| | | | | | |
|----------------|---------------------------|------------------|---------------|-----------------|-------------------|
| आविष्टिताव | वेदाः १४६४, १६०० | आऽस्यार्धं वत्रा | वेदाः १००६ | इतरेण नि | याज्ञ. १९६० |
| आ वृषायस्व | ,, ९९६ | *आस्येनास्यं प | नार. ११०१ | इतरेणानु | स्मृत्य. १५८९ |
| आवेदयित्व | बृह. ६५४ | आस्वेव तु भु | ,, १८८३ | इतरेषां तु | पैठी १११५; |
| आवेष्टनं चां | व्यासः १८३४ | आहं खिदामि | वेदाः ९९६ | भा. १२४४; मनुः | १८५८ |
| *आवेष्टनं वां | ,, , | आहं तनोमि | ,, , | इतरेषां व | आप. १९१८ |
| आ वै मऽइद | वेदाः १४२४ | *आह नैवं पु | काल्या. १७९१; | *इतरेषु तु | पैठी. १११५ |
| आशासनं वि | ,, ९८४ | Xआहर नः प्र | उश. १७९२ | इतस्ताः सर्वा | वेदाः ९९९ |
| आशासाना सौ | ,, ९९१, १००० | *आहरन्मूल | नि. ६०० | इति कुन्ति वि | भा. १२८४ |
| आशुद्धेः संप्र | याज्ञ. १०८४ | *आ हरेतैव | काल्या. ७६६ | इति क्षेत्रप | कौ. ९०६ |
| आशुमुतक | कौ. १६१५ | आहरेत् त्री | मनुः १३२६ | इति चत्वारो | वेदाः १८९६ |
| आश्रमिणः पा | ,, १९८६ | आहरेद्विधि | ,, १७२४ | इति ते कथि | भा. १०३० |
| आश्रमेषु द्वि | मनुः १९२६ | आहरेन्मूल | याज्ञ. १०९१ | इति तेन पु | ,, १०२७, १२८५ |
| आश्रयः शस्त्र | काल्या. १६४९ | आहर्ता वाजि | काल्या. ७६६ | इति त्रयो वा | वेदाः ९०३ |
| *आश्रयशस्त्र | ,, , | आहारकाले | भा. १९८५ | इति दत्तस्या | कौ. ७९४ |
| आश्रितस्तद | ,, ७११ | आहारमयं | काल्या ७२८ | इति द्वेषः | ,, १०३६ |
| आ संयतमि | वेदाः ८०९ | *आहितं चैव | शंखः १०२५ | इति निष्पत | ,, १०३८ |
| *आ संस्कारं म | नार. १५५४ | आहिताभिश्चे | दक्षः ८०७ | इति पथ्यनु | ,, , |
| आ संस्कारात् | ,, , | आहितोऽपि ध | हारी. १०१६ | इति पारुष्य | ,, १०३५ |
| आसंस्काराद् | शंखः १४७३ | आ हि दावापृ | नार. ८३२ | इति पुनात्ये | वेदाः ९०३ |
| आसनशय | गाँत. १७९४ | आ हि ध्मा सून | वेदाः ११५९ | इति पृष्ठा सु | भा. १०२८ |
| आसनानि च | भा. ८६० | आहुत्पाद | ,, ११५८ | इति प्रतिषे | कौ. १०३७ |
| आसनहस्या | विष्णुः १६०९ | आहुता तत्स | मनुः १०७० | इति भर्तृत्र | भा. १०२९ |
| आसनेनोप | भा. १०२८ | *आहुय स्थाप | भा. १०२९ | इति भमे | कौ. १०३५ |
| आसन्नमेते | कौ. १०४० | आहुत्य पर | बृह. ८७२ | इति मर्यादा | ,, ९२९ |
| आ सप्तमात् | नार. १०९४ | आहुत्य स्त्रीध | काल्या. १९४१ | इति यास्ताः क | भा. १०३२ |
| आसप्तमाद् | अनि. १५२९ | आहुत्य स्थाप | ,, ७११ | इति राजप | कौ. १६८९ |
| आसमापत्तेः | आप. १६०६, १६६४ | आहुको दर्श | बृह. ८७२ | इति रुद्रादे | वेदाः ९०३ |
| आसहसात्प | वेदाः १५९७, १६०१, १६०३ | आह्वानकारी | ,, ६७१ | इति वागन्त | भा. १९८५ |
| आसां भोगे न | काल्या. १११० | *आह्वानकारी | अपु. १९४३ | इति वास्तुवि | कौ. ९२९ |
| आसां शुद्धौ वि | भा. १०३० | *आह्वानकारी | नार. १७५५ | इति विवाह | ,, १४३० |
| आसामन्यत | नार. १८८२ | इक्ष्वाकूणां कु | ,, , | इति स्त्रीधन | ,, , |
| आसीतामर | मनुः १०६२ | इच्छतः स्वामि | वारा. १३२९ | इत्थं विरुद्धा | अनि १९४३ |
| आसीत् सुन | पद्म. १३७६ | इच्छन्ति पित | नार. ८२९ | इत्यतिचारः | कौ. १०३६ |
| आसीद्विभाव | भा. १९८३ | इच्छन्तीमिच्छ | ,, ६९२ | इत्यनुलोमाः | ,, १२८८ |
| आसीनोऽधो गु | नार. ८२६ | इच्छन्त्यामाग | ,, १०९८ | इत्यर्थमिन्ध | भा. १९७८, १९८५ |
| आसुरादधि | भा. १२८६ | इच्छाकृता का | व्यासः १८८९ | इत्याचार्याः | कौ. १८०० |
| आसुरादिषु | काल्या. १४५९; | इच्छामि सरि | अनि. ६३५ | *इत्यादिप्रत्य | काल्या. ६५८ |
| आसेधयस्व | यमः १४६२ | इच्छेयं सुखि | वारा. १०७६ | इत्याधिः प्रत्य | ,, , |
| आस्तृत्य साधु | बृह. ७२७ | इडा देवी भा | ,, , | इत्युक्ताहं त | भा. १२८६ |
| आस्मै रीयन्ते | शुनी. १११९ | इतरदित | वेदाः १००६ | इत्येतेऽदाया | वसि. १२७८ |
| आस्य श्रवस्या | वेदाः ९८० | *इतरस्मिन् कु | बौधा. १९१९ | इत्येते दाया | ,, १२७३ |
| | ,, ९७१ | इतरा तु ध | ,, , | इत्येतेऽन्ये चा | कौ. ११८५ |
| | | *इतरानपि | दक्षः १११४ | *इत्येते मुनि | यमः १३५१ |
| | | ,, , | मनुः ९३६ | इत्येते वै स | भा. १२८७ |
| | | इतरे कृत | काल्या. १७६१ | | |
| | | | मनुः १६२७ | | |

| | |
|------------------|--------------|
| इत्येते संक | यमः १३५१ |
| इत्येवं मुनि | मार्क. १५३० |
| इत्येवमाद+ | नार. १७४६ |
| *इत्येष मुनि | मार्क. १५३० |
| इदं खनामि | वेदाः १९७ |
| इदं तदग्ने | ,, ६०२ |
| इदं तद्रूपं | ,, १००१ |
| इदं सत्यं व | स्कन्द. १९६५ |
| इदं सु मे न | वेदाः १००२ |
| इदं हिरण्यं | ,, ९९८ |
| इदमन्यत्तव | भा. १०३२ |
| इदमस्येति | काल्या. ८९७ |
| इदमुग्राय | वेदाः १९०१ |
| इदानीं भाग | वृथ. १३५५ |
| इदानीमह | बौधाय. १२७१ |
| इदानीमेवा | आप. १२६७ |
| इदावत्सरा | वेदाः ८४२ |
| इन्द्रं जुषाणा | ,, १००६ |
| इन्द्रं दुरः क | ,, १००५ |
| इन्द्रं आसीत्सी | ,, ९२४ |
| इन्द्रं क्रतुं न | ,, ११५९ |
| इन्द्रश्च विष्णो | ,, ११८० |
| इन्द्रश्च वै न | ,, १५९७ |
| इन्द्रश्चिद्धा त | ,, ९७४ |
| इन्द्रस्य वृत्र | ,, ९९९ |
| इन्द्रस्यार्कस्य | मनुः १९३० |
| इन्द्रामी द्यावा | वेदाः १००१ |
| इन्द्राणीमासु | ,, ९८७ |
| इन्द्राणीव सु | ,, १००२ |
| इन्द्राणीवावि | ,, १००७ |
| इन्द्रापतिष्नी | ,, १००१ |
| इन्द्रियं वै सो | ,, १००५ |
| इन्द्रियमेव | ,, ,, |
| इन्द्रेण प्रेषि | ,, ११४३ |
| इन्द्रो मरुत्वा | ,, ७९१ |
| इन्द्रो यतीन् | ,, १५९५ |
| इन्द्रो विश्वस्य | ,, ८०९ |
| इन्द्रो विश्वान् | ,, १९७१ |
| इन्द्रो वै वृत्र | ,, ११८१ |
| इमं कुमारं | भा. १९८४ |
| इमं धर्मप | ,, १०२८ |
| *इयं निगृह्य | मनुः ७४३ |
| इमं नु सीम | वेदाः ९६८ |
| इमं लोकम | भा. १०२८ |
| इमं त्रि प्यामि | वेदाः ९९१ |
| इमं हि सर्व | मनुः १०४६ |

| | |
|------------------|--------------|
| इमां खनाम्यो | वेदाः ९९० |
| इमां त्वमिन्द्र | ,, ९८६ |
| इमाः प्रजा म | भा. १०३३ |
| *इमान् धर्मा | संग्र. १६५५ |
| इमानप्यनु | मनुः ९३६ |
| इमा नारार | वेदाः ९७८ |
| इमानि त्रीणि | ,, ९२२ |
| इमा रामाः स | ,, ८१४ |
| इमे मयूखा | ,, १००० |
| इमे ये नारवा | ,, ११२१ |
| इमे वै बन्धु | भा. १२८४ |
| इयं नारी प | वेदाः १००४, |
| | १४२३ |
| इयं नार्युप | ,, १००४ |
| इयं भूमिर्हि | मनुः १०७१ |
| इयं ह मह्यं | वेदाः ९९७ |
| इयमग्ने ना | ,, ,, |
| इयमददा | ,, ६००, |
| | १२५८ |
| इरा पुंश्चली | ,, ८४२ |
| इषवस्तस्य | नार. ९४७, |
| | ९४८, ११३१ |
| इषिरेण ते | वेदाः ११५९ |
| इषुः कामस्य | ,, ९९८ |
| इषुरिव दि | ,, १६०० |
| इष्कृताहाव | ,, ९२३ |
| इष्टं दत्तं त | भा. १२८४ |
| *इष्टं विना तु | बृह. १७८९ |
| इष्टकाङ्गार | व्यासः ९६१ |
| इष्टकापूर्णं | बृह. १७६० |
| *इष्टकाफल | ,, १८३० |
| इष्टकौपल | ,, ,, |
| *इष्टतः स्त्रामि | नार. ८२९ |
| इष्टानि चाप्य | भा. १९७८ |
| इष्टापूर्तं च | ,, १९६३, |
| | १९६४ |
| इष्टापूर्तस्य | वसि. १९२० |
| इष्टिकाभस्म | स्कन्द. १९६६ |
| इह कीर्तिम | हारी. १०१६ |
| * , , | मनुः १०६४; |
| | याज्ञ. १०८५ |
| इह तस्मात्प्र | भा. १२८४ |
| इह प्रजां ज | वेदाः १००२ |
| इह प्रियं प्र | ,, ९८३ |
| इह प्रेत्य च | वारा. १०७५ |
| *इह लोकम | मनुः १०६४ |

| | |
|-------------------|---------------|
| इह लोके च | वारा. १०७६ |
| इह वा तार | भा. १९८५ |
| इहाग्न्यां कीर्ति | मनुः १०६४ |
| इहेदसाथ | वेदाः ९९८, |
| | १००० |
| इहेमाविन्द्र | ,, १००४ |
| इहैव सन्तः | ,, ६०२ |
| इहैव सधि | ,, ६०१ |
| *इहैव सा च | वसि. १०२१ |
| इहैव सा ति | ,, १०२२; |
| | यमः १११३ |
| इहैव सा शु | याज्ञ. १०८५ |
| इहैव स्तं मा | वेदाः ९८५ |
| ईक्षितः प्रति | भा. ८६० |
| ईडे अग्नि स्वा | वेदाः १९०० |
| ईदृशं धर्म | भा. १०३० |
| ईदृशी त्वनु | काल्या. १११०; |
| | कौ. १८५० |
| ईर्ष्यापण्डश्च | नार. १०९४ |
| ईर्ष्यापण्डाद | ,, १०९५ |
| ईर्ष्याया ध्रा | वेदाः ९९७ |
| ईर्ष्यारोषौ ब | वारा. १०७५ |
| *ईर्ष्याषण्डाद | नार. १०९५ |
| *ईर्ष्यासूयस | ,, ११०२ |
| ईर्ष्यासूयस | ,, ,, |
| ईशानासः पि | वेदाः ११२०, |
| | ११५८ |
| ईशाना स्त्री ध | लौगा. १४६३ |
| ईशा वशस्य | वेदाः १००० |
| ईशास्तु सर्वे | भा. ८१८ |
| इषच्च कुरु | ,, १०३२ |
| उक्तं तुष्टिक | काल्या. ७२३ |
| उक्तं ते विधि | भा. १२४४ |
| उक्तलाभक | वृक. ९०१ |
| उक्तलाभात्सं | भूम. ९०० |
| उक्तलाभाद्द्रा | ,, ,, |
| उक्तलाभे वा | विष्णुः ८९१ |
| उक्तवाक्ये मु | वारा. १३२९ |
| *उक्तश्चेति स | व्यासः १८८९ |
| *उक्तश्चेति स्व | ,, ,, |
| उक्तादल्पत | काल्या. ८९८ |
| उक्ता पञ्चमु | बृह. ६३० |
| उक्ती दण्डः सू | विष्णुः १६७० |
| उक्ती नियोगो | बृह. १६०९ |
| *उक्त्वा नियोगो | ,, ,, |
| उक्त्वा पश्य | वृक. १८३५ |

| | | | | | |
|-------------------|--------------|----------------|---------------|------------------|--------------|
| उक्थेष्विन्द्रं ओ | वेदाः १९७९ | उत्कोचकाश्चौ | मनुः १६९३, | उत्तमानां तु | भा. १२८४ |
| उग्रं पर्यच | भा. १२८५ | | १९२९ | उत्तमानामी | भा. १०२९ |
| उग्रंपश्या च | वेदाः ६०५ | उत्कोचजीवि | विष्णुः १६११; | उत्तमायां व | हारी. १७६९ |
| उग्रं पश्याच्च | ६०१ | याज्ञ. १६३९, | १९३२; काला- | | शंखः १८४८; |
| उग्रंपश्ये उ | ६०२, | १७६१; | व्यासः १९४२ | | नार. १८८३ |
| | १९०२ | *उत्कोचघृत | नार. ११३० | उत्तमावर | कौ. १६१८ |
| उग्रं पश्येद्रा | ६०१ | उत्कोचशुल्क | विष्णुः १९८३ | *उत्तमा स्वैरि | नार. ७०२ |
| उग्रंपश्ये रा | ६०३, | *उत्कोदकाः सो | नार. १७४६ | उत्तमेभ्यस्त्र | ११०४ |
| | ६०५, १९०२ | उत्कम्य तु वृ | ९१७ | उत्तमे राज | शुनी. १७६७ |
| उग्रं युयुज्म | ६०० | उत्कोशतां ज | १७५६ | उत्तमे साह | नार. १६४३ |
| उग्रं बचो अ | १५९६ | उत्कोदान्तम | विष्णुः १७९७ | उत्तमो वाऽध | याज्ञ. १६३७ |
| उग्रः पारश | नार. ११०४ | *उत्क्षेपकः कु | व्यासः १७६४ | *उत्तमो ह्यायु | नार. ८२८ |
| उग्रस्य चिन्म | वेदाः १८९५ | उत्क्षेपकः स | विष्णुः १६७०; | उत्तराहमु | वेदाः ९९० |
| उग्रानुग्रेषु | विष्णुः १९२१ | | व्यासः १७६४ | उत्तरे मद्य | बृह. १९४१ |
| उग्रान्निषाद्यां | कौ. ११८५ | उत्क्षेपकग्र | याज्ञ. १७३७; | उत्तरेषु च | भा. १०२७, |
| उग्रो राजा म | वेदाः १४६४, | | व्यासः १७६५ | | १२८४ |
| | १६०० | *उत्क्षेपकश्च | १७६४ | उत्तरेषु म | १२८५ |
| उचितस्तस्य | कौ. ११८५ | *उत्क्षेपकस्तु | बृह. १७६० | उत्तरोत्तर | बृह. ७३४ |
| उच्चैःश्रवा हि | भा. ८४० | उत्क्षेपकस्य | १७५८ | *उत्तरौ च वि | ६७१ |
| उच्चैर्विक्रोश | संव. १८९१ | उत्क्षेपकाः श | १६४२ | उत्तरौ तु वि | १९० |
| उच्छेद्याः सर्व | काल्या. ८७६ | उत्तमं चेति | मत्स्य. १९७५ | उत्तानपर्ण | वेदाः ९९० |
| उज्जितप्रन | कौ. १६८४ | उत्तमं तस्य | स्मृत्य. १३७३ | उत्तानयोश्च | १९७९ |
| उज्जामादिक | बृह. ७०८ | उत्तमं द्वाद | नार. १६४२ | उत्तिष्ठतः कि | १००२ |
| उत त्यं पुत्र | वेदाः १९७९ | *उत्तमं वेति | भा. १९८५ | उत्तिष्ठतो वि | १९८ |
| उत या नेमो | ९७२, | उत्तमं सर्व | विष्णुः १६६९ | उत्तुदस्त्वोत् | शुनी. १११९ |
| | १५९५ | उत्तमः साह | नार. ८२८ | उत्थाप्य शय | गौत. ११२४ |
| उत त्वा स्त्री च | ९७१ | *उत्तमः कार्य | अपु. १७९२ | *उत्पत्त्यैवार्थ | १३०६ |
| उत दासा प | ८१० | उत्तमः साह | विष्णुः १६७० | उत्पत्त्यैवार्थ | ७०३, |
| उत प्रहाम | १९०० | उत्तममध्य | बृह. ७०८ | उत्पद्यते गृ | ११०३ |
| उत यत्पत | १८३९ | *उत्तमर्णर्ण | विष्णुः ७१६ | उत्पन्नसाह | कात्या. १३४९ |
| | ८१४ | उत्तमर्णाध | नार. ६९२; | *उत्पन्ने चौर | १३४९ |
| उताश्विनाव | १००४ | | बृह. १४०२ | उत्पन्ने त्वौर | १३४९ |
| उताहमस्मि | ९८७ | *उत्तमश्चायु | नार. ८२८ | उत्पन्ने स्वामि | याज्ञ. ९४३ |
| उतो अह क | ९७४ | *उत्तमश्चास्थि | बृह. १८३१ | उत्पादको य | कात्या. ८३९ |
| उत्कमेयुः स्व | अपु. १९७० | उत्तमश्चेति | व्यासः १८८९ | उत्पादनम | मनुः १०५२ |
| उत्कर्ष योषि | मनुः १०५१ | उत्तमस्त्वस्थि | बृह. १८३१ | उत्पादयितुः | आप. १२६७ |
| *उत्कृत्य लिङ्गं | बृह. १८८६ | उत्तमस्त्वायु | नार. ८२८ | उत्पादयेत्सु | मनुः १३०८ |
| उत्कृत्य लिङ्ग | १९३७ | *उत्तमस्यार्धि | बृह. १७८९ | उत्सवे तु पि | बृह. ११०६ |
| उत्कृष्टं चाप | नार. १९३७ | *उत्तमस्यार्धि | १९३७ | *उत्सवे पितृ | १९७० |
| उत्कृष्टायाभि | मनुः १०४१ | उत्तमस्यार्धि | १९३७ | उत्साहमन्त्र | अपु. १९७० |
| उत्कृष्टासन | अपु. १८३५ | *उत्तमां भज | मनुः १८६६ | उत्सजेत् क्ष | नार. १९३७ |
| *उत्कृष्टेन ए | विष्णुः १७९६ | उत्तमां सेव | १९३७ | उत्सृष्टमामि | भा. १९७८ |
| *उत्कोचकाः सा | नार. १७४६ | *उत्तमां सेव्य | १९३७ | उत्सृष्टवृष | विष्णुः ९०५ |
| *उत्कोचकाः सो | मनुः १६९३ | उत्तमागम | विष्णुः १८४६ | उत्सृष्टो गृह्य | याज्ञ. १३३४ |
| १७४६ | नार. १७४६ | उत्तमादव | भा. १०३३, | उदकं च लि | मनुः १९८७ |

| | | | | | |
|------------------|--------------|-----------------|---------------|------------------|---------------|
| उदकं चैव | कात्या. १२२८ | उद्यच्छध्वम | वेदाः ११००१ | *उपचारकि | नार. १८८१ |
| उदकधार | कौ. १६१९ | उद्यतानां तु | कान्या. १६५१ | उपचारस्त | ” ६४८ |
| उदकयोग | गौत. १२०४ | *उद्यतासिं क | विष्णुः १६१२; | उपचाराभि | भा. १२८६ |
| उदकुम्भान | वेदाः ८११ | | कात्या. १६५० | *उपचारार्थ्या | शंखः १२०७ |
| उदक्यास्त्वास | वासि. १९७७ | *उद्यतासिं च | ” ” | *उपचार्यः स्त्रि | मनुः १०६० |
| *उदगातां भ | वेदाः ६०५ | *उद्यतासिं वि | विष्णुः १६१२ | उपचिह्नानि | ” ९३४ |
| उदपात्राण्य | कौ. १२०७ | उद्यतासिः प्रि | ” ” | उपच्छन्नानि | ” ” |
| उदरदास | ” ८१६ | उद्यतासिर्वि | मनुः १६२६; | उपज्वल्यद्दु | याज्ञ. १८२२ |
| उदवसानी | वेदाः ७९१, | | कात्या. १६५० | उपजीव्य ध | ” १६३६, |
| | ८१४ | उद्यतासिवि | विष्णुः १६१२ | | १९३३ |
| उदधिक्रेश | नार. १९३८ | * ” ” | कान्या. १६५० | उप तेऽधां स | वेदाः ९९० |
| उदासीनव | कौ. १६२१ | *उद्यते तु शि | बृह. १८३० | उप ते स्तोमा | ” ९०२ |
| उदितः स्यात् | कात्या. १२२९ | उद्यतेऽश्मशि | ” ” | उप त्वाऽयानि | ” १००६ |
| उदितोऽयं वि | मनुः १९०७ | *उद्यतेऽस्त्रशि | ” ” | उपधाभिश्च | मनुः ७४४ |
| *उदितो विस्त | ” ” | उद्यन्नव वि | वेदाः ११६३ | *उपधाभिस्तु | ” ” |
| उदीची च प्र | सुम. ९००; | उद्यम्य शस्त्र | देव. १६५१; | उपधिदेवि | विष्णुः १६६९, |
| | जातू. ९०१ | | गालवः १६५४ | | १९०३ |
| उदीर्घ्व नार्थ | वेदाः ९७८, | उद्यास्यन्वाऽअ | वेदाः १४०५, | उपधौ स्तेय | कौ. १९०४ |
| | १००४, १२५७ | | १४२४ | उपनिधिः ऋ | ” ७३५ |
| उदीर्घ्वतः प | ” ९८२ | उद्विणं सिञ्चे | ” ९२३ | उपनिधिभौ | ” ” |
| उदीर्घ्वतो वि | ” ” | उद् व ऊर्मिः | ” १००२ | उपनिपात | ” १९२४ |
| उदुद्यते दा | बृह. १९४१ | *उद्वसतः क्री | आप. ८४२ | उपनिषदे | वेदाः १००७ |
| *उदुर्गोणं प्रथ | याज्ञ. १८१५ | उद्वहेत्पञ्च | स्मृत्य. १११८ | उपनिषद्यौ | कौ. १९२५ |
| *उदुर्गुणान्तु | कात्या. १८३२ | उद्वहकारि | वासि. १९२१ | *उपन्यस्ते च | कात्या. १२२५ |
| उदुर्गुणे तु | ” ” | उद्वहिता तु | शाता. १११६ | उपन्यस्ते तु | ” ” |
| उदुर्गोणं प्रथ | याज्ञ. १८१५ | उद्वहिताऽपि | नार. ११०१ | *उपन्यस्तेन | ” ” |
| उदुर्गोणं हस्त | ” ” | उद्वेगजन | मनुः १८५६ | *उपन्यस्तेषु | ” ” |
| *उदुर्गोणे तु | कात्या. १८३२ | उद्वेजनक | ” १८५५ | *उपन्यस्य तु | ” ” |
| उद्दालकस्य | भा. १०२७, | उन्मत्तं पति | ” १०५६, | उपपन्नो गु | मनुः १३२६ |
| | १२८५ | | १३९३ | उपपातक | विष्णुः १७७०; |
| उद्दिश्यात्मान | नार. १७८६ | उन्मत्तः किल्बि | स्मृत्य. १११८ | | याज्ञ. १७८२ |
| उद्दिष्टमेव | ” ७६४ | *उन्मत्तः पति | नार. १०९८ | उप प्र जिन्व | वेदाः ९६३ |
| उद्दिष्टानां से | कौ. ९२९ | उन्मत्तजड | मनुः १३९२ | उपप्लवनि | कात्या. ७१२ |
| *उद्दरन्ति त | कात्या. ९५७ | उन्मत्तपति | नार. १०९८ | उप बर्बहि | वेदाः ९७७, |
| उद्दरन्ति पु | ” ” | *उन्मत्ताजड | मनुः १३९२ | | १८३६ |
| *उद्दत्तोऽन्यस्य | वृम. ८५५ | उन्मुञ्च पाशां | वेदाः ९९९ | उपभोक्ता तु | नार. ७६४ |
| उद्दारं ज्याय | बृह. १२३७; | उपकारं य | पैठी. १११५ | उपभोगनि | कौ. ७३५ |
| | मनुः १२४९ | उपकारः क्रि | नार. १८८१ | उपमहस्याति | वेदाः ७९२ |
| उद्दारादिक | कात्या. ७१४ | *उपकारकि | मनुः १८५२ | उप मा कर्त | ” १००६ |
| उद्दारेऽनुधृ | मनुः ११९० | ” ” | नार. १८८१ | उप मा श्यावाः | ” ८१० |
| उद्दारो न द | ” ” | *उपकुस्य च | ” १७८८ | उपरि निवि | कौ. ९३० |
| उधृतद्रव्या | विष्णुः १२८१ | *उपकुस्य तु | ” ” | उपलब्धवि | ” १६८१ |
| उधृत्य कूप | बृह. १२२२ | उपगच्छेत्प | ” ७०३, | उपलब्धिक्रि | कात्या. ८०५ |
| उधृत्यान्यस्तु | वृम. ८५५ | | ११०३ | उपलब्धे ल | नार. १७५७; |
| उद्भिन्दतीं स | वेदाः १८९८ | उपचर्यः स्त्रि | मनुः १०६० | | कात्या. १७६३ |
| उद्भिन्नं राज्ञः | ” १८९६ | उपचारकि | ” १८५२ | उपलिङ्गना | कौ. १८५० |

| | | | | | |
|-----------------|--------------------------|---------------|---------------------|------------------|---------------------------------|
| उपवासांश्च | व्यासः १११६, १५२४ | उप्यते याद्धि | मनुः १०७१ | उशाना वेद | भा. १०३२ |
| उपश्रवण | कात्या. ९५७ | उभयं चैव | बौधा. १९२० | उशान्ति घा ते | वेदाः ९७६५ |
| उपसंगृह्य | नार. ७४८; अनि. ७५६ | उभयं तु स | मनुः १०७० | उशान् ह वै | ,, ७९१ |
| उपसर्जनं | मनुः १३१७ | उभयं दृश्य | भा. १०३३ | उष ऋणव | ,, ६०१ |
| उप स्तृणीहि | वेदाः १००२ | उभयत उ | क्रौ. १६८५ | उषस्तमदयां | ,, ८०९ |
| उपस्थानाय | नार. ६६९ | उभयनेत्र | विष्णुः १७९६ | उषाः पुंश्वली | ,, ८४२ |
| उपस्थायवि | बृह. ६७१ | उभयस्य पा | वसि. १९२१ | उहते वा मृ | वृम. १११६ |
| उपस्थितम | क्रौ. ८४४ | उभये प्राजा | वेदाः ११४३ | उह्यमानम | क्रौ. १९२४ |
| उपस्थितस्य | याज्ञ. ६४५; बृहा. ७३१ | *उययोरथ | ,, ११४४ | ऊढया कन्य | कात्या. १४५३ |
| उपस्थितस्या | क्रौ. ६३८ | उभयोरपि | यमः १३५१ | ऊढाऽपि देया | शाता. १११६ |
| उपस्प्रुं ग | भा. १२८७ | उभयोरप्य | बृह. १९१४ | *ऊढायाः कन्य | कात्या. १४५३ |
| उपहन्तुपु | क्रौ. ८६२ | उभयोरर्थ | याज्ञ. ८४८, १३४२ | ऊढायाः पुन | आदि. १३८४ |
| उपहन्येत | नार. ८८७ | उभयोरश्चित्त | यमः १३५२ | ऊनं वाऽयधि | याज्ञ. १९३२ |
| *उपांशु जन | बृह. ७६४ | उभयोश्चित्त | लिङ्ग. १३७६ | ऊनं वाऽभ्यधि | ,, १६४० |
| उपांशु येन | ,, " | उभा जिग्यथु | वेदाः ११८० | * " " " " | ,, १९३२ |
| *उपागच्छेत्प | नार. ७०३ | उभावन्यत्र | भार. ९०० | ऊनां चेत् षोड | विष्णुः ६३७ |
| *उपाधिदेवि | विष्णुः १६६९ | *उभावपि च | मनुः १८६४ | *ऊना चेत्तु सु | ,, " |
| *उपानयति | नार. ९१५ | उभावपि तु | ,, " | *ऊना चेत् षोड | ,, " |
| *उपानयेद्गां | ,, " | *उभावपि हि | ,, " | *ऊनाधिकवि | याज्ञ. ११६९ |
| उपानयेद्गा | ,, " | उभा हिरण्य | वेदाः ९७४ | ऊने षष्ठमं | क्रौ. १६७६ |
| *उपानयेद्गा | ,, " | उभे त एक | मनुः ८८१ | ऊर्जं पृथिव्या | वेदाः १८३९ |
| उपायनीकृ | क्रौ. ८०८ | उभे धुरौ व | वेदाः ९८९ | ऊर्णातुलायाः | क्रौ. १६७३ |
| उपायैः शास्त्र | नार. १९३५ | उभे सहस्व | ,, ९९० | ऊर्ध्वं गच्छति | भा. १०३० |
| उपायैः साम | बृह. १९४१ | उभौ क्रियानु | वसि. ७३२ | *ऊर्ध्वं च पञ्च | कालि. १३७७ |
| उपायैर्विधि | नार. १७४५ | उभौ चार्थानु | बृह. ७३४ | ऊर्ध्वं तु काला | मनुः १०४२ |
| *उपार्जितं ज्ये | शंखः १२८३ | *उभौ तौ चौर | मनुः ७४३ | ऊर्ध्वं तु पञ्च | कालि. १३७७ |
| उपासते सु | देव. १३५०; वसि. १९८२ | ,, " " " | ,, ७९६ | ऊर्ध्वं दायार्दं | क्रौ. १४३० |
| उपासन्ते हि | भा. ८६१ | उभौ तौ नार्ह | ,, १३९५ | ऊर्ध्वं पितुः पु | गौत. ११४४ |
| *उपेक्षकः श | कात्या. १६५० | *उभौ निगृह्य | ,, ७४३ | ऊर्ध्वं पितुश्च | मनुः ११४९ |
| " " " | पैठी. १६५३ | उभौ वर्णावृ | वेदाः ९६८, ११२० | ऊर्ध्वं मासत्र | कात्या. ६३२ |
| उपेक्षकोऽनि | कात्या. १६५० | *उभौ वार्थानु | ११२० | * " " " " | ,, ६३३ |
| उपेक्षणाद्भि | स्पृत्त्य. ७५६ | उरुं लोकं सु | बृह. ७३४ | *ऊर्ध्वं मासप्र | ,, ६३२ |
| उपेक्षमणो | नार. १७५७, १९६१ | उरुगूलाया | वेदाः १००१ | *ऊर्ध्वं लब्धं च | ,, १४५४ |
| उपेक्षया त्रि | बृह. ६५४ | उर्वशी हाप्स | ,, ८१२ | ऊर्ध्वं लब्धं तु | ,, १४५३ |
| *उपेक्षाकार | कात्या. १६५० | उर्वारकामि | ,, १००९ | ऊर्ध्वं विभागा | मनुः १५६३; नार. १५६७ |
| उपेक्षाकार्य | ,, " | उल्लखले ष | ,, १००८ | ऊर्ध्वं संवत्स | कात्या. ६३३; मनुः १०५५, १३९३ |
| *उपेक्षी कार्य | ,, " | *उल्काभिदाय | नार. ७६४ | ऊर्ध्वं सप्तमा | गौत. १०११ |
| उपेया देवं | वेदाः १२६१, १९८१ | *उल्कादिदाय | यमः १६५२ | ऊर्ध्वमाधिग | ,, १९४८ |
| उषोष मे ष | ,, ९६६ | उवाच चैनां | ,, " | *ऊषरं मुषि | बृह. ७८७ |
| उषे वजि प | कात्या. ११११ | उवाच नर | वारा. १०७६ | ऊषरं मूष | ,, ७८६ |
| | | उवाच वक्त्र | ,, १३२९ | *ऊषरं मूषि | ,, ७८७. |
| | | उवास नग | भा. ८४० | *ऊषरं मूषि | ,, " |
| | | उवे अम्ब सु | ,, १९८६ | *ऊषरं मूषि | कात्या. १२०२ |
| | | उशतीः कन्य | वेदाः ९८६ | *ऊषरं मूषि | बौधा. १४२७ |
| | | | ,, १००३ | | |

| | | |
|-------------------|---------|----------|
| * ऋक्थं सूतायाः | बौधा. | १४२७ |
| * ऋक्थगोत्रे ज | मनुः | १३२७ |
| * ऋक्थग्राहिण | विष्णुः | १३८९ |
| ऋक्थग्राहिभि | " | " |
| * ऋक्थन्यायेन | बृह. | १२२३ |
| ऋक्थापिण्डप्र | " | १३४८ |
| * ऋक्थापिण्डाम्बु | " | " |
| * ऋक्थापिण्डार्थ | " | " |
| * ऋक्थादर्धं स | नार. | १३४७ |
| * ऋक्थादर्धांश | " | १३४६ |
| ऋक्थभिर्वा प | कात्या. | ८०४ |
| ऋक्सामाभ्याम | वेदाः | १००० |
| ऋक्वेदवादा | ब्रह्म. | १११९ |
| * ऋणं क्षेत्रं गृ | बृह. | १५६९ |
| ऋणं गृहीत्वा | कात्या. | ७१४ |
| * ऋणं च कार | बृह. | ७८५ |
| * ऋणं च सोद | नार. | ८३२ |
| * ऋणं चात्मीय | बृह. | ७०७ |
| * ऋणं चोदुः स | नार. | ७०० |
| * ऋणं तद्धर्म | हारी. | ७९४, ८०८ |
| ऋणं तयोः प | नार. | ७०२ |
| ऋणं तु दाप | कात्या. | ७१० |
| ऋणं तु सोद | नार. | ८३२ |
| * ऋणं दद्यात्प | याज्ञ. | ६८३ |
| ऋणं दद्यात्पि | नार. | ६९६ |
| ऋणं दातुम | मनुः | ६८०; |
| | अनि. | ७३१ |
| * ऋणं दायं तु | कात्या. | ६५८ |
| ऋणं दाय्यस्तु | " | " |
| ऋणं दाय्याः प्र | व्यासः | ६७६ |
| * ऋणं देयं मू | प्रजा. | ७१५ |
| ऋणं देयम | नार. | ६२२ |
| * ऋणं धर्मादि | बृह. | ७०९ |
| * ऋणं पतिकृ | नार. | ६९९ |
| ऋणं पुत्रकृ | बृह. | ७०८; |
| | कात्या. | ७१३ |
| ऋणं पैताम | व्यासः | ६७६ |
| * ऋणं प्रदाप | कात्या. | ७१० |
| ऋणं प्रीतिप्र | " | १२०२ |
| * ऋणं लाभं च | " | ६५८ |
| ऋणं लेख्यं गृ | बृह. | १५६९ |
| ऋणं लेख्यकृ | याज्ञ. | ६८५ |
| * ऋणं लेख्यम | " | " |
| * ऋणं वा यत्कृ | नार. | ६९६ |
| ऋणं वोदुः स | " | ७०० |

| | | |
|-----------------|---------|-------|
| * ऋणं स दाप | कात्या. | ७१० |
| ऋणं सलामं | " | ६५८ |
| ऋणं ह वै जा | वेदाः | १२६१ |
| ऋणं ह वै पु | " | ६०४ |
| * ऋणग्राहिणि | विष्णुः | ६७८ |
| ऋणभाग् द्व | बृह. | ७०८ |
| ऋणमस्मिन्सं | वेदाः | ६०४, |
| १२५९; | वसि. | १२७१; |
| | विष्णुः | १२७९ |
| ऋणमात्मीय | बृह. | ७०७ |
| * ऋणमेवं कृ | कात्या. | १२२९ |
| ऋणमेवं वि | नार. | ६९७; |
| | कात्या. | ७१२, |
| | ७१३, | १२२९ |
| | कौ. | १२०७ |
| ऋणरिक्थयोः | | |
| ऋणा च धृष्णुः | वेदाः | ६०० |
| ऋणा चिद्यत्र | " | ६०० |
| * ऋणाच्च मोक्षि | नार. | ८३० |
| ऋणात्पिता मो | " | ६९२ |
| * ऋणात्पिता स | " | " |
| ऋणादहम | भा. | १२८५ |
| ऋणादानं प्र | बृह. | ७५० |
| ऋणादानप्र | " | ६२८ |
| * " " " | " | ७५० |
| * ऋणादानोद्ग्र | " | ६२८ |
| ऋणानां सर्वे | नार. | ६२५ |
| ऋणानुरूपं | बृह. | ७२६ |
| ऋणाञ्चो नर्ण | वेदाः | ६०३, |
| | १९०२ | |
| ऋणार्थमाह | कात्या. | ७११ |
| ऋणावा विभ्य | वेदाः | ६००, |
| | १८९५ | |
| * ऋणिकं तं प्र | नार. | ६७० |
| * ऋणिकं निर्ध | बृह. | ७२६ |
| ऋणिकः सध | नार. | ७२४; |
| | यमः | ७३० |
| ऋणिकस्तं प्र | विष्णुः | ६६२; |
| | नार. | ६७० |
| * ऋणिकस्तु प्र | " | " |
| ऋणिकस्य ध | भार. | ७३१ |
| ऋणिकस्मापि | नार. | ७०६ |
| ऋणिकस्यार्थ | भार. | ७३१ |
| * ऋणिकेन कृ | कात्या. | ६३१ |
| ऋणिकेन तु | " | " |
| ऋणिको दाय्य | बृह. | ७२५ |
| ऋणिकद्वयं त | बृह. | ६५७ |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| ऋणिनः प्रति | भा. | १९६४ |
| ऋणिव्वप्रति | नार. | ६६९ |
| * ऋणी च न ल | बृह. | ६५२ |
| * ऋणी न प्राप्तु | " | ६५३ |
| ऋणी न लभ | " | ६५२; |
| | कात्या. | ६६० |
| ऋणे देये प्र | मनुः | ७२० |
| ऋणे धने च | " | १५७१ |
| ऋणेष्वज्ञाय | गोभि. | ७१५ |
| ऋणैश्चतुर्भिः | भा. | १२८३ |
| * ऋणोदये प्र | मनुः | ७२० |
| ऋतं वै सत्यं | वेदाः | १८३७ |
| ऋतस्य योनौ | " | ९८३ |
| ऋतावृत्तौ रा | भा. | १२८५ |
| ऋतुकालगा | वसि. | १९७७ |
| ऋतुकाले तु | भा. | १०३० |
| ऋतुत्रयमु | विष्णुः | १०२२ |
| ऋतुत्रयस्यो | कात्या. | ६३२ |
| ऋतुत्रये व्य | विष्णुः | १०२२ |
| ऋतुप्रतिरो | कौ. | १८४८ |
| ऋतुप्राप्तासु | भा. | १०२८ |
| ऋतुमत्यां हि | वसि. | १०२१; |
| | मनुः | १०४२ |
| ऋतुस्नातां तु | बौधा. | १०१९ |
| ऋतुस्नातां न | " | १०२० |
| * ऋतुस्नातां भ्रा | यमः | १११३ |
| ऋतुस्नाता तु | मनुः | १०५७ |
| * ऋतौ तु तस्यां | यमः | १११३ |
| ऋतौ बोपैति | बौधा. | १०१९ |
| ऋतौ विमुञ्च | भा. | १०३० |
| ऋतौ स्नातायां | यमः | १११३ |
| * ऋत्विक् च त्रि | नार. | ७८३ |
| ऋत्विक् तु त्रि | " | " |
| ऋत्विक् पुरो | मास्मि. | १९७०; |
| | भा. | १९८५ |
| ऋत्विगात्तार्थ | वसि. | ७७० |
| * ऋत्वियदि मृ | मनुः | ७७३ |
| ऋत्वियदि वृ | " | " |
| ऋत्विययाज्यम | नार. | ७८३; |
| | शुनी. | ७९० |
| * ऋत्विया तद् | आप. | १४६६ |
| ऋत्विय्यायेन | बृह. | १२२३; |
| | कात्या. | १२२५ |
| ऋत्विजं यस्य | मनुः | ७७६, |
| | १९२६ | |
| ऋत्विजः सम | " | ७७३ |

| | | | | | | | | |
|----------------|--------------|-------|----------------|------------|-------|------------------|--------------|--------------|
| ऋत्विजा व्यस | नार. | ७८३ | *एकत्र शय | बृह. | १८८५ | एकां स्त्रीं कार | बृह. | १२२३ |
| *ऋत्विजा येन | कात्या. | १२२५ | एकदेशद | कौ. | १०४० | एकात्रवध | कौ. | १६१७ |
| ऋषभषोड | गौत. | १२३३ | एकदेशे स | " | ८६३ | एका चेत्पुत्रि | बृह. | १३४८; |
| ऋषभोऽधिको | " | " | एकद्वित्रिच | कात्या. | ७८८ | बृप. | १३६२; संप्र. | १३८४ |
| * " " " | शंखः | १२८३ | एकधनेन | आप. | ११६४ | एकातिथिम | वेदाः | १५९४, |
| ऋषयो वै स | वेदाः | ८१२ | एकपदीप्र | कौ. | ९२६ | | | १६५६ |
| ऋषिदेवम | भा. | १२८४ | एकपाकेन | बृह. | ११४१; | एकादशगु | याज्ञ. | ८६८ |
| ऋषिपुत्रस्त | " | १०२७, | देव. | ११४२; शाक. | १५८८; | एकादश पु | ब्रह्म. | १३७४ |
| | | १२८५ | | आश्व. | " | एकादशे स्त्री | मनुः | १०५७ |
| ऋषिपुत्रोऽथ | " | १०२७, | *एकपाके नि | बृह. | ११४१ | एकाधिकं ह | " | ११९१ |
| | | १२८५ | *एकपात्रे च | कात्या. | ८७६ | एकान्तचर्या | भा. | १०२९ |
| ऋषीणामपि | " | १०२७ | *एकपात्रेण | " | " | एकान्तरष्ट | विष्णुः | १९८३ |
| ऋषीनध्यासि | " | " | एकपात्रेऽथ | " | " | एकान्तरस्तु | नार. | ११०५ |
| *एकं च्चर्ता.ब | विष्णुः | १७९७ | *एकपात्रे स | " | " | एकान्तेनैव | कात्या. | ६३१ |
| " | याज्ञ. | १८१८ | एकपुत्रो ह्य | भा. | १२८३ | एका माता द्व | विष्णुः | १२४३ |
| एकं चक्षुर्य | भा. | १२८३ | एकभागाति | कात्या. | ८९८ | एकामुत्कम्य | देव. | १११२ |
| एकं चेद्बह | कात्या. | १६४९ | एकमुत्पाद | मनुः | १०६५ | एकाम्बरा कृ | शुनी. | १११९ |
| *एकं तु बह | बृह. | १६४७ | एकमव क | कालि. | १३७७ | एकार्थतायां | भा. | १९६४ |
| एकं बहूनां | विष्णुः | १७९७ | एकया प्रज | भा. | १२८५ | एका शताधि | " | १२८३ |
| एकं भवेद्वि | बृह. | ११४१ | एकरूपा द्वि | कात्या. | १९१५ | एकासनोप | विष्णुः | १७९६ |
| एकं रजस | वेदाः | ८१२ | *एकरूपो द्वि | " | " | *एकाहे ग्रह | कात्या. | ७२९ |
| एकं वृषभ | मनुः | १२३५ | एकवर्णे वि | भा. | १०३० | एकाहे लिखि | " | " |
| एकं शूद्रः+ | विष्णुः | १२४० | एकवासा घृ | यमः | १११३ | *एकेच्छया कृ | याज्ञ. | ६६७ |
| एक एव प | भा. | १०२६, | एकव्रतस्क | हारी. | १०१४ | एकेनैवावि | मरी. | १५८७ |
| | | १३९० | *एकव्रते क. | " | " | *एकैकं च द्वि | बृह. | १७८९ |
| एक एव स | देव. | १२०३ | एकशतं ता | वेदाः | १६०० | एकैकं तु त्रि | " | १७८८ |
| एक एव सो | वेदाः | १०१० | *एकशफाद्वि | गौत. | ११८३ | एकैकं पुन | बृह. | ८३४ |
| एक एवौर | मनुः | १३२४; | एकशय्यास | बृह. | १८८५; | एकैकं वा ध | गौत. | ११८२ |
| | | बृह. | | व्यासः | १८८९ | एकैकः पुन | बृह. | ८३४ |
| | | " | एकश्चेदुन्न | नार. | ९४५ | एकैकमित | गौत. | ११८२ |
| *एककूलनि | " | ९५२ | *एकश्चैव न | " | " | एकैकस्मिन्तृ | बौधा. | १०१९ |
| एकक्रियानि | कात्या. | ६५६ | एकस्तु चतु | आश्व. | १५८८ | एकैव हि भ | भा. | १२४४ |
| *एकक्रियाप्र | बृह. | ७८६ | एकस्त्रीपुत्रा | कौ. | ११८४ | एकोदानाम | विष्णुः | १२७९ |
| *एकक्रियावि | कात्या. | ६५६ | एकस्थानास | कात्या. | १८८७ | एकोदरे जी | बृम. | १५६२ |
| एकचक्राप | शंखः | १६७२ | एकस्था हि श | कौ. | ८६३ | एकोद्दिष्टं पि | कालि. | १३७७ |
| *एकचक्राह | " | " | एकस्मिंस्तोल | स्कन्द. | १९६६ | एकोऽपि स्थाव | स्मृत्य. | १५८८ |
| *एकच्छायां प्र | कात्या. | ७१२ | एकस्मिन् य | बृह. | १७६० | *एकोऽप्यनीशः | बृह. | १५८५ |
| *एकच्छायाकृ | " | " | *एकस्य चेत | नार. | ७८२ | एको बह्वीर्जा | वेदाः | ९९४ |
| एकच्छायाप्र | " | " | एकस्य चेतस्या | " | " | एको भर्ता हि | आदि. | १११८ |
| एकच्छायाश्रि | याज्ञ. | ६६७; | एकस्य चैव | अनि. | ११९४ | एको यद्वन्न | कात्या. | ९५७ |
| कात्या. | ७१२; विष्णुः | १२८१ | एकस्य बह | बृह. | १६४७ | एको विड्वर्ण | भा. | १२८७ |
| *एकच्छायास्थि | याज्ञ. | ६६७ | एकस्य बह्वयो | भा. | १०२७ | एकोऽश्रीयाद्य | विष्णुः | ६३७ |
| एकजातिर्द्वि | मनुः | १७७५, | एकस्यां बह | अनि. | ११९४ | एको ह्यनीशः | बृह. | ८०३, |
| | | १७८८ | एकस्यापि सु | बृह. | १३४८; | | | १५८५; व्यासः |
| एकतो वा कु | भा. | १९७८ | एकां वृद्धिम | संप्र. | १३८४ | एजदेजद | वेदाः | ९९८ |
| एकत्र कूल | बृह. | ९५२ | | अनि. | ६३५ | *पतं दण्डवि | मनुः | ८६५ |
| *एकत्र जल | " | " | | | | | | |

| | |
|----------------|-------------------|
| एतै ह वाव | वेदाः १५१६ |
| *एतच्च गुरु | नार. ८२६ |
| एतच्छुल्कं भ | भा. १९८५ |
| एतत्तदभेन | वेदाः ६०१ |
| ” ” | ” ६०४ |
| एतनु न प | मनुः १०४४ |
| एतत्त सर्व | भा. १२८७ |
| एतत्पतिव | ” १०२९ |
| एतत्पुरुष | नार. ६९२; |
| | वृप्र. ७१५ |
| *एतत्पूर्वश्च | नार. ८३० |
| एतत्संग्रह | बृह. ११०६, |
| | १८८५; व्यासः १८८९ |
| एतत्संबोध | भा. १३९१ |
| एतत्सर्वं पि | कात्या. १२२४ |
| एतत्सर्वं प्र | ” ७१२ |
| एतत्सर्वं म | भा. १२४३ |
| एतत्सर्वं य | ” १२८७ |
| एतत्सर्वं र | स्कन्द. १३६६ |
| एतत्सर्वं वि | कात्या. १२२७ |
| *एतत्सर्वं स | ” ७६८ |
| *एतदष्टाद | बृह. ८७५ |
| एतदाख्याय | भा. १०२८ |
| एतदाचष्ट | ” १२८८ |
| एतदार्याव | वसि. १९२१ |
| एतदिच्छामि | भा. १०३१, |
| | १२४३ |
| एतदिच्छाम्य | ” ८६१ |
| एतद्द्वयं स | बृह. ७६६; |
| | कात्या. ७६८ |
| एताद्धि पर | भा. १९७८ |
| एताद्धि श्रुत | ” १९८४ |
| एतद्राजन् | ” ८१९ |
| एतद्भः सार | मनुः १०७५ |
| एतद्विधाध | कात्या. १२२५ |
| एतद्विधान | मनुः ९११, |
| | १२४५ |
| एताद्विसृज्य | भा. १०३० |
| एतद्वै ब्राह्म | वेदाः १००५ |
| एतन्म आच | ” १००६ |
| एतन्मम ध | भा. ८१९ |
| एतमेव तं | वेदाः १५९७ |
| एतमेव वि | मनुः १३९३ |
| एतस्मात्कार | भा. १०२६, |
| | १०३१ |
| एतांश्चारैः सु | बृह. १९४१ |

| | |
|----------------|--------------|
| एतां ह वै सु | वेदाः १६०१, |
| | १६०२ |
| एताः कृत्याश्च | भा. १०३३ |
| *एतानपति | याज्ञ. १६३५ |
| एतानाहत्य | शौन. १३६३ |
| *एतानि कुम्भे | बृह. ९५० |
| एतानि तु य | भा. १२८३ |
| एतानि लोक | आदि. १३८४ |
| एतानि वै स | भा. १९६४ |
| एतानि शूद्र | अनि. १९६७ |
| एतानि सत | नार. १९४० |
| एतानुक्रम्य | कौ. १०४० |
| एतान् दशाप | नार. १९४१ |
| एतान् हरन्तु | ” ७०४ |
| एतान् हि लो | मत्स्य. १६५५ |
| एतामेतस्ये | वेदाः ९९७ |
| एतामेवाभि | ” १५९४ |
| एतावता का | शुनी. ८५६ |
| एतावती मृ | ” ” |
| एतावदुक्त्वा | भा. १९८५ |
| एतावदेव | बृह. १५२० |
| एतावद्भिर्ऋ | नार. ७०३ |
| एतावानर्थः | कौ. १५७१ |
| एतावानेव | मनुः १०७२ |
| एतावान् पु | वेदाः १०१० |
| एताश्चान्याश्च | मनुः १०५१ |
| एतासां यान्य | हारी. १०१७ |
| *एतासामौर | बृह. १४५० |
| एता हि मनु | भा. १०३३ |
| एता हि स्वीय | ” १०३२ |
| एते कर्मक | नार. ८२५ |
| एते दोषानु | विष्णुः १६६९ |
| एते द्वादश | देव. १३५० |
| एतेन देश | आप. १९१८ |
| एतेन मिथः | कौ. ७३७ |
| एतेन वै दे | वेदाः १३८५ |
| एतेन वैया | कौ. ७३७ |
| एतेन सम | भा. १९८५ |
| *एतेन सर्व | नार. ९१६ |
| एतेन स्क्रुधा | कौ. ८६३ |
| एतेन हि प | वेदाः १०१० |
| एतेन हेन्द्रो | ” १६०१ |
| *एतेनात्मनो | गौत. १६६२ |
| एतेनात्मोप | ” ” |
| एतेनादेशो | कौ. ६३८ |
| *एतेनैव गृ | नार. ९४६ |

| | |
|-----------------|--------------|
| एतेनैव प्र | नार. १६४२ |
| एते पतिभ्य | वेदाः ९९८ |
| एते पापस्य | भा. १२८६ |
| *एते राज्ये व | मनुः १७१० |
| एते राष्ट्रे व | ” ” |
| | १९०७ |
| एते वै सर्वे | वेदाः १८९७ |
| एते शास्त्रेष्व | कौ. १६१९ |
| एतेषां कार | ” १६८६ |
| एतेषां निप्र | मनुः १८७० |
| एतेषां परि | वसि. ८१६ |
| एतेषां पूर्वः | विष्णुः १२८० |
| *एतेषां यः पू | ” ” |
| एतेषु विहि | भा. १२४३ |
| एते सर्वे पृ | मनुः १६२७ |
| *एते हि कथि | मत्स्य. १६५५ |
| *एतैरप्यव | नार. १७५३ |
| एतैरुपाय | मनुः १०४७ |
| एतैरुपायै | ” १९३० |
| *एतैरेव प्र | नार. १६४२ |
| एतैरिज्ञैर्न | मनुः ९३५ |
| एतैर्त्रैरै | ” १७०२ |
| एधन्ते अस्या | वेदाः ९८३ |
| एनश्च वैर | ” १५९६, |
| | १५९७ |
| एना पत्या त | ” ९८३ |
| एनो गच्छति | भा. १९६३, |
| | १९६४ |
| एनो राजान | वसि. १६६८ |
| *एभिरुक्लृष्ट | नार. १७५० |
| एभिरेव गु | दक्षः १११४ |
| एभिश्च व्यव | याज्ञ. १७२९ |
| एभिश्चिहैः स | कात्या. १८८७ |
| *एभिस्तु व्यव | याज्ञ. १७२९ |
| *एभिस्तुक्लृष्ट | नार. १७५० |
| एभ्यस्तुक्लृष्ट | ” ” |
| एभं पन्थाम | वेदाः १००२ |
| एयमगन् प्र | ” ९९६ |
| *एवं कार्याणि | मनुः १९०७ |
| एवं कालम | कात्या. ७०९ |
| एवं कृतव | भा. १२८५ |
| एवं क्रियाप्र | बृह. ७८६ |
| एवं गच्छति | भा. १०३० |
| एवं गच्छन् | याज्ञ. १०८० |
| एवं गते ध | अनि. १११८ |
| एवं चरन् | मनुः १९३१ |

| | | | | | |
|----------------|--------------|-----------------|--------------|------------------|------------------|
| एवं चैव व | भा. १०२७ | एवं वृत्तां स | मनुः १०७५ | एवा त्वं सन्ना | वेदाः १००० |
| एवं चोरान | कौ. १६७६ | एवंवृत्तो रा | आप. १९१८ | एवा दुष्वप्यं | ,, ६००, |
| एवं जातिषु | भा. ११८४, | एवं वृद्धिवि | भार. ६३५ | एवा नि शुष्य | ,, ९९७ |
| | १२४५ | एवं वैद्यो रा | वसि. १८४५ | एवा नि हन्मि | ,, ९९६ |
| एवं तयोर्वि | शंखः १२८२ | एवं व्याधित | शंखः ७७१ | एवा परि ष्व | ,, " |
| एवं तस्माद् | स्कन्द. १९६५ | एवं व्रतस | भा. १०३० | एवा पर्थेमि | ,, " |
| एवं ते जीवि | भा. ८१९ | *एवं षड्भिर्मा | हारी. ६०८ | एवा भगस्य | ,, ९९८ |
| एवं ते सम | ,, ८४० | एवं सद्विमा | ,, " | एवा मथ्नामि | ,, ९९६ |
| एवं दण्डवि | मनुः ८६५ | एवं समुद्भू | मनुः ११९० | एवामामभि | ,, " |
| एवं दासीत्व | ब्रह्म. ८४० | एवं सवानि | ,, १९२८ | एवाहमद्य | ,, १८९९ |
| एवं दुहित | भा. १२८८ | एवं सह व | ,, ११२८ | एवेधूने यु | ,, ९७९ |
| *एवं द्वित्रिच | कात्या. ७८८ | *एवं स्त्रीपुंस | ,, १०७५, | एष एव क्र | कौ. १०४०; |
| एवं धनाग | नार. १९४० | | ११२७ | | भा. १२४४ |
| एवं धर्म वि | मनुः १०७२ | एवं स्वभावं | ,, १०४९ | एष एव वि | नार. ७४९; |
| एवं धर्मम | भा. १४२९ | एवं हि भार्या | भा. १०३१ | | याज्ञ. ९४२, १०१० |
| *एवं धर्मवि | मनुः ८६५ | एवं हि विन | नार. ९१८ | एष एवोदि | बृह. ७५२ |
| *एवं धर्मोऽखि | ,, ८४६ | एवं ह्याह अ | शंखः १२८१ | एष ते रुद्र | वेदाः ९९१, |
| एवं धर्मो द् | कात्या. ८८९ | एकमङ्गानि | मासो. १९७० | | १४१५ |
| *एवं धर्म्यवि | मनुः ८६५ | एकमतिंसं | कौ. १६८७ | एष दण्डः स | बृह. १७९०, |
| एवं धर्म्याणि | ,, १९०७, | एकमत्याज्या | शंखः १६१३ | | १८३० |
| | १९२८ | *एकमध्वा ग | कात्या. ८५४ | एष दण्डवि | मनुः १८०१ |
| एवं नार्यो न | भा. १०३१ | एकमर्थच | कौ. १६९० | एष दायवि | भा. ११८४ |
| एवं निःसंश | स्कन्द. १९६६ | एकमष्टवि | स्कन्द. १९६७ | एष दास्यति | शंखः १२८१; |
| *एवं पञ्च ब्रा | वसि. १०२२ | एकमस्मात्स्व | वारा. १०७६ | | यमः १३५१ |
| एवं परम्प | बृह. ९५० | एकमादिषु | कौ. ८६३ | एष धर्मः पु | वारा. १०७५ |
| एवं परिच | शुनी. १११९ | *एकमादीन् | मनुः १६९४ | एष धर्मः स | बृह. ७८७; |
| एवं प्रवर्त | भा. १०३० | एकमाद्यान् | ,, १९२९ | | मनुः १०५४ |
| एवं प्रव्याह | ,, १०२७ | | ,, १६२६; | एष धर्मः स्मृ | नार. १९३६ |
| एवं ब्राह्मणी | वसि. १०२२ | एकमाद्यान्वि | कात्या. १६५० | एष धर्मोऽखि | मनुः ८४६ |
| एवं भगस्यं | वेदाः १००६ | | भा. १२८५ | एष धर्मो ग | ,, १०७४ |
| एवंभूतोऽपि | भा. १०३० | एकमुक्तः श्वे | ,, " | एष धर्मो ध्रु | भा. १०२७ |
| एवं मृताया | ,, " | एकमुक्ता त | ,, " | एष नः सम | ,, " |
| एवं यत्राणि | बृह. ७२७ | एकमुक्ता तु | वारा. १०७५ | एष नो दास्य | देव. १३५०; |
| एवं यद्यप्य | मनुः १९३० | एकमुद्भूत्य | परा. १११७ | | वसि. १९८२ |
| *एवं यस्तृणि | बृह. ७२७ | एकमुभय | कौ. ८६२ | एष नौयायि | मनुः १९२७, |
| एवं ये भूति | भा. ८६० | एकमेतद्यं | भा. १०२८ | | १९४६ |
| एवं राजा स | ,, १९८६ | एकमेतन्म | ,, १२८३ | एष पन्था उ | वेदाः १२६० |
| एवं वर्षस | वारा. १०७६ | एकमेतासु | ,, १०३३ | एष वः कुशि | ,, १२६१ |
| एवं वादिक्र | बृह. १९१४ | *एकमेव वि | मनुः १३९३ | एष वादिक्र | बृह. १९४० |
| एवंविधप्र | मासो. १९७० | ,, " | ,, १९५२; | एष वृद्धिवि | नार. ६२७ |
| एवंविधमि | स्कन्द. १९६७ | | आपु. १९८८ | एष स्त्रीपुंस | मनुः १०७५, |
| एवंविधस्त्व | ,, १९६५ | एकमेव स | भा. १४२९ | | ११२७ |
| एवंविधान्तृ | मनुः १६९५, | *एकमेवाग | नार. १९४० | एष स्वभावो | वारा. १०७६ |
| | १९२९ | एकमेवैता | वेदाः ६०४ | *एषां चैताः क्रि | नार. १५८० |
| *एवंविधाश्च | वारा. १०७७ | एकमेवोप | संश्रं. १५३० | *एषां ज्येष्ठः क | मनुः १५४४ |
| *एवं विधिश्च | नार. ७४९ | एवा कामस्यं | वेदाः ९९७ | | |

| | | |
|-----------------|------------|-------------|
| एषां तु धर्म्या | नार. | १०९८ |
| *एषां पतित | देव. | १४०४ |
| एषां लोकाना | वेदाः | १००६ |
| एषां षड्बन्धु | नार. | १३४६ |
| * " " " | देव. | १३५० |
| एषां हि विर | मनुः | १०५९ |
| एषाऽखिलेना | बृह. | ८०२ |
| एषा ते कुल | वेदाः | ९९६ |
| एषा ते राज | " | " |
| एषा त्रयी पु | भा. | १२८३ |
| *एषा धर्मवृ | हारी. | ६०८ |
| एषा धर्म्या वृ | " | " |
| एषामपति | याज्ञ. | १६३५ |
| एषामभावे | " | १४७९; |
| | देव. | १५२५ |
| *एषामेताः क्रि | नार. | १५८० |
| एषा हि स्वामि | बृह. | ८७२ |
| एषेभ्यः चिद्र | वेदाः | ९९० |
| एषोऽखिलः क | मनुः | १९३१ |
| एषोऽखिलेना | " | १६९०, |
| | | १७७३ |
| एषोदिता धा | बृह. | १६४७ |
| एषोदिता लो | मनुः | १०५१ |
| *एषोऽपि घात | बृह. | १६४७ |
| एषेभ्यः बह | वारा. | १३२८; |
| | अत्रिः | १३५२ |
| एहि सार्धं म | भा. | ८४० |
| Xपेतु नो वाजी | नि. | १२५४ |
| पेन्द्र स्थानम | मनुः | १६२२ |
| *पेन्द्रस्थानम | " | " |
| Xओक इति नि | नि. | १२५४ |
| *ओघवाताह | मनुः | १०७४ |
| ओघवाताह | " | " |
| नार. | ११०२; परा. | १११७ |
| ओ चित्सखायं | वेदाः | ९७५, |
| | | १८३६ |
| ओत्सूर्यमन्या | " | ९९८ |
| *ओत्कोचिकाः सो | नार. | १७४६ |
| *ओत्कोचिकाश्चौ | मनुः | १६९३ |
| ओद्धत्याद्वा ब | बृह. | ७३१ |
| ओपनिधिक | कौ. | ७३५ |
| *औरसं तं वि | मनुः | १३०३ |
| औरसं पुत्रि | बौधा. | १२७० |
| औरसः क्षेत्र | शंख. | १२८२; |
| | मनुः | १३२०; नार. |
| | | १३४६; |
| | परा. | १३५२; कापु. |
| | | १३७६ |

| | | |
|-----------------|----------|-------|
| औरसः पुत्रि | स्मृत्य. | १३७३ |
| औरसक्षेत्र | मनुः | १३२५ |
| | याज्ञ. | १३९९ |
| * " " " क्षेत्र | " | " |
| औरसा अपि | नार. | १४०१ |
| औरसानपि | वारा. | १३२९ |
| औरसे तूय | बौधा. | १२३९; |
| | कौ. | १२८८ |
| औरसेन स | बुय. | १३५५ |
| औरसे पुन | देव. | १३५१ |
| औरसो दत्त | बृह. | १३५५ |
| औरसो धर्म | याज्ञ. | १३३० |
| औरसो नाम | देव. | १३५० |
| औरसो यदि | ब्रह्म. | १३७४ |
| औरसो विम | मनुः | १३२४ |
| औषधैश्चिकि | कौ. | १९२४ |
| क आसं जन्याः | वेदाः | १००० |
| क इमं दश | " | ८७८, |
| | | ११२० |
| *कटाक्षवीक्ष | व्यासः | १८८९ |
| *कटाक्षविक्ष | " | " |
| *कटिदेशोऽङ्ग्य | नार. | १८२८ |
| कट्यां कृताङ्को | मनुः | १८०२; |
| | नार. | १८२८ |
| कठोरणिं न | भा. | १०२९ |
| कण्टकोद्धार | मनुः | १६९२, |
| | | १९२९ |
| *कण्टकोद्धार | " | १६९२ |
| *कण्टकेशाञ्च | कात्या. | १८८७ |
| कण्टकेशाम्ब | " | " |
| कण्टेक्षमाला | नार. | १९१३ |
| कण्डूषाय त्व | हरि. | १३७६ |
| कर्षं हि पित | भा. | १२८८ |
| कर्षं कार्याणि | स्कन्द. | १९६५ |
| कर्षं ज्येष्ठान | भा. | १३९१ |
| कर्षं तत्र वि | मनुः | १२३५ |
| कर्षं धर्मोऽप्य | भा. | १०३१ |
| कर्षं शुक्रस्य | " | १३९१ |
| कथमस्य प्र | " | १२८७ |
| कथितं दाय | संभ्र. | ११४२ |
| कदन्नं च कु | नार. | १०९९, |
| | | १४०२ |
| *कदन्नं वा कुं | " | १०९९ |
| कदलीक्रमु | प्रजा. | ९६२ |
| *कदा कश्चित्प्र | बृह. | १५५८ |
| कदाचिच्चिन्त | ब्रह्म. | ८४० |

| | | |
|-------------------|-----------|------------|
| *कदाचिद्वा प्र | बृह. | १५५८ |
| कदा सन्तुः पि | वेदाः | ९८९ |
| कदू महीर | " | १९७१ |
| कदूश्चापि त | ब्रह्म. | ८४० |
| *कदूवा ममाभ | " | " |
| कनात्कभां न | वेदाः | १००६ |
| कनिष्ठाश्च य | भा. | १९८३ |
| कनिष्ठास्तं न | " | १९८४ |
| कनीयानपि | " | " |
| कनीयान् ज्ये | मनुः | १३१६ |
| कनीस्तुनादि | वेदाः | १००६ |
| कन्धराबाहु | याज्ञ. | १८१७ |
| कन्यकानां त्व | कात्या. | १४२१ |
| कन्यां च बहु | भा. | १०३० |
| कन्यां चेद्दृशी | शाता. | १११६ |
| कन्यां तां ऋष्य | वारा. | १३२९ |
| *कन्यां प्रकुर्या | मनुः | १८६९ |
| कन्यां भजन्ती | " | १८६६ |
| कन्यां लक्ष्म | लिङ्ग. | १३७६ |
| कन्यां वा जीवि | भा. | १२८६ |
| कन्यां शुल्के चा | " | ८६० |
| कन्या इव व | वेदाः | ९७१ |
| कन्या कुत्सिता | सुम. | १११७ |
| कन्यागतं तु | कात्या. | १२२८ |
| कन्याधर्मः क | कौ. | १२८८ |
| कन्या चास्य म | वारा. | १३२९ |
| कन्यादानं क | कौ. | १०३४ |
| कन्यादूषको | त्रिष्णुः | १८४७ |
| कन्यादोषमौ | कौ. | ८७९ |
| कन्यादोषौ च | नार. | १०९८ |
| कन्या नर्तुमु | " | १०९६ |
| कन्यानां विश्व | वेदाः | ९९६ |
| कन्यानामस | आदि. | १३८४ |
| कन्याप्रकर्म | कौ. | १८४८ |
| कन्याप्रदः पू | याज्ञ. | १०७७ |
| कन्याभ्यश्च पि | देव. | १४२२ |
| कन्याभ्यश्च प्रा | कौ. | १२००, |
| | | १४१७, १९५० |
| *कन्याभ्यस्तु पि | देव. | १४२२ |
| कन्यामन्यां द | कौ. | ८७९, |
| | | १८४९ |
| कन्यामाहिति | " | ८१७ |
| कन्यायां दत्त | वसि. | १०२१; |
| | मनुः | १०४३ |
| कन्यायां प्राप्त | नार. | १०९७ |
| *कन्या याऽक्षत | " | ७०३ |

| | | | | | |
|------------------|----------------------------------|------------------|-------------|--------------------|---------------------------------------|
| कन्यायामस | शुंखः १८४८; नार. १८८३ | *कर्ता ममेदं | नार. ८०० | कलहे घ्नतः | कौ. १६१८ |
| कन्यायास्तद्ध | व्यासः १२३१ | *कर्ताऽहमेत | " " | कलहे तीक्ष्णाः | " ८६३ |
| कन्यावैवाहि | कात्या. ७१२; पैठी. १४२२, १४६३ | *कर्तुं वा कृत | भा. १०३३ | कलहे द्रव्य | " १८०० |
| कन्याहरण | यमः १७६६ | कर्तुमर्हसि | " १०२७ | कलहे पूर्वा | " " |
| कन्यैव तन्वा | वेदाः ९६५ | कर्मकरस्य | कौ. ८४३ | कलिः प्रसुप्तो | मनुः १९३० |
| कन्यैव कन्यां | गौत. १८४३; मनुः १८६८ | कर्म कारय | " १६९० | कलिः सः | वेदाः १८९८ |
| *कन्यैव कन्या | " " | कर्मकालानु | " ८४३ | कलौ पञ्च न | आदि. १३८४ |
| कन्यैव या क | " " | कर्म कुर्यात्प्र | बृह. ८३५ | कलौ युगे त्वि | स्मृत्य. १३७३; संग्र. १६५५ |
| कन्यैवाक्षत | नार. ७०३, ११०३ | कर्म च व्यव | कौ. १६१६ | कल्पितं मूल्य | कात्या. ८९८ |
| कमद्युवं वि | वेदाः ९८२ | कर्मणश्च प्र | " १६८६ | कल्प्यां तेन तु | भा. ८१८ |
| करणं कार | बृह. ७८५ | *कर्मणा क्षत्र | कात्या. ७२९ | कल्याणे च वि | भार. ८०७ |
| करणहीनं | कौ. ७३७ | कर्मणाऽपि स | मनुः ७२० | *कल्याणेषु वि | " " |
| करदं तु प्र | " ९३२ | कर्मणा वच | भा. १०२९ | *कश्चिच्च संस | नार. ७८२ |
| करदाः कर | " " | कर्मणा वैष्यो | कौ. ११८५ | कश्चिच्चेत्संच | " " |
| करपादद | विष्णुः १७९६; याज्ञ. १८१७ | कर्मणा व्यव | कात्या. ७२७ | कश्चित्कृत्वात्म | " १८२९; बृह. १८३२ |
| *करवदन्त | " " | कर्मण्यवसि | भा. १२८४ | कश्चितु संश | भा. १२४३ |
| *कराधुदोष | नार. ११३१ | कर्मण्यसमा | कौ. ७७२ | कस्ताः शक्तो र | " १०३३ |
| करार्थं कर | कात्या. ८९८ | कर्म तत्त्वामि | बृह. ८३४ | कास्मात्तु विष | " १२४४ |
| करिष्यति वृ | बृह. १३४९ | कर्मनिष्ठाप | कौ. ८४४ | कस्माद्यज्ञेऽपि | वेदाः १६०२ |
| करिष्ये सर्व | वारा. १०७७ | कर्मनिष्पाकं | " " | *कस्मिंश्चित्प्रति | वसि. १२७७ |
| करीच विज | मासो. १९७० | कर्मवियोग | गौत. १६५९ | *कस्मैचिद्याच | मनुः ७९५ |
| करीषमिष्ट | मनुः ९३४ | कर्म शूद्रे कृ | भा. ८१८ | कस्यचित् कु | विष्णुः ६७९ |
| * " " | बृह. ९५० | कर्मस्वभ्युद्य | मनुः १९३० | कस्यापराधा | ब्रह्म. ८४० |
| करीषास्थितु | " " | कर्माकरणे | कौ. ८६१ | काकणित्वित | अनि. १९६८ |
| *करोति क्षेत्रि | मनुः १०७४ | कर्माकर्तृन् | नार. ८४९ | काकणित्त्रित | " " |
| करोति ब्राह्म | पैठी. १११५ | कर्माण्यारभ | मनुः १९३० | काकणी चास्य | कौ. १६७५ |
| *करोत्युत्तर | व्यासः १७६४ | कर्मानुरूप | बृह. ७८७ | काकणीद्वयं | " " |
| कर्णकोलाय | कौ. ९२६ | कर्मापराधे | कौ. १६७६ | काकण्यक्षाणा | " १९०४ |
| *कर्णघ्राणप | कात्या. १८३३ | कर्मापि द्विवि | नार. ८२९ | काकिन्यो वप्री | मनुः १९०५ |
| कर्णनासाक | बृह. १८३१ | कर्माभिग्रह | कौ. १६८५ | काङ्क्षन्ति पित | बृह. १३४९ |
| कर्णौ चर्म च | मनुः ९०९ | कर्मारम्भं तु | कात्या. ८५३ | काश्चिद् वृद्धि | कात्या. ६५८ |
| कर्णौष्ठप्राण | कात्या. १८३२ | कर्मादकमा | कौ. ९३१ | काणं खञ्जं च | बृह. ७८७ |
| *कर्णौष्ठपाद | " १८३३ | कर्मापकर | नार. ८४९ | *काणं खञ्जं वि | " " |
| कर्तव्यं वच | याज्ञ. ८६७, ८६८; बृह. ८७४ | कर्शनं वम | कौ. १९२४ | काणं वाऽप्यथ | विष्णुः १७७०; मनुः १७७७; नार. १७८७ |
| कर्तव्यमित | कात्या. १५२३ | कर्षकः सस्या | " ८४३ | *काणं वा यदि | मनुः १७७७; नार. १७८७ |
| कर्तव्या न प्र | " ९५५ | कर्षकगोपा | " ९२९ | काणः खोडः कू | गौत. ११८२ |
| कर्तव्या भ्रातृ | नार. १५८४ | कर्षकवैदे | " ७७१ | काणखञ्जादी | विष्णुः १७७० |
| *कर्तव्यास्त्ववि | कात्या. ९५५ | कर्षकस्य ग्रा | " ८६१ | काणखोरकू | गौत. ११८१ |
| कर्तव्यो मध्य | बृह. १८३१ | कर्षकाणां त्रि | " ८७८ | *काणमप्यथ | नार. १७८८ |
| कर्ता ममायं | नार. ८०० | कर्षकान् क्षत्र | कात्या. ७२९ | काणलिङ्गास्ते | कौ. ११८४ |
| | | कर्षणे पूर्वो | कौ. ९३२ | काण्डपृष्ठश्च्यु | नार. १९३८ |
| | | कर्षहीनाति | " १६७७ | कानीनं च स | बौधा. १२७० |
| | | कलञ्जो धर | गुप्तः १९६८ | | |
| | | कलये सभा | वेदाः १८९८ | | |
| | | कलहापह | याज्ञ. १८१८ | | |

| | |
|----------------|--------------|
| *कानीनं तं व | मनुः १३०६ |
| कानीनः कन्य | याज्ञ. १३३१ |
| कानीनः पञ्च | वसि. १२७३; |
| | विष्णुः १२७९ |
| कानीनश्च स | मनुः १३२०; |
| नार. | १३४६, १३४७; |
| बृह. १३४९; | कापु. १३७६ |
| कानीनसहो | गौत. १२६३ |
| कानीनाध्युह | भा. १२८७ |
| कानीयान्मम | ,, १३९१ |
| कान्तारगास्तु | याज्ञ. ६२० |
| कान्तारे मध्य | कौ. १९२२ |
| कान्तारेष्वपि | भा. १०२६ |
| कामं तां नाभि | नार. ११०० |
| कामं तु क्षप | मनुः १०६२ |
| कामं दीने प्रो | हारी. ११४६ |
| कामं देशजा | कौ. १६७६ |
| कामं पतित | शंखः ७७१ |
| *कामं भर्तुर | ,, १०२५ |
| कामं भार्याया | कौ. १८५० |
| कामं मातुरे | शंखः १६१२ |
| *कामं वसेयु | ,, ११९५ |
| कामं वा परि | वसि. ६०९ |
| कामं सह व | शंखः ११९५ |
| कामकारणी | कौ. १४३० |
| *कामकारेणा | विष्णुः १६१० |
| कामक्रोधसु | नार. ६९५ |
| कामक्रोधास्व | कात्या. ८०५ |
| कामचारवि | भा. १०२७, |
| | १२८४ |
| कामचारिणी | शंखः १०२४, |
| | १३९० |
| *कामतः संश्रि | कात्या. ८३८ |
| कामतश्च मि | भा. १०२८ |
| कामतश्च शू | बृह. १४०३ |
| *कामतस्तु भ | नार. ७०३, |
| | ११०३ |
| कामतो नाभि | ,, ११०० |
| कामतोऽपि च | भवि. १६५५ |
| कामदानम | कौ. १६७६ |
| *कामदाने प्रो | हारी. ११४६ |
| *कामपतित | शंखः ७७१ |
| कामंमात्मानं | आप. ८१६ |
| काममा मर | मनुः १०४२ |
| काममृता व | वेदाः ९७७, |
| | १८३६ |

| | |
|-----------------|--------------|
| काममेवं वि | वारा. १०७६ |
| कामयेत्तत्र | बृह. १८८६ |
| कामवक्तव्य | वारा. १०७७ |
| कामस्य तृप्ति | वेदाः १००६ |
| कामाचारः स | कौ. ११८५, |
| | १३९१ |
| कामाच्चेदप | शंखः ७७१ |
| कामात्तु संश्रि | कात्या. ८३८ |
| कामात्पारश | बौधा. १२७० |
| कामात्पुरीषं | बृह. ९५४; |
| | कात्या. ९५९ |
| *कामात्संयुज | ,, ८३८ |
| कामात्समाश्र | नार. ७०३, |
| | ११०३ |
| *कामाद्या संश्र | ,, ७०३ |
| कामानामपि | भा. १०३२ |
| कामाभिपाति | मनुः १८६६ |
| कामाय पुंश्च | वेदाः १९७७ |
| कामार्ता स्वैरि | कात्या. १८८८ |
| कामी तु संस्थि | ,, " |
| कामोजितेषु | बृहा. १८९१ |
| *कामे दाने प्रो | हारी. ११४६ |
| काम्बोजसुरा | कौ. ८६२ |
| कायक्लेशेन | भा. १०२९ |
| कायाविरोधि | नार. ६२४; |
| | व्यासः ६३४ |
| कायिकां भोग | बृह. ६२९ |
| कायिका कर्म | ,, " |
| *कायिका काय | ,, " |
| कायिका कालि | नार. ६२४; |
| | बृह. ६२९ |
| कारणादाने | कौ. ९२९ |
| कारणाभिर्नि | नार. १९३६ |
| *कारणे तु वि | व्यासः ७३० |
| कारणे विधि | ,, " |
| कारयेत्तद् | कात्या. ११०९ |
| कारयेत्प्रत्य | ,, ६७३ |
| कारयेत्सर्व | स्कन्द. १९६६ |
| कारयेदाय | ,, " |
| कारयेदास | कात्या. ८३६ |
| कारयेद्वा ऋ | बृह. ७२६; |
| | यमः ७३० |
| *कारयेद्वा घ | बृह. ७२६ |
| कारयेच्चिष्कृ | ,, १८८७ |
| कारिता कायि | गौत. ६०७ |
| कारिता च शि | बृह. ६२९ |

| | |
|----------------------|--------------|
| *कारिताऽथ शि | बृह. ६२९ |
| कारुकरक्ष | कौ. १६७३ |
| कारुहं त | वेदाः ११२१ |
| कारुशिल्पिकु | कौ. ८४३, |
| | १६१७ |
| कारुशिल्पिनां | ,, १६७७ |
| कार्तान्तिकव्य | ,, ८६३ |
| कार्तान्तिकादि | ,, " |
| कार्मारो अश्म | वेदाः ११२१ |
| कार्मिके रोम | याज्ञ. १७३५ |
| कार्यं तु साध | कात्या. १६४९ |
| *कार्यं वा धर्म | बृह. ८०४ |
| कार्यं संप्रति | कात्या. ९१९ |
| *कार्यः कृतानु | बृह. १८३० |
| कार्यः क्षतानु | ,, " |
| कार्यमाना क् | शुनी. ८५६ |
| कार्यमुच्छ्राव | बृह. १५८४ |
| कार्यस्यान्यथा | कौ. १६७३ |
| कार्यानुरूपं | शुनी. ७९० |
| कार्यार्थे निर्ग | भा. १०२८ |
| *कार्याविरोधि | व्यासः ६३४ |
| कार्ये चाधर्म | बृह. ८०४ |
| *कार्ये नाधर्म | ,, " |
| कार्यो द्वितीया | याज्ञ. १७३७ |
| *कार्यो द्वितीये | ,, " |
| कार्षापणस्त्व | अनि. १९६८ |
| कार्षापणोऽन्यो | ,, " |
| *कार्षाणांकाष्ठं गां | वसि. ११८४ |
| कार्षाण्यसं गु | ,, " |
| *कार्ष्य (फाले) मा | मनुः १७१७ |
| कालदेशव | अनि. १९६९ |
| कालमासाद्य | मनुः १७१२, |
| | १७१७, १९३० |
| कालस्य नय | भा. १९८५ |
| कालहीनं द | कात्या. ७५४ |
| *कालहीने द | ,, " |
| कालातिपात | कौ. १६७३ |
| कालायसका | ,, १६१४ |
| कालायसवि | ,, १६७५ |
| *कालिका कारि | नार. ६२४ |
| काले कालकृ | याज्ञ. ६४३ |
| काले तु विधि | कात्या. ७१० |
| कालेऽदाता पि | मनुः १०४५ |
| *काले द्विगुणं | हारी. ६०८ |
| कालेऽपूर्णं त्य | नार. ८४९ |
| *कालेऽप्यतीति | कात्या. ६७४ |

| | | |
|--------------------|----------|-------|
| काले प्रतीते | कात्या. | ६७४ |
| *काले विनीत | " | १२२७ |
| *काले व्यतीते | " | ६७४ |
| *काशान् कुब्ज | मनुः | ९३४ |
| काषायवत् | देवी. | १९४३ |
| *काषायेण तु | " | " |
| *काष्ठकाण्डत् | नार. | १७४९ |
| काष्ठभाण्डत् | " | " |
| काष्ठलोष्टपा | कौ. | १७९९ |
| काष्ठलोष्टेषु | याज्ञ. | १८१९, |
| | | १९३३ |
| *काष्ठलोष्टेष्ट | " | १८१९ |
| *काष्ठलोष्टेषु | " | " |
| काष्ठलोहम | कौ. | १६७७ |
| काष्ठवेणुना | " | १९२४ |
| काष्ठानां चन्द | भार. | ६३५ |
| काष्ठेन प्रथ | विष्णुः | १७९६ |
| किं कारणं म | भा. | ८४० |
| किं चापद्यनु | स्मृत्य. | १३७३ |
| किं नु मलं कि | वेदाः | १२६० |
| किं पुनर्यो गु | वारा. | १०७७ |
| किं भ्रातासद्य | वेदाः | ९७७, |
| | | १८३६ |
| किं शूरपति | " | ९८७ |
| किं सुबाहो स्वं | " | " |
| किञ्चित्च द्रव्य | भार. | ९०० |
| *किञ्चिद्दूनं प्र | कात्या. | ७५४; |
| | व्यासः | ७५६ |
| किञ्चिदेव तु | मनुः | १८५५ |
| किञ्चिदेव दा | " | " |
| *किञ्चिदेव हि | " | " |
| *किञ्चिन्न्यूनं तु | व्यासः | ७५६ |
| किञ्चिन्न्यूनं प्र | कात्या. | ७५४; |
| | व्यासः | ७५६ |
| *किष्कर्पास | विष्णुः | ६१० |
| किष्कर्पास | " | " |
| कितवान् कु | मनुः | १७१०, |
| | | १९०७ |
| *कितवान् शी | " | १७१० |
| *कितवेष्वव | नार. | १९११ |
| कितवेष्वव | " | " |
| किन्त्वपुत्रस्य | विष्णुः | १४७१ |
| किन्त्वलङ्कृत्य | नार. | १८८३ |
| किमस्मभ्यं जा | वेदाः | १८९३ |
| किमाहत्य वि | सां. | ६४० |
| किमिदं भाष | वारा. | १०७५ |

| | | |
|---------------------|---------|-------|
| किमु श्रेष्ठः किं | वेदाः | ११४३ |
| किमेतयोर्ब | वसि. | ७३२ |
| कियती योषां | वेदाः | ९७९ |
| कियत्स्त्रिदिन्द्रो | " | १२५७ |
| किष्कुमात्रमा | कौ. | ९२६ |
| कीटोपघाती | विष्णुः | १६०९, |
| | | १७९८ |
| कीदृशः कृत | भा. | १२८७ |
| कीदृशां संत्य | " | १०३१ |
| कीदृश्यां कीदृ | " | १२८६ |
| कीनाशशिपि | बृह. | ९५१ |
| कीनाशो गोवृ | मनुः | १२४६ |
| कीर्तिते यदि | कात्या. | ९५८ |
| कीर्तिश्च यज्ञ | वेदाः | ८४२ |
| कुटुम्बं बिभृ | नार. | १२२१ |
| कुटुम्बकामा | कौ. | १४३० |
| कुटुम्बभक्त | बृह. | ८०२ |
| कुटुम्बभर | नार. | ७९९ |
| कुटुम्बर्द्धिलो | कौ. | १०३९ |
| कुटुम्बहेतो | नार. | ६९६ |
| कुटुम्बात्तस्य | मनुः | १७२३ |
| कुटुम्बार्थम | कात्या. | ७१२ |
| *कुटुम्बार्थे चो | नार. | ११९८ |
| कुटुम्बार्थेषु | " | " |
| | | १५८४ |
| कुटुम्बार्थे स | भा. | १०२८ |
| कुटुम्बिकाध्य | कौ. | १६८९ |
| कुटुम्बिनौ ध | आप. | १४०७ |
| कुत एव प | भा. | १९७१ |
| कुतो हि साध्वी | कौ. | १०३८ |
| कुत्सितात्सीद | बृह. | ६२८ |
| कुनस्वी दयाव | वेदाः | १५९२ |
| कुपितं वाऽर्थ | भा. | १०२९ |
| कुप्यं पञ्चगु | कात्या. | ६३२ |
| *कुबन्धेनाङ्घ्र | याज्ञ. | १८७४ |
| कुब्राह्मणादि | कौ. | १७७२ |
| कुमारकान् | " | ८६२ |
| कुमारदेष्या | वेदाः | १८९४ |
| कुमाराश्च प्रा | आप. | १६६६ |
| कुमारि ह्ये | वेदाः | १००९ |
| कुमार्यां तु स्वा | आप. | १८४४ |
| कुमार्युत्तुम | वसि. | १०२१ |
| कुरुते दान | बृह. | ९५२ |
| *कुर्याच्च प्रति | पिता. | ६७६ |
| कुर्याच्चानुदि | व्यासः | १५२४ |
| कुर्याच्चैत्प्रति | पिता. | ६७६ |

| | | |
|--------------------|---------|-------|
| कुर्याच्छशुर | याज्ञ. | १०८५ |
| कुर्यात्पथो व्य | नार. | १९३६ |
| *कुर्यादनुदि | व्यासः | १५२४ |
| कुर्याद्यः प्राणि | परि. | १८३५ |
| *कुर्याद्यत् प्रा | " | " |
| *कुर्याद्धानुदि | व्यासः | १५२४ |
| *कुर्याद्विनिर्ण | मनुः | ७४४ |
| कुर्यान्नागरि | कौ. | १६८५ |
| कुर्यान्निर्विष | " | १६८७ |
| कुर्यान्न्यूनाधि | बृह. | ७३४ |
| कुर्यान्माताम | यमः | १३५१ |
| कुर्यामहं जि | भा. | ८१९ |
| कुर्युः कर्माणि | कात्या. | १७६२ |
| कुर्युः पृथक् | आश्व. | १५८८ |
| कुर्युरर्थ य | मनुः | १७०८, |
| | | १९२७ |
| कुर्युर्मयाद्वा | कात्या. | ९५७ |
| कुर्युर्यथार्ह | मनुः | ७७३ |
| *कुर्युर्यथार्ह | " | " |
| कुर्युर्यथेष्टं | नार. | १५८३ |
| कुर्युस्ते भ्रात | अनि. | १५८९ |
| कुर्युस्ते व्यभि | नार. | ७८१ |
| कुर्युस्ते व्यव | " | " |
| कुर्युः राजान | भा. | ८६० |
| कुर्वन्ति क्षेत्रि | मनुः | १०७४ |
| कुर्वन्त्युत्कोच | व्यासः | १७६४, |
| | | १९४२ |
| कुर्वन्त्यौपधि | " | १७६४ |
| *कुर्वन्त्यौपयि | " | " |
| कुर्वन्त्यौपाधि | " | ८९९ |
| *" " " | " | १७६४ |
| *कुर्वीत चैव | मनुः | १७०७ |
| कुर्वीत चैषां | " | १७०७, |
| | | १९२७ |
| कुर्वीत जीव | कात्या. | १२०१ |
| कुर्वीत शास | मनुः | १६९५, |
| | | १९२९ |
| कुर्वीताराध | विध. | १११९ |
| कुलं काण्डमि | हारी. | १२६६; |
| | यमः | १३५२ |
| कुलं चाश्रोत्रि | वसि. | १९७७ |
| कुलजे वृत्त | मनुः | ७३८; |
| | नार. | ७४७ |
| कुलयां काम | बृह. | १६५३ |
| *कुलत्रयं पु | अग्नि. | १११६ |
| कुलधर्मं तु | कात्या. | १९४२ |

| | | | | | |
|-----------------|--------------|--------------------|------------------|-------------------------|---------------|
| कुलधर्मस्था | भा. १९८४ | कृतपण्यस्य | शुनी. १७६७ | कृतकालव्य | नार. ८३२ |
| कुलनीवीप्रा | कौ. १५२२ | कृतमानाः कू | विष्णुः १६६९ | *कृतकालव्यु | " " |
| कुलवंशप्र | भा. १९८५ | कृटरूपं का | कौ. १६७५ | *कृतकालावु | " " |
| कुलश्रेणिग | बृह. ८७४ | कृटलेख्यका | विष्णुः १६०९, | *कृतकालाप | " ६४८ |
| *कुलश्रेणिग | " " | | १६७१ | *कृतकालाभ्यु | " ८३२ |
| कुलसंतान | नार. ११०१ | *कृतवादिन | " १६६९ | *कृतकालेऽप | " ६४८ |
| कुलानि जातीः | याज्ञ. १९३२ | *कृतवादी स्व | याज्ञ. १७३२ | कृतकालोप | " " |
| कुलानुबन्ध | बृह. १५८१ | कृतशासन | विष्णुः १६०९, | कृतकाग्राम | शंखः १६७२ |
| कुलान्येव न | विष्णुः १०२३ | | १६७१; शंखः १६१३; | कृतकाल्या भ | भा. १२८३ |
| *कुलायनं नि | बृह. ८७३ | | मनुः १६३२ | कृतज्ञो दृष्ट | " ८६० |
| कुलायननि | " " | कृतमाक्षिणां | विष्णुः १६११ | कृतन्वेन प्र | विष्णुः १९८३ |
| कुलाय हि स्त्री | आप. १०१८ | *कृतस्य बह | बृह. १६४७ | *कृतदण्डोऽप्य | नार. १६४४ |
| कुलीनदक्षा | बृह. ७८४ | कृतस्वर्णव्य | याज्ञ. १७३२, | कृतपूर्वाह | शुनी. १११९ |
| कुलीना रूप | भा. १०३२ | | १९३२ | कृतप्रन्युप | कात्या. ८०६ |
| कुले कन्या प्र | अनि. १९४३ | *कृताक्षदेवि | विष्णुः १६६९ | कृतमप्यकृ | " ८९८ |
| कुले तदव | नार. ११०१ | " " | नार. १७५९, | *कृतर्णालोभ्यु | नार. ८३२ |
| कुले विनति | कात्या. १२२७ | | १९१३, १९१४ | *कृतलक्षण+ | कौ. १६८१ |
| कुलेषु कल | भा. ८६१ | कूपं तटाकं | बृह. ८९६ | कृतलक्षणे | " ७३७ |
| *कुल्या दुहित | देव. १५२५ | कूपवप्रख | भार. ६६० | कृतशिल्पोऽपि | याज्ञ. ८२४ |
| *कुल्यानयन | बृह. ८७३ | *कूपवापीत | बृह. ९५० | *कृतशिल्पोऽपि | " " |
| कुल्याभावे तु | " ८०३ | कूपीधानत | कात्या. ९६० | कृतशौचा पु | शुनी. १११९ |
| कुल्याभावे स्व | " १२५१ | कूप्माण्डैर्जुहु | वेदाः १६०३ | कृतस्य वेत | कौ. ८४४ |
| कुल्येषु विद्य | " १५१३ | कृच्छ्रं चान्द्राय | मनुः १०५८ | कृताऽकृता वा | बृह. १५१६ |
| कुशाकरका | शंखः १६५२ | कृच्छ्रः परग्रा | कौ. १६८१ | कृताञ्जलिश्च | वारा. १०७७ |
| *कुशाचर्मभा | " " | कृच्छ्रसंवत्स | आप. १६६५ | कृतानन्यासु | भा. १९८५ |
| *कुशीलवांश्च | मनुः १७१० | कृच्छ्राणां दाप | देव. १९४२ | कृतानीदस्य | वेदाः ६०० |
| कुशीलवा व | कौ. १६७६ | कृच्छ्रान्मानुष | कात्या. १११० | कृतानुसारा | मनुः ६१४ |
| कुशीलवैश्चा | " " | कृच्छ्रास्वाप्तु | भा. ८६१ | कृताचं चाकृ | बृह. १२२२ |
| कुष्ठपित्तार्दि | स्कन्द. १९६५ | कृतं कार्यं स | नार. १७५३ | *कृताचं वाकृ | " " |
| *कुष्ठिनीं पति | देव. १११२ | कृतं चेदेक | बृह. ७३४ | कृताचसाध | शुनी. १११९ |
| कुष्ठिनीमुन्म | कौ. १०३४ | *कृतं चैकत्र | " " | कृतापराधा | अपु. १९७४ |
| कुष्ठोन्मादङ्गै | " १७७२ | कृतं तत् | वेदाः १८९८ | कृताय सभा | वेदाः १८९८ |
| कुष्ठोन्मादयो | " " | कृतं तीर्थं सु | " ९८१ | *कृता वाप्यकृ | बृह. १५१६ |
| कुसीदं पशू | गौत. ६०७ | *कृतं तु यद् | नार. ६९६ | *कृताश्चैकत्र | " ७३४ |
| कुसीदं वा ए | वेदाः ६०४ | कृतं त्रेतायु | मनुः १९३० | कृते कर्मणि | " ८५३ |
| कुसीददृषि | नार. ११३०; | कृतं मे दाक्षि | वेदाः १९०१ | *कृतोऽकृते वा | " १५६९ |
| | मनुः १९८६ | कृतं यत्रैक | वासि. ७३२ | कृतोऽकृते वि | " " |
| कुसीदपथ | " ६१४ | कृतं रूपार्थ | बृह. १८८५ | कृते देवाति | हारी. १०१५ |
| *कुसीदपद् | " " | *कृतं रूपाव | " " | कृते परिग्र | बृहा. ७३४ |
| कुसीदवृद्धि | गौत. ६०६; | *कृतं लोभार्थ | " " | कृते पौनर्भ | कालि. १३७७ |
| | मनुः ६१२ | *कृतं वा यदि | नार. ६९६ | *कृतोद्धारम | कात्या. ६३२ |
| कुसीदादिवि | बृह. ६५३ | कृतं वा यद् | " " | कृतोद्धारस्य | स्मृत्य. १३७३ |
| कुह स्विहोषा | वेदाः १२५७ | कृतं संवादि | कात्या. ७१३ | कृतोपकारा | नार. ११३०; |
| कृतकर्मणि | कौ. १९०४ | कृतकामियु | कौ. १६८० | विष्णुः १९८३; मनुः १९८६ | नार. ११३०; |
| कृतकाकभ्य | " १६१७ | *कृतकार्यस | नार. १७५३ | कृत्यं कर्मक | नार. १७५३ |
| कृततुलाया | शंखः १६७१ | कृतकार्या त | भा. १२८७ | *कृत्यं कर्म स | " " |

| | | | | | | | | |
|-------------------|---------|-------|-----------------|---------|------------|----------------------|----------|---------|
| कृत्यपक्षोप | कौ. | ८६२ | कैकेयी सुम | भा. | १०२८ | *क्रमात्ते ते प्र | नार. | १३४६ |
| कृत्याभिचारा | ,, | १६२१ | को अस्य वेद | वेदाः | ९७६, | क्रमादभ्याग | याज्ञ. | १२१५ |
| कृत्येषा पद | वेदाः | ९८३ | | | १८३६ | क्रमादव्याह | नार. | ६९१ |
| कृत्रिमः कण्ट | ,, | १००४ | को घोष इति | ,, | ११४४ | क्रमादृते तु | कात्या. | १११० |
| कृत्रिमः पञ्च | ब्रह्म. | १३७५ | *कोटिशते तु | नार. | ६९५ | क्रमादृते प्र | नार. | १३४६ |
| *कृत्वा चौरस्य | याज्ञ. | १७४२ | को दम्पती स | वेदाः | ९८९ | *क्रमाद्वयेते प्र | ,, | ,, |
| *कृत्वा तदर्थे | आप. | १४६६ | कोपात्कमल | भा. | १०२७, | *क्रमायाते गृ | व्यासः | ११८० |
| कृत्वा तदाधि | प्रजा. | ६६० | | | १२८४ | *क्रमेण स वि | मनुः | ७५९ |
| कृत्वाऽनुज्ञात | गौत. | ८१५ | कोऽर्थः पुत्रेण | बृह. | १४०२ | क्रमेणाचार्य | याज्ञ. | १५०९ |
| कृत्वा पौनर्भ | कालि. | १३७७ | *कोऽर्थस्तेन तु | ,, | ,, | क्रमेणैते त्र | भा. | १२८८ |
| *कृत्वा मूल्यं तु | नार. | ८९३ | को वां शयुजा | वेदाः | ९८०, | क्रयः प्रोषित | कात्या. | ७५२ |
| कृत्वोद्धारम | कात्या. | ६३२ | | | १२५७ | क्रय एव भ | सुम. | ८९९ |
| *कृत्स्नमेवं ल | मनुः | ७७४ | कोशाभाण्डागा | कौ. | १६८९ | क्रय एव भ | वृका. | ९०१ |
| कृत्स्नमेव ल | ,, | ,, | कोशस्य रूपं | स्कन्द. | १९६५ | क्रयकाले प | बृह. | ८८९ |
| कृधि प्रकृत | वेदाः | १४१५, | *कोशाद् दद्या | गौत. | १६६३ | क्रयक्रीता तु | स्मृत्य. | १११८ |
| | | १९७९ | कोशाद् दद्या | ,, | ,, | क्रयमूल्यं क | कात्या. | ७५४ |
| | | | *कोशानां स्यात् | भार. | ६३५ | क्रययोग्या नि | स्मृत्य. | ९०१ |
| कृमिचौरव्या | नार. | ९१६ | *कोशेण लेख | बृह. | ८७३ | क्रयविक्रय | नार. | ८८६; |
| कृमिचौरव्या | बृह. | ९१९ | *कोशे तु लेख्य | ,, | ,, | बृह. | ८८९; | प्रजा. |
| कृशातिवृद्धं | ,, | ७८७ | कोशेन लेख्य | ,, | ,, | सुम. | ९००; | विष्णुः |
| *कृषिकान् क्ष | कात्या. | ७२९ | कोशे प्रक्षिप | कौ. | १६७५ | २ " " + | कात्या. | ८९८ |
| कृषिगोरक्ष्य | नार. | ११३१ | *कोषाणामप | मनुः | १६९९ | क्रयविक्रया | बृह. | ९४९ |
| कृषिद्रव्याप | कौ. | १६१७ | येषे प्रवेश | अपु. | १९६२ | क्रयसिद्धिस्तु | स्मृत्य. | ९०१ |
| कृषिपग्यादि | शुनी. | १११९ | कोष्ठकाङ्गण | कौ. | ९२७ | क्रयसिद्धि(द्धि)स्तु | बृह. | ८९६ |
| कृष्णं च तस्य | नार. | ११२९ | कोष्ठपण्यकु | ,, | १६८९ | क्रयस्य धर्म | जैमि. | १४२४ |
| कृष्णद्वैपाय | भा. | १२८५ | कोष्ठगारायु | मनुः | १६२९, | क्रयेण स वि | मनुः | ७५९ |
| कृष्णलद्वित | अनि. | १९६७ | | | १७१३, १९२९ | क्रयो मूल्यस्य | व्यासः | ८९९ |
| कृष्णवालम | भा. | ८४० | कौटसाक्ष्यं तु | अपु. | १९६४ | क्रयोऽर्थस्य प | कात्या. | ८९७ |
| *कृत्यमाणेषु | नार. | ९४८ | कौमारं पति | नार. | ७०३, | क्रयो वा निःस्र | याज्ञ. | १७३१ |
| *केदारगार | ,, | ९४५ | | | ११०३ | *क्रयो वा निश्च | ,, | ,, |
| केदाराराम | कौ. | ९३०; | कौले रिक्थवि | व्या. | १५८८ | *क्रयो वा विक्र | ,, | ,, |
| | नार. | ९४५ | कौलोत्सवि | लहा. | ,, | *क्रयो वा विस्र | ,, | ,, |
| केन प्रतिवि | भा. | १२४४ | कौशेर्यं चोत्त | बृह. | १६४६ | क्राणा यदस्य | वेदाः | ११६० |
| केन वा किं त | ,, | १२४३ | कौशियवल्क | नार. | १७४७ | क्रियते स्वं वि | संप्र. | ११४२ |
| केन वृत्तेन | ,, | १०२८ | क्रमशः कथ्य | बृह. | ८३४ | *क्रियर्णादिषु | नार. | ७३३ |
| *केनायंशेन | कात्या. | ८९८ | *क्रमशः कल्प्य | ,, | ,, | क्रियाभ्युपग | मनुः | १०७४ |
| केनायमिहा | कौ. | १६१६ | क्रमशः क्षत्रे | मनुः | १९०५ | क्रियासमूह | कात्या. | १५८२ |
| केनेदानीं अ | संप्र. | १५२९ | क्रमशः संप्र | बृह. | ६२८ | *क्रियाहानिर्य | बृह. | ७८५ |
| केवलः प्रथ | भार. | ७३१ | क्रमस्वर्श इ | वेदाः | ९९६ | *क्रियोपकर | नार. | ८४९ |
| केवलमेवं | कौ. | ११८५ | क्रमागतं श | अनि. | ८०७; | क्रीडते पति | व्यासः | ११११; |
| केशानीवीद् | ,, | १०३६ | | | स्मृत्य. | १५८९ | अग्नि. | १११६ |
| केशाकेशिकं | ,, | १८५० | क्रमागतं प्री | नार. | ११३१; | क्रीडां शरीर | याज्ञ. | १०८५ |
| केशाकेशिम् | व्यासः | १८८९ | | | विष्णुः | १९८३ | ,, | ,, |
| केशानां कर्ण | मासो. | १९७० | क्रमागते श | व्यासः | ११८० | *क्रीडोपघाती | विष्णुः | १७९८ |
| केशेषु शुद्ध | मनुः | १८०३; | क्रमागतेष्वे | नार. | ७८३ | *क्रीणीयाव्यत्व | मनुः | १३०८ |
| केशेषु त् | नार. | १८२९ | *क्रमागते स्व | ,, | ,, | क्रीणीयाव्यस्त्व | ,, | ,, |

| | | | | | | | | |
|---------------------|-----------|-------|----------------------|---------|------|-------------------|---------|-------|
| क्रीतं क्षेत्रादि | स्मृत्यु. | ८९० | केतुर्मूल्यं प्र | बृह. | १७५९ | क्षत्रियं मध्य | बृह. | १७९० |
| क्रीतं तत्स्वामि | काल्या. | ८९७ | *केतुराज्ञार्थ | " | ७६५ | क्षत्रियः प्रथ | अपु. | १८९१ |
| क्रीतमक्राण | विष्णुः | ८९०, | *केतुराज्ञोर्मु | " | " | *क्षत्रियदृष | विष्णुः | १६१० |
| | | १६११ | केतुविक्रेत्रो | कौ. | १६७८ | *क्षत्रियब्राह्म | मनुः | १३९६ |
| क्रीतश्च ताभ्यां | याज्ञ. | १३३४ | *क्रेत्रा नानुश | याज्ञ. | ८९२. | क्षत्रियवधे | बौधा. | १६०६ |
| क्रीतश्च नव | विष्णुः | १२७९ | *क्रेत्रे मूल्यं प्र | बृह. | १७५९ | क्षत्रियवर्जं | विष्णुः | १२४० |
| *क्रीतश्च पञ्च | यमः | १३५१ | क्रेत्रे राज्ञे मू | " | ७६५ | *क्षत्रियवैश्य | " | " |
| *क्रीतस्तु ताभ्यां | याज्ञ. | १३३४ | क्रेत्रे स दाप्य | भार. | ९०० | " | कौ. | १२४५; |
| क्रीतस्तृतीय | वसि. | १२७८ | क्रोधं कामस्य | भां. | १०३३ | | शंखः | १८४८ |
| क्रीतानुशय | नार. | ८९३ | क्रोधादिना नि | बृह. | १६४७ | *क्षत्रियवैश्यौ | विष्णुः | १२४० |
| क्रीता या रामि | कालि. | १३७७ | क्रोधाहोमात्क्र | स्कन्द. | १९६५ | क्षत्रियश्चतु | " | १९५० |
| (क्रीते) क्रेते च | बृह. | ८९६ | क्रोधो भेदो भ | भा. | ८६१ | क्षत्रियस्य क्ष | " | " |
| *क्रीतेऽपि विक्रे | " | " | *क्रोशन्तमन | विष्णुः | १७९७ | क्षत्रियस्य तु | वसि. | १६०८ |
| *क्रीत्वा गच्छत्य | काल्या. | ८९७ | क्रोशो प्रामेभ्यः | आप. | १६६४ | क्षत्रियस्य रा | विष्णुः | १२४० |
| क्रीत्वा गच्छन्न | " | " | क्लीवं त्यक्त्वा प | बौधा. | १२७० | क्षत्रियस्य वि | गौत. | ११२३ |
| क्रीत्वा चानुश | " | " | क्लीवं विहाय | काल्या. | १३५० | क्षत्रियस्य शू | कौ. | १२८८ |
| *क्रीत्वा त्वनुश | " | " | क्लीबभावे खि | कौ. | १७७२ | क्षत्रियस्य हि | मनुः | १७२७ |
| क्रीत्वा नानुश | याज्ञ. | ८९२; | क्लीबोऽथ पति | याज्ञ. | १३९८ | क्षत्रियस्यापि | भा. | १२४४ |
| | नार. | ८९५ | क्लीबोन्मत्तप | वसि. | १३८९ | क्षत्रियस्यापु | अपु. | १७९२ |
| *क्रीत्वानुशय | " | ८९३; | कचिच्च कृत | भा. | १२८७ | क्षत्रियां चैव | मनुः | १८५९ |
| | काल्या. | ८९७ | *कचित्समान | विष्णुः | १०२३ | *क्षत्रिया चैत् | गौत. | १२३९ |
| क्रीत्वा पण्यम | कौ. | ८७९ | क सिद्धात्रौ भ | नि. | १२५७ | क्षत्रियाच्चैत् | " | " |
| *क्रीत्वाऽन्यनुश | काल्या. | ८९७ | कैकं चक्र वा | वेदाः | ९८२, | *क्षत्रियाणां क्ष | शौन. | १३६५ |
| क्रीत्वा प्राप्तं न | " | ८८९ | | १००० | | *क्षत्रियाणां स | " | " |
| क्रीत्वा मूल्येन+ | नार. | ८९३ | *क्षणधर्मित्वा | गौत. | १६६१ | क्षत्रियाणां स्व | " | " |
| *क्रीत्वा वानुश | काल्या. | ८९७ | क्षणस्त्रीसङ्ग | भा. | १०३३ | क्षत्रियात्सूतः | कौ. | ११८५ |
| क्रीत्वा विक्रीय | मनुः | ८७९, | *क्षतं भक्त्वा | काल्या. | १६४९ | क्षत्रियादीनां | बौधा. | १६०६ |
| | ८८१; अपु. | १९७५ | क्षतं भङ्गोप | " | " | क्षत्रियादेस्तु | नार. | १५१२; |
| क्रीत्वा सदोषं | बृह. | ७६५ | *क्षतं भङ्गोऽव | " | " | | काल्या. | १५२४ |
| * " " | " | ८८९ | क्षतस्याल्पम | बृह. | १६४७ | क्षत्रियापुत्र | विष्णुः | १२४० |
| *क्रीत्वा सानुश | काल्या. | ८९७ | *क्षतायामक्ष | याज्ञ. | १३३१ | क्षत्रियायां त | भा. | १२४४ |
| क्रीकन्तौ पुत्रे | वेदाः | ९८५ | *क्षतिर्भङ्गोऽव | काल्या. | १६४९ | क्षत्रियायाम | मनुः | १८६० |
| कुदं तं तु पि | भा. | १०२७, | क्षतायासुग्रा | कौ. | ११८५ | क्षत्रियायास्त | भा. | १२४४ |
| | | १२८५ | क्षतारं क्षत्रि | नार. | ११०५ | क्षत्रियायास्तु | " | १२४३ |
| *कुदकृष्टप्र | बृह. | ८०४ | क्षत्रं वै यमो | वेदाः | ११२२ | क्षत्रियाया ह | " | १२४४ |
| कुदहृष्टप्र | " | " | *क्षत्रजातास्त्रि | याज्ञ. | १२४९ | क्षत्रिया षट् | नार. | ११००; |
| कुदहृष्टभी | गौत. | ७९३ | क्षत्रजास्त्रिभ्ये | " | " ; | | देव. | १११२ |
| कूरमस्या आ | वेदाः | १६०० | | बृह. | १२५१ | *क्षत्रियेण वै | विष्णुः | १२४१ |
| *कूरमेतत्क | " | ९८४ | क्षत्रविदशूद्र | काल्या. | ८३६ | क्षत्रिये त्रिगु | बृह. | ८०३ |
| क्रेता पण्यं प | नार. | ८९४ | क्षत्रस्यातिप्र | मनुः | १९३१ | क्षत्रियो हि स्व | भा. | १२४४ |
| *क्रेता मूल्यं स | याज्ञ. | ७६१ | *क्षत्राद्याः प्रति | नार. | ११०५ | क्षन्तव्यं प्रभु | मनुः | १७०१ |
| *क्रेतामूल्यम | विष्णुः | ७५७ | क्षत्रियं चैव | मनुः | ८२०, | क्षमया धार | अपु. | १९७० |
| " " | याज्ञ. | ७६१ | | १९२७ | | क्षयं वृद्धि च | याज्ञ. | ८९२; |
| क्रेतारश्चैव | नार. | १७५५; | क्षत्रियं त्रिगु | कौ. | ८१७ | | नार. | ८९५ |
| *क्रेतारश्चौर | काल्या. | १७६२ | क्षत्रियं दूष | विष्णुः | १६१० | क्षयः संस्क्रिय | " | १७४६ |
| | " | " | *क्षत्रियं मध्य | याज्ञ. | १६३६ | *क्षयवृद्धि च | " | ८९५ |

| | | | | | | | | |
|---------------------|---------|-------|-------------------|---------|-------|-------------------|---------|-------|
| क्षयव्ययम | भा. | ८६१ | क्षेत्रं सशस्य | बृह. | ९५२ | क्षेत्रिकस्यात्य | मनुः | १७१४ |
| क्षयव्ययौ त | नार. | ७८१ | *क्षेत्रं साधार | ,, | १५६९ | क्षेत्रिकस्यावि | शंखः | १२८२ |
| *क्षयहानिर्य | बृह. | ७८५ | क्षेत्रकूपत | मनुः | ९३७; | क्षेत्रिकस्यैव | मनुः | १०७४ |
| *क्षयाक्षयौ त | नार. | ७८१ | | कात्या. | ९५८ | * , , | ,, | १३१८ |
| क्षयी चाप्यापि | मनुः | १९३० | क्षेत्रजं केचि | भा. | १२८७ | क्षेत्रिकानुम | नार. | ११०३ |
| क्षये मूल्यं स्ते | कौ. | ७५७ | क्षेत्रजः कानि | बृह. | १३५५ | * , , | कात्या. | १३४९ |
| क्षयोदयेन | बृह. | ९५२ | क्षेत्रजः क्षेत्र | याज्ञ. | १३३० | क्षेत्रिणः पुत्रो | वसि. | १२७२ |
| क्षयोदयौ जी | ,, | ,, | *क्षेत्रजादिसु | मनुः | १३१० | क्षेत्रियः पार | गौत. | १३८७ |
| क्षयो हानिर्य | ,, | ७८५ | क्षेत्रजादीन्सु | ,, | ,, | *क्षेत्रियस्य म | कात्या. | १३४९ |
| क्षिप्यानमपि | भवि. | १६५५ | क्षेत्रजाद्याः सु | बृह. | १३४८ | *क्षेत्रियस्यात्य | मनुः | १७१४ |
| *क्षिपन् विप्रा | बृह. | १७९० | क्षेत्रजेषु च | नार. | ११९२ | *क्षेत्रियस्यावि | शंखः | १२८२ |
| *क्षिपन् श्वस्वा | ,, | ,, | क्षेत्रजेष्वपि | ,, | ,, | क्षेत्री तल्लभ | परा. | १११७ |
| क्षिपन् स्वस्वा | ,, | ,, | क्षेत्रजो गर्हि | बृह. | १३४९ | क्षेत्रे वा जन | कौ. | १२८८ |
| *क्षिप्यतेऽन्यगृ | ,, | ७५० | क्षेत्रजो वाऽप्य | भा. | १२८७ | क्षेत्रेष्वन्येषु | मनुः | ९११ |
| क्षीणदायकु | कौ. | १६८२ | क्षेत्रदारह | वसि. | १६०८; | क्षेत्रोपकर | बृह. | १६४६ |
| क्षीणांश्च विभ | हारी. | ११६३ | | मनुः | १६२६ | क्षेत्रोपभोग | माक. | ९६२ |
| क्षीबोऽन्यो यदि | शाता. | १११६ | *क्षेत्रदाराप | वसि. | १६०८; | क्षेपं करोति | याज्ञ. | १७७९ |
| क्षीरं यदस्याः | वेदाः | १६०० | क्षेत्रबीजस | मनुः | १६२६ | *क्षेमं पूर्तं या | लौगा. | १२३३ |
| *क्षीरादपेतं | बृह. | ८९६ | क्षेत्रभूता स्मृ | ,, | १०७० | क्षेमं पूर्तं यो | ,, | ,, |
| क्षीरेण ज्ञातः | वेदाः | ९६४ | क्षेत्रमर्यादा | ,, | ,, | क्षेमकृद्राजा | आप. | १६६४ |
| क्षुद्रकद्रव्य | कौ. | १८०० | क्षेत्रमिव वि | शंखः | ९२६ | *क्षेमपूर्तयो | लौगा. | १२३३ |
| क्षुद्रकाणां प | मनुः | १८१० | क्षेत्रमेकं त | वेदाः | ९२२ | क्षेमकौशेया | कौ. | १६७३ |
| क्षुद्रद्रव्याप | विष्णुः | १६७० | *क्षेत्रमेकं द्व | बृह. | ६५४ | खण्डशःछेद | यमः | १७९२. |
| क्षुद्रपशवः | शंखः | ९०५ | *क्षेत्रवस्तुत | ,, | ,, | खदिरार्जुन- | स्कन्द. | १९६५ |
| *क्षुद्रपशवो | ,, | ,, | क्षेत्रवास्तुत | कात्या. | ९५५ | खनिरत्ननि | कौ. | १६७५ |
| क्षुद्रपशुम | कौ. | ९३१ | क्षेत्रविवादं | ,, | ,, | खनिसारक | ,, | १६८८. |
| क्षुद्रपशूनां | ,, | ९०६, | *क्षेत्रवेदमप्रा | कौ. | ९२९ | खरगोमहि | कात्या. | १८३४ |
| | | १८०० | क्षेत्रवेदमव | याज्ञ. | १६३९ | खर्जूरबद | बृह. | १७६१; |
| क्षुद्रमध्यम | याज्ञ. | १७३८ | *क्षेत्रशस्यं स | ,, | ,, | कात्या. | १७६३ | |
| * , , | नार. | १७४४ | क्षेत्रसीमावि | बृह. | ९५२ | खलाक्षेत्राद | मनुः | १७२६ |
| क्षुद्रमध्योत्त | ,, | ,, | क्षेत्रस्य हर | नार. | ९४४ | खशजाताः प्र | बृह. | १९४१ |
| क्षुद्रशाखाच्छे | कौ. | १८०० | क्षेत्रादिकं य | याज्ञ. | ९४२ | खातखातस्य | नार. | ९४८, |
| *क्षुद्राणां च प | मनुः | १८१० | क्षेत्रालुपेतं | बृह. | ६५२ | | ११३१ | |
| क्षुधितं क्षुधि | स्कन्द. | १९६६ | *क्षेत्राधिकारा | ,, | ८९६ | खातप्रावृत्ति | कौ. | ९३० |
| क्षुरधारा वि | भा. | १०३२, | क्षेत्राधिकारो | नार. | ९४४ | खातसोपान | ,, | ९२७ |
| | | १०३३ | क्षेत्राभावे त | ,, | ,, | खादको वित्त | हारी. | ६६१ |
| क्षेत्रं गृहीत्वा | बृह. | ९५४; | क्षेत्रारामगृ | भार. | ७३१ | *खादयेत्सार | बृह. | १८८७ |
| | व्यासः | ९६१ | | कात्या. | ८९८, | खादयेद्वा सा | ,, | ,, |
| क्षेत्रं चेद् विक्र | नार. | ९४८ | क्षेत्रारामवि | १२०१ | १२०१ | खिलोपचारं | नार. | ९४८ |
| क्षेत्रं तत्सदृ | शंखः | ७५७; | क्षेत्रारामादि | ,, | ९२० | खेदमास्थाय | भा. | १०३३ |
| | कात्या. | ७६७ | क्षेत्रिकस्य त | बृह. | ७३१ | गङ्गायमुन | बौधा. | १९२०; |
| क्षेत्रं त्रिपुर | नार. | ९४९ | क्षेत्रिकस्य तु | कात्या. | ९६० | | वसि. | १९२१ |
| क्षेत्रं परिगृ | आप. | ८४२ | क्षेत्रिकस्य म | मनुः | १३१८ | *गच्छतः स्वामि | नार. | ८२९ |
| क्षेत्रं बीजव | नार. | ११०२ | क्षेत्रिकस्य य | कात्या. | १३४९ | गच्छेत या तृ | अनि. | १११८ |
| *क्षेत्रं सदस्त | बृह. | १६४६ | क्षेत्रिकस्याक्षि | नार. | ११०२ | *गजाश्वगवो | विष्णुः | १७९७ |
| *क्षेत्रं समस्त | ,, | ९५२ | | कौ. | ९३२ | गजाश्वोष्ट्रगो | ,, | १६०९, |

| | |
|------------------|-----------------------|
| गणका वञ्च | वृह. १७५९, १९१४ |
| गणद्रव्यं ह | याज्ञ. ८६७ |
| गणद्रव्यस्या | विष्णुः ८५९ |
| *गणनावञ्च | वृह. १९१४ |
| गणमुख्यैस्तु | भा. ८६१ |
| गणमुद्दिश्य | कात्या. ८७६ |
| *गणवृद्धाद | नार. ९४६ |
| गणानां च कु | भा. ८६१ |
| *गणानां वञ्च | वृह. १९१४ |
| गणानां वृत्ति | भा. ८६१ |
| गणानां श्रेणि | कात्या. ८७६ |
| गणिकादुद्दि | कौ. १८४९ |
| *गणितं तुलि | नार. ८८६ |
| *गणितानां शिल्पि | कात्या. ८७६ |
| गणितं तुलि | नार. ८८६ |
| *गणिवृद्धाद | ९४६ |
| गण्यपण्येष्व | कौ. १६७७ |
| गन्तुं ब्रह्मन्स | भा. १९७८ |
| गन्धद्रव्यस्य | स्मृत्य. १११८ |
| गन्धद्रव्यैर | नार. १९३८ |
| गन्धमाल्यम | ९६४५ |
| गन्धमाल्याम्ब | कात्या. १८८७ |
| गन्धमाल्यैः स | वृह. १२२३ |
| गन्धर्वाप्सर | वेदाः १००८ |
| गन्धर्वाप्सरो | ९७६, |
| गन्धर्वो अप्सव | १८३६ |
| गम्यं त्वभावे | याज्ञ. १०७८ |
| गम्याः स्युरानु | नार. १८८३ |
| गम्या अपि हि | ९७६ |
| गम्यास्वपि पु | याज्ञ. १८७७ |
| *गम्यास्वपि हि | नार. १८८३ |
| गम्येन वा पुं | कौ. १०३८ |
| गयां यास्यति | वृह. १३४९ |
| गयायां च त | शाता. १३५२ |
| गयायां पिण्ड | देव. १३५० |
| गरदामिद | विष्णुः १६०९, १६७१ |
| गरीयसि ग | नार. १७४९ |
| ×गर्तैः सभास्था | नि. १२५५ |
| गर्तानपं सु | वृह. ७८७ |
| ×गर्तारोहिणी | नि. १२५५ |
| गर्दभाजावि | मनुः १८११ |
| *गर्भेष्नीमध | हारी. १०१४ |

| | |
|--------------------|---------------------------|
| गर्भेष्नीमधो | हारी. १०१४ |
| गर्भेपालो न | कात्या. १८८७ |
| गर्भभर्तृव | वसि. १०२१; याज्ञ. १०८६ |
| गर्भस्थैः सह | नार. ६९५ |
| गर्भस्य पात | कात्या. १६५१ |
| *गर्भानुपं सु | वृह. ७८७ |
| गर्भिणा मासा | कौ. १६१९ |
| गर्भिणी तु द्वि | मनुः १९२७, १९४६ |
| गर्भिणी या सं | विष्णुः १२७९ |
| गर्भेणाविज्ञा | वेदाः १६०० |
| गर्भे नु नो ज | ९७६, १८३६ |
| गर्भे भर्तृव | याज्ञ. १०८६ |
| गर्ह्यैः स पापो | कात्या. ८७६ |
| *गर्ह्यैश्च पापो | ९७६ |
| *गलत्सभिक | याज्ञ. १९०८ |
| गवत्रं गोमि | नार. ९१८ |
| *गवत्रं स्वामि | ९७६ |
| *गवयाजावि | मनुः १८११ |
| गवां क्षीरं प्र | स्कन्द. १९६७ |
| *गवां क्षीरमृ | मनुः ९०७ |
| गवां निर्गच्छ | कात्या. ९१९ |
| *गवां शतं व | नार. ९१५ |
| गवां शताद् | ९७६ |
| गवादिषु प्र | १७५३ |
| *गवादिष्वप | ९७६ |
| *गवाथै ब्राह्म | बौधा. १६०७ |
| गवाश्वखरा | कौ. ९०६ |
| *गवाश्वगजो | विष्णुः १७९७ |
| *गवाश्वोष्ट्रघा | ९७६ |
| गान्धर्वासुरो | कौ. १४३० |
| गायन्तं स्त्रियः | वेदाः ९९४ |
| *गार्हस्थ्यं गां च | वसि. १७९५ |
| गार्हस्थ्यज्ञानां | १६६८, १७९५ |
| *गार्हस्थ्यज्ञे च | ९७६ |
| गावः पादं प्र | नार. ९१७ |
| *गावस्तु गोमि | ९१८ |
| गावो घृतस्य | वेदाः ९९६ |
| गावो नवत् | भा. १०३२ |
| गावो यवं प्र | वेदाः ९०२ |
| गिरा च श्रुष्टिः | ९२३ |
| *गिरिभैक्ष्यं कु | मनुः ११२७ |
| गुडे मधुनि | वृह. ६३० |

| | |
|----------------------|----------------------------|
| *गुणवान् अ | बौधा. १२३९ |
| गुणवान् हि | ९७६ |
| गुगुश्रेष्ठ ए | भा. १९८४ |
| गुणहानस्य | वृह. १७९० |
| *गुणाधिकस्य | ९५२ |
| गुणाधिकाय | ९७६ |
| गुणापेक्षं भ | नार. १०९६ |
| गुप्तगुह्या स | भा. १०२८ |
| गुप्तपरदा | विष्णुः १८४६ |
| *गुप्तं चेत् शू | मनुः १८६४ |
| गुप्तं चेद्वधो | गौत. १८४२ |
| गुप्ताङ्गस्य | नार. ८२९ |
| *गुप्ता चेद्वधा | गौत. १८४२ |
| गुप्ता चेद्वधो | ९७६ |
| *गुप्ता चेद्वरो | ९७६ |
| *गुप्तायां संग्र | व्यासः १८८९ |
| गुप्तायाः संग्र | ९७६ |
| गुप्तास्वेवं भ | मत्स्य. १८९२ |
| गुप्ते तु बन्ध | यमः १६५२ |
| *गुप्तो लिङ्गाङ्ग | मनुः १८६२ |
| गुरवस्तोषि | भा. १२८३ |
| गुरुं वा ताप | मत्स्य. १६५५ |
| गुरुं वा बाल | विष्णुः १६१२; मनुः १६२४ |
| गुरुतल्पे भ | १६२७; अपु. १९७० |
| गुरुत्वादस्य | नार. ९४५ |
| गुरुप्रसूता | गौत. १०१२ |
| गुरुरात्मव | नार. १७५१ |
| गुरुर्गरीय. | भा. १९८४ |
| गुरुलाघव | स्कन्द. १९६६ |
| गुरुवच्च स्तु | मनुः १०६६ |
| गुरुशस्त्रे नि | भा. १९८३ |
| गुरूणां चैव | १०२८ |
| गुरूनाक्षार | विष्णुः १७७० |
| *गुरूनाक्षिप | ९७६ |
| गुरोः क्षुद्रात् | अनि. १९७६ |
| गुरोर्गरीय | भा. १९८३ |
| गुरोर्हि दीर्घ | ९७६ |
| गुरोर्हि क्वच | १०२८ |
| गुरोर्हि क्वच | वसि. १६६८; |
| शंखः १६७२; मनुः १७०३ | |
| गुर्वाचार्यन् | कात्या. ९५९ |
| *गुर्वादेशानि | संग्र. १५२९ |
| गुर्वादेशानि | ९७६ |
| गुल्मगुच्छक्षु | याज्ञ. १८२३ |

| | | | | | | | | |
|------------------|---------|-------|------------------|----------|--------------|-------------------|-----------|-------|
| *गुल्मानन्यांश्च | मनुः | ९३३ | गृहभागल्य | बृह. | १८८६ | गृहीत्वाऽपहु | कालि. | १३७७ |
| गुल्मान्वेषुंश्च | " | " | गृहमेधा भ | ऋष्य. | १११७ | गृहीत्वा बन्ध | बृह. | ७५१ |
| गुहा चरन्ती | वेदाः | ९६७ | *गृहमेधी भ | " | " | गृहीत्वा मुस | कात्या. | ६७४ |
| गुह्याङ्गस्पर्श | नार. | ८२९ | गृहवार्याप | बृह. | ६५४; | गृहीत्वा वाह | मनुः | १७०२ |
| गृहं चैवाप | बौधा. | १२७० | | कात्या. | ८५४ | गृहीत्वा वेत | बृह. | ९५४ |
| *गृहः प्रकाशः | बृह. | १९१४ | गृहवासः सु | दक्षः | १११४ | गृहीत्वा वेत | कौ. | ८४४; |
| गृहजं चाप | बौधा. | १२७० | गृहविभागे | स्मृत्य. | १२३३ | मत्स्य. | ८५५; अपु. | १९७५ |
| *गृहजं वाप | " | " | गृहस्थः सट्ट | गौत. | १०११ | * " " | बृह. | ८५३ |
| *गृहद्रव्यवि | कात्या. | १२३० | गृहस्थो विनी | वासि. | १०२० | गृहीत्वोपग | नार. | ७०५ |
| *गृहद्रव्यादि | " | " | *गृहात्तोषः फ | बृह. | ६२९ | गृहे गूढोत्प | बौधा. | १२६९ |
| गृहद्रव्याभि | " | " | *गृहात्तोषः श | " | " | गृहे च गूढ | यमः | १३५१ |
| *गृहां द्विजाति | बृह. | १२५१ | गृहात् स्तोमः | " | " | गृहे च गूढो | वासि. | १२७३; |
| गृहाजीविनां | कौ. | १६७९ | गृहान्गच्छ गृ | वेदाः | ९८३, | | विष्णुः | १२७९ |
| *गृहोत्पन्नः ष | विष्णुः | १२७९ | | | १००४ | *गृहे जातस्त | नार. | ८३० |
| गृहोत्पन्नश्च | ब्रह्म. | १३७४ | गृहाश्रमात्प | दक्षः | १११४ | *गृहे तु गूढ | यमः | १३५१ |
| गृहोत्पन्नोऽप | मनुः | १३२०; | *गृहीणां द्रव्या | वासि. | १९४९ | *गृहे तु मुषि | नार. | १७५७; |
| | कालि. | १३७६ | गृहीतं पाल | बृह. | ७५१ | | काल्या. | १७६२ |
| गृहमानस्तु | नार. | १६४४ | गृहीतं स्त्री ध | याज्ञ. | १४४७ | *गृहे पीडाक | विष्णुः | १६१० |
| गृहयित्वात्म | शाता. | १११६ | गृहीतः शङ्क | बृह. | १६४८; | गृहे प्रच्छन्न | याज्ञ. | १३३१ |
| गृभ्णाभि ते सौ | वेदाः | ९८५ | | याज्ञ. | १७४१ | गृहे वै मुषि | नार. | १७५७ |
| गृहं क्षेत्रं च | नार. | ९४९ | *गृहीतगर्भा | वासि. | १४२७ | गृहेषु मुषि | कात्या. | १७६२ |
| गृहं क्षेत्रमा | कौ. | ९२६ | *गृहीतदोषा | कात्या. | ६५८ | गृहोद्यानत | " | ९६० |
| गृहं गृहस्य | कात्या. | ९५६ | *गृहीतदोषो | " | " | गृहोपभोग | व्यासः | ६३४ |
| गृहं तडाग | मनुः | ९३९; | *गृहीतद्रव्य | बृह. | ७५१ | *गृहोपभोग्य | " | " |
| | अपु. | १९७६ | गृहीतधन | विष्णुः | ६३६ | गृहोपयोगि | नार. | ७८४ |
| गृहं द्विजात | बृम. | १२५२ | गृहीतबन्धो | व्यासः | ६७६ | गृहोपस्कर | बृह. | १२२२; |
| गृहकुल्यादि | विष्णुः | १६१० | गृहीतमूल्यं | विष्णुः | ८७८, | | कात्या. | १२३०, |
| *गृहकुल्याद्यु | " | " | | | १६११; याज्ञ. | | १४५४ | |
| गृहक्षेत्रयो | शंखः | ९२५ | *गृहीतमूल्यः | विष्णुः | ८७८ | *गृहन्ति छन्न | बृह. | १७५९ |
| गृहक्षेत्रवि | वासि. | " ; | *गृहीतमूल्या | ब्रह्म. | ९२१ | " " | व्यासः | १७६४ |
| | बृह. | ९५१ | गृहीतमूल्यो | " | " | गृहन्ति-बद्ध | अनि. | १९४३ |
| गृहक्षेत्राणि | प्रजा. | १२३२ | * " " | विष्णुः | ८७८ | *गृहन् शूद्रो | नार. | १९६१ |
| गृहक्षेत्राप | अपु. | १६५४; | गृहीतमौप | याज्ञ. | ७४५ | गृह्णात्यदत्तं | " | ८०१ |
| | मत्स्य. | १६५५ | गृहीतवेत | " | ८४६. | गृह्णीयातां वि | बौधा. | १६०७. |
| *गृहक्षेत्राभि | " | " | | | १८७९; बृह. | गृह्णीयात्तत्र | " | १९६१ |
| *गृहक्षेत्रे च | नार. | ९४९ | * " " | नार. | ८५१ | गृह्णीयात्तत्त्व | कात्या. | १७६३ |
| गृहजातदा | कौ. | ८१७ | गृहीतशस्त्र | उश. | १६५२ | *गृह्णीयात्तु त | नार. | १९६१ |
| गृहजातस्त | नार. | ८२९ | गृहीतशिल्पः | नार. | ८२८ | *गृह्णीयाद् धू | याज्ञ. | १९०८ |
| गृहद्वाराशु | " | " | गृहीतानुक्र | याज्ञ. | ७२२ | गृह्णीयाद्दत्तं | " | " |
| गृहपीडाक | विष्णुः | १६१० | गृहीतान् पू | कौ. | १६८१ | *गृह्णीयुर्धृते | " | " |
| *गृहप्रसादा | कात्या. | ९५८ | गृहीतान् स | " | " | *गृह्यते तु क्षे | बृह. | ६२९ |
| गृहप्रसादा | " | " | गृहीतायाम | " | ८६३ | *गृह्य दाप्योऽन्य | नार. | १७५६ |
| *गृहभङ्गाद्यु | विष्णुः | १६१० | *गृहीतार्थः क्र | याज्ञ. | ९२२ | गृह्या चेत कुटु | कौ. | ८१७ |
| *गृहभार्याप | बृह. | ६५४ | *गृहीते शिल्पि | नार. | ८२८ | गौ अश्वमिह | वेदाः | ८१४, |
| *गृहभूकुल्या | विष्णुः | १६१० | गृहीत्वा तस्य | कात्या. | १७६२ | | ९२४ | |
| गृहमभ्ये त | शौन. | १३६४ | गृहीत्वा पञ्च | अनि. | १३७४; | *गोकुमारीं दे | मनुः | १८१२ |

| | | | | | |
|------------------|---------------|------------------|--------------|------------------|---------------|
| गोकुमारीदे | मनुः १८११; | गोप्याधिदिगु | बृह. ६५४ | *ग्रहणं लक्ष | कात्या. ७२९ |
| | कात्या. १८३४ | गोप्याधिस्तु प | भार. ६६०; | *ग्रहीता निहु | बृह. ७५१ |
| *गोकुमारीदे | मनुः १८११ | | मरी. , | *ग्रहीताऽपहु | ,, , |
| गोगमने च | विष्णुः १८४६ | गोप्रचारश्च | कात्या. १२२८ | ग्रहीता प्रति | व्यासः ७५६ |
| *गोप्यर्थं तृण | गौत. १६५७ | गोत्राह्वणं य | संव १६५३ | ग्रहीता यदि | मनुः ६८० |
| *गोप्यर्थी तृण | ,, , | गोत्राह्वणजि | बृह. १९४१ | ग्रहीतुं वा न | स्मृत्य. १३७४ |
| गोऽप्यर्थं तृण | ,, , | गोत्राह्वणार्थ | याज्ञ. १७४४ | ग्रहीतुः सह | नार. ७४८; |
| *गोघातेऽयैक | विष्णुः १७९७ | गोभिर्विनाशि | उद्य. ९२० | | कात्या ७५३ |
| गोचरे यस्य | नार. १७५६ | गोमिश्र नर | व्यासः १९७६ | ग्रहीतुगम | नार. ८५२ |
| गोचर्ममात्रा + | विष्णुः ६३७ | *गोमिश्र भक्षि | नार. ९१८ | *ग्रहीतुर्वा भ | ,, , |
| *गोजर्धं गोमि | नार. ९१८ | गोमिष्टरेमा | वेदाः १९०० | *ग्रहीतुदोषं | कात्या. ६५८ |
| गोजिद् भूया | वेदाः १९०१ | गोमिस्तु भक्षि | नार. ९१८ | ग्रहीतुदोषा | ,, , |
| गोत्रऋक्थालु | मनुः १३२७ | गोमयप्रदे | कौ. १६८९ | ग्रहीतुद्रव्य | बृह. ७५१ |
| *गोत्रजेनाथ | नार. १४०१ | गोमिष्टुनादा | ,, १०३४ | ग्रामकूटम | कौ. १६८० |
| गोत्रजेनापि | ,, , | गोमिनामेव | मनुः १०७३; | ग्रामक्षेत्रगृ | बृह. ९४९ |
| गोत्रजैश्चाप | शंखः १५७५ | | वसि. १२७२ | *ग्रामघाते इ | मनुः १६९८ |
| *गोत्रजैश्चाप्य | ,, , | गोरक्षकाणां | कौ. ८७८ | *ग्रामघाते त | ,, , |
| गोत्रद्वयेऽप्य | प्रव. १३८४ | गोरसधान्या | हारी. १०१५ | *ग्रामघाते से | ,, , |
| गोत्रभागावि | शंखः १५७५ | गोरसेक्षुवि | नार. १७४९ | ग्रामघाते हि | ,, , |
| गोत्ररिक्तये ज | मनुः १३२७ | *गोरसे तद्वि | ,, , | | १९२९ |
| गोत्रसाधार | बृह. १५६९ | गोऽश्वोष्ट्रगजा | विष्णुः १६६९ | ग्रामचारी नृ | ब्रह्म. ९२१ |
| गोत्रस्थितिस्तु | कात्या. १९४२ | *गोऽश्वोष्ट्रदास | मनुः १०७३ | ग्रामजातिस | मनुः ८६५ |
| गोत्रस्य नाशं | भा. ८६१ | गोषु ब्रह्मण | ,, १७१३; | ग्रामदेववृ | कौ. ९०६ |
| गोत्रान्तरप्र | मरी. १३५२; | | नार. १७४९ | ग्रामदेशयोः | विष्णुः १७७० |
| | संप्र. १३८४ | *गोष्ठागारासु | मनुः १६२९ | ग्रामदोषाणां | ,, १९२१ |
| गोत्रेण विव | स्मृत्य. १११८ | गोसहस्रं श | देव. १५२६ | *ग्रामद्रव्यम | शंखः ९२६ |
| गोदेवार्थं ह | अपु. १७६६ | *गोसहस्रम् | बौधा. १६०६ | *ग्रामपशुघा | विष्णुः १७९७ |
| गोपः क्षीरभृ | मनुः ९०७ | गोस्तेयं सुरा | वेदाः १५९२ | ग्रामयोरुभ | बृह. ९५२; |
| *गोपदे यस्य | नार. १७५६ | *गोस्वाम्यनुभृ | मनुः ९०७ | | व्यासः ९६१ |
| *गोपशाकुनि | ,, ९४४ | गोस्वाम्यनुम | ,, , | ग्रामशोभाश्च | कौ. ८६२ |
| गोपशौण्डिक | विष्णुः ६७९; | गोहर्तुर्नासि | बृह. १७६० | ग्रामश्रेणिग | बृह. ८७२ |
| | याज्ञ. ६८३ | गोः प्रसूता द | नार. ९१९ | *ग्रामश्रेणीग | ,, , |
| | ,, ९१४ | शौञ्जिकचार्मि | विष्णुः १९०३ | *ग्रामसामन्त | स्मृत्य. ९०१ |
| गोपस्ताब्धस्तु | नार. ९४४ | गौतमानाम | कात्या. १७६२ | *ग्रामसीमादि | कात्या. ९५५ |
| गोपाः शाकुनि | याज्ञ. ९४० | गौरवानुक | नार. १७८५ | ग्रामसीमासु | नार. ९४४; |
| *गोपाः सीमाक | ,, , | गौरवैणाभि | भा. १९८४ | | कात्या. ९५५ |
| गोपाः सीमाकृ | वृहा. ९६२ | गौरेव तान् | वेदाः १४६४, | ग्रामादयश्च | ,, ६५७ |
| | याज्ञ. ९४० | | १६०० | ग्रामान्तरं ब्र | अनि. १५८९ |
| *गोपाः सीमाः कृ | ब्रह्म. ९२१ | गौश्चेत्तदर्ध | विष्णुः ९०५ | *ग्रामान्तरातु | याज्ञ. ६२० |
| गोपालहस्त | गौत. १८४२ | ग्रन्थिभेदका | ,, १६११, | ग्रामान्तराह | हारी. १०१५ |
| *गोप्ता चेद्बधो | भा. ८६० | | १६६९ | *ग्रामान्तरे ह | कात्या. १७६३ |
| गोप्ता तस्माद् | कात्या. ६५९ | ग्रसितारः स्व | मनुः १६२८ | *ग्रामान्ते तु ह | ,, , |
| गोप्याधिं द्विगु | याज्ञ. ६४२ | ग्रसेत्प्रविद्य | कात्या. ९१९ | ग्रामान्तेषु वा | कौ. १६२० |
| *गोप्याधिभोग | ,, , | *ग्रहः प्रकाशः | बृह. १९१४ | ग्रामान्तेषु ह | कात्या. १७६३ |
| *गोप्याधिभोगि | ,, , | ग्रहणं तत्प्र | कात्या. ९२० | ग्रामारामवा | कौ. १६२० |
| गोप्याधिभोगे | बृह. ७३१ | ग्रहणं रक्ष | ,, , ७२९ | ग्रामार्थेच प्रा | ,, ९६२ |

| | | | | | | | | |
|--------------------|---------|-------|------------------|---------|-------|--------------------|------------|-------|
| आमिकस्य प्रा | कौ. | ९३२ | गलहे शतिक | याज्ञ. | १९०८ | चतस्रश्च जा | वेदा: | ७९१, |
| *आमीणककु | मनु: | ९३६ | घनधाराप्र | अपु. | १९७० | चतस्रस्तु-प | वसि. | ८१४ |
| *आमीयककु | " | " | *घातः संदय | बृह. | १६४७ | चतस्रस्तु-प | वसि. | १०२१; |
| *ग्रामे एककु | " | " | *घातके निष्कृ | देव. | १६५१ | चतस्रो जाया | व्यास: | ११११ |
| ग्रामेच्छया गो | याज्ञ. | ९१२ | घातयेत् स्वय | कौ. | १६१६ | चतस्रो विहि | वेदा: | १००९ |
| ग्रामेयककु | मनु: | ९३६ | घातयेद्विवि | मनु: | १६९८, | चतस्रो विहि | भा. | १२४३ |
| ग्रामे व्रजे वि | नार. | १७५४ | | १९२९ | | चतुःशतांशं | शुनी. | १७६७ |
| *ग्रामेषु च भ | याज्ञ. | १७४३ | घाताभियोग | कौ. | १८०० | *चतुःशालं स्य | बृह. | ९५३ |
| *ग्रामेषु चार्या | आप. | १६६४ | *घातितेऽथ ह | याज्ञ. | १७४३ | *चतुःशालः स्य | " | " |
| ग्रामेषु नग | " | " | घातितेऽपह | " | " | चतुःशालस्य | " | " |
| ग्रामेष्वन्तः सा | कौ. | १६२० | घृतं मधु म | नार. | १२३८ | *चतुःशाले स्य | " | " |
| ग्रामेष्वन्वेष | नार. | १७५४ | *घृतं वस्त्रम | कात्या. | १२२८ | *चतुःशाल्यं स्य | " | " |
| ग्रामेष्वपि च | मनु: | १६९७; | घृतप्रतीका | वेदा: | १००६ | चतुःशिखण्डा | वेदा: | १००६ |
| | | १९२९ | घृतमप्सरा | " | १९०१ | चतुःसामन्त | कात्या. | ८९८; |
| *ग्रामेष्वेककु | " | ९३६ | घृतस्य स्तोत्रं | " | ९८९ | सुम. | ९००; जातू. | ९०१ |
| ग्रामे ससीम्नि | नार. | ९४७ | *घृतस्याष्टगु | नार. | ६२६ | *चतुःसुवर्णं | मनु: | ८६४; |
| ग्रामो ग्रामस्य | कात्या. | ९५६ | " | भार. | ६३५ | चतुःसुवर्णं | बृह. | ८७३ |
| ग्रामोपान्ते च | नार. | ९१६ | *घृते त्वेकाद | नार. | १७५० | चतुःसुवर्णाः | " | " |
| *ग्रामोपान्ते तु | " | " | घृतेन कलिं | वेदा: | १९०१ | चतुःसुवर्णाः | मनु: | ८६४ |
| *ग्रामोपान्तेषु | " | " | घृतेनाभ्यज्य | नार. | ११०१ | चतुःसुवर्णाः | मनु: | ८६४ |
| ग्राम्यपशुघा | विष्णु: | १६०९, | *घृतेनाभ्युक्ष्य | " | " | *चतुरशान् | " | १२४७ |
| | | १७९७ | घोषायै चित्पि | वेदा: | ९६५ | चतुरङ्गुल | स्कन्द. | १९६६ |
| ग्राम्यपशुपी | " | " | घोषितस्तेन | बृह. | १७६० | चतुरश्विद् | वेदा: | १८९३ |
| *ग्राम्येच्छया गो | याज्ञ. | ९१२ | घ्नतः साहस्रः | कौ. | १६९० | चतुरस्रे म | स्कन्द. | १९६६ |
| आसाच्छादन | वसि. | १०२२; | चकार चैव | भा. | १०२७, | चतुरोऽशान् | बृह. | ७८८; |
| व्या. १३५५; कौ. | १३९१; | | | १२८५ | | विष्णुः १२४०; मनुः | बृह. | ६२८ |
| मनुः १३९३; कात्या. | १४०३, | | Xचकारैनां ग | नि. | १२५४ | *चतुर्गुणं चा | बृह. | ६२८ |
| | १४५७ | | चक्रकालवृ | गौत. | ६०७ | चतुर्गुणं वा | " | " |
| आहकं सर्व | " | १८८७ | चक्रयुक्तां ना | कौ. | १६१७ | चतुर्गुणात् | अनि. | १९६७ |
| *आहकस्य च | " | ७५३ | चक्रवृद्धिं स | मनुः | ६१८ | चतुर्गुणा स्या | भार. | ६३५ |
| *आहकस्य तु | " | " | चक्रवृद्धिः का | " | ६१५ | चतुर्णां वर्णा | बौधा. | ११८३ |
| आहकस्य हि | " | " | चक्रवृद्धिश्च | नार. | ६२४ | चतुर्णामपि | मनुः | १६२७, |
| आहकैर्गृह्य | याज्ञ. | १७४० | *चक्रवृद्धिस्त | " | " | | १८५६ | |
| आहको यदि | नार. | ६९६ | *चक्रवृद्धिस्तु | " | " | चतुर्थं तस्य | भा. | ८६० |
| *आहो तु यदि | " | " | *चक्रवृद्धया प्र | कात्या. | ७५४ | *चतुर्थः पौन | विष्णुः | १२७९ |
| आहं स्याद् द्वि | कात्या. | ७२९ | " | " | ८९८ | चतुर्थः सांप्र | मनुः | १३१५ |
| *आहः स पापो | " | ८७६ | चक्रवृद्धया वि | " | ७५४ | चतुर्थकाला | आप. | १६६५ |
| आह्यस्तूपनि | " | ७५४ | चक्षुनिरोध | आप. | १६०६ | चतुर्थपुर | कार्णा. | १३५६ |
| आह्या गृहाः सं | वेदा: | १२५९ | * | " | १६६४ | चतुर्थमन्या | कौ. | ११८५, |
| आह्यो दाप्योऽथ | नार. | १७५६ | चक्षुरेकं च | भा. | १२८३ | | १३९१ | |
| *आह्यो दाप्योऽन्य | " | " | चक्षुर्नाशे ते | " | " | चतुर्थमष्ट | अपु. | १९६२ |
| आह्ये बहिर | कौ. | १९२४ | चक्षुर्निरोध | आप. | १६६४ | चतुर्थाशभा | गौत. | १२६४ |
| अहं दीव्यामि | भा. | ८१९ | *चक्षुर्निरोधो | " | " | *चतुर्थाशिन | " | " |
| अहः प्रकाशः | बृह. | १९१४ | चणकत्रीहि | मनुः | १७२३ | *चतुर्थाशिनो | " | " |
| अहश्चादि ग | विष्णुः | १९०३ | चण्डालारण्य | कौ. | १६१७ | *चतुर्थेन तु | कात्या. | ७०९ |
| अहहे कृतानि+ | वेदा: | १८९८ | चण्डालो जाय | नार. | ११०५ | चतुर्थेन न | " | " |

| | | | | | |
|--------------------|--------------|------------------|---------------|------------------|---------------|
| *चतुर्थेन य | कात्या. ७०९ | चाटचोरभ | बृह. ८७२ | चैत्यदैवत | कौ. ८६३ |
| चतुर्थे पति | अनि. १११८ | चाटतस्कर | याज्ञ. १९३२ | चैत्यमशान | याज्ञ. १८२३ |
| चतुर्थे यथा | कौ. १६१७ | चाण्डालदास | मार्क. ८३९ | *चौरं चोरेत्य | ,, १६३६ |
| चतुर्थो भागो | विष्णुः ८९१ | चाण्डालेनान | ,, " | चौरं त्वभय | कौ. ७७२ |
| चतुर्दशवि | नार. १०९४ | चाण्डालो ब्रात्य | भा. १२८७ | चौरं पारदा | ,, १६१८, |
| चतुर्धातस्य | विष्णुः ८९१ | चातुर्वर्ण्यपु | कौ. १२४५ | | १६८५ |
| चतुर्विंशति | कौ. १०३४, | चारकमाभि | ,, १६९० | चौरडामरि | ,, १६९० |
| १४३१; | याज्ञ. १८७९ | चारकादभि | ,, " | *चौरतः सलि | कात्या. ७८८ |
| चतुर्विधः क | नार. ८२५ | *चारचोरभ | बृह. ८७३ | चौरसमः स | गौत. १६५९ |
| *चतुर्विधाः क | ,, " | चारमन्त्रब | भा. ८६१ | चौरस्याज्ञं न | वेदाः १५९२ |
| चतुर्हस्तं तु | स्कन्द. १०६५ | चारमन्त्रवि | ,, " | चौरहस्ताज्ञ | कौ. १८५० |
| चतुर्होतारं | वेदाः १००६ | चारा ह्युत्साद | नार. १७५४ | चौराणां भक्त | नार. १७५५ |
| चतुष्टयीं वृ | बृह. ६२९ | चारेणोत्साह | मनुः १९३० | *चौराणां मुख्य | कात्या. ७८९ |
| *चतुष्पथं चै | मनुः १६९५ | चारविचिया | नार. १७५४ | चौराणामभि | कौ. १६८९ |
| चतुष्पथसु | नार. ९४६ | चारैश्चानेक | मनुः १६९५, | चौरापहृतं | बृह. १९६२ |
| चतुष्पथाश्चै | मनुः १६९५, | *चार्मिके रोम | १९२९ | *चौरापहृत | नार. ८३३ |
| १९२९; नार. १७५४ | नार. १७५४ | चिकित्सकानां | याज्ञ. १७३५ | चौरा ह्युत्साह | ,, " |
| *चतुष्पथेष्व | ,, ९४६ | चिकित्सयाचि | मनुः १६९९, | चौरिणाभिज्ञ | ,, १७५४ |
| *चतुष्पदकृ | याज्ञ. १८१९. | चित्तिरा उप | १९२९ | *चौरिष्वलभ्य | कौ. १६८६ |
| चतुष्पदाना | कौ. १६८४ | चिरकालं प्रो | नार. १०९४ | चौरं प्रदाप्या | नार. १७५७ |
| चतुष्पदाभा | ,, ११८४ | चिरकालं प्रो | वेदाः १००० | चौरतः सलि | याज्ञ. १७३९ |
| चतुष्पादकृ | याज्ञ. १८१९, | चिरकालप्रो | बृह. १५६९ | चौररक्षाधि | कात्या. ७८८ |
| | १९३३ | *चिरकालव्य | ,, " | चौररक्षाधि | अपु. १९६२ |
| चतुष्प्रकारः | बृह. ६७१ | *चिरकालव्य | गौत. ६०७ | *चौरराजारा | बृह. ७५० |
| चतुस्त्रिभ्येक | याज्ञ. १२४९; | *चिरकालात्प्रो | बृह. १५६९ | चौरहस्ताज्ञ | कात्या. १११० |
| | बृह. १२५१ | *चिरकालाव | गौत. ६०७ | चौरहृतं घ | विष्णुः १६७१, |
| चत्वारिंशत् | अनि. १९६७ | चिरप्रनष्टां | हारी. १९८२ | | १९५० |
| *चत्वारिंशत्य | याज्ञ. १८७९ | चिरप्रवासः | कौ. ६११ | *चौरहृतं प्र | नार. १७५७ |
| चत्वारिंशद्वा | अनि. १९६७ | चिरस्थाने द्वै | गौत. ६०७ | *चौरहृतं वि | गौत. १६६३ |
| चन्द्रस्याग्नेः पृ | मनुः १९३० | चिरावसञ्जे | बृह. ९५४; | चौरहृतम | ,, " " |
| चरञ्जलाक्षि | कात्या. १७६१ | *चिरावस्थाने | व्यासः ९६१ | | १९४९ |
| चरिते यथा | आप. १०१८, | *चिरिण पिहि | गौत. ६०७ | चौराणां भक्त | कात्या. १७६२ |
| | १८४४ | *चिह्नालङ्कार | नार. १९६१ | *चौराणां मुख | ,, ७८९ |
| *चरित्रं बन्ध | याज्ञ. ६४५ | चिरवासा द्वि | संव. १८९१ | चौराणां मुख्य | ,, " |
| चरित्रबन्ध | ,, " | चीर्णाः पीताश्च | मनुः १७०२ | *चौरापहृतं | विष्णुः १६७१ |
| चरित्रेभ्योऽस्य | नार. १९३६ | चुम्बने ताळु | नार. ९१५ | चौरापहृत | नार. ८३३ |
| चरुं बक्षरा | कौ. १९२५ | चूडाद्या यदि | कृहा. १८९१ | चौरिण वा पं | ,, १७५२; |
| चरुयुः पृथि | मनुः १६२७ | *चूडोपनय | कालि. १३७७ | | कात्या. १७६२ |
| चर्मकाष्ठेष्ट | व्यासः ८९९ | *चूडोपायन | ,, " | *चौरिण वा प्र | नार. १७५२ |
| चर्मचार्मिक | मनुः १६३०, | *चेष्टचारण | स्मृत्य. ७१५ | *चौरिणापि प | ,, " |
| | १८०६ | *चेद्भक्षयित्वो | विष्णुः ९०५ | *चौरि लब्धे ल | ,, १७५७ |
| *चर्मवर्मास्थि | वसि. ६०९ | चेलकौशेय | नार. १९३८ | *चौरैर्वाऽपि प्र | ,, १७५२ |
| चर्मशास्यास | कात्या. ६३३ | *चेष्टाभेदन | याज्ञ. १८१७ | चौरैर्हृतं ज | मनुः ७४१; |
| चलतश्चैता | गौत. १९१७ | चेष्टाभोजनं | विष्णुः १७९६; | | नार. ७४८ |
| चलस्वभावा | भा. १०३२ | | याज्ञ. १८१७ | चौरैर्हृतं प्र | ,, १७५७; |
| चाटचारण | स्मृत्य. ७१५ | | | कात्या. १७६३ | |

| | | | | | |
|-------------------|---------------|----------------|-------------------------|-------------------|--------------|
| *चौर्यकर्मप | मनुः १६९६ | *छेतारश्चैव | कात्या. १७६२ | जनयितुर | कौ. १२८८ |
| चौर्यपाहृथ | शंखः १६१२ | छेदने चैव | मनुः १८०७ | जनापरक्ति | बृह. १९४१ |
| चौर्यं तु तन्दु | स्कन्द. १९६७ | छेदने चोत्त | कात्या. १८३२ | जनियन्ति ना | वेदाः १००४ |
| छत्रं वेष्टन | भा. ८११ | *छेदने तूत्त | ” १८३३ | जनिष्ट योषा | ” ९८० |
| छद्मना काम | बृह. १८८६ | छेदनभेदे | कौ. १८०० | जनिष्टो अपो | ” ९८८ |
| *छद्मना कार | ” ” | छेदवर्जं प्र | मनुः १७७९ | जनीरिव प | ” ९७३ |
| छद्मना गृह | ” १८८५ | जगद्वाप्नोति | अपु. १९७० | *जन्मज्येष्ठस्य | मनुः १२३६ |
| *छद्मना याच | ” ७२५ | जगद्वाप्नोति | भा. ८४० | जन्मज्येष्ठेन | ” ” |
| छद्मना याचि | ” ” | जगद्वाप्नोति | ” १०२७, | *जन्मज्येष्ठस्य | ” ” |
| छन्दः पक्षे उ | वेदाः ९९३ | जगद्वाप्नोति | १२८५ | *जन्मज्येष्ठेन | ” ” |
| छन्दस्वती उ | ” ” | जघनार्थो वा | वेदाः १००७ | जन्मतस्तु प्र | भा. १९८४ |
| छन्दांस्येव त | ” ९९४ | जघनेन गा | ” १००९ | जन्मनामप | बृह. १५६९ |
| छदिमूत्रपु | कात्या. १७९८, | जघन्यं सेव | मनुः १८६६ | जन्मनामस्मृ | बृम. १५२७ |
| | १८३२ | जघन्यं सेव्य | ” ” | *जन्मनाम्नोः स्मृ | ” ” |
| छलभेतदि | कौ. १२०७ | जघन्यकर्म | नार. ८२९ | जन्मना स्वत्व | विष्णुः ११२५ |
| छागवृषभा | शंखः ९०५ | जघन्यजाश्च | बृह. १५६७ | जन्मप्रभृति | आनि. ८०७ |
| छायेवानुग | शुनी. १११९ | *जघन्यजास्तु | ” ” | जन्मविद्यायु | बृह. ११९३ |
| छिन्वा लिङ्गं व | याज्ञ. १८७४ | जघन्यमध्य | मनुः १६२८ | जपं तपस्ती | शुनी. १११९ |
| छिद्रं च पूर | मनुः ९१० | जघन्यशायी | नार. ८२६ | Xजमतेर्वा स्या | नि. १२५४ |
| *छिद्रं च वार | ” ” | *जघन्याश्चैव | बृह. १५६७ | जयं तस्याप | नार. १९११ |
| *छिद्रं निवार | ” ” | जघन्यासन | ” ११०६ | *जयस्तस्य प | ” ” |
| *छिन्यात्तं तं नृ | कात्या. १७६१ | *जघन्यास्तेऽपि | नार. ९४५ | जयावेदत्र | वेदाः ९६७ |
| *छिन्यात्तत्तन्तु | ” ” | जङ्गमं स्थाव | बृह. ६५०, | जरतीभिरो | ” ११२१ |
| *छिन्यात्तत्तस्य | ” ” | जङ्गमं स्थाव | ८८९, १५१३; कात्या. ६५५; | जरा वै देव | ” १५९६ |
| छिन्यात्तत्तु नृ | ” ” | जङ्गमेषु द्वा | प्रजा. १५२६ | जलतस्कर | शुनी. ७९० |
| *छिन्यादङ्गं नृ | ” ” | जङ्गमेषु द्वा | कात्या. ८९८; | जलदिव्यं त | स्कन्द. १९६७ |
| छिन्नस्यं भ | कौ. १६२१ | जङ्गमेषु द्वा | वृका. ९०१ | जलमार्गादि | बृह. ८९६ |
| छिन्नस्येन | याज्ञ. १८२०, | जज्ञिष इत्या | वेदाः ९८९ | जलहस्तं स्मृ | स्कन्द. १९६७ |
| | १९३३ | जज्ञे क्रमेण | भा. १९८४ | *जल्लका रक्त | दक्षः १११४ |
| छिन्नस्ये भ | मनुः १८०७ | जठरस्थोऽसि | स्कन्द. १९६६ | *जल्लकावत् | ” ” |
| *छिन्नस्ये भि | ” ” | *जडह्नीबौ तु | गौत. १३८६ | *जल्लकेव स्त्रि | ” ” |
| *छिन्ननासे भि | ” ” | जडह्नीबौ भ | ” ” | जले क्षिप्तं त | प्रजा. ७१५ |
| छिन्ननासौष्ठ | बृह. १८८७ | जडोन्मत्तान्ध | कौ. १३९१ | जलौका रक्त | दक्षः १११४ |
| *छिन्ननास्येन | याज्ञ. १८२० | जनकस्य कु | संप्र. १३८४ | जलौकावत् | ” ” |
| *छिन्ननास्ये भ | मनुः १८०७ | जनको ह वै | वेदाः १९८१ | जलौकेव स्त्रि | ” ” |
| *छिन्ननास्ये भि | ” ” | *जननार्था म | मनुः १०५१ | जवनो नृप | स्कन्द. १९६५ |
| छिन्नभोगे गृ | नार. १५८१ | *जननी त्वध | देव. १४१४ | *जवीयान् ज्ये | मनुः १३१६ |
| छिन्नालङ्कार | संव. १८९१ | जननेनैव | संप्र. १३८४ | जही चिकित्वा | वेदाः १५९३ |
| छिन्ने दग्धेऽथ | बृह. ७३१ | *जनने मर | ब्रह्म. १३७४ | जहूनां चाऽऽधि | ” १२६१ |
| *छिन्ने नसे यु | मनुः १८०७ | जनन्यस्वध | देव. १४१४ | जातं पुत्रं प्र | शंखः १२८१; |
| छेतव्यं तत्त | नार. १७४९; | जनन्यां संस्थि | मनुः १४३२ | यमः १३५१ | नार. ८२५ |
| | मनुः १८०१ | जनमेजर्यं | वेदाः १६०१ | जातकर्मक | भा. १९८५ |
| छेतव्यं तद्भू | बृह. १८३१ | जनयामास | भा. १२८७; | जातकर्मणि | भा. १९८५ |
| छेतव्याः क्षेत्रि | प्रजा. ९६२ | जनयितुः पु | हरि. १३७६ | जातकर्मं वा | कौ. ८६३ |
| *छेतव्ये अङ्गु | मनुः १८६७ | | आप. १२६७; | जातकर्मना | ” ” |
| *छेतव्ये द्वाङ्गु | ” ” | | बौधा. १२७१ | जातद्गुमाणां | याज्ञ. १८२३ |

| | |
|------------------|---------------|
| जातमात्रेण | अत्रिः १३५२ |
| जातमुस्तृज्य | भा. १२८७ |
| जातवैराश | कौ. १७७३ |
| जातशस्यात् | बृह. ८३५ |
| *जातसस्यात्रि | ” ८५२ |
| *जातसस्यात्त | ” ८३५ |
| जातसस्यात्त्रि | ” ८५२ |
| *जातसस्यो त्रि | ” ” |
| जाता जनिष्या | ” ११८० |
| जातानां सम | भा. ११८४ |
| *जातान्धबधि | बृह. ७०७ |
| जातापस्यां ना | यमः १११३ |
| जाता ये त्वनि | नार. १३४७ |
| *जातिकर्मक | ” ८२५ |
| जातिकर्मकृ | ” ” |
| जातिभ्रंशक | विष्णुः १६११; |
| | कात्या. १७९१ |
| जातिविशिष्टा | कौ. १८५० |
| जातिशुद्धाः क | बृह. १३४८ |
| जातिश्रेण्याधि | भा. १९२२ |
| जातिष्वपि च | ” १०२९ |
| जातिसंज्ञाधि | नार. ७२५ |
| जातेष्वन्येषु | वृगौ. १३७२ |
| जातेऽस्मिन्संश | भा. १२४३ |
| जातोऽपि दास्यां | याज्ञ. १३३८ |
| *जातो हि दास्यां | ” ” |
| जात्यन्धपति | बृह. ७०७ |
| जात्यपहारि | विष्णुः १६१० |
| जात्या च सद् | भा. ८६१ |
| *जात्या निरुद्धं | कात्या. १४५७ |
| जानन्नपि हि | मनुः १९७४ |
| जानन्नविशु | भा. १९६४ |
| जामयो यानि | मनुः १०५३ |
| जामिः सिन्धूनां | वेदाः ९६३ |
| जामिमिच्छ पि | ” १००२ |
| Xजामिरन्येऽस्यां | नि. १२५४ |
| जामिवदस्मे | वेदाः ९७९ |
| जायऽएहि स्वो | ” १००८ |
| जायमानो वै | ” १२५८ |
| जायां जनित्रीं | ” १००० |
| जायां यामस्मा | ” ९९९ |
| जायाः पुत्राः सु | ” ९९८ |
| जाया जनय | भा. १९८५ |
| जाया तप्यते | वेदाः १८९५ |
| जायानाशे कु | हारी. १०१४ |
| जायापति व | वेदाः १४२३ |

| | |
|-------------------|---------------|
| जाया पत्ये म | वेदाः ९९८ |
| जायापत्योर्न | आप. १४०५ |
| *जायापत्योर्वि | ” ” |
| जायायां रक्ष | स्मृत्य. १११८ |
| *जायायाः स्याद्धि | मनुः १०४७ |
| जायाया अनु | वेदाः १००५ |
| जायाया अन्ते | ” १००९ |
| जायाया इति | भा. १८९४ |
| जायायास्तद्धि | ” १०२६; |
| | मनुः १०४७ |
| जायेदस्तं म | वेदाः ९७० |
| जायेव पत्य | ” १२५४ |
| जायेव पत्ये | ” ९७५, |
| | १८३६ |
| जारं चोर इ | कौ. १८४९ |
| जारं चौरित्य | याज्ञ. १६३६, |
| | १९३३ |
| जारजातम | नार. ११०१, |
| | १४०२ |
| जारह्नीदात् | कौ. १०४० |
| जिघांसन्तं जि | वासि. १६०८; |
| | कात्या. १६५१ |
| *जितं तद्ब्रह्म | याज्ञ. १९०८ |
| जितं वै सभि | कात्या. १९१४ |
| जितं ससभि | याज्ञ. १९०९ |
| जितद्रव्याद् | कौ. १९०४ |
| जितमुद्ग्राह | याज्ञ. १९०८ |
| जितो यदि प | विष्णुः १९०३ |
| जिह्वं त्यजेत् | याज्ञ. ७७९ |
| जिह्वाच्छेदनं | आप. १७६९ |
| जिह्वाच्छेदाद् | नार. १७८८ |
| जिह्वा ज्या भव | वेदाः १४६४, |
| | १६०० |
| जिह्वानासोप | कौ. १६१९ |
| जिह्वापरीक्ष | स्कन्द. १९६७ |
| जिह्वायाः कर | मासो. १९७० |
| जिह्वायाः प्राणु | मनुः १७७५; |
| | नार. १७८८ |
| *जिह्वायाश्छेद | मनुः १७७५; |
| | नार. १७८८ |
| जीर्णोद्यानान्य | मनुः १६९५, |
| | १९२९ |
| जीवं रुदन्ति | वेदाः ९८०, |
| | १००१ |
| जीवतश्च क्षे | गौत. १२६३ |
| जीवतामपि | कात्या. ७११ |

| | |
|---------------------|-------------------------|
| जीवति क्षेत्र | हारी. १२६४ |
| जीवति पित | ” ११४६; |
| | शंखः ११४८ |
| जीवति भर्त | कौ. १४३० |
| *जीवति वा पि | शंखः ११४८ |
| जीवति श्रूय | नार. ११००, |
| | १९७८; देव. १११२ |
| *जीवतैव वा | हारी. ११६३ |
| जीवतो वाक्य | देव. १३५० |
| *जीवत्पुत्रेभ्यो | आप. ११६४ |
| जीवत्यर्षेण | बृह. १५१३ |
| *जीवत्यर्षे श | ” ” |
| *जीवद्विभाग | ” ११७२ |
| जीवद्विभागे | कौ. ११४९; |
| | बृह. ११७२; कात्या. ११७३ |
| *जीवन्ती तद्धि | विरा. १११७ |
| जीवन्तीनां तु | मनुः १९५२; |
| | अपु. १९६२ |
| जीवन्त्याः पति | कात्या. १४५८ |
| जीवन्त्या हि त्रि | वारा. १०७५ |
| जीवन्नेव वा | हारी. ११६३ |
| *जीवन्नेव वि | ” ” |
| *जीवन्नेवार्थ | ” ” |
| जीवन् पुत्रे | आप. ११६४, |
| | १३८७ |
| जीवन्वाऽपि पि | कात्या. ६५३ |
| जीवितविवा | कौ. ६६२ |
| जीवितुं चेच्छ | भा. ८१९ |
| *जीविनामपि | कात्या. ७११ |
| जीवेद्भर्तृहि | विरा. १११७ |
| जुष्टा वरेषु | वेदाः ९९७ |
| जेतुर्दद्यात्स्व | कात्या. १९१४ |
| जेह्म्ये त्रिरात्रि | विष्णुः ७९४ |
| ज्ञातयः कुल | स्मृत्य. १३७३ |
| ज्ञातयो वा ह | याज्ञ. ७७९ |
| *ज्ञातिविह्ववि | बृह. ९५१ |
| ज्ञातित्वं च नि | मरी. १३५२ |
| ज्ञातिबन्धुसु | बृह. १२५२ |
| ज्ञातिभिर्भाग | नार. १५७९ |
| ज्ञातिसंबन्ध | बृह. ७८६; |
| | मनुः १६२७ |
| ज्ञातिसामन्त + | कात्या. ८९८ |
| ” ” | बृह. ८९६; |
| | प्रजा. ८९९; भार. ९००; |
| | पश्चा. ९०१; कौ. ९२८ |
| ज्ञातिहस्ताद् | कौ. १४३० |

| | | |
|---------------------|---------|-------|
| ज्ञातीनामपि | भा. | ८६० |
| *ज्ञातृचिह्नवि | बृह. | ९५१ |
| *ज्ञातृचिह्नवि | " | " |
| ज्ञातृचिह्नैर्वि | " | " |
| शाखादिप्रत्य | " | ८९६; |
| | कात्या. | ८९८ |
| शाखादीनन | " | " |
| | मुम. | ९०० |
| *शाखाधिप्रत्य | बृह. | ८९६ |
| शात्वा तु घात | व्यासः | १६५१ |
| शात्वा इव्यवि | कात्या. | ७५३ |
| शात्वा धर्मिष्ठ | स्कन्द. | १९६५ |
| ज्ञात्वा निष्पष्ट | कात्या. | १४५७ |
| *ज्ञात्वा विसृष्टं | " | " |
| ज्ञात्वा सदीर्घ | बृह. | ८८९ |
| *ज्ञात्वा सम्यक्त | " | १६४६ |
| ज्ञात्वा सम्यक् ध | " | " |
| ज्ञानवृद्धाः प्र | भा. | ८६१ |
| *ज्ञानेन हि वि | कात्या. | ९५८ |
| ज्यायसा दूषि | अपु. | १८९१ |
| ज्यायसीमपि | वसि. | १०२२ |
| ज्यायसौ ज्याय | नार. | १३४६ |
| ज्यायस्वन्ताश्चि | वेदाः | ९९८ |
| ज्येष्ठं पुत्रम | " | १९८२ |
| Xज्येष्ठं पुत्रिका | नि. | १२५४ |
| ज्येष्ठं प्रति य | भा. | १३९१ |
| ज्येष्ठं माता सू | वेदाः | ११५९ |
| ज्येष्ठं यदुम | भा. | १३९१ |
| ज्येष्ठं वा श्रेष्ठ | याज्ञ. | ११६८; |
| | नार. | ११७० |
| *ज्येष्ठं श्रेष्ठवि | " | " |
| ज्येष्ठः कुलं व | मनुः | ११९७; |
| | भा. | १९८३ |
| ज्येष्ठः पूज्यत | मनुः | ११९७ |
| ज्येष्ठ एव तु | " | ११९६ |
| *ज्येष्ठ एव पि | शंखः | ११४७ |
| *ज्येष्ठ एव प्र | मनुः | ११९६ |
| ज्येष्ठता च नि | " | १३९२ |
| ज्येष्ठपुत्रप्र | शंखः | १२८१ |
| *ज्येष्ठपुत्रस्य | " | " |
| ज्येष्ठभार्या क | नार. | ११०१ |
| *ज्येष्ठमासि न | मनुः | ९३३ |
| ज्येष्ठवत्तात | भा. | १९८३ |
| ज्येष्ठश्चैन्न प्र | " | १९८४ |
| ज्येष्ठश्चैव क | मनुः | ११८९ |
| ज्येष्ठस्तु जातो | " | १२३६ |

| | | |
|----------------------|---------|-------|
| ज्येष्ठस्त्राता भ | भा. | १९८४ |
| ज्येष्ठस्य दक्षि | कात्या. | १२०१ |
| ज्येष्ठस्य दश | देव. | ११९३; |
| | उश. | ११९४ |
| ज्येष्ठस्य भागो | भा. | ११८४ |
| ज्येष्ठस्य विंश | मनुः | ११८६ |
| *ज्येष्ठस्यांशोऽधि | नार. | ११९२ |
| *ज्येष्ठांशं ज्याय | बृह. | १२३७ |
| ज्येष्ठांशं प्राप्नु | मनुः | १९३२; |
| | अपु. | १९८८ |
| ज्येष्ठांशार्हान | गौत. | १२३८ |
| ज्येष्ठा मातृस | भा. | १९८४ |
| ज्येष्ठाय श्रेष्ठ | विष्णुः | ११८४ |
| ज्येष्ठयांशोऽधि | नार. | ११९२, |
| | | १४२१ |
| ज्येष्ठवधि स | अनि. | ६६१ |
| ज्येष्ठेन जात | मनुः | ११९६, |
| | | १९८७ |
| ज्येष्ठेन वा क | बृय. | १३५५ |
| ज्येष्ठेन हि कृ | " | १५८८ |
| ज्येष्ठे मासि न | मनुः | ९३३ |
| *ज्येष्ठे मासे न | " | " |
| ज्येष्ठे ज्येष्ठिने | वेदाः | १०१० |
| ज्येष्ठे दाय्याद | आप. | ११६५ |
| ज्येष्ठो भ्राता पि | भा. | १९८४ |
| ज्येष्ठोऽयमिति | " | " |
| ज्येष्ठो यवीय | मनुः | १०६४ |
| ज्योक् पितृष्व | वेदाः | ९९६ |
| ज्योतिर्ज्ञानं त | बृह. | १७५९ |
| तं कानीनं व | मनुः | १३०६ |
| *तं कानीनं वि | " | " |
| तं कामजम | " | १३९६ |
| *तं चार्थं साध | नार. | ७४८ |
| तं चेत्संघो नि | कौ. | ८६३ |
| तं चेत्संभूय | " | ८६२ |
| तं चेद्धातय | वसि. | १६६८ |
| तं चेद्विध्या | वेदाः | १८४१ |
| तं चैव धर्म | भा. | १०२७, |
| | | १२८४ |
| तं छन्दोभिर | वेदाः | ११४४ |
| तं जानीयादु | नार. | ७४७ |
| तं तं दृष्ट्वा स्व | " | १९३५ |
| *तं ततः कारि | कात्या. | ६३३ |
| तं ततोऽकारि | " | " |
| Xतं तत्र यापु | नि. | १२५५ |
| तं तु शुद्धं वि | स्कन्द. | १९६६ |

| | | |
|------------------|----------|-------|
| तं ते तपामि | वेदाः | ९९७ |
| तं त्रयो वेदा | " | १००६ |
| तं देशं पति | स्मृत्य. | १९७९ |
| *तं तृपोऽकारि | कात्या. | ६३३ |
| तं पत्नीभिर | वेदाः | ९९३ |
| तं पत्योऽपघा | " | १०१० |
| तं पशुभिश्च | " | ११६१ |
| तं पश्यन्ति प | " | १२६० |
| तं पुत्रं प्रति | बौशे. | १३८४ |
| *तं प्रदाप्याकृ | याज्ञ. | ९४३ |
| तं मन्येत पि | वसि. | १९७४ |
| तं राजा चानु | " | १९२० |
| तं राजा निर्ध | मनुः | १६२९ |
| तं वनस्थम | बृह. | ७३२ |
| तं वने विज | भा. | १२८७ |
| तं विशुद्धं वि | स्कन्द. | १९६७ |
| तं वृक्षा अप | वेदाः | १४६४, |
| | | १६०० |
| तं वै पुनाति | अङ्गि. | १११६ |
| तं वै ब्रह्मज्य+ | वेदाः | १६०१ |
| तं वै सत्येन | भा. | १९६३ |
| तं शतं दण्ड | मनुः | १७२० |
| तं शुश्रूषेत | " | १०५९ |
| तं ह कश्यपो | वेदाः | ७९२ |
| तं ह कुमार | " | ७९१ |
| तं ह स्मोत्थितं | " | " |
| *तं हीनवेग | नार. | १०९५ |
| तं हीनवेष | " | " |
| तं होवाच+ | वेदाः | १००६ |
| त आसं जन्या | " | १००० |
| त एते प्रति | कौ. | ११८५ |
| त एते वाच | वेदाः | ११२१ |
| त एवागम्य | कौ. | १०३७ |
| त एतैरजु | वेदाः | १६०३ |
| त एव तत्र | नार. | १९११ |
| *त एव तस्य | " | " |
| *त एव दण्ड | कात्या. | १८३३ |
| त एव द्विगु | कौ. | १८०० |
| तकमन् व्याल | वेदाः | ८१२ |
| तक्षा रिष्टं र | " | ११२० |
| तच्चतुष्टोम | " | १८९८ |
| तच्च तेषां द | विष्णुः | १६११, |
| | | १९४४ |
| तच्च द्रव्यं रा | कौ. | ७५७ |
| *तच्चापि प्रति | मनुः | १६२९; |
| | यमः | १६५२ |

| | | |
|--------------------|-----------|-------|
| तच्छेदिवेदि+ | कौ. | १६८३ |
| तच्छक्यं नाधु | बृह. | ११०९, |
| | | १३४९ |
| *तच्छास्त्रविप्र | आप. | ११६६ |
| *तच्छास्त्रे विप्र | " | " |
| तच्छास्त्रैर्विप्र | " | " |
| तच्छेषमाप्तु | वृम. | १७६६ |
| तच्छुत्वा ताप | भा. | १२८४ |
| तज्जातं पश्चा | कौ. | १८४९ |
| *तज्जानीयादु | नार. | ७४७ |
| तज्जाया जाया | वेदा. | १००५ |
| तज्जाया स्थाव | बृह. | १५१८ |
| *तज्जैयं क्षेत्रि | मनु. | १०७४ |
| *तटाकछेद | " | १६२९ |
| *तटाकभेद | " | " ; |
| | यम. | १६५२ |
| तटाकसेतु | कौ. | ९३० |
| *तडाकभेद | मनु. | १६२९ |
| *तडाकोग्यान | कात्या. | ९५९ |
| *तडागदेव | मनु. | १६२९ |
| तडागभेद | " | " ; |
| | १९२९; यम. | १६५२ |
| तडागसेतुं | बृह. | १६५३ |
| तडागान्युद | मनु. | ९३४ |
| तडागोद्यान | कात्या. | ५९ |
| तडागोऽष्टश | अनि. | ९६२ |
| तण्डुलानि च | मनु. | १९८७ |
| ततं तन्तुम | वेदा. | ६०३, |
| | | ६०५ |
| ततः कदाचि | कालि. | १३७७ |
| ततः कालान्त | कौ. | ७३७ |
| ततः कौटिश | नार. | ६९५ |
| ततः त्वत्तः प्र | भा. | १९८५ |
| ततः पञ्चाश | " | " |
| ततः पतिश्च | वेदा. | १०१० |
| ततः पतिसौ | कौ. | १०४० |
| ततः परं क | " | ६११ |
| ततः परं ध | " | १०४० |
| ततः परं वे | " | १६७४ |
| ततः परम | " | १६७८, |
| | | १८४८ |
| ततः पुत्रार्थी | " | १०३४, |
| | | १४३१ |
| ततः पूर्वस्या | " | १६८६ |
| ततः पोगण्ड | बृह. | ९५० |
| ततः प्रकाश | कौ. | ८६३ |

| | | |
|-------------------|---------|------|
| ततः प्रमृति | नार. | ८३३; |
| | मनु. | १०६८ |
| ततः सकुल्याः | भार. | ९०० |
| *ततः सजातिः | नार. | १५१२ |
| ततः सजात्याः | " | " |
| ततः सा विन | भा. | ८४० |
| ततः सीतां म | वारा. | १०७७ |
| ततः स्वमातृ | मनु. | १२३६ |
| ततः स्वार्थप | भा. | १९८३ |
| तत उर्ध्वं न | आप. | ९०४ |
| तत कस्मै मां | वेदा. | ७९१ |
| ततश्चतुर्थे | बौधा. | १०१९ |
| ततस्त ईर्ष्या | वेदा. | ९९७ |
| ततस्तद्वच | नार. | ११०२ |
| तनस्तद्वज्र | कौ. | ८६३ |
| ततस्तान् घा | वृम. | १७६६ |
| ततस्तु सुस | स्कन्द. | १९६६ |
| तनस्ते तं ह | भा. | ८४० |
| तनस्तेषाम | विष्णु. | १६७१ |
| ततस्तौ तेन | कालि. | १३७७ |
| ततस्त्वं पुन | वेदा. | ९९७ |
| ततो दायम | देव. | १५२५ |
| ततो दास्याद्वि | भा. | ८४० |
| ततो देवाः | वेदा. | ११४४ |
| ततो दौहित्र | भा. | १२८३ |
| ततो द्वारापो | कौ. | १६८१ |
| *ततोऽनाकारि | कात्या | ६३३ |
| *ततोऽन्तरा घ | " | ६५८ |
| ततोऽन्नसाध | शुनी. | १११९ |
| ततोऽन्यमुप | कौ. | ८४४ |
| ततोऽन्ये बाह्याः | " | ९२८ |
| *ततोऽन्ये ये ज्ये | मनु. | १२३५ |
| ततोऽन्योन्यम | अनि. | १९६९ |
| ततोपरूपं | वेदा. | ८१२ |
| ततोऽपरेऽज्ये | मनु. | १२३५ |
| ततोऽपि बान्ध | जातृ. | ९०१ |
| ततोऽभिशास्तः | स्कन्द. | १९६६ |
| ततो मनुं व्या | भा. | ८६० |
| ततो महीं प | " | " |
| ततो यथाद | कौ. | १०३९ |
| ततो यदि त्वा+ | वेदा. | ९९९ |
| ततो राजा द | वारा. | १३२९ |
| ततोऽर्धं मध्य | मनु. | ११८६ |
| ततोऽर्धदण्डो | " | १७१४ |
| ततो लभेत | बृह. | ८७५ |
| *ततो लभ्येत | " | " |

| | | |
|-------------------|------------|------------|
| ततो विभक्ता | भा. | १९८३ |
| *तत्कर्म स्वामि | बृह. | ८३५ |
| तत्कारिणो ना | " | १६४६ |
| तत्कालकृत | याज्ञ. | ६४६; |
| | वृह. | ७३१ |
| | बृह. | ६५४ |
| *तत्कालिकास्तु | व्यास. | ८९९ |
| तत्कुसादमि | नार. | ६२४ |
| तत् कृष्णो ब्र | वेदा. | ८५८, |
| | | ९९८ |
| तत्कृताचार | कात्या. | १९१५ |
| तत्तथा स्थाप | मनु. | ९३७ |
| तत्तदेव ह | " | १७२० |
| तत्तदेवाग्र | कात्या. | ७२९ |
| *तत्तदेवास्य | नार. | १७४९ |
| तत्तद्गुणव | स्मृत्य. | १९७९ |
| तत्तथाऽऽद्वयं | वेदा. | १००५ |
| *तत्तन्मूल्यतु | कात्या. | ९५७ |
| तत्तस्माद्ग्रह | " | १८८८ |
| *तत्तस्य नाप | व्यासः | १२३१ |
| तत्तारयति | भा. | १९८४ |
| तत्तु दत्तं ह | " | १२४३ |
| तत्तुर्थे पञ्च | कात्या. | ८९८ |
| *तत्तुल्यः पुत्रि | बृह. | १३४८ |
| " | देव. | १३५० |
| " | बृह. | १३४८ |
| तत्तु त्रीधनं | कौ. | १४३० |
| तत् ते विद्वा | वेदा. | ८१२ |
| तत् त्रैविद्ये | कौ. | १४७४; |
| | | १९५० |
| तत्परापत | वेदा. | १६०१ |
| तत्पापमति | हारी. | १६६३ |
| *तत्पिण्डदाः क्ष | बृह. | १४०२ |
| तत्पिण्डदाः श्रो | " | " |
| तत्पुत्राः पितृ | देव. | १४०४ |
| तत्पुत्रा विष | बृह. | ११९३, |
| | | १२००, १२२२ |
| *तत्पुनः भाग | बृह. | १५५७ |
| तत्पुनर्द्वाद | नार. | ११३० |
| तत्पुनस्त्रिवि | " | ११२९, |
| | १६४२; बृह. | १८८५ |
| तत्पुरस्तात्ति | वेदा. | १००७ |
| *तत्प्रदेशस | याज्ञ. | १६४० |
| तत्प्रदेशानु | नार. | ९४५ |
| तत्प्रमाणं तु | बृह. | ९५१ |
| *तत्प्रवर्तित | " | १९१३ |

| | | | | | |
|-------------------|--------------|--------------------|--------------|--------------------|-------------|
| तत्प्राज्ञेन वि | मनुः १०७१ | तत्र स्यात्सह | याज्ञ. ११७५ | *तत्सपिण्डाः श्रो | बृह. १४०२ |
| तत्र कर्म च | नार. ८२७ | तत्र स्यात्स्वामि | ८४७ | तत्सपिण्डा बा | १५१४; |
| तत्र कार्पासि | ,, १७४७ | तत्र स्वमाद | कात्या. १४५७ | तत्सपिण्डेषु | प्रजा. १५२६ |
| तत्र कार्यं प | याज्ञ. १८१४ | तत्र स्वस्वग्रा | विष्णुः १९२१ | तत्समुत्थेषु | नार. १५५५ |
| तत्र कार्यं प्र | उश. १७९२ | तत्र स्वामी भ | मनुः १८०८ | तत्समुत्थो हि | ,, ८५१ |
| तत्र कोट्यन्त | वृका. ९०१ | तत्र ह्यष्टाव | नार. ७९८ | तत्समा द्विगु | मनुः १८५६ |
| तत्र क्षेत्रं प्र | भा. १२८७ | *तत् राजा चा | वसि. १९२० | तत्सर्वं न स | हारी. ६३६ |
| तत्र गावः कि | वेदाः ९७९, | तत्रादानेन | भा. ८६१ | तत्सर्वं लभ | भा. १९८४ |
| | १८९५ | तत्राद्यावप्र | नार. १०९५ | तत्सर्वमकृ | ,, १०२९ |
| तत्र चेदनु | शंखः ७७१ | *तत्रार्थि दाप | बृह. ६५१ | *तत्सर्वस्यैव | प्रजा. १२३२ |
| *तत्र जाताः स | मनुः १२४९ | *तत्राधिरन्यः | नार. ६५० | *तत्सहायैः स | वृगौ. १३७२ |
| तत्र जातिषु | भा. १२४३ | तत्रान्यं दाप | बृह. ६५१ | *तत्सहायैः स्वा | मनुः १६९६ |
| तत्र जातिष्व | ,, , | *तत्रान्यं दाप्य | ,, , | तत्सहायैर | ,, , |
| तत्र व्येष्टत | हारी. १२६६; | *तत्रान्यं प्राप्य | ,, , | तत् साहस | ,, , |
| | यमः १३५२ | तत्रापरिवृ | मनुः ९१०; | | १९२९ |
| | बौधा. १९१९ | | अपु. १९७६ | | नार. १६४१. |
| तत्र तत्र दे | देव. १९४२ | *तत्रापि गम | बृह. ८७२ | | १७४४ |
| तत्र तत्राव | भा. १२४३ | तत्रापि गूह | कौ. १०३८ | *तत्सुतश्च ध | बृह. १४५० |
| तत्र त्रैज्य | ,, १२८४ | तत्रापि गृही | ,, ७१६ | *तत्सुताः पितृ | देव. १४०४ |
| *तत्र त्वष्टाव | नार. ७९८ | तत्रापि दण्ड्यः | नार. ७४८; | तत्सुता गोत्र | याज्ञ. १४७९ |
| *तत्र दण्डः क्रि | ,, १६४३ | | व्यासः ७५६ | *तत्सुता वा ध | बृह. १४५० |
| तत्र धन्वन् | विष्णुः १९२१ | *तत्रापि दृष्टं | नार. १८२४ | *तत्सुतो गोत्र | याज्ञ. १४७९ |
| तत्र पूर्वं पू | गौत. ८१५ | तत्रापि दोष | आप. १२६६ | ,, , | लहा. १५२७ |
| तत्र पूर्वश्च | नार. ८३० | तत्रापि नाप्नु | नार. १९१२ | *तत्सुतो बान्ध | बृह. १४५० |
| *तत्र प्राप्तं तु | कात्या. १२२७ | तत्रापि नाशु | कात्या. ८३६ | तत्सुतो वा ध | ,, , |
| तत्र ब्राह्मणी | विष्णुः १२४० | *तत्रापि स भ | नार. ७४८ | तत् सूर्यः प्र | वेदाः ९९९, |
| तत्र भुक्तानु | वसि. ११२६ | तत्राप्यसह | व्यासः ८९९ | | १८३९ |
| तत्र भेदमु | बृह. ८७३ | तत्राप्येष म | भा. १२४४ | तत्स्त्रीणां जीव | नार. १५१२ |
| तत्र मूलं द | ,, ७६५ | तत्रारभ्यार्धे | अनि. १९६७ | *तत्स्त्रीणामपि | कात्या. ७१४ |
| तत्र मे गच्छ | वेदाः ९९६ | तत्रासन्नत | कात्या. ८९८ | तत्स्त्रीणामुप | ,, , |
| तत्र यदुक्थ | मनुः १३१९ | *तत्रेहाष्टाव | नार. ७९८ | *तत्स्त्रीभ्यो जीव | नार. १५१२ |
| तत्र यन्मुष्य | आप. १६६४ | *तत्रैव त्राय | हारी. १२६४ | तत्स्यात्पालय | बृह. ७५० |
| तत्र यल्लभ | अनि. १४६३ | तत्रैवार्थेषु | अनि. १९६७ | तत्स्यादेवंवि | कात्या. ७०९ |
| *तत्र यो रिक्थ | मनुः १३१९ | तत्रोत्तमो द | कौ. ७९४ | तत्स्वं तस्यैव | वृगौ. १३७२ |
| तत्रर्णं सोद | कात्या. ६५५ | *तत्रोपगम | बृह. ८७२ | *तत्स्वभावेन | नार. ८४९ |
| तत्रर्णं नाप्नु | बृह. ६५३ | तत्रोपविश्य | वेदाः १००२ | तत्स्वामिना प | बृह. १९१३ |
| *तत्र लब्धं च | कात्या. १२२७ | तत्रोपशम | बृह. ८७२ | *तत्स्वामिने प | ,, , |
| तत्र लब्धं तु | ,, , | तत्रोभयथा | वसि. १२७२ | *तत्स्वामिनो भो | याज्ञ. ९४३ |
| तत्र विद्या न | मनुः १९७४ | तत् संलभ | वेदाः १००४ | *तथा गणिम | मनुः १७१६ |
| तत्र वै त्राय | हारी. १२६४ | तत्संभूयस | नार. ७८० | तथा च श्रुत | ,, १०५० |
| तत्र श्लोकः | वसि. १२७२ | तत्संविदं य | विष्णुः ८५९ | तथा चान्यार्थ | जैमि. १४२४ |
| *तत्र साक्षीकृ | कात्या. १८३४ | तत्संशयान्नो | गौत. १२६३ | *तथा चान्ये प्र | नार. १७५४ |
| तत्र सा भर्तृ | व्यासः ११११; | *तत्संसक्तेषु | कात्या. ९५५ | तथा चारैः प्र | मनुः १९३० |
| | अङ्गि. १११६ | तत्संसक्तैस्तु | ,, , | *तथा चौरौप | नार. १७५५ |
| तत्र सोपाधि | कात्या. १४५४ | तत्सधर्मा ब | कौ. १२८८ | तथा जाविक | ,, , |
| *तत्र सोपाधि | ,, , | तत्सधर्मा मा | ,, , | | ,, ९१७; |

| | |
|-----------------------|--------------|
| काल्या. १२०; स्मृत्य. | १२१ |
| *तथा तं च नि | मनुः १३६ |
| तथातथा द | ” १८०४; |
| काल्या. | १८३४ |
| तथा तथा वि | ” १९८७ |
| *तथा तां च नि | मनुः १३६ |
| *तथाऽतिथिषु | गौत. १९७२ |
| तथा तुष्टिक | कात्या. १८३३ |
| तथा त्वमपि | भा. १२८४ |
| तथा दत्तक | ” १२८६ |
| तथा धरिम | मनुः १७१६ |
| तथाऽधिकृता | शंखः १७७१ |
| तथा धेनुमृ | बृह. ९१९ |
| तथा न लिप्य | नार. १९३६ |
| तथा नश्यति | मनुः १०७२ |
| तथाऽनाथद | बृह. ८७३ |
| तथा नित्यं य | मनुः १०५५ |
| तथानियुक्तो | नार. ११०१ |
| *तथाऽन्यहस्त | ” ८८८ |
| तथाऽन्यहस्ते | ” ” |
| *तथापरार्धं | यमः १६५२ |
| तथा परिभे | मनुः १७१६ |
| तथा पशुप | आप. ८४२ |
| *तथा पशुपा | ” ८४३ |
| तथा पान्थमु | बृह. १७६० |
| तथा पापान्नि | मनुः १९३० |
| *तथा पिता कु | बृह. १९८७ |
| *तथापि नित्या | आप. ११६६ |
| *तथापि प्रति | मनुः १६२९ |
| *तथा पुण्यक्रि | आप. १४०५ |
| तथा पुण्यफ | ” ” |
| तथाप्यगता | कौ. १६२० |
| तथा प्रकृत | मनुः १९३० |
| तथा प्रतिषि | कौ. १०३७ |
| तथा प्रत्युद्ग | हारी. १०१५ |
| *तथा प्रागेव | कात्या. ८०६ |
| तथा ब्रुवाणा | वारा. १०७६ |
| तथा ब्रूहि म | भा. १०३३ |
| तथा भद्रज | मार्क. ९६२ |
| *तथा भागानु | बृह. १२२२ |
| तथाऽभिवर्षे | मनुः १९३० |
| तथा मातृवि | अनि. १९४३ |
| तथा यशोऽस्य | मनुः १७२५ |
| तथा रक्ताङ्गु | भा. १२८५ |
| तथा राज्ञा नि | मनुः १९३० |
| तथाविधम | नार. ११३०; |

| | |
|----------------|---------------|
| विष्णुः १९८३ | वारा. १०७७ |
| तथावृत्तिश्च | याज्ञ. १७८१ |
| तथा शक्तः प्र | भा. १०३१ |
| तथा शतस | मार्क. ९६२ |
| *तथा सूद्रज | नार. १७५५ |
| *तथा शौर्याप | ” ६२६ |
| तथाष्टगुण | मनुः १२४७ |
| *तथा सर्व ऋ | ” १९३० |
| तथा सर्वाणि | ” ” |
| तथा हरेत् | ” ” |
| *तथा हि श्रुत | ” १०५० |
| तथेतरेषा | स्मृत्य. १२३३ |
| तथेति वासु | वेदाः १००६ |
| *तथैकपात्रे | हारी. १०१४ |
| तथैकदश | बृह. १३४८; |
| तथैव कन्या | अनि. १९४३ |
| तथैव कुर्या | यमः १११३ |
| *तथैव तच्च | भा. १०२९ |
| तथैव तस्यु | बृह. ७५१ |
| तथैव तस्य | ” १५१७ |
| तथैव तं पा | ” ७५१ |
| १९४१; अनि. | ११७३, |
| ११९४ | बृह. ११७३ |
| *तथैव तैः पा | कात्या. १८३३ |
| तथैव दण्ड | ” ” |
| *तथैव दण्डे | ” ” |
| तथैव दत्त | ” १३५० |
| तथैव बहु | भा. १०३२ |
| *तथैव भोज | काल्या. ८७७ |
| *तथैव भोज्यं | ” ” |
| तथैव भोज्य | ” ” |
| *तथैवमुक्त्वा | याज्ञ. १६३३ |
| तथैव मुनि | भा. १०२८ |
| तथैव सप्त | मनुः १७२५ |
| तथैवाक्षेत्रि | ” १०७४ |
| *तथैवाधर्म | बृह. ८०४ |
| तथैवानुप्री | भा. १०२९ |
| तथैवान्ये प्र | नार. १७५४ |
| तथैवाधाधि | विष्णुः ८९१ |
| *तथैवाशन | बृह. १५२० |
| तथैवास्मिन् | भा. १२८४ |
| *तथैषां स्वामि | नार. ८३१ |
| तथैत्कोचप | ” ८०० |
| तथैद्धारवि | संभ्र. ११९४ |
| *तथैपधाभि | नार. १७५२ |
| तथैपनिधि | मनुः ७४३ |

| | |
|---------------------|---------------|
| तथैर्णा कार्पा | हारी. ६०९ |
| तथैनापि ब्रु | मनुः १७७७; |
| तथैनाऽपि व | नार. १७८७ |
| * ” ” | विष्णुः १७७० |
| *तदकूटवा | मनुः १७७७; |
| तदकूटे कू | नार. १७८८ |
| तदभे अत्र | विष्णुः १६११, |
| *तदङ्ग तस्य | १६६९ |
| ” ” | ” १६११, |
| तदङ्गच्छेद | १६६९ |
| *तदङ्गमेव | वेदाः ६०४ |
| तदध्यमिकृ | मनुः १८०१ |
| तदनन्तर | नार. १८२८ |
| तदनपाक | ” १६४३ |
| *तदनेन वि | ” १८२८ |
| तदन्तरा ध | काल्या. १४५२ |
| तदन्नं द्विगु | स्मृत्य. १२३३ |
| तदन्यदापि | शंखः ८५९ |
| तदन्यस्या | मनुः ८८१ |
| तदन्वीक्ष्य प्र | बृह. ६५२; |
| *तदपत्यं त | काल्या. ६५८ |
| तदपत्यं द्व | मनुः १६२८, |
| * ” ” | १९२७ |
| तदपत्यस्य | बृह. ६७२ |
| तदपि त्रिवि | ” १५६९ |
| *तदपि द्विवि | आप. १२६७, |
| तदपि भूमिः | १६०६ |
| तदप्यन्याय | नार. ११०३; |
| तदप्यस्मै द | काल्या. १३४९ |
| *तदभावाद्य | नार. ११०३ |
| तदभावे आ | काल्या. १३४९ |
| तदभावे क | शंखः १४१६, |
| तदभावे तु | १४२९ |
| १४१३, १५५९; नार. | १७४४ |
| १७५७; | ” ” |
| काल्या. १५२१, १७६३; | वेदाः ७९२ |
| व्यासः | नार. १९३५ |
| १५२४ | कौ. ९३२ |
| *तदभावे तु | नार. ७८२ |
| नार. ७८२३ | आप. १४६६ |
| ” ७८२३ | बृह. ७०८ |
| ” ७८२३ | ” १२२२, |

| | | |
|-----------------|--------------|-------|
| | बौधा. | १४२७ |
| तदभावे दु | विष्णुः | १४७० |
| *तदभावे नि | वसि. | १२७२ |
| तदभावे पि | विष्णुः | १४७०; |
| शंखः १४७१; कौ. | १२४५, | |
| १४७४; कात्या. | १५२१ | |
| * " " | " | १७६३ |
| तदभावेऽय | कौ. | १०४० |
| तदभावे ब | विष्णुः | १४७० |
| *तदभावे ब्रा | बौधा. | १४६८ |
| " " | विष्णुः | १४७० |
| तदभावे भ | बौधा. | १४२७; |
| कौ. | १४३०; देव. | १४६२ |
| तदभावे भ्रा+ | विष्णुः | १४७० |
| " " | बृह. | १५१८ |
| तदभावे मा | विष्णुः | १४७० |
| तदभावे रा | बौधा. | १४६८ |
| तदभावे वि | कात्या. | ७१४; |
| व्या. | १३५५; व्यासः | ११४२, |
| | | ११९९ |
| *तदभावेऽव्य | आप. | १४६६ |
| तदभावेऽस | शौन. | १३६५ |
| * " " | संभ्र. | १५३० |
| तदभावे स | कात्या. | १३५०; |
| " " | संभ्र. | १५३० |
| " " " + | विष्णुः | १४७० |
| * " " | मनुः | १४७६ |
| तदभावे सु | नार. | ७८२; |
| | संभ्र. | १३८४ |
| *तदभावे स्व | नार. | ७८२ |
| तदर्थं गुरु | बृह. | ८३४ |
| तदर्थं द्रव्य | " | ८९६ |
| तदर्थदान | भार. | ८०७ |
| तदर्थमशु | बृह. | ८५३ |
| तदर्थोऽस्य नि | गौत. | ८१६ |
| तदर्थं क्षात्रि | बृह. | १७९० |
| तदर्थं भागि | शुनी. | १९८८ |
| *तदर्थं मध्य | मनुः | ११८६ |
| तदर्थं योषि | कात्या. | १८८८ |
| तदर्थं वैश्ये | गौत. | १७६९ |
| तदर्थमजा | विष्णुः | ९०५ |
| तदर्धा कष्ट | शुनी. | १७६७ |
| तदर्धे तु त | मार्क. | ९६२ |
| *तदर्धेन त | " | " |
| तदलभे नि | वसि. | १२७२ |
| *तदष्टभाग | नार. | ९४८ |

| | | |
|-----------------|---------|-------|
| तदष्टभाग | कात्या. | ९६० |
| तदष्टभागा | नार. | ९४८ |
| *तदष्टभागो | " | " |
| *तदसाक्षिक | कात्या. | १८३४ |
| *तदसाक्षीक | " | " |
| तदस्माऽइदं | वेदाः | १४६४ |
| तदा गृहीत | बृह. | १९६२ |
| *तदा तच्छान्त | " | ६५३ |
| *तदा तत्र व | " | ७८६ |
| *तदा तुष्टिक | कात्या. | १८३३ |
| *तदा तु स्वाभि | याज्ञ. | ८४७ |
| तदात्मपुत्र | कौ. | १४३० |
| *तदा दद्यात्स्व | नार. | ७०४ |
| तदा दद्याद्द्वि | " | " |
| तदाऽनुमर | भा. | १०३० |
| तदाप्रभृति | " | १०२७, |
| | | १२८५ |
| २ " " + | " | १०२९ |
| * " " | मनुः | १०६८ |
| *तदा प्रातं च | कात्या. | १२२४ |
| तदा भूयस्तु | ब्रह्म. | १११८ |
| तदा यदाधि | बृह. | ७३२ |
| तदा राजा द्व | नार. | ९४६ |
| तदा रोहतु | वेदाः | १००२ |
| तदा विचार | बृह. | ८७४ |
| *तदाष्टभाग | कात्या. | ९६० |
| तदा स एव | ब्रह्म. | ९२१ |
| तदा स गोप | " | " |
| तदा साक्षिक | कात्या. | १८३४ |
| *तदा स्रोतःप्र | बृह. | ९५२ |
| तदा हरस्य | कालि. | १३७७ |
| तदाहुः | वेदाः | १६०२ |
| तदाहुर्ब्रह्म | वसि. | १९७७ |
| तदाहु रार्कां | वेदाः | १००५ |
| तदिन्द्रमेवा | " | ११८१ |
| तदिन्द्रियदौ | आप. | १०१८ |
| तदिन्मे छंत्स | वेदाः | ११६० |
| तदिमं साम | " | ११८१ |
| तदुच्यते सं | बृह. | ९५३ |
| तदुत्पन्नास्तु | " | ९५१ |
| तदुद्धार ए | वेदाः | ११८१ |
| तदुभयं प | कौ. | ९२९ |
| तदु हापि कु | वेदाः | १००८ |
| तदु होवाचा | " | ११४४ |
| तदूनमेका | विष्णुः | १६६९ |
| तदूर्ध्वं स्थाप | कात्या. | ७५५ |

| | | |
|----------------|---------|-------|
| *तदूर्ध्वं हाप | कात्या. | ७५५ |
| तदूर्ध्वमपि | शंखः | ११९५ |
| तदूर्ण धनि | कात्या. | १२२९ |
| *तदूर्ण सोद | " | ६५५ |
| Xतदेतदक् | नि. | १२५५ |
| " " | " | १४१५ |
| तदेतदेव | वेदाः | १००९ |
| तदेतन्मिथु | " | १०१० |
| तदेव छेद | अपु. | १८३५ |
| तदेव द्विगु | बृह. | ७६५, |
| | | ८८९ |
| तदेव नीते | कौ. | ९२९ |
| तदेवमैनं | वारा. | १०७७ |
| तदेव यद्य | कात्या. | १४५८ |
| तदेव षण्ड | कौ. | ९०६ |
| तदेव स्त्रिया | " | १०३५ |
| तदेव हतो | " | १६१५ |
| तदेवाध्यक्षे | " | १६९० |
| तदेषां याचि | " | ८६३ |
| तदैव तस्य | बृह. | ६५२ |
| तदैव द्विगु | " | ८८९ |
| तदोत्तमणं | शुनी. | ६३५ |
| तद्गतिं स च | कौ. | १६१६ |
| *तद्गृहं चापि | कात्या. | १६४९ |
| तद्गृहं चैव | " | " |
| तद्गोत्रजो वा | ब्रह्म. | १३७५ |
| तद्गोत्रबन्धु | भा. | १२८७ |
| तद्द्वयं | बृह. | ११४१ |
| तद्द्वारैरेव | मनुः | १९२७, |
| | | १९४६ |
| *तद्द्वारैरेव | " | " |
| *तद्दुहिता वा | आप. | १४६७ |
| तद्दूषकांश्च | विष्णुः | १६१२ |
| *तद्दूषकान् | " | " |
| तद् दृश्यमा | कात्या. | १२२९ |
| *तद्द्वयं सुह | नार. | ७९९ |
| *तद्द्वयमप | " | " |
| *तद्द्वयमवि | " | " |
| तद्द्वयमुप | " | " |
| तद्द्वयकुल | मनुः | १९३१ |
| *तद्द्वेषेण च | विष्णुः | ८४३ |
| तद्द्वेषेण य | " | " |
| *तद्द्वयं तेन | कात्या. | ७५३ |
| तद्द्वयं वर्ध | नार. | ६९५ |
| *तद्द्वयं सदृ | व्यासः | १७६४ |
| तद्द्वयं सोद | कात्या. | ७५३ |

तदद्रव्ययुग्मि
तदद्रव्यसह
*तद्वनं द्विगु
तद्वनं पुत्र
*तद्वनं पुत्रि
*तद्वनं वर्ध
तद्व स्मैतल्यु
तद्वानुनाम
ताद्वि एभ्य ए
तद्विरण्यम
तद्वि स्त्रिया अ
*तद्वेनुनाम
तद्वन्धुजाति
*तद्वन्धुजात्
तद्वन्धुना क्रि
तद्वन्नहणं
*तद्वान्नागस्या
*तद्वक्षितं य
*तद्वभृत्योऽन्यस्तु
तद्य इह र
तद्यत् सान्वा
Xतद्यथा जन
तद्यदब्रवी
तद्योषितां तु
तद्वक्षणध
*तद्वक्षणार्थे
तद्राशाप्यनु

*तद्राशोऽप्यनु
तद्वंशस्याग
*तद्वंशस्याग
*तद्वदुःखद्वय
तद्वभियत
तद्वद्भर्तार

तद्रा अस्यैत
तद्राऽएतत्
तद्राऽएतत्त्री
तद्रापि प्रति
* " "
तद्विधानवि
*तद्विभाग इ
तद्वृत्तिर्युग्
*तद्वृत्तोऽन्यस्तु
तद्वै देवाः शु
तद्वै देवान्ना

कात्या. ७३०
व्यासः १७६४
मनुः १६२८
कात्या. ७०९
मनुः १२९८
नार. ६९५
वेदाः १००७
नार. १७४७
वेदाः १२६२
" १००५
वसि. १९७७
नार. १७४७
बृह. ७२७
" "
" ७८६
वेदाः १५९२
गौत. १९४८
नार. ८३२
बृम. ८५५
वेदाः १५९२
" १०१०
" १२५३
नि. १२५३
वेदाः १०१०
भा. १०३०
गौत. १६६१
कात्या. ७८९
बृह. ८७४
नार. १९४०
बृह. ८७४
" १५६९
" "
आजि. १११६
कात्या. ८३९
व्यासः ११११
आजि. १११६
वेदाः १६०२
" १०७७
" १००९
थमः १६५२
मनुः १६२९
स्मृत्य. १३७३
नार. ११३२
" ८२६
" ८५५
वेदाः ११४४
" १४४०

तद्वै ब्रह्मज्य
तद्वै राष्ट्रमा
तद्यतिक्रमे
*तन्नुवायः ष
तन्नुवाया द
तन्नुवायो द

तन्त्रमेके यु
तन्दुलस्याथ
तन्दुलानुद
तन्दुलान्मन्त्र
*तन्नाम्नाभ्याहा
तन्निमित्तं श्रे
तन्निमित्तं वा
तन्मन्त्रस्य च

*तन्मन्त्रस्य तु
तन्मा प्रापत्
तन्मूलत्वात्
तन्मूलत्वात्
*तन्मूलाद्विगु
तन्मूल्यमुत्त
तन्मूल्याद्विगु
तन्मूलात्कानु
तन्मे रेतः पि
तन्मोक्षणार्थं
तन्मोक्षार्थं च
*तन्मोक्षार्थं तु
*तन्वन्ति पि
तपःक्रीताः प्र
*तपनीयैरु
तपश्चर्या च
तपश्चैवाग्नि

तपश्चैवास्तां
तपस्तोऽपनु
*तपस्त्या चामि
तपस्त्विनश्च
*तपस्वी अग्नि
तपस्वी चामि

*तपस्वी वाग्नि

तपस्त्वानसु
तपस्त्वामर्च
तपस्त्वाम्यश्च

वेदाः १६०१
" १६००
आप. १०१८
मनुः १७०९
कौ. १६७३
मनुः १७०९,
१९२७
वेदाः १०००
स्कन्द. १९६७
" "
" "
कात्या. १४५३
कौ. १९२२
" १०३८
याज्ञ. १७८३,
१९३३
" १७८३
वेदाः १००४
कात्या. ९५७
" ९५६
वाज्ञ. १६३३
बृह. ७२५
याज्ञ. १६३३
नार. ९४७
मनुः १०५०
कात्या. ७८९
शुनी. ७९०
कात्या. ७८९
वसि. १९८२
नार. १९३६
" १७८५
भा. १०३०
नार. ६९५;
कात्या. ७१४
वेदाः १०००
मनुः १७०२
नार. ६९५
आप. १६६६
नार. ६९५
" "
कात्या. ७१४
नार. ६९५;
कात्या. ७१४
बृह. ११०९
भा. १०३३
" १९८४

तप्तमाषक
*तप्तमासिञ्च
तप्तमासेच

तप्तभुवः के
तप्तनेन वि
तप्तन्येन नि
तप्तभुवन्
तप्तस्मेरा यु
तप्तहं संशि
तप्ता तिष्ठानु
*तप्ताद्यं दण्ड
तप्तायान्तं पु

तप्ताहुः सर्व
तमेव चक्रे
तमेव चोप
तमेव संकु
तमेव सशो
तप्तासं वि
तप्ता गवा किं
तप्ता धर्मार्थं
*तप्ता धेनुसु
तप्ता प्राप्तं च
*तप्ता प्राप्तं तु
*तप्ता प्राप्तं घ
तप्ताचर्चाम्यं
तप्ता लब्धं घ
तप्ता सहस्र
तप्ता हि सहि
तप्तामां प्रजा
तप्तावैविध
तप्तायोः पश्यन्तो
तप्तायोः पुमांसं
तप्तायोः पूर्वकृ
*तप्तायोः पूर्वत
तप्तायोः पैताम
तप्तायोः शवान
तप्तायोपप्रता
तप्तायोरनिय
तप्तायोरनुम
तप्तायोरन्यत
तप्तायोरपत्र
तप्तायोरपत्ये
तप्तायोरपि कु
तप्तायोरभावे

स्कन्द. १९६५
नार. १७८८
मनुः १७७६;
नार. १७८८
वेदाः ९६६
मनुः ८८१
कौ. ७३७
भा. ८६०
वेदाः ९७०
भा. १२८५
वेदाः १००१
मनुः १७२०
याज्ञ. १९३३;
अपु. १९६९
मनुः १७०१
कालि. १३७७
भा. १९८४
कौ. १६१५
" "
मनुः १३०३
बृह. १४०२
दक्षः १११४
बृह. ९१९
कात्या. १२२४
" "
" १२२४
वेदाः १००७
कात्या. १२२४
वेदाः ९९७
स्मृत्य. १११८
वेदाः १००७
भा. ८१९
वेदाः ९२४
भा. १९८६
कात्या. ६५६
" "
बृह. ७७७
वेदाः १००९
" ९९८
नार. १०९३
आप. १४०७
मनुः १९७४
कौ. १६७४
भा. १२४४
मनुः १७२५
वसि. १४७०

| | |
|----------------------|---------------|
| तयोरहं प | वेदाः १००० |
| *तयोर्देण्डम | नार. १८२७ |
| तयोर्नित्यं प्र | मनुः १९०६ |
| *तयोर्नित्यप्र | " " |
| तयोर्मानुषो | कौ. ११८५ |
| *तयोर्यद्यपि | नार. १३४७ |
| तयोर्यद्यस्य | विष्णुः १२४३; |
| मनुः १३२३; नार. १३४७ | |
| तयोर्हि माता | मनुः १२९७, |
| १४७४; देव. १३५० | |
| तयोश्चतुर | कौ. ९२६ |
| *तयोश्चतुर्वि | गौत. १९१६ |
| तरिकः स्थल | याज्ञ. ७७८, |
| १६३५, १९४७ | |
| * " " | विष्णुः १९४४ |
| *तरिकः स्थानि | याज्ञ. ७७८ |
| *तरिकश्च स्थ | विष्णुः १९४४ |
| *तरिते स्थल | याज्ञ. ७७८ |
| *तरीते स्थल | " १६३५ |
| तरेष्वशुक्ल | नार. १९३६ |
| तर्पणं प्रत्य | स्मृत्य. १११८ |
| तव गृहे या | वेदाः ८५८ |
| तव दुहिते | " १००७ |
| तव दैवत | वारा. १०७७ |
| *तवास्मीति य | नार. ८३३ |
| तवाहमिति | " " |
| तवाहमित्यु | " ७०३, |
| ८३०, ८३२, ११०३ | |
| * " " | नार. ८३३ |
| तवैव पादा | वारा. १०७६ |
| तवैव वंशे | " १३२९ |
| तस्करप्रति | मनुः १६९५, |
| १९२९ | |
| *तस्माच्चतुष्टो | वेदाः १८९८ |
| तस्माच्चैव वि | भा. १९८३ |
| तस्माच्छत्रं च | " ८६० |
| तस्माच्छात्रत | संग्र. ११४२; |
| शुनी. १९८८ | |
| तस्माच्छात्रानु | कात्या. १९४२ |
| तस्माज्ज्येष्ठं पु | बौधा. ११४६ |
| तस्माज्ज्येष्ठश्च | भा. १९८४ |
| तस्मात्क्रनीय | वारा. १३२९ |
| तस्मात्तं नाव | नार. १९३६ |
| तस्मात्तद्वच | " " |
| तस्मात्तस्यास्त | वसि. १९७७ |
| तस्मात्तु पुत्रो | वेदाः १२६० |

| | |
|------------------------|---------------|
| तस्मात्तु पुरु | भा. १०३० |
| तस्मात्तु संश | शंखः १२८२ |
| तस्मात्ते द्वे द्वे | वेदाः १००५ |
| *तस्मात्ते नाक्षि | नार. ९४९ |
| तस्मात्ते नोष्धि | " " |
| तस्मात्त्वं जीव | भा. १९८५ |
| तस्मात्पापिषु | स्कन्द. १९६५ |
| *तस्मात्पितुर्थ | बृह. १५१५ |
| तस्मात्पितृध | " " |
| तस्मात्पुत्र इ | विष्णुः १२७९; |
| मनुः १२९०; वारा. १३२८; | |
| भा. १९८४ | |
| Xतस्मात् पुमा | नि. १२५५ |
| " " | " १३८५, |
| १४१५ | |
| तस्मात्पुरस्ता | वेदाः ८१३ |
| *तस्मात्पुज्याः स्त्रि | याज्ञ. १०७९ |
| तस्मात्पूर्वे व | वेदाः ११६३ |
| तस्मात्पौराणि | यमः १९४३ |
| तस्मात्प्रजावि | मनुः १०४७ |
| तस्मात्प्रहेष्या | भा. १२८४ |
| तस्मात् वस्त | आप. ११६६ |
| तस्मात् शूद्रस्य | भा. ८१८ |
| तस्मात्संघातः | " ८६१ |
| *तस्मात्संशया | शंखः १२८२ |
| तस्मात्सत्यं तु | भा. १९६४ |
| तस्मात्सत्यं ऋ | " " |
| तस्मात् समा | कौ. १६८६ |
| *तस्मात्समाना | वेदाः १००७ |
| तस्मात्समानो | " १००५ |
| तस्मात्सर्वेषु | बृह. ९५२ |
| तस्मात् साक्षि | कौ. ७३७ |
| तस्मात्साधार | मनुः १०५५ |
| तस्मात्साध्यः | मत्स्य. १११८ |
| तस्मात्सायं प | वेदाः ९०३ |
| Xतस्मात् स्त्रियं | नि. १२५५ |
| " " | " १३८५, |
| १४१५ | |
| तस्मात्स्त्रियः पु | वेदाः ९९५ |
| तस्मात् स्नात | आप. ११६६ |
| तस्मादधिक | नार. ६९२ |
| तस्मादनूची | वेदाः १००५ |
| तस्मादथात्स | कात्या. ७२८ |
| तस्मादव्यञ्ज | नार. १९७८ |
| तस्मादस्य व | मनुः १८५९ |
| तस्मादाहुः श | वेदाः १५९६ |

| | |
|--------------------|--------------|
| तस्मादाहुर्य | वेदाः ११६० |
| तस्मादुत्तमे | " ११६३ |
| तस्मादु ह स्त्रि | " १००६ |
| तस्मादेकस्य | " १०११ |
| तस्मादेकाकी | " १०१० |
| तस्मादेतद् | भा. १०२८ |
| तस्मादेतद् | वेदाः १८४० |
| तस्मादेतस्य | " १००९ |
| तस्मादेताः स | मनुः १०५३ |
| *तस्मादेभिश्चो | नार. १८२४ |
| तस्माद् दण्डं | मासो. १९७० |
| तस्माद्वासस्य | ब्रह्म. १३७५ |
| *तस्माद्वासाच्च | " " |
| तस्माद्देशे च | नार. ८८८ |
| तस्माद् बृत्तं | मनुः १९०६ |
| तस्माद् द्विजे | " १९५६ |
| तस्माद्दर्म पु | भा. १२८६ |
| तस्माद्दर्मैण | " १९६९ |
| तस्माद्वाप्येत | वेदाः ८१२ |
| तस्माद्ब्रवीमि | भा. १०३३ |
| *तस्माद्भ्रस्व | " १२८८ |
| " " | " १९८५ |
| तस्माद्भवत् | " " |
| तस्माद्भार्या प | " १०२६ |
| तस्माद्भार्या र | आप. १२६७; |
| बौधा. १२७१ | |
| तस्माद्यः पुत्रा | वेदाः ११८१ |
| तस्माद्यम इ | मनुः १९३१ |
| तस्माद्रक्षेत् | पैठी. १११५ |
| तस्माद्रजस्व | वसि. १९७७ |
| तस्माद्वाजाचा | गौत. १९१८ |
| तस्माद्वाजा नि | कात्या. १९१४ |
| तस्माद्वाजा ब्रा | बौधा. १४६९ |
| तस्माद्वाजा स | देवी. १९४३ |
| तस्माद् राज्ञा | नार. ११०६ |
| तस्माद्वितीप | हारी. १०१४ |
| तस्माद्विदश्रु | " १७६९ |
| तस्माद्द्वै शक्यं | बौधा. १९७४ |
| तस्मान्मानयि | भा. ८६१ |
| तस्मान्मदुप्र | मासो. १९७० |
| तस्मान्निभे च | भा. १२८५ |
| *तस्मिन्नेत्परि | वसि. १२७८ |
| तस्मिन्नेत्प्रति | " १२७७ |
| तस्मिन्नेत्प्राप्य | वृम. १७६६ |
| तस्मिन्नेत्प्राप्य | भा. ८४४ |
| तस्मिन्नेत्प्राप्य | कात्या. १२२७ |

| | | | | | | | | |
|--------------------|---------------|-------|--------------------|------------|-------|----------------------|---------|-------|
| तास्मिन् गुरो | आप. | १९७३ | तस्य पुत्रो धु | भा. | १९८४ | तस्या उ ह स्था | वेदा: | १००६ |
| तास्मिन् जाते | बृहौ. | १३७२ | तस्य पूतस्य | वेदा: | १५९५ | तस्या ऋणं ह | नार. | ६९९ |
| तास्मिन् दृष्टे | भा. | १२८४ | तस्यं प्रक्षुभ्य | बृह. | १६४६; | *तस्या ऋणी ह | " | " |
| तास्मिन् देशे | वसि. | १९२१ | मनु: | १६९२, १९२९ | | तस्या एताव | वेदा: | १५७० |
| तास्मिन्नपक्वा | कौ. | ८६३ | तस्य प्रतिदे | कौ. | ७३७ | तस्यागतस्य | विष्णु: | १५६९ |
| तास्मिन्नपि प्र | काल्या. | ८०५ | *तस्य प्रतिभु | मनु: | ६६४ | तस्यामे भाज | वेदा: | १००६ |
| *तास्मिन्नपय प्र | " | " | तस्य प्रदान | वसि. | १२७३ | तस्यामे त्वं व | " | १००३ |
| *तास्मिन्नर्थे प्र | " | " | *तस्य प्रभ्रस्य | बृह. | १६४६ | तस्याञ्जलिना | " | १५९८ |
| *तास्मिन्नष्टे कृ | " | ७५५ | *तस्य भयम | वसि. | १९२१ | तस्यातिक्रम | कौ. | १६८७ |
| *तास्मिन्नष्टे मृ | " | " | तस्य भागद्व | व्यास: | १२३१ | तस्यातिक्रमे | " | ८४४, |
| तास्मिन्नष्टे ह | " | " | तस्य भाण्डं द | बृह. | ७८६ | ८७९, ९२७, ९३०, १०३४, | | |
| तास्मिन्नुपस्थि | भा. | १९८५ | *तस्य यदृक्थ | मनु: | १३१९ | १०३५, १४३१, १६७६ | | |
| तास्मिन्नृणे हि | भार. | ७३१ | तस्य रेतः प | वेदा: | १००५ | ३ " " + | कौ. | ९२६ |
| *तास्मिन् प्रति | वसि. | १२७७ | तस्य वा त्वं म | " | ८५७, | तस्याददीत | मनु: | १९५५ |
| तास्मिन्भोगः प्र | काल्या. | ९५५ | ९७८, १८३६ | | | *तस्या दद्युः पृ | मत्स्य. | ८५५ |
| तस्मै कृणोमि | वेदा: | १८९५ | तस्य विभागे | वेदा: | ११८१ | *तस्या द्रव्यं ह | नार. | ६९९ |
| तस्मै मां ब्रूहि | मनु: | १९७४ | तस्य वृत्तिं प्र | भा. | ८१८, | तस्यानुरूपं | काल्या. | १८३४ |
| तस्मै होवाच | वेदा: | ११४४ | १९७६ | | | तस्यापत्यं न | पद्म. | १३७६ |
| तस्य कण्टक | कौ. | १६७९ | तस्य वृत्तिः प्र | नार. | १९३६ | तस्यापत्यं पु | शंखः | १२८२ |
| तस्य कन्या पृ | भा. | १९८६ | तस्य वेद्याव | व्यास: | १८८९ | तस्यापसार | कौ. | १६८६ |
| तस्य कर्मानु | मनु: | ७७३ | तस्य व्ययक | कौ. | ८४४ | तस्यापि दृष्टं | नार. | १८२४ |
| *तस्य कार्यानु | " | " | तस्य षड्भाग | मनु: | १७०० | तस्याप्येष भ | " | ७४९ |
| तस्य कुर्यान्नु | " | ८८२; | तस्य संवत्स | भा. | १९६४ | *तस्याप्येष वि | " | " |
| नार. | १०९७; मत्स्य. | १९७५ | तस्य सर्वस्य | वेदा: | १२६२ | " | " | १२२० |
| तस्य गोमिथु | शंखः | १३९० | तस्य सर्वस्व | अपु. | १९६९ | तस्या भर्तुर | वसि. | १९७७ |
| तस्य च ब्रह्म | विष्णु: | १६०९ | तस्य सुनन्दि | पद्म. | १३७६ | *तस्याभिवर्ध | मनु: | १६९२ |
| तस्य चेच्छात्र | आप. | १९१८ | *तस्य स्वेच्छा स्व | विष्णु: | ११७५ | तस्याभिवास्ता | कौ. | १६८७ |
| *तस्य चेस्याद्य | नार. | ७८२ | तस्य ह त्रय | वेदा: | १२६० | तस्यामकल्पे | वेदा: | ११८१ |
| तस्य तद्वच | भा. | १३९० | तस्य हत्वा तु | बृह. | १७६० | तस्यामप्रकृ | नार. | १०९५ |
| तस्य तद्वर्ध | मनु: | १६९२, | तस्य ह नाचि | वेदा: | ७९१ | तस्यामरोच | मनु: | १०५३ |
| | | १९२९ | *तस्य हि प्रति | नार. | १९४० | तस्यामविद्य | संग्र. | १५३० |
| तस्य ताद्वित | " | १०४१ | तस्यां जाताः स | मनु: | १२४९ | तस्यामात्मनि | भा. | १२८६, |
| तस्य तच्चाप | बृह. | १२२३ | तस्यां त्वरोच | " | १०५३ | १४७३; मनु: | १२९४, | |
| " " + | व्यास: | १२३१ | *तस्यां पितृघ | बृह. | १५१५ | १४७४; नार. | १५१२ | |
| तस्य तस्य प्र | भा. | १२८६ | तस्यां पुनर्न | वेदा: | १००५ | बृह. | १५१५ | |
| तस्य ते प्रति | नार. | १९४० | तस्यां पौनर्भ | काल्या. | १३५० | नार. | १९३८ | |
| तस्य ते यस्य | " | ११०३ | तस्यां यो जाय | कालि. | १३७७ | *तस्या रिक्थं ह | " | ६९९ |
| तस्य दण्डः क्रि | " | १६४३ | *तस्यां वेद्याव | व्यास: | १८९० | *तस्या वेद्याव | व्यास: | १८९० |
| *तस्य दण्डक्रि | " | " | तस्यांशं तु ह | बृह. | १५५८ | *तस्याशु कर्ते | मनु: | १८६७ |
| तस्य दण्डवि | मनु: | १९०६ | तस्यांशं दश | " | ७८५ | *तस्याशु कर्त्या | " | " |
| तस्य दण्डो भ | मत्स्य. | ८५५ | *तस्यांशं यद | " | " | तस्याशु कर्त्ये | " | " |
| *तस्य दाननि | वसि. | १२७४ | तस्यांशो दश | काल्या. | ७८८ | *तस्याशु कल्प्ये | " | " |
| तस्य दृष्ट्वा म | भा. | ८६० | *तस्यां संजन | कालि. | १३७७ | तस्याहं हरि | वारा. | १३२९ |
| *तस्य द्विजेभ्यो | मनु: | १९५७ | तस्यां स जन | " | " | तस्येदं वच | कालि. | १३७७ |
| तस्य नाम्ना व | संव. | १८९१ | *तस्यां पितृघ | बृह. | १५१५ | तस्येह भागि | मनु: | १०७४; |
| तस्य परिचा | कौ. | १६१५ | तस्या उ हं त्री | वेदा: | १००६ | काल्या. | १३५० | |

| | | | | | | | | |
|-------------------|---------|-------|--------------------|----------|-----------------|-------------------|---------|-------|
| तस्यै द्युः पृ | मत्स्य. | ८५५ | तात्कालिकाः स | व्यासः | ८९९ | तामर्यमा भ | वेदाः | १००२ |
| तस्यैव द्विगु | बृह. | १८३० | तात्कालिकास्तु | " | " | तामेव नृप | वारा. | १०७७ |
| तस्यैव भेदः | नार. | १६४१, | तादर्थात्कर्म | जैमि. | १४२४ | ता मे हस्तौ सं | वेदाः | १९०२ |
| | | १७४४ | *तादृक् दुहि | संभ्र. | १५२९ | ताम्बूलाभ्यञ्ज | प्रचे. | १११७ |
| तस्यैव वा नि | मनुः | १९५५ | तादृक्पत्न्या अ | " | " | ताम्रापिण्डो द | कौ. | १६७५ |
| तस्यैवाचर | कात्या. | ८७५ | तादृग्गुणा सा | मनुः | १०५१ | ताम्रवृत्तकं | " | १६१४, |
| तस्यैवानुचि | व्यासः | ८९९ | तादृग्प्रोहति | " | १०७० | | " | १६७५ |
| तस्यै विश्पत्नि | वेदाः | ९९३ | तादृग्मातुर | संभ्र. | १५२९ | *ताम्राणां कांस्य | वसि. | ६०९ |
| तस्यै विश्पत्न्यै | " | ९६३ | *तादृशं गुण | मनुः | १३१६ | ताम्रायः कांस्य | " | " |
| तस्यैष व्यभि | मनुः | १०५० | तादृशं फल | " | " | ताम्रे पञ्चप | नार. | १७४७ |
| *तस्यैष व्यव | " | " | तादृशमेव | विष्णुः | १७९६ | तारयत्युभ | व्यासः | ११११, |
| *तस्योत्तरा भू | नि. | १२५४ | तादृशी सा भ | भा. | १०२९ | | १५२४ | |
| तस्योपकर | कौ. | १६८७ | ताननुगुणा | कौ. | ८६२ | *तारिकः स्थल | याज्ञ. | ७७८ |
| *तस्योपदृष्टं | नार. | १८२४ | तानान्वायोप | गौत. | १९१८ | " " | विष्णुः | १६११, |
| तां गतिं प्राप्नु | भा. | १९८४ | तानि कृत्याह | मनुः | १०५३ | | १९४४ | |
| तां ग्राममध्ये | बौधा. | १०१९; | तानि दिवस | कौ. | १६७९ | तालज्ञो लभ | बृह. | ७८७; |
| | मनुः | १०५७ | *तानि निक्षिप | मनुः | १७०६ | | शुनी. | ७९० |
| तां च पुत्रीं गृ | पद्म. | १३७६ | तानि निर्हर | " | १७०६, | तालावचर | कौ. | १०३८ |
| तां च विभृया | विष्णुः | १६०९, | | १९२७ | वेदाः | तावता हि का | " | ८७९ |
| | | १९७५ | तानिन्द्रस्य गृ | वेदाः | ८५८ | तावतीर्हि स | वेदाः | १५९६ |
| ×तां तत्राक्षैरा | नि. | १२५५ | तानि संधिषु | मनुः | ९३४ | *तावत्कालं व | अङ्गि. | १११५ |
| तां तु कन्यां पि | भा. | १०२८ | तानि सर्वाणि | भा. | १९६४ | " " | परा. | १११७ |
| तां तु विख्याप्य | मनुः | १०५७ | *तानि सिद्धिषु | मनुः | ९३४ | तावत्कुल्याः स | देव. | १२०३ |
| तां दर्मं दाप | मत्स्य. | ८५५ | तान्तवस्य च | नार. | १७४७ | तावत्तं मञ्ज | स्कन्द. | १९६७ |
| *तां धनं दाप | " | " | *तान्तवस्य तु | " | " | तावत्तस्या म | लहा. | १५२७ |
| तां निष्ठयायां द | वेदाः | १००६ | *तान्तवानां तु | " | " | तावत्यो भ्रूण | नार. | १०९६ |
| तां पूषच्छिव | " | ९८५ | *तान् प्रगृह्य | मनुः | १६९६ | तावत्सा बन्ध | कात्या. | १८८८ |
| तां पृथी वैन्यो | " | ९२४ | तान् प्रसह्य | " | १६९६, | तावदविच्छि | कौ | ११९९ |
| तां भुजाभ्यां प | वारा. | १०७६ | | १९२९ | तावदेव तु | भार. | ६६० | |
| तां यदनुष्ठी | वेदाः | ६४० | ×तान्व आत्मजः | नि. | १२५४ | तावद्दुहित्त | संभ्र. | १५२९ |
| तां वहन्त्वम | " | १००४ | तान् विदित्वा | मनुः | १६९५, | *तावद्द्राणि | अङ्गि. | १११५ |
| तांश्च देवाः प्र | स्कन्द. | १९६५ | १९२९; नार. | १७४६ | तावन्त्यो भ्रूण | *तावन्ति भूता | वसि. | १०२१ |
| तांश्चापदेशैः | कौ. | १६८५ | तान् शिष्याच्चौ | अपु. | १९६२ | तावन्त्यब्दानि | अङ्गि. | १११५ |
| तां श्वभिः खाद | मनुः | १८६५; | तान् सर्वान् घा | मनुः | १९०६ | तावन्न मुच्य | " | १११६ |
| | यमः | १८९० | *तान् सहायै | " | १६९६ | तावपि स्वावि | भा. | १२८७ |
| तां साध्वीं विभृ | मनुः | १०५५ | तान्स्वयं वै प | भा. | १९८५ | तावानेव स | मनुः | ७४४ |
| *तांस्तत्र चौरा | नार. | १७५५ | तान् हस्तेऽकु | वेदाः | १००६ | ताविह सं भ | वेदाः | १००४ |
| तांस्तु वै कर | स्कन्द. | १९६७ | *तापनीयैरु | नार. | १७८५ | तावुभौ चौर | मनुः | ७४३; |
| तां ह मनुः | वेदाः | १००७ | ताभिर्यासि दू | वेदाः | ९७२ | नार. | ७४९; | |
| तां होदीक्ष्यो | " | १००६ | ताभ्यः कामान्य | भा. | १०३३ | मत्स्य. | ७५६; | |
| तां कामलुब्धाः | भा. | १०३३ | ताभ्यां भर्त्रा पि | शुनी. | १११९ | कात्या. | १७६१ | |
| तां समभव | वेदाः | १००५ | तामनेन वि | मनुः | १०६९ | *तावुभौ चौर | मनुः | ७९६ |
| तां सर्वाः संवि | " | ८५७ | ता मन्दसाना | वेदाः | ९८१ | " " | अपु. | १९७१ |
| तां सर्वास्त्वन | भा. | १९८५ | तामन्वर्तिष्ये | " | १००१ | तावुभौ पति | मनुः | १०६६ |
| तां अभिरभ्य | वेदाः | १००५ | तामपृच्छत् | " | १०१० | *तासां चेदनि | नार. | ९१६ |
| तांश्छिष्याचौर | मनुः | १९५२ | तामप्युः ऋक्षि | स्मृत्य. | १९८८ | तासां चेदव | मनुः | ९०९; |
| | | | | | | | नार. | ९६६ |

| | |
|------------------|--------------|
| तासां जरां प्र | वेदाः १६६ |
| तासां तु लोकाः | वसि. १०२२ |
| *तासां दुहित्र | संप्र. १५२९ |
| तासां पुत्रेषु | मनुः १२४६ |
| तासां प्रभाव | अङ्गि. १११६ |
| तासां राज्ञा प्र | मत्स्य. १११८ |
| तासां वर्णक | मनुः १०५३ |
| तासां व्युच्चर | भा. १०२७, |
| | १२८४ |
| *तासामनव | नार. ९१६ |
| तासामुतासां | वेदाः १००८ |
| नासामेकाम | ,, १६०३ |
| ता सुसञ्जतां | ,, ९९८ |
| तास्तथा सम | भा. ८६० |
| तास्ते जनित्र | वेदाः १००३ |
| तास्त्वा जरसे | ,, १००१ |
| तास्त्वा वधु प्र | ,, १००२ |
| तिर्यक्षु प्रथ | विष्णुः १६६९ |
| *तिर्यग्योनौ च | मत्स्य. १८९२ |
| तिर्यग्योनौ तु | ,, ,, |
| *तिष्ठति त्रिगु | कात्या. ६३२ |
| तिष्ठति द्विगु | ,, ,, |
| तिष्ठ तिष्ठेति | नार. १८८१ |
| तिष्ठते विव | व्यासः ११११ |
| *तिष्ठतो द्विगु | कात्या. ६३२ |
| *तिष्ठेत्पतिकु | ,, १४५८ |
| तिष्ठेद्भूतुकु | ,, ,, |
| *तिष्ठेद्भूतृगु | ,, ,, |
| *तिष्ठेद्वा कृत | बृह. ७२६ |
| तिस्रभिर्हि सा | वेदाः १०११ |
| तिस्रः कृत्वा पु | भा. १२४४ |
| तिस्रः कोट्यर्धे | परा. १११७ |
| तिस्रः कोट्योर्ध | अङ्गि. १११५ |
| तिस्रः पुनर्ध्व | शंखः १०२६ |
| तिस्रोऽप्विकाः | अनि. १९६७ |
| तिस्रो देवीर्ह | वेदाः ९९५, |
| | १००६ |
| तिस्रो मातृष्ठी | ,, १२५६ |
| तीक्ष्णं वा तप | आप. १६६४ |
| तीक्ष्णेषवो ब्रा | वेदाः १४६४, |
| | १६०० |
| *तीरे नदी प्र | बृह. ९५२ |
| तीर्थगूहना | कौ. १०३४ |
| तीर्थघातप्र | ,, १६१७ |
| तीर्थसमका | ,, १०३४ |
| तीर्थभिषेच | ,, १९२४ |

| | |
|-----------------|---------------|
| तीर्थोपरोधो | कौ. १०४० |
| तीव्रदण्डम | मासो. १९७० |
| तुकारो गौर | स्कन्द. १९६६ |
| तुजाते वृष्यं | वेदाः ९६४ |
| *तुभ्यमप्रे प | ,, ९८५, |
| | १४२३ |
| तुभ्यमप्रे प | ,, ९८५, |
| | १००१, १४२३ |
| तुराणामतु | वेदाः १८९९ |
| तुरो भगस्य | ,, ९९७ |
| तुलाकाष्ठे तु | स्कन्द. १९६६ |
| *तुलाघृतं त्रि | वसि. ६०९ |
| *तुलाघृतम | ,, ,, |
| *तुलाधारिम | मनुः १७१६ |
| ,, ,, | नार. १७५० |
| तुलाधारध | स्कन्द. १९६६ |
| तुलाधारस्य | ,, ,, |
| *तुलाधारिम | नार. १७५० |
| तुलाघृतम | वसि. ६०९ |
| *तुलानाणक | विष्णुः १६११, |
| | १६६९ |
| *तुल्यपरिम | मनुः १७१६; |
| | नार. १७५० |
| तुलामानं प्र | मनुः १७०७, |
| | १९२७ |
| तुलामानकू | विष्णुः १६११, |
| | १६६९ |
| तुलामानप्र | शंखः १६७१; |
| | कात्या. १७६१ |
| तुलामानभा | कौ. १६७७ |
| तुलामानवि | ,, ,, ; |
| | व्यासः १७६३ |
| तुलामानान्त | कौ. १६७८ |
| तुलामानाभ्या | ,, १६७७ |
| तुलयाः कर्ष | ,, ,, . |
| तुलशासन | याज्ञ. १७२९ |
| तुलहाने ही | कौ. १६७३ |
| तुलितो यदि | स्कन्द. १९६६ |
| तुल्यं सद्भिस्त | भार. ९०० |
| तुल्यकाले रु | विष्णुः १७७१ |
| तुल्यकाले नि | वसि. ६३६ |
| *तुल्यकालेऽभि | ,, ,, |
| *तुल्यकाले वि | ,, ,, |
| तुल्यकालेषु | विष्णुः ६३७; |
| | बृह. ६५४ |
| तुल्यमाहुस्त | बाघा. १०१९ |

| | |
|------------------|--------------|
| तुल्ययोः क्षेत्र | कात्या. ८९८ |
| तुल्यशीलपुं | कौ. १६८७ |
| तुल्यांशो वा मा | ,, १२४५ |
| तुल्यातुल्ययो | ,, ,, |
| तुल्या दुहित | देव. १५२५ |
| तुल्यावेतो सु | भा. १२८७ |
| तुषाकारक | नार. ९४४; |
| | व्यासः ९६१ |
| तूले तु द्विगु | हारी. ६०८ |
| तूर्णां भौमं ज | भा. १०३० |
| तूर्णं क्वाडं फ | याज्ञ. १७४४ |
| तूर्णं च गोभ्यो | मनुः १७२२ |
| तूर्णं वा यदि | बृह. १७६० |
| तूर्णकाष्ठेष्ट | ,, ६३० |
| * ,, ,, | व्यासः ८९९ |
| *तूर्णकाष्ठेष्ट | ,, ,, |
| *तूर्णच्छेद्यर्ध | विष्णुः १७९८ |
| तूर्णच्छेद्येक | ,, १६०९, |
| | १७९८ |
| तुणवन्मन्य | दक्षः १११४ |
| *तृणे द्विगुणं | हारी. ६०८ |
| तृतीयः पञ्च | बृह. १५६९ |
| *तृतीयः पुत्रः | वसि. १२७२ |
| तृतीयः पुत्रि | ,, ,, ; |
| | यमः १३५१ |
| तृतीया च भ | भा. १२४४ |
| *तृतीया पुत्रि | वसि. १२७२ |
| तृतीयिनस्तृ | मनुः ७७५ |
| तृतीये दक्षि | कौ. १६१७ |
| तृतीयो अभि | वेदाः ९८५, |
| | १००१ |
| तृष्टमेतत्क | ,, ९८४ |
| ते अस्यै वच्यै | ,, १००४ |
| ते इनमभि | ,, ९९२ |
| ते कृषिं च स | ,, ९२४ |
| ते गवामिव | कृच. ६७७ |
| ते ग्रामाणाम | कौ. १६७९ |
| ते चिदवासु | वेदाः ९६७ |
| ते चैव तथा | कौ. १६८० |
| ते चैव दधु | नार. १०९६ |
| तेजसा दुर्नि | अधु. १९७० |
| तेजो गोषु प्र | वेदाः १००३ |
| तेजो राष्ट्रस्य | ,, १६०० |
| *तेजो वै पुत्र | ,, १४१५ |
| ते तदष्टगु | बृह. ८७५ |
| *ते तदष्टगु | ,, ,, |

| | | | | | | | | |
|---------------------|---------|-------|-------------------|---------|-------|--------------------|---------|-------|
| *ते तन्मूर्त्यं प्र | बृह. | १७५९ | तेन मृगम | कौ. | १९२५ | तेभिर्ब्रह्मा वि | वेदा: | १४६४, |
| तेऽतिमृजाना | वेदा: | १५९१ | तेन रागस्या | ,, | १६८० | | १६०० | |
| *ते तु वै सस्य | मनु: | १०७३ | *तेन विद्वक्षत्र | कात्या. | १७६२ | *तेऽभिसृत्य प्र | नार. | १७५५ |
| क्षे देवा अति | वेदा: | ९९५, | तेन शलभ | कौ. | १९२५ | तेभ्यः एताः स | वेदा: | १५७० |
| | | १५९२ | तेन श्रुतोप | ,, | १७७२ | तेभ्यः श्राद्धं पु | अनि. | १९४३ |
| ते देवा अन्नु | ,, | १००४ | तेन सङ्घभृ | ,, | ८४४ | तेभ्यो जनप | कौ. | १९२४ |
| ते देवा आप्ये | ,, | १५९२ | तेन समाह्व | ,, | १९०४ | तेभ्यो दण्डाह्व | मनु: | १९६९ |
| ते धामान्यम् | ,, | १२५७ | तेन सर्वत्रा | ,, | ८४३ | तेभ्यो भद्रम | वेदा: | १९८० |
| तेन आधिप्र | कौ. | ७३५ | तेन स्येनाधि | वेदा: | १८९६ | तेभ्यो व इन्द | ,, | १९०२ |
| *तेन कर्षोत्त+ | ,, | १६७७ | तेन हि भर्त | गौत. | १६६० | तेभ्यो वृत्ति लि | गौत. | ८१५ |
| तेन कूटश्वा | ,, | १६८० | तेना जनीय | वेदा: | ९९९ | ते यथा ब्रूयु | कौ. | १६१६ |
| तेन कृत्याभि | ,, | ,, | *तेनाधिगृद्धि | मनु: | ६४० | ते यथास्वमु | ,, | १९२३ |
| तेन क्रयो वि | नार. | ११३० | तेना नि कुर्वे | वेदा: | ९९७ | ते यद् ब्रूयुः | नार. | १९३६ |
| तेन गृह्णामि | वेदा: | १००१ | तेनान्यस्य सु | पद्म. | १३७६ | तेऽवदन् प्र | वेदा: | १८३८ |
| तेन चण्डाला | कौ. | १७९९ | तेनाप्यंशेन | कात्या. | ८९८ | ते वा ऋषयो | ,, | ८१३ |
| *तेन चाऋण | शंख: | १२८२ | तेनाधिगृद्धौ | कौ. | १६७७, | ते वाचं वादि | ,, | ६०३, |
| " " | पैठी. | १३५६ | | | १६७९ | | १८४०, | १९०३ |
| तेन चानृष | शंख: | १२८२ | तेनार्धगृद्धि | मनु: | ६४०; | ते वै पुत्राः प | वेदा: | १२६१ |
| * " " | पैठी. | १३५६ | तेना सहस्ये | नार. | ६५० | ते वै सस्यस्य | मनु: | १०७३ |
| तेन वेत्क्षत्र | कात्या. | १७६२ | तेनास्य ब्रह्म | वेदा: | ९९८ | तेषां अभावे | कौ. | ८१७ |
| तेन वैव प्र | भा. | १०३० | तेनाहर्गेण | ,, | ९९६ | *तेषां अर्थह | बृह. | १५१८ |
| तेन चोत्तरः | गौत. | ८१५ | तेनेदानीम | कौ. | ७७२ | तेषां ऊर्ध्वं पि | कौ. | ११४९ |
| तेन जायाम | वेदा: | १८३९ | तेनेन्द्रियेण | बृह. | १२२४ | *तेषां एवैर | विष्णुः | १३८९ |
| तेन तपूय | कौ. | १८५१ | तेनेन्धनाव | वेदा: | १००५ | *तेषां औरसः | ,, | ,, |
| तेन तपोव | ,, | ९२९ | तेनेमां नारीं | कौ. | ९२६ | तेषां कृतोत्सा | कौ. | १६८१ |
| तेन तुल्यः पु | ,, | १२८८ | तेनेमामश्वि | वेदा: | १००१ | तेषां ग्रहण | ,, | १९२५ |
| तेन त्रिवर्ण | ,, | १२४५ | *तेनेकेन तु | ,, | ,, | तेषां च कृत | ,, | १३९१ |
| तेन दत्तं च | नार. | १९६१ | तेनेनं हन्या | भा. | १०३३ | *तेषां च तत्प | नार. | ६९९ |
| *तेन दत्तं तु | ,, | ,, | तेनेनमाहा | आप. | १६६४ | *तेषां च प्रसृ | कात्या. | ७८९ |
| " " | मनु: | १९५६ | *तेनैव तत्सु | कौ. | १६८० | तेषां चेत्प्रसृ | ,, | ,, |
| तेन दुश्चरि | हारी. | १२६६; | तेनैव तद्भ | बृह. | १५१७ | | शुनी. | ७९० |
| यमः १३५२; संग्र. | कौ. | १३८४ | तेनैव सा प्र | ,, | ७८५ | तेषां चौरसाः | विष्णुः | १३८९ |
| तेन देशजा | ,, | ८६२ | तेनैव सार्ध | ,, | ७८७ | तेषां छित्त्वा नृ | मनु: | १७११, |
| तेन द्विपट | ,, | १६७३ | *तेनोत्तरं व्या+ | मनु: | १३९३ | | १९२९ | |
| तेन द्विशती | ,, | १६७८ | " " + | कौ. | १६७४ | तेषां जिह्वां स | नार. | १९६८ |
| तेन धर्मेण | भा. | ८६० | तेनोदकप्रा | ,, | १६७५ | *तेषां जिह्वाः स | ,, | ,, |
| *तेन धान्यप+ | कौ. | १६७८ | तेनोदरदा | ,, | १९२५ | तेषां तत्प्रत्य | ,, | ६९९ |
| तेन पलेत्त | ,, | १६७७ | ते पदेनानु | ,, | ८१७ | *तेषां तु तत्प | ,, | ,, |
| तेन पितृभ्य | वेदा: | १२६२ | तेऽपि स्युः संग्र | व्यासः | १७६५ | तेषां तु सम्य | कालि. | १३७७ |
| तेन प्रदेष्टा | कौ. | १६७९ | *ते पृष्ठाश्च य | नार. | १७५५ | तेषां तेजोवि | आप. | १२६७, |
| तेन भूतेन | वेदा: | ९९९ | ते पृष्ठास्तु य | मनु: | ९३७ | | १६०५ | |
| तेन मदन | कौ. | १६८० | ते प्रजापति | ,, | ९३६, | *तेषां दोषम | मनु: | १६९५ |
| तेन मध्यम | ,, | ११८५ | ते ब्राह्मणस्य | ,, | ९३७ | तेषां दोषान | ,, | ,, |
| तेन मन्त्रेण | भा. | १२८६ | | वेदा: | १४२४ | | १९२९ | |
| तेन मस्त्रेण | कौ. | १९२४ | | ,, | १४६४, | तेषां द्वैधीभा | कौ. | ९२९ |
| तेन मामब्र | वेदा: | ९९९ | | | १६०० | तेषां धनह | बृह. | १५१८ |

| | |
|-----------------------|---------------|
| तेषां न दद्या | मनुः ७४३ |
| तेषां निष्ठा तु | ” ८८३ |
| तेषां पतित | देव. १४०४ |
| तेषां पिता य | भा. १०८६ |
| तेषां पुराणि | ” ” |
| तेषां पुरुषा | आप. १६६४ |
| *तेषां पूर्वः पू | विष्णुः १२८० |
| तेषां प्रथम | बौधा. १२७१ |
| तेषां ब्राह्मणो | वसि. १९२० |
| *तेषां यत्किञ्च | नार. ८३४ |
| तेषां वै सम | वारा. १३२९ |
| तेषां बोढा पि | नार. १३४७ |
| तेषां शुश्रूष | भा. ८१८ |
| *तेषां षड्बन्धु | मनुः १३१९; |
| ” ” | नार. १३४६ |
| ” ” | देव. १३५०; |
| ” ” | यमः १३५१ |
| तेषां सं, दध्मो | वेदः ९९८ |
| तेषां स एव | नार. ११७२ |
| तेषां सर्वत्र | मनुः १९३१ |
| तेषां सर्वस्व | ” १६३२; |
| अपु. १६५४; नार. १७४८; | कात्या. १७६१ |
| *तेषां सर्वे च | देव. १३५१ |
| तेषां सवर्णा | ” ” |
| तेषां सारानु | शंखः १२८३ |
| तेषां स्वयोनौ | कौ. ११८५ |
| तेषां स्वसम | कात्या. १९४२; |
| पिता. ” | कौ. १९०४ |
| तेषामध्यक्षाः | भा. १०३३ |
| तेषामन्तर्ग | कौ. ९०६ |
| तेषामन्यथा | भा. ८६१ |
| तेषामन्योन्य | स्कन्द. १९६५ |
| तेषामन्वेष | बौधा. १९४९ |
| तेषामप्राप्त | कात्या. ९५५ |
| तेषामभावे | देव. १५२५ |
| * ” ” | कौ. १६७६ |
| तेषामयस्त्र | शंखः १२८२ |
| तेषामर्थ द | वसि. १४७० |
| तेषामलाभे | कौ. १६१९ |
| तेषामाक्रोशे | ” ८४४ |
| तेषामाधिः स | मनुः १३९४ |
| *तेषामुत्पत्ति | ” ” |
| तेषामुत्पन्न | हारी. १२६५ |
| तेषामुत्पाद | बृहा. १८३५ |
| तेषामुत्पारे | ” ” |

| | |
|------------------|--------------|
| *तेषामेताः क्रि | नार. १५८० |
| *तेषामेव च | बौधा. १६०६ |
| तेषामेव नु | ” ” |
| तेषु तु नित्य | गौत. १६६१ |
| तेषु तेषु तु | मनुः १९३० |
| *तेषु नित्यं शु | गौत. १६६१ |
| *तेषु नित्यसु | ” ” |
| तेषु यथोक्ता | कौ. १९२३ |
| तेषु राजा प्र | भा. १२४४ |
| *तेषु षड्बन्धु | नार. १३४६ |
| *तेष्वधर्मप | वसि. १९२१ |
| तेष्वपचर | ” ” |
| तेष्वविक्रीते | कौ. १६७९ |
| ते संप्रपद्य | वेदाः ८१४ |
| ते सम्यञ्चो वै | ” १२६१ |
| ते सामं प्राप्नु | ” १५९७, |
| १६०१, १६०३ | वेदाः १८४० |
| ते ह देवा ऊ | ” १२५७ |
| ते हिन्विर अ | स्कन्द. १९६५ |
| ते हि पापस | विष्णुः १६७१ |
| ते हि राज्ञो ध | वेदाः ११४४ |
| ते होतुः | ” ११४३ |
| ते होतुः हन्ते | मनुः १९३० |
| ते होतुः कुपि | बृह. ८७४ |
| *तैः कृतं च स्व | ” ” |
| *तैः कृतं यच्च | ” ” |
| *तैः कृतं यत्स्व | ” ” |
| *तैः कृतौ यौ | ” ” |
| तैरेव राज | अनि. १९६८ |
| तैरेवामेध्वैः | कौ. १७९८ |
| *तैलानां च स | कात्या. ६३२ |
| तैलानां चैव | नार. ६२६; |
| कात्या. ६३२ | भार. ६३५ |
| तैलानां षड्गु | कात्या. ६३२ |
| *तैलानि चैव | कौ. १६१५ |
| तैलाभ्यक्तमा | मनुः ७१६ |
| तैस्तैरुपायैः | नार. ९४६ |
| तोयप्रवर्त | ” ” |
| *तोयप्रवर्ति | स्कन्द. १९६६ |
| तोलयित्वा त | भा. ८६१ |
| तौ क्षयव्य | अपु. १९६८ |
| तौ नृपेण ह्य | वेदाः १०१० |
| तौ वै संभवात् | मनुः ८२३, |
| तौ हि च्युतौ स्व | १९२८ |
| तौ हि शुक्लह | कौ. १०३४, |

| | |
|-----------------------|--------------|
| तौ होचतुः | वेदाः १४३० |
| *त्यक्तदुष्टांश्च | कात्या. ९५६ |
| त्यक्तप्रवज्यो | विष्णुः ८१६ |
| त्यक्तव्यां मां प | भा. १९७८, |
| १९८५ | नार. १०९५ |
| *त्यक्तव्यास्ते प | बृह. १६४८ |
| त्यक्ताग्निं संध्य | ब्रह्म. १११८ |
| त्यक्ता भर्तृग | भा. १२८७ |
| त्यक्तौ मातापि | वारा. १०७७ |
| त्यक्त्वा ज्ञातिज | कात्या. ९५६ |
| *त्यक्त्वा दुष्टांश्च | ” ” |
| त्यक्त्वा दुष्टांस्तु | ” ” |
| त्यक्त्वा महीं प | भा. १९८६ |
| त्यजन्ति पुरु | बौधा. १०२० |
| त्यजन्दाप्यस्तु | याज्ञ. १०८८, |
| १४०० | मनुः १६२७, |
| त्यजन्नपति | १९२६ |
| त्यजन् भार्या | नार. १०९९ |
| त्यजेत्पथि स | कात्या. ८५४ |
| *त्यजेत्पथ्य स | ” ” |
| *त्यजेन्नारीम | नार. १०९९ |
| त्रपुषे वारु | बृह. १७६१; |
| कात्या. १७६३ | मत्स्य. १७६७ |
| त्रपुषोर्वाह | बृह. १५२० |
| *त्रयं व्यपोह | भा. ८१८, |
| त्रयः किलेमे | १३९१ |
| त्रय एवाध | ” ” |
| त्रयश्च पिण्डा | बौधा. १२६९ |
| त्रयाणामपि | बृ. ७३४, |
| कात्या. १८८५ | भा. १२८४ |
| त्रयाणामित | वसि. ७३२ |
| त्रयाणामिति | मनुः १३१५ |
| त्रयाणामुद् | वेदाः ९१५, |
| त्रया वै नैर्ऋ | १८९७ |
| त्रयोदशं त्व | नार. ७६४ |
| त्रयोदशं स्व | ब्रह्म. १३७५ |
| *त्रयोदशम | नार. ७६४; |
| ब्रह्म. १३७५ | वेदाः ८१२ |
| त्रयो दासा आ | वसि. ७३२ |
| *त्रयोऽपि तं घ | ” ” |
| त्रयोऽपि तद्भ | ” ” |
| त्रयो वर्णां ब्र | वसि. १९२० |

| | | |
|-----------------------|----------|------|
| त्रयो वा कार्षा | विष्णुः | १७७१ |
| त्रायन्ते नर | भा. | १९८५ |
| त्रायस्वैनं न | स्कन्द. | १९६६ |
| *त्रिंशत् कोट्योऽर्ध | अग्नि. | १११५ |
| त्रिंशद्वर्षोद् | मनुः | १०४३ |
| *त्रिंशद्वर्षो व | " | " |
| त्रिंशांशो रोम | नार. | १७४७ |
| त्रिः कृत्वः प्राङ्मु | स्कन्द. | १९६७ |
| त्रिः परावर्त | " | " |
| त्रिः स्म माहः श्र | वेदा. | ९८८ |
| त्रिकाकथ्यून | अग्नि. | १९६७ |
| त्रिगुणं धान्य | वसि. | ६०९ |
| त्रिगुणा तिष्ठ | " | " |
| *त्रिगुणा त्विव्य | " | " |
| *त्रिगुणो दाद | कात्या. | १८३४ |
| त्रिगुणो वा क | मासो. | १९७० |
| त्रिते देवा अ | वेदा. | ९९९ |
| त्रिपक्षपक्ष | कात्या. | ९५८ |
| *त्रिपक्षपत्र | " | " |
| त्रिपक्षात्पर | बृह. | ६७२; |
| | कात्या. | ६७५ |
| त्रिपक्षादथ | बृह. | ८९६ |
| त्रिपञ्चाशः क्री | वेदा. | १८९५ |
| त्रिपणो दाद | कात्या. | १८३४ |
| त्रिपदीप्रति | कौ. | ९२६ |
| *त्रिपलं तु स | नार. | १७४७ |
| त्रिपलं तु सु | " | " |
| *त्रिपला तु सु | " | " |
| त्रिभागं क्षेत्र | ब्रह्म. | १३७५ |
| त्रिभागं पत्र | बृह. | ८५२ |
| त्रिभागमाह | बृह. | १९४३ |
| त्रिभिर्वर्णः स | भा. | १२४४ |
| त्रिभिस्सिद्धः क | बृह. | ८९६ |
| त्रिभोगेनाज्ञ | भार. | ९०० |
| त्रिरात्रं रज | वसि. | १९७७ |
| त्रिरात्रादूर्ध्व | कौ. | १६८६ |
| त्रिधौतस्य ना | विष्णुः | ८९१ |
| त्रिर्वा इदं वि | वेदा. | १८९६ |
| त्रिवर्षप्रजा | कौ. | १८४८ |
| त्रिवर्षमूल | विष्णुः | ८९१ |
| त्रिवर्षात्प्रगु | स्मृत्य. | १३७३ |
| त्रिविधं क्षत्रि | नार. | ११३१ |
| त्रिविधं तत्स | व्यासः | १८८९ |
| त्रिविधः प्रति | नार. | ६६९ |
| त्रिविधास्ते स | बृह. | ७८६ |
| *त्रिस्तं तु सु | नार. | १७४७ |

| | | |
|------------------------|---------|-------|
| त्रिषु वर्षेषु | कात्या. | ८३५; |
| | भा. | १२४३, |
| | | १२८७ |
| | " | १९८४ |
| त्रिषु वर्षेषु | स्कन्द. | १९६५ |
| त्रिसप्तरात्र | भा. | १४२९ |
| त्रिसहस्रप | मनुः | १०४२ |
| त्रीणि वर्षाभ्यु | बौधा. | १०१९ |
| त्रीणि वर्षाभ्यु+ | वेदा. | ७९२ |
| त्रीण्याहुरति | नार. | १२२० |
| त्रीण्येतान्यवि | " | १८२४ |
| *त्रीण्येव साध | " | " |
| त्रीण्येव साह | " | " |
| त्रीण्येव हि प्र | बृह. | ७३४ |
| त्रीनंशान् क्षत्रि+ | विष्णुः | १२४० |
| त्रीनृतून सम | नार. | १०९६ |
| त्रीन्कुमार्यतू | गौत. | १०१२ |
| त्रीन् राजन्यः | विष्णुः | १२४० |
| त्रीताया आदि | वेदा. | १८९८ |
| त्रीवार्षिकाथ | भा. | १२४४ |
| त्रीविद्यं वृत्ति | याज्ञ. | ८६५ |
| त्रीविद्यनृप | " | १७८२ |
| त्रीविद्यवृद्धा | विष्णुः | १७७०; |
| | वसि. | १९२१ |
| | " | १४७० |
| त्रीविद्यसाधु | मनुः | १४७८ |
| त्रीविद्याः शुच | याज्ञ. | ८६५ |
| *त्रीविद्यान् वृत्ति | मनुः | १२४६ |
| *त्र्यंशं दायं ह | " | " |
| त्र्यंशं दाय्याद | " | " |
| *त्र्यंशं ब्राह्मण्याः | वसि. | १२३९ |
| *त्र्यङ्गहीनः प्र | याज्ञ. | १७३३ |
| त्र्यङ्गहीनस्तु | " | १७३२ |
| *त्र्यङ्गहीनाश्च | " | १७३३ |
| *त्र्यङ्गहीनास्तु | " | १७३२ |
| त्र्यब्दादूर्ध्वं तु | बृह. | १९६२ |
| त्र्यम्बकं यजा | वेदा. | १००८ |
| त्र्यष्टवर्षोऽष्ट | मनुः | १०४३ |
| *त्र्यहं दोह्यं प | नार. | ८९४ |
| त्र्यहाहोह्यं प | " | " |
| त्र्यहाशौचे तु | ब्रह्म. | १११९ |
| *त्र्यहाशौचे त्रि | " | " |
| त्वं गुरुः सर्व | भा. | ८६१ |
| त्वं चास्य धाता | " | १२८८, |
| | " | १९८५ |
| त्वं तस्यामित्र | वेदा. | ८१० |
| त्वं मुखं सर्व | स्कन्द. | १९६६ |
| त्वं विष ब्रह्म | " | " |

| | | |
|--------------------|---------|-------|
| त्वं सोम पितृ | वेदाः | ८५७ |
| त्वं ह त्यदण | " | ६०१ |
| त्वं हि कर्तुं व | वारा. | १०७६ |
| *त्वक्छेदकः श | मनुः | १८०३ |
| " | नार. | १८२९ |
| " | मनुः | १८०३ |
| त्वग्भेदकः श | बृह. | १८३१ |
| त्वग्भेदे प्रथ | भा. | १२८५ |
| त्वत्कृतेऽहं पृ | " | १२८६ |
| त्वत्तोऽनुज्ञाप्र | " | १९८५ |
| त्वदङ्गेभ्यः प्र | वारा. | १०७७ |
| त्वद्विधास्तु गु | स्कन्द. | १९६६ |
| त्वमग्ने वेदा | भा. | १९६४ |
| त्वमग्ने सर्व | " | १९८३ |
| त्वमप्यन्तर्ज | वेदाः | ९९८ |
| त्वमस्यै धेद्यो | वारा. | १०७६ |
| त्वया मम न | " | १०७५ |
| त्वया यदप | " | १०७६ |
| त्वया विद्युक्तां | बृह. | ६५३ |
| त्वयैतच्छान्त | वेदाः | १०१० |
| त्वयैव संभ | भा. | ८६१ |
| त्वय्यासक्ता म | यमः | ६६० |
| *त्वर्वाग्भुक्ते स | वेदाः | ९९९ |
| त्वष्टा जायाम | " | १००४, |
| त्वष्टा दुहिते | " | १४२३ |
| | " | १००१ |
| त्वष्टा पिपेश | " | " |
| त्वष्टा वासो व्य | " | ९९९ |
| त्वष्टा सहस्र | भा. | ८६१ |
| त्वामासाद्य य | वेदाः | ९९७ |
| त्वाम्प्रेणाहं व | कात्या. | ११०९ |
| दक्षा प्रियंव | शौन. | १३६४ |
| दक्षिणां गुर | अग्नि. | ७८९. |
| दक्षिणानां तु | वेदाः | १००६ |
| दक्षिणानां प्र | मनुः | ७७४ |
| दक्षिणासु च | " | " |
| *दक्षिणासु तु | " | " |
| *दक्षिणासु प्र | " | " |
| दग्धस्य हृद | कौ. | १६१५ |
| दण्डं चैकाद | कात्या. | ८०५ |
| दण्डं दद्यात्स | याज्ञ. | १८७५ |
| *दण्डं प्रदाप्यो | " | १७२८ |
| दण्डं वा दण्ड | कात्या. | ७१४ |
| दण्डं स त्रिगु | भार. | ६६० |
| दण्डं स दाप्यो | याज्ञ. | १७२८ |
| *दण्डं स प्राप्नु | मनुः | १७१८ |
| *दण्डः काणख | विष्णुः | १७७० |

| | | |
|-------------------|---------|-------------|
| दण्डः कार्यो न | अपु. | १९७५ |
| दण्डः क्षुद्रप | याज्ञ. | १८२२ |
| दण्डः पुंसो द्वि | कौ. | १०३७ |
| *दण्डः स्यात् स | याज्ञ. | १८७५ |
| दण्डकर्ममु | कौ. | १६१४ |
| दण्डनीया त | याज्ञ. | ९१३ |
| दण्डनीयायु | नार. | ८०१ |
| दण्डपातभ | मासौ. | १९७० |
| *दण्डपारुष्यं + | कौ. | १७९८ |
| *दण्डपाषाण | बृह. | १८३० |
| दण्डप्रणय | याज्ञ. | १७८३ |
| दण्डप्रणीतः | कौ. | ८१७ |
| दण्डभयादा | " | ७९४ |
| *दण्डमुन्मोच | विष्णुः | १६१२ |
| दण्डयित्वा च | वृहा. | ७३१ |
| दण्डयेत्ताह | नार. | ९४६ |
| दण्डशुल्काव | मनुः | ६६३; |
| | वसि. | ६७८; वृहा. |
| दण्डस्तु देश | वसि. | १७९५ |
| दण्डस्त्वभिह | बृह. | १८३१ |
| दण्डहीने य | मासौ. | १९७० |
| दण्डाजिनादि | बृह. | १७५९ |
| *दण्डादियुक्त | " | " |
| दण्डेनैव त | मनुः | १६२९, |
| | | १६९८, १९२९ |
| *दण्डेनैव स | " | १६२९ |
| दण्डे सर्व स्थि | अपु. | १९६९ |
| दण्डो दमना | गौत. | १९१७ |
| दण्डो रक्षति | मासौ. | १९७० |
| दण्डो वा दण्ड | कात्या. | ७१४ |
| *दण्ड्यं प्रमोच | विष्णुः | १६१२ |
| *दण्ड्यः काणख | " | १७७० |
| दण्ड्यः शोणिति | " | १७९६ |
| दण्ड्यः स पापो | नार. | १९३५ |
| *दण्ड्यः स मूलं | मत्स्य. | ८५५ |
| दण्ड्यः स मूल्यं | " | " |
| *दण्ड्यः स राज्ञा | नार. | ७४८ |
| दण्ड्यः स राज्ञो | " | " ; |
| | बृह. | ७५२; व्यासः |
| | | ७५६ |
| दण्ड्य मुन्मोच | विष्णुः | १६१२ |
| *दण्डयानुन्मोच | " | " |
| दण्डवास्तापुत्र | यमः | १६५२ |
| दण्डयोत्सर्गे रा | वसि. | १६६८ |
| *दत्तं चैकाद | कात्या. | ८०६ |
| *दत्तं यत्स्याद् | नार. | ८०७ |
| दत्तं सप्तत्रि | " | ७९६ |

| | | |
|---------------------|----------|-------|
| दत्तः क्रीतः कृ | भा. | १२८४ |
| *दत्तः क्रीतः स्व | स्मृत्य. | १३७३ |
| *दत्तः क्रीतक्रे | हारी. | १२६५ |
| दत्तः क्रीतोऽप | " | " |
| दत्तः पुत्रः पि | शाता. | १३५२ |
| दत्तः पुत्रत्व | जाबा. | १३५६ |
| दत्तकश्च स्व | ब्रह्म. | १३७४ |
| दत्तकश्चाष्ट | विष्णुः | १२७९ |
| दत्तकानां तु | संप्र. | १३८४ |
| दत्तको द्विती | वसि. | १२७३ |
| दत्तक्रीतस्व | स्मृत्य. | १३७३ |
| दत्तक्रीतादि | बृम. | १३५८ |
| दत्तक्रीता हि | कात्या. | ५६७ |
| दत्तपुत्रे य | वृगौ. | १३७२ |
| दत्तमव्यव | कौ. | ७९४ |
| दत्तमूल्यस्य | नार. | ८८८ |
| दत्तशुल्कं प | कौ. | १०४० |
| *दत्तश्चाष्टम | विष्णुः | १२७९ |
| दत्तस्य जन | वसि. | १२७८ |
| दत्तस्य तृम | मनुः | १३२८ |
| दत्तस्यानपा | कौ. | ७९४ |
| दत्तस्यापदा | " | " |
| दत्तस्यैषोदि | मनुः | ७९६ |
| *दत्तां न्यायेन | नार. | १०९७ |
| दत्तात्मा तु स्व | याज्ञ. | १३३४ |
| दत्ताद्या अपि | कालि. | १३७७ |
| दत्ताद्यास्तन | " | " |
| दत्तानूढा च | कात्या. | १३५० |
| दत्ताऽप्यदत्ता | अपु. | १९७५; |
| | मत्स्य. | " |
| दत्ताप्रदानि | नार. | ७९७ |
| दत्तामपि ह | याज्ञ. | १०७८ |
| दत्ता यस्य भ | भा. | १०२८ |
| दत्तोऽपविद्ध | बृह. | १३४८ |
| दत्तोऽपि न स्व | पार. | १३५६ |
| दत्तैरसेत | शौन. | १३७१; |
| | आदि. | १३८३ |
| दत्त्रिमोऽपि स्व | विष्णुः | १२८१ |
| दत्त्वर्ष पाठ | याज्ञ. | ६९० |
| दत्त्वा कर्मां ह | " | १४४७ |
| दत्त्वा चौरस्य | " | १७४२ |
| *दत्त्वा तु ब्राह्म | " | ७२२ |
| *दत्त्वा तु सोद | नार. | ८३२ |
| *दत्त्वात्मा तु स्व | याज्ञ. | १३३४ |
| *दत्त्वा द्रव्यं च | नार. | ७९७ |
| दत्ता द्रव्यं च | " | " |

| | | |
|--------------------|----------|-------|
| दत्त्वा धनं तु | मनुः | १९३१ |
| दत्त्वा धान्यं व | अनि. | १९४३ |
| दत्त्वा न्यायेन | नार. | १०९७ |
| दत्त्वा पुनः प्र | मनुः | १०४१ |
| दत्त्वा समस्तं | नार. | ८९५ |
| ददतो यद् | बृह. | ७५० |
| ददाति दीय | " | ११४१ |
| ददाति मह्यं | वेदाः | ९६६ |
| ददानिषु चै | गौत. | १९७२ |
| ददाति हि स | भा. | १२८६, |
| | | १४७३ |
| 'ददामि' इती | बौधे. | १३८४ |
| ददामीत्यभि | वेदाः | १००६ |
| ददौ स दत्त | मनुः | १२९४ |
| " " + | भा. | १९८५ |
| *दद्याच्चापह | याज्ञ. | १५४६ |
| दद्यातां पित | स्मृत्य. | १३७३, |
| | | १३७४ |
| दद्यात्कृष्णाजि | " | १९७३ |
| *दद्यात्तदर्थ | कात्या. | १७६३ |
| दद्यात्तमथ | " | " |
| दद्यात्तस्यैव | नार. | १५११ |
| *दद्यात्तु ब्राह्म | याज्ञ. | ७२२ |
| *दद्यात्त्वपुत्रा | नार. | ६९८ |
| दद्यात्पशुम | " | १९७६ |
| दद्यात्पिण्डं कु | हारी. | १०१६, |
| | | १३८७ |
| दद्यात्समिति | कात्या. | ७५३ |
| दद्यादपह | विष्णुः | १५४१; |
| | याज्ञ. | १५४६ |
| *दद्यादपुत्र | नार. | ६९८ |
| दद्यादपुत्रा | " | " |
| दद्यादते कु | याज्ञ. | ६५२ |
| दद्याद्गुणव | बौधे. | १०१९ |
| दद्याद्दण्डं त | नार. | ७६३ |
| *दद्याद्दण्डं य | " | " |
| *दद्याद्दण्डं च | बृह. | १५१९ |
| *दद्याद्दण्डं वा | " | " |
| दद्याद्दण्डं न | अपु. | १९७६ |
| दद्याद्वा प्रति | प्रजा. | १३५० |
| दद्यान्माता पि | याज्ञ. | १३३२; |
| | पारा. | १३५२ |
| *दद्युःपृथक् पृ | मत्स्य. | ८५५ |
| दद्युःपैताम | नार. | ६९१ |
| *दद्युर्वीमिह | याज्ञ. | ६२० |
| दद्युर्वा स्वह | " | " |

| | | | | | | | | |
|-------------------|-----------|-------|-----------------|----------|------|-------------------|----------|-------|
| दद्युस्तत्रिन्विथ | याज्ञ. | ६८२ | दशकं पशू | गौत. | ११८३ | दातव्यं बान्ध | मनुः | ६८० |
| दद्युस्ते वीजि | नार. | १३४७ | दशकं पार | याज्ञ. | १७३१ | दातव्यं सर्व | ,, | १९५७ |
| दध्नः क्षीरस्य | मनुः | १७१८ | दशकुम्भीधा | विष्णुः | १६७० | दातव्या श्रोत्रि | लिङ्ग. | १३७६ |
| *दध्यक्षतपू | शंखः | १०२४ | दशकुलीस | कौ. | १९२४ | *दाता त्वयैत | बृह. | ६७१ |
| दन्तचर्मास्थि | वसि. | ६०९ | दशग्रामश | कात्या. | ९५८ | दाता न लभ | कात्या. | ६३१ |
| *दन्तपादन | कात्या. | १८८७ | दश चैव पि | भा. | १९८४ | दाता प्रतिग्र | देव | ८०६; |
| *दन्तिचर्मास्थि | वसि. | ६०९ | *दशतं पशू | गौत. | ११८३ | | कौ. | ८७९ |
| *दमः समः स | बृह. | १८८६ | *दशतः पशू | ,, | ,, | *दाता यत्र तु | कात्या. | ६५६ |
| दमदानर | ,, | ११०९ | *दशतश्च प | ,, | ,, | दातारः सुनि | भा. | १०२९ |
| *दमदानव | ,, | ,, | दश दश पा | वेदाः | १९८१ | दाताहमेत | बृह. | ६७१ |
| दमनाहण्ड | अपु. | १९७० | दशधा प्रवि | भा. | १२४३ | *दातुं तु न स | नार. | ७०४ |
| दमयन्त्याः प | भा. | ८१९ | दश नागस | वेदाः | ८१३ | दातुः समक्षं | शौन. | १३६३ |
| दमेन शोभ | ,, | ,, | दशपुत्रा न | ,, | १५७० | *दातुः स्त्रीमातृ | कात्या. | ७१२ |
| *दमो ज्ञेयः स | बृह. | १८८६ | दशभिर्वा प | अनि. | १९६८ | *दातुमर्हति | नार. | ९१६ |
| *दमो नेयः स | ,, | ,, | दशमं द्वाद | मनुः | १९५४ | दातृगोत्रस | स्मृत्य. | १११८ |
| दमोऽन्तिमः स | ,, | ,, | *दशमहिर्षी | गौत. | ९०४ | दानं क्रयध | आप. | १२६८ |
| दम्पती विव | नार. | ११०२ | दशमांशं ह | कात्या. | १५२४ | *दानं ग्रहण | नार. | ६२२ |
| दम्पत्योः पिता | कौ. | ६८० | दश वन्ध्यां च | देव. | १११२ | दानं लौकिक | भार. | ८०७ |
| दायितं याऽन्य | व्यासः | ११११ | दशवर्षेपि | कौ. | ६८० | *दानं वा स्वेच्छ | बृह. | १२२२ |
| दरिद्रं व्याधि | परा. | १११७ | दशहोतारं | वेदाः | १००६ | दानग्रहण | नार. | ६२२, |
| दरिद्रांश्च वि | भा. | १०३० | दशाचार्यानु | भा. | १९८४ | | १५८० | |
| दर्पोद्वा यदि | मनुः | १८५३; | दशातिवर्त | मनुः | १८०७ | दानप्रतिभु | मनुः | ६६४ |
| | नार. | १८८१ | दशाध्यक्षान् | विष्णुः | १९२१ | *दानप्रभृति | ,, | १०६० |
| दर्पेण धर्मो | विष्णुः | १७७० | *दशानां चैक | बौधा. | ११४६ | दानमध्यय | नार | १९४०; |
| दर्शं च मासि | अनि. | १५८९ | दशानां वैक | ,, | ,, | भा. | १९७६ | |
| दर्शनं व्यव | नार. | १९३६ | *दशापरे च | मनुः | १३२५ | दानमेकाल्म | भार. | ८०७ |
| दर्शनप्रति | याज्ञ. | ६६६ | दशापरे तु | ,, | ,, | दानवादप्र | व्यासः | ६७६ |
| ,, | कात्या. | ६७३ | दशावरं च | कौ. | १६१९ | *दानवादे प्र | ,, | ,, |
| + दर्शनप्राति | मनुः | ६६४ | *दशावरे तु | मनुः | १३२५ | दानात्प्रभृति | मनुः | १०६० |
| *दर्शनाधृत | कात्या. | ८०६ | दशास्यां पुत्रा | वेदाः | ९८६ | दानानि विप्र | व्यासः | ११११, |
| दर्शनाद्वृत्त | ,, | ,, | *दशाहं सर्व | नार. | ८९४ | | १५२४; | |
| *दर्शनाद् वृत्ति | ,, | ,, | दशाहः सर्व | ,, | ,, | दाने कथे वा | कौ. | ८७९ |
| *दर्शनात्प्रष्ट | ,, | ,, | *दशाहात् सर्व | ,, | ,, | दाने शुचिः अ | ,, | ७३७ |
| दर्शनेऽथ उ | वृव. | ६७७ | दशाहायास्तु | पञ्चा. | ९०१ | दाने शुद्धिः | ,, | ,, |
| *दर्शने प्रति | कात्या. | ६७३ | दशाहि सम | स्मृत्य. | ८९० | दाने समर्थो | शौन. | १३६३ |
| दर्शने प्रत्य | विष्णुः | ६६२; | दशैकपञ्च | याज्ञ. | ८९२ | दानोपस्थान | कात्या. | ६७३ |
| याज्ञ. | ६६५; बृह. | ६७१ | दस्यवः संप्र | नार. | १७५४ | दान्तो युक्तज | कौ. | ८६३ |
| *दर्शनोद्वृत्त | कात्या. | ८०६ | *दस्यवश्च प्र | ,, | ,, | *दापयित्वा ग | याज्ञ. | १७४१ |
| *दर्शयेयुर्नि | बृह. | ९५१ | दस्युनिष्क्रिय | मनुः | १७२६ | दापयित्वा ह | ,, | ,, |
| दर्शयेयुश्च | ,, | ,, | दस्युभिर्हिय | भा. | १२४४ | दापयेच्छिल्पि | कात्या. | ७५५ |
| *दर्शयेयुश्चि | ,, | ,, | दस्युवृत्ते य | नार. | १७५३ | दापयेत्पण | ,, | ९२० |
| *दशकं च श | नार. | १९११; | दहत्यग्निर्य | वसि. | १९७४ | दापयेद्दनि | मनुः | ७१८, |
| | कात्या. | १९१४ | दहेत्कटाग्नि | बृहा. | १८९१ | | ७१९ | |
| दशकं तु श | नार. | १९११; | दहेत्पापकृ | यमः | १८९० | *दाप्यः परर्ण | नार. | ६९७ |
| | कात्या | १९१४ | दह्यमाना म | भा. | १०२६ | दाप्यः परण | ,, | ,, |
| *दशकं पर | याज्ञ. | १७३१ | दाण्डिकस्य च | अपु. | १९४३ | दाप्यः स भोग | कात्या. | ६६० |

| | | | | | |
|-------------------|--------------|------------------|-------------|-------------------|--------------|
| दाप्यः स्यादद्वि | व्यासः ७६८ | *दासत्वात्स प्र | नार. ८३१ | दास्यायैव हि | मनुः ८२१, |
| *दाप्यश्चाष्टगु | याज्ञ. ७७८ | दासत्वात्स वि | " " | | १९२८ |
| *दाप्यस्तद्व | " ८४७ | दासद्रव्यस्य | कौ. ८१७ | दाहयित्वाऽग्नि | याज्ञ. १०९१ |
| *दाप्यस्तद्वि | व्यासः १७६५ | दासपरिचा | " १८५० | दाहयेत्तत् | बृह. १८०१ |
| दाप्यस्तु दश | याज्ञ. ८४७ | दासभावं ग | भा. ८१९ | दाहयेदग्नि | मनुः १०७५ |
| दाप्यस्तु द्विगु | व्यासः १७६५ | दासभावं न | उश. ८३९ | दिववर्त्तं गम | स्मृत्य. ८७७ |
| दाप्यस्त्वष्ट्रगु | याज्ञ. ७७८ | दासमनुरु | कौ. ८१७ | दित्सतोऽवरु | गीत. ६०८ |
| दाप्यो दण्डं च | " १८१९ | *दासस्त्रीभ्रातृ | कात्या. ७१२ | दिनक्रमेण | कात्या. ११०९ |
| दाप्यो भृतिच | नार. ८५० | दासस्त्रीमातृ | " " | दिनमासार्ध | बृह. ८३५ |
| *दाप्यो भृतिश्च | " " | *दासस्त्र्यमात्य | " " | दिनैकागम | व्यासः ११११ |
| दाप्यो यत्तत्र | " " | दासस्य तु ध | " ८३७ | दिवं गतानि | मनुः १०६२; |
| *दाप्यो यत्र तु | " " | दासस्य दास्या | कौ. १८४९ | | यमः १११३ |
| *दाप्यो यदत्र | " " | दासस्य पत्नी | भा. ८१८, | दिवं बोधसं | वेदाः १८४० |
| दायं तु न | गीत. १९८२ | | १३९१ | दिवः पुनरि | कात्या. १११० |
| *दायं दद्यात्क | बृह. ७८५ | *दासस्य हि ध | कात्या. ८३७ | दिवसान्तर | कौ. १६८७ |
| दायभाग इ | नार. ११३२ | दासाश्वरथ | मनुः १७११ | *दिवसे द्विगु | नार. ७६४ |
| *दायभागमि | " " | *दासीं च हर | नार. १७४९ | दिवसे द्विप | " " |
| दायविभागः | कौ. ११४९ | दासीं तु हर | " " | दिवस्पुत्रा अ | वेदाः ११२१ |
| *दायादबान्ध | वसि. १२७३ | दासीं निष्टक | वेदाः ८१२ | दिवा गृहीतं | मरी. ७६९ |
| दायादानां वि | कात्या. १२३० | दासीघटम | मनुः १३९२ | दिवा त्रीन् मु | शंखः ९०५ |
| दायादा वा रि | कौ. ६७९ | दासीत्वमाप्ता | ब्रह्म. ८४० | दिवा पशूनां | विष्णुः ९०४ |
| दायादेभ्यो न | याज्ञ. १२१५; | दासीदासव | भा. १०२९ | दिवा पृथिव्या | वेदाः ९७७, |
| | व्यासः १२३० | दासी नौकं त | नार. ७६४ | | १८३६ |
| * " " | मनुः १२१२; | दासीभूता त्वं | भा. ८१८ | दिवा रात्रौ वा | कौ. १६२० |
| | कात्या. १४५३ | दासीभूताऽग्नि | " ८४० | दिवा वक्तव्य | मनुः ९०७ |
| दायादे सति | नार. ७८२ | दासीव दिष्ट | शुनी. १११९ | दिवा क्षीप्रिक्षा | कौ. १०३६ |
| दायादेर्नाभ्य | प्रजा. १२३२ | *दासीषु हर | नार. १७४९ | दिवि ज्योतिरि | वेदाः १००७ |
| दायाद्यस्य प्र | मनुः १३९२ | दासीसुताश्च | कात्या. ८३९ | दिव्यप्रकर | स्कन्द. १९६५ |
| दायेन चाऽव्य | आप. १२६६ | *दासीसुतास्तु | " " | दिव्यमष्टवि | " " |
| *दायेनाऽव्यति | " " | दासेन या प | विष्णुः ८१६ | दिव्या अङ्गारा | वेदाः १८९५ |
| दारं चास्य क | आप. १८४४ | *दासेनोढा च | कात्या. ८३७ | दिव्यानां स्तम्भ | स्कन्द. १९६५ |
| *दारप्रहण. | नार. १५८० | दासेनोढा त्व | " " | दिव्यान्यासुर | " " |
| दारपुत्रप. | बृह. ७२५ | दासो दस्यते | नि. ८१४ | दिव्ये तु मूर्द्ध | अग्नि. १९६७ |
| दारमूलाः क्रि | नार. ७०४ | *दासोपस्थान | कात्या. ६७३ | दिव्येन किञ्चि | भा. १९८५ |
| *दारांश्चास्य चा | आप. १८४४ | दासोऽस्मीति त | भा. ८१९ | दिव्यैर्विशुद्धो | बृह. १६४८ |
| *दारांश्चास्याप | " " | दास्यं तु क्वर | मनुः ८२०, | *दिव्यानुरूप | " ६७२ |
| दाराः पुत्राश्च | कात्या. ८०४ | | १९२७ | दिव्योऽन्यै रा | वेदाः १८९७ |
| *दाराः पुत्रास्तु | " " | दास्यते तां त | वारा. १३२९ | दीनानाथवि | नार. ८००; |
| दारा इत्युच्य | भा. १२४४ | *दास्यां च दास | मनुः १३१० | | दक्षः ८०७ |
| दाराधीनस्त | मनुः १०५२ | दास्यां पूर्व | कौ. १६९० | दीप्तिमत्वाच्छु | नार. १९३६ |
| दासप्रपराध | " १९२७, | दास्यां वा दास | मनुः १३१० | दीयते स्यात्प्र | बृह. ६७७, |
| | १९४६ | *दास्या गृहीतो | कात्या. ८३७ | | ७६५ |
| दासं दासीं वा | कौ. ८१७ | *दास्यात् सोच | नार. ८३३ | दीयमानं न | याज्ञ. ६२२ |
| दासकर्मक | " ८१६ | दास्याद्दो विप्र | भा. ८४७ | " " + | नार. ४८८ |
| दासकर्मग | ब्रह्म. १२४७ | दास्यामि कार्य | शुनी. ८५६ | * " " | कात्या. ६३२ |
| *दासकर्मपरिः | नार. १२३१ | *दास्याम्यहं तै | बृह. १७९ | दीयमानं प्र | विष्णुः ६१० |

| | | | | | |
|---------------------|--------------|-------------------|---------------|---------------------|--------------|
| दीयमानम् | कात्या. १११० | दुर्मन्त्रनाम् | वेदाः १००४ | दृष्टो धमव्य | आप. १२६७, |
| दीयसे धर्म | स्कन्द. १९६७ | दुर्वाग्भावं र | भा. १०३३ | १६०५; गौत. | १६०४ |
| *दीर्घ तीव्राम | नार. १४०१ | दुर्विभक्तम् | कौ. १५७१ | दृष्ट्वा कार्याणि | शुनी. १७६७ |
| दीर्घकुत्सित | ,, १०९७ | दुष्कारं वा ए | वेदाः ७९२ | *दृष्ट्वा निसृष्टं | कात्या. १४५७ |
| *दीर्घतीव्राम | मनुः १३९८ | *दुष्टं तस्वामि | कात्या. ८९७ | दृष्ट्वा प्रयोज | भार. ८०७ |
| ,, " | नार. १४०१ | *दुष्टं संग्रह | नार. १८८१ | दृष्ट्वा प्रियं त | ,, " |
| दीर्घप्रवासि | कात्या. ७११; | दुष्टसामन्त | मनुः १९३० | दृष्ट्वा मुहुः प्रे | वृहा. १८९१ |
| ,, " | कौ. १०४० | दुष्टस्यैव तु | ,, १७८७ | दृष्ट्वा शयानं | भा. १२८७ |
| दीर्घसत्रव्या | ,, ६११ | *दुष्टस्यैव हि | ,, " | दृष्ट्वा पुरु | ,, १०३२ |
| दीर्घाश्रियो र | वेदाः ५९९ | दुष्टां जायां प | स्मृत्य. १११८ | द्वयं चौरह | याज्ञ. १९६० |
| दीर्घाध्वनि य | मनुः १९२७, | दुष्टाः साहसि | यमः १८९० | द्वयं तद्धनि | कात्या. ७१० |
| | १९४५ | दुष्टाचाराः पा | भा. १०३२ | *द्वयं त्वयेति | ,, ७५३ |
| दीर्घायुन्वम | वेदाः १९८० | दुष्टाऽन्यगत | नार. १०९७ | द्वयं पुत्रकृ | ,, ७१३ |
| दीर्घायुरस्तु | ,, १००४ | दुहितर ए | अनि. १३७४ | *द्वयं पैताम | नार. ६९१ |
| दीर्घायुरस्या | ,, ९८५, | दुहिताऽचार्य | नार. १८८२ | द्वयं प्रतिश्रु | कात्या. ७१३; |
| | १००१ | *दुहिता दुर्हि | नि. १२५५ | | याज्ञ. ७९७ |
| दुःखं रक्तं त्र | परि. १८३५ | दुहिताऽन्यत्र | भा. १२८६ | *द्वयं बधिर | बृह. ८७५ |
| *दुःखं त्रणं र | ,, " | दुहिता वा | आप. १४६६ | *द्वयं बालिश | ,, " |
| दुःखमुत्पाद | याज्ञ. १८१९ | दुहिता पुत्र | वेदाः १२६२ | द्वयं भार्यकृ | कात्या. ७१३ |
| दुःखासिका क | दक्षः १११५ | दुहितृणां प्र | याज्ञ. १४४५ | द्वयं वा निः स्व | बृह. ८७५ |
| दुःखिता यत्र | मनुः १९३० | दुहितृणाम | कात्या. १४५९; | द्वयं सवृद्धया | वृहा. ७१५ |
| *दुःखिते शोणि | याज्ञ. १८२२ | दूतीप्रस्थाप | उश. १४६२ | द्वयं स्वामिनि | कात्या. ९६० |
| दुःखे च शोणि | ,, " | *दूतीसंप्रेष | नार. १८८१ | द्वयः पिण्डोऽन | भा. ८१८ |
| *दुःखेऽथ शोणि | ,, " | दूतोपचार | ,, " | द्वया कन्या क | ,, १२८७ |
| *दुःखेन विनि | कात्या. ९१९ | दूषणे तु क | कात्या. १८८७ | द्वयानादेय | बृह. ७२७ |
| दुःखेन हि नि | ,, " | *दूषयन् सि | याज्ञ. १८७६ | द्वैवतानां पि | भा. १०२८ |
| *दुःखेनेह नि | ,, " | *दूषयेत्सर्व | कात्या. ९५९ | द्वैवताराध | ऋष्य. १११७; |
| *दुःखेषु शोणि | याज्ञ. १८२२ | दूषयेत्सिद्ध | ,, " | शुनी. १११९; अपु. | १९७९ |
| दुःखात्पादनं | कौ. १८०० | दृश्यते च ज | ,, " | द्वैवतार्थं च | कौ. ८०८ |
| दुःखात्पादने | ,, १७९९ | *दृश्यते विज | ,, १९१५ | द्वैवता वा ए | वेदाः १५९५ |
| दुःखात्पादि ष्ट | याज्ञ. १८२१ | दृश्यते ह्यचो | कौ. १६८६ | द्वैवततां प | मनुः १०५५ |
| दुःखापहत | कौ. १६१५ | दृश्यमानं वि | कात्या. १२३० | द्वैवतैतोर | अपु. १९७० |
| दुःशीलः कामः | वारा. १०७७ | दृश्यमाना वि | बृह. १२२२; | द्वैवपशुप्र | कौ. १६१८ |
| * " " " | मनुः १०६० | दृश्याद्वा तद्धिः | कात्या. १२३० | द्वैवपशुम् | ,, १६२१ |
| दुरोकशोचिः | वेदाः ९६३ | *दृश्याद्वाऽथ वि | याज्ञ. १५६५ | द्वैवपीयुश्च. | वेदाः १६०० |
| दुरोगकृत | कौ. १६१७ | दृष्टं संग्रह | ,, " | द्वैवपूजां नै. | शुनी. १११९ |
| दुर्यसेतुक | ,, १९२४ | *दृष्टप्रयोजः | नार. १८८१ | द्वैवप्रतिमा | विष्णुः १६११ |
| दुर्येष्टास्तु पु | याज्ञ. १९३३ | दृष्टमेव फ | भार. ८०७ | द्वैवब्राह्मण | नार. १७४५; |
| दुर्येष्ट वेदम | कौ. १६२० | दृष्टल्लिङ्गे भौ. | दक्षः १११४ | द्वैवभागस्त | वासि. १९४२ |
| दुर्येष्टहिता | गौत. १६५४ | दृष्टान्तत्वेन | कौ. १०३६ | Xद्वैवरः कस्मा | हरि. १३७६ |
| दुर्येष्टनाम | अनि. १९६९ | दृष्टिपातं प्र. | भार. १९७८ | द्वैवरक्ष्या | नि. १२५७ |
| दुर्येष्टाण वि | भा. १२८५ | *दृष्टिपाते प्र. | कात्या. १९४१ | *द्वैवराजभ. | गौत. १३८७ |
| दुर्येष्टो धर्मः | याज्ञ. १४४७ | *दृष्टिपाते प्र. | ,, ९५९ | द्वैवराजोप | बृह. ७४५ |
| दुर्येष्टो राजा | कौ. १९२४ | *दृष्टिपाते प्र. | ,, " | *द्वैवसताय | ,, ६५३ |
| दुर्येष्टो राष्ट्र | प्रजा. ७१५. | *दृष्टिपाते प्र. | ,, " | द्वैवसदा स | वेदाः १५६२ |
| *दुर्येष्टो व्याधिः | याज्ञ. १४४७ | *दृष्टिपाते प्र. | ,, " | मनुः १०६५ | मनुः १०६५ |

| | | | | | |
|------------------|----------------|-----------------|---------------|--------------------|---------------|
| देवराय प्र | वसि. १०२१; | देशकालान्त | कौ. ७३७, | देवपितृव्याति | विष्णुः १०२३; |
| देवरेण सु | मनुः १०४३ | | १६७९ | | मनुः १०५४ |
| Xदेवरो दीव्य | स्मृत्य. १३७३; | देशकालौ क्रि | काल्या. ६७४ | देवमेव भ | भा. १०२९ |
| देवलोके म | अनि. १३७४ | देशकालौ च | देव. ८०६ | देवराजकृ | नार. ७४८; |
| देवाविप्रस्व | नि. १२५७ | देशप्रामकु | बृह. १७८९ | | काल्या. ७५३ |
| देवस्ते सवि | वारा. १०७७ | देशप्रामगृ | नार. १७४६ | * " " | बृह. ७८५ |
| देवस्य त्वेति | बृहा. १६५३ | देशजातिकु | " १७८४; | देवराजभ | " " |
| देवाँ उप प्रै | वेदाः १००१ | गौत. १९१८; बृह. | १९४१ | * देवराजह | नार. ७४८ |
| देवाः प्र हिणु + | शौन. १३६४ | " | १७८९ | देवराजोप | विष्णुः ६३६; |
| देवा अप्रे न्य | वेदाः ९८२ | देशजात्यादि | अनि. १९४३ | हारी. ६३६; बृह. | ६५१, |
| देवा इव च | " ९९७ | * देशधर्मकु | बृह. १७८९ | ७५१; काल्या. | ६५८ |
| देवा इवामु | " १००२ | देशधर्मजा+ | वसि. १९२१ | " | याज्ञ. ८८४ |
| देवा एतस्या | भा. ८६० | देशधर्मान | नार. ७०३, | देवान्यष्टौ म | कौ. १९२४ |
| देवानां पत्नीः | " ९९८ | | ११०३ | देवे वा यदि | हारी. १०१६ |
| देवानुणं नि | " १८३९ | देशधर्मान् जा | मनुः १९३१ | देवेषु वै गौ | वेदाः ८१४ |
| देवान् कुर्यु | " १००५ | देशनिक्षेपं | कौ. १९२४ | * देवोत्पातक | बृह. १७५८ |
| देवान् यन्ना | " ६०४ | देशपत्तन | काल्या. १९४२; | देवोत्पातवि | " " |
| देवा भागं य | मनुः १९३० | देशविशेषे | पिता. " | देवोद्दिष्टं न | भा. १२८४ |
| देवा मनुष्या | वेदाः १९०२ | देशस्थित्या प्र | आप. ११६५ | Xदोषधेर्वा | नि. १२५५ |
| देवा वा असु+ | " ८५७ | देशस्थित्या प्र | बृह. ७८६ | दोषगौरव | भा. १०३० |
| * देवा वा एत | " १००५ | देशस्यजातेः | काल्या. १२२९ | दोषद्रव्यानु | मासो. १९७० |
| देवा वै न स | " १५९६ | देशस्य जात्याः | कौ. ११८५ | दोषनिग्रह | अपु. " |
| देवा वै यज्ञ | " १८३९ | देशस्याचर | काल्या. १९४२ | दोषमनाख्या | विष्णुः १६०९, |
| देवाश्च च वा | " ८५८ | * देशाचारवि | नार. ६२५ | | १९७५ |
| देवाश्च वाऽभ | " १७९३ | देशाचारस्थि | " " | दोषवत्कर | नार. ८७१ |
| " , + | " ११४४ | देशाचारेण | काल्या. ७२७ | * दोषवत्कार | " " |
| देवाश्चासुरा | " ११४४ | देशादिकं क्षि | बृह. १७९० | * दोषश्चेन्मार्गि | याज्ञ. ७४५ |
| देवाश्चैतामु | " ११४४ | देशान्यक्षांश्च | विष्णुः १९२१ | दोषमुविद्धाः | विष्णुः १६७० |
| देवासो नित्य | " " | देशान्यक्षोपि | " " | दोषन्सर्वांश्च | भा. १०३१ |
| देवीरापो अ | " १००५ | * देशाश्वरूप | बृह. ६७२ | दोषास्पदेशु | " १०३३ |
| देवीस्तिष्ठस्ति | " ९७३ | देशानलब्धा | मनुः १९०७, | दोषे तु सति | नार. १०९७ |
| देवैर्दत्तं मं | " ९२४ | | १९२८ | दोषे सति न | दर्शः १११४ |
| देशं कालं च | " ९९५ | * देशानुरूपं | बृह. ६७२ | दोषो भवेत्त | बृह. ७५१ |
| | " १००३ | देशानुरूप | " " | दोहदस्याप्र | याज्ञ. १०८३ |
| | याज्ञ. ८४७, | देशान्तरग | याज्ञ. ७७९ | दोहवाह्यक | व्यासः ६६४ |
| | १७३५ | देशान्तरगृ | ब्रह्म. १११६ | * दोहवाह्याकि | " " |
| * देशं कालं त | नार. १७५३ | देशान्तरे पृ* | अनि. १५८९ | दोहवत्यं ख्याप्य | मनुः १९३१ |
| * देशं कालं दि | " " | * देशाषहृत् | नार. ७०३, | दोहद्वित्रं भागि+ | शाक. १३५५ |
| * देशं कालं व | याज्ञ. १७३८ | | ११०३ | " | शौन. १३६५ |
| देशं ग्रामं दि | नार. १७५३ | देहनाशे धु | भा. १२८३ | दोहद्वित्र एव | भा. १२८६, |
| * देशकालकु | बृह. १७८९ | देहेन्द्रियवि | काल्या. १८३३ | १४७३; मनुः | १२९५, १४७४ |
| देशकालला | उश. १९४२ | दैवतं ब्राह्म | बृहा. १८३५ | दोहद्वित्रकेण | भा. १२८६ |
| देशकालम | याज्ञ. १७३८ | दैवतं सत | भा. १०२५ | दोहद्वित्रस्य मा | विष्णुः १२८१ |
| * देशकालवि | " ७६१ | दैवतप्रति | कौ. १४७० | दोहद्वित्रान्तर्मा | " १४७० |
| देशकालाति | कौ. ७३५, | दैवतस्कर | नार. ७२१ | * दोहद्वित्रेण वि | व्यासः १५२४ |
| ७५७, ८४४; याज्ञ. | ७६१ | * दैववित्राति | मनुः १४७४ | सौहृदिगेर्वा | " " |

| | | | | | |
|-------------------|-----------------------------|---------------------|-----------------------|----------------------|-----------------------------|
| दौहित्रोऽपि ह्य | विष्णुः १२७९; मनुः १३०२ | द्रव्याणां कुश | याज्ञ. १७३५ | द्वादशमंशं | कौ. १६७५ |
| दौहित्रो भागि | शौन. १३६५ | द्रव्याणां दूष | अपु. १७६६ | द्वादश वर्षा | गौत. ८१५, १०१३; कौ. १०३५ |
| दौहित्रो ह्याखि | मनुः १२९५, १४७४ | द्रव्याणां प्रति | विष्णुः १६११, १६६९ | द्वादशवार्षि | गौत. ७९४ |
| *दौहृदस्याप्र | याज्ञ. १०८३ | द्रव्याणामाधा | कौ. १९०५ | द्वादशाब्दं ध | स्मृत्य. १३७३ |
| भूतं कारये | विष्णुः १९०३ | *द्रव्याणि यो ह | मनुः १८०६ | *द्वादशाहं स | कात्या. ८९६ |
| भूतं निषिद्धं | बृह. १९१३ | *द्रव्याणि हिंसे | ,, १८०६ | द्वादशाहः स | ,, ,, |
| भूतं नैव तु | कात्या. १९१४ | द्रव्याणि हिंस्या | ,, १६३०, १८०६ | द्वादशैव तु | वसि. १०२२ |
| भूतं समाह | मनुः १९०६ | द्रव्यादानं वि | गौत. १६५९ | *द्वादशैव पु | ,, १२७२ |
| भूतमेकमु | याज्ञ. १९१० | *द्रव्यादि हिंस्या | मनुः १८०६ | द्वादशैवाथ | बौधा. ७८९ |
| भूतमेतत्पु | मनुः १९०६ | द्रव्यापेक्षो द | बृह. १६४५ | द्वादश्यां कार्ति | अपु. १९७९ |
| भूतसमाह | कौ. १९०४ | द्रव्येण वाऽवि | मरी. १५८८ | द्वादशे च क | वेदाः १८९८ |
| भूतस्त्रीपान | याज्ञ. १७४१; व्यासः १७६५ | द्रव्ये पिताम | बृह. ११७९ | द्वादश्यां सहाथ | बृह. ११०९ |
| *भूतात्पुरात | मनुः १९०६ | द्रव्यो व्यव | याज्ञ. १८१३ | द्वादशेशग | काष्णा. १३५६ |
| भूताध्यक्षो यू | कौ. १९०४ | द्रष्टारो व्यव | ,, १९०९ | *द्वादशेशे ग | ,, ,, |
| भूताभियोगे | ,, ,, | द्रष्टुं सर्वत्र | वारा. १०७६ | द्वादशाणां चैव | मनुः १६३०, १९३० |
| *भूते कपटा | विष्णुः १६६९ | द्रष्टुना चानु | भा. १३९१ | द्वादशे देवीर | वेदाः १००५ |
| भूते कूटाक्ष | ,, ,, १९०३ | *द्रोहभावं कु | मनुः १०४९ | द्वादशे पवेश | व्यासः ११११ |
| *भूते च कप | ,, १६६९ | द्रोणमुखप | कौ. ९३२ | *द्वादशे पसेव | ,, ,, |
| *भूते च कूटा | ,, ,, | द्रोणाहावम | वेदाः ९२३ | *द्वादशै आत्म | नार. ११७१ |
| द्यौर्भूमिः कोश | वेदाः १००० | *द्रोहभावं अ | मनुः १०४९ | द्वादशै क्षेत्रि | प्रजा. ९६१ |
| द्यौर्मै पिता ज | ,, १९७९ | द्रोहभावं कु | ,, ,, | द्वादशै प्रति | नार. ११७१ |
| द्रविणार्हश्च | कात्या. ७१० | *द्रोहभावं च | ,, ,, | द्वादशै वैश्यः+ | विष्णुः १२४० |
| द्रव्यं गृहीत्वा | ,, ६५५ | द्रोहेण च ना | विष्णुः १७७० | द्वादशै वैश्या | ,, ,, |
| द्रव्यं तदीयं | बृह. ७२६ | *द्रव्ययुद्धे तु | बृह. १९१३ | द्वादशै सपि | कौ. १२४५ |
| द्रव्यं तदीय | याज्ञ. ७४५ | द्रव्ययुद्धेन | ,, ,, | *द्वादशै शतिप | याज्ञ. १७२८, १८१६ |
| *द्रव्यं तद् द्वि | नार. ८८८ | द्रव्ययुद्धे स | विष्णुः १९०३ | द्वादशे कर्म | नार. ८३१ |
| *द्रव्यं तु दाप | कात्या. ७१० | द्रव्यं निगृह्य | मनुः ७४३ | *द्विः पादस्त्रिस्तु | ,, १७४८ |
| *द्रव्यं पिताम | बृह. ११७९ | द्रव्यां अमे र | वेदाः ८११ | द्विः पादस्त्रि | ,, ,, |
| द्रव्यं यत्त्वध | संभ्र. ७१६ | *द्रव्योः पूर्वत | कात्या. ६५६ | द्विकं त्रिकं च | वसि. ६०९३ |
| *द्रव्यं यद्यध | ,, ,, | द्रव्योः प्रहर | बृह. १८३१ | द्विकं त्रिकं च | विष्णुः ६१०; मनुः ६१२३ |
| द्रव्यं विना तु | बृह. १७८९ | *द्रव्योरपि कु | मनुः १७२५ | द्विकं शतं तु | नार. ६२४ |
| द्रव्यं स्वं पञ्च | कात्या. ८९७ | द्रव्योरापञ्च | नार. १८२७ | द्विकं शतं प | मनुः ६११ |
| द्रव्यपरिग्र | अपु. १४०५ | *द्रव्योर्निक्षिप्त | विष्णुः ६३७ | द्विकं शतं वा | विष्णुः १६७१ |
| द्रव्यभोगाना | कौ. ७३७ | द्रव्योर्निवेशि | कात्या. १५६१ | द्विकं शतं वा | मनुः ६११३ |
| द्रव्यमपुत्र | ,, १४७३ | द्रयोर्वा | गौत. १२६३ | द्विकं शतं हि | नार. ६२४ |
| द्रव्यमस्वामि | नार. ७६३ | द्रयोर्विवादे | कात्या. ९५५ | द्विकं शतं हि | मनुः ६११३ |
| द्रव्यमादाय | अपु. १७६६ | द्रयोर्हि कुल | मनुः १०४६ | द्विकं शतं हि | नार. ६२४ |
| द्रव्यवत्त्वानु | जैमि. १४२४ | द्वात्रिंशतं प | याज्ञ. १८१६ | द्विकं शतं हि | नार. ६२४ |
| द्रव्यवन्तश्च | ,, ८६१ | *द्वात्रिंशत् प | ,, ,, | द्विकं शतं हि | नार. ६२४ |
| द्रव्यस्य कल्प | अनि. ११९४ | *द्वादश इत्ये | वसि. १२७२ | द्विकं शतं हि | कौ. १६७७ |
| *द्रव्यहानिर्य | बृह. ७८५ | *द्वादश पव | ,, ,, | द्विकं शतं हि | बृह. ७३४ |
| द्रव्यहृदाप | कात्या. ७१० | द्वादश त्वेव | ,, ,, | द्विकं शतं हि | कात्या. ७२० |
| | | द्वादशधा नि | वेदाः ९९६ | *द्विगुणं तत्पु | नार. ८९३ |
| | | द्वादशपणं | कौ. ७३५ | द्विगुणं तत्पु | बृह. ६७७ |

| | | |
|-------------------|-----------|------|
| द्विगुणं तत्र | बृह्. | ७१५ |
| *द्विगुणं तत्र | याज्ञ. | ६६७ |
| द्विगुणं तु त् | नार. | ८९३ |
| द्विगुणं त्रिगु | " | ६२६; |
| हारी. | ६६१; लहा. | ६७७; |
| | अपु. | १९७६ |
| द्विगुणं दाप | " | १६५४ |
| द्विगुणं न प्र | उत. | ६७६ |
| द्विगुणं प्रति | याज्ञ. | ६६७ |
| *द्विगुणं वा च | मनु. | १७२१ |
| द्विगुणं हिर | वसि. | ६०९ |
| *द्विगुणः कल्प | बृह. | १६४६ |
| द्विगुणः शोणि | " | १८३० |
| *द्विगुण उक्तो | विष्णु. | १७९७ |
| द्विगुणास्त्रिगु | बृह. | १८३० |
| द्विगुणस्योप | " | ७२६ |
| द्विगुणां तु भृ | नार. | ८५० |
| द्विगुणा त्विष्य | वसि. | ६०९ |
| द्विगुणादपि | कात्या. | ७३० |
| *द्विगुणा दाप्य | वसि. | ६०९ |
| द्विगुणादिक्र | कात्या. | ७३० |
| द्विगुणाद्भूय | अनि. | १९६७ |
| द्विगुणा वा च | मनु. | १७२१ |
| द्विगुणास्तुत | कात्या. | ९५७ |
| *द्विगुणा हीष्य | वसि. | ६०९ |
| द्विगुणोत्तरा | गौत. | १६५७ |
| *द्विगुणो द्विश | याज्ञ. | १७३४ |
| द्विगुणो वा क | बृह. | १६४६ |
| *द्विजं प्रदूष्या | याज्ञ. | १६३६ |
| द्विजस्तुगैधः | " | ९१२ |
| *द्विजस्तुगैध | " | " |
| द्विजस्त्रीणाम | सुनी. | १११९ |
| *द्विजस्त्रीषु च | कात्या. | १११० |
| द्विजस्य भार्या | विष्णु. | १०२३ |
| द्विजस्य स्त्रीषु | कात्या. | १११० |
| द्विजातय इ | मनु. | १७०१ |
| द्विजातिप्रव | बौधा. | १२७० |
| द्विजातीनां च | मनु. | १६२३ |
| द्विजातीनां गृ | भार. | ७३१ |
| द्विजातीनां शू | विष्णु. | १२४० |
| *द्विजातीनां शौ | " | " |
| द्विजानां च गु | भा. | १०३३ |
| द्विजानां परि | " | ८१९ |
| *द्विजानामसं | आदि. | १३८४ |
| द्विजे भोज्ये तु | मत्स्य. | १६५५ |
| द्विजोत्तमं वि | भा. | १४६९ |

| | | |
|-------------------|------------|-------|
| द्विजोऽश्वगः क्षी | मनु. | १७२३ |
| द्वितीयं तु पि | " | १३०२ |
| द्वितीयं शुल्कं | कौ. | १४३० |
| *द्वितीयः पुत्रः | वसि. | १२७२ |
| *द्वितीयः पुत्रि | " | " |
| द्वितीयमर्ध | विष्णु. | १९५० |
| द्वितीयमायु | मनु. | १०७५ |
| द्वितीयमेके | " | १०६५ |
| *द्वितीयस्तु न | " | १०६३ |
| द्वितीया तु भ | भा. | १२४४ |
| द्वितीयै चैव | नार. | १७४८ |
| द्वितीयै छेद | कौ. | १६१७ |
| द्वितीयै पञ्च | " | १६७४ |
| द्वितीयै पित | बौधा. | १२६८ |
| द्वितीयै पुत्रं | हारी. | १२६५ |
| *द्वितीयै पुत्र | " | " |
| द्वितीयै श्रुति | स्कन्द. | १९६६ |
| द्वितीयै हस्त | मनु. | १७१३, |
| | १९२९; बृह. | १७६० |
| द्वितीयैऽहि द | नार. | ८९३ |
| द्विधा सूनवो | वेदाः | ११६० |
| द्विनेत्रमेदि | याज्ञ. | १६३७, |
| | १९३३ | |
| *द्विपणद्वाद | कात्या. | १८३४ |
| द्विपणे द्विश | याज्ञ. | १७३४ |
| *द्विपणो द्वाद | कात्या. | १८३४ |
| द्विपदश्चतु | कौ. | ८७९ |
| द्विपदामर्ध | नार. | ८९४ |
| द्विपदो नश्च | वेदाः | ८१३ |
| द्विपितुः पिण्ड | बौधा. | १२६९ |
| द्विप्रकारं च | स्कन्द. | १९६६ |
| *द्विप्रकारा भा | बृह. | ८३५ |
| द्विप्रकारो भा | " | " |
| *द्विप्रकारो भो | " | " |
| द्विप्रकारो वि | " | १२२४ |
| द्विभागधन | वेदाः | ११६२ |
| द्विरसस्तेन | भा. | १२४३ |
| द्विरन्येनाहि | कौ. | ८१७ |
| द्विरभ्यस्ताः प | नार. | १९११ |
| *द्विरष्टापायं | " | १७५२ |
| *द्विरामुष्याय | " | १३४६ |
| द्विरुत्थानो द्वि | गौत. | १९६३ |
| *द्विदोदशप | याज्ञ. | १८७९ |
| द्विद्वौतस्व ना | विष्णु. | ८९१ |
| द्विविधास्तस्क | मनु. | १६९३, |
| | १५२९ | |

| | | |
|---------------------|---------|-------|
| द्विविधास्तस्क | नार. | १७४५ |
| द्विविधो विभा | विष्णु. | ११२५ |
| द्विशतं तु द | मनु. | १८६८ |
| *द्विशतं तु प | " | " |
| *द्विशते खर्व | याज्ञ. | ९१३ |
| *द्विपस्तदध्य | वेदाः | ६०० |
| द्विपस्तरध्या | " | " |
| द्विसहस्रप | व्यासः | १४६० |
| *द्विसाहस्रः प | " | " |
| *द्विसाहस्रप | " | " |
| *द्विसाहस्रात् | " | " |
| द्वे नप्तुर्देव | वेदाः | ८११ |
| *द्वे पारुष्ये प्र | नार. | १६४२ |
| द्वे भार्ये क्षत्रि | " | १०९३ |
| *द्वे शते कर्ष | याज्ञ. | ९१३ |
| *द्वे शते कर्व | " | " |
| द्वे शते खर्व | " | " |
| *द्वेषाद्वा यदि | मनु. | १८५३ |
| द्वेष्टि श्वशूर | वेदाः | १८९४ |
| द्वैमानुषां मा | बृह. | १९८८ |
| द्वौ तु यौ विव | मनु. | १३२३ |
| *" " | नार. | १३४७ |
| द्वौ त्रयः पञ्च | बृह. | ८७४ |
| *द्वौ भागौ पितु | शंखः | १२८२ |
| द्वौ राजा रत्नं | कौ. | १६७५ |
| द्वौ लोके धृत | गौत. | १९१६ |
| *द्वौ वैश्यासुतः | विष्णु. | १२४० |
| द्वौ सकुल्याः स | बृह. | १२५१ |
| द्वौ सपिण्डः स | देव. | १२५२ |
| *द्वौ सपिण्डः स्व | " | " |
| द्वौ समुद्रौ वि | वेदाः | ९२४ |
| द्वौ सुतौ विव | नार. | १३४७ |
| द्वौ हस्तौ निख | स्कन्द. | १९६५ |
| द्वंसं ज्येष्ठौ ह | वसि. | ११८४ |
| *द्वंसं वा पूर्व | गौत. | ११८२ |
| द्वंसहरोऽर्ध | कात्या. | ११७४ |
| द्वंशी वा पूर्व | गौत. | ११८२ |
| द्वन्तरः प्राति | नार. | ११०५ |
| द्वन्तरश्चानु | " | ११०४ |
| द्वष्टापायं तु | " | १७५२ |
| द्वामुष्यायण | " | १३४६; |
| | प्रव. | १३८४ |
| द्वोस्या द्विजिह्वा | वेदाः | १६०० |
| *धनं ऋषिकृ | बृह. | ६५२ |
| धनं तत्पुत्रि | मनु. | १२९८ |
| *धनं तु विभृ | " | १३१८ |

| | | | | | |
|-----------------|---------------|-------------------|--------------|----------------------|--------------|
| धनं पत्रनि | कात्या. १२२८ | धर्म मनसि | भा. १०३३ | *धर्मेण विनि | मनुः १३०४ |
| *धनं प्रानोति | बृह. १५५८ | धर्म हि श्रेय | ,, १९८४ | धर्मेण व्यव | ,, ७१७; |
| धनं भवेत्स | ,, १२२२ | धर्म एकः प | अनि. १११८ | नार. ७२३ | |
| धनं मूर्लीकृ | ,, ६५२ | धर्मकामा भु | कौ. १४३० | धर्मे प्रयत | भा. १९६४ |
| *धनं यत्र नि | कात्या. १२२८ | धर्मकार्ये तु | भा. १०२९ | धर्मोपदेशं | मनुः १७७६; |
| धनं यो विभृ | मनुः १३१८ | धर्मकीर्त्याव | ,, १९८५ | नार. १७८८; अपु. १७९२ | |
| धनं व्यपोह्य | बृह. १५२० | धर्मज्ञस्य कृ | नार. १९३९ | धर्मोपदेश | बृह. १७९० |
| *धनं शौर्यादि | व्यासः १२३१ | धर्मज्ञाः शुच | याज्ञ. ८६८ | *धर्मो राज्ञः पा | वसि. १९२० |
| धनं सप्तवि | नार. ११२९; | धर्मज्ञा धर्म | भा. १२८६ | धर्मो ह्यधर्मो | कौ. १९२३ |
| | मनुः १९८६ | धर्मज्ञान् रा | ,, १९६९ | धर्म्य विभागं | मनुः १२४६ |
| धनप्राहिणि | विष्णुः ६७८ | धर्मतन्त्रपी | गौत. १६६१ | धर्म्यां स्त्रियं स | भा. १९६४ |
| धनदानास | कात्या. ७२९ | धर्मतन्त्रस | ,, १६५९ | *धर्म्यादिनोद्ग्रा | बृह. ७०९ |
| धनमूलाः कि | नार. ११२९ | धर्मतोऽहं प | भा. १९७८, | धर्म्येण विधि | स्कन्द. १३७५ |
| *धनमेकं वा | बौधा. ११४६ | | १९८५ | *धर्म्येण व्यव | मनुः ७१७ |
| *धनमेकमे | ,, ,, | धर्मदानम | कौ. ७९४ | धाता च सम | भा. १०३० |
| धनमेवंवि | कात्या. १२२८ | *धर्मदानर | बृह. ११०९ | धाता विपश्चि | वेदाः १००१ |
| *धनसर्वस्व | नार. १६४३ | धर्मपत्नी स | दक्षः १११४ | धातुर्देवस्य | ,, ९९७ |
| धनस्त्रीहारि | ,, ७००; | धर्मप्रजासं | आप. १०१७ | धातुश्च धोनौ | ,, ९९१ |
| | बृह. ७०८ | *धर्मप्रजासु | ,, ,, | धातूनां कूट | शुनी. १७६७ |
| धनिकार्णिक | नार. ७०६ | धर्मप्रश्रम | भा. १९६३ | धात्रीपरिचा | कौ. ८१७ |
| *धनिकस्य ऋ | पिता. ६७६ | धर्ममात्रं वा | विष्णुः ११२५ | धात्रीमाहिति | ,, ,, |
| धनिकस्य त | कात्या. ८९८ | धर्ममावाह | भा. १२८६ | धान्यं दक्षभ्यः | मनुः १७१४; |
| धनिकस्य तु | भार. ७३१ | धर्ममेवं ज | ,, १२८५ | नार. १७५० | |
| धनिकस्य ध | पिता. ६७६ | धर्मवंशप | देव. ११११ | धान्यं हिरण्यं | भार. ७३१ |
| *धनिकस्यैव | नार. ७०६ | धर्मविवाहा | कौ. १०४० | धान्यशाकम् | कौ. १९२४ |
| धनिकाश्चक | शुनी. ६३५ | धर्मशास्त्रेषु | भा. १२८७ | धान्यस्नेहक्षा | ,, १६७८ |
| *धनिकेन तु | कात्या. ६३१ | *धर्मसंकर | नार. १९३४ | धान्यस्य दक्ष | भा. ८६० |
| धनिन ऋणि | बृह. ६७७ | धर्मस्थं प्रदे | कौ. १६७९ | धान्यहर्ता द | बृह. १७६० |
| *धनी चोपग | याज्ञ. ६८९ | धर्मस्थश्च स्वा | ,, ७५७ | *धान्यहारा द | ,, ,, |
| धनी तावत्स | बृह. ६३० | धर्मस्थीयान्वा | ,, १६९० | *धान्यानि वाप | कात्या. ९५९ |
| धनी धनेन | प्रजा. ६६० | धर्मस्य ह्यंश | गौत. १९१७ | धान्यापहार्ये | विष्णुः १६६९ |
| धनी वोपग | याज्ञ. ६८९ | धर्मादिनोद्ग्रा | बृह. ७०९ | धान्ये चतुर्गु | बृह. ६३० |
| धनुः शतं प | मनुः ९०९; | धर्माद्विचलि | नार. १०७७ | धान्येनैव र | वसि. ६०९ |
| याज्ञ ९१३; अपु. | १९७६ | धर्मार्थं कारि | नार. ९४७ | धान्ये सदे ल | मनुः ६१२ |
| *धनुः शतप | मनुः ९०९ | धर्मार्थं प्रीति | कात्या. १२२९ | धारणं पर | कात्या. १८८७ |
| धनुः शत्रोर | वेदाः ११२२ | धर्मार्थं येन | मनुः ७९५ | धारणकसं | कौ. ६३८ |
| धनेन वैश्यः | भा. ८१९ | धर्मार्थं वस्त्रि | देव. १४०४ | धारयन्ति म | भा. १०३३ |
| धनोष्मणा प. | मनुः १६३२ | धर्मार्थं वार्धि | नार. १३४७ | *धारयेद्वा ऋ | बृह. ७२६ |
| धन्यं यशस्य | भा. ८६० | धर्मार्थकाम | ,, १०९७ | धारयेन्मङ्ग | शुनी. १११९; |
| धन्वन्ता गा ध | वेदाः ११२२ | धर्मार्थो यत्र | बौधा. १९७४; | अपु. १९७९ | |
| धरकस्य मा | कौ. १६७८ | | मनुः ,, | धार्मिकश्च कु | भा. १२८६ |
| धरिममेय | विष्णुः १६०९, | धर्मासनग | नार. १९३६ | धार्म्यं शुल्कम | आप. १६६६ |
| | १६७१ | धर्मिष्ठान् ध | विष्णुः १९२१ | धार्म्यो सा वर्ष | शंखः १०२४; |
| धर्मं च व्यस्र | कात्या. १९४२ | धर्मिष्ठान् व्य | भा. ८६१ | धार्म्योऽवच्छ | कात्या. ११०९ |
| धर्मं पुराण | वेदाः १००४, | धर्मं चार्थं च | आप. १०१७ | धार्म्यो देवेषु | ,, ७२८ |
| | १४२३ | धर्मेण चाऽपि | भा. १२८६ | | वेदाः ९२३ |

| | |
|------------------|--------------------|
| धुरंधरा भ | भा. १०२९ |
| धूमावसानि | बृह. १५२० |
| *धूमावसारि | " " |
| धूर्त पतित | बृहा. १६५३ |
| धूर्ता वैनासि | शंखः १०२४ |
| धूर्त बन्दिनि | स्मृत्य. ७१५ |
| धूर्त वल्लभ | कात्या. १२२८ |
| धृतदण्डोऽप्य | नार. १६४४ |
| धृतव्रता आ | वेदाः ९६९, १२५८ |
| धृतिभैक्ष्यं कु | मनुः ११२७ |
| *धृष्टाऽन्यगत | नार. १०९७ |
| धेन्वनडुहो | बौधा. १६०६ |
| ध्यायत्यनिष्टं | मनुः १०५० |
| ध्रुवं धृतात्क | कात्या. १९१४ |
| ध्रुवा अस्मिन्गो | वेदाः ९०२, ९०३ |
| ध्रुवा एवासि | " " |
| ध्रुवाननप | " ८१३ |
| ध्वजाहृतं भ | कात्या. १२२७ |
| ध्वजाहृतो भ | मनुः ८२१, १९२८ |
| ध्वजिनी मत्स्य | नार. ९४४ |
| *ध्वजिनी सांधि | " " |
| न कथञ्चन | " १९३७ |
| न करिष्यति | भा. १२८५ |
| न कश्चिद्योषि | मनुः १०४७ |
| न कांचन प | वेदाः १०११ |
| न कामभोगा | भा. १०३२ |
| *न कारके नि | कात्या. ७२८ |
| नकिरस्य प्र | वेदाः ९७६, १८३६ |
| न किल्बिषेणा | नार. १७८७ |
| न कुर्यात्तता | भा. १०२७ |
| *न कुर्यात्प्रति | कात्या. १५२३ |
| न कुर्याद् मृति | कुकी. ८५६ |
| न कुर्याद्वादि | कात्या. १५२३ |
| न कुलं न कृ | वारा. १०७६ |
| नकुलो ग्लह | भा. ८१९ |
| *न कूर्तं कूर्त | आश. १७२९ |
| न केनचित् | कुकी. ११२९ |
| *न क्रयेदाग | नार. १७७३ |
| न क्षयो नां च | याज्ञ. १७७३ |
| न क्षेत्रजादि | कात्या. ११७७ |
| *न क्षेत्रजादी | " " |
| नक्षत्रान्तकः | मनुः १०९१ |

| | |
|-------------------|------------------------|
| *न खलु कुली | वासि. १०२२ |
| *न खलु तल्लु | " " |
| *नखिनां दंष्ट्रि | विष्णुः १६१२ |
| नखिनां शृङ्गि | " " ; |
| | कात्या. १६५१ |
| न गच्छेत् गर्भि | नार. ११०१ |
| न गणाः कृत्स्न | भा. ८६१ |
| न गणिकाधू | शंखः १०२५ |
| नगरं यास्य | वारा. १३२९ |
| नगरग्राम | नार. ९४४ ; बृह. ९५१ |
| नगरस्थो व | वारा. १०७७ |
| न गुरावकृ | भा. १९८३ |
| न गुरुर्न स | उद्य. ८३९ |
| *न गृहेताग | नार. ७६३ |
| न गृहेदाग | " " |
| न गृहं गृह | स्मृत्य. १११८ |
| नग्रे विनग्रे | कौ. १०३५ |
| न ग्राह्यो ह्यन्य | कात्या. १८८७ |
| *न व तं प्राप्नु | नार. १९१२ |
| न व तं हातु | भा. १०२७ |
| न व तद्दृष्ट | नार. १८२७ |
| न व तान् ज | विष्णुः १६१० |
| *न व तान् य | " " |
| *न व तौ दम्प | वासि. १०२१ |
| न व त्वमभि | भा. १०३१ |
| न व दत्तोऽप्य | बृह. १३५५ |
| न व पित्रा वि | भा. १९८३ |
| न व प्राकाम्य | कौ. ७७२, १८४८ |
| " " + | " १८४९ |
| न व भार्याकृ | नार. ६९८ |
| न व भोगे न | भा. १०२९ |
| न व मन्त्रोप | कसि. १०२१ |
| न व मुख्य व | भा. १०२८ |
| *न व यावति | बृह. ७८६ |
| *न व याचेत् | " " |
| न व योषिषु | मनुः १०७१ |
| न व वासांश्चि | " १७७९, १९२७ |
| न व वैश्यस्य | भा. १९७६ |
| न व व्याघ्रिता | विष्णुः १०२२ |
| न व वृत्तेषु | शंखः १०२५ |
| न व सिद्धे | आश. ११२८ |
| न व जीव कि | भा. १०३३ |
| न व सु सीता | नार. ११७६ |

| | |
|-----------------|----------------------------|
| न च स्वमुच्य | संग्र. ११४२ |
| न चादरवा क | मनुः १३९८ |
| न चादेयं स | " १९३१ |
| न चाधेः काल | " ६४८ ; नार. ६५० |
| न चानिवेद्य | कौ. ८४४, १६८३ |
| न चान्यत्कार | नार. ८२७ |
| न चान्यसंश्रि | भार. ६३५ |
| न चाप्यधर्मः | भा. १९७८ |
| *न चाप्यसंश्रि | भार. ६३५ |
| न चारके नि | कात्या. ७२८ |
| न चासां मुच्य | भा. १०३२ |
| *न चासारं न | मनुः ८९१ |
| *न चास्ति विभा | शंखः १२०७ |
| न चास्य माता | भा. १२८७ |
| न चास्य मूल्यं | कौ. ६३८ |
| न चास्य व्यय | शुनी. १११९ |
| न चास्य शल्यं | भा. १९६३, १९६४ |
| न चेच्छुल्कं तु | कात्या. ८३९ |
| न चेतद्वच | जातू. ९०१ |
| न चेतस धनि | पिता. ६७५ |
| *न चेतस्वधनि | " " |
| न चेद्ददाति | अनि. ७५६ |
| न चेद्दद्यात्तु | नार. ७४८ |
| न चेद्दैनिक | कात्या. ६५५ |
| न चैकमक्य | कौ. ११४९ |
| न चैकस्मिन् | भा. १०३३ |
| न चैनमध्य | आप. १९७३ |
| न चैवं स्त्रीव | मनुः १०५८ |
| न चैव स्त्रीव | आम. १११३ |
| न चैवैनां प्र | कसि. १०७२ |
| न चैवोपम | बृह. १७७९ |
| न चोत्तमं न | कात्या. १११० ; कौ. १०५० |
| न चोद्येव | भा. १०५१ |
| न चोपलम्भः | मनुः १०५१ |
| न चातु श्राद्ध | " १०५८ |
| न चास्ये ता | वेदाः १२५४ |
| न चास्ये म | नि. " |
| *न चिह्नं च प्र | नार. १०५८ |
| *न चिह्नं प्र | " " |
| *न जीवति पि | शंखः ११४८ |
| न चैवैन प्र | नार. ११४८ |
| न चातिकुल | भा. ११४२ |

| | | | | | | | | |
|--------------------|---------|-------|---------------------|---------|---------------|-----------------|----------|-------|
| *न ज्ञानेन हि | कात्या. | १५८ | न तस्याज्ञां व्य | नार. | १९३६ | *न त्वेवैकं पु | वसि. | १२७४ |
| *न ज्येष्ठं पुत्रं | वसि. | १२७४ | न तां देवाः प | वसि. | १०२१ | *न दण्ड्यः काम | आप. | १६६५ |
| न ज्येष्ठो वाऽव | भा. | १९८४ | न तान् पङ्क्ति | हारी. | १०१७ | *न दत्तं वा ध | याज्ञ. | १४०८ |
| *न तं द्विषन्त्या | मनुः | १०५६ | न ता वाजेषु | वेदाः | ९७३ | न दत्तं स्त्रीध | ,, | ,, |
| न तं नयेत | ,, | ७५८ | न तासां रक्ष | भा. | १०३३ | ,, | ,, | १४४२ |
| न तं भजेर | विष्णुः | १२०६; | न तिष्ठन्ति न | वेदाः | ९७७, | न दत्त्वा कस्य | मनुः | १०४१ |
| | मनुः | १२०८ | | १८३६ | | न दद्यादृण | कात्या. | ८०५ |
| *न तं विभजे | ,, | ,, | न तु खलु कु | वसि. | १०२२ | न दद्याद्यदि | मनुः | ७४१; |
| न तच्छक्यम | बृह. | १२२४ | न तु चारण | बौधा. | १८४५ | | नार. | ७४८ |
| न तत्पुत्रा ऋ | याज्ञ. | ६६६ | न तु जात्या स | भा. | १२४४ | *न दद्याद्याच्य | ,, | ७०५; |
| न तत्पुत्रैर्भ | विष्णुः | १२०५; | न तु ते ब्राह्म | ,, | १९६९ | | बृह. | ७५१ |
| | मनुः | १२१३ | न तु दाप्यो ह | वृम. | ८५४ | न दद्याल्लोभ | विष्णुः | ६१० |
| न तत्प्रवर्त | नार. | १९३५ | न तु दृष्टार्थे | गौत. | १६०४ | न दस्य मा रु | वेदाः | ९६८ |
| न तत्र कार | भा. | १२८७ | न तु नामापि | मनुः | १०६२ | *न दातव्यं च | कात्या. | ७१४ |
| न तत्र गोमि | नार. | ९१७ | न तु प्रतित | विष्णुः | १३८९ | न दातव्यं तु+ | ,, | ,, |
| *न तत्र दाता | कात्या. | ८०६ | न तु ब्राह्मण | वसि. | १४७० | न दातव्यं न | व्याघ्रः | ८०७ |
| न तत्र दोषः | नार. | ९१८ | न तु राजप्र | कौ. | १८५० | न दाता तत्र | कात्या. | ८०६ |
| *न तत्र पाल | ,, | ,, | न तु वल्मीक | बृहा. | ९६२ | न दाप्योऽपह | बृहा. | ७३२; |
| न तत्र प्रण | मनुः | ९१० | *न तु स्त्री पुत्रं | वसि. | १२७४ | | याज्ञ. | ७४५ |
| न तत्र बीजि | कात्या. | ९६०; | ,, | बौधे. | १३८४ | न दायं निरि | बौधा. | १३८८ |
| | नार. | ११०२ | *न ते त्मूं त | वेदाः | ९७८ | न दारेषु न | कात्या. | ८०५ |
| न तत्र भागं | मनुः | १२१४ | न ते दुःखं क | वारा. | १०७६ | न दीकक्षव | वसि. | १९४४ |
| न तत्र रेतः | भा. | १२८७ | न तेन तदु | संग्र. | ७१५ | *न दीतीरं प्र | बृह. | ९५२ |
| *न तत्र रोध | कात्या. | ९५९ | न तेन भ्रूण | बौधा. | १६०८; | न दीतीरु प्र | ,, | ,, |
| न तत्र रोप | ,, | ,, | | वसि. | ,, | *न दीतीरुषु | ,, | ,, |
| न तत्र विध | मनुः | ७४२; | न ते मयाऽतो | वारा. | १०७६ | ,, | मनुः | १९२७, |
| | बृह. | ७६४ | *न तेषां मातृ | मनुः | १२३६ | | १९४५ | |
| *न तत्र विष | मनुः | १२१४ | न ते सखा स | वेदाः | ९७५, | *न दीनां चैव | ,, | १८५१ |
| *न तत्र-स्वामि | नार. | ९१७ | | १८३६ | न दीनां फेनां | वेदाः | ९९९, | |
| ,, | स्थस्य. | ९२१ | न त्यागोऽस्ति द्वि | मनुः | १०५६, | | १६०२ | |
| *न तत्रान्यकि | कात्या. | ७६७ | | १३९३ | न दीनां वाऽपि | मनुः | १८५१ | |
| न तत्रान्या कि | ,, | ,, | *न त्यागोऽस्ति वि | ,, | १०५६ | न दीनां संग | नार. | १८८० |
| *न तत्रपरिव | मनुः | १६२६ | न स्वन्ये प्रति | वसि. | १९२१ | न दीवेगाञ्वा | कौ. | ८४३ |
| *न तत्सुतैर्भ | विष्णुः | १२०५ | न त्वमत्येव | भा. | १०२८ | न दीष्ववेत | नार. | १९३६ |
| *न तद् भजे | मनुः | १२०८ | न त्वहोढान्वि | नार. | १७५१ | न दीष्वीतः प्र | बृह. | ९५२ |
| न तद्राज्ञां प्र | अपु. | १९६२ | न त्वेकं पुत्रं | वसि. | १२७३; | न-दुरुक्ताय | वेदाः | १८९३ |
| न तद्यतिह | नार. | ७८३ | | बौधे. | १३८४ | *न दुहितर | नि. | १२५५ |
| *न तद्यभिच | ,, | ,, | न त्वेनमव | वारी. | १०७७ | ,, | ,, | १३८५, |
| न तस्मिन् धार | मनुः | १७२७ | न त्वेव कदा | बौधा. | १४६८ | ,, | ,, | १४१५ |
| न तस्य प्रति | नार. | ८३१ | न त्वेव द्विजः | विष्णुः | १०२३ | न दूताक प्र | वेदाः | १८३८ |
| न तस्य लोकाः | भा. | १२८३ | न त्वेव क्षियं | कौ. | १६८७ | न दृष्टं यच्च | नार. | १९३३ |
| न तस्य विद्म | वेदाः | ९८० | न त्वेवाधौ क्षी | मनुः | १६३८; | न देवदास्या | कात्या. | ८३९ |
| *न तस्य विप्र | नार. | ८३१ | | नार. | १६५० | *न देवभूत | शंखः | १०२४ |
| न तस्य वैत | मनुः | ८४५ | न त्वेवान्यत्कु | वेदाः | १७६८ | न देवभूत्या | ,, | ,, |
| *न तस्य हि वि | नार. | ८३१ | न त्वेवाभिप्र | कौ. | १८७९ | न देवानाम् | वेदाः | ९७४ |
| *न तस्योऽजातु | कात्या. | २४४ | न त्वेवार्थस्व | ,, | ८१७ | न दोषं प्राप्नु | मनुः | १८५३ |

| | | |
|-----------------|---------|------------|
| नयश्च नार्थे | भा. | १०३१ |
| नयोत्सृष्टा रा | बृह. | १५१ |
| न द्वितीयश्च | मनुः | १०६३ |
| न नर्मयुक्तं | भा. | १९६४ |
| न नर्मयुक्त | ,, | १०३१ |
| ननान्दरि स | वेदाः | ९८६ |
| *ननान्दुः सन्ना | ,, | ,, |
| " " | ,, | १००० |
| न निन्दिम च | ,, | ११४३ |
| न निर्हारं छि | मनुः | १४३२ |
| *न निषिद्धोऽल्प | याज्ञ. | ९४२ |
| *न निषेधोऽल्प | ,, | ,, |
| न निषेधोऽल्प | ,, | ,, |
| न निष्कयवि | मनुः | १०७२ |
| न निस्त्रवति | कात्या. | ७३० |
| ननु नामाङ्क | भा. | १९८५ |
| *ननु वाधौ सो | मनुः | ६३८ |
| न नूनं ब्रह्म | वेदाः | ६०० |
| *नन्ददत्तं त | बृह. | ८०४ |
| नन्दन्ति मित | वसि. | १९८२ |
| न पतितैः सं | बौधा. | १३८८ |
| न पिता नाम् | वारा. | १०७५ |
| न पिता पुत्र | विष्णुः | ६७९ |
| *न पित्र्यं तद् | कात्या. | १४०३ |
| न पुत्रः प्रति | शंखः | १६१२, १६१३ |
| *न पुत्रभागं | मनुः | १२१४ |
| " " | भा. | १९८४ |
| न पुत्रर्णं पि | नार. | ६९५ |
| न पुत्रिकागा | विष्णुः | १४७१ |
| *न पुत्रौर्वभ | मनुः | १२१३ |
| Xनसप्तमुपा | नि. | ११५५ |
| न प्रजाः प्रजा | वेदाः | १००६ |
| न प्रतिग्रह | बृह. | ११२५१ |
| न प्रदद्यात् | बृहा. | ७३२ |
| न प्रवाते ध | स्कन्द. | ११६५ |
| न प्रातिभाव्य | कौ. | ६७९ |
| *न प्रामव्यव | कात्या. | ७१० |
| न प्रोषितेऽल | हारी. | १०१६ |
| *न प्रोषिते सं | ,, | ,, |
| न ब्रह्म तस्मै | वाग्नि. | १९७४ |
| *न ब्राह्मणः प | आप. | १६०५ |
| न ब्राह्मणव | मनुः | ११५५ |
| न ब्राह्मणस्य | वेदाः | १४६४, १६७१ |
| *न ब्राह्मणः सा | यमः | १६५२ |

| | | |
|-------------------|---------|------------------|
| न ब्राह्मणस्यां | गौत. | १९४८ |
| न ब्राह्मणो हिं | वेदाः | ११४३, १४६४, १६०० |
| न भयात्राप्य | भा. | १०३२ |
| न भर्ता नैव | कात्या. | १४५८ |
| न भर्तारं द्वि | शंखः | १०२५ |
| *न भार्यया कृ | नार. | ६९८ |
| *न भाषणं प | मनुः | १८५४ |
| न भिन्नकार्षा | वसि. | १६६८ |
| न भुङ्क्ते यः स्व | बृह. | ६५४ |
| न भूमि वातो | वेदाः | ९९८ |
| न भूमिः स्यात् | जैमि. | ७९३ |
| न भैक्षलब्धे | वसि. | १६६८ |
| *न भैक्षवृत्तौ | ,, | ,, |
| *न भैक्ष्यलब्धे | ,, | ,, |
| *न भैक्ष्यसंधे | ,, | ,, |
| *न भोक्तव्यं ब | मनुः | ६४० |
| न भोक्तव्यो ब | ,, | ,, |
| न भ्रातरो न | नार. | ६५० |
| न भ्रातृञ्च च | मनुः | १३१४ |
| न भर्कटे च | भा. | १०३१ |
| *न भर्कटे तु | नार. | १८२९ |
| *न भर्कटेन | ,, | ,, |
| न मत्प्रतिच्य | वेदाः | ९८६ |
| न मल्की सुभ | ,, | ,, |
| नमस्ते अस्तु | ,, | १००६ |
| नमस्येरंश्च | भा. | ८६० |
| न माता न पि | मनुः | १६२७, १९२६ |
| न मातापितृ | शंखः | १६१३ |
| न मातापित्रो | ,, | १६१२ |
| न मातृतो ज्यै | मनुः | १२३६ |
| न मा मर्कटः | वेदाः | ७७९१ |
| न मामसृज | वाग्नि. | १५७७ |
| न मा मिमेथ | वेदाः | १८९४ |
| न मित्रकूर | मनुः | १६२३ |
| न मिथ्यावच | स्कन्द. | १९६५ |
| न मूर्धं केनि | कात्या. | १३५० |
| न मूर्धमुच्छः | मनुः | १८५१ |
| न मृषा भ्रान्तं | वेदाः | ९६७ |
| न मे दासो जा | ,, | ८१२ |
| न मे वागन्तु | भा. | १०३७ |
| न मे स्तेनो ब्र | वेदाः | १५९३ |
| *न भोक्तव्यः प्र | बृह. | १६४६ |
| न भोक्तव्यः सा | ,, | ,, |

| | | |
|-------------------|---------|------------|
| नमो गन्धर्व | वेदाः | १००३ |
| न भ्रियेत स | व्यापा. | १११७ |
| न यत्पुरा च | वेदाः | ९७६, १८३६ |
| नयत्यरिञ्च | भा. | ८६१ |
| नय मां वीर | वारा. | १०७५ |
| नयस्व मां सा | ,, | १०७६ |
| न याचते च | बृह. | ७८६ |
| न याचते चे | बौधा. | १०१९ |
| *न याचते तु | बृह. | ७८६ |
| नयेयुरेते | याज्ञ. | ९४० |
| *नयेयुरेतैः | वृहा. | ९६२ |
| *नयोपधाभि | याज्ञ. | ९४० |
| न योषित् पति | नार. | १७५२ |
| नरकादुद्ध | याज्ञ. | ६८२ |
| नरहर्ता ह | वेदाः | ७९२ |
| न राज्ञा धृत | व्यासः | १७६५ |
| *न राज्ञोऽकृत | नार. | १७८७ |
| *न राज्ञो धृत | ,, | ,, |
| न राज्ञो राज्य | ,, | ,, |
| नराणां त्यज | कालि. | १३७७ |
| *न रिक्तकार्षा | भा. | १०३० |
| नरेन्द्रसिंह | वसि. | १६६८ |
| नरेन्द्रास्त्रिदि | भा. | १९८५ |
| न रोद्धव्यः कि | मनुः | १६९२, १९२९ |
| नर्तकानामे | बृह. | ७२७ |
| नर्तकानामे | ,, | ७८७ |
| नर्तकी | शुनी. | ७९० |
| *नर्त क्षेत्रं म | नार. | ११०३ |
| *नर्त क्षेत्राद् | ,, | ,, |
| नर्मदत्तं त | बृह. | ८०४ |
| नर्माय पुंश्च | वेदाः | १९७७ |
| न लब्धयेत् | नार. | ९१७ |
| न ल्प्यते य | ,, | १९३६ |
| न ल्प्यते त | बृह. | १५५८ |
| नवं वसानः | वेदाः | १००३ |
| Xनवजातः स | नि. | १२५४ |
| न वर्षं न च | मनुः | १०५८ |
| नव प्रतिभु | यमः | १११३ |
| नवभागं स | बृह. | ६७६ |
| *नवमांसं स | बृह. | १३७५ |
| न वर्धते प्र | ,, | ,, |
| *न वर्धतेऽञ्च | व्यासः | ६३४ |
| न वर्षं मैत्रा | गौत. | ६०८ |
| न वर्षं मैत्रा | वेदाः | १६०३ |

| | |
|-------------------|---|
| न वा उ ते त | वेदाः १७८, १८३६ |
| न वाचाटाम् | विष्णुः १०२२ |
| *न वाधेः काल | मनुः ६३८ |
| न वाससा न | भा. १९८४ |
| न वास्तुनि वि | प्रजा. १२३३ |
| न वास्तुविभा | शंखः १२०७ |
| न विकर्णः पृ | वेदाः १८४० |
| *न विद्यते त | बृह. ७६४; ब्रह्म. १३७४ |
| न विद्यते पृ | शुनी. १११९ |
| *न विप्रद्विष | मनुः १०५६ |
| न विव्याहृ | १९२६ |
| *न विभाज्यानि | नार. १२२० |
| न विवाहवि | मनुः १०६७ |
| न विषं विष | बौधा. १४६९; वसि. १४७० |
| नवीकृतं न | वारा. १०७७ |
| न वृत्ति पर | भा. ८१९ |
| *न वृद्धिः प्रति | नार. ६२६ |
| न वृद्धिः प्रीति | ॥ ॥ |
| न वृद्धिः स्त्रीष | संव. ६३५ |
| न वृद्धेर्बुद्धि | भार. ॥ |
| नवेन कृत | स्कन्द. १९६६ |
| न वै तामाधे | वेदाः १५९६ |
| नवैते पुत्र | बृह. १३५५ |
| न वै योषा कं | वेदाः १००८ |
| नवैव ता न | ॥ १६०१ |
| न वैष्टिकं जा | शंखः १९२२ |
| न वै श्लेषं क | वेदाः १००९ |
| न वै श्लेषानि | ॥ १८९ |
| न व्याधिमर | स्कन्द. १९६५ |
| न प्रतेनोप | शंखः १०२५ |
| *न शक्तो धनि | कात्या. ६७२ |
| *न शक्यन्तेऽधु | बृह. १३४९ |
| न शक्या रक्षि | भा. १०३३ |
| *न शक्यस्तेऽधु | बृह. १३४९ |
| न शरीरे वा | विष्णुः १६०९, १८४७; यमः १६५२; गौत. १६५९ |
| न शास्त्र तत्र | भक्ति. १६५५ |
| न शूद्रपुत्रो | शंखः १३९० |
| न शूद्रायाः का | विष्णुः १०२४ |
| न शूद्रायाः स्मृ | नार. ११०६, १९७८; देव. १११६ |
| न शूद्रे विधि | भक्ति. १६५५ |

| | |
|----------------------|-------------------------------------|
| न शेषो अग्ने | वेदाः १२५३ |
| X " " " | नि. " " |
| न शोचन्ति तु | मनुः १०५२; बृह. ११०६ कौ. १६१६ |
| न श्मशानवि | मनुः १०७२ |
| नश्यतीषुर्य | ॥ ७४० |
| नश्यतो विनि | ॥ ॥ |
| *नश्यतां विनि | ॥ ॥ |
| *नश्येद् द्रव्य | नार. ७२५ |
| *न श्रुतोऽविनि | मनुः ७४० |
| *नष्टं जग्धं च | ॥ ९०८ |
| नष्टं देयं वि | बृह. ७३१ |
| नष्टं दैवेन | अनि. ६६१; षट्त्रिं. ७५६ |
| नष्टं विनष्टं | मनुः ९०८; नार. ९१६ |
| नष्टः प्रव्रजि | देव. १११२ |
| *नष्टविनष्टं | नार. ९१६ |
| नष्टस्यान्वेष | बृह. ६७२; कात्या. ६७४ |
| नष्टापहत | कौ. ७५७, १६८३; याज्ञ. ७६१ |
| नष्टा भग्ना च | नार. ९१९ |
| *नष्टा या पाल | ॥ ९१७ |
| नष्टे भर्तारि | गौत. १०१३ |
| नष्टे मूर्ते प्र | नार. ११००; |
| बृह. ११०७; परा. १११७ | |
| नष्टे मूर्ते वा | बृह. ६५४ |
| नष्टो देवो वि | याज्ञ. ६४२ |
| *न संभाषं स | मनुः १८५४ |
| न संभाषां प | ॥ ॥ |
| *न संभाषां स | ॥ ॥ |
| *न समोत्रस्था | आप. १०१८ |
| न समोत्रां न | विष्णुः १०२२ |
| न स तं प्राप्नु | नार. ८३३, १९१२ |
| *न स तद् प्र | ॥ ८३३, १९१२ |
| *न सतन्त्राः क्षि | कात्या. १८८८ |
| न सन्ति यस्य | यमः १९४३ |
| न सन्ति सन्धि | बृह. ७३१ |
| *न समं प्राप्नु | नार. ८३३ |
| न समं सर्वे | भा. १९७८ |
| न स राज्ञा नि | नार. ७२४; |
| मनुः ७४० | |
| नार. ७४७ | |

| | |
|------------------------|--------------------------------|
| न स राज्ञाऽभि | नार. ७४७ |
| * " " " | मनुः ७१८, ७४० |
| न स खो दक्षो | वेदाः १५९१, १८९३ |
| न सहाऽऽसीत | ॥ ९९२ |
| न सा देया न | कात्या. १११० |
| न सा दैवे न | स्मृत्य. १११८ |
| न सामन्तैर्न | कात्या. ८९७ |
| न सावद्यं न | मनुः ८९१ |
| न सा सुखम | हारी. १०१७ |
| न साहासिक | मनुः १८६९ |
| न सेशे यस्य+ | वेदाः ९८८ |
| न सोन्मत्ताम | वसि. १०२२ |
| न सोपधाजा | नार. १९३६ |
| न सोमो अप्र | वेदाः ६०० |
| न स्तेयमाग्नि | ॥ १००१ |
| न स्त्रीकृतं प | विष्णुः ६७९ |
| न स्त्रीधनं तु | बृह. १४६२ |
| न स्त्री पतिकृ | नार. ६९८ |
| न स्त्री पतिपु | विष्णुः ६७९ |
| न स्त्री पुत्रं द | वसि. १२७३ |
| न स्त्रीभ्यः किञ्चि | भा. १०३२ |
| न स्त्रीभ्यो दास | कात्या. ६३१ |
| न स्त्रीषु राज | भा. १०३१ |
| न स्त्री स्वातन्त्र्यं | बौधा. १०२०, १३८८ |
| न स्यात्क्षेत्रं वि | नार. ११०३ |
| न स्याद्द्रव्यप | ॥ ७२७ |
| *न स्वर्कं पुत्रं | वसि. १२७४ |
| न स्वतन्त्रत | संघ. ११५७ |
| *न स्वतन्त्रेण | मनुः १०५६ |
| न स्वातन्त्र्येण | ॥ ॥ |
| न स्वामिना नि | ॥ ८२१, १९२८ |
| *न स्वामिनाऽति | ॥ ८२१ |
| *न स्वामिना वि | ॥ ॥ |
| न स्वामी न च | कात्या. ६७२ |
| *न स्वामी नापि | ॥ ॥ |
| *न स्वाम्यं हि म | देव. ११५६ |
| न हार्यं स्त्रीष | शंखः १४७३, १९५०; पैठी. १५२७ |
| *न हिंस्याद्ब्रह्म | मनुः १६२७ |
| न हिंस्याद्ब्राह्म | ॥ ॥ |
| न हि प्रभाया | वेदाः १२५३ |
| X " " " | वि. १२५३ |

| | | |
|-------------------|---------------|------------------------|
| *न हि ग्रहीत | नि. | १२५४ |
| न हि तस्यास्ति | मनुः | ८२३, १९२८; देव. ८३९ |
| न हि तृमिनं | व्यासः | ११११ |
| न हि ते नाम | वेदाः | ९९० |
| न हि दण्डाद् | मनुः | १६९५, १९२९ |
| न हि धर्मफ | भा. | १९८४ |
| *न हि भर्तुर्वि | आप. | १४०५ |
| न हि भर्तुर्वि | " | " |
| न हि मे ब्राह्म | भा. | १९६९ |
| न हि शूद्रस्य | मनुः | १७२४ |
| न हि स्त्रीभ्यः प | भा. | १०३३ |
| न हि स्वमस्ति | " | ८१८ |
| न हि स्वल्पेन | कात्या. | ११०९ |
| *न हीनकार्षा | वसि. | १६६८ |
| न हीनाङ्गीम् | विष्णुः | १०२२ |
| न होडेन वि | मनुः | १६९६, १९२९ |
| न ह्यस्या अप | वेदाः | ९८७ |
| न ह्यस्या नाम | " | ९९० |
| न ह्यात्मा शक्य | भा. | १२८७ |
| नाकन्यासु क | मनुः | ८८२ |
| नाऽकामा संनि | बौधा. | १०२० |
| नाकुलीनाम् | विष्णुः | १०२२ |
| नागरिकप्र | कौ. | १९२४ |
| नाभिं चित्वा रा | वेदाः | ९९४ |
| नाभिप्रवेशा | अङ्गि. | १११६ |
| नाभिस्तृप्यति | भा. | १०३२ |
| नाङ्कया राज्ञा ल | मनुः | १६२७ |
| *नाज्ञानेन वि | कात्या. | ९५८ |
| नाज्ञानेन हि | " | " |
| नाततायिव | विष्णुः | १६१२३ |
| मनुः | १६२६; बृह. | १६४८३ |
| सुम. | १६५३; मत्स्य. | १६५५ |
| नातन्त्री वाद्य | वारा. | १०७७ |
| नातश्चतुर्थ | भा. | १९४६ |
| नातिकपिला | विष्णुः | १०२३ |
| नातिचरेद् | गौत. | १०१२ |
| नातिवृत्ता स्व | शुनी. | १११९ |
| नातिद्वितीयं | गौत. | १२६३ |
| नातिपातये | आप. | १५०४ |
| नातिवर्तव्य | भा. | १२८५ |
| नातिसावत्स | गौत. | ६०६३ |
| नातो विशिष्टं | मनुः | ६३५ |
| | वारा. | १०७७ |

| | | |
|-------------------|---------|---------------|
| नात्यन्तं पीड | बृह. | ६७२ |
| *नात्यन्तपीड | " | " |
| *नात्यर्थं पीड | " | " |
| नाथवत्या प | नार. | १८८१ |
| नादद्यान्न च | कात्या. | ८९७ |
| नादुष्टां दूष | नार. | १०९७ |
| नादेवरादि | गौत. | १०१३ |
| नाधर्मोऽभूद् | भा. | १०२७, १२८४ |
| नाधिः सोपक्व | कौ. | ६३८ |
| नाधिकं दश | भा. | १२४४; |
| | मनुः | १२४८ |
| नाधिकाङ्गीम् | विष्णुः | १०२२ |
| नाधिकारो भ | नार. | १४४९ |
| *नानयोरन्त | " | १९३९ |
| नानर्णसम | कौ. | ७१६; |
| | कात्या. | ६२९ |
| नानाधियो व | वेदाः | ११२१ |
| नानानं वा उ | " | ११२० |
| नानापण्यानु | व्यासः | ७८९ |
| नानामृगग | वारा. | १०७६ |
| नानारूपाणि | मनुः | १०७१ |
| नानावर्णस्त्री | बौधा. | १२३९ |
| नानास्त्रीपुत्रा | कौ. | १२३४ |
| नानाहिताग्नि | वेदाः | १५९३ |
| नानिलोऽग्निर्न | भा. | १०३१ |
| *नानुकूलं च | नार. | ८७१ |
| नातुष्टुश्रुम | मनुः | १०४४ |
| Xनानेन पत | नि. | १२५३ |
| नान्तकः सर्व | भा. | १०३२ |
| नान्तरेणोद् | नार. | ९४७ |
| नान्तर्वेद्यासा | वेदाः | १००७ |
| नान्वः कुरूक्षां | भा. | १३९० |
| नान्वं गच्छि | " | १०२९ |
| नान्यः शक्यन्ति | " | १०३३ |
| नान्यत्र धन | " | ८६० |
| नान्यत्र बुद्धि | " | " |
| *नान्यदन्त्यसं | मनुः | ८९१ |
| नान्यदन्त्येव | " | " |
| नान्यद्गृवि | ब्रह्म. | १११८ |
| नान्ययोनाम् | विष्णु. | १८९२ |
| नान्यस्त्वया क्व | कौ. | १०४४ |
| नान्यस्मिन्निध | मनुः | १०६६ |
| नान्योत्पचा प्र | " | १०६३ |
| *नान्यो धर्मोऽन | अङ्गि. | १११६ |
| नान्यो धर्मोऽस्ति | " | " |

| | | |
|------------------|-------------|-------|
| *नान्यो धर्मो हि | अङ्गि. | १११६ |
| नान्ये सति | याज्ञ. | ७९६ |
| नापतिः सुख | वारा. | १०७७ |
| नापहारं स्त्रि | भा. | १४२९ |
| नापुत्रस्य लो | वेदाः | १२६० |
| नापृष्टः कस्य | मनुः | १९७४ |
| *नाप्यपत्यं प | नार. | १८८६ |
| नाप्रक्षालित | हारी. | १०१५ |
| नाप्रदाय क | भा. | १९८४ |
| नाप्रसव्यव | कात्या. | ७१० |
| नाप्रोक्ष्याविमृ | हारी. | १०१५ |
| नाब्रह्म क्षत्र | मनुः | १९३१ |
| नामानेदिष्टं | वेदाः | ११६२ |
| नाभिरोचय | वारा. | १०७६ |
| नाभिश्स्तात्र | नार. | १९३६ |
| नाभेरधःका | कौ. | १७९८ |
| नाभेरुपरि | " | " |
| Xनाभ्रात्रीमुप | नि. | १२५५ |
| नामगोत्रादि | संघ. | १३८४ |
| नामजातिप्र | मनुः | १७७५३ |
| | नार. | १७७८ |
| नामावास्यायां | वेदाः | ९९२ |
| नाम्ना दशर | वारा. | १३२९ |
| नावासयामि | भा. | १०२८ |
| नारक्षय की | वेदाः | १५६६ |
| नारदस्य च | भा. | १०३२ |
| नारी खल्वन | अङ्गि. | १५२३ |
| नारीणां स्वैर | भा. | १०३२ |
| नारी रज्जोभिः | " | १०३१ |
| नारां स्वर्गम | संख. | १०२५ |
| नार्षथैकृत | अङ्गि. | ८५४ |
| नार्याः षडाग | संख. | १४७३, |
| | १९५०; पैटी. | १५२७ |
| नार्याक् संवत्स | नार. | ६९६ |
| नार्षन्ति ते प्र | बृह. | ८९६३ |
| | स्पृत्य. | ९०१ |
| नार्षन्ति प्रम | भा. | १०३१ |
| नार्षन्ति च | अङ्गि. | ७३३ |
| *नार्षन्तिः प्र | मनुः | १९४६ |
| *नार्षन्ति गृ | कात्या. | ६७३ |
| नार्षन्ति प्र | " | " |
| नार्षन्ति तु | " | १९२७ |
| *नार्षन्ति तु | " | " |
| *नार्षन्ति पञ्च | नार. | १९४२ |
| नार्षन्ति धरि | कात्या. | ६७२ |
| नार्षन्ति पितृ | विष्णुः | १०२३३ |

| | | | | | |
|---------------------|---------------|--------------------|--------------|----------------------|--------------|
| नारय आर्यः शू | मनुः १०५४ | निकृष्टे द्विगु | विष्णुः १६७० | निग्रहः पण्डि | भा. ८६१ |
| *नारय आर्यस्तु | आप. १८४४ | *निकृष्यमाणे | नार. ९४८ | निग्रहाद् वड | नार. ८३२ |
| नारवशूकरा | शंखः ९०५ | *निकेतयितु | विष्णुः १६०९ | निग्रहानुग्र | बृह. १६४८ |
| नाष्टिकं च. स्व | कौ. ७५७ | *निक्षिपेत स्व | नार. ७०४ | निग्रहेण च | मनुः १७०१ |
| नाष्टिकश्चेत् | " १६८४ | *निक्षिपेतस्व | " " | निघाते सह | वेदाः १७९३ |
| *नाष्टिकस्तत्र | कात्या. ७६७ | *निक्षिप्तं च प | " " | *निचयैतत्स | नार. ७०४ |
| नाष्टिकस्तु प्र | " " | निक्षिप्तं तत्र | स्मृत्य. ७५६ | निजधर्मावि | याज्ञ. ८६६ |
| *नासंदिग्धः प्र | नार. ८२६ | निक्षिप्तं यस्य | कात्या. ७५३ | नितरां परि | वेदाः १००५ |
| नासंदिग्धः प्र | " " | निक्षिप्तं वा प | नार. ७६२ | नि ते मनो म | " ९७६ |
| *नासकुल्याः स | देव. १२०३ | *निक्षिप्तं वृद्धि | कात्या. ६३२ | | १८३६ |
| *नासद्भयः परि | नार. १९४० | निक्षिप्तस्य ध | मनुः ७४४ | नित्यं त्रयाणां | भा. ८१९ |
| नासद्भयः प्राति | " " | *निक्षिप्तान्वाहि | बृह. ७६४ | नित्यं न सखुं | वेदाः ९६८ |
| नासां कश्चिद् | भा. १०३२ | *निक्षिप्य कुम्भे | " ९५० | नित्यं नैमित्ति | बृह. ८७२ |
| नासामस्ति प्रि | " १०३३ | निक्षिप्यते प | नार. ७४७ | नित्यं पौर्वाह्नि | भा. १०२९ |
| नासु स्नेहो न | " " | *निक्षेपं नाम | " ७४६ | *नित्यं ज्ञात्वा कृ | ऋष्य. १११७ |
| *नासिद्धयः कि | बृह. ७२७ | निक्षेपं निहु | व्यासः ७५५ | नित्यं ज्ञानकृ | " " |
| नासौ गच्छति | स्मृत्य. १३७४ | *निक्षेपं पुत्र | नार. ७९८ | नित्यप्रवाहि | व्यासः ९६१ |
| नासौ विभागो | मनुः १५७२ | निक्षेपं वृद्धि | कात्या. ६३३ | नित्ययुक्ता म | भा. ८६१ |
| *नास्तिनस्तु प्र | कात्या. ७६७ | निक्षेपः पुत्र | नार. ७९८ | *नित्यज्ञानकृ | ऋष्य. १११७ |
| नास्तिनयसीह | शुनी. १११९ | निक्षेपः प्राति | " ७३१ | Xनित्यस्य रायः | नि. १२५३ |
| नास्ति त्रिलोके | भा. १०३१ | निक्षेपश्चोप | कौ. ७३७ | *निदेशकाला | बृह. ९५२ |
| नास्ति भर्तृस | शुनी. १११९ | निक्षेपस्य स | अपु. १९७१ | *निधानानां पु | मनुः १९५७ |
| नास्ति स्त्रीणां कि | मनुः १०४९ | निक्षेपस्यापु | बृह. ७५० | निधाधोरसि | ब्रह्म. १११९ |
| नास्ति स्त्रीणां पृ | विष्णुः १०२३ | निक्षेपस्याप | मनुः ७४१ | *निधिं च ब्राह्म | विष्णुः १९५० |
| | मनुः १०६० | | ७४३ | निधिं द्विजोत्त | अपु. १९६२ |
| नास्ति स्वतन्त्र | भा. १०३१ | निक्षेपाधर | अनि. ७५६ | निधिं ब्राह्मणो | विष्णुः १९५० |
| नास्त्यपकारि | कौ. १८०० | निक्षेपानन्तं | बृह. ७६४ | निधिं लब्ध्वां त | " १९४९ |
| नास्मि संप्रति | वाराः १०७६ | निक्षेपान्वाहि | " " | *निधिं लब्ध्वां ब्रा | " १९५० |
| नास्मै पृश्निवि | वेदाः १८४० | निक्षेपापहा | विष्णुः ७३५ | निधिर्निष्कूल | बृह. १९४१ |
| नास्मै समितिः | " १६०१ | | कौ. ७३७ | *निधिर्निष्कूल | " " |
| नास्य क्षती नि | " १८४० | निक्षेपेष्वेषु | मनुः ७४१ | निधीनां तु पु | मनुः १९५७ |
| नास्य क्षेत्रे पु | " " | निक्षेपो नाम | भार. ७४६ | *निधीनां हि पु | " " |
| नास्य जायते च | " " | निक्षेपोपनि | मनुः ७४० | *निधेयावि त | बृह. १९५० |
| नास्य धेनुः क | " १८४३ | निक्षेपो मित्र | नार. ६४७ | *निधेयोऽयोम | मनुः १७७५ |
| | १८४० | निक्षेपो यः कृ | मनुः ७४४ | *निध्याधिगमे | शौत. १९४८ |
| नास्य श्वेतं कृ | " " | *निक्षेपो यत्कृ | " " | निध्याधिगमे | " " |
| *नास्या भर्तृनि | ब्रह्म. १११८ | निक्षेप्योऽयोम | " १७७५ | निध्याधिगमे | " ७३५ |
| नास्वतन्त्रां लि | कात्या. १८८८ | | नार. १७८८ | *निनेयो सुसृ | नार. ११०२ |
| नाहं काषाय | भा. १०२८ | *निखेयोऽयोम | " " | निन्दितेऽहनि | मनुः १३९२ |
| नाहं कुप्ये सू | " ८९८ | | मनुः १७७५ | *निन्यैव लोके | " १०६४ |
| नाहं शक्यः म | वाराः १०७६ | *निगूढकारि | " १६९४ | निन्यैव सा भ | " " |
| नाहमिन्द्राणि | वेदाः १८७७ | निगूढचारि | " " | निन्यैव सा स्मृ | कात्या. १११० |
| नाहमेवं पु | कात्या. १७९३ | | १९२९ | निपतन् दिवो | अनि. १३७४ |
| | ब्रह्म. १७९२ | *निगूढनिश्च | भा. १२८५ | निमुपानर्थ | विष्णुः १९५१ |
| *निहती हि न | भा. १७९३ | निगूढदाप | मनुः ८६४ | निबधीचात्त | मनुः ९३६ |
| | | | | *निबध्यमानं | कात्या. १९५७ |

| | | |
|-------------------|------------|-------|
| *निबन्धं दाप | कात्या. | ६७४ |
| *निबन्धं वा व | " | ६७३ |
| निबन्धमाव | " | " |
| *निबन्धमाह | " | " |
| *निबन्धमाह | " | ६७४ |
| निमङ्क्ष्येऽहं स | वेदाः | ७९१ |
| निमन्त्रयितु | विष्णुः | १६०९ |
| निमन्त्रयित्वा | " | " |
| निमन्त्रितस्त | " | " |
| निमन्त्रितो द्वि | मत्स्य. | ७८९ |
| " | " | १६५५ |
| *निमित्तानि स | लिङ्ग. | १३७६ |
| निम्रगापह | नार. | ९४५ |
| निम्रवर्ती भ | " | ८२३ |
| निम्रोन्नता च | व्यासः | ९६१ |
| निम्रोपलक्षि | " | " |
| नियच्छेयुर्भू | बृम. | ८५४ |
| नियतं क्षेत्रि | शंखः | १२८२ |
| नियन्ता चात्म | हारी. | १२६४ |
| नियन्तुं न हि | भा. | १९८३ |
| नियमालिक | बौधा. | १०२०; |
| आप. | १६०६, १६६४ | |
| नियमारम्भं | आप. | १०१८ |
| नियुक्तश्चाप्य | विष्णुः | १६१२ |
| नियुक्तां सर्वा | उश. | १११३ |
| नियुक्ता गुरु | नार. | ११०१ |
| नियुक्ता षति | भा. | १०२७ |
| *नियुक्तायां क्षे | विष्णुः | १२७९ |
| नियुक्तायां सं | " | " |
| नियुक्तायाम् | मनुः | १६९६ |
| *नियुक्ता सर्वा | उंश. | १११३ |
| नियुक्तो गुरु | नार. | ११०१ |
| नियुक्तो यस्तु | कात्या. | ८०६ |
| नियुक्तौ यौ वि | मनुः | १०६६ |
| *नियोगमुक्त्वा | बृह. | ११०९ |
| नियोगात्पाव | कात्या. | १११० |
| नियोजयत्य | मनुः | १०६८ |
| निरन्वयं भ | " | १६२२, |
| " | " | १६९१ |
| " | " | १७१९ |
| *निरन्वयः श्वा | " | १६९१ |
| *निरन्वये भ | " | १६९१ |
| *निरन्वये श्वा | " | १७१९ |
| *निरन्वये स्त | नार. | ७७४ |
| *निरन्वये स्ते | कौ. | १६१३ |
| *निरन्वयोऽने | मनुः | ७५८ |
| *निरन्वयोऽना | " | " |

| | | |
|---------------------|---------|-------|
| निरस्तस्य प्र | कौ. | ९३२ |
| निरस्तस्यश्वा | " | ९२७ |
| निरादिष्टध | मनुः | ६६५ |
| निराधाने द्वि | व्यासः | ६३४ |
| *निराधारे द्वि | " | " |
| *निरायव्यय | याज्ञ. | १७४१ |
| निराया व्यय | " | " |
| निराहावान्क | वेदाः | ९२३ |
| *निरिन्द्रिया अ | मनुः | १०४९ |
| *निरिन्द्रियाया | बौधा. | १३८८ |
| निरिन्द्रिया स्त्री | वेदाः | ९९५ |
| निरिन्द्रिया ह्य | भा. | १०३३; |
| " | मनुः | १०४९ |
| " | बौधा. | १३८८ |
| *निरिष्टे वाप्य | नार. | ११५२ |
| निरुक्तजश्च | भा. | १२८६ |
| *निरुद्धमाह | कात्या. | ६७४ |
| निरुद्धो दण्डि | " | ६७२ |
| निरुपकारः | कौ. | ६३८ |
| निरुप्तं हवि | वेदाः | १८९६ |
| निरुद्धव्या च | कात्या. | १११० |
| निरोधनेन | मनुः | १७०१ |
| निर्गच्छस्तृण | नार. | ८५२ |
| निर्गच्छतस्त | व्यासः | ८५४ |
| *निर्गच्छतृण | नार. | ८५२ |
| *निर्गतं तु प | " | १७५६ |
| निर्गते तु प | " | " |
| *निर्गते तु य | " | " |
| *निर्गते पुन | " | " |
| निर्गृणाः कूर् | अपु. | १६५४ |
| निर्जने तु व | भा. | १२८८ |
| निर्जने विधि | " | १२८७ |
| निर्जिताश्च म | " | १९८६ |
| निर्जित्य पर | " | १९८४ |
| निर्दया निर्न | मनुः | १६२७ |
| निर्दहनी या | वेदाः | १००३ |
| निर्दिश्यैवैनं | " | १००६, |
| " | " | १८४० |
| निर्दिष्टकाल | कौ. | १०३५ |
| निर्दिष्टदेश | " | १६७३ |
| निर्दोषं दर्श | नार. | १८८७ |
| निर्दोषं नोचू | कात्या. | ७०९ |
| निर्दोषं परि | विष्णुः | १०३३ |
| *निर्दोषायां प | " | " |
| निर्दोषोऽन्न | अपु. | १९७२ |
| निर्घनं ऋषि | बृह. | ७२६ |

| | | |
|-----------------------|-------------|-------|
| निर्धनस्तु श | बृह. | ७३१ |
| *निर्धनस्य स्त्री | विष्णुः | ६७८ |
| निर्धनैरन | कात्या. | ७१४ |
| *निर्धर्याः स्युः प्र | नार. | ९१९ |
| निर्धर्यं तु भ | मनुः | १६९२, |
| " | " | १९२९ |
| *निर्भयं वा भ | " | १६९२ |
| *निर्भयं हि भ | " | " |
| *निर्भोगयेन्न | कात्या. | ११७३ |
| निर्भोजयेन्न | " | " |
| निर्मन्थेन प | आप. | १०१९ |
| निर्मर्यादानां | विष्णुः | १४२८ |
| निर्मलाः स्वर्ग | वसि. | १६६८; |
| मनुः | १७०४; नारं. | १७५१ |
| *निर्येच्छत | कात्या. | ८५४ |
| निर्येच्छतस्त | नार. | ७०४ |
| *निर्येच्छतु स | " | " |
| निर्वासं कार | कात्या. | ८३७ |
| निर्वास्या व्यभि | याज्ञ. | १४००; |
| " | बृह. | १४०४ |
| निर्विकारौ क | स्कन्द. | १९६६ |
| निर्विष्टं वैश्य | गौत. | ११२३ |
| निर्वेषाभ्युपा | आप. | १८४४ |
| निर्वै क्षत्रं न | वेदाः | १४६४, |
| " | " | १६०० |
| निर्वर्तयेरं | अपु. | १९८६ |
| निर्वर्तितानि | आदि. | १३८४ |
| निर्वर्तेश्च | मनुः | १३९२ |
| निवारयेद | मासो. | १९७० |
| निवार्याः स्युः प्र | नार. | ९१९ |
| *निवार्यास्तु अ | " | " |
| निवृत्तं हरि | आप. | १९७४ |
| निवृत्तकर्म | बृह. | १६५३ |
| निवृत्तवृद्धि | कौ. | ६३८ |
| *निवृत्तास्तु य | कात्या. | १६५१ |
| *निवृत्तानां त | " | " |
| निवृत्तास्तु य | " | " |
| *निवृत्ते चाभि | गौत. | ११४५; |
| " | नार. | ११५२ |
| निवृत्ते रज | गौत. | ११४५ |
| *निवृत्ते रम | नार. | ११५२ |
| निवृत्ते वाऽभि | " | " |
| निवृत्ते चाऽभि | " | " |
| निवृत्ते चाऽभि | भा. | १०१९ |
| निवृत्ते दद्या | याज्ञ. | १९३३ |
| निवृत्ते मान | भा. | १०३३ |
| निवृत्ते शकलं | कौ. | १४३० |

| | | | | | | | | |
|------------------|---------|-------|-------------------|---------|-------|------------------|---------|------|
| निवेशकाल | बृह. | १५२ | नीत्वा भोगं न | मत्स्य. | ८५५ | नैता वाच्या न | भा. | १०३० |
| निवेशकाले | ” | १४९ | नीरजस्काम | नार. | ११०१ | नैनः किचिद | मनुः | १०४२ |
| निवेशसम | कात्या. | १५९ | *नीलकौशेय | ” | १९३८ | नैर्ऋतं चरुं | वेदाः | ९९१ |
| नि वो नु, मन्यु | वेदाः | १८९६ | नीललोहितं | वेदाः | ९८३ | नैवं इत्यप | कौ. | १६८४ |
| निशान्तप्रणि | कौ. | १९२४ | नीवीस्तनप्रा | याज्ञ. | १८७१ | नैव कस्याप | ब्रह्म. | ८४० |
| निशाम्य च ब | भा. | ८४० | *नृत्तादिकं च | बृह. | ८३४ | नैव तु पुन | वेदाः | १००६ |
| नि शीर्षतो नि | वेदाः | ९९७ | नृत्यगीतेश्च | शौन. | १३६४ | नैव भागं व | वृहा. | १४०४ |
| निषसाद धृ | ” | १८९६ | नृत्यादिकं च | बृह. | ८३४ | *नैव राजनि | कात्या. | ६७२ |
| *निषाद एकः | देव. | १२५२ | नृपराष्ट्रभ | देवी. | १९४३ | *नैव राजा नि | ” | ” |
| निषाद एक | बृह. | १२५१; | नृपाज्ञयाऽऽप | प्रजा. | ८९९ | नैव रिकथी न | ” | ” |
| | देव. | १२५२ | नृपाश्रयं प्र | बृह. | १९४० | नैवान्तरीक्षा | नार. | १७५४ |
| *निषिद्धयोस्त | याज्ञ. | १८७२ | नृपाश्रयास्त | ” | १९१४ | नैवार्हः पैतृ | मनुः | १३९६ |
| निषिद्धो भाष | मनुः | १८५४ | नृपो दमं दा | कात्या. | ६५६ | नैष चारण | ” | १८५४ |
| निष्कारणं न | मत्स्य. | ७८९, | *नृपो दमं प्रा | ” | ” | नो चेन्मूलमि | भार. | ९०० |
| | | १६५५ | *नृपो धनं दा | ” | ” | नोच्चैर्न वित | हारी. | १०१५ |
| निष्कालको वा | वसि. | १६६८ | नृपो राज्यार्थ | शौन. | १३६४ | नोच्चैर्वदेन | शुनी. | १११९ |
| निष्क्रीर्णमृत्र | कौ. | १६१५ | *नृपो राष्ट्रार्थ | ” | ” | नोत्थापयामि | भा. | १०२८ |
| निष्कृतानाम | बृह. | १९४१ | नृशंसकारि | भा. | १२८४ | नोत्पादकः प्र | मनुः | १०७३ |
| निष्कैर्दोदश | आनि. | १९६८ | *नृहर्ता हस्त | व्यासः | १७६५ | नोदकेन न | यमः | १११३ |
| निष्कयानुरु | कौ. | १८४९ | नैच्छन्त्या यानि | संव. | १८९० | नोद्वाहिकेषु | मनुः | १०६७ |
| निष्ठितेषु पा | वेदाः | १००९ | नेति कौटल्यः | कौ. | ८४४, | *नोन्मत्तया न | ” | ८८१ |
| निष्ठिवने कृ | स्कन्द. | १९६७ | | १८००, | १९०४ | नोन्मत्ताया न | ” | ” |
| निष्ठिव्योद्ध | विष्णुः | १७९६ | नेतुमर्हसि | वारा. | १०७६ | *नोपसञ्चाशि | नार. | १९३६ |
| निष्ठुराश्लिल | नार. | १७८५ | नेत्यब्रवीत् | वेदाः | १०१० | नोपेक्षेत क्ष | मनुः | १६२२ |
| निष्पतितप्रे | कौ. | ८१७ | *नेत्रकन्धर | विष्णुः | १७९६ | नौकामश्वं च | नार. | ७६४ |
| *निष्पद्यमानं | कात्या. | ९५७ | नेत्रकन्धरा | ” | ” | *नौकामश्वंश्च | ” | ” |
| निष्पन्नसस्य | कौ. | १९२४ | *नेत्रस्कन्धबा | ” | ” | नौचक्रीवन्त | गाँत. | १६६३ |
| निष्पाद्यमानं | काल्म. | ९५७ | नेत्र ऋणानृ | वेदाः | ६०५ | *नौद्वाहिकेषु | मनुः | १०६७ |
| निसर्गजं हि | मनुः | ८२१, | नेमां हिंस्युर्वे | भा. | १२८७ | *न्यङ्कारगृह | कात्या. | १७९१ |
| | | १९२८ | नेम्न ऋणानृ | वेदाः | ६०१ | न्यक्रतुं प्र | वेदाः | १९७१ |
| निसर्गफण्डो | नार. | १०९४ | *नैकं पुत्रं द | वसि. | १२७४ | *न्यग्भावकर | कात्या. | १७९१ |
| *निसर्गत्वं हि | मनुः | ८२१ | नैकः कुयोत्क | व्यासः | १५८६ | *न्यङ्गतायुक्ता | विष्णुः | १७७० |
| निसृष्टायां हु | बौधा. | १०१९ | नैकः समुन्न | नार. | ९४५ | न्यङ्गतायुक्ते | ” | ” |
| निस्तन्धगुदा | कौ. | १६१५ | नैकपुत्रेण | शौन. | १३७० | न्यङ्गावगुर | कात्या. | १७९१ |
| निस्तारयित्वा | ” | १८५० | नैकशफद्धि | शौत. | ११८३ | *न्यङ्गावपूर् | ” | ” |
| *निस्तार्य वास | कात्या. | १११० | नैकस्या बह | भा. | १०२७ | न्यसेयुर्वेभु | ” | १२०१ |
| निस्तार्य वाऽपि | ” | ” | नैयम्मावा भू | व्यासः | १७६४ | न्यस्तिकरुरो | वेदाः | ९९७ |
| निहत्य ध्रुण | देव. | १६५१; | नैयम्मा वैद्य | बृह. | १७५८ | न्ययशास्त्रावि | कात्या. | १९४२ |
| | गाल. | १६५४ | नैतदाश्वये | वारा. | १०७७ | *न्यायस्थाने ग | व्यासः | १७६४ |
| निहन्यादन्य | भा. | १०३३ | नैतथोरन्त | नार. | १९३९ | न्यायस्थाने ध | ” | ” |
| निहितानि. त्र | बृह. | १५० | नैतां ते देवा | वेदाः | १३६४, | *न्यायस्थानेष्व | ” | १९४२ |
| निहिता वृत्र | व्यासः | ९६१ | | १६०० | ” | *न्यायस्थाने ह्य | ” | १७६४ |
| नीचः पञ्चगु | अग्नि. | १९६७ | नैताः प्रमुञ्च | भा. | १०३१ | न्यायापितं य | ” | ” |
| नीचत्वं पर | कौ. | १९६४ | नैता जानन्ति | ” | ” | न्यायिनः फले | नार. | १९३५ |
| नीच्य वर्जित | वेदाः | १६३५ | नैतन्न रूपं प | बृह. | १०४८ | न्यायोपपत्ता | बृह. | १९४३ |
| नीता हि दक्षि | कौ. | १६३२ | *नैतन्न रूपं अ | ” | ” | | कौ. | १६३० |

| | | | | | |
|---------------------|---------------|-----------------|-------------|--------------------|--------------|
| *न्याय्यः प्रतीक्षि | वसि. १०२२ | पञ्च माषा म | गौत. ९०४ | पणानां दश | अनि. १९६७ |
| न्यासं कृत्वा त | बृह. ७३४ | *पञ्च माषान् ग | ,, ,, | पणानां द्वे श | मासि. १९७० |
| *न्यासं कृत्वा प | ,, ,, | पञ्च माषास्तु | वसि. ६०९ | पणानेकश | याज्ञ. १९५९ |
| *न्यासं कृत्वोत्त | ,, ,, | पञ्चमीं मातृ | ,, १०२१ | *पणान् दृष्यः | ,, १८२१ |
| *न्यासः स परि | ,, ६५१ | पञ्चमीं सप्त | बृह. १३५८ | पणान् दाप्यः | ,, ,, |
| न्यासदोषादि | कात्या. ७५५ | पञ्चमे अर्धा | विष्णुः ८९१ | पणान्दादश+ | मनुः ८८१ |
| न्यासद्रव्यं न | बृह. ७५१ | पञ्चमो भागः | ,, ,, | पणान्माषक | कौ. १६७५ |
| न्यासद्रव्येण | ,, ७५२ | पञ्चरात्रिकं | कौ. १६७४ | पणिकं वा प्र | ,, १०३६ |
| न्यासवत्परि | ,, ६५१ | पञ्चरात्रे प | मनुः १७०७, | पण्यं गृहीत्वा | कल्या. ६३२ |
| *न्यासस्थाने ये | व्यासः १७६४ | | १९२७ | *पण्यं च द्विगु | बृह. १७५८ |
| न्यासादिकं प | कात्या. ७५४ | *पञ्चरात्रे स | मनुः १७०७ | पण्यं तद्द्विगु | ,, ,, |
| न्युताश्च बभ्र | वेदाः १८९४ | पञ्च रूपाणि | नार. १९३६ | *पण्यं तु द्विगु | ,, ,, |
| *न्यूनं वाऽयधि | याज्ञ. १९३२ | पञ्चवर्षाव | ,, ९४८ | *पण्यं भवेद्वि | व्यासः ८८९ |
| *न्यूनं वाऽभ्यधि | ,, ,, | पञ्चवर्षोप | कौ. ९३० | पण्यं भवेन्नि | ,, ,, |
| न्यूनं वैकाद | नार. १७५० | *पञ्चवर्षोऽव | नार. ९४८ | *पण्यं मूल्यं भृ | नार. ६२७ |
| *न्यूनमभ्यधि | याज्ञ. १९३२ | पञ्चविंशति | बौका. ७८९; | ,, ,, | भार. ८०७ |
| न्यूनानां प्रजा | वेदाः ९९४ | पञ्चसप्तति | कौ. १६१७ | पण्यं वणिग्भि | गौत. १६६३ |
| न्यूनानाधिकवि | याज्ञ. ११६९ | पञ्चस्वापस्तु | अनि. १९६७ | पण्यदोषो दो | कौ. ८७८ |
| पक्षपक्षं प्र | व्यासः १७६५ | बृह. ११०७; परा. | नार. ११००; | *पण्यभावेन | व्यासः ८८९ |
| *पक्षानां चैव | मनुः १७१८ | पञ्चस्वेषु प्र | हारि. ६६१ | पण्यभूमिभ्यो | कौ. १६८८ |
| *पक्षानां तु कृ | नार. १७५० | पञ्चहोतारं | वेदाः १००६ | *पण्यमालां सृ | नार. ६२७ |
| पक्षानानां कृ | ,, ,, | पञ्चांशान्यंश | कात्या. ८९८ | *पण्यमूल्यं सृ | ,, ,, |
| पक्षानानां च | विष्णुः १६७०; | पञ्चानृतान्वा | भा. १०३१ | *पण्यमूल्यं धृ | ,, ,, |
| | मनुः १७१८ | *पञ्चाशतं भ | मनुः १८११ | पण्यमूल्यं सृ | ,, ,, |
| *पक्षद्वयाप | नार. १५५५ | पञ्चाशतस्तु | अनि. १९६७ | पण्यमेव नि | व्यासः ८८९ |
| पक्षद्वयाव | ,, ,, | पञ्चाशतस्तु | मनुः १७१७ | पण्यसमवा | कौ. ७३७ |
| *पक्षद्वये चा | ,, ,, | पञ्चाशतु भ | ,, १८१० | पण्यस्य पादौ | स्मृत्य. ९२१ |
| पक्षिघाती म | विष्णुः १६०९, | पञ्चाशत्पणि | याज्ञ. १६३४ | पण्यस्योपरि | याज्ञ. १८३२ |
| | १७९७ | *पञ्चाशदुत्त | मनुः १८११ | पण्यभ्यक्षः स | कौ. १६७९ |
| *पक्षिमत्स्यघा | ,, ,, | पञ्चाशदज्ञाह्न | ,, १७७४; | *पण्यानां सार्व | नार. ६२५ |
| पङ्गुष्वथ च | भा. १०३२ | | नार. १७८८ | *पण्यान् तद्वृद्धि | बृह. १७५८ |
| पङ्गुस्तथा च | अनि. १११८ | पञ्चाशद्भिर्भ | अनि. ९६२ | *पण्ये तद्वृद्धि | ,, ,, |
| पञ्चकं च श | याज्ञ. ७२२ | पञ्चोदन च | वेदाः ९९९ | पण्येषु प्रक्षि | याज्ञ. १७२९ |
| *पञ्चकं तु श. | ,, ,, | *पणं तु दण्ड | याज्ञ. १७८० | *पण्येषु हीनं | ,, ,, |
| पञ्चमुज्जल | गुप्त. १९६८ | पणं यानं त | मनुः १९२७, | पण्येषु घाते | कौ. १६७९ |
| पञ्चगामी व | याज्ञ. १७४३ | | १९४५ | पतत्वर्धं श | हारि. १०१६; |
| पञ्चधा तु भ | भा. १२४४ | *पणं याने त | ,, ,, | पतनीयकृ | वसि. १०२२ |
| पञ्चधा विप्र. | बौधा. १९१९ | पणं वितथ | भा. ८४० | पतनीये क | याज्ञ. १७८२ |
| पञ्चबन्धो द | याज्ञ. ७६२ | पण्योदण्ड | नार. १९१० | पतनीये कृ | विष्णुः १३८९ |
| पञ्चमः क्रीत | याज्ञ. १३५१ | *पणपूर्वं व | ,, ,, | | ,, ,, |
| *पञ्चमः पुत्रि | ,, ,, | पणशतं च | विष्णुः ८४३ | | वसि. १७८२ |
| पञ्चमस्तु स्मृ | भा. १२४४ | *पणशतं सा | ,, ,, | पतनीयेरु | नार. १७८५ |
| पञ्चमांशं च | शुक्ल. १७६७ | पण्यस्य कृ | मनुः ८८१ | पतिं च तद् | शुक्ली. १११९ |
| पञ्चमांशह | स्मृत्य. १३७३ | पण्यस्य कृ | ,, १६२८ | पतिं न पत्नी | वेदाः ९६३ |
| *पञ्चमांशे द | याज्ञ. ७६२ | *पणा दाप्यः प | वसि. १८२१ | *पतिं या नाति | मनुः १०५३, |
| *पञ्चमांशस्तु | वसि. ६०९ | | | | |

| | |
|-----------------|----------------------------|
| | १०६४ |
| पतिं या नाभि | मनुः १०५३, १०६४ |
| पतिं वा अनु | वेदाः १००८ |
| पतिं शुश्रूष | विष्णुः १०२३; मनुः १०६० |
| पतिं हित्वाऽप | ” १०६४ |
| *पतिं हित्वाऽव | ” ” |
| पतिः शुश्रूष्य | ” १०६० |
| पतिः सुतः पि | स्मृत्युः १११८ |
| पतिकुलानि | कौः १०३८ |
| पतिकुलाग्नि | ” ” |
| पतिगुरुप्र | ” १६१९ |
| *पतिनी च वि | वसिः १०२१ |
| ” ” | व्यासः ११११ |
| पतिनी तु वि | वसिः १०२१ |
| पतितं पति | ” १७७०; |
| मनुः १७७८; नार. | १७८६ |
| *पतितः कुत्सि | याज्ञः १३९८ |
| पतितः पति | कौः १३९१; देवः १४०४ |
| पतितक्रीबा | विष्णुः १३८९ |
| *पतिततज्ज | बौधाः १३८७ |
| पतिततज्जा | ” ” |
| *पतितस्तत्सु | याज्ञः १३९८ |
| *पतितस्तत्सु | ” ” |
| *पतितस्तद | देवः १४०४ |
| पतितस्य तु | भा. १२८६ |
| पतितस्य ध | यमः १९४३ |
| पतितस्योद | मनुः १३९२ |
| पतिताः स्त्रिय | गार्ग्यः १११७ |
| पतितामपि | बौधाः १३८८ |
| पतिताधेश | हारीः १०१६; वसिः १०२२ |
| पतिता भव | मनुः १०६४ |
| पतिदायं वि | कौः १४३० |
| पतिधर्मं म | भा. १०२८ |
| पतिपक्षः प्र | कात्या. १५६१ |
| पतिप्रियहि | याज्ञः १०८५ |
| पतिप्रिया हि | हारीः १०१६ |
| * ” ” | याज्ञः १०८५ |
| *पतिमत्या हि | भा. १०२९ |
| पतिमुद्गृह्य | कात्या. १११० |
| पतिरन्यः स्मृ | नार. १०९५ |
| पतिर्जावां प्र | वेदाः १००५ |
| *पतिर्जावां सं | मनुः १०४७ |

| | |
|-------------------|--|
| *पतिर्जावां प्र | मनुः १०४७ |
| *पतिर्दद्याद् | नार. ६९९ |
| पतिर्जावां सं | मनुः १०४७ |
| पतिर्यद्भ्यो | वेदाः ९८४ |
| पतिर्हि देव | भा. १०२९ |
| पतिलोकं न | याज्ञः १०८५ |
| पतिलोकम | मनुः १०६० |
| पतिविप्रका | कौः १०३८ |
| पतिव्रता तु | हारीः १०१६ |
| पतिव्रतात्वं | भा. १०२९ |
| पतिव्रतानां | वसिः १०२२; भा. १०२६; वारा. १०७७ |
| *पतिव्रताम | याज्ञः १०८६ |
| पतिव्रतामे | भा. १०२७, १२८५ |
| पतिव्रतासु | मनुः १९५१; अपु. १९६२ |
| पतिशुश्रूष | भा. १०२६; वारा. १०७७; कात्या. १११०; |
| पैठी. १११५ | |
| *पतिशुश्रूषा | देवः १११२ |
| पतिश्चेत् क्ष | कौः १८४९ |
| पतिस्तु ग्राह्यः | ” ६८० |
| पतिहीना तु | वारा. १०७६ |
| पतीनन्तर | भा. १३०२ |
| पतीनुपच | ” १०३० |
| पत्नयोऽभ्यञ्ज | वेदाः १००६ |
| पत्नी वाचय | ” ”, १८४० |
| पत्नी त्वमसि | ” १००१ |
| पत्नी दुहित | याज्ञः १४७९; लहा. १५२७ |
| *पत्नी पत्युर्ध | कात्या. १५२१ |
| पत्नी भर्तुर्ध | ” ” |
| पत्नी च पूर्व | वेदाः ९६५ |
| पत्नी वा ज्येष्ठा | पैठी. १५२७ |
| पत्नी वै धार्या | वेदाः १०११ |
| पत्नी हि पारि | ” १४०५ |
| पत्नी हि सर्व | ” ९९४ |
| पत्येव दद्या | बृम. १५२७ |
| पत्योऽभ्यञ्जन्ति | वेदाः १००९ |
| पत्यनुज्ञात | व्याघ्रः ८०७ |
| पत्या चाप्यवि | कात्या. १११० |
| पत्या नियुक्ता | भा. १२८५ |
| *पत्यावप्यभि | कात्या. १११० |
| *पत्यावप्यवि | ” ” |

| | |
|-------------------|----------------------|
| पत्युः पूर्वं स | भा. १०२९३ |
| शुनी. १११९ | |
| वेदाः १००० | |
| पत्युरनुत्र | कात्या. १११० |
| *पत्युरप्यभि | बृह. १५१५ |
| *पत्युरर्थह | कात्या. १५२१ |
| *पत्युर्धनह | भा. १०२९ |
| पत्युर्भावं वि | बृम. १५२७ |
| *पत्ये दद्याच्च | देव. ८३९; |
| पत्यौ जीवति | विष्णुः १०२३, १२०६; |
| मनुः १२०८, १४३८ | |
| *पत्यौ प्रव्रजि | नार. ११०० |
| *पत्रार्थं शोध | ” ७४८ |
| पत्रे मन्त्रस्त्व | स्कन्द. १९६६ |
| पत्रैर्णाकम्ब | कौः १६७३ |
| पथिकः क्षीण | यमः १७६६ |
| पथि क्षेत्रेऽना | गौत. ९०३ |
| पथि क्षेत्रे प | मनुः ९१० |
| पथि क्षेत्रे वृ | नार. ९१७ |
| *पथि ग्रामप | याज्ञः ९१४ |
| *पथि ग्रामप्रा | विष्णुः ९०५ |
| *पथि ग्रामवि | ” ” |
| ” ” | याज्ञः ९१४ |
| ” पथि ग्रामे वि | विष्णुः ९०५ |
| ” ” | याज्ञः ९१४ |
| * ” ” | कौः ९३१ |
| पथिप्रमाणं | बृम. ८५५ |
| पथि विक्रीय | कौः १०३८ |
| पथि व्यन्तरे | ” ” |
| *पथि शय्याया | आप. १७९५ |
| पथ्युद्यानोद | विष्णुः ९२५, १६१० |
| *पदस्यान्वेष | नार. १७५३ |
| पदाङ्गसहि | बृह. ६२८ |
| पदेनान्वेष | नार. १७५३ |
| *पदे प्रमूढे | ” १७५४ |
| पदे प्रमूढे | ” ” |
| पयो गोषु प्र | वेदाः १००३ |
| पयोधारस्तु | नार. १९७८ |
| परं निरस्य | कात्या. १२२५ |
| परं पापक | कौः १६८७ |
| परऋणा सा | वेदाः ५९९ |
| परकुड्यम | कौः १८०० |
| परकुड्यमु | ” ९२७ |
| परक्षेत्रस्य | नार. ९४७ |
| परक्षेत्रे स | प्रजा. ९६२ |
| परगोत्रेष्व | नार. १८२४ |

| | | |
|------------------|---------|---------------------|
| परगृहाति | कौ. | १०३८ |
| परगृहाभि | ,, | १६२० |
| परगृहेष्व | विष्णुः | १०२३ |
| परचक्राट | कौ. | ७३५, १८५० |
| परजनस्य | ,, | ८१७ |
| परजातः सं | ,, | १२८८ |
| परतो व्यव | नार. | ६९५ |
| *परदारस | यमः | १८९० |
| परदारान् | ब्रह्म. | १६५४ |
| *परदाराप | मनुः | १८५६ |
| परदाराभि | विष्णुः | १६०८, १६१२; गौत. |
| | मनुः | १८४१; १८५५ |
| परदारे स | यमः | १८९० |
| *परदाराप | मनुः | १८५५ |
| परदेशप | विष्णुः | १६७१ |
| परदेशाध्वृ | कात्या. | १७६२ |
| परदेशावा | विष्णुः | १९२२ |
| परदेशीया | कौ. | १६७८ |
| *परदेशे तु | याज्ञ. | १७३१ |
| परद्रव्यगृ | ,, | १७४१ |
| परद्रव्यादि | बृह. | १६५३, १८९१ |
| परद्रव्येऽभि | बृह. | ७६५ |
| परद्रिसाह | कौ. | १४३० |
| परधेनुशृ | बृह. | ९१९ |
| परनिहितं | विष्णुः | १९५० |
| *परपत्या तु | मनुः | १८५३ |
| परपरिप्र | कौ. | १२८८; |
| | आप. | १६६५ |
| परपुंसः प्र | संव. | १८९० |
| परपूर्वास्त्रि | कात्या. | ७१३ |
| परपूर्वाः स्त्रि | नार. | ७०२, ११०३ |
| परपूर्वाश्चि | कात्या. | १११० |
| *परभक्तप्र | ,, | १२२४ |
| परभक्तोप | ,, | ,, |
| परभार्याव | कौ. | १०३८ |
| *परभुक्तप्र | कात्या. | १२२४ |
| *परभूमि प | याज्ञ. | ९४२ |
| परभूमि ह | ,, | ,, |
| परभूमौ गृ | नार. | ८५१ |
| *परभूमौ ह | याज्ञ. | ९४२ |
| परमं यत्न | मनुः | १०४९, १६९९ |

| | | |
|-----------------|---------|---------------|
| परमं हेत | बौधा. | १४६९ |
| परमुद्दिश्या | कौ. | १८४९ |
| परराष्ट्राद् | कात्या. | ७८८; |
| | शुनी. | ७९० |
| परवन्नवि | कौ. | १६७४ |
| *परवन्नस्य | कात्या. | १८८७ |
| परवेदमनो | कौ. | १६२० |
| परवेदमरु | शुनी. | १११९; |
| | अपु. | १९७९ |
| *परशयना | हारी. | १०१४ |
| परशुल्काव | कौ. | १८४८ |
| परस्त्रियं न | अपु. | १८९१ |
| परस्त्रियं यो | मनुः | १८५१ |
| *परस्त्रियाऽभि | ,, | ,, |
| *परस्त्रिया यो | ,, | ,, |
| परस्त्रिया स | नार. | १८८० |
| परस्त्रीषु द्वि | कौ. | १७७२, १७९८ |
| परस्परं तु | याज्ञ. | १८१५ |
| परस्परं द्वे | कौ. | १०३६ |
| *परस्परं प | विष्णुः | १७७० |
| परस्परं भ | भा. | ८६० |
| परस्परं ह | बृह. | १८३० |
| परस्परम | ,, | १५६८ |
| *परस्परस्य | याज्ञ. | १८१६ |
| परस्परस्या | मनुः | १८५२; |
| | नार. | १८८१ |
| *परस्परानु | व्यासः | ७८९ |
| परस्परोप | नार. | ८७१ |
| परस्मात्तस्य | गौत. | १२६३ |
| परस्य पत | विष्णुः | १७७० |
| परस्य पत्या | मनुः | १८५३ |
| *परस्यार्थे ये | कात्या. | ६७५ |
| परहस्ताद् शृ | बृह. | ७०६ |
| *परा च पथि | कात्या. | ८५४ |
| पराजितस्य | कौ. | १९०४ |
| पराजितो न | भा. | ८१८ |
| *पराजिरे शृ | नार. | ८५१ |
| परा तद् सि | वेदाः | १४६४, १६०० |
| परा देहि श्च | ,, | ९८३ |
| परामप्याष | मनुः | १९३० |
| परामेव प | वेदाः | ९९० |
| परामतो नि | ,, | ९९७ |
| परायत्तश्च | ब्रह्म. | १३७४ |
| परार्थं दिति | व्यासः | ८८९ |

| | | |
|------------------|---------|-----------------|
| परार्थानां प | कौ. | १६७४ |
| *परावरुद्धा | व्यासः | १८९० |
| परा शुभ्रा अ | वेदाः | ८४१ |
| पराश्रयम | कात्या. | ६७३ |
| परा स्थालीर | वेदाः | १२५८ |
| परिक्रम्य श | स्कन्द. | १९६६ |
| परिक्रीतः क्री | कौ. | १२८८ |
| परिक्लेशय | ,, | १६९० |
| परिक्लेशेन | ,, | १६१८; |
| | उश. | १६५२ |
| परिक्षीणे प | नार. | १५५५ |
| परिगृहीतां | कौ. | १६९० |
| *परिचर्यः स्त्रि | मनुः | १०६० |
| परिचर्यां चो | गौत. | ८१५ |
| परिचर्यात्म | भा. | ८१८ |
| परिचारक | कात्या. | ८३८ |
| *परिग्रहीता | काली. | १३५६ |
| परितोष्यं य | कौ. | ८०८ |
| परि त्वा परि | वेदाः | ९९६ |
| परि त्वासते | ,, | ९२४ |
| परिपूतेषु | मनुः | १७१९ |
| परिपूर्णं गृ | बृह. | ६२८ |
| परिपूर्णं य | मनुः | १९३० |
| *परिपूर्णे कृ | बृह. | ६५२ |
| परिपोष्या मृ | शुनी. | ८५६ |
| *परिभाण्डं च | आप. | ११६५ |
| ,, | ,, | १४१५ |
| परिभाषण | कौ. | १६१९; |
| | मनुः | ९३९, १६३१, १९२९ |
| परिभाष्य य | बृह. | ६५३ |
| *परिभुक्तं च | नार. | ८९५ |
| परिभुक्तं तु | ,, | ८९४ |
| परिभूतम | याज्ञ. | १०८६, १४०० |
| परिमाणीश्रो | कौ. | १६७७ |
| परिवर्तने | ,, | ७३५, १६७४ |
| परिवसतां | ,, | ९०६ |
| परिवित्तो वी | वेदाः | १५९२ |
| परिक्वतेव | ,, | ९९० |
| परिक्वते ह | ,, | १००९ |
| परिद्वित्तिवि | विष्णुः | ८९० |
| परिद्वित्तिस्स | व्यासः | ८९९ |
| परिद्वित्तौ कृ | कात्या. | ८९८ |
| परि चो रुद्र | वेदाः | ९०२, ९०३ |

| | | | | | |
|-----------------|---------------|-------------------|---------------|--------------------|---------------|
| *परिषत्प्यां गृ | नार. ८३१; | पशवो रस्मि | कौ. ९०६ | पश्चात्प्रतिभु | मनुः ६६४ |
| परिषद्नामि | दक्षः ८३९ | *पशुं गच्छन् | याज्ञ. १८७७ | पश्चात्प्राप्तं वि | कात्या. १५७४ |
| परिषदं ह्य | शंखः १४७३; | *पशुमीडाव | नार. १९१० | पश्चात्सिन्धुर्वि | बौधा. १९२०; |
| Xपरिषद्यमि | पैठी. १५२७ | पशुगमने | विष्णुः १८४७ | पश्चादात्मवि | वसि. १९३१ |
| *परिष्वजन्ता | वेदाः १२५३ | *पशुग्रामवि | ” ९०५ | पश्चादाहृतः | कात्या. ७६७ |
| परिष्वजन्ते | नि. ” | *पशुपीडने | गौत. ९०३ | पश्चाद्दृश्यत | विष्णुः ७७० |
| Xपरिहर्तव्यं | वेदाः ९८१ | पशुपीडिते | ” ” | पश्चाद्देयं त | मनुः १५७१ |
| परिहारेण | ” ” | पशुप्रचारा | कौ. ९०६ | पश्चाद्यं त | कात्या. ७१० |
| परिहासकृ | नि. १२५३ | पशुभिर्वा ए | वेदाः ७९२ | पश्चाद्यः सोऽप्य | नार. १८२६ |
| परीक्षकाः सा | भा. १९८३ | पशुयोनाव | नार. १८८४ | *पश्चाद्यस्योद्य | ” १८२७ |
| *परीक्षाभिम | नार. १९१२ | *पशुयोन्याम | ” ” | पश्चाद्वरेण | कात्या. ११०९, |
| *परीक्षार्थम | बृह. ७८५ | पशुर्ह नाम | वेदाः ९८८ | | १४६० |
| परीक्षार्थोऽपि | नार. ८९४ | पशुवस्त्राच्च | बृह. १६४६ | पश्चान्निविष्ट | कौ. ९३० |
| परीक्षितं ब | आप. १६०५ | पशुव्याघ्रिम | कौ. १९२४ | पश्चिमे दिन | स्कन्द. १९६६ |
| परीक्षेत स्व | ” ” | पशुषु विन | विष्णुः ९०५ | *पाखण्डनैग | नार. १९३३ |
| *परीक्ष्यः पुरु | बृह. ८९५ | *पशुषु स्वाभि | मनुः ९०९ | *पाखण्डनैग | ” ८६९, |
| परीक्ष्य त्यज | ” ” | ” ” | ” ९०७ | | ८७०, १९३३ |
| परीक्ष्य पुरु | नार. १०९४ | *पशुस्वामिनि | ” ९०९ | पाञ्चालस्य ह्यु | भा. ८१८ |
| परोक्षाभिम | भा. १०३१ | पशुस्वामिने | विष्णुः १६०९, | पाणिग्रहण | नार. १०९३; |
| परेण तु द | नार. १०९४ | पशुस्वामिषु | १७९७ | पाणिग्रहणा | यमः १११३ |
| | ” ८९४ | पशुहर्तुश्चा | मनुः ९०९ | पाणिग्रहणा | आप. १४०५ |
| | मनुः ८८०; | पशुहर्तुस्त्व | व्यासः १७६५ | पाणिग्रहणि | मनुः ८८२, |
| | अपु. १९७५ | पशुहिरण्य | ” ” | | ८८३ |
| परेण निहि | नार. १९६१ | पशुनां गोपी | गौत. १६६१ | पाणिग्रहे मृ | वसि. १०२१ |
| परोपनिहि | अनि. ६६१; | *पशुनां च पुं | वेदाः ९०३ | पाणिग्राहस्य | भा. १०३३; |
| | षट्त्रिं. ७५६ | *पशुनां चैव | विष्णुः १६१० | पाणिपादद | मनुः १०६० |
| परोपरुद्धा | व्यासः १८९० | *पशुनां दिने | मनुः १७१३ | पाणिप्रदान | कौ. १७९९ |
| पर्यरक्षन्त | भा. १२८७ | *पशूनां पुंस्त्व | विष्णुः ९०४ | पाणिमुद्यम्य | वारा. १०७७ |
| पर्याणद्धं वि | वेदाः १००२ | *पशूनां पुंस्त्वा | ” १७९७ | पाणिमुद्यम्य | मनुः १८०१ |
| पर्याप्तं दित्स | कात्या. ७५५ | पशूनां पुंस्त्वो | ” १६१०, | *पाणौ यच्च नि | नार. १८८१ |
| पर्युषितः क | कौ. १८०० | | १७९७ | पाणौ यश्च नि | ” ” |
| पर्युषु प्र थ | वेदाः ६०० | पशूनां रक्ष | ” १७९७ | *पाणौ यश्चापि | ” ” |
| पर्युषु नग | बृह. ७८६ | पशूनां रूप | मनुः ८१९, | पशुस्वाच | भा. १२८३ |
| पर्युषु च न | कौ. १९२४ | पशूनां सस्य | १९२७ | पातके निष्कृ | देव. १६५१ |
| पर्युषु च ना | ” १९२५ | पशूनां हर | वेदाः १००६ | पातकेऽपि तु | भा. १०३१ |
| पर्युषु च प | ” ” | पशूनां माधि | भाष्य. ९९१ | पातकेऽपि भ | ” १३९१ |
| पर्युषु च मू | ” ” | पशूनां नामप्य | मनुः १७१३ | पातनभज्ज | कौ. १८०० |
| पर्युषु च वि | ” ” | पशूनां गच्छ | भा. ८६० | *पातनीयैरु | नार. १७८५ |
| पर्युषु त | विष्णुः ६११ | *पशूनां गच्छ | मनुः ८८१ | पातयित्वाऽप्य | कौ. १७९८ |
| पर्युषुनाति | कौ. १९७७ | पशूनां गच्छ | याज्ञ. १८७६ | पातनीवतो गृ | वेदाः १६८५ |
| पर्युषुने ही | ” १९७५ | *पशूनां गच्छ | गौत. ६०७ | पादं पशुश्च | मनुः १९२७, |
| पर्युषुयिते तु | कात्या. ८७८ | *पशूनां गच्छ | ” ६०७ | | १९४५ |
| *पर्युषुलं गोमि | नार. १९१८ | *पशूनां गच्छ | मनुः १७९५ | पादकेऽपि | विष्णुः १७९६; |
| *पर्युषुलं ग | संभ. ७१६ | *पशूनां गच्छ | याज्ञ. १८२० | | याज्ञ. १८१६ |
| *पर्युषुलं ग | विष्णुः ६११ | *पशूनां गच्छ | ” ” | *मदनेऽपि | ” ” |
| *पर्युषुलं ग | वसि. १९२१ | *पशूनां गच्छ | ” ” | पादकेऽपि | भा. ८१९ |

| | | |
|------------------|----------|--------------------|
| पादताडने | हारी. | १७९४ |
| पाददर्शी च | व्याघ्रः | ६७७ |
| पादमात्रा मृ | शुनी. | १७६७ |
| पादयोरेव | मासो. | १९७० |
| पादयोर्दीर्घे | मनुः | १८०३; |
| | नार. | १८२९ |
| *पादयोर्नासि | मनुः | १८०३; |
| | नार. | १८२९ |
| पादवन्दनि | काल्या. | १४५३ |
| पादवस्त्रह | कौ. | १७९८ |
| पादश्वैव स | भा. | १९६३, |
| | | १९६४ |
| पादुके चास्य | वारा. | ७४५ |
| पादुकेति रा | नार. | १६४५ |
| पादेन ताड | बृहा. | १८३५ |
| पादेन द्विगु | कौ. | १७९९ |
| पादेन प्रह | मनुः | १८०१ |
| पादेन विश | विष्णुः | १७९६ |
| *पादेनान्वेष | नार. | १७५३ |
| *पादे प्रमूढे | " | १७५४ |
| पादोपचयात् | बृह. | ६३० |
| पाद्यासनाभ्यां | भा. | १०२९ |
| पानं दुर्जन | मनुः | १०४८ |
| पानाटनदि | बृह. | ११०६ |
| पापं पुनासि | स्कन्द. | १९६६ |
| पापभीत्याथ | कौ. | ८०८ |
| पापमूलं स | बृह. | १८८४ |
| पापानां चोप | स्कन्द. | १९६५ |
| पापासः सन्तो | वेदाः | ९७० |
| पापास्तु यस्य | हारी. | १६६३ |
| पापीयसो न | भा. | १०३२ |
| पापीयान् हि | " | ८१८ |
| पापेन योज | बृह. | १७९० |
| पापेषु दर्श | स्कन्द. | १९६६ |
| पापोपपाप | व्यासः | १७९२ |
| पायसं तत्र | बृगौ. | १३७३ |
| *पारजातीया | विष्णुः | १८४६ |
| *पारजायिक | याज्ञ. | १६३२ |
| पारजायी स | विष्णुः | १८४६ |
| पारदारिक | याज्ञ. | १६४०, |
| | | १९३२; मत्स्य. १८९२ |
| *पारदारि स | यमः | १८९० |
| पारिभाषिको | विष्णुः | ६३७ |
| पारिवाज्यं गृ | नार. | १८३१; |
| | स्कन्द. | ८१९ |
| *पारुष्यं द्विवि | नार. | १६४१ |

| | | |
|------------------|----------|-----------|
| पारुष्यं द्विवि | बृह. | १८८४ |
| पारुष्यं मध्य | " | १७८९ |
| *पारुष्यदोष | नार. | १८२६ |
| पारुष्यदोषा | " | " ; |
| | सुम. | १८३५ |
| *पारुष्यमुत्त | बृह. | १६४५ |
| " " | " | १७८९ |
| पारुष्यमुभ | नार. | १६४१; |
| | बृह. | १६४५ |
| | नार. | १८२६ |
| पारुष्ये सति | | |
| *पारुष्ये साह | " | " |
| पार्थेन विजि | भा. | १०२७ |
| पार्थिककृत | नार. | ११३० |
| पार्थिहानिक | बृह. | १५७३ |
| पार्थिककृत | विष्णुः | १९८३, |
| | | १९८७ |
| पालः शास्यो भ | नार. | ९१७ |
| *पालकदोषे | विष्णुः | ९०४ |
| पालकारिते | स्मृत्य. | ९२१ |
| पालगृहे आ | व्यासः | ९२० |
| *पालगृहे आ | " | " |
| *पालदोषवि | विष्णुः | ९०४ |
| " " | याज्ञ. | ९१२ |
| *पालदोषाद्दि | " | " |
| *पालनीयाः स | बृह. | ८७३ |
| पालनीया स | " | " |
| पालने च स | बृह. | ६७७ |
| पालविष्यति | बृह. | १३४९, |
| | | १९८७ |
| पालसंयुक्ते | गौत. | ९०३ |
| *पालस्ताड्यस्तु | याज्ञ. | ९१४ |
| *पालस्ताड्येत | " | " |
| *पालस्ताड्योऽथ | " | " |
| पालगालि ह | वेदाः | १००९ |
| *पाल्य येषां तु | याज्ञ. | ९१५ |
| पालिनामर्थ | कौ. | ९०६ |
| पालो दण्डो भ | नार. | ९१७ |
| *पालो येषां न | याज्ञ. | ९१५ |
| *पाल्ये येषां तु | " | " |
| पालो येषां न | " | " |
| पाल्यः सन्तः | " | १०६६ |
| पाल्यवि क | वेदाः | ९७२ |
| पाल्यपालकू | कौ. | १६१७ |
| पाल्यपालकू | मनुः | १९३१ |
| पाल्यपालकू | नार. | ८६९, |
| | | ८७०, १९३३ |

| | | |
|--------------------|----------|------------------------|
| पाषण्डपति | बृहा. | १४०४ |
| *पाषण्डिनैग | नार. | ८६९, |
| | | ८७०, १९३३ |
| पाषाणस्यापि | स्कन्द. | १९६६ |
| पाषाणेन म | विष्णुः | १७९६ |
| पाषाण्स्मान् स | भा. | ८६० |
| पिण्डं तेभ्यः त्रै | प्रच. | १३८४ |
| पिण्डं हुताश | स्कन्द. | १९६६ |
| पिण्डगोत्रार्थि | गौत. | १०१३, |
| | | १४६४ |
| *पिण्डगोत्रार्थ | " | " |
| पिण्डज (द)श्च | बृहा. | १३५५ |
| पिण्डदः सप्त | मत्स्य. | १३८३ |
| पिण्डदोऽसह | याज्ञ. | १३३५; |
| | | स्मृत्य. १३७३ |
| पिण्डलेपमु | मार्क. | १५३० |
| पिण्डसंबन्धि | " | " |
| *पिण्डकर्षाशु | याज्ञ. | १८१६ |
| पिण्डोदककि | मनुः | १३१६; |
| | | बृह. १३४८; यमः १३५२; |
| | | अत्रिः " |
| *पितरं त्राय | हारी. | १२६४ |
| पितरं नाब्दि | सुम. | १३५५ |
| पितरस्तस्य | उवा. | ९२०; |
| | बौध्वा. | १०१९ |
| पितरि श्रेष्ठि | याज्ञ. | ६८४; |
| | कृदा. | ७१५ |
| पितरो धर्म | भा. | १०२६ |
| *पितरो आत | काल्या. | ११७३ |
| पितरौ आत | " | " |
| | | १४१३; बृहा. १५२७ |
| पितर्यविद्य | संय. | १५३० |
| पितर्यशक्ते | शंख. | ११४७ |
| पितर्युपर | नार. | ६९०; |
| | | काल्या. ८१९; देव. ११५६ |
| * " " " | नार. | ११५२ |
| पितर्युर्व ग | " | " |
| *पिता ऋष्यन्मो | " | ६९२ |
| पिता कुर्यात्त | स्मृत्य. | १४२२ |
| *पिताह्ययथः | हारी. | ११६३ |
| पितृभ्योः पु | " | " |
| पिता चेरुत्रा | विष्णुः | ११७५ |
| *पिता चेदिम | यज्ञ. | ११६८ |
| | कृदा. | १३७३ |
| *पिता चैव स्व | नार. | ११७० |
| पिता ज्येष्ठं अ | नार. | १३२९ |

| | | | | | |
|-------------------------|------------------|-------------------|---------------|---------------------|-----------------|
| पिता त ऋण | भा. १२८५ | पितुः प्रसादा | वसि. १०२१ | पितृभ्यां यस्य | याज्ञ. १२१९ |
| पिता दद्यात् स्व | नार. १०९५ | *पितुः प्रसादा | नार. १२१९ | पितृभ्यो भ्रातृ | बृह. १४६२ |
| पिता पिताम | याज्ञ. १०७७; | पितुः सकाशा | स्मृत्य. १५२९ | *पितृभ्रातृगृ | व्यासः १४६० |
| शंखः १२८१; देव. १३५८; | | पितुः सापत्न | संग्र. १४६३ | पितृभ्रातृपु | कौ. ११४९ |
| यमः १३५१; मार्क. १५३०; | | पितुः स्वसारं | याज्ञ. १८७४ | पितृभ्रातृसु | स्मृत्य. १४६३ |
| | वसि. १९८२ | पितुरनुम | बौधा. ११४६ | पितृमातृप | याज्ञ. १४४३; |
| पितापुत्रयो | शंखः १६१३; | पितुरसत्य | कौ. ११९५ | | कात्या. १४५४ |
| | कौ. १९२२ | पितुरूर्ध्वं वि | याज्ञ. १४११; | *पितृमातृष्व | गौत. १२३४ |
| पितापुत्रवि | विष्णुः १६११; | | संग्र. ११५७ | पितृमातृसु | याज्ञ. १०८४; |
| मनुः १६२८; याज्ञ. १६३५; | | पितुरेव नि | नार. ६९६ | विष्णुः १४२८; वृहा. | १४६२ |
| | नार. १९३३ | पितुर्गौत्रेण | कालि. १३७७ | * " " | याज्ञ. १४४३ |
| *पितापुत्रसु | याज्ञ. १६३५ | *पितृद्रव्यावि | याज्ञ. १२१५ | *पितृमातृस्व | विष्णुः १४२८ |
| पिता पुत्रस्य | वेदाः ६०४, | पितुनपात | वेदाः ९७५, | पितृरिक्थह | बृह. ११९३ |
| | १२५९; वसि. १२७१; | | १८३६ | पितृवर्पाल | भा. १९७६ |
| | विष्णुः १२७९ | पितृमाताम | देव. १३५० | *पितृविभक्त | विष्णुः १५६२ |
| पितापुत्रस्व | याज्ञ. १६३५ | पितृमातुल | वृशा. १५२९ | पितृविभक्ता | " " |
| पिता प्रधानं | मनुः १३१७ | पितृवित्तस्य | वृगी. १३७२ | पितृवेदमनि | " १०२३; |
| पितामहपि | बृह. १२२३; | *पितृविभक्ता | विष्णुः १५६२ | | मनुः १३०६ |
| | व्यासः १२३१ | पितुश्च गर्भं | वेदाः १२५७ | पितृवेदमन्य | भा. १२८५ |
| पितामहेन | " " | पितुश्चावही | कौ. १८४८ | पितृव्यगुह | बृह. १५१३; |
| *पितामहे स्मृ | बृह. १२२१ | पितृगृहेऽसं | विष्णुः १२७९ | | प्रजा. १५२६ |
| *पितामहो मा | नार. १०९५ | पितृदेवर्षि | भा. १२८३ | पितृव्यपितृ | विष्णुः १५४१ |
| पितामहश्च | मनुः १४०८; | पितृद्रव्यं त | नार. १२२० | पितृव्यभ्रातृ | बृह. ७०८ |
| | व्यासः १४१४ | *पितृद्रव्यं भ्रा | बृह. ७०८ | पितृव्यक्षैव | भा. १०२८ |
| पितामह्या अ | संग्र. १५२९ | *पितृद्रव्यं वि | निघ. ११४२ | पितृव्यसाखि | नार. १८८२ |
| *पितामह्याद | व्यासः १४१४ | Xपितृद्रव्यं स | नार. १२२० | पितृव्येण चै | प्रव. १३८४ |
| पिता माता भ्रा | वेदाः १८९४ | पितृद्रव्यवि | संग्र. ११५७ | पितृव्येणाथ | बृह. १५५६ |
| *पिता माताम | याज्ञ. १०७७ | पितृद्रव्याद | कौ. ११९९ | *पितृव्येणापि | " " |
| *पिता यत् पुत्रा | विष्णुः ११७५ | पितृद्रव्यादा | " १८४८ | पितृव्येणावि | नार. ६९१ |
| पिता यत्र दु | वेदाः १२५५ | पितृद्रव्यावि | याज्ञ. १२१५ | *पितृव्येनाथ | बृह. १५५६ |
| X " " | नि. " | पितृद्रव्येणा | बृह. १५५६ | *पितृष्वसां मा | याज्ञ. १८७४ |
| पिता यत्स्वां दु | वेदाः ९८१, | पितृद्वाराग | संग्र. ११४२ | *पितृणां शोध | कालि. १३७६ |
| | १८३७, १८४१ | पितृद्विट् पति | नार. १४०१ | *पितृणां साध | " " |
| पिता रक्षति | भा. १०३१; | *पितृपतिसु | याज्ञ. १४४३ | पितृणां सनु | कात्या. ७१० |
| मनुः १०४५; वारा. १०७६; | | *पितृपुत्रवि | विष्णुः १६११; | पितृणामनृ | मनुः ११९६, |
| नार. १०९९, १५५५; | | | नार. १९३३ | | १९८७; शंखः १२८१ |
| बौधा. १३८८; वसि. १९७७ | | *पितृपुत्रस्व | याज्ञ. १६३५ | पितैव पाल | मनुः ११९७ |
| पिता वा एष | वेदाः ११६१ | पितृपुत्राच्च | विष्णुः १६१० | *पितैव वा स्व | नार. ११७० |
| पिता वै प्रया | " ११६० | पितृप्रमाणा | कौ. १०३४, | पितैव वा स्व | " " |
| पिता हरेद | मनुः १४७५ | | १४३० | पितोत्सृजेत् | गौत. १२६२ |
| *पिता ह्याप्रय | ह्यरी. ११६३ | पितृप्रसादा | नार. १२१९; | पित्रर्णशोध | कालि. १३७६ |
| पितुः परिका | कौ. ११८४ | वृया. १२३३; लहा. | १९८८ | *पित्रर्णे विद्य | कात्या. ७१० |
| *पितुः पितुः स्व | कृष्ण. १५२९ | पितृभृतृगृ | व्यासः १४६० | पित्रादिधन | शुनी. १९८८ |
| पितुः प्रितृष्व | " " | पितृभिर्भ्रातृ | मनुः १०५२ | पित्रा दृष्टम् | कात्या. ७०९ |
| पितुः पुत्रेण | बृह. १२५१ | पितृभ्यां चैव | वृक. १४६३ | पित्रा भर्ता सु | मनुः १०५९ |
| *पितुः प्रदानम् | वसि. १०२१ | * " " | याज्ञ. १२१९ | * " " | बृह. ११७६ |

| | | | | | |
|-----------------------|--------------|------------------|----------------|------------------|---------------|
| *पित्रा भ्रात्रा सु | मनुः १०५९ | पुंसां च षोड | कात्या. १२०१ | पुत्रप्रतिनि | बृह. ७१५ |
| पित्रा मात्रा च | विष्णुः १२७९ | *पुंसां संदाह | मनुः १८६५ | मनुः १३१०; | स्मृत्य. १३७३ |
| पित्रा मात्राऽथ | कात्या. १४५४ | पुंसे पूर्वस्मै | वेदाः १००८ | कौ. १४३० | |
| *पित्रा वाथ स्व | बृह. ८०३ | पुंसो द्विगुणः | कौ. १६१७ | आप. १९७३ | |
| *पित्रा विभक्ता | विष्णुः १५६२ | पुंसोऽपीत्येके | नि. ७९२, | मनुः ११९७ | |
| *पित्रा सह वि | नार. ११७२ | | १९७५ | | |
| ” ” | बृह. १५६७ | X ” ” | ” १२५५ | ” ” | |
| पित्रे न दद्या | मनुः १०४२ | पुण्यस्थानत | कौ. १८०० | ” ” | |
| *पित्रे शतगु | व्यासः ८०६ | पुण्यस्य गन्ध | वेदाः १६०२ | कौ. १०३४ | |
| *पित्रैव च वि | नार. ११७२ | पुण्यानि पाव | कात्या. ९५९ | ” १४३० | |
| पित्रैव तु वि | ” ” | *पुण्यानि यानि | ” ” | बृह. ७५० | |
| पित्रोरभावे | बृह. ११५५ | पुण्येन गन्धे | वेदाः १६०२ | भा. १२८६, | |
| *पित्र्यं चाथ स्व | ” ८०३ | पुण्येऽनुकूल | अनि. १४६३ | १४७३ | |
| *पित्र्यं द्रव्यं स | नार. १२२० | Xपुत्रं अवह्नि | नि. १२५४ | नार. १५११ | |
| *पित्र्यं पितृण | कात्या. १२२९ | *पुत्रं च जन | कात्या. १११० | वसि. १९७७ | |
| *पित्र्यं पित्रर्ण | ” ” | पुत्रं तु जन | ” ” | बृह. ११०६ | |
| *पित्र्यं पित्र्यं तु | ” ” | पुत्रं पुत्रगु | विष्णुः १२८०; | सुम. १३५५ | |
| पित्र्यं पित्र्यणे | ” ” | पुत्रं प्रतिग्र | मनुः १३०५ | विष्णुः १९२१ | |
| *पित्र्यं पूर्वमृ | बृह. ७०७ | पुत्रं प्रत्युदि | वसि. १२७३; | भा. १०३० | |
| *पित्र्यं पौत्रैर्क | याज्ञ. ६८४ | पुत्रं ब्रह्माण | बौधे. १३८४ | पार. १४६३ | |
| पित्र्यं वाऽथ स्व | बृह. ८०३; | पुत्रं वा किल | मनुः १०६९ | मनुः १०४५ | |
| ” ” | प्रजा. ८०७ | पुत्रं वा किल | वेदाः १२६० | ” ” | |
| *पित्र्यं वा यत् | ” ” | पुत्रं संस्कृत्य | भा. १०३१ | बौधा. १०२०, | |
| *पित्र्यभावे तु | कात्या. ७०९ | पुत्रः कनिष्ठो | संघ. १३८४ | १३८८; भा. १०३१ | |
| पित्र्यमेवाग्र | बृह. ७०७ | *पुत्रः पितृद्र | मनुः १२३५ | भा. १९८४ | |
| पित्र्येणै विद्य | कात्या. ७१० | *पुत्रः पितृघ | विष्णुः १२८१ | मनुः १०५९ | |
| Xपित्र्यस्येव ध | नि. १२५३ | पुत्रः पितृवि | ” ” | ” ” | |
| पित्र्यादशात्स | ब्रह्म. १३७४ | पुत्रः पित्रे लो | वेदाः १२६१ | जाबा. १३५६ | |
| *पित्र्यादक्थात्स | ” ” | पुत्रः पौत्रश्च | बृह. १३५५ | भौत. १२६३ | |
| पित्र्यादृणाद | भा. १२८३, | पुत्रः प्रमुदि | वेदाः ६०४ | कात्या. १४२१ | |
| | १२८४, १२८५ | पुत्रः शिष्यस्त | भवि. १६५५ | ” ” | |
| पित्र्ये शतगु | व्यासः ८०६ | * ” ” | यमः १८३५ | ” ” | |
| पिप्पलस्याथ | स्कन्द. १९६७ | पुत्रकामो हि | भा. १२८७ | ” ” | |
| पीडनानि च | मनुः १९३० | पुत्रत्वेऽधिकृ | कौ. १२८८ | ” ” | |
| पीडनावेष्ट | कौ. १७९८ | Xपुत्रदायाद्य | नि. १२५५ | ” ” | |
| पीडनेनोप | कात्या. ७२७ | पुत्रदारप | भा. १०३१ | ” ” | |
| *पीडयेत्तु ध | ” ७२८ | * ” ” | बृह. ७२५ | ” ” | |
| पीडयेत् भ | ” ६५५ | पुत्रदारादि | विष्णुः ७९४ | ” ” | |
| पीडयेद्यो ध | ” ७२७ | पुत्रदौहित्र | शंखः १२८२; | ” ” | |
| पीडाकर्षांशु | याज्ञ. १८१६ | | भा. १२८६, १४७३ | ” ” | |
| *पीडाकर्षांशु | ” ” | * ” ” | मनुः १२९७ | ” ” | |
| *पीडाकर्षांशु | ” ” | पुत्रपौत्रप्र | शंखः १२८१ | ” ” | |
| पीड्यमानाः प्र | ” १९३२ | पुत्रपौत्रस | अनि. ८०७; | ” ” | |
| पीनशाखाच्छे | कौ. १८०० | | स्कंख. १५८९ | कात्या. ७०९; | |
| पुंसः कार्योऽधि | बृह. १४५६ | पुत्रपौत्रैर्क | आज्ञ. ६८४; | बृह. १२५१, १५५९; | |
| पुंसः पूर्वे सा | कौ. १०३८ | | | नार. १५११ | |
| | | | | ” १५१२ | |

| | | | | | |
|----------------------|---------------------------|---------------------|---------------|------------------------|---------------|
| *पुत्राभावे प्र | आप. १४६६ | *पुत्रोऽथ पुत्रि | बृह. १३४८ | पुना राजाऽभि | वासि. ६१० |
| पुत्राभावे यः | " " | पुत्रोऽनन्याश्रि | याज्ञ. ६८६ | पुत्रामा निर | हारी. १२६४ |
| *पुत्राभावे स | " " | पुत्रो नमा ध | शुनी. १९८८ | पुत्रान्नन्त्राय | शंखः १२८१ |
| पुत्रा रक्षन्ति | वारा. १०७६ | पुत्रो न स्वाश्रि | बृहा. ७१५ | पुत्रान्नो नर | विष्णुः १२७९; |
| पुत्रार्तिहर | देव. १४६१ | पुत्रो नान्याश्रि | याज्ञ. ६८६ | मनुः १२९०; वारा. १३२८; | |
| पुत्रार्था हि लि | कौ. १०३४, | पुत्रो ममेय | भा. १९८५ | बृह. १३४८; भा. १९८४ | |
| | १४३१ | पुत्रो यस्त्वानु | " १३९१ | | |
| पुत्रासो न पि | वेदाः ११५८ | पुत्रोऽसतोः स्त्री | नार. ७०० | पुमांश्चेदवि | नार. १०९४ |
| पुत्रास्तु द्वाद | यमः १३५१ | *पुत्रोऽसुतः स्त्री | " " | पुमांसं घात | गौत. १८४३ |
| *पुत्रास्तु स्थवि | मनुः १०४५ | पुनः पतिभ्यो | वेदाः ९८५, | पुमांसं दाह | मनुः १८६५ |
| *पुत्रास्तु स्थावि | " " | | १४२३ | पुमानेनद् | वेदाः १००० |
| | नार. १०९९ | पुनः षःनीम | " ९८५, | पुमान् पुत्रो | " १२५९ |
| | वेदाः ११४४ | | १००१ | पुमान् संप्र | याज्ञ. १८७० |
| पुत्रास्ते भग | बृह. १३४८ | पुनः पत्युर्गृ | नार. ७०३, | *पुमान्संदाह | मनुः १८६५ |
| पुत्रास्त्रयोद | वेदाः ११४४ | | ११०३ | पुमान् स्याल्ल | नार. १०९४ |
| पुत्रा हास्य दा | भा. १२८७ | *पुनः पुनः प्र | संव. १८९० | पुरं जनप | भा. ८१९ |
| पुत्रा ह्येते न | " १९८५ | *पुनः प्रमाण | नार. १९३३ | *पुरः प्रधान | नार. १९३३ |
| पुत्रिकाः स्थाप | लहा. १३५५ | पुनः प्रमादे | आप. ९०४ | *पुरः प्रमाणं | " " |
| पुत्रिका तु ह | शंखः १२८२ | पुनः संस्कार | नार. ११०१ | पुरः सदः श | वेदाः ९६४ |
| पुत्रिका पुत्र | विष्णुः १२७९ | पुनः सायं पु | शुनी. १११९ | पुरप्रदानं | नार. १९३३ |
| पुत्रिकापुत्र | मनुः १२९७ | पुनः स्तेये प्र | कौ. ७७२ | *पुरप्रधान | " " |
| पुत्रिकायां कृ | जाबा. १३५६ | पुनराधेये | वेदाः १५९६ | *पुरप्रमाणं | " " |
| पुत्रिकायाः प्र | विष्णुः १२७९ | पुनरेता नि | " ९०२ | *पुरप्रमाण | " " |
| पुत्रिकाविधि | शंखः १२८२ | पुनर्दाय ब्र | " १८३९ | *पुरश्रेणिग | बृह. ८७४ |
| *पुत्रिका हि पु | वेदाः ९७४ | पुनर्दाय कि | मनुः १०७५ | पुरस्त्वा सर्वे | वेदाः १२६१ |
| पुत्रिणा ता कृ | नार. ६९९ | *पुनर्भवश्च | स्मृत्य. १३७३ | पुरागतश्च | कात्या. ११०९ |
| *पुत्रिणी च स | " " | *पुनर्भुवां ए | नार. ११०४ | पुराणचोर | कौ. १६८१, |
| पुत्रिणी तु स | भा. १९८५ | पुनर्भुवां वि | " " | | १६८२ |
| पुत्रिका हेतु | बृहा. १३५५ | *पुनर्भूः कौम | वासि. १२७३ | पुराणदृष्टो | भा. १२८५ |
| पुत्री च भ्रात | वासि. १२७३; | पुनर्भूः प्रथ | नार. ७०३, | पुराणपञ्च | हारी. ६०८ |
| पुत्री माताम | देव. १३५० | | ११०३ | पुराणमृषि | भा. १०२७, |
| | मनुः १३०० | पुनर्भूतायाः | कौ. १२८८ | | १२८४ |
| * " " | नार. ११०१ | *पुनर्भूद्विवि | नार. ७०२ | पुराणे पणि | हारी. ६०८ |
| पुत्रे जाते नि | हारी. १२६४; | पुनर्भूद्विवि | " " | *पुराणे पनि | " " |
| पुत्रेण लोका | वासि. १२७१; विष्णुः १२७९; | | ११०३ | पुरुषं चाप | कौ. १६१८ |
| | शंखः १२८२; मनुः १२८९ | *पुनर्भूवां च वि | " ११०४ | *पुरुषं दाह | मनुः १८६५ |
| पुत्रेणापि स | बृह. ६७२; | पुनर्विभागः | मनुः १५७५ | पुरुषं सोम्यो | वेदाः १६५६ |
| | कात्या. ६७५ | पुनर्विभाग | बृह. १५५७ | पुरुषं हर | नार. १७५०; |
| पुत्रेणैवाप | " ७११ | पुनर्वै देवा | वेदाः १८३९ | | व्यासः १७६५ |
| पुत्रेभ्यः पित | वेदाः ११५९ | पुनस्तादा वृ | " ९८१, | पुरुषप्रेक्षा | कौ. १०३६ |
| *पुत्रेभ्यो दायं | बौधा. ११४६ | | १८३६ | पुरुषमधि | " १८५० |
| पुत्रेभ्यो लोकं | वेदाः ११६२ | पुनस्तान्यासि | " ९८४, | पुरुषमव | " १९२२ |
| पुत्रे राज्यं स | मनुः १९३१ | | १००२ | *पुरुषवध | आप. १६६४ |
| पुत्रैः श्राद्धैः पि | भा. १२८४ | पुनस्त्वाहार | स्कन्द. १९६६ | पुरुषवधे | " १६०६, |
| पुत्रैः सह वि | बृह. १५६८ | पुनस्ति त्रिकु | आङ्गि. १११६ | | १६६४ |
| पुत्रैश्च तद् | कात्या. ७१० | *पुनस्त्यक्चि | " " | पुरुषविप्र | कौ. १०३६ |
| | | | | पुरुषस्य लि | मनुः १०४४ |

| | | | | | |
|------------------|--------------|--------------------|--------------|---------------------|--------------|
| पुरुषाणां कु | मनुः १७११ | पूर्व चैके | गौत. १४२६ | पूर्ववैरानु | बृह. १६४७ |
| पुरुषोपस्था | कौ. ७७१ | पूर्व त्वङ्गत | कालि. १३७७ | *पूर्वसंनिपा | आप. १८४३ |
| पुरुतमासः | वेदाः ८४१ | पूर्व दद्याद् | कात्या. ७१० | पूर्वसर्गे तु | भा. १०३३ |
| पुरुवरवोऽनु | ,, ९८८ | पूर्व दोषान | मनुः ८८१ | पूर्वस्तदङ्घ्रिगु | अनि. १९६८ |
| पुरुवरवो मा | ,, ९८९ | पूर्व नष्टां तु | शंखः १२०७ | पूर्वस्मिन् पूर्व | आप. ८१६ |
| पुरोपवन | कौ. १८०० | पूर्व पश्चाद् | कौ. १८०० | पूर्वस्मृताद् | याज्ञ. १८२३ |
| *पुरोहिते द | वासि. १९२१ | पूर्व पूर्व गु | मनुः १९३० | *पूर्वस्वामीति | बृह. ७६५ |
| पुष्करिण्यस्त | अनि. ९६२ | पूर्व पैताम | कात्या. ७१० | पूर्वस्वामी तु | ,, ,, |
| पुष्पफलच्छा | कौ. १८०० | *पूर्व प्रणीता | बृह. १५१३ | *पूर्वाङ्घ्रिः स | ,, ,, |
| *पुष्पफलमू | वासि. ६०९ | पूर्व प्रमीता | ,, ,; | पूर्वागतो वा | कौ. १९८६ |
| पुष्पफलशा | कौ. १६१४ | | प्रजा. १५२६ | पूर्वाचार्यस्तु | शुनी. १९८८ |
| पुष्पफलोप | वासि. १७९५ | | मनुः १८५३ | *पूर्वापदानै | नार. १७५४ |
| पुष्पमूलफ | ,, ६०९ | | ,, ,; | पूर्वापिगधै | ,, ,, |
| *पुष्पशाकाद् | याज्ञ. १७४४ | | नार. १८८१ | *पूर्वापवादै | ,, ,, |
| पुष्पहारित | विष्णुः १६७० | पूर्व मृतं तु | भा. १०२६ | पूर्वा पूर्वा ज | नार. ११०४ |
| *पुष्पाणि फला | गौत. १६५७ | *पूर्व मृता त्व | बृह. १५१३ | पूर्वावरगा | कौ. ११८५ |
| *पुष्पाणि खव | ,, ,, | पूर्व मृता ह | व्यासः ११११ | *पूर्वाशिनी च | नार. ११०० |
| पुष्पेण प्रय | भा. १२८४ | * , , , | बृह. १५१३ | *पूर्वाशिनी च | ,, ,, |
| पुष्पे शाकोद् | याज्ञ. १७४४ | *पूर्व वाऽपकृ | कात्या. १८३३ | पूर्वाशिनी च | ,, ,, |
| पुष्पेषु हरि | मनुः १७१९ | पूर्व वा पीडि | ,, ,, | पूर्वालि अश्वा | वेदाः १८९५ |
| *पुष्प हरित | ,, ,, | *पूर्व वैके | गौत. १४२६ | *पूर्वालि ग्राम | स्मृत्य. ९०१ |
| *पुष्पोपगद् | विष्णुः १७९८ | पूर्व ह्यधिकृ | नार. ९४८ | पूर्वालिऽन्युदि | भार. ९०० |
| पुष्पोपगम | ,, १६०९ | पूर्वः पूर्वः स्मृ | ,, १३४६ | पूर्वारहं श | वेदाः ९६७ |
| पुष्पोपभोग | ,, १७९८ | पूर्वकर्मोप | याज्ञ. १७४० | पूर्वणापर | कौ. १७७२ |
| *पुष्पोपभोग्य | ,, ,, | पूर्वकृताप | कौ. १६८७ | पूर्वेषां तु स्व | विष्णुः १४७१ |
| *पूगश्रेणिग | बृह. ८७२, | पूर्वदत्ता तु | कात्या. ११०९ | *पूर्वेषां हि स्व | ,, ,, |
| | ८७४ | *पूर्वनष्टां च | शंखः १२०७ | पूर्वेषामानु | भा. १०२७ |
| पूजनयात्र | नार. ६९२; | पूर्वनष्टां तु | ,, ,, | *पूर्वकितादुक्त+ | कात्या. १९४१ |
| | वृप्र. ७१५ | * , , , | हारी. १९८२ | पूर्वकिन वि | नार. ११०२ |
| पूजयेत्कव्य | बृह. १५१३; | *पूर्वनिष्टां तु | शंखः १२०७ | *पूर्वकिनैव | ,, ,, |
| | प्रजा. १५२६ | पूर्वपूर्वत | भा. १२८४ | पूर्वत्थानं गु | बृह. ११०६ |
| पूजयेद्दलि | भा. १०२९ | *पूर्वप्रमीता | बृह. १५१३ | पूर्वत्थानप | व्यासः ११११ |
| पूजार्हमपू | विष्णुः १६०९ | *पूर्वप्रवर्त | नार. ९४७ | पूर्वो दुह्याज्ज्ये | वेदाः १००५ |
| पूज्या भूषयि | मनुः १०५२ | पूर्वप्रवृत्त | ,, ,, | पूषणं न्वजा | ,, ९७२ |
| पूतो वधमो | गौत. १६५८ | पूर्वभुक्त्या च | मनुः ९३५ | पूषा त्वेतो न | ,, ९८३ |
| पूरयेद्घृत | स्कन्द. १९६६ | *पूर्वभुक्त्याऽपि | ,, ,, | पूषा वः पर | ,, ९०३ |
| पूरुणा मे कृ | भा. १३९१ | *पूर्वमाकार | नार. १८२७ | पृथक्कर्मगु | नार. १५८३ |
| पूर्णाविधौ शा | बृह. ६५३, | *पूर्वमाक्षर | ,, १८२६ | *पृथक्कार्यगु | ,, ,, |
| | ७०६, ७२६ | पूर्वमाक्षर | ,, ,, | पृथक् चिति | उश. १११३ |
| *पूर्णे च सोद | ,, ६३१ | पूर्वमाक्षरि | मनुः १८५३ | पृथक्पिच्छं पृ | वृथ. १५८८ |
| पूर्णे प्रकर्षे | ,, ६५३ | *पूर्वमेव ब | कृष्ण. १११७ | पृथगायव्य | बृह. १५८१ |
| *पूर्णे विधौ सा | ,, ,, | पूर्वमेव र | ,, ,, | पृथग्भाणस्व | भा. ८६१ |
| पूर्णेऽर्धपाद | अनि. १९६८ | *पूर्वमेवानु | बृह. १६४७ | पृथग्भाणस्तु | नार. ८७१ |
| पूर्वे कृता कि | बृह. ७३४ | पूर्ववच्च गृ | कौ. १६८२ | *पृथग्भाणान् ये | ,, ,, |
| *पूर्वे वाऽऽपीडि | कात्या. १८३३ | पूर्ववत्प्र | आष. १२६६ | *पृथग्भाणाश्च | ,, ,, |
| *पूर्वे चेत्येके | गौत. १४२६ | पूर्ववृतास्त्यै | विष्णुः ७७० | *पृथग्वा वर्ष | मनुः ११२८ |

| | | | | |
|--------------------|---------------|-------------------------|-----------------------------|------------------------|
| पृथग्विवर्ध | मनुः ११२८ | पौगण्डाः पर | कात्या. १२०१ | १९२९; नार. १७४६; |
| पृथां दुहित | हरि. १३७६ | *पौगण्डात्पर | " " | व्यासः १७६३ |
| पृथुकीर्तिः पृ | " " | पौतुद्रवाव | वेदाः १६०२ | बृह. १६४६ |
| पृथोरपीमां | मनुः १०७२ | पौत्रदौहित्र | विष्णुः १२७९; | *प्रकाशविक्र |
| पृष्टं तु साक्ष्ये | भा. १९६४ | | मनुः १२९७, १३०२, | प्रकाशांश्चाप्र |
| पृष्टो यदम्बु | " " | | १४७४; देव. १३५० | |
| पृष्टो हि साक्षी | " " | *पौत्रश्च पुत्रि | बृह. १३४८ | प्रकाशापण |
| *पृष्ठतश्च श | मनुः १८१२ | *पौत्री माताम | वसि. १२७३; | प्रकाशार्थम |
| *पृष्ठतश्चानु | कात्या. ७२८ | | देव. १३५० | प्रकाशांश्चाप्र |
| पृष्ठतस्तु श | मनुः १८१२ | " " | मनुः १३०० | बृह. १७५७; व्यासः १७६३ |
| पृष्ठतो वाऽनु | कात्या. ७२८ | पौत्रोऽथ पुत्रि | बृह. १३४८ | प्रकाशे क्रय |
| पृष्टे न मस्त | अपु. १९७४ | पौनर्भवं तु | कालि. १३७७ | *प्रकाशे वा क्र |
| पेत्वस्तेषामु | वेदाः १६०० | पौनर्भवं स्व | " " | *प्रकाशे वाऽप्र |
| *पैतामहं अ | बृह. १२२१ | पौनर्भवश्च | वसि. १२७३; | प्रकाशैरप्र |
| *पैतामहं कृ | " " | | विष्णुः १२७९, १३९०; | प्रकाशोपांशु |
| पैतामहं च | कात्या. १२३० | | भा. १२८४; यमः १३५१; | प्रकीर्णकं तु |
| पैतामहं तु | " ७०९ | | स्मृत्य. १३७३; ब्रह्म. १३७४ | *प्रकीर्णकं पु |
| *पैतामहं श्च | बृह. १२२२ | पौनर्भवस्तु | " १३७५ | *प्रकीर्णकः पु |
| पैतामहं स | " ७०७; | * " " | विष्णुः १३९० | प्रकीर्णकानि |
| | कात्या. ११७३ | *पौनर्भवस्त्वे | ब्रह्म. १३७५ | प्रकीर्णके पु |
| | बृह. १२२१ | पौनर्भवेन | बौधा. १०१९; | *प्रकीर्णकेपु |
| पैतामहं ह | " " | | मनुः १३०९ | प्रकुर्युः सर्वे |
| *पैतामहम | " " | पौनर्भवोऽप | नार. १३४६ | प्रकृतीनां प्र |
| *पैतामहे तु | विष्णुः ११७५ | *पौराणं कर्म | बृह. ८७२ | प्रकृतीनां ब |
| पैतामहे त्व | " " | पौराणां कर्म | " " | प्रकृत्युपवा |
| *पैतामहे पि | " " | पौराणिकस्त्व | कौ. ११८५ | प्रकृष्टं च कृ |
| पैतृकं क्रीत | वसि. ११२६ | पौराहित्यं प्रा | नार. ९४७ | प्रक्रयावक्र |
| पैतृकं तु पि | विष्णुः १२०५; | पौर्वपौरुषि | कौ. १६७६ | प्रक्रान्ते तु क |
| | मनुः १२१३ | प्रकर्मण्यकृ | " १८४८ | प्रक्रान्ते सप्त |
| *पैतृकं तु य | विष्णुः १२०५ | *प्रकाशं क्रय | नार. ७६३ | प्रक्षिप्य कुम्भे |
| *पैतृकं मातृ | " ६७९ | प्रकाशं च क्र | कात्या. ७६७ | *प्रक्षिप्य भाण्डे |
| पैतृकधनं | " ११२५ | प्रकाशं देव | नार. १९११ | प्रक्षेपं पण्य |
| *पैतृकमवि | " ६७९ | *प्रकाशं न क्र | कात्या. ७६७ | प्रक्षेपवृद्धि |
| पैतृकमृणं | " " | प्रकाशं न्न क्र | " ७६६ | प्रक्षेपानुरु |
| *पैतृकेण वि | व्यासः ११८० | प्रकाशं वाऽप्र | विष्णुः १६१२; | प्रक्ष्यामि त्वेव |
| पैतृके न वि | " " | मनुः १६२६; मत्स्य. १६५५ | कात्या. ८३७ | प्रगृह्य चिह्न |
| पैतृके विभ | पैठी. ११९४ | *प्रकाशं विक्र | नार. ७६३ | *प्रगृह्याऽऽच्छिन्न |
| पैतृको दण्ड | मनुः ८२१, | *प्रकाशं क्रय | नार. ७६३ | प्रचारश्च य |
| | १९२८ | *प्रकाशघात | बृह. १६४६ | प्रच्छन्नं वा प्र |
| पैतृष्वसेथा | भा. १९८६ | प्रकाशचिह्न | " ९५० | |
| *पौत्रिको दण्ड | मनुः ८२१ | *प्रकाशतः क्र | नार. ७६३ | |
| पैशुन्यर्हिंसा | शुनी. १११९ | *प्रकाशतस्क्र | " १७४६ | |
| पैशुन्ये न प्र | भा. १०२८ | " " | बृह. १७५८ | |
| पोषो हि त्वद | " १९८५ | *प्रकाशदेव | नार. १९११ | |
| पौश्वत्यात्त्राल | मनुः १०४८ | प्रक्त्रशमेत | मनुः १९०६ | |
| *पौश्वत्यात्त्राल | " " | प्रक्त्रशवच्च | " १६९३, | |
| *पौश्वत्यात्त्राल | " " | | | |

| | | |
|--------------------|---------|---------------------|
| प्रच्छन्नश्रव | कौ. | ८६१ |
| प्रच्छन्नादमे | " | १६७६ |
| *प्रच्छादितं च | कात्या. | १५७३ |
| प्रच्छादितं तु | " | " |
| प्रच्छाद्य दोष | बृह. | १७५८ |
| प्रच्छाद्याधिसृ. | भार. | ६६० |
| *प्रजनार्थं म | मनु. | १०५१ |
| प्रजनार्थं स्त्रि. | " | १०५५ |
| प्रजनार्थां म | " | १०५१ |
| प्रजयेनौ स्व | वेदा. | १००४ |
| प्रजां कृण्वथा | " | १००३ |
| प्रजां यस्ते जि | " | ९९१, १८३७ |
| प्रजां हिंसित्वा | " | १६००, १६०१ |
| प्रजाः सन्त्वपु | वसि. | १२७१ |
| प्रजाः इमा म | भा. | १०३३ |
| प्रजा दहति | नार. | १९३६ |
| प्रजानां दर्श | " | " |
| प्रजानां दोष | कौ. | १६१४ |
| प्रजानां विगु | नार. | १९३६ |
| प्रजापतिः प्र | भा. | १९८५ |
| प्रजापतिः सो | वेदा. | १००६ |
| प्रजापतिः स्त्रि | " | " |
| प्रजापतिः स्वां | " | ९९५ |
| प्रजापतिम | भा. | १०३१ |
| प्रजापतिरु | वेदा. | १८४१ |
| प्रजापतिर्म | " | ८५७ |
| प्रजापतिर्वै | " | १६४० |
| प्रजापतिर्हि | भा. | ८१८, १९७६; वेदा. |
| प्रजापतेः न | वृगौ. | १३७३ |
| प्रजापतेर | वेदा. | १६०१ |
| प्रजापरिपा | विष्णु. | १९२१ |
| प्रजाप्रवृत्तौ | नार. | ११००, ९७८; क्षिप्र. |
| प्रजाभावेऽस्तु | बृह. | १५१९ |
| प्रजाभिरभे | वेदा. | ९७१, १२५३; वसि. |
| प्रजाभ्यः पुष्टि | वेदा. | ११२०, ११५६ |
| प्रजाभ्योऽन्वय | विष्णु. | १६७१ |
| प्रज्ययते प्र | वेदा. | १००५ |
| प्रजायां रक्ष्य | मनु. | १०४६ |
| प्रजारामिनि | भा. | १२६५ |
| प्रजारणीस्तु | " | " |

| | | |
|--------------------|---------|-------------------|
| प्रजावती वी | वेदा. | १००२ |
| प्रजाः हि तस्याः | यमः | १११३ |
| *प्रजेप्सयाऽधि | मनु. | १०६५ |
| प्रजेप्सिताऽधि | " | " |
| प्रजेप्सिताऽभि | " | " |
| प्रज्ञाचक्षुर | भा. | १९८४ |
| प्रज्ञातः कूट | कौ. | १६८० |
| *प्रज्ञानशंस | कात्या. | १२२५ |
| प्रज्ञासामर्थ्य | बृह. | १७५७ |
| प्रणयादेव | वारा. | १०७५ |
| प्रणालीं गृह | कात्या. | ९५८ |
| प्रणालीमोक्षे | कौ. | ९२७ |
| प्रणीतमृषि | भा. | १२४४ |
| प्रणीतश्चाप्र | मनु. | १९३० |
| *प्रणयुरेते | याज्ञ. | ९४० |
| प्रतदेनो ह | वेदा. | १६०३ |
| प्रतापयुक्त | मनु. | १६३० |
| प्रतिकालं द | कात्या. | ६३१ |
| प्रतिकुर्याच्च | मनु. | १९३०, १९२९, १६३० |
| *प्रतिकुर्यात्स | " | " |
| *प्रतिकुर्याद्य | " | " |
| प्रतिकूलं च | नार. | ८७१ |
| प्रतिकूलः पि | भ्र. | १३९१ |
| प्रतिकूलकन | दक्षः | १११५ |
| प्रतिकुष्ठस्य | कौ. | १६२१ |
| प्रतिकुष्ठप्रति | " | ९२९ |
| प्रतिगृह्णति | नार. | ७४९ |
| प्रतिगृह्य च | " | १०९६ |
| प्रतिगृह्य क्त | याज्ञ. | १७४४ |
| *प्रतिगृह्य तु | नार. | १०९६, १०९७; वारा. |
| प्रतिग्रहः प्र | याज्ञ. | ७९७ |
| प्रतिग्रहवि | नार. | १९३३ |
| प्रतिग्रहाञ्जि | संप्र. | ११४२ |
| प्रतिग्रहाधि | नार. | ७३३ |
| *प्रतिग्रहाव | " | १९३३ |
| प्रतिग्रहीता | कालौ. | १३५६; गौत. |
| प्रतिग्रहेष | नार. | ११३१ |
| प्रतिग्रहो द्वि | " | ७८४ |
| *प्रतिग्राहिण | गौत. | १६५९ |
| प्रतिघातवि | स्कन्द. | १९६५ |
| प्रतितिष्ठ वि | वेदा. | १००२ |
| *प्रतिदत्तं स्त्रि | याज्ञ. | ६८३ |

| | | |
|-------------------|---------|------------|
| *प्रतिदानं त | नार. | ६४८ |
| " " " | " | ७४७ |
| प्रतिदाने व्य | कात्या. | ८९८ |
| *प्रतिदेयं त | नार. | ७४७ |
| प्रति द्वादश | गौत. | ८१५ |
| *प्रतिपन्नं ऋ | बृह. | ७२५ |
| प्रतिपन्नं रा | कौ. | ८६३ |
| *प्रतिपन्नं सा | याज्ञ. | ७२१ |
| प्रतिपन्नं स्त्रि | " | ६८३; वृहा. |
| प्रतिपन्नमृ | बृह. | ७२५ |
| प्रतिपन्नस्य | " | ७२७ |
| प्रतिपन्नेषु | कौ. | ८६३ |
| प्रतिपूज्य व | वारा. | १०७७ |
| प्रतिप्राशव्यौ | वेदा. | ९७३ |
| प्रतिबन्धः क्र | भार. | ९०० |
| प्रतिबन्धक | विष्णु. | ८९१ |
| *प्रतिभक्ताप्र | कात्या. | १२२४ |
| प्रतिभागं च | मनु. | १७०१ |
| *प्रतिभाव्यव | गौत. | ६७७ |
| प्रतिभुवा प्र | उत. | ६७६ |
| प्रतिभुः प्राण | बुव. | ६७७ |
| प्रतिभुर्दापि | याज्ञ. | ६६७ |
| प्रतिभुर्व्यव | बुव. | ६७७ |
| प्रतिभुस्तद | नार. | ६६९ |
| *प्रतिभुस्तु ऋ | " | " |
| *प्रतिभागं च | " | " |
| *प्रतिमातृलो | गौत. | १२३४ |
| *प्रतिमातृ बा | " | " |
| प्रतिमातृ वा | " | " |
| *प्रतिमातृ स्व | " | " |
| प्रतिमाराम | शंखः | १६१३ |
| प्रतिमासंक्र | अपु. | १६५४ |
| *प्रतिमासं तु | नार. | ६२४ |
| प्रतिमासं च | " | " |
| प्रतिमुक्तस्व | कौ. | ११८४ |
| प्रतिरूपक | नार. | १७४६ |
| प्रतिरूपस्य | कात्या. | १६४९ |
| प्रतिरोधक | कौ. | १४३० |
| प्रतिलाभेच्छ | बृह. | ८९४ |
| प्रतिलोमं च | वसि. | १०९२, १८४६ |
| प्रतिलोमद्वा | कौ. | ९२७ |
| प्रतिलोमप्र | कात्या. | १४०३, १९४२ |
| * " " " | " | १८३३ |

| | | |
|----------------------|---------------|-------|
| *प्रतिलोमाप | याज्ञ. | १७८४ |
| प्रतिलोमासु | विष्णुः | १३८९ |
| *प्रतिलोम्याप | याज्ञ. | १७८४ |
| *प्रतिलोम्ये व | " | १८७२ |
| प्रतिवेशगृ | कौ. | १०३८ |
| *प्रतिवेद्यानु | मनुः | १६२८; |
| | बृह. | १६४७ |
| प्रतिशीर्षप्र | नार. | ८३२ |
| प्रतिश्रुतं त | बृह. | ८०२ |
| *प्रतिश्रुतम | " | " |
| प्रतिश्रुतस्या | विष्णुः | ७९४ |
| *प्रतिश्रुताप्र | मत्स्य. | ८०८ |
| प्रतिश्रुतार्थ | हारी. | " |
| प्रतिश्रुतार्था | " | ७९४ |
| प्रतिश्रुत्य न | बृह. | ८५३; |
| | वृम. | ८५४ |
| प्रतिश्रुत्याप्य | गौत. | ७९३ |
| प्रतिश्रुत्याप्र | अनि. | ८०७; |
| मत्स्य. | अपु. | १९७३ |
| *प्रतिश्रुत्यार्थ | हारी. | ८०८ |
| प्रति श्रेणः स्था | वेदाः | ९६९ |
| प्रतिषिद्धभा | शंखः | १६७१ |
| प्रतिषिद्धम | याज्ञ. | ७७७ |
| प्रतिषिद्धयोः | कौ. | १०३६ |
| प्रतिषिद्धस्य | " | ९२७ |
| प्रतिषिद्धा पि | मनुः | १०५८ |
| *प्रतिषिद्धापि | " | " |
| प्रतिषिद्धार्या | कौ. | १०३८ |
| प्रतिषिद्धा ह्री | " | १०३६ |
| प्रतिषिद्धे प्र | विष्णुः | १८४६ |
| प्रतिषिद्धे वा | कौ. | १०३८ |
| प्रतिषेधे त | याज्ञ. | १८७२ |
| प्रतिषेधे पु | गौत. | १८४१ |
| प्रतिषेधेऽर्ध | कौ. | १०३८ |
| प्रतिसंवत्स | नार. | ९१५, |
| | १४०२; विष्णुः | १४२८ |
| प्रतिहन्यान्न | नार. | १९११ |
| प्रतीची शाखा+ | वेदाः | ९०३ |
| प्रतीची विश्वा | " | ९९७ |
| प्रतीची सोम | " | " |
| प्रतोयात्स्वगृ | नार. | ८२६ |
| प्रत्यक्ष कार | स्कन्द. | १९६६ |
| प्रत्यक्षं क्षेत्रि | मनुः | १०७४ |
| प्रत्यक्षं भिक्ष | भा. | १९८३ |
| *प्रत्यक्षः क्षेत्रि | मनुः | १०७४ |
| *प्रत्यक्षक्षेत्रि | " | " |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| प्रत्यक्षचार | नार. | ९१७ |
| प्रत्यब्दं सर्व | बृह. | १६४८ |
| प्रत्यभिलेख्य | वासि. | ९२५ |
| प्रत्ययाधिरु | स्मृत्य | ६६१ |
| प्रत्ययाधौ तु | भार. | ६६० |
| *प्रत्यर्थं लोक | मनुः | १०५२ |
| प्रत्यर्थं गृह्य | बृह. | ६२९ |
| प्रत्यर्थं लोक | मनुः | १०५२ |
| *प्रत्यासन्नत | बृह. | १५१८ |
| प्रत्याहर्तुम | व्यासः | १७६५, |
| | १९६२ | |
| प्रत्युवाच व | भा. | १२८५ |
| प्रत्येकं तु ज | नार. | ९४५ |
| प्रत्येकं दण्ड | बृह. | १८९१ |
| प्रत्येकं विन्नी | विष्णुः | १६११, |
| | १६६९ | |
| *प्रत्येकस्य वि | " | १६११, |
| | १६६९ | |
| प्र त्वा पद्ये | वेदाः | १००६ |
| प्र त्वा मुञ्चामि | " | ९८३, |
| | १००१ | |
| प्रथमं दण्ड | बृह. | १८३० |
| प्रथमं दर्श | नार. | १९३६ |
| प्रथमं संस्थि | भा. | १०२६ |
| प्रथमं साह | याज्ञ. | १८२०, |
| | १९३३ | |
| प्रथमनेज | कौ. | १६७४ |
| प्रथमा धर्म | दक्षः | १११४ |
| प्रथमे प्रन्थि | नार. | १७४८; |
| | बृह. | १७६० |
| *प्रथमोत्तम | कात्या. | ९२० |
| प्रथिष्ट यस्य | वेदाः | ९८१, |
| | १८३६ | |
| प्रदक्षिणं च | नार. | १९४० |
| प्रदत्तान्यस्य | बृह. | ९५२ |
| प्रदद्यात्सेव | " | १५१९ |
| प्रदद्यात्ताम्र | वृगौ. | १३७३ |
| *प्रदद्यात्त्वेव | बृह. | १५१९ |
| प्रदद्यादर्ध | वृगौ. | १३७३ |
| *प्रदद्याद्वत्स | बृह. | १५१९ |
| प्रदातव्यं य | " | ७२७ |
| *प्रदानं चेच्छ | " | १२२२ |
| प्रदानं प्राण | गौत. | १०११ |
| प्रदानं स्वेच्छ | बृह. | १२२२ |
| प्रदाने विक्र | विष्णुः | ६३८; |
| | बृह. | ६५४ |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| प्रदाप्यः स्वामि | व्यासः | १७६५ |
| *प्रदाप्य स्वामि | " | " |
| प्रदाप्यापह | बृह. | १७६० |
| *प्रदाप्योऽपह | " | १७६१ |
| प्रदाय कन्यां | अपु | १९७५ |
| *प्रदाय गच्छे | कात्या. | ११०९ |
| प्रदाय शुल्कं | शंखः | १०२४; |
| | कात्या. | ११०९ |
| प्रदायोपनि | भा. | ७३५ |
| प्रदिशेद्भूमि | मनुः | ९३९ |
| प्रदीयते त | भार. | १९७३ |
| प्रदुष्टत्यक्त | कात्या. | १८८८ |
| * " " " | नार. | १८८१ |
| प्रदेष्टारस्त्र | कौ. | १६७३ |
| प्रनष्टमस्वा | गौत. | १९४७ |
| प्रनष्टसेतु | कौ. | ९२९ |
| *प्रनष्टस्वामि | गौत. | १९४७ |
| " " " | मनुः | १९५३; |
| | अपु. | १९६२ |
| *प्रनष्टाधिग | मनुः | १९५३ |
| " " " | " | १९५४; |
| | याज्ञ. | १९५८ |
| प्रपन्नं साध | " | ७२१ |
| प्रपितामहः | बौधा. | १४६७ |
| प्र पुनानाय | वेदाः | ८४१ |
| प्रप्र तान्दस्यु | " | १९७१ |
| प्र बुध्यस्व सु | " | १००४ |
| प्र बोधाय पु | " | ९६६ |
| प्रभाते कारि | स्कन्द. | १९६७ |
| प्रभुणा विनि | बृह. | ८५३ |
| प्रभुणा वास | कात्या. | १८८८ |
| *प्रभृत्याद्यान्न | मार्क. | १५३० |
| प्रभृत्युक्तान्न | " | " |
| प्रमदाश्च य | भा. | १०३३ |
| प्रमदे कुमा | वेदाः | १९८० |
| प्रमाणं सभि | कात्या. | १९१५ |
| प्रमाणदृष्टो | भा. | १०२७, |
| | १२२४ | |
| प्रमाणरहि | बृह. | ९५२ |
| प्रमाणहीन | " | ७६५ |
| *प्रमाणहीने | " | " |
| प्रमाणेन तु | कात्या. | १६४९ |
| प्रसादमद्र | कौ. | १७७२, |
| | १७९८ | |
| प्रसादमृत | याज्ञ. | ९१२ |
| *प्रसादहृत् | " | " |

| | | |
|-----------------|---------|-------|
| प्रमादादर | आप. | ९०४ |
| प्रमादाद्धनि | नार. | ६४९ |
| प्रमादाद्यैमे | अपु. | १७९२ |
| प्रमादाचाशि | नार. | ७८१; |
| | वृम. | ८५४ |
| प्रमादोन्माद | शुनी. | १११९ |
| प्रमापणे प्रा | कात्या. | १८३४ |
| प्रमापयेत्प्रा | मनु. | १८०९ |
| *प्रमीतपितृ | याज्ञ. | १२०० |
| प्रमीतसाक्षि | बृह. | ६५४ |
| प्रमीतस्य पि | " | १२५२ |
| प्रमुञ्चतश्च | कौ. | ९०६ |
| प्रयच्छेन्नभि | वसि. | १०२१; |
| | मनु. | १०४२ |
| प्रयप्स्यन्निव | वेदा. | १००६ |
| प्रयुक्तं सप्त | बृह. | ६३१ |
| प्रयुक्तं साध | मनु. | ७१७; |
| | नार. | ७२३ |
| प्रयुक्तमर्थ | विष्णु. | ७१६ |
| प्रयुज्यते वि | मनु. | १०५९ |
| प्रयोगं कुर्व | बृह. | ७८४; |
| | शुनी. | ७९० |
| प्रयोगः कर्म | मनु. | ११२६ |
| प्रयोगः पूर्व | बृह. | ७८६ |
| प्रयोगे यत्र | कात्या. | ६३१ |
| *प्रयोगो यत्र | " | " |
| प्रयोजकाऽसं | कौ. | ६३८ |
| प्रयोजकेऽस | याज्ञ. | ६४५; |
| | वृहा. | ७३१ |
| प्रयोजनं ज | भा. | ८१८ |
| प्रयोजनम | भार. | ८०७ |
| प्रयोज्यं न वि | कात्या. | १२२८ |
| *प्ररोहंशाखि | याज्ञ. | १८२२ |
| प्ररोहिशाखि | " | " |
| *प्रलपन्त्या र | बृह. | १८८५ |
| प्रलपन्त्या वा | " | " |
| *प्रलये यत्तु | " | " |
| प्रलोभनं चा | व्यासः | १८८९ |
| *प्रलोभनं वा | " | " |
| प्रवर्तमान | मनुः | १७०८, |
| | | १९३० |
| प्रवासं यदि | भा. | १०२८ |
| प्रवासने च | कौ. | १६२१ |
| प्रवासयत | " | " |
| प्रवासयेत्स्र | बृहा. | १६५३ |
| प्रवास्या निष्क | कौ. | १६८० |

| | | |
|------------------|---------|-------|
| प्रविशेत् प्र | मत्स्य. | १८९२ |
| *प्रविशेद्भूमि | मनुः | ९३९ |
| प्रविश्य राज्ञः | भा. | ८१८ |
| प्रविश्य सर्वे | मनुः | १९३० |
| *प्रविश्योद्धारि | " | १२४६ |
| प्रविष्टे सोद | बृह. | ६५३ |
| प्र वीराय प्र | वेदाः | ९०२ |
| प्रवृत्तोश्चत | " | ८१४ |
| प्रवृत्तमपि | नार. | ८७१ |
| प्रव्रजिताग | कौ. | १८५० |
| प्रव्रजिते ज्ये | उश. | १९७८ |
| प्रव्रजिते तु | गौत. | १०१३ |
| प्रव्रजिष्यन्वा | वेदाः | १४०५, |
| | | १४२४ |
| प्रव्रज्यागति | व्यापा. | १११७ |
| *प्रव्रज्यापारि | नार. | ८३१ |
| प्रव्रज्याभिमु | कौ. | ७३७ |
| प्रव्रज्यावसि | याज्ञ. | ८२४; |
| | कात्या. | १४०३ |
| २ " " + | " | ८३७ |
| प्रव्रज्यासु वृ | कौ. | १९२३ |
| प्रव्रज्योपनि | नार. | ८३१ |
| *प्रशाधित्वा तु | मनुः | १७०२ |
| Xप्रशास्ति चोढा | नि. | १२५५ |
| प्रशिष्यात् नृ | यमः | १९४३ |
| प्रष्टव्याः संनि | बृह. | ८९६ |
| प्रष्टव्याः सीम | मनुः | ९३६ |
| प्रष्टव्या योषि | याज्ञ. | १६४० |
| प्रष्टव्या राज | बृह. | १६४७ |
| प्रसङ्गविनि | कात्या. | ७६७ |
| प्रसभस्त्रीपु | कौ. | १६१८ |
| प्रसमीक्ष्यात्म | नार. | १९३५ |
| प्रसह्य कन्या | कौ. | १८४९ |
| *प्रसह्य ग्राहि | याज्ञ. | १७३७ |
| *प्रसह्य घात | " | १७३६ |
| प्रसह्य घाति | " | " |
| प्रसह्यतस्क्र | विष्णुः | १६०९, |
| | | १६७१ |
| प्रसह्य दाप | कात्या. | १९१४ |
| प्रसह्य दास्य | याज्ञ. | १८७८ |
| *प्रसह्य दास्वा | " | " |
| प्रसह्य दिवा+ | कौ. | १६८९ |
| *प्रसह्य वेद्या | याज्ञ. | १८७८ |
| " " | व्यासः | १८९० |
| प्रसह्य स वि | बृह. | ७२७ |
| प्रसह्य हर | नार. | १०९८ |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| प्रसह्यादाना | कौ. | १०३४ |
| प्रसह्यादाने | " | ९२९ |
| प्रसह्यापह | " | ८६३ |
| प्रसादविक | कात्या. | ८३७ |
| प्रसादात्स्वामि | नार. | ८३० |
| *प्रसादाद्धनि | " | " |
| प्रसादार्थं म | भा. | १२८५ |
| प्रसाधनं च | " | १०२८ |
| प्रसाधनं नृ | बृह. | ११०७ |
| *प्रसाधिते क्र | कात्या. | ७६७ |
| प्रसूतिरक्ष | गौत. | १९१६ |
| प्रस्थानविघ्न | याज्ञ. | ८४६ |
| प्रस्थे हिमव | भा. | १२८७ |
| प्रस्वापनम | कौ. | १६८१ |
| प्रस्वापनान्त | " | " |
| प्रहरणाव | " | १६१९ |
| प्रहरन्ते क्र | बृह. | १९१३ |
| प्रहवणेषु | कौ. | ८६३ |
| प्रहारेण ग | " | १६१८ |
| प्रहारेण तु | उश. | १६५२ |
| प्रहारोद्यमे | शंखः | १७९८ |
| प्रहीणद्रव्या | वसि. | १९४९ |
| प्रहृष्टमान | दक्षः | १११५ |
| प्राकारं भेद | कात्या. | १६४९ |
| प्राकारस्य च | मनुः | १६३०, |
| | | १९३० |
| *प्राकारस्यानु | " | १६३० |
| *प्राकारस्याव | " | " |
| *प्राकाराणां च | " | " |
| प्राक्तनस्य घ | कात्या. | ८७६ |
| *प्राक्तनस्याध | " | " |
| *प्राक्प्रतिपन्न | विष्णुः | ६७९ |
| प्राग्दर्शना | बौधा. | १९२० |
| *प्रागुच्चार्यस्य | कृष्णा. | १९४२ |
| प्रागुद्कृप्रव | मार्क. | ९६३ |
| प्राग्भूमथ | ब्रह्म. | १३७४ |
| प्राग्दृष्टदोषा | स्कन्द. | १९६५ |
| प्राग्भस्वसः अ | गौत. | १०१२ |
| *प्राग्भिनशना | बौधा. | १९२० |
| प्राङ्न्यायवादे | व्यासः | ७३० |
| प्राङ्मुखो निश्च | स्कन्द. | १९६६ |
| प्राचीनपक्षा | वेदाः | ९९८ |
| प्राजकश्चेद् | मनुः | १८०९ |
| प्राजापत्ये सु | वसि. | १०२२ |
| प्राज्ञस्य पुरु | भा. | १०३२ |
| प्राज्ञान् शूरा | " | ८६१ |

| | | | | | | | | |
|--------------------|------------|-------|---------------------|----------|----------|---------------------|---------|-------|
| प्राणद्रव्याप | कात्या. | १६५० | *प्राप्तं शिल्पंश्च | कात्या. | १४५५ | प्राहेदं वच | कालि. | १३७७ |
| प्राणमृत्यु म | मनुः | १८१० | प्राप्तं शिल्पैस्तु | " | " | प्रियं ज्ञातिं च | वेदाः | १००६, |
| *प्राणवत्सु म | " | " | *प्राप्तं सकाशा | " | १४५३ | | १८४० | |
| प्राणसंशय | कात्या. | ८०५ | प्राप्तः स्वगुण | भा. | १९८४ | प्रियाः स्त्रीणां य | भा. | १०३१ |
| प्राणसंशये | गौत. | १६०४ | प्राप्तकाले कृ | कात्या. | ७५५ | प्रिया चिद्यस्य | वेदाः | ८४१ |
| प्राणात्यये स | भा. | १०३१, | प्राप्तनिमित्ते | आप. | १६६५ | प्रियैव भव | " | १००६ |
| | | १९६४ | प्राप्तफलां प्र | कौ. | १८४८ | प्रियोस्त्रियस्य | " | ९८० |
| प्राणानपि प | " | १९७८ | प्राप्तमेतैस्तु | कात्या. | ८०६ | प्रणीताश्वान् | " | ९२३ |
| *प्राणापरोधि | नार. | १६४३ | प्राप्तव्यवहा | कौ. | ११९९, | प्रीतिं भोगं च | मनुः | १७०१ |
| प्राणाबाधिकं | कौ. | १८०० | | | १९५० | प्रीतिदत्तं तु | नार. | ६२७; |
| प्राणाबाधिके | " | १७९९ | प्राप्ता देशाद् | नार. | ७०३, | | अनि. | १४६३ |
| प्राणाभिहन्ता | " | १०३४ | | | ११०३ | * " " " | कात्या. | ६३३ |
| प्राणिभिः क्रिय | मनुः | १९०५ | *प्राप्तापराध | मनुः | १८१२ | प्रीतिदत्तं न | " | " |
| *प्राणिहंत्यु म | " | १८१० | प्राप्तापराधा | " | " ; | *प्रीतिदत्तं हि | " | १४५३ |
| प्राणैर्वा एव | वेदाः | ७९२ | | | यमः १८३५ | *प्रीतिभोगं च | मनुः | १७०१ |
| प्राणोपरोधि | नार. | १६४३ | प्राप्तार्थश्चोत्त | विष्णुः | ७१६ | *प्रतिथर्थं लोक | " | १०५२ |
| प्रातरुत्थाय | भा. | १०२८ | *प्राप्ते काले कृ | कात्या. | ७५५ | प्रत्या तु सकृ | नार. | १९१३ |
| *प्रातिभाष्यं च | बृह. | ६७२; | प्राप्ते नृपति | याज्ञ. | १९०९ | *प्रत्या दत्तं च | कात्या. | १४५३ |
| | कात्या. | ६७५ | *प्राप्ते भागे च | " | " | प्रीत्या दत्तं तुं | " | " |
| प्रातिभाष्यं तु | बृह. | ६७२; | प्राप्नुयात्तद् | भा. | १०३० | प्रीत्या निसृष्ट | " | १४५६ |
| | कात्या. | ६७५ | प्राप्नुयात्साह | कात्या. | ६५५, | *प्रत्याऽनुसकृ | नार. | १९१३ |
| प्रातिभाष्यं द | कौ. | ६८०; | ७२९, ८३५, ८५४, १६४९ | यमः १११३ | | *प्रत्या प्रदत्तं | कात्या. | १४५३ |
| | बृह. | ७०८ | प्राप्नुयात्स्वर्ग | वार. | १०७७ | *प्रत्याऽभिसृष्ट | " | १४५६ |
| प्रातिभाष्यं भु | व्यासः | ६३४ | प्राप्नुवन्त्यय | बृह. | १५५८ | *प्रत्या विसृष्ट | " | " |
| प्रातिभाष्यं वृ | मनुः | ६६३; | प्राप्नोति तस्य | कात्या. | १२२८ | *प्रत्या संसृष्ट | " | " |
| | वसि. | ६७८ | *प्राप्तोद्यं न वि | कौ. | १९०४ | प्रत्योपनीता | भा. | ८१९ |
| प्रातिभाष्यम् | वृहा. | ६७७; | प्रायशो हि कि | वसि. | १२७२ | प्रेक्षायामनं | कौ. | ८६१ |
| | याज्ञ. | ७२१ | *प्रायश्चित्तं चा | मनुः | १६२७ | प्रेक्षासमाजं | मनुः | १०५८ |
| प्रातिभाष्यं व | गौत. | ६७७ | प्रायश्चित्तं तु | भा. | १०३० | *प्रेक्षासमाजे | " | " |
| प्रातिभाष्यं गं | बृह. | ६७२; | प्रायश्चित्तं य | वसि. | १०२२, | *प्रेक्षासमाजौ | " | " |
| | कात्या. | ६७५ | प्रायश्चित्तं वा | १२७२ | | *प्रेक्ष्यश्च तम् | नार. | ७२४ |
| प्रातिलोम्यप्र | " | १८३३ | प्रायश्चित्तवि | नार. | १८८४ | प्रेतं व्यसन | कौ. | ७३५ |
| प्रातिलोम्यप्रपं | याज्ञ. | १७८४ | प्रायश्चित्तोय | भा. | १२४३ | प्रेतपत्नी ष | वसि. | १०२२ |
| प्रातिलोम्यस्त | बृह. | १८३२ | प्रायश्चित्ते तु | मनुः | १३९३ | *प्रेतप्रजां प | बौधा. | १०३० |
| *प्रातिलोम्येऽध | याज्ञ. | १८७२ | *प्रायेण धनि | बृह. | ७२५ | प्रेतत्रिण्मुत्रो | कौ. | ८१७ |
| प्रातिलोम्येन | नार. | ११०४; | प्रायेण वा ऋ | " | " | प्रेतव्याधिव्य | " | १०३८ |
| | विष्णुः | १७७० | प्रायेण हि न | वार. | १३२९ | प्रेतस्य पुत्राः | काष्णा. | ६७५ |
| | भा. | ११०५ | *प्रायोज्यं न वि | कात्या. | १२२८ | प्रेतानां योज | पैठी. | १४६३ |
| प्रातिलोम्ये व | याज्ञ. | १८७२ | प्रायो दासीसु | " | ८३६ | प्रेतायां तु पु | " | " |
| प्रातिवेशिक | कौ. | १०३८ | प्रार्थनादभि | संव. | १८९१ | प्रेतायाः पुत्रि | शंख. | १४२९ |
| प्रातिवेश्या | विष्णुः | १६०९ | *प्रार्थनेऽप्याभि | " | " | *प्रेतेषु तु न | नार. | ६९७ |
| प्रातिवेश्यातुं | मनुः | १६३८, | प्रार्थयन्ति ज | भा. | १९७७ | प्रेतेषु न तु | " | " |
| | १९२७; बृह. | १६४७ | प्रार्थयमाना | कौ. | ९०६ | *प्रेतो मुञ्चतु | वेदाः | ९८३ |
| *प्रादिश्रीदुर्गमि | मनुः | ९३९ | प्रावेपा मा बृ | वेदाः | १८९३ | प्रेतो मुञ्चामि | " | " |
| प्रादिश्रीदुर्गमि | वेदाः | १०७० | प्रासादाद्वैर्वि | वार. | १७७६ | प्रेत्यभाविष्यपि | वार. | १७७६ |
| प्रादिश्रीदुर्गमि | हारी. | ६६६ | | | | | | |

| | |
|--------------------|--------------|
| *प्रेत्येह च सु | मनुः १०५१ |
| प्रेत्येह च सु | " " |
| प्रेषणं गन्ध | बृह. १८८५ |
| " " " + | व्यासः १८८९ |
| *प्रेषश्चेन्मार्गि | याज्ञ. ७४५ |
| प्रेषितस्याम | विष्णुः १६१० |
| *प्रेष्यासु चैक | मनुः १८५५ |
| प्रेहामृतस्य | वेदाः ६०५ |
| प्रेष्यासु चैक | मनुः १८५५ |
| प्रोक्तं तु छिन्न | नार. ९१९ |
| *प्रोक्तः स द्विगु | " ९१७ |
| प्रोक्तं चैव | भा. १२४४ |
| प्रोक्षणीयानि | शुनी. १११९ |
| प्रोत्साहकः स | पैठी. १६५३ |
| प्रोषितपातं | कौ. १८४९ |
| प्रोषितपत्नी | वसि. १०२२ |
| प्रोषितस्य तु | कात्या. १२०१ |
| *प्रोषितस्य मृ | " ७१२ |
| प्रोषितस्य वा | कौ. १२००, |
| | १९५० |
| *प्रोषितस्य सु | कात्या. ७१२ |
| *प्रोषितस्य हि | " १२०१ |
| *प्रोषितस्याग | " ७१२ |
| प्रोषितस्याम | " " |
| प्रोषितस्वामि | " १८८८ |
| प्रोषिते तत्सु | " ७१२ |
| प्रोषिते त्ववि | मनुः १०६० |
| प्रोषितो धर्म | " १०६१ |
| प्रोष्ठिशया व | वेदाः ९७३ |
| प्रोष्ठिशयास्त | " ९९६ |
| प्रोष्ठ्य प्रत्याग | शंखः ७७१ |
| *फलं चान्यकृ | नार. १७४५ |
| फलं त्वनभि | मनुः १०७४ |
| फलं पुष्पं च | कात्या. ९६० |
| फलपुष्पं च | नार. ९४६ |
| *फलपुष्पोप | वसि. १७९५ |
| फलभाग् यस्य | नार. ११०२ |
| *फलभाङ्गिनिय | मनुः १०७४ |
| *फलभुक्तस्य | नार. ११०२ |
| फलभुक् प्र | लहा. १९७५ |
| *फलभोगदु | विष्णुः १७९८ |
| फलभोग्यं पू | बृह. ६५२; |
| | कात्या. ६५८ |
| फलमूलाश | वारा. १०७३ |
| फलमूलोद | नार. १६४२ |
| फलहरित | शौत. १६५७ |

| | |
|-----------------|--------------|
| फलहेतोरु | नार. ७८० |
| *फलानां चैव | मनुः १७१८ |
| *फलानि चाप | शौत. १६५७ |
| *फलहितम | याज्ञ. ९४३ |
| फलितं पुष्पि | बृहा. १६५३ |
| फलेषु हरि | यमः १७६६ |
| फलोत्साहवि | जैमि. १४२४ |
| *फलोपगद्दु | विष्णुः १७९८ |
| *फलोपगम | " १६०९, |
| | १७९८ |
| फलोपभोग | " " |
| *फलोपभोग्य | " " |
| फल्गुद्रव्यक | कौ. १६८८ |
| फलं च तन्दु | स्कन्द. १९६५ |
| फालशुद्धिं प्र | " १९६७ |
| फालाहतम | याज्ञ. ९४३ |
| बजस्तान्त्सह | वेदाः १८४० |
| बतो बतासि | " ९७८, |
| | १८३६ |
| *बध्नीयादथ | कात्या. १६४९ |
| बध्नीयादम्भ | " " |
| बध्वा स्वगृह | बृह. ७२५ |
| *बध्वाऽऽत्मगृह | " " |
| *बन्दिप्रहांस्त | याज्ञ. १७३६, |
| | १७३७ |
| बन्दिप्रहांस्त | " १७३६ |
| बन्दिमागध | कौ. ८०८ |
| *बन्दिप्रहांस्त | याज्ञ. १७३६ |
| बन्धं च दद्या | कौ. १०३५ |
| बन्धं यथा स्था | हारी. ६३५ |
| बन्धकस्य ध | बृह. ६५२; |
| | कात्या. ६५८ |
| बन्धकीपोष | कौ. ८६३ |
| *बन्धके द्विगु | बृह. ३५२ |
| बन्धनं ताड | मासो. १९७० |
| *बन्धनागारा+ | कौ. १६९० |
| बन्धनानि च | मनुः १९३० |
| *बन्धभावे तु | प्रजा. ७१५ |
| बन्धहस्तस्य | बृह. ६५१ |
| बन्धाभिविष | " १६४७ |
| *बन्धुदत्तं च | कात्या. १४५९ |
| बन्धुदत्तं तः | याज्ञ. १४४४ |
| बन्धुदत्तं तु | कात्या. १४५९ |
| बन्धुनापह | " १५७४ |
| बन्धुनोत्सष्टो | कौ. १२८८ |
| बन्धुभिः सा, नि | नार. ११०० |

| | |
|-------------------|--------------|
| *बन्धुभिः साऽभि | नार. ११०० |
| बन्धुभिश्च त्त्रि | याज्ञ. १०८३ |
| बन्धुरदण्डवः | कौ. १०३८ |
| *बन्धुवर्गह | कात्या. १५७४ |
| बन्धुस्तेषां तु | कौ. १६१३ |
| बन्धुनयेन | शौन. १३६३ |
| बन्धुनामप्य | कस्या. १४०३ |
| *बन्धुनामभा | " १४५९ |
| बन्धुनामवि | " १५७४ |
| बन्धुनाहूय | वृगौ. १३७२ |
| बन्धुभावे तु | प्रजा. ७१५ |
| *बन्धुभावेऽथ | " " |
| *बन्धुभावेऽपि | " " |
| बभूवोद्दाल | भा. १०२७, |
| | १२८४ |
| बर्हिः कुशम | शौन. १३६३ |
| बलं संजाय | मनुः १९३१ |
| बलाविशेषे | आप. १९१८ |
| बलाच्चेत्प्रह | बौधा. १०९३ |
| | वसि. १०२१ |
| बलात्कारयि | कात्या. ८५३ |
| बलात्कारेण | नार. ७६४ |
| बलात् परि | मत्स्य. १८९२ |
| बलात्संदूष | " " |
| बलादकामं | कात्या. ६५५ |
| *बलादपह | वसि. १०२१ |
| बलादगृहीतो | बृह. १३५५ |
| बलाद्दासकृ | याज्ञ. ८२३ |
| बलाद्दृताया | नार. १९७६ |
| बलाद्भुक्त स | यमः ६६० |
| बलाद्दासायि | नार. ८२७ |
| *बलानुबन्ध | बृह. १५८१ |
| बलायानुच | वेदाः ८१२ |
| बलिः स तस्य | नार. १९४५ |
| बलिहोमस्व | कौ. १९२४ |
| बलेः कुम्भीन | भा. १०३२ |
| *बलोपाधिकृ | बृह. १८८५ |
| बलोपाधिकृ | " " |
| *बलोपाधिह | " " |
| *बहवः स्युः प्र | नार. ६७० |
| बहवः स्युर्ये | याज्ञ. ६६७ |
| बहवश्चेत्तु | शंखः १२८३; |
| | मनुः १३२१ |
| बहवश्चेत्प्र | विष्णुः ६६२; |
| | नार. ६७० |
| *बहवस्तु य | याज्ञ. ६६७ |

| | | | | | | | | |
|-----------------|---------|--------------|-------------------|---------|--------------|-------------------|-----------|------|
| *बहवो जात | बृह. | १५१८ | बाधां कुर्वथं | बृह. | ८७४ | बीजस्य चैव | मनुः | १०७० |
| बहवो ज्ञात | " | " | बाधाकाले तु | " | ८७२ | *बीजस्यैव च | " | " |
| *बहवो यय | याज्ञ. | १८७८ | बान्धवाद्म | नार. | ११२९ | *बीजाच्चैव हि | " | " |
| बहिरालोक | भा. | १०२९ | बाल आपोड | " | ६९५ | *बीजापचार | नार. | ९४८ |
| बहिर्गामस्थ | कौ. | १८४९ | *बालदायग | मनुः | १९५१ | बीजायोवाह्य | याज्ञ. | ८९२ |
| बहिवर्णेषु | देव. | ११९४ | *बालदायाग | " | " | बीजिनश्च | गौत. | १०११ |
| बहुगुणही | कौ. | ८७८ | बालदायादि | " | " | बीजिने तु तृ | प्रजा. | ९६१ |
| बहुदक्षिणे | वेदाः | १९८१ | | अपु. | १९६२ | *बुद्धिपूर्वं च | आप. | १८४३ |
| *बहुधाऽन्नमृ | बृह. | ८३५ | *बालधार्त्रीं म | कात्या. | ८३८ | बुद्धिपूर्वं तु | " | " |
| *बहुधाऽर्थकृ | " | " | *बालधार्त्रीं स्व | " | " | बुभुक्षितस्य | याज्ञ. | १७४४ |
| बहुधाऽर्थमृ | " | " | बालधार्त्रीम | " | " | *बृहत्त्वे द्विगु | बृह. | १७९० |
| *बहुना यय | याज्ञ. | १८७८ | *बालपुत्रादि | " | ७११ | बृहन्मित्रस्य | वेदाः | ९७६, |
| बहुपत्नीकृ | अनि. | १११८ | बालपुत्राधि | " | " | | १८३६ | |
| बहुपशोर्ही | गौत. | १६६० | बालपुत्रासु | अपु. | १९६२ | बृहस्पतिः प्र | " | १००१ |
| बहुपुत्रेण | शौन. | १३७० | बालपुत्रे मृ | कात्या. | १२०१ | बृहस्पतिना+ | " | १००३ |
| बहुपुरुष | कौ. | १४३० | *बालप्रमूढा | नार. | ८०० | बृहस्पतिप्र | भा. | १०३३ |
| बहुभार्यासु | भा. | १०३० | बालमूढास्व | " | " | बृहस्पतिर्म | वेदाः | १००१ |
| बहुभिः साधु | विष्णुः | ८५९ | बालया वा यु | मनुः | १०५८ | बृहस्पतिस | कौ. | ७७२ |
| बहुभिर्भुक्त | व्यासः | १८८९ | बालवद्वृद्ध | भा. | १०२९ | बेकनाटाः ख | नि. | १९७१ |
| बहुमूर्त्यं य | बृह. | ६५१ | बालवृद्धातु | मनुः | १७०१ | *बोद्धव्यं तद् | नार. | १७५४ |
| *बहुमूर्त्यो य | " | " | बालसंवधे | बृह. | ११०६ | ब्रह्म क्षत्रं च | मनुः | १९३१ |
| बहुरक्ष्यस्य | कात्या. | १५२४ | *बालस्त्रीब्राह्म | मनुः | १६३२ | ब्रह्मक्षत्रिय | बृह. | १२५१ |
| बहुषु प्रत्या | कौ. | १०४० | बालाधिष्ठित | कौ. | १६२१ | ब्रह्मगवी प | वेदाः | १६०० |
| बहूनां कन्या | " | १८४९ | बालानपि च | भा. | १९८६ | ब्रह्मधर्मं च सु | बृहा. | १६५३ |
| बहूनां तु गृ | कात्या. | ९५७ | बालानाथस्त्री | विष्णुः | १९५० | ब्रह्मधने ये स्मृ | स्कन्द. | १९६६ |
| बहूनां भव | बृह. | १७६० | बालामप्राप्त | भा. | १९७१ | ब्रह्मधने वा कृ | व्यासः | ११११ |
| *बहूनां भुञ्ज | मत्स्य. | ८५५ | बालाश्वर्माप | नार. | १९७६ | *ब्रह्मध्नो वा कृ | अङ्गि. | १११६ |
| बहूनां भ्रातृ | भा. | १९८४ | बालिकाक्षत | आदि. | १३८४ | *ब्रह्मध्नो वाऽथ | " | " |
| बहूनां यय | याज्ञ. | १८७८ | बालिशजाती | कौ. | ७३७, | ब्रह्मचर्येण | वेदाः | १००० |
| बहूनां व्रज | मत्स्य. | ८५५ | | १९०४ | ब्रह्मचारिवा | विष्णुः | १६११, | |
| बहूनां संम | बृह. | ७८५ | बाले यातारि | " | १६२१ | | १९४४ | |
| बहूनामेक | हारी. | १२६४; | बाल्ययौवन | विष्णुः | १०२३ | ब्रह्मचारी च | नार. | ८२६; |
| | वासि. | १२७२ | बाल्ये पितुर्व | मनुः | १०५९ | वेदाः | ८४१, १८३९ | |
| * " " | मनुः | १२९०, | *बाल्ये पितृव | " | " | ब्रह्मचारी व्र | देवी. | १९४३ |
| | | १२९३ | बाहुग्रीवाने | याज्ञ. | १७८१ | ब्रह्मचार्येव | याज्ञ. | १०७९ |
| बहूनामेका | कौ. | १८५० | बाहुभ्यां तर | वासि. | १९४४ | ब्रह्म चैव ध | मनुः | १९३० |
| बह्नाशित्वं दि | भा. | १०२९ | बाह्याश्च मैत्रीं | भा. | ८६१ | ब्रह्मणस्त्वं सु | स्कन्द. | १९६६ |
| *बहूनां द्वाद | वासि. | १२७२ | बाह्येषु तु प्र | कौ. | १६८९ | ब्रह्मणस्पते | वेदाः | १००० |
| बहूनामेक | हारी. | १२६४; | *विभृयात्वेक | नार. | ११९८ | ब्रह्मणाग्निः सं | " | ८५७ |
| | वासि. | १२७२; बृह. | विभृयादानृ | मनुः | ८२०, | *ब्रह्मदायं ग | बृम. | १२५२ |
| | बृप. | १३६२; संप्र. | | १९२७ | ब्रह्मदायाग | " | " | |
| | मनुः | १२४५ | विभृयाद् वे | नार. | ११९८ | ब्रह्मवादिनो | वेदाः | ११९५ |
| बहूषु चैक | बृह. | १२२३ | *विभृयाद् वै | " | " | ब्रह्मसोमार | कौ. | ९३० |
| बहूव्यः क्षमांश | स्कन्द. | १९६७ | विभेमि कर्म | भा. | ८६० | ब्रह्मस्वं तु वि | वासि. | १४७० |
| बहूणक्षेपस्त | नार. | ८७१ | विभ्वविहार | कौ. | १६१७ | ब्रह्मस्वं पुत्र | बौधा. | १४६९ |
| बहूणक्षेपस्त | " | " | बीजप्रहणा | विष्णुः | १४७० | ब्रह्महत्यां च | वासि. | ६०९ |

| | |
|-------------------|--|
| ब्रह्महत्यां वा | वेदाः १६०१ |
| ब्रह्महत्यायै | ” १६०० |
| ” ” ” + | ” १६०१ |
| ब्रह्महा च सु | मनुः १६२७ |
| ब्रह्महा वा कृ | अग्निः १११६ |
| ब्रह्मा चेद्धस्त | वेदाः ९९८, १८३९ |
| ” | ” १६०० |
| ब्रह्माणं यत्र | नार. १०९६ |
| ब्रह्मादिषु वि | वेदाः १००१ |
| ब्रह्मापरं यु | ” १२५९ |
| ब्रह्मैव विद्वा | मनुः १९३१ |
| ब्रह्मैव संनि | कौ. ८१७ |
| ब्रह्माणं चतु | ” १६१९ |
| ब्रह्माणं तमः | ” १६८७ |
| ब्रह्माणं पाप | भा. १२४३ |
| ब्रह्माणः क्षत्रि | आप. १६०५ |
| *ब्रह्माणः परी | भा. ८१८ |
| ब्रह्माणः प्रच | याज्ञ. ७७८ |
| *ब्रह्माणः प्रति | ” १६३५ |
| *ब्रह्माणः प्राति | अपु. १७६६ |
| ब्रह्माणः शाक | वेदाः ९९९, १८३९ |
| ब्रह्माण एव | वसि. १०२२, १८४६; नार. १०९३; कौ. १२८८; मनुः १३९६, १७७८ |
| ब्रह्माणक्षत्रि | कौ. ८६२ |
| ब्रह्माणतश्चै | विष्णुः १४७० |
| *ब्रह्माणधनं | भा. १३९१ |
| *ब्रह्माणप्रमु+ | याज्ञ. ७७८, १६३५ |
| ब्रह्माणप्राति | कौ. १०३९ |
| ब्रह्माणमधी | ” १६२० |
| ब्रह्माणमपे | गौत. १७६९ |
| ब्रह्माणराज | विष्णुः १२४० |
| ब्रह्माणवर्ज | कसि. १९४९ |
| ब्रह्माणश्चेद | नार. १७८७, १९३९ |
| ब्रह्माणश्चैव | वसि. १६६८ |
| ब्रह्माणसुव | गौत. १७६९ |
| ब्रह्माणस्तु क्ष | मनुः १९५६ |
| ब्रह्माणस्तु नि | याज्ञ. ७२३ |
| ब्रह्माणस्तु प | अग्नि. ७३१ |
| ब्रह्माणस्तु वि | शंखः १२८१ |
| ब्रह्माणस्तु स | पद्म. १३७६ |
| ब्रह्माणस्त्य कु | |

| | |
|--------------------|--------------------|
| *ब्राह्मणस्य च | नार. ७०४ |
| ” ” | विष्णुः १२४०; |
| मनुः १७२१; नार. | १७५२ |
| ब्राह्मणस्य तु | ” ७०४, १९३८ |
| * ” ” | कात्या. ८३६; |
| ” ” | शंखः १६७२ |
| ब्राह्मणस्य ब्र | बौधा. १६०६ |
| *ब्राह्मणस्य ब्रा | विष्णुः १२४० |
| ब्राह्मणस्य भ | भा. १२४३ |
| ब्राह्मणस्य रा | गौत. १२३८ |
| ब्राह्मणस्य व | भा. १२८६ |
| * ” ” | मनुः १८५८ |
| ” ” | ” १७२३ |
| ब्राह्मणस्य वि | कौ. १२८८ |
| ब्राह्मणस्य वै | ” १६८७ |
| ब्राह्मणस्य स | कात्या. ८३६ |
| ब्राह्मणस्य हि | गौत. ११२३ |
| ब्राह्मणस्याधि | कौ. १२४५ |
| ब्राह्मणस्यान | नार. १०९३; |
| ब्राह्मणस्यानु | मनुः १२४६ |
| ब्राह्मणस्याप | नार. १९३६ |
| *ब्राह्मणस्याभि | गौत. १९४८ |
| *ब्राह्मणस्यैव | नार. १५१२ |
| ब्राह्मणस्वं च | पिता. ६३४ |
| ब्राह्मणस्वं न | मनुः १७२६ |
| ब्राह्मणातिक्र | बृह. १८३२ |
| ब्राह्मणादित्र | शौन. १३६५ |
| ब्राह्मणानां तु | कौ. १२४५ |
| ब्राह्मणानां शु | स्कन्द. १९६६ |
| ब्राह्मणानां स | शौन. १३६५ |
| ब्राह्मणानुप | नार. १९३६ |
| *ब्राह्मणान्प्राति | याज्ञ. ७७८ |
| ब्राह्मणाय च | भा. १९७६ |
| ब्राह्मणाय तु | नार. १९४० |
| ब्राह्मणायैव | ” १५१२ |
| *ब्राह्मणार्थं च | ” ” |
| ब्राह्मणार्थस्य | ” ” |
| ब्राह्मणार्थे ग | बौधा. १६०७ |
| ब्राह्मणार्थो ब्रा | विष्णुः १४७० |
| ब्राह्मणा लिङ्गि | मनुः १९२७, १९४६ |
| ब्राह्मणा हि म | भा. १२४४ |
| *ब्राह्मणीं तु य | मनुः १८६४ |
| ब्राह्मणीं वक्ष | ” ” |
| ब्राह्मणी क्षत्रि | भा. १२४३ |

| | |
|----------------------|----------------------------|
| ब्राह्मणी तद् | मनुः १४४० |
| ब्राह्मणी तु भ | संघ. १४६३ |
| ब्राह्मणी त्वेव | भा. १२४४ |
| ब्राह्मणेभ्यः क | विष्णुः १६७१ |
| *ब्राह्मणेभ्यस्तु | नार. १९४० |
| ब्राह्मणे शत | विष्णुः १६७० |
| ब्राह्मणे साह | मनुः १७७८ |
| ब्राह्मणो द्विप | भा. १९८४ |
| *ब्राह्मणो धर्मा | वसि. १९२० |
| ब्राह्मणो नाप | नार. १७५२, १९३६ |
| ब्राह्मणोऽपि नि | ” १९६१ |
| ब्राह्मणोऽपि स्व | ” १७८७ |
| *ब्राह्मणो लिङ्गि | मनुः १९४६ |
| *ब्राह्मणो वेद | वसि. १९२० |
| ब्राह्मण्यं ब्राह्म | नार. १९३६ |
| ब्राह्मण्यां क्षत्रि | भा. १२८७ |
| ब्राह्मण्यां ब्राह्म | ” १२४४ |
| *ब्राह्मण्यां यद्य | मनुः १८५९ |
| ब्राह्मण्यां लक्ष्य | भा. १२८७ |
| ब्राह्मण्याः प्रथ | ” १२४४ |
| *ब्राह्मण्याः शिर+ | वसि. १८४५ |
| ब्राह्मण्याः सह | भा. १२४४ |
| ब्राह्मण्यामगु | कौ. १८५० |
| ब्राह्मण्यामपि | नार. ११०५ |
| ब्राह्मण्यास्तद् | भा. १२४३, १४३९ |
| ब्राह्मण्येकान्त | नार. ११०५ |
| ब्राह्मण्यैतानि | भा. १२४४ |
| ब्राह्मण्यैवार्ष | मनुः १४३९ |
| ब्राह्मण्यस्तु प्रथ | नार. १०९८ |
| ब्राह्मण्यदिषु च | विष्णुः १४२८; नार. १४५० |
| *ब्रूयात् सर्वं वा | ” १६४४ |
| ब्रूयात् स्वयं वा | ” ” |
| ब्रूहि तात कु | भा. १२८६ |
| ब्रूहि कर्णं त्व | ” ८४० |
| भक्तं तेभ्यो इ | गौत. १६६३ |
| भक्तदासश्च | नार. ८३० |
| भक्तसंविभा | कौ. १९२४ |
| भक्तस्यार्थे कृ | कात्या. ७१३ |
| *भक्तस्योत्क्षेप | नार. ८३२ |
| भक्तस्योपेक्ष | ” ” |
| भक्तां पतित्र | वारा. १०७६ |
| *भक्तच्छादन | बृह. ८५२ |
| भक्ताच्छादमृ | ” ” |

| | | | | | | | | |
|------------------|---------|-------|--------------------|---------|-------|---------------------|----------|-------|
| भक्तापचये | आप. | १६६५ | भगो अर्थमा | वेदाः | ९८५ | भर्तुः प्रतिनि | बौधा. | १०१९; |
| *भक्तावकाश | मनुः | १६९७ | भगो गोषु प्र | " | १५०३ | भर्तुः प्रीतिक | मनुः | १०५७ |
| " " | नार. | १७५६ | भग्नोत्सृष्टकं | कौ. | १६१९ | भर्तुः शरीर | दक्षः | १११५ |
| भक्तावकाशा | याज्ञ. | १७४२ | भग्नोत्सृष्टानां | " | ९३० | भर्तुः शूश्रूष | मनुः | १०५४ |
| भक्षयित्वा नि | कौ. | ९०६ | *भङ्गाक्षेपाप | नार. | १६४२ | *भर्तुः सकाशा | वारा. | १०७५ |
| *भक्षयित्वा प्र | याज्ञ. | ९१३ | भङ्गाक्षेपाव | " | " | *भर्तुः समान | कात्या. | १४५३ |
| भक्षयित्वोप | विष्णुः | ९०५; | *भङ्गाक्षेपोप | " | " | भर्तुः स्वाम्यं त | विष्णुः | १०२३ |
| | याज्ञ. | ९१३ | *भङ्गाक्षेपोऽस | " | " | *भर्तुः स्वाम्यं तु | कात्या. | १४५५ |
| *भक्षितं चापि | नार. | ८३१ | भजेरन्यैतु | मनुः | ११४९ | *भर्तुः स्वाम्यं ध | " | " |
| भक्षितं सोद | कात्या. | ७५४ | भजेरन् भ्रातृ | कात्या. | १५७३ | *भर्तुः स्वाम्यं भ | " | " |
| * " " | व्यासः | ७५६ | भजेरन्मातृ | मनुः | १४३२ | *भर्तुः स्वाम्यं स | " | " |
| *भक्षितस्यापि | नार. | ८३२ | भट्टादित्यस्य | स्कन्द. | १९६७ | *भर्तुः स्वाम्यं स | " | " |
| *भक्षिते सोद | कात्या. | ७५४ | भद्रं भल.त्य | वेदाः | ९८८ | *भर्तुः कामेन | " | ७१४ |
| " " | व्यासः | ७५६ | भद्रा वधूर्भ | " | ९७९ | *भर्तुरनुज्ञ | शंखः | १०२५ |
| भक्ष्यं वा यदि | भा. | १०२८ | *भयकारण | वसि. | १९२० | भर्तुरश्रयि | भा. | १९७१ |
| *भक्ष्यभोज्यप्र | मनुः | १६९६ | भयकारण्य | " | " | *भर्तुरर्थे कृ | कात्या. | ७१३ |
| भक्ष्यभोज्यान्न | नार. | १९१३ | भयत्राणाय | कात्या. | ८०५ | भर्तुरादेश | " | ११०९ |
| *भक्ष्यभोज्याप | मनुः | १६९६ | भयवर्जित | " | ९५८ | भर्तुरुर्ध्वं तु | स्मृत्य. | १३७४ |
| भक्ष्यभोज्योप | " | " | *भयवर्जिता | " | " | *भर्तुर्द्रोहे य | बृह. | ७५१ |
| | | १९२९ | भयाद्वा पात | स्कन्द. | १९६६ | भर्तुर्धनम | व्यासः | ११११ |
| *भक्ष्यैर्वा यदि | नार. | १८८१ | भयोपधाभि | नार. | १७५२ | भर्तुर्धनह | बृह. | १५१५ |
| भगं गुरुत | विष्णुः | १६०९, | भरणं क्लीबो | वसि. | १३८९ | * " " | कात्या. | १५२१ |
| | | १८४७ | भरणं चास्य | शंखः | १४७३; | भर्तुर्निष्कम | भा. | १०२९ |
| भगतीर्थान्त | भा. | १०३० | | नार. | १५५३ | भर्तुर्भाग्यं तु | वारा. | १०७५ |
| भगमस्या व | वेदाः | ९९६ | *भरणं वास्य | शंखः | १४७३ | भर्तुश्च वध | नार. | १०९९ |
| भगलिङ्गं म | भा. | १०३० | भरस्व पुत्रं | भा. | १२८८, | *भर्तुगोत्रं प | कात्या. | १११० |
| भगवन्सर्व | " | १०२८ | | | १९८५ | भर्तुगोत्रं स | " | " |
| भगस्ततक्ष | वेदाः | १००१ | भरासः कारि | वेदाः | ८११ | भर्तुदायं ष्ट | " | १४५६, |
| भगस्ते हस्त | " | " | *भर्तारि प्रव | विष्णुः | १०२३ | | " | १५२० |
| *भगस्त्वेतो न | " | ९८३ | *भर्तारि प्रति | " | " | भर्तुर्द्रोहे य | बृह. | ७५१ |
| भगस्य नाव | " | ९९८ | भर्तारि प्रोषि | " | " | भर्तुर्भ्रातृपि | याज्ञ. | १०८३ |
| भगस्य भजा | " | १००८ | भर्तारि प्रोषि | विध. | १११९ | भर्तुर्हिते य | बौधा. | १०२० |
| भगिनीं सात | बृहा. | १६५३ | भर्तार्येवं प्र | नार. | १४०१ | भर्तुर्हीना च | दक्षः | १३५२ |
| *भगिनीभ्रातृ | बृह. | १७८९ | भर्तव्याः स्युः कु | भा. | १९८५ | भर्तुर्भागि या वि | अपु. | १९७९ |
| भगिनीमातृ | " | " | भर्तव्योऽयं त्व | " | १२८५ | भर्तुर्तत्त्व ध | भा. | १४२९ |
| भगिनीर्वा अ | वेदाः | १३८५ | भर्तारं द्विष | कौ. | १०३५ | भर्तुर्पत्नी स | बृह. | ११०६ |
| भगिनीशुल्कं | गौत. | १४२६; | भर्तारं नाड | वारा. | १०७५, | भर्तुर्पिता सु | " | " |
| | विष्णुः | १४२८ | | | १०७६ | भर्तुर्पुत्रेण | कात्या. | ७१३ |
| *भगिनीशुल्कः | गौत. | १४३६ | भर्तारं पुन | शाता. | १११६ | भर्तुर्प्रतिश्रु | " | १४५८ |
| भगिन्यश्च तु | बृहा. | १४६२ | भर्तारं लक्ष | मनुः | १८६५; | भर्तुर्प्रतिन | नार. | १४४८ |
| भगिन्यश्च नि | श्रुत. | १४१९ | | अपु. | १८९१ | भर्तुर्सा-संस्क | ब्रह्म. | १११८ |
| भगिन्यां शत | व्यासः | १००६ | भर्तारमनु | वारा. | १०७६ | भर्मण्यायाम | कौ. | १०३५ |
| भगिन्याः शत | " | " | भर्तुः किल प | " | १०७५ | भक्तोऽनुन | भा. | १३९१ |
| भगिन्याः शत | वसि. | १४१६, | भर्तुः पित्रोः स | कात्या. | १४५३ | भक्तं तेऽनु | " | ८६० |
| भगिन्याः शत | नार. | १४२७ | भर्तुः पुत्रं वि | मनुः | १०७० | भवन्ति पित | वसि. | १९७७ |
| भगिन्याः शत | कात्या. | १४५९ | भर्तुः पुनाति | व्यासः | ११११ | भव-स्वभर्तुः | वारा. | १०७७ |

| | | |
|-------------------|----------|---------------|
| भवेत्तथाऽऽच | शुनी. | १११९ |
| *भवेत्समांशः | बृह. | १२५१ |
| भवेत्समांशो | " | " |
| भवेदेकस्य | शुनी. | ८५६ |
| भसन्मे अम्ब | वेदाः | ९८६ |
| भन्ना माता पि | भा. | १२८८, १९८५ |
| भस्मपङ्क | याज्ञ. | १८१४ |
| *भस्मादिना प्र | बृह. | १८३० |
| " " | व्यासः | १८३४ |
| *भस्मादिभिश्चा | नार. | १८२४ |
| भस्मादिभिश्चो | " | " |
| *भस्मादीनां क्षे | बृह. | १८३० |
| भस्मादीनां प्र | " | " |
| * " " | व्यासः | १८३४ |
| *भस्मादीनामु | नार. | १८२४ |
| भागं तुरीय | हारी. | १९८२ |
| भागं विद्याध | नार. | १२२१ |
| भाग एव हि | लहा. | १५८८ |
| *भागो कर्नाथ | मनुः | १२१० |
| *भागो यद्विगु | बृह. | ६३१ |
| भागो यवीयु | मनुः | १२१० |
| *भाजनस्थम | याज्ञ. | ७४५ |
| भाटं न दद्या | वृम. | ८५५ |
| * " " | मत्स्य. | " |
| *भाटचारण | स्मृत्य. | ७१५ |
| भाण्डं व्यसन | नार. | ८५० |
| भाण्डपिण्डव्य | " | ७८१ |
| भाण्डपूर्णानि | मनुः | १९२७, १९४५ |
| भाण्डवाहक | कात्या. | १९७५ |
| *भाण्डारकोश | मनुः | १६९७ |
| भाण्डावकाश | " | " |
| " | " | १९२९ |
| भारद्वाजीपु | वेदाः | १९८२ |
| *भारवाहोऽथ | नार. | ८२८ |
| " " | बृह. | ८३५ |
| भार्या तथा व्यु | भा. | १०२७, १२८५ |
| भार्या पतिः सं | " | १०२६, १९४४ |
| भार्या रक्षत | पैठी. | १११५ |
| भार्याः कार्याः स | शंखः | १०२४ |
| *भार्याः सजाती | " | " |
| *भार्यातिक्रम | मनुः | १६२६ |
| " " | कात्या. | १६५० |

| | | |
|-------------------|---------|---------------------------------|
| भार्यातिक्रमि | विष्णुः | १६१२ |
| " | कात्या. | १६५० |
| *भार्या दासश्च | मनुः | ८२२ |
| भार्यापतीनां | भा. | १०३१ |
| भार्या पुत्रश्च | मनुः | ८२२, १३९३, १८१२, १९२८; |
| " | यमः | १८३५ |
| " | अपु. | १९७४ |
| भार्या पुत्राश्च | भा. | १९७८ |
| भार्या पुत्रोऽथ | मनुः | १९६९ |
| भार्यापुरोहि | भा. | १०३१ |
| भार्यामपत्य | " | १०२६ |
| भार्या मूलं त्रि | " | " |
| भार्यायां जनि | " | " |
| भार्यायां रक्ष्य | मनुः | १०४६ |
| भार्यायां व्यभि | भा. | १०३१ |
| भार्याया भर | " | १०२६ |
| भार्याया व्यभि | हारी. | १०१६, १३८७ |
| " | भा. | १०२९ |
| भार्याया व्रत | मनुः | १०७५ |
| भार्यायै पूर्व | " | १३२६ |
| भार्यारिक्थाप | बौधा. | १६०७ |
| भार्यार्थमपि | भा. | १०२६ |
| भार्यावन्तः क्रि | " | " |
| भार्यावन्तः प्र | " | " |
| भार्याऽन्यभिचा | लहा. | १५२७ |
| *भार्या शिष्यश्च | मनुः | १८१२ |
| भार्यासुतवि | बृह. | १५१७ |
| *भार्यासुतावि | " | " |
| भार्या स्नुषा च | नार. | ७०३ |
| भार्या स्नुषा प्र | " | ७०४ |
| भार्यावान्वेति | भा. | १०२६ |
| भावसाध्यत्व | अनि. | १९६७ |
| भावितं चेत्य | कात्या. | १२२९ |
| भिक्षुकवैदे | कौ. | १६३० |
| भिक्षुकान् कु | " | १६७६ |
| भिक्षुका बन्दि | मनुः | १८५३ |
| भिक्षुकी वा मि | कौ. | ८६३ |
| भिक्षुकोऽप्यथ | मत्स्य. | १८९२ |
| भिक्षुक्यन्वाधि | कौ. | १०३६ |
| भित्त्वा गृहं गृ | बृह. | १७६० |
| भित्त्वा वधः | कौ. | १६९० |
| भिक्षुगोत्राः पृ | ब्रह्म. | १३७४ |
| *भिक्षुनासौष्ठ | बृह. | १८८७ |
| भिक्षुनामनु | भा. | १९८३ |
| भिक्षु विमन | " | ८६१ |
| *भिक्षे पणे च | याज्ञ. | १७३४ |

| | | |
|-------------------|---------|---------------|
| भिक्षे पणे तु | याज्ञ. | १७३४ |
| भिक्षोदरणां | विष्णुः | १५४२ |
| भिया देयम् | वेदाः | १७९२ |
| भिक्षुमिथ्याच | याज्ञ. | १७३२ |
| भिक्षजः प्राणा | कौ. | १६७६ |
| भिक्षजो द्रव्य | व्यासः | १६५१ |
| भीतमत्तोन्म | बौधा. | १६०७ |
| भीमा जाया ब्रा | वेदाः | १८३९ |
| भुक्तभाव्याश्च | बृह. | ८७२ |
| भुक्ताधिर्न व | गौत. | २०८ |
| *भुक्तावकाशा | याज्ञ. | १७४२ |
| भुक्ते चासार | बृह. | ६५१ |
| *भुक्ते त्वसार | " | " |
| *भुक्ते वाऽसार | " | " |
| भुक्त्वा नन्वेद | शुनी. | १११९ |
| भुज्यतेऽन्यैर | अनि. | १९४३ |
| भुञ्जीत क्षिय | कौ. | १८५० |
| भुञ्जीतामर | कात्या. | १४५६, १५३० |
| " | वेदाः | १००६ |
| भुव इति वा | " | ८४२ |
| भूतं च भवि | " | " |
| भूतिकामैर्न | मनुः | १०५३ |
| *भूतिभोगं च | " | १७०१ |
| भूभागलक्ष | बृह. | ९५० |
| भूमावप्येक | मनुः | १०७६ |
| *भूमि गृहं च | प्रजा. | १५६१ |
| *भूमि गृहं चा | " | " |
| भूमि गृहं त्व | " | " |
| *भूमिः शतं प | याज्ञ. | ९१३ |
| *भूमिच्छन्नानि | मनुः | ९३४ |
| *भूमिर्दशाहि | कात्या. | ८९६ |
| भूमिर्दशमहो | " | " |
| " | व्यासः | ८९९ |
| भूमौ च भस्म | भा. | १०३० |
| भूय आरोप | स्कन्द. | १९६६ |
| भूयसा वस्न | वेदाः | ८७८ |
| भूयस्तेनापि | भा. | १२४४ |
| भूयस्त्वसंस्कृ | विष्णुः | १२७९ |
| भूयानतोऽपि | स्कन्द. | १९६५ |
| भूयान्त्याक्षत्रि | भा. | १२४४ |
| भूयो दायवि | देव. | १२०३ |
| भूयो भूयोऽपि | भा. | १२४४ |
| भूरि द्वे अत्र | वेदाः | ९६८ |
| भूरिति सहि | " | १००६ |
| भूर्या पिताम | याज्ञ. | ११७५ |
| भूर्हीनमूल्या | कात्या. | ८९८ |

| | | | | | | | | |
|-------------------|---------|-------|--------------------|---------|------|--------------------|-----------|-------|
| भूषणैर्मेष | लिङ्ग. | १३७६ | भेषजस्नेह | याज्ञ. | १७२९ | *भ्रातृपितृव्य | कात्या. | १२३९ |
| भृगुं हिंसित्वा | वेदाः | १६०० | भैक्षहेतोः प | नार. | १९३६ | भ्रातृपुत्रश्च | स्मृत्य. | १३७३ |
| *भृतकः अपू | विष्णुः | ८४३ | भैषज्येन म | कौ. | १६१८ | भ्रातृभार्याणां | शंखः | १३९०, |
| भृतकविवा | " | " | भोक्ता कर्मफ | कात्या. | ६५५ | | | १४७३ |
| भृतकश्वापू | " | " | *भोक्तुं तत्स्वय | देव. | १४६१ | *भ्रातृभार्यास्तु | " | १३९० |
| भृतकस्तु न | बृह. | ८५३ | भोक्तु रक्षयि | कण्वः | १४६२ | *भ्रातृभिर्भर | नार. | ११९८ |
| *भृतकस्त्यज | विष्णुः | ८४३ | भोक्तुमर्हति | कात्या. | १५२३ | भ्रातृभिस्ताद्वि | " | १२२१ |
| भृतकान्निवि | नार. | ८२८ | भोक्त्री च स्वय | देव. | १४६१ | भ्रातृभ्योऽशं च | स्मृत्य. | १४२२ |
| भृतानां वेत | " | ८४८ | *भोक्त्री तत्स्वय | " | " | भ्रातृमातृपि | मनुः | १४३१; |
| *भृताय वेत | " | " | *भोक्तृयेतत्स्वय | " | " | | कात्या. | १४५२ |
| भृतवनिधि | " | ८४९ | भोगं तु म आ | वेदाः | १००६ | * " " " " | नार. | १४४९ |
| भृतिं गृहीत्वा | " | " | भोग एव तु | वृया. | १५८८ | भ्रातृषु प्रवि | संप्र. | १५२९ |
| भृतिं गृह्य न | अपु. | १९७५ | भोगलाभस्त | बृह. | ७२६; | भ्रातृणां जीव | व्यासः | ११४२, |
| भृतिं न भरा | वेदाः | ८४१ | | कात्या. | ७३० | ११९९; | शंखः | ११९५ |
| भृतिमर्धप | याज्ञ. | ८४७ | *भोगलाभोऽथ | बृह. | ७२६ | भ्रातृणां यस्तु | मनुः | १२१२ |
| भृतिमेताव | शुनी. | ८५६ | भोगाधिकं च | भार. | ६६० | *भ्रातृणां यस्य | " | " |
| भृतिरुक्ततु | " | " | *भोगाय द्विगु | बृह. | ६३१ | भ्रातृणामथ | याज्ञ. | ७२१ |
| भृतिषड्भाग | नार. | ८५० | *भोगो नश्यत | भार. | ६६० | *भ्रातृणामपि | " | " |
| भृतिस्तुष्टया प | बृह. | ८०३ | भोगो नास्त्येवा | " | " | भ्रातृणामप्र | शंखः | १४७३; |
| भृतिहानिम | " | ८५३ | भोगो यद्द्विगु | बृह. | ६३१ | | नार. | १५५३ |
| भृतोऽनार्तो न | मनुः | ८४४ | *भोगो यो द्विगु | " | " | भ्रातृणामवि | मनुः | १२१४; |
| *भृतो नार्तो न | " | " | *भोग्याधिक्यं च | भार. | ६६० | नार. | १५७९; मा. | १९८४ |
| *भृतो नार्तो यो | " | " | भोग्याधिरपि | गौत. | ६३५ | भ्रातृणामेक | विष्णुः | १२७९; |
| *भृत्यशक्त्यनु | नार. | ८२८ | भोजनान्यथ | भा. | ८६० | | मनुः | १२९० |
| *भृत्यस्तु त्रिवि | " | " | *भोज्यान्नः प्रति | नार. | ८३३ | भ्रातृनुत्रांश्च | भा. | १९८६ |
| भृत्यातिथिश्चे | वेदाः | ८१४ | *भोज्यान्नश्च प्र | " | " | भ्रातृन्दस्य स | वेदाः | ९७२ |
| *भृत्या तुष्टया प | बृह. | ८०३ | भोज्यान्नोऽथ प्र | " | " | *भ्रात्रा दत्तं पि | नार. | १४४९ |
| *भृत्यानां वेत | नार. | ८४८ | *भोज्यान्नोऽप्यप्र | " | " | भ्रात्रा पितृव्य | कात्या. | १२२९ |
| *भृत्यानां श्व | " | " | *भ्रंशश्चेन्मार्गि | याज्ञ. | ७४५ | *भ्रात्रा प्रीतेन | नार. | १४४८ |
| भृत्या भवति | मनुः | १६३१ | *भ्रंशश्चेन्मार्गि | " | " | भ्रूणघ्ने भेष | वेदाः | १६०२ |
| भृत्याय वेत | नार. | ८४८ | भ्रातरश्च पृ | बृय. | १५८८ | भ्रूणहत्यां वा | " | १६०३ |
| भृत्यास्तदनु | यमः | १९४३ | भ्रातरस्तेऽपि | कात्या. | १५८२ | भ्रूणहत्यामे+ | " | १६०२ |
| *भृत्येभ्योऽनुस्म | " | " | भ्रातरि चैवं | गौत. | १०१४ | भ्रूणहत्याया | " | " |
| भृत्येभ्योऽनु स्म | " | " | भ्रातरो ये च | मनुः | १५४४ | भ्रूणहत्यायै+ | " | " |
| भृत्यो वेतनं | विष्णुः | ८४३ | भ्राता तस्यानु | भा. | १९८३ | भ्रूणहत्या वा | " | " |
| *भृत्योऽनार्तो न | मनुः | ८४४ | *भ्राता भरते | नि. | ११४३ | भ्रूणहत्यास | भा. | १०२७, |
| भृशं दुःख | भा. | १९७८, | भ्राता वा जन | कात्या. | १५२२ | | | १२८५ |
| | | १९८५ | भ्राता वा भ्रातृ | बृह. | १५२० | भ्रूणानि तत्र | वसि. | १०२१ |
| भृशं न ताड | नार. | ८२६ | भ्राता शक्तः क | नार. | ११९८ | भ्रूणानि तत्र | याज्ञ. | ७४५ |
| भेदं चैषां नृ | श्वश. | ८६९ | भ्रातुः पुत्रो मि | बृय. | १३५५ | भ्रूणानि तत्र | कौ. | ७३६ |
| *भेदवे चैव | मनुः | १८०७ | भ्रातुः संतान | यमः | १११४ | भ्रूणानि तत्र | वेदाः | ८११ |
| भेदमूलो वि | भा. | ८६१ | भ्रातुः सक्त्रहा | कात्या. | १४५३ | भ्रूणानि तत्र | नि. | ६०० |
| भेदाच्चैव प्र | " | " | *भ्रातुः सकाशे | " | " | भ्रूणानि तत्र | वेदाः | १००० |
| भेदाद्विनाशः | " | ८६० | भ्रातृव्येष्टस्य | मनुः | १०६४ | भ्रूणानि तत्र | भा. | १०२६ |
| भेदे गणा वि | " | ८६१ | भ्रातृभार्या च | भा. | १९८४ | भ्रूणानि तत्र | विष्णुः | १०२३ |
| भेदेनोपेक्ष | बृह. | ७५१ | भ्रातृदत्तं पि | नार. | १४४९ | भ्रूणानि तत्र | मनुः | १६९३ |

| | |
|-----------------------|--------------|
| | १९२९ |
| मङ्गलार्थ स्व | मनुः १०५९ |
| *मङ्गलैर्वेहु | भा. १०२८ |
| मटचीहते | वेदाः १०१० |
| मणयः पद्म | नार. ८८८ |
| मणिगान्धर्व | प्रजा. ८९९ |
| *मणिभाश्वाश्व | " " |
| मणिमुक्ताप्र | कात्या. ६३२; |
| नार. १२१९; शुनी. १९८८ | |
| * " " | नार. ८९४ |
| मणीनां प्राण | विष्णुः १६७० |
| मणीनामप | मनुः १६३१, |
| | १९३० |
| *मणीनामपि | " १६३१ |
| *मणीनामप्य | " " |
| *मणीनामव | " " |
| *मणीनामुप | " " |
| मण्डनं वर्ज | शुनी. १११९; |
| | अपु. १९७९ |
| मण्डलान्मण्ड | स्कन्द. १९६६ |
| मक्षेत्रं भुङ्क्व | कात्या. ६५८ |
| मत्तमूढान | बृह. ८९६ |
| मत्तातिष्ठेद् | " ८०४ |
| मत्तोन्मत्तेन | " ८८९ |
| *मत्वोत्सृजेद्वा | मनुः ९३९ |
| मत्स्यादाश्व न | बृह. १९४१ |
| मत्स्यानां पक्षि | मनुः १७१८ |
| मदनकोद् | कौ. १९२५ |
| मदयन्ती ज | भा. १२८५ |
| मदीयं नग | वारा. १३२९ |
| मदूर्ध्वमिति | बृह. १२२४ |
| मदेन हस्त | कौ. १६१८ |
| मद्यपस्य मु | हारी. ७९४ |
| *मद्यपाऽसत्य | मनुः १०५६ |
| *मद्यपाऽसभ्य | " " |
| मद्यपाऽसाधु | " " |
| मद्याद्यैर्गाहि | देवी. १९४३ |
| मधुपर्कं त | वृगौ. १३७३ |
| मधुपर्केण | शौन. १३६३ |
| मधुमासेन | शंखः १२८१; |
| | यमः १३५१ |
| मधुमासेश्च | देव. १३५०६ |
| | कसि. १९८२ |
| *मध्यं प्रति रा+ | वेदाः ७९२ |
| *मध्यं वा गृही | कौ. ९२९ |
| *मध्यदेशे क | बृह. १९४१ |

| | |
|-------------------------|----------------------|
| मध्यमं क्षत्रि | याज्ञ. १६३६, |
| | १९३२ |
| मध्यमं चोत्त | संव. १९४३ |
| मध्यमं ग्रान्तु | अपु. १७६६ |
| *मध्यमं मध्य | नार. १७४९ |
| मध्यमं साह | " १८८४ |
| मध्यमः पञ्च | मासी. १९७० |
| मध्यमः शस्त्र | बृह. १८३० |
| *मध्यमस्तवानु | नार. १८८२ |
| *मध्यमस्य च | " १६४३ |
| मध्यमस्य तु | " " |
| मध्यमा मातु | स्मृत्य. १३७३ |
| मध्यमे कर्म | नार. १९३७ |
| *मध्यमे तु त | मनुः ११८६ |
| मध्यमेषु म | विष्णुः १६६९ |
| मध्यमो जाति | याज्ञ. १७८२ |
| *मध्यमो ज्ञाति | " " |
| मध्यमोपस | कौ. ७७२ |
| मध्यमो मध्य | भा. ११८४, |
| | १२३४; नार. १७४९ |
| मध्यमो वा क | संप्र. ११९९ |
| *मध्यस्थं स्थापि | याज्ञ. ६२२ |
| मध्यस्थस्थापि | " ६२२; |
| | बृह. ७३१; व्यासः ८८९ |
| *मध्यस्थस्थार्पि | याज्ञ. ६२२ |
| मध्यस्था वञ्च | बृह. १७५९ |
| मध्यस्थितम | " १२२२ |
| *मध्यस्थो वञ्च | " १७६० |
| मध्यहीनद्र | व्यासः १७६५ |
| मध्यादूर्ध्वम | कौ. ७७२ |
| मध्या यत्कर्त्तव्य | वेदाः ९८१, |
| | १८३७ |
| *मध्ये दण्डो व्र | याज्ञ. १८१७ |
| मध्ये पञ्चष | " १७३५ |
| मध्ये दण्डो व्र | " १८१७ |
| मध्वास्वादी वि | बृह. ८०२ |
| मनवे दामस | वेदाः ८०९ |
| मनसश्चिन्त | " १००६ |
| मनसा कर्म | भा. १०२९ |
| मनानग्रतो | वेदाः ९८१, |
| | १८३७ |
| मनुः पुत्रेभ्यो | बौधा. ११४६; |
| वेदाः ११६१; अणुप. ११६६ | |
| मनुनाऽभिहि | शा. १२४४ |
| मनुष्यमार | नार. १६४१; |
| बृह. १६४५; संप्र. १६५५; | |

| | |
|-------------------|--------------|
| मनुष्यलोकः | मनुः १८१० |
| मनुष्यविष | वेदाः १२६२ |
| *मनुष्यहर | नार. १९३८ |
| मनुष्यहारि | बृह. १६४५ |
| मनुष्याणां प | " १७६० |
| | मनुः १८०५; |
| | कात्या. १८३४ |
| मनुष्याणाम | मनुः १०६८ |
| मनो अस्या अ | वेदाः १००० |
| मनोवै दक्ष | " ९९५, |
| | १५७० |
| मनोवाकर्म | शुनी. १११९ |
| मन्त्रं त्विमं च | भा. १२८६ |
| मन्त्रश्रुतिः व्र | " ८६१ |
| मन्त्रसंवर | " " |
| मन्त्रसंस्कार | शंखः १२८२ |
| मन्त्रेणानेन | स्कन्द. १९६६ |
| मन्त्रौषधिष्व | बृह. १७६० |
| मन्थस्त इन्द्र | वेदाः ९८७ |
| मन्दं च व्यव | भा. १०३१ |
| मन्दापराधं | कौ. १६८६ |
| मन्त्रियोगात्सु | भा. १२८५ |
| मन्त्रियोगाय | " १२८४ |
| मन्यन्ते नै पा | स्कन्द. १९६५ |
| मम कायः स्व | भा. १३९१ |
| मम को द्वास्व | " १२८५ |
| ममन्तन त्वा | वेदाः ९७१ |
| मम ज्येष्ठेन | भा. १३९१ |
| मम त्वा द्यौष | वेदाः ९९६ |
| ममापि द्यौष | वारा. १३२९ |
| ममायमिति | मनुः १९५५ |
| ममेदमिति | " १९५३; |
| | अपु. १९६२ |
| * " " | समु. १९५५ |
| ममेदसस्त्वं | वेदाः ९९७ |
| ममेवं पर | भा. १२८३ |
| *ममेयं भुक्त | नार. १८८१ |
| ममेयमस्तु | वेदाः १००१ |
| ममेतद्दत्त | भा. १२८५ |
| ममेव कृप | स्कन्द. १९६७ |
| मया पत्या प्र | वेदाः १००१ |
| *मयेयं भुक्त | नार. १८८१ |
| मरीचीधूमा | वेदाः ९९९, |
| | १६०२ |
| मर्तुकामेन | कात्या. ७१४ |
| *मर्मघातिन | बृह. १६४४ |

| | | |
|----------------|-------------|-------|
| *मर्मघाती च | बृह. | १६४७ |
| मर्मघाती तु | " | " ; |
| | कात्या. | १६४९ |
| मर्मप्रहार | बृह. | १६४७ |
| *मर्मप्रहारी | " | " |
| मर्मवेधवे | कौ. | १६७६ |
| मर्मज्यमाना | वेदाः | १००६ |
| मर्य इव यु | " | ९७५ |
| मर्य इव यो | " | १००३ |
| मर्यादाचिह्नि | कात्या. | ६५७ |
| मर्यादातिक्र | नार. | १८२७ |
| मर्यादापह | कौ. | ६२९ |
| मर्यादाभेद | कात्या. | ९५९ ; |
| अपु. | १६५४ ; मनुः | १७०५, |
| | | १९३० |
| मर्यादाभेदे | कौ. | ९२९ |
| मर्यादायाः प्र | याज्ञ. | ९४२ |
| मर्यादायाम | भा. | १०३२ |
| *मर्यादायाश्च | याज्ञ. | ९४२ |
| मर्यादासु च | भा. | १०३२ |
| मर्यादा स्थापि | " | १०३० |
| मर्यादेयं कृ | " | १०३७, |
| | | १२८४ |
| Xमर्यो मनुष्यो | नि. | १२५७ |
| *मला एते म | नार. | १८२८ |
| मला ह्येते म | " | " |
| *मलिनाङ्गम | बृह. | १८८७ |
| मलिनाङ्गीम | " | " |
| मलमहिष | विष्णुः | १९०३ |
| मस्तके क्षिति | कात्या. | ९५७ |
| *महता तु प्र | " | १७९२ |
| महता प्राणि | " | " |
| महस्त्वपि न. | स्कन्द. | १९६५ |
| महदेनः स्पृ | नार. | १०९६ |
| महर्षिभिश्च | स्कन्द. | १९६५ |
| महर्षिरपि | भा. | ११८४, |
| | | १२४५ |
| महस्पृत्रासो | वेदाः | ९७५, |
| | | १८३६ |
| महाकुलीन | मनुः | १७२८, |
| | | १९२७ |
| महागुणोऽल्प | नार. | ९४७ |
| महाजनस्यै | कौ. | १७९९ |
| महानन्युच्छ | वेदाः | ८४२ |
| *महानवाऽथ | बृह. | ९५१ |
| महानरूपः च | आनि. | १९७६ |

| | | |
|-------------------|---------|--------|
| महानसस्थ | शुनी. | १११९ |
| *महापक्षे च | नार. | ७४७ |
| महापक्षे ध | मनुः | ७३८ ; |
| | नार. | ७४७ |
| महापराधि | याज्ञ. | १७४० |
| महापराधे | कौ. | ७७२ |
| *महापशुं स्ते | नार. | १७४९ |
| महापशुप | कौ. | ९३२ |
| महापशुम | " | १६१४ |
| महापशुमे | " | १६१७ |
| *महापशुषु | याज्ञ. | १८२२ |
| *महापशुस्तु | नार. | १७४९ |
| महापशुन् | " | " |
| महापशुनां | मनुः | १७१२ |
| महापशुना | कौ. | १८०९ ; |
| | याज्ञ. | १८२२ |
| महापातक | कात्या. | १७९१ |
| महापातकि | अपु. | १९४३ |
| महाबुध्न इ | वेदाः | ९९६ |
| महाभिजन | भा. | ८६० |
| महि क्षेत्रं पु | वेदाः | ९३२ |
| महिषि ह्ये | " | १००९ |
| महिषी चेतस | विष्णुः | ९०५ |
| *महिषी दश | शंखः | ९०५ |
| महिषीमश्व | वेदाः | १००९ |
| महिषी वाक् | " | " |
| महिषोष्ट्रग | याज्ञ. | १९५९ |
| महिष्यभ्यन | वेदाः | १००९ |
| महिष्याः जज्ञि | हरि. | १३७६ |
| *महिष्यामष्टौ | विष्णुः | ९०५ |
| महोक्षो जन | नार. | ११०३ |
| महोक्षोत्सष्ट | याज्ञ. | ९१५ |
| महोग्राणां च | स्कन्द. | १९६५ |
| महां खुस्व य | वेदाः | १००६ |
| मां विदन्परि | " | ९८४ |
| *मांसं मद्याभि | बृह. | ११०७ |
| मांसं संस्पृशंस्त | स्कन्द. | १९६५ |
| *मांसच्छेत्ता तु | मनुः | १८०४ |
| *मांसच्छेदे च | " | १८०३ |
| *मांसभेत्ता च | " | " ; |
| मांसभेत्ता तु | " | " ; |
| | नार. | १८२९ |
| *मांसभेदी तु | मनुः | १८०३ |
| *मांसभेदे तु | " | " ; |
| मांसमयादि | बृह. | ११०७ |
| मांसमद्युष्ट | विष्णुः | १६७१ |

| | | |
|------------------|---------|--------|
| *मांसविक्रयी | विष्णुः | १७९७ |
| *मांसस्य भेत्ता | मनुः | १८०४ |
| मांसस्य मद्यु | " | १७१८ |
| मांसौदनति | नार. | १९३८ |
| मागधः पुंश्च | वेदाः | ८४२ |
| मागधायोग | नार. | ११०५ |
| मागधो वाम | भा. | १२८७ |
| मा घोषा उत्त | वेदाः | ८५९ |
| Xमाङ्गदो मामा | नि. | ६०० |
| मा च शङ्का | भा. | १०२७ |
| मा ज्येष्ठं वधी | वेदाः | ९९९ |
| मातरं तां त | भा. | १०२७, |
| | | १२८५ |
| मातरं पित | मनुः | १७७७ ; |
| | स्कन्द. | १९६५ |
| मातरः पुत्र | विष्णुः | १४०७, |
| | | १४१६ |
| मातरिश्वा च | वेदाः | ८४२ |
| मातर्यपि च | मनुः | १४७४ |
| *मातर्यपि मृ | " | " |
| माता ऋक्थह | बृह. | १५१७ |
| माता गरीय | भा. | १९८४ |
| माता च ते पि | वेदाः | ९९४, |
| | | ९९५ |
| *माता च पित | कात्या. | १४१३ |
| मा तात कोप | भा. | १०२७, |
| | | १२८५ |
| *माता त्वभावे | नार. | १०९५ |
| *मातापितरौ | मनुः | १३०४ |
| *माता पिता च | " | " |
| " | " | " |
| माता पिता वा | शुनी. | १९८८ |
| मातापितृभ्यां | मनुः | १३०४ |
| बौधा. १२६९ ; भा. | विष्णुः | १२०५ ; |
| | | १२८७ |
| मातापितृभ्या | बौधा. | १२७० ; |
| | | मनुः |
| मातापितृवि | बौधा. | १२७० ; |
| | | मनुः |
| मातापित्रोः प्र | भा. | १९८६ |
| मातापित्रोर्गु | नार. | ८०० ; |
| | | दक्षः |
| | | ८०७ |
| * " " " | शंखः | १६१३ |
| मातापित्रोर्भ | कौ. | १८५० |
| मातापित्रोर्व | भा. | १३९१ |
| मातापित्रोर्ह | बौधा. | १२७० |
| मातापित्रोस्तु | लिङ्ग. | १३७६ |

| | | |
|------------------|----------|-------|
| मातापि पित | कात्या. | १४१३ |
| *माता भस्त्रा पि | भा. | १२८८ |
| माता भक्षा य | कौ. | १२८८ |
| माताभावे तु | नार. | १०५५ |
| मातामहस्त | स्पृत्य. | १११८ |
| *मातामहस्य | नार. | १३४७ |
| मातामहाय | " | " |
| मातामहो मा | " | " |
| मातामहा थ | मनु. | १४३७ |
| माता मातृष्व | नार. | १८८२ |
| *मातुः परिण | वसि. | १४२७ |
| *मातुः परिणा | " | " |
| मातुः परिवा | कौ. | १३९१ |
| *मातुः परिणा | वसि. | १४२७ |
| *मातुः पारिण | " | " |
| मातुः पारिणा | " | " |
| *मातुः पारिणे | " | " |
| *मातुः पितुः स्व | वृशा. | १५२९ |
| मातुः पितृष्व | " | " |
| मातुः प्रथम | मनु. | १३०२ |
| *मातुः सकाशा | कात्या. | १४५३ |
| मातुः सपत्नी | याज्ञ. | १८७४ |
| *मातुः स्वसा मा | बृह. | १४५० |
| मातुरलङ्का | बौधा. | १४२७ |
| मातुरशित | शंख. | १०२५ |
| *मातुरशिता | " | " |
| मातुर्दिधिषु | वेदा. | ९७२ |
| मातुर्दुहित | याज्ञ. | १४४१ |
| " | नार. | १४४९ |
| *मातुर्निवृत्ते | गौत. | ११४५ |
| " | नार. | ११५२ |
| " | बृह. | ११५५ |
| *मातुर्मातुः स्व | वृशा. | १५२९ |
| मातुर्मातुल | " | " |
| मातुर्यदेन | वेदा. | ९९९ |
| मातुलपितृ | बौधा. | १०२० |
| मातुलानी स | " | " |
| मातुलानी स्व | यम. | १८९० |
| मातुश्च योनि | आप. | १०१८ |
| मातुश्च यौत | भा. | १४३९ |
| * " " " | मनु. | १४३७, |
| " | " | १४३८ |
| मातुस्तु यौत | " | १४३७ |
| *मातुस्तु यौतु | " | १४३८ |
| मातुकं वेददु | बृह. | १९८८ |
| मातुकं पैतृ | अत्रि. | १११६ |

| | | |
|------------------|---------|-------|
| मातुकं भ्रातृ | मनु. | १०४२ |
| मातुकश्च प्र | प्रजा. | १२३२ |
| मातुतस्त्वती | पैठी. | १११५ |
| मातुतस्त्वा प | किष्णु. | १०२२ |
| मातुतुल्यम | जम. | १७९२ |
| मातुदास्यात् | ब्रह्म. | ८४० |
| मातुद्रव्यवि | संप्र. | ११५७ |
| मातुपितृषु | कौ. | १६१९ |
| *मातुपित्रादि | कात्या. | १४५३ |
| मातृबन्धुः स | कौ. | १२८८ |
| मातृबन्धुभ्यः | गौत. | १०११ |
| *मातृभ्रातृपि | मनु. | १४३२; |
| " | कात्या. | १४५२ |
| *मातृमातुल | वृशा. | १५२९ |
| मातृयुक्ते तू | विष्णु. | १७७० |
| मातृवदत्तै | वारा. | १०७७ |
| मातृष्वसा मा | बृह. | १४५०; |
| " | यम. | १८९० |
| मातृणां च क | वारा. | १३२९ |
| मा ते कशल | वेदा. | ९७४ |
| मात्रा च स्वथ | नार. | १२२० |
| *मात्रा वापि कु | " | ६९१ |
| मात्रा वा यत्कु | " | " |
| *मात्रा वा स्वकु | " | " |
| मात्रे दद्याच्च | शुनी. | १९८८ |
| मातृश्रुतौ ज्ये | वेदा. | १००२ |
| माध्यन्दिनात् | कौ. | ७७२ |
| माध्यमाः सर | वेदा. | ८१३ |
| मानं विधम | भा. | ८६० |
| Xमा नः प्रथो | नि. | १२५३ |
| मानयन्तः स | भा. | ८६१ |
| मानवाः सद्य | कात्या. | १७६२ |
| मानवानां प्र | भा. | १०३३ |
| मानवोक्तस | अनि. | १९६८ |
| मानहीने ही | कौ. | १६७३ |
| मानुषमांस | " | १६१८ |
| मानुषहीनो | " | ११८५, |
| " | " | १३९१ |
| मानुषा मानु | भा. | ८१९ |
| मानुषे मध्य | याज्ञ. | १७३२ |
| मानुषेषु म | भा. | १०२७, |
| " | " | १२८५ |
| मानेन तुल | याज्ञ. | १७२८ |
| मा आह्वयस्य | वेदा. | १४६४, |
| " | " | १६०० |
| मा भ्रातृभ्रात | " | ९०८ |

| | | |
|--------------------|--------|---------------|
| मा भ्रातुरभे | वेदा. | ६०० |
| मामनु प्र ते | " | ९९० |
| माययोगवि | कौ. | १९२४, |
| " | " | १९२५ |
| मायाविनो वृ | बृह. | १५७३ |
| मास्तस्यौर | वारा. | १३२९ |
| *मार्गः क्षेत्रे प | शंख. | ९२६ |
| *मार्गक्षेत्रप | " | " |
| मार्गक्षेत्रयो | वसि. | ९२५ |
| मार्गक्षेत्रे प | शंख. | ९२६ |
| मार्गक्षेत्रे वृ | " | ९०५ |
| *मार्गसद् | " | १६१३ |
| मार्गे पुनर | नार. | १६४५, |
| " | " | १९३९ |
| मार्जनैलेप | शुनी. | १११९ |
| मालाकार इ | व्यास. | १७६५ |
| मा वस्तेन ई | वेदा. | ९०३ |
| मा वस्तेन ई | " | ९०२ |
| " | " | ९०३ |
| " | " | १००२ |
| मा विदन् प | " | १८९३ |
| मा वो धनन्तं मा | " | १९७ |
| *मार्ष गां दण्ड | नार. | ९१७ |
| मार्ष गां दाप | " | " |
| *माषकश्च भ | मनु. | १८११ |
| *माषकस्तु भ | " | " |
| माषको वेत | कौ. | १६७५ |
| माषमात्रम | सुम. | ९०० |
| *माषस्य मधु | मनु. | १७१८ |
| माषानष्टौ कु | याज्ञ. | ९१३ |
| *माषिकस्तु भ | मनु. | १८११ |
| मासषाण्मासि | बृह. | १५६० |
| मासस्य वृद्धि | वसि. | ६०९; |
| " | मनु. | ६१२; नार. ६२४ |
| मासस्यान्तः प | कौ. | १६१८ |
| मासार्धमासं | यम. | १६५३ |
| *मासिकस्तु भ | मनु. | १८११ |
| मासि मासि ऋ | भा. | १०३० |
| मासि मासि भ | " | " |
| मासि मासि र | बौधा. | १०४५; |
| " | वसि. | १९७७ |
| *मासि षण्मासि | बृह. | १५६० |
| *मा स्म वर्णसं | पैठी. | १११५ |
| मा स्म संकरो | " | " |
| मा हिंसिष्टं कु | वेदा. | १००१ |
| मितं ददाति | वारा. | १०७७- |
| " | शुनी. | १११५ |

| | | |
|--------------------|---------|-------|
| मित्रं कृणुष्वं | वेदाः | १८९६ |
| मित्रप्राप्त्यर्थं | बृह. | १६४६ |
| मित्रस्ते अस्त्व९ | वेदाः | ११४३ |
| मित्राणि वा व्य | कौ. | १९२४ |
| *मिथः प्रितुः प | आष. | ११६५ |
| मिथः संघात | नार. | ८७१ |
| मिथ एव प्र | मनुः | ७३९ |
| *मिथ एव स | " | " |
| मिथस्सभवा | कौ. | १०३४ |
| मिथुनं ऋक्सा | वेदाः | १०१० |
| मिथुनाद्वाऽअ | " | १००८ |
| Xमिथुनानां वि | नि. | १२५५ |
| " " | " | १३८५, |
| " " | " | १४१५ |
| मिथुनानि जु | वेदाः | १००८ |
| मिथो दायः कृ | मनुः | ७३९ |
| मिथो भजेता | " | १०६९ |
| *मिथो भजेदा | " | " |
| मिथ्यादूषिणां | हारी. | १७६९ |
| *मिथ्यादूषिता | " | " |
| *मिथ्यादृष्टीनां | " | " |
| मिथ्याभियोगि | नार. | १९६८ |
| मिथ्याभियोगी | व्यासः | ७३० |
| मिथ्यावदन्य | याज्ञ. | ७५८ |
| *मिथ्यावादी च | नार. | ७८४ |
| " " | मनुः | १७०६, |
| " " | " | १९२७ |
| मिथ्यैतदिति | बौधा. | १९१९ |
| मिथ्योक्त्वा च प | नार. | ७८४ |
| मिथ्योपवादे | कौ. | १७७१ |
| मिनाति श्रियं | वेदाः | ९६७ |
| *मिश्रासु कनि | विष्णुः | १०२३ |
| मिश्रासु च क | " | " |
| मुकुलावदा | कौ. | १६७४ |
| *मुक्तभाव्यश्च | बृह. | ८७२ |
| मुक्तभाव्याश्च | " | " |
| *मुक्ता भाव्याश्च | " | " |
| *मुक्तारत्नप्र | नार. | ८९४ |
| मुक्तावज्रप्र | " | " |
| मुक्ताविद्रुम | " | ८८८ |
| मुखसंदर्श | बृह. | १३४७ |
| मुखान्मुखं प | नार. | ११०१; |
| " | कण्ठः | १११३ |
| मुखेन शक्य | भा. | ८६० |
| मुखानां चैव | मनुः | १७११ |
| मुखैः सह स | बृह. | ८७४ |

| | | |
|---------------------|---------|-------|
| मुण्डकोपरि | स्कन्द. | १९६५ |
| मुद्राङ्गाद | कौ. | १६७४ |
| मुद्राङ्कितं च | बृह. | ७५० |
| *मुद्राङ्कितं वा | " | " |
| मुषितं प्रवा | कौ. | १६२० |
| मुषितः शप | नार. | १७५७; |
| " | वृम. | १७६६ |
| " | कौ. | १६८५ |
| मुषितवेरम | " | " |
| मुषितसंनि | " | " |
| मुष्कयोरद | वेदाः | १००६ |
| मुष्कयोर्निहि | " | " |
| *मुष्यां प्रसक्ता | नार. | १७४६ |
| मूत्रपुरीषो | कौ. | ९२७ |
| मूत्रमौष्ण्यमि | शंखः | १६७२ |
| मूत्रेण मौष्ण्य | मनुः | १८६० |
| मूर्ध्नि पत्रं त | स्कन्द. | १९६६ |
| मूर्ध्नि पुत्रात्तु | भा. | १९८५ |
| मूर्ध्नि विन्यस्त | स्कन्द. | १९६६ |
| मूलं च सोद | बृह. | ६३१ |
| मूलं तस्य भ | लहा. | ६७७ |
| *मूलं भवेत् | कात्या. | १४५८ |
| मूलकर्म च | बृह. | १७६० |
| मूलकर्मणि | मनुः | १६३१, |
| " | " | १९३० |
| मूलक्रियास्व | विष्णुः | १०२३ |
| मूलखानक | बृह. | ९५१ |
| मूलग्रहण | कात्या. | ७३० |
| मूलतस्तु भ | लहा. | ७३२ |
| मूलत्वेन लि | अनि. | ७३१ |
| *मूलपुष्पौष | गौत. | १६६१ |
| मूलफलपु | " | " |
| मूलमात्रं तु | कात्या. | ७३० |
| मूलमेव ऋ | " | " |
| *मूलमेव त | " | १४५८ |
| *मूलमेव तु | " | " |
| *मूलमेव प्र | " | " |
| मूलमेव स | " | " |
| मूलात्तु द्विगु | शुनी. | ६३५ |
| मूलानयन | कात्या. | ७६६ |
| मूले तु द्विगु | लहा. | ७३२ |
| मूले दत्ते त | बृह. | ६२९ |
| मूलेन सह | " | ७६५; |
| " | व्यासः | ७६८ |
| *मूले समाह | बृह. | ७६५; |
| " | व्यासः | ७६८ |
| *मूले समाहि | बृह. | ७६५ |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| मूले समाह | बृह. | ७६५; |
| " | व्यासः | ७६८ |
| मूलेदयं प्र | बृह. | ६५३ |
| *मूल्यं गृहीत्वा | नार. | ८५१ |
| मूल्यं तदाधि | कात्या. | ६५५ |
| मूल्यं तदाप्त | सुम. | ९०० |
| *मूल्यं तद्दत्त | कात्या. | ६५५; |
| " | सुम. | ९०० |
| मूल्यं तद्विगु | नार. | ८८७ |
| मूल्यं तस्य भ | हारी. | ६६१ |
| *मूल्यं तु द्विगु | नार. | ८८७ |
| मूल्यं दत्त्वाऽधि | बृह. | ८९६ |
| मूल्यं यथाव | भार. | ९०० |
| मूल्यं लब्धं तु | कात्या. | १४५४ |
| *मूल्यं स द्विगु | नार. | ८८७ |
| मूल्यद्विगुण | कौ. | १६१४ |
| मूल्यमादाय | मत्स्य. | ८५५; |
| " | अपु. | १९७२ |
| " | कौ. | ७३७ |
| मूल्यमेव द | कात्या. | १४५४ |
| *मूल्यं लब्धं तु | सुम. | ९०० |
| मूल्यस्य पाद | कात्या. | ८९८ |
| *मूल्यस्याल्पप्र | मनुः | १६३०, |
| मूल्यात्पञ्चगु | " | १८०६ |
| *मूल्यात्पादाधि | बृह. | ८९६ |
| मूल्यात्स्वल्पप्र | कात्या. | ८९८ |
| *मूल्याष्टभागे | नार. | १७४८ |
| मूल्याष्टभागे | " | " |
| मूल्येन चार्थ | कौ. | ८१७ |
| मूल्येन तोष | मनुः | ६४०; |
| " | नार. | ६५० |
| मूषिककरं | कौ. | १९२५ |
| मूषिकभये | " | " |
| मृगद्रव्यव | " | १६१७ |
| मृगपशुप | " | १९२५ |
| मृगाभिशापा | भा. | १२८४ |
| मृगायुतं वा | वारा. | १०७६ |
| *मृगया दाप्योऽन्य | नार. | १७५६ |
| *मृगयो वाप्यथ | " | " |
| मृचर्ममणि | याज्ञ. | १७३३ |
| मृज्यसे सोम | वेदाः | ९७५ |
| मृतकल्पम | कौ. | १७९९ |
| मृतप्रजां प | बौधा. | १०२० |
| *मृतस्य न प्र | " | १२६९ |
| मृतस्य प्रसू | " | " |
| मृतश्लम | याज्ञ. | १६३७ |

| | | |
|-------------------|------------------|--------------|
| मृता जलौक्य | वसि. | १०२२ |
| मृतानुगम | पैठी. | १११५ |
| मृतायां वत्त | याज्ञ. | १४४७ |
| * " " " | नार. | १४५० |
| मृतायां पुन | " " | " " |
| मृतायां वधः | कौ. | १८४८ |
| *मृतायां संस्थि | मनु. | १४३३ |
| *मृतायां सर्व | याज्ञ. | १४४७ |
| मृताहे त्वेक | काष्णो. | १३५६ |
| मृते जीवति | भा. | १०२६, |
| | १३९०; याज्ञ. | १०८८; |
| | सूतः | १४६३ |
| मृते तु स्वामि | नार. | ९४७ |
| मृतेऽधिपेऽपि | शुनी. | १९८८ |
| *मृते न पित | देव. | १४०४ |
| *मृते पतौ तु | नार. | १५५५ |
| *मृते पत्यौ तु | " " | " " |
| मृते पितरि | कात्या. | ७१२; |
| | ब्रह्म. | १३७४; देव. |
| | | १४०४ |
| मृते प्रव्रजि | कात्या. | १५६१ |
| मृते भर्तारि | नार. | ७०३, |
| | ११०३, १५५५; मनुः | १०४५, |
| | १०६३; कात्या. | १११०, १५२३; |
| | व्यासः | ११११, १५२४; |
| | देव. | १११२; अग्नि. |
| | | १११५; |
| | धरा. | १११७; शुनी. |
| | | १११९; |
| | याज्ञ. | १३३८; कौ. |
| | | १४३०; |
| | अपु. | १९७९ |
| मृते भर्तारि+ | विष्णुः | १०२४ |
| " " "+ | ब्रह्म. | १११८ |
| मृते भर्तार्य | नार. | १५५५ |
| मृते म्रियेत | बृह. | ११०७ |
| *मृतेऽपि स्वामि | नार. | ९४७ |
| *मृते वा स्वामि | " " | " " |
| मृतेषु च वि | " " | ९१६ |
| *मृतेषु तु न | " " | ६९७ |
| *मृतेषु तु वि | " " | ९१६ |
| *मृतोऽनपत्य | बृह. | १५६० |
| मृतोऽनपत्यो | " " | " " |
| मृतोऽमेधेन | " " | १६४८; |
| | यमः | १६५२ |
| मृत्यन्ने स्वा द | वेदाः | ७९१ |
| मृत्यन्ने स्वाऽदा | " " | " " |
| मृत्युदेशस | याज्ञ. | १६४० |
| मृत्युमेव आ | वेदाः | १६०२ |

| | | |
|---------------------|---------|--------------|
| मृत्योरात्मना | वेदाः | ६०४ |
| मृदुत्वं च त | भा. | १०३१ |
| मृदुर्निमन्युः | वेदाः | ९९८ |
| मृद्गाण्डासन | नार. | १७४५ |
| मृद्भिस्तु शोध | शुनी. | १११९ |
| मृन्मथानां च | मनुः | १७१८ |
| मृन्मथे भाज | स्कन्द. | १९६७ |
| *मेखलाधूम | कात्या. | ९५९ |
| मेखलाभ्रम | " " | ९५८ |
| *मेदुश्चोन्माद | " " | १३५० |
| मेदुफलोप | कौ. | १६१९ |
| मेदुश्चोन्माद | कात्या. | १३५० |
| मेधमेव ध | नार. | १९३९ |
| मेध्यामेवैना | वेदाः | १००६, |
| | | १८४० |
| मेने इव त | " " | ९७० |
| मैत्रमौद्वाहि | मनुः | १२११; |
| | याज्ञ. | १२१५; प्रजा. |
| | | १२३२ |
| मैत्रेयी च का | वेदाः | १०१०, |
| | | १४०५, १४२४ |
| मैत्रेयीति हो | " " | १४०५, |
| | | १४२४ |
| *मैत्र्यमौद्वाहि | मनुः | १२११ |
| मैथुने द्वाद | कौ. | १८५० |
| मोक्षधर्मास्थि | भा. | १०३१ |
| मोक्षितो मह | नार. | ८३० |
| *मोघं वप्ता कु | आप. | १२६७ |
| मोघं वेत्ता कु | " " | " " |
| *मोचितो मह | नार. | ८३० |
| मोच्य आधिस्त | याज्ञ. | ६४७ |
| *मोच्यश्चाधिस्त | " " | " " |
| मोच्योऽभिज्ञोऽपि | बृह. | १९१३ |
| मोदः प्रमोद | वेदाः | १००६ |
| *मोदते पति | व्यासः | ११११ |
| मो व्वद्य दुर्ह | वेदाः | ९७३ |
| मोहात्प्रमादा | कात्या. | १७९१; |
| | उद्य. | १७९२ |
| *मोहात्प्रमोहा | कात्या. | १७९१ |
| मोहादियं म | विष्णुः | १८४६ |
| मोहेन द्विश् | कौ. | १६१८ |
| *मौण्ड्यं प्राणान्त | मनुः | १८५८ |
| मौण्ड्यं प्राणान्ति | " " | " " |
| *मौनवृद्धाद | नार. | ९४६ |
| मौलवृद्धाद | " " | " " |
| मौलाः सामन्ता | विष्णुः | १५६९ |
| मौलास्तु ते स | बृह. | ९५१ |

| | | |
|--------------------|---------|-------|
| *मौलोदयं प्र | बृह. | ६५३ |
| *मौलोदयो प्र | " " | " " |
| म्रियेतान्यत | मनुः | १५४४ |
| म्लेच्छश्वपाक | कात्या. | १९१५ |
| म्लेच्छानामदो | कौ. | ८१७ |
| यं कामयेता | वेदाः | ८५८ |
| यं कामयेतै | " " | ८१४ |
| *यं कामार्तां स्वै | कात्या. | १८८८ |
| यं च कश्चिद् | भा. | ८१८ |
| यं च धर्मं च | " " | ८६० |
| यं चात्र गूढ | कौ. | १६७९ |
| यं चात्रापस | " " | १६८२ |
| यं चार्थं प्रति | विष्णुः | ६६२; |
| | नार. | ६७० |
| *यं चार्थं साध | " " | ७४८ |
| यं चार्थमाश्र | गौत. | ८१५ |
| यं तु पश्येजि | मनुः | १९५६ |
| *यं ते समधि | नार. | ८३४ |
| यं देवाः स्मर | वेदाः | ९९७ |
| यं देवासो अ | " " | ९७२ |
| यं धर्मं स्थाप | कात्या. | १९४२ |
| यं परम्पर | बृह. | १५६९ |
| *यं पितृगृहे | वसि. | १२७३ |
| यं पुत्रं परि | मनुः | १३०६ |
| *यं पुत्रं प्रति | " " | " " |
| यं पूजयेम | भा. | ८६० |
| यं पूर्वतर | वसि. | ७३२ |
| यं बलबजं न्य | वेदाः | १००२ |
| यं ब्राह्मणस्तु | मनुः | १३०९ |
| *यं मातापितृ | वसि. | १२७८ |
| यं मित्रावरु | वेदाः | ९९७ |
| यं मे दत्तो ब्र | " " | १००३ |
| यं यं देवं त्व | भा. | १२८६ |
| यं वा नानालो | कौ. | १६८० |
| यं वा मन्त्रयो | " " | " " |
| यं वा रसस्य | " " | " " |
| यं विश्वे देवाः | वेदाः | ९९७ |
| यः कन्यां दर्श | मत्स्य. | १९७५ |
| यः कन्यां पूर्व | विष्णुः | १०२३ |
| यः कर्मकाले | वृम. | ८५५ |
| यः कश्चिद्ब्रह्म | बृह. | ७८५, |
| | | ८९६ |
| यः कुर्यात्तु ब | वृहा. | १६५३, |
| | | १८९१ |
| यः क्षितो मर्ष | मनुः | १७०२ |
| यः परः एवं | कौ. | १७७२ |

| | | |
|-------------------|----------|------------|
| यः पश्चिमः किं | बृह. | ७३४ |
| यः पुत्रो गुण | भा. | १३९१ |
| *यः पूर्वतर | वसि. | ७३२ |
| *यः प्रदत्तोऽपि | स्मृत्य. | १३७४ |
| यः सदारः स | भा. | १०२६ |
| यः साधयन्तं | मनुः | ७१८ |
| *यः साध्यमान | " | " |
| यः साहसं का | याज्ञ. | १६३३ |
| यः साहसं प्र | कौ. | १६१४ |
| *यः स्त्रीणासुप | कात्या. | ७१४ |
| *यः स्वकं साध | मनुः | ७१८ |
| " | नार. | ७२३ |
| यः स्वयं साध | मनुः | ७१८ |
| यः स्वामिनाऽन | " | ६४० |
| * " " " | भार. | ६६० |
| यः स्वामिनाऽभ्य | नार. | ६५० |
| *यः स्वार्थं साध | " | ७४८ |
| य आतृण्य | वसि. | १९७४ |
| य आस्ते यश्च | वेदाः | ९९८ |
| य इत्थं स्वां दु | " | १८४० |
| य उदाजर् | " | १९८० |
| य उदानङ्गव्य | " | ९०२ |
| य ऋते चिद | " | १००३ |
| य ऋतेन सू | " | १९८० |
| य एतावदि | कौ. | १६१४ |
| य एतेऽभिहि | मनुः | १३१४ |
| *य एते विहि | " | " |
| य एनं हन्ति | वेदाः | १४६४, १६०० |
| य एवं वेद | " | १००५ |
| य एव कश्चि | नार. | १९४० |
| *य एव तत्र | " | १९११ |
| *य एवात्युद | " | ९४७ |
| य एवानुद | " | " |
| यच्च पुत्रः पु | वेदाः | १२६२ |
| यच्च भर्त्रा ध | व्यासः | १४६० |
| यच्च यस्योप | नार. | १९३५ |
| यच्च सातिश्च | मनुः | ११८९ |
| *यच्च सोपाधि | कात्या. | १४५४ |
| *यच्च स्यात्परि | " | १७९१ |
| यच्चानुचित | बृह. | ८९६ |
| यच्चान्यद्रक्ष्यं | हारी. | १०१५ |
| यच्चापि कार्य | कात्या. | ७५३ |
| यच्चैषां वृत्त्यु | नार. | ८७० |
| *यच्चैषां प्रत्यु | " | " |
| द्रक्ष्यन्ते | विष्णुः | १९८३ |

| | | |
|-------------------|---------|------------|
| यच्छिष्टं पितु | नार. | १२२१ |
| *यच्छिष्टं प्रीति | " | " |
| यजतेऽहर | मनुः | १७०० |
| यजमानस्य | वेदाः | ९०२ |
| २ " " + | " | ९०३ |
| यजेत तेन | भा. | १२४४ |
| यजेत वाऽश्च | अग्निः | १३५२ |
| *यजेताहर | मनुः | १७०० |
| यजामयो य | वेदाः | १००३ |
| यजार् सन्तं | " | १००६, १८४० |
| यज्ञं क्षेत्रं च | लहा. | १९८८ |
| यज्ञश्चेत्प्रति | मनुः | १७२३ |
| यज्ञस्य काम्यः | वेदाः | १००६ |
| यज्ञस्य युक्तौ | " | १००७ |
| यज्ञादुपग | वसि. | ११२६ |
| यज्ञार्थं द्रव्य | शंखः | १३९०; |
| | कात्या. | १४५७ |
| *यज्ञार्थं विहि | " | " |
| *यज्ञार्थान्युप | मनुः | १७२० |
| यज्ञियस्य तु | स्कन्द. | १९६५ |
| यज्ञैस्तपोभि | भा. | १९७८ |
| यज्ञैस्तु देवा | " | १२८४ |
| यतः परि जा | वेदाः | ९७३ |
| यतः पातकि | ब्रह्म. | १११८ |
| यतः पुमांसः | भा. | १०३२ |
| यतन्ते रक्षि | मनुः | १०४६ |
| यतश्च भूता | भा. | १०३२ |
| यतश्चोत्तिष्ठे | कौ. | १५४३ |
| यतात्मा गर्भ | यमः | १११३ |
| यतिश्च ब्रह्म | प्रचे. | १११७ |
| यतेतां जात | कालि. | १३७७ |
| यतो द्रव्यं वि | बृह. | ७२५ |
| यतो यमस्य | बौधा. | १२७१ |
| यत्कन्याया वि | व्यासः | १४६० |
| यत्काम इद | वेदाः | ९९९ |
| यत्किञ्चित्कुर | कात्या. | ७१४; |
| | यमः | १९४३ |
| यत्किञ्चित्पति | भा. | १०२९ |
| यत्किञ्चित्पित | मनुः | १२१० |
| यत्किञ्चिदेव | " | ११९० |
| यत्कुमारी म | वेदाः | १०११ |
| यत्कुसीदम+ | " | ६०१ |
| " | " | ६०४ |
| यत्कुसीदमि | संप्र. | ७१६ |
| यत्कृष्णेन त | विष्णुः | १९८३ |

| | | |
|---------------------|------------------|-------|
| *यत्तत्संग्रह | बृह. | ११०६ |
| *यत्तस्याः स्याद् | मनुः | १४४० |
| *यत्तस्यै स्याद् | " | " |
| *यत्तु कार्यस्य | कात्या. | ८०५ |
| यत्तु तत्राधि | भार. | ६६० |
| *यत्तु परयेधि | मनुः | १९५७ |
| *यत्तुल्या पुत्रि | बृह. | १३४८ |
| *यत्तु सोपाधि | कात्या. | १४५४ |
| यत्ते पाणावि | वेदाः | १००६ |
| यत् ते प्रजा | " | १००३ |
| यत्तेषां वृत्त्यु | नार. | ८७० |
| यत्ते समाधि | मनुः | ८२२, |
| | १३९३, १९२८; नार. | ८३४, |
| | १४०२; भा. | १३९३ |
| यत्तैः प्राप्तं र | बृह. | ८७५ |
| *यत्त्वप्येकत | कात्या. | १४५८ |
| *यत्त्वसत्संज्ञि | " | १७९१ |
| यत्त्वस्याः स्याद् | मनुः | १४४० |
| *यत्त्वस्यै स्याद् | " | " |
| *यत्त्वैवं लिखि | बृह. | ८७३ |
| *यत्तैः प्राप्तं र | " | ८७५ |
| यत्पत्नयः | वेदाः | १००६ |
| यत्पराद्रव्य | कात्या. | १७६१ |
| यत्पराचीमु | वेदाः | ९०३ |
| यत्पुंसः पर | मनुः | १०५८; |
| | अगु. | १९७९ |
| *यत्पुननेय | कात्या. | १४५३ |
| यत्पुनर्लभ | " | १४५२ |
| यत्पैतृकं ध | बृहा. | १९८८ |
| *यत्पैत्र्यं स्याद् | मनुः | १४४० |
| *यत्प्रनष्टं मु | व्यासः | ९२० |
| यत्प्रनष्टं ह | " | " |
| *यत्प्रसह्य वृ | मनुः | ९०९; |
| | नार. | ९१६ |
| *यत्र कार्पासि | " | १७४७ |
| यत्र कचन | शंखः | १२८२; |
| | पैठी. | १३५६ |
| यत्र कचनो | विष्णुः | १२७९ |
| यत्र कचोत्पा | स्मृत्य. | १३७३ |
| यत्र तत्र स | भा. | १२४४ |
| यत्र तत्स्यात्क | मनुः | ७१९ |
| *यत्र तेऽभिहि | " | १३१४ |
| *यत्र दद्याद् | संप्र. | ७१५ |
| यत्र नार्यस्तु | मनुः | १०५२; |
| | बृह. | ११०६ |
| यत्र नोक्तो इ | उक्ता. | १७९३ |

| | |
|------------------|---------------|
| *यत्र परयेषि | याज्ञ. १८१४ |
| *यत्र प्रवर्त | मनुः १९५६ |
| *यत्र यद्वक्थ | ” १८०८ |
| यत्राणीं दाप्य | ” १३१९ |
| *यत्र वास्य भ | बृह. ७२५ |
| यत्र स्यात्परि | नार. ८८८ |
| यत्र स्वल्पोप | कात्या. १७९१ |
| यत्र ह क च | प्रजा. ९६२ |
| यत्र हिंसं स | वेदाः ११६३ |
| *यत्रातिवर्त | कात्या. ७१३ |
| *यत्राधिकं गृ | मनुः १८०८ |
| यत्रानुकूल्यं | बृह. ६५३ |
| *यत्रापरिवृ | याज्ञ. १०८७ |
| यत्रापवर्त | मनुः ९१० |
| *यत्रापि वर्त | ” १८०८ |
| यत्रार्थं साध | ” ” |
| | नार. ७४८५ |
| | व्यासः ७५६ |
| *यत्रार्थी दाप्य | बृह. ७२५ |
| *यत्रार्थे साध | नार. ७४८ |
| यत्राहितं गृ | बृह. ६५३ |
| यत्रैतमेवं | वेदाः ११६२ |
| यत्रैतल्लिखि | बृह. ८७३ |
| *यत्रैतल्लिखि | ” ” |
| *यत्रैता न प्र | मनुः १०५२ |
| यत्रैतास्तु न | ” ” ; |
| | बृह. ११०६ |
| | वेदाः ९६८ |
| अस्मीमारश्च | ” ९९६ |
| यत् सुपर्णा | ” ९९५ |
| यत्स्थालीं परा | ” १३८५ |
| यत्स्थालीं रिश्च | मनुः ६४० |
| *यत्स्वामिनाऽन | कात्या. ७८८ |
| *यथांशं कर्म | शंखः १२०७ |
| *यथांशं तु ल | आप. १६६५ |
| यथा कथा च | वेदाः ६००, |
| यथा कलां य | ६०१ |
| | याज्ञ. १०८१ |
| यथाकालम | नार. ८२६ |
| यथाकालमु | विष्णुः १७७१; |
| | शंखः ” |
| यथाकालोऽ | कात्या. १२२८ |
| यथा कुटुम्ब | आ. १०२९ |
| यथा कृत्वाय | वेदाः १८९८ |
| यथाऽहरो म | ” ९९७ |
| यथा गणाः प्र | भा. ८६१ |

| | |
|-------------------|--------------|
| *यथा गवोष्ट | मनुः १०७३ |
| यथा गावः स्थि | भा. १०२७, |
| | १२८५ |
| यथा गोऽश्वोष्ट | मनुः १०७३ |
| यथाङ्गं वर्ध | वेदाः ९९६ |
| यथा च ते न | भा. ८६१ |
| यथा च दाता | कौ. ७९४ |
| *यथां च पथि | कात्या. ८५४ |
| यथा जलं कु | बृह. १९८७ |
| यथा जायमा | वेदाः ९९४ |
| यथा ज्येष्ठः क | भा. १९८३ |
| यथा तव व | वेदाः ८४२ |
| *यथा ते न नि | व्यासः १७६४ |
| यथा ते नाति | ” ” |
| *यथात्मा गति | यमः १११३ |
| यथा त्वां प्राप्य | भा. ८६० |
| यथा दण्डग | मनुः १९६९ |
| यथा धने त | बृह. १५६८ |
| यथा नकुलो | वेदाः ९९७ |
| *यथा न बीजं | मनुः १०७१ |
| यथा नरेण | भा. १२४३ |
| यथा न सदृ | ” १२४४ |
| यथा नातिच | मनुः १०५५ |
| *यथा नाभिच | ” ” |
| यथा नियोग | संभ्र. ११९४ |
| यथापराधं | यमः १६५२; |
| | कौ. १६८९ |
| | ” १६१४ |
| यथापराध | बृह. १५१७ |
| यथा पितृघ | मनुः १२९५ |
| *यथा पुत्रः स्मृ | कात्या. १५७४ |
| *यथाप्राप्तं वि | मनुः १०७१ |
| यथा बीजं न | ” ” |
| यथाबीजं प्र | ” १०५४; |
| यथा ब्राह्मण | भा. १२४४ |
| | ” १०२९ |
| यथा भर्ता त | वेदाः ११५९ |
| यथा भवेम | शंखः १२०७ |
| यथाभागं भ | ” ” ; |
| *यथाभागं ल | हारी. १९८२ |
| | वेदाः १९०१ |
| | बृह. १२२२ |
| यथाभागं ह | ” ” |
| *यथाभागानु | मनुः ७६०; |
| यथाभिज्ञेन | कात्या. ७६७ |
| | वेदाः ९९७ |
| यथा भूमिर्मु | |

| | |
|-----------------|---------------|
| *यथा सृतिच | नार. ८५० |
| यथा मम क्र | वेदाः ९९६, |
| | ९९८ |
| यथा मम स्म | ” ९९७ |
| यथा मां कामि | ” ९९६ |
| यथायं वाहो | ” ” |
| यथा यथा तु | शुनी. ८५६ |
| *यथायथा भ | मनुः १८०५ |
| यथायथा म | ” ” ; |
| | कात्या. १८३४ |
| | ” १९८७ |
| यथा यथा वि | मनुः १९३० |
| यथा यमः प्रि | ” १७२५ |
| *यथा यशोऽस्य | शंखः १७७१ |
| यथारूपवि | हारी. १०१५ |
| यथार्थमव | याज्ञ. ९१२ |
| यथार्पितान् | मनुः १९२७ |
| यथार्हमेता | भा. ८६१ |
| यथावत्प्राप्ति | वेदाः ९९९ |
| यथावशो न | कौ. ८४३ |
| यथा वा कुश | ” १६८७ |
| यथा वा निक्षे | नार. ११३०; |
| यथाविधेन | विष्णुः १९८३ |
| | मनुः १०६९ |
| यथाविध्यधि | ” ” |
| *यथाविध्युप | ” ” |
| यथा वृक्षं लि | वेदाः ९९६ |
| यथा वृक्षम | ” १८१९ |
| *यथाशक्ति द्वि | कात्या. १४५४ |
| यथाशक्ति प्र | प्रजा. ७१५ |
| यथाशक्त्यनु | कात्या. १६५०; |
| | पैठी. १६५३ |
| यथाशक्त्या द्वि | कात्या. १४५४ |
| *यथाशक्त्यानु | ” १६५० |
| *यथाशब्दानु | ” ” |
| यथाश्रुति वि | आप. १९७३ |
| यथासंभाषि | कौ. ७३७, |
| | ८४३ |
| | वेदाः ९९९ |
| यथा संमन | भा. १०२९ |
| यथा स तुष्टः | बृह. १९१३ |
| यथासमयं | मनुः १९३० |
| यथा सर्वाणि | वेदाः १००० |
| यथा सिन्धुर्न | भा. १०३० |
| यथासुखं ष | वेदाः ९९६ |
| यथा सुपर्णाः | कौ. ९२६ |
| यथासेतुभे | वेदाः ९९७ |
| यथासो मम | |

| | | | | | |
|------------------|------------------------|-----------------|--------------|------------------|--------------|
| यथा स्तेनो य | वेदाः १६०३ | २ यदर्वाचीन+ | वेदाः १६०३ | यदासामौर | बृह. १४५० |
| यथा स्त्री तृप्य | ,, १००६ | यदक्षिणा पृ | ,, १००० | *यदा स्वग्रह | ,, ७२५ |
| यथाहमन | भा. १२८५ | यदस्याः पन्थु | ,, ८१२ | यदा हतः प्रा | सुम. १६५३ |
| यथाऽहमस्या | वेदाः १००६ | यदा कश्चित्प्र | बृह. १५५८ | *यदि कश्चिःप्र | बृह. १५५८ |
| यथा ह वै यो | ,, १००७ | यदा कश्चित्स | ,, ७८६ | यदि कार्यप्र | कात्या. ८०५ |
| यथा ह्यमौ स्थि | नार. १९४० | यदागमव | भा. १९८४ | *यदि कार्यस्य | ,, " |
| यथा ह्याहव | भा. १९८५ | यदा गार्हप | वेदाः १००२ | दि कुर्यात्स | याज्ञ. १४०८ |
| यथेदं भूम्या | वेदाः ९९६ | *यदा च कश्चि | नार. १९४० | *यदा च न स्यु | नार. ९४६ |
| यथेमे वावा | ,, " | यदा चतुर्गु | शुनी. ७३१ | *यदि चैकत | कात्या. १४५८ |
| यथेयमिन्द्र | ,, ९८३ | *यदा च न स | नार. ७०४ | यदि जिह्वा स | भा. १०३२ |
| यथेष्टं प्रभ | स्मृत्य. १११८ | *यदा च न स्यु | ,, ९४६ | *यदि तस्मिन् | श्रुम. १७६६ |
| यथेह पुरु | वेदाः १२५९; | यदा च पाथि | कात्या. ८५४ | यदि तेनोप | प्रजा. ९६२ |
| | शंखः १२८१ | *यदा चामौ स्थि | नार. १९४० | यदि त्वं प्रस्थि | वारा. १०७५ |
| यथैतदनु | बौधा. १९१९ | *यदा चेत्स द्वि | कात्या. १४५६ | *यदि त्वेकत | कात्या. १४५८ |
| यथैव ते न | वसि. १९७४ | यदातिथिगु | नार. १९३६ | *यदि दद्यात्स | याज्ञ. १४०८ |
| यथैवाङ्गिर | वेदाः १२६०, | यदा तत्र व | बृह. ७८६ | यदि देशे च | मनुः ९०८; |
| | १९८१ | यदा तु द्विगु | याज्ञ. ६४७ | | नार. ९१६ |
| यथैवात्मा त | भा. १२८६, | यदा तु न स | नार. ७०४ | यदि द्वौ ब्राह्म | विष्णुः १२४१ |
| | १४७३; मनुः १२९४, १४७४; | यदा तु न स्यु | ,, ९१३ | यदि धर्मार्था | वसि. १०२२ |
| | नार. १५१२ | यदा तु नैव | ,, १०१० | यदि नाम म | भा. १२८३ |
| यथैवाहं पि | भा. १२८४ | *यदा तु पथि | कात्या. ८५४ | यदि नैताः प्र | अनि. १९६९ |
| यथोक्तं वा | गौत. १८४३ | *यदा तु स्युर्न | नार. ९४६ | *यदि नोपलि | नार. ७०६ |
| यथोक्तदण्ड | मासो. १९७० | यदा तेजः स | ,, १९३६ | यदि नो लेख | ,, " |
| यथोक्तमर्तः | मनुः ८४५ | *यदात्र न स्यु | ,, ९४६ | यदिन्द्र पूर्वं | वेदाः ११५९ |
| यथोक्तन न | ,, ९३८ | यदा दत्ता भ | भा. १०२९ | यदि पुंसां ग | भा. १०३२ |
| यथोक्त मधु | वेदाः ९९७ | यदा दहति | अपु. १९७० | यदि प्रकर्ष | बृह. ६५२ |
| यथोक्तकम | ,, " | यदा दानं द्वि | ,, " | यदि प्रविष्टो | व्यासः ११११ |
| यथोपकारं | कौ. ९२९ | यदा दासी तु | ब्रह्म. ८४० | यदि ब्राह्मण | वसि. १२३९ |
| यदभिर्गाहं | वेदाः १००५ | यदादीध्ये न | वेदाः १८९४ | *यदि ब्राह्मणी | विष्णुः १२४१ |
| यददीव्यचू | ,, ६०३, | *यदा दुहित | नार. १५५४ | यदि मां दुःखि | वारा. १०७६ |
| | ६०४ | *यदा नियोग | संग्र. ११४ | यदि राजा न | नार. १९३६ |
| यदधीते य | मनुः १७०० | यदानीतं भ | व्यासः १४६० | यदि वा दाम्य | ,, १७५७ |
| यदन्तरं त | वेदाः ९९६ | *यदानितुं भ | ,, " | *यदि वादाव | कात्या. ७२९ |
| यदन्नं नाभि | भा. १०२८ | यदापिपेष | वेदाः ६०१, | *यदि वा दोष | नार. १७५७ |
| यदन्नमग्नि | वेदाः ६०६ | | ६०४ | *यदि वा नोप | ,, ७०६ |
| यदन्नमद्भ्य | ,, ६०२, | यदानोति प | भा. १०२६ | *यदि वा प्रति | मनुः १६२९ |
| | ६०६ | यदा प्रैष्यन्म | वेदाः १२६२ | यदि वासि ति | वेदाः ९९७ |
| यदन्यगोषु | मनुः १०७३ | यदा मूलमु | कात्या. ७६६ | यदि वाहम | ,, १८९३ |
| यदन्यस्य प्र | ,, १०४४ | यदा यमस्य | आप. १२६७ | यदि वै पुरु | ,, १०१० |
| *यदन्यस्याभ्य | ,, " | यदा रोगादि | ब्रह्म. ९२१ | यदि शक्या कु | भा. १०३३ |
| यदपत्वं भ | ,, १२९४ | यदा विद्वेषि | बृह. १९१४ | यदि शूद्रो ने | बृह. ९५१ |
| यदपत्वं म | भा. १२८३ | यदा वृत्राणि | वेदाः ८७८, | यदि संशय | मनुः ९३५ |
| यदयातं शु | वेदाः ९८२ | | ११२० | यदि संसाध | ,, ७९५ |
| *यदर्णादिषु | नार. ७३३ | *यदा सकुल्या | नार. ७०४ | *यदि स गोप | ब्रह्म. ९२१ |
| यदर्थं तन्न | भा. १०३३ | यदासन्वामु | वेदाः १००४ | यदि सत्यं त | भा. १२८३ |
| *यदर्थं दग्धि | बृह. ६७२ | यदा सर्वे त्र | भा. १२४४ | यदि सा बाल | ब्रह्म. १११६ |

| | | |
|-------------------|---------|------|
| यदि स्त्री यद्य | भा. | १९८४ |
| *यदि स्पृशति | नार. | १७५३ |
| यदि स्पृश्येत | " | " |
| यदि स्यादन्य | शौन. | १३६५ |
| *यदि स्याद्दुहि | नार. | १५५४ |
| यदि स्वं नैव | कात्या. | ७६७ |
| यदि स्वयं कृ | " | ६३१ |
| *यदि स्वाः स्वाव | मनु. | १०५४ |
| *यदि स्वाश्च प | " | १०५३ |
| यदि स्वाश्चाप | " | " |
| यदि हि स्त्री न | " | " |
| *यदि ह्यन्यत | कात्या. | १४५८ |
| यदि ह्यादाव | " | ७२९ |
| यदि ह्येकत | " | १४५८ |
| यद्गयास्थो द | वसि. | १९८२ |
| यद् गृहीतं | बृह. | ५०८ |
| *यद् ग्राहितं | " | " |
| यदीतरे प्र | हारी. | ११६३ |
| यदीदं मातु | वेदा. | ९९९ |
| यदी मातरौ | " | १२५४ |
| X " " | नि. | " |
| यदीमे केशि | वेदा. | १००३ |
| यदीयं दुहि | " | " |
| यदुनाहम | भा. | १३९१ |
| यदुर्ज्येष्ठस्त | " | " |
| यदुस्तुर्वश्व | वेदा. | ८१० |
| यदृच्छया च | नार. | ७८३ |
| यदृच्छया नै | " | १७५५ |
| यदृच्छाघाते | कौ. | १६१९ |
| यदुणादिषु | नार. | ७३३ |
| *यदेकदिव | वसि. | ६३६ |
| यदेकस्मिन् | वेदा. | ९९४ |
| यदेताः शता | " | १५९६ |
| *यदेव किं च | " | ६०६ |
| यदेव कुरु | नार. | १९३६ |
| *यदेव हि पि | मनु. | १३९६ |
| यदेवास्थ पि | " | " |
| यदत्तं तत्पा | कौ. | ८०८ |
| यदत्तं दुहि | सूत. | १४६३ |
| यदत्तं स्याद | नार. | ८०० |
| यदत्तं स्याद्प्रा | अनि. | १४६३ |
| यद् दुष्कृतं य | वेदा. | १००४ |
| यद् दृष्टं दत्त | कात्या. | ७०९ |
| यदेयं पितृ | " | " |
| यदेवामां च- | वेदा. | ६०६ |
| यदेवमृण | " | ६०१ |

| | | |
|-------------------|----------|--------------------|
| यद्द्रव्यं तत्स्व | कात्या. | ८०५ |
| *यद् द्रव्यं दीय | " | ८०४ |
| यद्वनं यज्ञ | मनु. | १७२७ |
| यद्वरिणो य- | वेदा. | १८३८ |
| यद्वस्ताभ्यां च | " | ६०१, |
| | | ६०२, ६०५, १९०२ |
| यद् धावसि | " | ९९७ |
| यद्ब्रूयात्तत् | भा. | १२८५ |
| यद् ब्रूयात् स | संव. | १८९१ |
| यद्भ्रूणहत्या- | वेदा. | १६०२ |
| यद्यत् कृष्णः | " | ८१२ |
| यद्यत्तदाऽस्य | कात्या. | ६५७ |
| यद्यदाचर्य | " | १९४२ |
| यद्यदिच्छति | भा. | १०२९ |
| यद्यदिष्टत | स्मृत्य. | १९७९ |
| यद्यद्द्याञ्जि | भा. | १०२९ |
| *यद्यद्यदास्य | कात्या. | ६५७ |
| यद्यन्यो गोषु | वसि. | १२७२ |
| यद्यपि बहुव्य | वेदा. | १००७ |
| यद्यपि स्यात्तु | मनु. | १२४८ |
| यद्यपि स्यात्प | शंख. | ११४८ |
| *यद्यपि स्यान्स | मनु. | १२४८ |
| *यद्यपि स्यान्न | " | " |
| *यद्यप्यस्य पि | बृह. | १२५१ |
| यद्यप्याचरि | भा. | १२८६ |
| यद्यप्येष भ | वारा. | १०७७ |
| यद्यप्येष स | भा. | १२४४ |
| यद्यप्येषां पि | बृह. | १२५१ |
| यद्यप्रकाशं | विष्णु. | ७५७ |
| यद्यर्थिता तु | मनु. | १३९४ |
| यद्यवर्यं तु | नार. | १९३९ |
| यद्यसमाप्त | हारी. | ११९५ |
| यद्यसौ दर्श | कात्या. | ६७३, |
| | | ६७४ |
| यद्यस्ति चेद् | भा. | १०२६, |
| | | १३९० |
| यद्यस्य पैतृ | मनु. | १३२२ |
| *यद्यस्य स्वपि | बृह. | १२५१; |
| | विष्णु. | १२८० |
| यद्याधर्मूल | नार. | ६४९ |
| *यद्यापदस्थो | हारी. | ११६३ |
| *यद्यासामौर | बृह. | १४५० |
| यद्युपदस्थे | हारी. | ११६३ |
| यद्येकः प्रमी | विष्णु. | ११८४ |
| यद्येकजाता | बृह. | १२३७, |
| | | १३४८; संप्र. १३८४; |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| यद्येकदिव | नार. | १५८३ |
| यद्येकपुत्रः | वसि. | ६३६ |
| यद्येकरिक्थि | शंख. | ११६६ |
| यद्येवं कृते | मनु. | १३२२ |
| यद्येव कृते | बौध्. | १३८५ |
| यद्येव प्रति | नार. | १७८४ |
| यद्येवः प्रति | वेदा. | ६०४ |
| यद्येवः प्रति | " | ८१२ |
| यद्येवः प्रति | मनु. | १६२९, |
| | | १९२९ |
| *यद्विभक्तं ध | बृह. | १५१८ |
| यद्विभक्ते ध | " | " |
| यद्विरूपाच | वेदा. | ९८९ |
| *यद्विपदेश | कात्या. | १६५० |
| यद्वि किं चानू | वेदा. | १२६२ |
| यज्ञः पिता सं | " | १२६१ |
| *यज्ञ भुक्तं भ | बृह. | ६५४ |
| यज्ञावि किञ्चि | मनु. | १९२७, |
| | | १९४६ |
| यज्ञियानं न्य | वेदा. | ९०२ |
| यज्ञिसष्टमु | कौ. | १६७८ |
| यन्मन्युर्जाया | वेदा. | १००० |
| यन्मे माता प्र | मनु. | १०५० |
| *यमयोश्चैक | " | १२३६ |
| यमयोश्चैव | " | " |
| *यमर्थं प्रति | विष्णु. | ६६२; |
| | नार. | ६७० |
| यमस्य माता | वेदा. | १००४ |
| यमस्य मा य | " | ९७७, |
| | | १८३६ |
| यमस्य यो म | " | १००४ |
| यमिन्द्राग्नी स्म | " | ९९७ |
| यमिन्द्राणी स्म | " | " |
| यमुद्दिश्य ल्य | बृका. | १८३५ |
| *यमेते ह्यति | नार. | १८२८. |
| यमेव तु भु | मनु. | १९७४ |
| *यमेव त्वति | नार. | १८२८ |
| यमेव विद्याः | वसि. | १९७४ |
| *यमेव व्यति | नार. | १८२८ |
| यमेव ह्यति | " | " |
| यमो ह जातो | वेदा. | ९६३ |
| यमो ह वा अ | " | ११२२ |
| यया दासान्या | " | ८१० |
| यया सपत्नी | " | ९९० |
| ययोर्निक्षिप्त | विष्णु. | ६३७ |
| यच्छब्धं दान | कात्या. | १२२० |

| | | | | | |
|------------------|--------------|---------------------|--------------|--------------------|--------------|
| *यल्लब्धं लभ | कात्या. १२२८ | यस्तयोः सन्त | मनुः १६२८ | यस्त्वा हृदेत्यृ | शौन. १३६४ |
| *यल्लब्धं लाभ | " " | *यस्तयोरन्त | विष्णुः १६११ | *यस्त्वेतान्युप | मनुः १७२० |
| यवश्च कृष्ण | अनि. १९६८ | यस्तयोश्चान्त | " " | *यस्त्वेवमुक्त्वा | याज्ञ. १६३३ |
| यवाः सप्त प्र | स्कन्द. १९६६ | यस्तल्पजः प्र | मनुः १३०४ | यस्त्वैश्वर्यान्न | मनुः १७०२ |
| यवयिसस्तु | मनुः १०६४ | यस्तस्याः पुत्रः | विष्णुः १२७९ | यस्मा ऋणं य | वेदाः ६०३३ |
| यवीयसो वा | नार. ११०१ | यस्तिष्ठेत् स | शंखः १६१३ | यस्मात्कुलध | १८४०, १९०३ |
| *यवीयसोऽथ | " " | *यस्तु कार्यस्य | कात्या. ८०५ | यस्मात्तदानृ | शंखः १२८२ |
| यवीयान् ज्येष्ठ | मनुः १३१६ | यस्तु तत्कार | मनुः १०५४ | यस्मात्तस्मात्सु | कात्या. १४५५ |
| *यवीयान् श्रेष्ठ | " " | यस्तु दद्याद् | संभ्र. ७१५ | यस्मात्तस्मात्त्रि | भा. १९८३ |
| यशः श्रीः श्रय | वेदाः १००६ | यस्तु दोषव | मनुः ८८२, | *यस्मात्सर्वेषु | याज्ञ. १०७९ |
| यशश्च धर्म | वारा. १०७७ | १०४१; नार. १०९७; | मत्स्य. १९७५ | यस्माददान्ता | बृह. ९५२ |
| यशस्यमिह | शुनी. १११९ | यस्तु न ग्राह | कात्या. ८३५ | यस्मादपहृ | अपु. १९७० |
| यशो गोषु प्र | वेदाः १००३ | *यस्तु पश्येन्न | मनुः १९५७ | *यस्माद्भर्ता प | चूम. १७६६ |
| यशो धर्मस्त | मासो. १९७० | यस्तु पाणिगृः | वासि. १९७७ | यस्माद्भर्ता प्र | कात्या. ८३७ |
| यशो यज्ञस्य | वेदाः १००६ | *यस्तु पूर्वं नि | मनुः १६३० | *यस्मिन्श्वेतप्रति | " " |
| यशोवित्तह | विष्णुः १६१२ | यस्तु पूर्वनि | " " | *यस्मिन् कर्म | वसि. १२७७ |
| यशोवृत्तह | कात्या. १६५० | १९२९; यमः १६५२ | " " | यस्मिन्काले य | मनुः ७७४ |
| यशोऽस्मिन् प्रा | मनुः १७२७ | यस्तु रज्जुं च | मनुः १७१८ | यस्मिन् देशे | संभ्र. ११४२ |
| यश्च नः सम | भा. ८६० | *यस्तु रज्जुध | " " | यस्मिन् देशे | देव. १९४२ |
| यश्च शुश्रूष | " ८१९ | यस्तु संचार | मत्स्य. १८९२ | यस्मिन्नुणं सं | मनुः ११९७, |
| *यश्च संचार | मत्स्य. १८९२ | *यस्तु संस्क्रिय | कात्या. ७५५ | " | १९८५ |
| *यश्च संश्रीय | कात्या. ७५५ | *यस्तु सर्व स | " ६५७ | यस्मिन्नेतत्कु | " १०५३ |
| *यश्च संस्क्रिय | " " | *यस्तु सर्वम | " " | *यस्मिन्नेव कु | " " |
| *यश्चांशहरः | विष्णुः १२८१ | यस्तु सर्वस्व | " " | यस्मिन् भावो | शंखः १०२४ |
| *यश्चाधि कर्म | कात्या. ६५५ | यस्तु साधार | बृह. ८७४ | यस्मिन् यस्मिन्कृ | मनुः ८८१ |
| यश्चानिक्षिप्तं | विष्णुः ७३५ | *यस्तु खराक्त्या | नार. ७८१ | यस्मिन् राष्ट्रे + | वेदाः १८४० |
| यश्चान्तरे ति | शंखः १६१३ | " " | शुनी. ७९० | यस्मिन् वीरो | " १००२ |
| यश्चापि धर्म | मनुः १६२९, | यस्तुत्तमव | विष्णुः ८१६ | यस्मै दद्यात्पि | मनुः १०५९ |
| | १६९८, १९२९ | यस्तेऽङ्कुशो व | वेदाः ९९९ | यस्य कर्मणि | अपु. १९७९ |
| *यश्चार्थ साध | नार. ७४८ | यस्तेन द्रुहो | वसि. १९७४ | *यस्य कस्य कु | मनुः ७७४ |
| यश्चार्थहरः | विष्णुः १२८१ | यस्त्यजेत्कामा | शंखः १६१३ | यस्य कस्य कु | विष्णुः ६७९ |
| *यश्चासन्नत | बृह. १५१८ | यस्त्वधर्मेण | आप. १३८७ | यस्य जातस्य | कात्या. ९५५ |
| यश्चेदं पाण्ड | भा. १०२८ | *यस्त्वनाकारि | मनुः १८५३ | यस्य जातस्य | देव. ११९४ |
| यश्चेतान्युष | मनुः १७२० | यस्त्वनाक्षरि | " " | यस्य तल्पज | विष्णुः १२७५ |
| यश्चेनान् द | कौ. १६१८ | *यस्त्वप्रजप्र | " १३०४ | *यस्य तु पूर्वं | वसि. १२७८ |
| *यश्चेवमुक्तो | याज्ञ. १६३३ | *यस्त्वसत्संज्ञ | कात्या. १७९१ | यस्य ते बीज | मनुः १३१४ |
| यश्चेवमुक्त्वा | " " | यस्त्वसत्संज्ञि | " " | यस्य त्रैवार्षि | नार. ७९९ |
| यश्चेषां स्वामि | नार. ८३१ | *यस्त्वस्याः पुत्रः | विष्णुः १२७९ | यस्य देहस्य | कात्या. १९४२ |
| यस्तत्र विप | याज्ञ. ८६७ | यस्त्वार्थि कर्म | कात्या. ६५५ | यस्य दोषेण | नार. ६७०५ |
| *यस्तत्र शीक | कात्या. ९५९ | *यस्त्वार्थिकर्म | " " | यस्य द्रव्येण | " ७३० |
| यस्तत्र संक | बृह. ९५४; | यस्त्वा भ्राता प | वेदाः ९९१, | यस्य नोपर | बृह. १५१३ |
| | कात्या. ९५९ | यस्त्वासन्नत | १८३७ | *यस्य नोपह | " " |
| *यस्तत्र संस | बृह. ९५४ | यस्त्वासन्नत | बृह. १५१८; | यस्य पुत्रः शु | हारी. १२६४ |
| यस्तत्स्वशक्या | नार. ७८१ | *यस्त्वा सन्न | नार. १७५४ | यस्य पूर्वेषां | वसि. १२७८, |
| *यस्तद्रुतं प्र | कात्या. ८३७ | यस्त्वा सन्न नि | वेदाः १८४० | | १३५० |
| *यस्तयोः सन्त | विष्णुः १६११ | | | | |

| | |
|---------------------|-------------|
| *यस्य प्रक्षुभ्य | मनुः १६९२ |
| *यस्य भुक्तिः फ | विष्णुः ६३७ |
| यस्य भुक्तिर्ज | " " |
| *यस्य भुक्तिर्ब | " " |
| *यस्य भुक्तिर्भु | " " |
| यस्य यत्पैतृ | " १२८० |
| * " " | मनुः १३२२ |
| यस्य राष्ट्रं न | यमः १८९० |
| यस्य वा प्रभुः | जैमि. ७९२ |
| *यस्य संस्क्रिय | कात्या. ७५५ |
| यस्य स्तेनः पु | मनुः १८६९ |
| *यस्य हिंसां स | कात्या. ७१३ |
| यस्य हि प्रजा | वेदाः १२६१ |
| यस्यां कामी भ | भा. १०२९ |
| यस्यां तोहित्र | " १९७१ |
| यस्यां स धर्म | हरि. १३७६ |
| *यस्यासु सुव | नार. १०९४ |
| यस्या त्रियेत | मनुः १०६९ |
| *यस्यार्थे न च | कात्या. ६७५ |
| यस्यार्थे येन | " " |
| यस्या वाक्यं वि | ब्रह्म. ८४० |
| यस्येदमप्यं | वेदाः ९८७ |
| यस्येह प्रथि | बृह. ११९३ |
| यस्यैतानि वि | दक्षः १११५ |
| *यस्यैते बीज | मनुः १३१४ |
| यस्यैव रेतो | वेदाः १०१० |
| यां कामयेत | " १००६ |
| यां प्रसह्य वृ | मनुः ९०९; |
| | नार. ९१६ |
| वेदाः १५९९ | |
| यां मलवद्वा | " १६०१ |
| यां मृतायानु | शंखः ८५९ |
| यां विनोपद् | वारा. १०७७ |
| यां घृतिं वर्त | नार. १७५५; |
| यांस्तत्र चोरा | मनुः १९५४ |
| | नार. १४०१ |
| याः पत्न्यो विध | " ९१६ |
| *याः प्रसह्य वृ | मनुः १४३७ |
| *याः स्युस्तासां दु | वेदाः ९९२ |
| याः इन्नयः सम | " १००१ |
| या अकृन्तन्न | " १८९९ |
| या अक्षेषु प्र | " ९३४ |
| या आपो दिव्या | " १००२ |
| या ओषधयो | मनुः १८६९ |
| *या कन्यां विप्र | सा. १९८६ |
| या कन्या कुहि | नार. ७०३ |
| *या काममाश्र | |

| | |
|-----------------------|--------------|
| या कौमारं भ | वसि. १२७३ |
| या गर्भिणी सं | बौधा. १२७०; |
| | मनुः १३०७ |
| या च क्लीबं प | वसि. १२७३ |
| याचनानन्त | व्यासः ७५६ |
| याचमानस्य | वारा. १३२९ |
| याचमानाय | बृह. ७०६ |
| *या च सप्रध | नार. ६९९ |
| याचितं स्वाम्य | बृह. ७५२ |
| याचितकाव | कौ. १९२२ |
| याचितमव | " ७३६ |
| *याचितस्त न | कात्या. ६३२ |
| *याचितानन्त | व्यासः ७५६ |
| याचितान्वाहि | वृहा. ७३२; |
| याज्ञ. ७४६; | व्यासः ७६८ |
| *याचितेऽधेकृ | कात्या. ७५४ |
| याचितोऽधेकृ | " " |
| याचित्वा प्रगृ | " ७५३ |
| *याच्यमानं न | " ६३२, |
| " " + | नार. ६९५ |
| " " | " ७३१; |
| | कात्या. ७५४ |
| याच्यमानम | नार. ६२७; |
| कात्या. ६३२, ६३३, ८९८ | |
| याच्यमानस्तु | नार. ७४८; |
| | व्यासः ७५६ |
| याच्यमाना न | बृह. ६३० |
| *याच्यमानेन | कात्या. ६३२, |
| | ६३३ |
| *याच्यमानो न | " ६३२ |
| " " | बृह. ७५१ |
| *याच्यमानोऽपि | नार. ७४८ |
| याजकाः स्वप्र | कौ. ७७२ |
| याजनाध्याप | " १६१६; |
| मनुः १६९७; नार. १९४० | |
| याज्ञवल्क्यो मै | वेदाः १४०५, |
| | १४२४ |
| याज्यं क्षेत्रं च | व्यासः १२३१; |
| | उशा. १२३२ |
| याज्यश्चैव त | शंखः ७७१ |
| यातयामानि | भा. ८१८ |
| यातश्चेदन्य | याज्ञ. ६४१ |
| या तस्य हुहि | शंखः १४७३; |
| या तस्य मनि | नार. १५५४ |
| | बृह. १५५८ |

| | |
|---------------------|--------------|
| या तु कन्यां प्र | मनुः १८६५ |
| *या तु काम्यप्र | कात्या. ८०५ |
| *या तु कार्यप्र | " " |
| *या तु कार्यस्य | " " |
| *या तु पत्या प | मनुः १३०८ |
| *या तु सप्तदि | नार. ७०० |
| या तु सप्रध | " ६९९ |
| *याथाकामी भ | याज्ञ. १०८१ |
| या दम्पति स | वेदाः ९७३ |
| यादवाः कुकु | भा. ८६० |
| या दुर्हादां यु | वेदाः १००२ |
| यादृग्गुणै | मनुः १०५१ |
| यादृच्छिकः सा | बृह. ६५० |
| *यादृच्छिकान् | नार. १७५५ |
| *यादृच्छिके तु | " ७८३ |
| यादृच्छिकेषु | " " |
| *यादृशां गुण | मनुः १३१६ |
| यादृशां तूप्य | " १०७० |
| यादृशां फल | " १३१६ |
| यादृशां भज | " १०४७ |
| यादृशास्य च | संप्र. ११४२ |
| *यादृशास्य य | " " |
| यादृशास्यो ह | वेदाः १०१० |
| *या देशवस्थि | नार. ६२५ |
| या न ऊरू उ | वेदाः ९८५ |
| *या नष्टाः पाल | नार. ९१७ |
| या नष्टा पाल | " " |
| यानस्य चैव | मनुः १८०७ |
| *यानस्यैव हि | " " |
| यानि कर्माण्य | कात्या. १८८७ |
| यानि चान्यान्वे | कालौ. १३५६ |
| यानि चैवं प्र | मनुः ९३४ |
| यानि दक्षिण | बौधा. १९१९ |
| या नियुक्ताऽन्य | मनुः १२९६ |
| यानुपाश्रित्य | " १९३० |
| यान्त्यायान्ति ज | बृह. ९५३ |
| *यान्त्यायान्त्यश्च | " " |
| यान्त्येव तुण | नार. ८५३ |
| या पातयित्वा | स्वल्प. १९८८ |
| या पतिं तोष | भा. १०३० |
| या पत्या वा प | मनुः १३०८ |
| *या पत्या संघ | " " |
| या पितृगृहे | वसि. १२७३ |
| *या पुत्रिणी सं | मनुः १३०८ |
| *या पुनः सघ | नार. ६९९ |
| या पूर्वं पति | वेदाः ९९५ |

| | | |
|-------------------|---------|------|
| या छहिनं शो | वेदाः | १९८ |
| *या ब्राह्मणी सु | वसि. | १०२१ |
| या ब्राह्मणी स्या | ” | ” ; |
| | यमः | १११३ |
| याभिः पत्नीर्नि | वेदाः | १६४ |
| याभिः सोमो मो | ” | १७९ |
| *यामयो यानि | मनुः | १०५३ |
| या मातुः कुरु | लहा. | ७३२ |
| यामाहुस्तार | वेदाः | १८३९ |
| *यामुत्पत्य वृ | मनुः | १०९ |
| यामुच्छत्य वृ | ” | ” ; |
| | नार. | ११६ |
| *यामुपेत्य वृ | मनुः | १०९; |
| | नार. | ११६ |
| या मे प्रियत | वेदाः | १००३ |
| यायैः परित्र | ” | १८९८ |
| *या राज्ञा काम | बृह. | १५२ |
| या राज्ञा क्रोध | ” | ” |
| या रोगिणी स्या | मनुः | १०५७ |
| *या रोहिणी स्या | ” | ” |
| यावच्च कन्या | वसि. | १०२१ |
| *यावच्चाग्नौ मृ | अङ्गि. | १११६ |
| *यावच्चेदाह | वसि. | १०२१ |
| यावज्जीवं न | कात्या. | १५२३ |
| यावज्जीवं स | यमः | १११३ |
| *यावज्जीवं हि | कात्या. | १५२३ |
| यावज्जीवति | वारा. | १०७५ |
| यावतीः कृत्या | वेदाः | १००३ |
| यावतीभ्यो ह | ” | ६०४ |
| यावती संभ | मनुः | ६८१ |
| *यावत्कृष्णा वि | बौधा. | १९२० |
| यावत्कृष्णोऽभि | वसि. | १९२१ |
| यावत्कृष्णो वि | बौधा. | १९२० |
| यावत्क्षीणद् | नार. | १७४८ |
| *यावत्तु कन्या | वसि. | १०२१ |
| यावत्प्रकर्षि | कात्या. | ६५९ |
| *यावत्यो विध | नार. | १४०१ |
| यावत्संजीव | ” | १४४९ |
| यावत्सस्यं वि | याज्ञ. | ११४; |
| | कात्या. | ११९ |
| यावत्स स्यात्स | मनुः | १९५१ |
| यावत्स्थितिप्र | हारी. | ६७८ |
| *यावत्स्यात्स स | मनुः | १९५१ |
| ” | अपु. | १९६२ |
| *यावद्दयात्त | कात्या. | ७२८ |
| *यावद्विरप्य | वेदाः | १५९६ |

| | | |
|------------------------|---------|------|
| यावद्विरप्य | कौ. | १६१४ |
| यावद्वा कृष्ण | वसि. | १९२१ |
| यावद्वा भागि | वेदाः | ११४४ |
| *यावन्तः कन्या | वसि. | १०२१ |
| यावन्तः पितृ | काष्णा. | १३५६ |
| यावन्तः पृथि | वेदाः | १२५९ |
| यावन्तश्चर्त | नार. | १०९६ |
| यावन्तो अष्टु | वेदाः | १२५९ |
| यावन्तो अस्मा | ” | १९९ |
| यावन्न दद्या | कात्या. | ७२८ |
| यावन्न पैतृ | ” | ७१० |
| यावन्नाग्नौ द | अङ्गि. | १११६ |
| यावर्भगाथ | वेदाः | १६४ |
| या वा अपुत्रान् | ” | १००८ |
| *या वा तद्रिकथ | नार. | ६९८ |
| *यावानध्वग | कात्या. | ८५४ |
| यावानध्वा ग | ” | ” |
| *यावाननुद | नार. | १४७ |
| या वा स्याद्वीर | कात्या. | ११०९ |
| *या वै ब्राह्मण | अङ्गि. | १११६ |
| या शश्वन्तमा | वेदाः | १२५८ |
| याश्च शश्वद् | भा. | १०३२ |
| याश्चानपत्याः | वसि. | १४०७ |
| यासां नाभिरा | वेदाः | १९६ |
| यासां स्त्रीणां प्रि | वारा. | १०७७ |
| *या सा तद्रिकथ | नार. | ६९८ |
| या सुपाणिः स्व | वेदाः | १९३ |
| या सुबाहुः स्वं | ” | १६९ |
| यास्तासां स्युर्दु | मनुः | १४३७ |
| या स्त्री ब्राह्मण | अङ्गि. | १११६ |
| या स्त्री योन्यङ्गु | शंखः | १८४८ |
| या स्यादनित्य | वसि. | १९७८ |
| *यास्त्वस्याः स्युर्दु | मनुः | १४३७ |
| *यास्त्वासां स्युर्दु | ” | ” |
| या स्वपुत्रं तु | कात्या. | ७११ |
| *युक्ता भव्याश्च | बृह. | ८७२ |
| युक्तियुक्तं च | कात्या. | ८७६ |
| *युक्तियुक्तं तु | ” | ” |
| *युक्तियुक्तं व | ” | ” |
| *युक्तिहेत्वर्थ | नार. | १८२९ |
| युक्त्या विभज | बृह. | १२२२ |
| *युक्त्योपदेश | कात्या. | १६५० |
| *युगक्रमाद् | बृह. | ११०९ |
| युग-हासाद् | ” | ” |
| युग्यस्थाः प्रज | मनुः | १८०९ |
| युजते धुरि | भा. | १९८३ |

| | | |
|-------------------|---------|-----------------|
| युद्धावहारि | भा. | १२४४ |
| युद्धोपदेश | कात्या. | १६५० |
| युद्धोपलब्धं | नार. | ११३१ |
| युधिष्ठिर उ | भा. | १४७३, |
| | | १९८३ |
| युधिष्ठिरो रा | ” | १९८४ |
| युनक्त सीरा | वेदाः | ९२३ |
| युवं ब्रह्मणे | ” | १००३ |
| युवं भगं सं | ” | १००० |
| युवं रथेन | ” | ९८० |
| युवं शर्चाभि | ” | ९६५ |
| युवं श्यावाय | ” | ” |
| युवं हवं व | ” | ९८० |
| युवत्यः पाप | वारा. | १०७६ |
| युष्मांश्च दायं | वेदाः | १२६१ |
| ये अन्ता याव | ” | १००३ |
| ये कार्यिकेभ्यो | मनुः | १६३२ |
| ये केसरप्रा | वेदाः | १४६४, |
| | | १६०० |
| *येऽक्षेत्रिका बी | मनुः | १०७३ |
| येऽक्षेत्रिणो बी | ” | ” |
| ये गन्धर्वा अ | वेदाः | १००२ |
| ये गर्भा अव | ” | १८३९ |
| ये च धान्यं द | विष्णुः | १६०९, |
| | | १६७१ |
| ये च विद्यार्था | आप. | १६६६ |
| ये चाकुलीना | विष्णुः | १६०९ |
| *ये चाज्ञकान् | बृह. | १७५९ |
| ये चास्य हत | कौ. | १६१६ |
| ये चिद्धि पूर्व | वेदाः | १६७ |
| ये जाता येऽपि | लहा. | १५६८ |
| ये जाता येऽप्य | व्यासः | १५८७ |
| *ये जातास्तु नि | नार. | १३४७ |
| ये त आसन् | वेदाः | ११६२ |
| *ये तत्र चोरा | मनुः | १९५५ |
| ये तत्र नोप | ” | १६९६, |
| | | १९२९; नार. १७५५ |
| *ये तत्र पूर्व | कात्या. | ९५६ |
| ये तत्र पूर्व | ” | ” |
| *ये तत्र सर्व | ” | ” |
| येदं पूर्वांग | वेदाः | १००४ |
| येन देवयानाः | ” | ६०२ |
| येन कृशं वा | ” | ९९६ |
| येन केनचि | मनुः | १८०१ |
| येन केनायु | गरु. | १३७६ |
| येन क्रीतं तु | बृह. | ७६४ |

| | |
|--------------------|-------------------|
| *येन गृहीतः | विष्णुः १२७९ |
| *येन चेषां य | वसि. १२०५ |
| *येन येषां स | " " |
| येन चेषां स्व | " " |
| *येन तेषां य | " " |
| येन देवा न | वेदाः ८५८, १९८ |
| येन दोषेण | कात्या. १७६२ |
| *येन भुक्तं त | बृह. ६५४ |
| येन भुक्तं भ | वसि. ६३६; |
| | बृह. ६५४ |
| येन मूलह | मनुः १८५६ |
| येन शृतं क | वेदाः १६०१ |
| येन यत्र य | बृह. ७०६ |
| येन यत्साध्य | मनुः १९३० |
| *येन यावत्त | बृह. १५३ |
| येन यावद्य | " १५२ |
| येन येन प | कात्या. १७६१ |
| येन येन य | मनुः १७२०; |
| | नार. १७४९ |
| *येन येनाङ्गे | शंख. १८४७ |
| *येन येनाव | नार. १८२८ |
| *येन येषां य | वसि. १२०५ |
| ये नवासंस्ता | वेदाः १५७० |
| येन वेमैर्वि | स्कन्द. १९६६ |
| *येन येषां स्व | वसि. १२०५ |
| येन स काम | शुनी. १९८८ |
| येन सूर्यो स | वेदाः ९९९ |
| येनांशो याह | बृह. १५८४ |
| येनाभिरस्था | वेदाः १००१ |
| येनाङ्गन द्वि | बृह. १८३१ |
| *येनाङ्गेनाव | मनुः १८०१ |
| " " | नार. १८२८ |
| येनात्यन्तं भ | कात्या. १८३३ |
| येन निचक्र | वेदाः ९९७ |
| येनाहृतः स | कौ. १६१६ |
| ये नित्या भाक्ति | आप. ८१६ |
| ये निष्कृताः स्व | अपु. १६५४ |
| *येनियुक्तास्तु | मनुः १६३२ |
| ये नियुक्तास्तु | " " |
| येनेमा विश्वा | वेदाः ८०९ |
| ये नो शुभे थ | " १९०२ |
| येऽप्ये ज्येष्ठक | मनुः ११८९ |
| ये पितरो व | वेदाः १००४ |
| येऽपुत्राः क्षत्र | बृह. १५१८ |
| *येऽपुत्राः ब्रह्म | " " |

| | |
|--------------------|--------------|
| *येऽप्येकजाता | बृह. १३४८ |
| *ये कालकार् | " १७५९ |
| ये बृहत्सामा | वेदाः १६०० |
| ये ब्राह्मणं प्र | " " |
| ये ब्राह्मणाणि | " १५९७, |
| | १६०१, १६०३ |
| येभिः पात्रैः प | " ९९९, |
| | १६०१ |
| ये भूतस्य प्र | " १००३ |
| ये मर्त्यं प्रत | " ५९९ |
| ये मानं मेऽनु | " १२६१ |
| ये यज्ञेन द | " १९८० |
| *ये यज्ञ पूर्व | कात्या. ९५७ |
| ये राष्ट्राधिकृ | याज्ञ. १६३९, |
| | १९३२ |
| *ये राष्ट्रेऽधिकृ | " १६३९ |
| ये वध्वश्चन्द्र | वेदाः ९८४, |
| | १००२ |
| *ये वा कुलीना | विष्णुः १६०९ |
| ये वै चत्वारः | वेदाः १८९८ |
| *ये वै समाः स्युः | बृह. ७८६ |
| ये व्यर्था द्रव्य | आप. १६६७ |
| *येषां च न कृ | नार. १५८४ |
| येषां ज्येष्ठः क | मनुः १५४३ |
| येषां तु न कृ | नार. १५८४ |
| येषां देयः प | विष्णुः १६०९ |
| *येषां द्विधा क्रि | नार. १५८० |
| *येषां वै न कृ | " १५८४ |
| *येषां सवर्णा | देव. १३५१ |
| येषामेताः क्रि | नार. १५८० |
| येषु देशेषु+ | देव. १९४२ |
| येषु स्थानेषु | " " |
| *ये समाः स्युस्तु | बृह. ७८६ |
| ये सामानास्तु | " " |
| ये सहस्रम | वेदाः १४६४, |
| | १६०० |
| ये सूर्यात् प | " ९९९ |
| ये स्वा न संजा | " ८५८ |
| येः कृतः सर्व | मनुः १९३० |
| येऽयैरुपायै | " ७१६ |
| येषु प्रथमा | वेदाः १००८ |
| *यैश्च संस्क्रिय | कात्या. ७५५ |
| *यैश्चित्संस्क्रिय | " " |
| यैस्तु संस्क्रिय | " " |
| योऽन्नमां वृष | मनुः १८६६; |
| | नार. १६८३ |

| | |
|---------------------|--------------|
| *योऽकामां दूष | मत्स्य. १८९२ |
| *योगः पूर्तं क्षे | लौगा. १२३३ |
| *योगक्षेमं प्र | विष्णुः १२०६ |
| " " | मनुः १२०९; |
| | हारी. १९८२ |
| योगक्षेमप्र | विष्णुः १२०६ |
| * " " | मनुः १२०९ |
| योगक्षेमव | बृह. १२२३ |
| *योगक्षेमन्य | मनुः १०७ |
| *योगक्षेमाव | " " |
| योगक्षेमोऽन्य | " " |
| *योगक्षेमोऽन्य | " " |
| यो गच्छेत्पर | बृह. १८९१ |
| योऽगुणात् की | कात्या. १७९१ |
| यो गृहीत्वा ऋ | विष्णुः ६१० |
| योऽग्नि चित्त्वान्य | वेदाः ९९५ |
| यो ब्रामदेश | मनुः ८६४ |
| योजं पञ्चौद | वेदाः १००० |
| योजनाद्द्वि | मार्क. ९६२ |
| यो ज्येष्ठो ज्येष्ठ | मनुः ११९८ |
| यो ज्येष्ठो विनि | " १३९७ |
| *यो ज्येष्ठो हि नि | " " |
| *योत्सृष्टा राज | बृह. ९५१ |
| योऽदत्तादायि | मनुः १६९७ |
| यो ददाति स | दक्षः ८०७ |
| यो दर्शनप्र | कात्या. ७२८ |
| *यो दास्यं कार | मनुः ८२० |
| यो देवकामो | वेदाः १९०० |
| *यो धनं आद् | विष्णुः १२८१ |
| यो धर्मः कर्म | नार. ८७० |
| यो धर्म एक | मनुः १०६२; |
| | यमः १११३ |
| यो न आगो | वेदाः १५९३ |
| यो नरस्वज | भा. १०३१ |
| *यो न हन्याद् | बृह. १६४८ |
| यो न हन्याद् | " " |
| *यो नार्पयति | मनुः ७४३ |
| " " | मत्स्य. ७५६ |
| योऽन्नाहिताग्निः | मनुः १७२५ |
| यो निक्षेपं घ्न | अपु. १९७१ |
| यो निक्षेपं ना | मनुः ७४३; |
| | नार. ७४९ |
| * " " | मत्स्य. ७५६ |
| यो निक्षेपं या | मनुः ७४२ |
| योनिमात्राद्वा | गौत. १०१३ |
| योनिस्त्विव | भा. १०३१ |

| | | | | | | | | |
|------------------|-----------|---------------|------------------|---------|-----------------|------------------|---------|-------|
| योनेरिव प्र | वेदाः ६०५ | यो वा तद्विषय | नार. | ६९८ | रक्षितारं न | भा. | १०३२ | |
| *योऽन्यहस्ते तु | नार. | ८८८ | यो वा बुभूषे | वेदाः | १००५ | रक्षेत शय्यां | नार. | १५११ |
| *योऽन्या इव प्र | " " | " " | यो विद्यमानं | कात्या. | ६५७ | रक्षेत्कन्यां पि | शाङ्ग. | १०८३ |
| योऽपत्नीकः | वेदाः | १००६ | यो वै ब्राह्मणं | वेदाः | ८१४ | रक्षेद्राजा वा | शंखः | १९५० |
| यो ब्राह्मणे चि | " | १००३ | यो वै भागिनं | " | १५७० | रक्षेद्वा कृत | बृह. | ७२६ |
| यो ब्राह्मणं दे | " | १६०० | यो वैश्यः स्नाह | मनुः | १७२३ | रक्षोभये र | कौ. | १९२५ |
| यो ब्राह्मणं म | " | १४६४, | *यो वैशां स्वामि | नार. | ८३१ | रक्ष्यं बालघ | गौत. | १९४८ |
| | | १६०० | Xयोषा यौते: | नि. | १२५७ | रक्ष्यमाणोऽपि | नार. | ६५० |
| यो ब्राह्मणस्य | " | १४६४, | योषा वै सिनी | वेदाः | १००८ | रक्ष्याश्चैवान्य | भा. | १०३० |
| | | १६०० | योषितो नित्य | शुनी. | १११९ | रक्ष्ये चात ऊ | आप. | १८४४ |
| यो ब्राह्मण्याम | मनुः | १८५९ | योषिद्ग्राहः सु | कात्या. | ७१० | रजकाः काष्ठ | कौ. | १६७४ |
| यो भाटयित्वा | वृम. | ८५५ | योषेव शिक्ते | वेदाः | ९७३ | रजकंस्तुष | " " | " " |
| यो भुङ्क्ते पर | बृह. | ८३४ | योऽसाधुभ्योऽर्थ | मनुः | १७२६ | रजसो दर्श | शुनी. | १११९ |
| यो भुङ्क्ते बन्ध | " | ९५१ | यो हास्यापि प्र | वेदाः | १६०२ | रजस्वलां वि | विष्णुः | १६१० |
| यो मनुष्यः ख | भा. | १२८६ | यो हिंसार्थम | आप. | १६०५ | रजस्वलां सू | बृह. | ११०६ |
| यो मन्येताजि | याज्ञ. | १९३३; | यो हि प्रश्नं न | भा. | १९६३ | रजस्वला पुं | हारी. | १०१६ |
| | अपु. | १९६९ | *यो हि याचित | मत्स्य. | ७५६ | रज्जुः कार्पासि | नार. | १९३८ |
| यो मोहादध | मनुः | १६२९ | *यो ह्यासन्नत | बृह. | १५१८ | रज्जुना राज | कौ. | १६१६ |
| योऽयं देवः प | वेदाः | १८४० | यौतकं मातुः | विष्णुः | १४२८ | रज्जुशस्त्रावि | " " | " " |
| यो यत आद | विष्णुः | १२८१ | यौवने वर्त | भा. | १०३२ | रज्जयन् प्र | भा. | १९८६ |
| यो यत्र विहि | देव. | १९४२ | *योषियं चोत्त | बृह. | १६४६ | रतिं प्रीतिं च | " " | " " |
| यो यथा निक्षि | मनुः | ७३९; | रक्तचन्दन | स्कन्द. | १९६६ | *रत्नं भूर्दास | भार. | ७३१ |
| | नार. | ७४७ | रक्तमाल्याम्ब | नार. | ९४५; | रत्नसारफ | कौ. | १६१४ |
| यो यदङ्गं च | अपु. | १८३५ | रक्तमेकं वि | बृह. | ९५१ | *रत्नावां चैव | मनुः | १७११, |
| *यो यस्य आद | विष्णुः | १२८१ | रक्तमगवस | दक्षः | १११४ | " " | १७१६ | |
| यो यस्य प्रति | मनुः | ६६२; | रक्तागमांस्त्री | याज्ञ. | ९४० | रत्नापहार | नार. | १७५० |
| | पिता. | ६७६ | रक्तागमान् | कात्या. | ११०९ | रत्नापहार्यु | कौ. | १६७५ |
| यो यस्य हर | नार. | ७०४ | *रक्षणं वर्ध | शंखः | १०२४ | रत्नार्थमेव | विष्णुः | १६७० |
| *यो यस्य हिंसा | मनुः | १८०६ | रक्षणानु भ | नार. | ११२९ | रत्नं हरेत | " " | १०२३ |
| *यो यस्याथमा | विष्णुः | १२८१ | *रक्षणानु भ | गौत. | १२६३ | *रत्नं हरेद | मनुः | ७७५ |
| यो याचितक | कात्या. | ६३३, | *रक्षणादर्थ | " " | " " | रत्नं पितुः प | " " | " " |
| ७५४; | मत्स्य. | ७५६ | रक्षणादर्थ | मनुः | १९५७ | रत्नजितां रा | आप. | ११६५ |
| यो यावत्कुरु | याज्ञ. | ८४८ | रक्षन्ति वार्ध | " | १६९२, | रत्नैरिव प्र | वेदाः | ९९७ |
| यो यावद्विप | अपु. | १९६८ | *रक्षन्ति शय | " | १९२९ | रत्नैरिव प्र | " " | १९०० |
| यो यो यथेव | स्कन्द. | १९६५ | रक्षन्ति शय्यां | नार. | १०९९, | रत्नणीयम | भा. | १०३० |
| यो यो वर्णोऽव | नार. | १९३५ | रक्षन्ति शय्यां | १५५५ | रत्नं च पुत्रां | वेदाः | ९८५, | |
| *यो यो ह्यनन्त | मनुः | १४७६ | रक्षन्ति शय्यां | शंखः | १४७३ | रत्नं यः पि | १००१ | |
| योऽरक्षन् ब | " | १७०१ | रक्षन्ति शय्यां | " " | " " | रत्न्या सहस्र | " " | ११५८ |
| यो राजसर्ष | अग्नि. | १९६८ | रक्षन्ति स्यावि | नार. | १५५३ | रत्न्या सहस्र | " " | ९९९ |
| यो राज्ञः प्रति | नार. | १९३९ | रक्षन् धर्म | मनुः | १०४५ | रत्न्या सहस्र | नार. | ६२६ |
| यो लोभादध | मनुः | १६२९ | *रक्षमाणोऽपि | " | १७०० | रत्न्या सहस्र | वसि. | ६०९ |
| *यो लोभाद्विनि | " | १३९७ | रक्षया स हि | नार. | ६५० | रत्न्या सहस्र | वेदाः | १००३ |
| यो वः सेनानी | वेदाः | १८९५ | रक्षार्थीधिकृ | भा. | १९७६ | रत्न्या सहस्र | कौ. | ७३७ |
| यो वर्णः पोष | भा. | १२८७ | रक्षिता यत्न | नार. | १९३६ | रत्न्या सहस्र | भा. | १०३१ |
| यो वाऽऽगतश्रीः | वेदाः | १००५ | | अपु. | १६५४ | रत्न्या सहस्र | " " | १०२८ |
| *यो वा तद्विषय | नार. | ६९८ | | मनुः | १०४८ | रत्न्या सहस्र | " " | १०२६ |

| | | |
|-------------------|---------|------------|
| रहोजितोऽन्व | बृह. | १९१३ |
| रहोदत्ते नि | " | ७५१ |
| राक्षसमहं सु | वेदाः | १५९५ |
| राक्षसपैशा | कौ. | १४३० |
| राक्षसोऽनन्त | नार. | १०९८ |
| *राक्षसोऽनव | " | " |
| राजकार्यनि | कात्या. | ६७२ |
| *राजकोषाप | मनुः | १६९८ |
| राजक्रीडासु | कात्या. | १६४९, |
| | | १९४२ |
| राजगामि तु | हारी. | ६६१ |
| राजगामी नि | नार. | १९६१ |
| *राजगृहगृ | " | ९१८ |
| *राजग्रहगृ | " | " |
| राजग्राहगृ | " | " |
| राजग्राह्यं च | लहा. | ६७७ |
| राजचौराग्न्यु | कौ. | ८७८ |
| *राजचौराद् | बृह. | ७५० |
| राजचौरारा | " | " |
| राजदुष्टानि | यमः | १६५२ |
| *राजदेवोप | याज्ञ. | ८८४ |
| *राजदेवक | बृह. | ६५१ |
| *राजदेवकृ | नार. | ७४८ |
| *राजदेवभ | बृह. | ७८५ |
| राजदेविक | श्रुव. | ६७७ |
| * " " | कात्या. | ७५३ |
| *राजदेवोप | बृह. | ६५१; |
| | कात्या. | ६५८ |
| " " | याज्ञ. | ८८४ |
| राजद्रोहाभि | स्कन्द. | १९६५ |
| राजद्विष्टाति | कौ. | १०३७, |
| | | १३९२, १४३१ |
| *राजद्विष्टानि | यमः | १६५२ |
| *राजधर्माश्च | कात्या. | १९४२ |
| राजधर्मान् | " | १९४१ |
| राजनि ग्रह | नार. | १८२९ |
| *राजनिर्धूत | मनुः | १७०४ |
| *राजनिषिद्ध | विष्णुः | १६११ |
| *राजनि स्थापि | याज्ञ. | १७३१ |
| राजनि स्थाप्य | " | " |
| राजन्यबन्ध | वेदाः | १००९ |
| राजन्ययोग | कौ. | ६११ |
| राजन्यवैश्य | कात्या. | ८३६; |
| | मनुः | १७७४ |
| राजन्यवैश्वौ | विष्णुः | १८४६ |
| राजन्यश्रेद् ब्रा | वसिः | १८४५ |

| | | |
|-----------------|----------|-----------------|
| राजन्यावैश्या | गौत. | १२३९ |
| राजन्विशेषो | भा. | १२४४ |
| राजपत्न्यभि | याज्ञ. | १६३९ |
| *राजपालगृ | नार. | ९१८ |
| राजपुत्रा इ | भा. | ८१९ |
| राजपुत्राप | शंखः | १६७१ |
| राजपुरुषं | कौ. | १०३९ |
| *राजप्रख्यात | मनुः | १७०६ |
| *राजप्रवर्ति | कात्या. | ८७६ |
| राजप्रसाद | बृह. | ८७५ |
| राजप्रसादा | नार. | ९४९ |
| *राजभिः कृत | मनुः | १७०४ |
| *राजभिः स्थापि | याज्ञ. | १७३१ |
| राजभिर्धृत | वसिः | १६६८; |
| | मनुः | १७०४; नार. १७५१ |
| राजयक्षमाम | स्मृत्य. | १११८ |
| *राजयानस | याज्ञ. | १६३७ |
| राजयानास | " | " |
| | | १९३३ |
| राजविनिषि | विष्णुः | १६११ |
| राजवृद्धिः स | बृह. | १९१३ |
| राजशब्दिभि | कौ. | ८६३ |
| *राजशय्यास | याज्ञ. | १६३७ |
| राजशासन | नार. | ९४४ |
| राजा कृत्वा पु | याज्ञ. | ८६५ |
| राजाक्रोशक | कौ. | १६१९ |
| राजा क्षेत्रं द | बृह. | ९४९ |
| राजा गवाभि | अपु. | १६५४ |
| राजाग्निबान्ध | ब्रह्म. | १३७४ |
| राजा च जाज्ञ | विष्णुः | १९२१ |
| राजा च प्रजा | " | १६७१ |
| *राजा चातुशि | वसिः | १९२० |
| राजा ततः स्पृ | नार. | १७५१ |
| राजा तदात्म | " | ७८२, |
| | | १९६१ |
| राजा तदुप | मनुः | १९५७ |
| राजा तु धर्म | वसिः | १९२० |
| *राजा तु स्वामि | कात्या. | ७२७ |
| राजा त्ववाहि | नार. | १९३५ |
| राजा दण्डध | भा. | १२४४ |
| राजाददीत | बृह. | १९६१ |
| *राजा दाप्यः सु | मनुः | ७९५ |
| राजा देशादि | कौ. | ८६२ |
| राजादेशेन | कात्या. | १८८८ |
| राजाधिदेही | हरि. | १३७६ |
| राजानं च्छा | भा. | ८१९ |

| | | |
|---------------------|---------|------------|
| राजानं तत्स्पृ | नार. | १७५१ |
| राजानं स्वामि | कात्या. | ७२७ |
| राजानः सत्यं | वेदाः | १८३९ |
| *राजानमथ | नार. | ९४७ |
| राजानमाम | " | " |
| राजानश्चेन्ना | " | १९३६ |
| राजा नाम च | " | " |
| राजानुमत | वसिः | ६१० |
| *राजान्तकर | मनुः | १९०५ |
| *राजान्तकारि | " | " |
| राजा पुरोहि | आप. | १९१८ |
| राजा पृथक्पृ | अपु. | १७६६ |
| *राजा भाण्डं तु | नार. | ७८२ |
| राजार्यमोष | कात्या. | १६४९ |
| *राजा लब्धनि | याज्ञ. | १९६० |
| राजा लब्ध्वा नि | " | " |
| राजा विनिर्ण | मनुः | ७४४ |
| *राजा वेदवि | बृह. | ८७२ |
| राजा संग्रामं | वेदाः | ११२२ |
| राजा संदाप | शुनी. | ७३१ |
| राजा सर्वस्ये | गौत. | १९१६ |
| राजा साहसि | बृह. | १७६० |
| राजा स्तेनेन | मनुः | १७०२; |
| | नार. | १७५१ |
| राजाऽस्य भाण्डं | " | ७८२ |
| *राजा हत्वा पु | याज्ञ. | ८६५ |
| राजेतरेषा | गौत. | १४६५ |
| राजेव हि ज | वेदाः | ९७३ |
| राज्जुदाल्म | " | १६०२ |
| राज्ञः कोषाप | मत्स्य. | १६५५, |
| | | १६९८, १९२९ |
| राज्ञः परैः प | भा. | ८६० |
| राज्ञः प्रख्यात | मनुः | १७०६, |
| | | १९२७ |
| राज्ञ एव तु | नार. | ८३१ |
| *राज्ञ एव स | " | " |
| *राज्ञ एव हि | " | " |
| राज्ञश्च द्विगु | मत्स्य. | ८५५ |
| राज्ञश्च प्रकृ | कौ. | १६१८ |
| राज्ञस्ततः स | कात्या. | ६५६ |
| *राज्ञस्त्वृणः स | " | " |
| राज्ञां तु शाप | ब्रह्म. | १३७४ |
| राज्ञा च. पण | विष्णुः | ८७८, |
| | | १६११ |
| *राज्ञा चापि प | " | ८७८ |
| *राज्ञा ज्ञात्वा नि | बृह. | ८७४ |

| | | | | | | | | |
|-------------------|---------|-------|----------------------|---------|-------|--------------------|---------|-------|
| *राज्ञा ततः स | कात्या. | ६५६ | राज्ञो वृत्तानि | मनुः | १९३३ | रिक्थिन ऋणं | गौत. | ६७७ |
| राज्ञा तदकृ | " | ८३८ | राज्ञो हि रक्षा | " | १९३० | *रिक्थे पिण्डाम्बु | बृह. | १३४८ |
| *राज्ञा तु पण | विष्णुः | ८७८ | राज्यकामुक | कौ. | १६३१ | Xरिच्यते प्रय | नि. | १२५३ |
| राज्ञा तु विनि | बृह. | ८७४ | राज्यमप्राप्त | भा. | १९८४ | रिरिचान इ | वेदाः | ७९१ |
| *राज्ञा ते विनि | " | " | राज्यस्थैर्येनि | मासो. | १९५० | रुक्मप्रस्तर | " | १००२ |
| राज्ञा दत्ताऽथ | भा. | १९८६ | *राज्यस्यान्तक | मनुः | १९०५ | रुद्रस्य हेतिः+ | " | ९०३ |
| राज्ञा दापयि | नार. | ७२४; | राज्यान्तकर | " | " | रुद्रादेवैना | " | " |
| थमः ७३०; बृह. | मनुः | ८५३ | *राज्यान्तकारि | " | " | रूपं कुलं य | भा. | १०३० |
| राज्ञा दाप्यः सु | " | ७९५ | रात्रिसंचारि | नार. | १७५४ | रूपदेशक | कौ. | १६७५ |
| राज्ञा दास्ये नि | " | १८६६ | रात्रीभिरस्मा | वेदाः | ९७७, | रूपव्याख्याव | " | १६१४ |
| *राज्ञा देशाद्भि | कात्या. | १८८८ | | १८३६ | | रूपसंख्यादि | बृह. | ७२७ |
| राज्ञाऽधमर्णि | याज्ञ. | ७२२ | *रात्रौ चरतां | शंखः | ९०५ | रूपजीवायाः | कौ. | १८५० |
| राज्ञाऽन्यायेन | " | १९३३ | रात्रौ चरन्ती | " | " | रूपभिग्रह | " | १६८३ |
| राज्ञा परीक्ष्य | नार. | ११०६ | रात्रौ द्विगुणः | कौ. | १०३६ | रूप्यं पञ्चगु | पिता. | ६३४ |
| *राज्ञा प्रख्यात | मनुः | १७०६ | रात्रौ निष्कास | " | " | रूप्यधरणा | कौ. | १६७४ |
| *राज्ञा प्रतिष्ठि | कात्या. | ८७६ | रथा वयं सु | वेदाः | १००३ | रूप्यमानेन | अनि. | १९६८ |
| राज्ञा प्रवर्ति | " | " | राष्ट्रादेनं व | मनुः | १८५८ | Xरेकण इति ध | नि. | १२५३ |
| | नार. | १९३५ | *राष्ट्रान्तकर | " | १९०५ | रेतजं विद्य | भा. | १२८७ |
| राज्ञामाज्ञाप्र | " | १९३३ | राष्ट्रान्तरेषु | कात्या. | ८९८ | रेतजो वा भ | " | " |
| राज्ञामाज्ञाभ | " | १९३६ | *राष्ट्रे पुरे वा | मनुः | १६९८ | रेतोधाः पुत्रं | आप. | १२६७; |
| राज्ञामुपरि | कौ. | ७९४ | *राष्ट्रेषु रक्षा | " | १६३१ | बौधा. | १२७१ | |
| *राज्ञामेव तु | नार. | ८३१ | " | " | १६९८, | भा. | १२८८, | |
| *राज्ञा मोक्षयि | " | ८३३ | " | " | १९२९ | १९८५ | १०९४ | |
| राज्ञा मोचयि | " | " | *राष्ट्रेषु राष्ट्रा | " | १६९८ | रेष्मच्छिन्नं व | वेदाः | ९९६ |
| राज्ञा राजान | वेदाः | ११४३ | " | नार. | १७५६ | रैभ्यासीदनु | " | ८११, |
| राज्ञा वा सम | भा. | ८१८ | " | शंखः | १२८३ | १००० | १७५९ | |
| *राज्ञा विवृत्य | नार. | ७२४ | रासभोऽधिको | मनुः | १९२७, | १९४५ | " | " |
| *राज्ञा संस्थाप्य | याज्ञ. | १७३१ | रिक्तभाण्डानि | १९४५ | १९४५ | १९४५ | " | " |
| राज्ञा सचिहं | " | १९०९ | रिक्थं दिवं ग | बौधा. | ११४७ | ११४७ | " | " |
| *राज्ञा सचिह्ना | " | " | रिक्थं पुत्रव | कौ. | १४१६, | १४७३ | नार. | ८४९ |
| राज्ञा सभ्यैः स | संव. | १८९१ | *रिक्थं प्रतिप्र | कात्या. | १२०२ | १४७३ | " | ९४६ |
| *राज्ञा सम्यम्ब | बृह. | १६४६ | रिक्थं मृतायां | देव. | १४६२ | १४७३ | हारी. | १७९४ |
| *राज्ञा सर्वे गृ | " | ८७४ | *रिक्थगोत्रानु | मनुः | १३२७ | १४७३ | कौ. | ७९४ |
| राज्ञी प्रव्रजि | नार. | १८८२ | रिक्थग्राह ऋ | याज्ञ. | ६८६ | १४७३ | " | १६१६ |
| *राज्ञे कर्मक | " | ८२५ | *रिक्थग्राही ऋ | " | " | १४७३ | वारा. | १०७७ |
| राज्ञे च पण | विष्णुः | ८४३ | " | बृहा. | ७१५ | १४७३ | स्कन्द. | १९६५ |
| राज्ञे च बलि | कौ. | ८०८ | " | याज्ञ. | ६८६ | १४७३ | भा. | १२४३ |
| *राज्ञे ततः स | कात्या. | ६५६ | *रिक्थग्राही ध | गौत. | ६७७ | १४७३ | स्कन्द. | १९६६ |
| राज्ञे दत्त्वा तु | बृह. | ७८८ | रिक्थभाज ऋ | शंखः | ११४७ | १४७३ | कात्या. | ६७३ |
| राज्ञे दशांश | कात्या. | " | रिक्थमूलं हि | वसि. | १२७२ | १४७३ | " | " |
| *राज्ञे पणश | विष्णुः | ८४३ | रिक्थलोभाच्चा | कात्या. | ७१० | १४७३ | मनुः | १७१९ |
| राज्ञे बलिदा | गौत. | १६६१ | रिक्थहर्त्रा ऋ | नार. | १३४६ | १४७३ | नार. | ११२९ |
| राज्ञे षष्ठांश | शुनी. | ७९० | *रिक्थादर्धं स | " | " | १४७३ | भा. | १९७६ |
| *राज्ञो दशांश | कात्या. | ७८८ | *रिक्थादर्धं स | " | " | १४७३ | कौ. | ८६३ |
| *राज्ञो दाप्यः सु | मनुः | ७९६ | रिक्थिनं सुह | कात्या. | ७९७ | १४७३ | कात्या. | १७६३ |
| *राज्ञोऽनिष्टप्र | याज्ञ. | १७८३, | | | | | | |

| | | |
|------------------|---------|------|
| लब्धे तु चौरै | कात्या. | १७६३ |
| *लब्धेऽपि चौरै | " | " |
| लब्ध्वा वा विन्द | कौ. | १४३० |
| *लभतेऽंशं हि | कात्या. | १२०१ |
| *लभते तत्सु | " | " |
| *लभते तद्दृ | गौत. | १३८६ |
| *लभते दक्षि | नार. | ७८३ |
| लभेत चेन्न | कात्या. | ७२९ |
| *लभेत जीव | बृह. | १४०३ |
| लभेत तत्सु | कात्या. | १२०१ |
| लभेत दक्षि | नार. | ७८३ |
| लभेत पुंश्च | कौ. | ८४३ |
| *लभेत स पि | कात्या. | १२०१ |
| लभेत सान्ये | नार. | १०९५ |
| *लभेतांशं च | कात्या. | १२०१ |
| *लभेतांशं तु | " | " |
| लभेतांशं स | " | " |
| *लभेतांशं स्व | " | " |
| लभेताजीव | बृह. | १४०३ |
| *लभेतपतित्र | " | १५१३ |
| *ललाटे गर्द | नार. | १६४४ |
| ललाटे चाभि | " | " |
| *ललाटे वाभि | " | " |
| लवणलेह | बृह. | ६३० |
| *लवणस्वेद | " | " |
| *लाभं गोबीज | नार. | ८४९ |
| *लाभं गोवीर्य | " | " |
| लाभं तत्र प्र | बृह. | ७३४ |
| *लाभगोबीज | नार. | ८४९ |
| लाभगोवीर्य | " | " |
| लाभश्चतुर्थी | कात्या. | ८९७ |
| लाभाद्याजान्त | विष्णुः | ८९१ |
| *लाभाद्यास्ति नि | वसि. | १२७२ |
| लाभार्थं वणि | नार. | ८८८ |
| *लाभार्थं वणि | " | " |
| *लाभार्थं वाणि | " | " |
| *लाभालाभौ त | याज्ञ. | ७७७ |
| लाभालाभौ य | " | " |
| *लाभे गोवीर्य | नार. | ८४९ |
| लिखितं तु य | शुनी. | ७३१ |
| लिखितं मुक्त | कात्या. | १७१३ |
| लिखितं साक्षि | नार. | ६६९ |
| लिखितस्येति | कात्या. | १४५७ |
| *लिखित्वा मुक्त | " | ७१३ |
| *लिखित्वा मुक्त | " | " |
| *लिङ्गं लिङ्गा व | याज्ञ. | १८७४ |

| | | |
|-------------------|---------|---------------|
| लिङ्गस्य छेद | याज्ञ. | १८२२ |
| लिङ्गिनः श्रेणि | कात्या. | १९४२ |
| लिच्छिविकत्र | कौ. | ८६२ |
| लीलायन्त्यः कु | भा. | १०३१ |
| *लुप्यते नास्य | बृह. | १५५८ |
| लुप्यमानं स्व | भा. | १२४४ |
| लुब्धकाः श्वग | कौ. | १९२५ |
| लुब्धातिवृद्ध | बृह. | ८७३ |
| लुब्धोऽन्यत्र च | अपु. | १९७५ |
| लेखयेत्तद् | बृह. | ७१५ |
| लेखयेदस्त | कात्या. | ९५५ |
| *लेखस्य पृष्ठे | याज्ञ. | ६८९ |
| *लेख्यं दत्त्वा ऋ | नार. | ७०६ |
| *लेख्यं दद्याद | " | " |
| लेख्यं दद्यादि | " | " |
| लेख्यं यस्य भ | हारी. | ६३६ |
| *लेख्यस्य पृष्ठ | याज्ञ. | ६८९ |
| लेख्यस्य पृष्ठे | " | " |
| लेख्यारूढं सा | बृह. | ६२८ |
| लेख्यारूढश्चे | कात्या. | ९५५ |
| *लेख्यारूढश्चो | " | " |
| लेख्ये कृते च | व्यासः | ६७६ |
| लेख्ये तु लिखि | भार. | ६६० |
| लेख्येन भोग | नार. | १५८१ |
| लेख्येन साक्षि | बृह. | ७२७ |
| *लेख्यैरप्यव | नार. | १७५३ |
| लेपभाजश्च | मत्स्य. | १३८३ |
| *लेख्यैरप्यनु | नार. | १७५३ |
| लेख्यैरप्यव | " | " |
| लेकप्रचारै | शुनी. | १७६७ |
| लेकप्रसादं | अपु. | १९७० |
| लेकयात्रा स | भा. | ८६१ |
| लेकवेदवि | " | १०२७ |
| लेकश्चायं व | " | १२८६ |
| लेकानन्त्यं दि | याज्ञ. | १०७९ |
| *लेकानन्त्यादि | " | " |
| लेकानन्त्यान् | मनुः | १९३० |
| लेकान्तरम् | देव. | १११२ |
| लेकान्तरस्थं | व्यासः | ११११, १५२४ |
| *लेकान्तरस्थ | " | " |
| लेकेऽप्याचरि | भा. | १०३३ |
| लेकेऽस्मिन् द्वा | नार. | १७८७ |
| लेकेऽस्मिन् द्वि | " | ८८६ |
| लेकेऽस्मिन् त्रि | " | १९४० |
| लेकास्तुसा इ | वेदाः | ९६८ |

| | | |
|-------------------|----------|------|
| *लोप्रादिरहि | नार. | १७५१ |
| लोभमेको हि | भा. | ८६१ |
| लोभाद्गयाद्वा | बृह. | १६४६ |
| लोभाद्यास्ति नि | वसि. | १०२२ |
| * " " | " | १२७३ |
| लोभान्मूढैर | बृह. | १११६ |
| लोमदोहवा | कौ. | १६२३ |
| लोलन्द्रियेति | भा. | १०३३ |
| *लोहानां चैव | नार. | १७४७ |
| लोहानामपि | " | १७४६ |
| लोहितदर्श | वेदाः | १७९३ |
| लोहेऽर्धो वा स | शुनी. | १७६७ |
| वंशजानाम | संघ. | १३८४ |
| *वंशपिण्डेषु | नार. | १५५५ |
| वक्ष्यन्तीवेदा | वेदाः | ९७३ |
| *वक्ष्यमाणोऽपि | नार. | ६५० |
| वक्त्रं च जस | शुनी. | १७६७ |
| वचनात्तत्र | कात्या. | १७९३ |
| वचनात्तुल्य | वसि. | १७७० |
| मनुः १७७८; नार. | १७८६ | |
| वचसा यत्प्र | हारी. | ८०८ |
| वज्रशुक्तिप्र | वसि. | ६०९ |
| वणिकप्रथं च | बृह. | १५८१ |
| वणिकप्रभृत | नार. | ७८० |
| वणिकसुवर्ण | स्कन्द. | १९६६ |
| *वणिग्भीथि प | बृह. | ७६६ |
| वणिग्भीथीप | " | " |
| कात्या. ७६८; मरी. | ७६९ | |
| वाणिजः कर्ष | कात्या. | ७२७ |
| वणिजां कर्ष | " | ७८९ |
| वणिजानां क | शुनी. | ७९० |
| वत्सप्रियं वै | वेदाः | १६५६ |
| वत्सरे वत्स | शुनी. | ८५६ |
| वत्सानां द्विगु | स्मृत्य. | १९७६ |
| वत्सावते त्व | हरि. | १३७६ |
| वदन्त्यष्टगु | व्यासः | ६३४ |
| वधं जारश्च | कौ. | १८४९ |
| वधः सर्वस्व | नार. | १६४३ |
| वधः सर्वस्वा | गौत. | १८४२ |
| वधदण्डो भ | मत्स्य. | १८९२ |
| वधबन्धनि | भा. | ८१९ |
| वधबन्धम | " | १०३२ |
| वधस्तत्र तु | कात्या. | १६५१ |
| वधस्तत्र प्र | " | १८८८ |
| वधादते ब्रा | नार. | १६४३ |
| वधूरिषं प | वेदाः | ९७१ |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| वधूर्जजान | वेदाः | १९३ |
| *वधूर्जिगाय | " | " |
| *वधूर्मिमाय | " | " |
| *वधे चोरभ | बृह. | ८७२ |
| *वधे तत्र प्र | कात्या. | १८८८ |
| *वधे तस्य प्र | " | " |
| वधेन गोपो | नार. | ९१८ |
| *वधेन पालो | " | " |
| वधेन शुद्धय | मनुः | १७०२ |
| वधे मोक्षो भ | बौधा. | १६६७ |
| वधे वधः | कौ. | १६१८ |
| *वधो दण्डो भ | मत्स्य. | १८९२ |
| वध्यः शूद्र आ | आप. | १८४४ |
| वध्ये कर्माणि | यमः | १८३५ |
| *वनस्थस्य ध | विष्णुः | १४७१ |
| वनस्पतिभ्यः | भा. | १०३१ |
| वनस्पतीनां | मनुः | १८०४; |
| | कात्या. | १८३४ |
| वने निवत्स्या | वारा. | १०७६ |
| वने निवास | " | " |
| वन्ध्यां स्त्रीजन | नार. | ११८० |
| *वन्ध्याऽपुत्रासु | मनुः | १९५१ |
| वन्ध्या वा मृत | शान्. | १३६३ |
| वन्ध्याष्टमेऽधि | मनुः | १०५७ |
| वन्ध्याभिः पुत्रः | वेदाः | ९७१, |
| | | १९७९ |
| वयं घाते अ | " | ८४१ |
| वयं जयेम | " | १९०० |
| वयं तदस्य | " | ८१० |
| वयं राजसु | " | १९०० |
| वयोऽज्येष्टक | बृह. | १२२४ |
| वयोविद्यात | " | १९८७ |
| वरं कूपश | भा. | १९८५ |
| वरं क्रतुश | " | " |
| वरं रूपमु | बौधा. | १६६७ |
| वरं वा रूप | " | ११४६ |
| वरणाद् प्रह | नार. | १०९३ |
| वरदस्तु व | भा. | १०३१ |
| वरदानेन | " | १३९१ |
| वरदोषं वि | विष्णुः | १०२३ |
| वरदोषान् | अपु. | १९७५ |
| वरयितुर्वा | कौ. | ८७९ |
| वरयित्वा तु | कात्या. | ११०९ |
| वरयित्वा द्वि | भा. | १२८४ |
| वरयित्वा क | शंखः | १०२४ |
| वरस्य दत्त | शाता. | १११६ |

| | | |
|--------------------|---------|-------------------|
| वरिष्ठा सर्वे | वारा. | १०७७ |
| वरुणं देवा | वेदाः | ११४३ |
| वरुणस्ते अ | " | " |
| वरुणस्त्वा न | " | ७९२ |
| वरुणाय प्र | कौ. | १८५१ |
| वरुणेन य | मनुः | १९३० |
| वरुणोऽपाम | वेदाः | १६०३ |
| वरो दोषं स | मत्स्य. | १९७५ |
| *वर्चःस्थानं ब्र | बृह. | ९५३ |
| वर्चःस्थानं व | " | " |
| वर्चो गोषु प्र | वेदाः | १००३ |
| वर्चो न्वस्थे सं | " | १००२ |
| वर्जयन्ति च | भा. | १९२२ |
| वर्जिताः पञ्च | ब्रह्म. | १३७४ |
| वर्ण रूपं प्र | मनुः | १९५४ |
| *वर्णक्रमाच्च | याज्ञ. | ६१९ |
| वर्णक्रमाच्छु | " | " |
| *वर्णक्रमाच्छु | " | " |
| *वर्णक्रमातु | कात्या. | ८३६ |
| वर्णक्रमेण | अपु. | १९६२ |
| *वर्णत्रयस्य | कात्या. | ८३५ |
| वर्णयोश्च द्व | भा. | १२८७ |
| *वर्णरूपप्र | मनुः | १९५४ |
| वर्णश्चतुर्थः | भा. | ८१८ |
| वर्णसंकर | नार. | १९३३ |
| वर्णस्वराका | " | १७५३ |
| *वर्णा आश्रमा | गौत. | १९१७ |
| वर्णानां परि | भा. | ८१८ |
| वर्णानां प्राति | नार. | ८२९ |
| वर्णानां यद् | शंखः | १४७३ |
| वर्णानां संक | मनुः | १०६८ |
| वर्णानामनु | उश. | १२३८ |
| वर्णानामातु | याज्ञ. | ८२४, |
| | | १७८४; कात्या. ८३६ |
| * " " | नार. | ८२९; |
| | उश. | १२३८ |
| वर्णानाश्रमां | गौत. | १९१६ |
| वर्णानुक्रमे | विष्णुः | १२४० |
| *वर्णान्त्येष्वानु | याज्ञ. | १७८४ |
| वर्णावरेष्वं | नार. | १२५० |
| वर्णाश्रमावि | बृह. | १९४१ |
| वर्णाश्रमाः स्व | गौत. | १९१७ |
| वर्णाश्रमाणां | विष्णुः | १९२१ |
| * " " | बृह. | १९४१ |
| वर्णिनां च त | स्कन्द. | १९६५ |
| वर्णे तृतीये | भा. | १२४३ |

| | | |
|------------------|---------|-----------|
| वर्णार्त्तकर्म | कौ. | १६७४ |
| वर्णोत्तमानां | " | १६१८ |
| *वर्तते चेतप्र | कात्या. | १९१४ |
| वर्तते यस्य | संप्र. | ११४२; |
| | शुनी. | १९८८ |
| वर्तते हि म | भा. | १०२७ |
| *वर्तनादभि | संव. | १८९१ |
| वर्तमानोऽध्व | नार. | १७५२, |
| | | १९३६ |
| वर्तते चेतप्र | कात्या. | १९१४ |
| वर्तते याम्य | मनुः | १९३१ |
| वर्धेन रक्ष | नार. | ११२९ |
| वर्धितं द्विगु | लहा. | ७३२ |
| *वर्मसस्यास | कात्या. | ६३३ |
| वर्षाण्यष्टाव | कौ. | १३०४, |
| | | १४३१ |
| वर्षाण्यष्टौ स | कात्या. | ९६० |
| *वर्षानष्टौ स | " | " |
| वर्षारात्रम | कौ. | १९२४ |
| वर्षावग्रहे | " | " |
| *वर्षा ह्यष्टौ स | कात्या. | ९६० |
| वर्षागुल्मल | विष्णुः | १६०९, |
| | | १७९८ |
| वशा चोत्पन्न | बौधा. | १०२० |
| वशाऽपुत्रासु | मनुः | १९५१ |
| वश्यां कुमारीं | भा. | १२८६ |
| वसनं त्रिप | बृह. | ११२० |
| वसनस्याऽश | " | " |
| वसनाशन | " | " |
| वसानस्त्रीन् | याज्ञ. | १७३६ |
| वसिष्ठकश्य | शंखः | १२८२ |
| वसिष्ठवच | वसि. | ६०९ |
| वसिष्ठविहि | मनुः | ६११; |
| | नार. | ६२४ |
| वसिष्ठाप्रे व | स्कन्द. | १९६५. |
| *वसुकुड्यहि | व्यासः | ८९९ |
| वसुकुड्यहि | " | " |
| वसुदेवो म | हरि. | १३७६ |
| वसेयुः पूजि | कौ. | १९२५ |
| वसेयुर्दश | कात्या. | १५८२ |
| वसेयुर्थे द | नार. | १५८१ |
| * " " | कात्या. | १५८२ |
| वस्त्रं चतुर्गु | याज्ञ. | ६६८ |
| *वस्त्रं छत्रम | विष्णुः | १२०६; |
| | | मनुः १२०९ |
| वस्त्रं पत्रम | विष्णुः | १३०६; |

| | |
|---------------------|-----------------|
| *वस्त्रं पात्रम | मनुः १२०९ |
| *वस्त्रं पुष्पम | " " |
| वस्त्रं भूर्दास | भार. ७३१ |
| वस्त्रं वर्षे वि | कौ. १६१६ |
| *वस्त्रकुप्यहि | व्यासः ८९९ |
| *वस्त्रकूप्यहि | " " |
| वस्त्रगोमिथु | नार. १०९८ |
| वस्त्रधान्यहि | याज्ञ. ६२१; |
| | बृह. ७३१ |
| | व्यासः ८९९ |
| *वस्त्ररूप्यहि | बृह. ८५२ |
| *वस्त्राच्छादम् | " १२२२ |
| वस्त्रादयोऽवि | भा. १९७१ |
| वस्त्रादिकस्य | शौन. १३६४ |
| वस्त्रादिभिर | मनुः १३९३, |
| वस्त्राक्षपानं | १९५२; अपु. १९८८ |
| | मनुः १३९३ |
| *वस्त्राक्षमानं | " " |
| *वस्त्राक्षमासां | " " " |
| | १९५२ |
| वस्त्राभरण | कौ. १८०० |
| वस्त्रालङ्कार | शुनी. १११९; |
| | बृह. १२२३ |
| वस्त्रैराभर | नार. १८८१ |
| वह्न्युक्तां विन्य- | स्कन्द. १९६७ |
| वाक्चक्षुः कर्म | गौत. १०१२ |
| वाक्पारुष्यं प्र | नार. १७८७ |
| वाक्पारुष्यम् | कौ. १७७१ |
| वाक्पारुष्यम् | " " |
| वाक्पारुष्यादि | बृह. १८३१ |
| वाक्पारुष्ये कृ | " १८३० |
| वाक्पारुष्ये य | कात्या. १८३३ |
| वाक्प्रतिपक्षं | विष्णुः ६७९ |
| वाक्यं चोवाच | भा. १९८५ |
| वाक्यकर्मानु | कौ. १६८५ |
| वाक्यानुयोगो | " १६८७ |
| वाक्याभावे तु | कात्या. १९४२ |
| वाक्यैर्मधुर | भा. १०२९ |
| वाक्शूरो वृष्ट | " ८६० |
| वाग्दण्डस्ताड | कात्या. १८३३ |
| वाग्दुष्टात्तस्क | मनुः १६२२ |
| *वाग्धिगदण्डप | बृह. ८७४ |
| वाग्धिगदमं प | " " |
| *वाग्धिगदसौ प | " " |
| वाचः सत्यम | वेदाः १००६ |
| *वाचा च यत्प्र | हारी. ८०८ |

| | |
|-------------------|--------------|
| वाचा च वध | भा. १०३३ |
| वाचा यच्च प्र | हारी. ७९४, |
| | ८०८ |
| वाचि पथि श | आप. १७९५ |
| *वाचैव यत्प्र | हारी. ८०८ |
| वाजिवारण | कात्या. १७६१ |
| वाञ्छ मे तन्वं | वेदाः ९९६ |
| *वाटचोरभ | बृह. ८७२ |
| वाटभेदे द्वि | कौ. ९०६ |
| वाणिज्यं कार | मनुः ८१९, |
| | १९२७ |
| *वाणिज्यं चैव | बृह. १५८१ |
| वाणिज्यं पाशु | भा. ८१९ |
| *वाणिज्यमथ | बृह. १५८१ |
| वाणिज्याद्याः स | " ७८४ |
| वातायनं प्र | " ९५३ |
| *वातायनः प्र | " " |
| *वातायनप्र | " " |
| *वातायनाः प्र | " " |
| वातोपधूत | वेदाः १९८० |
| *वादी चोन्मार्गो | व्यासः ७६८ |
| वादी चोन्मार्गो | " " |
| वादेष्ववच | मनुः १७७४; |
| | नार. १७८७ |
| वानप्रस्थध | विष्णुः १४७१ |
| वानप्रस्थय | याज्ञ. १५०९; |
| | कौ. १९८६ |
| वानलज्याश्चो | " ९२६ |
| *वानस्पत्यं फ | मनुः १७२२ |
| वानस्पत्यं मू | " " |
| वापीकूपत | नार. ९४८; |
| | बृह. ९५० |
| | शंखः १६१३ |
| * " " | " " |
| वापीतडागो | " " |
| *वा बभ्रीयाद् | कात्या. १६४९ |
| वामं पितृभ्यो | वेदाः ९८०, |
| | २००१ |
| वायव्यं गोमृ | " १५९४ |
| वासुप्रोक्तां त | बृम. १११६ |
| वायुष्टे अस्त्व | वेदाः ११४३ |
| वारणाज्ञान | कौ. १०३८ |
| वारुणी यस्य | हारी. १०१६ |
| वारि वा तोय | कौ. ९३० |
| *वार्ता तु यां चा | नार. १७५७ |
| वार्ता त्रयीम | " " |
| *वार्द्धके च शि | बृह. ९५० |

| | |
|----------------|--------------|
| *वार्द्धकेन शि | बृह. ९५० |
| वार्द्धके च शि | " " |
| *वार्द्धकेन शि | " " |
| वार्षिकंश्चतु | मनुः १९३० |
| वावाते ह्ये | वेदाः १००९ |
| वासः कौशेय | नार. १७४५ |
| वासःपश्वच | " १६४२ |
| वासनस्थम | याज्ञ. ७४५ |
| * " " | नार. ७४७ |
| *वासरं राज्ञा | गौत. १९४७ |
| वाससी कुण्ड | शौन. १३६३ |
| वासांसि फल | मत्स्य. १७६७ |
| वासो यत् पत्नी | वेदाः १००३ |
| वासो हिरण्यं | " १००० |
| वास्तुकम् | कौ. ९२६ |
| *वास्तुनि विभा | प्रजा. १२३३ |
| वाहयन् स | मनुः १८११३ |
| | कात्या. १८३४ |
| | बृह. १२२३ |
| *वाह्यः समांश | " ७८६ |
| वाह्यकर्षक | " ७८७ |
| *वाह्यबीजात्प | " " |
| वाह्यबीजात्य | " " |
| *वाह्यबीजादि | " " |
| *वाह्यवाहक | " ७८६ |
| *वाह्योः कर्षक | " " |
| विंशतिः सोम | मासो. १९७० |
| विंशतिभागः | गौत. ११८१, |
| | १६६१ |
| *विंशतिभागाः | " " |
| *विंशत्संवत्स | कात्या. ७११ |
| विंशत्संवत्स | " " |
| विकर्णकर | याज्ञ. १६३८ |
| विकर्मक्रिय | मनुः १७१० |
| | १९०७ |
| विकर्म तद् | भा. १९७६ |
| विकर्मस्थः स | शाता. १११६ |
| विकर्मस्थान् | मनुः १७१०, |
| | १९०७ |
| विकल्पं तद् | नार. १९७८ |
| *विकृष्यमाणः | " ९४८ |
| विकृष्यमाणे | " " |
| विक्रमकले | कौ. ८६३ |
| *विक्रम्य तु ह | मनुः ९०८३ |
| | नार. ९१६ |
| विक्रयं चैव | कात्या. ८०४ |
| विक्रयं वा कि | बृह. ७३४ |

| | | | | | | | | |
|-------------------|---------|------|------------------|---------|------|--------------------|---------|-------|
| * विक्रयप्रति | कौ. | ९२८ | * विख्यातं संव | गौत. | १९४७ | विद् चास्य ष्व | नार. | १०९४ |
| विक्रयाद्यो ध | मनुः | ७५९ | विख्याप्य संव | " | " | विट्शूद्रयोरे | मनुः | १७७९ |
| * विक्रयापक | याज्ञ. | १७३६ | विगतकोध | नार. | १९३६ | विष्मूत्रसङ्का | कात्या. | ७२८ |
| विक्रयावक | " | " | त्रिगुणान् भेद | कौ. | ८६२ | * विष्मूत्रसंज्ञा | " | " |
| * विक्रये चैव | बृह. | ६५४ | विगुणोऽपि य | नार. | १९३६ | * विष्मूत्रोत्सर्ज | " | ८३६ |
| " " | कात्या. | ८०५, | विग्रहे च ज | कात्या. | १९१५ | विष्मूत्रोदक | " | ९५९ |
| | | १४५५ | * विग्रहेऽथ ज | " | " | विष्मूत्रोन्मार्ज | " | ८३६ |
| विक्रयेषु च | बृह. | ८९६ | विद्युष्य तु ह | मनुः | ९०८; | वितथं तु व | भा. | १९६३, |
| विक्रीणतां च | याज्ञ. | १७३० | | नार. | ९१६ | | | १९६४ |
| विक्रीणताम | " | " | * विद्युष्यापह | " | " | वितथेन ब्रु | मनुः | १७७६ |
| * विक्रीणाति प | मनुः | ७५८ | * विद्युष्योपह | मनुः | ९०८ | * वितथेन व | " | " |
| * विक्रीणाति स्व | नार. | ८३१ | * विघ्नं यो वाह | कात्या. | ८५३ | वि तिष्ठन्तां मा | वेदाः | १००२ |
| विक्रीणानस्त | " | ८८८ | विघ्नयन् वाह | " | " | वि ते मुच्यन्तां | " | ९९९, |
| * विक्रीणीत त | " | " | * विघ्नेन तु ह | मनुः | ९०८; | | | १६०१ |
| विक्रीणीते द | याज्ञ. | ८८५ | | नार. | ९१६ | वित्तापहारि | कौ. | ८१७ |
| * विक्रीणीते प | मनुः | ७५८ | विचार्य तस्य | मनुः | ७४१; | वित्वक्षणः स | वेदाः | ८०९ |
| * विक्रीणीते य | नार. | ८३१ | | नार. | ७४८ | वि त्वा नरः पु | " | ११५८ |
| विक्रीणीते स्व | " | " | * विचार्य सर्व | मनुः | १७०७ | विदध्यादौर | कात्या. | १३५० |
| * विक्रीतं च त | " | ८८८ | विचार्य सर्वे | " | " | विदितं तु म | वारा. | १०७७ |
| विक्रीतक्रीता | कौ. | ८७८ | | | १९२७ | * विदितोऽर्थांग | संप्र. | ११४२ |
| विक्रीतमपि | याज्ञ. | ८८५ | * विचित्रैश्वार | नार. | १७५४ | " " | शुनी. | १९८८ |
| विक्रीतासु हि | भा. | १२८६ | विचिन्वतीमा | वेदाः | १८९८ | विदित्वा चाप | भा. | १९८३ |
| विक्रीते त्वाज्ञ | नार. | ८९५ | * विच्छिन्नकर्ण | याज्ञ. | १६३८ | विदित्वा भेद | " | " |
| * विक्रीयते द | याज्ञ. | ८८५ | विच्छिन्नपिण्डाः | कौ. | ११९९ | विदुर्य एव | नार. | १९४० |
| विक्रीयते प | नार. | ७६२ | विजयभागं | वेदाः | १८९७ | * विदुर्यस्यैव | " | " |
| विक्रीयतेऽस | " | " | विजयाय हि | भा. | ८६० | विदुलस्येव | भा. | १९८३ |
| विक्रीयते स्वा | व्यासः | ७६८ | विजानिर्यत्र | वेदाः | ८४२, | विदुणोऽतिक्र | गौत. | १६५७ |
| * विक्रीय पण्यं + | नार. | ८८६ | | १८४० | | विदुषो वास | आप. | १६६५ |
| विक्रीय पण्य | कौ. | ८७८ | * विजितं क्षत्रि | गौत. | ११२३ | विदुषो धर्मो ह्य | भा. | १९६३, |
| विक्रीय वस्त्रा | बृह. | १२२२ | विजित्यै शर | वेदाः | १८९७ | | | १९६४ |
| विक्रीयासंप्र | नार. | ८८६ | विजिहीर्ष्व लो | " | ६०५ | * विद्यते तत्र | ब्रह्म. | १३७४ |
| * विक्रुत्य तु ह | " | ९१६ | * वि जिहीष्व लो | " | " | विद्यते न हि | " | " |
| विक्रुताः चात्म | " | ८३० | * विज्ञातं राज | बृह. | ७६६ | विद्यमानमु | कौ. | १२८८ |
| विक्रुता चेद् | कौ. | ७५७ | विज्ञानमुच्य | " | ८३४ | विद्यमाने च | कात्या. | ७११ |
| विक्रुता दार्शि | बृह. | ७६५ | विज्ञायते ब्र | वसि. | १९२१ | * विद्यमाने तु | " | " |
| विक्रुता स्वामि | नार. | ७६३ | विज्ञायते हा | वेदाः | ८१४ | " " | " | १४५६, |
| विक्रुतुः प्रति | " | ८९३; | विज्ञायते हि | वसि. | १९७७ | | | १५२० |
| | बृह. | ८९५ | विज्ञायते हो | " | १२७३ | विद्यमानेऽपि | " | ७११ |
| विक्रुतुरेव | नार. | ८८७ | विज्ञाय वच | वारा. | १०७७ | " " " + | संप्र. | १५२९ |
| विक्रुतुर्दंश | याज्ञ. | ७६१ | * विज्ञाय सर्व | मनुः | १७०७ | विद्यमानेऽप्य | " | " |
| विक्रुय मध्य | वारा. | १३२९ | विज्ञाय साक्षि | शुनी. | ७३१ | विद्यमानेषु | कात्या. | १४५६ |
| * विक्रोशकस्तु | बृह. | १७९० | * विज्ञेयः साधु | बृह. | १६४७ | विद्यया, क्रय | बृह. | ११४१ |
| विक्रोशन्त्यो य | मनुः | १६९३ | * विज्ञेयः साध्य | " | " | विद्यया सह | बौधा. | १९७४ |
| विक्रोशमानां | कात्या. | ८३८ | * विज्ञेयाः साधु | भा. | " | विद्ययैव स | मनुः | " |
| विक्षिप्तवक्रः | कौ. | १६१५ | विज्ञेया लक्ष | भा. | १०३३ | विद्याकर्मयु | बृह. | ११९३ |
| * वि क्षेत्रियस्य | वेदाः | ६०५ | विज्ञेयोऽस्यु | बृह. | १६४७ | विद्या त्रयी स | " | ८३४ |

| | |
|----------------------|----------------------------|
| विद्यादुत्साद | मनुः १६९६, १९२९ |
| *विद्यादुत्साह | ” १६९६ |
| *विद्याधनं च | कात्या. १२२५ |
| विद्याधनं तु | मनुः १२११ |
| ” ” ” + | कात्या. १२२५ |
| *विद्याधर्मयु | बृह. ११९३ |
| विद्याधिकः स | कण्व. ८३९ |
| विद्यान्ते गुरु | गौत. ८१५ |
| *विद्यापणकृ | कात्या. १२२५ |
| विद्यापि च वि | नार. १७५२ |
| विद्याप्रतिज्ञ | बृह. १२२३; कात्या. १२२५ |
| *विद्याप्राप्तं तु | ” १२२७ |
| विद्याप्राप्तं शौ | व्यासः १२३१ |
| विद्याबलकृ | कात्या. १२२५ |
| विद्या ब्राह्मण | मनुः १९७४ |
| विद्याभिजन | उश. १९६२ |
| विद्यार्थं षड्व्य | मनुः १०६१ |
| *विद्यालब्धं कृ | कात्या. १२२५ |
| विद्याविज्ञान | बृह. ८३४, ११९३ |
| विद्या शिल्पं च | मनुः ११२७ |
| विद्याशौर्यश्र | प्रजा. १२३२ |
| विद्याशौर्यादि | बृह. १२२१ |
| *विद्याशौर्याद्य | ” १२२२ |
| विद्या इ वै आ | बसि. १९७४ |
| विद्युत्पुंश्वली | वेदाः ८४२ |
| विद्युत्त या प | ” ९८८ |
| विद्युत्त न तु | सुनी. १७६७ |
| *विद्वान्श्रेयसा | आप. १६६५ |
| विद्वान्स्तु ब्राह्म | मनुः १९५६ |
| विद्वानशेष | याज्ञ. १९६० |
| *विद्वान् प्रजन | नि. १२५५ |
| *विद्विषा तु ह | मनुः ९०८ |
| विद्वेषिणो व्य | बृह. ८७३ |
| विधनस्य स्त्री | विष्णुः ६७८ |
| *विधवनाद्वा | नि. १२५७ |
| विधवार्या नि | मनुः १०६५, १०६६ |
| विधवार्या प्र | आदि. १३८४ |
| विधवा मौव | लहा. १४०४; हारी. १४६६ |
| *विधवा विधा | नि. १२५७ |
| *विधामं पूज | ” १२५५ |
| विधाय प्रीथि | मनुः १०६० |

| | |
|-----------------|----------------------------|
| विधाय वृत्ति | मनुः १०६०; |
| बृह. ११०७ | |
| नि. १२५७ | |
| *विधावनाद्रे | नार. १८२५ |
| विधिः पञ्चवि | वृगौ. १३७२ |
| विधिना गोत्र | देव. १२०३ |
| विधिरेष स | ब्रह्म. ८४० |
| विधिर्हि बल | मनुः १०४१ |
| विधिवत्प्रति | ” ” |
| *विधिवत्संप्र | भा. १०२८ |
| विधूय सर्व | मनुः १७७५ |
| *विधेयोऽयम | ” १७७६ |
| *विधेयोऽयम | वेदाः १००६ |
| वि न इन्द्र सृ | विष्णुः ९०४ |
| *विनयं च मू | नार. ७२४ |
| विनयं दाप | बृह. १८८५ |
| विनयः कल्प | ” १७८९ |
| *विनयोऽभिम | ” ” |
| विनयोऽभिहि | ” ” |
| *विनयो निहि | ” ” |
| विनष्टपशु | विष्णुः ९०४ |
| *विनष्टपशु | ” ” |
| विनष्टे मूल | नार. ६४९ |
| *विनष्टे वाप्य | ” ११५२ |
| विना गर्भं स | भा. १०३० |
| विना चिह्नैस्तु | कात्या. १६५० |
| विना तोयप्र | भार. ८०७ |
| विना धारण | याज्ञ. ६४६; बृह. ७३२ |
| *विना धारणि | याज्ञ. ६४६ |
| विना पित्रा ध | कात्या. ६७४ |
| विनाशका भ | भार. ६६० |
| *विनाशनार्थ | बृह. १६४८ |
| विनाशयत | कौ. ९२७ |
| विनाशयन् | बृह. १६४६ |
| विनाशहेतु | कात्या. १६५१ |
| विनाशार्थिन | बृह. १६४८ |
| *विनियुक्ताश्च | मनुः १६३२ |
| *विनियुक्तास्तु | ” ” |
| विनियोगात्म | नार. १५५५; कात्या. १५६१ |
| *विनियोगार्थ | नार. १५५५ |
| *विनियोगेऽर्थ | ” ” |
| विनियोगोऽत्र | संप्र. ११४२ |
| विनियोगोऽपि | ” ” |
| *विनियोगोऽस्ति | नार. १५५५ |
| *विनियोगोऽस्त्य | संक्र. ११४२ |

| | |
|-------------------|---------------------------|
| विनिर्गच्छंस्तु | नार. ८५२ |
| *विनिवार्याः प्र | ” ९१९ |
| विनिवृत्ताभि | भा. ८६१ |
| विनीतांश्च प्र | ” ” |
| *विनेयः सोऽप्य | नार. १०९७ |
| विनेयः सोऽप्य | ” ” |
| विनेयाः प्रथ | ” ९४६ |
| *विनेयौ तावु | ” ११०२ |
| विनेयौ सुभृ | ” ” |
| *विनेयौ स्वभ | ” ” |
| विन्देत्पतिव्र | बृह. १५१३; प्रजा. १५२६ |
| विपत्तौ कष्ट | कौ. १७९९ |
| विपत्तौ श्रेणी | ” १६७३ |
| विपन्नहस्तं | स्कन्द. १९६६ |
| विपरीतं न | मनुः ९३८ |
| विपर्ययाद् | नार. ११३१ |
| विपर्यये तु | ” ७६३ |
| विपर्यये वा | कौ. १६८५ |
| विपर्यये म | नार. १८८२ |
| *विप्रः क्षत्रिय | मनुः १८६० |
| *विप्रः पञ्चाश | ” १७७४; नार. १७८८ |
| *विप्रः शतार्थ | बृह. १७९० |
| विप्रक्षत्रिय | मनुः १७७४ |
| *विप्रचिह्नेन | याज्ञ. १६३७ |
| विप्रत्यये ले | व्यासः ६७६ |
| विप्रत्वेन च | याज्ञ. १६३७, १९३३ |
| *विप्रत्वेन तु | ” १६३७ |
| *विप्रदुष्टां प | ” १६३८ |
| विप्रदुष्टां क्षि | मनुः १०५८; |
| याज्ञ. १६३८; अपु. | १९७९ |
| विप्रपीडाक | याज्ञ. १८१५ |
| विप्रवर्जं त | स्कन्द. १०६५ |
| विप्रवादाः सु | भा. १२८६ |
| विप्रस्थोद्धारि | मनुः १२४६ |
| *विप्राः पञ्चाश | ” १७७४; नार. १७८८ |
| विप्राः प्राहुस्त | मनुः १०७२ |
| विप्राणां न नि | वृम. १११६ |
| *विप्राणां विष् | मनुः १६२३ |
| विप्रेण क्षत्रि | बृह. १२५१ |
| विप्रे सतार्थ | ” १७९० |
| विफलं तद्ग | कात्या. १५२३ |
| विब्रूयुस्तत्र | भा. १९६३ |

| | | | | | |
|----------------|-----------------|-----------------|---------------|------------------|--------------|
| विभक्तं स्थाव | यमः १५६१ | *विभज्याधि स | चसि. ६३६ | *विवादादेर्वि | नार. १०९३ |
| विभक्तजः पि | गौत. १५६२ | विभज्याधिः स | " " | विवादेन स | मासो. १९७० |
| विभक्तजस्य | बृह. १५६८ | विभागं कीर्त | भा. १९८३ | विवादे न्याय | कात्या. ७३० |
| विभक्तदाया | बौधा. १४६८ | विभागं चेत्पि | याज्ञ. ११६८ | विवादे साक्षि | संव. १८९१ |
| विभक्तव्यं पि | निघ. ११४२ | विभागं बह | भा. १९८३ | विवादोऽष्टाद | बृह. ७३४ |
| विभक्तस्यास्य | बृहा. १५२६ | विभागकाले | कात्या. १२२९; | विवासयेत् | यमः १८३५; |
| विभक्ताः पितृ | कात्या. १५६१ | | व्यासः १२३१ | विवासयेत्स्व | अपु. १९६४ |
| विभक्ताः सह | विष्णुः १५४१; | *विभागार्हं पि | निघ. ११४२ | विवास्यो वा भ | स्कन्द. १९६५ |
| | मनुः १५४३ | विभागे तु ध | गौत. ११२४ | विवाहकर | मनुः १६२७ |
| *विभक्ता अवि | नार. ६९० | *विभागे धर्म | " " | विवाहकाले | भा. १०२९ |
| " " | बृह. १५८५; | विभागधर्म | नार. १५७९; | | न्यासः १२३१; |
| | व्यासः १५८७ | | बृया. १५८२ | | कात्या. १४५२ |
| *विभक्तानभि | नार. १५८० | विभागनिह | याज्ञ. १५७५ | विवाहपूर्वो | कौ. १०३४ |
| विभक्तानव | " " | विभागभाव | " " | विवाहविधि | बृम. १३६२; |
| विभक्तानां पृ | " " | | बृया. १५८२ | | बृगौ. १३७१ |
| विभक्ता भ्रात | बृह. १५५७; | | व्यासः १२३१ | विवाहवैशि | भा. ११८४, |
| | नार. १५८०, १५८१ | *विभागलेख्य | याज्ञ. १५७५ | | १२३४ |
| * " " | कात्या. १५८२ | *विभागस्य तु | मनुः १५७२ | विवाहसंयु | कौ १०३४ |
| विभक्तारं ह | वेदाः ११५८ | विभागे तु कृ | " १५७५ | विवाहस्त्वामु | नार. १०९८ |
| *विभक्ता वाऽवि | नार. ६९०; | विभागे यत्र | नार. १५७९ | विवाहात्पर | कात्या. १४५३ |
| | बृह. १५८५ | विभागे सति | " ११३२ | विवाहादिवि | नार. १०९२ |
| विभक्ताश्च दा | विष्णुः ६७९ | विभागोऽर्थस्य | बृह. ७५१ | विवाहादिषु | कौ. ८०८ |
| विभक्ता ह्यवि | नार. ६९० | विभावं त | याज्ञ. १९५८ | विवाहानां तु | " ८७९ |
| * " " | बृह. १५८५ | विभावयेन्न | नार. ७४९ | विवाहार्थं तु | पद्म. १३७६ |
| *विभक्ते तु सु | याज्ञ. १५६५ | विभावयैक | बृह. ७५१ | विवाहाश्च त | भा. १०२८ |
| विभक्तेनैव | कात्या. १५७४ | विभाव्य दाप | कात्या. ६७४ | विवाहे कृत्यां | वेदाः १००४ |
| *विभक्तेऽपि स | याज्ञ. १५६५ | *विभाव्यो वादि | " " | विविक्ते ताञ्छि | बृह. १८३२ |
| विभक्तेषु सु | " " | *विभाव्यो वादि | व्यासः १२३८ | विविधात्तर | हारी. ७९४, |
| विभक्तेष्वनु | बृहा. १५६८ | विभिन्नमातृ | वेदाः ९९' | | ८०८ |
| विभक्ते संस्थ | कात्या. १५२२ | विभिद्रो चर | विष्णुः १६०९, | विविधाश्च प्र | नार. ११३० |
| विभक्तेस्तु पृ | मरी. १५८७ | विमांसविक्र | १७९७ | विवीतं भक्ष | कौ. ९०६ |
| विभक्ते यः पु | बृह. १५५६ | विमानस्था शु | भा. १०२८ | विवीतक्षेत्र | " १६१९ |
| विभजन्ते ह | वेदाः ११४४ | विमोक्षस्तु य | कात्या. ७१० | विवीतभर्तु | याज्ञ. १७४३ |
| विभजिष्यमा | हारी. ११८३, | वि य जानाति | वेदाः ९७२ | विवीतस्थल | कौ. ९३० |
| | १२६५ | विरुद्धं निय | कात्या. १९४२ | *विवीते च ग | बृह. ५८६ |
| *विभजेन्मह | अनि. ७८९ | विरुद्धस्तु प्र | अनि. १९४३ | *विवीते नग | " " |
| विभजेयुः पु | कात्या. १५६१ | विरूपं रूप | भा. १०३२ | विवीते स्वामि | कात्या. १७६३ |
| *विभजेयुः सु | याज्ञ. ११५१ | * " " | मनुः १०४८ | विवृतानां च | कौ. ९२७ |
| *विभजेयुर्ध | नार. १५५३ | विल्लसो शूद्र | " १८६४ | विवृद्धयर्थं स्व | मनुः १२९४ |
| विभजेरन्ध | शंखः १४७३; | विलोक्य भर्तु | शुनी. १११९ | *विज्ञस्तथाऽर्ध | बृह. १७९० |
| | नार. १५५३ | *विवर्णकर | याज्ञ. १६३८ | विज्ञस्तथाऽर्ध | " " |
| विभजेरन् सु | याज्ञ. ११५१ | विवादं संप्र | मनुः ९०७ | विशिष्टं कुत्र | मनुः १०७० |
| विभज्य ब्रह्म | भा. १०३१ | विवादकार | बृह. ६२८ | विशिष्टानां चै | कौ. ८६२ |
| विभज्यमाने | शंखः १४१६, | विवादपदे | कौ. ८६२, | विशिष्टेषु द्वि | " १५७२, |
| | १४२८ | | १९२३ | विशिष्यते द्वि | १७९८ |
| *विभज्य सह | कात्या. ११०९ | विवादविधि | नार. ९४६ | | भा. १९७८ |

| | | | | | |
|-------------------|-------------|-------------------|--------------|---------------------|--------------|
| विशीलः काम | मनुः १०६० | विषामिदां प | याज्ञ. १६३८ | वृत्तस्वाध्याय | बृह. १७६० |
| विशुद्धिदण्ड | नार. १८२५ | *विषामिदां लि | , , | वृत्तिं च तेऽभि | व्यासः १५८७ |
| विशेषतः पु | भा. १२८५ | विषामिदाय | यमः १६५२ | *वृत्तिं च ते हि | , , |
| *विशेषतः प्र | देव. १११२ | विषोद्धन्धन | बृह. १६४८ | वृत्तिं तेऽपि हि | लहा. १५६८ |
| विशेषतोऽप्र | नार. ११००, | विष्णुप्रसादा | भा. १०३० | * " " | व्यासः १५८७ |
| १९७८; देव. | १११२ | *विष्णुर्वदत्य | व्यासः ६३४ | *वृत्तिं तेऽप्यभि | , , |
| विशेषतो म | भा. ८६० | विष्णोराराध | , ११११, | वृत्तिः सकाशा | भा. ८१९ |
| विशेषलिखि | कात्या. ६५७ | | १५२४ | वृत्तिराबन्धं | कौ. १४३० |
| विशेषश्चापि | देव. १३५० | विसंवदेन | मनुः ८६४ | वृत्तिराभर | देव. १४६१ |
| विशेषश्चेन्न | नार. १८२६; | विसंवादितं | कौ. ८६३ | वृत्तिश्चेन्नास्ति | भा. ८१९ |
| | सुम. १८३५ | विसंवादेऽथ | कात्या. ६७३ | *वृत्तेर्देशकु | कात्या. १७९१ |
| *विशेषश्चैव | देव. १३५० | विसृज्य धन | शुनी. १११९ | *वृत्तेर्देशकु | , , |
| विशेषेण प्र | मनुः ९३५ | विस्मृतं वाऽपि | भा. १०२९ | *वृत्था क्षेपे च | देव. १४६१ |
| विशोधिते क | कात्या. ७६७ | दिस्रब्धं ब्राह्म | मनुः ८२३, | वृत्थादानं त | याज्ञ. ६८५ |
| विश्रब्धं ब्राह्म | , ८३९ | | १९२८ | वृत्थादानाक्षि | नार. ६२७ |
| *विश्रब्धवच्च | बृह. १७५९ | विस्रम्भहेतू | नार. ६६९ | *वृत्था दाने च | देव. १४६१ |
| *विश्वं पुराण | वेदाः १४२३ | विहङ्गमहि | मनुः १०७४ | वृत्था मोक्षे च | , , |
| विश्वकर्मन् | , ७९१ | विहाय कर | बृह. ७३४ | वृत्था हि शप | स्कन्द. १९६५ |
| विश्वजन्यामि | मनुः १०६९ | विहारकाले | भा. १०२९ | वृद्धां चन्ध्यां सु | भा. १०३० |
| विश्वजिति स | अनि. ८०७ | विहितं दृश्य | , १२४४ | *वृद्धा लुब्धाश्च | बृह. ८७३ |
| विश्वसो विप्र | गौत. १९१८ | विहितोऽर्थांग | संप्र. ११४२ | वृद्धा वा यदि | कात्या. ९५७ |
| विश्वरूपो वै | वेदाः १५९७ | वीतिहोत्रा कृ | वेदाः ९७४ | वृद्धाश्रमं वा | हारी. ११६३ |
| विश्वस्तवच्च | बृह. १७५९ | वीरं विदेय | , १२५९ | *वृद्धिं क्षयं वा | याज्ञ. ८९२ |
| विश्वस्मात्सीम | वेदाः ८०९ | वीरसूदेंव | , ९८६ | *वृद्धिं च भ्रूण | वसि. ६०९ |
| विश्वामित्रं तु | हरि. १३७६ | वीरसूदेंदृ | , १००२ | वृद्धिं वृद्धयेक | प्रजा. ७१५ |
| विश्वामिसो ब्र | वेदाः १००३ | वरिहृत्यां वा | , १५९७ | वृद्धिः सा कारि | नार. ६२५ |
| *विश्वासं पर | बृह. ८७३ | वीरहा ब्रह्म | , १५९२ | *वृद्धिक्षयौ तु | , ८९५ |
| विश्वासं प्रथ | , , | वीरहा वा ए+ | , १५९६ | वृद्धिच्छेदे छे | कौ. १६७३ |
| *विश्वासहेतू | नार. ६६९ | , , | , १५९७ | वृद्धिरष्टगु | नार. ६२६; |
| विश्वासार्थं कृ | हारी. ६३६ | वीराणां राज | वारा. १०७५ | *वृद्धिराभर | कात्या. ६३२ |
| विश्वासार्थं च | भा. ८६० | वीरा ये वृह्य | वेदाः १८३९ | वृद्धिश्चतुर्गु | देव. १४६१ |
| विश्वे देवा अ | वेदाः १९७७ | वीलुद्रेषा अ | , ५९९ | वृद्धिश्चतुर्वि | बृह. ६२८ |
| विषण्णरूपां | भा. ८४० | वीलुहरास्त | , १८३८ | वृद्धिस्तु योक्ता | नार. ६२७ |
| विषदायकं | कौ. १६१९ | वृक्षं तु विफ | अपु. १८३५ | वृद्धे जनप | , ९४९ |
| *विषप्रदां लि | याज्ञ. १६३८ | वृक्षं फलं वा | बृह. ८९६ | वृद्धरपि पु | , ६२५; |
| विषमग्निं ज | वारा. १०७६ | *वृक्षक्षुद्रप | याज्ञ. १६३४ | यमः ७३० | नार. ६२५ |
| विषमां नृप | कात्या. ९५८ | वृक्षच्छेदने | कौ. १६२१ | नार. ६२५ | बृह. ६२९; |
| *विषमेकाकि | बौधा. १४६९ | वृक्षमिवाश्च | वेदाः १९०२ | अनि. ६३५ | भा. १०३० |
| , , | वसि. १४७० | *वृक्षमूलफ | वसि. ६०९ | मनुः ९१० | मनुः १३९४ |
| विषमेतद्दे | वेदाः १४६४, | वृत्तिं च तत्र | मनुः ९१० | , , | , १२९४ |
| | १६०१ | *वृत्तिं तत्र प्र | , , | वृद्धो विरूपो | वेदाः १९८९ |
| *विषयान् नृप | कात्या. ९५८ | , , | अपु. १९७६ | वृद्धो च माता | याज्ञ. १६३४ |
| विषयेषु च | मनुः १०४४ | *वृत्तिं हि वर्त | मनुः १७०० | *वृद्धयर्थं तु स्व | शंखः ११६६ |
| *विषये सज्ज | , , | वृत्तदेशकु | कात्या. १७९१ | वृशो वैजान | |
| विषदतस्य | कौ. १६१५ | वृत्तपणिप्र | कौ. ८७९ | वृषक्षुद्रप | |
| *विषामिदां नि | याज्ञ. १६३८ | वृत्तस्थापि कृ | बृह. १५१८ | | |

| | | | | | |
|-----------------|-------------|--------------------|--------------|-------------------|--------------|
| *वृषभोऽधिको | शंखः ११६६; | बैरूप्यं मर | याज्ञ. १०८३ | *वैश्याजातो ह | मनुः १२४७ |
| वृषभो न ति | गौत. १२३३ | *वैरूप्यकर | " " | *वैश्याजो ब्रह्म | " " |
| वृषलं सेव | वेदाः ९८७ | *वैवाहिकं क्र | बृह. ८०३ | *वैश्याजोऽध्यर्ध | " १२४६ |
| वृषलः कर्म | यमः १८९० | वैवाहिकं तु | कात्या. १२२८ | वैश्यानां वैश्य | शौन. १३६५ |
| *वृषशूद्रप | नार. १९३७ | वैवाहिकीं क्रि | भा. १०२६ | वैश्यान्मागध | कौ. ११८५ |
| *वृषषोडशा | याज्ञ. १६३४ | वैवाहिके क्र | बृह. ८०३ | वैश्यापुत्रस्तु | भा. १२४४ |
| वृषाणं यन्तु | गौत. १२३३ | *वैवाहिको वि | नार. १०९३ | वैश्यापुत्रस्तु | नार. ११०५ |
| वृषोस्सर्गं ग | वेदाः १००५ | वैशाखायां यस्य | यमः ६६० | वैश्यापुत्रेण | भा. १२४४ |
| *वृष्टिपातं प्र | बृह. १९८७ | वैशेषिकं ध+ | नार. ११३१ | वैश्यापुत्रो ह | मनुः १२४७ |
| वेणुदलर | कात्या. ९५९ | *वैश्यं चैवार्ध | " १७८८ | वैश्या प्रसूता | नार. ११००; |
| वेणुवैणव | कौ. १०३५ | वैश्यं दूपायि | विष्णुः १६१० | वैश्यायां चैव | देव. १११२ |
| | मनुः १७१८; | वैश्यं द्विगुणः | कौ. ८१७ | वैश्यायां द्वौ प | भा. १२८७ |
| | नार. १७४९ | वैश्यं पञ्चश | मनुः १८६४ | वैश्यासुतो ब्रं | नार. १०९३ |
| *वेणुवैदल | मनुः १७१८ | वैश्यं वा क्षत्रि | यमः १८९० | वैश्ये चेच्छति | मनुः १२४७ |
| वेतनं द्विगु | अपु. १९७५ | *वैश्यः सर्वस्व | मनुः १८६३ | *वैश्ये वाऽप्यर्ध | भा. १९७६ |
| वेतनं वा य | नार. ८२८ | वैश्यः सर्वस्व | " " | *वैश्ये वाऽप्यर्ध | मनुः १७७४ |
| वेतनस्यान | बृह. ८३४; | *वैश्यः सहस्रं | " " | *वैश्ये सर्वस्व | " १८६३ |
| | नार. ८४८ | वैश्यक्षत्रिय | " १७७४ | वैश्ये स्यादर्ध | " १७७४; |
| | कौ. ८४३ | वैश्यमाक्षार | बृह. १७९० | वैश्यो धनार्ज | नार. १७८८ |
| वेतनाग्ने | कालि. १३७७ | वैश्यवर्जम | विष्णुः १२४० | *वैश्योऽध्यर्धं श | भा. ८१८ |
| वेतालभैर | याज्ञ. ८६८ | वैश्यवृत्ताव | नार. १९३८ | " " | मनुः १७७३ |
| *वेदज्ञाः शुच | बृह. ८७२ | वैश्यवृत्तिस्त | " १९३७ | वैश्योऽध्यर्धं श | नार. १७८८ |
| वेदविद्यावि | भा. १९८५ | वैश्यवृत्त्यपि | कात्या. ७५२ | " " | मनुः १७७३ |
| वेदेष्वपि न | पद्म. १३७६ | वैश्यवृत्त्या चा | नार. १९३८ | * " " | नार. १७८८ |
| वेदोक्तविधि | वेदाः १४१५ | वैश्यशूद्रप्रा | विष्णुः १९२१ | *वैश्योऽप्यर्धं श | मनुः १७७३ |
| *वेदो वै पुत्र | " ९८७ | वैश्यशूद्रौ प्र | मनुः ८२३, | *वैश्यो ह्यर्धं श | " " |
| वेधा ऋतस्य | कौ. ८६२ | *वैश्यश्च दिश | १९२८ | वैश्वदेवं त | देव. ११४२; |
| वेदाशौण्डिके | " ९०६ | वैश्यश्चेक्षत्रि | " १७७३ | वैश्वदेवः क्ष | शाक. १५८८ |
| वेदमखलव | " ८५१ | वैश्यश्चेद् ब्रा | " १८५९ | वैश्वदेवोऽध्व | अनि. १५८९ |
| वेद्याः प्रधाना | " १८८४ | वैश्यस्तु क्षत्रि | वासि. १८४५ | वैश्वानरः प | शुनी. १११९ |
| वेद्यागामी द्वि | देवी. १९४३ | वैश्यस्तु चतु | बृह. १७९० | वैश्वानरस्य | वेदाः ६०५ |
| वेद्यादिभव | नार. ८५१ | वैश्यस्य क्षत्रि | विष्णुः १९५० | वैश्वानराय | " ६०२ |
| *वेद्याप्रधाना | " १९३५ | * " " " | उच्चा. १७६६ | " " | " ६०५ |
| वेद्यास्त्रौणाम | बृह. १५८८ | *वैश्यस्य चाधे | बृह. १७९० | वैश्वानरो नो | " ६०३ |
| वैदिकं च त | कौ. १६७७ | *वैश्यस्य केत्स्या | " " | वैश्वानराय | भा. १२४३ |
| वैदेहकर | " १६७८ | वैश्यस्य चैत | " " | वैश्वानराय | व्यासः ८९९ |
| वैदेहकानां | " ८७८ | *वैश्यस्य त्वर्धे | मनुः १७७४; | वोढव्यं तद्भ | नार. ६७०, |
| वैदेहिकाया | " ११८५ | वैश्यस्य वर्त | बृह. १७९० | वोढुः स गर्भो | १७५४ |
| *वैद्यो न विद्य | नार. १२२० | वैश्यस्य वैश्यः | भा. १२४४ | वोढुमर्हति | मनुः १३०८ |
| *वैद्यो विद्याय | " " | वैश्यस्याधिकं | विष्णुः १२४० | *व्यङ्गता उक्तै | नार. ९१६ |
| *वैद्योऽविद्याय | " " | वैश्यस्यापि हि | गौत. ११२४ | *व्यङ्गतायुक्तै | विष्णुः १७७७ |
| *वैद्यो वैद्याय | " " | *वैश्यस्याप्यर्ध | भा. १९७६ | व्यजनेनोष्णे | " " |
| वैद्यपुत्र्यायि | कौ. ७३६ | वैश्यागमे तु | मनुः १७७४ | व्यज्जवैस्तु स | हारी. १०१५ |
| वैरुक्षदीप | भा. ६६१ | वैश्याजः स्वर्ध | अपु. १८९१ | व्यतिक्रमं ना | नार. १९७८ |
| वैरुक्षाय | वेङ्क. १५९६ | | मनुः १२४६ | | वाराः १०७६ |

| | | |
|---------------------|---------|---------------|
| व्यत्यासपरि | कात्या. | ८०५ |
| *व्यत्यासाच्च प | " | " |
| *व्यत्यासात्परि | " | " |
| व्यन्धो अख्यद | वेदाः | ९७१, १९७९ |
| *व्यपोह्य कल्म | मनुः | १९२८ |
| व्यपोह्य किल्बि | " | " |
| *व्यभिचरन्तीं | बृह. | १८८७ |
| *व्यभिचार ऋ | याज्ञ. | १०८६ |
| व्यभिचारर | कात्या. | १४५७ |
| व्यभिचारात्तु | मनुः | १०५३ |
| * " " | " | १०६४ |
| व्यभिचाराह | वसि. | १०२१; |
| | याज्ञ. | १०८६ |
| व्यभिचारे तु | मनुः | १०६४ |
| व्यभिचारे लि | नार. | १०९९, १४०२ |
| व्ययं दद्यात्क | बृह. | ७८५; |
| | शुनी. | ७९० |
| *व्ययं स्वामिनि | कात्या. | ९६० |
| व्ययानन्यांश्च | कौ. | १६७९ |
| व्यवहाराद् | नार. | १९३६ |
| *व्यवहारान् | शंख. | ११४७ |
| *व्यवहारेण | नार. | ७९८ |
| *व्यवहारे तु | " | " |
| व्यवहारेषु | " | " |
| *व्यवहारे स | " | " |
| व्यवहारोऽन | शुनी. | १७६७ |
| व्यवाये तीर्थ | वसि. | १०२१ |
| *व्यसनस्थम | याज्ञ. | ७४५ |
| व्यसनाभिच्छु | कात्या. | ७१० |
| *व्यसनासक्त | नार. | ११५५ |
| व्यस्यै मित्राव | वेदाः | ९९८ |
| व्याख्यातस्त्वधु | बृह. | ७३४ |
| व्याघ्रादिभिर्ह | नार. | ९१८ |
| व्याजीपरिशु | कौ. | १६७५ |
| व्याजेनोपार्जि | नार. | ११३०; |
| विष्णुः १९८३; | मनुः | १९८७ |
| व्याधांश्छाकुनि | " | ९३७ |
| व्याधितं व्यस | कात्या. | १४५७ |
| व्याधितः कुपि | नार. | ११५५ |
| व्याधितां विप्र | मनुः | १०४१ |
| व्याधितां स्त्रीप्र | देव. | १११२ |
| *व्याधितां चाऽधि | मनुः | १०५६ |
| व्याधितां प्रेत | कात्या. | १४५७ |
| *व्याधिता मृत्यु | " | " |

| | | |
|-----------------|---------|---------------|
| व्याधिता चाऽधि | मनुः | १०५६ |
| *व्याधिता संभ्र | नार. | ८५१ |
| व्याधिता सभ्र | " | " |
| व्याधितोन्मत्त | " | ६९७; |
| | कात्या. | ७१२ |
| व्याधितो बन्ध | भा. | १०३० |
| *व्याधिना संभ्र | नार. | ८५१ |
| व्याधिप्रकोपं | व्यासः | १६५१ |
| व्याधिभयमौ | कौ. | १९२४ |
| *व्यापादने तु | कात्या. | १६४९ |
| व्यापादनेन | " | " |
| व्यापादो विष | नार. | १६४३ |
| *व्यापारो विष | " | " |
| व्याप्नोति सक | सुम. | ९०० |
| व्यामिश्राणां उ | कौ. | ८७८ |
| व्यायच्छेच्छकित | नार. | ९१६; |
| | बृह. | ९१९ |
| | भा. | १०३१ |
| व्यायामः कर्क | मनुः | ९३७ |
| व्यालप्राहानु | व्यासः | ११११; |
| व्यालप्राही य | अज्ञि. | १११६; |
| अज्ञि. | परा. | १११७ |
| व्यालभये म | कौ. | १९२५ |
| व्यावहारिकं | " | १६८७ |
| व्यासिद्धं राज | याज्ञ. | ७७८ |
| व्युचरन्त्याः प | भा. | १०२७, १२८५ |
| | " | १९७८ |
| व्युष्टिरेषा प | वेदाः | १००३ |
| व्युद्धयो या अ | कात्या. | १८३३ |
| *व्रणितुष्टिक | भा. | १०३० |
| व्रतं च पति | हारी. | १०१५ |
| व्रतधारणं | वेदाः | १००९ |
| व्रतमेव दी | बृह. | १७६० |
| *व्रतस्वाध्याय | वारा. | १०७५; |
| व्रतोपवास | बृह. | ११०९ |
| | मनुः | १८०९ |
| *व्राजकश्चेद् | " | १८६१ |
| व्रात्यया सह | भार. | ८०७ |
| व्रीडादानमि | मनुः | १०७१ |
| व्रीहयः शाल | वेदाः | १००५ |
| शंसैदिष ह | बृह. | १७५९ |
| *शकुनादि च | भा. | १२८८ |
| शकुन्तलो च | " | " |
| शकुन्तलेति | " | " |
| शक्तं कर्मण्ये | मनुः | ७७६, १९२६ |
| शक्तस्यानीह | याज्ञ. | ११६९ |

| | | |
|-----------------|------------------|---------------|
| *शक्ताश्च यदु | नार. | १७५६ |
| शक्ताश्च ये उ | " | " |
| *शक्तास्त्वनभि | मनुः | १६९८ |
| शक्ति चोभय | " | १७०२ |
| शक्तितश्चानु | नार. | ८२८ |
| शक्तितोऽनभि | मनुः | १६९८, १९२९ |
| *शक्तितो न हि | " | १६९८ |
| *शक्तितो नाभि | " | " |
| *शक्तिभक्तानु | नार. | ८२८ |
| शक्तिभक्त्यनु | " | " |
| शक्तोऽप्यमोक्ष | याज्ञ. | १८२०, १९३३ |
| *शक्तोऽप्यमोष | " | १८२० |
| *शक्तो ह्यमोक्ष | " | " |
| *शक्तो ह्यमोच | " | " |
| *शक्तौ च ये उ | नार. | १७५६ |
| शक्त्यपेक्षम् | " | ७२४ |
| *शक्त्यपेक्षम् | " | " |
| शक्त्यं तत्पुन | " | १९४० |
| शक्ता त्वसंजज | " | १७५२ |
| शक्कानिष्पन्नं | कौ. | १६८६ |
| शक्कारूपक | " | १६८२ |
| शक्कविश्वत्स | कात्या. | १५८२ |
| शक्कितस्थाने | कौ. | १०३६ |
| शतं कर्षांवि | वेदाः | ११२१ |
| शतं क्षत्रियो | गौत. | १७६९ |
| शतं तव प्र | वेदाः | ९९७ |
| शतं दासाः अ | " | ८१० |
| शतं ब्राह्मण | मनुः | १७७३; |
| | नार. | १७८८ |
| | वेदाः | ८१० |
| शतं मे गर्द | " | ११२१ |
| शतं राज्ञो ना | बौध. | १६०६ |
| शतं वैश्ये द | याज्ञ. | १८७६ |
| शतं स्त्रीद्व | गौत. | १६६० |
| शतं गौरना | वृगौ. | १३७३ |
| शतत्रयं ना | वेदाः | १५९६ |
| शतदायो वी | नार. | १७४७ |
| शतमष्टप | अनि. | १९६८ |
| शतमानं प | कौ. | १६७६ |
| शतसहस्रा | विष्णुः | १९२१ |
| शताध्यक्षान् | मनुः | ९३९, |
| शतानि पञ्च | १८५८, १८६०; अपु. | १९७६ |
| शतोपाष्टा नि | वेदाः | १४६४, १६०० |

| | | | | | |
|-----------------|--------------|-------------------|--------------|---------------------|--------------|
| शतायुर्वै पु | वेदाः १५९६ | शत्रं द्विजाति | मनुः १६२३ | *शास्त्रशौर्यादि | बृह. १४०२ |
| शतावरेषु | कौ. १६१४ | *शस्त्रावघाते | याज्ञ. १६३७ | शास्त्रशौर्यार्थ | " " |
| *शते त्वष्टप | नार. १७४७ | शस्त्रावघाते | " " | शास्त्रेणातो नृ | अनि. १९४३ |
| शते दशप | याज्ञ. १७३५ | शस्त्रेण ग्रह | कौ. १६१८ | शास्त्रैरधिग | आप. १९१८ |
| *शतेष्वेकाद | मनुः १७१७ | शस्त्रेणोत्तम | विष्णुः १७९६ | शिक्यच्छेदे तु | स्कन्द. १९६६ |
| *शत्यस्ततोऽर्धे | याज्ञ. १७८१ | शाकं स्तोत्रप्र | मत्स्य. १७६७ | *शिक्षकाबीज | कात्या. ७८८ |
| *शत्यस्तदर्धे | " " | शाककार्पास | व्यासः ६३४ | शिक्षकाभिज्ञ | " " |
| शत्यस्तदर्धे | " " | *शाकपाषाण | " " | शिक्षयन्तम | नार. ८२७ |
| शपथवाक्या | कौ. १९२२ | शाकमूलफ | विष्णुः १६७० | शिक्षाणो अस्मि | वेदाः ११५९ |
| शपथाः कोश | स्कन्द. १९६५ | *शाकहरित | नार. १७४९ | शिक्षाविशेषे | कौ. १६७५ |
| शपथेन वि | बृह. १६४८ | *शाकानां सार्द्र | " " | *शिक्षितश्चानु | नार. ८२८ |
| *शपथेनाव | " " | शाकानामार्द्र | " " | शिक्षितोऽपि कृ | " ८२७ |
| शपथैः शापि | " ९५१ | *शाकाहरित | " " | *शिक्षितोऽपि श्रि | " " |
| *शपथैः संवि | " ७८५ | शाकुन्तलं म | भा. १९८५ | शिखा अपि च | अनि. १३७४ |
| शपथैः स वि | " " " | शाखा छेद्या तु | प्रजा. ९६२ | शिखाकर्णाङ्ग | हारी. १७९४ |
| ८९६; कात्या. | १६५० | *शाखानामार्द्र | नार. १७४९ | शिखावृद्धि का | बृह. ६३० |
| " | बृह. १६४८ | शाणोष्विका च | अनि. १९६८ | *शिखिनां शृङ्गि | कात्या. १६५१ |
| * " " " | " ७८५ | शाणोष्विकाश्च | " १९६७ | शिखेव वर्ध | बृह. ६२९ |
| *शपन्तं दाप | याज्ञ. १७८० | शाण्डिली निम्ब | भा. १०२८ | *शिखोपचारं | नार. ९४८ |
| शप्तस्त्वेवं सु | भा. १९८३ | शान्ता तव सु | वारा. १३२९ | *शिविराचं कृ | " १७४५ |
| शमयन् सर्व | " ८६० | शान्ता शान्तेन | " " | शिरसश्चाव | हारी. १०१५ |
| शमीधान्यं कृ | नार. १७४५ | शान्ति वा सिद्ध | कौ. १९२५ | शिरसि चतु | कौ. १७९८ |
| शम्बरस्य च | भा. १०३२ | *शापिताः शप | बृह. ९५१ | शिरसो मुण्ड | नार. १६४४; |
| शम्यापातास्त्र | मनुः ९०९ | शारङ्गी मन्द | मनुः १०५१ | यमः १८९० | वेदाः ९२२ |
| शम्योषा सुपय | आप. १६६६ | शारीरं धन | " १६२७ | शिरोभिस्ते गृ | मनुः ९३७ |
| शग्यासनम | भा. १०३३; | *शार्गी च मन्द | " १०५१ | *शिलां बद्ध्वा क्षि | याज्ञ. १६३८ |
| | मनुः १०४९ | *शार्जी च मन्द | " " | *शिल्पाकरज्ञ | कात्या. ७८८ |
| शग्यासने वि | व्यासः १८८९ | *शार्जी मन्दपा | " " | *शिल्पिदोषाद्दि | " ७५५ |
| *शरकुञ्जक | " ९६१ | शालाया देव्या | वेदाः १००१ | *शिल्पिनापि च | " " |
| *शरकुञ्जक | " " | शालीनस्यापि | नार. १०९५ | शिल्पिनो मासि | गौत. १६६२; |
| शरकुञ्जक | " " | *शाल्मलीन् सा | मनुः ९३३ | उश. १९४२ | नार. ७४९ |
| *शरान् कुञ्ज | मनुः ९३३ | शाल्मलीफल | " १७०९, | शिल्पिषूपनि | कात्या. १२२५ |
| शरान् कुञ्ज | " " | शाल्मलीसाल | " १९२७ | *शिल्पिष्वपि हि | नार. ७४९ |
| शरीरं यज्ञ | वेदाः ६०१ | शाल्मले फल | " ९३३ | *शिल्पे चोपनि | कात्या. १२२५ |
| शरीरकृष्ण | भा. १२८८ | शासद्बद्धिर्दु | " १७०९ | *शिल्पेष्वपि च | कात्या. १२२५ |
| शरीरप्रकृ | कौ. १७७१ | शासनं वा कु | वेदाः १२५५ | शिल्पेष्वपि हि | " " |
| शरीरमेतौ | भा. १९८४ | शासनाद्वाऽपि | बृह. ९४९ | *शिल्पैलेब्धं तु | " १४५५ |
| शरीरार्थं स्मृ | बृह. ११०७, | शासनाद्वा वि | नार. १७५१ | *शिल्पोपकार | मनुः १६९४ |
| | १५१३ | * " " " | नार. १७५१ | शिल्पोपचारं | " " " |
| *शरीरार्थः स्मृ | " " | शासने वा वि | बौधा. १६६७ | | १९२९ |
| *शरीरार्थह | " " | *शासितारः स्व | मनुः १६२८ | शिवा नारीय | वेदाः १००२ |
| शर्म वमैत | वेदाः १००२ | शास्ता हि वर | कौ. १८५१ | शिशौरालिङ्गय | भा. १९८४ |
| शर्मिष्ठायाः सु | भा. १३९१ | शास्ति तच्छास्त्र | शुनी. १९८८ | शिश्वस्योत्कर्त | नार. १८८२ |
| शवकेचोर्वा | स्मृत्य. ८७७ | *शास्त्रकार्यार्थ | बृह. १४०२ | शिष्टभार्यां शु | दक्षः १११५ |
| शशाङ्कैर | भा. ८४० | *शास्त्रविप्रति | आप. ११६६ | शिष्टस्मृतिवि | बौधा. १९२० |
| शश्वत्पुत्रेण | वेदाः १२६० | | | | |

| | | |
|---------------------|---------|-------|
| शिष्टाकरणे | गौत. | १६०५ |
| *शिष्टागमवि | बौधा. | १९२० |
| शिष्टा ते दम | भा. | ८१९ |
| *शिष्टा भार्या शु | दक्षः | १११५ |
| शिष्यं क्रोधेन | कात्या. | १८३३ |
| *शिष्यकाभिज्ञ | " | ७८८ |
| *शिष्यते प्रय | नि. | १२५३ |
| शिष्याशिष्टिर | गौत. | ८१५, |
| | | १७९४ |
| *शिष्यादाचार्य | कात्या. | १२२५ |
| शिष्यादाविज्य | " | " |
| शिष्यान्तेवासि | नार. | ६९६, |
| | | ८२५ |
| *शीर्णोद्यानान्य | मनुः | १६९५ |
| शीलाध्ययन | कात्या. | ८३६ |
| शुक्ताक्याभि | विष्णुः | १७७१; |
| | शंखः | " |
| शुक्लं क्षेत्रं प्र | भा. | १२८७ |
| *शुक्लशोणित | वसि. | १२७४ |
| शुक्लावनड्वा | वेदाः | १००० |
| शुक्लेण च व | भा. | १३९१ |
| शुक्लः शबलो | विष्णुः | १९८२ |
| शुक्लेनार्थेन | " | १९८३ |
| शुचयो वेद | बृह. | ८७३ |
| शुचा विद्वा व्यो | वेदाः | ९९८ |
| शुचिश्चैवाशु | नार. | १९४० |
| शुची ते चक्रे | वेदाः | १००० |
| शुचीनामशु | नार. | १९३९ |
| *शुच्याचारा भ + | हारी. | १०१७ |
| शुद्धं ज्ञेयम | स्कन्द. | १९६७ |
| शुद्धं परिवा | कौ. | १६८६ |
| शुद्धाश्चित्रश्च | " | १६१८ |
| शुद्धाः पूता यो | वेदाः | ९९९ |
| शुद्धा अपः सु | " | ९०३ |
| शुद्धात्मन् प्रे | वारा. | १०७६ |
| *शुद्धानुग्रहः | बृह. | ८०४ |
| शुनःशेषः स्व | वारा. | १३२९ |
| शुनःशेषो वै | वसि. | १२७८ |
| *शुनःशेषो ह | " | " |
| शुनामनिग्र | कौ. | १९२५ |
| शुभं यतीरु | वेदाः | १००० |
| शुभकर्मक | नार. | ८२९ |
| शुभाशुभफ | स्कन्द. | १९६५ |
| शुभाशुभस | भा. | १०२९ |
| शुभस्त्वमिन्द्र | वेदाः | ८०९ |
| *शुभंभनी घांवा | " | १००३ |

| | | |
|-------------------|---------|------------|
| शुक्लं गृहीत्वा | नार. | ८५१ |
| *शुक्लं च त्रिगु | मनुः | १८६८ |
| शुक्लं च द्विगु | " | " |
| *शुक्लं त्वष्टगु | नार. | ८५१ |
| शुक्लं दद्यात् तु | कात्या. | ८३९ |
| *शुक्लं दद्यात् | बृह. | १७५८ |
| शुक्लं दद्यात्से | मनुः | १८६६ |
| शुक्लं दद्युस्त | बृह. | १७५८ |
| *शुक्लं दाप्यः से | मनुः | १८६६ |
| शुक्लं सोऽष्टगु | नार. | ८५१ |
| शुक्लं स्त्रीधन | कौ. | १०३४, |
| | | १४३१ |
| शुक्लं हि गृह्ण | मनुः | १०४३ |
| शुक्लमन्वाधे | कौ. | १४३० |
| *शुक्लमष्टगु | नार. | ८५१ |
| *शुक्लवाक्याभि | विष्णुः | १७७१ |
| शुक्लन्ययक | कौ. | १८४९ |
| शुक्लसंज्ञेन | मनुः | १०४४ |
| शुक्लस्त्रीधना | कौ. | १०३५ |
| शुक्लस्थानं प | नार. | ७८४; |
| | मनुः | १७०६, १९२७ |
| शुक्लस्थानं व | नार. | ७८३ |
| शुक्लस्थानम | विष्णुः | १६६८ |
| *शुक्लस्थानाद | " | " |
| शुक्लस्थानेषु | मनुः | १७०८, |
| | | १९२७ |
| शुक्लादानादा | कौ. | १०३४ |
| शुक्ले चापि मा | वसि. | १६६८ |
| शुश्राव वा अ+ | वेदाः | ११४४ |
| शुश्रूषकः प | नार. | ८२५ |
| *शुश्रूषकाः प | " | " |
| शुश्रूषमाणा | वारा. | १०७६ |
| शुश्रूषा क्रिय | " | १०७५ |
| शुश्रूषापौष | भा. | १०२९ |
| *शुश्रूषामभ्यु | नार. | ८२५; |
| | बृह. | ८३४ |
| शुश्रूषामेव | वारा. | १०७५ |
| शुश्रूषा शूद्र | आप. | ८१६ |
| *शुक्लवाक्याभि | विष्णुः | १७७१ |
| शुष्यतु मयि | वेदाः | ९९७ |
| शूद्रं कटाभि | बौधा. | १८४४ |
| शूद्रं तु कार | मनुः | ८२१, |
| | | १९२८ |
| शूद्रं तु घात | यमः | १८९० |
| शूद्रं दूषयि | विष्णुः | १६१० |
| शूद्रः कटाभि | कौ. | १८५० |

| | | |
|--------------------|----------|------|
| शूद्रः क्षत्रिय | अपु. | १७९२ |
| *शूद्रः प्रव्रजि | याज्ञ. | १६३४ |
| शूद्रः शूद्रस्य | विष्णुः | १२४० |
| शूद्रः सर्वस्व | शौन. | १३६४ |
| शूद्र एतान् | भा. | ८१८ |
| शूद्र एव वै | कौ. | १२८८ |
| शूद्रदानं वा | वेदाः | १९८३ |
| *शूद्रदूषयि | विष्णुः | १६१० |
| शूद्रप्रव्रजि | " | " ; |
| | याज्ञ. | १६३४ |
| शूद्रमाकुस्य | उश. | १७९२ |
| शूद्रवधेन | बौधा. | १६०६ |
| शूद्रविद्वक्षत्र | बृह. | १९६१ |
| शूद्रश्चतुर्थो | भा. | ८१८ |
| शूद्रश्च धर्म | जैमि. | ७९३ |
| शूद्रश्च पादा | आप. | १६६७ |
| शूद्रश्चावाप्तं | विष्णुः | १९५० |
| *शूद्रश्चावाप्त | " | " |
| शूद्रश्चेद्ब्राह्म | वसि. | १८४५ |
| शूद्रसधर्मा | कौ. | ११८५ |
| *शूद्रस्तथाङ्क्य | याज्ञ. | १८७४ |
| शूद्रस्तथान्य | " | " |
| *शूद्रस्त्ववाप्तं | विष्णुः | १९५० |
| शूद्रस्य तु स | मनुः | १२४९ |
| शूद्रस्य द्विजा | विष्णुः | ८१६ |
| शूद्रस्य ब्राह्म | कौ. | १६१८ |
| शूद्रस्य विप्र | स्मृत्य. | १९६८ |
| शूद्रस्य स्यात्स | भा. | १२४४ |
| शूद्रस्यापि वि | " | ८१९ |
| शूद्रस्यापि हि | " | ८१८ |
| शूद्रस्यैकोद | सप्र. | २५३० |
| शूद्रां ज्ञायन | भा. | १२४३ |
| शूद्राक्रोशे क्ष | बृह. | १७९० |
| *शूद्राक्षेपे क्ष | " | " |
| *शूद्राणां क्षत्रि | मनुः | १८५९ |
| शूद्राणां च प्र | कौ. | ८७९ |
| शूद्राणां दास | ब्रह्म. | १३७४ |
| शूद्राणामेव | यम. | १११६ |
| शूद्रात् | गौत. | १६६० |
| शूद्रादायोग | कौ. | ११८५ |
| शूद्रादीन् घा | अपु. | १९४३ |
| शूद्रा पारश | नार. | ११०५ |
| शूद्रापुत्र ए | वसि. | १२७८ |
| शूद्रापुत्रव | गौत. | १३८६ |
| शूद्रापुत्रस्त्वे | विष्णुः | १२४० |
| शूद्रापुत्राः स्व | हारी. | १२६६ |

| | | | | | |
|--------------------|--------------|--------------------|---------------|--------------------|---------------|
| शुद्धपुत्रोऽय | गौत. १३८५ | शुगलयोनि | मनुः १०६४ | शोषयित्वा तु | शुनी. १११९ |
| शुद्धा वदये | वेदाः १३८५, | शुद्धिणा दंष्ट्रि | कौ. १६२१ | *शौचधर्मे च | मनुः १०४७ |
| | १८३७, १८३८ | शुद्धिणो वत्स | स्कन्द. १९६६ | *शौचधर्मेऽन्न | ” ” |
| शुद्धायां क्षत्रि | नार. ११०५; | शुद्धिदंष्ट्रिभ्या | कौ. १६२१ | शौचामिकाये | बृह. ११०६ |
| | मनुः १८५९ | शृणु कुन्ति क | भा. १२८४ | *शौचेऽभिकार्ये | ” ” |
| शुद्धायां चापि | भा. १२४४ | शृणामि च ना | ” १९८५ | *शौचे धर्मे च | मनुः १०४७ |
| *शुद्धायां तु द्वि | देव. १२५२ | शृते प्रक्षाल्यो | हारी. १०१५ | शौचे धर्मेऽन्न | ” ” |
| शुद्धायां ब्राह्म | भा. १२४३, | शेषं तु दश | भा. १२४३ | शौचेयो जप्तः | वेदाः १२६१ |
| | १२४४ | Xशेष इत्यप | नि. १२५३ | शौण्डिकव्याध | बृह. ७०८; |
| शुद्धायाः प्राति | नार. १०९३ | शेषमुपनि | कौ. ६३८, | | कात्या. ७१४ |
| शुद्धयेव प्र | भा. ८१८ | | ७३७ | शौण्डिकाद्यं ब्रा | बृह. ७२६ |
| शुद्धेण तु न | ” ८१८ | ” ” ” + | ” ७३६ | शौनकीपुत्रः | वेदाः १९८२ |
| शुद्धे त्वेकगु | बृह. ८०३ | शेषाः प्रतिभु | वृव. ६७७ | शौनकोऽहं प्र | शौन. १३६३ |
| शुद्धे न किञ्चि | गौत. १७६९ | शेषाणां कर्म | कौ. १६७६ | शौर्यकर्माप | मनुः १६९६, |
| शुद्धेषु पूर्वै | बौधा. ८१६ | शेषाणामानृ | मनुः १३२४ | ” १९२९ | ” १६९६ |
| *शुद्धे समगु | बृह. ८०३ | शेषाश्चेदन् | नार. ९४५ | *शौर्यकर्मोप | ” १६९६ |
| शुद्धे निर्माज | भा. ८१९ | शेषास्तमुप | मनुः ११९६ | *शौर्यप्राप्तं च | कात्या. १२२७. |
| शुद्धो गुप्तम | मनुः १८६२ | * ” ” | देव. १३५१ | शौर्यप्राप्तं तु | ” ” |
| *शुद्धो गुप्तम | ” ” | *शेषे चैकाद | मनुः १७१७ | शौर्यप्राप्तं वि | ” ” |
| *शुद्धो गुप्ते चा | ” ” | *शेषे त्वेकाद | ” १७१५, | शौर्यभायोध | नार. १२२० |
| शुद्धोत्पचांश्च | ” १९६९ | | १७१७ | शौर्यादिनाप्रो | व्यासः १२३१ |
| शुद्धो दासः पा | ब्रह्म. १३७४ | शेषेऽप्येकाद | ” १७१४ | *शौर्याद्याप्तं तु | कात्या. १२२७ |
| *शुद्धो द्विजाति | देव. १२५२; | * ” ” | ” १७१७ | *शौलिकैः स्थान | याज्ञ. १९५९ |
| | गौत. १७६८ | शेषेषु च पि | विष्णुः १४२८ | शौलिकैः स्थान | ” ” |
| शुद्धो द्विजाती | ” ” | शेषेष्वन्येषु | भा. १२८५ | *शौलिकैः स्थान | ” ” |
| | १७९४ | *शेषेष्वेकाद | मनुः १७१४ | श्मशानग्राम | कौ. ९३२ |
| शुद्धो ब्राह्मणी | वसि. १८४६ | ” ” ” | ” १७१७ | श्मशानेष्वपि | मनुः १९३० |
| शुद्धो यदर्या | वेदाः १८३८ | *शेषैरेप्यनु | नार. १७५३ | श्यामः शमीको | हरि. १३७६ |
| शुद्धो येनाङ्ग | कौ. १७९९ | शोचन्ति जाम | मनुः १०५२ | श्यावदन्नग्र | वेदाः १५९२ |
| शुद्धो ह्येताङ्ग | भा. ८१८ | *शोचन्ति याम | ” ” | श्यावपाणिपा | कौ. १६१५ |
| शुद्ध्यां द्विजाति | बृह. १२५१; | शोचन्ति योषि | बृह. ११०६ | श्रद्ध्यात्पार्थि | स्कन्द. १९६५ |
| | देव. १२५२ | शोचेदेववि | संव. १८९१ | श्रद्धया देय | वेदाः ७९२ |
| शुन्वपाणिपा | कौ. १६१५ | शोणितं तत्र | बृह. १८३२ | श्रद्धानुग्रह | बृह. ८०३ |
| शुन्व्यागाराण्य | नार. १७५४ | शोणितं दृश्य | स्कन्द. १९६७ | श्रद्धा पुंश्वली | वेदाः ८४२ |
| शुन्व्यानि चाप्य | मनुः १६९५, | शोणितशुक | वसि. १२७३ | श्रद्धासु स का | ” १००६ |
| | १९२९ | शोणितानुसि | कौ. १६१५ | श्रद्धासु स च | ” ” |
| *शुन्व्यानि वाप्य | ” १६९५ | शोणितेन वि | विष्णुः १७९६; | श्रद्धेया राग | कौ. १६७४ |
| शुन्वेषी निरुद्ध | वेदाः १००२ | | याज्ञ. १८१६ | श्रमदुःखम | देव. १६५१ |
| *शूरः शत्रुस | कात्या. ७८९ | *शोणितेन स | ” १८१७ | श्रमो बृहद्दि | वेदाः ९७४ |
| शूरान् संग्रा | विष्णुः १९२१ | शोणितोत्पाद | कौ. १७९९, | श्राद्धं माताम | व्यासः १५२४ |
| शूरोऽशांस्त्रीन् | काल्या. ७०९ | | १८०० | श्राद्धदि दास | ब्रह्म. १३७४ |
| शूरो नाम य | भा. १९८६ | *शोधनाद्यन्त्रि | व्यासः १७६४ | श्रास्तः पारिकु | वेदाः ८१३ |
| शूरस्य च ष | नार. ७६४ | शोधयित्वा तु | बृह. ७३१ | श्रान्तान् क्षुधः | बृह. १८३१, |
| *शूले तममो | ” १८२९ | शोधयेद यज्ञ | शुनी. १११९ | | कात्या. १८३४ |
| शूले मत्स्यानि | ” १९३६ | शोधयेदुश्च | कौ. १६९० | *श्रान्तानः तृषा | ” ” |
| शूलं तस्यै | ” १८२९ | शोभनादिद् | ” १७७२ | श्रावणां श्राव | भा. ९००. |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| आवणात्पूर्व | मरी. | ६६० |
| ” ” | भार. | ” |
| आवयन्त्यर्थ | बृह. | १७५९ |
| *आवयित्वाणि | ” | ६५४ |
| आवयेत्प्राङ्वि | स्कन्द. | १९६६ |
| *आन्यं विभाव | बृह. | ७८६ |
| श्रियः संपूज | अपु. | १९७९ |
| श्रियमेवास्मि | वेदा: | १००६ |
| श्रिया देयम् | ” | ७९२ |
| श्रियाऽभितप्ता: | भा. | १९८३ |
| श्रिया वा एत | वेदा: | १००६ |
| श्रियै वाऽएत | ” | १००९ |
| श्रीश्च राज्यं च | भा. | १२४४ |
| श्रुतं च विश्रु | वेदा: | ८४२ |
| श्रुतं देशं च | मनु: | १७७६ |
| श्रुतदेशजा | विष्णु: | १७७० |
| श्रुतदेशादि | अपु. | १७९२ |
| श्रुतशौर्यत | नार. | ११२९; |
| | मनु: | १९८६ |
| *श्रुताध्ययन | कात्या. | ८३६ |
| श्रुतिर्हि श्रय | वारा. | १०७६ |
| श्रुतिस्मृतिवि | नार. | १९३५ |
| श्रुतिस्मृत्यवि | कात्या. | १९४२ |
| श्रुत्वा तमब्रु | भा. | ८४० |
| *श्रुत्वा ये नापि | नार. | १७५६ |
| श्रुत्वा ये नाभि | ” | ” |
| श्रयतां कर्ष | बृह. | ७८६ |
| श्रयतां तं प्र | ” | ७६४ |
| *श्रयतां तत्प्र | ” | ” |
| श्रयते हि पु | भा. | १०२७ |
| श्रयमाणेऽभि | गौत. | १०१३ |
| श्रेणिनैगम | याज्ञ. | ८६९ |
| श्रेणिपूगृ | बृह. | ८७४ |
| *श्रेणिनैगम | याज्ञ. | ८६९ |
| *श्रेणीपुरो | बृह. | ८७४ |
| श्रेयसः शय | हारी. | १८४३ |
| श्रेयसः श्रेय | शंख: | १२८३; |
| | मनु: | १३२१ |
| | नार. | १३४६ |
| * ” ” | ” | १९३९ |
| *श्रेयान् परि | ” | ” |
| श्रेयान् प्रति | ” | ” |
| *श्रेष्ठ एव तु | मनु: | ११९६ |
| श्रेष्ठिनि संव | वेदा: | ८१४ |
| श्रेष्ठो ह वेद | ” | १६०१ |
| श्रोतुमिच्छाम्य | भा. | १०२८ |
| श्रोत्रियं व्याधि | मनु: | १७२८, |

| | | |
|---------------------|---------|-------|
| श्रोत्रियः श्रोत्रि | मनु: | १९२७, |
| | | १९२७ |
| श्रोत्रियस्वह | कण्व: | १७६६ |
| श्रोत्रिया ब्राह्म | गौत. | १४६५ |
| श्रोत्रिये तच्च | बृह. | ८०३ |
| *श्रोत्रिये शत | ” | ” |
| श्रोत्रियेषूप | मनु: | १७२७, |
| | | १९२७ |
| *श्रोत्रियो ब्राह्म | गौत. | १४६५ |
| श्रोत्रे ते चक्रे | वेदा: | १००० |
| *श्वः पचनभा | शंख: | १०२४ |
| श्वः श्वः पचन | ” | ” |
| श्वर्ध्नीव यो जि | वेदा: | ८०९ |
| श्वपदं स्तेये | विष्णु: | १६०९ |
| श्वपदेनाङ्क | नार. | ८३१; |
| | दक्ष: | ८३९ |
| श्वपाकपण्ड | नार. | १८२७ |
| *श्वपाकपशु | ” | ” |
| *श्वपाकमेद | ” | ” |
| *श्वपाकशिल्पि | ” | ” |
| *श्वपाकषण्ड | ” | ” |
| *श्वपाकषण्ड | ” | ” |
| श्वपाकस्यार्या | कौ. | १८५० |
| श्वपाकीगम | ” | ” |
| *श्वपादेनाङ्क | दक्ष: | ८३९ |
| *श्वपादेनाङ्कि | ” | ” |
| श्वभिः खादये | गौत. | १८४२ |
| *श्वमिरादये | ” | ” |
| श्वभिर्वा दंश | भा. | १०३० |
| *श्वमिश्च खाद | गौत. | १८४२ |
| *श्वभिस्तां खाद | यम: | १८९० |
| *श्वभिस्तु खाद | गौत. | १८४२ |
| श्वशुरकुल | कौ. | १०३५ |
| *श्वशुरगुरु | विष्णु: | १०२३ |
| श्वशुरप्राति | कौ. | १४३० |
| श्वश्रूः पूर्वज | बृह. | १४५० |
| श्वश्रूश्चशुर | विष्णु: | १०२३ |
| *श्वश्रुवादिभिः पा | बृह. | ११०६ |
| श्वश्रुवादिभिर्गु | ” | ” |
| *श्वश्रुवादिभिश्च | मनु: | १४३९ |
| श्वेत एवाश्व | भा. | ८४० |
| श्वेतकेतुरि | ” | १०२७, |
| | | १२८४ |
| श्वेतकेतोः कि | ” | १०२७, |
| | | १२८५ |

| | | |
|------------------|---------|-------|
| श्वेतकेतोः पि | भा. | १२८४ |
| श्वो भूते प्रति | हारी. | १०१५ |
| षट्काकाणिक | अनि. | १९६८ |
| षट्सु दायादे | शंख: | १२८२ |
| षट्सु षट्सु च | मनु: | १७०७, |
| | | १९२७ |
| षट्स्वनभिच | बौधा. | १६०७ |
| षडपध्वंस | भा. | १२८६ |
| ” ” ” + | ” | १२८७ |
| षडिल्लेके | गौत. | १०१४ |
| षडुष्टखरे | ” | ९०४ |
| *षडुष्टे | ” | ” |
| षडैवाबन्धु | भा. | १२८४ |
| षडगुणः काय | कात्या. | १८३२ |
| षडोतारसु | वेदा: | १००६ |
| षडबन्धुदाया | हारी. | १२६५ |
| षडभागं तत्र | कात्या. | ८९७ |
| *षडभागं तस्य | ” | ” |
| षडभागकर | बृह. | १९४१ |
| षडभागभूतो | बौधा. | १९१८ |
| *षडभागस्तर | बृह. | १९४१ |
| षड्विधस्तस्य | नार. | ८८६ |
| *षड्विधाऽन्यैः स | बृह. | ६२८ |
| षड्विधाऽस्मिन् | ” | ” |
| षड्विधा ह्यात | वसि. | १६०८ |
| षण्डान् छाधि | विष्णु: | १९२१ |
| षण्णामेकां पि | भा. | १९७६ |
| षण्मासाद्वत्स | कात्या. | ८९८ |
| षण्मासानिति | बौधा. | १०२० |
| *षट्वासनं पा | नार. | १६४५ |
| षष्ट्यंशको म | शुनी. | १७६७ |
| *षष्टं च क्षेत्र | मनु: | १३२४ |
| षष्टं तु क्षेत्र | ” | ” |
| षष्टे त्विच्छातो | विष्णु: | ८९१ |
| षष्ठ्यां आति | वेदा: | ८११ |
| षड्गुणस्य वि | भा. | ८६० |
| षड्गुण्यं च त | मासो. | १९७० |
| *षाण्मासिकं मा | बृह. | ८७५ |
| *षाण्मासं मासि | ” | ” |
| षाण्मासिके मा | ” | ” |
| *षाण्मासिके व | ” | ” |
| षोडशमासै | गौत. | ६०७ |
| *षोडशर्तुनि | याज्ञ. | १०७९ |
| षोडशर्तुनि | ” | ” |
| षोडशांशं त्व | शुनी. | १७६७ |
| षोडशाङ्गुल | स्कन्द. | १९६६ |

| | | |
|-------------------|---------|---------------|
| षोडशाद्यः प | याज्ञ. | १८२१ |
| *षोडशाद्ये प | " | " |
| *षोडशास्य तु | मनुः | १७२१ |
| *षोडशैव च | " | " |
| षोडशैव तु | " | " |
| सं काशयामि | वेदाः | १००२ |
| संक्रमच्चज | मनुः | १६३०, १९२९ |
| *संक्रामयति | काल्या. | ८३८ |
| संक्रामयेत् | " | " |
| *संक्रामयेत्त | " | " |
| *संक्रामयेद् | " | " |
| *संक्षयः स्तूय | नार. | १७४७ |
| सं गच्छर्व सं | वेदाः | ८५७ |
| संगच्छमाने | " | ९६९ |
| संगताभूद् | भा. | १०२८ |
| संगृहीता प | कौ. | १८४९ |
| *संगृह्य विह्व | काल्या. | १७६२ |
| *संगोपयन्तो | व्यासः | ७८९ |
| संगहक्त्रिवि | " | १८८९ |
| संग्रामचौर | बृह. | १९४१ |
| संग्रामादाह | काल्या. | १२२७ |
| संगमृताः सं | कौ. | ७७१ |
| संगमुख्यपु | " | ८६३ |
| संगमुख्यश्च | " | " |
| संगमुख्यांश्च | " | " |
| संगलाभो द | " | ८६२ |
| संगानां वा वा | " | ८६३ |
| संगश्चायेव | " | " |
| संग हि संगह | " | ८६२ |
| संगेन परि | " | ८४४ |
| संगेव्वेवमे | " | ८६३ |
| संगयांश्च न | भा. | ८१८ |
| संगेनयाथो | वेदाः | ९९६ |
| *संगजाताः पित | देव. | ११९४ |
| संग जानते म | वेदाः | ९७९ |
| संगजानानो वि | " | १००७ |
| संग जानामहे | " | ८५९ |
| संग जास्पत्यं सु | " | १००७ |
| संगज्ञप्तेषुः प | " | १००९ |
| संगज्ञानं नः स्वे | " | ८५८, ८५९ |
| संगज्ञानं नो दि | " | ८५८ |
| संगज्ञानमश्वि | " | ८५९ |
| संगज्ञानमसि | " | ८५८ |
| *संगज्ञानमस्तु | " | " |

| | | |
|----------------------------|--------|---------------|
| संगज्ञानाय स्म | वेदाः | ८५८ |
| संगततिः स्त्रीप | याज्ञ. | ६६८ |
| संगततिस्तु प | " | ६२१ |
| संगतत्यानाशा | देव. | १११२ |
| संग तस्येन्द्रो ह | वेदाः | १४६४, १६०० |
| संगतानः पित | देव. | ११९४ |
| संगतानकार | बृह. | १३४८ |
| संगतानवर्धे | वसि. | १९८२ |
| *संगतानिकादि | बृह. | ८७५ |
| संगतुष्टो भार्य | मनुः | १०५३ |
| संगत्यक्तव्याः प | नार. | १०९५ |
| संग त्वा नह्यामि- | वेदाः | १००४ |
| *संगदिग्धः प्रति | नार. | ८२६ |
| *संगदिग्धाऽर्थे व | बृह. | ७८५ |
| संगदिग्धे प्राति | संव. | ६३५ |
| *संगदिग्धे प्रीति | " | " |
| संगदिग्धेऽर्थे व | बृह. | ७८५ |
| *संगदिष्टः कर्म | नार. | ८२६ |
| संगदिष्टः प्रति | " | " |
| संगदिष्टमर्थे | कौ. | १९२२ |
| संगदिष्टस्याप्र | याज्ञ. | १६३४ |
| संगदिहे चोत्प | वसि. | १२७३ |
| संगधये जारं | वेदाः | ९९६ |
| संगधाता संगधि | " | १००३ |
| *संगधि कृत्वा तु | मनुः | १७११ |
| *संगधि क्रियां वि | बृह. | ८७४ |
| *संगधि छित्त्वा तु | मनुः | १७११ |
| *संगधि छित्त्वाऽने | व्यासः | १७६५ |
| संगधि भित्त्वा तु | मनुः | १७११, १९२९ |
| *संगधि भित्त्वाऽने | व्यासः | १७६५ |
| संगधिक्रियां वि | बृह. | ८७४ |
| संगधिच्छिदः पा | " | १७५८ |
| *संगधिच्छिदः प्रा | " | " |
| *संगधिच्छिदोऽस | " | १७६० |
| *संगधिच्छिदो ह | " | " |
| संगधिच्छेत्ताऽने | व्यासः | १७६५ |
| संगधिच्छेदकृ | बृह. | १७६० |
| संगधिश्व परि | व्यासः | ८९९; |
| सुम. ८९९, १५८२; वृका. ९०१; | | |
| भार. १५८२, १९७५ | | |
| संगनिधातृश्च | मनुः | १६९७, १९२९ |
| संगनिपाते वृ | आप. | १८४३ |
| *संगनिपाते शि | " | " |

| | | |
|---------------------|-------------------|--------------|
| संगनिविष्टस | कौ. | १२०० |
| संग पत्नी पत्या | १४१७, १९५० | |
| संगपत्नी च र | वेदाः | ९९१, १००७ |
| *संगपत्नी च र | वसि. | १९४९ |
| *संगपत्नी च र | " | " |
| संगपत्नी च र | मनुः | १६९३ |
| *संगपातास्तु व्र | " | ९१० |
| संगपात्य रूप | अपु. | १९६२ |
| संग पितरावृ | वेदाः | १००३ |
| *संगपीडयेद् | काल्या. | ७२८ |
| संगपूज्यमानाः | भा. | १०३३ |
| *संगप्रदद्युः पृ | मत्स्य. | ८५५ |
| *संगप्रदाप्यः कृ | याज्ञ. | ९४३ |
| संगप्राप्तव्यव | काल्या. | १२०१ |
| *संगप्राप्ते चाष्ट | याज्ञ. | १६४० |
| *संगप्राप्ते त्वष्ट | नार. | ९४८ |
| संगप्राप्तो यात | " | " |
| संगप्राप्य निर | व्यासः | ११११ |
| संगप्रीत्या साध | बृहा. | १६५३ |
| संगप्रेष्यमाणै | बृह. | १५७३ |
| संगबन्धिवान्ध | नार. | १८८१ |
| *संगबन्धे भाग | बृहा. | १५२७ |
| संगभक्षितं य | व्यासः | ६३४ |
| संगभ्रमस्फुटि | नार. | १३१ |
| संगमल मलं | कौ. | १६१५ |
| संगभारैश्च प | वेदाः | १००४ |
| *संगभाषणं गृ | " | १००६ |
| संगभाषणं च | मनुः | १८५३ |
| *संगभाषणं प | बृह. | १८८५; |
| संगभाषणं स | व्यासः | १८८९ |
| संगभाषितवे | मनुः | १८५४ |
| संगभाषिताद् | " | १८५३ |
| संगभूयकारि | कौ. | ८४३ |
| संगभूय कुर्वं | " | ८४४ |
| शुनी. ७९०; याज्ञ. | विष्णुः | १५४२ |
| संगभूयकये | बृह. | ७८७; |
| *संगभूय च स | शुनी. ७९०; याज्ञ. | १७३० |
| संगभूयवणि | कौ. | १६७९ |
| संगभूय वा गृ | नार. | ७८० |
| संगभूय वा द | विष्णुः | १६११, |
| संगभूय वोप | १६६९; याज्ञ. | १७३० |
| संगभूय समु | कौ. | ९२६ |
| " | " | १४३० |
| " | " | १९३५ |
| " | " | ७७१ |

| | | | | | |
|-------------------|--------------|-------------------------|------------------|-------------------|---------------|
| संभय स्वानि | मनुः ७७६ | संशयच्छेदि | स्कन्द. १९६५ | संस्कृताऽपि प्र | कात्या. ११०९. |
| संभूयैकम् | बृह. ८७५ | संशयान्मोच | ,, १९६६ | *संस्कृतायां च | देव. १३५० |
| *संभूताश्वाह | दक्षः १११४ | *संश्रित्य कार | कात्या. ९५६ | *संस्कृतायां तु | मनुः १३०२ |
| *संभोगे विप्र | मनुः १०४४ | संसक्तकास्तु | ,, , | ,, , | देव. १३५० |
| सं मा कृतस्य | वेदाः १९०१ | संसक्तसक्त | नार. ९४५; | *संस्कृतायां स्व | मनुः १३०३; |
| सं मातरिष्वा | ,, ९८६ | | कात्या. ९५५, ९५६ | देव. १३५० | वसि. १२७२ |
| *संमिश्रं कार | कात्या. ९५६ | *संसक्तास्त्वथ | कात्या. , | *संस्कृतायां स्वे | क्रौ. १६७७ |
| *संमिश्रां कार | ,, , | संसदि ऋडि | भार. ८०७ | संस्थाध्यक्षः प | मनुः १३१९ |
| संमिश्र्य कार | ,, , | संसरन्तम | भा. १०२६ | संस्थितस्यान | स्कन्द. १९६३ |
| *संमील्य कार | ,, , | संगरीचिह | बृह. १७६० | संस्पृशेत्तालि | वेदाः ९६५ |
| संयतोपस्क | याज्ञ. १०८५ | *संसर्गलोपत्र | ,, १७६१ | संस्मयमाना | शुनी. ६३५ |
| संयाने दश | वसि. १९४४ | *संसर्गैश्चिह | ,, १७६० | संहर्तित ह्य | वेदाः ९८७ |
| संयुक्तं ब्राह्म | नार. १९३६ | संसर्जयन्ति | बौधा. १८४५ | संहोत्रं स्म पु | नार. ७०० |
| संयोगः क्रिय | बृह. १८८५ | संसिद्धे तूधृ | क्रौ. ७७१ | *स आभजेह | ,, , |
| संयोगघट | शुनी. १७६७ | संसृष्टं धन | वेदाः १५४० | *स आभजेद् | वेदाः १०१० |
| संयोगे विप्र | मनुः १०४४ | संसृष्टधनं | विष्णुः १५४२ | स इममेवा | भार. ९०० |
| संरक्षेत्सम | नार. ८७० | *संसृष्टस्य तु | नार. १५५३ | स उक्तलाभ | शाता. १११६ |
| संरुद्धस्य वा | क्रौ. १६९० | *संसृष्टाः सह | मनुः १५४३ | स उभे एक | वेदाः ५९९ |
| संरुद्धिकामा | ,, , | संसृष्टानां तु | नार. १५५२; | स ऋणिचिह | ,, ६०३, |
| संरोधश्वाका | ,, ८१७, | बृह. १५५८; कात्या. १५६० | कात्या. १५६० | स एतान् पाशा | ६०५ |
| | ८४४ | संसृष्टास्तेन | मनुः १५६३; | स एनं बन्ध | क्रौ. ७३७ |
| संलोभनापा | विष्णुः १८४६ | नार. १५६७ | नार. १५६७ | स एव तस्य | बृह. १३६२ |
| *संक्सरं उ | मनुः १०५५ | *संसृष्टिनः सं | वृहा. १५४१ | स एव ता आ | मनुः ७७४ |
| संक्सरं प्र | ,, , | संसृष्टिनस्तु | विष्णुः , ; | स एव ताड | बृह. १८३१ |
| | १३९३ | | याज्ञ. १५४६ | *स एव ताश्वा | मनुः ७७४ |
| संक्सरं प्रे | बौधा. १०२० | *संसृष्टिनां तु | नार. १५५२; | स एव तासां | प्रजा. ९६१ |
| *संक्सरं रा | गौत. १९४७ | बृह. १५५८; कात्या. १५६० | कात्या. १५६० | स एव दण्डः | नार. १७५० |
| संक्सरमि | विष्णुः १०२४ | संसृष्टिनां पि | विष्णुः १५४१ | *स एव दण्ड | कात्या. १८३३ |
| संक्सरामि | मनुः १८६१ | संसृष्टिनि प्रे | गौत. १५४० | स एव दद्या | मनुः १२९५, |
| संक्सरेण | क्रौ. १६१६ | संसृष्टी गृह्णा | वृहा. १५४१ | १४७४; देव. १३५० | विष्णुः १२८० |
| संक्सरेणा | नार. ९४८ | *संसृष्टो बान्ध | बृह. १५५८ | स एव दाय | कात्या. १८३२ |
| *संक्सरंऽभि | मनुः १८६१ | संसृष्टौ यौ पु | ,, १५५७ | स एव द्विगु | बौधा. १२६९ |
| संक्सरनम | क्रौ. १६८१ | *संस्कर्ता च क | ,, ७८७ | *स एव द्विपि | मनुः ११९७, |
| संक्सरनी स | वेदाः ९९७ | *संस्कर्ता तत्क | ,, , | स एव धर्म | १९८७ |
| *संक्सरनव्य | मनुः १८०५ | ,, , | शुनी. ७९० | स एव लाभो | क्रौ. १९२५ |
| संक्सर इ | वेदाः १९०२ | संस्कर्ता तु क | बृह. ७८७ | स एव विन | नार. १८२८ |
| सं वां भगासो | ,, ९९६ | *संस्कर्ता तु फ | ,, , | स एव साक्षी | बृह. १९१४ |
| *संखाद्य रूपं | मनुः १९५३ | संस्कर्तुं वर्ण | भा. १२८७ | स एवांशस्तु | कात्या. १२०१ |
| संखाद्य रूप | ,, , | संस्काराद्यखि | वसि. १२७८ | स एवास्य भ | नार. ८८८ |
| संविच्च मे | वेदाः ८५८ | *संस्काराश्चरु | नार. ११०५ | स एष द्विपि | बौधा. १२६९ |
| *संवित्क्रियां वि | बृह. ८७४ | संस्कारोदक | कात्या. १५२४ | स एष पाण्डो | भा. १०८४ |
| संविदा देय | वेदाः ७९२, | संस्कार्याः पूर्वं | बृह. १५८६ | सकलं द्रव्य | कात्या. ११७३, |
| | ८५९ | संस्कार्याः पैतृ | हारी. ११९५ | स काकणिह | १४१३ |
| संविद्धिधान | बृह. ८७२ | संस्कार्यां आतृ | व्यासः १४२२, | अनि. १९६८ | |
| *संविधातृश्च | मनुः १६९७ | | १५८७ | | |
| संविभागे वि | प्रजा. ८९९ | * , , | बृह. १५८६ | | |

| | | |
|------------------|---------------|-------|
| *स कानकप | याज्ञ. | १७२९ |
| स कानीनः सु | ब्रह्म. | १३७४ |
| सकामां दूष | मनुः | १८६६, |
| | १८६८; मत्स्य. | १८९२ |
| *सकामा तदे+ | कौ. | १८५० |
| सकाम यां च | " | १८४८ |
| *सकामायां तु+ | नार. | १८८३ |
| सकामास्वनु | याज्ञ. | १८७६ |
| *सकामास्वानु | " | " |
| स कारके नि | कात्या. | ७२८ |
| *स कृत्या दुहि | देव. | १५२५ |
| सकुन्या बान्ध | बृह. | १५१८ |
| *सकुल्येभ्योऽस्य | नार. | ७०४ |
| *सकुल्यैर्विद्य | बृह. | १५१३ |
| सकृतिमिन्द्र | वेदाः | १००६ |
| स कृच्छ्रान्मोच | भा. | १९८५ |
| स कृतप्रति | कात्या. | ७२८ |
| सकृत्प्रदीय | याज्ञ. | १०७८ |
| स कृत्वा प्लव | मनुः | १७२६ |
| सकृत्सु ते सु | वेदाः | ९६९ |
| सकृदंशो नि | मनुः | १०७२, |
| | १५७५; नार. | १०९२ |
| सकृदा गर्भा | " | ११०२ |
| सकृदात्माधा | कौ. | ८१७ |
| सकृदाह द | मनुः | १०७२, |
| | १५७५; नार. | १०९६ |
| सकृदुक्तं तु | अनि. | १११८ |
| सकृदुभौ प | कौ. | ८१७ |
| *सकृदेव द | मनुः | १०७२ |
| *सकृदेव स | " | " |
| *सकृदानं द | " | " |
| सकृद् दृष्टास्व | वारा. | १०७७ |
| सकृद्भौतस्य | विष्णुः | ८९१ |
| सक्थिग्रीवाम | कौ. | १७९९ |
| स क्रीतकः सु | मनुः | १३०८ |
| *स क्रीतकस्तु | " | " |
| स क्वचित् क्रि | विष्णुः | ६३७ |
| सखायः प्रवि | भा. | १९२६ |
| सखायाविव | वेदाः | ९९९ |
| सखा सख्ये व | " | ११५८ |
| सखा ह जाया | " | १००५, |
| | १२६० | |
| सख्यं तस्याङ्ग | वारा. | १३२९ |
| *सगणो वन्न | बृह. | १९१४ |
| सगर्भोऽढायाः | कौ. | १२८८ |
| स गृहे गृह | मनुः | १३०६ |

| | | |
|--------------------|---------|-------|
| स गोप्यो निष्कृ | बृह. | १८३१ |
| सगोत्रशिष्य | शंखः | १४७१ |
| सगोत्रस्थानी | आप. | १०१८ |
| सगोत्राय दु | " | " |
| सगोत्रेणान्य | कौ. | १२८८ |
| सगोत्रेषु कृ | वृगौ. | १३७२ |
| सगोपस्थानि | कौ. | १६८५ |
| स गोपालंश्चा | वेदाः | ९०३ |
| *स ग्राह्याः पाशा+ | " | ९९९ |
| सङ्गं वेद्यादि | देवी. | १९४३ |
| सङ्गीतैर्मधु | शुनी. | १११९ |
| *स च तां अभि | नार. | ११०१ |
| स च तां प्रति | " | " |
| *स च द्विपिता | बौधा. | १२६९ |
| *स च पाणिग्रा+ | विष्णुः | १२७९ |
| स च मातापि | " | " |
| *स च मात्रा पि | " | " |
| स च यथन्य | शाना. | १११६ |
| स च यस्योप | विष्णुः | १२७९ |
| स च येन क्री | " | " |
| स च येन गृ | " | " |
| *स च राज्ञोऽश | बृह. | १५८५ |
| *स च राज्ञा च | मनुः | ७१८ |
| स च लाभोऽर्ध | नार. | ८८८ |
| *स च लाभोऽर्ध | " | " |
| स चान्यान्बिभृ | विष्णुः | १२८० |
| *स चापि द्विवि | नार. | ६४८ |
| स चा पूतक | वेदाः | ८११ |
| स चारके नि | कात्या. | ७२८ |
| सचिह्नं ब्राह्म | याज्ञ. | १७३९ |
| स चेत् कोपं | कौ. | १६१४ |
| स चेत् तथा | " | १६७९ |
| " " + | " | १६८० |
| स चेत् पथि | मनुः | १८०९ |
| *स चेत् प्रति | " | " |
| *स चेत्पथि न | " | " |
| स चेदपसा | कौ. | ७५७ |
| स चेदऽपम | " | ८४४ |
| स चेदाचार | " | ७५७ |
| स चेद्दण्ड्योऽर्थि | शंखः | १६७२ |
| *स चेद्वनिक | कात्या. | ६५५ |
| स चेद् ब्रूयात् | कौ. | १६८३, |
| | १६८४ | |
| स चेन्न कुर्या | बृह. | ८५३; |
| | वृम. | ८५४ |
| सच्छूद्रस्याय | बृह. | १७९० |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| सच्युतिं जघ | वेदाः | १००६ |
| स जघन्यत | नार. | ८३१ |
| स जातमात्रा | भा. | ७३५ |
| सजातावानु | बृह. | १२५१; |
| | देव. | १२५२ |
| सजातावुत्त | याज्ञ. | १८७२ |
| *सजातिः श्रेय | नार. | १०९३ |
| सजातीयः सु | वृया. | १३५५ |
| सजातीययो | विष्णुः | ८९० |
| सजातीयेष्व | याज्ञ. | १३३७ |
| *सजात्यतिचा | नार. | १८८२ |
| *सजात्यामुत्त | याज्ञ. | १८७२ |
| स जायमान | वेदाः | १२६१ |
| सजयन्ति हि | मनुः | १८५४ |
| *स ज्येष्ठः स्याद | " | १३९७ |
| *सततं प्राणु | नार. | १०९७ |
| *स तन सम | " | १९३९ |
| *स तत्राकारि | कात्या. | ६३३ |
| स तथैति प्र | भा. | १९८६ |
| स तथैव ग्र | मनुः | ७३९; |
| | नार. | ७४७ |
| स तद्गृहीत्वा | " | ८५१ |
| स तद्गृह्णाहि | याज्ञ. | ७७७ |
| स तमर्थं प्र | कात्या. | ६७४ |
| स तयोर्दण्ड | नार. | १८२७ |
| स तस्यै तत्स | व्यासः | ७६८ |
| *स तस्य कारि | कात्या. | ६३३ |
| स तस्य दासो | नार. | ६९२; |
| | बृह. | ७०८; |
| स तस्या भर | कात्या. | ७१४ |
| *स तस्या रक्ष | नार. | १५५५ |
| स तस्योत्पाद | " | " |
| | मनुः | १६३०, |
| | १८०६ | |
| *स तस्योत्पाद्य | " | " |
| सतामनुग्र | नार. | १९३६ |
| सति कर्तव्य | विष्णुः | १२८१ |
| सति भार्यार्थे | कौ. | १३९१ |
| *स तु क्रीतः सु | मनुः | १३०८ |
| स तु दण्डयः श | अपु. | १९७६ |
| *स तु पाणिग्रा | विष्णुः | १२७९ |
| स तु मातुर्वि | भा. | १२४३ |
| *स तुल्यं भ्रूण+ | बौधा. | १०१९ |
| सतृणं च स | कात्या. | ९५५ |
| सतोऽर्थस्य वि | कौ. | १२०७ |
| सत्कृतं स्वज्ञ | भा. | ८६० |
| सत्कृतासत्कृ | " | १०३३ |

*सत्कृत्य स्थाप बृह. ८७२
 सत्कृत्याहूय नार. १०९८
 सत्यं शौचं ब बृह. ७५०
 *सत्यङ्कारं कृ याज्ञ. ८८५
 सत्यङ्कारं च व्यासः ८८९
 सत्यङ्कारकृ याज्ञ. ६४५,
 ८८५
 सत्यङ्कारवि कात्या. ६५६
 सत्यङ्कारेण अपु. १९७५
 सत्यमहं ग वेदाः ८१२
 सत्यमिथ्यास्तु कौ. १७७२
 सत्यव्रतः सो बृह. ९५१
 Xसत्यसंगरो नि. १२५५
 सत्यामन्यां स याज्ञ. १०९१
 सत्यासत्यान्य , १७७९
 *सत्र विवर्ध मनुः १७००
 सत्रं हि वर्ध , ,
 सत्रप्रयोगा कौ. १६८१
 सत्री वा स्त्रीलो , ८६३
 स त्वं केसरि वारा. १३२९
 स त्वं जातब भा. ८६०
 स त्वं नृपति , १९८५
 स त्वं विद्वन्ध , १९८६
 स त्वसु तं घ मनुः १३९३
 स त्वया नाव वारा. १०७६
 सत्स्त्रीणां समु भा. १०२८
 सत्स्वं त्रैविद्य बौधा. १४६८
 *सत्स्वङ्गेषु , ,
 *सत्स्वन्येषु त , ,
 सत्स्वपत्येषु सप्र. ११५७
 स दण्डं प्राप्नु मनुः १७१८
 स दण्डयः कृष्ण , ८४४
 स दत्त्वा निय , ६८०
 *स दत्त्वा निर्जि , ,
 *स दत्त्वा निर्मि , ,
 सदानमान याज्ञ. ८६७
 * , , , १६३९
 स दाप्यस्तद्ध कात्या. ८०६
 *स दाप्यो यत्प्र नार. ८५०
 सदा प्रहृष्ट मनुः १०५९
 सदा श्रोत्रिय नार. ७८४
 *स दीर्घस्यापि मनुः ८४५
 सदृशं तु प्र , १३०५
 *सदृशं प्रति , ,
 सदृशं प्रीति , १३०४
 सदृशं यं प्र विष्णुः १२८०

*सदृशं यं प्र मनुः १३०५
 सदृशं यं स बौधा. १२६९
 *सदृशं सका , ,
 *सदृशस्त्रीप्र मनुः १२३६
 सदृशस्त्रीषु , ,
 सदृशाच्छ्रेय भा. १२८४
 *सदृशा सह बृह. १५१६
 सदृशी मम भा. १२८५
 सदृशी सह बृह. १५१६
 स देवलोके भा. १०२८
 सदोषं व्याह कात्या. ७०९
 *सदोषं व्याह , ,
 सदोषमपि नार. ८९४
 *सदोषव्याह कात्या. ७०९
 *स दौहित्रोऽप्य मनुः १३०२
 सदानमान याज्ञ. १६३९,
 १९३२
 *सद्भागकर बृह. १९४१
 सद्भिराचरि मनुः १९३१
 सद्यः स्याद्द्वाद पिता. ६३४
 सद्य एवेति कात्या. ६३२
 सद्यो वा काम याज्ञ. १८७०
 *सद्यो वा कित कात्या. १९१४
 सद्यो वा सभि , ,
 सद्यो विश्वसि संव. १८९१
 *सद्यो विश्वासि , ,
 सद्वृत्तभावा अङ्गि. १११६
 *स द्विकार्षप मनुः ९३९
 स द्वौ कार्षप , , ,
 १६३१, १९२९
 *सधनैस्तैर्वि बृह. १२३७
 सध्रीचीनान् वेदाः ९९८
 स नः पतिभ्यो , १००१
 स नष्टः कौर भा. १९६४
 स नष्टवंशः , १०३१
 स नाणकप याज्ञ. १७२९
 *स निगृह्य त मत्स्य. ७५६
 *स निगृह्य दा मनुः ७४३
 स निगृह्य ब मत्स्य. ७५६
 स निर्दोषो ज्ञा , ७६९
 स निर्भाज्यः स्व मनुः १२१२
 स निर्ययौ म भा. ८६०
 *स निर्वास्यः स्व मनुः १२१२
 *स निर्वाह्यः स्व , ,
 स नेच्छति ध भा. १९८३
 सनेम वाजं वेदाः ११२२

स नो देवो ह वेदाः १९०२
 सन्त्यपवादाः आप. १६६५
 सन्नानां द्विगु नार. ९१७
 * , , स्मृत्य. १९७६
 सन्नानामा द कौ. ७७२
 स पणं प्राप्नु मत्स्य. १८९२
 स पत्त एव वेदाः ८१४
 सपत्ना वार्चं , १००६
 सपत्नी मे प , ९९०
 सपत्नीकः क्रि मनुः १३०५
 सपत्नीकक्रि आनि. १३७४
 स पत्नीमुदा वेदाः १००८,
 १८४१
 स पर्यायेण नार. १९३९
 सपादपणा कौ. ६११
 स पारयज्ञे मनुः १३०९
 सपालः शत , ९१०
 *सपालान्गत , ,
 सपालान्वा वि , ,
 सपिण्डता तु बृह. १५२७
 *सपिण्डदातुः , ,
 सपिण्डस्याप्र , ११४१
 सपिण्डापत्य शाक. १३५५
 *सपिण्डा बान्ध बृह. १५१४
 सपिण्डाभावे बौधा. १४६८
 *सपिण्डेभ्योऽस्य नार. ७७४
 *सपिण्डेष्वपि , १५५५
 सपिण्डो वा स याज्ञ. १०८९
 स पितरमे वेदाः ११६२
 स पुत्रः पुत्र भा. १३९१
 स पुत्रस्य वा विष्णुः ६७८
 *सपुत्रस्यापु , ,
 स पुनर्द्विवि नार. ६४८,
 ७४७
 सपुरुषं वा कौ. १०३८
 स पूर्वान्तरम भा. १९६४
 स पृथिवीसु वेदाः १५९८
 *स पैतृकं पि मनुः १२१३
 सप्त एव म वेदाः १६०३
 सप्तजन्म भ परा. १११७
 सप्त प्रकृत मनुः १९३०
 *सप्तमः पिण्ड मत्स्य. १३८३
 सप्तमण्डल स्कन्द. १९६६
 सप्त मर्यादाः वेदाः १५९१,
 १६०३
 सप्तमीं चासु बौत. १६६०

| | | | | | | | | |
|------------------|---------|------------|-------------------|------------------|-------|----------------|-------------------|-------|
| *सप्तमीं पञ्च | बृम. | १३५८ | *सभ्याश्चान्येन | नार. | १६४४ | *सममितर | गौत. | ११८२ |
| सप्तम्यां मार्गे | अपु. | १९७९ | सभ्याश्चास्य न | ,, | ,, | सममितरे | बौधा. | ११४६ |
| सप्तरात्रस्या | कौ. | १६१८ | *सभ्याश्चास्य प्र | ,, | ,, | *सममीशत्व | बृह. | ११७९ |
| सप्तरात्राद् | ,, | ९२९ | *सभ्यास्तस्य न | ,, | ,, | *सममेतां वि | याज्ञ. | ९१३ |
| सप्त वित्ताग | मनु. | ११२६ | स भ्रातृभिर्बु | ,, | ११९८, | *सममेवेत | गौत. | ११८२ |
| सप्तहोतार | वेदा. | १००६ | | | १५८४ | सममेषां वि | याज्ञ. | ९१३ |
| *सप्तांशं चाप | ब्रह्म. | १३७५ | *समं चेत | गौत. | ११८२ | समयस्यान | कौ. | ८६१; |
| सप्तांशकञ्च | ,, | ,, | समंजन्तु वि | वेदा. | ९८६ | | नार. | ८६९ |
| *सप्तांशश्चाप | ,, | ,, | समं दद्यात् | व्यास. | ६७६ | समयादन्य | गौत. | १२६३ |
| सप्तगमाद्गृ | बृह. | ८०३; | *समं दद्यात्तु | ,, | ,, | समर्घं धन | वसि. | ६०९ |
| | प्रजा. | ८०७ | *समं दद्युस्त | ,, | ,, | *समर्घं धान्य | ,, | ,, |
| सप्ताङ्गस्येह | मनु. | १९३० | *समं दाप्यस्त | ,, | ,, | समर्थः सन्न | शुनी. | ७३१ |
| सप्ताण्विकाधि | अनि. | १९६८ | *समं विद्याध | कात्या. | १२२७ | समर्थश्चेद् | बृह. | ८५३ |
| सप्तानां प्रकृ | मनु. | १९३० | *समं सर्वे स | शंख. | १४२९ | *समर्थस्तु द | ,, | ,, |
| *सप्तारामगृ | बृह. | ८०३ | समं सर्वे सो | ,, | ,, | *समर्थस्तु भ | ,, | ७८८ |
| *सप्तारामाद्गृ | ,, | ,, | समं स्यादश्रु | जैमि. | ७७० | समर्थस्तु ह | ,, | ,, |
| | प्रजा. | ८०७ | *समं स्वामित्व | बृह. | ११७९ | समर्थस्तोष | देव. | १११२ |
| सप्तार्तवप्र | कौ. | १८४८ | *समः सर्वेषा | बौधा. | ११४६ | समर्थान् संप्र | वारा. | १३२९ |
| सप्तावरे म | भा. | १२८६ | समः सर्वेषु | नार. | १९३६ | समर्पयन्ति | वृव. | ६७७ |
| सप्तमश्वत्थस्य | स्कन्द. | १९६६ | समक्षवश | भा. | १९६४ | *समर्पिताश्च | नार. | ९१५ |
| *सप्रकाशं ह | मनु. | ९०८ | समक्षमस | व्यास. | ७८९ | समर्पेमा सं | वेदा. | ९८२ |
| स प्रदाप्यः कृ | याज्ञ. | ९४३ | समप्रधन | ब्रह्म. | १३७५ | *समवर्णं तु | कात्या. | ८३६ |
| *स प्रदाप्योऽकृ | ,, | ,, | *समघाती तु | बृह. | १६४७ | *समवर्णद्वि | मनु. | १७७४; |
| स प्राप्नुयाद् | मनु. | १७०५, | समजातिगु | ,, | १७८९ | | नार. | १७८७ |
| | | १९३० | *समजातौ तु | मनु. | १७७५ | *समवर्णव्य | शंख. | १७७१ |
| सफलं जाय | बृय. | १३५५ | समत्वेनैक | उश. | १२३८ | *समवर्णाः पु | विष्णु. | ११८४ |
| सबन्धे भाग | व्यास. | ६३४ | स मत्स्यो नाम | भा. | १९८६ | समवर्णाकौ | ,, | १७७१ |
| सब्रह्मचारी | संग्र. | १५३० | समदण्डाः स्मृ | नार. | १७५५; | समवर्णासु | भा. | ११८४. |
| स ब्राह्मणस्य | वेदा. | १४६४, | | कात्या. | १७६२ | | १२३४; बृह. | १२३७; |
| | | १६०० | *समधा चेत | गौत. | ११८२ | | मनु. | १२४९ |
| स ब्राह्मणान् | आप. | १९१८ | समधा वाऽप्यै | ,, | १२३३ | *समवर्णास्तु | ,, | १७७४ |
| *स भर्त्राऽऽकारि | कात्या. | ६३३ | समधेतर | ,, | ११८२ | समवर्णे द्वि | ,, | ,, |
| स भवत्या न | वारा. | १०७५ | *स मन्यते यः | नार. | १८२६ | | नार. | १७८७ |
| सभां प्रपद्य | भा. | १९६३ | समन्यूनाधि | बृह. | ७६५, | समवर्णेऽपि | कात्या. | ८३६ |
| सभाप्रपदे | बृह. | ८७३ | | ७८४, ११७३, १७९०; | | *समवर्णेऽपि | नार. | १७८७ |
| *सभाप्रपाद्यु | मनु. | १६९५ | | | | *समवर्णेऽपि | कात्या. | ८३६ |
| सभाप्रपाद्यु | ,, | ,, | समभक्तं च | स्कन्द. | १९६५ | समवाये चै | कौ. | ८६३ |
| | | १९२९; नार. | समभागप्र | बृय. | १३५५ | समवायेन | याज्ञ. | ७७७. |
| | | १७५४ | समभागाश्च | भा. | १२४४ | समविद्याधि | कात्या. | १२२७. |
| समाप्तेति कि | वेदा. | १८९४ | *समभागेन | याज्ञ. | ७७७ | समवेतास्तु | ,, | ७८८ |
| समाया मध्ये | आप. | १९०३ | समभागो प्र | बृय. | १४६२ | समवेतैस्तु | बृह. | ७८६, |
| समिकः कार | नार. | १९११; | *सममंशं स | बृह. | ११७९ | | ११९३, १२००, १२२२; | |
| | कात्या. | १९१४ | *सममंशत्व | ,, | ,, | | कात्या. | ८९८ |
| समिकाधिष्ठि | बृह. | १९१३ | सममंशित्व | ,, | ,, | *समशः सर्वे | बौधा. | ११४६ |
| समिको ग्राह | ,, | ,, | सममत्तप्र | नार. | १७४६ | समस्तत्र वि | मनु. | १२११, |
| सभ्याः सजयि | याज्ञ. | १९३३ | सममिच्छन्ति | देव. | १२०३ | | १२९७, १३१६, १५४३; | |
| *सभ्याः सजयि | कात्या. | ७५३ | | | | | | |

| | | | | | |
|------------------|-------------------|-----------------------|-----------------------|-------------------|--------------------|
| स महीमखि | विष्णुः १५४१ | समाहर्तृप्र | कौ. १६७९, १६८८ | समेऽध्वनि द्व | नार. १७५४ |
| स महेन्द्रोऽभ | मनुः १०६८ | समाहितं मे | वारा. १०७७ | *समेनैव शृ | हारी. ११८३ |
| *समांशभागाः | वेदाः ११८१ | समित्पुष्पोद | नार. १७५२, १९३६ | समेऽभिचार | भा. १२८५ |
| समांशभागि | नार. ११९२ | *समीक्ष्य कार | कात्या. ९५६ | समेऽध्वेव प | याज्ञ. १८१४ |
| * ,, ,, | बृह. ११९३ | समुच्छित्तौ म | कौ. १८०० | *समेऽध्वेव प | ,, ,, |
| समांशभाजः | नार. १४१३ | समुच्छ्रिता ध्व | व्यासः ९६१ | समैतु विश्व | वेदाः १८९९ |
| | ,, ११९२, १४२१ | समुत्कर्षाप | मनुः १७७४ | समैर्ह विष | मनुः १७०५, १९३० |
| *समांशभाज | बृह. ११९३ | *समुत्थानं व्य | बृह. १८३१; | *समैश्च विष | ,, १७०५ |
| समांशहारि | नार. १४१३ | समुत्थानव्य | कात्या. १८३३ | समोऽन्नः सर्वे | बौधा. ११४६ |
| समांशा मात | बृह. ,, | ,, ,, | विष्णुः १७९७ | समोऽतिरिक्तो | नार. ७८१ |
| *समां शुल्कमा | शंखः १८४८ | मनुः १८०५; बृह. १८३१; | कौ. १७९९; | *समो न्यूनाऽधि | बृह. ७८५ |
| समाः शतम | कात्या. ८९८ | कात्या. १८३३ | बृह. १८३३ | समो न्यूनोऽधि | ,, ,, |
| समाः सहस्रं | वेदाः १०१० | समुत्पन्नाद् | बृह. १५६० | समोऽपकृष्ट | शुनी. ७९० |
| समाज्ञातानृ | भा. १०३२ | समुत्सृजेत्सा | मनुः १६२३ | *समोऽवकृष्ट | मनुः ७२० |
| *स मात्रा पित्रा | विष्णुः १२७९ | समुत्सृजेद्रा | ,, ९३९, १६३१, १९२९ | *समो न्यूनाऽधि | ,, ,, |
| समानं मन्त्र | वेदाः ८५८ | समुद्रपरि | याज्ञ. १७३३ | सम्यक् सिद्धि | नार. १५८३ |
| समानऽएव | ,, १००७ | *समुद्रं नाप्नु | मनुः ७४० | सम्यङ्निविष्ट | कालि. १३७७ |
| समानगोत्र | शाक. १३५५ | समुद्रगृह | विष्णुः १६१० | सम्यङ्चः सत्र | मनुः १६९२, १९२९ |
| समानजाति | व्यासः १२३८ | *समुद्रपरि | याज्ञ. १७३३ | सम्यङ्चोऽग्निं स | वेदाः ९९८ |
| *समानतो शृ | हारी. ११८३ | समुद्रयात्रा | मनुः ६१९ | *सम्यथापातस्त्र | ,, ८५९, ९९८ |
| समानभागि | शुनी. १९८८ | समुद्रयान | ,, ,, ; | सम्राज्ञी श्वसु | मनुः ९१० |
| समानमस्तु | वेदाः ८५८ | समुद्रसर | बृम. ८५४ | *सम्राड्येधि श्व | वेदाः ९८६ |
| समानयोः स | बृह. १७८९ | समुद्रार्था याः | कौ. १९२४ | ,, ,, | ,, १००० |
| समानलोको | वेदाः १००० | समुद्रे नाप्नु | वेदाः ९२४ | २ स यत्र देवा + | ,, १००७ |
| समानवर्णा | विष्णुः १०२३ | समुद्रेषु पृ | मनुः ७४० | स यदि प्रति | मनुः ७४२ |
| समानश्वानु | कौ. ८७९ | समुद्रे सम | भा. १०३१ | * ,, ,, | ,, १६२९ |
| समानसलि | जातः ९०१ | समन्वयेयुः | नार. १९३९ | स यद्येकसु | शंखः ११६६ |
| समानी प्रपा | वेदाः ८५९, ९९८ | समुपारूढा | ,, ९४४ | स याच्यः प्राङ्वि | मनुः ७४२ |
| | ,, ८५८ | समूधो रोम | कौ. ९३० | *स येन गृही | विष्णुः १२७९ |
| समानी व आ | बृम. १५२७ | समूलसस्य | वेदाः ९७४ | सरक्पांसु | कौ. १६७५ |
| समानोदक | वेदाः ८५८ | *स मूल्यं द्विगु | नार. ९१८ | सरसीवाम | भा. १९८५ |
| समानो मन्त्रः | हारी. ११८३ | *स मूल्यात् द्वि | ,, ८८७ | *स राज्ञर्णच | मनुः ७१८ |
| समानो श्रुते | नार. १८२६ | स मूल्याहश्च | ,, ,, | *स राज्ञां शक्य | बृह. १५८५ |
| स मान्यते यः | ,, ९४८ | समूहकार्ये | कात्या. ८८९ | स राणांशे स्व | ,, ,, |
| समाप्ते त्वष्ट | मनुः १७०५ | *समूहकार्ये | याज्ञ. ८६७, ८६८ | स राज्ञा तच्च | मनुः ७१८ |
| *समाप्नुयाद् | ,, ,, | *समूहस्थेऽश्वा | ,, ,, | स राज्ञा नाभि | ,, ,, |
| *समाप्नुयाञ्च | ,, ,, | समूहस्थोऽश्वा | कात्या. ८७७ | स राजानं द | वारा. १३२९ |
| समार्था शुल्क | शंखः १८४८ | *समूहानां च | ,, ,, | स रूपं वा वि | मनुः १०४८ |
| *समार्था सका | ,, ,, | समूहानां तु | ,, ,, | स रोक्ष्यन् जा | वेदाः १००८ |
| समायुषा सं | वेदाः ९९१ | समेल्य तास्त | भा. ८६० | सर्पभये म | कौ. १९२५ |
| समारोहति | व्यासः ११११ | | | सर्पमार्जार | कात्या. १८३४ |
| समावृत्तश्च | नार. ८२६ | | | | |
| *समावृत्तस्तु | ,, ,, | | | | |
| समासेनोदि | बृह. ८८९ | | | | |
| समाहर्ता ज | कौ. १६७९ | | | | |

| | | | | | |
|-----------------|---------------|-------------------------|---------------|----------------------|---------------|
| *सर्वं च रिक्थ | मनुः १२४७ | सर्वविनाशे | गौत. ९०४ | *सर्वासामेव | अङ्गि. १११६ |
| सर्वं प्रदक्षि | वेदाः ९९८ | सर्वशास्त्रवि | भा. १२४३ | सर्वोस्तास्तेन | हारी १२६४; |
| सर्वं यज्ञं सं | ११४४ | सर्वसस्येभ्य | विष्णुः १६७१ | वसि. १२७२; मनुः १२९३ | |
| सर्वं वा पूर्वं | गौत. ११९५ | सर्वस्मिन्स्थाव | बृह. ९५१ | सर्वास्वापत्सु | बृह. १२५१ |
| सर्वं वा रिक्थ | मनुः १२४६ | सर्वस्मै तस्मै | वेदाः १६०२ | सर्वोहमस्मि | वेदाः ९६६ |
| *सर्व एव वा | विष्णुः १६७१ | *सर्वस्य दाय | देव. १५२६ | सर्वे काङ्क्षन्ति | बृह. ११८० |
| सर्व एव वि | कौ. ९३०; | सर्वस्य वा षु | वेदाः १५९९ | सर्वे च तत्स्वा | विष्णुः १६०९, |
| | मनुः १३९८ | सर्वस्वं गृह | कात्या. ८०५ | | १७९८ |
| सर्वकण्टक | १७०८, | *सर्वस्वं च व्य | मनुः १८०५ | सर्वे च पुरु | १७९७- |
| | १९३० | सर्वस्वं तस्य | कात्या. ८०५ | *सर्वे चानोर | देव. १३५१ |
| सर्वकर्मस्व | विष्णुः १०२३ | सर्वस्वं तु ह | यमः १९४३ | सर्वे चापि वि | भा. १९८४ |
| *सर्वकर्मास्व | १ | *सर्वस्वं ते प्र | कात्या. ८०५ | सर्वे चोत्तरो | गौत. ८१६ |
| सर्वकार्यप्र | बृह. ८७३ | सर्वस्वं पुत्र | कौ. ७९४ | सर्वेच्छया क | नार. ११९८ |
| *सर्वकार्ये प्र | १ | *सर्वस्वं वा पू | गौत. ११९५ | *सर्वे जनप | कात्या. ९५९ |
| सर्वकार्येषु | कात्या. ८०५ | सर्वस्वं स्त्री तु | नार. १७५० | सर्वे जनाः स | १ |
| सर्वकालम | भा. १०२९ | *सर्वस्वं हर | १ | *सर्वे जानप | १ |
| सर्वज्ञख्याप | कौ. १६८२ | १ | कात्या. १७६१; | *सर्वे तत्स्वामि | विष्णुः १७९८ |
| सर्वज्ञां सर्व | भा. १०२८ | १ | व्यासः १७६५ | सर्वे ते गोत्रि | हारी. १२६६ |
| सर्वतो धर्म | मनुः १७०० | *सर्वस्वगृह | कात्या. ८०५ | सर्वे ते तेन | १२६४; |
| सर्वतो योज | आप. १६६४ | *सर्वस्वग्रह | याज्ञ. ८६७ | वसि. १२७२ | |
| सर्वत्र चोप | कौ. १९२५ | सर्वस्वस्याधि | मासो. १९७० | मनुः १२९० | |
| सर्वत्र तु स | मनुः ९११ | सर्वस्वहर | याज्ञ. ८६७; | *सर्वे तेनैव | १ |
| *सर्वत्र त्वधि | १ | बृह. ८७३; कात्या. १७६१; | १ | सर्वे ते मनु | हारी. १२६६; |
| *सर्वत्र दायि | देव. १५२६ | बृह. १८९१; नार. १९३५ | | यमः १३५२ | |
| सर्वत्र योग्यं | वारा. १०७७ | सर्वस्वहार | मनुः १६२७ | *सर्वे ते शौद्रि | हारी. १२६६ |
| सर्वत्र राज | कौ. १८५० | सर्वस्वेऽपि जि | कात्या. १९१५ | सर्वे देवा उ | वेदाः १००० |
| *सर्वत्र स दो | मनुः ९११ | *सर्वस्वे विजि | १ | *सर्वे धर्मयु | आप. १३८७ |
| *सर्वत्र स्थाव | बृह. ९५१ | सर्वहितमे | कौ. ८६२ | *सर्वेऽपि काङ्क्ष | बृह. ११८० |
| सर्वत्र स्वामि | विष्णुः ९०५ | सर्वोस्तास्तेन | मनुः १२९० | *सर्वेऽपि धर्म | आप. १३८७ |
| सर्वत्रादाय | देव. १५२६ | *सर्वोस्तास्तेन | १ | *सर्वे पुरुष | विष्णुः १७९७ |
| *सर्वत्रादायि | १ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वे पृथक् | मनुः ९३८; |
| सर्वत्रातुम | आप. १६६६ | सर्वोस्तास्तेन | १ | नार. ९४५ | |
| सर्वथा तार | भा. १९८५ | सर्वोस्तास्तेन | १ | देव. १३५१ | |
| सर्वथा ब्राह्म | मनुः १९३० | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वे प्रतिभु | हारी. ६६२ |
| सर्वथा राज | भा. १०३३ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वे वर्णा वा | विष्णुः ६१० |
| सर्वबन्धुवि | स्मृत्य. १५२९ | सर्वोस्तास्तेन | १ | *सर्वेषां च वि | कात्या. ७५३ |
| सर्वभक्ष्या च | हारी. १०१७ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वेषां चैव | शौन. १३६५ |
| सर्वभूतप्र | मनुः १०७० | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वेषां चोप्र | स्कन्द. १९६५ |
| *सर्वभूतिर्हि | १ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वेषां धन | मनुः ११८९ |
| सर्वमर्हति | भा. १३९१ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वेषां धर्म | भा. १०२७ |
| सर्वमेतद्धि | १ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वेषां पुत्र | स्मृत्य. १५२९ |
| सर्वमेव ह | संप्र. ११९९ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वेषां प्रीत्या | कौ. १४३० |
| सर्वमेवान | भा. १२८४ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वेषां महि | भा. १०२७ |
| सर्वकर्णानां | आप. १६६६ | सर्वोस्तास्तेन | १ | *सर्वेषां मृत्य | नार. १७५० |
| सर्वकर्णस्तु | कौ. ९२६ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वेषां वा स्त्री | कौ. १६१५ |
| सर्ववेदसं | वेदाः ७९२ | सर्वोस्तास्तेन | १ | सर्वेषां स्वदा | शंखः १८४७ |

| | | |
|------------------|-----------|-------------|
| *सर्वेषां स्वल्प | नार. | १७५० |
| सर्वेषामन्त | कौ. | ११८५ |
| *सर्वेषामपि | शौन. | १३६५ |
| ” ” | मनु: | १३९३ |
| सर्वेषामप्य | ” | १४७८ |
| *सर्वेषामर्थ | ” | ११८९ |
| सर्वेषामधि | ” | ७७५ |
| सर्वेषामल्प | नार. | १७५० |
| सर्वेषामास | कौ. | ८६२ |
| *सर्वेषामेक | मनु: | १२९० |
| सर्वेषामेव | बृह. | ७८५; |
| शंखः | ९०५; नार. | ११३१; |
| | भा. | ११८४, १२४४; |
| | बौधा. | १८४५ |
| *सर्वेषामेव | शौन. | १३६५; |
| | मनु: | १३९४, १८५६ |
| सर्वेषु ग्रह | गौत. | ८१५ |
| सर्वेषु च क. | कौ. | ८६२ |
| सर्वेषु चाप | कात्या. | १८८८ |
| सर्वेषूपनि | ” | ७५४ |
| *सर्वेष्वधिकृ | नार. | ८२८ |
| सर्वेष्वर्थवि | याज्ञ. | ७३२ |
| सर्वेष्वेव प्र | विष्णु: | १४२८ |
| *सर्वेष्वेव वि | याज्ञ. | ७३२ |
| ” ” | बृहा. | ७३४ |
| सर्वे सपिण्डाः | नार. | १५५५; |
| | बृह. | १५६० |
| सर्वे हि धर्म | आप. | १३८७ |
| सर्वे ह्यनौर | देव. | १३५१ |
| सर्वैरनुम | मरी. | १५८८ |
| सर्वैरलक्षि | शुनी. | १११९ |
| सर्वैरुपायै | मनु: | ७४१ |
| *सर्वोपायवि | कात्या. | ७५३ |
| *सर्वोपायैवि | ” | ” |
| *स लाभस्य च | मनु: | ७१८ |
| स वनस्पती | वेदा: | १५९८ |
| *सवर्णजोऽप्य | बृह. | १४०२ |
| सवर्णतश्च | कौ. | १०३९ |
| सवर्णमनु | नार. | १०९६ |
| *सवर्णमस | ” | ७०३ |
| *सवर्णलिङ्ग | बृह. | १२३७ |
| सवर्णव्यति | शंखः | १७७१ |
| *सवर्णा पूर्व | आप. | १२६६ |
| *सवर्णा शास्त्र | ” | ” |
| सवर्णाः पुत्राः | विष्णु: | ११८४ |
| सवर्णा अस | कात्या. | १३४९ |

| | | |
|--------------------|---------|-------|
| *सवर्णाक्रोश | विष्णु: | १७७१ |
| सवर्णाजोऽप्य | बृह. | १४०२ |
| सवर्णाज्जन | ब्रह्म. | १११८ |
| *सवर्णाद्भ्रात | देव. | १५२५ |
| सवर्णापुत्रा | बौधा. | १२३९ |
| सवर्णापुत्रो | गौत. | १३८६ |
| सवर्णापूर्व | आप. | १०६६ |
| सवर्णा भिन्न | बृह. | १२३७ |
| सवर्णा भ्रात | देव. | १५२५ |
| *सवर्णामपू | आप. | १२६६ |
| सवर्णामप्रा | कौ. | १८४८ |
| सवर्णाय स | नार. | ७०३, |
| | | ११०३ |
| सवर्णयां सं | बौधा. | १२६८ |
| *सवर्णया अ | विष्णु: | १०२३ |
| *सवर्णयास | नार. | ७०३ |
| सवर्णासु चै | कौ. | १२८८ |
| सुवर्णासु तु | भा. | ११८४, |
| | | १२४३ |
| सवर्णासु ब | विष्णु: | १०२३ |
| सवर्णासु वि | याज्ञ. | १०९१ |
| *सवर्णास्वस | कात्या. | १३४९ |
| *सवर्णोऽपि तु | ” | ८३६ |
| *सवर्णोऽपि तु | ” | ” |
| *सवर्णोऽपि हि | ” | ” |
| सवर्णो ब्राह्म | नार. | ११०५ |
| *स वाच्यः प्राङ्वि | मनु: | ७४२ |
| स विचिन्त्यात्र | भा. | ८४० |
| सवितारं वृ | वेदा: | ११५८ |
| स विद्वा अप | ” | ९६९ |
| स विनाशं व्र | मनु: | १६२३ |
| *स विनेयस्त्व | नार. | १०९७ |
| *स विभाज्यः स्व | मनु: | १२१२ |
| स वृत्रहेन्द्रः | वेदा: | ८०९ |
| सवृद्धिं प्रति | कात्या. | १४५८ |
| सवृद्धिकं गृ | ” | ६५६ |
| *सवृद्धिकं प्र | ” | १४५८ |
| *सवृद्धिकं स | ” | ” |
| स वै नैव रे | वेदा: | १०१० |
| स वैरदेय | ” | १५९५ |
| स वै वार्धुषि | बसि. | ६०९ |
| स शतं प्राप्नु | मनु: | ८८२; |
| | नार. | १०९७ |
| | मंस्य. | १८९२ |
| * ” ” ” | स्कन्द. | १९६५ |
| स शिरस्कं प्र | द्वारी. | १०१६ |
| स शूद्रवद् | | |

| | | |
|----------------|---------|-------|
| *सषोडशापि | अनि. | १९६७ |
| ससंकराः श्व | नार. | ११०५ |
| *ससंतति स्त्री | याज्ञ. | ६६८ |
| *स सपिण्डकि | बृह. | १५२० |
| *ससमांशित्व | ” | ११७९ |
| स सम्यक्पालि | याज्ञ. | १९०८ |
| ससर्ज ताभ्यां | भा. | १०३० |
| ससस्त्यश्वकः | वेदा: | ८४१ |
| ससहायः स | मनु: | ७४४ |
| ससाक्षिके र | बृह. | ७५० |
| *ससाक्षिकम | विष्णु: | ६७९ |
| *ससाक्षिकमा | ” | ” |
| ससाक्षिकम् | ” | ” |
| ससुवर्णासु | कौ. | १८४९ |
| स सेतुर्विध | वेदा: | ९२४ |
| स स्त्रीषंसाद | ” | ९९२, |
| | | १५९९ |
| सम्यग्भक्षणे | कौ. | ९०६ |
| सस्यानां सर्व | भा. | १९७६ |
| सस्याक्षिवार | बृह. | ९१९ |
| सस्यापहारी | विष्णु: | १६६९ |
| सह खट्वास | मनु: | १८५२; |
| | नार. | १८८१ |
| स ह गवां स | वेदा: | १९८१ |
| स ह घोष आ | ” | ११४४ |
| सह त्वया ग | वारा. | १०७६ |
| सह त्वया वि | ” | ” |
| सह धर्म च | नार. | १०९६; |
| | | १०९८ |
| सहधर्मच | कौ. | १०३४; |
| | अनि. | १११८ |
| सह पिण्डकि | बृह. | १५२० |
| सहप्रस्थायि | कौ. | १९२२ |
| स ह प्रातः सं | वेदा: | १५९३ |
| *सहमायः का | बृह. | १८८६ |
| सह रस्ये त्व | वारा. | १०७६ |
| *स हरेच्छैव | मनु: | १३२६ |
| स हरेतैव | ” | ” |
| सह वै देव | वेदा: | १८९६ |
| *सह शय्यास | मनु: | १८५२; |
| | नार. | १८८१ |
| सह शोणिते | विष्णु: | १७९६ |
| सहसा काम | बृह. | १८८६ |
| *सहसा कार | ” | ” |
| सहसा क्रिय | नार. | १६४१, |
| | | १७४४ |

| | | |
|-------------------|---------|-------|
| सहसा यत्क | कात्या. | १६४८ |
| सहस्रं क्षत्रि | मनुः | १८६३ |
| सहस्रं ब्राह्म | " | १८५८, |
| | | १८५९ |
| सहस्रं वारु+ | भा. | १९६४ |
| सहस्रगोश्वा | गौत. | १६६० |
| सहस्रशुक्रो | वेदाः | ९९८ |
| सहस्रे किल | भा. | १०३१ |
| *सहासनं वि | व्यासः | १८८९ |
| सहासनम् | मनुः | १८०२; |
| | नार. | १८२८ |
| *स हि कर्षाप | मनुः | १६३१ |
| सहितास्तास्त | भा. | ८६० |
| स हि शर्षो न | वेदाः | ९२२ |
| स हि संताना | वसि. | १२७३ |
| स हि स्वाम्याद् | मनुः | १०४२ |
| सहोढं सोप | " | १६९६, |
| | | १९२९ |
| सहोढः सप्त | विष्णुः | १२७९ |
| सहोढग्रह | नार. | १७५२ |
| सहोढमस | कात्या. | १७६२ |
| *सहोढान् वि | नार. | १७५२ |
| सहोढान् सो | " | १७५१ |
| *सहोढान् स्ते | " | " |
| सहोढो ज्ञाति | भा. | १२८४ |
| स होवाच | वेदाः | ७९१, |
| | | ११४४ |
| २ " " + | " | ८१४ |
| स होवाच प | " | ७९१ |
| स होवाच म | " | १२६१ |
| स होवाचालो | " | ८१३ |
| सहृदयं सां | " | ९९८ |
| स ह्येषां वृत्ति | भा. | १९८४ |
| सांतानिकादि | बृह. | ८७५ |
| सांव्यवहारि | कौ. | ७३७ |
| सा कन्या वृष | विष्णुः | १०२३ |
| साक्षताभिः स | नार. | ८३३ |
| *साक्षताभिः सु | " | " |
| साक्षादधीत | लिङ्ग. | १३७६ |
| *साक्षिक्रियां वि | बृह. | ८७४ |
| *साक्षिणं ख्याप | याज्ञ. | ६९० |
| साक्षिणश्चान्य | बृह. | १७५९ |
| साक्षिणश्चार्य | कात्या. | ९५५ |
| साक्षिणामभा | कौ. | ८४३ |
| साक्षिणो चावि | बृह. | १८५४ |
| साक्षित्वं प्राति | नार. | १५८० |

| | | |
|------------------|---------|-----------|
| साक्षिप्रत्यय | कौ. | ८४३; |
| | मनुः | ९३५, |
| | | १९०७ |
| *साक्षिभिः साधि | कात्या. | ६७५ |
| साक्षिभिर्भावि | " | " |
| साक्षिभिर्वाऽथ | व्यासः | ७५५ |
| साक्षिमच्च भ | याज्ञ. | ६९० |
| साक्षिलेख्यवि | हाी. | ६०८ |
| साक्षिवत्पुण्य | भा. | १९६४ |
| साक्षी वा विव्रु | " | " |
| साक्षेपं निष्ठु | नार. | १७८५ |
| *साक्ष्यभावादद् | व्यासः | ९६१ |
| *साक्ष्यभावे च | मनुः | ९३६ |
| साक्ष्यभावे तु | " | " |
| साक्ष्यभावे द्व | व्यासः | ९६१ |
| *साक्ष्यभावेऽपि | मनुः | ९३६ |
| साक्ष्यभावे प्र | " | ७४२ |
| साक्ष्यादीनाम | अनि. | १९६७ |
| *सा च त्वक्षत | वसि. | १०२१ |
| सा च दत्ताऽप्य | बृह. | १५५८ |
| सा चाप्युक्तव | भा. | १०२८ |
| साचिव्यावका | कौ. | १८४९ |
| सा चेत्युनः प्र | मनुः | १०५८ |
| सा चेदक्षत | बौधा. | १०१९; |
| वसि. | १०२१; | मनुः १३०९ |
| *सा चेद् गौर्व्य | नार. | ९१६ |
| *सा चेन्नियोग | वसि. | १२७२ |
| सा ज्येष्ठा सा च | भा. | १२४४ |
| सा तथोक्ता त | " | १२८६ |
| सा तृतीया वि | वेदाः | १०१० |
| सा त्रीन्मासान्प | मनुः | १०५६, |
| | | १३९३ |
| सा त्वेवमुक्ता | वारा. | १०७७ |
| *साथैर्वा काम | याज्ञ | १८७० |
| सा द्वितीयां वि | वेदाः | १०१० |
| *साधनं च य | नार. | ८७१ |
| साधनाङ्गान्वि | व्यासः | १७६४ |
| *साधनाद्यन्वि | " | " |
| साधारणं तु | कात्या. | ८९७ |
| साधारणं स | व्यासः | १२३१ |
| साधारणं स्या | नार. | ११३० |
| साधारणः स्या | " | १०९८ |
| साधारणः स्या | बृह. | १५७३ |
| साधारणस्या | याज्ञ. | १६३४ |
| *साधारणाप | विष्णुः | १६१० |
| साधारणेषु | कर्णा. | १३५६ |

| | | |
|--------------------|---------|-------|
| साधारण्याप | विष्णुः | १६१० |
| साधितं प्रति | कात्या. | ६७४ |
| साधुत्वाच्चेन्म | बृह. | ६७२ |
| साधूनां वर्णि | स्कन्द. | १९६५ |
| साधून् संमान | याज्ञ. | १६३९, |
| | | १९३२ |
| साध्यमानश्चे | विष्णुः | ७१६ |
| साध्यमानो वृ | याज्ञ. | ७२१ |
| *साध्वाचाराच्च | कात्या. | १११० |
| साध्वाचारेऽत्र | " | " |
| साध्वीं तपस्वि | बृह. | १६५३ |
| साध्वीनां हि स्थि | वारा. | १०७६ |
| साध्वीनामेव | अङ्गि. | १११६ |
| साध्वीन्नीणां पा | अपु. | १९७९ |
| *साध्व्यां स्वयमु | हारी. | १२६५ |
| सा नः कृतानि | वेदाः | १८९८ |
| सा नः पयस्व | " | " |
| साऽनुज्ञाप्याऽधि | मनुः | १०५७ |
| *सान्तरश्च त | याज्ञ. | १६३५ |
| सान्त्वयन्त्यब्र | वारा. | १०७७ |
| सान्त्वेन प्रश | मनुः | १९२७ |
| *सात्रां परिशृ | मत्स्य. | १८९२ |
| सात्रिभ्ये तु पि | बृह. | ७०७ |
| *सात्रिभ्येऽपि ऋ | " | " |
| *सात्रिभ्येऽपि पि | " | " |
| *सान्वयस्तु प्र | कात्या. | १६४८ |
| सान्वयस्त्वप | " | " |
| | | १७६१ |
| सापत्न्यास्तैर्वि | बृह. | १२३७ |
| सा पत्नी या वि | दक्षः | १११४ |
| *सापत्न्यास्तैर्वि | बृह. | १२३७ |
| *सापत्न्यास्तैर्वि | " | " |
| सा पराश्रव | वेदाः | १०१० |
| साऽनुनीत य | " | " |
| सा प्रजापति | " | १४२४ |
| साऽब्रवीत्पुत्र | ब्रह्म. | ८४० |
| सा ब्रवीन्न वै | वेदाः | १०१० |
| सा ब्रह्मजाया | " | १८३९ |
| सा ब्राह्मणस्य | " | १४६४, |
| | | १६०० |
| सा ब्राह्मणस्ये | " | " |
| *सा भर्तृलोक | मनुः | १०५३ |
| " | " | १०६०, |
| " | " | १०६४ |
| सा भर्तृलोक | " | १०५३ |
| * " " " | " | १०६४ |

| | | |
|-----------------|---------|------|
| सा भार्या या गृ | भा. | १०२६ |
| सा भार्या या प | " | " |
| सा भूयसा क | वेदाः | ८७८ |
| साम कृष्वन्त्सा | " | ९७५ |
| सामन्तकुलि | याज्ञ. | १६३४ |
| सामन्तग्राम | कौ. | ९२८ |
| सामन्तचत्वा | " | " |
| सामन्तप्रत्य | " | ९२६; |
| | मनुः | ९३७ |
| सामन्तभावा | कात्या. | ९५५ |
| *सामन्तभावे | " | " |
| सामन्तविरो | वासि. | ९२५ |
| * " " | शंखः | " |
| *सामन्तस्य श | नार. | ९१८ |
| *सामन्ताः शास | कात्या. | ९५७ |
| सामन्ताः साध | " | " |
| सामन्तात्पर | नार. | ९४५ |
| सामन्ता धनि | बृह. | ८९६ |
| सामन्तानाम | मनुः | ९३६ |
| सामन्तानुम | नार. | ९१८; |
| | व्यासः | ९६१ |
| सामन्तान् मार्ग | नार. | १७५६ |
| *सामन्ताभावे | कात्या. | ९५५ |
| सामन्ता वा स | याज्ञ. | ९४० |
| सामन्ताश्चेन्मृ | मनुः | ९३८ |
| *सा मन्दसान्ना | वेदाः | ९८१ |
| " " | " | १००२ |
| सामर्थ्यं चानु | बृह. | १६४७ |
| सा मां प्रतिका | कौ. | १६८० |
| सा मातुर्बन्ध | वेदाः | ९९६ |
| *सामान्यं च भ | बृह. | १५६९ |
| *सामान्यं चेद्भ | " | " |
| सामान्यं चेद्भा | " | " |
| *सामान्यं तु भ | " | " |
| सामान्यं पुत्र | बृह. | ८०२; |
| | देव. | १४६२ |
| सामान्यं याचि | दक्षः | ८०७ |
| सामान्यग्राह | वृव. | ६७७ |
| सामान्यतो ह | अपु. | १९६२ |
| सामान्यद्रव्य | याज्ञ. | १६३३ |
| *सामान्यपुत्र | बृह. | ८०२ |
| *सामान्यप्रभ | याज्ञ. | १६३३ |
| *सामान्यप्रस | " | " |
| *सामान्यप्राभ | " | " |
| सामान्यमस्व | नार. | ८२५ |
| सामान्यार्थस | याज्ञ. | ११९२ |

| | | |
|---------------------------|---------|-------|
| सामान्या हि प | कौ. | ७७१ |
| सामान्ये वेदम | " | ९२७ |
| सामुद्रः शुल्कः | बौधा. | १६६७ |
| *सामुद्रशुल्कः | " | " |
| सा मृता जाय | परा. | १११७ |
| सा मृता लभ | " | " |
| साम्प्रतं साह | बृह. | १६४५ |
| *साम्राज्यकृत | मनुः | १८७० |
| साम्राज्यकृतस | " | " |
| *साम्राज्यकृतस्व | " | " |
| साम्राज्याय सु | वेदाः | १८९६ |
| सायं समर्प | बृह. | ९१९ |
| सा यत्नं पर | भा. | १०२९ |
| सा यथाकाम | नार. | १४४८ |
| सायमाहुत्या | वेदाः | १००९ |
| *सारङ्गी मन्द | मनुः | १०५१ |
| सारभाण्डमि | कौ. | १६७७ |
| साऽरुन्धतीस | कात्या. | १११०; |
| | अङ्गि. | १११५ |
| सार्थेनान्वाधि | कौ. | ७३६ |
| सा वः प्रजां ज | वेदाः | १००२ |
| सा वसु दध | " | ९८८ |
| *सा वा दद्याद | नार. | ६९९ |
| सावित्री पति | वारा. | १०७७ |
| सावित्र्या राक्षि | अपु. | १९७९ |
| साऽवित्वा न्यष्ट | वेदाः | १०१० |
| सा वीरपत्नी | भा. | १२८४ |
| सा वै द्वितीया | वेदाः | १०१० |
| सा वै पुनोष्णे | " | " |
| साशङ्का बाल | दक्षः | १११४ |
| साश्रमं नैव | संग्र. | १३८४ |
| सा सद्यः संनि | मनुः | १०५७ |
| सा स्वर्गमात्म | अङ्गि. | १११६ |
| सा हन्ति दाता | वासि. | १०२१ |
| सा ह पितरं | वेदाः | १००६ |
| ^२ साहमस्मीत्य+ | " | १०१० |
| साऽहमेवं ग | वारा. | १०७७ |
| साहसम् | कौ. | १६१३ |
| साहसं च भ | कात्या. | १६४८, |
| | | १७६१ |
| साहसं च म | गौत. | १६०४ |
| *साहसं तु भ | कात्या. | १६४८ |
| साहसं पञ्च | बृह. | १६४६ |
| साहसं स्थाव | " | १५८१ |
| *साहसं स्यात् | मनुः | १६९१ |
| साहसमन्व | कौ. | १६१३ |

| | | |
|-----------------------------|---------|-------|
| साहसस्य न | मनुः | १६२२ |
| साहसस्याधु | बृह. | १६४५ |
| *साहसात् कि | नार. | १६४१ |
| साहसानीति | संग्र. | १६५५ |
| साहसी भेद | कात्या. | ८७६ |
| साहसे वर्त | मनुः | १६२३ |
| साहसेषु य | नार. | १७५० |
| साहसो द्विगु | अनि. | १९६८ |
| साहसं ब्राह्म | मनुः | १८५९ |
| सा हित्वा सर्व | हारी. | १०१६ |
| सा हि पुत्रस | भा. | १४२९ |
| सिकतेष्टक | बृह. | ९५० |
| सिञ्चामहा अ | वेदाः | ९२३ |
| सिद्धप्रयोगा | कौ. | १६८२ |
| सिद्धमुपचा | " | ८१७ |
| सिद्धव्यञ्जनै | " | १६८१ |
| सिद्धान्तवेद | देवी. | १९४३ |
| *सिद्धिरत्रोभ | नार. | ६४९ |
| सिद्धिरस्योभ | " | " |
| | कात्या. | ६६० |
| सिध्यते वाचि | " | ८९८ |
| ^२ सिनीवालि प्र + | वेदाः | १००२ |
| सिनीवाली सु | " | ९९३, |
| | | १००८ |
| सिलाची नाम | " | १९८० |
| सीताद्रव्याप | मनुः | १७१७, |
| | | १९३० |
| सीमन्तोन्नय | यमः | १११४ |
| सीमवृक्षेषु | कौ. | १८०० |
| सीमां प्रति स | मनुः | ९३३ |
| सीमाचङ्क्रम | कात्या. | ९५८ |
| सीमाज्ञाने नृ | मनुः | ९३४ |
| *सीमातिक्रम | याज्ञ. | ९४२ |
| *सीमात्र चिह्नि | व्यासः | ९६१ |
| *सीमाध्वनि द्व | नार. | १७५४ |
| *सीमान्तभावा | कात्या. | ९५५ |
| *सीमान्तवासि | " | " |
| सीमा प्रचिह्नि | व्यासः | ९६१ |
| *सीमा प्रतिचि | " | " |
| सीमाभेत्तार | विष्णुः | ९२५ |
| सीमामध्ये तु | नार. | ९४६; |
| | कात्या. | ९६० |
| *सीमाया निर्ण | मनुः | ९३६; |
| | नार. | ९४४ |
| सीमायामवि | मनुः | ९३९ |
| सीमाविनिर्ण | " | ९३६ |

| | | | | | | | | |
|-------------------|---------|------------|-----------------|------------|-------|---------------------|------------|-------|
| सीमाविवादं | कौ. | ९२९ | सुमादानात् | कौ. | १०३४ | सुवीरा वीरं | वेदाः | १००५ |
| *संमतिवादं | विष्णुः | ९२५ | *सुमान मत्तान् | नार. | १७४६ | सुदमश्रुनख | यमः | १११३ |
| *स.मा.क्ष.श्च | मनुः | ९३३ | सुमे पच्यौ त | शुनी. | १११९ | सुसंकाशा मा | वेदाः | ९६५ |
| सीमावृक्षास्तु | , | , | सुप्रजमस्त्वा | वेदाः | ९९१ | सुसंरब्धोऽपि | भा. | १०२७ |
| सीमासंधिषु | , | ९३४ | सुप्रजास्त्वम | , | १९८० | *सुसंस्कृतायां | वसि. | १२७२; |
| सीम्नोऽपवादे | बृह. | ९६२ | सुबद्धजत्रु | नार. | १०९४ | सुसंस्कृते तु | मनुः | १३०३ |
| सीम्नो विवादे | याज्ञ. | ९४० | सु-हृत्पयम | वेदाः | १९८० | | बृह. | ९५४; |
| सीरा युजन्ति | वेदाः | ९२३ | *सुभृताऽपि कृ | दक्षः | १११४ | | व्यासः | ९६१ |
| सीव्यत्वपः सू | , | १५९५ | सुमङ्गली प्र | वेदाः | १००२ | *सुसंस्कृतेऽपि | , | , |
| सीसन्नपुपि | कौ | १६७५ | सुमङ्गलीरि | , | ९८४, | *सुसंस्कृतेषु | , | , |
| सुकन्ये क्रमि | वेदाः | १००८ | सुमङ्गल्युप | , | १००२ | सुसंस्कृतोप | विष्णुः | १०२३; |
| सुकिंशुकं व | , | १००१ | सुमनैरिद्व आ | , | १८९३ | मनुः | १०५९; अपु. | १९७९ |
| सुकनैः शापि | मनुः | ९३७ | सुरतं याच | बृह. | १८९१ | *सुसंस्थितोप | मनुः | १०५९ |
| *सुकृष्टं च कृ | बृह. | ७८७ | *सुःया ब्राह्म | विष्णुः | १६१० | सुसमायां पृ | स्कन्द. | १९६५ |
| सुखं वन नि | वारा. | १०७६ | सुःया वध्यः | , | , | सुसमृद्धोऽपि | कात्या. | ७१० |
| सुखमः नियं | मनुः | १०५९ | सुराकामयू | याज्ञ. | ६८५; | सुस्थ इन्दौ स | याज्ञ. | १०८० |
| *सुगन्धं नियं | , | , | सुराध्वजं सु | बृह. | ७१५ | सुस्थेनार्तेन | कात्या. | ७१० |
| सुगन्धं ना प्र | कात्या. | १११० | *सुरापानं यू | विष्णुः | १६०९ | * , , | , | ८०६ |
| सु व यसि | भा. | ८६० | *सुरापानयू | याज्ञ. | ६८५ | सुहिताऽपि कृ | दक्षः | १११४ |
| *सुगं तीर्थं सु | वेदाः | ९८१ | सुरापी व्याधि | , | , | सुहृत्संबन्धि | बृह. | ७२५ |
| , | , | १००२ | सुरापानयू | , | , | सूक्ष्मेभ्योऽपि प्र | मनुः | १०४६; |
| *सुगुमता | विष्णुः | १०२३ | सुरापि वृष | कौ. | १०८७ | सूक्ष्मो धर्मो म | भा. | १०२७ |
| सुगुग्मभाण्ड | , | , | सुरालक्ष्म | शंखः | १०२५ | सूतके मृत | ब्रह्म. | १३७४ |
| सुगुग्मं ब्राह्म | बृह. | १८८६ | सुरा वाव सा | वेदाः | ९९४ | सूतमागध | कौ. | १२३४ |
| सुगु सुपुत्रौ | वेदाः | १००३ | *सुरूपं वा कु | मनुः | १०४८ | सूतश्च माग | नार. | ११०५ |
| सुगंन दुर्गा | , | १००२ | सुरूपं वा वि | , | , | *सूतिभागं च | मनुः | १७०१ |
| सुगोभिर्दुर्गा | , | ९८४ | सुव्ररिति प | वेदाः | १००६ | सूत्रकर्पास | नार. | ६२६ |
| *सुचिन्हैरेव | व्यासः | १७६३ | सुवर्णं तु भ | नार. | १८८४ | सूत्रकर्पास | विष्णुः | १६७०; |
| *सुजघन्यत | नार. | ८३१ | सुवर्णं द्विश | शुनी. | १७६७ | | मनुः | १७१८ |
| *सुज्ञानशस | कात्या. | १२२५ | सुवर्ण एव | अनि. | १९६८ | *सूत्रकर्पासि | नार. | १७४७ |
| सुतप्ते निक्षि | स्कन्द. | १९६६ | सुवर्णकारा | कौ. | १६७४ | सूत्रपरिव | कौ. | १६७३ |
| सुतलेहेन | बृह. | ७०८ | सुवर्णरज | विष्णुः | १६६९; | सूत्रमूल्यं वा | , | , |
| सुतां कण्वस्य | भा. | १२८८ | शंखः | १६७२; मनुः | १७१६; | *सूत्रमौण्ड्यामि | शंखः | १६७२ |
| सुता अर्पि त | बृह. | ६७७ | नार. | १७५० | नार. | १७५० | वेदाः | ९९३ |
| सुता ताराधि | भा. | १०२८ | शंखः | १६७२ | शंखः | १६७२ | , | १००० |
| सुतादिब्राह्म | संग्र. | ७१६ | मनुः | १७०२; | उश | १७६६ | , | ९८४ |
| सुताद्याः प्रति | नार. | ११०५ | उश | १७६६ | नार. | १७४७ | , | १५९२ |
| सुताश्वेषां प्र | याज्ञ. | १४०० | कौ. | १६७५ | कौ. | १६७५ | , | १८४ |
| सुतास्त्वेषां प्र | , | १३९९ | सुवर्णस्य क्ष | , | १६७४ | सूर्याभ्युदितः | , | १००० |
| *सुदायश्च स्व | कात्या. | १४५३ | सुवर्णस्याष्ट | नार. | १७४७ | सूर्यायाः पश्य | , | १८४ |
| सुदीर्घस्यापि | मनुः | ८४५ | सुवर्णन्माष | , | १६७४ | सूर्याया अश्वि | , | १००० |
| *सुप्तप्रमत्त | नार. | १७४५ | *सुवर्णं तु क्ष | नार. | १७४७ | सूर्याया भद्र | , | ८११, |
| *सुप्तप्रमतो | , | १०९८ | *सुवर्णेषु क्ष | , | , | | १००० | |
| सुप्तप्रमत्त | कौ. | १०३६; | *सुवर्णोऽष्टाधि | अनि. | १९६८ | सूर्याया वह | , | , |
| | नार. | १७४५, १७४६ | सुवाना पुत्रा | वेदाः | ९९७ | | | १४२३ |
| सुप्तमतोप | नार. | १०९८ | सुविचितं विं | आप. | १९१८ | सूर्यायै देवे | , | १००० |

| | | | | | |
|--------------------|--------------|------------------|--------------|-------------------|--------------|
| सूर्येव नारि | वेदाः १००२ | सोऽनुज्ञातो ह | मनुः १३१० | सौदायिकं ध | कात्या. १४५५ |
| सूर्यो देवीमु | " ९६४ | सोऽन्तर्दशाहा | " ८७९; | *सौदायिकं स | " १४५६ |
| सृगालयोनिं | मनुः १०५३ | | अपु. १९७५ | सौदायिकं स्त्री | विष्णुः १४२८ |
| सृजेयुर्बान्ध | कौ. १३९१ | *सोऽन्तर्दशाहे | मनुः १७९ | *सौदायिकक | बृह. ८०३ |
| सृत्वेव काम | वेदाः १००६ | सोऽपत्यं भ्रातु | " १३१८ | सौदायिके स | कात्या. १४५५ |
| *सेच्छानुपेयु | नार. १८८२; | सोपसर्गस्त | पिता. ६७६ | सौदासेन च | भा. १२८५ |
| | कात्या. १८८८ | *सोऽपि कर्मक | नार. ८२८ | सौभाग्यमस्मै | वेदाः ९८४, |
| *सेतुं प्रकल्प | नार. ९४७ | *सोऽपि कर्मकृ | " " | | १००२ |
| सेतुं प्रवर्त | " " | *सोऽपि तद्द्वियु | " ८८७ | सौभाग्यवद् | कात्या. १११० |
| *सेतुकुब्जक | मनुः ९३४ | " " | " ८८८ | सौराक्षिकं वृ | बृह. ७०८ |
| सेतुकूपपु | कौ. ९३१ | सोऽपि दत्तं ह+ | भा. १२४४ | *सौराक्षिकवृ | " " |
| सेतुकैदार | नार. ९४४ | सोऽपि यत्नेन | याज्ञ. ८६६ | *सौराक्षि वृ | " " |
| सेतुभेदक | याज्ञ. १६२८ | सोऽप्यशक्तः श | विष्णुः १९२१ | सौवर्णैर्माष | भाष्य. ९२१ |
| सेतुभेदकां | विष्णुः १६०९ | सोऽप्यशक्तो दे | " " | स्कन्धवधे पू | कौ. १८०० |
| *सेतुभेदकृ | " " | सोऽब्रवीदत्र | वेदाः १०१० | स्कन्धवाह्यं च | नार. ७८४ |
| सेतुभ्यो मुञ्च | कौ. ९३० | सोऽब्रवीद्व्रं | " १७९३ | स्कन्धादादाय | " ८३३ |
| सेतुवनप | " ९३२ | सोऽब्रवीद्विज | भा. १२८४ | स्कन्धेनादाय | बौधा. १६६७; |
| सेतुवल्मीक | याज्ञ. ९४० | सोमं राजानं | वेदाः १००६ | | मनुः १७०२ |
| *सेतुश्च द्विवि | नार. ९४६ | सोमं वै राजा | " " | स्तम्भकस्य प्र | स्कन्द. १९६५ |
| सेतुस्तु द्विवि | " " | सोमः प्रथमो | " ९८५ | स्तम्भैः समन्त | कौ. ९०६ |
| सेदीशे यस्य + | वेदाः ९८८ | सोमः शौचं द | याज्ञ. १०८६; | स्तुतस्तन्दुल | स्कन्द. १९६७ |
| सेना वा इन्द्र | " १००५ | | बौधा. १८४५ | स्तुत्ये प्रातस्स | कौ. ७७२ |
| सेयं ऋगस्मि | " १०१० | सोमजुष्टं ब्र | वेदाः ९९७ | स्तेनः प्रकीर्ण | गौत. १६५८; |
| सेयं ऋगिदं | " " | सोमपे शत | बृह. ८०३ | | आप. १६६४ |
| सेयं त्वामनु | भा. १९८६ | सोम राजन्सं | वेदाः ८५९ | स्तेनः प्रकीर्य | बौधा. १६६७ |
| सेह कीर्तिम | याज्ञ. १०८५, | सोमविक्रया | कौ. ७७२ | स्तेनः प्रमुक्तो | आप. १६६६ |
| | १०८८ | *सोमस्य जाया | वेदाः ९८५, | स्तेनपारदा | कौ. १६१७ |
| सेह निन्दाम | मनुः १०६३ | | १००१ | *स्तेनसाहस | कात्या. ८०६ |
| सैतां दशह | वेदाः १४२४ | सोमस्येव मौ | " १८९३ | *स्तेनसाहसि | " " |
| सैषा भ्रूणह | वसि. १९७७ | सोमाय राज्ञे | मनुः १२९४ | स्तेनस्यातः प्र | मनुः १६९० |
| सैषा संज्ञानी | वेदाः ८५८ | सोमो ओषधी | वेदाः ११८१ | *स्तेनस्याथ प्र | " " |
| सोऽमिमव्रवी | " ११८१ | सोमो दददि | शौन. १३६४ | *स्तेनाः सर्व ए | विष्णुः १६७१ |
| सोऽक्रायमते | " " | सोमो ददद् | वेदाः ९८५, | *स्तेनाः सर्वम | " " |
| सोऽजीगर्त सौ | " १२६० | | १००१ | स्तेनाः सुरापा | यमः १९४३ |
| सोऽज्येष्ठः स्याद् | मनुः १३९७ | सोमो राजा प्र | " १८३८ | स्तेनानां निग्र | मनुः १६९९ |
| सोत्सेधनं स | मार्क. ९६२ | *सोमो राजा भ | वसि. १९२० | स्तेनानां पाप | " १६९५, |
| *सोत्सेधवप्र | " " | सोमो वधूयु | वेदाः १००० | | १९२९ |
| सोदयं तस्य | याज्ञ. ८८३ | सोमोऽस्य राजा | वसि. १९२० | स्तेनानामित | बृह. १६४५ |
| सोदराश्च स | बृह. ८९६ | सोमो ह्यस्य दा | वेदाः ११४३, | स्तेनान् राजा | मनुः १९३० |
| सोदर्याः सन्त्य | सप्र. १५२९ | | १४६४, १६०० | *स्तेनाभिशास्त | वसि. १६६७ |
| सोदर्याणाम | कौ. १२८९ | सोऽयं ते श्वशु | वारा. १३२९ | स्तेने निपात | नार. १७४९ |
| सोदर्या विभ | मनुः १५४४ | सोऽस्या दद्याद् | नार. ६९९ | स्तेनेष्वलभ्य | " १७५७, |
| सोऽधिकर्मक | नार. ८२८ | सोऽस्योद्दारो य | वेदाः ११८१ | | १९६१ |
| *सोऽधिकर्मकृ | " " | सोहं भगव | " ८१४ | स्तेनोऽनुप्रवे | वसि. १६६७ |
| सोऽनिबद्धः प्र | कात्या. ७२८ | सोऽहमेव वि | भा. १२८४ | स्तेनो हिरण्य | वेदाः १५९२ |
| *सोऽनिरुद्धः प्र | " " | सौदायिकं क | बृह. ८०३ | स्तेयं कृत्वा सु | आप. १६६५ |

| | | | | |
|----------------------|--------------|--------------|----------------------|---------------|
| स्तेयं तल्पारो | वेदाः १६०३ | ९९८ | *स्त्री नानुक्त्वा ब | शंखः १०२५ |
| स्तेयं ब्रह्मस्व | विष्णुः ६११ | भा. १०३२ | *स्त्री नानुक्त्वव | " " |
| स्तेयसाहसि | कात्या. ८०६ | " १०३१ | स्त्री निर्वायाऽनि | वेदाः ९९५ |
| स्तेये च श्वष | मनुः १६२७ | बृह. ७०८ | *स्त्री निषिद्धा श | याज्ञ. १८७२ |
| *स्तेये ब्रह्मस्व | विष्णुः ६११ | गौत. १४६४ | स्त्री निषेधे श | " " |
| स्तेये श्वा मनु | कौ. १६८७ | बृह. ८०३ | स्त्री पराननु | शंखः १०२५ |
| स्तेयेषु श्वप | अपु. १९७० | वारा. १०७६ | स्त्रीपुंगोऽश्वप | व्यासः १७६४ |
| स्तोमं जुषेथां | वेदाः ९७५ | कौ. १०३६ | *स्त्रीपुंगोहेम | बृह. १६४६ |
| *स्तोमं विना व | नार. ८५२ | भा. १४२९ | *स्त्रीपुमोषः प | व्यासः १७६४ |
| स्तोमवाहीनि | " " | नि. ७९२, | *स्त्रीपुसयोः प | " " |
| स्तोमा आसन् | वेदाः १००० | १३८५, | स्त्रीपुसयोग | नार. १०९२ |
| *स्तोमादिना व | नार. ८५२ | १९७५ | *स्त्रीपुसयोर्न | " १०९९ |
| स्तोमाद्विना व | " " | " १२५५ | स्त्रीपुसयोर्नि | " " |
| स्तोमाद्विना हु | " " | गौत. १३८७ | स्त्रीपुसयोर्मै | कौ. १०३६ |
| स्त्रियं दूधवाय | वेदाः १८९५ | वारा. १०७६ | स्त्रीपुसयोस्तु | नार. १०९३ |
| *स्त्रियं पुत्रव | नार. ११०१ | ब्रह्म. १११८ | स्त्रीपुसवर्त | बृह. ११०६ |
| स्त्रियं पुरुषं | कौ. १६१४ | भा. १०३३ | *स्त्रीपुसो वञ्च | व्यासः १७६४ |
| *स्त्रियं स्पृशत्य | मनुः १८५२ | अङ्गि. १११६ | *स्त्रीपुसोश्च प | " " |
| स्त्रियं स्पृशेद् | " " | कात्या. ११०९ | *स्त्रीपुसो हेम | बृह. १६४६ |
| * " " | नार. १८८१ | भा. १०३२ | स्त्रीपुसौ यस्स | नार. १८८० |
| स्त्रियं हि यः प्रा | भा. १०३२ | अनि. १११८ | स्त्रीपुसौ वञ्च | व्यासः १७६४ |
| स्त्रियः पवित्र | बौधा. १८४५ | भा. १९७८ | स्त्रीपुसौ हेम | बृह. १६४६ |
| स्त्रियः श्रियश्च | मनुः १०५१ | " १०२७, | *स्त्री पुमांश्च स | नार. १८८० |
| स्त्रियः साध्यो म | भा. १०३३ | १२८४ | स्त्री प्रकृता स | कौ. १८४९ |
| स्त्रियः स्वर्गे च | वारा. १०७७ | वारा. १०७७ | *स्त्री प्रसूता वा | नार. ७०३ |
| स्त्रियमघ उ | वेदाः १०१० | कौ. १०३४ | *स्त्रीप्रसूतिं च | मनुः १०४६ |
| *स्त्रियमवश | विष्णुः १८४७ | याज्ञ. १६४० | स्त्रीप्रसूत्वाधि | याज्ञ. १०८७ |
| स्त्रियमशक्त | " १६०९, | शंखः १४२८ | स्त्री प्रसूताऽप्र | नार. ७०३, |
| | १८४७ | गौत. १४२५; | ११०३; स्मृत्य. | १३७३ |
| *स्त्रियमसक्त | " " | बृह. १४५० | स्त्रीबालकान् | बृह. १७५९ |
| स्त्रियश्च सर्वाः | वेदाः ९९८ | नार. १४४९ | स्त्रीबालपुरु | विष्णुः १६०९ |
| स्त्रियस्तोषक | भा. १०३० | गौत. १४२५ | स्त्रीबालब्राह्म | मनुः १६३२ |
| *स्त्रियां तु यद् | मनुः १४४० | बौधा. १४२७ | स्त्रीबुद्ध्या न वि | भा. १०३२ |
| स्त्रियां तु रोच | " १०५३ | बृह. ८०३ | *स्त्रीभक्त्यनुग्र | नार. ७९९ |
| स्त्रियाः फत्या वि | भा. १९६४ | " " | *स्त्रीभिर्भर्तुर्व | याज्ञ. १०८४ |
| स्त्रियाः पुरुष | " १०३१ | " १४५० | स्त्रीभिर्भर्तुव | " " |
| *स्त्रियाः श्रुतौ वा | यमः १११३ | नार. " , | *स्त्रीभुक्तानुग्र | नार. ७९९ |
| स्त्रिया प्रहृष्ट | अपु. १९७९ | " १०९९ | स्त्रीरत्नं दुष्कु | भा. १०२६ |
| स्त्रियामयोनी | कौ. १८५० | कात्या. १४५९ | *स्त्रीलक्षण्यप | मनुः १०५० |
| *स्त्रियाश्च यद् | मनुः १४४० | " " | स्त्रीवन्मुखज | स्मृत्य. १११८ |
| स्त्रियास्तु यद् | भा. १४२९; | " " | *स्त्री वानपत्य | गौत. १४६४ |
| | मनुः १४४० | " " | *स्त्रीवित्तादिवि | मनुः १६२३ |
| स्त्रियास्त्वर्धक | कौ. १६८७ | कण्वः १४६२ | स्त्रीविप्रकारा | कौ. १०३६ |
| स्त्रियै चाभारः | वेदाः १००७ | कौ. १०३७, | *स्त्रीविप्राद्युप | मनुः १६२३ |
| स्त्रियो गृहदे | पैठी. १११५ | १३९२, १४३१ | *स्त्रीविप्राभ्यव | " " |
| स्त्रियो याः पुण्य | वेदाः ९७३, | अनि. १११८ | स्त्रीविप्राभ्युप | " " |
| | | शंखः १०२५ | | |

| | | |
|----------------------|---------|------------|
| *स्त्रीवृत्तिद्रव्य | याज्ञ. | १६४० |
| स्त्रीशुल्कानुग्र | नार. | ७९९ |
| स्त्रीशुल्के च न | कात्या. | ६३३ |
| *स्त्रीशुल्के न च | " | " |
| *स्त्रीशुल्केषु न | " | " |
| *स्त्रीषु कृतोप | " | १८८८ |
| स्त्रीषु च संयु | गौत. | १२०४ |
| *स्त्रीषु च संस | " | " |
| *स्त्रीषु यः कृत | कात्या. | १८८८ |
| स्त्रीषु वृत्तोप | " | " |
| *स्त्रीषु संयुक्ता | गौत. | १२०४ |
| *स्त्रीष्ववरुद्धा | " | " |
| स्त्री स्मेवाप्रे सं | वेदाः | १०१० |
| स्त्रीहर्ता लोह | व्यासः | १७६५ |
| *स्त्रीहारी च त | बृह. | ७०८ |
| स्त्रीहारी तु त | " | " |
| *स्त्रीहारी धन | वसि. | १६०८ |
| स्त्र्यखलनिर्भा | वेदाः | ९९५ |
| *स्त्र्यपराधे तु | व्यासः | १७६५ |
| *स्थलं निर्जन | बृह. | ९५० |
| स्थलनिर्जन | " | " |
| स्थलस्य द्वैव | कौ. | ९३० |
| स्थविमत उ | वेदाः | ८१३ |
| स्थाणुच्छेदस्य | मनुः | १०७२, ११२७ |
| स्थानं गृहं गृ | बृह. | ७५० |
| स्थानत्यागाद्वा | व्यासः | ७५५ |
| स्थानलाभनि | नार. | ६२४ |
| स्थानसंभाष | " | १८८० |
| स्थानान्यत्वं ग | कौ. | १६९० |
| स्थानासनाभ्यां | आप. | १६६५ |
| *स्थानिनामेष | नार. | ८८७ |
| स्थानीयराष्ट्र | कौ. | ९३२ |
| *स्थाने गृहं गृ | बृह. | ७५० |
| *स्थाने गृहं स्थ | " | " |
| *स्थाने लाभनि | नार. | ६२४ |
| *स्थानेषु द्रव्य | कात्या. | १४५८ |
| स्थानेषु धर्म | " | " |
| स्थापयन्ति च | मनुः | ६१९ |
| स्थापयन्ति तु | " | " |
| *स्थापयन्तीच्छ | " | " |
| स्थापितं येन | बृह. | ७५१ |
| स्थापितां चैव | वृमं. | ९६२ |
| स्थापिता येन | भा. | १०२७, १२८४ |
| *स्थापिताश्चैव | वृमं. | ९६२ |

| | | |
|---------------------|---------|------------|
| *स्थाप्यतेऽत्र य | बृह. | ७५० |
| स्थाप्यतेऽन्यगृ | " | " |
| *स्थाप्यतेऽन्यस्य | " | " |
| स्थाथिनामेष | नार. | ८८७ |
| *स्थावरं च न | " | १२१९ |
| *स्थावरं जङ्ग | व्यासः | १५८७ |
| स्थावरं तु न | नार. | १२१९ |
| स्थावरं द्विप | व्यासः | १५८७; |
| | लहा. | १९८८ |
| | व्यासः | १५८७ |
| *स्थावरं द्विवि | लहा. | १९८८ |
| स्थावरं न तु | नार. | ८८६ |
| *स्थावरं सक्ष | विष्णुः | ८९१ |
| स्थावरजङ्ग | कौ. | ६३८ |
| स्थावरस्तु प्र | नार. | ८८६ |
| स्थावरस्य क्ष | " | १२१९ |
| *स्थावरस्य च | " | " |
| स्थावरस्य तु | शुनी. | १९८८ |
| | व्यासः | १५८६ |
| स्थावरस्य स | नार. | १२१९ |
| *स्थावरस्यैव | " | ८८६ |
| *स्थावरस्योद | बृह. | १२२४ |
| *स्थावराज्जीव | वृया. | १२३३ |
| स्थावराणि न | बृह. | १२२४ |
| स्थावरादि ध | बृम. | १५६२ |
| स्थावरेऽप्येव | अनि. | १५८९ |
| स्थावरे विक्र | कात्या. | ९५५ |
| स्थावरे षट्प्र | व्यासः | ९६१ |
| स्थिता पञ्चवि | मनुः | १२९४ |
| *स्थित्यर्थं तु स्व | नार. | १९३६ |
| स्थित्यर्थं पृथि | कात्या. | १९४२ |
| स्थित्यैतत् स्था | वारा. | १०७७ |
| स्थिरानुरागो | व्यासः | ९६१ |
| *स्थिरा पञ्चवि | कौ. | १८०० |
| स्थूलकद्रव्यं | " | १६१७ |
| स्थूलकद्रव्या | " | १६७४ |
| स्थूलकानां मा | " | १०९४ |
| *स्थूलघाटस्त | नार. | १०९४ |
| स्थूलघाटात् | " | " |
| *स्थूलसूत्रव | " | १७४७ |
| *स्थूलस्तस्त्वुव | " | " |
| *स्नातः प्रायश्चि | सुम. | १६५३ |
| स्नाता प्रतिदि | व्यासः | ११११, १५२४ |
| | मा. | १२४४ |
| स्नानं प्रसाध | स्कन्द. | १९६५ |
| स्नानोदकं वा | शुनी. | १११९ |
| स्नायीत सां त्रि | | |

| | | |
|--------------------|----------|------------|
| स्नुषा श्वशुर | वेदाः | १००५ |
| स्नुषा सपत्नाः | " | १००७ |
| स्नुहिक्षीरलि | कौ. | १९२५ |
| स्नेहेन तु चि | व्यासः | ८५४ |
| *स्नेहेन स्थण्डि | " | " |
| स्पर्धमानः क्षे | वेदाः | ९२४ |
| स्पर्धया वा मू | कौ. | ९२८ |
| *स्पर्शो भूषणं | बृह. | १८८५ |
| स्पर्शो भूषण | " | " |
| | व्यासः | १८८९ |
| स्पृशतु त्वां स | भा. | १९८४ |
| स्पृहणीयान्सु | " | १०३० |
| स्पृहाऽयस्यास्त | " | १०२९ |
| स्मृत्ताश्च वर्णा | " | १२४३ |
| स्मृत्क नियोग | शुनी. | १११९ |
| स्याच्चतुर्विंशति | मनुः | ८८१ |
| स्याच्चेद्द्रव्यस | नार. | ९१६ |
| स्याच्चेन्नियोगि | वसि. | १०२२, १२७२ |
| स्यातां संव्यव | नार. | १६४४ |
| *स्यातु चेत् दुहि | " | १५५४ |
| स्यात्पञ्चदश | अनि. | १९६७ |
| स्यात्साहसं त्व | मनुः | १६२२, १६९१ |
| | अनि. | १९६८ |
| स्यादण्विकाच | नार. | १५५४ |
| *स्याद् यस्य दुहि | वेदाः | ९७०, |
| स्याजः सूनुस्त | | १२५८ |
| स्योनं ध्रुवं प्र | " | १००१ |
| स्योनाधीनेर | " | १००३ |
| स्योना भवश्च | " | १००२ |
| स्योना क्षत्रै प्र | " | " |
| स्योनास्ते अस्यै | " | " |
| स्योनास्यै सर्व | " | " |
| स्रोतांसि नद्यो | भा. | १०३१ |
| स्रोतोवहेव | नार. | ८२६ |
| स्रोतसोऽपह | स्मृत्य. | ६६१ |
| स्वं कुटुम्बावि | याज्ञ. | ७९६ |
| स्वं च धर्मं प्र | मनुः | १०४६ |
| स्वं च शुल्कं व | पैठी. | १४६३ |
| स्वं च शुल्कं वो | शंखः | १४२९ |
| स्वं दासमिच्छे | नार. | ८३३ |
| स्वं द्रव्यं दीय | कात्या. | ८०४ |
| स्वं द्रव्यं यत्र | नार. | ७४६ |
| स्वं लभेतान्य | याज्ञ. | ७६० |
| *स्वं शिल्पमिच्छ | नार. | ८२७ |

| | | | | | |
|------------------------|---------------|--------------------|---------------|-------------------|--------------|
| *स्वं स्त्री शुल्कं वो | शंखः १४२९ | *स्वज्ञानशास | कात्या. १२२५ | स्वप्न स्वप्नाभि | वेदाः ९९८ |
| स्वकरणाभा | कौ. ७५७, | स्वतन्त्रस्यात्म | ,, ८३५ | *स्वप्नोऽन्यशुहे | मनुः १०४८ |
| | १६७६ | स्वतवं गच्छेदा | भार. ९०० | स्वप्नोऽन्यशुहे | ,, " |
| स्वकर्म ख्याप | मनुः १७०२ | स्वत्वे साति प्र | संप्र. ११४२ | *स्वप्नोऽन्यशुहे | ,, " |
| स्वकर्म जह्या | नार. १९३६ | स्वदाने सर्व | जैमि. ७९२ | *स्वप्नसूतिं च | ,, १०४६ |
| स्वकर्मणि द्वि | ,, १९४० | स्वदारनिर | याज्ञ. १०८१ | स्वबलेनैव | नार. ७६४३ |
| स्वकादपि च | मनुः १४३२ | स्वदारांस्त्यज | देव. ११११ | | लहा. १९७५ |
| *स्वकामे वर्ते | दक्षः १११४ | *स्वदासमिच्छे | नार. ८३३ | स्वभर्त्रा च स | भा. २०३० |
| स्वकाम्ये वर्ते | ,, " | स्वदासीं यस्तु | कात्या. ८३७ | *स्वभागं यदि | नार. १५८३ |
| *स्वकुटुम्बावि | याज्ञ. ७९६ | स्वदेशग्राम | कौ. १७७३ | *स्वभागानपि | ,, " |
| स्वकुलं पृष्ठ | हारी. १२६६; | स्वदेशघाति | नार. १७४८; | स्वभागान् य | ,, " |
| यमः १३५२; संप्र. १३८४ | | | कात्या. १७६१ | स्वभागार्धह | शुनी. १९८८ |
| *स्वकृतैः शापि | मनुः ९३८ | स्वदेशपण्या | विष्णुः १६७१ | *स्वभावाद्यादि | नार. १५८३ |
| स्वकोशात्तद्धि | व्यासः १७६५, | स्वदेशपण्ये | याज्ञ. १७३१ | *स्वभूताऽपि कृ | दक्षः १११४ |
| | १९६२ | *स्वदेशस्थोऽपि | कात्या. ६३३ | स्वमायर्थं त | नार. १९६१ |
| *स्वकोशाहया | गौत. १६६३ | स्वदेशाद् वा | विष्णुः १६०९, | स्वमातुलसु | अनि. १९४३ |
| *स्वकोशाद्वा द | ,, " | | १८४७ | स्वमेव ब्रह्म | वेदाः १९८२ |
| *स्वक्षेत्रे संस्कृ | विष्णुः १२७९ | स्वदेशोऽपि स्थि | कात्या. ६३३ | स्वयं कुर्वीत | भा. १०२९ |
| " " | मनुः १३०२ | स्वदेशे यस्य | ,, १७६३ | *स्वयं कृतं ऋ | याज्ञ. ६८३ |
| *स्वगोत्रजसु | शाक. १३५५ | *स्वदेशपण्ये | याज्ञ. १७३१ | *स्वयं कृतं च | ,, " |
| *स्वगोत्रेण कृ | वृगौ. १३७२ | *स्वदोषेण च | विष्णुः ८४३ | स्वयंकृतं तु | वृहा. ७१५ |
| स्वगोत्रेण स्व | वासि. १२७८ | *स्वद्रव्यं यत्र | नार. ७४६ | स्वयं कृतं वा | याज्ञ. ६८३ |
| स्वगोत्रे दत्त | मनुः १३२८ | स्वद्रव्यमर्प्य | व्यासः ७५५ | स्वयं गच्छन्ति | भा. १०३३ |
| *स्वगोत्रेषु कृ | वृगौ. १३७२ | स्वधनं च स्थि | बृह. ७२७ | स्वयंप्रसिता | कौ. १६२० |
| स्वप्रामज्ञाति | स्मृत्य. १०१, | *स्वधनं तु स्थि | ,, " | स्वयं चोपग | नार. १३४६ |
| | ११४२, १५८९ | *स्वधनात्पुत्र | कात्या. ७०९ | *स्वयं चोपाग | ,, " |
| स्वप्रामिणां त | भार. ९०० | स्वधनात्स तु | भार. ६६० | *स्वयं चोपाजि | कात्या. ११७३ |
| स्वचापत्यादि | कात्या. ८९८ | स्वधनादेव | मनुः ६६५ | स्वयंजातः कृ | कौ. १२८८ |
| स्वचिह्नैरेव | भा. १८८५ | *स्वधनैस्तेर्वि | बृह. १२३७ | स्वयंजातः पि | ,, " |
| स्वच्छन्दं विध | व्यासः १७६३ | *स्वधर्म हि प्र | मनुः १०४६ | स्वयंजातः प्र | भा. १२८४ |
| स्वच्छन्दया च | याज्ञ. १६३४ | स्वधर्मत्यागि | नार. ८२९ | स्वयं तूपाजि | कात्या. ११७३ |
| * " " | मनुः १०५८ | स्वधर्माच्चलि | याज्ञ. १९३२ | *स्वयंदत्तं च | बौधा. १२७१ |
| *स्वच्छन्दगा तु | यमः १११३ | स्वधर्मेण नि | मनुः १३०४ | स्वयंदत्तं नि | ,, " |
| " " | मनुः १०५८ | स्वधर्मेणैव | कात्या. १९४२ | स्वयंदत्तश्च | मनुः १३२०; |
| स्वच्छन्दगा ब | यमः १११३ | *स्वधर्मं ब्राह्म | नार. १९४० | | कालि. १३७६ |
| *स्वच्छन्दविध | व्यासः १६१ | स्वधर्मो राज्ञः | वासि. १९२० | *स्वयं दद्यात् | व्यासः ६७६ |
| स्वच्छन्दव्याभि | याज्ञ. १६३४ | स्वनिहिताद्रा | विष्णुः १९५० | *स्वयं द्विजैर्हि | मनुः १०६८ |
| | मनुः १०५८; | *स्वनिहितान्ना | ,, " | *स्वयं निगृह्य | ,, ७४३ |
| | यमः १११३ | स्वपत्नीप्रभ | भा. १९८५ | स्वयं प्रकृता | कौ. १८४९ |
| स्वजनेन त्व | भा. ८६० | स्वपन्तं पुत्र | शंखः १९२२ | स्वयं बन्धुभि | ,, १२८८ |
| *स्वजातावाप्नु | बृह. १२५१ | स्वपन्त्वस्यै ज्ञा | वेदाः ९९८ | *स्वयं यः साध | मनुः ७१८ |
| *स्वजातावुत्त | याज्ञ. १८७२ | *स्वपर्याप्तम् | नार. ८३२ | स्वयं वा रसे | कौ. ८६३ |
| *स्वजातिः श्रेय | नार. १०९३ | *स्वपित्र्यं तद्ध | कात्या. १४०३ | *स्वयं विशीर्णं | नार. १९३८ |
| स्वजात्यतिक्र | ,, १८८२ | स्वपुत्रैर्भ्रातृ | कालि. १३७७ | स्वयं शीर्णं च | ,, " |
| स्वजात्या श्रेय | ,, १०९३ | स्वपेद्भूमाव | शुनी. १११९ | *स्वयं शुल्कं वो | शंखः १४२९ |
| स्वज्ञानश्रेय | कात्या. १२२५ | स्वपुत्रैर्भ्रातृ | वेदाः ९९८ | *स्वयञ्चोपाग | विष्णुः १२७६ |

| | | |
|-------------------|-----------|-------|
| *स्वयमभिप्र | कौ. | १२७ |
| स्वयमर्जितं | गौत. | १२०४ |
| *स्वयमर्हति | मनु. | १२१२ |
| स्वयमादिष्ट | कौ. | १६१६ |
| *स्वयमार्जनं | गौत. | १२०४ |
| *स्वयमर्जितं | " | " |
| स्वयमर्जित | कौ. | १२०७ |
| स्वयमीहित | विष्णु. | १२०५; |
| मनु. | १२१२; भा. | १९८४ |
| स्वयमुत्पादि | वसि. | १२७२; |
| " | यम. | १३५१ |
| " | हारी. | १२६५ |
| " | भा. | १९७१ |
| स्वयमुत्पाद्य | कौ. | १६१५ |
| स्वयमुद्बद्ध | विष्णु. | १२७९ |
| स्वयमुपग | वसि. | १२७८ |
| स्वयमुपाग | मनु. | ७४०; |
| स्वयमेव तु | नार. | ७४७ |
| स्वयमेवाग | कात्या. | १८८८ |
| *स्वरवर्णाका | नार. | १७५३ |
| स्वर्गं गच्छत्य | विष्णु. | १०२४; |
| " | मनु. | १०६३ |
| स्वर्गां स तेन | शंख. | १२८१ |
| स्वर्गे तेनाभि | भा. | १२८३ |
| स्वर्गेऽपि च वि | वारा. | १०७६ |
| स्वर्गेऽपि दुर्ले | दक्ष. | १११४ |
| स्वर्गस्योत्तम | शुनी. | १७६७ |
| *स्वर्यात्स्य ह्य | शंख. | १४७१ |
| " | याज्ञ. | १४७९; |
| " | अनि. | १५२९ |
| स्वर्याते स्वामि | कात्या. | १५२२ |
| *स्वल्पं वा विभ | हारी. | ११६३ |
| *स्वल्पं वा संवि | " | " |
| स्वल्पमपि द्र | विष्णु. | ८९१ |
| *स्वल्पमूल्यं तु | बृह. | १७५९ |
| स्वल्पेन वा वि | हारी. | ११६३ |
| *स्वल्पेन वा सं | " | " |
| स्वल्पेनापि च | कात्या. | ७५५ |
| स्वन्नत्तामपि | जैमि. | १४२५ |
| स्ववाक्संप्रति | नार. | ७२४ |
| स्ववृत्त्युपार्जि | विष्णु. | १९८३ |
| स्ववेशमनो वि | कौ. | १६२० |
| स्वशक्ति पर | मनु. | १९३० |
| स्वशक्त्यापह | कात्या. | १२२४ |
| *स्वशक्त्या रक्ष | नार. | ७८१ |
| *स्वशक्त्या ह्यधृ | कात्या. | १२२४ |

| | | |
|-------------------------|---------|-------|
| स्वशरीरेण | यम. | १६५२ |
| स्वशिल्पमिच्छ | नार. | ८२७ |
| *स्वशिल्पमिच्छे | " | " |
| *स्वसंस्कृते तु | बृह. | ९५४ |
| *स्वसाक्ष्येण नि | " | ६७२ |
| स्वसाक्ष्ये न नि | " | " |
| स्वसारः श्यावी | वेदा. | ९६३ |
| स्वसा स्वस्त्रे ज्या | " | ९६६ |
| स्वसीन्नि दद्या | याज्ञ. | १७४३ |
| स्वसुर्यो जार | वेदा. | ९७२ |
| स्वस्ति वाच्य भि | गौत. | १९७२ |
| स्वस्थेनार्तेन | कात्या. | ८०६ |
| स्वस्य भोगः स्थ | बृह. | १५८१ |
| *खखादिभिर्गु | " | ११०६ |
| *स्वस्वभोगः स्था | " | १५८१ |
| *स्वां दासीं यस्तु | कात्या. | ८३७ |
| स्वां प्रजां पित | वेदा. | ११६० |
| स्वां प्रसृतिं च | मनु. | १०४६ |
| *स्वाकाम्ये वर्त | दक्ष. | १११४ |
| स्वा चैव कुर्शा | मनु. | १०५४ |
| स्वातन्त्र्यं च क | ब्रह्म. | १११८ |
| *स्वातन्त्र्यं च सृष्ट | नार. | ६९५ |
| *स्वातन्त्र्यं तु सृष्ट | " | " |
| स्वातन्त्र्यं हि सृष्ट | " | " |
| *स्नातन्त्र्याद्धि प्र | " | १०९८ |
| स्नातन्त्र्याद्धिप्र | " | " |
| स्नात्माधाने वि | कौ. | ९३० |
| स्नात्स्वादशाच | मनु. | १४१७ |
| स्नादानाद्रर्णे | " | १९३१ |
| स्वादुको वित्त | लहा. | ६७७ |
| स्वाध्यायिनं कु | वसि. | १६०८; |
| " | बृह. | १६४८ |
| स्वाध्यायोऽजनय | वेदा. | ९८१, |
| " | " | १८३७ |
| *स्नानंशान् य | नार. | १५८३ |
| स्नानि पुण्यानि | वारा. | १०७५ |
| *स्नान् भागान् य | नार. | १५६३ |
| स्नामित्वादादि | हारी. | १७६९ |
| स्नामिदत्तां तु | कात्या. | १११० |
| स्नामिदोष्वाद् | नार. | ८४९ |
| स्नामिनं तं वि | कात्या. | ९६० |
| स्नामिनः स्वस्यां | कौ. | ८१७ |
| स्नामिनश्चानि | " | ९७६ |
| स्नामिनस्ता वि | नार. | ९४६ |
| स्नामिनां च प | मनु. | ९११ |

| | | |
|----------------------|----------|------|
| स्नामिना चान | भार. | ६६० |
| *स्नामिनामेव | मनु. | १०७३ |
| *स्नामिने तत्स | व्यास. | ९६१ |
| " | " | १७६५ |
| स्नामिने तद्ध | बृह. | १७६० |
| स्नामिने नार्प | कात्या. | ८५४ |
| *स्नामिने योऽनि | याज्ञ. | ९४३ |
| स्नामिने वाऽनि | " | " |
| *स्नामिनेऽविनि | " | " |
| स्नामिने स श | बृह. | ९५४; |
| " | व्यास. | ९६१ |
| *स्नामिनो नार्प | कात्या. | ८५४ |
| *स्नामिनो योऽनि | याज्ञ. | ९४३ |
| *स्नामिनो ह्यनि | " | " |
| स्नामिप्राणप्र. | " | ८२३ |
| *स्नामी चेदपू | विष्णु. | ८४३ |
| स्नामी चेदभूत | " | " |
| स्नामी तु विव | कात्या. | ९२० |
| स्नामी दत्त्वाऽर्ध | बृह. | ७६६; |
| " | कात्या. | ७६८ |
| स्नामी द्रव्यम | विष्णु. | ७५७ |
| स्नामी द्रव्यमा | " | " |
| स्नामी रिक्थक | गौत. | ११३२ |
| *स्नामी शतद् | बृह. | ९१९ |
| स्नामी शतद् | " | " |
| *स्नामी सर्वं दे | " | " |
| स्नाम्यं विभाव | " | ७८६ |
| *स्नाम्यदत्त्वाद्धि | " | ७६६ |
| *स्नाम्यभावे प्रा | कौ. | ९३१ |
| स्नाम्यमात्यद् | विष्णु. | १६१२ |
| स्नाम्यमात्यसु | " | " |
| स्नाम्यमात्यौ पु | मनु. | १९३० |
| स्नाम्यर्थे जीवि | कात्या. | १२२७ |
| *स्नाम्यज्ञाय च | बृह. | ७८८ |
| स्नाम्यज्ञाय तु | " | " |
| *स्नार्थसिद्धौ च | कात्या. | ९५५ |
| स्नार्थसिद्धौ प्र | " | " |
| स्नालक्षण्यप | मनु. | १०५० |
| *स्नासेधयंस्त्व | बृह. | ७२७ |
| स्निष्टकृदादि | शौन. | १३६४ |
| स्नीकारे कृत | स्मृत्य. | १३७३ |
| *स्ने क्षेत्रे च कृ | मनु. | १३०३ |
| स्ने क्षेत्रे संस्कृ | विष्णु. | १२७९ |
| *स्ने क्षेत्रे स्वयं | " | " |
| *स्नेच्छया कृत | बृह. | १५८५ |
| स्नेच्छया यः प्र | कात्या. | ८०५ |

| | | | | | | | | | |
|-----------------------|---------|-------|-----------------|---------|-------------|-------------------|---------------|---------|------|
| *स्वेच्छया यत्प्र | कात्या. | ८०५ | हरैरनुति | मनुः | १४७७ | हिंस्युर्नानि | बृह. | १५१४३ | |
| स्वेच्छयोपेयुः | ,, | १८८८ | *हर्ता च घात | बृह. | १६४६ | हिंस्यन्त्रप्र | प्रजा. | १५२६ | |
| स्वेच्छाकृतवि | बृह. | १५८४ | *हर्तारो घात | ,, | ,, | हिंस्रस्तेनानां | बृह. | १६५३ | |
| *स्वेच्छागतवि | ,, | १५८५ | हर्ता वा घात | ,, | ,, | हिंस्रस्तेनानां | कौ. | १६१९५ | |
| स्वेच्छादेयं हि | ,, | ७८६ | हर्म्यं देव्यु | ,, | ७८७५ | हितेषु चैव | बृह. | १६५३ | |
| स्वेच्छादेयं स्व | ,, | ८०३ | हर्षदानं त | शुनी. | ७९० | हित्वा ब्रजमा | मनुः | १९३१ | |
| स्वेच्छानुपेयु | नार. | १८८१ | हवा इदयो | भार. | ६०७ | हिन्वानासो र | आप. | ९०४ | |
| * , , | कात्या. | १८८८ | हवामहे त्वा | वेदाः | ९०२ | हिन्वानासो र | वेदाः | ८११ | |
| स्वेदे मूत्रं पु | भा. | १२८६ | हव्यं कव्यं च | ,, | ११५८ | *हिरण्यं रक्त | नार. | १७४५ | |
| स्वे परे वा ज | कौ. | ७३७ | हसन्तं प्रह | भा. | १२४४ | *हिरण्यं रत्न | ,, | ,, | |
| *स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु | मनुः | १४१७ | हस्तप्राभस्य | ,, | १०३२ | हिरण्यं सपि | ,, | १९४० | |
| *स्वेभ्योऽश्वेभ्यश्च | ,, | ,, | हस्तपाषाण- | वेदाः | ९७८, १२५७ | हिरण्यकुप्य | बृह. | ७८७ | |
| स्वेभ्योऽश्वेभ्यस्तु | ,, | ,, | हस्तपाषाण- | बृह. | १८३० | हिरण्यधान्य | नार. | ६२६ | |
| स्वैरिणी च पु | हारी. | १०१७ | हस्तस्याङ्गुलि | बृह. | १८९१ | *हिरण्यरज | भार. | ६३५ | |
| स्वैरिणीनां च | नार. | १९७८ | हस्तादिना प्र | बृह. | १८९१ | हिरण्यरत्न | नार. | १७५० | |
| स्वैरिणी या प | याज्ञ. | १०८८ | *हस्तादिना प्रा | व्यासः | १८३५ | हिरण्यरत्न | ,, | १७४५ | |
| स्वैरिण्यब्राह्म | नार. | १८८३ | *हस्तादिना प्रा | ,, | १८३४ | *हिरण्यरूप्य | बृह. | ७८७ | |
| हंसकारण्ड | वारा. | १०७६ | हस्तिक्षेत्रप | कौ. | ९३२ | हिरण्यवर्ज | नार. | १७४५ | |
| हंसभासब | बौधा. | १६०६ | हस्तिना रोषि | ,, | १६२१ | *हिरण्यवर्ज्य | ,, | ,, | |
| हतः संदश्य | बृह. | १६४७ | हस्तिपत्रात्य | नार. | १८२७ | *हिरण्यवस्त्र | ,, | ६२६ | |
| *हतः स दश्य | ,, | ,, | हस्तेनावगु | कौ. | १७९९ | *हिरण्यस्य द्वि | विष्णुः | ६१० | |
| *हतास्तु दश्य | ,, | ,, | *हस्तेनावगो | विष्णुः | १७९६ | हिरण्यस्य प | ,, | ,, | |
| हत्वातताधि | ,, | १८३१ | हस्तेनैव प्रा | वेदाः | १८३८ | *हिरण्ये त्रिगु | कात्या. | ६५८ | |
| हत्वा तु प्रह | भवि. | १६५५ | हस्तेनोद्गूर | विष्णुः | १७९६ | हिरण्ये द्विगु | बृह. | ६३०, | |
| *हत्वाऽपरमधि | बृह. | १८३१ | *हस्तेनोद्गोर | ,, | ,, | ६५२, ७२६; कात्या. | ६५८ | | |
| हनामेभामे- | वेदाः | १४२४ | *हस्तोऽपलप | मनुः | ७१९ | हिरण्येन मु | कौ. | १८४९ | |
| हनूमानिति | वारा. | १३२९ | हस्त्यश्वगोख | कात्या. | ८५४ | हिरण्योदक | स्मृत्य. | ९०१, | |
| *हन्ता च घात | बृह. | १६४६ | *हस्त्यश्वगीर | शंखः | १६७२ | ११४२, १५८७ | | | |
| हन्ता तदनु | ,, | १८३२ | *हस्त्यश्वगोवृ | ,, | ,, | *हीनं जातिप | याज्ञ. | ७२३ | |
| हन्ताभिशास्ते | वेदाः | ११४३, | हस्त्यश्वरथ | मनुः | १६२९, | हीनं पुरुष | मनुः | ९०८; | |
| | | १६०० | | | १७१३, १९२९; | हीनं पुरुष | नार. | ९१६ | |
| हन्तां मन्त्रोप | पैठी. | १६५३ | | | शंखः | हीनं यद्धनि | यमः | ६६० | |
| *हन्ता वा घात | बृह. | १६४६ | हस्त्यश्वानां त | | विष्णुः | हीनं यावतु | भार. | ,, | |
| हन्ति सर्वम | भा. | १९८३ | | | कात्या. | हीनं सुघटि | शुनी. | १७६७ | |
| हन्तेति सखं | वेदाः | १००६ | हानिविक्रेतु | | याज्ञ. | हीनः पुरुष | अपु. | १९४३ | |
| *हन्यात्त्रिचत्रव | व्यासः | १६५१ | *हानिश्च केतु | | ,, | हीनकयप | विष्णुः | ८९१ | |
| हन्यात्त्रिचत्रैर्व | ,, | ,, | *हानिश्च केतु | | ,, | हीनजाति प | याज्ञ. | ७२३ | |
| हन्यादुपाथै | नार. | १७५७ | हानिश्चेत्केतु | | ,, | हीनजातिस्त्रि | विष्णुः | १०२३ | |
| हरस्य मन्दि | कालि. | १३७७ | हानिस्तत्र स | | मरी. | *हीनमध्योत्त | बृह. | ८३५, | |
| हरिश्चन्द्रो ह | वेदाः | १००५; | *हारयन् चोर | | बृह. | १६४६ | १६४५; नार. | १८२४ | |
| | वसि. | १२७८ | *हारसं परगृ | | याज्ञ. | १०८५ | हीनमूल्यं च | बृह. | ७६४ |
| हरेच च दवा | भा. | १२४३ | हारसं परगृ | | ,, | ,, | *हीनमूल्यं तु | ,, | |
| हरेज्येष्ठः प्र | ,, | ११८४, | *हिसन्तश्छद्य | | बृह. | १७५९ | ,, | ,, | |
| | | १२३४ | हिसन्ति छद्य | | ,, | ,, | हीनमूल्यस | नार. | ७६३ |
| हरेत्तत्र नि | मनुः | १३१८ | हिसयन् चौर | | ,, | १६४६ | हीनवर्णाक्रो | विष्णुः | १७७१ |
| हरेस्त्रिन्धाद् | कात्या. | १६४९ | हिसाप्रतीक | | कौ. | १७६ | हीनवर्णाक्र | १८४६ | |

| | | | | | |
|-----------------|---------------|---------------|--------------|------------------|--------------|
| *हीनवर्णे का | विष्णुः १७७१ | हीयमानो न | स्कन्द. १९६६ | *हेत्यादिभिर्न | कात्या. १८३४ |
| *हीनवर्णेन | बृह. १८८७ | हुङ्कारं कास | कात्या. १७९१ | हेत्वर्थगति | नार. १८२९; |
| हीनवर्णोऽधि | विष्णुः १७७०, | *हुङ्कारं चैव | " " | | बृह. १८३२ |
| | १७९६ | *हुङ्कारः कास | " " | *हेत्वर्थमति | " " |
| हीनवर्णोप | बृह. १८८७ | हुताशनशि | भा. १०२८ | हेत्वादिभिर्न | कात्या. १८३४ |
| हीनस्यापूर | यमः ६६० | ह्यमानश्च | मनुः १९३० | हेमकाराद | बृह. ७८७; |
| हीनाद्रहो ही | याज्ञ. ७६० | हतं नष्टं च | कात्या. १५७४ | हेममुक्ताप्र | शुनी. ७९० |
| हीना न स्याद्धि | " १०८४ | हतं प्रनष्टं | याज्ञ. १९५८ | हेमरत्नप्र | बृह. १७५९ |
| हीनात् वा वि | कौ. ८६२ | *हतं भ्रमं च | कात्या. १८३३ | हेमरूप्याम्ब | व्यासः ८९९ |
| हीनास्तमुप | देव. १३५१ | *हतं भ्रमं तु | " " | होता चापि ह | मनुः ७७५ |
| *हीनास्समुप | " " | हतं भ्रमं प्र | " " | *होता निविद्ध | " " |
| हीने तदर्था | शुनी. १७६७ | *हतं लब्धं च | " १५७४ | होता यक्षत्पे | वेदाः ९९५ |
| *हीने पणे तु | याज्ञ. १७३४ | हतस्वस्य हि | भा. १९६४ | *होता वापि ह | मनुः ७७५ |
| हीनेषु अर्थ | कौ. १७९८ | हताधिकारां | याज्ञ. १०८६, | ह्रस्वप्रवासि | कौ. १०३९ |
| *हीनेष्वर्थ द | याज्ञ. १८१४ | | १४०० | हिया देयम् | वेदाः ७९२ |
| हीनेष्वर्थद | " " | हते तद्धिगु | बृह. १८३१ | ह्लादते जानि | भा. १०२६ |
| | कौ. १७७२ | हत्वा तदर्थे | आप. १४६६ | ह्लादन्ते स्वेपु | " " |
| हीनो(ने)यदि वि | कात्या. ८९८ | हृदयादुद्धृ | कौ. १६१५ | | |
| हीयते हीय | नार. ९४९ | होतिपुष्पफ | बृह. ६३० | | |



Index of the important Sanskrit Words.

अंश a share; part; inheritance ६७९, ९०, ७१५, १६, २४, ३२, ३४, ३७, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७७, ८०, ८१, ८४, ८५, ८७, ८८, ८९, ९०, ८६१, ७५, ९३, ९६, ९९, ९०१, ४७, ६१, १०७२, ८८, ९६, ११४१, ४६, ५९, ७१, ७२, ८४, ८५, ९०, ९१, ९२, ९९, १२०१, ०७, १२, २०, २३, ३९, ४०, ४१, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, १३१०, २४, ४७, ४९, ७४, ९१, १४००, ०१, ०३, ०४, ०८, ११, १३, १४, १६, १७, १९, २१, २२, २८, ७०, १५१८, २४, २६, २७, ४१, ४३, ४४, ५४, ५५, ५८, ६०, ६१, ६९, ७१, ७२, ७५, ८४, ८५, १६७१, ७५, ७६, ८६, १७२८, ४७, ४८, ६७, १९००, ०३.

अंशक a share; small share १३७५, १७६७.

अंशकल्पना division; allotment of shares ११९०, १२२४, ४१.

अंशग्राहिन् a co-heir १३८९.

अंशप्रकल्पना see अंशकल्पना ७७६.

अंशप्रदान allotment of shares १५४३.

अंशभागिन् entitled to a share; a co-heir ८७७, १३५१, १४०१.

अंशभाज् see अंशभागिन् ८७७, ११९९, १३६५, १५५२, १६७१, १९१७.

अंशभू a partner; associate ११४३.

अंशहर see अंशभागिन् १२३९, ८८, १३३८, ५५, ७३.

अंशहानि a decrease in the share १२५०.

अंशहारिन् see अंशभागिन् १५४१.

अंशित्व the state of a sharer ११७९.

अंशिन् see अंशभागिन् १२६४, १४५०.

अंशुक a garment; cloth १७३६, ९६, १८१६, ३४.

अंस the shoulder १६६४, १७९६, १९८१.

अंसत्रकोश having a cask for its tunic (probably a Soma filter) ९२३.

अंहस्वत् sinful १६०३.

अंहुर distressed; sinful १५९१, १६०३.

अक्रयता non-indebtedness १३५६.

अकन्या not a virgin; a maiden who has lost her virginity ८८२, १०९७.

अकर free from tax ९३२, १६६६, १९४४.

अकर्मन् non-performer of religious duties or sacrifices ८१०.

अकर्मिन् see अकर्मन् १३८७.

अकाम reluctant; unwilling; not desiring ६५१, ५५, ८०, ८१७, ६२, ९१४, १०२०, ३४३६, ९७, १११०, ४७, ४८, १२०५, १२, १३२०, ८६, १६२७, १७५२, ६२, १८४८, ४९, ५०, ६६, ७८, ८३, ९२, १९७६, ८४.

अकारण without cause or reason ८१७, ४४, ११४९, १३०९, १६३४.

अकारिता (वृद्धिः) (interest) not stipulated; not agreed upon ६३३.

अकार्य a criminal or improper action; evil doing १०७७, १११६, १३९४, १६०३, ५३, १८८७.

अकाल improper time १६८३, १७५३, १८३१, ३४, ८०, ८९, १९२७, ७५.

अकिञ्चन an indigent man १७२८, १९२७.

अकूपार unbounded; sea १८३८.

अकृत invalid; not made १२३२, १६१७, १८४०, १९८३.

अकृतदार unmarried १३७७.

अकृतस्त्रिय unmarried १२८५.

अकृता (दुहिता) a daughter who has not been made *putrified* १३००, ५०, १५१६.

अकृता (वृद्धिः) see अकारिता ६१०.

अकृष्ट unploughed; untilled; a waste (piece of ground) ९४४, ११८१.

अक्रमोदा a woman married not according to the order given in *shāstra* (e.g. when a *Brāhamaṇa* first marries a *ksatriyā* and then a *Brāhamaṇī* both these women become *Akramodhās*; since the order laid down by the *shāstra* is violated) १३५०, १४०३.

अक्रमोदासुत son of an अक्रमोदा १३५०, १४०३.

अक्रिया negligence of duty; improper act ११०६, १७५७.

अक्रीत unbought; not purchased ८२१, १९२८.

अक्ष a die for gambling; axle ६०१, ०२, ०५, ९७९, ९५, १०००, ३१, १२५५, १६१७, १८०७, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, १९०१, ०२, ०३, ०४, ०५, १०, ११, १५, ६८.

अक्षत uninjured; uncrushed १६०९.

अक्षतयोनि (a maiden) not deflowered or defiled ७०३, १०१९, २१, ११०३, १७, १३०९, ८४.

अक्षता a virgin; (a woman) not enjoyed or defiled १०८८, १२७९, १३३१.

अक्षदेविन् a gambler १९११, १५.

अक्षद्रुग्ध hated by (or unlucky at) dice; injuring with dice (a sharper) १६००.

अक्षमाला N. of *Arundhati* (wife of *Vasiṣṭha*); a string of beads १०५१, १९१३.

अक्षय exempt from decay; undecaying ८०६, १०३०, १६२२, १९८५.

अक्षया(स्या)(वृद्धिः) unlimited interest ६०९, १०२६.

अक्षरपङ्क्ति containing five syllables १५९६.

अक्षराज a king of dice; the die called *Kalī* १८९७, ९८.

अक्षवृत्त anything that happens in gambling ६०१, ०२, ०३, ०५, १९०२.

अक्षाला office of a superintendent १६८९.

अक्षावपन a dice-board १८९७.

अक्षावाप the keeper or superintendent of gambling table १८९७.

अक्षि the eye १६००, १७७२, १८३२, १९७०.

अक्षेत्र a bad field १२६४.

अक्षेत्रिन् having no fields १०७३, ७४.

अक्षया कृत wrongly done १२६२.

अखर्व unbaked pot ९९२, १५९९, १९७७.

अखलति not bald-headed ९९५, १५९९.

अगम्य not to be approached (sexually etc.)

१०२०, ३२, ३७, १११८, १८४४.

अगभिणी not pregnant १६१९, ३८, १९८९.

अगस्त्य N. of a sage ९६८, ११२०.

अगार a house; home ९३२, १३८४, १६२९, ८५.

८९, ९५, १७१३, २६, ५४, १९२९, ३६, ८१.

अगुप्त unprotected १८४२, ५०, ५९, ६०, ६२, ६४.

अग्नि fire; the god of fire ६००, ०१, ०२, ०४,

०६, ७१५, ३५, ४१, ४८, ८१, ८८, ९०, ८११,

५७, ५९, ७८, ९७१, ८५, ८९, ९१, ९४, ९५,

९७, ९८, १००१, ०२, ०४, ०५, ०६, ११, ३३,

७६, ७७, ९१, ११०९, १०, ११, १६, १८, १९,

४३, ४४, ५८, ५९, ६२, ८१, १२५३, ५८, ६१,

६२, ७१, १३४८, ५६, ७४, १४२३, ५२, ६४,

१५९३, ९६, १६००, १२, १५, १९, २६, ४७,

४८, ५०, ५७, ६४, ७२, ८९, १७२०, २३, ३४,

४२, ४६, ६२, ६६, १८२९, ३८, ४१, ४५, ९३,

९५, ९७, १९००, ०१, २४, ३०, ३१, ३६, ४०,

६४, ६५, ६६, ६७, ७१, ७४, ७७, ७८, ७९,

८०, ८१, ८५.

अग्निकार्य duty pertaining to sacred fire; care of the sacred household fire ११०६,

१९२३.

अग्निचित् one who has arranged the sacrificial fire ९९५.

अग्निद a fire-giver; incendiary १६०८, ०९,

१९, २६, ३८, ५३, ५४, ५५, ७१, १९२९.

अग्निदान performing the last funeral ceremony; supplying fire १५२३, १६१९.

अग्निदायक see अग्निद १६५२.

अग्निदिव्य fire-ordeal १९६६.

अग्निप्रपतन falling in the fire; self-immolation of a widow on her husband's funeral

pile १११६.

अग्निप्रवेश entering into the fire; see अग्निप्रपतन १११६.

- अग्निमुख having mouth towards the *Agni* १३८५.
 अग्निशाला house or place for keeping the sacrificial fire ९२७.
 अग्निष्टोम N. of a sacrifice ७७२.
 अग्निष्ठ a place for keeping the sacrificial fire ९२६, १६०२.
 अग्निसंगम exposure in fire १७४६.
 अग्निहोत्र the sacred fire; oblation to *Agni* ६९५, ७१४, १०७५, ९१, १२८१, ८३, १३७४, १५१३, २६, १६७२.
 अग्निहोत्रिन् one who has placed the sacred fire on the altar ६९५, ७१४, ८०३, ७२.
 अग्न्यगार see अग्निशाला १००९.
 अग्न्याधान a ritual of placing the fire on the sacrificial fire-place १३६३.
 अग्न्युपयम kindling of the domestic fire १०१४.
 अग्रज elder or eldest १०६४, ११८९, १३५२.
 अग्राह्य not to be arrested ६८०.
 अग्रु unmarried; a virgin; poetical name of ten fingers; end ९६६, ७१, १००४, १९७९.
 अग्नेद्विपु see अग्नेद्विपु १५९२.
 अग्नेद्वयुस् a man who though a younger brother, marries before his elder brother ९९५, १५९२.
 अग्नेद्विपु a man who weds a girl before the marriage of her elder sister १५९२.
 अग्न्य best ११८९.
 अघमर्षण sin-effacing १६०३.
 अघविषा fearfully venomous १६००.
 अघशप्त wishing evil; wicked १५९३.
 अङ्क a mark; the lap १६४४, ८७, १८५०, १९२१, ७६, ८१, ८५.
 अङ्कण the act of marking or stamping १६५३.
 अङ्कन branding १६४३.
 अङ्कित branded; sealed ७५०.
 अङ्कुश a hook १८९४, १९७०.
 अङ्ग proper to be marked १८७४.
 अङ्ग a limb of the body ६२८, ७७, ९०९, १०२२, २५, २६, ५८, १११३, ९५, १६१७, १९, ३७, ७४, १७२०, २३, ३२, ४९, ६१, ६४, ६८, ७०, ७९, ९१, ९४, ९६, ९९, १८०१, ०५, १२, १५, २२, २८, ३१, ३५, ३९, ४३, ४७, ६२, ८७, ८८, १९३०, ३२, ३३, ७०, ८५.
 अङ्गच्छेद amputation of a limb १६१३, ४३, ७१, ७२, १७६१, ९४.
 अङ्गज a son १४६८.
 अङ्गना a woman १०२७, ७२, ७३, १२८५, ८६, १३७६, १९७९.
 अङ्गराज a king of *Angus* १३२९.
 अङ्गाधिप see अङ्गराज १३२९.
 अङ्गार charcoal; cinder ६१०, ९३४, ४४, ५०, ६१, ६२, १६८०, १७६५, १८९५, ९७.
 अङ्गिरस् N. of a *Rshi* ११२१, ६१, ६२, १२६०, १९८०, ८१.
 अङ्गुल a finger ९२६, १७७०, ७५, ८८, १८४८, ८३, १९६६, ६७.
 अङ्गुली a finger १६८७, १७१३, ४८, ६०, १८४८, ६७, ६८, ६९, ९१, १९२८, ६७, ७०.
 अङ्गुलीयक a finger-ring १३६३, ८४, ८५.
 अङ्गुष्ठ the thumb १७४८, ६०, १९६७.
 अङ्गुष्ठि a foot १८३१.
 अचरितव्रत one who has not performed the necessary rite १२८८.
 अचिकित्स्य incurable १०९४, १३८९, ९८.
 अचित्ति infatuation १५९१, १८४०, ९३.
 अचेतान infatuated १२५३.
 अच्छल without mincing of words; without having recourse to artifice or strategum ७४१, ४८.
 अज a he-goat ९०४, ०५, ०९, १३, १६, २०, २१, ९९, १०००, ११६६, ८२, ८३, ८४, १२०८, १६६९, ७२, १८११, १९५९.
 अजपाल a goat-herd ९०३.
 अजबभू N. of a *Rshi* १९८०.
 अजर undecaying १५८०, ८४.
 अजा a she-goat ६०९, १०७३.
 अजाभि not of kin; not related; not having

sister-brother relation १७७, १८३६.
 अजिन hairy skin of an antelope १२६०,
 १६७१, १७५९, १९७३.
 अजीगर्त N. of a *Rishi* १२६०, ७८, १९८१.
 अजूर्य not subject to oldage or decay ९२४.
 अज्ञातपितृक one whose father is unknown
 १३४७.
 अज्ञानयोगिनि of unknown origin or birth ८३९.
 अज्ञान unconsciousness; ignorance ७५४, ५६,
 ५७, ५९, ६९, ९३९, ५८, ६०, १६३०, १७१४,
 १८०६, १९३५, ७२, ७६.
 अज्येष्ठ not eldest; not most excellent ११९८,
 १२३५, ३६, १३९७, १९८३.
 अज्येष्ठिनेय the son who is born of a later
 married wife १२३३.
 अञ्जल the border of a garment १८८१.
 अञ्जन paint (esp. as a cosmetic) ९९२,
 १०००, २६, २८, १११७, १२४४, १५९९,
 १६१८, १७९८, १९७०.
 अटन roaming or wandering १०४८, ११०६.
 अटवी a forest ८६३, ९४८, १६१९, १८५०.
 अण्ड an egg १८४०.
 अण्विका a particular measure १९६७, ६८.
 अतिक्रम transgression; violation ८४४, ७९,
 ८८, ९२६, २७, २९, ३०, ४२, १०२०, ३५,
 ११८५, १४३१, १६१३, ३४, ५०, ५७, ७६, ८७,
 १७७१, १८२४, २७, ३२, ८२, ८३.
 अतिक्रमण transgression ८१७, १८८८.
 अतिक्रमणी a female transgressor; an unfaith-
 ful wife १६०९.
 अतिक्रमिन् see अतिक्रामिन् १६०६, १२, ६४.
 अतिक्रामिन् a transgressor १६०९, १८४७.
 अतिचार transgression; violation of any
 fixed rule or law १०३६, ३७, १३९२,
 १४३१, १६२०.
 अतिचारिणी transgressing ९२०.
 अतिथि a guest ८१४, १०२३, २४, २९, ११८१,
 १२८५, १५१३, २६, ९४, १६५६, १९३६.
 अतिदान an excellent gift ७९२.
 अतिप्रसविन् one who bewails too much १६८५.

अतिप्रसवा a woman whose time for procrea-
 tion has exceeded १११२.
 अतिलब्ध cruelly treated १६१५.
 अतिवाद excessive praise १६७६.
 अतिवृद्ध very old ७८७, ८०४, ७३.
 अतिव्यवहार taking in too great a quantity
 १६६६.
 अतिष्कद्री jumping over; transgressing ८४२.
 अतिसंधान treachery; betrayal ८६३.
 अतिस्वर्ग dismissal; giving away ७५७, ९२,
 १२५५, १३८५, १६८३, १९७५.
 अतिसावत्सरी (वृद्धिः) (interest) to be paid
 longer than a year ६०६, १५.
 अतीतव्यवहार one incapable of transacting
 legal business १३८७.
 अतीतशैशव one who has passed his minority
 १९५१, ६२.
 अतीत्वरी a female transgressor; bad woman
 ८४२.
 अतुर not-liberal १८९९.
 अतुल (स्य) unequal (by caste etc.) ७७०,
 १८४८, १९८३.
 अत्यन्तवासिन् a student who perpetually
 resides with his teacher ६७२.
 अत्यय punishment; fine; perishing; passing
 away ७८४, ८७, ८६१, ६३, १०३१, ३५, ४०,
 १५६१, १६६८, १७०६, १४, १९२७, ६४, ६५.
 अत्रि N. of a sage १२५८.
 अथर्ववेदविद् a person acquainted with the ri-
 tuals of the *Atharvaveda* १९२५.
 अथर्वहन्तु one who kills by spells or magic
 १६१२.
 अदण्ड exempt from punishment ९०५, १७६०.
 अदण्डन absence of punishment १८१४.
 अदण्ड्य exempt from punishment; not to be
 punished ७५९, ९०५, ०६, ०७, १९, २०,
 १०३८, १६१२, २०, २१, ६५, ६८, १८४७, ५१,
 ९१, १९६९, ७०.
 अदत्त invalid gift; not given; not delivered
 as gift ७४५, ६७, ९८, ८००, ०१, ०२, ०४.

- ०७, ८८, ९८, ९००, १२२४, ४३, ४४, १६४५,
९७, १७४४.
- अदत्ता a girl not betrothed; a girl not
given in marriage १३७४, १४२१, १५५८,
१९७५.
- अदन a demon; scratching १२७१, १६१९.
- अदातृ not giver or giving ७७१, १०४५, १७२५.
- अदान not giving; being devoured or swallow-
ed ८६१, ९५९, ७१, १९२२, ७९.
- अदान्त untamed १६२१, १९१७, ७०.
- अदाय not entitled to a share १३८८, १६७८.
- अदायाद not entitled to become an heir ७८२,
१२६१, ७८, ८३, १९५०, ६१.
- अदायादक that for which no heir or claimant
is found १४७४.
- अदायादबन्धु not-heir-kinsman १२७३.
- अदायादबान्धव not-heirs-kinsmen १३१९, २०,
४६, ५१.
- अदायादा see अदायाद १२५५, १३८५, ९१, १४१५.
- अदायादी see अदायाद १३८५.
- अदायि(य)क see अदायादक १५२३, २६.
- अदास free from slavery; not a slave ८१७,
३३.
- अदासी not a slave; a free woman ८३७, ३८,
१६१३, १८४९.
- अदिति N. of a *vaidika* goddess ९०३, ८२,
९४, १००७.
- अदितिकौशिकी a harlot (by *Shāmarshāstri*);
[अदितिली a woman getting livelihood by
showing pictures of deities, कौशिकली
a female snake-catcher; wife of a
snake-catcher (by *Ganapatishāstri*)]
८६३.
- अदुर्गुणी not inauspicious ९८६, १००३.
- अदुष्ट faultless; free from disqualifications;
without defect ७७६, ८३, ९०, ८२७, ८५,
९७, ९५१, १०७९, ९७, १११२, १७, १६०९
५१, १८८१, १९२६, ७५.
- अदुष्टा भावना faultless thought १११२.
- अदूरेबान्धव not a distant relative १२७३.
- अदूषित unspotted; unspoiled ८८९, १६३१,
१९२९.
- अदूष्या not to be defiled १०२६.
- अदृष्ट invisible; unapproved by *Shāstra*
१०३२, ११४४, १९७०.
- अदृष्ट (वृद्धिः) (interest) not prescribed by
Shāstra; unapproved ६१५.
- अद्वेय not to be paid, discharged or given
६२२, ७०६, ९२, ९४, ९६, ९८, ८०१, ०२, ०४,
०५, ३४, १२४३, १९३१.
- अद्वेष्यन unfit for giving property १२४४.
- अद्वेष्यी (a woman) not killing her brother-
in-law १००२.
- अद्वेषा improper place १६८३, १७५३, १८७१,
८०, ८१, ८९.
- अद्रोप free from guilt; faultless ७५७, ८१७,
१०३५, ३८, १४३०, १६५३, ६१, ७७, १८२०
४८, १९३३.
- अद्रुमसत् seated (with others) at meal; a
cook; house-dweller; mother ९६५.
- अद्रव्य having no possessions or property
१०८८, १४००, २४, १८९२.
- अधन propertyless; having no property
८१८, २२, ३४, १३९१, ९३, १४०२, १९२८.
- अधनिन् see अधन ७००.
- अधम lowest ८२८, ३५, ९२०, ४२, १०९८,
१३७७, १६२९, ३७, ७०, १७८०, १८७५८९.
- अधमयोनिजा of low origin १०५१.
- अधमर्ण a debtor; low or bad debt ६१०, ९२,
७१६, १८, ३१, १४०२.
- अधमर्णिक a debtor ६३५, ५५, ५९, ७१०, १६, १८,
२०, २२, २४, २६, ३४.
- अधर lower १७७२, ८३.
- अधर्म unrighteousness; injustice; wickedness
७९३, ८००, ०४, १०२७, ३१, १११८, १२८४,
८६, १३८७, १६५९, १७००, १८५६, ५९,
१९२३, ४२, ४३, ६३, ९४, ७०, ७४, ७७, ९८.
- अधर्मिष्ठ lawless; violating religious duties,
criminal १२८६, १६१४.
- अधर्म्य unlawful; contrary to law or religion

१०९८, ११३१.
 अधिक additional; superior ७११, ३४, ६५, ८४,
 ९०, ९५२, १०२२, ११६९, ७२, ७३,
 १६४०, १७५०, ५२, ६७, ९०, १८३०, ३१, ४२,
 ८५, ८६, ९२, १९२७, ३२, ६७, ६८, ७७, ८८.
 अधिकरण government department १६८८.
 अधिकरणी a stove १६८०.
 अधिकर्मकर an overseer; superintendent ८२८.
 अधिकर्मकृद् see अधिकर्मकर ८२५.
 अधिकवर्ण a higher or superior caste १७७०,
 ९६.
 अधिकार authority; right, capability; ap-
 pointment १०२४, ८६, १३९०, १४००, ४९,
 १६०८, १९३६, ४१.
 अधिकारिन् possessing authority; an official
 ११९९, १९६२.
 अधिकृत authorised; appointed ६७२, ८२८,
 १२८८, १३९०, १६३१, ३९, ५४, ९८, १७५६,
 ६४, ७१, १९२९, ३२, ४२, ६६.
 अधिगन्तु one who attains or acquires; one
 who goes १६८२, १९४८, ४९.
 अधिगम decision; profit; gain; tresspass;
 adultery; finding ६१९, ९३२, ११२२, १९८८.
 अधिदेवन a table or board for gambling
 १८९६, ९७, १९०३.
 अधिप a master; father; owner १९८८.
 अधिपति see अधिप १५१८, १९५६, ५७.
 अधिराज a king; emperor ११८१.
 अधिवाद offensive words १६५६.
 अधिवास a neighbour; original place ७२५,
 १९२२.
 अधिविबली a superseded wife; a woman whose
 husband has married again after her
 marriage १४४२.
 अधिविब्रू a superseded wife १०५७, ८७.
 अधिविब्रूया (wife), to be superseded १०५६,
 ५७, ८७.
 अधिविद्विक related to the marrying of an
 additional wife १०३४, ३५.
 अधिविब्रूया see अधिविब्रूया १०५७.

अधिष्ठातु, a protector; lord ७०८, १४, १९२४.
 अधिष्ठान a settlement १६६८.
 अधिष्ठित settled; superintended ६३८, ७१५,
 १६७१, १९१३, ५४.
 अधीतवेद one whose studies are finished १३७६.
 अधोवर्णना co-habiting with a member of the
 lower caste १०१४, १७६९, ९४.
 अध्यक्ष a head; chief ८७४, ९०३, १६२०, ७९, ८०,
 ८८, ८९, ९०, १९०४, २१.
 अध्याग्नि (property given to the bride) over
 the nuptial fire १४३१, ४९, ५२, ६३.
 अध्याग्न्युपागत property received by a wife at
 the wedding १४२८, ४३.
 अध्ययन study ८३६, १९४०, ७३, ७४, ७६.
 अध्यापक a preceptor; teacher ७७०, १६०८.
 अध्यापन teaching १६१६, ९७, १९४०, ७२.
 अध्यावाहनिक that part of a wife's property
 which she receives when led in proce-
 sion from her father's to her hus-
 band's house १४३१, ४९, ५२, ६३.
 अध्यासन sitting over (the body of another
 person) १७९८.
 अध्यू the son of a woman pregnant before
 marriage १२८६, ८७.
 अध्यूज see अध्यू १२८७, १९८२.
 अध्यूढा a wife whose husband has married
 an additional wife १९६४.
 अध्वग a traveller १७२३, १९८४.
 अध्वर a sacrifice (esp. the soma sacrifice)
 ९८०, १००१.
 अध्वर्यु a priest ६०४, ७७५, ९२, ९७९, १००९,
 १२५८, १८९६.
 अनंश not entitled to a share in the inheri-
 tance १३८९, ९१, ९२.
 अनंशद not paying the allotted share ८६१.
 अनसंभातुका not being naked; not disposed to
 nakedness १००४.
 अनसि not maintaining sacred fire १९७७.
 अनडुह an ox; bull ६११, ७६४, ८४२, १०००,
 १६०६, १८४०, १९७५.

अनतिसृष्टा not permitted १२७०.
 अनन्तर next ११०४, ०५, ४७, १४७६, १९३७, ७४,
 ८३, ८४.
 अनन्तरज next born; younger son; one's own
 son १२३३, ८६.
 अनन्तरापुत्र a son born from the mother
 belonging to the caste next lower to
 her husband's १२३९, ४५, ८८.
 अनन्यपूर्वा previously unmarried १०११.
 अनन्याश्रितद्रव्य one whose property is not
 encumbered; one whose property has
 not gone to another ६८६.
 अनपक्रमिन् not departing from; devoted to
 १८९७.
 अनपक्रिया see अनपाकर्मन् ७९६, ८४४.
 अनपत्य sonless; childless; not having
 progeny ८१८, १२६२, ८३, ८४, १३१९, २९,
 ८५, १४०३, ६४, ६५, ७४, १५५८, ६०, १९८५,
 ८६.
 अनपत्यधन property of a childless person
 १५१८.
 अनपत्यरिक्थ inheritance of a childless person
 १४७१.
 अनपत्या a childless woman १३९०, १४०७, ६९,
 ७३.
 अनपसर without legal source; a usurper
 ७५८.
 अनपाकरण see अनपाकर्मन् ८५९.
 अनपाकर्मन् non-payment; non-delivery; non-
 remittance ७९४, ८३४, ४८, ६१, ६२, ६९.
 अनर्घ wrong value or price; worthless १६११,
 ६९, ७८, १७३०, ६६.
 अनर्थ loss; difficulty; danger; misfortune
 ७९४, ८६१, ८७, १०९९, १२२२, १६७९, ८०.
 अनर्पण not giving; not delivering ९००.
 अनर्वन् irresistible १८३६.
 अनर्ह undeserving; unworthy; unentitled
 ७९४, ८०७, १०७५, ११४८.
 अन्नल fire; the god of fire १२८४, १९६४, ६५,
 ६९.

अनवस्थित unsteady १६८५, १७६१.
 अनस a cart ७७५, ८९१.
 अनसूया N. of a woman १०७७.
 अनाकारिता see अकारिता ६२६.
 अनाकालभृत (a servant) maintained during
 a famine ८२९, ३१.
 अनागसु blameless ८१०, ११४३, ५९, १७५१.
 अनाच्छेद्यकर exempt from taxation ८७२.
 अनाजीव्य that which cannot be enjoyed or
 used; that which yields no profit १२२२.
 अनाथ having no master or protector;
 poor; helpless ८००, ०७, ७३, ९७७, १०२३,
 १५१३, २६, १६१६, १८३६, १९१४, ६९.
 अनाथधन property of a helpless person १९५०.
 अनादिष्ट unappointed; not instructed १९२१.
 अनर्देय not to be accepted or taken ७२७,
 ९३२, १९३१.
 अनर्देया (वृद्धिः) (interest) improper to be
 received ६३५.
 अनाद्य not eatable; not a source of subsi-
 stence १९२०.
 अनास not a relative; a stranger १६३१, १८०९,
 १९३०.
 अनामनात not mentioned in scriptures १९४१.
 अनामनायप्रकल्पित not prescribed by the *shāstra*;
 against the rules of *shāstra* ८७१.
 अनार्य not an *Ārya* १६९४, १७६८, १९२९, ६९.
 अनाश्वेय not belonging or connected with the
Rshi १३५६.
 अनावृत unenclosed or unfenced (field) ९०३,
 ०५, १६.
 अनावृता unrestrained (woman) १०२७, १११८,
 १२८४, ८५.
 अनावृष्टि N. of a son of the king *Shūra* १३७६.
 अनाव्याधा impossible to be broken or forced
 open; invincible १००१.
 अनाश्रम one who does not belong to any
Āshrama (i. e. who is not invested with
 the sacred thread) १३८४.
 अनासेधय not to be restrained or arrested ७२७.

| | |
|--|---|
| अनाहार्य not producible ७५९. | ७४, १२८२, ८४, १६४८, ७८, ७९, १७३२ १९२४, २६. |
| अनाहूत not summoned १९४३. | अनुचर a follower; servant; henchman ७९१, ८१२, १४, १००९. |
| अनिपात continuance of life ७४०. | अनुच्छ्वासोपवेशिन् sitting silent; one who pants while sitting by (<i>Shāmashāstri</i>) १६८३. |
| अनियुक्त not authorised or appointed ८०६, १०२२, ११०१, १२७२, १३४७, १४०२, १६१०. | अनुज born after; younger ८४०, १०६४, ११९१, ९९, १३७३, १५६८, १९८३. |
| अनियुक्तासुत the son of a woman not appointed or authorised (one of the illegitimate sons) १३९५. | अनुजीविन् a dependant ७०८, १००५. |
| अनिर्देशाह within ten days of impurity after childbirth or death ९०५, ०६, ११. | अनुज्ञात permitted; consented ६३८, ४०, ७५२, ८०३, ०७, १५, ९०५, १०२०, ८९, १११९, १२३२, ८६, १३१०, १६६४, ७८, १९१३. |
| अनिर्भक्त not excluded from participation ११४४. | अनुज्ञात one who permits or consents १६६४. |
| अनिर्मुक्त not liberated or released १२८४, ८५. | अनुज्ञाप्या one whose consent should be obtained १०५७. |
| अनिर्वीर्य not impotent; virile ९९५. | अनुत्पन्नप्रजा childless; not having progeny ११०१. |
| अनिवारित unforbidden १९३६. | अनुदक (सेतु) (a tank) without water १६१९. |
| अनिवार्य not to be warded off; inevitable ९०५. | अनुदत्त granted; remitted ६०१, ०२, ०३, ०५, १९०२. |
| अनिविष्ट unmarried १०२२, २७. | अनुदेयी a bride's maid; gift ८११, १०००. |
| अनिवेदन not reporting १९२२. | अनुद्धृत not separated; not granted separately as a privilege-share ११९०. |
| अनिवेदित unreported १९५०, ६०. | अनुपदस्वती not decaying ९९८. |
| अनिषेध one who connives at १६५०. | अनुपूर्ववत्सा (धेनुः) (a cow) which calves regularly १०००. |
| अनिष्ट evil; wrong; not propitious १७६२, ८३ १९३०, ३३. | अनुसवीजत्व the non-sowing of seed १२६४. |
| अनिष्टोक्ति evil speaking; wrong speech ९५७. | अनुबन्ध inseparable adjunct; antecedent; contention १५८५, १६१८, ४७. |
| अनीश powerless; not a master; one devoid of ownership ८०३, ११४९, १४५८, १५६७, ६८, ८५, ८७. | अनुबन्धिन् habitual (mischief-maker) १८३१. |
| अनीश्वर see अनीश ८६०, ११४९, १२३४. | अनुबन्ध्यावध slaughter of a cow at the funeral ritual of a deceased <i>Agnihotrin</i> ११९४. |
| अनु N. of a son of the king <i>Yayāti</i> १३९१. | अनुभव experience; human proof ११४२, १९८८. |
| अनुकल्प a substitute; alternative १०२४. | अनुभुक्त continuously possessed or enjoyed ११२६. |
| अनुकूल well-disposed; obedient १०२४, २९, ९९, ११११, १४, १५, १४६३. | अनुभूतचिह्न a mark previously known १७६६. |
| अनुक्रम order; succession ७२२, १२५०, ५१, १७५०, ८५. | अनुभूत inserted १८३६. |
| अनुक्षिप्त settled ७९०. | अनुमत approved; assented ६१०, ९२९, ११४७, ४८, १८५२, ८१, १९१२. |
| अनुगत consistent with or prescribed १६१९ ९६, १९२९. | |
| अनुगम constant following; persuasion ७२५. | |
| अनुगमन going after; self-immolation of a widow; co-habitation १११५, १८९१. | |
| अनुग्रह favour ७९९, ८०३, ३३, १०२५, २७, ११३१, | |

अनुमति approval; assent ११४६, १५८८, १६६६.
 अनुमरण see अनुमपतन १०३०.
 अनुमान inference; circumstantial evidence
 ९४५, १५८१, १६४७, ७६, १८३२.
 अनुमोदक an approver; assentor १६५०, ५३.
 अनुमोदित consented; approved ७०८, १२.
 अनुयोग examination १६८५, १९२२.
 अनुयोज्य to be examined or questioned १९५३.
 अनुरूप suitable; corresponding ७३४, ७३, ८७,
 ९०, १०९६, १११०, १२२८, १३९०, १४३१,
 १६४६, ५०, ५३, १७६४, १८३४, ४९, ५०,
 १९४२.
 अनुलिप्त anointed १६८५.
 अनुलेपन anointment १०२२, २८, १६२१, १७७१.
 अनुलोम descending order (of castes etc.);
 offspring of a mother inferior in caste
 to the father ११०४, ०५, १२३८, ८८,
 १७९२, १८३३, ४७, ७६.
 अनुवर्णित described with consent ७१३.
 अनुवाक्या the verse to be recited by the
Hotr or *Maitrāvaruṇa* priest १५९६.
 अनुवृत्ति servile attendance ११३०, १९८५.
 अनुवेद्य (श) an adjacent neighbour १६२८,
 ४७, १९२२, २७.
 अनुव्रज्या homage; following १९७४.
 अनुव्रत devoted to; faithful to ९९१, ९८,
 १११३, १८९४.
 अनुराय repentance ७९४, ८४३, ४४, ७८, ७९,
 ८१, ८९, ९२, ९५, ९६, ९७, ९९, १९७५.
 अनुशयिन् a repentant ७९४.
 अनुशासन law; ordinance; decree ७२०, ८०५,
 १६२७, १७४९, १८०१, २७.
 अनुशास्य to be punished or fined ८२६.
 अनुशिष्ट taught; instructed १०७६, ७७, १२६२.
 अनुष्ठान performance; religious practice
 १९२०.
 अनुस्मृति cherished recollection ८९९.
 अनुचान one so well-versed in *Vedas* and
Vedāṅgas as to be able to repeat them

अनूढ not borne; not carried ८५५.
 अनूढमातृक one whose mother is not married
 १३४७.
 अनूढा an unmarried woman ११०९, १३५०,
 १४०७, १६, १५२१, २४.
 अनूपग्राम villager living on the bank of a
 river १९२४.
 अनृण unindebted; negation of debt ६०१,
 ०२, ०४, ०६, १२५८, ८१, १६०१, १९८७.
 अनृणता unindebtedness १२८२.
 अनृणिन् unindebted; free from debt १३५२.
 अनृत not true; false; not right ६०२, ०६,
 ७९३, ९४१, ४५, ४६, ७०, ७६, ९५, १०२७, २८,
 ३१, ३२, ३३, ४१, ४९, ९७, ११४४, ९६,
 १५९१, ९४, ९५, १६५६, ६६, १७६९, ९२, ९४,
 १८३६, ३७, ९३, ९६, १९५५, ६२, ६३, ६४,
 ७७.
 अनृतोद्य telling lie or falsehood १६०३.
 अनेकपितृक having many fathers (respect-
 ively) १२००, ८०, ८९.
 अनेकशततार with several hundred descents
 १२६२.
 अनेकार्थामियुक्त charged with more than one
 offence ७४९.
 अनेडमूक deaf and dumb ११९५.
 अनेनस् blameless; sinless १५९४, १६५६,
 १७५१, १९६३, ६४.
 अनौरस one having no body-begotten son
 १३५१.
 अन्तःपुर a harem १६१९.
 अन्तक a king or lord of death १०३२.
 अन्तभाज् being at the end; taking meals in
 the end १००५.
 अन्तरदायक see अवकाशद १७५५.
 अन्तराल of mixed caste ११८५.
 अन्तरास्थित a judge; commissioner; inter-
 mediary; arbitrator १६१८.
 अन्तरिका intervening space ९२६.
 अन्तर्गृह्णित्य one who always hides himself
 in the interior of his house १६८२.

अन्तर्धन hidden property १५६१.
 अन्तर्धानमन्त्र an incantation of rendering a
 person invisible १६८१.
 अन्तर्हित (धन) concealed (property) १५७१.
 अन्तावसायिन् a *chandāla* १७७२.
 अन्तिम last; highest १८८६.
 अन्तेवासिन् a pupil; student ६९६, ८२४, २५,
 २७, २८, १२४५, १४६६, ६८, ७०, १९७३.
 अन्तेवासिविधि the practice of a pupil १३८६.
 अन्य see अन्यज १८३२, ७४.
 अन्यकर्मन् funeral rites १०७५.
 अन्यज a man of the lowest caste; a
S'ūdra १८०१.
 अन्यजस्त्री a woman of the *S'ūdra* caste १८६०.
 अन्यजा see अन्यजस्त्री १८९१.
 अन्यजाति a member of the lowest caste
 १८३५.
 अन्ययोनि of the lowest origin ८३९.
 अन्यवृद्धि maximum amount of interest ६३६.
 अन्या see अन्यजस्त्री १८४६, ७४, ८४.
 अन्यावसायिन् see अन्तावसायिन् १८८४.
 अन्ध blind ८०६, ८७, ९७१, १०३२, १३८७, ९०,
 ९१, ९८, १४०१, ०४, १६१८, ६७, ७९, १७२७,
 १८९६, १९२७, ६५, ७९, ८३, ८७.
 अन्धकशृणि descendants of *Andhaka* and
urṣni ८६०.
 अन्ध्य blindness १२८३.
 अन्न food ६०२, ०६, ८१४, ५६, १०९९, १२४४,
 ६०, ८८, १३६३, ७४, ८४, ९३, १४०२, ६४,
 १५२०, ८०, ९२, ९५, ९६, ९९, १६००, ०९
 २१, २८, ४२, ४६, ६६, ६८, ७२, ९०, ९५,
 १७०३, ५४, ५५, ६०, १८३७, ८५, ८९, ९६,
 ९७, १२१३, २७, २९, ४३, ५२, ७७, ८०, ८१
 ८२, ८८.
 अन्नपक्ति cooking of food १०४७.
 अन्नभाग a share of food ९९८.
 अन्नसंस्कार preparation of food ११०६.
 अन्नसाधन see अन्नसंस्कार १११९.
 अन्नाद a food-eater; meal-taker १६६८, ७२,
 १७०३.

अन्नादन eating of food; N. of the head of an
Asura slain by *Indra* १५९७.
 अन्नान्न proper food १९८१.
 अन्यक्षेत्र field owned by another ९४६, ६०,
 ६१, ६२.
 अन्ययतभावा one whose intercourse with an-
 other man is proved (by Dr. Jolly);
 one whose mind is attached to another
 १०९७.
 अन्यगमन going to live with another man
 (after the fixed period has elapsed)
 ११००, ०१, १३.
 अन्यगोत्र belonging to a different family
 १११८, १२८८, १३२६, ५५.
 अन्यजात a son begotten by another (by
 illicit relation) १२५३, १३८७.
 अन्यजाति another family or caste ९००,
 १११७.
 अन्यजातीय belonging to a different caste
 १११६, १३६५.
 अन्यथागम see अन्यगमन ११००.
 अन्यथानिचित collection (of articles) without
 permission १६७८.
 अन्यथावादिन् one who falsely denies; a pre-
 varicator १७७०.
 अन्यथास्तोत्र irony १७७९.
 अन्यदेशस्थ residing in a different region;
 a stranger; foreigner ११११.
 अन्यप्रसक्त attached to another १६१५, ८५.
 अन्यबीजज begotten from the seed of a man
 other than husband १३१४.
 अन्यबीजसमुद्भव see अन्यबीजज १३७७.
 अन्यमातृज a half-brother (who has the same
 father but another mother) १५४६, ६२.
 अन्यवर्णस्त्री a woman of another caste १२४३.
 अन्यशास्त्रोद्भव born in another *Vedika* school
 or branch (शाकल, वाष्कल, आपस्तम्ब, बौधायन
 etc. are the different schools or branch-
 es of *Vedika* studies) १२७८.
 अन्यसंश्रय recourse to another man (than

husband) १११६.
 अन्यसङ्गा having sexual intercourse with another (than husband) १०३१.
 अन्यस्त्रीग an adulterer १८६९.
 अन्यपति (an impotent) who is potent with another woman (than his wife) only १०९४, ९५.
 अन्याय injustice ११११, ८५, १३८६, ९१, १७०८, ६६, १९३०, ३३, ३५, ६६, ७४.
 अन्यायवादिन् an unjust arbitrator १७५९.
 अन्योत्पन्ना begotten from another (than husband) १०६३.
 अन्योदर्यं born from another womb; a step-mother's son १००५, १२५३, ५४, १५४६, ६१, ६२.
 अन्योन्यापहृत (property) secreted from one another १५७१, ७२, ७४.
 अन्यय kinship; issue; progeny; descendant; family relation; trace ७९६, ९८, ८०७, १४४१, ४९, १५६९, १६१३, २२, ९१, १९६५, ८५.
 अन्ययागत inherited; acquired by inheritance ११२९.
 अन्ययान्वित see अन्ययागत ११४१.
 अन्ययिन् a kin; belonging to the same family १४०३, १५६९.
 अन्वाधि a sub-deposit ६३८, ७३६, ५३.
 अन्वाधिकुल a community of guardians १०३६, ३८.
 अन्वाधेय (property) presented after marriage to the wife by her husband's relatives ११२६, १४२८, ३०, ३८, ४४, ५३.
 अन्वामक्त entitled to take a share after or with another (Monier Williams); one who took a share after or with another ७९२.
 अन्वारूढा one who ascended the funeral pile after the death of her husband ११०७, ११.
 अन्वारोहण (a widow's) ascending the fune-

ral pile after or with the body of her husband १०२४.
 अन्वाहित a bailment for delivery; deposited with a person to be delivered ultimately to the right man ७२५, ३२, ४६, ४९, ५२, ५४, ६४, ६८, ९८, ८०७.
 अन्वित accompanied by; endowed with ९५५, ५७, १११४, १२५१, ८५, १६४७, १७५१, ५२, ६२, ९०, १९१३.
 अन्वेषण investigation; search १६२६, ५०, १७५४, ५७, ६३, १९६५.
 अन्वेष्य to be submitted to investigation or punishment १८३१.
 अपकर्ष decrease १६७७, १७७४.
 अपकर्षण seizure १७४४, ४५.
 अपकार offence; injury १४५७, १६३४.
 अपकारिन् doing ill to; cruel; injurious. ७८३, ९०, ९४, १८००.
 अपकृष्ट inferior ७२०, १०५१, ६४, १६०६, १८०२, २८, १९३७.
 अपक्रमण going away; leaving ७७२.
 अपक्रय see अवक्रय ८९८.
 अपगम्भ wanting in boldness ९९२, १५९०.
 अपघाटिला a kind of lute १०१०.
 अपचय reduction; decrease ९४८, १६६३, ६५, १७४८.
 अपचरण improper act; contamination १६७४.
 अपचरन्ती acting wrongly; infidel १८४९.
 अपचारज arising from fault १८५१.
 अपचारिणी see अपचरन्ती १६६८, ७२, १७०३.
 अपचिता honoured or respected ९९९.
 अपचिति honour; worship १६५६.
 अपति without a husband; a widow १०१२, २६, ७७, १२५५, १३९०.
 अपतिघ्नी not killing a husband ९८६, १००१, ०२.
 अपतित not being an out-caste ७७१, १११७, १६१०, १३, २७, ३५, १९२२, २६.
 अपत्नीक not having a wife १००६, १४.
 अपत्य an offspring; descendant; child ६९९,

| | |
|---|---|
| १६८, १०१८, २६, २७, ३१, ३३, ५२, ६८, ११०२, ०३, १३, २०, ५७, १२४३, ४४, ५३, ५४, ६७, ६३, ६४, ६८, ६९, ७०, ८२, ८३, ८४, ८८, ९४, १३०८, २९, ५५, ५६, ७३, ७६, ८४, ८६, ९१, ९४, १४१६, २९, ४०, ४०, ५०, ५९, ६२, १६३८, १८५०, १९७८, ८४, ८५, ८६. | ५०, ५२, ८६, ८७, ८९, ९५, १७३७, ४०, ५४, ७०, ९०, ९५, ९६, १८१२, २९, ३१, ३३, ३५, ४७, ६२, ८८, १९२२, २७, २९, ४१, ४६, ७०, ७३, ७४. |
| अपत्यप्राप्ति the manner of raising an offspring १०७५, ११२७. | अपत्यापिन् one who conceals, denies or evades १६१०, ३४. |
| अपत्यलिप्सु desirous of an offspring १०१२. | अपवाद abuse; reproach; punishment (by <i>Ganapati's'āstri</i>) १०३९, १६६५, १७८४. |
| अपत्यलोभ greed or avarice for an offspring १०६३. | अपवार्ध to be warded off ९०५. |
| अपत्यहेतु intention of begetting an offspring १०३१. | अपविद्ध a son abandoned (by his natural fathers) १२६३, ६५, ७०, ७८, ७९, ८३, ८८, १३०६, २०, ३४, ४६, ४८, ५१, ७३, ७४, ७५, ७६. |
| अपत्यार्थिन् see अपत्यलिप्सु १२८५. | अपवेध piercing anything in the wrong direction or manner १६३१, १९२९, ३०. |
| अपत्योत्पादन begetting of an offspring १२८४. | अपव्ययन expenditure; prodigality; conceal- ing fraudulently ७३५, १६१३, २२, १९२२. |
| अपथदायिन् showing or giving a wrong way १६०९. | अपव्ययमान being denied fraudulently ७१९, ३७, ८४३. |
| अपदान circumstances; evil action; offence ७३७, १६८१, ८३, ८७. | अपशुष्मी not killing a cattle १००१. |
| अपदिष्ट notorious १६८३. | अपसद an out-caste १२८६, ८७. |
| अपदिष्टक one attributed (wrongly) १६८६. | अपसर्पोपदेश advice of a spy १६८२. |
| अपदेश a pretext or excuse ७४२, १६७३, ८२, ८५, ९६, १७५५, ८७, १९२९. | अपसार escape ७५७, १६८४, ८६. |
| अपध्वंसज a child of mixed or impure caste [(whose father belongs to a higher caste than its mother's) In <i>Manusmṛiti</i> X 41, 46 the meaning is—whose father belongs to a lower caste than its mother's] १२८६, ८७. | अपस्त gone away; escaped ९०६. |
| अपपात्रित an out-caste; not allowed to use vessels for food belonging to caste- people १३९०. | अपहन्तु a robber १६५५, ९८. |
| अपमारी having a sudden or accidental death; one who dies before age, acci- dently or badly ९९२, १५९९. | अपहरण appropriation; robbery; theft ९२९, १६७०, ७२, १७१७, ६५, १९२२, ३०. |
| अपमित्य debt ६०२, ०४. | अपहर्तव्य to be taken away or confiscated १२२३, ३१. |
| अपर second; stranger १००१, १७७२, १९७१, ७६, ८३, ८४, ८५. | अपहर्तु an appropriator; one who steals; a thief ७४१, ४३, ८६३, १६५४, ५५, ७०, ८०, ८२, १९२९. |
| अपराध offence; fault; transgression; mistake ७३५, ८४०, ६२, १११०, १६०६, १४, १७, १८, | अपहार misappropriation; confiscation; sei- zure; stealing ७३५, १०३१, ३६, १६११, १२, १७, ४८, ५०, ७०, ७१, ७२, ७४, ७५, ८३, ८७, ८९, १७६१, १९६४. |
| | अपहारिन् see अपहर्तु ७३५, ८१७, १६१२, १८, ६९, ७०, ९३, १७४५, १९२९. |
| | अपहार्य see अपहर्तव्य ७११, ८४२. |
| | अपहृत misappropriated; stolen. ७४५, ८६३. |

६३, ९४५, ११४२, १२२४, १६७१, ८३, १७३९,
४३, ५३, ६०, ६६, १८१८, ३१, १९५९, ६२,
८५.
अपह्नव concealment; denial ७२०, ५४.
अपाङ्कनेय ejected from caste १९३८.
अपाङ्गदर्शन side glance १८४६.
अपाङ्गप्रेक्षण see अपाङ्गदर्शन १८८५, ८९.
अपार्थक useless ६५४.
अपाला without having a guard or herds'-
man ९०५, २१.
अपाश the barb of an arrow ९८४.
अपितृक fatherless १०३५, ११९९.
अपितृद्वय not having the paternal or inheri-
ted property १५४३.
अपितृव्य not paternal; not inherited १२११,
१४०३, १९८३.
अपुत्र having no son; sonless ७००, १००५, ०८,
२०, २४, ३४, ६३, ८९, ११०९, १३, १२४४,
४८, ५५, ६०, ७१, ७९, ८३, ८६, ९४, ९५,
९८, १३०५, १६, १८, २९, ४२, ४८, ५२, ५५,
६२, ६३, ७४, ७६, ७७, १४००, ०४, २९, ३०,
३१, ५६, ६३, ७०, ७१, ७३, ७४, ७५, १५१६,
१८, २०, २१, २४, २५, २६, २७, २९, ५५,
१९५१, ६४.
अपुत्रकथं the inheritance of a sonless person
१२४०.
अपुत्रिन् not having an offspring ६९८, १२७१,
८५.
अपुरुष having no man १०३८.
अपुष्पिणी (a woman) not in menstruation;
(a girl) before the age of puberty
१०३०.
अपूत impure; not purified (by purificatory
rites) १०१०, १५९४, १६०३.
अपूप a cake १९३८.
अपूपशाला a bakery १६९५, १७५४, १९२९.
अपूर्ण non-fulfilment ६६०.
अपूर्वा (a woman) not belonged to another
man १२६६.
अपेय unfit for drinking १६२७, २८, १७८९,

१२३०.
अम्रस्वनी fertile fields ९२२.
अम्रकाल without fixed time ७०६.
अम्रकाश in secret; hidden; not visible ७५७,
६०, ९३४, ४४, १६२६, ५५, ९३, १७४५, ४६,
५७, ६३, १९२९.
अम्रच्यवुका not decaying; not transitory; not
fragile; not fickle १००५.
अम्रज without progeny; without an off-
spring ११२९, ४१, १२७१, ८३.
अम्रजम् see अम्रज १४४०, ७३, १५५३, १८४६.
अम्रजस्त्रीधन property of a woman having no
offspring १४४५.
अम्रजस्य without the efficacy of giving off-
spring ९९४.
अम्रजा unprolific; without progeny १०१६,
२०, १३५०, १४२८, ३९, ४४, ४९, ६२, ६३.
अम्रजाता not having brought forth (any
issue) १०२२, ३९.
अम्रजायमाना (a woman) who brings forth
no (live) children १०३४, १४३१.
अम्रतिकर्मक्रिया not decorating with ornaments
१०२३.
अम्रतिकर्मन् not discharging marital duties;
not taking responsibility १०९५.
अम्रतिवारित see अनिवारित १८५३.
अम्रतिश्राविणी (a wife) who does not accept
the debt (of her husband) ६८०.
अम्रतिष्ठित not well established (in her hus-
band's house); poor; without offspring
१४१६, २५.
अम्रतीकार not keeping in order; incurable
(impotent person) ९३०, १०९५ (षण्ड).
अम्रतीत्त not given back (debt) ६०१, ०२, ०४.
अम्रता (a maiden) not given away (in
marriage) ११९२, १२५५, ७३, १४२१,
२५, ५०, ६२.
अम्रत्नयभोग्याधि an enjoyable deposit given for
the redemption of interest and not of
principle amount ६५५, ५८.

अप्रपन्ना one who does not accept or consent
७१४.
अप्रमत्त attentive १०२८, १११५, १९, १२६७,
७१, १७५७, १९७४.
अप्रसूता having no issue ७०३, १०३०, ११००,
०३, १२, १३७३, १७९८.
अप्रसूतिका (a woman) having no issue १०३१,
१११२.
अप्रसूतफला unmaturing १८४८.
अप्रसूतवयस् not in age १९७१.
अप्रसूतव्यवहार a minor in law ६९५, ७१०, ८१७,
११९९, १२०१, १६४०, १९२२, ४९, ५०.
अप्राप्ता not full-grown; not in proper age;
one who has not attained the age १०४१.
अप्रिय disagreeable १०२०, २४, २९, ५७, ६०,
१११९, १७८८, १९३१, ४२.
अप्सरस् a class of female divinities ६०१, ०२,
०३, ०५, १००२, ०३, ०८, ०९, ११११, १८४०,
९८, ९९, १९०१, ०२, ०३.
अप्सस् the hidden part of the body १२५४.
अफला unfruitful १०५२.
अवन्धक (debt) without pledge ७३१.
अवन्धु without kindred ६०३, ०६.
अवन्धुदायाद not kinsmen-heirs १२६५, ८४.
अवान्धव not a relative ७७१.
अवाह्य an outsider; not to be excluded ९२९,
१२८३.
अवीज destitute of manly strength; seedless
१०५६, १२६४, १३९३, १७०५, १९३०.
अवीजिन् see अवीज ११०२.
अव्द year १९५३, ६२, ८३.
अव्दक्ष्ण not a Brāhmana ८१२, १९, ४२, ९९८,
१२४३, १६७२, १७४४, ९३, १८१५, ३९, ४५,
९६, १९४८, ४९, ७४.
अव्दक्ष्णी not being a woman of the Brāh-
mana-caste ८३८, १८८३.
अवत्तद one who does not support or main-
tain ११०६.
अवश्यं not to be eaten; forbidden food
३०२५, १६१०, ११, २०, २८, ३६, ५४, ८२,

१७८९, १९३२.
अमर्तुका widowed १९४१, ४३.
अमाग not a co-heir; not entitled to a share-
११४४, १३८५, ८७, ८९, ९७, १५७०, १९८३.
अमागिन् see अमाग १३८९.
अमार्य without a wife १५२४, ५८, ६०.
अभाषित not asked; not made to accept ६७२.
अभिगन्तु one who co-habits १७८०.
अभिगम see अभिगमन १८७८.
अभिगमन going; co-habitation १०१३, २३, ३८,
१६२०, १८४१, ४६, ४८, ७४.
अभिगामिन् see अभिगन्तु १६३९, १९४३.
अभिग्रह seizing १८८८.
अभिघात striking; attack १८००, २१.
अभिचार magic; employment of spells for a
malevolent purpose (one of the minor
crimes) १२८५, ८६, १६२१, ३१, ५५, ८०,
१९३०, ७७.
अभिचारिन् enchanting १६५४.
अभिजन noble descent १९६२.
अभिजात born of a high family ८६३.
अभिजिति victory; conquest १००६.
अभिज्ञ learned ७८८, ८९८, १९१३, १५.
अभिज्ञात proved; known १६८०.
अभिज्ञान sign of remembrance; a sign serv-
ing as a proof ७३७, ८६३, ९४५, १६८१.
अभिन्नास intimidating १७९५, १९७४.
अभिद्रोह malicious assault १७७५, ८८, १८२४,
१९२२.
अभिपतिनी assailing १८६६.
अभिपित्व evening (when all come to rest).
(by Macdonald & Monier-Williams.);
arrival (by Yāska) १२५७.
अभिप्रतारण N. of a prince १११४.
अभिप्रवर्षण intimidation १६८९.
अभिप्राप्ति arrival १२५७.
अभिप्रेत intended ११९४.
अभिभव humiliation; disrespect १७६९, ९४.
अभिभू one who surpasses; a superior १००२,
३८९६, ९७.

- अभिमर्श seizing; grasping; adultery १८५५, ९१.
 अभिमर्शन see अभिमर्श १८९१.
 अभिमाति an enemy ११८१.
 अभिमृष्ट touched १४३०, १८४१.
 अभियुक्त charged; accused १६७९, ९०, १७४४ १९४३.
 अभियोक्तव्य to be prosecuted, charged, or accused ७१८, ४७.
 अभियोक्त्र a prosecutor; accuser; plaintiff ७३७, ६७.
 अभियोग prosecution; charge; accusation; plaint ७३०, ६०, ६७, १६८२, ९०, १८००, १९०४.
 अभियोगिन् see अभियोक्त्र १९६८.
 अभियोज्य see अभियोक्तव्य ७६५, ६८, १०३५, १८००.
 अभिरूप handsome १०४१, १९४८.
 अभिलेखिन a document १५७५, ८२.
 अभिलेख्य a document ९२५.
 अभिवादन respectful salutation १९३६.
 अभिशंसन accusation; insult १७६९, ७४, ८८, ९०, ९४, १८४९, ७६.
 अभिशंसिन् making a false accusation १८४९.
 अभिशस्त accused; blamed; charged with a heinous offence or mortal sin ७७१, ९९२, १५९४, ९९, १६४४, ५६, ८५, ८६, १८६१, १९३६, ६६, ६७.
 अभिशस्ताङ्क mark of an accusation १६८७.
 अभिशस्तिषा defending from imprecations or accusation of sin ११४३, १४६४, १६००.
 अभिशास्त्र a punisher ११४३, १६००.
 अभिशस्यमान being accused or calumniated १५९४, ९५.
 अभिशाप a curse १२७१, ८४, १९६५.
 अभिशापषण्ड one who has been deprived of his potency by a curse १०९४.
 अभिषहमाण overpowering १२५४.
 अभिषेक ablation; consecration १०७६, १३९१, १९२३.
 अभिषेचन see अभिषेक १९२४.
 अभिसंधान an intrigue; special agreement; consideration ८६१, १६८६.
 अभिसंधि intention; agreement १२६२.
 अभिसारक one who goes to meet a prostitute १६१८.
 अभिसारिणी (a cow) being laid to meet a bull ९१९.
 अभिहत killed १८३१.
 अभीक near; in the presence of १८३७.
 अभीषाट् overpowering the enemies १२५३.
 अभीष्ट desired १५९६, १८९६.
 अमुक्तपूर्वा (a woman) who has not been enjoyed before १९७८.
 अभूति calamity १९८५.
 अभूमिन्न a simpleton १७३४.
 अमृत not maintained; unpaid ८५२, ९०७.
 अभोगमुक्ति enjoyment or seizure without possession ९५४.
 अभ्याघात assault; attack १६९८, १७५६, १९२९.
 अभ्युदय prosperity; [funeral ceremonies customary on joyful occasion (by Dr. Jolly); a ceremony offered to Manes on joyful occasion] ७७०, १०१८, ५८, १५२०, १९२०.
 अभ्युज्जतायुध (a murderer) who has raised the weapon (with the intention of killing) १६५४, ५५.
 अभ्युपगत a kind of son; one who has offered himself as son after going near १२६६.
 अभ्युप (भयव) पत्ति protection १६२३.
 अभ्युपेत promised; accepted ६९८.
 अन्नारत्त brotherless ९७०, ९६, १२५४, ५९, १५५५, ६००.
 अन्नारत्त see अन्नारत्त १३३८.
 अन्नारत्तका see अन्नारत्त १२५५, ५९, ६३, ७२, ७३, ८२, ९४.
 अन्नारत्तनी not killing a brother १००१.
 अन्नारत्तनीवाद discussion regarding brotherless maiden १२५५.
 अन्नारत्तनी brotherless १२५५.

| | |
|---|--|
| अमण्डयमाना (a woman) not celebrating her menstrual discharge by offering herself to her husband १०३५. | ७५०, ८९९, ९४५, ५१, १११९, १५१३, २६, १८८७. |
| अमन्तु ignorant; silly ८१०. | अम्बरीष N. of a king १३२९. |
| अमन्त्रक unaccompanied by <i>Vedika Mantras</i> १५२९. | अम्बष्ठ the offspring of a man of <i>Brāhmana</i> and a woman of the <i>vaiśhya</i> caste- ११०५, ८५, १२८८. |
| अमन्त्रा unentitled to <i>Vedika Mantras</i> १०४९. | अम्बा mother; a good woman ८४१. |
| अमर immortal १९८४. | अम्बालिका see अम्बा ८४१. |
| अमर्याद unrestrained; immodest १०३२, १७०१. | अम्बिका mother; a good woman; N. of a sister of <i>Rudra</i> ८४१, ९९१, १००८, १४१५. |
| अमाजुर् living at home; growing old at home (as a maiden) ९७९, १४१५, १९७९. | अय a die १८९७, ९८. |
| अमातृक motherless १०३५. | अयज्ञ not a sacrifice १००६, १६०२, १९७१. |
| अमात्य a minister; councillor १६१२, ७३, १९३०, ४३, ६९. | अयज्यु not sacrificing १९७१. |
| अमानुष not human; anything but a man ८१०, १६२१, ९९, १९२९. | अयज्वन् see अयज्यु १७२५, २७. |
| अमावास्या new-moon day (by Macdonald); last day of the waning-moon fortnight ८४२, ९९२. | अयत unrestrained १९७४. |
| अमित unlimited १०७७, १११९. | अयश्शूल iron-rod १६७६. |
| अमित्र an enemy ८१०, १६१९, १९८३, ८६. | अयस् iron; metal; an iron or metal weapon ६०९, ८९२, ११८२, १६०६, १७३३, ३४, ४७, ६७, ७५, ८८. |
| अमृतस् from the other world; from heaven ९६८, ८३. | अयस्संदान iron-fetter १७६२. |
| अमृत् in the next world १३०२, १९३१. | अयान्चित (ऋण) (debt) not asked for (by the creditor) ६२७. |
| अमृत्यक्षय without deterioration in value ६३८. | अयाजिक not to be used for sacrifice १९६९. |
| अमृत not dead; immortal; imperishable ६०५, ८४०, ९७४, ७६, ९८, १०००, ०१, ०४, १२५७, ६२, १८३६, १९६६, ७४. | अयुक्त improper; unsuitable; unappointed ८७६, १६१५, ३४, ४४, ५०, १९२२. |
| अमृतत्व immortality ६०४, ९७१, १२५३, ५९, ७१, ७९, १९८०. | अयोग्य incapable; not qualified for १६१०, ३४. |
| अमृत्यु immortality १६०१, ०२. | अयोनि any place other than the pudendum muliebre ८५१, ९९४, १०१९, १६०३, १८५०, ७९, ९२. |
| अमेष्य not able or fit for sacrifice; impure; polluted ७९१, ९३९, १००७, १६३१, ४८, १७९८, १८१४, १९२९. | अरण inimical person; foreign; free from debt; strange; disagreeable ८५८, ५९, १२५३, ५४. |
| अमोक्ष non-divorce; unloosening; non-liberation १०३६, १८२०. | अरण्य a foreign land; forest ९०३, ०४, ९२, १२६०, १५९४, ९९, १६१७, ६४, ८२, ९५, १७०२, ५४, १८३२, ५०, ५१, १९२९. |
| अमोक्षवा not to be divorced, freed or liberated १०३६. | अरण्यचर a forester १९२५. |
| अम्बर wearing apparel; garment; clothes | अरति a cubit of the middle length from the elbow to the tip of the little finger ९२६, ५९. |

अरुल a strip of leather (required in gambling) १६१७, १९०४.
 अराजक having no king; anarchical ८६०.
 अराजवाच्य not condemned by the king ७३७.
 अराति particular evil spirits (who frustrate the good intention and disturb the happiness of man); an enemy ७५०, ९८४, १००२, ०७, १८९६.
 अराधस् not liberal; selfish ९७१.
 अरि an enemy ८६१, १६४७, ५५, ९८, १९२९, ८३, ८४.
 अरिक्थभाज् not entitled to a share in the property १३४७, ९०.
 अरिक्थीय incapable of inheriting ११०१, १३९६, १४०२.
 अरिष्ट misfortune १०११.
 अरिष्टस् unhurt; undefeated १९००.
 अरिष्टा N. of *Durgā* १००४.
 अरुण N. of the father of the fabulous bird *Jatāyu*; reddish brown ८४०, १२५७.
 अरुन्तुद् an acrimonious or malicious man ८७४.
 अरुन्थती N. of a woman १०२८, ६०, १११०, १५.
 अरुन्मुख N. of a certain *Yati* १६०३.
 अरुषी reddish ९६३.
 अरेपस् sinless १६०३.
 अर्क the sun १०५१, १६४८, १९३०.
 अर्थ price; value ६३८, ७३०, ३६, ९२८, १६६३, ६८, ७७, ७८, ७९, ८४, १७०८, ३०, ३१, ३२, ८४; १९२७.
 अर्थपतन fall in the price ७३७.
 अर्थप्रक्षेपण fixing up of the price of commodities ७७८.
 अर्थवित् knowing the value or price; expert in fixing up price ८८८, १६७९.
 अर्थसंस्थापन see अर्थप्रक्षेपण १६७१, १७०७, १९२७.
 अर्जुन N. of the third of the *Pāṇḍava* princes; N. of a tree ८१८, १९६५.
 अर्षेण the ocean ९७५, १९३६.
 अर्थ meaning; subject matter; aim; purpose;

wealth; property; sum; principal ६१०, १९, ५१, ५३, ६०, ६२, ६९, ७०, ७२, ७४, ७५, ७६, ७७, ७९, ७११, १६, १७, १८ १९, २१, २३, २४, २५, २७, २८, ३१, ३२, ३४, ३६, ३७, ३९, ४७, ४८, ५२, ५५, ५६, ६३, ८५, ९०, ९४, ८०५, ०८, १५, २८, ३९, ५४, ६१, ६३, ८९, ९७, ९६४, १०१७, २२, २८, २९, ३१, ३२, ४७, ७४, ७७, ९७, १११२, १४, १९, ३२, ४६, ४७, ४८, ७५, ९३, ९५, १२०७, ४१, ८३, १३५२, ८९, ९४, १४०२, २४, ६६, ६८, १५११, १३, २६, ७१, ८४, १६१६, ३२, ४६, ५१, ५४, ७२, ७९, ८०, १७२६, ५७, ५९, ६३, ६४, ८४, १८२९, ३२, ३३, ८५, १९०३, १८, २२, २४, ३६, ३९, ४१, ४२, ६१, ६२, ६४, ६५, ६७, ६८, ७१, ७३, ७४, ८२, ८३, ८४.
 अर्थकारण the purpose of *Artha* (one of the three objectives of human life) १०२९.
 अर्थकार्य occupation of obtaining wealth १०३९, १९२१.
 अर्थकिल्बिषिन् one who has committed sin or crime in property-matters ६११, २४.
 अर्थगौरव importance of the affair or purpose ९५५.
 अर्थग्राहिन् a debtor ११४९.
 अर्थहीन wasteful १०५६, ८७.
 अर्थचर an officer १६९०.
 अर्थद a money-giver १९७४.
 अर्थदण्ड fine १७६६, १८२८.
 अर्थदम fine १६४६, १८८८.
 अर्थदान gift of wealth ७९४, ८०७.
 अर्थनाशिका wasteful; damaging property १४५७.
 अर्थनिष्कृति acquittance of property obligation १५२४.
 अर्थप्रत्ययहेतु (a pledge) which recovers the whole amount (principal and interest) ६६०.
 अर्थभागिन् entitled to a share in the division of property १३९०.
 अर्थभूत a wage-worker ८३४, ३५.

अर्थविवाद dispute about property ७३२.
 अर्थशास्त्र science of governance or polity
 १०३३, ३४.
 अर्थसमुत्थान acquisition of property ११९२.
 अर्थसिद्धि recovery of money ७१८.
 अर्थस्वामित्व ownership of the property ११२४.
 अर्थहर inheriting property; an inheritor of
 property १२८१, १५६०.
 अर्थहरण seizure of property १९७०,
 अर्थहारक stealing property १६१२, ५०.
 अर्थहीन deprived of wealth; destitute of
 property; poor १०२९, १९७३.
 अर्थागम mode of acquisition of property; the
 source of property (the source of own-
 ership of property) ११४२, १९८८.
 अर्थादान enjoyment of property ११४६.
 अर्थिन् a creditor; plaintiff; one who desires
 or asks anything ६७६, ९४४, ६४, १२८५,
 १५३६, १६४८, ७२, १८५०.
 अर्थप्रकार (प्रतीकार) of desirable or good
 nature; one who does not refuse to
 a needful (person) १६७३.
 अर्थसीतिक a joint-cultivator; serf ६००, ८१७.
 अर्थहर entitled to receive half (the proper-
 ty) ११७४.
 अर्भग youthful ९६४.
 अर्थ a master; lord; *Vaishya*; man of high-
 caste ८११, ९०२, १८९५.
 अर्थजारा the mistress of a *Vaishya* or high-
 caste person १३८५, १८३७, ३८.
 अर्थमन् a bride-wooer; N. of an *Aditya* (he
 is supposed to be the chief of the
 Manes) ९८१, ८२, ८५, ८६, ९७, १००१, ०२,
 ०३.
 अर्या a *Vaishya*-woman १८३८.
 अश्वन् a horse ११५८.
 अलघन having enough property; wealthy
 ६६५.
 अलङ्कार decoration; ornament ९५१, १००६,
 १२, २६, ३२, ३३, ४२, ४९, ११०३, १९, १२४६

०७, ०८, ०९, २२, २३, २८, १४१५, २७, १८८७
 ९१, १९३५, ८७.
 अलङ्कृत decorated १०९८, १२७३, ९४, १७६६,
 १८४३, ४८, ७५.
 अलभ्यमान an absconder १७५७.
 अलाबु bottle gourd १९२४.
 अलभम् not gain; loss; failure ७७७, १२७२,
 ८१, १३२१, १९६२, ८८.
 अल्लोकाचरित uncommon practice (not pract-
 ised by the people) १११८.
 अलवाध causing little annoyance or
 inconvenience ९४२, ४७.
 अलानिवेश little income १६८२.
 अल्पमूल्य of small value १७५०, ५९.
 अल्परक्ष्य having little property १५२४.
 अवकाश dwelling place; shelter १०३८, १६०९,
 ८७, १७४२, १८४९, १९२९, ८६.
 अवकाशद one who gives shelter ८७६, १६७१,
 ९७, १८९२, १९२९.
 अवकाशदातृ see अवकाशद १७५६.
 अवकीर्णिन् one who has violated his vow of
 chastity १६०३.
 अवक्रय a bargain in which the whole price
 of the commodity is not paid ८९९, ९००,
 २७, ३०, १६७४, ७९, १७३६, १९०४.
 अवक्रयण rent; revenue ९२७.
 अवक्रीतक hired property ७३६, १६८४, १९२२.
 अवक्षिप्त thrown down १६१४.
 अवगूरण assailing with threats १७९१, ९४.
 अवगूर्ण assailed with threats १७९८, ९९.
 अवगोरण see अवगूरण १७९३, १८२४.
 अवग्रह drought १९२४.
 अवघोषक one who spreads false or contemp-
 tuous rumours १६१८.
 अवघोषण proclamation १६८९.
 अवचनीय not to be spoken; improper १७७४,
 ८७.
 अवत a well ९२३.
 अवदावद having no bad reputation १२६०.
 अवद not punishing (corporally) ८१५.

१७९४.
 अवध्य not to be killed; not liable to cor-
 poral-punishment ९०६, १६०६, ५२, १७८७,
 १९६९, ७८.
 अवनीपति a king १९३६.
 अवपात falling; dropping १६३७.
 अवपातन falling down १८२१.
 अवभृथस्नान bathing or ablution after a sa-
 crificial ceremony १६२१.
 अवमर्द disfiguring; destruction; damage
 १६४२.
 अवमर्दन see अवमर्द ९१८.
 अवमर्शन touch १८७१.
 अवमर्शमिति a compound wall ९२७.
 अवमान्या to be treated with disrespect
 १०५७.
 अवर the lowest degree; posterity १०७७,
 ११८५, १६०३, ०४, ०६, १४, १७, १८, १९,
 ४३, ७४, ८७, १७५८, ६६, ७०, ७७, ८७, ९९,
 १८२८, १९६३, ६४, ८४.
 अवरुद्ध forcibly prevented ६०८, १८४८, ७७.
 अवरोध obstruction ८४४.
 अवरोधज born in the harem १४०३.
 अवरोधन confiscation; imprisonment; restri-
 ction ८४२.
 अवरोषित killed by stretching out on a stake;
 impaled १६१५.
 अवर्जुषी not abandoning १८९९.
 अवर्ति poverty ११६२.
 अवलम्बन clinging to १७९८.
 अववदित् one who speaks finally; one who
 gives definitive opinion ११६२.
 अवशर्षयित् one who breaks wind against
 १७९६.
 अवज्ञा not obedient १०२२.
 अवशिन् not independent ८४२.
 अवश्यकार्य to be performed invariably or
 necessarily १५८४.
 अवसथ a habitation; house; dwelling ९५८.
 अवसाद defeat १९१३.

अवसन्न resting place; settlement ११२२.
 अवस्कन्द assault ८६३.
 अवस्कन्दक a highway-man १६१८, १८४७.
 अवस्कर a privy; a place for sweepings ८२९,
 ९२६, २७, ४६, १०९९, १४०२.
 अवस्थान dwelling; habitation ११६६, १८७१.
 अवहार्य to be caused to pay ७५८.
 अवहीन compensation; fee १८४८.
 अवाग्दुष्टा pleasant-spoken १०९९, ११११, १४.
 अवाचीन directed downwards १००७.
 अवाच्य blameless; faultless ८१८, ५१.
 अवार sluice-gate; this side (of a river) ९३०.
 अवि a sheep ६०६, ९०४, ११६६, ८२, ८३, ८४,
 १९००.
 अविक a sheep ९०५, ०९, १३, १६, २०, २१,
 १२०८, १६७२, १८११, १९५९.
 अविकल्प doubtless १०९४.
 अविका a ewe ९६६, १०७३.
 अविकृत being in its natural condition १३९०,
 १४७३.
 अविक्रिय unsaleable ८७९, १३२९, १६११, ४५,
 १९८३.
 अविच्छिन्न (पिण्ड) uninterrupted line or pedi-
 gree ११९९.
 अविज्ञात unknown ७४७, ६६, ६८, ६९, ८०५, ९६,
 ९७, १२७०, १५७१, १६४०, ७२, ८२, १७६४.
 अविज्ञान unconsciousness ८००, १६१९.
 अविद्य unlearned १२११, १७.
 अविद्वस् unlearned १११६, १५९३, १६६५, १७६१,
 १९३०.
 अविधवा not a widow ९७८, ९४, १००७.
 अविधि not a rule or injunction; without
 restrain or care ८२६, ११६६.
 अविपाल a shepherd ९०३.
 अविभक्त not separated; undivided ६७९, ८०,
 ८२, ९०, ९१, ७१४, २१, ८०३, १२०१, ०३,
 १४, १५२२, ६१, ७४, ७९, ८०, ८५, ८७, ८८,
 ८९, १९८४, ८८.
 अविभक्तदायाद sharer of an undivided oblation
 १४६७.

| | |
|--|--|
| अविभक्तपत्नी wife of a co-heir who has not divided his inheritance १५२९. | अशक्त incapable; weak १७७२, ८१, ९४, १९२१, ३९, ६२. |
| अविभक्तोपगत acquired by means of undivided (property) ११९९. | अशक्तभर्तृका (a woman) whose husband is incompetent १६०९, १८४७, |
| अविभाज्य indivisible १२०७, २०, २२, ३१, ३२, ३३, १९८३, ८८. | अशन food १०५३, ७६, ८३, ९९, १११४, १४०१, १५२०, १६९८, १७५२, १९३६. |
| अविभावित not proved; unperceived ७६२, १७६४. | अशनया hunger १५९६, ९७. |
| अविरोध being in agreement with; non-opposition ८७५, ७९, १५८४, १९४२, ८२. | अशनि the thunderbolt ९१८, १८९९, १९०२. |
| अविरोधिन् not opposed १९४३. | अशरीरिणी not coming from a visible body १९८५, |
| अविवक्षित not being under special agreement (of yielding interest) ६२७. | अशान्तलाभ (a debt) the interest of which has not ceased to accrue ६५१. |
| अविवाहिन् not to be married १६२७. | अशास्त्र unentitled to <i>S'āstra</i> ; unscriptural १०३३, १९४१. |
| अविवाह्य ineligible for marriage १०९४. | अशास्य unblamable; not to be punished ९७४. |
| अविशेष without distinction, speciality or discrimination १२३६, ५५, १३८५, १४१५, १६४३. | अशिरस् headless १६०९, २७, १९७०. |
| अविषह्य intolerable (occurrence) ८७८, ७९, ९३२, ३९. | अशीतिभाग eighteenth part ६११, १९, २४, ३१, ७३१. |
| अवीतक place other than a forest १७४३, ६३. | अशुचि impure ७३७, ८२९, ७९, ९२५, १६१०, ७४, १७५४, ९९, १९३९, ४०, ७७, |
| अवीरा (a woman) having no son ९८७. | अशुद्ध impure; guilty १६४८, ८४, १७४०, १९११, ६१, ६७. |
| अवृत्ति want of subsistence १०६०, ११०७, १६५९. | अशुभ not fair; inauspicious ८२९, ५३, १११९, १९४३, ६५, ६६. |
| अवृद्धिक not bearing interest ६४६. | अशुक्लस्त्रीधना (a woman) having neither nuptial present nor woman's property १०३४, १४३१. |
| अवृथ not rendering prosperous or refreshing (the gods with sacrifices) १९७१. | अशुक्लोपनता not obtained for price or nuptial present ११०२, १३४७. |
| अवैद्य unlearned १२०४, २०. | अशुश्रूषा breach of contract of service; neglect of service ८२४, ३४, १०२०, ३५. |
| अवैधव्यकाम्या desirous of obtaining non-widow-hood १११०. | अशूद्र not a <i>S'ūdra</i> ८४२. |
| अव्यती not longing for copulation; a frigid woman ९८८. | अ(आ)शौच impurity (caused by death or birth) ८७९, १३५२, ७४, ९२, १५६८, १६७९. |
| अव्यभि(भी)चार non-failure; non-transgression conjugal-fidelity ७८१, १०५४. | अश्मक N. of a king (procreated by <i>Vasistha</i> on <i>Mudayanti</i> by <i>Niyoga</i>) १२८५. |
| अव्यभिचारिणी not adulterous; faithful १५२१, २७. | अश्मन् a stone; rock ९२३, ३४, ५०, ६१, १९३१. |
| अव्यय imperishable १०७७, १६२२. | अश्मभाण्ड an article of stone १६७१, ७२. |
| अव्यवहार्य invalid; unfit for transaction ७९४. | |
| अव्यक्त unexpounded ७४७. | |
| अव्याहत not opposed; unresisted ९२८. | |

अश्रद्धा want of belief; distrust ७९२.
 अश्रीर unpleasant; ugly ९७३.
 अश्रुत ignorant १२२१.
 अश्लीला (वाच्) rustic language; low² abuse
 १५९४, ९५, १७८५, ९१.
 अश्व a horse ६११, ९५, ७६४, ७५, ८११, १४,
 ४०, ४१, ५४, ९०४, ०५, ०६, १७, १९, २०,
 २३, २४, १०७३, ७४, ११२१, ८३, ८४, १६०१,
 १२, १८, ५१, ६९, ७२, १७६४, ९७, १८३५,
 ९४, १९०१, २९, ७३, ८०.
 अश्वघातिन् horsebane; killing a horse १६०९.
 अश्वत्थ N. of a tree १९६६.
 अश्वप a groom ९०३.
 अश्वबुध्य consisting of horses (as wealth)
 ८०९.
 अश्वमेध the horse-sacrifice १३५२, १५९९, १६०१,
 २१, ४८.
 अश्वस्तनविधान non-provision for the future
 १७२५.
 अश्वहर्तृ a horse-stealer १६२९, १७११, १३, ६५.
 अश्विना (नौ) N. of the two divinities (who
 are considered as the physicians of the
 heaven) ८५८, ५९, ९६५, ८०, ८१, ८३, ९९,
 १०००, ०१, ०२, ०४, ०८, १२५७.
 अष्टाकपाल (an oblation) prepared or offered
 in eight pans १५९६.
 अष्टापाद्य eightfold १६५६, १७२१, ५२.
 अष्टावक्र N. of a sage १०३१.
 अष्टीवल N. of a disease (*Smṛtichandrikā*)
 १०२५.
 असंदिष्ट not authorised; unasked ७८१, ८२६.
 असंपाठ्य one with whom it is forbidden to
 read or study; not to be taught १६२७.
 असंपात without impediment; without coll-
 ission; without easy access ९२६.
 असंभाष्य unfit for conversation १६४४.
 असंभेद non-contact; the being separate;
 non-confusion ९२४, २५.
 असंभोज्य one with whom one ought not to
 eat १६२७.

असंयता unbridled; unrestrained १०३३.
 असंयाज्य one with whom nobody is allowed
 to sacrifice १६२७.
 असंसृष्टिन् not reunited (brothers etc.) १५४६,
 ६२.
 असंसृष्टिविभाग the heritage of not reunited
 (brothers etc.) १४६५.
 असंस्कृत one whose initiatory rite has not
 been performed १२३४, १४२२, २३, १५८६,
 ८७.
 असंस्कृता not married; vide असंस्कृत १०२३,
 १२६६, ७०, ७३, ७९, १४१९.
 असत्प्रतिग्रह receipt of unfit presents or from
 improper persons ७७२.
 असत्प्रलाप nonsensical and false talk ११११.
 असत्य untrue; false ८०६, ९७०, १०३२, ७६,
 १७७९, १९७७.
 असत्स्त्री a bad woman १०३२, ७७.
 असद्द्रव्यदान gift of an improper thing ७९४.
 असद्धर्म a false religion १०३२.
 असवर्ण of a different caste; not belonging
 to the same caste १२३९, ८८, १३४९, ५०,
 ८४, १८४६, ९०, ९१.
 असाक्षिक unwitnessed १८००, १३, १९६५.
 असाक्षिप्रणिहित not ascertained by a witness
 १६७२.
 असाधु a wicked man ७९४, १०५६, १६४७,
 १७२६, १९१४.
 असाध्य not proper or able to be accompli-
 shed ८४८.
 असाध्वी an unchaste woman १०१७, ३३.
 असार incapable; poor; without strength
 ६११, ६२, ८६१, १६७४, ७७.
 असारता unfitness; fragility; worthlessness
 ६४१, ५१, ५४.
 असित black (wealth) १९८३.
 असिन्वन् insatiable (Monier Williams); not
 building or working (by *Sāyana*)
 ११२०, ५९.
 असुत having no male issue १५१३.

| | |
|--|---|
| असुता having no female issue १४०८, १४. | अस्वामिविक्रय sale effected by another than the rightful owner ७५७, ५९, ६२, ६३, ६४, ६६, ६८. |
| असुर supreme spirit; the chief of the evil spirits ६०४, ९७५, ११२१, ४३, ४४, ६०, १५९६, ०७, १८३६. | अस्वामिविक्रीत sold by a person who is not the rightful owner ७६३. |
| असृयाससृत्थ having its roots in scorn ११०२. | अस्वाम्य absence of right to property; absence of property ८३९, १०३७, ११५६, १३९२, १४३१. |
| अस्रोदर्य not born from the same womb १०४०, १५२९. | अस्वाम्यनुमत consented by one who is not the rightful owner ७६३, ९६०. |
| अस्त home ६००, ९७०, ८४, ८८, १०००, ०२, १८९५. | अहः the deity presiding over day १९६४, ६५. |
| अस्तमित dead १११६. | अहार्य not to be taken or seized (by the king) १४७८. |
| अस्तित्वास्तित्व the being partly true and partly not ९५४. | अहि a snake; the serpent of the sky ९९७. |
| अस्तेय not-stealing १७२२, ४४, ५२, ६६, १९३६. | अहिर्बुध्निय N. of a deity १८९७. |
| अस्थि a bone ६०९, ३०, ९३४, ४०, ५०, ६१, ६२, १६००, १७४५, ४९, १९३८, ६६. | अहीन a particular son १३५५. |
| अस्थिभेद fracturing a bone १८३१. | आकर a mine १६८७, १९२१, २८, ४९. |
| अस्थिभेदक a bone-fracturer १८०३, २९. | आकस्मिक (property) accidentally gained १९८३. |
| अस्युद्य an untouchable १६१०, १८३३. | आक्रमण ascending; a step ९२४. |
| अस्युष्टमैशुना a virgin १०२०. | आक्रुष्ट calumniated १८३१. |
| अस्वजाति belonging to a different caste १०५४. | आक्रोश shouting; slander or abuse ७९४, १६१९, ३४, १७६९, ७१, ७३, ८३, ८४, ९०, ९४, ९५, १०३३, ७३. |
| अस्वतन्त्र dependant; one who is not the owner ८००, ०५, १८, २५, ३३, ८९, १०१२, २३, ३१, ४४, १३६१, १८८८, १९७७. | आक्रोशक a slanderer १६१९, १७९०. |
| अस्वधना not having one's own property १४१४. | आक्रोशयितृ see आक्रोशक १७७०. |
| अस्वर्ग्य not leading to the heaven ७९४, १७९३. | आक्रोष्टृ see आक्रोशक १७८६. |
| अस्वातन्त्र्य dependence; not independence १०९८, १११२, ४६, ४८, १२६४, १५५५. | आक्षारयत् one who calumniates १७७०, ७७, ९०. |
| अस्वामिक not being an owner; unowned; not having an owner ७६९, ८२, १२८७, १९६१. | आक्षारित calumniated १६५०, १८५३. |
| अस्वामिन् not an owner ७५८, ६०, ६२, ६३, ६५, ६९, १६२१. | आक्षिक contracted at dice (as debt) ६६३, ७८, ८०, ७०८. |
| अस्वामिप्रतिक्रोश bidding (for property) in the absence of its rightful owner (<i>S'āms'-āstri</i>); bidding of the non-owner ९२८. | आक्षिकपण (money) won at play; a stake in dice ६२७. |
| | आक्षिस (षण्ढ) (an impotent) who spills his semen (by Dr. Jolly); (an impotent) who enjoys without being able to discharge his semen १०९४, ९५. |
| | आक्षेप remonstrance (<i>Smrtichandrikā</i> and <i>Madanaratna</i>); receiving back the |

- loan from a debtor (*Vivādaratnākara*); reviling ११४६, १६४२, १७७०, ७१, ८५, ९४, १९३६.
- आख्यान rumour; tale; story ९५७, १०२८, १७९२.
- आगत occurred, obtained; come ७५०, ५२, १११०, २९, १२१५, १६२१, १७, ५५, १८००, ८१, ८२.
- आगतश्री one who has obtained wealth १००५.
- आगथिता embraced ९६६.
- आगन्तुक a visitor without invitation; stray (as cattle) ७८६, ९१५, १९, २०.
- आगम legal proof or source of property-ownership; a claim; origin; source; stream; import ७२५, ३७, ६२, ६३, ८०३, ०७, ९५, ९३५, ५०, ११११, १२८७, १४७३, १५२७, ८०, १६३०, ५२, ८३, ८४, १७०७, ९५, १८१३, ९१, १९२७, २९, ४३, ५०, ८४.
- आगस् offence; fault; sin ६०६, ९६८, ६९, १०९७, ९९, १२५८, १५९३, १६२७, १८२९, ४०.
- आग्नीध्र a particular priest ८१४.
- आग्नेय belonging or relating to the fire or its deity ९५१, १५९६, १९३०.
- आग्रयण the first *Soma* libation at the *Agnistoma* sacrifice ११६१.
- आग्नेय see आग्रयण ११६३.
- आघात a stroke १०३५.
- आङ्गिरस् a descendant of *Angiras* १११६, १२८२, १६००.
- आचरण practice; behaviour ८७५, १९४२.
- आचरित the usual way or customary mode (of calling in debts); behaviour; acted ७१७, २३, २५, १९३१.
- आचामोदकमार्ग an outlet for used up water ९२६.
- आचार behaviour; custom; way ६२५, ७२८, १०१६, १७, २३, २८, ३०, ३२, ८५, १११०, १५, ८५, १३९१, १६८३, ८५, १९१५, २०, २१, २३, ४३, ६५, ७७, ७९.
- आचारक्रम the course or order of acquirement ७५७.
- आचारदत्त customary gift ८०८.
- आचारहीन unobservant of customs १४०२.
- आचार्य a spiritual teacher; preceptor ७७०, ८८, ९८, ८०३, २७, ४४, ६२, ९५९, १०३८, ११२४, १२०७, ४५, ५१, ८८, १३६३, ८४, १४६६, ६८, ७०, ७१, ७६, १५०९, ३०, १६०६, १०, १४, २७, ३५, ६४, १८००, २७, ३३, १९०४, १८, २२, ७२, ७३, ७४, ८४, ८५, ८६, ८८.
- आचार्यघातक murderer of a teacher १६१९.
- आचार्यतनया daughter of a preceptor १८७४.
- आचार्यपत्नी wife of a preceptor १८७४.
- आचार्यभार्या see आचार्यपत्नी १८८२.
- आचार्यव्यञ्जन guise of a preceptor ८६२.
- आचार्यानी see आचार्यपत्नी १८५०.
- आच्छादन clothing; garment ८५६, १०२२, ३५, ५३, ८३, १११४, ९८.
- आच्छेद cutting off ७९४, ८०८, १४५७.
- आजि a battle ११२२, ४२.
- आजीवक a member of a religious sect founded by *Goshāla Makkhaliputra* १९२२.
- आज्ञा order; precept; injunction ८४५, ६२, ९१, १०२९, ८८, ११०९, १४००, १९२१, ३३, ३६.
- आज्ञाक्रय a purchase by order; purchased by partial payment ९००, ०१.
- आज्ञाधि a pledge by authoritative order ६६०, ९००.
- आज्ञासेध arrest by royal order १९४१.
- आज्य ghee १३४८, ६३, ७३, ८५, १६७२.
- आञ्जन ointment (esp. for the eyes) ८३२, ९७८, ९७.
- आटविक a forest-dweller ७३५, १६८२, २३, १९२९.
- आटिकी N. of the wife of *Ushasti* १०१०.
- आदक a particular measure १४०२, २८, १५२६, १६७७.
- आढ्य wealthy ८६३, १०३०.

अग्निद्वार the front door १२६,
 आततायिन् a desperado; endeavouring to kill
 some one; a murderer (incendiaries,
 ravishers, thieves etc.) १६०७, ०८, १२,
 २५, २६, ४८, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५,
 १८३१.
 आततायिवध killing of a आततायिन् १६१२, २६, ४८,
 ५३, ५५,
 आतिथेय see आतिथ्य १०२३.
 आतिथ्य hospitality ११८१.
 अतिपातिक (पण्य) (a commodity) which is
 likely to perish soon ८७९.
 अतुर sick; diseased ७०३, ८०४, ७५, ११०३,
 १६५१, १७०१, १९५१, ६३.
 आतोष a musical instrument १९३५.
 आत्मघातिनी a suicide १११७, १९.
 आत्मघ्ननिष्कृति atonement of a suicide १६५१.
 आत्मज self-begotten १०२९, ७७, १२४९, ५४,
 ८७, १३५०, १५२९, १९८५.
 आत्मत्याग suicide १६५१.
 आत्मत्राण see आत्मरक्षा १६०८, १२.
 आत्मनः विक्रेतु (a slave) self-sold ८३०.
 आत्मनाश self-annihilation १०१४.
 आत्मबान्धव one's own kinsman १५२८.
 आत्मरक्षा protection of one's self १५५५, ६१.
 आत्मविक्रयिन् a self-sold (slave) ८१७.
 आत्मशुक्र one's own semen virile १२८४.
 आत्माघातु one who has voluntarily enslaved
 himself ८१७.
 आत्मापक्रमण (woman's) wandering at will;
 roaming १०३७, १३९२, १४३१.
 आत्मोपजीविन् a labourer; actor १६६२.
 आत्वयिक one who feels urgency; urgent
 ७७१.
 आत्रेयी a woman who has bathed after her
 courses १६०६.
 आथर्वण incantation; magic; sorcery of
 Atharvaveda १६१२, २६, ५०.
 आदर्श N. of a hill १९२१.
 आदातु a creditor ६११.

आदान receipt; seizure ८६१, १०३४, ३५, १४५८,
 १६१७, २१, ५७, ५९, ७६, ८६, १७२५, ४४,
 ५२, १८४८, १९३१, ६७.
 आदित्य N. of a deity ८५८, ९६९, ९१, १००६,
 १०, ११८१, १२५८, १५९६, ९७, १९३०, ४०,
 ६४, ६५.
 आदिनव want of luck in dice १९०२.
 आदिनवदर्श having in view misfortune (of
 others) १८९७, ९८.
 आदिवर्ण the first caste १७६९, ९४.
 आदीपिक one who sets on fire; incendiary
 १६१९.
 आदेश a pledge which is to be delivered
 immediately to a third person; bidd-
 ing; order ६३८, ११०९, १५२९, १६३७, १९३३.
 आद्य source of subsistence १७९२, ९४.
 आधमन mortgage ८०३, १५२३, ८५, ८७, ८८.
 आधमर्ण्य the state of being a debtor ७०८.
 आघातु a pledgor ६५५, ५६.
 आधान a pledge; surety; deposit; placing. a
 sacred fire ६५४, ५६, ७३२, ३५, ८१७, ९३०,
 ३१, ३२, १०१७, १५६८, ७५, १६७४, ७७, ८१,
 ८३, १७३३, ३६, १९०४.
 आधार a tank; pond; reservoir; dam ९२६,
 २८, ३०.
 आधि a pledge; security; mortgage; a cri-
 minal act; unhappiness; torture ६०८,
 २८, ३६, ३७, ४०, ४१, ४३, ४५, ४७, ४८,
 ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५५, ५६, ५८, ६०,
 ६१, ६९, ८५, ९५, ७३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ६६,
 ९८, ८०२, ०७, ४४, ८९, ९०, ९८, ९३०,
 १४६३, १५१८, ८९, १६४१, ८३, ८५, १७४४,
 १८३८.
 आधिकर्मन् the act of depositing; dispute
 regarding a deposit or mortgage
 ६३६.
 आधिग्राह a pledgee ६६०.
 आधिनिष्कृत्य redemption of a deposit; re-
 turning of a deposit ७३१.
 आधिपत्य supremacy १२६१.

- आधिपाल a pledgee ६३८, ७५.
 आधिगणना spoilation or loss of a pledge or deposit ७३५.
 आधिभोग enjoyment or use of a deposit or pledge ६०७, ३१.
 आधिलिखित deed of mortgage or deposit ६६०.
 आधिलिख्य see अधिलिखित ६५६.
 आधिवेदनिक (property) received by a woman on supersession १०३४, ३५, १४२८, ३१, ४२, ४३, ६२.
 आधिस्तेन the robber of a deposit or pledge ७३१.
 आधीकृत a thing pledged or mortgaged ६३७, ५५.
 आधेय a pledge; to be kindled or placed (as fire) ६४१, ११२६, १५९६.
 आध्यर्थ price of a deposit ६४९, ६०, ७३१.
 आनन्त्य eternity; immortality १०७९, ११९७, १२६४, ७१, ७९, ८२, ८९, १७९२, १९८७.
 आनीतशुल्क property brought from father's house १३९२, १४३१.
 आनुपूर्व्य succession; order ७१६, १०२४, २७, ११८३, १२४३, ४६, १३५०.
 आनुलोम्य order of the castes etc. from higher to lower ८२४, ३६, १०९३, ११०४, ०५, १२५२, १७८४, १८४६, ७२, ८३, ९०, ९१.
 आनुश्रय acquittance of debt १३७३.
 आनुश्रय compassion; pity ८२०, १२४४, ८४, १३२४, १४५५, १९२७.
 आन्त्र the bowel ९५१.
 आषण a market ६५४, ८५४, ९९, ९५२, १६८९, १७६३.
 आपत् misfortune; difficulty; calamity ६२७, ३१, ६०, ७१५, ९४, ९८, ८०४, ०७, १८, ३८, ६१, ९३०, ३९, १०३३, ६४, ७५, ११०७, १७, १८, २७, ३१, १२५१, ८४, १३०४, ५२, ७३, ८४, १४६१, १५८८, १६२०, १९२०, २२, २५, २६, ३०, ३७, ७३, ७४, ७८, ८६.
 आपकृत (debt) contracted in times of distress ६९८, ७१२.
 आपद्गत fallen into misfortune; unhappy ९३९, १०४०, १२६६, १६३१, १९२९.
 आपदत्त (a son) given in times of distress १३५२.
 आपूपिक a baker १६७९.
 आप्त skilled; a reliable person १८०९, १९२१, ७४.
 आप्तकारिन् a trusted servant १०४८.
 आप्तभाव the state of being trustworthy ८४९.
 आबन्ध jewellery (*Shāmskhāstri*); tying ornaments १४३०, १८४९.
 आबाध trouble ९३०.
 आभरण an ornament ६११, ८६०, ६३, १०२५, ३५, ३८, १११९, ८४, १२१९, २२, ३०, ३३, ४४, १३९१, १४३०, ५४, ६१, १६८४, १८००, ४८, ८१, १९७९.
 आभूति superhuman power or strength १००५.
 आमन्त्रण deliberation १८९६.
 आमपात्र an unannealed vessel १८४१.
 आमय disease १०२२, १११६, १८, १४०१.
 आमिक्षा clotted curds १००७.
 आमिष an object of enjoyment; flesh १६८२, १७५०, १९७८.
 आमुष्मिक belonging to the other world ७२४.
 आमोद dalliance १८८०.
 आम्नाय texts of the *Veda*; scriptures १५१२, १९१८.
 आम्र a mango १७६१, ६३.
 आय the receipt ११०६, १९, १५६५, ८१, १७४१, ५२, ६५, १९२८.
 आयतन house; resting place; sanctuary ९२५, २६, ३०, ४२, ४४, ४६, ६१, १८९६.
 आयति the future ८६०.
 आयव्ययज्ञ skilled in revenue and expenditure ७८४.
 आयस of metal or iron १७०२, १८६५, ९०, १९६६, ६७, ७७.
 आयुध a weapon ६१०, २६, १२३१, १६०५, ०७,

- १८२४, ३०, ८७, १९३५, ३६, ६५.
 आयुधागार an armoury १६२९, ८९, १७१३,
 १९२९.
 आयुधिन् a warrior ८३५.
 आयुधीय a warrior; member of a martial
 race ८२८, १६१९, १९१९, ३५.
 आयोगव a man sprung from a *S'ūdra*-man
 and *Vaishya*-woman ११०५, ८५.
 आरकूट a kind of brass १६७५.
 आरक्षक a guard १७५७, ६२.
 आरक्षिन् see आरक्षक १६८१.
 आरण्य a wild animal; belonging to a forest
 १५९४, १६०९, १७९९.
 आरम्भ beginning १०१८, १६४७, ४९, १८३१,
 ८७, ८८, १९२५.
 आराधन worship ११११, १७, १९, १५२४, १९७९.
 आराम a garden ७३१, ८७३, ९२०, २६, २८, ३०,
 ३७, ३९, ४२, ४५, ५०, ५८, १२०१, १६१३,
 १७६५, १८८०, १९७६.
 आर्तं distressed; afflicted ७१०, ९३, ८००, ०४,
 ०५, ०६, ४३, ४४, ४५, ७८, १०९७, ११०७,
 ३०, १७०२, २८, ४६, १८३१, ३४, ८८, १९२७,
 ६३.
 आर्तदान help rendered to an afflicted per
 son ८४३.
 आर्तना waste (field) ९२२.
 आर्तव the menstrual discharge १११२, १८४८.
 आर्ति disease ११४६, १४६१, १९८७.
 आर्विज्य the office or business of a sacri-
 ficing priest (ऋत्विज्) ७८३, १०१०,
 १२२५, १५९४.
 आर्पण entrusting; delivering ६६०.
 आर्यः a member of the three high castes;
 lord; a freeman ७२८, ३८, ४७, ८०९, १०,
 १२, १५, १६, १७, ९५५, १०३३, ४९, १६६४,
 १७२८, १८४४, १९०३, १४, २७, ६३.
 आर्यप्राण an *Ārya* by birth ८१६, १७.
 आर्यभाव the privilege or status of an *Ārya*
 ८१७.
 आर्यलिङ्गिन wearing an emblem of *Ārya* १६९४,
 १७६४, १९२९.
 आर्यवृत्त behaving like an *Ārya* १६९२, १९२९.
 आयत्नी wife of an *Ārya*; woman of *Ārya*-
 caste १८४१
 आर्या woman of *Ārya*-caste १६९०, १८४४,
 ५०, ७४, १९२२.
 आर्यवर्त N. of the country of *Āryas* १९२०,
 २१.
 आर्ष a form of marriage derived from *Rahis*
 (the father of the bride receiving one or
 two pairs of kine from the bridegroom)
 १०३४, ९६, ९८, १२८६, १४३९.
 आर्षिम् produced by a bull १०७३, ११०२, १२७२.
 आलिङ्गन embracing १८८५, ८९.
 आवरण a fence; cover ९१९, १११६, १६१९,
 १९२५.
 आवर्तन returning around; circuit ९०२.
 आवसथ a house १८९७
 आवाप sowing १९२५.
 आवार shelter ८६३.
 आवार्यभाग the part to be covered ९२६.
 आवासद see अवकाशद १७५५,
 आविक woolen cloth ६३२.
 आविष्टिता enveloped १६००.
 आवेशन a workshop १६९५, १९२९.
 आवेष्टन tying १७९८, १८३४.
 आशाकारिकवर्ग the class of people that works
 according to its own wish ८४३.
 आशासना asking, praying or craving for
 ९९१, १०००.
 आशुमृतक suddenly or instantly dead १६१५.
 आश्रम a hermitage: a stage in the life of a
Brāhmana १३७३, ८४, ८९, १९१६, १७,
 २१, २६, ३५, ४१
 आश्रमिन् a hermit १९३३, ८६.
 आश्रय refuge; resort ७६६, ८४, ११३०, ५५,
 १६२०, ४९, १८८९, १९१४, ३६.
 आश्रित depending on; supported ७१५,
 १७४६, १९२९.
 आसञ्जन the act of clinging to १७९४.

आसन a seat ८६०, १०२९, ४९, ११०६, ११, ८४,
१२३३, १३९२, १६०९, ३७, ६५, ९०, १७४५,
९४, ९५, ९६, १८०२, २८, ३५, ५२, ८१, ८५,
८७, ८९, १९३३, ३६.
आसन्दी a chair or stool १००४.
आसन्न near or proximate ८९८, १०४०, १२४५,
१४६६, १५१८, १६१६, ४०, ८५, १७५४,
१९२२.
आसन्न spirituous liquor; distillation ६३३,
३४, ८९९, १९३८.
आसुर a form of marriage (in which the
bride-groom purchases the bride from
her father and paternal kinsmen); re-
lating to *Asura* १०३४, ९६, ९८, १२८६,
१४३०, ४०, ५९, ६२, १७२७, १९६५, ८२.
आसुरि N. of a *Rshi* ९९७.
आसेथ arrest; custody ७२७.
आस्कन्द a die (esp. the fourth) १८९७.
आस्पद abode; dwelling place १०३३.
आस्य the mouth १६००, १७७०, ७५, ८८, १९६९,
७७.
आहरण robbing; seizing ९२६, १९४०.
आहर्तृ an officer (of a sacrifice) १९०५.
आहवनीय a particular sacred fire १८९६,
१९८५.
आहार meal; eating १६८०, १८८७.
आहाव a bucket; vessel ९२३.
आहित mortgaged; pledged; deposited; kept
६५३, ६१, ७६७, ८१७ २९, ३२, ४९, १९०१,
६४.
आहितक see आहित ८१७, १६८४, १८५०, १९२२.
आहितमि one who has placed the sacred fire
upon the altar; a sacrificer ७७२, ८०३,
१०१६, १५९३, १६६०, १७२५.
आहितिका (a woman) pledged ८१७, १६९०.
आह्वय taken; seized ६१२, ७८७, १९५९.
आह्वानकारिन् a summoner १९४३.
इक्षु sugar-cane ६३०, ३४, १०७१, १७२३, ४९,
५२, ६६, १९३६.
इक्ष्वाकु N. of a king १३२९.

इक्षुद a particular tree and its fruit १९३८.
इज्या a sacrifice १०२५, १७०१.
इतिहास traditional accounts of former
events १०३२.
इत्या gait १९८१.
इधम fuel used for the sacred fire १३६३, ८४,
१६७२.
इन्द्र the moon or its deity १०८०, ११२०, २१
१९०२, ८५.
इन्द्र a particular deity ६०१, ०४, ७९१, ८०९,
१०, ११, ४१, ५८, ५९, ७८, ९०३, २२, २४,
६९, ७०, ७२, ७३, ७४, ८३, ८६, ८७, ८८, ९५,
९७, ९९, १००१, ०३, ०४, ०५, ०६, ११११,
१६, २०, २१, ४३, ५९, ८०, ८१, ९५, १२५७,
१४६४, १५९५, ९७, १६००, ०१, ०३, १९००,
३०, ३६, ७१, ७७, ७८, ७९, ८०.
इन्द्रधनुः *Indra's* bow; rain-bow १६१५.
इन्द्रपत्नी the wife of *Indra* ९८७.
इन्द्राणी the wife of *Indra* ९८७, ९४, ९७, १००२,
०७.
इन्द्रिय an organ ८१९ ६०, ९९५, १०१६, ३१,
८५, १३८७, १७७९, १८३३, १९१८, ८१.
इन्द्रोत्त upheld or promoted by *Indra*; N.
of a teacher १६०१.
इन्धन fuel ९२६, १५२०, १६६१.
इम an elephant १९५४.
इरा speech; the goddess of speech ८४२.
इरावती full of food; N. of a river १२६०.
इरिण a hole in the ground; barren soil
१५९८, १८९३, ९५, १९७४.
इशिरा vigorous; active ९६९, ७१, १२५८.
इषु an arrow ९४७, ४८, ९८, ११३१, १४६४,
१६००, १९, १८१९, १९३३.
इष्ट a sacrifice १०५०, १२३३, ८४, १६१९, १९०६,
७८, ७९.
इष्टका a brick ६१०, २६, ३०, ८५१, ९९, ९३४,
५०, ६१, १६८९, १७६०, १८३०, १९६६.
इष्टापूर्त the merit of sacred rites stored up
in heaven १३४९, १९२०, ६३, ६४, ८७.
इष्टि a sacrifice ६०४, ८५८, १४२४.

ईक्षणिक a fortune-teller १०२५, १६९३, १९२९.
 ईर्ष्यापण्ड one jealous (a kind of semi-impo-
 tent man) १०९४, ९५.
 ईर्ष्यासमुत्थ having its root in jealousy ११०२.
 ईश a lord; master ८१८, १५८३, १९३६.
 ईशान a master ११२०, ५८, १४६३, १७६९, ९४.
 ईशिनी one who has supremacy; mistress
 १४६२.
 ईश्वर master; lord; N. of a sage ८१३, १४,
 ६०, १११८, १५५५, ६१, १९२९.
 ईहा labour १२११.
 उत्तलाम (ऋय) (a purchase) where a cred-
 itor secures a pledge with the condi-
 tion that if the lent amount is not
 recovered in the stipulated time the
 pledged thing should be understood to
 have been purchased by him (the cred-
 itor) for the given amount ८९१, ९८,
 ९००, ०१.
 उक्थ a particular *vaidika* verse १९७९.
 उक्षन् an ox or bull ९०६, १६२१, १८११, ३४.
 उग्र powerful; ferocious; violent; warlike;
 N. of a mixed tribe from (a *Ks'atriya*
 father and *S'ūdra* mother) ६००, ०१,
 ०२, ०३, ०५, ११०४, ०५, ८५, १२८८, १५९६,
 ९७, १६००, १८३८, ९५, १९०१, ०२, २१, ६५.
 उग्रजित् N. of an *Apsaras* ६०२.
 उचित customary; usual ९३१, ११८५.
 उच्चैःश्रवस् N. of the horse of *Indra* ८४०.
 उच्छास्त्रवर्तिन् transgressor of the law १९३९.
 उच्छ्रावणालेख्य the deed of partition १५८४.
 उज्जाम debt ७०८.
 उच्छजीविन् a gleaner ९५१.
 उच्छृत्ति a gleaner ९३७.
 उत्कृष्ट excellent; eminent; best १०२६, ४१,
 ६४, ७०, १६२८, ४८, ५१, १८०२, २८, ३५,
 ६६, १९३७.
 उत्कृष्टकर्म avocation of a higher caste १६२९.
 उत्कृष्टमूल्य very valuable १७५०.
 उत्कृष्टवर्णा of the highest caste १८४२.

उत्कोच bribery ८००, ०५, ०६, १६९०, १९८३.
 उत्कोचक receiving a bribe १६८०, ९३, १७४६,
 ५८, ६४, १९२९, ४६.
 उत्कोचजीविन् see उत्कोचक १६११, ३९, ६९, १७५९,
 ६१, १९३२, ४२.
 उक्तोश्त् calling for help १७९७.
 उत्क्षेपक a pick-pocket १६११, ७०, १७३७, ५८,
 ६०, ६४, ६५.
 उत्तम highest; excellent ८१७, २८, ३५, ६१,
 ९२०, ३१, ४२, १०१६, ३१, ६२, ७५, १११०,
 १६१४, १८, १९, २०, २१, ३४, ३७, ४०, ४२,
 ४३, ४५, ४९, ५२, ५५, ६९, ७०, ८५, ८७,
 ८८, ८९, ९०, ९२, १७१६, २७, २९, ३०, ३२,
 ४२, ४४, ४५, ५०, ६६, ६७, ६९, ७०, ७१,
 ७३, ८०, ८९, ९२, ९६, ९८, १८११, १२, १४,
 २४, ३१, ३२, ३४, ३५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०,
 ६६, ७२, ७५, ७६, ८२, ८३, ८५, ८९, १९२२,
 २९, ३२, ४३, ६७, ६८, ७०, ७५, ८५.
 उत्तमदण्ड highest punishment; vide उत्तमसाहस
 ७९४, ९३२.
 उत्तमद्रव्य fine article १६४६.
 उत्तमर्ण a creditor; highest or excellent debt
 ६१०, ३६, ९२, ७१६, १८, २४, २५, ३१, ९००,
 १४०२.
 उत्तमर्णमूल the principal of a creditor ६३५.
 उत्तमर्णिक belonging to a creditor; a creditor
 ७१४, १६, २२.
 उत्तमवर्ण a member of the highest caste ८१६,
 १२७९, १७६९, ७१, ९४.
 उत्तमसंग्रह adulterous act of the highest de-
 gree १८८९.
 उत्तमसाहस the highest of the three fixed
 mulcts or fines (a fine of 1000 or
 of 80,000 *panas*; capital punishment,
 branding, banishing, confiscation, mu-
 tilation and death) ७९६, ८१६, ९२५,
 ४६, ५७, ५८, १०७९, १६०९, ११, २७, २८,
 २९, ३६, ३७, ४३, ४४, ५२, ७०, १७२९, ३०,
 ३२, ४९, ५०, ६५, ६६, ७०, ८२, ९०, ९८,
 १८४६, ५९, ८२, १९२९, ३२, ३३, ७५.

उत्तर higher; superior ६०३, ९३०, ८६, ८७.
८८, ९०, १७७२, ८३, १८२७, ३६, ४०, ४६,
१९०३, १९, २१, ४१, ७८.
उत्तरकुरु the country of the northern *Kurus*
situated in the north of India and
described as the country of eternal
beautitude १०२७, १२८४, ८५.
उत्थान effort; exertion ११०६, ११, १९, १२१४,
१९८४.
उत्थानव्यय see समुत्थानव्यय १७९७.
उत्पत्ति birth; produce १३४८, ५५, १६०९, १७९८.
उत्पन्नसाहसा an adultress (*Mitāksarā*, *Nāra-*
dīya Bhāṣya); one who is not deflow-
ered (*Smṛticchandrikā*) ७०३, ११०३.
उत्पात unusual public calamity १७५९.
उत्पादक a generator; producer ८३९, १०७०,
७३, १३५०.
उत्पादयित् a begetter १२६५, ६७, ७२, १३५६,
१७९६.
उत्पादितसंस्कारा one who has performed a rite
or sacrament १०१४.
उत्सृष्ट neglected; (a son) deserted ९३०, ३१,
१२७०, ८८, १३०६, ३४, १६१९, १८५०, १९७८.
उत्सृष्टपशु a bull set at liberty ९१५.
उदक water; a flood; the ceremony of offer-
ing water to a dead person; any cere-
mony with water ७३५, ८१२, ७८, ९०१,
२५, २६, २७, ३०, ३१, ३५, ४२, ४७, ५९,
१०२६, १११३, १८, ४२, १२०४, ०६, ०७, ०९,
२८, ३१, ३२, ८२, १३१५, ९०, ९२, १५२४, ८९,
१६००, १०, १९, ४२, ५२, ६५, १७४२, ४४,
५२, ५५, ६२, ९५, १८९२, १९०४, २४, २५,
२९, ३६, ४४, ६५, ६७, ७३, ७४, ७८, ८७, ८८.
उदकक्रिया the offering of water-oblation
१२५१, १५६८.
उदकनालिका a water-tube (a means of tor-
ture) १६८७.
उदकहत drowned in water १६१५.
उदक्या a woman in her courses १९७४.
उदकस्थान a water butt ९२६.

उदपान a well ९२६, ३४, १६१३.
उदय profit; income; interest, swelling up;
fruit ६११, ५३, ७२३, २४, २६, ३१, ३२, ३६,
३७, ८५०, ९५२, १०७७, ११२९, १५६१.
उदरदास a born-slave ८१६, १७.
उदवसानीया the end or conclusion (of a sac-
rifice); closing offering ७९१, ८१४.
उदशित् butter-milk १९३८.
उदाज leading out (soldiers to war) ११२२.
उदासीनत्व death of an indifferent passer-
by (by an elephant) [*Shāmskāstrī*];
murder of one who is not aimed at
१६२१.
उदाहरण recitation १७६८, ९०.
उदित proclaimed by law; taught ७३२, ५२,
८३, ८६, ९६, ८४०, ४४, ८९, ९४५, १०५५,
६९, ११११, १२२३, १५२४, १६२७, ४७, १७५६,
६०, ९०, १९०७, ११, २९.
उद्गूरण raising (for threatening) १८३२.
उद्गूर्ण raised (for threatening) १८१५.
उद्गातृ one of the four chief priests (a *Sāma-*
singer) ७७५, ९२, १००५, १२५८.
उद्गालक N. of a sage १०२७, १२८४, ८५, १३५५.
उद्धार loan; preferential share; decision
६३२, ७१४, ८१, ९५५, ११८१, ८४, ८६, ९०,
१२३५, ३७, ४९.
उद्धारविभाग division with preferential share
११९४.
उद्धृत debt; loan; people who know the
traditional account (of boundary) ६३१,
७०९, ९५५, ५७, ११९०.
उद्धृतपण्य a manufactured commodity ७७१.
उद्धृत hanged १६१५.
उद्धृत hanging १६१५, ४८.
उद्धृत्युक्त one who hangs up ९९२, १५९९.
उद्यतासि having an uplifted sabre or sword
१३१२, २६, ५०.
उद्यान a park; garden ९२५, ४२, ४६, ५९, ६०,
१०२६, १६१०, ९५, १९२९.
उद्वेक transgression १९३५.

उदाह marriage १३८४, १९२१, ४३.
 उदाहसि a marriage-fire १०१५.
 उदाहिक relating to a marriage १०६७.
 उदाहिता married ११०१, १६.
 उन्नता boundary (raised) १४५, ६१.
 उन्मत्त insane; mad ६९७, ७०७, ११, १२, ७१,
 ९३, ८००, ०४, ०५, ८१, ८९, १०२२, ३४, ५६,
 ९८, १११२, १८, ६४, १२७३, १३८७, ८९, ९१,
 ९२, ९३, १४०१, ०४, १६०७, २०, ७९, ८६,
 १८८५.
 उन्मत्तक a mad-man १३९८.
 उन्मादुक्त fond of drinking ९९२, १५९९.
 उन्मान weight; measure (of altitude) १६६८.
 उपकरण implement ७८६, ८४९, ६०, १०१५, २९,
 ११८४, १६१९, ४२, ४६, ८३, ८५, ८६, ८७,
 ९६, १७४२, ५१, १९०५, २९, ३५.
 उपकर्तृ a helper; see उपकारिन् १६५५.
 उपकार use; advantage; assistance ७९९, ८०५,
 ०६, ०७, ९२९, ३०, ३९, १११५, ३०, १८८१,
 १९८३, ८५.
 उपकारिन् a benefactor; doing favour; a hel-
 per ७९४, ८००, ०३, ०७, १६२१.
 उपक्रोश reproach १७८५.
 उपगत a receipt; (the son) who offers him-
 self ६८९, ७०५, ०९, १२८८, १३५२.
 उपगम acquisition; blossoms १०३६, ११२६,
 १६०९.
 उपग्रह hoarding; provision १९२४.
 उपघात damage; injury ६३५, ३६, ५१, ५८,
 ७५१, ८४३, ४४, ७१, ९०६, १६१०, १९, ३४,
 ७७, ७९, ८०, १७९७, १८२४.
 उपघातक hurting; injuring १६५२.
 उपघातिन् see उपघातक १९२२.
 उपचय increase; interest १९४९.
 उपचार dealing; preservation; behaviour;
 decoration; act of courtiousness ६४८,
 १००९, १२८६, १६९४, १८५२, ८७, १९२९.
 उपनारिका a slave-woman ८१७.
 उपजपक instigator; conspirator १६९८, १९२९.
 उपजीवन livelihood; maintenance ८१८, १९,

१२१२, १४५५.
 उपजीविन् dependant ८६२, १३७४, १६४९, ६२,
 १८५४, १९४२, ४४, ६७.
 उपजीव्य to be revered ६९२, ७१५.
 उपदायाहक a bribe-taker १६७९.
 उपदेश advice; counsel १६८१, ८५, ९६, १७७०,
 १९१८, १९.
 उपदेशु an adviser १६५३, ८४.
 उपधा fraud; pretence ७४४, १७५२, १९३६.
 उपधान imposition; pretension; १६७८, १८४९,
 १९०४.
 उपधि artful management; fraud; trick
 ७२५, ६४, ८४०, १४५४, १६७४, ७७, १७४६,
 १९०४.
 उपधिदेविन् a false gambler १६६९, १९०३, ०९.
 उपनायित one initiated १२७८.
 उपनिधि a deposit ६३८, ७३५, ३६, ३७, ४०, ४७,
 ४९, ५२, ५४, १४७३, १५२७, १६८४.
 उपनिधिभोक्तृ one who enjoys or uses a
 deposit ७३५.
 उपनिधिहर्तृ one who smuggles a deposit ७४३.
 उपनिपात calamity ७३६, ३७, ८७८, ७९, ९३२,
 १६७३, १९२४.
 उपनिषद् secret १९२५.
 उपपति a paramour; gallant ९९५.
 उपपातक minor sin १७७०, ८२, ८७, ८९.
 उपपाप see उपपातक १७९२.
 उपप्लुवनिमित्त (ऋण) (debt incurred) for the
 purpose of (meeting) a difficulty
 or calamity ७१२.
 उपभोक्तृ one who makes use of or possesses
 (property) ६३८, ७६४, ९३०.
 उपभोग use; enjoyment; possession ६३६, ३७
 ७३५, ६२, ८९६, ९३०, ६२, १४२९, १६१६,
 १७५२, ९८, १८०४, ३४, ५०, ८८, १९४४.
 उपभोगफल (only) for the sake of enjoy-
 ment or use १४२९.
 उपमर्द complete violation or destruction
 १६४९.
 उपयमनप्रतिषेध objection to marriage १२५५.

- उपयुक्तस्त्रीवासस् a garment which is used by a woman १२०७.
- उपरतस्वृह free from desire ११५२.
- उपरिनिबन्ध suspension from above १६८७.
- उपल stone ११२१, १८३०, १९३८.
- उपलब्धि discovery; attainment; acquisition; observation (by prof. P. V. Kane) ८०५.
- उपलम्भ ascertainment; proof ७१९.
- उपलिङ्गन inference १६८४, १८००, ५०.
- उपवन a grove; garden ९५५, १६९५, १८००, १९२९.
- उपवाद censure १७७१, ७२.
- उपवास a neighbour; fast ९३२, ४५, ५१, १०१६, २३, २५, ७५, ११०९, ११, १५, १९, १५२४, १६८६, १७९५, १९२३, ७४.
- उपवासन a dress; garment १०००, ०४.
- उपवेशक a burglar १६१८.
- उपश्रवण known from generation to generation; range of hearing; traditional knowledge ९५७.
- उपश्रोत्र a listener; hearer १६८४.
- उपसर्जन a substitute; alternative १३१७.
- उपसाल a wall; fence ९०६.
- उपस्कर an article of house-hold use; utensil ७३१, ८७, ९०, ८४६, १०२३, २५, ५९, ८५, ११०६, १२२२, ३०, १४५४, १६८८, ८९, १९७९.
- उपस्थ the lap ९६८, ६९, १००१, ०२.
- उपस्थान appearance; attendance; a substitute ६६१, ६९, ७३, ७७, ७७१, ८७०.
- उपस्थाय to be presented ६७१.
- उपस्थित presented; approached ६३८, ४५, ५४, ७३१, ८१, ९०, ८४४.
- उपहत afflicted; injured १११७, १६१५, १९२५.
- उपहार a present; offering १९२५.
- उपहास a joke १८४१.
- उपांशुघातक a secret assassin १६४६.
- उपांशुचिह्न a secret mark ९४९.
- उपादान appropriating to one's self ८२३, २९, ७०, ११६३, १९२८.
- उपाधि see उपधि ११६३, १८८५.
- उपाध्याय a teacher; preceptor ८०३, १९८४.
- उपाय expedients; means; purpose ७१६, ४१, ८०, ८६१, १६५१, ६९, ८५, १७४५, ५७, १८४४, १९३०, ३५, ४१, ७०.
- उपाययोग employment of expedients १०४७.
- उपाजित acquired ११३०, १२२१, १९८३, ८७, ८८.
- उपावर्जन rejection ८७९.
- उभयसंमत mutually consented ९५१.
- उना N. of a woman १०२८, २९.
- उरग a serpent १९७०.
- उरगूला a kind of serpent ८१२.
- उर्वरा fertile soil; field yielding corn ७९१, ९२२.
- उर्वशी N. of an *Apsaras* ९८८, १००९, १३७७.
- उर्वी the earth ९३७.
- उरुप a species of soft grass १६७२.
- उरुक an owl १६०६.
- उरुखल a wooden mortar ७६४, ८१२, ४२.
- उरुकुभीमत् accompanied by firey phenomenon; meteor १८३९.
- उरुम्बन hanging १६८७.
- उरुञ्चन the act of pulling १८१६.
- उरुखन making lines १३८४.
- उरुहोपिका a kind of food; drawing १९२५.
- उशनस् N. of a sage १०३२, १२८२, १३९१.
- उषस् dawn (personified) ८०९, ४२, ९६३, ६४, ६५, ६७, ८८, ९३, ९५, १००२, ०३, १२५४, १८४०, ४१.
- उष्ट्र a camel ८५४, ९०४, ०५, ०६, १०, १३, १७, १०७३, ७४, १६६९, १७९७, १८१०, ३४, ३५, १९५९, ७६.
- उष्ट्रघातिन् killing a camel १६०९.
- उष्णकाल summer-time १९६५.
- ऊढा a married woman ८३७, ११००, ०९, ३६, १२५०, १३८४, १४५३, १५२७, १९८२.
- ऊरुवेष्ट binding of the thigh १६८७.
- ऊर्ष sap १८३९.
- ऊर्णी wool ६०९, ८१०, १००९, १६७३, १७४७.

१९२९.
 क्षर saline (soil) ७८६, १९७४.
 क्षय property; inheritance १०२६, १२४०,
 ८३, १३१९, ४७, ४८, १४२७, १५६१, ८०,
 १९६२.
 क्षयग्रहीन् one who takes inheritance १३८९.
 क्षयहर an heir ७८६, १५१७.
 क्षयवच्छिन्ति continuity or non-cessation of
 inheritance १५२९.
 क्षयिन् an heir ६९१ ८०४: १२२३, १३५०, ५५,
 १५६९.
 क्षयवेदवाद saying or proclamation of
Rgveda १११९.
 क्षय debt ५९९, ६००, ०१, ०३, ०४, ०५, १०,
 ११, २२, २५, २८, ४७, ५१, ५५, ५८, ६०,
 ६२, ६४, ६६, ६९, ७२, ७४, ७५, ७६, ७७,
 ७८, ७९, ८०, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ९०,
 ९१, ९२, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, ७००, ०२,
 ०३, ०४, ०६, ८७, ०८, ०९, १०, ११, १२, १३,
 १४, १५, २०, २१, २३, २५, २६, २९, ३०,
 ३१, ३३, ३५, ८६, ९४, ८०५, ०८, ३०, ३२,
 ७५, ७६, ९००, ११५१, ९७, १२०२, ०७, २१,
 २२, २९, ५९, ६१, ६२, ७१, ७९, ८३, ८४, ८५,
 १३५६, १४४१, ५८, १५६८, ६९, ७१, ७३,
 १६१३, १७८७, १८४०, १९०२, ०३, ८७.
 क्षयकति one to whom praise is due as debt
 ६००.
 क्षयकव purchase by money lent out be-
 forehand ९००.
 क्षयवित् giving heed to worship (paid as a
 debt by men to gods) ५९९.
 क्षययुत् inciting to fulfilment of obligation
 ६००, १२५८.
 क्षयनिर्मुक्त free from debt १२८५.
 क्षयभाज् liable for debt ६९५, ७००, ०८.
 क्षयमोचन discharge of debt १३५५.
 क्षयया going after or demanding (fulfil-
 ment of) obligation ५९९, ६००, ०१.
 क्षययान्त् relieving from debt or obligations

क्षय being in debt; indebted ६०५.
 क्षयवत् debtor; being in debt ६०१, ९५, ७१४.
 क्षयवन् see क्षयवत् १२५८.
 क्षयशेष balance of debt ७३१.
 क्षयसमवाय aggregate of debts; several debts
 ७१६, २९,
 क्षयादान recovery of debt ६२२, २८, ७५०,
 ९४.
 क्षयावत् being under obligations; indebted
 ५९९, ६००, १८९५.
 क्षयिक a debtor ६३१, ५१, ५४, ५५, ५६, ६०,
 ६२, ६७, ७०, ७६, ८९, ७०५, ०६, २४, २५,
 २६, २७, २८, २९, ३०, ३१.
 क्षयिकुल family of a debtor ६५४.
 क्षयिद्रव्यापण discharge of debt ६७६.
 क्षयिन् a debtor ६२९, ४९, ५१, ५२, ५३, ५८,
 ६०, ६९, ७१, ७६, ७०६, २४, २५, २६, ३०,
 ८३२, १२२१, १९६४.
 क्षय truth; sacrifice; right; rite ५९९, ९६७,
 १२५५, १५९६, १८३६, ३७, ३८, ९५, १९८०.
 क्षय the menstruation; female puberty
 १०१९, २०, २१, २२, २८, ४२, ५७, ९६, १८४८
 १९७७.
 क्षयिह्वान्याय occupation of an officiating priest
 १२२३, २५.
 क्षयिज् a priest who officiates at the sacri-
 fice ७७०, ७१, ७२, ७३, ७६, ७९, ८३, ९०,
 १०३४, १२५२, ७८, १३९२, १४६८, ७७,
 १६०६, १०, ६४, १९२६, ७०, ७२, ८५.
 क्षय N. of a semi-divine being ९२२.
 क्षय the male antelope १८४०.
 क्षय a bull १००२, १२३३, १६०६, २१.
 क्षयि a sage ८१२, १३, ६१, ९५६, ११०९, १२५८,
 ६०, ६१, ६२, ८२, ८३, ८४, १३४९,
 ७४, १६५६, १८३९, ४०, १९८०, ८१.
 क्षयिसंबन्ध relation by descent from the
 same *Rshi* १०३३, १४६४.
 क्षयिशृङ्ग N. of a sage १३२९.
 एकक्षयायाप्रविष्ट vide एकक्षयायाश्रित ७१२.
 एकक्षयायाश्रित involved in similarity (of debt)

- with one debtor (said of a surety who binds himself to an equal liability with one debtor i. e. to the payment of the whole debt) ६६७, ७१२, १२८१.
- एकजात sprung from one father १२३७, ३८, ४५, ६४, ७२, ७९, ९०, १३४८, ८४, १५८३.
- एकजाति a *S'ūdra*; once born १७७५, ८८.
- एकतीर्थिन् inhabiting the same hermitage १५०९.
- एकदेश a portion or division of the whole ७४९, ८६३, १०४०, १६८७.
- एकद्रव्य the whole undivided property ११८४.
- एकधन some choice portion of the entire wealth ११६४, ८३.
- एकपत्नी a woman who has only one husband १०६२, १११३, १२६४, ७२, ९३, १३४८, ६२, ८४.
- एकपर्व one joint १६८७.
- एकपाक cooking food in one house (i. e. living jointly) ११४१, ४२, १५८८.
- एकपुत्र having only one son; an only son ११६६, १२४५, ५१, ५२, ८३, १३७०, १५७०.
- एकमत्त faithful to only one १८५५.
- एकमुख having only one chief, superintendent or agent १६७९, १९०४, १०.
- एकवर्णि of the same caste or origin १२४५.
- एकरिषिभन् sharing the same heritage १३२२.
- एकवर्णिक belonging to one and the same caste ९५५, १०३०.
- एकशफ one-hoofed beast ११८३, १२०८, १९३८, ५९.
- एककीपुत्राः sons born of the same mother ११८४.
- एकस्य living together; joint ८६३, १६७६, १९८३.
- एकंश a single part or share ११८४, १२४३, ४६.
- एकान्तर next but one ११०४, ०५, १२८८, १८४७, १९८३.
- एकोढा wife of one husband १२७९.
- एकोदक a kind of relative १५३०.
- एकोदर a uterine-brother १५६२.
- एकोद्दिष्ट a funeral ceremony having reference to one individual recently dead ११५७, १३७७.
- एदिषिपुःपति the husband of a younger sister whose elder sister has not been yet married ९९६.
- एष fuel ९१२, १६५७, ६५, १९१७.
- एनस् sin; offence १५१२, ९४, १६५६, ५९, १७५१, ५७, ९३, १९६१, ६३, ६४.
- एरका a kind of grass १९३८.
- ऐश्वर्यक a descendant of *Iksvāku* १००५, १९८९.
- ऐन्द्र belonging to *Indra* १६२२.
- ऐल्लष a descendant of *Ivāsā* ८१२.
- ऐश्वर्य ownership; supremacy; abundance of property १०२९, १२३४, १७०२, १९८१.
- ऐहिक pertaining to this world ७२४, २७.
- ओक an abode; dwelling place १२५३, ५४.
- ओदन boiled rice; grain mashed and cooked with milk १६७९, १७१८, १८९६, १९३८.
- ओषधि a plant ६०१, ८६३, ९९०, ९७, ९८, १००२, ०४, ११२१, ८१, १६७१, १७५९, ६०, १८२३, १९२५, ३८.
- ओष्ठ the lip १६३८, ५३, १७९६, १८०२, २९, ३२, ८७.
- औक्ष pertaining to a bull ९९८.
- औक्ष see औक्ष ११४४.
- औदनिक a cook १६७९.
- औदन्य(व) N. of a *Rshi* १६०१, ०२.
- औदुम्बर made of *Udumbara* tree १६६८.
- औदारिक forming the part to be set aside as a preferential share १२४६.
- औदाहिक a present received on marriage १२११, १५, ३२.
- औपजङ्घनि a descendant of *Upajanghan* १२७१.
- औपनिधिक relating to or forming a deposit

१९२९.
 ऊसर saline (soil) ७८६, १९७४.
 ऋत्थ property; inheritance १०२६, १२४०,
 ८३, १३१९, ४७, ४८, १४२७, १५६१, ८०,
 १९६२.
 ऋत्थग्रहीन् one who takes inheritance १३८९.
 ऋत्थहर an heir ७८६, १५१७.
 ऋत्थान्निच्छित्ति continuity or non-cessation of
 inheritance १५२९.
 ऋत्थिन् an heir ६९१ ८०४: १२२३, १३५०, ५५,
 १५६९.
 ऋत्वेदवाद saying or proclamation of
Rgveda १११९.
 ऋण debt ५९९, ६००, ०१, ०३, ०४, ०५, १०,
 ११, २२, २५, २८, ४७, ५१, ५५, ५८, ६०,
 ६२, ६४, ६६, ६९, ७२, ७४, ७५, ७६, ७७,
 ७८, ७९, ८०, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ९०,
 ९१, ९२, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, ७००, ०२,
 ०३, ०४, ०६, ०७, ०८, ०९, १०, ११, १२, १३,
 १४, १५, २०, २१, २३, २५, २६, २९, ३०,
 ३१, ३३, ३५, ८६, ९४, ८०५, ०८, ३०, ३२,
 ७५, ७६, ९००, ११५१, ९७, १२०२, ०७, २१,
 २२, २९, ५९, ६१, ६२, ७१, ७९, ८३, ८४, ८५,
 १३५६, १४४१, ५८, १५६८, ६९, ७१, ७३,
 १६१३, १७८७, १८४०, १९०२, ०३, ८७.
 ऋणकृति one to whom praise is due as debt
 ६००.
 ऋणकृत purchase by money lent out be-
 forehand ९००.
 ऋणचित् giving heed to worship (paid as a
 debt by men to gods) ५९९.
 ऋणच्युत् inciting to fulfilment of obligation
 ६००, १२५८.
 ऋणनिर्मुक्त free from debt १२८५.
 ऋणभाज् liable for debt ६९५, ७००, ०८.
 ऋणमोचन discharge of debt १३५५.
 ऋणया going after or demanding (fulfil-
 ment of) obligation ५९९, ६००, ०१.
 ऋणयावत् relieving from debt or obligations
 ६९९.

ऋणव being in debt; indebted ६०५.
 ऋणवत् debtor; being in debt ६०१, ९५, ७१४.
 ऋणवन् see ऋणवत् १२५८.
 ऋणशेष balance of debt ७३१.
 ऋणसमवाय aggregate of debts; several debts
 ७१६, २९,
 ऋणादान recovery of debt ६२२, २८, ७५०,
 ९४.
 ऋणावत् being under obligations; indebted
 ५९९, ६००, १८९५.
 ऋणिक a debtor ६३१, ५१, ५४, ५५, ५६, ६०,
 ६२, ६७, ७०, ७६, ८९, ७०५, ०६, २४, २५,
 २६, २७, ०८, २९, ३०, ३१.
 ऋणिकुल family of a debtor ६५४.
 ऋणिद्रव्यार्पण discharge of debt ६७६.
 ऋणिन् a debtor ६२९, ४९, ५१, ५२, ५३, ५८,
 ६०, ६९, ७१, ७६, ७०६, २४, २५, २६, ३०,
 ८३२, १२२१, १९६४.
 ऋत truth; sacrifice; right; rite ५९९, ९६७,
 १२५५, १५९६, १८३६, ३७, ३८, ९५, १९८०.
 ऋतु the menstruation; female puberty
 १०१९, २०, २१, २२, २८, ४२, ५७, ९६, १८४८
 १९७७.
 ऋत्विङ्न्याय occupaion of an officiating priest
 १२२३, २५.
 ऋत्विज् a priest who officiates at the sacri-
 fice ७७०, ७१, ७२, ७३, ७६, ७९, ८३, ९०,
 १०३४, १२५२, ७८, १३९२, १४६८, ७७,
 १६०६, १०, ६४, १९२६, ७०, ७२, ८५.
 ऋत्सु N. of a semi-divine being ९२२.
 ऋत्स्य the male antelope १८४०.
 ऋत्सम a bull १००२, १२३३, १६०६, २१.
 ऋषि a sage ८१२, १३, ६१, ९५६, ११०९, १२५८,
 ६०, ६१, ६२, ८२, ८३, ८४, १३४९,
 ७४, १६५६, १८३९, ४०, १९८०, ८१.
 ऋषिसंबन्ध relation by descent from the
 same *Rshi* १०३३, १४६४.
 ऋष्यशृङ्ग N. of a sage १३२९.
 ऋच्छयाप्रविष्ट vide ऋच्छयाश्रित ७१२.
 ऋच्छयाश्रित involved in similarity (of debt)

with one debtor (said of a surety who binds himself to an equal liability with one debtor i. e. to the payment of the whole debt) ६६७, ७१२, १२८१.
 एकजात sprung from one father १२३७, ३८, ४५, ६४, ७२, ७९, ९०, १३४८, ८४, १५८३.
 एकजाति a *Sūdra*; once born १७७५, ८८.
 एकतीर्थिन् inhabiting the same hermitage १५०९.
 एकदेश a portion or division of the whole ७४९, ८६३, १०४०, १६८७.
 एकद्रव्य the whole undivided property ११८४.
 एकधन some choice portion of the entire wealth ११६४, ८३.
 एकपत्नी a woman who has only one husband १०६२, १११३, १२६४, ७२, ९३, १३४८, ६२, ८४.
 एकपर्व one joint १६८७.
 एकपाक cooking food in one house (i. e. living jointly) ११४१, ४२, १५८८.
 एकपुत्र having only one son; an only son ११६६, १२४५, ५१, ५२, ८३, १३७०, १५७०.
 एकभक्त faithful to only one १८५५.
 एकमुख having only one chief, superintendent or agent १६७९, १९०४, १०.
 एकवर्णि of the same caste or origin १२४५.
 एकविविधन् sharing the same heritage १३२२.
 एकवर्णिक belonging to one and the same caste ९५५, १०३०.
 एकशफ one-hoofed beast ११८३, १२०८, १२३८, ५९.
 एकलीपुत्राः sons born of the same mother ११८४.
 एकस्थ living together; joint ८६३, १६७६, १९८३.
 एकंश a single part or share ११८४, १२४३, ४६.
 एकान्तर next but one ११०४, ०५, १२८८, १२४७, १९८३.

एकोदा wife of one husband १२७९.
 एकोदक a kind of relative १५३०.
 एकोदर a uterine-brother १५६२.
 एकोद्दिष्ट a funeral ceremony having reference to one individual recently dead ११५७, १३७७.
 एदिधियुःपति the husband of a younger sister whose elder sister has not been yet married ९९६.
 एध fuel ९१२, १६५७, ६५, १९१७.
 एनस् sin; offence १५१२, ९४, १६५६, ५९, १७५१, ५७, ९३, १९६१, ६३, ६४.
 एरका a kind of grass १९३८.
 ऐश्वाक a descendant of *Iṣvāku* १००५, १९८९.
 ऐन्द्र belonging to *Indra* १६२२.
 ऐल्ल a descendant of *Ilūśā* ८१२.
 ऐश्वर्य ownership; supremacy; abundance of property १०२९, १२३४, १७०२, १९८१.
 ऐहिक pertaining to this world ७२४, २७.
 ओक an abode; dwelling place १२५३, ५४.
 ओदन boiled rice; grain mashed and cooked with milk १६७९, १७१८, १८९६, १९३८.
 ओषधि a plant ६०१, ८६३, ९९०, ९७, ९८, १००२, ०४, ११२१, ८१, १६७१, १७५९, ६०, १८२३, १९२५, ३८.
 ओष्ठ the lip १६३८, ५३, १७९६, १८०२, २९, ३२, ८७.
 औक्ष pertaining to a bull ९९८.
 औक्ष see औक्ष ११४४.
 औदनिक a cook १६७९.
 औदन्य(व) N. of a *Rshi* १६०१, ०२.
 औदम्बर made of *Udumbara* tree १६६८.
 औदारिक forming the part to be set aside as a preferential share १२४६.
 औदाहिक a present received on marriage १२११, १५, ३२.
 औपजङ्घनि a descendant of *Upajanghan* १२७१.
 औपनिधिक relating to or forming a deposit

- ७३५, ४५, ४७, ५०.
 औपनिषदिक concerning secrecy १९२४.
 औपपातिक one who has committed a secondary crime; relating to उपपातिक १४०१.
 औपासनावक्षणाग्नि half burnt fire used for domestic worship १०१६.
 औपा(प)थिक fraudulent ८९९, १६९३, १७६४, १९२९.
 औरस a self-begotten legitimate son १२३९, ६३, ६४, ६५, ६८, ७०, ७७, ७९, ८२, ८८, १३०२, १८, २०, २२, २४, २९, ३०, ४६, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५५, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ८३, ८४, ८५, ८९, ९९, १४०१, ५०.
 और्ण woolen १७३५.
 और्ध्वदेहिक any funeral ceremony १११४, १३५०, १५२३, १९८३.
 और्व N. of a *Rshī* १२५८.
 औन्ननस originated from *Us'anas* ११८४, १६१४.
 औषध a herb; medicine १०२४, १६६१, १७१२, १७, १९२२, २४, ३०.
 कंस brass metal १६१४, ७५.
 कक्ष a dry forest १९४४, ७४.
 कक्ष्या a rope; girdle ९७८, १८३६.
 कच the hair (esp. of the head) १७९४, १८९१.
 कच्छप a tortoise १९८३.
 कन्चुक a dress fitting close to the upper part of the body १९७७.
 कट dry grass or straw ९२६.
 कटक a bracelet १७६७.
 कटाग्नि fire kept up with dry grass or straw १६३९, ५३, १७६०, ६५, १८४४, ५०, ६४, ८६, ९१.
 कटि the buttock १७६५, ९६, १८०२, २८.
 कण्टक a thorn; any troublesome seditious person; a certain bird १६०६, ९२, ९४, १७०८, १९२९, ३०, ६५.
 कण्टकशोधन extirpating thieves or rogues १६७३, ७९, १७९९, १८२४.

- कण्टकोद्धरण see कण्टकशोधन १६९२.
 कण्ठ the neck १६१५, १८८७, १९१३.
 कण्डू N. of a man १३७६.
 कण्व N. of a *Rshī* १२८८.
 कदर्य a miser १५९३.
 कदली the plantain or banana tree ९६२.
 कद्र N. of a daughter of *Dakṣa* ८४०.
 कनक N. of a man १३७६.
 कना see कन्या ९८१, १८३६.
 कनिष्ठ youngest ११४९, ८४, ८५, ८९, ९२, ९४, ९८, ९९, १२३५, ६०, १३२९, ५५, ९८, १३२१, १५४३, १९८३, ८४.
 कनिष्ठांश a share of the youngest ११८४.
 कनी see कन्या ९६३, ६९.
 कनीनक a youth ९८०.
 कनीयस् younger ११५९, ८४, ९५, १२३४, ८३, १३२९, ९१, १५९१, १८४१, ९३, १९८४.
 कन्द a bulbous or tuberous root १६१४.
 कन्धरा the neck १६१७, १७९६, १८१७.
 कन्यका see कन्या ९७५, १११६, ९५, १३७५, १४१३, २१, २२, १५८७.
 कन्यकाजात the son of an unmarried maiden १३३१.
 कन्यना see कन्या ९७५.
 कन्यला see कन्या १००३.
 कन्या a girl; (unmarried) daughter; virgin; maiden ७०३, १२, ८१७, ६०, ६३, ७९, ८१, ८२, ९६५, ७१, ७२, ७५, ९६, १०००, ०२, १४, १९, २१, २३, २४, २८, २९, ३०, ३४, ४१, ४२, ४३, ६९, ७२, ७८, ८३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ११०१, ०३, ०९, १३, १६, १७, १८, १२००, २८, ३१, ३४, ७३, ८५, ८६, ८७, ९४, १३०६, २९, ५०, ७४, ७६, ८४, १४१६, १७, २२, २७, २९, ४०, ४७, ५३, ६०, ६२, ६३, ७३, १५२५, ७५, १६०९, १८, १७६५, ७०, १८४३, ४७, ४८, ४९, ५०, ६६, ६७, ६८, ६९, ७५, ८३, ९२, १९५०, ७५, ७८, ८५, ८६, ८८. ।
 कन्यागत acquired at the time of daughter's marriage ११२९, १२२८.
 कन्यागर्भ the son of a maiden (before wed-

- lock) १२८८.
- कन्यादातृ (a father) who gives a girl in marriage १०४१.
- कन्यादान giving a girl in marriage १०३४.
- कन्यादोष fault, crime or blemish relating to an unmarried girl ८७९, १०९७, ९८.
- कन्यापहरण abduction of a girl १७६१.
- कन्यापहारिन् an abductor of a girl १८४९.
- कन्याप्रकर्म defilement of a girl १८४८.
- कन्याप्रद see कन्यादातृ १०७७.
- कन्याप्रदान giving a daughter १९४३.
- कन्याप्रसविनी begetting only a female offspring १०३४, १४३१.
- कन्याभाग the share of a maiden १४१६, २९.
- कन्यालङ्कार ornaments worn by a girl १४१६, २८.
- कन्यासमुद्भूत offspring of an unmarried girl १३०६.
- कन्याहरण see कन्यापहरण १७६६.
- कपाल a cup १५९६, १९६६.
- कपिञ्जल the francoline partridge १५९७.
- कपूय bad; detested १५९२.
- कस्यु the penis ९८८.
- कवच headless trunk or body १६८७, १८५०, १९२४.
- कमण्डलु a vessel made of wood used for water by ascetics १३८४.
- कमल N. of a woman ९८२.
- कमल lotus १९८५.
- कम्बल a woolen blanket १६७३.
- कर tax; hand; a doer ८९८, १६११, १२, २६, ३८, ५०, ६९, ८२, १७०१, २७, ३७, ४६, ८१, ९६, ९७, १८१६, १७, ३०, ३१, ३२, ३४, ३५, ७६, ८७, १९०३, २७, ३०, ४१, ४२, ६६, ६७, ७०, ७३.
- करक a water-vessel १६७२.
- करच्छेद cutting off of the hand १६६९.
- करण document; evidence; act; transaction; act of proving ६३८, ८०, ७१५, १९, ३४, ३७, ८५, ८५९, ६१, ६२, ७१, ७२, ९९७, १०२९, १२६१, १५५७, १६०५, १३, ६१, ७३, ७६, ८०, १७७२, ९५, १८५०, ८७, १९०५, १५, ३३, ४१, ४४, ७६.
- करद a tax payer ८९८, ९३२.
- करप्रतिभू a surety for tax-payment ८९८.
- करप्रद that on which tax has been levied १९१४.
- करादान collection of tax १६७१.
- करार्थ revenue ७५४.
- करिन् an elephant १९७०, ७३.
- कर्ण N. of a king (the son of *Kumbhi*); the ear ८१८, ९०९, २६, १६१७, ३८, ५३, १७६९, ८१, ९४, ९६, ९९, १८१७, ३१, ३२, ४०, ४९, ५०, ७२, ८७, १९६४, ७०.
- कर्णकील the transverse beam ९२६.
- कर्तन cutting ९८४, १०५८, १११३, १७०९, ९६, १८२३, ४६, ७२, ८२, ८३, ८८, ९१.
- कर्तृ a maker; doer; perpetrator ६११, १२५४, १३५५, १६०९, ३२, ४८, ४९, ५६, ७१, ८२, ८४, ८७, ९०, १७९०, १८४९, १९६३, ६४, ७३.
- कर्त्य to be cut off १८६७.
- कर्त्य deed १८३७.
- कपास cotton ६२६.
- कर्मकर a wage-earner; labourer; servant ८१६, २५, २९, ४३, १९४१.
- कर्मकाल the time or period of work ८१७, ४०, ५५.
- कर्मकृत् a labourer ८२९, १७४७.
- कर्मचण्डाल a *Chandāla* by work or action ८३१.
- कर्मन् work; act; duty; occupation; product; the invisible result of good or bad conduct ६२७, ३४, ५५, ९५, ७०३, २०, २३, २६, २७, ५५, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७६, ७७, ८०, ८३, ८४, ८५, ८७, ९०, ९४, ८०८, १४, १७, १८, २०, २३, २९, ३१, ३४, ३५, ४३, ४४, ४५, ४६, ४८, ४९, ५३, ६०, ६१, ६३, ७०, ७९, ९४, ९३१, ४५, १०१२, २९, ४०, ११११, १७, १९, ८५, ९३, १२२३, ४३, ५५, ५९, ६२, ६६, ८३, ८४, ८६, १३२९, ५५, ८४,

१४०२, ०४, ०५, २२, २४, ३१, ४९, ५४, १५८३,
 १६०३, १०, १६, १७, १९, ४१, ४८, ५२, ५८,
 ५९, ६२, ६४, ७३, ७६, ७७, ८०, ८१, ८२, ८३,
 ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९५, ९६,
 १७०२, ४०, ४४, ४६, ५१, ६२, ६५, ७०, ७६,
 १८३३, ३५, ३६, ४७, ४९, ८७, १९०४, १७,
 १८, २१, २२, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०,
 ३१, ३३, ३५, ३७, ४०, ४१, ४२, ४९, ७४,
 ७५, ७६, ८१, ८२, ८६.
 कर्मनिष्ठापन termination of work ८४४.
 कर्मनिष्ठाक completion of the work (*Shām-
 shāstri*); the result of the previous
 work (*Ganapatishāstri*) ८४४.
 कर्मन्यास the giving up of work; leaving
 one's duties ८४२.
 कर्मप्राप्त subject to torture; criminal १६८६.
 कर्मफल fruit of labour ६५५.
 कर्ममूल regarding the religious duties ११२५.
 कर्मयोग performance of work ११२६.
 कर्मवध्य one who has committed culpable
 crime १६८७.
 कर्मवेतन wages for work; remuneration ८६१.
 कर्मवैषम्य inequality according to work ७७०.
 कर्मशुद्ध irreproachable as to the conduct
 १३४८.
 कर्मसंकरनिश्चय conviction regarding the error
 of religious duties ७७२.
 कर्मसंबन्ध relating to work or duty (agree-
 ment etc.); relation of religious duties
 ८४३, १०२२.
 कर्मसंयुक्तता connected with (bodily) labour;
 (interest) to be recovered only by
 physical labour ६२९.
 कर्मस्पर्धा competition in profession १६१५.
 कर्मस्वामिन् a master ८४८.
 कर्मन्त completion of work; work-shop
 १९२८.
 कर्मपराध mistake in treatment १६७६.
 कर्मभिग्रह seizure in (criminal) act १६८२,
 ८५.

कर्मिन् a labourer; workman; performer of
 an act ७७९, १२२२, ३०, १६५४.
 कर्तव्य a village; market-town; capital of a
 district ५६२.
 कर्शण making thin (the wealthy by exac-
 ting additional revenue) १९२४.
 कर्ष a particular measure; pulling १६७७,
 १८१६.
 कर्षक a cultivator; peasant ६८०, ७२७, २९,
 ७१, ७९, ८६, ८९, ९०, ८४३, ६१, ९१८, १९,
 २९, ३२, ६०, १६६१, १९६७, ६८, ८२.
 कर्षण tormenting; torture; cultivation;
 tillage ८६१, ९३२, १७९५.
 कलञ्ज the flesh of an animal struck with
 a poisonous weapon ७९४, १६७०, १९६८.
 कलत्र a wife १११५.
 कलविङ्क a sparrow १५९७.
 कलह strife; quarrel ८६१, ६२, ६३, १६१८, ४०,
 १८००, १८, १९, ३१, १९७९.
 कलाभिज्ञ knowing the craft ७८७, ९०.
 कलि N. of the last and worst of the four
yugas or ages; quarrel; strife; N. of the
 die or side of a die marked with one
 dot; the losing die ११०९, १५, १८, १३७३,
 ७४, ८४, १६५५, १८९७, ९८, १९०१, १४, ३०.
 कलियुग N. of the last and worst of the
 four *yugas* or ages; the present age
 १११८.
 कल्प a sacred precept; law ८१६, १०२४.
 कल्पना ascertainment १७७४.
 कल्याण happiness; beautitude; agreeable; a
 festival ८०७, ९२४, २६, ४२, १०५२, ५३,
 ७६, १३९१, १६२८, १९२७, ७८.
 कल्याणो beneficial; a good lady ९७०, ७१, ७९,
 ९७, १२८४, १८४०.
 कवच N. of a sage ८१२, १३.
 कव्य oblation offered in *Shrāddha*; offering
 to Manes ८१९, १२४४, १५१३, २६.
 कशष्कौ the hinder parts (originally of
 beasts of burden) ९७४.

कसा flogging १६८७.

कशीका N. of an animal; a weasel (by *Sāyana*); pole-cat (by Fick); female ichneumon (by Geldner) १६६.

कश्यप N. of a *Rshi* ७९१, ९२, ८४०, ९९६; १२८२, ९४, १९८५.

कांस्य white copper or bell-metal ६०९.

कांस्यकारक a worker in white copper or bell-metal १९६६.

काक a crow १६०६.

काम्बुजी a cowrie used as a coin १६१७, ७५, १९०५, ६७, ६८.

काकुत्स्थ a descendant of *kaikutstha* (here *Dusharatha* and *Rāma*) १०७५, ७६.

काचभाण्ड a vessel or article of glass १६१४

काञ्चन gold १९४०, ६७.

काठक a particular branch of *Black Yajurveda* १९७८.

काण one eyed; monocular ७८७, ९२०, ९२, ११८१, ८०, १५९९, १७७०, ७१, ७२, ७७, ८७.

काण्डवृष्ट any other than a natural son; the son who has left his original family १२६६, १३५२, ८४, १९३८.

काण्व a patronymic १६६५.

कात्यायन N. of a sage ६५७.

कात्यायनी N. of one of the wives of *Yajñ-valkya* १०१०, १४०५, २४.

कानिक see कानीन १३५५.

कानीन the son of an unmarried damsel १२६३, ६५, ७०, ७३, ७९, ८२, ८४, ८६, ८७, ८८, १३०६, २०, ३१, ४६, ४७, ४९, ५१, ७३, ७४, ७५, ७६, ९०, १९८०.

कान्ता a wife १३०५, ७४, १६८२.

कान्तार a forest १११०, १८५०, १९२२.

कान्तारग woodgoing; a forester, an outcaste ६११, २०.

कापिल्य derived from *kapila* १२६०, १९८१.

काम desire; love; passion; lust; sensuality; love or desire personified ६८५, ९६, ७०३, १५, ७१, ८०५, १६, १८, ३४, ५१, ५८, ६३,

९५४, ५९, ६८, ७२, ७७, ८१, ८६, ९२, ९६, ९७, ९८, ९९, १००१, ०६, १०, १७, २८, २९, ३४, ४९, ५३, ६०, ६१, ६६, ६८, ७५, ७७, ८८, ९७, ११००, ०१, ०३, १०, १२, १४, १९, ८५, १२०४, ४३, ७०, ७३, ८४, ८५, १३०९, ३८, ९१, १४०३, २८, ३०, ४८, ६०, १६१६, २७, ४०, ५५, ७६, १७२४, १८३५, ३६, ३७, ४७, ५०, ६६, ८८, ९१, ९४, ९६, ९७, १९००, ०४, १२, ३०, ६३, ६४, ७४, ७६, ७७, ८१, ८३, ८८, ८९.

कामकारणीय (property) to be enjoyed according to one's own free will १४३०.

कामकृत (debt) contracted through lust or sensuality ७१३, १६६५.

कामक्रेलि amorous sport १११९.

कामक्रोधप्रतिश्रुत (debt incurred) by promises made under the influence of love or anger ७०८.

कामचार free or unrestrained act ९१४, १०१७, २७, १२८४, १६१०, ५३.

कामचारिणी a licentious woman १०१७, २४, १३९०.

कामज (son) begotten of desire or sensuality ११९७, १३९५, ९६, १८७०, १९८७.

कामदान voluntary payment; gift for the sake of satisfying passion ६८०, ७९४, ८०७, १६७६.

काममृता strongly affected by love ९७७, १८३६.

कामशल्या love-pointed ९९८.

कामसाधक means of sexual enjoyment १८८७, ८८.

कामिन् desirous; amorous, enamoured ९७२, ९६, ९८, १८८८.

कामुक enamoured or in love with; a lover ८५१, ६३, ९९४, १६१९.

कामोत्थाप्य to be sent away at will ८१३.

काम्पीलवासिनी dwelling in the town named *Kāmpila* ८४१.

काम्बोज a native of *kāmbōja* ८६२.
 कान्य voluntary rite; desirable; lovely,
 beautiful ८७२, ९८८, १००६, ११२८, ८२,
 १९७९.
 काय body १०५३, १७९८, १८३२.
 कायकर्मन् bodily work or labour ६३५.
 कायस्थ a particular caste of scribe १९३२.
 कायविवरोधिनी (interest) paid regularly
 without diminishing the principal
 ६२४, ३४.
 कायिका (वृद्धिः) (interest) paid regularly
 without reducing the principal ६०७,
 १५, २४, २९, ३०, ३४, ३५.
 कार a doer; (property) obtained in the
 shape of taxes ६७४, ७३४, ८८९, ११३१,
 १६७५.
 कारक a doer ८६१, ९४२, १५११, १६३४, ८०,
 १७६५, १९६५.
 कारण cause; reason ६२८, ७१०, ११, ३०, ८०६,
 ४०, ५५, ९८, १०२८, २९, ५९, ७६, १२८१,
 ८५, ८६, ८७, १३४८, १५५८, १६१६, १८, २३,
 ५५, ८४, ८६, १७५३, ५७, ८७, १८३४, ५३,
 ८५, १९१०, २२, ३६, ४३.
 कारणमदान possession (of a holding) on
 some reasonable ground ९२९.
 कारणपदेश some (reasonable) cause; pro-
 position of reason ६११.
 कारयित् a person causing to exceed (the
 rate of interest); see कारक ६११, १६८७,
 ९०.
 कारिता (वृद्धिः) stipulated (interest) ६०७, १५,
 २४, २५, २९, ३१, ३५, १६८३, १९१०.
 कारिन् a servant; worker; doer of an act
 ८११, ४१, १०१४, १११५, १३२९, १६००, १०,
 १७, ५०, ५३, ९४, १७५७, ८३, ९७, १८२६,
 ८७, १९२१, २९, ३३, ६७, ७१.
 कारु an artizan ७३७, ८४३, ११२१, १६१७,
 ७६, ७७, ७९, १७३०, ७२, १८५३.
 कारु see कार १६७३, ९५, १९२९, ३५.
 कारुण्यसित् a master of artisans १६७३.

कार्तान्तिक an astrologer ८६३, १६७९.
 कार्तिक N. of the 8 th month १९७९.
 कार्पास cotton ६०९, १०, ३४, ३५, १६७०, १७१८,
 ३५, ४७, १९३८.
 कार्पाससौत्रिक cotton-cloth or thread १७३५.
 कार्पाससिन्धु a cotton seed ९५०.
 कार्मार a mechanic ११२१.
 कार्मिक an embroider; artisan ७६४, १७३५.
 कार्य law-suit; duty; affairs; work; subject
 of dispute ७५२, ५३, ५४, ५५, ९०, ८००,
 ०४, ०५, ०६, ०७, ०८, १८, ३८, ४९, ५१, ५६,
 ६१, ६७, ६८, ७३, ८१, ८९, ९४५, ५२, ५७,
 १०१५, ७७, ९५, १११२, १६, १९, ८५, ९८,
 १३२९, ८४, ८५, ९१, ९४, १५७९, १६०३, २१
 ३२, ४८, ४९, ५०, ५२, ५३, ५४, ७३, १७१२
 १३, १७, ५३, ६७, १८१४, ८७, १९०७, २२,
 २६, २८, ३०, ४१, ४२, ६५, ६९, ७८.
 कार्यकालमिता vide कार्यकालमिति ८५६.
 कार्यकालमिति (wages) stipulated for a certa-
 in work to be done in the fixed period
 ८५६.
 कार्यघातिन् one who spoils work ८०८.
 कार्यचिन्तक taking care of a business; mana-
 ger of a business ८६८, ७३.
 कार्यज्ञ prudent ११४७.
 कार्यनिर्णय decision of a dispute ९५१.
 कार्यप्रसाधन accomplishment or fulfilment of
 work ८०५.
 कार्यप्रसिद्धि vide कार्यप्रसाधन ८०५.
 कार्यमाना (wages) fixed according to the
 estimation of work ८५६.
 कार्यविपत्ति failure or loss in action or enter-
 prise ७९५.
 कार्यसिद्धि fulfilment of the object ७५३, ८९९.
 कार्यािक vide कार्यािन् १६३२.
 कार्यािन् a party to a suit either as plaintiff
 or defendant; a doer १६३२, १७०१.
 कार्यािपण a particular copper coin ९०५, ३९,
 १४२८, १६०९, १३, ३१, ६८, ७२, १७७०, ७१,
 ७७, ८७, ९३, ९८, १८४७, १९२९, ४२, ४४, ६८.

- कार्णायस iron ११८४.
 कार्मन् a particular wood १९७७.
 काल time ६१८, १९, ३१, ७२४, ५४, ५७, ६१, ८०४, ५४, ८४, ८९, ९२०, १०२१, २४, ३१, ४२, १२३१, १४५२, १६१८, ७३, ७९, ८२, ८३, ८४, १७०६, १२, १७, ३५, ३८, ७१, ९५, १८७१, १९००, २०, २१, २२, २७, ३०, ४२, ४५, ५४, ६४, ६६, ६९, ७४, ७८, ८५.
 कालकवन black-forest; N. of a forest १९२०, २१.
 कालकृत (आधि) (a pledge) redeemable within a certain period ६४३.
 कालखण्ड N. of a race of *Asuras* १६०३.
 कालमाना periodical-wages; salary ८५६.
 कालवृद्धि periodical interest ६१५.
 कालसंरोध lapse of the (stipulated) period; keeping for a long time ६३८, ५०.
 कालस N. of a hell १२८६.
 कालायस iron १६१४, ७५.
 कालिका periodical interest ६२४, २९, ३५, ८५६.
 काव्य coming from the sage *Us'anas* १३९१.
 काश्यप N. of a sage ११८४, १२४५, ८५.
 काश्यपीबालाक्यामाठरीपुत्र N. of a teacher १९८२.
 काषायवसना wearing a brown garment (as by a widow) १०२८.
 काषायवस्त्र brown garment १९४३.
 काष्ठ wood ६३०, ३५, ८७, ८५१, ५२, ९९, १६१४, १५, २१, ३०, ७२, ७४, ७७, १७३३, ४४, ४९, ६०, ६६, ९६, ९९, १८००, ०६, १६, १९, ३०, ४३, ६५, ९०, १९२४, ३३, ६५, ६६.
 कासन coughing १७९१.
 किंशुक N. of a tree ९३३, ३५.
 किङ्कर a servant ११११.
 किण cicatrix १६८५.
 किण्व substance from which spirituous liquor is extracted ६१०, २६, ३०, १७१८.
 कितव a gambler ७१५, ८१२, ४२, ९७९, १६६९, ९३, १७१०, ४६, ५८, ५९, ६४, १८९०, ९४, ९५, ९७, ९८, ९९, १९०२, ०४, ०८, ११, १३, १४, १५, २९.
 कित्विष fault; blame; sin ६०१, ०२ ०३, ७५, ७५८, ८३, ९०९, १६, १६००, ०८, ४८, ५६, ६७, ६८, ७०, ७२, १७०२, ०३, ११, २१, ५१, ५२, ८७, १८१०, १२, ३९, १९०२, २८, ५७, ६०, ६९, ७४.
 कित्विषिन् guilty; sinful ९०९, १६, २०, १११८, १६७२, १७६३, १८३५, १९६२.
 किष्कु a kind of measure ९२६.
 कीट a worm; insect १६०९, १५, १७९७.
 कीनवश a peasant; cultivator ७८७, ८४२, ९२४, ५१, १२४६.
 कीर्ति fame; renown ८४२, ९९७, १०१६, २६, ६४, ८५, ८८, ११९३, १३९०, १६४८, १९८१, ८४, ८५.
 कुकुर N. of a people ८६०, ६२.
 कुकूल chaff; a hole filled with stakes; fire of chaff १६७०.
 कुक्कुट a cock १६१७.
 कुक्कुटक the offspring of a *Ugra* by a *Nisādi* woman ११८५.
 कुचेल a bad or dirty garment १०१६, २४, १३८७, ९०.
 कुञ्जर an elephant ९१९, १७३६.
 कुटुम्ब a family ६७९, ८०, ८२, ९१, ९६, ९८, ९९, ७०८, १२, ९९, ८०२, ०५, २८, १०२८, २९, ३९, ११४७, १२२१, २९, ७३, १४३२, १५८८, १६८२, १७२३, २५.
 कुटुम्बकामा desirous of a second marriage; desirous of progeny १४३०.
 कुटुम्बार्थ household expenses; the family property ६९८, ८१७, ११९८, १५८४.
 कुटुम्बाविरोध without harm to the family ७९६.
 कुटुम्बिक a householder १६८९.
 कुटुम्बिन् head of the family; a householder ६७९, ९६, ९४९, १४०७.
 कुड्य a wall ९२६, २७, ५३, ५९, १६१०, ८३, ८५, १८००, २१.
 कुण्ड lame; mutilated ९२०.

- कुण्ड son of a woman by another man while the husband is alive १०१४.
- कुण्डल an ear-ornament १३६३, ८४, ८५.
- कुतप a garment made of goat's hair १९३८.
- कुत्स N. of a *Rshi* ११६०.
- कुनखिन् having bad or diseased nails ९९२, ९५, १५९१, ९२, ९९.
- कुन्ती N. of a woman १०२८, १२८४, ८५, १३७६.
- कुपित angry; enraged ११५५, १९३०.
- कुपुत्र a bad son १३१६, १९८७.
- कुप्य base metal ६३०, ३२, ३५, ५०, ८७, ८३५, ९९, १५१३, २६, १६३४, ८२, ८४, ८९.
- कुम्भव a bad boat १३१६, १९८७.
- कुम्ब्य headless body; vagina १८७४.
- कुमेर N. of a deity ८६०.
- कुम्भक a plant ९३३, ६१.
- कुमार a youth; child ७९१, १२५९, ८१, १३७४, १६६६, १८९४, १९८४, ८९.
- कुमारक see कुमार ८६२, १००७.
- कुमारिन् having youngsters ९७४.
- कुमारी a maiden; virgin; daughter ७९१, ८१४, ९७४, ९७, १००८, ०९, ११, १२, २१, ४०, ४२, १२८६, १४२९, ६३, १५२७, १८४३, ४४, ४९ १२४४.
- कुमारीदाव inheritance of an unmarried daughter १४२८.
- कुमारीपुत्र son of a virgin १९८०.
- कुमारीभाग the share of an unmarried daughter १४२९, ३७.
- कुमार्य virginity १००१.
- कुम्भ a jar; a particular measure ९५०, ६१, ६११, ६३, १३९३, १६०९, २१, ७१, १७१४, ५०, १९८१.
- कुम्भी a particular measure (of grain)
- कुम्भीनसि N. of a demon १०३२.
- कुम्भीपाक burning in a vessel १८५०.
- कुम्भ N. of a demon ९६४.
- कुम्भिर a kind of ornament १०००.
- कुम्भ N. of a people ८६२, १०१०, २७, ३३,
- १२४३, ४४, ८५, ८६, १३९०, १४२९, १९६७, ८१.
- कुल a family; clan; congregation ६४५, ७३१, ८१४, १७, ६१, ६२, ६३, ७४, ९३६, ६३, १०१४, १८, २३, ३०, ३१, ३५, ३६, ३८, ४६, ५२, ५३, ५९, ७६, ९६, ९८, ११०१, ०२, ०६, १६, ९७, ९८, १२२७, ३१, ३२, ६१, ६६, ८३, ८५, १३२९, ५२, ५६, ७३, ७६, ८४, १४०१, ५६, १५२०, ५५, ७५, ८१, १६०८, ४८, ८५, १७८४, ८९, ९१, १९१७, २२, ३१, ३२, ४१, ४३, ४४, ६४, ७७, ८३, ८४, ८५.
- कुलघ्ना destroying a family १०३३.
- कुलज born in a good family ७३८, ४७, १५२१.
- कुलजात see कुलज १३७३.
- कुलटा an unchaste woman १६५३.
- कुलधर्म family custom १२८२, १९१८, २१, २२, ३१, ४२, ८४.
- कुलपा the chief of a family or race or tribe; the head of a house ९२४, २६.
- कुलपालिका vide कुलयोषित् १५२३.
- कुलयोषित् a high-born woman ११११.
- कुलवृद्ध the oldest member or head of a family ८६१.
- कुलसंकर violation of a family; family-confusion १०१४.
- कुलसंतति propagation of a family; a descendant १०६२, १११३.
- कुलसंनिधि the presence of the member of a family ७४४, ५९, १०५७.
- कुलसंबन्ध relation of a good family १०३२.
- कुलस्त्री a high-born woman १०२६, ३२.
- कुलातुम्ब्य a family-feud १५८१
- कुलाय a receptacle; home १००१.
- कुलिक a kinsman १६३४.
- कुलीन belonging to a good family ७८४, १०२२, ३२, १३५६, १०६९, ७१, १७११, १९२७.
- कुलोद्भव sprung from a good family ८७३.
- कुलोपाध्याय family-priest ७११.
- कुलमल the rod of an arrow ९९६, १४६४, १६००.

कुल्य a kinsman; relative ८००, ६३, ९२८, ५१,
१०४०, १२०३, ४५, ५१, १५१३, २५, १६००,
१९२२.
कुल्या a small river; canal ९२४.
कुश grass १३६३, ८४, १६७२, १९३८.
कुशल expert ७८८, ८४३, १६७४, १७०८, ३५,
४६, ६८, १९१८, २७, ६६.
कुशिक N. of a *Ekhi* १२६१, १३७६.
कुशील्व an offspring of a *Vaidēhaka* by an
Ambasthā woman; a bard; actor ८४३,
११८५, १६१७, ७६, ७९, १७१०, ७२, १८९२,
१९०७.
कुष्ठ leprosy; a kind of plant ८७९, ८१,
९९७, १०३०, ३४, १७७२, १९६५.
कुष्ठिन् leprous ८८१, १०३४, १११८, १३९१,
१४०४.
कुसिन्धु a trunk १६०६.
कुसीद loan; debt; usury; lending money
at interest; lending in kind (and not
in coin) ६०१, ०४, ०७, २४, २८, ५३, ७९,
७१५, १६, ८१९, ११२४, २७, ३०, १५८१,
१९२७, ८५.
कुसीदपथ usurer's way (of behaviour) ६१४.
कुसीदविधि law of debt ७०६.
कुसीदवृद्धि legal interest for money lent
६०६, १२.
कुसीदिन् a usurer; money-lender ६०४, २४,
१९७१.
कुहक a cheat; rogue १०२५, १६७६, ७९, १७५८,
१९०५.
कुचक a wheel by which water is raised
from a well (Zimmer); female breast
(Roth) ९९०.
कूट hornless; false; fraudulent ११८१, १६१३,
१७, ४९, ६९, ७५, ८२, ८९, १७२९, १८१३,
१९२५.
कूटक a cheat १७२९.
कूटकर्तृ see कूटक १६११, ६९, १७६६.
कूटकर्मन् fraudulent act १९०४.
कूटकारिन् see कूटक १७६७.

कूटकृत् see कूटक १७२९.
कूटतुल्य a false scale १६६९, ७१, १७४६.
कूटदेविन् a cheating gambler १९०४, १४, १५.
कूटपण्य fraudulent commodity १७६७.
कूटप्रतिमान a false weight १६७१.
कूटमान a false measure १६६९, ७१, १७४६.
कूटरूप counterfeit coin १६७५, ८०.
कूटलेख्यकार one who produces a falsified or
fabricated document १६०९, ७१.
कूटवादिन् one who charges falsely १६११, ६९.
कूटव्यवहारिन् a deceitful merchant १६१८.
कूटशासन a forged grant or decree; a false
edict १६०९, १३, ३२, ७१.
कूटश्रावणकारक one who makes a false claim
(of debt) १६८०.
कूटसाक्षिन् a false witness १६११, १२, ८०,
१७५८.
कूटसुवर्ण (स्वर्ण) counterfeit gold (coin) १६८०,
१७३२, १९३२.
कूटाक्ष a false dice १९१३.
कूटाक्षदेविन् gambling with false dice १६६९,
१७५९, १९०३, ०९, १३, १४.
कूट्यवपात a hidden or unknown pitfall १६१७,
२०, १९२५.
कूप a well ६६०, ८९६, ९२६, ३१, ३७, ४२, ४४,
४८, ५०, ५५, ५८, ६२, १२२२, १६१३, २०,
१७१८, १९८५.
कूर्म a tortoise ९६१.
कूरमाण्ड a kind of pumpkin-gourd; N. of a
sacrifice १६०३.
कूच्छ difficulty; hardship; painful; auster-
ity; penance १६६५, ६८, ८१, १८४६, ८७,
१९२३, ४२, ७८, ८४, ८५.
कृत done; decided; the son made; the first
and best of the four *yugas*; N. of the
die or of the side of a die marked
with four points or dots ६१४, ४२, ४५,
४९, ५२, ७६, ९५, ७१३, ४८, ५३, ५६, ८५,
८५०, ६०, ६७, ८५, ९५२, १००१, ३३, ७६,
११११, १६, १८, १९, ३०, ८४, १२३४, १३४६,

४८, १४५२, १५८४, १६०१, ७२, ७४, ८३,
 ८५, ८७, १७०२, १८१३, १९, २९, ३०, ५०,
 ८५, ९०, ९१, ९४, ९७, ९८, ९९, १९००, ०१,
 ०३, ०८, ११, १२, १५, २९, ३०, ३३, ३५,
 ३६, ३९, ४०, ४३, ६६, ८३, ८५.
 कृतक one enslaved for a stipulated period;
 the son made; artificial ८३२, १२८७, ८८,
 १६८१, १८५०.
 कृतकामियुक्त one under the pretence of havi-
 ng been charged १६८०.
 कृतकाल (a pledge) deposited for a certain
 time; appointed time ६५४, ८२४, ३२.
 कृतकालोपनेय (a pledge) to be redeemed
 within a certain stipulated period ६४८.
 कृतदार married; one who has obtained a
 wife १०७५, १३९१.
 कृतदुर्ग one who has built a fortress १६९२.
 कृतपण one on which wager has been laid
 १९१३.
 कृतप्रतिभू one who has furnished a surety
 ७२८.
 कृतभार्य see कृतदार १३७३.
 कृतयुग the first and the best of the four
 Yugas or ages ११०९.
 कृतलक्षण marked; branded ७३७, ९१९, २०,
 १६२७, ८१.
 कृतवेतन paid ९१२.
 कृता an appointed daughter १२९७, १३००,
 ५०, १५१६.
 कृतागस् one who has committed an offence
 १८२९.
 कृताङ्क marked; branded १६०९, १७९६, १८०२,
 २८, ४७.
 कृतान्न prepared food १२०४, ०६, ०९, २२, ३१,
 ३२, १७४५, ५०, १९८८.
 कृतोदाह married १३७३.
 कृत्तिका a constellation १००८.
 कृत्य occupation; festival ६०९, ८६२, १११९,
 १९३१.
 कृत्वा a kind of female evil spirit or sorcer-

ess; sorcery; magic; enchantment ९८३,
 १००३, ०४, ३३, ५३, १६२१, ३१, ८०, १९३०.
 कृत्रिम artificial; the son made ९२९, १२६३,
 ६९, ७०, ८०, ८४, ८७, १३०५, २०, ३४, ५१,
 ५५, ५६, ७३, ७४, ७५, ७६, १७३३, ५९,
 १९८२.
 कृत्रिमक see कृत्रिम १३५२.
 कृमि a worm; insect ९०८, १६, १९.
 कृषि tillage; agriculture ७८६, ८७, ८१८, १९,
 ३५, ६३, ९८, ९२४, ४४, ७९, १११९, २४,
 २७, ३०, ३१, १६१७, १८९५, १९२७, ८५.
 कृषीवल a cultivator of the soil; an agricultu-
 rist servant ७८७, ८२८, ४९, ९६२, १०७१.
 कृष्ट ploughed; cultivated ९३०.
 कृष्टफल the product of a harvest ९४३.
 कृष्टराषि successful in agriculture ९२४.
 कृष्टसद see कृष्टफल ९५४.
 कृष्ण the god *Kṛṣṇa*; black (wealth);
 a black deer ८६०, ११२९, ३०, १८४०, ४५,
 १९२०, २१, ७३, ८३, ८७.
 कृष्णद्वैपायन N. of a sage १२८५.
 कृष्णधान्य black-grain ११८४, १३९०.
 कृष्णसृग a black deer १९२१.
 कृष्णयोनी black-race ८०९.
 कृष्णल a particular coin ८४४, १०५८, १६५४,
 ५७, ७०, १७१९, ६५, ६६, १८९०, १९६७, ६८,
 ७५.
 कृष्णा (त्वच्) black (race); N. of *Draupadi*
 ८०९, १०२७.
 कृष्णायस iron ११८४, १३९०.
 केत desire; wish; abode (*Sāyana*) ९८८.
 केदार a field ९००, ३०, ४४, ४५, ४८, ५८,
 १०७१, ७२, ११२७, ३१.
 केलि amorous sport १८५२, ८१.
 केश the hair of the head १६८५, १७९६, ९८,
 १८०३, १६, २९, ७१, ८७, ९१, १९३८, ७०.
 केशव N. of *Viṣṇu* ८६०.
 केशकेशि hand to hand or hair to hair
 १८५०, ७०, ८९.
 केशिन् N. of a people १००३.

- केसर the mane १९७३
 केसरिन् a lion; N. of a monkey (husband of the mother of *Hanūmān*) ८०७, १३२९.
 कैकेयी N. of the wife of *Das'aratha* १०२८.
 कैंट produced from an insect (cloth, silk etc) ६३२.
 कैलास N. of a mountain १३७७.
 कैवर्त a fisherman ९३७, ५१.
 कोप anger १६१४, ५१, १७५२, १८०१, १९३०, ३३, ४१, ८३.
 कोप्या acceptable (current coin) १६७५
 कोश store-room (indicating corn); wealth; a kind of ordeal; treasury; body of the chariot ६३५, ८६०, ६१, ६२, ६३, ७३, ९२८, ४९, ५८, १०००, १२२२, ३०, ४४, १५८२, १६१२, ५५, ६३, ७१, ७५, ८९, १७६५, १९२८, २९, ३०, ४१, ४९, ५०, ५६, ६२, ६५, ६७, ६९, ७०.
 कोष्ठ a granary ९२७, १६२९, ८९, १७१३, १९२९.
 कौटल्य N. of the author of *Arthashastra* ८४४, १०३८, ४०, १२०७, ८८, १६१४, १८००, १९०४.
 कौटसाक्ष a false evidence १९६४.
 कौटिलीय relating to *Kautilya* १०३४.
 कौटुम्बिक relating to family ८२८.
 कौत्स N. of a *Rs* १६६५, १९८२.
 कौत्सीपुत्र N. of a teacher १९८२.
 कौन्तेय a son of *kunti* १०३३, १२४४, १९८३, ८६.
 कौमार infancy; youth ७०३, १०२०, २७, ३१, ४५, ६२, ७६, ९९, ११०३, १८, १२७३, ८४, ८५, ८७, १३८८, १५५५, १९७७.
 कौमारी a maiden १११५.
 कौरव relating or belonging to *kurus* १२८३, १९६४.
 कौल belonging or relating to a family १५८८.
 कौलक potter's ware १६७२.
 कौशिक a descendant of *Kushika* १३७६, १७६१.
 कौशेय silk-cloth १६४६, ७३, १७३५, ४५, ४७, १९३८.
 कौसल्या N. of *Rāma's* mother १०२७.
 कौसीदी connected with or relating to loan; usurious ६३८, ५०.
 क्रतु a sacrifice; performing designs; intelligence; intention ७७१, ७२, ८११, ९६३, ७०, ७४, ९६, ९८, १०१९, २१, २२, २८, ४२, ५७, ९६, ११५९, १८९६, १९७१, ७७, ८५.
 क्रम order; succession ६२८, ३०, ९१, ७०२, ०८, २५, ३०, ३१, ६८, ८३४, ४८, ५१, ६२, ९००, २८, १०४०, ९४, १११०, १२१५, २४, १५०९, २२, २७, ८४, १६४७, ५२, १७४८, ८५, ९२, १८२२, २४, ३३, ८०, ९६, १९०५, ३०, ४२, ४३, ६२, ८४, ८६.
 क्रमागत hereditary; (property) obtained by inheritance ७८३, ८०७, ३०, ९४९, १११०, ३१, ८०, १२२८, ५२, १४७३, १५२७, ६९, ८९, १९८३.
 क्रमायात descended; hereditary ७०९, ८६, ८०३.
 क्रमुक the betel nut tree ९६२.
 क्रमोद्ग married in order (of the castes) १३५०.
 क्रय a purchase ६३२, ६०, ७३१, ५२, ५४, ५९, ६०, ६२, ६४, ६६, ६७, ६८, ७५, ८९, ८७९, ८९, ९०, ९१, ९६, ९८, ९९, १००, ०१, १११८, २२, २६, २९, ३०, ४१, १४२४, ६३, १५६८, ७५, ८६, १६७४, ७७, ७८, ८१, १७०७, ३१, १९०४, २७.
 क्रयधर्म the right to purchase १२६८.
 क्रयमूल्य price of a commodity purchased ७५४.
 क्रयविक्रय sale and purchase; trade ७८५, ८८८, ९८.
 क्रयविक्रयण see क्रयविक्रय ८९८, ९९.
 क्रयविक्रयधर्म law regarding purchase and sale ८८६, ९८.
 क्रयविक्रयानुशय rescission of purchase and sale

१४९.
 क्रयविक्रयिन् one who purchases and sells; a
 trader ७७८, ८४, १७०६, ३१, १९२७.
 क्रयसिद्धि validity of purchase ८९६, ९८, ९०१.
 क्रयिन् a purchaser ८८८, ९३, ९७, ९९.
 क्रव्याद consuming flesh; a carnivorous
 animal ११६२, १२५९, ८७.
 क्राणा willingly (Monier Williams); doing;
 doer ११६०.
 क्रिमि a worm; insect १९२५.
 क्रिया evidence; transaction; work; duty
 ६६२, ७०, ७४, ८०, ७०४, ३२, ३३, ३४, ८४,
 ८६, ८०५, ७२, ७३, ७४, ८२, ८६, ८९, ९४५,
 १०५५, ११०६, १२, २९, ३०, ९३, १२३४, ८८,
 १३०५, १४५७, १५८०, ८२, १६१६, ४३, १७१०,
 ४६, १८५२, ८१, १९०५, ०७, १४, ३०, ४१.
 क्रि(क)यान्त (a pledge) ending in purchase
 ६३७.
 क्रियाभेदा: various claims ६२८, ७३४.
 क्रियाभ्युपगम a contract १०७४.
 क्रियालोप discontinuance of any of the
 essential rites १३१०.
 क्रियावाद a law-suit १९४१.
 क्रियावादिन् claiming judicial investigation
 ७२७.
 क्रियासमूहकर्तृत्व performance of a joint trans-
 action १५८२.
 क्रीडा sport; play ८६३, १०२६, ८५.
 क्रीत purchased (a thing; son; slave) ७३२,
 ३३, ३५, ६४, ६६, ६७, ६८, ८१७, २१, २९,
 ३२, ८८, ९०, ९४, ९७, १११८, २६, १२६३,
 ६५, ७०, ७८, ७९, ८३, ८४, ८८, १३२०, ३४,
 ४६, ४८, ५५, ५६, ५८, ७२, ७३, ७४, ७५,
 ७६, १५२०, १६११, ८३, १८३७, ८५, ८९,
 १९२८, ८५.
 क्रीतक (the son) purchased १२६६, १३०८,
 ५१ ८४.
 क्रीत purchased ९९५, १३७७.
 क्रीतानुज्ञय rescission of purchase ८९३.
 क्रुद्ध enraged ७९३, ८०४, १३, १०७५, १५७३,

१६५४, १७०३.
 क्रूर a rogue; criminal १६८५, १७१०, १९०७,
 १४.
 क्रेतु a purchaser ७५७, ६०, ६१, ६३, ६५, ६७,
 ६८, ६९, ८१७, ७८, ८३, ८५, ८६, ९०, ९१,
 ९३, ९४, ९६, ९९, ९००, ०१, २८, १६११, ७८,
 ८०, १७३२, ५५, ५९, ६२.
 क्रेष commodity ८९१.
 क्रोध wrath; anger ६९५, ७१३, ८००, ०५, १३,
 १९, ६१, ९५२, १०२०, ४९, १२८४, ८५,
 १६१६, ४५, ४७, १७८७, ९१, १८३३, ४१, ९९,
 १९१४, ३१, ३६, ६३, ६४, ६५.
 क्रोश a measure of distance १६६४, १७४३.
 क्रीब impotent ८०५, ४२, ९९२, १०३४, ५६, ९८,
 ११००, ०७, १२, १६, १७, १८, ६४, १२६९,
 ७०, ७३, १३०४, ५०, ८७, ८९, ९१, ९२, ९३,
 ९४, ९८, १४०४, १५९९, १७७२, १८४०, ८१,
 ८८.
 कल्पसांश prescribed share १५२३.
 क्लेश pain; torture ९४७, १६१९, ८६.
 क्लेशदण्ड painful punishment १६१९, १९७०.
 क्लैब्य impotency; imbecility ९५१, १७७२.
 क्षत wound; injury ८९३, १११६, १६४७, ४९, ८२,
 १८२४, ९१.
 क्षतयोनि deflowered १०९५.
 क्षता (a woman) enjoyed; defiled १०८८,
 १३३१.
 क्षत्त (त्ता) see क्षत् ११८५.
 क्षत् १ a chamberlain; the son of a *Sūdra*
 man and a *Kṣatriya* woman १००९,
 ११०५, ८५, १८४०.
 क्षत्र vide क्षत्रिय ७२९, ८३६, ३७, ११२२, ८५,
 १४६४, १५१८, १६००, १७६२, ७४, १९३१, ३६,
 ४३, ६१.
 क्षत्रज begotten by a *Kṣatriya* १२४९, ५१.
 क्षत्रधर्म the duty of a *Kṣatriya* १६६७.
 क्षत्रवृत्ति occupation of a *Kṣatriya* १९३७.
 क्षत्रिय a member of the second caste; a
 member of the warrior-race ८०३, १३,
 १४, १७, १८, १९, २०, १०२२, ३३, ३९, ९३,

११०५, १६, २२, २३, ३१, ८४, ८७, १२३९,
४०, ४३, ४४, ४५, ५१, ८७, ८८, १३६५, ९६,
१५१२, २४, ३०, १६०६, ०८, १०, २०, ३६,
७०, १७२१, २६, २७, ५२, ६६, ६९, ७१, ७२,
७३, ७४, ८८, ९०, ९२, १८३८, ४६, ५०, ५९,
६०, ६३, ६४, ९०, १९२७, ३२, ३६, ५०, ६५.

क्षत्रिययोनि a race of *Ksatriya* १५९२.

क्षत्रियवध homicide of a *Ksatriya* १६०६.

क्षत्रियश्रेणि a corporation of warriors ८६२.

क्षत्रियस्व property of a *Ksatriya* १२४४.

क्षत्रिया a woman of the second caste ११००,
०५, १२, १२३९, ४३, ४४, ८७, १८५९, ६०.

क्षत्रियाजात a son by a *Ksatriya* wife १२५१.

क्षत्रियापति a husband of a *Ksatriyā* १०९३.

क्षत्रियापुत्र see क्षत्रियासुत १२४०, ४४, ४५.

क्षत्रियासुत son of *Ksatriyā* ११०५, १२४६, ४७.

क्षपण abstinence; interruption; spending
१४०४, ६६, १९२३, ७८.

क्षय expenditure; loss; decrease ७०७, ३७,
५७, ८१, ८५, ८१८, ६१, ८६, ९२, ९५, ९४७,
५२, १०१४, ६५, ११०२, १२८३, १३७३, १४७३,
१५५३, १६७४, ७५, १७०७, ३५, ४६, ४७, ४८,
१९२७, ३०, ४३, ८५.

क्षयाह a lunar day that is omitted in the
adjustment of the lunar and solar
calendar १५८९.

क्षत्र the dignity of a ruler १९३६.

क्षत्रसंमहीतृ charioteer and driver १००९.

क्षार caustic alkali १६७८, ८०, १९३८.

क्षिति the earth; the soil of the earth; des-
truction ९४०, ४५, ५७, १२४३, १६०१, ९५,
१९२९, ५६, ५७, ६६.

क्षीण diminished; wasted; lost १६८२, १७२३,
४८, ६६, १९६५.

क्षीब intoxicated १११६.

क्षीर milk ८३५, ९१९, १६००, ७०, १७१८, ६५,
१९०१, २५, ६७.

क्षीरभृत (a servant) receiving wages in the
form of milk ९०७.

क्षीरिन् N. of several plants containing a

milky sap ९३३.

क्षुद्(ष्) hunger ७०३, ११०३, १६८६, १७२७,
१८३१, ३४, १९००, ६६.

क्षुद्र very small; trifle ७८७, १६३४, १७४४,
५९, १८००, १०, १९१४, ७६.

क्षुद्रकद्रव्य minute or trifling thing १०३६,
१६१४, १७, १८००.

क्षुद्रव्य see क्षुद्रकद्रव्य १६७०, १७३८, ४५.

क्षुद्रपशु a small cattle; a minor quadruped
९०५, ०६, ३१, १६१४, १७, २१, १७४९, १८००,
२२, १९२२.

क्षुप a small tree १८२३.

क्षेत्र a field; landed property; woman; wife

६०७, २९, ५३, ५४, ५७, ५८, ६१, ७३१, ५७,
६४, ६७, ८६, ८७, ८०३, ०७, १४, ४२, ९०,
९५, ९६, ९८, ९९, १०३, १०, ११, १३, १४,
१६, १७, १९, २०, २२, २५, २६, २८, ३२,
३७, ३९, ४०, ४२, ४३, ४६, ४८, ४९, ५२,
५४, ५५, ५६, ५८, ६०, ६१, ६२, १००२, २७,
७०, ७४, ११०२, ०३, १५, १७, ८०, १२०१,
२२, ३०, ३२, ५२, ६३, ६४, ६७, ६९, ७१, ७९,
८४, ८७, ८८, १३२९, ७४, १५६९, ७५,
८०, ८१; ८९, १६१४, १८, १९, ३९, ४२,
४६, ८९, १७२६, १८४०, ९६, १९२२, ४३, ७५,
७६, ८८.

क्षेत्रज the son begotten on the wife (by
an appointed man); the son of an app-
ointed wife (by an appointed man)
९४४, १०८९, ११९२, १२६३, ६४, ६५, ६९,
७०, ७२, ७९, ८२, ८३, ८७, ८८, १३०४, १०,
२०, २२, २४, २५, २९, ३०, ४६, ४८, ४९, ५०,
५१, ५२, ५५, ७३, ७४, ७५, ७६, ९९, १४०१,
१९०५, ८२.

क्षेत्रजात see क्षेत्रज १२८८, १३३०.

क्षेत्रपथहिंसा the destruction of fields and
roads ९०६.

क्षेत्रमर्यादा boundary of a field ९२६.

क्षेत्रविरोध dispute or quarrel regarding land-
ed property ९२५, ४४.

क्षेत्रविवाद see क्षेत्रविरोध ९२९, ५१.

| | |
|---|--|
| क्षेत्रस्वामिन् owner of a field १४६, ६०, १२८७. | खल threshing-floor; granary १०६, ३०, १६१९, ३९, ८९, १७२६. |
| क्षेत्रहर one who illegally takes possession of a field १६०८, २६. | खलति bald-headed १९२, १५९९. |
| क्षेत्रहानि damage of a harvest ७८७. | खराजात N. of a people १७०२. |
| क्षेत्रांश a portion of the arable land १५१९. | खात digged; ploughed १२७, ३०, ४८, ११३१, १५९८. |
| क्षेत्राधिकार ownership of land ९४४. | खादक a debtor ६६१. |
| क्षेत्रापहर्तृ see क्षेत्रहर १६५४, ५५. | खादिर made of <i>khadīra</i> wood १७०२. |
| क्षेत्रिक a land-owner; husband १०३, ११, ३२, ४८, ६०, १०७४, ११०२, ०३, १२८२, १३१८, ४७, ४९, १७१४. | खिल a piece of uncultivated or waste land ९४८, ६०. |
| क्षेत्रिन् see क्षेत्रिक ८३९, ९५, ९१४, ६१, ६२, १०७०, ७४, १११७, १२७२, ८२, ८८. | खिलोपचार expense incurred in tilling the waste piece of land ९४८. |
| क्षेत्रिय an adulterer १३८७. | खुर a hoof १९७६. |
| क्षेप a throw; abuse १६२१, १७६९, ७०, ७९, ८१, ८२, ८९, १९६७. | खेत a village; residence of peasants and farmers ९६२. |
| क्षेम residence १२३३, १६६४, १७६०, ८१. | खोर old ११८१. |
| क्षौणी the earth ६३७. | गङ्गा the river Ganges १९२०, २१, २४. |
| क्षौम linen १६७३, १९३८. | गज an elephant १०५, १६०९, ६९, १७४५, ९७, १८१०, ३५. |
| क्ष्मा the earth १८३७, ४१. | गण a guild; assemblage of kinsmen; flock; tribe; corporation ५९९, ८६१, ६९, ७०, ७१, ७२, ७५, ७६, १०७६, ९८, ११०५, ११, १५२७, १८९५, १९२२, ३२, ३३. |
| खग a bird १९७८. | गणक an arithmetician; accountant १७५९, १९१४. |
| खल lame ७८७, ९२०, १७७०, ७१, ७२, ७७, ८७. | गणद्रव्य goods belonging to a corporation or tribe. ८५९, ६७, ७६. |
| खट्वा a cot १७४५, १८५२, ८१. | गणन counting; calculation १७६३. |
| खण्डाधि a pledge or security for the specific interest on the amount lent ६३७. | गणनाकुशल an accountant ७२७. |
| खदिर a kind of tree १९६५. | गणभेद division or difference in a tribe ८६१. |
| खनमान a digger ९६८. | गणमुख्य the head of a tribe or guild ८६१. |
| खनि a mine (esp. of precious stones) १६७५, ८८. | गणिका a courtesan १०२५, १८४९. |
| खनित्र a spade; shovel ९६८. | गणिन् member of a community or tribe ९४४, ५१, ५५. |
| खनित्रिम produced by digging ९२४. | गणित anything that is computed ८८६, १७५०. |
| खर an ass; donkey ६९५, ८५४, ९०४, ०५, ०६, १३, १७७१, १८३४, ४५, ६९. | गण्डिका trunk of a tree १९२४. |
| खरपट्ट N. of a book (dealing with robbery) [by <i>Ganapatishāstrī</i>]; the back of an ass (<i>Shāmskhāstrī</i>) १६८७. | गण्डूष N. of a son of <i>S'ūra</i> १३७६. |
| खरयान a donkey-cart १६७२. | गण्य to be calculated १६७७. |
| खर्वर a kind of date १७६१, ६३. | गतप्रत्यागता (a damsel) who having gone to |
| खर्वि crippled; a baked pot (<i>Sāyana</i>); a dwarf ९९२, १५९९. | |
| खर्बुर a mountain-village ९१३. | |

- her husband's house has returned back (upon his death) १०१९, १३०९.
- गन्ध perfume; smell ९७३, ९८, १०२६, ७६, १११३, १८, १२२३, १३७६, १६०२, ४५, ६५, ७१, ७८, ८२, ८५, १७२९, ९८, १८८१, ८५, ८७, ८९, १९३८.
- गन्धर्व a class of deities ९७६, ८५, १००१, ०२, ०३, ०८, ८६, १८३६, ४५, १९०२.
- गन्धारि N. of a people ९६६.
- गम the vulva १८३७.
- गम see गमन १८७४, ७९.
- गमन going; co-habitation; sexual-intercourse ८३९, ६२, ६३, १०३०, ३६, ९८, १६०६, ०९, ८२, १८४२, ४६, ४७, ४८, ५०, ८३, ८६, ९०, १९१९.
- गम्या approachable; (a woman) fit for co-habitation १०२०, १८७७, ८३.
- गम N. of a *Rshi* (son of *Plati*) ९९६.
- गया N. of a city in Northern India १३२९, ४९, ५०, ५२, १९८२, ८७.
- गरुणीर्ण poisoned १६००.
- गरुद a poisoner १६०८, ०९, २६, ५३, ५४, ५५, ७१.
- गरुप्रद see गरुद १६१२.
- गरुड N. of a mythical bird ८४०.
- गर्तृ a hollow; a table for playing at dice ९५३, ६१, १२५५, १९४१.
- गर्तानूप (a field) which has many holes, and is wet ७८७.
- गर्तारुह ascending the seat of dice १२५४.
- गर्तारोहिणी see गर्तारुह १२५५.
- गर्दभ an ass ८१०, ९०५, १११३, १६४४, ५३, १८११, ४८, ८६, ९०.
- गर्भ the womb; an embryo ६०५, ८१७, ९६८; ७६, १००५, २१, ३८, ४७, ८३, ८६, ११०२, १३, १८, १२३६, ५४, ५७, ५९, ८७, ८८, १३०८, ३४, ७४, १५६८, ८७, १६००, १८, ३४, ३७, ५१, ५२, १८३६, ३९, ८७, १९२२, ७९, ८५, ८९.
- गर्भघ्नी an embryo-killer; procurer of abortion १०१४, १६५३.
- गर्भपात miscarriage; abortion १८८७.
- गर्भमर्मण्या provision for confinement ८१७.
- गर्भवध abortion १०२१, ८६.
- गर्भविर्लसिनी see गर्भघ्नी १०९९.
- गर्भसंभव pregnancy; impregnation १०८९.
- गर्भस्थ situated in the womb ६०५, ११८०.
- गर्भाधान impregnation; impregnation rite ११०२, १४२२.
- गर्भिणी a pregnant woman ९३९, ११०१, ०६, १२७०, ७३, १३०७, १४०२, १६१९, ३१, ८७, १९२७, २९, ४६.
- गल the throat १७६०, ९४.
- गवत्र a cow ९१८.
- गवाक्ष an air-hole ९५८, ११११.
- गवालम्भ killing a cow at a sacrifice १३७३.
- गवाशिन a cow-eater १९४१.
- ग(गा)वेषुक a particular grain १८९७.
- गात्र a limb १६८५, १८२४.
- गाथा a verse; song ८११, १०००, ७१, १११६, १२८६, १९२१.
- गाथिन a son of *Gāthin* १२६१.
- गाथि N. of the father of *Vishvāmītra* १३७६.
- गान्धर्व a horse; the form of marriage called after the *Gandharvas* which requires only mutual agreement ८९९, १०३४, ९६, ९८, १४३०, ३९, १९७८.
- गान्धार N. of a people or country (*Afgānistāna*) १७७२.
- गायन a singer ७८७, ९०, ८६३.
- गार्गीपुत्र N. of a teacher १९८२.
- गार्गीयमानव a descendant of *Garga* and *Manu* ८०५.
- गार्भ woman's property १९८३.
- गार्हपत्य the householder's fire ९८३, ८५, १००२, ०५, ०७, ०९, १८९६, १९८५.
- गार्हस्थ्यनैयमिक rites obligatory on the order of a house-holder १९२१.
- गार्हस्थ्यार्ह household affair १६६८, १७९५.

शिखरि a mountain १९२१.
 शीत a song ११०७, १३६४.
 शुच्छ a bush १८२३.
 शुक्ल a particular measure १९६८.
 शुद्ध a kind of sugar ६०९, २६, ३०, ३२,
 १६७०, १७१८, २९.
 शुण quality; virtue; fold ६०७, ०८, ०९, १०,
 २१, २६, २८, ३०, ३२, ३४, ३५, ६०, ६१, ६८,
 ९५, ७३१, ३५, ५०, ५४, ५६, ६४, ७८, ८४,
 ८०३, ५१, ६०, ७५, ७८, ८५, ९४, ९०६, ०९,
 १७, १९, ४७, ५२, ५७, १०१९, २६, ३१, ४२,
 ५३, ६०, ७०, ७१, ७७, ९६, १११४, ९३,
 १२३८, ४४, ५१, ८०, ८४, ८५, १३०५, २६,
 ७३, ९१, ९२, १४०२, १५८३, १६१४, १३, ३५,
 ६४, ६९, ७०, ७२, ७३, ७७, १७०६, १४, १७,
 २१, ३३, ६७, ८४, ८९, ९०, ९१, ९८, १८०६,
 ३०, ३२, ४९, ५१, ६५, १९२७, ३०, ३६, ४४,
 ६७, ६८, ७०, ७६, ७९, ८४, ८८.
 शुणक्त्वं endowed with good qualities ८५६,
 १०१९, १२३९, १३२८, १४०३, १६१३.
 शुद्ध the anus १७९६, १८०२, २९.
 शुप्त secret; hidden; protected ९०६, १०२३,
 १६००, ५२, १७६२, १८४२, ४६, ५८, ५९, ६२,
 ८५, ८६, ८७, ८९, ९२, १९४९.
 शुक any venerable or respectable person
 (father, mother or any relative older
 than one's self); a spiritual parent or
 preceptor; *Bṛhaspati*; weighty ७०३,
 ८००, ०७, १५, २४, २६, ३४, ३९, ६०, ६१,
 ९४५, ५९, ९९, १०२०, २२, २३, ६६, ८९, ११०१,
 ०२, ०३, १०, १२८३, ८४, १३६४, ९२, १४३०,
 ५६, ७३, १५१३, २६, २९, १६१२, १३, १८,
 २४, २७, ३७, ५५, ६८, ७२, १७०३, ५१, ७०,
 ७१, ७७, ८५, १८२६, २७, ३५, १९३०, ३३,
 ३६, ६५, ६६, ७३, ७४, ७६, ८३, ८४.
 शुक्ल the house of a teacher ६११.
 शुक्ल having sexual intercourse with
Guru १०२१, ११११.
 शुक्ल teacher's family १३६५.
 शुक्लिका a woman who murders her *Guru*

१६१९.
 गुरुतल्य a teacher's bed; the violation of a
Guru's bed (intercourse with his
 wife) १५९२, १६०६, ०९, २७, ८७, १८४७,
 १९७०.
 गुरुतल्पग see गुरुतल्प ७७२, १०६६, ११०१, १५९२
 १६०३, २७, १८७४, ८२.
 गुरुदक्षिणा the fee given to a preceptor ८२६
 १०२१.
 गुरुनियोग appointment by a *Guru* ११०१.
 गुरुपत्नी wife of a *Guru* १०६४.
 गुरुपरिकर्म requiring much skill १६७४.
 गुरुप्रमापणी one who murders her *Guru*
 १६३८.
 गुरुप्रसता one who has obtained the per-
 mission of her *Guru* १०१२.
 गुरुलाघव importance and unimportance;
 gravity or otherwise १६१८, १९३०, ६६.
 गुरुशास्त्र the great law १९८३.
 गुरुशुश्रूषण obedience or service to one's
Guru १११०, १५२३.
 गुरुशुश्रूषा see गुरुशुश्रूषण ८३४.
 गुरुस्त्री wife of a *Guru* ११०६, १८९१.
 गुर्वीणी a pregnant woman १६११, १९४४.
 गुल्फ the ankle १०२५.
 गुल्म a bush; shrub ९३३, ५०, १६०९, ७०, ९५,
 १७१९, ९८, १८००, २३, १९२२, २९.
 गूढ concealed; concealed property; the son
 begotten secretly १०३८, ९९, १२२२, ३०,
 १३०६, ४७, ५१, १६७०, ८२, ९५, १८५४,
 १९२९.
 गूढचारिन् going about secretly; spy १६९४,
 १७४१, १९२९.
 गूढज a son born secretly; a kind of son.
 १२६९, ७०, ८८, १३३१.
 गूढजात see गूढज १२८८.
 गूढजीविन् living by foul means १६७९.
 गूढद्रव्य hidden property १६८५.
 गूढप्रणिहित secretly spying १७४६.
 गूढबल secret army १६८२.

गृहसंभव see गृहज १३७३, ७५.
 गृहाजीव living by fraud १६८०,
 गृहाजीवा a harlot ८६३.
 गृहाजीविन् see गृहाजीव १६७९, ८३, १००४.
 गृहोत्पन्न see गृहज १२६३, ६५, ६९, ७३, ८२, १३२०,
 ४६, ४९, ७४, ७६, ९०.
 गृहजनक a kind of onion or garlic १०२५.
 गृहजिम् N. of a son of *S'ūra* १३७६.
 गृह a house; abode; dwelling ६०४, २९, ३४,
 ५३, ५४, ५७, ९२, ७०३ ०८, १४, २५, २६,
 ३१, ३७, ४७, ५०, ५७, ६४, ८४, ९१, ८०३,
 ०५, ०७, १४, २६, २८, २९, ४०, ५१, ५४, ५८,
 ६०, ६३, ९६, ९८, ९०७, २०, २१, २६, २७,
 २८, ३७, ३९, ४६, ४९, ५२, ५६, ५८, ६०, ७०,
 ८०, ८३, ८५, ९१, ९४, ९८, १००२, ०३, ०४,
 ०५, ११, १४, २२, २६, २९, ३८, ५१, ११०६,
 १४, १५, १७, १८, १९, ४१, ४२, ६५, ६६, ८०,
 ८२, ८४, ८५, १२०१, २२, २३, ३०, ३२, ४४,
 ५२, ५९, ६९, ७३, ८८, १३०६, ३१, ५१, ६४,
 ७४, ९३, १४१५, ५२, ५४, १५६१, ६९, ७५,
 ८०, ८१, ८८, ८९, १६१०, १४, १८, २०, २४,
 ४२, ४६, ४९, ५४, ५५, १७२०, ४१, ५७, ६०,
 ६२, ६५, १८२१, ६६, ८१, ८५, ८६, ८७, ८८,
 ९६, ९७, १९२२, ५२, ६२, ६५, ७५, ७६, ७८,
 ७९, ८०, ८८.
 गृहकर्मज्ञ a servant doing household work
 ८३५.
 गृहकार्य domestic affair १०५९, १९७९.
 गृहक्षेत्रविवाद dispute regarding a house and
 land ९५१.
 गृहभ्रंश a house-breaker १७४६.
 गृहज born in the house (a slave) ८११, २५,
 १९२८.
 गृहजाल see गृहज ८१७, २९.
 गृहपति the master of a house १००१, ०५.
 गृहपत्नी the mistress of a house ९८३, १००४
 गृहविभाग division of a house १२३३.
 गृहविरोध dispute about a house ९२५.
 गृहविवाद see गृहविरोध ९५१.
 गृहस्थ a house-holder ७५०, १०११, २०.

गृहस्वामिन् see गृहस्थ ९२६.
 गृहाश्रम the order of a house-holder १११४,
 १९८२.
 गृहिणी the mistress of a house १११८.
 गृहिन् the head of a family ७०८.
 गृहीत taken; received ६३६, ७१६, २२, ५१,
 ५३, ६९, ८२८, ४४, ४६, ५३, ६३, ७८, ८३,
 ९१८, २१, ५७, १००८, ३६, १६५२, ५६, ८१,
 ८२, ८७, ९०, १७४१, १८७९, १९१४, ३३, ७७.
 गृह a house; dwelling ९९६, १०४८.
 गो an ox; cow; cattle ६०६, ७७, ७३१, ९२,
 ८०८, १०, ११, ३१, ५४, ९८, ९९, १०२, ०३,
 ०४, ०५, ०६, ११, १३, १५, १७, १८, १९, २०,
 २१, २४, ६३, ७५, ७९, ९०, ९६, १०००, ०३,
 ३४, ३६, ७३, ७४, ११०२, २१, २२, ६५, ८३,
 ८४, १२७२, ८५, १४०२, ६४, १५२६, १६००,
 ०१, ०६, ०७, १९, २७, ३८, ५२, ५३, ५४, ५५,
 ५७, ६९, ७२, १७१३, २२, २४, ४४, ४५, ४९,
 ५३, ६४, ६६, ९७, १८१०, ३४, ३५, ४६, ७६,
 ८४, ९२, ९५, ९६, ९७, १९००, ०१, २४, ४०,
 ४१, ५९, ६४, ६७, ७३, ७६, ७९, ८१, ८२,
 ८३, ८४.
 गोकुमारी a female calf १६२१, १८११, ३४.
 गोघातिन् a cow-killer १६०९.
 गोघ्न see गोघातिन् १८३१.
 गोचर्ममात्रा a piece of land large enough to
 be encompassed by straps of leather
 from a cow's hide ६३७.
 गोजीविन् an owner of cattle; living on (trade
 with) cattle ८३५.
 गोत्र a family name; tribe ८६१, १११८, १२८२,
 ८५, ८७, १३२७, ४७, ५६, ७२, ७४, ७६, ७७,
 ८४, १५२७, १६७६, ८२, ८५, १९४२.
 गोत्रज a kinsman १३७५, १४०१, ६३, ७९, १५२७,
 ६९, ७५.
 गोत्रबन्धुज a kinsman; relative १२८७.
 गोत्रभागविभाग division of the property of
 clan १५७५.
 गोत्रभाज् belonging to the family; inheriting
 the family name १२६३, ७१.

गोत्ररिक्तांशभागिन् inheriting the family name
 and a share in the property १३२५
 गोत्ररिक्तानुग that which follows the family
 name and the property १३२७.
 गोत्रसंबन्ध a relation bearing a common
 family name १०१३, १४६४.
 गोत्रसाधारण joint estate of the family १५६९,
 ८६.
 गोत्रान्तरप्रविष्ट one who has gone into a family
 of different nomenclature १३५२, ८४.
 गोत्रित्व the state of being a member of a
 family of specific nomenclature १३५८.
 गोत्रिन् belonging to the same family १२६६.
 गोधूम wheat १७२३.
 गोप a herdsman; cow-herd ६०९, ८३, ९९,
 ७०८, १४, ८४९, ९०२, ०७, १२, १४, १५, १६,
 १८, ३७, ४०, ४४, ५१, ६२, ८१, ९८, १००१,
 १६८५, १९७४.
 गोपति the lord of cow-herds ९०२, ०३, २१,
 १६००.
 गोपाल see गोप ६७७, ९०३, २१, २९.
 गोपालक see गोप ६८०, ८४३, १०३८, १६८२.
 गोपीथ see गोपीथ्य ९०३, ९२, १५९९.
 गोपीथ्य granting protection (of the earth)
 ९८९.
 गोप्य (a pledge) to be preserved or kept
 ६४८, ५०, ६०, ७३१.
 गोप्याधि a pledge to be kept and preserved
 ६३५, ३७, ४२, ५४, ५९, ६०, ७३१.
 गोपचार driving of the cattle; pasture for
 cattle ९१२, १२२८.
 गोमय cow-dung; full of cows १६७०, ६८, ८९,
 १७१८, ७१, १९८१.
 गोमायुलोक the world of jackals १०२२.
 गोमिशुन a bull and cow १०९८, १२८६, १३९०.
 गोमिन् the owner of cattle or cows ९१४,
 १७, १८, १९, १०७३, १२७२.
 गोमूग the *Gayal* (a species of ox) १५९४.
 गोमृक्ष see गोम ८७८.
 गोमूष्य rearing of cattle ११२७, ३१.

गोरस cow-milk १७४९.
 गोरु N. of a tree; a widow's bastard ७१५,
 १०१४.
 गोवध the killing of a cow १३८४, १६०६.
 गोवाल a cow's hair ९३४, ५०.
 गोविकर्त see गोवातिन् १८९७.
 गोवीर्य milk of a cow ८४९.
 गोवृष a bull ११८१, १२४३, ४६.
 गोशकट a carriage drawn by cattle ११८४.
 गोष्ठ cow-station १९४२.
 गोस्तेय stealing a cow १५९२.
 गोस्वामिन् see गोमिन् ९०७.
 गोहर्तु a cow-stealer १७६०.
 गौञ्जिक a jeweller १९०३.
 गौतम N. of a *Rsi* ८१४, १३४८, १७६२, १९१९.
 गौतमकुमार N. of a *Rsi* ७९१.
 गौतमी a female descendant of *Gotama*
 १०२७.
 गौरव importance; gravity १०३०, १७८५,
 १९६६, ८५, ८७,
 ग्रथिन् false १९७१.
 ग्रन्थिभेद a purse-cutter; pick-pocket १६१७,
 १७१३, ३७, ४८, ६०, ६५, १९२९.
 ग्रन्थिभेदक see ग्रन्थिभेद १६११, ६९, ७०, १७६४.
 ग्रन्थिमोचक see ग्रन्थिभेद १७४६.
 ग्रह a vessel used for taking up a portion
 of fluid (esp. of *Soma*); recovery; confi-
 nement; imprisonment; a planet;
 taking ७३९, ४७, ८६२, ९२५, ११६१, ६३,
 १३७९, १७१३, ७५, ८८, १८८७, ८९, ९१,
 १९२९, ७७.
 ग्रहण taking a deposit; capture; completion
 of studies; receipt; adoption; imprison-
 ment; adultery ७२९, ८९, ९०, ८१५, २६,
 ३६, ६३, ९२०, ११३०, १२८३, १३७३, १४७०,
 १५७५, ८०, १६५१, ८१, ८५, ८६, १७५२, ५४,
 ९४, १८८८, ९१, १९२५, ४३.
 ग्रहीन् one who receives; a depositary; a
 hirer; one who adopts a child ६५८, ८०,
 ७४८, ५१, ५३, ५४, ५६, ८५९, १३५६, ७३.

- ८४.
- ग्राम** village; village-court; villager; group; corporation ६५७, ७३५, ६४, ८१४, ५४, ६१, ६२, ६४, ६५, ७२, ७४, ९६, ९७, ९८, ९००, ०३, ०४, ०५, ०६, ०९, १०, १२, १३, १४, १६, १९, २०, २१, २५, २९, ३१, ३२, ३३, ३६, ३७, ४२, ४४, ४६, ४७, ४९, ५१, ५२, ५५, ५६, ५८, ६१, ६२, १०३६, ३८, १२२०, ६०, १३७२, १५८९, ९४, १६२०, ३९, ६४, ७९, ८१, ८२, ९७, १७४३, ४६, ५३, ५४, ६३, ७०, ७३, ८२, ८९, १८३९, ४९, १९२१, २२, २४, २९, ४२, ७६, ८५.
- ग्रामकूट** the chief of a village; village-assembly १६८०.
- ग्रामघात** village-calamity १६९८, १९२९.
- ग्रामणी** the chief of a village १००९.
- ग्रामदेव** the god or deity of a village ९०६, ४७.
- ग्राममर्तु** the head-man of a village १७४३.
- ग्रामवृद्ध** an old-villager ६३८, ९२८, २९, ११९९, १९५०.
- ग्रामस्तीमा** village-boundary ९४४, ५५.
- ग्रामस्वामिन्** see ग्राममर्तु १६२०.
- ग्रामपिप** see ग्राममर्तु १९२१.
- ग्रामाध्यक्ष** see ग्राममर्तु १७६३, १९२१.
- ग्रामिक** a villager; head-man of a village ९३२, १०३८.
- ग्रामीण** see ग्रामिक ९४९.
- ग्रामेयककुल** a crowd of villagers ९३६.
- ग्राम्य** domesticated; tamed (animals) ९०३, १५९४, १६०९, १७९३.
- ग्रस्त** a mouthful lump; food ९०५, १०२२, ३५, १६६५, १७२२.
- ग्रस्ताच्छादन** food and clothing ११९८, १२८८, १३४९, ५१, ५५, ८७, ९०, ९१, ९३, १४०३, ५७, १५२२, ८४.
- ग्रह** an alligator ९१८.
- ग्रहक** a creditor; one who seizes or takes captive ६३६, ९६, ७५३, १७४०, १८८७, १९१३, २२.
- ग्राहण** teaching १०३५.
- ग्राहि** a disease ९९९.
- ग्राह्य** to be seized or arrested १६८६, १७४१, १८४१, ४६, ७०, ८१, ८७, ८८, १९१४.
- ग्रीवा** the neck ९५१, १७८१, ९४, ९९, १८०३, २९, ४०.
- ग्रीष्म** summer-season १९२४.
- ग्लह** a game at dice ८१८, १३, १८९८, १९०८, ११, १४.
- ग्लहन** gambling १९०२.
- ग्लहवृद्धि** the fee at dice १९०३.
- घट** a jar १३९२, ९३, १७१८, १९६६.
- घटसर्प** an ordeal of serpent in a jar १९६६.
- घात** destruction; murder; corporal punishment; beating ९१३, १७, १८, २०, २१, १६१६, १८, ८९, ९०, १७४३, ९३, १८००, २७.
- घातक** a murderer; destroyer; १६१९, ४७, ४९, ५१, ५२, १८३५, १९१८, ६६.
- घातन** see घात १८३१.
- घातनीय** to be punished corporally १६४६.
- घातिन्** a killer; slayer; destroyer; pillager १६०९, ४७, ४९, १७३६, ४८, ६१, ९७, १९२५.
- घातुक** injurious ९०३.
- घृत** ghee ६०९, ३५, ९८९, ९६, १००७, १३८५, १६७०, ७१, १७१८, १९०१, ०२, ३८, ६६.
- घृतप्रतीका** one whose face is brilliant with ghee १००६.
- घृतान्त** one who has anointed his or her limbs with ghee १०६५, १११३, १६६८.
- घृताभ्यक्त** see घृताक्त १०८९, ११०१, १३.
- घोषा** N. of a woman ९६५, ७१.
- ग्राण** the nose १८३२.
- चक्र** the wheel of a carriage ९५९, १००१, १६१७, २१, ७२, १८०७, ३६.
- चक्रन्वर** a juggler; traveller १६७९.
- चक्रवाक** N. of a bird १६०६.
- चक्रवृद्धि** compound interest ६०७, १५, १८, २४, २५, २९, ३१, ३५, ६०, ७०६, ३०, ५४, ५६, ८९८.
- चक्रिस्थान** a stable for sheep and cattle ९२६.

चक्रोवत् driving a carriage १६६३.
 चक्षुस् the eye ९८६, १००२, १२, १२८४, १६०६,
 ६४, ९३, १८३६, ८५, १९०१, २९, ८४.
 चणक chickpea १७२३.
 चण्ड cruel १८९०.
 चण्डाल a man of the lowest and most des-
 pised of the mixed tribes (born from
 a *Sūdra* father and *Brāhmana* moth-
 er) १०२९, ३६, ११०५, ८५, १६१६, १७, ३४,
 १७५४, ९९, १८२७, १९२२.
 चण्डालयोनि *chandāl's* race १५९२.
 चतुःशाल a four-squared building ९५३.
 चतुष्टोम a particular sacrifice १८९८.
 चतुष्पथ a cross way ९४६, ५९, १२८४, १६९५,
 १७५४, ६५, १९२९.
 चतुष्पद् see चतुष्पद् ११८२, १९८४.
 चतुष्पद् a quadruped ८१३, ७९, ९८, ९२१, ४६,
 ८६, १००३, ११६६, ८४, १२३०, १६२१, ८४,
 १७५८.
 चतुष्पाद् see चतुष्पद् १८१९, ३९, १०३३.
 चतुर्होतृ N. of a litany १००६.
 चतुरात्र lasting for four days १२५८.
 चन्दन sandal-wood ६३५, १९६६.
 चन्द्र glittering or shining as gold; the
 moon or its deity ९२२, ८४, १००२, ७७,
 १९३०, ६४, ६५, ७०.
 चन्द्रमस् the moon or its deity १००६.
 चर a spy १७४६.
 चरण behaviour; wandering ९२१, १५९२,
 १६७६, १७१३, १९२२, २९.
 चरथ going; wandering (cattle) ९२२.
 चरित evidence of the witness; conduct;
 behaviour ६५१, १२६६, १३५२, ८४, १६९५,
 १८४४, १९२९, ७४.
 चरित्र character; conduct; nature ६११,
 १०४६, १९३६, ४२.
 चरित्रबन्धक a friendly pledge; merit as a
 pledge; a pledge received in mutual
 confidence of good behaviour (चरित्र)
 ~ [where the pledge is not compatible

with the value of the lent amount]
 ६४५.
 चरु an oblation offered to gods or manes
 ९९१, १३६४, १८९७, १९२५.
 चर्मन् hide; skin ६०९, १०, २६, ३०, ३३, ७८७,
 ८९९, ९०९, १६७७, १७३३, ४५ ४९, १८०६,
 १९३८, ७६.
 चर्मभाण्ड a leather bag or vessel १६१४. ३०,
 ७२.
 चलन moving on feet (i. e. beasts). १९१६.
 चलस्वभावा (a woman) of unsteady or want
 on nature १०३२.
 चला moving; changing (boundary) ०६१.
 चलित turned off from १०३२.
 चाट a cheat; rogue ७१५, ८७२, १९३२.
 चाण्डाल see चण्डाल ८३९, १२८७, १६०३, १८६१
 चाण्डालदासता the state of being a slave of a
Chandāla ८३९.
 चारुवर्ण्यपुत्राः sons begotten in the four castes
 १२४५.
 चारुवर्षिक lasting for four years ९३०.
 चारुवैथ familiar with the four *vedas* ९४९.
 चान्द्रव्रतिक one who takes upon himself the
 office of the moon १९३०.
 चान्द्रायण (व्रत) the penance or expiation re-
 gulated by moon १०२२, ५८, १६०६, १८४६.
 चार a spy; conduct; course; wandering
 ८६१, १६३९, ८२, ९०, ९३, ९५, १७४६,
 ५४, ५५, ६३, १९२९, ३० ३२, ४१, ७७, ७८.
 चारक a prison; herdsman ७२८, ९१७, १६९०,
 ९२.
 चारण a wandering actor or singer ७१५,
 १०३८, १६७६, ७९, १८४५, ५४.
 चारिणी adulterous (woman) १९८६.
 चारित्र्य behaviour; conduct १०२५, २६, ११९४.
 चार्मिक leathern ७८७, १६३०, १८०६, १९०३.
 चिकित्सुर् learned ११५८.
 चिकित्सक a physician ८४३, १६७९, ९४, ९९,
 १७७२, १९२४, २९.
 चिकित्स्य curable १०९४.

- चिति pile; a funeral pile १११३.
चित्त mind १०३२, ४८, १११४.
चित्र documentary evidence; of various kinds ६५१, १६१८, ४९, ५१, ८९, १७५२, ५५.
चित्रक a particular measure १९६७, ६८.
चित्रदर्शन visiting a theatre of entertainment १०२६.
चित्रवादिन् speaking in different ways or attractively १७५४.
चित्रायुस् possessed of wonderful vitality ९७२.
चिरकालप्रोपित absent for a protracted time १५६९.
चिरप्रवास undertaking journey for a long time ६११.
चिरस्थान (the loan) that remains outstanding for a long time ६०७.
चिह्न a mark; spot; sign ६०९, ९४१, ४५, ४९, ५०, ५१, ५७, ५८, १६४७, ५०, १७३९, ६०, ६२, ६३, ६६, १८१३, २९, ३२, ७०, ८७, ९०, १९०९.
चीर्ण grazed ९१५, १९.
चुम्बन kissing १८८५, ८९, ९१.
चूडा the hair on the top of the head १३७७.
चेतन mind ८१९, १०६८.
चेतस् mind ११४७, ४८, १६३२.
चेरु clothes; garment १११९, १६०५, १९३८.
चेष्टा gesture; movement ८४०, १७९६, ९९, १८१७.
चैत्य an abode of worship; a sanctuary near a village; a funeral monument ८६३, ९३१, ५०, ६०, ६२, १६९५, १७५४, ७३, १८००, २३, १९२५, २९.
चैलपिण्ड food and clothing १५२३.
चोर (चौर) a thief; robber ७१५, ३२, ३५, ४१, ४३, ४८, ४९, ५०, ५६, ५७, ५८, ५९, ६४, ६७, ६९, ७२, ८८, ८९, ९०, ९६, ८२३, ३३, ५४, ७२, ७८, ९०८, १४, १६, १९, १०२३, ९७, १११०, १५९२, १६१६, १८, ३६, ४०, ४६, ५२, ५३, ५९, ७४, ७६, ८१, ८५, ८६, ८९, ९०, ९६, ९७, ९८, १७११, ३९, ४०, ४२, ५१, ५२, ५४, ५५, ५६, ५७, ६२, ६३, ६४, ६५, ६७, ७०, ७७, ७८, ८६, १८१०, १२, ४९, ५०, १९२९, ३२, ३३, ४१, ५४, ६२, ७१, ७४.
चोररञ्जुक the officer called चोररञ्जुक १६२०.
चोरित robbed ६३४.
चौरग्राह a thief-catcher १७५७, ६२.
चौरदण्ड punishment inflicted upon a thief ६५६, ९१७, १०७८, १५१४, २६, १७४१, ६३, ६६, १९५२, ६२.
चौरहृत taken by theft १६६३, ७१, १९४९, ५०, ५७, ६०, ६२.
चौरोद्धर्तु see चौरग्राह १७४३, ६३.
चौर्य theft; robbery १३४२, १६१२, ४५, १७११, ४१, ५५, ६०, १९२९, ६७, ८३, ८७, ८८.
चौल the tonsure ceremony १३५५, ७३.
छत्र an umbrella ८६०, १९२५.
छदिस् roof of a carriage १०००.
छद्मन् deception; design; fraud ७२५, ८४०, १०४१, १७५९, ६४, १८८५, ८६.
छन्द desire; will; fraud ६६२, ७०, ७१८, ४७, ८६२, १३५६, १७६६, १९८४.
छन्दवासिनी living independently; see स्वच्छन्द्या १९२२.
छन्दस् a sacred *vedic* hymn ८१४, १११४, ८१.
छर्दि vomiting १७९८, १८३२, १९६६.
छल trick; false pretense; fraud; strata gem ७१७, २३, २७, ८००, ९५२, १०३८, १२०७, १५७३, १६४१, १७४४.
छग a he-goat ९०५, १९२५.
छादन clothing १४०१.
छिन्न cut off; broken; interrupted १००६, १२६४, १५८१, १६२१, १८०७, २०, ८७, ९३, १९३३.
छूरिका, ख(खु)रिका, स्थूरिका, स्फुरिका, नासिका, तुलिका load; cow's nostril; an ox; a load placed on an ox etc.; beast of burden; a barren cow; the lower part of a leg १७१३.
छेत्तव्य to be cut off १७४९, ६०, १८०१, २८, ३१, ४७.

- छेद cutting** १०७२, ११२७, १६११, ५३, ६९, ७०, ७३, ८५, १७६०, ६२, ६५, ७५, ७९, ८८, ९४, १८२१, ३१, ३५, ४३, ४८, ६८, ६९, ७६, ९१, १९०३, ६६.
छेदक a cutter १८२९.
छेदन amputation; cutting १६१७, ७२, १७१७, ४९, ६०, ९९, १८००, ०१, ०७, १७, २२, ३१, ३२, ३५, ४२, ४३, ४९, ५०, १९६७, ७०.
छेदिन् a cutter १६०९, १७९८.
जगत् the world १७८७, १८३९, १९२८, ७०.
जगतीपति earthlord; king १०७५.
जगन्व inferior; younger ८२६, २९, ३१, ९४५, १००७, ११०४, ०६, ११, १३४६, ७५, १५६७, १६२८, १७७५, ८८, १८४८, ६६, १९३६.
जङ्गम movable property ६४९, ५०, ५५, ६०, ८८६, ८९, ९१, ९८, ९०१, ११७९, १५१३, २६, १६९५, १९२९.
जङ्घा the thigh १९८४.
जटिल wearing twisted hair १०२७, २८.
जठर the stomach १९६६.
जड a dunce ७११, १११८, १२८६, ८७, ९१, ९२, ९८, १४०१, ०४, १६७९, १७२७, १९२७, ७४, ८३.
जडु lac १७६८.
जडु the collar-bone १००३.
जन people ६०४, ७३७, ६३, ६४, ८१८, ९८, ९५३, ५९, ६२, ७०, १००२, ०३, ३८, ४८, ७५, ११२०, १३२९, १६१५, ४०, ७३, ८५, १७५२, १९३, ५४, ५६, १८२८, ८७, ८९, १९३१, ३७, ४१, ७०, ७८, ८४.
जनक a progenitor १११८, १२६७, ७१, ७८, १३५२, ८४, १९८१.
जन्तु people १६००.
जनन birth; procreation; generative organ १२८४, १३७७, ८४, १९१४.
जन्नी a mother १००५, ७७, १३५०, १४१३, १४, ३२, १५२२.
जनपद a nation; inhabited country; people ८१६, ७०, ९४९, १५९३, १६७९, १७७१, ७२, १९२४.
जनमेजय N. of the celebrated king १६०१.
जनयितु a begetter १२५३, ६३, ६७, ७१, ७२, ८१, ८८, १३२७.
जनसंसद् assembly of men ७२६, २८.
जनाग्नि fire in general १०१६.
जनाधिप a king १२४४.
जनि(नी) a woman; wife ९६३, ७०, ७३, ७८, ८०, ८१, ९५, १००१, ०५.
जनिका generating; producing; mother ९९६.
जनितु a father; begetter १०२६, १२५७, १८३६, १९७९.
जनित्र a birthplace; place of origin १००३.
जनित्री a mother ९९३, १०००.
जनित्व the state of a wife; to be born or produced ९६३, ७८, १००४, १२५७.
जनिमन् an offspring ९७०.
जनित्थ to be begotten ११८०.
जनेश्वर a king १९८४.
जन्मज्येष्ठ elder by birth १२३६, ५१.
जन्मन् birth १०१२, ११९३, १२३४, ३६, ८४, ८५, १५६९, १६५१, १९१७, ६५.
जन्य produced ९९४, १०००.
जन्तु a begetter; creature ९७६, १८३६.
जप muttering of prayer ७९२, १११९.
जय conquest; victory ८६१, ११२६, १९०१, ०३, ११, १५, ३३, ७७.
जददृष्टि attaining great age; very old ९८५, १००१.
जरा old age ९६६, १११५, १५९६, १९२०.
जरिमान् decrepitude ९६७.
जल water; water ordeal ७१५, ४१, ४८, ९०, ८६०, ९६१, १०७६, १३१६, १९६७, ८३, ८७.
जलमार्ग water-course ८९६.
जलवाहिका a flow of water (as boundary) ९४८.
जलाशय a pond १३९३, १६५४.
जलौका a leech १०२२, १११४.
जवन N. of a king १९६५.
जसद zinc १७६७.
जसुरि starved ९७३.

जङ्घ N. of a king १२६१.
जाघन the hip ९८७.
जाङ्गल arid; full of flora १९२१.
जाङ्गलीविद् expert in applying remedies against snake-poison १९२५.
जाङ्घिक obtained by labour १९२२.
जातक see जातकर्मन् १३५०.
जातकर्मन् a birth ceremony १३७४, ७७. १९८५.
जातवेदस् all possessor; fire;..all created beings ८१२, १००१, १११९, १२५९, ६१, १८९३.
जाति caste; race ६२०, ७२०, २५, ३७, ८२५, ३४, ६१, ६२, ६५, ९७, ९९, १००७, २९, १११६, ८४, ८५, १२२९, ३७, ३८, ४४, ४५, १३६५, १६२९, ७६, ८२, ८५, १७४१, ५३, ७०, ७३, ७५, ७६, ८२, ८३, ८४, ८८, ८९, १८५०, १९१७, २२, ३१, ३२, ४१, ६१, ८४.
जातिकरण giving the genuine form by fraud १७३३.
जातिधर्म caste-duty; caste-custom १९१८, २१, ३१, ४३.
जातिबधिर born deaf १३९२.
जातिभ्रंश loss of caste १६११, १७९१.
जातिशुद्ध pure by caste १३४८.
जात्य of superior quality १६७४, ७७.
जात्यन्ध born-blind ७०७, १३९२.
जात्यपहारिन् implying loss of caste. १६१०.
जान birth ११६०.
जानपद् inhabitant of a country १६७६, ८१, ९०, १९३२, ६०.
जामातु a son-in-law ९७३, १२८६.
जामि a sister; brother ९६३, ६९, ७५, ७६, ७७, ७९, ९६, १००२, ०३, ०५, ५२, ५३, १२५४, ५९, ८६, १८३६.
जाया a wife ६०३, ७९१, ८१४, ९६३, ६४, ६५, ७०, ७७, ७९, ८२, ८३, ८५, ९३, ९४, ९५, ९८, ९९, १०००, ०१, ०३, ०४, ०५, ०७, ०८, ०९, १०, ११, १४, २६, ४७, ७२, ११०७, १८, १२५४, ६०, १४२३, १५१३, १८, ७०, १७७७, १८३६, ३९, ४०, ४१, ९४, ९५, १९०३, ८४,

८५.
जयात् the character or attributes of a wife १०११, २६, ४७.
जायनाश seduction of a wife १०१४.
जायापती husband and wife १४०५.
जार a paramour; lover ८६६, ९६३, ६६, ७२, ७३, ७५, ९१, ९६, १००६, ४०, १६३६, १८३७, ३८, ४०, ४१, ४९, १९३३, ८९.
जारज a child by a paramour; bastard १०१४.
जारजात see जारज ११०१, १३०५, १४०२.
जारिणी adulterous १८९४.
जास्पत्य the state of the father of a family (Monier Williams); a couple of husband and wife. ९८२, १००७.
जाल a net १६१७, ८५.
जित defeated; restrained; controlled ७३०, १०१६, ८५, १८९६, १९०३, ०८, ०९, १३, १४, १५, १९३१, ३३, ६९, ८६.
जितेन्द्रिय one who has subdued his senses ८६०, १०७७, १११९, १९३१.
जिद्वि old ११५८.
जिह्वा crooked; deceitful ७४८, ७९, ८१९, १९१०.
जिह्वा the tongue १०१६, १६००, १९, १७६९, ७०, ७५, ८३, ८८, ९२, १८३२, १९३३, ६७, ६८, ७०.
जिह्वाच्छेद cutting off of the tongue १६१९, १७६८, ६९, ८८, ९०, ९२, १८९१.
जीर्ण worn out १३९०, १४७३, १६९५, १७४८, १९२९, ६६.
जीव life १०२६, १७७३, १८८७, १९५२, ६२.
जीवद्विभाग partition made during (father's or parent's) lifetime ११४९, ७२, ७३.
जीवन maintenance; life ९५२, ११२७, १२०१, १४०३, ०४, ६६, ७३, १५१२, ५३, १९१६, ७६.
जीवलोक the world of living beings (as opposed to that of the deceased) ९७८, १००४, १२५७.
जीवित maintenance ६६२, १०४०, १२८६, १९८५.

- जीविन् a living being; subsisting ७८७, ९४४, १७५८.
- सुहृत्प्रतिपत्ता co-habited with a member of degraded caste १०२१, ११११.
- ज्यैन्ती becoming old ९६५.
- जैतु victorious; gainer १९०४, ०८, १३, १४.
- जैत्य genuine १२५७.
- जैमिनी N. of a sage ७६४.
- जैम् see जैम् ८८८.
- जैम्त्य crookedness; falsehood ७९४, ८४९.
- ज्ञातसार (merchandise) of known value १६२०.
- ज्ञाति kinsman; community; relation; caste ६०६, २७, ६७, ७९, ८२, ८६, ८०३, १७, ६०, ९६, ९८, ९९, ९००, ०१, २८, ८३, ९८, १००६, ०८, ३८, ३९, ८३, ११०२, ४२, १२५२, १३५२, ६३, ७३, ९२, १४३०, ५४, ७१, १५१८, ७५, ७९, ८९, १६२७, १७५५, १८४०, ४१, ६५, १९२९.
- ज्ञातिकर्ष्य duty of a kinsman १३९३.
- ज्ञातिकुल a group of kinsmen १०३६, ३८.
- ज्ञातिजन a relative १०७७.
- ज्ञातिधन wealth received from relation १४१५.
- ज्ञातिरेतस a particular son; begotten by a kinsman (other than husband) १२८४.
- ज्ञातिसंबन्ध a relation १०३२.
- ज्ञातु one who knows; a witness ७६७, ९४१, ४६, ५१.
- ज्ञान knowledge; consciousness ७५९, ६९, ८६१, ९३४, १०७१, ११०९, ९३, १२२५, १४०२, ३५६९, १६३०, १८०६, १९१०, १३, ६६, ७२, ७४.
- ज्यायस elder ११५९, ९०, ९९, १२३७, ४९, १३४६, १८९१, ९३.
- ज्येष्ठ most excellent; eldest ६९५, ९३३, १००५, १०, ६४, ११४६, ४७, ४९, ५९, ६२, ६४, ६५, ६६, ६८, ७०, ८१, ८३, ८४, ८५, ८६, ८९, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १२०१, ०८, १०, २४, ३३, ३४, ३६, ३८, ५४, ६०, ६६, ६८, १३२९, ५२, ५५, ८७, ९१, ९७, ९८, १४०१, २१, २२, ६५, १५४३, ८७, ८८, १९७८, ८१, ८२, ८३, ८४, ८७.
- ज्येष्ठता seniority १२३६, ९७, १३९२.
- ज्येष्ठपुत्र eldest son १२८१, १३२९.
- ज्येष्ठभार्या wife of an elder brother ११०१, १३१६.
- ज्येष्ठभाव primogenitureship १२३४.
- ज्येष्ठवर a chief wooer १०००.
- ज्येष्ठवृत्ति behaving like the eldest brother ११९८.
- ज्येष्ठंश additional share of the eldest son; the best share ११८३, ८४, ८५, १२३८, ३९, १३७२, ८४, ९१, ९२, १९८८.
- ज्येष्ठा eldest १०२३, ९१, ११०९, १२३५, ४४, ७१, १५२६, २७.
- ज्येष्ठावाप्य to be received by the eldest १३९२.
- ज्यैष्ठिन्य a son of the father's first wife १००५, १०, १२३३.
- ज्यैष्ठ्य the right of primogenitureship; the eldest son-ship ६९५, ८६२, १००२, ५३, ९४, ११०९, १२३६, १३५१, १५४१, ४३, ५७.
- ज्योतिर्ज्ञान knowledge of the heavenly bodies १७५९.
- झष a large fish ९६१.
- चक्र a chisel १६८०.
- भामरिक a particular lower caste; a man dead in epidemic (*Shāmskhāstri*) १६९०.
- डिड्डिक a small mouse १६०६.
- डेरिका a musk rat १६०६.
- तक्र butter-milk १६७०, १७१८.
- तक्षन् a carpenter ११२०.
- तटाक a tank ८९६, ९२६, २८, ३०, १९२४.
- तटाकवामन emptying a tank of its water ९३०.
- तडाग a tank ८७३, ९३४, ३७, ३९, ४७, ४८, ५०, ५५, ५८, ५९, ६०, ६२, १६१३, २९, ३०, ५२, १९२९, ७६.
- तण्डुल rice १५२०, १९६७, ६८, ८७.
- तत a father ९२२, ११२१.
- तत्त्वदर्शिन् perceiving truth; a philosopher-

८०७, १२३३, १३५१.
 तनय propagating a family; a son ९७०,
 १०३३, १२२२, ५८, १३३७, ७६, ७७, १४१३,
 १५१७.
 तनु body १४१५, ६४, १६७४, १७९४, १९०१, ७९.
 तन्तु a thread; progeny; children ६०३, ०५,
 ९२४, १००६, १११५, ६०, १२६४, ६७, ७१,
 १३९४.
 तन्तुनाश loss of thread (progeny) १०१४.
 तन्तुवाय a weaver १६७३, १७०९, १९२७.
 तन्दुल rice-grain १९६५, ६७.
 तपःक्रीता bought by austerity १९३६.
 तपस् religious austerity; penance ६९५, ७१४,
 १०००, ०६, २८, ३०, ३३, ७७, ११०९, ११,
 १९, २९, १२६०, ८३, ८४, १३७६, ७७, ९०,
 १४०२, ६४, १६००, ५१, ६४, १७०२, १८३८,
 ३९, १९३६, ७८, ८३, ८४, ८६, ८७.
 तपस्विन् an ascetic ६९५, ७१४, १३७६, १६१७,
 १९, २७, ६६, ८७, १९१५, ६९.
 तपस्विनी pitiable, poor, wretched woman; a
 female devotee १११४, १६५३.
 तपोवन a grove in which religious austerities
 are performed ६७७, ९२९, १८००.
 तप्तमाष the ordeal with a hot coin (*Māṣa*)
 १९६५, ६६, ६७.
 तमस् a dark or black house १६१९, १९८७.
 तर carrying across or beyond; a boat ६९८,
 १९२१, २२, २७, ३६, ४४, ४५, ४६.
 तरिक a ferry-man ७७८, १६३५, १९४७.
 तरुणगृह vide तोरणगृह ९२५.
 तरुणप्रजात an infant १९४४.
 तर्जन threatening १७९४.
 तर्पण a particular ceremony performed
 with a magical *Mantra* १११८.
 तल palm-beat १६८७.
 तल्प a couch; bed ९७३, ९८, १००२, १३०४,
 ०६, १८४०.
 तल्पसौहृदय having sexual intercourse with
 (a preceptor's wife) १६०३.
 तृणाहमित्युपगत a particular son; a son come

forward declaring 'I am thine' ८३०, ३२.
 तृणाहमित्युपगता (a woman) who gives herself
 upto a man saying ' I am thine ' ७०३,
 ११०३.
 तविष strong १२५८, १९७१.
 तसर a shuttle १०००.
 तस्कर a thief; robber ७३२, ४५, ६०, ८१, ९०,
 १६२२, ४७, ६४, ७०, ८५, ९२, ९३, ९५,
 १७११, ४५, ४६, ५३, ५४, ५७, ६१, ६३,
 १९१०, १३, २९, ३२, ६५.
 ताडन beating; striking ७२५, ९१९, २०,
 १७७१, ८८, ९४, १८३०, ३३, ३४, ९१,
 १९७०.
 ताडयित् one who strikes १६३७, १९३३.
 ताड्य to be chastised ९१४, १११०, १८१२,
 १९७४.
 ताण्डव dancing (esp. with violent gesti-
 culation) १०२६.
 तातृपाणा satisfying or delighting much ९८९.
 तान्तव made of fibre १७४७.
 तान्त्रिक prescribed in the *Tantra* scripture
 १९६८.
 तान्त्र one's own son १२५४.
 तापस an ascetic १२८४, १६०३, ५५, ७९, १९२४, २५-
 ताम्बूल a betel १११७.
 ताम्र copper ६०९, २६, ३५, १३७३, १६१४, ७५,
 १७३४, ४७, ६७, १९६६.
 तासु a thief १६५६.
 तार see तर १९३६.
 तारका a star ६०५, १८३९.
 तारिक a ferry-man १६११, १९२७, ४४, ४६.
 तार्थ freight १९२७, ४५.
 ताल a kind of tree ९३३.
 तालज्ञ knowing the measure (in music)
 ७८७, ९०.
 तालावचर an actor १०३८.
 तालु the palate १८९१.
 तास्कर्य theft १९०६.
 तित्तिरिः a partridge १५९७.
 तिरीटिन् furnished with a head-dress;

secretly going about १८४०.
 तिल *sesamum* १००१, १११८, १३९०, १५२४,
 १९३८, ३९, ६७.
 तीक्ष्ण *sharp; fiery* ८६२, ६३, १०३३, १४६४,
 १६००, ६४, १७११, ६५, १९२९, ३९.
 तीर *a bank* ९५२, १९२७, ४५.
 तीर्थ *a passage for landing into a river;*
place of pilgrimage; woman's courses;
intercourse ८१४, ९५९, ८१, १००२, ३०,
 ४०, १११२, १८५१, ८०, १९२४.
 तीर्थगमन *visiting a place of pilgrimage*
 १०२१, ३८.
 तीर्थगूहन *concealing the fact of being in*
menses १०३४.
 तीर्थघात *violation of sacred institutions*
 १६१७.
 तीर्थसमवाय *(of many wives) being in men-*
ses at one and the same time १०३४.
 तीर्थसेवा *pilgrimage* १११९.
 तीर्थगमन *not having intercourse while in*
menses १०३४.
 तीर्थानुसारिन् *a pilgrim* १६११, १९४४.
 तीर्थोपरोध *neglect of intercourse* १०४०.
 तीव्र *strong; severe* १११५, १४०१, १६४४,
 १७८५, ८९, ९१.
 तीव्रदण्ड *heavy punishment* १६४४, १९७०.
 तुभ्य *N. of an enemy of Indra* ११६०.
 तुच्छश्रावण *a false claim or suit* ६११.
 तुज *frightful (to the enemy)* ११५९.
 तुन्नवाय *a tailor* १६७४.
 तुर *quick; prompt* ९०२, १८९९.
 तुवं *N. of a hero and ancestor of the*
Āryan race ८१०.
 तुवंसु *N. of a son of yayāti* १३९१.
 तुला *a balance* ६०९, १६७३, ७७, ७८, १७०७,
 २८, २९, ५०, ६१, ६३, १९६५, ६६, ६७.
 तुल्यमान *a balance* १६११, १३, ६९, ७१, ७७,
 १९२७.
 तुलित *weighed* १९६६.
 तुल्यिः *weighable* ८८६.

तुल्य *similar; equal* ७३४, ६३, ८६२, ९००,
 १०३८, ११७५, ८४, १२३८, ४५, ७३, ८७, ८८,
 १३४८, ५०, १५११, २५, १६२१, ८५, ८७,
 १७७०, ७१, ७२, ७८, ८६, ९२, १८२७, ४८,
 ४९, ६६, ६८.
 तुल्यवध *murder of a person (equal in caste)*
 १६०६.
 तुल्यांश *taking equal share* १२४५.
 तुष *the chaff of grain* ९३४, ४०, ४४, ५०, ६१,
 ६२.
 तुष्टि *satisfaction; compensation* ७१३, १६३०,
 १८०६, ३३.
 तूल *panicle of a plant or flower* ६०८, १९३८.
 तुण *grass* ६०९, ३०, ८५१, ५२, ९१२, १६०९,
 ५७, ६१, ७०, ७२, १७१८, २२, ४४, ४५, ४९,
 ६०, ६६, ९८, १८९०, १९३८, ८१.
 तृतीयिन् *entitled to a third part or share*
 ७७५.
 तेजस् *splendour; lustre; power* ९०३, १२६७,
 १५९४, १६००, ०५, १२, १९३०, ३१, ३६, ४०,
 ७०.
 तैमात् *N. of a snake; a species of snake*
 १४६४.
 तैल *oil* ६२६, ३२, ३५, ११०१, १३४८, १६१५, ७०,
 ८५, १७१८, ४९, ७०, ७६, ८८, १८९१,
 १९६६.
 तोक *an offspring* १२५५.
 तोय *water* ८०७, ९३०, ४६, १९२७, ३०, ४२,
 ४६.
 तोरण (गृह) *arched doorway of a house* ९२६,
 १९१४.
 त्यक्त *abandoned* ७६७, १०९५, १११०, १८, १९,
 १३०९, १६४८, १८५०.
 त्यक्तदार *one who has abandoned his wife*
 १८८१, ८८.
 त्यक्तप्रज्य *one who has abandoned the life*
of a religious mendicant ८१६.
 त्यक्तबन्धव *one who has forsaken his relati-*
ves १०९८.
 त्याग *forsaking; abandonment* ७५५, ७१, ८३,

- ८२३, ९९, १०२१, ५६, ५८, ८६, १११३,
१२७३, १३९३, १६२७, १९२६.
- स्वाग्नि a forsaker ८२९, १६१०.
- त्याजक one who abandons or expells ८४७.
- त्याज्य to be abandoned १०३१, ३४, ५७,
१११७, १६१३, १८८७.
- त्रपुष cucumber १७६१, ६३.
- त्रपुस् tin ६०९, २६, १६७५, १७३४, ४७, ६७,
६८, ६९.
- त्रयी consisting of three Vedas ११०६,
१२८३.
- त्रसदस्यु N. of a prince ८११.
- त्रिदिव heaven १६९२, १९२९, ६४.
- त्रिदिवेश्वर the Indra १९६४.
- त्रिदिवीकस् heaven-residing; a god ९२०.
- त्रिपुरुष extending over three generations
९४९, १२८१, १३५६.
- त्रिपुरुष(षी) see त्रिपुरुष १३५६, ८४.
- त्रिभोग possession for three generations
८९५, ९८, ९००, ०१.
- त्रिलोक the three worlds १०३१, ३२.
- त्रिवर्ग the three things viz. religion, wealth
and desire १०२६, ८७, १११४.
- त्रिवर्गाः the three castes १२४५.
- त्रिविष्टप Indra's heaven १२८१.
- त्रिशीर्षन् three-headed; N. of a Rṣi १६०३,
१९७७.
- त्रिसुपर्ण N of RV.10/114/3-5(or of Taittirīya
Aranyaka 10/48-50) १५९७, १६०१, ०३.
- त्रेता the Tretā age १८९७, ९८.
- त्रेतायुग see त्रेता ११०९, १९३०.
- त्रैवर्षिक see त्रिपुरुष १३८४.
- त्रैवर्षिक see त्रैवर्षिक ९३०.
- त्रैवर्षिक lasting for three years १२४४.
- त्रैविष्य well-versed in the three Vedas ८६५,
१०४, १०६८, ७०, १०६, १७७०, ८२, १६२१,
१०४२, ५७, ७७
- त्र्यम्बक three-eyed Rudra १००८.
- त्र्यम्ब N. of a king १९८९.
- त्वष्टृ N. of a deity १००१, ०४, १४२३, १८३६.
- त्वाष्ट्र the son of त्वष्टृ १५९७, १६०३, १९७७.
- त्वोत्त protected; loved ११५८.
- दंष्ट्रिन् an animal with tusks १६१२, २१, ५१,
१८२०, १९३३.
- दक्ष able; industrious; skilful ६००, ७८४,
८७३, ७८, १०२६, ५९, ८५, ८८, ९९, ११०९,
११, १४, १२६४, ९४, १४००, १५९१, १८९३,
१९७९.
- दक्षिण southern; right (not left); excellent
७९१, ८२८, ९००, ९८, १००१, ०६, १२, १३,
१५, ११८३, १२०१, ८६, १६१७, १७००,
१९००, ०१, १९, २०, २१, ४०, ६५, ८१.
- दक्षिणा fee or present to the officiating pri-
est; gift; cow; south ७७०, ७१, ७२,
७३, ७४, ८३, ८९, ९१, ९२, ८११, १४, ९००,
०१, १०००, ०६, ०९, १२८१, ८३, १३६४, ८५,
१५२६, ९७, १६२३, १९८०, ८१.
- दक्षिणाज a particular son १९८२.
- दग्धव्य to be burnt १७६०, ६५, १८६४, ८६.
- दण्ड punishment (corporal, verbal and
fiscal; chastisement and imprisonment,
reprimand, fine) ६११, २७, ३८, ५५, ६०,
६१, ६२, ७२, ७६, ७७, ७८, ८५, ७१४,
१५, १६, ३१, ३५, ४४, ४५, ४९, ५४,
५९, ६३, ६४, ६५, ६७, ६८, ६९, ७१,
७६, ८०५, १७, ४३, ४४, ५५, ६१, ६२,
६३, ७६, ७८, ७९, ८१, ८२, ९६, ९८,
९००, ०५, ०६, १०, १२, १४, १७, १८,
३०, ३१, ३६, ३७, ३८, ३९, ३९, ३९, ३९,
३२, ४२, ५२, ५४, ५९, ६१, १०३०, ३४,
६५, ३६, ६७, ३८, ९७, ९९, १११०, ३१,
१४३१, ५८, १६०६, ०९, ११, १२, १३,
१४, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २७,
३८, ३६, ३०, ३१, ३३, ३४, ३६, ३७,
४०, ४३, ४४, ४५, ४९, ५०, ५२, ५३,
५७, ७०, ७३, ७२, ७३, ७४, ७६, ७७,
७८, ८७, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९५,
९६, १००१, ०२, १३, १४, १५, १८, १९,
२३, २७, २८, ३०, ३४, ४५, ५०, ५५,

५७, ५८, ६२, ६५, ६६, १७६७, ७१, ७२,
 ७३, ७४, ७७, ७९, ८२, ८५, ८७, ८८, ८९,
 ९०, ९१, ९२, ९५, ९७, ९८, १८००, ०१,
 ०५, ०६, ०७, ०९, १०, ११, १४, १५, १७,
 १८, १९, २२, २३, २५, २७, ३१, ३२, ३३,
 ३४, ३५, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१,
 ५४, ५५, ५७, ५९, ६०, ६३, ६६, ७२, ७५,
 ७८, ७९, ८२, ८४, ८७, ८९, ९०, ९२,
 १९०४, ०६, १७, १८, २१, २२, २३, २५,
 २६, २७, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३५, ३६,
 ३९, ४३, ५०, ५४, ५८, ६०, ६७, ६९, ७०,
 ७२, ७४, ७५, ७६.
 दण्डकर्मन् act of punishment ९२१, १६१४, १८,
 ६५, १७३८, १९६९.
 दण्डकल्प division of punishment १६१८.
 दण्डकल्पना decision of punishment १७३३.
 दण्डकारिन् a punisher १६१२.
 दण्डकोपक one who incites disaffection in
 the army १६१९.
 दण्डम् committing an assault १८६९.
 दण्डताडन flogging ८४२, १७९५.
 दण्डदास a slave or one enslaved for (non-
 payment of) fine ८२१, १९२८.
 दण्डधार a rod-bearer; punisher १२४४.
 दण्डधारण punishment १७९२, १८१४, १९३६.
 दण्डन the act of punishing १६६८, १८५१,
 ८९, ९१, १९७०, ७६.
 दण्डनिग्रह curbing or subjection by punish-
 ment १६४५.
 दण्डनीति political administration; science of
 state ८१८, १७५७.
 दण्डनीय to be punished or fined ८०१, ९१३,
 ४६, १६११, ६९, १७८१, ९०.
 दण्डपरुष one who commits violence ८६०.
 दण्डपारुष्य violence; assault ९०६, १०२२, ३५,
 १६१५, २०, ७६, ९०, १७६८, ९४, ९८, १८०१,
 २४, २७, ३०, ३१, ३३, ३४, ३५.
 दण्डप्रणयन infliction of punishment १७८३.
 दण्डप्रणीत one enslaved for fine or court
 decrees ८१७.

दण्डप्रयोग see दण्डप्रणयन १६७१.
 दण्डभय threat of punishment ७९४, १६१५.
 दण्डमाज् liable for punishment ८९२, ९१९,
 ५८, ५९, १६३५, १७८७, ९२, १८२६, २९.
 दण्डलेश small fine ७१९.
 दण्डविधि law of punishment ८६५, १६४३,
 १८०१.
 दण्डवृद्धि enhancement of punishment १६७७,
 ७८, ७९.
 दण्डशेष balance of fine ६८०, ७०८, १४.
 दण्डित punished; convicted ६७२.
 दण्ड्य to be fined or punished ६३७, ७६,
 ७१६, २१, २७, ३२, ४६, ४८, ५२, ५४, ५६,
 ६९, ७१, ९४, ८०४, ०६, २०, ३८, ४४, ५५,
 ७६, ७८, ८०, ९१, ९०५, ११, २१, ३८, ३९,
 ४१, ४५, ५८, ६२, १०५८, ७९, ९७, ११०६,
 १४४७, ५८, १६००, ११, १२, १३, २१, २७,
 ४६, ५२, ५४, ६९, ७०, ७२. १७३६, ५९,
 ६४, ६७, ७०, ७१, ७४, ७९, ८८, ९०, ९४,
 ९६, ९७, १८०३, ४१, ४३, ४७, ५८, ६०,
 ६३, ६४, ८४, ८६, ९०, ९१, ९२, १९१४,
 २१, २६, २७, ३३, ३५, ३६, ४३, ४४,
 ५५, ५८, ६२, ७१, ७२, ७५, ७६.
 दण्डयोत्सर्ग release of a convict १६६८.
 दत् a tooth ९९२, ११८१, १५९९, १८१७.
 दत्त given; granted; a gift; the son given;
 a particular son ६०३, ०५, १०, ७५,
 ७१५, ३१, ३६, ५०, ५३, ६७, ७४, ७६,
 ८६, ८९, ९०, ९४, ९५, ९६, ९८, ९९, ८००,
 ०२, ०३, ०४, ०५, ०६, ०७, ०८, ८८,
 १००३, २१, ४०, ४३, ११०९, १८, १९,
 २२, १२०५, १९, २०, २३, २४, ३१, ४३,
 ४४, ६३, ६५, ६९, ७०, ७८, ७९, ८३, ८४,
 ८६, ८८, १३२०, २८, ३४, ४६, ४८, ५१,
 ५२, ५५, ५६, ५८, ७१, ७२, ७३, ७४,
 ७६, ७७, ८३, ८४, १४०८, २८, २९, ३०,
 ३१, ३८, ४०, ४२, ४३, ४७, ४८, ५०,
 ५२, ५३, ५४, ५५, ६०, ६३, १६४७, ५६,
 ६१, ७८.
 दत्तक the son given; a particular son

- १२७३, ७७, ७९, १३३२, ५२, ५५, ५६, ७४, ८४.
- दत्तगोत्र adopted family-name १११८, १३२८.
- दत्तनाश resumption of gift १११६.
- दत्तपुत्र see दत्तक १३५०, ७२.
- दत्तशेष a part of (debt) which remains to be paid ७०९.
- दत्तस्तोम one who has paid the rent ८५४.
- दत्ता given; betrothed; given away (in marriage) ९५१, ५२, १०५५, ७८, ११०९, १२७९, १३२९, ५०, ७४, ७६, १५५८, १९७५, ८६.
- दत्ताप्रदानिक resumption of gift ७९७.
- दत्तिम see दत्तक ८२१, १२८१, १३०४, २६, २७, १९२८.
- ददाति a gift १९७२.
- दधि co-agulated milk १००७, १६७०, १७१८, १९३८.
- दधिषु striving after; a suitor १००४.
- दन्त a tooth ६०९, १०२६, १२४४, १६००, २१, १७७२, ७६, ९९, १८३१, १९७७.
- दन्तभाण्ड an article of ivory १६१४.
- दम fine; punishment ६३४, ५६, ६०, ७२८, ४३, ५८, ६०, ६१, ६२, ६५, ६७, ८०६, १९, ३८, ५३, ५४, ५५, ६७, ७४, ८५, ९००, १३, १९, ३०, ३८, ३९, ६२, ११०९, १६२८, ३१, ३३, ३५, ३६, ३७, ४०, ४५, ४६, ४७, ५२, ५४, ५५, ७०, ९०, ९९, १७०४, ०९, १८, १९, २९, ३०, ३२, ३३, ३८, ४२, ५०, ५९, ६०, ७०, ७४, ७६, ८०, ८१, ८४, ८८, ९०, ९२, १८०४, ०८, १०, १४, १५, १८, २१, २२, २३, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ५९, ६०, ६१, ६८, ७२, ७६, ७७, ८४, ८६, ८९, ९०, ९२, १९२१, २७, २९, ३०, ३३, ४१, ६८, ६९, ७०, ७१, ७५, ७६.
- दमन the act of punishment १९१७, ७०.
- दमयन्ती N. of Nala's wife ८१९.
- दम्पती a house-master; husband and wife ६८०, ७२१, ९७०, ७३, ७६, ८४, ८९, १००२, ०४, ८७, ११०२, १३७४, १४३०, १६३५, १८३६, १९२२.
- दम्य tameable १६२१.
- दरिद्र poor ८६३, ७३, १०३०, १३१७, १६८५, १९४१.
- दर्प pride; arrogance ७९५, १११९, १६४१, १७४४, ७०, ७१, ७६, ८८, ९०, १८०२, २९, ५३, ६५, ६७, ८१.
- दर्पक्रीडा amorous sport १०३६.
- दर्पदान gift through pride or haughtiness ७९४.
- दर्भ a kind of grass १८४५.
- दर्शक (लोहितस्य) making (blood) appear (by striking any one) १८०३, २९.
- दर्शन seeing; showing; (surety for) appearance ६६२, ६४, ६५, ७१, ७४, ७६, ७६१, ७०, ९२, ८०६, ९०५, १६, १९, ३५, ४७, १०५०, ८५, ११०७, १२८५, १३४८, १६८३, ८६, ९६, ९८, १७५५, ६५, ९३, ९५, १८१६, २४, ८७, १९२०, २९, ३६, ६४, ७०, ७४, ७५, ८२, ८४.
- दर्शनप्रतिभू surety for appearance ६६६, ७३, ७२८.
- दर्शश्राद्ध a *S'rāddha* performed on new-moon १५८९.
- दल bamboo १६७०, ७१, १७९४, १९३८.
- दलभाण्ड an article of bamboo १६७२.
- दशकुली a group of ten families १९२४.
- दशग्रामी a group of ten villages ९२९, १६२०, १७४३.
- दशबन्ध ten times (the amount of wages) ८४३.
- दशमोद्धार the tenth part as the preferential share ११९४.
- दशरथ N. of the king of *Ayodhyā* ८१०, १३२९.
- दशहोत symbolizing ten parts of a sacrifice १००६.
- दशाध्यक्ष a chief of ten villages १९२१.
- दस्य enemy of *Ārya*; N. of a people ६००, ८०९, १०, १२४४, १६६३, ९६, १७५३, ५४, १९७१.
- दहन burning १६८७, १८९१, १९२४.
- दाक्षिण्यजी a woman inhabitant of Deccan

दारहर one who abducts another's wife
 १६०८, २६.
 दाराधीन dependant on a wife १०५२.
 दारु a piece of wood १३८५, १६७१, १७२२,
 ४५, १९३८.
 दारुण frightful ११११, १७७५, ७८.
 दाश a mariner; ferry-man १९२७, ४६, ८६.
 दास a slave; servant ६३१, ९२, ९५, ९६, ७०८,
 १२, १४, ६३, ६४, ८०९, १०, १२, १४, १६,
 १७, १८, १९, २२, २४, २५, ३०, ३३, ३४,
 ३७, ३९, ४० ९२५, १०२९, १२२३, १३७४,
 ७५, १६१३, १७, १८१२, २७, ३३, ३५, १८४९,
 ५०, १९२८, ७४, ७५.
 दासकर्मन् work done by a slave or labourer
 ८२९, ३६.
 दासकल्प law regarding a slave ८१६, १७.
 दासता slavery ८२९, ३९.
 दासत्व slavery ८२९, ३०, ३१, ३३, ३५, ३६, ३७,
 ४०.
 दासदासी a female slave of a slave १३१०.
 दासद्रव्य property of a slave ८१७.
 दासधन see दासद्रव्य १३९१.
 दासधर्म duty of a slave ८१८.
 दासपुत्र son of a slave १३७७.
 दासप्रवर्ग a multitude of servants ८०९.
 दासभार्य servants and wives ८१४, ९२५.
 दासभाव slavery ८१७, १९, ३९.
 दासयोनि race of slaves ८२१, १९२८.
 दासवर्ग class of slaves ७३१.
 दासवृत्ति having the occupation of a slave
 १३७४.
 दासहर्तु one who kidnaps a slave १७११.
 दासी a female slave ६११, ७६४, ८०९, १०, ११,
 १२, १३, १४, १६, १७, १८, ३८, ४०, १०२९,
 ७३, ७४, १११८, १९, १३१०, ३८, ७५, ७७,
 ९२, १६१७, १८, ३४, ९९, १७४९, १८३५,
 ४९, ७७, ७८, ८३, १९२२, ७३, ७५.
 दासीकृत enslaved ८३३.
 दासीत्व female-slavery ८३७, ४०.
 दासीभाव the condition of a female-slave

८४०.
 दासीशत a hundred female-slaves ८१४.
 दासीसहस्र a thousand female-slaves ८१४.
 दासीमुत son of a female-slave ८३६, ३९.
 दास्य slavery; servitude ८१४, १६, १८, १९,
 २०, २१, २४, ३०, ३१, ३२, ३५, ३६, ३९, ४०,
 १८४९, ६६, १९१८, २७, २८.
 दास्याः पुत्र the son of a female-slave; low
 wretch or miscreant ८१२.
 दाह fire; a place of cremation १९४४.
 दाहक an incendiary १६३९.
 दिक्पाल a gurdian of regions; sentry १७५६
 ६२.
 दिग्लाम profit arising from dealing in for-
 eign countries ८८३, ८७.
 दिग्विचारिन् one who travels abroad ८८७.
 दिक्षु striving for; a suitor ९७२, ७८, १२५७.
 दिक्षुपति the husband of a woman (a
 widow remarried or an elder sister
 married after the younger) १५९२.
 दिवस a day १६७८, ७९, ८७.
 दिवस्पुत्र the son of sky ११२१.
 दिवाकर the sun १९७९.
 दिवोदास N. of one of the leading princes
 of the early Vaidika age, ६००, १२५८.
 दिव्य divine; ordeal ६७६, ७३१, ४८, ५१, ५५,
 १२८४, १६४८, ७२, १८३४, ९१, ९५, १९६५,
 ६७, ८५.
 दीक्षण see दीक्षा ७७२.
 दीक्षा consecration for a religious ceremony
 १००९.
 दीक्षित consecrated १८५३, ९७.
 दीन(ना) depressed; poor ८०९, ०७, ७८, १११६
 १९, ४६, १६२७.
 दीनार a particular coin ८८८, १९६७, ६८.
 दीर्घतमस् N. of a sage १०२६, १३९०.
 दीर्घसत्र a long continued Soma-sacrifice
 ६११.
 दीबिल a gambler १९०३.
 दीव्यमान playing dice; entertaining one self

१००७.
 दुःख trouble; pain १११०, १५, १६१५, ५१,
 १७९६, ९९, १८००, ०५, १६, १९, २१, २२,
 ३४, ३५, १९३०, ६४, ७४, ७८, ८१, ८५.
 दुःघ्नन्त N. of a king १९८५.
 दुःकूल fine cloth १६७३.
 दुग्ध milk ९०५.
 दुःखिना misfortune; calamity (personified)
 १६००, १८३९.
 दुरित sin ६०५, ९९९, १६०१, ०२, १८४५.
 दुरेव evil-doer; criminal ९७०.
 दुरोकशोभिस् glowing unpleasantly (too bri-
 ght or hot) ९६३.
 दुरोण home; abode ९६५, ८१.
 दुर्ग a fortress ७३५, १६१२, १७, ८५, १९८१, २४,
 ४२, ८५.
 दुर्गनिवासिन् living in a fort ८७४.
 दुर्गनिवेश construction of a fort ९३१.
 दुर्गराष्ट्रकोपक one who foments discontent
 among the people living in a fort १६१९.
 दुर्जय a particular name १२८४.
 दुर्दृष्ट wrongly decided १९३३.
 दुर्बल weak १६८६, १९३६, ३९.
 दुर्माह्वण a bad *Brāhmaṇa* १२८५.
 दुर्भिक्ष famine; privation ८३१, १११०, १४३०,
 ४७, १८५०, १९२४.
 दुर्ब home ९८१, १००१.
 दुर्बोधन N. of a king १९८४.
 दुर्वासस् N. of a sage १२८५.
 दुर्विभक्त divided illegally or badly १५७१, ७४.
 दुश्चर्मन् afflicted with skin-disease ९९२,
 १५९९.
 दुष्कुल a low-family १०२६.
 दुष्कृत wrongly or wickedly done; wicked
 deed. १००२, ०४, ११११, १६०३, ६८, ७१,
 १९७७, ८४.
 दुष्क्रीत badly or dearly bought; a foolish
 bargain ८९३.
 दुष्ट defective; blemish; wicked; severe
 ३७, ९५६, १०१४, ३३, ३७, १११८,

१६०९, १७५४, ६६, ८७, ९९, १८४३, ६१, ६९,
 ९०, १७६०, १९३०, ७०, ७५.
 दुष्यन्त N. of a king १२८८.
 दुहितृ a daughter ७११, ८०६, १२, ६३, ९८१,
 ९५, १००३, ०४, ०५, ०६, ०७, ०९, १८, ३४,
 ४३, १२५५, ६०, ६२, ६८, ७३, ८३, ८६, ८८,
 ९४, १३३८, ७४, ७६, ८५, १४०७, १५, १६,
 २३, २५, २७, ३०, ३७ ४१, ४५, ४९, ५०,
 ६२, ६३, ६६, ७३, ७४, ७९, १५११, १२, १५,
 २१, २४, २५, २६, २७, २९, ५४, १६८०,
 १८३६, ३७, ४०, ४१, ४९, ५०, ८२, ९०,
 १९१९, ७७, ७८, ७९, ८५, ८६, ८८.
 दुहितृगामि (property) inheritable by daug-
 hter १४२८, ७०.
 दुहितृदायाच daughter's property १२५५.
 दुहितृविक्रय sale of a daughter १०४३, ४४.
 दूत a messenger ११३०, १६६८, १८३८, ८७.
 दूती a female messenger १८८१, ८५, ८९.
 दूत्य work of a messenger ११४३.
 दूरबहिष्कृत ex-communicated ८३१.
 दूरेवान्धव a distant relative १२७३.
 दूर्वा a kind of grass १९६७.
 दूषक offender; causing dissension; one-
 who spoils १६१२, ३२, १७६६, १८४७.
 दूषण fault; offence; spoiling ११०६, ११,
 १६१३, ३१, १७८९, १८७६, १९२९.
 दूषमाण one who defiles १८९२.
 दूषयितृ see दूषक १६१०.
 दूषित blamed; spoiled १०३१, ८४, ११०३,
 १८९१, १९४३.
 दृति a leather bag १९२४.
 दृष्ट ordained; mentioned; ascertained; app-
 lied; visible ६६९, ७१, ७०९, ४९, ८३,
 ८०७, २५, १०५४, ७७, १११०, १४, १२४४,
 १६४३, ८६, ८७, १७५३, १९३३, ६२, ७८.
 दृष्टलिङ्ग an eyewitness १०३६.
 दृष्टान्त standard; example; precedent; pro-
 mised by *Shāstra* १२४३, ४४, १७९५, १९४१.
 दृष्टान्तोपगत promised by *Shāstra*, ordained
 in the *Veda* १२८७.

दृष्टापराध one whose offence is previously ascertained १०६.

दृष्टार्थ whose purpose is purely secular ८०७, १६०४.

दृष्टिपात a window १५९.

देय to be paid or given; liability; present

६२२, ३६, ४९, ५१, ६१, ७२, ७४, ७५, ७६, ७७, ७९, ८३, ८४, ८५, ७०४, ०६, ०७, ०९, १०, ११, १३, १४, १५, २०, २७, २८, ३१, ४९, ५१, ५६, ६६, ७३, ८५, ८६, ८८, ९२, ९४, ९५, ९७, ९८, ९९, ८०२, ०५, ०६, ०७, १४, १८, ३९, ४३, ४४, ४५, ४७, ५४, ५९, ७५, ७९, ९११, १८, ४७, ६०, ११०९, ९९, १२२७, २९, ३१, ४३, ४४, ४६, ५२, ८३, १३९१, ९३, १४०३, २२, २९, ३७, ५८, ६०, १५२०, ८९, १७६३, ६५, १८९६, १९०३, ११, १३, १४, २२, ३९, ४१, ५०, ५२, ५८, ६०, ६७, ७९, ८८.

देया to be presented or given; to be or being given in matrimony; to be appointed; to be divided; proper to be given ७९१, ८५६, ११०९, १०, १६, १२२३, ८७.

देव a deity; god ६०२, ०३, ०४, ०६, ८१०, १३, ५७, ५८, ६०, ९२३, २४, ६५, ६७, ६८, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७७, ८१, ८२, ८४, ८५, ८६, ८७, ९३, ९५, ९७, ९८, ९९, १००१, ०२, ०३, ०४, ०५, ०७, १४, १५, २१, २३, २४, ३०, ३३, ५५, ६०, ७५, १११३, १८, १९, ११२०, २२, ४२, ४३, ४४, ६२, ८१, ९५, १२४४, ५८, ६०, ६२, ८३, ८४, ८६, १३६४, ८४, ८५, १४६४, ७३, १५८८, ९४, ९५, ९६, ९७, १६००, ०१, ०२, २१, ४९, ५५, १७४५, ६६, ७३, ८२, ९३, १८११, ३६, ३७, ३९, ४०, ४१, ४३, ९५, ९६, १९०० ०१, ०२, ०३, २२, २४, ३०, ४०, ४२, ६५, ६६, ७०, ७७, ८१, ८२, ८३, ८५.

देवकुलस्थान a temple ७२९.

देवलोय (षट्) (an impotent) who has been deprived of his potency by the wrath

of a deity १०९४.

देवगृह a temple; sanctuary ७८७, ९०, ८७३, ९५८, ६१.

देवजुत incited by the god ९९०, १४६४, १६००.

देवता god; divinity ६०३, ०४, ०५, ८०८, १४, ५८, ६०, ९९४, १००८, २३, २८, ५२, ७७, ११०६, १५, १७, १९, १२४४, ७८, ८३, १५२४, ९५, ९६, १७२७, १९६५, ७९.

देवतागार sanctuary of a divinity १६२९, १७१३, १९२९.

देवतागृह see देवतागार ११८३.

देवतायतन see देवतागार ९३४, १७५४.

देवद्रव्य property of gods १६१८.

देवधन see देवद्रव्य १६४६.

देवन game at dice १९०६, १०, ११.

देवपत्नी wife of a god ६०३, १८४०, १९०३.

देवपशु an animal consecrated to a deity ९११, १६१८, २१, १८३४.

देवपुत्र the son of a god १९८०.

देवपीडु reviling or despising the god १४६४, १६००.

देवपुरा divine fortress १००१.

देवप्रतिमा image of a god १६११, १८.

देवबन्धु related to the gods १६००.

देवभाग N. of a son of the king s'ūra १३७६.

देवयान leading to the gods ६०२.

देवयानी N. of the wife of *yayāti* १३९१.

देवर a brother-in-law ७०३, ९८०, १०१२, १३, २०, २१, ४३, ५२, ६५, ६९, ८९, ११०१, ०३, १६, १८, १२५७, १३७३, ७४, ८४, ९५, ९६, १४०२, ५८.

देवरवती having a brother-in-law १२८७.

देवरात god-given; N. of a sage १२६१, १९८१.

देवरातो वैश्वामित्र a god-given son of *Vishvā-mitra*; N. of a sage १२६०, १९८१.

देवलोक the world or sphere of a divinity; heaven १०३८, ७७, १२६२.

देववत् N. of a king ८११.

देवव्रत any religious observation १००९.
 देवश्रवस् N. of a son of the king *Sūra*
 १३७६.
 देवस्थान a temple ९३०.
 देवस्व see देवधन १७२७.
 देवायतन a temple ९२६, ३१.
 देवी a female deity ७९२, ९२४, ६४, ७९, ९५,
 १००१, ०२, ०३, ०५, ०६, १२८४, १८३८,
 १९६६.
 देवृ a brother-in-law ९८६, १०००.
 देवुकामा loving a brother-in-law १००२.
 देवेन्द्र excellent among the gods; N. of
Indra or *S'iva* ८६०.
 देश a place; country ६१८, १९, २५, २६, ६२,
 ७२, ७३, ७४, ७९, ७०३, ११, २८, ३५, ३६,
 ५७, ६१, ७९, ८२, ८८, ८०६, १७, ४४, ४७,
 ५४, ६२, ६४, ८८, ९०८, १६, ३०, ४५, ५१,
 ५५, ५६, १०३८, ११०३, १०, १९, ६५, ८५,
 १५६९, ८९, १६०९, १८, ४०, ७१, ७३, ७६,
 ७९, ८२, ८३, ८४, ८५, ९५, १७३५, ३८, ४६,
 ५३, ७०, ७६, ८२, ८४, ८९, ९०, ९१, ९२,
 ९५, १८५०, १९०७, १७, १९, २१, २२, २७,
 २८, २९, ३१, ४१, ४२, ४३, ४५, ५४, ६५,
 ६६, ६९, ७९.
 देशत्याग one who has absconded ६८०.
 देशदृष्ट seen (i. e. usual or customary) in
 a country १९४२.
 देशदृष्टि custom peculiar to a country १९४२.
 देशधर्म usages of a country ७०३, ११०३,
 १९१८, २१, २२, ३१, ४३.
 देशनिक्षेप emigration to another country
 १९२४.
 देशस्थिति local custom ७८६.
 देशान्तर usages of a country ६२५, ७२७, २८.
 देशाध्यक्ष lord of the whole country १९२१.
 देशिकद providing guides १७५५.
 देशिन् an inhabitant of a country १९४३.
 देह a gift ११५९.
 देह the body १०६४, ७९, १११९, १२०३, ९७,
 १३५०, १५१३, १८३३, ३१.

दैत्य a demon १९७०.
 दैवं दायं godly inheritance १२६१, १९८१.
 दैव fate; belonging to the gods; a form of
 marriage; deity ६३६, ६१, ७५५, ५६, ८१,
 १०२३, २९, ३४, ९६, ९८, १११८, १२६१,
 ६२, ८४, १४३९, १६१०, ३४, १९१८, २४, २५.
 दैवत a god; deity ८६३, १०२९, ३१, ७५, ७६,
 ७७, १११९, १८३५, ५०, १९२४, ३०, ४०.
 दैवराज fate and king ६३६, ४२, ४९, ५१, ५५,
 ५८, ७६, ७४८, ५१, ५३, ५६, ८५, ८५०, ९१५,
 ५२.
 दैवाप N. of *Indrota* १६०१.
 दैविक relating to gods १५८२, १९, २७, ४६.
 दैविकी क्रिया divine proof; ordeal and oath
 ७६७.
 दैवी क्रिया see दैविकी क्रिया ७१९.
 दैवोत्पात evil omen १७५८.
 दैवोदासि a patronymic of *Pratarāna* १६०३.
 दैव्य pertaining to god ६०१, ८५९.
 दोष fault; legal flaw; offence; deficiency:
 blemish; sin ६३६, ५५, ५८, ६०, ७०, ७५१,
 ५३, ६०, ६३, ९४, ९८, ९९, ८०६, ४२, ४३,
 ५०, ७१, ७६, ७८, ७९, ८१, ८५, ८४, ८५,
 ८८, ९४, ९०४, ०५, १२, १४, १७, १८, १९,
 २१, ३२, ४७, १०१२, १९, २१, २३, ३०, ३१,
 ३२, ३३, ४१, ७७, ७९, ८३, ९७, ९८, ११००,
 १०, १३, १४, १६, १८, १२६६, ८०, १३०५,
 ७६, १४०४, १६०५, ०९, १२, १४, १५, २६,
 ५१, ५२, ५५, ६९, ७८, ८०, ८३, ८७, ९५,
 १७२१, ४३, ५६, ५८, ६२, ६४, ७८, ७८, ८६,
 ८७, ९१, ९२, १८१९, २६, २७, ३५, ४७,
 ६६, ७६, ८१, ८३, ८८, १९०४, ०५, ११, २१,
 २९, ३३, ७०, ७५.
 दोषगौरव gravity of fault १०३०.
 दोषदर्शन discovery of a blemish १०, ९३.
 दोषन् the fore arm ९९६, १८३५.
 दोषभाज् guilty; liable to censure ६ ५२, ७६३,
 ८०६, ११००, १६१२, ४७, ५१, १७६, १८२६,
 ८८.
 दोषवन् one who exposes the defect (of the

man killed) १६५०, ५३.
 दोषा night १२५७, १६७०.
 दोह milk १६२१, १८४०.
 दोहद the longing of a pregnant woman
 for particular objects १०८३.
 दोहन giving milk ७९२, १९२४.
 दोह्य an animal that gives milk ६३४, ८९१,
 ९२, ९४, ९७, १२२२, ३०, १४५४.
 दौर्बल्य inability १६०४, १९१८, ३१.
 दौर्भाग्य misfortune १००२.
 दौःशन्ति son of दुःशन्त १९८५.
 दौषन्त N. of a mixed caste ११०५.
 दौहित्र a daughter's son १२५५, ६८, ७९, ८१,
 ८२, ८६, ९५, ९७, १३०२, ५०, ५५, ६५, ७३,
 ७४, १४५०, ७०, ७१, ७३, ७४, १५१३, २४,
 २६, १९८५, ८६, ८८.
 दौहित्रक see दौहित्र; relating to a daughter's
 son १२६२, ८६, १४७१, १५५९.
 दौहित्रज acquired by a daughter's son
 १२८३, १९७१.
 आवायुयिनो heaven and earth ८५७, ९६८, ६९,
 ७६, ७७, ९६, १००१, ०३, ११५९.
 सु heaven ६०५, ७९०, ९७५, १८००, ०५, २८, ६२, ७७,
 ७९, ११०९, १०, ११, १३, ४७, १६००, ०३,
 १८३६, ४०, १९०१, ०२, ६४, ६५, ७९.
 शूत gambling ६३३, ७७, ८६२, ११३०, १६६९,
 ८२, १७४१, ६५, १९०३, ०४, ०५, ०६, १०,
 ११, १२, १३.
 शूतकृत (debt) incurred or contracted in
 gambling ६८५, ९५, ७१५.
 शूतधर्म rule of gambling १९०५.
 शूतमण्डल a circle of gamblers १९११.
 शूतसमाह्वय gambling and betting १९०४,
 १०.
 शूतसर्वश्व superintendent of gambling १९०४.
 शूतान्धान gambling and betting ६२८.
 द्रविण wealth; property ६७१, ७१०, १००४,
 १४०३, २३, १८८५.
 द्रव्य property; wealth; articles; money
 ६३६, ४५, ५२, ५३, ५५, ५८, ६१, ७७,

९५, ७१३, १५, १६, २५, २६, २९, ३०,
 ३१, ३२, ३७, ४५, ४६, ४७, ४८, ५१,
 ५३, ५४, ५६, ५७, ६१, ६३, ६४, ६६,
 ६८, ७२, ७७, ७९, ८४, ८८, ९७, ९९,
 ८०४, १८, २३, २९, ६१, ६२, ६३, ७९,
 ८३, ८९, ९०, ९१, ९६, ९७, ९९, १००,
 ०१, १२, ५५, १०२५, २९, १११८, ३०,
 ४२, ७५, ७९, ८४, ८६, ९४, १२०५, १३,
 १५, ३०, ४४, ८१, १३८७, ९०, १४०५,
 १६, २४, २९, ५७, ६२, ६३, ७१, ७३,
 १५२२, २६, २७, ६१, ७२, ७४, ८८,
 १६१०, ११, १३, १४, १७, ३०, ३१, ३३,
 ४०, ४५, ४९, ५०, ५९, ६७, ६९, ७०,
 ७१, ७२, ७८, ८०, ८१, ८३, ८४, ८६,
 ८७, ८८, १७२०, २३, ३५, ४१, ४४, ४५,
 ५०, ५३, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ८९,
 ९९, १८००, ०६, २१, २४, १९०४, १४,
 २२, २८, २९, ३२, ३८, ४०, ४२, ५३,
 ५४, ५८, ६०, ६२, ६९, ७०, ७८, ७९,
 ८३.
 द्रव्यजात entire property ११७३, १४१३.
 द्रव्यदान giving money ८१६.
 द्रव्यदायक (surety) for the payment of
 borrowed sum ६७७.
 द्रव्यपरीमाण sufficient money or wealth ७२५.
 द्रव्यभेद (undue) alteration of medicine-
 १६५१.
 द्रव्यभोग possession of property ७३७.
 द्रव्यवत् wealthy ८६१, १४१४.
 द्रव्यवन forest containing raw material
 (such as sandal wood etc.) १६१७, १९-
 द्रव्यवृद्धि interest on money ६१०.
 द्रव्यसंयुक्त concerned with wealth १४२४.
 द्रव्यहारिन् see धनहारिन् ७०८.
 द्रव्यहीन destitute of property १६३९.
 द्रव्यहस्त see धनहारिन् ७१०.
 द्रव्यार्पण delivery of money ६७१.
 दृष्ट a judge १९०९, ११.
 द्रु a wooden vessel ११४३.
 द्रुपद N. of a king of the *Panchālas* ८१८.

१०२७.
 द्रुम a tree १४०, ४४, ६२, १६०९, ९२, १७९८,
 १८००, २२, २३, १९२९.
 द्रुह a foe १५९७.
 द्रुह्यु N. of a son of *yayāti* १३९१.
 द्रोण a wooden vessel ९२३, १६२१, ७७.
 द्रोणमुखपथ road to the end of valley ९३२.
 द्रोह enmity ७५१, ८५४, १०४९, १७६१, ७०,
 १८९३.
 द्रौपदी N. of the wife of *pāṇḍavas* ८१९,
 १०२७.
 द्वन्द्वयुद्ध a duel १९०३, १३.
 द्वादशवार्षिकी twelve years old १०४३.
 त्रयापर N. of the third age of the world
 ११०९, १८९७, ९८, १९३०.
 द्वार a gate ७२५, ८२९, ६३, ९२७, ११११,
 १६३०, ८१, ८५, १९१४, ३०, ६५.
 द्विगति having two ways १९६३.
 द्विगुण double; twofold ६०७, ०८, ०९, १०,
 ११, २१, २६, ३०, ३१, ३२, ३५, ३६, ४३,
 ४५, ४७, ५४, ५६, ५८, ६१, ६२, ६७, ७०, ७२,
 ७७, ७१५, २०, २६, २९, ३१, ३२, ५४, ५६,
 ६५, ६८, ८९, ८०३, ४३, ४६, ४९, ५०,
 ५१, ५३, ५५, ६१, ७९, ८५, ८७, ८८,
 ८९, ९३, ९४, ९००, ०५, ०६, १३, १७,
 २१, ३०, ५७, १०२४, ३५, ३६, ३७, ३९,
 ११००, १२, १२४३, १६०३, १२, १४, १७,
 २१, २८, ३३, ४६, ५४, ५७, ७०, ७३,
 ७४, ७५, ७७, ८९, ९०, १७१८, २१, ५७,
 ५८, ५९, ६०, ६२, ६३, ६५, ६६, ६७,
 ७०, ७२, ७४, ८०, ८४, ८७, ८९, ९०,
 ९२, ९७, ९८, ९९, १८००, १४, १६, १८,
 २०, २२, २३, ३०, ३१, ३२, ४८, ४९,
 ५०, ६१, ६८, ७९, १९०४, २१, २७, ३३,
 ४३, ४४, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७५,
 ७६, ७८.
 द्विगुणाधि pledge equal to double the
 amount of debt ६३७.
 द्विगुणीभूत that which has become double
 ६४७, ५२, ५८, ७२६, ३२.

द्विगोत्र belonging to two families; having
 two family names १२६९, ८८.
 द्विज a twice-born (the three main
 castes) ७०४, ८९, ८१९, २०, ३९, ९१२,
 १०२३, ३३, ५३, ६८, १११०, १२४४, ८४,
 १३५५, ६३, ७७, १६२८, ३६, ४८, ५५,
 १७०२, २३, ८८, १८३५, ८४, ९०, १९२७,
 ३२, ४०, ४१, ४२, ४३, ५६, ६०, ६२, ६८,
 ६९, ७६.
 द्विजकर्म duties of a twice-born १०१६.
 द्विजन्मज a twice-born; bird ८४०.
 द्विजन्मन् vide द्विज ८१९, ३९, ११०९, १२३६, ४९,
 १३८४, १९२७.
 द्विजलिङ्गिन् wearing the marks of a twice-
 born १९०६.
 द्विजस्त्री wife of a twice-born १११९.
 द्विजान्य first among the twice-born; a
Brāhmana १६५५.
 द्विजाति see द्विज ७३१, ८४, ८०३, १८, ३७,
 १०२३, ६६, ७५, १२४०, ४३, ५१, ५२,
 ८५, १५८८, १६२३, १७०१, ६८, ७४, ७५,
 ८७, ८८, ९४, १८३१, ३५, १९२६, ३१, ७०,
 ८५.
 द्विजातिप्रवर see द्विजान्य १२७०.
 द्विजातिशुश्रूषा service of a twice-born man
 ८१६.
 द्विजानि having two wives ९८९.
 द्विजोत्तम a *Brāhmana* ८३६, १०२८, १३६४,
 १९६२, ६९.
 द्विट् an enemy ६००, १८३९, १९३६.
 द्विट्सेविन् serving an enemy; a traitor १६३२.
 द्विदार having two wives १११५.
 द्विदेवत्या relating or belonging to two dei-
 ties १५९६.
 द्विपटवान् weaving cloth with double fibre
 १६७३.
 द्विपद् see द्विपद् १९३६, ८४.
 द्विपद biped; man ८१३, ७९, ९४, ९८, ९८६,
 १००३, ११६६, ८३, १५८७, १७५८, १९८८.
 द्विपाद् biped १८३७.

द्विपितृ having two fathers १२६९.
द्विपितृक see द्विपितृ १२८८.
द्विभाग double portion or share ११८१.
द्विभागधन double the goods or property ११६२.
द्विसार्य having two wives १४५६.
द्विरंश see अंश १२४३.
द्विरुत्थान having two sources १९६३.
द्विषती(न्ती) detesting; hostile १०३५, ३६, ५५, ५६, १३९३.
द्वेष hatred; malice ५९९, ७८५, ८६२, ७३, ९९८, १०३६, ९७, १११२, १६१५, ५४, ८६, १७९१, १८२९, ३२, १९७४.
द्वैगुण्य duplication; doubling ६०७, ७३०, ९१२, ५८.
द्वैजात see द्विजाति १८६२.
द्वैध difference १०७७.
द्वैधीभाव difference of opinion ९२९.
द्वैमातृ having two mothers १९८८.
द्वैवार्षिक biennial ९३०.
द्वंश a couple of shares ७८७, ८८, ९०, ११८४, ९३, १२०५, ३९, ४६.
द्वंशहर taking a couple of shares ११७४
द्वंशिन having two shares ११८२.
द्वन्तर son begotten by a *Brāhmaṇa* on a *Sūdrā* or by a *Sūdra* on a *Brāhmaṇā* ११०४, ०५.
द्वामुष्यायण a boy who remains heir to both the fathers (one the begetter and the other who has taken him by adoption, *Niyoga* etc.) १२६४, ६५, ८२, १३५६.
द्वामुष्यायणक see द्वामुष्यायण १३८४.
द्वार्धेय having two holy ancestors १३५६.
दृष्ट a scale; ordeal of scale १९६५, ६६.
धनंजय N. of *Arjuna* १९०१, ६७.
धन property; wealth; loan; riches ६००, ०९, २२, ३२, ३३, ३६, ४३, ४५, ४७, ५१, ५२, ५८, ६०, ६१, ६७, ७१, ७४, ७६, ७८, ८९, ९५, ७००, ०४, ०९, ११, १४, १५, १६, १८, २१, ३०, ३१, ३२, ३५, ४४, ४९, ५९,

६०, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ८४, ८५, ८८, ९०, ९५, ८०६, ०७, १८, १९, २२, ३२, ३४, ३७, ३९, ४१, ५५, ७६, ९९, १००१, ०४, १४, २६, २९, ३०, ७७, ११११, १४, १९, २९, ३१, ४१, ४२, ४६, ५२, ५६, ६६, ७२, ८२, ८४, ८९, ९५, ९६, १२०१, ०५, १०, ११, १२, १९, २०, २२, २४, २७, २८, २९, ३०, ३१, ४०, ४३, ४४, ५३, ५४, ७३, ८३, ८६, ८८, ९४, ९५, ९८, १३००, १८, २३, २४, ४६, ४७, ४८, ५०, ५६, ७३, ७५, ७६, ९०, ९१, ९३, ९६, ९८, १४०१, ०२, ०७, २१, २२, २८, २९, ३७, ३८, ३९, ४०, ५०, ६०, ६२, ६३, ६४, ७०, ७१, ७३, ७४, ७६, १५१२, १३, १४, १७, १८, २०, २४, २६, २७, २९, ३०, ४०, ४४, ५३, ५९, ६०, ६२, ६३, ६७, ६८, ७१, ७३, ७४, ८१, ८२, ८३, ८४, ८६, ८७, १६००, २७, ३२, ३६, ५१, ६९, ७१, ९७, १७१४, २७, ५६, ५७, ६०, ६५, ६६, १८२८, ३२, ३५, ४५, ८६, ९५, ९८, १९००, ०१, ०२, २०, २८, ३०, ३१, ३३, ३९, ४३, ५०, ५७, ५८, ६१, ६२, ६४, ७६, ७८, ८३, ८५, ८७, ८८.
धनकाम desirous of wealth १४६४, १६००.
धनक्रीता purchased with money ७०३, ११०३.
धनग्राह a creditor ७१०.
धनग्राहिन् a creditor ६७८.
धनजात goods of every kind ११८९.
धनतम(दाय) an exceedingly rich donation ११८१.
धनद N. of the deity *Kuber* १९३६.
धनदण्ड fine १८८३.
धनदानासह one unable to discharge his debt ७२९.
धनपति master of wealth ९९८.
धनप्रयोगधर्म rules regarding lending money at interest ६२३.
धनभागिन् a sharer in the property; an heir १५३०.
धनभाज see धनभागिन् ३४१, ५२, ५९, १४७९.
धनभाजन see धनभागिन् १३६२, ७१.

धनमूला dependent on wealth ११२९.
 धनलाभ acquisition of property १२५५.
 धनवत् wealthy १०३०, १४५८.
 धनहर taking money; an heir १५१८.
 धनहरी see धनहर १५१५, १६ २१.
 धनहर्तु taking money; money-stealing; a thief १६१२.
 धनहारक see धनहर १४७३.
 धनहारिन् see धनहर ७००, ०८, १५२४.
 धनांश a portion of the property १५२२.
 धनांशभागिन् entitled to a share in the property १५४२.
 धनागम source of wealth ११२९, ३१, १६२३, १९३९, ४०, ४१.
 धनापह a thief १६०८, २६, १९१३.
 धनार्जन acquisition of wealth or property ८१८.
 धनाहक entitled to the property १५१८.
 धनाशिन् enjoying the property १५८९.
 धनिक a creditor; rich merchant ६११, ३५, ३६, ५३, ५५, ६२, ६७, ७०, ७६, ७०६, १०, १८, १९, २०, ३०, ३१, ३४, ३५, ३८, ८९६, ९८, ९९, ९००, ०१, २८, १४५७, १६७१.
 धनिन् see धनिक ६३०, ३६, ४१, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५८, ५९, ६०, ६१, ६७, ७०, ७२, ७५, ७७, ८९, ९५, ७००, ०५, १४, १५, २२, २६, २८, २९, ३१, ४७, ६०, ६७, ११२१, १२२९, १३७४, १५२९, १९५८.
 धनु a particular measure; a bow ९०६, ०९, १३, ६२, १६००, १९७६.
 धनेश्वर see धनद १९७०.
 धन्वन् a desert १९२१.
 धरक a scale-holder १६७८.
 धरण a particular measure; support ८५८, १६७४, ७५, १९२९, ६८.
 धरमाण living १४७४.
 धरा the earth १९३०.
 धरिममेव measurable by weight १६०९, ७१;

१७१६, ५०.
 धरुण water १५९१.
 धर्म law; usage; practice; justice; religion; morality; sacred duties; rule; merit; quality; a particular deity ६०८, ०९, ११, २२, २७, ७७, ७०९, १०, १७, २३, २५, २७, ३७, ४३, ४९, ५२, ५६, ८२, ८७, ९०, ९५, ८०२, ०६, १८, १९, ३६, ४६, ५५, ६०, ६४, ६६, ७०, ७५, ७६, ७७, ८२, ८९, ९८, ९३१, ३७, ४७, ४९, ५१, ५५, ९७, १००१, ०४, १२, १७, १८, २०, २१, २२, २३, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३३, ३४, ३८, ४३, ४४, ४६, ४७, ४९, ५४, ५५, ६२, ६४, ६५, ६६, ७२, ७४, ७५, ७६, ७७, ८४, ९६, ९७, ९८, ११०३, ०६, १०, ११, १३, १४, १६, १८, १९, २५, २७, २८, ४२, ४८, ७२, ८५, ९१, ९२, ९७, ९९, १२२५, २८, २९, ३७, ४३, ४४, ४८, ५१, ५२, ५५, ८३, ८४, ८५, ८६, ८८, ९४, ९७, १३१०, १६, १७, १८, ४२, ४७, ५०, ७३, ७६, ८४, ८५, ९१, १४०४, १५, २२, २४, २९, ३०, ५७, ७३, ७४, ७८, १५१२, १३, २४, २६, ५८, ७९, ८०, ८८, १६१२, २३, २७, २९, ४८, ५०, ५५, १६६१, ६६, ६७, ६८, ९८, १७००, २५, ४४, ५७, ६२, ७०, ७३, ९५, १८४४, ९५, १९१६, १७, २०, २१, २२, २३, २६, २७, ३२, ३३, ३५, ३६, ४०, ४१, ४२, ४३, ५४, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६९, ७१, ७३, ७४, ७६, ७८, ८४, ८५, ८६, ८८.
 धर्मकरद paying tax in the shape of pious act १६७१.
 धर्मकारानुशासन law laid down by law-givers ६३५.
 धर्मकार्य religious duty; act of piety ७१५, ८५९, ७२, १०२३, २६, २९, ५२, ५४, ६१, ९१, १४३०, ४७, १९२१.
 धर्मकृत् virtuous १०७७.
 धर्मकृत्य any religious observance १४६६.
 धर्मक्रिया righteous contract ८५९.
 धर्मचारिन् dutiful; virtuous १०२०, २८, ७७, १९७०.

- धर्मचिन्तक a law-giver १९६९.
 धर्मज (a son) produced by a sense of duty;
 eldest son ११९७, १५२५, १९८७.
 धर्मजल्पित a kind of surety; (a surety) of
 one's own religious merit ६७७.
 धर्मजीवन one who lives on religion १६२९,
 ९८, १९२९.
 धर्मज्ञ knowing the law ७३८, ४७, ८०१, ५५,
 ६८, ७३, १०२८, १२८६, १३२९, १६५५,
 १९३९, ६५, ६८, ६९, ७१, ७८.
 धर्मतत्त्व the real essence of the law ९०७,
 १०२७, १२८४, १९६७.
 धर्मतन्त्रपीडा violation of sacred law;
 disturbance to religious duty and
 marriage १६६१.
 धर्मतन्त्रलङ्घन engagement in religious rite
 १६५९.
 धर्मदर्शन a book of law १२८४.
 धर्मदाशिन a law-giver, १९६३.
 धर्मदान a gift made from duty; religious
 gift ७९४, ८०७.
 धर्मधन legal property ८१८.
 धर्मधृत् observing the law १८९६.
 धर्मधृति observation of law १८९६.
 धर्मनाश disappearance of religion १०१४.
 धर्मपत्नी a lawful wife १११४, १२८४, १३३०,
 ७३.
 धर्मपथ the way of duty or virtue १०२८,
 १११८.
 धर्मपालक a guardian of law १९४२.
 धर्मप्रश्न inquiry into the law १९६३.
 धर्मफल the merit of *Dharma* १९८४.
 धर्मभूत a law supporter १९८४.
 धर्मभ्रातृ a brother in respect of religion
 १५०९, १९८६.
 धर्मयुक्त relating to duty; righteous; in
 accordance with law १२४४, १३८७,
 १४५८.
 धर्मयुक्त wide धर्मयुक्त ८०६.
 धर्मयुक्त fight in accordance with the rules
 १६५५.
 धर्मवध see धर्मनाश १०४०.
 धर्मवाद a rule of the sacred texts; com-
 mandment of religion १०२१.
 धर्मवादिन् discussing law ११०१, १२८३, ८४.
 धर्मविद् knowing the law or duty; virtuous
 ८१८, ९८, ९००, ३९, ५६, १०२७, २८, ७५, ७७,
 १२४६, ८३, ८४, ८५, १३५१, ५६, ७६, १९२१,
 ६६, ७८; ८४.
 धर्मविवाह lawful-marriage १०३६, ४०.
 धर्मवृद्धि increase of spiritual merit ११२४.
 धर्मव्यतिक्रम transgression of the law or
 religion ११००, १२, १२६७, १६०४, ०५,
 ०७.
 धर्मशासन a book of law १२८८.
 धर्मशास्त्र a law-book ७९३, १२८६, ८७, १९४२.
 धर्मसंयुक्त dutiful; just; legal ७९४, ८०८,
 १३६३.
 धर्मसंहिता in accordance with law १२८४.
 धर्मसमय a legal contract १६२९, ९८, १९२९.
 धर्मस्थ a judge ६३८, ७५७, १०४०, १६७९,
 ९०.
 धर्माचार religious custom १९४२.
 धर्मासन the throne of justice; judgement-
 seat १९३६.
 धर्मिष्ठ very virtuous; religious, completely
 lawful ८१९, ६१, ६३, १३७५, १४१६, ३०,
 ७४, १९२१, ६५.
 धर्मोपदेश religious instruction १७७६, ८८, ९०,
 ९२.
 धर्म्य legitimate; virtuous; customary ६०६,
 ०८, ११, ५३, ७३२, ९६, ८७३, ८१, १०२७,
 २८, ३४, ४४, ९१, ९८, ११२६, २८, ३१,
 ४२, ७३, १२४६, ८४, ८५, १३७५, १४१३,
 ३०, ५९, १६१४, १९, २७, १९०७, २८,
 ४२, ६४, ६५, ७२.
 धव a man (husband in general) ९९६,
 १५२०.
 धातु metal १७४७, ६७, १९५७.
 धातृ a creator; founder १००१, ०२, १२८८,

१९७१, ८५.
 घात्री a female supporter; nurse ८१७, ३८,
 १८८२.
 धान्य grain ६०२, ०८, ०९, १०, १२, २१, २६,
 २७, ३०, ३५, ५४, ६८, ७३१, ८४, ८६, ९०,
 ८६०, ९९, ९०६, १०, २०, १०१४, ११८०,
 १४०१, १५१३, २६, १६०९, ५७, ६९, ७०, ७१,
 ७८, १७१४, १९, २९, ४४, ४५, ५०, ६०,
 ६५, ६६, १९२४, २५, ३९, ४३, ७६.
 धान्यमाष a particular measure १९६७.
 धान्यवृद्धि interest in the form of grain ६११.
 धामन् dwelling ९७६, १२५७.
 धारण retaintion; wearing; carrying; convi-
 ction १६८७, १७६८, १८८७, १९६४.
 धारण(णि)क a debtor ६११, ३८, ४६, ७३२.
 धारणा a settled rule; decree; established law
 ६५६, ७४३, ८७१, ९११, १०१५, २८, १११३,
 १२११, ३६, १३८४, १६८७, १८०४, ३४.
 धार्तराष्ट्र a son of *Dhrtaraṣṭra* ८१८.
 धार्म obtained in religious act १९८३.
 धार्मिक dutiful; just; religious; legal ७३१,
 ८१८, ६५, ९११, १०३३, ४०, १२६४, ८६,
 १३२९, ३०, १४०२, १६९६, १७०१, २३, २७,
 ६९, १९२९, ३१, ५२, ६२, ७०, ७४, ७९, ८६.
 धार्म्य lawful १६६६.
 धावक a runner १६३४.
 धावन running १०२६, १२४४, १९२२.
 धिष्य a side altar १८९६.
 धूर्त eminently fit; a horse; bullock ७१०, ६४.
 धूप aromatic-smoke १८८९, १९६६.
 धूमशिखा wages ११२६.
 धूमप्रसादिक (?) a prayer धूमावसानिक (by Dr.
 Jolly) १५२०.
 धूर्त cunning; shrewd ७१५, १०२४, २५, ८७,
 १६५३, १८३३, १९०८, ०९, १५.
 द्यूतदण्ड one who has suffered punishment
 ३६४४, ६८, १७०४, ५१, ८७.
 द्यूतराज N. of a king १९८४.
 द्यूतव्रत of fixed law or order ९६६, १९७६,
 १९७६, १९७६, ३९.

धृति contentment (with little); maintenance
 ११२७, १२६१.
 धेनु a milch-cow ६११, ७६४, ८४२, ७८, ९०६,
 १५, १०००, ११२०, १३८५, १४०२, १६०६,
 १८४०, १९७५, ७६.
 धेनुभूत (a man) hired for attendance on
 milch-cow ९१९.
 धौन washed ८९१, १६७४, ८५, १७४८.
 ध्राजि sweep of wind ९९७.
 ध्रियमाण alive १५२५.
 ध्रुति misleading or seduction १५९१, १८९३.
 ध्वज a banner; the organ of generation
 १०९५, १६१३, ३०, ८७, १९२९.
 ध्वजाकारा (boundary) furnished with a
 banner ९६१.
 ध्वजाहत conquered in a battle (property,
 men etc.) ८१७, २१, १२२७, १९२८.
 ध्वजिनी see ध्वजाकारा ९४४, ६१.
 नकुल ichneumon ८१८, १९, ९९७, १६०६, १७,
 ७२, १८३४, १९२५.
 नक्त night ६००, १८९५.
 नक्तमाल a kind of tree १६८७.
 नक्षत्र a star; constellation १३७६, १४६३.
 नख a nail ९९२, १५९९, १६८५, १८८७, ९१.
 नखर crooked; nail-scratch १८९७.
 नखिन् a clawed animal १६१२, ५१.
 नग a kind of tree ९५०, १७१९.
 नगर a town; city ९०९, १३, २५, ४४, ५१,
 ५५, १३२९, १६६४, १९२२, ४२, ७६, ८६.
 नगरस्थ a citizen १०७७.
 नगराभ्याश neighbourhood of a town ७८६.
 नग्न naked (नमा— a wanton woman) ८३६,
 १०३५, १११९, १८४५.
 नमिका a girl before menstruation (allowed
 to go naked) १०१९, २१, ४२, १९७७.
 नचिकेतस् N. of a man ७९१.
 नट an actor ८६३.
 नटन dancing ८०८.
 नदी a river ८४३, ९०१, ९२०, १५०, ५१, ५२,
 ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३,
 ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००.

२७, ३६, ४४, ४५.
 नञोत्सृष्टा (land) abandoned by a river
 ९५१.
 नना an expression for mother or daughter
 ११२१.
 ननान्द्र a husband's sister ९८६, १०००.
 नन्दन a son; descendant ८४०, १२४४, ८३,
 १३७६, १४२९, १९६५, ६७.
 नन्दिन् N. of an attendant of S'iva १३७७.
 नपात् a grandson; descendant ९७५, १८३६.
 नप्तृ a grandson ८११, ९८५, १२५५, १३९१,
 १९८८.
 नप्त्य a grandson; son; child; grandchild
 १२५५.
 नमुचि N. of a sage; N. of a demon slain
 by Indra १०३२, १५९७.
 नयन the eye १९८५.
 नर a man ६३७, ७२, ७२७, ४४, ४९, ५५, ६१, ८५,
 ८६, ८०७, ३१, ३४, ६४, ७३, ७६, ९७, ९१८,
 २०, ४४, ४५, ५१, ११३०, ५८, १२४३, ७२,
 ८४, १३२९, ७७, ९०, १५७३, १६२२, २७,
 ४७, ४९, ५१, १७०५, २०, ३६, ४६, ५३, ६३,
 ६४, ९१, ९२, १८१६, ३१, ५०, ६६, ८६, ८९,
 ९१, ९२, १९०६, १४, २९, ३५, ४१, ४६, ६४,
 ६५, ७०, ७६, ८३, ८५, ८९.
 नरक a hell ६९२, ७१०, ९२, ९४, ८०८, १०१७,
 १८, २३, १११०, ११, १५, ८५, १२६२, ७९,
 ९०, १३२८, ४८, ४९, ५०, ५२, १७०१, ०२,
 १९३९, ८४, ८५.
 नरदेव a king १२८८.
 नरमारिणी a murderess १३८९.
 नरहर्तृ a kidnapper १७३५.
 नराधम low or vile man ८३१, ९७, १६०२.
 नराधिप a king ८१९, १२८७, १३२९, १९३६.
 नरेन्द्र a king १६९२, १९२९, ६४, ७५, ८५.
 नर्तक a dancer ७८७, ९०, ८६३, १९४३.
 नर्तन dancee १९४३.
 नर्मदत्त a gift in jest ८०४.
 नर्तक a man १८३६.
 नर्तक nard ९९७.

नवगत् first bearing ९९३.
 नवग्व a race of Rghis १००१.
 नवश्राद्ध the first series of S'rāddhas collect-
 ively (offered on the 1st, 3rd, 5th,
 7th, 9th, and 11th day after a person's
 death) १५९२.
 न व्यावहारिक (debt) which is not righteous
 or proper (Aparārka); incurred for
 drinking (Smṛtīchandrīkā); not use-
 ful for the welfare of family (Bālabh-
 attā); what is beyond the ordinary
 conduct of a person (Vivādachintā-
 māni); (debt) not lawful, usual or
 customary ७१४.
 नष्ट lost; disappeared ६३६, ४२, ५१, ५४, ५८,
 ६१, ७२, ७४, ८०, ९६, ७२६, ३१, ३५, ३६,
 ३७, ४८, ५३, ५५, ५६, ६२, ८०६, ४६, ५०,
 ५२, ९०८, १२, १६, ४८, १०१३, ११००, ०७,
 १२, १७, १२२४, १५६१, ७४, १६७३, ८३,
 १७३५, ६३, १८५०, १९५४, ५९, ६१, ६४, ८५.
 नष्टचिह्न (a boundary) of which the mark
 has disappeared ९४५.
 नष्टपुत्र one whose all sons are dead १९८५.
 नष्टप्रत्याहृत possession of lost (property)
 ७५७.
 नष्टापहृत (property, article) lost or taken
 away by another ७५७, ६१.
 नस्य a nose-string १६२१, १८०७, २०, १९३३.
 नग the race of Kadru; relating to a
 mountain or elephant ८१३, ४०, १९२१,
 २५.
 नागरिक a citizen १६८३, ८५, १९२४.
 नाडीका the wind-pipe or throat १६००.
 नाणक a coin १३७३, १७२९.
 नाणकवेदिन् expert in examination of coins
 ७८४.
 नक्षत्र a protector; master; lord १०३२, ७७,
 १११९, १८८१, ९४.
 नानास्त्रीपुत्राः sons of several wives of one
 husband १२३४.

नापित a barber ७०८.
 नामा N. of a *Rshī* १०८०.
 नामानेदिष्ठ N. of the son of *Manu-Vaiivasvat*
 ११६१, ६२.
 नाभि the navel १७९८, १८३६, १९७९.
 नामन् name ६७७, ११९३, १६८२, ८५, १७४१,
 ५३, ७०, ७५, ८८, १८४१, ९१, ९६, १९०२,
 ६६, ८३, ८५, ८६.
 नामसंकीर्तन the glorification of name १३१६,
 ४८, ५२.
 नारक inhabitant of hell १५९६.
 नारद N. of a sage १०३०, ३१, ३२, १४६४,
 १६००, १९६५.
 नाराशंसी (verse) celebrating men ८११,
 १०००.
 नारी a woman ७५१, ८१८, ३९, ९९, ९६४,
 ७३, ७८, ८७, ९७, ९८, १००१, ०२, ०४, १६,
 १७, २०, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१,
 ३२, ३३, ५२, ५७, ५८, ६६, ७०, ७५, ७६,
 ७७, ९५, ११००, ०१, ०६, ०७, १०, ११, १३,
 १४, १५, १६, १७, १८, १९, १२५७, ८३, ८५,
 १३५०, ७४, ९०, ९१, ९६, १४०२, २३, ५२,
 ६६, ७३, १५१३, २३, २४, २६, २७, १६५३,
 १७११, ६५, १८५४, ७२, ८६, ८८, ९०, ९१,
 ९२, १९४१, ५०, ७८, ७९.
 नारीवृत्त the behaviour of a woman १०६४.
 नारीसंदूषण the blemish of a woman १०४८.
 नाविक a sailor ७१४, १६११, १९४४.
 नाश destruction; extinction; loss ६३८, ५१,
 ५८, ७५१, ५३, ५६, ७७, ८१, ८४९, ५४,
 ६१, ७९, ९१, ९०४, ०५, १६, ४७, १०१४,
 १११२, १२८३, ८४, १५१२, १६७३, १८५६,
 १९१४, ७६, ८३, ८४.
 नाष्टिक a person who has lost something
 ७५७, ५९, ६५, ६७, ६८, ६९, १६८४.
 नासा the nose १६१७, १९, ३८, ५३, १७८१,
 १९६, १९९, १८१७, ३१, ४६, ४९, ५०, ८७,
 ९१.
 नास्तिक see नासा १७६०, १९७०.
 नास्तिक a heretic १७०१, १९३६.

नास्तिक्य heresy; disbelief १११९.
 नाहुष belonging to the people or *Nahus*
 people ८१०.
 निःश्रेयस् ultimate bliss ८१६.
 निःसार्य to be banished १९६२.
 निःस्व residue १७३१.
 निःस्व poor; having no property ६९९, ८७५,
 १६३२, ५४, १८३३.
 निकृष्ट low १६७०.
 निक्षिप्त deposited ६३७, ७१५, ३५, ३७, ४४,
 ५३, ५६, ६२, १९७१.
 निक्षेप placing; a sealed-deposit ६३२, ३५,
 ४७, ७३१, ३२, ३५, ३७, ३८, ४०, ४१,
 ४२, ४३, ४४, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०,
 ५४, ५५, ५६, ६४, ९८, ८०७, ६३, १४७३,
 १५२७, १६१७, ७३, ८४, ८५, ८७, १९७१.
 निक्षेपक a depositor १९२२.
 निक्षेपधर्तु depositary ७५३.
 निक्षेपु a depositor ७३७, ४०, ४१, ४२, ४७,
 ४८, ५६, १६७३.
 निगम the scriptures १०५०, १२७१.
 निग्रह imprisonment; confinement ८३२, ६०,
 ६१, ७४, १६४८, ९५, ९९, १७०१, १८७०,
 १९२५, २७, २९, ३६, ४६, ७०.
 निग्राहक a punisher १६१८.
 निचय hoard ८१६, ६१, १६७८.
 नित्य inexhaustible; regularly necessary or
 obligatory (religious duty) ६६१, ८७२,
 १०७६, १११९, १२४३, ५३, १६४८, ६१, ९२,
 १७०१, १०, २५, ४९, १९०६, ०७, २९, ३०,
 ३६, ४२, ६४, ६५, ६६, ७८, ८३, ८५.
 नित्यानुवाद statement of facts ११६६.
 निदान N. of a *Vedic* book; the end (of the
Vedic section of *Bhāllavin*) १९२१.
 निधन death १७६०.
 निधान a receptacle १२५४, १९५५.
 निधि a deposit; store; treasure ६०१, ०४,
 ७३५, ५१, ९२४, ११००, १५७५, १६७५, ७६,
 ८३, १९४१, ४८, ४९, ५०, ५५, ५६, ५७, ६१,
 ६१, ६२.

- निधिप a guardian of treasure १९७४.
 निव्य blamable १०६४, ११००, ०१, १०, १२, १९१८.
 निषान a receptacle for water ९४२, ४६, १६१३.
 निवन्ध evaluated property; debt ६७१, ९३०, ११७५, १२२८.
 निवन्धक a writer १६८४.
 निमञ्जन drowning १६१९, १७७२.
 निमन्त्रण invitation ७७८, १६३५, १९२२.
 निमन्त्रित invited ७७३.
 निमित्त reason ६२४, ७३५, १२७३, १३८४, १६१६, ४७, ६५, १९२२, ३६, ७०.
 नियता self-restrained; abstentions १०२०, २८, ६२, ७६, १११३, १२४६.
 निवन्तव्य to be punished or checked ९०६, १३९७.
 नियम an act of voluntary penance; restriction; law; rule ८१७, १०१८, २०, २४, २५, २८, ६०, १२४३, ४४, ८४, १३५१, १५२७, १६०६, ६४, १७४७, ४८, १८४७, १९१८, ३३, ४०, ७८.
 नियान way; access; a cow-station ९०२.
 नियुक्त appointed; authorised; employed; instructed; bound ६९८, ७८६, ८०६, ७६, १०२७, ५५, ६५, ६६, ११०१, १३, १२७२, ७८, ७९, ८४, ८५, ८८, १३०४, १८, ९६, १४०६, १६१२, ३२, ५४.
 नियुजान one who authorises (a woman to beget a child from the nearest kin) १०६६.
 नियोक्तव्य to be authorised १०६६, ११००.
 नियोग order; injunction; appointment of a widow to raise offspring to her deceased lord ६९६, १०२२, ६५, ६६, ६७, ११०९, १७, १६, १८, १९, १२७२, ८४, ८५, १३९१.
 नियोगधर्म the practice of appointing a widow to bear offspring to her deceased lord ११९४.
 नियोगस्था practising *Niyoga* १५२५.
 नियोगिन् appointed; authorised १०२२, १२७२.
 नियोगोत्पादित begotten by *Niyoga* १३४२.
 नियोजन appointment १३८४.
 नियोजित appointed; authorised १२२९.
 निरंशक not entitled to a share १३९८.
 निरन्वय unconnected; unrelated; unprotected; in the absence of (the owner) ७५८, १६१३; २२, ९१, १७१९.
 निरपत्य childless १३५०.
 निरय a hell १२६४, ८६, १६५३.
 निरस्त exiled ९३२.
 निरागसु sinless; innocent ८१३.
 निरादिष्टधन one who has received money ६६५.
 निराधान taking no pledge or surety ६३४.
 निरिन्द्रिय impotent; destitute of manly strength; infirm ९९२, ९५, १०३३, ४९, १३८५, ८७, ८८, ९२, १८४१.
 निरुक्तज N. of a class of sons; son begotten by *Niyoga* १२८६.
 निरुद्ध detained ६७२, १०२४, १३९०, १६१५.
 निरुपकार(आधि) unproductive (pledge) ६३८.
 निरोद्धव्या to be detained १११०.
 निरोध obstruction, detention ८१९, ९१, १६०६, ६४, १७०१, ४८, ६१, १८६३.
 निरुक्ति calamity; adversity; a particular deity ९७७, ९५, १००२, ०८, १८३६.
 निर्गम going out; export ६७७, १७०७, १९२७.
 निर्णय decision ७४४, ६५, ८९, ८५१, ७२, ९८, ९३५, ३६, ३७, ५१, ५५, ५७, ५८, १०१५, १२२५, १३५५, १६९०, १७६४, ७३, ७९, १८०१, १९०७, २७, ४२, ४६, ८८.
 निर्दिष्ट referred; appointed ६५७, ७६४, ८५, १९१२.
 निर्देश a guide ९९४२.
 निर्दोष without any legal flaw; faultless ७०९, ६९, ८३९, ८७, १०२३, ३८, ११००, १४, ५६, १३९९, १९७२.
 निर्वन a propertyless man; pauper; insolvent ७१०, ७१४, २३, ३१, १४३०, ७७, १६२९.

- निर्धमन banishment १६०६.
 निर्धृत ex-communicated ८०४.
 निर्धमस्कार not to be saluted; offering no
 homage (e. g. to the gods) १०७५,
 १६२७.
 निर्धन्धु having no relative ११००.
 निर्बीज childless १५५२, ६०.
 निर्भक्त excluded from participation ११४४.
 निर्भाज्य to be excluded from participation
 १२१२.
 निर्मन्थ्य to be stirred by friction (as fire)
 १०१९.
 निर्मर्यादा unrestrained १४२८.
 निर्यास juice or exudation of trees or plants
 १५९८.
 निर्युह a peg projecting from a wall ९५३.
 निर्याप offering १२६५.
 निर्यास ex-communication; banishment ८७३,
 १६४३, ४४.
 निर्यास्य to be banished ८७४, १४००, ०४,
 १६९८, १७५९, ६०, ९६, १८०२, २८, १९०९,
 १४, २९.
 निर्विषय to be banished from the country
 or realm १६२०, २८, ५२, ८७.
 निर्विष्ट gained by labour ११२३.
 निर्वीर्य impotent; powerless ९९५, १२५८.
 निर्वेश wages; remuneration ७८७, ९०.
 निर्वेष penance (prescribed.) १८४४, १९१८.
 निर्वह्न setting aside or accumulation of a
 private store; selling; extracting from
 १४३२, १६६८, ७१.
 निवार्य to be restrained ११०६.
 निवास habitation १६१६, ८५, ८६, १७५३, ६४,
 १८४६, १९२२, ४२.
 निविष्ट married; founded १४३०, १९२९.
 निविष्टे one who has cultivated (a coun-
 try) १६९२.
 निवृत्त (debt) free from interest ६११,
 १६९२.
 निवृत्ति cessation; disappearance ७६७, १७१३,
 १२०१, १६१५, ४६, १७९५, १८६८, १९७४.
 निवेश dwelling place; abode; entrance
 ९५९, १०१९, ५७, १२७३, १९७९.
 निवेशकाल the time of foundation; the occa-
 sion of marriage ९४९, ५२, १४३०.
 निवेशसमय see निवेशकाल ९५९.
 निशा night १७६१, १८३२, १९२४.
 निश्चय fixed opinion; a settled rule ६६०, ७६,
 ७१५, ८०४, ८९, ९४४, १०३३, १११०, ११,
 १२८७, १५८१, १६३४, १७७९, १९१५, ४२,
 ६६, ६९, ७८.
 निश्रेणि a ladder ९२७.
 निषाद an out-caste (esp. the son of a
Brāhmana by a *S'ūdra* woman))
 ११०४, ०५, १२५१, ५२, ७०, ७१, ८८.
 निषिद्ध prohibited ११०९, १६११, १७२३, १८५४,
 १९१३.
 निषूदन killing; slaughter १६५३.
 निषेद्धव्य see निषेध्य ७२४.
 निषेध्य to be hindered or prohibited ९४२.
 निषेध prohibition १८७२.
 निष्क a particular coin; a golden orname-
 nt for the neck or breast ८१४, ६४, ७३,
 ११२१, १८०३, २९, ४०, १९६७, ६८.
 निष्कर exempt from tax १९४४.
 निष्कालक tonsured १६६८.
 निष्काश egress; gate ९५८.
 निष्कासिनी not restrained by her master
 १८८३.
 निष्किञ्चन poor; having nothing १२०७.
 निष्किनी wearing an ornament १००९.
 निष्कुट pleasure-grove (near a house)
 (*Ganapati's'āstri*); mountainous tract
 (*Shāms'āstri*) १६८२.
 निष्कुला one whose family is extinct १९५१,
 ६२.
 निष्कृत a fixed place १८९४.
 निष्कृति compensation; expiation; escaping
 ६४०, ७९५, १०१६, २२, ३०, ३१, ५०, ११७८,
 १६५१, १८३१, ८७, १४४३.

निष्कय compensation; redemption; sale ६३८,
५०, ५८, ६०, ७६७, ८१७, २३, ९३२, १०७२,
१११०, १६१७, ८०, १७९९, १८४९, ५०.
निष्क्रिय one who neglects his sacred duties;
a *Ks'atriya* and *Vaishya* १७२६.
निष्ठा N. of a lunar mansion १००६.
निष्ठा completion; decision ८८३, १९२२.
निष्ठाव deciding ११६२.
निष्ठुर harsh १७८५, ९१.
निष्पतन loss; damage; vagrancy ७३५, १०३८.
निष्पतित a convict; rust out; lost ८१७, १०३८,
१६८४.
निष्पत्तिवितन wages for finished articles or
work १६७६.
निष्पातन loss; obstruction; transference ७३५.
निष्फल useless; fruitless ७१५.
निस्सर्ग transference (of a deposit) ६३८, ५०,
१०४९.
निस्सर्गज innate; inborn; natural ८२१, १९२८.
निस्सर्गपण्ड one naturally impotent १०९४, ९५.
निसृष्ट prepared; set free; granted; given;
appointed; authorised; permitted ६३६,
३८, ८२१, ९३०, १०१९, १९२२, २८.
निसृष्टार्थ appointed manager (of affairs)
८७४.
निहित deposited १९५०, ५६, ६१, ७३.
निह्व denial; expiation; concealing ६८४,
१०५०, १६३३, ४८, १७४१, ६१.
निह्वत refused; denied ७१५.
नीच low १८३१, ३५, ९५, १९६७.
नीति management; political science; guid-
ance १११९, ५८, १९७०.
नीप a roof ९२६.
नीरजस्का a woman not menstruating १०२०,
३४, ११०१.
नीराजन ceremony of light १९२४.
नील (वृष) (an ox of) dark colour १३५२, १६७४.
नीवी the band of wrapped garment, round
waste; capital; principal stock १८७१,
(१५३३२२).

नीत्र a roof; the eaves of a roof १६८५.
नृ a man १८२८, ३४, ३६, ५१, ५५, १९०७,
२१, ४१, ८५.
नृचक्षस् beholding or watching men ११५८.
नृतू a dancer; barber (*Sāyana*) ८४१.
नृत्य dancing ८३४, ११०७, १३६४.
नृप a king ६५६, ७२१, ८०८, ३६, ६९, ७६,
८२, ९२१, ४४, ५९, ६०, १०९७, १२३४,
४४, ८६, १३२९, ६४, ७७, १४७८, १५१२,
१६३२, ४६, ५१, ५३, ५४, ९५, ९६, ९९,
१७००, ०१, ०६, ०७, ०८, ११, ४५, ५५,
६१, ६३, ६५, ६७, ८२, १८०२, २८, २९,
१९१२, १३, १४, २६, २७, २९, ३०, ३३,
३६, ४१, ४३, ५४, ५८, ५९, ६२, ६५, ६८,
७०, ७३, ७५, ८४, ८५.
नृपगृह a palace ९५८.
नृपति a king ७२१, २२, ८७२, ९१०, १३९०,
९१, १४६४, १६००, १७६२, १९०६, ०९,
४१, ४३, ५३, ६२, ६५, ७०, ८४, ८५.
नृपद्वेष्ट enemy of a king ८७४.
नृपाज्ञा royal order; edict ८७५, ९९.
नृपाण giving drink to men ९२३.
नृपाश्रय instituted by the king १९३३, ४०.
नृशंसकारिन् mischievous १२८४.
नेजक a washerman १९२७.
नेजन washing १६७४, १७०९, ३५.
नेत्र the eye १६१८, ३७, १७८१, ९६, ९९,
१८१७, ९१, १९३३.
नैगम followers of *Veda* ८६९, ७०, १६६९,
१७५८, ६४, १९३३.
नैचाशाख N. of *Pramagandha*; belonging to
a low branch or race ६००.
नैत्यक daily; obligatory १०५४.
नैधानी (a boundary) indicated by putting
down various objects ९४४, ६१.
नैमित्तिक occasional or special (rite); a
prophet ८७२, १११९, १४०५, १६७९.
नैरय belonging to hell १२६४.
नैरव belonging to *Nirrti*; a demon ८६०,
९९१, ९५, १८९७.

नैवेशनिक marriage cost or expenditure;
relating to marriage १२००, १४१७, १९५०.
नैवेशिक reunited; having common habitati-
on or house १५६१.
नैहोरिक deduction (in the shape of taxes) ?
१६६८.
नैषादी belonging to a *Nishāda* ११८५.
नौ a ship; boat ७६४, १६१७, १८३६, १९२४,
२७, ४६.
नौका see नौ ७६४.
नौयायिन् a boat-passanger १९२७, ४६.
नौवत् a boat-man १६६३.
न्यस्ता anointed १००२.
न्यग्रोध the Indian fig-tree ९३३.
न्यङ्ग invective; insinuation; sarcastic lan-
guage ८६२, १७८४, ८५, ९१, १७७०.
न्यवन entry; gathering place; receptacle
९०२.
न्यस्त deposited ७४२.
न्यस्तिका a kind of plant ९९७.
न्याय law; reason; rule; justice ७२७, ३२,
८६३, ९५२, १०९७, १२०१, १३९०, १७०१,
१९१६, ३३, ४३, ६९, ७०.
न्यायतत्त्वज्ञ expert in jurisprudence; lawyer
७३०.
न्यायवादिन् claiming judicial investigation
७२८.
न्यायविद् acquainted with the interpretation
of law ११६६.
न्यायवृत्त well-behaved ११९३, १४७६.
न्यायशास्त्र the science of rules of interpreta-
tion; law-book १९४२.
न्यायस्थान seat of justice १७६४, १९४२.
न्यायवापित unjust १९३५.
न्यायोपगता (a woman) justly taken under
protection; (a woman) who according
to the law goes to her brother-in-law
१४३०.
न्याय्य reasonable; lawful; proper; cus-
tomary १११८, १३९३, १५४२.

न्यास a deposit ६२७, ५१, ७३४, ३९, ४५, ४६,
४९, ५०, ५१, ५४, ५५, ६४, ६८, ८०२,
०७, १०२९, ६९, १५७३, ८१, १९७०, ७१.
न्यासदोष defect of a deposit ७५५.
न्यासद्रव्य deposited sum property or article
७५१, ५२.
न्यासधारिन् the holder of a deposit ७४४.
न्यून less; euphem; vulva ७६५, ८४, ८५, ९०,
९९४, ११६९, ७२, ७३, १६७२, १७५०, ६७,
७९, ८९, ९०.
न्योचनी a kind of ornament ८११, १०००.
पक्ष the day of cooking the oblation
११६०.
पक्वान्न dainty; cooked food १६१४, ७०, १७१८,
५०.
पक्ष the half of a lunar month; wing;
side; the shoulder ८६०, ६२, ६३, ९८,
९९८, १०३६, १६१५, १८, १७०७, १९१४,
२७.
पक्षद्रव्यावसान extinction of the two wings
(families) १५५५.
पक्षपण्ड (an impotent) capable of appro-
aching a woman only once in every
half month (पक्ष) १०९४, ९५.
पक्षिन् a bird ८४०, १६०९, १७, ७०, १७१८, ९७,
१८१०, ३४, १९१४, २५.
पङ्क्ति company (e. g. of persons eating to-
gether thereby denoting their one
caste) ८७६, १५९६, १६०१, ०३.
पङ्क्त्यर्हक eligible for assembly (i. e. fit for
eating together) १०१७.
पङ्गु lame १३९८, १४०१.
पच्छेद cutting of a foot १७६०.
पञ्चकुली a group of five house-holds ८६३.
पञ्चगव्य the five products of the cow (a
purifactory drink) ७९४.
पञ्चग्रामिन् a group of five villages ९२९,
१६२०, १७४३.
पञ्चमूली *Nicotiana glauca* १०३३.
पञ्चवन्ध five-times (the value of the pledge)

७३५, ५७, ६२.
 पञ्चयज्ञः the five religious acts or oblations of a house-keeper १०७५.
 पञ्चहोत्र N. of a particular formula in which five deities are named १००६.
 पञ्चाल N. of a people or country १९८१.
 पञ्चौदन prepared with fivefold pulp of mashed grain ९९९, १०००.
 पट a cloth; garment १६१७, २१.
 पण a particular coin; bet; wager ६०८, ११, २४, ३४, ३८, ७३५, ६४, ७२, ७७, ८१७, १९, ४०, ४३, ४४, ७८, ७९, ८१, ८२, ९०६, ११, १२, २०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३१, ३२, १०३४, ३५, ३६, ३७, ३८, १२२५, १४०२, २८, ३१, १५२०, १६१०, ११, १४, १७, २०, २८, ३५, ४८, ६७, ७२, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ८८, ८९, ९०, १७२९, ३४, ३६, ७१, ७९, ८१, ८९, ९०, ९२, ९६, ९८, १८००, १४, १६, २१, २२, ३४, ४६, ४८, ४९, ५०, ९२, १९०३, ०४, १३, २२, २३, २७, ४४, ४५, ४७, ५८, ५९, ६७, ६८, ७०, ७५.
 पण्नीडा betting; sport with wager १९१०.
 पणयान्ना currency transaction १६७५.
 पणि a miser (one who is sparing of sacrificial oblations); N. of a race or demons ८१२, ९७२, १५९५, १९७१.
 पणिक consisting of a *Pana* ९३२, १०३६, १६३४, ५२, १७९०, १८३३, ७७, ९०.
 पणित staked; betted ८४०.
 पणे जित (a slave) won through a wager ८३०, ३२.
 पण्ड an impotent १०९४, १८२७.
 पण्य a commodity; an article for sale ६३२, ३३, ७३०, ३६, ३७, ६४, ६५, ७१, ८९, ८०७, ४३, ७८, ७९, ८१, ८३, ८४, ८६, ८८, ८९, ९२, ९३, ९४, ९५, ९७, ९९, १११९, १६११, ६१, ६३, ६९, ७१, ७७, ७८, ७९, १७०७, ०८, २९, ३०, ३१, ३२, ५८, ६४, १९२२, २७.
 पण्यदोष defect of a commodity ८७८, ९५.
 पण्यनिष्पत्ति the manufacture of goods १६७९.

पण्यभूमि manufactory of articles १६६८.
 पण्यमूल्य price of a commodity ६२७, ७९९, ८०३.
 पण्ययोषित a prostitute १६६९, ९४, १७४६, १९२९.
 पण्यविचक्षण expert in the knowledge of the qualities of merchandise ८९५.
 पण्यसंस्था commerce १६१५, ७७.
 पण्यसमवाय collection of commodities ७३७.
 पण्यस्त्री a harlot; prostitute ८५१.
 पण्यगार a store-house १६८९.
 पण्यदान acceptance of a commodity १०३८.
 पण्यध्यक्ष superintendent of merchandise १६७८, ७९.
 प्रणयोपजीविन् a merchant १६९३, १७६३, १९२९.
 प्रतग a bird ८४०.
 प्रतन्निन् see प्रतग १९७०.
 प्रतन falling; a bird १६८७, १९१६.
 प्रतनीय causing the loss of (caste) १३८९, १७७०, ८२, ८५, १९३७, ७२.
 प्रतयिष्णुक liable to fall ९९७.
 प्रताका a flag; sign १९२५.
 प्रति a husband; master; lord ६७९, ८०, ८२, ८३, ९८, ७०३, १५, ८०७, १५, ३९, ९०३, ६३, ६४, ६५, ७०, ७१, ७३, ७६, ७७, ७८, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ९०, ९१, ९४, ९५, ९७, ९८, ९९, १०००, ०१, ०२, ०४, ०५, ०७, ०८, ०९, १०, १६, १७, १९, २१, २२, २३, २५, २६, २७, २९, ३०, ३१, ३२, ३४, ३५, ३८, ४२, ४५, ४७, ४८, ५२, ५३, ५५, ५९, ६०, ६२, ६४, ६९, ७५, ७६, ७७, ८३, ८५, ८८, ९१, ९३, ९५, ९६, ११००, ०१, ०३, ०६, ०७, ०९, १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, ५७, १२०६, ०८, ५३, ५४, ५५, ५७, ५९, ७३, ८३, ८४, ८५, १३०८, ५०, ५५, ८८, ९०, ९३, १४१३, २३, ३०, ३८, ४३, ५३, ५४, ५६, ५८, ६१, ६२, ६३, ७३, १५२०, ५४, १६५४, ६८, ७२, १७०३, १८३६, ३७, ३९, ४९, ९१, १९०२, ३६, ३७, ७८, ७९, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००.

पतिकामा wishing for a husband १९६.
 पतिकुल a family of the husband; husbands'
 house १०३८, १५५५.
 पतिकूल (debt) contracted by husband
 ६८०, ९८, ७०२.
 पतिघातिका see पतिघ्नी १६१९.
 पतिघ्नी killing a husband १०२१, ११११.
 पतिजुष्टा (a woman) liked by her husband
 ९६४.
 पतिजाति husband's kinsmen १०३८.
 पतित expelled from caste; an out-caste
 ७०७, ७१, ९४, १०२५, ३४, ५६, ६४, ६६,
 ८९, ९५, ९८, ११००, ०७, १२, १६, १७, १८,
 ६४, १२७०, ७३, ८६, १३५०, ८७, ८८, ८९,
 ९१, ९२, ९३, ९८, १४०१, ०४, १७, १७७०,
 ७८, ८६, ९१, १८३१, १९३६, ४३, ५२, ७९,
 ८८.
 पतिताञ्जात sprung from an out-caste १३९१.
 पतितापत्य a child of an out-caste १४०४.
 पतितोत्पादित procreated by an out-caste
 १३९६.
 पतिव husbandness; matrimony १११३, १३५०.
 पतिवत्न see पतिव ९८०.
 पतिदाय husband's property १४३०.
 पतिदायाद्य husband's inheritance १४२९.
 पतिवर्म duty towards a husband १०२९.
 पतिवृक्ष husband's family १५५५, ६१.
 पतिप्रमापणी see पतिघ्नी १६३८.
 पतिवन्द्य relation of a husband १८४९.
 पतिमती having a husband i. e. married
 १०२९, ३०.
 पतिरिप् deceiving or despising a husband
 ९७०.
 पतिशोक the sphere of a husband in future
 life ९८६, १००१, ०३, ०४, १६, २१, ३०, ६०,
 ६३, ६४, ८५, १११३, १४२३.
 पतिवती having a husband; a married wo-

पतिव्रत loyalty or fidelity to a husband
 १०७६.
 पतिव्रता a chaste or fidel woman १०११, २२,
 २६, २७, २९, ३०, ३१, ५०, ६०, ७६, ७७,
 ११०७, ११, १६, १२८५, १५१३, २६, १९५१,
 ६२.
 पतिशुश्रूषण service of a husband १०२६, ७७.
 पतिशुश्रूषा see पतिशुश्रूषण १०२५, ७७, १११०, १२,
 १५.
 पतिसौदर्य uterine brother of a husband
 १०४०.
 पतिहिंसका see पतिघ्नी १०२०.
 पतिहीना having no husband; widowed
 १०७६, १९७८.
 पत्तन a city १९४२.
 पत्नी a wife; mistress ८३८, ९६३, ६४, ६५,
 ६७, ६९, ७२, ८५, ८७, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५,
 १००१, ०२, ०३, ०५, ०७, ०८, १०, ११, १४,
 १९, २३, ३०, ५५, ११०६, १४, १८, १२५१,
 ८४, ८५, १३५२, ७४, ८५, ९१, १४०१, ०५,
 ०८, १४, ७१, ७९, १५१३, १५, १८, १९, २१,
 २३, २४, २६, २७, २९, ४२, ५९, १८४०, ४१,
 ५३, १९५०, ८५, ८८.
 पत्नीमूल wife as the foundation १११४.
 पत्न्यभिगामि (property) inheritable by a wife
 १४७०, १५४२.
 पत्न्यभिगामिन् one having indecent concubation
 with another man's wife १६५४, ५५.
 पत्न्याचार behaviour of a wife १०१४.
 पत्र written document ६५४, ७३१, ८६०, ७३,
 १०२६, २९, ३१, ३२, १५८१, १६७१, ७३,
 १९६६, ६७, ८८.
 पत्रचिह्न reduced in writing; documentary
 (property) १२२८.
 पथ a street ९०३, १०, १४, १७, २५, २६, ३१,
 ३२, ६२, १७६१, ६७, १८४५, १९३२, ३६.
 पथि see पत्न्यसुद् १७४६.
 पथिव् a way; road १६१८, ८२, ९८, १७२३, ७७,
 ९४, ९५, १८०९, १९२९, ३५, ३६.
 पथिव्य forms of roads and paths ९६१

पथ्यनुसरण elopement or criminal rendezvous १०३८.
 पथ्यनुसार see पथ्यनुसरण १०३८.
 पद a step; foot; title of law ६२८, ८३४, ९२६, ७०, १६००, ८५, १७४०, ४३, ५३, ५४, ५६, ६५, १९१०.
 पदवाय a leader; guide ११४३, १६००.
 पद्मराग a ruby ८८८.
 पद्मती having feet ९८३.
 पयस् milk; water १००३, ०४, ०६, १२८१, १३५०, ५१, १६१५, १८९८, १९३८, ८२.
 पयोधर breast १८९१.
 पयोधार see पयोधर १९७८.
 पर another; stranger; best; highest ७९४, ८६३, ७१, ९२६, २७, ५३, ५९, १०१४, २३, २५, २९, ३४, ३८, ७७, ८५, १११२, १९, १३७४, १६०८, २०, २६, ४०, ५०, ६६, ७४, ८१, ८३, १७६१, १८९०, १९३६, ६३, ६४, ७५, ७८.
 परकुल another's family १२६६, १३५२, ८४.
 परक्षेत्र another's field or wife ९३०, ४७, ६२, १०७३, ७४, ११११, १३४२, १६१२, १७०३, ६६.
 परक्षेत्रोत्पन्न (a son) begotten on another's wife १२८२.
 परस्वामिनी co-habiting with another (than husband) १०२२, ३१.
 परगोत्र born in another family १३७३.
 परचक्र invasion; aggression by an enemy-country ७३५, १८५०.
 परज born of another (than husband) १३५०.
 परजन a person other than kinsman ८१७.
 परजात see परज १२८८.
 परतन्त्र different system of knowledge १९४१.
 परत्याग homicide १६५१.
 परत्र in the future world ७९४, ८०८, १०२६, ६४, १११९.
 परदार adultery; another's wife १०५८, १६५४, १८४१, ४३, ४६, ५५, ८३, ९०, ९१, १९७९.

परदारामिर्श see परदारामिर्शन १६०८.
 परदारामिर्शक an adulterer १६१२, १९४१.
 परदारामिर्शन adultery; coitus with another man's wife १६४१, ४३, ४५, ५३.
 परदासी another person's maid-servant ८३४.
 परदेश foreign country १६७१, ७८, १७६२.
 परद्रव्य another person's property ७४४, ५४, ५७, ६२, ६५, ६९, १६५३, ८३, ९३, १७४१, ४५, ६१, १८९१, १९२९, ७२.
 परपरिग्रह another's wife १०७१, ७२, १२८८, १३५६, १६६५, ८२, १८८३.
 परपूर्वा a woman who has had a former husband; one who has previously been enjoyed by another man ७०२, १३, १०६४, ११०३, १०, १२७९.
 परप्रयोग enemy's action ८६३.
 परबीज stranger's seed १२६७, ७१.
 परभक्तोपयोग use of another's food १२२४.
 परभार्या another's wife १८९२.
 परभूमि another man's land ८५१, ५२, ९३१, ४२.
 परम most distant; most excellent; highest ९७६, १००३, २८, ४९, ७५, ७६, ७७, ११११, १५, १६, १९, १६९९, १८३६, ३९, १९२८, ३०, ७८, ८६.
 परम्पराज्ञान knowledge passing from one generation to another ९५०.
 परयोषिद् another's wife १०७१.
 परराष्ट्र the country of an enemy; a foreign country ७८८, ९०, १९८४.
 पररेतस् the seed of a stranger १२६७, ७१.
 परणै debt of another person ७१२.
 परलोक future world १०५९, १३५५.
 परशु an axe (in ordeal) १६५६.
 परस्त्री another's wife; a woman other than one's wife १६८३, १७७२, ८०, ९८, १८१४, ३०, ५०, ५१, ५४, ७०, ८०, ८९, ९१, १९३६.
 परस्परभागिन् mutually inheriting the property १५५७.
 परस्व property of another person ८९८.

परस्वत्व ownership of another person ७९४.
 परस्वादायिन् taking or seizing another's
 property १२८६, १६३१.
 पराक a particular expiatory rite १८८७.
 पराची bashful; shy (woman) ९९१, १५९९.
 पराजय defeat १८९७, १९०४, ११, १४.
 पराजित defeated ७२४, ८१८, ४०, १९०३, ०४,
 ३३, ६९.
 पराधीनत्व obedience; dependence १०३१.
 पराभव defeat ८६१.
 परायण final end; last resort ८५१, ९०२,
 १०२६, ११११, १५१२, २४.
 परार्थ very valuable १६७४.
 परावत् a distant place ९९०, ११५९.
 परावृक्त rejected; cast off १९७९.
 परावृज् an exile ९६९.
 परावृत्ति returning, restoration of property;
 exchange ८९१.
 परावृद्धि highest rate of interest ६१०.
 परिक्रय purchase ७७०.
 परिक्रीत the son purchased [(रेतो-मूल्य-दानेन
 तस्यामेव (भार्यायां) जनितः) according to
 नीलकण्ठ] १२८४, ८८.
 परिच्छेद hardship; torture १६१८, ५२, ९०.
 परिक्षीण vanished ७२३, १५५५, १९३१, ७६.
 परिखा a trench ९६२, १६३०, १२३०.
 परिगणिता surrounded; embraced ९६६.
 परिग्रह acceptance; wife; marriage; seizure;
 servant ७०३, ३४, १०६३, ९३, ११२२,
 १२८२, १३७१, ७२, ८३, १४०४, १५८०, १६६७,
 ८३, ८७, १७२४, ५२, १६९१, १९२२, २४, ३६.
 परिग्रहीतृ a husband; an adoptive father

and chattles; personal property १०५६,
 १३९३, १६१६, २७, ९८, १९२७, २९, ४५.
 परिजन servant; attendant; subordinate
 person १०३२.
 परिज्ञातृ a judge १९२२.
 परिणीता married ८१६, १११७.
 परित्यक्त (क्ता) abandoned १२७९, १३०८.
 परित्यक्तव्या to be allowed to go; to be aban-
 doned १११७.
 परित्यक्तृ one who abandons ११११.
 परित्याग the act of abandoning; deserting;
 ८७४, ९७, १०१६, ७५, १३८४, ८७.
 परित्याज्य to be abandoned १०२१, ५१, ११११,
 १२, १३९३, १९७८, ८५.
 परित्राण protection १६२३.
 परिधान a garment १३८५.
 परिधानीया a particular concluding verse
 १००५.
 परिपन्थिन् an adversary १५१४, २६.
 परिपाण protection; guarding १६०१, १२.
 परिपाल्य to be kept or protected ६५१, ७५०.
 परिपूत husked; winnowed १७१९, ६६.
 परिप्लुत overwhelmed ९१५.
 परिमाण्ड articles of household use ११६५,
 १४१५.
 परिमाण्ण admonition; reprimand ९३९, १६१९,
 ३१, १९२९.
 परिभाषित stipulated (fee); contracted ८३५.
 परिभुक्त used up ८९४.
 परिभोग possession १६८४.
 परिमाणी a particular measure १६७७.
 परिरम्भण embrace १८९१.
 परिवर्तन exchange; barter; return ७३५, ८९१,
 ९७, ९९, ९०१, २५, २६, १६७३, ७४, १७६४.
 परिवाद reproach १०२६, ११८४, १३९०.
 परिवाप see परिमाण्ड १०३५, ११८४, १३९१.
 परिवार्य roof of a house १६२०.
 परिवाह a water course or drain to carry
 off excess of waters ९३०.
 परिवित्त elder brother married after his

younger brother १९५, १९, १५९२, १६०१.
 परिनिविदान younger brother who marries
 before his elder brother १९५, १५९२.
 परिवृत्ता rejected or abandoned wife १९०,
 १००९.
 परिवृत्ती see परिवृत्ता १९१, १००६.
 परिर्वृत fenced (field) ११०, १६५७, १९७६.
 परिवृत्ति see परिवर्तन ८९०, १९, १८, १९, १०१,
 १५८२, १९७५.
 परिवृत्ती see परिवृत्ती १००८.
 परिषद् an assembly; meeting; audience
 १३८४.
 परिषद्गामि (property) received or inherited
 by a group or assembly १४७३, १५२७.
 परिषय to be sought after (Monier Williams);
 to be avoided (*Nirukta*); sufficient,
 adequate, competent (*Sāyana*) १२५३.
 परिष्कन्द a servant (esp. one running by
 the side of a carriage) ८४२.
 परि(री)हार exemption (from tax etc.); avoi-
 ding; prohibition १३०, १७९१, १९२१, ३६,
 ८३.
 परि(री)हास jesting; joking ८००, ०५, १९१२.
 परिहृत shunned; avoided (work) ८४४.
 प्रीक्षक an arbitrator ७८५.
 प्रीक्षण examination ८९२, ९४, ९९, १८२९,
 ३२, १९६७.
 प्रीक्षिन् an examiner १७२९.
 प्रीक्षा see प्रीक्षण १०५०, १६०५, १५.
 प्रीक्षित examined; tested ८९५.
 प्रीक्ष्य to be examined ८९९.
 प्रीणाह circumference; encircling land १०९,
 १३, १९७६.
 प्रीमाण measure; value; amount ७७८, ८४.
 प्ररुष harsh; unkind १०२८, १११९, १८३५.
 प्ररोक्त defeated १२९.
 प्ररोपनिहित deposited by another person ६६१,
 ७५६.
 प्ररुषो क leaf ११०, १८, १३८४, १६७०, १८९०.
 प्ररुषित (a complaint) of remote date. १८००.

पर्युह्यमाना being married १००४.
 पर्वत a mountain ७८६, १९२४, २५.
 पर्वन् the day of the change of moon or sun;
 a festival १९२४, २५, ७७, ७९.
 पर्वद् an assembly १९४३.
 पल a particular weight ६११, १६७५, ७७,
 १७०९, ३४, ३५, ४७, ६७, १९२७, ६७, ६८.
 पलपैतुक a *S'rāddha* with flesh or meat
 १३७४.
 पलाण्डु an onion १०२५.
 पलायित absconded ८९८.
 पलाश N. of a tree (*Butea frondosa*) ७१६,
 ९३५.
 पलिक weighing *Pala* १६७३, १९६६.
 पलिकनी grey-haired; old ८४२.
 पवन wind or the god of wind १०३२, १९२१.
 पवमान see पवन ८४२.
 पवित्र sacred १०७६, १८४५.
 पशव्य full of fauna १९२१.
 पशु an animal; cattle; kine ६१०, २१, २६,
 ३५, ५४, ९२, ७०८, १४, २५, ९२, ८१४, १९,
 ४२, ४७, ५८, ६०, ६२, ८१, ९०२, ०३, ०४,
 ०५, ०७, १०, ११, १२, १७, २०, २१, ५१,
 ५३, ८६, १००२, ०३, ०५, ०९, ११४४, ६१,
 ६२, ६६, ८३, १२६०, ६१, १५८०, ९४,
 १६०९, १०, १७, १९, २१, ३४, ४२, ४६, ५६,
 ६१, ७०, ७१, ९७, १७१३, १८, ४५, ६४, ६५,
 ९७, १८०५, ०६, १०, ११, ३४, ३७, ३८, ४०,
 ४१, ४७, ७६, ८४, ९६, १९२४, २५, २७, ४५,
 ७६.
 पशुधर्म the law of animals (said of *Niyoga*)
 १०६८.
 पशुप a herdsman ८४२, ९०२.
 पशुप्रचार pasture land for cattle ९०६.
 पशुरक्षि a herdsman ९०२.
 पशुरक्षिन् see पशुरक्षि ९१०.
 पशुराशि cow-shed ९२०.
 पशुस्वामिन् owner of the cattle १०९, १६०९.
 पशुपज products of animals ६०७.
 पशुत्कार passing of the judgement १८००.

पश्चाद् a suitor that comes later ११०९,
१४६०.
पश्चाद्भूत (a priest) which is accepted after-
words for (officiating purpose) ७७१.
पसस् membrum virile; vulva ९९६.
पांसु dust १६८५, १७९३, ९८, १८३०, १९०१.
पाण्डुधावक a scavenger १६७५.
पाक cooking १५८०, ८८.
पाक a cook १६७९.
पाङ्क्त consisting of five parts १५९६.
पाञ्चवर्षिक lasting for five years ९३०.
पाञ्चाल N. of a country ८१८, १९, ६२.
पाणि the hand ९५१, ९३, १२८१, ८५, १६०८,
२६, १७९९, १८०१, ८१, ९७, १९२५, ६७, ८१.
पाणिगृहीता married १९७७.
पाणिग्रहण the act of joining the hands of
bride and bridegroom; marriage ७०३,
८७९, १०२६, ९३, ११०३, १३, १७, १४०५.
पाणिग्रहणिक relating to marriage ८८२, ८३.
पाणिग्रहाह a bridegroom १०२१, २२, ३३, ५०, ५९,
६०, १२७९.
पाणिप्रदानकाल the time of giving the hand
(in confirmation of a promise); the
time of marriage १०७७.
पाणिसंग्रह marriage १०२९.
पाण्डव a son or descendant of *Pandū*
१०२७, २८, १९८५.
पाण्डु N. of a king ७३५, ८१९, १२८३, ८४, ८५,
८६, १३७६, १९६५, ८४.
पातक sin; crime ७९३, १०१९, २६, २७, ३१,
१२८५, ३३९०, ९१, १६०३, ५१, १९६४, ६७.
पातकित् sinful १११८.
पातन felling ८४४, १६१८, ३७, ५१, ५२, ७३,
१७९८, १८००, ११, २४, ३२, १९२२.
पाताल N. of a world beneath १०३२.
पात्र worthy; vessel ८००, ०४, ०७, ६२, ७६,
९९२, १११९, १२०७, १५९९, १८३७, १९६६,
७७, ८३.
पाद the foot; a particular coin ७४५, १०६६;

१६६८, ६९, ८५, १७१३, ३७, ४९, ६५, ८१,
९४, ९६, ९७, ९८, ९९, १८०१, ०३, १५, १६,
१७, २४, २९, ३२, ३५, १९६५, ७०, ८१.
पादज born from the feet; a *S'ūdra* ८१९.
पाददर्शित् surety for appearance ६७७.
पादप a tree ९३३, १७९५.
पादवन्दनिक accompanied by respectful salu-
tation १४५३, ६३.
पादाध्यास kicking १८१६.
पादावनेवत् a servant १६६७.
पादावनेज्य washing another's feet; a form of
service ८१४.
पान a drink; beverage; spirituous liquor
८६०, १०२६, ३१, ४८, ११०६, १२४४, १३९३,
१६४२, ४६, ९०, १७१८, ४१, ५५, ६५,
१८४१, ८१, ८९, १९१३, ५२, ८८.
पानसक्ता adhered to drinking spirituous
liquor १०१४.
पान्थमुद् highwayman १७५८, ६०, ६४.
पात्रेजन a vessel in which the feet are wash-
ed १००९.
पाप sin; evil; crime; sinful ८०८, १३, १९, ४२,
७६, ९८, ९६०, ६२, ७०, ७८, ८४, ९३, १०१६,
२८, ३०, ३२, ३३, ५३, ५६, ६४, ७५, ७६,
१११०, २१, १२८६, १३८५, ९३, १४६४,
१६००, ०३, १६, १९, २२, २७, ३२, ३४,
५०, ५१, ५३, ५५, ६१, ६३, ६८, ९५,
१७०१, ०२, ०४, ४४, ५१, ८९, ९०, ९२,
१८३६, ४०, ५१, ६५, ८४, १९१३, २९, ३०,
३५, ४३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६९, ८३, ८४.
पापकर्मिन् sin; sinner १६८७, १९३०.
पापकर्मिन् an offender; sinner ८७४.
पापकारिन् see पापकर्मिन् १६४६, १८३३, १९३०.
पापकृत् a sinner १८६५, ९०, १९६५.
पापकृत्या an evil deed; sin १६०१.
पापिन् sinful १६५३, १९६५.
पापिष्ठ most sinful ३३०५, ४४, १७०८, १९३०,
पापीयस् sinful; wicked; miserable; poorer
६०९, ८१८, १०३३, १३३, ३८, ९२८३, १३३३,
१०३३, १०३३, १०३३, १०३३.

पाम्पन् sinful; injurious १५७०, ९६, ९७, ९९,
१६०१, ०२, १९७७.
पायस an oblation of milk, rice and sugar
१२८१, १३५०, ५१, ७३, १९८२.
पारजायिक see पारदारिक ८६०.
पारजायिन् see पारदारिक १८४६.
पारञ्चिक a breaker १७९९.
पारदारिक one who violates another's wife;
an adulterer ८०६, ९३२, १३८७, १६१७,
१८, ४०, ८५, १८९२, १९३२.
पारतन्त्रिक see पारदारिक १६८१.
पारदेश्य belonging to a foreign country
१७३१.
पारलौकिक pertaining to other world ७१५.
पारलौक्य see पारलौकिक ८०८.
पारशव N. of a mixed caste; the son of a
Brāhmana by a *S'ūdra* woman ११०४,
०५, १२४५, ७०, ८८, १३०९, ७४.
पारसीक N. of a people (Persian) १९४३.
पाराशरीकौण्डिनोपुत्र N. of a teacher १९८२.
पाराशरीपुत्र N. of a teacher १९८२.
पारिकुट a servant; waiter ८१३.
पारिक्रित a patronymic of *Janamejaya*
१६०१.
पारिणाय्य see पारिणाह्य १४२७.
पारिणाह्य articles of household use १०४७,
१४०५.
पारितोष्य reward ८०८.
पारिभाषिक (आधि) a kind of pledge ६३५, ३७.
पारिभाषिकी relating to a contract; conven-
tional ८५९.
पारियात्र N. of a country (*Pariyātrā*) १९२०,
२१.
पारिव्राज्य life of a mendicant ८३१, ३९.
पारुष्य harshness; violence ९२७, १०३५, १६०८,
१२, ४१, ४५, १७७०, ७८, ८९, ९०, १८२६,
१८३५, ८४, १९२३.
पारुष्य a metronymic of *Arjuna*, *Yudhish-*
thira, and *Bhīmasena* ८१८, १०२७, ३३,
३३, १९३५.

पार्थव belonging or peculiar to *Prithu* ८११.
पार्थिव a king ८६१, १२४४, १३२९, १६२३, ९२,
१७०१, ०८, २०, ६३, ७६, ७८, १८६४, १९२७,
२९, ३०, ३१, ३६, ६५, ६९, ७०.
पार्थव्य oblation offered at new and full
moon १३७७, १५८९.
पार्थक (property) acquired as a bribe ११३०,
१९८३, ८७.
पार्थ्वानिकरी depriving the cheat of his own
property by artifice १५७३.
पार्थ्वी heel ९९९, १८१४.
पाल a herdsman; protector ८३४, ९०३, ०४,
०५, ०६, ०७, ०८, ०९, १०, ११, १२, १५,
१६, १७, १८, १९, २०, २१, १९७६.
पालक a guardian; protector १३५८.
पालन guarding; protecting ६७७, ७६६, ६८,
८७३, १०२६, ५२, ७६, ११०६, १६९२, १९२०,
२१, २९, ४०, ६२, ७०, ७९.
पालनीय to be preserved, maintained or gua-
rded ७३४, ८७३, ११०६, ७३, ९४, १९४१.
पालगली the fourth and least respected wife
of a prince १००९.
पालाश made of the wood of *Palāsha* tree
१३६३.
पालित protected ८३३, १९०८.
पालिन् see पाल ९०६.
पावक pure (said of *Agni*) ; the god of fire
९२४, १०८६, १९३०, ६६, ७०.
पावन the act of purifying; purification
१०५८, १११०, १२८४, १७८७, १९२१, ३७, ८४.
पावनीय purifying ९५९.
पावीस्वी (कन्या) daughter of lightening (the
noise of thunder) ९७२.
पाश bond; tie; fetter ६०२, ०३, ०५, ९८३,
९१, ९९, १००१, ०३, ११११, ८४, १२७८,
१६०१, १७, १८४०, १९३०, ६४.
पाशुपाल्य tending cattle ८१९, ११२४.
पाण्ड a heretic ८७०, १४०४, १७१०, १९०७,
२३, ३३, ८६.
पाण्ड्य custom of a heretic corporation

१९३१.
 पाषण्डिन् a heretic ८६९.
 पाषाण a stone ७८७, १६२१, १७९६, ९९, १८१९,
 ३०, १९३३, ६६.
 पिण्ड a lump; ball of food or rice (e. g.
 offered to the *pitrs* or deceased ances-
 tors etc.); body ७८१, ८१८, १०१६, २६,
 ११९९, १२०३, ६५, ६८, ७३, ८१, ८२, ८६,
 ९५, १३००, ०२, १४, २७, ४७, ५०, ५६,
 ७४, ८४, ८७, ९०, १४०४, ७३, ७४, १५११,
 १९, २७, १६०४, ७५, १८८७, १९६६, ७८,
 ८३.
 पिण्डकृत् one who offers the balls of rice
 १५४१.
 पिण्डक्रिया the offering of the balls of rice
 etc. to the deceased ancestors १५२०.
 पिण्डद offering or qualified to offer oblation
 to deceased ancestors; the nearest male
 relation १२८२, १३३५, ४७, ४८, ५१, ५५,
 ५६, ६५, ७३, ८३, ८४, १४०२.
 पिण्डदातृ see पिण्डद १३४२, ५५.
 पिण्डदान the offering of *pinda* १२५१, ५५,
 ५९, ६९, १३५०.
 पिण्डदायिन् see पिण्डद १२८१.
 पिण्डप्रदान see पिण्डदान १३४८.
 पिण्डमागिन् partaking of the *S'rāddha* obla-
 tion १३८३, ९०.
 पिण्डभेद separation of the offering of
S'rāddha oblation १२०३.
 पिण्डमात्रोपजीविनी subsisting on a mere morsel
 of food १०२४, ८६, १३९०, १४००.
 पिण्डलेपमुञ्ज partaking of the particles or
 fragments of the *S'rāddha* oblations
 which cling to the hands १५३०.
 पिण्डसंबन्ध relationship qualifying living
 individual to offer *S'rāddha* oblations
 to a dead person; blood relation with-
 in six degrees १०१३, १४६४.
 पिण्डसंबन्धिन् qualified to receive the *S'rā-*
ddha oblation from a living person;

having blood relations within six
 degrees १५३०.
 पिण्डोदकक्रिया the offering of *S'rāddha* and
 water oblations १३१६, ४८, ५२, ६२.
 पिण्याक an oil-cake १९३८.
 पितापि paternal ११५८.
 पितापुत्रविरोध a dispute between father and
 son १६११, १३, २८, ३५.
 पितापुत्रनिवाद see पितापुत्रविरोध १९३३.
 पितामह a paternal grandfather ७०९, ८६१,
 १०००, २८, ३३, ७७, १२०१, १९, २३, ३१,
 ४३, ४४, ६८, ८१, ८२, ८७, १३५०, ५१,
 १४६७, १५३०, १९८२, ८४, ८५, ८८.
 पितामहपितामह grandfather's grandfather
 १५३०.
 पितामहसंतति grandfather's progeny १५३०.
 पितामही a paternal grand-mother १४०८, १४,
 १५२९.
 पितामहोपात्त acquired by the grandfather
 ११७५, ७९.
 पितृ a father; forefathers; ancestors; manes.
 ६०१, ०४, ७३, ७४, ७९, ८०, ८२, ८४, ९०,
 ९२, ९५, ९६, ७०६, ०७, ०८, ०९, १०,
 ११, १२, १३, १५, २१, ८००, ०५, ०७, १९, ३९,
 ४०, ९२०, ६८, ६९, ७५, ८०, ८१, ८९, ९४,
 ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १०००, ०१, ०२, ०३,
 ०४, ०६, ०८, ०९, १४, १६, १९, २०, २१, २२,
 २३, २४, २६, २८, ३१, ४२, ४५, ४९, ५०,
 ५२, ५९, ७५, ७६, ७७, ८३, ८४, ९४, ९५,
 ९९, ११०३, ०६, १४, १५, १८, १९, ४४, ४६,
 ४७, ४८, ४९, ५१, ५२, ५५, ५६, ५७, ५८,
 ५९, ६०, ६१, ६३, ६५, ६६, ६८, ७०, ७१, ७२,
 ७३, ७४, ७५, ७९, ८०, ८४, ९३, ९४, ९५,
 ९६, ९७, ९८, ९९, १२००, ०५, १०, १३, १४,
 १९, २०, २१, २३, २४, २७, ३१, ४३, ४४,
 ४५, ५१, ५२, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०,
 ६१, ६२, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७८,
 ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७,
 ८८, ८९, ९०, ९५, ९७, १३०२, ०४, ०६,
 ०८, ०९, १४, १७, २८, २९, ३२, ३८, ४६,

- ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५६, ७२, ७४, ७५, ७६, ७७, ८३, ८४, ८८, ९०, ९१, ९४, ९६, १४०३, ०४, ०८, ११, १३, १४, २२, २७, २८, २९, ३१, ४०, ४३, ४९, ५२, ५३, ५४, ५८, ५९, ६२, ६३, ६७, ७०, ७१, ७३, ७४, ७५, ७९, १५११, १३, १६, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २९, ३०, ४१, ५५, ५६, ५८, ६०, ६७, ६८, ७३, ८४, ८९, १६००, ०२, १०, १२, १३, २७, ३५, १७७७, ९२, १८२९, ३३, ३५, ३६, ३७, ४०, ४१, ४८, ५०, ६६, ७४, ९४, १९१९, २२, २५, २६, ६५, ७१, ७४, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८.
- पितृकार्यं a rite performed in honour of the *Pitrs* १६२१, १९२२.
- पितृकुल father's family १४५८.
- पितृकृत (debt) contracted by a father; done by a father ७११, ११६९.
- पितृगामि belonging to a father १४४५, ५०, ७०.
- पितृगृह father's house १२७३, ७९, १४५३, ६०.
- पितृघातक a patricide १६१९.
- पितृदत्त (property) given by a father १४३०.
- पितृदाय paternal property १२२१.
- पितृदायांश a share in the paternal property १४०४.
- पितृदेवद्विजाचर्न the worship of the Manes, Gods and *Brāhmanas* ११४१.
- पितृद्रव्य paternal property; patrimony ११४२, ४९, ९९, १२०५, ०७, १२, २०, ३०, १४०३, २२, १५४३, १८४८.
- पितृद्रव्यविभाग partition of the paternal property ११५७.
- पितृद्रव्याविरोध absence of the use of paternal property १२१५.
- पितृद्वारागत received from fathers ११४२.
- पितृद्विद् hostile to one's father १४०१.
- पितृभन् paternal property ३५१५, १७.
- पितृभन्धु the paternal side, party or relationship १५४५, ६३.
- पितृपैतामही inherited and derived from father and grandfather; ancestral ८१९.
- पितृप्रमाण sanctioned by a father १०३४, १४३०.
- पितृप्रसाद propitiousness of the father १२१९, ३३.
- पितृबन्धु a kinsman or relationship by the father's side १०११, २१, १२८८.
- पितृबान्धव see पितृबन्धु १४५८, १५२९.
- पितृभागहर heir of father's share ११९३, १२००, २२, १५६७.
- पितृमत् having a father ११४७, ४९.
- पितृयाण trodden by or leading to the *Pitrs*' (path) or manes's heaven ६०२, १६००.
- पितृरिक्थ father's estate or inheritance १३२५, १४६३.
- पितृरिक्थहर heir of the father's heritage ११९३.
- पितृलोक the world or sphere of *Pitrs* १००३, १२६२, १७९३.
- पितृवंशशृक् a head of the paternal family १३५०.
- पितृवत् like a father ११४७, ९५.
- पितृवध patricide १६०३.
- पितृवर्ग a class of *Pitrs* १३५६.
- पितृवित्त father's wealth; paternal property ११२०, ५८, १२४३, ४४, १४२९, १५६१.
- पितृविभक्त separated from father १५६२.
- पितृवेश्मन् father's house १०२३, १२८५, ८६, १३०६.
- पितृव्य father's brother ६९१, ९६, ७०८, १०२८, १११८, १२०१, २९, १३६२, ८४, १५१३, २६, ४१, ५६.
- पितृव्यस्त्री a paternal-uncle's wife १२१०, १८८२.
- पितृवद् living unmarried with a father; father's family ९६५, ८२, १००२.
- पितृवसु a father's sister २९६, १०२०, १४५०, १५२८, २९, १८८२, ९०.
- पितृवसुति father's progeny १५३०.

पितृसम in the relation of a father ११९३.
 पितृत्व a guardian (living in the place of
 a father) ११८०.
 पित्रंश father's share ७१२, १४७३.
 पित्र्यं father's debt ७१०, ११, १३७६.
 पितृव्य hereditary property; relating to a
 father; paternal; patrimonial ६०३, ०६,
 ७१४, ८०३, ०६, ०७, १७, १०१२, १६, २३,
 ४२, १११८, ३२, ५९, ६०, ९६, १२०१,
 २९, ३०, ४३, ५३, ८३, ८४, ८५, १३२३,
 २४, ४७, ४८, ५६, ७४, १५५४, ६२, ६३,
 ६७, ८४, ८९, १६१०, ३४.
 पित्र्यर्णसंबद्ध related to the paternal debt
 १२२९.
 पिपासा thirst ७०३, ११०३, १५९६, ९७, १६८६.
 पिप्पल the fig-tree १२८१, १३५०, ५१, १९६७,
 ८२.
 पित्र्युन a treacherous informer १५९६, १६१२,
 २६, ५०.
 पिष्टप see विष्टप १२६४, ७९.
 पीठसर्पिन् lame १७२७, १९२७.
 पीडन painful; troubling १६१५, ७६, ८७,
 १७९८, १८०५, ३१, १९३०.
 पीडा trouble; pain; torture १११५, १६१०,
 १७९७, १८१५, १६, ३३.
 पीप्याना becoming exuberant १२५७.
 पुंभाग division according to male १२३७.
 पुंश्रली running after men; a harlot ८४१,
 ४२, ४३, १०१६, ३२, १६८२, ८७.
 पुंश्रलू see पुंश्रली १९७७.
 पुंसु a man ६९८, ७५१, ६९, ९२, ८५१, ९२, ९४,
 ९७१, ७२, ९५, १०००, ०६, ०७, ०८, १०,
 २७, ३३, ३५, ३६, ३७, ३८, ४८, ५१, ५३,
 ५४, ५५, ५८, ७०, ७१, ८०, ९२, ९३, ९४,
 ९९, १११८, १९, २७, १२०१, ५४, ५५, ५८,
 ५९, ७३, ८४, ८५, ८६, १३०५, ७४, ८५, ९६,
 १४१५, २३, २४, ७३, १५९५, १६१७, १९, २७,
 ४०, ४६, १७४५, ६४, ७२, १८३७, ४१, ४३,
 ४६, ४९, ६५, ७०, ७२, ७७, ७९, ८०, ८२, ८६,
 ८७, ८८, ९०, ११२७, ४४, ४५, ७२, ७५, ७६, ७९,

८४, ८६.
 पुंसवन male-production rite ११०२, १२८४.
 पुंसव virility १०९४, १११६, १६१०, ३४, १७९७,
 १९२२.
 पुच्छ the tail १९७३.
 पुण्य auspicious; meritorious; sacred;
 merit; virtue, ७१४, ५०, ९२९, ३०, ३१, ५९,
 ७३, ९८, १०२२, २६, २७, ३०, ६९, ७५,
 ७६, ७७, ११००, ११, १३, १२८६, १३९३,
 १४०५, ६३, १५१३, २४, १६०२, ०३, १७६०,
 १८००, २३, १९६४, ६५, ७५.
 पुत्र a son; offspring ६०१, ०४, ६१, ६२, ६३,
 ६६, ७२, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८२,
 ८४, ८५, ८६, ९०, ९१, ९२, ९६, ९७, ९९,
 ७००, ०७, ०८, १०, ११, १२, १४, १५,
 २१, २५, ३५, ३७, ५१, ९४, ९८, ८०२,
 ०४, ०५, ०७, १३, १६, १८, २२, २६, २७,
 ३९, ४०, ४३, ६१, ६३, ९७१, ७५, ८२,
 ८५, ८६, ९३, ९७, ९८, ९९, १०००, ०१,
 ०५, २०, २२, २३, २६, २७, ३०, ३१, ३३,
 ३४, ४५, ५९, ६५, ६९, ७०, ७५, ७६, ७९,
 ८०, ८३, ९६, ९९, ११०१, ०३, ०५, ०९,
 १०, १३, १८, ३२, ४१, ४२, ४४, ४६, ४८,
 ४९, ५२, ५६, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३,
 ६४, ६६, ७०, ७३, ७५, ७९, ८०, ८१, ८४,
 ९१, ९२, ९४, ९५, ९७, ९९, १२००, ०५,
 १३, २२, २४, ३४, ३५, ३६, ३७, ३९, ४०,
 ४३, ४४, ४६, ४९, ५१, ५२, ५४, ५५, ५७,
 ५९, ६०, ६१, ६२, ६४, ६६, ६७, ६८, ७०,
 ७१, ७२, ७३, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२,
 ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९३,
 ९४, ९७, १३०२, ०४, ०५, ०६, १४, १६,
 १८, १९, २४, २५, २६, ३२, ४६, ४७, ४८,
 ४९, ५०, ५१, ५२, ५५, ५६, ५८, ६२, ६३,
 ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७६, ७७, ८३, ८४,
 ८५, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९३, ९६,
 १४०१, ०३, ०४, ०७, १३, १४, १५, १६,
 २१, ३०, ३१, ५८, ५९, ६३, ६३, ६६, ६७,
 ६९, ७०, ७३, ७४, १५११, १६, २१, ३३,
 २३, २८, २९, ५५, ५९, ६८, ७०, ८४, ८९,

१६१०, १२, १३, १९, २७, ३५, ९२, ५५,
 १७५५, १८१२, २९, ३५, ३६, ४१, ५५, ९६,
 १९०५, २१, २२, २६, २८, ३१, ६६, ६७,
 ७०, ७३, ७४, ७७, ७८, ७९, ८१, ८२, ८५,
 ८६, ८७, ८८.
 पुत्रकण debt contracted by a son ६९५.
 पुत्रक a little son; boy ११६२, १३६२, ७१, ७७.
 पुत्रकल्पा (daughter as) a substitute for
Putra १२६२.
 पुत्रकाम desirous of sons and children १२५८,
 ८७.
 पुत्रकारिन् see पुत्रकाम १२८६.
 पुत्रकिल्बिष a curse among sons १२८७.
 पुत्रकृत (debt) contracted by a son ६७९, ९८,
 ७०८, १३.
 पुत्रगुण filial virtues १२८०, १३०५.
 पुत्रगृह्णन् desirous of a son १२८५.
 पुत्रच्छायावाह having the resemblance of a son
 १३६४.
 पुत्रतुल्यांशभागिनी entitled to hold a share
 equal to that of the son १४१३.
 पुत्रदान giving of a child ७९४, १३५६, ७०.
 पुत्रदायाच son's property १२५५.
 पुत्रपरित्यागिन् forsaking a child १०३१.
 पुत्रप्रतिग्रह adoption of a son or child १३०५,
 ७४, ८४.
 पुत्रप्रतिनिधि a substitute for a son १३१०, ५२,
 ७३.
 पुत्रभाग son's share ८३१, १९८४.
 पुत्रभावोपगत the son who offers himself to be
 the son of another १२८८.
 पुत्ररूपिन् deserving sonship १३९१.
 पुत्रलाभ obtaining a son १४०७, ६९.
 पुत्रवत् like a son; having a son ७५०, १२६४,
 ७२, ८२, ९०, १३४७, ५०, ५५, ७४, ७७, ९१,
 १४०४, १६, ७३, १५१५, २५, २६.
 पुत्रवती having a son or sons १०३४, ११०१,
 १०, १२७२, ९३, १४३०.
 पुत्रवध killing a son ७५१.
 पुत्रविभाग son's share; division of property

among sons १२४५.
 पुत्रसंग्रह acceptance of a son १३६३, ६५.
 पुत्रसमा equal to a son १४२९.
 पुत्रस्थानीय son-like १४७०.
 पुत्रस्वीकार adopting a son १३५६.
 पुत्रहीन sonless; childless ६८६, ७१३, १५२९.
 पुत्रार्थिन् wishing for a son १०३४, १४३१.
 पुत्रिका an appointed or adopted daughter
 for procuring an heir १२५४, ६२, ७२,
 ७९, ८२, ९४, ९७, ९८, १३४८, ५५, ५६, ७३,
 ७४, १४२९, ६३, १५२९, १९८५.
 पुत्रिकागामि (property) inheritable by a *Putri-
 trikā* १४७१.
 पुत्रिकापुत्र the son of a *Putrikā* १२६३, ६५,
 ६८, ७०, ७९, ८२, ८८, १३४६, ४८, ५०, ५१,
 ५५, ५६, १९८२.
 पुत्रिकामर्तु the husband of a *Putrikā* १२९८.
 पुत्रिकाविधि the rite of a *Putrikā* १२७९.
 पुत्रिकासुत see पुत्रिकापुत्र १२६८, ८२, ८३, १३०२,
 ३०, ५१, ७३, ७४, ७५.
 पुत्रिणी having a son or offspring ६९९, ७११,
 १००१, १२६४, ९३, १३४८, ६५, ८४, ९५.
 पुत्रिन् see पुत्रिणी ९७४, ११९३, ९६, १२५८, ६०,
 ६४, ७१, ७३, ८५, ९०, १३४८, ५०, ८४,
 १९८२, ८४, ८७.
 पुत्री a daughter १३५५, ७६, १६५३, १९८८.
 पुत्रेष्टि a sacrifice performed for begetting
 a son १३७४, ७७.
 पुनःसंस्कार renewed investiture (here of
 marriage *Samskāra*) १०१५, १९, २१,
 ११०१, ०३.
 पुनराधान replacing a consecrated fire १०७५.
 पुनरुद्वाह remarriage १३८४.
 पुनर्दारक्रिया taking a second wife १०७५.
 पुनर्भू wife who remarries; a twice-ma-
 rried woman ७०२, ०३, १५, १०००, १७,
 २६, ३३, ८८, ११०३, ०४, १२७०, ७३, ७९.
 पुनर्भूता remarried १२८८.
 पुनर्न्याय revision; appeal; reexamination
 १९३५.

पुनर्विभाग second division १५५७, ७५.
 पुनर्विवाह remarriage ४११८.
 पुनामन् (a hell) called *Puni* १२६२, ६४, ७९,
 ८१, ९०, १३२८, ४८, १९८४.
 पुरंदर N. of *Indra* ८०९.
 पुरःसद् presiding ९६४.
 पुरःसर a forerunner ८४२.
 पुर a castle; town ८६५, ७४, ९६२, १६४३,
 ४४, १७१०, ५७, १८००, ६९, ८६, १९०७,
 ३०, ३३, ४२, ८६.
 पुरनिवासिन् a citizen; town-dweller ८७४.
 पुरन्धि a woman; a protegee of *Ashvins*; a
 goddess of abundance ९६६, ८०, ८५.
 पुरन्धिहृत् vide योषिद्ग्राह ७१०.
 पुरमान (secret of) town planning १९४३.
 पुरश्चरण preparatory or introductory rite
 १६८१.
 पुराकल्प former times १९०६.
 पुरागत coming first (as a suitor) ११०९.
 पुराण ancient; old; a thing or event of the
 past; N. of a class of sacred works; a
 particular coin ८१०, ९४५, १००४, २७,
 १२८३, ८४, १४२३, १६०५, १७६९, १९५६,
 ९४, ५७, ६८, ८४.
 पुराणचोर a habitual thief १६८१, ८२.
 पुराणदृष्ट seen or approved by ancients १२७३,
 ८५.
 पुराणमाण्ड an old commodity १६७७, ८३.
 पुरातन ancient; old ७८७, १०३२, ११०९.
 पुराविद्, knowing the events of former times
 १०७१, १२८६, १९६७.
 पुरीष feces ९५४, ५९, १६१४, १७९८, १८३२.
 पुरमित्र N. of a man २६५, ८०.
 पुरुष a man; person; pedigree ६०४, ८५,
 ७०३, १४, १५, ३५, ६५, ७१, ९२, ८०५, ५८,
 ९३६, ४९, ५५, ९८, १००७, १०, ११, २०,
 २२, २४, २५, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५,
 ३६, ३७, ३८, ४१, ४४, ४८, ४९, ७२, ७३,
 ७६, ९४, ११०३, १०५, १४, १२५९, ७३,
 ८१, १३५८, ७६, १४३०, १५२७, १६३९, १६४९,

१६०९, १४, १८, ३९, ४६, ४९, ५६, ६४, ६९,
 ७१, ८१, ८५, ८८, १७११, ५०, ६५, ९०, ९७,
 १८३२, ३७, ४९, ५०, ५३, ७९, ८०, ८८, ९२,
 ९६, १९२२, ३०, ४४, ६५, ७७, ८५.
 पुरुषकार effort ९०८, १६, १९४३.
 पुरुषघातिन् a homicide १६०९, ७१.
 पुरुषघ्नी (a woman) who kills her husband
 १६१९, ३८.
 पुरुषद्वेषिणी an ill-tempered or fractious
 woman (towards her husband) १०२५,
 ८७.
 पुरुषप्रमाण homicide; slaughter or murder
 of a man १६३७.
 पुरुषवध homicide १६०६, ६४.
 पुरुषसंतान male progeny ६९२, ७१५.
 पुरुषार्थ any one of the four objects of existe-
 nce (viz. discharge of duties, acquire-
 ment of wealth, gratification of desire,
 final emancipation) १११८.
 पुरुरवस् N. of an ancient king of the lunar
 race ९८८, ८९, १००९.
 पुरोगव a leader १०००.
 पुरोधया priestly ministration १९८९.
 पुरोहित a family priest १२५२, १५९७, १६६६,
 १९१८, २१, २९, ७०, ८५, ८९.
 पुलकाम covetous ९६८.
 पुल्कस N. of a despised mixed tribe ११८५.
 पुष्करसादि N. of a teacher १६६५.
 पुष्करस्रज् lotus-wreath; N. of the two
Ashvins १२५९, ८१.
 पुष्करिणी a pool or pond ९६२, १८४०.
 पुष्टपति the lord of prosperity or welfare
 ९९८.
 पुष्टि prosperity; growth ९०३, १०७१, ११२०,
 ५९, ११२०, ११२०, ११२०, ११२०, ११२०, ११२०,
 १४, ३०, ४६, ५७, ६१, ६५, ७९, ७१, ७२,
 ७४, १७१९, ४४, ४९, ५२, ६०, ६५, ६९, ७३,
 ७६, ८०, ८४, ८८, ९२, ९६, १००, १०४, १०८, ११२, ११६, १२०, १२४, १२८, १३२, १३६, १४०, १४४, १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२, १७६, १८०, १८४, १८८, १९२, १९६, २००, २०४, २०८, २१२, २१६, २२०, २२४, २२८, २३२, २३६, २४०, २४४, २४८, २५२, २५६, २६०, २६४, २६८, २७२, २७६, २८०, २८४, २८८, २९२, २९६, ३००, ३०४, ३०८, ३१२, ३१६, ३२०, ३२४, ३२८, ३३२, ३३६, ३४०, ३४४, ३४८, ३५२, ३५६, ३६०, ३६४, ३६८, ३७२, ३७६, ३८०, ३८४, ३८८, ३९२, ३९६, ४००, ४०४, ४०८, ४१२, ४१६, ४२०, ४२४, ४२८, ४३२, ४३६, ४४०, ४४४, ४४८, ४५२, ४५६, ४६०, ४६४, ४६८, ४७२, ४७६, ४८०, ४८४, ४८८, ४९२, ४९६, ५००, ५०४, ५०८, ५१२, ५१६, ५२०, ५२४, ५२८, ५३२, ५३६, ५४०, ५४४, ५४८, ५५२, ५५६, ५६०, ५६४, ५६८, ५७२, ५७६, ५८०, ५८४, ५८८, ५९२, ५९६, ६००, ६०४, ६०८, ६१२, ६१६, ६२०, ६२४, ६२८, ६३२, ६३६, ६४०, ६४४, ६४८, ६५२, ६५६, ६६०, ६६४, ६६८, ६७२, ६७६, ६८०, ६८४, ६८८, ६९२, ६९६, ७००, ७०४, ७०८, ७१२, ७१६, ७२०, ७२४, ७२८, ७३२, ७३६, ७४०, ७४४, ७४८, ७५२, ७५६, ७६०, ७६४, ७६८, ७७२, ७७६, ७८०, ७८४, ७८८, ७९२, ७९६, ८००, ८०४, ८०८, ८१२, ८१६, ८२०, ८२४, ८२८, ८३२, ८३६, ८४०, ८४४, ८४८, ८५२, ८५६, ८६०, ८६४, ८६८, ८७२, ८७६, ८८०, ८८४, ८८८, ८९२, ८९६, ९००, ९०४, ९०८, ९१२, ९१६, ९२०, ९२४, ९२८, ९३२, ९३६, ९४०, ९४४, ९४८, ९५२, ९५६, ९६०, ९६४, ९६८, ९७२, ९७६, ९८०, ९८४, ९८८, ९९२, ९९६, १०००.

पृथक्पिण्ड separate offering of *S'rāddha*
 oblation १३७४, १५८८.
 पृथक्श्राद्ध separate performance of *S'rāddha*
 १५८८.
 पृथक्स्थ living separately १५६०.
 पृथक्स्थानस्थित living in separate places १५७५.
 पृथक्स्थित see पृथक्स्थ १५६०.
 पृथग्गोत्र belonging to different families
 १३७४.
 पृथग्ग्राम living in different towns १५८९.
 पृथग्धन separate property १५८१.
 पृथग्धर्म (performing) separate religious
 duties १५८१, ८२, ८३.
 पृथग्भूत separated ७८८, १९८३.
 पृथग्वंशकर founder of a different family
 १३७४.
 पृथा N. of a daughter of the king *S'ūtra*
 १२८४, १३७६, १९८६.
 पृथिवी the earth ७९१, ९२, ८६०, ९२४, १००१,
 ०४, ३१, ७२, ११२२, ४३, ४४, १२५९, १५९८,
 १६०३, २७, १८३६, ३९, १९३०, ३६, ६५,
 ७९, ८०, ८४, ८६.
 पृथिवीक्षित् a king १९०५.
 पृथिवीपति a lord of the earth; king ८६४,
 ९११, १३७७, ९१, १६५३, १७२७, १९३६,
 ५२, ६२.
 पृथिवीपाल a king १९३६.
 पृथिवीश see पृथिवीपति १३७३.
 पृथीवैन्य N. of a king ९२४.
 पृथु N. of a king १०७२.
 पृथुकीर्ति N. of a daughter of the king *S'ūtra*
 १३७६.
 पृथुष्टु having a broad tuft of hair ९८७.
 पृदाक् N. of a snake १६००.
 पृष्ठ N. of a particular arrangement of
Sāmans; the back side (of a docu-
 ment) ६८९, ११२०, ४४, ५९, १८१२, १९७४.
 पेषिशाना shining ९९३.
 पेशल decorated १००७.
 पेशस्वती decorated ९९५.

पैजवन a patronymic of *Sūdas* and several
 other men ८११.
 पैतामह belonging to a grandfather ६७६, ९१,
 ७०७, ०९, १०, ८०७, ११७३, ७५, १२२१,
 ३०, १३८९, १५६९, ८९.
 पैतृक belonging to a father; paternal ६७२,
 ७५, ७९, ८५, ९५, ७१०, १५, ८२१, १११६,
 २६, ४२, ४९, ८०, ९४, ९५, १२०५, १३१९,
 २०, २१, २९, ३२, ३३, ४०, ८०, १३२२, २४,
 ९६, १४०२, २२, ५९, ६२, ७३, १५२७, ८२,
 ८४, ८६, ८७, ८८, १९२८, ५०, ८८.
 पैतृकधन paternal property ११२५.
 पैतृमेध sacrifice to the *Pitrs* १३५५.
 पैतृश्वसेय a son of the father's sister १९८६.
 पैत्र्य relating or belonging to a father
 १२४१.
 पैशाच the eighth or lowest form of marriage
 १०३४, ९६, ९८, १४३०.
 पैशुन(न्य) see पिशुन १०२९, १११९, १६५५.
 पोगण्ड not full grown or adult; young ६९५,
 ७४९, ९५०.
 पोष nourishment; prosperity १८३७, ३८,
 १९८५.
 पोषण nourishment १०२९.
 पोषणीया see पोष्य १६१२.
 पोषित्त nourished; maintained १३७६.
 पोष्य to be nourished or protected; causing
 prosperity ८५६, १००१.
 पौश्वल्य harlotry १०४८.
 पौगण्ड adult; young १२००.
 पौतैवापचार fraud in weights and measures
 १६७७.
 पौतुद्रव relating to the tree *Putudrava*
 १६०२.
 पौत्र a grandson ६६२, ७२, ७५, ७६, ७८,
 ७९, ८४, ९१, ७०९, १५, ८०७, १०००,
 ३१, ७९, ११९९, १२५५, ६२, ६४, ६५,
 ७१, ७२, ७९, ८१, ८२, ८६, ९७, १३००,
 ०२, ४८, ५०, ५५, ५६, १४६७, ६९, ७०,
 ७१, ७४, १५७७, ८९, १९८६.

पौनर्भव a son begotten on a woman re-married; concerning remarriage १०१९, १११८, १२६३, ६५, ७०, ७३, ७९, ८२, ८४, ८८, १३०८, ०९, २०, ३१, ४६, ४९, ५०, ५१, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ९०.
 पौनर्भवस्तोम a sacrifice performed at the time of remarriage १३७७.
 पौर a citizen ८७२, १६८१, ९०.
 पौरव a descendant of *Puru* १९८५.
 पौराण ancient; old १०२६, २७, १२८४.
 पौराणिक described in *Purāṇa* literature ११८५, १९४३.
 पौरुकुत्स्य a patronymic of *Trasa-dasyu* ८११.
 पौरुष manly strength; heroism ८१८, ४०, ६१, ६२, १६०३, १९२७, ४५.
 पौरोहित्य priest-hood ९४७.
 पौर्णमास full moon sacrifice ११९५.
 पौर्णमासी a day or night of full moon ८४२, ९९२.
 पौषपौरुषिक ancestral १६७६.
 पौर्वाहिक relating to the morning १०२९.
 पौलोम (pl.) N. of a class of demons १६०३.
 पौत्स an offspring of a *Nishāda* or of a *S'ūdra* father and of a *Ke'atriyā* mother १६०३.
 पौष्टिक auspicious rite ८७२.
 प्रकर one who takes heavy tax (as fine) १६४९.
 प्रकत्री a female who deflowers १८४९.
 प्रकर्ष interest; see प्रकर्षित ६५३.
 प्रकर्षण dragging away १७९८.
 प्रकर्षित exceed in profit (as the interest of loan); profit on a pledge beyond the interest of the money lent upon it ६५२, ५९.
 प्रकाश open; manifest; public; light ७५७, ६३, ६६, ६७, ९२६, ३५, ४४, ४९, ५०, १६१२, २६, ५५, ६३, ६४, १७४४, ४५, ४६, ५७, ६०, ६१, ६३, १७४२, १९०६, १९, १४४.

प्रकाशक a purchase made publicly; an overt purchase ७५९.
 प्रकाशतस्कर an open thief १७५८.
 प्रकाशवञ्चक open-deceiver १६९३, १७४६, ६३, १९२९.
 प्रकाशवधक notorious murderer १६४६.
 प्रकीर्णक miscellinous (the title of law) १९२२, ३३, ४०, ४१.
 प्रकीर्णकेश dishevelled hair १६५८, ६४.
 प्रकृता defiled or deflowered १८४९.
 प्रकृति the subjects; people १३९१, १६१२, १४, १८, ३२, १७७१, ७२, १९३०, ३३, ३५, ४१, ४२, ६६, ८६.
 प्रकृतिस्थ unimpaired; competent; normal १०७७, ९५.
 प्रकृत्यवमत naturally contemptible; undesirable to the subjects ८७१.
 प्रकृष्ट well cultivated ७८७.
 प्रक्रमः a series of oblations corresponding to the movements of a sacrificial horse ६०४.
 प्रक्रम्य a purchase ९३०.
 प्रक्षेप investment; the sum deposited by each member of a commercial community; the value or price (of a slave) ७८०, ८१७, १६७९.
 प्रक्षेपवृद्धि interest or investment ६११, ३८.
 प्रख्यातभाण्ड a commodity the pre-emption of which is claimed by a king १७०६, १९२७.
 प्रचलाक a chameleon १६०६.
 प्रचार grazing; a pasture-ground; a passage ७७२, १२०६, ०७, ०९, २३, १६८६, १९२२.
 प्रचिह्निता marked ९६१.
 प्रचेतस् N. of a sage १००३, २८, १२८२.
 प्रच्छन्दक a wanderer (*Ganapatishāstrī*); a mystic (*Shāmsāstrī*) १६७९.
 प्रच्छन्न hidden; secret ९२६, १६७०, ७४, ७६, ८३, ८६, ८९, १७५१, ६१, १९०६, ८१.

प्रच्छन्नवचक a. secret, thief १७१०, ५८, ६४, १९०७.

प्रच्छन्नवचक a secret deceiver १६९३, १९२९.

प्रच्छन्नवृत्तिकर्तु one whose occupation and action is not known १६८२.

प्रच्छादित concealed १५७३.

प्रजन impregnation; begetting; generative organ १०५१, ५३, ५५, ६५, १३१७, १९७०.

प्रजनन generative organ; the act of procreating or begetting, १०१०, १२५५, ८४, ८५, १३९१, १६२१.

प्रज्य procreation; children; offspring; race; mankind; people ६३५, ८१३, १७, ६०, ९६८, ७१, ८३, ८५, ९१, ९२, ९४, १०००, ०१, ०२, ०३, ०४, ०५, ०६, १०, १७, २०, २६, ३०, ३३, ४६, ६३, ६५, ७२, ११०२, १३, २०, ५९, ६०, ८१, १२४४, ५३, ५८, ६१, ६२, ७१, ८२, ८३, ८५, ८६, १३८५, १४२३, ३८, १५१९, ९९, १६००, ०१, ०२, १४, ३१, ५४, ७१, ७८, ७९, ९२, ९३, १७१०, ९३, १८३७, ९६, ९८, १९०७, १८, २१, २९, ३०, ३२, ३६, ४१, ६९, ७०, ७६, ७७, ८१.

प्रजाकाम desirous of offsprings १००७.

प्रजासुरि protection of subjects १६६४.

प्रजास्राजिका (a woman) who murders her offspring १६१९.

प्रजाता (a woman) who has borne a child १०२३, ३९, ४०, १६१९, ८७, १८४८.

प्रजाति progeny; offspring १००५, ०७, ०८, ९०, १९८१.

प्रजाधन property of the subjects (of a prince) ६३५.

प्रजाधनम् law relating to procreation or offspring १०५१, १९३९.

प्रजापति lord of creatures; N. of a supreme god above or among the Vedic deities;

प्रजापति N. of a sage ६२६, ७९३, ८१८, ५७, ९८५, ९९, १००३, ०३, ०६, ३०, ३१, ३२, ४९, ५९, ६२, ७५, ९८, १११९, १३, ४४, ६१, १३०७, ६२, ६४, १३४८, ५६, ७३, १४२३, १५५५,

९५, १६०१, ५२, १८४०, ४१, १९७६, ७८, ८५. प्रजापतिमतं the commandment (opinion), of *Prajāpati* १०३१.

प्रजापाल a protector of (the king's) subjects. ९१९, २०.

प्रजाप्रवृत्ति raising of an offspring ११००, १३, १९७८.

प्रजाभागिन् one who obtains an offspring १०७३.

प्रजारणि (a common wife) producing children; the mother of offsprings १२८५.

प्रजावत् having offsprings १००४.

प्रजावती granting children; pregnant; a mother of (male) issue १००१, ०२, २६, ९९, १११४.

प्रजाविशुद्धि purity of the progeny १०४७.

प्रजीवन livelihood; subsistence १२८३, १३२४.

प्रजोत्पत्ति procreation of offsprings १३८४.

प्रणाली channel; watercourse ९२७, ५३, ५८, ५९.

प्रणालीमोक्ष an outlet through channel ९२७.

प्रणिधि a spy ७४२, १६७९, १९२४.

प्रणिहित carefully directed or employed (for spying) १७५४, ५५.

प्रणीत (the son) delivered or given १२८४, १९३०.

प्रतर्दन N. of a king of *Kāśī* (son of *Dīvo-dāsa*) १६०३.

प्रतान a tendril १८२३.

प्रतापन heating (a kind of punishment); १६८७.

प्रतारक a deceiver; fraudulent १९०३.

प्रतिकूल contrary; inimical; disagreeable १०२५, ५६, ११००, १५, १३९१, १४००, १०४, १६९८, १७४४, १९२६.

प्रतिकृष्ट a bidder; implored ९२९, १६२१.

प्रतिक्रिया bidding १३६.

प्रतिग्रह a bidder, १२८५, १६९, ७७, ७९, ८१, ८३, ८५, ८७, ८९, ९१, ९३, ९५, ९७, ९९, १०१, १०३, १०५, १०७, १०९, १११, ११३, ११५, ११७, ११९, १२१, १२३, १२५, १२७, १२९, १३१, १३३, १३५, १३७, १३९, १४१, १४३, १४५, १४७, १४९, १५१, १५३, १५५, १५७, १५९, १६१, १६३, १६५, १६७, १६९, १७१, १७३, १७५, १७७, १७९, १८१, १८३, १८५, १८७, १८९, १९१, १९३, १९५, १९७, १९९, २०१, २०३, २०५, २०७, २०९, २११, २१३, २१५, २१७, २१९, २२१, २२३, २२५, २२७, २२९, २३१, २३३, २३५, २३७, २३९, २४१, २४३, २४५, २४७, २४९, २५१, २५३, २५५, २५७, २५९, २६१, २६३, २६५, २६७, २६९, २७१, २७३, २७५, २७७, २७९, २८१, २८३, २८५, २८७, २८९, २९१, २९३, २९५, २९७, २९९, ३०१, ३०३, ३०५, ३०७, ३०९, ३११, ३१३, ३१५, ३१७, ३१९, ३२१, ३२३, ३२५, ३२७, ३२९, ३३१, ३३३, ३३५, ३३७, ३३९, ३४१, ३४३, ३४५, ३४७, ३४९, ३५१, ३५३, ३५५, ३५७, ३५९, ३६१, ३६३, ३६५, ३६७, ३६९, ३७१, ३७३, ३७५, ३७७, ३७९, ३८१, ३८३, ३८५, ३८७, ३८९, ३९१, ३९३, ३९५, ३९७, ३९९, ४०१, ४०३, ४०५, ४०७, ४०९, ४११, ४१३, ४१५, ४१७, ४१९, ४२१, ४२३, ४२५, ४२७, ४२९, ४३१, ४३३, ४३५, ४३७, ४३९, ४४१, ४४३, ४४५, ४४७, ४४९, ४५१, ४५३, ४५५, ४५७, ४५९, ४६१, ४६३, ४६५, ४६७, ४६९, ४७१, ४७३, ४७५, ४७७, ४७९, ४८१, ४८३, ४८५, ४८७, ४८९, ४९१, ४९३, ४९५, ४९७, ४९९, ५०१, ५०३, ५०५, ५०७, ५०९, ५११, ५१३, ५१५, ५१७, ५१९, ५२१, ५२३, ५२५, ५२७, ५२९, ५३१, ५३३, ५३५, ५३७, ५३९, ५४१, ५४३, ५४५, ५४७, ५४९, ५५१, ५५३, ५५५, ५५७, ५५९, ५६१, ५६३, ५६५, ५६७, ५६९, ५७१, ५७३, ५७५, ५७७, ५७९, ५८१, ५८३, ५८५, ५८७, ५८९, ५९१, ५९३, ५९५, ५९७, ५९९, ६०१, ६०३, ६०५, ६०७, ६०९, ६११, ६१३, ६१५, ६१७, ६१९, ६२१, ६२३, ६२५, ६२७, ६२९, ६३१, ६३३, ६३५, ६३७, ६३९, ६४१, ६४३, ६४५, ६४७, ६४९, ६५१, ६५३, ६५५, ६५७, ६५९, ६६१, ६६३, ६६५, ६६७, ६६९, ६७१, ६७३, ६७५, ६७७, ६७९, ६८१, ६८३, ६८५, ६८७, ६८९, ६९१, ६९३, ६९५, ६९७, ६९९, ७०१, ७०३, ७०५, ७०७, ७०९, ७११, ७१३, ७१५, ७१७, ७१९, ७२१, ७२३, ७२५, ७२७, ७२९, ७३१, ७३३, ७३५, ७३७, ७३९, ७४१, ७४३, ७४५, ७४७, ७४९, ७५१, ७५३, ७५५, ७५७, ७५९, ७६१, ७६३, ७६५, ७६७, ७६९, ७७१, ७७३, ७७५, ७७७, ७७९, ७८१, ७८३, ७८५, ७८७, ७८९, ७९१, ७९३, ७९५, ७९७, ७९९, ८०१, ८०३, ८०५, ८०७, ८०९, ८११, ८१३, ८१५, ८१७, ८१९, ८२१, ८२३, ८२५, ८२७, ८२९, ८३१, ८३३, ८३५, ८३७, ८३९, ८४१, ८४३, ८४५, ८४७, ८४९, ८५१, ८५३, ८५५, ८५७, ८५९, ८६१, ८६३, ८६५, ८६७, ८६९, ८७१, ८७३, ८७५, ८७७, ८७९, ८८१, ८८३, ८८५, ८८७, ८८९, ८९१, ८९३, ८९५, ८९७, ८९९, ९०१, ९०३, ९०५, ९०७, ९०९, ९११, ९१३, ९१५, ९१७, ९१९, ९२१, ९२३, ९२५, ९२७, ९२९, ९३१, ९३३, ९३५, ९३७, ९३९, ९४१, ९४३, ९४५, ९४७, ९४९, ९५१, ९५३, ९५५, ९५७, ९५९, ९६१, ९६३, ९६५, ९६७, ९६९, ९७१, ९७३, ९७५, ९७७, ९७९, ९८१, ९८३, ९८५, ९८७, ९८९, ९९१, ९९३, ९९५, ९९७, ९९९, १००१, १००३, १००५, १००७, १००९, १०११, १०१३, १०१५, १०१७, १०१९, १०२१, १०२३, १०२५, १०२७, १०२९, १०३१, १०३३, १०३५, १०३७, १०३९, १०४१, १०४३, १०४५, १०४७, १०४९, १०५१, १०५३, १०५५, १०५७, १०५९, १०६१, १०६३, १०६५, १०६७, १०६९, १०७१, १०७३, १०७५, १०७७, १०७९, १०८१, १०८३, १०८५, १०८७, १०८९, १०९१, १०९३, १०९५, १०९७, १०९९, ११०१, ११०३, ११०५, ११०७, ११०९, ११११, १११३, १११५, १११७, १११९, ११२१, ११२३, ११२५, ११२७, ११२९, ११३१, ११३३, ११३५, ११३७, ११३९, ११४१, ११४३, ११४५, ११४७, ११४९, ११५१, ११५३, ११५५, ११५७, ११५९, ११६१, ११६३, ११६५, ११६७, ११६९, ११७१, ११७३, ११७५, ११७७, ११७९, ११८१, ११८३, ११८५, ११८७, ११८९, ११९१, ११९३, ११९५, ११९७, ११९९, १२०१, १२०३, १२०५, १२०७, १२०९, १२११, १२१३, १२१५, १२१७, १२१९, १२२१, १२२३, १२२५, १२२७, १२२९, १२३१, १२३३, १२३५, १२३७, १२३९, १२४१, १२४३, १२४५, १२४७, १२४९, १२५१, १२५३, १२५५, १२५७, १२५९, १२६१, १२६३, १२६५, १२६७, १२६९, १२७१, १२७३, १२७५, १२७७, १२७९, १२८१, १२८३, १२८५, १२८७, १२८९, १२९१, १२९३, १२९५, १२९७, १२९९, १३०१, १३०३, १३०५, १३०७, १३०९, १३११, १३१३, १३१५, १३१७, १३१९, १३२१, १३२३, १३२५, १३२७, १३२९, १३३१, १३३३, १३३५, १३३७, १३३९, १३४१, १३४३, १३४५, १३४७, १३४९, १३५१, १३५३, १३५५, १३५७, १३५९, १३६१, १३६३, १३६५, १३६७, १३६९, १३७१, १३७३, १३७५, १३७७, १३७९, १३८१, १३८३, १३८५, १३८७, १३८९, १३९१, १३९३, १३९५, १३९७, १३९९, १४०१, १४०३, १४०५, १४०७, १४०९, १४११, १४१३, १४१५, १४१७, १४१९, १४२१, १४२३, १४२५, १४२७, १४२९, १४३१, १४३३, १४३५, १४३७, १४३९, १४४१, १४४३, १४४५, १४४७, १४४९, १४५१, १४५३, १४५५, १४५७, १४५९, १४६१, १४६३, १४६५, १४६७, १४६९, १४७१, १४७३, १४७५, १४७७, १४७९, १४८१, १४८३, १४८५, १४८७, १४८९, १४९१, १४९३, १४९५, १४९७, १४९९, १५०१, १५०३, १५०५, १५०७, १५०९, १५११, १५१३, १५१५, १५१७, १५१९, १५२१, १५२३, १५२५, १५२७, १५२९, १५३१, १५३३, १५३५, १५३७, १५३९, १५४१, १५४३, १५४५, १५४७, १५४९, १५५१, १५५३, १५५५, १५५७, १५५९, १५६१, १५६३, १५६५, १५६७, १५६९, १५७१, १५७३, १५७५, १५७७, १५७९, १५८१, १५८३, १५८५, १५८७, १५८९, १५९१, १५९३, १५९५, १५९७, १५९९, १६०१, १६०३, १६०५, १६०७, १६०९, १६११, १६१३, १६१५, १६१७, १६१९, १६२१, १६२३, १६२५, १६२७, १६२९, १६३१, १६३३, १६३५, १६३७, १६३९, १६४१, १६४३, १६४५, १६४७, १६४९, १६५१, १६५३, १६५५, १६५७, १६५९, १६६१, १६६३, १६६५, १६६७, १६६९, १६७१, १६७३, १६७५, १६७७, १६७९, १६८१, १६८३, १६८५, १६८७, १६८९, १६९१, १६९३, १६९५, १६९७, १६९९, १७०१, १७०३, १७०५, १७०७, १७०९, १७११, १७१३, १७१५, १७१७, १७१९, १७२१, १७२३, १७२५, १७२७, १७२९, १७३१, १७३३, १७३५, १७३७, १७३९, १७४१, १७४३, १७४५, १७४७, १७४९, १७५१, १७५३, १७५५, १७५७, १७५९, १७६१, १७६३, १७६५, १७६७, १७६९, १७७१, १७७३, १७७५, १७७७, १७७९, १७८१, १७८३, १७८५, १७८७, १७८९, १७९१, १७९३, १७९५, १७९७, १७९९, १८०१, १८०३, १८०५, १८०७, १८०९, १८११, १८१३, १८१५, १८१७, १८१९, १८२१, १८२३, १८२५, १८२७, १८२९, १८३१, १८३३, १८३५, १८३७, १८३९, १८४१, १८४३, १८४५, १८४७, १८४९, १८५१, १८५३, १८५५, १८५७, १८५९, १८६१, १८६३, १८६५, १८६७, १८६९, १८७१, १८७३, १८७५, १८७७, १८७९, १८८१, १८८३, १८८५, १८८७, १८८९, १८९१, १८९३, १८९५, १८९७, १८९९, १९०१, १९०३, १९०५, १९०७, १९०९, १९११, १९१३, १९१५, १९१७, १९१९, १९२१, १९२३, १९२५, १९२७, १९२९, १९३१, १९३३, १९३५, १९३७, १९३९, १९४१, १९४३, १९४५, १९४७, १९४९, १९५१, १९५३, १९५५, १९५७, १९५९, १९६१, १९६३, १९६५, १९६७, १९६९, १९७१, १९७३, १९७५, १९७७, १९७९, १९८१, १९८३, १९८५, १९८७, १९८९, १९९१, १९९३, १९९५, १९९७, १९९९, २००१, २००३, २००५, २००७, २००९, २०११, २०१३, २०१५, २०१७, २०१९, २०२१, २०२३, २०२५, २०२७, २०२९, २०३१, २०३३, २०३५, २०३७, २०३९, २०४१, २०४३, २०४५, २०४७, २०४९, २०५१, २०५३, २०५

१००६, ११३१, ४२, १६५५, ८४, १९३३, ३९,
४०.
प्रतिग्रहभू land obtained by acceptance of
a gift १२५१.
प्रतिग्रहीतृ one who accepts a gift; receiver
७९४, ८०६, ७९, १३५६, १६५९.
प्रतिग्राहक a receiver; custodian (*Shām-
shāstri*) १६८४.
प्रतिग्राहिन् a receiver १७५५, ६२.
प्रतिघात repulse; obstruction १६३४, १९२१,
६५.
प्रतिज्ञा vow; promise १११७.
प्रतिज्ञात promised ७९४, ८०८.
प्रतिदान restoration; return ७४७, ८७९, ९८.
प्रतिदानविधान rule of payment (of debt)
७०६.
प्रतिदानव्युदासक rejecting the payment (of
debt) ७०६.
प्रतिदेय to be returned ७०६, ३२, ४५, ५३,
८९३, ९५.
प्रतिदेश order; instruction ७३७.
प्रतिधि a part of the chariot १०००.
प्रतिनिधि a substitute १३४८.
प्रतिन्यास a kind of deposit ७४९.
प्रतिपत्ति consciousness; acceptance १०१२,
१८४७, ७०.
प्रतिपद course of conduct (as to the reco-
very of debts) ६५६.
प्रतिपन्न agreed to; accepted ६८३, ७१५, २५,
२७, ८६३.
प्रतिपादन restoring १९२१.
प्रतिप्रस्थातृ a particular priest ८१४, १००८,
१८४१.
प्रतिबन्ध opposition; hindrance ८९१, ९००.
प्रतिबोध intimation ८८१.
प्रतिभाग daily present (given to a king)
१७०१.
प्रतिभाषित one who has stood as a surety
६७२, ७५.
प्रतिभू a surety ६६१, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७,

७०, ७१, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१,
८२, १७८१.
प्रतिमा an image; statue १६१३, ३०, ४९, ५४,
१८५०, १९२९.
प्रतिमातृ according to each mother १२३४.
प्रतिमान weight १६१३.
प्रतिमोक्ष emancipation ८३१.
प्रतियाचित what is demanded back ६३३,
७५४.
प्रतिरूप immitation १६११, ४९, ६९, १७४६,
१८३४.
प्रतिरूपक immitative; forgery; frabricated
११३०, १७५८, ६१, १९८३.
प्रतिरोध obstruction १६१८, १८४८.
प्रतिरोधक a calamity ७३५, १४३०, १६८१.
प्रतिरोधन obstruction १०४२.
प्रतिलोम inverse order (of the castes etc.);
member of a despised caste lower than
S'ūdra ८२४, ३६, ६२, ९२७, १०२२, ११०४,
०५, ८५, १७९२, १८३३, ४१, ४६, ४७,
८२, ८३, १९२१, ४२.
प्रतिलोमप्रसूता begotten by a woman in the
inverse order of the castes १४०३.
प्रतिलोमा a woman of higher caste having
sexual connection with a man of lower
caste; a woman belonging to a despised
caste lower than *S'ūdra* १३८६, ८९.
प्रतिवादिन् contradicting; opposing ८१३,
१००५, ११.
प्रतिवेश frontal neighbour १९२२.
प्रतिशीर्षप्रदान offer of a substitute for an in-
dividual ८३२.
प्रतिश्रव(य) a written receipt ७०६.
प्रतिश्रुत accepted; agreed; promised ६३४,
७१३, १४, ९४, ९६, ९७, ९८, ८०२, ०५, ०८,
११०९.
प्रतिषिद्ध prohibited ७७१, ७७, ८१, ९२७, १०३६,
३७, ३८, ५८, ११६५, १६७१, १७०६, १८४६,
५४, ६१, ६३, १९३७.
प्रतिषिद्धेतिवा doing what is forbidden १६०५.

प्रतिषेधव्य to be forbidden १०६.
 प्रतिषेध obstruction; prohibition १०३७, ३८,
 १६१३, २०, ९५, १८४१, ७२, १९२४, २९.
 प्रतिष्ठमान (a debtor) going out ७१६.
 प्रतिष्ठा stability ८१४, १८९६, १९८५.
 प्रतिसंस्कार reestablishment; repairing १६१३.
 प्रतीकार requital; counteraction १०६, १४३०,
 १६८२, १८००, १९२४, २५, ७३.
 प्रवृत्त prevention; breach १९०६, ३३.
 प्रनीमान see प्रतिमान १६७१, १७०७, ६१, १९२७.
 प्रतीची west १२०१, ५४.
 प्रत्ता offered; presented; married ११५२,
 १४६३.
 प्रत्यक्ष visible; direct knowledge ९१७, १६७२,
 १७०७, १९२७, ६६, ८३.
 प्रत्यनन्तर next; adjoining ७४०, ४७, ५१.
 प्रत्यभिलेख्यविरोध dispute or difference regard-
 ing the documentary evidence ९२५.
 प्रत्यय evidence; (surety for) assurance;
 ascertainment; understanding; depen-
 dence ६३८, ६१, ६२, ६५, ६९, ७१, ७३, ७६,
 ७७, ९९, ७४७, ७२, ८६३, ९६, ९२५, ४५,
 १२६०, १७६६, १९१४, ६५.
 प्रत्ययाधि a kind of deposit (which prevents
 the accruing of interest and diminishes
 the principal) ६५८, ६०, ६१.
 प्रत्ययित्पुरुष a reliable man १६७१.
 प्रत्यर्थिन् a defendant ९४४.
 प्रत्यवाय sin १२६७, १६०५.
 प्रत्यादान revoking १९०४.
 प्रत्यादेश determent १७२०.
 प्रत्यापत्ति confession १६४४.
 प्रथम first १३०२, १६१७, ३६, ४२, ४३, ४५,
 ६९, ७४, ९९, १७१३, ३२, ४८, ४९, ७०, ८२,
 ८९, ९०, १८१५, २०, ३०, ३१, ३८, ८५, ८९,
 ९५, ९७, १९००, २९, ३२, ३३, ३६, ७०, ८३.
 प्रथमसाहित first amercement ७९४, ९४६, १६१०,
 ३१, ५४, १७८२, ९०, ९६, १८९२, १९३०.
 प्रदर्शन (surety for) appearance; showing
 ६६१, ८९०.

प्रदातु a creditor; giver ६११, ८०८, ८३, १११९,
 १३५५, १६१०, १७९०, १९७३, ८६.
 प्रदान a gift; donation; giving; granting
 ६३८, ५४, ७९४, ८०७, ०८, ६१, ९८, १०११,
 ५९, ८३, १२२२, ७३, १३५६, ८४, ८५, ९२,
 १९३३.
 प्रदुष्ट corrupt; imitated; wicked; sinful ८८८,
 ९५५, १८८८.
 प्रदेष्टु one who pronounces judgement १६१८,
 ७३, ७९, ८५, ८८.
 प्रद्राणक very needy or poor १०१०.
 प्रधान property or wealth in general ६५७.
 प्रधान wealthy ७११.
 प्रघर्षक violating (the wife of another) १६१९.
 प्रधान the most important or essential;
 principal ८६०, ६१, ११८४, १२४३, ४६,
 १३१७, १९७७.
 प्रधानांश a principal share ११८४, १२३४.
 प्रनष्ट lost ९२०, २९, १६८४, १७५३, १९५८, ८२.
 प्रनष्टस्वामिक holding for which no claimant
 is forthcoming ९२९, १९४७, ४९, ५३, ६२.
 प्रनष्टाधिगत (property) lost and which is
 afterwards found १९५४, ५८.
 प्रपद the fore part of the foot ९९९.
 प्रपन्न acknowledged (as a claim) ७२१.
 प्रपलायिन् running away ७८७.
 प्रपा spring; a place for watering cattle
 ८७३, ९०३, ९८, १००२, १६९५, १७१८, ५४,
 १९२९, ४४.
 प्रपितामह paternal great grandfather १२८१,
 १३५०, ५१, १४६७, १५३०, १९८२.
 प्रपितामहसंतति paternal-great-grandfather's
 progeny १५३०.
 प्रपौत्र a great-grand son १०७९, १४६७.
 प्रफर्वी a wanton woman ९८२.
 प्रमक्षित used up (eaten) ७५४.
 प्रमत्तव्य to be supported or nourished १४००.
 प्रभव source; prominent १०२४, १७७५, ८८५,
 १९८५.
 प्रभविष्णु a lord; ruler ८०५, १४५८.

- प्रभु a master; lord ७९१, ९२, ८३७, ५३, ६०, ९६१, १०७५, ११०७, १०, १६, १८, ५५, ७२, १२१९, १३२४, २९, ९१, १४४९, १५५५, ६१, ८८, १७०१, ६०, १८८८, १९३६, ६०, ७०, ८८.
- प्रभेद splitting; division; sub-division ९४२, ११२९.
- प्रभगन्ध N. of a person ६००.
- प्रमत्त insane; mad ८०४, १०५६, १३९३, १६०७, १७४५, ४६, १८८५.
- प्रमदा a young woman or any woman १०२९, ३०, ३१, ३२, ३३, १९८०.
- प्रमाण authority; proof; proportion; right; principal evidence; measure ६२९, ७३४, ३७, ९४५, ५०, ५१, १०३४, १२२९, ८६, ८७, १४३१, ७३, १६१४, ४९, ७३, ८४, ८७, १७६७, ७१, ७२, १८००, १९१५, १८, २०, २१, ३६, ५४, ६२, ६५, ७६, ८४.
- प्रमाणद्वय sanctioned by authority १०२७, १२८४.
- प्रमाणरहित want of legitimate title of ownership ९५२.
- प्रमाणहीनवाद a dispute in which visible proof is lacking ७६५.
- प्रमाद negligence; insanity ६४९, ७७७, ८१, ८५, ८६, ८५४, ९०४, १११२, १९, ३०, १७७२, ९१, ९२, ९८, १८१४, १९८६.
- प्रमाण killing १६३८, १८३१, ३४, ८२, ८६.
- प्रमीत dead १३०४, १५१३, २४, ३६.
- प्रमीतपत्निका (a wife) whose husband is dead १०६८.
- प्रमूढ infatuated १०३०, १७५४.
- प्रमोक्तव्य to be released or set free ७२८.
- प्रमोहित bewildered; infatuated ८०५.
- प्रयत्न effort १७०१, ५७, ५९, ६३, ९२, १८९१, १९२८.
- प्रयाण parading; going १६४४, १८९०.
- प्रयास labour ९२९, ३२.
- प्रयासयोग्य (a pledge) enjoyable with labour ६३८.
- प्रयुक्त invested (sum) ६०८, १०१, २२, ३१, ७१६, १७, २३, २९.
- प्रयोग lending money at interest; investment; appointment ६०७, ३१, ७५०, ८४, ८६, ९०, ११२६, १६१३, ८१, ८२, १९७०.
- प्रयोजक a money-lender; creditor; one who invests ६३८, ४५, ७३१, १११०.
- प्रयोजन object; cause; purpose ६५६, ७६६, ८०७, १८.
- प्रयोज्य money lent at interest; investment; exclusively useful (for one person only as book etc.) १२२८.
- प्रयोद्व्य a mingler १५९१, १८९३.
- प्ररोह sprout १८००.
- प्रलोभन inducement १८८९.
- प्रवक्तु a teacher १६२७, १७६१, ८३, १९३३.
- प्रवर a cover; an upper garment; excellent ८१४, १०६८.
- प्रवर्ग्योद्घासन a ceremony introductory to the Soma-sacrifice ७७२.
- प्रवर्तक instigator १६५०.
- प्रवर्तन causing to appear; engaging in ८०६, ९३०, ४७, १५७९.
- प्रवसित exiled; excommunicated १११९.
- प्रवापिन् a sower १०७३, ७४.
- प्रवाल coral ६०९, ३२, ८९४, १२१९, १७५९, १९८८.
- प्रवास sojourn; journey १४०५, ३०.
- प्रवासन excommunication; banishment ७७२, १६२१, २७, ३२, ५४, १७६२.
- प्रवासित (property) lost; taken elsewhere १६२०.
- प्रवासिन् one who undertakes journey ६९७, ७११, १२, १०३९, ४०, १६८२.
- प्रवास्य to be excommunicated १६८०, १८०६, २९.
- प्रविभक्त divided १२४३, १५२९, ७१.
- प्रविष्ट returned ६३६, ४७, ५३, ७९, १६८१, ८२.
- प्रवृत्त come forth; brought about; admitted ८७१, ९४७, १६२०, १८५५, १९३५, ४२.
- प्रवृत्ति tendency; conduct; activity १२८६,

१६१९, १८८८.
 प्रवेश entrance ६३६, ९३२, १६१७, २०, ८५,
 ८६, १८००, ४७, ४८, १९३६.
 प्रवेशकाल the placing (of a deposit) in a
 person's house or hand ६६०.
 प्रवेशन return; giving back ६६०, १९२२.
 प्रव्रजन see प्रव्रजन १०३६.
 प्रव्रजित one who has turned a recluse; a
 religious mendicant or ascetic ६७२,
 ७८, ८३१, १०१३, २५, ४०, ११०७, १२, १७,
 १५६१, १६१०, ३४, ६८, ७९, १८५०, ५५,
 ७९, ८२, १९२२, २७, ४४, ४६, ७८.
 प्रव्रज्या the order of a religious mendicant
 ७३७, १११३, १७, १९, १९२३.
 प्रव्रज्यावसित a religious mendicant who has
 renounced his order; an apostate from
 asceticism ८२४, ३०, ३१, ३७, १४०३.
 प्रव्रज्योपनिवृत्त vide प्रव्रज्यावसित ८३१.
 प्रव्रजन banishment १६८९.
 प्रव्रजित one who is forcibly made an asce-
 tic १०७६.
 प्रश्न judicial inquiry; query १२२५, १९१८,
 ६३, ६४.
 प्रसङ्ग occasion; contingency; possibility
 ७६७, १६४६, १८६८, ९०, १९१३.
 प्रसभ forcibly; violently १६१८, ५५, ९१.
 प्रसभकर्मन् an offence with force १६१३, २२,
 ५५.
 प्रसभहरण violent seizure ८६३, १६३३.
 प्रसर्पण the act of following (to detect)
 १७५५.
 प्रसव procreation; offspring १०६९, ७४, १३१८,
 १४१६, २७, १९८६.
 प्रसङ्ग violently; forcibly ८६३, १७३६, १८४९,
 ५०, ७८, ८८, ९०, १९१४, २२, २९.
 प्रसङ्गतकर a robber; brigand १६०९, ७१.
 प्रसङ्गहरण violent seizure १६४८, १७६१.
 प्रसङ्गादान see प्रसङ्गहरण ९२९, १०३४.
 प्रसाद favour; grace ८३०, ३७, १२१९, २०,
 ३७, ३२, ३३, ८५, ८६, १९७०, ८८.

प्रसाधन-decoration; toilet and its requisites
 १०२८, ११०७, १२४४.
 प्रसाधिका a female attendant who dresses
 her master १११९.
 प्रसक्ति missile-१००१.
 प्रसूत procreated; begotten ७०३, ८३७, ९१९,
 १०२४, ३०, ३१, ११०३, १२, १२६९, १३५०,
 ७३, १४२८, ४५, १६८४, १८३३, १९४२, ८५.
 प्रसूति procreation १०४६, ५१, ७०, १९१६.
 प्रसूतज N. of a particular class of sons; a
 son by a paramour; a son rejected by
 his natural begetter and adopted by
 a stranger १२८६.
 प्रसूखीक one whose wife is allowed to tra-
 vel with another man १०३८.
 प्रस्थ a particular measure १५२०.
 प्रस्थापन sending out; dispatch १८८१.
 प्रसूषा grand-daughter-in-law ७०४.
 प्रस्रवण a well or spring ९२६, ३४.
 प्रस्वापनमन्त्र the chant causing sleep १६८१.
 प्रहरण a weapon; beating १६८७, १८३०.
 प्रह्वण feast; combined performance of any
 sacrifice ७३७, ८६१, ६२, १६८२.
 प्रहा a good throw at dice; advantage
 १८९८, १९००.
 प्रहार a stroke; blow १०३६, १६१८, ३४, ४७,
 ५२, ७६, १७९६, ९८.
 प्रहीण standing alone (i.e. having no relati-
 ves); cast off; destitute of a relative
 ७७१.
 प्रहीणद्रव्य property for which there is no
 claimant १९४९.
 प्रहीणस्वामिक (property) of which the own-
 ers are perished १९५०.
 प्रहत beaten १८०५, ३४.
 प्रह्लाद N. of an Asura king १९६४.
 प्रह्लादि an attendant of the Asura Pra-
 hlada १६०३.
 प्राकामिन् one who fulfils his desire १८४८.
 प्राकाम्य liberty; choice; independence १०३.

१९३२, १८४८, ४९.
 प्राकार a rampart १६२, १६१७, ३०, ४९, १९३०.
 प्राक्षिप्तक adjacent ९२६.
 प्राण(ग्ना)मिक a servant; fore-runner १९४४.
 प्राण्युक्त not divided rightly; grand-father's property; already objected to १५७४.
 प्राणधूणक N. of a people and country (eastern part of the *Hūna* country) १७७२.
 प्राणदृष्टदोष one who is previously convicted १९६५.
 प्राणविभाग a previous division १५८१.
 प्राङ्निविष्ट previously constructed ९५३.
 प्राङ्न्यायवाद a law suit where former judgment has been referred to ७३०.
 प्राचीनयोग्य N. of a *Rshi* १२६१.
 प्राजक a charioteer १८०८, ०९.
 प्राजापत्य relating to or sacred to *Prajāpati*; a form of marriage (in which the father gives his daughter to the bridegroom without receiving a present from him); a descendant of *Prajāpati* ८४२, १०२२, ३४, ९६, ९८, ११४३, ४४, ९५, १४३९, १९४३.
 प्राज्ञ a wise or intelligent man ७८४, ८६१, १०२०, ३२, ७१, १९३६.
 प्राङ्निवाक a judge ७४२, १९६६, ६९.
 प्राण life; a particular measure ७९२, ८०५, ३१, १०२०, २६, ३१, १६०४, ४३, ५०, ६५, ७०, १८२१, ३५, ४०, ५६, ५८, १९१८, ६४, ६८, ७८, ८१.
 प्राणच्छेत्ता a murderer १६०८.
 प्राणमृत a living being १८०९, १०, २१, ३४.
 प्राणाबाधिक danger to life १६७६, १७९९, १८००.
 प्राणाभिहन्त a murderer १०३४.
 प्राणियुक्त play or contest for life १९१०.
 प्राणिवध killing or slaying of an animal १६२१.
 प्राणिन् a being १६२१, १७६२, १८३५, १९०५, १९२५.
 प्रातस्सवन the morning libation of *Soma*

७७२.
 प्रातिभाष्य the act of becoming bail or surety; surety-ship ६३३, ३४, ३५, ६२, ६३, ६४, ६५, ७२, ७५, ७७, ७८, ७९, ८०, ७०८, १५, २१, ३१, १५७५, ८०, ८९.
 प्रातिभाष्यकृत (debt) from bailment ६९५.
 प्रातिभाष्यकृत (debt) arising from surety-ship ६७२, ७५, ७६.
 प्रातिरूपक see प्रतिरूपक १९८७.
 प्रातिलोम्य inverse order (of the castes etc.); transgression ८२९, १०९३, ११०४, ०५, १४३०, १७७०, ८४, १८३२, ३३, ७२, ७५.
 प्रातिवेशिक a neighbour १०३८.
 प्रातिवेश्य a neighbour ७७९, १६०९, २८, ३५, ४७, १९२७.
 प्रात्ययिक a surety for the trustworthiness of a debtor ६६६, ७२८, ३७.
 प्रादानिक a dowry; (property) relating to marriage (given to a girl) १२००, १४१७, १९५०.
 प्राधान्य superiority १८३०.
 प्राध्ययन commencement of recitation or study १२२५.
 प्राप्तकाल proper time १९४९.
 प्राप्तफला matured १८४८.
 प्राप्तव्यवहार one who has attained his majority; come of age १०३५, ११९९, १६२१, १९५०.
 प्राप्तशुल्का (a maiden for whom) nuptial gift has been already presented (to her parents) १०९७.
 प्राप्तार्थ one who has attained an object or advantage; one who has won the case ७२२.
 प्राप्तवत्य might; power ८२०, १९२७.
 प्राप्ताधिकारी founded on evidence or authority; authentic ९४८, १९१९, ४३.
 प्राय seeking death by fasting (to enforce compliance with a demand) ७२५.
 प्रायण courting death १९३१.

प्रायश्चित्त expiation; atonement १०२२, ३०,
१११८, १२७२, १३९३, १६२७, ५३, ५९, १७६०,
१८४६, ८४, १९२४, ३३, ४१, ७७.

प्रायश्चित्त see प्रायश्चित्त ७९१, ९९५, १५९९, १६०१,
०२.

प्रार्थन soliciting १८९१.

आवरण upper garment; cover १८७१.

प्रावादिक a gossip १६८७.

प्रासू an eater; a guest ६००.

प्रासहा N. of the wife of *Indra* १००४, ०५.

प्रासाद a mansion ९५८.

प्रिय agreeable; pleasant; lovely ८६३, ९९७,
९८, १०१५, १६, १७, २६, २९, ७५, ८५, ८८,
११०९, १४००, ६४, १९३१, ७८, ८४.

प्रियावर्षिन् one who indecently assaults an-
other's mistress १६१२.

प्रीति love; friendship ८०३, ९७५, १११५,
१२२०, १४३१, १७९१, ९२, १८९६, १९१३,
८५.

प्रीतिदत्त property or valuables presented
to a female by her relations and
friends at the time of her marriage;
(a loan) made from friendship ६२६,
२७, ३३, १४५३, ६३.

प्रीतिदाय a gift made through love ११३१,
१२२९, १९८३.

प्रीतिपूर्वक with friendly disposition; bestowed
through affection ७४१, ४८, ८३,
१२२०.

प्रीतिप्रदान see प्रीतिदाय १२०२.

प्रीत्यारोपण bestowing (of ornaments etc.)
through affection १४३०.

प्रीत्योपनिहित friendly loan ७४४, ८१९.

प्रेक्षक (a royal servant) who visits any
public show (while on duty) १६४२.

प्रेक्षण attractive sight; theatre १६९५, १७५४,
१९२९.

प्रेक्षा a public show ८६१, १०३६, ५८.

प्रेत a dead-man ६६४, ७४, ७८, ७९, ८२, ४४,
९७, ७१५, ३५, १०९, ८३७, ६३, ९४८, १४३०.

१००४, ३८, ४०, ५९, ६२, १११६, १४६३,
६५, १५४०, १८५०, १९८४.

प्रेतकार्य an obsequial or funeral rite ७१२,
१४७३, ७४, १६१६, १९५०.

प्रेतकाल senility १४५७.

प्रेतपत्नी wife of a deceased husband १०२०,
२२.

प्रेत्यभाव life after death १०७६.

प्रेषण the act of sending ८१७, १८५५, ८९.

प्रेष्य a servant ८१३, १६४८, १८८५.

प्रोत्साहक instigator (of a crime) १६५३.

प्रोषित gone abroad; absent ६७८, ८०, ८२, ८४,
९६, ७११, १३, १५, १०१६, २३, २६, ४०, ६०,
६१, ११००, ०६, १२, ४६, १२००, ०१, १९५०.

प्रोषितनिक्षिप्त what is deposited with a man
who has gone abroad ७५२.

प्रोषितपत्निका see प्रोषितपत्नी १८४९.

प्रोषितपत्नी wife of one who has gone abroad
१०२२.

प्रोषितभर्तृका see प्रोषितपत्नी १०२६, ८५, १११९,
१३७३, १९७९.

प्रोषितयोषित् see प्रोषितपत्नी ११००, १२.

प्रोषितस्वामिका see प्रोषितपत्नी १८८८.

प्रोष्ठेशया lying on a bench ९७३, ९८.

प्लव a boat १७२६, १९२५, ८५.

प्लवक a rope-dancer ८६३.

प्लीहन् the spleen ९९८.

फल fruit; enjoyment; profit; reward;

issue; produce of a field ६०९, १८, ३०, ३७,
७८७, ८८, ८०७, २४, २७, ४२, ८६, ९६, ९१४,
४६, ४८, ६०, ६२, १०२०, २९, ३०, ३३, ६२०,
७३, ७४, ७६, ११०१, ०२, ०७, ११, ३०, १२८४,
१३१६, ४९, ५०, १४०५, २४, १५१३, २३,
१६०९, १४, १९, ३०, ४२, ४६, ५७,
६१, ६५, ७०, ७१, ७२, १७१९, २२, ४४, ४९,
६०, ६५, ६६, ६७, ९५, ९८, १८००, ०६, ३५,
८५, ८९, १९०१, १७, २५, ३८, ६५, ७५, ७८,
८३, ८४, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९,
१००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९,
११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९,
१२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९,
१३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९,
१४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९,
१५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९,
१६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९,
१७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९,
१८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९,
१९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९,
२००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९,
२१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९,
२२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९,
२३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९,
२४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९,
२५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९,
२६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९,
२७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९,
२८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९,
२९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९,
३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९,
३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९,
३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९,
३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९,
३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९,
३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९,
३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९,
३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९,
३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९,
३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९,
४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९,
४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९,
४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९,
४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९,
४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९,
४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९,
४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९,
४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९,
४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९,
४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९,
५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९,
५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९,
५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९,
५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९,
५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९,
५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९,
५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९,
५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९,
५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९,
५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९,
६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९,
६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९,
६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९,
६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९,
६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९,
६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९,
६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९,
६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९,
६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९,
६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९,
७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९,
७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९,
७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९,
७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९,
७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९,
७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९,
७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९,
७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९,
७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९,
७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९,
८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९,
८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९,
८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९,
८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९,
८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९,
८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९,
८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९,
८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९,
८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९,
८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९,
९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९,
९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९,
९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९,
९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९,
९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९,
९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९,
९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९,
९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९,
९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९,
९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९,
१०००.

फलभाज् entitled to profit; receiving fruit
९४७, ११०२.
फलभोग्य that of which one has the usufruct;
(a pledge) that of which fruit is to
be enjoyed ६३८, ४३, ५८.
फलहेतु purpose of profit ७८०.
फलीकरण separating the grain from the husk;
cleansing the grain ११४४.
फल्गुनी a particular constellation १०००.
फाल a garment of cotten; a garment made
of fruit fibre; a plough ६३२, ९४३, १९६५,
६७.
फाल्गुन N. of *Arjuna* ८१९.
बज white mustard plant १८४०.
बदर a berry; jujube १७६१, ६३.
बदिर see बदर १९३८.
बद्ध bound; fettered; N. of a particular
class of sons ७२८, ८६२, ११११, १३५२, ५५,
१६१७, ४०, १७३५, ४७, १८९४, ९७, १९३०,
४१, ४३, ७७, ८३.
बद्धक a captive; prisoner; fettered (by the
chains of debt) ६०५.
बद्धकमोचन setting free a prisoner; redemp-
tion from a mortgage ६०५.
बधिर deaf १६६७, ७९.
बन्दिप्राह one who abducts by making cap-
tive; a robber १७३६.
बन्दिन् a prisoner; bard ७१५, ८०८, १८५३.
बन्ध a chain; binding; security; pledge;
mortgage; dam; arrest ६०५, ११, २८,
३५, ३८, ४७, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५६, ६०,
७५२, ८१९, २७, ९२६, २९, ८३, १०३२, ३३,
३५, ५८, ११४१, १६१४, ४७, १९२२.
बन्धक vide बन्ध ६०८, ५१, ५८, ७४, ७६४, ८०३.
बन्धकी an unchaste woman; harlot १०२०,
१९८६.
बन्धकीपोषक a keeper of harlots ८६३.
बन्धग्रहण acceptance of a security ६२३.
बन्धन binding; restriction; prison ८१०,
१०३८, १६५२, ९०, १७६०, ९६, ३८८६, ३९२२.

३०, ७०.
बन्धनस्थ under restriction १०३०.
बन्धनागार a prison; jail ७२९, ३७, १६९०.
बन्धहस्त a pledge ६५१.
बन्धाचार rules of pledge or mortgage ८०३.
बन्धु a relative; kinsman ७०४, ११, १५, २७,
४०, ४७, ५५, ८२, ८६, ८०३, ०५, ०८, १७,
९७७, १०२९, ३८, ५७, ८३, ९४, ११००, ०१,
०६, ११, ९८, १२०१, २१, २८, ३१, ४५, ५२,
७३, ८८, १३५५, ६३, ७२, ८४, १४०३, ३०,
५९, ७९, १५१७, २७, ७४, ७५, ८२, १६१५,
१६, ७९, १७०१, ६६, १८३६, १९७०, ७९.
बन्धुकुल family of a kinsman १११८, १४५३,
५७.
बन्धुगामि (property) inheritable by a rela-
tive १४७०.
बन्धुज born of a kinsman १३७३.
बन्धुजन relative ७५०.
बन्धुदत्त given by a relative १४२८, ४४, ५९.
बन्धुदायाद kinsman and relative; entitled to
inheritance by relationship १२६५, ८२,
८४, १३१९, ४६, ५०, ५१.
बन्धुविहीन without a relative १५२९.
बन्धुसंनिष्ठ a near relative १२७३.
बन्धु (सेतु) (a dam) preventing the access
of water ९४६.
बभ्रु brown; N. of a *Rshī*; a reddish brown
animal; N. of a deity ९९७, १६०६, १८९४,
९५, ९६, १९०१.
बर्हिः a litter of grass; a bed or layer of
Kusa grass ९७३, १३६३, ८४.
बर्हिण a pea-cock १६०६.
बल force; strength; power ६४०, ५०, ५५,
६०, ७१७, २३, ३१, ५४, ६४, ८०५,
०८, १२, २७, ३३, ४७, ४९, ५३, ५४, ६०,
६१, ९४६, ६८, ११११, १४, १६, १७, १८,
१२२७, ८५, ८६, १४५६, ५८, ६४, १५४३,
७४, १६०४, ०६, २०, ४१, ५६, ७२, ६२,
१७३५, ४४, ६०, ६२, १८५८, ८५, ९१, ९२,
१६३८, २९, ३०, ३१, ३६, ४१, ४२, ६३, ६६.

७५, ७६.
 बलाकार force; compulsion ६३७, ७२५, १८८५,
 ९०, ९१.
 बलाद्गृहीत a particular son (who is forcibly
 taken) १३५५.
 बलादासीकृत forcibly made a slave; captured
 by force ८२३.
 बलि tribute; tax; N. of a *Daitya* ६०१, ०२,
 ७८३, १०३२, १६७१, ९२, १७०१, १९२४, २९,
 ४०.
 बलिदान offering of tax १६६१.
 बलिभैक्ष tribute and alms १०२९.
 बलीवर्द a bull ८९१, १०२९.
 बल्वज a kind of grass १००२, १६८७.
 बस्ति the lower belly ९०९, १९७६.
 बहिःसद् a dicer; one who sits outside १८९८.
 बहिर्बाधा annoyance to outsiders ९२७.
 बहिर्वर्ण an out-caste; having no caste ११९४.
 बहिवेदि the space outside the sacrificial
 altar १००५.
 बहिश्चर an outsider १७५४.
 बहिष्कार्य to be excommunicated १०१६.
 बहिष्कृत excommunicated १६२७.
 बहुपत्नीकृत one who has married several
 wives १९७८.
 बहुपशु rich in cattle १६६०, १७२३.
 बहुभार्य having many wives ११०९.
 बहुमूल्य valuable १७५९.
 बहुरक्ष्य wealthy; opulent १५२४.
 बहुश्रुत well versed in the *Vedas*; very
 learned १६१२, २४, ५५, १९१६.
 बहुसंस्कृता (a wife) who is married many
 times १११८.
 बहुसवरी bearing many children ९६९, ९३.
 बाण an arrow १६२१, १९६७.
 बाध destruction; obstruction ७३५, ८७८,
 ९०५, २७, १७३०.
 बाधक injurious; a robber ८७१, ९५१, १८९०.
 बाधा annoyance; nuisance ९२७.
 बाधनीष्य punishable १६६५, १८४३, १९२२, ८६०.

बान्धव a relative; kinsman; cognate ६८०
 ७०३, ०४, ८२७, ९०१, १०९५, ९६, ११०३
 १९, २९, ७३, ७८, १३२०, ७४, ९१, ९२,
 १४०३, ३०, ४४, ५९, ६३, १५१२, १४,
 १८, २६, २७, ६१, १६४०, ४७, ५१, १७५५,
 १९२९, ५२, ६२, ७६.
 बान्धवगामि (property) inheritable by a cog-
 nate १४७१.
 बाभ्रव belonging to *Babhrū* १२६०, १९८१.
 बाल a minor in law; hair on the body
 ६११, ३१, ८०, ९५, ७१०, ११, ३७, ९३,
 ८००, ०४, १७, ३८, ७३, ७५, ९०५, १६, ३९,
 ५०, ११०६, १४, १८, १५२७, १६०७, १२, २१,
 २४, ३१, ५३, ८६, १७०१, २८, ६१, १९२२,
 २७, २९, ४४, ५०, ६६, ६९, ७१, ७६, ८६.
 बालक a child १०२५, १७५८.
 बालकलह a small strife ८६२.
 बालघातिन् see बालघ्न १६०९, ७१.
 बालघ्न a child-murderer १६३२.
 बालदाय property of a minor १९५१, ६२.
 बालधन see बालदाय १४७३, १५२७, १९४८, ४९, ५०.
 बालपुत्र having sons who are minors १२०१,
 १९६२.
 बालपुत्राविधि rule about a woman having a
 minor son ७११.
 बालप्रातिभान्य surety of a minor ६६२.
 बालविधवा a child-widow १११८.
 बाला a young woman; girl १०२१, ५८, ९५,
 १२८३, ८५, ८७, १४७३.
 बालापत्या (a woman) having infants ११०६.
 बालिका a maiden १३८४.
 बाल्य infancy; childhood १०२३, ५९, १९८४.
 बाहु the arm ९६९, ८७, १६२१, ९२, १७८१,
 ९६, १८१७, १९, ३६, १९२९, ३३, ४४.
 बाह्य an outsider ९२८, १६८५, ८९.
 बिडाल a cat १६७२.
 बिन्दु a woman who bears only a dead
 child १०३४, १४३१.
 बिम्ब a chameleon १६१७, ८०.
 बिस the fibre of lotus १५९४, १६५६, १८४०.

- बीज seed; semen virile; a poker ६३०, ३४,
७८७, ८३७, ३९, ९२, ९४, ९२३, ३०, ६०,
८५, १००२, ०५, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५,
११०२, ०३, ११, १५, १७, १२६४, ८२, ८८,
१३१४, १८, ७३, ७४, १४६४, ७०, १६८५,
१९०५, २४, ७४, ७६.
- बीजकाल the time of sowing seed ९३२.
- बीजवृत्त sower of a seed; a begetter १२५८.
- बीजाहिता destruction of the seed ९३०.
- बीजिन् a progenitor; owner or giver of seed
९६०, ६१, १०११, ७४, ११०२, ०३, ११, १७,
१२८२, १३४७.
- बीजोत्कृष्ट one who picks out grain १७०५,
१९३०.
- बुद्धि intelligence; reason १०३३, १६५१, ९५,
१९२९, ६९, ७०, ८६.
- बुध intelligent; wise १००२, ०४, १७२७, ९१,
१८३०, ८१, १९६५, ६६, ७०, ७८, ८३,
८५.
- बृंहणीय to be supported or maintained ११९८,
१५८४.
- ब्रह्मस्वति N. of a law-giver; a sage ७१३, ८३६,
५८, ९६, ९२०, १००१, ०३, ३२, ३३, १११८,
१२२५, २७, २८, १७६१, १८३९.
- ब्रह्मस्वतिसवन a particular sacrifice ७७२.
- बेकनाट a usurer १९७१.
- बौधायन N. of a sage १३७४, ८५.
- ब्रह्म the sun १२६४, ७२, ७९, ८२, ८९.
- ब्रह्मकिल्बिष offence against a *brāhmana* १८३८.
- ब्रह्मगवी a *brāhmana*'s cow १६००.
- ब्रह्मघ्न a *brāhmana*-killer ११११, १९४३, ६६.
- ब्रह्मचर्य religious studentship; celibacy; the
state of continence and chastity ८१५,
१०००, २४, ३३, ६३, ११०९, १०, १३, १७,
१९, ६१, ६२, १२५८, १९०२, ७४, ७९,
८१.
- ब्रह्मचर्यव्रत the vowed practice of *Brahma-
charya* ११११, १५२४.
- ब्रह्मचर्याश्रम the period of unmarried religi-
ous studentship १३७३.
- ब्रह्मचारिणी a woman who observes the vow
of chastity १०६२, ७६, १११३.
- ब्रह्मचारिन् a youth before marriage (in the
first period of his life); observing the
vow of chastity ८२६, ४१, १०१९, २४,
६२, ६३, ७९, १११३, १७, १२८५, ८७,
१३७५, ७६, ८४, १४०४, १५०९, १६१०,
१८३९, १९४३, ४४, ७४, ८२, ८६.
- ब्रह्मचारिवासिन् living as a *brāhmachārin*
१२५८.
- ब्रह्मजाया wife of a *brāhmana* १८३८, ३९,
४०.
- ब्रह्मजुष्ट gratified by prayer ९९७.
- ब्रह्मज्य molesting or oppressing the *brāh-
mana* १६००, ०१.
- ब्रह्मणस्पति N. of a deity ५९९, ९९६, १०००,
१८९६.
- ब्रह्मदायागता (land) received (by a *brā-
hmana*) by his peculiar prerogative of
receiving gift १२५२.
- ब्रह्मदेयिका gifted land; land that can only
be possessed by a *brāhmin* ९३२.
- ब्रह्मन् the sacred word; the *Veda*; prayer;
priestly caste ६००, ७७५, ९२, ८१३, ४०,
५७, ५८, ९७४, ८१, ८३, ८४, ९६, ९८, ९९,
१०००, ०१, ०२, ०९, ११२०, ८५, १२५१, ५९,
६०, ६२, १३२९, १४६४, १६००, १८३७,
३९, १९२१ ३०, ३१, ४३, ६५, ६६, ७४,
७८.
- ब्रह्मभाग the share of a *brāhmana* or
chief priest १००३.
- ब्रह्मलोक the world or heaven of *brāhman*
१११०.
- ब्रह्मनर्त्तस् divine glory or splendour ८१४,
१९२०, २१.
- ब्रह्मवादिन् an expounder of *Veda*; a philoso-
pher ६०९, ८०३, ११९५, १४०२, १९६६,
७४, ७७.
- ब्रह्मवादिनी see ब्रह्मवादिन् १०१०, ७४०५, २४.
- ब्रह्मशासन a command of *brāhmana* ११११.

ब्रह्मसंभव sprung from *brāhmana* १९३१.
 ब्रह्मस्व *brāhmana's* property ६११, १४६९, ७०,
 १५२६, १९६२.
 ब्रह्मसूत्र the sacred thread १६४८.
 ब्रह्महत्या the murder of *brāhmana* ६०९, ९९२,
 १०३१, १५९८, ९९, १६००, ०१, ०३, ०६,
 ०९, ६५, १८२९, १९७०, ७७.
 ब्रह्महन् the murderer of a *brāhmana* ७७२,
 ८६३, १११६, १५९२, ९८, १६००, ०१, ०८,
 २७, ५१, ५३, १७०२.
 ब्रह्मानुशासन vide ब्रह्मशासन ८१८.
 ब्रह्मारण्य a grove in which the *Veda* is stu-
 died ९३०.
 ब्रह्मिष्ठ *brāhmana* in the highest degree
 १९८२.
 ब्राह्म N. of a form of marriage (in which
 the bride is bestowed on the bride-
 groom without requiring anything
 from him); relating to *brāhmana*
 १०३४, ९६, ९८, १४२८, ३९, ४५, ५०,
 १९३७.
 ब्राह्मण man belonging to the first of the
 three twice-born classes; member of
 the supreme Hindu caste; the *brā-*
hmana portion of the *Veda* ३२७, ७५६,
 २२, २३, २६, २९, ३१, ७८, ९२, ८०३,
 ०५, ०८, १३, १४, १७, १८, २०,
 २३, २६, ३९, ४२, ५९, ६२, ६५, ७७,
 ९९९, १००५, १३, २२, २४, २५, २७, २८,
 ३३, ३९, ७६, ९३, ११०५, १६, २१, २३,
 ३१, ४३, ४४, ६१, ८४, १२३८, ३९, ४०,
 ४१, ४३, ४४, ४५, ४६, ४९, ५८, ६७, ८१,
 ८४, ८६, ८७, ८८, १३०५, ०९, ६३, ६५,
 ७४, ७६, ८४, ९१, ९६, १४६४, ६५, ७०,
 ७३, ७८, १५१२, २४, ९६, ९७, १६००,
 ०१, ०२, ०३, ०४, ०५, ०६, ०७, ०८,
 ०९, १०, १२, १८, १९, २०, २४, २७,
 ३५, ४३, ४५, ५१, ५२, ५३, ५५, ६४, ६८,
 ७०, ७१, ८७, ९६, ९७, १७०२, २१, २३,
 २७, ३९, ४०, ४४, ४५, ५२, ६६, ६८,

६९, ७१, ७२, ७३, ७४, ७८, ८७, ८८,
 ९०, ९३, ९४, ९९, १८२८, ३२, ३५, ३९,
 ४०, ४१, ४६, ४७, ५१, ५८, ५९, ६०,
 ९६, १९१४, १६, १८, २०, २२, २७, २८,
 २९, ३०, ३१, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१,
 ४६, ४८, ४९, ५०, ५६, ६१, ६२, ६४,
 ६५, ६६, ६९, ७४, ७६, ८१, ८२, ८४,
 ८९.

ब्राह्मणम् going to a *brāhmin* ७१६.

ब्राह्मणघ्न a *brāhmana*-killer १६३२.

ब्राह्मणचाण्डाल a *Chandāla* among *brāhmanas*
 १०५४, १२४४.

ब्राह्मणदण्ड punishment for a *brāhmana*
 १६५९.

ब्राह्मणद्रव्य see ब्रह्मस्व १४७८.

ब्राह्मणधन see ब्रह्मस्व १४७०.

ब्राह्मणयोनि *brāhmana's* race १५९२.

ब्राह्मणवध the murder of a *brāhmana* १६०६,
 १८५९.

ब्राह्मणसंस्था belonging to a *Brāhmana* १७१३,
 ४९.

ब्राह्मणस्व see ब्रह्मस्व ६३४, १२४३, १४६८, ६९,
 १७२६.

ब्राह्मणायनी a mere descendant of a *brāh-*
mana १०१०.

ब्राह्मणार्थ see ब्रह्मस्व १४७०, १५१२.

ब्राह्मणी a *brāhmana* woman or a *brāh-*
mana's wife ८६३, १०२१, २२, २६, ८५,
 ११००, ०५, १२, १३, १५, १७, १२३९, ४३,
 ४४, ८७, १३७६, १४२९, ४०, ६३, १६००, ०१
 ५१, १८४५, ४६, ५०, ५९, ६४, ८६, ९०.

ब्राह्मणीपुत्र son of a *brāhmani* ११०५, १२३९,
 ४०, ४१, ४५.

ब्राह्मणीसुत see ब्राह्मणीपुत्र १२५२.

ब्राह्मण्य *brāhmana*-hood १९३६.

भक्त maintenance; food or meal; a devotee
 ७१३, ८०२, २३, ३२, ८३८, १२४४, १४०४,
 १६५२, ६३, ६५, १७२५, ४२, १९२४, २५,
 ६५, ७६.

भक्तद see भक्तदातृ १७५५, ६२, १९२९.

भक्तदातृ giving food; a maintainer १६४९,
१७५६.
भक्तदान giving of food १६१९.
भक्तदायक see भक्तदातृ १६९७, १९२९.
भक्तदास food-slave; a slave who serves for
his daily food ८२१, ३०, ३२, ३८, १९२८.
भक्तप्रद see भक्तदातृ १६०९, ७१.
भक्तच्छादभृत a servant to whom food and
clothing is given ८५२.
भक्ति service; devotion ८२८, ६०.
भक्ष food १८९३.
भक्षण food ९०६, १९६७.
भक्षित enjoyed; devoured ७५१, ५४, ५६, ८३१,
७६, ९१८.
भक्ष्य eatable ८६१, १०२८, १६५४, ९६, १८४५,
८१, १९२९, ३०.
भग N. of an *Āditya* (bestowing wealth
and presiding over love and marriage);
the mark of female part ९७९, ८२,
८५, ९५, ९७, ९८, ९९, १०००, ०१, ०२,
०३, ०६, ०८, ९८, १४१५, १६०६, ०९,
२७, ८७, १८४७, ९९, १९७०, ७७, ७९.
भगाङ्क the mark of vulva १८८६.
भगिनी a sister ८०६, १७, ६३, १०२०, ११५२,
९२, १२५४, १३८५, ९१, १४१६, १९, २१,
२७, ३२, ५९, ६२, १५४४, ५८, १६५३,
१७८०, ८९, १८५०, ७४, ८२, १९२२, ८४,
८८.
भगिनीशुल्क sister's fee १४२६, २८.
भङ्ग broken; destroyed ९३०, ३१, १६१९,
१७५४, १८३३.
भङ्गयुग of broken yoke १६२१, १८०७, २०,
१९३२.
भङ्गकृ a breaker १६३०, १९३०.
भङ्ग destruction १६१३, ४२, ४९, १७९४, ९६,
९९, १८०७, १७, ३५, १९६६.
भङ्गमान one who divides १२०६, ०८.
भद्र blessed; fortunate ८११, ५६, ९७८, ८८,
९८, १०००, १६९३, १७१०, ५८, १८३६,
१९०७, २९, ८०.

भङ्गन breach १७९९, १८००.
भद्रादित्य N. of a deity १९६५, ६७.
भय danger; intimidation ६३८, ७८५, ९४,
८००, ०४, ०५, ६१, ८९, ९०६, २७, ५७,
५८, १०३२, १४३०, १६२३, ४६, ६४, ६८,
८६, ९२, १७००, ५२, १८१३, १९२०, २४,
२५, २९, ३६, ४३, ६४, ६६, ७०, ७३, ७६.
भयदान gift through danger or fright ७९४,
१९७३.
भयवजिता a kind of boundary ९४४.
भरण maintenance ६९६, ७९९, ८०५, ५६,
१०२६, ८८, १३८९, १४००, ३०, ७३, १५५३,
५४, ५५, ६०.
भरणीय to be maintained १६७४, ८९.
भरत N. of a man or tribe ८१२, १८, ६१,
१०३२, १२६७, ८७, १९८३, ८४, ८५.
भर्तव्य to be maintained or supported ८१५,
१८, १०३१, ८७, ११४३, १३४८, ८६, ८९,
९१, ९४, १४००, ०१, ०४, १६६०, १९८५.
भर्तृ a husband; lord; owner ६९९, ७०३,
११, १३, १४, ५१, ७२, ८१४, १८, ३७,
४४, १०१२, १३, १४, १५, १६, १७, १९,
२०, २२, २३, २४, २५, २६, २८, २९, ३०,
३२, ३५, ३६, ४२, ४५, ४६, ४८, ५०, ५१,
५३, ५४, ५७, ५८, ५९, ६३, ६४, ७०, ७२, ७५,
७६, ७७, ८३, ८४, ८५, ९५, ९६, ९९,
११०६, ०७, ०९, १०, ११, १२, १५, १६,
१७, १८, १९, १२३९, ४४, ६३, ७३, ८५,
८६, १३०९, २९, ७४, ८४, ८८, १४०५, ०८,
२८, २९, ३०, ३२, ३९, ४५, ४७, ४८, ५३,
५५, ५६, ५८, ६३, ६३, ७३, १५११, १३,
१५, २०, २१, २३, २४, २६, २७, २९, ५३,
५५, १७४३, १८५०, ६५, ९१, १९२८, ७१,
७७, ७८, ७९.
भर्तृकुल husband's family १४५३, ५७, ५८.
भर्तृक्रिया husband's affair ७०८, १४.
भर्तृगामि (property) inheritable by the
husband १४४९, ५९.
भर्तृगृह husband's home १११८, १४६०.
भर्तृगोत्र husband's family १११०.

- मर्तदाय husband's gift; husband's inheritance १४४९, ५६, १५२०.
- मर्तलोक husband's heaven १०५३, ६०, ६४.
- मर्तवध murder of a husband १०२१, ८६, ९९.
- मर्तव्रत an act of austerity concerning a husband १०२९.
- मर्तसाकृता a girl given under husband's control १४००.
- मर्तहार्यधन one whose property could be taken away by the master by right ८१८, २३, ३९.
- मर्तहिसिका a woman who murders her husband १६५३.
- मर्तहीना a widow १३५२, १५२६.
- मर्तेश husband's share १५२३.
- मर्त्सन reproach १७७१, १९७०.
- मर्मण्या wages; maintenance १०३५.
- मर्मन् maintenance १०३५, ३८, ४०, १४३० १६८४.
- मवन house १३९३, १९४३.
- मस्त्रा a leathern bottle or vessel १२८८, १६८०, १९८५,
- मस्मन् ashes ९३४, ५०, ५१, १६७०, ८०, ८९, १७१८, ९८, १८१४, २४, ३०, ३४, १९६६.
- मात्तिक regularly fed by another; dependant ८१६.
- भाग a part; share; inheritance; fate ६११, ३१, ३४, ७१६, १८, ३२, ३४, ७८, ८३, ८८, ८४३, ४७, ४९, ५०, ५२, ५७, ६०, ७९, ८९, ९१, ९२, ९७, ९८, ९२७, ३०, ४८, ६०, ६२, ८२, ९१, १००२, ५१, ७५, ७६, ७७, ११०२, १७, २२, ४३, ४४, ४९, ५१, ५२, ८१, ८२, १२०७, २२, ३७, ३८, ४४, ८३, ८५, १३२९, ६२, ७४, ७५, ९०, ९१, ९५, १४०४, ०७, १३, १५, १६, १७, २१, ६२, ७३, १५४४, ५२, ५४, ५८, ६२, ७०, ८३, ८८, ९७, १६०१, ६१, ७१, ७४, ७५, ७७, ७८, ८९, १७००, १४, ३५, ४८, १८९७, १९०१, ०८, ०९, ११, १८, ४०,
- ४१, ४३, ५४, ५५, ६१, ६२, ६५, ७६, ७९, ८२, ८३, ८४, ८७, ८८.
- भागकल्पना the allotment of shares ११८४, १२००, ८०, १९८८.
- भागद्वय a couple of shares; double share १२३१.
- भागधेय portion; share ८५८, ११४४, १५९४.
- भागनिर्णय settlement of shares १३५५.
- भागभागिन् taking a share १२७७.
- भागभाज् taking a share १५६८, ६९, १७००.
- भागभृत a servant for a share of the gain ८३५.
- भागभोग enjoyment of ६ share ९३०.
- भागलेख्य a deed of partition १५७९.
- भागविशेष a special share १२३४.
- भागहर entitled to a share १३४७, १५६९, १९८८.
- भागहारिणी see भागहर १४०७, १६, १५१३, २४.
- भागहारिन् see भागहर १३८९, ९९, १७०१.
- भागार्ह see भागहर १३७६, ८६.
- भागिक relating to a part ९०६.
- भागिन् see भागहर १०७४, ११४४, १२३१, ४९, ५१, ८३, ८८, १३२१, २५, ३८, ४८, ५०, ७४, ८७, १५२९, ६०, ७०.
- भागिनी see भागहारिणी १३९१, १५२२.
- भागिनेय a sister's son १९२२, ८८.
- भागिनेयी a sister's daughter १०२०, १३५५, ६५.
- भाग्य fortune ७८४, ९५२.
- भाजन a pot; sharing ८६३, १३४९, ९०, १९६७.
- भाट hire; rent ८५५.
- भाटक see भाट ८५४, ५५.
- भाण्ड a pot; merchandise; commodity ७५३, ८१, ८२, ८६, ८९, ८४६, ५०, ५२, ५४, ५५, १०२३, २५, १६१४, ३०, ७०, ७१, ७२, ७४, ७७, ८२, ८४, ८६, ८९, ९७, १७१८, ३३, ४३, ५५, ६२, १८००, ०६, १९२७, २९, ४५.
- भाण्डवाहक a merchant ८५०.
- भाण्डवाहक one who carries goods १९७५.

माण्डागार ware-house १६८९.
 मानु the sun deity १९६७.
 मार freight ७८१.
 भारत belonging or relating to *Bharatas*
 ८०७, १८, ६१, १२४३, ८३, ८६, ८७, १९६५,
 ६७, ८३, ८४.
 भारती N. of a deity ९९५, १००६.
 भारद्वाजीपुत्र N. of a teacher १९८२.
 भारवाह a porter ८२८, ३५.
 भार्गव belonging to *Bhrgu-gotra* १३२९.
 भार्या a wife; mistress ७०३, ०४, ८१४, १६,
 २२, ३४, ६३, ९२५, १००४, १०, ११, १६,
 १९, २०, २२, २३, २४, २६, २७, २८, २९,
 ३१, ३६, ३८, ३९, ४०, ४६, ४७, ५३, ५५,
 ६०, ६४, ७२, ७५, ९३, ९९, ११०१, ०७, १४,
 १५, १७, १९, ३१, १२२८, ३४, ४३, ४४, ४९,
 ६७, ७१, ८५, ८६, १३५०, ५५, ७६, ८४, ८७,
 ९१, ९३, ९४, १४०२, ०५, १५, २४, ३०, १५१३,
 १७, २५, २७, ५५, १६०७, १२, ५०, ५५, ६८,
 ७२, ८०, ८१, ९०, १७०३, १८१२, ३५, ५०,
 १९२८, २९, ७४, ७८, ८३, ८४, ८५.
 भार्याकृत (debt) contracted by a wife ६९८,
 ७१३.
 भार्याधन wife's wealth १२२०, २३.
 भार्यान्वित obtained with a wife (as her
 dowry) ११४१.
 भार्योपहरिन् one who abducts another man's
 wife १६२६.
 भारुन्दन N. of a *Rshi* १६५६.
 भारुग्विन् N. of a *Rshi* of the *Sāma Vedika*
 section १९२०, २१.
 भावना the method १६४७, १९८५.
 भावित proved; elated ६७५, ८६०.
 भाव्य to be argued or demonstrated ७६२.
 भावण्य speech १३८८, १५४३, ८८०.
 भाषिता contracted or spoken ७३७, ८५६,
 १११६.
 भास a particular bird of prey १६०६.
 भास्कर the sun-god १९६६, ७७.
 भिक्षु an ascetic or religious mendicant

१६११, १९४४.
 भिक्षुक a beggar; religious mendicant १०२९,
 ३८, १६२०, ७६, १८५३, ९२.
 भिक्षुकी a female-mendicant ८६३, १०३६, ३८.
 भिन्न broken; transgressed; divided into
 parts ११८४, १३७४, १६६८, ८३, ८५, १७३४,
 ४१, ५७, ८८, १८९६, १९८३.
 भिन्नोदर a brother by a different mother
 १५४२.
 भिषज् a physician ११२०, २१, १६५१, ६९, ७६,
 १७३२, ५९, ६३.
 भीत terrified ७९३, ८९६, १६०७.
 भीदत्त a gift through fear; a particular gift
 (e. g. tax; tole; bribe etc.) ८०८.
 भीमसेन N. of the second son of *Pandū*
 ८१८, १९, १०२७.
 भीष्म N. of the son of *Sāntanu* and *Gangā*
 ८६०, ६१, १०२८, ३२, १२४३, ४४, ८६, ८७,
 १४७३, १९८३.
 भुक्त enjoyed; eaten; possessed ६५१, ५४,
 ९४८, ५२, १८४६, ५०, ५३, ८१, ८७, १९४३,
 ६५, ७१, ७६.
 भुक्तकांस्य bronze plate used for taking
 meals ११८४, १३९१.
 भुक्तपूर्वा (a woman) defiled before (marriage)
 १८८९.
 भुक्तवन्ध an enjoyed pledge ६३४.
 भुक्तभोग enjoyed; used ७६४.
 भुक्ताधि a pledge used or enjoyed ६०८, ३६.
 भुक्तानुभुक्त possessed or enjoyed continuous-
 ly ९२५, ११२६.
 भुक्ति possession ६३७.
 भुक्तिव्या a maid-servant; slave girl १८७७,
 ८३.
 भुवन abode; residence १००४, ०६, ११४३,
 १४२६.
 भू land ६३७, ७३१, ८९८, ९६२, ११७५, १७४६,
 ५२, ६२, १८५९, १९८६.
 भूत the element; any living being; a man
 १०३३, ७१, ११००, १५९२, ९८, १७०७,

१९२०, ३०, ३५, ३६, ६४, ६६, ६९, ७०, ७७, ७८.
 भूति welfare; prosperity ८६०, १००५, ५३, ११४३.
 भूतिकृत्य any auspicious rite or ceremony १६२८, १९२७.
 भूप a king ९५८.
 भूपति a king १९७०.
 भूपाल a king १९३६, ७०,
 भूभागलक्षण marks denoting the division of the land ९५०.
 भूमि the earth; soil; land ६११, ३२, ३४, ७०३, ०४, ३६, ६४, ९२, ९३, ८१२, १९, ६२, ९५, ९९, ९००, १२, ३४, ३९, ४५, ५०, ५२, ९६, ९७, ९८, १०००, ०१, ३०, ७१, १२०७, ५१, ५२, १५६१, १६००, ०१, १९०४, ३६, ४०, ५७, ६४, ६५, ७६, ७८, ८२.
 भूमिप a king १३२९.
 भूमिपरिग्रह acceptance of land ९००, २८.
 भूमिप्रातिभान्य (a debt) for which land is pledged ६६२.
 भूमिविक्रय sale of land ९००.
 भूमिस्वामिन् owner or possessor of land ८५२.
 भूम्यादान appropriation of land १६०६, ६४.
 भूरिचन rich १६६९, १७६४.
 भूर्ज the Birch tree १९६७.
 भूवाद dispute about land ९५४.
 भूषण decoration; ornament १०३०, ५३, ५६, ८३, १११४, १६, १७, १३७६, ९३, १६४५, ८२, १८५२, ८१, ८५, ८९.
 भ्रू N. of a *Rshi* ७०९, १२, २७, ६४, ८०४, ३५, ३७, ७६, १२२३, २५, २९, ३०, १४५३, १५७४, १६००, ५१, १८३२.
 भृत a servant; maintained ८२८, ३४, ४४, ५३, १३५१, १९३७.
 भृतक a servant ७५५, ८२८, ४३, ४४, ५३, ५६, १०९५१, १६७५, १९६५.
 भृतकाधिकार rules regarding labourers ८४४.

भृति wages; remuneration ६२७, ७९९, ८०३, ०५, ०७, २८, ४१, ४३, ४६, ४७, ४९, ५०, ५४, ५५, ५६, ९०७, १५, ११२७, १७६७, १९७५, ७६.
 भृतिलोप non-payment of wages ८५६.
 भृतिविलम्बन delay in payment of wages ८५६.
 भृतिहानि loss of wages ८५०, ५३.
 भृत्य a servant ६९२, ७०८, १४, ८१४, ४३, ४८, ५५, ७२, ९०७, १०२४, १११९, १२५२, १५२३, १६३१, ९३, १७१४, १८४४, १९३१, ३६, ४३, ७५.
 भृत्यवृत्ति subsistence of servants or dependants ७९९.
 भृत्या a woman entitled to maintenance ७०३.
 भृत् a breaker १६१०, ३० १७८३, १९१५, ३०, ३३.
 भेद difference; division; breaking ८६०, ६१, ६२, ६३, ६९, ७३, ९८, ९०६, २६, २९, ५८, १११५, १६१३, ३४, १७४४, ५३, ६८, १८१७, २१, ३०, ३१, ५१, १९३३, ४१, ७६, ८३.
 भेदक a mischief maker; destructor; breaker ९५१, १६०९, १०, ११, २९, ३०, ५२, ५४, ७०, १७०५, १३, १८०३, १९२९, ३०.
 भेदकर see भेदक १६३८.
 भेदकारिन् see भेदक ८७६.
 भेदकृत् see भेदक ८७४.
 भेदन breaking; splitting ८६१, ९५९, १६३१, १७१३, ९९, १८००, १७, ३१, ३२, ३५, १९२९, ४३.
 भेदिन् see भेदक ८६४, १६१८, २०, ३७, १७९६, १९३३, ४१.
 भेषज medicine; cure ९९७, १५९९, १६०१, ०२, १७२९, १९३९.
 भैक्ष्य(क्ष्य) living on alms; begging; mendicancy ८१८, २६, १०२८, ११२७, १६६८, १९१३, ३६.
 भैरव N. of a deity १३७७.
 भैषज्य medicine १६१८, ५२, ७८, ८०.
 भोक्तव्य to be used, possessed or enjoyed ६३६, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ६०, ७६४, ११२५,

१८८८.
 भोक्तृ a possessor ६५५, ८०४, ७६, ९६०, १२२३,
 १३७५, १४६१.
 भोग enjoyment; use; possession ६३१, ३६,
 ३७, ४०, ४२, ४९, ५०, ५३, ६०, ८४३, ९००,
 २६, २७, २८, २९, ३२, ४३, ४९, ५५, १०२९,
 ३०, ११०७, १०, २२, १२२२, १४४९, ६१,
 १५७४, ८१, ८८, १७३५, १८४९, ९४, १९७५.
 भोगकाल time of possession ९५०.
 भोगदर्शन trace of possession ९४५.
 भोगनिग्रह obstruction of the possession ९२७.
 भोगभाज् entitled to possess or make use of
 ९६२.
 भोगयोग्य fit for possession ६५५.
 भोगलाभ the gain or profit made by the
 use of anything pledged or deposited
 (as interest); advantage from the
 use of objects handed over as pledge
 or security ६२९, ३०, ७२६, ३०.
 भोगवृद्धि vide भोगलाभ ६२९.
 भोगवेतन compensation for the (illegal)
 use of a deposit ७३५.
 भोगाधिक्य excess of the use of a deposit
 ६६०.
 भोग्य to be used, enjoyed or possessed
 ६४८, ५०, ६०, ६१, ७३१.
 भोग्याधि a pledge or deposit which may be
 used until redeemed ६३५, ३७, ५५, ६०.
 भोज N. of a people ८६०.
 भोजक nourishing; giving to eat १६१०,
 ३४.
 भोजन meal ८२४, २७, ६०, १०२६, ११०६,
 १७, २०, ५९, १३५०, १६०९, १५, ६५,
 ८२, ८७, ९०, १७९६, ९९, १८१७, १९१९.
 भोजा a princess of the *Bhojas* १३७६.
 भोज्य a feast; enjoyable ९६६, १६९६, १९१३,
 २९.
 भोज्यक्रिया preparation of food ८७७.
 भूमि produce of the earth ११६५.
 भौवन् patronymic of *Vis'vakarman*

७९१, ९२.
 अम an outlet for water; aqueduct ९२६,
 ४६, ५८.
 भ्रातृ a brother ६००, ७९, ८०, ९१, ७०८, २१, ३७,
 ८१७, ६१, ६३, ९६३, ७२, ७७, ७८, ९१, ९३,
 ९६, ९८, ९९, १०१४, २२, २८, ३१, ५२, ५९, ६४,
 ७५, ७७, ८३, ८४, ९५, ११०१, ०६, १४, १५,
 १९, ४२, ४९, ५५, ६२, ७३, ८४, ९४, ९५, ९७,
 ९८, ९९, १२१२, १४, २१, २७, २९, ३१, ३२,
 ७९, ९०, १३१४, १८, ३८, ४८, ५०, ५५, ८४,
 ९७, ९८, १४०३, ०७, १३, १७, २२, ३१, ४३,
 ५२, ५३, ५४, ५८, ६२, ६३, ६७, ६९, ७३, ७४,
 ७५, ७९, १५१३, १७, १८, २०, २१, २२, २५,
 २७, २९, ४१, ४४, ५३, ५६, ५७, ७३, ७९, ८०,
 ८१, ८२, ८४, ८६, ८७, ८८, १६३५, १७७७,
 १८१२, ३६, ३७, ४०, ९४, १९२२, ७०, ७४,
 ८३, ८४, ८६, ८८.
 भ्रातृगामि (property) inheritable by a brother
 १४६३, ७०, ७१, १५२६, २७.
 भ्रातृगृह brother's house १४६३.
 भ्रातृघातक a fratricide १६१९.
 भ्रातृज a brother's son १३६२.
 भ्रातृजाया a brother's wife १३८४.
 भ्रातृदत्त anything given by a brother to a
 sister on her marriage १०४२, १४४९.
 भ्रातृपुत्र a brother's son ११९९, १३७३, ७७,
 १४६२, ७४, १५१८, २०.
 भ्रातृपुत्रगामि (property) inheritable by a
 brother's son १४७०.
 भ्रातृभाग brother's portion १५६७.
 भ्रातृभार्या a brother's wife १३९०, १४७३, १६३४,
 १९२२, ४१, ४३, ६४.
 भ्रातृव्य a father's brother's son; cousin;
 enemy १५७०.
 भ्रूण an embryo; child; a very learned
Brāhmin १०२१, १६५१, ५४.
 भ्रूणघ्नी a woman-killer of a *Bhrūna* १०१९,
 ५७.
 भ्रूणहत्या the killing of a *Bhrūna* १०१९, २७,
 ३०, ७८, ९६, १२८५, १५९२, १६०२, ०३,

१९७७.
 अह्नून् slayer of a *Bhrūna* ६०९, ९९५, ९९,
 १०३०, ३१, ९६, १५९२, १६०१, ०२, ०३, ०८,
 ४८, ५१, ५४, ६६, ६८, ७२, १७०३, १९७७.
 अेष loss; deprivation ७३६, ३७, ४५, १६७३.
 मंहनेष्ठा liberal ११६०.
 मंहिष्ठ very liberal or generous ८११.
 मधवन् N. of *Indra* ६००, ९७०, १००३, १९००.
 मघा a particular constellation १०००, ८०,
 १२८१, १३५०, ५१, १९८२.
 मङ्गल auspicious ९८४, ९०, १००१, ०२, २३,
 २९, १११९, १८९६, १९४०, ७९.
 मङ्गलदेशवृत्त a fortune-teller १६९३ १७४६, ६४,
 १९२९.
 मञ्जन plunging १९६७.
 मञ्जिष्ठा N. of a plant १६७४.
 मटवी hail १०१०.
 मणि a jewel; ornament ६३२, ८८८, ९१, ९९,
 १२१९, १६३१, ७०, ७७, १७३३, १९३०, ६८,
 ८८.
 मण्डन decoration १११९, १९७९.
 मण्डल circle १९०९, ६६.
 मण्डूक a frog १६०६.
 मत्त drunk; intoxicated ७९३, ८००, ०४, ९६,
 १०३६, ५६, ९८, १३९३, १६०७, २०, ८१,
 ८२, ८६, १७४५, ४६, ६१, ७०.
 मत्स्य a fish १६०९, १७, ७०, १७१८, ९७, १९२५,
 ३६, ८६.
 मत्स्यबन्धक a fisherman १०३६.
 मत्स्यसगन्धिनी N. of a woman १९८६.
 मत्स्यदा a fish-eater १९४१.
 मत्स्यिनी marked by water (as a boundary)
 मद् N. of a *Dānava* (excitement personi-
 fied); intoxication; insanity १०३१,
 १६१४, १८, १९०२, ९८, १८१४, ८५, ९०.
 मदन a particular poisonous plant १६१५.

मधु honey plant ९९७.
 मद्य an intoxicating drink ६२६, ३०, ३२,
 ३४, ७७, ७३७, ८६३, १०२०, ५८, ११०७,
 १६८५, ८७, ९५, १७१८, ५०, ५४, १८८५,
 १९२९, ४३.
 मद्यक्रीडा drink-sport or play १०३६.
 मद्यप a drunkard ७९४, १०५६, १५९३, १९४१.
 मद्रक N. of a people ८६२.
 मधु honey ६०२, २३, ३०, ८०२ ११, ९९८,
 १०२०, ७६, १६६१, ७०, ७१, १७१८, १८९४,
 १९३८, ८२.
 मधुच्छन्दस् N. of the 51st of *Vis'vāmitra's*
 101 sons १२६१.
 मधुपर्क a respectful offering rite to a guest
 of honey and milk १२६३, ७३.
 मधुच्छिष्ट bee's wax १९३८.
 मध्य see मध्यम ८३५, ५६, ७६, ९४२, १०३६,
 १६४५, १७३५, ३८, ४४, ४५, ४७, ६५,
 ६७, ९२, १८१७, २४, ३७, ८५, ९६, १९०३,
 २२, ६५, ६८, ८४.
 मध्यदेश central country १९४१.
 मध्यम middlemost; of middle rank ८१७,
 २८, ३५, ९३१, ४२, १०३८, ११८१, ८४,
 ८५, ८६, ८९, ९३, ९९, १२३४, ६०, १३२९,
 ४८, ७३, १६०९, १४, १८, १९, २०, २८,
 ३६, ४२, ४३, ४५, ५२, ६९, ७०, ७४, ७६,
 ८८, ८९, ९०, ९८, ९९, १७०५, ३२, ४९,
 ६६, ७०, ७३, ७८, ८२, ८९, ९०, ९६,
 ९७, ९९, १८००, २१, २२, ३१, ३२, ४६,
 ४८, ५०, ७२, ७६, ८२, ८४, ८५, ८९,
 १९०४, २२, २९, ३२, ३७, ४३, ६८,
 ७०.
 मध्यमपशु cattle of middle size १७४९.
 मध्यमसाहस middlemost punishment, the
 second amercement ९३८, ४१, ४५, १६१०,
 २७, १७८२, १८१५, १७, ४७.
 मध्यमश special share of the middlemost
 son ११८४.
 मध्यमोपसद N. of a ceremony ७७२.
 मध्यस्थ an arbiter; intermediary; umpire

८०६, ७३, १७५८, ५९, १९२९.
 मध्यस्थस्थापित deposited with an intermedia-
 ry; placed with the surety ६२२, ७३१,
 ८८९.
 मध्यस्थित withheld from partition; common
 १२२२.
 मनस् mind ९७३, ८६, ८९, ९१, ९२, ९८, ९९,
 १०००, ०२, ०३, ०५, १७, ५३, ६४, १११३,
 १५, १२५५, १६५४, १८३६, ५९, १९७४, ८१,
 ८५.
 मनुः स्वायम्भुवः N. of the famous law-giver
 १११३, १२५५, ८४, १३८५, १४१५.
 मनु N. of a law-giver; the father of the
 human race ६२६, ७११, २०, ८०९, ३९,
 ६०, ८१, ९११, ९५, १००७, १९, ४९, ११०९,
 १६, ४६, ६१, ६६, ९५, १२४४, ६६, ९०, ९३,
 १३२८, ४८, ५२, ९४, १५२९, ७०, १६२७,
 ५२, १७२२, ४९, ५०, ५२, १८०१, ०७, ३१,
 ३४, १९१३, २१, ३१.
 मनुज a man १२८३, १८८४.
 मनुजाधिप a king १२८८.
 मनुष a man ९६७, ८१.
 मनुष्य a man ८१४, १९, ६०, ६२, ७९, ८१, ९२४,
 ८५, ९९, १००१, ०५, ०९, १०, २६, ३२, ६८,
 ९५, १२५७, ६२, ८३, ८४, ८६, १५५५, ९५,
 १६०३, १४, १८, २१, ८३, १८०५, २८, ३४,
 ३९, ९६, १९१६, ३८.
 मनुष्यपथ a road for men ९३१.
 मनुष्यमारण murder १६४१, ४५, ५५, १८१०.
 मनुष्यवध homicide; murder १६८७.
 मनुष्यहारिन् a kidnapper १७६०.
 मन्त्र a sacred hymn; magical formula;
 plan; design; ४४२, ५८, ६१, ८२, ८३,
 १००८, ४९, ६७, ९३, १११९, १२८६, १३६४,
 १६५३, ८०, ८१, ८२, १७४२, ५९, ६०, ८३,
 १८९६, ९७, १९२५, ३३, ६५, ६६, ६७, ७०,
 मन्त्रगुप्ति secret council ८६१.
 मन्त्रदान granting information १६१९.
 मन्त्रवत् attended with sacred texts १०२९.
 मन्त्रवाद् the substance or contents of *S'ruti*

texts १९८५.
 मन्त्रस्वरण see मन्त्रगुप्ति ८६१.
 मन्त्रसंस्कार a sacrament with sacred text
 १०५९, १२८२.
 मन्त्रसंस्कृता consecrated by sacred texts १०२३.
 मन्त्रिन् a councillor; an accomplice १६८६,
 १९४३, ८५,
 मन्त्रोपनीता see मन्त्रसंस्कृता १०२१.
 मन्थिन् *Soma*-juice with meal mixed in it
 by stirring ११६१, ६२.
 मन्दभक्त fed on meagre food १७६२.
 मन्दिर habitation; building ८५४, १३७७.
 मन्दपाल N. of a *Rishi* १०५१.
 मन्थु spirit; mind; fury ९९९, १०००, १४६४,
 १५४०, ९१, १६००, ०५, ०८, १२, २६,
 ५५, १८९३, ९५, ९६.
 मथ the mythical architect १०३३.
 मरक an epidemic १९२४, ६५.
 मरण death ८१४, १०८३, १११७, १४५६, १५२०,
 २२, २६, १६६८, १८३०.
 मरणभसिन् subject to the law of death;
 mortal १२५७.
 मरुत् the god of wind ८४१, ५८, ९२४, १००१,
 १९००,
 मरुत्त attended by the *Maruts* ७९१.
 मर्कट a monkey १८२९.
 मर्दित् one who shows compassion १८९४.
 मर्त्य a mortal; man ५९९, ७९१, ९२, ९६८, ७६,
 ८९, १००४, १२५७, १४२३, १६००, १८३६.
 मर्म a vital part १६४७, ४९, ७६, १७८९.
 मर्म see मर्त्य ९६४, ७५, ७९, ८०, १००३,
 १२५७.
 मर्मादा boundary; limit; rule; law ६५७, ९२८,
 ४२, ४४, ५२, ६२, ९२६, २९, ५९, १०२६,
 २७, ३०, ३२, १२८४, ८५, १३९०, १५९१,
 १६०३, ५४, १७०५, १८२७, १९३०, ७०.
 मर्मादास्थापन establishment or determination
 of a boundary ९२६, २९.
 मल dirt (indicating the order of a house-
 holder) १२६०, १७०१, ६६, ०२, १८०८,

३२, ८७,
 मलवद्रासत् a menstruous woman ९९२, १५९९.
 मलिना squalid १०२४, ८६, ११०७, १३९०,
 १४००, १५८७.
 मल्ल a wrestler or boxer by profession; N.
 of a people ७१५, ८०८, ६२, १९०३.
 मस्तक the head १९७४.
 महर्षि a great sage ११८४, १२४५, ८४, ८५,
 ८८, १९६५, ८३.
 महाकच्छ the god of the sea १९२४.
 महाकुल high-born ११४३, १७२८.
 महाजन populace ८५९, १७९९.
 महादिव्य a severe ordeal १९६५.
 महाद्रव्य articles of higher value (such as
 gold etc.) १७३८.
 महानस kitchenroom १६१९.
 महापक्ष having a great party or numerous
 adherents ७३८, ४७.
 महापथ public road ९२९.
 महापराध a great offence ७७२, १७४०.
 महापशु great cattle ९३१, ३२, १६१४, १७,
 १७१२, ४९, १८००, २२.
 महापातक a great crime or sin १०२१, ८४,
 ८६, १७८९, ९१, ९२.
 महापातकिन् guilty of a great crime or sin
 १६०९, २७, १८४७, १९४३.
 महाभिजन a high or noble descent ८६०.
 महाभियोग a great or serious accusation
 १६१२.
 महामात्र high official; prime minister १६८३,
 ९३, १९२९.
 महार्ध high-priced ६०९.
 महाख्यविधि a performance at a place of
 pilgrimage १५८९.
 महासाहसिक a violent desperado १९३२.
 महिष a buffalo ९०६, १८३४, १९०३ ५९.
 महिषी a she-buffalo; a chief-wife ७३१, ९०४,
 १०५, १३, १७, २०, २१, ७१, ९१, ९७, ११०६,
 ११८, १९, ७३, ७४, १३७६.
 मही land; earth ८०१, ११, ६०, ९५१, १०६८,

१५६९, १९२१, ६७, ७१, ७९, ८६.
 महीक्षित् a king १७६५, १९६२.
 महीपति a king ८६७, ९४३, १६९३, १८५५
 १९०७, २८, २९, ३०, ३९, ६५, ८५.
 महीपाल a king १९८५.
 महीशूत्र a king ८५५.
 महीमुज् a king १६४७, १७६०, १८३१.
 महेन्द्र the great Indra ८६०, ११८१.
 महोक्ष a full grown bull ९१५, १९, ११०३.
 महो जाया the eldest wife १००४.
 महोदधि the great ocean १९३०.
 मांस flesh; meat १०२०, २५, ११०७, १४, १२८७,
 १३५०, ५१, १६६१, ७०, ७१, ८२, १७१८,
 १९३८, ७७, ८२.
 मांसभेत् piercing the flesh १८०३, २९.
 मांसभेद piercing of the flesh १८३१.
 मांसिक a seller of meat १६७९.
 मागध a professional bard or panegyrist
 of a king; N. of a mixed caste (the
 son of a *Ks'atriya* mother and *Vaishya*
 father) ८०८, ४२, ११०५, १२३४, ८७.
 माणव a youngster of criminal tendency
 १६८१.
 माणवप्रकाशन detection of a *Mānava* १६८१.
 माणवविद्या supernatural power १६८१.
 माण्डव्य N. of a *Rshi* १६८६.
 माण्डूकेय patronymic of a teacher १७६८.
 मातारेष्वन् wind; N. of a deity ८४२, ९८६,
 १००१, १८३८.
 मातापितृप्रमाण sanctioned by both mother
 and father १०३४, १४३०.
 मातामह a maternal grandfather १०९५,
 १११८, १२७३, ८२, ८६, ९५, १३००, ४७,
 ५०, १४७३, ७४, १५१७, २४.
 मातामहश्राद्ध a *S'rāddha*-rite of a maternal
 grandfather १२८१, १३५१.
 मातामहसुत son of a maternal grandfather
 १३३१.
 मातामही a maternal grand-mother १४३७.
 मातुल्य a maternal uncle १०२०, १२६, ८४, १५५,

१११८, १९, १५१३, २६, १९१९, २२, ४१, ४३.

मातुलपुत्र a maternal-uncle's son १५२८, २९.

मातुलानी the wife of a maternal uncle १०२०, १४५०, १८५०, ७४, ८२, ९०,

मातु a mother ६०१, ०४, ९१, ७१२, १३, ३२, ८००, ०६, ०७, १७, ४०, ९६५, ७०, ७२, ९४, ९५, ९६, ९८, ९९, १०००, ०२, ०३, ०४, ०५, ०९, १८, २१, २२, २४, २५, २६, २७, २८, ३१, ४५, ५०, ७५, ७६, ८४, ९४, ९५, ११०३, ०६, १५. १८, ४५, ४७, ४९, ५२, ५५, ५७, ५९, ९८, १२०५, २०, २३, २९, ३१, ३६, ३७, ४३, ५४, ५५, ५६, ५७, ६०, ६८, ६९, ७०, ७३, ७८, ७९, ८१, ८२, ८५, ८७, ८८, ९७, १३०२, ०४, ०६, ०८, ०९, २९, ३२, ४७, ५०, ७४, ७६, ८४, ८८, ९०, ९१, ९४, १४०७, ११, १३, १६, २६, २७, २८, २९, ३१, ३७, ४०, ४१, ४३, ४९, ५२, ५४, ५९, ६२, ६३, ७०, ७४, १५१७, २१, २२, २५, २७, २९, १६०२, १२, २७, ५३, १७७०, ७७, ८०, ८९, ९२, १८३५, ४९, ५०, ७४, ८२, ९४, ९५, १९२१, २६, ६५, ७४, ७९, ८०, ८४, ८५, ८६, ८८.

मातृक coming from or belonging to a mother ७१४, ८१७, १०४२, १११६, १२३२, १४२९, ३२, ६३, १५५५, ६०, १९८८.

मातृकरूपा mother-like १४०८.

मातृकुलज born in mother's family; a relative belonging to mother's side १३७३.

मातृघातक a matricide १६१९.

मातृगामि (property) inheritable by a mother १४२७, ७०.

मातृतुल्या equal to a mother १४१४, ५०.

मातृद्वयविभाग the division of mother's property ११५७.

मातृद्वारागत received from mother ११४२.

मातृवन्धु a relation on the mother's side १०३१, ११३९, १३८८, १९४३, ५५.

मातृबन्धव see मातृवन्धु १५२९.

मातृवंशज belonging to the mother's family १३८४.

मातृवध matricide १६०३.

मातृविवाह match with a mother १९४३.

मातृश्वसु a mother's sister १४५०, १५२८, २९, १८२२, ९०.

मातृश्वसुसुत son of the mother's sister १३५५.

मातृसखी mother's female friend १८९०.

मात्स्य fish-like १९७०.

माधव, N. of Vishnu ८६१.

माधुपर्किक relating to or presented at the Madhuparka ceremony १२११, ३२.

माध्यम N. of a family ८१३.

मान measure; honour १११५, ९०, १४०३, ५०, १६३९, ६८, ७३, ७७, ७८, १७०७, २८, २९, ६०, ६१, १९३२, ६७, ६८, ७४.

मानव belonging to Manu; human; a man ६६२, ७३९, ४७, ७६, ८६०, ८२, ९४७, ९९, १०३२, ३३, ५५, ९७, १११५, १६, १७, ६२, ८०, ८५, ९६, १२८३, ८४, १५१५, १६१४, ६८, १७०४, १०, ५१, ६२, १८३३, ३९, ६३, १९०७, १२, ३०, ५५, ६३, ६८, ८०, ८५, ८७.

मानवी a woman ९८८.

मानसंयह aggregate (of rules) regarding measures and weights १९६८.

मानुष a human-being; man ८१४, १८, १००८, ३०, १११०, १२८५, १६९९, १७३२, १९२९, ५९, ६७.

मानुषप्राणिहिंसा loss of human life १६२१.

मानुषमांसविक्रय sale of human flesh १६१८.

मानुषहीन an impotent ११८५, १३९१.

मानुषी क्रिया human proof ७६७.

मानुषोपेत a potent ११८५, १२९५.

मानुष्य manhood १९८३.

मायक a measurer १६७८.

माया art; wisdom; magic ६०४, १०३२, ३३, १७५७, १८९८.

मायायोगविद् expert in employing magical arts १९२४, २५.

मायाविन् a cheat १०२५, १५७३.

मायावृत्तां deceitful ११३२.
 मायावेद skilled in magic ६०४.
 मारण destruction; killing ९०४ १९८९.
 मारीच N. of *Kās'yapa* ११८४, १२४५.
 मास्तक (अस्तु) perishing (in water) ९९२,
 १५९९.
 मास्त the god of wind ९२२, १३२९, १८४१,
 १९३०.
 मार्कण्डेय N. of a *Rshi* १०३०, ३१, १३७७.
 मार्ग a road; way; street ८०४, २६, ३१, ५५,
 ५९, ९२५, २६, ४५, ४६, १२४३, १६१६, ४५,
 ४९, ८५, ८६, १७४८, ६१, १९०७, ३०, ३५,
 ३६, ३८, ३९.
 मार्गक्षेत्र a field by the side of a road ९०५,
 २६.
 मार्गदूषण spoiling or destroying a passage
 १६१३.
 मार्गपाल an inspector of roads १७५६.
 मार्गशीर्ष N. of the 9th month १९७९.
 मार्गानुदेशक a guide १६४९, ५३.
 मार्जन cleansing ८१९, ३६, १११९, १६२१,
 १९७९.
 मार्जार a cat १६१७, १८३४, १९२५.
 मार्ताण्ड the sun or the god of the sun ९८२.
 माल a forest or wood near a village ९०६.
 मालिनी N. of a river १२८७.
 माल्य a garland; wreath ९४५, ५१, १०२६, २८,
 १२२३, ४४, १३७६, १६२१, ४५, ८२, ८५,
 १७६०, १८८१, ८५, ८७, ८९.
 माष a particular weight (of metal etc.);
 bean (grain) ६०९, ९०४, ०५, १३, १७,
 २१, १०७१, १६७४, ८८, ८९, १७३८, २३,
 १९४४, ६८.
 माषक a particular weight ८५५, ९२१, ५४,
 ५९, १६२८, ७४, ७५, १८३०, १९२७, ६६.
 मासिक consisting of a *Māsa* १८११, ३०.
 मास्य amounting to one *Māsa* १९४४.
 मास्यमासिक monthly १५१३, २६, ६०, १६१८, १९, ५२,
 ८७, १७०७, ५८, १८४५, १९२७, ३०, ४२,

मासवृद्धि monthly interest ६११.
 मासिक monthly ८७५, १५१३, २६, ६०, ८९.
 मित्र a friend; N. of *Āditya* ६७२, ८००, ०७,
 ४२, ६२, ९७६, ७९, ९४, ९७, ९८, १००१,
 ०२, ११४३, १२०१, १६१२, २३, ४६, ४७,
 ५२, ७२, १८३६, ३८, ९६, १९२४, २९, ६६,
 ८३.
 मित्रघ्न killing a friend ११११, १६.
 मित्रदास a friend helper १११५.
 मित्रपुत्र friend's son १३५५.
 मित्रहस्तस्थ (a pledge) kept with the friend
 (of a creditor) ६४७.
 मिथुन a pair (male female or a couple);
 sexual union ९६७, ७७, ८१, १००१, ०४,
 ०८, ०९, १०, ३४, ११८१, १२५५, ६०, १३८५,
 १४१५, ३०, १८३६, ३७, १९७६.
 मिथ्या false; illusory ८६०, ११९५, १६९९,
 १७७१, ७२, ७८, ८६, ९२, १८४९, ५१, ७६,
 १९१९, २९, ६४, ६५, ६८.
 मिथ्यादूषिन् a false accuser १७६९.
 मिथ्याभियोगिन् see मिथ्यावादिन् ७३०.
 मिथ्याभोग fraudulent possession; enjoyment
 with a false title ८२७.
 मिथ्यामहाभियोगिन् falsely accusing of a great
 crime १६१२.
 मिथ्यावादिन् speaking falsely; a liar; a false
 accuser १०३६, १७०६, १८४७, १९२७.
 मीहृद्भूष liberal (applied to a god) ८१०,
 ११५९.
 मुक्त released; set free ७१३, १०२३, ५९, ११८४,
 १६६६, १७५९, १८५०, १९७९, ८८.
 मुक्तकेश see प्रकीर्णकेश १७०३, ५१.
 मुक्तमान्या (landed property) whose revenue
 is remitted ८७२.
 मुक्ता a pearl ६३३, ८८८, ९४, १२१९, १७५९,
 १९८८.
 मुख mouth; face ६०४, ७६७, ८६०, ९१०, २८५,
 १०८५, १११४, १२५९, ७१, ७९, ८१, १३४८,
 ९१, १६३३, २१, ३३, ८५, १७६०, १८०७,
 १९४१, ६६, ६७.

मुखरोग्निन् diseased in the mouth १९६५.
 मुखेभग (an impotent) one deprived of the
 scrotum (Dr. Hass); one who needs
 sexual enjoyment in his own mouth
 and not in vulva १०९४.
 मुख्य head; leader ८६०, ६२, ६३, ७४, ११११,
 १५२४, १६८९, १७११.
 मुण्ड having the tonsured head १६८९,
 १८५९.
 मुण्डक a stem of a tree १९६५.
 मुण्डन shaving the head १६४४, ८९, १७७१,
 १८४८, ९०, ९१.
 मुण्डा (a close shaved) female mendicant
 १०२८.
 मुण्डिभ N. of a man १६०१, ०२.
 मुद्ग *Mudga* beans १०७१, १७२३.
 मुद्गर a cudgel १६७४.
 मुद्रा a seal ७५०, ८६३, १६४९, ८९.
 मुनि a sage ७६४, १११३, १८, १२८४, ८७,
 १३२९, ५१, १५३०, १७६७, १९२७, ४६, ६५,
 ८३.
 मुनिपत्नी wife of a *Rishi* १३२९.
 मुषित plundered; robbed ७३५, १६२०, ८५,
 १७५७, ६२, ६६.
 मुष्टि handful १७२३, ६१, ६३, १८९१.
 मुष्टिका a hammer १६८०.
 मुसल a wooden pestal used for cleaning
 rice ७६४, ८१२, १६५८, ६४, ६७, १७०२.
 मूक dumb १३९२, १६६७, ७९.
 मूढ stupefied; foolish ७९३, ८००, ०४, ६१,
 ८९, ९६.
 मूत्र urine ८३६, ९५९, १४०२, १६७२, १७७२,
 ९८, १८३२, ३४, ५९, ६०, ६३.
 मूर्ख foolish; a fool; blockhead १११७, १८,
 १४५८.
 मूर्धन् the forehead १६२०, १८३२, १९६६, ६७,
 ८५.
 मूल principal; original amount or pro-
 perty; roots; foundation; bottom; a
 particular constellation ७०९, २९, ३०,

३१, ३५, ३६, ७७, ७१५, २६, ३०, ३१, ३२,
 ५२, ५३, ५९, ६०, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९,
 ८६१, ९१, ९००, १८, ४९, ५६, ६२, १०३२,
 ६२, ७६, ८०, १२८२, १३८५, १४५८, १६१४,
 ३०, ४२, ४६, ६१, ६३, ६५, ७०, ७१, ७२,
 १७१९, २२, २३, ४४, ४९, ५२, ५३, ६५, ६६,
 १८०६, ५६, ८४, १९२२, २४, ३६, ३८, ४३.
 मूलकर्मन् see मूलक्रिया १६३१, ८०, १७६०, १९३०.
 मूलक्रिया employment of roots for magical
 purposes; practice of incantation with
 roots १०२३.
 मूलखानक a root-digger ९३७, ५१.
 मूलनाश loss or lapsing of the principal
 ६४९, ५८.
 मूलप्रणिहित old spies turned thieves(?) १६९६,
 १९२९.
 मूलबर्हण a particular constellation ९९९.
 मूलभाज् one who receives the principal ७३०.
 मूलहानि see मूलनाश ६५१.
 मूल्य price; value ६११, ३२, ३३, ३८, ४०, ५१,
 ५५, ५८, ६१, ७२५, ३१, ३५, ३६, ३७, ५५,
 ५७, ६१, ६३, ६४, ६५, ६६, ६८, ८०७, १७,
 ४३, ५५, ७८, ८३, ८५, ८६, ८७, ८८,
 ८९, ९१, ९३, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००,
 ०१, ०४, ०५, २१, ३०, १०४४, १२२५, १३७७,
 १४५४, १६०९, ११, १४, ३०, ३३, ४६, ६८,
 ७०, ७२, ७३, ७४, ७७, ७८, ८४, ८८, ८९,
 १७०५, १७, १८, ३४, ४८, ५०, ५७, ५८, ५९,
 ६३, ९७, १८०६, २२, १९३०, ७१, ७२.
 मूल्यकल्पना valuation ८९९.
 मूल्यनाश see मूलनाश ८१७.
 मूल्यवर्धन increase in value or price ९२८.
 मूल्यवृद्धि see मूल्यवर्धन ९२८.
 मूषक a mouse ७८६
 मूषा crucible १६८०.
 मूषिक a mouse १९२४, २५.
 मृग a deer; beast ९०६, १९, ४७, ४८, १२८४,
 १६१७, १८१०, ३४, १९२५.
 मृगया hunting १०३१.
 मृगवन a forest for beasts १६१७.

| | |
|--|--|
| मृत dead ६५४, ६६, ७००, ०३, १०, १२, २६, ३०, ३६, ४७, ६६, ६८, ७७, ८०६, ९०८, ०९, १२, १६, ४७, १०१४, २१, २२, २४, २६, ३०, ४५, ६०, ६३, ८८, ११००, ०७, १०, ११, १२, १५, १६, १७, १८, १९, १२६९, ७३, ७८, १४०४, १३, ३०, ४८, ५६, १५१३, १७, २३, २४, २६, २७, ४१, ४२, ४४, ५५, ५८, ६०, ६१, १६०१, १८, ३७, ४८, ५२, ९३, १७९९, १८१७, २२, ४८, ५०, १९३३, ७६, ७९, ८४, ८८. | १८३७, ४०, १९३९. |
| मृतक impurity contracted through the death of a relation १३७४. | मेनका N. of an <i>Apsaras</i> १२८७. |
| मृतपती a widow १९४४. | मेना a woman ९७०. |
| मृतपत्नी a widow १८९२. | मेय measurable ८८६, १६७१, १७१६, ५०. |
| मृतपुत्र one whose son is dead १३६३. | मेव ram; sheep १८३७, १९१४. |
| मृतप्रजा (a woman) whose children are dead १०२०, ५७. | मैत्र friendly present १२११, १५, ३२, १९८३. |
| मृतमर्तिका a widow १३७३, १४०२, १५१८. | मैत्रावरुण(णी) belonging to <i>mitra</i> and <i>varuna</i> ९९५, १६०१. |
| मृतवत्सा whose offsprings or new-born die ९२०. | मैत्रेयी N. of the wife of <i>Yājñavalkya</i> १०१०, १४०५, २४. |
| मृतवित्त property of a dead man १५२६. | मैथिली N. of <i>Sitā</i> १०७६, ७७, १३२९. |
| मृतापत्या (a woman) whose children are dead १०३०. | मैथुन copulation; sexual union १०३३, ३६, ३८, १२६६, १३७७, १६७६, १८४४, ५०, ९२, १९७७. |
| मृताहिक the funeral rite to be observed on the day of any one's death १५८९. | मोक्तव्य to be released or set free ६७४, ८३७, १६४६. |
| मृत्तिका earth १९४२, ६६, ६७. | मोक्ष release; divorce; giving; spending ७१०, ९०, ८१७, ४०, ९२७, १०३६, १४६१, १६५८, ६४, ६७, १७०२, ११, ५१, १८००, १९७८. |
| मृत्यु the god of death; death ६०४, ७९१, १०३२, ३३, ७६, १६०१, ०२, ०८, १७६१, १९३६. | मोक्षण release; rescue ७८९. |
| मृद्भाण्ड earthen-ware १६१४, ७१, १७४५. | मोक्षधर्म the path of emancipation १०३१. |
| मृद्भवाच् of hostile speech १९७१. | मोक्षित released ८३०. |
| मृन्मय earthen-ware; made of earth ६०९, १६७०, ७७, १७१८, ४९. | मोष fruitless ७९१, ८४४, ६१, १०७३, ११०३, १२६७, ७१, ७२, १८९३, ९६, १९८३. |
| मेखला the base or foundation of a wall or house ९५८. | मोषबीज (an impotent) one whose semen is devoid of strength १०९४, ९५. |
| मेढ membrum virile; penis १३५०, १६१९, १६०२, २९. | मोचन releasing १६०४. |
| मेदिनी the land; earth; soil ९०१, ११४२, १२४४, १५८९. | मोचयितव्य to be released ८३३. |
| मेघ्य fit for sacrifice; pure ८२४, ३००६, ८६, | मोचिन् one who sets free ११११. |
| | मोच्य to be released १६१९, ४८, १७६८, ९४, १९१३, १५. |
| | मोष theft; thief १६६५, ९८, १७५६, ५७, ६३, ६६, १९२९. |
| | मोषक a thief १६४९. |
| | मोह error; folly; infatuation ७३४, ८०१, २०, ९४६, १०२९, ५४, ६८, ११०९, १९, १६१४, १८, १७७२, ९१, ९२, ९८, १८१४, ४६, ५६, ८१, १९१४, २७, ८३. |
| | मोहित infatuated १०३०, १११७, १६१६, १८९०. |

- मौजवत belonging to the *mujavat* hill १८९३.
 मौखिवन्धन the ceremony of sacred thread १३७३.
 मौण्ड्य shaving of the head; tonsure १०९९, १४०२, १६७२, १८४३, ५८, ६०, ६३, ६९.
 मौद्गल्य N. of a *Rshi* १०२०.
 मौर्य(र्व) iron made die (used in dice) १९०५.
 मौल indogenous inhabitant; senior member of a congregation ९३६, ४६, ५१, ५५, ५६, १५६९.
 मौल सामन्त neighbours who are the original inhabitants ९३६.
 मौहूर्तिक one who tells almanac १६७९.
 म्लेच्छ a foreigner ८१७, १८३३, १९१५, ८८.
 यक्ष्मन् illness; disease in general ९८४, ९२, ९३, १००२, ०४.
 यजन sacrificing १३८४.
 यजनक्रिया a sacrifice ८७३, ९२९, ३०.
 यजमान the institutor of a sacrifice ६०१, ०४, ७७२, ९१, ८१४, ९०२, ०३, २४, १००४, ०६, ०९, १५३०, ९४, ९७.
 यज्ञ a sacrifice ७७३, ९१, ८०८, १३, ९९४, १००६, ०७, ०९, १४, २३, २६, ५९, ६०, ११२६, ४४, ६१, १२५५, ५८, ६२, ८१, ८३, ८४, १३६३, ९७, १४१४, ५७, १५८८, ९६, १६०२, ४८, ६८, १७००, २३, २४, २७, ९३, १८३७, ४१, ९६, १९३०, ३९, ४०, ६६, ७६, ७८, ८०, ८१, ८४, ८८.
 यज्ञपात्र a sacrificial vessel १०७५, १११९.
 यज्ञमुख introduction to a sacrifice १००९.
 यज्ञवास्तु a place for sacrifice ११६१.
 यज्ञवेशस disturbance or profanation of a sacrifice १५९४.
 यज्ञशामल a fault in a sacrifice ६०१.
 यज्ञसिद्धि completion of a sacrifice १७२३.
 यज्ञाहुष्माम property obtained from a sacrifice ११२६.
 यज्ञिय worthy of a sacrifice ८१४, ९२४, ८४, ६९, १००२, ०४, ०५, १९६५.
 यज्ञोपवीत the sacred thread १९८९.
 यज्वन् & sacrificer ७७२, १२५८, १७२३.
 यति an ascetic १११७, १४०४, १५०९, ९५, १६०३, १९४३, ८६.
 यत्न attempt; exertion १६७४, ९२, ९९, १७५२, ६२, १९०६, २९, ६५.
 यत्रकचनजात see यत्रकचनोत्पादित १२८२, १३५६.
 यत्रकचनोत्पादित the son born by any woman whomsoever १२७९.
 यत्रकचनोत्पादित see यत्रकचनोत्पादित १३७३.
 यथाकामवध्य to be chastised or punished at pleasure ८१३.
 य(था)थाकामिन् according to will, pleasure or choice १०८१, १६१७.
 यथाकालोपयोग्य to be used according to time १२२८.
 यथाक्रम according to order or succession ७१०, २९, ३१, ८४८, ११०३, ४२, १२३९, ५१, १३५५, १५२५, १६२८.
 यथान्याय according to rule १०३०.
 यथाविधि properly; according to the precept or rule; suitably ७४३, ४८, ५१, ५६, ८८, ९५४, १०२९, ४१, ५१, ६६, ६९, १२८६, १३५६, १४२२, १५७१, ८७.
 यथाशास्त्र according to the codes of law ११४२.
 यथाश्रुत corresponding to (what has been) an agreed report ८४८.
 यथासंभाषित according to the (previous) agreement ७३७, ७१, ७२, ८४३.
 यदु N. of an ancient hero; N. of the son of *yayāti*; N. of a tribe ८१०, ६१, १३९१, १९८६.
 यदृच्छाप्तात wanton murder १६१९.
 यन्त्र an instrument; rein १६५३, १८०७.
 यम N. of the *As'vins*; N. of the god of death; twin-born; N. of a law-giver ६०१, ०२, ०३, ०४, ०५, ६१, ७५६, ९६३, ७७, ७८, १००२, ०४, ०७, ११११, २२, ९४, १२३४, ३६, ६७, ७१, ८६, १७४४, ५१, १८३६, १९०२, ३०, ३१, ३६, ६४, ६५, ८०, ८५.

यमक्षय *Yama's* abode १२८८.
 यमसादन *Yama's* world १२६७, ७१.
 यमी N. of *Yama's* twin sister ६०१, ०४,
 ८५७, ९७७, ७८, १८३६.
 यमुना N. of the river १९२०, २१.
 ययाति N. of a king १३७४, ९१.
 यव barley-corn १०७१, १७२३, ४५, १८३८,
 १९००, ६६, ६७, ६८.
 यवन a legitimate son of a *Ksatriya* and
Vaishya ११०५.
 यवस a kind of grass १८९२.
 यवागू gruel १६८७.
 यविष्ठ youngest ११४३.
 यवीयस् younger ११६६, ८२, ८६, ९१, ९७,
 १२१०, ३३, १३१६, ९२, ९७, १५८६, १९८३,
 ८८.
 यशस् beautiful appearance; glory; fame;
 victory ७५१, ८४२, ६०, १००३, ०६, ३०, ६१,
 ७५, ७७, १११९, १६१२, २२, ५०, ९९,
 १७२५, २७, १८७०, १९७०, ८१.
 यष्टि a staff १६३०, १९२९.
 याग a sacrifice १९८७.
 याचन soliciting ७५६.
 याचमान one soliciting or petitioning ७०६.
 याचित anything borrowed; article lent for
 use; demanded; solicited ७३२, ३५, ४६,
 ४९, ५१, ५२, ५४, ५५, ६४, ६८, ८०२, ०७,
 ६३, ८४, १७३६.
 याचितक vide याचित ६३३, ७३६, ५२, ५३, ५४,
 ५६, ९८, १६८४, १२२२.
 याच्यमान being asked for or solicited ६२७,
 ३०, ३२, ३३, ९५, ७०५, ३१, ४२, ४८, ५१,
 ५४, ५६.
 याजक a sacrificer ७७०, ७२, १७६१.
 याचन the act of making a sacrifice १६१६,
 ९७, १९४०.
 याज्ञवल्क्य N. of a *Rshi* १००७, ०८, १०, ७७,
 १४०५, २४, १९८२.
 याज्ञसेनी a patronymic of *Draupadi* ८१८.
 याज्ञ्य a sacrificer; one on whose behalf a

sacrifice is performed; sacrificial (pro-
 perty) ७७१, ७२, ७६, ८३, ९०, ११३१,
 १२२५, ३१, ३२, १६१०, ६८, ७२, १७०३,
 १९२६, ८५.
 याज्या sacrificial text or verse १३८५, १५९६-
 याज्यागत acquired by sacrificing ११२९.
 यातनास्थान torture-place ११११.
 यातयामन् not fresh ८१८, १२५८.
 याचु a driver १६२१, १८०७.
 यात्रा expedition; journey ८६०.
 यादव a descendant of *yadu* ८६०, ६१.
 यादुरी embracing voluptuously ९६६.
 यादृच्छिक accidental; selfwilled; (a pledge)
 to be released at any time; an officia-
 ting priest who does as he pleases;
 (a son) who offers himself spontene-
 ously ६५०, ७८३, १३५०.
 यान a vehicle of any kind; carriage ८५०,
 ११८४, १२४६, १६१८, २१, ३७, ७२, १८०७,
 २०, १९१९, २७, ३३, ४४, ४५.
 यानविधि method regarding expedition ८६०.
 यानस्थ seated in a couch १६२१.
 यामन् a sacrifice ११५९.
 यावत्स्थितिप्रमाण being in force for all times or
 in every circumstance ६७८.
 यावद्देयोचत (आधि:) (a pledge) to be retained
 till the debt has been discharged ६४८.
 यात्रु sexual union ९६६.
 युक्त appointed; reasonable ७९३, ८०४, ७६,
 १०३०, ३४, ११०९, ८१, १२०४, १४५७,
 १६७९, १९२२, २५, २९, ३०, ३१, ३५, ३६,
 ५४, ६२, ६४, ६६, ६८, ७३, ७५, ७६, ८५,
 ८८.
 युक्ति reasoning ८७६, १८१३.
 युग a yoke; an age of the world; period
 ८३१, ९२३, ७७, ११०९, १३७३, १६५५,
 १८३६, १९३०.
 शुम्भा (रात्रि:) even (night) १०७९.
 सुय्य a cart; carriage-driver (a bull) १८०८,
 ०९, १९, १९३३.

सुग्यकृत (a merchandise) which one has agreed to carry to its destination ८५०.

युद्ध fight १६०३.

युद्धजित् vide युद्धे प्राप्त ८१९.

युद्धावहारिक booty in war १२४४.

युद्धे प्राप्त (a slave) made captive in war ८३०, ३२.

युद्धोपदेशक instigating for a fight or battle १६५०.

युद्धोपलब्ध obtained by fighting ११३१.

युधिष्ठिर N. of the eldest of the five sons of *Pandu* ८१८, १९, १०२७, २८, ३२, १२४३, ४४, ८६, ८७, १३७६, १४२९, ७३, १९८३, ८४.

युवति a young woman ९६५, ६९, ७०, ७१, ७९, ८०, ८१, १०००, ०२, ०३, ०६, ५८, १८३७.

युवन् a youth ९७०, ७९, ८०, १०००, १८४३.

युवश a youth ९७५.

यूथ a herd; flock १६१९.

यूप a post; pillar १२७८.

योक्त्र any instrument for tying or fastening; a rope ८५९, ९८३, ९८, १००२, १७९१, १८०७.

योग union; contrivance; fraud; right or value; penance ७८४, ८४०, ६१, ६३, १०४४, ७०, ९५, १११८, १२३३, १४२४, ५४, १६१६, ५९, ७४, ८०, १७६७, १८८५, १९२५, ३०, ४३, ६६, ६७, ८३.

योगक्षेम the means of securing protection; property destined for pious uses and sacrifices ६११, ९०७, १२०४, ०६, ०९, २३, १९८२.

योगसुरा intoxicating medical drink १६८१, ८२.

योजन a particular measure of distance; (about 4 miles); arrangement ७६६, ९३२, ६२, १३५६, ३६६४, ३७८९.

योज्य to be used or employed १३३८.

योनि the womb; female organ of genera-

tion; origin; abode; race; species ६०५, ७९४, ८०८, ९६, ९२३, ६३, ६६, ७०, ७७, ७८, ८०, ८१, ८३, ८९, ९१, ९३, १०१३, २४, ३१, ७०, ७१, ७४, ७५, १५९२, १६८४, १८३६, ३७, ४८, ५०, ८४, ९२, ९५, १९३१, ७९.

योनिस्वन्ध a blood-relation १०१८, २२.

योषणा a young woman ९७५.

योषणा a young woman (according to *Sāyana stuti-hymn*) ८११, ९८०.

योषा a maiden; a young woman ९६३, ६४, ६५, ६७, ७०, ७१, ७३, ७५, ७६, ७९, ८०, १००१, ०३, ०७, ०८, ०९, ११०९, १२५७, ५९, १८३६, ७९.

योषित् see योषा ६८२, ८३, ९९, ७०८, १०, १४, ९९६, ९९, १०११, २३, ३०, ३१, ३२, ३३, ४७, ५१, ५३, ५५, ५८, ५९, ६४, ८६, ९५, ११०६, ०९, १२, १९, १२५९, १३९३, १४००, ०४, ५७, १५२३, १६४०, ५१, १८८८, १९२७, ४५, ५२, ७७, ७८, ८८.

योषिद्ग्राह one who takes the wife of a deceased man ६८६, ७१०, १५.

यौतक a woman's dowry; property given at marriage; hoarding; separation १३९८, १४२८, २९, ३७, १५७५, १९८४.

यौन matrimonial connection १६१६.

यौवन adolescence; youthfulness १०२०, २३, ३१, ३२, ४५, ५९, ७६, ९९, १११४, १७, १२८५, १३८८, १५५५, १९७७.

यौवनस्था being in youth १४०४, ६६.

रक्त red; blood १६७४, १७६०, १८३५.

रक्तागम menstruation १०२४, ११०९.

रक्षण protection; the act of guarding; preservation ७२९, ८१९, ५९, १०३३, ४९, ११०६, २९, १२६३, १६०८, ६१, ७३, ७७, ७९, ८८, ९३, १७००, १९१६, २७, ३९, ३१, ३६, ३९, ५१, ५७, ६२.

रक्षपाल a protector; guard ६०९.

रक्षमाण being guarded १९८, १०३१, १११८.

रक्षस् a demon १३३४, २५.

रक्ष्वा the act of guarding or protecting

८०५, ६२, ९६१, १०३३, ११०१, १२४४, १६३१,
 ५४, ८९, ९८, १९२९, ३६, ३९, ६२, ७६.
 रक्षित guarded; protected ८६०, १०४६, ४८,
 ७९, १११८, १६६८, १९७६, ७९.
 रक्षित् a protector ७७७, १०३२, ४५, १७०१.
 रक्षिन् a guard; sentinel ७२८, १६८१.
 रक्षोघ्न a demon-killer १९२५.
 रक्ष्य to be kept ८४६, ४९, १८४४, ४५, ५६,
 १९४७, ४८.
 रक्ष्यमाण being protected or guarded १०४६.
 रक्ष्या to be guarded or protected १०३१,
 ३२, ३३, ४६, ८१, ११०६.
 रङ्गावतार an actor १८४५.
 रङ्गोपजीविन् an actor ७८४.
 रजक a washerman ६७९, ८३, ९९, ७०८, १४,
 १५२०, १६७४.
 रजत silver ६०९, ३२, १६६९, ७२, १७१६, ३४,
 ४७, ५०, ६७.
 रजस्वला a menstruating woman १०१६, १९,
 ११०६, १६१०, १९४१, ७७.
 रज्जु a string; rope ८२६, १०३५, १६१४, १६,
 ५२, ७७, १७१८, ९४, ९९, १८१२, ३५, १९०२,
 ३८, ७४, ७७.
 रति conjugal happiness; the deity presiding
 over conjugal happiness १०३१, ५२, ७५,
 १११४, २७, १९७८, ८१,
 रत्न a jewel ६३४, ८९२, ९०८, १११९, ८४,
 १६१४, १८, ४६, ७०, ७५, ८८, १७११, ४५,
 ५०, १८९७.
 रथ a chariot ७७५, ८११, १४, ९२३, २६,
 ११६५, ८१, १५१३, १६१८, २९, ७२, १७११,
 १३, १८०९, १९००, २९, ७७, ८९.
 रथकार a chariot-maker; a carpenter ११८५,
 १२३४.
 रथिन् possessing or going in a chariot
 ८११.
 रथ्या street; main-road ८२९, ९२६, २७, ४६,
 १२०७, २८, १८३६, १९८०.
 रन्ध्र a hole; defect १६२६, ५०.
 रत्नि wealth ८०९, ९८१, ८५, ९९, १०००, ७१,

०२, ०३, ११५९.
 रवि the sun god १९६५, ६६.
 रश्मि a string; rein; ray of light ८६०, १६१५,
 २१, १८०७, १९३०.
 रस the sap; any liquid; poison ६०९, १०,
 २१, २६, ३४, ६८, ७८४, ८६, ९०, ८६३,
 ९९, ९१९, १००३, १५२६, १६१३, ७१, ८०,
 ८२, १९२५, ३८, ८१.
 रसद a poison-giver १६८०.
 रहःक्रय clandestine purchase ७६३.
 रहस्य bringing forth a child in secret ९६९,
 १२५८.
 रहस्यप्रणिपात secret permission; secretly
 requesting (a judge) to hear ७३७.
 रहोदत्त clandestine gift or deposit ७५०, ५१.
 राका the goddess presiding over the actual
 day of full moon १००५, १५९५.
 राक्षस one of the eight forms of marriage-
 (the seizure of a girl); a demon १०३४,
 ९६, ९८, १४३०, १९६९.
 राग colour; desire; affection १०२६, ११०२,
 १६७४, ८०, १७९१, १८४९, ८५.
 राघव a descendant of *Raghu* (here *Rāma*)
 १०७५, ७६.
 राजकर्म royal business ८५१.
 राजकारिता (a boundary) fixed or determined
 by a king ९६१.
 राजकार्यनियुक्त a government servant ६७२.
 राजकिञ्चिपिन् one who being a king has
 committed a transgression (Monier
 Williams); suffering from a dangerous
 disease (esp. from consumption)
 [*vivādaratnākara*] १०३४, १११२.
 राजकीय of or belonging to a king ८६३.
 राजकृत made or performed by a king ७३१.
 राजकोश a treasury १६८७.
 राजक्रीडा a game or play common to a king
 (only) १६४९, १९४२.
 राजगामि escheating to the king (as property
 etc. to which there is no heir) ६६१,

३७८, १४७०, ७३, १५१२, २३, २७, १६५५,
७३, १९४९, ५०, ६१.
राजगृहीत seized by a king ९१८.
राजग्राह्य to be confiscated or seized by a
king ६७७.
राजत made of silver ८६४, ९२१, १३७३, १७६७,
१९६८.
राजतमाष a silver coin ९२१.
राजदण्ड punishment inflicted by a king
१३७४, १८३१.
राजदत्ता (land) bestowed by a king ९५१.
राजदायिन् a royal servant ७३७.
राजदुष्ट detrimental to a king १६५२.
राजदैव see राजदैविक ८४३, ४४.
राजदैविक (misfortune) proceeding from the
king or fate ६७६, ७३२, ४५, ५३, ८४६,
९५१.
राजद्वय king's due or property ७१६, १७६४,
१९४२.
राजद्रोह treason; sedition १९६५.
राजद्विष inimical to the king; despised by
the king; sedition; seditious १०३७,
१३९२, १४३१, १६१८, ३७, १९३३.
राजधन royal property १९४८.
राजधर्म king's duty १२४३, १९२१, ३१, ४१.
राजधर्म्य legal acquisition of the king ७५७.
राजन् a king; noble ५९९, ६१०, ११, ३५,
५६, ६०, ६१, ७२, ७६, ७७, ७१५, १६,
१८, २२, २४, २७, २९, ३०, ३१, ३५, ३६,
६२, ६४, ८१, ८३, ८८, ९०, ९४, ९५,
८०८, १४, १५, १६, १८, १९, २०, २४, ३१,
३३, ३८, ४३, ५३, ५५, ५९, ६०, ६१, ६२,
६३, ६५, ७१, ७४, ७६, ७८, ८०, ९१२,
११६, २६, २९, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४१,
४५, ४६, ४७, ४९, ५१, ५२, ५५, ६१, ७३,
८८, ९२, ९६, ९७, १००१, ०३, ०५, ९५,
९७, ९९, ११०२, ०६, १८, २१, २२, ४३,
८५, १२४३, ४४, ७३, ७८, ८६, ९४, १३२९,
६३, ७४, ७६, ७७, ८४, ९१, ९७, १४०३,
२९, ६४, ६७, ६९, ७०, ७३, ७४, ७८,

१५१२, १४, १८, २४, २६, २७, ३०, ५५,
८५, १६००, ०१, ०६, ०९, ११, १२, १८,
१९, २१, २२, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१,
३२, ३७, ३९, ४५, ४६, ४८, ५०, ५२, ५४,
५५, ५६, ५८, ५९, ६०, ६१, ६३, ६४,
६५, ६६, ६७, ६८, ७१, ७२, ७५,
८१, ८२, ८७, ९०, ९५, ९८, १७००,
०१, ०२, ०३, ०४, ०६, १०, १२, १७, २०,
२३, २७, २८, ३१, ४५, ४८, ५१, ५७,
५९, ६०, ६१, ६२, ६६, ६७, ६९, ७०,
८०, ८३, ८७, ८८, ९२, ९४, ९६, १८०६,
२८, २९, ३५, ३८, ३९, ४२, ४३, ४४,
४९, ५१, ५९, ६५, ६६, ७०, ८४, ८८,
९०, ९१, ९५, ९६, ९७, १९००, ०३, ०४,
०५, ०६, ०७, ०८, ०९, ११, १२, १३,
१४, १५, १६, १८, २०, २१, २२, २३,
२४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१,
३२, ३३, ३५, ३६, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३,
४४, ४७, ४८, ४९, ५०, ५३, ५४, ५५,
५६, ५७, ६०, ६१, ६४, ६६, ६८, ६९,
७०, ७५, ७६, ७९, ८३, ८४, ८५, ८६,
८९.

राजन्य N. of the *Ksatriya* caste; a man of
royal family ८३६, ९९४, ९९, १००९, २४,
१२४०, ८७, १४६४, १६००, १७६९, ७४,
१८३९, ४५, ४६, ९६.

राजन्यवन्धु a man of royal descent १००९.

राज्या a woman belonging to the *Ksatriya*
caste १०२२, २३, २६, १८४५.

राजन्यापुत्र son by a *Ksatriya* woman १२३८,
३९.

राजपण्य a fine article १६८८.

राजपत्नी king's wife; queen ८६३, १६३९.

राजपथ a royal road ७८६.

राजपरिग्रह belonging to a king; king's ha-
rem १६८९.

राजपुंस a royal servant १९४४.

राजपुत्र a prince ८१९, ६३, १३२९, १६७१,
७२, १९८४.

राजपुत्री a princess ८१८, १२८५.

राजपुरुष a royal servant or minister ६८०,
 १०३९, १६४७, १७३२.
 राजपुरुष see राजपुरुष ७६६, ६८, ६९, ८६, १७५९,
 ६०.
 राजप्रताप royal edict १८५०.
 राजप्रसविनी begetting a royal offspring; bri-
 nging forth a son destined to be a
 king ८६३.
 राजप्रसाद royal favour ८७५, ९४९.
 राजभय danger or fear from a king ७५५.
 राजभाग king's share ८७५, १७५९, १९१३, १४.
 राजभार्यागमन intercourse with a king's wife
 १८५०.
 राजमन्त्रभेदक one who insults king's council
 १६१९.
 राजमार्ग a royal or public road ९२६, २७, ३९,
 ५९, १६१६, ३१, १८४८, १९२९.
 राजव्यक्ष्मन् a dangerous disease (esp. consum-
 ption) ९९२, १११८.
 राजयोग्य befitting a king; suitable for
 royalty ७७८.
 राजर्षि a royal sage १०६८, १२८६.
 राजवचन royal decree १६८७.
 राजवन a royal forest; a good forest १८००.
 राजवृत्ति royal avocation १६४९, १९४२.
 राजशुद्धि king's interest १९१३.
 राजशब्दिन् vide राजशब्दोपजीविन् ८६३.
 राजशब्दोपजीविन् living by the title of a *Rājan*
 ८६२.
 राजशासन royal order or decree ८७५, ७६,
 ९४४, १६१३, १८, ४०, १९३२, ३५, ३६, ४२.
 राजसर्षप a particular measure १९६८.
 राजसूय N. of a sacrifice १८९७.
 राजस्व king's property ९२५.
 राजादेश royal order १८८८.
 राजाधिदेवी N. of a daughter of *Sūra* १३७६.
 राजार्थ royal property १६४९.
 राजजुदाळ made of the *Rajju-dala*-tree

राज्य kingdom ६८०, ७४५, ८६०, १०६८,
 १२४४, १३६४, ७३, ७६, ७७, ९१, १६०९,
 १९, ४६, १८९६, १९०५, ३०, ३१, ७०,
 ८४, ८५.
 राज्यभाज् kingdom-possessor १३७७.
 राज्यविभ्रम disturbance in the kingdom
 ६८०.
 रात्रि night १७०७, १९२५, २७, ४३, ७७.
 रात्रि night ८६३, १६८६, ८७, १७११, ६४, १८३६,
 ४०, ९७, १९२३, २४, ६४, ६५, ६७, ७६.
 रात्रिसंचारिन् moving at night; a night-guard
 १७५४.
 राधस् wealth ११५८.
 राम N. of the king of *Ayodhyā* १०७५, ७६,
 ७७, १३२९.
 रामा a charming woman; courtesan ८१४,
 ९९४, १०२७, १९८४.
 राष्ट्र country; kingdom ७९२, ८६४, ६७, ९२०,
 ३२, ९९, १००८, १४६४, १६०१, १२, २७, ३९,
 ४६, ५३, ६३, ८२, ९२, ९३, ९८, ९९, १७१०,
 ३९, ५६, ५७, ६०, १८३९, ४०, ९०, १९०५,
 ०७, १३, २१, २९, ३०, ३२, ४३, ६५, ७०,
 ८६.
 राष्ट्रभृत a tributary prince ६०१, ०३, ०५,
 १९०२.
 राष्ट्रविलोप invasion of a country; destruction
 of a country part ७३७.
 राष्ट्रसंवाध national calamity; contry-wide
 danger ७१५.
 राष्ट्रान्तर a foreign country ८९८.
 राष्ट्रिक a country-man १७५७.
 रासभ an ass १२८३.
 रिक्त inheritance; legacy ६७९, ९८, ७१५,
 १०२२, ११२२, ४४, ३७, ४८, ४९, ५१,
 ९५, १२०१, ०७, ५४, ५५, ६१, ६९, ७२,
 ७८, ८०, ८२, ८३, ८६, ८८, ९५, १३२१,
 २२, २६, २७, ४७, ५६, ८४, ९०, ९६,
 १४०३, १६, २९, ३२, ६२, ६३, ६४, ६५,
 ७३, ७४, ७५, १५२७, १९४९, ५०, ५३,
 ७८.

रिक्थग्राह one who receives inheritance ६८६.

रिक्थग्राहिन् see रिक्थग्राह ६७८, ७१५.

रिक्थजात collected property १२४६.

रिक्थप्रतिषेध denial of inheritance १२५४.

रिक्थभागिन् inheriting or sharing property;
an heir १२०१, १४७८, १५०९, २७.

रिक्थभाज् vide रिक्थभागिन् ६७७, ७०८, १०, १६,
१२६३, ७०, १३५५, ७४, ९६, १४०३, १५४०,
१९८६.

रिक्थमूल having ancestral property as the
basis ११४७.

रिक्थलोभ greed to obtain inheritance १२७२.

रिक्थविभाग the division of inheritance ११४७,
४८, ८३, १५८८.

रिक्थहर inheriting property ६७९, ८०, १३१४.

रिक्थहर्तृ see रिक्थहर ७१०.

रिक्थांशभागिन् entitled to a share in the in-
heritance १३९०.

रिक्थापहारिन् one who illegally takes away
inheritance १६२६.

रिक्थिन् inheriting property; an heir ६७२,
८२, ८६, ७१५, २७, १२२४, २७, २९, १३४२,
१४५७, ५९, ७१, १५८१, ८२.

रिपु an enemy ६००, ८६१, १९६६.

रिरिचान being emptied or resigned ७९१,
१२५८.

रिष्ट broken (pillar) ११२०.

रीति bell-metal ६०९.

रुक्मप्ररतरण having a gold-ornamented outer
garment १००२.

रुचिक्रय voluntary purchase ८९८.

रुज् illness; disease ८००.

रुत a disease ११२०.

रुद्र N. of a god ८५८, ९०२, ०३, ९१, १००८,
११६१, ६२, १४१५, १८४०, ९७.

रुश्रती a maiden ९६५, ८४.

रुश्र harsh १०७१, १९७०.

रूप handsome form or appearance; a kind
of punishment ६५७, ७४२, ८६१, ८८,
९०६, १००१, ३०, ३२, ४८, ९६, ११४६, ६६,

१२६०, १३७६, १५९७, १६१४, ६७, ७४, ८३,
८४, ८६, ८७, १७५७, ६३, ७१, १८३६, ४०,
८५, ९७, १९१५, १७, ३६, ५३, ५४, ६२, ६५,
७७, ८६.

रूपदर्शक a superintendent of coin १६७५.

रूपाजीवा a harlot १८५०.

रूपाभिगृहीत one who is seized with stolen
articles १६८३.

रूपाभिग्रह seizure of stolen articles १६८२,
८३, ८४.

रूप्य silver ६३४, ८९९, १६७४, ७५, १९६७.

रूप्यनिष्कक a particular silver coin १९६८.

रूप्यमान a particular measure १९६८.

रूप्यमाषक a particular silver *Māsa* १७६७.

रेवणस् property left by bequest; inherited
possession १२५३.

रेतज (son) born from (one's own) seed
१२८७.

रेतस् semen virile १११३, १८३७, ४०, ४१,
१९७७.

रेतोथस् the giver of the seed; a begetter
१२६७, ७१, ८८, १९८५.

रेतोधा a woman begetting a child from a
man other than her husband १०१७.

रेष्मन् a whirlwind ८४२.

रै property; possession; wealth ८१०, ११२०,
५८, ५९, १२५३, १९००, ०२.

रैमी a particular verse in *Atharvaveda*
८११, १०००.

रोग illness; disease ९२१, १०९७, ५३, ६४,
१३८९, ९८, १६६७.

रोग (षण्ड) one who has been deprived of
his potency by illness १०९४.

रोगार्त suffering from disease ७११, ८४, ८५४,
१०५६, १३९३.

रोगिन् suffering from a disease ७०७, ०९, ८७,
८०४, ७५, १०५६, ५७, ११४७, ४८, १३९३,
१७५९, ७९.

रोचना a particular yellow pigment ९०९,
१०२८, १९७६.

- रोचनी cornhill १२६.
 रोचमाना pleasing १६४, १०५३.
 रोद wailing १००३.
 रोदसी heaven and earth १६४, ७०.
 रोष obstruction; a lock-up १६९०.
 रोम hair १६७३, ७७, १७३५, ४७, ४९.
 रोमश hairy; the pudenda १२२, ७४, ८८.
 रोमशा a woman १६६.
 रोष anger; irasibility ८६२, १११९, १६१६.
 रोषदान gift through irasibility; gift for the sake of taking vengeance ७९४.
 रोषित infuriated १६२१.
 रोहिणी a particular constellation १०७७.
 रोहित a female deer १८४०.
 रौद्र concerning Rudra १८९७.
 रौरव a particular hell १६५१, १९६५.
 लक्षण mark; land mark; characteristic ६४८, ८६१, ६३, ९३७, ४४, ४६, ५८, १०३३, ५०, ७०, ११३१, १६४२, ८४, १७८८, १८८४, ८९, १९२७, ४०, ४५,
 लक्षण्य having good signs १२४३.
 लक्षित marked १६१, १०७०, १११९, १७०७, ६१, १८००, १९२७.
 लघुड a staff १७०२, १८३०.
 लयक a surety; bail ६०८, २८; ६१, ७३, ७७, ७८६.
 लङ्घन transgression; insult १६१८, १९७८.
 लङ्घिन् a transgressor ८७७.
 लता a creeper १६०९, ७०, ८७, १७९८, १८००, २३, २३.
 लब्ध obtained; (a slave) received (as a gift); acceptance; ancestral property; adopted (son); ८०५, १७, २९, ७५, ९१९, ११२३, २९, ३१, १२१५, २३, २४, २५, २७, २८, ३२, १३५०, १४५३, ५४, ५९, १५७४, १६६८, ८१, ८३, ८४, १७५७, ६३, ६६, १९०७, २८, ६७, ७६, ८५.
 ललाट the forehead १६०६, ०९, २७, ४४, ८७.
 लव wool; hair ६१२, ३०.
 लघुन leek १०२५, ७१.
 लाक्षा lac १६७४, १९३८.
 लाङ्गल a plough ७६४, १९६७.
 लाभ interest; profit; finding or friendly donation ६२४, ३१, ३४, ३५, ३६, ५१, ७२९, ३४, ७७, ७९, ८४, ८५, ८६, ९०, ८००, ०४, ४७, ४९, ६२, ८८, ९१, ९६, ९७, ९५१, ८६, ११२६, १२२३, १४६१, १६८४, १७३१, १९१५, २५, ४२.
 लाभहानि loss of interest ६४८.
 लिखित a document; written; N. of a law-giver ६५७, ६१, ६९, ७८, ७९, ७१३, २९, ३१, ८७३, १४५७, १९००.
 लिङ्ग a mark; generative organ ७३७, ९३५, ४४, ५१, १६८०, ८३, ८४, १८२२, ४२, ५०, ७४, ८६, ९१, १९५८.
 लिङ्गिन् wearing a distinguishing mark (like the Buddha ascetic); an ascetic ७११, १४०४, १६८३, १९२७, ४२, ४६.
 लिङ्गोद्धार removal of the male organ १८४१.
 लिच्छिविक N. of a people ८६२.
 लिबुजा a creeper ८५७, ९७८, ९६, १८३६.
 लुण्ठन seizing; pulling १७९६.
 लुब्ध covetous ७९३, ८६८, ७३, १५७३, १९३९, ७५.
 लुब्धक a hunter १०३८, १९२५.
 लेख writing १८८१, ८७.
 लेखित a written bond १२२२.
 लेख्य written statement; document ६०८, ३६, ५४, ५६, ६०, ७६, ७९, ८९, ९०, ७०६, २५, २६, २७, ३०, ८६, ८६३, १५६९, ८०, ८१, १७६३.
 लेख्यद्वय done in writing ६८५.
 लेख्यक्रिया writing ८७३.
 लेख्यप्रत्यय documentary evidence ९२५.
 लेख्यारूढ committed to writing; recorded ६२८, ५०, ९५५.
 लेपन anointing १११९, १६८५.
 लेपमाज् a paternal ancestor (in the 4th, 5th, 6th degrees) १३८३.

लेपिन् see लेपमाज् १२६५.

लेश inferential evidence १७५३.

लोक the world; people; heaven ६०१,
०२, ०३, ०४, ०५, ७६, ७९४, ८०८,
१९, ३१, ८६, ९०३, २४, २५, ३४, ८३,
९१, १०००, ०१, ०२, ०६, ०९, १०, २०,
२२, २६, २७, २८, ३०, ३३, ५१, ६४, ७५, ७६,
७७, ७९, ११११, १२, १५, १८, १९, २२, ६१,
६२, ९७, १२४४, ६० ६१, ६२, ६४, ७१, ७९,
८२, ८३, ८४, ८६, ८९, ९७, १३०२,
२९, ५०, ७७, ८५, ९०, १४७४, १५२४, ८०,
९२, १६००, ०२, ०३, ४६, ५२, ५५,
९४, १७०१, २७, ८७, ९१, १८४१, ५६, ६९,
८७, ९०, ९१, ९६, १९०२, ०५, १६, १८, २९,
३०, ३१, ३६, ४०, ४३, ६५, ६६, ७०, ७१,
७४, ७८, ७९, ८१, ८३, ८४, ८५, ८८.

लोकगुप्ति protection of the populace १३८४.

लोकपाल a king १९३०.

लोकप्रचार popular tradition १७६७.

लोकमातृ the mother of the world १०३३.

लोकयात्रा worldly affairs; conduct of men
८६१, १०५१, ५२.

लोकाचार popular usage १५१२.

लोक्य conducive to the attainment of a
better world १२६२.

लोचन the eye १०३२, १८९१, १९८५.

लोप loss १०३८, ३९, १९३३, ४१.

लोपामुद्रा N. of a woman ९६८.

लोभ stolen thing १६८२, १७४०, ५२, ६०, ६२,
६५.

लोभ covetousness ६१०, ५१, ८५५, ६१, ६४,
९५२, ५७, १०२२, १२४३, ८६, १३७६, ९७,
१६२९, ४५, ४६, १७०६, ५९, १८८५, १९१४,
२७, ६५, ७५.

लोमन् hair; wool ६०७, ७६५, ९५, १६०३, २१.

लोमपाद N. of the king of *Angas* १३२९.

लोष्ट a lump of earth ९५१, १६२१, ३०, १७९९,
१८९६, १९, १६३३.

लोह iron ६२६, ७३१, ८९४, १६७०, ७७, ६०,
१७५५, ४६, ६५, ६७, ९९, १९३१, ३६.

लोहित red-coloured; copper; blood ९९६,
१२५९, १७९३, १८०३, २९, ४५, १९७७.

लौकिक secular; customary ८०७, १११८, १९६८.

लौकिकी यात्रा worldly intercourse १३९२.

वंश the line of pedigree; a family; the
bamboo १०३०, ३१, १२०४, १३२९, ८४,
१५६९, १९८५.

वंशपरित्यक्त one who abandons his family
११११.

वंशमात्रकर a mere propagator of family
१३५५, ७४.

वंशवृद्धि growth or continuity of a family
१२८५.

वंश्य member of a family ९४७.

वक्तव्यता aspersion ९०७.

वक्तु a speaker ८७६, १००४, १६४९, ८०, १७९२,
१९४२.

वक्त्र the mouth १०२५, १७७६, ८८, ९४.

वक्षणा udder १००२.

वङ्ग tin; lead; brass १७६७.

वचन speech; saying ६०९, ३६, ७५३, ८६७,
६८, ७४, १११९, १७७०, ७८, ८६, ९१,
१८५०, १९४०, ६४, ६५, ८५.

वचस् see वचन १०८४, १५९६, ९७.

वज्र *Indra's* thunderbolt ६०९, ८१२, ९४,
९१८, १३८५, १५९७.

वञ्जक a deceiver ७८५, ८९६, १६९३, १७५८,
५९, १९१४, २९.

वञ्जना fraudulent act ७८५.

वडवा a female slave; a harlot; prostitute
८३२, ५१.

वडवामृत a kind of slave (one enslaved on
account of his being connected with
a female slave) ८३२.

वडवामुख N. of the entrance to the lower
regions at the south pole १०३३.

वडवाहृत vide वडवामृत ८३०.

वणिक्पथ way of merchants; commerce ८८८,
१५८१.

वणिक्वीथी assembly of merchants; market-

- ९८, ११०९, १६, ८३, १२८५, ८६, १३७४,
८४, ८५, १४६३, १५९८, ९९, १६०३, ६७,
१७९३, १८९१, ९६, १९७५, ७७, ७८, ८४,
८५.
- वरुण choice १०९३, १८४८.
- वरुण benefactor १०३१.
- वरदान the granting of boon or request
१३९१.
- वरदोष fault or defect of a wooer or bride-
groom ८७९, १०२३, १९७५.
- वरप्रयोग living by skilful fraud १६८३.
- वरयितृ a bridegroom; suitor ८७९.
- वरुण N. of a deity ५९९, ७९२, ८५८,
९७६, ८३, ९१, ९७, ९८, १००१, ०५, ११४३,
१४६४, १५४०, ९१, १६०१, ०३, १८३६, ३७,
३८, ४०, ५१, ९३, ९६, १९३०, ३३, ४३, ७०.
- वरुणपाश *varuna's* snare १००६.
- वरुण्य belonging to *varuna* १००८, १८४१.
- वर्ग a class ८३०, ६३, ७६, १११९, १६८०.
- वर्चस् energy; vigour; excrement ९८६,
९६, ९९, १००१, ०२, ०३, १२५९.
- वर्चस्स्थान dung-hill ९५३.
- वर्ण colour; caste ६०९, १०, १२, २४, ७०४,
३७, ५०, ८०९, १६, १८, १९, २४, २९, ३५,
३६, ३७, ४०, ६०, ७८, ७९, ९३०, ६८, ९२,
१०००, २३, २४, २७, २९, ४६, ६८, ९८,
११०५, १५, २०, ३०, ३१, ४२, ८३, ८४,
१२३८, ३९, ४०, ४३, ४४, ४५, ४९, ५१, ६६,
८५, ८६, ८७, १३६५, ९१, १४७३, ७८, ७९, १५९८,
९९, १६०७, १५, २३, २७, ५६, ६६, ७१, ७४,
७८, ८३, ८५, १७५३, ८३, ८४, १८२८, ४५,
४६, ५६, ५८, ६२, ८२, १९१६, १७, १८,
२०, २१, ३५, ४०, ४१, ५०, ५४, ५७, ६२,
६४, ८८.
- वर्णक्रम the order of the castes ६१९, १०५३,
१२४३.
- वर्णसंकर confusion of the castes ११०४, ०६,
१६०८, १२, १८५६, १९३३, ४१.
- वर्णसंसर्ग confusion of the castes १९३१.
- वर्णानुक्रम see वर्णक्रम ६१०, १२४०.
- वर्णोत्तर inferior in caste १२५०.
- वर्णिन् a person belonging to one of the
four castes १९६५.
- वर्णोत्तम member of the highest caste १६१८.
- वर्षिकी wife of a carpenter १११८.
- वर्धन increase; aggregation ८६०, ९०२, ४६,
१११४, १९, २९, १९१४, २३, २४, ६५, ८२,
८४, ८५.
- वर्मन् an armour; bark ६१०, ३०.
- वर्ष a year; rain; rainy-season ९२७, ४२,
१०४३, १२८१, १३५०, ५१, १५७०, १७९३,
१८४८, १९२४, ६५, ८२, ८४.
- वल N. of an *Asura* १९८०.
- वलय a courtyard ९०६.
- वल्क see वल्कल १६७७.
- वल्कल the bark of a tree १०२८, १७३३, ३५,
४७.
- वल्ली a creeper ९३३, १६०९, ७०, १७१९, ९८.
- वशा a barren woman १९५१.
- वसद्कार the exclamation *Vasat* १००८.
- वसति a dwelling place; residence; abode
९६२.
- वसन a dress; clothes ८०२, १८, ९४०, १५२०,
१९८१.
- वसिष्ठ N. of a law-giver ६०३, ०९, ११, २४,
१०५१, १२८२, ८५, १६५६, १९६५.
- वसीयस् being more wealthy or opulent
७९१.
- वसु wealth; property; N. of a deity
६३१, ८५८, ९९, ९७४, ८१, ८३, ८८, ९९,
१००१, ०२, ०३, ११५८, ५९, १२५७, ५९,
१३२४, ९२, १४२२, १९००, ८०.
- वसुदेव N. of a son of *S'ura* १३७६, १९८६.
- वसुधा the earth; country ७६४, १९८२.
- वसुन्धरा the earth १९८६.
- वसुयु desiring wealth ११२१.
- वस्त a he-goat ११६६.
- वस्तु object; article ८०७, १०.
- वस्त्र a garment; clothes ६१०, २१, ९६, ३०,
३५, ६८, ७३१, ८७०, १०६९, १३७६, १९,

१२०६, ०९, १९, २२, २३, २८, ३३,
१३६४, ७४, ७६, ८५, ९३, १४०४, १६,
१६१४, ४६, ६९, ७१, ७४, ८०, ८२,
८५, १७९८, १८००, ४९, ८१, ८५, ८७, ८९,
१९५२, ७१, ८७, ८८.
बस्त्रमिश्रण a dress १०९८.
वस्तु price; value ८७८.
वस्तु valuable १८९४.
बहलु wedding; the bridal procession; nu-
ptial ceremony ९७१, ८४, ८५, १०००, ०१,
०२, ०४, १४२३.
बह्नि fire ९५९, १०३२, १२५४, ५५, १८९६, १९३६,
६७.
बह्निचय a fire-place; hearth ९५३.
बह्यशीवरी reclining on a couch or palan-
quin ९९८.
बह्यशया see बह्यशीवरी ९७३.
बाका; chattering ९९९.
बाक्पास्थ harshness of speech; defamation
१०२२, ३५, १६१५, १७६८, ७१, ७३, ८४, ८७,
८९, ९१, ९४, १८०१, ३०, ३१, ३३.
बाक्प्रतिपन्न accepted by word ६७९.
बाक्प्र speech १७९९, १८९१, १९२२, ४१, ४२,
८५.
बाक्प्रकरण executing the commands or words
of १३५०.
बाक्यानुयोग trial; cross-examination (to elicit
confession) १६८५, ८७.
बाक्शूर harsh in speech ८६०.
बाक्जीवन a buffoon ८४३, १७७२.
बाक्दण्ड verbal rebuke or reprimand १०३५,
१८३३.
बाक्दुष्ट a rude or insulting speaker १६२२,
१७८७, ९१, ९२.
बाक्पिन्दम reprimand and censure ८७४.
बाक्रोध the abstraction or suppression of
speech १७९६, १८१७.
बाक् speech; language ७२४, १०१२, २२, ५३,
६४, ६५, १११३, १७७५, ८८, ९१, ९४, ९५,
१८४७, ४३, ६५, ९३, ९४, १९०३, ३६, ७०,

७४, ७५, ८१, ८५.
वाक्चिक a (deposit etc.) accepted by words;
consisting of words; slander ८९८, १७८१
८९.
वाक्च्य to be blamed ७२१.
वाक्च्य valuable possession; wealth food;
sacrificial food १००४, ११२२, १९००.
वाक्चयेय N. of a sacrifice १९७६.
वाक्चयवस् the patronymic of the father of
Naciketas ७९१, १००५.
वाक्चयवस्ति victory; the winning of a prize or
booty (Monier Williams); distribution
of food (*Sāyana*) ६००, १००४.
वाक्चिन् spirited; warlike; steed ५९९, ७७५,
९०५, १९, ७२, ७३, ८१, १००१, १२५३,
५४, १७३६, ४५, ६१.
वाक्चिमेष N. of a sacrifice १९८५.
वाक्चिक् fence ९०६, १६२०.
वाक्चिका a garden; plantation ७९०.
वाक्चिज्य commerce; trade ७८४, ८१९, ४७,
११३०, ३१, ४२, १९२७, ३६, ८५.
वाक्चि wind or wind-god; N. of the father
of *Hanumant* ८४२, १३२९, १९८०.
वाक्चिरेतस् (an impotent) one whose semen is
evanescent as air १०९४.
वाक्चायन a window ९२६, २७, ५३, १६८५.
वाक्चासीमाण्डवीपुत्र N. of a teacher १९८२.
वाक्चि discussion; dispute; plaint; litigation
६७३, ७६, ७६५, ६८, ८३४, ४०, ५३, ९६,
९५१, १२२५, ८२, १७७४, ८७, ९३, १९१४.
वाक्चिप्रतिभू surety in litigation ६७६.
वाक्चिकृत (a suit) preferred by litigant १९१५,
४०.
वाक्चिन् a disputant; plaintiff and defendant;
accuser ७३०, ६६, ६८, ८६७, ६८, ७४, ९९८,
१०१५, १७, ७५, ८८, १४००, १६१८, १७७०,
८७, १९४१, ४२.
वाक्चि a musical instrument १३६४, १९३५.
वाक्च्य bridal garment ९८४, १००३.
वाक्चिस्थ a *Brahmana* in the third stage of

- life १३७३, १४७१, १५०९, १६०१, १९४४, ८६.
- वानलटी an outer part of the house ९२६.
- वानवेतन wages of wearing १६७३.
- वानस्पत्य a tree १००२, १७२२.
- वाप sowing ९३०.
- वापगोपनसंग्रहाः sowing; protecting and reaping the harvest ९५४.
- वापन the act of sowing ७९२.
- वापिका a reservoir of water; tank ९६२.
- वापित sown (as seed) ९१८.
- वापी well; a pond; pool ७९०, ९३४, ४८, ५०, १२२२, १६१३.
- वामक a particular mixed tribe १२८७.
- वायव्य N. of a particular *Soma* vessel shaped like mortars; the north-west १२५८, १५९४.
- वायु the god of the wind १००६, ११४३, १५९४, १९३०.
- वायुगीता sung by the wind god १०७१.
- वायुप्रोक्ता cited by the wind god १११६.
- वार sluice-gate; a day ९३०, १९६६.
- वारण elephant १७६१.
- वारि water ६५४, ८५४, ९५२, १९२१.
- वारिक ward; adviser ९४९.
- वारक a melon १७६१, ६३, ६७.
- वारुण relating to the god *Varuna* १९३०, ६४.
- वारुणी any spirituous liquor १०१६.
- वारुण्य relating to the god *Varuna* १८९६.
- वारिष्ठ chosen १५९८, ९९.
- वार्त्त N. of the wife of *Practas* १०२८.
- वार्त्त trade; the science of livelihood ८६२, १७५७, १९३६.
- वार्त्तक(वय) senility ९५०, १०२३, ७६, ८३, ९९, १३४९, १५५५, १९८७.
- वार्त्तक usury ६२९.
- वार्त्तुवि(विन्) usurer ६०९, २४.
- वार्त्तुविक vide वार्त्तुवि ६०९, २४.
- वार्त्तुव्य usury ६३१.
- वार्त्त relating to the *Rshi Vrishā* १९८९.
- वार्त्त relating to a *Sūdra* १९३७.
- वार्त्तिक annual ६११, ७९४, १५६०, १९३०.
- वार्त्तियणि N. of a *Rshi* १६६५.
- वार्त्त the hair of any animal's tail ९०९, १८६७.
- वालुका sand ९३४.
- वावाता a favourite wife (of a king) १००४, ०५, ०६, ०९.
- वास residence; garment ८४२, ९४९, १०४८, १११४, १३७२, १४५७, १५६१, १६१६, १९, ८२, १७०२, ४०, १८६१, १९४२, ८६.
- वासनस्थ veiled in a garment or a piece of cloth ७४५.
- वासव N. of *Indra* ९९९.
- वासस् clothing garment ६०४, ७६२, ८११, ६०, ९४, ९३७, ५७, ८४, ९६, ९७, १०००, ०१, ०३, २५, ९९, १११३, १२४४, ५४, ५९, ६०, १३६३, ८४, ८५, ९०, १४०२, ७३, १५२०, १६४२, ४५, ६५, ७४, १७०९, १६, ३३, ४५, ४८, ५०, ६७, १८५२, ८१, ८५, ८९, १९२७, ६६, ८१, ८४.
- वासि an axe १८९७.
- वास्तु a dwelling place; home; habitation; immovable or landed property ९२६, २९, ५५, ५८, १२३३.
- वास्तुविक्रय the sale of the land ९२९.
- वास्तुविभाग division of land १२०७.
- वास्तुविवाद law-suits about land ९२६.
- वास्तोष्पति N. of a deity ९८१, १८३७.
- वाह a carrier ८४२, ९२३, १९४४.
- वाहक a driver; carrier ८४६, ५०, ५३.
- वाहन a vehicle; carriage ७३१, ८५०, ६३, ९६१, १००२, ११९८, १२२३, ३१, १५८४, १६१८, २१, १९२८, ३०, ८७.
- वाहनकोष्ठ stable of horse etc. ९३०.
- वाहिनी a boat १९४४.
- वाह्य cattle; an ox or horse ६०७, १२, ३०, ३४, ७८६, ८९१, ९२, ९४, १२२२, ३०, १४५४, १९३५.

चाह्यजीविन् a cart-man; living on the profession of vehicle १९३५.

विकर one whose hand is cut off १६६९.

विकर्मन् prohibited work १११६, ५२, १३९६, १६४९, १७१०, १९०७, ७६, ८४.

विकर्षण dragging asunder; searching; investigation ७३१.

विकल mutilated; maimed १३८९, १९८५.

विकल्प assignment of share; discrimination of share; alternate १२८२, १९०६, ७८.

विकृत with disfigurement; changed १७०५, ६५, १९३० ३८.

विकृष्ट a tilled piece of ground ९४४.

विकेशी N. of a class of demonical being of loose hair १००३, १८३९.

विक्रय sale ६३२, ३८, ५०, ५४, ५६, ७३२, ३४, ३५, ३६, ३७, ५४, ५९, ६०, ६२, ६९, ८९, ९२, ८०३, ०४, ०५, १७, ३७, ७८, ८९, ९१, ९६, ९९, ९००, ०१, २८, ३०, ३१ ३२, ११३०, १२५५, ७३, ८६, १३८४, ८५, १४२४, ४९, ५५ १५२३, ७५, ८५, ८७, ८८, ८९, १६७४, ७७, ७८, ८१, ८३, ९५, १७०७, ३१, ३३, ३६, ४१, ५४, १९०४, १९, २७, २९, ७२, ७५, ८३, ८८.

विक्रयिक a seller १६६९.

विक्रयिन् a seller ७६१, १६०९, ११, १८, १७०५, ३२, ५८, ६६, ९७, १९३०, ३२.

विक्रीणान a seller ८८८, १६१७, ७७.

विक्रीत sold ७६०, ६४, ६७, ७८, ८२३, ३३, ८५, ८९, ९५, ९४७, १३३४, १६७९.

विक्रीतक्रीतानुशय rescission of sale and purchase ८७८.

विक्रीता (girl) sold १२८६.

विक्रीयासंप्रदान non-delivery of a sold chattel ८८६.

विक्रेतु a vendor; seller ७५७, ६१, ६३, ६५, ६६, ६८, ८७९, ८४, ८७, ८८, ९१, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९ ९००, ०१, १६३७, ७८, ८०, ८३, १७३२, ६७, १९३३. ७५.

विक्रेत्रनुशय repentance of a seller ९००.

विक्रेय to be sold ६५६, ८८५, १२८६, १३२९,

१७३३, १९३८, ३९.

विक्रोष्टु one who calls out or cries for help १६३४.

विख्यापन declaration १६५९.

विग्रह dispute १९१५.

विचारणा decision; pondering ९५१, ५५, १९७९. विचारित decided १२२२.

विचृत the act of loosening or untying; N. of two stars ६०३, ०५.

विचेष्टित conduct; behaviour १६३९, १९३२.

विच्छिन्नपिण्ड one whose line or genealogy from the first ancestor is interrupted; one who is subsequent to the fourth generation ११९९.

विजय conquest ८१९, १८९७, १९७०.

विजर्जरा prostitute ८४२.

विजातीय heterogeneous; belonging to different castes ८९०, १३५५.

विजानि strange; foreign; having no wife ८४२.

विजामातृ unsatisfactory son-in-law ९६४.

विजावन् potent १२५८.

विजित acquired by conquest ११२३, १८९८.

विज्ञात known ७६६, ६८, ६९, ८५, ९६, १२७०, १९५०, ६०.

विज्ञान knowledge ८३४, ४२, १०७१, ११९३.

वितथ unreal; futile ६६२, ६५, ७१, ८४०, १०४१, १७७६, ९२, १९६४, ७४.

वितर्दि an altar १९२५.

वित्त wealth; property ६११, २४, ६१, ७७, ७९२, ९९, ८१७, ९७९, १०१०, १२२७, २८, ४३, ८१, १३५५, ६४, ७२, १४१६, २९, ३२, ४०, ५५, ७३, १५२७, १६१२, १७२७, ६६, १८९५, १९१७, ४१, ४३, ४९, ५०, ५५, ६२, ६९.

वित्तागम source of wealth ११२६.

विदथ house (sacrifice as connected with the house) ९८३.

विदथ्या fit for a sacrifice ९६७.

विदारण tearing asunder १७९९, १८२२.

विदुः a kind of plant १९८३.

विदेव hostile to gods ८१४.

विद्य learned १२२७.

विद्या knowledge; learning ८२६, ३४, ५५, ६२, ७२, १०६१, ७६, ११०९, २७, ४१, ९३, १२१५, २१, २४, २५, २७, ३२, ६१, ६२, ८३, १३७६, १५५८, १६८१, १७५२, ९५, १९०४, ६२, ७३, ७४, ८७.

विद्याधन wealth acquired by learning; gains of science or learning १२११, २०, २१, २३, २५, २७.

विद्यानुपालिन् devoted to learning १२१०.

विद्याप्रतिष्ठा staking of knowledge; disputation १२२३, २५.

विद्याप्राप्त acquisition made by learning १२२४, ३१.

विद्याबलकृत (property) acquired by the power of magic or knowledge १२२५.

विद्यार्थ a student १६६६.

विद्यालब्ध acquired or gained by learning १२३०.

विद्यासंबन्ध relation by learning १०१३, २२.

विद्युत् flash; lightning ८४२.

विद्रुम coral ८८८.

विद्वेष hatred १६२३, १९१४.

विधन property-less; poor ६७८.

विधरण checking; restraining ९२४.

विधार्मिन् transgressing the religion १४५८.

विधवा a widow ६९८, ८६३, ९८०, १०६५, ६६, १११६, १७, १२५७, १३०८, ५०, ८४, १४०१, ०४, ६६, १९२२, ५१, ६३.

विधवागामिन् one who has intercourse with a widow १६३४.

विधवाधन widow's property १५२०.

विधवावेदन marrying a widow १०६७.

विधान rule; law; management ७५०, ८६, ८६०, ६१, ८१, ९११, १०२४, ६९, ११०२, ०६, ०९, १२४३, ४५, ५५, ९४, १३६२, ६४, ७१, ९३, १४३०, १८८४.

विधानक a rite १३७३.

विधानविधि performance of prescribed acts or rites १३७३.

विधि rule; law; a creator; activity; manner; rite ६२५, ३८, ५३, ५४, ६४, ७२, ७४, ७५, ७१०, ३२, ४१, ४६, ४९, ५१, ५४, ५९, ६३, ७०, ७९, ८५, ८८, ९०, ८०५, १९, ३४, ४०, ६९, ८८, ९६, ९४०, ४२, ४६, ५१, १०१९, २९, ३०, ६६, ६७, ७५, ८९, ९१, ९२, ९४, ९६, ११००, ०४, १०, १२, १९, २९, १२०३, २०, २३, ४४, ४६, ७८, ९४, १३३७, ४८, ६२, ७१, ७२, ७५, ७६, ८४, ९३, १४७९, १५८४, १६१६, ४८, ५०, ९०, १७२७, ४६, १८२५, ५४, १९०५, ०७, १०, ३१, ४१, ५२, ५३, ६२, ६४, ६६, ६७, ७८, ८५, ८८.

विधिदृष्ट prescribed by religious rule १२४३.

विधिपूर्वक according to rule; duly १२४४.

विधियोग the observance of a rule ७७६.

विधिवत् lawfully; according to rule १०१९, २१, ४१, ९१.

विधिवैषम्य contradiction with law ७३०.

विधृति a dam; barrier ९२५.

विध्वंसिता defiled १८९१.

विनता N. of the mother of *Garuda* ८४०.

विनय punishment; education ७२४, ५१, ६५, ८५१, ५३, ८७, ८८, ८९, ९१६, १८, १०३५, १६४४, १७८९, ९०, १८२६, २८, ३५, ८५, १९१२, १३.

विनष्ट destroyed; lost ६४२, ४९, ५५, ७३१, ३५, ३६, ३७, ९०४, ०५, ०८, १६, १६७३, १७४१.

विनाश utter loss; decay; destruction ६३८, ६०, ७५३, ५५, ५६, ८४३, ६०, ६१, ७६, ९१२, २०, ५९, १६२३, ३४, ४८, ५०, ५१, १७६४, ८१, १८३३, १९४२.

विनिपात ruin ७४०.

विनिमय exchange ८९०, ९१, ९६, ९९.

विनियोग use ११४२, १५५५, ६१.

विनीत educated; modest; well-behaved; obedient ८६१, १०२०, ७१, १११०, १४, १२२७.

विनेय punished or instructed ७२७, ८३, ९०,
८७१, ९४५, ४६, १०९७, ११७३, १७५९,
१८८४.
विन्ध्य N. of the mountain १९२१.
विन्न (the son) acquired १३३४.
विन्ना a married woman १०८३.
विपणि traffic; sale ११२७.
विपत्ति adversity; misfortune ६७१, ८०७,
१६७३, ७६, १७९९.
विपथ a kind of choriot ८४२.
विपरीत acting in a con trary manner; un-
equal unjustly ८६७, ९९, ९२९, ३८,
११४७; ४८, १६३९, ८२, १९१८, ३२, ६८.
विपर्यय transposition; alteration ६४८, ७३,
७२४, ४७, ६३, ९३४, ११३१, ८५, १६८५,
१८४७, ८२, १९३३.
विप्र a *Brāhmin*; a member of the first
and highest caste ७१५, २७, ८१९, ३५,
३६, ३७, ३९, ७२, १०१६, ६२, ७२, ११११,
१३, १६, १२४६, ४७, ५१, ८८, १३७४, ७६,
७७, १५२४, ३०, १६०७, २३, २८, ३७, ५२,
५४, ५५, १७०२, ६१, ६२, ७१, ७४, ७६, ९०,
९२, १८१५, ९१, १९२२, २७, ३१, ३३, ४३,
६१, ६५, ७४, ८९.
विप्रकार bad behaviour; offence १०३६, ३८,
१६१५.
विप्रतिपत्ति dispute; contrariety १९१९.
विप्रतिपन्न being mistaken १९१८.
विप्रदुष्टा deflowered woman; a bad woman
(procuress of abortion) १०४१, ५८,
१६३८, १९७९.
विप्रधन property of a *Vipra* १६४६.
विप्रयोग separation १०४४.
विप्रलुम्पक rapacious १७०१.
विप्रवाद varied statements १२८६.
विप्रसुता daughter of a *Brāhmin* १०२३.
विप्रस्व property of a *Brāhmin* ९२५, १२५२.
विप्रा a *Brāhmana* woman १११३, १८५८.
विप्रसुत a son by a *Brāhmana* wife १२५१.
विप्लव distress; calamity; confusion; off-

ence ७७७, ९२०, ११०१, १०, १६२३.
विप्लुत one who has committed offence
१०२५, १८६४.
विभक्त separated; divided; one who has
received his share ६७९, ८०, ९०, ९६,
७१४, ८०३, १०३५, ११४१, ४२, ६९, ७२, ९९,
१२०३, ४०, ४१, १५१८, २२, २६, ४१, ४३,
५६, ५७, ६१, ६५, ६७, ६८, ७२, ७४, ८०,
८१, ८२, ८४, ८५, ८७, ८८, १९८३.
विभक्तज a son born after partition १५६२,
६७, ६८.
विभक्तदायाद sharer of a divided oblation
१४६८.
विभक्तव्य to be divided ८७५, ११४२, १२२१,
३७.
विभक्त one who distributes; an apportion-
er ११५८.
विभक्तनीय to be divided १२२२.
विभक्तमान a distributor ११४४.
विभक्तिभ्यमाण being divided or distributed
११८३, १२६५.
विभक्तमान being divided ११९४, १४१६, २८.
विभाग partition; division; distribution ८९९,
११२४, २५, ३२, ४२, ५५, ५७, ६८, ७३, ८१,
८४, ८५, ९२, ९४, ९९, १२०१, ०४, ०७, ११,
२४, २५, २७, २९, ३०, ३२, ३४, ३५, ३८,
४०, ४३, ४४, ४५, ४६, ९७, १३१६, ४७, ५५,
८७, १४०४, ०५, १३, १४, १६, २७, ५७, ५९,
१५४१, ४३, ६३, ६५, ६७, ६९, ७१, ७२, ७९,
८१, ८२, ८४, १६८६, १९०५, २१, ५०, ७५,
८३, ८७.
विभागकाल the time of effecting partition
१२२९, ३१.
विभागधर्मसंदेह the fact of a legal partition
called into question. १५७९, ८२.
विभागनिह्व doubt or suspicion regarding
partition; denial or concealment of
partition १५७५.
विभागमाज् a sharer १५६५.
विभागभवना ascertainment of share

- १५७५, ८२.
विभागहेतु the reason of partition १५७५.
विभागानन्तरोत्पन्न one who is born after
partition १५६२.
विभागार्ह entitled to a share ११८०.
विभाजन division १२०३.
विभाज्य divisible १२०६, ०९, २५, २७, १९८३,
८७.
विभावक proof ७५१.
विभावसु N. of a *Rshi* १९८३.
विभावित being proved; caused to appear
७०७, १६, १८, १९, २७, ४९ ८९७.
विभाष्य to be devided १७६५.
विभिन्नमातृक of different mothors १२३८.
विभीदक die for gambling १५९१, १८९३.
विभूषा a jewel १६१६.
विमद a protegee of the *As'vins* ९६४, ६५,
८०, ८२.
विमांस unclean meat (e. g. the flesh of
dogs etc.) १६०९, १८, १७३२, ९७, १९३२.
विमिश्रण adulteration; mixture १७६४.
वियुक्त separated १०५५, ७६, ११०६.
वियोग separation; absence or want of ७५३,
१११०, १६, १८, १९१८.
विरञ्चि N. of a Deity १९६६.
विराज् brilliance; excellence; political power
१५९६, १८९६.
विरात्र midnight १६२०, ८३.
विरुद्ध contradictory १०२७, १९१८, ३१, ३५, ४२,
४३.
विरूप manifold; disfigured deformed ६०६,
९८९, १०००, ३०, ३२, ४८, १६७४, ८३.
विरोध contradiction; dispute; a litigation;
law-suit ७५६, ९२५, १११९, १२२९, १६११,
१३, २८, ३५, ८३.
विलेखित written ६५७.
विवदत् a disputant १९०७, २६.
विवदमान a disputant १९०७, ६७
विवस्वत् sun-god; N. of a sage १००४, ५८,
१११३.
विवाद case; law-suit; dispute ६२८, ७६,
७३०, ३४, ८८९, ९०७, १६, २९, ३०, ४०,
४४, ४६, ५५, १०२९, १६७४, १८९१, १९३३,
७०.
विवादपद a title of law ७९७, ८२४, ४८, ६२,
६९, ८६, ९३, १०९२, १६१५, १९२३.
विवादिन् contending party; a litigant ९३६,
१११९.
विवासन banishment १६५९.
विवास्य to be exciled or banished ८५९, १६११,
२७, १९०३.
विवाह a marriage; vehicle ६६२, ८०८, ७९,
९९४, १००४, ०५, ११, २८, २९, ३१, ३४,
५९, ६७, ९२, ९६, ९८, ११८४, ८५, १२३१,
३४, ६०, १३६२, ७१, ७६, ८४, १४१६, २८,
३०, ४०, ५२, ५३, ६०, ६२, ६३, ७४, १६५९,
१९२१, ६४.
विवीत pasture-ground ९०५, ०६, १३, १४, १६,
२०, २९, ३०, ३२, १६१९, २०, ३९, १७४३
५४, ६३.
विश् *Vaishya*; populace ७२९, ८०९, १०,
३६, ३७, १०२२ ९३, ११२२, १२४९, ५१, ८७,
१३९६, १५१८, १६०७, १७७९, ९०, १८४६,
५९, ९९, १९६१, ६७.
विशसन dissecting ९८४.
विशांपति a king १२८७, १३२९.
विशुद्धर्ण paid debt ७०६.
विशोध्य to be cleared or discharged ७८५,
८९६, १६५०.
विश्वपति lord of people ९९८.
विश्वपत्नी the mistress of a house ९६९, ९३.
विश्व all; universe ८०९, १०, ५७, १००१, ०६,
६९, १४२३, १५९५, ९७, १८३६, ९९, १९००,
७१, ७७.
विश्वकर्मेन् N. of a son of *Bhuvana* ७९१, ९२.
विश्वजित particular sacrifice ८०७.
विश्वस्तवन्नक one who makes breach of trust
१७५९.
विश्वामित्र N. of a *Rshi* १२६०, ६१, ७८, १३७६,
१९८१.

विश्रावसु N. of a deity १८२, १००२, ०३.
 विश्वास (surety for) assurance; trust; confidence ६७३, ७३७, ८६०, ७३, १५८२, १६७९.
 विश्वासक confidential ६४७.
 विश्वास्य surety for assurance ६७७.
 विष poison; the ordeal of poison ८०२, ९००, १०३२, ३३, ७६, १४६४, ६९, ७०, १६००, ०१, १२, १६, २६, ४३, ४७, ४८, ५०, १९१४, ३८, ६५, ६६, ६७.
 विषदा a woman giving poison १६१९, ३८.
 विषदायक a poisoner १६१९, ५२.
 विषदिव्य the ordeal of poison १९६६.
 विषम unequal; uneven; any serious calamity ७७०, ९०१, ०८, १६, ५८, ११८४, ९३, १२००, २२, १६१७, १७०५, ५४, १९३०, ७५, ८४.
 विषय object of senses १०४४, १११५, १६०६, ६४, १८५०, ७०, १९१४, २४, २५, ३६.
 विषयुक्त poisoned १६१५.
 विषहत dead due to poison १६१५.
 विषरूप different in shape or colour १००४, १८३६.
 विषुली many-sided ८९०.
 विश्कम्ब width; extension ९६२.
 विष्टप a world ९२३, १२७२, ८२, ८९.
 विष्टा excrement १३५०, १७७२.
 विष्णु N. of a deity १००२, ३०, ११४४, ८०, ८१, १५२४, १९७९.
 विश्वकसेन N. of a deity १३७६.
 विसंवाद dispute ६०८, ५६, ७१, ७३, ७५१, ८६३, ७४.
 विसत्राह one who has lost his armour १६०७.
 विसर्ग abandonment; repudiation; granting; bestowal ९२५, २६, १०७२, ११४६, १२५५, १३८५, १४१५, ५८, १६६७.
 विश्रम्भ confidence; guarantee ६६९, ७४६.
 विहङ्ग a bird १०७४.
 विह्वनच्छेद diminution in carding १६७३.

विहसन laughter १८४६.
 विहार enjoyment; sports १०२६, २७, ३६, १२८४, १६१७, १९७३.
 विहित prescribed; enjoined ८१६, १०३९, ११४२, १२४३, ६६, १७३०.
 विहीन destitute or deprived of; absent ६०८, ७२४, १२७०, ७९, १३०९, १९६४.
 वीचि deceit; a hell ९७६.
 वीणा a musical instrument ८९९.
 वीर a son; hero; a learned *Brahmin*; a king ८०९, १९, ९०२, ६४, ७२, ७५, ८७, ८८, १००२, ०५, १२५८, ५९, ६१, ८४, १३२९, ७६, १५९५, ९६, १६००, ५५, १८३६, ३९, १९५०.
 वीरण a kind of grass १८४५.
 वीरसु son-bearing ९८६, १००२, ८८, ११०९, १४००.
 वीरहत्या the killing of a man or hero १५९७.
 वीरहन् man or hero-killing; ९९५, १५९२, ९६, ९७.
 वीरुध् a plant; herb १६५७, १८२३, १९३८.
 वीर्य manliness; strength ९०३, १००८, ०९, ३१, १५९६, १८९६, १९७४, ८६.
 वृक a wolf ९०४, ०९, १६, ८९, १९००.
 वृक्ष a tree ८५७, ९६, ९१८, ४६, ५४, ५९, ६०, ६१, १५९८, १६००, २१, ९५, १७५४, ६०, १८२३, ३५, ३६, ९९, १९०२, २१, २९, ६५.
 वृजिन sin ६०१.
 वृत्त an opposite gambler १९००.
 वृत्ति a fence ९०५, १०, १७, १९७६.
 वृत्त behaviour; practice; happening ६२४, ७३८, ४१, ४७, ४८, ८६, ८०६, ६०, १०२४, २८, २९, ३०, ३३, ५६, ६०, ७५, ७७, ९१, १११६, ८५, ९५, १३८६, ९०, ९१, १४३८, १५१८, १६३५, ४८, ५०, ७५, १७५३, ६०, ९१, १८९१, १९१७, १८, ३०, ३२, ३६, ६४, ६५, ७४.
 वृत्तभाण्ड a brass-vessel १६१४.
 वृत्ति livelihood; conduct; occupation ६२४, ८३, ९९, ८१५, १६, १८, १९, २०, २५, २६,

- ५१, ६१, ६३, ६५, ७०, ७३, ७८, १०३२, ३४,
 ६०, ७७, १११३, ८०, ८५, ९८, १३८५, ९१,
 १४००, ०४, ३१, ६१, १५६८, ८७, १६४०, ४९,
 ६२, १७२३, ६६, ७१, ७२, १९२७, ३१, ३३,
 ३६, ३७, ३८, ४०, ७३, ७६, ८३, ८४.
 वृत्र N. of a demon ६००, ८०९, १०, ४१, ७८,
 ९९९, ११२०, ८१, १९७१.
 वृथादान idle promise or gift ६२७, ६३, ७८, ८५,
 ७०८, १५.
 वृथाभोग enjoyment in vain १०२६, १३९०.
 वृद्ध aged; old; grown ६८०, ९७, ७१२, ३७,
 ८१८, ६१, ७५, ९२५, २९, ३९, ४४, ४६, ४९,
 ५१, ५५, ५७, १०२५, ३०. ५८, १११४, १८,
 ४७, ४८, १२८५, १३७६, ९४, १४६८, १५१३,
 २६, १६०७, १२, २४, ३१, ८६, १७०१, २८,
 ७०, १९२१, २७, २९, ३१, ३६, ४४, ६२,
 ६९.
 वृद्धाश्रम the stage of renunciation ११६३.
 वृद्धि interest; rate of interest; prosperity
 augmentation ६०८, ०९, १०, ११, १२, १५,
 १९, २४, २५, २६, २८, ३०, ३१, ३२, ३३, ३५,
 ३६, ३८, ४०, ४२, ४५, ५०, ५१, ५५, ५८,
 ६०, ६१, ७७, ८०, ८१, ७०९, १५, २९, ३०,
 ३१, ३२, ३५, ८१, ८९३, ९५, ९४७, ४९, ११११,
 ९५, १२२८, ९४, १५२४, १६७३, ७५, ७७,
 ७९, १७०७, २८, ३०, ३४, ३५, ४७, ६३,
 ६७, १९०८, १४, ४३.
 वृद्धिकर (विधि) rule of interest to be paid on
 loan ६२५.
 वृद्धिविधि see वृद्धिकरविधि ६२७, ३५.
 वृश N. of a *Rshī* १९८९.
 वृश्चिकनन्ध a form of corporal punishment
 १६८७.
 वृष a bull ६९५, ९०६, ११, २०, १००९, १२३५,
 ४३, १६००, ३४, ७२, १९१४, २२.
 वृषण the testicle १८०३, २९, ४३, ८६.
 वृषभ a bull ९०५, १९, ७७, ८०, ८७, ९८, १०७३,
 ११६६, ८३, १२३४, ३५, ७२, १३५२, १८११,
 ३४, ३६.
 वृषल low or mean or wicked fellow;
 a *S'ūdra*; a dancer १६४८, १८९०, ९५,
 १९२२, ३७.
 वृषली a degraded woman; a *S'ūdra* woman
 ७७२, १०२३, १९४३.
 वृषाकपि man-ape; a particular deity ९८७.
 वृषोत्सर्ग letting loose a bull १३४९, १९८७.
 वृष्टि rain ८६०.
 वेणि the property of reunited co-parceners
 ११२६.
 वेणिका a boat १९२४.
 वेणी a braid of hair १०१६, १८८१.
 वेणु a bamboo ८२६, ९३३, १०३५, १६१४, ७०,
 १७१८, ४९, ९४, १८१२, ३५, १९२४, ७४.
 वेतन payment; salary ७७१, ७२, ८२८, ३४,
 ४३, ४४, ४५, ४६, ४८, ५३, ५५, ९२१, १६७३,
 ७४, ७५, ७९, १८७९, १९३६, ४०, ६९, ७५,
 ७६.
 वेतनादान non-payment of wages ८४३, ४६.
 वेतस् N. of a man, *Asura*, people or
 country ११६०.
 वेताल N. of one of *S'iva's* attendant १३७७.
 वेत्तु a husband; one who gets १०४०,
 १२६७, ७१.
 वेत्र a kind of large reed १६७२, ८७, १९३८.
 वेद the scriptures ६००, ८७२, ७३, १००६,
 २७, ३३, ७५, ११५८, ९५, १२६१, ८१, ८२,
 १३६३, ७६, ७७, ८४, ८५, १६०१, ०२, ०८,
 ४८, ५१, ५५, १७६८, ६९, ९०, १९२०, ४३,
 ६६, ८५.
 वेदन wedding; confession १०४०, १११६,
 १७५१, १८९४, १९२४.
 वेदि an altar ६०१, ०४, १००७, ३४, ९८,
 ११४४.
 वेदिका a balcony; shade (erected in a
 courtyard); courtyard ९५३.
 वेन N. of a king १०६८.
 वेश the keeper of a brothel; a brothel;
 dress १६७९, ९५, १७५४, १९२९, ४३.
 वेशा a prostitute ८६२.
 वेरमन् a habitation; house ९०६, २६, २७, २८,

- ३०, ४१, ५९, १०५३, ५८, १११२, १९, १२४६,
१६१८, १९, २०, ३९, ८१, ८३, ८५, ८९,
१७२४, १८००, ३२, ४०, १९७९.
- वैश्या a prostitute ८५१, ५५, १७६४, १८७९,
८३, ८४, ८९, ९०, १९४३, ७५.
- वैश्यामिन् one who visits prostitutes १८८४.
- वैश्यास्त्री a prostitute १९३५.
- वेश a dress ९२९, १६१६, ८६, १९८९.
- वैश्वन्तक mercury १६७५.
- वैजान a descendent of the *Rshi vijāna*
१९८९.
- वैण (ष्य) a particular mixed caste ११८५.
- वैणव made of bamboo १७१८, ४९.
- वैतस peculiar to reed ९८८.
- वैतहव्य a patronymic १४६४, १६००.
- वैदिक embodied in the *Vedas*; relating to
veda ७४१, १४०४, १५८८, १६५२.
- वैदेह belonging to the country of *videhas*
१९८१.
- वैदेहक a merchant; a man belonging to the
vaideha caste ७३७, ७१, ८४३, ७८, १०३८,
११०५, ८५, १६२०, ७७, ७८, ७९.
- वैदेहिका a woman of the *vaideha* caste
११८५.
- वैदेही N. of *Sita* १०७५, ७७.
- वैद्य versed in science; learned; a physician
(accounted as a mixed caste) ७१५,
१२०४, २०, २७, ८७, १७५८, १९८३.
- वैशव्य widow-hood १०३०, १११७.
- वैनासिकी having no nose (*Smṛtichandrikā*);
causing destruction (वैनासिकी) १०२४.
- वैन्य (पृथी) N. of a king ९२४.
- वैमाल्य divisible ८७७.
- वैशीतक made of the *terminalia Bellerica*
१९०३.
- वैश्याण्य commerce; trade ७३६, ३७, १६१९,
८४, ८६.
- वैश्याण्य see वैश्याण्य ६९६.
- वैर enmity ८६२, १५९७, १६४७, ८३, ८६,
१७७३, १९०६.
- वैरदेय wergild ९७२, १५९५, ९६.
- वैरनियतन requital of enmity १६०६.
- वैरहत्य murder १५९६, ९७.
- वैरिन् an enemy १६१६.
- वैरूप्य deformity १०५८, ८३, १११३.
- वैवस्वत coming from or belonging to the
sun १७५१, १९३६, ७०.
- वैवाहिक relating to marriage (debt, nuptial
present; property) ७१२, ८०३, १०२६,
११२९, १२२८, १४१६, २२, २८, ६३.
- वैशंपायन N. of a *Rshi* १२८४, ८५, ८६, १९८६.
- वैशेषिक peculiar ११३१.
- वैश्य a *vaishya*; a man of the third caste;
an agriculturist ६२७, ८०३, १७, १८, १९,
२०, २३, ३६, ९९९, १०२४, ३९, ९३, ११०५,
२३, २४, ३१, ४३, ८४, ८५, १२४०, ४३, ४५,
८७, ८८, १३६४, ६५, ७४, १५३०, १६०६,
०८, १०, १२, २०, २८, ३६, ७०, ७२, १७२१,
२३, ५२, ६६, ६९, ७१, ७२, ७३, ७४, ८८,
९०, ९२, १८३९, ४५, ४६, ४८, ५०, ५९, ६०,
६३, ६४, ९०, ९१, ९६, १९२१, २७, २८, ३२,
३६, ५०, ६५, ७६.
- वैश्यजात the entire *vaishya* caste १३६५.
- वैश्यवृत्ति profession of a trader ७५२, १९३७,
३८.
- वैश्ययोनि the *vaishya* caste १५९२.
- वैश्यस्व property of a *vaishya* १२४४.
- वैश्या a *vaishya* woman १०२२, २३, ११००,
०५, १२, १२३९, ४३, ४४, ८७, ८८, १८५९,
६०.
- वैश्यागम co-habitation with a woman of
vaishya caste १८९१.
- वैश्याज a son of a *vaishya* १२४६.
- वैश्याजात a son by a *vaishya* wife १२५१.
- वैश्यापुत्र see वैश्याजात ११०५, १२३८, ४०, ४४, ४५,
४७.
- वैश्वदेव a daily sacrifice १११९, ४२, १५८६,
८९, १८९६.
- वैश्वानर consisting of all men ६०२, ०३, ०५,
८१४, १५९३.

वैशामित्र belonging to *Visuāmitra* १२६१,
१८९१.

वैषम्य inequality ७७०, ८९८, ९९.

वैष्टिके dues of a compulsory servant; one
who does compulsory service १९२२.

वैष्णव worshipping *Vishnu* १३६३, १९६८.

वैष्णवीसुत a particular son; a son of a
S'ūdra १२६६, १३५२.

वैहारिक pertaining to sport ८६२.

वोदू a husband; bridegroom ७१५, ८८१,
१२५५, १३०६, ०८, ४७, १४२९, १९७५.

व्यक्तिकारक basis of evidence ६६९.

व्यङ्ग deformed १०३५, ९७, १८२७.

व्यञ्जन condiment; pretext ८६३, ११०६, १६६६,
७९, ८१, १९७१, ७८.

व्यतिक्रम transgression ६३६, ८८१, ९०७, ११,
१६, १०१८, ७६, १२६६, १६५५, १७७१, ७४,
८७, १८५३, १९३३, ३६, ४१, ७८, ८३.

व्यत्यास inversion; change ८००, ०५.

व्यपदिष्ट pointed out (by reliable persons);
proved १६६७.

व्यपदेश excuse; pretext १७८७.

व्यपलापिन् one who denies (the debt) ७२७.

व्यभिचार adultery १०२१, ३१, ५०, ५३, ६४, ८६,
९९, १४०२, ५७, १८८७, १९४१, ६४.

व्यभिचारिणी an adulteress १०१६, २२, २४, ३१,
८६, १३८७, ९०, १४००, ०४.

व्यभिचारिन् an adulterer ८६४, ६५.

व्यय expenditure ६००, ९६, ७३७, ८१, ८५,
९०, ८४४, ६१, ९६०, १०४७, ५९, ८५, ११०६,
१९, १२०१, १४४७, ५८, १५६५, ८०, ८१,
१६१८, ७९, ८२, १७३२, ४१, ४२, ५२, ५३,
६५, ९९, १८००, ०५, १९, २१, ३१, ३३, ४९,
१९२८, ७९.

व्ययन separation ९०२.

व्यवस्था regulation; decision ७२६, ३०, ५६,
१३७३, ८४, १९२१.

व्यवस्थित regulated; decided ६१८, ७४८, ५६,
८१, ८७५, ११९१, १२५१, ५२, १३१०,
१६, १५६८, ८७, १७८८, १९४३.

व्यवस्थिति see व्यवस्था १०४९.

व्यवहर्त्ता a transactor १७२९.

व्यवहार transaction; business; legal action
६२८, ३५, ७७, ७१७, ७३, २५, २७, ३७,
७६०, ६२, ६५, ६६, ६८, ६९, ९८, ८६१, ६२,
१०३४, ३७, ११३१, ४७, १६१३, १६, ७१, ८७,
१७६७, १८१३, १९०७, ०९, १२, २२, २७, २८,
३३, ३६, ४०, ४६.

*व्यवहारक business-man ७००.

व्यवहारज्ञ major in law ६९५.

व्यवहारपद a title of law ७४६, ८०, ११३२.

व्यवहारप्रापण attainment of majority १२००,
१९४८, ४९, ५०.

व्यवहारिन् a transactor १२०१, १६१६, ८०, ८३,
१७३२, १९३२, ३६.

व्यवहित concealed ७४७, ५०.

व्यवय sexual intercourse १०२१.

व्यसन danger; evil practice ६८०, ८४, ७१०,
१५, ३५, ८१, ८२, ८३, ९०, ८१७, ४४, ५०,
७३, ९१६, १०१४, ३८, १४५७, १६८५, १७६४,
१९१४, ३०.

व्याघात mutual malice १५८१, १९४१.

व्याघ्र a tiger ९१६, १८, १९, १२८७, १९६४.

व्याज disguise; fraud ७२७, ७८, ११३०, १९८३,
८७.

व्याजी an excess of 5% taken over the pres-
cribed fine, value etc. upto 100 १६१४, ७५.

व्याध a hunter ६७९, ८३, ९९, ७०८, १४,
९३७, ४४, ४७, ५१, १६८२.

व्याधि a disease ६११, ८४४, ७१, ९१८, १०३८,
१११४, १७, १४३०, ४७, १६५१, १७५९,
१९२४, ६५.

व्याधित diseased ६८०, ९७, ७१२, ३७, ७१, ८५१,
७९, १०२२, २५, ३०, ४१, ५६, ८७, १११२,
१७, ५५, १२६९, १३०४, ८७, १४५७, १६८६,
१७२८, १९२७.

व्यापाद killing १६४३, ४९, ८७.

व्याल a snake ८१२, ४३, ११११, १६, १७, १६१७,
१९२४, २५.

व्यालग्राह a snake-catcher ९३७.

व्यालमादिन् vide व्यालमाह ११११, १६, १७.
 व्याली a snake १११७.
 व्यावर्तन rejection ८९१.
 व्यावहारिक commercial ६११, १६८७.
 व्यासिद्ध prohibited; forbidden (as contra-
 band) ७७८.
 व्याहृत (debt) repudiated (by the father)
 ७०९.
 व्याहृति the mystical utterance of the
 names of the seven worlds १२७३, १३८५.
 व्युच्चरन्ती (a woman) being faithless or dis-
 loyal (to her husband) १०२७, १२८५.
 व्युच्चरमाणा see व्युच्चरन्ती १०२७, १२८५.
 व्रज a cow-pen; a herd ७३५, ९०४, ११०२,
 १६८२, १७५४.
 व्रजिक N. of a particular corporation or
 tribe ८६२.
 व्रण a wound १६६७, ८२, ८७, १७९९, १८०५,
 १७, ३३, ३५, ९१, १९६५.
 व्रत a religious vow or practice ८१०, १२,
 ९७६, ७८, ८१, ९२, ९६, ९८, १०००, ०३, ०९,
 ११, १५, १६, २२, २३, २५, ३०, ५८, ६०,
 ६९, ७५, ७६, ७७, ११०९, १५, २०, १४७३,
 १५११, २०, २७, १५९९, १७०२, ६६, १८३६,
 ३७, १९२३, ३०, ४३, ७९.
 व्रतति a creeper ८१०.
 व्राजपति lord of troop or host ९२४.
 व्रात a troop; group ८७०, १८९५.
 व्रात्य a man of the vagrant class; an out-
 caste १२३४, ८७, ८८, १८२७, ६१.
 व्रीडादान gift out of shame ८०७.
 व्रीहि grains of rice १०७१, १७२३, ४५, १९६६.
 व्रायु N. of a *Rahi* १७९३.
 वाकट a carriage ८५५, १६२०, ७२.
 वाकुन a bird ८१२, १९, ११२१, १२८१, ८७, १३५१.
 वाकुन्त a bird १२८७, ८८, १३५०, १९८२.
 वाकुन्तला N. of the daughter of *Menakā*
 १२८७, ८८, ३९८५.
 वाक्वत able १६०४, १७७३, ८१, १८२०, १९२६,
 ३३, ७४.

शक्ति might; power ७२४, ११०९, ११, ९८,
 १२२१, २४, ३०, १३४९, १६५०, ५३, १९६९,
 ७०.
 शक्र N. of *Indra* १२८७, १३९१, १८६९, ९०,
 १९४३.
 शक्रमा powerful; friendly १००२.
 शक्रात्मज *S'ankar's* son १३७७.
 शक्रा सस्य (of crime) १७४१, १७५२, ५३.
 शक्रानिष्पन्न arrested under suspicion १६८६.
 शक्रामियह arrest under suspicion १६८२, ८३.
 शक्रितक suspected (as a criminal) १६८६.
 शक्रकु a nail; spike १७७०, ५५, ८८.
 शक्र a conch-shell ८८८.
 शचीनाथ see शचीपति १९२४.
 शचीपति the husband of *Shachī* ९९९.
 शठ a rogue; ७१५, ८१९, १६३१.
 शतक्रतु an epithet of *Indra* ८६०, ९२४, ६९,
 ९९, १९७९.
 शतगु possessed of a hundred cows १६६०,
 १७२५.
 शतदाय giving or granting a hundred
 १५९५, ९६.
 शतमान a particular coin ८६४.
 शतवाही bringing hundred as a dowry
 १८४०.
 शताध्यक्ष the chief of hundred (villages)
 १९२१.
 शत्य amounting to hundred १०३८, १६१७,
 १७८१, १८४९, १९२२.
 शत्रु an enemy ६७२, ८०९, ६०, १०३३, १६८०,
 १९००, ६५.
 शद्र produce of a field ६०७, २९, ९१९, ५४,
 ६१.
 शपथ swearing; ordeal of *S'apatha* ६७३,
 ७२८, ४१, ५१, ८५, ८९६, ९५१, १६१०, ३४,
 ४८, ५०, १७५३, ५७, ६६, १८३२, १९२२, ६५.
 शफ an eighth; hoof ६००, ०१.
 शमल (धन) spotted (wealth) ११२९, ३०, १९८३,
 ८५.
 शमल blemish १००४, १५१४, ७

शमी the *S'amī* tree १३३, १७४५.
 शमीक N. of the son of *S'ūra* १३७६.
 शम्बर N. of a juggler १०३२.
 शम्या a staff of *S'amya* tree १०९, १६८२.
 शम्योष the grains or seed of a legume or pod १६६६.
 शयन a bed; couch १९८, १०२६, १९, १११९, ८४, १२३३, ४३, ५७, १४०२, ३०, ५६, १५२०, २७, १७६५, ९४, १८४३, ६५, ९०.
 शय्या see शयन ८६०, १०१६, २४, ४९, ८६, १२२३, १३८७, ९०, १४००, ७३, १५११, ५३, १६८१, ८७, ९०, १७९५, १८८५, ८७, ८९.
 शर an arrow १३३, ५०, ६१.
 शरण protection; home ७५०, ५२, ८६१, १२६०, १८८२.
 शरद् autumn १८९७, १९४३, ८५.
 शरपत्र a kind of grass १८४५.
 शरवर्षि a lair of reed १८४१.
 शरसृष्टि the point of a reed or arrow १८४१.
 शरमध्या a grand river १९४४.
 शरव्या an arrow-shot १६००.
 शरीर body ६०१, १०५४, ८५, १११६, १२८८, १३७४, १५१३, १६१६, ५२, ८५, १७६८, ७१, १८१२, ५०, १९८४.
 शर्करा pebbles १३४, ५०, ६१.
 शर्मैतद् sitting behind a shelter १६४.
 शर्मिष्ठा N. of one of the wives of *Yayāti* १३९१.
 शलम a locust १९२५.
 शलाका any pointed instrument; an ablong piece of ivory or bone (used in gambling) ६०९, १६१७, १९०४, ०५, १०, ८९.
 शलाकिन् a surgeon (?) १२१.
 शल्य a dart १८४१.
 शल्य an arrow १४८, ११२७, १९६३, ६४.
 शव a corpse १५१, १३०९, १९३५.
 शश a kind of meteor १८३९.
 शशीयसी N. of a woman १७१.
 शशक a weapon ८६१, ६२, ६३, ७१, १६०४, ०७, ०८, १२, १६, १८, २०, २३, २६, ३७, ४३, ४७,

४८, ५१, ५२, ५४, ६७, ६८, ८३, ८६, ८९, १७१२, १७, ६५, ९६, १८१५, १९२५, २९, ३०, ३८, ६५.
 शशकदातु one who furnishes arms १६४९.
 शशकपत्र weapon and vehicle (probably indicating *Ks'atriya* and *Vaishya*) ८६०.
 शस्य corn ६३३, ८३५, ५२, ९०५, ५२, १२८२, १९४१, ७६, १७५८.
 शक a vegetable ६३०, ३४, १३५०, १६१४, ५७, ६५, ७०, १७१९, ४४, ४९, ६६, ६७, १९२४, ३८, ८२.
 शाकुनिक a bird-catcher १३७, ४४.
 शाकुन्तल born of *S'akuntalā* १९८५.
 शाक्य a *Buddhist* १९२२.
 शाखा a branch १४६, ६०, ६१, ६२, १८००, २०.
 शाखिन् a tree १६२, १८२२.
 शाण a kind of measure १९६७, ६८.
 शाण्डिली N. of a deity १०२८.
 शातातप N. of a *Rshi* १३५५.
 शान्तलभ (debt) the interest of which has ceased to accrue ६५३, ७०६, २६.
 शान्ता N. of the daughter of *Dasharathu* १३२९.
 शान्ति expiatory rite १९२४, २५.
 शान्तिक expiatory (rite) ८७२.
 शाप a curse १३७, ५१, १३७४, १६१२, २६, ५०.
 शालुव्य a woolen garment ९८३.
 शारङ्गी N. of a woman १०५१.
 शारद bestowing autumns १००४.
 शारदण्डायिनी N. of *S'āra-Dandāyani* १२८४.
 शारीर corporal १६०९, १३, २७, ५२, ५९, ७१, ७२, १७७६, १८४५, ४७.
 शार्ङ्ग a lion १३२९, १९७६, ८५.
 शाल a kind of tree १९६५.
 शाला a house १२६.
 शालि rice १०७१, १९६७.
 शालीन(षण्ड) modest; one timorous (impotent) ८७३, १०९४, ९५.
 शालमली a particular tree १३३, १७०९, १९२७.

ज्ञासन order; punishment ८७२, ९४९, १०१९,
१६६७, ८९, ९५, १७०२, २९, ५१, १९२९.
ज्ञासनीय punishable १५८५, १८८८.
ज्ञासित taught १६५५.
ज्ञासुस् order ११५८.
ज्ञासुस् an instructor १६५५, १७५१, १८५१,
१९१८, २३, ८४.
ज्ञास्त्र scripture; law-book; science ६२४, ६०,
७१, ७१५, ८०४, २५, ३०, ३४, ६१, ९१, ९६१,
१०३२, ९४, १११०, ११, १३, १५, १९, ४२,
६६, १२४३, ४४, ६६, १४०२, १५२४, १६१९,
४२, ४३, ९२, १७६०, ८७, ८९, ९०, १८८५,
८९, १९१८, २९, ३१, ३५, ४१, ४२, ४३, ६५,
८८.
ज्ञास्य to be punished ७३५, ४३, ४९, ५५, ५६,
९६, ८१५, २६, ७४, ९१७, १६४६, १७६०,
९४.
शिलापा a kind of tree १९६५.
शिक्य the string of balance १९६६.
शिक्षक a teacher ७८८.
शिक्षा art; skill १६७५.
शिक्षित taught ८२७, १८४५.
शिखा see शिखा १००६.
शिखा a tuft or lock of hair on the crown
of the head ६२९, १३७४, १७९४.
शिखात्मिका vide शिखावृद्धि ६२९.
शिखावृद्धि hair-interest (i. e. interest recei-
ved every day) ६२९, ३०, ३१.
शितिबाहु having white fore-feet १८९७.
शितिवाल white tailed १८९७.
शिफा N. of a river; a stroke with a whip
९६४, १०३६, १६१०, ७६, १८६८.
शिरस् the head १५९७, १६१९, ४४, १७९८,
१८४०, ४५, ४८, ९०, १९७३.
शिरस्क (ordeal) with the condition of under-
going the punishment of defeat १९६५.
शिल्प art ७८७, ९०, ८१९, २४, २७, २८, ३४, ३५,
५५, ६२, १०६०, ११२७, ३०, ८१, १४५५,
१६६८, ९४, १९०४, २९, ७२, ८६.
शिल्पज्ञ an architect; artist १७५८.

शिल्पिदोष fault of a craftsman ७५५.
शिल्पिन् a craftsman; artist ७२७, ४९, ५५, ८७
८८, ८९, ९०, ८४३, ९५१, १६१७, ६२, ७६,
७७, ७९, १७३०, ६४, ६७, १९४१, ४२.
शिल्पिन्यास an article delivered to an artist
७५२.
शिशिर cold season १६८७.
शिशु a child ६९५, ९५०, १३६४, ७३, ९४,
१६६८, १९८४.
शिशु the penis १८३२, ४३, ८२.
शिष्ट educated; prescribed; residue ६६३, ७८,
८५, ७१५, ११०९, १५, १६०५, १९२०.
शिष्य a pupil ६९६, ७०८, १२, ७१, ८२५, २६,
२८, ३५, ६०, ११३१, १२२५, ५१, ५२, १३५५,
१४७१, ७६, ७९, १५०९, १५१८, २०, २३,
२६, २७, ३०, १६३५, ५५, ६८, ७२, ८०,
१७०३, १८१२, ३३, ३५, १९२२, ७४, ८३,
८५, ८६.
शिष्यगा (a woman) sexually uniting with
the pupil (of her husband) १०२१,
११११.
शिष्यगामिनी see शिष्यगा १०१४.
शिष्यवृत्ति the conduct of a pupil ८२६.
शिष्यशिष्टि punishment of a pupil ८१५, १७९४.
शिष्यस्त्री a wife of a pupil १८८२.
शिष्यागत acquired through (instructing) a
pupil ११२९.
शिष्यादास property received from a pupil
१२२३, २५.
शीघ्रपान drinking of the spirituous liquor
१९१९.
शीर्ष the head १००४, १५९७.
शील virtuous conduct; behaviour ६७३,
७७, ८३६, ९३१, १०२४, २५, ३१, ५७, ६०,
७६, ७७, ९९, १११७, १९, १२८५, १३७४,
७६, १६६०, ६४, ८०, ८७, १९३०.
शुक्तवाक्य stinking or harsh speech १७७१.
शुक्ति oyster shell ६०९.
शुक्तिका a particular disease of the Cornea
१०२२.

शुक्र the planet Venus; semen virile १०००,
१२७३, ८७, १३५०, ९१.
शुक्रन् one's own son १२८७.
शुक्ल(धन) white (wealth) १०६९, ११२९,
१३८४, १९८२, ८३.
शुचि pure ७३७, ८४, ८४०, ६८, ७३, ९२४, २९,
१०१७, ६९, ११०२, १५, १२६४, ८४, ८६,
१३६३, १४७८, १६६४, ७६, ८४, १९०३, १५,
३५, ३९, ४०, ६५, ६६, ७४.
शुद्ध pure ६३८, ७५९, ९९९, १००४, ११०९, १९,
९९, १२२८, १६१८, ४८, ७४, ७५, ७७, ८६,
९०, १९०४, ५०, ६१, ६६, ६७, ८५.
शुद्धवध capital punishment without torture
१६१८, १९, २९, ५२, ८८, १९२९.
शुद्धि purity; acquittal ७०६, ३७, ६१, ६३, ६५,
६७, ६९, ८३१, ९१६, १११९, १६८४, १७८८,
१८२५, २८, १९४०, ६७.
शुनःपुच्छ N. of a *Rshi* १२६०.
शुनःशेप N. of a *Rshi* १२६०, ७८, १३२९, ७३, १९८१.
शुनक N. of a *Rshi* १३२९.
शुनी a female dog १११३.
शुनोलाङ्गूल N. of a *Rshi* १२६०.
शुभ auspicious ८२९, ११११, १२८४, १३७६,
१५२४, १८१०, १९४३, ६५, ६६, ७४.
शुभस्पति the two lords of splendour
(applied to the *As'vins*) ९८१, ८२,
१००१, ०२.
शुम्भनी purifying १००३.
शुल्क price; tax; fee; nuptial fee (given to
the parents of the bride or bridegroom
at the time of marriage) ६३४, ६३, ७७,
७८, ८०, ८५, ७०८, १४, १५, ७८, ८३, ८४,
८९, ९९, ८१७, ३९, ५१, ६०, ७९, ८१, ९२१,
२८, १०२१, २४, ३४, ३५, ३७, ३८, ४०,
४२, ४३, ४४, ९८, ११०२, ०९, १६, ३०,
१२८६, १३४७, ७४, १४२८, २९, ३०, ३१, ४०,
४४, ५४, ६०, ६१, ६३, १६००, ११, ३५, ६१,
६६, ६७, ६८, ७१, ७९, १७०१, ५८, १८४८,
४९, ६६, ६८, ८४, १९२१, २२, ३६, ४१, ४४,
४७, ८३, ८५.

शुल्कद the giver of *S'ulka* ८३९, १०२१, ४३.
शुल्कदार see शुल्कद ८५१.
शुल्कनिकयिन् one who sells (his daughter)
by taking nuptial fee १९७९.
शुल्कस्थान toll-house ७७८, ८३, ८४, ८९,
१६६८, १७०६, ०८, १९२७.
शुल्कहर the receiver of the price paid for a
bride १०३४, १४३०.
शुल्कहानि forfeiture of the fee ८५१.
शुल्कादान receiving of a nuptial fee १०३४.
शुश्रूषक an attendant ८२५.
शुश्रूषण attendance; service ८१८, १५१६.
शुश्रूषमाणा attending १०७६.
शुश्रूषा service; attendance ८१६, १९, २४,
३४, १०२९, ५२, ५४, ७५, ११०९, ४२, १५२३,
१९७४.
शुश्रूषित served ११०९.
शुश्रूषु an attendant ८१८, १९, १३८५, १४०३,
१९७४.
शुश्रूष्य to be served १११०.
शुष्क dry १६८३, ८५, १७४१, १९३८.
शुक्र a boar; hog ९०५.
शूद्र a member of the lowest fourth caste
७२९, ९३, ८०३, १३, १४, १६, १७, १८, १९,
२१, २३, ३६, ३९, ७९, ९५, १०१६, २२, २३,
२४, २९, ३९, ४३, ९३, ११०५, १०, १६, १९,
२३, ३१, ४३, ८४, ८५, १२४०, ४९, ५१, ७३,
८७, १३१०, ३८, ५५, ६४, ६५, ७४, ७५,
१५१८, ३०, १६०६, १०, १८, २०, २८, ३४,
३६, ३७, ४८, ५४, ५६, ६०, ६७, ७०, ७२,
१७२१, २४, ५२, ६२, ६८, ६९, ७१, ७२, ७३,
७४, ७९, ८८, ९०, ९२, ९४, ९९, १८३१,
४२, ४४, ४५, ४६, ५०, ६२, ६४, ७४,
९०, ९६, १९०६, २१, २७, २८, ३२, ३३, ३६,
४३, ५०, ६१, ६५, ६७, ६९, ७७, ८२, ८९.
शूद्रकर्म duty of a *s'ūdra* ८१९.
शूद्रकल्प resembling a *s'ūdra* ८१३.
शूद्रगा (a woman) having sexual inter-
course with a *s'ūdra* १०३१.
शूद्रजाति the *s'ūdra* caste १३६५.

- शुद्धदान gift of a *s'ūdra* १९८२.
 शुद्धयोनि having its origin in *s'ūda*-caste;
 born of *s'ūdra* woman १०१७, १४०३,
 १९६८.
 शुद्धवध murder of a *s'ūdra* १६०६.
 शुद्धसधर्मन् equal to a *s'ūdra* ११८५.
 शुद्धा a *s'ūdra* woman १०२२, २३, २४, ९३,
 ११००, ०५, १२, १२४३, ४४, ७०, ८८, १३०९,
 ८५, १८३७, ३८, ४४, ५९, ६०, १९७८.
 शुद्धागम co-habitation with a *s'ūdra* woman
 १८९१.
 शुद्धापुत्र son of a *s'ūdra* woman ११०४, १२४०,
 ४१, ४४, ४५, ४८, ३६, ७८, ८३, ८५, ८६,
 ९०, ९६.
 शुद्धावरोधन son by a *s'ūdra* woman १४०३.
 शुद्धासुत see शुद्धापुत्र १२४६.
 शुद्धी wife of a *s'ūdra* १२५१, ५२.
 शूर valiant; N. of a king ७८४, ८८, ८९,
 ८६१, ९८७, १३७६, १९२१, ८६.
 शूर्प winnowing basket or fan ७६४, १८३७.
 शूल a stake for impaling criminals १६१८,
 १७११, ३६, ४८, ६०, ६१, ६५, १९२९, ३६,
 ६८.
 शूल्य to be impaled १८२९.
 शृगालयोनि jackal-species १०६४.
 शृङ्ग the horn of an animal ६०९, ९०५, १६,
 ८७, ९८, १९७६, ८२.
 शृङ्गिन् a horned or tusked animal १६१२,
 २१, ५१, १८२०, १९३३, ६६.
 श्लेष the penis ९८६, ९५.
 श्लेष remainder; N. of a child ६८०, ७०५, ०८,
 ७२, ९२७, १०३८, ११८४, १२५३, १४३०,
 १५२९, १६१५, १९१७, ४१, ४८, ५६, ६०, ८८.
 श्लेषण leaving surplus; a particular term
 in gambling १९०२.
 श्लेष an actor ६७९, ८३.
 श्लेषभोग use of a mountain १९४४.
 शैशिर N. of a teacher and founder of a
 supposed *s'ākhā* of *Rgveda* १३५६, ८४.
 शोक agony; sorrow ८००, ०४, ९९७, १०४६,
 १११३, १५, १७, १२६०, १९८४.
 शोणित blood ९५१, १२७३, १३८४, १७९६, ९९,
 १८००, ०५, १६, २२, ३१, ३२, ४९, १९६७.
 शोधन clearing ८२९, १११९, १३७६, १६९२,
 १७५३, ९२, १८८४, १९२९, ६७.
 शोधित cleared ६३०, ७६७.
 शोध्य to be cleared ७०८, १२२९, १८३३.
 शौक N. of a *Rshi* १३५६, ८४.
 शौच purity ७५०, ८७९, १०२९, ४७, ८६,
 ११०६, १५, १९, १६७९, १८४५, १९१३,
 ४२, ७६.
 शौच्योक्त a patronymic १२६१.
 शौण्डिक a vintner ६७९, ८३, ९९, ७०८, १४,
 २६, ८६२, ६३, १०३८, १६७९, ८२, १७१०,
 १९०७.
 शौद्र relating to a *s'ūdra*; the son by *s'ūdra*
 wife १३२०, ४८.
 शौनःशेष relating to शुनःशेष ७९२, १२५५,
 १९७५.
 शौनक N. of a *Rshi* १३६३, ६५, १५२४,
 १६०१.
 शौनकीपुत्र N. of a teacher १९८२.
 शौरवीर N. of a *Rshi* १७६८.
 शौरि a patronymic of *Vasudeo* १३७६.
 शौर्य valour in arms ११२९, ९३, १२२१, २७,
 ३१, ३२, १४०२, १५५८, १६९६, १९२९,
 ८६.
 शौर्यधन property acquired by valour १२२०,
 २३, ३०.
 शौर्यप्राप्त see शौर्यधन ८०३, १२२७.
 शौर्यहार्य see शौर्यधन १२३१.
 शौर्यागत see शौर्यधन ११२९.
 शौर्यान्वित see शौर्यधन ११४१.
 शौक्तिक an officer of tolls or customs १६११,
 १९४४, ५९.
 शमशान cemetery ९२९, ३२, १६१६, ८०, १८००,
 २३, १९२४, ३०.
 शमश्रु the beard as the sign of the *Vānapra-*
stha order in a *Brāhmaṇa*'s life १२६०.
 श्याम N. of a son of *S'ūra* १३७६.

झ्याव dark ८१०, ९६३, ६५.

झ्यावदत् having dark or discoloured teeth
९९२, ९५, १५९१, ९२, ९९.

श्रद्धा belief; N. of the daughter of *Prajā-
pati* ७९१, ९२, ८०३, ०६, ४२, १००६.

श्रम labour ८५१, ९६२, १२१२, ३२, १६५१,
१९८४.

श्रमण a mendicant १६०३.

श्रवस् glory; fame ११२२.

श्राद्ध a rite relating to Manes or dead
८५४, ९२०, १०२२, १११९, १२२३, ५२, ८१,
८४, १३४९, ५०, ५६, ६२, ७४, ७७, १५१३,
२४, २६, ६०, ८९, १९४३, ८२, ८७.

श्रान्त tired ८५४, १६८२, १७५२, १८३१, ३४,
१९३०, ३६.

श्रावण declaration (legal validity) ६६०,
९००.

श्रिया दत्त gift for artistic performance ८०८.

श्री wealth ७९२, ८८६, १२४४, १४२४, १८९७,
१९३०, ३६, ७७, ७९, ८३.

श्रुत sacred learning १०९७, १६६०, ८७, १७७०,
७१, ७२, ७६, ९२, १९१७, ६६, ७३, ७४,
८६.

श्रुतदेवस् N. of a daughter of *S'ūra* १३७६.

श्रुतश्रवस् N. of a daughter of *S'ūra* १३७६.

श्रुतागत acquired by sacred knowledge
११२९.

श्रुति *Veda* ७७०, १०३३, ५०, ५५, ७६, १११३,
४६, ६३, १२७२, १३८८, १६५२, १७६९,
१९२१, ३५, ४३, ४३, ७३.

श्रुतिद्वैध contradiction among passages of
the *Vedas* १०७०.

श्रुति obedience; willing service (Monier
Williams); food (*Sāyana*) ९२३.

श्रुयमाण being heard १०१३, ४०, ११००, १२.

श्रेणि(णी), a guild or association of traders
८६९, ७०, ७२, ७४, ७६, ९३५, १६७३,
१९२२, ३२, ३३, ४६.

श्रेणी(णि)पत्तय evidence of a श्रेणि ९२५.

श्रेयस् superior; excellent ८८८, १०३८, १२८०,

८३, ८४, १३२१, १८०१, ४३, ९६, १९३९,
८४.

श्रेष्ठ chief; most excellent ६६०, ८१३, ५८,
६१, १०७७, ११४३, ८१, ८४, १२४५, ६१, ६२,
८४, ८६, १३४६, १६०१, १९३०, ६३, ६४,
७८, ८१, ८४, ८६.

श्रेष्ठभाग the largest share ११६८, ७०.

श्रेष्ठिन् a merchant ८१४.

श्रोत्र the ear १६००, १७७६, ८८, १९८१.

श्रोत्रिय a learned *Brāhmin* ७२९, ७१, ८४,
८०३, ७२, ११६६, १३७६, १४०२, ६५, १५१८,
२३, २६, १६२८, ३९, ६६, ६८, १७२७, २८,
१८४१, १९२७, ३२, ४४, ५७, ७७.

श्रोत्रियद्रव्य property of a learned *Brāhmana*
७१६, १४७३, ७४, १५२३, २७, १९५०.

श्रोत्रियस्त्व see श्रोत्रियद्रव्य १७६६.

श्रौतक्रिया *Vaidika* rite १३२८.

श्लोक a stanza ७९२, १२७२, ८८, १४१५, १५९२,
१६६८.

श्वसिन् a hunter ८०९, १९००.

श्वगणिन् a hunter (having a pack of hounds)
१६८२, १९२५.

श्वन् a dog १६०६, १७, ८७, १८११, २९, ३४,
४२, ४३, ६५, ९०, ९१, १९२५.

श्वपद a dog's foot or its mark ८३१, ३६,
१६०९, २७, १७६०, १९७०.

श्वपाक a person of an out-caste tribe ११०५,
८५, १८२७, ५०, १९१५.

श्वपाद see श्वपद १६५३.

श्वप्त्र a pit ९१६, १९, ४३, ५४, ५९, १६२०.

श्वयोनि dog's species १५९२.

श्वशुर a father-in-law ९८६, ८८, ८९, ९५, ९९,
१०००, ०२, ०५, ०६, ०७, २३, २४, २८, ३५,
८३, ८४, ८५, ११०६, १९, १२२४, १३२९,
१४०३, ०८, ३०, ६३, १७७७.

श्वश्रू a mother-in-law ९८६, १०००, ०२, २३,
२४, २८, ७६, ७७, ८३, ८४, ११०६, १४५०,
५३, १८८२, ९०, ९४.

श्वहत killed by a dog ९०८, १६.

श्वित्र white skin disease ७०७.

श्वेतकेतु N. of a *Rshi* १०२७, १२८४, ८५.
 षड्दोतु relating to six *Hotrs* १००६.
 मण्ड flower-garden ९०६, ३०.
 षण्ड an impotent man १०९४, १४०१, १९२१.
 षाड्गुण्य six measures or acts of royal policy ८६०.
 शीविका spittle १७९८.
 संकर confusion; sweepings ९५४, ५९, १०६८, ११०५, ०६, १५, १८, १३५१, १६०७, ६६, १९१६, ४३.
 संकल्पकुलमल an arrow whose neck is formed by desire ९९८.
 संकेत compact ८७२, १९४१.
 संकाम a bridge १६१३, ३०, ५४, १९२९.
 संख्या a number; sum; calculation ७४७, ५०, १२३७, ३८, १७०६, १९२७, ५३, ६२.
 संसाम union; intercourse ८४३, १०३३, ७६, १२५५.
 संसर vow; strife ६०३, ०५, ७९१, ९२, १६२३.
 संगृहीता taken possession of; enjoyed ९००, १६१७, १८४९.
 संग्रह accumulation; taking; adultery १०४०, ४७, ७६, ११०६, १२८७, १७०१, ५५, १८४४, ८५, ८७, ८९, १९२३, २४.
 संग्रहण adultery ९२७, १०३८, ११०६, १८४५, ४६, ५०, ५१, ५२, ५३, ५६, ७०, ७२, ८०, ८१, ८४, ८५, ८७, ८८, ८९.
 संग्राम war ११२२, १२२७, १३७४, १९२१, ४१.
 संघ corporation ७७१, ८४४, ६०, ६२, ६३, ६४, ११८५, १२२९, १६८१, १७७३.
 संघग्रह a rapacious animal living in group १९२५.
 संघात corporation ८६१, ७१.
 संज्ञान unanimity; agreement ८५८, ५९, ९०२.
 संतति progeny; offspring; succession ६१०, २१, २६, ३५, ६८, १११२, १८, १३५०, ८४, १५२९, १९८४.
 संस्तान see संतति १०२३, ५५, ६५, ११०१, १४, १८, ९४, १२५४, ५५, ५९, ७३, ८२, १३४८, ८४, १४७१, १५११, १९८२.

संदश the index finger १६१७, १९, ६९, ८०, १७३७, ६०, ६५, १९०३.
 संदातु one who ties up or fetters १७११.
 संदिग्धि doubt ९५१, १२४५, १७५३, १९१४, ४१, ६७.
 संदित bound; detained १७११.
 संदिष्ट promised; assigned ८२६, १६३४, १९२२.
 संदेह doubt १५७५, ८१, १९१८.
 संधातु one who holds together १००३.
 संधान union; the act of joining १५८२, १६८४, ८६.
 संधि agreement; boundary line; horizon; joint; explosion ८७४, ९९, ९०१, ३४, १००३, १५८२, १६८५, १७११, १९२९, ७५.
 संधिच्छिद् a house-breaker १७५८.
 संधिच्छेत् see संधिच्छिद् १७६५.
 संधिच्छेदकत् see संधिच्छिद् १७६०.
 संधिच्छेदिका (a woman) who cuts off any of the bodily joints (*Shāmsūstri*); (a woman) who breaks the joints (of a house) for commission of theft (*Ganapatishāstri*) १६१९.
 संधिभेत् see संधिच्छिद् १६७०, १७६४.
 संध्या a particular religious daily duty १६४८, १९६४, ६५.
 संनिष्ठ proximate; near १६२०, १७७२.
 संनिधान nearness ६११, ३८.
 संनिधातु one who is near at hand; receiver of stolen goods १६९७, १९२९.
 संनिधि nearness; presence ७४२, ८९६, ९३६, १०७७, १४५२, १६८५, १८८७, ९१, १९६६.
 संनिपात encounter; mixture; sexual intercourse with १६८२, ८६, १८४३, १९३९.
 संनियन्तु one who restrains or chastises १९३१.
 संनियोज्या (a widow) to be appointed to bear children for her deceased husband १०२०.
 संनिरोध confinement; imprisonment १८४७.
 संनिरोध्या to be confined १०५७.

संनिविष्ट married १२००, १४१७, १९५०.
 संन्यास profession of asceticism १३७४.
 संपत्नी together with her husband १००२,
 ०४.
 संप्रतिपत्ति consent; permission ७२४, ९१९.
 संप्रतिपादक a giver (of aid); defender १६५३.
 संप्रतिरोधक confinement; imprisonment १४४७.
 संप्रतिश्रय dwelling १७५३.
 संप्रति delivery १२६२.
 संप्रत्यय evidence; proof ७६८.
 संप्रदातृ one who gives or delivers over
 १३१५.
 संप्रदान giving ७३६, १६१३, १९२१, ८१.
 संप्रयोग the act of joining together; sexual
 union; the specific procedure of re-
 ligious rite (without *Mantra*) १०२९.
 संप्राप्तमैथुना (a lady) who has enjoyed
 sexual intercourse ११०१, १६.
 संप्राप्तव्यवहार attained majority १२०१.
 संप्रेषण the act of sending; dispatch १८८१,
 ०५, ८७, ८९.
 संप्लव accident; chaos ८५२.
 संबन्ध relation १२६६, १३२८, १५३०, १७८९,
 १८४४, १९८८.
 संबन्धिक्रिया obsequies usually performed by
 relatives १६१६.
 संबन्धिन् a relation ७०४, २५, ८६, ८०८, १५२७,
 १६२७.
 संबाध a crowd १६२१.
 संमल्ल a match-maker १०००, ०४.
 संभव birth; production १०७०, १२७३, १३८४,
 १७१८, १९६७.
 संभाषण conversation १३९२, १८५३, ८०, ८५,
 ८९.
 संभाषा conversation १०३६, १८५३, ५४, ५५,
 ७१, ८९, १९३६.
 संभाषित agreed; told ८४३, ४४, १८५०.
 संभूयकारित्व the acting in concert or in
 company १५७५.
 संभूयकारिन् a co-partner; a partner in a

joint concern ७८१, १५४२.
 संभूयक्रय collected merchandise to sell
 whole-sale १६७९.
 संभूयवणिजः merchants in a company १६६९.
 संभूयसमुत्थातृ see संभूयकारिन् ७७१.
 संभूयसमुत्थान engagement in a joint concern
 ७७१, ८०.
 संभूयोत्थाननिष्कृति rules relating to concerns
 of partnership ८०२.
 संभोग enjoyment; possession ९५७, ११३०.
 समुष्पला desirous ९९७.
 संयोज्या to be employed ११०६.
 संरब्ध joined hand in hand १६४९, ८५.
 संरम्भ a quarrel ११०२, १८२६.
 संरुद्ध imprisoned; restrained १६९०, १८०९.
 संरुद्धक imprisoned १६९०.
 संरुद्धिका see संरुद्धक १६९०.
 संरोध check; confinement ७२५, ८१७, ४४.
 संलोभन allurements १८४६.
 संवत्सर year; year personified ६०९, ३३,
 ३७, ९६, ७११, ८४२, ९१५, ४८, १०२०, २४,
 ३९, ४०, ५५, ९५, ११००, १२, १३९३, १४०२,
 २८, १५८७, ९६, ९८, १६१६, ६५, ७१, १७९३,
 १८६१, ६३, १९४७, ४९, ५९, ६४, ७८.
 संवनन propitiating; causing mutual fond-
 ness ९९६, ९७, ९८, १६८०, ८१, १८५०.
 संवसु a fellow-dweller; an epithet of die
 (of dice) १९०२.
 संवाद agreement १३७६.
 संवादित agreed to ७१३.
 संविद् compact; mutual understanding ७७७,
 ९२, ८५७, ५९, ६४, ६७, ९७८, ९४, १८३६.
 संविदान mutually agreed ६०१, ०४, ८५७,
 ११२२.
 संविदत्त a gift for the acquisition of higher
 world ८०८.
 संविद्विधान rule of compact ८७२.
 संविभाग partition; division ८१६, ९९, ११२२,
 १९२४.
 संविभागिन् a partner ८६०.

संव्यवहार mutual dealing; transaction १०९८,
१३८८, १६८०.
संव्यवहार्य to be allowed to mix in society
१६४४.
संशय doubt; danger ८०५, ०६, ३१, ९३५, ४९,
५५, १२६३, ६४, ६६, ८२, ८३, ८६, १३५५,
९०, १५६९, ८१, ८८, १६०४, ६५, १७३५,
५७, ६६, १९११, १४, २१, ६६, ६७, ७५, ७८,
८३, ८५, ८६.
संसत् an assembly ६६०, ७२७, ८०७, १९, १२८७,
१८३५.
संसरण a passage ९५३.
संसर्ग association; reunion ६७३, १०२५, ४८,
१५४१, १६४७, ८३, ८५, १७५३, ६०, १८८७.
संसृष्ट reunited १५२९, ४०, ४४, ५२, ५६, ५७,
५८, ६०, ६१, ६३, ६७, ८८, १७५४.
संसृष्टधन property of the reunited co-
parceners १५४२.
संसृष्टमैथुना (a maiden) co-habitated १०९७.
संसृष्टरूप mixed in form or kind; adulterated
८९१.
संसृष्टिन् a reunited kinsman १५४०, ४१, ४२,
४४, ६२.
संस्कार्त्तव्या to be consecrated with the ne-
cessary ceremony १११८.
संस्कर्त्तु one who performs a *Samskāra* ७८७,
९०, ९६०, १२८८, १५२६.
संस्कार a sacrament; repair; refining ७०३, ५५,
८७३, ९६०, १०८५, ९३, ९८, १११३, १२७८,
८७, १३०९, ७७, १४१६, २२, ५३, ७३, १५२४,
५४, ८४, १६४८, १७४७, ६०.
संस्कार्य to be consecrated १११८, ९५, १२८७,
१३८४, १४१९, २२, १५८६, ८७.
संस्कृत consecrated; sanctified ८२०, १०१९,
२१, ८८, ११०९, १२३४, ६८, ७२, ७९, १३०२,
५०, ७७, १९२७, ७९.
संस्कृति see संस्कार ८३४, ७३, १३८४.
संस्तम्भ obstinacy ६११.
संस्थाध्यक्ष superintendent of commerce १६७७,

संस्थित dead; living together; resting; com-
pleted ६०४, ७९१, ८१४, ९४६, ६०, १०२६,
५९, १३१९, १४३२, ७३, १५२२, २७, ५६, ५७.
संस्त्राव a kind of offering or libation ११६१,
६२.
सक्काम willing ८४४, १२६९, ८५, १८४८, ४९,
५०, ६६, ६८, ७४, ७६, ८३, ९२.
सकुल्य agnate; a relative ७०४, ९००, १०७७,
९५, १२५१, ५२, १४६८, ७६, १५१२, १८, ३०.
सकुल्यगामि(धन) (property) inheritable by a
sakulya १४७०.
सक्थि(सक्थन्) the thigh ९८६, १७८१, ९६, ९९,
१८१७, ७१, १९७६.
सक्थिन् a friend; companion ६००, ९२२, २४,
७२, ७३, ७५, ८२, ८७, ९९, १००५, ११५८,
१२६०, १३२९, १८३६, ९३, १९७८, ८५.
सक्थिन्धू friend's wife १०२०.
सक्थिन्धी friend's wife १८८२.
सखी a female friend or companion ९७५,
७९, १००१, ७५, १८३६, ८२.
सख्यं friendship ९७९, ८९, १००९, १०३६,
१९८०.
सगर N. of a king १३२९.
सगर्भोढा married while pregnant or carry-
ing १२८८.
सगोत्र a kinsman of the same family;
cognate ७७१, १०१८, २२, ८९, ९४, १११६,
१२३१, ३२, ८८, १३१९, ३०, ५५, ७२, ७५,
१४०३, ७१, १५२६, २७, १८८२, १९८८.
सगोत्रिन् a member of the same family ८९६.
सजात a kinsman ८३९, ९२४.
सजाति belonging to the same caste १०५४,
९५, १२५१, ५२, १८३२, ७२.
सजातीय of the same kind or caste ८९०,
९९, १०२४, १३३७, ५५.
सजात्य see सजाति १५१२, १८७०.
सत्सुर्या accompanied by music ८१४.
सत्स्कार honour ८६७, १६३९, १९३२.
सत्पति a mighty lord ८११.
सत्पुत्र a worthy son १२४८.

- सत्यप्रियह acceptance of gift from virtuous men ११२६.
- सत्य true; faithful; truth ५९९, ७५०, ८१२, १८, ६४, ९७, ९६८, ९७, १००६, ३१, ३२, ६९, ७६, ११४४, १२८३, ८६, ८८, १६०३, ५६, ६४, १७७१, ७२, ७९, १८३७, ३९, ९५, ९६, १९०३, ०८, १३, ५५, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ७९, ८४, ८५.
- सत्यङ्कार promise; earnest-money; advance (money) ६४५, ५६, ८८५, ८९, १९७५.
- सत्यवादिन् truthful ७३८, ४७.
- सत्यव्रत strictly truthful ९५१, १०२२.
- सत्यसंगर true to an agreement or promise १२५५, १९८६.
- सत्यसाक्षिन् a truthful witness ९३८.
- सत्याभिसंध true speaking १६५६.
- सत्र a sacrificial session ७७३, ८१२, १३, ११६१, ६२, १७००, १९२०.
- सत्रिन् a spy ८६२, ६३, १६७९, ८०, ८१, ८७.
- सत्की an honest woman १०२८, १११८.
- सत्त्व property of a *Brāhmin* १४६८.
- सद fruit ६१२, ३०, ९११, १८.
- सदन habitation १२७१.
- सदस् a house; assembly १४१५, १६४४, १९७९.
- सदृश suitable (by caste and quality); equal ६९५, ७५७, ६७, ८६१, ९९, १०११, १९, २०, ४१, ४२, ५८, ११७५, १२३६, ४४, ६९, ८०, ८३, ८४, ८५, १३००, ०४, ०५, ०८, २१, ५०, १५१६, १७६४, १९८६.
- सदोष defective; illegal ७०९, ६५, ८८७, ८९, ९४.
- सधन् habitation ८११.
- सधन wealthy ७२४, ३०, १०७७.
- सधस्थ abode १००३, १२५७.
- सध्रीचीन united ९९८.
- सनातन eternal ८७५, १०२७, २८, २९, ६६, ७५, १२४४, ८४, ८६, १५१३, २६, १९३१, ४०, ६४, ६७, ७८.
- सन्नाभि uterine १४३२, १५१३, १८, ४४.
- सनि gain; acquisition १२५४.
- सनित् a husband १२५४.
- सन्धा compact; boundary १६०३.
- सपत्न rival ९९१, १००६, ०७, ११४४, ८१, १२५४, १९०२.
- सपत्नी a co-wife ८४०, ९९०, १८७४.
- सपत्नीक accompanied with a wife १३०५, ७४.
- सपत्नीज son of a co-wife १३५०.
- सपत्नीसुत see सपत्नीज १३७३, १५२९.
- सपिण्ड proper blood relation; allied by funeral or *Sr'addha* oblation; agnate; kinship through seven and five generations on the father's and mother's side respectively ७०३, ८३९, ९६, ९८, ९९, १०४०, ६५, ८९, ११०३, ४१, १२०३, ४५, ५१, ५२, ७९, १३५५, ५८, ६५, ९२, १४०३, ६६, ६८, ७०, ७६, १५१४, २०, २६, २७, २९, ३०, ४१, ५५, ६०, ८७, १६१३.
- सपिण्डिन् a *Sapinda* १५२७.
- सपुत्र having a son ६७८, १२४४.
- सप्रत्ययभोग्याधि an enjoyable deposit which diminishes the loan with its interest ६५८, ६०.
- सप्रधन wealthy ६९९.
- सफल fruitful ८००, ०७, १३५५, १५८८.
- सबन्ध having a pledge; secured by a pledge ६३४.
- सबन्धक vide सबन्ध ६१९, ७३१, ५२, ८६.
- सब्रह्मचारिन् a fellow-student १४७१, ७९, १५२६, २७, ३०.
- सभर्तृका having a husband १४५९.
- सभा an assembly ८१९, ७३, ९९५, ९७, १५२०, १६९५, १७५४, १८९१, ९४, ९६, ९७, १९०३, २९, ६३, ६४.
- सभापाल the keeper of a public building, gambling house or assembly १८९७.
- सभार्य having a wife १०२६.
- सभावती fit for an assembly ९६७.
- सभाविन् see सभापाल १८९८.

सभासद् member of an assembly ८७९, ९८, १८९६, १९६३, ६४.
 सभास्थानु a post at a gambling-house; persistent gambler १८९७, ९८.
 सभिक see सभापाल १९०३, ०८, ०९, ११, १३, १४, १५.
 सभ्य a judge; member of an assembly; a particular consecrated fire १६११, ४४, १७५८, ५९, १८९१, ९६, ९७, १९१४, ३३, ६३.
 सम equal; even ६३६, ३७, ७२, ७५, ७६, ७७, ७०७, ०९, १२, १६, २८, २९, ३५, ४३, ४५, ४८, ४९, ५१, ५५, ५६, ६५, ६८, ७०, ७१, ७२, ८१, ८४, ८५, ८८, ९०, ९४, ८१०, ४६, ७९, ९८, ९९, १००, ०१, १३, ४०, ४८, ५१, ५४, ६१, १०२८, ३०, ११४६, ४९, ५१, ५२, ६४, ७२, ७३, ७९, ८२, ८४, ८५, ९०, ९२, ९३, ९४, ९९, १२००, ०३, ०४, ०७, ११, २२, २३, ३३, ३७, ३८, ३९, ४३, ४४, ४९, ९७, १३१६, २९, ३०, ४८, ५५, ५६, ७३, ७४, ८७, १४०६, ११, १३, १४, २९, ३२, ४२, ६२, ७१, १५४१, ४३, ४४, ७१, ७३, ८५, ८७, ९५, १६३०, ५९, ७०, ७८, ८६, १७०५, ५४, ५५, ५७, ५८, ६२, ६७, ७१, ८९, ९०, ९४, ९८, १८०६, १४, २६, ३०, ३१, ३५, ४८, ४९, ६६, ७९, ८४, ८६, ८७, १९०७, ३०, ३६, ३९, ५०, ५४, ५८, ६४, ६५, ६६, ७०, ७१, ७४, ७५, ८४, ८७, ८८.
 सममथन entire property १३७५, १६०९.
 समद a strife; battle ११२२.
 समन feast ९८७, ९७.
 समन्व one who has conspired with १६१९.
 समन्वक accompanied with sacred verses १५२३.
 समभाग equal share; having equal share ११८४, १२४४, १३५५, १४६३, १५७४.
 समभागिन् having an equal share १२३१, १३७२.
 समय agreement; convention ७८१, ८२८, ४१, ५९, ६०, ६२, ६३, ६४, ६५, ६९, ७०, ७२, ७३, ७७, ८८, ९४, १०२७, ७७, १२६३, ८७, १३६४, १९१३, २२, ४२, ८५.

समयाचार the law of agreement; convention ८८९.
 समयानपाकरण breach of agreement ८५९.
 समयानपाकर्म breach of agreement ८५९.
 समर्थ cheap; proper price ६०९.
 समर्थ capable ७३१, ८८, ८९, ८५३, ६३, ७३, १०४०, १११२, १३२९, ६३.
 समवर्ण of equal caste ८३६, ११८४, १२३४, ३७, ४९, १७७१, ७४, ८७.
 समवाय coming together; a guild; congregation ७८५, १०३४, १२३९, १६१५.
 समवायिन् a partner; member of a company ७८५.
 समविद्य equally educated १२२७.
 समविभाग having equal share in the division १२३४.
 समवेत united; come together ७७३, ८६, ८८, ८९८, ११९३, १२००, २२, १४२४.
 समांश having an equal share; equal share ७९०, ८७६, १२२२, २३, ४९, ५१, १४१३.
 समांशभागिन् an equal-sharer ११९३.
 समांशभाज् see समांशभागिन् ११९२, १४२१, ६३.
 समांशधारिणी entitled to take an equal share १४१३.
 समांशिका see समांश १४०८.
 समांशिन् see समांशभागिन् ७८७, ८८, ९०, ११६८, ८०, ९३, १२००, २२, १४१३, १५५८.
 समा equal; year १२२४, ८६, ९४, १४७४, १५१२, १३, ८२, १९६५, ८६.
 समाकृत brought; jointly owned १५४०.
 समागम union ८६३, १६९६, १९२९.
 समाज a meeting; assembly; society १०५८, ८५, ११०७, १६९५, १७५४, ५५, १९२९.
 समान same; common; equal ६०३, ०५, ७८६, ८५८, ५९, ७९, ९९७, ९८, १०००, ०३, २२, २३, ११७३, ८३, ९३, १२३७, ३८, १४१५, २४, १७८९, १८३६, ४९, १९७९.
 समानगोत्र being of the same Gotra १०२२, १३५५.
 समानतीर्थ having a common preceptor

१९८६.
समानपिण्ड vide सपिण्ड १०२२.
समानप्रवर having the same *Pravara* १०११,
९४, २२.
समानभागिन् entitled to equal share १९८८.
समानर्षि having the same *Rshi* (for an-
cestor) १०२२.
समानसलिल vide समानोदक ९०१.
समानांशा having the same or equal share
१४०८, १४.
समानार्षि having the same *Rshi* १०२०, २२.
समानोदक having (only) libations of water
(to ancestors) in common १०२२,
१५२७.
समानोदयां descended from the same mother
१००५.
समापत्ति yielding; atonement १६०६, ६४.
समाप्तकरण one whose action is proved by
evidence completely १६८६.
समारूढक a bridge ९२६.
समावृत्त returned home after having com-
pleted his studies; one who has per-
formed the completion rite of *Brah-
macharya* ८२६, १९४८, ५१, ६३.
समाहर्तु a collector १६७९, ८१, ८२, ८८.
समाह्वय a sport with betting on animals
१९०३, ०४, ०५, ०६, १०, १३.
समिति an assembly ८५८, १६०१.
समिथ encounter; conflict ५९९, ११२२.
समिध् fuel १५७०, १६७२, १७५२, १८४१, १९३६.
समीरणः the wind god १९७०.
समुत्कर्ष increase १७७४.
समुत्थान repair; recovery; compensation;
the price of recovery and repair १६१८,
१७९९, १८००, ०५, १९, ३१, ३३.
समुत्थापन reinstallation १६१३.
समुद्र a round box १६९७, १७३३.
समुद्र sealed; ocean ६१९, ७४०, ४७, ८५४,
९२४, ९८, १०३१, १६१०५, ३४, १७५४, १६१९,
समुन्नता (a boundary) raised ९६१.
समूढा a married (girl) ११०९, १४५०, ६०.
समूह congregation ८६५, ६७, ६८, ७४, ७५,
७७.
समृद्ध wealthy ७१०, ९१, ८०७, ४२, ९६२,
१००३, १२२२, १९३१.
समृद्धि prosperity १००३, ०७.
सम्यक् combined; united ८५९, ९६७, ७३, ९८,
१२६१.
सम्राज्ञी a queen or any woman who is su-
perior in rank ९८६, १०००.
सरक a precious thing १६७५.
सरण्यु N. of a daughter of *Trvāstr* १००४.
सरस् a lake ९६२, १९२४, ८५.
सरस्वती N. of a river ७९१, ८१२, १३, ९७२,
१००२, ०६, १२५८.
सर्ग creation of the world ५९९, १०३३.
सर्प a snake ८४०, ९१८, १०३२, ३३, १६१५,
१८३४, १९१४, २४, २५, ६६.
सर्पण creeping animals (such as serpent)
१९१६.
सर्षि(र्षि)राज्ञी N. of the verses १०१६.
सर्षिस् ghee ६२६, ३२, ८४३, ९७८, १८४१, ४५,
१९४०.
सर्वज्ञख्यापन proclamation of the omniscient
power १६८२.
सर्वदान gift of one's all ८०३.
सर्वद्रव्य entire property ९३२, ११८६.
सर्वधन entire property १०३१.
सर्वनाश complete ruin १०१४.
सर्ववप्य merchandise of every sort ८८८,
१७०८, १९२७.
सर्वभक्ष्या omnivorous १०१७.
सर्वभूत all creatures ८६१, १०७०, १६२३, ४६.
सर्ववाद all kinds of disputes ७८५, १६४८,
५०.
सर्ववास्तु landed property of every kind
९५५.
सर्ववेदस see सर्ववेद ७९१, ९२.
सर्वस्व entire property ७९४, ९६, ८०२, ०४,

०५, ०७, ४३, ६३, १०९९, १२५२, १६३२,
५४, ९०, १७४८, ५०, ६०, ६१, ६२, ६५,
१८४७, ५०, ६२, ६३, ९२, १९१३, १५, ४३,
६९, ७०.
सर्वस्वहरण confiscation of the entire property
८६९, ७३, १६०६, ४३, १७८८, १८४१, ८३,
९१, १९३५.
सर्वस्वहार see सर्वस्वहरण १६२७.
सर्वस्वापहार see सर्वस्वहरण १६११.
सर्वहर appropriating everything १८८६.
सर्वहार see सर्वस्वहरण १७०६, १९२७.
सर्वापहार see सर्वस्वहरण १६६८.
सर्वार्थव्यपलापिन् denying all the charges ७४९.
सल्लभक (a loan) secured by a surety ६३४.
सल्लभ (a loan) accompanied with interest
६५८.
सल्लि water ७८८, ९१, ९२, ११११, १८३८.
सवन a Soma festival; any oblation or sa-
crificial rite ७७१, ९७५, १०३०, १६६५.
सवर्ण having the same colour or caste ७०३,
१००४, २३, ३० ३६, ३९, ७५, ८८, ९१, ९६,
११०३, ०५, ०९, १३, १८, ८४, १२०३, ३७,
४३, ४४, ४५, ४९, ६६, ६८, ८१, ८३, ८७,
८८, १३४९, ५०, ५१, ७४, १४६७, १५२५,
६५, १६७९, ८१, ८७, १७७१, १८४६, ४८,
७५, ८३, ९०.
सवर्णाज born of a wife of the same caste
१४०२.
सवर्णापुत्र see सवर्णाज १२३९, १३८६.
सवितृ N. of a sun-deity ९७६, ७९, ८३, ८५,
९१, ९८, १०००, ०१, ०२, ०३, ०४, ११५८,
५९, १४२३, १८३६, ९५, ९६, १९६७.
सवृद्धि see सल्लभ ७१५, १४५८.
सवृद्धिक see सल्लभ ६५६, ८९८, १४३०, ६१.
सव्य right १९०१, ८१.
ससती sleeping ९६६.
ससाक्षिक having a witness ६४६, ७९, ९०,
७२६, ३२, ५०, ९५५.
सस्य corn ६११, ७७१, ८४७, ४९, ९६, ९०५, ०६,
१३, १४, १७, १८, १९, २१, २४, ३०, ४७,

१०७३, ११०२, १६१८, ६९, ७१, १९२१, २४,
३६, ७६.
सहकारिन् an associate ७८६.
सहग्राहिन् a co-partner (of the debt) ६७९.
सहजीविन् living together १४७३.
सहदेव N. of a Pāṇḍava ८१८, १९.
सहधर्मचरी(चारिणी) a legitimate wife १०७७,
१११८.
सहधर्मचर्या the fulfilment of religious duties
(in common with the husband) १०३४,
१११२.
सहपति a co-husband (?) १०११.
सहप्रस्थायिन् a fellow traveller १९२२.
सहमाना victorious ९९०.
सहवास dwelling together; common abode
११४२, ९५, ९९.
सहवासिन् one who lives with another १५२५.
सहस् force; power ९९०, १६४१, ४८, १७४४,
१८८६.
सहसादृष्ट a kind of son (seen fortuitously)
१२६५.
सहस्थान living together १२४७.
सहस्थित a companion १६१६.
सहस्रयु possessing a thousand cows १६६०,
१७२५.
सहागत (property) received with (the wife)
१२२८.
सहाध्यायिगामि (property) inheritable by a
fellow-student १४७०.
सहाय a companion ७४४, ८५४, १०३३, १६४७,
४९, ५१, ५३, ८१, ८५, ८६, ९६, १७५३,
१९२९.
सहोद a son received with the wife;
possessing the stolen goods १२३३,
६५, ७०, ७३, ८३, ८४, ८८, १३०८, २०, ३४,
४६, ४७, ४९, ५१, ७३, ७४, ७५, ७६, १६६७,
१७५१, ५२, ६२.
सहोदज see सहोद १३९०.
सहोदर a uterine brother १२५१, १३४८, ८४,
१४३२, १५२५, ६७.

सांतानिक person having an issue ८७५.
 सांप्रदायिक traditional १४२७.
 सांवत्सरी yearly १९७६.
 सावननिकी (medicine) capable of captivating ८६३.
 सांन्यवहारिक a merchant belonging to a trade-guild ७३७.
 साक्षिकृत production of witness १८३४.
 साक्षिचोदित established by witness ७१५.
 साक्षित्व the office of a witness १५७५, ८०.
 साक्षिन् a witness ६०८, ५४, ५६, ६९, ७५, ७२७, ३१, ३७, ५१, ५५, ६८, ८५, ८६, ८९९, ९३४, ३६, ४४, ४८, ५०, ५५, ६१, १५७१, ७५, ८०, ८१, ८२, ८४, १६११, १३, २८, ३५, ८५, १७५९, १८००, ३२, ९१, १९०९, ११, १४, ६४, ६५.
 साक्षिप्रत्यय evidence of a witness ८४३, ९३५, ४४, १९०७.
 साक्षिभावित proved by a witness ६८४.
 साक्षिमत् having the evidence of a witness ६२८, ५०, ९०, ७४७.
 साक्ष्य evidence of a witness ६७२, ७७, ७१५, २१, ५८, १९६४, ६७.
 सागर ocean १०३१.
 साचिष्य assistance १६१७, ८३, १८४९.
 सात a gift ९९०.
 सादन abode; world १२६७.
 साधक one who realises or exacts debt; accomplisher ६६१, ७७, १२२८.
 साधन means (of proof) ७४१, ९५७, १११९, १७६४.
 साधनीय to be reclaimed १५७३.
 साधारण common to all ७९८, ८७२, ७४, ९७, १०५५, ९८, ११३०, ६०, १२३१, १३५६, १५७३, १६१०, ३४, १९३७, ६५, ८६.
 साधारणी (a woman) common to all ८४१, १६१२.
 साधित recovered ६७५, ७२२, ३०.
 साधु good; virtuous ६७१, ७२, ७६७, ८५९, ९५१, १०४४, ६८, ७६, १११०, १९, १४००, १०४, ७०, १६२८, ३९, १७०१, २६, १८९८,

१९२३, २७, ३२, ६५, ७४.
 साधुदेविनी playing skilfully १८९८.
 साध्य to be claimed, paid or completed ६८०, ८४८.
 साध्यमान to be realised ७१६, २१, १९६७.
 साध्वी chaste or virtuous १०१७, २४, २६, २९, ३०, ३३, ३८, ५३, ५५, ६०, ६३, ६४, ७६, ९९, ११०७, १०, ११, १४, १६, १८, १९, १२६५, १३९४, १४०१, ०२, १५१६, २०, २४, १६५३, १८८२, १९७९.
 सानुक्रोश a compassionate १०३२, ७७.
 सान्त्व gentle manner ७२७, १९२७, ८६.
 सान्निध्य presence ७०७, ९००, ०१.
 सान्त्व along with family or descendants; in the presence of all ७०४, ५८, ८३७, १६४८, १७१९, ६१.
 सापत्न a step-mother's offspring १२३७, १५६२, ६७.
 सापत्नमातृ a step-mother १४६३.
 सापिण्ड्य the condition of being a *Sapinda* १२८२, १३७२, ८३, ८४.
 साप्तवैरुष extending to or comprising seven generations १३८३, १५३०.
 सामक the principal of a debt ६१०, ५८.
 सामन् peaceful means or method; a chant; *Samaveda* ७२५, ३१, ४१, ४८, ८६१, ६२, १०००, १०, ११, ११८१, १६४७, १९४१, ८९.
 सामन्त a neighbour; minister ८९६, ९७, ९८, ९९, ९००, ०१, १८, २९, ३६, ३८, ४०, ४४, ४५, ५१, ५५, ५६, ५७, ५८, ६२, ११४२, १५६९, ८९, १६३२, ९८, १७५६, १९२२, २९, ३०.
 सामन्तप्रत्यय the evidence of a neighbour ६२५, २६, ३०, ३७, ५५.
 सामन्तविरोध difference among neighbours ९२५.
 सामन्तानुमत approved by a neighbour ९३८, ६१.
 सामथिक conventional ८६६.
 सामर्थ्य prowess ७३७, १६४७, १७५७, १८२९.

३२, १९२१.
 सामान्य common ७७१, ८०२, ०७, २५, ९२७,
 ४६, ६०, ११९२, १२२५, १४६२, १५६९, ७१,
 ७२, १६३३, ८४, ८६.
 सामान्यग्राहक a kind of surety ६७७.
 सामुद्र sea-faring; one who acts contrary to
 the rules of *Varnāshrama* ६११, २०,
 १६६७.
 साम्पराय the next world १२६७, ७१ १३५५.
 साम्य equality ८९७, १४२१.
 साम्राज्य kingship; empire १०००, १८७०, ९६.
 सार ornament and jewellery; importance;
 essence ७३७, ८१, १०७५, १२८३, १६१४,
 ६७, ७५, ७७, ८५, ८८, ९५, १७३३, ३८,
 १९२७, २९, ४५.
 सारथिन् a charioteer ८४२.
 सास्त्रेय a dog १८८७.
 सार्थ a merchant; a travelling company of
 traders ७३५, १६६८, ८२, १९२२.
 सार्थिक a merchant १६२०.
 सार्वकालिक belonging to all times १९४२.
 सार्वभौम (विधि) universal (rule) ६२५.
 साल the *S'āla*-tree ९३३.
 सालावृक्ष a *hyæna* ९८९, १६०३.
 सालावृक्षेय see सालावृक्ष १५९४.
 सावित्री N. of *Sūryā* or a daughter of *Savi-*
tr; N. of the wife of *Satyavat* ९९९,
 १००२, ०६, ७७, १९७९.
 साहस violence; robbery; heinous offence;
 punishment for an offence ६५५, ७२९,
 ९२७, १०३८, १११९, ३०, १२६७, १५८१,
 १६०४, ०५, १३, १४, १८, २२, २३, ३३,
 ४१, ४२, ४३, ४४, ५५, ४६, ४८, ४९, ५०,
 ५५, ६९, ९१, १७४४, ५०, ६१, ६२, ७८, ९२,
 १८११, २०, २४, ३४, १८८१, ८४, ८८, १९२३,
 ३३, ६५, ६८, ७०, ७५, ८३, ८७.
 साहसदण्ड punishment for the commission of
 violence or offence १६१४, १८, १९, २०,
 २१, ७६, ८६, ८८, ८९, ९०, १७९८, ९९,
 १८००, ५०, १९०४, २२.

साहसपदवाच्य denoted by the term *Sāhasa*
 १६१२.
 साहससाधक evidence of a heinous offence
 १५८१.
 साहसस्तेय theft coupled with violence १६४५.
 साहसिक one who commits *Sāhasa* ८०६,
 १६२२, २३, ४६, ४७, १७६०, १८६९, ९०.
 साहसिन् see साहसिक ८७४, ७६.
 सिंह a lion १२८७, १९८५.
 सिकाता sand; gravel ९५०, ६१, १९०१.
 सिद्ध accomplished; endowed with super-
 natural qualities ८६३, १६७९, ८१, ८२,
 १९०७, ०९, २४, २५, ४३, ७०.
 सिद्धि decision; attainment ६४१, ४९, ५४,
 ५७, ६०, ७७१, ८०३, ५३, ९५२, ५५, १३७७,
 १६५१, ५९, १९२०.
 सिन food ९९०.
 सिनीवाली the day of new moon and its pre-
 siding deity ९६९, ९३, १००२, ०८.
 सिन्धु river; waters ९२४, ६३, ८०, १०००,
 १९२०, २१.
 सिरी a shuttle; a weaver ११२१.
 सिलाची a particular medicinal plant १९८०.
 सीता a furrow (personified and worshipp-
 ed as a kind of goddess); N. of the
 wife of *Rāma* १००६, ७७.
 सीताद्वय an implement of husbandary १६७२,
 १७१७, १९३०.
 सीमन् a boundary ९२९, ३६, ४०, ४१, ४७,
 ६१, ६२, १६५४, १७४३.
 सीमनिर्णय decision regarding a boundary
 (dispute) ९४५.
 सीमन्तोन्नयन N. of a *Sasmkāra* observed by
 women in the fourth, sixth or eighth
 month of pregnancy १११४.
 सीमलिङ्ग a boundary-mark; land-mark ९३६.
 सीमविवाद a boundary-dispute ९२९.
 सीमवृक्ष a tree serving as a boundary-mark
 १८००.
 सीमसाक्षिन् witness with respect to the

boundary १३६.
सीमसेतु a bridge or causeway serving as a boundary १२९.
सीमा a boundary १२५, २६, २९, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३९, ४०, ४२, ४४, ४५, ४६, ४७, ५०, ५१, ५४, ५६, ५७, ५८, ६०, ६१, १८२३.
सीमाकृषण ploughing on the boundary १४०, ६२.
सीमान्त extremity of boundary १५०.
सीमान्तवासिन् a resident of the extremity of boundary १३६.
सीमापहारिन् one who takes away boundary-marks १२९.
सीमाप्रवर्तक one that serves the purpose of a boundary-mark १६१.
सीमाबन्धविनिश्चय the determination of boundaries १४९.
सीमाभेदु a destroyer of boundary १२५.
सीमाभ्रान्ति doubts regarding boundary १५०.
सीमामध्य a boundary separating two contiguous fields १४६, ६०.
सीमालिङ्ग a boundary-mark; land-mark १३४, ३६, ५९.
सीमावरोध people living on the boundary line १६२०.
सीमावाद a dispute about boundaries १३५, ४९.
सीमाविनिर्णय see सीमनिर्णय १७७३.
सीमावृक्ष see सीमवृक्ष १३३.
सीमासंधि the meeting of two boundaries १३४, ३७.
सीमोद्धन the transgression of a boundary ८९१.
सीर a plough ८५२, ९२३.
सीरपति lord of the plough १२४.
सीरवाहक a cultivator of the soil ८३५, ५२.
सीस lead १६७५, १७३४, ४७, ६७, ६९.
सीसक lead ६०९, २६.
सुकन्या N. of a daughter of *Saryāta* and wife of the *Bṛhī Ujvānā* १००८.

सुकपर्दा wearing fair braids १९३, १००८.
सुकिञ्चुक well made of *Kims'uku* wood १००१.
सुकुरीरा wearing a beautiful head-dress १९३, १००८.
सुकृत a righteous deed ६०३; १३७, ८१, ८३, ९१, १००१, ०७, १२५४, १६६८, ७१, १७०४, ५१, १८३७, ४१, ९५, १९०४.
सुकृत benevolent १९१.
सुख happiness; pleasure ८६०, १०२७, २९, ५१, ७६, ११०९, १४, १९, १७२७, १९१७, ७६, ८१, ८४, ८५.
सुखावस्थ rich and prosperous gentleman १०३८, ३९, ४०.
सुगु abounding in cattle १००३.
सुत a son; child; offspring ६६२, ६५, ७४, ७६, ९६, ७०६, ०७, ०८, १०, ११, १२, १६, १६, ८०५, ०६, ३४, १०४७, ५९, ७७, ८४, ८९, ११०१, ०५, ०६, १८, १९, ५१, ५९, ६८, ८०, १२०१, ०२, ३४, ५१, ६६, ७८, ८४, ८६, ८७, ८८, ९०, १३००, ०४, ०८, ०९, १०, १६, २२, २८, २९, ३१, ३४, ३८, ४२, ४७, ४८, ४९, ५०, ५२, ५५, ५६, ६४, ६५, ७२, ७३, ७४, ७६, ७७, ८४, ९१, ९४, १४००, ०२, २८, ५०, ५८, ६२, ७९, १५१७, २३, २७, २८, २९, ६५, ७३, ८७, ८९, १६४०, १९८२, ८४, ८५, ८८.
सुतगामि(धन) (property) inheritable by a son ११४७.
सुतगामिनी (a woman) having sexual intercourse with (her) son १०१४.
सुता a daughter १०२७, २८, १२८५, ८८, ९४, १३२९, ७४, ७६, १८७४, १९४१, ६६, ७१.
सुतेकर performing (recitation of certain texts) at the preparation of the *Soma* ११२१.
सुत्य N. of a sacrifice ७७२.
सुदास N. of a celebrated king of the *Tretas* ८११.
सुनन्दिक N. of a *Brāhmaṇa* १३७६.
सुनन्दिका N. of a woman १३७६.

- सुन्वत् the officer of a *Soma*-sacrifice ६००, ११२०.
- सुपत्नी a woman having a good husband or lord १७८, ११, १००५.
- सुपर्ण eagle १९६.
- सुपर्णिन् *Garuda* ६०४.
- सुपुत्र a good son १००३.
- सुपुत्रा having good or many sons ९८३, ८६, ९४, १००७.
- सुपेशस् having beautiful appearance १७९, १००६.
- सुप्त slept; asleep १०३६, ९८, १७४५, ४६, १८८५, १९३०.
- सुप्तादान abduction (of a maiden) while asleep १०३४.
- सुप्रजस् having a good offspring १९१, १००१, ०७, १९८०.
- सुप्रजा see सुप्रजस् १००२, ०४.
- सुप्रब्रह्मण्य a particular recitation of certain *Mantras* १२३६, १९८०.
- सुभगा possessing good fortune; lovely; a form of courteous address to women ६०५, १७७, ७८, ८३, ८६, ८७, ९०, ९७, १००१, १२८४, १५९५, १८३६.
- सुभद्रिका a courtesan ८४१.
- सुभसत्तरा having more beautiful buttocks ९८६.
- सुमति good mind or disposition ९६९, ७०, ७४, ८१, ९७, १००१, ०२, १२५८.
- सुमना N. of a woman १०२८.
- सुमन् wealth; benevolent १८९३.
- सुयाश्रुतरा a (female) who receives excessive sexual embraces ९८६.
- सुरगण a host of gods १०३०.
- सुरण joyous १७०.
- सुरत coition १८९१.
- सुरस्थान a temple ९४६.
- सुरा a spirituous liquor; wine ६८५, ९५, ७१५, ९९४, ९५, १०१६, २२, २५, ८५, १५९१, ९२, १६१०, ६५, ८३, १८९३.
- सुराध्वज the sign of a tavern १६०६, ०९, २७, १९७०.
- सुराप a drunkard ७७२, १६२७, ५३, १९४३.
- सुरापान the drinking of spirituous liquor १५९२, ९७, १६०३, ०६, ०९, २७, ८७, १९७०.
- सुरापी (a woman) drinking spirituous liquor १०१६, २१, ८७, १११३.
- सुरालय a temple ९५०, १८२३.
- सुराष्ट्र N. of a country ८६२.
- सुवर्ग heaven ६०१, ११६१, १३८५.
- सुवर्ण brilliant in hue; gold; a golden coin ६११, ३२, ३७, ७९५, ८०८, ५५, ६४, ७३, १००७, ३७, ११६५, १३७५, १६१०, १४, १८, ६८, ६९, ७२, ७४, ७५, १७१६, ३४, ४७, ५०, ६७, १८२३, ३५, ४९, ५४, ८४, १९२३, ६६, ६८, ७३, ७६.
- सुवर्णकार a goldsmith १६७४, १९६६.
- सुवर्णमापक a particular weight; a particular golden coin १६०९.
- सुवर्णस्तेय the stealing of gold (one of the five *Mahāpātakas*) १६०६, १७०२, ६६.
- सुकाना prolific; well-productive ९९७.
- सुविचिन्त well-thought or inquired १९१८.
- सुवेश N. of the son of *Urvastī* १३७७.
- सुरोवस् very gracious or kind; very dear १००१, ०२, १२५३, ६०.
- सुषुति easy birth ९८०.
- सुषूमा bringing forth easily ९६९, ९३.
- सुसंकाशा of beautiful appearance ९६५.
- सुसंस्कृत well-tilled; well polished ९५४, ६१, १०२३, ५९.
- सुसमेय skilful in council or company १२५८.
- सुसेक capable of irrigation ७८७.
- सुस्थ well established ७१०, ८४४.
- सुहृद् a friend ७२५, २७, ८६, ८०८, ६१, १२५२, १३२९, १९३०, ७०, ७८, ८६.
- सुहृद्वध murder of a friend ७५१.
- सुकर a pig ९१०, १७, १११३, १६१७, १८११, ३४.
- सुकरयोनि the species of pig १५९२.
- सुक्त a *Vedika* hymn ८१३, ११६२, १६५६.

सहस्र fine; excellent १६१४, १७३५, ४७, ६७, १९३१.

सूचक an informer ८७४.

सूची a needle or any sharp-pointed instrument (used for punishing criminals) १६८७.

सूत a particular mixed caste १००९, ११०५, ८५, १२३४, ८७.

सूतक impurity caused by child-birth १३७४, १९८५.

सूतपुत्र the son of a charioteer; N. of *Karna* ८१८.

सूतिका (a female) recently delivered ९०५, १५, १९, २०, २६, ११०६, १६८७.

सूत्र a thread; yard ६१०, २६, ३०, ७८७, ८९९, १००९, १६७०, ७३, ७४, ७७, १७१८, ३३, १९३८, ६६, ७०.

सूत्रसवन a particular sacrifice १०१६.

सूतरी merry ९६३.

सूनु a son ७१०, ८३९, ९६८, ७०, ८९, ११५८, ५९, ६०, १२३८, ५८, १९८४.

सूर्य the sun or its deity ८०९, ९००, ६४, ७२, ७७, ९५, ९७, ९८, ९९, १००३, १८३६, ३९, १९०२, २०, २१, ७७, ८०.

सूर्यपत्नी sun's wife ९९३.

सूर्या the daughter of *Sūrya* or sun (also described as daughter of *Prajāpati* or of *savitṛ* and the wife *Asvins* or of *soma*) ८११, ९७२, ८२, ८४, ८५, ९९, १०००, ०१, ०२, १४२३.

सूर्याभिनिमुक्त one upon whom (while sleeping) the sun has set ९९५, १५९१, ९२.

सूर्याभ्युदित one upon whom (while he is still sleeping) the sun has risen ९९५, १५९१, ९२.

सृगाल see शृगाल १६०६.

सृगालयोनि see शृगालयोनि १०५३.

सृषि an elephant goad ९२३.

सृष्टि the creation of the world ११००.

सेतु an embankment; dam; bridge; dike

८६२, ९२४, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३७, ३८, ४०, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ५५, १२२२, ८६, १६०९, १३, १९, ३८, ४६, १९२४, २५.

सेतुच्छिद् a destroyer of dike ९२९.

सेतुबन्ध the forming of a causeway or bridge ९२६, २८, ३०.

सेतुभोग circumference of the bridge ९२८, २९.

सेना N. of *Indra's* wife १००५.

सेनानो a leader; general १८९५.

सेवन enjoyment ७९४, १६२१, १९३६.

सेवा service; enjoyment ११२७, १६०३, १९७२, ८६.

सेव्य one capable of being stirred up when approached himself by a male (one of the 14 impotent men); to be guarded; enjoyable १०३२, ७९, ९४.

सैप्रक made of the wood of *Sidhraka* tree १६६७.

सोदक vide समानोदक ८९६.

सोदय with interest ६३१, ५१, ५३, ५५, ७३०, ३२, ४६, ४८, ५१, ५२, ५३, ५४, ५६, ८३२, ५०, ७८, ८३, ८७, १४४७, १६११.

सोदर a uterine brother or sister ८९६, १४२७, २८, ६२, १५१९, २३, ४१, ४४, ५८, ५९, ६२, १८१२, १९७४, ८४.

सोदरआवृणामि(धन) (property) inheritable by a uterine brother १४२७.

सोदर्य see सोदर ८०६, १२८९, १४२६, २९, ६७, ७३, १५२९, ४४.

सोपकार(आधि) profitable pledge ६३८, ४२, ५०.

सोपद्रव involved in calamity ७०८.

सोपान a stair-case ९२७.

सोम the juice of the *Soma* plant, (also) the plant itself; one of the most important of the *Vedika* gods; the moon; N. of a king; the *Soma*-sacrifice ६००, ७९९, ८१२, ४१, ५८, ५९, ९२४, ६८, ६९, ७०, ७५, ७९, ८५, ९३, ९७, १०००, ०१, ०६, ८६,

११४३, ८१, १२९४, १३६४, ८५, १४६४,
 १५९७, १६००, ०१, ०३, १८३८, ३९, ४५, ९३,
 १९२०, ३०, ३६, ३८, ७०, ७८.
 सोमप drinking or entitled to drink *Soma*-
 juice ८०३, १६६०, १७२३.
 सोमपान the drinking of *Soma*-juice १५९७.
 सोमपीथ a draught of *Soma* १००५.
 सोमविक्रय the sale of *Soma*-juice ७७२.
 सोमारण्य a forest of *Soma*-plants ९३०.
 सोमेश्वर N. of a person १३७६.
 सोम्य N. of a *Rshi* १६५६, १९८२.
 सौति a patronymic ८४०.
 सौत्रामणीयद्वा a particular sacrifice in honour
 of *Indra* १६१३.
 सौदायिक that which is given to woman at
 her marriage by her father or mother
 or any relative and therefore becomes
 her property; a marriage gift ८०३,
 १२३१, १४२८, ५३, ५५, ६०.
 सौदास N. of a king of the solar race १२८५.
 सौबल a patronymic of *S'akuni* ८१९.
 सौभाग auspicious ९८५, ९७, १००२, ०६.
 सौभाग्य welfare; happiness (esp. conjugal
 felicity) ९८४, ९१, १०००, ०२, ११०९, १०.
 सौभिक a juggler ८६३.
 सौवसि a patronymic १२६०, ७८, १९८१.
 सौर vide सौरिक ७०८.
 सौरिक due for spirituous liquor (as money)
 ६६३, ७८, ८०.
 सौवर्ण golden ९२१, १३७३.
 स्कन्ध the shoulder; back ८६३, १६६७, १७०२,
 १८००, २२.
 स्कन्धवाह्य capable of being carried on one's
 own back ७८४, १९२२.
 स्तन the female breast १७९४, १८७१, १९८४.
 स्तनयित्तु thunder ८४२.
 स्तम्भ a post; pillar १६२०, १९६६.
 स्तम्भक stopping; arresting १९६५.
 स्तुत्तिनिन्दा ironical praise १७७२.
 स्तेन a thief ६४५, ७५८, ६४, ७२, ८४३, ९०३,

३२, ९२, १०४२, १५९२, ९३, ९४, ९९, १६०२,
 ०३, १७, १८, १९, ४५, ५१, ५६, ५८, ६४, ६५,
 ६६, ६७, ६८, ७१, ७२, ८३, ९०, ९३, ९५, ९७,
 ९९, १७०२, ०३, २०, ४९, ५१, ५४, ५५, ५७,
 ६०, ९१, १८६९, १९२९, ३०, ४३, ५६, ६१.
 स्तेननिग्रह restraining or punishing of
 thieves १७२७.
 स्तेय theft ६११, ७६३, ७२, ९५, ८०६, ९२७,
 १००१, १११९, १४०५, ३०, १६०३, ०६, ०८,
 ०९, १३, १७, १९, २७, ४१, ४८, ५६, ६४, ६५,
 ७०, ८७, ९१, १७०२, २१, ४४, ४५, ५०,
 ५१, ५२, ६१, १८४८, १९२३, ७०.
 स्तेयदण्ड punishment for theft ७३७, ५७, ९४,
 ९२०, २९, १६७४, ८४, १९०४.
 स्तेयिन् a thief १६२७, १७६०, ६४.
 स्तोम a *vaidika* song of praise ६२९, ३४, ८१४,
 ५१, ५२, ९०२, ७५, १०००, १८९८, १९००.
 स्त्री a woman; female slave; wife ६१०, २१,
 २६, ३१, ३५, ५४, ६८, ७७, ७९, ८०, ८३,
 ९२, ९६, ९८, ९९, ७००, ०२, ०३, ०८, ११,
 १२, १३, १४, १५, ६४, ९२, ९९, ८०३,
 ०७, १७, ५१, ६३, ७५, ९२, ९७१, ७३, ७४,
 ८६, ९२, ९४, ९५, ९८, १००५, ०६, ०७, ०८,
 ०९, १०, १२, १८, २०, २३, २४, २५, २७,
 २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७,
 ३८, ४०, ४४, ४५, ४६, ४७, ४९, ५०, ५३,
 ५४, ५५, ५८, ५९, ६०, ६३, ६४, ६५, ६८, ७५,
 ७६, ७७, ७९, ८०, ८१, ८३, ८४, ८८, ९१,
 ९२, ९३, ९५, ९८, ९९, ११००, ०१, ०२, ०३,
 ०६, ०७, ०९, १०, ११, १२, १३, १४, १५,
 १६, १७, १८, १९, २७, १२०४, ०६, ०८, ०९,
 २३, ३१, ३२, ३६, ३९, ४५, ४६, ५५, ५८,
 ५९, ६७, ७१, ७३, ८२, ८४, ८५, ९७, १३१८,
 २३, ७३, ८४, ८५, ८७, ८८, ८९, ९२, १४००,
 ०२, ०७, १५, २४, २७, २८, २९, ३०, ३१,
 ३२, ४०, ४७, ४८, ४९, ५२, ५३, ५४,
 ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३,
 ६४, ६९, ७३, ७६, १५१२, १३, १८, २०, २३,
 २४, ५३, ५५, ६१, ९९, १६०७, ०९, १४, १५,
 १६, १७, १८, १९, २३, २७, ३८, ४६, ५३,

- ६६, ७०, ७१, ८१, ८५, ८७, १७४१, ४५, ५०,
५९, ६१, ६४, ६५, ७२, १८३७, ३९, ४१, ४२,
४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५२, ५३, ६५,
६९, ७२, ७४, ७६, ८०, ८१, ८३, ८७, ८८,
९१, ९२, ९५, ९७, १९२१, २६, ३६, ४१, ४४,
५१, ६२, ६४, ६६, ६९, ७५, ७७, ७८, ७९,
८४, ८७, ८८.
- स्त्रीकाम desire or desirous of a woman
११६६, १६४०.
- स्त्रीकृत (debt etc.) contracted by wife
६७९, ८०, ८२.
- स्त्रीग्राहिन् vide योषिद्ग्राह ६७८.
- स्त्रीघातिन् murdering a woman or wife १६०९,
७१.
- स्त्रीघ्न see स्त्रीघातिन् १६३२.
- स्त्रीजननी giving birth to female children
only १०२४, ५७, ११००.
- स्त्रीदोष abuses of a woman; offence regar-
ding a woman १०३२, १६१५.
- स्त्रीद्रव्य vide स्त्रीधन ७११.
- स्त्रीद्वारज a particular son (a son demanded
by a woman and so possessed by her)
१९८२.
- स्त्रीधन woman's property; property of a
wife ६३५, ७११, ८०३, ०७, ७९, १०२४,
३४, ३५, ३७, ३८, ९९, ११०९, ५७, १२२७,
३२, १३९२, १४०८, १६, २२, २५, २७, २८,
२९, ३०, ३१, ४२, ४३, ४७, ४९, ५०, ५२,
५४, ५५, ५७, ५८, ५९, ६१, ६२, ६३, ७३,
१५२७, ५३, १८४८, १९५०.
- स्त्रीधर्म the duty of a woman or wife १०२५,
१११२, १३, १५, १८.
- स्त्रीनिबन्धन caused by wife १०५२.
- स्त्रीपुंसयोग the mutual duties of husband and
wife १०९२.
- स्त्रीपुंसवर्तनोपाय the method of behaviours of
man and wife ११०६.
- स्त्रीप्रजा a woman who brings forth only
daughters १०२०, १११२.
- स्त्रीप्रज्ञा having womanly understanding
१०१०, १४०५, २४.
- स्त्रीप्रमापण murder of a woman १६३७.
- स्त्रीप्रसाविनी vide स्त्रीप्रजा १११२.
- स्त्रीप्रसू see स्त्रीप्रजा १०८७.
- स्त्रीबुद्धि the female intelligence १०३२.
- स्त्रीयोनि the womb of the female १०७०.
- स्त्रीरत्न an excellent woman १०२६.
- स्त्रीलोलुप covetous of woman ८६३.
- स्त्रीवध murder of a woman १०५८, १११३,
१६०६.
- स्त्रीवृत्ति property or maintenance of a
woman १४७४, १९५०.
- स्त्रीशुल्क fee paid for a woman ६३३, ८०३.
- स्त्रीसंसाद assembly or society of women
९९२, १५९९.
- स्त्रीसख friend of woman ९९५.
- स्त्रीस्वातन्त्र्य independence of a woman १३८८.
- स्त्रीहर्तृ an abductor of a woman १७६५.
- स्त्रीहारिन् see योषिद्ग्राह ७००, ०८, ११.
- स्त्रीण concerning woman ९८९, १००९.
- स्थल ground; prepared ground ९३०, ३३,
४०, ४५, ४६, ५०.
- स्थलज accruing from land-transport (said
of certain taxes or duties) ७७८, १६११,
१९४४, ४७.
- स्थविर old; oldage ७९३, ९४०, ६२, १०४५,
१७२७, १९२७.
- स्थगर made of the fragrant substance
sthaagara १००६.
- स्थणु a stump १००२, ०३, ७२, ११२७.
- स्थान a place ६२४, ७५०, ५५, ६८, ८२९, ४६७,
५०, ५३, ६२, ९२९, ३०, ३१, ३२, १०१८,
३६, १११५, १६१६, २२, ४८, ६३, ६५, ८२,
८५, ९०, ९५, १७०७, ९५, १८००, २२, २३,
६५, ८०, ८७, ९०, १९०९, १४, २४, २७, २९,
४२, ४९, ६७, ६९, ८३.
- स्थानपाल guardian of a place or region
१९५९.
- स्थानलेख्य document written in a particular
place; writing on marginal space of

the previous document ६५४.
 स्थानिक governor of a place १६८५.
 स्थापित deposited; established ६३५, ७५१,
 ९६२.
 स्थायिन् an inhabitant ८८७.
 स्थाली a dish १२५८, १३८५.
 स्थालीपाक a dish of barley or rice boiled in
 milk १३५६.
 स्थावर immovable; immovable property;
 natural ६३६, ३८, ४९, ५०, ५५, ६०, ७९७,
 ८०३, ८६, ८९, ९१, ९८, ९२९, ५१, ५५,
 ११४१, ७९, १२१९, २४, ३२, ३३, १४४८,
 ५४, ५५, ६३, १५१३, १८, २६, ४१, ६१, ६२,
 ८१, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, १६९५, १९२९,
 ८८.
 स्थावरक्रय purchase of immovable property
 ८९६, ९८.
 स्थाविर old age १०२०, ३१, १३८८, १९७७.
 स्थिति practice; settled rule; reality ६२५,
 ६५, ७२८, ६०, ६९, ८६९, ९३९, ५१, ५२,
 ६१, १०४८, ६०, ११०७, ९८, १२०३, १३७३,
 १४७८, १५७२, १६३१, १७७४, १९२२, २९,
 ३६, ४२, ७८, ८८.
 स्तम्भा the post or pillar of a house १००१.
 स्तूरा(स्फुरा) see छूरिका १७४९.
 स्थूलक rough; coarse १६७४.
 स्थूलकद्रव्य articles of greater value १०३७,
 १६१४, १७, १८००.
 स्थूलसूत्र coarse thread १७४७.
 स्नातक one who has performed the rite of
 completion of the first *Āśrama* ११६६,
 १६०६, ६४.
 स्नाता purified; bathed (after menstruation)
 १०१९, २०, ५७, ११०२, ११, १३, १२८४,
 १५२४, १६८५.
 स्नान bath ८१५, १०२३, २८, १११९, १२४४,
 १५२०, १९६५.
 स्नायिन् one who takes bath १६४८.
 स्नायुः a muscle ९०९, १७४९, १९७६.
 स्नुषा daughter-in-law ७०३, ९४, ८६३,

९९५, ९९, १००५, ०६, ०७, २०, ६४, ६६,
 ७५, १३९०, १४३०, ७३, १६५३, ८०, १८५०,
 ७४, ८२.
 स्नुषाग one who has illicit connection with
 a daughter-in-law १०६६.
 स्नुहि *Emphorbia Antiquorum* १९२५.
 स्नेह love; lubricant (oil, ghee etc.) ६३०,
 ३४, ७९९, ८०७, ५४, १०४८, १६७८, ८७,
 १७२९, ५९, १९८५.
 स्पर्धा competition ९२४, २८.
 स्पर्श touch ९५८, १७९९, १८१४, १५, ५२, ८१,
 ८५, ८६, ८९, १९८४.
 स्पर्शन touch १७८६, ९५, ९८, १८१४, १९७४.
 स्पश a spy ९७७, १८३६.
 स्पृश्य a touchable; twice-born १६१०, १९४१.
 स्पृष्टमैथुना defiled by sexual intercourse ८८१.
 स्फिच् a buttock १८०२, २८.
 स्फोटन removing १८९१.
 स्मदिस N. of a man ११६०.
 स्मर sexual love ९९७.
 स्मार्तक्रिया an act enjoined in *smṛti* १३२८.
 स्मृत ordained in *smṛti* १०२७.
 स्मृति the law books of *Manu* etc. १९२०,
 ३५, ४२.
 स्मृतितन्त्र *Smṛti*-scriptures १५१२.
 स्यन्दनिका a brook; rivulet ९४६, ५३.
 स्याल wife's brother ९६४.
 स्योन pleasant ९८६, ९१, १००१, ०२, ०३.
 स्रोतस् a stream ९०१, ५०, ५२.
 स्व one's own; property; one's own pro-
 perty ७५८, ६०, ६७, ९६, ८०४, १८, २३,
 ३९, ९८, ११४१, ४२, ४४, ७९, १५२५, १७२६,
 २७, ६०, १८४४, १९११, २३, २८, ८८.
 स्वक see स्व ८०५.
 स्वकरण bond or document of ownership
 ७५७, १६७६, ७७.
 स्वकर्मन् one's own occupation or duty ७७३,
 ७४, ११९०, १२१२, १७५१.
 स्वकुल one's own family १२६६, १३५२,
 स्वकुल्य one's own kinsman ८०३.

स्वकृता (वृद्धि) (interest) decided by common agreement ६२०.

स्वक्षेत्र one's own soil ६५५, १२७२, १३०२.

स्वगाकर्तुं uttering the exclamation *Svagā* १७९३.

स्वगोत्र one's own family १२७८, १३२८.

स्वग्राम one's own village ८९८, ९०१, ११४२, १५८९.

स्वग्रामिन् inhabitant of one's own village ९००.

स्वङ्गुरि handsome fingered ९६९, ८७, ९३.

स्वच्छन्दगा a debauch; wanton woman ९६१, १०५८, १११३.

स्वच्छन्दव्यभिचारिणी see स्वच्छन्दगा १०५८, १११३.

स्वजन a relative ८१७, ६०, १६१६, १८५०.

स्वजाति one's own caste १२२८, १३६५, १७७९, ८७, १८८२.

स्वजात्य belonging to one's own caste १०९३.

स्वतन्त्र independent ६९५, ८३१, ३५, ३६, १०२७, ३१, ५९, ११५७, १२८४.

स्वत्व ownership ८९९, ९००, ११२५, ४२, १२२४.

स्वदान the giving of one's own property ७९२.

स्वदारनिरत attached to one's own wife १०८१.

स्वदासी one's own female slave ८३७.

स्वदित free from sin; one who has become eligible for heaven १५९५.

स्वदेश one's own place or country १६७१, ७८, १७३१, ४८, ६१, ६२, ६३, ७३, १८४७.

स्वद्रव्य one's own property ७५५, ८०५.

स्वधन see स्वद्रव्य ६६२, ६५, ७२७, १२२०, १५५५.

स्वधर्म one's own duty ८१९, २९, ३१, ३९, ६५, ७४, ११८५, १२४४, १३०४.

स्वधा libation offered to the Manes ११८४, १२४५, ५१, ५२, ६९, ८१, ८८, ९४, १३२७, १४७१, १९००.

स्वप्न dream; sleep ९९५, ९८, १०२९, १०४८, ११०६, १५९१, १६८५, १८४०, ९३, ९७.

ह्वेप्रतिपन्ना(वृद्धि) vide स्वकृता(वृद्धि) ६१०.

स्वबन्धु one's own relation or friend ७६७.

स्वभाव nature १०४८, ४९, ७१, ७६.

स्वमण्डल one's own country १७६१.

स्वमातु one's own mother १२३५, ३६.

स्वयंकृत made or adopted by one's self (debt, priest, son etc.) ७१५, ८३, ८६, १३३४.

स्वयंकृता made or performed or effected by one's self. (interest, boundary.) ६३१, ३५, ९५८.

स्वयंग्रसितु one who voluntarily eats or partakes १६२०, २८.

स्वयंचोपगत (the son) who offers one's self १३४६.

स्वयंजात self-born; self-produced (son) १२८४, ८८.

स्वयंदत्त self-given (said of a child who has given himself for adoption) १२६३, ६६, ७०, ७१, १३०९, २०, ३४, ७३, ७४, ७६, ७७.

स्वयंवर self-choosing of a husband १०२२, ४२, ७८.

स्वयंवादिन् one who willingly enslaves himself ८१७.

स्वयंमांजित acquired or gained by one's self (property) १२०४, ०५, १३, १५, ३०, १५६८, ८७, १९२२, ८८.

स्वयमागत one who has spontaneously offered himself (as son) १३७५.

स्वयमाप्त acquired of one's own accord (property) १२२४.

स्वयमांजित acquired or gained by one's self १२०७.

स्वयमीहितलब्ध acquisition made solely by one's own effort १२०५, १२, १९८४.

स्वयमुत्पादित son begotten by one's self १२०५, ६५, ६८, ७२, १३५०, ५१.

स्वयमुद्बद्ध voluntarily hanged १६१५.

स्वयमुपगत a child who offers himself voluntarily for adoption १२७९, ८४.

स्वयमुपनत्त see स्वयमुपगत १२८३.

स्वयमुपागत see स्वयमुपगत १२६५, ७८.

स्वयमुपात्त self-acquired ११७५.
 स्वयम्प्राप्त acquired by one's self ८०३.
 स्वयम्भू N. of the first *Manu*; self existent
 ८२१, ११८४, १२७९, ९०, १९२८, ६६, ८४.
 स्वयोनि womb of one's own caste ११८५.
 स्वर voice १६८३, ८५, १७४१, ५३.
 स्वरिन्निधन् one's own heir १२३१.
 स्वर्ग heaven ६०३, ०४, ०६, ७३५, १००९, १०,
 २०, २३, २४, २५, २६, ५२, ६०, ६३, ७५,
 ७६, ७७, १११३, १४, १५, १६, १७, ६२,
 ८५, १२५३, ८१, १३४८, ७६, १६६८, ९२,
 १७०२, ०४, ५१, १८९६, १९२९, ७९, ८१,
 ८६.
 स्वर्गत being in heaven; dead १३७७.
 स्वर्गलोक heaven १०२८, १११५.
 स्वर्गा heavenly १३७७.
 स्वर्ग gold १७६७.
 स्वर्णकारक a gold-smith १७६७.
 स्वर्गन् going to heaven ११६२.
 स्वर्गत gone to heaven; dead १४७१, ७९,
 १५२३, २६, २७, २९.
 स्वर्दिद bestowing light ११६०.
 स्वलिखित any document or receipt written
 in one's own handwriting; a document
 in one's own hand ६७९.
 स्वत्वा possessing property १४२५.
 स्ववर्ग one' own group १२३३.
 स्ववर्ण one's own caste १५६८.
 स्ववित्तकारवः those who carry out artison
 work with their own capital १६७३.
 स्वशाखाविधि one's own branch (of *Veda*)
 १२७८.
 स्वस्र a sister ९६३, ६६, ६९, ७२, ७७, ७८, ९१,
 ९८, १००५, ०८, १०, १२६० १४१५, ६३,
 १६३५, १७९०, १८३६, ४०, ७४, ९०, १९१९.
 स्वस्ति wellbeing ८०९, ९२३, १००२, ५९,
 १३६४, १३६४, ७२.
 स्वस्रिण a sister's son १४५०, १५१३, २६, ९७.
 स्वहरण confiscation of property १६०५.
 स्वश्रु one's own share ६६७, ७७.

स्वांशदायक (a surety) giving one's own
 share ६७७.
 स्वातन्त्र्य independence ६९५, १०२०, ३१, ४५,
 ५८, ७६, ८३, ९८, ९९, १११२, १८,
 १३८८, १४५५, १५५५, १९७७.
 स्वातुक a debtor ६७७.
 स्वाध्याय one's own lessons or *Veda* १२८४,
 १६४८, ५१, १७६०.
 स्वाध्यायिन् reciting one's own *Veda* १६०८-
 ४८.
 स्वामिकर्मन् master's work ८१७.
 स्वामिगामिन् returning to the owner ८८८.
 स्वामित्व ownership ११७५, १२८७, १७६९, ९४.
 स्वामिदत्ता given by a master १११०.
 स्वामिदोष fault of the master ८४९, ९०३.
 स्वामिन् an owner; master; heir ६४०, ५०,
 ५३, ५८, ६०, ७२, ९२, ७०८, ०९, १४, २७,
 ५२, ५५, ५७, ५८, ६१, ६३, ६५, ६६, ६८,
 ८०३, ०४, २१, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४,
 ३७, ३९, ४३, ४७, ५३, ५४, ७२, ९७, ९०४,
 ०५, ०६, ०७ ०८, ११, १२, १६, १८, १९,
 २०, २१, ३१, ४३, ४६, ४७, ४९, ५४, ६०,
 ६१, ६२, १११०, २२, २७, ४२, १२२७,
 १३४८, ७२, १५२२, ६९, १६०९, १२, २१,
 ४९, ६६, ८९, १७६०, ६३, ६५, ६६, ९७,
 ९८, १८०७, ०८, २०, २९, १९१३, २२,
 २८, ३०, ३१, ३३, ५३, ५९, ६२, ७५,
 ८६, ८८.
 स्वामिप्राणप्रद (a slave) who protects the
 life of his master ८२३.
 स्वामिभाग share of an owner ९६१.
 स्वाम्य ownership ६५३, ७८६, ९३०, १०४२, ५९,
 ११४२, ५७, ७३, ७५, १२२१, १४५५, १५१७,
 २३, १८४८, १९८८.
 स्वाम्याणा master's permission ७८८, ९०.
 स्वायम्भुवो मनुः N. of the first *Manu*; the son
 of *svayambhu* १३१९, १७५२.
 स्वर्जित self-acquired १५८९.
 स्वार्थ one's own property ३५५, १५७३, १६६४,
 ८३.

- स्वाहाकार recitation of *Svāhā* १००८.
स्वीकार acceptance ८९०.
स्वेच्छादेय to be lent or given according to one's own choice ७८६, ८०३.
स्वैरिणी a wanton woman ७०२, ०३, १५, १०१७, २६, ८८, ११०३, ०४, १२८४, १५९३, १८८३, ८८, १९७८.
स्वैरिन् unrestrained or adulterous man १५९३.
स्वौपशा having beautiful locks of hair ९९३, १००८.
हंस a gander; swan १६०६.
हत्त killed ७५५, ९४, ८७९, ९१८, ४३, ९६, १०५३, ६८, १२५९, १६१५, १६, २१, ४०, ४७, ५३, ५४, १७९८, १८१३, १७, १९२३, ६४.
हत्तपुत्र one whose son or sons have been killed १९६४.
हत्तभूमि place where the death occurred १६१६.
हनु the jaw १६००.
हनूमत् N. of a monkey hero or monkey-deity १३२९.
हन्तव्य to be slain or killed १६४६, ५१,
हन्तु a killer; murderer ८६२, १६००, १२, २६, ४८, ५०, ५१, ५३, ५५, १७४२, १८३२.
हय a horse ८४०, १८१०.
हर N. of *S'iva*; seizer १३७७, १७५८.
हरण appropriation; seizure ८०७, ९४२, ५२, १४२८, ६१, १६१९, २१, ५३, ६८, ७०, ७२, १७११, १२, १३, १८, ३८, ४९, ६१, ६६, १८९१.
हरि N. of a deity १९७०, ७९.
हरिण a deer १८३८.
हरिन् a monkey १३२९.
हरिश्चन्द्र N. of a king १००५, १२७८.
हर्तव्य to be taken or seized १२४३, ४४.
हर्तु a robber ७६१, १६२९, ४६, १७११, १३, ६०, ६५, १९२९.
हर्म्य a large house; palace ७८७, ९०.
हर्ष joy १०२०, १७९१, ९२.
हर्षदान a gift through joy ८०७.
हलाहल a kind of deadly poison १९६५.
हविषु an oblation ६०४, ८५८, ९०३, ६९, ८७, ९३, ९५, ९९, १००२, ०४, ०६, ०७, ११४४, ६०, १२६१, १८९६, १९०२.
हव्य sacrificial food ८१९, १२४४, १५९५, १९०१.
हव्यदाति conveying or presenting oblation to the gods (said of *Agni*) १९०१.
हव्यवाह fire or the god of fire १९६३.
हस्त the hand ६०१, ०२, ०५, ८९, ७०६, ३५, ३६, ३९, ४५, ५५, ८८५, ९७, ९२१, ५५, ६२, ८५, ९७, ९८, १००१, ०३, ०६, २३, ३५, ३६, ५९, १११०, १२७०, १३६४, १४३०, १६१७, १८, १९, ५३, ५६, ७०, ७२, ७४, ७८, ८०, ८३, ८५, ८७, ९७, १७११, १३, १७, ५२, ६०, ६२, ६५, ९६, ९८, ९९, १८०३, १५, २४, २९, ३०, ३२, ३५, ३८, ३९, ४८, ५०, ८९, ९१, ९५, ९९, १९०१, ०२, ०४, २२, २५, २९, ४३, ५८, ६५, ६६, ६७, ७९, ८८.
हस्तगृह्य one who has taken the hand १८३८.
हस्तग्राम a husband ९७८, १००४, १२५७.
हस्तग्राह see हस्तग्राम १२५४.
हस्तिन् an elephant ८१४, ५४, ९१९, २०, २४, ३२, १६१२, १८, २१, २९, ५१, ७२, १७१३, १९२९, ८३.
हस्तिप elephant-driver ९०३, १८२७.
हाटक gold ६३४.
हान the act of abandoning १९७२.
हानि loss ६७७, ७०५, ६६, ६८, ६९, ८५, ८८४, ८५, ९०, ९१, १५८३, १६११, ७४, १७२८, ८४.
हारक seizer; thief १६१२, ५०, १७०१.
हारिन् see हारक १७३६, ५८, ६५, १९६६.
हारीत N. of a *Rishi* १६६५, ६६.
हार्य to be appropriated १९५०.
हास्य laughter १०८५, ११११, १८८५, १९०६.
हिसक a destroyer; injurer १६१८.
हिसन see हिंसा १६५५, १८२०, १९३३.
हिंसा killing; violence; injury ७१३, ९४, ९०३, ०६, ३०, १११९, १६०४, ०५, ०८, १२, १७, २०, २१, ८०, १७९५, १८००, ०४, ०८, १०, ३४, ५०, १९२५.
हिसित injured ६०४, १४६४, १९७६.
हिंस्र injurious; mischievous १०५६, १६१९,

५३, ८३, १९३०.
 हित beneficial; wholesome ८६१, ६३, ६७,
 ६८, ७४, १०१६, २०, २८, २९, ७५, ११०७,
 १४, १७, १९, २७, १३२९, १५९६, १६४६,
 १७०१, १८४१, १९२६, ३१, ३५, ७८, ७९, ८३.
 हिताभङ्ग the breaking of a dike १६९८, १९२९.
 हिमवत् snow-clad १२८७, १९२०, २१, ८६.
 हिमशैल the *Himālaya* mountain १९६६.
 हिरण्य golden ८८८.
 हिरण्य gold ६०६, ०९, १०, २१, २६, ३०, ३५,
 ५२, ५८, ८१, ७२६, ३१, ४२, ४३, ८६, ८७,
 ८१४, ६१, ६३, ९९, ९०१, २४, ७४, ९३, ९८,
 १०००, ०५, ०७, ३०, ११२१, ४२, १२६०,
 १५८९, १२, ९६, १६१४, १८, ६१, ७१, ८२, १७४५,
 १८००, ४९, ९६, १९०१, २३, ४०.
 हिरण्यय golden ९९५, ९९.
 हिरण्यवर्ण golden coloured १००१.
 हिरा a vein ९९६, १२५९.
 हीन low; degraded; base; a slave; destitute;
 deprived of ६६०, ६१, ७७, ७२९, ३७,
 ५४, ६०, ८१, ८१९, ३५, ५६, ६२, ७८, ९८,
 ९९, ९०८, १६, ३०, १०१५, २५, ४२, १११३,
 १३४९, ५१, ७३, १५१७, २९, १६४५, ४८,
 ५१, ७३, ७५, ७७, १७२९, ३२, ३७, ६५, ७२,
 ९०, ९६, ९८, १८१४, २४, ४८, ४९, ७६, ८६,
 ९५, १९२४, ३२, ४२, ४३, ७०, ८८.
 हीनकर्मन् neglecting customary rites or
 religious acts १६६०, ८३, १७२५.
 हीनक्रतु one who neglects to sacrifice १७२३.
 हीनक्रय purchase (of a commodity) at a lower
 price than its real value ८९१, १६७४.
 हीनजाति of low caste ७२३, १०२३, १६८३.
 हीनमूल्य low price ७५७, ६०, ६३, ६४, ८८९, ९८,
 ९९, १६७७, १७६४.
 हीनयोनि low birth or origin १२८४.
 हीनवर्ण of low caste; out-caste १७७०, ७१, ९६,
 १८४२, ४६, ८७.
 हीना an abandoned (woman) १०८४.
 हीनाङ्गी defective in limb १०२२.

हीनेश्वर wanting ownership ८१८, १३९१.
 हुङ्कार the sound *Hum* (expressive of con-
 tempt) १७९१.
 हुत sacrificed १२८३.
 हुताश fire १९६६.
 हुताशन fire १११५, १९४०, ६५.
 हत appropriated; seized ७४१, ४८, ५३, ५५,
 ६४, ८८, ९०, ९०८, १६, २०, ५२, १०८६,
 १४००, १५७४, १६६८, १७४१, ४९, ५७, ६३, ६५,
 १८३१, ३३, ५०, १९५८, ६९, ७६.
 हनस्व one whose property has been appro-
 priated १९६४.
 हृद् the heart १९७७.
 हृदय the heart ८५८, ९९८, १०७६, ७७, १६०३,
 १५, १८३६, ९५, १९२१, ६४, ६५, ८३, ८५.
 हृदयश्रिष clinging to the heart ९९६.
 हेति a missile; weapon ६३०, ९०२, ०३, १४६४,
 १६००, १८३२.
 हेतु cause ६६९, ८९८, ९९, ९४९, ५४, ११०२,
 २७, १६५१, ८५, १८२९, ३२, ३४, ९४,
 १९१३, ३६, ३९, ८५, ८८.
 हेमकार a goldsmith ७८७, ९०, १७०८, १९३०.
 हेमन् gold ६०९, ५८, ७५०, ८४, ९०, ८१३, १५,
 ९९, १५१३, २६, १६४६, १७५९, १९६७.
 हेममाष a golden *Mās'a* १९६७.
 हेरण्य golden १६२८, १९२७.
 होढ stolen goods १५८१, १६४७, ९६, १७५१,
 ५२, ५३, १९२९.
 होत्र an officiating priest ६०४, ७७५, ९२,
 ८११, ९९५, १००४, ०९, ११६०, १२५८, ७८, १८३८.
 होत्रक an inferior *Hotr* priest or an
 assistant of the *Hotr* ७९२.
 होम the act of making an oblation to the
 gods १३६४, १९२४.
 हृद a lake; pool ९२४.
 हास diminution; decrease ६६०, ११०९,
 १७३०, ६३, ६७.
 हीतमुखिन् shame-faced ९९२, १५९९.
 हीदत्त a gift through bashfulness ८०८.

शुद्धिपत्रम्



| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|-----------|-----------|--------|---------|---------|-----------|----------|
| ७ | २ | २६ | प्रत्युत् | पत्युत् | २४२ | २ | ९ | अर्थि | अर्थि |
| ११ | १ | १८ | " | " | २५२ | १ | ८ | विभ्यन्ति | विभ्यति |
| १८ | २ | २७ | " | " | २६४ | १ | २ | ब्रुही | ब्रूही |
| २० | १ | ३१ | *सज्ञः | संज्ञः | २६५ | २ | ८ | तरं | तरद् |
| ३९ | १ | २१ | दिर्नियो | दिर्नियो | २७७ | १ | ३३ | शुद्र | शुद्र |
| ४१ | २ | १६ | पृथक् | पृथक् | २८४ | १ | २२ | धुन् | धून् |
| ६१ | १ | २४ | तत्कार्ये | तत्कार्ये | २९१ | २ | १७ | टास्यु | टाः स्यु |
| ६२ | २ | ६ | दण्ड्यो | दण्ड्यो | ३४४ | १ | १२ | लक्ष्मी | लक्ष्मी |
| ६३ | १ | १३ | ङ्गल प्र | ङ्गलप्र | ३४७ | १ | २२ | भदाः | भेदाः |
| ७४ | २ | ७ | नस्त | नस्त | ३६५ | १ | १३ | विष्टा | विष्टा |
| ७९ | १ | १९ | विर्ध | वर्ध | ३६९ | १ | १ | प्रप्ति | प्राप्ति |
| ८४ | १ | ३१ | प्रशय | प्रश | ३७१ | २ | १९ | वादि | वादी |
| १०८ | २ | ६ | बष्ट | वष्ट | ३९९ | १ | ३३ | भूक्ति | भुक्ति |
| १११ | १ | ४ | धर्मा | धर्मा | ४१८ | २ | २ | विद्या | विय |
| ११७ | १ | १० | निर्णा | निर्णे | ४२२ | १ | १३ | स्वनि | स्वामि |
| १२८ | २ | ४ | अह्ना | आह्ना | ४२७ | २ | ३ | त अन्य | तोऽन्य |
| १५५ | १ | २३ | दूर | दूर | ४३० | १ | १६ | श्रियते | श्रीयते |
| १६० | १ | १ | यत्पु | यत्पु | ४५६ | १ | १३ | शेत | शते |
| १६३ | २ | १० | मर्ष | मर्ष | ४६२ | २ | ४ | शह् | शह् |
| १७९ | १ | ३० | तरं | तरं | ४८१ | १ | १६ | ऊभ | उभ |
| १८२ | २ | १३ | विश | विश | ४९२ | १ | २ | मन्त्रणं | मन्त्रणं |
| १९१ | १ | ७ | युञ्जित | युञ्जित | ४९३ | १ | १ | यथा | यथा |
| २०३ | १ | ४ | कीं | किं | ५३२ | १ | १४ | लीपि | लिपि |
| २०९ | १ | १३ | तां | तां | ५३९ | १ | २० | जनीते | जानीते |
| २१३ | १ | ६ | तो | तौ | ५५१ | १ | १ | लुण्टन | लुण्टन |
| २१३ | १ | ३०, ३१ | स्वरूप | स्वरूप | ५५७ | १ | १ | वणिक | वणिक |
| २१८ | १ | ११ | दिग्ध | दिग्ध | ५६९ | १ | १९ | श्चितेषु | श्चितेषु |
| २१८ | १ | १२ | दिनि | दिनि | ६०१ | १ | १२ | नापक | नासाक |
| २२८ | १ | २२ | रूपण | रूपण | | | २० | णापक | णासाक |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|-----------|------------------|--------|---------|---------|-------------|------------|
| ६०१ | १ | २७ | न्मत्रे | न्मत्रे | ६४३ | १ | २५ | रूप | रूप |
| " | " | ३० | रज्ज्वा | रज्ज्वा | ६४४ | २ | ११ | वृत्तो | वृत्ते |
| " | " | ३१ | विधते | विधते | ६४७ | " | ३१ | *निक्षे | निक्षे |
| ६०२ | २ | २ | त्वप्र | त्वप्र | ६४९ | " | ३ | विधि | विधि |
| ६०३ | " | ४ | रिष्यन् | रिष्यन् | ६५१ | १ | १ | *ऋण | ऋणं |
| " | " | २१ | पाशव | पाशव | ६५२ | " | १६ | रुपा | रुप |
| ६०५ | १ | ३० | भ्याशाम् | भ्याशाम् | ६५३ | " | ११ | त्यादिपरि | त्यादि परि |
| " | " | ३२ | शुद्ध | शुद्धि | " | २ | २३ | स्विति | स्त्विति |
| " | २ | २ | वाभ्या | वाभ्या | ६५६ | १ | १४ | द्विक | द्विकं |
| " | " | १६ | दि.प्रका | दिप्रका | ६५९ | " | ३२ | विक्रि | विक्र |
| ६०७ | १ | २८ | ८।१५२ | +८।१५१ | " | २ | १९ | दिगु | द्विगु |
| ६०८ | २ | २ | भदिति | भूदिति | " | " | २७ | धनी- | धनी |
| " | " | २० | चार्तुव | चार्तुव | ६६० | १ | २ | धो ऋ | ध ऋ |
| ६०९ | " | ६ | *रीतीना | रीतीनां | ६६१ | २ | २० | त्यादि द्वा | त्यादिदा |
| ६१० | " | १० | ष्यादीनां | ष्यादीनां | ६६६ | १ | २५ | स्तीति | स्तीति । |
| ६१२ | १ | ३४ | पूर्व | पूर्व | " | २ | ८ | *स्वध ला | स्वधनला |
| ६१४ | " | ८ | स्मृतिरः | स्मृतिरि | ६६७ | " | २१ | मुपैत्य | मुपैत्य |
| " | २ | ४ | मुल्य | मूल्य | ६६९ | १ | १० | णवत्वा | णत्वा |
| ६१७ | १ | ५ | वृद्धिरा | वृद्धिरा | " | २ | १४ | गामि ष | गामिष |
| " | २ | १४ | षेध्यते | षिध्यते | ६७० | १ | १८ | *दर्श | दर्श |
| ६१९ | " | ६ | उह्य | उह्य | ६७४ | " | ३१ | त्तत् | +त्तत् |
| " | " | २० | मुह्य | मुह्य | " | २ | १४ | *प्रतिभः | प्रतिभूः |
| " | " | २८ | स्वरुप | स्वरूप | ६७५ | १ | १८ | तःसो | तः सो |
| ६२१ | " | २० | क्षीण | क्षीर | ६७६ | " | २५ | पतिभू | प्रतिभू |
| ६२४ | १ | २० | षाष्टो | षाष्टो | ६७८ | " | ५ | चेत्यः | चेत्यर्थः |
| | | | | [एतस्याठानुसारेण | " | " | १९ | यावत् स्थि | यावत्स्थि |
| | | | | पाठभेदा अपि | ६७९ | " | १३ | तिष्ठत | तिष्ठत |
| | | | | कल्पनीयाः] | ६८० | २ | १४ | व्यादि | व्यादिः |
| " | " | २२ | षष्टि | षष्टि | ६८३ | १ | २६ | अन्यथा | अन्यथा |
| ६३५ | " | ११ | शास्त्रद | शास्त्रद | ६८४ | २ | १३ | पौत्रै | पौत्रै |
| " | २ | १० | कार्य | काय | " | " | २२ | भक्ता श्वे | भक्ताश्वे |
| ६३७ | १ | ३३ | क्रियत | क्रीयत | ६८५ | १ | १० | मन्वस्थे | मन्वस्थे |
| ६३८ | २ | २७ | तिष्ठ | तिष्ठ | " | २ | १२ | रुढ | रुढ |
| " | " | २८ | गौणौ | गौणौ | ६८८ | " | २२ | धैव' च | धैव च |
| ६३९ | " | ३० | ताधौ | ताधौ | ६९१ | " | ७ | ऋणा | ऋण |
| ६४१ | १ | १२ | स्वत्त्व | स्वत्व | ६९४ | " | ३ | वृत्तौ | वृत्तौ |
| ६४२ | " | ३ | भोगस्यो | भोग्यस्यो | ६९५ | " | २४ | वश्मेनि | +वश्मेनि |

+ एतच्चिह्नाङ्किता शुद्धिः पादटिप्पण्यां द्रष्टव्या ।

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|-----------------------------|--------------------------|
| ६९८ | १ | १ | कृत | कृत |
| ६९९ | १ | २९ | निस्वा | निःस्वा |
| ७०२ | २ | ७ | अभा. ३० | अभा. ३९ |
| ७०२ | १ | ६ | ब्राह्म | दब्राह्म |
| ७०७ | १ | ३२ | अववत् | +अपवत् |
| ७०८ | १ | २८ | त्याभि | त्याभि |
| ७०९ | २ | १६ | गृहीमात्र | गृहिमात्र |
| ७११ | २ | १३ | गृही | गृही |
| ७११ | १ | ३५, ३७ | शात् (शत्) | +विंशात् (विंशत्) |
| ७१५ | १ | ३५ | चार | +चाट |
| ७१६ | १ | २७ | त्तद्वि | +तद्वि |
| ७१७ | १ | १७ | मत्त्व | मत्व |
| ७१९ | १ | २३ | द्वयशं | द्वयंशं |
| ७२१ | १ | १२ | स्वत्व | स्वत्व |
| ७२४ | २ | २६ | ग्रह | गृह |
| ७२४ | १ | ४ | तच्च ऋ | तच्च ऋ |
| ७२६ | १ | १ | सुह्य | सुह्य |
| ७२६ | १ | ३६ | त्रणी | +त्रणी |
| ७२७ | १ | २७, २८ | (यत्रणीं दाप्यतेऽर्थं स्वं) | (यत्रणींको दाप्यतेऽर्थं) |
| ७२७ | २ | ४ | परी | परी |
| ७२७ | १ | ७ | न्मुखी | न्मुखी- |
| ७२८ | १ | २९ | (त) | +(तु) |
| ७२९ | २ | ३६ | विर. | +विर. ७९ |
| ७३० | १ | १० | पूर्वाक्त | पूर्वाक्त |
| ७३३ | १ | १३ | नुपपत्तेः | नुत्पत्तेः |
| ७३३ | २ | १७ | प्राति | प्रति |
| ७४२ | १ | २१ | ग्रही | गृही |
| ७४२ | १ | ४ | रैहि | रैहि |
| ७४३ | १ | ३३ | तत्स मंदा | +तत्समं दा |
| ७४६ | १ | १० | रेण च | रेण लाभात्- सारेण च |
| ७४६ | २ | १ | मार्णाय | मार्णाय |
| ७४६ | १ | १८ | कारो | करो |
| ७४८ | १ | २१ | भूते | भूते निक्षेपे |
| ७४८ | १ | ३२ | चेत्तज्जिह्वम् | +चेत्तज्जिह्वम् |
| ७४८ | २ | ३ | वृत्तं | वृत्तं |
| ७५० | १ | १३ | निधयः | निधयः |
| ७५० | २ | १५ | यथा क | यथा क |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|-------------------|---------------------------------|
| ७५० | १ | २९ | न प्र | +नप्र |
| ७५२ | २ | ८ | त्यादि ध | त्यादिध |
| ७५३ | १ | ३१ | अन्यस्मिन् | +अमुष्मिन् |
| ७५४ | २ | २९-३० | सवि. २६८ | +सवि. २६८ |
| ७५४ | १ | २९ | वरदराजः; | करा (क्रया) |
| ७५४ | २ | २९ | समु. ८८ र्थश्च | पाप (पोऽप) |
| ७५४ | ३ | २९ | (र्थं च) | वरदराजः; |
| ७५४ | ४ | २९ | पोऽप (पाप) | समु. ८८ र्थश्च (र्थं च) |
| ७५४ | ५ | २९ | नप्रा | +अप्रा |
| ७५८ | १ | २३ | सार्वा | सर्वा |
| ७५८ | २ | २९ | स्तद् | स्तद् |
| ७५९ | १ | ३५ | दण्डो (दण्ड्यो) | +दण्ड्यो (दण्डो) |
| ७६० | १ | २३ | तदा | तथा |
| ७६६ | १ | १० | ज्ञानाता | ज्ञाता |
| ७६६ | २ | ८ | शुध्यो | शुद्धयो |
| ७६८ | १ | १० | क्रमा | क्रया |
| ७६९ | १ | २० | तया | ताया |
| ७७१ | १ | २ | तत्र चे | तत्र चे |
| ७७२ | २ | २५ | तत्तक | तत्तक |
| ७७४ | १ | ११ | त्विज्जो | त्विजो |
| ७७५ | १ | १ | क्षिणा | क्षिणाः |
| ७७५ | २ | १० | सोमापा | सोमोपा |
| ७७६ | २ | ११ | १७८ | १८७ |
| ७७७ | १ | ४ | रुपा | रूपा |
| ७८० | १ | २० | करोति | न करोति |
| ७८३ | १ | १, २ | उर्ध्वं | ऊर्ध्वं |
| ७८३ | २ | १८ | दात्वि | दात्वि |
| ७८९ | १ | ७ | धन | धनं |
| ७९० | २ | १३ | चर्वि | चर्वि |
| ७९१ | १ | २८ | यथा समु | यथासमु |
| ७९४ | १ | २ | स्वत्वा | स्वत्वा |
| ७९४ | २ | ३ | प्रदा | दा |
| ७९६ | १ | ३२ | शुनि. | +शुनी. |
| ७९६ | २ | ३२ | तावुभौ (उभौ) | उभौ तौ (तावुभौ) |
| ७९७ | १ | १६-१७ | न ... न्यस्मै । | प्रतिश्रुतमन्यस्मै न देयम् । |
| ८०० | २ | ३७ | धर्म सं | धर्मसं |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|--------------|-----------------|--------|---------|---------|------------|--------------|
| ८०७ | २ | १ | स्वति | स्वस्ति | ८६२ | १ | ४ | निम | निय |
| ८०८ | १ | १५ | तार्थप्रदा | तार्थादा | " | " | ५ | अशं | अंशं |
| ८१० | २ | " | द्वाह्यः | द्वाह्यः | " | २ | १८ | मल्ल | मल्लक |
| ८१२ | " | १६ | दास्या- | दास्याः | ८६३ | " | १३ | व्यञ्जनो | व्यञ्जनो |
| ८१४ | " | २८ | वैत | वैत- | ८६४ | १ | २२ | बन्धतां | बध्प्रतां |
| ८१५ | १ | २५ | सर्वानि | सर्वानि- | " | २ | २१ | जितव्यः | जयितव्यः |
| " | २ | ३ | गुरु | गुरु | ८६७ | १ | ६ | समुह | समुह |
| " | " | १२ | स्तत्रतत्र | स्तत्र तत्र | ८७३ | २ | ७ | मत | मन्त |
| ८१८ | " | ८ | स्तं वक्ष्या | स्तं ते वक्ष्या | ८७४ | " | २९ | (बन्धिन) | +(बन्धिनः) |
| ८१९ | " | १९ | शूद्रा | शूद्रौ | ८७६ | " | २६ | (अकु | +अकु |
| ८२० | १ | १ | निया | निय | ८८० | १ | ६ | केतृ | केतृ |
| ८२१ | " | १७ | भावि- | भावि | ८८२ | " | २३ | महत्वा | महत्त्वा |
| ८२२ | २ | २० | दारयो | दासयो | ८८३ | " | १७ | एष | इष |
| ८२३ | १ | ३५ | हीयते वि | हीयतेऽतो वि | " | २ | १८ | ववा | वैवा |
| ८२४ | २ | १८ | अन्वासीति | अन्तेवासी | " | " | २२ | न्यात्व | न्यात्व |
| ८२६ | " | ११ | मित्यर्थः । | मित्यर्थः । | ८८४ | " | २० | अर्ध | अर्ध |
| | | | | अभा. ८९ | ८८५ | " | १३ | स्यार्थः | स्यार्थ |
| ८३२ | " | ६ | मुच्यते । | मुच्यन्ते । | ८८६ | १ | २३ | दीयत | +दीयते |
| ८३४ | १ | २८ | किंचन- | किंचन | ८८८ | " | ४ | त्वात् | त्वात् |
| " | २ | २ | रूपतः | रूपतः | ८८९ | २ | २७ | हातु | हातु |
| " | " | १४ | कर्मकङ्क | कर्म कङ्क | ८९० | १ | २ | दुसष्टं | दुत्सष्टं |
| " | " | २० | (त्वभि) ; | +(त्वभि) | ८९१ | " | ७ | त्मकं | त्मकद्रव्यं |
| ८३५ | १ | ६ | महत्व | महत्त्व | " | " | २७ | सीमोल | सीमोल |
| " | " | १६ | " | " | " | २ | १५ | ३२२ | ३२१ |
| ८३८ | " | २० | स्वत्वे | स्वत्वे | " | " | १८ | ३२१ | ३२२ |
| ८४० | " | ३ | किं वर्णो | किं वर्णो | ८९८ | १ | ३२ | (क्रयः) | +(ऋण) |
| ८४१ | २ | ७ | धारा, | धाराः, | ८९९ | " | २२ | कल्पित | कल्पितात् |
| ८४२ | १ | ५ | इर्ष्य | ईर्ष्य | " | " | २५ | काला | त्काला |
| ८४४ | " | १३ | दण्ड्यत | दण्ड्येत | ९०० | " | ८ | अर्थ | अर्थ |
| " | २ | २६ | उर्ध्वं | +ऊर्ध्वं | " | " | १० | नन्वर्थ | नन्वर्थ |
| ८४५ | १ | ६ | णिपन्या | णिङ्न्या | " | " | १३ | अर्थ | अर्थ |
| " | " | १३ | कर्मा | 'कर्मा | " | २ | ३ | बन्धः | बन्ध |
| ८४८ | " | २२ | यथा तं | यथाश्रुतं | ९०३ | " | २० | स पाल | सपाल |
| ८५३ | " | ६ | लाङ्गूल | लाङ्गूल | ९०७ | १ | २१ | तथा | यथा |
| " | " | १० | स्मृच. २२० | स्मृच. २०२ | ९१० | २ | ४ | किभि | किमि |
| ८५४ | २ | १६ | तत्कर्म | तत्कर्म | ९१७ | " | ७ | मूल | मूल्य |
| ८६० | " | ७ | महत्वं | महत्त्वं | ९२३ | १ | ६ | कृत्यादिकु | कृत्यादिकु |
| ८६१ | " | २१ | रूप | रूप | ९२४ | " | २९ | संचर | संक्षर |
| | | | | | ९२८ | " | १९ | स्थानं | स्थानं |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|-----------|----------|--------|---------|---------|-----------|------------|
| १२९ | १ | ३३ | उर्ध्व | ऊर्ध्व | १०१० | १ | १२ | तस्मा द | तस्माद् |
| ,, | २ | ३४ | दय | दयः | ,, | ,, | २० | यस्तु | यस्तु |
| ,, | ,, | ३६ | विपि | विष | १०१४ | २ | २७ | करीं वि | करीं वि |
| १३७ | ,, | २५ | स्वग्वि | सग्वि | १०१८ | ,, | १५ | भर्तृ | भर्तृ |
| १४२ | ,, | २२ | बहुद | बहूद | १०१९ | १ | १ | तऽने | तेऽने |
| १५० | १ | ५ | स्रोतः शर | स्रोतःशर | १०२४ | २ | २ | २४२ | २४१ |
| १५१ | ,, | ३६ | चिह्वा | चिह्व | ,, | ,, | १६ | तमति | तामति |
| १५६ | ,, | १ | चतु | चत | १०२६ | ,, | ३२ | दुःखै | दुःखै |
| १६३ | १ | ११ | पत्न्य | पत्न्य | १०२७ | १ | २७ | दष्ट्वा | दष्ट्वा |
| १६५ | २ | १७ | पिता | पीता | १०२८ | ,, | २ | भ्रातृ | भ्रातृ |
| १६६ | १ | २८ | यो ज | या ज | ,, | २ | १ | पैशुन्ये | पैशुन्ये |
| ,, | २ | १५ | यमी | हमी | ,, | ,, | १२ | बहु | बहु |
| १६८ | ,, | ८ | काल | कल | १०२९ | १ | १८ | चारेत् | चरेत् |
| ,, | ,, | २५ | रुपां | रूपां | १०३५ | ,, | ५ | वर्णा | वर्णा |
| १७१ | ,, | २० | इन्द्रं | इन्द्र | १०३८ | २ | ७ | द्वाभ्यां | द्वाभ्यां |
| १७२ | १ | १ | द्वयसी | द्वयसी | १०४४ | १ | १४ | त्येनेन | त्येनेन |
| १७३ | ,, | १४ | जाया | जाया | १०४८ | ,, | १६ | रुद्धाप्य | रुद्धाप्य |
| ,, | ,, | २४ | प्रोष्ठे | प्रोष्ठे | १०५० | २ | ४ | त्रबहु | त्र बहु |
| ,, | २ | २१ | दम्पति | दम्पती | १०५१ | ,, | ११ | द्व्युप | द्व्युप |
| १८१ | ,, | १७ | कुर्वा | कुर्वा | १०५४ | ,, | ३० | वित्या | वित्या |
| १८४ | १ | २५ | मां | मा | १०५७ | ,, | २० | संनिधा | संनिधौ |
| १८६ | २ | १३,१८ | श्रुतरा | श्रुतरा | १०६२ | ,, | १४ | ब्रह्मचय | ब्रह्मचर्य |
| १८७ | १ | १ | ष्याति | ष्याति | १०६५ | ,, | ३ | प्सित श | प्सितश्च |
| १८८ | २ | ११ | कामयत | कामयत | १०६६ | ,, | २७ | षोडशी | षोडशि |
| १८९ | ,, | १६ | सस्ने | स्वस्ने | १०६८ | १ | १५ | मान श | मानश्च |
| १९० | ,, | २२ | त्वप्र | त्वत्प्र | ,, | २ | ८ | झात् | झात् |
| १९१ | ,, | ४ | प्रति | पति | १०७८ | १ | २२ | दुःखिल | दुःखिल |
| १९२ | १ | १६ | लद्धा | लद्धा | १०८० | २ | ४ | वज | वर्ज |
| ,, | ,, | १९ | या । | या | १०८१ | १ | १९ | त्वस्मै | त्वस्मै |
| ,, | ,, | ३० | मुदि | मुद्दि | ,, | ,, | ३० | दिक् । | दिक् । |
| १९९ | २ | ३२ | पञ्चो | पञ्चौ | ,, | ,, | ३५ | स्निग्ध | स्निग्ध |
| २००० | १ | २६,२७ | वध्वाः | वध्वाः | ,, | ,, | ३६ | स्त्रियः | स्त्रियाः |
| २००१ | ,, | ५,२१ | ,, | ,, | २०८२ | ,, | १० | षज्जते | षज्यते |
| २००४ | २ | ३० | १०११७११ | १०११७१२ | ,, | ,, | २४,२५ | यक्ष्यते | यक्ष्यते |
| २००५ | १ | ९ | स्माल्लो | स्माल्लो | ,, | २ | १७ | हि | हि |
| २००६ | ,, | १ | वध | वधे | ,, | ,, | २३ | *अण | अण |
| ,, | ,, | ९ | चतुः शि | चतुःशि | ,, | ,, | ३१ | मे दष्टं | मेऽदष्टं |
| ,, | ,, | १४ | *सु तिः | सुष्टिति | २०८३ | १ | ३२ | त्रिका | त्रिकाः |
| २००७ | १ | २६ | तन्त्रे | न्त्रे | २०८४ | २ | ३५ | दौशी | दौशी |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|-----------|-----------|--------|---------|---------|------------------------|-----------------------|
| १०८५ | १ | २० | णामि | णामि | ११७८ | २ | २५ | दुभयाभावो | भावो |
| " | २ | ३ | दीना | दिना | ११८१ | १ | ३६ | १६।४।४।३,४, +१६।४।३,४, | |
| १०८८ | १ | २० | रिति | रपि | " | २ | १० | त्विन् | त्विन |
| १०८९ | " | १३ | पुनर्भू | पुनर्भु | ११८२ | १ | २४ | कनीषा | कनिष्ठा |
| " | २ | ४ | दुःखि | दुःखि | ११८३ | २ | २० | माणकृक्थ | माण ऋक्थ |
| १०९१ | १ | ५ | ह्यणे नै | ह्यणै | ११८५ | " | २१ | शान् मा | शान्मा |
| १०९६ | २ | ८ | वृत्त रज | वृत्ते रज | ११८७ | " | २४ | भजे | भज |
| ११०३ | " | ५ | पुनर्भूः | पुनर्भूः | ११९० | " | २ | बोध | बोद्ध |
| ११०५ | " | २२ | तद्द्वौ | तद्द्वौ | ११९१ | " | १५ | पादा | पदा |
| " | १ | १६ | लोमजा | लोमजौ | ११९४ | १ | १० | ष्ठत | ष्ठित |
| १११० | " | ११ | ग्यवै | ग्यमवै | १२०३ | " | ३३ | यार्थ | + यार्थस्य |
| १११२ | " | १८, | परवेश्या | परवेश्मा | १२०६ | २ | १४ | भित्या | भित्या |
| " | २ | ३५ | विभ. ३०. | +विभ. ३० | १२०७ | १ | २५ | (अन्नद) | + (अन्नोद) |
| " | " | ३६ | षतोऽप्रसू | षतोऽप्रसू | १२०८ | " | ३१ | तु विषमं (सैक | +कं तु विषमं (कं सैक |
| " | " | ३६ | षतोऽप्रसू | +omit | १२०९ | " | १७ | दीना | दिना |
| " | " | ३६ | षतोऽप्रसू | +omit | १२१० | " | " | चनस्मृति | चन स्मृति |
| " | " | ३६ | षतोऽप्रसू | +omit | १२१५ | २ | ३० | द्रव्यावि | द्रव्यवि |
| १११४ | " | २६ | स्त्र्यैव | स्त्र्येव | १२१६ | १ | १९ | इति श्रमे | इति । श्रमे |
| १११६ | १ | ७ | रणां | राणां | १२२२ | २ | ३३ | अनु | +त्वनु |
| ११२३ | " | १७,१९ | इत्या | इत्य | १२२४ | १ | ६ | मदूर्ध्वमिति | मदूर्ध्वमिति |
| ११३१ | २ | २० | याज्या | याज्या | १२२६ | २ | " | तार्थ | तार्थ |
| ११३५ | " | २३ | पितु | पित | १२२८ | १ | ५ | मित्यर्थ | मित्यर्थः |
| ११३६ | " | ७ | अनेवं | अनेवं | १२३० | " | १४ | मतन्तरे | मतिमन्तरे |
| ११३८ | " | १८ | तरौ | तरौ । | १२३३ | " | ३२ | यकसी | यसी |
| ११४६ | १ | २७ | ष्व | ष्व | १२३६ | " | २ | तोऽश | तोऽश |
| " | २ | २२ | सायन्ति | साययन्ति | १२४१ | २ | ३ | त्यादि बृह | त्यादिबृह |
| ११४८ | " | १९ | उर्ध्व | ऊर्ध्व | १२४५ | १ | १४ | वासञ- | वासञः |
| ११५१ | " | २२ | कल्पः न | कल्पः । न | १२५० | " | २४ | पूर्वाक्त | पूर्वोक्त |
| ११५२ | १ | ९ | तद्भ्रातृ | तद्भ्रातृ | १२५७ | २ | ४ | पत्नी | पत्नि |
| ११५६ | २ | २३ | भरणा | भरणा | १२५८ | १ | १६ | मुखी | मुखी- |
| ११५७ | " | " | एवा | एव | १२६१ | " | १७ | न्वतो | वन्तो |
| ११५८ | " | १८ | नन् | नृन् | " | " | २८ | प्राप्स्यति | प्राप्स्यति |
| ११६१ | " | ५ | बृही | बृही | १२६२ | २ | १५ | हान्तरं | हान्तरं |
| ११६२ | १ | ४ | र्बहि | र्बहिः | १२६५ | १ | १६ | स्योद | स्यादे |
| " | २ | १४ | वस्तुभाग | वस्तु भाग | १२६६ | " | ३७ | कर्म (धर्म) | +कर्मभिः (धर्माभिः) |
| ११६४ | १ | १९ | ष्वयै | श्वयै | " | २ | २३ | वत्या | वत्या |
| ११७१ | " | २३ | पितमहा | पितामहः | १२७६ | " | ३४ | त्वात् | त्वात् |
| ११७४ | ३ | १९ | षट्य | षट्य | | | | | |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|----------------|------------------|--------|---------|---------|-------------------|---------------|
| १२८० | १ | ८ | यते पद | यतेपद | १३७३ | १ | २९, ३३ | वृत्तौ | वृत्तौ |
| १२८४ | २ | १ | श्रेष्ठां | श्रेष्ठं | १३७५ | २ | २ | हारि | हारी |
| १२८६ | २ | २५ | पृथक् | पृथक् | १३७७ | २ | १९ | व्यामो | व्यामो |
| १२९० | १ | ३६ | तेनैव) ; | +तेनैव)] ; | १३८२ | २ | ८ | त्वेतद् | त्वेतद् |
| १२९१ | २ | ३० | दुरा | दूरा | १३८४ | १ | ३७ | (६) | +(७) |
| १२९३ | १ | २४ | सपिण्डा | सपिण्ड | १३८५ | २ | ३८ | (७) | +(६) |
| १२९७ | २ | ५ | दोहि | दौहि | १३९२ | २ | १८ | धनखा | धनाखा |
| १२९७ | २ | १२ | दुहिदुहिद्व्या | दुहिदुहिद्वित्र- | १३९३ | २ | १४ | दार्पाह | दापाह |
| | | | | दौहिद्व्या | १३९३ | २ | १९ | उन्मन्तं | उन्मन्तं |
| १३०० | २ | २४ | दोहित्रो | दौहित्रो | १३९४ | १ | २१ | तत् पु | तत्सु |
| १३०० | २ | १ | न- | न | १३९५ | २ | १४ | या | याः |
| १३०५ | १ | ३० | पुत्रीभव | पुत्री भव | १३९७ | १ | २ | द्राय पु | द्रापु |
| १३०५ | २ | ३५ | जलक | जल | १३९८ | २ | १३ | *दुवृत्तः | दुवृत्त |
| १३१० | २ | ३३ | गक्षम् | +क्षणम् | १४०६ | १ | २० | विप्र | विप्र |
| १३१० | २ | १५ | *सपायः | संपायः | १४०९ | २ | ४ | नादै | दनादै |
| १३१२ | १ | ६ | मिते | मि ते | १४०९ | २ | ५ | वेता सा | वे तासा |
| १३१२ | २ | ३५ | धिन्तव्या | धिगन्तव्या | १४१३ | २ | ३२ | राव्या | +रोव्या |
| १३१३ | २ | २८ | देवो | देवी | १४१४ | १ | २६ | भाज | भज |
| १३१४ | २ | ३ | इत्येवं | इत्येवं | १४१४ | १ | ३५ | राव्या | +रोव्या |
| १३१४ | २ | २८ | झात्रा | झात्रा | १४१५ | २ | २२ | उभयोर्भ्रातृ- | निरुक्तम् |
| १३२१ | १ | २५ | वोढा | होढा | | | | भगिन्योः | उभयोर्भ्रातृ- |
| १३२५ | २ | २२ | यादा | यादाः | | | | भगिन्योः | |
| १३२७ | २ | २६ | ममु. | +ममु. | | | | [' आपस्तम्भः] | |
| १३३१ | २ | १२ | या | वा | | | | इत्सरभ्यः | |
| १३३७ | २ | २१ | स्त्वोर | स्त्वौर | | | | 'वसिष्ठः' इत्य- | |
| १३३९ | २ | २३ | नाधि | नाधि | | | | वधिर्प्रन्थः | |
| १३४१ | १ | २९ | कर | प्रकर | | | | १४०७ पत्रे १ | |
| १३४४ | २ | २५ | दुरा | दूरा | | | | स्तम्भे 'वसिष्ठः' | |
| १३४४ | २ | २ | कामं त. | कामं तु | | | | इत्यस्य प्राक् | |
| १३४६ | २ | ९ | आद्या | आद्याः | | | | अपकृत्यः | |
| १३५५ | १ | १८ | स्त्वैक | स्त्वैक | १४१७ | १ | २७ | बोद्धव्यः ।] | |
| १३५६ | २ | २२ | इते | इते | १४१७ | १ | २७ | वाच्यतो | वाच्यो |
| १३५७ | २ | १६ | पार्वणकरण | करणपार्वण | १४१९ | २ | १२ | निवृत्तिः | निवृत्तिः |
| १३५९ | २ | ३२ | चाभि | चाभि | १४२० | १ | १३ | क्षत्रिय | क्षत्रिया |
| १३६० | २ | ६ | द्वये च | द्वयेन | १४२० | २ | २८ | शक | श |
| १३६४ | १ | २४ | विरुद्ध | विरुद्ध | १४२० | २ | २० | कटु | कुटु |
| १३६७ | २ | १५ | जस्तु | जस्तु | १४३१ | २ | ३३ | १३३५ | +१३३५ |
| १३७२ | २ | ११ | कुलिना | कुलीना | १४३६ | २ | ७, ९ | विधि | विधी |
| | | | | | १४४० | २ | ६ | या कन्या | याकन्या |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|---------------------------|-------------------------------|--------|---------|---------|-------------|--------------|
| १४४१ | १ | ६ | लाक्ष | ल्यश्च | १५४५ | २ | १ | संहि | सहि |
| १४४४ | १ | १५ | जवा | जना | १५४६ | १ | ३८ | सृष्टी | +सृष्टो |
| १४४५ | १ | १८ | कृता | कृदा | १५४८ | १ | ३१ | *संस | संसु |
| १४५२ | १ | ४ | त्रस्यादौ | त्रस्य । दौ | १५५१ | १ | २८ | *धन | धन |
| १४५३ | १ | ३२ | उत्तरार्धे | +पूर्वार्धे | १५५२ | १ | ३ | *संसर्गे | संसर्गे |
| १४५६ | २ | ३० | चेत्सद्वि (यदि चेद्वि) | +चेत्स द्वि (यदि चेद्वि) | १५५५ | १ | ३८ | धश्चु | +धश्चु |
| १४६० | १ | ६ | दत्तं | दत्तं | १५५६ | १ | २३ | तत् सं | +तत्सं |
| १४६५ | १ | ३४, ३६ | * | X | १५५७ | २ | ४ | पिता | पित्रा |
| १४६७ | २ | १० | रस्य | रत्र | १५७७ | १ | १२ | माङ्गा | माङ्गा |
| १४६७ | १ | ८ | सत्य | सत्य | १५८१ | १ | २६ | रिख | रि'ख |
| १४७० | १ | १३ | द्विष्णुः | +द्विष्णुः | १५८१ | १ | ३१ | बसु | वसे |
| १४७६ | १ | २६ | भ्रातरौ | भ्रात्रो | १५८४ | १ | २२ | च | +च ये |
| १४७७ | १ | १ | रञ्जि | रञ्जि | १५८४ | १ | १ | स्तका | स्तका |
| १४७७ | २ | १९ | बन्धम् | बद्धम् | १५८७ | १ | १ | विभक्ता | विभक्ता |
| १४८७ | १ | ३२ | यन्ते न | यन्तेन | १५८७ | २ | १२ | विभक्तानां | अविभक्तानां |
| १४८९ | २ | १६ | प्रवासा | प्रसवा | १५८९ | १ | १० | लेपो | +लोपो |
| १४९२ | १ | ४ | सर्गो | सर्गी | १५९२ | २ | १६ | दिदे | दि दे |
| १४९० | १ | ४ | त्राशय | त्रा शय | १५९७ | १ | १२ | त्रियस्व | त्रियस्वे |
| १४९२ | १ | ११ | इति नायं, | इति, नायं | १५९७ | १ | २९ | *सख्या | सख्या |
| १४९८ | १ | २५ | त्रार्थ | त्रर्थ | १६०६ | १ | २९ | ख्यातौ । | + (ख्यातौ) |
| १५०९ | १ | १० | धर्म | धर्म्य | १६०७ | १ | १४ | *दार्श | दार्श |
| १५०९ | १ | १० | रुचिर्द | रुचिर्द | १६०९ | १ | १० | कर्तु | कर्तु |
| १५१४ | २ | १४ | सह वा | सहवा | १६१२ | २ | २५ | *समन्तु | +सुमन्तु |
| १५१६ | १ | २० | पत्न्य | पत्न्या | १६१३ | १ | १ | *प्राया | प्राप्नुया |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) | १६१३ | २ | १३ | *ख्यात | ख्यातं |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६१९ | १ | २८ | वा त्वक्श्च | वात्क्श्च |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६२१ | १ | २१ | स्तत्र | स्तत्रै |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६२१ | १ | १३ | *चय | चयं |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६२२ | २ | २ | बलमा | बलमात्रमा |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६२२ | १ | १७ | ऐन्द्र | ऐन्द्र |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६२२ | १ | २० | नोप | नोपे |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६२७ | १ | ११ | *पमान | पमान |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६३१ | १ | ३६ | *लादिदे | +लादि वि |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६३४ | १ | २ | चर्तुर्गु | चर्तुर्गु |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६४४ | २ | १६ | *कृत | कृतं |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६५४ | १ | ९ | वाग्दण्ड | वाग्दण्ड |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६५४ | १ | २१ | रुप्य | रुप्य |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६६१ | १ | ३५ | करणेऽदोः | +करणेऽदोः |
| १५१७ | १ | ३३ | १३५ | +१३५ सुत (सुता) शेषं | १६६१ | १ | २८ | निलं | +निलं |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|-----------------|-------------|--------|---------|---------------|--------------|-------------------|
| १६६१ | २ | २९ | गोमि. | +गौमि. | १७९८ | २ | २९ | पुष्पो | +पुष्पो |
| १६७४ | ,, | १४,३० | पराध्या | पराध्या | १७९९ | ,, | १२ | *गूण | गूणे |
| १६७८ | ,, | १ | त्यन | त्येन | १८०३ | १ | ४ | श्रावः | सावः |
| १६८४ | १ | १८ | पृच्छेत् | पृच्छेत् | १८०८ | ,, | ,, | धात् | न्धात् |
| ,, | २ | ८ | प्रीत | प्रति | १८१५ | २ | २१ | *मद्दे | मेद् |
| १६८५ | १ | २२ | *गात्र | गात्रं | १८२० | ,, | १४ | मिमित्तं | निमित्तं |
| १६८६ | ,, | ८ | वाक्या | वाक्य | १८३० | ,, | १७ | *सयोज्यः | संयोज्यः |
| १६८७ | २ | २४ | ललाटे | ललाटे | १८३५ | १ | १ | प्रक्ष | प्रक्षे |
| १६९१ | १ | २७ | यनि | +यनि | १८३९ | ,, | १९ | *दवाः | देवाः |
| १६९४ | ,, | ३ | *इद | इदं | १८४१ | ,, | १७ | जहु | जुहु |
| १६९८ | २ | ३६ | *राज्ञ | राज्ञः | ,, | ,, | २९ | ज्ञिषि | निषि |
| १७०० | १ | २२ | प्रछ | प्रच्छ | १८४६ | ,, | ३ | वनपं | +वनपं |
| १७०१ | २ | १२ | रुढा | रूढा | १८६७ | २ | ३७ | छेत्तेव्य | +छेत्तेव्ये |
| १७०२ | १ | २८ | शश्व | +शश्व | १८६८ | १ | २४ | दुष | +दूष |
| १७१० | ,, | १० | कर्तृन् | कर्तृन् | १८७४ | ,, | १० | *घ्रव | ध्रुव |
| ,, | ,, | ३६ | *करान् | करान् | १९०० | ,, | १२ | देवनां | देवानां |
| १७१३ | २ | २० | रक्ताः | रिक्ताः | १९०३ | २ | ३ | महिपान् | महिषान् |
| १७१४ | ,, | १३ | विशतिः | विंशतिः | १९०५ | १ | १४ | क्षत्रे | क्षेत्र |
| १७२१ | ,, | ३ | *गुण | गुणं | १९०६ | ,, | ३१ | यस्तु | +यस्तु |
| १७२२ | ,, | २२ | जात | ञ्जात | १९१२ | ,, | ६ | ससभि | सभि |
| १७३२ | ,, | १४ | ङ्मनु | ङ्मनु | ,, | २ | ९ | मध्य | मध्य- |
| १७३३ | ,, | ३६ | } विश्ववत् | +omit | १९१७ | ,, | २८ | ध्यनादि | ध्ययनादि |
| १७३४ | १ | २८,२९ | | | १९१८ | १ | ३८ | स्मृच. १० | +स्मृच. १० |
| १७३३ | २ | ३६ | पमा. ४५८ | +पमा. ४५८ | | | | (आचारः) | |
| १७३४ | १ | २९ | विता. ७६९ | +विता. ७६९ | १९१९ | ,, | ३०,३१, ३२,३४, | + " | |
| १७४८ | ,, | ५ | सुकृ | सकृ | | | ३५ | " | |
| १७५७ | ,, | २ | सामान्ता | सामन्ता | " | २ | ३४ | + " | |
| १७६१ | ,, | २४ | परूक | रूपक | १९२३ | १ | २५ | कुल | |
| १७७१ | ,, | ३३ | ष्टातिक्रमे+(च) | +(च०) | १९२४ | ,, | ३० | हार | |
| १७७३ | २ | १ | *सख्य | संख्य | १९२६ | २ | २७ | तप्र | |
| ,, | ,, | १३ | वाचिके | वाचिके | १९२७ | ,, | २२ | कुसीद | |
| १७८२ | ,, | २५ | विविक्षितः | विविक्षितः | ,, | ,, | २४ | कर्मणा | |
| १७८७ | १ | ११ | द्वितीयं | द्वितीयं | १९३२ | १ | १३ | *लख्य | |
| १७९३ | २ | १५ | *वश्य | वैश्य | १९३४ | २ | २९ | नरति | |
| १७९६ | १ | २६ | निष्ठीव्यो | +निष्ठीव्यो | १९३८ | १ | १९ | प्रतिसिद्ध | |
| १७९७ | ,, | १५ | बहुनां | +बहुनां | ,, | २ | २ | संततत | |
| ,, | ,, | २२ | मुक् | +मुक्ता | १९३९ | ,, | २६ | शक्तिम् | |
| | | | | | १९४० | १ | ३२ | कारा (करा) | +प्रकारा(त्र करा) |

| पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठं | स्तम्भः | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|---------|---------------|-----------------------------|--------|---------|---------|-----------|----------|
| १९४२ | २ | ४ | मयैध | मयैर्ध | १९५० | १ | ११ | *सव | सर्व |
| ” | ” | ३३ | स्मृच. १०. | +स्मृच. १० (आचारः). | १९५४ | २ | ७ | *योपक्षो | यापेक्षो |
| १९४३ | १ | ३६ | स्मृच. १०-११. | +स्मृच. १०-११ (आचारः). | १९६७ | १ | ३ | *सादिर्ध | सादिर्ध |
| १९४४ | २ | २५ | बाहुभ्य | +बाहुभ्यां | १९७३ | ” | ५ | *किञ्चिद् | किञ्चिद् |
| १९४५ | २ | ८ | षादिनि | षादीनि | १९७७ | ” | २१ | ह्यङ्गि | ह्यङ्गि |
| १९४६ | १ | ११ | ग्राह्यम् | ग्राह्यम् । | १९८२ | ” | ९ | पुत्रात् | पुत्रात् |
| ” | २ | १२ | *तत्स्थान | तस्थानं | १९८३ | २ | ११ | पुत्रोर | पुत्रयोर |
| १९५० | १ | ९ | ब्रूवं | ब्रुवं | १९८४ | १ | २९ | मैर्ह्यं | मैर्ह्यं |
| | | | | | १९८७ | ” | ३५ | यावृत् | यात्रत |
| | | | | | १९८८ | २ | २१ | हीन | हीनं |

